श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी नीलाचल लीला



प्रभुपाद हरिदास गोस्वामी

श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी नीलाचल-लीला

●

श्रीश्रीमन्महाप्रभु एवं उनके परिकरोंकी लीलासे सम्बन्धित
तथा अन्य अनेक भक्ति-ग्रन्थोंके प्रणेता

एवं

प्रसिद्ध पदकर्ता
श्रीपाद द्विज बलरामदास ठाकुरवंशीय

प्रभुपाद श्रीहरिदास गोस्वामीकृत

अब तौ हरी नाम लौ लागी ।
सब जग को यह माखन-चोरा, नाम धर्‌यौ बैरागी ।।१।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी ।
मूँड़ मुँड़ाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी ।।२।।
मात जसोमति माखन-कारन, बाँधे जाके पाँव ।
स्यामकिसोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव ।।३।।
पीतांबर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै ।
गौर-कृष्ण की दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै ।।४।।

●

श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभु पञ्चशतवर्ष आविर्भाव समिति की प्रेरणा से—
सत्-शास्त्र-प्रकाशन,
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान,
मथुरा (उत्तर प्रदेश) २८१००१
द्वारा प्रकाशित व प्रचारित

●

व्रजका खेल कुलेल-मगन-मन ।
नदियाका रज-लुण्ठित-तन ॥
व्रजका खेल मुरलिका-वादन ।
नदियाका हरिनाम-भजन ॥
व्रजका खेल कुसुम-वन-विहरण ।
नदियाका दृग-जल-वर्षण ॥

●

प्रकाशन-तिथि : आश्विन शुक्ल पूर्णिमा, (शरद्-पूर्णिमा),
वि० सं० २०३८, १३ अक्तूबर, १९८१
प्रथम आवृत्ति : १,१०० प्रतियाँ
न्यौछावर : ५०) पचास रुपये मात्र

●

मुद्रक—
शैलेन्द्र वी. माहेश्वरी,
नवज्योति प्रेस, सेठ भीकचन्द मार्ग,
मथुरा २८१००१



'राधा' अंकित श्रीचैतन्य महाप्रभु

चित्रकार—सुश्री संगीता डालमिया

श्रीहरिदास गोस्वामी, ग्रन्थकार



जन्म दिनांक: २अक्तूबर १८६७

तिरोधान दिनांक ४ जनवरी १९४६

जय गौर !

परमभागवत प्रभुपाद हरिदास गोस्वामी ग्रन्थकार-चरण-कमलेषु

देव !

गौराङ्ग-महाभारत लिखनेमें आपको कितना परिश्रम और समय खर्च करना पड़ा, यह ग्रन्थके कलेवर और सामग्रीको देखनेसे ही स्पष्ट हो जाता है। इतने बड़े ग्रन्थकी पाण्डुलिपि साथ लिये भ्रमणमें रहना, उस जमानेमें रेलवेकी थर्ड क्लासमें यात्रा करना, यात्राकालमें भी अपना नित्य-नैमित्तिक कार्यका पूर्णरूपसे निर्वाह करना, यात्राकालमें रेलवे स्टेशनपर ही श्रीविग्रहकी सेवा-आरती सम्पन्न करते समय एकत्रित जनताको प्रसाद-वितरण—कितने धैर्यकी बात है, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

आपकी भावनाके अनुसार इस ग्रन्थका यह हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो रहा है। नीलाचल-लीला-ग्रन्थमें मूल बंगलासे हिन्दीमें जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन किये गये हैं, जिसके लिए आपके चरणोंमें क्षमा-याचना है। जो परिवर्तन किये गये हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

१. नवद्वीप-लीलाके १७वें अध्यायमें जो रजक-उद्धार-लीलाका वर्णन है, वह महाप्रभुजीके संन्यास-ग्रहणके बाद नीलाचल जाते समय मार्गमें घटित हुई थी; अतः उसका समावेश नीलाचल-लीलाके हिन्दी संस्करणमें पहले अध्यायमें कर दिया है।

२. दूसरे अध्यायमें सार्वभौम भट्टाचार्यको श्रीमद्भागवत १.७.१० 'आत्मारामाश्च मुनयोः·····' की व्याख्या सुनायी गयी, वह सनातन गोस्वामीको वाराणसीमें शिक्षा देते समय बतायी गयी थी, वही है। अतः उसको इस हिन्दी संस्करणमें वहां नहीं दिया गया है। सनातन गोस्वामीको इस श्लोकके जो ६१ अर्थ सुनाये गये थे, उनका डा० राधागोविन्द नाथकी टीकासहित हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है, उसकी ओर संकेत कर दिया गया है।

३. घटना-क्रमके अनुसार १५वें अध्यायको १६वाँ और १६वें अध्यायको १५वाँ बना दिया गया है। कुछ वर्णन १६वें अध्यायका उसीमें रहने दिया है। जैसे—महाप्रभुका लक्षपतिके यहाँ भिक्षा-ग्रहण करनेका नियम।

४. महाप्रभुके व्रज-दर्शनका वर्णन ३:वें अध्यायमें है। उसमें मूल बंगला ग्रन्थके क्रमको हिन्दी संस्करणमें थोड़ा परिवर्तित कर दिया गया है। श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा मथुरामें 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-दर्शन' का वर्णन छूट गया था, वह जोड़ दिया गया है।

५. श्रीनित्यानन्दप्रभुका शिवानन्द सेनके साथ लीला-रंगका प्रसंग ४८वें अध्यायमें है; वह दुबारा मूलग्रन्थके ५४वें अध्यायमें भी आया है, उसको वहाँ छोड़ दिया गया है।

६. महाप्रभुके नवद्वीपके पड़ोसी परमेश्वर मोदकका प्रसंग ४८वें अध्यायमें भी है और मूलग्रन्थके ५४वें अध्यायमें भी। उसको केवल ४८वें अध्यायमें रखा गया है।

७. नीलाचल-लीलाके ४९वें अध्यायको पूर्णरूपसे छोड़ दिया गया है, जिसका कारण 'श्रीचैतन्य-चरितामृत, अन्त्य-लीला, सप्तम परिच्छेद एवं नीलाचल-लीला ४९वें अध्यायके सम्बन्धमें' शीर्षकके अन्तर्गत बंगला संस्करणमें दी गयी सामग्रीमें स्पष्ट किया गया है, जिसके लिए आपसे विशेषरूपसे क्षमा-याचना है। अध्यायोंकी क्रमसंख्या टूटे नहीं, इसके लिए आगेके अध्यायोंकी एक संख्या हिन्दी संस्करणमें घटा दी गयी है।

आपके चरणोंमें पुनः भिक्षा-प्रार्थना है कि इस दासको भी अपनी कृपादृष्टिकी एक बूंद देकर कृतार्थ करें।

—आपका दासानुदास

संदर्भ-ग्रन्थोंकी तालिका

श्रीश्रीनवद्वीप-लीला और श्रीश्रीनीलाचल-लीलाके हिन्दी संस्करणमें बंगला पयार तथा अन्य छन्दके एवं संस्कृत श्लोकोंके संकेत-स्थल जिन ग्रन्थोंसे दिये गये हैं, उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

क्रम सं०	ग्रन्थ	प्रणेता	सम्पादक या टीकाकार	प्रकाशक	संक्षिप्त संकेत
१.	श्रीचैतन्यचरितामृत (चतुर्थ संस्करण)	कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामी	डा० राधागोविन्द नाथ	साधना प्रकाशनी, कलकत्ता	चै.च.
२.	श्रीचैतन्यभागवत	श्रीवृन्दावनदास ठाकुर	,,	,,	चै.भा.
	उपर्युक्त दोनों ग्रन्थोंके आदिलीला/आदिखण्ड, मध्यलीला/मध्यखण्ड, अन्त्यलीला/अन्त्य खण्डके लिए क्रमशः				आ.,म.,अं.
३.	श्रीगोविन्दलीलामृत	कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामी		श्रीकृष्णदास बाबा, कुसुम सरोवर	गो.ली.
४.	श्रीकृष्णचैतन्य-चरितामृत महाकाव्य	महाकवि श्रीकर्णपूर	श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी	श्रीगोविन्द मन्दिर, कलकत्ता	चै.च.महा.
५.	श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक	,,	श्रीपुरीदास महाशय	श्रीहरिदास शर्मा, वृन्दावन	चै.च.ना.
६.	श्रीललितमाधव नाटक	श्रीरूप गोस्वामी	,,	श्रीशचीनाथ चतुर्धरी, मैमनसिंह	ल.मा.ना.
७.	श्रीविदग्धमाधव नाटक	,,	पं० रमाकान्त झा	चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी	वि.मा.ना.
८.	श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु	,,		श्रीहरिबोल कुटीर, नवद्वीप	भ.र.सि.

क्रम सं०	ग्रन्थ	प्रणेता	सम्पादक या टीकाकार	प्रकाशक	संक्षिप्त संकेत
९.	श्रीउज्वलनीलमणि	श्रीरूप गोस्वामी	श्रीपुरीदास महाशय	श्रीहरिदास शर्मा, वृन्दावन	उ.नी.
१०.	श्रीलघुभागवतामृत (संक्षिप्त भागवतामृत)	,,	,,	श्रीशचीनाथ चतुर्धरी, मैमनसिंह	ल.भा.
११.	श्रीबृहद्भागवतामृत	श्रीसनातन गोस्वामी	,,	,,	बृ.भा.
१२.	श्रीहरिभक्तिविलास	,,	,,	,,	ह. भ.वि.
१३.	श्रीचैतन्यचन्द्रामृत (काव्य)	श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती	श्रीअनादिमोहन गोस्वामी	वैष्णव सम्मेलनी, कलकत्ता	चै.च.काव्य अथवा चै.चं.
१४.	श्रीभक्तिरत्नाकर (द्वितीय संस्करण)	श्रीनरहरि चक्रवर्ती	श्रीनन्दलाल विद्यासागर	गौड़ीय मिशन, कलकत्ता	भ. र.
१५.	श्रीभक्तमाल	श्रीलालदास बाबाजी	श्रीसुबोधचन्द्र मजुमदार	देव साहित्य-कुटीर, कलकत्ता	भक्तमाल
१६.	श्रीमद्भागवत	महर्षि वेदव्यास		गीताप्रेस, गोरखपुर	श्रीम.भा.या भा.
१७.	श्रीविष्णुपुराण	,,		,,	वि.पु
१८.	श्रीभगवद्गीता	,,		,,	गी.
१९.	महाभारत	,,		,,	म.भा.
२०.	श्रीचैतन्यमङ्गल	ठाकुर लोचनदास			चै.मं.
२१.	श्रीचैतन्यमङ्गल	श्रीजयानन्द			ज.चै.मं.
२२.	श्रीपद्यावली		श्रीरूप गोस्वामी	श्रीराघव चैतन्यदास, वृन्दावन	पद्यावली
२३.	श्रीकृष्णकर्णामृत	लीलाशुक श्रीविल्वमङ्गल	श्रीविमानविहारी मजुमदार	श्रीश्रीशकुमार कुण्ड, कलकत्ता	कृ.क.
२४.	श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत (मुरारिगुप्तका करचा)	श्रीमुरारि गुप्त	श्रीहरिदास बाबाजी	श्रीमृणालकान्ति घोष, कलकत्ता	कृ. चै. च. अथवा मु, गु. करचा

श्रीजगन्नाथ-दशकम्

कदाचित् कालिन्दीतटविपिनसंसर्गिभवने
मुदाऽऽभीरीनारी–वदनकमलाऽऽस्वाद–मधुपः ।
रमा - शम्भु - ब्रह्मा-सुरपति - गणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥

करे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचरि - कटाक्षं विदधते ।
सदा श्रीमद्वृन्दावन - विपिन-लीलापरिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहज - बलभद्रेण बलिना ।
सुभद्रा-मध्यस्थः सकल - सुर - सेवावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥३॥

कृपा-पारावारःसजल - जलद - श्रेणि - रुचिरो
रमा-वाणी-सेव्यः स्फुरदमल - पङ्केरुहपदः ।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगण - शिखागीत - चरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥

परब्रह्मापीडः कमल - वदनोत्फुल्ल - नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहितचरणोऽनन्तशिरसि ।
रसानन्दी राधा - सरस - वपुरालिङ्गन - सुखी
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥५॥

रथारूढो गच्छन् पथि मिलितभूदेवपटलैः
स्तुतः प्रादुर्भावं प्लुतपदमुपाकर्ण्य सदयः ।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सुग्धसदयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥

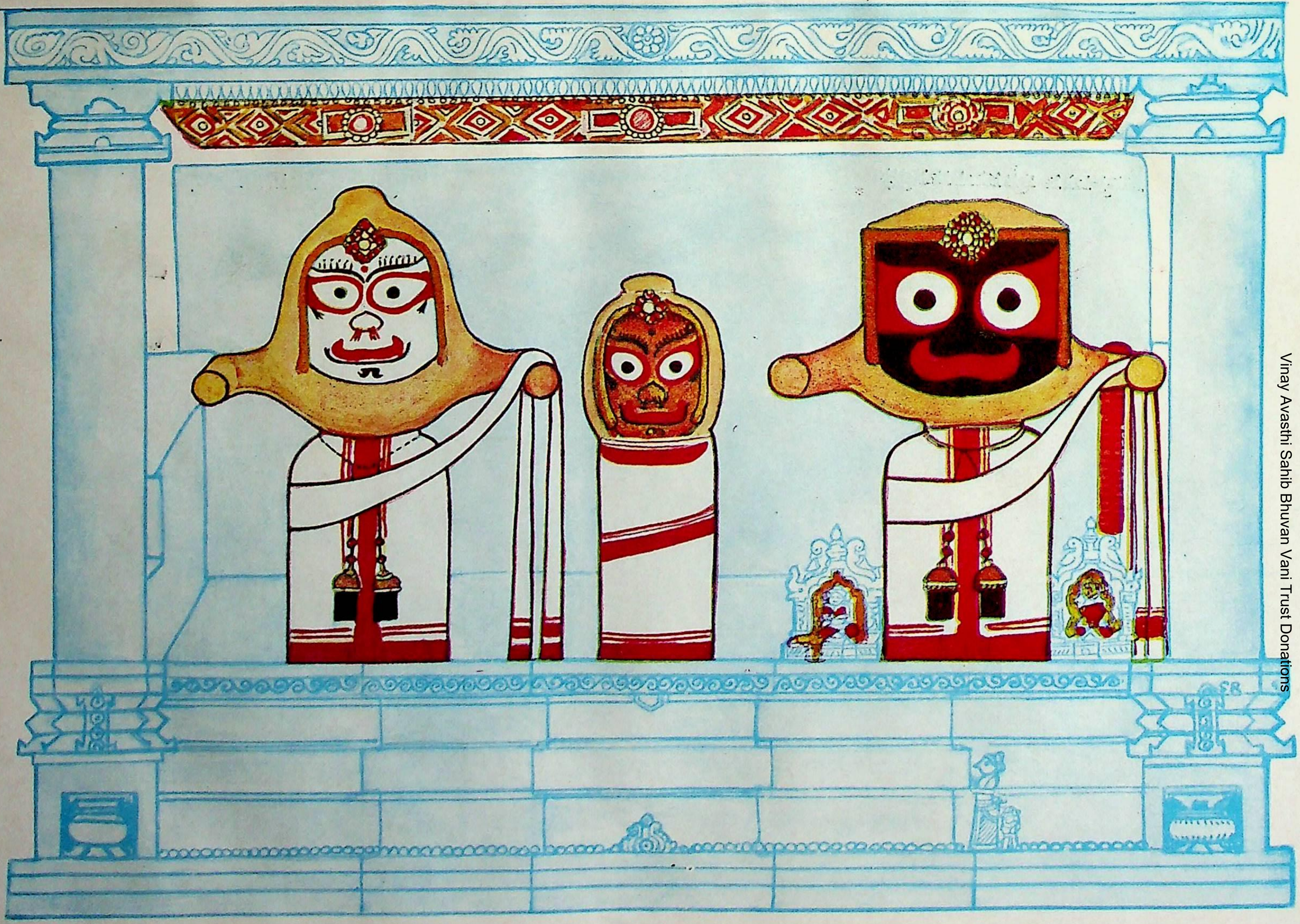
हर त्वं संसारं द्रुततममसारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते ।
अहं याचे नित्यं परममचलं निश्चितमिदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥७॥

न च प्राप्यं राज्यं न च कनकमाहो न विभवं
न याचेऽहं रम्यां निखिलवरकाम्याँ वरवधूम् ।
सदा काले कामं प्रमथपतिनोद्गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥८॥

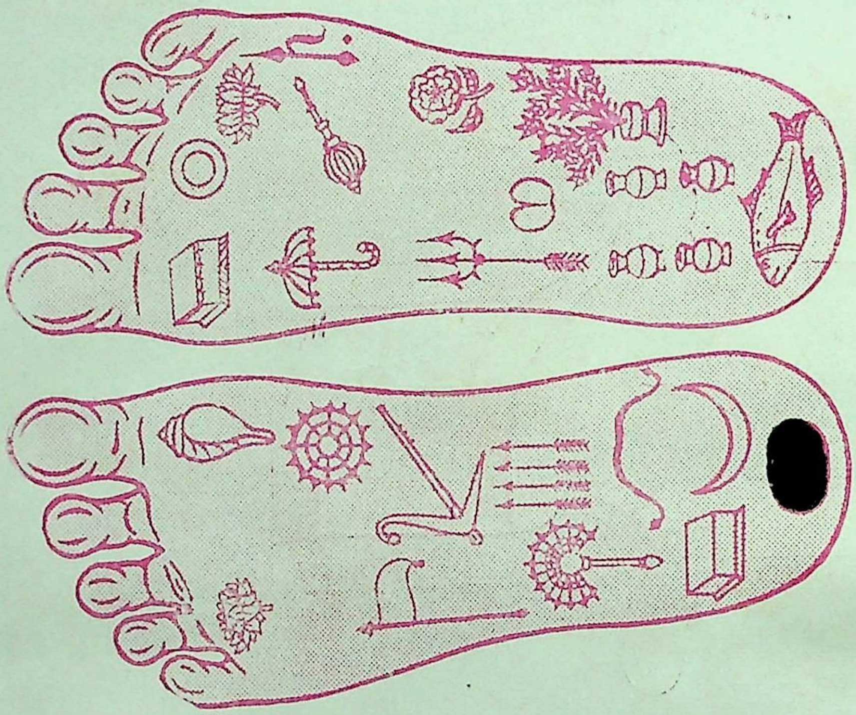
घनश्यामाकारः सुरमधुरधामा भवपिता
महेन्द्रादेराद्यो वररमणराधार्पिततनुः ।
लसच्छ्रीवत्साङ्कस्तरुणतुलसीमाल्य - सुभगो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥९॥

सदानन्दाकारो जगति जगतां किल्बिषहरो
जगन्मूलाधारो जलधि - तनया - सेवितपदः ।
जरामृत्युध्वंसी जलदपटलश्यामलरुचिः
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१०॥

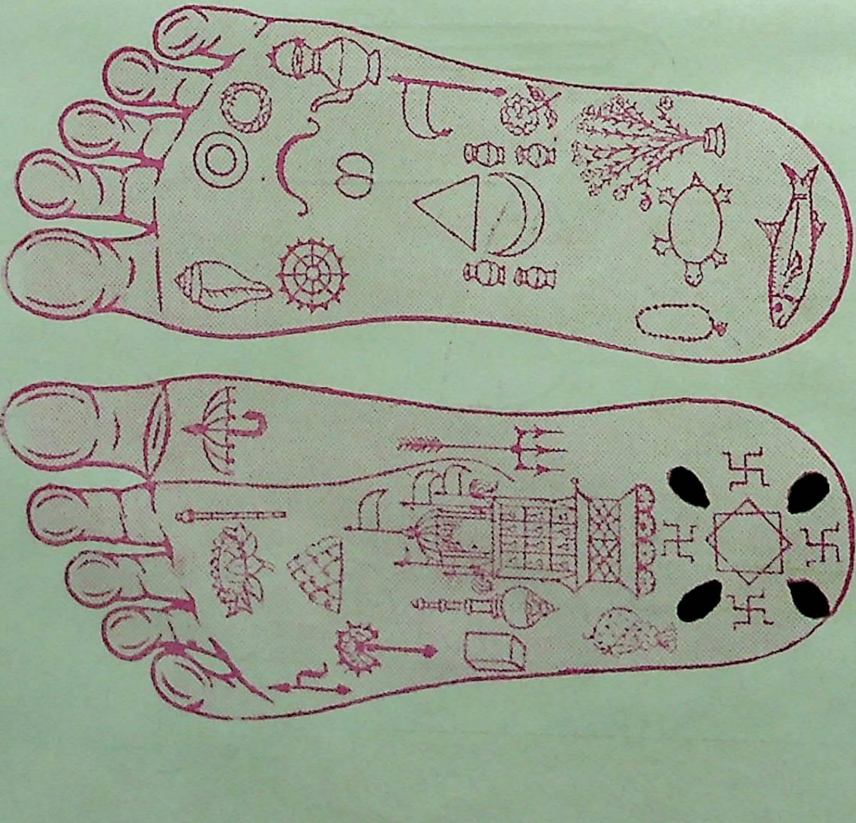
॥ इति श्रीजगन्नाथदशकं सम्पूर्णम् ॥



महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे वसन् प्रासादान्तः सहज बलभद्रेण बलिना ।
सुभद्रा - मध्यस्थः सकल - सुर - सेवावसरदो जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥



श्रीनित्यानन्दप्रभुके चरण-चिह्न



श्रीचैतन्यमहाप्रभुके चरण-चिह्न

श्रीश्रीगौरचन्द्रस्य पदाङ्कानि

यवमंगुष्ठमूले च तत्तले चातपत्रकम् ।
अंगुष्ठ-तर्जनी-संधिभागस्थामूर्ध्वरेखिकाम् ॥
सुकुञ्चितां सूक्ष्मरूपां स्मर रे मे मनः सदा ॥
तर्जन्यास्तु तले दण्डं वारिजं मध्यमातले ।
तत्तले पर्वताकारं तत्तले च रथं स्मर ॥
वेदिकां तत्तले व्याप्तां तत्तले कुण्डलं ततः ।
*एतच्चिह्नतले दीप्तं स्वस्तिकानां चतुष्टयम् ॥
अष्टकोण-समायुक्तं संधौ जम्बु-चतुष्टयम् ।
असव्याङ्घ्रौ महालक्ष्म स्मर गौरहरेर्मनः ॥
अथ **वामपदांगुष्ठमूले** शङ्खं तलेऽप्यरिम् ।
मध्यमातल आकाशं **तद्द्वयाधो** धनुः स्मर ॥
गुणेन रहितं चापं वलयां मणिमूलके ।
कनिष्ठायास्तल चैकं सुशोभन-कमण्डलुम् ॥
तस्य तले गोष्पदाख्यं सत्पताकां ध्वजां पुनः ।
चिन्तयेत् तत्तले पुष्पं वल्लीं तस्य तले स्मर ॥
गोष्पदस्य तलेऽप्येकं त्रिकोणाकृतिमण्डलम् ।
चिन्तयेत् तत्तले कुम्भान् चतुरः सुमनोरमान् ॥
तेषां मध्ये चार्द्धचन्द्रं तले कूर्मं सुशोभनम् ।
शफरीं तत्तले रम्यां तस्या हि दक्षिणे पुनः ॥
कूर्मस्य तुल्यभागे तु निम्ने घटतलेऽपि च ।
मनोरमां पुष्पमालां स्मर वामाङ्घ्रिपङ्कजे ।
इति द्वात्रिंशच्चिह्नानि गौराङ्गस्य पदाब्जयोः ॥

अथ रूपचिन्तामणौ—

छत्रं शक्ति-यवांकुशं पविचतुर्जम्बुफलं कुण्डलं
वेदी-दण्ड-गदा-रथाम्बुज-चतुःस्वस्तिं च कोणाष्टकम् ।
शुद्धं पर्वतमूर्ध्वरेखममलांगुष्ठात् कनिष्ठावधे-
र्बिभ्रद्दक्षिणपादपद्ममममलं शच्यात्मज-श्रीहरेः ॥१॥
शङ्खाकाश-कमण्डलुं ध्वजलता-पुष्पस्रगन्धेन्दुकं
चक्रं निर्ज्यधनुस्त्रिकोणवलया-पुष्पं चतुष्कुम्भकम् ।
मीनं गोष्पद-कूर्ममासुहृदयांगुष्ठात् कनिष्ठावधे-
र्बिभ्रत् सव्यपदाम्बुजं भगवतो विश्वम्भरस्य स्मर ॥२॥

———

*'एषां चिह्नतले' इति पाठान्तरम् ।

श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभोः चरण-चिह्नानि

ध्वज-पवि-यव-जम्बुन्यम्बुजं शङ्ख-चक्रे
हल-विशिखचतुष्कं वेदि-चापार्धचन्द्रान्
निखिल-सुखद-नित्यानन्दचन्द्रस्य दक्षे
पदतल इति चित्राः प्रेमरेखाः स्मरामि ॥
मुषल-गगन-छत्राब्जांकुशं वेदि-शक्ती-
झष-कलशचतुष्कं गोष्पदं पुष्पवल्लीम् ।
निखिल-सुखद-नित्यानन्दचन्द्रस्य सव्ये
पदतल इति चित्राः प्रेमरेखाः स्मरामि ॥

धारण-क्रमः—

दक्षिणे चरणांगुष्ठे मूले शङ्खं मनोहरम् ।
नित्यानन्दो बिभर्त्यत्र सर्वविद्या प्रकाशकम् ॥
चक्रं धरति तत्तले भक्त-षड़रिनाशनम् ।
पार्ष्णौ जम्बुफलं धत्ते तदुपर्यर्धचन्द्रकम् ॥
ज्याशून्यं धनुषं तथा सुविशिख-चतुष्टयम् ।
तदुपरि दधाति च तदुपरि हलं स्मृतम् ॥
मध्यमायास्तले यवं पद्ममनामिकातले ।
सर्वानर्थ-जयध्वजं तत्तले धरति प्रभुः ॥
भक्तदुःखाद्रिनाशनं वज्रं धत्ते च तत्तले ।
वेदींच तत्तले धत्ते तथा **वाम पदे** स्मर ॥
अंगुष्ठस्य मूले वेदीं छत्रं शक्तिं क्रमात्तले ।
पार्ष्णौ मत्स्यं तदूर्ध्वे च कुम्भचतुष्टयं शुभम् ॥
तदुपरि च गोष्पदमाकाशं मध्यमातले ।
अनामिकातले पद्मं तत्तले मुषलं स्मृतम् ॥
कनिष्ठायास्तलेऽङ्कुशं पुष्पं च तत्तले स्मर ।
वल्लीं च तत्तले धत्ते सुमनः सहितं तदा ।
चतुर्विंशतिश्चिह्नानि नित्यानन्द पदाम्बुजे ॥

———

शुद्धिपत्र—नीलाचल-लीला

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
११४	१	नीचेसे ५	अथवा आप्भुत	ये शब्द निकाल दिये जायं
१६०	२	१७ और १८ के बीच जोड़ दिया जाय		चै.च.म. ८.१४७
१८७	२	२२	परायण	यह शब्द निकाल दिया जाय
२३४	१	अन्तिम	चै.च.म. १६.६-८	चै.च.महा. १६.६--८
३५४	१	नीचेसे ३	एबड़	ए बड़
३७१	२	१४	रक्खा था। प्रेमनिधि प्रेमनिधिका	रक्खाथा प्रेमनिधि। प्रेमनिधिका
३८५	२	अन्तिम	काव्य	महाकाव्य
४०८	१	नीचेसे ६	खदोऽपि	श्वादोऽपि
५९०	२	नीचेसे ३	१.१८.१४	१.१८.१३
५९२	१	२१	१.२.८	१.२.१८,१९
५९४	२	११	१.२.२४-२७	१.२.७४—७७
५९४	२	२२	२८.३१	१.२.७८--८२
५९४	२	२५	है।	है। भ.र.सि.१.२.८३
५९५	१	२२	१.२.३२-४१	१.२.८४—९३
५९५	२	३	१.२.६३,६४	१.२.२३८
५९८	१	३	१.४.६,७	१.४.१५,१६
५९८	१	१६	१.३.१२-१४	१.३.२५,२६
६०१	१	नीचेसे ३(पाद-टिप्पणी)	२.१ १९-३६	२.१.२३—३२, ३७—४२
६१८	२	१२	३१३.१२७	३१३.११७
६१९	२	पंक्ति २२-२३ के मध्य जोड़ दिया जाय		चै.च.म. २५.११
६२२	२	७	९०	१२०
६२२	१	नीचेसे ३	२६	१२७
६२३	१	नीचेसे १३	९५	४१
८५९	१	१३	गो.सी.	गो.ली.

—

नीलाचल-लीला

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

सताइसवाँ अध्याय ४५६–४७०

(वृन्दावन-यात्रामें विघ्न)

अठाइसवाँ अध्याय ४७१–४७७

(द्वितीय बार श्रीहट्ट-गमन)

उनतीसवाँ अध्याय ४७८–४६०

(नीलाचल आकर वृन्दावन जाना)

विषय पृष्ठ

तीसवाँ अध्याय ४६०–४६६

(श्रीवृन्दावन जाते समय काशी और प्रयागमें)

इकतीसवाँ अध्याय ४६६–५२१

(श्रीवृन्दावनमें श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र)

बत्तीसवाँ अध्याय ५२२–५३०

(प्रयागमें प्रभु और श्रीरूप गोस्वामी)

श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ।

श्रीकृष्णचैतन्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि देवदेवं जगद्गुरुम् ।
नाम्नामष्टोत्तरशतं पुण्यं सर्वाघनाशनम् ॥१॥

विश्वम्भरो जितक्रोधो मायामानुषकर्मकृत् ।
अमायी मायिनां श्रेष्ठो वरदेशो द्विजोत्तमः ॥२॥

जगन्नाथप्रियसुतः पितृभक्तो महामुनिः ।
लक्ष्मीकान्तः शचीपुत्रः प्रेमदो भक्तवत्सलः ॥३॥

द्विजप्रियो द्विजवरो वैष्णवप्राणनायकः ।
द्विजातिपूजकः शान्तः श्रीनिवासप्रियेश्वरः ॥४॥

तप्तकाञ्चनगौराङ्गः सिंहग्रीवो महाभुजः ।
पीतवासा रक्तपटः षड्भुजोऽथ चतुर्भुजः ॥५॥

द्विभुजश्च गदापाणिश्चक्री पद्मधरोऽमलः ।
श्रीवत्सलाञ्छनो भालमणिधृक् कञ्जलोचनः ॥६॥

पाञ्चजन्यधरः शार्ङ्गी वेणुपाणिः सुरोत्तमः ।
कमलाक्षेश्वरप्रीतो गोपीलीलाधरो युवा ॥७॥

नीलरत्नधरो रौप्यहारी कौस्तुभभूषणः ।
बलभद्रानुजो रुद्रलीलाकारी गुरुप्रियः ॥८॥

स्वनामगुणवक्ता च नामोपदेशदायकः ।
आचण्डालप्रियः शुद्धः सर्वप्राणिहिते रतः ॥९॥

विश्वरूपानुजः संध्यावतारः शीतलाशयः ।
निःसीमकरुणो गुप्त आत्मभक्तिप्रवर्तकः ॥१०॥

आत्मप्रियः शुचिः शुद्धो भावदो भगवत्प्रियः ।
इन्द्रादिसर्वदेवेशवन्दित-श्रीपदाम्बुजः ॥११॥

न्यासी चूडामणिः कृष्णः संन्यासाश्रमपावनः ।
चैतन्यः कृष्णचैतन्यो दण्डधृक् न्यस्तदण्डकः ॥१२॥

अवधूतप्रियो नित्यानन्दषड्भुजदर्शकः ।
मुकुन्दसिद्धिदो दीनो वासुदेवामृतप्रदः ॥१३॥

गदाधरप्राणनाथ आर्तिहा शरणप्रदः ।
अकिंचनप्रियप्राणो गुणग्राही जितेन्द्रियः ॥१४॥

महानन्दनटो नृत्यगीतनामप्रियः कविः ।
अदोषदर्शी सुमुखो मधुरप्रियदर्शनः ॥१५॥

प्रतापरुद्रसंत्राता रामानन्दप्रियो गुरुः ।
अनन्तगुणसम्पूर्णः सर्वतीर्थैकपावनः ॥१६॥

वैकुण्ठनाथो लोकेशो भक्ताभिमतरूपधृक् ।
नारायणो महायोगी ज्ञानभक्तिप्रदः प्रभुः ॥१७॥

पीयूषवचनः पृथिवीपावनः सत्यवाक् सहः ।
औड्रदेशजनानन्द-संदोहामृतरूपधृक् ॥१८॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय चैतन्यस्य महाप्रभोः ।
श्रद्धया परयोपेतस्स्तोत्रं सर्वाघनाशनम् ॥१९॥

असाध्यरोगयुक्तोऽपि मुच्यते रोगसंकटात् ।
सर्वापराधयुक्तोऽपि सोऽपराधात् प्रमुच्यते ॥२०॥

अपुत्रो वैष्णवः पुत्रो लभते नात्र संशयः ।
फाल्गुनीपौर्णमास्यां तु चैतन्यजन्मवासरे ॥२१॥

श्रद्धया परया भक्त्या महास्तोत्रं जगद्गुरोः ।
उपोषणं पूजनं च चैतन्यस्य समाहितम् ॥२२॥

दातव्यं कृष्णभक्ताय नाभक्ताय कदाचन ।
यद्यत् प्रकुरुते कामं तत्तदेवाचिराल्लभेत् ॥२३॥

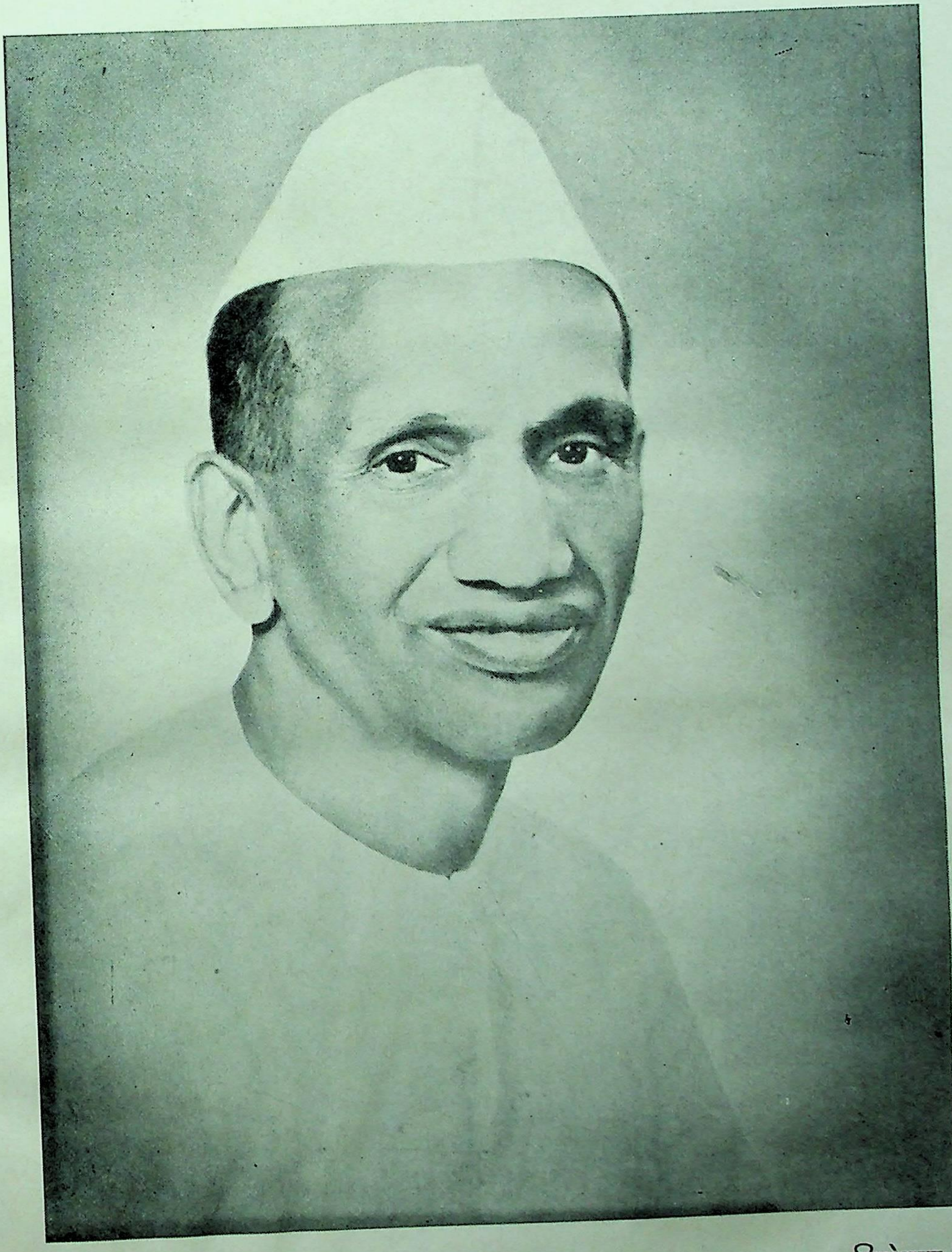
प्रेमभक्तिर्हरौ तस्य जायते नात्र संशयः ।
अन्ते चैतन्यदेवस्य स्मृतिर्भवति शाश्वती ॥२४॥

विश्वम्भराय गौराय चैतन्याय महात्मने ।
शचीपुत्राय मित्राय लक्ष्मीशाय नमो नमः ॥२५॥

इति श्रीसार्वभौमभट्टाचार्यविरचितं सर्वापराधभञ्जनं श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रस्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

———

सेठ श्रीरामकृष्णजी डालमिया



तिरोभाव-तिथि—
२६ सितम्बर, १९७८
मङ्गलवार, आश्विन कृष्णा १०,
वि० सं० २०३५

जन्म-तिथि—
७ अप्रैल, १८९३
शुक्रवार, वैशाख कृष्णा ६,
वि० सं० १९५०

❀ मंगलाचरणम् ❀

यस्यैव पादाम्वुजभक्तिलभ्य प्रेमाभिधान परम पुमर्थः ।
तस्मै जगन्मंगल मंगलाय चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते ।।
आनन्द लीलामयविग्रहाय हेमाभदिव्यच्छवि सुन्दराय ।
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते ।।

※ श्रीचैतन्य चन्द्रामृतम् ९, ११

-: श्री श्री गौराष्टकम् :-

१. मलय-सुवासित भूषित गात्रम्
मूर्त्तिमनोहर विश्व पवित्रम् ।
पदनख राजित लज्जित चन्द्रे
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

२. स्वगात्र पुलक जल लोचन पूर्णम्
जीवदयामय ताप विदीर्णम् ।
संख्या जल्पति नाम सहस्त्रे
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

३. हुङ्कृत तर्जन गर्जन रङ्गे
चञ्चल कलियुग पाप सशङ्के ।
पदरज ताड़ित दुष्ट समस्ते
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

४. सिंह गमन जिति ताण्डव लीला
दीन दयामय तारण - शीला ।
अज भव वन्दित पद नख चन्दे
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

५. गौराङ्गावृत मालति माले
मेरु विलम्बित गङ्गाधारे ।
मन्द मधुर हास भाव मुखचन्द्रे
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

६. फल्गु विराजित चन्दन भाल
कुङ्कुम राजित देह विशाल ।
उमापति सेवित पदनख चन्द्रे
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

७. भक्ति पराधीन शाओक वेष
गमन सुनर्त्तक भोग विशेष ।
माल्य विराजित देह समस्ते
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

८. भोगविरक्तिक संन्यासी वेष
शिखा मोचन लोक प्रवेश ।
भक्तिविरक्तिक प्रवर्त्तक चिरो
शुद्ध कनक जय गौर नमस्ते ।।

इति सार्वभौम विरचित श्रीकृष्णचैतन्याष्टकं सम्पूर्णम् ।

पूज्यपाद श्रीवासुदेव सार्वभौम विरचित यह प्राचीन श्रीगौराष्टक पहले पहल प्रकाशित हो रहा है। यह अमूल्य स्तव-रत्न हमारे घरकी प्राचीन पुस्तकमें प्राप्त हुआ है।

● दीन ग्रन्थकार ।

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-वल्लभाय नमः ।

उत्सर्ग-पत्र

परम पूज्यपाद गौरधामगत मदीय अग्रज
श्रीपाद श्रीअच्युतानन्द गोस्वामी प्रभु श्रीकरकमलेषु—

प्रेममय दादा !

मेरे जन्मके बहुत दिन पूर्व शिशुकालमें ही पञ्चम वर्षकी आयुमें तुम गौरधाम चले गये, तुमको एक बार आँखोंसे देखनेका सौभाग्य भी मुझे नहीं मिला। किन्तु पिता-मातासे तुम्हारे अपरूप रूपकी बात सुनकर मैं परम मुग्ध हुआ हूँ। तुम्हारे अपरूप रूपकी बात सुनते ही एवं तुम्हारा पवित्र मधुर नाम स्मरण होते ही गौर-आना-गोसाईं श्रीश्रीअद्वैत-तनय सदानन्दमय अपूर्व बालमूर्ति श्रीअच्युतानन्द प्रभुकी मधुर मूर्ति मेरे स्मृति पथमें परम आश्चर्य भावसे जाग उठती है। श्रीचैतन्यभागवत वर्णित वह अपरूप मूर्ति—

पञ्चम वर्ष वयस मधुर दिगम्बर। खेला खेलि सर्वाङ्ग धूलाय धूसर ।।
अभिन्न कार्तिक जेन सर्वाङ्ग सुन्दर। सर्वज्ञ परम भव्य सर्वशक्तिधर ।।

मेरी आँखोंके ऊपर मानो अलक्षित भावसे प्रकट एवं मधुर नयन-रञ्जन नृत्य करते हैं। तब मैं मानस चक्षुओंसे देखता हूँ—

गौरवर्ण एक शिशु नाचिया बेड़ाय।

तब मैं प्रेमानन्दसे विभोर होकर निर्निमेष नयनोंसे उस अपरूप रूप सुधाका प्राण भरके पान करता हूँ, और मन ही मन उसके साथ कितनी गौर-कथाएँ कहता हूँ, वह बात और क्या कहूँ ? वह प्रेमानन्दमें डूबना वर्णनातीत है।

अपने पूज्यपाद पितृदेवका नाम था श्रीपाद सीतानाथ गोस्वामी तर्कपञ्चानन। शान्तिपुरनाथ गौर-आना-गोसाञिका नाम था श्रीश्रीसीतानाथ वेदपञ्चानन। श्रीश्रीसीतानाथ-तनय श्रीअच्युतानन्द प्रभुके नामके साथ तुम्हारे अमृतमय नामका अपूर्व परमाश्चर्य मिलन देखकर मेरे मानस-समुद्रमें अनेक बार नाना प्रकार की भाव-तरंगे उठती हैं। इन भाव-तरङ्गोंके स्रोतमें पड़कर मैं बीच-बीचमें आत्मविस्मृत हो जाता हूँ। तुम मेरे पूज्यपाद अग्रज हो, मैं तुम्हारा आशीर्वादाकांक्षी एकान्त अनुगत और पदाश्रित छोटा भाई हूँ। तुम गृहत्याग करके अपने प्राण-सर्वस्व-धन प्राण-गौराङ्गके साथ नीलाचलमें रहे, और अब भी हो। श्रीमन्महाप्रभुकी नीलाचल-लीला ग्रन्थ तुम्हारे परम पवित्र नामके स्मृति चिह्नके निदर्शन स्वरूप तुम्हारे ही श्रीकर-कमलोमें सादर समर्पित है। तुम अपने इस अयोग्य जीवाधम कुलाङ्गार और मूर्ख छोटे भाईकी बात उनके श्रीचरणकमलोंमें समय और सुयोग देखकर निवेदन कर देना। तुम्हारे चरणकमलोंमें यही मेरी एक मात्र प्रार्थना है।

श्री धामनवदीप
श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग कुञ्ज
१५ वीं आश्विन १३३३ साल, गौराब्द ४४०

तुम्हारा कृपाभिखारी स्नेहका भाई
हरिदास

श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी नीलाचल-लीला

पहिला अध्याय

श्रीनीलाचलके मार्गमें

—:※-※:—

एइ मते महाप्रभु चलि जाय पथे।
जेखाने जे देवस्थल देखिते देखिते॥
रहि रहि जाय प्रभु प्रति ग्रामे ग्रामे।
नर्त्तन करिया सब देवतार स्थाने॥

— श्रीचैतन्यमङ्गल।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नीलाचलके पथपर चले जा रहे हैं। कृष्ण प्रेममें उन्मत्त होकर अपने आजानुलम्बित बाहु युगलको ऊपर उठाकर बीच-बीचमें हुङ्कार-गर्जन करके वे हरिध्वनि करते हैं। उनकी गगनभेदी ऊर्ध्व कण्ठ-ध्वनि सर्वत्र परिव्याप्त हो जाती है। उनकी देखादेखी सर्वत्र लोग हरिनाम लेने लगते हैं। भुवन मंगल हरिनामसे चारों दिशाएँ पूर्ण हो रही हैं। प्रेमोन्मत्त प्रभु घर छोड़कर वनके मार्ग-से जा रहे हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा अन्यान्य भक्त-वृन्द उनके साथ हैं। प्रभु कभी-कभी ऊर्ध्व बाहु हो कर प्रेमानन्दमें मधुर नयन-रंजन नृत्य करते हैं। प्रेमावेशमें उनके सारे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं। वे चल नहीं पा रहे हैं।

दोल-यात्राके समय श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें पहुँचकर श्रीजगन्नाथजीके पुष्प दोलके दर्शन करनेकी मनोकामनामें प्रभु आनन्दमें विभोर होकर चले जा रहे हैं। आहार-निद्राकी ओर उनका कोई लक्ष्य नहीं है, विश्रामकी परवाह नहीं करते। यदि कोई भोजन-का पदार्थ सामने देखते हैं तो अनिवेदित समझ कर उसे ग्रहण नहीं करते। भक्तवृन्द बड़ी कठिनाईसे प्रभु-को दो-तीन दिनके अन्तरसे एक दिन भिक्षा कराते हैं। वे रात-रात भर जागकर हरिनाम कीर्तन करते हैं। जब रास्ता चलते हैं तो श्रीमुखसे यह श्लोक उच्च स्वरसे बोलते हुए मत्त सिंहकी गतिसे चलते हैं।

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥

प्रभु वनके मार्गमें बहुत दूर आ गये हैं। साथी भक्तवृन्द भी बहुत कष्ट पूर्वक उनके साथ जा रहे हैं। उनको लौटाकर बस्तीमें ले जानेकी सामर्थ्य किसमें है? वनमें बाघ आदि हिंस्र जीव प्रभुको देख-कर हिंसावृत्ति छोड़कर उनकी अपूर्व ज्योतिपूर्ण श्रीमूर्त्तिको देखकर स्तम्भित होकर खड़े हो जाते हैं, उनको देखकर साथियोंके मनमें बड़ा भय होता है। वे हिंस्र पशुओंके इस प्रकारके अद्भुत भावको देख-कर मन्त्रमुग्धवत् हो जाते हैं। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

आश्चर्यं प्रागहह गहनं गाहमाने रघूणां
पत्यौ द्वीपिद्विरदमहिषा गण्डकाश्चण्डकायाः।
तत्कोदण्ड-प्रतिभयहता दुद्रुबुर्ये त एते
यन्माधुर्य द्रवलवलभः शुद्धतामेव दध्रुः॥

चै. चं. ना. ६.७

श्लोकार्थ—पूर्व कालमें रघुपति श्रीरामचन्द्रजी अरण्यमें जाते समय जिन बड़े-बड़े बाघ, हाथी, भैंसा और गैंडा आदि हिंस्रजन्तुओंको अपने भयानक धनुष-के भयसे भयभीत करके दूर भगा देते थे, वे अब श्रीचैतन्यचन्द्रकी रूपमाधुरीका लेशमात्र अनुभव

करके स्तब्ध होकर खड़े हो जाते हैं, यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है।

अब इच्छामय स्वतन्त्र स्वभाव श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु वनका रास्ता पार करके पुनः राजपथ पर आ गये। उनके लिए दोनों ही मार्ग समान थे। दोल-यात्राके उपलक्ष्यमें श्रीक्षेत्रमें दल-के-दल यात्री जा रहे हैं। प्रभु नीलाचल जा रहे हैं, यह सुनकर वे उनके साथ हो गये।

भक्तोंको संग्रह नहीं करनेकी शिक्षा

एक दिन रङ्गीले प्रभुने अपने अनुचर साथियोंके साथ रास्तेमें एक कौतुक किया। सबको पुकार कर उन्होंने हँसते-हँसते पूछा, "तुम लोगोंके पास क्या है? घरसे राह खर्च कितना कौन लेकर चला है, निष्कपट होकर मुझको बतलाओ।" सबने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "हे प्रभु! तुम्हारे आदेशके बिना कोई वस्तु साथ ले आनेकी सामर्थ्य हममें-से किसीमें नहीं है; और किसीको कुछ देनेका भी अधिकार नहीं है। हमारे पथका संवल एक मात्र तुम्हारे चरण-कमल हैं।" यह सुनकर प्रभुने हँसकर भक्तवृन्दोंसे कहा—"तुम लोगोंने कुछ भी साथ नहीं लिया, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। जिस दिनका भोजन-प्रसाद भाग्यमें लिखा है तो वह अरण्यमें भी मिल जायगा। भाग्यमें नहीं लिखा है तो राजपुत्र होनेपर भी उसको उपवास करना पड़ेगा, घरमें रहनेपर भी खा नहीं सकेगा, किसीसे झगड़ा करके क्रोधमें नहीं खा पायगा या ज्वर हो जानेसे नहीं खा सकेगा। त्रिभुवनमें कहीं अन्नकी कमी नहीं है, भगवान्की इच्छा होगी तो कहीं भी खानेको मिल जायगा।"

आटिसारा ग्राममें अनन्त पण्डितके यहाँ

सर्वेश्वर सर्व शक्तिमान् श्रीश्रीगौरचन्द्र इस प्रकार अपने भक्तवृन्दको ईश्वरपर निर्भर करनेकी शिक्षा देकर पुनः रास्तेपर आगे बढ़े। वे प्रेमानन्दमें मधुर नृत्य कीर्तन करते हुए आटिसारा ग्राममें जा पहुँचे। उस ग्राममें श्रीअनन्त पण्डित नामके एक सौभाग्यवान् साधु रहते थे। उनके घरपर जाकर सन्ध्या कालमें प्रभु अतिथि बने। श्रीअनन्त पण्डित भक्तिपथके पथिक, परम उदार प्रकृतिके साधु थे। निज गणके साथ प्रभुको अतिथि रूपमें प्राप्तकर उनको परमानन्द प्राप्त हुआ। सब प्रकारकी भिक्षाके पदार्थ एकत्रित करके उन्होंने साथियोंके सहित प्रभुको भिक्षा करायी। संन्यासीका धर्म भिक्षाके द्वारा जीविका-निर्वाह करना है, प्रभुने अपने इस कार्यके द्वारा सबको यह शिक्षा दी। उस दिन सारी रात प्रभुने कृष्ण-कथामें बितायी। दूसरे दिन प्रातःकाल अनन्त पण्डितके प्रति कृपा-दृष्टि करके प्रभु गङ्गाके किनारे-किनारे अतिबाड़ा, पनिहाटी, बराहनगर आदि गाँवोंके रास्तेसे चले। उन दिनों पतितपावनी गङ्गाजी कलकत्ताके दक्षिणमें कालीघाट होकर बारुइपुरके पास होती हुई डायमण्ड बन्दरगाहके पास मथुरापुर होकर सैकड़ों धाराओंके रूपमें समुद्रमें गिरती थी।

अम्बुलिंग-छत्रभोगमें

प्रभु चलते-चलते मथुरापुरके निकट अम्बुलिङ्ग-स्थान *छत्रभोगमें गये थे। इस छत्रभोगमें जलमय शिवलिंग है। कहते हैं कि जब राजा भगीरथ गंगाकी आराधना करके अपने वंशका उद्धार करने गंगाको लेकर आये, तब गंगाके विरहमें शिवजी विह्वल हो गये और गंगाको स्मरण करते हुए वहाँ आकर छत्रभोगमें गंगाको देखकर उसमें निमग्न हो गये और जल रूप होकर उसमें मिल गये। जगज्जननी गंगाने शंकरको देखकर भक्ति भावसे उनकी पूजा की। गंगाकी महिमा शिवजीको ज्ञात है, और

*छत्रभोग—चौबीस परगना जिलामें मगरा स्टेशनसे ६-७ कोस दूर जयनगरके निकट यह ग्राम अवस्थित है। इसे कोई-कोई खाड़ी कहते हैं। वहाँ चैत्र कृष्ण प्रतिपदाको नन्दा मेला लगता है। अब यहाँ गंगाजी नहीं हैं।

गंगा भी शिवजीकी महिमा जानती है। क्योंकि जल रूपमें शिवजी वहाँ रह गये, इसलिए उस स्थानका नाम पड़ा अम्बुलिङ्ग घाट। गंगा और शिवके प्रभावसे वह छत्रभोग ग्राम महातीर्थ बन गया। चैतन्य-चरण वहाँ पहुँचनेसे उसकी महिमा और भी बढ़ गयी।

छत्रभोगके अम्बुलिङ्ग घाट पर जाकर प्रभु शतमुखी गंगाका दर्शन करके आनन्द-विह्वल हो उठे। वे प्रबल प्रेमावेशमें हुङ्कार गर्जन करके अविरत हरि-हरि ध्वनि करने लगे। प्रेमानन्दमें नृत्य करते-करते भूमिपर पछाड़ खाकर गिर पड़े। तत्काल श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनको गोदमें उठा लिया। साथी भक्तोंको लेकर प्रभुने प्रेमानन्दमें अम्बुलिङ्ग घाटपर स्नान किया। उनके साथ भक्तवत्सल प्रभुने जलक्रीड़ा लीला-रङ्ग किया।

जब वे स्नान करके तीरपर आये तो गोविन्दने उनको वस्त्र बदलनेके लिए दिया। प्रभु शुष्क वस्त्र पहनकर तीरपर खड़े होकर शतमुखी गंगाकी अपूर्व शोभा देखने लगे। उन प्रेम-विगलित नयनाश्रुधारासे वह शुष्क वसन सिक्त हो उठा। गोविन्दने पुनः नूतन वस्त्र पहननेके लिए दिया। प्रभुके कमल-नयनसे झर-झर प्रेमाश्रु-धारा बह रही थी। जो वस्त्र पहनते थे वही नयन-जलसे आर्द्र हो जाता था। पृथ्वीपर गंगा शतमुखी हो रही हैं, और प्रभुके नयनकी धारा भी शतमुखी होकर उनके विशाल वक्षःस्थलपर बहती हुई भूतलपर गिर रही है। यह अत्यन्त सुन्दर दृश्य है। प्रभुके महाभाग्यवान् साथी इस अपूर्व दृश्यको देखकर मृदु मृदु हँस रहे हैं, और प्रभुके श्रीचन्द्रवदनकी ओर एकटक देख रहे हैं।

प्रभु निःस्पन्द भावसे जड़वत् स्थिर होकर खड़े-खड़े शतमुखी अश्रु-धारामें सर्वांग विभूषित होकर शतमुखी गंगाकी अपूर्व शोभा दर्शन कर रहे थे।

रामचन्द्र खानसे मिलना और पार जानेकी व्यवस्था

उस गाँवके अधिकारी या जमींदार रामचन्द्र खान दैवयोगसे वहाँ आ उपस्थित हुए। वे सांसारिक पुरुष थे, पालकीपर सवार होकर जा रहे थे। प्रभुकी अपूर्व ज्योतिर्मय श्रीमूर्तिका दर्शन करके पालकीसे उतरकर उनके पास जाकर उन्होंने भूतलपर पड़कर उनको साष्टांग दण्डवत् किया। परन्तु प्रभुको बाह्यज्ञान न था। वे प्रेमानन्दमें विभोर होकर गंगा-दर्शन कर रहे थे। नयन-जलसे वक्षःस्थल डूब रहा था। बीच-बीचमें 'हा जगन्नाथ! हा नीलाचलपते!' कहकर उच्च स्वरसे करुण क्रन्दन कर रहे थे, और भूतलपर गिरकर धूलिमें लोट-पोट कर रहे थे। रामचन्द्र खानका भाग्य चमक उठा। प्रभुके अपरूप रूपको देखकर एकबारगी मन्त्रमुग्ध हो उठे। प्रभुकी अपूर्व आर्त्तिपूर्ण दैन्योक्ति सुनकर रामचन्द्र खानका हृदय मानो विदीर्ण हो उठा। वे रोते-रोते मनमें सोचने लगे कि किस तरह इनकी आर्त्ति-दशाका संवरण हो!

प्रभुके सामने वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। प्रभु अपने भावमें विभोर थे। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। सर्वज्ञ प्रभु रामचन्द्र खानकी ओर शुभ दृष्टि-पात करके बोले—"आप कौन हैं?" डरते-डरते हाथ जोड़े रामचन्द्र खानने उत्तर दिया, "हे प्रभु! यह अधम आपका दासानुदास है।" सब उपस्थित लोगोंने प्रभुसे कहा कि, "ये ही दक्षिण राज्यके अधिकारी हैं।" तब प्रभु रामचन्द्र खानके प्रति करुण कृपादृष्टि करके गद्गद स्वरमें बोले, "आप बड़े अच्छे अधिकारी हैं। क्या आप ऐसा प्रबन्ध कर सकेंगे जिससे मैं शीघ्र नीलाचल पहुँच सकूँ?' यह बात कहते-कहते प्रभुके कमल-नयनसे झर-झर आनन्दाश्रु-धारा प्रवाहित हो उठी, और वे 'हा नीलाचल चन्द्र!' कहकर भूतलपर गिर पड़े।

रामचन्द्र खानने प्रभुके चरणोंमें गिरकर अति विनीत भावसे हाथ जोड़कर निवेदन किया—

"आपकी जो आज्ञा है, उसको अवश्य पालन करना मेरा कर्तव्य है। एक देशसे दूसरे देशमें जानेका मार्ग बन्द है। राजाकी त्रिशूल गड़ी है, उसको पार करके जानेसे आदमी मार दिये जाते हैं। आपको

छिपाकर किसी मार्गसे भेजनेकी व्यवस्था करूँगा, भले ही मेरे ऊपर कोई भी जोखिम आवें। यदि आप मुझे अपना दास मानते हैं, तो अपने साथियोंके साथ मेरे यहाँ भिक्षा ग्रहण कीजिये। उसके बाद रात्रिमें आपको छिपाकर भेजनेकी व्यवस्था करूँगा।"

प्रभु रामचन्द्र खानकी बात सुनकर मन-ही-मन विशेष आनन्दित हुए। उनके ऊपर शुभ कृपादृष्टि-पात करते ही वे भवबन्धनसे मुक्त हो गये। रामचन्द्र खानने प्रभुके ठहरनेकी और भिक्षाकी व्यवस्था वहाँ एक ब्राह्मणके आश्रममें की। भाग्यवान् विप्रने प्रभुके लिए भक्तिपूर्ण चित्तसे रसोई बनायी। प्रभु नाम-मात्रके लिए भोजन करने बैठे। उनको भोजन करनेका अवसर न था। प्रेमानन्दमें वे रात दिन हरिनामामृत रसमें मग्न रहते थे, केवल साथी भक्तवृन्दकी मनस्तुष्टिके लिए एक बार भोजनके लिए बैठते थे।

जिस दिनसे प्रभुने श्रीनीलाचलकी यात्रा की थी, उस दिनसे वे नाम मात्रके लिए भोजन करते थे। श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके दर्शनकी आशामें वे प्रेमानन्दमें निशिदिन मग्न रहते थे। क्या रात, क्या दिन, क्या जल, क्या थल, क्या बस्ती, क्या जंगल—कहीं किसी वस्तुका उनको ज्ञान नहीं रहता था। प्रभु निरन्तर प्रेमामृत रसमें डूबे रहते थे।

उस दिन रातमें विप्रके घर भिक्षा करनेके लिए बैठे बैठे प्रभु 'जगन्नाथ और कितनी दूर हैं?' कहकर उन्मत्तके समान उठे और हुङ्कार-गर्जन करने लगे। उनके श्रीमुखसे केवल एक ही वाक्य निकलता था, 'जगन्नाथ और कितनी दूर हैं?' प्रभुका भाव समझकर मुकुन्दने कीर्तनका सुर पकड़ा, और प्रभुने मधुर नृत्य प्रारम्भ कर दिया। छत्र-भोगवासी भाग्यवान् नर-नारी प्रभुके अपूर्व नृत्य-विलासका दर्शनकर प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठे। भाव-निधि प्रभुका भाव-समुद्र एकबारगी उमड़ उठा। उनके श्रीअङ्गोंमें अष्ट सात्त्विक भावोंके सारे लक्षण दिखलायी देने लगे। भाद्र मासकी गंगाके समान उनके कमल-नयनसे प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। प्रभु जब चक्कर देकर नृत्य करने लगे तो ऐसा जान पड़ता था मानो सबने उनकी नयनाश्रुधारामें स्नान कर लिया।

इस बातमें किसीको अविश्वास नहीं करना चाहिये। श्रीगौराङ्ग-लीला निगूढ़ रहस्यसे पूर्ण है। नदियाके अवतार श्रीगौरांग-सुन्दरने बहुतसे अलौकिक लीला-रंग किये थे। वे प्रेमावतार थे, प्रेमाश्रु उनके अपूर्व प्रेम भागका द्योतक था। अन्य किसी अवतारमें श्रीभगवान्ने अपना निज गुप्त वित्त, गोलोककी सम्पत्ति, प्रेमको प्रकट नहीं किया था। एकमात्र श्रीगौरांग अवतारमें श्रीभगवान्ने कलिग्रस्त जीवके परम कल्याणके लिए गोलोककी सम्पत्ति अमूल्य प्रेम-धनको वितरण करनेके लिए नदियामें शचीके गर्भसे जन्म लिया था। अतएव उनको ऋषि-महात्मागण प्रेमावतारके नामसे पुकारते हैं।

इहारे जे कहि प्रेममय अवतार।
ए शक्ति चैतन्यचन्द्र विने नहि आर॥

चै० भा० अ० २.१२५

इस प्रकार नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें उस दिन रात तीन प्रहर बीत गयी। प्रेमानन्दमें सबका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। क्षण मात्रमें मानो तीन पहर रात चली गयी, ऐसा सबको लगा। उसी रातके तीसरे पहर दक्षिण देशके अधिकारी रामचन्द्र खानने आकर प्रभुके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर निवेदन किया, "प्रभु! घाटपर नौका तैयार है।" तत्काल प्रभु हरि स्मरण करके एक-बारगी दौड़कर नौकाके ऊपर सवार हो गये। उनके साथी भी उनके साथ-साथ गये। अन्य सब लोगोंके प्रति प्रभुने शुभ दृष्टिपात करके मुस्कराते हुए उनको विदा किया। रामचन्द्र खानको प्रभुने प्रेमालिंगन प्रदान करके कृतार्थ किया। वे प्रभुको नौकापर चढ़ाकर बालकके समान उच्च स्वरसे क्रन्दन करने

लगे। जब तक प्रभुकी नौका आँखोंसे ओझल न हुई तब तक वे एकटक उसकी ओर सतृष्ण नेत्रोंसे देखते रहे। रामचन्द्र खानने उसी दिनसे श्रीगौराङ्गके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया।

नौकापर चढ़ते ही प्रभुने मुकुन्दको कीर्तन करनेकी आज्ञा दी। रातका समय था, चारों ओर निस्तब्धता थी। तरङ्गोंके बीच नदीके वक्षःस्थलपर नौका चुपचाप बढ़ती चली जा रही थी। नाविक लोग सदा सशङ्कित रहते थे, पता नहीं—कब क्या हो जाय। क्योंकि उस समय चतुर्दिक दस्युओंका भय था। यवन राजाके सैनिक जल-स्थलमें सर्वत्र पहरा दे रहे थे। ऐसे समयमें प्रभुने मुकुन्दको कीर्तन करनेकी आज्ञा दी। अबोध नाविकने भव-कर्णधारको न पहचान कर, दस्युओंके भयसे अत्यन्त भयभीत होकर प्रभु और उनके भक्तवृन्दके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया—"आज तो प्राण बचते नहीं दीखते। किनारे उतरते ही बाघ उठाकर ले जायगा, पानीमें गिरे तो मकर खा जायंगे, जल-दस्यु मिल गये तो धन-प्राण हर लेंगे। अतएव जब तक उड़िशा देशमें न पहुँच जाँय तब तक आप लोग शान्त चुपचाप रहिये।"

नाविककी इस शङ्का-जनक बातको सुनकर सारे साथी लोग सशंकित हो उठे। सभी भयभीत होकर सर्वभयहारी श्रीगौर भगवान्के श्रीमुखकी ओर कातर नेत्रोंसे देखने लगे। तब भक्तवत्सल प्रभुने किञ्चित ऐश्वर्य दिखाकर कहा—"डर किसका है ? देखो, सामने सुदर्शन चक्र घूम रहा है, जो निरन्तर वैष्णवोंकी रक्षामें संलग्न है। कोई चिन्ताकी बात नहीं है। श्रीकृष्ण-कीर्तन करते रहो।"

प्रभुके श्रीमुखका आश्वासन प्राप्तकर भक्त-वृन्दने उच्च स्वरसे हरि सङ्कीर्तन प्रारम्भ किया। रातके समय नदी-गर्भमें नौकाके ऊपरसे गगनभेदी भुवन-मङ्गल हरि-सङ्कीर्तन ध्वनि नैश आकाशमें चतुर्दिक् परिव्याप्त हो गयी। प्रभु भक्तवृन्दके साथ नौकाके ऊपर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। उनके हुङ्कार गर्जन शब्दसे आकाश परिपूर्ण हो गया।

प्रभु उस समय भगवान् भावमें थे। भक्तवृन्द कीर्तन समाप्त करके हाथ जोड़कर प्रभुकी स्तुति करने लगे। प्रभु आत्म संवरण करके पुनः उनके साथ मधुर नृत्य-कीर्तन-रसमें निमग्न हो गये।

उत्कल प्रदेशमें

इस प्रकार नौकाके द्वारा संकीर्तन-यज्ञेश्वर श्रीश्रीगौर भगवान् संकीर्तन-रङ्गरसमें उन्मत्त होकर उत्कल प्रदेशमें जा पहुँचे। कटकमें प्रयाग घाटपर जाकर प्रभुकी नौका लगी। सङ्कीर्तन करते-करते प्रभुने अपने साथियोंके साथ कटक नगरमें प्रवेश किया। श्रीश्रीनीलाचल चन्द्रके उद्देश्यसे उन्होंने वहाँ सब साथियोंके सहित भूतल-पर पड़कर साष्टांग दण्डवत् किया।

वहाँके गंगा घाटपर स्नान करके युधिष्ठिर द्वारा स्थापित महादेवके मन्दिरमें प्रवेश करके शिवलिङ्गको दण्डवत् प्रणाम किया। अपूर्व प्रेमानन्द-में विभोर होकर प्रभुने वहाँ कुछ देर तक नृत्य-कीर्तन किया। उनके अपूर्व नृत्य-विलासको देखकर सभी नगर निवासी उनके चरणोंमें गिरकर कृपा-भिक्षा माँगने लगे।

वहाँ प्रभु अपने साथियोंको रखकर गाँवमें अकेले भिक्षाके लिए गये। साथी भक्तोंने भी उनके संग जाना चाहा, परन्तु प्रभुने उनको मनाकर दिया। इस कार्यके द्वारा जगद्गुरु श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुने स्वयं आचरण करके संन्यासीके भिक्षु धर्मकी शिक्षा दी।

उड़िशा निवासी भाग्यवान् गृहस्थोंके लिए आज बड़ा शुभ दिन है। त्रिलोकाधिपति भगवान् स्वयं आज भिखारीके वेषमें उनके द्वारपर भिक्षाकी झोली हाथमें लेकर श्रीमुखसे 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण'

मधुर नाम लेकर भिक्षा लेने आये हैं। आज संन्यासीके वेषमें पूर्णब्रह्म सनातन उनके द्वारपर खड़े हैं। ऐसा रूपवान् संन्यासी तो कभी उन्होंने देखा न था। जिनके घर प्रभु जाते हैं, वे ही उनकी अपूर्व ज्योतिर्मय रूप राशि देखकर विस्मित और मुग्ध हो जाते हैं। प्रभु अपनी चादरका अञ्चल फैलाकर द्वार-द्वार भिक्षा माँगने लगे। तण्डुल तथा उत्तम-उत्तम भोजनकी सामग्री, जिसके घर जो थी, लाकर सब लोग प्रभुके अञ्चलमें देकर कृतार्थ हो गये। ठाकुर वृन्दावनदासने लिखा है—

जगतेर अन्नपूर्णा जे लक्ष्मीर नाम।
से लक्ष्मी मागेन जाँर पादपद्मे स्थान॥
हेन प्रभु आपने सकल घरे घरे।
न्यासी रूपे भिक्षा छले जीव धन्य करे॥

चै.भा. अं. २. १५६, १५७

कलिग्रस्त अधम जीवोंका उद्धार करनेके लिए प्रभुने यह कपट संन्यास वेष धारण किया था। श्रीगौराङ्ग प्रभु कलिके प्रच्छन्न अवतार थे। कलिके अधम जीव उनको बहुत प्रिय हैं। अधम उद्धारण, दीन-शरण श्रीगौराङ्ग प्रभु कलिग्रस्त जीवके उद्धार-कर्त्ता हैं। श्रीगौराङ्ग प्रभुके सिवा उनका उद्धार करने वाला और कोई नहीं है। कलिके जीवके एकमात्र उपास्य श्रीगौराङ्ग हैं। वे युगावतार और युगधर्म-प्रवर्त्तक हैं। कलियुगके अवतार श्रीश्रीगौराङ्गचन्द्र हैं, और कलियुगका धर्म हरिनाम संकीर्तन है। यह शास्त्र वचन है।*

प्रभु भिक्षा समाप्त करके वहाँ आये जहाँ भक्त-वृन्द उनकी अपेक्षामें बैठे थे। उनकी भिक्षासे प्राप्त नाना प्रकारकी भोजन-सामग्री देखकर भक्तवृन्द हँसते-हँसते प्रभुसे बोले, "हे प्रभु! तुम संन्यासी होकर भी हम लोगोंका पालन-पोषण कर सकते हो।"

करुणामय प्रभु यह सुनकर कुछ मुस्कराये। पण्डित जगदानन्द प्रभुके अति प्रिय अन्तरङ्ग भक्त थे। उन्होंने भिक्षासे प्राप्त सामग्री लेकर रसोई बनाकर प्रभुको भोग लगाया। भक्तवृन्दके साथ प्रभुने प्रेमानन्दसे उस दिन भोजन करके सारी रात उस गाँवमें हरि संकीर्तन करके बितायी।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभुने अपने भक्तोंके साथ पुनः वहाँसे यात्रा की। प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर होकर रास्तेपर चले जा रहे हैं। उनके श्रीमुखसे केवल एक बात निकलती है, "यहाँसे नीलाचल धाम कितनी दूर है?" वे हुङ्कार-गर्जन करते हुए बीच-बीचमें ऊर्ध्वबाहु होकर हरिध्वनि करते हैं। रास्तेमें लोग प्रभुकी अपूर्व ज्योति-पूर्ण श्रीअङ्ग-माधुरी देखकर प्रेमविह्वल चित्तसे उनका अनुगमन करते हैं। सहस्रों आदमी प्रभुके साथ श्रीनीलाचल धामकी ओर चले जा रहे हैं। गाँवके वाद गाँव, नगरके बाद नगर पार करते हुए प्रभु उच्च संकीर्तन-रस-रङ्गमें विह्वल होकर रास्तेसे जा रहे हैं। ग्रामके अधम-नीच, पतित-पाखण्डी, तथा दुराचारी-असभ्य सारे पर्वतवासी लोग तक करुणा-मय प्रभुकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके डबडबायी आँखोंसे उनके चरण-कमलमें गिरकर भूतलपर लोट रहे हैं।

दानीपर कृपा

इस प्रकार रास्ता चलते-चलते एक जगह प्रभुने देखा कि बहुत से यात्री एकत्रित होकर बैठे हैं। वे लोग अत्यन्त दुःखित भावमें बैठे चुपचाप रो रहे थे। प्रभु मत्तसिंहकी गतिसे उन यात्रियोंके पाससे

---

*कलिघोरतमश्छन्नान् सर्वानाचार वर्जितान्।
शचीगर्भे च सम्भूय तारयिष्यामि नारद॥
वामन पुराण।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
वृहन्नादीय पुराण।

होकर निकले। उनके पास एक दुर्दान्त दानी* बैठा था। दान लिए बिना वह रास्ता छोड़ने वाला न था। दानी राजाका आदमी था, वह बड़ा दुराचारी, अत्याचारी तथा लोभी था। दरिद्र नीलाचल-यात्रियोंके ऊपर वह बड़ा अत्याचार करता था।

प्रभुकी अपूर्व करुण-भावपूर्ण श्रीमूर्त्ति देख कर यात्री लोग उनके चरणोंमें गिरकर उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। करुणामय, आर्त्त-बन्धु प्रभुकी करुण दृष्टि उनके ऊपर पड़ी। यात्रियोंके मनमें बड़ा साहस हुआ।

सर्व भयहारी श्रीगौर भगवान्‌के चरणोंमें उन्होंने आश्रय ग्रहण किया। करुणामय प्रभुने उनकी ओर करुण-नयनसे देखा, तत्काल मानो उनके सारे दुःख दूर हो गये।

प्रभुके साथ भी उनके आदमी थे। वे भी वहाँ दानीके हाथमें पड़ गये। वे भी निःसंवल थे। दान लिये बिना वह दुर्दान्त दानी कदापि रास्ता देनेवाला न था। सभी चिन्तित होकर वहाँ बैठ गये।

प्रभुके श्रीअङ्गका अपूर्व तेज और ज्योति देखकर दानीने चकित होकर उनसे पूछा, "ठाकुर! आपके साथ कितने आदमी हैं?" प्रभुने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया, "संसारमें मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ, मैं अकेला हूँ, मेरा दूसरा कोई नहीं है।" इतनी बात कहते-कहते उनके कमल नयन से झर-झर प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। वह दानी प्रभुकी प्रेममयी श्रीमूर्त्तिकी ओर कुछ देर तक एक टक देखता रहा। पश्चात् अतिशय आदर पूर्वक धीरे-धीरे बोला, "गोसाईं! आप जा सकते हैं? अन्य लोगोंको बिना दान लिये मैं नहीं छोड़ सकता।"

प्रभु गोविन्द स्मरण करके वहाँसे जा कर कुछ दूर पर एक स्थान पर बैठ गये। स्वतन्त्र प्रभुके इस निरपेक्ष भावको देखकर दूसरे यात्री भी हँसने लगे। भक्तवृन्दको छोड़ प्रभु चले गये। इससे भक्तोंके मनमें बड़ा भय और चिन्ता उत्पन्न हुई कि प्रभु उनको छोड़कर कहीं चले न जाँय। श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुने सबको समझाते हुए कहा—"आप लोग कोई चिन्ता न करें, प्रभु हमको छोड़ कर कहीं न जाँयगे।' तब सब लोग शान्त तो हो गये, परन्तु दानीका दान कैसे दें? इस चिन्तासे वे घबरा उठे कि दुष्ट दानी उनको कदापि नहीं छोड़ेगा।

दानी उनके पास आकर दानके लिए उनको विशेषरूपसे हैरान करने लगा। वह बोला, "आप लोग तो संन्यासी महाराजके साथके आदमी नहीं, क्योंकि उन्होंने स्पष्टतः कह दिया है कि उनका कोई नहीं है और वह भी किसी के नहीं हैं। अतएव आप लोगोंको उचित दान देना पड़ेगा।"

भक्तवृन्द बड़ी विपदमें पड़े। उधर प्रभु एकान्तमें एक जगह बैठकर मुँह लटकाये अजस्र आँसू बहा रहे थे। बीच-बीचमें "हा नीलाचलचन्द्र! हा जगन्नाथ!" कह कर आर्त्तिपूर्ण स्वरमें आर्त्तनाद करते थे। उनके नयन जलसे नदी बहती जा रही थी।

दुर्दान्त दानीका कठोर हृदय प्रभुके इस नयन जलको देखकर द्रवित हो गया। वह सोचने लगा, "ऐसा संन्यासी तो मैंने कहीं नहीं देखा है। मनुष्य की आँखोंमें इतना जल हो सकता है, यह भी नहीं सुना है। यह कौन है? यह तो मनुष्य नहीं जान पड़ते।" दानीने तब प्रभुके साथियोंसे नम्रता-पूर्वक पूछा—"आप लोग कौन हैं? कहाँके निवासी हैं? यह संन्यासी महाराज कौन हैं? सारी बातें मुझे खोल कर कहिये।"

भक्तवृन्द तब दानीसे बोले, "यह जो अपूर्व संन्यासी आप देख रहे हैं, वे हमारे प्राणनाथ हैं। इनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु है। हम सब इनके दासानुदास हैं।" यह बात कहते-कहते भक्त-वृन्द रोते-रोते व्याकुल हो उठे।

*दानी–राजाज्ञासे जो लोग राजपथपर यात्रियोंसे शुल्क वसूल करते हैं, उनको दानी कहते हैं।

दानी उनके अपूर्व प्रेम भावको देखकर मुग्ध हो गया। उसका पाषाण हृदय प्रेमसे द्रवित हो गया। गौरभक्तके सङ्गके प्रभावसे तथा साक्षात् श्रीभगवान्‌की श्रीमूर्त्तिके दर्शनके फल स्वरूप दानीके सारे पाप तत्काल दूर हो गये। प्रभुने कृपा करके उसे दिव्यचक्षु प्रदान किया। दानीने दिव्य चक्षुसे देखा कि उसके सामने साक्षात् श्रीनीलाचलचन्द्र जगन्नाथजी विराज रहे हैं। वहाँ संन्यासी महाराज नहीं हैं।

दानी मोहको प्राप्त होकर कुछ देर जड़वत् निस्पन्द भावमें खड़ा रहा। उसकी दोनों आँखोंसे झरझर प्रेमाश्रुधारा प्रबल वेगसे बहने लगी। उसको बाह्य ज्ञान हुआ तो उसने देखा कि संन्यासी महाराज उसी स्थान पर बैठे अजस्र आँसू बहा रहे हैं। वह दौड़कर रोते-रोते पतित पावन प्रभुके चरणोंमें गिरकर कातर कण्ठसे कहने लगा—

कोटि कोटि जन्मे जत आछिल मङ्गल।
तोमा देखि आजि पूर्ण हइल सकल॥
अपराध क्षमा कर करुणा सागर।
चल नीलाचल गिया देखत सत्वर॥

चै. भा. अं. २.१८१, १८२

प्रभु उसके प्रति शुभ दृष्टि पात करके श्रीहरि स्मरण करके वहाँसे उठे। दानी किसी प्रकारका दान न लेकर सब यात्रियोंको तथा प्रभुके सङ्गी-साथियोंको निर्विवाद छोड़ दिया। प्रभुने उठनेके समय दानीके मस्तक पर अज-भव-वन्दित अपने श्रीचरणोंको अर्पित कर दिया। दुर्वृत्त दानीके भाग्यको देखकर सब हरिध्वनि करने लगे। दानीने प्रभुके श्रीचरण-रजको मस्तक पर धारण करके अश्रुपूर्ण नयनोंसे गद्गद स्वरमें हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति-वन्दना करते हुए कहा, "प्रभु! तुम करुणामय हो। तुम्हारी करुणाकी सीमा नहीं है। विषयी जानकर मुझसे घृणा न करें। पद-प्रान्तमें तनिक स्थान प्रदान करें। मैं अब यह कुकार्य, दान न ले सकूँगा।"

प्रभु यह सुनकर कुछ मुस्कराये। दानी पर कृपा करके कृपानिधि प्रभुने वहाँसे प्रस्थान किया। जहाँ तक प्रभुकी श्रीमूर्त्ति आँखोंसे ओझल न हुई, दानी सतृष्ण नयनोंसे वहाँ जड़वत खड़ा होकर देखता रहा। नयन-जलसे उसका वक्षः स्थल डूब गया। उस दिनसे उसने दानीका कार्य छोड़ दिया। हरेकृष्ण हरि नाम महामन्त्र ग्रहण करके दानी भजनानन्दमें मग्न रहने लगा। हरिनामके सिवा उसके मुँहसे और कोई बात किसीके सुननेमें नहीं आयी।

धन्य है करुणामय प्रभुकी करुणाके कणकी अपार महिमा, और धन्य हैं उनकी उस अपार करुणाके प्रेमपात्र महासौभाग्यशाली जन!! उस दानीकी सुकृतिकी सीमा नहीं है, शिव विरञ्चि उसके जैसी भाग्यकी बाच्छा करते हैं। उसके चरणोंमें कोटि कोटि प्रणिपात।

रजक उद्धार

वहाँसे प्रभु नीलाचलके मार्ग पर प्रेमानन्दमें विभोर हरिनाम उच्चारण करते जा रहे हैं। उनके मुखसे केवल हरिनामके सिवाय और कोई बोल नहीं निकलते। पीछे-पीछे भक्तगण चल रहे हैं। रास्तेके एक तरफ तालाब पर एक रजक कपड़े धो रहा था। प्रेमावेगमें प्रभु उधर ही चल पड़े। भक्तगण उनके मनके भावको नहीं जान पाये। सीधे तालाबके किनारे धोबीके पास पहुँचकर प्रभुने मधुर स्वरमें उसको कहा—"रजक भाई! एक बार हरि बोलो।"

प्रभुका ऐश्वर्यमय संन्यासवेश देखकर धोबीने समझा कि संन्यासी उससे कुछ भिक्षाके लिए आये हैं। उसने उत्तर दिया—"ठाकुर महाराज! मैं तो धोबी हूँ, कपड़े धोने यहाँ आया हूँ। यहाँ आपको क्या दे सकता हूँ।" प्रभुने अत्यन्त आर्त होकर कहा—"रजक भैया! मैं तुमसे एक मात्र भिक्षा यही चाहता

हूँ कि तुम एक बार हरि बोलो, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।''

रजक प्रभुकी बात अच्छी तरह समझ नहीं सका, अतः कोई उत्तर न देकर अपने कपड़े धोनेके काममें लग गया। प्रभु भी उसको छोड़ देनेवाले पात्र नहीं थे। उन्होंने फिर कहा—''भाई रजक! मैं तुम्हारे पास कोई भिक्षा लेने नहीं आया हूँ। तुम दया करके एक बार हरि बोल दो। तुम्हारे मुँहसे मधुर हरिनाम सुनकर मेरे पिपासित कर्ण परितृप्त हो जायँगे।'' अबोध धोबीने सोचा कि अच्छी मुसीबत आयी, मैं कपड़ा धोऊँ या हरिनाम कहूँ। उसने प्रभुको स्पष्ट उत्तर दिया—''महाराज! मेरे बहुत-से बच्चे-कच्चे हैं, वृद्धा माता है, मैं उनके लिए संसारमें एकमात्र उपार्जन करनेवाला पुरुष हूँ। हरिनाम लेनेको मेरे पास समय नहीं है। मैं कपड़े धोऊँ या तुम्हारा हरिनाम बोलूँ।''

रजकके मुँहसे ऐसी बात सुनकर मनमें दुखित होकर रोते-रोते प्रभुने धोबीसे कहा—''भैया! तुम्हारे कपड़े धोनेका काम मैं कर देता हूँ, तुम एक बार हरि बोलो।'' इतना कहकर धोबीके हाथसे कपड़े लेनेको प्रभु आगे बढ़े, यह देखकर वस्त्र हाथमें लिये धोबी भयसे दूर सरककर खड़ा हो गया। तब भक्तगण भी शशव्यस्त होकर प्रभुको पकड़ लेनेको उद्यत हुए।

धोबीने सोचा कि संन्यासी महाराज मेरे कपड़े धो देनेको उद्यत हो गये हैं, इससे मेरा अपराध हो गया, और इससे मेरे परिवारके लोगोंका अमंगल होगा। अब इनके कहनेके अनुसार कार्य करके इनको सन्तुष्ट करूँ, तभी इस पापका प्रायश्चित हो पायगा। अब तक धोबीने कपड़े धोनेमें अपने मनको लगा रक्खा था, अतः अच्छी प्रकारसे प्रभुके मुखकी तरफ देखनेका अवकाश नहीं पा सका था। अब दूर खड़ा हुआ प्रभुके कमल-नयनोंसे दरदरित अविश्रान्त वारिधारा जैसे प्रेमाश्रु देखकर, उसका हृदय एकदम द्रवित होगया और उसके प्राण व्याकुल हो उठे। तब उसने प्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर निवेदन किया—''महाराज! तुम्हारे कहनेके अनुसार मैं हरि बोलता हूँ। तुम रोओ नहीं। तुम्हारी आँखोंमें जल देखकर मेरा मन बड़ा व्याकुल हो रहा है।''

प्रभुने कहा—''रजक भैया! एक बार 'हरि बोल' कहो।'' भाग्यवान रजकने उच्च स्वरसे कहा—''हरि बोल हरि।'' प्रभुने कहा—''एक बार फिर कहो।'' रजकने दुबारा कहा—''हरि बोल हरि।'' प्रभुने पुनः कहा—''फिर कहो—'हरि बोल।'' रजकने पुनः तीसरी बार कहा—''हरि बोल, हरि हरि बोल, हरि बोल हरि हरि बोल।''

प्रभुने दोनों बाहु ऊपर उठाकर कहा—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

रजकने भी यह हरिनाम महामन्त्र उच्चारण किया। प्रभुने इस प्रकार वहीं पर भाग्यवान रजकको हरिनाम महामन्त्र प्रदान किया। रजक भी प्रेममें विह्वल होकर हरिनाम महामन्त्रके गानमें उन्मत्त होकर नृत्य करने लगा। उसके दोनों नयनोंसे प्रेमाश्रुधारा विगलित होने लगी। प्रेमानन्दमें ऊर्ध्वबाहु होकर जब रजकने मधुर नृत्य आरम्भ किया, तब प्रभुने भी उसके साथ योग दिया। सब भक्तगणने भी प्रभु और रजकके साथ हरि संकीर्तन आरम्भ किया।

संकीर्तन-यज्ञसे इस प्रकार रजकका उद्धार करके पतित-पावन प्रभुने वहाँसे प्रस्थान किया। भक्तगण देखकर अवाक् हो गये। रजकको बाह्य ज्ञान नहीं रहा। प्रभु चले गये, यह भी उसको पता नहीं। वह प्रेमानन्दमें विभोर होकर पथके किनारे मधुर भङ्गीसे नृत्य करता रहा। उसके मुखसे अविश्रान्त हरिनाम-गान होता रहा। वहाँपर लोगोंकी भीड़ जुट गयी।

इसी समय रजककी पत्नी घरसे स्वामीके लिए भोजन-सामग्री लेकर वहाँ आयी। उसने जो देखा, उससे उसके प्राण उड़ने लगे। बेचारी रजकनीने सोचा कि उसका स्वामी या तो पागल हो गया है, या वह कोई दैत्य, दानव या भूतसे अभिभूत हो गया है। वह डरकर चीत्कार करके रोने लगी। ग्रामके सारे लोग एकत्र होगये। तब भी रजक प्रेमानन्दमें मधुर नृत्य करता रहा एवं ऊर्द्ध्वबाहू होकर हरिनाम उच्चारण करता रहा।

भयसे किसीको भी रजकके पास जानेका साहस नहीं हुआ। एक साहसी पुरुषने साहस करके उसको पकड़ा। छूते ही श्रीमन्महाप्रभुके कृपासिद्ध रजकके प्रेमालिङ्गनसे कृपासिद्ध उस व्यक्तिके प्राणोंमें भी अलक्षित रूपसे प्रेम-सञ्चार हुआ। वह भी स्थिर नहीं रह सका। रजकके साथ उसने भी नृत्य करना आरम्भ कर दिया। एक तो पागल था ही, दूसरा और पागल हो गया। अब दोनों जनोंने स्वरमें स्वर मिलाकर हाथसे ताली बजाते हुए, उर्द्ध्वबाहू होकर मधुर हरि संकीर्तन आरम्भ किया। क्रमसे एक एक करके ग्रामके सब लोग प्रभुकी कृपासे इस भाग्यवान रजकसे इस प्रकार हरि नाम महामन्त्र पाकर कृतार्थ हुए। सौभाग्यवती रजक-पत्नीने भी हरिनाममें विभोर होकर अपने स्वामीके साथ कीर्तनानन्दमें योग दिया।

यह दृश्य बड़ा ही मधुर था। ऐसा मधुमय दृश्य क्या कभी किसीने देखा है? श्रीगौर भगवान्‌ने इस प्रकार रजक-उद्धार किया। हमारे प्रभु पतित पाखण्डी लोगोंकी सारी पापवृत्ति समूल नष्ट करके उनका उद्धार-साधन कर गये हैं। श्रीकृष्णलीलाका रजक-उद्धार और श्रीगौराङ्ग-लीलाका रजक-उद्धार एक ही वस्तु, एक ही तत्त्व है। उद्धारका मार्ग और प्रकरण स्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं।

परमाराध्य प्राचीन पदकर्त्ता द्विज बलरामदास ठाकुर जीवाधम ग्रन्थकारके वंशके आदि पुरुष हैं। नराधम ग्रन्थकार उसी पवित्र वंशका कुलाङ्गार है। ठाकुर बलरामदासने एक पदमें लिखा है।

गोलोकेर नाथ हैया, देशे देशे भरमिया,
पात्रा पात्र न कैल विचार।
अयाचित प्रेम धन, दान कैला जने जन,
जगजीवे करल उद्धार॥
गोरा गोसाञि, करुणा सागर अवतार॥
केवल आनन्द धाम, दिये हरेकृष्ण नाम,
पतितेरे करिल विस्तार।
अधम दुर्गति देखि, ये सकरुण आँखि,
मोर मोर बलि करे कोले।
हियार ऊपरि तुलि, लोटाय धरणि धूलि;
नदी बहे नयनेर जले॥
तृण धरि दुइ करे, सकातरे उच्च स्वरे,
हरिबोल बलि बहु कान्दे।
प्रेमानन्दे अचेतन, कान्दे सब जगगण,
बलराम एड़ाइल फान्दे॥

नदिया के अवतार श्रीश्रीगौराङ्गचन्द्र पतितोंके बन्धु, आर्त्तबन्धु, दीनबन्धु और कृपासिन्धु हैं। पतित-अधम के ऊपर इस प्रकार अयाचित कृपा किसी अवतारमें श्रीभगवान्‌ने नहीं की है। नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभु अदोषदर्शी हैं। ठाकुर वृन्दावनदासने लिखा है—

करुणा सागर गौरचन्द्र महाशय।
दोष नाहि देखे प्रभु, गुण मात्र लय॥

चै० भा० अं० १.२७१

प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर होकर रास्ते पर जा रहे हैं। उनको यह ज्ञान नहीं है कि किस दिशामें जा रहे हैं। भक्तवृन्द साथमें हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु उनको रास्ता दिखाते जाते हैं। इस प्रकार प्रभु सुवर्णरेखा नदीके किनारे जा पहुँचे। सुवर्ण रेखा नदीका जल अत्यन्त निर्मल है। परम आनन्द पूर्वक प्रभुने अपने गणके साथ उस नदीमें स्नान किया। उनके श्रीचरण-रजके स्पर्शसे सुवर्णरेखा नदी धन्य हो गयी।

स्नान समाप्त करके प्रभु पुनः प्रेमावेशमें रास्ते पर आगे बढ़े। उन्होंने श्रीनीलाचलचन्द्रके दर्शनकी लालसासे प्रेमावेशमें लम्बी साँस ली। श्रीनित्यानन्द प्रभु उनके साथ दौड़कर भी साथ नहीं दे पा रहे हैं। दूसरे साथी लोग पीछे छूट गये हैं। पण्डित जगदानन्द एकमात्र प्रभुके साथ दौड़कर जानेमें सक्षम हो पाये हैं। कुछ दूर जाकर प्रभु एक स्थानमें बैठ गये। वे विश्राम लेनेका बहाना करके अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुकी अपेक्षा करने लगे।

दण्ड-भङ्ग लीला

श्रीनित्यानन्द प्रभु गौराङ्ग-प्रेममें मत्त होकर सर्वदा उन्मत्तके समान विह्वल रहते हैं। कभी हुंकार करते हैं, कभी रोदन, कभी अट्टहास करते हैं, कभी गर्जन। कभी नदीमें तैरते हैं, कभी शरीरमें धूल लगाते हैं और कभी पाछाड़ खाकर गिर पड़ते हैं। कभी अपने-आप नृत्य करने लगते हैं, जिससे धरती कम्पित होने लगती है। नित्यानन्दके लिए इसमें कोई विचित्रता नहीं है, क्योंकि वे स्वयं अनन्तदेव हैं।

जगदानन्द पण्डित प्रभुका दण्ड लेकर उनके साथ-साथ रहते थे, इसी कारण उनको उनके साथ-साथ चलना पड़ता था। प्रभुको विश्राम करते देखकर जगदानन्द पण्डित उनकी भिक्षाके आयोजनमें लग गये। वे श्रीनित्यानन्द प्रभुकी अपेक्षा कर रहे थे। उनके पास आनेपर प्रभुका दण्ड उनके समीप रखकर वे बोले, "मैं शीघ्र भिक्षा करके आ रहा हूँ, आप प्रभुके इस दण्डको अति सावधानीसे रक्खें।" इतना कहकर अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुके हाथमें श्रीगौर भगवान्‌का दण्ड दे दिया। उनको हाथमें दण्ड धारण करते देखकर पण्डित जगदानन्द निश्चिन्त होकर भिक्षाके लिए चले गये।

श्रीनित्यानन्द प्रभु अवधूत संन्यासी थे। उनके पास भी दण्ड था। नवद्वीपमें श्रीवास पण्डितके घर रहते समय एक दिन उन्होंने अपने दण्डको तोड़कर गङ्गाके समर्पण कर दिया था। उनकी दण्ड-भङ्ग लीला प्रभुकी नवद्वीप लीलामें विस्तार-पूर्वक वर्णित हुई है।

यहाँ प्रभुका दण्ड हाथमें पाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके मनमें न जाने क्या भाव तरङ्ग उठा कि उससे वे एकबारगी विह्वल हो उठे। वहाँ बैठे-बैठे वह प्रभुके दण्डको हाथमें लेकर उसको उपलक्ष्य करके गम्भीरतापूर्वक कहने लगे—"अरे दण्ड! जिनको मैं हृदय मानता हूँ, वे तुमको वहन करें, यह तो युक्ति-संगत नहीं लगता।" इतनी बात कहकर प्रचण्ड प्रतापसे बलरामके अवतार श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस दण्डके तीन टुकड़े कर डाले। दण्ड-भङ्ग करके गम्भीर भावसे वे बैठे थे, उसी समय जगदानन्द पण्डित भिक्षा लेकर वहाँ उपस्थित हुए। सामने भग्न दण्ड देखकर वे विस्मित और चिन्तित होकर श्रीनित्यानन्द प्रभुसे पूछने लगे, "प्रभुके दण्डको किसने तोड़ा?" अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "प्रभुने अपने दण्डको आप तोड़ डाला है, उनके सिवा दूसरा कौन तोड़ सकता है?"

पण्डित जगदानन्द इस बातका कोई उत्तर न देकर दुःखित अन्तःकरणसे भग्न दण्डको उठाकर सीधे प्रभुके पास गये, और उनका भग्न दण्ड उनके सामने फेंक दिया। प्रभुने पण्डित जगदानन्दके मुखकी ओर करुण नयनसे देखकर चकित होकर पूछा—"बताओ तो सही कि दण्ड किसने तोड़ा? क्या किसीसे लड़ाई-झगड़ा कर लिया था?" अन्तर्यामी सर्वज्ञ प्रभु सब कुछ जानते हैं। परन्तु वे चतुर चूड़ामणि हैं। उनकी चतुराईकी सीमा नहीं है। इसी कारण पण्डित जगदानन्दसे इस प्रकार प्रश्न किया। जगदानन्द पण्डित थे प्रभुके अतिशय प्रिय अभिमानी अन्तरङ्ग भक्त। उन्होंने प्रभुको सारी बातें खोलकर कह दीं, और कहा कि, "आपके नित्यानन्दने आपका दण्ड भग्न किया है।"

तब श्रीनित्यानन्द प्रभु वहाँ जाकर उपस्थित हुए। प्रभुने उनके मुँहकी ओर देखकर करुण स्वरमें पूछा—"बताओ तो सही कि दण्ड क्यों तोड़ दिया ?" श्रीनित्यानन्द प्रभुने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "मैंने तुम्हारे इस बाँस को तोड़ा है। यदि क्षमा नहीं कर सकते हो तो मुझको यथा-विधि दण्ड दो।" प्रभु यह बात सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके मुखकी ओर करुण नयनसे देखकर अतिशय कातर भावसे बोले, "श्रीपाद ! संन्यासीके दण्डमें सब देवताओंका अधिष्ठान होता है, आप उसको बाँस कैसे कहते हैं ?"*

श्रीनित्यानन्द प्रभुने और कोई उत्तर नहीं दिया। वे मुँह नीचा करके प्रभुके सामने अपराधीके समान खड़े हो गये। तब प्रभु कपट कोप करके बोले—"सब कुछ त्याग कर देनेके बाद केवल दण्ड मात्रका संग रह गया था, वह भी कृष्णकी इच्छासे भङ्ग हो गया। अब मेरे साथ कोई नहीं रहेगा। या तो तुम लोग आगे जाओ या मैं आगे जाता हूँ, तुम लोग पीछे आना।" चै० भा० अं० २.२०१,२३१

तब श्रीनित्यानन्द प्रभु चुप न रह सके। उनका कोमल हृदय आलोड़ित हो उठा। प्रभु सिर मुँड़ाकर संन्यासी हो गये, इस दुःखसे उनका हृदय आहत हो रहा था। इसके ऊपर प्रभुका यह दण्ड-वहन कार्य श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आँखोंमें शूल हो रहा था। श्रीगौराङ्ग और श्रीनिताईकी प्रीति अतुलनीय थी। वे सिर उठाकर प्रभुके मुखचन्द्रकी ओर देखकर निःसङ्कोच बोले, "हे प्रभु ! तुम्हारे श्रीकरकमलमें दण्ड देखकर मेरा हृदय दग्ध हो उठता है। तुमने संन्यास लेकर सिर मुँड़ा लिया है, इसी दुःखसे हमारा कलेजा फट रहा है, इसके ऊपर तुम्हारे हाथमें यह दण्डभार मैं देख नहीं सकता। तुम जो इच्छा हो कर सकते हो, मैं तुम्हारे दण्डको जलमें फेंक रहा हूँ।" यह कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने भग्न दण्डको उठाकर सुवर्णरेखाके जलमें फेंक दिया।

छाड़िया धरिल दण्ड सहिब केमन ॥
सन्न्यास करिल प्रभु मुण्डाइल माथा।
जन्मावधि हृदये दारुण एइ व्यथा ॥
चिन्तिते चिन्तिते दुःख वाड़िल विस्तर।
भाङ्गिलेन दण्ड थुआ उरुर ऊपर ॥
भग्न दण्ड तुलिया फेलिल लञा जले।
प्रभुर सङ्कोच लाजे धीरे-धीरे चले ॥

चै. मं.

प्रभु सतृष्ण नेत्रोंसे जलमें भासमान भग्न दण्ड-त्रयकी ओर देखते रह गये। कुछ देरके बाद अत्यन्त दुःखित होकर उनने पुनः श्रीनित्यानन्द प्रभुको कहा, "श्रीपाद ! आपको ठीक बात कहनेपर आप क्रुद्ध होते हैं, संन्यासीके दण्डमें सर्व देवगणका अधिष्ठान होता है। किस उद्देश्यसे आपने मेरे दण्डको तोड़ दिया है ? देवोत्पीड़नसे कितना अनिष्ट होता है, क्या आप नहीं जानते ?*

---

*श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुने काटोयाके शाकंर भारती सम्प्रदायका एक दण्ड संन्यास ग्रहण किया था। श्रीनिताईचाँदने उनके संन्यास दण्डको तोड़कर तीन खण्ड करके नदीमें फेंक दिया। कुटीचक और बहूदक अवस्थामें दण्ड रक्षणीय होता है. हंस और परमहंस अवस्थामें दण्ड त्याग करनेकी विधि है। श्रीनिताईचाँद श्रीगौरांगके दास हैं, उन्होंने प्रभुके बैध संन्यास दण्डकी अनावश्यकता देखकर इस दण्डवहनके कार्यसे प्रभुको अव्याहति प्रदान की। प्रभुके दण्डवहन कार्यको उच्च परमहंसाधिकारमें अनावश्यक समझकर, तथा अन्यलोग उनको निम्नाधिकारी जानकर अपराध सञ्चय न करें—यह विचारकर उन्होने प्रभुसे दण्ड त्याग कराया।

*ततश्चुकोप भगवान् अवधूतं जगाद च।
दण्डे मे संस्थिताः देवाः शिवाद्याः सह शक्तयः ॥
तेषां पीडां विधाय त्वं बभञ्ज मम दण्डकम्।
देव पीडाकृतं दोषं नो जानासि किमल्पकम् ॥
—मुरारि गुप्तका करचा।

मोर दण्डे वैसे जत मोर देवगण।
हेन दण्ड भाङ्गि कि साधिले प्रयोजन।।
देवतार पीड़ा ते ना जान कत दोष।
किछु यदि वलि त करिबे महा रोष।।

चै. मं.

प्रभुकी बात सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु मुस्कराये। उनकी मुस्कराहटको प्रभु देख न सके। पश्चात् धीरे-धीरे उन्होंने प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़ कर सजल नयन हो निवेदन किया—"देवोत्पीड़न आदि मैं कुछ नहीं जानता। मैंने बुरा किया या अच्छा किया, तुम सब जानते हो। यदि तुम्हारे देवगण तुमको दण्ड देते हैं, और तुम इसको अपने कन्धे पर लेकर चलते हो, तो यह हमसे कैसे सहन हो सकता है ? अब लड़ाई-झगडेकी क्या बात है ? यदि मैंने अपराधकर दिया तो उसको एक बार क्षमा करदो। तुम्हारे नामसे सारे संसारका निस्तार होता है। तुमसे भी अधिक तुम्हारा नाम पतितपावन है, तुम क्षमा नहीं करोगे तो तुम्हारा नाम मेरा यह अपराध क्षमा कर देगा। भक्तोंको दुःख देनेको तुमने संन्यास लिया है और ऐसे सुन्दर वेशके मस्तकका मुण्डन करा डाला है। भक्तोंके मनमें इसकी दारुण व्यथा है, जिसको देखकर मेरे प्राण जलते रहते हैं। तुमको विश्वास न हो तो ये भक्तगण साथमें है, इनसे पूछ देखो। इन्हींके दुःखके कारण मैंने दण्ड तोड़ फेंका। यह मेरे हृदयमें भाले जैसा लगता था।"

प्रभु अब कोई उत्तर न देकर बनावटी क्रोधमें भरकर मत्त सिंहकी चालसे रास्ते पर आगे बढ़े। उनके पीछे-पीछे श्रीनित्यानन्द प्रभु और भक्तवृन्द चले, परन्तु उनका साथ न पकड़ सके।

प्रभुकी इस दण्ड-भङ्ग लीलाका गूढ़ रहस्य है। श्रीनवद्वीपलीला श्रीग्रन्थमें इसे मैंने विस्तारपूर्वक लिखा है। कृपालु पाठक कृपा करके वहाँ पढ़ लें।

प्रभु जलेश्वरमें

श्रीगौर भगवान् मत्त सिंहकी गतिसे बराबर जलेश्वर गाँवमें जा पहुँचे। भक्तवृन्द उनसे पीछे रह गये। जलेश्वरमें प्रसिद्ध शिवलिङ्ग है, उनका नाम जलेश्वर है। उनके नामसे ही गाँवका नाम जलेश्वर हो गया है। प्रभु बनावटी क्रोधमें सारी राह अति द्रुत गतिसे चलकर एकबारगी शिवमन्दिरमें जाकर रुके। ग्राम वासी विप्रवृन्द उस समय गन्ध-पुष्प, धूप-दीप, माल्य-नैवेद्य आदिके द्वारा शिवपूजा-कर रहे थे। नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे। चारों ओर नृत्य-गीत हो रहा था। श्रीगौर भगवान्‌को अपने प्रिय भक्त शूलपाणिका वैभव देखकर मनमें वड़ा आनन्द हुआ। उनका सारा क्रोध जाता रहा। प्रिय भक्त शङ्करका गौरव बढ़ानेके लिए प्रभु श्रीमन्दिरके सामने खड़े होकर प्रेमानन्दमें अपूर्व नृत्य करने लगे।

श्रीभगवान्‌ने शङ्करका गौरव सदा ही बढ़ाया है। प्रभुने भी यही किया। उन्होंने 'शिवराम गोविन्द' बोलकर मधुर कीर्तन और नृत्य आरम्भ कर दिया। प्रेमावेशमें विह्वल होकर शिवकी महिमाका गान करने लगे, तथा सबको शिव-माहात्म्य समझाने लगे।

प्रभुकी अपरूप रूपराशि, प्रबल हुङ्कार गर्जन, और मधुर नृत्यभङ्गी देखकर शैव विप्रगण विस्मित होकर कहने लगे, "आज जान पड़ता है कि श्रीमहादेव प्रकट हो गये हैं।" वे अधिकाधिक उत्साह पूर्वक संकीर्तनमें योग देने लगे। प्रभु बाह्य ज्ञान-शून्य होकर नृत्य कर रहे थे। उनके साथ-साथ शिवभक्त विप्रगण भी नृत्यानन्दमें मत्त होगये। सबके मुखसे 'शिव-राम गोविन्द' ध्वनि निकल रही थी। 'हर-हर बम् बम्' शब्दसे दिगन्त प्रकम्पित हो रहा था।

उसी समय प्रभुके साथी लोग उनको खोजते-खोजते जलेश्वरके मन्दिरमें आ उपस्थित हुए। प्रभु-का दर्शन करके वे निरुद्विग्न हो गये। सबने प्रभुके साथ शिव संकीर्तनमें योगदान किया। वहाँ नृत्य-कीर्तनकी धूम मच गयी। श्रीमन्दिरका प्राङ्गण लोगोंसे ठसाठस भर गया। इस प्रकारका अद्भुत कीर्तन जलेश्वर-वासियोंने पहले कभी देखा नहीं

था। साथियोंको पाकर प्रभु कीर्तनानन्दमें एकबारगी मत्त हो गये। उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया। भक्तवृन्द प्रभुको घेरकर कीर्तन कर रहे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु उनको पकड़कर नृत्य कर रहे थे। कहीं प्रभु पछाड़ खाकर गिर न पड़ें, इसका सँभाल रखते थे। जलेश्वरके सेवक भक्तवृन्द भी प्रभुके भक्तवृन्दके साथ मिलकर नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें मत्त हो गये हैं।

वैष्णव और शैव एक होकर शिवकीर्तन कर रहे हैं। यह अति मधुर मिलन था, अपूर्व दृश्य था। सभीका चित्त प्रेमानन्दमें विह्वल हो रहा था। प्रभुके नयनोंकी धाराकी नदी बहती थी। उनके नेत्र कमलद्वयसे मानो जलकी पिचकारी छूट रही थी। उस जलसे सब लोगोंने स्नान कर लिया। सभी प्रेमानन्दमें विभोर थे, सभी आकुल होकर क्रन्दन कर रहे थे। शैव-वैष्णवोंके अबाध मिलनमें जलेश्वर उस दिन आनन्द-धाममें परिणत हो गया। शैव-वैष्णव निष्कपट प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध हुए, शिव-मन्दिरकी पवित्रतामें वृद्धि हुई। शिव-मन्दिरका नाम सार्थक होगया।

श्रीगौरभगवान् सर्व धर्मोंकी मर्यादाके रक्षक हैं। उनके द्वारा प्रदर्शित सर्वमङ्गलमय पथका अनुसरण न करके जो शिव-शक्तिको नहीं मानते, वे वैष्णव नहीं हैं, उनके धर्म-कर्म, साधनाएँ सारी निष्फल हैं, यह बात श्रीवृन्दावनदास ठाकुर स्पष्ट रूपमें लिख गये हैं—

ना माने चैतन्य पथ बोलाय वैष्णव।
शिवेर अमान्य करे व्यर्थ तार सब॥

चै. भा. अं. २. २४१

प्रभु अब सुस्थिर होकर मन्दिरके भीतर बैठे। अपनी गोष्ठीके साथ प्रेमालिङ्गनके सुखमें मग्न हो गये। तब सबका मन निर्भय हो गया। तब सबको ज्ञात हो गया कि प्रभुका क्रोध बनावटी था।

श्रीनित्यानन्द प्रभुको कुछ अधिक भय था। क्योंकि उन्होंने ही प्रभुका दण्ड भग्न किया था, और इसी कारण प्रभु अकेले जलेश्वर चले आये थे। भक्त-वत्सल श्रीगौरभगवान् श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखतेही उनको हृदयसे लगाकर बैठ गये। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु बालकके समान प्रभुके क्रोड़में बैठकर हँसने लगे। प्रभुने स्नेहपूर्वक कहा—"तुमको उचित तो यह था कि मेरी सम्हाल करो और मेरे संन्यास धर्मकी रक्षा करो। तुम मुझे और पागल बनाना चाहते हो। फिर कभी ऐसा करो तो तुमको मेरी सौगन्ध है। तुम मुझे जैसा करोगे वैसा ही मुझे होना होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

इतना कहकर भक्तवत्सल प्रभु निताई चाँदका गुणगान करने लगे। सब भक्तोंकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर वे बोले—

नित्यानन्द प्रति सबे हओ सावधान॥
मोर देह हैते नित्यानन्द देह बड़।
सत्य सत्य सभारे कहिनु एइ दड़॥
नित्यानन्दे जाहार तिलेक द्वेष रहे।
भक्त हइलेओ से आमर प्रिय नहे॥

चै. भा. अं. २. २५५-२५७

श्रीनित्यानन्द प्रभु आत्मस्तुति सुनकर लज्जासे अधोवदन हो रहे। भक्तवृन्द परम आनन्दपूर्वक हरिध्वनि करने लगे। प्रभुने इस प्रकार अपने भक्तोंको श्रीनित्यानन्दकी महिमाकी शिक्षा दी। कृत्रिम संन्यासी थे। कपट-संन्यासीका दण्ड भङ्ग करके श्रीनित्यानन्द प्रभुने दिखला दिया कि श्री गौराङ्ग प्रभुकी इच्छासे ही उनकी दण्ड-भङ्गलीला प्रकटित हुई। वे विधि-नियमके परे हैं। उनके लिए दण्ड धारण करना विडम्बना मात्र है। इस दण्ड-भङ्ग लीलाके द्वारा प्रभुने यह भी दिखला दिया कि श्रीनिताईचाँद उनकी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति दोनों ही हैं। वे सर्वकारणके कारण हैं।

बाँशदहमें शाक्त संन्यासीका उद्धार

उस रात प्रभु जलेश्वरमें रहे। प्रातःकाल भक्तगणके साथ पुनः रास्तेपर निकले। रास्तेमें बाँशदह

नामक एक गाँवमें उनको एक शाक्त संन्यासीसे भेंट हो गयी। उस संन्यासीने प्रभुको अपने आश्रममें ले जानेका विशेष अनुरोध किया। श्रीचेतन्य भागवतमें लिखा है कि इस शाक्त संन्यासीने प्रभुको अपने आश्रममें ले जानेका 'आदेश' दिया। चतुर चूड़ामणि प्रभुने मधुर वचन द्वारा उनसे पूछा, "हे बन्धु! तुम्हारा आश्रम कहाँ है? तुम मेरे चिरकालके बन्धु हो। बहुत दिनों के बाद तुम्हें देखकर मेरा मन बड़ा आनन्दित हुआ है।" प्रभुके मधुर वचन और वैष्णवी मायासे मुग्ध होकर उस संन्यासीने अपनी सारी कहानी और शाक्त सम्प्रदायके सारे गुह्य तत्व उनसे निश्छल भावसे कह दिये। सदानन्द और सर्वज्ञ प्रभु एक-एक करके सारी बातें सुनते रहे, और मृदु मधुर मुस्कराते रहे।

संन्यासीने अन्तमें प्रभुको अपने मठ पर ले जानेके लिए जिद्द करते हुए कहा, "आप सब लोग शीघ्र मेरे मठमें चलिये, आज हम सब एक साथ 'आनन्द' करेंगे।" संन्यासीने इस 'आनन्द' शब्दका वारंबार व्यवहार किया। इस शब्दका अर्थ था 'मदिरा।' श्रीगौर भगवान् श्रीनित्यानन्द प्रभुकी ओर देखकर मुस्कराये। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनकी मुस्कराहटका मर्म समझा। इस 'आनन्द' शब्दका अर्थ उन्होंने प्रभुको पहले एक बार समझाया था। यह बहुत दिनोंकी बात थी। शान्तिपुरके रास्तेमें ललितपुर गाँवमें एक वामाचारी गृहस्थ संन्यासीके घर दोनों प्रभुओंने एक वार अयाचित भावसे आतिथ्य ग्रहण किया था। उस समय इस वामाचारी संन्यासीने श्रीनित्यानन्द प्रभुसे कहा था।

शुनह श्रीपाद किछु 'आनन्द' आनिब।
तोमा हेन अतिथि वा कोथाय पाइब॥

चै. भा. म. १९.८७

प्रभुने यह बात सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुसे पूछा था, "श्रीपाद, 'आनन्द' क्या?" श्रीनिताई चाँदने उत्तर दिया था —'मदिरा'। प्रभु यह सुनतेही 'विष्णु-विष्णु' कहकर वहाँसे चल दिये थे।

यहाँ भी फिर वही 'आनन्द' की बात आयी, और वही वामाचारी शाक्त-संन्यासीका सङ्ग। प्रभु भी श्रीनिताई चाँदके मुँहकी ओर देखकर कुछ मुस्कराये।

चतुर चूड़ामणि प्रभुने तब शाक्त संन्यासीको मधुर वचनोंसे कहा, "आप आगे जाकर सब प्रबन्ध करें, पीछेसे हम आते हैं।" संन्यासीजी यह सुनकर परम आनन्दित होकर अपने मठमें गये। प्रभुने उनके ऊपर शुभ-दृष्टि-पात करके मधुर वचनसे उनको विदा किया। शाक्त संन्यासीने प्रभुके सत्सङ्गसे तथा कृपाबलसे कुकार्यसे विरत होकर प्रकृत भजनानन्द प्राप्त किया। उनका उद्धार करना प्रभुका कार्य था। अतएव उनके साथ वार्तालाप करके प्रभुने उनके अन्तःकरणको शुद्ध कर दिया। इस कार्यके द्वारा प्रभुने सबको समझा दिया कि पापीसे घृणा नहीं करना चाहिये, पापसे घृणा करना चाहिये। पतित-पावन नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभु अधम-उदाहरण हैं, पतित पाखण्डीके प्रति उनकी बड़ी कृपा है। क्योंकि उनका उद्धार करना ही भगवान्का एक मात्र उद्देश्य है। श्रीभगवान्की कृपा-लवलेशके बिना उनका उद्धार नहीं हो सकता। इसी कारण श्रीभगवान्का नाम अधम-उदाहरण, पतित-पावन है। श्रीगौराङ्ग-लीलाके व्यासावतारने लिखा है।

पतित पावन कृष्ण सर्ववेदे कहे।
अतएव शाक्त सह प्रभु कथा कहे॥
लोके बले-ए शाक्तेर हइल उद्धार।
ए शाक्त परशे अन्य शाक्तेर निस्तार॥

चै. भा. अं. २.२७०.२७१.

रेमुनामें क्षीरचोरा गोपीनाथके दर्शन

इस प्रकार मार्गमें शाक्त संन्यासीका उद्धार करके प्रभु अपने गणके साथ रेमुना गाँवमें आ

पहुँचे। रेमुना बालेश्वरसे तीन कोसकी दूरी पर अवस्थित है। इस रेमुना ग्राममें प्रसिद्ध क्षीर-चोर श्रीगोपीनाथकी श्रीमूर्ति प्रतिष्ठित है। प्रभुने श्रीमन्दिरमें जाकर परम सुन्दर श्रीगोपीनाथजीके श्रीविग्रहका दर्शन करके प्रेमानन्दमें विभोर होकर उसको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उसी समय श्रीविग्रहके मस्तककी पुष्पचूड़ा खिसक कर प्रभुके श्रीमस्तक पर जा गिरी। यह देखकर सब लोग आश्चर्य-चकित हो उठे। श्रीगोपीनाथजीका कृपा प्रसाद प्राप्त कर प्रभु परम आनन्दपूर्वक श्रीविग्रहके सामने भक्तगणको साथ लेकर बहुत देर तक नृत्य कीर्तन करते रहे।

श्रीगोपीनाथजीके सेवक प्रभुके अपरूप रूपको देखकर तथा अपूर्व प्रेमभाव देखकर परम विस्मित होकर उनकी सेवामें लग गये। वह रात प्रभुने श्रीरेमुनामें ही बितायी। सेवक भक्तवृन्दके साथ कृष्णकथाके रङ्गमें सारी रात कट गयी। श्रीरेमुनाके क्षीरचोर गोपीनाथ भगवान्‌को अबतक अति उत्तम खीर भोग लगता है। प्रभुको इस क्षीर-प्रसादका लोभ हुआ। इसी कारण वे उस दिन वहाँ रह गये। क्योंकि उन्होंने श्रीईश्वर पुरी गोसाईं से श्रीगोपीनाथ भगवान्‌की क्षीर-चोरीकी पूर्ण लीला कथा पहले श्रवण की थी।

माधवेन्द्र पुरीकी भक्ति-गाथा

प्रेमावतार श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईं कृष्ण-भक्त-शिरोमणि थे। उनकी अयाचित वृत्ति थी। आकाशमें मेघ देखने पर उनके मनमें कृष्ण-स्मृति उदय हो जाती थी। वे प्रेमानन्दमें मूर्छित होकर भूतल पर गिर पड़ते थे। वे परम पूज्य माधवेन्द्र पुरी गोसाईं तीर्थ-भ्रमणमें श्रीरेमुनामें गये रहे। उनके ही कारण श्रीगोपीनाथजीने क्षीरका भाण्ड चोरी किया था।

भक्तवशी प्रभु उस परम पवित्र लीला-स्थलीमें बैठकर इस कृष्ण-भक्त शिरोमणिके मधुर-चरितामृतका आस्वादन करने बैठे। प्रभु वक्ता थे, श्रोता थे श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा साथी भक्तवृन्द और स्थान था श्रीगोपीनाथजीका श्रीमन्दिर, समय था रात्रिकाल। प्रभु आविष्ट होकर प्रेमानन्दमें एक-एक करके श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीकी पुण्य चरित-कहानी सबको सुनाने लगे। भक्तवृन्द ध्यान पूर्वक सुनने लगे।

श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईंने दक्षिण देशमें तीर्थ भ्रमणके समय श्रीरेमुनामें पदार्पण किया था। शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यको दीक्षा मन्त्र देनेके बाद ही उन्होंने श्रीक्षेत्रके लिए प्रस्थान किया था। रास्तेमें उन्होंने श्रीरेमुनामें आकर श्रीगोपीनाथजीके श्रीमन्दिरके जगमोहनमें बैठकर प्रेमविह्वल भावसे परम सुन्दर अपूर्व श्रीमूर्तिका दर्शन करके अपनेको कृतार्थ माना था। श्रीविग्रहकी सेवामें पवित्रता, सौष्ठव और परिपाटी देखकर पुरी महाशयके मनमें बड़ा आनन्द हुआ था। भोगकी बात पूछने पर पुजारी सेवकने उनसे कहा—

सन्ध्याय भोग लागे क्षीर अमृत केलि नाम।
द्वादश मृत्पात्र भरि अमृत समान ॥
गोपीनाथेर क्षीर करि प्रसिद्धि जाहार।
पृथिवीते ऐछे भोग काँहा नाहि आर ॥

चै. च. म. ४.११६.११७.

इतनी बात कहकर पुजारी श्रीगोपीनाथको वह अपूर्व क्षीर भोग लगानेके लिए गये। क्योंकि उस समय भोग लगानेका समय आ गया था। श्रीमाधवेन्द्र पुरीजी मन ही मन सोचने लगे—

अयाचित क्षीर प्रसाद अल्प यदि पाइ।
स्वाद जानि तैंछे क्षीर गोपाले लगाइ ॥

चै. च. म. ४.११८

श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीजी गोपालकी सेवा करते थे। उन्होंने किस प्रकार श्रीवृन्दावनमें अपने गोपालकी प्रतिष्ठा करायी थी, यह मैं आगे चलकर बतलाऊँगा। उनकी अयाचित वृत्ति थी। बिना माँगे

यदि कोई कुछ न देता तो वे भिक्षा नहीं करते थे। श्रीगोपीनाथके क्षीर प्रसादमें लोभ होने पर उन्होंने मन-ही-मन लज्जित होकर श्रीविष्णुका स्मरण किया।

श्रीगोपीनाथजीके क्षीर-भोगकी आरतीका घण्टा बजा, पुरी गोसाईं आरती दर्शन करके श्रीविग्रहको दण्डवत् प्रणाम कर श्रीमन्दिरसे बाहर निकले। श्रीगोपीनाथके क्षीर-प्रसादमें लोभ होनेके कारण अपनेको अपराधी समझ कर दुःखित हृदयसे गाँवमें एक एकान्त स्थानमें एक शून्य हाटमें बैठकर मृदु-मृदु मधुर हरिनाम कीर्तन करने लगे। प्रेमाश्रुधारामें उनका वक्षः स्थल डूब कर भूतलको सिक्त कर दिया।

इधर पुजारीजीने श्रीविग्रहको क्षीर भोग लगा कर विधिपूर्वक स्तुति-वन्दना करके रातमें शयन करा दिया। सारी प्रसादीके क्षीरके पात्र भोगके घरसे स्थानान्तरित करके अपना कृत्य समाप्त करके वे भी सोने चले गये।

बारह क्षीरके पात्रोंमें-से एक प्रसादी क्षीर-पात्र श्रीगोपीनाथजीने चोरी करके अपने पीताम्बरके द्वारा आवृत्त करके छिपा रक्खा। पुजारीजी इसको समझ न सके। क्योंकि वे क्षीरके पात्रोंको एक-एक करके गिनकर नहीं ले गये। रातमें सोये हैं, नींद आ गयी है, पुजारीजी स्वप्न देख रहे हैं कि श्रीगोपीनाथजी उनके सिरहाने खड़े होकर उनको सम्बोधन करके कह रहे हैं—"पुजारी! एक पात्र क्षीरका अञ्चलसे ढककर मैंने संन्यासीके लिए रख लिया है। तुम मेरी मायासे उसको जान नहीं सके। अब उठकर द्वार खोलकर उसको शीघ्रसे जाकर हाटमें बैठे हुए माधवेन्द्र पुरी संन्यासीको दो।"

स्वप्न देखकर पुजारीजीने घबरा कर शय्यासे उठकर स्नान करके श्रीमन्दिरका द्वार खोला। श्रीगोपीनाथजीके पीताम्बरके नीचे प्रसादीके क्षीरका एक पात्र रखा देखकर वे प्रेमानन्दमें गद्गद हो उठे। उनके नयन-द्वयसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बहने लगी। प्रसादी क्षीरका पात्र लेकर उस स्थानको लेपन करके श्रीमन्दिरका द्वार बन्द कर बाहर वे रास्तेसे निकले। उस रातमें ही अकेले वे गाँवके हाटमें भ्रमण करते हुए श्रीमाधवेन्द्र पुरीका पता लगाने लगे। उस समय रात प्रायः बीत चुकी थी। पुजारी किसीको न देखकर उच्च स्वरसे कहने लगे—"हे माधवेन्द्र पुरी महाराज! आपके लिए गोपीनाथ भगवान्‌ने यह क्षीर छिपाकर रख छोड़ी थी। आप इसका प्रसाद पाइये। आपके समान त्रिभुवनमें और कोई भाग्यवान नहीं है।"

श्रीमाधवेन्द्र पुरी हाटके एक भागमें एकान्तमें बैठकर नामानन्दमें विभोर थे। पुजारीकी यह बात सुनते ही उन्होंने आत्म परिचय दिया। तब पुजारीने उनको दण्डवत् प्रणाम करके प्रसादी क्षीर-पात्र उनके हाथमें दे दिया, और उस क्षीर-पात्रके विषयमें श्रीगोपीनाथजीकी कृपानुज्ञाकी बात शुरूसे क्रम पूर्वक उनको सुना दी। श्रीमाधवेन्द्र पुरीजी यह सुनकर प्रेमाविष्ट होकर भूतल पर मूर्छित होकर गिर पड़े। उनका अपूर्व प्रेमभाव देखकर पुजारीने विस्मित होकर मन ही मन सोचा, "वस्तुतः श्रीकृष्ण-भगवान् इनके वशीभूत हैं।" इतना कहकर वे पुरी महाशयको प्रणाम करके श्रीमन्दिरको लौट गये।

प्रेमावेशमें विह्वल होकर पुरी महाशय प्रसादी क्षीर भोजन करके प्रेमोन्मत्त भावमें नृत्य करने लगे। खाली क्षीरके पात्रको फोड़कर टुकड़े-टुकड़े करके मिट्टीके पात्रके उन टुकड़ोंको यत्नपूर्वक अपने चादरमें भक्तिके साथ बाँध लिया। पश्चात् वे प्रतिदिन एक-एक करके उन टुकड़ोंको खा लेते और तत्काल प्रेमोन्मत्त हो जाते।

पुरी गोसाईंने मन-ही-मन सोचा कि श्रीगोपीनाथजीने मेरे लिए क्षीर चोरी की है, यह बात यदि लोग सुनेंगे तो इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, बहुत लोग आकर सम्मान प्रदर्शित करेंगे। इस भयसे उन्होंने उस दिन रातके बीतने पर श्रीगोपीनाथजीके

उद्देश्यसे शतशः दण्डवत प्रणाम करके श्रीनीलाचल धामकी यात्रा की।

इधर प्रभातमें श्रीगोपीनाथजीके क्षीरकी चोरीका वृत्तान्त सब जगह फैल गया। वहाँके बहुतसे लोग पुरी गोसाईंके पीछे लगे। वे वहाँसे भी भाग चले।

कविराज गोस्वामीने लिखा है—

प्रतिष्ठार स्वभाव एइ जगते विदित।
जे ना बाञ्छे तार हय विधाता निर्मित॥
प्रतिष्ठार भये पुरी जाय पलाइया।
कृष्णभक्त सङ्गे प्रतिष्ठा चले लाग लैया॥

चै. च. म. ४,१४५,१४६

प्रतिष्ठाकी तो बात ही क्या? मुक्ति तक कृष्ण-भक्तके पीछे-पीछे चलती है। कृष्ण-भक्त वैष्णव भगवद्-भजनके सिवा और कुछ नहीं चाहता।

श्रीभगवानने अपने श्रीमुखसे कहा है—

सालोक्य-सार्ष्ठि-सामीप्य-सारुप्यै कत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥

श्री.म. भा. ३.२९.१३

श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी गोस्वामीका पवित्र नाम स्मरण करने पर कृष्ण-प्रेमका उदय होता है। इसी महापुरुषके प्रिय शिष्य श्रीपाद ईश्वरपुरीको श्रीगौराङ्ग प्रभुने गुरु रूपमें वरण किया था। श्रीगौर भगवान्‌ने पृथिवी पर जो भक्ति कल्पतरु रोपण किया था उसके अङ्कुर थे श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी। श्रीपाद ईश्वर पुरीने प्रेम-सलिलसे इस अंकुरको परिपुष्ट किया था। नदियाके ब्राह्मण-कुमार इस भक्ति कल्पतरुके स्कन्ध थे। इसके नो मूल थे। नो मूलोंके नाम थे श्रीपाद परमानन्द-पुरी, केशव भारती, ब्रह्मानन्दपुरी, ब्रह्मानन्द भारती, विष्णु पुरी, केशव पुरी, कृष्णानन्द पुरी, नृसिंह तीर्थ पुरी और सुधानन्द पुरी। इन नो मूलसे भक्ति कल्प-तरु सुस्थिर हुआ। इस भक्ति-कल्पतरुके मूल स्कन्ध-से और भी दो स्कन्ध निकले। उनमें एकका नाम था श्रीअद्वैत और दूसरेका नाम था श्रीनित्यानन्द*। इनकी शाखा-उपशाखाएँ जगद्-व्याप्त हो गयीं। इस भक्ति कल्पतरुकी तुलना कविराज गोस्वमीने यज्ञ-उदुम्बर वृक्षके साथ की है। जिस प्रकार उदुम्बर वृक्षके सारे अङ्गोंमें उसका फल लगता है, उसी प्रकार इस अपूर्व भक्ति कल्पतरुका फल भी मूल वृक्षके सारे अङ्गोंमें फलने लगा (चै.च.आ. ९.२३) इस भक्ति कल्पतरुके मूल श्रीपाद माधवेन्द्र-पुरी गोस्वामी थे। उनके चरणोंमें कोटि कोटि प्रणियात!

यस्मै दातुं चोरयन् क्षीर भाण्डं
गोपींनाथः क्षीर चोरामिधोऽभूत्।
श्रीगोपाल प्रादुरासीद्वशः सन्
यत्प्रेमा तं माधवेन्द्रं नतोऽस्मि॥

चै. च. म. ४.१

प्रभु प्रेममें गद्गद होकर श्रीपाद माधवेन्द्र-पुरी गोसाईंकी अपूर्व भक्ति कहानी एक-एक करके वर्णन कर रहे हैं, और उनके दोनों नेत्रोंसे झरझर प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। श्रोता और भक्त-गण ध्यान पूर्वक सुन रहे हैं। प्रभुने कहा, "श्रीपाद-माधवेन्द्र पुरी गोसाईंकी भक्ति-कथाका अन्त नहीं है। एक और अपूर्व भक्ति-कहानी कहता हूँ सुनो।"

पुरी गोसाईं जब श्रीवृन्दावन-धाममें गये, उस समय उनको श्रीकृष्ण भगवान्‌ने बाल-गोपाल वेशमें दर्शन देकर कृतार्थ किया। वे प्रेमोन्मत्त होकर श्री-वृन्दावनके वन-वनमें भटकते हुए श्रीगोवर्द्धनमें जा उपस्थित हुए। श्रीगिरि गोवर्द्धनकी परिक्रमा करके उन्होंने गोविन्द कुण्डमें स्नान किया। गोविन्द कुण्डके तीर सन्ध्याकालमें एक बृक्षके नीचे वे बैठे।

---

*वृक्षेर उपरि उपजिल दुइ स्कन्ध।
एक अद्वैतनाम आर नित्यानन्द॥ चै.च.आ.९.१२
उडूम्बर वृक्ष जेन फले सर्व अगे।
एइ मत भक्तिवृक्षे सर्वत्र फल लागे॥ चै. च.आ.९ २३

दिनमें भोजन मिला नहीं। उनकी अयाचित वृत्ति थी। कोई पूछकर उनको भिक्षा न देता तो वे किसीसे कुछ भिक्षा ग्रहण नहीं करते थे। पुरी गोसाईं नामानन्दमें विभोर होकर बृक्षके नीचे ध्यान-मग्न हो गये। उसी समय सुन्दर एक अपूर्व गोप बालक दूधसे भरा एक भाण्ड लेकर उनके पास आया और मधुर मुस्कानके साथ उस भाण्डको उनके सामने रख दिया। पुरी गोसाईंका अचानक ध्यान टूट गया। वे अपने सामने एक अपूर्व रुप-लावण्य-विशिष्ट गोपबालकका दर्शन करके आनन्दसे गद्गद हो उठे। गोप-बालकने उनसे पूछा—"तुम भिक्षा करके क्यों नहीं खाते ? ध्यान किसका कर रहे हो ? अभी यह दूध लेकर पीलो।"

गोप बालकके बाल-भाषित मधुर कलकण्ठ स्वरने पुरी गोसाईंके कानोंमें मानों अमृतकी वर्षा कर दी। बालककी अपरुप रुपराशि देखकर वे एक बारगी मुग्ध हो उठे। मनके आनन्दसे उनकी क्षुधा-तृषा दूर हो गयी। उनकी ध्यान-धारणा भी दूर हो गयी। उन्होंने गद्गद कण्ठसे प्रेमाश्रु-प्रवाहित नेत्रोंसे उस अपूर्व बालकसे स्नेह पूर्वक मृदुवाणीमें पूछा, "बेटा ! तुम कौन हो ? तुम्हारा घर कहाँ है ? तुमको कैसे ज्ञात हुआ कि मैं उपवासी हूँ।"

तब उस अपूर्व बालकने मधुर मुस्कानके साथ उत्तर दिया, "मैं इसी गाँवका गोप-बालक हूँ। हमारे गाँवमें कोई उपवासी नहीं रहता। कोई अन्न मांग लेगा, कोई दूध। अयाचकके लिए मैं पहुँचा देता हूँ। जल लेकर गाती स्त्रियोंने तुमको देखा था, उनने दूध देकर मुझे भेजा है। मुझे गायें दुहनी हैं, अभी मैं जा रहा हूँ, पीछे आकर बर्तन ले जाऊँगा।"

इतनी बात कहकर गोप बालक रूपी श्रीकृष्ण भगवान् वहाँसे अन्तर्हित हो गये। पुरी गोसाईं उस अपूर्व बालकको न देखकर परम विस्मित हुए। वे मनही मन सोचने लगे। यह अपूर्व बालक कौन था।' मनुष्यके बालकमें तो ऐसा रूप होता ही नहीं। यह तो रूपका समुद्र था।"

वे इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे और नेत्रोंसे रास्तेकी ओर देख रहे थे। क्योंकि गोप-बालक पुनः भाण्ड ले जानेके लिए वहाँ आनेको कह गया था। पुरी गोसाईंका मन अतिशय चञ्चल हो उठा। अब वे ध्यानमें बैठ न सके, माला हाथमें लेकर जप करने लगे। जपमें भी मन न लगा। उनका चित्त उस अपूर्व गोप-बालककी ओर लग रहा था। इस प्रकार उस वृक्षके नीचे बैठे-बैठे पुरी गोसाईंने वह रात बिता दी। रातके अन्तिम पहरमें उनकी आँखोंमें कुछ तन्द्रा आयी, बाह्य वृत्ति लोप हो गयी। तब उन्होंने एक स्वप्न देखा कि "उसी बालकने आकर उनका हाथ पकड़कर उनको एक कुञ्जमें लेजाकर, कुञ्ज दिखाकर कहा मैं इसी कुञ्जमें रहता हूँ, शरदी गरमीसे वड़ा कष्ट पाता हूँ। ग्रामके लोगोंको बुलाकर मुझे यहाँसे गोवर्द्धन पर्वत पर ले चलो। वहाँ एक मन्दिरमें मेरी स्थापना करके शीतल जलसे स्नान कराओ। मैं बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि तुम आकर मेरी सेवा करो। तुम्हारे प्रेमके वशीभूत होकर तुम्हारी सेवा स्वीकार करता हूँ। मैं ही गोवर्द्धन-धारी गोपाल हूँ। श्रीकृष्ण प्रपोत्र *बज्रनाभके द्वारा मैं स्थापित हूँ। यहाँका अधिकारी हूँ। म्लेच्छोंके भयसे सेवक मुझे यहाँ कुञ्जमें छिपा कर भाग गया। तबसे मैं यहीं हूँ। अब तुम मुझे यहाँसे ले चलो। चै. च. म. ४.३४-४२

इतना कहकर श्रीबालगोपाल अन्तर्द्धान होगये। श्रीमाधवेन्द्र पुरी जब जाग करके उठे तो प्रेमावेशमें मूर्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। कुछ देरके बाद बाह्यज्ञान होनेपर वे अजस्र आँसू बहाने लगे। उनके

*श्रीकृष्णके पौत्र अनुरुद्धका पुत्र वज्र था। उसको पाण्डव लोगोंने द्वारकासे लाकर मथुरामें राजा बनाया था। उन्होंने श्रीकृष्ण-लीलाके स्थानोंकी खोज करके अनेकों श्रीमूर्तियाँ स्थापित की थीं। यह गोपाल मूर्ति भी उनमें-से एक मूर्ति थी।

मुँहसे केवल इतनाही निकला, "श्रीकृष्णको देखकर भी मैं पहचान नहीं पाया।"

वे भूतलमें पड़कर लोट पोट कर रहे हैं। इस प्रकार रात्रिका अवसान हुआ। श्रीकृष्ण भगवान्‌की आज्ञा पालन करनेके लिए वे कुछ देरके बाद सुस्थिर हुए। प्रातःकृत्य और प्रातःस्नान करके पुरी गोसाईं प्रेमानन्दमें गाँवमें गये। गाँवमें जाकर सब लोगोंको एकत्र करके उन्होंने उनसे कहा, "ग्रामके ईश्वर गोवर्धनधारी गोपाल कुञ्जमें हैं, चलो उनको वहाँसे निकालें। वह अत्यन्त निविड़ स्थान है, मार्ग बनानेके लिए कुठार-कुदाल लेकर चलो।'

गाँवके लोग यह बात सुनकर बड़े आनन्दसे कुदाली और कुल्हाड़ी हाथमें लेकर पुरी गोसाईंके साथ सघन वनमें घुसे, और उनके निर्देशानुसार जङ्गल काट कर मिट्टी खोदते-खोदते जमीनमें पड़ी बाल-गोपालकी प्रस्तरमयी अपूर्व श्रीमूर्ति देखकर आनन्दसे विह्वल हो उठे। तब पुरी गोसाईं प्रेमानन्दमें विभोर होकर हरि ध्वनि करने लगे। सब लोग उस वनमें आनन्दसे जय ध्वनि करने लगे। भीषण अरण्यानी 'जय बाल गोपाल' ध्वनिसे मुखरित हो उठी।

सब लोग मिलकर श्रीविग्रहको भूगर्भसे बाहर निकालनेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु श्रीविग्रह अतिशय भारी होनेके कारण कोई अकेले उसे ऊपर उठा न सका। तब गाँवके बड़े-बड़े बलवान् लोगोंने इकट्ठे होकर उस श्रीमूर्तिको भूगर्भसे बाहर उठाकर पर्वतके ऊपर रक्खा। एक प्रस्तर-खण्ड पर पृष्ठ देश अवलम्बन करके दूसरे प्रस्तर-खण्ड पर श्रीगोपाल देव पर्वतके ऊपर सिंहासन पर बैठ गये।

निकटवर्ती गाँवके बहुतसे लोग आकर वहाँ एकत्रित हो गये। ब्रजवासी विप्रवृन्द गोविन्द कुण्डसे जल लाकर श्रीगोपालजीके अभिषेकका उद्योग करने लगे। पहले एक नये घटमें जल भर कर लाया गया। पश्चात् नये नये सैकड़ों जलसे पूर्ण घट लाकर पर्वत पर रक्खे गये। प्रेमानन्दमें गाँवके लोग नाना प्रकारके बाजे बजाने लगे। ग्रामवासी कुल-स्त्रियाँ मङ्गल गीत गाने लगीं। नृत्य-गीतिसे सब लोग उन्मत्त हो उठे।

उसी दिन श्रीगोपाल देवके महोत्सवका सारा उद्योग हुआ। दधि, दुग्ध, घृत, सन्देश आदि भोगकी सारी सामग्री इकट्ठी हो गयी। गन्ध-पुष्प-माल्य-धूप-दीप-वस्त्र आदि सब लाये गये।

श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईं स्वयं श्रीगोपाल देवका अभिषेक करने बैठे। उन्होंने पहले श्रीविग्रहके श्रीअङ्गकी धूलि-मिट्टी दूर करके कुण्ड-जलमें स्नान कराया। अधिक परिमाणमें तैल मर्दन करके श्रीअङ्गको चिक्कन कर दिया। तब श्रीविग्रहका अपरुप रुप मानो फूट पड़ा। सबने यह देखकर आनन्दमें अधीर होकर 'जय बाल गोपालकी जय' की ध्वनिसे गगन तलको विदीर्ण कर दिया। उसके बाद श्रीमाधवेन्द्र पुरीने पञ्चगव्य और पञ्चामृतके द्वारा श्रीमूर्त्तिको पुनः स्नान कराया। अब महाभिषेकका स्नान आरम्भ हुआ। ब्रजवासी विप्रवृन्दने 'जय श्रीगोपालकी जय' बोलकर सैकड़ों घड़े कुण्डके जलसे श्रीविग्रहको भली भाँति स्नान कराया। पुरी गोसाईं मन्त्र पाठ करने लगे। तत्पश्चात् दूसरे दिन चिकने वस्त्रके द्वारा श्रीअङ्गको पोंछ कर पुनः सुगन्धित तेलके द्वारा श्रीअङ्गको खूब चिकना कर दिया गया। इसके बात श्रीविग्रहके श्रीअङ्गको चन्दन-चर्चित करके विधिपूर्वक पूजा की गयी। दही-दूध-क्षीर-नवनीत, सन्देश आदिके द्वारा श्रीगोपालजी-को बाल भोग लगाया गया। ताम्बूलादि सब अर्पित किया गया। भोग-आरती समाप्त होने पर पुरी गोसाईंने हाथ जोड़कर श्रीगोपालजीकी विधि पूर्वक स्तुतिकी—यथा,

बर्हापीडाभिरामं मृगमदतिलकं कुन्तलाकान्त गण्डं
कंजाक्षं कम्बुकण्ठं स्मितसुभगमुखं स्वाधरेन्यस्तवेणुम्।
श्यामं शान्तं त्रिभंङ्ग रविकरवसनं भूषितं वैजयन्त्या
वन्दे वृन्दावनस्थं युवतिशतवृतं व्रह्म गोपालवेशम्।।

इसके बाद अन्न-व्यञ्जन भोगका प्रबन्ध किया गया। दोपहरके भीतर ग्रामके व्रजवासियोंने सब प्रबन्ध कर दिया। छप्पन भोगकी-सी सारी सामग्री तैयार की गयी।

श्रीविग्रह बहुत दिनोंसे भूखसे कातर थे। पुरी गोसाईंके निवेदित अन्न-व्यञ्जन, पायस-मिष्ठान्न, दही-दूध, शिखरणी, सब उन्होंने अपने हाथसे भोजन किया। कृष्ण-भक्त चूड़ामणि कृपासिन्धु श्रीमाधवेन्द्र पुरी गोसाईंने अपने अभीष्ट देवकी इस भोजन-लीलाका अनुभव किया। उनके सामने श्रीकृष्णभगवान् कुछ भी छिपा न सके। श्रीगोपालजीके श्रीहस्तके स्पर्शसे उनके प्रसादी-अन्न-व्यञ्जनादि फिर ज्यों-की-त्यों हो गयी।

एक दिनके प्रयत्नसे श्रीगोपालजीकी कृपासे उस पर्वत पर इस प्रकारका महा-महोत्सव हो गया। गाँवकी आबाल-वृद्ध-वनिता आकर प्रसाद पाकर कृतार्थ हो उठीं। व्रजवासी ब्राह्मणोंने पहले प्रसाद पाया। पश्चात् व्रजवासी नारियाँ प्रसाद पायीं। उसके बाद अन्यान्य सब लोग श्रीगोपालजीका प्रसाद पाकर कृतार्थ हो गये।

उस दिन पुरी गोसाईंने श्रीविग्रहके शयनकी कैसी व्यवस्था की थी, उसे सुनिये—

शय्या कराइल नूतन खाट आनाइया।
नव वस्त्र आनि तार उपरे पातिया॥
तृण टाटि दिया चारि दिक आवरिल।
उपरेते एक टाटि दिया आच्छादिल॥

चै. च. म. ४.८०.८१

सन्ध्या कालमें श्रीगोपालजीको उठाकर विधि पूर्वक भोग आरती देकर पुनः इसी प्रकार शयन कराया। पुरी गोसाईंने व्रजवासी विप्रवृन्दको श्री-गोपालजीकी सेवामें नियुक्त किया। वे सब सेवा-परायण परम वैष्णव थे, पुरी गोसाईंने ठाकुरको शयन कराकर कुछ दुग्ध प्रसाद पाकर उस रात उसी पर्वतके ऊपर श्रीविग्रहके चरण तलमें शयन किया।

दूसरे दिन प्रभातकालमें बहुतसे लोग विभिन्न गाँवों-से श्रीगोपालजीका दर्शन करनेके लिए आये। क्योंकि यह शुभ संवाद विद्युद् गतिसे सर्वत्र फैल गया।

एक एक गाँवके लोगोंने एकत्रित होकर श्रीगोपालजीकी सेवाके लिए अन्न-कूट महोत्सव किया। इस प्रकार प्रतिदिन नित्य अन्नकूटका महोत्सव होने लगा। मथुराके बड़े बड़े धनी लोग गोवर्धन पर श्रीगोपालजीके प्रकट होनेका समाचार पाकर भक्ति-पूर्वक सोना-चाँदी, धन-रत्न, वस्त्र-आहार आदि लेकर श्रीविग्रहकी सेवामें अर्पण करने लगे। एक धनी-भक्त क्षत्रियने श्रीविग्रहका मन्दिर बनवा दिया। व्रजवासियोंने एक एक गाय अर्पितकी। श्रीगोपाल-जीकी सहस्रों गायें हो गयीं। श्रीविग्रहका सेवा-भण्डार सब प्रकारकी वस्तुओंसे भर गया, और सेवा कार्य अति सुव्यवस्थित रूपसे चलने लगा।

गौड़ मण्डलसे उसी समय दो वैरागी ब्राह्मण श्रीगोवर्धन पर आये। पुरी गोसाईंने अत्यन्त आदर सत्कार पूर्वक श्रीमन्दिरमें उनको बैठाकर दीक्षामन्त्र देकर शिष्य बनाया। उन दोनों शिष्योंके ऊपर श्रीमन्दिरकी सेवाका भार देकर वे निश्चिन्त हो गये। श्रीगोपालजीकी राज-सेवा अति सुन्दरतापूर्वक चलने लगी। इस प्रकार श्रीगोवर्द्धनमें दो वर्ष पुरी गोसाईंने श्रीविग्रहकी सेवामें परम आनन्द पूर्वक बिता डाले। इसके बाद रातमें एक दिन स्वप्नमें उनको गोपालजीका आदेश हुआ, "मेरा ताप शान्त नहीं हो रहा है। तुम जल्दी नीलाचल जाकर मलयज चन्दन लाओ। उसके बिना ताप शान्त नहीं होगा।"

इस प्रकार स्वप्न देखकर प्रेमावेशमें पुरी गोसाईं जाग उठे। प्रेम-विह्वल नेत्रसे वे अजस्र आँसू बहाने लगे। प्रातःकाल उठकर सेवा-पूजाका सुन्दर प्रबन्ध करके श्रीगोपालजीकी आज्ञा पालन करनेके उद्देश्यसे गौड़ मण्डलमें जानेके लिए तैयार हो गये। श्रीविग्रहके सामने खड़े होकर हाथ जोड़कर आज्ञा-

प्रसादकी इच्छा की। श्रीगोपालजीकी पुष्प माला जमीन पर गिर पड़ी। पुजारी विप्रने उसे उठाकर पुरी गोसाईंके हाथमें दिया। वे उसको मस्तक पर धारण करके सजल-नयन हो श्रीगोपालजीसे विदा लेकर गौड़ मण्डलके लिए चल पड़े।

इसी अवसर पर शान्तिपुरमें जाकर उन्होंने श्री अद्वैताचार्यको दीक्षामन्त्र दिया था। उसके बाद दूसरे दिन वे रेमुना गये।

श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभु श्रीमाधवेन्द्र पुरीकी अपूर्व भक्तिकी बात आविष्ट होकर कह रहे थे। श्रीरेमुनामें श्रीगोपीनाथजीके श्रीमन्दिरमें बैठकर रातको भक्त-चूडामणिके पुण्य चरितकी कहानी भक्तवृन्दके साथ आस्वादन कर रहे थे। श्रीमाधवेन्द्र पुरी गोसाईं प्रतिष्ठाके भयसे रेमुनासे श्रीक्षेत्र भाग गये थे, यह बात पहले कही जा चुकी है। प्रभु कहने लगे कि वहाँ भी उनको सब लोगोंने पहचान लिया। उनके मनमें बड़ा उद्वेग पैदा हुआ, परन्तु क्या करते। गोपालकी आज्ञा थी। पुरीसे चन्दन लाकर उनके श्रीअङ्गमें लेपन करने पर उनका सन्ताप दूर होगा। इससे पुरी गोसाईं श्रीक्षेत्रमें बँध गये।

वे यथा समय श्रीपुरुषोत्तम तीर्थमें पहुँच गये, तथा श्रीश्रीजगन्नाथजीके सेवक वृन्दके सामने अपना स्वप्न वृतान्त कह सुनाया। ताप निवारणके लिए श्रीगोपालजीने चन्दन-भिक्षा की है, यह सुनकर परम आनन्द पूर्वक उन लोगोंने प्रचुर परिमाणमें चन्दन और कर्पूर संग्रह करके पुरी गोसाईंको दिया। राजपात्रके पाससे भी पर्याप्त कर्पूर चन्दन उन्होंने माँग करके ला दिया। पुरी गोसाईंके साथ यह चन्दनकाष्ठ आदि लेकर गोवर्द्धन जानेके लिए एक ब्राह्मण और एक सेवक साथमें दे दिया। राजपात्र से, घाट पर दानीका दान न देना पड़े इसके लिए एक माफीनामा लिखा कर पुरी गोस्वामीके हाथमें दे दिया।

पुरी गोस्वामी श्रीश्रीजगन्नाथजीको प्रणाम करके नीलाचल धामसे ब्राह्मणके सङ्ग चन्दन लेकर श्रीरेमुनामें जा उपस्थित हुए। राशि-राशि चन्दन-काष्ठ उनके साथ जा रहा है। रास्ता बहुत दूरका है और भार अधिक है। किस प्रकार श्रीगोपालजीके पास यह चन्दन पहुँचेगा, किस प्रकार उनकी आज्ञा का पालन होगा। यह चिन्ता करते करते पुरी गोसाईं रेमुनामें श्रीगोपीनाथजीके श्रीमन्दिरमें जा पहुँचे। श्रीविग्रह दर्शन करके परमानन्दपूर्वक बहुत देर तक नृत्य करते रहे। श्रीगोपीनाथजीके सब सेवकोंने पुरी गोसाईंको पहचान कर बहुत सम्मानपूर्वक उनको क्षीर प्रसाद दिया।

वे प्रेमानन्दमें प्रसाद पाकर रातमें श्रीमन्दिरमें ही सोये। तन्द्रावेशमें रातके अन्तिम प्रहरमें स्वप्न देखा कि गोपाल आकर कह रहे हैं, "कर्पूर-चन्दन मुझे मिल गया, कर्पूरके साथ चन्दन घिसकर गोपीनाथके अङ्गमें नित्य लेपन करो। गोपीनाथका और मेरा एक ही अङ्ग है। इनको चन्दन लगानेसे मेरा ताप शीतल हो जायगा। इसमें संदेह नहीं करना, मेरी बात मानकर बिना विचार किये उनको चन्दन लेपन करो।"

इतना कहकर श्रीबालगोपाल अन्तर्द्धान हो गये। पुरी गोसाईं प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे जाग उठे। उनका सारा अङ्ग पुलकित हो उठा। प्रेमानन्दमें विह्वल होकर उन्होंने श्रीगोपीनाथजीके सेवकोंको बुलाकर सारा स्वप्न वृतान्त कह सुनाया।

उस समय ग्रीष्म ऋतु थी। श्रीगोपीनाथजीकी चन्दन सेवा होगी, यह सुनकर सेवक वृन्द आनन्दसे मत्त हो उठे। पुरी गोसाईंने इस प्रकार चन्दनसेवाकी व्यवस्था कर दी। दो आदमी नित्य चन्दन घिसेंगे और दो आदमी उसमें कर्पूर मिलाकर श्रीविग्रहके श्रीअङ्गमें लेपन करेंगे। उस दिनसे इस प्रकार प्रतिदिन श्रीगोपीनाथजीकी चन्दन-सेवा होने लगी। एक मन चन्दन काष्ठ पुरी गोसाईं श्रीनीलाचलसे साथ लाये थे। जव तक वह चन्दन-काष्ठ समाप्त न हुआ, तब तक पुरी गोसाईं श्रीरेमुनामें रहकर अपने अभीष्ट देवकी इस अपूर्व चन्दन सेवाका

दर्शन करते रहे। इस प्रकार समस्त ग्रीष्मकाल वहाँ ही बीत गया, तब उनकी चन्दन-सेवा पूर्ण हुई। इसके बाद पुरी गोसाईं पुनः श्रीनीलाचल धाममें लौट गये और वहाँ चातुर्मास्य किया।

श्रीगौर भगवान्ने अपने श्रीमुखसे कृष्णभक्त चूड़ामणि श्रीमाधवेन्द्र पुरी गोसाईंकी अमृतमय पुण्य चरित्र कहानी भक्तवृन्दको सुनायी और स्वयं उसका आस्वादन किया।

श्री मुखे माधवपुरीर अमृत चरित।
भक्तगणे सुनाइया प्रभु करे आस्वादित॥

चै. च. म. ४.१६९

बात समाप्त होने पर प्रभुने श्रीनित्यानन्दप्रभुकी ओर करुण नयनसे देखकर कहा, "नित्यानन्द! देखो, श्रीमाधवेन्द्र पुरी कितने भाग्यशाली हैं। जिनको दूध देनेके बहाने श्रीकृष्णने दर्शन दिया, तीन बार स्वप्नादेश दिया, जिनके प्रेमके वश प्रकट होकर सेवा स्वीकार की, जिनके लिए श्रीगोपीनाथने क्षीर चोरी की, जिससे उनका 'क्षीर-चोरा गोपीनाथ' नाम पड़ा, जिनने गोपालकी आज्ञासे इतना कष्ट पाकर इतनी दूर आकर पुरीसे चन्दन लाकर गोपीनाथ भगवान्के श्रीअङ्ग पर लेपन किया।"

ये सब बातें कहते कहते प्रभुके नयन द्वयसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा निकलने लगी। उन्होंने गद्गद कण्ठसे श्रीपाद पुरी गोसाईं रचित निम्नलिखित श्लोक पाठ किया—

अयि! दीन दयार्द्र! नाथ हे!
मथुरानाथ! कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदवलोक कातरं दयित!
भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

यह श्लोक पाठ करते करते प्रभु प्रेमावेगमें अवशाङ्ग होकर भूतलपर मूर्छित होकर गिर पड़े। श्रीनित्यानन्द प्रभु घबराकर उन्हें गोदमें लेकर बैठ गये। मूर्च्छा भङ्ग होने पर प्रभु 'अयि दीन दयार्द्र'! कहकर प्रेमाकुल भावसे क्रन्दन करने लगे। उनके नयनोंसे प्रेम नदी बह चली। प्रेमावेगमें उनका कण्ठ रुद्ध हो गया, उनके सारे अङ्गोंमें अष्ट सात्विक भावोंका उदय हुआ। वे प्रेमानन्दमें अधीर हो उठे। गोपीनाथके सेवक पुजारीगण प्रभुके इस अद्भुत् प्रेमभावको देखकर विस्मित हो गये।

अब इस अपूर्व श्लोक रत्नकी यत्किञ्चित व्याख्या सुनिये।

यह श्लोक श्रीराधिकाकी उक्ति है। उनकी कृपासे पुरी गोसाईंके हृदयमें इसकी स्फूर्ति हुई थी तथा उनकी वाक्-इन्द्रियके द्वारा यह व्यक्त हुआ था। प्रभुने राधा भावमें इस श्लोकका आस्वादन किया है।

पुरी गोसाईं इस श्लोकका पाठ करते करते सिद्ध हो गये थे। उन्होंने राधाभावमें विभावित होकर यह श्लोक याद करके नित्यधाममें प्रयाण किया। "हे दीन दयार्द्र नाथ! हे मथुरानाथ! मैं कब तुम्हारा दर्शन प्राप्त करूँगा? हे प्रिय! तुम्हारे दर्शनके लिए मेरा हृदय अत्यन्त कातर होकर घूम रहा है। मैं क्या करूँ? मुझे बतलाओ।" इतना कहते कहते कृष्णभक्त चूड़ामणि श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीने नित्य-लीलामें प्रवेश किया। प्रोषित भर्तृका श्रीराधिकाकी उक्तिका यह श्लोकरत्न पाठ करके प्रभु प्रेमोन्मत्त होकर अजस्त्र आँसू बहाने लगे।* भक्तवृन्दने भी उनके

*इस श्लोकका तात्पर्य—वैष्णवलोग चार सम्प्रदायमें विभक्त हैं। उनमें श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी गोसाई श्रीमध्वाचार्य सम्प्रदायके थे। उन्होने वैष्णव संन्यास ग्रहण किया था। मध्वाचार्यसे लेकर माधवेन्द्रपुरी गोसाईंके गुरु श्रीपाद लक्ष्मी-पति पर्यन्त इस सम्प्रदायमें श्रृङ्गार रसमयी भक्तिकी आलोचना और आस्वादन करनेका अधिकार न था। उनकी कृष्णभक्तिका स्वरूप श्रीमन्महाप्रभुने दक्षिण देशमें भ्रमणके समय तत्त्ववादी लोगोंके साथ वार्त्ता करके प्रत्यक्ष किया था। श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीने इस श्लोककी रचना करके श्रृंगार रसमयी भक्तिका बीज बोया। श्रीमन्महा-प्रभुने उसे पुष्ट करके वृक्षरूपमें परिणत किया। इस श्लोकका भाव श्रीकृष्णप्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है। जीवके लिए श्रीभगवानका विरहभाव स्वाभाविक भजन है। श्रीगौराङ्ग विरहमें श्रीविष्णुप्रिया देवीका विरहभाव ही गौरभक्तका अवलम्बनीय है। श्रीराधिकाका कृष्णविरह और श्रीविष्णु-प्रिया देवीका गौर-विरह एक ही वस्तु है।

साथ रो रोकर श्रीगोपीनाथजीके श्रीमन्दिरके प्राङ्गण-को डुबा दिया। भीड़ होने पर प्रभुको बाह्यज्ञान हुआ। तब उन्होंने अपनेको सँभाला। रात अधिक हो गयी—यह देखकर श्रीगोपीनाथजीके उस दिनके द्वादश क्षीर-भाण्ड प्रसाद लाकर पुजारीने प्रभुके सामने रख दिया। प्रभुने उसमें-से पाँच पात्र लेकर भक्तवृन्दमें बाँट कर स्वयं कुछ प्रसाद पाया, और सात पात्र वापस कर दिया। प्रसाद पाकर प्रभुने वह रात वहाँ ही नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें बितायी। प्रभातमें श्रीगोपीनाथजीकी मङ्गल आरती दर्शन करके वे वहाँसे चल पड़े। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

श्रद्धायुक्त हैया इहा शुने जेइ जन।
श्रीकृष्ण चरणे सेइ पाय प्रेमधन॥

चै. च. म. ४.२०९

याजपुरमें महाप्रभु

रेमुनासे प्रभु कटकके समीप याज़पुर गाँवमें आये। बीचमें वैतरणी नदीके तट उन्होंने कुछ देर विश्राम किया। वैतरणी नदीमें स्नान करके प्रभुने उसको पतित-पावनी बनाया था। ठाकुर जयानन्दने अपने श्रीचैतन्य-मङ्गल श्रीग्रन्थमें लिखा है—

चैतन्य गोसाञिर पूर्व पुरुष
आछिला याजपुरे।
श्रीहट्ट देशेते पलाइया गेला
राजा भ्रमरेर डरे॥
सेइ वंशे परम वैष्णव
कमल लोचन ताँर नाम।
पूर्व जन्मेर तपे चैतन्य गोसाञि
ताँर घरे करिल विश्राम॥

प्रभुके पूर्व-पुरुषगण कटकके समीप याजपुरमें वास करते थे, इसका प्रकृष्ट प्रमाण किसी अन्य वैष्णव ग्रन्थमें नहीं मिलता। परन्तु ठाकुर जयानन्दकी बात एक दम गलत नहीं हो सकती। यह सब बातें श्रीनवद्वीप लीला ग्रन्थमें प्रभुके वंश परिचयमें विस्तार पूर्वक लिखी गयी हैं। उनकी पुनरुक्ति यहाँ आवश्यक नहीं है।

याजपुरमें प्रभु एक रात रहे। रास्तेमें आदि-बराहका दर्शन करके प्रभु याजपुर गये थे। याजपुर ग्राम एक बड़ा तीर्थ क्षेत्र है।

ठाकुर वृन्दावनदासने लिखा है—

याजपुर जतेक आछये देव स्थान।
लक्ष वत्सरे ओ नारि लैते सब नाम॥
देवालय नाहिं हेन नाहि तथि स्थान।
केवल देवेर वास याजपुर ग्राम॥

चै. भा. अं. २.२८२.२८३

ठाकुर लोचनदासने याजपुर तीर्थके सम्बन्धमें लिखा है—

महा पापी नर यदि मरे से नगरे।
सर्व पापे मुक्ति हैया शिव रूप धरे॥
शत शत आछे ताहे महेशेर लिङ्ग।
तारे नमस्कारि जाय गौर गोविन्द॥

इस पवित्र क्षेत्र याजपुर गाँवमें केवल एक वर्ण ब्राह्मणका वास है। इसको इसी कारण ब्राह्मण नगर कहते थे।* इस प्रकारके पुण्य क्षेत्रमें नदियाके अवतार श्रीश्रीमन्महाप्रभुके पूर्व-पुरुषगण वास करते हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। प्रभु इस स्थानका दर्शन करके बहुत सुखी हुए। न जाने उनके मनमें किस भावका उदय हुआ। वे भक्तवृन्दको छोड़कर अकेले गाँवमें गुप्त भावसे भ्रमण करने लगे। प्रभुको न देखकर भक्तवृन्द विशेष चिन्तित और भीत होकर प्रत्येक देवालयमें उनको खोजने

---

*कथोदिन महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर।
आइलेन याजपुर ब्राह्मण नगर॥ चै.भा.अं.२.२७७
याजपुर कटक जिलामें एक सब डिविजन है। इसको नाभिगया कहते हैं। इस स्थानके ब्राह्मण-नगर गाँवमें वराह भगवान्‌का मन्दिर है।

लगे। तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने सबको सान्त्वना देकर कहा, "चित्तको शान्त करो, प्रभु किस निमित्त गये हैं, इसका मैंने अनुमान कर लिया है। यहाँ पर जितने देवालय हैं उनको प्रभु अकेलेमें देखेंगे। हम लोग भी यहीं भिक्षा करलें। कल प्रभु जरूर यहीं आजायँगे।

इस बातसे भक्तवृन्द सुस्थिर होकर उस दिन वहाँ ठहर गये। दूसरे दिन आनन्द-स्वरूप प्रभु वहाँ आकर भक्तवृन्दके साथ मिले। तब उनके आनन्दकी सीमा न रही। सब मनके आनन्दसे मत्त होकर हरिध्वनि करने लगे। उसी दिन प्रभुने भक्तोंके साथ याजपुरसे कटककी यात्रा की।

कटक नगरमें साक्षी-गोपाल

कटक नगर पुण्यतोया महानदीके तीर पर अवस्थित है। प्रभुने आकर महानदीमें स्नान किया। इस कटक नगरमें साक्षी-गोपाल नामक एक प्रसिद्ध जाग्रत श्रीविग्रह है। प्रभु साक्षी-गोपालका दर्शन करने गये। श्रीमन्दिरमें जाकर बहुत देर तक प्रेमानन्दमें नृत्य कीर्तन करते रहे। साक्षी-गोपालकी अपरूप लावण्यमयी और सर्व सौन्दर्यपूर्ण श्रीमूर्ति देखकर वे प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठे। प्रेमाविष्ट होकर वे गोपालकी स्तुति करने लगे। उस दिन रातमें भक्तवृन्दके साथ प्रभुने साक्षी-गोपालके मन्दिरमें नृत्य कीर्तन किया।

श्रीनित्यानन्द प्रभु जब तीर्थ भ्रमणमें आये थे तो उन्होंने कटकमें आकर लोगोंके मुँहसे साक्षी-गोपाल-की लीला-कथा सुनी थी। इस समय वह सारी लीला-कथा वे प्रभुको सुनाने लगे। इस मधुर लीला कथाके वक्ता श्रीनित्यानन्द प्रभु, और श्रोता स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग सुन्दर थे।

श्रीनित्यानन्द प्रभु कहने लगे, "पूर्वकालमें विद्या नगरमें दो ब्राह्मण बास करते थे। वे एक साथ तीर्थ भ्रमण करने निकले। काशी, गया, प्रयाग आदि तीर्थोंका दर्शन करके उन्होंने श्रीवृन्दावनमें जाकर श्रीगोपालजीकी श्रीमूर्तिका दर्शन करके श्रीमन्दिरमें ही विश्राम किया। इस श्रीविग्रहको भी व्रजवासी-गण साक्षी गोपाल कहा करते हैं। श्रीगोविन्दजीके पुराने श्रीमन्दिरके उत्तर रास्तेके किनारे उपर्युक्त साक्षी गोपालका श्रीमन्दिर आज भी विद्यमान है। दोनों ब्राह्मणोंमें एक वृद्ध थे और दूसरे युवा। युवा विप्र वृद्धकी सेवा-सुश्रूषा करते थे, सदा उनके सङ्ग रहते थे। उनकी सेवासे परम सन्तुष्ट होकर वृद्ध ब्राह्मणने एक दिन उनसे कहा, "बाबू! मैं तुम्हारी सेवासे सन्तुष्ट हूँ और तुम्हारे गुणोंसे वशीभूत हो गया हूँ। तुमने इस तीर्थभ्रमणमें जैसी मेरी सेवाकी है, वैसी सेवा अपना पुत्र भी नहीं करता। तुम्हारा सम्मान न करनेसे मैं कृतघ्नताके पापसे लिप्त हो जाऊँगा। अतएव तुमको अपनी कन्या दान करके मैं इस ऋणसे मुक्त होऊँगा।" छोटे विप्रने सम्मान पूर्वक सिर नीचा करके वृद्ध विप्रसे कहा, "महाशय। ऐसी असम्भव बात आप न कहें। आप बड़े कुलीन, विद्वान् और धनी हैं, और मैं धनहीन, विद्याहीन, और अकुलीन हूँ। मैं आपकी कन्याके योग्य पात्र नहीं हूँ। कृष्ण प्रीत्यर्थ मैं आपकी सेवा करता हूँ। आशीर्वाद दीजिये कि मुझे भक्तिकी प्राप्ति हो।" वृद्ध विप्रने उत्तर दिया, "बाबू! तुम कुछ भी सन्देह न करो। मैंने निश्चय पूर्वक कहा है कि तुमको अपनी कन्या दान करूँगा।" छोटे विप्रने पुनः विनीत वचनोंसे कहा, "महाशय! आपके स्त्री-पुत्र हैं, जाति-बिरादरी है, उनकी सम्मतिके बिना आप कैसे मुझको कन्यादान करेंगे? रुक्मिणीजीके पिता राजा भीष्मकने अपने कन्यारत्नको श्रीकृष्णके हाथमें समर्पण करनेकी इच्छाकी थी, परन्तु उनके पुत्रकी सम्मति न होनेके कारण वे अपनी इच्छासे वैसा नहीं कर सके।" वृद्ध विप्रने कहा, "कन्या मेरा निज-धन है। मैं अपना धन तुमको दान करूँगा, इसमें कौन मना कर सकता है? मैं तुमको ही कन्या दान करूँगा, यह निश्चय जानो।" तब छोटे

विप्रने कहा, महाशय ! तब आप श्रीगोपालजीके सामने वचनवद्ध होते हैं।" वृद्ध विप्रने तत्काल श्रीविग्रहके सामने खड़े होकर कहा—

"तुमि जान निज कन्या इहारे आमि दिल।

चै. च. म. ५.३१

तब छोटे विप्रने हँसकर श्रीविग्रहकी ओर देख-कर कहा,

—"ठाकुर तुमि मोर साक्षी।
तोमा साक्षी बोलाइब यदान्यथा देखी ।।

चै. च. म. ५.३२

दोनों भक्त कृष्णभक्त चूड़ामणि थे। उनकी ऐसी बातचीत सुनकर बाल-गोपालजीके श्रीमुखमें हँसी दिखायी दी। भाग्यवान् दोनों विप्रोंने उसे देखकर गोपालजीको बारम्बार प्रणाम करके अपने देशके लिए प्रस्थान किया। देश जाकर दोनों आदमी अपने-अपने घर गये। कुछ दिनके बाद बड़े विप्र एक दिन मन-ही-मन सोचने लगे, "तीर्थ स्थानमें छोटे विप्रको कन्या देनेका मैंने वाग्दान किया है। कैसे उसका पालन करूँ। मैं जानता हूँ कि स्त्री-पुत्र, जाति-कुटुम्ब सब इसका विरोध करेंगे, परन्तु मैं करूँ क्या ?" यह सोचकर अपने सारे आत्मीय स्वजनोंको एकत्रित करके एक दिन अपने मनकी बात उन्होंने प्रकट कर दी, और उसके साथ उन्होंने यह भी कह दिया कि तीर्थ-स्थानमें छोटे विप्रको कन्यादान करने का वे वचन दे चुके हैं। यह सुनकर सब उनको धिक्कारने लगे। जाति-कुटुम्बके लोग बोले, "हम लोग तुमको त्याग देंगे।" स्त्री-पुत्रने कहा कि, "हम विष खाकर मर जायेंगे।" सभी वृद्ध विप्रकी निन्दा और उपहास करने लगे। तब उन्होंने सबके सामने श्रीवृन्दावनकी सारी बात खोलकर रख दी। उन्होंने कहा कि छोटे विप्रके साक्षी गोपालजी हैं। वह साक्षी ले आवेगा और हमारा सर्वनाश हो जायगा। सत्य पालन करना सर्वश्रेष्ठ धर्म है। इस धर्मके नष्ट हो जाने पर मुझको नरकमें जाना पड़ेगा"। यह बात सुनकर उसका पुत्र बोला, "प्रतिमा साक्षी देने आयेगी ? और वह भी दूर देशसे ? आप कह दीजियेगा कि, वह बात मुझे बिल्कुल ही याद नहीं है। मैं छोटे विप्रको देख लूँगा। इस विषयमें आप और कोई चिन्ता न करें।" पुत्रकी बातका स्मरण करके बड़े विप्रने अतिशय विषण्ण और चिन्तित होकर श्रीगोपालजीके चरणकमलका स्मरण किया। ब्राह्मण बड़ी विपदमें पड़े। इस विपदमें गोपालजीके सिवा दूसरा कौन रक्षा करेगा ? उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीगोपालजीके चरणोंमें निवेदन किया,

मोर धर्म रक्षा पाय, ना मरे निज जन।
दुइ रक्षा कर गोपाल लइनु शरण ।।

चै. च. म. ५.४६

इस प्रकार प्रतिदिन वृद्ध ब्राह्मण गोपालके सामने अपनी मनोवेदना निवेदन करते थे और मनके दुःखसे रोते थे। इसी बीचमें एक दिन उनके घर छोटे विप्र आये। उनको देखकर बड़े विप्रका मन एकबारगी सूख गया। वे मुँह उठाकर उनकी ओर देख न सके। छोटे विप्रने कहा—"तुमने मुझे कन्या देना स्वीकार किया था। अब तुम्हारा क्या विचार है ?" बड़े विप्रका पुत्र यह बात सुनकर छोटे विप्रको कुवचन कहकर लाठी लेकर मारनेके लिए तैयार हो गया। भयसे उस दिन उन्होंने वहाँसे भागकर अपनी जान बचायी। परन्तु कन्यादान प्राप्तिकी आशा उन्होंने न छोड़ी। फिर एक दिन गाँवके अच्छे लोगोंको एकत्रित करके उनको लेकर छोटा विप्र पुनः बड़े विप्रके घर पर आया। सबके सामने उन्होंने तीर्थ-स्थानमें वृद्ध ब्राह्मणके द्वारा अपनेको कन्यादान करनेके लिए वचन देनेकी बात कह सुनायी, और कहा कि अब यह अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा नहीं कर रहे हैं। तब सबने मिलकर बड़े विप्रसे कहा—"यदि तुमने वचन दिया है तो अब कन्या क्यों नहीं देते ?" बड़ा विप्र पुत्रके भयसे भीत होकर बोला—"कब क्या कहा है, मुझे तो कुछ स्मरण नहीं।" इस छलकी बात पकड़कर बड़े विप्रका दुष्ट पुत्र छोटे विप्रका

बहुत मिथ्या अपवाद करने लगा। उसने कहा कि मेरे पिताके पास बहुत-सा धन था। उस धनके लेनेके लिए इसने उनको धतूरा खिलाकर पागल कर दिया और सब धन लेकर कह दिया कि धन चोर ले गये। और अब यह कन्या देनेके वचनकी बात कह रहा है।

छोटे विप्रने सारी बातें समझा दी कि वृद्ध ब्राह्मण सचमुच ही तीर्थ स्थानमें सत्यके बन्धनसे आबद्ध हैं तथा स्वयं श्रीगोपालजी इसके साक्षी हैं। बड़े विप्र भक्त चूड़ामणि थे। जैसे श्रीभगवान् भक्तकी परीक्षा करके उसे निजजन बना लेते हैं, भक्त भी उसी प्रकार श्रीभगवान्‌की परीक्षा करके उन्हें अपना स्वामी बना लेता है। छोटे-बड़े दोनों ही विप्र श्रीभगवान्‌के प्रिय भक्त थे। भक्त वाञ्छा-कल्पतरु श्रीभगवान् दोनोंकी मनोकामना पूर्ण करेंगे। तब बड़े विप्रने सबके सामने कहा, "श्रीगोपालजी यदि यहाँ आकर इस बात की साक्षी दें तो निश्चय मैं इनको कन्या दान कर दूँगा।" उनका पुत्र भी इस बात पर सहमत हो गया। तब छोटे विप्रने कहा, "इन सब बातोंकी लिखा-पढ़ी हो जाय। जिससे फिर इसमें घोटाला न हो। मैं श्रीवृन्दावनसे श्रीगोपालजीको यहाँ साक्षी देनेके लिए लाऊँगा।" मध्यस्थ होकर गाँवके बड़े-बड़े लोगोंने बड़े विप्रसे यह बात लिखवा ली। उसी दिन छोटे विप्रने श्रीवृन्दावनकी यात्रा की। वहाँ जाकर श्री-गोपालजीका दर्शन कर परम आनन्द प्राप्त किया। फिर हाथ जोड़कर उनके चरणोंकी वन्दना करके स्तुति करते हुए निवेदन किया—"हे ब्रह्मण्य देव! आप बड़े दयामय हैं। दया करके दोनों विप्रोंके धर्म-की रक्षा करें। मुझे कन्या पानेका कोई लोभ नहीं है। ब्राह्मणकी प्रतिज्ञा भंग होनेका दुःख है। हे दयामय! तुम साक्षी हो। जानकर साक्षी न देनेसे पाप होता है।"

छोटे विप्रकी अन्तिम बात बड़ी मधुर है। भक्त भगवान्‌को पापका भय दिखला रहा है। किसी बात-को जानकर उसकी साक्षी न देनेसे पाप लगता है। श्रीभगवान् सब कर्मोंके अतीत हैं। उनको फिर पाप कैसा? छोटे विप्र पण्डित हैं। इस बातको जानते हैं। तब फिर जानते हुए भी श्रीगोपालजीको ऐसी बात उन्होंने क्यों कही? भक्त और भगवान्‌का सम्बन्ध अतिशय गूढ़ होता है। माधुर्य भावमें भक्त भगवान्-को सारी बातें कह सकता है। उनको पकड़कर बाँध सकता है, और वे इसे पसन्द करते हैं। वेद स्तुतिकी अपेक्षा भक्तकी भर्त्सनासे श्रीभगवान्‌के मनमें अधिक आनन्द होता है। उन्होंने श्रीमुखसे कहा है—

> **"प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन।**
> **वेदस्तुति हैते ताहा हरे मोर मन॥**
> चै. च. आ. ४.२३

छोटे विप्रने उनसे कहा, "प्रभु! तुम सब कुछ जानते हो। जान बूझकर यदि साक्षी नहीं देते हो तो तुमको इससे पाप लगेगा।" इससे श्रीभगवान्‌ने परम सन्तुष्ट होकर भक्तके सामने अपनी पराजय स्वीकार करके अपनेको प्रकट किया। वे श्रीविग्रहके भीतर बैठकर छोटे विप्रसे बातें करने लगे। श्रीगोपालजी बोले—"विप्र! तुम अपने घरजाओ, सबको एकत्र करके मेरा स्मरण करना, मेरा आविर्भाव वहाँ होगा और मैं साक्षी दूँगा। प्रतिमा स्वरुपसे वहाँ जाना संभव नहीं है।" छोटे विप्रने हाथ जोड़कर कहा—"यदि तुम चतुर्भुज मूर्ति होकर भी साक्षी दो, तो तुम्हारी बात पर किसीको विश्वास नहीं होगा। यही मूर्ति जाकर श्रीवदनसे साक्षी दे, तभी सब लोग मानेंगे।" छोटे विप्रकी बात बिल्कुल सत्य थी। बड़े विप्रने प्रतिज्ञा की थी अपने इष्टदेव इस बालगोपालकी श्री-मूर्तिके सामने खड़े होकर। यदि इस श्रीमूर्तिमें श्री-भगवान् वहाँ जाकर साक्षी नहीं देते हैं तो बड़े विप्रको विश्वास न होगा और बड़े विप्रके विश्वास हुए बिना ग्रामका दूसरा कोई आदमी विश्वास न करेगा। अतएव छोटे विप्रने उपर्युक्त बात कही।

श्रीभगवान्‌के सामने भक्तका कितना रोब, कितना जोर होता है। यह छोटे विप्रकी इस बातसे स्पष्ट समझा जा सकता है। भगवान् चतुर चूड़ामणि हैं, भक्त उसी चूणामणिका चतुर भृत्य है। चतुर भृत्यके

सामने जैसे गृह स्वामीकी चतुराई नहीं चलती, भक्त-के सामने श्रीभगवान्‌की चातुरी भी अपना स्वधर्म भूल जाती है । श्रीभगवान्‌को भक्तके पूर्ण वशीभूत होकर कार्य करना पड़ता है । वे भक्तके पूर्ण अधीन हैं । यह उनकी श्रीमुखसे निःसृत वेद वाणी है ।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ।।

श्री. म. भा. ९.४.६३

श्लोकार्थ—मैं भक्तके अधीन हूँ, अतएव पराधीन हूँ । मुझको स्वतन्त्रता नहीं है । मैं अपने भक्तोंको बहुत प्रिय हूँ, वे भी मुझे बहुत प्रिय हैं । हमारे सारे हृदयको उन्होंने ग्रस्त कर लिया है, अतएव अपने हृदयके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है ।

श्रीभगवान् भक्तके अधीन होने पर भी भक्तके साथ चतुराई करना नहीं छोड़ते । वे चतुर चूड़ामणि और सुचतुर परीक्षक हैं । पद-पद पर भक्तकी विधि पूर्वक परीक्षा लेते हैं । छोटे विप्रकी बात सुनकर श्रीगोपालजीने कहा, "हे विप्र ! तुम पागल हो गये हो । क्या प्रतिमा कभी चल सकती है ?" छोटे विप्रने उत्तर दिया, "देव ! तुम प्रतिमा नहीं हो । तुम साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हो । प्रतिमा होने पर तुम मेरे साथ बातें नहीं करते । भक्तके लिए तुम सब कर सकते हो, अकार्य भी कर सकते हो । तुमको अपनी इस मूर्तिमें ही साक्षी देने जाना पड़ेगा ।"

भक्तके भगवान् भक्तकी बातको टाल न सके । वे पूर्णतः भक्तके आधीन हैं । तब उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—"ब्राह्मण ! मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा, तुम उलटकर मुझे मत देखना । यदि तुमने देखा तो मैं वहीं रह जाऊँगा । तुम चलते हुए मेरी नूपुरकी ध्वनि सुन सकोगे, उसी ध्वनिसे मेरे चलनेकी प्रतीति करना । मुझे एक सेर अन्न प्रतिदिन देना । उसीको खाकर मैं तुम्हारे साथ चलता रहूँगा ।"

भक्तकी मनस्तुष्टिके लिए श्रीगोपालजी श्रीवृन्दावनसे उनके साथ उनके देशकी ओर चले । छोटा विप्र गोपालकी मधुर नूपुर ध्वनि सुनते-सुनते प्रेमानन्दमें सारा रास्ता पैदल चलकर यथा समय अपने देशमें आकर उपस्थित हुआ । अपने गाँवके पास आकर उसने मन ही मन सोचा, "अब मैं अपने घर जाऊँगा, सब लोगोंको कहूँगा कि गोपाल साक्षी देने आये हैं, साक्षात् देखे बिना उनको विश्वास न होगा, अतएव गोपाल यहीं स्थिर रहें ।" इतना सोचकर उसने जैसे ही पीछे फिरकर देखा, वैसे ही अपने अभीष्ट देवको देख लिया । श्रीगोपालजी मुस्कराकर बोले, "विप्र ! तुम घर जाओ । मैं यहाँ ही रहूँगा । छोटे विप्रने गाँवमें जाकर सबको श्रीवृन्दावनसे गोपालके शुभागमनका वृत्तान्त कह सुनाया । आश्चर्य-चकित होकर सब लोग तत्काल गोपालका दर्शन करने वहाँ गये । साक्षात् श्रीविग्रह मूर्ति श्रीवृन्दावनसे इतनी दूर चलकर आये हैं । यह सुनकर सब लोग चकित होगये और जाकर उनके चरणोंमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे । श्रीगोपालजीका अपूर्व सौन्दर्य देखकर सब मोहित हो गये । वृद्ध विप्र आकर श्रीविग्रहके सामने भूतलमें लोटकर नमस्कार करते हुए प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े । गाँवके सब लोग जब वहाँ इकट्ठे हुए तो श्रीगोपालजीने अपने मुँह से बात बोलकर साक्षी दी । सब लोगोंने अपनी आँखों यह अपूर्व दृश्य देखा । उनके समान भाग्यवान् और कौन हो सकता है ? वृद्ध विप्र परम आनन्दपूर्वक छोटे विप्रको कन्या दान करके कृतार्थ हो गये । श्रीगोपालजीने दोनों विप्रोंको बुलाकर सबके सामने कहा—"तुम दोनों जन्म-जन्मके मेरे किंकर हो । तुम दोनोंकी सत्यनिष्ठासे मैं प्रसन्न हूँ । जो चाहो मुझसे वर माँगलो ।"

तब हाथ जोड़कर दोनों विप्रोंने अपने अभीष्ट देवके सामने वर याचनाकी, "प्रभो ! कृपा करके जब इतनी दूर आगये हैं तो यहाँ ही अधिष्ठान करें ।" श्रीभगवान्‌ने भक्तकी मनोवाञ्छा पूरी करदी । दोनों विप्रोंकी सेवा स्वीकार करके साक्षीगोपालजी उसी विद्या-

नगर ग्राममें रह गये।* अतिशय भक्तिपूर्वक दोनों विप्र श्रीविग्रहकी सेवा करने लगे। यह संवाद देशमें चारों ओर फैल गया। उस देशके राजाके कानोंमें भी यह बात पहुँची। उन्होंने स्वयं विद्यानगरमें आकर श्रीगोपालजीका दर्शन करके परम आनन्दित होकर श्रीमन्दिर आदिका निर्माण कराया, और श्रीविग्रहकी सेवाका सुन्दर प्रबन्धकर दिया। इस प्रकार विद्यानगरमें साक्षीगोपालकी सेवा प्रतिष्ठित हुई। बहुत दिनों तक श्रीविग्रहकी सेवा चलती रही। कुछ समयके बाद उत्कल प्रदेशके राजा श्रीपुरुषोत्तमदेवने युद्ध करके उस स्थानको अपने अधीन कर लिया। उस देशके राजाके सिंहासनको उन्होंने हस्तगत किया। विद्यानगर उनके अधिकारमें आ गया। श्रीपुरुषोत्तमदेव परम भक्त थे। उन्होंने विद्यानगरके श्रीसाक्षीगोपालका दर्शन करके परम प्रसन्न होकर उनके चरणोंमें निवेदन किया, "ठाकुरजी ! आपको कटकमें मेरे राज्यमें जाना पड़ेगा।" राजाकी भक्तिके वशीभूत होकर गोपालजीने स्वप्नमें उनको आज्ञा दी, "हमको कटकमें ले चलो।" राजा पुरुषोत्तमदेवने बड़े समारोहके साथ श्रीसाक्षीगोपालको विद्यानगरसे कटकमें लाकर प्रतिष्ठित किया। रानीने एक दिन आकर श्रीगोपालजीका दर्शन करके नाना प्रकारके बहुमूल्य अलङ्कारोंसे श्रीविग्रहके श्रीअंगोंको सुशोभित कर दिया। रानीकी नासिकामें एक बहुमूल्य मुक्ता थी। उनकी बड़ी इच्छा हुई कि वह मुक्ता श्रीगोपालजीकी नासिकामें पहना दें। परन्तु दुर्भाग्यकी बात यह थी कि श्रीविग्रहकी नासिकामें छेद न था। रानी दुःखित अन्तःकरणसे श्रीविग्रहको प्रणाम करके घर लौट गयी। उसी दिन रातमें उन्होंने स्वप्न देखा, मानो श्रीगोपालजी उनको कह रहे हैं—"बाल्यकालमें माताने मेरी नासिकामें छिद्र कराकर यत्नपूर्वक मुक्ता पहरायी थी। वह छिद्र अभी भी विद्यमान है, जो मुक्ता तुम पहनाना चाहती हो उसको पहनादो।"

रानीने यह सुस्वप्न देखकर परम आनन्दपूर्वक राजासे स्वप्न वृत्तान्त कह सुनाया। दूसरे दिन प्रभातकालमें राजा और रानी दोनों श्रीगोपालजीके श्रीमन्दिरमें मुक्ता लेकर गये। श्रीविग्रहकी नासिकामें उनको छिद्र दिखलायी दिया। रानीके आनन्दकी सीमा न रही। राजा पुरुषोत्तमदेव जैसे भक्तिमान् महापुरुष थे, रानी भी वैसी ही भक्तिमती और भाग्यवती रमणी थी। गोपालजीकी नासिकामें छिद्र देखकर दोनों ही आनन्द-विह्वल होकर प्रेमाश्रु विसर्जन करने लगे। श्रीविग्रहकी नासिकामें मुक्ता पहनाकर उस दिन उन लोगोंने श्रीमन्दिरमें महोत्सव किया। उसी समयसे श्रीगोपालजीका कटक नगरमें अधिष्ठान हुआ। उनका साक्षीगोपाल नाम फिर न गया।

उसी साक्षीगोपालके श्रीमन्दिरमें बैठकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने भक्तवृन्दसे आवेष्टित श्रीगौर भगवान्‌के सामने यह लीला कहानी वर्णन की। प्रभुने इसे सुनकर परम सन्तोष प्राप्त किया। प्रभु श्रीविग्रहके सामने बैठे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु और भक्तवृन्दने देखा कि दोनों एक मूर्त्ति हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु भक्तवृन्दके मुखकी ओर देखकर इशारा कर रहे हैं, और मृदु-मन्द मुस्करा रहे हैं। प्रभुकी दृष्टि श्रीसाक्षीगोपालके चन्द्रवदनकी ओर है। वे उनकी मधुर लीला-रस-सुधा पान कर रहे हैं और आँखें भर कर अपरूप रूपका दर्शन कर रहे हैं। भावनिधि श्रीगौराङ्ग प्रभु भावमें मग्न होकर श्रीगोपालजीकी स्तुति करने लगे—

शोणस्निग्धांगुलि दलकुलं माघदाभीररामा
वक्षोजानां घुसृणरचना भङ्गरिङ्गत्यरागः।
चिन्माध्वीकं नखमणिमहः पुञ्जकिञ्जलकमालं
जंघातालं चरणकमलं पातु नः पूतनारेः॥

चै. चं. ना. ६.१३

*उत्कल देशके राजाकी प्रादेशिक राजधानी वहाँ विद्यानगर थी। गोदावरीके तीर तैलङ्ग देशमें यह विद्यानगर अवस्थित है। राजा प्रतापरुद्रके राज्यकालमें राम रामानन्द इस विद्यानगरके शासनकर्त्ता थे।

श्लोकार्थ—लोहितवर्ण सुस्निग्ध अंगुलि रूपी दल श्रेणीसे सुशोभित तथा प्रमत्त गोपरमणीगणके कुचस्थित कुंकुमरुप परागपुञ्जसे सुरञ्जित ज्ञान-रुप मधु, तथा नख-मणिकी कान्ति रुपी किञ्जल्क श्रेणी, तथा जंघारुप मृणालमें परिशोभित उस पूतनाके शत्रुके चरणकमल तुम्हारी रक्षा करें।

इस प्रकार वह रात प्रभुने कटकमें श्रीसाक्षी-गोपालजीके मन्दिरमें यापन करके प्रातः उठकर भुवनेश्वरके लिए प्रस्थान किया।

कविराज गोस्वामीने लिखा है—

ब्रह्मण्यदेव गोपालेर महिमा एइ धन्य।
नित्यानन्द वक्ता जार श्रोता श्रीचैतन्य॥
श्रद्धायुक्त हैया इहा शुने जेइ जन।
अचिरे पाइबे सेइ गोपाल चरण॥

चै. च. म. ५.१५८, १५९

भुवनेश्वर के दर्शन

यथासमय प्रभु भक्तवृन्दके साथ भुवनेश्वरमें आकर उपस्थित हुए। श्रीभुवनेश्वरमें शूलपाणि शङ्करजी प्रकट रूपमें विद्यमान हैं। भुवनेश्वर गुप्त-काशी है। यहाँ विन्दु-सरोवर तीर्थ है। स्वयं महादेवने बिन्दु-बिन्दु करके सब तीर्थोंका जल लाकर इस बिन्दु-सरोवरकी सृष्टि की है। इसी कारण इसका नाम विन्दु-सरोवर है। प्रभुने इस बिन्दु-सरोवरमें स्नान किया।

तत्पश्चात् प्रभुने अपने पार्षदोंके साथ श्रीभुवनेश्वर शिवलिङ्गका दर्शन किया। शिवलिङ्गके चतुर्दिक पंक्तिशः घृत दीप जल रहे थे, निरन्तर शिवभक्त उनका पवित्र जलसे अभिषेक कर रहे थे। 'हर-हर बं-बं' की ध्वनिसे गगन-मण्डल प्रकम्पित हो रहा था। श्रीगौर भगवान्ने अपने प्रिय भक्त शङ्करजीके वैभवको देखकर परम आनन्द प्राप्त किया। वे प्रेमानन्दमें श्रीमन्दिरके सामने मधुर नृत्य-कीर्तन करने लगे। उनकी अपूर्व नृत्य-भङ्गिमा देखकर श्रीभुवनेश्वरके पण्डागण आश्चर्य चकित हो उठे। वहाँ बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। उस रात प्रभुने भक्तवृन्दके साथ भुवनेश्वरके श्रीमंदिरमें वास किया।

शूलपाणि शङ्करजी किस प्रकार इस स्थानमें प्रकट होकर स्थित हुए, यह कथा स्कन्द पुराणमें वर्णित है। वह पौराणिक कथा यहाँ लिखी जाती है। शिव-पार्वतीका नित्यधाम कैलास पर्वत और काशीधाम है। महादेव जिस समय श्रीकैलाशमें विराजते हैं, उस समय काशीधाममें भी वे प्रकट रहते हैं। काशीके एक राजाने ऐकान्तिक भक्ति-पूर्वक शिवकी आराधना करके कैलासपतिको परम तुष्ट किया। राजाकी यह शिवाराधना श्रीकृष्णको जीतनेके लिए थी। राजाकी उग्र तपस्यासे आशुतोष सन्तुष्ट होकर उनके सामने प्रकट हुए। राजाको दर्शन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए कहा, "तुम वर माँगो।" राजाने हाथ-जोड़कर अपने अभीष्ट देवके चरणोंमें निवेदन किया--"हे प्रभु! आपके चरणोंमें यही वरदान माँगता हूँ कि रणसे श्रीकृष्णको जीत लूँ।"

परम कारुणिक आशुतोष महादेवका चरित्र अतिशय गम्भीर है। वे किस प्रकार, क्या समझकर किसके ऊपर क्या अनुग्रह करते हैं, यह समझना जीवके लिए कठिन है। उन्होंने राजासे कहा, "तुम युद्ध क्षेत्रमें चलो। में अपने गणके साथ तुम्हारे सङ्ग रहूँगा। किसकी मजा़ल जो तुमको युद्धमें पराजय करे? पाशु अस्त्र लेकर में तुम्हारे साथ रहूँगा। तुझे क्या भय है?" मूर्ख राजा शिवके बलसे बली होकर श्रीकृष्ण भगवान्के विरूद्ध युद्धमें अग्रसर हुआ। महादेव भक्तके साथ-साथ चले। श्रीकृष्ण-भगवान् गोलोक धाममें बैठकर सब देखते थे। उन्होंने अपने विरुद्ध आचरण करनेवाले राजा और उनके मन्त्रदाताओंके ऊपर सुदर्शन चक्र फेंका। महाप्रताप-शाली सर्वसंहारकारी सुदर्शन चक्रने पहले काशी-राजका सिर काट डाला। पश्चात् सारी वाराणसीको भस्मसात् कर दिया। महादेवने क्रुद्ध होकर भयङ्कर

पाशुपत अस्त्र चलाया। सुदर्शन चक्रके सामने पाशुपत अस्त्र क्या करता। सुदर्शन चक्रके तेजके सामने पाशुपत अस्त्र भाग चला। अन्तमें सुदर्शन चक्र महादेवकी ओर दौड़ा। तब शूलपाणि भी भाग खड़े हुए। चक्र उनके पीछे दौड़ा। सुदर्शन चक्रका तेज त्रिभुवनमें व्याप्त हो गया। त्रिलोचन त्रिलोकीमें कहीं भी छिपनेका स्थान न पा सके। अन्तमें समझा कि श्रीकृष्णके बिना और कोई इस सर्वसंहारकारी सुदर्शन चक्रके हाथसे उनकी रक्षा न कर सकेगा। यह सोच कर त्रिलोचन प्राण-भयसे भयभीत होकर नन्दनन्दन श्रीकृष्णके शरणापन्न हुए। शूलपाणि अतिशय प्रपन्न होकर श्रीकृष्ण भगवान्‌की स्तुति करने लगे—

जय जय महाप्रभु देवकीनन्दन।
जय सर्वव्यापी सर्व जीवेर शरण॥
जय जय सुबुद्धि कुबुद्धि सर्वदाता॥
जय जय स्रष्टा हर्त्ता सभार रक्षिता।
जय जय अदोषदरशी कृपासिन्धु।
जय जय सन्तप्तजनेर एक बन्धु॥
जय सर्व अपराध-भञ्जन शरण।
दोष भक्षम्कर प्रभु लइनु शरण॥
चै० भा० अं० २.३३५–३३८

देवाधिदेव महादेवकी इस प्रकारकी आर्त्त स्तुतिको सुनकर दयामय श्रीकृष्ण भगवान्‌ने सुदर्शन चक्रका तेज हरण करके उनके सामने आकर दर्शन दिया। शङ्करजीने देखा कि उनके अभीष्ट देव, आर्त्तबन्धु, कृपानिधि श्रीकृष्ण भगवान् गोप-गोपियोंसे परिवेष्टित होकर मधुर मूर्त्तिमें उनके सामने उपस्थित हैं। श्रीभगवान्‌की भयहारी, माधुर्यमयी श्रीमूर्त्ति दर्शन करके वे आशान्वित होकर उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब श्रीकृष्ण भगवान क्रोधमें तथा मुस्कराते हुए त्रिलोचन देवको सम्बोधन करके बोले—"शिवजी महाराज! आपको ऐसी कुमति कैसे हुई कि क्षुद्र कीट काशीराजके लिए आप मुझसे युद्ध करने लगे।"

त्रिलोचन महादेवने श्रीकृष्ण भगवान्‌के श्रीमुखसे यह बात सुनकर अत्यन्त लज्जित तथा भयसे कम्पित कलेवर होकर हाथ जोड़कर आत्मनिवेदन किया—"हे प्रभु! सारा संसार आपके इस प्रकार आधीन है। जिस प्रकार तिनका पवनके। आप जो करना चाहते हैं, जीव वही करता है। ऐसा कौन है, जो आपकी मायाका पार पा सकता है? आपने ही मुझमें अहंकार दिया है। आप जो कराते हैं, वही मैं करता हूँ। तथापि मुझसे जो अपराध बन गया उसको क्षमा करके प्रसन्न होइये। अब मेरी ऐसी कुबुद्धि कभी न हो, ऐसा वरदान दीजिये। अब आप आज्ञा कीजिये कि मैं कहाँ रहूँ।"

शङ्करकी यह आर्त्त और दैन्यपूर्ण कातरोक्ति सुनकर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कृपायुक्त होकर उनसे कहा—"हे शिवजी! मैं आपको दिव्य स्थान बताता हूँ, वहीं आप सब गणोंके सहित पधारो। एकाम्र बन नामका एक मनोहर स्थान है, वहाँ आप कोटि-लिंगेश्वर नामसे रहो। वह भी वाराणसी जैसी सुरम्य नगरी है। वहाँ मेरी गोपनीय पुरीका महत्व कोई नहीं जानता। वह सिन्धु तीरपर वट-मूलमें है। नीलाचल उसका नाम है। वह श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र बड़ा रम्य स्थान है। जब काल अनन्त ब्रह्माण्डोंका संहार करता है, तब भी उस स्थानका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। वहाँ मैं निरन्तर विराजता हूँ और प्रति दिन वहाँ मेरा भोग लगता है। उस स्थानका ऐसा प्रभाव है कि वहाँ दस योजन भूमिमें जितने भी जीव-जन्तु, कीट-कृमि बसते हैं, उन सबको देवगण मेरे समान चतुर्भुज रूपमें देखते हैं। उस स्थानमें निद्रासे भी समाधिका फल होता है, लेटनेसे प्रणाम करनेका और भ्रमण करनेसे प्रदक्षिणाका फल होता है। कथन मात्र मेरी स्तुति मानी जाती है। उस स्थान पर यमराजका अधिकार नहीं है। वहाँ रहने वालोंके भले-बुरेका विचार मैं करता हूँ। ऐसी जो मेरी पुरी है उसके उत्तर दिशामें आप विराजिये। वह

स्थान भुक्ति-मुक्ति देनेवाला है। वहाँ आप भुवनके ईश्वर नामसे विख्यात होंगे।"

श्रीकृष्ण भगवान्‌के श्रीमुखसे यह बात सुनकर देवदेव महादेव आनन्दसे गद्‌गद होकर झरझर प्रेमाश्रु बहाने लगे। उन्होंने पुनः हाथ जोड़करके अपने अभीष्ट देवके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्राणनाथ! मेरा एक निवेदन है कि सब समय मैं अहंकारमें रहता हूँ। इसलिए आपको छोड़कर अन्य स्थानोंमें रहनेसे मेरी कुशल नहीं है। आपके क्षेत्रकी महिमा सुनकर मेरी वहीं रहनेकी इच्छा है। अतः आप वहीं मुझे कोई स्थान दीजिये, वहीं मैं आपकी सेवा करूँगा।"

इतना कहकर महेश्वर प्रेमाकुल होकर क्रन्दन करने लगे। देवदेव महादेवका ऐसा निष्कपट दैन्य और आर्त्तभाव देखकर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भगवान् स्थिर न रह सके। वे अतिशय सन्तुष्ट होकर आदर पूर्वक अपने भक्तश्रेष्ठ शूलपाणिको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करते हुए बोले—"हे शिवजी! आप मुझे मेरी देहके समान प्रिय हैं। आपके प्रिय हैं, वे मेरे प्रियतम हैं। जहाँ आप हो, वहीं मैं भी हूँ। मेरा सारा क्षेत्र आपका है। आप मेरे क्षेत्रके पालक हो, सारे क्षेत्रपर आपका अधिकार है। जो एकाम्र वन मैंने आपको बताया, वहाँ आप परिपूर्ण रूपसे रहें। वह क्षेत्र मेरा परम प्रिय है, इसलिए आप मेरी प्रीतिके लिए वहाँ रहिये। जो मेरा भक्त होकर आपका आदर नहीं करता, वह मेरी बिडम्बना मात्र करता है।"

भक्तवत्सल श्रीभगवान्‌ने यहाँ भक्तकी महिमा कीर्तन की है। शैव और वैष्णवका विवाद भञ्जन करके श्रीभगवान्‌ने जो मधुर उपदेश वाणी कही है, यह सारे वैष्णवोंको कण्ठहार बनाकर रखने योग्य है। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने शङ्करजीसे कहा—

जे आमार भक्त हइ तोमा ना आदरे।
से आमारे मात्र जेन विडम्बना करे॥

चै. भा. अं. २.३९१

शिवसे द्वेष रखने वाले बहुत वैष्णव हैं। उनके लिए श्रीभगवान्‌ने यह उपदेश वचन कहे हैं। यह पौराणिक कहानी प्रभुने श्रीभुवनेश्वरके श्रीमन्दिरमें बैठकर भक्तवृन्दके साथ आस्वादन की। उस रात वे शिवलिङ्गके सामने खडे होकर भक्तवृन्दके साथ बहुत देर तक नृत्य कीर्तन कराते रहे।

ठाकुर लोचनदासने अपने श्रीचैतन्यमंगल श्रीग्रन्थमें लिखा है कि प्रभुने देव-देव महादेवकी स्तुति करके उनका निर्माल्य और प्रसाद लेकर पा लिया। दामोदर पण्डित और मुरारि गुप्तने यह देखकर मनमें सोचा कि प्रभुने यह कार्य क्यों किया? भृगुमुनिके शापसे शिवका निर्माल्य और प्रसाद अग्राह्य है। प्रभुने इसे ग्राह्य कैसे किया? यह प्रश्न दामोदर पण्डितने मुरारि गुप्तसे किया मुरारि गुप्तने उत्तर दिया—

शिवेर सेवक जे शिवेर सेबा करे।
उच्छिष्ट ना लय हरिहरे भेद करे॥
ताहार ब्राह्मण शाप कहिल ए तत्व।
अशुद्ध ताहार मति ना जाने महत्व॥
अभिन्न करिया जेइ करये भोजन।
शिवेर निर्माल्य सेइ करये भक्षण॥
शिवेर निर्माल्य खाय अभेद चरित।
से जाने साधक हरिहरेर पीरित॥
लोक शिक्षा हेतु प्रभु कैल अवतार।
दामोदर बोले इबे घूचिल जञ्जाल॥ चै.म.

ठाकुर श्रीवृन्दावनदासने लिखा है—

शिव प्रिय बड़ कृष्ण ताहा बुझाइते।
नृत्य करे गौरचन्द्र शिवेर अग्रेते॥

चै.भा.अ. २.३९३

प्रभुने अपने पार्षदोंके साथ स्वयं शिवपूजा की। इस कार्यके द्वारा भगवान्‌ने वैष्णवके धर्माचरणकी शिक्षा दी। शिवद्वेषी वैष्णवगणको शिक्षा देनेके लिए ही प्रभुने स्वयं आचरण करके सद्धर्मकी शिक्षा दी।

भुवनेश्वरके सारे शिव मन्दिरोंके दर्शन करके प्रभुने कमलपुरमें जाकर भार्गी नदीमें स्नान करके कपोतेश्वर महादेवके दर्शन किये।

यह भार्गी नदी आजकल दण्ड नदीके नामसे ख्यात है। यह श्रीक्षेत्रसे तीन कोसकी दूरीपर अवस्थित है। कविराज गोस्वामीके मतसे इसी स्थानपर श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा प्रभुके दण्डके भङ्गकी लीला हुई थी। इसी कारण इसका नाम दण्डभङ्गा नदी है।

कमलपुर आसि भार्गी नदी स्नान कैल।
नित्यानन्द हाथे प्रभु दण्ड धरिल॥
कपोतेश्वर देखिते गेला भक्तगण सङ्गे।
एथा नित्यानन्द प्रभु कैल दण्डभङ्गे॥
तिन खण्ड करि दण्ड दिले भासाइया।
भक्त सङ्गे आइला प्रभु महेश देखिया॥

चै. च. म. ५.१६०—१४२

ध्वजा दर्शन

यह कमलपुर श्रीनीलाचल धामके अति समीप है। यहाँसे श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरकी ध्वजा दिखलायी देती है। स्नान करके प्रभुने भक्तगणके साथ राह ली। श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरकी ध्वजा देखकर वे प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। उन्होंने देखा कि देवालय चन्द्र-किरणकी तरह उज्वल है, पवनसे लाल पताका फहरा रही है। नील-गिरिके नीचे मन्दिर बड़ा सुन्दर लगता है, कैलाश गिरिसे भी अधिक उज्वल है।

आज प्रभुके आनन्दकी सीमा नहीं है। वे प्रेमानन्दमें विभोर होकर हुङ्कार गर्जन करने लगे। प्रेमाश्रु-मनसे उर्द्ध्वबाहु होकर श्रीमन्दिरकी ध्वजाकी ओर देखकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे, और उच्च स्वरसे स्वकृत यह श्लोकार्द्ध पाठ करने लगे—

प्रासादाग्रे निवसति पुरः स्मेर वक्त्रारविन्दो।
मामालोक्य स्मितसुवदनो बालगोपालमूर्त्ति॥

चै. भा. अं. २.१

अर्थ—विकसित कमलके सदृश सुन्दर मुखविशिष्ठ एवं मन्द हास्ययुक्त मनोरम वदन-विशिष्ठ बालगोपाल रूप श्रीकृष्ण मेरी ओर दृष्टिपात करके प्रासादके ऊपरवाले भागमें अवस्थित हैं।

अभिन्न अञ्जन एक कनकेर ठाम।
देउल ऊपरे प्रभु देखे विद्यमान॥
स-वसन हस्ते घन करिये आह्वान।
देखिया विह्वल प्रभु करे प्रणाम॥ चै० म०

प्रभु प्रेम-विस्फारित नयनोंसे उस अपूर्व बाल मूर्त्तिका दर्शन कर रहे हैं, तथा रास्तेमें बारम्बार साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहे हैं। भक्तवृन्दकी ओर एक-एक बार करुण नयनसे देखकर गद्गद स्वरसे कह रहे हैं— 'देखो मन्दिरके अग्रभाग पर श्रीबालगोपाल मुझको देखकर मुस्करा रहे हैं।"

प्रेमानन्द मेंप्रभुके सारे अङ्ग विवश हैं, पद-पद पर भीषण पछाड़ खाकर गिर रहे हैं, श्रीनित्यानन्द प्रभु उनको पकड़ रखनेमें असमर्थ हो रहे हैं। भक्तवृन्द प्रभुकी इस प्रेमोन्मादावस्था देखकर शङ्कित हो उठे। श्रीनित्यानन्द प्रभु किसी प्रकारसे भी उनको सँभाल नहीं पा रहे हैं। ठाकुर वृन्दावनदासने लिखा है—

से दिनेर जे आछाड़ जे आर्त्ति क्रन्दन।
अनन्तेर जिह्वाय वा से हय वर्णन॥
इहारे से बलि प्रेममय अवतार।
ए शक्ति चैतन्य बइ दुइ नाहि आर॥

चै. भा. अं. २.४०८-४११

कभी-कभी प्रभु प्रेमावेगमें भूतलपर मूर्च्छित होकर निष्पन्द भावसे पड़ जाते हैं। यह देखकर भक्तगणका हृदय भयभीत हो उठा। सब लोग बहुत ही चिन्तित हो उठे। प्रेममय प्रभु फिर स्वयं ही उठे। उनकी आँखोंकी झरझर प्रेमाश्रुधारासे वक्षःस्थल डूब रहा था। सजल नयनसे कातर कण्ठसे गद्गद स्वरमें उन्होंने भक्तवृन्दसे पूछा—

देउल उपरे किछु देखह नयने ।।
नीलमणि किरण वरण उजियार ।
त्रैलोक्य मोहन एक सुन्दर छाओयाल । चै० म०

भक्तगण कुछ भी नहीं देख पा रहे हैं। तथापि प्रभुकी मनस्तुष्टिके लिए बोले, "हाँ देख रहे हैं।" पश्चात् प्रभु पुनः मोहको प्राप्त होकर मूर्च्छित न हो जायँ, इस भयसे उन्होंने यह बात कही। तब प्रभु प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर फिर बोले—

देउल ध्वजाय देख बालक सुन्दर ।।
प्रसन्न वदने पूर्णामृत जेन रूप ।
आलोल अंगुलि करतले अपरूप ।।
आमारे डाकये करकमल लावण्य ।
वाम करे वेणु शोभे त्रिजगत धन्य ।। चै० म०

यह बात कहते कहते प्रभु प्रेमोन्मत्त भावमें भाग चले। रास्तेमें उनके साथ अगणित लोग जा रहे हैं। वे लोग प्रभुके इस अपूर्व प्रेम-भावको देखकर कहने लगे, "यह तो साक्षात् नारायण हैं।" इस प्रकार प्रेमविह्वल भावमें प्रभु भक्तगणसे आवेष्टित होकर अठारह नालामें जा पहुँचे। कमलपुरसे अठारह नाला चार दण्डका रास्ता है। इतनी दूर आनेमें प्रभुको तीन पहर लग गये।

अठारह नालापर आकर भावनिधि श्रीश्रीमन्-महाप्रभु अपना भाव संवरण करके स्थिर होकर एक जगहपर बैठे। भक्तवृन्द भी उनको घेर करके बैठ गये। करुणामय प्रभु करुणनयनसे उनकी ओर देखकर गद्गद स्वरमें बोले—"तुम लोगोंने बन्धुका कर्तव्य पूरा निभाया है कि मुझे श्रीजगन्नाथजीका दर्शन कराया। अब यहाँसे या तो तुम आगे चलो, या मैं आगे जाऊँ, जैसे कहो वैसे किया जाय।

प्रभुकी इच्छा निःसङ्ग होकर निर्जनमें परमानन्द पूर्वक प्राण भरकर तथा आँखें भरकर नीलाचल नाथ श्रीश्रीजगन्नाथजीकी श्रीमूर्तिका दर्शन करनेकी थी। उनके मनकी भाव-भंगी भक्तवृन्दने समझी। मुकुन्दने सबसे परामर्श करके उत्तर दिया, "प्रभु! तुम्हीं आगे जाओ।" यह बात सुनकर प्रभुने परम आनन्द-पूर्वक मत्तसिंह-गतसे श्रीश्रीजगन्नाथ क्षेत्रके भीतर प्रवेश किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु और भक्तवृन्द पीछे रह गये।

प्रभु पुरीके भीतर कैसे चल रहे हैं, इसका वर्णन करते हुए ठाकुर लोचनदासने लिखा है—

कोटिकाम जिनि मोर श्रीगौराङ्ग छटा ।
झलमल करेसे दीर्घ चन्दन फोंटा ।।
जगन्नाथ मन्दिर देखिया गोराराय ।
पुनः पुनः परणाम करि चलि जाय ।।
नयने गलये जल अविरल धारे ।
विपुल पुलकेसे ढाकिल कलेवरे ।। चै.म.

इस प्रकार प्रेमोन्मत्त भावमें प्रभु अकेले मार्कण्डेय सरोवरमें जा पहुँचे। इस पवित्र तीर्थमें उन्होंने विधि-पूर्वक स्नान किया। पुनः अतिशय उत्कण्ठित चित्तसे श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके उद्देश्यसे बारंबार दण्डवत् प्रणाम करते हुए राजपथपर चले। पुरीधामकी आबाल-वृद्ध-वनिता प्रभुकी अपरूप रूप-कान्ति तथा अद्भुत प्रेमभाव देखकर विस्मित होकर उनके मुख-कमलकी ओर एकटक देखते रह गये। बहुतसे लोग उनके साथ हो गये। क्रमशः प्रभु श्री-मन्दिरके समीप पहुँचने लगे। प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर मधुर नृत्यकीर्तन करते हुए वे चल रहे हैं। उनको दिक्-विदिक्का ज्ञान नहीं है। प्रभुका ऐसा गम्भीर आर्त्त और करुण प्रेम भाव देखकर श्रीश्री-नीलाचल चन्द्र मन्दिरमें स्थिर न रह सके। उन्होंने स्वयं आकर श्रीमन्दिरके सिंहद्वारपर खड़े होकर श्रीहस्त फैलाकर प्रभुका प्रेमा वाहन किया। प्रभु अपने अभीष्ट देवका साक्षात् दर्शन पाकर आनन्द-विभोर होकर उस स्थानपर उनके सामने धूलमें पड़कर लोटने लगे, और उच्च स्वरसे 'जय जगन्नाथ' ध्वनिसे दिगन्तको कम्पायमान करने लगे। श्रीश्री-जगन्नाथजी प्रभुका दर्शन करके पुनः अन्तर्द्धान हो गये। प्रभु रोते-रोते आकुल हो उठे। बहुत कष्टपूर्वक अपनेको सँभालकर वे श्रीश्री जगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके सामने आये। श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र और श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र दोनों नयनमें नयन मिलाकर अपूर्व प्रेमानन्दमें विभोर हो गये।

जय श्रीश्रीनीलाचल चन्द्रकी जय।
जय श्रीश्रीनवद्वीप चन्द्रकी जय।।

दूसरा अध्याय

(श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु और सार्वभौम भट्टाचार्य)

नौमि तं गौरचन्द्रं यः कुतर्क-कर्कशाशयम् ।
सार्वभौमं सर्वभूमा भक्ति भूमानमाचरत् ।।

चै. च. म. ६.१

मन्दिरके प्रांगणमें प्रभु

श्रीश्रीनीलाचल धाममें श्रीश्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरमें शिल्पकी निपुणता तथा ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा प्रदर्शित होती है । बहुत व्ययसे यह अपूर्व श्रीमन्दिर निर्मित हुआ था । उड़ीसाके राजा महाराज गजपति प्रताप रुद्रने श्रीश्रीजगन्नाथजीकी सेवा और उत्सव आदिमें बहुतसे लोगोंको नियुक्त कर रक्खा था । श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके ऐश्वर्यकी सीमा न थी। नदियाके अवतार श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके श्रीश्रीनीलाचलमें शुभागमनकी वार्ता सुनकर श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र रत्नसिंहासन पर बैठकर आनन्दित चित्तसे डोलने लगे । उनके श्रीवदनसे हँसी दूर न हो रही थी।उन्होंने अपने सेवकोंको श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रके शुभागमनके उपलक्षमें आनन्दोत्सव मनानेकी आज्ञा दी, जिसका बहुत विशद वर्णन ठाकुर जयानन्दने अपने श्रीचैतन्य-मङ्गल ग्रंथमें किया है—"नाना प्रकारके वाद्य बज रहे हैं, पुष्प वृष्टि हो रही है, हाथी-घोड़ोंको सजाया गया है, दीपमालाकी शोभा न्यारी है, शङ्खध्वनि हो रही है, स्वर्गकी विद्याधरियाँ नाना प्रकारके यंत्र हाथमें लिये, नटीके वेशमें सजी हैं, झांझ घंटा बज रहे हैं, ध्वजा पताका आकाशमें फहरा रहीं हैं, मार्गमें चन्दनका छिड़काव हो रहा है, इत्यादि इत्यादि ।"

श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें श्रीश्रीनीलाचन्द्रके सामने खड़े हैं । सचल जगन्नाथ आज अचल जगन्नाथके सामने खड़े होकर स्वानुभवानन्द में मग्न हैं। अपने रूपपर आप मुग्ध होकर कलिके प्रच्छन्न अवतार प्रेमानन्दमें विभोर होकर खड़े हैं । कलिमें वे भक्तावतार हैं, इसी कारण बार-बार श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें धूलिमें लोटकर श्रीजगन्नाथजीको दण्ड-प्रणाम कर रहे हैं, और हाथ जोड़कर अत्यन्त आर्त्तभावसे आत्म-निवेदन कर रहे हैं । उनके नयन-जलसे वक्षः स्थल प्लावित हो रहा है । श्रीगौराङ्ग-लीलाके व्यासावतार ठाकुर वृन्दावनदासने लिखा है—

सेइ प्रभु गौरचन्द्र चतुर्व्यूह रूये ।
आसने बसियाछेन सिंहासने सुखे ।।
आपनिइ उपासक हइ करे भक्ति ।
अतएव के बूझिबे ईश्वरेर शक्ति ।।

चै. भा. अं. २.४३४,४३५

प्रभुने क्रमशः प्राङ्गणसे श्रीमन्दिरके भीतर प्रवेश किया । प्रेमानन्दमें अतिशय आकुल भावमें श्रीविग्रहके सामने होकर उन्होंने देखा कि श्रीश्रीजगन्नाथजी सुभद्रा और श्रीश्रीसङ्कर्षणजीके साथ रत्नसिंहासनपर विराज रहे हैं । दर्शन मात्रसे प्रभु प्रेमावेगमें उन्मत्त होकर प्रबल हुङ्कार-गर्जन पूर्वक श्रीनीलाचलचन्द्रको आलिङ्गन करनेके लिए उद्यत होकर कूद पड़े । श्रीजगन्नाथजीके सेवकवृन्द घबरा कर उनको पकड़कर मारनेके लिए आ गये । प्रभु प्रेमाविष्ट होकर श्रीमन्दिरके भीतर मूर्च्छित होकर गिर पड़े । भाग्यसे अचानक नवद्वीपके सर्वप्रधान न्यायशास्त्रके पण्डित वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य* उस समय वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने सेवकवृन्दको

---

*श्रीपाद नीलाम्बर चक्रवर्ती श्रीमन्महाप्रभुके मातामह थे । उनके सहाध्यायी महेश्वर विशारद समुद्रगढ़के निकट विद्यानगरमें निवास करते थे । उनके दो पुत्र थे, मधुसूदन वाचस्पति और वासुदेव सार्वभौम । उनके जामाताका नाम गोपीनाथ आचार्य था। वे प्रभुके प्रियभक्त थे ।

प्रभुके ऊपर हाथ रखनेसे मना किया, और प्रभुको ऊपरसे दोनों हाथोंसे ढककर उनके पास बैठ गये ।

सार्वभौम भट्टाचार्य नवीन संन्यासीकी अपरूप रूपराशि तथा अद्‌भुत प्रेम-भावको देखकर विस्मयान्वित होकर मन ही मन सोचने लगे—

ए शक्ति मानुषेर कोन काले नय ।।
ए हुंकार ए गर्जन ए प्रेमेर धार ।
जत किछु अलौकिक शक्तिर प्रचार ।।

चं० भा० अं० २.४२८,४२६

उन्होंने दिव्य चक्षुसे देखा कि यह नवीन संन्यासीरूपी महापुरुष मनुष्य नहीं है । उन्हें देखकर उनके मनमें एक अभूतपूर्व भक्तिभाव उदय हुआ । उन्होंने मन ही मन सङ्कल्प किया कि इनको अपने घर ले जाऊँगा ।

सार्वभौम भट्टाचार्यको देखकर भयसे सेवकवृन्द दूर हट गये, क्योंकि वे सर्वप्रधान राजपण्डित तथा सर्वप्रकार समर्थ श्रीविग्रह - सेवाके तत्त्वावधारक थे । प्रभु प्रेमावेशमें निश्चेष्ट होकर जड़वत् भूतलपर पड़े थे । बहुत देरमें भी उनकी चेतना नहीं आयी । यह देखकर तथा भोगका समय उपस्थित समझकर सार्वभौम भट्टाचार्यके आदेशसे उच्च हरिध्वनि करते हुए श्रीजगन्नाथजीके भाग्यवान् सेवकवृन्द प्रेमावेशसे निःस्पन्द शरीर प्रभुको कन्धेपर उठाकर सार्वभौमके घर ले जानेके लिए आये । इस कारणके लिए वहाँ बहुतसे लोग इकट्ठे हो गये और सब मिलकर विश्वम्भरमूर्ति प्रभुको लेकर चले । ठाकुर वृन्दावन दासने लिखा है—

पिपीलिकागणे जेन अन्न जाय लैया ।।
एइ मत प्रभुके अनेक लोक धरि ।
लइया जायेन सभे महानन्द करि ।।

चं. भा. अं. २.४४६,४४७

सार्वभौमके घरमें प्रभु

इस प्रकार नीलाचल धाममें सर्वप्रथम सार्वभौम-के घर प्रभुकी यात्रा हुई । एक परम पवित्र सुन्दर और सुसज्जित प्रकोष्ठमें इस अद्‌भुत नवीन सन्यासी-को धीरे-धीरे शयन कराया गया । भीड़ इकट्ठी होनेके भयसे गृहका बहिर्द्वार बन्दकर दिया गया । अब तक समाधिप्राप्त प्रभु चेतनावस्थामें नहीं आये थे । श्वास-प्रश्वासकी क्रिया बन्द हो गयी थी । शरीर निःस्पन्द था । सार्वभौम भट्टाचार्य सर्वकार्य छोड़कर प्रभुके पास बैठकर उनकी सेवा कर रहे थे । उनके मनमें विशेष चिन्ता हुई, भय भी हुआ । रुई लाकर प्रभुके नासिकाग्र भागमें लगाकर देखा कि देहमें जीवन है इससे उनके मनमें कुछ साहस हुआ । उन्होंने मन ही मन सोचा—

एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्त्विक विकार ।।
सुदीप्त सात्त्विक एइ—नाम जे 'प्रलय' ।
नित्य सिद्ध-भक्ते से सुदीप्त भाव हय ।।
अधिरूढ़-भाव जार, तार ए विकार ।*
मनुष्येर देहे देखि बड़ चमत्कार ।।

चं० च० म० ६.१०-१२

---

*सुदीप्त— अष्ट सात्त्विक विकारकी गोपन चेष्टा दो प्रकारकी होती है - धूमायिता और ज्वलिता । एक या दो भाव सहज भावुकके शरीरमें ईषत् प्रकाशित होने-पर जिस भावका गोपन संभव नहीं होता, उस भावको धूमायिता कहते हैं, तथा एक ही कालमें दो या तीन सात्त्विक भाव-विकारोंके प्रकट होनेपर उनको अति कष्टपूर्वक गोपन करना संभव होनेपर उसे ज्वलिता कहते हैं । तीन या चार प्रौढ़ भाव एक साथ उदय हों और उनका संवरण करनेकी चेष्टा बिफल हो जाय तो उसको भावज्ञ लोग दीप्ता कहते हैं । एक साथ पाँच भाव अथवा सारे भाव प्रकट होकर प्रेमकी परम उत्कर्ष दशाको प्राप्त हों तो उसे उद्दीप्तावस्था कहते हैं। इस उद्दीप्तावस्थाके एक प्रकार भेदको ही सुदीप्ता दशा कहते हैं ।

महाभाव रुढ़ और अधिरुढ़ भेदसे दो प्रकारका होता है । जिस महाभावमें सात्विक भाव समूह उद्दीप्त होते हैं, वह रुढ़भाव कहलाता है । रूढ़नाके कथित अनुभावोंमें सात्त्विक भाव जब किसी विशिष्टताको प्राप्त होकर किसी अनुभावको लक्षित करते हैं, तो वह अधिरूढ़ भाव होता है ।

सार्वभौम भट्टाचार्य सर्वशास्त्र-विशारद पण्डित-शिरोमणि थे। प्रभुके इस प्रकारके अपूर्व भाव-विकारको देखकर उनको अब कुछ समझनेके लिए बाकी न रहा। गोपीनाथ आचार्य उनके बहनोई थे। वे प्रभुके प्रिय भक्त थे। गोपीनाथ आचार्यके मुखसे सार्वभौम भट्टाचार्यको ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नामधारी यह संन्यासी ही नदियाके अवतार हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके पास बैठकर उनकी अपरूप रूपराशि अवलोकन कर रहे थे, और मन ही मन सोच रहे थे, "क्या यह मनुष्य हैं? इतना रूप तो मनुष्यमें संभव नहीं है ?"

इधर श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा अन्यान्य भक्तवृन्द श्रीश्रीजगन्नाथजीके सिंहद्वार पर आ उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने सुना कि, "आज एक नवीन संन्यासी श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके उनको पकड़नेके लिए जाते समय मूर्छित होकर श्रीमन्दिरमें अचेत होकर पड़ गये थे। सार्वभौम भट्टाचार्य उनको अपने घरले गये हैं।" इससे उनकी समझमें आ गया कि यह अद्भुत काण्ड उनके प्रभुका ही है। वहाँ गोपीनाथ आचार्यके साथ मुकुन्दका साक्षात्कार हो गया। उनका निवास स्थान नवद्वीपमें था। मुकुन्दके साथ उनका पहलेका परिचय था। उनके मुखसे भी सुना कि प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यके घर पर अवस्थान कर रहे हैं। तब सब लोग गोपीनाथ आचार्यके साथ प्रभुके दर्शनार्थ सार्वभौम भट्टाचार्यके घर चले। सबका मन प्रभुके लिए उद्विग्न हो रहा था। तब उन्होंने श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन नहीं किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा भक्तवृन्द सबने गोपीनाथ आचार्यसे कहा कि पहिले जहाँ प्रभु हैं, वहाँ चला जाय, पीछे भगवान्‌के दर्शन करेंगे।

नदियाके भक्तवृन्दने श्रीनीलाचल धाममें आकर अवलीलाक्रमसे श्रीश्रीनीलाचल चन्द्रके दर्शनकी लालसाका परित्याग किया। प्रभुके लिए उनका मन अतिशय उत्कण्ठित था। वे जानते थे कि नदियाके ब्राह्मण कुमार कौन हैं तथा क्या वस्तु हैं? श्रीनीलाचलचन्द्र अचल जगन्नाथ हैं और श्रीनवद्वीप-चन्द्र सचल जगन्नाथ। इसमें उनके मनमें कुछ भी संशय नहीं है। इस प्रकारके ऐकान्तिक भक्तिके बलसे, इस प्रकार इष्टमें एकनिष्ठताके गुणसे वे प्रभुके नित्य-पार्षद बने हैं। उनके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात।

गोपीनाथ आचार्य सबको लेकर सार्वभौम भट्टाचार्यके घर आये। नदियाके भक्तवृन्दके आगमनका समाचार सुन आनन्दित होकर वे सबको आदर सत्कार पूर्वक जहाँ प्रभु थे, उस घरमें ले गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखकर सार्वभौम भट्टाचार्यने उनकी चरण-धूलि ली।

नदियाके भक्तवृन्दने उस समय भी प्रभुको आनन्द मूर्च्छामें मग्न पाया। वे अपने प्रभुकी सारी अवस्था जानते थे। ऐसी अवस्था प्रभुकी बीच-बीचमें होती थी, और इसमें भयका कोई विशेष कारण न था। यह बात उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यसे कही, तब उनका मन सुस्थिर हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने नदिया-के भक्तवृन्दके लिए श्रीजगन्नाथजीके दर्शनका बन्दोबस्त कर दिया। अपने पुत्र चन्दनेश्वरको उनके साथ लगा दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभु आनन्दमें विह्वल होकर भक्तगणके साथ श्रीनीलाचल चन्द्रका दर्शन करनेके लिए गये। श्रीमन्दिरमें उनको देखकर श्रीजगन्नाथजीके सेवकगणने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"सब लोग शान्तिसे श्रीजगन्नाथ-जीके दर्शन करें, जैसे पहिलेवाले गोसाईंने किया, वैसा कोई न करें, तो हम लोग सबको दर्शन करायंगे।"

श्रीनित्यानन्द प्रभुने हँसकर उत्तर दिया, "कोई चिन्ताकी बात नहीं है।" चन्दनेश्वरके साथ सब लोग परम आनन्द पूर्वक प्रत्यक्ष परमानन्द स्वरूप श्रीश्री-जगन्नाथजीकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके नयनोंकी प्रेमाश्रुधारासे अपने वक्षःस्थलको प्लावित करने लगे। दण्ड-प्रणाम, प्रदक्षिणा, स्तुति-स्तवन आदि करके

प्रसादी माला लेकर वे लोग शीघ्र ही सार्वभौमके घर लौटे, क्योंकि वे लोग प्रभुको अचेतन अवस्था-में छोड़कर गये थे। नदियाके भक्तोंने सार्वभौमके गृहमें प्रभुको जिस अवस्थामें देखा था, अब भी उसी अवस्थामें देखा।

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके चरणोंमें बैठे थे। वहाँ भक्तगण प्रभुको चारों ओरसे घेरकर बैठे बैठे उच्च हरि सङ्कीर्तन करने लगे—

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ॥

अब बेला तीसरा पहर हो गया था। हरिनाम सङ्कीर्तन सुन करके प्रभुको चेतना आयी। वे हुङ्कार-गर्जन करके 'हरि हरि' ध्वनि करते हुए उठे। सार्वभौम भट्टाचार्यने परम आनन्दपूर्वक प्रभुकी पदधूलि ली। 'कृष्णे रतिमस्तु' कहकर प्रभुने आशीर्वाद दिया। सार्वभौम भट्टाचार्यने तब समझा कि यह वैष्णव संन्यासी हैं। उन्होंने पहले-पहल नवद्वीपका उच्च हरि-सङ्कीर्तन सुना। उनके घरमें बैठकर नदियाके भक्तवृन्दने प्रभुकी आनन्दमूर्च्छा भङ्ग करनेके लिए भुवन-मङ्गल जो हरिकीर्तन किया, उसे सुनकर विद्याभिमानी सार्वभौम भट्टाचार्यके मनमें मानो एक अपूर्व आनन्दका तरंग उठा। पहले कभी उन्होंने ऐसा मधुर हरि-संकीर्तन नहीं सुना था। उन्होंने सोचा कि आज अपना घर पवित्र हो गया, अपना जीवन सार्थक हो गया।

प्रभुको बाह्य ज्ञान होते देखकर भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें बारंबार हरिध्वनि करने लगे। उच्च हरि-ध्वनिसे सार्वभौम-गृह मुखरित हो उठा। प्रभुने तब स्थिर होकर सबकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर विस्मय पूर्वक पूछा, "बतलाओ तो मुझे क्या हुआ था?" श्रीनित्यानन्द प्रभुने मधुर मुस्कानके साथ उत्तर दिया, "प्रभु? तुम श्रीजगन्नाथके दर्शन मात्रसे मूर्च्छित हो गये थे। भाग्यवश दैवयोगसे सार्वभौम भट्टाचार्य महाशय वहाँ उपस्थित थे। वे तुम्हें श्रीमन्दिरसे उठाकर अपने घर ले आये हैं। यहाँ तुम तीन पहर तक मूर्च्छित अवस्था-में पड़े रहे। यह सार्वभौम भट्टाचार्यका निवास स्थान है। उनने अभी तुम्हें प्रणाम किया और यहाँ खड़े हैं।" इतना कहकर उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यको दिखला दिया।

प्रभुने अस्तव्यस्त होकर सार्वभौम भट्टाचार्यको गोदमें खींचकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। दैन्यके अवतार प्रभुने तब उनके प्रति कृपा-दृष्टि करके मधुर वाणीमें कहा—"श्रीजगन्नाथ भगवान् बड़े कृपामय हैं, जो मुझे यहाँ ले आये। मुझे बड़ा सन्देह हो रहा था कि कैसे मैं तुम लोगोंके साथ मिल पाऊँगा। भगवान्ने अनायास इसको पूर्णकर दिया।"

प्रभुने तब मधुर हँसी हँसते हुए पुनः कहा — "आज मैंने साक्षात् श्रीजगन्नाथ भगवान्के दर्शन किये। उनको देखते ही मेरे मनमें आया कि उनको पकड़कर हृदयमें धरलूँ। जैसे ही उनको पकड़ने गया, उसके बाद क्या घटा, मुझे कुछ पता नहीं। दैवयोगसे सार्वभौम पास थे, इसीसे महासंकटसे रक्षा हो गयी। अब मैंने निश्चय किया है कि आगेसे मैं बाहरसे ही गरुड़के पास खड़े रहकर दर्शन किया करूँगा, भीतर प्रवेश नहीं करूँगा।

प्रभुके मनमें इस समय सारी पूर्व स्मृति उदय हो गयी है। अब उनकी समझमें आ रहा है कि यदि श्रीश्रीजगन्नाथजीको उन्होंने वक्षःस्थलमें धारण किया होता तो उनकी क्या दुर्गति हुई होती? श्रीजगन्नाथके सेवकगण उनकी क्या दुर्दशा किये होते? भाग्यसे सार्वभौम भट्टाचार्य वहाँ उपस्थित थे, इसी कारण इस विषम सङ्कटसे उद्धार हुआ।

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके पास खड़े होकर सब कुछ सुनते रहे, परन्तु कुछ उत्तर नहीं दे सके। वे प्रभुके रूपपर मुग्ध थे, कोई भी बात उनके कानमें

प्रविष्ट नहीं हो रही थी। वे एक टक प्रभुके अपूर्व सुन्दर चन्द्र-वदनकी ओर देख रहे थे।

श्रीनित्यानन्द प्रभुने देखा कि बेला तृतीय प्रहर बीत रही है। भूख-प्यास और रास्तेकी थकावटसे सब लोग कातर हो रहे हैं। प्रभुके स्नान-भोजन किये बिना कोई कुछ नहीं कर सकता। उन्होंने हँसकर प्रभुसे कहा, "प्रभु! इस बार तुम्हारी बड़ी रक्षा हुई है, अब ऐसा काम न करें, अकेले आनेका यह फल हुआ है, अब समय नहीं है, चलो, स्नान करने चलें।" प्रभुने कातर दृष्टिसे श्रीनित्यानन्द प्रभुकी ओर देखकर कहा, "श्रीपाद! आप मेरी सदा रक्षा करेंगे। यह देह मैंने आपके हाथमें समर्पण कर दिया है।"

इतना कहकर भक्तगणके साथ प्रभु समुद्र स्नान करने गये। प्रभु जब स्नान करके आये तो सार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीजगन्नाथजीका नाना प्रकारका प्रसाद लाकर प्रभुको उस दिन अपने घर पर प्रथम भिक्षा करायी। सुवर्णपात्रमें उत्तम अन्न-व्यञ्जन, तथा नाना प्रकारके लड्डू आदि मिष्ठान्न देकर प्रभुको भिक्षा करनेके लिए बुलाया।

महाप्रसाद देखकर प्रभु प्रेमानन्दमें यह भूल गये कि संन्यासीके लिए धातुपात्रमें भोजन करना निषिद्ध है। उन्होंने भक्तिपूर्वक महा प्रसादको नमस्कार करके हँसते हुए कहा, "मुझे शाक-तरकारी व्यञ्जन दें और लड्डू-छेनाकी मिठाई आदि इन लोगोंको दे। प्रभु सदासे ही शाक-व्यञ्जन बड़ा पसन्द करते थे, इसीसे यह बात कह गये। सार्वभौम भट्टाचार्यने हाथ जोड़कर निवेदन दिया, "यह श्रीजगन्नाथजी-का महाप्रसाद है, आज तो इसका आस्वादन करें।"

इतना कहकर प्रभुको सब महाप्रसाद प्रचुर परिमाणमें परोसने लगे। भक्तवृन्दके साथ प्रभुने परम आनन्दपूर्वक सार्वभौम-भवनमें बैठकर भिक्षा किया। सार्वभौमके घर आज जो आनन्दका तरङ्ग उठा, उसका वर्णन भाषाके द्वारा नहीं हो सकता।

प्रभुने भोजन-विलास समाप्त करके भक्तगणके साथ उस दिन सार्वभौमके घर विश्राम किया।

यहाँ सार्वभौम भट्टाचार्यका कुछ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। इन महापुरुषका निवास था नवद्वीपके समीप विद्यानगरमें। पिताका नाम महेश्वर विशारद था। प्रभुके मातामह श्रीपाद नीलाम्बर चक्रवर्ती तथा महेश्वर विशारद दोनों ही सहपाठी थे। दोनोंमें बड़ी मित्रता थी। विशारदके दो पुत्र हुए, वासुदेव सार्वभौम और मधुसूदन वाचस्पति।

वासुदेव सार्वभौम मिथिलामें न्यायशास्त्र पढ़ने जाते थे। उस समय न्यायशास्त्रके अध्यापनपर मिथिलावासियोंका एकाधिपत्य था। वासुदेव सार्व-भौमके समान बुद्धिमान आदमी उन दिनों भारतमें दूसरा कोई था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। उन्होंने मन ही मन सङ्कल्प कर लिया कि जैसे हो न्यायके सारे ग्रन्थ कण्ठस्थ करके ही नवद्वीप लौटूँगा। मिथिलाके पण्डित लोग ग्रन्थ लिखकर नहीं ले जाने देते थे। वासुदेव सार्वभौमकी असाधारण स्मरण-शक्ति थी। उन्होंने यथा समय मिथिलामें न्याय-शास्त्रकी पढ़ाई समाप्त कर सारे ग्रन्थ कण्ठस्थकर नवद्वीपमें आकर स्वयं ग्रन्थ लिखे, और स्वयं न्याय-शास्त्रकी एक पाठशाला खोल दी।

यह अद्भुत् व्यापार सुनकर मिथिलाके पण्डितों-के मनमें हिंसाका उद्रेक हुआ। उन्होंने हिंसाके वशीभूत होकर षड्यन्त्र करके वहाँसे पढ़नेके लिए छात्रोंको भेजकर वासुदेव सार्वभौमके प्राण लेनेकी चेष्टा तक कर डाली। परन्तु श्रीभगवान्की कृपासे उनके घातक सहपाठीने वासुदेव सार्वभौमकी असाधारण प्रतिभा और गुणको देखकर उनके प्रति आकृष्ट होकर सारी बातें उनसे खोलकर कह दीं और उनसे क्षमा याचना की।

इसी जगत्प्रसिद्ध पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्यने न्यायशास्त्रका प्रथम विद्यालय नवद्वीपमें खोला।

उनकी विद्वत्ता और यश: सौरभ दिग्दिगन्त व्याप्त हो गया। यही वासुदेव सार्वभौम न्यायशास्त्रके आदि ग्रन्थ चिन्तामणिके रचयिता विख्यात रघुनाथ शिरोमणिके गुरु थे। मिथिलामें न्यायशास्त्रका अध्ययन समाप्त करके वे काशीधाममें वेदाध्ययन करते थे। वेदाध्ययन समाप्त करके उन्होंने नवद्वीपमें पाठशाला खोली।

वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्यका नाम भारतमें सर्वत्र व्याप्त हो गया। उड़ीसाके स्वाधीन राजा महाराज प्रताप रुद्रने उनको आदर-सत्कारके साथ अपने राज्यमें ले जाकर श्रीश्रीजगन्नाथजीकी सेवा पूजाकी देख-रेखका सारा कार्य भार उनके ऊपर दे दिया। उनकी गुरुवत् भक्तिसेवा करके अपनी राज्य-सभाका उनको सर्वप्रधान पण्डित बनाया। इसी सूत्रसे पुरुषोत्तम तीर्थमें सार्वभौम भट्टाचार्यने अपना विद्यालय स्थापित करके वहाँ निवास किया। उनके विद्यालयमें वेद, वेदान्त, न्याय, सांख्य आदि सारे शास्त्र पढ़ाये जाते थे। भारतवर्षके सब स्थानोंसे आकर छात्रगण उनके विद्यालयमें अध्ययन करते थे। उनमें संन्यासियोंकी भी संख्या कम न थी। सार्वभौम भट्टाचार्यके शिष्य-प्रशिष्य भारतवर्षमें सब स्थानोंमें थे। वे दण्डी लोगोंको वेद पढ़ाते थे।

इन्हीं सार्वभौम भट्टाचार्यके घर उस दिन प्रभुने भोजन-विलास करके विश्राम किया। विश्राम कर लेनेके बाद सन्ध्याके पश्चात् श्रीश्रीजगन्नाथजीकी आरती दर्शन करके प्रभु सार्वभौमके गृहमें आकर भक्तवृन्दके द्वारा आवेष्टित होकर कृष्ण-कथाके रङ्गमें लीन हो गये। उस समय वहाँ गोपीनाथ आचार्य भी थे। सार्वभौम भट्टाचार्यने इस नवीन संन्यासीके पूर्वाश्रमका परिचय जाननेके लिए उत्सुक होकर गोपीनाथ आचार्यसे पूछा, "आचार्य! इनका पूर्वाश्रम कहाँ है?"

गोपीनाथ आचार्य उस समय श्रीपुरुषोत्तम तीर्थमें अपने बहनोईके घर रहते थे। वे नवद्वीपसे तीर्थ भ्रमणके लिए नीलाचलमें आये थे। प्रभुके संन्यासाश्रम ग्रहण करनेके पूर्व उन्होंने नवद्वीपसे प्रस्थान किया था। श्रीगौराङ्ग प्रभुके गृह-त्यागके समाचारसे वे पूर्णत: अवगत न थे। मुकुन्दके मुखसे वहाँ ही विस्तारपूर्वक सब कुछ सुना। प्रभुको देखकर उनका मन हर्ष और विषादमें मग्न हो गया। वे प्रभुके एक प्रिय भक्त थे।

सार्वभौम भट्टाचार्यके प्रश्नका उत्तर देते हुए गोपीनाथ बोले—"इस नवीन संन्यासीका वास नवद्वीपमें है। इनके पूर्वाश्रमका नाम श्रीविश्वम्भर है। वे श्रीजगन्नाथ मिश्र पुरन्दरके पुत्र तथा नदियाके विख्यात पण्डित श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीके दौहित्र हैं।" यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्यने कहा, "नीलाम्बर चक्रवर्ती मेरे पिताके सहपाठी पण्डित थे। मिश्र पुरन्दरका मेरे पिताजी बहुत सम्मान करते थे। पितृ-सम्बन्धसे वे मेरे पूज्य थे।" इतना कहकर नवद्वीपके सम्बन्धसे प्रभुके प्रति अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर उन्होंने विनयपूर्वक प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"तुम सहज ही पूज्य हो, संन्यासी हो, अतएव मैं तो तुम्हारा दास हूँ।"

प्रभुने यह बात सुनकर दोनों हाथोंसे कान स्पर्श करके श्रीविष्णुका स्मरण किया। दैन्यावतार श्रीगौराङ्ग प्रभुने तब अतिशय विनीत भावसे सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा—"आप तो जगद्गुरु और सबके हितकर्त्ता हैं। वेदान्त पढ़ाकर संन्यासीके उपकर्ता हैं। मैं तो बालक-संन्यासी हूँ, अच्छा बुरा कुछ नहीं समझता। आपको गुरु मानकर आपका ही आश्रय लेता हूँ। आपके संग-लाभके लिए ही मुझे यहाँ भगवान ले आये हैं। सब प्रकारसे मेरा पालन करिये। आज तो मैं बड़ी विपत्तिमें पड़ गया था, जिससे आपने ही बचाया।"

रूप-मुग्ध सार्वभौम भट्टाचार्यका मन प्रभुके श्रीमुखसे इस प्रकारकी दैन्योक्ति सुनकर अतिशय मुग्ध हो गया। वे स्नेह पूर्वक प्रभुके श्रीमुखचन्द्रकी ओर देखकर बोले, "आप अकेले कभी श्रीजगन्नाथ-जीका दर्शन करने न जायेंगे। या तो मेरे साथ जायेंगे,

या हमारे अन्य लोगोंके साथ जायेंगे।" प्रभुने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "मैं अब श्रीमन्दिरके भीतर नहीं जाऊँगा, गरुड़-स्तम्भके बगलमें खड़ा होकर श्रीविग्रहका दर्शन करूँगा।"

तब सार्वभौम भट्टाचार्यने गोपीनाथ आचार्यकी ओर देखकर कहा, "आचार्य! आप गोसाईंको साथ लेकर जगन्नाथका दर्शन करावेंगे। मेरी मौसीका घर बहुत एकान्त स्थान है। उस स्थानमें सम्प्रति इनको बासा दें, और आप इनके लिए सब विषयोंका सुन्दर प्रबन्ध कर दें, जिससे इनको तथा इनके भक्तवृन्दको किसी प्रकारका कष्ट न हो।" गोपीनाथ आचार्यने प्रभुके बासाका सारा प्रबन्ध कर दिया। प्रभु भक्तगणके साथ उस एकान्त बासामें रहनेके लिए चले।

प्रभु नीलाचल धाममें जाकर कुछ दिन आत्म-गोपन करके रहे। उनकी अपरूप रुपराशिका दर्शन करके तथा अपूर्व प्रेमभाव देखकर सब नीलाचल-वासियोंने उनको महापुरुषके रूपमें देखा। परन्तु वे क्या थे? तत्वतः क्या वस्तु थे?—यह उस समय कोई न जान पाया। श्रीभगवान् यदि स्वयं अपने-को प्रकट न करें तो किसकी सामर्थ्य है जो उनको प्रकाशमें लाये?

सार्वभौम द्वारा प्रभुको उपदेश

प्रभुके वास स्थानपर सार्वभौम भट्टाचार्य नित्य आते जाते थे। प्रभु भी बीच-बीचमें उनके घरपर शुभागमन करते थे। एक दिन चतुर चूड़ामणि श्री-गौर भगवान्ने सार्वभौम भट्टाचार्यको अपने वास-स्थानमें लाकर एकान्तमें बैठकर विनीत भावसे कहा,—"महाशय! मैं अपने हृदयकी बात आपको कहता हूँ। श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेके लिए आनेमें मेरा मूल उद्देश्य आपसे मिलनेका था। श्रीजगन्नाथजी तो मुझसे बात कर नहीं सकते। आप ही मेरे बन्धन काट सकते हैं। आपमें श्रीकृष्णकी पूर्ण शक्ति है। आपही मुझे श्रीकृष्णमें प्रेमाभक्ति दे सकते हैं। इसलिए मैंने आपका आश्रय लिया है। जिसमें मेरी भलाई हो वही आप करें। मुझे क्या करना चाहिये, कैसे रहना चाहिये, जिस प्रकार संसार कूपमें न पड़ूँ, ऐसा उपदेश मुझे दीजिये। मैं सब प्रकारसे आपका हूँ।"

कपट संन्यासीकी वाक्पटुता तथा श्रीगौर भगवान्की वैष्णवी मायासे मुग्ध होकर पण्डिताभिमानी सार्वभौम भट्टाचार्यने सोचा कि इस नवीन संन्यासीको कुछ धर्मशिक्षा देनी पड़ेगी। प्रभुने उनसे कहा, "आपमें मैं श्रीकृष्णकी शक्ति विद्यमान देखता हूँ, आप मेरे कर्मबन्धनको काटकर प्रेमभक्ति दान करें।"

सार्वभौम भट्टाचार्यका मन तार्किक था, वे न्याय शास्त्रके अद्वितीय पण्डित थे, वेदान्त-शिरोमणि, मायावादी संन्यासियोंके गुरु थे। उन्होंने प्रेमभक्ति-का केवल नाम मात्र सुना था, । प्रेमभक्ति है क्या वस्तु—यह वे नहीं जानते थे। कृष्ण-प्रेमसे जीवके हृदयमें कैसे कैसे अपूर्व भावोंका उदय होता है, यह अनुभव करनेकी शक्ति उनमें नहीं थी। चतुर चूड़ामणि श्रीगौर भगवान्की इस चातुरीके जालमें पड़कर सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुकी बातका मर्म समझ न सके। उन्होंने प्रभुको भक्तियोगके जैवधर्मकी शिक्षा देनेका विचार करके कहा—"तुम्हारेमें भक्तिका उदय हुआ है, ऐसा पूर्वकालमें किसीमें देखने-सुननेमें नहीं आया। तुम पर श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा है। लेकिन तुमने संन्यास लिया—यह ठीक नहीं किया। दण्ड धारण करके मनुष्य अपनेको ज्ञानी मान बैठता है। जिनकी चरण-धूलि लेनेकी वेदोंमें आज्ञा है, ऐसे जन भी नमस्कार करें, तो उसे भय नहीं होता।"

इतना कहकर सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके सामने भागवतके निम्नलिखित श्लोकोंकी व्याख्या की।

प्रणमेद् दण्डवत् भूमाश्व-चाण्डाल-गो-खरम् ॥

श्री. म. भा. ११.२९.१६

ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥

श्री. म. भ. ३.२९.३४

अर्थात् "श्रीभगवान् जीवरूप अंशसे सब देहोंमें प्रविष्ट हो रहे है, यह सोचकर लोक-लज्जाकी परवाह किये बिना कुत्ता, चाण्डाल, गो और गर्दभ पर्यन्त सबको भूमिपर दण्डवत होकर प्रणाम करे।" प्रभुने ध्यान पूर्वक इसे सुना। सार्वभौम भट्टाचार्य पुनः कहने लगे—"इसमें जिनकी रति नहीं है, वह पाखंडी है। शिखा-सूत्र त्यागका केवल यही लाभ है कि बड़े-बड़े महाजन आकर नमस्कार करते हैं।"

प्रभु एकाग्र चित्तसे प्रेमाविष्ट होकर सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे वैष्णव धर्मतत्त्वकी बातें सुन रहे थे। उनके मनमें बड़ा आनन्द हो रहा था। मायावादी संन्यासियोंके गुरू, पण्डिताभिमानी सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे भक्तियोगकी बात उनको बहुत अच्छी लग रही थी।

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुकी ओर देखकर पुनः कहने लगे—"संन्यासधर्ममें यह एक महान दोषकी बात मैंने कही है। एक और सर्वनाशकी बात कहता हूँ, सुनो। यह कहकर वे अतिशय उत्तेजित होकर कहने लगे—"ईश्वरका भजन जीवका स्वाभाविक धर्म है, उसको छोड़कर वह अपनेको नारायण कहता है। देखो, गर्भवासमें जिस ईश्वरने रक्षाकी, और जिसकी कृपासे बुद्धि और ज्ञान प्राप्त हुए, जिनकी सेवा करनेके लिए शेष, ब्रह्मा, शिव व लक्ष्मी तक निरन्तर कामना करते हैं, जिनके दास सृष्टि-पालन और संहार कार्यमें लगे हैं, ऐसे प्रभुका अपने आपमें आरोप करनेमें लज्जा नहीं आती। निद्रामें अपने आपको नहीं जाननेवाले व्यक्ति अपनेको 'नारायण' कहते हैं। वेद श्रीकृष्णको जगत्पिता बनाते हैं। पिताकी भक्ति करने वाला ही सुपुत्र होता है।"

इतना कहकर उन्होंने गीताके इस श्लोकका पाठ किया—

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥

गीता ९.१७

अर्थात् मैं इस जगत्का पिता, माता, धाता (कर्मफल विधाता) तथा पितामह हूँ। मैं ज्ञेय वस्तु, पवित्र ॐकार, ऋक् साम और यजु हूँ।

इसके बाद गीताके एक और श्लोकका पाठ करके उन्होंने प्रभुको गीतोक्त संन्यासका लक्षण समझाया। श्रीकृष्ण भगवान अर्जुनसे कहते हैं—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

गीता ६.१

अर्थात् स्वर्गादि कर्म-फलकी कामना न करके जो शास्त्रविहित अवश्य-कर्त्तव्य-कर्मोंको करते रहते हैं, वही प्रकृत संन्यासी हैं, वही यथार्थ योगी हैं। अग्निहोत्र आदि कर्मोंका त्याग करने वाला यति वेषधारी संन्यासी नहीं, और शरीर धर्मका परित्याग करने वाला योगी नहीं है।

प्रभुके श्रीमुखकी ओर देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य आवेशमें भरकर कहने लगे—"जो निष्काम होकर श्रीकृष्ण-भजन करता है, वही वास्तविक संन्यासी और योगी है। भगवत्-विषयक कार्य किये बिना जो दूसरेका अन्न खाता है, उसको कोई पारमार्थिक लाभ नहीं होता।"

यह कहकर उन्होंने भागवतके निम्न श्लोकका पाठ करके इसकी व्याख्या की।

तत्कर्म परितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया॥
हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः।

श्रीम.भा. ४.२९.४९,५०

अर्थात् जिससे श्रीहरि सन्तुष्ट होवे, वहीं कर्म हैं। जिसके द्वारा श्रीहरिमें मति हो, वही विद्या है। क्योंकि श्रीहरि देहधारी मात्रके आत्मा और ईश्वर हैं, इसलिए वे स्वयं अथवा स्वतन्त्र रुपसे सबके कारण स्वरूप हैं।

प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे श्रीकृष्णभगवान्-की महिमा सुनकर प्रेमानन्दमें पुलकित हो उठे। उनके कमल-नयनोंसे झरझर पुलकाश्रु प्रवाहित होने

लगे। वे प्रेम-विस्फारित नेत्रोंसे सार्वभौम भट्टाचार्यकी ओर देखकर बोले, "भट्टाचार्य ! आपके मुखसे कृष्णभक्तिके प्रसङ्गकी बातें मुझे सुननेमें बड़ी ही मधुर लगती हैं। आप और कुछ कहिये, जिसे सुनकर मैं अपने प्यासे कानोंको शीतल करूँ।"

सार्वभौम भट्टाचार्य आज प्रभुकी कृपासे महा-शक्तिशाली हो गये हैं। वे प्रेमावेगमें पुनः प्रभुसे कहने लगे, "मैंने जो कुछ कहा हैं, इसे यदि आप कहें कि यह शङ्कराचार्यका मत नहीं है तो इसके उत्तरमें मैं उनका अभिप्राय बतलाऊँगा। शङ्कराचार्य अपने श्रीमुखसे कह गये हैं कि, "जीव श्रीभगवान्‌का दास है, श्रीभगवान्‌के साथ जीवका दास सम्बन्ध है, श्रीभगवान्‌का दासत्व करना ही जीवका धर्म है।" यह कहकर उन्होंने शङ्कराचार्यकृत षट्पदी स्तोत्रके निम्नलिखित श्लोककी आवृत्ति करके इसकी व्याख्या प्रभुको समझा दी।

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥

अर्थात् मुझमें और आपमें भेद न होने पर भी, हे नाथ ! मैं जानताहूँ कि मैं ही आपका हूँ, मैं ही आपके अधीन हूँ, आप मेरे अधीन नहीं हो। तरङ्ग और तरङ्गमय समुद्रमें परस्पर भेद न होने परभी यह निश्चित है कि तरङ्ग ही समुद्रकी है, समुद्र तरङ्गका नहीं है।

शङ्कराचार्यके श्लोकका यही अभिप्राय है। इसे न समझकर लोग सिर मुड़ाकर संन्यासी क्यों होते हैं, यह समझमें नहीं आता। यह बात सार्वभौमने स्पष्ट रुपमें कहदी है।

इतना कहकर वे प्रभुसे स्नेह पूर्वक बोले—"तुम इस मार्गमें क्यों प्रविष्ट हुए ? भक्तियोगसे जब भगवान् उद्धार करते हैं, तब शिखासूत्र त्यागनेसे क्या लाभ ? यदि माधवेन्द्र पुरी आदि महाभागोंका उदाहरण दिया जाय, तो भी तुम्हारा इस समय युवा अवस्थामें संन्यास लेनेका अधिकार नहीं है। उन महात्माओंने संसार-सुख भोगकर आयुके तीसरे भागमें संन्यास ग्रहण किया है। जो भक्ति योगेन्द्रादिको भी दुर्लभ है, ऐसी भक्तिका तुममें उदय हुआ है। तुमने संन्यास लेनेका प्रमाद क्यों किया ?"

सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुको प्रकृत बात ही कही। वे प्रभुकी अपेक्षा वयसमें बहुत बड़े थे। गाँवके सम्बन्धसे प्रभु उनके सामने स्नेह भाजन पुत्रके तुल्य थे। वे सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे, शास्त्र-युक्ति द्वारा उन्होंने प्रभुको समझा दिया कि उनका इस नवीन वयसमें गृहत्याग करके संन्यास ग्रहण करना किसी प्रकारसे भी विवेकपूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता।

सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे भक्तियोगके तत्त्वकी बात सुनकर प्रभु अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उनसे नम्रता-पूर्वक बोले—"महाशय ! आप मुझे संन्यासी न समझे। मैं श्रीकृष्ण-विरहमें विक्षिप्त होकर निकल पड़ा और शिखा-सूत्रका त्यागकर दिया। मुझपर ऐसी कृपा करें, जिससे मेरी मति कृष्णमें बनी रहे।"

प्रभुकी इस दैन्योक्तिसे सार्वभौम भट्टाचार्यका मन अत्यधिक द्रवित हो उठा। वे कपट संन्यासी, चतुर चूड़ामणि श्रीगौरभगवान्‌की वाक्चातुरीके जालमें जड़वत् फँस गये। वे भगवान्‌की मायाको क्या समझते ? श्रीभगवान् सदासे अपने दासके साथ ऐसी ही लीला करते आ रहे हैं। प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यकी ओर देखकर मृदु-मधुर मुस्करा रहे हैं; परन्तु वे प्रभुकी इस हँसीका मर्म नहीं समझ पा रहे हैं।

कुछ देरके बाद जब सार्वभौम भट्टाचार्यने समझा कि प्रभु उनकी अति स्तुति कर रहे हैं, तब उनके मनमें कुछ लज्जा आयी। विशेषतः प्रभु संन्यासी थे, और वे गृहस्थ। उनके लिए संन्यासी वन्दनीय था। यह सोचकर वे प्रभुसे बोले—"शास्त्र-मतके अनुसार आश्रममें तुम बड़े हो और मेरे वन्द्य हो। तुम मेरा स्तव करते हो यह युक्त नहीं है। इससे मुझे अपराध लगेगा।"

चतुर शिरोमणि प्रभु इस बातसे फँसने वाले न थे। वे इस प्रकारके लीलारङ्गमें सुदक्ष थे। सार्वभौम भट्टाचार्यका हाथ पकड़कर प्रभु उनसे कातर वचन बोले, "आप मेरे प्रति इस प्रकार निष्ठुर न बनें। मैं आपके आश्रित हूँ, सर्वतो भावसे मैंने आपके चरणोंमें शरण लिया है। यह सब माया मोहकी बातें छोड़कर आप कृपा करके मेरा उद्धार करें।"

सार्वभौम भट्टाचार्य इस बातका कोई उत्तर न दे सके। रङ्गीले प्रभुका लीलारङ्ग समझना बड़ा कठिन है। सार्वभौम भट्टाचार्यको और कोई उत्तर देनेका अवसर न देकर चतुर चूड़ामणि प्रभुकी इच्छा हुई कि उनके साथ एक और लीलारङ्ग खेलें। श्रीभगवान्‌की चातुरीका जाल अनन्त है। वे सदाही अपने अनन्त चातुरीके जालको भक्तगणके सामने फैलाये रहते हैं। भक्तभ्रमर श्रीभगवान्‌के इस चातुरी जालमें सदा ही फंसते हैं। इसको कहते हैं श्रीभगवान्‌का लीलारङ्ग। इस प्रकारके लीलारङ्गमें वे दिन-रात मग्न रहते हैं।

प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा, "सार्वभौम भट्टाचार्य! आपको मेरे मनकी एक इच्छा पूर्ण करनी पड़ेगी। आपके मुखसे भागवतकी व्याख्या सुननेकी इच्छा मेरे मनमें बड़ी प्रवल हो रही है। जिस-जिस स्थानमें मुझको संशय है, उसका निराकरण आपके सिवा और कोई नहीं कर सकता।" प्रभुकी बात सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य हँसते हुए बोले, "आप सब विद्याओंमें पारंगत हैं। आपका नाम मैंने पहले सुना था। नदियाके निमाई पण्डितका नाम कौन नहीं जानता? आप भागवतके सारे अर्थ जानते हैं। तथापि भक्तिचर्चा अवश्य कर्त्तव्य समझकर आपके संशयजनक प्रश्नोंका मैं यथाशक्ति उत्तर दूँगा। बतलाइये आपको किन किन स्थलोंमें संशय है?"

प्रभुने कहा, "मैं समयानुसार आपके घर पर जाकर इस विषयके अपने सब संशयोंको दूर करूँगा। आज रात अधिक हो गयी है, आप घर जाकर विश्राम करें।" इतना कहकर प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर उस दिन विदा किया।

प्रभुके सम्बन्धमें सार्वभौमके तर्क-वितर्क

सार्वभौम भट्टाचार्यके घर दूसरे दिन मुकुन्ददत्त आये। मुकुन्द और गोपीनाथ आचार्य दोनों परम मित्र थे। बीच-बीचमें गोपीनाथ आचार्यका सङ्ग करनेके लिए मुकुन्द सार्वभौम भट्टाचार्यकेघर आया करते थे। उसी प्रसङ्गमें आज भी आये। सार्वभौम भट्टाचार्यके साथ भी मुकुन्दका परिचय हो गया था। उस दिन गोपीनाथ आचार्य और मुकुन्द आकर बैठे थे, सार्वभौम भट्टाचार्यने वहाँ आकर मुकुन्दसे पूछा, "मुकुन्द! तुम लोगोंके यह नवीन संन्यासी देखनेमें बड़े सुन्दर हैं। इनका स्वभाव अतिशय मधुर है। इनके दर्शन मात्रसे मेरा मन बड़ा आनन्दित हो गया है। यह किस सम्प्रदायके संन्यासी हैं? इनका नाम क्या है? इनके गुरु कौन हैं? मैं जानना चाहता हूँ।" गोपीनाथ आचार्यने सार्वभौम भट्टाचार्यकी बातका उत्तर देते हुए कहा, "इनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य है। पूज्यपाद केशव भारती इनके संन्यास गुरु हैं।" यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य बोले, "इनका नाम अति सुन्दर है, अति उत्तम है। परन्तु इन्होंने जिस सम्प्रदायमें प्रवेश किया है, वह उत्तम नहीं है, मध्यम है।"

गोपीनाथ आचार्य प्रभुके एकान्त भक्त थे। प्रभुको वे साक्षात् ईश्वर मानकर विश्वास करते थे। सार्वभौम भट्टाचार्यकी बात उनको अच्छी नहीं लगी। वे अपने मनका भाव गोपन करके बोले, "भट्टाचार्य! इन्होंने बड़े सम्प्रदायकी उपेक्षा करके जान बूझकर भारती सम्प्रदायको ग्रहण किया है। इनको बाह्यापेक्षा नहीं है।" सार्वभौम भट्टाचार्यने इस विषयमें और कोई बात न कहकर फिर पूछा, "इस नवीन वयसमें इस संन्यासीने गृहत्याग किया है, अभी इनकी पूर्ण यौवनावस्था है। कैसे इनके संन्यास धर्मकी रक्षा होगी? मैं इनको निरन्तर

वेदान्त सुनाऊँगा और वैराग्य अद्वैत-मार्गमें प्रवेश करानेकी चेष्टा करूँगा। यदि ये चाहें तो पुनः योगपट्ट देकर संस्कार कराकर उत्तम सम्प्रदायमें इनको प्रविष्ट करा दूँगा।"

सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे यह बात सुनकर मुकुन्द और गोपीनाथ आचार्य दोनों ही बहुत दुःखी हुए। क्योंकि वे खूब जानते थे कि प्रभु क्या वस्तु हैं ? गोपीनाथ आचार्य सार्वभौम भट्टाचार्यके बहनोई थे। उन्होंने अपने सालेकी यह पाण्डित्याभिमान सूचक बात सुनकर कुछ क्रुद्ध होकर स्पष्ट कहा, "यह श्रीकृष्ण चैतन्य नामधारी महापुरुष साक्षात् परमेश्वर हैं। आप इनकी महिमा क्या जानें ? अज्ञ लोगोंके सामने श्रीभगवान् गोचरीभूत नहीं होते। विज्ञ लोग ही उनको जान सकते हैं। इन महापुरुषके लक्षण देखते ही जान पड़ता है कि ये स्वयं भगवान् हैं।"

सार्वभौम भट्टाचार्यके सब शिष्य वहाँ थे। उन्होंने भी यह बात सुनी। सबको आश्चर्य हुआ। मनुष्यको भगवान् कहनेसे उनके मनमें बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ। सार्वभौम भट्टाचार्यके शिष्योंने गोपीनाथ आचार्यको पकड़कर पूछा, "आप किस प्रमाणसे इनको ईश्वर कहते हैं ?" गोपीनाथ आचार्यने उत्तर दिया, "विज्ञ पुरुषोंने इनके ईश्वरत्व को स्वीकार किया है, तथा इनके भीतर ईश्वरके सब लक्षण उनको प्राप्त हुए हैं; अतएव इनको ईश्वर कहा है।" शिष्यगणने आचार्यकी बातको हँसीमें उड़ाकर कहा कि "ईश्वरतत्त्व अनुमान-साध्य है।" सार्वभौम भट्टाचार्यने भी अपने शिष्यगणके पक्षमें अपना मत दिया। यह सुनकर गोपीनाथ आचार्यके मनमें बहुत दुःख और क्रोध हुआ। उन्होंने पहले शास्त्र प्रमाण देकर समझानेकी चेष्टा की, कि ईश्वर ज्ञान अर्थात् ईश्वरका यथार्थ अनुभव अनुमानसे नहीं होता। अनुमानके द्वारा केवल ईश्वरके अस्तित्वकी अनुभूति होती है। परन्तु ईश्वरका यथार्थ ज्ञान केवल ईश्वरकी कृपासे होता है। इतना कहकर उन्होंने भागवतके निम्नलिखित श्लोककी आवृत्ति करके व्याख्या की—

> **अथापि हे देव पदाम्बुजद्वय**
> **प्रसाद लेशानुगृहीत एव हि ।**
> **जानाति तत्वं भगवन्महिम्नो**
> **न चान्य एकोऽपिचिरं विचिन्वन् ॥**
>
> श्रीम. भा. १०.१४.२९

अर्थ—ब्रह्मा कहते हैं, "हे देव ! तुम्हारे चरण-कमल-द्वयकी लेश मात्र कृपासे अनुगृहीत व्यक्ति तुम्हारी महिमाके तत्त्वको जानता है। परन्तु जो सदा अनुमानके द्वारा शास्त्रचिन्तन करते हुए तुम्हारी खोज करते हैं, उनमें कोई तुम्हारा तत्त्व नहीं जान पाता।"

तत्पश्चात् गोपीनाथ आचार्यने क्रोधपूर्वक अपने विद्याभिमानी सालेकी ओर देखकर कहा—"यद्यपि तुम शास्त्र-ज्ञानमें जगद्गुरु हो, पृथ्वी पर तुम्हारे समान पण्डित नहीं है, तथापि तुम्हारे ऊपर ईश्वरकी कृपा लेशमात्र भी नहीं है। इसलिए तुम ईश्वर-तत्त्व नहीं जान सकते। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। शास्त्रोंका कहना है कि पाण्डित्यके द्वारा ईश्वर-तत्त्व कभी जाना नहीं जा सकता।"

सार्वभौम भट्टाचार्य अपने बहनोईकी क्रोध-व्यञ्जक बात सुनकर मन ही मन खूब हँसे। मुख पर नकली क्रोधका भाव दिखलाते हुए वे बोले, 'आचार्य ! आप सावधान होकर बात करें। आपके ऊपर ही ईश्वरकी कृपा है, इसका क्या प्रमाण है ?"

गोपीनाथ आचार्य भी परम पण्डित थे। उन्होंने उत्तर दिया, "जो वस्तु जैसी होती है, उस वस्तुमें तादृश ज्ञानका नाम वस्तु-तत्त्व-ज्ञान है। जैसे रज्जुको रज्जु रूपमें जानना, सीपको सीप रूपमें जानना, इत्यादि। परन्तु रज्जुको सर्प जानना, तथा सीपको चाँदी जानना, यह वस्तुतत्त्वका ज्ञान नहीं है। श्रीभगवान्‌की कृपासे वस्तुतत्त्वका ज्ञान प्रमाणित होता है। वे अपनी कृपाके द्वारा

जिसको स्व-स्वरूपका दर्शन देते हैं, वही उनको समझ पाता है। वस्तु विषयके सिवा अन्य विषयका अवलम्बन करनेसे वस्तु ज्ञानकी संभावना नहीं होती। कृपाके बिना उनका दर्शन या तत्त्वज्ञान नहीं होता। जिन्होंने उनकी कृपा प्राप्त की है, वे उनके स्वरूपको जानकर कृपाभिक्षु हुए हैं। वे इतर ज्ञानकी चेष्टासे उनको समझनेकी चेष्टा नहीं करते। यह जो श्रीकृष्ण चैतन्य नामधारी महापुरुषको आप देखते हैं, इनके शरीरमें ईश्वरके सारे लक्षण परिदृश्यमान होते हैं। आपने इनको महा-प्रेमावेशसे विह्वल अवस्थामें देखा है, तथापि आपके मनमें इनको ईश्वर रूपमें माननेका विश्वास नहीं होता। यह परम दुर्भाग्यकी बात है। इसीको श्रीभगवान्‌की माया कहते हैं। भक्ति-बहिर्मुख आदमी ईश्वरको देखकर भी नहीं देख पाते।"

सार्वभौम भट्टाचार्य इस बार अपनी हँसी न रोक सके। उन्होंने हँसते हुए अपने बहनोईसे कहा—"आपसमें विचार-विमर्श करनेमें रोष नहीं करना चाहिये। मैं शास्त्रदृष्टिसे कह रहा हूँ, कोई बुरा न मानना। कलियुगमें विष्णुका अवतार नहीं है, अतएव तुम्हारे चैतन्य गोसाईं ईश्वर नहीं हो सकते। वे परम भक्त, महाभागवत हैं, इतना ही मात्र जानो।"

गोपीनाथ आचार्य गौराङ्ग-गत-प्राण थे। प्रभुकी भगवत्तामें उनका प्रगाढ़ विश्वास था। विद्याभिमानी सालेकी बात सुनकर वे मनमें बहुत दुःखी हुए। उनका शास्त्रज्ञान भी अपने सालेकी अपेक्षा किसी अंशमें कम न था। वे दुःखित होकर सार्वभौम भट्टाचार्यसे बोले, "भट्टाचार्य! आपको शास्त्रज्ञ होनेका अभिमान है। परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि भागवत और महाभारत, इन दो प्रधान शास्त्रोंमें इस विषयमें क्या लिखा है, यह आप नहीं जानते। मैं आपको इन दोनों शास्त्रोंसे कलियुगके विषयमें प्रमाण दे रहा हूँ, सुनिये। कलियुगमें श्रीभगवान् लीलावतार नहीं ग्रहण करते, इसी कारण उनका नाम त्रियुग है। कलियुगमें श्रीभगवान्‌का साक्षात् अवतार होता है। प्रत्येक युगमें श्रीकृष्ण भगवान् युगावतार ग्रहण करके अवतीर्ण होते हैं। आपका मन अत्यन्त तर्कनिष्ठ है। इसी कारण आप इस प्रकारके तत्त्व-विचारमें अपारदर्शी हैं।"

इतना कहकर गोपीनाथ आचार्यने भागवत और महाभारतके कुछ श्लोकोंको पढ़कर सार्वभौम भट्टाचार्यको सुनाया। वे श्लोक नीचे उद्धत किये जाते हैं।

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुः।
शुक्लोरक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥

—श्री नद्भगवत १०.८.१३ नन्दके प्रति गर्गवाक्य।

कृष्णवर्णं त्विवा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैः यजन्ति हि सुमेधसः॥

श्रीमद्भागवत ११.५.३२ जनकके प्रति करभाजन वाक्य।

संन्यासकृत् समः शान्तो निष्ठा शान्ति परायणः॥
सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी॥

—महाभारत, अनुशासनपर्व, विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र।

गोपीनाथ आचार्यके मनमें बड़ा दुखः हुआ और वे रुष्ट भी हुए। इसलिए उन्होंने इन श्लोकोंकी व्याख्या नहीं की। वे अपने पाण्डिताभिमानी सालेसे बोले—"तुमसे वाद-विवाद व्यर्थ है, जिस प्रकार ऊसर भूमिमें बीज रोपर्ण व्यर्थ होता है। जब तुम पर उनकी कृपा होगी, तब तुम स्वयं ही इस सिद्धान्तको कहोगे। तुम्हारे शिष्य जो कुतर्क करते है, इसमें भी उनका क्या दोष है। यह सब मायाकी कृपा है।"

इतना कहकर उन्होंने निम्नलिखित दो भागवतीय श्लोक पढ़े—

यच्छक्तयो वादतां वादिना वै
विवाद संवादभुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽस्तु गुणाय भुम्ने॥

—श्रीमद्भागवत ६.४.३१

युक्तञ्च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं न दुर्घटम्॥

—श्रीमद्भागवत ११/२२/४

प्रथम श्लोकका अर्थ—दक्ष प्रजापति श्रीभगवान्‌से कह रहे हैं—"जिनकी शक्ति अर्थात् मायावृत्ति सारे तर्कनिष्ठवादी और प्रतिवादीगणके विवाद और संवादकी उत्पत्तिका हेतु है, तथा जो बारंबार उनको आत्ममोहमें डालती है, उस अनन्त गुण-सम्पन्न, तथा अपरिच्छिन्न और महामहिमाशाली भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ।

द्वितीय श्लोकका अर्थ—श्रीभगवान् उद्धवसे कहते हैं, "हे उद्धव ! ब्राह्मणों ने जो निर्णय किया है, वह अयुक्त नहीं है। क्योंकि सर्वत्र सब कुछ तत्वके अन्तर्भूत है। मेरी माया स्वीकार करके जिन्होंने जो कहा है, वह दुर्घट नहीं है।

सार्वभौम भट्टाचार्यने इन दोनों श्लोकोंको भी सुना। बहनोईके साथ विशेष वाद-विवाद न बढ़ाकर वे हँसते हुए बोले, "आचार्य ! इस समय आप चैतन्य गोसाईंके पास जाकर मेरी ओरसे अपने गणके साथ उनको मेरे घर आज भिक्षा करनेका निमन्त्रण दे आओ और पहले जगन्नाथजीका प्रसाद लाकर उनको भिक्षा कराओ। फिर मुझको यह सब उपदेश देना। आज यहीं तक रहे।

साले-बहनोई इस प्रकार हास-परिहास, निन्दा-स्तुतिकी बातें परस्पर करके एक दूसरेसे अलग हुए। मुकुन्द बराबर वहाँ उपस्थित रहे, और सारी बातें सुनते रहे। गोपीनाथ आचार्यके सिद्धान्तसे वे परम परितुष्ट हुए। परन्तु सार्वभौमकी बात सुनकर उनके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। उनको कुछ कहनेका साहस उन्होंने नहीं किया। दोनों आदमी एक साथ जाकर प्रभुके पास उपस्थित हुए। सार्वभौम भट्टाचार्यकी ओरसे गोपीनाथ आचार्यने पहले प्रभुको गणके साथ उनके घर आमन्त्रित किया। प्रभके निमन्त्रण स्वीकार करनेपर दोनों आदमियोंने सार्वभौम भट्टाचार्यकी सारी बातें प्रभुसे कही, तथा उनकी निन्दा की। सर्वज्ञ प्रभुने कानपर अंगुलि देकर कहा—"ऐसी बात मत कहो। भट्टाचार्यका मेरे प्रति अनुग्रह है। वे मेरे संन्यास धर्मकी रक्षा करना चाहते है। वात्सल्य भावसे वे करुणा करते है, इसमें दोष क्या है ?"

मुकुन्द और गोपीनाथ आचार्य और कोई बात नहीं बोले सके। उस दिन प्रभुने अपने गणके साथ सार्वभौम भवनमें भिक्षा ग्रहण किया। भोजनके उपरान्त जब प्रभु अपने आश्रममें विश्राम करने गये, तब सार्वभौम भट्टाचार्य मन ही मन सोचने लगे, "इस संन्यासीका जन्म महान् कुलमें हुआ है। यह अच्छे पण्डित हैं, फिर नयी उम्रमें संन्यासाश्रम ग्रहण करके बड़ी गल्ती की है। संन्यासीका धर्म नृत्य कीर्तन नहीं है। इनको वेदान्त पढ़ाना पड़ेगा। जगन्नाथ जितनी बार भोजन करते है, यह भी उतनी ही बार भोजन करते हैं। युवावस्थामें इतना भोजन करनेपर इनकी काम निवृत्ति कैसे होगी ? नवीन वयसमें यह संन्यासी हो गये हैं, घरमें सुन्दरी भार्या विद्यमान है, घर-गृहस्थी इनको सदा याद आती है। इसीसे 'राधा-राधा' कहकर रोते हैं। यह नवीन संन्यासी बड़ी ही विपदमें पड़ गये हैं। इनका पुनः संस्कार कराकर आश्रमाचारकी शिक्षा देनी पड़ेगी।" सार्वभौम भट्टाचार्य अपने मनके भाव छिपा न सके। अपने सभासद ब्राह्मण पण्डित तथा छात्रोंके सामने उन्होंने अपने मनके इस भावको प्रकट कर दिया। सबने उनकी बातोंका समर्थन किया।

सर्वज्ञ प्रभु अपने बासामें भक्तगणके साथ कृष्ण-कथाके रस-रङ्गमें मत्त थे। अकस्मात् उनके मुख कमलमें हँसी दिखलायी दी। उस हँसीसे मानो अमृतका स्रोत फूट पड़ा। अन्तर्यामी श्रीगौरभगवान् सार्वभौमके मनका भाव बूझकर अचानक निज-जनके सङ्ग वहाँ जा उपस्थित हुए जहाँ बैठकर वे अपने छात्रोंको वेदान्त पढ़ा रहे थे। सार्वभौम भट्टाचार्यने चकित होकर आदरपूर्वक उनको बैठनेके लिए आसन दिया। प्रभु दिव्यासनपर बैठकर अतिशय विनीत भावसे सार्वभौम भट्टाचार्यसे बोले—"आप तो सब जानते हैं। मेरे अन्दरमें जलन रहती

है, इसका क्या कारण है ? मैं संन्यास आश्रमका धर्म कुछ नहीं समझता। लेकिन मैं तरुण वयसमें संन्यास ले चुका। आप तत्त्ववेता हैं, वेदान्तकी शिक्षा देते हैं. मुझे क्या कर्तव्य पालन करना चाहिये ? यह बताइये। जगन्नाथजीके प्रसादने मुझे मत्त कर दिया है, में इस युवाअवस्थामें काम शान्त करनेमें असमर्थ हूँ, घरकी स्मृति होती है, इसलिए 'राधा' कहकर रोने लगता हूँ, कीर्तनमें मुझे यह व्याकुल कर देता है।"

प्रभुकी बात सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य तत्काल विस्मय-सागरमें निमग्न हो गये। उनके मनमें बड़ी लज्जा उत्पन्न हुई। वे विशेष लज्जित होकर मन ही मन सोचने लगे—"कैसी आश्चर्यकी बात है ! कुछ देर पहले अपने शिष्योंके सामने मैंने जो बातेंकी, इस अपूर्व संन्यासीने ठीक वही सब बातें आकर मुझसे कही हैं। ये तो अपने बासापर थे, और मैं अपने घरपर बैठकर इनके सम्बन्धमें बातें करता था, उसको यह कैसे जान गये ? अब तक यहाँसे कोई उठकर नहीं गया, फिर किसने ये बातें कहीं ? क्या ये अन्तर्यामी हैं ? क्या यह मनुष्य नहीं हैं ?" वे लज्जा और विस्मयसे अभिभूति होकर प्रभुसे और कुछ नहीं बोले सके।

सार्वभौम द्वारा वेदान्त प्रवचन एवं महाप्रभु द्वारा स्पष्टीकरण

सर्वज्ञ प्रभु उनके मनके भावको समझकर विनयपूर्वक मधुर शब्दोंमें बोले—"भट्टाचार्य ! आप वेदान्त व्याख्या करें, मैं सुनूँगा। मुझको कर्त्तव्यकी शिक्षा दें।" सार्वभौम भट्टाचार्यने वेदान्तकी व्याख्या प्रारम्भ की। प्रभु एकाग्र चित्तसे सुनने लगे। वे वेदान्त सूत्र शाङ्करभाष्यकी व्याख्या करने लगे। प्रभु ध्यानपूर्वक सुनते थे और मनही मन मुस्कराते थे, कोई बात नहीं बोलते थे। इस प्रकार सात दिन तक प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यके पास वेदान्त सूत्रकी व्याख्या सुनी। आठवें दिन सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुसे पूछा—"श्रीकृष्ण चैतन्य ! तुमने सात दिन मुझसे वेदान्त सुना है, भला-बुरा कुछ बोल नहीं रहे हो, केवल मौन रहते हो। तुम अर्थ समझ रहे हो या नहीं, मुझे ज्ञात नहीं होता। तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? बोलो तो।"

प्रभुने अति विनीत भावसे उत्तर दिया—"मैं तो मूर्ख हूँ। मेरा कोई अध्ययन नहीं। आपकी आज्ञासे श्रवण-मात्र करता हूँ। आप जो अर्थ करते हैं, वह समझमें नहीं आता।" यह बात सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य बोले—"यदि तुम्हारा ऐसा ज्ञान है तो समझनेके लिए फिर प्रश्न क्यों नहीं करते हो ? तुम मौनी होकर बैठे रहोगे तो तुम्हारे मनकी बात मैं कैसे जानूँगा ?"

उत्तरमें प्रभुने विनीत भावसे कहा—"सूत्रका अर्थ तो स्पष्ट है। लेकिन आपकी व्याख्या सुनकर मन व्याकुल हो उठता है। सूत्रका वास्तविक अर्थ छिपाकर आप काल्पनिक अर्थ करते हैं।

उपनिषद् वाक्योंका जो मुख्य अर्थ है, महामति व्यासजीने अपने रचित सूत्रोंमें उसको ही उद्देश्य बनाया है। वही मुख्यार्थ ज्ञातव्य है। उसे छोड़कर जो गौणार्थकी कल्पना की जाती है, और शब्दकी अभिधावृत्ति छोड़कर जो लक्षणा की जाती है, वह मङ्गलजनक नहीं है। प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य और शब्द—इस प्रमाण-चतुष्टयमें श्रुति प्रमाण अर्थात् शब्द प्रमाण सबमें मुख्य है। श्रुति वाक्यका जो मुख्याथ है, वही प्रमाण है। देखो, पशुओंकी अस्थि और विष्ठा नितान्त अपवित्र वस्तु है, परन्तु शङ्ख और गोमय उनमें परिगणित होकर भी श्रुतिवाक्यके बलसे महा पवित्र हो गये हैं। वैदिक वाक्यका उल्लङ्घन करके उसको अनुमानके अधीन करनेपर उसका स्वतः प्रामाण्य नष्ट हो जाता है। व्यास सूत्रोंका अर्थ सूर्यके किरणोंके समान देदीप्य-मान है। मायावादियोंने स्वकल्पित भाष्य-रूप मेघके द्वारा उसको आच्छादन कर दिया है। वेदमें तथा तदनुगत पुराणोंमें एक मात्र ब्रह्मका निरूपण

किया गया है। वही ब्रह्म अपने वृहत्व धर्मके वश होकर ईश्वर-लक्षणसे लक्षित होता है, और उस ईश्वरको उसके सर्वेश्वर्य परिपूर्ण भावमें देखनेपर वह वृहद् ब्रह्मवस्तु स्वयं भगवान् रूपमें दीखती है। अतएव ब्रह्म और ईश्वर भगवत्तत्त्वके अन्तर्गत व्यापार-विशेष हैं। षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् सर्वदा परिपूर्ण श्रीसे युक्त रहते हैं, अतएव वे नित्य सविशेष हैं। उनको निराकारके रूपमें व्याख्या करने पर वेदार्थ विकृत हो जाता है। जो श्रुतियाँ उनको निर्विशेष कहती हैं, वह केवल प्राकृत विशेषका निषेध करके अप्राकृत विशेषकी स्थापना करती हैं।

हयशीर्ष पञ्चरात्रमें लिखा है—

या-या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साभिधत्ते सविशेशमेव।
विचार योगे सति हन्त तासां प्रायो बलीय सविशेषमेव ।।
(चै. चं. ना. ६.३७ में एवं चै. च. म. ६.८में उद्धृत)

अर्थात—जो-जो श्रुति ब्रह्म को निर्विशेष(रूप-गुणादि-रहित निर्विकार) कहकर निर्देश करती है, वही-वही श्रुति ही उनको सविशेष (रूप-गुणादि-विशिष्ट साकार) कहकर निश्चय करती है; किन्तु आश्चर्यका विषय यह है कि उभय विध श्रुतिका विचार करने पर सविशेष पक्ष ही विशेष बलवान है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। इत्यादि (**तैत्रिरीयोपनिषद् ३.१**) अर्थात जिससे सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय**में** ये लीन होते हैं, वही ब्रह्म है।

उननें बहुत होनेकी इच्छाकी (**तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेम** इत्यादि—छान्दोग्य ६.२.३), प्रकृतिकी ओर विलोकन किया, उस समय प्राकृत मन-नयन नहीं थे, अतएव ब्रह्मके अप्राकृत मन-नयन थे। ब्रह्मशब्दसे पूर्ण ब्रह्म स्वयं भगवान् समझे जाते हैं। शास्त्र प्रमाणके अनुसार श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। वेदोंका गूढ़ अर्थ ऐसे समझमें नहीं आता, यह पुराणोंके वचनोंसे ही समझा जा सकता है।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ।।
श्रीम. भा. १०.१४.३२

अर्थ—नन्दगोपके व्रजमें रहने वालोंके भाग्यकी सीमा नहीं है, क्योंकि परमानन्द स्वरूप पूर्ण ब्रह्म सनातन उनके मित्ररूपमें आविर्भूत हुए हैं।

अपाणिपाद श्रुति वर्जे प्राकृत पाणि-चरण ।
पुनःकहे शीघ्र चले करे सर्व ग्रहण ।।
अतएव श्रुति कहे ब्रह्म सविशेष ।
मुख्य छाड़ि लक्षणाते माने निर्विशेष ।।
षडैश्वर्य पूर्णानन्द विग्रह जाँहार ।
हेन भगवाने तुमि कह निराकार ।।
स्वाभाविक तिन शक्ति जेइ ब्रह्मे हय ।
निःशक्ति करिया ताँरे करह निश्चय ।।
चै. च. म. ६.१४०-१४३

पूर्वोक्त श्रुति वाक्योंसे ब्रह्ममें विशेषत्वका ही निरुपण होता है। परन्तु मुख्य अभिधा वृत्ति त्याग करके मायावादी लक्षण द्वारा निर्विशेष मतवादकी स्थापना करते हैं। लक्षणासिद्ध निर्विशेषत्व भी विशेषवादका एक परिचय विशेष है। इसका उद्देश्य है जड़ विशेषसे पार्थक्यकी स्थापना मात्र करना।

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापर ।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ।।
यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा ।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यत्ति सन्ततान् ।।
तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञ संज्ञिता ।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन वर्त्तते ।।
वि.पु. ६.७.६१-६३

श्लोकार्थ—शक्ति तीन प्रकारकी है, विष्णु-शक्ति परा है, क्षेत्रज्ञाख्या अपरा, कर्मनामकी तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है। हे राजन्! सर्वगामिनी

क्षेत्रज्ञ-शक्ति अविद्यासे आवृत होकर सारे साँसारिक तापोंको प्राप्त होती है। हे भूपाल ! अविद्याकृत आवरणके कारण क्षेत्रज्ञ शक्ति सब भूतोंमें तारतम्यसे वर्तमान रहती है वस्तुतः जीवोंके अणुचैतन्य स्वरूपके कारण तारतम्य नहीं होता।

ह्लादिनी सन्धिनी संवित् त्वय्येका सर्वसंस्थितौ।
ह्लादताप करी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥
वि. पु. १.१२.६९

अर्थात--सबके आधारभूत आपमें ह्लादिनी (निरन्तर आह्लादित करनेवाली) और सन्धिनी (विच्छेद रहित), संवित् (विद्याशक्ति) अभिन्न रूपसे रहती है। आपमें (विषय जन्य) आह्लाद या ताप देनेवाली (सात्विकी या तामसी) अथवा उभयमिश्रा (राजसी) कोई भी संवित नही है, क्योंकि आप निर्गुण हैं।

सत् चित् आनन्द मय ईश्वर स्वरूप।
तिन अंशे चिच्छक्ति हय तिन रूप ॥
आनन्दांशे ह्लादिनी सदंशे सन्धिनी।
चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करि मानि ॥
अन्तरङ्गा चिच्छक्ति तटस्था जीवशक्ति।
बहिरङ्गा माया तिने करे प्रेम भक्ति ॥
षड़विध ऐश्वर्य प्रभुर चिच्छक्ति विलास।
हेन शक्ति नाहि मान परम साहस ॥
मायाधीश मायावश ईश्वर जीवे भेद।
हेन जीव ईश्वर सह कहत अभेद ॥
गीताशास्त्रे जीवरूप शक्ति करि माने।
हेन जीव अभेद कर ईस्वरेर सने ॥
चै. च. म. ६.१४४-१४९

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ! ययेदं धार्यते जगत् ॥
गी० ७.५

श्लोकार्थ—श्रीभगवान्ने अर्जुनसे कहा—"हे महाबाहो ! पूर्वोक्त आठ प्रकारकी प्रकृति अपरा अर्थात मेरी जड़ प्रकृति है और इससे भिन्न और एक मेरी जीवरूप परा अर्थात चेतन प्रकृति (शक्ति) है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया गया है।

ईस्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार।
से विग्रहे कह--सत्त्वगुणेर विकार ॥
श्रीविग्रह जे ना माने सेइ त पाखण्डी।
अस्पृस्य अदृस्य सेइ हय-यमदण्डी ॥
वेद ना मानिञा बौद्ध हय त नास्तिक।
वेदाश्रय-नास्तिकवाद बौद्धे ते अधिक ॥
जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास।
मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश ॥
चै. च. म.६.१५०-१५३

व्यासकृत ब्रह्मसूत्रमें शुद्ध भक्तिवाद है। मायावादी आचार्यने उस सूत्रका जो भाष्य किया है, उसमें परब्रह्मका चिन्मय विग्रह स्वीकार नहीं किया गया है, तथा जीवकी ब्रह्मसे पृथक सत्ता भी स्वीकृत नहीं हुई है। यह शुद्ध भक्तितत्त्वका अत्यन्त विरोधी भाव है। इस प्रकारकी भाषामें आलोचना करने-सुननेसे जीवका सर्वनाश हो जाता है, क्योंकि जीवके साथ ब्रह्मकी अभेदाकांक्षाकी जो दुरभिलाषा होती है, उससे हृदयमें अभिमानकी सृष्टि होती है, और इस अभिमानमें शुद्धाभक्ति नष्ट हो जाती है। इसके फल स्वरूप ईश्वरमें मान्यता चली जाती है। यह श्रीमन्महाप्रभुका मत है।

'परिणामवाद' व्यास सूत्रेर सम्मत।
अचिन्त्य शक्त्ये ईस्वर जगद्रूपे परिणत ॥
मणि जैछे अविकृत प्रसवे हेमभार।
जगद्रूप हय ईस्वर--तबू अविकार ॥
'व्यास भ्रान्त' बलि सेइ सूत्रे दोष दिया।
'विवर्त वाद' स्थापियाछे कल्पना करिया ॥
जीवेर देहे आत्मबुद्धि—सेइ मिथ्या हय।
जगत मिथ्या नहे—नश्वर मात्र हय ॥
प्रणव जे 'महावाक्य' ईस्वरेर मूर्ति।
प्रणव हैते सर्ववेद जगत् उत्पत्ति ॥
'तत्त्वमसि' जीव हेतु प्रादेशिक वाक्य।
प्रणव ना मानि तारे कहे 'महावाक्य' ॥
चै.च. म.६.१५४-१५९

परिणामवाद मानने पर ईश्वर विकारी हो जायगा, तथा व्यासजीको तब भ्रान्त कहना पड़ेगा। यह कहकर सूत्रके मुख्यार्थमें दोष दिखला कर गौणार्थ करते हुए विवर्त्तवादकी स्थापना की गयी है। ब्रह्मसूत्रके प्रारम्भमें 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्रके बाद पहले ही 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र है। यह सूत्र परिणामवादके उद्देश्यसे लिखा गया है। शङ्कराचार्यने इस परिणामवादको न मानकर काल्पनिक युक्तिके द्वारा वेदके अंशविशेषमें लिखित अन्य तात्पर्यज्ञापक विवर्तवादको सत्यके रूपमें स्थापन किया है।

इस प्रकारसे प्रभुने शङ्कराचार्यंकृत वेदान्त भाष्यको उनका निज सङ्कल्पित मत कहकर उसमें सैकड़ों दोष दिखलाये, अनेक शास्त्र-प्रमाण देकर अपने मतका समर्थन किया। सार्वभौम भट्टाचार्य इस नवीन संन्यासीके प्रगाढ़ पाण्डित्य और अगाध शास्त्रज्ञानको देखकर विस्मित और मुग्ध हो गये। परन्तु उनके साथ तर्क करना नहीं छोड़ा। उन्होंने पूर्वपक्षका समर्थन करके साध्यानुसार प्रमाणका प्रयोग करके प्रभुके साथ नियमपूर्वक तर्क-वितर्क किया। श्रीगौरभगवान्ने उनके सब मतोंका खण्डन करके अपने मतकी स्थापना की। अन्तमें प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको समझा दिया — "श्रीभगवान्के सम्बन्धमें भक्ति—अभिधेय है और प्रेम प्रयोजन है। वेदमें इन तीन वस्तुओंका उल्लेख है। इसके अतिरिक्त जिसने जो कुछ कहा है वह सब कल्पना मात्र है। वेद वाक्य स्वतः प्रामाण्य है। इसमें लक्षणका प्रयोजन नहीं है। शङ्कराचार्यका कोई दोष नहीं है। उन्होंने ईश्वरकी आज्ञासे ही कल्पना करके यह नास्तिक शास्त्र प्रस्तुत किया है। इस बातके प्रमाणमें प्रभुने दो प्राचीन शास्त्रीय श्लोकोंकी आवृत्ति करके व्याख्या की। ये दोनों श्लोक पद्म-पुराणके हैं। यह नीचे उध्दृत हैं।

स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान् मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा॥

प. पु. उ. ६२.३१

श्लोकार्थ–भगवान्ने कहा, "हे शङ्कर! तुम कल्पित तन्त्र द्वारा सब मनुष्योंको मुझसे विमुख करो, तथा मुझको गोपन करो। इसके द्वारा इस सृष्टिकी निरन्तर रक्षा होगी।"

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मणमूर्तिना॥

प. पु. उ. २५.७

महादेवजी बोले, "हे देवि! मायावाद असत् शास्त्र है। जिसको सज्जन लोग प्रच्छन्न बोद्ध शास्त्र कहते हैं। मैंने ही ब्राह्मण शङ्कराचार्यकी मूर्त्ति धारण करके इस शास्त्रका विधान किया है।"

प्रभुके मुखसे ये सब गूढ़ तत्त्वकी बातें सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य बहुत चकित हुए, तथा सभाके सब लोग भी स्तम्भित हो गये। सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे और कोई बात न निकली। वे जड़वत् स्तम्भित होकर प्रभुके श्रीवदनकी ओर ताकते रह गये। वे सोचने लगे कि 'क्या ये मनुष्य हैं?'

सार्वभौम भट्टाचार्यकी सभामें जितने पण्डित और शिष्यगण उपस्थित थे, सभी प्रभुके श्रीमुखसे जगद्विख्यात शङ्कराचार्य महाराजके भाष्यके सम्बन्ध यह अद्भुत और अभिनव बात सुनकर विस्मयसिन्धुमें निमग्न हो गये, तथा श्रीकृष्णचैतन्य नामधारी इस नवीन संन्यासीके अपूर्व साहस तथा असीम विद्वत्ताकी प्रभूत प्रशंसा करने लगे। अब तक शङ्कर भाष्यका ऐसा दोष दर्शन कभी किसीने नहीं किया था। प्रभुके श्रीमुखसे उन लोगोंने यह पहले-पहले नयी बात, नयी व्याख्या सुनी। उनके मनमें घोर विल्पव उपस्थित हो गया। सार्वभौम भट्टाचार्य जगद्विख्यात पण्डित थे, सर्वशास्त्रविशारद थे, उनके शिक्षा गुरु थे, उनको चुप देखकर शिष्यगणने समझा कि इस नवीन संन्यासीका मत अखण्डनीय है। इस प्रकारका शास्त्रयुक्तिसे पूर्ण विवाद, तथा ऐसी पाण्डित्यपूर्ण विचार प्रणाली किसीने इससे पहले नहीं सुनी थी। जब नीलचलमें यह बात फैल गयी तो सर्वत्र खलबली मच गयी।

प्रभुने देखा कि सार्वभौम भट्टाचार्य एक वारगी अवाक् हो गये हैं। उनकी बात करनेकी शक्ति नहीं है। तब अपने आसनसे उठकर उनके पास जाकर मृदु बचन बोले, "भट्टाचार्य महाशय! मेरी बातसे आप विस्मित न हों, श्रीभगवान्‌के चरणोंमें भक्ति ही परम पुरुषार्थ है। आत्माराम मुनिगण तक परम पुरुष ईश्वरकी भक्ति करते हैं, श्री-भगवान्‌के गुणोंकी ऐसी ही अचिन्त्य शक्ति है।"

श्रीमद्‌भागवतके १. ७. १० श्लोकको व्याख्या एवं षड़ ऐश्वर्य दर्शन

इतना कहकर प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया। जब दोनों एकत्र हो गये, तब प्रभु मधुर मुस्कान्के साथ बोले, "भट्टाचार्य महाशय! अब दूसरी बातें रहने दें। आपके पास भागवत सुननेकी मेरी बड़ी वासना थी। यह बात पहले ही आपसे कह चुका हूँ। आप कृपा करके भागवतके इस श्लोककी व्याख्या करें, मैं सुनकर कृतार्थ होऊँ।" यह कहकर प्रभुने निम्न-लिखित श्लोकका पाठ किया

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः॥

श्रीम. भा. १.७.१०

आत्माराम मुनिगण निर्ग्रन्थ होकर भी उरुक्रम श्रीहरिमें अहैतुकी भक्ति करते हैं। ऐसे ही श्रीहरिके गुण हैं। अर्थात जो लोग विधि-निषेधके परे हैं, अथवा जिनकी अहङ्कार-ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो गयी है, वे आत्माराम मुनिगण भी अमित पराक्रमशाली श्रीभगवान्‌में फलकामनासे रहित होकर, भक्तिका अनुष्ठान करते हैं। क्योंकि श्रीहरिके गुण ही इस प्रकारके हैं।

प्रभुकी कृपासे इतनी देरके बाद सार्वभौम भट्टाचार्यकी वाणी खुली। उन्होंने सम्मान पूर्वक प्रभुसे कहा, "इस श्लोककी व्याख्या आप करें, मैं सुनूँगा। आपके श्रीमुखसे इस अपूर्व श्लोककी व्याख्या सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा हो रही है। चतुर चूड़ामणि श्रीगौर भगवान् मधुर मुस्कानके साथ बोले, "भट्टाचार्य महाशय! पहले आप इसकी व्याख्या करें, पश्चात् मैं जो कुछ जानता हूँ निवेदन करूँगा।"

सार्वभौम भट्टाचार्य और कोई बात बोल न सके। वे साक्षात् वृहस्पति स्वरूप थे, सरस्वतीके वर पुत्र थे। परन्तु यह नवीन संन्यासी भी बागीश्वर है—विद्याभिमानी सार्वभौम भट्टाचार्य यह अब भी समझ नहीं पा रहे हैं। प्रभु इनकी परीक्षा कर रहे हैं, यह भी नहीं समझ पा रहे हैं। उन्होंने नाना प्रकारकी तर्कयुक्ति और प्रमाणके द्वारा इस 'आत्माराम' श्लोकको श्रीचैतन्य चरिमामृतके अनुसार ९ प्रकारकी और श्रीचैतन्यभागवतके अनुसार १३ प्रकारकी व्याख्या की।* यथा—

नव-विध अर्थ तर्कशास्त्र-मत लैया।

चै. च. म. ६.१७१

त्रयोदश प्रकार श्लोकार्थ बाखानिया।

चै.भा. अं. ३.८८

प्रभुने कहा, "आपने जो व्याख्याकी, सब सत्य है, सब उत्तम है, इस व्याख्यासे आपका पाण्डित्य प्रकट होता है, यह निश्चय है। परन्तु इस श्लोकका अभिप्राय और भी है, उसके विषयमें आपने कुछ नहीं कहा।" प्रभुकी यह बात सुनकर अत्यन्त आग्रह पूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्यने उनको इस श्लोककी सारी विशेषताएँ प्रकट करनेके लिए विशेषरूपसे अनुरोध किया। तब प्रभु विश्लेषण करके इस भागवतीय उत्तम श्लोककी व्याख्या करने बैठे। सार्वभौम भट्टाचार्यकी व्याख्याओंमें एकको भी

---

*दुःखकी बात है कि सार्वभौम कृत इस श्लोककी व्याख्याका विशेष विवरण कहीं देखनेमें नहीं आया।

—ग्रन्थकार

उन्होंने स्पर्श नहीं किया। उन्होंने अपने अभिमत अठारह प्रकारकी व्याख्या इस पुण्य श्लोकके अर्थकी की।*

सार्वभौम भट्टाचार्य विद्याभिमानी थे। उन्होंने समझा कि इस आत्माराम श्लोकके अर्थ जो उन्होंने किये हैं, उससे अधिक और व्याख्या करनेकी शक्ति अन्य किसी मनुष्यमें नहीं है।

परन्तु प्रभुने जब इस श्लोक की व्याख्या कर डाली, और उनकी की हुई व्याख्यामें किसीका स्पर्श तक नहीं किया, तब सार्वभौम भट्टाचार्यके मनमें आश्चर्यकी सीमा न रही। वे मन ही मन सोचने लगे, "यह तो निश्चय ही मनुष्य नहीं हैं। यही साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान् हैं। कपट पूर्वक नवीन संन्यासीका रूप धारण करके मेरी परीक्षा करने आये हैं। विद्यामदमें प्रमत्त होकर बिना जाने इनके सामने मैंने कैसा विषम अपराध किया है! अब इनके श्रीचरणोंके आश्रयके बिना मेरी और गति नहीं है।"

यह सोचकर सर्वभौम भट्टाचार्यके मनमें विषम ग्लानि पैदा हुई। वे आत्मग्लानिके विषसे जर्जर होकर दारुण मनोव्यथासे सिर नीचा करके प्रभुके श्रीचरणोंकी ओर सतृष्ण और सजल नयनसे देखने लगे। अन्तर्यामी भक्तवत्सल श्रीगौरभगवानने उनके मनोभावोंको समझकर उनके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा की। चतुर चूड़ामणि श्रीगौरभगवानने पहले उनको अपनी षडऐश्वर्य - पूर्ण चतुर्भुज मूर्ति दिखलायी। सार्वभौम भट्टाचार्य बाह्यज्ञान शून्य होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। नवीन संन्यासीके स्थानमें उन्होंने देखा कि एक शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी परमैश्वर्यमयी श्रीविष्णुकी मूर्ति है। वे आनन्द विह्वल होकर मूर्च्छित हो गये। दूसरे क्षण देखा कि वह द्विभुज मुरलीधर परम सुन्दर श्यामसुन्दर मदन-मोहन श्रीकृष्णकी मूर्ति है।

देखाइल आगे तांरे चतुर्भुज रुप।
पाछेश्याम वंशीमुख-स्वकीय स्वरुप॥

चै० च० म० ६.१८३

श्रीगौरभगवानकी इच्छासे कुछ देर बाद उनकी आनन्द मूर्च्छा भङ्ग हुई। तब उन्होंने प्रेमानन्दमें विह्वल होकर श्रीगौरभगवान्के सामने हाथ जोड़-कर खड़े होकर आँखोंमें आँसू भरकर अपने रचे हुए सौ श्लोकोंका पाठ करते हुए प्रभुकी स्तुति-वन्दना की। प्रभुकी कृपासे सार्वभौम भट्टाचार्यके हृदयमें तत्काल उनके सारे प्रकृत तत्त्वोंकी स्फूर्ति हो गयी। क्षण मात्रमें उन्होंने श्रीगौराङ्ग प्रभुकी, तत्त्वपूर्ण और महिमासूचक, सौ श्लोंकोंसे पूर्ण स्तुतिपाठ करके उनकी वन्दना की।* साक्षात् वृहस्पति इस प्रकारके श्लोकोंकी रचना करके स्तुति कर सकेंगे या नहीं—सन्देह है। प्रभुकी कृपासे उनके जिह्वाग्र पर शुद्धा सरस्वतीका आविर्भाव हुआ। उनके मनमें सब तत्त्वोंकी पूर्ण स्फूर्ति हुई।

श्रीगौरभगवान्ने सार्वभौम भट्टाचार्यकृत इस स्तुतिसे परम परितुष्ट होकर उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। प्रेमावेशमें वे अचेत्त होकर गिर पड़े। उनके सारे अङ्गोंमें अष्ट सत्त्विक भावोंका उदय दीख पड़ा। उनकी आँखोंसे झरकर प्रेमाश्रु-धारा बह चली। सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। वे थरथर काँपने लगे, सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। वे कभी हँसते थे तो कभी रोते थे, कभी गीत गाते हुए मधुर नृत्य करते थे, और प्रभुके

*वाराणसीमें जब सनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुसे मिले थे, तब श्रमन्महाप्रभुने उनको रसी श्लोककी ६१ व्याख्या सुनायी थी, जिसका वर्णन श्रीचैतन्य चरिमाभृत, मध्यलीला, २४ वें परिच्छेदमें है। श्रीराधागेविन्दनाथकी टीका सहित इसका हिन्दी अनुवाद 'आत्माराम आकर्षक हरिके गुण' नामक पुस्तकमें हमारे यहाँसे उपलब्ध है।
—प्रकाशक

*'सार्वभौम-शतक' ग्रन्थ।

चरणोंमें गिरकर भूमि पर लोटते थे। उनके सारे अङ्ग मानो प्रेममें भरकर शिथिल हो रहे थे।

वहाँ सभी उपस्थित थे। प्रभुके भक्तगण तथा भट्टाचार्यके छात्रगण—दोनों ही दल वहाँ थे। गोपीनाथ आचार्य, और प्रभुके अन्याय भक्तगण सार्वभौम भट्टाचार्यको इस प्रकार प्रेम-विह्वल भावमें नृत्य करते देखकर हँस रहे थे। भट्टाचार्यके छात्रगण अपने अध्यापक गुरुमें अकस्मात् ऐसा अद्‌भुत परिवर्तन देखकर विस्मयसिन्धु में मग्न हो गये। इसके भीतर क्या रहस्य है, यह वे लोग नहीं समझ पा रहे थे। प्रभुके भक्तगण प्रभुके नित्यदास हैं। वे सब कुछ समझते थे, इसीसे हँस रहे थे।

गोपीनाथ आचार्यके मनमें आज बड़ा आनन्द हो गया। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके पास जाकर निवेदन किया, "हे प्रभु! आप सर्वगुणनिधि हैं, आप आगतिके गति हैं, आपने आज सार्वभौम भट्टाचार्यकी यह क्या गति करदी? आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात।" इतना कहकर वे प्रभुके चरण कमलमें गिरकर प्रेमानन्दमें व्याकुल होकर रोने लगे। प्रभुने उनका हाथ पकड़कर उठाया और प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए कहा, "तुम भक्त हो, तुम्हारे संगके कारण श्रीजगन्नाथजीने इन पर अच्छी प्रकार कृपा की है।

हमारे प्रभु सदाही दैन्यके अवतार रहे। वे भक्त-वत्सल थे, भक्तका सम्मान बढ़ानेमें वे शतमुख हो जाते थे। परन्तु दयामय प्रभुकी बातसे गोपीनाथ आचार्य लज्जित हो उठे। भक्तगण आत्मप्रशंसा सुनकर सङ्कोचमें पड़ जाते हैं।"

प्रभुने तब सार्वभौम भट्टाचार्यको सुस्थिर किया, अपने करकमल भट्टाचार्यके अङ्ग पर रखकर मधुर वचन बोले, "भट्टाचार्य महाशय! रात अधिक हो गयी है। मैं अब वासा पर जा रहा हूँ, मुझको बिदा कीजिये।" सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके चरणकमलमें गिरकर केवल रोने लगे। बहुत कष्टपूर्वक उनके मुँहसे बात निकली। उन्होंने हाथ जोड़कर सबके सामने प्रभुके श्रीचरणोंको पकड़कर रोते रोते निवेदन किया—

जगत निस्तारिले तुमि—सेह अल्प कार्य।
आमा उद्धारिले तुमि—ए शक्ति आश्चर्य॥
तर्क-शास्त्रे जड आमि जैछे लौह-पिण्ड।
आमा द्रवाइले तुमि प्रताप प्रचण्ड॥

चै. च. म. ६.१९३,१९४

इसी समय प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको अपना एक और ऐश्वर्य दिखलाया। प्रभुने अपने अपूर्व षड्‌भुज रूपका उन्हें दर्शन कराया। सार्वभौम भट्टाचार्यके प्रति श्रीगौर भगवानूकी अपार कृपा हुई। उन्होंने पहले प्रभुकी चतुर्भुज ऐश्वर्य मूर्ति देखी थी, और द्विभुज मुरलीधर मदनमोहन श्रीकृष्ण मूर्ति भी देखी थी, अब देखा कि उनके सामने नवीन संन्यासी नहीं हैं, उनके स्थानमें एक अपूर्व दिव्यमूर्ति दिव्य ज्योति विकीर्ण करती हुई त्रिभङ्ग होकर खड़ी है। वह षड्‌भुज *मूर्ति है। ऊपर द्विवाहु नव दूर्वादलके समान श्याम वर्ण हैं, उनमें वे धनुष बाण धारण कर रहे हैं। बीचमें दो बाहु नील कान्तमणिके समान दीप्त हैं, उनमें उन्होंने मोहन मुरली धारण कर रक्खी है। नीचेके दो बाहु कषित सुवर्ण वर्ण हैं, उनमें दण्ड-कमण्डलु धारण कर रहे हैं। श्रीमूर्तिके कण्ठदेशमें वनमाला है, मस्तक पर मोरपंख है, श्रीमुखमें मधुर हँसी है। मुरलीके रन्ध्र पक्व-बिम्वाधरसे चुम्बित है। यह अपूर्व कोटि सूर्यके समान तेजोमय षड्‌भुज मूर्ति दर्शन करके सार्वभौम भट्टाचार्य आनन्दमें विह्वल होकर मूर्च्छित हो उनके चरणों में गिर पड़े।

दयामय प्रभुने पुनः उनके अङ्गमें श्रीहस्तका स्पर्श करके उनको चेतना प्रदान की। सार्वभौम भट्टाचार्यने अब पूर्णरूपसे समझ लिया कि उनके

---

*श्लोक व्याख्या करें—प्रभु करिया हुङ्कार।
आत्मभावे हइला षड्‌भुज - अवतार॥
चै. भा. अं. ३.९४

बहनोई गोपीनाथ आचार्यने इस नवीन संन्यासीके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, वह सब सत्य था। प्रभुने उसी समय उनको एकान्तमें ले जाकर दो एक ऐश्वर्य भावकी बातें की। श्रीगौर भगवान् ऐश्वर्य भावमें आविष्ट होकर बोले—"सार्वभौम ! तुम्हारे विचारमें क्या मेरा संन्यासमें अधिकार नहीं है ? मैं क्या संन्यासी हूँ ? तुमने अनेक जन्मोंमें मेरे प्रेममें प्राण त्याग किया है, तुम जन्म-जन्मके मेरे दास हो, इस कारण मैं तुम्हारे सामने प्रकट हुआ हूँ। मेरा यह अवतार नाम संकीर्तन आरम्भ करानेके लिए हुआ है। मैं साधुजनोंका उद्धार और दुष्टोंका नाश करूँगा।"

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रेमानन्दमें गद्गद होकर तत्काल निजकृत श्रीशचीसुताष्टक पाठ करने लगे, यथा—

उज्ज्वल वर्ण - गौरवर देहं
विलसति-निरवधि-भावविदेहम् ।
त्रिभुवन - पालन - कृपया लेशं
तं प्रणमामि च श्रीशची-तनयम् ॥

गदगद – अन्तर – भाव विकारं
दुर्जन–तर्जन–गर्जन – विशालम् ।
भवभय भञ्जन - कारण - करुणं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम् ॥

अरुणाम्बरधर - सुचारु कपोलं,
इन्दु-विनिन्दित-नखचय - रुचिरम् ।
जल्पित - निजगुण नाम - विनोदं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम् ॥

विगलित - नयनकमल - जलधारं
भूषण - नवरस - भावविकारम् ।
गति - अतिमन्थर - नृत्यविलासं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम् ॥

चञ्चल चारु चरण गति - रुचिरं,
मञ्जीर-रञ्जित-पदयुग - मधुरम् ।
चन्द्र - विनिन्दित - शीतल वदनं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम् ॥

धृत - कटिडोर - कमण्डलु - दण्डं
दिव्य - कलेवर - मुण्डित - मुण्डम् ।
दुर्जन - कल्मष - खण्डन - दण्डं,
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम् ॥

भूषण - भूरज - अलका - वलितं,
कम्पित - बिम्बाधरवर - रुचिरम् ।
मलयज - विरचित - उज्ज्वल-तिलकं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम् ॥

निन्दित - अरुण - कमलदलन - नयनँ
आजानुलम्बित - श्रीभुज - युगलम् ।
कलेवर - कैशोर - नर्त्तकवेशं
तं प्रणयामि च श्रीशचीतनयम् ॥

सार्वभौम भट्टाचार्यका यह स्तवन प्रभुकी संन्यास-मूर्तिका है। उनको नदिया-नागर श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रके रत्नालङ्कार भूमित भ्रमर कृष्णकुंचित अपूर्व केशदाम परिशोभित सुन्दर मुखचन्द्रके दर्शनकी प्राप्तिका सौभाग्य लाभ नहीं हुआ था। इसी कारण स्तवनमें वे प्रभुके नदियानागर भावके वर्णनमें समर्थ नहीं हुए हैं। नदियाके भक्तवृन्दके मनमें श्रीविष्णु-प्रिया-वल्लभ नव नटवर नदिया बिहारी श्रीगौराङ्ग सुन्दरकी माधुर्यपूर्ण प्रेममयी श्रीमूर्ति नित्य स्फूर्त्त होती थी। प्रभुके इस स्तवनको सुनकर वे लोग सार्वभौम भट्टाचार्यके सौभाग्यको देखकर परम आह्लादित हुए। परन्तु मनही मन सोचने लगे कि यदि सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुकी नवद्वीपलीलाका दर्शनकर नदियानागर भावके भावुक होनेका सुयोग और सौभाग्य प्राप्त करते तो वह अतिसुन्दर 'श्रीविष्णुप्रियावल्लभाष्टक' की रचना कर सकते थे। करुणामय प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यके स्तवसे सन्तुष्ट होकर किस प्रकार कृपा करके उनको आत्म-सात् किया, यह सुनिये—

करुणा-समुद्र प्रभु श्रीगौर सुन्दर।
पादपद्म दिला ताँर हृदय ऊपर॥
चै० भा० अं० ३.१०५

सार्वभौम भट्टाचार्य अब प्रभुके चरण-कमलमें गिरकर उच्च स्वरसे बालकके समान व्याकुल होकर रोने लगे, तब श्रीगौर भगवान्ने अपने अजभव

वाञ्छित श्रीचरणद्वयको धीरे धीरे सार्वभौमके हृदय देशमें रक्खा। सार्वभौम भट्टाचार्य परमानन्द प्राप्त कर दृढ़तापूर्वक प्रभुके रक्तकमल चरणको वक्षः-स्थलमें धारण करके प्रेमानन्दमें विभोर होकर आर्त्तनाद करके रुदन करने लगे। उनके मुखसे केवल 'आज मैंने अपने चितचोरको पाया'—यह शब्द निकलता था। यही बारंबार कहकर वे रोते थे। प्रभुके शिव-विरञ्चि-वाञ्छित पादपद्मको वक्षः-स्थलमें धारण करके रोते हुए वे अपने हृदय सर्वस्वधन चित्तचोरके चरण-कमलमें आत्मनिवेदन करने लगे—

"प्रभु रे ! श्रीकृष्णचैतन्य प्राणनाथ।
मुञि-अधमेरे प्रभु ! कर दृष्टिपात॥
तोमारे जे मुञि पापी शिखाइलुँ धर्म।
ना जानिञा तोमार अचिन्त्य शुद्ध कर्म॥
हेन के वा आछे प्रभु ! तोमार मायाय।
महायोगेश्वर आदि मोह नाहि पाय॥
से तुमि जे आमारे मोहिवा कोन् शक्ति।
एबे देह तोमार चरणे प्रेमभक्ति॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य सर्वप्राण।
जय जय वेद-विप्र-साधु-धर्म-त्राण॥
जय जय वैकुण्ठादि लोकेर ईश्वर।
जय जय शुद्धसत्त्व रूप न्यासीवर॥

चै०भा०अ० ३.१०९-११४

इस समय श्रीश्रीगौर भगवान्‌का पूर्ण ऐश्वर्य भाव है। उन्होंने भगवान्‌भावमें सार्वभौम भट्टाचार्यके वक्षः स्थलपर अपने पादपद्म रक्खे हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य उनके पिताके समवयस्क हैं—परमपूज्य हैं। उन्होंने उनके हृदयमें श्रीचरण धारणकर रक्खे हैं, और वृद्ध ब्राह्मण उनके चरणोंको धारण करके आर्तिपूर्ण आत्मनिवेदन कर रहे हैं; स्तवन कर रहे हैं। यह गौरभगवानकी महा महिमामय ऐश्वर्यकी लीला है। नवद्वीप लीलामें उन्होंने भगवान् भावमें अपनेको प्रकट किया था, यहाँ भी वही किया। सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके चरणोंमें पड़े हुए हैं। उनका आत्म निवेदन अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। उनको सचल श्रीनीलाचलचन्द्रका दर्शन प्राप्त हुआ है। प्रेमानन्दमें मत्त होकर उन्होंने अपने अभीष्ट देवके चरणकमलमें एक एक करके मनकी सारी बातें निवेदन कर दी। वे पुनः रोते हुए बोले—

पतित तारिते से तोमार अवतार।
मुञि पतितेरे प्रभु ! करह उद्धार॥
बन्दी करियाछ मोरे अशेष बन्धने।
विद्या धने कुले;—तोमा जानिब केमने॥
एबे एइ कृपा कर सर्व-जीव-नाथ।
अहर्निश चित्त जेन रहये तोमात॥
अचिन्त्य अगम्य प्रभु ! तोमार विहार।
तुमि ना जानाइले जानिते शक्तिकार॥
आपनेइ दारु-ब्रह्म रूपे नीलाचले।
बसिया आछह भोजनेर कुतूहले॥
आपन प्रसाद कर आपने भोजन।
आपने आपना देखि करह क्रन्दन॥
आपने आपना देखि हओ महामत्त।
एतेके के बूझे प्रभु ! तोमार महत्त्व॥
आपने से आपनारे जान तुमि मात्र।
आर जाने जे जन तोमार कृपापात्र॥
मुञि छार तोमारे वा जानिमु केमने।
जाते मोह माने अज-भव-देवगणे॥

चै०भा०अं० ३.१२२-१३०

दर्पहारी प्रभुकी कृपासे विद्याभिमानी तर्कनिष्ठ शुष्कहृदय सार्भभौम भट्टाचार्यका तब सारा अभिमान दूर हो गया, उनका धनका अभिमान, कुलका गर्व सब चूर-चूर हो गया। वे जगत्प्रसिद्ध पण्डित थे, सर्वलोक पूज्य थे, संन्यासियोंके शिक्षा-गुरु थे, सारे भारत वर्षमें उनके समान सम्माननीय पण्डित दूसरा कोई न था। वे प्रभुका चरण पकड़ कर कह रहे हैं—

"मुञि पण्डितेरे प्रभु करह उद्धार।"

चै० भा० अं० ३.१२२

वे इस समय दीनातिदीन पथके भिखारीके समान प्रभुके चरणोंमें भक्ति भिक्षाके लिए लालायित हैं। उनका विद्याभिमान, धनाभिमान, कुल गौरव सब कुछ भगवत्प्रेमके प्रवाहमें अथाह जलमें डूब गया है। वे इस समय भक्ति-भिक्षु और प्रेमभिखारी है। श्रीगौर भगवान्‌ने कृपा करके उनको अपने चरणोंमें स्थान दिया है, उनका अभयपद उन्हें प्राप्त हो गया है।

प्रभुकी षड्भुज मूर्तिका दर्शन कर सार्वभौमके मनमें अपूर्व आनन्द हो गया है। श्रीगौर भगवान्‌ने कृपा करके एक ही दिन उनको अपना सब ऐश्वर्य दिखला दिया। पहले चतुर्भुज, पश्चात् द्विभुज मुरलीधर, तत्पश्चात् षड्भुज मूर्तिका दर्शन प्रदान करके प्रभुने उनको कृतार्थ कर दिया। सार्वभौम भट्टाचार्यके स्तवन और आर्त्त निवेदनसे तुष्ट होकर मधुर मुस्कानके साथ प्रभुने कहा—

शुन सार्वभौम तुमि आमार पार्षद।
एतेक देखिला तुमि एतेक सम्पद॥
तोमार निमित्ते मोर एथा आगमन।
अनेक करियाऊछ तुमि मोर आराधन॥
भक्तिर महिमा तुमि जतेक कहिला।
इहाते आमारे बड़ सन्तोष करिला॥
जतेक कहिला तुमि—सव सत्य कथा।
तोमार मुखेते केने आसिवे अन्यथा॥
शत श्लोक करि तुमि जे कैले स्तवन।
जे जन करये इहा श्रवण पठन॥
आमाते ताहार भक्ति हइबे निश्चय।
'सार्वभौम शतक' बलि लोके जेन कय॥
जे किछु देखिला तुमि प्रकाश आमार।
सङ्गोप करिया पाछे जाने केहो आर॥
जतेक दिवस मुञि थाकों पृथिवीते।
तावत निषेध कैनु काहारे कहिते॥
आमार द्वितीय देह—नित्यानन्दचन्द्र।
भक्ति करि सेविह ताँहार पदद्वन्द्व॥
परम निगूढ़ तिंहो केहो नाहि जाने।
आमि जारे जानाइ सेइ से जाने ताने॥

चै० भा० अं० ३.१३३-१४२

प्रभुने जो यह अपनी ऐश्वर्य लीला सार्वभौम भट्टाचार्यको दिखलायी, इसे और कोई नहीं देख पाया। सार्वभौमकी सभामें उनके अपने शिष्यगण थे। अन्यान्य पण्डित लोग थे, प्रभुके भक्तवृन्द भी थे। उनमेंसे किसीने भी कुछ नहीं देखा। केवल एकमात्र सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके इस अपूर्व लीलारङ्गको देखा। नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभु कलिके प्रच्छन्न अवतार थे। जब कभी उन्होंने कुछ ऐश्वर्य लीलारङ्ग दिखलाया है, तत्पश्चात् ही आत्मगोपन किया है, तथा उसको प्रकट करनेका निषेध किया है।

श्रीगौर भगवान्‌ने सार्वभौम भट्टाचार्यको यह बात कहकर अपने ऐश्वर्य भावको संवरण किया। वे उनसे विदा लेकर भक्तगणके साथ अपने वासे पर लौट आये।

सार्वभौम भट्टाचार्यको उस रात नींद नहीं आयी। अकेले अपने शयन गृहमें बैठकर श्रीगौर भगवान्‌की इन सारी लीलाओं पर एक एक करके विचार करने लगे। वे भक्तिपथके पथिक न थे। प्रभुकी कृपासे वे एक ही दिनमें भक्ति मार्गके पथिक हो गये। श्रीगौर भगवान्‌के ऐश्वर्यपूर्ण षड्-भुज-रूपका दर्शन करके उनकी विचार और तर्ककी बुद्धि एकदम लुप्त हो गयी। उनके हृत्क्षेत्रसे भक्तिपथके सारे कण्टक उन्मूलित हो गये। वे तर्क-विचार छोड़कर अजस्त्र अश्रु बहाने लगे। सारी रात जागकर उन्होंने नयन-जलसे अपने हृदय-मन्दिरमें श्रीगौराङ्गकी मूर्तिका अभिषेक किया। नयन-जलसे उनका तर्कनिष्ठ कठिन हृदय द्रवित होकर भक्ति साधनाके योग्य बन गया। रातके बीतने पर सार्वभौम भट्टाचार्यका निद्राकर्षण हुआ। रोते रोते उनके शय्याका उपाधान नयन-जलसे सिक्त हो गया। उस अश्रुसिक्त उपाधान पर मस्तक रखकर वे सो गये।

प्रभुके वासे पर उस दिन बड़े आनन्दसे भक्त-वृन्दने नृत्य-कीर्तन किया। गोपीनाथ आचार्य इस आनन्दोत्सवके प्रधान प्रबन्धकर्त्ता थे। उनके मनमें आज बड़ा आनन्द था। सार्वभौम भट्टाचार्य आज प्रभुकी कृपासे भक्तिपथके पथिक हो गये। प्रभुको उन्होंने साक्षात् ईश्वरके रूपमें पहचान लिया है और उनके चरणोंमें गिरकर उनकी स्तुति की है।

यह समाचार नीलाचलमें सर्वत्र फैल गया। श्रीकृष्णचैतन्य नामधारी एक नवीन संन्यासी अद्वितीय पण्डित हैं, सार्वभौम भट्टाचार्यकी अद्‌भुत पाण्डित्य-प्रतिभाको पराजित करके उनके हृदय पर अधिकार कर लिया है। सार्वभौम भट्टाचार्यने इस अपूर्व रूपराशि सम्पन्न नवीन संन्यासीको साक्षात् ईश्वर मान लिया है, उनके चरणकमलमें आत्म-समर्पण किया है, उनके सामने प्रेमानन्दमें नृत्य किया है, उनके साथ वाद-विवाद करनेका अपराध स्वीकार कर लिया है—ये सब बातें नीलाचलवासी सब लोगोंने सुनी। प्रभुके एकान्त भक्त गोपीनाथ आचार्यने आनन्दमें नृत्य करते करते क्षणमात्रमें यह समाचार नीलाचलमें घर-घर पहुँचा दिया। सार्वभौम उद्धारका उन्होंने नीलाचलमें डंका पीट दिया। यह सब बातें लोगोंके मुँहसे देश-विदेशमें प्रचारित हो गयीं।

प्रभु द्वारा शय्योत्थान दर्शन एवं सार्वभौमको प्रसादान्न प्रदान

प्रभु रातमें भक्तवृन्दके साथ नृत्यकीर्तन करके सो गये। बहुत तड़के उठकर भक्तगणके साथ श्रीश्रीजगन्नाथजीकी शय्योत्थान-लीला दर्शन करनेके लिए श्रीमन्दिरकी ओर चले। साथमें गोपीनाथ आचार्य थे। वे प्रभुको साथ लेकर प्रतिदिन श्रीश्री-जगन्नाथजीका दर्शन करते थे। प्रभु गरुडस्तम्भके पास खड़े होकर श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करते थे। अभी कुछ रात थी, अन्धकार दूर नहीं हुआ था। गोपीनाथ आचार्य प्रभुके पास जाकर बोले, "प्रभु! देखिये, रजनीके शेष होने पर श्रीमन्दिरकी सुदृढ़ कपाटावलीके उद्‌घाटन करनेसे मन्दिरके भीतरसे अपूर्व सुगन्धि निकल रही है। इससे जान पड़ता है कि श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके निद्राभङ्गजनित आलस्यमें उच्चस्वरसे जृम्भण और अपूर्व सौरभयुक्त उद्‌गार ध्वनि हो रही है। और भी देखिये, कैसी आश्चर्यकी बात है! दीपके अभावमें घने अन्धकारसे आवृत इस गंभीर गंभीरिकाके भीतर शय्योत्थित लक्ष्मीपतिके दीप्त नयनद्वय कालिन्दीके सलिलमें प्रबल पवनवेगसे चक्कर काटते उन्मत्त भ्रमरोंसे परिशोभित पद्मयुगलके समान सुशोभित हो रहे।"

प्रभु ध्यानपूर्वक गोपीनाथ आचार्यकी बात सुनकर प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर एकटक श्रीश्री-जगन्नाथजीके श्रीमुखारविन्दका दर्शन करने लगे। उनके नयनद्वय मानो श्रीनीलाचल चन्द्रके मुखचन्द्रमें लिप्त हो रहे थे, ऐसा जान पड़ता था। प्रेमाश्रुकी धारामें प्रभुका प्रसर वक्षः स्थल निमज्जित हो रहा है। वे प्रेमानन्दमें विभोर श्रीश्रीजगन्नाजीका दर्शन कर रहे हैं।

गोपीनाथ आचार्य पुनः प्रभुसे बोले, "प्रभो! देखिये—श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रने श्रीवदन प्रक्षालन किया। इसके बाद इनके सेवकोंने सुगन्धित तेल मर्दन करके सुवासित जलमें स्नान करा दिया। वह देखिये, वे श्रीअङ्गमें रत्नालङ्कार परिधान कर रहे हैं। अब देखिये, उनके बालभोगकी तैयारी हो रही है। यह देखिये, श्रीनीलाचलचन्द्रकी बालभोग-लीला सम्पन्न हो गयी। इसके बाद उनका हरिवल्लभ भोग लगा। अब उनकी मङ्गल धूप आरती होगी। प्रभु परानन्दमय हो रहे हैं। वे जड़वत् खड़े होकर भोग आरतीका दर्शन कर रहे हैं। उनके कमल नयनद्वय निर्निमेष हैं।

ठाकुरजीकी भोग आरती समाप्त होनेपर श्री-जगन्नाथजीके दो सेवक प्रभुके पास आये। एकने उनको माल्यचन्दनसे विभूषित किया, और दूसरेने प्रभुको कुछ प्रसादान्न दिया। प्रभुने सिर झुकाकर

पहले माल्यचन्दन ग्रहण किया। पश्चात् अपनी चादर फैलाकर उसमें प्रसादान्न बाँध लिया। उसके बाद प्रभु श्रीजगन्नाथजीको दण्डवत् प्रणाम करके अकस्मात् सिंह-गतिसे श्रीमन्दिरसे बाहर निकले। तब वे भक्तोंकी अपेक्षामें न रहे। इससे वे लोग विस्मित होकर भागते हुए प्रेमोन्मत्त प्रभुके पीछे-पीछे दौड़े। परन्तु उनको पकड़ न सके। भक्तवृन्दने देखा कि प्रभु वासेका मार्ग छोड़कर सार्वभौम भट्टाचार्यके घरकी ओर तीव्र वेगसे जा रहे हैं। भक्तवृन्द भी उसी मार्गसे चले।

गोपीनाथ आचार्यने सबसे कहा, "अजी! प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यके घरकी ओर जा रहे हैं, इससे जान पड़ता है कि इतने दिनोंमें भट्टाचार्यजीका सौभाग्य वृक्ष फल-फूल रहा है।" इतना कहकर वे मुकुन्दके साथ परामर्श करके सार्वभौम भट्टाचार्यके घर जा पहुँचे। उधर प्रभु मत्त सिंहकी गतिसे सार्वभौम-भवनके बाहरी आङ्गनमें पहुँचकर द्वितीय कक्षके द्वार देशमें उपस्थित हो गये।

नीलाचलमें सार्वभौम भट्टाचार्य बड़े आदमी थे। उनका अपना वासस्थान तीन महला दो तल्लेकी अट्टालिका थी। वे तीसरे महलमें अपने शयनगृहमें सोये थे। सारी रात जागकर रातके अवसानमें उनको गाढ़ी नींद आ गयी थी। द्वितीय कक्षके द्वार पर एक ब्राह्मण बालक सोया था। प्रभु द्वारदेश पर खड़े होकर 'भट्टाचार्य, भट्टाचार्य' कहकर पुकारने लगे। इससे ब्राह्मण-कुमारकी नींद टूट गयी, और प्रभुको पहचानकर उसने झटपट जाकर सार्वभौम भट्टाचार्यको पुकारा। उनकी नींद टूटने पर उनसे बोला, "वे नवीन संन्यासी महाशय आये हैं, द्वार पर खड़े हैं।" सार्वभौम भट्टाचार्यने शय्यासे उठकर 'कृष्ण कृष्ण' कहते हुए जम्हुआई ली। प्रभुने इसे अपने कानों सुना। इससे उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

पहले वह ऐसा नहीं करते थे। प्रभुकी कृपा प्राप्त करके कृष्णनाममें उनकी रति उत्पन्न हुई है। उनका सौभाग्य देखकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके शुभागमनकी बात सुनकर झटपट घरसे बाहर आकर उनके चरणोंकी वन्दना की। प्रभुने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। सार्वभौम भट्टाचार्यने उनको बैठनेके लिए आसन दिया, प्रभु उस पर बैठ गये। सार्वभौम उनके चरणतलमें बैठ गये। प्रातः काल हो गया था, परन्तु अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। प्रभुने आसन पर बैठकर अपनी चादरसे श्रीजगन्नाथजीका प्रसादान्न खोलकर प्रसन्न मुखसे सार्वभौमजीसे कहा, "भट्टाचार्य! जगन्नाथजीका प्रसाद ग्रहण करो, मैं बहुत यत्नपूर्वक आपके लिए अञ्चलमें बाँधकर यह प्रसादान्न लाया हूँ, इसको ग्रहण करें।"

"सार्वभौम भट्टाचार्य अतिशय निष्ठावान् ब्राह्मण थे, वे शय्यासे उठकर मुँह तक नहीं धोये थे। स्नान, सन्ध्या तथा नित्यकर्म तो दूर रहे। चतुर चूड़ामणि श्रीगौर भगवान् उपयुक्त समय समझकर प्रसादमें उनकी भक्तिकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे बहुत तड़के प्रसाद लेकर भट्टाचार्यके पास आये हैं। सार्वभौम भट्टाचार्यके मनमें प्रभुकी कृपासे अब वैसे भाव नहीं हैं। उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, उनका हृदय कोमल हो गया है। प्रसादमें उनको पूर्ण श्रद्धा और विश्वास पैदा हो गया है। उन्होंने मनमें तनिक भी द्विविधा न लाकर भक्तिपूर्वक प्रभुके श्रीहस्तसे प्रसादान्न लेकर तुरन्त खा लिया। वे पण्डित और शास्त्रवेत्ता थे, अभ्यास दोषसे प्रभुके सामने पद्म-पुराणके निम्नलिखित दो श्लोकोंका उन्होंने पान किया।

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारना॥
न देशनियमस्तत्र न कालनियमस्तथा।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टैर्भोक्तव्यं हरिरब्रवीत्॥प.पु.

भक्त वत्सल प्रभु कुछ मुस्कराये। उस मुस्करानेका मर्म सार्वभौमने नहीं समझा। साक्षात् भगवान् जब कृपा करके अपने हाथोंसे उनको प्रसाद दे रहे हैं, तब फिर शास्त्रविधिकी बात उठानेका क्या प्रयोजन रह गया? पण्डित लोग सब बातोंमें श्लोक पढ़कर कोई कार्य करते हैं। सार्वभौम भट्टाचार्यने अभ्यास दोषसे यही किया। प्रभु इससे सन्तुष्ट हो गये। उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने प्रेमाविष्ट होकर सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। सार्वभौम भट्टाचार्यने जो कुलधर्म छोड़कर, मानापमान और लज्जा-भयको तिलाञ्जलि देकर बहुत तड़के दन्तधावन तक न करके अम्लान वदनसे जो प्रसादान्न भक्षण किया, उससे प्रभुको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।

प्रेमानन्दमें प्रभु और सेवक, दोनोंने उस घरके भीतर हाथ पकड़कर आनन्द-नृत्य आरम्भ कर दिया। दोनों एक दूसरेके अङ्ग स्पर्शसे पुलकित हो उठे। अश्रु, कम्प, स्वेद आदि अष्ट सात्विक भाव-विकारमें दोनों ही प्रेमानन्दके अभिभूत हो उठे। भक्त और भगवान्के इस अपूर्व मिलनमें सार्वभौमके घर उस दिन जो प्रेमानन्दका स्रोत प्रवाहित हुआ, उसमें सार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी गोष्ठीके सब लोग प्रेमभावमें प्रमत्त होकर गोते खाने लगे।

भृत्यवर्ग यह देखकर अवाक् हो गया। सार्वभौम भट्टाचार्यके समान निष्ठावान् व्यक्ति भी ऐसा कार्य करेगा, यह वे लोग स्वप्नमें भी नहीं सोच सकते थे। उन्होंने आज जो कुछ देखा, इससे उनके मनमें बड़ा धक्का लगा। दोनों भृत्य बाहर आकर बातें करने लगे—"यह नवीन संन्यासी कौनसा इन्द्रजालका मन्त्र जानता है जिसके द्वारा भट्टाचार्यको ग्रहग्रस्तके समान बना दिया है"। मुकुन्द और गोपीनाथ आचार्यने भृत्योंके मुखसे सारी बातें सुनी। सुनकर सब कुछ समझ गये। पश्चात् वहाँ दामोदर और जगदानन्द पण्डित जा पहुँचे। रास्तेमें दामोदर पण्डितने भी सार्वभौम भट्टाचार्यके भृत्यके मुखसे ये सब बातें सुनी थी। उन्होंने आते ही गोपीनाथ आचार्यकी ओर देखकर कहा—

बिना वारीं बद्धो वनमद करीन्द्रो भगवता
बिना सेकं स्वेषाँ शमित इव हृत्ताप दहनः।
यदृच्छा योगेन व्यरचि यदिदं पण्डितपते.
कठोरं वज्रादप्यमृतमिव चेतोऽस्य सरसः॥

चै०चं०ना० ६.३१

श्लोकार्थ—अहा, मदमत्त वन्य-हस्ती वारी (गजबन्धिनी) के बिना ही बँध गया, अथवा बन्धु-जनका हृदय-दाहक अनल जल-सिञ्चनके बिना ही बुझ गया; क्योंकि पण्डिताग्रगण्य सार्वभौम भट्टाचार्य वज्रसे भी अतिकठिन हृदयको भाग्यवश भगवान्ने अमृतके समान सरस कर दिया है।

उस समय सब भक्तगण सार्वभौम-भवनमें एक-चित हो गये थे। सबने सुना कि जो श्रीमन्दिरसे चादरमें बांधकर प्रसादान्न प्रभु लाये हैं, वह सार्वभौम भट्टाचार्यके लिए है, उन्होंने बहुत तड़के प्रभुके हाथसे वह प्रसादान्न पाया है, प्रसादमें उनको विश्वास हो गया है, यह देखकर प्रभु प्रेमानन्दमें सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए उनके साथ अपूर्व नृत्य-कीर्तन कर रहे हैं, सार्वभौम भट्टाचार्य भी प्रभुके साथ आनन्दनृत्य कर रहे हैं, यह सुनकर उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। सार्वभौमका नृत्य देखनेके लिए उनके मनमें बड़ी साध हुई। वे लोग अब तक बाहरी दालानमें प्रभुके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यके शयनगृहमें उनके साथ आनन्दोत्सवमें मत्त हैं। वे प्रेमावेशमें नृत्य करते हुए बोले—

आजि मुञि अनायासे जिनिनु त्रिभुवन।
आजि मुञि करिनु वैकुण्ठे आरोहण॥
आजि मोर पूर्ण हइल सर्व अभिलाष।
सार्वभौमेर हइल महाप्रसादे विश्वास॥

चै० च० म. ६. २०८,२०९

पश्चात् सार्वभौम भट्टाचार्यके प्रति करुणामय प्रभुने करुणनयनसे देखकर कहा,

आजि निष्कपटे तुमि हैला कृष्णाश्रय ।
कृष्ण निष्कपटे हइला तोमारे सदय ।।
आजि से खण्डिल तोमार देहादि-बन्धन ।
आजि छिन्न कैले तुमि माया बन्धन ।।
आजि कृष्णप्राप्तियोग्य हैल तोमार मन ।
वेद धर्म लङ्घि कैले प्रसाद भक्षण ।।
चै० च० म. ६. २१०-२१२

इतना कहकर प्रभुने निम्नलिखित भागवतके श्लोककी आवृत्तिकी ।

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमामां
नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ।।
श्रीमद्भागवत २. ७. ४२

श्लोकार्थ—जिनके प्रति भगवान् दया करते हैं, वे यदि कपटता-त्यागपूर्वक सर्वान्तःकरणसे उनके चरणकमलके आश्रित हों, तभी वे दुस्तर मायासे तर सकते हैं और उनके माया-विभवको जान सकते हैं, और कुत्ते-शृगालके भक्ष्य इस देहमें उनकी मैं-मेरापनकी बुद्धि नहीं रह जाती ।

प्रभु और सेवकमें प्रेम-नृत्य अभी चल ही रहा था । क्रमशः वे दोनों प्रेमावेशमें मधुर नृत्य करते-करते घरके बाहर आये । सार्वभौम भट्टाचार्यके जीवनमें यह प्रथम नृत्य था । प्रभुके भक्तगण उनकी नृत्यभङ्गिमा देखकर हँसने लगे । भक्तगणने देखा कि प्रसादान्न भोजन करनेके प्रमाणमें भट्टाचार्यको आज अपूर्व प्रेमभाव हो गया है । वे उन्मत्त होकर 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' बोल रहे हैं, और भुजाएँ ऊपर उठा कर नृत्य कर रहे हैं । बीच-बीचमें प्रभुके चरणोंमें गिरकर धूलमें लोट-पोट कर रहे हैं । उनके मनकी सारी जड़ता आज दूर हो गयी है । प्रभुकी कृपासे सब कुछ संभव है ।

नदियाके भक्तवृन्द सार्वभौमका नृत्य देखकर आनन्दित हो रहे हैं । गोपीनाथ आचार्य उनकी वैष्णवता देखकर 'हरि-हरि' ध्वनि करके हाथसे ताली बजाते हुए नृत्य करने लगे ।

उनके साथ सार्वभौम भट्टाचार्यका साले-बहनोईका सम्बन्ध है । उन्होंने उनके पास जाकर कानोंमें कहा, "भट्टाचार्य ! आप यह क्या कर रहे हैं ? आप जगत्-प्रसिद्ध पण्डित है । आपको क्या इस प्रकार नृत्य-कीर्तन शोभा दे रहा है ? लोग आपको क्या कहेंगे ? देखता हूँ आपका मान, गौरव, लज्जा-शर्म आदि सब चले गये हैं ।" यह बात गोपीनाथ आचार्यके हृदयकी बात नहीं थी, यह कृपालु पाठक वृन्द सहज ही समझ सकते हैं । वे कौतुक करके पण्डित-शिरोमणि अपने सालेकी भक्तिकी परीक्षा कर रहे हैं ।

सार्वभौम भट्टाचार्य अब भी प्रेमोन्मत्त थे । उन्होंने भावभङ्गीके साथ नृत्य करते करते उत्तर दिया, "हे आचार्य ! बाचाल लोग जहाँ तहाँ मेरी निन्दा करें तो करें, मेरा मान-गौरव जाय तो जाय, मैं अब उन बातों पर कान न दूँगा, दूसरोंकी बातका विचार न करूँगा । मैंने प्रभुके पाससे जो हरि-रस मदिरा प्राप्त की है, उसीसे मत्त होकर नाचूँगा, गाऊँगा, तथा भूतल पर लोट - पोटकर कृतार्थ हो जाऊँगा ।"

गोपीनाथ आचार्यकी परीक्षामें सार्वभौम भट्टाचार्य पूर्णरुपसे उत्तीर्ण हो गये, यह देखकर चतुर चूड़ामणि प्रभु कुछ मुस्कराये । उस हँसीका मर्म गोपीनाथ आचार्यने समझा । भक्तवृन्द आनन्द-पूर्वक हरिध्वनि करने लगे । सार्वभौम भट्टाचार्य नदियाके भक्तवृन्दको देखकर प्रेमानन्दमें अधिकतर उत्साहपूर्वक नृत्य करने लगे । तब सबने मिलकर उनको शान्त किया । प्रभु अब तक सार्वभौमके साथ नृत्य कर रहे थे । उनके प्रफुल्ल वदनमें आज हंसी नहीं रुकती थी । प्रेमानन्दमें नृत्य करते करते वे भक्तगणके साथ अपने वासा पर आये ।

सार्वभौम भट्टाचार्य अब घर पर स्थिर न रह सके। वे प्रातः कृत्य करके उसी समय प्रतिदिन श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने जाने लगे। आज वे एक भृत्यके साथ घरसे बाहर निकल कर श्रीमन्दिरके रास्ते न जाकर सीधे प्रभुके पास गये।

साथका भृत्य उनको उच्च स्वरसे कहता था, "जगन्नाथजीके श्रीमन्दिरका यह रास्ता नहीं है।" पर कौन उसकी बात पर कान दे? सार्वभौम भट्टाचार्य प्रेमोन्मत्त होकर अपने मनचोरके पास चले हैं। कृष्ण-प्रेमोन्मादिनी व्रजगोपिकाओंके समान वे अपने प्राण-कृष्णकी खोजमें मानो अभिसारमें निकले हैं। कौन उनकी गतिको रोकेगा? उन्होंने भली भाँति समझ लिया है कि नीलाचलके दारुब्रह्म अचल जगन्नाथ हैं, नदियाके अवतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु सचल जगन्नाथ हैं। इसी कारण आज वे अचल जगन्नाथको छोड़ कर सचल जगन्नाथको देखने चले हैं। रास्तेमें वे मन ही मन सोच रहे हैं कि, "गोपीनाथ आचार्यने जो कहा था, वह ध्रुव सत्य है। यह नवीन संन्यासी साक्षात् ईश्वर हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। ऐसी अद्भुत शक्ति मनुष्यमें संभव नहीं है।" ऐसा सोचते सोचते उन्होंने देखा कि गोपीनाथ आचार्य प्रभुके गृहद्वार पर उपस्थित हैं। उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अत्यन्त उत्कण्ठाके साथ पूछा, "प्रभु क्या कर रहे हैं? इस समय क्या उनका दर्शन प्राप्त होगा?" गोपीनाथ आचार्य हँसकर बोले, "प्रभु बैठे हैं, आप आइये।" इतना कहकर वे उनको हाथ पकड़कर प्रभुके पास ले गये। सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोले,

नानालीलारसवशतया कुर्वतो लोकलीलां
साक्षात्कारेऽपि च भगवतो नैव तत्तात्त्वबोधः।
ज्ञातुं शक्नोत्यहह न पुमान् दर्शनात् स्पर्शरत्नं
यावत् स्पर्शोज्ज्वलयति तरां लोहमावं न हेम॥

अपि च

स्वजनहृदयसद्मा नाथ पद्माधिनाथो
भुवि चरसि यतीन्द्रच्छद्मना पद्मनाभः।
कथमिह पशुकल्पास्त्वामनल्पानुभावं
प्रकटमनुभवामो हन्त वामो विधिर्नः॥

चै० च० ना० ६.३२,३३

श्लोकार्थ—श्रीभगवान् विविध लीलाके वश लौकिकी लीलारङ्ग किया करते हैं। अतएव उनका दर्शन करनेपर भी कोई उनके तत्त्वको नहीं जान सकता। जैसे पारस जब तक लोहेको सोना नहीं बना देता, तब तक उसको देखकर भी उसे कोई पहचान नहीं सकता।

हे पद्मनाभ! हे रमापते! आप अपने प्रियजनके हृदयको चुराकर कपट संन्यासीके वेषमें भूतलपर परिभ्रमण करते हैं। हे नाथ! मैं पशुतुल्य हूँ। तुम्हारे असाधारण प्रभावको कैसे समझूँगा? विधाता मेरे प्रति विमुख है।

प्रभुने सार्वभौमका सार्वभौमत्व एकबारगी हरण कर लिया है। वे दीनातिदीन भिखारीके समान जान पड़ते हैं। उनका विद्याभिमान, कुलगर्व सब चला गया है। उन्होंने प्रभुको निष्कपट होकर हृदयकी बातें कह दी। वे बोले, "हे प्रभु! तुम बड़े दयामय हो। तुम्हारे दयाकी सीमा नहीं है। मैं बड़ा अधम हूँ, इसीकारण आपको तर्क-वितर्कमें जीतनेका विचार किया था। मेरे जैसा अभागा जीव संसारमें कोई दूसरा नहीं है। मेरा मन बड़ा ही तर्कनिष्ठ है, क्योंकि मैं पण्डित हूँ, विद्याचार्यमें जीवन बिताया है। मैंने तर्क - वितर्क करके आपको जानना चाहा। आप भक्तवत्सल हैं। इसी कारण मेरे मनको समझकर तर्कयुद्धमें मुझको पराजित करके मेरे सामने स्वरूपमें प्रकट हुए हैं। प्रभो! आपको मैं और क्या कहूँ? मैं बड़ा ही अभागा हूँ। मेरी दुर्दशा देखकर अपने गुणसे आपने मुझपर कृपा की है। आपके दयामय नामका पूर्ण परिचय पाकर मैंने आपके चरण-कमलमें आश्रय लिया है,

अपने अभय चरणोंका आश्रय लेकर मेरी रक्षा करो।"

प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यकी बात सुनकर दोनों कानों पर हाथ रखकर कहने लगे, "भट्टाचार्य! आप कैसी उल्टी बात बोल रहे हैं। मैं आपके स्नेहका पात्र हूँ, कहाँ तो आपको चाहिये कि मुझको पुत्रवत् उपदेश दें, और कहाँ आप मेरी आत्म-स्तुति करके मेरा सर्वनाश कर रहे हैं।" सार्वभौम भट्टाचार्यको और कोई बात कहनेका मौका न देकर चतुर-शिरोमणि प्रभुने हरिकथाके प्रसङ्गमें उनको—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

इस श्लोकीकी व्याख्या करके सुना दी। सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके श्रीमुखसे व्याख्या सुनकर चमत्कृत होकर गोपीनाथ आचार्यकी ओर सजल नयनसे देखा। गोपीनाथ आचार्यने तब हँसते हुए कहा—"मैंने जो तुमको कहा था, वही हुआ।"

तब सार्वभौम भट्टाचार्य रोते-रोते उनको नमस्कार करके अत्यन्त विनयपूर्वक बोले—"आचार्य! तुम ही सूत्राधार हो! तुम प्रभुके परम भक्त हो। तुम्हारे सङ्ग-गुणसे प्रभुकी यह कृपा प्राप्त हुई है। तर्कशास्त्रका अनुशीलन करके मैं तत्त्वज्ञान-हीन हुआ था। मेरा हृदय लौह-पिण्डके समान कठिन था। तुम्हारे सङ्ग-लाभसे मैंने सब कुछ पा लिया। और कोई आशा मुझे नहीं है। तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ।" प्रभु दोनोंकी कथा-वार्ता सुन रहे थे। उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यके दैन्यको देखकर परम तुष्ट होकर आसनसे उठकर उनके पास आकर उनको प्रगाढ़ प्रेमालिंगन प्रदान कर कृतार्थ किया। प्रभुने उनको मधुर वचनसे कहा—"भट्टाचार्य! जाओ, अब श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन कर आओ।"

प्रभुके साथ कुछ देर तक कृष्ण कथाके प्रसङ्गमें लगकर उनको साष्टाँग प्रणिपात करके तथा गोपीनाथ आचार्यको नमस्कार करके सार्वभौम भट्टाचार्य पण्डित जगदानन्द और दामोदरके साथ जगन्नाथका दर्शन करके अपने घर आये। घर आकर प्रभुके लिए उत्तम-उत्तम प्रसाद दो ब्राह्मणोंके हाथ प्रभुके वासे पर भेज दिया, और तालपत्र पर दो श्लोक लिखकर जगदानन्द पण्डितके हाथमें देकर कहा—"पण्डित! यह प्रभुको देना।"

जगदानन्द और दामोदर पण्डित प्रसाद और सार्वभौमका पत्र लेकर प्रभुके घरपर आये। ताल-पत्र मुकुन्द दत्तके हाथमें पड़ा, उन्होंने दोनो श्लोक बाहर दीवालके भीतपर लिख रक्खा। उसके बाद जगदानन्द पण्डितने प्रभुके हाथमें वह पत्र दिया। प्रभुने पत्र पढ़कर तत्काल उसे फाड़कर फेंक दिया भाग्यवश मुकुन्द दत्तकी बुद्धिमानी काम आयी। जिससे प्रभुके भक्तोंने दीवालकी भीतपर लिखे उन दोनों श्लोकोंको कण्ठस्थ करनेका सुयोग और सौभाग्य प्राप्त किया था। नहीं तो यह अपूर्व श्लोकरत्न गौरभक्त वृन्दके चक्षुके गोचरीभूत नहीं होता। वे दोनों श्लोक इस प्रकार हैं—

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोग,
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी,
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥
कालान्नष्टं भक्तियोगंनिजं यः,
प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्य नामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे,
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः।

चै. चं. ना. ६. ४४, ४५

श्लोकार्थ—वैराग्य विद्या और निजभक्तियोगकी शिक्षा देनेके लिए श्रीकृष्ण चैतन्यरूपधारी एक सनातन पुरुष हैं, जो सर्वदा कृपा समुद्रके रूपमें विराजमान हैं, मैं उनके शरणापन्न होता हूँ। ४४

कालक्रमसे अपने भक्तियोगको नष्ट होते देखकर जो कृष्ण चैतन्य नामा परम पुरुष उसका पुनः प्रचार करनेके लिए आविर्भूत हुए हैं, उनके पादपद्ममें मेरा चित्तभृङ्ग गाढ़रूपसे लीन हो जाय। ४५

श्रीकविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइ दुइ श्लोक भक्तकण्ठमणिहार।
सार्वभौमेर कीर्ति घोषे ढक्कावाघाकार॥

चै. च. म. ६.२३०.

इसी समयसे सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके एकान्त भक्त होगये। श्रीश्रीमहाप्रभुके सिवा वह और कुछ नहीं जानते। श्रीकविराज गोस्वामीने लिखा है—

सार्वभौम हैला प्रभुर भक्त एकतान।
महाप्रभु बिने सेव्य नाहि जाने आन॥
'श्रीकृष्णचैतन्य शचीसुत गुणधाम'।
एइ ध्यान, एइ जप, लय एइ नाम॥

चै. च. म. ६. २३१, २३२

इसीको कहते हैं इष्टमें गाढ़ एकनिष्ठता। सार्वभौम भट्टाचार्यकी गौरांगैकनिष्ठता देखकर नीलाचलवासी सब लोग विस्मित हो उठे। महाराज प्रतापरुद्रके कानोंमें यह बात पहुँची। नीलाचलमें प्रभुके एकाधिपत्यका विस्तार हुआ। 'जय श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी जय'—ध्वनिसे दिगन्त कम्पित हो उठा। अचल जगन्नाथ सचल जगन्नाथके सामने निष्प्रभ होगये। करुणावतार श्रीगौरांग प्रभुने इस प्रकार भारतवर्षके सर्वप्रधान तात्कालिक पण्डित-शिरोमणि श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्यका केश पकड़कर उद्धार किया। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइ महाप्रभुर लीला सार्वभौम-मिलन।
इहा जेइ श्रद्धा करि करये श्रवण॥
ज्ञान-कर्म-पाश हैते हय विमोचन।
अचिराते पाय सेइ चैतन्यचरण॥

चै. च. म. ६. २६६, २६७

एक और अपूर्व लीलाकथा कहकर इस अध्याय को समाप्त करूँगा, इसके बाद एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके निकट जाकर उनको दण्डवत् प्रणाम और वन्दना करके श्रीमद्भागवतके निम्न-लिखित श्लोकका पाठ किया। यथा—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो,
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते,
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक॥

श्रीम. भा. १०. १४. ८.

श्लोकार्थ—जो तुम्हारी अनुकम्पा प्राप्तिकी आशासे अपने कर्मोंके अशुभ फल भोग करते हुए मन, वाक्य और शरीर द्वारा तुम्हारी भक्ति करते हुए जीवन यापन करते हैं, वे मुक्तिपदमें दायभाग, अर्थात् मुक्तिपद प्राप्त करते हैं।

इस श्लोकका पाठ करते समय सार्वभौम भट्टाचार्यने मुक्तिपदेके स्थान में "भक्तिपदे" शब्दका व्यवहार किया था। चतुर चूड़ामणि प्रभुने इस भ्रमके संशोधनके उद्देश्यसे उनसे कहा—"पाठ तो 'मुक्तिपदे' है, 'भक्तिपदे' क्यों पढ़ते हो? तुम्हारा क्या आशय है?"

प्रभुके इस प्रश्नका उत्तर सार्वभौम भट्टाचार्यने जो दिया, वह पूज्यपाद कविराज गोस्वामीकी भाषामें श्रवण कीजिये। यथा—

भट्टाचार्य कहे—मुक्ति नहे भक्ति-फल।
भगवद् विमुखेर हय दण्ड केवल॥
कृष्णेर विग्रह जेइ सत्य नाहि माने।
जेइ निन्दा युद्धादिक करे ताँर सने॥
सेइ दुइयेर दण्ड हय—ब्रह्मसायुज्य मुक्ति।
तार मुक्ति फल नहे—जेइ करे भक्ति॥
यद्यपि से मुक्ति हय पञ्च परकारा।
सालोक्य सामीप्य सारूप्यसार्ष्टि सायुज्य आर॥
सालोक्यादि चारि यदि हय सेवा-द्वार।
तबे कदाचित् भक्त करे अङ्गीकार॥
'सायुज्य' शुनिते भक्तेर हय घृणा भय।
नरक वाञ्छये तबु सायुज्य ना लय॥
ब्रह्मे ईश्वरे सायुज्य दुइत प्रकार।
ब्रह्म सायुज्य हैते ईश्वर सायुज्य धिक्कार॥

चै. च. म. ६.२३६-२४२

सायुज्य दो प्रकारका होता है—ब्रह्म-सायुज्य और ईश्वरसायुज्य। मायावादी वेदान्तियोंके मतसे जीवका चरम फल है ब्रह्मसायुज्य। पातञ्जलके मतसे

कैवल्य-अवस्था ईश्वर-सायुज्य है। इन दोनों सायुज्यमें ईश्वरसायुज्य अधिक निन्दनीय और घृणार्ह है। इतना कहकर उन्होंने श्रीमद्‌भागवतके इस श्लोककी आवृत्तिकी। यथा,

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

श्रीम. भा. ३.२९.१३

सर्वज्ञ प्रभुको सार्वभौम भट्टाचार्यकी इन भक्ति विषयक बातोंको सुनकर विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया—"हे भट्टाचार्य ! 'मुक्तिपदे' का पाठ बदलनेकी आवश्यकता नहीं थी। 'मुक्तिपदे' का अन्य अर्थ भी हो सकता है। मुक्ति जिनके पदे (चरणमें) अर्थात् जिनका चरणाश्रय करनेसे मुक्ति मिलती है, अथवा मुक्ति जिनके पदों (चरणों) का आश्रय किये हैं, वे ही हैं 'मुक्तिपद'। दोनों अर्थोंमें ही 'मुक्तिपद' शब्द साक्षात् ईश्वरको बताता है। यह एक अर्थ हुआ। और भी एक दूसरा अर्थ बनता है 'नवम पदार्थ' इत्यादि द्वारा। श्रीमद्-भागवत द्वितीय स्कन्ध, दशम अध्यायके प्रथम दो श्लोकोंमें दस पदार्थोंका उल्लेख है; इनमें-से नवम 'मुक्ति' एवं दशम 'आश्रय' है, अर्थात् दशम पदार्थ हुआ प्रथमोक्त ९ पदार्थोंका आश्रय, यह आश्रय पदार्थ है स्वयं श्रीकृष्ण। 'मुक्तिपद' शब्दके अन्तर्गत 'पद' शब्दका अर्थ है 'आश्रय' और मुक्ति है उक्त नवम पदार्थ; अतएव 'मुक्तिपद' शब्द का अर्थ हुआ—'मुक्तिके आश्रय है जो'—अर्थात् भगवान्।

प्रभुके श्रीमुखसे मुक्तिपदकी ऐसी सुन्दर व्याख्या सुनकर भी भक्तप्रवर सार्वभौम भट्टाचार्यका भक्ति-निष्ठ मन सुस्थिर न हुआ। उन्होंने पुनः हाथ जोड़ कर प्रभुके चरण-कमलोंमें निवेदन किया—"यद्यपि इन शब्दोंसे तुम्हारे द्वारा किये गये दोनों अर्थ भी ठीक बैठते हैं, तथापि इसमें आश्लिष्य दोष है। मुक्ति-शब्दसे सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य—ये पाँच प्रकारकी वृत्ति होती है, किन्तु शब्द सुनते ही सायुज्य मुक्तिकी बात ही मनमें आती है। मुक्ति शब्द कहनेसे मनमें घृणाका भाव होता है और यह भय होता है। भक्ति शब्द कहनेसे मनमें उल्लास होता है।"

चतुर चूड़ामणि श्रीगौर भगवान् अपने भक्तकी परीक्षा कर रहे थे। भक्तप्रवर सार्वभौम भट्टाचार्य परीक्षामें उत्तीर्ण होगये यह देखकर प्रभुने हँसकर उनको सुदृढ़ प्रेमालिंगनमें आबद्ध कर लिया। उपस्थित सब लोगोंने सार्वभौम भट्टाचार्यमें आश्चर्य-जनक परिवर्तन और अपूर्व वैष्णवता देखकर प्रभुको साक्षात् भगवान्‌के रूपमें विश्वास कर लिया।

इसके बाद राजगुरु काशीमिश्र नीलाचलवासी बड़े-बड़े पण्डित आदि आकर प्रभुके चरणोंमें आश्रय लेनेलगे। इस प्रकार हमारे सर्वेश्वर प्रभु नीलाचलमें जाकर बहुत थोड़े समय में अपने प्रभाव और प्रतिपत्तिका विस्तार करके सब लोगोंका मान हरण करने लगे।

—✲✲—

तीसरा अध्याय

नीलाचलमें भक्तवृन्दका आगमन

—※※—

एइ मते अल्पे अल्पे जत भक्तगण।
नीलाचले आसि सभे हइला मिलन ।।
—चै. भा. अं. ३.१७३

नीलाचलवासी भक्तोंकी मग्नता

नीलाचलमें जाकर प्रभुने सोचा था कि वे छिपकर रहेंगे। वे फाल्गुण मासमें नीलाचलमें पहुँचे थे। चैत्र मासमें उन्होंने सार्वभौम-उद्धार कार्य सम्पन्न किया। नवद्वीपके सार्वभौम भट्टाचार्यको सभी नीलाचलवासी जानते थे। वे दण्डी संन्यासियोंके वेदान्तशास्त्रके शिक्षा गुरु थे, महाराज गजपति प्रतापरुद्रके सभा पण्डित थे। श्रीश्रीजगन्नाथजीकी सेवा परिचर्याका सारा भार राजा प्रतापरुद्रने उनके ऊपर अर्पण किया था। इससे उनका सम्मान और भी बढ़ गया था। उन्होंने जब नदियाके ब्राह्मण-कुमारको साक्षात् ईश्वरके रूपमें स्वीकार किया, केवल स्वीकार ही नहीं किया, उनको सचल जगन्नाथ मानकर स्तव-स्तुति पूजा आदि करने लगे, तब दूसरे लोग यदि उनके द्वारा प्रदर्शित मार्गका अनुसरण करें तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? सार्वभौमके उद्धारके बाद प्रभु नृत्य कीर्तन रसमें मग्न हो गये। भक्तगणके साथ वे नीलाचलमें नित्य कीर्तन विहार करने लगे। प्रेमानन्दमें विभोर होकर वे दिन रात हरिसङ्कीर्तन रसमें मत्त रहते थे। कैसे रात-दिन निकल गये, उनको पता नहीं लगता था।

प्रभु जब नीलाचलमें रास्ते पर कीर्तन-रण-रंगमें मत्त रहते थे, तब उनकी अररूप रूपकान्ति देखकर नीलाचलवासी नर-नारीवृन्द आनन्दमें हरिध्वनि करके उनका जय गान करते थे। सभी उनको सचल जगन्नाथ कहते थे। ऐसा कोई आदमी न था जो उनके अपूर्व रूप-लावण्य और अद्‌भुत प्रेम-नृत्य-कीर्तन देखकर मुग्ध न होता हो। घर-द्वार भूलकर वे सदा प्रभुके साथ रहते थे, और उनका चन्द्रमुख देखकर प्राण शीतल करते थे।

जिस पथसे प्रभु निकल जाते थे, उसी ओर निरन्तर हरिध्वनि सुन पड़ती थी। जहाँ प्रभुपाद विक्षेप करते थे, उस परम पवित्र स्थानकी धूलि सब लोग उठा लेते थे। प्रभु के चरण-रजकी वहाँ लूट मच जाती थी। जो एक कण मात्रभी प्रभुकी चरणधूलि पाता, उसके आनन्दकी सीमा न होती।

नित्यानन्दका बलराम-विग्रहको पकड़ना

इस प्रकार प्रभु प्रेमानन्दमें नीलाचलमें रहते हैं, भक्तवृन्द उनको साथ लेकर परमानन्दमें दिन-रात नृत्यकीर्तन रसमें मग्न रहते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीगौर भगवान्‌के दक्षिण हाथ हैं। श्रीनिताई चाँद एक क्षणके लिए भी नवीन संन्यासीका संग नहीं छोड़ते। नीलाचलके लोग श्रीनित्यानन्द प्रभुको श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुका बड़ा भाई समझते थे। वे अवधूत वेषमें बाल्य-भावमें सब लोगोंके साथ मधुर लीलारंग करते थे। गौर प्रेममें वे दिन-रात मत्त रहते थे। एक स्थानमें स्थिर नहीं रह सकते थे। वे परम चञ्चलके समान सदा-सर्वदा सबके साथ हास्य कौतुक और क्रीड़ा रंगमें लगे रहते थे। वे जब श्री जगन्नाथजीका दर्शन करने जाते थे तो उनको पकड़े रखना कठिन हो जाता था। वे कूदकर श्रीविग्रहको पकड़ने जाते थे।

एक दिन वे सुवर्ण सिंहासन पर चढ़कर बलरामको आलिंगन करनेके लिए तैयार हो गये, श्रीजगनाथजीके सेवकोंने उनका हाथ पकड़ लिया। तत्काल श्रीनिताई चाँदने मत्तसिंहके पराक्रमसे उनको पकड़कर पाँच-सात हाथ दूर ढकेल दिया। भयसे फिर उनके पास आनेका उनको

साहस न हुआ। श्रीनिताई चाँद बलरामके गलेसे चन्दनमाला लेकर अपने गलेमें पहनकर हाथीके समान मत्त गतिसे हँसते-हँसते श्रीमन्दिरसे बाहर निकले। सेवक लोग उनके इस अद्‌भुत काण्डको देखकर मन ही मन सोचने लगे कि "इस अवधूतका देह मानुषी नहीं है। बलरामके विग्रहको स्पर्श करने पर क्या किसीका देह रह सकता है? मैं मत्त हाथीको पकड़ सकता हूँ, मेरे पकड़ लेनेपर क्या मनुष्य जा सकता है? ऐसा मैं दृढ़ हाथसे पकड़ने पर तृणके समान कहाँ जा गिरा।"

तबसे श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखते ही सेवकगण विनम्र वचनसे उनके साथ बातें करने लगे, और सदानन्द बाल-स्वभाव निताईचाँद परम प्रेमपूर्वक उनको प्रेमालिगन प्रदान कर कृतार्थ करने लगे।

नदियाके भक्त और परमानन्द पुरी

प्रभुको गृहत्याग किये तीन महीने हो गये, नदियाके केवल पाँच-सात एकान्त भक्त ही उनके साथ नीलाचल आये थे। अब एक-एक करके देशके अन्यान्य भागोंसे भी भक्तगण प्रभुका दर्शन करनेके लिए नीलाचल आने लगे। उत्कलके भक्तगण भी श्रीक्षेत्रमें आकर प्रभुसे मिले। सभी नीलाचलमें आकर प्रभुके चरणकमलका दर्शन करके कृतार्थ हो गये। उनके सारे दुःख दूर हो गये। कौन-कौन लोग आये, इसका विवरण श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी रचनामें देखनेमें आता है।

मिलिला प्रद्युम्न मिश्र—प्रेमेर शरीर।
परमानन्द रामानन्द—दुइ महावीर॥
दामोदर पण्डित—श्रीशङ्कर पण्डित।
कथोदिने आसिया हइला उपनीत॥
श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी—नृसिंहेर दास।
जाँहार शरीरे श्रीनृसिंह-परकाश॥
'कीर्त्तन बिहारी नरसिंह न्यासी रूपे।'
जानिआ रहिला आसि प्रभुर समीपे॥
भगवान्-आचार्य आइला महाशय।
श्रवणेओ जारे नाहि परशे विषय॥

चै. भा. अं. ३. १७५-१७९.

कुछ दिनके बाद श्रीपाद परमानन्द पुरी गोस्वामी प्रभुके दर्शनके लिए नीलाचलमें आये। वे अनेको तीर्थोंका भ्रमण करते हुए श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आये। परमानन्द पुरी गोस्वामी कृष्ण भक्तशिरोमणि श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोस्वामीके प्रिय शिष्य थे। गुरुजन समझकर प्रभुने उनको देखते ही आदरपूर्वक उठकर परम सन्तोषके साथ प्रेमावाहन किया। उनको पाकर प्रेमानन्दमें प्रभु आजानुलम्बित बाहुयुगल ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे हरिध्वनि करते-करते मधुर नयन-रञ्जन नृत्य करने लगे। आज प्रभुके आनन्दकी सीमा नहीं है। वे प्रेमानन्दमें नृत्य कर रहे हैं, और कह रहे हैं—

देखिलाम नयने परमानन्द पुरी॥
आजि धन्य लोचन, सफल आजि जन्म।
सफल आमार आजि हैल सर्व्वधर्म॥
प्रभु बोले "आजि मोर सफल संन्यास।"
आजि माधवेन्द्र मोरे हइला प्रकाश॥

चै. भा. अं. ३. १६१-१६३

प्रभु इतना कहकर परमानन्दपुरी गोस्वामीको एकबारगी गोदमें लेकर बैठ गये। उनके नयन जलसे पुरी गोसाईंका सर्वाङ्ग सिक्त हो गया। परमानन्द-पुरी प्रभुके चन्द्रवदनकी ओर एकटकसे देखने लगे। वे आत्म विस्मृत होकर प्रभुकी अपरूप रूपराशि अवलोकन करने लगे। प्रभुने जो कुछ कहा, उसे वे सुन न सके। वे एकबारगी परमानन्दमय हो रहे हैं। प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे वे प्रेममय तनु होकर जड़वत् निष्पन्द हो गये। मन ही मन समझ लिया कि यह नवीन संन्यासी उनके अभीष्ट देव हैं। सब तीर्थोंमें भ्रमण करके श्रीनीलाचलमें आकर उनको सर्वसिद्धि प्राप्त हो गयी। वे नीलाचलमें प्रभुकी सेवामें नियुक्त हो गये। प्रभुने उनको अपना पार्षद बना लिया।

स्वरूप दामोदर

तत्पश्चात् काशीधामसे स्वरूप दामोदर गोस्वामी आये। कुछ लोगोंका कहना है कि प्रभुके दक्षिण देशसे नीलाचल लौटते समय स्वरूप दामोदर गोस्वामी उनके साथ नीलाचलमें मिले। कुछ लोग

कहते हैं कि पहले ही आ चुके थे। यहाँ इस विषयकी आलोचना निष्प्रयोजन है। इस महापुरुषका कुछ परिचय सुनिये।

प्रभु जब नदियामें आत्मप्रकाश करके कीर्तनानन्दमें उन्मत्त थे, प्रेम मन्दाकिनीके स्रोतमें जब सारी नदिया तन्मय थी, उस समय नवद्वीपमें पुरुषोत्तम भट्टाचार्य नामक एक सुन्दर नवीन छात्र विद्याध्ययन करते थे। उन्होंने निमाई पण्डितकी अपूर्व पाडित्य प्रतिभा, तथा अपरूप रूप-छटा देखकर उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया था। श्रीगौरांगचरणमें आकृष्ट होकर वे नवद्वीपमें रहकर प्रभुकी कृपासे सर्वशास्त्र-पारंगत हो गये। नदिया-वासी भक्तोंके वे अतिशय प्रियपात्र थे। वे रूपवान् और गुणवान् पुरुष थे। उनके समान मधुर कण्ठ वाला नवद्वीपमें और कोई न था, उनके मधुर कण्ठसे कृष्ण संगीत सुननेका सभी आग्रह करते थे। प्रभुके साथ वे बातें करनेमें लज्जा करते थे। एकान्तमें आँखें भरकर उनका दर्शन करते थे। प्रभुको यदि वे क्षणमात्र भी न देख पाते तो व्याकुल हो उठते। वे उनके साथ-साथ फिरते थे।

प्रभुने जब गृहत्याग करके नदियावासीकी छातीमें शूल मारा तो वह शूल पुरुषोत्तमकी छातीमें दृढ़तर विद्ध हो गया। प्रभुके चले जाने पर नवीन युवक पुरुषोत्तम बिल्कुल ही विषण्ण हो उठे। उनका खाना-पीना बन्द हो गया, अध्ययन बन्द हो गया, इतना प्रिय उनका नवद्वीपवास अब अप्रिय हो उठा, इतनी प्रिय पुस्तकोंसे उनका मन उचट गया। वे गौर-शून्य नदियामें एक दण्ड भी रह न सके। प्रभुके ऊपर वे बहुत नाराज हुए, क्योंकि उन्होंने सबका माया-मोह छोड़कर, नवद्वीप छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लिया था। उनके मनमें मान हुआ, क्योंकि वे बिना कुछ कहे चले गये थे, कहाँ चले गये—यह भी पुरुषोत्तमको ज्ञात न हुआ। पुरुषोत्तमकी संसार-वासना दूर हो गयी। उनका नवद्वीपका वास उठ गया। उन्होंने भी नवद्वीप त्याग करके चुपचाप काशी धाममें जा करके मस्तक मुंड़ाकर संन्यास ग्रहण कर लिया। वे वैष्णव संन्यासी होकर श्रीकृष्ण-भजनमें प्रवृत्त हो गये। उनके इस संन्यासाश्रमका नाम हुआ—'स्वरूप दामोदर ब्रह्मचारी।'

काशीधाममें रहते समय स्वरूप दामोदरने सुना कि उनके अभीष्ट देव श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र नीलाचलमें प्रकट हुए हैं, सुनते ही अत्यन्त व्याकुल भावसे वे नीलाचलकी ओर चल पड़े। दिन-रातका ज्ञान न रहा। वे नवीन संन्यासी पैदल ही उस लम्बे रास्ते पर चल दिये। मत्त सिंहकी गतिसे वे थोड़े ही दिनोंमें नीलाचलमें जाकर उपस्थित हो गये। उनके नयनद्वयकी प्रेमाश्रुधारासे वक्षःस्थल प्लावित हो उठा, मुखमें अविराम कृष्णनाम चल रहा था, रास्तेमें किसीको देखते थे, उसीसे प्रेम-गद्‌गद कण्ठसे मधुर स्वरसे पूछते थे—"श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कहाँ रहते हैं?" श्रीनीलाचल धाममें संन्यासीका अभाव नहीं था। परन्तु इस नवीन संन्यासीको देखकर लोग उनके प्रति आकृष्ट होकर उनके साथ श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुके वासाकी ओर चले। प्रभु आसन पर बैठे थे, स्वरूप दामोदरने प्रेम-गद्‌गद कण्ठसे अपने स्वरचित श्लोकका पाठ करके महा अपराधीके समान प्रभुके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया—

हेलोद्धूनितखेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया
शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया।
शश्वद्भक्तिविनोदया समदया माधुर्यमर्यादया
श्रीचैतन्यदयानिधे तव दया भूयादमन्दोदया॥

चै. च. म. १०.३

श्लोकार्थ—हे श्री चैतन्य दयानिधे! जिसके द्वारा अनायास सब दुःख दूर हो जाते हैं, जो अत्यंत निर्मल है, जिसके द्वारा आनन्द प्रकाशित होता है, जिसके द्वारा शास्त्र-विवाद प्रशमित होता है, जिससे भक्तिरस प्रदान होता है, जिसके द्वारा चित्तमें उन्माद नामक सञ्चारी भाव अर्पित होता है, जिसके द्वारा निरन्तर भक्ति सुख प्राप्त होता है एवं जो मद नामक भावके साथ वर्तमान है, वही माधुर्य-मर्यादावश

समधिक प्रकाश-प्राप्त तुम्हारी दया (मेरे प्रति प्रकाशित) हो।

प्रभुने अपने श्रीकरकमलको फैलाकर गाढ़ प्रेमालिंगन प्रदान कर उनको कृतार्थ किया। दोनोंही प्रेमार्णवमें डूब गये। भक्तवृन्द इस अपूर्व दृश्यको देखकर प्रेमानन्दमें विभोर हो गये। कुछ देरमें आत्मसंवरण करके प्रभु बोले, "तुम आओगे—यह मैंने स्वप्नमें देखा था। अच्छा हुआ, तुम आगये, मानो मुझ अन्धेको दो नयन मिल गये।"

स्वरूप दामोदर यह बात सुनकर प्रेमानन्दमें व्याकुल होकर रो पड़े। प्रभुके कृपा वचन सुनकर उन्होंने उनके रक्त-चरणकमलको वक्षःस्थलमें धारण करके रोते-रोते गद्‌गद कण्ठसे उत्तर दिया—"प्रभु! मेरे अपराध क्षमा करना। तुमको छोड़कर मैं अन्यत्र चला गया, यह बड़ा प्रमाद हुआ। तुम्हारे चरणोंमें मेरा लेशमात्र भी प्रेम नहीं है। मैंने तुमको छोड़ दिया, लेकिन तुमने मुझे नहीं छोड़ा, कृपा-डोरीसे बाँधकर चरणों में बुला लिया।"

प्रभु और भृत्यमें इस प्रकार सस्नेह प्रेमालाप होनेके बाद श्रीगौर भगवान्‌ने अपने नीलाचलस्थ भक्तवृन्दके साथ स्वरूप दामोदरकी भेंट करा दी। श्रीनित्यानन्द प्रभुको जब स्वरूप दामोदरने दण्डवत् प्रणाम करके अभिवादन और वन्दना की तो दयालु निताईचाँदने उनको प्रेमालिंगन प्रदान कर कृतार्थ किया। एक-एक करके सब भक्तोंसे वे मिले। कृपालु प्रभुने उनको अन्तरंग पार्षद बना लिया। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य चरितामृतमें स्वरूप दामोदर का इस प्रकार परिचय दिया है—

कृष्णरस-तत्त्ववेत्ता—देह प्रेमरूप।
साक्षात् महाप्रभुर द्वितीय स्वरूप॥

चै. च. म. १०.१०६

परम भागवत भगवान् आचार्य

नीलाचलमें स्वरूप दामोदर गोस्वामी प्रभुकी सेवामें नियुक्त होगये। यहाँ उनके साथ परम भागवत भगवान् आचार्यकी विशेष मैत्री हो गयी। भगवान् आचार्य भी उसी समय नीलाचलमें आये थे, इस महापुरुषका कुछ परिचय सुनिये। श्रीचैतन्य चरितामृतमें लिखा है—

पुरुषोत्तमे प्रभुपाशे भगवान आचार्य।
परम वैष्णव तेँहो पण्डित अति आर्य्य॥
ताँर पिता—विषयी बड़—शतानन्द खान।
विषयविमुख आचार्य—वैराग्य प्रधान॥

चै. च. अं. २. ८३, ८७

शतानन्द खान बड़े लोग थे, धन-धान्यसे पूर्ण थे। उनके दो पुत्र थे—भगवान और गोपाल। शतानन्द खान बादशाहकी नौकरी करते थे। वहींसे उनको खान उपाधि मिली थी। वे कुलीन ब्राह्मण, उच्चवंशके पुरुष थे। उनके प्रथम पुत्र भगवान्‌ने विलासिता और ऐश्वर्यके गोदमें लालित पालित होनेपर भी बहुत थोड़ी अवस्थामें वैराग्यकी पराकाष्ठा दिखलायी थी। वे शास्त्र-चर्चा करके आचार्य उपाधि-धारी बने थे। उनके उत्कट विषय-वैराग्यको देखकर स्वरूप दामोदर गोस्वामी उनके साथ सख्यसूत्रमें आबद्ध हो गये। केवल इतना ही नहीं, वे एकान्त गौरभक्त थे। वे गौरांग-चरणके सिवा और कुछ जानते ही नहीं थे। कविराज गोस्वामीने उनके गुणका वर्णन करते हुए लिखा है—

"एकान्तभावे आश्रियाछेन चैतन्यचरण।"

चै. च. अं. २.८५

भगवान आचार्य बीच-बीचमें प्रभुको अपनी कुटी पर लेजाकर अपने मनकी साधसे उनको भिक्षा कराते थे। सार्वभौम आचार्यके समान वे प्रभुको भलीभाँति भोजन कराकर बड़ा सुखी होते थे। प्रभु भी उनके कुटीरमें निःसङ्कोच भोजन करते थे।

उनके कनिष्ठ भ्राता गोपाल काशीधामसे वेदान्तका अध्ययन पूरा करके अपने बड़े भाईके पास जब नीलाचलमें आये तो उन्होंने अपने प्रिय सखा स्वरूप दामोदर गोस्वामीसे एक दिन कहा—"भाई! गोपालके मुखसे वेदान्त भाष्य सुनोगे?" यह सुनकर स्वरूप गोस्वामी क्रुद्ध होकर बोले—

"मित्र ! क्या तुम पागल हो गये हो ? तुम्हारी विवेक बुद्धि क्या एकबारगी लोप हो गयी है ? मायावादी शङ्कर-भाष्य सुननेकी तुम्हारी प्रवृत्ति ही क्यों हुई ? यह वैष्णवोंके कानमें पड़ते ही वैष्णवताको दूर कर देगा। मायावादी लोग श्रीकृष्णको विग्रह नहीं मानते, अतएव वह वैष्णवके लिए श्रोतव्य नहीं है।" भगवान आचार्य और कोई बात नहीं कह सके, वे स्वरूप गोस्वामीके प्रियतम सखा थे।

प्रभुके भक्तवृन्द चारों ओरसे एक-एक करके नीलाचलमें आकर उनसे मिले। श्रीगौरांगप्रभु उनको साथ लेकर कीर्तनानन्दमें मग्न होगये। संकीर्तन यज्ञेश्वर श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र अपने अन्तरंग नित्यदासगणसे परिवेष्टित होकर जब नीलाचलके पथपर कीर्तन रण-रंगमें बाहर निकलते थे, तब नीलाचलवासियोंके आनन्दकी सीमा नहीं रहती थी। गृहकर्म और देहधर्म सब भूलकर उनके महा-सङ्कीर्तनमें योग देते थे। कीर्तन रणवीर प्रभु जब प्रबल हुङ्कार गर्जन करके अपने आजानुलम्बित बाहु युगलको ऊपर उठाकर 'हरि हरि' ध्वनि करते, उस समय सारा नीलाचल धाम प्रकम्पित हो उठता था। श्रीश्रीनीलाचल चन्द्र स्वर्णसिंहासन पर बैठकर श्रीमन्दिरमें अपने आप झूलने लगते थे। सब लोग प्रभुका जयगान करते थे।

कुछ ही दिनोंमें समस्त नीलाचलके लोग गौर-भक्त हो गये। प्रभुके वासस्थान पर लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी। रात-दिन नाना स्थानोंके लोग प्रभुका दर्शन करनेके लिए आते रहते थे। परन्तु प्रभु एकान्तमें रहना अधिक पसन्द करते थे। पर लोग इस बातको कहाँ समझते थे ? इसी प्रकार और भी कुछ दिन बीत गये। प्रभुने स्वेच्छासे समुद्र तट पर वासा किया। इसी समुद्र तटपर एक रम्य स्थानमें भक्तगणके साथ प्रभु दिन-रात कीर्तन रंगमें मत्त रहते थे। ठाकुर श्रीवृन्दावनदासने लिखा है—

सिन्धुतीरे स्थान अति रम्य मनोहर।
देखिया सन्तोष बड़ श्रीगौर सुन्दर॥
चन्द्रवती रात्रि, बहे दक्षिण पवन।
वैसेन समुद्रकूले श्रीशचीनन्दन॥
सर्व अङ्ग श्रीमस्तक शोभित चन्दने।
निरवधि 'हरे कृष्ण' बोले श्रीवदने॥
मालाय पूर्णित वक्ष—अति मनोहर।
चतुर्दिके बेड़िया आछये अनुचर॥
समुद्रेर तरङ्ग निशाय शोभे अति।
हासि दृष्टि करे प्रभु तरङ्गेर प्रति॥
गङ्गा यमुनार जल भाग्येर उदय।
एबे ताहा पाइलेन सिन्धु महाशय॥
हेन मते सिन्धु तीरे वैकुण्ठ-ईश्वर।
वसति करेन लइ सर्व अनुचर॥
सर्व रात्रि सिन्धुतीरे परम विरले।
कीर्तन करेन प्रभु महाकुतूहले॥

चै० भा० अं० ३-१९५-२०२

गदाधर पण्डित सर्वदा प्रभुके निकट रहते थे। एक दण्ड भी वे प्रभुका वियोग सहन नहीं कर सकते थे।

कि भोजने कि शयने किवा पर्यटने।
गदाधर प्रभुरे सेवेन सर्वक्षणे॥

चै० भा० अं० ३-२२०

गदाधर पण्डित प्रभुको भागवत पाठ करके सुनाते थे। गदाधरके मुखसे भागवत सुनकर प्रभु प्रेमानन्दसे मत्त होजाते। गदाधर पण्डित प्रभुके अत्यन्त प्रियतम थे। उनके वचन सुननेसे प्रभुको बड़ा आनन्द होता था। वे जहाँ जाते थे, गदाधरको साथ ले जाते थे। गौर गदाधरका यह अपूर्व प्रेम-भाव देखकर भक्तगणके मनमें बड़ा आनन्द होता था। गदाधरका सर्वदा सलज्ज भाव रहता था। वे मुँह उठाकर प्रभुसे भलीभाँति बातें नहीं कर सकते थे। प्रभुको उनका यह सलज्ज भाव बहुत अच्छा लगता था, तथा इसको लेकर वे उनके साथ मनोरञ्जन करते थे। फलतः गौर गदाधर जब एकत्र अवस्थान करते थे तो भक्तगणके मनमें होता था मानो उभय श्रीविग्रह एकीभूत होकर अपूर्व भाव-समष्टिको व्यक्त कर रहे हैं, एकका भाव दूसरेमें

ओतप्रोत होकर जड़ित है। भावनिधि श्रीगौर भगवान् भावमय गदाधरके साथ भाव-समुद्रमें डूबे रहते थे। उस प्रकारका अपूर्व प्रेमभाव किसीने कभी नहीं देखा। मधुर रसके भजनानन्दी अधिकारी रसिकवृन्द ही गौर-गदाधर लीलारंगको समझनेके एकमात्र अधिकारी थे।

पुरी गोस्वामीका कूप

पहले कह चुका हूँ कि श्रीपाद परमानन्द पुरी गोस्वामीके साथ प्रभुकी विशेष प्रीति थी। उन्होंने समुद्रके तीर एक कुटीरमें निवास किया था। प्रभु उनके निवास स्थान पर जाकर कृष्ण कथारंगमें बहुत समय बिताया करते थे। पुरी गोस्वामी भी एक दण्डके लिए भी प्रभुका संग नहीं छोड़ते थे।

"निरवधि पुरी सङ्गे थाके प्रभु रङ्गे।"

चै० भा० अं० ३.२२५

पुरी गोस्वामीने अपनी कुटीके पास एक कुआँ खोदा था। परन्तु उसका जल अच्छा नहीं निकला, इससे वे बहुत दुःखी हुए। अन्तर्यामी प्रभु यह बात जान गये। वे उनके बासे पर जाकर एक दिन बातों बातमें पुरी गोस्वामीसे पूछ पड़े—"आपके कुँएमें जल कैसा निकला है?' उन्होंने बहुत दुःखी होकर उत्तर दिया—

"प्रभु बड़ अभागिया कूप।
जल हैल जेन घोल कर्दमेर रूप॥"

चै० भा० अं० ३.२२८

प्रभु यह सुनकर हाय-हाय करने लगे। उन्होंने पुरी गोस्वामीको इसका कारण समझाते हुए कहा—

"जगन्नाथ कृपण हइला॥
पुरीर कूपेर जल परशिवे जे।
सर्व पाप थाकितेओ तारिबेक से॥
अतएव जगन्नाथ देवेर मायाय।
नष्ट जल हैल—जेन केह नाहिं खाय॥"

चै० भा० अं० ३.२२९-२३१

इतना कहकर प्रभु उठकर उस कूपके निकट गये और अपने आजानुलम्बित भुज युगलको ऊपर उठाकर बोले—

"महाप्रभु जगन्नाथ! मोरे एइ वर।
गङ्गा प्रवेशुक एइ कूपेर भीतर॥
भोगवती गङ्गा जेन बहे पातालेते।
ताँरे आज्ञा कर एइ कूपे प्रवेशिते॥"

चै० भा० अं० ३.२३३-२३४

भक्तवृन्द उच्च स्वरसे हरि-हरि ध्वनि करने लगे। पुरी गोस्वामी आनन्दसे अधीर होकर प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखते रह गये। उन्होंने देखा मानो साक्षात् जगन्नाथजी उनकी कुटिया पर आगये हैं। वे सोच रहे थे कि "आज हमारा बड़ा शुभदिन है। भक्तवत्सल भगवान् स्वयं हमारे दुःखको दूर करने आगये हैं।"

कुछ देरके बाद पुरी गोस्वामीको प्रेमालिंगन प्रदानकर कृतार्थ करके श्रीगौर भगवान् अपने वासे पर चले। भक्तवृन्द उनके साथ गये। ये सारी बातें सन्ध्याके प्राक्कालमें हुई। रात्रिकालमें सब लोग सोगये। गंगादेवी प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके पुरी गोस्वामीके कूपमें उसी रातको आविर्भूत हो गयीं। प्रातः उठकर सब लोगोंने देखा कि कूप निर्मल जलसे परिपूर्ण होगया है। सब लोग परम आनन्द-पूर्वक हरि-हरि ध्वनि करने लगे। पुरी गोसाईं प्रेमानन्दमें विभोर होकर बाह्यज्ञान शून्य होगये। सभी उस पवित्र कूपको प्रदक्षिणा करके हरि सङ्कीर्तन करने लगे। प्रभु यह समाचार पाकर भक्तगणके साथ वहाँ पुनः आये। कूपमें निर्मल जल देखकर उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वे सबको बुलाकर कहने लगे—

"शुनह सकल भक्तगण।
ए कूपेर जले कैले स्नान वा भक्षण॥
सत्य सत्य हैब तार गङ्गा स्नान फल।
कृष्णे भक्ति हैब तार परम निर्मल॥

चै० भा० अं० ३.२४२.२४३

प्रभुके श्रीमुखके इस मधुर वचनको सुनकर सब भक्तगण प्रेमानन्दमें उच्च स्वरसे हरिध्वनि करने लगे। पुरी गोस्वामीकी मनोवाञ्छा पूर्ण होगयी। भक्तके भगवान् श्रीश्रीगौरांग सुन्दरने भक्तके दुःखको

दूरकर दिया। पुरी गोस्वामीकी मनस्तुष्टिके लिए प्रभु उस कूपका जलपान करते थे और उससे स्नान करते थे।

वे भक्तगणसे कहते थे—

"आमि जे आछिये पृथिवीते।
जानिह केवल पुरी गोसाञिर प्रीते॥
पुरी गोसाञिर आमि—नाहिक अन्यथा।
पुरी बेचिलेइ आमि बिकाइ सर्वथा॥
सकृत जे देखे पुरी गोसाञिर मात्र।
सेहो हइबेक श्रीकृष्णेर प्रेमपात्र॥"

चै० भा० अं० ३-२४६-२४८

पुरी गोसाईंके कूपका जल निर्मल करके प्रभुने अपनी ऐश्वर्य लीलाका रंग दिखलाया। नीलाचलमें यह संवाद सर्वत्र प्रचारित होगया। इस लीलारंगमें श्रीगौरभगवान्ने अपने भक्तवात्सल्यका पूर्ण परिचय दिया था। भक्त दुःखहारी भक्तके भगवान्ने परम भक्त पुरी गोस्वामीके सब दुःखको हर लिया।

ये परमानन्द पुरी गोस्वामी मैथिल ब्राह्मण थे। श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीके शिष्य थे। प्रभुके गुरु श्रीपाद ईश्वरपुरीके गुरु भाई थे। वे नदियाके अवतार श्रीगौरांगप्रभुका नाम सुनकर उनको देखनेके लिए बहुत व्यग्र होगये थे। वे नवद्वीपमें भी गये थे। वहाँ जाने पर उन्होंने सुना कि नदियाके अवतार श्रीश्री-नवद्वीपचन्द्र संन्यास ग्रहण करके नीलाचल पर रहते हैं, अतः वे यहाँ आकर उनसे मिले। प्रभुके अग्रज श्रीश्रीमद्विश्वरूपप्रभुकी शक्ति उनमें निहित थी। ये सब बातें आगे लिखी जायँगी।

—※※—

चौथा अध्याय

सार्वभौम भट्टाचार्य, प्रभु और राजा प्रतापरुद्र

प्रभुकी दक्षिण देशकी यात्राकी तैयारी

—※※—

चैत्रे रहि कैल सार्वभौम—विमोचन।
वैशाख प्रथमे दक्षिण जाइते हैल मन॥

चै० च० म० ७.५

दक्षिण-यात्राका प्रस्ताव

नीलाचलमें प्रभुने श्रीश्रीजगन्नाथजीकी शुभ रथयात्राके दर्शन किये। इसीके लिए वे अत्यन्त उत्कण्ठित होकर संन्यास ग्रहण करके दौड़ते हुए नीलाचल आये थे। उनकी मनोकामना सिद्ध हो गयी। सार्वभौमके उद्धारका कार्य होगया। अनेका-नेक भक्तवृन्दके साथ मिलन हुआ। नीलाचलमें युगधर्म संकीर्तनका प्रवर्त्तन हुआ। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र हरिनाम-ध्वनिसे प्रखरित होउठा। उसी समय एकदिन करुणामय श्रीगौरांगप्रभु भक्तवृन्दको अपने मन्दिरमें बुलाकर परमस्नेहपूर्वक प्रेमालिंगन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए कहा—

"तोमा सभा जानि आमि प्राणाधिक करि।
प्राण छाड़ा जाय, तोमा छाड़िते ना पारि॥
तुमि सब बन्धु मोर—बन्धुकृत्य कैले।
इतां आनि मोरे जगन्नाथ देखाइले॥
एवे सबा स्थाने मुजि मागों एक दाने।
सबे मेलि आज्ञा देह—जाइब दक्षिणे॥
सेतुबन्ध हैते आमि ना आसि यावत।
नीलाचले तुमि सब रहिबे तावत॥"

चै० च० म० ७.७-९.११

प्रभुके श्रीमुखसे यह दारुण वार्त्ता सुनकर भक्तवृन्दका मुँह सूख गया। उनके सिरपर मानो

वज्रपात हुआ। श्रीनित्यानन्द प्रभुने मर्मान्तिक व्यथा पाकर कातर स्वरसे प्रभुसे पूछा—"आपको क्या दुःख है जो नीलाचल धाम छोड़ना चाहते हैं ? दक्षिण देशमें क्यों जायँगे ? आपने तो नीलाचलमें रहनेकी बात कही थी।"

प्रभुने अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुके मनके दुःख-को समझा। परन्तु वे आनन्द लीलारसमय विग्रह थे। लीला प्रकट करनेके लिए उनका इस धरा-धाममें आविर्भाव हुआ था। वे लीलामय थे। लीला-मयके लीलारंगके रहस्यको कौन समझेगा ? प्रभुने कुछ गम्भीर भावसे उत्तर दिया—"मैं अपने अग्रज श्रीमद्विश्वरूपके खोजमें दक्षिण देशके भ्रमणमें जाऊँगा। इतने दिन तक मैं संसारमें आबद्ध था, वे बहुत दिनोंसे अज्ञातभावमें घूम रहे हैं, उनका पता नहीं लगा पा रहा हूँ, इस दुःखसे मुझे मार्मिक व्यथा होती है। अब मैं अपने कर्त्तव्य-कर्मका अवश्य पालन करूँगा, मैं अकेले जाऊँगा, किसीको भी साथ न लूँगा।"

प्रभुकी बात सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु हतबुद्धि होगये। उनकी अन्तिम बात बहुत ही आशङ्काजनक थी। प्रभुने कहा है, वे एकाकी जायँगे। श्रीनित्यानन्द प्रभु जानते थे कि प्रभु जो बोलेंगे, उसे अवश्य करेंगे। वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं, इच्छामय हैं। उनको कौन बाधा दे सकता है ? तथापि श्रीनिताईचाँदने मन ही मन एक उपाय सोचा। उन्होंने देखा कि प्रभुको अकेला जानेमें बड़ी विपद् है। आत्म-प्रेममें विभोर होकर उन्मादीके समान वे रास्ते पर चलेंगे। कौन उनके करंग-कौपीन वहिर्वासको लेकर जायगा ? कौन उनको भिक्षा करायेगा, कौन उनकी सेवा-शुश्रूषा करेगा ?" यह सोचकर वे स्नेहमयी वाणीमें विनय करते हुए बोले—"हे प्रभु अकेले जानेके लिए कहते हो, यह तो ठीक बात नहीं है। रास्तेमें तुम्हारी देखभाल कौन करेगा ? तुम्हारे दो-एक भक्त तो तुम्हारे साथ जायँगे ही। तुम जिसको कहोगे, वही जायगा। प्रभुने सिर हिलाकर साङ्केतिक उत्तर देते हुए कहा—"ना !"

अवधूत श्रीनित्यानन्दको तब बड़ा क्रोध हुआ। परन्तु उन्होंने उसे प्रकट नहीं किया। मनके क्रोधको मन-ही-मनमें रखकर प्रभुसे विनयपूर्वक कहा—"हे प्रभु ! इन सब कामोंमें जिद् करना ठीक नहीं। तुम्हें रास्तेमें कष्ट होगा। मैं दक्षिण देशके सारे तीर्थोंका रास्ता जानता हूँ। तुम कृपा करके आज्ञा दो, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।"

चतुर चूड़ामणि प्रभुने तब छल धारण किया। वे अपने अग्रजकी सिद्धि-प्राप्तिका समाचार पा गये थे। वे दक्षिण देशका उद्धार करने जाना चाहते थे। अग्रजका पता लगानेकी बात तो एक उनका बहाना मात्र था। वे बोले—"मैं अकेला जाऊँगा किसीको साथ न लूँगा।" श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनको समझानेकी चेष्टा की, कि उनको अकेले नहीं जाना पड़ेगा, साथमें दो एक आदमीको ले जाना ही पड़ेगा, अन्य किसीको साथ न लो, पर वह तो जाँयगें ही, क्योंकि उनको दक्षिणदेश तीर्थ-पक्ष ज्ञात हैं।

चतुर शिरोमणि प्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुके मुखकी ओर करुण नयनसे देखकर कहा—"तुम सूत्रधार हो, मैं तुम्हारे हाथकी कठपुतली। जैसे नचाओ, वैसे मुझे नाचना पड़ता है। संन्यास लेकर मैं वृन्दावन जाना चाहता था, तुम मुझे अद्वैत-भवन ले गये। नीलाचल आते समय मार्गमें मेरा दण्ड भङ्ग कर दिया। तुम्हारे गाढ़ स्नेहके कारण मेरी सब योजना चौपट हो जाती है।"

प्रभुके श्रीमुखकी इस बातका कुछ विचार करना चाहिये। सबसे पहले प्रभुने श्रीनित्यानन्द तत्त्वका प्रचार करते हुए सबके सामने कहा कि "मैं नर्त्तक हूँ तुम सूत्रधार हो।" इससे प्रभुने यह समझा दिया कि श्रीनित्यानन्द प्रभु उनकी इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्ति हैं। पश्चात् दृष्टान्त द्वारा इस तत्त्वको भलीभाँति भक्तगणको समझाया। वे संन्यास लेकर श्रीवृन्दावन जा रहे थे, श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनको भुलावेमें डालकर शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत भवनमें ले जाकर पहुँचा दिया। क्योंकि प्रभु उनके हाथकी कठपुतली थे। फिर नीलाचलके मार्गमें जाते समय प्रभुके सर्वस्व धन संन्यासाश्रमके दंडको श्रीनित्यानन्द प्रभुने अकारण ही भंग कर दिया था। पूछने पर बोले थे—"बाँसको तोड़ दिया है, इससे क्या हानि

हुई है ? इसको ढोनेमें आपको कष्ट होता, इसी कारण मैंने तोड़कर फेंक दिया।" यह बात प्रगाढ़ स्नेह सूचक है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु इससे प्रभुके अवतार ग्रहण करनेका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। इसीसे उन्होंने ब्याज स्तुतिके रूपमें कहा—"तुम सबके गाढ़ स्नेहके कारण मेरी सब योजना चौपट हो जाती है।"

प्रभु स्वतन्त्र ईश्वर हैं, वे इच्छामय हैं। उन्होंने इच्छा करके अपने दण्डको श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा भंग कराया था। क्यों भंग कराया, इसका कुछ आभास प्रभुकी नवद्वीपलीलामें आ चुका है। यहाँ इस कार्यके लिए प्रभु अपनी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति श्रीनित्यानन्द प्रभुको दोष दे रहे हैं, दोष-दृष्टि केवल छलना है। वे तो परम दयालु श्रीनिताईचाँदका गुण ही गाते हैं। उनकी स्नेह रज्जुसे प्रभु किस प्रकार आवद्ध हैं, यह बतलानेके लिए ही उन्होंने ये सारी बातें कह डाली हैं। इसमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका गुण कीर्तन ही किया गया है। फिर भी यह कहा गया है कि प्रभुका कार्य बिगाड़ने वाले वही एक आदमी हैं। इसी कारण वे उनको अपनी दक्षिण देशकी यात्राका साथी नहीं बनाना चाहते।

प्रभु अपने अग्रज श्रीमद्विश्वरूप प्रभुकी खोजमें जा रहे हैं, यह बड़ा गूढ़ कार्य है। कहीं निताई-चाँद प्रभुको भुलाकर अन्य कार्यका व्रती न बना दें, इस आशंकासे वे उनको साथ लेना नहीं चाहते। इसके भीतर एक और गूढ़ बात है। श्रीमद्विश्वरूप और श्रीनित्यानन्द अभेदतत्त्व हैं। यह सर्वज्ञ प्रभुको अविदित नहीं है। श्रीमद्विश्वरूप प्रभु श्रीपाद ईश्वरपुरी गोस्वामीको निज शक्ति प्रदान करके अन्तर्तित हुए थे। पूना नगरके निकट पाण्डुपुर तीर्थमें अठारह वर्षकी अवस्थामें वे अन्तर्धान होगये थे। श्रीपाद ईश्वरपुरी जब अन्तर्धान हुए, श्रीश्री-मद्विश्वरूपकी शक्ति श्रीनित्यानन्द प्रभुके शरीरमें प्रवेश कर गयी। प्रभुने निताईचाँदको संगमें नहीं लिया, क्योंकि उनकी अग्रजके खोजकी बात एक बहाना मात्र थी। उनके अग्रज उनके पास थे, उनका संग नहीं छोड़ा था।

और भी एक बात है, श्रीनित्यानन्द प्रभुके नीलाचलमें नहीं रखने पर उनका गुणगान कौन करेगा ? उन्होंने नीलाचल धाममें वास करनेकी प्रतिज्ञा की थी। सभी भक्तवृन्द इसी कारण अपनी घर-गृहस्थी छोड़कर नीलाचलमें उनके पास आये हैं, उनको न देखकर उनका हृदय व्यथित हो जायगा। भक्तवृन्द श्रीनित्यानन्द तत्त्वसे विशेष परिचित हैं। श्रीश्रीगौरनिताई अभेद तत्त्व हैं, यह प्रभुने ही कृपा करके अनेक बार उनको समझा दिया है। प्रभु दक्षिणमें भ्रमणके लिए जाँयगे, श्रीनिताई-चाँद श्रीक्षेत्रमें रहेंगे, भक्तवृन्दकी गौरविरहज्वाला निवारण करनेके लिए दयालु श्रीनिताईचाँदके सिवा और कौन था ? इसीकारण प्रभुने उनसे कहा कि "मैं आपको साथ न ले जाऊँगा।" और उनको दोष दिया कि "आप लोगोंके प्रेमभावसे ही मेरे सारे काम बिगड़ गये।"

श्रीनित्यानन्द प्रभु इस बातका और क्या उत्तर देते ? वे सिर झुकाये बैठे रहे। अपना दुःख वे आप ही जानते थे। प्रभु अकेले दक्षिण देशके भ्रमणार्थ जाँयगे, उनको साथ नहीं लेंगे, रास्तेमें उनकी देख-भाल कौन करेगा ? प्रेमोन्मत्त होकर जब वे भूतल पर पछाड़ खाकर गिरेंगे, तब उनको कौन पकड़ेगा ? शचीमाताके अनुरोधकी वे कैसे रक्षा करेंगे, इस दुःखसे उनका हृदय टूक-टूक हो गया।

प्रभुका उस समय ऐश्वर्य भाव था। वे स्वतन्त्र ईश्वर थे, किसीके मुखापेक्षी नहीं थे, यह समझानेके लिए उन्होंने यह लीला रंग प्रकट किया—उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभुको लक्ष्य करके पुनः कहा—"श्रीपाद ! आपने जो कहा है कि मेरे साथ जानेके लिए आदमी देंगे, तो मैं किसको साथ ले जाऊँगा ? ये जो जगदानन्द, मुकुन्द, दामोदर आदि हैं, ये हमारे बड़े ही आत्मीय जन हैं, परन्तु इनके मुँह पर कहता हूँ कि इनको साथमें लेने पर मेरा कार्य सिद्ध न होगा। तुम्हारे समान ये लोग मेरे प्रति स्नेहके वशमें होकर मेरा सब काम बिगाड़ देंगे।

यह जो जगदानन्द पण्डित हैं, इनकी बात कहता हूँ, सुनो—"ये मुझे विषय भोगवाना चाहते हैं। ये जो कहते वही डरके मारे करना पड़ता है। इनकी बात न मानों तो बात करना छोड़ देंगे। इनको मैं साथ लेकर क्या करूँगा। इनके क्रोध और अभिमान को शान्त करनेमें मेरा सारा दिन चला जायगा। मेरा अपना काम बिगड़ जायगा।"

मुकुन्ददत्त खड़े हैं, इनकी बात भी सुनलो—"मैं संन्यासी हूँ, मेरा दुःख सहन करना ही धर्म है। मैं भिखारी हूँ, मेरा धर्म भिक्षावृत्ति है। इसमें दुःख करनेसे कैसे चलेगा? मुकुन्दका दुःख देखकर मेरा कलेजा फट जाता है, वह चुपचाप रहते हैं, कोई बात नहीं करते। परन्तु इनके मलिन और उदास मुँहको देखकर ही मैं इनके मनके भावको जान जाता हूँ। इनके उदास मुँहको देखकर मैं सारा धर्म-कर्म भूल जाता हूँ। इनको साथ लेकर मैं अपने व्रतसे हीन हो जाऊँगा।"

यह जो दामोदर ब्रह्मचारी है, इनकी बात कहता हूँ सुनो—

"आमि तो संन्यासी,—दामोदर ब्रह्मचारी।
सदा रहे आपार ऊपर शिक्षा दण्ड धरि॥
इँहारे आगे आमि ना जानि व्यवहार।
इँहार ना भाय स्वतन्त्र चरित आमार॥
लोकापेक्षा नाहि इहाँर कृष्णकृपा हैते।
आमि कभू लोकापेक्षा ना पारि छाड़िते॥

चै. च. म. ७.२४-२६

"यह जो दामोदर पण्डित है, यह हमारे प्रति दण्ड हाथमें लिये रहते हैं। मैं अब संन्यासी हो गया हूँ, पहिले मैं संसारी गृहस्थ था। सारे नियमोंका पालन करना मेरे वशका नहीं है। यथासाध्य नियम पालन करता हूँ। यदि कभी कोई त्रुटि होती है, तो ये मेरे ऊपर खड्गहस्त हो जाते हैं। इनका उद्देश्य अति उत्तम है, यह मैं जानता हूँ; परन्तु इतने नियमोंके बन्धनमें मैं नहीं पड़ सकता। यह इनको अच्छा नहीं लगता। मेरे संन्यास धर्मकी रक्षा कैसे हो, इसके लिए यह विशेष उद्विग्न रहते हैं। इनके वाक्य दण्डसे मैं ठीक धर्म-पथपर चल रहा हूँ। यह मैं सबके सामने कहता हूँ। परन्तु इतने कठिन नियममें मैं बँधा नहीं रह सकता। कृष्णकी कृपासे इनको लोकापेक्षा कुछ भी नहीं है। परन्तु मैं इसको छोड़ नहीं सकता। अतएव इनको साथ लेनेसे मेरा अपना काम न होगा।"

नदियाके सारे भक्तवृन्द वहाँ उपस्थित थे। प्रभुके श्रीमुखकी यह सारी कृपा-वाणी सुनकर सबने दुःख और लज्जासे अपना मुँह झुका लिया। सबकी आँखों से झर-झर अश्रुधारा बहने लगी। श्रीनित्यानन्द, जगदानन्द पण्डित, दामोदर पण्डित, और मुकुन्द तो सिरपर हाथ रखकर बैठ गये। वे सोचने लगे कि प्रभुके चरणोंमें वे अपराधी हैं, अब उनका जीवित रहना व्यर्थ है।

विशेषतः अभिमानी जगदानन्दको बड़ा रोष हुआ। वे मुँह फिराकर भूतल पर बैठकर नखके अग्रभागसे जमीन खोदने लगे। उनके नयन जलसे वक्षःस्थल निमज्जित हो रहा था। वे मन ही मन सोच रहे थे—"मैं क्या करूँ? प्रभु तो मेरी बात सुनेंगे ही नहीं। सार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा एक बार अनुरोध कराकर देखूँ शायद प्रभु मुझको अपने साथ ले लें। प्रभुको प्रयत्न करके भिक्षा कौन करायेगा? रातमें उनके पास कौन सोयेगा? जगदानंद प्रभुके अभिमानी भक्त थे। वे सत्यभामाके अवतार थे। प्रभुके साथ उनकी अतिनिगूढ़ लीलाकी बातें यथास्थान लिखी जायगी।

दामोदर पण्डित चाहते थे कि नवीन संन्यासी प्रभुके संन्यास धर्मकी रक्षा कैसे होगी? वे अत्यन्त निरपेक्ष आदमी थे। इसी कारण वे प्रभुको धर्मरक्षा करनेके लिए बीच-बीचमें वाग्दण्ड देते थे। दामोदर पण्डितके वाग्दण्डकी लीलाकथा पीछे आयगी।

इन चारों आदमियोंने प्रभुसे बहुत विनती की। परन्तु स्वतन्त्र ईश्वर श्रीगौर भगवान् कदापि उनका अनुरोध स्वीकार करनेके लिए तैयार न हुए। तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने डबडबायी आँखों से कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा! हम लोगोंको चाहे जैसा दुख-सुख हो, तुम्हारी इच्छा ही हमारा कर्त्तव्य है। फिर भी एक निवेदन फिर करता हूँ, विचार करके

उसको स्वीकार करो। तुम्हारे साथ केवल कोपीन, बहिर्वास और जलपात्र होंगे। तुम्हारे दोनों हाथ नाम गिननेमें लगे रहेंगे। जब तुम प्रेमावेशमें रास्तेमें अचेतन हो जाओगे, तब इन सब सामग्रीको कौन सम्हालेगा? कृष्णदास नामका यह सरल ब्राह्मण है, इसको साथमें लेलो, इतना ही हमारा निवेदन है। केवल यह तुम्हारे वस्त्र और जलपात्र रखेगा, और कुछ नहीं बोलेगा, तुम्हारी जो इच्छा हो सो करते रहना।"

अन्तिम बात श्रीनित्यानन्द प्रभुने बड़े दुःखसे कही। वे बोले—"कृष्णदास सरल ब्राह्मण हैं, वे तुम्हारे साथ जाँयगे। तुम जो कुछ कहोगे, उसमें वे मीन-मेष नहीं करेंगे।" प्रभुने अपने विरह सन्तप्त भक्तवृन्दकी मनस्तुष्टिके लिए कृष्णदासको साथ ले जाना स्वीकार कर लिया। प्रभुके इस कार्यसे भक्त-वृन्दका मन कुछ शान्त हुआ। प्रभुकी दक्षिण-यात्राके संगी कृष्णदासका यहाँ कुछ संक्षिप्त परिचय सुनिये।

काला कृष्णदास

इस कृष्णदासको लोग 'काला' कृष्णदास कहकर पुकारते थे, क्योंकि वह कानसे कुछ ऊँचा सुनते थे। उन्होंने विशुद्ध विप्रकुलमें जन्म ग्रहण किया था। उनका जन्म-स्थान श्रीपाट काटोया (कण्टक नगरी) के निकटवर्ती आकाइहाट गाँवमें था। वैष्णव वन्दनामें कहते हैं। "आकाइहाटेर वन्दों कृष्णदास ठाकुर।" ये महापुरुष श्रीनिताईचाँदके श्रीपदपंकजके सिवा और कुछ नहीं जानते थे।

वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके मन्त्रशिष्य थे तथा विशेष प्रियपात्र थे। सेवाकार्यमें वह विशेष पटु थे। इसी कारण श्रीनिताईचाँदने उनको दक्षिण-देश भ्रमणमें प्रभुका संगी निर्वाचित किया। श्रीगौरांग प्रभु उनपर विशेष कृपा करते थे। श्रीचैतन्य भागवतकारने लिखा है—

प्रसिद्ध कालिया कृष्णदास त्रिभुवने।
गौरचन्द्र लभ्य हय जाँहार स्मरणे॥

चै. भा. अं. ६.१०५

काला कृष्णदास ठाकुर अति सुन्दर पुरुष थे। उनके समान सरल हृदय विप्र नीलाचलमें और कोई नहीं था। उनके मनमें किसी प्रकारका विरुद्ध भाव दृष्ट नहीं होता था। उनको जो आदमी जो कुछ कहता, सरल विश्वासके ऊपर निर्भर करके वे उसीपर विश्वास कर लेते थे। इससे बीच-बीचमें उनपर विपद् आती थी। प्रभुके साथ नीलाचलके मार्गमें भी उन पर विपद् आयी थी।

श्रीगौरांग लीलाके द्वादश गोपालमें काला कृष्ण-दास ठाकुरका नाम देखनेमें आता है। वे पूर्वलीलामें व्रजके लवंग सखा थे। यथा—

"काला कृष्णदासः स यो लवंग सभा व्रजे।"

श्रीगौरगणोद्देश दीपिका।

इस महापुरुषके वंशज आजकल पावना जिलाके* बेड़ा सोनातलि ग्राममें रहते हैं। इनके उपयुक्त वंशज परम श्रद्धास्पद श्रीविजय गोविन्द गोस्वामीने अपने पूर्वजोंका कुछ वंश-परिचय हमको लिखकर भेजा था।

भट्टाचार्यके यहाँ प्रभु

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी बात मानकर काला कृष्णदासको साथ लेकर जाना अंगीकार करके भक्तवृन्दके साथ प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यके घरकी ओर चले। पण्डित जगदानन्द सबके पहले जाकर सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रभुकी दक्षिण यात्राका संवाद देकर बोले—"भट्टाचार्य महाशय! आप कृपा करके प्रभुको कहें कि वे मुझको साथ लेलें। वे कह रहे हैं कि अकेले जायँगे। किसीको भी साथ नहीं लेंगे।"

सार्वभौम भट्टाचार्यने जगदानन्दकी इस बातका उत्तर नहीं दिया। वे प्रभुकी अनुपस्थितिमें कैसे जीवन धारण करेंगे, यही सोचकर व्याकुल हो गये। उसी समय प्रभुने स्वजन वृन्दको साथ लेकर हरेकृष्ण उच्चारण करते हुए उनके घर पदार्पण किया। सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुको साष्टांग प्रणाम करके

* पवना जिला अब बँगला देशके अन्तर्गत है। अब किसीका कोई पता नहीं।

प्रकाशक

बैठनेके लिए दिव्य आसन प्रदान किया। प्रभुने उनको प्रेमालिंगन प्रदान कर कृतार्थ किया। भक्त-गण प्रभुको घेरकर बैठ गये। प्रभुने पहले कृष्णकथा-से श्रीगणेश किया। सार्वभौम भट्टाचार्यका वदन उदास देखकर सर्वज्ञ प्रभुने एक बार जगदानन्दकी ओर देखा। जगदानन्द सिर नीचा करके बैठे हुए थे। अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान्‌ने सबकुछ जान लिया।

प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यसे बोले—"भट्टाचार्य, अपने अग्रजकी खोजमें मैंने दक्षिण देशके भ्रमणका विचार किया है। आपकी अनुमति लेनेके लिए आया हूँ। यदि प्रसन्नता पूर्वक आप मुझको अनुमति दें तो मैं स्वच्छन्द होकर घूमकर नीलाचल लौट आऊँ।"

सार्वभौम भट्टाचार्यके सिर पर मानो वज्र पड़ गया। वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर कुछ देर जड़वत् निश्चेष्ट हो गये। पश्चात् प्रभुकी कृपासे आत्म-संवरण करके उनके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते बोले—"बहुत जन्मोंके पुण्यसे तुम्हारा संग मिला था, अब मालूम होता है विधाता उसको नष्ट करना चाहता है। सिरपर वज्रपात हो जाय, पुत्र मर जाय, उसको भी सहन किया जा सकता है, लेकिन वियोग नहीं सहा जा सकता। तुम स्वतन्त्र ईश्वर हो, जानेका संकल्प कर लिया है, तो कौन तुमको रोक सकता है। यदि कुछ दिन ठहरकर जाओ तो अच्छा हो।"

सार्वभौम भट्टाचार्यके एकमात्र पुत्र थे चन्दनेश्वर। वह अनायास प्रभुसे बोल उठे—"यदि मेरा चन्दनेश्वर मर जाय तो इसको भी मैं सहन कर सकता हूँ, परन्तु आपका वियोग मेरे लिए असह्य हो जायगा।" श्रीगौरांग-प्रेम जालमें आवद्ध होकर उन्होंने दुर्जय पुत्र-शोकको तुच्छ समझा। इसकी अपेक्षा गौराङ्गैकनिष्ठताका उत्कृष्ट परिचय और कहाँ पाया जा सकता है? धन्य हैं सार्वभौम भट्टाचार्य! धन्य है आपका अपूर्व गौरानुराग! आपके चरण-रेणुके कणमात्रके लिए प्रार्थी इस अधम अकृती ग्रन्थकारके प्रति एक बार कृपा दृष्टि डालो। आपकी कृपा होने पर प्रभुकी कृपा होगी, यह ध्रुव सत्य है। आप गौरभक्त चूड़ामणि हैं। गौराङ्गके चरणोंमें आपकी एकनिष्ठ भक्ति है। इसका प्रमाण विभिन्न ग्रन्थोंमें पद-पदपर प्राप्त होता है। मैं उन सब अपूर्व लीला कथाओंका यथास्थान अनुशीलन और आस्वादन करके आत्मशोधन करूँगा।

सार्वभौम भट्टाचार्यकी दुःखकथा सुनकर करुणा-मय प्रभुका कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई। कुछ देर चुप रहकर भक्त-दुःख-कातर श्रीगौराङ्ग प्रभुने स्नेह पूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्यके अङ्गको अपने पद्महस्तसे स्पर्श करते हुए मुस्कराकर कहा—"भट्टाचार्य! आप विज्ञ हैं, विच-क्षण और बुद्धिमान् हैं। इस साधारण बातसे आप इतने कातर क्यों हो रहे हैं? मैं अभी कुछ दिन यहाँ रहूँगा, सदा आपका सङ्ग पाकर सुखी होऊँगा। कुछ दिनके लिए मैं दक्षिण देशमें जाता हूँ, सेतुबन्ध-पर्यन्त जाऊँगा, आप लोगोंके आशीर्वाद और कृष्णकी कृपासे शीघ्रही लौट आऊँगा। आप चिन्ता न करें।" यह कहकर प्रभु उसको आश्वासन देकर तथा प्रेमालिङ्गन द्वारा कृतार्थ करके बासा पर लौट आये।

सार्वभौम भट्टाचार्यने रोते-रोते उनके चरणोंमें निवेदन किया—"प्रभो! तुम्हारे चरणोंमें मेरा एक निवेदन है। कतिपय दिन जो तुम यहाँ रहोगे, भिक्षा मेरे इस कुटीर पर होगी।" भक्तवत्सल प्रभुने हँसकर कहा—"जो आज्ञा है, वही होगा" सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके इस वाक्यसे अपनेको कृतार्थ मानकर अन्तःपुरमें जाकर षाठीकी माँको (उनकी कन्याका नाम षाठी था) यह शुभसंवाद सुनाया। अपने घर अपने हाथों नाना प्रकारके उत्तम व्यञ्जन और भोज्य पदार्थ प्रस्तुत करके, स्त्री-पुरुष दोनोंने मिलकर पाक करके प्रभुको कई दिन भिक्षा कराया।

गजपति प्रतापरुद्र

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रबल प्रतापी उत्कल देशके तत्कालीन स्वाधीन नरेश गजपति प्रतापरुद्रके सभा-

पण्डित थे। श्रीश्रीजगन्नाथजीकी सेवा-परिचर्याके विषयमें वे राजाके प्रधान परामर्शदाता थे। प्रतापरुद्र शक्तिशाली राजा थे। साधु-संन्यासीके ऊपर उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा-भक्ति थी। सार्वभौम भट्टाचार्यके प्रति उनकी विशेष सम्प्रीति थी। वे इनका गुरु-तुल्य सम्मान करते थे।

महाराजा गजपति प्रतापरुद्र उस समय नीलाचलमें नहीं थे। प्रभुने जब नीलाचलमें पदार्पण किया, उस समय राजा प्रतापरुद्र युद्ध कार्यमें व्याप्त होकर दक्षिण देशमें विजयनगर गये थे।

उन्होंने राजमन्त्रीके पत्रसे तथा लोगोंके मुखसे प्रभुके नीलाचल शुभागमनका संवाद पाया। पहले उन्होंने प्रभुका कभी नाम भी नहीं सुना था। श्रीकृष्ण चैतन्य नामधारी अपूर्व नवीन संन्यासीका नाम सुनते ही राजाका सर्वाङ्ग मानो प्रेम-रससे सिञ्चित हो गया। उन्होंने मन ही मन एक अभूतपूर्व आनन्दका अनुभव किया। शीघ्र युद्ध कार्यसे छुट्टी पाकर राजधानीकी ओर चल पड़े। रास्तेमें सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रभुके सम्बन्धमें पत्र लिखा।

राजा प्रतापरुद्र प्रभुके महा-महिमामय नामको स्मरण करके उनके प्रेममें पागल होकर राजधानी कटकसे नीलाचलमें आये। नीलाचलमें आते ही एक दिन गजपति महाराज प्रतापरुद्रने सार्वभौम भट्टाचार्यको राजवाड़ीमें बुला भेजा। राजा प्रतापरुद्र इससे पहले श्रीकृष्ण चैतन्य नामधारी नवीन संन्यासीकी बात सुन चुके थे। यही भी सुन चुके थे कि वे शीघ्र दक्षिण देशकी यात्रा करने वाले हैं।

सार्वभौम भट्टाचार्य जब राजसभामें उपस्थित हुए तो राजा प्रतापरुद्रने सिंहासनसे उठकर उनको प्रणाम किया और दिव्य आसन बैठनेके लिए दिया। सार्वभौम भट्टाचार्य राजाको अभिवादन तथा यथोचित आशीर्वाद देकर आसन पर बैठ गये। तब दोनोंके बीच निम्नलिखित वार्त्तालाप हुआ :

राजा—"भट्टाचार्य ! मैंने सुना है कि एक महा-प्रतापशाली परम कारुणिक नवीन यतीन्द्र गौड़देशसे सम्प्रति यहाँ आये हैं, मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं उनके चरणोंका दर्शन करके कृतार्थ होऊँ। किस उपायसे मेरी अभिलाषा पूर्ण होगी, आप मुझको बतलावें।"

सार्वभौम—"महाराज ! यह कार्य अत्यन्त कठिन है। क्योंकि वे अपूर्व नवीन संन्यासी अति गूढ़ भावसे रहते हैं। अतएव अकिञ्चन पुरुष उनका दर्शन कर सकते हैं। वे शीघ्र ही दक्षिण देश की यात्रा करेंगे।

राजा—"पुण्यधाम पुरुषोत्तम श्रीक्षेत्र त्याग करके, श्रीश्रीजगन्नाथजीके चरणोंको छोड़कर वे क्यों दक्षिण देश जायँगे ?"

सार्वभौम—साधु लोगोंका यह स्वभाव होता है कि वे अपने हृदयमें गदाधर श्रीभगवान्‌को धारणा करके यात्राके बहाने तीर्थोंको पवित्र किया करते हैं। परन्तु ये तो स्वयं भगवान् हैं।

राजा प्रतापरुद्र यह सुनकर आश्चर्य चकित होकर बोले—"भट्टाचार्य ! आप जब कहते हैं कि वे स्वयं भगवान् हैं तब क्यों नहीं यत्नपूर्वक उनको यहाँ ही रखते हैं ?"

सार्वभौम—महाराज ! ब्रह्मादि लोकपालगण जिनके भ्रूभङ्ग मात्रसे कम्पित होते हैं, वे सर्वभूत-पालक श्रीभगवान् अपनी करुणाके सिवा अन्य किसीके वशीभूत नहीं होते। तथापि मैं यथासाध्य चाटूक्ति, स्तुति, चरण-धारण और प्राणत्याग करने की बात कह करके बहुत रोया-धोया, फिर भी वे अपने सङ्कल्पसे च्युत न हुए। महाराज ! स्वाभाविक महान् तथा साधु पुरुषका निग्रह और अनुग्रत दोनोंही समान होता है।

महाराज प्रतापरुद्रने यह बात सुनकर अतिशय उत्कण्ठित होकर पूछा—"भट्टाचार्य ! वे फिर यहाँ लौटेंगे न ?"

भट्टाचार्य—"वे यहाँ आवेंगे, क्योंकि उनके भक्तगण सब यहाँ ही रहेंगे। वे किसीको साथ न लेंगे।"

राजा—"वे अकेले क्यों जाते हैं ? उनके साथ उपयुक्त आदमी आप लगा दें।"

भट्टाचार्य—उनके साथ केवल एक ब्राह्मण जायँगे और उनका एक दास जायगा। मैं कुछ शिष्योंको गुप्त रूपसे भेजूँगा। वे गोदावरी तक

उनके साथ जायँगे। श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु सेतुबन्ध तक जायँगे।

राजा—गोदावरी तक ही ब्राह्मणोंको क्यों भेजेंगे, वे लोग सेतुबन्ध तक क्यों न चल जाँय ?

भट्टाचार्य—"प्रभुकी अनुमति नहीं है। रामानन्द रायके साथ प्रभु मिलेंगे। मेरे विशेष अनुरोधसे उन्होंने रामानन्द रायसे मिलना स्वीकार कर लिया है।"

राजा—"रामानन्द रायको यह सौभाग्य कैसे प्राप्त हुआ ?"

भट्टाचार्य—"महाराज ! वे एक परम वैष्णव और भगवद्भक्त हैं। पहले उनको न पहचानकर मैंने बहुत उपहास किया है। परन्तु अब उनकी कृपासे उनकी महिमा समझमें आयी है। वे एक परम कृष्णप्रेमी रसिक भक्त हैं। महाभागवत वैष्णव-शिरोमणि हैं।"

राजा—"भट्टाचार्य ! आपके प्रति इस नवीन संन्यासीके अनुग्रहकी बात मैंने सुनी है। आप परम भाग्यवान् हैं। आपका भाग्य देखकर मुझे ईर्ष्या हो रही है। मेरे जैसे विषयीके ऊपर क्या वे कृपा करेंगे ? इतना कहकर महाराज प्रतापरुद्र कुछ अन्य-मनस्क होगये। सार्वभौमने उत्तर दिया, "महाराज ! भगवान्का अलौकिक प्रभाव स्वयंही प्रकाशमें आता है। निज गुणसे उन्होंने मुझको कृपाकी रस्सीसे अपने चरण-कमलमें बाँधा है। आपको भी यह सौभाग्य शीघ्र प्राप्त होगा।"

महाराज प्रतापरुद्रने सार्वभौम भट्टाचार्यके इस आशीर्वाद वचनसे परम परितुष्ट होकर उस दिन उनको बिदा किया। बिदा होते समय सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रतापरुद्रके नेत्रोंमें अश्रुबिन्दु देखे। वे मन ही मनमें बोले—"महाराज ! इससे दयामय प्रभु आपका उद्धार करेंगे। करुणावतार श्रीचैतन्य-महाप्रभु दयाके सागर हैं। उनके पवित्र नामको लेकर निर्जनमें बैठकर रोइये, इससे ही वे कृपा करेंगे। कलिका भजन रुदन है। श्रीभगवान्के नामसे हृदय द्रवित होकर जिसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधारा बहती है, वही भाग्यवान् है। इस नयन-जलसे अन्तःकरण प्रकृतितः शुद्ध होता है। हृदय निर्मल होता है, तब वह श्रीभगवान्के वासस्थानके लिए उपयोगी बनता है।" सार्वभौम भट्टाचार्यने अपने मनमें ही यह बात कही। वे शुष्क ज्ञानी थे, उनका अन्तःकरण शुष्क था, हृदय कठिन था। परन्तु करुणामय श्रीगौरांग-प्रभुकी कृपासे उन्होंने अब रोना सीखा है, उनका नीरस हृदय सरस हो गया है। उन्होंने समझा है कि श्रीभगवान्का प्रेम क्या वस्तु है ?

दक्षिण-यात्राके लिए प्रस्थान

सार्वभौम भट्टाचार्य राजसभासे घर आये। उसके दूसरे दिन प्रभु दक्षिणकी यात्रा करनेवाले थे। आज पाँच दिनसे वे सार्वभौम भवनमें भिक्षा ग्रहण कर रहे थे। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु उनसे बिदा हुए। सार्वभौम भट्टाचार्यने रोते-रोते प्रभुको बिदा किया। प्रभु उनका हाथ पकड़कर भक्तगणके साथ जगन्नाथजीका दर्शन करनेके लिए गये। श्रीविग्रह दर्शन करके प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर हो गये। प्रेमावेशमें श्रीमन्दिरके प्रांगणमें अनेक बार लोटते रहे, बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। पुजारीने ठाकुरजीका माला-प्रसाद लाकर प्रभुको दिया। आज्ञा-माल्य प्राप्तकर प्रभुने प्रेममें भरकर श्रीमन्दिरकी प्रदक्षिणा करके दक्षिण देशकी यात्रा की। वे समुद्रके किनारे-किनारे आलालनाथके रास्तेसे चले। भक्तवृन्द सब साथ थे। सार्वभौम भट्टाचार्य भी प्रभुके साथ थे। उन्होंने गोपीनाथ आचार्यसे कहा—"आचार्य ! घरमें प्रभुके लिए चार कौपीन और बहिर्वास रक्खा है। प्रसाद भी रक्खा है। आप शीघ्र जाकर ले आवें।" गोपीनाथ आचार्य सार्वभौमके घरकी ओर लपके।

प्रभु भक्तगणके साथ कृष्णकथा-रस-रंगमें आलालनाथके रास्तेकी ओर जारहे थे। इसी अवसर पर सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके चरणोंमें फिर निवेदन किया—"गोदावरीके तीरपर विद्यानगरमें शासन अधिकारी रामानन्द राय रहते हैं। उनको शूद्र और विषयी जानकर उनकी उपेक्षा नहीं करना। मेरी बात मानकर उनसे अवश्य

मिलना। उनके समान रसिक भक्त कहीं नहीं है। उनमें पाण्डित्य और भक्तिरस दोनोंकी सीमा है। वे तुमसे मिलनेके अधिकारी हैं। अब तक मैं उनको वैष्णव जानकर उनका परिहास करता रहा, अब तुम्हारी कृपासे उनके तत्त्वको समझा है। उनसे संभाषण करनेसे ही उनकी महिमा ज्ञात हो जायगी।

प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यसे बोले—"भट्टाचार्य! आपने कृपा करके मुझको यह बतला दिया, इससे मैं कृतार्थ होगया। आपके आशीर्वादसे मुझे रामानन्द-का संग प्राप्त होगा, इससे मैं धन्य हो जाऊँगा।" इतना कहकर प्रभुने उनको गाढ़ प्रेमालिंगन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए कहा—"भट्टाचार्य! आप घरपर बैठकर कृष्ण भजन कीजिये। आशीर्वाद दीजिये कि मैं आपकी कृपासे पुनः श्रीनीलाचल धाममें लौट आऊँ।" इतना कहकर करुणामय प्रभुने उनसे विदा ली। सार्वभौम भट्टाचार्य मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। प्रभुने फिर घूमकर न देखा। बहुत-से भक्तवृन्द प्रभुके साथ चले। श्रीनित्यानन्द प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको उठाकर उनको सुस्थिर करके लोगोंके साथ घर भेज दिया। वे गौरांग-विरहमें मृतप्राय होगये हैं। अपना प्राण प्रभुके चरणोंमें रखकर केवल देहमात्र लेकर घर लौटे। कौपीन, बहिर्वास और प्रसादान्न लेकर गोपीनाथ आचार्य उसी समय आरहे थे। उनको रास्तेमें देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य आकुलता पूर्वक रो पड़े। बालकके समान रोते-रोते वे मार्गमें धूलिमें पड़कर लोटपोट करने लगे। गोपीनाथ आचार्यने उनको सान्त्वना देकर घर भेजा। श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ वे प्रसाद और वस्त्र लिये आलालनाथ जाकर प्रभुसे मिले।

आलालनाथको देखकर भावनिधि श्रीगौरांग-प्रभुका भावसिन्धु उमड़ उठा। वे प्रेमानन्दमें भक्त-वृन्दके साथ श्रीविग्रहके सामने बहुत देर तक नयन-रञ्जन नृत्य कीर्तन करते रहे। उनकी मधुर नृत्यभंगिमा देखकर जितने लोग वहाँ आये, कोई भी घर नहीं लौट रहा था। सब देखकर आश्चर्य कर रहे थे। कोई नृत्य करता, कोई श्रीकृष्ण-गोपाल गाता। सब स्त्री-पुरुष बाल-युवा-वृद्ध प्रेममें डूब गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुने गौरांगविरह-सन्तप्त भक्तवृन्दको सम्बोधन करते हुए प्रेमानन्दमें उच्च स्वरसे कहा—"इसी प्रकार ग्राम-ग्राममें नृत्य होगा।"

जनसमूह प्रभुको छोड़ना नहीं चाहता। बेला अधिक होते देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीगौर भगवान्को लेकर मध्याह्न-कृत्य करनेके लिए श्रीमन्दिरके भीतर चले गये। उनकी आज्ञासे श्रीमन्दिरका द्वार बन्द होगया। प्रभुके सभी निजजन उनके साथ रहे। गोपीनाथ आचार्यने श्रीश्रीजगन्नाथजीका प्रसादान्न देकर प्रभुको उस दिन उत्तम प्रकारसे भोजन कराया। प्रभुका अधरामृत प्रसाद सबने बाँटकर खाया।

इधर श्रीमन्दिरके बहिर्द्वार पर लोगोंकी भीड़ हो गयी थी। लोगोंकी वह भीषण भीड़ केवल बारम्बार हरि-ध्वनि करती थी। यह सुनकर कृपानिधि प्रभुने श्रीमन्दिरका द्वार खोलनेकी आज्ञा दी।

प्रभु श्रीमन्दिरके आँगनमें बैठ गये। उनका सर्वांग चन्दनसे चर्चित था, गलेमें सुगन्धित पुष्प-माला थी, प्रशस्त ललाटमें उज्जवल तिलक रेखा सुशोभित होरही थी। प्रसन्न मुखसे 'हरे कृष्ण' नाम ले रहे थे, और मृदु मन्द मुस्करा रहे थे। उनके श्रीअंगकी कषित-काञ्चन-विनिन्दित कान्ति मानो फूटकर बाहर निकल रही थी। वे अरुण वस्त्र पहने थे। सब लोग उनका जय-जयकार कर रहे थे। 'जय श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी जय' ध्वनिसे गगन मण्डल प्रकम्पित हो रहा था। इस प्रकार उस दिन सन्ध्या तक आलालनाथके श्रीमन्दिरमें बहुत लोगोंका आवागमन होता रहा। उस रात प्रभुने आलालनाथ-में अपने भक्तवृन्दके साथ कृष्णकथा रसरंगमें तथा नृत्य-कीर्तनमें व्यतीत किया।*

---

* समुद्रतीरके रास्तेसे दक्षिणकी ओर जाते समय श्रीक्षेत्रसे चार कोस पर आलालनाथ ग्राम है। आलालनाथ चतुर्भुज वासुदेव विग्रह है। वनमें एक छोटेसे गाँवमें यह मन्दिर है।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके प्रभुने आलालनाथसे दक्षिणकी यात्राकी। भक्तगणको एक-एक करके प्रेमालिगन प्रदान करके, तथा मधुर वचनसे सन्तुष्ट करके विदा किया। प्रभुके विरहमें सभी मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। स्वतन्त्र ईश्वर श्रीगौर भगवान्ने उनकी ओर घूमकर नहीं देखा। परन्तु उनके मनकी व्यथा वे ही जानते थे। श्रीभगवान्के विरहमें भक्तको जैसा दुःख होता है, भक्तके विरहमें भगवान्को भी वैसा ही दुःख होता है। परन्तु वे इसको प्रकट नहीं करते हैं। प्रभु भक्तके दुःखसे दुःखित-अन्तःकरण होकर व्याकुल चित्तसे रास्ते पर बढ़ते जारहे हैं। उनके पीछे कृष्णदास बहिर्वास और जलपात्र लेकर जारहे हैं।

प्रभुके साथ एक और सेवक जारहे हैं। वे कर्म-कार गोविन्ददास हैं। इनका एक अति प्राचीन पयार छन्दमें लिखित सुन्दर कड़चा है। उनमें प्रभुके दक्षिण देशका भ्रमण वृत्तान्त अति सुन्दर रूपमें वर्णित है। गोविन्ददासका परिचय पहले दिया जा चुका है। सार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा प्रेरित दो विप्र भी प्रभुके साथ गोदावरी तट तक गये थे।

प्रभुके बिदा होजानेके बाद भक्तवृन्दकी जो अवस्था हुई, उसका वर्णन भाषाके द्वारा नहीं किया जा सकता। प्रभुको विदा करके उस दिन वे सब लोग आलालनाथमें उपवासी रहे। दूसरे दिन रोते-रोते नीलाचल लौट आये। नीलाचलसे आलालनाथ बहुत दूर नहीं है। चार दण्डका रास्ता तय करनेमें भक्त लोगोंको तीन पहर लग गया। उनके पैर आगे बढ़ते ही नहीं थे। प्रभुके विरहमें वे जीवन्मृत होगये थे। उनके मन-प्राण तो प्रभुके साथ चले गये थे, केवल शरीर बच रहा था।

गदाधर और नरहरिने आहार-निद्रा त्याग दिया, जगदानन्द और दामोदर पण्डितका हृदय विदीर्ण होरहा था। मुकुन्द मुँह खोलकर किसीसे बात नहीं करते थे। गोपीनाथ आचार्यने मौन ले लिया था। सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे 'हा गौरांग! क्या कर डाला' इसके सिवा और कोई बात नहीं निकल रही थी। परमानन्द पुरी गोसाईं सदा बोलते थे—'कृष्ण! तुम्हारी इच्छा!' श्रीनिताई-चाँदका अब वह उद्दाम बालभाव नहीं रहा। वे अब परम गम्भीर होगये थे।

नीलाचलमें सर्वत्र प्रभुका विरहानल जल रहा था। सदानन्दमय श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रका मुखचन्द्र मलिन जान पड़ता था। चारों ओर निरानन्द था। इस निरानन्दमें एक आनन्दकी आशामें भक्तवृन्द प्राण धारणकर रहे थे—'वह था कि प्रभु पुनः नीलाचल आवेंगे।' वह शुभदिन फिर कब आवेगा, इसी चिन्तामें वे व्याकुल थे। गौरांग विरहरूप घोर अन्धकारमें यही एकमात्र आशाका दीपक टिमटिमा रहा था, इसीसे भक्तवृन्दके हृदयका अन्धकार दूर होरहा था। इसी आशामें वे जीवन धारणकर रहे थे।

प्रभु आलालनाथसे मत्त सिंहकी गतिसे प्रेमावेशमें नाम-संकीर्तन करते हुए उन्मत्त होकर चले जारहे थे। उनके श्रीमुखकी वाणी सारे जगत्के प्राणियोंको अभय दानकर रही थी। प्रभुके श्रीमुखकी वह अभय कीर्तन-वाणी यह थी—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे॥
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्॥
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥

—चै. च. म. ७.३

—⁂—

पाँचवाँ अध्याय

प्रभुका दक्षिण देश भ्रमण

——

नवद्वीपे जेइ शक्ति ना कैल प्रकाशे।
से शक्ति प्रकाशि निस्तारिल दक्षिण देशे॥

चै. च. म. ७-१०६

दक्षिण-भ्रमणका मूल उद्देश्य

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

नानामत-ग्रहग्रस्तान् दाक्षिणात्यजनद्विपान्।
कृपारिणा विमुच्यैतान् गौरश्चक्रे स च वैष्णवान्॥

चै. च. म. ९. १

अर्थात् ज्ञानी, कर्मी और पाखण्डी लोगोंके नाना मत रूपी ग्राहसे ग्रस्त दाक्षिणात्यजन रूपी हस्तीगण-को देखकर श्रीगौराङ्गचन्द्रने कृपारूपी चक्रके द्वारा उन ग्राह समूहसे उनको मुक्त करके वैष्णव बना दिया।

दक्षिण देशवासी नाना मतावलम्बी लोगोंका जगद्गुरु श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने अकेले जो अद्भुत शक्ति प्रकट करके उद्धार किया था, गौड़ मण्डलमें उनको उस शक्तिके प्रकट करनेकी आवश्यकता न पड़ी। प्रभुकी श्रीमूर्त्तिको एकबार दर्शन करते ही, उनके श्रीमुखसे एक बार मधुर हरिनाम श्रवण करते ही दक्षिण देशवासी सब सम्प्रदायके लोग उनके चरण-कमलमें आत्मसमर्पण किये बिना न रह सके। सब लोग कृष्ण-भक्त परम वैष्णव हो गये। ये सब बातें विस्तारपूर्वक आगे कही जाँयगी। प्रभुने श्रीमुखसे कहा था—

सङ्कीर्तन-आरम्भे मोहोर अवतार।
उद्धार करिमु सर्व्व पतित संसार॥
जे दैत्य यवने मोरे कभू नाहि माने।
ए युगे ताराओ कान्दिबेक मोर नामे॥
जतेक अस्पृश्य दुष्ट यवन चाण्डाल।
स्त्री-शूद्र-आदि जत अधम राखाल॥
हेन भक्तियोग दिमु ए युगे सभारे।
सुर मुनि सिद्ध जे निमित्त काम्य करे॥
पृथिवी पर्यन्त जत आछे देश ग्राम।
सर्व्वत्र संचार हइबे मोर नाम॥

चै. भा. अं. ४. १२०-१२३, १२६

इस भविष्यवाणीको सफल करनेके लिए ही प्रभुकी दक्षिण देशकी यात्रा हुई। उनका उद्देश्य न तो तीर्थ भ्रमण था, और न अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीमद्विश्वरूप प्रभुको खोजना। उनका केवल उद्देश्य था जीवोद्धार। यह कार्य श्रीभगवान्का सर्वप्रधान कार्य था, और निजी काम था। इसी कारण उनका नाम पतित पावन है।

दक्षिण देशवासी नर-नारी उन दिनों नाना-प्रकारके धर्म-विप्लवमें पड़कर घोर अन्धकारमें जीवन व्यतीत कर रहे थे। मायावादी संन्यासियोके भ्रमजालमें पड़कर वे लोग भक्तिमार्गसे एकबारगी च्युत हो गये थे। उनका हृदय आसुरी भावसे परि-पूर्ण हो गया था। सारांश यह है कि वे लोग कर्म जड़ होकर बिलकुल ही भक्तिविहीन हो रहे थे। उनका हृदय कठोर होगया था। उन लोगोंके कठोर हृदयको द्रवित करके भक्तिपथका पथिक तथा युगानुवर्ती भजनोपयोगी बनानेके लिए विशेष आयोजनकी आवश्यकता थी। भारतके दक्षिणवासी सबलोगोंका उद्धार आवश्यक था, इसलिए उसके लिए विशेष आयोजन करना पड़ा। क्योंकि यह सामान्य कार्य न था, और बहुत थोड़े समयमें यह महान् कार्य

सुसम्पन्न करना था। इसी कारण पतितपावन, दयाके अवतार, करुणासिन्धु स्वयं भगवान् श्रीश्रीनवद्वीप-चन्द्रने कलिग्रस्त जीवकी दुर्दशासे कातर होकर इस कठिन कार्यका भार अपने हाथमें लिया।

श्रीभगवान् जब स्वयं कोई कार्य करते हैं, तो उनका प्रभाव और होता है। और जब अपने परिकर-वृन्दके द्वारा कोई काम कराते हैं तो उसका प्रभाव और होता है। इस नाना धर्मावलम्बी जन-समूहसे पूर्ण महान् दक्षिण देशके उद्धारके कार्यसे नदियाके अवतार श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभुकी भगवत्ताका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। उनकी अलौकिक शक्ति-का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नदियाके इस ब्राह्मणकुमारकी दैवी और अलौकिक लीला देखकर चकित हो जाना पड़ता है। उन्होंने नवद्वीपमें जिस शक्तिको प्रकट नहीं किया था, दक्षिण देशके उद्धारके कार्यमें उस गुप्त शक्तिको प्रकट कर दिया था। श्रीचैतन्य चरितामृतकारने यथार्थ लिखा है—

नवद्वीपे जे शक्ति ना कैल प्रकाशे।
से शक्ति प्रकाशि निस्तारिल दक्षिण देशे॥

चै. च. म. ७. १०६

कलिके प्रच्छन्न अवतारकी यह प्रच्छन्न-शक्ति क्या वस्तु है, तथा उस शक्तिका कैसा अपूर्व प्रभाव है?—यह पीछे आयगा। श्रीविष्णुप्रिया देवी प्रच्छन्न अवतार श्रीगौरभगवान्की स्वरूप शक्ति थी। श्रीगौराङ्ग लीलाकी देवी विष्णुप्रिया साक्षात् प्रेम-भक्ति स्वरूपिणी थी। मूर्त्तिमती भक्तिदेवी ही गौर-वक्षविलासिनी श्रीविष्णप्रिया देवी थी। यह सिद्धान्त प्रभुके कृपासिद्ध पार्षद श्रीपाद कविकर्णपूर गोस्वामीने श्रीअद्वैत प्रभुके श्रीमुखसे व्यक्त किया है। प्रेम-भक्ति स्वरूपिणी श्रीविष्णुप्रिया देवीकी सहायतासे प्रभुके नाम प्रेम प्रचारकी लीला सम्पन्न हुई थी। यह सब अति गूढ़ विषय है। इस परम गुह्य श्रीविष्णुप्रिया तत्त्वको समझनेके अधिकारी कोटि-कोटि पुरुषोंमें एक-दो होंगे या नहीं, इसमें सन्देह है। प्रभुके संन्यास ग्रहणके बाद उनकी स्वरूप शक्तिका परिपूर्ण विकास हुआ। प्रेमभक्ति तत्त्व पूर्णताको प्राप्त हुआ, तथा प्रभुके दक्षिण देशके उद्धारके कार्यमें इस पूर्णतमा स्वरूपशक्तिका पूर्ण आविर्भाव दृष्टि-गोचर होता है। किस प्रकारसे, किस भावमें इस शक्तिकी सहायतासे प्रभुने दक्षिण देशवासियोंको वैष्णव बनाया, हरिनामामृतके प्रवाहमें सारे दक्षिण देशको एकबारगी डुबा दिया, यह श्रीचैतन्य-चरितामृतकार अति सरल और सुस्पष्ट भाषामें लिखे गये हैं। प्रभुके अपरूप रूपको देखकर, उनके श्रीमुखसे एकबार हरिनाम संकीर्तन सुनकर दक्षिण देशवासियोंकी जो अवस्था हुई थी, उसकी स्थिरता पूर्वक आलोचना करनेसे समझा जा सकता है कि श्रीगौर भगवान्ने जिस शक्तिकी सहायतासे यह जीवोद्धार कार्य सम्पन्न किया था, उस विश्व-विजयिनी भक्तिरूपिणी महाशक्तिका कितना प्रभाव था। उस जगज्जीवोद्धारकारिणी परम चमत्कारिणी भक्तिरूपा महाशक्तिके माहात्म्यके विषयमें कविराज गोस्वामीने लिखा है—

आश्चर्य शुनिया सब लोक आइला देखिबारे।
प्रभुर रूप-प्रेम देखि हैला चमत्कारे॥
दर्शने वैष्णव हैला—बले 'कृष्ण हरि'।
प्रेमावेशे नाचे लोक उर्ध्वबाहु करि॥
कृष्णनाम लोकमुखे शुनि अविराम।
सेइ लोक वैष्णव कैल अन्य सब ग्राम॥
एइ मत परम्पराय देश वैष्णव हैल।
कृष्णनामामृत-वन्याय देश भासाइल॥

चै. च. म. ७. ११२-११५

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इसकी भी विस्तृत व्याख्याकी है। प्रभु जब 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे'—इत्यादि श्लोकका पाठ करते हुए तथा कीर्तन करते हुए रास्ते पर चलते थे, तब सब लोग हरिध्वनि करते हुए उनके पीछे चलने लगते थे। यथा—

एइ श्लोक पथे पड़ि चले गौर हरि।
लोक देखि पथे कहे-बोल 'हरि हरि'॥
सेइ लोक प्रेमे मत्त—बले 'हरेकृष्ण'।
प्रभुर पाछे सङ्गे जाय—दर्शने सतृष्ण॥

कथो दूरे बहि प्रभु तारे आलिङ्गिया ।
विदाय करेन तारे शक्ति सञ्चारिया ।।
सेइ जन निज ग्रामे करिया गमन ।
'कृष्ण' बले हासे कान्दे नाचे अनुक्षण ।।
जारे देखे तारे कहे—कह कृष्णनाम ।
एइ मत वैष्णव कैल सब निज ग्राम ।।
ग्रामान्तर हैते दैवे आइल जत जन ।
ताँहार दर्शन कृपाय हय ताँर सम ।।
सेइ जाइ निज ग्राम वैष्णव करय ।
अन्य ग्रामी आसि ताँरे देखि वैष्णव हय ।।
सेइ जाइ आर-ग्रामे करे उपदेश ।
एइ मत वैष्णव हैल सब दक्षिण देश ।।
एइ मत पथे जाइते शत शत जन ।
वैष्णव करेन—ताँरे करि आलिङ्गन ।।
जेइ ग्रामे रहि भिक्षा करेन जार घरे ।
सेइ ग्रामेर जत लोक आइसे देखिवारे ।।
प्रभुर कृपाय हय महाभागवत ।
ये सब आचार्य हैया तारिला जगत ।।
एइ मत कैला यावत् गेला सेतुबन्धे ।
सर्वदेश वैष्णव हैल प्रभुर सम्बन्धे ।।

चै. च. म. ७. ९४.१०५

श्रीधाम वृन्दावनमें वास करते समय प्रभुकी मधुरलीला कथाका रसास्वादन करनेके लिए श्रीधामवासी भजननिष्ठ वैष्णवोंके साथ इष्ट-गोष्ठी करनेका प्रभुकी कृपासे जीवाधम ग्रन्थकारको सौभाग्य प्राप्त हुआ था। एक दिन श्रीचैतन्य चरितामृतके निम्नलिखित पयार छन्दको लेकर विचार आरम्भ हुआ—

श्रीचैतन्य लीला हय अमृतेर सिन्धु ।
जगत भासाइते पारे जार एक बिन्दु ।।

एक बिन्दुमें कैसे जगत् डूब सकता है? इसी प्रश्नको लेकरके तर्क उपस्थित हुआ। बहुत देर तक विचार होता रहा। सब लोगोंने अपने-अपने भावके अनुसार प्रमाण प्रयोग करके समझानेकी चेष्टाकी। "श्रीगौर भगवान्‌की अलौकिक लीलामें सब कुछ सम्भव है। एक बिन्दु प्रेममें जगत्‌को डुबा देना श्रीभगवान्‌के लिए कोई असम्भव कार्य नहीं है। उनकी अलौकिक लीलामें सुदृढ़ विश्वास होना चाहिए।"

अलौकिक लीलाय जार ना जन्मे विश्वास ।
इहलोक परलोक तार हय नाश ।।

चै. च. म. ७. १०८

इन सब बातोंका विचार और विश्लेषण होनेके बाद हमारे परम श्रद्धेय बन्धुवर वैष्णव शास्त्र-निष्णात श्रीकृष्णपद दास बाबाजी महाशयने प्रभुकी इस दक्षिण देशोद्धार लीलाकी कथाका उत्थापन किया। उन्होंने समझा दिया कि प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत मधुर हरिनाम और कृष्णनाम एकबार भी सुनकर जैसे दक्षिण देशवासी सब लोग अपूर्व वैष्णवत्वको प्राप्त होकर उन नाम ब्रह्मका एक आदमीसे दूसरे आदमीमें, एक गाँवसे दूसरे गाँवमें, एक देशसे दूसरेसे देशमें प्रचार करके (जन-जन, ग्राम-ग्राम, देश-देशान्तर प्रचार करके) समस्त दक्षिण देशवासी पाखण्डी पण्डितोंको वैष्णव बनाया था, उसी प्रकार श्रीगौरांग लीलामृत सिन्धुके एक बिन्दुके स्पर्शसे सारा विश्व-ब्रह्माण्ड एकबारगी डूब जा सकता है। हम सब लोगोंने उक्त बाबाजीकी व्याख्याको समीचीन मानकर स्वीकार कर लिया। इससे हमारे मनमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीगौर भगवान्‌का जो लोग भजन करते हैं, जो उनके नाम-रूप-गुण और लीला रसका आस्वादन करते हैं, वे उनके ऊपर कृपादृष्टि करते हैं। उनकी कृपाके बलसे यह सब अलौकिक लीला रहस्य साधक भक्त हृदयङ्गम कर सकते हैं। दूसरे लोगोंको इस लीला रहस्यके प्रसङ्गमें अधिकार नहीं है।

कूर्म-क्षेत्रमें कूर्म विप्र और वासुदेव कुष्ठिपर कृपा

प्रभु दक्षिण यात्रा करके पहले कूर्मक्षेत्र तीर्थमें जा

उपस्थित हुए।* इस स्थानमें कूर्म भगवान्‌का श्रीविग्रह है। यहाँ बहुत लोग रहते हैं, प्रभुने कूर्म भगवान्‌को विधिपूर्वक प्रणाम और स्तुति करके प्रेमावेशमें वहाँ बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। वहाँ लोगोंकी बहुत बड़ी भीड़ हुई। प्रभुकी अपरूप रूपराशिको देखकर लोग चकित हो उठे। उन्होंने ऐसा रूपवान् आदमी पहले कभी नहीं देखा था। प्रभुके अपूर्व प्रेमनृत्यको देखकर, तथा उनके श्रीमुखके मधुर हरि सङ्कीर्तनको सुनकर वे लोग प्रेमोन्मत्त हो उठे। दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर 'हरि हरि' कहते हुए वे लोग भी प्रभुके साथ नृत्य करने लगे। करुणामय श्रीगौर भगवान्‌ने उनके ऊपर शुभदृष्टि पात किया। कूर्म भगवान्‌के सेवकोंने प्रभुका बड़ा सम्मान किया।

उस ग्राममें कूर्म नामक एक वैदिक ब्राह्मण रहते थे। वे परम भागवत थे। अत्यन्त सम्मान और श्रद्धाके साथ उन्होने प्रभुको निमन्त्रित करके अपने घर भिक्षा कराया। भक्तवशी श्रीगौरभगवान् सदासे भक्तके वशमें रहते हैं। निष्कपट भावसे भक्तिपूर्वक अपने भक्तके घर गमन करते हैं। भक्त-विप्र कूर्मने प्रभुको अपने घर लेजाकर भक्तिपूर्वक अपने हाथसे उनके श्रीचरणकमलको धो दिया। प्रभुके चरणोदकको सपरिवार पान करके कृतार्थ होगया। पाद्य समर्पण करके प्रभुको दिव्यासनपर बैठाकर कूर्म विप्रने इस प्रकार हाथ जोड़कर आत्म-निवेदन किया—

जेइ पादपद्म तोमार ब्रह्मा ध्यान करे।
सेइ पादपद्म साक्षात् आइल मोर घरे॥
मोर भाग्येर सीमा ना जाय कथन।
आजि मोर श्लाध्य हइल जन्म 'कुल' धन॥

चै० च० म० ७.१२१-१२२

प्रभुने इस परम भाग्यवान् विप्रके घर आतिथ्य स्वीकार किया। ब्राह्मण अत्यन्त श्रद्धाभक्तिपूर्वक प्रभुको भिक्षा कराकर सपरिवार उनका अधरामृत प्रसादान्न भोजन करके कृतार्थ हुआ। जब विदा होकर वहाँसे चले, तब वह भाग्यवान् विप्र रोते हुए उनके चरणोंमें गिरकर बोला—

कृपा कर मोरे प्रभु! जाइ तोमार सङ्गे।
सहिते ना पारि दुःखं विषय-तरङ्ग॥

चै० च० म० ७.१२३

प्रभुकी कृपासे उस विप्रके मनमें तत्काल विषयोसे वैराग्य होगया, उसका भव-बन्धन छिन्न-भिन्न होगया। तभी वह प्रभुके चरणोमें गिरकरके इस प्रकार आत्मनिवेदन कर सका। श्रीभगवान्‌का साक्षात् दर्शन प्राप्तकर यदि इस प्रकार भाग्योदय न होगा तो फिर कब होगा? कृपासिद्ध उस विप्रने प्रभुके सङ्ग जाना चाहा। अब क्षणमात्रके लिए भी उसका मन संसारमें नहीं लग रहा था, उसका मन घर-गृहस्थी छोड़कर प्रभुके साथ जानेका हो रहा था। गृहत्यागकी बात सुनकर धर्मरक्षक प्रभुने ब्राह्मणको उपदेश दिया। यथा—

प्रभु कहे-ऐछ बात कभू ना कहिवा।
गृहे बसि कृष्णनाम निरन्तर लैवा॥
जारे देख-तारे कर कृष्ण उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हैया तार एइ देश॥*

---

* कूर्मस्थान गंजाम जिलाके चिकाकोल रोड स्टेशनसे आठ मील पूर्व है। वहा श्रीभगवान्‌की कूर्म मूर्त्ति विराजमान है। प्रपन्नामृतमें लिखा है कि ग्यारहवीं शताब्दीमें श्रीरामानुज, श्रीजगन्नाथजीसे जब कूर्माचलमें पहुँचे तो कूर्ममूर्त्तिको शिवमूर्त्ति समझकर वहाँ उन्होंने उपवास किया। पश्चात् विष्णुमूर्त्ति समझकर कूर्म भगवान्‌की पूजा की।

—चै. च. मनु भाष्य

* जो गौराङ्ग भक्त सर्वधर्म परित्याग करके एकान्त भावसे श्रीगौराङ्गके चरणोंका आश्रय लेकर उनकी सेवाके लिए कृत सङ्कल्प होजाते हैं, स्वयं भगवान् परम नारायण उनकी सेवा स्वीकार करके इस प्रकारकी शिक्षा देते हैं। गृहवासका भजन कठोर नहीं होता। गृहवासमें भगवत्सेवा बुद्धि अधिक बलवती होती है। इसमें शिष्यादि अनुगत जनकी शिक्षा-दीक्षामें सहायता करते हैं। गृहवासमें भजनमें विघ्न होता है शिष्य न करना। अतएव भजनाभिमान दूर करके शुद्ध गौराङ्ग सेवकोंको प्रभुके इस अमूल्य उपदेशको याद रखना चाहिये। गृहस्थ वैष्णव लोग प्रभुको बहुत प्रिय होते हैं। ठाकुर नरोत्तमने कहा था—

गृहस्थ वैष्णवेर कथा शुनरे पामर।
पद्मपुष्प भासे जेन जलेर ऊपर॥

कभू ना बान्धिबे तोमाय विषय-तरङ्ग ।
पुनरपि एइ ठाञि पाबे मोर सङ्ग ।।

चै० च० म० ७.१२४-१२६

उस गृहस्थ विप्रको प्रभुने प्रकृत गार्हस्थ्य-धर्मका उपदेश दिया। जो लोग समझते हैं कि गृहत्याग करने पर ही प्रकृत धर्माचरण होता है, उन्हें प्रभुका यह उपदेश याद रखना चाहिये। प्रभुकी कृपासे उस भाग्यवान् विप्रने आचार्य उपाधि प्राप्त करके कृष्ण-उपदेश देते हुए अनेक शिष्य-प्रशिष्य बनाये। उनके तथा उनके शिष्योंके द्वारा उस देशका उद्धार हुआ। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइ मत जार घरे करे प्रभु भिक्षा ।
सेइ ऐछे कहे, तारे कराय एइ शिक्षा ।।
पथे जाइते देवालये रहे जेइ ग्रामे ।
जार घरे भिक्षा करे दुइ चारि स्थाने ।।
कूर्मे जैछे रीति तैछे कैल सर्व ठाञि ।
नीलाचले पुनः यावत् ना आइला गोसाञि ।।

चै० च० म० ७. १२७-१२९

इस प्रकार प्रभु दक्षिण देशमें महान् गुरुवंशकी सृष्टि कर आये। उनके साक्षात् कृपापात्र महाजन-गणने आचार्य रूपमें विशुद्ध वैष्णवधर्मका दक्षिण-देशमें प्रचार किया था। परन्तु किसीसे उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया था।

विप्र कूर्मसे विदा लेकर प्रभुने प्रस्थान किया। कुछ दूर जाकर प्रभु फिर लौटे। क्योंकि उस भाग्यवान् कूर्म विप्रके घर वासुदेव नामक एक गलित कुष्ठ रोगी ब्राह्मण प्रभुकी खोजमें आकर उपस्थित हुआ था। उन्होंने आते ही सुना कि श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र कूर्म ग्रामसे चले गये हैं। यह सुनकर कुष्ठ रोग ग्रस्त ब्राह्मण मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़ा। भक्तवत्सल अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान् उस विप्रके मनके दुःखको जानकर पुनः कूर्म ग्राममें लौट आये। प्रभुका पुनः शुभागमन देखकर विप्र कूर्म आनन्दसागरमें मग्न होगया। इसको ही अयाचित कृपा कहते हैं।

उस गलित कुष्ट ग्रस्त विप्रका विवरण श्रीचैतन्य चरितामृतमें इस प्रकार लिखा है—

वासुदेव नाम एक द्विज महाशय ।
सर्वाङ्गे गलितकुष्ट—सेहो कीड़ामय ।।
अङ्ग हैते जेइ कीड़ा खसिया पड़य ।
उठाइया सेइ कीड़ा राखे सेइ ठाँय ।।
रात्रि ते शुनिला तिंहो गोसाञिर आगमन ।
खतोये आइला प्राते कूर्मेर भवन ।।

चै० च० म० ७.१३३-१३५

वह ब्राह्मण जो कुष्टरोग ग्रस्त हुआ था, वह उसके पूर्वजन्मके कर्मका फल था। वह एक महाशय व्यक्ति था। कविराज गोस्वामीने उस विप्रकी महाशय आख्या दी है। इसका कारण है।

गलित कुष्ट व्याधिसे वह आक्रान्त था। उसका सर्वाङ्ग क्षत होगया था। उस क्षतसे असंख्य कीट होगये थे। जब उसके शरीरसे कीट भूतल पर गिरते थे, तब वह महातमा जीव हिंसाके भयसे उनको उठाकर पुनः अपने देहके क्षत स्थानमें रख लेते थे। अपने शरीरके रक्त-मांससे उनका पोषण करते थे। उनके दंशनके कष्टको वह कष्ट नहीं मानते थे।

इन महापुरुषके इसी गुणसे श्रीगौरभगवान्ने उनके ऊपर कृपाकी। दयामय प्रभुने पुनः कूर्मगृहमें लौटकर तत्काल अपनी सुकोमल भुजाओंके द्वारा उस महाभाग्यवान् विप्रको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया। श्रीभगवान्के श्रीअङ्गके स्पर्शसे वह विप्र तत्काल दिव्य देहको प्राप्त हुआ। साथ ही साथ उसको चेतना प्राप्त हुई। उसने प्रभुके चरणोंमें गिरकर निम्नलिखित श्रीमद्भागवतका श्लोक पढ़कर उनकी स्तुति की।

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णःश्री निकेतनः ।
ब्रह्मबन्धुरितिस्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ।।

श्रीम० भा० १०.८१.१६

श्लोकार्थ—सुदामा विप्रने श्रीकृष्णसे कहा—"अहा ! कहाँ तो मैं अति नीच दरिद्र हूँ, और कहाँ

वे श्रीनिकेतन श्रीकृष्ण ! उन्होंने ब्रह्मबन्धु कहकर मुझे अपनी भुजाओंके द्वारा आलिङ्गन कर लिया।

स्तुतिके उपरान्त उस भाग्यवान् विप्रने रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें किस प्रकार दैन्यपूर्ण आत्म-निवेदन किया, इसे सुनिये। वासुदेवने हाथ जोड़कर कहा—

—"शुन दयामय।
जीवे एइ गुण नाहि—तोमातेइ हय॥
मोरे देखि मोर गन्धे पलाय पामर।
हेन मोरे स्पर्श तुमि स्वतन्त्र ईश्वर॥
किन्तु आछिलाम भाल अधम हइया।
एबे अहङ्कार मोर जन्मिबे आसिया॥"

चै० च० म० ७.१४०-१४२

वासुदेवकी अन्तिम बात प्रकृत वैष्णवकी बात थी। बड़ी मधुर थी। उत्तम देह प्राप्त होनेपर उनको देहाभिमान पैदा होगा, इस भयसे भक्तवर वासुदेव व्याकुल हो उठे। शरीरके व्याधिसे भक्त भयभीत नहीं होते। देहाभिमानकी सारी सामग्री, सुन्दर देह, रमणीय कान्ति, सुन्दर रूप—इन सबको भक्तगण अभिमानकी झोली समझते हैं। परन्तु कृपानिधि प्रभुने भक्तके मनोभावको समझकर हँसते हुए उत्तर दिया—

—"कभू तोमार ना हबे अभिमान।
निरन्तर कह तुमि कृष्ण कृष्ण नाम॥
कृष्ण उपदेशि कर जीवेर निस्तार।
अचिराते कृष्ण तोमा करिबेन अङ्गीकार॥"

चै० च० म० ७.१४३,१४४

इतनी बात कहकर प्रभु उस स्थानसे पुनः चल दिये। कूर्म और वासुदेव दोनों विप्र मिलकर प्रभुके रूप-गुणका स्मरण करके एक दूसरेको गलबहियाँ डाले उच्च स्वरसे रोने लगे। प्रभुके विरहमें दोनों आदमी विशेष रूपसे कातर हो उठे। कुष्ट रोगसे वासुदेव विप्रका इस प्रकार उद्धार करनेके बाद प्रभुका नाम हो गया—'वासुदेवामृतपद।' दक्षिण-यात्रामें प्रभुका प्रथम कार्य था कूर्मदेव-दर्शन और वासुदेवोद्धार। कविराज गोस्वामीने श्रीगौराङ्ग प्रभुकी इस अपूर्व लीलाकथाको लक्ष्य करके उनकी स्तुति की है—

धन्यं तं नौमि चैतन्यं वासुदेवं दयार्द्रधीः।
नष्टकुष्टं रूपपुष्टं भक्तितुष्टं चकार यः॥

चै० च० म० ७.१.

इस लीला रङ्गमें प्रभुने कुछ ऐश्वर्य दिखलाया। उन्होंने कुष्ट व्याधिग्रस्त वासुदेव विप्रको दिव्य देह प्रदान किया। यह लीला अलौकिक होते हुए भी इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है; क्योंकि योगी-जनभी योगबलसे इस प्रकारका अद्भुत कार्य कर सकते हैं। परन्तु प्रभुने जो गलित कुष्ट-ग्रस्त रोगीको अपने हृदयसे लगाकर आलिङ्गन प्रदान किया, इससे व्याधिक्लिष्ट जीवके प्रति उनकी अपार दयाका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। मनुष्य यह कार्य नहीं कर सकता। योगीजन भी ऐसा नहीं करते। वासुदेवके मुखसे प्रभुने यह बात कहला दी थी।

महाराज गजपति प्रतापरुद्रने प्रभुकी यह अपूर्व लीलाकथा सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा था—"भट्टाचार्य ! ये यथार्थ ही ईश्वर हैं। नहीं तो, जीवगणके प्रति इनकी इतनी करुणा क्योंकर होती ? इन्होंने कुष्टरोग दूर किया, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि योगीजन भी ऐसा कर सकते हैं, परन्तु प्रभुने कुष्ट रोगग्रस्त पुरुषको आलिङ्गन किया, यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है।"

जीयड़ नृसिंह दर्शन

प्रभु मार्गमें चले जा रहे हैं। उनके साथ कृष्णदास और गोविन्द हैं। प्रभुके श्रीमुखसे निकल रहा है केवल—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्॥

वज्रगम्भीर मेघनादमें प्रभु निरन्तर इस श्लोक-का पाठ करते हुए रास्तेमें नृत्यावेशमें चले जा रहे हैं। जिनके कानोंमें प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत मधुर कृष्ण नाम प्रवेश करता है, उनका मन-प्राण और

चित्त अपहृत हो जाता है। वे प्रभुके द्वारा कृष्ण नाम उपदेश पाकर कृपासिद्ध साधु पदको प्राप्त होते हैं। उनके द्वारा अन्य बहुत लोगोंका उद्धार होता है।

इस प्रकार दक्षिण देशवासी सब जीवोंका उद्धार करते हुए प्रभु जियड़ नृसिंह क्षेत्रमें* आ उपस्थित हुए। यहाँ आकर उन्होंने श्रीनृसिंहजीको दण्डवत् प्रणाम और स्तुति करके प्रेमानन्दमें नृत्य-कीर्तन किया। आजानुलम्बित श्रीभुजयुगलको ऊपर उठाकर वे श्रीनृसिंहजीकी स्तुति करने लगे—

उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्वभक्तानां नृकेशरी।
केशरीव स्वपोतानामन्येषामुग्रविक्रमः॥

(श्रीम०भा०७. ९१ की श्रीधरस्वामीकी टीकामें)

श्लोकार्थ—जिस प्रकार सिंह अन्यके प्रति उग्र होकर भी अपनी सन्तानके प्रति शान्त होता है, उसी प्रकार नृसिंहदेव भी अपने भक्तके प्रति अनुग्र (स्नेहपूर्ण) हैं।

श्रीनृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह।
प्रह्लादेश! जय पद्ममुख पद्मभृङ्ग॥

श्रीनृसिंहजीके भक्तोंने प्रभुके गलेमें पुष्पमाला प्रसाद पहना दिया। एक सौभाग्यवान् विप्रने उनको भिक्षा कराया। उस रात प्रभु वहाँ ही रहे। श्रीनृसिंहजीके सेवकवृन्द प्रभुको घेरकर बैठ गये। गोविन्द और कृष्णदास उनके साथ ही थे। प्रेमावेशमें प्रभु श्रीजीयड़ नृसिंहजीकी सारी पूर्वकथा कहने लगे। इस भक्ति कथाके वक्ता स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्गसुन्दर थे और श्रोता श्रीनृसिंहजीके सेवकवृन्द।

प्रभुने हँसकर कहा—"इस गाँवमें पूर्व कालमें पूँड़ा नामक एक गोप वास करता था। उसका जातीय धन्धा था कृषिकर्म। उसने घरके पास एक खेतमें अन्न बोया। उस खेतमें बहुत अच्छी फसल लगी। पूँड़ा रात-दिन आहार-निद्रा छोड़कर अपनी फसलकी रखवाली करता था। घर जानेका उसको अवसर नहीं मिलता। किसके ऊपर खेतकी रखवालीका भार देकर घर जाय, इस चिन्तामें वह व्याकुल हो उठा। क्योंकि घरपर उसके दूसरे काम भी थे। एक दिन मन ही मन निश्चय किया कि इस कार्यका भार श्रीकृष्णके ऊपर दे दूँगा। यह सोचकर पूँड़ा श्रीकृष्णका नाम लेकर पुकारकर बोला—'हे कृष्ण! तुम मेरी इस फसलकी रक्षा करो। तुम्हारे नामपर मैं वैष्णवोंको अन्न दूँगा।' इस प्रकार श्रीकृष्णके ऊपर भार देकर वह खेतिहर निश्चिन्त हो गया।

"एक दिन वह पूँड़ा खेतमें आया और देखा कि कोई जानवर उसके खेतकी फसल खा गया है। इससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। तब वह श्रीकृष्णको पुकारकर बोला—'कृष्ण! तुमने मेरी सारी फसल चौपट कर दी।' इतना कहकर वह रोने लगा। रोते-रोते फिर बोला—'हे नारायण! मेरे खेतकी फसल किसने खायी, मैं उसको आँखोंसे देखना चाहता हूँ।"

यह कहकर वह अपनी पर्णकुटीमें रातभर जागता रह गया। तीसरे पहर रातमें उसने देखा कि एक बड़ा सूअर आकर उसके खेतकी फसलके डण्ठल काटकर फेंक रहा है, और अन्न खा रहा है। यह देखकर पूँड़ाने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर निशाना ताककर उसे बींध दिया। सूअर बाण-विद्ध होते ही 'राम-राम' शब्द उच्चारण करते हुए कातर स्वरमें बोलते हुए पर्वतकी गुफामें घुस गया। पूँड़ा उस जानवरके मुखसे राम-नाम सुनकर विस्मित होकर मनमें सोचने लगा, 'यह तो सूअर नहीं था, यह तो स्वयं भगवान् थे।' यह सोचकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वह उस पर्वतकी कन्दराके पास

---

*जियड़ नृसिंह क्षेत्र। विजगापट्टम या विशाखापत्तनके समीप ६ मीलपर सिंहाचल नामक स्थान है। वहाँ रेलवे स्टेशन है। नृसिंहजीका मन्दिर पर्वतके उच्च प्रदेशमें है। विजय मूर्ति आलोकमें एवं मूल नृसिंह मूर्ति मन्दिरके भीतर विराजमान हैं। रामानुज सम्प्रदायके वैष्णवगण इन नृसिंह देवके सेवायत हैं।

जाकर तीन दिन बिना कुछ खाये-पिये पड़ा रहा। केवल इतना ही बोलता रहा कि—'तुम कौन हो ? तुम कौन हो ?' परन्तु कुछ उत्तर न पाकर वह बड़ा कातर हुआ। तब भक्तवत्सल श्रीभगवान्‌के मनमें दयाका उद्रेक हुआ। वे आकाशवाणीके द्वारा बोले—'मैं भगवान् हूँ। तुम्हारी फसलको मैं नष्ट कर रहा था, इसलिए तुमने मुझको बाणसे बींध दिया। इससे चिन्ता न करो। तुम अपने घर जाओ।'

"पूँड़ा भक्त था। श्रीभगवान्‌की यह बात सुनकर उसके मनमें दारुण व्यथा हुई। अत्यन्त कातर होकर उसने मनमें निश्चय किया कि 'मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने भगवान्‌को बाणविद्ध कर दिया है। अब यह पापदेह न रखूँगा। उपवास करके प्राण त्याग करूँगा।'

"इतना कहकर वह उस निर्जन पर्वतकी कन्दरामें बिना खाये-पिये पड़ गया। वह कई दिन तक उपवास करता रहा। उसका शरीर क्षीण हो गया। इस प्रकार कई दिन बीत गये। अचानक पुनः आकाशवाणी सुनायी दी—'अबोध पूँड़ा। बिना कारण क्यों मरता है ? तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। अपने घर जाओ।'

पूँड़ा रोते-रोते बोला—'मैंने तुम्हारे कोमल शरीरमें बाण मारा, मेरा यह अपराध मरनेपर भी मिट नहीं सकता। यमका प्रहार हो, तभी यह मिट सकता है। मेरे पितर मेरे अपराधके कारण नरकमें जा चुके। और भी जो कोई मुझे देखेगा. वह भी नरकमें जायगा।'

"भक्तवत्सल श्रीभगवान्‌ने दुःखार्त्त भक्तकी मनोव्यथा देखकर पुनः आकाशवाणीमें कहा—'तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। पूर्वजन्मोंमें तुमसे जो अपराध हुए, वे भी सब मैंने ले लिये।'

पूँड़ाका मन तत्काल द्रवित हो गया। वह कृपानिधि प्रभुकी कृपाका स्मरण करके आकुल होकर रो पड़ा। उसके मनमें कितने भाव उदय हुए, यह भगवान् ही जाने। उसने दोनों हाथ जोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें रोते-रोते दिल खोलकर निवेदन किया, 'प्रभु ! तुमने अभय दिया है, इसीसे कह रहा हूँ, मैं कैसे समझूँ कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया ? तुम यदि साक्षात् दर्शन दो तो मेरी समझमें आवे। तुम यदि कहो तो मैं यह बात राजासे कहूँ ? मुझको तुमने जो कुछ कहा है, यह यदि राजासे कह दो तो मैं बड़ा सुखी हो जाऊँगा।'

"पूँड़ाकी यह बात सुनकर श्रीभगवान्‌ने आकाशवाणी द्वारा कहा—'तुम जो कहते हो, वैसा ही होगा।"

पूँड़ा परम आनन्दित होकर तत्काल राजद्वार पर जाकर उपस्थित हुआ। द्वारपालसे कहकर राजाके सामने गया। हाथ जोड़कर दरिद्र भक्त गोप पूँड़ाने राजासे आद्योपान्त सारी बातें कह सुनायीं। राजा बड़ा धर्मप्राण था। पूँड़ाकी बात सुनकर वह विस्मित होकर बोला—'यह सब बातें सच्ची हैं न ?' पूँड़ाने उत्तर दिया—'महाराज ! आप मेरे साथ चलिये, भगवान्‌ने मुझको जो आज्ञा दी है, वही आज्ञा आपको भी देंगे।'

राजाने परम सन्तुष्ट होकर सपरिवार पैदल ही पर्वतकी कन्दराके पास जाकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करके भक्तिपूर्वक भगवान्‌से निवेदन किया। तत्काल आकाशवाणी हुई—'हे राजा ! पूँड़ाके वचन मिथ्या नहीं हैं। तुम साक्षी हो, पूँड़ा अबसे मेरा हो गया। इसपर यमका कोई अधिकार नहीं है।'

श्रीभगवान्‌के श्रीमुखकी मधुमय वाणी सुनकर राजा प्रेमानन्दमें अधीर होकर नृत्य करते हुए उस भाग्यवान् गोपनन्दनके चरणोंमें जा गिरा। उनकी रानी भी पूँड़ाके चरणों में गिरकर प्रेमानन्दमें क्रन्दन करने लगी। राजाने पूँड़ासे रोते हुए कहा—'तुमने मुझे भगवान्‌के श्रीमुखकी वाणी सुनायी है, तुम मेरे गुरु हो।'

"राजाके इस आर्त्त और दैन्य भावको देखकर श्रीकृष्णके मनमें उनके प्रति दया उत्पन्न हुई। उन्होंने पुनः दैव वाणीके द्वारा राजासे कहा—'मेरे भक्तमें तुमने जाति बुद्धि नहीं की, इसलिए मैं तुमको दर्शन दूँगा। तुम इस स्थानपर दुग्धका सिंचन करो, मुझे वहाँ विद्यमान देखोगे।'

राजा श्रीभगवान्‌की यह आदेशवाणी सुनकर तत्काल नगरमें घोषणा करके कलस भर-भरकर दूध मँगाकर उस पर्वतकी गुफामें ढालने लगा। वहाँ दूधकी नदी वह चली। धीरे-धीरे उस स्थानमें श्रीकृष्णका मोरपंखका चूड़ा दीख पड़ा। राजा परम आनन्दित होकर हरिध्वनि करके नृत्य करने लगा। उस समय वहाँ बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। नाना प्रकारके मङ्गल बाद्य बजने लगे। उच्च हरि-ध्वनिसे चतुर्दिक शब्दायमान हो उठा। सब लोग दोनों बाहु ऊपर उठाकर आनन्दसे नृत्य करने लग गये। जैसे-जैसे लोग दूध ढालते गये, वैसे-वैसे श्रीकृष्ण भगवान्‌का अपूर्व सौन्दर्यशाली श्रीअङ्ग ऊपर उठने लगा। जानुदेश तक उठनेके बाद पुनः आकाशवाणी हुई, 'अब दूध मत ढालो। मैं अब और न उठूँगा। मेरे चरणोंके दर्शन न होंगे। यह सुनकर राजाका हर्ष विषादमें परिणत हो गया। वहाँ उन्होंने ठाकुरजीका मन्दिर बनवा दिया। महोत्सव और सेवा-भोग आदि का प्रबन्ध कर दिया।

'एक दिन राजाने पूँड़ासे कहा—'पूँड़ा! अब तुम राजा हो जाओ, मुझको अब राज्यसे प्रयोजन नहीं है। अपनी यह कृष्ण-मूर्ति मुझको दे दो। मैं इसकी सेवा करके जीवन सार्थक करूँगा।'

"पूँड़ाने राजासे कहा—'राजा! तुम अज्ञानीके समान बातें कर रहे हो। मुझे तुम्हारा राज्य नहीं चाहिये। हम दोनों आदमी मिलकर प्रेमानन्दसे सेवा करेंगे।' राजा इसपर सहमत होकर पूँड़ाके साथ एकत्र श्रीविग्रहकी सेवा करने लगा। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये।

"श्रीकृष्ण भगवान्‌के प्रकट होनेका यह समाचार राज्यमें चारों ओर फैल गया। सब लोग श्रीविग्रहका दर्शन करनेके लिए आने लगे। नित्य वहाँ लोगोंकी भीड़ लगने लगी। एक दिन नौका करके एक गृहस्थ साधु दो परम सुन्दरी स्त्रियों को साथ लेकर श्रीविग्रहका दर्शन करने आया। लज्जासे वह साधु जब स्त्रीको साथ लेकर विग्रह दर्शन करनेके लिए जानेमें अपनी अनिच्छा प्रकट करने लगा, तब उसकी दोनों भक्तिमती स्त्रियाँ रोने लगीं। उन्होंने पतिके चरण पकड़कर कहा—'तुम गुरु हो, हम लोगोंको भी श्रीकृष्णके दर्शन कराओ। हमारे भाग्यको क्यों खराब करते हो?"

साधु बोला—'यह नहीं हो सकता, तुम लोगोंके लिए मैं प्रसाद ला दूँगा। परन्तु उसको दोनों स्त्रियाँ कदापि छोड़नेके लिए राजी न हुईं। तब साधुके मनमें क्रोध उत्पन्न हो गया। वह क्रुद्ध होकर बोला—'तुम लोग जाकर श्रीकृष्णके दर्शन करो। मैं घर-पर रह जाता हूँ।'

"तब दोनों स्त्रियोंने निश्चय किया कि 'पति-देवताको छोड़कर हम कृष्ण दर्शनके लिए चलें। कृष्ण-भजनमें पतित्याग दूषणीय नहीं है।' इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके दोनों स्त्रियाँ एक साथ श्रीविग्रह दर्शनके लिए गयीं। पति घरपर ही रह गया। परन्तु वह मनमें अपनेको धिक्कार देने लगा। तब उसके मनमें बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि 'मैंने क्यों इनका अनादर करके श्रीविग्रहके दर्शनमें बाधा दी।' तब साधुने अपनी परम भाग्यवती दोनों स्त्रियोंको पास बुलाकर कहा—'तुम लोग धन्य हो। तुम्हारी कृष्णभक्ति और कृष्णानुराग जगत्‌में अतुल-नीय है। मैं तुम लोगोंको साथ लेकर चलता हूँ, चलो।'

"दोनों स्त्रियाँ परम आनन्दपूर्वक पतिके साथ श्रीकृष्णका दर्शन करने चलीं। वह गृहस्थ साधु सौदागरीका व्यवसाय करता था। श्रीमन्दिरमें जाकर श्रीविग्रहका दर्शन करके सस्त्रीक पूजा-भोग

देकर मन्दिरके बाहर आकर उसने देखा कि उसकी दोनों स्त्रियाँ साथ नहीं हैं, और श्रीमन्दिरका द्वार बन्द हो गया है। वह चकित होकर इधर-उधर देखने लगा। उसी समय उसने सुना कि श्रीविग्रहके मन्दिरके भीतर वे श्रीभगवान्‌के साथ बातें कर रही हैं। वह साधु भगवद्भक्त था, उसको अब कुछ और समझनेके लिए बाकी न रहा। वह अपनी भाग्यवती दोनों स्त्रियोंके प्रति श्रीकृष्णकी इस अद्भुत कृपाकी बात याद करके आनन्दसे गद्गद होकर उच्चस्वरसे स्तुति करने लगा। श्रीभगवान् साधुकी स्तुतिसे सन्तुष्ट हो गये। अचानक श्रीमन्दिरका द्वार अपने आप खुल गया। साधुने अपूर्व दृश्य देखा। उसकी दोनों परम भाग्यवती स्त्रियाँ पाषाण होकर श्रीकृष्णके चरणोंको प्राप्त हो गयी हैं। साधु अपनी दोनों स्त्रियोंके सौभाग्यको देखकर प्रेमानन्दमें अधीर होकर रोने लगा, और मन ही मन सोचने लगा—'संसारी पतिको छोड़कर कृष्ण-पतिको देखने गयीं, इसलिए उनको दृढ़तासे कृष्ण-पति मिल गये।'

"साधुने श्रीविग्रहके चरणोंमें गिरकर नाना प्रकारसे स्तुति विनती की। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उसको वर देना चाहा। साधुने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'प्रभो ! मेरे माता-पिताने मेरा नाम रक्खा था 'जीयड़।' मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे नामसे ही आपके इस श्रीविग्रहका नामकरण हो।' श्रीकृष्ण भगवान्‌ने हँसकर कहा—'तथास्तु।' इस कारण श्रीविग्रहका नाम हो गया 'जीयड़ नृसिंह'।"

इस भक्ति कथाके वक्ता स्वयं महाप्रभु हैं। वे प्रेमावेशमें आविष्ट भावमें प्रेमाश्रु पूर्ण नयनोंसे नृसिंह देवके सेवकोंसे परिवेष्ठित होकर यह कथा-कीर्तन कर रहे थे, उस समय श्रोतागणके आनन्दकी सीमा न रही। उनके नेत्र प्रभुके श्रीमुखचन्द्रसे हट नहीं रहे थे। वे देह-धर्म भूलकर आत्महारा होकर प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत सुधासनी कृष्णकथा सुन रहे थे।

कथा समाप्त होते ही प्रभु उठे। "कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे" शब्दसे दिगन्तको कम्पित करते हुए वे रास्तेपर निकले। ग्रामवासी लोग हरि-ध्वनि करते हुए उनके पीछे-पीछे चले। मत्त सिंहकी गतिसे प्रभु क्षणभरमें उनकी आँखोंसे ओझल हो गये। कृष्णदास और गोविन्द बड़ी कठिनाईसे उनका सङ्ग पकड़ सके। प्रभुने प्रभात कालमें जीयड़ नृसिंहक्षेत्रसे प्रस्थान किया। उनको रात-दिनका ज्ञान न था, दिक्-विदिक्का ज्ञान न था।

विद्यानगरमें रामानन्द रायसे मिलन

प्रेमोन्मत्त होकर प्रभु रास्तेपर चले जा रहे हैं। जिस देश, जिस गाँवमें होकर वे जाते हैं, वहाँके सब लोगोंको पूर्ववत् वैष्णव बनाते जा रहे हैं। इस प्रकारसे दक्षिण देशवासियोंका उद्धार करते हुए जगद्गुरु श्रीगौराङ्ग प्रभु गोदावरी नदीके तटपर जा पहुँचे। पवित्र सलिला गोदावरीको देखकर प्रभुको श्रीयमुना याद आ गयी। नदीके तीरपर सुरम्य कानन देखकर उनके मनमें श्रीवृन्दावनकी स्मृति उदय हुई।* उन्होंने बहुत देर तक प्रेमानन्दमें नृत्य करके नदीके पार जाकर स्नान किया। स्नानोपरान्त नदीके किनारे कुछ दूरपर बैठकर प्रेमावेशमें कृष्णनाम सङ्कीर्तन करने लगे।

उसी समय विद्यानगरके राज्य-प्रतिनिधि रामानन्द राय बाजे-गाजेके साथ पालकीपर चढ़कर बहुत लोगोंके साथ नदीमें स्नान करनेके लिए वहाँ आ उपस्थित हुए। राजा और राज्य-प्रतिनिधिके राजपथपर बाहर जाते समय उन दिनों बाजे-गाजेके साथ जानेका रिवाज प्रचलित था। रामानन्द रायके साथ सहस्रों वेदज्ञ ब्राह्मण थे। वे लोग नदीके किनारे बैठकर यथाविधि पूजा-पाठ तर्पण आदि करने लगे।

सर्वज्ञ प्रभुने पहचान लिया कि वे ही रामानन्द राय हैं। राम रायके साथ मिलनेके लिए प्रभुका

*गोदावरी देखि हैल यमुना स्मरण।
तीरे वन देखि स्मृति हैल वृन्दावन॥ चै. च.

मन उत्कण्ठित हो उठा। परन्तु वे धैर्य धारण करके बैठे-बैठे कृष्ण-नाम लेने लगे। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी अपरूप रूपराशि तथा अपूर्व श्रीअङ्गज्योतिसे आकृष्ट होकर रामानन्द रायने अपने आप ही प्रभुके पास आकर दण्डवत् प्रणाम किया। रामानन्द राय इस नवीन संन्यासीके अपूर्व रूप-लावण्यको देखकर चकित हो उठे। श्रीचैतन्य चरितामृतकारने लिखा है—

सूर्य शत सम कान्ति अरुण वसन।
सुवलित प्रकाण्ड देह कमल लोचन॥
देखिया ताँहार मने हैल चमत्कार।
आसिया करिल दण्डवत् नमस्कार॥

चै. च. म. ८. १६, १७

प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर होकर नदीके तीर बैठे थे। रामानन्द रायको देखकर प्रेम भरे उठकर खड़े हो गये। प्रेमाश्रु विगलित नेत्रसे बोले, "उठो! कृष्ण कृष्ण कहो।" उनको आलिङ्गन करनेके लिए समुत्सुक होकर पूछा—"आप ही क्या रामानन्द राय हैं?" रामानन्द रायने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया, "मैं ही शूद्राधम आपके चरणोंका दास हूँ रामानन्द।" सुनते ही प्रभुने अधीर होकर भाग्यवान् भक्तप्रवर रामानन्द रायको दोनों भुजाओंसे दृढ़तापूर्वक प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध कर लिया। प्रेमावेशमें भक्त और भगवान् दोनों ही मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पड़े।

भक्त और भगवान्‌के इस मधुर मिलनमें दोनोंको ही आनन्द प्राप्त हुआ। दोनों केही नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बह चले। दोनोंके ही अङ्गोंमें अष्ट सात्त्विक भावोंके सारे लक्षण दीख पड़े। दोनोंको एक दूसरेके प्रति स्वाभाविक प्रेमभाव उदय हुआ। दोनों ही प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर कृष्ण-नाम उच्चारण करने लगे। वेदज्ञ विप्रगण स्नानादि तर्पण आदि कर रहे थे। संन्यासी और राजप्रतिनिधि रामानन्द रायके इस प्रकार अद्‌भुत प्रीति-मिलनको देखकर वे लोग चकित होकर सोचने लगे—"इस नवीन संन्यासीमें अपूर्व ब्रह्मतेज दीख रहा है। ये शूद्रको आलिङ्गन करके इतना रोते क्यों हैं। ये राजप्रतिनिधि रामानन्द राय भी बड़े गम्भीर स्वभावके हैं। इस नवीन संन्यासीके अङ्ग-स्पर्शसे ऐसे उन्मत्त क्यों होगये?" विप्रगण इस प्रकार मन ही मन विचार करने लगे, और तीक्ष्णदृष्टिसे दोनोंकी ओर देखने लगे। प्रभुने देखा कि ये बहिरङ्ग लोग हैं, तत्काल अपने भावको संवरण कर लिया।

पहले कहा जा चुका है कि प्रभु और रामानन्दके मिलनमें दोनोंका एक-दूसरेके प्रति स्वाभाविक प्रेम-भाव दीख पड़ा। इसकी कुछ व्याख्या करना आवश्यक है। राय रामानन्द पूर्वावतारमें ब्रजकी विशाखा सखी हैं, और प्रभु साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं। दोनोंके मिलनमें, व्रज सुन्दरीगणका व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णमें जो स्वाभाविक प्रेम तथा श्रीकृष्णका व्रजाङ्गनाओंके प्रति जो सहज प्रेम था, कलियुगमें भक्त-भाव अङ्गीकार करनेके कारण वे दोनोंमें प्रच्छन्न भावमें निहित होनेपर भी, इस मधुर मिलन-कालमें उस पूर्व स्वभाव सिद्ध भावका पुनः उदय हुआ। बहिरङ्ग लोगोंके सामने प्रेमभाव स्वतः संकुचित हो जाता है। प्रभुने देखा कि ये सारे पाण्डित्याभिमानी वेदज्ञ विप्रगण विजातीय लोग हैं, अर्थात् व्रज-प्रेमभाव-विरुद्ध लोग हैं। अतएव इन लोगोंके सामने भाव संवरण करना ही ठीक है। यह सोचकर दोनों आदमियोंने अनिच्छा होते हुए भी प्रेमालिङ्गन बन्धनको विच्छिन्न करके चित्तको स्थिर किया। तब दोनों नदीके तटपर एकान्त स्थानमें बैठे।

प्रभुने हँसते-हँसते राय रामानन्दसे कहा—"सार्वभौम भट्टाचार्यने तुम्हारे गुणोंका बखान करते हुए तुमसे यत्नपूर्वक मिलनेको कहा था। मैं तुमसे मिलनेको ही इधर आया हूँ। अनायास ही तुम्हारे दर्शन प्राप्त हो गये।"

राय रामानन्दने हाथ जोड़कर प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर प्रेमाश्रुनयनसे प्रभुके सुन्दर मुखचन्द्रकी ओर देखकर कहा—"सार्वभौम

मुझे अपना सेवक मानकर परोक्षमें भी मेरा हित-साधन करते रहते हैं। उनकी कृपासे तुम्हारे दर्शन पाकर मेरा मनुष्य जन्म सफल हो गया। सार्वभौमपर तुम्हारी कृपा है, उसका यही प्रमाण है कि तुम नारायण होकर मुझ शुद्राधम राजसेवीका स्पर्श करते हो। वेदोंने मेरे जैसे अधम लोगोंका दर्शन भी निषेध किया है, लेकिन तुम ईश्वर पतितपावन दयालु हो, मुझे निस्तारनेको ही यहाँ आये हो।* मेरे साथके हजारों ब्राह्मण भी तुम्हारे मुँहसे कृष्ण-नाम सुनकर तुम्हारे दर्शन कर द्रवीभूत हो रहे हैं। तुममें जो अप्राकृत गुण, ईश्वरके लक्षण हैं, वे जीवमें संभव नहीं है।"

रामानन्द रायनेप्र भुके तत्त्वको समझा है, इसीलिए अपने मनके भावको खोलकर कह दिया है। उन्होंने प्रभुको स्पष्ट कह दिया कि "तुम्हीं साक्षात् ईश्वर हो। जीवमें इतना रूप और गुण सम्भव नहीं है।" रामानन्द रायने एक बहुत आश्चर्यजनक बात देखी। उनके साथ पाण्डित्याभिमानी वेदज्ञ कर्मजड़ लगभग सहस्रों ब्राह्मण थे, जिन्होंने पहले प्रभुके कार्यकी टीका की थी। तर्क-वितर्क करके उन लोगोंने आजकी इस घटनाकी आलोचना की थी, वे ही सब ब्राह्मण प्रभुकी कृपासे अकस्मात् भक्तिपथके पथिक हो गये। स्वयं भगवान्का साक्षात् दर्शन करके, उनके श्रीमुखसे निःसृत हरिनाम महामन्त्रमें दीक्षित होकर उनका शुष्क हृदय सरस हो गया, तर्कनिष्ठ मन द्रवित हो उठा, आँखोंसे प्रेमाश्रुधारा बह चली, अङ्ग पुलकित हो उठे। सब लोग कृष्ण-कृष्ण कहकर रोने लगे। उपस्थित सब लोग क्षणमात्रमें वैष्णव हो गये। ये सब कार्य बड़े दुरूह थे। मनुष्यके द्वारा ये कभी हो नहीं सकते थे। अतएव राय रामानन्दने प्रभुसे कहा—

"जीवे ना सम्भवे एइ अप्राकृत गुण।"

चै. च. म. ८. ४०

उन्होंने यह भी देखा कि प्रभु विरक्त संन्यासी हैं। उनके लिए विषयी लोगोंका सङ्ग निषिद्ध है। यह वेदाज्ञा है। प्रभुने वेदाज्ञाका भय न करके सबके सामने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। यह साधारण संन्यासीका कार्य न था। यह सब विचार करके परम पण्डित तथा परम भागवत राय रामानन्दने प्रभुको साक्षात् ईश्वर मान लिया। परन्तु प्रभु कलिके प्रच्छन्न अवतार और चतुर चूड़ामणि हैं। वे सदा आत्मगोपन करनेमें तत्पर रहते हैं। आत्मप्रकाश करके भी वे आत्मगोपनमें तत्पर हो जाते हैं। प्रभुने रामानन्द रायकी बात सुनकर हँसते हुए उत्तर दिया—"रामानन्द! तुम महाभागवतोत्तम हो। तुम्हारे ही दर्शनसे सबका मन द्रवीभूत हुआ है। औरोंकी तो बात ही क्या है, मैं मायावादी संन्यासी भी तुम्हारे स्पर्शसे कृष्णप्रेममें डूब रहा हूँ। मेरे कठोर हृदयका शोधन करनेके लिए ही सार्वभौमने मुझे तुमसे मिलनेको कहा है।"

चतुर चूड़ामणि श्रीगौर भगवान् भक्तका मान बढ़ानेमें सदा तत्पर रहते हैं। उन्होंने राय रामानन्दकी बात उलाट कर उनको जो कुछ कहा, उससे भक्त चूड़ामणि राय महाशयको और कुछ कहनेकी सामर्थ्य न रही। श्रीभगवान्की स्तुति करके भक्तको जो आनन्द होता है, भक्तका गुणानुवाद करके भगवान्को भी तद्रूप ही आनन्द अनुभव होता है। भगवान्का गुण कीर्तन जैसे भक्तके लिए प्रीतिप्रद है, भक्तका सम्मानवर्द्धन श्रीभगवान्के लिए तदपेक्षा अधिक प्रीतिजनक है। इसीकारण कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइ मत दोंहे स्तुति करे दोंहार गुण।
दोंहे दोंहार दरशने आनन्दित मन॥

चै. च. म. ८. ४४.

---

* महद्विचलं नृणां गृहिणां दीनचेतनाम्।
निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित्॥
श्रीमद्भागवत १०।८।४

श्लोकार्थ—हे भगवन्। दीन चित्त गृहीगण के कल्यार्थ साधनार्थ ही उनके घर महापुरुषोंका गमन होता है, अन्य कारणोंसे उनका कहीं गमन नहीं होता।

इसी बीचमें एक विष्णुभक्त वेदज्ञ विप्रने आकर प्रभुको निमन्त्रित किया। प्रभुने उसे वैष्णव समझकर निमन्त्रण स्वीकार किया। क्रमशः बेला अधिक होते देखकर प्रभुने रामानन्द रायकी ओर करुणनयनसे देखकर हँसते हुए कहा—

तोमार मुखे कृष्ण कथा शुनिते हय मन।
पुनरपि पाइ जेन तोमार दरशन॥

चै० च० म० ८.४७

रामानन्द राय अत्यन्त लज्जित होकर हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते बोले—

—आइला यदि पामर शोधिते।
दर्शन मात्रे शुद्ध नहे मोर दुष्ट चित्ते॥
दिन पाँच सात रहि करह मार्जन।
तबे शुद्ध हय मोर एइ दुष्ट मन॥

चै० च० म० ८.४८,४९

यह बात सुनकर करुणामय प्रभु मुस्कराये। उस मुस्कानका मर्म रामानन्द राय न समझ सके। उनके द्वारा श्रीगौरभगवान् अपना कार्य साधन करेंगे, इसी आनन्दमें प्रभु मुस्कराये थे। रामानन्द रायने नितान्त अनिच्छापूर्वक उस समयके अनुसार प्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके उनसे विदा ली। दोनों ही एक दूसरेके दर्शनकी आकांक्षासे नितान्त उत्कण्ठित होगये थे। क्रमशः दिन बीता। सन्ध्या देवी आकर उपस्थित होगयीं। प्रभु गोदावरीके तटपर एक निभृत स्थानमें आकर बैठ गये। सुस्निग्ध सान्ध्य समीर मन्द-मन्द प्रवाहित होरहा था। स्वच्छ सलिला गोदावरी कलकल निनादसे प्रभुका गुण गारही थी। आज उनके मनमें बड़ा आनन्द था। वह आज श्रीयमुनाका भाग्य प्राप्तकर प्रेमानन्दमें तरङ्ग-भङ्गिमा प्रदर्शित कर नृत्य कर रही थी। प्रभुको श्रीवृन्दावनकी स्मृति उदय हुई। वे तीरस्थ सुरम्य उपवनकी शोभा देखकर प्रेमानन्दमें विभोर होकर उच्च स्वरसे कृष्णनाम लेरहे थे। उसी समय केवल एक नौकर साथमें लेकर राय रामानन्दने प्रच्छन्न वेषमें प्रभुके निकट आकर उनकी चरणवन्दना की। प्रभुने उठकर उनको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। इसके बाद प्रभुके साथ रामानन्द रायकी जो तत्त्ववार्त्ता हुई,वह स्वतन्त्र और विस्तारपूर्वक अगले अध्यायमें* वर्णन की जायगी।

विद्यानगरसे प्रस्थान

विद्यानगरमें राय रामानन्दके ऊपर कृपा करके प्रभुने गोदावरी तीरस्थ पञ्चवटी वनमें प्रवेश किया। उनके श्रीमुखसे निःसृत—

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥

इस श्लोकके शब्दसे पञ्चवटी वन प्रकम्पित हो उठा। पक्षी-पक्षी, कीट-पतङ्ग पर्यन्त राम-नामसे उन्मत्त हो उठे। प्रभुके मनमें पूर्वस्मृति उदय हुई। प्रेमानन्दमें वाह्यज्ञान-शून्य होकर वे श्रीराम-लक्ष्मणका नाम लेकर उच्च-स्वरसे बारम्बार पुकारने लगे, और यह कहकर रोने लगे—

एइ खाने कूँड़े घर बान्धिला लक्षण।
मृगी मारिबारे राम करिला गमन॥
श्रीराम उद्देशे पाछे चलिला लक्षण।
एइ खाने सीता हरि लइल रावण॥

चै० म०

उसके बाद हुङ्कार गर्जन करके सिंहनादमें "मार-मार धर-धर" शब्द करके ऊर्ध्वश्वास लेकर दौड़ने लगे। कभी वे उच्चस्वरसे "लक्षण-लक्षण" कहकर पुकारते हैं, कभी सीताका नाम लेकर अजस्र आँसू बहाते हैं। उनके साथ कृष्णदास और गोविन्द भी हैं। वे प्रभुकी अवस्था देखकर भयभीत हो उठे। भक्त दुःखहारी प्रभुने कुछ देरके बाद आत्म-संवरण किया।

---

* इसका वर्णन अलगसे छठे अध्यायमें है। इस प्रकरणका हिन्दी अनुवाद श्रीराधागोविन्द नाथकी विस्तृत टीका सहित हमारे यहाँसे प्रकाशित है। —प्रकाशक

दक्षिण देशके रहने वाले लोग नाना मतावलम्बी थे। जो लोग वैष्णव थे, वे श्रीरामके उपासक थे। कोई कर्मजड़ था, कोई तत्त्ववादी था, बहुतेरे लोग श्रीसम्प्रदायके वैष्णव थे। ज्ञान मार्गावलम्बी विद्याभिमानी पण्डित भी बहुत थे। उपधर्मयाजी पाखण्डियोंकी संख्या अनगिनत थी। जगद्गुरु श्रीगौराङ्ग प्रभुका दर्शन करके, उनके श्रीमुखसे निःसृत हरिनाम महामन्त्रको श्रवण करके, वे सारे विभिन्न मतोंके मानने वाले लोग श्रीकृष्णोपासक परम वैष्णव होगये। सब लोग कृष्णनाम जप करने लगे।

पञ्चवटी वनका दर्शन करके प्रभुने गौतमी गङ्गामें स्नान किया। उसके बाद मल्लिकार्जुन जाकर शङ्करजीका दर्शन किया। वहाँ दासराम महादेव हैं। प्रभुने उनका भी दर्शन किया। इसके बाद अतोबल नृसिंहका दर्शन करनेके लिए गये। श्रीविग्रहका दर्शन करके उनको बड़ा आनन्द मिला। श्रीमन्दिरमें आनन्द-नृत्य किया। तत्पश्चात् सिद्ध-वटमें जाकर सीतापति श्रीरघुनाथजीके श्रीविग्रह-का दर्शन करके वे परम आनन्दमें मग्न होगये। वहाँ एक रामभक्त विप्रके निमन्त्रित करनेपर प्रभुने उनके घर भिक्षा ग्रहण की। वे ब्राह्मण रामनामके सिवा मुखसे और कुछ नहीं बोलते थे। निरन्तर उनके मुँहसे रामनाम जप होता था। प्रभुने उस रामभक्त ब्राह्मणके ऊपर कृपा करके स्कन्द क्षेत्र (हैदराबाद) में जाकर श्रीकार्त्तिकेयकी मूर्त्तिका दर्शन किया। उसके बाद उन्होंने त्रिमल्लनगरमें आकर त्रिविक्रम मूर्त्तिका दर्शन किया।

रामभक्त विप्रके यहाँ भिक्षा

इन सब तीर्थस्थलोंका दर्शन करके प्रभु सिद्ध-वटमें उस रामभक्त विप्रके घर आये। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

तीर्थयात्राय तीर्थक्रम कहिते ना पारि।
दक्षिण धामे तीर्थ गमन हय फेरा फेरि॥
अतएव नाम मात्र करिये लिखन।
कहिते ना पारि तार यथा अनुक्रम॥*

चै० च० म० ९.४,५

श्रीभगवान्‌का लीला ग्रन्थ इतिहास नहीं है। लीलाकथामें क्रमबद्धता नहीं होती। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

ए सब कथार अनुक्रम नाहि जानि।
जे ते मते चैतन्येर यशसे बाखानि॥

चै० भा० अं० ४.५१४

प्रभु क्यों उस रामभक्तके घर लौटकर आये? इसका कुछ रहस्य है। प्रभुने आकर देखा कि वे रामभक्त विप्र निरन्तर कृष्ण-नाम ले रहे हैं, और राम नाम नहीं लेते हैं। सर्वज्ञ प्रभु सब कुछ जानते हैं, तथापि उस भाग्यवान् विप्रसे पूछा—"हे ब्राह्मण देवता! तुम्हारी यह क्या दशा हो गयी? पहिले तो तुम निरन्तर राम-नाम कहते थे, अब निरन्तर कृष्ण-नाम क्यों लेते हो?"

इस विप्रके अकस्मात् आजन्म स्वभावके बद-लनेका कारण उन्हींके मुखसे प्रभुने प्रकट कर दिया। विप्रने हाथ जोड़कर प्रभुके प्रश्नका निम्नलिखित शास्त्रसम्मत उत्तर दिया। यथा—

विप्र कहे एइ तोमार दर्शन प्रभाव।
तोमा देखि गेल मोर आजन्म स्वभाव॥
बाल्यावधि रामनाम-ग्रहण आमार।
तोमा देखि कृष्ण नाम आइल एकबार॥
सेइ हैते कृष्णनाम जिह्वाते बसिल।
कृष्णनाम स्फुरे रामनाम दूरे गेल॥
बाल्यकाल हैते मोर स्वभाव एक हय।
नामेर महिमा शास्त्र करिये सञ्चय॥

चै० च० म० ९.२३-२६

* कविराज गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुकी तीर्थयात्राका जो वर्णन किया है, उसमें भौगोलिक क्रम नहीं है, यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। श्रीगोविन्द कर्मकारकृत करचामें जो वर्णन है, उसमें कुछ-कुछ भौगोलिक क्रमका निर्देश दृष्टिगोचर होता है। कृपालु पाठकवृन्दसे यह करचा पढ़नेका मैं अनुरोध करता हूँ। इस ग्रन्थके मतसे राज-महेन्द्रीसे महाप्रभु त्रिमन्द गये थे, तथा उस स्थानसे चूण्डि-राम तीर्थ गये थे। —ग्रन्थकार

इतना कहकर रामभक्त विप्रने पहले पद्मपुराणके एक श्लोकका पाठ किया। वह श्लोक है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

प० पु० श्रीरामचन्द्र शतनाम स्तोत्र ८

श्लोकार्थ—सत्य, आनन्द और चित् स्वरूप आत्मामें योगीजन रमण करते हैं, अतएव राम शब्दसे परम ब्रह्मका कीर्तन होता है।

पश्चात् महाभारतका निम्नलिखित श्लोक पाठ किया—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥

म० भा० उद्योग.७१.४

श्लोकार्थ—कृषि भूवाचक अर्थात् सत्तावाचक शब्द है, ण निर्वृत्तिवाचक है। कृण् धातुके आगे ण प्रत्ययके योगसे कृष्ण शब्द बनता है। यह परब्रह्म वाचक कहलाता है।

इसके बाद पद्मपुराणका उत्तरखण्ड, वृहद्विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र (७२.३३५) पार्वतीके प्रति महादेवकी उक्तिका एक और श्लोक पाठ किया—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्र नामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने॥

श्लोकार्थ—महादेवने पार्वतीसे कहा—हे मनोरमे! तुम रामनाम श्रवण करो। हे वरानने! यह रामनाम सहस्रनामके तुल्य है।

सबके अन्तमें ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत श्रीकृष्णाष्टोत्तरशत नाम माहात्म्यका एक श्लोक पाठ करके प्रभुको सुनाया। वह उत्तम श्लोक इस प्रकार है—

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति॥

ह० भ० वि० ११.४८८

श्लोकार्थ—पवित्र सहस्रनामका तीन बार पाठ करनेपर जो फल होता है, वही फल कृष्णावतार-सम्बन्धी किसी भी एक नामका एक बार मात्र पाठ करनेसे होता है।

रामभक्त विप्र शास्त्रज्ञ थे। वे प्रभुसे बोले—"इन शास्त्रवाक्योंके अनुसार कृष्णनामकी अपार महिमा है। तथापि मेरे इष्टदेव राम होनेसे उन्हींका नाम लेनेमें मुझे सुख मिलता, इससे वही नाम निरन्तर लेता रहा। तुम्हारे दर्शनसे अब कृष्ण-नाम आने लगा। तुम्हीं कृष्ण हो, ऐसा मेरा निश्चय है।"

यह कहकर वह भाग्यवान् विप्र प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। प्रभुने उसे उठाकरके प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। उस दिन उसके घर प्रभुने भिक्षा ग्रहण की। विप्रने सपरिवार प्रभुके अधरामृत प्रसादको पाकर मानव जीवनको सफल किया।

प्रभुने इस लीलारङ्गस्थलमें समझा दिया कि "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" और अन्यान्य अवतार उनकी अंश कला है। और वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीगौराङ्ग हैं। नाम और नामी अभेद तत्त्व हैं। प्रभुके श्रीमुखसे कृष्णनाम सुनकर रामभक्त विप्रके मनमें श्रीकृष्णकी स्फूर्ति हुई। प्रभुकी श्रीमूर्तिका दर्शन करनेपर वे उसको साक्षात् श्रीकृष्ण जान पड़े। विप्रके इष्टदेव श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णके अंशावतार थे।* जब पूर्ण ब्रह्म सनातन स्वयं भगवान्की श्रीमूर्ति और नामकी स्फूर्ति रामभक्त विप्रके मनमें हुई तो उसकी जिह्वापर रामनामके स्थानमें श्रीकृष्ण-नामका अधिष्ठान हो गया। वे अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रकी कृपासे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त हो गये, तथा श्रीकृष्ण नामके गुणसे परम कृष्ण श्रीगौराङ्गका दर्शन प्राप्त कर धन्य हो गये। यह उनने निष्कपट भावसे प्रभुके चरणोंमें निवेदन करते हुए कहा—

"सेइकृष्ण तुमि साक्षात् इहा निर्धारिल।"

चै० च० म० ९.३१.

---

* रामादि मूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परम पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्रह्म संहिता।

आगे प्रस्थान-त्रिमन्द-नगरमें बौद्धोंसे शास्त्रार्थ

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभुने सिद्धवटसे यात्रा करके वृद्धकाशी* जाकर शिवजीका दर्शन किया। वहाँसे बहुतेरे ब्राह्मणोंकी बस्तीवाले एक गाँवमें गये। वहाँ लोगोंकी बड़ी भीड़ हुई। चारों ओरके गाँवोंसे लोग आकर प्रभुके साथ हो गये। उनके अपरूप रूपने सबके चित्तको आकर्षित कर लिया, और लोगोंके मनपर उनकी श्रीमूर्तिका अति अद्भुत प्रभाव पड़ा। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

प्रभुर प्रभावे लोक आइल दरशने।
लक्षार्वुद लोक आइसे नाहिक गणने॥
चैं० च० म० ९.३४

तार्किक, मीमांसक, मायावादी संन्यासीगण—सभी लोग आये। वेद-वेदान्त, सांख्य दर्शन, पातञ्जल, स्मृति, पुराण आदि सब शास्त्रोंके जाननेवाले पण्डित लोग प्रभुसे शास्त्रार्थमें हारकर उनका मत ग्रहण करके वैष्णव हो गये।

इस प्रकार जीवोद्धार करते हुए प्रभु दक्षिण दिशाकी ओर चले। उनके श्रीमुखकी वाणीसे, उनके कमल नयनके कटाक्षसे, उनके श्रीअङ्गकी वायुसे सारे जीवोंका उद्धार हो गया। उनके श्रीमुखसे निःसृत कृष्ण-नामसे सब लोग उन्मत्त हो गये। उनकी अपरूप रूप राशि देखकर, उनके अपूर्व प्रेमाविष्ट भावको देखकर दक्षिण देशवासी नर-नारीवृन्द एकबारगी मुग्ध होकर उनके साथ हो लिये। सब लोग वैष्णव होकर कृष्ण-नाम लेने लगे।

प्रभु अब त्रिमन्द-नगरमें आकर उपस्थित हुए। त्रिमन्द-नगरका राजा बौद्ध-धर्मावलम्बी था। वहाँ बहुतसे बौद्ध लोगोंका वास था। बौद्धाचार्य बड़े-बड़े पण्डित थे। राजसभाके पण्डितोंने एकत्र होकर निश्चय किया कि प्रभुके साथ शास्त्रार्थ किया जाय। राजा मध्यस्थ बना। प्रचण्ड शास्त्रार्थ हुआ। बौद्धाचार्योंने नव प्रस्थानका तर्क उपस्थित किया।

बौद्ध-शास्त्र तर्कप्रधान शास्त्र है। बुद्धदेवका प्रवचन ही बौद्धोंका प्रस्थान, अर्थात् मत-निरूपक शास्त्र है। बुद्धदेवके श्रीमुखसे निःसृत वाणीको उनके शिष्योंने तालपत्रपर लिखा, उन तालपत्रोंकी तीन पेटिका अर्थात् सन्दूक पूर्ण हो गयी। इसी कारण उनका नाम त्रिपिटक रक्खा गया। वह संस्कृत भाषामें लिखा गया था।

उन शास्त्रोंके ज्ञाता सारे बौद्धाचार्य प्रधान दार्शनिक पण्डित थे। वे सब प्रभुसे तर्कयुद्धमें परास्त हो गये। बौद्ध राजा बहुत लज्जित हुआ। सब लोग बौद्धोंको देखकर उपहास करने लगे। प्रभुके ऊपर उनको क्रोध उत्पन्न हुआ। घर जाकर उन पाखण्डी पण्डितोंने कुमन्त्रणा करके एक थालमें अपवित्र अन्न विष्णुप्रसाद कहकर लोगोंके द्वारा प्रभुकी भिक्षाके लिए भेजा; क्योंकि वे लोग प्रभुको वैष्णव संन्यासी समझते थे। प्रभुके सामने जब अन्नप्रसादकी थाली रक्खी गयी, एक महाकाय पक्षी अचानक वहाँ आ गया और अन्नप्रसादकी खाली अपनी चोंचसे उठाकर, कुमन्त्रणाकारी बौद्धोंके बीच अन्न बिखेरता हुआ, थालीको बौद्धाचार्य रामगिरिके मस्तकपर डाल दिया। तीरके समान उस थालीसे उनका सिर फूट गया, और रक्त प्रवाहित होने लगा। वे अचेत होकर भूतलपर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनके शिष्यगण हाहाकार करके रोने लगे। तब सबने मिलकर परामर्श करके प्रभुके पास आकर अपने आचार्यको अचेतन अवस्थामें उनके चरण-कमलमें समर्पण करके कहा—

"तुमिई ईश्वर साक्षात्—क्षम अपराध।
जीयाह आमार गुरु—करह प्रसाद॥"
चै० च० म० ९.५२

* कुछ लोग कालहस्ती तीर्थको वृद्धकाशी कहते हैं।

प्रभुने हँसकर उत्तर दिया—

—"सबे कह 'कृष्ण कृष्ण हरि'।
गुरुकर्णे कह कृष्ण नाम उच्च करि ।।
तोमा सबार गुरु तबे पाइबे चेतन।
सर्व बौद्ध मिलि करे—कृष्ण सङ्कीर्तन ।।"

चै० च० म० ९. ५३,५४.

सब बौद्ध लोग मिलकर हरिध्वनि करने लगे। उन सबने प्रेमोन्मत्त होकर बौद्धाचार्य रामगिरिके कानके निकट जाकर मधुर 'हरे कृष्ण राम' नाम सुनाया। रामगिरि चेतना प्राप्त करके हरि नाम लेते हुए उठ बैठे। प्रभुको सामने देखकर हाथ जोड़कर रोने लगे। उनका हृदय अनुतापकी अग्निसे दग्ध हो रहा था; क्योंकि उन्होंने प्रभुके साथ कपट और कुव्यवहार किया था। लज्जासे वे प्रभुके श्रीवदनकी ओर आँखें उठाकर देख नहीं पा रहे थे। अतिशय आर्त्तभावसे विनय-विनम्र वचनसे उन्होंने कुछ देरके बाद प्रभुके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके निवेदन किया—

तुमि त मानुष नह नवीन संन्यासी।
थाकिते तोमार सह बड़ भाल वासी ।।
पाखण्डेर शिरोमणि छिलाम संसारे।
कृपा करि भक्तिमार्ग देखाओ आमारे ।।

गौ० करचा।

प्रभु दैन्यके अवतार थे। उनका दैन्य शत्रु-मित्र सबके लिए समान था। उन्होंने रामगिरिका हाथ पकड़कर उठाकर कहा—"रामगिरि राय! जिसने एक बार भी हरिनाम लिया, उसको मैं अपने सिर-पर चढ़ा लेता हूँ। आपने हरिनाम ग्रहण किया है, अतएव आप हमारे सिरमौर हैं।

प्रभुके श्रीमुखसे यह सकरुण मधुमय दैन्यवाणी सुनकर बौद्धाचार्य रामगिरिने पछाड़ खाकर भूतल-पर गिरकर श्रीगौर भगवान्‌के दोनों चरणकमलको अपने दोनों हाथोंसे जकड़कर रोते हुए बोले—"हे दयामय! इस नराधमके लिए आपने क्या कह दिया? आप तो सबके अन्तर्यामी हैं। अपने अरुण चरण मेरे सिरपर धारण करिये।"

करुणानिधि श्रीगौराङ्ग प्रभुने रामगिरिको पुनः उठाकर गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। उसी दिनसे कुतर्क परायण कर्कशहृदय बौद्धाचार्य रामगिरि भक्तिपथके पथिक हो गये। प्रभुकी कृपासे भक्तिरसमें उनका कठोर हृदय सरस हो गया। इससे प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

बौद्धाचार्य रामगिरिने जिस मार्गको पकड़ा, उनके शिष्योंने भी उसी पथका अनुसरण किया। बौद्ध राजा प्रभुकी कृपासे कृष्णभक्त वैष्णव हो गये। त्रिमन्द-नगरके सब लोगोंको इस प्रकार वैष्णव बनाकर प्रभुने वहाँसे यात्रा की। रामगिरिने उनके साथ जाना चाहा, परन्तु प्रभुने उनको रोक लिया।

त्रिमन्दसे प्रस्थान—ढुण्ढिराम स्वामीका उद्धार

त्रिमन्दसे प्रभु त्रिमल्ल नगर होते हुए त्रिपदी तीर्थमें पहुँचे।[१] इन दोनों स्थानोंमें चतुर्भुज विष्णु और श्रीरामचन्द्रका दर्शन किया। उसके बाद पाना नरसिंह तीर्थमें जाकर प्रेमावेशमें नृसिंहजीकी बहुत स्तुति और नमस्कार किया।[२] वहाँसे शिवकाञ्चीमें जाकर प्रभुने शिवजीका दर्शन किया।[३] इसके बाद प्रभु विष्णुकाञ्ची गये।[४] इस तीर्थमें श्रीश्री-लक्ष्मीनारायणकी मूर्त्ति है। प्रभु उस सुन्दर मूर्त्तिको देखकर प्रेमानन्दमें बहुत देर तक नृत्य करते रहे। उस स्थानमें प्रभु दो दिन रहे। प्रभुकी कृपासे बहुतसे शैव संन्यासी वैष्णव हो गये। उस प्रदेशके सब

---

[१] त्रिपदी—उत्तर आरकाट। यहाँ रेलवे स्टेशन है। वेंकटाचल पर्वतकी उपत्यकापर अवस्थित है। तिरुमल्लय त्रिपदीका दूसरा नाम है।

[२] पाना नृसिंह कृष्णा जिलामें अवस्थित है।

[३] शिवकाञ्ची—कांजीवरम। यहाँ अनेक शिवमन्दिर हैं। कैलाशनाथका मन्दिर अति प्राचीन है।

[४] विष्णुकाञ्ची—कांजीवरम। यहाँ बड़ौदाके राजाके द्वारा प्रतिष्ठित विष्णु विग्रह है। अनन्त सरोवर है।

लोगोंको वैष्णव बनाकर वे त्रिमल्लनगर[१] होते हुए त्रिकालहस्ती तीर्थमें गये। इस तीर्थमें प्रसिद्ध महादेवकी मूर्त्ति है। प्रभु महादेवजीकी स्तुति और नमस्कार करके पक्षीतीर्थमें गये। यहाँ भी शिवमूर्त्ति है। शिवदर्शन करके वे वृक्षकोल तीर्थमें गये।[२] वृक्षकोल तीर्थमें श्वेत वाराह मूर्त्ति है। श्रीभगवान्‌की वाराह मूर्त्तिको स्तुति-नमस्कार करके प्रभु पीताम्बर शिवलिङ्गका दर्शन करने गये। वहाँ शियाली भैरवीदेवीका मन्दिर है।[३] प्रभुने देवीका दर्शन किया। इसके बाद कावेरी नदीके तीर जाकर गो-समाज शिवलिङ्गका दर्शन किया। पश्चात् वे वनमें जाकर अमृतलिङ्ग शिवमूर्त्तिका दर्शन किया। प्रभु जिन शिवालयोंमें गये, वहाँके शैव लोगोंको वैष्णव बनाया। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"सब शिवालये शैव करिल वैष्णव।'

चै. च. म. ९.७०

हरिनाम महामन्त्रके प्रभावसे शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर सब लोग परम वैष्णव हो गये। इसके बाद प्रभुने देवस्थानमें जाकर श्रीविष्णुमूर्त्तिका दर्शन करके आनन्दसे नृत्य-कीर्तन किया। वहाँ श्रीसम्प्रदायके वैष्णवोंके साथ सत्सङ्ग किया। वहाँ कुम्भकर्ण कपालका सरोवर देखा।[४] पापनाशन तीर्थमें जाकर स्नान करके श्रीविष्णुमूर्त्तिका दर्शन श्रीरङ्ग क्षेत्रमें[५] रङ्गनाथका दर्शन किया। वहाँ प्रभुने परम आनन्दपूर्वक प्रेमावेशमें नृत्य-कीर्तन किया।

प्रभु जहाँ-जहाँ जाते थे, उनके साथ बहुत-से लोग पीछे-पीछे चलने लगते थे। सुवलित आजानुलम्बित दीर्घ बाहुयुगलको ऊपर उठाकर जब प्रभु "कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे" शब्दमें उच्चस्वरसे कीर्तन करते हुए रास्तेपर चलते थे तो उनको देखकर उन्मत्तके समान सब लोग उनके साथ 'कृष्ण हे' कहते हुए चल पड़ते थे। वह अति मनोरम दृश्य था। युगधर्मप्रवर्त्तक श्रीगौराङ्ग प्रभु कृष्णनामकी प्रबल तरङ्गमें दक्षिण देशको प्रवाहित करते जा रहे थे। हरिनामकी मानो अभूतपूर्व ज्वार उठकर अकस्मात् सारे दक्षिण देशको एकबारगी प्लावित कर दिया। ऐसा कोई न था जो इस प्रबल धारमें न पड़ा हो। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने क्या ही साधसे लिखा है—

"सबे कृष्ण कहे वैष्णव हैल सब देश।"

इस प्रकार दक्षिण देशमें जीवोद्धार करते हुए जगद्गुरु श्रीगौराङ्ग प्रभु तुङ्गभद्राके पास ढुण्ढिराम तीर्थमें पहुंचे। वहाँ ढुण्ढिराम स्वामी नामक एक दिग्विजयी पण्डित वास करते थे। उनकी पाण्डित्य प्रतिभासे सारा दक्षिण देश आलोकित था। उन्होंने ज्ञानमार्गका अवलम्बन करके शुष्क तर्कविचारमें सारा जीवन बिताया था। वे अत्यन्त पाण्डित्य-अभिमानी थे। प्रभु जब तुङ्गभद्रामें गये तो ढुण्ढिराम स्वामीने उनके साथ तर्कयुद्धमें अपनी पराजय स्वीकार करके जगद्गुरु श्रीगौराङ्गके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर दिया। प्रभुकी पाण्डित्य-प्रतिभा और दीनताको देखकर उस पण्डित-शिरोमणिने विशेष लज्जित होकर उनके चरणोंमें गिरकर कृपाकी याचना की। कृपानिधि श्रीगौराङ्ग प्रभुने कृपा करके उनका नाम 'हरिदास' रखा। तभीसे ढुण्ढिराम स्वामी भक्तिपथके पथिक हुए, और प्रभुके दिये हुए 'हरिदास' नामको सार्थक किया।

---

[१] त्रिमल्ल=तंजोर।

[२] त्रिकाल हस्ती, पक्षतीर्थ, वृक्षकोल चिङ्गलपट जिलामें है।

[३] शियाली तौण्डीर जिलामें है। वहांसे त्रिचनापल्ली जिलामें कांवेरी नदीके तीर आये।

[४] कुम्भकर्ण कपालमें अर्थात् कुम्भकर्णकी खोपड़ीमें जो सरोवर बना था उसका दर्शन किया। कुम्भकर्ण कपाल=वर्तमान कुम्भकोणम् जिला।

[५] श्रीरङ्ग क्षेत्र—त्रिचनापल्लीके पास कावेरी या केलिरण नदीके ऊपर श्रीरङ्गम् अवस्थित है। श्रीरङ्गनाथजीका श्रीमन्दिर समस्त भारतीय मन्दिरोंकी अपेक्षा बड़ा है।

तीर्थराम और वेश्याओंका उद्धार

इसके बाद प्रभुने अक्षयवट नामक तीर्थमें जाकर बटेश्वर शिवलिङ्गका दर्शन करके प्रेमानन्दमें नृत्य कीर्तन किया। उस दिन अनाहार रहकर वहाँ शिव-मन्दिरमें रात बितायी।

उस स्थानपर तीर्थराम नामक एक धनी आदमी सत्यबाई और लक्ष्मीबाई नामक दो वेश्याओं-को साथ लेकर वहाँ जा पहुँचा। प्रभुके अपरूप रूप-लावण्य और उत्कट वैराग्य को देखकर तीर्थरामके मनमें उनकी परीक्षा लेनेकी वासना प्रभुने ही उदय करदी। तीर्थरामने दोनों वेश्याओंके द्वारा प्रभुकी नाना प्रकारसे परीक्षा ली। ये सब बातें गोविन्ददासने अपने करचामें विस्तारपूर्वक लिखी हैं। निर्विकार प्रभुकी अपूर्व प्रेम चेष्टासे उनका सारा भ्रम दूर हो गया। प्रभुने दोनों वेश्याओंको माता कहकर सम्बोधन करके उनके हृदयको शुद्ध कर दिया। उनका सारा पाप धुल गया, हृदय निर्मल हो गया। तब उन्होंने अनुतापकी अग्निमें दग्ध होकर कृपामय जगद्गुरु श्रीगौराङ्गके चरणोंका आश्रय लिया। प्रेमावेशमें प्रभु वहाँ नृत्य-कीर्तन करने लगे। हुङ्कार गर्जन करते हुए उच्च हरि-सङ्कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। कीर्तनानन्दमें उन्मत्त होकर प्रभु बारम्बार भूतलपर पछाड़ खाकर गिरने लगे। उनके श्रीअङ्गसे अद्भुत तेज निकल रहा था। धनी तीर्थराम चकित होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। कृपालु प्रभुने उसके ऊपर कृपा की।

ऐसा सौभाग्य और किसको हो सकता है? तीर्थराम प्रभुके चरणोंमें गिरकर बहुत आर्त्त होकर रोने लगा। दोनों वेश्याओंको विषम आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। उन्होंने भी प्रभुके चरणोंमें शरण ली। भावनिधि प्रभुके कमलनयन द्वयसे पिचकारीके समान जल निकलने लगा। उनका सर्वाङ्ग प्रेममें भरकर थर-थर काँपने लगा। तीर्थराम यह देख कर व्याकुल होकर रोते हुए दोनों हाथोंसे प्रभुके चरणोंको दृढ़तापूर्वक धारण करके बोले—

बड़इ पाखण्ड मुञि पापी तीर्थराम।
कृपा करि मोरे प्रभु देह हरिनाम॥
गो० क०

करुणामय प्रभुने उनका हाथ पकड़कर उठाया और गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। दैन्यावतार श्रीगौर भगवान्‌ने तीर्थरामसे कहा—"तीर्थराम! तुम साधुपुरुष हो। तुमको स्पर्श करके आज मैं पवित्र हो गया। तुम भक्तश्रेष्ठ हो।" तीर्थरामके हृदयमें अनुतापकी अग्नि दहक रही थी। अपने ऊपर प्रभुके इस कृपा वचनको सुनते ही उनका हृदय द्रवित हो गया। उनका सारा पाप भस्मीभूत हो गया। हृदयमें निर्मल प्रेम भक्ति उदय हुई। वे व्याकुलता पूर्वक रोते हुए बारम्बार प्रभुके चरणोंपर गिरने लगे। प्रभु भी प्रेममें भरकर बारंबार उनका हाथ पकड़कर उठाकर प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करने लगे। पश्चात् जब तीर्थराम प्रभुकी कृपासे सुस्थिर हुए तो श्रीगौर भगवान्‌ने उनको बहुत-सी उपदेशपूर्ण बातें सुनायीं। उनको वैराग्य-की शिक्षा दी। प्रभुके कुछ उपदेश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

प्रभु कहे तृण सम गणह वैभवे।
भक्तिधन अमूल्य रतन पाबे तबे॥
ईश्वरे विश्वास ईश्वर आनिया मिलाय।
आर कछु प्रमाण त कहने ना जाय॥
बहु शास्त्र आलापने किवा प्रयोजन।
विश्वास करिया कृष्ण करह भजन॥
गो० क०

प्रभुके उपदेशसे तीर्थरामको तत्काल विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने वस्त्राभूषण त्याग करके छिन्न कौपीन परिधान करके तिलक-माला ग्रहण किया। प्रभुसे हरिनाम महामन्त्र ग्रहण करके

हरिनामके गानेमें उन्मत्त हो गये। अति दीनहीन कङ्गालके समान भिखारीके वेषमें वे दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर परमानन्दमें उच्च हरिसङ्कीर्तन करने लगे। यह देखकर उनकी परम सुन्दरी स्त्री कमलकुमारी पतिका चरण पकड़कर रोने लगी। तीर्थरामने हँसकर गृहिणीसे कहा—

नरक हइते त्राण पाइयाछि आमि।
विषय वैभव सब भोग कर तुमि॥

गो० क०

कमलकुमारी यह बात सुनकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। वह पतिव्रता रमणी थी। पतिके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेमें कुण्ठित न हुई। भक्तिमान् पतिने भी अपनी भक्तिमती स्त्रीके ऊपर कृपा करनेमें कृपणता नहीं की। तीर्थरामने कमलकुमारीको हरिनाम महामन्त्र प्रदान कर वैराग्य ग्रहण करनेका उपदेश दिया। कमलकुमारी तीर्थसे अपने देशमें लौटकर स्वामीकी सारी सम्पत्ति दान करके भिखारिणीके वेशमें हरिनाम भजने लगी।

प्रभुने वटेश्वरमें सात दिन रहकर इसी प्रकार सब लोगोंका उद्धार करके दस कोस तक फैले हुए, भीषण हिंस्रजन्तुसे संकुल एक विशाल वनमें प्रवेश किया। प्रभुके श्रीमुखमें केवल यही उत्तम श्लोक था—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्॥

भीषण अरण्यके जीव-जन्तु, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-लता आदि सब प्रभुके श्रीमुखसे मधुर कृष्णनाम सुनकर तर गये। गोविन्द और कृष्णदास प्रभुके साथ थे। भीषण अरण्य देखकर वे भयभीत हो उठे। परन्तु प्रभुकी कृपासे एक भी हिंस्र जन्तु उनके सामने नहीं आया। प्रभुके पीछे-पीछे वे निर्भयता पूर्वक उस विशाल अरण्यको पार करके मुन्नानगरमें जा पहुँचे।

उस मुन्नानगरमें बहुत लोग रहते थे। प्रभुने एक वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम किया। नगरसे लाखों आदमी वहाँ जाकर प्रभुका दर्शन करके कृतार्थ हो गये। ऐसा अपरूप रूपवान् नवीन संन्यासी उन्होंने कभी आँखसे नहीं देखा था। कुलनारियोंने भी प्रभुकी अपरूप रूपराशिसे मुग्ध होकर वृक्ष तले आकर उनका दर्शन करके अपने हृदय और मनको निर्मल किया। प्रभुने उस स्थानमें अद्भुत नृत्य कीर्तन किया। यह देखनेके लिए वहाँ बहुत लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। सारे नगरनिवासियोंको हरिनाममें मत्त करके उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया। विदाके समय नगर निवासी बहुत-से लोग भोजन-वस्त्र आदिकी बहुत-सी सामग्री प्रभुकी सेवाके लिए देने आये। प्रभुने वृक्षतल-वासिनी एक वृद्धा भिखारिणीको वह सब देनेके लिए कहकर वहाँसे प्रयाण किया। मुन्नावासी नर-नारी प्रभुकी दया देखकर चकित हो गये। उनके पीछे बहुतसे लोग गये, परन्तु उनका साथ न कर सके।

श्रीरङ्ग क्षेत्रमें भट्ट परिवारके साथ

प्रभु श्रीरङ्गक्षेत्रमें कुछ दिन रहे।* श्रीरङ्गक्षेत्र कावेरी नदीके तटपर अवस्थित एक सुन्दर नगर है। यहाँ श्रीरङ्गनाथका मन्दिर है, इसी कारण

* श्रीरङ्गक्षेत्र त्रिचनापल्लीके समीप कावेरी नदीके तीर अवस्थित है। भारतवर्षमें इतना बड़ा विशाल मन्दिर और कहीं नहीं है। चोलराज आदि कुलोत्तुङ्गके पूर्व राजा महेन्द्र राज्य करते थे। यामुनाचार्य, श्रीरामानुज, सुदर्शनाचार्य आदिने श्रीरङ्गनाथकी सेवामें प्रधान अध्यक्षका कार्य किया था। सुदर्शनाचार्यकी अध्यक्षताके समय मुसलमानोंने श्रीरङ्गनाथके मन्दिरपर आक्रमण करके बारह हजार वैष्णवोंकी हत्या की। श्रीरङ्गनाथको तिरुपतिमें स्थानान्तर करना पड़ा। विजयनगर राज्यके शासनकर्त्ता गोप्पानार्यने वैष्णवोंकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीरङ्गनाथजीको तिरुपतिसे लाकर तीन वर्ष पर्यन्त अपने अधिकारमें रखकर रक्षा की। पश्चात् १२९३ शक संवत्सरमें पुनः श्रीरङ्गक्षेत्रमें उनकी प्रतिष्ठा हुई।

इसका नाम श्रीरङ्ग क्षेत्र है। दक्षिण देशमें यह एक प्रधान तीर्थ स्थान है। श्रीरङ्गजीका दर्शन करके प्रभु प्रेमानन्दमें अधीर होकर बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। श्रीरङ्ग क्षेत्र निवासी सब लोग प्रभुके अपरूप रूपको देखकर, तथा उनके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम कीर्तन सुनकर अतिशय मुग्ध हुए।

उस ग्राममें एक गृहस्थ ब्राह्मण निवास करते थे। उनके तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्रका नाम वेङ्कटभट्ट था, मध्यम पुत्रका त्रिमल्ल भट्ट और कनिष्ठका नाम प्रकाश नाइ था। कहते हैं कि यह कनिष्ठ पुत्र ही काशीके प्रकाशानन्द सरस्वती थे। वे श्रीसम्प्रदायके आचार्य स्वरूप थे। श्रीरङ्गनाथके मन्दिरमें प्रभुका पहले पहल भट्टवंशके त्रिमल्ल भट्टके साथ साक्षात्कार हुआ। त्रिमल्ल भट्टने प्रभुको किस रूपमें देखा, इसका वर्णन ठाकुर लोचनदास अपने श्रीचैतन्य मङ्गलमें लिख गये हैं—

तथाय त्रिमल्लभट्ट ठाकुर देखिया।
निरीखये गौरदेह विस्मित हइया॥
देहेर किरण धार प्रेमार आरम्भ।
कदम्ब केशर जिनि पुलक कदम्ब॥
सर्वलोक जिनि तनु जेनक सुमेरु।
प्रेम फल फूले भरियाछे कल्पतरु॥
हरि हरि बलि डाके अति उच्चनादे।
देखिया चौदिक भरि सब लोक काँदे॥
ऐछन देखिया से त्रिमल्ल भट्टाचार्य।
कौतुके सकल कथा जानिल आचार्य॥
एइ सेइ भगवान् कभू नहे आन।
निश्चय जानिल एइ सर्वजन प्राण॥
एतेक जानिया से त्रिमल्ल भट्ट राय।
आपन आश्रमे से प्रभुरे लइया जाय॥

ये भट्ट गोस्वामी परम वैष्णव थे। वे श्रीश्रीलक्ष्मी-नारायणके उपासक थे। वेङ्कट भट्ट इस भक्त गोष्ठीके कर्त्ता थे। त्रिमल्ल भट्ट उनके मध्यम भ्राता थे। त्रिमल्ल भट्ट प्रभुको बड़े आदरके साथ निमन्त्रण करके घर लाये। वेङ्कट भट्टने प्रभुका दर्शन करके स्तुति वन्दना करके स्वयं उनके श्रीचरणको धो दिया, और उस अज-भव वाञ्छित चरणोदकको सब परिवारने मिलकर पान किया। पश्चात् बड़े दामोदरके साथ प्रभुको उस दिन भिक्षा कराया। भोजनके अन्तमें प्रभु सुस्थिर होकर बैठे। वेङ्कट भट्टने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"ठाकुर! चातुर्मास्यका शुभ काल उपस्थित है। कृपा करके मेरी इस कुटी पर आप चातुर्मास्य करें, और कृष्ण कथा कहकर हमको कृतार्थ करें।"

भट्ट परिवारके इस प्रीति-निमन्त्रणको स्वीकार करके श्रीरङ्ग क्षेत्रमें प्रभु चार मास रहे। प्रभु प्रतिदिन काबेरी स्नान करके श्रीरङ्गनाथका दर्शन करते थे, और प्रेमानन्दमें नृत्य-कीर्तन करते थे। श्रीरङ्ग क्षेत्रवासी सब लोग प्रभुके एकान्त अनुरक्त भक्त हो गये। चारों ओर लोगोंने इस अपूर्व नवीन संन्यासीकी अद्‌भुत प्रेमचेष्टाकी बात सुनी। लाखों-लाखों आदमी आकर प्रभुका दर्शन करके सारा दुःख शोक सन्ताप भूलकर हरिनाम-गानमें मत्त हो गये। सभी कृष्ण भक्त हो गये। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

लक्ष लक्ष लोक आइसे नाना देश हैते।
सभे कृष्णनाम कहे प्रभुरे देखिते॥
कृष्णनाम बिना केहो नाहिं बोले आर।
सबे कृष्णभक्त हैल, लोके चमत्कार॥

चै० च० म० ९.८३,८४

श्रीरङ्ग क्षेत्रमें जितने ब्राह्मण थे, सबने एक-एक दिन प्रभुको निमन्त्रित किया। इस प्रकार उनका चातुर्मास्य पूरा हुआ। बहुत-से लोग प्रभुको निमन्त्रित करनेका समय न पाकर बहुत दुःखी हुए। प्रभुने वेङ्कट भट्टके घर रहकर इस प्रकार चातुर्मास्य किया।

वेङ्कट भट्टके दश वर्षीय पुत्र गोपाल भट्ट सदा प्रभुके पास रहकर उनकी सेवा करते थे। प्रभुकी उनपर विशेष कृपा थी। वह अल्पवयस्क बालक

गोपाल भट्ट विनयी थे, और शास्त्र पढ़नेमें अनुरक्त रहते थे। कृपानिधि प्रभु उनको किस प्रकार कृपा करके छः गोस्वामियोंमें-से एक गोस्वामी निर्दिष्ट करके श्रीवृन्दावन ले गये, यह बात पीछे कही जायगी।

विप्रका अशुद्ध गीता पाठ

श्रीरङ्ग क्षेत्रमें रहते समय प्रभुने अनेक लीलाएँ की थी। एक दिन प्रभुने देखा कि देवालयमें बैठकर एक ब्राह्मण अपने मनसे गीता-पाठ कर रहा है। वह गीताके अठारहों अध्याय पाठ करता था। प्रेमावेशमें वह गीता पाठ करता जा रहा था, सारे श्लोकोंका अशुद्ध उच्चारण होता था। लोग उसे सुनकर हँसी करते थे। कोई हँसता था, कोई निन्दा करता था। परन्तु ब्राह्मण उस पर तनिक भी ध्यान नहीं देता था। वह प्रेमाविष्ट होकर गीतापाठ कर रहा था। उसके अङ्गोंमें अष्ट सात्विक भावका उदय देखकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। प्रभु उसी देवालयमें बैठकर गीतापाठ सुन रहे थे। विप्रका पाठ समाप्त होने पर सर्वज्ञ प्रभुने उनसे विनीत भावसे पूछा—"महाशय! आप गीतापाठ कर रहे थे और प्रेमानन्दमें रो रहे थे। मैं जानना चाहता हूँ कि किस श्लोकके अर्थको समझकर आपके मनमें इतना आनन्द होता है। कृपा करके यह मुझको बतलाकर कृतार्थ करें।" कृष्णभक्त विप्रने प्रभुके विनम्र वचनसे परम परितुष्ट होकर मनकी बात खोलकर उसने कह दिया। यथा—

विप्र कहे—मूर्ख आमि शब्दार्थ ना जानि।
शुद्धाशुद्ध गीता पढ़ि गुरु आज्ञा मानि॥
अर्जुनेर रथे कृष्ण हैञा रज्जुधर।
बसियाछे हाते तोत्र*, श्यामल सुन्दर॥
अर्जुनेरे कहिते छेन हित-उपदेश।
ताहा देखि हय मोर आनन्द-आवेश॥

यावत् पढ़ों तावत पाङ् ताँर दरशन।
एइ लागि गीता पाठ ना छाड़े मोर मन॥
चै० च० म० ९. ९२-९५

विप्रकी सरल बात सुनकर प्रभुने आनन्दमें गद्‌गद होकर उनको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करते हुए कहा—"तुम्हीं यथार्थ गीतापाठके अधिकारी हो। गीताका सार-मर्म और अर्थ तुम्हींने समझा है।"

प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे विप्रको सर्वसिद्धि प्राप्त हो गयी। उन्होंने प्रभुकृपाके बलसे उनके स्वरूप-तत्वको समझा। प्रभुको देखकर उनके मनमें श्रीकृष्णकी स्फूर्ति हुई। वे प्रभुके चरणोंमें गिरकर प्रेमानन्दमें रोते हुए बोले—

तोमा देखि ताहा हैते द्विगुण सुख हय।
सेइ कृष्ण तुमि हेन मोर मने लय॥
चै० च० म० ९. ९८

तब प्रभुने उस भाग्यवान् विप्रको अलग ले जाकर अपना मन्त्र और भजनोपदेश देकर कहा—"ये सब बातें गुप्त रखना किसीके सामने प्रकट नहीं करना।"

उसी दिनसे वह भाग्यवान् विप्र प्रभुका परम भक्त हो गया। एक क्षण मात्र भी उनका सङ्ग नहीं छोड़ा। चार मास तक प्रभुका सेवा कार्य करके उनके पास भजन-तत्वकी शिक्षा ली।

प्रभुकी इस लीलाके रहस्यकी कुछ व्याख्या आवश्यक है। पण्डिताभिमानी स्थूलदर्शी व्यक्ति श्रीभगवान्‌के लीला-ग्रन्थमें वर्णित लीला रहस्यका मर्मोद्‌घाटन करनेमें असमर्थ होते हैं। वे लोग श्लोकार्थ, अन्वय, व्याख्या, टीका, शुद्धाशुद्ध उच्चारण आदि बहिरङ्ग भाव को लेकर व्यस्त रहते हैं। लीला ग्रन्थके अन्तरङ्ग भाव बड़े ही मधुर होते हैं। प्रकृत भक्त उसी भावको ग्रहण करते हैं। पण्डित लोगोंको यह समझनेका अधिकार भगवान् नहीं देते हैं। विद्यागर्व पाण्डित्याभिमान आदि प्रकृत भक्तिकी प्राप्तिमें विघ्न स्वरूप होते हैं। श्रीभगवान् भावग्राही

* तोत्र=चाबुक।

है। 'नम विष्णाय' कहकर उनके चरणकमलमें गङ्गाजल और तुलसी देने पर वे जिस प्रकार तुष्ट होकर ग्रहण करते हैं, 'श्रीविष्णवे नमः' कहकर देने पर भी वही फल होता है।* विप्रके द्वारा इस प्रकार अशुद्ध रूपमें गीतापाठ तथा अशुद्ध रूपमें श्लोक उच्चारण करने से प्रभुके भजनमें कोई विघ्न नहीं होता। मूल भजन तो भावको लेकर है। भाव-ग्राही श्रीगौरभगवान् स्वयं भावनिधि हैं। भाव-समुद्र में वे दिन-रात डूबे रहते हैं। गीतापाठ करने वाले विप्रके मनके भावको समझकर ही उन्होंने उनके ऊपर तुष्ट होकर उनके ऊपर कृपा करके अपना तत्व बतलाया। भावके भगवान् श्रीगौराङ्ग सुन्दरने भावाविष्ट गीता पाठ करने वाले भाग्यवान् मूर्ख विप्र पर जिस प्रकार कृपा की, शास्त्र व्यवसायी सदाचारनिष्ठ पण्डित पर वे उस प्रकार कृपा नहीं करते।

वेङ्कट भट्टके साथ बातचीत

प्रभु अभी वेङ्कट भट्टके घर पर ही थे। वेङ्कट भट्ट श्रीश्रीलक्ष्मी-नारायणके उपासक थे, यह बात पहले कही जा चुकी है। उनका ऐश्वर्य भाव था। परकीया भावमें मधुर भजन प्रभुका निजस्व धन था। वेङ्कट भट्टके साथ प्रभुका सख्य भाव था। उनके साथ कृष्णकथा-रङ्गमें प्रभु आनन्दसे रहते थे। श्रीश्रीलक्ष्मी नारायणमें वेङ्कट भट्टकी प्रगाढ़ भक्तिनिष्ठा देखकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द होता था। एक दिन हास-परिहास करते हुए रङ्गीले रसिक चूड़ामणि प्रभुने वेङ्कट भट्टसे पूछा—"तुम्हारी लक्ष्मी ठाकुरानी अपने कान्तकी वक्षस्थिता पतिव्रता शिरोमणि हैं, वे साध्वी होकर भी गोचारण करने वाले गोप कृष्णका संग क्यों चाहती हैं और इसके लिए सुख भोग छोड़कर व्रत-नियम पूर्वक चिरकाल तप किया।"

---

* मूर्खो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे।
उभयोस्तु समं पुण्यं भावग्राही जनार्दनः॥
प्राचीन श्लोक।

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतके निम्न लिखित श्लोकका पाठ किया—

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो,
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता॥

१०. १६. ३६

श्लोकार्थ—नागपत्नियोंने श्रीकृष्णसे कहा—"हे देव! इस महानीच कालीनागको नन्दपुत्र रूप तुम्हारे चरण-रेणुके स्पर्शसे प्राप्त अधिकारको जो देखता हूँ, वह तप आदिसे उत्पन्न सब सुकृतियोंके द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि ब्रह्मादि सब भक्तोंसे अधिक प्रियतमा लक्ष्मी, नारायण रूपमें तुम्हारी ललना होते हुए भी गोपाल रूपमें तुम्हारे चरणोंके स्पर्शकी कामनासे तपस्या करती हैं। परन्तु प्राप्त नहीं होती। और यह नीच कालीनाग अपने मस्तक पर तुम्हारे चरणद्वयके नित्यानन्द-स्पर्शका अनुभव करता है। इसकी महिमा और क्या कहूँ?

वेङ्कट भट्ट भी परम शास्त्रज्ञ थे। उन्होंने प्रभुकी यह उपहासवाणीको सुनकर उत्तर दिया यथा—

भट्ट कहे—कृष्ण नारायण एकइ स्वरूप।
कृष्णे ते अधिक लीला-वैदग्धादि रूप॥
ताँर स्पर्शे नाहिं जाय पतिव्रता धर्म।
कौतुके लक्ष्मी चाहेन कृष्णेर सङ्गम॥
कृष्ण सङ्गे पतिव्रता-धर्म नहे नाश।
अधिक लाभ पाइये आर रासविलास॥
विनोदिनी लक्ष्मीर हय कृष्णे अभिलाष।
इहाते कि दोष, केने कर परिहास॥

चै० च० म० ९. १०८-१११

प्रभुने हँसकर उत्तर दिया, "इसमें दोष नहीं है, यह मैं समझता हूँ। परन्तु शास्त्रमें जो लिखा है कि लक्ष्मीजी रासलीला नहीं देख पातीं, रासोत्सवमें योग नहीं दे पातीं, इसका क्या कारण है? क्या श्रुतियोंने ही तपस्या करके रासबिहारी श्रीकृष्णके

अङ्गका सङ्ग प्राप्त किया ?'' इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित दो श्लोकोंका पाठ किया—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्यभुजदण्ड गृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उद्गाद् व्रज वल्लवीनाम् ।।

श्रीम० भा० १०. ४७.६०

श्लोकार्थ—रासोत्सवमें जिनके कण्ठ श्रीभगवान्के भुजदण्डसे परिगृहीत हुए थे, उन ब्रज-सुन्दरियोंके प्रति जिस प्रकार भगवत्प्रसाद व्यक्त हुआ था, वैसा प्रेमप्रसाद श्रीनारायणके वक्षःस्थलमें स्थित रहने वाली नितान्तरति लक्ष्मीजीके प्रति भी प्रकट नहीं हुआ था। तब अन्य पद्मगंधा एवं कालियुक्त देवाङ्गनाओंके प्रति कैसे हो सकता था ? अतएव अन्य रमणीगणकी बात ही क्या ?

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढ़योगयुजो हृदि यन्
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविरक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि सरोजसुधाः।।

श्रीम० भा० १०. ८७. २३

श्लोकार्थ—श्रुतियोंने कहा, ''प्राण-मन और इन्द्रिय संयम करते हुए सुदृढ़ योगयुक्त मुनिगण जिसकी अपने हृदयमें उपासना करते हैं, शत्रुगण अनिष्ट चेष्टामें तुम्हारा स्मरण करके भी उसी गति-को प्राप्त करते हैं, तथा अपरिच्छिन्न स्वरूप तुमको परिच्छिन्न रूपमें दर्शन करके भुजगेन्द्रके देहके समान तुम्हारे भुजदण्डमें आसक्त-बुद्धि व्रजाङ्गनाएँ तुम्हारे श्रीचरणकी माधुरीको प्राप्त होती है, और श्रुत्यभिमानी देवतारूप हम लोग काय व्यूह द्वारा तत्सदृश होकर उनका आनुगत्य प्राप्त करके तुम्हारे श्रीचरणोंके स्पर्शकी माधुरीको प्राप्त होते हैं ।''

वेङ्कट भट्ट प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखते रहे, और कोई उत्तर न दे सके। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—''मैं क्षुद्रबुद्धि जीव हूँ । इस कोटि समुद्रके समान गंभीर श्रीभगवान्के लीला-रहस्यमें मेरा मन प्रवेश नहीं कर पा रहा है । आप साक्षात् कृष्ण हैं । अपना लीला-रहस्य आप ही जाने और कृपा करके आप जिसको जानते हैं वही जान पाता है ।''

भट्टकी बात सुनकर प्रभु कुछ मन्द मधुर मुस्कराये । भट्ट उस हँसीका मर्म नहीं समझ सके। क्योंकि वह व्रज रसके रसिक नहीं थे, व्रजभावके भावुक नहीं थे । प्रभु अब कृपा करके भट्टसे ब्रजके मधुर भजन-तत्व कहने लगे। श्रीभगवान्की ऐश्वर्य-मूर्ति श्री श्रीलक्ष्मीनारायणके उपासक वेङ्कट भट्टको प्रभुने व्रजके माधुर्य भजनतत्त्वकी शिक्षा दी । प्रभु बोले—''श्रीकृष्णका एक विलक्षण स्वभाव है कि वे अपने माधुर्यसे सदा सबका आकर्षण करते रहते हैं । व्रजभावके आनुगत्यसे ही उनकी चरणसेवा प्राप्त हो सकती है । व्रजके लोग उनमें ईश्वर-बुद्धि नहीं रखते । कोई उनको पुत्र मानता है और ऊखलमें बान्ध देता है । कोई सखा मानकर खेलमें जीतकर उनके कन्धे पर चढ़ता है । व्रजवासी उनको ब्रजेन्द्र-नन्दन ही जानते हैं, और अपना सम्बन्ध मानते हैं। उनमें ऐश्वर्य ज्ञान नहीं है । इस प्रकार जो ब्रजभावसे भजन करता है, वही ब्रजेन्द्रनन्दनको प्राप्त करता है ।''

इतना कहकर प्रभुने भागवतके एक श्लोकका पाठ किया—

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतमिह ।।

श्रीम० भा० १०.९.२१

श्लोकार्थ—गोपिकानन्दन श्रीकृष्ण भगवान् भक्तिमान् मनुष्यके लिए जिस प्रकार सुखेन प्राप्त होते हैं, देहाभिमानी तपस्वी तथा निवृत्ताभिमानी आत्म-भूत ज्ञानीजनको उस प्रकार सुलभ नहीं है ।

पश्चात् प्रभुने भट्टको गोपीभजन समझाया—

"गोपी देहके सिवा अन्य देहमें रासविलास अर्थात् रासविलासोपलक्षित व्रजधामकी मधुर रसमयी लीला प्राप्त नहीं होती, अर्थात् व्रजलीलाका परिकरत्व नहीं प्राप्त होता। व्रजगोपीवृन्दका अनुगामी होकर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका भजन करने पर रासबिहारी श्रीकृष्णके अङ्गका सङ्ग प्राप्त होता है। लक्ष्मीजी व्रजगोपिकाओंकी अनुगामिनी बनकर व्रजेन्द्रनन्दनका भजन करना नहीं चाहती। इसी कारण उनके भाग्यमें रासोत्सवमें योगदान करना नहीं बदा है। वे रासबिहारी व्रजेन्द्रनन्दनके अङ्ग-सङ्गकी प्राप्तिसे वञ्चित हो गयी हैं।"

प्रभुने यह सारा निगूढ़ व्रजरसतत्त्व वेङ्कट भट्टको समझा दिया। भट्टके मनमें बड़ा अभिमान था कि श्रीनारायण स्वयं भगवान् हैं, और वे श्रीश्रीलक्ष्मी-नारायणके उपासक हैं, अतएव उनका यह सनातन वैष्णवीय भजन ही सर्वश्रेष्ठ भजन है। वेङ्कट भट्टका यह भजनाभिमान और साधन-गर्व दूर करनेके लिए सर्वदर्पहारी श्रीगौर भगवान्ने उपहासके बहाने यह सारी निगूढ़ तत्त्वकी बातें उठायीं। प्रभुके श्रीमुखसे ये सारी निगूढ़ भजनतत्त्व की बातें सुनकर भट्टजी चकित होकर उनके मुख-चन्द्रकी ओर एकटक देखते रह गये। सर्वज्ञ प्रभुने उनकी दृष्टि देखकर स्पष्ट जान लिया कि अब भी उनके मनमें कुछ संशय है। तब वे फिर भट्टको समझाने लगे। यथा—

प्रभु कहे—भट्ट! तुमि ना कर संशय।
स्वयं भगवान्-कृष्णेर एइ स्वभाव हय॥
कृष्णेर विलासमूर्त्ति—श्रीनारायण।
अतएव लक्ष्मी आदिर हरे तेंहो मन॥

चै० च० म० ९.१३०,१३१

यह कहकर प्रभुने भागवतके निम्नलिखित श्लोककी आवृत्तिकी।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥

श्रीम० भा० १.३.२८

श्रीसूतजीने कहा "जिन अवतारोंका उल्लेख हुआ है तथा जिनका उल्लेख पहले नहीं हुआ है, वे सब परम पुरुषके अंशकी कला मात्र हैं। परन्तु इन सब अवतारोंमें बीसवाँ अवतार जो श्रीकृष्णजी हैं, वे स्वयं भगवान् हैं। भगवान् अवतार लेकरके युग-युगमें असुरोंके द्वारा पीड़ित जन-समाजकी रक्षा करके उनको सुख पहुँचाया करते हैं।"

पश्चात् प्रभु कहने लगे—"कृष्णमें चार असाधारण गुण हैं—१. लीला २. प्रेममण्डित, प्रिय-मण्डल-समूह, ३. वेणु-माधुर्य और ४. रूपमाधुर्य—जो नारायणमें नहीं हैं। इसीलिए लक्ष्मी श्रीकृष्णके लिए सतृष्ण रहती हैं। तुमने जो श्लोक सुनाया वही इसका प्रमाण है—

सिद्धान्ततत्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण स्वरूपयोः।
रसेनोत् कृष्यते कृष्णरूपमेषां रसस्थितिः॥

भ० र० सि० १.२.५९

श्लोकार्थ—यद्यपि श्रीनाथमें और श्रीकृष्णमें स्वरूपतः कोई भी भेद नहीं है, तथापि केवल प्रेम-मय-रस निबन्धन श्रीकृष्णका उत्कर्ष लक्षित होता रहता है। प्रेमका यह स्वभाव ही है कि वह आलम्बन (आश्रय) को उत्कृष्ट रूपमें प्रदर्शन करता है। इस श्लोकके 'रसेनोत् कृष्यते कृष्णरूपमेषां रस-स्थितिः' वाक्यसे श्रीकृष्णमें रसका उत्कर्ष सूचित होता है, एवं रसके उत्कर्षमें लीला-माधुर्य आदि चार असाधारण गुण ही हेतु हैं, अतएव उक्त श्लोकके 'रसेनोत् कृष्यते' इत्यादि वाक्यसे ही श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ता प्रमाणित होती है। इसीसे श्रीकृष्ण लक्ष्मीका मन हरण करते हैं, नारायण गोपिकाओं मन हरण नहीं कर सकते। नारायणकी बात दूर रही, श्रीकृष्णने स्वयं हँसीमें चतुर्भुज नारायण-रूप गोपिकाओंको दिखाया, तब श्रीकृष्णके उस रूपमें गोपिकाओंको अनुराग नहीं हुआ।

प्रभुकी इस बातके समर्थनमें कविराज गोस्वामीने भी ललित माधव नाटकके निम्नलिखित श्लोक को उद्धृत किया है—

गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दनजुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरूहपदवीसञ्चारिणः प्रक्रियाम् ।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन् भुजैर्जिष्णुभि-
र्यासां हस्तचतुर्भिरद्भुतरुचिं रागोदयः कुञ्चति ॥
ल० मा० ना० ६.१४

श्लोकार्थ—माथुर-विरहसे व्याकुल श्रीराधाजी मोहको प्राप्त होकर श्रीयमुनामें आत्म-निक्षेप करके सूर्यमण्डलमें चली गयी । वहाँ उनको अत्यन्त विरह-विधुरा देखकर सान्त्वना प्रदान करनेके लिए सूर्य पत्नी संज्ञा जब श्रीकृष्णके वर्णकी समताके कारण सूर्यमण्डलस्थ श्रीविष्णु मूर्त्ति दिखलानेके लिए उद्यत हुई तो विशाखा बोली—"हे देवि ! गोपिकाओंके श्रीनन्दनन्दननिष्ठ तथा दुरूहपथ सञ्चारी भावोंकी प्रक्रियाको जाननेमें कौन कृती समर्थ हो सकता है ? यदि श्रीनन्दनन्दन श्रीनारायण तनुमें प्रकट होते हैं तो उस तनमें चतुर्भुज रूप देखकर उनका रागोदय संकुचित होजाता है ।

प्रभुने वेङ्कठ भट्टको उपहासके बहाने ब्रजरस तत्त्व समझाया । उनके अभिमानको दूर किया । भट्ट शास्त्रवेत्ता थे । वे गोपीतत्त्व समझकर भी नहीं समझ पारहे थे । अपने सम्प्रदायके इष्टदेवके भजनकी न्यूनताकी बात सुनकर उनके मनमें सुख नहीं हुआ । सर्वज्ञ प्रभुने यह समझकर अपने सिद्धान्तको घुमाकर हँसते-हँसते पुनः भट्टसे कहा—"भट्ट ! तुम दुःख नहीं मानना, मैंने तो परिहास किया है । शास्त्र-सिद्धान्त बताता हूँ, जिसमें वैष्णव विश्वास और श्रद्धा करते हैं । जिस प्रकार श्रीकृष्ण-नारायण एक ही स्वरूप हैं उसी प्रकार गोपी (श्रीराधा) और लक्ष्मी भी एक ही स्वरूप हैं, उनमें भेद नहीं है । श्रीराधा-रूपमें लक्ष्मी कृष्ण-सङ्ग आस्वादन करती हैं । ईश्वरत्वमें भेद माननेसे अपराध होता है । एक ही ईश्वर भक्तकी रुचिके अनुसार नाना प्रकारके रूप धारण करते हैं ।"*

वेङ्कटभट्टने प्रभुकी कृपासे अब स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके तत्त्वको पूर्णरूपसे समझा । इससे उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"ईश्वरकी लीला अगाध है, जो जानी नहीं जाती । तुमने जो बताया, वही सत्य है । मुझ पर लक्ष्मी-नारायणकी पूर्ण कृपा है, जिससे तुम्हारे चरण-दर्शन प्राप्त हुए । तुमने कृपा करके कृष्णकी महिमा बतायी, जिनके रूप-गुणैश्वर्यकी कोई सीमा नहीं है । अब मैं समझा कि कृष्ण-भक्ति ही सर्वोपरि है । तुम्हारी कृपाने मुझे कृतार्थ कर दिया ।"

प्रभुने उनकी बातसे परम सन्तुष्ट होकर प्रेमानन्दमें उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया । वेङ्कट भट्ट श्रीरङ्ग-क्षेत्रमें श्रीसम्प्रदायके प्रधान वैष्णवाचार्य थे । उनको अपने भजनका बड़ा अभिमान था, जिसको प्रभुने कृपा करके नष्ट कर दिया । वे अब परम कृष्ण भक्त होगये, तथा ब्रज-रसके आनन्दमें विभोर होगये । उनके अनेक शिष्य थे । उनको प्रभुका उपदेश समझा दिया । वे भी इस परम निगूढ़ व्रजरस तत्त्वके विचारमें निपुण होगये । प्रभुकी कृपासे सभी उच्चाधिकारी कृष्ण-भक्त होगये ।

वेङ्कट भट्टके पुत्र गोपालभट्ट उस समय श्रीमद्-भागवत पढ़ रहे थे । उस परम कृती बालकको भी प्रभुने सर्वश्रेष्ठ व्रजरस तत्त्वका उपदेश दिया । यथा—

---

* मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात् तथाच्युतः ॥
नारद पञ्चरात्र वचन

श्लोकार्थ—नाना प्रकारकी कान्तिसे विशिष्ट अर्थात् विभिन्न प्रकारके वैदूर्यमणि जिस प्रकार रूपान्तर धारण करने पर भी मणिको न्यून नहीं करते, उसी प्रकार भक्तके ध्यान भेदसे रूपभेद होने पर भी अच्युत श्रीकृष्ण न्यून नहीं होते ।

गोपालभट्ट पड़े तखन श्रीभागवत।
प्रभु ताँरे कहिलेन निज अभिमत ।।

(प्रेमविलास)

गोपालभट्ट प्रभुकी सेवा करके उनके अतिशय प्रियपात्र होगये थे। चातुर्मास्य पूर्ण होने पर प्रभु जब भट्ट परिवारसे विदा होने लगे तो सब लोग प्रभुके विरहमें कातर होउठे। वेङ्कट भट्ट मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। प्रभुकी कृपासे कुछ देरके बाद उनको चेतना आयी। वे प्रभुके सङ्ग जानेके लिए प्रस्तुत होगये। बहुत कठिनाईसे प्रभुने उनको निर्वृत किया।

बालक गोपाल भी प्रभुके साथ जानेके लिए तैयार होगया। वह रोते-रोते व्याकुल होगया। उसे प्रभुने पास बुलाकर स्नेहपूर्वक कहा—"तुम घरपर कुछ दिन रहकर माता-पिताकी सेवा शुश्रूषा करो। माता-पिताका वियोग होने पर श्रीवृन्दावन जाना, वहाँ तुम्हें विमल आनन्द प्राप्त होगा।"

श्रीरंग-क्षेत्रसे प्रस्थान

प्रभु श्रीरङ्ग-क्षेत्र तीर्थसे यात्रा करके ऋषभ पर्वतपर गये।* वहाँ श्रीनारायण मूर्त्तिका दर्शन करके स्तुति-नमस्कार किया। वहाँ ही श्रीपाद परमानन्द पुरीके साथ उनकी भेंट हुई। वह भी वहाँ चातुर्मास्य कर रहे थे। प्रभु पुरी गोसाईंको पाकर आनन्दके समुद्रमें निमग्न होगये। प्रेममें भरकर उनकी चरण-वन्दनाकी। उन्होंने प्रभुको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर सुखी किया।

नीलाचलसे प्रभु जब दक्षिण देशकी यात्रामें निकले उसी समय पुरी गोसाईं भी तीर्थयात्रामें निकले थे। तीर्थ पर्यटन करते हुए वे ऋषभ पर्वत पर आ करके उपस्थित हुए थे। तीन दिन तक प्रभुने पुरी गोसाईंके साथ कृष्णकथा-रङ्गमें अतिवाहित किया। पुरी गोसाईंने प्रभुसे कहा कि वे पुनः श्रीपुरुषोत्तम जायँगे, और वहाँसे वह एकबार गौड़ देश जायँगे। प्रभुने कहा—"मैं भी सेतुबन्धसे नीलाचल लौटूँगा। वहाँ पहुँचने पर आपका दर्शन करूँगा। मैं सदा आपके सत्सङ्गके सुखकी कामना करता हूँ। कृपा करके आप अवश्य-अवश्य नीलाचल रहेंगे।"

इतना कहकर प्रभु पुरी गोसाईंसे विदा लेकर श्रीशैल पर्वतपर गये। वहाँ ब्राह्मण-ब्राह्मणीके वेषमें शिव-दुर्गा अवस्थान करते हैं। प्रभुको देखकर उनके आनन्दकी सीमा न रही। तीन दिन तक प्रभुको शिव-दुर्गा रूपी ब्राह्मण दम्पतिने भिक्षा कराकर कृतार्थ किया। एकान्तमें बैठकर दोनोंने प्रभुके साथ बहुत-सी गुप्त बातें कीं। ग्रन्थमें उन बातोंका उल्लेख नहीं मिलता है। श्रीगौर भगवान् शिव-दुर्गाके साथ सत्सङ्ग करके उनकी आज्ञा लेकर कामकोटी पुरी होकर दक्षिण मथुरामें पहुँचे।*

रामभक्त विप्र रामदास

वहाँ एक रामभक्त विरक्तके साथ उनका साक्षात्कार हुआ। वे प्रभुको निमन्त्रित करके अपने आश्रम पर लेगये। उस विरक्त विप्रका नाम रामदास था। विप्रने कोई रसोईका आयोजन नहीं किया, यह देखकर प्रभुने उनसे पूछा—"दोपहर बीत रहा है। आप पाक क्यों नहीं कर रहे हैं?" रामभक्त विप्रने उत्तर दिया—

—"प्रभु मोरे अरण्ये वसति।
पाकेर सामग्री वने ना मिले सम्प्रति ।।

* ऋषभ पर्वत—दक्षिण कर्णाटकमें कुटकाचलके उपवनमें। जहाँ ऋषभदेव दावानलके द्वारा भस्मीभूत हुए थे।

* दक्षिण मथुरा—वर्तमान कालमें इसको मदुरा कहते हैं। यहाँ सुन्दरेश्वर महादेव और मीनाक्षीदेवी हैं, यह प्रसिद्ध शैव क्षेत्र है। यहाँ एक विशाल मन्दिर है। यह नगरी बहुत दिनों तक पाण्ड्यवंशके राजाओंके शासनाधीन रही। राजा कुल शेखरने इस पुरीका निर्माण किया था।

वन्य अन्न फल शाक आनिबे लक्ष्मण।
तबे सीता करिबेन पाक प्रयोजन ॥*

चै० च० म० ९.१६७-१६८

प्रभु उनके भजन तत्त्वको समझकर परम सन्तुष्ट हुए। पश्चात् उस रामभक्त विप्रने यथा-समय वनसे शाक फल-मूल लाकर पकाकर प्रभुको भोजन कराया। उस-दिन प्रभुने तीसरे पहर भोजन किया। परन्तु विप्र उपवास करके रह गये। यह देखकर प्रभुने विनयपूर्वक उनसे पूछा—"विप्र! आप उपवास क्यों कर रहे हैं?" विप्रने बहुत उत्तेजित होकर उन्मादके समान रोते-रोते उत्तर दिया—

"ए जीवने मोर नाहि प्रयोजन।
अग्नि जले प्रवेशिया छाड़िब जीवन ॥
जगन्माता महालक्ष्मी सीता ठकुरानी।
राक्षसे स्पर्शिला ताँरे इहा कर्णे शुनि ॥
ए शरीर धारिवारे कभू ना जुयाय।
एइ दुःखे जले देह प्राण नाहि जाय ॥

चै० च० म० ९.१७२-१७४

सर्वज्ञ प्रभुने रामभक्त विप्रके दुःखको समझा। दुःखहारी श्रीगौर भगवान् तब भक्तका दुःख दूर करनेके लिए कटिबद्ध हुए। प्रभुने उनको समझाकर कहा—"ऐसी गलत भावना नहीं करनी चाहिये। तुम पण्डित होकर विचार क्यों नहीं करते? ईश्वर प्रेयसी सीता चिदानन्द मूर्त्ति हैं। प्राकृत इन्द्रिय उनको देख भी नहीं सकती, स्पर्शकी बात तो दूर रही। रावणने तो सीताकी माया-आकृतिका हरण किया था। मेरी बातका विश्वास करो।"

प्रभुकी बातसे रामभक्त विप्रको विश्वास हुआ। उनके अशान्त मनमें शान्ति हुई। तब उन्होंने भोजन किया, प्रभु उनको आश्वासन देकर वहाँसे कृतमालामें स्नान करके दुर्वेशन* तीर्थमें आये। वहाँ श्रीरघुनाथ विग्रहका दर्शन करके महेन्द्र शैल पर गये, और वहाँ परशुराम विग्रहका दर्शन करके प्रभुने स्तुति वन्दना की।

प्रभु जहाँ जाते थे, उनके साथ लाखों-लाखों लोग उच्च स्वरसे हरिनाम सङ्कीर्तन करके हुए चलते थे। कृष्णनाममें सब लोगोंको उन्मत्त करके प्रभुने दक्षिण देशवासियोंका उद्धार किया। इसीके लिए उनकी दक्षिण देशकी यात्रा हुई थी। सारे दक्षिण देशको उन्होंने इस प्रकार कृष्णनामसे दीक्षित किया।

इतने दिनोंके बाद वे सेतुबन्ध जा पहुँचे। धनुस्तीर्थमें स्नान करके प्रभुने श्रीरामेश्वर विग्रहका दर्शन करके बहुत देर तक प्रेमानन्दमें नृत्य कीर्तन किया। यहाँ बहुत-से ब्राह्मणोंका निवास है। सभी रामभक्त वैष्णव हैं। देवालयमें एक दिन कूर्मपुराणका पाठ हो रहा था, प्रभु सुन रहे थे। उस दिन

* इन दो पयारोंमें जो कहा गया है, वह रामभक्त विप्रके भजनावेशकी बात है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब प्रभुने उनसे पाक करनेकी बात पूछी तब वे भगवान् रामकी बनवास-लीलाका स्मरणकर रहे थे। राम, सीता और लक्ष्मण—ये तीन जन पञ्चवटी वनमें वासकर रहे थे। रामभक्त विप्र भी अन्तश्चिन्तिन सिद्ध देहसे उनके दास या दासीरूपमें (सम्भवतः दासी-अभिमान ही वे पोषण करते थे, दास-अभिमान रहनेसे लक्ष्मणके बदले या लक्ष्मणके साथ वे भी फल-मूल लेने गये होते। जो हो सम्भवतः दासीरूपमें) पञ्चवटी वनमें उनके साथ-वास करते थे, इसलिए चिन्तन कर रहे थे, मानो लक्ष्मण वन्य फल-मूल और शाकादि लेने गये हैं। उनके लौटने पर सीताजी श्रीरामके लिए भोजन व्यवस्था करेंगी। लक्ष्मणके लौटनेकी प्रतीक्षामें वे लोग बैठे हैं। विप्र जब इस प्रकारकी भावनामें निमग्न थे, तभी प्रभुने उनसे पाक सम्बन्धी प्रश्न किया। प्रभुकी बात सुनकर उनको कुछ-कुछ बाह्यज्ञान हुआ, किन्तु अन्तरका आवेश अभी दूर नहीं हुआ था; इसलिए उस आवेशके वशमें कहा—"प्रभु मैं वन (पञ्चवटी वन) में वास करता हूँ, यहाँ पाक-सामग्री दुर्लभ है, लक्ष्मण वन्य फल-मूलादि लाने गये हैं, उनके लौटने पर सीता-ठाकुरानी पाकका जोगाड़ करेंगी।

श्रीराधागोविंदनाथकी टीकासे

* दुर्वेशन—तिनेवलीके निकट पर्वत प्रान्तमें त्रिचेनगुड़ी नगर है। रामायणमें महेन्द्र शैलका उल्लेख है।

पतिव्रताके उपाख्यानमें माया सीताहरण लीलाकी कथाकी व्याख्या हो रही थी। कूर्मपुराणके निम्नाङ्कित कुछ श्लोकोंकी व्याख्या सुनकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। रामदास विप्रकी बात उनको याद आयी। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

सीतयाराधितो बह्निश्छायासीतामजीजनत्।
तां जहार दशग्रीवः सीता बह्निपुरं गता।
परीक्षासमये बह्नि छाया सीता विवेश सा।
बह्निः सीतां समानीय स्वपुरादुदनीनयत्।।

श्लोकार्थ—श्रीसीताजीने अग्निदेवकी आराधना की तो उन्होंने एक छाया सीताका निर्माण किया। रावणने उसी छाया सीताका हरण किया था। प्रकृत सीताने अग्निलोकमें अवस्थान किया था। अग्नि परीक्षाके समय छाया सीता अग्निमें प्रवेश कर गयी, और अग्निदेवने अग्निलोकसे सीताजीको लाकरके पुनः श्रीरामचन्द्रजीके हाथोंमें समर्पण किया।

प्रभुने पुराण पाठक विप्रके पास जाकर कहा कि यह पोथी मुझे दीजिये। उनने अपना उद्देश्य खोल कर बताया। एक नया पत्र लिखकर उनको दे दिया और वह पुराना पत्र लेकर प्रभु वहाँसे चल दिये। दक्षिण मथुराके उस रामभक्त विप्रको विश्वास दिलानेके लिए प्रभुने इतना कष्ट उठाया। नये पत्र पर लिखी पोथीमें उसको कहीं प्रतीति न हो तो उसके लिए प्रभुने यह कष्ट करके उस ब्राह्मण की प्रतीतिके लिए ऐसा किया। प्रभु पुनः कामकोटि होते हुए दक्षिण मथुरामें आये और उस भाग्यवान् विप्रके घर आतिथ्य स्वीकार किया। प्रभुको पाकर उस विप्रके हाथमें मानो आकाशका चाँद आ गया। प्रभुने हँसकर विप्रके हाथमें पोथीका वह पत्र देकर दो श्लोक पढ़नेके लिए कहा। रामभक्त विप्रने श्लोक पाठ करके आनन्द-विह्वल होकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते हुए कातर कण्ठसे निवेदन किया—

तुमि साक्षात् श्रीरघुनन्दन।
संन्यासीर वेषे मोरे दिले दरशन।।
महा दुःख हैते मोरे करिले निस्तार।
आजि मोर घरे भिक्षा कर अङ्गीकार।।
मनोदुःखे भाल भिक्षा ना दिला से दिने।
मोर भाग्ये पुनरपि पाइल दरशने।।

चै. च. म. ९. १९७-१९९

विप्रने परम आनन्दपूर्वक उस दिन मनके साधसे भलीभाँति राँध करके प्रभुको भिक्षा कराया। प्रभु उस दिन रातको वहाँ ही रहे।

पन्थ भीलका उद्धार

इसके बाद प्रभुने वेङ्कट नगरमें जाकर घर-घर याचना करके हरिनाम महामन्त्र प्रदान करके उस देशके सब लोगोंका उद्धार किया। वहाँ प्रभुने सुना कि निकटके वनमें पन्थ-भील नामक एक पापाचारी दस्यु रहता है। उसके दलमें बहुतेरे अत्याचारी लोग हैं। उनके लिए ऐसा कोई पाप नहीं जो वे न करते हों। पतितपावन प्रभु उस पन्थभीलका उद्धार करने चले। सब लोगोंने उनको मना किया। परन्तु उन्होंने उनकी बात पर ध्यान न दिया।

बगुला नामक वनमें वह दस्यु रहता था। प्रभुने 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे' की ध्वनिसे वनभूमिको प्रकम्पित करते हुए उस घोर वनमें प्रवेश किया। वनमें पन्थ-भीलके साथ प्रभुकी भेंट हो गयी। दस्यु पतिके घर पतितपावन श्रीगौर भगवान् अतिथि बने। तीन दिन तक पन्थ-भीलने प्रभुको भिक्षा कराया।

दिन-रात प्रभु हरिनाम गानमें मत्त रहते थे। कदम्ब-केशरको मात करने वाली उनके श्रीअङ्गकी पुलकावलीने उनके दिव्य श्रीअङ्गकी ज्योतिसे वन प्रदेशको आलोकित कर दिया। पन्थ-भील और उसके दलके दस्युगण प्रभुके अपूर्व प्रेमफाँसमें फँस गये। प्रभुने दस्युपतिको सम्बोधन करके विनीत भावसे मधुर शब्दोंमें कहा—"पन्थ! तुम तो परम विरक्त संन्यासी साधु शिरोमणि हो, गृहस्थकी तरह विषय कीट नहीं हो। तुम्हारे पुत्र, कन्या या पत्नी कोई नहीं है, तुम्हारे लिए विषय तृणके समान हैं। तुम माया मोहमें भी नहीं बँधे हो। तुम सब कुछ एक क्षणमें त्याग कर सकते हो। तुमको देखकर मेरे प्राण

बड़े सुखी हुए हैं। तुम्हारे दर्शनसे पाप नष्ट हो जाते हैं।"

चतुर चूड़ामणि प्रभुके श्रीमुखसे आत्मप्रशंसा सुनकर दस्युराज पन्थ-भीलके मनमें दारुण आत्म-ग्लानि पैदा हुई। आत्मग्लानि क्या वस्तु है, इसे वह भलीभाँति जानता था। अब तक इस संसारमें किसीने उससे एक अच्छी बात नहीं कही थी, उसकी प्रशंसा नहीं की थी। प्रभुके श्रीमुखसे दस्यु-राज-पन्थ भीलको पहले पहल अच्छी बात सुननेको मिली। इससे उनका मन द्रवित हो उठा। नवीन संन्यासीको देखते ही उसके मनमें एक नया भाव उदय हुआ था। उस भाव तरङ्गको उसने अपने मनमें दबा रखा था। अब उसका हृदय सिन्धु उमड़ आया, और उसमें अब तरङ्ग उठने लगे। दस्युराजने रोते हुए निष्कपट भावसे अपने सब पापोंको स्वीकार करते हुए पतित पावन श्रीगौराङ्ग प्रभुके अभय चरणकमलमें शरण लिया। तत्काल प्रभुने कृपा करके उसको गोदमें लेकर हरिनाम महामन्त्र प्रदान किया।

पन्थभीलके दलके सब लोगोंको प्रभुने हरिनाममें मत्त कर दिया। भयानक दस्युओंका दल क्षण-मात्रमें प्रभुकी कृपासे साधु हो गया। उन सबने मिलकर प्रभुके साथ हरिनाम सङ्कीर्तनमें योग दिया। दस्यु-भयसे पूर्ण भीषण-कानन आनन्द-काननमें परिणत हो गया।

पन्थभीलने उसी दिन कौपीन धारण कर लिया, हरिनामकी जप माला ले ली। प्रेमानन्दमें हरिनाम कीर्तन करने लगा। एकबार मधुर हरिनाम उच्चारण करतेही उनके नयनोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह चली।

इस प्रकार पतित पावन श्रीगौर भगवान् दस्युराज पन्थ-भीलका उद्धार करके वन-प्रदेशमें निकलकर पुनः रास्ते पर आ गये। राहकी थकावटसे प्रभुका शरीर चूर-चूर हो गया था, रास्ता चलनेमें महान् कष्ट हो रहा था, तथापि पतित पावन प्रभुने पतितोद्धारका कार्य नहीं छोड़ा।

कलिके जीवोंमें उद्धार-कार्यमें नदियाके अवतार श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभुने जिस प्रकार कष्ट उठाया था, किसी दूसरे अवतारमें श्रीभगवान्ने ऐसा कष्ट नहीं उठाया। जीवकी मङ्गलकामनासे षडैश्वर्यपूर्ण पूर्ण-ब्रह्म सनातन स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग सुन्दरने कङ्गालके वेषमें रास्ते-रास्ते धूलि धूसरित अङ्गसे याचना कर-करके पतित और अधमको गोदमें लेकर मधुर हरिनामामृत पान कराकर उनके नीरस हृदयको सरस बना दिया था। उनके पाप-निष्ठ मनको भक्तिनिष्ठ कर दिया था। ऐसे दयाके अवतार, करुणाके अवतार, अधम उधारण, दीन-शरण, पतित-पावन महाप्रभुके नाममें जीवाधम ग्रन्थकारकी रुचि न हुई, इस दुःखसे हृदय व्यथित होता रहता है। बहुत सुकृतिके फलसे श्रीगौराङ्गके नाममें रति-मति होती है। करोड़ोंमें कोई एक गौरभक्त देखनेको मिलता है। एक-एक गौरभक्त एक-एक ध्रुव प्रह्लाद हैं। साध करके श्रीप्रवोधानन्द सरस्वतीने लिखा है—

अरे मूढ़ा गूढ़ां विचिनुत हरेर्भक्ति पदवीं
दवीयस्या दृष्ट्याप्य परिचितपूर्वां मुनिवरैः।
न विश्रम्भश्चित्ते यदि यदि च दौर्लभ्यमिव तत्,
परित्यज्यशेषं व्रजत शरणं गौरचरणम् ॥

श्लोकार्थ—अरे मूढ़ लोगो! अति गूढ़ तथा दूरवर्ती अदृष्टके वश व्यासादि मुनियोंके द्वारा भी पूर्वकालमें हरिभक्तिका जो मार्ग ज्ञात न था, उसका तुम लोग अनुसन्धान करो। वह दुर्लभ वस्तु कैसे प्राप्त होगी? उसकी प्राप्तिके विषयमें यदि तुम्हारे चित्तमें विश्वास नहीं होता है, तो इसका उपाय बतलाता हूँ, सुनो। सर्वस्व परित्याग करके उस अनाथके नाथ श्रीगौरहरिके श्रीचरणोंका आश्रय ले लो।

आगे प्रस्थान—अनेकोद्धार

प्रभुने तीन दिनके उपवासके बाद चौथे दिन कुछ दुग्ध और आटा भिक्षा किया।

चतुर्थ दिवसे एक रमणी आसिया।
आतिथ्य करिला तबे आटा चूना दिया॥
आर एन वृद्धा नारी दुग्ध आनि दिल।
आटा दुग्धे गुलि प्रभु भोग लागाइल॥

गो. क.

इस प्रकार भिक्षा करके प्रभुने पुनः राह पकड़ी। वहाँसे तीन कोसकी दूरी पर गिरीश्वर शिव-मन्दिर था। प्रभु वहाँ जा पहुँचे। उस शिव मन्दिरको लोग विश्वकर्माके द्वारा निर्मित बतलाते थे, क्योंकि वैसी कारीगरी दक्षिण भारतके और किसी मन्दिरमें न थी। मन्दिरके पास एक बड़ा विल्ववृक्ष चौथाई पथ विस्तृत भूमिके ऊपर शाखा-प्रशाखा विस्तार करके शोभा पा रहा था। वहाँके लोग कहते थे कि उस वृक्षमें कभी फल नहीं लगा। शिव मन्दिरके तीन ओर पर्वत शोभा दे रहा था। प्रभुने अपने हाथों विल्वपत्र चयन करके प्रेमानन्दमें विभोर होकर गिरीश्वर शिवलिङ्गको अञ्जलि प्रदान किया। प्रेमावेशमें मन्दिरमें बहुत देर तक नृत्य कीर्तन करते रहे। प्रभु वहाँ दो दिन रहे।

तीसरे दिन प्रभु पर्वत शिखरपर मौनी संन्यासीके साथ भेंट करने गये। वे संन्यासी ध्यानमग्न थे। प्रभुने उनकी स्तुति-नति करके ध्यान छुड़ाया। दूसरे और दो विरक्त संन्यासियोंने आकर प्रभुका साथ दिया। प्रभुको उन्होंने परचा नामके एक अति रसीले वन फलके द्वारा भिक्षा करायी। प्रभुने हरिनाम संकीर्तन के द्वारा उन शुष्कहृदय विरक्त संन्यासियोंको एकबारगी मत्त कर दिया। मौनी संन्यासियोंका मौनभङ्ग हो गया। सभी भक्तिरसमें आप्लुत अथवा आप्भुत हो उठे। वे प्रभुका चरण पकड़कर प्रेमानन्दमें रोने लगे। प्रभुको उन्होंने साक्षात् ईश्वर मान लिया।

प्रेमावतार श्रीगौर भगवान् उन शुष्क ज्ञानी संन्यासियोंको प्रेम-भक्ति प्रदानकर वहाँसे त्रिपदी नगरमें आये। त्रिपदीनगरमें श्रीरामचन्द्रजी की एक परमसुन्दर श्रीमूर्त्ति है। प्रभुने उनका दर्शन किया। वहाँ राम-भक्त बहुतसे वैष्णव रहते थे।

मथुरा नामका एक तार्किक राम-भक्त पण्डित प्रभुसे शास्त्रार्थ करने आया। प्रभुने उनको कहा— "मथुरा महाराज! मैं शास्त्र विचार कुछ नहीं जानता, मैं आपसे सौ बार हार मानता हूँ। आप श्रीराम-भक्त वैष्णव हैं, आपसे कितनी ही तत्त्व कथा प्राप्त हो सकती है।"

यह बात बोलते-बोलते प्रभु प्रेमाविष्ट होकर हरिनाम कीर्तनमें मत्त हो गये। प्रेमानन्दमें विह्वल होकर वे बहुत देर तक नृत्य कीर्तन करते रहे। उनका प्रेमोन्मत्त भाव देखकर राम-भक्त वैष्णवोंने उनको साक्षात् ईश्वर मान लिया। मथुरा पण्डितकी तर्क-वितर्क बुद्धि लुप्त हो गयी। उन्होंने अपने शिष्योंके साथ प्रभुके चरणोंमें आत्म-समर्पण किया। वे पण्डित शिरोमणि प्रभुके साथ जानेके लिए तैयार हो गये। प्रभुने मुस्कराकर उनको विदा किया, और पाना-नरसिंह तीर्थकी ओर प्रमाण किया।

पाना-नरसिंह तीर्थमें श्रीनरसिंहजीकी मूर्त्ति है। उनके भोगमें नित्य चीनीका पाना (शर्बत) दिया जाता है। इसी कारण उनका नाम पाना-नृसिंह है। वहाँके प्रधान पण्डा माधवेन्द्र भुजाने प्रभुको माला-चन्दनसे भूषित करके प्रसादी चीनीका शर्बत लाकर प्रभुके श्रीहस्तमें अर्पण किया। प्रसादी माला और प्रसाद पाकर प्रभु प्रेमानन्दमें बहुत देरतक नृत्य कीर्तन करते रहे। उस स्थानके सब लोग प्रभुके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम कीर्तन सुनकर वैष्णव हो गये।

उसके बाद प्रभुने विष्णुकाञ्ची धाममें जाकर श्रीश्रीलक्ष्मीनारायणका दर्शन किया। वहाँके प्रधान पुजारी भवभूति नामक एक सेठी लक्ष्मीनारायणकी सेवाका बड़ा प्रेमी था। उसकी साध्वी स्त्री नित्य अपने हाथसे श्रीमन्दिरका मार्जन करती थी। नित्य दो मन दूधका पायसान्न ठाकुरको भोग लगता था।

बहुत अतिथि प्रसाद पाते थे। प्रभुने श्रीविग्रहको देखकर परमानन्दमें बहुत स्तुति नमस्कार किये।

उस स्थानसे छः कोस दूर एक निर्जन स्थानमें त्रिकालेश्वर शिवलिङ्ग है। उसका चार हाथ परिमित गौरीपट्ट है। प्रभुने वहाँ जाकर इस अपूर्व शिवलिङ्गका दर्शन किया। उसके बाद वह भद्रा-नदीके तटपर पक्षगिरि तीर्थपर गये। वहाँ प्रभुने एक-रात वृक्षके नीचे वास किया। रातके समय एक भयानक बाघ आया। प्रभु हरिनाम ले रहे थे। उसकी कुछ परवाह नहीं की। बाघने एकबार प्रभुका दर्शन करके पूँछ हिलाकर प्रणाम-स्वरूप सिर झुकाया। पश्चात् कुछ देर वहाँ बैठनेके बाद, कूदकर वनमें घुस गया। गोविन्ददासने लिखा है—

आश्चर्य प्रभाव मुञि स्वचक्षे हेरिया।
सेइ परब्रह्म माथे लइनु तुलिया॥

वहाँसे पाँच कोस दूर काल तीर्थमें जाकर प्रभुने बराह मूर्त्तिका दर्शन किया। इसके बाद वे सन्धि तीर्थमें गये। जहाँ नन्दा और भद्राका नदीका सङ्गम है। प्रभुने उस पुण्य तीर्थमें स्नान किया। उस तीर्थके स्वामीका नाम सदानन्द पुरी था। वे अद्वैतवादी थे। उनको प्रभुने शास्त्रार्थमें पराजित करके प्रेमभक्ति प्रदानकर कृतार्थ किया। उस दिनसे सदानन्द पुरी भक्तिपथके पथिक हो गये और प्रभुके परम भक्त हुए।

इसके बाद प्रभु चाईपन्दी तीर्थमें गये। उस तीर्थके निवासी बड़े ही सदाचारी थे। इस स्थानमें सौ वर्षकी अवस्थाकी अति तेजस्विनी सिद्धेश्वरी नामकी एक भैरवी विल्ववृक्षके मूलमें बैठकर जप करती थी। उसका अस्थिचर्म मात्र अवशिष्ट था। वह जपमें सिद्धा हो गयी थी। बहुत लोग उनका दर्शन करने वहाँ जाते थे। प्रभुने उनका दर्शन किया। उनके पास ही नदीके किनारे शृगाली भैरवी नामकी एक प्रचण्ड देवी मूर्त्ति है। प्रभुने भक्तिपूर्वक उस देवीमूर्त्ति का दर्शन किया।

उसके बाद नगर नागरमें जाकर प्रभुने लक्ष्मणकी मूर्त्तिका दर्शन किया। उस नागर नगरमें बहुत लोगोंका वास है। उस स्थानमें प्रभुने तीन दिन रहकर हरिनामका प्रचार किया। हरिनाम सङ्कीर्तनके रङ्गमें प्रभु वहाँ दिन-रात मत्त रहते थे। नगर निवासी आबाल-वृद्ध वनिता प्रभुके श्रीमुखसे हरिनाम सुनकर प्रेमोन्मत्त हो उठे। सारे नगरमें मधुर हरिनामका प्रचार हुआ। चारों ओरके गाँवोंसे असंख्य लोग आकर हरिनाम महामन्त्र प्रभुसे ग्रहण करने लगे।

उस नागर नगरमें एक हरिनाम-द्वेषी दुरात्मा ब्राह्मण रहते थे। उनका एक दल था। वह दल-बलके साथ एक दिन प्रभुसे विवाद करने आये। उन्होंने प्रभुको कपटी संन्यासी कहकर बहुत निन्दाकी, कुवचन कहकर गाली दी। प्रभुने सबको हँसीमें उड़ा दिया। उन्होंने उस ब्राह्मणको पास बुलाया। वह दुष्ट विप्र प्रभुके ऊपर प्रहार करनेके लिए उद्यत हो गया था। उस दुष्ट विप्रका प्रभुके प्रति यह व्यवहार देखकर सब लोग उसको मारनेके लिए उद्यत हो गये। प्रभुने उन सबको मना किया। पश्चात् विप्रकी ओर करुण नयनसे देखकर मधुर भावसे उपदेश देते हुए प्रभु बोले—"हे ब्राह्मण ठाकुर! इस अनित्य देहमें कोई सुख नहीं है। मरते समय भाई-बन्धु, सुत-दारा कोई भी साथ नहीं जायगा। सब वस्त्र-अलङ्कार यहीं पड़े रह जाँयगे। मरनेके बाद इस शरीरको या तो गीदड़ और कुत्ते खा जाँयगे या यह सड़ जायगा। स्त्री-पुत्रादि अपने पालन-पोषणके लिए ही प्रेम दिखाते हैं। पत्नी प्रेम-फाँस गलेमें डालकर खींचती (आकर्षण) करती है। उसी खिंचावमें मूर्ख आदमी प्राण दे देता है। मुखमें मधुर बोल होते हैं और अन्तरमें विष। रमणीका प्रेम विषके समान होता है, उसको मूर्ख लोग अमृत समझकर पान करते हैं। मरणकालमें पुत्र-कन्या पास आकर पूछते हैं—'बाबा! हमारे लिए क्या किया है?' यह सब विचारकर भगवान्‌का नाम लो, हरि-हरि बोलो। मैं यही भिक्षा तुमसे चाहता हूँ। प्राण भरकर हरि बोलकर

मुझको खरीद लो। यह भगवान्‌का नाम ही साथ जायगा। इससे अनन्तकाल तक आनन्द मिलेगा।"

प्रभुकी यह उपदेशवाणी सुनकर उपस्थित लोग उच्च स्वरसे हरिध्वनि करने लगे, तथा उस पाखण्डी विप्रको नाना प्रकारसे तिरस्कार करने लगे। प्रभुकी कृपासे विप्रके मनमें आत्मग्लानि हुई और तत्काल उनका मन शुद्ध हो गया। वे भी सबके साथ-साथ हरिध्वनि करते हुए प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगे। उनके दोनों नेत्रोंसे झर-झर प्रेमाश्रु-धारा बह चली। उन्होंने रोते हुए प्रभुके चरणोंमें गिरकर दोनों हाथोंसे उनके पादपद्मको पकड़कर क्षमा और कृपाकी याचना की। कृपानिधि प्रभुने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ किया, और वहाँसे यात्रा कर दी। उनके मुखसे उच्च हरिनाम संकीर्तन श्रवण करके सब जीवोंका उद्धार हो गया।

वहाँसे सात कोस दूर तंजोर नगरमें जाकर प्रभु एक कृष्णभक्त ब्राह्मणके घर अतिथि हुए। उनका नाम धनेश्वर था। उनके घरमें श्रीराधा-कृष्णकी श्रीमूर्त्तिकी नित्य सेवा-पूजा होती थी। वहाँ बहुतसे लोगोंका आना-जाना होता रहता था। मन्दिरके प्राङ्गणमें एक महान् बकुल वृक्ष था। उसके नीचे प्रभुने प्रेमानन्दमें नृत्य कीर्तन किया।

उसके बाद प्रभुने चण्डालु गिरि प्रदेशमें गमन किया। वहाँ बहुतेरे संन्यासी योगी तपस्या करते थे। प्रत्येक गुफामें प्रभुने भस्म लपेटे संन्यासीको देखा। वे लोग आँखें मूँदकर ध्यान मग्न बैठे थे। उस रम्य स्थानमें भट्ट नामक एक विप्रके घर प्रभुने भिक्षा की। प्रभुने कृपा करके उस विप्रवरको हरिनाम महामन्त्र प्रदान किया। भट्ट हरिनाममें मत्त हो उठे। प्रेमावेशमें प्रभु उस भाग्यवान् विप्रके घर बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। विप्र आनन्दमें विह्वल होकर रोते हुए प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा।

वह स्थान अति मनोरम देखकर प्रभु कुछ दिन वहाँ रहे। प्रधान संन्यासी सुरेश्वरपुरी वहाँके संन्यासियोंके अधिपति थे। वे वैष्णव संन्यासी थे, और हरिसेवा-परायण थे। प्रभु उनसे जाकर मिले। प्रभुकी अपूर्व प्रेम चेष्टा और नृत्य-कीर्तन देखकर वे संन्यासी शिरोमणि उनके साथ प्रेमानन्दमें हरि-नाम-कीर्तन करने लगे। उनको कभी किसीने नृत्य करते नहीं देखा था। प्रभुके साथ वे उस समय अपूर्व अङ्ग-भङ्गी प्रदर्शित करते हुए प्रेम-नृत्य करने लगे। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। प्रभुने उनको प्रेमदान करके उनके द्वारा उस स्थानके संन्यासियोंमें प्रेम भक्तिका वितरण किया। उस दिनसे चण्डालु गिरि प्रदेशके संन्यासाश्रममें कृष्ण-भक्तिका तरङ्ग उठा। मधुर हरिनामसे गिरि-गह्वर मुखरित हो गया। यह मनोरम पुण्य स्थान महाराज जयसिंहके अधिकारके अन्तर्गत था। वे संन्यासियोंसे किसी प्रकारका कर नहीं लेते थे।

इसके बाद प्रभुने पद्मकोट तीर्थके लिए प्रस्थान किया। वहाँ अष्टभुजा भगवतीकी मूर्तिका दर्शन करके प्रभुने बहुत स्तुति-नमस्कार किया। उस देवी-मन्दिरमें बैठकर प्रभुने सब लोगोंको तत्वोपदेश दिया। सहस्रों आदमी आकरके प्रभुको घेरकर बैठ गये। प्रभुकी उपदेशवाणी आकाशको भेदकरके स्वर्गमें पहुँची। अष्टभुजा देवीकी प्रतिमा मानो काँपने लगी। बाल-वृद्ध-युवा सभी प्रभुके श्रीमुखके हरिनाम गानसे उन्मत्त हो उठे। चतुर्दिक पद्मगन्ध-वायु बहने लगी। स्वर्गसे देवगण प्रभुके श्रीमस्तकपर पुष्पवृष्टि करने लगे। कुल नारियाँ भी प्रभुके श्रीअङ्ग पर पुष्पवृष्टि करने लगी। देवीमन्दिरमें बैकुण्ठनाथका आविर्भाव हुआ था। आज देवीके आनन्दकी सीमा न थी। वहाँके सभी शक्ति-उपासक वैष्णव हो गये।

श्रीगौर भगवान्‌ने उस स्थान पर कुछ ऐश्वर्य दिखलाया था। उस आनन्दोत्सवको देखनेके लिए एक जन्मान्ध विप्र आया था। प्रभुकी श्रीमूर्ति देखनेकी उसे बड़ी साध हुई। रातमें देवीने उसको स्वप्नादेश दिया था—"आज जगत्पति संन्यासीके वेषमें यहाँ आवेंगे, वे तुमको चक्षु प्रदान करेंगे।" इस आशामें हृदय बाँधकर अन्धे ब्राह्मणने प्रभुके

चरणकमलमें शरण लिया। प्रभुने कृपा करके उसे दिव्यचक्षु प्रदान किया। वह भाग्यवान् जन्मान्ध विप्र श्रीगौराङ्ग मूर्त्तिका दर्शन करके अनित्य देहको त्याग करके नित्य धाममें चला गया। प्रभुने उस महाभाग्यवान् विप्रके मृत देहको घेरकर हरिनाम संकीर्तन करते-करते उसको आपने हाथोंसे उसी देवी मन्दिरके आङ्गनमें बड़े समारोहके साथ समाधि प्रदान की।

इसके बाद प्रभु त्रिपात्र नगरमें पहुँचे। वहाँ चण्डेश्वर शिवमूर्तिका दर्शन किया। वहाँ एक प्रसिद्ध दार्शनिक पण्डित थे। वे वृद्ध और अन्धे थे। उनका नाम भर्गदेव था। प्रभुने उस अन्धे भर्गदेवपर विशेष कृपा की। भर्गदेवने प्रभुकी कृपासे अन्तर्दृष्टि द्वारा उनके साक्षात् व्रजेन्दनन्दन श्यामसुन्दर मदनमोहन रूपको देखा। वे प्रेमावेगमें रोते-रोते प्रभुके चरण पकड़कर निवेदन करते हुए बोले—"हे चैतन्य गोसाई। मुझमें भजन-साधना तो कुछ है नहीं, उल्टे संन्यासीपनका अभिमान है। मैंने सुना है कि तुम्हारा स्वर्ण जैसा वर्ण है, उसको मैं देखना चाहता हूँ। मुझ अभागेको अदृष्टके फलसे श्यामवर्ण ही दीख रहा है।"

वृद्ध भार्गवकी बड़ी इच्छा थी कि श्रीश्रीराधा-कृष्णमिलित तनु वेदोक्त रुक्माङ्ग पुरुष परम नारायण श्रीगौराङ्ग मूर्त्ति दर्शन करके जीवन सार्थक करते। परन्तु वे अन्धे थे। अन्तर्दृष्टिसे श्रीगौराङ्ग मूर्त्तिको नहीं देख सके। अतएव बहिर्दृष्टिके लिए प्रभुके चरणोंमें रोते-रोते निवेदन किया।

प्रभु दाँतसे जिह्वा काटकर दश हाथ दूर हट गये। बहुत भाग्यसे श्रीगौर गोविन्द मूर्तिका दर्शन प्राप्त होता है। प्रभुने उनको बाह्यदृष्टि नहीं दी, वृद्ध ब्राह्मणके मनकी साध मन-ही-में रह गयी। सात दिन प्रभु वहाँ रहे। उनके मुखसे हरिनाम गान सुनकर सब लोग वैष्णव हो गये।

उस देशका उद्धार करके प्रभु पुनः एक घोर वनमें घुसे। उसका नाम झारीबन्त था। पचास योजन विस्तृत उस प्रचण्ड वनस्थलीको प्रभुने एक पखवारेमें पार किया। उसके आगे श्रीरङ्ग धाम था। वहाँ अति सुन्दर नृसिंहजीका श्रीविग्रह है। भक्तराज प्रह्लाद श्रीविग्रहके आगे हाथ जोड़कर खड़े हैं। नृसिंहजी दैत्यराज हिरण्यकशिपुका बध कर रहे हैं। प्रभु इस श्रीविग्रहका दर्शन करके प्रेमानन्दमें अधीर होकर पागलके समान नृत्य-कीर्तन करने लगे। सब लोग प्रभुके अद्भुत नृत्य विलासको देखकर उनके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम कीर्तन सुनकर हरि-हरि ध्वनि करने लगे।

उसके बाद वे रामनाथ नगरमें गये। वहाँ रासेश्वर शिवलिङ्गका दर्शन किया। प्रभुको पथमें थकावट नहीं जान पड़ती थी। वे हरिनाम-गानमें मत्त होकर रास्ते पर चले जा रहे थे। सहस्रों आदमी उनके साथ थे। सब जीवोंका उद्धार करके प्रभु आनन्दित चित्तसे रास्ते पर चले जा रहे थे। तीन दिनके बाद साध्वीवन नामक स्थानमें एक मौनी संन्यासी पर कृपा करके प्रभु पाण्ड्य देशमें* ताम्रपर्णी नदीके किनारे जा पहुँचे। एक पक्षके बाद माघी पूर्णिमा आयी। पवित्र सलिला ताम्रपर्णी नदीमें माघी पूर्णिमाके दिन स्नान करके प्रभुने अपनी इच्छासे वहाँ एक पक्ष निवास किया।

इसके पश्चात् समुद्रका मार्ग पकड़कर कन्याकुमारी प्रदेशकी ओर चले। रास्तेमें नवत्रिपदी

---

* पाण्डय देश = दक्षिणात्यमें केरल और चोल राज्यके बीचका प्रदेश। यहाँ अनेकों पाण्डय उपाधिधारी राजा मदुरा और रामेश्वरमें राज्य करते थे। ताम्रपर्णी = तिनेवली जिलामें ताम्रपर्णी नदी है। इसको परुणँ कहते हैं। पश्चिम घाट गिरिसे निकलकर बंगोपसागरमें गिरती है। "ताम्रपर्णी नदी पत्र कृतमाला प्रयस्विनी।"

—भागवत ११.५.३९

तीर्थ देखा। चियड़ताला तीर्थमें श्रीरामलक्ष्मणकी मूर्त्तिका दर्शन किया। उसके बाद उन्होंने काञ्ची तीर्थ क्षेत्रमें जाकर शिवमूर्तिका दर्शन किया। गजेन्द्रमोक्षण तीर्थमें विष्णुमूर्त्तिका दर्शन करके प्रभुने प्रेममें भरकर बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन किया। श्रीमन्दिरमें बैठकर पण्डा लोगोंके पास श्रीभगवान्की गजेन्द्र मोक्ष लीला कथा सुनकर प्रभुके अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठे। तत्पश्चात् पानागड़ि तीर्थमें जाकर सीतापति मूर्त्तिका दर्शन किया। वहाँसे चामतानूर नामक ग्राममें जाकर श्रीरामलक्ष्मणमूर्तिका दर्शन किया। मलयपर्वतके ऊपर चढ़कर प्रभु अगस्त्यकी वन्दना करके श्रीवैकुण्ठमें श्रीविष्णु मूर्त्तिका दर्शन करके प्रेमानन्दमें अभिभूत हो गये। तत्पश्चात् प्रभुने कन्याकुमारी तीर्थमें जाकर समुद्र स्नान किया।

भट्टमारोंसे कृष्णदासका उद्धार

कन्याकुमारीसे लौटकर प्रभु पर्वतीय पथसे एक-बारगी मालाबार देशमें जा पहुँचे। मालाबारके एक प्रदेशमें वेतापानी नामक मठमें बहुतसे वामाचारी संन्यासी रहते थे। वे कामिनी-काञ्चन भजनमें तथा लोगोंको ठगनेमें लगे थे। उनको उस प्रदेशमें भट्टमारी (खानाबदोश) कहते थे।* प्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभुने जिस आदमीको लगाया था, उसका नाम कृष्णदास था। वह सीधा आदमी था, वहाँ जाकर वह वामाचारी कपटी संन्यासियोंके जालमें फँस गया। स्त्रीका लोभ देकर उस सीधे ब्राह्मणको भुलावेमें डालकर वे भट्टमारी अपने घर ले गये। सर्वज्ञ भक्तवत्सल प्रभु यह जानकर अपने भृत्यको खोजनेके लिए वामाचारी संन्यासियोंके घर पहुँचे। प्रभुने भट्टमारी लोगोंको सम्बोधन करके कहा—

आमार ब्राह्मण तुमि राख कि कारणे ?
तुमिह संन्यासी देख आमिह संन्यासी।
आमाय दुःख देह तुमि, न्याय नाहि बासि॥

चै. च. म. ९. २१२, २१३

प्रभुकी यह बात सुनकर भट्टमारी लोग अस्त्र-शस्त्र लेकर उनको मारनेके लिए तैयार हो गये। प्रभुकी वैष्णवी मायासे अभिभूत होकर वे आपसमें ही कट मरे। उनके सर्वाङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। इस प्रकार भयभीत होकर उनमें-से बहुतसे भाग गये। भट्टमारियोंके घरमें कुहराम मच गया। इसी बीचमें प्रभु अपने भृत्य कृष्णदासको केश पकड़कर इस नरककुण्डसे उद्धार करके ले गये।

इस लीलारङ्गके द्वारा श्रीगौर भगवान्ने यह दिखलाया कि सम्प्रदायके उच्चाधिकारी वैष्णव भी कामिनी-काञ्चनके लोभको संवरण नहीं कर सकते। कामिनी-काञ्चनके संस्रवमें शास्त्रज्ञ और सत्सङ्गी महान् पुरुषका भी पतन हो जाता है। स्वयं भगवान् कृपा करके उनका केश पकड़कर उद्धार न करें तो उनके उद्धारकी सम्भावना नहीं होती। यहाँ परम वैष्णव प्रभु-भक्त कृष्णदास साक्षात् श्रीगौर भगवान्के सङ्गमें रहते हुए भी कुसङ्गमें पड़कर कामिनी-काञ्चनके लोभको त्याग न सके। परन्तु भक्तवत्सल प्रभुने इस कारण अपने भक्तको नहीं त्यागा। उनका केश पकड़कर अपने हाथों नरक-कुण्डसे निकाला, और इस लीलाके द्वारा जगत्के जीवको दिखला दिया कि उनकी कृपासे किसीके वंचित होनेका कोई कारण नहीं।

प्रभुने छोटे हरिदासके प्रति जैसा कठोर आदेश दिया था, उसके अपराधकी तुलनामें कृष्णदासका अपराध अत्यन्त गुरुतर था, इसे कृपालु पाठकवृन्द अवश्य समझ रहे होंगे। परन्तु दण्ड-विधानका

---

* भट्टमारी=भाषामें किसी-किसी देशमें इसको भटवारी कहते हैं। इनका वासस्थान निर्दिष्ट नहीं होता। ये लोग जब जहाँ रहते हैं, शिविरमें वास करते हैं। स्त्री-पुत्र साथ रखते हैं। बाहर संन्यासीका वेष होता है, और चोरी-ठगई उनका व्यवसाय है। स्त्रियोंको फुसलाकर शिविरमें ले जाते हैं। दूसरे लोगोंको उन स्त्रियोंके प्रलोभनमें डालकर अपने दलकी वृद्धि करते हैं। हमारे देशमें जैसे नटोंकी टोली होती है, वैसे ही दक्षिणात्यमें भटवारियोंकी शिरकी होती है।

यह वैषम्य देखकर कोई यह न समझे कि श्रीभगवान्‌के विचार निरपेक्ष नहीं होते। कृष्णदासको जो दण्ड मिला, उसे कृष्णदासने ही समझा। इसकी अपेक्षा उनका मृत्युदण्ड भी अच्छा होता। यद्यपि उस समय प्रभुने उनको कुछ नहीं कहा, पर श्रीनीलाचलधाममें लौटने पर प्रभुने यह वात श्रीनिताईचाँदसे कहकर कृष्णदासको काफी मर्माहत किया था, तथा कृपा करके उनको इस प्रकारका उच्चसेवाका अधिकार दिया था, जो अन्य किसीको प्राप्य न था। प्रभुने कृष्णदासको श्रीनवद्वीपमें शची-विष्णुप्रियाके सेवाकार्यमें नियुक्त करके नीलाचलसे बिदाकर दिया था। यह सब लीलाकथाएँ अन्य स्थान कही जाँयगी।

ब्रह्म संहिताकी प्राप्ति

वेतपानीसे प्रभुने उस दिन पयस्विनी नदीके किनारे साकार दर्शन करके आदिकेशव मूर्त्तिका दर्शन किया। आदिकेशवके श्रीमन्दिरमें ब्रह्मसंहिताका पाठ सुनकर उस प्राचीन सिद्धान्तपूर्ण शास्त्रका प्रभुने नकल कराया। उस ग्रन्थरत्नको प्राप्तकर प्रभुके आनन्दकी सीमा न रही। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

सिद्धान्त शास्त्र नाहिं ब्रह्म संहिता सम।
गोविन्द महिमा ज्ञानेर परम कारण॥
अल्प अक्षरे कहे सिद्धान्त अपार।
सकल वैष्णवशास्त्र मध्ये अति सार॥

चै. च. म. ९. २२२, २२३

श्रीगौर भगवान्‌ने स्वयं इस श्रीग्रन्थको यत्नपूर्वक नकल कराकर बङ्गदेशमें लाकर स्वरूप दामोदर गोस्वामीको दिया था।*

त्रिवांकुरमें आगमन

वहाँसे प्रभु पद्मनाभ तीर्थमें जाकर पद्मनाम श्रीजनार्दन मूर्त्तिका दर्शन करके प्रेमानन्दमें विभोर होकर दो दिन तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। उसके बाद पयोष्णी तीर्थमें जाकर शङ्कर नारायणका दर्शन किया। उसके बाद शङ्कराचार्यके सिंहाद्रि मठमें गये। वहाँ बहुतसे मायावादी संन्यासियोंको वैष्णव बनाकर साँतन पर्वतके मार्गसे त्रिवांकुर राज्यमें पहुँचे।

त्रिवांकुर राज्य स्वाधीन राज्य था। राजा रुद्रपति उस राज्यके अधीश्वर थे। उनके प्रतापसे सब सशङ्कित रहते थे। परन्तु वे परम भगवद्‌भक्त थे। त्रिवांकुर नगर अतिशय समृद्धिशाली और बहुत जनाकीर्ण जनपद था। उस नगरीके प्रान्त-भागमें नदियाके अवतारने एक वृक्षके तले वास लिया।

कनककान्ति विशिष्ट, परम ज्योतिर्मय, सुवलित देह, दीर्घाकार, प्रफुल्लवदन, देवमूर्त्ति, एक नवीन संन्यासी सन्ध्याकालमें नगरके आबाल-वृद्ध-युवा सब आकर एकत्रित हो गये। प्रभुका दर्शन करके सभी उनके रूपपर मुग्ध हो गये। उन्होंने नगरमें घूमकर उसी रात प्रभुके शुभागमनका सम्वाद सर्वत्र पहुँचा दिया। प्रभुने वह रात वृक्षके नीचे ही बितायी। एक सौभाग्यवान्‌ने लाकर उनको आटा भिक्षा दिया। कृष्णदास और गोविन्ददास प्रभुके साथ थे। दूसरे दिन प्रातःकाल त्रिवांकुर शहरके सब लोग, झुण्डके झुण्ड आकर प्रभुका दर्शन करके धन्य हो गये। सब प्रभुकी अपरूप रूप राशिको देखकर कहने लगे कि—"इस प्रकारका रूपवान् संन्यासी तो हमने

---

* ब्रह्मसंहिता ग्रन्थका पञ्चम अध्याय मात्र नकल कराकर प्रभु लाये थे। सारा ग्रन्थ नहीं लाये थे। इस अध्यायमें अचिन्त्य भेदाभेद स्थिति, अभ्यास अष्टादशाक्षर मन्त्र, आत्मा, आत्माराम, कर्म, कामगायत्री, कामबीज, कारणाब्धिशायी, कृष्णधामके चिद्विशेष, गणेश, गर्भोदक-शायी, गायत्र्युत्पत्ति, गोकुल, गोलोक, गोविन्दरूप, स्वरूप-तत्व और धाम, जीवतत्व, जीवका प्राप्यस्वरूप, प्रेम, दुर्गा, तप, पञ्चभूत, ब्रह्म, ब्रह्माकी दीक्षाभक्ति, चक्षु, मन, महाविष्णु, योगनिद्रा, रमा, रागमार्गके भक्त, रामादि अवतार लिङ्गादि शब्दका तात्पर्य, बद्धजीव, उसका साधन, विष्णुतत्त्व, शम्भु, श्रुति, स्वकीय, परकीय, सदाचार, सूर्य आदि विषय वर्णित हैं।

कहीं नहीं देखा।" सब लोग हाथ जोड़कर प्रभुके सामने खड़े रहे।

प्रभु वृक्षके नीचे बैठकर आँखें मूँदकर ध्यानमग्न योगीके समान हरिनाम जप कर रहे थे। उनके श्रीअङ्गमें कदम्ब केशरके समान पुलकावली दृष्टिगोचर हो रही थी। उनके कनक-केतकीके समान युगलनयनसे अविरल प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। ऐसे अपूर्व प्रेमिक संन्यासीको देखकर कौन नहीं हाथ जोड़कर उनकी प्रेमभिक्षाकी याचना करेगा? परन्तु प्रभु ध्यानमग्न ऋषिके समान बैठे थे। आखें मूँदे हुए किसीकी ओर नहीं देखते थे।

हरिनाम करे गोरा मुद्रित नयन।
दाँड़ाइया स्तव करे सबे शुष्क मन॥
बसिया आछेन प्रभु अङ्ग नाहि नड़े।
नयनेर कोन बहि अश्रुधारा पड़े॥
रोमाञ्चित कलेवर पुलक अन्तरे।
भाव देखि ग्राम्य लोक कत स्तव करे॥
केह बोले मोर गृहे चलह संन्यासी।
केह बोले तोमारे देखिते भाल बासि॥
केह केह फल मूल आनिया जोगाय।
नयन खूलिया मोर प्रभु नाहि चाय॥

गो. क. च.

इसी बीचमें एक अति वृद्ध आदमीने लाठी हाथमें लेकर अति कष्टपूर्वक लोगोंकी भीड़को ठेलते हुए, हाँफते-हाँफते अति भक्तिपूर्वक एक-दूसरे आदमीसे पूछा—"हाँ जी, संन्यासी महाशय कहाँ हैं? क्या वे मुझको एकबार दर्शन नहीं देंगे?" भक्तवत्सल प्रभु भक्तके आर्त्तभावको देखकर स्थिर न रह सके। उनका जप-भङ्ग हो गया, वे झटपट वृक्षके तलेसे उठकर स्वयं उस वृद्धके पास आये, और उसे दर्शन देकर कृतार्थ किया। दयानिधि प्रभुने अपने हाथों उस वृद्धके पास फल-मल आटा भिक्षा ग्रहण किया।

प्रभुके शुभागमनका समाचार राजा रुद्रपतिके कानोंमें पहुँचा। वह स्वधर्मानुरागी हिन्दू राजा थे। साधु-संन्यासीके प्रतिपालक थे। उन्होंने आग्रह करके प्रभुको अपने राजभवनमें ले आनेके लिए आदमी भेजे। उनके आदमियोंने आकर राजाका आदेश कह सुनाया। प्रभुने हँसकर कहा—"विषयीके पास मैं नहीं जाता, उसका दान मैं ग्रहण नहीं करता। तथापि राजदूत प्रभुको वस्त्र, अलंकार आदिका लोभ देनेसे बाज न आया।

प्रभु पुनः हँसकर बोले—"जो लोग विषयके कीट हैं, वे ही धनकी अभिलाषा करते हैं। मैं विरक्त संन्यासी हूँ, धनसे मुझे क्या मतलब?" राजदूत राजा रुद्रपतिके पास जाकर प्रभुके विरुद्ध बहुत-सी बातें बोला। उन्होंने राजाको नरकका कीट कहकर अग्राह्य किया है, इत्यादि अतिरञ्जित बातें कहीं। राजा रुद्रपति भक्तिमान् थे, साधु-संन्यासी प्रिय थे। उन्होंने दूतकी बात सुनकर कुछ नहीं कहा। उस नवीन संन्यासीको देखनेकी उसकी बड़ी इच्छा हुई। वे दूतको बिदा करके स्वयं साधुका दर्शन करनेके लिए निकले। उनके साथ हाथी-घोड़ा-पैदल आदि सब चले। राजा रुद्रपति नगरके बीच होकर प्रभुके पास उसी वृक्षके नीचे आकर उपस्थित हुए। राजकीय ठाट-बाट दूर ही छोड़ दिया। भावनिधि श्रीगौराङ्गकी अपूर्व प्रेमाविष्ट भावमय मधुर श्रीमूर्त्ति दर्शन करके राजा रुद्रपति आनन्दमें गद्गद होकर उनके चरणोंमें गिरकर हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे—"मैंने बेसमझीसे आपको अपने पास बुलाया था। मेरा वह अपराध दया करके क्षमा कर दीजिये।"

राजाका दैन्य देखकर प्रभुने उनके ऊपर कृपा की। उन्होंने राजाको हाथ पकड़कर उठाया।

उनको पास बैठाकर उनसे मधुर वचन बोले—"राजा! तुम बड़े भाग्यवान् हो, नाना शास्त्रोंमें पण्डित हो, बड़े ज्ञानी हो। मैं राधा-कृष्णके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।"

प्रभुके श्रीमुखसे 'राधाकृष्ण' निकलते ही कमल-नयन द्वयसे पिचकारीके समान प्रेमाश्रुधारा छूटने लगी। वे कृष्णप्रेममें उन्मत्त हो उठे। उनकी साढ़े चार हाथकी देह प्रकम्पित हो उठी। वे प्रेमानन्दमें विभोर होकर आजानुलम्बित सुबलित बाहु युगल ऊपर उठाकर मधुर नयन-रञ्जन नृत्य करने लगे। हुङ्कार-गर्जन करके बारम्बार उच्च हरिध्वनि करते हुए प्रेमानन्दमें बेसुध हो गये। उनका सोनेका अङ्ग पछाड़ खाकर भूतल पर लोटने लगा। लोग देख रहे थे कि उनका श्रीअङ्ग चूर-चूर हो रहा है। यह देखकर राजा रुद्रपति घबरा गये। उनका धैर्य जाता रहा। उनने झटपट प्रभुको गोदमें उठा लिया। प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे राजाका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। वे भी प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर प्रभुके साथ नृत्य करने लगे। उनके दोनों नेत्रोंसे भी झरझर प्रेमाश्रु-धारा बह चली। दोनोंके अङ्ग धूलि-धूसरित हो गये। राजाका ऐसा प्रेमोन्मत्त भाव देखकर प्रभुने आनन्दमें गद्गद होकर उनको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। उनको भाई कहकर सम्बोधन किया। गोविन्ददासने अपने करचामें लिखा है—

देखिया राजार भक्ति आमार निमाइ।
कोल दिया राजारे बलेन एस भाइ॥

प्रभु प्रेमावेशमें गद्गद भाषामें राजासे बोले—

हरि नामे जार चक्षे वहे अश्रुधारा।
सेइ जन हय मोर नयनेर तारा॥
देखिया तोमार भक्ति राजा महाशय।
न्ड़ाल आमार प्राण जानिओ निश्चय॥

गोविन्ददास कड़चा

प्रभुकी यह बात सुनकर राजा रुद्रपति मनमें बहुत लज्जित हुए। वे प्रभुके चरणोंमें गिरकर व्याकुलता पूर्वक रोने लगे। दयानिधि प्रभुने पुनः उनको प्रेमालिङ्गन दानसे कृतार्थ करके विदा किया। राजाने घर जाकर प्रभुकी भिक्षाके लिए नाना प्रकारसे फल-मूल अपने आदमियोंके द्वारा भेजा। करुणामय श्रीगौर भगवान्ने भक्त राजा रुद्रपतिके भक्ति-उपहारको ग्रहण किया। प्रभु एक दिन-रात त्रिवांकुर नगरमें रहे। इससे सारे त्रिवांकुर राज्यमें हरिनामका प्रचार हो गया। प्रभुके श्रीमुखसे हरिनामामृत पान करके बहुतसे लोग कृष्णभक्त वैष्णव हो गये।

त्रिवांकुर राज्यमें रामगिरि पर्वतकी उपत्यकामें एक सुरम्य स्थान है। वनवासके समय श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके साथ यहाँ तीन दिन वास किया था। इस परम पवित्र स्थानकी अति आश्चर्यजनक महिमा है। प्रभु उस पुण्य स्थानका दर्शन करनेके लिए पर्वत पर चढ़े। राजा रुद्रपतिने प्रभुके साथ बहुतसे आदमी लगा दिये। पर्वतकी उपत्यका पर विस्तृत वनभूमि थी। एक पखबारे तक प्रभुने उस सुरम्य वनभूमिमें वास किया। उसके बाद त्रिवांकुर राज्यसे प्रस्थान किया। राजा रुद्रपति प्रभुके साथ बहुत दूर तक आये।

मध्वाचार्य आश्रममें

इसके बाद प्रभु मत्स्य तीर्थमें आये। वहाँसे नाग पञ्चनदी, चितोल आदि तीर्थोंका दर्शन करते हुए तुङ्गभद्रा नदीमें जाकर स्नान किया। तत्पश्चात् प्रभु मध्वाचार्यके आश्रममें जा पहुँचे। उस आश्रममें बहुतेरे द्वैतवादी संन्यासी रहते थे। उनको तत्त्ववादी कहते थे। वे लोग अद्वैतवादी संन्यासियोंका मुँह देखकर सचैल स्नान करते थे। उस तीर्थाश्रममें उडूप कृष्ण और गोपाल कृष्णकी मूर्त्ति है।

श्रीमाध्वाचार्य मुनिने स्वप्नादेश में यह कृष्णमूर्त्ति प्राप्त की थी ।*

किंवदन्ती है कि द्वारकासे एक वणिक नौकाके द्वारा गोपीचन्दन ला रहा था। अचानक उसकी नौका जलमग्न हो गयी। पश्चात् श्रीमध्वाचार्यने स्वप्ना देश प्राप्त करके उस जलमग्न नौकाको बाहर निकालकर गोपीचन्दनके भीतरसे परम सुन्दर श्रीकृष्णमूर्त्ति प्राप्त की। तत्त्ववादी लोग उसी श्रीकृष्णमूर्त्तिकी सेवा करते हैं।

मध्वाचार्य-स्थाने आइला जाँहा तत्त्ववादी ।
उडुप-कृष्ण देखि ताहाँ हैला प्रेमोन्मादी ।।
नर्त्तक गोपाल कृष्ण परम मोहने ।
मध्वाचार्ये स्वप्न दिया आइला ताँर स्थाने ।।
गोपीचन्दन भितर आछिल डिङ्गाते ।
मध्वाचार्य सेइ कृष्ण पाइला कोन मते ।।
मध्वाचार्य आनि ताँरे करिल स्थापन ।
अद्यापि ताँर सेवा करे तत्त्ववादीगण ।।

चै. च. म. ९.२२८-२३१

प्रभु उस अपरूप कृष्णमूर्त्तिका दर्शन करके प्रेमानन्दमें बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। सेवक तत्त्ववादी लोगोने पहले प्रभुको मायावादी संन्यासी समझकर अच्छी तरह बातचीत नहीं किया। उनके अपूर्व प्रेमभक्तिभावको देखकर उनको बहुत सम्मान पूर्वक वहाँ रखा। उन तत्त्ववादियोंके हृदयके गर्वको देखकर सर्वज्ञ प्रभुने उनके आचार्यगुरुके साथ सत्सङ्ग किया। अति दीन भावसे प्रभुनें उनके आचार्य गुरुसे पूछा—

साध्य साधन आमि ना जानि भाल मते ।
साध्य साधन श्रेष्ठ जानाह आमाते ।।

चै. च. म. ९.२३७

तत्त्ववादी आचार्यगुरु शास्त्रतत्त्वप्रवीण और बुद्धिमान् थे। उन्होंने प्रभुको समझाया—

—"वर्णाश्रमधर्म कृष्णे समर्पण ।
एइ हय कृष्णभक्तेर श्रेष्ठ साधन ।।
पञ्चविध मुक्ति पाञा वैकुण्ठे गमन ।
साध्यश्रेष्ठ हय एइ शास्त्र-निरूपण ।।

चै. च. म. ९. २३८, २३९

---

* श्रीमध्वाचार्य। दाक्षिणात्यमें सह्याद्रिके पश्चिममें कनारा है। दक्षिण कनारा जिलेका प्रधान नगर मङ्गलोर है। उसके उत्तरमें उडुपी है। इस उडुपी ग्रामके पञ्जिका क्षेत्रमें शिवाल्ली त्रिप्रकुलमें मध्यगेह भट्टकी पत्नी वेदविद्याके गर्भसे १०४० शकाब्दमें, मतान्तरसे ११६० शकाब्दमें श्रीमध्वाचार्य मुनिने जन्म ग्रहण किया। बाल्यकालमें मध्वाचार्य वासुदेव नामसे प्रसिद्ध थे। उनके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी अलौकिक बाललीला कहानियाँ प्रचलित हैं। पाँचवें वर्षमें उनका उपनयन संस्कार हुआ। महाभारतमें कथित मणिमान नामक असुर सर्पाकार प्राप्त करके नेयास्पल्ली ग्राममें वास करता था। उपनयनके बाद वासुदेवने पदांगुष्ठके द्वारा उस सर्पका संहार किया। पिताकी अनुमति न होने पर भी उन्होंने अच्युत प्रेक्षके निकट बारह वर्षकी अवस्थामें संन्यास ग्रहण किया। उनका संन्यासका नाम था पूर्णप्रज्ञतीर्थ। उन्होंने संन्यास ग्रहण करके दक्षिणके अनेक तीर्थोंमें भ्रमण किया। तत्कालीन शृङ्गेरी मठके अधिपति विद्याशङ्कराचार्यके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। उस शास्त्रार्थमें श्रीमाध्वाचार्य विजयी हुए। उसके बाद उन्होंने सत्यतीर्थ नामक एक यतिराजके साथ बदरिकाश्रम प्रस्थान किया। वहाँ श्रीव्यासजीके पास थोड़े ही समयमें नाना विषयोंकी शिक्षा प्राप्त की। बदरिकाश्रमसे आनन्दमठमें लौटते समय श्रीमध्वाचार्यकी सूत्र भाष्य-रचना समाप्त हुई। यतिराज सत्यतीर्थ उसको लिखते रहे। उसके बाद उन्होंने वहाँसे गोदावरी प्रदेशमें गंजामके लिए प्रस्थान किया। वहाँ उनके साथ शोभन भट्ट ओर स्वामी शास्त्री नामक दो पण्डितोंकी भेंट हुई। वे ही दोनों श्रीमध्वसम्प्रदायकी परम्परामें पद्मनाभ तीर्थ और नरहरि तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुए। अस्सी वर्षकी अवस्थामें माघी शुक्ला नवमी तिथिको ऐतरेय उपनिषद् भाष्यकी व्याख्या करते-करते उन्होंने इहलीला समाप्त की।

चतुर चूड़ामणि प्रभुने सुयोग पाकर आचार्यगुरुको प्रकृत साध्य-साधन तत्त्वका उपदेश दिया। यथा—

प्रभु कहे—"शास्त्रे कहे 'श्रवण कीर्तन।
कृष्णप्रेम सेवा फलेर परम साधन'॥
श्रवण कीर्तन हैते कृष्णे हय प्रेमा।
सेइ परम पुरुषार्थ—पुरुषार्थ सीमा।
कर्म त्याग कर्म निन्दा—सर्व शास्त्रे कहे।
कर्म हैते कृष्णप्रेम-भक्ति कभू नहे॥
पञ्चविध मुक्ति त्याग करे भक्तगण।
फलगु करि मुक्ति देखे नरकेर सम॥
कर्म मुक्ति दुइ वस्तु त्यजे भक्तगण।
संन्यासी देखिया आमा करह बञ्चन॥
एइ त वैष्णवेर नहे साध्य साधन॥
सेइ दुइ स्थापि तुमि साध्य साधन।

चै. च. म. ९. २४०-२४५

प्रभु श्रीमद्भागवत, गीता, पुराण आदि शास्त्र-ग्रन्थोंसे अपने इस मतकी पुष्टिके लिए बहुतसे श्लोकोंकी आवृत्ति करके उनकी व्याख्या की। यथा—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म--निवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।

श्रीम. भा. ७.५.२३,२४

प्रह्लाद हिरण्यकशिपुसे कहते हैं—श्रीविष्णुकी श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये नवविधाभक्ति भगवान् विष्णुमें साक्षात् अर्पित होकर किसी भी व्यक्तिके द्वारा अनुष्ठित हों, उसको मैं उत्तम अध्ययन मानता हूँ।

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

श्रीमः भा. ११.२.४०

इस प्रकार नियमानुष्ठानकारी व्यक्ति अपना प्रिय हरिनाम कीर्तन करते-करते प्रेमोदयके कारण द्रवीभूत चित्तसे विवश होकर उन्मादीकी तरह उच्च स्वरसे कभी हँसते हैं, कभी रुदन करते हैं, कभी गान करते हैं और कभी नृत्य करते हैं।

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः॥

श्रीम. भा. ११.११.३२

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं। वेदादि धर्मशास्त्रोंमें मेरे द्वारा जो आदिष्ट हुआ है, उनके दोष-गुणको सम्यक् रूपसे जानकर उन सब नित्य-नैमित्तिक अपने वर्णाश्रम धर्मादि परित्यागपूर्वक जो व्यक्ति मेरा भजन करता है, वह व्यक्ति भी पूर्वोक्त 'कृपालुरकृतद्रोहादि' व्यक्तिकी तरह श्रेष्ठ है।

सर्व धर्मान् परित्यज मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गीता १८.६६

श्लोकार्थ—श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—सब धर्मोंका परित्याग करके एकमात्र मेरी शरण ग्रहण कर, मैं तुमको सब पापोंसे मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

श्रीम. भा. ११.२०.९

श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—जब तक निर्वेद अवस्था न जन्मे अथवा जब तक मेरी कथा श्रवणादिमें श्रद्धा न हो जाय तब तक नित्य-नैमित्तिक कर्म करना चाहिये।

सालोक्य—सार्ष्टि—सामीप्य—सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥

श्रीम. भा. ३.२९.१३

कपिलदेवजी अपनी माँसे कहते हैं—मेरे भक्तगण मेरी सेवाके बिना सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य

एवं सायुज्य—ये पाँच प्रकारकी मुक्ति प्रदान करने पर भी ग्रहण नहीं करते ।

तो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥

श्रीम. भा. ५.१४.४४

जिन महाराज भरतने दुस्त्यज्य पृथिवीका राज्य, पुत्र, आत्मीय स्वजन, अर्थ और स्त्री—इन सबको एवं सुरश्रेष्ठ द्वारा प्रार्थनीया सदम दृष्टियुक्ता लक्ष्मीकी भी इच्छा नहीं की, वह उचित ही था, क्योंकि मधुरिपु-श्रीकृष्ण-सेवामें अनुरक्त चित्र महापुरुषोंके लिए मोक्ष भी तुच्छ है ।

नारायण पराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति ।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थ दर्शिनः ॥

श्रीम. भा. ६.१७.२८

श्रीनारायण-परायण सब भक्त किसीसे भी भयभीत नहीं होते, क्योंकि वे स्वर्ग, मुक्ति और नरक—सबको समान मानते हैं।

तत्त्ववादी आचार्यगुरु प्रभुकी अपूर्व वैष्णवता को देखकर आश्चर्यचकित हो गये । वैष्णवशास्त्रमें उनके गम्भीर ज्ञानको देखकर लज्जित हो गये । प्रभुने फिर कहा—

—"कर्मी, ज्ञानी, दुइ भक्ति-हीन ।
तोमार सम्प्रदाय देखि सेइ दुइ चिन्ह ॥
सबे एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाय ।
सत्य विग्रह करि ईश्वरे करह निश्चय ॥"

चै. च. म. ९.२४९.२५०

तत्त्ववादी आचार्यगुरुने तबसे प्रभुके मतका अवलम्बन कर लिया । दर्पहारी श्रीगौर भगवान इस प्रकार तत्त्ववादी लोगोंके गर्वको चूर-चूर करके वहाँसे फल्गु तीर्थमें उपस्थित हुए । पश्चात् चित्रकूप और विशालके दर्शन करके पञ्चाप्सरा* तीर्थमें आये । वहाँ गोकर्ण शिवलिङ्ग है । प्रभु उनका दर्शन करके आर्या द्वैपायनी होकर सुर्पारक तीर्थमें आये । उसके बाद कोल्हापुर जाकर लक्ष्मीदेवी, क्षीर भगवती, लाङ्गा गणेश, चोरा भगवती आदि अनेक देव-देवियोंकी मूर्त्तिका दर्शन किया ।

पंढरपुरमें

तत्पश्चात् प्रभु पूना नगरके पास पाण्डुपुर (पंढरपुर) तीर्थमें जा पहुँचे । वहाँ विट्ठलजीका श्रीमन्दिर है । प्रभुने मन्दिरमें श्रीविग्रहका दर्शन करके बहुत देरतक प्रेमावेशमें नृत्य-कीर्तन किया । एक भाग्यवान् विप्रने उनको निमन्त्रित करके अपने घर ले जाकर भिक्षा कराया ।

वहाँ प्रभुने सुना कि श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईंके शिष्य श्रीरङ्गपुरी अन्य एक ब्राह्मणके घर ठहरे हुए हैं । यह शुभ समाचार सुनकर प्रभुका मन प्रेमानन्दमें नाच उठा । उन्होंने तत्काल उस विप्रके घर जाकर श्रीपाद रङ्गपुरी गोसाईंके साथ साक्षात्कार किया । प्रेमावेशमें आनन्द विह्वल होकर प्रभुने उनको अनेक दण्ड-प्रणाम किये ।

पुरी गोसाईं प्रभुकी अपरूप रूपराशिको देखकर, तथा उनके श्रीअङ्गमें प्रेमचिह्न, अपूर्व पुलकावली, नयनोंमें पुलकाश्रुधारा देखकर विस्मित होकर बोले—"श्रीपाद ! उठिये । निश्चय ही आप हमारे श्रीगुरु गोसाईंजीसे सम्बन्धित हैं । उनकी कृपाके बिना ऐसा प्रेमभाव अन्यत्र सम्भव नहीं

* पञ्चाप्सरा तीर्थ—शातकर्णी मन्वन्तरमें अच्युत ऋषिकी तपस्या भङ्ग करनेके उद्देश्यसे इन्द्रके द्वारा प्रेषित लता, बुद्बुदा, समीची, सौरभेयी और वर्णी नामकी पाँच अप्सराएँ अभिशप्त होकर मगर-मच्छीके रूपमें सरोवरमें वास करने लगी । श्रीरामचन्द्रजीने उस सरोवर को देखा था । नारदके वचनसे ज्ञात होता है कि अर्जुनने तीर्थयात्रा करते समय पाँचों अप्सराओंको मगर-मछली योनिसे मुक्त कर दिया । इस कारण वह सरोवर तभीसे तीर्थरूपमें परिणत हो गया ।

है।" इतना कहकर उन्होंने प्रभुका हाथ पकड़कर, उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिंगन प्रदान किया। दोनों आदमी गले-गले मिलकर प्रेममें भरकर बहुत देर तक क्रन्दन करते रहे। दोनोंके प्रेमाश्रु-नीरसे दोनोंके अङ्ग भीग गये।

प्रभुने तब धैर्य धारण करके श्रीपाद रङ्गपुरी गोसाईंसे श्रीपाद ईश्वरपुरी गोसाईंके अपने सम्बन्धको बतलाया। पुरी गोसाईं तथा प्रभुने पाँच-सात दिन एक साथ रात-दिन कृष्ण-कथा रङ्गमें व्यतीत किये।

संन्यासियोंसे पूर्वाश्रमकी बात नहीं पूछी जाती है। परन्तु श्रीरङ्ग गोसाईंने कौतुकवश एक दिन प्रभुसे उनके जन्म-स्थानकी बात पूछी। प्रभुने भी हँसते-हँसते श्रीधाम नवद्वीपका नाम लिया। नवद्वीपका नाम लेते ही पुरी गोसाईंको नवद्वीपकी याद आ गयी। क्योंकि वे श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीके साथ पहले एकवार नवद्वीषमें गये थे। उन्होंने प्रसंगवश प्रभुको यह बात बतलायी। और कहा—

जगन्नाथ मिश्र घरे भिक्षा जे करिल।
अपूर्व मोचार घण्ट ताँहा जे खाइल॥
जगन्नाथेर ब्राह्मणी महा-पतिव्रता।
वात्सल्ये हय तेहँ जेन जगन्माता॥
रन्धने निपुणा नाहि ता सम त्रिभुवने।
पुत्र-सम स्नेह कराय संन्यासी भोजने॥
ताँर एक पुत्र योग्य करिया संन्यास।
शंकरारण्य नाम ताँर अल्प वयस॥
एइ तीर्थे शंकरारण्येर सिद्धि प्राप्ति हैल।
प्रस्तावे श्रीरङ्गपुरी एतेक कहिल॥

चै. च. म. ९. २६८-२७२

सर्वज्ञ प्रभुने चुपचाप सब सुन लिया। कुछ देर तक वे निस्तब्ध भावसे कुछ सोचते रहे। पश्चात् छल्छल् प्रेमाश्रुनयनसे पुरी गोसाईंसे बोले—

—पूर्वाश्रमे तेंहो मोर भ्राता।
जगन्नाथ मिश्र मोर पूर्वाश्रमेर पिता॥

चै. च. म. ९. २७३

प्रभुके मनमें पूर्वस्मृति जाग उठी। भ्रातृशोक जाग उठा। अतएव ये कुछ बातें कहते-कहते उनके नयन-जलसे वक्षःस्थल प्रवाहित हो उठा। स्नेहमयी माताकी बात याद आयी। गृहस्थाश्रमका स्मरण हुआ, और मनमें आयी उस नवद्वीपमयी नवबाला विरहिणी श्रीविष्णुप्रियाकी बात। वह सारी मनोव्यथा प्रभु मनमें ही दबाकर पुरी गोसाईंके साथ दूसरी बातें करने लगे।

श्रीपाद रङ्गपुरी गोसाईं जब नवद्वीपमें गये थे, तब प्रभु नितान्त बालक थे। उनकी बात पुरी महाशयको याद न थी। वे प्रभुके अङ्ग-प्रत्यङ्गको विस्मय पूर्वक देखने लगे। प्रभुका परिचय पाकर वे परम आनन्दित हुए। प्रभुको उन्होंने उनके पूज्यपाद अग्रजकी सिद्धि प्राप्तिका स्थान दिखलाया। प्रभुने प्रेमावेशमें वहाँ जो अद्भुत प्रेमनृत्य किया, तथा अपूर्व हरि-संकीर्तन किया, उसे देखकर पंढरपुरके सभी तीर्थवासी विस्मित हो उठे। कृपासिन्धु प्रभुका प्रेमसमुद्र वहाँ एकबारगी उमड़ आया। उन्होंने प्रेम-क्रन्दनमें उस देशको निमज्जित कर दिया। भवरोगकी परम औषधि हरिनामामृत दान करके प्रभुने उस देशके सब निवासियोंका उद्धार कर दिया। वहाँसे श्रीरङ्गपुरी गोसाईंने द्वारकाकी यात्राकी।

जिस भाग्यवान् ब्राह्मणके घर श्रीरङ्गपुरी और श्रीगौराङ्ग प्रभुका मिलन हुआ था, उस ब्राह्मणने अपने घर प्रभुको चार दिन और रखा। प्रभु वहाँ जितने दिन रहे, नित्य भीमा नदीमें स्नान करके श्रीविट्ठल भगवान्का दर्शन करने जाते थे।

श्रीकृष्णकर्णामृत

इसके बाद प्रभु कृष्णबेन्वा* नदीके तीर नाना तीर्थोंका दर्शनकरके एक गाँवमें जाकर उपस्थित हुए। वहाँ बहुतसे ब्राह्मण रहते थे, सभी वैष्णव थे।

* कृष्णबेन्वा—महाबलेश्वर सह्याद्रि गिरिसे कृष्णाकी दो धाराएँ निकलती हैं। इसी कृष्णबेन्वा नदीके तीर बिल्वमङ्गल महाराजका घर था।

वहाँ अनेक देव-मन्दिर थे। प्रभु एक मन्दिरमें जाकर बैठे। वहाँ कृष्णकर्णामृत श्रीग्रन्थका पाठ होता था। प्रभु प्रेमाविष्ट होकर पाठ सुनते थे। श्रीकृष्णकर्णामृत श्रीकृष्णलीला विषयक रसात्मक श्रीग्रन्थ है। प्रभु पाठ सुनकर कृष्ण-प्रेममें विभोर हो गये। उनके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने अतिशय आग्रहपूर्वक वहाँ रहकर उस ग्रन्थको नकल करा लिया। प्रभुके साथी विप्र कृष्णदासको इस पुस्तक और ब्रह्मसंहिताको नकल करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कविराज गोस्वामीने कृष्णकर्णामृत श्रीग्रन्थके सम्बन्धमें लिखा है—

कर्णामृत सम वस्तु नाहि त्रिभुवने।
जाहा हइते हय शुद्ध-कृष्ण प्रेम-ज्ञाने॥
सौन्दर्य माधुर्य कृष्ण लीलार अवधि।
से जाने जे कर्णामृत पड़े निरवधि।

चै. च. म. ९. २७९, २८०

प्रभुने ब्रह्मसंहिता और कृष्णकर्णामृत श्रीग्रन्थद्वयको पाकर अत्यन्त आनन्दित चित्तसे अपने पास रख लिया।

आगेकी यात्रा और तालवृक्षोंका उद्धार

प्रभु पुनः प्रेमानन्दमें रास्ते पर चले, प्रेमावेशमें उनको बाह्यज्ञान न रहा। ताप्ती नदीमें स्नान करके वे माहिष्मतीपुर आये।* पश्चात् नर्मदा नदीके तीर होते हुए नाना तीर्थोंमें स्नान करके वे धनुतीर्थमें जा पहुँचे। वहाँसे चण्डपुर नगरमें जाकर ईश्वर भारती नामक एक ज्ञानमार्गी संन्यासीपर कृपा करके उसे प्रेम-दान करके उसका नाम 'कृष्णदास' रखा।

प्रभु बोले कृष्णे तुमि करह विश्वास।
आजि हैते नाम तव हैल कृष्णदास॥

गोविन्ददास कड़चा

इसके बाद प्रभु दो दिन दुर्गम वनके मार्गसे चले। पश्चात् एक छोटेसे गाँवमें अतिथि सेवा परायण एक गृहस्थ ब्राह्मण-ब्राह्मणीके घर जाकर उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। वह विप्र परिवार अत्यन्त दरिद्र था। प्रभुको बैठनेका आसन न दे सकनेके कारण दुःखित होकर ब्राह्मणीने ब्राह्मणसे कहा—"तुम अपना सिर बिछा दो। देखते नहीं हो, इस अतिथिके अङ्गमें विद्युत् खेल रही है। ये साक्षात् नारायण हैं। इनके चरणोंमें तुलसीदल चढ़ाकर पूजा करो। उस परम सौभाग्यवान् ब्राह्मणके घरमें प्रभुने प्रेमावेशमें—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इस हरिनाम महामन्त्रका सारी रात कीर्तन किया। उस गाँवके सब लोग प्रभुके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम सुनकर प्रेमानन्दमें उन्मत्त हो गये। प्रातःकाल वहाँसे यात्रा करके प्रभुने ऋष्यमूक पर्वत होते हुए दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। उस स्थानमें प्रभुने एक ऐश्वर्य लीलारङ्ग दिखलाया। शापग्रस्त सात गन्धर्व इस स्थानमें तालवृक्षके रूपमें अवस्थित थे। उनको दण्डकारण्यवासी सप्तताल कहा करते थे। प्रभुने उनको आलिङ्गन प्रदानकर शापमुक्त करके वैकुण्ठ भेज दिया। वह स्थान शून्य हो गया। सब लोग अपनी आँखोंसे इसे देखकर प्रभुको साक्षात् रामावतार मानकर उनके चरणोंमें जा गिरे।

प्रभु अब नीलगिरि प्रदेशमें तीर्थ भ्रमण कर रहे हैं। वह नीलगिरिके पास कान्तारी नामक एक गाँवमें जाकर बहुतसे संन्यासियोंको कृष्णप्रेममें उन्मत्त करके गुर्जरी नगरमें जा पहुँचे। वहाँ अगस्त्य कुण्ड है। प्रभुने उसमें स्नान किया। कुण्डके किनारे बैठकर प्रभुने मधुर हरिनाम कीर्तनके तरङ्गमें सारे नगरको निमज्जित कर दिया।

गुर्जरी नगर बहुत समृद्धिशाली था। वहाँ बहुत लोग प्रभुका दर्शन करने आये। उस स्थानमें प्रेममय प्रभुने प्रेमानन्दमें मत्त होकर कृष्ण प्रेमका स्रोत बहा दिया। सब लोक हरिनामामृत-पानसे मत्त होकर प्रभुके साथ आनन्दसे नृत्यकीर्तन करने

* कार्त्तवीर्यार्जुनका स्थान। "ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ।" महाभारत।

लगे। वहाँ अर्जुन नामक एक महातत्त्ववादी ज्ञान-मार्गी पण्डित थे। उनको प्रभुने शास्त्रार्थमें परास्त करके कृपा की।

गोविन्ददासने लिखा है—

उपदेशे एइ देश माताइला प्रभु।
एमन प्रभाव मुजि देखि नाइ कभु॥
कखन तामिल बुलि बले गोरा राय।
कभू वा संस्कृत बलि श्रोतारे माताय॥

प्रभुकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे उस प्रदेशके सब लोग वैष्णव होगये। प्रभु गुर्जरी नगरसे बीजापुर पार्वत्य प्रदेश होते हुए सह्याद्रि और महेन्द्र मलय तीर्थका दर्शन करते हुए पूर्णनगरमें जा पहुँचे। वहाँ बहुतेरे पण्डितोंका निवास था। बहुतसे संस्कृतके विद्यालय थे। प्रभु कृष्णविरहमें जर्जरित होगये। तच्छर नामक एक सरोवरके किनारे बैठकर प्रभु कृष्णविरहमें रोते हुए कह रहे थे—

—प्राण मोर मुकुन्द मुरारि।
आसिये उदय हओ हृदये आमारि॥
राधाकृष्ण सर्वशक्तिमय विश्वाधार।
कृष्ण बिना ए विश्वेर केवा लय भार॥
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड जाँर लोम कूपे।
सेइ प्राणकृष्णे मुजि हेखि किरूपे॥
माटि खेये मातृ कोले मुख विस्तारिल।
अमनि जननि मुखे ब्रह्माण्ड देखिल॥
सेइ कृष्ण लागि मोर व्याकुल अन्तर।
कृष्ण बिना प्राण मोर हयेछे कातर॥

गो० कड़चा

एक पाखण्डी पण्डितने प्रभुसे परिहास करते हुए कहा, "तुम्हारे कृष्ण इस जलाशयके भीतर हैं।" प्रभु तत्काल श्रीकृष्णकी खोजमें उस सामनेके जलाशयमें कूदकर जलमग्न होगये। गाँवके लोगोंने बहुत कष्ट उठाकर उनको जलसे बाहर किया। प्रभुका प्राण बच गया। सब लोग उस पण्डितकी निन्दा करने लगे।

वहाँसे प्रभु भोलेश्वर तीर्थमें गये। पाटस गाँवके समीप गोरघाट पर महादेव भोलेश्वर महापीठ है। वहाँ एक सिद्ध कूप है। प्रभुने उस कूपसे जल निकालकर स्नान किया। उसके बाद भोलेश्वर शिवलिङ्गका दर्शन करके प्रेमानन्दमें बहुत स्तुति-विनती करते रहे। उसके समीप ही देवलेश्वर हैं। उच्च पर्वतके ऊपर वह विराजमान हैं। प्रभुने प्रेममें भरकर पर्वतपर चढ़कर देवलेश्वर शिवलिङ्गका दर्शन किया।

देवदासियों का उद्धार

उसके कुछ ही दूरपर जिजूरीनगर सुशोभित हो रहा था। वहाँ खाण्डवादेवका स्थान है। वहाँका देशाचार यह है कि जिस कन्याका विवाह नहीं होता, उसका विवाह उसके माता-पिता खाण्डवादेव के साथ करके उसे देवदासी बना देते हैं। उन देवदासियोंको उस देशमें 'मुरारि' कहते हैं। उन देवदासियोंमें बहुत सी दुश्चरित्र और व्यभिचारिणी होती हैं। इच्छामय पतितपावन प्रभुको वहाँ यह बात सुनकर उन अभागिनी नारियोंके प्रति कृपा दृष्टि करनेकी इच्छा हुई। स्वयं खाण्डवादेवके मन्दिरमें जाकर उन अभागिनी स्त्रियोंको उन्होंने दर्शन प्रदान किया। उनको हरिनाम लेनेका उपदेश दिया। प्रभु उन स्त्रियोंको सम्बोधन करके बोले—

बड़इ दयाल हरि अगतिर गति।
ताँहाके भावह सबे निज निज पति॥
कृष्णके पाइते पति जत गोपीगण।
कात्यायनी व्रत करे हये शुद्ध मन॥
कृष्ण पति हैले ना रवे भवभय।
कृष्ण सकलेर पति जानिह निश्चय॥
कृष्ण कृष्ण बलि सदा डाक भक्तिभरे।
सर्वदा बोलह मुखे हरे कृष्ण हरे॥

गो० कड़चा

इतना कहकर प्रेममय प्रभुने वहाँ प्रेमानन्दमें मधुर हरिनाम संकीर्तन प्रारम्भ कर दिया। उनके सारे अङ्ग पुलकित होगये। प्रेमावेशमें उन्होंने

खाण्डवादेवके सामने उसदिन जो हरिनाम संकीर्तनका तरङ्ग उठाया, उसे सुनकर उन सब पतिता नारियोंके पाप धुल गये, उनका मन निर्मल हो गया। सबने हरिनाम महामन्त्र ग्रहण किया। उनमें प्रधान देवदासी इन्दिराने प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते हुए कातर वचनसे इस प्रकार आत्म-निवेदन किया—

"वृद्धा हइयाछि मुञि कुकर्म करिया।
उद्धार करह मोरे पदधूलि दिया।"
एत बलि इन्दिरा धुलाय लुटि जाय।
नाम दिया प्रभु उद्धारिल इन्दिराय॥

गो० कड़्चा

प्रभुके द्वारा हरिनाम महामन्त्र प्राप्त करके इन्दिरा उसी दिनसे भिखारिणीके वेशमें मन्दिरसे बाहर होगयी। महावैष्णवी होकर दिन-रात हरि-नाम जपमें बिताने लगी। अनेक देवदासियोंने इस भाग्यवती इन्दिराके भजन-पथका अनुसरण किया।

नौरोजी डाकूका उद्धार

पतितपावन प्रभुने इस प्रकार पतितोद्धार करके वहाँसे चोरानन्दी वनमें प्रवेश किया। उस वनमें बहुतसे दस्यु रहा करते थे। सब लोगोंने प्रभुको वहाँ जानेसे मना किया। परन्तु स्वतन्त्र ईश्वर प्रभुने उनकी बात न मानी। उस वनमें नौरोजि नामका एक बड़ा बलवान् दुराचारी दस्यु रहता था। उसके दलमें बहुतसे दुष्ट लोग थे। प्रभु उस वनमें जाकर एक वृक्षके नीचे बैठकर प्रेमानन्दमें कृष्णनाम कीर्तन करने लगे।

दस्युपति नौरोजीने दलबलके साथ उनके पास जाकर उनको निमन्त्रण दिया। प्रभुने कहा—"आज रात इसी वृक्षके नीचे बिताऊँगा।" तब दस्युपतिके आदेशसे उसके आदमियोंने प्रभुकी भिक्षाके लिए प्रचुर परिमाणमें नाना प्रकारकी भोजन सामग्री लाकर प्रभुके सामने रक्खी। ये सब प्रभुको घेरकर खड़े होगये। तब प्रभुने प्रेमानन्दमें मधुर हरि-संकीर्तन प्रारम्भ किया। उनके उद्दण्ड नृत्यसे भिक्षाकी सारी सामग्री चतुर्दिक बिखर गयी। प्रभुको बाह्यज्ञान न रहा।

दस्युपति नौरोजी प्रभुके श्रीमुखसे मधुर हरिनामामृत पान करके अत्यन्त तृप्त होगया। उसका कठिन हृदय हरिनाम गानसे द्रवीभूत हो उठा। नौरोजी वृद्ध होगया था, उसकी अवस्था साठ वर्षकी थी। ब्राह्मण वंशमें जन्म लेकर वह दस्युपति आजन्म पापाचारमें रत रहा। प्रभुकी कृपासे क्षणमात्रमें उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह मन ही मन कहने लगा—

कत पाप करियाछि के पारे बलिते।
आजि केन इच्छा हय कौपीन परिते॥

गो० कड़्चा

कुछ देरके बाद नौरोजीने मनकी बात प्रकट करके प्रभुके चरणोंमें रोते हुए निवेदन किया—

कान्दिया नौरोजि बले शुनह संन्यासी।
कि मन्त्र पड़िले तुमि बलह प्रकाशि॥
देखिया तोमार भाव हय मोर मने।
आर ना करिब पाप थाकि एइ वने॥
साठि वर्ष वयः क्रम हैयाछे आमार।
पाप कार्य ना करिब छाड़िब संसार॥
अति दुराचार आमि ब्राह्मण तनय।
मोरे पदधूलि दिते ना कर संशय॥

गो० कड़्चा

इतना कहकर दस्युपति नौरोजीने अस्त्र-शस्त्र दूर फेंककर अपने सारे अनुयायिओंकी ओर एकबार करुण और छल्-छल् नेत्रोंसे देखकर सदाके लिए विदा माँगी। दयानिधि प्रभुने उसको कृपा करके वैराग्यकी शिक्षा दी।

नौरोजी कौपीन पहनकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर बोला, "प्रभो! मैं तुम्हारे साथ चलकर तुम्हें सब तीर्थ दिखलाऊँगा। कृपा करके इस अभागेको साथ ले लो।" प्रभुने उसको हरिनाम महामन्त्र प्रदानकर साथ ले लिया। अब तक प्रभुने

किसीको अपने साथ नहीं लिया था। इस कर्म द्वारा उन्होंने दस्युपति नौरोजीके ऊपर विशेष कृपा प्रदर्शित की। पतित-अधमके प्रति पतित पावन, अधम-उधारण श्रीगौराङ्ग प्रभुकी बड़ी कृपा रहती है।

वृद्ध नौरोजी प्रभुके साथ-साथ गये। उनका दल छिन्न-भिन्न होगया। दलके बहुतसे लोग सत्पथके पथिक होगये। प्रभु चोरानन्दी वनसे मूला नदीके तीर खण्डला तीर्थमें गये। संन्यासी नौरोजी प्रभुकी सेवामें लग गये। गोविन्ददासने उनको नौरोजी ठाकुर कहकर सम्मान किया है। वे लिखते हैं—

"नौरोजि ठाकुर मोर पिछे पिछे जाय।"

खण्डलाके निवासी अतिशय अतिथि-सत्कार-परायण थे। प्रभुको भिक्षा करानेके लिए सैकड़ों आदमी धक्कमपेल करते रहते थे। कोई कहता, "मैंने संन्यासीजीको पहले देखा है, मैं पहले भिक्षा दूंगा।" कोई कहता, "मैं उत्तम भिक्षाकी वस्तु लाया हूँ, मैं पहले भिक्षा दूंगा।" इस प्रकार व्याकुल होकर सब लोग विवाद करते थे। प्रभु यह देखकर प्रेमानन्दमें हँसने लगे, तथा सबको मीठी बातें कहकर संतुष्ट कर दिया। इस कारण यहाँ भक्तवत्सल प्रभु कई दिन रह गये।

वहाँसे वे नासिक नगरमें गये। पञ्चवटी वनमें वृक्षके नीचे बैठकर प्रभु हरिनाम गानमें मत्त हो गये। सारी रात प्रभु कीर्तनानन्दमें मग्न रहे। नौरोजि ठाकुर प्रभुके श्रीअङ्गकी स्वेद-वारि पोंछ देते थे, और उनके पास बैठकर उनकी पदसेवा करते थे।

हरिनाम करि रात्रि बसिया काटाय।
काछे वसि स्वेद वारि नौरोजि मुछाय॥

गो० कड़चा

धन्य हो नौरोजि महाराज! तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार! तुम्हारे समान भाग्यवान् तीनों लोकमें कोई नहीं है। तुमने प्रभुकी चरण-सेवा प्राप्तकी है। गौर वक्षविलासिनी श्रीविष्णुप्रियादेवीको प्रभु अपनी चरण-सेवासे वञ्चित करके भिखारीके वेशमें देश-देश कलिग्रस्त जीवकी मङ्गल-कामनासे भ्रमण कर रहे हैं। उन प्रभुके तुम विशेष कृपा-पात्र हो। तभी उन्होंने कृपा करके तुम्हें पदसेवाका अधिकार दिया है। तुम्हारे भाग्यकी कामना शिव-विरंचि करते हैं। तुम्हारे चरण-रजको प्राप्त कर जीवाधम ग्रन्थकार अपनेको कृतार्थ समझेगा। नौरोजी ठाकुर! तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, इसमें कृपणता न करना। तुम्हारे चरणोंमें सिर रगड़ता हूँ, चरण-रज देकर कृतार्थ करो।

पशु-बलि रोकना

पञ्चवटी वन छोड़कर प्रभु दमन नगरमें आये। वहाँसे उत्तर दिशाकी ओर एक पखवारे तक नाना स्थानोंमें भ्रमण करते हुए वे सुराट् नगरमें जा उपस्थित हुए। वहाँ प्रभु तीन दिन ठहरे। उस स्थानमें अष्टभुजा भगवतीका मन्दिर है। वहाँ पशु-बलिदान होता है। प्रभु देवीके मन्दिरमें बैठ गये। उसी समय एक ब्राह्मण पूजाकी सामग्री लेकर एक बकरेकी बलि चढ़ाने आया। प्रभुने उस विप्रको उपलक्ष्य करके देवालयमें पशु-बलिके सम्बन्धमें जो उपदेश दिया था, वह यहाँ गोविन्दके करचासे उद्धत किया जाता है—

प्रभु गले बलि दाओ भक्षणेर तरे।
नाहि जान कोथाय हइबे गति परे॥
पवित्र मूरति देवी शास्त्रेर वचन।
केमने करेन तिनि अभक्ष्य भक्षण॥
लक्ष बलि दियाछिल सुरथ भूपति।
प्रेतपुरे लक्ष आसि पड़े तार प्रति॥
आलोचना नहि कर शास्त्रेर वचन।
पशुहिंसा करि कर धर्म आचरण॥
मांसाशी राक्षसगण खाइवार तरे।
व्यवस्था दियाछे पशुहिंसा करिवारे॥
'अहिंसा परम धर्म' सर्वशास्त्रे कय।
जीवे दया कर हबे आनन्द उदय॥

आँटि साँटि करि माया करेछे बन्धन।
बिना अस्त्रे किरूपेते करिबे छेदन॥
तामस आहारे रति ताइ मेष छाग।
काटिते देवीर काछे कर अनुराग॥
पशुहिंसा करिया पाइबे परित्राण।
सेइ लागि आसियाछ करिते बलिदान॥
आत्मारे बाहिर कर शरीर हैते।
मृत देह मध्ये आत्मा पार कि पूरिते॥
देवीर सम्मुखे यदि केह भक्तिभरे।
नरबलि रूपे तब शिरश्छेद करे॥
केमन तोमार चित्त करे बल भाइ।
पशु छाड़ि देह मुजि चक्षे देखे जाइ॥
अष्टभुजा भगवती मद्य मांस खाबे।
एकथा शुनिले साधु हासिया उड़ाबे॥
सनातन धर्मे देह निज निज मन।
शास्त्र अनुसारे छाड़ मन्द आचरण॥
परमा वैष्णवी देवी मांस नाहि खाय।
तबे केन बलिदाने भुलाओ ताँहाय॥
करिले जीवेर हिंसा यदि धर्म हय।
तबे केन दस्युगणे साधु नाहि कय॥
प्रतिदिन मत्स्यजीवि बहु मत्स्य मारे।
तबे केन धार्मिक ना कहिब ताहारे॥
नरहत्या पशुहत्या हय महापाप।
एइ पाप आचरिले बाड़िबे त्रिताप॥

प्रभुके श्रीमुखसे यह उपदेशपूर्ण तत्त्वकी बात सुनकर उस ब्राह्मणके मनमें वैराग्य उदय हुआ। उसने देवीको बकरेकी वलि नहीं दी। सात्त्विक भावसे देवी पूजा करके प्रभुके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके विप्र घर लौटकर गया। वहाँ बहुतसे लोग उपस्थित थे। सभी प्रभुके उपदेशका मर्म समझकर उस दिनसे पशुहिंसासे निवृत्त हो गये।

प्रभु बड़ोदामें और नौरोजीका महाप्रयाण

प्रभु हाथ जोड़कर देव-देवीकी स्तुति-नति करके वहाँसे पुनः आगे बढ़े। रास्तेमें ताप्ती नदीमें स्नान करके बरोच नगरमें यज्ञकुण्डका दर्शन करके बड़ोदा राज्यमें पधारे। राजा बलिने इसी बड़ौदा नगरमें यज्ञकुण्ड किया था। यह यज्ञकुण्ड नर्मदा नदीके तीर अवस्थित है।

बड़ौदाके तत्कालीन राजा अति पुण्यवान् थे। वे कृष्ण भक्त वैष्णव थे। उनकी राजधानीमें श्रीगोविन्दजीका प्रसिद्ध श्रीमन्दिर था। राजा नित्य अपने हाथसे उस श्रीमन्दिरकी मार्जना करते थे। श्रीविग्रहकी सेवामें वे बहुत व्यय करते थे। अपने हाथसे तुलसी चयन करके अभीष्ट देव श्रीगोविन्दजीकी अर्चना करते थे। वे एक अनुरागी कृष्णभक्त राजा थे। लोग उसको राजा अम्बरीषका अवतार मानते थे।

प्रभु विषयी पुरुषके संसर्गसे दूर रहते थे। क्योंकि वे विरक्त संन्यासी थे। परन्तु कृष्णभक्त विषयी राजा पर उन्होंने कृपा की थी। उड़ीसाके राजा गजपति प्रताप रुद्र और त्रिवांकुरके राजा रुद्रपतिको उन्होंने कृपा-दानसे वञ्चित नहीं किया। अब परम भागवत बड़ौदाके राजा पर कृपा करनेके लिए प्रभु बड़ोदा पधारे हैं।

बड़ौदा राज्यके पूर्वभागमें डाकोरजी ठाकुरका एक सुवृहद् मन्दिर है। उसके मध्यभागमें एक बहुत बड़ा तमाल-द्रुम था। प्रभु श्रीविग्रहका दर्शन करके बहुत देर तक उसी वृक्षके नीचे बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। पश्चात् सन्ध्याकालमें प्रभुने श्रीगोविन्द मन्दिरमें जाकर परम सुन्दर श्रीगोविन्दजीकी मूर्त्तिका दर्शन करके बहुत आनन्द प्राप्त किया। बहुत देर तक श्रीमन्दिरके आँगनमें खड़े होकर नृत्य-कीर्तन करते रहे। प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर अनेक बार भूतल पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। वे उन्मत्तके समान सर्वाङ्गमें धूलि-धूसर सारे आङ्गनमें प्रेमानन्दमें नाचते रहे। बड़ौदावासी नर-नारीने इससे पहले इस प्रकारके रूपका मनुष्य कभी नहीं देखा था। उनको देखकर उन्होंने समझ लिया कि यह नवीन संन्यासी साधारण पुरुष नहीं

है। ऐसा कृष्णप्रेमोन्मादी प्रेममय पुरुषरत्न कभी किसीने देखा नहीं।

राजा वहाँ मन्दिरमें उपस्थित थे। प्रभुके श्रीवदन-चन्द्रसे राजा अपनी आँख फेर न सके। झुण्डके झुण्ड नगर निवासी प्रभुके दर्शनके लिए आये। श्रीमन्दिरमें लोगोंकी भारी भीड़ लग गयी। प्रभुके मुखसे केवल "कृष्ण कहो कृष्ण कहो" वाणी निकलती थी। उनका एकमात्र कार्य था आजानुलम्बित सुबलित भुजयुगलको ऊपर उठाकर अङ्ग-भङ्गिमाके साथ मधुर नृत्यविलास करना। इसीसे बड़ौदा निवासी सब लोग उन्मत्त हो गये। सब लोग उस अपूर्व संन्यासीको साक्षात् ईश्वर मानकर दण्डवत् प्रणाम और वन्दना करने लगे। राजाने प्रभुके चरणोंमें आत्म-समर्पण किया। प्रभुने उनके ऊपर कृपा करके उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ किया। प्रभु तीन दिन बड़ौदा नगरमें रहे।

नौरोजी ठाकुर उनके साथ थे। तीन दिनके बाद ज्वर रोगसे नौरोजि ठाकुरका देहान्त हो गया। उस महापुरुषके सौभाग्यके विषयमें और क्या कहना? हरिदास ठाकुरके निर्माण कालमें प्रभुने नीलाचल पर जो किया था, नौरोजि ठाकुरके देह-त्याग पर बड़ोदामें वही किया। मृत्युकालमें प्रभु नौरोजी ठाकुरके पास बैठकर अपना पद्महस्त उनके शरीर पर फेरते रहे। नौरोजी ठाकुर हाथ जोड़कर प्रभुके श्रीवदनकी ओर एक टकसे देखते हुए मधुर हरिनाम कीर्तन करते-करते नित्यधामको प्रयाणकर गये। प्रभुने स्वयं उनके कानोंमें कृष्णनाम सुनाया। तमाल वृक्षके तले नौरोजीका देहत्याग हुआ था। प्रभुने स्वयं मृत देहको गोदमें लेकर वहाँसे स्थानान्तर करके भिक्षा करके उस स्थान पर नारोजी ठाकुरको बड़े समारोहसे समाधि दे दिया। समाधि स्थलमें प्रभुने हरिसंकीर्तन महायज्ञका अनुष्ठान किया। स्वयं समाधिको घेरकर प्रेमानन्दमें नृत्य-कीर्तन करते रहे। वहाँ असंख्य नर-नारी एकत्रित हो गये। राजा भी आये। सबने उस संकीर्तन महायज्ञमें योगदान किया।

जब प्रभु कुछ स्वस्थ हुए तो राजाने प्रभुको अपने घर भिक्षाकरने का अनुरोध किया। प्रभुने विनीत भावसे उत्तर दिया, "मैं विरक्त संन्यासी हूँ। राजद्वार पर भिक्षा करना मेरे लिए निषिद्ध है।" राजा अत्यन्त दुःखी होकर हाथ जोड़कर प्रभुके सामने खड़े रहे। उसने और कुछ कहनेका साहस नहीं किया। भक्तवत्सल प्रभुने भक्तकी मनोवेदना समझकर गोविन्ददासको राजाके पास मुष्टिभिक्षा लेनेका सङ्केत किया। गोविन्ददासने अपने करचामें लिखा है—

हाथ जूड़ि राजा कहे भिक्षा लइबारे।
अगत्या लइते भिक्षा कहिला आमारे॥
प्रभुर इङ्गिते तबे भूपतिर ठाँइ।
सामान्य लोकेर न्याय मुष्टिभिक्षा चाइ॥

राजा प्रभुको मुष्ठि भिक्षा देनेमें सङ्कोच करने लगे। क्या करते प्रभुका आदेश यही था। उनको मुष्टि भिक्षा दे दिया। प्रभुने उसे ग्रहण किया, इससे राजाने अपनेको धन्य समझा।

नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभुने सुदूर बड़ौदा राज्यमें पदार्पण किया था, राजाको दर्शन प्रदान कर कृतार्थ किया था, बड़ौदावासी नर-नारियोंको कृष्णनामसे उन्मत्त कर दिया था। उस बड़ौदा राज्यमें नदियाके ब्राह्मण कुमारका पदरज पड़ा था, इसी कारण वहाँ गौड़ीय वैष्णवधर्मके प्रचारका सुयोग और सुविधा है। परम गौरभक्त बङ्गाली महात्मा परमहंस श्रीमाधवदास बाबाजीने बड़ौदा राज्यके अन्तर्गत मालसर मठमें श्रीगौराङ्ग मूर्तिकी प्रतिष्ठा करके सहस्रों गुजरातियों और बड़ौदा निवासियोंको गौड़ीय वैष्णवधर्ममें दीक्षित किया है। उन्होंने गुजराती भाषामें श्रीगौराङ्ग चरित प्रकाशित करके बड़ौदावासियोंके हृदयमें पूर्वस्मृति जागृत करदी है। श्रीगौराङ्ग प्रभुके द्वारा प्रवर्त्तित विशुद्ध वैष्णवधर्म आज भारतमें सर्वत्र प्रचारित

होकर शिक्षित भारतवासियोंके हृदयमें अतुल आनन्द प्रदान कर रहा है। बड़ौदाके वर्तमान महाराजा परमहंस माधवदास बाबाजीको विशेष रूपसे जानते हैं। महात्मा माधवदास बाबाजीके एक शिक्षित शिष्य श्रीधाम वृन्दावनमें गोस्वामी पादगणके समीप श्रीगौराङ्ग धर्मकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए आये थे। उनका नाम श्रीकृष्णानन्द स्वामी था। उन्होंने नवद्वीपमें आकर कुछ दिन जीवाधम ग्रन्थकारका आनुगत्य स्वीकार किया था। उनके मुखसे महात्मा मावधदास बाबाजीकी गौराङ्ग-प्रीति तथा गौराङ्ग-धर्म प्रचारके कार्यका परिचय पाकर तथ्यानुसन्धानमें प्रवृत्त हुआ था। परमहंस महाराज श्रीमन्महाप्रभुके एक अन्तरङ्ग भक्त तथा चिह्नितदास थे। उनके द्वारा प्रभुने बहुत कार्य कराया था और करायेंगे।*

बड़ौदासे यात्रा करके प्रभु महानदी पार होकर अहमदाबाद नगरमें पहुँचे। वहाँसे शुभ्रामती नदीके किनारे-किनारे बहुत दूर जानेके बाद दो गौड़ीय बङ्गाली वैष्णवोंसे उनकी भेंट हो गयी। उनमें एकका नाम था रामानन्द वसु, और दूसरेका नाम गोविन्दचरण था। रामानन्दका निवास कुलीन ग्राममें था। प्रभु उनको देखकर परम प्रसन्न हुए। उनके मनमें नवद्वीपका भाव जाग उठा। दयामय प्रभुने मीठे वचनोंसे उनको तुष्ट करके तीर्थभ्रमणके विषयमें पूछा।

द्वारकाके मार्गमें वारामुखी वेश्याका उद्धार

इसके बाद प्रभुकी द्वारका यात्राकी वात गोविन्ददासने अपने करचामें लिखी है। दूसरे ग्रन्थोंमें प्रभुके द्वारका जानेकी बात नहीं है। अस्तु, प्रभुने उस समय शुभ्रामती नदी पार करके योगा नामक स्थानमें वारामुखी नामक एक सुन्दरी वेश्याको हरिनाम महामन्त्रका दान करके उद्धार किया। वह वेश्या सर्वस्व दान करके पथकी भिखारिणी बनकर हरिनामामृत-पानमें मत्त हो गयी।

गोविन्ददासके करचामें वेश्या वारमुखीके उद्धारकी कहानी इस प्रकार वर्णित है—

वारमुखी मने मने करये विचार।
आश्चर्य प्रभुर कृपा देखि जे अपार॥
अपनारे धिक देय बसिया निर्जने।
आश्चर्य प्रभुर दया देखिया नयने॥
एइ जे संन्यासी हेरि ईश्वर समान।
सब छाड़ि जाइ मुञि एर विद्यमान॥
जानाला हइते इहा वारमुखी बले।
तार कथा शुनि सुखी हइला सकले॥
क्षणकाल परे वेश्या नामिया आसिल।
मीरा नामे तार दासी पिछने चलिल॥
वारमुखी बले तबे विनये मीरारे।
आज हैते सर्वधन दिलाम तोमारे॥
बहु अर्थ आछे मोर सब तुच्छ करि।
आज हैत हैलाम पथेर भिखारी॥
एलाइया दिला केश वारमुखी दासी।
स्थिर विद्युतेर पाशे जेन मेघराशि॥
नितम्ब छाड़ाये पड़े दीर्घ केश जाल।
नयन मूँदिया रहे शरीर दुलाल॥
वारमुखी हाथ जुड़ि कहे वार-वार।
बन्धन काटिया देह संन्यासी आमार॥
दासीरे बलिया देह किसे त्राण पाव।
मरणान्ते यम भय किरूप एड़ाबे॥
एइ पाप देह आर किवा प्रयोजन।
एत बलि दीर्घकेश करिला छेदन॥
सामान्य वसन परि लज्जा निवारिल।
जोड़ हाते प्रभुर सन्मुखे दाँड़ाइल॥
प्रभु बले वारमुखी दुइ चारि कथा।
तोमारे कहिया देइ करह सर्वथा॥

* अत्यन्त दुःखकी बात है कि परमहंस महाराज अब इस लोकमें नहीं हैं। उनके शिष्यगण परम गौरभक्त हैं। नवद्वीपके स्वनामधन्य रामदास बाबाजीको दलबलके साथ वे बड़ौदा राज्यमें ले गये थे। मधुर कीर्तनानन्दमें बाबाजी महाराजने गुजरातको आप्लावित कर दिया था। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी पूर्व लीलास्थली बड़ौदा राज्यमें उनके द्वारा प्रवर्तित वैष्णवधर्मका प्रचार देखकर हमारे मनमें बड़ा आनन्द होता है।

एइ स्थाने करि तुमि तुलसी कानन।
तार माझे थाकि कर कृष्णेर साधन ।।
'तुमि कृष्ण तुमि हरि' वारमुखी बले।
एइ मात्र बलि पड़े प्रभु पदतले ।।
वारमुखी पदतले जखन पड़िल।
तिन चारि पद प्रभु अमनि हटिल ।।
एतवलि वारमुखी लये जप माला।
तुलसी कानन करे भूलि सब ज्वाला ।।
वारमुखी कुलटारे प्रभु भक्ति दिया।
सोमनाथ देखिवारे चलिल धाइया ।।

द्वारिकाके पथमें प्रभुने सोमनाथके मन्दिरका दर्शन किया। यवनोंके द्वारा सोमनाथके मन्दिरकी दुर्दशाकी बात याद करके प्रभु मनमें दुःखित होकर रो पड़े।

वहाँसे जूनागढ़ होते हुए गिरनार पर्वत पर आकर श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरण-चिह्नका दर्शन करके भावनिधि प्रभु भावसागरमें मग्न हो गये। इस स्थान पर भर्गदेव नामक एक संन्यासीको कुछ ऐश्वर्य दिखलाकर व्याधिमुक्त करके उस पर प्रभुने कृपा की। भर्गदेवने प्रभुका सङ्ग नहीं छोड़ा।

तत्पश्चात् भयानक जङ्गलके रास्तेसे सोलह भक्तोंके साथ प्रभु प्रभास तीर्थमें जा पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर प्रभुके मनमें पूर्व लीलाकी स्मृति जाग उठी। वे व्याकुलतापूर्वक रोने लगे, तथा धूलिमें लोटने-पोटने लगे।

आश्विन मासमें प्रभु द्वारका तीर्थमें पहुँचे। श्रीश्रीद्वारकानाथकी अपूर्व श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके प्रभु प्रेमावेशमें इतने अधीर हो गये कि कोई उनको पकड़कर रख न सका। मधुर हरिनाम-गानमें प्रेमोन्मत्त होकर मन्दिरके प्राङ्गणमें उन्होंने जो मधुर-प्रेम नृत्य-कीर्तन किया, उससे आबालवृद्ध वनिता मुग्ध होकर प्रभुके शरणापन्न हो गये। प्रभुने एक पखवारे द्वारका धाममें वास करके द्वारकावासी नर-नारियोंको प्रेमानन्दमें डुबा दिया।

द्वारकासे नीलाचलकी ओर

उसके बाद वे श्रीनीलाचलकी ओर लौटे। रास्तेमें वह पुनः एक बार बड़ौदा नगरमें पधारे। उस समय भी उनके साथ भर्गदेव थे। प्रभु नर्मदा नदीके किनारे-किनारे चलने लगे। कुछ दिनके बाद प्रभुने भर्गदेवको विदा किया। प्रभुके विरहमें वे रोकर व्याकुल हो उठे। विदा होते समय उन्होंने प्रभुसे कहा—

भर्ग बोले तुमि कृष्ण तुमि मोर हरि।
भिक्षा देह चरण स्मरिया जेन मरि ।।

गो० क०

प्रभुके सङ्गमें कुलीन नगरके रामानन्दवसु और गोविन्दचरणदास थे। उनको प्रभुने कहा कि सब लोग विद्यानगर होते हुए रामानन्द रायको साथ लेकर श्रीनीलाचलकी ओर चलेंगे।

प्रभु बोले एइ बार नीलाचले जाब।
नीलाचले सबे मिलि आनन्द करिब ।।
चल विद्यानगरे जाइब सब मिलि।
एका ना जाइब पुरी राम-राये फेलि ।।

गो० क०

बहुत दूर चलनेके बाद रास्तेमें कुक्षिनगरमें प्रभुने अनेकों वैष्णवोंका सङ्ग किया। उन पर कृपा करके प्रभु विन्ध्याचलकी ओर चले। मन्दुरा नगरसे होते हुए देवघर नामक स्थानमें जाकर प्रभुने एक कुष्ट रोगीको रोगमुक्त किया। उस कुष्ट रोगीका नाम आदिनारायण था। वह एक धनवान् वणिक था। व्याधिग्रस्त होकर वह विशेष मार्मिक कष्ट भोग रहा था प्रभुका दर्शन करके आदिनारायणने उनके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते उस विषम रोगसे मुक्तिके लिए प्रभुसे प्रार्थनाकी। प्रभु उस समय भोग लगाकर नाम-गान कर रहे थे। उन्होंने अपने हाथसे उसे प्रसाद दिया। आदिनारायण भक्तिपूर्वक प्रसाद ग्रहण करते ही तत्काल रोगमुक्त हो गया। यह समाचार सुनकर बहुतसे लोग प्रभुके पास आये। प्रभुने प्रतिष्ठाको बिपद समझकर उस

स्थानको त्याग दिया। प्रभुके उपदेशसे आदि नारायण तुलसी कानन स्थापित करके वहाँ बैठकर हरिनाम जप करने लगे। प्रभुकी कृपासे वह परम साधु हो गये।

वहाँसे तीस कोस दूर शिवानीनगरमें प्रभु दो दिन चलकर पहुँचे। उसके पूर्व भागमें पर्वतीय प्रदेश है। उधरसे होते हुए प्रभुने चण्डीपुरमें जाकर चण्डीदेवीका दर्शन किया। उसके बाद प्रभुने रायपुरमें पदार्पण किया। ब्रह्मगिरि प्रदेश होते हुए गोदावरीके उत्पत्तिस्थान कुशावर्त तीर्थमें जाकर प्रभुने गोदावरीमें स्नान किया गोदावरीके तीरके बहुतेरे तीर्थोंका दर्शन किया।

विद्यानगरमें रामानन्दरायके पास

प्रभु पुनः विद्यानगरमें जा पहुँचे। रामानन्दराय प्रभुके शुभागमनकी बात सुनकर प्रेमानन्दमें अधीर होकर उनसे मिले। वे भूमिष्ट होकर प्रभुके चरणोंमें दण्डवत पड़ गये। प्रभुने उनको हाथ पकड़कर उठाया और प्रेमालिङ्गन प्रदान करके अपनी छातीसे चिपका लिया। प्रेमावेगमें दोनों ही बहुत देर तक प्रेम-क्रन्दन करते रहे। दोनोंके अङ्ग पारस्परिक अश्रुजलसे सिक्त हो गये। कुछ देरके बाद दोनों ही भाव संवरण करके सुस्थिर होकर बैठे। प्रभु तब धीरे-धीरे तीर्थभ्रमणकी सारी कहानी एक-एक करके कहने लगे। कृष्णकर्णामृत और ब्रह्मसंहिता श्रीग्रन्थद्वयराय रामानन्दके हाथमें देकर प्रभु बोले—

—तुमि जेइ सिद्धान्त कहिले।
एइ दुइ पूथि सेइ सब साक्षी दिले॥

चै. च. म. ६. २६६

श्रीग्रन्थद्वयको प्राप्त करके राय रामानन्दके आनन्दकी सीमा न रही। प्रभुके साथ एक जगह बैठकर वे इन दोनों ग्रन्थोंका आस्वादन करने लगे। वह नवीन संन्यासी पुनः विद्यानगरमें आये हैं, यह संवाद नगरमें सर्वत्र प्रचरित हो गया। बहुतसे लोग प्रभुका दर्शन करने आये। तब राय रामानन्द अपने घर गये। रातमें वे पुनः प्रभुके पास आये और कृष्णकथारङ्गमें रात बिता दी। इस प्रकार पाँच-सात दिन प्रभुने परम आनन्दपूर्वक रामानन्दरायके साथ कृष्णकथारङ्गमें दिन-रात अतिवाहित किया।

एक दिन रामानन्दरायने प्रभुसे कहा—"प्रभु! आपके आदेशके अनुसार मैंने राजाको लिखकर श्रीनीलाचल जानेकी आज्ञा प्राप्त करली है। मैंने जानेका सारा प्रबन्ध भी कर लिया है।" प्रभुने हँसकर कहा—"इसलिए मेरा यहाँ आना हुआ है। आपको साथ लेकर मैं नीलाचल जाऊँगा।" रामानन्द रायने उत्तर दिया—"प्रभु! यह सब आपकी कृपा है। मैं विषयी हूँ, मेरे साथ हाथी-घोड़ा और लोग जाँयगे। इससे आपके मनमें सुख न होगा। आर आगे चलिये, दस दिनमें मैं सब प्रबन्ध करके श्रीनीलाचल पहुँचता हूँ।' प्रभुने मुस्कराकर यह स्वीकार कर लिया।

नीलाचलकी ओर

अब प्रभु विद्यानगरसे श्रीनीलाचलकी ओर चले। रास्तेमें रत्नपुर होते हुए महानदीके पूर्व तट पर स्थित स्वर्णगढ़में जा पहुँचे। रत्नपुरके राजाका नाम शान्तीश्वर था। वे परम धार्मिक थे। प्रभुके शुभागमनकी बात सुनकर परम आनन्दित होकर उन्होंने स्वयं आकर श्रीगौर भगवान्‌के पादपद्मकी वन्दना की। प्रभुने उनके प्रति शुभ दृष्टिपात करके कृपा की। भगवद्भक्त राजाकी दी हुई भिक्षा ग्रहण करके उन्होंने राजाको कृतार्थ किया। उस दिन प्रभुने एक वृक्षके नीचे रात बितायी।

प्रभातमें सम्भलपुर होते हुए दश कोस दूर भ्रमरा नगरमें जा पहुँचे। वहाँ बहुत-से वैष्णवोंका वास था। प्रभु वहाँ चार दिन रहे। विष्णुरुद्र नामक एक कृष्णभक्तके घर जाकर प्रभु उसके ऊपर अयाचित भावसे कृपा करके प्रतापनगरमें पहुँचे। तत्पश्चात् दासपालनगरमें जाकर हरिनाम गानसे सब लोगोंको उन्मत्त कर दिया।

उसके बाद रसालकुण्डमें जाकर प्रभुने कूर्म भगवान्‌का दर्शन किया। वहाँके सब लोगोंको भक्तिहीन देखकर प्रेमदाता प्रभुने वहाँ तीन दिन वास किया। उन तीन दिनोंमें प्रभुने वहाँके सब लोगोंको हरिनाम महामन्त्र प्रदानकर वैष्णव बना लिया। वहाँ प्रभुने एक कृष्णद्वेषी माड़्या विप्रके कृष्णभक्त पुत्रकी प्रार्थनापर उसको वैष्णव बना लिया। उस पाखण्डी विप्रने सोचा कि प्रभुने उसके पुत्रको बहकाकर वैष्णव बनाया है। वह परम क्रुद्ध होकर प्रभुको मारनेके लिए उद्यत हो गया। प्रभुने हँसते हुए उससे कहा—

"तोमार कठिन हिया मरुस्थलो प्राय।
रसाल हऊक आजि कृष्णेर कृपाय॥
मारो मोरे ताहे विप्र कोन क्षति नाइ।
एक बार हरेकृष्ण मुखे बल भाइ॥

गो० क०

पुत्रके विशेष अनुरोधपर प्रभुने उस विप्रको हरिनाम महामन्त्र देकर उद्धार किया। इसके बाद प्रभु ऋषिकुल्या नदीके तीर पहुँचे। वहाँ प्रभु तीन दिन रहे। प्रभु ऋषिकुल्या आ गये हैं, यह शुभ समाचार श्रीनीलाचल पहुँचा। जगदानन्द, दामोदर पण्डित, मुकुन्द, गोपीनाथ आचार्य आदि भक्तवृन्द आनन्दसे नाच उठे। वे लोग श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ आलालनाथके रास्तेपर अग्रसर हुए। इस बीचमें प्रभु आलालनाथमें आकर कृष्णदासको नीलाचलके भक्तवृन्दको पहलेसे संवाद देनेके लिए भेजा। कृष्णदासकी रास्तेमें उन भक्तोंसे भेंट हो गयी।*

कविराज गोस्वामी प्रभुने दक्षिण देशकी तीर्थयात्राकी कथा श्रवणकी फलश्रुति लिखते समय एक बड़ी ही सुन्दर बात लिखी है। वह है—

अनन्त चैतन्य कथा कहिते ना जानि।
लोभे लज्जा खाञा तार करि टानाटानि॥
प्रभुर तीर्थयात्रा कथा शुने जेइ जन।
चैतन्य चरणे पाय गाढ़ प्रेमधन॥
चैतन्य चरित्र शुन श्रद्धा भक्ति करि।
मात्सर्य छाड़िया मुखे बल हरि हरि॥
एइ कलिकाले आर नाहि अन्य धर्म।
वैष्णव वैष्णवशास्त्रे एइ कहे मर्म॥

चै. च. म. ९.३३१-३३४

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीकी पहली बात बड़ी मधुर है। वे कहते हैं कि श्रीगौराङ्गलीला कथाका अन्त नहीं है। वे कैसे समझेंगे कि इस अनन्त अपार लीला समुद्रमें कौन रत्नराशि कहाँ है? तथापि श्रीगौराङ्ग-लीलाकथामें लोभ अति प्रबल है, वह लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। लज्जाको तिलाञ्जलि देकर लीला-रस कथाका प्रसङ्ग उठाकर खींचातानी करनी पड़ती है। इससे मनमें जो सुख होता है, हृदयमें जो आनन्द होता है, उसकी तुलना नहीं हैं। इस लीलाकथाका वर्णन करते समय मनमें कितनी बातें उदय होती हैं, कितने शत-शत भाव-तरङ्ग हृदय-सरोवरमें उद्वेलित हो उठते हैं, उनको प्रकट करनेमें न तो लज्जा होती है, न लोक-निन्दाका भय होता है। श्रीगौराङ्गलीलारसोन्मत्त भक्त-भ्रमरगणको लज्जा-शर्म, मानापमान, स्तुति-निन्दाका भय नहीं होता। वे मनके आनन्दसे लीला रसका आस्वादन करते हैं। उस रसके उच्छ्वाससे कलिग्रस्त जीवका नीरस और कर्कश हृदय सरस हो जाता है, पाषाण-हृदय द्रवित हो उठते हैं, शुष्क प्राणमें रसका सञ्चार होता है।

कविराज गोस्वामी वृद्धावस्थामें प्रभुकी लीलाका वर्णन करते हैं। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने जिन लीलाओंको विस्तार-पूर्वक नहीं लिखा है, उसको कविराज गोस्वामी श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें लिख गये हैं। कविराज गोस्वामी स्पष्टवक्ता थे, यह उनकी अन्तिम बातसे स्पष्ट हो जाता है। उन्होने अपने मनके भावको कुछ भी न छिपाकर

* इसके आगेका वर्णन सातवें अध्यायमें आयगा।

कहा—"श्रद्धा और भक्तिके साथ श्रीगौराङ्ग-चरणका आश्रय करो, मात्सर्य छोड़कर युगधर्म हरिनाम संकीर्तन करो। कलिकालमें इसके सिवा और कोई धर्म नहीं है। यही शास्त्र वचन है।" श्रीगौराङ्ग भजन युगानुवर्ती भजन है, श्रीगौरांग सुन्दर ही कलियुगके एकमात्र उपास्य हैं, यह उन्हींके वचन हैं। जय कविराज गोस्वामीकी जय ! जय गौरांग प्रभुकी जय !

गौरभक्तवृन्द ! आइए हम सब मिलकर प्रभुकी नीलाचल लीलाका स्मरण करके उनके नीलाचलके भक्तोंका जयगान करके आत्मशुद्धि करें।

कीर्तन (यथा राग)

श्रीकृष्ण चैतन्यप्रभु जय जय जय।
अवधूत नित्यानन्द दीन दयामय ॥
जय जय वासुदेव सार्वभौम नाम।
श्रीकृष्ण चैतन्य जाँर जप तप ध्यान ॥
जय राय रामानन्द व्रज रसधाम।
जाँर मुखे कैला प्रभु रसेर व्याख्यान ॥
जय जय दामोदर स्वरूप उपाधि।
व्रजरसे टलमल भक्त गुणनिधि ॥
जय जय काशी मिश्र जय राजगुरु।
गृहे जार कैला वास गौर कल्पतरु ॥
जय श्रीप्रताप रुद्र जय पुरीश्वर।
जाँरे कृपा कैला प्रभु गौर विश्वम्भर ॥
जय जय पुरी गोसाञि जय श्रीभारति।
नीलाचले प्रभु सङ्गे जे कैला वसति ॥
जगदानन्देर जय दास्य अभिमानी।
तैलेर कलस भाङ्गि मान कैला जिनि ॥
श्रीठाकुर हरिदास जय जय जय।
जाँर गृहे जान प्रभु स्नानेर समय ॥
शङ्कर पण्डित जय 'पाद उपाधान'।
जय श्रीगोविन्ददास सेवक प्रधान ॥
जय गोपीनाथाचार्य नवद्वीपवासी।
क्षेत्रे वास प्रभु सने जिंहो कैला आसि ॥
वैष्णव संन्यासीवर जय ब्रह्मानन्द।
चर्माम्बर छाड़ाइला जाँर गौरचन्द्र ॥
प्रभु कीर्तनीया जय छोट हरिदास।
प्रभुर वर्जने जिंहो कैल प्राणनाश ॥
गोसाञि ठाकुर जय रघुनाथदास।
विकट वैराग्य जाँर जगते प्रकाश ॥
पण्डित भगत जय जय काशीश्वर।
शरीर रक्षक प्रभुर जिंहो निरन्तर ॥
राय रामानन्द पिता जय भवानन्द।
पाण्डु बोलि सम्बोधिला जाँरे गौरचन्द्र ॥
जय नारी शिरोमणि भवानन्दपत्नी।
नाम दिला प्रभु जाँरे पाण्डुपत्नि कुन्ति ॥
जय हरि सुन्दर राजमन्त्री पात्र।
श्रीवासेर चड़े जार शुद्ध हैल गात्र ॥
सार्वभौम पुत्र जय चन्दन ईश्वर।
गौर सेवा कैल जिंहो क्षेत्रे निरन्तर ॥
जय अमोघेर जय भट्टेर जमाता।
उद्धारिला क्षेत्रे जाँरे गौर प्रेमदाता ॥
जय जय षाटि देवि सार्वभौमकन्या।
भट्टाचार्यपत्नी जय साध्वी महाधन्या ॥
दुइ भ्राता सङ्गे जय दासी श्रीमाधवी।
शिखि ओ मुरारि जय माहाति उपाधि ॥
जय श्रीप्रद्युम्नमिश्र जय जनार्दन।
सेवेन अनवसरे जिंहो भगवान् ॥
जय जय परमानन्द जय जय सिंहेश्वर।
जय जगन्नाथपात्र महा सूपकार ॥
स्वर्णवेत्रधारी जय जय कृष्णदास।
जय नीलाचलवासी जय विष्णुदास ॥
जय काला कृष्णदास दक्षिणेर सङ्गी।
जार सने कैल प्रभु भट्टमारी भङ्गि ॥
जय द्विज बलभद्र जय विप्रदास।
वृन्दावन सङ्गी प्रभुर शुद्ध कृष्णदास ॥
जय दामोदर जय पण्डित आख्यान।
प्रभुके कैल जिंहो वाक्यदण्ड दान ॥
जय गदाधर जय पण्डित गोसाँञि।
एकनिष्ठ गौरभक्त जाँर सम नाइ ॥

जय जय जयन्नाथ नीलाचलनाथ।
जय जय बलराम सुभद्रार भ्रात॥
जय श्रीमन्दिर जय जय सिंहद्वार।
जय जय श्रीसमुद्र प्रेम पारावार॥
जय नीलाचल जय जय श्रीगम्भीरा।
राधाभावे कैल लीला जाँहा मोर गोरा॥
जय बलगण्डी जय पर्वत चटक।
आलाल नाथेर जय जय श्रीकटक॥
जय श्रीनरेन्द्र जय सरोवर तट।
प्रभु जाँहा शुनितेन भागवत पाठ॥
जय नीलाचलवासी स्थावर जङ्गम।
जय पशुपक्षी कीट उत्तम अधम॥
निताइ गौराङ्ग पादपद्म करि आश।
नाम सङ्कीर्तन करे दीन हरिदास॥

छठा अध्याय*

गोदावरी तीरपर राय रामानन्द और प्रभु

(वैष्णव धर्मके सूक्ष्म तत्वका विचार)

रामानन्द राये मोर कोटि नमस्कार।
जाँर मुखे कैला प्रभु रसेर विचार॥

चै. च. म. ८-२६२

विद्यानगरमें विप्रके घर राय रामानन्दके साथ सत्संग गोष्ठि

श्रीमन्महाप्रभुकी जब राय रामानन्दसे विद्यानगरमें गोदावरीके तीर प्रथम मिलन हुआ, उस दिन उन्होंने एक ब्राह्मणके घर भिक्षा की थी। परम सौभाग्यवान् उस दरिद्र ब्राह्मणके घर बैठकर शुभक्षणमें राय रामानन्दके मुखसे प्रभुने वैष्णवधर्मके जिस अति सूक्ष्म तत्त्वको प्रकट किया था, जिस अपूर्व उन्नतोज्ज्वल रस तत्त्वका विचार किया था, उसका ममार्थ संक्षेपमें इस अध्यायमें वर्णित होगा।

प्रभु अपने परम प्रियतम भक्त राय रामानन्दके घर नहीं गये। क्योंकि भोग-विलासके सम्पर्कमें वे नहीं रहते थे। तथापि भोग-विलासमें रहने वाले भक्तोंका सङ्ग करनेमें कुण्ठित नहीं होते थे। विद्यानगरके शासनकर्त्ता राय रामानन्दका निवास था राजप्रासादमें, वह बहुजन समाकीर्ण राजप्रासादमें राज-सम्मानसे भूषित होकर राजाके समान रहते थे। इसी कारण प्रभु एकान्तमें एक दरिद्र ब्राह्मणके घर अतिथि हुए। वहाँ वे परम आनन्दपूर्वक थे। अत्यन्त दुःखकी बात है कि उस महाभाग्यवान् श्रीमन्महाप्रभुके कृपापात्र विप्रशिरोमणिका कोई परिचय ग्रन्थोंमें नहीं है।

राय रामानन्द प्रच्छन्न वेषमें केवल एक भृत्यको साथ लेकर प्रच्छन्न अवतार प्रभुके निकट गये। भक्त और भगवान्के इस गुप्त मिलनके प्रसङ्गको कोई जान न सका। प्रभु* संध्या समयके स्नान और नित्य कृत्य समाप्त करके दिव्यासन पर बैठकर

* इस प्रकरणका हिन्दी अनुवाद डा० श्रीराधागोविन्दनाथकी विस्तृत टीका सहित हमारे यहाँसे प्रकाशित हो रहा है।
—प्रकाशक

* प्रभु जाजा सेइ विप्रघरे भिक्षा कैल।
दुइ जनार उत्कण्ठाय आसि सन्ध्या हैल॥
प्रभु स्नानकृत्य करि आसेन बसिया।
एक भृत्य संगे राय मिलिल आसिया॥
चै. च-म. ८. ५१, ५२

हरिनाम जप कर रहे थे, उनके कमलनयनसे अविराम प्रेमाश्रुधारा बह रही थी, नयनजलसे भूतल सिक्त होकर कर्दमाक्त हो रहा था। राय रामानन्द दीन-हीन वेषमें प्रभुको साष्टाङ्ग प्रणिपात करके हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये। प्रभुका पक्वबिम्बफल विनिन्दित अधरोष्ठ भाग कुछ-कुछ कम्पित हो रहा था, रक्त करकमलमें तुलसीकी जपमाला सुशोभित हो रही थी, कनक-केतकी सदृश नयनयुगल अर्द्धनिमीलित थे। सर्वाङ्ग पुलक-कदम्ब-परिशोभित, हरिनामाङ्कित तथा चन्दन-चर्चित था। सामने मिट्टीके एक पात्रमें नवीन तुलसी वृक्ष था। राय रामानन्द प्रभुके एक पार्श्वमें खड़े होकर उनकी अपरूप रूपराशिका दर्शन कर रहे थे, उनके प्रत्येक अङ्गकी लावण्य छटा निरीक्षण कर रहे थे, प्रभुके चन्द्रवदनसे आँखें नहीं हटा पा रहे थे। प्रभुके इशारेसे गोविन्ददासने एक आसन लाकर राय रामानन्दको बैठनेके लिए दिया। परन्तु रामानन्द खड़े रहे। जपमाला समाप्त होने पर प्रभु अपने आसनसे उठे, और राय रामानन्दको प्रेमालिङ्गन-दानके द्वारा कृतार्थ करके मधुर वचनसे बैठनेका आदेश दिया। उन्होंने आसन उठाकर रख दिया, और पुनर्वार दण्डवत् प्रणाम करके भूतल पर बैठ गये।

गोदावरी नदीके तीर वह विप्र-गृह एक निर्जन स्थानमें अवस्थित था। तरु-लता-पुष्पसे सुशोभित उस निभृत कुटीरमें बैठकर भक्त और भगवान्‌ने परामर्श करके जीवके परम कल्याणके लिए जिन निगूढ़ वैष्णव-तत्त्वों और रस-तत्त्वोंका प्रचार प्रभुने भक्तके मुखसे कराया, वह जीव-जगतकी अमूल्य गुप्त-सम्पत्ति है। जिस प्रकार पञ्चम पुरुषार्थ प्रेम श्रीभगवान्‌का निज गुप्तधन है, उसी प्रकार ये सारे वैष्णवधर्मके सूक्ष्मतत्त्व और रसतत्त्वकी बातें भी प्रकृत रसिक भक्तजनकी निज गुप्त सम्पत्ति है। रायरामानन्दके मुखसे प्रभुने वैष्णवधर्मके सूक्ष्मतत्त्वकी बातें जीव-जगत्‌में क्यों प्रकट कीं ? इसका निगूढ़ मर्म है, जिसके विषयमें आगे कहा जायगा।

राय रामानन्दमें शक्ति-सञ्चार करके प्रभुने उनके मुखसे इन निगूढ़ तत्त्वोंका प्रकाश और प्रचार किया। राय रामानन्द थे वक्ता, और स्वयं भगवान् प्रभु हुए श्रोता और प्रश्नकर्त्ता। यह अपूर्व कौशल जाल फैलाकर कलिके प्रच्छन्न अवतारने अपने प्रच्छन्नत्वकी रक्षा की, व्यास वचनकी मर्यादाकी रक्षाकी 'छन्न कलौ' श्रीम. भा. ७.९.३८ श्लोककी सार्थकता सिद्ध की। राय रामानन्दने ठीक ही प्रभुसे कहा था—

राय कहे, आमि नर, तुमि सूत्रधार।
जेइ मत नाचाहबे सेइ मत चाहि नाचिवार॥
मोर जिह्वा वीणायन्त्र तुमि वीणाधारी।
तोमार मने जेइ उठे—ताहाइ उच्चारि॥
चै. च. म. ८. १०४,१०५

तोमार शिक्षाय पड़ि—जैन शुकेर पाठ।
साक्षात् ईश्वर तुमि के बूझे तोमार नाट ?
हृदये प्रेरणा कर जिह्वाय कहाओ वाणी।
कि कहिये भालमन्द किछूइ ना जानि॥
चै. च. म. ८.९४.९५

श्रीगौराङ्ग अवतारमें श्रीभगवान्‌ने अपना निजगुप्तवित्त प्रेमधन कलिके जीवोंको बिना किसी भेदभावके अकातर रूपमें दान किया था। उनके सर्वश्रेष्ठ रसिक भक्त चूड़ामणि राय रामानन्दके द्वारा निगूढ़ व्रजरसतत्त्व रूप अमूल्य सम्पत्ति, जो एकमात्र अधिकारी रसिक भक्तोंका निजस्व धन था, प्रभुकी इच्छासे अब यत्र-तत्र बिखर गया है। वह सम्पत्ति अब अनधिकारी लोगोंके हाथमें पड़कर नष्टप्राय हो रही है। इसकी रक्षाका उपाय प्रभु ही करेंगे।

श्रीमन्महाप्रभुके प्रश्नोत्तरमें राय रामानन्दने जिन अति निगूढ़ रसतत्त्व और वैष्णवीय भजन तत्त्वोपदेशकी बातोंकी अवतारणाकी थी, वे अब तक किसी शास्त्र-ग्रन्थमें लिखी नहीं गयी हैं, और उसके पहले कभी इस प्रकार अतिसूक्ष्म और विस्तृत रूपमें आलोचित नहीं हुई। धर्मजगत्‌में यह

एक अपूर्व नूतन वस्तु है, अतुलनीय अभिनव सामग्री है। इस समय प्रभुकी कृपासे राय रामानन्दके मुखसे नये ढंगसे जीव-जगत्‌में इसका प्रकाशन और प्रचार हुआ है।

साध्य साधन सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—वर्णाश्रम आचार

राय रामानन्दने जैसे ही भूमि पर आसन ग्रहण किया, वैसे ही प्रभुने मधुर शब्दोंमें उनसे पूछा— "राय रामानन्द! साध्य निर्णयके सम्बन्धमें कुछ शास्त्रवचन कहिये, मैं सुनूंगा।" राय रामानन्द सर्वशास्त्रविशारद परम पण्डित थे। वे प्रभुके चरणकमलमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले— "प्रभु! मैं मूर्ख हूँ। शास्त्रार्थ मैं क्या जानूँ? मेरी समझसे स्वधर्माचरणसे ही जीवके मनमें विष्णु-भक्तिका उदय होता है।"

प्रभु कहे पढ़ श्लोक मध्येर निर्णय।
राय कहे स्वधर्माचरणे विष्णुभक्ति हय॥

चै. च. म. ८.५४

इस बातके प्रमाणस्वरूप उन्होंने विष्णु पुराणके निम्नलिखित श्लोककी आवृत्ति की :

वर्णाश्रमाचाररता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारणम्॥

३.८.९

अर्थात् परम पुरुष विष्णु वर्णाश्रमाचार-सम्पन्न पुरुष द्वारा आराधित होते हैं। वस्तुतः वर्णाश्रमाचार भिन्न विष्णु-प्रीत-साधनका अन्य उपाय नहीं है।

राय रामानन्दने शास्त्रकी बात कही। वर्णाश्रम धर्मके अनुष्ठानका नाम स्वधर्माचरण है। वेद विहित, पुराणोक्त, ऋषिप्रोक्त शास्त्रवचनके अनुसार-विधि नियम-आचारका पालन करनेपर वर्णाश्रम धर्माचरण होता है।

वर्णाश्रम धर्मके आचरणके द्वारा भगवान् विष्णुको तुष्ट करना ही साध्यतत्त्व है। यह है राय रामानन्दकी बातका तात्पर्य। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं। अपने-अपने स्वभावानुसार निर्दिष्ट वर्णधर्म, तथा अवस्थाके अनुसार निर्णीत आश्रयधर्मका पालन करनेसे ही भगवान् विष्णु परितुष्ट होते हैं। चारों वर्णोंके जो धर्म शास्त्रमें लिखे हैं, वही जीवके लिए आचरणीय हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम हैं। अपने-अपने आश्रम-विहित धर्मोंका आचरण करनेसे भगवान् तुष्ट होते हैं—राय रामानन्दने यही बतलाया।

मनुष्यके जन्म, संसर्ग और भिक्षासे स्वभावकी उत्पत्ति होती है। स्व-स्व-स्वभावके अनुसार वर्ण स्वीकार करना ही चतुर मनुष्यका काम है। स्वभाव विभिन्न प्रकारके होने पर भी प्रधानतः चार प्रकारके होते हैं। ईश्वरानुसन्धान और पठन-पाठन जिनका स्वभावगत विषय है, वे ब्राह्मण हैं। शौर्य, वीर्य, राजशासनकी क्षमता जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वे क्षत्रिय हैं। कृषिकार्य, पशुपालन तथा वाणिज्य आदि कर्म जिनके स्वाभाविक धर्म हैं, वे वैश्य हैं; तथा इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना जिनका स्वभाव है, वे शूद्र हैं। इस प्रकार वर्णाश्रिय धर्मका आचरग करनेपर ही जीवकी आध्यात्मिक उन्नति होती है। भगवान् विष्णु उसपर तुष्ट होते हैं। यह है वर्णाश्रमधर्म।

वर्णाश्रमधर्मका आचरण करने पर जीव विष्णु-आराधनाका अधिकारी होता है। इसके बिना भगवान् विष्णुकी तुष्टि प्राप्त नहीं होती। साधन करके जो प्राप्त किया जाता है, उसका नाम साध्य है। इस स्थलमें विष्णुभक्ति साध्य है। वर्णाश्रम धर्माचरण इसका वहिरङ्ग साधन है। वर्णाश्रमधर्म भक्तिका साधन होनेपर भी स्वरूपतः भक्ति नहीं है, किन्तु विष्णु आराधनाके कारण इसमें भक्तिका आरोप होनेसे महाजनगण इसको साधन कह गये हैं। शास्त्रमें इस प्रकारकी भक्तिको आरोपसिद्धा भक्ति कहते हैं।

कर्मार्पण

इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट जो भक्तितत्व है, प्रभुने उसको पूछा। रामानन्दराय प्रभुके श्रीवदनकी ओर

देखकर हाथ जोड़कर बोले—"तब सारे कर्म श्रीकृष्णमें अर्पण करना साध्य है।"

इसके प्रमाणस्वरूप उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोककी आवृत्ति की।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥

गी. ९-२७

अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा—"हे अर्जुन! तुम लौकिक या वैदिक जो कर्म करते हो, व्यवहारतः जो कुछ भोजन-पान कर रहे हो, होम कर रहे हो, जो दान करते हो, तथा जो तप करते हो, वह सब मुझको अर्पण करो।

श्रीभगवान्में इस प्रकारका कर्मार्पण वर्णाश्रम धर्माचरणकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें सकामता नहीं है। परन्तु यह भी आरोपसिद्धा भक्तिके नाम से अभिहित है। श्रीभगवान्में कर्मार्पण केवला भक्तिमें पर्यवसित नहीं होता। इसी कारण श्रीगौराङ्ग प्रभुने राय रामानन्दसे कहा कि, यह भी बाह्य है, मेरे प्रश्नका उत्तर इसको अतिक्रमण करके स्थित है, उसे कहो।" रामानन्दराय प्रभुके श्रीवदनकी ओर सतृष्ण नयनसे देखकर विस्मित होकर सोचने लगे कि, प्रभुने तो सकाम और निष्काम दोनों कर्मोंको बाह्य कहकर उपेक्षा कर दिया।

सर्वधर्म-त्याग

उन्होंने प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"तब स्वधर्म त्याग ही साध्य-तत्त्वका सार जान पड़ता है।" रामानन्द रायने अपनी इस बात का शास्त्रप्रमाण देते हुए दो श्लोकोंका उद्धरण दिया। एक श्रीमद्भागवतसे, यथा—

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत्स च सत्तमः॥

भा. ११.११.३२

श्रीभगवान्ने उद्धवसे कहा—"मेरे द्वारा वेदरूपसे आदिष्ट सारे धर्मोंका परित्याग करके तथा धर्माधर्मके गुण-दोषोंको जानकर जो मेरा भजन करते हैं, वे ही सर्वोत्तम हैं।"

दूसरा श्रीगीतासे, यथा—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गीता १८-६६

श्रीभगवान् बोले—"तुम सर्वधर्मपरित्याग करके एकान्त भावसे मेरे शरणमें आ जाओ। मैं तुमको सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तुम शोक मत करो।

इसका नाम है शरणागति, अर्थात् श्रीभगवान्में आत्मसमर्पण। आत्मसमर्पणके छः लक्षणोंके सम्बन्धमें वैष्णव-तन्त्रमें इस प्रकार लिखा हुआ है।

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्यविवर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा॥
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥

ह. भ. वि. ११.६७६

(१) आनुकूल्यका सङ्कल्प, अर्थात् श्रीविष्णुभगवान्के अनुकूल विषयोंमें सङ्कल्प या दृढ़ श्रद्धा। (२) प्रतिकूल्यका परित्याग, अर्थात् जो सब विषय श्रीकृष्ण-भजनके प्रतिकूल हो उनका परित्याग। (३) श्रीभगवान् सदा रक्षा करेंगे, यह दृढ़ विश्वास। (४) रक्षा करनेके लिए श्रीभगवान्को वरण करना। (५) श्रीभगवान्के चरणोंमें सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण। (६) दीनता।

शरणापत्ति कर्मयुक्त न होने पर भी दुःख निवारण करती है। स्वधर्म-त्यागपूर्वक शरणागतिमें निज दुःख-विनाशकी इच्छारूपी कामना अन्तर्हित होनेके कारण यह सकाम भक्तिमें पर्यवसित होती है। अतएव प्रभुने ऐसी स्वधर्मत्यागरूपी शरणागतिसे भी श्रेष्ठ बात पूछी।

ज्ञानमिश्रा भक्ति

राय रामानन्द तब पुनः सोचने लगे। प्रभुने राय रामानन्दमें अपनी शक्तिका सञ्चार किया

था। उसी ईश्वरीय शक्तिके बलसे उन्होंने प्रभुके चरणोंमें पुनः विनीत भावसे हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभु ! तब तो ज्ञान मिश्रा भक्तिही साध्यसार जान पड़ती है।" अपनी इस उक्तिके समर्थनमें उन्होंने गीताका यह श्लोक पढ़ा—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

गीता १८-५४

श्लोकार्थ—श्रीभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—"जो लोग ब्रह्मभूत अर्थात् अष्टगुणोंको साक्षात् करके स्वस्वरूपमें स्थित हैं, तथा प्रसन्नात्मा अर्थात् क्लेशकर्मविपाकादिसे रहित अति स्वच्छ हैं, वे मेरे सिवा अन्य किसी वस्तुका सोच नहीं करते। अतिरिक्त इसके, मेरे सिवा अन्य सारे शुभाशुभ भूतोंमें समबुद्धि होकर मुझमें पराभक्ति, अर्थात् मदनुभवलक्षणा, मद्वीक्षण समानाकारा साध्या भक्तिको प्राप्त करते हैं।

इस शास्त्र वचनके द्वारा रामानन्द रायने ब्रह्मज्ञानके साध्यत्वका निर्णय किया। ज्ञानमिश्रा उत्तमा भक्ति नही है। यहाँ ज्ञानमिश्रा भक्तिसे अभेद ब्रह्मानुभवरूप ज्ञान समझना चाहिये। परन्तु वह ज्ञान भगवत्तत्त्वानुसन्धान विषयक नहीं है। क्योंकि भगवत्तत्त्वानुभूतिके बिना भक्तिका उद्रेक ही नहीं हो सकता। इसी कारण प्रभुने इसको भी बाह्य कहा है।

ज्ञानशून्या भक्ति

रामानन्द रायने देखा कि प्रभुने ब्रह्मज्ञानकी भी उपेक्षा कर दी। तब उन्होंने ज्ञानशून्या भक्तिका प्रसङ्ग लेते हुए कहा—"प्रभु ! तब तो ज्ञानशून्या भक्ति ही साध्यतत्त्वका सार जान पड़ती है।" इसके प्रमाणमें उन्होंने श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकको उद्धृत किया—

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि—
र्येः प्रायशोऽजितजितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥

भा. १०.१४.३

श्लोकार्थ—ब्रह्माजीने कहा—"हे भगवन् ! जो अभेद ब्रह्मज्ञानमें तनिक भी प्रयास न करके साधु महाजनगणके निवास स्थानमें रहते हुए कर्णकुहरमें प्रविष्ट तुम्हारी अथवा तुम्हारे भक्तोंकी कथा काय-मन-वचनसे नमस्कार करके साधु महात्मागणसे श्रवणकर आस्वादन करते हैं, हे प्रभु ! तुम इस त्रिलोकीमें अजित होते हुए भी उनसे पराजित हो जाते हो।"

यह बात सुनकर प्रभु संन्तुष्ट होकर राय रामानन्दसे बोले—"अब साध्य-निर्णय तो हो गया, परन्तु इसके आगे और कुछ हो तो कहिये।" सिद्धान्त यह हुआ कि वर्णाश्रम धर्म पालनकी अपेक्षा भगवान्‌में कर्मार्पण श्रेष्ठ है, केवल कर्मार्पणकी अपेक्षा स्वधर्म त्याग, अर्थात् स्व स्व वर्णाश्रम धर्मको परित्याग करते हुए संन्यास ग्रहण करके वैराग्यनिष्ठ होना श्रेष्ठ है। तदपेक्षा ब्रह्मानुशीलन रूप ज्ञान मिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है। तथापि ये सब बाह्य हैं, क्योंकि साध्यवस्तु जो शुद्धा भक्ति है, वह इस चतुर्विध सिद्धान्तमें नहीं आती। आरोप-सिद्धा, और सङ्ग-सिद्धा भक्ति कभी शुद्धा भक्ति नहीं हो सकती। स्वरूपसिद्धा शुद्धाभक्ति पूर्णतः पृथक् तत्त्व है। यह कर्म, कर्मार्पण, कर्मत्यागरूप वैराग्य और ज्ञानमिश्रा भक्तिसे नित्य पृथक् है। इस शुद्धाभक्तिका लक्षण गोस्वामी शास्त्रमें वर्णित है। यथा, अन्याभिलाषिताशून्य, ज्ञान-कर्मादि द्वारा अनावृत, आनुकूल्यभावमें कृष्णानुशीलन ही साध्य वस्तु है। 'ज्ञाने प्रयास' श्लोकसे साधु निर्णीत होनेपर प्रभुने इस वृत्तिको साध्य-वृत्तिके रूपमें स्वीकार किया है, और इसको साधन-भक्ति भी कहा है।

इतनी देरके बाद प्रभु प्रफुल्ल वदन हो हँसते हुए राय रामानन्दसे बोले—"एहो हय, आगे कह आर"। अर्थात् साध्य तत्त्वमें यह ज्ञानशून्या

शुद्धा-भक्ति ग्राह्य है, परन्तु इसके परे और भी कुछ है, यही चरम नहीं है।

प्रेमाभक्ति

रामानन्द रायने प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखा। उन्होंने देखाकि प्रभु प्रेमाविष्ट होकर बात कर रहे हैं, उनके सारे अङ्ग प्रेमसे पुलकित हैं। प्रेममय श्रीगौराङ्ग प्रभु प्रेमभक्तिकी बात मन ही मन सोच रहे थे। प्रभुके मनमें जो इच्छा हो रही थी, उनकी इच्छासे रामानन्द रायके मनमें भी वही इच्छा बलवती हो गयी। श्रीभगवान्के मनका भाव भक्तहृदयमें प्रविष्ट हुआ। क्योंकि ऐसी शक्तिके बलसे ये सारी तत्त्वकी बातें राय रामानन्द प्रभुके चरणोंमें निवेदन कर रहे थे। उन्होंने समझा कि साधन भक्तितत्व प्रभुके मनके अनुसार नहीं हुआ। अब प्रेमाभक्तिकी बात उठानी चाहिये। रामानन्द राय हाथ जोड़कर बोले—"प्रभु! तब प्रेमाभक्ति ही सर्वसाध्यसार है।" प्रभुके श्रीवदन पर तब मधुर मुस्कान दीख पड़ी। रामानन्द रायने प्रभुके मनको समझकर स्वरचित निम्नलिखित दो श्लोक उद्धृत किये—

नानोपचार कृतपूजनमार्त्तबन्धोः
प्रेमैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात्।
यावत् क्षुदन्ति जठरे जरठा पिपासा
तावत् सुखाय भवतो ननु भक्ष्यपेये॥
कृष्णभक्ति रस भाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्मकोहिसुकृतैर्न लभ्यते॥

पद्यावली १३,१४

श्लोकार्थ—नाना उपचारसे पूजा करके प्रेम द्वारा भक्तहृदय आनन्द और सुखसे द्रवित हो जाता है। जब तक भूख-प्यास जठरमें वर्तमान है तब तक भक्ष्य और पेय पदार्थ सुखद है। सारांश यह है कि अनैकान्तिक भक्तगण नाना उपचारसे पूजा करके सुखी होते हैं, और ऐकान्तिक भक्तगण केवल प्रेमपूजासे सुखी होते हैं।

यदि किसी स्थान या व्यक्तिसे किसी लाभको संभावना है, तो कृष्णभक्तिरसभाविता मति अर्जन करो। इस विषयमें एकमात्र मूल्य लोभका है, और यह लोभ कोटि जन्मार्जित सुकृतिके द्वारा भी नहीं प्राप्त होती।

उपर्युक्त श्लोकोंमें एक श्रद्धामूलक है, और दूसरा लोभमूलक रागानुगा भक्तिका सूचक है। राय रामानन्दने यहाँसे वैधी भक्तिकी बात छोड़ दी है। अब वह राग भक्तिमार्गके सिद्धान्तकी बात कह रहे हैं।

प्रेमा भक्ति उत्तमा भक्तिके नामसे अभिहित है। साधन-भक्तिके द्वारा यह प्राप्तकी जाती है। इस प्रेमाभक्तिके अनेक सोपान हैं। वे सोपान प्रेमाभक्तिकी साधनाके अङ्ग हैं। शान्त भक्तोंकी कृष्ण निष्ठारूप प्रेमाभक्ति ज्ञानशून्या भक्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। परन्तु शान्त भक्तोंका कृष्ण निष्ठारूप प्रेम, श्रीकृष्णके चिदैश्वर्यकी अनुभूति-जनक कृष्ण-निष्ठाके होनेपर भी उसमें सेवाके अभावके कारण श्रीगौराङ्ग प्रभुने 'यह भी है' कहकर उसका केवल अनुमोदन किया और इससे भी बढ़कर कुछ हो तो पूछा।

राय रामानन्द परम पण्डित थे, उनका शास्त्रज्ञान अगाध था। वे प्रभुका मन देखकर राजमार्गकी प्रेमाभक्तिके सोपानोंके विषयमें एक-एक करके कहने लगे, तथा उनके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

दास्यप्रेम

प्रेमाभक्तिका प्रथम सोपान है दास्य भावमें प्रेममय श्रीभगवान्की सेवा। इसको दास्य भाव या दास्यप्रेम कहते हैं। राय रामानन्दने दास्यप्रेमको साध्यसार बतलाया, और शास्त्रप्रमाण देते हुए निम्नलिखित दो श्लोकोंको उद्धृत किया—

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥

भा. ९.५.१६

श्लोकार्थ—दुर्वासा ऋषि राजा अम्बरीषसे बोले—जिसके नामके श्रवणमात्रसे जीव निर्मल

और निष्पाप हो जाता है उस तीर्थपद श्रीभगवान्‌के दासोंके लिए कोई साधन बाकी नहीं रहता।

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्त निःशेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिक नित्य किङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि सनाथ जीवितम् ॥*

यामुन मुनि विरचित स्तोत्ररत्न ४६

निःसन्देह शुद्ध दास्यप्रेम उत्तमा भक्ति है, परन्तु इसमें श्रीभगवान् हमारे प्रभु हैं, और हम उनके दास हैं, यह ज्ञान विद्यमान रहने पर ऐश्वर्यकी अनुभूतिके द्वारा सम्भ्रम, भय, हृत्कम्प आदि उत्पन्न होते हैं। इनके द्वारा सेवा-सुखमें कमी आती है। अतएव श्रीगौराङ्ग प्रभुने और आगे पूछा। प्रभुने दास्यभावमय प्रेम भक्तिको साध्य मानकर केवल अनुमोदन किया, परन्तु उसे साध्यसारके रूपमें अङ्गीकार नहीं किया। यहाँ भावमयत्व अंशमें अनुमोदन तथा सेवासुख-सङ्कोचकारित्व अंशमें अङ्गीकार समझना चाहिये।

सख्यप्रेम

प्रभुने जब दास्यप्रेमके सम्बन्धमें 'यह भी ठीक है' कहा, तो राय रामानन्दने सोच-विचार करके सख्यप्रेमको सर्वसाध्यसार बताया।

राय रामानन्दने सख्यप्रेमके माहात्म्यको सूचित करने वाला एक श्लोक उद्धृत किया—

इत्थं सतां ब्रह्मसुधानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥

भा. १०.१२.११

श्लोकार्थ—"श्रीशुकदेवजीने कहा, जो ज्ञानियोंके सम्मुख परम ब्रह्म रूपमें प्रतीत होते हैं, तथा मायाश्रित लोगोंके सामने नरबालक रूपमें प्रकाशित होते हैं, उस अनन्त ऐश्वर्यपूर्ण तथा माधुर्यमय स्वयं भगवान्‌के साथ पुञ्ज पुञ्ज पुण्यशील व्रजगोप बालक आनन्दपूर्वक विहार करते हैं।

सख्यप्रेम दास्यप्रेमकी अपेक्षा उत्तम होता है। क्योंकि इसमें सङ्कोचका भाव नहीं होता, भय नहीं होता, प्रभुके ऐश्वर्यानुभवसे होने वाले सम्भ्रम आदि भाव मनमें उदय नहीं होते हैं। इस कारण सख्यप्रेम विशुद्ध होता है। अतएव दास्य भावकी अपेक्षा सख्यप्रेमकी प्रशंसा करते हुए प्रभुने रामानन्द रायसे कहा—"यह उत्तम प्रेमभक्ति है, परन्तु इसको साध्यतत्त्वका सार नहीं कह सकते। इससे जो बढ़कर हो उसे बतलाइये।"

वात्सल्यप्रेम

रामानन्द रायने प्रेमभक्ति साधनाका प्रसङ्ग उठाया है। उसके प्रथम और द्वितीय सोपानकी बात कह चुके। अब तृतीय सोपान वात्सल्य प्रेमको सब साधनोंका सार बनाया। इसके प्रमाणमें उन्होंने श्रीमद्भागवतके दो श्लोक उद्धृत किये।

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः॥

भा, १०.८.४६

राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूछा—"हे ब्रह्मन्! नन्द गोप महाराजने कौनसी श्रेय तपस्याकी थी, तथा उनसे भी बढ़कर महाभाग्यवती श्रीमती यशोदाजीने किस श्रेय व्रतका आचरण किया था, जिसके फलसे साक्षात् श्रीभगवान्‌ने पुत्रत्व स्वीकार करके उनका स्तन पान किया।

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥

भा. १०.९.२०

---

* हे नाथ! मैं कब तुम्हारा ऐकान्तिक नित्य किङ्कर बनकर सर्वदा तुम्हारा चिन्तन करके सेवा करते हुए सनाथ जीवन प्राप्त कर आनन्दित होऊँगा? अर्थात् इस समय तुम्हारे किङ्करत्वके अभावमें अनाथ होकर दुःख पा रहा हूँ। तुम्हारा ऐकान्तिक नित्य-किङ्कर होनेपर सनाथ हो जाऊँगा, और मेरे सब दुःख दूर हो जायेंगे। मैं जीवनमें परम आनन्द प्राप्त करूँगा।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि श्रीमती यशोदाजीके सौभाग्यकी सीमा नहीं है। शिव और विरञ्चि श्रीभगवान्‌के जिस प्रसादसे वञ्चित हैं, यहाँ तक कि उनकी वक्षःस्थल स्थिता लक्ष्मीजी नहीं पा सकी, वह प्रसाद यशोदाने प्राप्त किया।

वात्सल्यप्रेम सख्यप्रेमसे श्रेष्ठ है। क्योंकि सख्य प्रेममें प्रगाढ़ प्रेमानुरागयुक्त ताड़ना, भर्त्सना, बन्धनादि नहीं होते। गर्भधारण-जनित क्लेशादि, लालन-पालनजनित कष्ट सहिष्णुता आदि नहीं होते। अतएव वात्सल्य प्रेमको सख्यप्रेमकी अपेक्षा उत्तम कहकर उसकी प्रशंसा करते हुए प्रभुने कहा—"यह भी उत्तम है और आगे कहो।"

कान्ताप्रेम

राय रामानन्द प्रभुके श्रीवदन-मण्डलमें अपूर्व ज्योति देख रहे हैं, उनके श्रीमुखारविन्दमें हँसीके तरङ्ग उठ रहे हैं। प्रेमावतार प्रभु मानो प्रेममय हो रहे हैं। उनके नेत्रोंके कोणसे प्रेमालोक चमकता है। भक्त चूड़ामणि रामानन्द रायने रसिक शेखर श्रीगौराङ्ग सुन्दरके मनका भाव समझकर प्रेमभक्तिके अन्तिम सोपान कान्ताप्रेमका सर्वसाध्य-सार बताया।

व्रजका भजन माधुर्य भजन हैं। इस माधुर्य भजनका क्रमविकास दिखलाकर प्रभुकी प्रेरणासे राय रामानन्दने एक-एक करके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावके साधनकी बात कही। विधिभक्तिके साधनकी बात पहले कह चुके थे, अब प्रेमभक्ति साधनकी अन्तिम बात बोले। वेदान्तका ब्रह्मज्ञान प्रेमभक्ति साधनके प्रथम सोपान दास्यभावके समीप भी नहीं आ सकता। शान्तभावमें ब्रह्मजिज्ञासाकी निवृत्ति हो जाती है। प्रेमावतार श्रीगौर भगवान्‌ने अपने प्रेमिक रसिक भक्त राय रामानन्दके मुखसे प्रेमभक्ति साधनके क्रमको प्रकट किया। प्रेमधर्म साधन तत्त्व ब्रह्मज्ञानसे श्रेष्ठ है। दास्यप्रेमसे प्रेम भक्तिकी साधनाका आरम्भ होता है। दास्य भावमें श्रीभगवान्‌के प्रति जीवकी प्रेमभक्तिका प्रथम विकास दृष्टिगोचर होता है। सख्य और वात्सल्य इस दास्य भावकी क्रमोन्नतिके स्तर और प्रकाश हैं। मधुर भाव अर्थात् कान्ताभाव इसकी चरम सीमा हैं। राय रामानन्द अब प्रभुसे इसी कान्ताभावके विषयमें बोल रहे हैं। उन्होंने कान्ताभावको साध्यतत्त्वसार कहकर इसके प्रमाण स्वरूप श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित दो श्लोक उद्धृत किये :

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः।
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः॥
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ—
लब्धाशीषां य उद्गाद् व्रजवल्लवीनाम्॥

भा. १०.४७.६०

श्रीकृष्णभगवान्‌ने रासोत्सवके समय व्रजाङ्गनाओंके कण्ठमें भुजदण्ड डालकर उनके प्रति जो भगवत्प्रसाद वितरण किया था, वह प्रीति प्रसाद श्रीनारायणके वक्षःस्थलमें स्थित एकान्त रतिप्रदा लक्ष्मीदेवीके प्रति भी वे वितरण नहीं करते। फिर नलिनी गन्धशीला इन्द्रादिके पत्नीगणके प्रति वैसे सौभाग्यकी प्राप्ति कहाँ सम्भव है। यहाँ स्वकीया-परकीया भेद कथित हुआ है।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

भा. १०.३२.२

शुकदेवजीने कहा कि—"पीताम्बर धारण करने वाले तथा वनमालाधारी प्रफुल्ल कमल-वदन श्रीकृष्ण मन्मथके मन्मथ रूपमें गोपिकाओंके मण्डलमें आविर्भूत हुए।"

इस शास्त्रप्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि प्रकृत भक्तिमान् व्यक्तियोंमें व्रजगोपिकाएँ सर्वश्रेष्ठ हैं, और श्रेयगणमें श्रीकृष्णकी रासलीला सर्वोत्कृष्ट स्थानमें अवस्थित है। व्रजसुन्दरीगण श्रीवृन्दारण्यमें श्रीकृष्ण भगवान्‌के साथ कान्ताभावमें मधुर-रसका आस्वादन करके मधुर भजनका पथ प्रदर्शन करती हैं। मधुर रसके भजनका प्रवर्त्तन करने वाली

कृष्णानुरागिनी व्रजगोपिकाएँ हैं। प्रेमानुराग और प्रेमभक्ति मधुर भजनके मूलमन्त्र हैं। नवयौवन, प्रेमकी हँसी, मधुर चितवन, प्रेम-सम्भाषण, यही सब भगवान्‌की प्रेमपूजाके उपकरण हैं। लज्जा, धर्म, कुल, शील, मानको एकबारगी तिलाञ्जलि देकर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलमें आत्मसमर्पण करना ही प्रेमपूजाका अर्घ्य है। निजाङ्ग द्वारा श्रीभगवान्‌की प्रेमसेवा ही इसका नैवेद्य है।

श्रीकृष्णकी प्राप्तिके विभिन्न साधन हैं। परन्तु बुद्धिमान् भावुक अपने-अपने भावमें एकबारगी निमज्जित न होकर यदि निरपेक्ष भावसे विचार करे तो भावका तारतम्य समझमें आ सकता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—व्रजके भजनके ये ही पाँच भाव हैं। इनमें क्रमशः एकके बाद दूसरेकी श्रेष्ठता प्रतिपादन करते हुए राय रामानन्द सर्वोत्तम भाव मधुर भजनकी बात कह रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं। जब प्रेमभक्तिका साधक भावराज्यमें प्रवेश करता है, भावनिधि भगवान् तब उसकी भावसाधनासे सन्तुष्ट होकर कृपा करके उसको क्रमशः उच्चभावका अधिकारी बना देते हैं। श्रीगौर भगवान् भावग्राही हैं, वे कृपा करके जिसको जो भाव प्रदान करते हैं, उसके लिए वही सर्वोत्तम होता है। भावराज्यके राजा भावनिधि श्रीगौर भगवान् भावसाधनके समरमें जब अपने भक्त रथीको नियुक्त करते हैं, तो उनके गुण और साधनबलके अनुसार उनको भावके उपयुक्त पदवी प्रदान करते हैं। सभी भक्तवीर समान पदवी प्राप्त करें, इसका कोई कारण नहीं है। इसी कारण कविराज गोस्वामीने कहा है कि तटस्थ होकर विचारने पर तारतम्य देखा जाता है।

यहाँ 'तटस्थ' का अर्थ है अपने भावमें एकबारगी भूल न जाना। अपना-अपना भाव अपने पक्षमें सर्वोत्तम होने पर भी उत्तमाधिकारीका उत्तम भाव होता है तथा वही भाव उसके लिए सर्वोत्तम होता है। इस प्रकार विवेचना करके भावुक भक्तके भावके सम्मानकी रक्षा अवश्य कर्त्तव्य है। किसीके भावके साथ उपहास करना कभी उचित नहीं है। साधकके लिए भक्ति-साधनाके पथमें यह बहुत बड़ा विघ्न है।

राय रामानन्द मधुर रतिकी बात कह रहे हैं। जिसका दूसरा नाम है श्रृङ्गार रस। इस मधुर रसका माधुर्य सर्वापेक्षा अधिक है।

तटस्थ हइया मने विचार यदि करि।
सब रस हैते श्रृङ्गारे अधिक माधुरी॥

चै. च. आ. ४.४०

जैसे भक्तिरसामृत सिन्धुमें दक्षिण विभागमें स्थायीभाव लहरीमें लिखा है—

यथोत्तरमसौ स्वादु विशेषोल्लासमय्यपि।
रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते क्वापि कस्यचित्॥

भ. र. सि. २.५.३८

श्लोकार्थ—उत्तरोत्तर स्वादविशेषमें उल्लासमयी रति, वासनाभेदसे स्वादु बनकर कभी किसीके जीवनमें प्रकाशित होती है।

राय रामानन्दने कहा—"प्रभो! साध्य अर्थात् कृष्ण प्राप्तिके बहुविधि उपाय हैं, परन्तु उपाय विशेषके अनुसार कृष्ण-प्राप्तिके तारतम्यका विचार करना पड़ेगा। सौभाग्यशील मानव जिस-जिस भावके आलम्बनका अधिकारी होता हैं, वही उपाय अवलम्बन करके तदवस्थाके योग्य साध्यवस्तु कृष्णप्राप्ति ही उसके लिए श्रेय है। विशेषतः रसलोलुप और रस-प्राप्तिके अधिकारियोंके लिए दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसके विषयमें जो रागोदय होता है उसमें आविष्ट होनेसे रस चतुष्टषके तारतम्यकी उपलब्धि नहीं हो सकती। बल्कि निरपेक्ष भावसे देखने पर इन रसोंका तारतम्य समझा जा सकता है।

शान्तरसमें कृष्णैकनिष्ठता रूप गुण दास्यरसमें ममतायुक्त होकर अधिक समृद्ध हो जाता है। पुनः सख्यरसमें कृष्णैकान्तनिष्ठता और ममता विश्रम्भके

सहित मिलकर अधिक विकसित होती है। वात्सल्य रसमें फिर शान्त-दास्य और सख्यके तीनों गुण स्नेहाधिक्यके सहित युक्त होकर प्रतीत होते हैं। कान्तभाव रूप मधुर रसमें ये चारों गुण विकसित होकर अतिशय माधुर्य भावको प्राप्त होते हैं, इसमें गुणाधिक्य-क्रमसे स्वादाधिक्यकी वृद्धि होती है। अतएव तटस्थ विचारमें मधुर रस या शृङ्गार रस सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है।

ये सारी रसतत्त्वकी बातें राय रामानन्द प्रभुके चरणोंमें निवेदन कर रहे हैं। और वे प्रेमाविष्ट भावमें श्रवण कर रहे हैं। राय रामानन्द परम पण्डित, सूक्ष्मदर्शी और शास्त्रज्ञाता थे। उन्होंने कहा—

पूर्व-पूर्व रसेर गुण परे परे हय।
दुइ तिन गणने पञ्च पर्यन्त बाड़य॥
गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य बाड़े प्रति रसे।
शान्त दास्य सख्य वात्सल्य गुण मधुरे ते वैसे॥
आकाशादिर गुण जेन पर पर भूते।
दुइ तिन गणने बाड़े पञ्च पृथिवी ते॥
परिपूर्ण कृष्ण प्राप्ति एइ प्रेमा हैते।
एइ प्रेमार वश कृष्ण कहे भागवते॥

चै. च. म. ८.६६-६९

इतना कहकर भागवतके निम्नलिखित श्लोकका उद्धरण दिया :—

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्त्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः॥

भा. १०.८३.४५

अर्थ—श्रीकृष्ण बोले—"हे गोपीगण ! मेरी भक्ति समस्त प्राणियोंको अमृतत्त्वका कारण बनाती है, अतएव मेरे प्रति जो तुम्हारा स्नेह है, वह अति कल्याणकर है, क्योंकि उसके द्वारा मेरी प्राप्ति होती है।

इन बातोंकी एक विशद व्याख्या प्रयोजनीय है। उपर्युक्त पयार श्लोकोंका भावार्थ साधारण पाठकोंके लिए सुगम नहीं है, अतएव नीचे विस्तारपूर्वक व्याख्याकी जाती है।

जैसे आकाशका शब्द गुण स्पर्शगुण विशिष्ट होकर वायुमें रहता है। अतएव शब्द और स्पर्श दो गुण वायुके हो जाते हैं। वायुके गुण रूप-गुण-विशिष्ट अग्निमें रहते हैं, अतएव अग्निमें शब्द-स्पर्श और रूप तीन गुण हो आते हैं। अग्निके गुण रसगुणविशिष्ट जलमें हैं, अतएव जलमें शब्द-स्पर्श-रूप और रस चार गुण होते हैं। जलके गुण, गन्धगुणविशिष्ट पृथिवीमें हैं। अतएव शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध, ये पाँच गुण पृथिवीमें होते हैं। इसी प्रकार शान्तरसका कृष्णनिष्ठता रूप गुण, सेवागुणविशिष्ट दास्यरसमें है। अतः दास्यमें कृष्णनिष्ठा और कृष्ण सेवा दो गुण हैं। दास्यके गुण असङ्कोचगुणविशिष्ट सख्यरसमें हैं, अतएव सख्य रसमें कृष्ण-निष्ठा कृष्णसेवा तथा कृष्णमें असङ्कोच भाव, ये तीन गुण हैं, ममताधिक्यगुणविशिष्ट वात्सल्य-रसमें सख्यके गुण हैं। अतएव वात्सल्य रसमें कृष्णनिष्ठा, कृष्णसेवा, कृष्णमें सङ्कोचहीनता तथा कृष्णमें ममताधिक्य, ये चार गुण हैं। मधुररसमें इन चार गुणोंके अतिरिक्त निजाङ्ग द्वारा सेवन, ये पाँच गुण हैं। अतः गुणाधिक्यके कारण प्रत्येक रसमें उत्तरोत्तर स्वादकी अधिकता होनेसे, तथा मधुर-रसमें सब रसोंके गुणोंका समावेश होनेसे यह सर्वतोभावेन अधिकतर स्वादु है, तथा इस मधुर रसात्मक गोपी प्रेमके द्वारा परिपूर्ण रूपसे कृष्ण प्राप्ति होती है। अतएव मधुररसका भजन सर्वोत्तम भजन है। परन्तु इसका अधिकारी लाखोंमें कोई एक होता है। अनधिकारीके लिए मधुर-रसका भजन पतनका कारण बनता है। अप्राकृत रसास्वादन करते-करते प्राकृत रसानुभव होता है।

इसके बाद राय रामानन्द बोले—

कृष्णेर प्रतिज्ञा दृढ़ सर्वकाले आछे।
जे जैछे भजे कृष्ण तारे भजे तैछे॥

चै. च. म. ८.७०

इतना कहकर गीताके इस श्लोकको उद्धृत किया—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

गीता ४.११.

अर्थात् जो भक्त मुझे जिस भावसे भजता है, मैं भी उस भक्तको उसी भावसे अनुग्रह करता हूँ। अतएव हे अर्जुन ! मनुष्य सब प्रकारसे मेरे मार्गका अनुगमन करते हैं। व्रजगोपिकाओंके कृष्णप्रेमकी तुलना नहीं है। श्रीकृष्ण भगवान्ने गोपी प्रेमामृतमें अर्जुनसे कहा है—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ़ प्रेमभाजनम् ।।

अर्थात्—हे अर्जुन ! जो गोपिकाएँ अपना अङ्ग मुझे समर्पण करके (वह अङ्ग अपना नहीं है अर्थात् मेरा समझकर) आभूषणादिसे अलंकृत करती हैं, अर्थात् उनके अलङ्कारविभूषित देहको देखकर मुझे सुख मिलेगा, ऐसा सोचकर वे आभूषण आदि धारण करती हैं, आत्मसुखके लिए नहीं, उन गोपिकाओंसे भिन्न अन्य कोई मेरा निगूढ़ प्रेमभाजन नही हो सकता।

व्रजाङ्गनाओंके प्रेमभजनके अनुरूप भजन न कर सकनेके कारण व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण उनके सामने प्रेम-ऋणमें आवद्ध रहते हैं।

एइ प्रेमेर अधुरूप ना पारे भजिते ।
अतएव ऋणी हय कहे भागवते ।।

चै. च. म. ८.७१

अर्थात् अन्याय रसमें भक्तके भजनके अनुरूप प्रतिभजनमें श्रीकृष्ण सक्षम होते हैं, परन्तु मधुर रसोत्फुल्ल प्रेमके भजनके अनुरूप प्रतिभजन होते न देखकर श्रीकृष्णने कहा कि—"हे ब्रजसुन्दरीगण ! मैं तुम लोगोंके सामने ऋणी हूँ। यही पयारका भावार्थ है।

इतना कहकर राय रामानन्दने भागवतके निम्नलिखित श्लोकको पढ़ा।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या मा भजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्यतद् वः प्रतियातु साधुना ।।

भा. १०.३२.२२

श्लोकार्थ—श्रीकृष्णने कहा—"हे गोपिकागण ! मेरे साथ तुम्हारा संयोग निर्दोष है। अर्थात् काममयरूपमें प्रतीयमान होनेपर भी यह निर्मल प्रेममय है। तुमने जिस प्रकार दुर्जय-गृह बन्धनको तोड़कर मेरा भजन किया है, अर्थात् जिस प्रकार परम अनुरागी पूर्वक मेरे सामने आत्मसमर्पण किया है, तुम्हारे जैसे इस साधुकृत्यको मैं देवताओंकी आयु प्राप्त करके भी न कर सकूँगा। अतएव तुम्हारी सुशीलता द्वारा इसका प्रत्युपकार हो सकता है।"

इस बातसे श्रीकृष्ण भगवान्का 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' प्रतिज्ञा वचन भङ्ग हो जाता है।

व्रजाङ्गनाओंने जिस प्रकार श्रीकृष्णका प्रेम भजन किया था, श्रीकृष्ण उस प्रकारसे उनका भजन नहीं कर पाते। इसका कारण यह है कि व्रजगोपिकाओंकी श्रीकृष्णमें एकनिष्ठ रति है। उनमें एकनिष्ठ प्रेम है। श्रीकृष्णका प्रेम बहुनिष्ठ था, तथा व्रजाङ्गनाओंने अपने भजनधन श्रीकृष्णके लिए लोक-वेद-देह-व्यवहार आदि सब कुछ परित्याग कर दिया था, परन्तु श्रीकृष्ण यह नहीं कर पाते थे। अतएव उनकी प्रतिज्ञा भङ्ग होनेके कारण वे ब्रजगोपिकाओंके सामने चिरऋणी हो गये। अतः कान्ताभावमें मधुर भजन सर्वसाध्यसार है। राय रामानन्दने यही समझाया।

उनकी बात अभी समाप्त नहीं हुई। वह फिर बोले—

यद्यपि कृष्ण सौन्दर्य माधुर्येर धूर्य ।
व्रज देवीर सङ्गे तौर बाड़ये माधुर्य ।।

चै० च० म० ८.७२

श्रीकृष्ण सर्वसौन्दर्य और माधुर्यके आकार हैं। वे सुन्दरसे सुन्दर हैं, उनका माधुर्य उत्तमसे उत्तम

है। वे चिरसुन्दर हैं, उनका प्रेमभाव चिरमधुर है। परन्तु श्रीकृष्ण जब रासमण्डलमें व्रजाङ्गनाओंसे वेष्टित होकर सुशोभित हुए तो उनका सौन्दर्य और माधुर्य सौगुना बढ़ गया। यथा—

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः।
मध्ये मणीनां हैमानां महा मरकतो यथा॥

भा० १०.३३.७

श्लोकार्थ—जैसे सोनेकी मणिओंके बीच महामरकतमणि शोभा पाता है, उसी प्रकार रासमण्डलमें भगवान् देवकीसुत व्रजगोपिकाओंसे परिवेष्टित होकर अत्यन्त सुशोभित हो उठे।

इसका भावार्थ यह है कि कृष्णका असमोर्द्ध सौन्दर्य ही कृष्णके माधुर्यकी पराकाष्टा है, तथापि व्रजदेवियोंका सङ्ग होनेपर वह माधुर्य अनन्त गुणा बढ़ जाता है।

राय रामानन्दके मधुर भजन अर्थात् कान्ताभावमें श्रीकृष्ण भजनके सम्बन्धमें वक्तव्य समाप्त होनेपर प्रभुने मधुर हँसी हँसकर कहा—"कान्ताभावमें श्रीकृष्ण भजन ही साध्यतत्त्वकी सीमा है, यह निश्चित है। परन्तु रामानन्द! तुम परम रसिक भक्त हो, कृपा करके इसके आगे भी कुछ हो तो कहो।"

प्रभु कहे एइ साध्यावधि सुनिश्चय।
कृपा करि कह यदि आगे किछू हय॥

चै० च० म० ८.३७

राधाप्रेम

राय रानानन्दने देखा कि प्रेमभक्तिके द्वारा श्रीकृष्ण-भजनका चरम सोपान अपूर्व कान्ताभाव है, इससे भी प्रभुकी प्रश्न-जिज्ञासा निवृत्त नहीं हुई। वे विस्मित होकर प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखने लगे, और मन ही मन सोचने लगे कि—"इसके ऊपर और जो कुछ है उसे तो मैं जानता नहीं। ऐसा प्रश्न करने वाला पृथिवी पर कौन है, यह भी समझमें नहीं आता। परन्तु प्रभुकी प्रेरणासे मेरे मनमें हो रहा है कि व्रजगोपिकाश्रेष्ठा श्रीराधिकाका प्रेमही साध्य-शिरोमणि है।" यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया।

इहार मध्ये राधार प्रेम साध्य शिरोमणि।*
जाहार महिमा सर्वशास्त्रेते बाखानि॥

चै० च० म० ८.७५

इतना कहकर उन्होंने दो श्लोकोंको उद्धृत किया—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः॥

भा० १०.३०.२८

श्लोकार्थ—रासलीलामें श्रीराधिकाके साथ श्रीकृष्णके अन्तर्हित होनेपर व्रजाङ्गनाएँ श्रीकृष्णके पदचिह्नके साथ श्रीराधिकाके पदचिह्नका दर्शन करके बोली—"इन्होंने ही सर्वदुःखापहारी, सर्वाभीष्टप्रद हरिकी आराधना करके उनको वशमें किया है, क्योंकि हम लोगोंको परित्याग करके श्रीगोविन्द उनको एकान्त स्थानमें ले गये हैं। इस श्लोकके 'आनयाराधितः' इस अंशके द्वारा राधा नामके कारणका भी निर्देश कर दिया है। अर्थात् जो हरिकी आराधना करे, वही राधा है।

यथा राधा प्रियाविष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियन्तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥

लघु भागवतामृत उत्तरखण्ड ४५

श्रीराधा श्रीकृष्णको जिस प्रकार प्रिय है, श्रीराधाका कुण्ड भी उसी प्रकार प्रिय है। सब

---

* साधारण व्रजगोपिकाओंके कृष्णप्रेमसे श्रीराधाका कृष्णप्रेम साध्यशिरोमणि तत्त्व है। साधारण जीवके लिए श्रीराधिकाका भाव ग्रहण करके श्रीकृष्णभजन करनेका उपदेश नहीं है। सिद्धावस्थामें इस प्रकारकी योग्यता सम्भव है। साधनावस्थामें श्रीराधिकाकी सखी तथा उनकी परिचारिकाओंके भाव अनुकरणीय हैं। उद्धव दर्शनमें श्रीराधिकाका जो भाव महाप्रभुमें लक्षित होता है, वह जीवके लिए साध्य नहीं है।

गोपीगणके मध्य श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी प्रियतमा प्रेयसी हैं।

राय रामानन्दके मुखसे श्रीराधा प्रेमका माहात्म्य सुनकर प्रभु आनन्दमें गद्गद हो उठे। परन्तु भक्तचूड़ामणि राय रामानन्दके मुखसे श्रीराधिकाके कृष्णप्रेमकी प्रगाढ़ता प्रकट करनेके अभिप्रायसे उनसे एक प्रश्न पूछा—"श्रीराधिका श्रीकृष्णकी अत्यन्त बल्लभा थी, इसका प्रमाण क्या है? गोपीगणके बीचसे श्रीराधिकाको रासके समय श्रीकेष्ण एकान्तमें ले गये, यह तो प्रेमका कार्य नहीं है? यह तो चोरका काम है। इससे समझना होगा कि गोपिकागणके अनजाने श्रीकृष्ण इशारा करके श्रीराधिका को गुप्त स्थानमें ले गये थे। अर्थात् गोपियोंके भयसे श्रीकृष्णने यह कार्य किया था। यदि गोपियोंके सामने श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके प्रति अपना आत्यन्तिक प्रेमभाव दिखा सकते, तो श्रीराधिकाके प्रति उनके दृढ़ानुरागका प्रमाण और परिचय प्राप्त होता। इस कार्यमें श्रीकृष्णका राधा प्रेम 'अन्यापेक्षा' दोषदूषित है रामराय! तुम पण्डित और रसज्ञ हो। तुम इसका विचार करके मुझको समझाओ।"

राय रामानन्द बड़ी विपद्में पड़े। प्रभुके इस प्रश्नका उत्तर देना उनके लिए असाध्य था। प्रभुने किन्तु उनके ऊपर कृपा करके अपनी शक्ति प्रदानकी है। उनके मुखसे सारी तत्त्वकी बातें प्रकाशित कर रहे हैं। प्रभुकी कृपाके बलसे राय रामानन्द आज सर्वतत्व-वेत्ता हैं। उन्होंने प्रभुकी चरण-धूलि लेकर हाथ जोड़कर निवेदन किया।

राय कहे—तबे शुन प्रेमेर महिमा।
त्रिजगते राधाप्रेमेर नाहिक उपमा॥
गोपी गणेर रासनृत्य-मण्डली छाड़िया।
राधा चाहि बले फिरे विलाप करिया॥

चै० च० म० ८.७९, ८०

इतना कहकर राय रामानन्दने रसिकभक्त चूड़ामणि श्रीजयदेव कविकृत निम्नलिखित दो श्लोकोंका पाठ किया।

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धश्रृङ्खलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः॥
इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिका-
मनङ्गवाणव्रणखिन्न मानसः।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी
तटान्तकुञ्जे विषसाद माधवः॥

गीत गोविन्द ३.१,२

श्लोकार्थ—कंसारि श्रीकृष्ण सम्यक् सारभूत रासलीला वासनाकी बद्धश्रृङ्खला श्रीराधिकाको हृदयमें धारण करके अन्य व्रजसुन्दरियोंको त्याग कर चले गये।

इतस्ततः श्रीराधिकाका अन्वेषण करते हुए, उनको न पानेके कारण अनङ्गशरसे आहत, खिन्न चित्त होकर कालिन्दी नदीके तटपर अवस्थित कुञ्जमें बैठकर श्रीकृष्ण विषाद करने लगे।

राय रामानन्दने प्रभुसे कहा—"ये दो श्लोक जो मैंने आपको सुनाये, इनके मर्मका विचार करनेपर अमृतका स्त्रोत फूट पड़ेगा। प्रभुकी प्रेरणा और इच्छासे राय रामानन्द इस श्लोकका मर्मार्थ विचारनेके लिए बैठे।

राय रामानन्द बोले—"रासलीलामें श्रीकृष्णने शतकोटि गोपाङ्गनाओंके साथ श्रृङ्गार रास विलास किया था। श्रीकृष्ण सब गोपियोंके साथ एक शरीरसे एक साथ समभावमें रमण करने लगे। एक गोपी एक कृष्ण, एक कृष्ण एक गोपी—इस प्रकार एक साथ शतकोटि गोपियोंके साथ श्रीकृष्ण रासमण्डलीके मध्य श्रीराधाके समीप अपनी मूर्तिको रखकर जब रासविलास कर रहे थे, तब यह देखकर श्रीमती राधिकाको मान हो गया। उनने कृष्णप्रेमकी सर्वत्र समता देखी, अर्थात् श्रीकृष्णने अन्य गोपियोंके कन्धे पर जिस प्रकार अपनी भुजाएँ रखी थीं, उसी प्रकार श्रीराधिकाके कन्धे पर भी रखी थी। प्राणकान्तका यह समभाव

देखकर श्रीराधाके प्रेममें वामता आ गयी*। तब श्रीवृन्दावनेश्वरी मानिनी श्रीराधिकाको दुर्जय मान हो गया। वे तत्काल रासमण्डल छोड़कर चली गयीं। रासलीला भङ्ग करके श्रीकृष्ण व्याकुल होकर अपनी प्राणवल्लभाकी खोजमें निकल पड़े। रसिक राज श्रीकृष्णकी तीव्र वासना थी कि वे श्रीराधिकाको लेकर गोपिकावृन्दके साथ रासलीलाको पूर्ण करें। उनकी इस रासलीलाकी वासनाका मूल श्रीराधा प्रेमरूपी शृङ्खलासे आवद्ध था। अर्थात् श्रीकृष्णकी रासलीला-वासना श्रीराधा रूपी निगड़में बँधी थी। अतएव जब श्रीकृष्णने देखा कि—उनकी हृदयेश्वरी रासमण्डली त्याग कर चली गयी है तो वे प्रचण्ड अनङ्ग वाणसे विद्ध होकर इतस्ततः प्राणवल्लभाका अनुसन्धान करने लगे। परन्तु कहीं उनको न पाकर कालिन्दी तटपर एक कुञ्जमें एकान्तमें बैठकर खिन्न होकर चिन्ता करने लगे। इससे स्पष्ट जाना जा सकता है कि श्रीकृष्ण श्रीराधाके प्रेममें कैसे अनुरक्त थे। शत कोटि व्रजगोपिकाएँ मिलकर एक श्रीराधाकी समता नहीं कर सकती। शत कोटि गोपियाँ श्रीकृष्णकी रासविलास वासनाको पूर्ण करनेमें असमर्थ हो गयीं। श्रीकृष्ण अनायास ही उन शत कोटि सुन्दरी व्रजाङ्गनाओंके प्रेमपाशको छिन्न करके श्रीमती राधिकाके लिए व्याकुल होकर श्रीयमुनाके तीर बैठकर अनङ्ग वाणसे जर्जरित होकर विषादके समुद्रमें निमज्जित हो गये। इससे ही उस कृष्णप्रेममयी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाके अपूर्व प्रेम माहात्म्य और गुणको समझ लें। वे श्रीकृष्णकी अत्यन्त वल्लभा हैं, उनसे बढ़कर श्रीकृष्णकी प्रियतमा और कोई नहीं है।"

राय रामानन्दके मुखसे श्रीराधिकाका माहात्म्य श्रवण करके श्रीगौराङ्ग प्रभु प्रेमानन्दमें द्रवित हो गये। अपने प्रश्नका यथार्थ उत्तर पाकर प्रभु प्रेमभावमें बोले—

"— जे लागि आइलाम तोमा स्थाने।
सेइ सब रस वस्तु तत्व हइल मोर ज्ञाने॥
एबे से जानिल साध्य-साधन निर्णय।
आगे आर किछु शुनिवार मन हय॥
कृष्णेर स्वरूप कह-राधार स्वरूप।
रस कोन तत्त्व, प्रेम कोन तत्त्वरूप॥
कृपा करि एइ तत्त्व कहत आमारे।
तोमा बिना केह इहा निरूपिते नारे॥"

चै० च० म० ८.८९-९२

प्रभुकी यह बात सुनकर राय रामानन्दने हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें निवेदन किया—

—"इहा आमि किछुइ ना जानि।
जे तुमि कहाओ सेइ कहि आमि वाणी॥
तोमार शिक्षाय पड़ि—जेन शुकेर पाठ।
साक्षात् ईश्वर तुमि के बूझे तोमार नाट॥
हृदये प्रेरण कर, जिह्वाय कहाओ वाणी।
कि कहिये भाल मन्द किछुइ न जानि॥"

चै० च० म० ८.९३-९५

कलिके प्रच्छन्न अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभु चतुर शिरोमणि हैं—उनकी चतुरता अतुलनीय है। प्रच्छन्न अवतारका यह प्रच्छन्न भाव बड़ा ही मधुर हैं। वे विनयकी खानि हैं, दैन्यके अवतार हैं। जैसे उनकी अपरूप रूपराशि है, वैसे ही उनकी असीम अनन्त गुणराशि है। इसीकारण उनको महाजनगण भक्तावतार कहते हैं। प्रभुने भक्तोचित दैन्यके साथ राय रामानन्दकी बातका उत्तर दिया। यथा,

प्रभु कहे, मायावादी आमि त संन्यासी।
भक्ति-तत्त्व नाहि जानि मायावादे भासि॥
सार्वभौम सङ्गे मोर मन निर्मल हैल।
कृष्ण भक्तितत्त्व कथा ताँहारे पूछिल॥
तिहों कहे—आमि नाहि जानि कृष्ण कथा।
सबे रामानन्द जाने तँहो नाहि एथा॥

---

* अहेरिव गमिः प्रेम्णाः स्वभाव कुटिला भवेत्।
अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति॥

उ० नी० १५.१०२

तोमार ठाँइ आइलाम तोमार महिमा शुनिञा ।
तुमि मोरे स्तुति कर संन्यासी जानिञा ।।"

चै० च० म०८.९५-९६

इतनी बात कहते कहते प्रभुने कृष्ण कथाके प्रसङ्गमें सर्वतत्त्वसार गुरुतत्त्वकी बात शुरु की। राय रामानन्दने प्रभुके साथ प्रथम परिचयमें अपनेको शूद्राधम कहकर दैन्य प्रकाश किया था। अब प्रभुने उनका किस प्रकार सम्मान किया, देखिये। प्रभु जलदके समान गम्भीर स्वरमें बोले—

किबा विप्र किबा न्यासी शूद्र केने नय।
जेइ कृष्ण तत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय।।

चै० च० म० ८.१००

अर्थात् कृष्णतत्त्ववेत्ता शूद्र भी *वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मणका गुरु हो सकता है। कृष्णतत्त्ववेत्ता शूद्रको भी गुरुपदमें वरण करके उनके श्रीचरणके समीप बैठकर श्रीकृष्णतत्त्व श्रवण करना चाहिये।

इतनी बात कहकर प्रभुने राय रामानन्दके मुँहकी ओर देखा। और देखा कि उनका मुँह लज्जासे अवनत हो गया है। चतुर शिरोमणि प्रभु पुनः दैन्यपूर्वक सुधा-मधुर वचन बोले—

"रामानन्द राय! मैं मायावादी संन्यासी हूँ, यह समझकर मेरे साथ प्रवञ्चना न करें। मैंने आपके द्वारा सारे साध्य-साधन तत्त्व जान लिये। अब श्री श्रीराधाकृष्ण तत्त्वकी बात कहकर मेरी प्रेम-पिपासा दूर कीजिये।

राय रामानन्दको प्रभुने स्वयं शक्तिशाली बनाया है। प्रभुकी इच्छा और प्रेरणासे वे व्रजके निगूढ़ भजनतत्त्वके रहस्यको क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—

—"आमि नट तुमि सूत्रधार।
जे मत नाचाह, तैछे चाहि नाचिवार।।
मोर जिह्वा वीणा-यन्त्र तुमि वीणाधारी।
तोमार मने जेइ उठे—ताहाइ उच्चारि।।"

चै० च० म० ८.१०४.१०५

इतना कहकर राय रामानन्दने प्रभुकी चरण धूलि लेकर श्रीकृष्णतत्त्व कहना प्रारम्भ किया। यथा,

ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान्।
सर्व-अवतारी सर्व-कारण-प्रधान।।
अनन्त वैकुण्ठ आर अनन्त अवतार।
अनन्त ब्रह्माण्ड इहा सबार आधार।।

---

* श्रीसम्प्रदायके श्रीयमुनाचार्यके गुरु श्रीशठकोपाचार्य थे। ये रामानुज स्वामीके भी मन्त्रगुरु थे। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीनरोत्तमदास ठाकुर श्रीगङ्गानारायण चक्रवर्ती और रामकृष्ण भट्टाचार्य आदि अनेक कुलीन ब्राह्मणोंके गुरु थे। यदुनन्दन चक्रवर्तीने दास गदाधरसे मन्त्र ग्रहण किया था। वर्णाश्रम धर्मके सिद्धान्तसे दीक्षामें ब्राह्मण गुरु आवश्यक हैं। परन्तु कृष्णतत्त्व ज्ञानार्जनमें जिनकी वृत्ति है, जो सब जीवोंका परमार्थ है उसें पूर्ण करनेके लिए इस तत्त्वज्ञानके गुरुके बिषयमें विचार करने पर वैष्णव शास्त्रके मतसे यह सिद्धान्त आता है कि विष्णुतत्त्ववेत्ता विप्र हो या शूद्र हो, गृहस्थ हो या संन्यासी हो, वह सब वर्णोंका गुरु हो सकता है। श्रीहरिभक्ति-विलासमें जो यह विधि है कि उच्च वर्णका योग्य गुरु विद्यमान हो तो हीन वर्णसे उत्पन्न व्यक्तिसे कृष्णमन्त्र ग्रहण करना कर्त्तव्य नहीं है, यह लोकापेक्षी विधि मार्गके वैष्णवके लिए विधान है। जो लोग विधि और राग मार्गके मर्मका अनुशीलन करके विशुद्ध कृष्णभक्ति प्राप्त करनेके अभिलाषी हैं. उनके लिए उपयुक्त कृष्णवेत्ता गुरु जिस वर्ण या जिस आश्रममें मिले ग्रहण करने योग्य है। गुरुकी योग्यता एक मात्र कृष्णतत्त्वज्ञताके ऊपर निर्भर करती हैं, जातिवर्ण या आश्रमविशेषके ऊपर निर्भर नहीं करती। श्री मन्महाप्रभुने राय रामानन्दको यह शास्त्र-तात्पर्य समझा दिया।

सच्चिदानन्द तनु व्रजेन्द्रनन्दन ।
सर्वैश्वर्य-सर्वशक्ति-सर्वरसपूर्ण ।।[१]
वृन्दावने अप्राकृत नवीन मदन ।
कामगायत्री कामबीजे जाँर उपासन ।।
पुरुष योषित किवा स्थावर जङ्गम ।
सर्वचित्ताकर्षक साक्षात् मन्मथमदन ।।[२]
नाना भक्तेर रसामृत नानाविध हय ।
सेइ सब रसामृतेर विषय आश्रय ।।[३]
शृङ्गार रसराजमय मूर्त्तिधर ।
अतएव आत्मपर्यन्त सर्वचित्तहार ।।[४]

१ ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारण कारणम् ।।
ब्रह्मसंहिता ५.१

श्रीकृष्ण परम ईश्वर हैं । वे सच्चिदानन्द विग्रह है । अनादि होते हुए भी सबके आदि हैं । वे गोविन्द एवं समस्त कारणोंके कारण हैं ।

२ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ।।
भा० १०.३२.२.

इस श्लोकका भावार्थ पहले पृष्ठ संख्या १४४पर दिया जा चुका है ।

३ अखिलरसामृतमूर्त्तिः प्रसृमररुद्धतारकापालिः ।
कलित श्यामाललितो राधाप्रेयान् विधूर्जयति ।।
भ० र० सि० १.१.१.

अर्थ—जो अखिल रसामृत मूर्त्ति हैं, जिनकी प्रसरणशीलताके द्वारा तारका-पालिका रुद्ध है, श्यामललित वर्णके वे श्रीराधा-प्रेम-शशधर जययुक्त हों ।

४ विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणी-श्यामल कोमलैरुपनयन्न-ङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरमितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृंगारःसखि मूर्त्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ।
गीतगोविन्द १.११

अर्थ—हे सखि ! अनुरञ्जनके द्वारा सब गोपियोंको आनन्दित करते हुए तथा नीलकमल श्रेणीसे भी श्यामल और कोमलाङ्गके द्वारा उनके हृदयमें अनङ्गोत्सव प्रकट करके, और उनके द्वारा स्वच्छन्दरूपसे अङ्ग-प्रत्यङ्ग आलिङ्गित हो करके मूर्त्तिमान शृङ्गार-रस-स्वरूप श्रीकृष्ण वसन्त कालमें क्रीड़ा करते हैं ।

लक्ष्मी कान्तादि अवतारेर हरे मन ।
लक्ष्मी आदि नारीगणेर करे आकर्षण ।।[१]
आपन माधुर्य हरे आपनार मन ।
आपने आपनी चाहे करिते आलिङ्गन ।।[२]
चै० च० म० ८.१०६-११४

राय रामानन्दने इन कतिपय शब्दोंमें श्रीकृष्ण भगवान्के स्वरूप तत्त्वका वर्णन किया । इस संक्षिप्त वर्णनमें लघु भागवतामृत और षट्सन्दर्भके समस्त तत्त्वनिधिका सार निहित है । इसकी विस्तृत व्याख्या करने पर एक पृथक् वृहद् ग्रन्थ तैयार हो जायगा । तत्त्वपिपासु कृपालु पाठकवृन्द मूल ग्रन्थद्वय तथा टीका पाठ करके जान जाँयगे कि राय-रामानन्दने संक्षेपमें श्रीकृष्ण तत्त्वके वारेमें क्या कहा है ।

काम गायत्री

राय रामानन्दने श्रीकृष्णको श्रीवृन्दावनका अप्राकृत नवीन मदन बतलाया और कामबीज तथा

१ कस्यानुभावेऽस्य न देव विद्महे
तवाँघ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
वद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरन्तयो
विहारकामान् सुचिरं धृतव्रता ।।
भा० १०.१६.३६

अर्थ—नागपत्नियोंने श्रीकृष्णके प्रति कहा—"हे देव ! जिसको पानेकी इच्छासे कमलाने बहुत कालसे निखिल-कामना-विसर्जनपूर्वक धृतव्रत होकर तपश्चर्या की थी, वह पदरेणु इस कालीयनागने किस पुण्यसे प्राप्त करनेका अधिकार पाया, यह हम नहीं जानती ।"

२ अपरिकल्पितपूर्व. कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूरः ।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेता
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ।।
ललित माधव नाटक ८.३४

अर्थ—नव वृन्दावनमें मणिभित्तिमें अपना प्रतिबिम्ब अवलोकन करके श्रीकृष्णने कहा—"अहो, अननुभूतपूर्व चमत्कार-जनक एवं गरीयान [श्रेष्ठ] कैसी अनिर्वचनीय मेरी माधुर्य-राशि प्रकाश पा रही हैं, जिसके दर्शन करके मैं भी लुब्ध-चित्त होकर श्रीराधाकी तरह उत्सुकता सहित उपभोग करनेकी अभिलाषा करता हूँ ।"

काम गायत्रीके* द्वारा उनकी उपासनाकी बात कही। प्राकृत मदन जीवके चित्तको क्षुब्ध करके विषयासक्त करता है। अप्राकृत मदन श्रीवृन्दावनचन्द्र सबके चित्तको क्षुब्ध करके अपनेमें आसक्त करते हैं। इसी कारण "अप्राकृत मदन" कहा हैं। कविराज गोस्वामीने भी कहा है —

* कामगायत्रीकी व्याख्या।

१	२	३	४	५	६	७	८
का	म	दे	वा	य	वि	द्म	हे
९	१०	११	२	१३	१४	१५	१६
पु	ष्प	वा	णा	य	धी	म	हि
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
त	न्नोऽ न	ङ्ग	प्र	चो	द	यात्	

यह कामगायत्री साढ़े चौबीस अक्षरोंकी है।

श्रीपाद प्रबोधानन्द गोस्वामीकृत कामगायत्रीकी व्याख्या—

"कामेन अभिलाषेण स्वविषय प्रीतिदार्ढ्येन दीव्यति क्रीड़ति। दिव्य क्रीड़ायाम्। तस्मै कामदेवय विद्महे [विद्लाभे विद् ज्ञाने वा] धीमहि ध्यायेमः। कामदेवाय [कथंभूताय]—पुष्पवाणाय [पुष्पं कमलं तदेव वाणं यस्य तस्मै] तन्नोऽनङ्गः कन्दर्पः न अस्मात् प्रचोदयात् प्रकर्षेण प्रकृष्ट रूपेण उदयात् उदयं करोतीत्यर्थः। चकार समुच्चये। क्लीं पदेन मूर्त्तिमान् पुरुषः। कामपदेन गण्डद्वयं। देवपदेनात्र आस्यम् भाल उच्यते। अभिलाषेण स्वविषय प्रीतिदार्ढ्येण चन्द्रमण्डलेन दीव्यति क्रीडति। तकारेण अर्द्धचन्द्रः। भाले तिलकः चन्द्रः। सार्द्धचन्द्र चतुष्टयं इतो भिन्न शिरोऽवधि क्रमात् क्रमरूपेण विंशत्यक्षरेण विंशति चन्द्रा उच्यन्ते। कामगण्डद्वये स्नेहे विलासे सद्वितृष्णयोरिति भास्वतिः।

का—ककारश्चन्द्रिमा चन्द्रविलासानावसानयोः। इति कामपालः।

म—मकारो मधुरे हास्ये विकाशेस्थावितृष्णयोः। इति ऋषभः।

दे—दे इति दा-दाने औणादिकत्वादेकारः। दा-मा-स्मा-च्नो स्मायामिति ए प्रत्ययः।

चन्द्रे तु विलासे च गहने मण्डलेऽपि च। इति देव द्योतिः। देवश्चन्द्रमण्डले आस्ये हरिदास विलासयोरिति व्याघ्रभूतिः।

व इति वन् वन् सम्भूतौ वन धातु औणादकत्वात् पञ्चम्यन्तात् भातेर्भ इति भ प्रत्ययः।

वा—प्रकारे लास्ये लावण्ये इन्द्रायुधे शशधरे इति भास्वतिः।

आकारस्तु वकारेण अर्द्धचन्द्र प्रकीर्तितः। लक्षणानुरोधात्।

य—यत् चन्द्रार्द्ध वैभवञ्च विलासे दारुणं भयमिति व्याडिः। यि शब्दादि पञ्चाक्षरेण दक्षिणा वर्त्तक्रमेण पञ्चचन्द्रा उच्यन्ते। तद्यथा विद्महे पुष्प इत्यादि वाणादि पञ्चाक्षरेण वामावर्त्तादि क्रमेण पञ्च चन्द्रा उच्यते। तद् यथा वाणाय धीमहि इत्यादि। तत्र कौस्तुभस्य मतेरधस्तात् वामदाक्षिणरूपेण दशाक्षरेण चन्द्रा उच्यन्ते। तत्र दक्षिणादिक्रमेण हि शब्दादि पञ्चाक्षरेण पञ्चचन्द्रा उच्यन्ते। तद् यथा हि तन्नोऽनङ्ग इत्यादि। प्रशब्दादि पञ्चाक्षरेण पञ्चचन्द्रा उच्यते। प्रचोदयात् इत्यादि।

वि—विशब्दो विविधे प्राज्ञे अङ्गने च शशधरे। इति विश्वः। भू, धात्र धारण पोषणयोर्धातोरौणादिक अप्रत्ययान्ता नियात्त धातोदयि इति नियातश्च इति।

द्म—मः मकारो बिविधे नृत्ये तेजाराशौ शशधरे इति भास्वतिः।

हे—हे शब्दे हेतुके विज्ञे इन्दौ गुण रसालशो इति कामतन्त्रः।

पुष्प—ष्पकारो विविधे प्राज्ञे विधौ च मुक्तिदायनु इति रत्नहासः।

वा—वा शब्दो बुद्धौ प्राज्ञे च विधौ चन्द्राभिवादयो इति गौतमः।

णा—णाकारो विषयाविष्टे नित्यचन्द्र रसायने इति स्वभूतिः।

(शेषांश अगले पृष्ठपर)

जिनि पञ्चशर दर्प, स्वयं नव कन्दर्प,
नाम धरे मदनमोहन। इत्यादि।
चै० च० म० २१०८६

(शेष पृष्ठ १५३ की टिप्पणी)

य—यकारश्चन्द्रविश्वे च विशालाक्षि रसाकरे इति व्याघ्रभूतिः।

धी—धी शब्दो बुद्धौ प्राज्ञे च विधौ चन्द्राभिवादयोः इति गौतमः।

म—मकारो मारुते व्रघ्ने प्रभाकरे निशाकरे इति स्वभूतिः।

हि—हि शब्दो हि रसावेशे हिंगूले चन्द्रमण्डले इति देवद्योतिः।

अनङ्ग—अनङ्गो मदने विश्वेऽनङ्ग चन्द्रविभावले इति गौतमिः।

प्र—प्रशब्दो विविधे नृत्ये प्रकृष्टे चन्द्रमण्डले। इति व्यग्रतूतिः।

चो—चश्चण्डेशे कच्छपे च चण्डे गौरे तथैव च इति मेदिनी।

द—दकारो विविधे नृत्ये चन्द्रेविद्याधरेऽपिच इति भास्वतिः।

या—आसने च विधायान्तु याकारश्चन्द्र उच्यते इति चन्द्रगौतमिः।

त्—स्तवस्तोत्र विकाशेषु तकारश्चन्द्र उच्यते।

क्लीं बीजका अर्थ।

क कामदेव उद्दिष्टोऽप्यथ कृष्ण उच्यते। ल इन्द्र, ई तुष्टिवाच। सुख दुःख प्रदश्च लं। कामबींजार्थ उक्तो वै तव स्नेहात् महेश्वरि।

भावार्थ—कामदेव मनुष्यके हृदयमें कामना बीज उद्दीहित करते हैं। उस कामको विनष्ट या मोहित करनेके कारण कृष्ण आत्माराम हैं। कृष्णकी प्रसन्नतासे जीवका काम नष्ट होता है, तथा निरवच्छिन्न सुखकी प्राप्ति होती है।

जैसे वेदमें 'चक्षुषश्चक्षुः, श्रोत्रस्य श्रोत्रं, मनसो मनः' कहकर ब्रह्मका निरूपण किया है, उसी प्रकार श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' कहकर सौन्दर्य और माधुर्यकी खानि श्रीकृष्णके अपूर्व स्वरूपका निरूपण किया है। इसी कारण राय रामानन्दने कहा है—'सर्वचित्ताकर्षक साक्षान्मन्मथमदन'। उन्होंने श्रीकृष्णका यह तत्त्व निरूपण करके प्रतिपन्न किया कि श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्णकी सारी कामकेलि अप्राकृत थी, अर्थात् स्वरूपभूत सच्चिदानन्दमय तथा प्राकृत कामको क्षुब्ध करने वाली थी, अतएव विशुद्धसे विशुद्धतम थी। चिन्मय श्रीवृन्दावनधाममें श्रीकृष्ण प्रकृतिके परे अभिनव स्वरूपमें विराजमान थे। मदन शब्दका अर्थ प्राकृत भावमें काम तत्त्व होता है। प्राकृत जगत्में मांस पिण्डजन्य शरीरको परस्पर आकर्षण करने वाली शक्तिके प्रभावसे जो काम उत्पन्न होता है, वह अत्यन्त हेय है। इस कामतत्त्वका गन्ध भी 'वृन्दावनमें अप्राकृत नवीन मदन' में नहीं है। श्रीकृष्ण-सम्बन्ध-तत्त्वको जाननेके लिए प्राकृत जीवको अप्राकृत चिन्मय अवस्थामें अवस्थित होना पड़ता है। वह अवस्था दो प्रकारकी है, स्वरूपगत और वस्तुगत। तत्त्व प्रतीति हो गयी है, परन्तु वस्तुतः जड़ गन्ध जाती नहीं है। ऐसी अवस्थामें चिन्मय सम्बन्ध कथंचित् उत्पन्न हो तो ही वृन्दावन-स्थितिकी संभावना होती है, परन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं। स्थूल और लिङ्गमय जड़तत्त्वके साथ श्रीकृष्णकी इच्छासे पूर्णतः सम्बन्ध रहित होने पर ही वस्तुतः वृन्दावन स्थिति या वृन्दावन वास प्राप्त होता है। स्वरूप अवस्थासे साधना है, उसी समय चिन्मय काम गायत्री कामबीजमें श्रीकृष्णकी उपासना सिद्ध होती है। स्त्री-पुरुष, स्थावर जङ्गम सबको सर्वचित्ताकर्षक श्रीकृष्ण निज रूपमें आकर्षण करते हैं। इसी कारण वे अप्राकृत मदन हैं, मन्मथ-मन्मथ हैं। कामगायत्री साढ़े चौबीस अक्षरका एक वेद मन्त्र विशेष है। कामक्रीड़ा सतन्त्रा 'क्लीं' बीजका नाम काम बीज

है। इसका अर्थ है—"क, कामदेव उद्दिष्टोऽप्यथ कृष्ण उच्यते। ल, इन्द्र। ई, तुष्टिवाची सुखदुःखप्रदञ्च। अं, कामबीजार्थ, उक्तो वै तव स्नेहात् महेश्वरि।

भावार्थ—कामदेव मानवके हृदयमें कामना बीज उद्दीपन करते हैं। उस कामको विनष्ट या मुग्ध करनेके कारण श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। श्रीकृष्णकी प्रसन्नतासे जीवका काम नाश होता है, तथा निरवच्छिन्न सुख प्राप्त होता है।

अनन्त बैकुण्ठमें अनन्त ब्रह्माण्डमें अनन्त अवतारके श्रीकृष्ण एकमात्र आश्रय हैं। जितने भक्त, जितने साधक, जितने उपासक हैं, उन सबके वे ही एकमात्र आश्रय और विषय हैं। जितने रस, जितने तत्व, जितने गुण हैं, उन सबका पर्यवसान एक उन्हींमें होता है। वे उज्ज्वल श्यामवर्ण विशिष्ट पुराण-पुरुष और परम-नारायण हैं। क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या स्थावर, क्या जङ्गम, सबके वे चित्ताकर्षक हैं। अधिक क्या कहें, अपने सौन्दर्यमें वे आप विमुग्ध होकर अपनेको आस्वादन करके सन्तुष्ट होते हैं।

श्रीकृष्ण तत्त्वमें जीवके सर्वश्रेष्ठ व्रजरस भजनका मूलमन्त्र काम गायत्री और काम बीज है। इस काम गायत्रीको ही शृङ्गार-रसराज-मूर्ति मदनगोपाल श्रीकृष्णस्वरूप समझना चाहिये। कामबीजके साथ कामगायत्रीका जप करने पर श्रीवृन्दावनस्थ रासमण्डलमें श्री श्रीराधाकृष्ण युगलविग्रहकी नित्य सेवा प्राप्त होती है।

काम बीज सह मन्त्र गायत्री भजिले।
राधाकृष्ण लभे गिया श्रीरासमण्डले॥

भजन निर्णय

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण अद्वय ज्ञान तत्त्व हैं। वे ही स्वयं भगवान् सर्वावतारी, सर्वरस, सर्वचित्ताकर्षक, पीताम्बरधारी, वनमाली, श्रीवृन्दारण्यके अप्राकृत नवीन मदन हैं। वे अखिल रूपसिन्धु तथा निखिल जनबन्धु हैं। यह सर्वचित्ताकर्षक, श्रीवृन्दावनविहारी शृङ्गार रसराज मूर्ति नन्दनन्दन श्रीकृष्ण व्रजरसभजनानन्दी रसिक भक्तवृन्दके एकमात्र हृदयके धन और साधनके धन हैं। तथा वे ही अप्राकृत नवीन मदन कलिके प्रच्छन्न अवतार श्रीगौराङ्ग हैं।

राय रामानन्दने श्रीगौर भगवान्की प्रेरणासे उनके चरणतलमें बैठकर जो कुछ श्रीकृष्ण तत्त्व कथन किया, उससे प्रभु परम प्रसन्न हुए। प्रच्छन्न अवतार श्रीश्रीराधाकृष्ण मिलिततनु श्रीगौराङ्ग प्रभु भक्तके मुखसे आत्मतत्त्व सुनकर आनन्दसे गद्गद हो उठे, और बोले—"रामानन्द! अब श्रीराधातत्त्व बतलाओ। तुम्हारे मुखसे अमृत स्रवित हो रहा है। श्रीराधिकाके स्वरूप तत्त्वका वर्णन करके मेरे पिपासित श्रवणको तृप्त करो।"

श्रीराधातत्त्व

राय रामानन्द रसिक भक्त थे। वे श्रीश्रीराधाकृष्ण मिलितवपु श्रीगौराङ्ग प्रभुके चिह्नित दास और विशेष कृपापात्र थे। श्रीगौराङ्गशक्ति श्रीश्रीराधाकृष्ण मिलित पूर्णा अभिन्ना शक्ति है। इस शक्तिका महान् प्रभाव राय रामानन्दकी वार्तामें परिपूर्ण भावमें परिदृश्यमान हो रहा है। श्रीगौर भगवान्ने उनको निजशक्ति प्रदान की है। उसी परम महिमामयी गौराङ्ग-शक्तिकी सहायतासे वे श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठ शक्तिरूपी श्रीराधाके तत्त्वको कहने लगे। यथा—

कृष्णेर अनन्त शक्ति, ताते तिन प्रधान—।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्ति नाम॥
अन्तरङ्गा बहिरङ्गा तटस्था कहि जारे।
अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति सवार ऊपरे॥[1]

१. विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्म संज्ञान्या तृतीया शक्तिरीष्यते॥

विष्णुपुराण ६.७.६१

अर्थ—विष्णुशक्ति तीन प्रकारकी है, परा क्षेत्राख्या, और अपरा-अविद्या कर्मसंज्ञा।

सच्चित आनन्दमय—कृष्णेर स्वरूप ।
अतएव स्वरूपशक्ति हय तिन रूप ।।
आनन्दांशे ह्लादिनी, सदंशे सन्धिनी ।
चिदंशे संवित—तारे 'ज्ञान' करि मानि ।।[1]
कृष्णके आह्लादे-ताते नाम आह्लादिनी ।
सेइ शक्ति द्वारे सुख आस्वादे आपनि ।।
सुखरूप कृष्ण करे सुख आस्वादन ।
भक्तगणे सुख दिते ह्लादिनी कारण ।।
ह्लादिनीर सार अंश—तार 'प्रेम' नाम ।
आनन्द-चिन्मय-रस—प्रेमेर आख्यान ।।
प्रेमेर परम सार—'महाभाव' जानि ।
सेइ महाभावरूपा राधाठकुरानी ।।[2]

---

१. ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्ये सर्वसंस्थितौ ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ।।
विष्णुपुराण १.१२.६९

अर्थ—हे भगवान् ! ह्लादिनी, सन्धिनी और संवित ये तीन मुख्य अव्यभिचारिणी स्वरूपभूता शक्तियाँ सर्वाधिष्ठानभूत तुममें अवस्थित हैं। परन्तु ह्लादकारिणी सात्त्विकी, तापकारिणी तामसी, तथा तदुभयमिश्रा राजसी—ये तीनों शक्तियाँ तुम्हारे बिना स्थित नहीं रह सकती ।

२. तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका ।
महाभाव स्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी ।।
उ. नी. म. ४.३

अर्थ—श्रीराधिका और चन्द्रावली—इन दोनोंमें सब प्रकारसे श्रीराधिका ही श्रेष्ठ है । क्योंकि वे महाभाव रूपा अ[illegible]की खानि हैं। यहाँ महाभावसे मादनाख्या भावार्थ—[illegible] चाहिये, क्योंकि यह ह्लादिनी सार उद्दीहित करते हैं। [illegible] श्रीराधिकाके सिवा और किसी कारण कृष्ण आत्माराम [illegible]हीं है। अन्य देवियाँ मोहनाख्या काम नष्ट होता है, तथ[illegible] होती है ।

प्रेमेर स्वरूपदेह प्रेमविभावित ।
कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठा जगते विदित ।।[1]
सेइ महाभाव हय चिन्तामणि सार ।
कृष्ण वाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य जार ।।
महाभाव चिन्तामणि राधार स्वरूप ।
ललितादि सखि ताँर काय व्यूह रूप ।।
चै० च० म० ८.११६-१२६

सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्णकी अनन्त शक्तियोंमें तीन शक्तियाँ प्रधान हैं। अन्तरङ्गा चिच्छक्ति, बहिरङ्गा मायाशक्ति तथा तटस्था जीवशक्ति। इनमें चिच्छक्ति श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्ति है। यह चिच्छक्ति त्रिविध रूपमें प्रकाशित होकर त्रिधा विभक्त हो जाती है। सच्चिदानन्द आनन्दघनमूर्ति श्रीकृष्णके सत् या नित्यत्वको प्रकाशित करने वाली शक्तिका नाम है सन्धिनी; चित् या चेतनताको प्रकाशित करने वाली शक्तिका नाम है संवित; और आनन्द या आह्लाद प्रकाशिका शक्तिका नाम है आह्लादिनी। श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति आह्लादोत्पादक है, सन्धिनी तापकारिणी है, और संवित् उभयमिश्रित है। यह आह्लादिनी शक्ति श्रीकृष्णको आह्लाद प्रदान करती है, अर्थात् सुखरूप श्रीकृष्ण इस आह्लादिनी शक्तिकी सहायतासे लीलारसका सुख सम्भोग करते हैं। उनके भक्तवृन्द भी इस आह्लादिनी शक्तिकी सहायतासे

---

१. आनन्दचिन्मयरस प्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ।।
ब्रह्म संहिता ५.३७

अर्थ—परम प्रेममय उज्ज्वलरसमें प्रतिभावित उस ह्लादिनी शक्तिरूपा प्रियागणके साथ, निखिल गोलोक-वासियों तथा अन्योंके आत्मस्वरूप जो गोलोकमें वास करते हैं, उस आदि पुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ।

कृष्ण-प्रेमरसका आस्वादन करते हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्मका आनन्दघन रूप लीलाप्रकाशका मुख्य कारण है। श्रीकृष्ण भगवान्‌की अनन्त शक्तियोंमें उनकी यह आह्लादिनी शक्तिही सर्वश्रेष्ठ है।

इस ह्लादिनी शक्तिकी सहायतासे भक्तगण भगवत्स्वरूपका आस्वादन करते हैं, तथा यह रसास्वादन करके इनके हृदयमें जो रसभाव उदय होता है, उसका नाम आनन्द चिन्मय रस या प्रेम है। यह प्रेम गाढ़त्वको प्राप्त होने पर स्थायी होता है। इस स्थायी प्रेमभावका नाम ही महाभाव है।

परम प्रेमकी साररूपा महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिका हैं। श्रीराधिकाके श्रीअङ्ग आनन्द और प्रेम स्वरूप है, और वे कृष्णप्रेम में सर्वदा विभावित रहती हैं। श्रीकृष्णकी जितनी प्रेयसी हैं, उनमें श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वे रूप और गुणमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इसी कारण उनको 'चिन्तामणि सार' कहा गया है। प्राकृत चिन्तामणि समय आने पर नष्ट हो जाती है, परन्तु महाभाव स्वरूप चिन्तामणि ध्वस्त नहीं होती। जैसे चिन्तामणि जिसके पास होती है, उसकी सारी मनोकामनाएँ पूरी करती है। उसी प्रकार महाभाव चिन्तामणि श्रीराधिका श्रीकृष्णकी वस्तु हैं, अतएव वह श्रीकृष्णकी समस्त वासनाको पूर्ण करके पूर्णानन्द प्रदान करती हैं। श्रीकृष्णकी मनोबाञ्छा पूर्ण करना ही उनका एकमात्र कार्य है, इसके सिवा उनका अन्य कार्य नहीं है। ललिता, विशाखा आदि सखियाँ श्रीराधिकाके काय व्यूह हैं। ये श्रीकृष्णको आनन्द प्रदानके कार्यमें श्रीराधिकाकी प्रधान सखी हैं।

इस प्रकार श्रीराधा तत्त्व समझाकर राय रामानन्दने महाभाव रूपिणी श्रीराधिकाकी श्रीकृष्ण सेवामें अप्राकृत और भावमयी परिपाटीका वर्णन किया। जैसे श्रीचैतन्य चरितामृत में—

राधा प्रति कृष्ण स्नेह सुगन्धि उद्वर्त्तन।
ताहे सुगन्धि देह उज्ज्वल वरण॥
कारुण्यामृत धाराय स्नान प्रथम।
तारुण्यामृत धाराय स्नान मध्यम॥
लावण्यामृत धाराय तदुपरि स्नान।
निजलज्जा-श्याम-पट्टसाटि परिधान॥
कृष्ण-अनुराग द्वितीय अरुण वसन।
प्रणय-मान-कंचुलिकाय वक्ष आच्छादन॥
सौन्दर्य-कुंकुम सखी-प्रणय-चन्दन।
स्मित-कान्ति कर्पूर-तिने अङ्गे विलेपन॥
कृष्णेर उज्ज्वलरस मृगमद भर।
सेइ मृगमदे विचित्र-कलेवर॥
प्रच्छन्न-मान-वाम्य धम्मिल्य-विन्यास॥
धीराधीरात्मक गुण अंगे पट्टवास॥
राग-ताम्बूल रागे अधर उज्ज्वल।
प्रेमकौटिल्य नेत्र युगले कज्जल॥
सुदीप्त सात्त्विक भाव हर्षादि सञ्चारी।
एइ सब भाव-भूषण सब अंगे भरि॥
किलकिञ्चितादि-भाव-विंशति-भूषित।
गुण श्रेणी-पुष्पमाला-सर्वांगे-पूरित॥
सौभाग्य-तिलक चारु ललाटे उज्ज्वल।
प्रेमवैचित्य रत्न हृदये तरल॥
मध्य वयस्थिति-सखीस्कन्धे कर न्यास।
कृष्णलीला-मनोवृत्ति सखि आश-पाश॥
निजांग सौरभालये गर्व-पर्यङ्क।
ताते बसि आछे सदा चिन्ते कृष्णसंग॥
कृष्ण-नाम-गुण-यश-अवतंस काणे।
कृष्ण-नाम-गुण-यश-प्रवाह वचने॥
कृष्णके कराय श्याम रस-मधुपान।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम॥

कृष्णेर विशुद्धप्रेम रत्नेर आकर ।
अनुपम-गुणगण-पूर्णकलेवर ॥*
जाँहार सौभाग्यगुण बाञ्छे सत्यभामा ।
जाँर ठाँइ कलाविलास शिखे व्रजरामा ॥
जाँर सौन्दर्यादि गुण बाञ्छे लक्ष्मी पार्वती ।
जाँर पतिव्रता-धर्म बाञ्छे अरुन्धती ॥
जाँर सद्‌गुण गणनेर कृष्ण ना पान पार ।
ताँर गुण गणिबे केमने जीव छार ॥

चै.च.म. ८. १२७-१४५

कृष्णलीला अप्राकृत है। मनोवृत्तिरूपा सखियाँ श्रीकृष्णलीला रङ्गिणी श्रीराधिकाकी कामव्यूह हैं। श्रीराधिकाकी प्राकृत काया नहीं है। आवर्त्तित कृष्णस्नेह अर्थात् श्रीकृष्णकी अतिशय ममता उसका उज्ज्वल वर्ण है।

सुकुमारियोंको त्रिकाल स्नान करानेकी रीति हैं। यह लक्ष्य करके राय रामानन्द कहते हैं— कि वयः सन्धिकी अवस्थामें चापल्य दूर हो जानेसे प्रथम कारुण्यामृत धारामें स्नान होता है; यौवनरूप अमृतमें मध्यम स्नान तारुण्यामृत धारामें होता है, यह माध्यमिक स्नान है; अन्तमें लावण्यामृत धारामें सायं स्नान होता है। अर्थात् कारुण्य या नित नव रसके तारल्यमें अथवा नित नव रसके लावण्य जलमें मानो राधारूपी स्नान बारम्बार हो रहा है।

स्नानके बाद वस्त्र पहननेकी बात कह रहे है। अपनी लज्जा ही श्रीराधिकाकी श्याम वर्णकी साड़ी है, और कृष्णानुराग उनका द्वितीय अरुण वर्ण वसन अर्थात् उत्तरीय ओढ़नी है। लज्जा रूपी काली साड़ी, तथा कृष्णानुराग रूपी लाल साड़ी मानो श्रीराधिकाके श्रीअङ्गकी सौन्दर्य वृद्धि कर रही है। उन्होंने प्रणयजात मानरूपी कञ्चुकीके द्वारा वक्षःस्थलको आच्छादित किया है।

स्वयंके मृदु हास्यके अपूर्व कान्ति रूपकर्पूरके द्वारा श्रीराधिकाका सर्वाङ्ग विलेपन हुआ है। श्रीकृष्णके शृङ्गार रस रूपी कौस्तुभ रससे उनका प्रत्येक अङ्ग चर्चित है। श्रीकृष्णके प्रति प्रच्छन्नमान उनका शोभनीय वेणी-विन्यासके है। वेणी विन्यासके दो गुच्छ हैं, एक प्रच्छन्नमान है और दूसरा वाम्य है। श्रीराधिकाके श्रीअङ्ग नायिकाके गुण रूप पटवास अर्थात् सुगन्धित चूर्ण विशेषसे भूषित है। अनुराग रूपी ताम्बूलके रागसे उनका विम्वाधर रञ्जित है। प्रेमकौटिल्य उनके नेत्रोंका रसाञ्जन है।

श्रीमती राधिकाके श्रीअङ्गके भूषणकी बात अब बोल रहे हैं। एक साथ पाँच-छः या सारे सात्त्विक भाव परमोत्कर्षको प्राप्त हों तो उनको उद्दीप्त सात्त्विक भाव कहेंगे। उद्दीप्त सात्त्विक भाव जब एक साथ महाभावके उत्कर्षकी चरमावस्थाको प्राप्त होते हैं तो उनका नाम होता है सुदीप्त सात्त्विकभाव। ये ही सुदीप्त सात्त्विकभाव हर्षादि सञ्चारी होते हैं अर्थात् निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शङ्का, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मृति, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीड़ा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, औग्र, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध—ये तैंतीस संञ्चारी भाव होते हैं।

---

* का कृष्णस्य प्रणय जनिभूः श्रीमतीराधिकैका,
कास्य प्रेयस्यनुपम गुणगाराधिकैका न चान्या।
जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्या,
वाञ्छा पूर्त्तै प्रभावित हरेः राधिकैका न चान्या ॥
श्री गोविन्द लीलामृत ११.१२२

श्लोकार्थ—श्रीकृष्णकी प्रणयोत्पत्ति स्थान कौन है? एक श्रीमती राधिका। श्रीकृष्णकी प्रियतमा कौन है? अनुपम गुणशालिनी एक श्रीराधिका, और कोई नहीं। केशकी कुटिलता, चक्षुकी तरलता तथा कुचकी निष्ठुरतासे श्रीराधा श्रीकृष्णकी मनोबाञ्छा पूर्ण करनेमें समर्थ हैं। कुटिलता, चञ्चलता और निष्ठुरता उनकी बाञ्छाको पूर्ण करती हैं, यह आश्चर्यकी बात है।

ये सारे भाववैचित्र श्रीमती राधिकाके श्रीअङ्गके भूषण हैं। और भी बीस प्रकारके भावरूपी भूषणसे उनके श्रीअङ्ग विभूषित हैं। उनको किलकिञ्चित भाव बोलते हैं। यथा—हाव, भाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य, लीला, विलास, विच्छित्तिः विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित और विकृत। यौवन कालमें रमणीके प्राणपतिके प्रति सर्वदा अभिनिवेश के वश तद्भावाक्रान्त चित्तसे ये अलङ्कार उदय होते हैं, इनमें प्रथम तीन अङ्गज, दूसरे सात अयत्नजात, तथा शेष दश स्वभावजात है।* इन सब भावोंसे श्रीमती राधिकाके श्रीअङ्ग समलंकृत हैं।

अब उनके गुणके विषयमें कहते हैं। तीनों लोकके गुण समूह श्रीमतीके श्रीअङ्गके पुष्पहार हैं। उनमें विशेष गुणोंके नाम यहाँ लिखे जाते हैं। यथा—मधुरत्त्व, नव वयत्त्व, चपलाङ्गत्त्व, उज्ज्वल स्मितत्त्व चारु-सौभाग्यरेखायुक्तत्त्व, गन्धोन्मादितमाधवत्त्व, सङ्गत प्रवराभिज्ञत्त्व, वश्यभाषित्त्व, नर्म पाण्डित्त्व, विनीतत्त्व, करुणापूर्णत्त्व विदग्धत्त्व, पटुता, लज्जाशीलता, सुमर्यादा, धैर्यशीलता, गाम्भीर्यशीलता, सुविलसता, महाभाव परमोत्कर्ष तृष्णा शालित्त्व, गोकुलप्रेम-वसतित्त्व, जगत श्रेणी लसत यशत्व, गुर्वर्पित गुरुस्नेहत्त्व, सखी-प्रणय-वशत्त्व, कृष्णप्रियावली मुख्यत्त्व, सन्तताश्रवकेशवत्त्व आदि। श्रीमती राधिकाके इन गुणोंमें प्रथम छः गुण कायिक हैं, उसके बाद तीन गुण वाचिक हैं, उसके आगे दस गुण मानसिक हैं, तत्पश्चात् छ गुण पर सम्बन्धगामी हैं।

इसके बाद श्रीमतीके सौभाग्यकी बात कहते हैं। श्रीकृष्णकी सारी प्रेयसी व्रजवालाओंमें श्रीराधिका परम प्रेमास्पदा हैं। इस ख्याति रूपी तिलकसे श्रीराधिकाका श्रीललाट अलंकृत रहता है। प्रियतमके सन्निकर्षमें भी प्रेमोत्कर्षस्वभावके वश विच्छेद बुद्धिसे होने वाले आर्त्तभावका नाम प्रेमवैचित्य है। यह प्रेमवैचित्यरूप रत्न श्रीमतीके हृदय पर तरल-हारके मध्यमें स्थित मणि है। वे मध्यावस्थामें होनेके कारण किशोरी हैं। मध्यवयस बारहसे चौदह वर्ष तकका होता है। एक मध्यवयसकी सखिके कन्धे पर श्रीमतीजीने अपना कोमल हाथ रक्खा है। वह निजाङ्ग सौरभ रूपी आलयमें अर्थात् अन्तःपुरमें, गर्वरूप पलङ्ग पर कृष्णलीला-विभाविनी मनोवृत्ति रूपी सखियोंसे परिवेष्टित होकर सतत कृष्णानुचिन्तनमें निमग्न रहती हैं, तथा दिन रात कृष्ण नाम और कृष्ण यश श्रवण करने में उन्मत्त रहती हैं। श्रीकृष्णका नाम, यश और गुण श्रीमतीके कानों का भूषण है। उनके वदनमें कृष्ण-नाम-गुण-यशका प्रवाह चलता रहता है। अर्थात् स्रोतके समान उनकी वाणीमें प्राण-कृष्णके नाम-गुण और यश कीर्तनका विराम नहीं होता। श्रीकृष्णको उज्ज्वल शृङ्गार रसका माधुर्य आस्वादन कराना ही उनका कार्य है। निरन्तर कृष्णकी इच्छा पूर्ण करना ही उनकी वासना है। श्रीकृष्णकी प्रेयसी सत्यभामा भी श्रीमती राधिकाके सौभाग्यकी कामना करती हैं। व्रजसुन्दरीगण कलावती होकर भी श्रीराधिकाके समीप कला-विलासकी शिक्षा ग्रहण करती हैं। लक्ष्मीजी और पार्वतीजी उनके सौन्दर्यादि गुणोंकी कामना करती हैं, देवी अरुन्धती उनके पतिव्रत धर्मकी कामना करती हैं। स्वयं श्रीकृष्ण जिनके अनन्त गुण-राशिकी सीमा निर्देश करनेमें असमर्थ हैं, उसकी साधारण जीव क्या गणना कर सकेगा? इतना कहकर राय रामानन्दने प्रभुके सामने श्रीराधातत्त्वके प्रसङ्गका उपसंहार किया।

प्रभु राय रामानन्दके मुखसे मधुरसे भी मधुर हृत्कर्ण रसायन श्रीराधातत्त्व श्रवण करके

* इन सब भावोंके लक्षण भक्तिरसामृत सिन्धु तथा उज्ज्वल नीलमणिमें देखिये।

प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर बोले। "रामानन्द! तुम्हारे मुखसे महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिकाजीके महामहिमामय परम तत्त्वको सुनकर मेरे मनःप्राण जुड़ा गये, कान पवित्र हो गये। अब कृपाकर श्रीराधाकृष्ण युगलविलासका महत्व कहो। तुम्हारे मुखसे इसे सुननेकी मेरी बड़ी अभिलाषा हो रही है। तुम मेरी यह अभिलाषा पूर्ण करके चिरकालके लिए मुझे प्रेम-ऋणका ऋणी बना लो। वस्तुतः तुम्हारे मुखसे अमृतकी नदी प्रवाहित होती है।"

राय रामानन्द प्रभुके चरण-कमलमें सिर झुका कर हाथ जोड़कर पुनः कहने लगे। यथा श्री चैतन्य चरितामृतमें—

राय कहे—कृष्ण हय धीरललित।
निरन्तर कामक्रीड़ा जाँहार चरित॥
रात्रि-दिन कुञ्जे क्रीड़ा करे राधा सङ्गे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीडा रंगे।*

चै.च.म. ८. १४७,१४८

इन दोनों पयार श्लोकोंमें रसशास्त्रमें अद्वितीय पण्डित तथा रसिक भक्तवर श्रीराय रामानन्दने श्रीश्रीराधाकृष्णके युगल विलास-महत्त्वके तत्त्वको एक वाक्यमें कह दिया है। उन्होंने कहा है कि, "श्रीकृष्ण धीरललित नायक हैं, अतः वे निरन्तर कामक्रीडा परायण रहते हैं। वे रातदिन श्रीमती राधिकाके साथ क्रीड़ा रङ्गमें अपनी किशोरावस्थाको सफल करते हैं।" यहाँ 'धीरललित' शब्दकी कुछ व्याख्या आवश्यक है। इस शास्त्रोक्त चार प्रकारके नायकोंमें धीरललित गुणविशिष्ट नायक ही श्रेष्ठ होता है। धीर ललित नायक के गुण ये हैं,

विदग्धो नवतारुण्यः परिहास विशारदः।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्राय प्रेयसीवशः॥

भक्ति रसामृत सिन्धु २.१.२३०

अर्थात् जो रसिक है, नवयौवन सम्पन्न है, हास्य परिहासपटु है और निश्चिन्त है, उसको धीरललित कहते हैं। धीरललित गुण विशिष्ट नायक प्रेयसीके वशीभूत होता है।

श्रीकृष्ण धीरललित गुण विशिष्ट नायक हैं। वे निरन्तर कामक्रीडा शील हैं।

यहाँ कामका अर्थ है प्रेम। श्रीकृष्ण बहुवल्लभ हैं, परन्तु वह श्रीमती राधिकाके प्रेमके अत्यन्त वशीभूत होकर सतत उनके अधीन रहते है। प्रेमवती गणमें श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। इसी कारण प्रेमभिखारी श्रीकृष्ण श्रीराधाके प्रेममें बँधे रहते हैं। वे निरन्तर श्रीराधा प्रेममें उन्मत्त रहते हैं। अतएव कविराज गोस्वामी कहते हैं—

"निरन्तर काम क्रीडा जाँहार चरित।"

श्रीकृष्ण निरन्तर श्रीमती राधिकाके साथ यमुना तटपर कुञ्जवनमें क्रीडा करते हैं। किसी बातकी उनको चिन्ता नहीं है। उनके माता-पिता नन्द-यशोदा भी व्यावहारिक किसी कामका भार उनके ऊपर अर्पण नहीं करते। क्योंकि वे जानते हैं कि उनका पुत्र बड़ा ही क्रीडा परायण है, निश्चिन्त होकर वह प्रेम लीला करे यही उनका मनोभाव रहता है। धीरललित नायकका एक गुण है निश्चिन्तता। यह गुण विलास व्यापारमें विशेष प्रशंसनीय है। श्रीकृष्ण-चरितमें यह गुण विशेष रूपसे परिदृश्यमान होता है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, सर्वदेवपूज्य हैं, सर्वकार्यमें समर्थ होकर भी वे प्रेयसीके वशमें हैं, यहाँ प्रेयसीका अर्थ है। अनुरागी भक्त। श्रीकृष्णकी प्रेयसीवश्यतामें तारतम्य है। प्रेमवती प्रेयसीगणके अनुरागके तारतम्यके अनुसार श्रीकृष्णकी प्रेयसीवश्यताका तारतम्य दृष्टिगोचर होता है। श्रीमती राधिकाका प्रेमानुराग श्रीकृष्णके प्रति सुदृढ़ है, प्रेम वशी गणमें

---

*वाचा सूचित शर्वरीरति कला प्रागल्भ्यया राधिकां
व्रीडाकुञ्चित लोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ।
तद्वक्षोरुह चित्रकेलिमकरी पाण्डित्यपारं गतः
कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः॥

भ० र० सि० २.१.२३१

वे सर्वश्रेष्ठा हैं, अतएव प्रेयसी-प्रेम-भिखारी श्रीकृष्ण सर्वतो भावेन उनके अधीन रहते हैं, और निरन्तर उनके सङ्ग विलास करते हैं।

राय रामानन्द एक और बात बोले। श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके साथ क्रीडा-रङ्गमें अपने कैशोरावस्थाको सफल कर रहे हैं। कौमार, पौगण्ड और किशोर वे तीन अवस्थाएँ हैं। पाँच वर्ष तक कुमारावस्था, पाँचसे दस वर्ष तक पौगण्ड अवस्था, और दस वर्षसे पन्द्रह वर्षकी अवस्था तक किशोरावस्था होती है। उसके बाद यौवन आता है। शृङ्गार रसास्वादनमें कैशोर काल ही प्रशस्त है। यह कैशोर काल फिर तीन भागमें विभक्त है, आद्य कैशोर, मध्य कैशोर और अन्त कैशोर। अन्त कैशोर कालमें ही श्रीकृष्णने व्रज सुन्दरियोंके साथ रासलीला की थी। कैशोर बयस क्रीडाका काल है। लीलमय श्रीकृष्ण भगवान्ने इस किशोर अवस्थामें लीलानुरक्त होकर अपने कैशोर वयसको सफल किया। श्रीकृष्णके साथ श्रीराधिकाका प्रेमविलास अर्थात् रमण अप्राकृत है। इसमें कामका लेश भी नहीं है। अकैतव प्रेमके सिवा श्रीकृष्णके साथ प्रेम-सम्बन्ध संघटन नहीं होता। श्रीकृष्ण-प्रेम प्राकृत कामगन्ध-शून्य है। गोपी-प्रेम भी बही वस्तु है। श्रीश्रीराधाकृष्णका विलास महत्त्व अतिशयनिगूढ़ वस्तु है इसमें प्राकृत मानव-बुद्धि प्रवेश नहीं कर सकती। स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभु इस निगूढ़ तत्त्वके श्रोता, और उनके विशेष कृपा-पात्र रसशास्त्र विशारद श्रीकृष्ण भगवान्के रसिक भक्त राय रामानन्द वक्ता हैं।

प्रभु श्रीश्रीराधाकृष्ण विलास-तत्त्व सुनकर हँसते हँसते राय रामानन्दसे बोले, "यह तो है ही, इसके आगे जो कुछ है उसे कहिये।"

राय रामानन्दके आश्चर्यकी अब कोई सीमा न रही। वे प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखते रह गये, कोई बात बोल न सके। प्रभुके प्रश्नका क्या उत्तर दें, यह सोचकर घबरा उठे। श्रीमन्महाप्रभु राय रामानन्दके मँहका भाव देखकर समझ गये कि अब उनके हृदयमें विशेष शक्ति-सञ्चारकी आवश्यकता हैं। परम निगूढ़ तत्त्व आब उनके मुँहसे निकालना है। प्रभुने राय रामनन्दकी ओर एक वार प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा, भक्त और भगवानकी चार आँखें होते ही विद्युत्के समान भक्तके मनमें रसतत्त्वका निगूढ़ भाव उदय हुआ।

प्रेमविलास-विवर्त

राय रामानन्दने प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया, "हे प्रभु! तुम्हारे चरण-कमलमें पहले जो मैंने निवेदन किया है, उसके आगे अब मेरी बुद्धि नहीं जा सकती। तथापि एक बड़ी गूढ़ बात आपकी प्रेरणासे इस समय मेरे मनमें उदय हो रही है। यही मेरी अन्तिम बात है, और अब इसको आपके चरणोंमें निवेदन करता हूँ। कृपा करके सुनिये, परन्तु इससे आपके मनमें सुख होगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता।" इतना कहकर उन्होंने प्रेम विलास विवर्त्त सूचक एक स्वरचित गीत गाया। रसतत्त्वकी चरम सीमासूचक वह अपूर्व गीतरत्न इस प्रकार है—

पहिलहि राग नयन भङ्ग मेल।
अनुदिन बाड़ल—अवधि ना गेल॥
ना सो रमण ना हम रमणी।
दुहुँ मन मनोभाव पेषल जानि॥
ए सखि ! से सब प्रेमकाहिनी।
कानू ठामे कहबि, बिछुरल जानि॥
ना खोजलुँ दूती, ना खोजलुँ आन।
दुहुँकेरि मिलने मध्यत पाँच वाण॥
अब सोइ विराग, तुहुँ भेलि दूती।
सुपुरुख प्रेमक ऐछन रीति॥

चै. च. म. ८. १५२. १५६

इस गीतिका अर्थ सहज भाषामें नीचे लिखा जाता है।

कलाहान्तरिता श्रीराधिकाने दूती से कहा कि, हे दूति! श्रीकृष्ण से कहना कि पहले आँखें मिलने

पर पूर्व राग हुआ था। वह पूर्वराग दिन-प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हुआ है। किन्तु सीमाको प्राप्त नहीं हुआ है। मैं उनकी पत्नी नहीं हूँ, वह भी मेरे पति नहीं हैं, तथापि उनके और मेरे मनको कन्दर्पने प्रेरित करके एक कर दिया है। सखि, यह सारी प्रेम कहानी तुम कृष्णके पास जाकर कहना, भूलना मत। जिस समय हम दोनोंका मिलन हुआ था, उस समय कोई दूती या अन्य किसीकी खोज नहीं हुई थी, पञ्चवाण मदनने मध्यस्थ होकर हम दोनोंको प्रेरित करके परस्पर मिलन कराया था। अब वे ही कृष्ण हमसे विरक्त, अर्थात् वीतराग हो रहे हैं, अतएव तुमको दूती बनना पड़ रहा है। पुरुषके प्रेमकी क्या ऐसी ही रीति होती है।

इसका तात्पर्य यह है कि मिलनके पूर्वरागके समय नायक-नायिकाके परस्पर अवलोकनसे अनुराग भाव उत्पन्न होता है। वह अनुराग बढ़ते बढ़ते समाप्त नहीं हुआ। उसकी अवधि भी नहीं है। यह अनुराग श्रीराधाकृष्णके स्वभावसे उद्भूत है। रमण रूप श्रीकृष्ण उसके कारण है, अथवा रमणीरूप श्रीराधा इसके कारण हैं—इतना ही नहीं है। परस्पर अवलोकनसे जो अनुराग परस्पर एक दूसरेके मनमें पैदा होता है, वही मनोभव अर्थात् मदन होकर श्रीराधाकृष्ण दोनोंके मनको प्रेरित करके एकत्रित करता है। श्रीराधिका सखीसे कहती हैं, "विरहके समय यदि वह सब बातें श्रीकृष्ण भूल जाते हों, यदि ऐसा समझती हो तो उनसे कहना कि मिलनके समय हमने कोई दूती नहीं पठाई थी। अनङ्ग रूपी पञ्चवाण ही हम दोनोंके मिलनमें मध्यस्थ था। अब इस विरहके समय उसी अनुराग, विराग अर्थात् विशिष्ट राग, या विच्छेद गत राग, अथवा अधिरूढ़भाव रूपमें हे सखि, तुम दूती-रूपमें कार्य कर रही हो। सुपुरुषके प्रेममें यही रीति सर्वत्र देखोगी।"

इसका मर्म यह है कि सम्भोग कालमें अनुराग अङ्गन रूपमें मध्यस्थ बनता है, विप्रलम्भ कालमें उसी प्रकार अधिरूप भावापन्ना दूती बनने पर प्रेमविलास विवर्त्त अर्थात विप्रलम्भमें सम्भोग मूर्त्ति कार्यमें दूती स्वरूप होनेपर उसको श्रीमती राधिका सखी कहकर सम्बोधन करती हैं और यह सब बातें कहती हैं। इसकामूल तात्पर्य यह है कि प्रेमविलास सम्भोगमें जैसा आनन्द है, विप्रलम्भमें भी वैसा ही आनन्द है। विशेषतः विप्रलम्भमें अधिरूढ़ महाभावरूपी, सर्पमें रज्जुसे भ्रमके समान तमालादिमें कृष्णभ्रम जीवित विवर्त्तभावापन्न रूप सम्भोगको उत्पन्न करता है।

यहाँ 'प्रेमविलास विवर्त्त' क्यावस्तु है, इसे बतलाते हैं। प्रेममय विलासमें विवर्त्त अर्थात् समवाय, यह वाक्यार्थ हुआ। इसका भावार्थ अतत्त्वतः अन्यथाख्याति अर्थात् तत्त्वतः पृथक् न होकर अन्यरूपमें प्रतीयमानता है। यहाँ श्री-श्रीराधाकृष्णके विप्रलम्भ और सम्भोगान्तक प्रेममय विलासमें नाना भेद प्रतीति होनेपर भी वह स्वरूपतः ह्लादिनीसार प्रेम है। यही इसका प्रकृत भावार्थ है। श्रीश्रीराधाकृष्ण एक ही तत्त्व हैं। लीला रसास्वादनके लिए भिन्नरूप और देह धारण है। यथा,

राधा पूर्ण शक्ति, कृष्णपूर्ण शक्तिमान्।
दुइ वस्तु भेद नाइ शास्त्र परमाण॥
मृदुमद, तार गन्ध—जैछे अविच्छेद।
अग्नि-ज्वालाते जैछे नाहि कभू भेद॥
राधा-कृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीला-रस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥

चै० च० आ० ४.८३.८५

राय रामानन्द रचित उपर्युक्त सुन्दर पद प्रेमविलासविवर्त्तका उदाहरण है। इस अपूर्व प्रेमभावके सारे सूक्ष्म तत्त्वोंको एक-एक करके विशद रूपमें विचार करना इस ग्रन्थका उद्देश्य नहीं है। तत्त्व जिज्ञासु कृपालु पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे।

श्रीश्रीराधाकृष्ण एक तत्त्व हैं। दोनोंके परमैक्यका प्रतिपादन करने वाले राय रामानन्द

कृत इस गीतरत्नमें साध्य-साधन तत्त्वका सार निहित है। निरुपाधि प्रेमका यह ज्वलन्त उदाहरण है। 'ना सो रमण ना हम रमणी'—यह निरुपाधि प्रेमका परम और चरम सिद्धान्त है। तुम स्वामी हो, मैं स्त्री हूँ, तुम रमण हो, मैं रमणी हूँ। इस प्रकारका पुरुष-स्त्री भेदजनित प्रेम सोपाधिक होता है। निरुपाधिक प्रेममें आत्म-सुखकी इच्छा नहीं होती। 'ना सो रमण ना हम रमणी'—इन दोनोंके बीचका प्रेम ही निरुपाधिक अर्थात् अकैतव होता है। इस अकैतव प्रेममें ही कृष्णप्राप्ति होती है। यही साध्य-साधन तत्त्वका सार है। राय रामानन्दने स्वरचित गीतके द्वारा यही प्रभुको बतलाया है।

राय रामानन्दके समान सुकण्ठ रसिक भक्तके मुखसे यह निगूढ़ भजनतत्त्व--रहस्यपूर्ण भजन गीत सुनकर प्रेमानन्दमें प्रभुका कण्ठस्वर गद्गद हो गया। और अधिक देर तक गान सुननेपर अत्यधिक प्रेमावेशमें आनन्द मोहको प्राप्त हो जाँयगे, तथा इससे श्रवण सुखमें बाधा पड़ेगी, इस आशङ्कासे प्रभुने गीत बन्द करनेके लिए राय रामानन्दका मुँह श्रीहस्तसे ढँक कर गानेमें बाधा डाली। अपर पक्षमें कुछ लोग कहते हैं कि—श्रीश्रीराधाकृष्णका यह निगूढ़ भजन-रहस्य प्रकट करने योग्य नहीं है, इस कारण उन्होंने राय रामानन्दका मँह बन्द कर दिया। तत्काल भक्तचूड़ामणि राय रामानन्द—

निकाम संमोह भरालसाङ्गने
गांगेयगौरं तमनंगरम्यम्।
प्रभुं प्रणम्याथ पदाब्जमूले
निपत्य संप्रोथित आननन्द ॥

चै० च० काव्य १३-४४

उन्होंने अत्यन्त मोहके वश अवशाङ्ग होकर सुवर्ण सदृश गौरवर्ण तथा कन्दर्पके समान रमणीय श्रीगौराङ्गचन्द्रके चरण कमलमें गिरकर तथा परमानन्दमें उठकर उनकी स्पुति वन्दना की। प्रेमावेशमें उन्मत्त होकर आसनसे उठकर राय रामानन्दको प्रेमपूर्वक प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए प्रभुने कहा—"यही परात्पर अर्थात् सर्वोत्तम सारतत्त्व है। यही साध्य तत्त्वकी सीमा है। राय रामानन्द! तुम्हारी कृपासे आज मैं यह जानकर कृतार्थ हो गया।"

विद्या नगरमें गोदावरी तीरपर विप्रके घर जो उस दिन आनन्द स्तोत प्रवाहित हुआ, उसमें सारा विश्व ब्रह्माण्ड डूब गया। श्रीगौर भगवान्के विशेष कृपापात्र राय रामानन्दके प्राणमें जो प्रेम सुख तरङ्गका उच्छ्वास उठा, उससे उनके अभीष्टदेव श्रीश्रीराधाकृष्ण मिलिततनु श्रीगौराङ्ग सुन्दरने आकण्ठ प्रेमसुधा पान किया। उस अपूर्व आनन्द पूर्ण उत्सवका, भक्त और भगवान्के उस अभूतपूर्व प्रेमानन्द आदान-प्रदान व्यापारका वाणीके द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

इत्थं दृढाश्लेष कला कलाप
कल्लोललोलान्तरयोः स कोऽपि।
कालस्तदासीत् सुख सागरोस्मि
कदम्बकैः पर्वतया परीतः ॥

चै० च० का० १३.४८

अर्थात् भक्त—भगवान्के सुदृढ़ प्रेमालिंगने कौशलरूप महातरङ्गमें दोनोंके चित्त सतृष्ण हो उठे। अतएव सुखसागरमें तरङ्गमालाका उच्छ्वासोत्सव अनिर्वचनीय और निरतिशय आनन्दप्रद हो उठा।

पहले कह चुका हूँ कि भक्त चूड़ामणि राय रामानन्द प्रभुके चरणकमलमें गिरकर स्तुति विनय करने लगे। उन्होंने किस प्रकार उस समय श्रीगौर भगवान्के चरणोंका आश्रय लिया, यह श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामी अपने ग्रन्थमें लिख गये हैं। जैसे,

"तदा चिकुर कलापं द्विधा कृत्वा तेनैव तच्चरणयुगं वेष्टयित्वा निपत्य गदितम्।"

अर्थात् वे अपने मस्तकके केशकलापको दो भागोंमें विभक्त करके तद्द्वारा प्रभुके चरणकमलको

वेष्टन करके भूतलपर पड़ गये । उन्होंने जिस प्रकार प्रभुका स्तवन किया, वह भी ग्रन्थमें लिखा है—यथा,

महा रसिक शेखरः सरलनाटय लीलागुरुः
स एव हृदयेश्वरस्तमसि के किमु त्वाँ स्तुम ।
तवैतदपि साहजं विविधभूमिका स्वीकृति-
र्नतेन यति भूमिका भवति नोऽतिविस्मापनी ।।

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ७.१७

अर्थात् हे प्रभु ! तुम महा रसिक शेखर हो। इस रसमय मधुर लीलारङ्गके गुरु मेरे वह हृदयाधिनाथ तुम्ही हो। मैं अतीव क्षुद्र हूँ, और तुम्हारी क्या स्तुति करूँ ? तुम्हारा विविध वेश आदि धारण करना साहजिक भाव नहीं है। अतएव तुम्हारा यह संन्यासी वेष भी मुझको चकित कर रहा है।

इतना कहकर वह बहुत देर तक प्रभुके चरणकमलको पकड़कर अजस्र आँसू बहाते रहे। प्रेममय श्रीगौर भगवान् कलिके प्रच्छन्न अवतार हैं, वे चतुर शिरोमणि हैं। राय रामानन्द उनके नित्यदास हैं। उनके मुँहसे वे और भी अनेक तत्त्व कथा प्रकट करायेंगे। क्योंकि अपनेको गुप्त रखना उनका प्रयोजन है। उन्होंने राय रामानन्दको स्नेह पूर्वक श्रीहस्तसे पकड़कर उठाया, और पुनः प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए बैठनेके लिए आज्ञा देकर स्वयं आसनपर बैठ गये। दोनोंने सुस्थिर होकर पुनः तत्त्व कथाका तरङ्ग उठाया। प्रभु बोले—तुम्हारे मुखसे सब कुछ सुन लिया। परन्तु साध्य वस्तु तो साधनके बिना प्राप्त नहीं होती। कृपा करके साध्यवस्तुकी प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाइये। मैं सुनकर कृतार्थ होऊँ।"

तब राय रामानन्दने हाथ जोड़कर निवेदन किया। यथा,

राय कहे—जेइ कहाओ सेइ कहि वाणी ।
कि कहिये—भाल मन्द किछुइ ना जानि ।।
त्रिभुवन मध्ये ऐछे आछे कोन धीर ।
जे तोमार मायानटे हइबेक स्थिर ।।
मोर मुखे वक्ता तुमि तुमि हओ श्रोता ।
अत्यन्त रहस्य शुन साधनेर कथा ।।

चैo चo मo ८.१५९-१६१

प्रभुने कहा—"कहो कहो, मैं सुनूँगा।" जिस प्रकार विषधर सर्प फण उठाकर सँपेरेका सङ्गीत एकाग्रता पूर्वक सुनता है, उसी प्रकार स्थिरता पूर्वक अत्यन्त अनुरागसे प्रभु उनके मधुर वचनको श्रवण करने लगे।

राय रामानन्द कहने लगे—

राधाकृष्णेर लीला एइ अति गूढ़तर ।
दास्य वात्सल्यादि भावे ना हय गोचर ।।
सबे एक सखी गणेर इहा अधिकार ।
सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार ।।
सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय ।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय ।।
सखी बिनु एइ लीलाय अन्येर नाहि गति ।
सखी भावे जेइ ताँरे करे अनुगति ।।
राधाकृष्णे-कुञ्ज सेवा साध्य सेइ पाय ।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय ।।*
सखीर स्वभाव एक अकथ्य कथन ।
कृष्ण सह निज लीलाय नाहि सखीर मन ।।

---

*विभुरति सुखरूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः
क्षणमपि नहि राधाकृष्णयोर्य्यो ऋते स्वाः ।
प्रवहति रसपुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः
श्रयति न पदमासां कःसखीनां रसज्ञः ।।

श्रीगोविन्द लीलामृत १०.१७

अर्थ—हे सखि ! सर्वव्यापी होकर भी भगवान जिसप्रकार चिच्छक्तिके बिना पुष्टिलाभ नही करते, उसी प्रकार राधाकृष्णके भाव सर्वव्यापक और स्वप्रकाश होकर भी सखीके बिना क्षण मात्रके लिए भी रसपुष्टि करनेमें समर्थ नहीं होते। अतएव इन सखींगणके चरणोंका आश्रय कौन रसिक भक्त न करेगा ?

कृष्ण सह राधिकार लीला ये कराय।
निज केलि हैते ताहे कोटि सुख पाय॥
राधार स्वरूप-कृष्ण प्रेम कल्पलता।
सखीगण हय तार पल्लव पुष्प पाता॥
कृष्णलीलामृते यदि लताके सिञ्चय।
निज सेक हइते पल्लवाद्येर कोटि सुख हय॥[1]
यद्यपि सखीर कृष्ण सङ्गमे नाहि मन।
तथापि राधिका यतेन करान सङ्गम॥
नाना छले कृष्णे प्रेरि सङ्गम कराय।
आत्म कृष्णसङ्ग हैते कोटि सुख पाय॥
अन्योन्ये विशुद्ध प्रेमे करे रस पुष्ट।
ता-सभार प्रेम देखि कृष्ण हय तुष्ट।
सहजे गोपीर प्रेम-नहे प्राकृत काम।
काम क्रीड़ा साम्ये तार कहि काम नाम॥[2]
निजेन्द्रिय सुख हेतु कामेर तात्पर्य।
कृष्णसुखे तात्पर्य गोपी भाववर्य॥

---

१ सख्यः श्रीराधिकायाः व्रजकुमुदविधोर्ह्लादिनी नाम शक्तेः सारांशः प्रेमवल्ल्याः किशलयदल-पुष्पादितुल्याः स्वतुल्याः। सिक्तायां कृष्णलीलामृत-रसनिचयैकरुल्लसन्त्या मनुष्यां जातोल्लासाः स्वसेकात् शतगुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम्॥
श्री गोविन्द लीलामृत १०.१६

अर्थ—व्रजकुमुदविधु श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्तिका सार अंश प्रेम है। तद्रूप श्रीराधालताके किशलय पत्र-पुष्पादि रूप सखीगण हैं। अतएव वे श्रीराधिका सदृश हैं। इस कारण कृष्णलीलामृत रसके द्वारा राधालताके सिक्त और उल्लसित होने पर पत्र-पुष्पादि रूप सखियोंका जो स्वीय सेकसे शतगुण अधिक उल्लास होता है, उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

२ प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः॥
भ.र.सि. १.२. २८५.

अर्थ—श्रीव्रजाङ्गनाओंका प्रेम ही काम नामसे ख्यातिको प्राप्त हुआ हैं। क्योंकि उद्धव आदि भगवत्परायण महानुभावगण ऐसे कामतत्त्वको अभिमान रूप भावके द्वारा उपलक्षित और प्रेमातिशय बनाते हैं।

निजेन्द्रिय-सुख वाञ्छा नाहि गोपिकार।
कृष्णे सुख दिते करे सङ्गम-विहार॥[1]
सेइ गोपी भावामृते जार लोभ हय।
वेदधर्म लोक त्यजि सेइ कृष्णे भजय॥
रागानुगा मार्गे तारे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्र नन्दन॥
व्रजलोकेर कोनभाव लइया जेइ भजे।
भाव योग्य देह पाञा कृष्ण पाय व्रजे॥
ताहाते दृष्टान्त उपनिषद श्रुतिगण।
राग मार्गे भजि पाइल व्रजेन्द्रनन्दन॥[2]

---

१ यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥
भा. १०. ३१. १९

अर्थ—श्रीरास-मण्डलसे श्रीकृष्णके अन्तर्द्धान होने पर गोपिकागण रोते रोते कहने लगीं," हे प्रिय! तुम्हारे अति सुकोमल चरणारविन्दमें व्यथा न हो इसलिए उसे अपने कठिन स्तन पर हम धीरे धीरे धारण करती हैं, और तुम उन्हीं चरणोंसे वनमें घूमते हो। इससे तुम्हारे कोमल चरणोंमें क्या कंकड़ आदिके द्वारा व्यथा नहीं होगी? यह सोचकर हमारी बुद्धि मोहको प्राप्त हो रही है।

२ निभृत मरुन्मनोऽक्ष दृढ़ योगयुजो हृदि यन्
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोग भुजदण्ड विषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि सरोजसुधाः
भा. १०. ८७. २३

अर्थ—श्रुतियोंने श्रीभगवान्से कहा, कि प्राण, मन और इन्द्रियों का संयम करके सुदृढ़ योगयुक्त मुनिगण जिनको हृदयमें उपासना करते हैं, शत्रुगण अनिष्ट चेष्टामें तुम्हारा स्मरण करके उन्हींको प्राप्त करते हैं। अपरिच्छिन्न तुमको परिच्छिन्न रूपमें दर्शन करके भुजगेन्द्र देहके समान तुम्हारे भुजदण्डमें विषक्त बुद्धि व्रजाङ्गनाएँ तुम्हारे श्रीचरणकी स्पर्शमाधुरी प्राप्त करती हैं, तथा श्रुत्यभिमानी देवतारूप हम लोग काम व्यूह द्वारा तत्सदृश तुम्हारे श्रीचरण-कमलकी स्पर्श सुधाको प्राप्त करेंगे।

'समदृश' शब्दे कहे सेइ भावे अनुगति।
'समा'-शब्दे कहे श्रुतिर गोपीदल प्राप्ति॥
'अङ्‌घ्रि पद्मसुधा' कहे कृष्णसङ्गानन्द।
विधि मार्गे ना पाइये व्रजे कृष्णचन्द्र॥*
अतएव गोपी भाव करि अङ्गीकार।
रात्रिदिन चिन्ते राधाकृष्णेर विहार॥
सिद्ध देह चिन्ति करे ताँहाइ सेवन।
सखि भावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥
गोपी-अनुगति बिना ऐश्वर्य ज्ञाने।
भजिलेह नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने॥
ताहाते दृष्टान्त - लक्ष्मी करिला भजन।
तथापि ना पाइल व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥

चै. च. म. ८. १६२-१८६

यह है व्रजके मधुर परकीया रसका निगूढ़ साधन तत्त्व। लीलापरायणा श्रीराधिकासे रसस्वरूप श्रीकृष्ण लीलासुखमय मधुर रसका आस्वादन करके मुग्ध हो जाते हैं। फलतः जीवको लीलारसका आस्वादन कराना श्रीभगवानके लीला-प्रकाशका जैसे उद्देश्य है, उसी प्रकार लीलामधु आस्वादनमें स्वकीय हृदयमें स्थित आनन्द-को पूर्णानन्दके प्रवाहमें उच्छ्वसित करनाभी लीलाप्रकाश एक दूसरा उद्देश्य है। आनान्दलीलामय श्रीभगवान् और उनके सृष्ट जीवोंके बीच इस प्रकार प्रेमानन्दका विनिमय होता रहता है। इस अपूर्व प्रेमानन्दकी अपूर्व माधुरी है, और उस माधुरीकी अपूर्व लहरी है। महाभावस्वरूपिणी श्रीराधिकाके सिवा जीवजगतमें इस प्रेम लहरीको उठानेकी शक्ति और किसीमें नहीं है। श्रीकृष्ण लीलामें इस महाभावमयी ल्हादिनीशक्तिका प्रकाश सखीके आनुगत्यके बिना नहीं हो सकता। लीलामय श्रीभगवान्‌के आनन्द चिन्मय रसकी जितनी वृत्तियाँ हैं वे ही इस महाभावको परिपुष्ट करती हैं। अतएव आनन्द चिन्मय रसके ये सब महाभाव ही सखी प्रकृति हैं।

व्रजका श्रीकृष्ण भजन मधुर भजन है। रागमयी व्रजवनिताओंकी श्रीकृष्णके प्रति भक्तिका नाम रागानुगा या रागात्मिका है। रागानुगा भक्तिकी साधना और वैधीभक्तिकी साधना दोनों पृथक् और स्वतन्त्र वस्तुएँ हैं। रागानुगा भक्तिकी साधना-के अधिकारी विरल हैं। ब्रजगोपिकाओंकी अनुगा होने पर रागानुगा भक्तिमें लोभ पैदा होता है। तब मनुष्य उसका अधिकारी बनता है। रागात्मिकैकनिष्ठ व्रजवासियोंके भावादिके माधुर्यको सुनकर, 'मैं कब इस प्रकारके भावको प्राप्त करके धन्य हो जाऊँगा' इस प्रकारकी लालसामयी वासना लोभोत्पत्तिका लक्षण है। इस लोभोत्पत्तिके विषयमें शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा नहीं होती*। रागानुगाभक्तिके साधकका कर्त्तव्य है—

कृष्णं स्मरण, जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथा रतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥

भ.र.सि. १.२.२९४

भावार्थ—इस साधानाका स्मरण मुख साधन है। अंतः निजभावानुसार लीला रसविलासी श्रीश्रीवृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्णको स्मरण करते करते, तथा स्वाभिलषणीय श्रीवृन्दावनेश्वरी, ललिता,

---

*नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिना चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥

भा. १०. ९. २१

अर्थ—गोपिकानन्दन श्रीभगवान् भक्तिमान् जनको जैसे सुलभ होते हैं, उस प्रकार देहाभिमानी तपस्वियों और निवृत्ताभिमानी आत्माभूत ज्ञानियोंको सुलभ नहीं होते।

*रागात्मिकैकनिष्ठा ये व्रजवासीजनादयः।
तेषां भावान्तरे लुब्धो भवेदत्राधिकारवान्॥
तत्तद् भावादि माधुर्य श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्ति लक्षणम्॥

भ.र.सि. १.२. २९१.२९२

श्रीपाद जीव गोस्वामी और श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्तीकी टीकाके अनुसार यह भावार्थ लिखा गया है।

विशाखा और रूपमञ्जरी आदि सखियोंको स्मरण करते-करते तत्तत् कथामें (श्रीश्रीराधाकृष्ण की लीलारस कथामें) रत होकर शरीरके द्वारा व्रजमें वास करे। यही तात्पर्य है।

किस प्रकार श्रीराधाकृष्णकी प्रेम सेवा करे, यह भी शास्त्रमें निर्द्धारित है।

सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥

भ.र.सि. १.२.२९५

भावार्थ—निज प्रियतम श्रीकृष्ण-विषयक और निज अभीष्ट कृष्णजन अर्थात् श्रीवृन्दावनेश्वरी, ललिता, विशाखा और श्रीरूप मञ्जरी आदि सखी विषयक भाव प्राप्त करनेके इच्छुक व्यक्ति साधकरूपमें अर्थात् यथावस्थित देहमें समुचित द्रव्यादि द्वारा तथा सिद्धरूपमें अन्तश्चिन्तित तत्साक्षत् सेवोपयोगी देहमें मन द्वारा उपस्थापित सूचित द्रव्य द्वारा व्रजके लोगोंके अनुसार अर्थात् साधक रूपमें व्रजवासी श्रीपाद रूपगोस्वामी आदि तथा सिद्धरूपमें व्रजवासिनी श्रीरूप मञ्जरी आदिके अवलम्वित पथका अनुसरण करके सेवा करे।

रागानुगीय साधक किस प्रकार सिद्ध देहका चिन्तन करे, यह भी श्रीनरोत्तम दास ठाकुर लिख गये हैं। यथा,

सखीनां सङ्गिनी रुपामात्मानां बासनामयोम्।
आज्ञासेवापरां तत्तत् रुपालङ्कारभूषिताम्॥

भावार्थ—श्रीललिता, विशाखा, श्रीरूपमञ्जरी आदिकी आज्ञासे श्रीराधामाधवकी सेवानिष्ठा तथा कृष्ण-मनोहर रूपमें भूषिता, एवं श्रीराधिकाके निर्माल्य वसनाभूषणसे भूषिता साखियोंकी सङ्गिनीके रूपमें अपनी मनोमयी मूर्त्तिका चिन्तन करे।

रागानुगा मार्गमें जिनकी रति उत्पन्न नहीं हुई है, ऐसे साधक भक्तगण अपने मनमें वाञ्छित सिद्धदेहकी कल्पना करके उसके द्वारा श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवा करते हैं। परन्तु जिनकी रति उत्पन्न हो चुकी है उन साधकोंका सिद्ध देह स्वयं स्फुरित होता है। रागानुगा भक्ति जिन सौभाग्यवान भक्तोंके हृदयमें उत्पन्न होती है, वे सिद्ध देहसे श्रीराधाकृष्णकी कुञ्जसेवा करके परानन्द लाभ करते हैं। ऐसे भक्त विरल ही होते हैं। कोटि साधकोंमें ऐसे एक साधककी प्राप्ति भी सन्देह जनक है। परन्तु वे पृथिवीके भूषण हैं, जीव-जगतके परम मङ्गलकारी हैं। उनकी करूणासे कलि-ग्रस्त जीव योगियोंको भी दुर्लभ परमोत्कृष्ट रागानुगा जो भक्ति है, उसको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

गोपी प्रेमका तात्पर्य निजसुख नहीं है। कृष्णसुख ही गोपी प्रेमका तात्पर्य है। इसी कारण व्रजकी गोपियाँ लोकधर्म, वेदधर्म, लज्जा, भय, अपमान, मान, सब कुछ त्याग करके अकरणीय कार्य करती हैं। क्योंकि अपने भजन-धन श्रीकृष्णके लिए वे सब कुछ कर सकती हैं। अतएव राय रामानन्द बोले—

सखिर स्वभाव एक अकथ्य कथन।
कृष्ण सह निज लीलाय नाहि सखीर मन॥

चै.च.म. ८.१६७

इस बातकी व्याख्या आवश्यक है। व्रजगोपिकाएँ नवयौवन सम्पन्न हैं। परम सुन्दरी और रतिविलास परायणा हैं। श्रीकृष्णके साथ श्रीराधिकाके केलिविलाससे उनके मनमें जो सुख होता है, वह श्रीकृष्णके साथ उनकी निज केलिकी अपेक्षा सहस्रगुणा अधिक आनन्ददायक जान पड़ता है। अतएव श्रीकृष्णके साथ सङ्गममें उनका मन नहीं दौड़ता। प्रचुर सुख पाने पर अल्प सुखके लिए मन प्रधावित क्यों होगा? जगतकी साधारण रीति यह है कि यदि कोई सखी स्वीय प्राणबल्लभके साथ गुप्त प्रेम करती है तो उसके व्यक्त होने पर सखीके प्रति विश्वास टूट जाता है, और उसके प्रति प्रीति

नहीं रहती। नायिका नाना प्रकारकी आशङ्का करके स्वीय प्राणवल्लभके समीप ऐसी दशामें सखीको समर्पित नहीं कर सकती। क्योंकि इससे प्राणवल्लभके प्रति स्नेहका ह्रास होनेकी संभावना है। परन्तु श्रीमती राधिका और उनकी प्रियतमा सखियोंकी श्रीकृष्णके सम्बन्धमें यह रीति नहीं। सखीगणको श्रीकृष्णके पास अर्पण करनेके पूर्व श्रीमती राधिका सोचती है कि मैं अकेली काम-महोदधि रसिकशेखर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी काम पूर्तिमें समर्थ नहीं हूँ। अतएव अपने सदृश रूप यौवन सम्पन्न सुन्दरी सखियोंको उन्हें सर्मपित करूँगी। श्रीमतीके मनमें कृष्णप्रेमोत्कर्षसे ऐसी वासना उत्पन्न होने पर अपनी सखियोंको कृष्णके पास समर्पण करनेके निमित्त नाना प्रकारके छलकी उद्भावना करके उनको कुञ्जमें भेजती हैं। कुञ्जसे विस्मृत घटिका लाने आदिका श्रीमतीजीका छल समझकर सखियाँ मनमें विचार करती हैं कि काममहोदधि श्रीकृष्ण प्रचुर सुरतकी अभिलाषासे अतिशय क्षीणाङ्गी श्रीराधिकाके समान कोमल श्रीअङ्गको अतिशय क्लेश प्रदान करते हैं, इसी कारण वे श्रीकृष्णके पास हमको रतिरङ्ग करनेके लिए भेज रही हैं। श्रीराधिकाजीका क्लेश निवारण, उनकी अभिलाषाको पूर्ण करना तथा श्रीकृष्णके सुखकी इच्छा ही सखीवृन्दके कार्य हैं। अतएव वे अनभीष्ट विषयमें भी प्रवृत्त होती हैं। इस कारण स्वीय अहृद्य कृष्ण सङ्गमें भी उनकी प्रवृत्ति होती है। इस प्रकारका प्रेमभाव देखकर प्रेमनिधि श्रीकृष्णके मनमें परम सुख होता है। श्रीकृष्णको सुखी देखकर गोपिकाओंके मनमें भी बड़ा आनन्द होता है।*

श्रीश्रीराधाकृष्णकी इस प्रेमलीलाका आस्वादन ऐश्वर्य, सख्य, दास्य अथवा वात्सल्य भावमें नहीं किया जा सकता। इस अत्युत्तम लीला रसास्वादनका एकमात्र अधिकार सखियोंको है। फलतः वे ही इस मधुर लीलाको प्रकाशित करती हैं, और वे ही श्रीकृष्णको लीलारस संभोग कराकर परितृप्त होती हैं। क्योंकि उनका प्रेम अहैतुक है। यह कामके नामसे अभिहित होने पर भी वस्तुतः प्राकृत काम नहीं है। व्रज-गोपिकाओंकी श्रीकृष्णके प्रति प्रेमभक्तिका नाम ही काम है। उद्धव आदि भक्तगण भी इसी प्रकारकी प्रेमभक्तिकी कामना करते हैं।

तत्पश्चात् राय रामानन्द बोले—

सेइ गोपीभावामृते जार लोभ हय।
वेदधर्म लोकत्यजि सेइ कृष्णे भजय।।
रागानुगा मार्गे तारे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन।।

चै० च० म० ८. १७७, १७८

इस बातकी भी यहाँ कुछ व्याख्या करना आवश्यक है। वेदधर्मका अर्थ है वर्णाश्रम धर्म, जिसे प्रभुने पहले ही 'बाह्य' कह दिया है। यहाँ गोपीभावामृतलुब्ध रसिक भक्तोंका दो प्रकारका वेदधर्म त्याग परिदृष्ट होता है। प्रथमतः अत्यन्त प्रतिष्ठित महात्माओंका लोकसंग्रह करनेके निमित्त वेदधर्मानुष्ठान करते हुए भी उसमें पुरुषार्थ बुद्धिका त्याग, और द्वितीयतः लोकसंग्रहकी इच्छा न रखनेवाले लोगोंका सर्वथा कर्मत्याग। इनमें पहले प्रकारके लोगोंमें कर्ममें पुरुषार्थ बुद्धिका त्याग होने पर भी कर्मानुष्ठानके निमित्त समय-समय पर आतुरता पायी जाती है, परन्तु दूसरे प्रकारके लोगोंमें इसका अभाव होता है। ऐसा होने पर भी पहले प्रकारके महात्माओंकी लोकोपकारीके नामसे अधिक महिमा है।

वेदधर्मका त्याग करके जो रागानुगावर्ती श्रीकृष्णका भजन करते हैं, वे ही व्रजके गोपीभावामृतके पानके लोभी हैं। व्रजके धन व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय

* यह सारा तात्पर्य उज्ज्वल नीलमणिकी आनन्द चन्द्रिका नामक टीकासे अनुवादित है।

रागानुरागा भक्तिका याजन है। यह प्रेमभक्ति साधन व्रजसुन्दरियोंके आनुगत्यके बिना सिद्ध नहीं होता। सखियोंका अनुगामी हुए बिना व्रजका भजन सिद्ध नहीं होता। इस प्रकारके मधुर भजनका दूसरा कोई उपाय नहीं है। श्रीश्रीराधाकृष्णके सुखविभु और भाव स्वयं प्रकाशशील होने पर भी सखियोंकी सहायताके बिना रसपुष्टि करनेमें कोई समर्थ नहीं होता। विधिमार्गसे व्रजेन्द्रनन्दन कीकृष्ण प्राप्त नहीं होते, अतएव श्रुतिगण गोपीभाव स्वीकार करके सिद्ध देहमें श्रीकृष्णकी लीलास्थली श्रीवृन्दावनमें श्रीराधाकुण्ड आदि नित्यधाममें श्रीश्रीराधाकृष्णकी युगल सेवा करती हैं। पश्चात् सखीभावमें श्रीकृष्णके चरणोंको प्राप्त होती हैं।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी नित्यप्रेयसी व्रजसुन्दरी गोपिकाओंकी अनुगा न होकर ऐश्वर्य भावमें जो 'स्वयं गोपिका सदृश श्रीकृष्णकी प्रेयसी बनूँगी'—इस वासनासे व्रजजीवन नन्दनन्दनको परमेश्वर मानकर विधिमार्गसे उनका भजन करते हैं, वे व्रजेन्द्रनन्दनको प्राप्त नहीं होते। अतएव राय रामानन्द बोले—

गोपी अनुमति बिना ऐश्वर्य ज्ञाने।
भजिलेइ नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने॥

चै० च० म० ८. १८५

इसका दृष्टान्त लक्ष्मीजी हैं। वे बहुत तपस्या करके भी श्रीकृष्णकी रासलीलाके रसास्वादनकी अधिकारिणी नहीं बन सकी।

राय रामानन्दकी बात समाप्त होते ही प्रभुने आसनसे उठकर उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर श्रीभुजदण्डमें आवद्ध कर लिया। दोनों जने गले-गले मिलकर देर तक अजस्र आँसू बहाते रहे। दोनों आदमीने उस दिन सारी रात निर्जनमें उस विप्रके घर रोते-रोते बिता दी।

निशान्तमें विदाई

दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों अपने अपने कार्यमें चले गये। विदा होते समय राय रामानन्दने प्रभुके चरणोंको धारण करके अति विनीतभावसे रोते हुए कहा—

"मोरे कृपा करिते प्रभुर इहाँ आगमन।
दिन दश रहि शोध मोर दुष्ट मन॥
तोमा बिना अन्य नाहि जीव उद्धारिते।
तोमा बिना अन्य नाहि कृष्णप्रेम दिते॥"

चै० च० म० ८. १९०, १९१

चतुर चूड़ामणि प्रभु दैन्यके अवतार थे। षडैश्वर्यपूर्ण स्वयं भगवान्का यह दैन्यभाव बड़ा ही मधुर है। प्रभुके श्रीमुखकी दैन्यपूर्ण वाणी मानो मधुसे भरी हैं। ऐसी मधुमयी वाणी कभी किसीने कहीं किसीके मुखसे नहीं सुनी। इतनी विनय, इतनी दीनता जगत्में है, यह पहले किसीको ज्ञात न था। राय रामानन्दकी बातका प्रभुने जो उत्तर दिया, उसे सुनिये। यथा—श्रीचैतन्य चरितामृतमें—

प्रभु कहे-आइलाम शुनि तोमार गुण।
कृष्णकथा शुनि शुद्ध कराइते मन॥
जैछे शुनिल, तैछे देखिल तोमार महिमा।
राधाकृष्ण-प्रेमरस-ज्ञानेर तुमि सीमा॥
दश दिनेरका कथा, यावत् आमि जीव।
तावत् तोमार सङ्ग छाड़िते नारिव॥
नीलाचले तुमि आमि थाकिव एक संगे।
सुखे गोङाइव काल कृष्ण कथा-रंगे॥

चै० च० म० ८. १९२-१९५

राय रामानन्दने लज्जासे सिर झुका लिया। वे अब सिर उठाकर प्रभुसे बात न कर सके। प्रभुकी चरणधूलि लेकर वे समयानुसार विदा हुए। विदा होते समय कृपानिधि प्रभुने उनको पुनः गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

दूसरे दिनके प्रश्नोत्तर

सन्ध्याके समय राय रामानन्द पुनः आकर उसी विप्रके घर प्रभुसे मिले। उनका सत्सङ्ग फिर शुरू हुआ। प्रभु प्रश्नकर्त्ता थे और राय रामानन्द

उत्तरदाता। उन प्रश्नोत्तरोंमें व्रजके भजनतत्त्व विशेष रूपसे परिस्फुटित हुए हैं। कृपामय सुधी पाठकवृन्द इसमें व्रजरसका आस्वादन करें।

प्र०—प्रभु कहे कोन विद्या विद्यामध्ये सार ?।
उ०—राय कहे कृष्णभक्ति बिना विद्या नाहि आर ॥[1]
प्र०—कीर्तिगण मध्ये जीवेर कोन बड़ कीर्ति ?
उ०—कृष्णभक्ति बलिया जाँगर हम ख्याति ॥
प्र०—सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कोन सम्पत्ति गणि ?
उ०—राधाकृष्ण प्रेम जार सेइ बड़ धनी ॥
प्र०—दुःख मध्ये कोन दुःख हय गुरुवर ?
उ०—कृष्णभक्त-विरह-बिनु दुःख नाहि आर ॥
प्र०—मुक्तमध्ये कोन जीव मुक्त करि मानि ?
उ०—कृष्णप्रेम जाँर—सेइ मुक्त-शिरोमणि ॥[2]
प्र०—गान मध्ये कोन गान जीवेर निजधर्म ?
उ०—राधाकृष्णेर प्रेमकेलि जे गीतेर मर्म ॥[3]
प्र०—श्रेयो मध्ये कोन श्रेयः जीवेर हय सार ?
उ०—कृष्णभक्त संग बिना श्रेयः नाहि आर ॥
प्र०—काहार स्मरण जीव करे अनुक्षण ?
उ०—कृष्णनाम-गुण-लीला प्रधान स्मरण ॥
प्र०—ध्येय मध्य जीवेर कर्त्तव्य कोन् ध्यान ?
उ०—राधाकृष्ण-पदाम्बुज—ध्यान प्रधान ॥
प्र०—सर्व त्यजि जीवेर कर्त्तव्य काँहा वास ?
उ०—व्रजभूमि वृन्दावन—जाहाँ लीला रास ॥
प्र०—श्रवण मध्ये जीवेर कोन् श्रेष्ठ श्रवण ?
उ०—राधाकृष्ण प्रेमकेलि कर्ण-रसायन ॥
प्र०—उपास्येर मध्ये कोन् उपास्य प्रधान ?
उ०—श्रेष्ठ उपास्य—युगल राधाकृष्ण नाम ॥
प्र०—मुक्ति-भक्ति बाञ्छा जेइ काँहा दोहार गति।
उ०—स्थावर देहे, देव देहे जैछे अवस्थिति ॥*

अरसज्ञ काक चूसे ज्ञान निम्बफले।
रसज्ञ कोकिल खाय प्रेमाम्र-मुकुले ॥
अभागिया ज्ञानी आस्वादये शुष्क ज्ञान।
कृष्ण प्रेमामृतपान करे भाग्यवान् ॥

चै. च. म. ८. १९९-२१३

सबके अन्तमें प्रभुने प्रश्न किया कि, जो मुक्ति (सायुज्य) की कामना करते हैं और जो भक्ति (प्रेमभक्ति) की कामना करते हैं, इन दोनों प्रकारके साधकोंकी क्या गति होती है? "राय रामानन्दने इसका जो उत्तर दिया है वह श्लेषात्मक होने पर भी यथार्थ है। उन्होंने कहा—"जो सायुज्य मुक्तिकी कामना करते हैं, उनकी गति स्थावर देह (वृक्ष पर्वतादि) में अवस्थितके समान है, अर्थात् वृक्ष-पर्वतादि देहधारी सुख भोगसे वञ्चित होता है और अज्ञानसे पूर्ण होता है। उसी प्रकार मुक्तिकामी साधकगण सुख-भोगसे विमुख और अज्ञानसे पूर्ण होते हैं। श्रीभगवान्के चिदानन्द देहको न मानकर उनको निराकार ब्रह्म निर्देश करना ही ज्ञानियोंका अज्ञान है। देवदेहमें जो जीव अवस्थान करते हैं, वे निरन्तर सुख भोग करते हैं, और उनका मन सर्वदा ज्ञानसे परिपूर्ण रहता है। इसी प्रकार भक्ति और प्रेमभक्तिकी कामना करनेवाले साधकवृन्द सर्वदा सुखभोग करते हैं, तथा वे अव्याहत ज्ञानसे सदा परिपूर्ण रहते हैं।

इस प्रकार प्रभुने वह रात कृष्णकथा-रससङ्गमें व्यतीत की। राय रामानन्दकी बात सुनकर प्रभु कभी अङ्गभङ्गी करके प्रेमानन्दमें मधुर नृत्य

---

१. कृष्णभक्ति विद्या यहाँ कृष्णभक्ति प्रतिपादक शास्त्रके अर्थमें है। शास्त्र ज्ञानके बिना भक्तिका स्वरूप तत्त्वतः जाना नहीं जा सकता। अतएव कृष्णभक्ति प्रतिपादक शास्त्राभ्यास ही यथार्थ विद्यापद वाच्य है।

२. "निश्चला त्वयि या भक्तिः सा मुक्तिः परिकीर्तिता'—इस श्लोकके सिद्धान्त को कहा है।

३. श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रेम केलिका अर्थ यहाँ उनकी उज्ज्वल रसमयी लीला कथा है।

* जड़ भोगहीन मुक्तिवादीगण अन्तमें स्थावर देह, तथा जड़ भोगयुक्त भुक्तिवादी परलोकमें देवदेह लाभ करते हैं।

करते थे, कभी प्रेमावेशमें कीर्त्तन करते थे, कभी अजस्त्र अश्रुपात करते थे। इसी प्रकार सारी रात बीत गयी। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"नृत्य गीत रोदने हैला रात्रि शेषे।"

चै.च.म. ८.२१४

तीसरे दिनका संवाद

प्रभातमें प्रभु और सेवक दोनों ही अपने-अपने कार्यमें चले गये। सन्ध्याकालमें पुनः राय रामानन्द आकर प्रभुसे मिले। कुछ देर तक कृष्णकथा रससङ्गमें सत्सङ्ग करके उन्होंने प्रभुके रक्त कमल चरणको दोनों हाथोंसे धारण करके प्रेमपूर्वक रोते हुए गद्गद कण्ठसे कहा—

कृष्णतत्त्व, राधातत्त्व प्रेमतत्त्वसार।
रसतत्त्व लीलातत्त्व विविध प्रकार॥
एत तत्त्व मोर चित्ते कैले प्रकाशन।
ब्रह्माके वेद जेन पड़ाइल नारायण॥
अन्तर्यामी ईश्वरेर एइ रीत हये।
बाहिरे ना कहे वस्तु प्रकाशे हृदये॥
एक संशय मोर आछये हृदये।
कृपा करि कह मोरे ताहार निश्चये॥
पहिले देखिमु तोमा संन्यासी स्वरूप।
एवे तोमा देखि मुजि श्याम-गोपरुप॥
तोमार सम्मुखे देखो काञ्चन-पञ्चालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व-अंग ढाका॥
ताहाते प्रकट देखि सवंशीवदन।
नाना भावे चञ्चल ताहे कमल नयन॥
एइ मत तोमा देखि हय चमत्कार।
अकपटे कह प्रभु कारण इहार॥

चै. च. म. ८. २१७-२२४

राय रामानन्दने अपने मनके सन्देहको प्रकट करके श्रीगौराङ्ग प्रभुके चरणकमलमें इस प्रकार अपने मनोभावको व्यक्त किया। कविराज गोस्वामीने लिखा है कि राय रामानन्दने पहले श्रीगौर भगवान्‌को गोदावरी तटपर संन्यासी रूपमें दर्शन किया था।

श्रीमुरारि गुप्तके करचाके अनुसार श्रीचैतन्य मङ्गल श्रीग्रन्थकी रचना हुई है, ठाकुर लोचनदासने लिखा है कि प्रभुने राय रामानन्दके घर जाकर उनको दर्शन देकर कृतार्थ किया श्रीपाद मुरारि गुप्तके दो मूल श्लोक नीचे लिखे जाते हैं—

स स्वगृहे कृष्णपूजावसाते
ध्यायन् परं ब्रह्म ब्रजेन्द्रनन्दनः।
ददर्श वारत्रयमद्भुतं महद्
गौराङ्गमाधुर्यमतीव विस्मितः॥
उन्मील्य नेत्रे च तदेव रूपं
दृष्ट्वा परं ब्रह्म संन्याव वेशम्।
प्रणम्य मूर्ध्वा विहितः कृताञ्जलिः
पप्रच्छ कृत्रत्य भवातिति प्रभो॥

चै. म. शेषखण्ड

पूर्व रात्रिमें राय रामानन्दने अपनी नियमित उपासनाके बाद श्रीकृष्ण भगवान्‌के रूपका चिन्तन करते-करते देखा था कि उनके अभीष्ट देव मानो एक गौरवर्णके संन्यासीके रूपमें उनके सामने आये हैं। उनको पहले कभी श्रीगौराङ्ग प्रभुका दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। यहाँ तक कि उनका नाम भी उन्होंने सुना था या नहीं, इसमें सन्देह है। वे अपने अभीष्ट देवका संन्यासीके रूपमें दर्शन करके विस्मयापन्न चित्तसे पुनः ध्यानस्थ हो गये। इस प्रकार उन्होंने तीन बार देखा कि उस कषित काञ्चन वर्णकी संन्यासी-मूर्त्तिने उनके हृदयपर पूर्णतः अधिकार कर लिया है। उनके चिर उपास्य देव श्यामसुन्दर मदनमोहन श्रीकृष्णमूर्त्ति वहाँ नहीं हैं। तब वे अत्यन्त उद्विग्न होकर आँखें खोलकर इधर-उधर ताकने लगे, और अपने सामने उस गौरवर्ण संन्यासीको देखा। रामानन्द राय तत्काल उस संन्यासीरूपी साक्षात् पूर्णब्रह्म सनातन श्रीगौराङ्गके चरणोंमें जा गिरे। उनको चतुर्दिक गौरमय दिखायी देने लगा। तब उन्होंने हँसते हुए प्रभुसे पूछा—

मोर अभ्यन्तरे तुमि आइला केमने।
बड़ भाग्ये देखिलाम तोमार चरणे ॥

चै० म० शेष खण्ड

प्रभुने मधुर मुस्कानके साथ उत्तर दिया—"तुम मुझे पहचान नहीं पा रहे हो। मैं ही तुम्हारा अभीष्ट देव हूँ। मैं तुम्हारे सामने अपना प्राकट्य करने आया हूँ।" इतना कहकर हँसते हुए—

पुनर्वार हैला प्रभु श्याम कलेवर।
त्रिभंग मुरलीमुख वर पीताम्बर ॥
राधा वामे परम सुन्दरी महामति।
चौदिके बेड़िया गोपी वरांग युवति ॥

चै० म० शेष खण्ड

राय रामानन्दने श्री श्रीराधाकृष्णकी युगल मूर्तिका दर्शन तो किया, परन्तु उन्होंने देखा कि श्रीराधिकाकी गौरवर्ण श्रीअङ्गकान्तिसे श्रीकृष्णका श्यामवर्ण श्रीअङ्ग आच्छादित है।* यही श्रीमद्भागवतोक्त श्रीगौराङ्ग अवतार तत्त्व प्रकाशक 'कृष्णवर्णंत्विषाकृष्ण' (११.५.३१) श्लोकमें व्यक्त हुआ है।

उसी समय पुनः श्रीगौर भगवान् अपनी संन्यासमूर्त्तिमें प्रकट हुए। राय रामानन्द प्रभुके इस प्रकारके अद्भुत रहस्यपूर्ण लीलारहस्यका मर्मोद्घाटन न कर सकनेके कारण उनके चरणतलमें गिरकर बोले—

"अकपटे कह प्रभु इहार कारण।"

चै० च० म० ८.२२४

श्रीभगवान् सदाके ही शठ-शिरोमणि हैं। भक्तकी सर्वाङ्गीण परीक्षा लेना उनका कार्य है। इसके सिवा वे कलियुगमें प्रच्छन्न अवतार हैं। वे वाक्चातुरीमें अत्यन्त पटु हैं। भक्त चूड़ामणि राय रामानन्दने कहा—"हे प्रभु! कृपा करके निष्कपट भावसे इसका कारण बतलाइये। उनके मनमें था कि श्रीगौरभगवान् अपने मुखसे उनके सामने अपने अवतार तत्त्वको प्रकट करें। परन्तु चतुर भक्तसे श्रीभगवान् सब प्रकारसे सुचतुर हैं। इसी कारण वे यहाँ कलिके प्रच्छन्न अवतार हैं। वे स्वभावको व्यक्त न करके अपूर्व भावभङ्गीसे भक्तको भुलानेकी चेष्टा करते हुए बोले—

—कृष्णे तोमार गाढ़ प्रेम हय।
प्रेमेर स्वभाव एइ जानिह निश्चय ॥
महा भागवत देखे स्थावर जंगम।
ताँहा ताँहा हय ताँर श्रीकृष्णस्फुरण ॥
स्थावर जंगम देखे, ना देखे ताँर मूर्त्ति।
सर्वत्र हय निज इष्टदेव स्फूर्त्ति ॥
राधाकृष्णे तोमाय महाप्रेम हय।
जाँहा ताँहा राधाकृष्ण तोमारे स्फुरय ॥

चै० च० म० ८.२२५-२२८

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित दो श्लोकोंका पाठ किया—

सर्वभूतेषु यः पश्येत् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येय भागवतोत्तमः ॥

भा० ११.२.४५

श्लोकार्थ—हरिने योगीन्द्र राजा निमिसे कहा, महाराज! जो भगवान् मशकादि सर्वभूतमें नियन्ता रूपमें वर्त्तमान हैं, उनके निरतिशय ऐश्वर्यको जो सब भूतोंमें देखता है, किसी प्रकारका भी उनमें तारतम्य नहीं देखता, तथा जो उन भगवान्में ही सब

---

* पयार छन्द (चै० च० म० ८.२२२) में लिखा है
'तोमार सम्मुखे देखो काञ्चन-पञ्चालिका'
श्रीकृष्णके नाम भागमें श्रीराधाके अवस्थित होनेपर व्रज-युगल श्रीमूर्तिको पूर्णता प्राप्त होती है। किन्तु यहाँ काञ्चन पञ्चालिका सम्मुखमें कैसे आयीं?—यह प्रश्न उठ सकता है। यहाँपर श्रीगौराङ्ग अवतारका उद्देश्य सूचित हुआ है। श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णके सम्मुख आकर दोनों बाहु पसारकर अपनी अङ्गकान्तिके द्वारा प्राणवल्लभका सर्वाङ्ग आच्छादन करके उनको गौर बना दिया—इस प्रकारकी व्याख्या भी वैष्णव आचार्योंके मुखसे सुनी गयी है।

भूतों को देखता है, परन्तु जड़मलिन भूतका आश्रय होनेके कारण उनके ऐश्वर्यमें कोई कमी नहीं देखता उसको उत्तम भागवत कहते हैं, अथवा अपना जैसा प्रेम भगवान्में होता हैं, वैसा ही सब भूतोंमें जो देखते हैं, वह उत्तम भागवत हैं।

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टः तनवः ससृषुः स्म ॥
भा० १०.३५.९

ब्रह्मदेवियोंने कहा—हे सखि ! श्रीकृष्ण जब वंशीके द्वारा गोपाङ्गनाओंका आह्वान करते हैं, तब वनलताएँ और वनके वृक्षगण अपनेमें स्फुरित श्रीकृष्णको अभिव्यक्त करते हुए फल-पुष्प आदिके भारसे शाखाओंको झुका करके तथा अंकुरोद्गमके बहाने प्रेममें हृष्टतनु होकर मधुधारा रूप अश्रु-वर्षण करते हैं।" यहाँ वंशीध्वनि सुनकर अपनी अवस्थाको ही तरुलता आदिमें प्रदर्शित करते हुए उत्तम भागवतमें परिगणित करते हैं।

राय रामानन्द श्रीकृष्णके नित्यदास हैं। पूर्वलीलामें वे विशाखा सखी थे। वे प्रभुके सब तत्त्व जानते थे। उत्तरमें प्रभुके प्रच्छन्न भावको समझकर वे बोले—

—"प्रभु ! तुमि छाड़ भारि भूरि।
मोर आगे निजरूप ना करिह चूरि॥
राधिकार भावकान्ति करि अंगीकार।
निज रस आस्वादिते करियाछ अवतार॥
निज गूढ़ कार्य तोमार प्रेम आस्वादन।
आनुसंगे प्रेममय कैले त्रिभुवन॥
आपने आइले मोरे करिते उद्धार।
एबे कपट कर तोमार कोन् व्यवहार॥
चै० च० म० ८.२२९-२३२

रामानन्द रायने अति सुस्पष्ट शब्दोंमें श्रीगौर भगवान्से कहा—"हे विदग्धनागर शिरोमणि ! मैं तुम्हारी सब बातें जानता हूँ, मेरे सामने तुम कपट न करना। तुम कृपाकरके मेरा केश पकड़कर उद्धार करने आये हो। अब कपट छोड़कर मेरे मनके सन्देहको दूर कर दो। मैंने श्यामसुन्दर मूर्त्तिका ध्यान करते-करते तुम्हारी इस कनक कान्ति गौराङ्गमूर्त्तिको पहले संन्यासी वेषमें दर्शन किया है, इससे मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न हो गया है कि यह गोपियोंका मन चोरा मदनमोहन श्यामसुन्दर संन्यासीके वेषमें क्यों मेरे हृदयमें उदय हुआ है ? दूसरे ही क्षण तुमने कनक प्रतिमा श्रीमती राधिकाको सामने करके श्याम सुन्दर मूर्त्तिमें मुझको दर्शन दिया है। परन्तु मैंने देखा है कि श्रीराधिकाकी गौरवर्ण श्रीअङ्गकी कान्तिसे तुम्हारा श्यामवर्ण आच्छादित हो गया है। तुम्हारा गोपवेष, तुम्हारे श्रीवदनमें वंशी—सब कुछ देखा है, केवल श्यामवर्णके बदले गौरवर्ण देखा है, इसका मर्म मुझको समझा दो।"

श्रीभगवान्के स्वरूप तत्त्वका अनुसन्धान करने वाले भक्त चूड़ामणि श्रीरामानन्द रायने इस प्रकार सब अवतारोंके सार श्रीगौराङ्ग तत्त्वको जानना चाहा। स्वयं भगवान् कलिके प्रच्छन्न अवतार श्रीगौराङ्ग सुन्दरने हँसकर उनको अपना स्वरूप दिखलाया। राय रामानन्दने देखा—

"रसराज महाभाव दुइ एक रूप।"
चै० च० म० ८.२३३

यह रसराज महाभाव दोनों एक रूप है। यह साधन जगतमें अभिनव वस्तु है। स्वयं भगवान्का यह रूप भी अभिनव रूप है। श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभुके नित्य पार्षद तथा भक्तोंमें कोई भी अब तक इस 'रसराज महाभाव दुइ एक रूप' का प्रकृत अर्थ हृदयङ्गम नहीं कर सका था। राय रामानन्द परम सुकृतिमान् महापुरुष थे। इसी कारण प्रभुने उनको अपने अवतारका सारतत्त्व श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलविलासकी एकीभूत अपूर्व मिलन मूर्त्तिका प्रकृत मर्म समझा दिया। इस अभिनव भावमय श्रीगौराङ्ग मूर्तिका ऐसा ऐश्वर्य प्रकाश कभी किसीने

इसके पहले देखनेकी सुकृति या सौभाग्य प्राप्त नहीं किया। प्रभुने स्वयं यह बात राय रामानन्दसे कही है। इस 'रसराज महाभाव दुइ एक रूप' अपूर्व एकीभूत श्रीराधाकृष्ण मिलनमूर्त्तिके विषयमें श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने भी अपने श्रीचैतन्य चन्द्रामृत श्रीग्रन्थमें कुछ आभास दिया है।* यह श्रीग्रन्थ श्रीचैतन्त चरितामृत श्रीग्रन्थसे वहुत पहले रचा गया था।

रसराज महाभावके युगलविलासकी मूर्त्ति श्रीश्रीराधाकृष्णमिलितवपु श्रीगौरभगवान्‌को राय रामाननन्दने अपने चिर अभिलषित परतत्त्वके रूपमें देखा। प्रेमानन्दमें वे तत्काल मूर्छित होकर भूतलपर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। प्रेमावेगमें उन्होंने अपूर्व महामहिमामय महामिलन मूर्त्तिके श्रीचरणोंके स्पर्श सुखानुभवकी आकांक्षामें अपने मस्तकको भूतलपर लुण्ठितकर दिया, परन्तु उनकी वह आशा पूर्ण नहीं हुई। प्रभुने अपने श्रीकरकमलोंके स्पर्शके द्वारा राय रामानन्दकी आनन्द मूर्च्छा भङ्ग कर दी। राय रामानन्दने तब पुनः उसी संन्यासरूपी श्रीमन्महाप्रभुको देखा। उनके आश्चर्यकी तब सीमा न रही। प्रभु उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए, उनका हाथ पकड़कर एकान्तमें खीच ले जाकर मृदु स्वरमें हँसते हुए मधुर सप्रेम वचनमें कहने लगे।

"तोमा बिना एइ रूप ना देखे कोन जन ॥
मोर तत्त्व लीलारस तोमार गोचरे।
अतएव एइ रूप देखाइल तोमारे ॥
गौर-अंग नहे मोर—राधांग स्पर्शन।
गोपेन्द्र सुत बिना तँहो ना स्पर्शे अन्यजन ॥
ताँर भावे भावित आमि करि आत्ममन।
तबे निजमाधुर्य-रस करि आस्वादन ॥
तोमार ठाञि आमार किछु गुप्त नाहि कर्म्म।
लुकाइले प्रेमबले जान सर्व्व मर्म्म ॥
गुप्ते राखिह, काहाँ ना करिह प्रकाश।
आमार बातुल चेष्टा—लोके उपहास ॥
आमि एक बातुल तुमि द्वितीय बातुल।
अतएव तोमाय आमाय हइ समतुल ॥

चै० च० म० ८. २३६-२४२

श्रीमन्महाप्रभु राय रामानन्दसे बोले, ये सब निगूढ़ रसतत्त्वकी बातें तर्कनिष्ठ जगत्‌में हास्य-परिहासका विषय बन जाँयगी। अतएव तुम अनधिकारी पुरुषके सामने इसको प्रकट न करना। कृष्णप्रेममें मत्त होने पर जड़चेष्टाहीन जीवकी रागानुभाव जनित प्रेम चेष्टाएँ साधारण लोगोंकी दृष्टिमें पागलपन जान पड़ेगा। अतएव जड़विचारमें हम और तुम दोनों ही पागल हैं और दोनों ही समान हैं।

पृथक्-पृथक् रूपमें श्री श्रीराधाकृष्ण युगल मिलन, और इस एकत्रित और एकीभूत शक्ति और शक्तिमान्‌का महामिलन दो पूर्णतः पृथक् भाव हैं, श्रीश्रीराधाकृष्णके युगल मिलन रसतत्त्वमें देह भेद है। सखीवृन्द श्रीश्रीराधाकृष्णका युगल मिलन कराकर जो आनन्द उपभोग करती हैं, इस महा-महिमामय नित्य मिलन भावमें उच्चाधिकारी प्रकृत गौरभक्तके हृदयमें तदपेक्षा अधिकतर आनन्द अनुभूत होता है। इसका मर्म है। महाभावस्वरूपिणी श्रीराधिकाके प्रेम प्रभावाधिक्यसे प्रेम रसमयरूप

---

* स्वयं देवो यत्र द्रुत कनक गौरः करुणया
महाप्रेमानन्दोज्ज्वलरसवपुः प्रादुरभवत्।
नवद्वीपे तस्मिन् प्रति भवन भक्त्युत्सवमये
मनो मे वैकुण्ठेऽपि च मधुरे धाम्नि रसते ॥
श्री चैतन्य चन्द्रामृत ६२.

अर्थात् मेरा चित्त श्रीनवद्वीपधाममें विलसति हो रहा है। इस नवद्वीप धाममें कषित काञ्चन वर्ण स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्गने महाभावमयी श्रीराधिकाके स्वरूपप्रयुक्त शृंगार रसमय शरीरविशिष्ट होकर करुणा करके युगलविलास किया था। अतएव वैकुण्ठसे भी श्रीधाम नवद्वीप अधिकतर माधुर्यमय है। इससे यह सिद्ध होता है कि परतत्त्वकी अभिन्न स्फूर्त्ति श्रीनवद्वीपचन्द्र हैं। वही विभिन्न स्फूर्तिमें श्रीराधाकृष्ण युगलमूर्त्ति हैं।

श्रीकृष्णने अपने देह तकको उत्सर्ग कर दिया। 'रसराज महाभाव एकरूप' मिलनमें श्यामसुन्दरका श्यामाङ्ग प्रेममयी श्रीराधिकाके गौराङ्गमें परिणित होगया, एक अभिनव राधाभावद्युति सुवलित अभिन्न मदन श्रीगौराङ्गमूर्ति प्रकट होगयी। प्रेम-स्पर्शमणि श्रीराधिकाके श्रीअङ्गके स्पर्शसे श्रीश्यामसुन्दरका श्यामाङ्ग गौराङ्ग हो गया, रसमयी भी रसमय प्रेमाधिवयसे एकीभूत हो गयी।

राधिकार प्रेम--गुरु, आमि--शिष्य नट्।
सदा आमा नाना नृत्ये नाचाय उद्भट॥
चै० च० आ० ४.१०८

यह श्रीकृष्णकी उक्ति है। श्रीमती राधिकाके प्रेममें वे विह्वल होकर कहते हैं—

पूर्णानन्दमय आमि चिन्मय पूर्णतत्त्व।
राधिकार प्रेमे आमाय कराय उन्मत्त॥
ना जानि राधार प्रेमे आछे कत बल।
जे बले आमारे करे सर्वदा विह्वल॥
निज प्रेमास्वादे मोर हय जे आह्लाद।
ताहा हइते कोटिगुण राधाप्रेमास्वाद॥
चै. च. आ. ४. १०६, १०७, १०६

इसी उद्भट लोभमें पड़कर श्रीकृष्ण भगवान् प्रममयी श्रीराधिकाके भाव और कान्तिको चुराकर राधा-प्रेम-रसास्वादनके लिए श्रीगौराङ्ग रूपमें नदियोंमें अवतीर्ण हुए थे। श्रीराधिकाके भावमें श्रीकृष्ण तन और मन विभावित करके अपनी अत्यन्त वल्लभा प्रियाजीके साथ नित्य स्वरूपमें मिलित हो गये। यही प्रेमका चरमोत्कर्ष महामिलन है। यही 'रसराज महाभाव दुइ एक रूप' है। यह श्रीभगवान्का अपूर्व माधुर्यमय लीला रहस्य है। यही उनका अलौकिक अपूर्व लीलारङ्ग है।

कविराज गोस्वामीने लिखा है—

अलौकिक लीला एइ परम निगूढ़।
विश्वासे पाइये-तर्के हय बहुदूर॥
चै. च. म. ८. २६०

आगे कहते हैं—

श्रीचैतन्य नित्यानन्द अद्वैतचरण।
जाँहार सर्वस्व—तारे मिले एइ धन॥
चै. च. म. ८. २६१

इसके आगे अब वाणीकी गति नहीं है। इस प्रकार प्रभु दस दिन रात राय रामानन्दके साथ कृष्णकथारङ्गमें काल यापन करके एकदिन उनसे बोले—

विषय छाड़िया तुमि जाह नीलाचले।
आमि तीर्थ करि ताँहा आसिब अल्पकाले॥
दुइ जने नीलाचले रहिव एक संगे।
सुखे गोङाइब काल कृष्णकथा रंगे॥
चै० च० म० ८. २४८, २४६.

इतना कहकर उन्होंने पुनः उनको प्रगाढ़ प्रमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। राय रामानन्द अनमना होकर घर चले। कविराज गोस्वामीने रामानन्द-गौराङ्ग मिलनका उपसंहार करते हुए लिखा है—

संक्षेपे कहिल रामानन्देर मिलन।
विस्तारि वर्णिते नारे सहस्रवदन॥
सहजे चैतन्य चरित घन दुग्धपूर।
रामानन्द चरित ताहे खण्ड प्रचुर॥
राधाकृष्ण लीला ताहे कर्पूर मिलन।
भाग्यवान् जेइ सेइ करे आस्वादन॥
जेइ इहा एकबार पिये कर्णद्वारे।
तार कर्ण लोभे—इहा छाड़िते ना पारे॥
सर्व तत्त्वज्ञान हय इहार श्रवणे।
प्रेमभक्ति हय राधा कृष्णेर चरणे॥
चैतन्येर गूढ़तत्त्व जानि इहा हैते।
विश्वास करि शुन, तर्क ना करहि चिते॥
चै० च० म० ८. २५४, २५६

श्रीभगवान्की अलौकिक लीला कथामें सुदृढ़ विश्वास जो नहीं कर पाते हैं, उनके समान अभागा और कौन होगा ? जिसको यह दुर्भाग्य प्राप्त है, उसका इहलोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाता है। यह बात भी कविराज गोस्वामीने कही है—

अलौकिक लीलाये जार ना जन्मे विश्वास।
इहलोक परलोक तार हय नाश॥

चै० च० म० ७. १०८

श्रीपाद स्वरूप दामोदरके करचाके अनुसार श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने ये सारे निगूढ़ रसतत्त्वका वर्णन किया है। राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर गोस्वामी श्रीनीलाचलमें प्रभुके साथ सर्वदा रहे। प्रभुकी गम्भीरा लीलाके नित्यसङ्गी ये ही दो महापुरुष थे। राय रामानन्दके मुखसे प्रभुकी यह सारी लीला-कहानी सुनकर श्रीपाद स्वरूप दामोदर गोस्वामीने अपना करचा लिखा है।

राय रामानन्द पूर्व लीलाकी विशाखा सखी थे। अतएव रसतत्त्वके वे ऐसे उच्चाधिकारी हुए। उनके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार !

रामानन्द राय मोर कोटि नमस्कार।
जाँर मुखे कैल प्रभु रसेर विस्तार॥

चै० च० म० ८. २६२

सातवाँ अध्याय

प्रभुका नीलाचलमें पुनरागमन

प्रभुर आगमन शुनि नित्यानन्द राय।
उठिया चलिला, प्रेमे थेह नाहि पाय॥

चै० च० म० ९. ३११

भक्तवृन्दसे मिलन

प्रभुके आलालनाथमें शुभागमनकी बात सुनकर अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु दलबलके साथ प्रेमानन्दमें नाचते-नाचते चल पड़े। दो वर्षके बाद वे अपने प्राणगौराङ्गको देखेंगे, इसी आनन्दमें विभोर होकर निताई चाँद रास्ते पर चले जा रहे हैं। जगदानन्द और दामोदर पण्डित, मुकुन्द और गोपीनाथ आचार्य सभी प्रेमानन्दमें नृत्य करते हुए रास्ते पर चले जा रहे हैं। बहुतसे लोगोंको साथ लेकर सार्बभौम भट्टाचार्य भी जा रहे हैं। प्रभुके सभी भक्तगण साथमें हैं। उनके आनन्दकी आज सीमा नहीं है। प्रभुने कृष्णदासको पहले ही श्रीनीलाचल भेज दिया था। वे भी इन लोगोंके साथ हैं। प्रभु गोविन्दको साथ लेकर आ रहे हैं।

रास्तेमें उनके साथ भक्तवृन्दका शुभ मिलन हुआ, वह एक अपूर्व दृश्य था। रास्तेमें आनन्दका तूफान आ गया। सबके मुँह पर हँसी थी। समुद्रके तीर पर आकर प्रभुने एक-एक करके भक्तवृन्दको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

प्रभुका दर्शन करते ही प्रेमावेगमें सभी व्याकुल होकर रो पड़े।

आनन्दमय प्रभुके कनक केतकी सदृश नयनद्वयसे शतधारामें प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहा है। उन्होंने अपने आजानुलम्बित सुवलित बाहुयुगल प्रसारित करके सबको अपने क्रोड़में खींच-खींचकर प्रेमालिङ्गन-सुख-तरङ्गमें निमज्जित कर दिया। समुद्र तीरपर आनन्दका शत-शत स्रोत उमड़ पड़ा। उच्च हरिनाम गानसे समुद्र तीर मुखरित हो उठा।

सार्वभौम भट्टाचार्य आकर प्रेमाश्रुसिक्त देहसे प्रभुके चरणकमलमें जा गिरे। प्रभुने उनको हाथ पकड़कर उठाया और प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया।

भट्टाचार्य प्रेमानन्दमें विभोर होकर अजस्र आँसू बहाने लगे।

प्रभु ताँरे उठाइया कैलि आलिंगने।
प्रेमावेशे सार्वभौम करेन क्रन्दने॥

चै० च० म० ९. ३१६, ३१७

कृपासिन्धु श्रीगौराङ्ग प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यके अङ्गमें अपने श्रीकरकमलका स्पर्श करके उनको सुस्थिर किया। पश्चात् हँसते-हँसते बोले, "हे भट्टाचार्य! मैंने बहुत देश भ्रमण किया, बहुत लोगोंका सङ्ग किया, परन्तु तुम्हारे समान परम भागवत कहीं नहीं देखा। केवल राय रामानन्दको देखा, परन्तु वे साधारण मनुष्य नहीं हैं।" सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके श्रीमुखसे आत्म प्रशंसाकी बात सुनकर कुछ देर लज्जासे सिर अवनत कर लिया। पश्चात् हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! यह दास आपके एकमात्र श्रीचरणोंका आश्रित है। एक तो आत्मग्लानिरूपी अग्निमें हृदय दिन-रात दग्ध होता रहता है, उसके ऊपर यह आत्मप्रशंसा घृताहुति देकर और अभिमानको न बढ़ावें। राय रामानन्द साधारण आदमी नहीं है, यह जानकर ही मैंने उनके साथ सङ्ग करनेके लिए कहा था।" प्रभुने मधुर मुस्कानके साथ उत्तर दिया। "भट्टाचार्य! तुम्हारी ही कृपासे मैंने रामानन्द रायका सङ्ग प्राप्तकर अपनेको धन्य माना है। इसके लिए तुम्हारे सामने मैं चिरऋणी हूँ।" सार्वभौम भट्टाचार्यने पुनः लज्जासे सिर झुका लिया।

इसके बाद सब भक्तोंके साथ प्रभु प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर नृत्य-कीर्तन करते हुए श्रीनीलाचल धाममें जा पहुँचे। सबसे पहले वे भक्तवृन्दके साथ श्रीजगन्नाथका दर्शन करने गये। बहुत दिनके बाद श्रीविग्रहका दर्शन करके उनके श्रीअङ्गमें अष्ट सात्त्विक भाव उदय हो गये। वे प्रेमावेशमें बहुत देर तक नृत्य कीर्तन करते रहे। श्रीजगन्नाथजीके सेवक प्रभुके लिए माल्य-प्रसाद ले आये, प्रभुने उसे भक्तिपूर्वक स्वीकार करके उनकी वन्दना की। श्रीजगन्नाथजीके सब सेवक एक-एक करके प्रभुसे मिले। बहुत दिनके बाद प्रभुको देखकर आज उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। राजगुरु पण्डित काशीमिश्रने आकर वहाँ ही प्रभुके चरणोंमें अपना सिर रख दिया। अत्यन्त सम्मान पूर्वक प्रभुने उनको उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

सार्वभौम भट्टाचार्यने उस दिन प्रभुको अपने घर लेजाकर भिक्षा कराया। प्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि सभीने भट्टाचार्यके निमन्त्रणसे उस दिन उनके घर मध्याह्न भोजन किया। सार्वभौम भट्टाचार्यने अति उत्तम महाप्रसाद लाकर सबको परम सन्तुष्ट करते हुए भोजन कराया। बहुत दिनके बाद प्रभुने उस दिन श्रीजगन्नाथजीका प्रसाद पाया। उनको बहुत-सा प्रसाद परोसा गया। उन्होंने विविध तरकारी मिश्रित व्यञ्जन (नाफरा) वारम्वार माँगकर लिया। भोजनके अन्तमें उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यके घर पर ही विश्राम किया। भट्टाचार्यने स्वयं ही प्रभुकी चरण सेवाकी।

प्रभुने उनको मना किया, परन्तु उन्होंने एक न मानी। प्रभुके नितान्त अनुरोधसे वे तब भोजन करने गये। दयामय श्रीगौराङ्ग प्रभु उस रात सार्वभौमके घर पर ही रहे। सारी रात जागकर वे सबको तीर्थयात्राकी बात सुनाते रहे। सब लोग बड़े ही आग्रहपूर्वक उनके श्रीमुखसे सब बातें सुनकर प्रेमानन्दमें विभोर हो उठे। कैसे सारी रात बीत गयी, किसीको पता न चला।

महाराज गजपति प्रताप रुद्रने सुना कि प्रभु नीलाचलमें लौटकर आये हैं। सार्वभौम भट्टाचार्यको बुलाकर उन्होंने प्रभुके वासस्थानका प्रबन्धकर देनेके लिए कहा। पण्डित काशीमिश्र राजगुरु थे।

उनके घर पर प्रभुके निवासका प्रबन्ध हुआ। काशीमिश्रका घर श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके समीप और एकान्त स्थानमें था। राजा प्रताप रुद्रकी राय से उनके गुरुके घर इस बार प्रभुका वासस्थान निर्दिष्ट हुआ। राजगुरु काशीमिश्र परम भागवत, तथा भक्तिशास्त्रके विद्वान् थे। प्रभु उनके घर निवास करेंगे, यह सुनकर उनके आनन्दका ठिकाना न रहा।

गुरुगृहमें प्रभुको निवास स्थान देनेकी वासना राजा प्रतापरुद्रके मनमें क्यों हुई? वे प्रभुकी कृपाके भिखारी थे, यह बात उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यसे पहले ही कही थी। भट्टाचार्यने उनसे कहा था कि प्रभु विषयीके संसर्गमें रहना नहीं चाहते। विषयीका मुख तक वह देखना नहीं चाहते। राजा प्रतापरुद्र गुरुगृह नित्य जाते हैं, गुरुकी चरण सेवा करते हैं। उन्होंने सोचा कि प्रभुको गुरुगृहमें स्थान देनेपर प्रभुका दर्शन उन्हें नित्य प्राप्त होगा। प्रभु उनको दर्शन दानसे वञ्चित करें तो भी वे प्रभुके श्रीचरणोंके दर्शनका लोभ नहीं छोड़ सकते। यही राजाके मनके भाव थे। इसी कारण उन्होंने प्रभुका वास स्थान गुरुके घर निर्दिष्ट किया। परन्तु प्रभु यहाँ भी उनको दर्शन नहीं देते थे।

प्रभु पुनः श्रीनीलाचल आ गये हैं। नीलाचल वासी नर-नारी आनन्दमें उन्मत्त होकर प्रभुके दर्शनके लिए चले। सबने सुना कि प्रभुने राजगुरु काशी मिश्रके घर निवास किया है। वहाँ बहुतसे लोगोंकी भीड़ हो गयी। प्रभुने सबको मीठी बातोंसे सन्तुष्ट करके बिदा किया। काशी मिश्रने देह, गेह, आत्मा—सब कुछ प्रभुके चरणकमलमें समर्पण कर दिया। उसी समय प्रभुने कृपा करके अपनी ऐश्वर्यमयी चतुर्भुज मूर्त्ति दिखलायी।

प्रभु संन्यासाश्रम ग्रहण करके नीलाचलमें आकर अधिक दिन नहीं रहे। तीन-चार महीनेके बाद ही उन्होंने दक्षिणकी यात्रा की थी। उस समय श्रीनीलाचलचन्द्रके एकान्त भक्त सेवकवृन्दको उनके साथ साक्षात् परिचयका सुयोग प्राप्त नहीं हुआ था। इससे वे लोग विशेष दुःखी थे। सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे प्रभुका गुणगान सुनकर उनसे मिलनेकी आशामें वे अत्यन्त उद्विग्न थे। उन्होंने एक दिन सर्वभौम भट्टाचार्यसे कहा—"प्रभुके साथ एक दिन हमको भेंट करा दीजिये।" उन सब भक्तोंको लेकर एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्य काशीमिश्रके घर पहुँचे। प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके उन्होंने पूछा—"प्रभु! आपके योग्य यहाँ वासस्थान है नहीं, परन्तु आपने कृपा करके इसे जो अङ्गीकार किया है, यही हमारे लिए सौभाग्यकी बात है। मिश्रजी आपके परम भक्त हैं, आपने कृपा करके इनकी आशा पूर्ण की है। यह आपकी असीम दयाका परिचय है" दयामय प्रभुने मधुर मुस्कानके साथ जो उत्तर दिया, उसे सुनकर पाठक अपने प्राणोंको शीतल कर लें। ऐसे परम दयालु प्रभु और कहाँ मिलेंगे? प्रभु बोले—

—"एइ देह तोमा सबाकार।
जेइ तुमि कह—सेइ सम्मत आमार॥"

चै० च० म० १०.३५

सार्वभौम भट्टाचार्य और उनके साथी भक्तवत्सल प्रभुके विनयनम्र मधुर वचनसुधा पान करके आनन्दसे गद्गद हो गये। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुधारा बह चली, वे प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोने लगे। इसके बाद नीलाचल वासी एक-एक करके प्रभुका दर्शन करके कहने लगे—

तदानीमस्माकं समजनि न तादृक् सुभगता
गतास्तेनास्माकं परम करुणा नेक्षणपथम्!
इदानीं नो भाग्यं समघटत यज्जङ्गममिमं
स्वयं नीलाद्रीशं वत नयनपातैर्विचिनुमः॥

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८.१

अर्थ—अहा! उस समय हमारा वैसा सौभाग्य उदय नहीं हुआ, इसी कारण परम कारुणिक श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका दर्शन हमें नहीं मिला था। परन्तु अब हमारे सौभाग्यवश हम सचल

जगन्नाथजीको आँखे भर कर दर्शन करके धन्य हो रहे हैं।

तब सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—

एइ सब लोक प्रभु वैसे नीलाचले।
उत्कण्ठित हैया आछे तोमा मिलिवारे ॥
तृषित चातक जैछे मेघेर हाँकारे।
तैंछे एइ सब, सभा कर अंगीकार ॥

चै० च० म० १०.३७,३८

इतनी कहकर वे एक-एक उपस्थित भक्तगणका परिचय देने लगे। यथा,

जगन्नाथ-सेवक एइ नाम जनार्दन।
अनवसरे करे प्रभुर श्रीअंग-सेवन ॥
कृष्णदास नाम एइ स्वर्णवेत्रधारी।
शिखि माहिती एइ लिखन-अधिकारी।
प्रद्युम्न मिश्र इँह वैष्णव-प्रधान।
जगन्नाथ महा सो यार* इँह दास नाम ॥
मुरारि महिती-शिखि माहितीर भाइ।
तोमार चरण बिनु अन्य गति नाइ ॥
चन्दनेश्वर सिंहेश्वर मुरारि ब्राह्मण।
विष्णुदास इँहो ध्याये तोमार चरण ॥
प्रहराज महापात्र इँहो महामति।
परमानन्द महापात्र इँहार संहति ॥
एइ सब वैष्णव एइ क्षेत्रेर भूषण।
एकान्त भावे भजे सबे तोमार चरण ॥

चै० च० म० १०.३९.४५

उन सब उड़ीसावासी गौरभक्तोंने प्रभुके चरणोंमें गिरकर उनकी कृपाभिक्षाकी याचना की। प्रभुने एक-एक करके सबको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। उसी समय वहाँ अपने चार पुत्रोंके साथ भवानन्द राय आकर प्रभुके चरणोंमें जा गिरे। भवानन्द राय रामानन्द रायके पिता थे। उनके पाँच पुत्र थे। रामानन्द राय ज्येष्ठ पुत्र थे। सर्वभौम भट्टाचार्यने भवानन्द रायका परिचय दिया और प्रभुने उनको प्रेमानन्दमें आलिङ्गन किया, बहुत सम्मान और स्तुति पूर्वक उनको पास बैठाकर राय रामानन्दकी बात करने लगे। भक्त चूड़ामणि राय रामानन्दकी बात करते-करते प्रभुने अपनी गोष्ठीके प्रकृत तत्त्वको प्रकट कर दिया। प्रभु बोले—

रामानन्द हेन रत्न जाँहार तनय।
ताँहार महिमा लोके कहले ना हय ॥

चै० च० म०१०.५०

अर्थात् राय रामानन्दके समान भक्त चूड़ामणि जिनके पुत्र हैं, उनका पूर्वतत्त्व लोगोंको बताये बिना क्या रहा जा सकता है? प्रभु इस समय ईश्वरावेशमें बातें कर रहे थे। उनके श्रीवदनकी अपूर्व ज्योतिसे गृह आलोकित हो रहा था। सब लोग उनके दिव्य ज्योतिपूर्ण मुखमण्डलकी ओर एक टक देख रहे थे, सबने कान लगा रखा था कि प्रभु क्या बोल रहे हैं। श्रीगौर भगवान्ने भवानन्द रायसे कहा—

साक्षात् पाण्डु तुमि, तोमार पत्नी कुन्ती।
पञ्च पाण्डव तोमार पञ्च पुत्र महामति ॥

चै० च० म० १०.५१

सबके सामने भगवान् भावमें प्रभुने भवानन्द-तत्त्वको प्रकट कर दिया। सब लोग सुनकर आनन्दसे हरिध्वनि करने लगे। भवानन्द रायने लज्जासे सिर अवनत कर लिया। वे चारों पुत्रोंके साथ पुनः प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े, और प्रेमानन्दमें द्रवित होकर गद्गद स्वरमें बोले—

—"आमि शूद्र विषयी अधम।
मोरे स्पर्श तुमि एइ ईश्वर लक्षण ॥
निज गृह वित्त भृत्य पञ्च पुत्र सने।
आत्मा समर्पिल अमि तोमार चरणे ॥
एइ वाणीनाथ रहिबे तोमार चरणे।
जबे जेइ आज्ञा सेइ करिबे सेवने ॥

* सोआर-सूपकार पाचक।

आत्मीय ज्ञान करि संकोच ना करिबे ।
जेइ जबे इच्छा तोमार सेइ आज्ञा दिबे ।।

चै० च० म० १०.५२-५५

भवानन्द राय समृद्धिशाली गृहस्थ थे। उनकी गृहस्थीमें किसी वस्तुकी कमी न थी। उनके ज्येष्ठ पुत्र राय रामानन्द विद्यानगरके राजा थे। उनका ठाट-वाट राजकीय था। वे सपरिवार प्रभुके शरणागत हो गये। एक पुत्रको चिर जीवनके लिए प्रभुकी सेवामें नियुक्त कर दिया। भवानन्द रायकी श्रीगौर भगवान्के प्रति सहज प्रीति थी. उनको संन्यासी देखकर एक पुत्रको उनकी सेवाके कार्यमें नियुक्त करके प्रभुके प्रति अपनी सहज प्रीति और स्नेहका भाव प्रदर्शित किया। श्रीगौर भगवान् इसपर उनके प्रति परम सन्तुष्ट होकर अति सुस्पष्ट भाषामें भगवान् भावमें सबके सामने उनके परिवारके नित्य किङ्करत्वका जयडङ्का बजा दिया। श्रीचैतन्य चरितामृतमें लिखा है—

प्रभु कहे—कि सङ्कोच, नह तुमि पर ।
जन्मे जन्मे तुमि मोर सवंशे किङ्कर ।।

चै० च० म० १०.५६

इतना कहकर प्रभुने अपने भगवान् भावको संवरण किया। उनको प्रच्छन्न अवतार तत्त्वकी बात याद आयी। तब वे आत्म गोपन करके हँसते हुए भवानन्द रायसे कहने लगे—"पाँच-सात दिनमें रामानन्द राय यहाँ आवेंगे। उनके साथ एक जगह रहने पर मैं अपनेको कृतार्थ समझूँगा।" इतना कहकर कृपानिधि प्रभुने उनको पुन: प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। भवानन्द रायके पुत्रोंके मस्तकपर दयामय प्रभुने चरण स्पर्श करके कृपाशीर्वाद दिया। वाणीनाथ श्रीगौराङ्ग-दास हो गये।

काला कृष्णदासका नवद्वीप प्रस्थान

इसके बाद सार्मभौम भट्टाचार्यने सबको विदा किया। जब सब लोग प्रभुकी चरणवन्दना करके अपने-अपने कार्यमें चले गये तब श्रीगौर भगवान्ने एक लीला रङ्ग प्रकट किया। उस समय काशी मिश्रके घर सार्वभौम भट्टाचार्य और प्रभु अकेले थे। दूसरा कोई नहीं था। प्रभुने अपने दक्षिण देशके साथी काला कृष्णदासको बुलाया। कृष्णदास बहुत सीधे ब्राह्मण थे। वे प्रभुके सामने आकर अपराधीके समान हाथ जोड़कर खड़े हो गये। करुणामय प्रभुने एक बार उनकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर सार्वभौम भट्टाचार्यको सम्बोधन करके कहा—

—भट्टाचार्य ! शुन इहार चरित ।
दक्षिण गेलेन इँहो आमार सहित ।।
भट्टमारी हैते गेला आमारे छाड़िया ।
भट्टमारी हैते इँहाय आनिल उद्धारिया ।।
इबे आमि इँहा आनि करिल बिदाय ।
जाहाँ ताहाँ जाह, आमा सने नाहि आर दाय ।।

चै० च० म० १०.६१-६३

भक्तवत्सल अदोषदर्शी प्रभुने केवल इतना ही कहा कि यह विप्र भट्टमारीसे उनको छोड़कर भाग गया था और केश पकड़कर प्रभु उसे नीलाचल लाये हैं। सार्वभौम भट्टाचार्यके सामने भीतरकी बात प्रभु नहीं बोले। क्योंकि कृष्णदास अपने कुकर्मसे स्वयं ही भीतर मृतवत् हो रहा था, इसके साथ यदि प्रभु सबके सामने खोलकर उसकी वह गर्हित स्त्री विषयक बात कह देते तो वह प्राण त्याग देता। भट्टमारीके वामाचारी संन्यासियोंके प्रलोभनमें पड़कर उसने स्त्रीधनके लोभमें प्रभुका त्याग किया था। सर्वज्ञ प्रभुने इसे जानकर अपने दासको केश पकड़कर नरक कुण्डसे कैसे उद्धार किया था, यह पहले वर्णन किया जा चुका है। भक्तवत्सल प्रभुने भक्तकी मनोवेदना देखकर मूल बात छिपा रखी। परन्तु उनकी बातसे ही यह प्रकट हो गया कि वह कृष्णदासके ऊपर असन्तुष्ट थे। उन्होंने कहा—

इबे आमि इहा आनि करिल बिदाय ।
जाँहा ताँहा जाह, आमा सने नाहि दाय ।।

चै० च० म० १०.६३

परन्तु इसका कुछ तात्पर्य है। श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि सबने मिलकर जिद्द करके बहुत अच्छा आदमी कहकर कृष्णदासको प्रभुके सङ्ग दिया था। कृष्णदास श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रिय शिष्य और एकान्त अनुगतदास थे। दासके दासपर प्रभु कैसा अनुग्रह करते हैं, यह बात इस घटनासे स्पष्टतः समझी जा सकती है। कृपानिधि श्रीगौर भगवान्ने श्रीनित्यानन्द प्रभुको उनके प्रियतम शिष्यके कुकर्मकी बात कुछ नहीं कही। सबके सामने उसके कुकर्मकी बात नहीं बोले। सार्वभौम भट्टाचार्यको एकान्तमें बुलाकर केवल उसका आभास मात्र दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने अपने प्रिय शिष्यको प्रभुके हाथमें समर्पण किया था। प्रभु उसको कैसे छोड़ आते? कृष्णदास उनको प्राणसे भी बढ़कर था, क्योंकि वह श्रीनित्यानन्दका दास था। शत कुकर्म करनेपर भी प्रभु उसको छोड़कर नहीं आ सकते थे। अतएव उसपर कृपा करके उसका केश पकड़ करके जिसका दास था उसको सौंपकर निश्चित हो गये। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि "अब मुझपर कोई दायित्व न रहा। इसके विषयमें मैं अब दायित्वसे छूट गया।" अर्थात् अब नित्यानन्द प्रभु अपने दासका भार लें। हमारे दयाके सागर प्रभु अपने दासानुदासके ऊपर बड़े ही कृपावान् थे। भक्तवत्सल दयामय प्रभुके इस कार्यसे यही प्रमाणित हुआ।

कृष्णदासके इस अपराधके साथ छोटे हरिदासके अपराधकी तुलना नहीं हो सकती। प्रभुके द्वारा छोटे हरिदासका त्याग, और कृष्णदासका त्याग–इन दोनों लीलारङ्गके रसमें कोई तुलना नहीं हो सकती। छोटे हरिदास प्रभुके निज दास थे, और कृष्णदास प्रभुके दासानुदास थे। निजदासके प्रति प्रभुने जो सामान्य अपराधके लिए कठोर दण्डका विधान किया था, अपने दासानुदासके प्रति वैसा नही किया। पुत्रकी अपेक्षा पौत्र-प्रपौत्रके ऊपर मनुष्यकी ममता अधिक देखी जाती है। श्रीभगवान् नर शरीर धारण करके नर लीला करनेके लिए भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। उनके लिए भी नरप्रकृतिके लिए सुलभ मोह-ममता स्वाभाविक जान पड़ती है।

कृष्णदासको प्रभुने जब इस प्रकार त्याग दिया, तब वह उनके चरणोंमें गिरकर रोने लगे। परन्तु प्रभुने उनकी एक न सुनी, वे मध्याह्न कृत्य करनेके लिए उठ गये। तत्पश्चात् सार्वभौम भट्टाचार्यने यह बात श्रीनित्यानन्द प्रभु, जगदानन्द, दामोदर पण्डित तथा मुकुन्दके सामने कहकर उनसे परामर्श करके कृष्णदासको नवद्वीप भेजनेकी इच्छा प्रकट की। क्योंकि प्रभुके दक्षिण देशसे लोटनेका समाचार शची, विष्णुप्रिया तथा नवद्वीपके भक्तवृन्दको देना आवश्यक था। तत्काल एक आदमीको नवद्वीप भेजना निश्चय हुआ, और सबने मिलकर इसी कार्यसे कृष्णदासको नवद्वीप भेजनेका वन्दोवस्त किया। क्योंकि प्रभुका आदेश था कि वह नीलाचलमें नहीं रह सकता।

कृष्णदास जीवित ही मृतवत् हो रहे थे। उन्होंने आहारादि त्याग दिया था। सबने उनको आश्वासन देते हुए कहा—"प्रभुसे आज्ञा लेकर हम लोग तुम्हें नवद्वीप भेजेंगे, वहाँ जाकर तुम शची-विष्णुप्रियाकी सेवामें रहना।" कृष्णदासके मनमें इतने दुःखके बीच कुछ शान्ति प्राप्त हुई। उसके मुँहपर हँसीकी रेखा दीख पड़ी, क्योंकि प्रभुको छोड़कर यदि प्रभुकी माता और गृहणीकी सेवा-परिचर्याका भार मिलता है तो उसके मनको शान्ति प्राप्त होगी।

सबने मिलकर एक दिन प्रभुके पास जाकर कहा—"प्रभो! तुम्हारे दक्षिण देश जानेका समाचार सुनकर शची माता और अद्वैत प्रभु आदि नदियाके भक्तवृन्द उद्विग्न हैं। तुम्हारे नीलाचल लौटनेका समाचार उनको शीघ्र देना आवश्यक हो गया है। यदि आज्ञा हो तो हम लोग एक आदमीको भेज दें।" प्रभु बोले—"अच्छी बात है, यदि तुम्हारी इच्छा है तो एक आदमीको भेज दो।"

प्रभुको उन्होंने यह नहीं बतलाया कि कृष्णदासको नवद्वीप भेजेंगे। इसका भी कारण है। उनको भय था कि कृष्णदासका नाम सुनकर कहीं प्रभु पुनः विरक्त न हो जाँय।

कृष्णदास नवद्वीप गये, उसके बाद नीलाचलमें उनको किसीने नहीं देखा। उनको फिर नीलाचल लौटकर आनेका साहस नहीं हुआ। वे श्रीधाम नवद्वीपमें रह गये। उनके दुर्भाग्यके साथ सौभाग्यका संयोग हुआ। वे श्रीगौराङ्ग सेवासे वञ्चित होकर शची-विष्णुप्रियाकी सेवामें नियुक्त हुए।

नदियाके अवतार दयाके अवतार थे। केश पकड़कर कुपथगामी दासानुदास कृष्णदासका नरककुण्डसे उद्धार किया, उसको अपराधके लिए जैसा दण्ड मिलना चाहिये था वैसा नहीं दिया, यहाँ तक कि यह भी किसीसे प्रकट नहीं किया कि अपराध क्या हैं। अन्तर्यामी प्रभुको यह पता न था कि कृष्णदास नवद्वीप भेजे जा रहे हैं। कुपथगामी भृत्यानुभृत्यपर कृपा करके उसको उच्चाधिकार प्रदान किया, नवद्वीपमें उसको अपनी जननी और गृहिणीकी सेवाके कार्यमें नियुक्त करके अपनी भक्तवत्सलताका पूर्ण परिचय दिया। अपराधी भक्तके प्रति दयामय श्रीभगवान् इसी प्रकार दण्ड विधान किया करते हैं, इसी कारण उनका नाम भक्तवत्सल है। हे प्रभु ! अधम और पतितको तारनेके लिए ही भूतलमें तुमने अवतार ग्रहण किया है। इस जीवाधामको कृपा करके केश पकड़कर उद्धार करो। तभी समझूँगा कि तुम पतितपावन और अधम उधारण हो।

पतित तारिते प्रभु तोमार अवतार।
आमा वहि त्रिजगते पतित नाहि आर ॥

नवद्वीपके गौरशून्य गृहमें जाकर कृष्णदासने सबसे पहले प्रभुके आङ्गनमें धूलमें लोटकर सर्वप्रथम शचीदेवीको दण्डवत् प्रणाम किया, तथा प्रभुके नीलाचलमें लौटनेका और उनके कुशल मङ्गलका समाचार कह सुनाया। उन लोगोंको श्री-श्रीजगन्नाथजीका महाप्रसाद दिया। वृद्धा शची माता पुत्रका कुशल समाचार पाकर आनन्दसे रोकर व्याकुल हो उठीं। अन्तरालमें खड़ी होकर श्रीविष्णु-प्रिया देवीने सब कुछ सुन लिया। नयन जलसे उनका वक्षस्थल डूब गया। उन दोनोंने कृष्णदासको आशीर्वाद दिया। उसके बाद अद्वैत प्रभुके घर जाकर कृष्णदासने प्रभुकी दक्षिण देशकी भ्रमण वार्त्ता कह सुनायी। नदियाके सब भक्तगणको प्रभुके नीलाचल पहुँचनेके समाचारसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वे प्रतिदिन शचीमाताके पास बैठकर प्रभुके दक्षिण देश भ्रमणकी बात कहते थे। श्रीमती विष्णुप्रिया देवी अन्तरालमें बैठकर सुनती रहती थी। कृष्णदासके मुखसे गौरकथा सुनकर दोनों विह्वल होकर रो पड़ी। कृष्णदास कुछ दिन नवद्वीपमें रहे, पश्चात् शान्तिपुर जाकर श्रीअद्वैत प्रभुकी सेवामें लग गये। वे कृष्णदासपर विशेष कृपा दृष्टि रखते थे।

परमानन्दपुरीका नवद्वीप होकर नीलाचल गमन

उसी समय श्रीपाद परमानन्दपुरी तीर्थ भ्रमण करके दक्षिण देशसे गङ्गाके किनारे-किनारे होते हुए नवद्वीपमें आ पहुँचे। वे प्रभुके मन्दिरमें शची माताके अतिथि हुए। शची माताने विशेष सम्मानपूर्वक उनको भिक्षा कराया। शचीमाताके पास वे प्रभुके नीलाचलमें शुभागमनका समाचार पाकर सत्वर नीलाचल जानेका विचार करने लगे। शची माताने रोते-रोते उनको विदा किया। पुत्रके पास कई सन्देश भेजनेकी इच्छा हुई, परन्तु हृदयके आवेगके कारण मुँहसे कोई बात निकल न सकी। पुरी गोसाई श्रीगौराङ्गजननीके मनके दुःखको समझकर हृदयमें दारुण व्यथा अनुभव करने लगे। वे भी बालकके समान रो पड़े। प्रभुके एक भक्त विप्रके साथ उन्होंने नीलाचलकी यात्रा की। उस विप्रका नाम कमलाकर था। श्रीपाद परमानन्द पुरी यथासमय श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें

पहुँचे। वे पहले श्रीजगन्नाथजीका दर्शन न करके काशीमिश्रके घरकी ओर प्रभुका दर्शन करने गये। रास्तेमें चलते समय पुरी गोस्वामी उत्कण्ठापूर्वक मन ही मन सोचने लगे—

कदासौ द्रष्टव्यः स खलु भगवान् भक्ततनुमा-
निति प्रौढोत्कण्ठा-विलुलितमहो मानसमिदम्।
चिरादद्य प्राप्तः स खलु फल कालो ममपुनः
न जाने कीदृक्षं जनयति फलं भाग्यविटपी॥

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८.४

अर्थात् भक्तरूपधारी श्रीभगवान्‌को कब देखूँगा। इसके लिए मेरा मन बड़ा उतावला हो रहा है। जान पड़ता है कि इतने दिनके बाद मेरा सौभाग्य-वृक्ष फलित होगा। परन्तु कैसा फल होगा, यह नहीं जानता।

श्रीकाशी मिश्रके घरका रास्ता श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरसे होकर जाता है। पुरी गोसाईं प्रेमविह्वल हृदयसे प्रभुके दर्शनके लिए जा रहे हैं, उनका ध्यान और किसी ओर नहीं है। श्रीमन्दिर सामने देखकर मन ही मन कहते हैं, "हे भगवान्! हे जगन्नाथ! आपका दर्शन न करके मैं पहले श्रीगौर भगवान्‌के दर्शनके लिए जा रहा हूँ, यह अपराध क्षमा करें। आप सर्वज्ञ हैं। मेरे मनकी उत्कण्ठा आप अवश्य जानते हैं।"

पुरी गोसाई इस प्रकार मन ही मन कह रहे थे, उसी समय श्रीमन्दिरके द्वारपर कोलाहल सुनायी दिया, क्योंकि प्रभु बहुतसे भक्तोंके साथ श्रीविग्रहका दर्शन करने आ रहे थे। प्रभुको सामने देखते ही पुरी गोसाईंने प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर उनका जय गान किया। जैसे,

जयति कलित नीलशैलचन्द्रे
क्षणरस चर्वण रंग निस्तरंगः।
कनकमणि शिलाविलासि वक्षः
स्थल गलदस्त मजस्र रोमहर्षः॥

चै० च० ना० ८.७

श्लोकार्थ—जो श्रीनीलाचल चन्द्रके दर्शनजनित अपूर्व रसके आस्वादनके कौतुकमें निश्चल हो गये हैं, एवं नयनाश्रुसे काञ्चनमणि शिलाके सदृश जिनका वक्षःस्थल सिक्त हो रहा है, तथा जिनका श्रीअङ्ग निरन्तर रोमाञ्चित हो रहा है, वे श्रीगौरचन्द्र जयको प्राप्त हों।

प्रभुने पुरी गोसाईंको देखते ही पहचान लिया, तथा आदर पूर्वक उनको दण्डवत् प्रणाम करके कुशल समाचार पूछा। प्रेमावेशमें पुरी गोसाईंने प्रभुको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया।

दोनों ही प्रेमानन्दके समुद्रमें डूब गये। कुछ देरके लिए दोनोंका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। पश्चात् सुस्थिर होकर प्रभुने पुरी गोसाईंसे कहा—"श्रीपाद! आपके सङ्ग रहनेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है, कृपा करके आप नीलाचलमें वास करें।" पुरी गोसाईंने उत्तर दिया—"मेरी भी बड़ी इच्छा है कि तुम्हारे साथ सर्वदा रहूँ। इसी कारण गौड़देशसे दौड़ते हुए यहाँ आया हूँ। मैं नवद्वीप गया था। वहाँ ही तुम्हारे दक्षिण देशसे लौटनेका समाचार पाकर यहाँ आ रहा हूँ।" इतना कहकर उन्होंने नवद्वीपका सब समाचार कह सुनाया। उन्होंने शची माताके बारेमें विशेष करके उल्लेख किया। मातृभक्त प्रभुने अपनी मातृदेवीके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। पुरी गोसाईंने यह भी कहा कि—"नदियाके भक्तगण तुम्हारा दर्शन करनेके लिए शीघ्र ही नीलाचल आवेंगे। उनके आनेमें विलम्ब देखकर मैं पहले चला आया हूँ।" यह सुनकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने वास स्थानपर आकर श्रीकाशी मिश्रसे कहकर पुरी गोसाईंके लिए एकान्तमें रहनेका स्थान निर्दिष्ट कर दिया। एक सेवकका भी बन्दोवस्त कर दिया। दोनों आदमी कृष्णकथा रसमें दिनरात मत्त रहने लगे।

स्वरूप दामोदर

स्वरूप दामोदर गोस्वामी पहलेसे ही नीलाचलमें आये हुए थे। वे भी प्रभुके साथ ही काशी मिश्रके

घरमें रहते थे। स्वरूप दामोदर गोस्वामीका परिचय पहले दिया जा चुका है। कविराज गोस्वामीने उनके सम्बन्धमें लिखा है—

पाण्डित्येर अवधि, कथा नाहि कारोसने।
निर्जने रहेन, सब लोक नाहि जाने॥
कृष्णरस-तत्त्ववेत्ता—देहे प्रेमरूप।
साक्षात् महाप्रभुर द्वितीय स्वरूप॥
ग्रन्थ श्लोक गीत केहो प्रभु आगे आने।
स्वरूप परीक्षा कैले—पाछे प्रभु शुने॥
भक्ति-सिद्धान्त-विरुद्ध जेइ, आर रसाभास।
शुनिते ना हय प्रभुर चित्तेर उल्लास॥
अतएव स्वरूप आगे करे परीक्षण।
शुद्ध हय यदि, कराय प्रभुके श्रवण॥
विद्यापति चण्डीदास श्रीगीतगोविन्द।
एइ तिन गीत करे प्रभुर आनन्द॥
संगीते गन्धर्वसम, शास्त्रे बृहस्पति।
दामोदर सम आर नाहि महामति॥
अद्वैत नित्यानन्देर परम प्रियतम।
श्रीवासादि भक्तवृन्देर हय प्राण सम॥

चै. च. म. १०. १०८-११५

इस स्वरूप गोस्वामीको लक्ष्य करके कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

प्रिय स्वरुपे दयति स्वरुपे प्रेमस्वरुपे सहजाभिरुपे।
निजानुरुपे प्रभुरेकरुपे ततान रुपे स्वविलासरुपे॥

चै. च. ना. ८. ३०

श्रीमन्महाप्रभुने स्वरूप गोसाईको जो कहा, उसे पूज्यपाद विश्वनाथ चक्रवर्तीकी भाषामें सुनिये—

स्वरुपरसमन्दिरे भवसि मन्मुदामास्पदं।
तमत्र पुरुषोत्तमे व्रजभुवीव मे वर्त्तने॥
इति स्वपरिरम्भणैः पुलकिनं व्यधात् तं च यो।
चिरासतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्र प्रभुः॥

स्वरूप दामोदर गोसाईंका इतना परिचय पर्याप्त है। वे सर्वदा प्रभुके पास रहते हैं। प्रभु उनको प्राणतुल्य मानते हैं।

ईश्वरपुरी गोसाईंके भृत्य गोविन्द

एक दिन प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य आदि भक्तवृन्दके साथ अपने वासस्थान पर बैठकर कृष्णकथा कह रहे थे, उसी समय वहाँ श्रीपाद ईश्वरपुरी गोसाईंके भृत्य परम कृष्णभक्त, विरक्त वैष्णव गोविन्दने आकर प्रभुके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके निवेदन किया—

ईश्वर पुरीर भृत्य-गोविन्द मोर नाम।
पुरी गोसाञिर आज्ञाय आइनु तव स्थान॥
सिद्धि प्राप्ति-काले गोसाञि आज्ञा कैलमोरे।
कृष्णचैतन्य निकट रहि सेवह ताँहारे॥

चै. च. म. १०. १२९, १३०

गोविन्दने यह भी कहा कि, "काशीश्वर पण्डित तीर्थ भ्रमण करके यहाँ आवेंगे। मैं गुरुदेवकी आज्ञासे पहले ही आया हूँ।" प्रभु गोविन्दकी ओर शुभदृष्टि करके विनम्र वचन बोले—

—"पुरीश्वर वात्सल्य करि मोरे।
कृपा करि मोर ठाञि पाठाइला तोमारे॥"

चै. च. म. १०. १३२

सार्वभौम भट्टाचार्य वहीं थे। वे शास्त्रज्ञ पण्डित थे, प्रभुकी कृपा प्राप्त होने पर भी उनकी पाण्डित्य बुद्धि अभी पूर्णतः लुप्त नहीं हुई थी। उन्होंने प्रभुसे पूछा, "पुरी गोसाईंने शूद्र सेवक क्यों रक्खा?" लीलामय श्रीगौरभगवान् यह बात सुनकर खूब हँसे। गोविन्दकी ओर स्नेह दृष्टि डालकर भट्टाचार्यको लक्ष्य करके बोले—

—"ईश्वर हय परम स्वतन्त्र।
ईश्वरेर कृपा नहे वेद-परतन्त्र॥
ईश्वरेर कृपा जाति-कुलादि ना माने।
विदुरेर घरे कृष्ण करिला भोजने॥
स्नेहलेशापेक्षा मात्र ईश्वर-कृपार।
स्नेहवश हञा करे स्वतन्त्र आचार॥
मर्यादा हैते कोटि सुख स्नेह-आचरणे।
परम आनन्द हय जाहार श्रवणे॥

चै. च. म. १०. १३४-१३७

प्रभु कैसी सुन्दर बात बोल गये। ऐसी परम उदार प्रकृति तथा भागवत्तत्त्व विशेषज्ञ हुए बिना क्या नदियाके ब्राह्मण बालक जगद्गुरु हो सकते थे ? उन्होंने कहा, "ईश्वरकी कृपा जाति-कुल आदि नहीं मानती।" यह वेदवाक्य है। एक और अति सुन्दर सिद्धान्त बतलाया कि, "भगवद्जनमें मर्यादासे कोटि गुणा सुख स्नेह-आचरणमें है।" यहाँ प्रभुने माधुर्य भजनकी श्रेष्ठता दिखलायी है।

यह सब बातें करके प्रभु आसन छोड़कर उठे, और गोविन्दको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। गोविन्द प्रेमानन्दमें अधीर होकर प्रभुके चरणोंमें जा गिरे। करुणामय प्रभुने उनका हाथ पकड़कर उठाया और पास बैठनेकी आज्ञा देकर पुनः आसन ग्रहण किया।

उसी समय धर्मरक्षक प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यसे एक प्रश्न किया। उन्होंने शास्त्रका उल्लेख किया था, इसीलिए प्रभुने उनसे शास्त्र चर्चा करनेकी प्रार्थनाकी। उन्होंने प्रकारान्तरसे प्रश्न किया—

—"भट्टाचार्य ! करह विचार।
गुरुर किङ्कर हय मान्य से आमार॥
इहाके आपन सेवा कराइते ना जुयाय।
गुरु आज्ञा दिया छेन, कि करि उपाय॥

चै. च. म. १०. १३९-१४०

सार्वभौम भट्टाचार्यने उत्तर दिया, "प्रभु ! गुरु आज्ञाही बलवान् है। शास्त्रके मतसे गुरुकी आज्ञा उल्लङ्घन करना कर्तव्य नहीं है। 'आज्ञां गुरुणां ह्यविचारणीया।' आप गोविन्दको दासके रूपमें अङ्गीकार करें।"

प्रभुने सार्वभौमकी बात मानकर गोविन्दको अपनी श्रीअङ्ग-सेवाका अधिकार दिया। गोविन्दने प्रभुका कृपा-प्रसाद प्राप्त कर आनन्दमें अधीर होकर मन-ही-मन यह प्रतिज्ञाकी—

गोविन्द कहे मने—आमार सेवा से नियम।
अपराध हउक, किंवा नरके पतन॥

चै. च. अं. १०. ९२

यह बात गोविन्द कब और क्यों बोले ? प्रभुकी यह अपूर्व लीलाकथा आगे कही जायगी। गोविन्दके भाग्यकी सीमा नहीं है। प्रभुने आज कृपा करके उनको जो उच्च अधिकार प्रदान किया, अब तक उनके किसी भक्तको वह प्राप्त न था। उनका भाग्य शिव विरञ्चिके लिए भी अभिबाञ्छनीय है। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

गोविन्देर भाग्य सीमा ना जाय वर्णन।

चै. च. म. १०. १४५

गोविन्दके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार। राय रामानन्द तथा स्वरूप दामोदरको जो सेवाधिकार प्राप्त नही था, वह आज गोविन्दको प्राप्त हो गया।

गोविन्द प्रभुकी सेवामें लग गये। उनका सौभाग्य देखकर सब भक्तगण उनका सम्मान करने लगे। प्रभुके पास जो वैष्णव आते है, उनकी सेवा परिचर्या गोविन्द करते हैं।

उसी समय विष्णुदास और प्रद्युम्न मिश्र आकर प्रभुसे मिले। पश्चात् काशीश्वर आये।

ब्रह्मानन्द भारती मिलन

श्रीनीलाचलमें प्रभु कृष्णकथा रसरङ्गमें दिन रात मत्त रहते थे। उनके निवास-स्थान पर पण्डित काशी मिश्रके घर निरन्तर हरिनाम सङ्कीर्तन होता था, वैष्णव समागम होता था। सार्वभौम भट्टाचार्य प्रतिदिन दोनों बेला प्रभुका दर्शन करने आते थे। इसी बीच एक दिन मुकुन्दने आकर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया, "प्रभु ! ब्रह्मानन्द भारती आपका दर्शन करने आयें हैं। आज्ञा दें तो उनको यहाँ लाऊँ।" प्रभुने कहा, "मुकुन्द ! वे गुरु हैं। मैं ही उनका दर्शन करने चलता हूँ।" इतना कहकर उठ खड़े हुए।

ब्रह्मानन्द भारती केशवभारती—प्रभुके गुरुभाई थे। इसी कारण प्रभुने उनको गुरु कहा। ब्रह्मानन्द

भारती संन्यासी और शान्त भक्त थे। वे महान पण्डित थे, सारे भारतके लोग उनको परम साधुके रूपमें सम्मान करते थे। उनकी आकृति अति सुन्दर थी, ज्योतिपूर्ण प्रकाण्ड शरीर था। उनको देखते ही लोगोंमें भक्ति-भाव पैदा हो जाता था। वे मृगचर्म पहनते थे और निराकार ब्रह्मकी उपासना करते थे।

प्रभु भक्तवृन्दको साथ लेकर ब्रह्मानन्द भारतीके पास आये। वे वहिर्द्वारके समीप एक घरमें प्रतीक्षा कर रहे थे। वे प्रभुका नाम सुनकर उनसे साक्षात्कार करने आये थे। प्रभुको सामने देखते ही पहचान लिया कि यही श्रीचैतन्य महाप्रभु हैं। वे मनही मन कहने लगे—

कनकपरिघदीर्घ दीर्घबाहुः।
स्फुटतर काञ्चन केतकीदलाभः।
नव-दमनक-माल्य-लाल्यमान-
द्युतिरति चारुगतिः समुज्जिहीते॥

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८. १६

अर्थ—यही श्रीकृष्ण चैतन्य हैं! अहा, काञ्चन निर्मित अर्गलाके समान जिनकी दीर्घ दो भुजाएँ हैं, प्रफुल्ल कनककेतकी दलके समान जिनकी श्रीअङ्ग कान्ति है, तथा नवीन दमनककी मालासे जिनकी अपूर्व शोभा हो रही है, यही वह श्रीकृष्ण चैतन्य रमणीय-पाद-विन्यासपूर्वक मेरे सामने आकर उदय हो गये हैं।

प्रभुने उनको देखकर भी न देखनेका बहाना करते हुए इधर उधर देखकर मुकुन्दसे पूछा—"मुकुन्द! भारती गोसाईं कहाँ हैं?" मुकुन्दने कहा—"प्रभु! वह जो यहाँ खड़े हैं।" प्रभुने उत्तर दिया, "नहीं, तुम्हें भ्रम हो गया है, वह ये नहीं हैं। वह होते तो चर्माम्बर क्यों परिधान करते?"

ब्रह्मानन्द भारती प्रभुकी यह बात सुनकर मनही मन विचार करने लगे, "मेरा चर्माम्बर पहनना इनकी आँखोंको भाता नहीं है। यह सम्भव है। क्योंकि—

दण्डैकमात्रप्रथनाय केवलं
चर्माम्बरत्वादि न वस्तुसाधनम्।
चलद्भि रर्वाग्मृजुनैव वर्त्मना
सुखेन गम्यस्य समाप्यतेऽवधिः॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ८. १७

अर्थात् चर्माम्बर आदि वाह्य वेष परिधान केवल अहङ्कार प्रकाशक है। वस्तुतः यह साधनमें कुछ भी उपयोगी नहीं है। अतएव जो लोग सरल मार्ग पर चलते हैं, वे सहज ही गम्य स्थानकी अन्तिम सीमाको प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए मुझको इस चर्माम्बरकी अब आवश्यकता नहीं है। आज मुझको अच्छी शिक्षा मिली।"

यह सोचकर उन्होने चर्माम्बर त्याग करनेकी इच्छा प्रकट की। उसी समय अन्तर्यामी प्रभुने दामोदर पण्डितकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर इशारा किया। दामोदर तत्काल बहर्वास लाकर दिया, और ब्रह्मानन्द भारतीने उसे लेकर पहन लिया, तथा चर्माम्बरको सदाके लिए छोड़ दिया। तब प्रभुने आकर उनकी चरण-वन्दनाकी।

भारती गोसाईंने भीत होकर हिचकिचाते हुए प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया, "तुम जगतगुरु हो। जीवको शिक्षा देनेके लिए ही तुमने यह अवतार लिया है। मुझको प्रणाम करके तुमने जीवको गुरुभक्तिकी शिक्षा दी है। परन्तु तुम क्या वस्तु हो, यह मैंने तुम्हारी कृपासे जान लिया है। कृपा करके तुम अब मुझको प्रणाम न करना।" इतना कहकर उन्होंने निम्नलिखित श्लोककी आवृत्तिकी।

नीलाचलस्य महिमा नहि माद्दशेन
शक्यो निरूपयितुमेवलौकिकत्वात्।
एते चरस्थिरतया प्रतिभासमाने
द्वे वै ब्रह्मणी यदिह सम्प्रति गौर नीले॥

चै. च. नाटक ८. १८

अर्थ—नीलाचलकी महिमा मेरे जैसे व्यक्तिके द्वारा शक्य नहीं। क्योंकि इस समय नील और

गौर वर्णके ब्रह्मद्वय स्थावर जङ्गम रूपमें यहाँ विराजमान हैं, अर्थात् यहाँ सचल और अचल दोनों जगन्नाथ विराजमान हैं।

चतुर चूड़ामणि प्रभुने भारती गोसाईंकी बात उलटकर चतुराईके साथ हँसते हुए उत्तर दिया—

सत्य कह, तोमार आगमने ।
दुइ ब्रह्म प्रकटिला श्रीपुरुषोत्तमे ।।
ब्रह्मानन्द नाम तुमि गौरब्रह्म चल ।
श्याम ब्रह्म जगन्नाथ वसि आछे अचल ।।

चै० च० म० १०.१६०, १६१

ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं परम रूपवान् थे। उनका उज्ज्वल गौर वर्ण था, और शरीर विशाल था। दोनों नेत्र ज्योतिपूर्ण थे। देखते ही महापुरुष जैसा लगते थे। इसी कारण प्रभुने उनको सचल गौर-ब्रह्म कहा। भारती गोसाईंने प्रभुकी बातसे लज्जित होकर सार्वभौम भट्टाचार्यको मध्यस्थ माना, क्योंकि वे शास्त्रज्ञ पण्डित थे, और साथ ही नैयायिक थे। भारती गोसाइंने कहा—

भारती कहे-सार्वभौम मध्यस्थ हइया ।
इँहार सह आमार न्याय बूझ मन दिया ।।
व्याप्य-व्यापक भावे जीव ब्रह्म जानि ।
जीव व्यप्य, ब्रह्म व्यापक शास्त्रेते बखानि ।।

चै० च० म० १० १६२.१६३

अर्थात् जो वाव्य है वह जीव है, और जो व्यापक है, यह भगवान् है। अल्पदेश वृत्ति जिसकी है उसे व्याप्य कहते हैं, और जिसकी बहुदेश वृत्ति है वह व्यापक कहलाता है। भारती गोसाईंने बतलाया कि श्री गौर भगवानने उनका चर्माम्बर छुड़ाया है, इससे वे स्वयं जीव हुए, तथ प्रभु हुए व्यापक श्रीभगवान्।

श्रीगौर भगवान्ने उनके बहुत दिनोंका संस्कार दूर कर दिया। उनको बुद्धियोग प्रदान किया जिस बुद्धिके बलसे उन्होंने श्रीगौराङ्ग तत्त्व का निरूपण किया। श्रीनीलाचलचन्द्र और श्रीनवद्वीप चन्द्रको भिन्न नहीं देखा। यह बात खोलकर सबके सामने उन्होंने रख दिया, इस समय सुअवसर पाकर सार्वभौम भट्टाचार्यको मध्यस्थ बनाकर उन्होंने यह महाभारतका श्लोकरत्न पाठ किया। यथा,

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
संन्यासकृत् सम शान्तो निष्ठा शान्तिपरायणः

विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र ९२, ७५

प्रभुकी ओर इशारा करके ब्रह्मानन्द भारतीने सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा—

एइ सब नामेर इँहों हय निजास्पद ।
चन्दनाक्त प्रसाद-डोर श्रीभुजे अंगद ।।

चै० च० म. १०. १६५.

उन्होंने कहा, "सार्वभौम ! यह देखो, श्रीभगवान्के शास्त्रोक्त सभी लक्षण इनमें वर्त्तमान हैं। सुवर्ण सदृशवर्ण, वराङ्ग, चन्दनाङ्गदी, श्रीश्रीजगन्नाथजीके चन्दनाक्त डोंरमें इनका चन्दनाङ्गदी नाम सार्थक हुआ है। इन्होंने संन्यासाश्रम अर्थात् चतुर्थाश्रम ग्रहण किया है, इनमें समगुण वर्तमान है, अर्थात् यह भगवन्निष्ठ बुद्धिविशिष्ट है, शान्त-सुशील और शान्ति परायण अर्थात निवृति -परायण हैं। इन सब गुणोंके गुणमणि देखो सामने दण्डायमान परायण हैं। इनका दर्शन करके मेरे मनमेंआज अभूतपूर्व आनन्दका स्तोत उमड़ पड़ा है। सच्चिदानन्द श्रीकृष्णमूर्त्ति की स्फुर्ति हुई हैं। नदियाके अवतार श्रीश्रीगौराङ्गचन्द्रमें और श्रीनीलाचल चन्द्रमें कुछ भी भेद नहीं दिखलायी देता। यह नर-ब्रह्म हैं और वह दारु-ब्रह्म हैं।" सार्वभौम भट्टाचार्यने उत्तर दिया, "भारती गोसाईं ! आपकी जय हो। आपने प्रकृत तत्त्वनिरूपण किया है।" तब प्रभु क्या करते ? वे भक्तोंके सामने पकड़में आ गये थे। परन्तु वे कलिके प्रच्छन्न अवतार हैं, प्रच्छन्नत्वकी रक्षा करना उनका कार्य था, अतएव उन्होंने कहा। यथा—

प्रभु कहे जेइ कह सेइ सत्य हय ।।
गुरुशिष्य न्याये सत्य शिष्य पराजय ।

चै. च. म. १०. १६६, १६७

अर्थात् शिष्यके वाक्यमें सत्यता होने पर भी गुरुका वाक्य शिष्यके वाक्यके ऊपर विजयी होता है । गुरवाक्य सदा ही शिष्यवाक्यकी अपेक्षा आदरणीय होता है । महाप्रभुने कहा कि इस न्यायसे भारती गोसाईं गुरु हैं, और उनका शिष्य होनेका मुझे अभिमान है । अतः उनका वचन जय युक्त हो । तथापि भारती गोसाईं प्रभुको छोड़नेवाले नहीं थे, वे बोले—

भक्त ठाँई हार ए तोमार स्वभाव ।
आर एक शुन तुमि आपन प्रभाव ।।
आजन्म करिल आमि निराकार ध्यान ।
तोमा देखि कृष्ण हैला मोर विद्यमान ।।
कृष्णनाम मुखे स्फुरे मने नेत्रे कृष्ण ।
तोमाके तद्रूप देखि हृदय सतृष्ण ।।
विल्वमंगल कहिल जैछे दशा आपनार ।
इँहा देखि सेइ दशा हइल आमार ।।

चै. च. म. १०. १६८-१७१

इतना कहकर श्रीविल्वमङ्गल महाराजकी उक्तिका यहश्लोक पाठ किया । यथा,

अद्वैतवीथी पथिकैरुपास्याः
स्वानन्दसिंहासनलब्धदीक्षाः ।
हठेन केनापि वयं शठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन ।।*

अर्थ—"मैं अद्वैत पथके पथिकोंका आराध्य था, तथा नित्यानन्द सिंहासन पर पूजा प्राप्त करता था । अहा ! किसी गोपबधू-लम्पट शठने बलपूर्वक हमको दासबना लिया है ।" यह व्याजस्तुति है । आत्मनिन्दाके द्वारा श्रीगोपवधुओंकी आनुगत्य प्राप्ति के द्वारा प्रशंसातिशय किया गया है ।

ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं प्रभुके दर्शन मात्रसे अपनी आजन्म साधना निराकार-ब्रह्मोपासनाको हृदयसे दूर करनेमें समर्थ हो गये । वे अत्यन्त सुस्पष्ट भाषामें प्रभुसे बोले, "अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है । अपने निराकार ब्रह्मोपासनाका फल मैंने आज पा लिया । निराकार ब्रह्म साकार होकर मेरे सामने साक्षात् उदय हो गये हैं । मेरे हृदयमें पूर्णब्रह्म सनातन श्रीकृष्ण उदय होकर जो परमानन्द प्रदान करते हैं, उसकी तुलना नहीं है । तुम्हीं वह परमानन्दमय श्रीकृष्ण हो । मैंने तुमको प्राप्त कर जीवन सार्थक कर लिया । तुम कृपा करके मुझको अपने चरणोंका दास बनालो"

श्रीगौर भगवान् भक्तके द्वारा पकड़में आ गये हैं । अब करें क्या ? राय रामनन्दको उन्होंने जो कहा था वही बात भारती गोसाईंसे भी बोले । वही एक बात ।

प्रभु कहे कृष्णे तोमार गाढ़ प्रेमा हय ।
जाँहा नेत्रे पड़े ताँहा श्रीकृष्ण स्फुरय ।।

चै. च. म. १०. १७२

सार्वभौम भट्टाचार्य चुप चाप प्रभुका लीलारङ्ग देख रहे थे । उनको भारती गोसाईंने मध्यस्थ माना था । भट्टाचार्यने स्पष्ट बात कही "कृष्ण प्रेम प्रगाढ़ होने पर ऐसा होता है । यह बात ठीक है । प्रभुके यथार्थ ही कहा है । परन्तु जिनको कृष्णप्रेम नहीं है, उनपर कृपा करके श्रीकृष्ण भागवान यदि साक्षात् दर्शन देते हैं, अथवा प्रच्छन्न भावसे भी यदि वे दर्शन देते हैं, या हृदयमें उदय होते हैं, तौ भी ऐसा होता है ।" प्रभुने यह बात सुन कर कान पर अंगुलि रखकर सार्बभौम भट्टाचार्यसे कहा,

'विष्णु विष्णु' कि कह सार्वभौम ।
अति स्तुति हय एइ निन्दार लक्षण ।।

चै. च. म. १०. १७५

सार्वभौम भट्टाचार्य और कुछ न बोल सके । वे प्रभुके श्रीवदनकी ओर देख कर आनन्दसे हँसने लगे । प्रभु श्रीवदनको अवनत करके दामोदर पण्डितको लक्ष्य करके बोले, "भारती गोसाईंकी भिक्षाका प्रबन्ध मेरे निवास स्थान पर करना ।"

इतना कहकर प्रभु उनको लेकर अपने निवास स्थान पर आये। वहाँ काशी मिश्रको बुलाकर उनके लिए एक एकान्त कुटीमें वासस्थान तय कर दिया। एक सेवकका प्रबन्ध कर दिया। श्रीपाद ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं उस दिनसे श्रीगौराङ्ग भजनमें नियुक्त हो गये। वे नीलाचल छोड़कर कहीं नहीं गये।

काशीश्वर गोसाईं पहले ही आ गये थे। वे भी प्रभुकी सेवामें लग गये थे। वह दीर्घाकृति और अतिशय बलवान् पुरुष थे। प्रभु जब श्रीजगन्नाथका दर्शन करने जाते थे, काशीश्वर गोसाईं आगे-आगे लोगोंकी भीड़ हटाकर प्रभुके लिए रास्ता ठीक करते थे। राम भट्टाचार्य और भगवान् आचार्य प्रभुके एकान्त भक्त थे। वे लोग भी गृहस्थाश्रम त्याग करके नीलाचलमें प्रभुके पास आये थे। अब प्रभुके जितने भक्त थे, प्रायः सभी नीलाचल आकर प्रभुके साथ हो गये थे। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

जत नद-नदी जैछे समुद्रे मिलय।
ऐछे महाप्रभुर भक्त जाँहाँ ताहाँ हय।।
सबे आसि मिलिला प्रभुर श्रीचरणे।
प्रभु कृपा करि सबारे राखिला निज स्थाने।।

चै० च० म० १०.१८०-१८१

नवद्वीपसे प्रभुके परम प्रेमपात्र गदाधर पण्डित श्रीपाद परमानन्दपुरी गोस्वामीके साथ पहले ही नीलाचलमें आकर अपने प्राण वल्लभके साथ मिल गये हैं। उनके साथ प्रभुके एकान्त भक्त जगदानन्द पण्डित भी आये हैं। जगदानन्दप्रभुके अभिमानी भक्त हैं। प्रभुने संन्यास ग्रहण किया है, अच्छा खाना नहीं खाते, अच्छा वस्त्र नहीं पहनते—इससे जगदानन्द बहुत दुःखी हैं। प्रभुका संन्यास वेष देखकर उनका कलेजा फट जाता है। वे केवल इसी चेष्टामें रहते हैं कि किस प्रकार प्रभुको अच्छा भोजन करावें।

प्रभु इस समय श्रीनीलाचलमें भक्तवृन्दके साथ कीर्तन-विलास-रसमें उन्मत्त रहते हैं। उनके निवास स्थानपर दिन-रात हरि संकीर्तन ध्वनि सुन पड़ती है। भक्तवृन्दके साथ वे प्रेमानन्दमें हैं। ठाकुर लोचन दासने लिखा है—

तबे नीलाचले प्रभु भक्तगण संगे।
कीर्त्तन विलास करे आछे नाना रंगे।।

अनेक भकत गण मिलिला तथाय।
प्रेम विलसये आपे नाचये नाचाय।।

नाना देशे आछेन जतेक भक्तगणे।
क्रमे क्रमे मिलिलेन चैतन्य चरणे।।

आनन्दे आछये प्रभु नीलाचलधामे।
कहिब सकल पाछू अनेक प्रकाशे।।

प्रभुकी नीलाचल लीला अतिशय रहस्यपूर्ण है। कुछ ही वर्ष उनके संन्यास ग्रहणके बीते हैं। इस बीच उन्होंने जो लीलारङ्ग प्रकट किये हैं, उसकी स्थिरतापूर्वक पर्यालोचना करनेपर समझमें आ जायगा कि उनकी श्रीमूर्त्तिके दर्शनका क्या प्रभाव होता है। उनके श्रीमुखकी वाणीमें कैसी अद्भुत शक्ति है। उनके श्रीमुखसे निःसृत हरिनाम महामन्त्रकी क्रिया कैसी अद्भुत है। श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभुका एक पादविक्षेप, उनके श्रीमुखकी एक मधुमय उपदेश-वाणीमें, उनके कमलनयनकेएक कृपाकटाक्षमें उनके श्रीअङ्गके मधुमय बतासमें जो है, धर्मजगतके सारे शास्त्रग्रन्थोंका मन्थन करके भी वह प्राप्त नहीं हो सकता। उन्होंने मायावादी ब्रह्मानन्द भारतीका जिस प्रकार उद्धार किया, उसका तनिक विचार करके देखनेपर इस बातकी सत्यता प्रकट होजाती है। उनके साथ कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ, कोई मन्त्रतन्त्रादिकी क्रिया नहीं हुई, फिर भी ब्रह्मानन्द भारतीको केवल श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनमात्रसे जो यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ वह कोटि युग साधनाके फलसे भी प्राप्त नहीं हो सकता। साध करके महाजन कवि क्या लिख गये हैं—

कि कहव शत शत तुया अवतार।
एकेला गौराङ्ग चाँद जीवन आमार।।

आठवाँ अध्याय

नदियाके भक्तवृन्दका गजपति प्रताप रुद्रके साथ परिचय

महाप्रभुर गण जत आइल गौड़ हैते।
भट्टाचार्य! एके-एके देखाह आमाते॥

चै० च० म० ११.५९
(महाराणा प्रताप रुद्रकी उक्ति)

प्रभुके विरहमें नदियाके भक्तवृन्द और शची-विष्णुप्रिया

काला कृष्णदासने नवद्वीपमें जाकर प्रभुके दक्षिण देशसे श्रीनीलाचलमें लौटनेका समाचार शची-विष्णुप्रिया तथा नदियाके भक्तवृन्दको सुनाया। नीलाचलमें प्रभुका दर्शन करनेकी इच्छासे सब आनन्दसे नाच उठे। उनके गम्भीरतम दु:खान्धकारमें एक आशाका प्रदीप टिमटिमाने लगा। अब प्रभु नीलाचलमें हैं, सालमें एक बार भी हम लोग उनका दर्शन प्राप्त करेंगे। परन्तु जब उन्होंने सुना था कि उनके जीवन सर्वस्वधन श्रीगौराङ्ग-निधिने नीलाचलसे दक्षिण देशकी यात्रा की है, तब उनका वह क्षीण आशा-प्रदीप मानो सहसा बुझ गया था। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि यदि प्रभु लौटकर नहीं आये तो उनके प्राण नहीं बचेंगे।

नदियावासी भक्तोंने नीलाचलमें आदमी भेजकर पता लगाया कि प्रभु कितने दिनोंके लिए तीर्थ भ्रमणमें गये हैं। वे फिर नीलाचल लौटेंगे या नहीं।" क्योंकि प्रभु अपने श्रीमुखसे शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत भवनमें कह चुके थे कि वे नीलाचलमें वास करेंगे, वहाँ जानेपर उनके साथ साक्षात्कार होगा। परन्तु वे नीलाचल जाकर वहाँ केवल दो मास रहकर तीर्थ भ्रमणमें दूर देशमें चले गये, इसका कारण न समझ सकनेके कारण नदियावासी भक्तगण बड़ी विपदमें पड़ गये। उनको बड़ी आशा थी कि रथयात्राके उपलक्ष्यमें श्रीक्षेत्रमें जायँगे, अपने जीवन-धन श्रीश्रीगौराङ्ग निधिके श्रीमुखचन्द्रका दर्शन करेंगे। अब उनकी इस आशापर पानी फिर गया। दो बार रथयात्राका समय कट गया। दो आषाढ़ निकल गये। प्रभु नीलाचलमें नहीं आये, श्री-श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा देखनेके लिए नदियासे एक भी आदमी नहीं गया। नवद्वीपसे प्रतिवर्ष कोई न कोई रथयात्रा देखने नीलाचलमें जाता था, परन्तु इन दो वर्षोंमें कोई नहीं गया।

जब नदियावासी भक्तवृन्दने सुना कि प्रभुने नवद्वीपके समान नीलाचलको चिरदिनके लिए नहीं छोड़ा है, तीर्थदर्शन करके पुन: वहाँ लौटेंगे, तब उनके हृदयमें आशाका सञ्चार हुआ। प्रभुका पुन: दर्शन पानेकी आशासे कलेजा थाम कर उन्होंने यह दो वर्षका समय बड़ी उत्कण्ठापूर्वक आनेकी बाट जोहते जोहते बिता दिया है। यह दीर्घ-कालीन प्रभुका आदर्श जनित विरह उनके लिए घातक हो रहा था। गौर-विरहाग्निमें उनके मन-प्राण, हृदय और देह भस्मीभूत हो रहे थे। वे प्रभुके विरहके शोकमें अस्थिमात्रावशिष्ठ हो गये थे। केवल दर्शनकी आशामें जीवित थे। अब प्रभुके नीलाचलमें शुभागमनका समाचार पाकर मानो उनके हाथमें आकाशका चन्द्रमा आ गया। यह शुभ संवाद उनके मृतप्राय जीवनकी रक्षामें मृत-संजीवनी-सुधा बन गया। वे आनन्दसे नाच उठे। अब उनको कोई दु:ख न रहा।

अब शची-विष्णुप्रियाकी बात कहता हूँ। प्रभुके वासमन्दिरमें उनकी वृद्धा जननी और तरुणी गृहिणी दिन-रात गौर-विरहमें मग्न रहती हैं। प्रभुके संन्यास ग्रहणके बाद उनका मन घर गृहस्थीमें नहीं लगता। जिनको लेकर घर-गृहस्थी थी, जब वे ही घरमें नही हैं, तो घर और वनमें अन्तर ही क्या रहा? शचीमाता अपनी दु:खिनी पुत्रवधूको लेकर दिन-रात

गौर-कथा कहती हैं। गौर-कथाके प्रभावसे उन्होंने अब तक जीवन धारण किया है। यदि कोई घर आता है, तो वह भी गौर कथा-सिन्धुके तरङ्गमें मग्न हो जाता है। वहाँ और कोई बात नहीं होती, और कोई चिन्तन नहीं होता। श्रीगौराङ्ग जननीने सुना है कि उनका पुत्र दक्षिण देश गया है। श्रीविष्णुप्रिया देवीने भी सुना है कि उनके प्राण वल्लभ अब बहुवल्लभ हो गये हैं, उनके श्रीमुखके हरिनाम गानसे सब देशके लोग मुग्ध होकर उनके चरणोंका आश्रय ले रहे हैं, सारे दक्षिण देशवासियोंको भी उनके प्राणवल्लभने वैष्णव बना लिया है, वे नीलाचल लौट आये हैं, समुद्र तटपर प्रेमानन्दमें नृत्य कर रहे हैं, मधुर हरिनाम देकर वे सब जीवोंको आनन्द सागरमें निमज्जित कर रहे हैं।

प्राणनाथ मोर सिन्धुकूले प्रेमे नाचिछे।
हरि बोले कत लोक सुखे भासिछे ॥

इसीमें पतिप्राणा गौरवक्षविलासिनी नवद्वीपमयी श्रीविष्णुप्रिया देवीका सुख है। उन्होंने सब सुख त्याग दिया है। परन्तु गौरकथा-रसास्वादन-रूप आनन्द तथा गौराङ्ग यशःकीर्ति-प्रकाश रूप सुखके लोभको संवरण नहीं कर सकी हैं। गौर-कथा सुननेको मिले तो श्रीविष्णुप्रियादेवी सब दुःख भूल जाती हैं। श्रीगौराङ्गकी यशः कीर्त्तिका गान सुननेपर वे आनन्दमें तल्लीन हो जाती हैं। इसी सुखमें उन्होंने जीवनकी रक्षाकी है।

काला कृष्णदासने नवद्वीपमें आकर प्रभुके देश भ्रमणकी सारी कहानी कह सुनायी है। गौराङ्ग गृहिणीने प्रभुका सारा लीलारङ्ग सुना है। प्रभुके मन्दिरमें श्रीपरमानन्द पुरी गोसाईं आये थे, उनके मुखसे भी उन्होंने अपने प्राणवल्लभकी लीलाकथा सुनी है।

जहाँ जो आदमी प्रभुकी कोई बात सुनता है, वह आकर सबसे पहले शची-विणुप्रियाको सुनाता है, क्योंकि लोग जानते हैं कि इस समय गौर-कथा-श्रवण ही एक मात्र उनके जीवनका आधार है। श्रीगौराङ्ग नवद्वीपमें नहीं हैं, परन्तु उनकी अनन्त लीलारङ्गकी कथाएँ सारे नदियावासीके मुखसे सदा गायी जा रही हैं। उनके अपरूप रूपराशिकी बात, उनके अनन्त गुणराशिकी बात नदियाके आवाल-वृद्ध-वनिताके मुखसे निरन्तर गायी जा रही है।

प्रभुके भेजे हुए प्रसादको शचीमाताने पाया, और श्रीविष्णुप्रिया देवीको दिया। प्रियाजीने अपनेको कृतार्थ माना। प्रेमाश्रुधारासे उनका वक्षःस्थल भीग गया। उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ, क्योंकि उनके प्राणबल्लभने उनको स्मरण किया था। इस समय उनका यह कृपालवलेश पाकर वे अपने को कृतार्थ समझ रही है।

अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान् यह जानते हैं। इसी कारण माता और गृहिणीको स्मरण करके श्रीनीलाचलसे उनके लिए लोगोंके द्वारा प्रसाद भेजा है। जननीका नाम लेकर व्याकुल होकर रो पड़ते हैं. गृहिणीका नाम ले नही सकते। क्योंकि वे संन्यासी हैं। संन्यासीको स्त्रीका नाम लेना तक निषिद्ध है।

शचीमाताका दर्शन करनेके लिए गौर-गृहमें नदियाके सब भक्तवृन्द नित्य आते हैं। उनकी चरण-धूलि लेकर पदतलमें बैठकर गौरकथा कहते हैं। श्रीविष्णुप्रिया देवी आड़में खड़ी होकर सुनती हैं। प्रभुके नीलाचलमें लौटनेका समाचार पाते ही नदियाके सब भक्तगण प्रभुके श्रीमन्दिरमें आकर इकट्ठे हुए। शचीके आङ्गनमें उस दिन महा आनन्दोत्सव हुआ। 'जय नवद्वीप चन्द्रकी जय' की ध्वनिसे सारी नदिया नगरी प्रकम्पित हो उठी। शचीमाताके नयनयुगलसे प्रेमाश्रुसरिता प्रवाहित हो उठी। उन्होंने रोते-रोते सब लोगोंको आशीर्वाद दिया—"बाबा ! तुम लोग जीते रहो, मेरे सिरमें जितने बाल हैं उतने वर्षों तक तुम लोग दीर्घजीवी बनो। तुम लोगोंने आज मुझको जो समाचार सुनाया, इससे मेरी जान बच गयी। निमाई मेरा

जीवित है, हम लोगोंको याद कर रहा है, यही मेरे लिए काफी है। इतने दुःखोंके बीच यह समाचार आनन्दप्रद है। इस आनन्दसे तुम लोग मुझे वञ्चित न करना।"

भक्तवृन्द शचीमाताकी वात सुनकर व्याकुल होकर रो पड़े। सबने उनसे कहा—"हम लोग इस रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचलमें जाकर प्रभुको देख आवेंगे। तुम आशीर्वाद दो कि हम लोग श्रीगौराङ्गके चरणोंका दर्शन कर सकें।" शचीमाताने रोते-रोते कहा—"बेटा! तुम सब लोग स्वच्छन्द होकर नीलाचल जाओ, मेरे निमाईको कहना कि एक बार हम लोगोंको दर्शन दे जाय। सोनेके वच्छाके चन्द्रमुखको मैं बहुत दिनसे देख नहीं पायी हूँ। एक बार निमाईका चन्द्रमुख देख लेनेपर हमारे सारे दु;ख दूर हो जाँयगे। मैं निश्चिन्त होकर मर सकूँगी।"

वृद्धा शचीमाताका कण्ठस्वर रुँध गया। वह मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़ीं। सब भक्तोंने बड़ी कठिनाईसे उनकी मूर्च्छा दूर की। श्रीविष्णुप्रिया देवी घरके भीतर मृतवत् पड़ी हुई थी। उनके पास सखी काञ्चनमाला बैठी थी। सखीके नयनजलसे देवीका परिधान वस्त्र भीग गया। देवीके नयनजलसे भूतल सिक्त हो गया। यह नीरव रुदन ही श्रीमती विष्णुप्रिया देवीका भजन था।

भक्तोंकी नीलाचल यात्रा

भक्तवृन्द शचीमातासे विदा लेकर श्रीनीलाचल-यात्राकी तैयारी करने लगे। कई आदमी शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत प्रभुसे भेंट करनेके लिए गये। उनके साथ परामर्श करके श्रीनीलाचल यात्राका शुभ दिन निश्चित हुआ। श्रीअद्वैत प्रभुने तीन दिन बड़े समारोहके साथ महोत्सव किया। उनके पास अक्षय भण्डार था। प्रभुकी कृपासे उनके घर किसी वस्तुका अभाव न था। प्रभुका दर्शन करने जाना होगा, इसी आनन्दसे वे उन्मत्त हो उठे। अपने घरपर तीन दिन तक नदियाके भक्तोंको रखकर नृत्यकीर्तन किया। अन्य स्थानोंके भक्तोंको भी समाचार दिया। वे भी आकर श्रीअद्वैत-भवनमें एकत्रित हुए। काञ्चन पाड़ासे शिवानन्द सेन, कुलीन ग्रामके गुणराज और सत्यराज खान, श्रीखण्डसे श्रीनरहरि सरकारके भ्रातृगण, मुकुन्दके ज्येष्ठ भ्राता वासुदेव दत्त, दामोदरके कनिष्ठ भ्राता शङ्कर पण्डित, वक्त्रेश्वर पण्डित सभी आये। हरिदास श्रीअद्वैत प्रभुके पास थे। उन्होंने श्रीअद्वैत प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया—"क्या यह अधम प्रभुके दर्शनके लिए जा सकता है?"

हरिदास यवन नामसे प्रसिद्ध थे, यवनका श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेका अधिकार नहीं था। श्रीअद्वैत प्रभुने उनको आश्वासन देते हुए कहा—"हरिदास! भयकी बात नहीं है। तुम मेरे सङ्ग चलो। तुम्हारे न जानेसे प्रभु दुःखित होंगे। तुम्हारे न जानेसे मेरा भी जाना नहीं होगा।" हरिदासने रोते-रोते कहा—"परन्तु मैं श्रीक्षेत्रमें न जाऊँगा, दूरसे ही प्रभुके श्रीचरणोंका दर्शन करूँगा। क्योंकि मैं जातिका नीच हूँ। मेरे स्पर्शसे क्षेत्रवासी महात्माओंका शरीर अपवित्र हो जायगा।" श्रीअद्वैत प्रभुने हँसकर कहा—"यह सब बात प्रभु जानते हैं, वे इसके उपयुक्त कोई व्यवस्था करेंगे।" हरिदास आशा पाकर निश्चिन्त हो गये।

ज्येष्ठ मासके बीतते बीतते चार सौ नदियाके भक्तोंको साथ लेकर श्रीअद्वैत प्रभुने श्रीनीलाचलकी यात्रा की। वे सब लोग नवद्वीपमें शचीके आङ्गनमें इकट्ठे हुए। शचीमाताको प्रणाम करके सबने उनकी चरणधूलि ग्रहण की। शचीमाता और श्रीविष्णुप्रिया देवीने अपने हाथों प्रभुके लिए नाना प्रकारके खाद्य पदार्थ तैयार करके दिये। सभी अपने-अपने घरसे नाना प्रकारके उपहार लेकर चले।

शचीमाताने एक-एक करके सब लोगोंको हाथ पकड़कर रोते-रोते कहा—"तुम सब लोग मिलकर मेरे निमाईको एक बार नवद्वीपमें पकड़कर लाओ और मुझे दिखाओ। बहुत दिनसे मैंने उसके

चन्द्रमुखको नहीं देखा है। उससे कहना कि किसी प्रकार वह एक बार अपनी दु:खिनी माताको दर्शन दे।" इतनी बात कहते-कहते वे भूतलपर बैठकर पड़ गयीं, उठ न सकीं और अधिक कुछ कहनेकी शक्ति भी उनमें न रही। श्रीविष्णुप्रिया देवी गृहद्वार पर आड़में खड़ी होकर निरन्तर आँसू बहाती रहीं और गौरभक्तोंका दर्शन करती रही। उनको सखी काञ्चना पकड़े हुए खड़ी थी। चक्षुके जलसे दोनोंके वक्ष:स्थल प्लावित हो रहे थे।

शचीमाताकी पदधूलि लेकर नदियाके भक्तगणने शुभदिनमें श्रीनीलाचलकी यात्रा की। उनके साथ सङ्कीर्तन यज्ञानुष्ठानके सारे उपकरण चले। खोल, करताल, मंजीरा, निशान-डङ्का सब कुछ चला। यह सब उनके भजनके साधन थे, युगधर्म-प्रचारकी आवश्यक वस्तुएँ थी।

उस समय नीलाचलका मार्ग बड़ा ही दुर्गम था। हिन्दु-मुसलमानमें युद्ध चल रहा था। शत्रुदलके लोग रास्तेमें स्थान-स्थान पर गुप्तभावसे नियुक्त प्रहरी हिन्दुगणके ऊपर बड़ा अत्याचार करते थे। परन्तु प्रभुकी कृपासे नदियाके भक्तवृन्दके मार्गमें कोई विपद नहीं आयी। दो महीने तक रास्तेमें थकते हुए वे लोग स्वच्छन्द पुरुषोत्तम क्षेत्रमें प्रविष्ट हुए। भक्तवृन्दके पैरोंमें नूपुर हाथमें करताल और मुखमें हरिनाम था। वे लोग मधुर नयन-रञ्जन नृत्य करते हुए सङ्कीर्तनके रङ्गमें रास्तेपर चले जा रहे थे। गौर-आना-गोसाईं श्रीअद्वैत प्रभु सबके आगे कमर हिलाकर अङ्गभङ्गीके साथ नृत्य कर रहे थे। बीच-बीचमें हुङ्कार गर्जन करते हुए कहते थे, 'जय जगन्नाथकी जय'—'जय नवद्वीपचन्द्रकी जय'–और वह जय ध्वनि शत-शत मुखसे प्रतिध्वनित होती थी।

नीलाचलवासी लोगोंने ऐसे प्राण-मनोन्मादनकारी नयन-रञ्जन नृत्य कभी देखा न था। नदियाके भक्तगण इस प्रकार चित्रोत्पला नदीके तीर जा पहुँचे। महाराज गजपति प्रतापरुद्र उस समय रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचलमें आये थे। उन्होंने यह बात सुनी। यह अपूर्व दृश्य देखनेके लिए वे कितना व्यग्र हुए थे, यह बात आगे कही जायगी।

कृपालु पाठकवृन्द ! नदियाके भक्तवृन्दको यहाँ छोड़कर हमारे भावनिधि प्रभुके पास एक बार चलें। रथयात्राके पहले स्नान-यात्रा होती है। श्रीक्षेत्रमें अतिशय धूमधामके साथ श्री-श्रीजगन्नाथजीकी स्नान-यात्राका पर्व मनाया जाता हैं। ग्रीष्म ऋतुमें श्री श्रीजगन्नाथजीका स्नानोत्सव होता हैं। पन्द्रह दिन उनका दर्शन बन्द रहता है। प्रभु नित्य नियमित रूपसे श्रीश्रीजगन्नाथजीकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करते हैं। श्रीमन्दिरमें जाकर जब प्रभुने देखा कि दर्शन बन्द है तो वे सिरपर हाथ रखकर श्रीमन्दिरके द्वारपर बैठ गये। उनका दु:ख भक्तगणमें किसीकी समझमें न आया। वे सिर नीचा करके अजस्र आँसू बहाने लग गये। उनके नयनजलसे मानो वहाँ नदीका स्रोत प्रवाहित हो उठा। भक्तगण प्रभुकी अवस्था देखकर चिन्तित हो उठे। प्रभु किसीसे कुछ कह नहीं रहे थे, केवल रुदन कर रहे थे। बहुत देरके बाद लम्बी साँस छोड़ते हुए कातर कण्ठसे क्षीण स्वरमें बोले—"अपने प्राणवल्लभके श्रीमुखको न देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है। अब पन्द्रह दिन तक मैं कैसे प्राणरक्षा करूँगा ?" तब भक्तोंको ज्ञान हुआ कि प्रभुको क्या दु:ख है। श्री श्रीजगन्नाथजीका दर्शन पन्द्रह दिन तक बन्द रहेगा तो क्या प्रभु नीलाचलमें रह सकेंगे ? वे पागलके समान चल पड़े, उनको बाह्य ज्ञान न रहा। भक्तगण भी साथ-साथ चले। प्रभु चलते-चलते एकवारगी आलालनाथ जा पहुँचे। वहाँ जाकर भी उनका मन सुस्थिर न हुआ।

नदियाके भक्तवृन्द रथयात्राके उपलक्ष्यमें श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आ रहे हैं, प्रभु यह जानते हैं और भक्तवृन्द भी जानते हैं। ऐसे समयमें प्रभुका श्रीक्षेत्रमें रहना उचित था, यह उन्होंने प्रभुको

समझाकर कहा। परन्तु उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। वे श्री श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके बिना बहुत ही कातर हो रहे हैं। उन्होंने किसीके साथ भलीभाँति बातें नहीं की।

इस प्रकार प्रभु आलालनाथमें आहार-निद्रा त्याग कर पड़ गये। नीलाचलके सब लोग प्रभुको इस प्रकार आकस्मिक रूपसे श्रीक्षेत्र छोड़ते देखकर विस्मित हो उठे। राजा गजपति प्रताप रुद्रने भी सुना कि प्रभु आलालनाथ चले गये हैं। उन्होंने दुःखित होकर सार्वभौम भट्टाचार्यको बुलवाया। उनसे विशेष अनुरोध किया—"आप जैसे हो वैसे, प्रभुको इस रथयात्राके अवसरपर श्रीक्षेत्र ले आवें। उनके आये बिना रथयात्रा न होगी।"

सार्वभौम भट्टाचार्य क्या करते? स्वयं आलालनाथ चल पड़े। प्रभुकी अवस्था देखकर शङ्कित हो उठे। उनको बहुत समझाया, परन्तु प्रभु आये नहीं, क्योंकि श्रीक्षेत्रमें श्रीजगन्नाथजीका पन्द्रह दिन दर्शन नहीं होगा। सार्वभौम भट्टाचार्य वहाँ ही रह गये। बहुत अनुनय-विनय करके बोले—"नदियाके भक्तगण आ रहे हैं, यदि वे लोग आपको देख न पाये तो निश्चय ही समुद्रमें कूदकर प्राण त्याग कर देंगे। आप भक्तवत्सल हैं, भक्तके लिए सब कुछ कर सकते हैं, चलिये प्रभु! भक्तका मुँह देखकर अपना दुःख त्याग दें। आपके लिए नदियाके भक्तगण कष्ट उठाकर नीलाचल आ रहे हैं, आप इतना अबूझ न बने।" तब प्रभु श्रीक्षेत्र पुनः लौटनेके लिए सहमत हो गये। सार्वभौम भट्टाचार्य उनको साथ लेकर श्रीक्षेत्रमें लौट आये। सभी भक्तवृन्द शत शत मुखसे श्रीभट्टाचार्यजीकी प्रशंसा करने लगे।

प्रेमनिधि प्रभुके श्रीजगन्नाथ दर्शनकी प्रगाढ़ताका अनुभव करना जीव-शक्तिके परे है। प्रभुका श्रीजगन्नाथके अदर्शनसे नीलाचलको त्याग करना, एक रहस्य हैं जिसका मर्म मनुष्य बुद्धिके लिए अगम्य है। श्रीभगवान्‌की प्रेमचेष्टाको मनुष्य कैसे समझ सकता है? इन सब विषयोंका विचार न करना ही ठीक होगा। कृपालु पाठक वृन्द। प्रभुके इस लीलारङ्गका मन ही मन ध्यान करें। यह ध्यानका विषय है, बुद्धिका विषय नहीं है।

गजपति प्रताप रुद्र

प्रसङ्गवश यहाँ गजपति प्रताप रुद्रकी श्रीगौराङ्ग प्रीतिके विषयमें कुछ कहूँगा। यह यहाँ अप्रासङ्गिक होते हुए भी मधुर है। गौरभक्त-भृङ्गगण गौर-कथा मधुके आहरणसें सतत चेष्टावान् रहते हैं। इस प्रसङ्गमें गौर-कथा-मधु है, अतएव यह बिल्कुल ही अप्रासङ्गिक नहीं है।

राजा प्रतापरुद्र श्रीगौराङ्ग-दर्शनाभिलाषी होकर श्रीक्षेत्रमें आये हैं। श्रीजगन्नाथजीका दर्शन स्नान-यात्राके उपलक्ष्यमें पन्द्रह दिन बन्द हो गया है, इस कारण प्रभु दुःखित मनसे आलालनाथ भाग गये हैं। राजा प्रतापरुद्रने यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्यको भेजकर प्रभुको पुनः नीलाचलमें बुलाया है। उनके मनमें उत्कट इच्छा प्रभुसे मिलनेकी है। परन्तु सार्वभौम भट्टाचार्यने उनसे कह दिया है कि प्रभु विषयीका सङ्ग नहीं करते। इससे राजा प्रताप रुद्रका मन अत्यन्त विषण्ण हो गया है; परन्तु प्रभुके चरण-दर्शनकी आशाका त्याग उन्होंने नहीं किया है। सार्वभौम भट्टाचार्यके ऊपर उन्होंने इस दुरुह कार्यका भार दे दिया है। उपयुक्त पात्र पर उपयुक्त कार्यका भार न्यस्त है।

सार्वभौम भट्टाचार्य प्राणपनसे चेष्टा कर रहे हैं कि राजाके ऊपर प्रभु कृपादृष्टि करें। वे समय और सुयोगकी खोजमें हैं। सम्मुख रथयात्रा है, नदियाके भक्तवृन्द आ रहे हैं। नीलाचलमें बड़ी भीड़ लगी है। सबको प्रभु कृपा वितरण कर रहे हैं। गजपति प्रतापरुद्र जगन्नाथ-सेवक भक्तिमान् राजा हैं। प्रभुके प्रति उनकी अगाध श्रद्धा है। उनके चरणोंमें अचला भक्ति है। सार्वभौम भट्टाचार्यने इसकी भलीभाँति परीक्षा की है।

इस बीचमें एक दिन प्रभुके पास आकर उन्होंने देखा कि एक निभृत स्थानमें एकाकी बैठकर प्रभु माला जप कर रहे हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुकी चरण वन्दना करके उनकी अनुमति लेकर पास बैठ गये। प्रभुको अकेला पाकर उनको मनकी बात कहनेका अवसर मिल गया। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया, "हे प्रभु! यदि अभय दान करें तो मैं आपके चरणोंमें एक बात निवेदन करूँ।" सर्वज्ञ प्रभु भट्टाचार्यके मनकी बात जानते हैं। अतएव उत्तर दिया—

—"कह तुमि किछु नाहिं भय।
योग्य हइले करिब, अयोग्य हइले नय॥"

चै. च. म. ११. ३

सार्वभौम भट्टाचार्य बहुदर्शी, बुद्धिमान् और सुचतुर प्रवीण पण्डित थे। प्रभुकी अन्तिम बात सुनते ही समझ लिया कि उनका कार्य सिद्ध न होगा। तब जब प्रभुने अभय दिया है तो बात करके देखूँ कि क्या कहते हैं। यह सोचकर भट्टाचार्य डरते-डरते बोले, "महाराज गजपति प्रतापरुद्र आपके श्रीचरणोंके दर्शनके भिखारी हैं। वे बहुत उत्कण्ठित होकर दिन बिता रहे हैं।

वे कहते हैं—

अभून्न चेष्टा मम राजचेष्टा,
सुखस्य भोगश्च बभूव रोगः।
अतः परं चेत् स न वीक्षते मां,
न धारयिष्ये बत जीवितञ्च॥

चै. च. ना. ८. २७

अर्थ—मुझे राज्य-कार्य अब अच्छा नहीं लगता, सुखैश्वर्य-भोग रोगके समान जान पड़ता है। अब भी यदि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु मेरे प्रति कृपादृष्टि नहीं करते हैं तो अब मैं यह जीवन धारण न करूँगा।

आप कृपा करके उनकी मनोकामना पूर्ण कीजिये, यही मेरा निवेदन है।" श्रीगौर भगवान् यह बात सुनकर माला रखकर दोनों कानोंमें अंगुली डालकर नारायण स्मरण करते हुए विरक्त भावसे बोले—"सार्वभौम! ऐसी अयोग्य बात क्यों कहते हो? मुझ संन्यासीके लिए राजदर्शन भी स्त्री-दर्शनके समान ही विष-भक्षण तुल्य है।"

तथाहि—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त! हन्त! विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

चै. च. नाटक ८. २३

अर्थ—अकिञ्चन भगवद्भजनोन्मुख तथा पर पार जानेका इच्छुक व्यक्तिके लिए विषयी और कामिनीगणका दर्शन विषभक्षणसे भी बढ़कर अनिष्टकर है।

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुकी बात सुनकर हतप्रभ होकर बोले, "प्रभु! आपने जो कहा, सब ठीक है। परन्तु राजा श्रीजगन्नाथका सेवक और परम भक्त हैं।"

प्रभु गम्भीर भावसे भट्टाचार्यके मुखकी ओर देखकर भौंएँ तानकर बोले—

आकारादपि भेतव्यं स्त्रीणां विषयिणामपि।
यथाहेर्मनसः क्षोभस्तथा तस्याकृतेरपि॥

चै. च. ना. ८. २४

चित्रपटस्थ स्त्री और विषयी लोगोंकी मूर्त्ति देखकर अकिञ्चन प्रकृतिवालेको भय होना ठीक ही है। क्योंकि सर्पदंशनसे मनमें जैसा क्षोभ होता है, वैसा ही सर्पका आकार देखकर भी होता है।

प्रभु इतनी बात कहकर सार्वभौम भट्टाचार्यके उत्तरकी प्रतीक्षा न करके भय दिखाकर पुनः बोले—

अर्थात्—

ऐछे बात पुनरपि मुखे ना आनिबे।
पुन यदि कह आमा एथा ना देखिबे॥

चै. च. म. ११. ९

सार्वभौम भट्टाचार्य भयभीत हो उठे। प्रभुको और कोई बात कहनेका उनको साहस न हुआ। वे उदास होकर प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके उस दिन घर लौट गये। प्रभुके द्वारा राजा प्रतापरुद्रकी विषम परीक्षाकी यह सूचना मात्र थी। लोक शिक्षाके अनुरोधसे दयामय श्रीगौराङ्ग भगवान्‌ने भक्तोत्तम, श्रीजगन्नाथजीके सेवक राजा प्रतापरुद्रकी विषम परीक्षा की थी। यह लीलाकथा यथाक्रम वर्णित होगी।

राजा गजपति प्रतापरुद्रकी श्रीगौराङ्गमें निश्छल प्रीति थी। यह उनका कार्य देखने पर स्पष्ट समझा जा सकता है। राय रामानन्द उनके अधीन काञ्छी प्रदेशस्थ विद्यानगरके राजप्रतिनिधि थे। उनको विद्यानगरका राजा कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं होती। प्रभुका आदेश था कि वे विषय त्याग करके श्रीनीचलधाममें उनके पास आवें। राय रामानन्द प्रभुके विशेष कृपापात्र थे। वे गृही वैष्णव थे। अनासक्त होकर विषयभोग करते थे। प्रभुका इशारा पाते ही राजा प्रतापरुद्रको लिखा कि "श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुने दक्षिण देशकी राजधानी विद्यानगरमें पदार्पण किया था। उनका आदेश है कि मैं उनके साथ नीलाचलमें रहूँ। मेरी दूसरी इच्छा नहीं हो सकती। वे साक्षात् ईश्वर हैं। आप परम सुकृतिवान् राजा हैं। क्योंकि वे आपके राज्यमें अवस्थान करते हैं। मेरा निवेदन है कि आप मुझको इस विषय-विषसे मुक्त कर दें।"

राजा प्रतापरुद्र राय रामानन्दको विशेष रूपसे जानते थे। इसके सिवा उन्होंने सुना कि प्रभुने इनको दर्शन प्रदानकर कृतार्थ किया है। उनके विद्यानगरके राज्य-भारको एक दूसरे योग्य आदमीके हाथमें देकर भक्त चूड़ामणि राय रामानन्दको तत्काल विषय-मुक्त कर दिया। राजाकी श्रीगौराङ्ग प्रीतिका परिचय उनके इस कार्यसे भी मिलता है।

राजा प्रतापरुद्रके साथ राय रामानन्द राजधानी कटकसे श्रीक्षेत्रमें आये। राज्य-कार्यकी सुव्यवस्था करके उन्होंने कार्यसे अवकाश ग्रहण किया।

राय रामानन्दका प्रभुसे मिलन

राय रामानन्दने श्रीक्षेत्रमें आकर श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेके पूर्व प्रभुके निवास स्थान पर जाकर उनके श्रीचरणोंकी वन्दनाकी। प्रभु उनको देखते ही प्रेमानन्दमें रो पड़े, आसन छोड़कर उठे और उनको गाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध कर लिया। दोनों आदमी प्रेमावेगमें बहुत देर तक अजस्र आँसू बहाते रहे। भक्तगण राय रामानन्दके साथ प्रभुका यह अपूर्व स्नेह व्यवहार देखकर चकित हो उठे।

राय रामानन्द अपने प्रति राजाकी दया प्रकट करनेकी सारी बातें कहने लगे--"तुमने आदेश दिया था कि मैं नीलाचल आकर तुम्हारे साथ रहूँ--यह बात मैंने राजाको बतादी। इससे राजा बड़े प्रसन्न हुए और आसनसे उठकर मुझे आलिङ्गन करके प्रेमावेशसे मेरा हाथ पकड़कर विशेष प्रीतिपूर्वक बोले--'रामानन्द! तुमको अब तक जो वेतन मिलता रहा है, वही वेतन बराबर मिलता रहेगा और कोई भी संसारिक विषय सम्बन्धी काम नहीं करना पड़ेगा, तुम निश्चित होकर प्रभुकी चरण-सेवामें लगे रहो। मैं स्वयं नितान्त हतभाग्य हूँ, उनके दर्शनके योग्य भी नहीं हूँ। जो उनकी सेवामें लगे हैं, उन्हीका जीवन सफल है। वे बड़े कृपालु हैं, किसी जन्ममें तो मुझे भी दर्शन देंगे ही।' प्रभु! उनकी प्रेम-आर्त्ति जैसी देखी, मुझमें तो उसका लेशमात्र भी नहीं है।"

प्रभुके सामने फिर वही प्रतापरुद्रकी बात, विषयीकी बात आयी। सार्वभौम भट्टाचार्य जिसके कारण उस दिन व्यर्थ कष्ट उठा चुके थे, उसी राजाके सम्बन्धमें भक्तवत्सल प्रभुने राय रामानन्दसे

भिन्न ही प्रकारकी बात कही। दयामय प्रभु अपने हृदयकी बात खोलकर नहीं कह पा रहे हैं। परन्तु प्रकारान्तरसे अपने अन्तरङ्ग भक्तके सामने अपने मनोभावको प्रकट करते हुए बोले—

यथा—

—"तुमि कृष्ण भगत प्रधान।
तोमारे जे प्रीति करे सेइ भाग्यवान्॥
तोमाके एतेक प्रीति हइल राजार।
एइ गुणे कृष्ण ताँरे करिबेन अङ्गीकार॥

चै. च. म. ११. २२, २३

इतना कहकर प्रभुने निम्नलिखित शास्त्रीय वचन उद्धृत किये।

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

पद्मपुराण

श्लोकार्थ—शिवजीने पार्वतीजीसे कहा, "हे देवि! सब देवताओंमें श्रीविष्णुकी उपासना श्रेष्ठ है। उससे भी विष्णु-भक्तोंका समर्थन श्रेष्ठतर है।

श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं–मद्भक्तपूज्याभ्यधिका (श्रीम. भा. ११. १९. २१) अर्थात् मेरी पूजासे मेरे भक्तकी पूजा बढ़कर होती है।

दुरापाह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु।
यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः॥

श्रीमद्भागवत ३.७.२०

श्लोकार्थ—मैत्रेयके प्रति विदुर कहते हैं—जो लोग सर्वदा देवदेव जनार्दनके गुण गान करते हैं, भगवत्प्राप्तिके पथ-स्वरूप उन भक्तोंकी सेवा अल्प पुण्यवाले व्यक्तियोंके लिए दुर्लभ है।

यहाँ विचारणीय यह है कि प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको क्यों कहा था कि राजाकी बात मुँह पर लानेसे मैं नीलाचल छोड़कर चला जाऊँगा। और राय रामानन्दको ऐसी आशाजनक बात क्यों कही?—यही प्रभुका लीलारङ्ग है। श्रीगौर भगवान्के लीला-रहस्यको उद्घाटन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है।

कविराज गोस्वामीने लिखा है—

प्रभुर गम्भीर लीला ना पारि बूझिते।
बुद्धि प्रवेश नाहिं ताते ना पारि वर्णिते॥

चै. च. अं. २०. ६८

एक ही विषयमें प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको एक प्रकारसे कहा, और राय रामानन्दको दूसरे प्रकारसे कहा। दयामय श्रीगौर भगवान्ने राजा प्रतापरुद्रके सम्बन्धमें सार्वभौम भट्टाचार्यसे जो कहा था, वह अति कठोर बात थी। राय रामानन्दको जो कहा, वह अति मधुर बात थी। भक्तवत्सल प्रभुने लोक शिक्षाके लिए सार्वभौम भट्टाचार्यको जो कुछ कहा था, उससे वे स्वयं दुःखित थे। उनको अज्ञात कुछ नहीं था। वे जानते थे कि उनके भक्त राजा प्रतापरुद्रके कानोंमें यह बात जायगी, और यह सुनकर राजाको दारुण मनोव्यथा होगी। भक्त-दुःखहारी श्रीगौर भगवान्ने भक्तका दुःख दूर करनेके लिए राय रामानन्दको राजाके सम्बन्धमें ये सारी आशाप्रद मधुर बातें कहीं। सर्वज्ञ प्रभु जानते थे कि राय रामानन्द अभी जाकर यह सारी बातें राजासे बोलेंगे, और यह सुनकर राजा प्रतापरुद्रका सन्तप्त हृदय शीतल हो जायगा। साध करके कविराज गोस्वामीने लिखा है—

श्रीकृष्ण चैतन्य लीला अमृतेर सार।
एक लीला प्रवाहे बहे शत शत धार॥

चै. च. अं. ५. १५३

श्रीगौराङ्ग लीला सागर अनन्त, अपार, अगाध और गम्भीर है। इसमें प्रवेश करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। इस अगाध गम्भीर लीलासागरके तट पर खड़े होकर लीला लेखकगण तीरस्थ केवल वारि-स्पर्शका सुखानुभव कर पाते हैं। यह बात कविराज गोस्वामीकी है। यथा—

चैतन्य चन्द्रेर लीला अगाध गम्भीर ।
प्रवेश करिते नारि स्पर्शि रहि तीर ॥

चै. च. म. ९. ३३५

राय रामानन्द श्रीनीलाचलमें आकर पहले प्रभुके श्रीचरणोंका दर्शन करने आये हैं। प्रभुकी चरण वन्दना करके श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईं, ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं, स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा श्रीपाद नित्यानन्द प्रभुकी चरण वन्दनाकी। उसके बाद जगदानन्द, मुकुन्द आदि भक्तवृन्दसे मिले। सब लोगोंने प्रभुके श्रीमुखसे राय रामानन्दके विषयमें सुना था। अब उनको देखकर तथा उनके साथ बातें करके जान लिया कि वे क्या वस्तु हैं।

उन्होंने जब पुनः प्रभुकी वन्दना करके विदा होना चाहा तो श्रीगौर भगवान्ने मधुर मुस्कानके साथ पूछा, "राय रामानन्द! कमललोचन श्रीश्रीजगन्नाथजीकी श्रीमूर्त्ति कैसी देखी?" राय रामानन्दने कहा, "हे प्रभु! मेरे भाग्यमें अभी श्रीविग्रहका दर्शन नहीं हुआ। पहले मैं आपके श्रीचरणोंका दर्शन करने आया हूँ। अब आप अनुमति दें कि श्रीजगन्नाथजीका दर्शन कर आऊँ।" प्रभु यह सुनकर चकित हो उठे और बोले—"राय! तुमने यह क्या किया? भगवान्के दर्शन करनेके पहिले यहाँ क्यों आये?"

राय रामानन्दने कोई विचार न करके तत्काल उत्तर दिया—

—चरण रथ, हृदय सारथी ।
जाँहा लैया जाय ताँहा जाय जीव-रथी ॥
आमि कि करिब मन इहाँ लैया आइल ।
जगन्नाथ दर्शन विचार ना कैल ॥

चै. च. म. ११. २८,२९

चतुर चूड़ामणि प्रभुने इस बातका उत्तर न देकर कहा, "राय रामानन्द! आभी जाओ, श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करो, उसके बाद घर जाकर आत्मीय स्वजनोंसे भेंट करना।" प्रभुकी आदेश वाणी शिरोधार्य करके राय रामानन्द श्रीजगन्नाथका दर्शन करने चले।

राजा प्रतापरुद्र और सार्वभौम भट्टाचार्य

कृपालु पाठक वृन्द! अब एक बार महाराज गजपति प्रतापरुद्रकी ओर आवें। उनकी अवस्था पर विचार करें। महाराज प्रतापरुद्र प्रवल प्रतापी सूर्यवंशी स्वाधीन राजा थे। उनका राज्य लगभग आधे भारत पर विस्तृत था। उनके जैसे सुखैश्वर्यशाली नृपतिको फिर दुःख किस बातका? वे भगवद्भक्त थे, साधु सज्जनके प्रतिपालक थे। सत्कर्मानुष्ठानमें लगे रहते थे, उनके ऊपर श्री श्रीनीलाचलचन्द्रकी अपार कृपा थी। फिर उनको दुःख किस बातका? यह प्रश्न स्वतः कृपालु पाठकवृन्दके मनमें उदय होगा। परन्तु वस्तुतः राजा प्रतापरुद्रके समान दुःखी जीव जगत्में कोई नहीं था।

उनके दुःखकी बात पहले कुछ कही जा चुकी है। घरमें अकेले निर्जनमें बैठकर उन्होंने श्रीगौराङ्ग प्रभुकी कृपाभिलाषामें उन्मत्त होकर जो प्रलाप किया था, उसे सार्वभौम भट्टाचार्यने सुना था, यह बात भी पहले कही जा चुकी है। कृपालु पाठक वृन्दको अवश्य ही वह श्लोक याद होगा।

यथा—

अभून्न चेष्टा मम राज्यचेष्टा
सुखस्य भोगश्च बभूव रोगः ।
अतः परं चेत्स न वीक्षते मां
न धारयिष्ये वत जीवनञ्च ॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ८. २७

श्लोकार्थ—महाराज गजपति प्रतापरुद्र कातर कण्ठसे कह रहे हैं, "अहो! राज्य-रक्षा अब मुझे अच्छी नहीं लगती। सुखैश्वर्यका भोग रोग जान पड़ता है। अब भी यदि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु मेरे ऊपर कृपा दृष्टि नहीं करते हैं, तो अब यह तुच्छ जीवन नहीं रक्खूँगा।

नदियाके उस दरिद्र ब्राह्मण कुमारकी कृपा प्राप्तिसे बाञ्चित होकर प्रबल प्रतापी स्वाधीन राजा गजपति प्रतापरुद्र प्राण त्याग देंगे, यह सङ्कल्प करके वे बैठे हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य इस विषयमें उनके मन्त्री और सहायक हैं। वे नाना प्रकारसे चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु प्रभुके मनको डुला नहीं पाते।

महाराजा प्रतापरुद्र अपने राजभवनमें एक निर्जन प्रकोष्ठमें अकेले बैठे थे, वे गम्भीर चिन्तामें मग्न थे। कुछ देर पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्यको बुला भेजा था। भट्टाचार्य आकर उपस्थित हुए। राजाने उनको नमस्कार करके बैठनेके लिए आसन देकर पूछा, "भट्टाचार्य महाशय! श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें मेरे लिए क्या निवेदन किया है?" सार्वभौम भट्टाचार्यने सारी बातें प्रकट करके राजासे कहा—"प्रभु राजदर्श नही करेंगे, इस सम्बन्धमें यदि पुनः उनसे अनुरोध किया जाय तो वे श्रीनीलाचल त्यागकर चले जायेंगे।

यह बात सुनकर महाराज प्रतापरुद्रके मनमें जो व्यथा हुई, उसकी कल्पना कृपालु पाठकवृन्द अपने मनमें कर ले सकते हैं। उस दुःखका वर्णन भाषामें नहीं हो सकता। राजा प्रतापरुद्र कुछ देर अवाक् हो गये। उनकी आँखोंसे प्रबल वेगसे अश्रुधारा बह चली। वे बारम्बार दीर्घश्वास लेने लगे। पश्चात् कुछ सुस्थिर होकर सार्वभौम भट्टाचार्यकी ओर देखकर बोले—

अदर्शनीयानपि नीचजातीन्
स वीक्ष्यते चारु तथापि नो माम्।
मदेकवर्ज्यं कृपयिष्यतीति
निर्णीय किं सोऽवततार देवः॥

चै० च० ना० ८.२८.

श्लोकार्थ—हा धिक्! अदर्शनीय यवन आदि नीच जातियोंको भी वे कृपा दृष्टिसे अवलोकन करते हैं, किन्तु मेरे प्रति कृपादृष्टि नहीं करते। तो क्या एकमात्र मुझको छोड़कर जगत् पर कृपा करेंगे, इसीलिए श्रीगौराङ्ग प्रभु भूतलमें अवतीर्ण हुए हैं?

कुछ देर तक चिन्तन करके फिर बोले—

ज्ञातैव तस्य किल सत्यगिरः प्रतिज्ञा
संप्रत्यहो क्रियते एष मयापि पक्षः।
प्राणाँस्त्यजामि किमु वा किमु वा करोमि
तत्पादपङ्कज युगं नयनाध्वनीनम्॥

चै. च. ना. ८.२९

उस सत्यवादी श्रीगौर भगवान्‌की प्रतिज्ञासे मैं अवगत हो गया हूँ। अब मैं भी यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि या तो मैं प्राण त्याग कर दूँगा, या उनके चरणारविन्द युगलको नयन गोचर करके अपने जीवनको सार्थक करूँगा।

राजा प्रतापरुद्रने कुछ कहा था, उसको यहाँ कविराज गोस्वामीकी मधुमयी भाषामें सुनिये—

पापी नीच उद्धारिते ताँर अवतार।
शुनि जगाइ माधाइ तिहाँ करिल उद्धार॥
प्रतापरुद्र छाड़ि करिबेन जगत उद्धार।
एइ प्रतिज्ञा करि जानि करियाछेन अवतार॥
ताँर प्रतिज्ञा ना करिब राजदर्शन।
मोर प्रतिज्ञा ताँहा बिना छाड़िब जीवन॥
यदि सेइ महाप्रभुर ना पाइ कृपाधन।
किया राजा किवा देह सब अकारण॥

चै० च० म० १०.३६-३९

यह भगवद्भक्तके अभिमानकी बात है, भगवतानुग्रहमूलक वैष्णवीय तेजकी बात है। इस प्रकारकी भक्ताभिमानपूर्ण निष्कपट भावोक्ति श्रीभगवान्‌को अतिप्रिय है।

सार्वभौम भट्टाचार्य राजा प्रतापरुद्रके श्रीगौराङ्गानुरागको देखकर विस्मित हो उठे। भक्त और भगवान्‌के सङ्कल्प और प्रतिज्ञाकी बात सोचकर वे कुछ चिन्तित हो गये। राजा प्रतापरुद्र भट्टाचार्यजीके मुखके भावको देखकर इसे ताड़ गये। सार्वभौम भट्टाचार्य राजा प्रतापरुद्रकी अध्यात्मिक उन्नतिके मन्त्री थे। राज्यकार्यके मन्त्रित्वका उत्तरदायित्व अलग ही था। आध्यात्मिक कार्यके मन्त्रीका कार्य अलग था। सार्वभौम भट्टाचार्य

वस्तुतः दूतीका कार्य कर रहे थे। श्रीकृष्णके साथ श्रीमती राधिकाका मिलन कराने में, उनकी सखियाँ जो कुछ करती थी, सार्वभौम भट्टाचार्यको वही करना पड़ रहा था। यह बड़ा ही विषम कार्य था।

श्रीकृष्णने व्रजसुन्दरियोंसे कहा था, "तुम्हारी सखीको मैं नहीं पहचानता, नहीं जानता, वह राजकन्या हैं और मैं गोपाल हूँ। उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध ?" सखीवृन्दने उत्तर दिया था, "हमारी राधिका राजकन्या होने पर भी तुझसे अनुराग करती हैं, तुमसे प्रेमभिक्षा चाहती हैं, तुम्हारे लिए वह प्राण दे सकती हैं। हे कृष्ण ! तुम हमारी सखीके प्राण हो, ऐसी बात मत कहो। यदि सखी सुन पायगी तो प्राण त्याग देगी।"

सार्वभौम भट्टाचार्यका यही दूती भाव है, और प्रभुका श्रीकृष्णभाव है। यह तो ठीक ही है, क्योंकि वे ही तो श्रीकृष्ण हैं। राजा प्रतापरुद्रका श्रीराधिकाका भाव है। श्रीगौर भगवान् भावनिधि और भावग्राही हैं। भावभक्तिके साथ प्रेमभक्तिके संमिश्रणसे जो सुदृढ़ प्रेमरज्जु प्रस्तुत होती है, उसीसे श्रीभगवान् भक्तके द्वारा आवद्ध होते हैं। राजा प्रतापरुद्र प्रभुके अनुरागी भक्त हैं। प्रभुके प्रति उनकी अद्भुत प्रेमभक्ति देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य विस्मित् होकर बोले—

पुनर्गत्वा ब्रूयामहह तदिदं नैव घटते
स निर्बन्धस्तस्य द्रढ़िम-गरिम द्राघिमघनः।
सुदुर्वारोऽप्यस्य प्रथिमपटिम प्रौढ़िमवहो
महारागः कश्चित कमपि न विजेतुं प्रभवति॥

चै० च० ना० ८.३०

श्लोकार्थ—अहा ! राजा प्रगाढ़ अनुरागकी चरम सीमाको पहुँच गया है, अब मैं क्या करूँ ? तो क्या फिर जाकर प्रभुसे कहूँ ? परन्तु कहने पर भी राजाके साथ प्रभुका मिलन संघटित होता हुआ नहीं दीखता। क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा अत्यन्त भयङ्कर है, और राजाका भी अनुराग अतिशय प्रबल और अपरिहार्य है। इस कारण इन दोनों (प्रतिज्ञा और अनुराग)के बीच कोई किसीको पराजित करनेमें समर्थ नहीं है।

यह सोचकर भट्टाचार्य महाशय राजाको सम्बोधन करके बोले—

—देव ना कर विषाद।
तोमार ऊपर प्रभुर हबे अवश्य प्रसाद॥
तिहों प्रेमाधीन, तोमार प्रेम गाढ़तर।
अवश्य करिबेन कृपा तोमार ऊपर॥

चै. च. म. १०. ४१,४२

यह बात कहकर सार्वभौम भट्टाचार्यने राजाको एक परामर्श दिया। वह परामर्श यह था कि रथयात्राके दिन जब प्रभु सब भक्तोंके साथ प्रेमाविष्ट होकर रथके आगे नृत्य करें तथा प्रेमानन्दमें विभोर होकर पुष्पोद्यानमें प्रवेश करके विश्राम करें, उसीं समय आप राजवेश त्यागकर वैष्णव वेषमें भागवतकी रासपञ्चाध्यायीके श्लोकोंको पढ़ते पढ़ते प्रभुके चरणोंको धारण कर लें। कृष्णनाम सुननेपर उनको बाह्यज्ञान नहीं रहेगा, और वे आपको वैष्णव समझकर प्रेमालिङ्गन प्रदान करेंगे। महाराज गजपति प्रतापरुद्र यह बात सुनकर मृदु स्वरमें बोले— "भट्टाचार्य महाशय ! मैं वही करूँगा, परन्तु कृपा करके आप इस विषयको गुप्त ही रक्खेंगे।" सार्वभौम भट्टाचार्यने यह स्वीकार किया।

राय रामानन्दसे प्रभुने राजा प्रतापरुद्रके सम्बन्धमें जो कहा था, उस बातको उन्होंने राजासे भी कहा था और सार्वभौम भट्टाचार्यको भी कहा था। राजाने यह बात भट्टाचार्यजीके सामने प्रकट नहीं की। आशाकी बात खुलकर कहनेकी आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। आशा फलवती न होने पर विश्वास नहीं रहता, यह सोचकर राजाने सारी बातें गुप्त रक्खी। परन्तु सार्वभौम भट्टाचार्यने राजाके सन्तप्त चित्त और उद्विग्न मनको शान्त करनेके लिए यह बात उनसे कही।

रामानन्द राय आजि तोमार प्रेमगुण।
प्रभु आगे कहिल ताते फिरियाछे मन॥

चै० च० म० १०.४८

राजा प्रतापरूद्रके मनमें यह सुनकर कुछ सुख तो हुआ, पर वे कोई बात बोल न सके। वे रथयात्राका दिन गिनने लगे।

राजाको गौड़ीय भक्तोका परिचय

कृपालु पाठकवृन्द ! अब फिर नदियाके भक्तवृन्दके निकट चलें। उनको चित्रोत्पला नदीके तीर छोड़कर हम बहुत दूर आ गये हैं। दो सौ नदियाके भक्तवृन्दने नरेन्द्र सरोवरके किनारे एकत्रित होकर महासङ्कीर्तन यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। नृत्य-गीत-वाद्य और हरिध्वनिसे नीलाचल मुखरित हो रहा है, मधुर मृदङ्ग-नाद, करतालकी झनकार, भक्तवृन्दके पादकी नूपुरध्वनि, तथा सर्वोपरि उच्च हरिनाम-गानसे सारे नीलाचलमें एक अपूर्व आनन्द स्रोत बह रहा है। सहस्रों लोग इस अपूर्व हरिसङ्कीर्तन यज्ञमें योगदान कर रहे हैं। राजा प्रतापरुद्र और सार्वभौम भट्टाचार्य निर्जन प्रकोष्ठमें बैठकर बातें कर रहे थे, उसी समय एक द्वारपालने आकर राजासे निवेदन किया।

देव !

परः सहस्राः सहसैव पारे
चित्रोत्पलं ये मनुजाः समूढ़ा।
किं तैर्थिकास्ते परचक्रजाः किं
श्रुत्वैव कोलाहल मागतोऽस्मि॥

चै. च. नाटक ८.३१

श्लोकार्थ—द्वारपाल बोला—"महाराज ! सहस्राधिक लोग चित्रोत्पला नदीके पार अचानक उपस्थित हो गये हैं, वे लोग तीर्थयात्री हैं या दूसरे राजाके सैनिक हैं, यह मैं नहीं जानता, केवल कोलाहल सुनकर आया हूँ।

सार्वभौम भट्टाचार्यने राजाको समझा दिया कि वे सब लोग नवद्वीपवासी हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके प्रियतम भक्त पार्षदगण हैं, बड़े साधसे नदियाके भक्तवृन्दके साथ आज प्रभुका मिलन होगा, सत्सङ्ग होगा। इन लोगोंके ठहरनेका प्रबन्ध होना चाहिये। उनके विशेष आदर-सत्कारकी आवश्यकता है। राजा प्रतापरुद्रने व्यस्त होकर कहा—

—पड़िछारे* आमि आज्ञा करिब।
वासा आदि जे चाहि पड़िछा सब दिब॥
महाप्रभुर गण जत आइला गौड़ हइते।
भट्टाचार्य एके एके देखाह आमाते॥

चै. च. म. ११.५८.५६

सार्वभौम भट्टाचार्य बोले—"महाराज ! अच्छी बात है, चलिये, आप निकटकी अट्टालिकाके ऊपर आरोहण कीजिये। गोपीनाथ आचार्य नदियाके सब भक्तोंको पहचानते हैं, मैं बहुतोंको नहीं पहचानता। वे आपको सब भक्तगणका परिचय देंगे।"

इस प्रकार बातें हो ही रही थी कि गोपीनाथ आचार्य भी वहाँ आ करके उपस्थित हो गये। अब तीनों आदमी एक साथ राजमहलकी अट्टालिकाके ऊपर चढ़ गये। राजा प्रतापरुद्रके मनमें आज बड़ा आनन्द था। आज उनको प्रभुके नित्य पार्षदगणका दर्शन प्राप्त होगा। यह उनके बड़े सौभाग्यकी बात थी। अब उनके मनमें कोई दुःख न रहा। क्योंकि भक्तका दर्शन मिलनेसे ही भगवान्का दर्शन प्राप्त होता है। यह उनका दृढ़ विश्वास है।

उच्च हरिसङ्कीर्तनकी ध्वनिसे श्रीनीलाचल धाम परिपूर्ण हो गया। महाराज गजपति प्रतापरुद्रने ऐसा आनन्दोत्सव पहले कभी नहीं देखा था। सार्वभौम भट्टाचार्यने राजासे कहा—"महाराज ! सामने जो सङ्कीर्तन-ध्वनि हो रही है, उसके पृथक्-पृथक् भावोंका अर्थ बोधगम्य न होनेपर भी कानोंमें मानो मधु ढाल रही है। इस अपूर्व ध्वनिको सुनकर

---

* पड़िछा=तीर्थयात्रियोंकी व्यवस्था करने वाले राजकर्मचारी।

प्रमानन्दमें मानो हृदय उत्फुल्ल हो उठता है।"* यह बात सुनकर राजाने कहा—"अहा! ऐसा भगवन्नाम-सङ्कीर्तन-कौशल तो कहीं नहीं देखा है।" सार्वभौम भट्टाचार्यने कहा—"इसकी सृष्टि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुने की है। इससे पहले यह था ही नहीं।"

इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा प्रभुके सेवक गोविन्द माला प्रसाद लेकर नदियाके भक्तोंका सादर आह्वान करने आ गये। प्रभुने उनको भेजा था। राजा प्रताप रुद्र, सार्वभौम भट्टाचार्य तथा गोपीनाथ आचार्य, ये तीनों आदमी एक साथ सुवृहद् राजमहलकी अट्टालिकापर बैठे देख रहे थे। राजाने कहा—"भट्टाचार्य! उन दो मूर्त्तियोंका परिचय दीजिये।" सार्वभौम भट्टाचार्य बोले—"ये जो सुन्दर मूर्त्ति संन्यासी दीख रहे हैं इनका नाम स्वरूप दामोदर गोस्वामी है। ये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके द्वितीय कलेवर हैं। और जो दूसरे व्यक्तिको आप देख रहे हैं, उनका नाम है गोविन्ददास, ये प्रभुके सेवक हैं। प्रभुने अपने नदियाके भक्तवृन्दके सम्मान और गौरवकी रक्षा करनेके लिए माल्य-चन्दन-प्रसाद भेजा है।

स्वरूप गोस्वामीने सबसे पहले श्रीअद्वैत प्रभुको माल्यचन्दन पहनाया। तत्पश्चात् गोविन्दने उनको द्वितीय माला भेंट की, और दण्डवत् प्रणाम किया। गोविन्दके साथ श्रीअद्वैत प्रभुका परिचय नहीं था। रिक्त हाथसे तादृश महत् व्यक्तिका दर्शन निषिद्ध है। इसी कारण गोविन्दने श्रीअद्वैत प्रभुको द्वितीय माला दी। शान्तिपुर नाथने स्वरूप गोस्वामीसे पूछा—"यह कौन है?" स्वरूप गोसाईंने उत्तर दिया—"इनका नाम गोविन्द हैं। ये श्रीपाद ईश्वर पुरी गोसाईंके सेवक हैं। पुरी गोसाईंने इनको प्रभुकी सेवा करनेकी आज्ञा दी है। अतएव प्रभु इनको पास रखते हैं।"

राजा प्रतापरुद्र हमारे गौर-आना-गोसाईंको देखकर बोले—"यह अद्भुत तेज-पुञ्ज-कलेवर वृद्ध महापुरुष कौन हैं? इनके गलेमें दो आदमियोंने माला डाली है, वे कौन हैं?" गोपीनाथ आचार्यने उत्तर दिया—"इस महापुरुषका नाम है श्रीअद्वैत आचार्य। इन्हीं महापुरुषके तपोबलसे, और आकुल आह्वानसे श्रीगौराङ्ग प्रभु भूतलमें अवतीर्ण हुए हैं। यही हमारे गौर-आना-गोसाईं हैं।" इसके बाद गोपीनाथ आचार्यने एक-एक करके श्रीवास पण्डित, वक्त्रेश्वर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्यरत्न, पुण्डरीक विद्यानिधि आदि भक्तोंको दिखलाया और उनका परिचय दिया। सार्वभौम भट्टाचार्य बोले—"बाल्यकालमें मैंने इनको देखा है।"

राजा प्रतापरुद्र भक्तिभावसे सबको प्रणाम करने लगे। और गोपीनाथ आचार्यसे उत्कण्ठापूर्वक पूछने लगे—"ये कौन हैं? वे कौन हैं?" इस प्रकार गोपीनाथ आचार्यने राजा प्रतापरुद्रको नदियाके सब भक्तोंका परिचय दिया। उनके नाम थे—गङ्गादास पण्डित, शङ्कर पण्डित, मुरारि गुप्त, नारायण पण्डित, हरिदास ठाकुर, हरिभट्ट, नृसिंहानन्द, शिवानन्द सेन, वासुदेव दत्त, गोविन्द-माधव और वासुदेव घोष (प्रभुके तीन कीर्तनकारी), राघव पण्डित, श्रीमान् और श्रीकान्त, शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, श्रीधर, आखरिया विजय, बल्लभ सेन, पुरुषोत्तम सञ्जय, सत्यराज खान, मुकुन्द दास, नरहरि सरकार, रघुनन्दन, खण्डवासी चिरञ्जीव तथा सुलोचन आदि।

राजा प्रतापरुद्रने अपूर्व तेजः पुञ्ज शरीरधारी इन दिव्यमूर्त्ति वैष्णवोंको देखकर परम आह्लादित होकर विस्मयपूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा, यथा—

राजा कहे देखि आमार हैल चमत्कार।
वैष्णवेर ऐछे तेज नाहि देखि आर॥

---

* सङ्कीर्तनध्वनिरयं पुरतोऽविभक्त
सर्वार्थ एव समभूच्छ्रवणप्रमोदी।
शब्दग्रहेण तदनन्तरमस्य रूपो
लब्धार्थ एव पुनरन्यविधो बभूव॥
चै. चं. ना. ८.३२

कोटि सूर्य सम सभार उज्ज्वल वरण ।
कभु नाहि शुनि एइ मधुर कीर्तन ।।
ऐछे प्रेम ऐछे नृत्य ऐछे हरिध्वनि ।
काँहा नाहि देखि ऐछे काँहा नाहि शुनि ।।

चै. च. म. ११. ८३-८५

भट्टाचार्यने उत्तर दिया—

—तोमार सुसत्य वचन ।
चैतन्येर सृष्टि एइ नामसङ्कीर्तन ।।
अवतार चैतन्य कैल धर्म प्रचारण ।
कलिकालेर धर्म कृष्णनाम सङ्कीर्तन ।।
सङ्कीर्तन-यज्ञे ताँर करे आराधन ।
सेइ त सुमेधा, आर कलिहत जन ।।

चै. च. म. ११.८६-८८

कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम् ।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ।।

श्रीमद्भागवत ११.५.३२

राजा प्रतापरुद्रने यह बात सुनकर उत्तर दिया—"जब शास्त्र-प्रमाणसे यह सिद्ध हो गया कि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं, तब पण्डित लोग इनसे निरपेक्ष क्यों है ?" सार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोककी व्याख्या करके समझाया—

अथापि ते देव ! पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन ।।

भा. १०.१४. २९.

श्लोकार्थ—ब्रह्माने कहा—"हे देव ! तुम्हारे चरणकमलद्वयके प्रसादके लेशमात्रसे अनुगृहीत व्यक्ति तुम्हारी महिमाके तत्त्वको जानता है, परन्तु कोई दूसरा व्यक्ति चिरकाल तक विचार करके भी उसे नहीं जान पाता ।

नदियाके भक्तवृन्द दलोंमें विभक्त होकर उच्च हरिसंकीर्तन और उद्दण्ड नृत्य करते हुए श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरको पीछे छोड़कर काशीमिश्रके घरकी ओर प्रभुके दर्शनके लिए चले । वे प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर चले जा रहे हैं । उनको पूर्व-पच्छिमका ज्ञान नहीं है । 'जय श्री-श्रीनवद्वीपचन्द्रकी जय' की ध्वनिसे श्रीनीलाचल धाम प्रकम्पित हो रहा है ।

राजा प्रतापरुद्रने विस्मयपूर्वक सार्वभौमसे पूछा—"ये लोग श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरको पीछे छोड़कर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके आवासमें ही पहले क्यों प्रवेश कर रहे हैं ? राजाकी इस बातका अभिप्राय यह था कि नदियाके भक्तवृन्दको पहले जगन्नाथजीका दर्शन करना चाहिये था, वे लोग क्यों श्रीगौराङ्ग प्रभुका दर्शन करने जा रहे हैं ? सार्वभौम भट्टाचार्यने एक वाक्यमें इसका अति उत्तम उत्तर दिया । वे बोले—"ईश्वरके प्रति स्वाभाविक प्रीतिकी यही रीति है ।" भाव यह था कि नदियाके भक्तवृन्दका प्रभुके प्रति सहज प्रेम है । वे लोग प्रभुको प्राणसे भी प्रिय मानते हैं । सब लोग उनसे मिलनेके लिए विशेष उत्कण्ठित हैं । वे लोग श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आये हैं । अपने प्रेमकी वस्तु, प्रीतिके आधार नवद्वीपचन्द्रको पहले देखे बिना श्रीजगन्नाथका दर्शन उन्हें कैसे रुचेगा ? पीछे जगन्नाथका दर्शन करेंगे और आनन्द प्राप्त करेंगे । प्रभुको साथ लेकर ही जगन्नाथका दर्शन करनेसे उनको सुख मिलेगा । अतएव प्रेमके वशीभूत होकर वे लोग पहले प्रभुका दर्शन करने जा रहे हैं ।" राजा प्रतापरुद्रको पता लग गया कि प्रभुके प्रति नदियावासी भक्तोंका कैसा प्रगाढ़ अनुराग है ।

उसके बाद राजाने देखा कि भवानन्द रायके पुत्र वाणीनाथ पाँच सात आदमियोंको साथ लेकर प्रचुर महाप्रसाद प्रभुके वासाकी ओर ले जा रहे हैं । राजाने सार्वभौम भट्टाचार्यसे पूछा—"भट्टाचार्य ! इतना प्रसाद आज प्रभुके वासामें क्यों जा रहा है ।" भट्टाचार्यने उत्तर दिया—"महाराज ! वाणीनाथ प्रभुका इशारा पाकर यह कार्य कर रहे हैं । नदियाके भक्तवृन्द कीर्तनसे थके हुए हैं, इस महाप्रसादके द्वारा

उनको परितृप्त किया जायगा।" राजा प्रतापरुद्रने विस्मित होकर पूछा, "सब तीर्थोंमें मुण्डन और उपवास करनेकी शास्त्रविधि है। शास्त्रविधिका उल्लङ्घन करके ये लोग कैसे प्रसाद ग्रहण करेंगे ?" सार्वभौम भट्टाचार्यने इस प्रश्नका उत्तर अति सुन्दर रूपमें दिया—

"तुम जो कह रहे हो, यह विधिमार्गका धर्म है, किन्तु रागमार्गके धर्मका मर्म बड़ा सूक्ष्म है। क्षौर उपवासकर्म आदि भगवान्‌की परोक्ष आज्ञा है, प्रभुकी साक्षात् आज्ञा है प्रसाद पाना। प्रभु स्वयं अपने श्रीहस्तसे परिवेशन करेंगे, यह और विशेषता है। इस प्रकारके लाभको छोड़कर उपवास क्यों करें। जहाँ महाप्रसाद न हो वहाँ उपवास हो सकता है। प्रभुका विधान है, प्रसाद-त्याग बड़ा अपराध है। एक बार प्रभुने प्रसादन्न स्वयं लाकर मुझे दिया था। प्रातः शैया पर बैठे-बैठे ही मैंने उसे पा लिया। भगवान् कृपा करके जिसके हृदयमें शुद्धाभक्ति सम्बन्धी प्रेरणा जगा देते हैं, वह श्रीकृष्ण-चरणाश्रय लेकर वेद-धर्म और लोक-धर्मका परित्याग कर देते हैं।"

इतना कहकर सार्वभौम भट्टाचार्यने श्लोककी आवृत्ति की।

यदा यमनु गृह्णाति भगवानात्मभावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥

भा. ४.२९.४६

श्लोकार्थ—नारदजी प्राचीनर्वाह राजाको कहते हैं—"महाराज ! (महद्व्यक्तिके मुखसे भागवत्कथा श्रवणादि द्वारा शुद्ध) चित्त हुए जिनपर भगवान् अनुग्रह करते हैं, तब वे लोकधर्म और वेदधर्म परिनिष्ठिता बुद्धिको परित्याग कर देते हैं।"

उन्होंने राजा प्रताप रुद्रको समझाया कि— "श्रीभगवान्‌को जिससे सन्तुष्टि हो, वही वास्तविक कर्म है। श्रीगौराङ्ग प्रभु नदियाके भक्तवृन्दके प्राण-सर्वस्व हैं, वे ही उनके परमेश्वर हैं, उनके सिवा अन्य ईश्वरको वे लोग नहीं जानते। उनको सन्तुष्ट करना ही इनका उद्देश्य है। तीर्थयात्राके फलकी वासना इनको नहीं है।" राजाने तब समझा कि नदियाके भक्तवृन्द कितने उच्चकोटिके साधक हैं, तथा श्रीगौराङ्ग प्रभुके प्रति उनकी कितनी प्रगाढ़ प्रेमभक्ति है। प्रेमानन्दमें विह्वल होकर राजाने नदियावासी सब भक्तोंको लक्ष्य करके भूमिष्ठ होकर दण्डवत् प्रणाम किया, और उन सब महात्माओंकी चरणधूलिकी प्राप्तिकी आशासे अट्टालिक से नीचे उतरे। काशीमिश्रको तथा पड़िछा पात्रको बुलाकर आदेश दिया—

"प्रभु स्थाने आसियाछे जत भक्तगण ॥
सवारे स्वच्छन्द वासा स्वच्छन्द प्रसाद।
स्वच्छन्दे दर्शन कराइह जेन नहे वाद ॥
प्रभुर आज्ञा धरिह दोंहे सावधान हैया।
आज्ञा नहे—तबू करिह इङ्गित बुझिया ॥

चै. च. म. ११. १०६-१०८

इतना कहकर राजाने दोनोंको विदा करके, जिस राहसे नदियाके भक्तवृन्द गये थे, उस स्थानकी धूलि लेकर भक्तिपूर्वक अपने मस्तकपर धारण किया। सार्वभौम भट्टाचार्य राजाके गौरभक्तानुरागको देखकर विस्मित हो गये।

—✲✲—

नवाँ अध्याय

प्रभुके साथ भक्तोंका मिलन एवं महासङ्कीर्तन

चारि दिनके चार सम्प्रदाय करे संकीर्तन।
मध्ये ताण्डव नृत्य करे प्रभु शचीरनन्दन ॥
चै. च. म. ११.१९९

भक्तवृन्द और प्रभु

राजा गजपति प्रतापरुद्र सार्वभौम भट्टाचार्य और गोपीनाथ आचार्यको विदा करके राजपथमें किनारे साधारण आदमीके समान खड़े होकर नदियाके भक्तवृन्दके द्वारा अनुष्ठित भुवन मङ्गल श्रीहरिसङ्कीर्तन यज्ञका दर्शन करने लगे। राजाने सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा—"भट्टाचार्य ! आप भाग्यवान् हैं। आप जाकर इन सब भक्तोंका सङ्ग करें, इनके सादर सम्भाषणादि अपूर्व सुख विलासको देखें। मैं इस सुखसे वञ्चित हूँ, मुझको यह अधिकार प्राप्त नहीं हैं, मैं अभागा हूँ।" भट्टाचार्य दुःखित चित्तसे विदा होकर काशीमिश्रके घरकी ओर चले। दूरसे ही गोपीनाथ आचार्यके साथ वे नीलाचलमें सर्वप्रथम इस महान् वैष्णव-सम्मेलनका दर्शन करने लगे।

श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके सिंहद्वारको दाहिने छोड़कर नदियाके भक्तवृन्द कीर्तन करते-करते काशीमिश्रके भवनके द्वारपर उपस्थित हुए। कनक-कान्ति श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु निज-जनके साथ अपने आजानुलम्बित सुवलित भुजयुगलको ऊपर उठाकर श्रीवदनसे मधुर हरिनाम सङ्कीर्तन करते हुए उस महान् भक्त-मण्डलीके सामने उदय हुए। प्रभुका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित था, गलेमें फूल माला थी। उनकी महा ज्योतिर्मय श्रीमूर्त्ति देखकर भक्तवृन्द आनन्द सागरमें डूबने उतराने लगे। उस आनन्दका वर्णन वाणीके द्वारा नहीं हो सकता। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

तेषां तेषां वासराणां वर्णनीयं न किञ्चन।
सुखसागर एवसीत् सर्वा विप्लावमन दिशः ॥
चै. च. महा. १४-३२

श्लोकार्थ—उस दिनकी कथाका वर्णन नहीं किया जा सकता। चारों ओर आप्लावित करके मानों एक महान् आनन्द सागर उपस्तित हुआ हैं।

सबके आगे अद्वैत प्रभु हैं, उनके साथ अवधूत श्रीनित्यानन्द, उनके पीछे श्रीवास आदि भक्तवृन्द हैं। श्रीअद्वैत प्रभुने श्रीगौर भगवान्‌की चरणवन्दना की। प्रभुने उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ किया। श्रीनित्यानन्द प्रभुको उन्होंने प्रणाम किया, प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर श्रीनिताई चाँदने प्रभुको गाढ़ प्रेमालिङ्गनमें बाँध लिया। दोनों भाई बहुत देर तक प्रेमालिङ्गनमें बद्ध रहे। दोनों आदमी परस्पर प्रेमाश्रुधारासे सिक्त हो गये। पश्चात् एक-एक करके दयामय भक्तवत्सल श्रीगौराङ्ग प्रभुने श्रीवास आदि सब भक्तोंको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ किया। सब काशीमिश्रके भवनमें प्रविष्ट हुए। सार्वभौम भट्टाचार्य दूर खड़े होकर यह अपूर्व आनन्दोत्सव और भक्त-भगवान्‌का प्रेममिलन देख रहे थे, वे मन ही मन सोच रहे थे—

अहो आश्चार्य !

युगान्तेऽन्तः कुक्षेरिव परिसरे पल्लवलघो-
रमी सर्वे ब्रह्माण्डक-समुदया देववपुषः।
यथास्थानं लब्ध्वाऽवसरमिह यान्तिस्म शतशः
सहस्रं लोकानां बत लघुनि मिश्राश्रमपदे ॥
श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८.३५

श्लोकार्थ—आहा ! कैसा आश्चर्य है ! प्रलयके समय वटपत्रशायी शिशुरूपी भगवान्‌के अश्वत्थदलके

समान क्षुद्रतम कुक्षिमें यह सारा ब्रह्माण्ड जिस प्रकार अनायास अवस्थित हो रहा है, उसी प्रकार इस लघुतर मिश्रभवनमें शत-सहस्र लोग बिना क्लेशके प्रवेश कर रहे हैं।

नवद्वीपवासी गोपीनाथ आचार्य जाकर नदियाके भक्तवृन्दसे मिले। वे उनके पूर्व परिचित थे। प्रभु सबका नाम ले लेकर प्रेम सम्भाषण करने लगे। स्वयं उन्होंने श्रीहस्तसे प्रत्येकको प्रसादी माल्यचन्दनसे आभूषित किया। भक्तवृन्द परम आनन्द पूर्वक हरिध्वनि करने लगे। सार्वभौम भट्टाचार्य अब भी दूर खड़े होकर उस अपूर्व भक्त-भगवान्‌के मिलनके आनन्दोत्सव को देख रहे थे। इस समय उनके वहाँ जानेपर रसभङ्ग होता, इसी कारण गोपीनाथ आचार्यको वहाँ उपस्थित रहकर सारा प्रबन्ध करनेके लिए कहकर उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया। कुछ दूर जाकर फिर लौट आये। नदियाके भक्तवृन्दके सङ्गसुखका लोभ उनके हृदयमें प्रबल हो उठा। श्रीमन्महाप्रभुसे चार आँखें होते ही उन्होंने उनको इशारेसे पास बुला लिया। गोपीनाथ आचार्य और सार्वभौम भट्टाचार्य दोनोंने ही प्रभुके सामने जाकर उनके चरणोंकी वन्दना की। भक्तवत्सल प्रभुने दोनोंको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करते हुए सब भक्तगणका परिचय कराया।

श्रीअद्वैत प्रभु गोपीनाथ आचार्यको देखकर बोले--"तुम विशारदके जामाता हो, मैं यह जानता हूँ।" इतना कहकर प्रेमालिङ्गन प्रदान किया। जब प्रभुने श्रीअद्वैताचार्यके साथ सार्वभौम भट्टाचार्यका परिचय कराया तो उन्होंने स्वरचित श्लोकके द्वारा शान्तिपुर नाथकी चरण वन्दना की। यथा,

अद्वैताय नमस्तेऽस्तु महेशाय महात्मने।
यत्प्रसादेन गौराङ्गचरणे जायते रतिः॥

इतना कहकर श्रीअद्वैत-चरणमें सिर रखकर उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा शान्तिपुरनाथने उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर आनन्दित किया। तत्पश्चात् वे एक-एक करके नदियाके सब भक्तोंसे मिले।

पश्चात् प्रभु नदियाके भक्तोंके साथ वार्त्तालापमें लग गये। वे श्रीअद्वैत प्रभुसे बोले—"तुम्हारे आगमनसे आज मैं पूर्ण हो गया।"

अद्वैत प्रभुने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"ईश्वरका सदा स्वभाव होता है कि षडैश्वर्यपूर्ण होनेपर भी भक्तके संगसे उनको सुखोल्लास होता है और भक्तके सङ्ग विविध विलास करते हैं।'

उसके बाद प्रभुने वासुदेव दत्तको सामने देखकर पास बुलाया। उनके अङ्गपर श्रीहस्त प्रदान कर प्रेमपूर्वक कहा—"यद्यपि मुकुन्द बचपनसे मेरा साथी है, किन्तु तुम्हें देखकर मेरे मनमें बड़ा सुख होता है, क्योंकि तुम उसके बड़े भाई हो।" वासुदेवने प्रभुके श्रीकरस्पर्शसे पुलकिताङ्ग होकर रोते-रोते प्रभुके चरणोंको धारण करके निवेदन किया—"मुकुन्दने तुमको पहिले प्राप्त किया और मैंने अब तुम्हारे चरणोंको प्राप्त किया है, अतः अब पुनर्जन्म हुआ है। इसलिए मुकुन्द छोटा होकर भी मेरा ज्येष्ठ है। वह तुम्हारा कृपापात्र हैं इसलिए सर्वश्रेष्ठ है।

भक्तोंके मतसे जिसने प्रभुकी कृपा पहले प्राप्त की, वही ज्येष्ठ होता है। मुकुन्द वासुदेवदत्तके कनिष्ठ भ्राता थे। परन्तु शैशवसे उन्हें प्रभुकी कृपा प्राप्त थी। अतएव वासुदेवने कहा कि मुकुन्द छोटा भाई होकर भी उनसे बड़ा हो गया। यह आत्यन्तिक प्रीति और प्रेमकी बात है। नदियावासी भक्तोंका श्रीगौराङ्गानुराग अद्वितीय था।

भक्तवत्सल प्रभुने भी सर्वदा भक्तके सम्बन्धको मान्य करके अपनी भक्तवत्सलताका प्रमाण दिया है। दयामय प्रभु वासुदेवकी बात सुनकर मधुर मधुर मुस्कराये। प्रभुने उनको आदरपूर्वक कहा—"वासुदेव! तुम्हारे लिए दक्षिण देशसे दो ग्रन्थ

लाया हूँ, स्वरूपके पास पड़ा है।" प्रभुने ब्रह्मसंहिता और कृष्णकर्णामृत श्रीग्रन्थके विषयमें कहा। वासुदेवने स्वरूप दामोदर गोस्वामीके पाससे दोनों श्रीग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करली। उनकी देखा-देखी सब भक्तोंने भी परम मङ्गल इन दोनों श्रीग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करली। इस प्रकार दक्षिण देशसे लाये हुए इन दोनों ग्रन्थरत्नोंका प्रचार हुआ।

पश्चात् प्रभु आसनसे उठकर श्रीवास पण्डितके पास जाकर प्रेमावेगमें अधीर होकर एक बारगी उनके चरणोंको धारण करके स्तवन-स्तुति करने लगे। प्रभुके परमभक्त श्रीवास पण्डित उनके इस कार्यसे मर्माहत हो उठे। उन्होंने उच्च स्वरसे रोते हुए दोनों भुजाओंको फैलाकर प्रभुको पकड़ लिया, और उनके चरणोंमें अपना सिर रखकर परम आर्त्तभावसे स्तवन-स्तुति करने लगे। काशीमिश्रके घर पर यह जो अत्यद्भुत करुण दृश्य उपस्थित हुआ, इससे सब भक्तोंका हृदय भक्तिरससे सराबोर हो गया। प्रभुको इस प्रकारसे भक्तकी मर्यादाकी रक्षा करते देखकर सब भक्तोंका चित्त और मन संशोधित हो गया। वे भक्तप्रेममें मुग्ध होकर रोकर व्याकुल हो उठे। प्रेममय भक्तवत्सल प्रभु प्रेमावेग शान्त होने पर सुस्थिर होकर श्रीवास पण्डितके पास बैठ गये, और उनके अङ्ग पर श्रीहस्त फेरते हुए प्रेमपूर्वक मधुर वचन बोले, "पण्डित! तुम चारों भाइयोंने मुझे स्नेह-वात्सल्यसे खरीद लिया है। तुम्हारे ऋणसे मैं उऋण नहीं हो सकता।" श्रीवास पण्डित अत्यन्त दैन्यपूर्वक रोते-रोते हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन करने लगे "हे प्रभु! दयामय श्रीगौराङ्ग! तुम विपरीत कथन कर रहे हो। तुमने अपनी अहैतुकी कृपाके मूल्यसे हम चारों भाइयोंको अपने श्रीचरणोंका दास बना लिया है। हमारी यही एकमात्र प्रार्थना है कि अपनी कृपासे हमें वञ्चित न करना।"

तत्पश्चात् प्रभु दामोदर पण्डितको देखकर उनके कनिष्ठ भ्राता शङ्कर पण्डितके विषयमें कहा, "दामोदर! तुम्हारे इस कनिष्ठ भ्राताका मेरे प्रति शुद्धप्रेम हैं, यद्यपि तुम्हारी गौरवान्वित प्रीतिसे मैं आवद्ध हूँ, परन्तु तुम्हारे कनिष्ठ भ्राताको मैं अपने पास रखना चाहता हूँ।" इतनी बात कहकर प्रभुने गोविन्दकी ओर देखा। उस करुण कटाक्षका मर्म यह था कि, "गोविन्द! तुम इसको सेवाकी शिक्षा देना।" दामोदर पण्डित आनन्दसे गद्‌गद् होकर बोले, "शङ्कर मेरा अनुज होकर भी तुम्हारी कृपासे आज अग्रज बन गया।"

इतना कहकर प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके अपने प्राणप्रिय भाईको उसी दिनसे प्रभुकी सेवामें नियुक्त कर दिया। शङ्कर पण्डित प्रभुकी गम्भीरा लीलाके कक्षमें उनके दोनों चरणोंको वक्षःस्थलमें धारण करके उपाधान बनाकर शयन किया करते थे कि प्रभु उठकर प्रेमावेशमें कहीं चल न दे। इस कारण भक्तवृन्दने उनका नाम रक्खा था 'श्रीगौराङ्ग पादोपधान'। यह सब मधुर लीलाकथा यथास्थान वर्णित होगी।

शिवानन्द सेनको पास बुलाकर उनके अङ्गपर श्रीहस्त अर्पण करके प्रभुने स्नेहमें भरकर कहा, "शिवानन्द! मैं जानता हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारा ऐकान्तिक अनुराग है।" यह बात सुनकर भक्त चूड़ामणि शिवानन्द सेनने प्रेमाविष्ट होकर कहा—

निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्त
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीम्
अनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

चै. च. ना. ८.४१

श्लोकार्थ—हे अनन्त! मैं भवसागरमें डूब रहा था। चिरकालके बाद आज उसके तट स्वरूप तुमको प्राप्त किया है। हे भगवन्! हे परम दयामय! तुमको भी आज अपनी दया प्रदर्शनके लिए उपयुक्त पात्र मिल गया। कृपानिधि प्रभु यह सुनकर मुस्कराये। उस मधुर हास्यसे शिवानन्दका सन्तप्त हृदय शीतल हो गया।

आँखोंसे आँसू बहाते हुए राघव पण्डितकी ओर देखकर प्रभु बोले, "राघव ! तुम मेरे अतिशय प्रणयके पात्र हो।" राघव पण्डित आनन्दसे गद्‌गद होकर प्रभुके चरणोंमें जा गिरे। उनके मुँहसे और कोई बात न निकल सकी। अत्यधिक प्रेमानन्दसे अभिभूत होनेके कारण उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

मुरारि गुप्त घरके बाहर दण्डवत् मुद्रामें पड़े थे। वे प्रभुके पास जा नहीं रहे थे। उनके अपूर्व दैन्य और आर्त्तभावको देखकर नीलाचलके भक्तवृन्द विस्मित हो उठे। मुरारिको न देखकर प्रभु आकुल होकर उनको ढूँढ़ने लगे। "मुरारि ! मुरारि !" कहकर स्नेह पूर्वक बारम्बार पुकारने लगे। यह देखकर कुछ भक्तोंने मुरारिको पकड़कर प्रभुके चरणोंमें लाकर उपस्थित किया। दो गुच्छे तृणके दाँतों तले दबाकर अति दीन भावसे मुरारि आकर कुछ दूर पर प्रभुके सामने उपस्थित हो गये। कृपानिधि श्रीगौर भगवान् मुरारिको देखकर आसनसे उठे। वे जैसे ही उनको आलिङ्गन करनेके लिए उद्यत हुए, दैन्यावतार मुरारिने पीछे हटकर हाथ जोड़कर रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें गिरकर निवेदन किया—"मैं अधम, पामर हूँ। मेरा यह पाप कलेवर तुम्हारे स्पर्श योग्य नहीं है। इसको स्पर्श नहीं करना।" तब भक्तवत्सल प्रभुने कहा, "मुरारि ! तुम दैन्य संवरण करो। तुम्हारे इस प्रकारके दैन्यको देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है।" इतना कहकर प्रभुने उनको बलपूर्वक प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ किया, और अपने पास बैठाकर स्नेहपूर्वक अपने श्रीकरकमलोंसे उनके अङ्गकी धूल झाड़ने लगे। मुरारि प्रभुके श्रीअङ्ग स्पर्शसे एकबारगी आनन्द स्वरूप हो उठे। उनकी वाह्य चेतना जाती रही। वे जड़वत् निश्चेष्ट भावसे प्रभुके पादमूलमें बैठकर नयन जलसे उनके श्रीचरणोंको धोने लगे।

श्रीपाद चन्द्रशेखर आचार्य गृहके एक कोनेमें बैठकर श्रीगौराङ्ग प्रभुके श्रीमुखचन्द्रकी ओर अनिमेष नेत्रोंसे देख रहे थे। करुणामय प्रभु मुरारि गुप्तको उसी अवस्थामें छोड़कर वहाँसे आचार्यरत्नके पास गये। वे प्रभुके मौसा थे। प्रभुके प्रति उनका वात्सल्य स्नेहका भाव था। शैशवमें प्रभुके पितृ-वियोग हो जाने पर इन्होंने प्रभुको पुत्रवत् पाला था। प्रभु उनको पितृतुल्य सम्मान करते थे। श्रीपाद चन्द्रशेखर आचार्यरत्नके पास जाकर प्रभुने उनको प्रणाम करके उनके पास बैठकर स्नेहमयी माताके विषयमें पूछताछ की। आचार्यरत्न प्रभुके मस्तकको सूँघकर श्रीअङ्गको हाथसे स्पर्श करके प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर अजस्र आँसू बहाने लगे। उनकी किसी बातका उत्तर न दे सके। कृपानिधि प्रभु उनके मनके भावको समझकर उनको पुनः प्रणाम करके वहाँसे उठ गये। निकट ही पुण्डरीक विद्यानिधि बैठे थे। प्रभुने उनके पास बैठकर कुछ देर तक प्रेमकी बातेंकी। पश्चात् गङ्गादास पण्डित, हरिभट्ट आदिके साथ प्रेम सम्भाषण करके उनको भी उसी प्रकार आनन्दके सिन्धुमें निमज्जित कर दिया। नदियाके भक्तोंको इस प्रकार बारम्बार प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए प्रभुके मनमें आज बड़ा उल्लास हुआ।

अब प्रभु चारों ओर प्रेम-विस्फारित नयनोंसे देखने लगे। मानो अन्य किसीको ढूँढ़ रहे थे। हरिदासको न देखकर इतने आनन्दके बीच भी श्रीगौराङ्ग प्रभुके मनमें उदासी आ गयी। प्रभुसे वे कैसे मिलते ? वे तो दूर पथमें रहकर प्रभुके श्रीचरणकमलका स्मरण करके प्रेमानन्दमें उच्च स्वरसे नाम कीर्तन कर रहे थे। प्रभु जब विषण्ण मनसे हरिदासको खोजने लगे तो कुछ लोगोंने दौड़कर हरिदासके पास जाकर कहा—"प्रभु तुमसे मिलना चाहते हैं, शीघ्र चलो।" हरिदासने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"मुझ नीचका मन्दिरके निकट जानेका अधिकार नहीं है। यहीं बगीचेके एक कोनेमें पड़ा रहूँ तो ठीक है, जिससे भगवान्के सेवक मुझे स्पर्श न कर सकें।"

भक्तगण प्रभुके पास जाकर हरिदासके दैन्यकी सारी बातें बोले। हरिदासके दैन्य और आर्त्तभावकी बात सुनकर उनका मन आनन्दित तो हुआ, परन्तु इससे उनका कोमल हृदय तत्काल द्रवित हो उठा। परन्तु मनकी बात उन्होंने मनमें ही रक्खी, किसीको उस समय कुछ नहीं कहा।

उसी समय पण्डित काशी मिश्रने साथमें दो पड़िछा लेकर प्रभुके सामने आकर उनकी चरण वन्दनाकी। प्रभुने उनके ऊपर कृपा-दृष्टि डाली तो काशी मिश्र बोले—"प्रभु ! आपके नदियाके भक्तवृन्दका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया। उनके पदरजसे मेरी कुटी आज धन्य हो गयी। अब आज्ञा दीजिये कि उनके वासाका प्रबन्ध करूँ, प्रसादान्नका प्रबन्ध करूँ।" प्रभुने गोपीनाथ आचार्यकी ओर देखकर आदेश दिया, "तुम इन लोगोंके साथ जाकर भक्तवृन्दकी रहनेकी सुव्यवस्था करो।" काशीनाथको पुकारकर कहा—"आप महाप्रसादका प्रबन्ध करें।" काशीमिश्रको एकान्तमें लेजाकर प्रभुने कहा—"इस निकटके पुष्पोद्यानमें एक तरफ एकान्तमें जो घर है, * वह मुझे चाहिये, जहाँ बैठकर शान्तिसे श्रीकृष्ण स्मरण किया जा सके।"

काशी मिश्रने उत्तर दिया, "प्रभु ! यह सब आपका ही है, तब आप माँगकर मुझे लज्जित क्यों करते हैं ? आपको जिस स्थानकी जरूरत हो स्वेच्छापूर्वक ले लें। मुझको आज्ञाकारी दास समझकर जब जो आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करूँगा"—इतना कहकर वे विदा हुए। प्रभुने यह निर्जन कुटी हरिदासके लिए चुनी थी, यह उस समय किसीकी समझमें न आया।

सब व्यवस्था और प्रबन्ध करके लौटने पर प्रभुने भक्तोंको बुलाकर कहा, "हे वैष्णवगण ! आप लोग सब अपने निवास पर जाकर वस्त्र आदि लेकर समुद्र स्नान करें और तत्पश्चात् श्रीमन्दिरका शिखर* दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करनेको यहाँ पधारे।"

प्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके सब लोग गोपीनाथ आचार्यके साथ अपने-अपने वासा पर चले गये। जब प्रभु अकेले रह गये तो वे हरिदासको ढूँढ़ने बाहर निकले। साथमें कोई न था। प्रभु अकेले राजमार्ग पर चले जा रहे थे। कुछ दूर जाकर देखते हैं कि रास्तेमें एक ओर निर्जन स्थान पर बैठ करके प्रेमानन्दमें मस्त होकर हरिदास उच्च स्वरसे नाम सङ्कीर्तन कर रहे हैं। प्रभुको अचानक सामने देखकर वे दण्डवत् करते हुए चरणोंमें लम्बायमान होकर पड़ गये। तत्काल दयामय प्रभुने उनको उठाकर प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। प्रभु और दास, दोनों ही प्रेमावेशमें अधीर होकर प्रेमाश्रुवर्षण करने लगे। दोनोंके अङ्ग पारस्परिक अश्रुधारसे सिक्त हो गये। प्रभुका गुण स्मरण करके, तथा उनकी अयाचित कृपाका यह निदर्शन प्राप्त कर हरिदास प्रेमाकुल होकर उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। भक्तवत्सल प्रभु भी हरिदासके दैन्य और आर्त्तभावको देखकर विकल होकर प्रेमानन्दमें आँसू बहाने लगे।

हरिदासने कुछ देरके बाद आत्म-संवरण करके रोते-रोते प्रभुके चरणोंको पकड़कर निवेदन किया—"हे प्रभु ! मुझको स्पर्श न करना, मैं नीच जाति हूँ, अस्पृश्य, नराधम, पामर हूँ।" दयाके अवतार श्रीगौर भगवान्ने परम प्रेममें भरकर ठाकुर हरिदासका माहात्म्य कीर्तन करते हुए उत्तर दिया—"मैं स्वयं पवित्र होनेके लिए तुम्हारा स्पर्श करता हूँ। तुम्हारे जैसी पवित्रता मुझमें नहीं है। तुम प्रतिक्षण भगवन्नाम रूपी तीर्थमें स्नान करते हो, यज्ञ-तप-दान करते हो, चारों वेदोंका अध्ययन

---

* आजकल यह सिद्ध वकुल मठके नामसे प्रसिद्ध है।

* संभवतः श्रीविग्रहके पटवन्द हो जानेके कारण महाप्रभुने शिखर दर्शन करनेका आदेश दिया।

करते हो। अतः तुम ब्राह्मण और संन्यासीसे भी अधिक पवित्र हो।''

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतके इस श्लोकका राठ किया—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्याः
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

श्रीम. भा. ३.३३.७

श्लोकार्थ—देवहुति कपिलदेवसे कह रही हैं—जिसके जिह्वाग्रपर तुम्हारा नाम है, वह चाण्डाल होते हुए भी पूज्यतम है। क्योंकि जो तुम्हारा नाम लेता है उसकी तपस्या, होम, तीर्थस्नान, सदाचार तथा साङ्ग वेदाध्ययन सब हो जाता है।

हरिदास प्रभुके श्रीमुखसे आत्म स्तुति सुनकर बड़े संकोचमें पड़ गये। वे दोनों हाथोंसे दोनों कान बन्द करके उच्च स्वरसे रोने लगे। उनका आर्त्तभाव देखकर करुणाके अवतार श्रीगौर भगवान्का कोमल हृदय मानो विदीर्ण हो गया। उन्होंने हरिदासको गोदमें उठा लिया। पासके पुष्पोद्यानमें उनको ले जाकर पूर्व-निर्दिष्ट एकान्त कुटिया दिखला दी। उस एकान्त स्थानमें प्रभु और सेवक दोनों एकत्र बैठ गये। प्रभुने हरिदाससे कहा—

एइ स्थाने रह, कर नाम सङ्कीर्तन।
प्रतिदिन आसि आमि करिब मिलन॥
मन्दिरेर चक्र देखि करह प्रणाम।
एइ ठाञि तोमार आसिबे प्रसादान्न॥

चै. च. म. ११.१७८,१७९

इसी कारण नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभुको महाजनोंने करुणाका अवतार, दयाका अवतार कहा है। करुणाका अवतार होनेके कारण ही वे सब अवतारोंके अवतारी हैं। इतनी करुणा, इतनी दया, इतना प्रेम, इतना स्नेह श्रीभगवान्ने और किसी अवतारमें प्रकट नहीं किया।

हरिदास यवनके अन्नसे पालित होनेके कारण अपनेको अस्पृश्य समझते थे। वे श्रीनीलाचलमें प्रवेश करनेका साहस नहीं करते थे, क्योंकि श्रीजगन्नाथजीके सेवकोंसे यदि उनका स्पर्श हो गया तो महा अनर्थ हो जायगा। श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें विघ्न हो जायगा। श्रीगौर भगवान्ने हरिदासके मनोभावको समझकर उनके लिए एक स्वतन्त्र निर्जन स्थान ठीक कर दिया। हरिदास श्रीनीलाचलमें आये थे प्रभुका दर्शन करने। परन्तु प्रभु रहते थे श्रीमन्दिरके समीप राजगुरु काशीमिश्रके घर पर। वहाँ जानेका वे अपना अधिकार नहीं मानते थे। अतएव कृपानिधि प्रभुने कहा कि—''मैं नित्य आकर तुमसे मिला करूँगा।'' दयामय प्रभु जानते थे कि हरिदास भिक्षान्नके लिए भी नहीं जाँयगे क्योंकि हरिदासका विश्वास था कि उनके स्पर्शसे गृही वैष्णव अपवित्र हो जाँयगे। अतएव कृपामय प्रभुने उनके प्रसादकी भी व्यवस्था कर दी। श्रीगौर भगवान्ने देखा कि हरिदास श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आये हैं, श्रीजगन्नाथजीके दर्शनसे वञ्चित हैं, इससे उनके मनमें दुःख होगा, इसी कारण प्रभुने कहा कि ''दूर से श्रीमन्दिरका चक्र देखकर प्रणाम करनेसे तुम्हें श्रीजगन्नाथजीके दर्शनका फल मिल जायगा।''

हरिदास प्रभुके श्रीमुखकी आशावाणी सुनकर पुलकित हो उठे। आनन्दसे अधीर होकर प्रभुके सामने वे दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे हरिकीर्तन करने लगे। नाना प्रकारकी भाव भङ्गिमाके साथ अद्भुत प्रेमनृत्य आरम्भ कर दिया। प्रभु भी उनके साथ नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें मत्त हो गये। बहुत देर तक दोनों नृत्य-कीर्तन करके सुस्थिर होकर बैठे।

इसके पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभु, जगदानन्द और दामोदर पण्डित तथा मुकुन्द आदि प्रभुको खोजते हुए वहाँ आकर हरिदाससे मिले। हरिदासने

चरणकी धूलिके समान हीनातिहीन होकर सबके सहित प्रभुका गुणानुवाद किया। उसके बाद श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि सब मिलकर समुद्रमें स्नान करके प्रभुको अपने वासापर ले गये। श्रीअद्वैत प्रभु और श्रीवास आदि भक्तवृन्द उसके बाद समुद्र स्नान करने गये। स्नान करके श्रीजगन्नाथजीका शिखर दर्शन करके सब लोग प्रभुके वासेपर काशीमिश्रके घरपर मध्याह्न कृत्य करने आये।

वैष्णव भोजन

काशीनाथ पंडित और गोपीनाथ आचार्यने नाना प्रकारका प्रसादान्न प्रचुर मात्रामें प्रभुके वासापर ला रक्खा था। श्रीगौराङ्ग सुन्दरने एक-एक करके सब भक्तोंको योगासनमें बैठाया, और अपने हाथसे प्रसाद परोसने लगे। सचल जगन्नाथ श्रीमन्महाप्रभुके श्रीहस्तसे थोड़ा प्रसाद नहीं बाँटा जाता। वे एक-एक आदमीके पत्तलपर तीन-चार आदमीका भोजन रखने लगे। भक्तवृन्द प्रभुके इस व्यापारको देखकर मृदु मधुर मुस्कान करने लगे, तथा हाथ उठाकर बैठे रहे।

प्रभु यदि भोजन करने न बैठें तो कोई प्रसाद नहीं पा सकता। तब स्वरूप गोस्वामीने प्रभुसे कहा—"तुम्हारे बिना कोई भोजन नहीं करेगा। तुम्हारे साथ जितने संन्यासी है, सभीको गोपीनाथ आचार्यने आमन्त्रित किया है, परमानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती सभी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नित्यानन्द और सब लोगोंको साथ लेकर भिक्षा करने तुम भी बैठो। सबको परोसनेका काम मैं करता हूँ।"

तब प्रभुने समझ लिया कि उनके परोसनेसे काम न चलेगा। उनके मनमें बड़ी साध थी कि अपने हाथसे परोसकर सबको जगन्नाथका प्रसाद खिलायेंगे। लेकिन यह साध पूरी करनेपर किसीका भोजन नहीं होगा, यह सोचकर प्रभु विरत हो गये। हरिदासकी बात वे भूले न थे। गोविन्दके हाथसे बहुत यत्नपूर्वक हरिदासके लिए उसी पुष्पोद्यानकी एकान्त कुटियामें पहले प्रसादान्न भेजकर प्रभु सब संन्यासियों और भक्तोंके साथ भोजन करने बैठे। स्वरूप गोस्वामी, दामोदर पण्डित और जगदानन्द, ये तीनों आदमी मिलकर वैष्णवोंको भोजन परोसने लगे। जगदानन्द पण्डित प्रभुके पात्रमें उत्तम-उत्तम व्यञ्जन, मिष्ठान्न आदि प्रचुर मात्रामें देने लगे। प्रभु जितना ही मना करते थे, वे उतना ही प्रभुके पात्रमें प्रसादान्न देते थे। भक्तके भगवान् श्रीगौराङ्ग सुन्दर परमानन्दपूर्वक सब भोजन कर गये, क्योंकि कुछ भी छोड़ना अनर्थकारी था! जगदानन्द अभिमानी भक्त थे। वे रुष्ट होकर कोई काण्ड न कर बैठें, प्रभु उनसे भय करते थे। बीच-बीचमें उच्च हरिध्वनिसे तथा जय ध्वनिसे काशीमिश्रका घर मुखरित हो उठता था।

वैष्णवोंके भोजनमें भी भजन साधन होता है। श्रीभगवान्का प्रसाद श्रीभगवान्का नामकीर्तन करते हुए भक्तिपूर्वक ग्रहण करना, तथा नामानन्दमें विभोर होकर प्रसाद-भोजनका आनन्दानुभव करना, यह वैष्णवका एक भजनाङ्ग है। प्रभुके वासेपर आज जो महोत्सव है, वह प्रेमोत्सव और भोजनोत्सव दोनों है। इस भोजनोत्सवके समाप्त होनेपर सबने हरिध्वनि करके आचमन किया।

वैष्णवका प्रसाद महामहाप्रसाद होता है। उसको लेकर अन्याय भक्तोंमें धक्कमधक्का होने लगा। प्रभुके भोजन पात्रपर लूट मच गयी। अवधूत निताई चाँदने श्रीअद्वैत प्रभुके सारे अङ्गको प्रसादान्नसे भूषित कर दिया। शान्तिपुर नाथने प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर अवधूत नित्यानन्द प्रभुके दोनों हाथ पकड़कर आङ्गनमें खड़े होकर भावभङ्गीके साथ मधुर नृत्य आरम्भ कर दिया। वे बाह्यज्ञान शून्य होकर कमर हिलाकर मधुर नृत्य करने लगे। यह देखकर भावनिधि प्रभुके

मनमें बड़ा आनन्द हुआ। कुछ देरके बाद शान्तिपुर-नाम प्रकृतिस्थ हुए। तब आचमन आदि कार्य समाप्त किया गया। प्रभुने सबको अपने हाथों माल्यचन्दनसे भूषित किया। उसके बाद सब लोग अपने-अपने वासापर विश्राम करने गये।

रामानन्द रायके साथ नदियाके भक्तोंका मिलन

सन्ध्या कालमें पुनः सब लोग प्रभुके वासापर काशीमिश्रके घर आये। उसी समय राय रामानन्दने प्रभुके पास आकर उनकी चरणवन्दना की। प्रभुने उनको प्रेमालिङ्गनके द्वारा कृतार्थ करके नदियाके भक्तवृन्दके साथ मिलन करा दिया।

राय रामानन्दने आनन्द-विह्वल होकर एक-एक करके सब भक्तोंकी चरणधूलि ग्रहण की। सबने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। भक्तवत्सल प्रभु भक्त चूड़ामणि राय रामानन्दकी प्रशंसा शतमुखसे करके भी परितृप्त न हुए। भक्तके भगवान् भक्तका गुणकीर्तन करनेके लिए सहस्रमुख हो गये। नदियाके भक्तवृन्द विस्मित होकर प्रभुके श्रीमुखसे भक्तका गुणगान सुनकर परम आनन्दित हुए।

श्रीमन्दिरमें सन्ध्याकालीन सङ्कीर्तन

संध्याकालमें श्रीजगन्नाथजीकी धूप आरतीके समय प्रभुने सब भक्तोंके साथ श्रीमन्दिरमें जाकर महासंकीर्तन यज्ञका अनुष्ठान किया। श्रीजगन्नाथजीके सेवकोंने सबको माल्यचन्दनसे भूषित किया। चारों ओर चार दल बनकर कीर्तन करने लगे। उनके बीचमें श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र त्रिभुवनको मुग्ध करने वाला, मनोहर, नयन रञ्जन मधुर नृत्य करने लगे। आठ मृदङ्ग और बत्तीस जोड़े करताल एक साथ बज उठे। मृदङ्ग करतालके रवसे श्रीमन्दिरका प्राङ्गण प्रकम्पित हो उठा। बारम्बार हरिध्वनिसे गगनमण्डल पूर्ण हो गया। भुवन-मङ्गल-कीर्तनध्वनि चतुर्दश भुवनमें भरकर ब्रह्माण्डको पार कर गयी।

नीलाचलवासी सब लोग आज मन्दिरके प्राङ्गणमें एकत्रित हुए हैं। श्रीमन्दिरके द्वारपर चारों ओर भयानक भीड़ इकट्ठी हो गयी। नीलाचलवासी नर-नारीवृन्द इस महा सङ्कीर्तन यज्ञको देखकर विस्मित हो उठे। ऐसा अपूर्व कीर्तन उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।

प्रभुने इन चारों कीर्तनीया दलोंको साथ लेकर नृत्य कीर्तन करते हुए श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरकी परिक्रमा की। उनके आगे पीछे चारों दल कीर्तन कर रहे थे। प्रभुके अङ्गमें सारे सात्विक अष्टभावोंके लक्षण परिदृष्ट हो रहे थे। अश्रु, कम्प, पुलक, कदम्ब, प्रस्वेद आदि प्रेमके विकार देखकर सब लोग विस्मित हो उठे। प्रभु हुङ्कार-गर्जन करके उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे। उनके कमल-नयनसे पिचकारीके धारके समान प्रेमाश्रुधारा निकल रही थी, उससे चतुर्दिक लोग स्नान कर रहे थे। प्रभुको पकड़कर श्रीनित्यानन्द धीरे-धीरे कीर्तनके साथ जा रहे थे, डर था कि कहीं पछाड़ खाकर प्रभु भूतल पर गिर न जाँय और उन्हें चोट न लग जाय। प्रभु कीर्तनानन्दमें उन्मत्त हो गये थे, उनको बाह्यज्ञान न था। नदियाके भक्तगण बहुत दिनोंके बाद अपने जीवन सर्वस्व धनको प्राप्तकर परमानन्दमें नृत्यकीर्तन कर रहे थे। उनको भी बाह्यज्ञान नहीं था। प्रभु अब श्रीमन्दिरके पीछे कीर्तन कर रहे थे।

***बेड़ानृत्य महाप्रभु करि कथोक्षण।**
मन्दिरेर पाछे रहि करेन कीर्तन॥
चारिदिगे चार सम्प्रदाय उच्चस्वरे गाय।
मध्ये ताण्डव नृत्य करे गोरा राय॥

चै. च. म. ११. २०७,२०८

बहुत देर तक इस प्रकार ताण्डव नृत्य करके प्रभुको थकावट बोध होने लगी। वे स्थिर होकर एक जगह खड़े हो गये, और चार महन्तको चारों दलमें नृत्य करनेका आदेश दिया। श्रीअद्वैतप्रभु

* परिक्रमा करते हुए।

प्रथम दलमें नृत्य करने लगे, श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वितीय दलमें, तृतीय दलमें वक्रेश्वर पण्डित, और चतुर्थ दलमें श्रीवास पण्डित नृत्य करने लगे। श्रीगौराङ्ग प्रभु बीचमें खड़े होकर यह अपूर्व नृत्य कीर्तन रङ्गदर्शन करने लगे। सङ्कीर्तन यज्ञेश्वर श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र चारो दलोंके बीचमें भुवन मोहन मूर्त्तिमें खड़े सबकी ओर देख रहे हैं। उनके प्रति सभी करुण नयनसे देख रहे हैं।

इस भावमें प्रभुने वहाँ कुछ ऐश्वर्य प्रकट किया। चारों ओर जितने लोग नृत्य-गीत कर रहे थे, सभी समझ रहे हैं कि प्रभु मेरी ओर ही देख रहे हैं। प्रभुकी भी अभिलाषा है कि चारों दलोंके कीर्तनका एक साथ दर्शन करे, अतः उनने यह ऐश्वर्य प्रकट किया। जिस प्रकार पुलिन-भोजनमें बीचमें बैठे श्रीकृष्णके चारों ओर बैठे सखागण समझ रहे हैं कि श्रीकृष्ण उन्हींकी ओर निहार रहे हैं।"

नृत्य करते-करते जो प्रभुके सामने आया, उसको प्रभुने गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। इस प्रकार नदियाके भक्तगण प्रभुको लेकर महा सङ्कीर्तन कर रहे हैं, और सारे नीलाचल वासी यह देखकर प्रेमानन्दके सिन्धुमें डूब रहे हैं। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

महा-नृत्य महा-प्रेम महासङ्कीर्तन ।
देखि प्रेमानन्दे भासे नीलाचल-जन ॥

चै० च० म० ११-२१८

इस प्रकारका आनन्दोत्सव, इस प्रकारका अपूर्व नृत्य कीर्तन श्रीनीलाचलमें पहले कभी नहीं हुआ था। महाराज गजपति प्रतापरुद्र अट्टालिकाके उच्च शिखर पर आरोहण करके अपने गणके साथ यह महा सङ्कीर्तन यज्ञ देख रहें थे। भक्तवृन्दके साथ सङ्कीर्तन यज्ञेश्वर श्रीगौराङ्ग प्रभुको प्रेमावेशमें मधुर नृत्य करते देखकर राजा आनन्दमें विह्वल होकर अजस्र प्रेमाश्रु वर्षण करने लगे। प्रभुके साथ मिलनेकी उनकी उत्कण्ठा सौगुनी बढ़ गयी। वे रथयात्राका दिन गिनने लगे।

श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र नवद्वीपवासी भक्तवृन्दके साथ महा सङ्कीर्तन यज्ञ समाप्त होने पर श्रीश्रीजगन्नाथजीकी पुष्पाञ्जलि आरती दर्शन करके सब भक्तगणके साथ अपने वासे पर आये। उनके साथ-साथ राजाके श्रीजगन्नाथजीके सेवकगण प्रचुर परिणाममें अति उत्तम उत्तम प्रसाद लेकर प्रभुके वासा पर उपस्थित हुए। कीर्तनसे थके माँदे भक्तोंको प्रभुने अपने हाथसे प्रसाद बाँटा। सबने प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करते हुए प्रसाद ग्रहण किया। उसके बाद सबने कुछ देर प्रभुके साथ बैठकर हरि चर्चाकी। रात प्रायः डेढ़ पहर बीत गयी। प्रभुने सब भक्तोंको अपने अपने बासा पर जाकर शयन करनेका आदेश दिया। भक्तवृन्द प्रभुके श्रीचरणकमलकी वन्दना करके रात भरके लिए प्रभुसे विदा हुए।

नदियाके भक्तवृन्द जितने दिन प्रभुके साथ नीलाचलमें रहे, प्रतिदिन सन्ध्या कालमें इसी प्रकार श्रीश्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरमें प्रभुके साथ नृत्य-कीर्तनोत्सवमें मत्त रहते थे। कीर्तनानन्दमें नीलाचलधाम मुखरित हो गया। चिदानन्दमय दारुब्रह्ममें परमानन्दमय नरब्रह्म श्रीश्रीगौराङ्ग सुन्दरकी आनन्दघन मूर्त्तिका विकास हुआ। सारा नीलाचल आनन्दमय जान पड़ने लगा। नदियाके भक्तवृन्दने नीलाचलको गौरमय देखा। भाग्यवान् नित्यदासगणमें बहुतोंने अचल जगन्नाथके स्थानमें सचल जगन्नाथको देखकर परम आनन्द अनुभव किया। इसी कारण भक्तवृन्द प्रभुको सचल जगन्नाथ कहा करते थे। पश्चात् महाराज गजपति प्रतापरुद्रने भी यह बात कही थी।

नदियाके भक्तोंके यहाँ प्रभुकी भिक्षा

नदियाके भक्तवृन्दने प्रभुको एक-एक दिन अपने अपने बासा पर निमन्त्रित करके गृहसे यत्नपूर्वक लायी हुई भोजनकी सामग्रीके द्वारा परम परितोष

पूर्वक भिक्षा कराया। प्रभुको जिसमें प्रीति थी, जो खाना पसन्द था, नदियाके भक्तगण वे सब वस्तुएँ अत्यन्त यत्नपूर्वक अपने-अपने सिर पर ढोकर नदियासे नीलाचल तक लाये थे। शची-विष्णुप्रियाका दिया हुआ प्रीति-उपहार भी श्रीवास पण्डितके सङ्ग आया था। प्रभुको निमन्त्रित करके एक-एक प्रीति-उपहारकी वे वस्तुएँ प्रभुके भोजन पात्रमें देकर श्रीवास पण्डितने कहा कि—"यह सब आपके अपने धरकी वस्तुएँ हैं। शचीमाताने यत्नपूर्वक भेजा है।" स्नेहमयी जननी नाम सुनते ही प्रभु मातृप्रेममें विभोर होकर रो पड़े। उनके करुणा भरे अरुण नयनको छलछलाते देखकर श्रीवास पण्डितने फिर वह बात नहीं उठायी।

इस प्रकार श्रीनीलाचलमें भक्त और भगवान्का जो मिलन हुआ, वह अति अपूर्व था। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"एइ त कहिल प्रभुर कीर्तन-विलास।
जेइ इहा शुने—हय चैतन्येर दास॥"

चै. च. म. ११-२२५

यह हुई फल श्रुति। भक्त और भगवान्के इस अपूर्व मिलन सुख, तथा प्रभुके दर्शनमें नदियावासी भक्तवृन्दके मनके अभूतपूर्व आनन्दोछ्वासके साथ ब्रह्मानन्दकी तुलना नहीं हो सकती। नदियाके भक्तवृन्द ब्रह्मानन्दको तुच्छ समझते हैं। प्रभुको देखकर उनको जो सुख और आनन्द होता है, उसे वे ही जानते हैं। वे प्रभुके नित्य पार्षद हैं, नित्यदास हैं। प्रभुके दासत्वके सिवा अन्य किसी विषयमें उनका मन नहीं लगता। प्रभुके श्रीमुखका दर्शन ही वे लोग परम और चरम सुख मानते हैं। वे,

"चैतन्येर दासत्व बई मने आर नाजि।"

चै.भा.म. १६-२५

दशवाँ अध्याय

रथयात्राका उद्योग, राजाकी उत्कण्ठा

(राजपुत्रका प्रभुसे मिलन, श्रीगुण्डिचा मन्दिर मार्जन)

उत्तुङ्गेन नभस्तलं तरलयन् मार्त्तण्डविम्बंमुहु-
श्चुम्बन् देवसभासभाजनविधिं सम्पादयन्निर्भरम्।
ब्रह्माण्डान्तर-संस्थितस्य नयनानन्दोत्सवोत्साहकः
साटोपं मुरवैरिणो विजयते लक्ष्मीमयः स्पन्दनः॥

श्री चै० च० महा० १६.९

श्लोकार्थ—समधिक उच्च होनेके कारण जो रथ नभ-मण्डलको चलायमान कर रहा है, सूर्यमण्डलको जो बारम्बार स्पर्श कर रहा है, तथा जो रथ देवसभाके आनन्दको सम्यक् रूपसे बढ़ा रहा है, एवं ब्रह्माण्डके सिवा अन्यत्र स्थित जनगणके नयनानन्दोत्सवको उत्साहित कर रहा है, वह मुरवैरी श्रीजगन्नाथजीका रथ जयको प्राप्त हो।

प्रभुके चरणदर्शनके लिए राजाकी उत्कण्ठा

इसके पूर्व प्रभुके साथ राजा प्रतापरुद्रके मिलनकी उत्कण्ठाकी बात कही जा चुकी है। राजाके गौराङ्गानुरागका परिचय कृपालु पाठकवृन्द

पहले ही पा चुके हैं। अब और भी कुछ सुनिये। दक्षिण देशसे जब प्रभु श्रीनीलाचलमें लौटे, उस समय राजा प्रतापरुद्र अपनी राजधानी कटकमें थे। वहाँसे उन्होंने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको बहुत अनुनय विनय पूर्वक प्रभुसे मिलनेके लिए एक पत्र लिखा। उसके उत्तरमें सार्वभौम भट्टाचार्यने लिखा कि, "प्रभुकी आज्ञा नहीं मिली है, पुनः चेष्टा करूँगा।" राजाने यह पत्र पाकर मनमें बहुत दुःखित होकर पुनः पत्र लिखा—"प्रभुके जितने भक्त हैं, उन सबको मेरे लिए निवेदन करना कि वे सब मुझ पर दया करके मेरे लिए प्रभुके चरणोंमें निवेदन करें। उनकी कृपासे मुझे प्रभुके चरणोंकी प्राप्ति हो जाय। मुझे राज-काज कुछ भी अच्छा नहीं लगता। यदि प्रभु मुझ पर कृपा नहीं करेंगे तो मुझे राज्य छोड़कर भिखारी बनना पड़ेगा।"

सार्वभौम भट्टाचार्य यह पत्र पाकर विशेष चिन्तित हुए। सब भक्तोंको राजाका वह अपूर्व पत्र दिखलाया। राजा गजपति प्रतापरुद्रकी ऐसी गौराङ्गभक्ति देखकर भक्तगण विस्मय-सागरमें मग्न हो गये। सभी कहने लगे, "प्रभु कदापि राजासे नहीं मिलेंगे, यदि हम लोग इस विषयमें उनसे अनुरोध करते हैं तो वे बहुत दुःखी होंगे।"

सार्वभौम भट्टाचार्य राजा प्रतापरुद्रके हार्दिक मित्र थे। राजाके साथ गौराङ्ग मिलनमें वे दूतीका कार्य कर रहे थे। वे यह बात सुनकर बोले, "एकबार चलो, सब मिलकरके चेष्टा करके देखें। राजासे मिलनेका अनुरोध हम प्रभुसे नहीं करेंगे, राजाके व्यवहारके विषयमें प्रभुसे बातें करके देखेंगे कि प्रभुका मन क्या है।" इस प्रकार कहकर सब एक साथ प्रभुके वासा पर गये।

सार्वभौम भट्टाचार्यने इस बार श्रीनित्यानन्द प्रभुको इस कार्यका भार सौंपते हुए कहा, "श्रीपाद! आप यदि प्रभुसे राजाके लिए एक बात करें तो उससे कार्य सिद्ध हो सकता है। राजा परम भक्त है। आपके चरणोंमें उसका विशेष निवेदन है कि ऐसा उपाय करें कि प्रभुकी उस पर कृपा हो।" अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु हँसकर बोले, "भट्टाचार्य! तुम इस कार्यमें दौत्यरूपमें नियुक्त हो। तुम्हारे द्वारा ही प्रभु यह कार्य सिद्ध करेंगे। परन्तु जब तुम्हारा आग्रह है तो प्रभुसे मैं भी अवश्य कहूँगा।"

इस प्रकार परामर्श करके सब एक साथ प्रभुके पास चले। प्रभु उस समय अपने वासा पर बैठकर माला जप कर रहे थे। प्रभुकी अनुमति लेकर उनके चरणोंकी वन्दना करके सबने आसन ग्रहण किया। सबकी इच्छा थी कि प्रभुसे राजाकी बात कहें, परन्तु किसीको साहस नहीं हो रहा था। अन्तर्यामी प्रभु उनके मनकी बात जानते थे। परन्तु उसे प्रकट न करके सबके प्रति करुण नयनसे दृष्टिपात करके कहने लगे, "इस समय तुम लोगोंके मुँहका भाव देखकर जान पड़ता है कि कुछ बोलने आये हो, परन्तु उसे कह नहीं पा रहे हो। इसका क्या कारण है?" तब श्रीनित्यानन्द प्रभु साहस करके बोले, "हे प्रभु! तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ, वह बात कहे बिना मैं रह नहीं सकता, परन्तु बोलनेमें भी भय होता है। वह बात योग्य हो या अयोग्य हो, तुम्हारे सामने उसे हम कहना चाहते हैं। तुम यदि अभयदान करो तो कहूँ।"

सर्वज्ञ प्रभु हँसकर कहने लगे, "श्रीपाद! [illegible] बात आप निष्कपट भावसे मुझे कह सकते हैं।" प्रभुके श्रीमुखकी आश्वासन वाणी प्राप्त कर श्रीनित्यानन्द प्रभु बोले, "राजा प्रतापरुद्र तुम्हारे कृपा प्रार्थी हैं। वे परम भक्त हैं। तुम यदि कृपा करके उनको दर्शन देकर कृतार्थ न करोगे तो वे राज्य त्यागकर भिखारी हो जाँयगे।"

भक्तवत्सल प्रभुका मन यह बात सुनकर द्रवित तो हुआ, किन्तु लोक-शिक्षाके लिए प्रकृत मनका भाव प्रकट न करके बाह्य विरक्तिका भाव दिखाते हुए बोले "श्रीपाद! आप सब लोगोंकी इच्छा है कि मैं विषयीका सङ्ग करूँ। मैं विरक्त संन्यासी हूँ

इससे मेरा परमार्थ तो बिगड़ेगा ही, लोग भी निन्दा करेंगे। लोग तो दूर रहें, यह जो दामोदर पण्डित हैं, यह भी मेरी भर्त्सना करेंगे। आप लोगोंकी अपेक्षा इनसे मैं अधिक डरता हूँ। इनका वाक्य दण्ड मैं सहन नहीं कर सकूँगा। आप लोगोंके कहनेसे मैं राजासे मिल न सकूँगा, परन्तु यदि दामोदर पण्डित कहें तो मैं यह कार्य कर सकता हूँ।"

उन लोगोंमें दामोदर पण्डित भी थे। वे बहुत स्पष्ट वक्ता थे। प्रभुने संन्यासाश्रम ग्रहण किया था, सर्वतोभावेन उनके संन्यासधर्मकी रक्षा जिससे हो उसके लिए वे बहुत तीव्र दृष्टि रखते थे। इस प्रसङ्गको लेकर वे कभी-कभी प्रभुको वाक्यदण्ड देते थे। दामोदरका वाक्यदण्ड प्रभु पसन्द करते थे। यह वाक्यदण्ड लीला-कथा यथास्थान विस्तृत रूपसे वर्णित होगी। दामोदर पण्डित प्रभुकी बात सुनकर कुछ लज्जित तो हुए, परन्तु उत्तरसे बाज न आये। उन्होंने प्रभुसे कहा । यथा श्रीचैतन्य चरितामृतमें—

दामोदर कहे तुमि स्वतन्त्र ईश्वर।
कर्त्तव्याकर्त्तव्य सब तोमार गोचर॥
आमि कोन क्षुद्र जीव तोमाके विधि दिब।
आपनि मिलिबे ताँरे ताहाओ देखिब॥
राजा तोमाय स्नेह करे तुमि स्नेहवश।
ताँर स्नेहे कराबे ताँरे तोमार परश॥
यद्यपि ईश्वर तुमि परम स्वतन्त्र।
तथापि स्वभावे हओ प्रेम-परतन्त्र॥

चै. च. म. १२.२४-२६

दामोदर पण्डितकी बात सुनकर प्रभु चुप हो गये। दामोदरने जो कुछ कहा, वह बिल्कुल स्पष्ट बात थी, उसका उत्तर न था। उन्होंने एकवारगी सुस्पष्ट भाषामें सबके सामने प्रभुसे कहा—"हे प्रभु ! अब तुम चतुराई न करना, तुम स्वयं ही राजाके साथ मिलोगे, स्पष्ट है।"

इस प्रकारकी स्पष्ट बातसे प्रभुके मनमें बड़ा सुख हुआ। उन्होंने दामोदर पण्ठितके मुखकी ओर एक बार करुण नेत्रसे देखा। देखते ही सिर झुका लिया। इस प्रेम कटाक्षका मर्म यह था कि—"दामोदर ! तुम मेरे हृदयके यथार्थ भावको समझते हो। मैं पूर्णतः भक्तके आधीन हूँ। राजाने मुझको प्रेमभक्तिकी डोरसे बाँध रखा है, इस बन्धनसे छूटना मेरे वशका नहीं है।"

उपस्थित भक्तवृन्दने समझा कि प्रभुका मन कोमल हो गया है, राजाकी मनोकामनाको वे पूर्ण करेंगे। प्रभुने जब और कोई बात नही कही, तब श्रीनित्यानन्द प्रभु बोले—"तुमको राज-दर्शनके लिए तो कोई नहीं कह सकता; किन्तु अनुरागी जनका ऐसा स्वभाव होता है कि यदि उनको इष्टकी प्राप्ति नहीं होती, वे प्राण धारण नहीं कर सकते। इसका प्रमाण है यज्ञ-पत्नी जिनने अपने पतिके समुख भगवान् कृष्णके लिए प्राण त्याग दिये। कोई ऐसी युक्ति होनी चाहिये कि तुम राजासे न भी मिलो तो भी वह प्राग धारण कर सके। यदि अपना एक बहिर्वास दे सको तो भी राजा आशामें प्राण धारण किये रहेंगे।"

करुणामय प्रभुका हृदय मथित हो उठा। वे अब चुप न रह सके। वे सिर नीचा किये कुछ सोच रहे थे। अब श्रीवदन ऊपर उठाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुकी ओर करुण नयनसे देखकर मधुर शब्दोंमें बोले—"श्रीपाद ! आप सब लोग परम पण्डित है, मेरे लिए जो अंच्छा होगा, वहीं करेंगे।"

श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीगौराङ्ग भगवान्की इच्छाशक्ति हैं। उनने प्रभुका मनोभाव समझकर गोविन्दसे उनका एक खण्ड बहिर्वास माँगकर सार्वभौम भट्टाचार्यकेद्वारा राज प्रताप रुद्रको भेजा। राजा प्रभुका प्रसादी-वस्त्रखण्ड प्राप्त करके प्रेमानन्दमें मस्तकपर धारण करके कृतार्थ हो गये। उस दिनसे परम भक्तिपूर्वक उस वस्त्रखण्डकी पूजा करने लगे।

प्रभुका प्रसादी वस्त्रदान श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे ही प्राप्त हुआ। अब तक सार्वभौम भट्टाचार्यके अनुगत होकर राजा प्रतापरुद्र श्रीगौराङ्ग कृपा प्राप्तिकी चेष्टा कर रहे थे। सार्वभौम भट्टाचार्यने जब अन्तिम बार लिखा कि प्रभुको राजाके साथ मिलना अभिप्रेत नहीं है, तब राजा प्रताप रुद्रने श्रीनित्यानन्द प्रभुकी शरण ली। उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यको जो पत्र लिखा था, उसमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका नाम विशेष रूपमें लिखा था। राजाने नदियाके भक्तवृन्दकी शरण ली, यह उनके पत्रके मर्मसे जाना जाता हैं। राजा प्रतापरुद्रने सार्वभौम भट्टाचार्यके पत्रमें लिखा था—

प्रभुर निकटे आछे जत भक्तगण।
मोर लागि ताँ साबारे करिह निवेदन ।।
सेइ सब दयालु मोरे हइया सदय।
मोर लागि प्रभु पदे करेन विनय ।।
ताँ सबार प्रसादे मिलों श्रीप्रभुर पाय।
प्रभु कृपा बिना मोरे राज्य नाहिं भाय ।।

चै. च. म.१२.६-८

भक्तकी कृपाके बिना श्रीभगवान्‌की कृपा प्राप्त नहीं होती। इसी कारण राजाने भक्तकी शरण ली। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपाके बिना श्रीगौराङ्ग चरणकी प्राप्ति नहीं होती। इसी कारण राजा प्रताप रुद्रने श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें शरण ली। भक्त चूड़ामणि सार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा प्राप्त की। दयालु निताई चाँदकी कृपासे उनको प्रभुका प्रसादी वस्त्र प्राप्त हुआ। अन्य किसीके द्वारा यह कार्य न होता।

राजा प्रतापरुद्र शास्त्र-तत्त्वज्ञ, भक्तिमान् हिन्दू राजा थे। वे शास्त्रका मर्म जानते थे। वे यह भी जानते थे कि भक्तिपथका पथिक होनेके लिए भक्तके चरणके आश्रयके बिना श्रीभगवान्‌की कृपा प्राप्त करना बिल्कुल ही असम्भव है। सार्वभौम भट्टाचार्य परम गौरभक्त थे, राय रामानन्द उनसे भी बढ़कर थे, अतएव राजाको पूरी आशा हो गयी कि इन दोनों भक्तोंकी सहायतासे उनको सफलता मिलेगी। रथयात्राके एक दिन पूर्व उन्होंने राय रामानन्दको एकान्तमें अतिशय दैन्य और आर्त्तभावसे उनके दोनों हाथ पकड़कर रोते-रोते कहा—"महाप्रभुकी तुम्हारे प्रति बड़ी कृपा है। मुझे उनसे मिलानेकी अवश्य चेष्टा करना।"

राजपुत्रका महाप्रभुसे मिलन

राय रामानन्दने बहुत देर तक राजाको सान्त्वना दी, बहुत आशा दिलायी। प्रभुके श्रीचरणोंमें उनकी प्रेमभक्तिकी सारी बात कहनेके लिए राजासे विदा लेकर वे प्रभुके वासाकी ओर चले। प्रभु एकान्तमें बैठकर माला जप कर रहे थे। राय रामानन्दने वहाँ जाकर प्रभुके चरणोंकी वन्दना की। प्रभुने उनको बैठनेकी अनुमति दी, तथा उनके साथ कृष्णकथा-रसरङ्गमें मग्न हो गये। प्रसङ्ग वश राय रामानन्दने राजा प्रताप रुद्रकी श्रीजगन्नाथजीके प्रति आन्तरिक भक्ति और उनकी सेवा निष्ठाकी बात चलायी। प्रभुने राजाकी बड़ी प्रशंसा की। राय रामानन्द राजमन्त्री थे, व्यवहार जीवि थे, सुयोग देखकर राजाकी गौराङ्ग प्रीतिका प्रसङ्ग चलाया। प्रभुने बाधा नहीं दी। उन्होंने सारी बात सुन ली। इससे राय रामानन्दके मनमें बड़ी आशा हुई। उन्होंने प्रभुके चरण पकड़कर निवेदन किया—"एक बार राजाको चरण-दर्शन देनेकी कृपा करो।"

प्रभुने अब उत्तर दिया, "देखो, राय रामानन्द, तुम परम पण्डित हो। तुम ही विचार करके देखो, मैं विरक्त संन्यासी हूँ, राजा परम विषयी है। संन्यासी होकर राजाके साथ मिलना मेरे लिए उचित नहीं होता है। विषयी लोगोंका सङ्ग करनेसे संन्यासीका इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाता है। परलोक तो दूर रहे, इस संसारके लोग यह देखकर मेरा उपहास करेंगे।"

प्रभुकी बात सुनकर राय रामानन्दने हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें निवेदन किया—"प्रभु ! तुम स्वतन्त्र ईश्वर हो, तुम तो परतन्त्र नहीं हो, तुमको फिर लोकनिन्दाका क्या भय है ?" कलिके प्रच्छन्न अवतार श्रीगौराङ्ग भगवान्‌को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने आत्मगोपन करके अपने स्वभावसिद्ध रूपमें उत्तर दिया—"मैं मनुष्य हूँ, संन्यास आश्रममें हूँ, काया-मनसा-वाचाके व्यवहारमें डरता रहता हूँ। संन्यासीमें अल्प छिद्र भी हो तो लोग उसकी चर्चा करते हैं, जैसे सफेद वस्त्रमें स्याहीका साधारण दाग भी छिपा नहीं रहता।'

चतुर चूड़ामणि राय रामानन्दने हँसकर उत्तर दिया—"हे प्रभु ! हे पतितपावन ! शत-शत पापियोंके ऊपर कृपा करके तुमने विषय-विष-कूपसे उद्धार किया है। राजा गजपति प्रताप रुद्र तुम्हारा भक्त है, जगन्नाथका सेवक हैं, उसके ऊपर एक बार कृपा कटाक्ष करो।" प्रभुका करुण हृदय द्रवित हो गया। भक्तवत्सल भगवान्‌की भक्तके प्रति असीम कृपा है। भक्तके भगवान् प्रच्छन्न अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभु राजाके प्रति अपनी कृपाका परिचय देते हुए सतर्कतापूर्वक राय रामानन्दसे कहने लगे—"दूधके भरे हुए कलशमें एक विन्दु सुरा डाल देनेसे कोई भी उस दूधका स्पर्श नहीं करता। यद्यपि राजा प्रतापरुद्र सब प्रकारसे गुणवान् है, लेकिन राजा उपाधि उन गुणोंको ढक देती है। तथापि तुम्हारा बहुत आग्रह है तो राजपुत्रको मुझसे मिला दो। 'आत्मा वै जायते पुत्र'—यह शास्त्र वाक्य है। राजपुत्रसे मिलन राजासे मिलनके बराबर हो जायगा।"

राय रामानन्द परम चतुर और बुद्धिमान राजमन्त्री थे। उन्होंने समझ लिया कि प्रभुने जब राजपुत्रके साथ मिलनेकी इच्छा प्रकट की है, तो राजाके साथ भी अवश्य ही पीछे मिलेंगे। राय रामानन्द आनन्दमें गद्‌गद होकर प्रभुकी चरण-धूलि लेकर राजमहलकी ओर चले। राजा प्रताप रुद्र अकेले एकान्त कमरेमें बैठे थे। राय रामानन्दने उनकी वन्दना करके कहा—"महाराज, आज आपको एक शुभ संवाद देने आया हूँ। प्रभु आपके पुत्रके साथ मिलना चाहते हैं। आपके साथ मिलनेकी यह शुभ सूचना है। आप शीघ्र राजकुमारको मेरे साथ कर दीजिये। मैं उनको प्रभुके पास ले जाऊँगा।"

राजा प्रताप रुद्रने अपने पुत्रके सौभाग्यकी बात याद करके आनन्दसे गद्‌गद होकर राय रामानन्दको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् राजकुमारको बुलाकर उनके साथ कर दिया। राजकुमार किशोर-वयस्क परम रूपवान बालक थे। उनका वर्ण उज्ज्वल श्याम वर्ण था, सुवलित अङ्ग थे और सुदीर्घ चञ्चल नयन थे। राजकुमार पीताम्बर परिधान किये थे, और सारे अङ्ग सुवर्ण और मणि-मुक्तामय आभरणसे सुशोभित थे।

जैसे ही प्रभुके पास राय रामानन्द उस परम सुन्दर बालकको लेकर पहुँचे, वैसे ही उस राजकुमारको देखकर प्रभुके मनमें कृष्ण-स्मृति उद्दीप्त हो गयी। उन्होंने प्रेमावेशमें राजकुमारको पास बुलाकर मधुर वचनसे बहुत स्नेह प्रदर्शित किया। उनके अङ्गपर श्रीकर स्पर्श करके उनको पवित्र कर राय रामानन्दकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर प्रेमावेशमें बोले—"जिनके दर्शनसे व्रजेन्द्रनन्दनकी स्मृति हो, वह महाभागवत है। मैं इनके दर्शनसे कृतार्थ हो गया।"

इतना कहकर प्रभुने राजकुमारको हृदयसे लगाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर बालक-हृदयमें प्रेमका सञ्चार किया। तब राजकुमारकी कैसी दशा हुई ? सुनिये—

> प्रभु स्पर्शे राजपुत्र हैल प्रेमावेश।
> स्वेद कम्प अश्रु स्तम्भ जतेक विशेष॥
> 'कृष्ण-कृष्ण' कहे नाचे करये रोदन।
> ताँर भाग्य देखि श्लाघ्य करे भक्त गण॥

चै. च. म. १२.६०,६१

प्रभुकी इच्छासे राजकुमार सुस्थिर हुए। प्रभुने उनको अपनी गोदमें बैठाकर प्रेमपूर्वक कहा—"तुम राजकुमार हो और मैं दरिद्र संन्यासी हूँ। तुम मेरे पास आओगे, यह मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था। तुमको देखकर आज मेरे मनमें बड़ा आनन्द हुआ। तुम बीच-बीचमें मेरे पास आकर इसी प्रकार आनन्द प्रदान करना।" भक्तिमान् राजपुत्रने भूमिष्ठ होकर प्रभुकी चरण-वन्दना करके विदा ली। उस दिनसे राजकुमार श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभुका एकान्त भक्त हो गया, तथा प्रभुका चरण-दर्शन करनेके लिए नित्य काशीमिश्रके घर आने लगा।

राय रामानन्द राजकुमारको लेकर राजा प्रताप रुद्रके पास गये। पुत्रके मुखसे प्रभुकी कृपाकी बात सुनकर राजा आनन्द-सिन्धुमें डूब गये। उनकी विषम उत्कण्ठा बहुत कुछ शान्त हो गयी। सुकृतिवान् पुत्रको उन्होंने प्रेमावेगमें आलिङ्गन करके मानो साक्षात् श्रीगौराङ्ग प्रभुके श्रीअङ्ग स्पर्शका सुखानुभव किया। राजाके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। राय रामानन्दको बारम्बार प्रेमालिङ्गन प्रदान कर गद्‌गद कण्ठसे बोले—"राय रामानन्द! तुम्हारी कृपासे ही आज मेरा यह परम सौभाग्य उदय हुआ है। तुम्हारी ही कृपासे मुझको भी यह सौभाग्य प्राप्त होगा, यह मैं समझ रहा हूँ। तुम और सार्वभौम भट्टाचार्य मुझको जीवन दान करेंगे। तुम लोगोंके सामने मैं सदाके लिए बिक गया।" राय रामानन्दने राजाके दैन्यको देखकर जान लिया कि इनके ऊपर प्रभुकी कृपा हो गयी है। उन्होंने राजाकी वन्दना करके विदा ली।

रथयात्राकी तैयारी तथा गुण्डिचा-मार्जन

श्रीश्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा आने ही को थी। श्रीनीलाचल धाममें धूम मच गयी। सहस्रों आदमी रथयात्राकी तैयारीमें लग गये। बहुत लोगोंका जमघट लग गया। श्रीमन्दिरका संस्कार हो रहा है और विचित्र-विचित्र चित्र बन रहे हैं। रथ सजाया जा रहा है। विभिन्न रङ्गके ध्वजा-पताका फहराने लगे। श्रीजगन्नाथजीके इस अपूर्व रथका वर्णन श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने अपने श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्य श्रीग्रन्थमें जो किया है। उसे पढ़िये—

कैलासं नमयन्नशेषविधिना
मेरुं सहन्निर्भरं
सोत्कण्ठं किल विन्ध्यकं विकलमन्
गौरीगुरुं ग्लापयन्।
अन्ये कोऽप्यधुनावनौ शिखरिणां
राजेव किं निर्मितो
धात्रा स्पन्दन इत्यसौ मुररिपु-
श्रीमूर्त्ति-पीयूषभृत्॥

१६.९

श्लोकार्थ—श्रीश्रीजगन्नाथजीके इस रथको विधाताने भूमण्डलके सब पर्वतोंका राजा बनाकर निर्मित किया है। क्योंकि यह सुवृहत् रथ कैलास पर्वतको नत करता है, सुमेरु पर्वतका उपहास करे रहा है, विन्ध्याचलको उत्कण्ठित और विकल कर रहा है। तथा गौरीगुरु पर्वतराज हिमालयको भी ग्लानितुक्त कर रहा है।

रथायात्राके पूर्व गुण्डिचा श्रीमन्दिर मार्जित होता है। इस श्रीमन्दिरकी मार्जन-सेवा श्रीजगन्नाथजीके पड़िछागण अपने हाथों करते हैं। प्रभुकी इच्छा स्वयं यह कार्य करनेकी हुई। स्वयं आचरण करके धर्मकी शिक्षा देनेके लिए उन्होंने यह अवतार ग्रहण किया था। भक्तरूपमें प्रभु कलिके जीवको स्वयं आचरण करके श्रीभगवान्‌की अर्चना, भक्तसेवा, जीव-सेवा आदि सब कुछ दिखला गये हैं, इच्छामय प्रभुकी इच्छा हुई कि श्रीमन्दिरको मार्जन करेंगे। उनकी इच्छाको कौन रोक सकता है? काशीमिश्र, सार्वभौम भट्टाचार्य, तथा सर्वप्रधान पड़िछाको बुलाकर उनके सामने प्रभुने अपने मनके भावको खोलकर कह दिया, तथा गुण्डिचा मन्दिरके मार्जनकी सेवा उनसे भिक्षा मांग ली। उन्होंने प्रभुकी बात सुनकर जीभ काटते हुए कहा कि यह

नीच कार्य प्रभुके लिए शोभा नहीं देता। प्रभुने भी जीभ काटते हुए हँसकर उत्तर दिया—"बहुत भाग्यसे देव-मन्दिर-मार्जनकी सेवाका भार मिलता है, आप लोगोंकी कृपासे मेरा भाग्य जग गया है, तभी इस परम पवित्र सेवाकार्यमें मेरा मन दौड़ रहा है।"

प्रभुकी इस बातका कोई क्या उत्तर देता? तब भी प्रधान पड़िछाने प्रभुसे कहा—"हम लोग तो आपके ही सेवक हैं। जो आपकी इच्छा हो, वही हमारा कर्त्तव्य है। हमको महाराजाकी विशेष आज्ञा है कि जो आपकी इच्छा हो, वही हम शीघ्र करें। मन्दिर मार्जन आपके योग्य सेवा नहीं है, यह भी आपकी एक लीला है। इसके लिए घड़े, झाड़ू आदि बहुतसे चाहिये, आपकी आज्ञा हो तो इसकी व्यवस्था की जाय।"

प्रभु आनन्दमें गद्गद होकर पड़िछा महाराजसे बोले—"घट और सम्मार्जनी यहाँ पहुँचायी जाय। कल प्रातः मैं नदियाके भक्तोंके साथ श्रीमन्दिरकी मार्जना करके धन्य हो जाऊँगा।" तत्काल एक सौ नये घड़े तथा एक सौ नयी सम्मार्जनी काशी मिश्रके भवनके आँगनमें लाकर इकट्ठी कर दी गयी। यह देखकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

दूसरे दिन प्रातः काल उठकर प्रभुने नित्यकृत्य करके भक्तवृन्दको पुकारकर अपने हाथों उनके अङ्गोंमें चन्दन लेपन करके उनके गलेमें माला पहना दी। सबके हाथमें एक-एक सम्मार्जनी दी, कन्धेपर एक-एक घड़ा दिया, प्रभु स्वयं श्रीहस्तमें एक सम्मार्जनी लेकर हरि-स्मरण करते हुए श्रीमन्दिरकी ओर चले। नीलाचलवासी नर-नारी वृन्दने इस वर्ष यह एक नवीन दृश्य देखा। प्रभुका यह व्यापार देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये।

श्रीमन्दिर मार्जन सेवाकार्य आरम्भ हो गया। सबके मुखपर 'हरि-हरि' ध्वनि थी। सभी आनन्द गद्गद थे। सब हँसमुख थे। पहले सम्मार्जनी द्वारा निम्नदेश परिष्कृत हुआ। एक बारगी शत-शत भक्तगण इस कार्यके व्रती हो गये। श्रीमन्दिरकी प्राङ्गण-भूमिसे सारा कूड़ा दूर करके लोग मन्दिरके भीतर गये। प्रभु स्वयं सम्मार्जनी हाथमें लेकर सबको कार्य सिखा रहे थे। सबके मुखपर कृष्णनामके सिवा और कुछ न था।

श्रीमन्दिरके भीतर सम्मार्जन हुआ, सिंहासन और मन्दिरकी भींत चतुर्दिक शुद्ध की गयी। अन्तमें जगमोहन सम्मार्जित हुआ। प्रभु प्रसन्न मुख अत्यन्त प्रेमसे श्रीहरिमन्दिरकी मार्जना कर रहे हैं, तथा मधुर कण्ठसे मधुर कीर्तन कर रहे हैं। भक्तगण यह सुनकर प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर श्रीमन्दिरसे संलग्न प्रत्येक गृहकी भींत, अलिन्द और बहिर्भागको अत्यन्त यत्नपूर्वक मार्जन करने लगे। प्रभु जब हरि मन्दिरकी मार्जना कर रहे थे, तो उनके धूलि-धूसरित अङ्गकी अपूर्व शोभा हो रही थी। श्रीवदनमें कृष्णनाम था, नयनोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह रही थी, शरीर पुलकित हो रहा था। श्रीगौर भगवान्को इस रूपमें देखकर भक्तवृन्दमें कुछ लोग मन्दिर मार्जनका कार्य भूलकर सम्मार्जनी हाथमें लिये प्रभुके श्रीवदनकी शोभा निहारने लगे। प्रेमानन्दमें उनकी आँखोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह चली। कोई कोई प्रेमानन्दमें विभोर होकर हरिमन्दिर सम्मार्जन करते जा रहे थे, किन्तु उनको कुछ भी भान नहीं हो रहा था कि कितना कार्य हुआ है, और कितना शेष है।*

---

* अथ युगपदयं प्रमार्जनोत्कौ
जन निचयः प्रभु कीर्त्तनातिमुग्धः।
अनुग्रहमनुभित्ति चान्वलिंदं
त्वनुवङ्भिः प्रममार्ज मार्जनीभिः॥
प्रभु वदन निरीक्षणेन मुग्धा
रहसि च केवल मार्जनीं गृहित्वा।
नयनजलझरेण धौतदेहाश्चिरमिव
विस्मृत मार्जन क्रियाः स्युः॥
मुपुलकमपि केचिदीशसूक्तिश्रवण
परेण हृदा विनिद्रिताङ्गाः।
गृहमपि च तथैव मार्जयन्तः
कृतमपि कर्म न चाविदन् विमुग्धाः॥
—श्रीचैतन्य चरित महाकाव्य १५.२३-२५

प्रभु प्रेमावेशमें हरिमन्दिरकी सम्मार्जना कर रहे थे, और आनन्द-विह्वल होकर "तुम इधर आओ, तुम उधर जाओ, तुम इस स्थानको सम्मार्जित करो"—इस प्रकार बारम्बर कृपादेशसे भक्तोंको उत्साहित कर रहे थे। यथा, श्रीचैतन्य चरित महाकाव्यमें—

प्रभुरपि परम प्रहर्षमुग्ध-
स्त्वमित इतस्ततस्ततस्त्वं।
सुललितमिति मार्जयेति लोका-
नदिशदलं सुखितान्मुहुः प्रकुर्वन्॥

१५.२६

इस हरिमन्दिर-मार्जन अनुष्ठानमें नीलाचल और नदियाके सब भक्तवृन्द लगे हुए हैं। श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, स्वरूप दामोदर, पुरी और भारती गोसाईं सभी हैं। इस हरिमन्दिर-सेवाकार्यमें योगदान करनेके लिए आनेमें जिनको बिलम्ब हो गया, दयामय प्रभु अपने श्रीहस्तकी सम्मार्जनी उनके पीठपर मारकर उनको आप्यायित करते हैं। इससे भक्तगणको अपार आनन्द और असीम सुख अनुभव होता है। वे लज्जित होकर प्रभुकी चरण वन्दना करके तत्काल श्रीमन्दिर-मार्जन-कार्यमें योग दे रहे हैं। यथा—

प्रभुरपि च विलम्वितेन यो यः
पुरत उपैति स तस्य तस्य पृष्ठे।
प्रणयरसभरेण मार्जनी-
भिर्वहुतरगाढ़मतिक्रुधा जघान॥
स तु जन निचयश्च मार्ज्जनीनां
दृढ़तरघात रुजापि सौख्यमारात्।
परिणतिरियमेव हार्द्द राशे-
र्यदलघु दुःखमपि प्रियं तनोति॥

श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य १५.२८,२९

श्रीमन्दिरके प्राङ्गणके सारे तृण, धूलि-कङ्कड़ आदि कूड़ा इकट्ठा करके वैष्णवगण अपनी चादरमें बाँधकर बाहर फेंक रहे हैं। प्रभु भी अपने चादरमें बाँधकर कूड़ा फेंक रहे हैं। इसी समय वे हँसकर बोले—"किसने कितना मार्जन किया है, यह उसके द्वारा एकत्रित तृण और धूलके परिणामसे जाना जायगा।" तब-सब वैष्णवगणने मिलकर अपने-अपने लाये हुए कूड़ेको एकत्र करके देखा कि प्रभुका बोझ ही सबसे अधिक है। यह देखकर भक्तवृन्द विशेष लज्जित हुए।

प्रभुने मुस्कराकर कहा—"श्रीमन्दिर सम्मार्जनका कार्य अब पूरा हो गया, अब जल लाओ, धोनेका कार्य करना है।" यह कहते ही सैकड़ों घड़े जल कोई सरोवरसे कोई कुएसे भरकर प्रभुके सामने रख दिये गये।

प्रभुने स्वयं श्रीमन्दिरको धोनेका कार्य प्रारम्भ किया। पानी उछाल-उछालकर ऊपर नीचे दिवाल धोयी गयी, मध्य भागमें सिंहासन धोया गया। सिंहासनका मार्जन प्रभुने स्वयं श्रीहस्तसे किया। भक्तवृन्द गृहप्राङ्गल प्रक्षालन करने लगे।

कोई प्रभुको जलका घड़ा पकड़ा रहा है, कोई चालाकीसे उनके चरणोंमें जब उड़ेल रहा है, कोई चुपचाप उस जलका पान कर रहा है, कोई उस जलको माँग रहा है, कोई बाँट रहा है। प्रभुने अपने वस्त्रसे सिंहासनको पोंछा, अन्य लोगोंने अपने-अपने वस्त्रसे मन्दिर गृहको पोंछा। शत घट जलसे मन्दिरको प्रभुने अपने मनकी तरह स्वच्छ और निर्मल बनाया मानो अपने हृदयको बाहर निकालकर मन्दिरके रूपमें श्रीजगन्नाथजीके विश्रामके लिए रख दिया हो।

मन्दिर मार्जनके कार्यमें कोई खाली घड़े लिए दौड़ रहा है, कोई भरे हुए घड़े लिये जा रहा है, कृष्णनाम जपते जा रहे हैं। किसीको कोई संकेत करना है, तो भी 'कृष्ण' कह कर उसका ध्यान आकर्षित किया जा रहा है और अपना मनोभाव संकेतके द्वारा ही समझाया जा रहा हैं, कृष्ण-कृष्ण कहते-कहते ही खाली घड़े लौटाये जा रहे हैं, भरे हुए घड़े लिये जा रहे हैं।

प्रभु भी प्रेमावेशमें कृष्ण-कृष्ण उच्चारण करते सैकड़ों लोगोंका काम अकेले ही कर रहे हैं, प्रति व्यक्तिके पास जाकर काम करनेका तरीका स्वयं

काम करके बता रहे हैं। जिसका अच्छा काम है, कृष्ण-कृष्ण कहते हुए मुस्कराकर संकेतसे उसकी प्रशंसा कर रहे हैं और जिसका काम ठीक नहीं है, है, उसको भी उसी प्रकार कृष्ण-कृष्ण कहते हुए संकेतसे ही भर्त्सना करते हैं। जिसको ठीक काम करना नहीं आता, उसको ठीक काम करने वालेसे सहायता पहुँचवा रहे हैं।

इसके बाद प्रभुने जगमोहन, भोग मण्डप, नाट्यशाला, पाकशाला आदिका प्रक्षालन किया। मन्दिरके बाहर भी चारों ओर प्रक्षालन कार्य किया गया। इस प्रकार भीतर-बाहर सब अच्छी प्रकार धोकर स्वच्छ किया गया।

जब गुण्डिचा मन्दिर मार्जन-सेवा-कार्य समाप्त हो गया तो एक गौड़ीय वैष्णवने एक घड़ा जल लाकर प्रभुके चरण युगल पर ढाल दिया। तथा प्रभुका वह पादोदक उठाकर पान करके अपनेको कृतार्थ किया। वह वैष्णव अत्यन्त बुद्धिमान् और बहुत ही सरल था। यह कार्य ठीक न था, यह बात उस सरल-बुद्धि वैष्णवकी समझमें न आयी। इससे पहले प्रभुके भक्तोंने उनके अनजाने यह कार्य किया था, प्रभु उस समय हरि-मन्दिर-मार्जन सेवाके आनन्दमें उन्मत्त थे, इस ओर उनका ध्यान न था। अब सेवा-कार्य प्रायः समाप्त हो रहा था, वे सुस्थिर होकर श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें खड़े होकर भक्तोंके कार्यका एक-एक कर पर्यवेक्षण कर रहे थे, उसी समय उस गौड़ीय वैष्णवने यह कार्य किया। दयामय प्रभु भीतरसे इस परम भक्तिमान् वैष्णवके प्रति सन्तुष्ट थे, परन्तु लोक शिक्षाके लिए उनके ऊपर बाहरी क्रोध प्रकट करके स्वरूप गोस्वामीको बुलाकर कहने लगे—"तुम्हारे गौड़ीयभक्तका व्यवहार देखो, भगवान्के मन्दिरमें मेरे पैर धोये, और उस जलका पान किया। अब इस अपराधसे मेरी क्या गति होगी। तुम्हारे गौड़ियाने मेरी कितनी फजिती कर डाली।"

स्वरूप गोसाईंने प्रभुकी बात सुनकर तत्काल उस वैष्णवका गला पकड़कर धक्का देकर श्रीमन्दिरसे बाहर कर दिया। प्रभु क्रुद्ध होकर बैठे हुए थे। स्वरूप गोस्वामीने आकर प्रभुका चरण पकड़कर निवेदन किया, "प्रभु ! वह अज्ञ है, उसके अपराध पर ध्यान न दें। यह सुनकर प्रभुका क्रोध शान्त हुआ। वे सन्तुष्ट हो गये। लोक शिक्षाके लिए प्रभुने यह लीलारङ्ग किया। वे हरिमन्दिर मार्जन कर रहे थे, देवमन्दिरमें पैर धोना या पादोदक पान करना विषम अपराध था। इस लीलारङ्गके द्वारा प्रभुने भक्तोंको यह समझाया। भक्तरूपी श्रीगौर भगवान्ने अपने भक्तोंको नीतिकी शिक्षा दी।

इसके बाद प्रभुने श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें भक्तोंको इकट्ठा करके अपने दोनों ओर बैठाया। मध्य स्थानमें वे स्वयं बैठ गये। बैठकर प्राङ्गणका तृण, कूड़ा-कंकड़ सब इकट्ठा करने लगे, और हँस-हँसकर सबको कहने लगे—"कौन कितना कूड़ा-कंकड़ इकट्ठा करता है, इसको एकत्र करके, जिसका कम होगा उसको पिठा-पानका जुर्माना देना होगा, अर्थात् पिठा (चावल, दाल, नारियल और गुड़के संयोगसे बनी मिठाई) शर्बत सबको खिलाना-पिलाना पड़ेगा।"

प्रभुके श्रीमुखकी बात सुनकर सब लोग अत्यन्त यत्न और आग्रह पूर्वक यह कार्य करने लगे। श्रीमन्दिरका विस्तृत आँगन और बहिर्द्वारका मार्ग पूर्णतः परिष्कृत होकर दर्शन करने योग्य हो गया।

इसके बाद श्रीनृसिंहजीका श्रीमन्दिर परिमार्जित किया गया। मन्दिरके सामनेका मार्ग शुद्ध हुआ। इस कार्यमें उस दिन दोपहर बीत गया। तब प्रभुने भक्तगणको कुछ देरके लिए विश्राम करनेकी आज्ञा दी। सब थक गये थे, प्रभुको भी थकावट जान पड़ती थी। सबने श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें कुछ देर विश्राम किया। विश्रामके अन्तमें प्रभुने प्रेमानन्दमें कीर्तन आरम्भ किया। भक्तवृन्दने उनके साथ कीर्तनमें योगदान किया। श्रीमन्दिरका प्राङ्गण बारम्बार हरिध्वनिसे पूर्ण हो गया। प्रेमावेशमें

प्रभु उन्मत्तके समान सारे आँगन में उद्दण्ड नृत्य करने लगे। भक्तगण आनन्दमें विह्वल होकर उनको घेरकर नृत्य कीर्तन करने लगे। श्रीमन्दिरमें आनन्दका तरङ्ग उठा। प्रभुके श्रीअङ्ग उनके कमलनयनकी प्रेमाश्रु-धारसे धुल गये। उनके हुङ्कार-गर्जन और उद्दण्ड नृत्यसे जान पड़ता था मानो भूकम्प हो रहा है। उच्च सङ्कीर्तनकी ध्वनिसे गगन-मण्डल परिपूर्ण हो गया। नीलाचलवासी सब लोग वहाँ एकत्रित हो गये।

उस दिन रथयात्राका पूर्व दिन था। नीलाचलमें बहुत लोग आये थे। श्रीमन्दिरका द्वार ठसाठस भरा था। बेला अधिक होती देखकर प्रभु भाव संवरण करके सुस्थिर हुए। पश्चात् वे सब भक्तोंके साथ सरोवरमें स्नान करके श्रीनृसिंहजीको नमस्कार करके उपवनमें गये। प्रभुके साथ नीलाचल और नवद्वीपके सब भक्त थे। प्रभुको बीचमें लेकर उद्यानमें सब चक्राकारमें बैठ गये। उनकी संख्या चारसौसे अधिक थी।

उद्यान-भोजन

उस समय वेला तीसरा पहर था। उसी समय काशीमिश्र और वाणीनाथने श्रीजगन्नाथजीके प्रधान पण्डा तुलसी पड़िछाको साथ लेकर लगभग पाँचसौ लोगोंके योग्य प्रसाद, पाना-पीठा आदि लाकर उस उद्यानमें इकठ्ठा कर दिया। यह देखकर प्रभुका मन बड़ा आनन्दित हुआ। वहाँ सब भक्तगण थे। श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाई, ब्रह्मानन्द भारती गोसाई सभी थे।

प्रभुके आदेशसे सार्वभौम भट्टाचार्य भक्तवृन्दके लिए उद्यान-भोजनका प्रबन्ध करने लगे। प्रभु एक ऊँचे टीले पर बैठे थे। भक्तगण उनको घेरकर बैठे थे। उपवनमें पंक्ति लगाकर भक्तगण प्रसाद पानेके लिए बैठे। उसी उद्यानके बगलमें एक पर्ण कुटीमें हरिदास ठाकुर थे। प्रभु उस कुटीकी ओर देखकर हरिदासका नाम लेकर बारम्बार पुकारने लगे। दूरसे ही हरिदासने दण्डवत् प्रणाम करके चरणोंमें निवेदन किया—"भक्तोंके संग प्रभु प्रसाद पावें, मैं इस पंक्तिमें बैठने योग्य नहीं हूँ।" इतना कहकर वे प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखकर बोले—"हे प्रभु! तुम्हारी कृपाकी बात याद करके मेरा हृदय बहुत आनन्दित हो जाता है। इस पतित अधमके प्रति इतनी कृपा क्यों करते हो? यह नीच नराधम किसी भी प्रकारसे तुम्हारी कृपाके योग्य पात्र नहीं है। तुम्हारा तथा भक्तवृन्दका भोजन हो जाने पर गोविन्द मुझको प्रसाद देंगे, मैं बाहर द्वार पर जाकर प्रसादकी प्रतीक्षा करता हूँ। तुम निश्चिन्त होकर भोजन करो।" भक्तवत्सल प्रभु हरिदासके मनोभावको समझकर उनको और कुछ न बोले।

प्रभुके साथ भक्तवृन्द उस मनोहर उद्यानमें प्रसाद ग्रहण करनेके लिए बैठे। प्रभुके मनमें श्रीकृष्णकी पुलिन भोजन-लीलाकी स्मृति उदय हुई। भावनिधि श्रीगौराङ्ग सुन्दर भावसागरमें डूब गये। भक्तगण तत्भावमें विभाजित होकर प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करने लगे। लगभग पाँचसौ वैष्णव उद्यानमें पंक्तिमें प्रसाद भोजन करने बैठे। सात आदमी परोसनेके लिए नियुक्त हुए। उनका नाम स्वरूप दामोदर गोसाईं, जगदानन्द, दामोदर और काशीश्वर पण्डित, गोपीनाथ आचार्य, वाणीनाथ तथा शङ्कर पण्डित था। प्रभु भक्तवृन्दके बीचमें भोजन करने बैठे थे।

यद्यपि वे प्रभु श्रीवृन्दावन भावमें विभावित थे, तथापि अवसर देखकर अपने भावको संवरण कर लिया। नदियाके ब्राह्मण कुमार सदाके भोजन-प्रिय थे। श्रीकृष्ण भगवान् गोपीगृहमें अवतीर्ण हुए थे, तब उनको गोप प्रकृति प्राप्त थी। नवनीत, क्षीर, दधि, दुग्धमें उनकी बड़ी प्रीति थी। यह स्वाभाविक था। श्रीभगवान् जब नर वपु धारण करते हैं तो वह नर प्रकृतिको प्राप्त हो जाते हैं। यह उनकी लौकिकी अर्थात् मानुषी लीला है। मनुष्य जो करता

है वही वे भी करते हैं। नरलीलाका यही माहात्म्य है।

प्रभु कहते थे, "मुझको विविध तरकारी संयुक्त व्यञ्जन दो। पीठा, पाना, अमृत गुटिका आदि मिष्ठान्न द्रव्य भक्तोंको दो।" जगदानन्द पण्डित प्रभुके अत्यन्त अनुरागी भक्त थे। उनको महाजनगण सत्यभामाका अवतार कहते हैं। प्रभुके प्रति उनका प्रगाढ़ अनुराग था। प्रभुको अच्छा-अच्छा व्यञ्जन खिलानेमें, अच्छा-अच्छा वस्त्र पहनानेमें, सुगन्धित तेल लगानेमें और उनको उत्तम शय्या पर शयन करानेमें जगदानन्दको बड़ा आनन्द मिलता था। प्रभु किन्तु इसे पसन्द नहीं करते थे; क्योंकि वे संन्यासी थे। इस कारण जगदानन्दके मनमें बड़ा रोष होता था, अभिमान होता था। प्रभुके साथ वह रोष और अभिमानवश, कभी-कभी बातें करना बन्द कर देते थे। सुयोग और सुविधा पाते ही वे प्रभुको अपने घर निमन्त्रण करके अपनी रुचिका भोजन तैयार करके प्रभुको भरपेट भोजन कराते थे। प्रभु उनकी बात अस्वीकार नहीं कर सकते थे। वे जगदानन्दसे डरते थे। यदि वे उनसे बातें नहीं करते, या उनकी बात नहीं सुनते थे तो जगदानन्द तीन-तीन दिन अन्न जल स्पर्श नहीं करते थे और घरका दर्वाजा बन्द करके पड़े रहते थे। प्रभुके ऊपर उनका इतना अभिमान था। इसी कारण महाजनगण उनको सत्यभामाका अवतार निर्देश कर गये हैं। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे, प्रभुकी सेवा ही उन्होंने जीवनका व्रत बना लिया था।

जगदानन्द पण्डित परोस रहे थे। उनका लक्ष्य प्रभुके पत्तलके ऊपर था। अचानक आकर बिना कुछ कहे सुने, अच्छा-अच्छा शाक-व्यञ्जन, मिष्ठान्न प्रचुर परिमाणके प्रभुके पत्तल पर परोस दिये। प्रभुको बात बोलनेकी क्षमता नहीं थी।

जगदानन्दके भयसे प्रभु घबराकर भोजन लीला की। अति भोजन करके उनका पेट कस गया। फिर भी स्वरूप दामोदरने श्रीजगन्नाथजीका उत्तम मिष्ठान्न प्रसाद हाथमें लेकर प्रभुके सामने खड़े होकर अतिशय स्नेहपूर्ण विनम्र वचन कहा—

एइ महाप्रसाद अल्प कर आस्वादन।
देख जगन्नाथ कैछे करियाछेन भोजन॥
चै० च० म० १२. १७१

इतना कहकर उनने प्रभुके पत्तलमें मिष्ठान्न प्रसाद दे दिया। भक्तवत्सल प्रभु क्या करते? जगदानन्दका मन रखनेके लिए वह इतना भोजन कर सकते हैं, और अपने द्वितीय कलेवर स्वरूप गोसाईंके कहनेसे कुछ मिष्ठान्न न खायें, यह क्या संभव है? इससे स्वरूपके मनमें दुःख होगा—यह सोचकर प्रभुने उसमें-से भी कुछ खा लिया।

इसी प्रकार एक बार जगदानन्द और एक बार स्वरूप दामोदरने अति यत्न पूर्वक मीठी-मीठी बातें करके आकण्ठ भोजन कराया। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइ मत दुइ जने करे बारम्बार।
विचित्र एइ दुइ भक्तेर स्नेह व्यवहार॥
चै० च० म० १२. १७३

सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रभुने अपने बगलमें बैठाया था। जगदानन्द पण्डित और स्वरूप दामोदरका प्रभुको खिलानेके लिए यत्न और आग्रह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको अपने पास बैठाया था, इसमें कुछ रहस्य था। उनको वह भलीभाँति प्रसाद खिला रहे हैं। उत्तम-उत्तम प्रसाद अपने हाथसे अपनी पत्तलसे उठाकर भट्टाचार्यजीके पत्तलमें दे रहे हैं। परम सुकृतिमान् सार्वभौम भट्टाचार्य बड़े आनन्द पूर्वक प्रभुका प्रसाद पा रहे हैं। इसके साथ ही भट्टाचार्यजीको प्रभु यह भी दिखा रहे हैं कि नदियाके भक्तवृन्दकी, विशेषत: जगदानन्द पण्डितकी प्रभुके प्रति कैसी प्रगाढ़ प्रीति और निष्कपट प्रेम है। सार्वभौम भट्टाचार्यके बहनोई गोपीनाथ आचार्य भी परोस रहे थे। वे भी सार्वभौम

भट्टाचार्यके पत्तलमें प्रसाद देते थे और यह तमाशा देख रहे थे।

पहले सार्वभौम भट्टाचार्यकी प्रसादमें भक्ति थी। वे अत्यन्त निष्ठावान् थे। गोपीनाथ आचार्यने पहलेकी वह बात स्मरण करके हँसते-हँसते भट्टाचार्यको लक्ष करके कहा—

काहाँ भट्टाचार्येर पूर्व जड़ व्यवहार ।
काँहा एइ परमानन्द करह विचार ।।
चै० च० म० ८. १२-१७७

"प्रभुकी कृपासे भट्टाचार्यका हृदय शुद्ध हो गया था, पाडिण्त्याभिमान दूर हो गया था, उनकी जड़ बुद्धि नष्ट हो गयी थी। उन्होंने आनन्दमें विह्वल होकर अपने बहनोईकी बातका उत्तर दिया, "मैं तार्किक कुबुद्धि था, शृगालोंके साथ भौं-भौं किया करता था; किन्तु अब तुम्हारी कृपासे दयामय महाप्रभुने मुझ जैसे काकको गरुड़ बना दिया और अब मैं श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण करता रहता हूँ।"

गोपीनाथ आचार्य आतम-स्तुति सुनकर लज्जित हो गये। वे वहाँ खड़े न रह सके। प्रभुको सार्वभौम भट्टाचार्यकी बात सुनकर परम आनन्द प्राप्त हुआ। भक्तवत्सल प्रभु भक्तका मान बढ़ानेमें सदा तत्पर रहते हैं। भक्तवृन्दके मनको सुख देना, उनका मान बढ़ाना श्रीश्रीगौरभगवान् जितना जानते हैं, उतना और कोई नहीं जानता।

प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यकी दैन्योक्ति सुनकर उनको सम्बोधन करते हुए कहा—"भट्टाचार्य ! आप जो कहते हैं, ऐसी बात नहीं हैं। पूर्वजन्मके साधन और सुकृतिके फलसे श्रीकृष्णमें आपकी प्रीति हुई है, आपके मुँहमें कृष्ण नामकी स्फूर्त्ति हुई है। आपके सङ्गके गुणसे मेरी भी श्रीकृष्ण नाममें रति हुई है। इसको आपके समान साधुका सङ्गगुण न कहें तो और क्या कहेंगे ?"

प्रभु अब एक-एक करके सब भक्तोंका नाम पुकार-पुकार कर उनको पीठा-पाना प्रसाद दिलाने लगे। श्रीअद्वैत और नित्यानन्द प्रभु जान बूझकर एकत्र बैठे थे। हास-परिहासके बिना वे रह नहीं सकते थे। श्रीअद्वैत प्रभु श्रीनित्यानन्दको सुनाकर कहने लगे, "आज अवधूतके साथ एक पंक्तिमें बैठकर भोजन कर रहा हूँ, न जाने हमारी क्या गति होगी ? प्रभु तो संन्यासी हैं, उनको कोई दोष नहीं हैं। विशेषत: संन्यासीके लिए अन्न दोष नहीं लगता। 'नान्नदोषेण मस्करी'—यह शास्त्र वचन है। मैं गृहस्थ ब्राह्मण हूँ, इस अवधूतका जाति-कुल-आचार कुछ भी मुझे ज्ञात नहीं। इसके साथ एक पंक्तिमें भोजन करना बड़ा भारी अनाचार है।" श्रीनित्यानन्द प्रभुने हँसकर उत्तर दिया—"तुम हो अद्वैतवादियोंके आचार्य। अद्वैत सिद्धान्त शुद्ध भक्तिका बाधक है। ऐसे तुम्हारे साथ भोजन करनेसे न जाने मेरी भी कैसी बुद्धि हो जायगी।"

इस प्रकार दोनों प्रभुमें परिहास शुरु हो गया। दोनोंके एक साथ होने पर ऐसा ही होता था। यह नयी बात नहीं थी। इसको व्याज स्तुति कहते हैं। श्रीअद्वैत प्रभु श्रीनित्यानन्द प्रभुसे डरते थे। क्योंकि वे वृद्ध ब्राह्मण थे, अवधूत श्रीनिताईचाँद बलवान् थे। वे प्राय: श्रीअद्वैत प्रभुके शरीर पर भोजनके अन्तमें महा प्रसाद छींट देते थे। इस बार भी वैसा ही किया। यह देखकर प्रभु हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। भक्तवृन्द हरि-हरि ध्वनि करने लगे।

प्रभुर अवशेष गोविन्द राखिल धारिया ।
सेइ अन्न किछु हरिदासे दिल नैया ।।
चै० च० म० १२-१९८

पश्चात् प्रभुके पत्तलसे प्रसाद लेकर गोविन्द हरिदासको दे आये। हरिदासने प्रसादको मस्तक पर धारण करके वन्दना की। हरिदासके प्रति दयामय प्रभुकी बड़ी करुणा थी। हरिदासके सौभाग्यका क्या कहना ? उनके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार।

उसके बाद भक्तवृन्दने गोविन्दसे प्रभुका अधरामृत माँगकर किया। सैकड़ों परिवेष्टाको

खिलानेके बाद सबके अन्तमें गोविन्दने प्रसाद पाया। उद्यानमें भोजनोत्सवके बाद प्रभुने सब भक्तोंको स्वयं दिव्य माला-चन्दनसे आभूषित किया।

नेत्रोत्सव

कुछ देर विश्राम करके सब लोग प्रभुके साथ कीर्तन करते हुए श्रीश्रीजगन्नाथजीका नेत्रोत्सव देखनेके लिए चले। लगभग पाँच सौ भक्त साथ थे। सबके अङ्ग-चन्दन-चर्चित हैं, सबके गलेमें फूलोंकी माला है। सबके मुँह पर मधुर हरिनाम है। 'जय जगन्नाथ' की ध्वनिसे गगन मण्डल पूर्ण हो गया।

स्नान यात्राके बाद पन्द्रह दिन श्रीश्रीनीलाचल चन्द्रका दर्शन बन्द रहता है। इन दिनों वे श्रीश्रीलक्ष्मीजीके साथ लीला-विलास करते हैं। पश्चात् लक्ष्मीजीकी अनुमति लेकर रथ पर चढ़कर सुन्दराचल गमन करते हैं। वहाँ अति सुन्दर उपवनमें उद्यान-विहारका आयोजन होता है। उस पुष्पवनमें श्रीराधिकाके साथ सात दिन विहार करके श्रीश्रीजगन्नाथजी नीलाचल आते हैं। ये पन्द्रह दिन आज पूर्ण हो गये थे। आज श्रीश्रीनीलाचल चन्द्र सब लोगोंके नयनगोचर होंगे।

श्रीमन्दिरके द्वार पर बहुत लोगोंका समागम हुआ है। जब प्रभुका दल नृत्य कीर्तन करते हुए सिंह द्वार पर पहुंचा तो सब लोगोंने द्वार छोड़ दिया। आजानुलम्बित बाहु युगल ऊपर उठाकर हुङ्कार-गर्जन करते हुए, बारम्बार हरिध्वनि करते हुए श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र अपने पार्षदगणके सहित मन्दिरमें प्रविष्ट हुए। श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र और श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रकी आँखें चार हुई। दोनोंके नयन अनिमेष थे। नीलाचलचन्द्र और नवद्वीपचन्द्र मानो अनुरागमें भरकर एकीभूत हो गये। कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

अभिनव घनरागरम्य मूर्त्ति
विगत निमेष सतृष्ण लोचनाब्जौ।
असित शिखर रत्न गौरचन्द्रौ
रहसि तदा सदृशौ बभूवतुः स्म॥

श्री चै. च. महाकाव्य १५. ७३

श्रीनीलाचलचन्द्रके अदर्शनसे प्रभु बड़े ही कातर हो गये थे। आज पन्द्रह दिनके बाद अपने अभीष्ट देवका दर्शन प्राप्त किया। प्रभुके मनमें श्रीजगन्नाथजीके श्रीमुखके दर्शनकी लालसा इतनी प्रबल हो गयी थी कि वे एकबारगी भोगमण्डपमें जा उपस्थित हो गये। भोगमण्डपमें किसीको जानेका अधिकार न था। प्रभु दर्शनके लोभमें यह बात भूल गये। उनको रोकता कौन? वे किस प्रकार श्रीजगन्नाथजीकी अपरूप-रूप सुधा पान करने लगे, इसका वर्णन कविराज गोस्वामीकी भाषामें सुनें—

तृष्णार्त्त प्रभुर नेत्र भ्रमर—युगल।
गाढ़ासक्त्ये पिये कृष्णेर वदनकमल॥
प्रफुल्ल कमल जिनि नयन युगल।
नीलमणि दर्पन कान्ति गण्ड झलमल॥
बान्धुलिर फूल जिन अधर सुरङ्ग।
इषत् हसित कान्ति अमृत तरङ्ग॥
श्रीमुख-सौन्दर्य-मधु बाड़े क्षणे क्षणे।
कोटि कोटि भक्तनेत्रभृङ्ग करे पाने॥
जत पिये तत तृष्णा बाड़े निरन्तर।
मुखाम्बुज छाड़ि नेत्र ना हय अन्तर॥

चै० च० म० १२. २०८-२१२

इस भावमें प्रभु श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रका दर्शन कर रहे थे। वे बाह्यज्ञान शून्य थे। उनके श्रीअङ्गमें अष्ट सात्त्विक भावोंका उद्गम हो गया। आँखोंमें प्रेमनदी बहने लगी। भावनिधि प्रभुकी तत्कालीन प्रेमविकार भावावस्थाका उत्तम वर्णन श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने निम्नलिखित दो श्लोकोंमें किया है।

नयनजलझरैः पदारविन्दद्वय
नखचन्द्रमसः पवित्रयन् सः।
न हि जगति दुरापमेतदन्यत् किम्
इति तदाभिसिषेच सोऽङ्घ्रिपद्मम्॥

नयन युगमुवाह शोणपद्मश्रियम्
इति कुट्णलतां ततः शरीरम् ।
असितगिरि सुधांशु वक्त्रचन्द्रं रहसि
विलोकयतोऽस्य निस्पृहस्य ।।
चै० च० म०१५. ७६,७७

प्रभु धीरे-धीरे मृदुभाषामें प्राणवल्लभके साथ कुछ बातें कर रहे थे। वह रसकी बात कोई सुन नहीं पा रहा था। अन्तरङ्ग भक्त नरहरि प्रभुके पास थे। वे उस रसकथाका किञ्चित आभास पाकर एक पद लिख गये हैं, उससे जान पड़ता है कि प्रभु कह रहे हैं—

"आमि तोमाय ना देखिले मरि ।
पालटि ना चाह तुमि फिरि ।।"

प्रभु श्रीराधिकाके भावमें विभावित होकर अपने मन-चोर गुणनिधि श्यामसे यह बातें कर रहे थे। प्रभुका स्वर स्त्रीजनके समान अति मृदुल, आवेगपूर्ण, कातरतापूर्ण और अभिमान व्यञ्जक था। प्रभुका भाव बड़ा मधुर था। अन्तरङ्ग भक्तवृन्द उनके समीप थे। वे प्रभुके विरह-विधुर सकरुण श्रीवदनचन्द्रको देखकर श्रीजगन्नाथ दर्शनके सुखको भूल गये। वे अब श्रीजगन्नाथजीकी मूर्त्तिकी ओर ताक नहीं रहे थे। वह आशा उनकी मिट गयी। अब वे प्रभुके कातर विषण्ण श्रीमुखचन्द्रके भावको देखकर बड़े ही कातर हो रहे हैं। उनको और कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। प्रभुको देखकर वे लोग बड़ी विपद्में पड़ गये हैं। प्रभु सब कुछ भूलकर अपने प्राणवल्लभके श्रीमुखचन्द्रके दर्शनके आनन्दमें विभोर हैं।

प्रभु भोगमण्डपके सामने शिला खण्ड पर बैठकर अनिमेष नेत्रोंसे श्रीनीलाचलचन्द्रके श्रीवदन सुधाका पान कर रहे हैं। उनके कमलनयनद्वय मानो श्रीश्रीजगन्नाथजीके मुखचन्द्रमें लिप्त हो गये हैं। और वे जितना ही उस अपरूप रूपसुधाको पान कर रहे हैं उतनी ही अधिक उनकी रूपतृष्णा वृद्धिको प्राप्त हो रही है।

स्वरूप दामोदर प्रभुके निकट हैं। दूसरे भक्तवृन्द भी हैं, अपराह्न बीत गया, सन्ध्याकाल समीप आया, आरतीका समय हो गया। प्रभुको यह ज्ञान न था। स्वरूप गोसाईंने प्रभुसे कहा, "प्रभु ! कल रथयात्रा है, आज चलिये, कल फिर भली भाँति देखेंगे। भक्तवृन्दने दिनभर परिश्रम किया है, आपके बिना गये वे लोग वासा पर नहीं जाँयगे, विश्राम नहीं कर सकेंगे। चलिये बासा पर चलिये।" प्रभुने एकवार स्वरूप दामोदरकी ओर दृष्टि डाली, पर मुखसे कुछ न बोले। उसी समय आरतीका बाजा बजा। आरती आरम्भ हुई और समाप्त हो गयी। प्रभु जिस भावमें थे, उसी भावमें श्रीजगन्नाथजीके श्रीमुखचन्द्रका दर्शन करते रहे। स्वरूप गोसाईंने फिर कहा, "प्रभु ! आरती भोग हो गया, रात चार दण्ड बीत गयी, चलिये, बासा पर चलिये, थोड़ा विश्राम कीजिये, भक्तवृन्द बहुत थक गये हैं। आपके गये बिना वे कैसे बासा पर जाँयगे ?"

प्रभुके मुँहसे अब बात निकली, वे कहने लगे, "स्वरूप ! थोड़ी देर और ठहरो। मैं जरा भली-भाँति अपने जीवन-धन नीलाचलचन्द्रके श्रीमुखचन्द्रकी देख लूँ। आज पन्द्रह दिनसे मेरे नयन उपवासे हैं। अभी तो दर्शन करने आया हूँ, थोड़ी देर ठहरो।" स्वरूप दामोदर और कुछ बोल न सके। दो दण्ड तक प्रतीक्षा करनेके बाद पुनः बोले, "प्रभु ! चलिये, रात छ दण्ड चली गयी। भक्तगण बैठे हुए आपके श्रीमुखकी ओर देख रहे हैं। चलिये अब देर न कीजिये।"

प्रभु अत्यन्त अनिच्छा होते हुए भी इस बार बड़े ही कष्ट पूर्वक उठे। श्रीश्रीजगन्नाथजीकी बहुत स्तुति नमस्कार करके भक्तवृन्दके साथ बासा पर चले। जगन्नाथजीके सेवकोंने आकर प्रभुको माला और प्रसाद दिया। उन्होंने उसे मस्तक पर धारण करके वन्दना की।

दूसरे दिन रथयात्राका उत्सव है। श्रीनीलाचल धाममें सारी रात उस अपूर्व महोत्सवकी तैयारी

होती रही। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें रथयात्राके उपलक्ष्यमें सारे भारतवर्षके लोग आते हैं। दिन-रात आनन्द-कोलाहल होता रहता है। प्रभुका वासा भक्तवृन्दसे भरा हुआ है। वासा पर आकर प्रभुने सन्ध्याकृत किया। भक्तगण अपने-अपने वासा पर चले गये। प्रभुने उनसे कह दिया कि "रात्रि बीतते ही स्नान करके 'पाण्डुविजयोत्सव'* देखा जायगा। मेरे वासे पर आप सब लोग आ जाँयगे।"

——

एकादश अध्याय

श्रीनीलाचलमें रथयात्रा और

(रथके आगे प्रभुका अद्भुत नृत्य-विलास)

स जीयात् कृष्ण चैतन्यः श्रीरथाग्रे ननर्त्त यः ।
येनासीज्जगतां चित्रं जगन्नाथोऽपि विस्मितः ।।
चै० च० म० १३. १

राजाकी उमंग

आज रथयात्रा महोत्सव है। राजा गजपति प्रतापरुद्रके मनमें आज बड़ा आनन्द है। सार्वभौम भट्टाचार्यके उपदेशके अनुसार आज वे प्रभुके साथ मिलेंगे। प्रत्येक वर्ष रथयात्रा महोत्सव होता है, परन्तु यह वर्ष राजाकी दृष्टिमें बिल्कुल नया सा जान पड़ता है। श्रीनीलाचल धाम अभिनव शोभा धारण कर रहा है, वृक्ष-लता-तृण-गुल्मने मानो अभिनव परिच्छद परिधान किया है। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग पर्यन्त मानो एक नये भावमें विभावित हो रहे है। आकाश-भूतल, स्थावर-जङ्गम आदि सबने मानो एक नया रूप धारण किया है। नीलाद्रि शिविर पर काञ्चन माला शोभा दे रही है। नील सागरकी नीलोर्मि मालासे आनन्दोच्छ्वास अनुभूत हो रहा है। पद्म गन्धयुक्त मृदुमन्द समीरण प्रवाहित हो रहा है। राजा गजपति प्रतापरुद्र यह देखते हैं और अनुभव करते हैं। और कोई इस नव भावका भावुक है या नहीं—यह वे ही जाने। परन्तु राजा प्रतापरुद्रके मनमें आज एक अभिनव भावका श्रोत उमड़ पड़ा है। आज वे प्रभुके साथ मिलेंगे, नव जीवन लाभ करेंगे। उनके जीवनकी आशा आज फलवती होगी, उनका मनोरथ आज पूर्ण होगा।

रातभर जागकर राजा गजपति प्रताप रुद्र जो सुखका स्वप्न देख रहे हैं, उसकी सीमा नहीं है। एक निभृत प्रकोष्ठमें बैठकर वे अकेले श्रीगौराङ्ग-चरणका ध्यान कर रहे हैं, और राजा मन ही मन सोच रहे हैं—

आयातोऽद्य रथोत्सवस्य दिवसो देवस्य नीलाचला-
धीशस्याद्य पुरो नहिष्यति निजानन्देन गौरोहरिः ।
विश्रान्ति नटनावसान समये कर्त्ताद्य जातीवने
हन्ताद्यैव मनोरथः सफलतां यास्यत्ययं माद्दशः ।।
श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८.४५

---

* श्रीजगन्नाथजीका हाथ पकड़कर रथके आगे ले जानेका नाम है पाण्डुविजय, 'पाण्ड' उत्कल भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ है हाथ पकड़कर पैदल चलना।

अर्थात् आज श्रीनीलाचलचन्द्र जगन्नाथजीकी शुभ रथयात्राका दिन है। रथके आगे प्रेमावेगमें भगवान् श्रीगौरहरि आनन्द नृत्य करेंगे। आज मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है। आज मेरा मनोरथ सफल होगा।

कृपालु पाठकवृन्द ! राजा प्रताप रुद्रकी अवस्था एक बार मनश्चक्षुसे अवलोकन करें। उनके मनके भावको एक बार अनुभव करनेकी चेष्टा करें। इसके बिना राजाके मनके आनन्दको नहीं समझ पायेंगे। यह निःसन्देह ध्यानकी वस्तु है, आत्मानुभवका विषय है। राजा प्रताप रुद्र गम्भीर निशीथमें अपने निर्जन प्रकोष्ठमें बैठकर श्रीगौराङ्ग चरणका ध्यान कर रहे हैं, और ऐसा समझ रहे हैं कि उनकी सारी रात जागकर बीत गयी। भक्तके भगवान् किस प्रकार सो सकते थे ? उन्होंने भी सारी रात जागकर बितायी। दूसरे दिन रथयात्राका उत्सव था। इसी आनन्दमें प्रभुने सारी रात जाग कर बितायी। वे सो न सके, उनकी आँखोंमें नींद नहीं आयी। भक्तवत्सल प्रभु कैसे सोते ? भक्त चूड़ामणि राजा प्रताप रुद्र उनके श्रीचरणोंका ध्यान करके अनुरागपूर्वक उनको पुकार रहे थे। भक्तके अनुरागपूर्ण आह्वानपर क्या प्रभु स्थिर रह सकते थे ? इसी कारण प्रभुको नींद नहीं आयी, राजाको भी नींद नहीं आयी। रथोत्सव उपलक्ष्य मात्र था। भक्त और भगवान्की मिलनाकांक्षा इस उत्कण्ठाका मूल कारण था। प्रभुको उत्कण्ठा थी रथयात्राके उपलक्ष्यमें भक्तचूड़ामणि राजा प्रताप रुद्रपर कृपा करनेकी और राजाको उत्कण्ठा थी, इस शुभ संयोगमें प्रभुकी कृपा प्राप्त करने की। श्रीभगवान्की कृपा-दानकी इच्छा, और भक्तकी कृपा-प्राप्तिकी उत्कण्ठा इस लीलारङ्गमें पूर्णभावमें परिस्फुट हुई है। भावुक भक्तवृन्द इसका भाव परिग्रह करके आनन्द लाभ करें।

पाण्डु विजयोत्सव

प्रभुके पूर्वरात्रिके कथनानुसार भक्तवृन्द एक साथ प्रभुके वासापर आये। आकर प्रभुसे मिले, तथा स्नानादि कृत्य समाप्त करके श्रीश्रीजगन्नाथजीका पाण्डु-विजयोत्सव दर्शन करने चले। श्रीमन्दिरमें जाकर देखा कि श्रीश्रीजगन्नाथजीको सिंहासनसे उठाकर रथारोहणके लिए यात्रा करायी जा रही थी। राजा गजपति प्रतापरुद्र अपने बन्धु बान्धव आदिके साथ वहाँ उपस्थित थे। प्रभुको देखकर उन्होंने दूरसे दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभुके साथ श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीवास आदि नदियाके भक्तगण थे, तथा नीलाचलके भक्तवृन्द भी थे। भक्तवृन्दके साथ प्रभु बड़े आग्रहके साथ श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके रथमें शुभागमनोत्सव दर्शन करने लगे।

मत्त गजराजके समान बलशाली जगन्नाथजीके सेवकगण हाथा-हाथी करके विश्वम्भर मूर्त्ति श्रीविग्रहको ले जा रहे हैं। मङ्गलवाद्य बज रहा है, पण्डागणके मुखसे 'जय जगन्नाथ' शब्द निकल कर दिगन्तको प्रकम्पित कर रहा है। उसके साथ दर्शकवृन्दके सहस्रकण्ठसे उच्च जयनाद निकल कर गगन-मण्डलको परिपूर्ण कर रहा है। सेवक गणमें कोई श्रीविग्रहका श्रीचरण पकड़ रहा है, कोई श्रीहस्त पकड़े हुए हैं और कोई कन्धेको हाथ लगाये हुए हैं। दो आदमी कटिमें दो मोटी पाटकी डोर दृढ़तापूर्वक बाँधकर उनको उठा रहे हैं। रास्तेमें रुईका गद्दा बिछा है, उसके ऊपर जब श्रीविग्रहको स्थापित किया जाता है, तथा उठाया जाता है, तो वह रुईका गद्दा श्रीजगन्नाथजीके श्रीचरणोंके आघातसे छिन्न-भिन्न हो जाता है। इस प्रकार पण्डा लोग श्रीविग्रहको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर आगे चलाते जा रहे हैं। इच्छामय विश्वम्भर मूर्त्ति श्रीजगन्नाथजी अपनी इच्छासे रथ विहार करने जा रहे हैं। वे स्वेच्छासे जा रहे हैं, अन्यथा किसकी मजाल है जो उनको ले जाय ?

श्रीगौराङ्ग प्रभु प्रेमानन्दमें यह अपूर्व पाण्डुविजय उत्सव देख रहे हैं, और बीच-बीचमें 'मनिमा-मनिमा कहकर उच्च ध्वनि कर रहे हैं। 'मनिमा'

शब्द उत्कल भाषामें अतिशय सम्मान सूचक शब्द है। इसका अर्थ है सर्वेश्वर। वाद्य-कोलाहलमें कुछ भी सुना नहीं जा रहा है।

राजा प्रताप रुद्र स्वयं स्वर्ण सम्मार्जनी हाथमें लिए राजपथको मार्जित करते जा रहे हैं, और अपने हाथसे चन्दन-जल मार्गमें सिञ्चन कर रहे हैं। महाराजाधिराज राजचक्रवर्ती होकर भी यह तुच्छ सेवा कर रहे हैं—यह देखकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हो रहा है। इसी कारण राजा श्रीजगन्नाथजीसे कृपापात्र हो गये हैं, और इसी सेवाको देखकर प्रभुने उनके ऊपर कृपा की। राजा प्रताप रुद्र भक्तिमान् राजा हैं, परन्तु वे राजा हैं, विषयी हैं। प्रभु संन्यासी हैं। संन्यासीके लिए विषयीका सङ्ग नितान्त निषिद्ध है। प्रभु लोकशिक्षाके लिए राजासे नहीं मिलते हैं, परन्तु भीतरसे वे राजा प्रताप रुद्रके प्रति बड़े कृपावान् हैं।

अब श्रीजगन्नाथजी रथके आगे आकर खड़े हो गये। उनके साथ बलराम और सुभद्रा भी आये हैं। तीनों एक साथ रथपर विहार करेंगे। एक रथपर श्री जगन्नाथजी, और अन्य दो रथोंपर सुभद्रा और वलरामजी विहार करेंगे। नाना रङ्गोंके चित्र विचित्र ध्वजा-पताकासे सुशोभित गगनस्पर्शी स्वर्ण चूड़ाको ऊर्ध्व विस्तार करके श्रीजगन्नाथजीका सुवर्णमय रथ राजपथमें विराजमान है। राजा प्रतापरुद्रने अन्य वर्षोंकी अपेक्षा इस वर्ष विशेष रूपसे रथको सजाया है। क्योंकि प्रभु रथयात्रा दर्शन करेंगे। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

रथेर साजनि देखि लोके चमत्कार।
नव हेममय रथ सुमेरु आकार॥
शतशत शुक्ल चामर दर्पण उज्ज्वल।
उपरे पताका शत चान्दोया निर्मल॥
घागर किङ्किनी बाजे घंटार क्कणित।
नाना चित्र पट्टवस्त्रे रथ विभूषित॥

चै. च. म. १३.१८-२०

जगन्नाथजीके महावलवान असंख्य पण्डागणने 'जय जगन्नाथ' शब्दसे मेदिनीको प्रकम्पित करते हुए श्रीविग्रहको रथके ऊपर स्थापित किया। अगणित बाजे एक साथ विपुल ध्वनिमें बज उठे। सहस्रों शङ्ख एक साथ निनादित हो उठे। लाखों कण्ठसे जयध्वनि सुन पड़ी। श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र अपने-अपने भक्तगणसे परिवेष्टित होकर मल्लवेषमें रथके आगे खड़े हो गये। श्रीनीलाचल चन्द्र मानो निज-जनसे परिवेष्टित होकर रथके ऊपर नीलमणिके समान सुशोभित हो रहे थे। श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र भी रथके आगे अपने भक्तवृन्दसे वेष्टित होकर हेम-रत्न कान्ति विकसित करते हुए अपूर्व शोभा धारण कर रहे थे। गौर-कान्तिमें श्रीनीलाचल चन्द्र कभी कषित-काञ्चन वर्ण धारण करते हैं, और श्याम कान्तिमें श्रीनवद्वीपचन्द्र भी कभी श्याम वर्ण धारण कर रहे हैं।

असितगिरि पतिर्यथा स्वभृत्यैः
परिकलितः स तथैव गौरचन्द्रः।
सुरपति-मणिहेमरत्नभासौ
जनचयलक्ष्यतनु वभूवतुस्तौ॥
क्वचिदयमपि गौरचन्द्रभासा
भवति सुवर्णरुचिस्तथैव सोऽपि।
जगन्ति तदुभयोः सितेतराद्रेः
परिवृढ़ता परितः प्रकाशितासीत्॥

—श्रीचै० च० महाकाव्य १५.६३,६४

भक्तवृन्दके नेत्रोंमें दोनों विग्रह एक-से प्रतीत हो रहे हैं। अचल जगन्नाथ रथमें आरोहण कर चुके हैं और सचल जगन्नाथ रथके आगे खड़े होकर भक्तवृन्दके साथ रथारूढ़ अपने विग्रहको देख रहे हैं।

रथयात्रा और प्रभुका उद्दण्ड नृत्य

रथकी रज्जु विस्तृत हुई। भक्तवृन्दके साथ प्रभुने रथ रज्जुको धारण कर लिया। गम्भीर निर्घोषसे श्रीश्रीजगन्नाथजीका रथ चल पड़ा। महानन्दमें सब लोग जयध्वनि करने लगे। 'जय

जगन्नाथ' ध्वनिसे गगन मण्डल परिपूर्ण हो गया। श्वेत वर्ण बालुकामय समुद्र पथके दोनों ओर सुरम्य उपवन था। दोनों ओरकी शोभा देखते-देखते परमानन्दमें श्रीनीलाचलचन्द्र रथारूढ़ होकर चले जा रहे हैं। साथमें अगणित जन समूह प्रेमानन्दमें विह्वल होकर रथके सुदीर्घ रज्जुको धारण करके चल रहा है। रथ कभी मन्द गतिसे चलता है, कभी स्थिर हो जाता है। इस प्रकार लीलारङ्गमें श्रीनीलाचल चन्द्र रथयात्रा कर रहे हैं। श्रीजगन्नाथजीका रथ जब स्थिर होकर खड़ा हो जाता है, तब प्रभु अपने भक्तगणको अपने हाथों माला-चन्दनसे भूषित करके शक्तिशाली कर देते हैं।

श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीपाद परमानन्दपुरी गोसाईं तथा ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं आदि सभी प्रभुके द्वारा माल्यचन्दन प्रसाद पाकर प्रेममें भरकर जयध्वनि करने लगे। प्रभुने अपने कीर्तनदलके सब लोगोंको विशेष भावसे माल्य-चन्दनसे भूषित करके शक्ति-सञ्चार किया। स्वरूप गोसाईं और श्रीवास पण्डित कीर्तन दलके प्रधान बने। पहले प्रभुके आदेशसे कीर्तन चार दलमें संगठित हुआ। इन चार दलोंमें चौबीस आदमी गायक थे, अर्थात् प्रत्येक दलमें छः-छः आदमी गायक थे, तथा दो आदमी मृदङ्ग बजाने वाले।

पहले दलके स्वरूप गोसाईं प्रधान बने। उनके पाँच आदमी दोहार बने—दामोदर पण्डित, राघव पण्डित, गोविन्द दत्त, गोविन्दानन्द और नारायण। इस दलमें नृत्य करने वाले थे शान्तिपुरनाथ श्रीअद्वैत प्रभु।

द्वितीय दलके प्रधान बने श्रीवास पण्डित। उनके दोहार बने गङ्गादास पण्डित, छोटे हरिदास, शुभानन्द, श्रीमान् तथा श्रीवास पण्डित। इस दलमें नृत्य करने वाले थे अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु।

तृतीय दलके प्रधान थे मुकुन्द दत्त, उनके दोहार थे वासुदेव दत्त, मुरारी गुप्त, श्रीकान्त, वल्लभसेन तथा गोपीनाथ आचार्य। उस दलमें नृत्य करने वाले थे ठाकुर हरिदास।

चतुर्थ दलके प्रधान बने गोविन्द घोष, उनके दोहार बने उनके दोनों भाई वासुदेव और माधव, तथा हरिदास, विष्णुदास, और राघव। उस दलमें नृत्य करने वाले थे वक्त्रेश्वर पण्डित।

ये चार कीर्तन दल प्रभुकी आज्ञासे संगठित हुए। इसके सिवा तीन और दल संगठित हुए। कुलीन ग्रामके दलके प्रधान बने रामानन्द वसु। शान्तिपुरके दलके प्रधान बने श्रीअद्वैतनन्दन श्रीपाद श्रीअच्युतानन्द प्रभु, और श्रीखण्डके दलके प्रधान बने नरहरि सरकार ठाकुर। इनके प्रत्येक दलमें बहुत-से लोक थे। मुख्य रूपसे तीनों प्रधान नृत्य करने वाले थे। इस प्रकार कुल सात कीर्तन दल गठित हो गये। प्रभुके आदेशसे पूर्वके चार दल रथके आगे, दो दल दोनों बगलमें, और एक दल रथके पृष्ठ भागमें कीर्तनके लिए नियुक्त हुए।

अब प्रभुने कीर्तन आरम्भ करनेका आदेश दिया, और तत्काल एक साथ चौदह मृदङ्ग बज उठे। दूसरे बाजे राजाके आदेशसे बन्द कर दिये गये। वैष्णव लोग प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर नृत्य-कीर्तन करने लगे। उच्च संकीर्तन ध्वनिसे त्रिभुवन पूर्ण हो गया। दूसरे बाजोंका कोलाहल नहीं सुना पड़ता था। श्रीवैष्णव सम्मेलनी रूप मेघ जालसे गगन मण्डल समाच्छन्न हो गया। भक्तवृन्द प्रेमाश्रु-जल लेकर कीर्तनानन्दके बादल बन गये।

सात सम्प्रदाये बाजे चौद्दमादल।
जार ध्वनि शुनि वैष्णव हैल पागल॥
श्रीवैष्णव घटामेघे हइल बादल।
सङ्कीर्तनामृत सह वर्षे नेत्रजल॥

चै. च. म. १३.४७-४८

कनक कान्ति श्रीगौराङ्ग सुन्दरने कनकाचल सुमेरुके श्रृङ्गके समान रथके आगे संकीर्तनके आगे भूमि विलुण्ठित होकर स्वर्णरथस्थ श्रीनीलाचल चंद्रको दण्डवत् प्रणाम किया। उनके कमलनयन द्वयसे

प्रेमाश्रुधारा वेगवती नदीके समान प्रवाहित होने लगी। उनके सर्वाङ्गमें कदम्ब केशरके समान पुलकावली परिदृष्ट हो रही थी। रथारूढ़ श्रीश्रीनीलाचल चन्द्रके श्रीवदनका प्रभु दर्शन कर रहे थे। सात दलोंमें सात आदमी अपूर्व अङ्ग भङ्गिमाके साथ मधुर नयन रञ्जन नृत्य कर रहे थे। और कीर्तन दल प्रेमानन्दमें उच्च हरिसंकीर्तन कर रहा था। प्रभु इन सातों दलोंके जीवनधन थे। उनको देखे बिना कोई भी प्राण भर कर आनन्दका उपभोग नहीं कर सकेंगे, तथा न गा सकेंगे और न नाच सकेंगे। अतएव भक्तवत्सल प्रभुको कुछ ऐश्वर्य दिखलाना पड़ा। वे इन सातों दलोंमें एक साथ आविर्भूत होकर अपने सुवलित आजानुलम्बित वाहुयुगलको ऊपर उठाकर 'जय जगन्नाथ' रवसे तथा उच्च हरिध्वनिसे भक्तमण्डलीको उत्साहित करने लगे।

सब लोग देख रहे हैं कि सङ्कीर्तन यज्ञेश्वर प्रभु उनके सङ्कीर्तन यज्ञके आगे अधिष्ठित हैं और उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। दूने उत्साहके साथ वे कीर्तनमें मत्त होकर परस्पर कह रहे हैं—

सबे कहे—प्रभु आछे एइ सम्प्रदाय।
अन्य ठाञि नाहि जाय आमार दयाय॥

चै. च. म. १३.५२

प्रभुने जो यह ऐश्वर्य प्रकट किया, वह केवल भक्तके चित्त विनोदके लिए। इन सात सम्प्रदायोंमें एक ही समय प्रभुका नृत्य विलास गूढ़ रहस्यमय है। राजा प्रतापरुद्रने प्रभुका ऐश्वर्य नहीं देखा था। वे माधुर्यभावमें श्रीगौराङ्ग भजन करते रहे। वे प्रभुके अपरूप रूपको देखकर सब कुछ भूल जाते। उनके अनन्त गुणोंकी बात सुनकर ही वे उनके चरणोंमें आकृष्ट हुए थे। सर्व चित्ताकर्षक अपरूप रूपराशिको लेकर श्रीगौर भगवान् भुवनमें आविर्भूत हुए थे। उनको देखते ही संसारके लोग मुग्ध हो जाते थे। राजा प्रताप रुद्रने प्रभुकी अपरूप रूप राशिको दूरसे ही देखा था, अब जो अति समीप खड़े होकर देखा तो उनकी सदाकी साध मिट गयी। श्रीगौराङ्ग-रूप तृषासे कातर राजा प्रताप रुद्रने परम विस्मयपूर्वक देखा कि प्रभु एक ही समय सातों कीर्तन दलोंके आडे रहकर सब भक्तोंको आनन्द प्रदान कर रहे हैं। और कोई उनके इस ऐश्वर्यको देख नहीं पा रहा है। प्रभुने कृपा करके यह राजाको क्यों दिखलाया, यह वे ही जाने। राजगुरु काशीमिश्र राजाके पास खड़े थे, राजा प्रतापरुद्रने प्रभुका ऐश्वर्य देखकर प्रेमानन्दमें विह्वल होकर उनसे श्रीगौर भगवान्‌की महिमाके विषयमें कहा। मिश्रजी बोले—"महाराज! आपके सौभाग्यकी सीमा नहीं है। आपके प्रति प्रभुकी बड़ी कृपा है।" सार्वभौम भट्टाचार्यसे भी राजाने इशारेसे अपने मनका भाव कहा, उन्होंने भी ऐसा ही उत्तर दिया। प्रभुका ऐश्वर्य देखकर राजा प्रतापरुद्रको दिव्य ज्ञान हो गया। उन्होंने प्रभुके तत्त्वको भली भाँति समझा। प्रभु आज राजाके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न थे। इसी कारण यह गूढ़ लीला रहस्य उनको दिखलाया। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

राजार तुच्छ सेवा देखि प्रसन्न प्रभुर मन।
से प्रसादे पाइल एइ रहस्य दर्शन॥
साक्षाते ना देखा देन, परोक्षे एत दया।
के बूझिते पारे चैतन्येर एइ माया॥

चै. च. म. १३.५९,६०

राजाके एक और सौभाग्यकी बात सुनिये। रथपर विराजमान श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र कीर्तन सुन रहे हैं। नीलाचलमें रथयात्राके उत्सवमें युगधर्म महा सङ्कीर्तन यज्ञका यह प्रथम अनुष्ठान है। राजा देख रहे हैं श्रीश्रीजगन्नाथजीका श्रीमुखचन्द्र आज बड़ा ही सुशोभित है। वे मार्गमें चलते रथको स्थगित करके मधुर कीर्तन देख रहे हैं।

कीर्तन देखिया जगन्नाथ हरषित।
कीर्तन देखेन रथ करिया स्थगित॥

चै. च. म. १३.५४

राजा प्रतापरुद्रको आश्चर्यपर आश्चर्य हो रहा था, वे देख रहे थे कि रथारूढ़ श्रीविग्रह और संकीर्तन-यज्ञेश्वर सचल श्रीगौर विग्रह एक वस्तु हैं। वे देखते थे कि श्रीजगन्नाथजीके स्थानमें प्रभु कभी रथपर बैठकर भक्तवृन्दके प्रति शुभ दृष्टिपात कर रहे हैं, कभी रथसे उतरकर नृत्य कर रहे हैं। अब राजा श्रीनीलाचल चन्द्रको नहीं देख पा रहे हैं। यह देखकर राजाका मन व्याकुल हो गया, वे प्रेमावेशमें विवश हो गये, उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

प्रताप रुद्रेर हइल परम विस्मय।
देखिते विवश राजा हैल प्रेममय॥

चै. च. म. १३.५५

राजाके प्रति प्रभुका यह कृपा प्रदर्शन, एक अति अपूर्व घटना है। उन्होंने साक्षात् राजाको कभी दर्शन नहीं दिया। परन्तु आज परोक्षमें उनके ऊपर कृपा दृष्टि की है। कविराज गोस्वामीने साररूपमें लिखा है—

"के बूझिते पारे चैतन्येर एइ माया।"

चै. च. म. १३.६०

अब लीलावेशमें श्रीगौर भगवान्‌को अपनी सुध-बुध नहीं है। वे प्रेमावेशमें बाह्यज्ञान-शून्य होकर मधुर कण्ठसे स्वयं कीर्तनका सुर पकड़कर बोले—

"गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।"

प्रभु अब स्वयं गायक बने हैं और प्रेमानन्दमें उनके भक्तवृन्द मधुर नृत्य करने लगे हैं। प्रभु अब क्षण-क्षणमें अपूर्व लीला करने लगे। सब भक्तोंके प्राणोंमें उन्होंने प्रेमका स्रोत बहा दिया। सब लोग आनन्द-घन-मूर्त्ति प्रभुको देखकर आनन्द सागरमें डूब गये।

कभू एक मूर्त्ति हय—कभू बहु मूर्त्ति।
कार्य अनुरूप प्रभु प्रकाशये शक्ति॥
लीलावेशे नाहि प्रभुर निजानुसन्धान।
इच्छा जानि लीलाशक्ति करे समाधान॥

पूर्वे जैछे रासादि लीला कैला वृन्दावने।
अलौकिक लीला गौर करे क्षणे क्षणे॥

चै. च. म. १३.६३-६५

इस प्रकार श्रीगौर भगवान्‌ने अपने भक्तोंको प्रेमानन्दमें उन्मत्त करके बहुत देर तक नचाया। इससे प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। अब इच्छामय प्रभुकी स्वयं नाचनेकी इच्छा हुई। प्रभुके संकेतसे सातों कीर्तन-दल एकमें मिल गये। क्षण मात्रमें प्रभुने नौ प्रधान गायक ठीक किये। उनका नाम था—

श्रीदास, रामाइ, रघु, गोविन्द, मुकुन्द।
हरिदास, गोविन्दानन्द, माधव, गोविन्द॥

चै. च. म. १३.७२

स्वरूप गोस्वामी उनके प्रधान बने। इन नौ आदमियोंने जब कीर्तनका सुर पकड़ा, तब प्रभुकी उद्दण्ड नृत्य करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने नृत्य आरम्भ करनेके पहले जो किया, उसका वर्णन श्रीपाद मुरारिगुप्त अपनी आँखों देखकर अपने करचामें लिख गये हैं।

प्रभुने पहले रथके आगे हाथ जोड़कर खड़े होकर श्रीश्रीजगन्नाथजीको प्रणाम करके निम्नलिखित श्रीकृष्णकी स्तुतिके दो श्लोक प्रेम-गद्गद कण्ठसे सुस्वरमें पाठ किया—

जयति जयति देवो देवकीनन्दनोऽसौ
जयति जयति कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयति जयति मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयति जयति पृथ्वी भार नाशो मुकुन्दः॥

मुकुन्दमाला

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवर परिषत् स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मित श्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम्॥

श्रीम. भा. १०.९०.४८

इसके बाद प्रभुने श्रीमुखचन्द्र निःसृत निम्नलिखित श्लोक पाठ किया—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल-परमानन्दपूर्णामृताब्धे--
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ।।

पद्यावली ७४

प्रभुने स्तव-पाठके अन्तमें भूमि-विलुण्ठित होकर रथारूढ़ श्रीश्रीनीलाचल चन्द्रको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया । यथा—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण हिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।।

वि. पु. १.१९,६५; म. भा. शान्ति.४७.९५

श्रीपाद कविकर्णपूर गोस्वामीने श्रीगौर भगवान्‌की तत्कालीन श्रीमूर्त्तिका एक अति सुन्दर चित्र अङ्कन किया है । नृत्य विलासोद्यत श्रीश्रीनवद्वीप चन्द्रकी विचित्र श्रीअङ्गमाधुरी-दर्शनके आनन्दसे भक्तवृन्द उत्फुल्ल हो गये हैं । उसी अपरूप रूप माधुरीका वर्णन नीचे उद्धृत किया जाता है—

अस्फोटच वामकरकक्षतटीं करेण
रज्यद्वपुर्मधुरकोमलतातिरम्यः ।
लीलाविलोल मुखचन्द्रमयूख रोचिः
श्रीमच्छटा झलमलायित दिक्समहः ।।
उच्चैर्मुहुर्जय जयेति विमुक्तकण्ठ—
मुच्चारयन् सह तनूरुहवृन्द हर्षैः ।
मुष्टिप्रमेय तनु मध्यविलासवद्ध
रक्ताम्बरद्युति विडम्बित बन्धुजीवः ।।
श्रीमद्विलोचन जलाप्लुत गौरदेहः
प्रत्यग्र धर्मकणिका खचितास्य चन्द्रः ।
उद्दामताण्डवकलाकुलिताङ्ग भङ्गः
श्रीमानथ स्वजनमध्यकलं चकार ।।

चै. च. म. १६.६-८

इसका भावार्थ यह है कि, प्रभु रथके आगे खड़े होकर नृत्योत्साहमें अपने बाँयें बाहुके मूलमें दाहिने हाथके द्वारा पीट रहे हैं। इससे उनका कोमल श्रीअङ्ग रक्ताभ होकर परम रमणीय लग रहा है । उनके लीला-विलोल श्रीमुख चन्द्रकी किरणोंकी कान्तिकी छटासे दिशाएँ झलमल हो रही हैं । वे उच्चस्वरसे बारम्बार जयध्वनि कर रहे हैं, साथ ही उनके श्रीअङ्गमें अपूर्व पुलकावली समुद्गत हो रही है। उनका क्षीण कटिदेश क्षीणतर जान पड़ता है, मानों वह मुट्ठीमें आ जा सकता हो । उस अति सुन्दर क्षीण कटितटमें लीलारङ्गमें परिधान किये अरुण वसनकी अपूर्व शोभा विकसित हो रही है। वह अरुणवसन वन्धूक पुष्पको लज्जित कर रहा है। उनके कनक-केतकी सदृश आकर्ण विश्रान्त नयन-युगलसे निपतित नदीप्रवाहवत् प्रेमाश्रुधारासे गौर-अङ्ग आप्लुत हो रहे हैं। अभिनव सुषमा-विशिष्ट स्वेदविन्दुसे उनका श्रीमुख मण्डल परिशोभित हो रहा है । प्रेमनृत्य-विलासके श्रमसे उनके अङ्ग-अङ्ग विवश हो गये हैं । प्रभुके भक्तवृन्द इस प्रकारकी अवस्थामें रथके आगे उनका दर्शन करके प्रेमावेशमें आत्महारा हो रहे हैं ।

कृपालु पाठकवृन्द ! कृपा करके एक वार आँखें मूँदकर मनश्चक्षुसे श्रीगौर भगवान्‌के इस अपूर्व रूपका ध्यान करें। कल्पना करें कि आप श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें रथयात्रा दर्शनके लिए गये हैं, रथके आगे आपके जीवन-सर्वस्व, भावनिधि श्रीगौराङ्ग सुन्दर इस प्रकार खड़े होकर नृत्य कर रहे हैं । कल्पना कीजिये कि आप उनके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते आत्म-निवेदन कर रहे हैं— "हे प्रभु, हे दयामय, हे अधम-उधारण, हे भक्तोंके जीवनधन ! शिव-विरञ्चि-अभिवन्दित अपने दोनों कमलचरणोंको मेरे मस्तकपर रख दो।"

प्रभुने एक बारगी उद्दण्ड नृत्य आरम्भ कर दिया। उनके श्रीचरणोंके आघातसे सागर सहित पृथ्वी प्रकम्पित हो उठी। उनके श्रीअङ्गमें अष्ट

सात्त्विक भावोंका उद्गम हुआ। बारम्बार भूतलपर पछाड़ खाकर गिरने लगे। वे जब भूमिपर गिरकर लोट-पोट करते थे तो जान पड़ता था मानो एक अति सुन्दर सुवर्ण पर्वत भूतलपर गिरकर लोट रहा है।

श्रीनित्यानन्द प्रभु उनके पीछे हैं। वे दोनों भुजाएँ फैलाकर प्रभुके आस-पास चल रहे हैं, परन्तु प्रभुको सँभाल नहीं पा रहे हैं। श्रीअद्वैत प्रभु हुङ्कार गर्जन करते हुए प्रभुके पास ही घूम रहे हैं। ठाकुर हरिदास उच्च स्वरसे 'हरिबोल' बोल रहे हैं, और प्रभुको अगुवा रहे हैं। तो भी प्रभु पछाड़ खाकर भूतलपर गिर पड़ते हैं। यह देखकर सबके मनमें बड़ा कष्ट हो रहा है। लोगोंकी अत्यधिक भीड़ हो जानेके कारण प्रभुके ऊपर आकर आदमी-पर-आदमी गिर रहे हैं। भक्तगणके मनमें इससे बड़ी व्यथा हो रही है। तब सबने मिलकर उपाय सोचा कि मण्डली बाँधकर उसके बीचमें प्रभुको रक्खा जाय। तीन मण्डली बाँधी गयीं। पहली मण्डलीमें श्रीनित्यानन्द प्रधान बने; उनके साथ अद्वैत प्रभु स्वरूप दामोदर हरिदास आदि रहे। दूसरी मण्डलीके प्रधान बने काशीश्वर पण्डित; वे बड़े बलशाली थे, उनके साथ रहे गोविन्द, श्रीवास पण्डित आदि भक्तगण। तीसरी मण्डलीमें राजा प्रतापरुद्र स्वयं रहे; उनके साथ मन्त्री हरिचन्दन, तथा सभी सभासद रहे।

इन सब लोगोंका एक ही उद्देश्य था प्रभुकी रक्षा करना, जिससे प्रभुको विपद्में न पड़ना पड़े; क्योंकि अगणित लोगोंका संघट्ट हुआ था, और प्रभु भी उन्मत्त होकर यथा—तथा उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे। उनको वाह्यज्ञान न था। रथ चल रहा था और वे सामने पछाड़ खा-खाकर गिरते थे और मूर्च्छित हो जाते थे। क्षण-क्षणमें विपद्की आशङ्का देखकर सब लोग युक्ति करके मण्डली-बद्ध होकर प्रभुकी रक्षा करने लगे। प्रभु बाह्यज्ञान-शून्य होकर प्रेमानन्दमें नृत्य कर रहे थे, उनको इन सब बातोंका पता न था। वे प्रेमावेशमें उद्दण्ड नृत्य करते-करते रथके आगे पछाड़ खाकर गिरे और मूर्च्छित हो गये। रथ भी रुक गया। परन्तु पुनः रथ चला, तब भक्तोंने अत्यन्त व्यग्र होकर प्रभुको पकड़कर गोदमें उठा लिया।*

इस प्रकार भक्तगण सर्वविपद्हारी श्रीगौर भगवान्‌की विपद्से रक्षा कर रहे हैं। राजा प्रतापरुद्र भी इस भीड़में है। वे भी भक्तवृन्दके साथ प्रभुकी रक्षा करनेकी प्राणपनसे चेष्टा और यत्न करते हैं। उनकी निज देहकी रक्षाके लिए बहुत-से लोग नियुक्त हैं, परन्तु वे निज देह रक्षाके लिए तनिक भी उद्विग्न नहीं हैं। यह जो रथके आगे प्रभु अद्भुत नृत्य विलास कर रहे हैं, महासङ्कीर्तन यज्ञका जो अनुष्ठान हो रहा है, इसका प्रभाव सब देख रहे हैं।

प्रभुके इस अपूर्व लीलारङ्गके प्रभावसे सब लोग एक हो गये हैं। यहाँ राजा-प्रजा एकप्राण हो रहे हैं। यहाँ भक्त-भगवान्‌का अबाध मिलन हो रहा है। रासलीला और सङ्कीर्तनलीला एक वस्तु है, एक तत्त्व है। रासलीलामें लाखों व्रजगोपियाँ परम पुरुष श्रीकृष्ण भगवान्‌से निःसङ्कोच मिली थी। उसी प्रकार सङ्कीर्तनलीलामें सब लोग श्रीगौरभगवान्‌के साथ मिले है। यह अति अपूर्व प्रेम भावपूर्ण दृश्य है। महाराज गजपति प्रतापरुद्रका यहाँ राज-गौरवका भाव नहीं है, श्रीपाद परमानन्द पुरी और ब्रह्मानन्द भारती गोसाईंका यहाँ गुरु-गौरव-भाव नहीं है। सार्वभौम भट्टाचार्य आदिका पाण्डित्याभिमान नहीं है। सभी

---

* आनन्देन जडीकृते भुवि चिरं स्तब्धे तथा स्यन्दने
श्रीनीलाद्रिपतेरुपैति च सति व्यग्रीभवद्भिर्भृशम्।
तैरेतैः करपल्लवैर्निज निज क्रोडेषु कृत्वा कियद्
दूरे स्वैरमुपार्पितो विजयते श्रीगौरचन्द्रः प्रभुः॥
श्रीचैतन्य चन्द्रामृत महाकाव्य १६. २६

एक भावमें विभावित हैं। यह सबका सहज प्रेमभाव है, श्रीगौरभगवान्के प्रति स्वाभाविक प्रीतिका भाव है।

प्रभुसे सब लोग प्रेम करते हैं, क्षण मात्रके लिए भी उनको न देखनेसे भक्तोंको जगत् अन्धकारमय दीखता है। उनके सोनेके अङ्गपर धूलिके कण देखनेपर दुःखसे उनका हृदय विदीर्ण हो जाता है। वे ही उनके प्राणधन हैं, जीवन सर्वस्व प्रभुके देहकी रक्षाके लिए आज सब मिलकर कटिबद्ध हो गये हैं। वे प्रभुसे डरते नहीं हैं। उनके श्रीअङ्गका स्पर्श करनेमें किसीको द्विविधा नहीं हो रही है। राजासे कोई डर नहीं रहा है। उनको एक ओर करके, उनको ठेल-ठालकर सब प्रभुकी रक्षामें लगे हैं। इसीको कहते हैं सहज-प्रेम। राजाका भी सहज प्रेम हैं, भक्तगणका भी सहज प्रेम है, राजाके प्रजाजनका भी सहज प्रेम है। प्रेममय प्रेमावतार श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रके प्रेमके फन्दमें पड़कर सब लोग प्रभुके प्रति आज उसी एक सहज प्रेमभावमें विभावित हो रहे हैं। श्रीभगवान्के प्रेमलीलारङ्गका यही गूढ़ रहस्य है।

रथके आगे प्रभुकी आनन्दघन श्रीमूर्त्ति जड़वत् प्रतीत हो रही है। परन्तु बीच-बीचमें वे जडीभूत होकर भी हुङ्कार गर्जन करके श्रीअद्वैत प्रभुके अङ्ग-पर श्रीकरपल्लव विन्यस्त कर रहे हैं। उनके सुन्दर उरुदेश और सुप्रशस्त वक्षःस्थलकी शोभा सबके मनको हर लेती है। वे अपनी हेमकान्ति सुवलित वाहुदण्डको इतस्ततः परिचालित कर रहे हैं, और उनके पाद युगल जोरसे भूतलपर पड़ रहे हैं, क्योंकि वे नृत्योल्लासमें उन्मत्त हो गये हैं। प्रभुके शरीरका स्पन्दन और निःश्वास क्रमशः मन्दीभूत होकर उनको प्रेमानन्द भावसे अश्रुपूर्ण नयनके साथ एकवारगी जड़ीभूत कर डालता है। पुलकावलीसे परिशोभित श्रीअङ्ग विकलित जान पड़ता है। तत्क्षण वे मूर्च्छित हो जाते हैं। इस अवस्थामें राजा प्रतापरुद्र उनके पदतलमें बैठकर पद-सेवा करते हैं। सब भक्तगण यह देखकर राजाके भाग्यकी प्रशंसा कर रहे हैं।*

श्रीगौर भगवान् रथके आगे जब प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य विलास करते थे तव उनके प्रेमविकार भावको देखकर भक्तगणके मनमें बड़ी आशङ्का हुई। वे बीचमें रथके आगे जड़वत् निश्चेष्ट पड़ जाते थे, और ऐसा लगता था कि रथचक्र उनके ऊपरसे निकल जायगा, ऐसी अवस्थामें भक्तगण चटपट उनको गोदमें लेकर स्थानान्तर करते थे। वे बारम्बार भूतलपर भीषण रूपसे पछाड़ खाकर गिरने लगते थे। यह देखकर भक्तवृन्दका कलेजा फट जाता था। प्रभुकी रक्षा करनेके लिए उन्होंने युक्ति करके तीन मण्डली बाँधी। यह बात पहले कही जा चुकी है। प्रभु अब उसी मण्डलीके बीचमें अद्भुत नृत्य कर रहे हैं।

राजमन्त्री हरिचन्दनका सौभाग्य

हरिचन्दन राजा प्रतापरुद्रके मन्त्री थे। उनके कन्धेपर हाथ रखकर राजा प्रेमाविष्ट होकर प्रभुके नृत्य विलासका दर्शन कर रहे हैं। श्रीवास पण्डित भी प्रेमाविष्ट होकर प्रभुकी अपूर्व नृत्य भङ्गीका दर्शन कर रहे हैं। वे भलीभाँति देख नहीं पा रहे हैं, क्योंकि सामने राजा प्रतापरुद्र अपने मन्त्रीको लेकर खड़े हैं। वहाँ लोगोंकी बड़ी भीड़ है। राजाको अतिक्रम करके कोई जा नहीं पाता।

---

* आनन्देन जडीभवन्ननुपदं हुङ्कार कोलाहलै—
रद्वैतार्पित—पाणिपल्लव—रस स्निग्धोरु वक्षःस्थलः।
दण्डाकारमितस्ततो विनिपतद्दोर्दण्ड पादद्वयो—
ल्लस्योल्लास मनोहरो विजयते श्रीगौरचन्द्रः प्रभुः॥
आनन्दोत्साह मूर्च्छागत इव भवति स्पन्दनिश्वासमन्दे—
रोहद्रोमाञ्चपूरैर्विकलितवपुरानन्दमन्दीकृतेन।
स्यन्दन्नेचारविन्दद्वयसलिलजुषा रुद्रदेवेन भूयः
सानन्दं सेविताङ्घ्रि द्वय सरसिरुहो राजते गौरचन्द्रः॥
श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य १६.२७-२८

श्रीवास पण्डित प्रमावेशमें राजाको जोरसे ठेलकर आगे जाकर प्रभुके अपूर्व नृत्य विलासका दर्शन करने लगे। राजमन्त्री इसे सहन न कर सके। वे राजाके दर्शनमें विघ्न होते देखकर श्रीवास पण्डितका अङ्ग स्पर्श करके बोले, "एक ओर हो जाइये, देखते नहीं कि राजाके दर्शनमें विघ्न पड़ रहा है।" श्रीवास पण्डित प्रेमानन्दमें विभोर होकर प्रभुकी नृत्य-कला देख रहे थे। वे हरिचन्दनकी बात सुन न सके, अथवा उसपर कान नहीं दिया। तब हरिचन्दन उनको ठेलने लगे; एक बार, दो बार, तीन बार हरिचन्दनने श्रीवास पण्डितको बाधा दी। वे प्रेमानन्दमें मत्त थे, उन्होंने इसपर ध्यान नहीं दिया। दर्शनानन्दमें श्रीवास विभोर हो रहे थे। परन्तु जब हाथसे हरिचन्दन उनको हटा न सके, और परेशान करने लगे तो इससे उनके दर्शनानन्दमें विघ्न पड़ने लगा, इससे श्रीवास पण्डितके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने हरिचन्दनको एक चपेटा लगा दिया। श्रीवास पण्डितके हाथका चपेटा खाकर राजमन्त्री हरिचन्दनको क्रोध आ गया। वह अपनेको अपमानित समझने लगे। क्रुद्ध होकर रूखी भाषामें उनको कुछ कहने लगे। वैसे ही राजा गजपति प्रतापरुद्रने उनका मुँह बन्द करके कहा—

भाग्यवान् तुमि इहार हस्त स्पर्श पाइला।
आमार भाग्ये नाहि तुमि कृतार्थ हइला॥

चै. च. म. १३.९२

हरिचन्दनके मुँहसे अब कोई बात न निकली। वे राजमन्त्री थे, राजाके सिवा और किसीको कुछ नहीं समझते थे। प्रभुके नृत्यका दर्शन करनेमें राजाको विघ्न होता देखकर उन्होंने श्रीवास पण्डितको जरा बगलमें हो जानेका अनुरोध किया। उन्होंने जब अनुरोध नहीं सुना तो हरिचन्दनने उनको धक्का दिया। इसमें राजमन्त्री हरिचन्दनका कुछ विशेष दोष न था; परन्तु अभिमान था। राजा प्रतापरुद्रने अपने मन्त्रीके इस कार्यमें दोष देखा। श्रीवास पण्डितने जो उनको चपेटा मारा, उसमें राजाको कोई दोष न दीख पड़ा। राजाने अपने मन्त्रीको जो कुछ कहा, उसपर कुछ विचार करिये। उन्होंने कहा, "हरिचन्दन! तुम बड़े भाग्यवान् हो, तुम आज नदियाके अवतार श्रीश्रीमन्महाप्रभुके अन्तरङ्ग भक्त श्रीवास पण्डितके हस्त स्पर्शका सुखानुभव करके कृतार्थ हो गये। मैं अभागा हूँ, मेरे भाग्यमें यह सुख नहीं प्राप्त हुआ।"

राजा प्रतापरुद्र भक्तिमान् राजा थे। भक्तकी महिमा वे भली-भाँति जानते थे। विशेषतः गौरभक्तिकी महिमा वे अपनी आँखोंसे देख रहे थे। नदियाके भक्त प्रभुको प्राणसे भी प्रिय हैं, यह राजा खूब जानते थे। भक्तकी कृपा भगवान्की प्राप्तिका एकमात्र उपाय है, यह भी वे खूब समझते थे। गौरभक्तगण एक-एक ध्रुव-प्रह्लाद है— यह भी राजाके जाननेसे बाकी न रहा। उनके मन्त्री हरिचन्दन भक्तका मर्म क्या समझेंगे? वे राजनीतिका अनुशीलन करते हैं, भक्तिधर्ममें उनका दखल नहीं है। राजा प्रतापरुद्र अनासक्त भावसे राज्यका उपभोग करते थे। प्रभुकी कृपासे उनको श्रीश्रीजगन्नाथजीकी सेवाका भार प्राप्त हुआ था। प्रेमभक्तिके द्वारा उन्होंने अचल जगन्नाथकी सेवा करके सचल जगन्नाथका दर्शन प्राप्त किया। भक्तकी महिमा यदि वे नहीं समझेंगे तो और कौन समझेगा? श्रीवास पण्डित प्रभुके एकान्त भक्त हैं, श्रीगौराङ्ग चरणके चिन्तनके सिवा और कोई चिन्तन उनके हृदयमें स्थान नहीं पाता। उनके हस्त स्पर्शका सुख हरिचन्दनको मिला, इस दुःखसे राजा प्रतापरुद्र बोले—

"आमार भाग्ये नाइ तुमि कृतार्थ हइला।"

कृपालु पाठकवृन्द अब सोचें कि राजा गजपति प्रतापरुद्रकी श्रीगौराङ्ग प्रीति कितनी गहरी थी, गौर-भक्तके प्रति उनका कितना प्रगाढ़ अनुराग था।

राजाका सौभाग्य

प्रभु रथके आगे नृत्य कर रहे थे, सब लोग विस्मित होकर उनके इस अपूर्व नृत्य-विलासका

दर्शन कर रहे थे। स्वयं श्रीनीलाचलचन्द्र, सुभद्रा और बलरामके साथ बड़े आनन्दसे प्रभुके इस प्रेम नृत्यका दर्शन कर रहे थे। वे रथपर बैठे मृदु मन्द मुस्करा रहे थे। राजा प्रतापरुद्र श्रीश्रीजगन्नाथजीके एकान्त अनुरक्त सेवक हैं। श्रीविग्रहके श्रीवदनमें हँसी देखकर वे प्रेमानन्दमें अधीर होकर व्याकुलतापूर्वक रो पड़े।

प्रभुकी यह नृत्यभङ्गी सर्वचित्ताकर्षक, सर्वविघ्ननाशक और सर्वमङ्गलकारक हैं। जगत्‌के जीवोंकी चित्त-शुद्धिके लिए प्रभु अपरूप हाव-भावसे नृत्य-विलास कर रहे हैं। उनके श्रीअङ्गमें अष्ट सात्त्विक भावोंके विकारका लक्षण देखकर जगत्‌के जीवका कठिन हृदय द्रवित हो रहा है। वे सब विकार लक्षण कैसे हैं? सुनिये—यथा—

उद्दण्ड नृत्ये प्रभुर अद्‌भुत विकार।
अष्ट-सात्त्विक-भावोदय हय समकाल॥
मांसव्रण सह रोमवृन्द पुलकित।
शिमुलीर वृक्ष जेन कण्टके वेष्टित॥
एकेक दन्तेर कम्प देखि लागे भय।
लोके जाने—दन्त सब खसिया पड़य॥
सर्वाङ्गे प्रस्वेद छूटे—ताते रक्तोद्‌गम।
'जज गग जज गग' गद्‌गद वचन॥
जलयन्त्र धारा जेन बहे अश्रुजल।
आश पाश लोक जत भिजिल सकल॥
देहकान्ति गौर कभू देखिये अरुण।
कभू कान्ति देखि जेन मल्लिका पुष्पसम॥
कभू स्तब्ध, कभू प्रभु भूमिते पड़य।
शुष्क काष्ठ सम हस्त पद ना चलय॥
कभू भूमि पड़े, कभू हय श्वासहीन।
जाहा देखि भक्तगणेर हय प्राण क्षीण॥
कभू नेत्र-नासा-जल मुखे पड़े फेन।
अमृतेर धारा चन्द्र बिम्बे पड़े जेन॥

चै. च. म. १३.९६-१०४

प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत फेनामृतको लेकर उनके भाग्यवान् भक्त शुभानन्दने पान कर लिया। तत्काल प्रेमोन्मत्त होकर वह नृत्य कीर्तन करते-करते आनन्दसे मूर्च्छित हो गये।

इस प्रकार ताण्डव नृत्य करते-करते प्रभु राजा प्रतापरुद्रकी मण्डलीमें आ पड़े। राजाके सामने आकर प्रेमानन्दमें भयङ्कर पछाड़ खाकर भूतलपर गिर पड़े। राजाने अत्यन्त अधीर होकर व्याकुलतापूर्वक प्रभुको पकड़ लिया। अन्य कोई भक्त यदि इस समय प्रभुको पकड़ता, तो वे वाह्यज्ञान-शून्य होकर कुछ देर मूर्च्छित हो जाते। परन्तु राजाके हस्त स्पर्श मात्रसे वे चेतनाको प्राप्त हुए। इसका मर्म है। लोक-शिक्षा प्रभुका प्रधान कार्य है। वे सर्वज्ञ ईश्वर हैं, उनके लिए अज्ञात कुछ भी नहीं है। प्रभुके सारे भक्तगण देख रहे हैं कि राजा प्रतापरुद्रने दुःसाहस किया है। परन्तु कोई मना नहीं कर रहा है। राजाके प्रति श्रीगौर भगवान्‌की परीक्षा अभी समाप्त नहीं हुई है। सबके सामने राजाको इस दुःसाहसके लिए अवमानित करनेकी उनकी इच्छा है। इसके द्वारा लोक-शिक्षा देंगे, यही उनके मनकी वासना है। राजा प्रतापरुद्रके हस्त स्पर्शसे प्रभुको तत्काल बाह्यज्ञान हो गया। राजाकी ओर भौं टेढ़ी करके उन्होंने एक बार देखा। तब उन्होंने अपने श्रीवदनचन्द्रको अवनत करके मन-ही-मन कहा, "छिः! छिः!! आज मेरा विषयीका अङ्ग स्पर्श हो गया। राम-राम! प्रेमावेशमें श्रीपाद नित्यानन्दने मुझको सावधान नहीं किया। जान पड़ता है, काशीश्वर और गोविन्द अन्यत्र हैं। मेरे अदृष्टमें यह क्या बदा था?" इतना कहकर प्रभु राजाके पाससे अन्यत्र द्रुतगतिसे चले गये। उनके तत्कालीन भावको देखकर जान पड़ता था कि वे राजाके ऊपर विशेष रुष्ट हो गये हैं, और उनसे छुटकारा पानेके लिए ही भाग रहे हैं।

राजा प्रतापरुद्रने प्रभुकी बात अपने कानों सुनी, तथा उनकी गतिविधिको अपनी आँखों देखा। यह देखकर राजाके मनमें बड़ा भय हुआ। "प्रभु तो कृपा नहीं करेंगे"—यह सोचकर उनके मनके दुःखकी

सीमा न रही। राजाका मुँह सूख गया, मुखमण्डलमें कालिमाकी रेखा दीख पड़ी। सार्वभौम भट्टाचार्य पास ही थे, उन्होंने राजाको आश्वासन देते हुए कहा—

—"राजा तुमि ना कर संशय।
तोमार उपरे प्रभुर प्रसन्न आछे मन।
तोमा लक्ष्य करि शिखायेन निज जन॥
अवसर जानि आमि करिब निवेदन।
सेइ काले जाइ करिह प्रभुर मिलन॥
चै. च. म. १३.१७८-१८०

प्रभु राजाके पाससे भागकर अन्यत्र प्रेमावेशमें नृत्य करने लगे।

प्रभुका मधुर भाव

रथ स्थगित करके श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र अब तक प्रभुके नयन-रञ्जन मधुर नृत्यका दर्शन कर रहे थे। प्रभु अब नृत्य करते-करते रथकी प्रदक्षिणा करके रथके पीछे जाकर अपने श्रीमस्तकके द्वारा रथको ठेलने लगे। ठेलते ही रथ हड़-हड़ शब्द करके चलने लगा। सब लोग उच्च हरिध्वनि करने लगे।

कुछ दूर जाकर रथ पुनः रुक गया। प्रभु रथके आगे पुनः नृत्य करने लगे। परन्तु इस बार उन्होंने नृत्य विलासका भाव बदल दिया। अब प्रभुका वैसा उद्दण्ड ताण्डव नृत्य न था, वे गोपीभावमें विभावित होकर मधुर नृत्य करने लगे। कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण-मिलन-कालमें राधिकाका जो भाव था, प्रभुके मनमें इस समय वही भाव उदय हुआ। स्वरूप गोसाईं पास ही थे। प्रभुने एक बार करुण नयनसे उनकी ओर देखा। तत्काल स्वरूपने प्रभुके मनको समझकर भावानुरूप उच्च स्वरसे गीतका सुर पकड़ा—

"सेइ त पराणनाथ पाइलूं।
जाँहा लागि मदन दहने दहि गेलूं।"
चै० च० म० २३.१०८

स्वरूप गोसाईंका कण्ठ मधुर था। वे प्रभुके परम कृपापात्र थे। उनके गीतसे पाषाण द्रवित हो उठता था। वे जब ध्रुहा पकड़कर उच्च स्वरसे गीत गाने लगे तो प्रभु प्रेमावेशमें कमर हिला-हिलाकर नाना प्रकारके भाव दिखलाकर मधुर गोपी नृत्य करने लगे। रथ धीरे-धीरे चल पड़ा। श्रीश्रीनीलाचन्द्र रथपर बैठकर मृदु मन्द मुस्करा रहे थे, और मधुर-मधुर गीत सुन रहे थे। आज उनका सहास्य वदन देखकर भक्तगणने समझा कि उनके हृदयमें भरपूर आनन्द है। प्रभुके नयन, मन और हृदय श्रीजगन्नाथजीमें एकवारगी मग्न हैं, केवल गीत और अभिनयके समय उनके दोनों श्रीहस्त इतस्ततः सञ्चालित हो रहे थे। पलक विहीन कमलनयन-द्वय श्रीविग्रहके श्रीवदनचन्द्रमें संलग्न थे।

ऐसा अद्‌भुत प्रेमनृत्य पहले कभी किसीने देखा न था। भक्तवृन्द आत्महारा होकर प्रभुकी नृत्य भङ्गिमा अवलोकन कर रहे थे, उनके नयन मानो प्रभुके श्रीवदनचन्द्रके ऊपर लिप्त थे, वे अन्य किसी ओर आँखें फेर नहीं सकते थे। वे लोग सचल जगन्नाथको देख रहे थे, उनको अचल जगन्नाथकी ओर देखनेका अवकाश न था।

प्रभु जब स्थिर होकर एक स्थानमें भावावेशमें इस प्रकार नृत्यविलास करते रहे, तब रथारूढ़ श्यामसुन्दर भी स्थिरतापूर्वक खड़े होकर उसका दर्शन करते रहे। प्रभु जब नृत्य करते-करते अग्रसर होते है, रथारूढ़ श्यामसुन्दर भी उनके साथ धीरे-धीरे चलते। श्रीविग्रहकी गति प्रभुकी गतिके साथ मानो एकत्र सम सूत्रमें बँधी जान पड़ती है। सचल और अचल जगन्नाथमें इस प्रकार आनन्दकेलि हो रही है। प्रभु रथारूढ़ जगन्नाथको मानो छल-बल और कौशलसे पकड़ रक्खे हैं—ऐसा प्रतीत हो रहा है।

प्रभु इस प्रकार भावावेशमें कीर्तन करते हुए रथके साथ-साथ चल रहे हैं। उनके साथ उनके सारे भक्तवृन्द हैं। सभी कीर्तनानन्दमें मग्न हैं।

प्रभुका पुनः भाव-परिवर्तन हो गया। अब प्रभुका श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ मिलनेकी वासना रूपी भावका उदय हुआ। उनने इस श्लोकका पाठ किया—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलित मालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसी तरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥*

काव्य प्रकाश १.४; साहित्य दर्पण १.१०.

स्वरूप गोसाईंके सिवा अन्य कोई इस रस-गीतका मर्मार्थ नहीं जानता था। इस श्लोकमें प्रभुके मनका भाव प्रकट होता था। वे कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण मिलन-कालमें श्रीराधिकाके भावमें विभावित होकर यह श्लोक पढ़ रहे थे। श्रीजगन्नाथजीको रथारूढ़ देखकर प्रभुके मनमें इस भावका उदय हुआ। श्रीराधिकाजीने सखीवृन्दके साथ कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त करके आनन्द तो उठाया; परन्तु अपने प्राणवल्लभको मनकी बात कहे बिना न रह सकीं। वह बात थी—

सेइ तुमि सेइ आमि सेइ नव सङ्गम ॥
तथापि आमार मन हरे वृन्दावन।
वृन्दावने उदय कराह आपन चरण ॥
इहाँ लोकारण्य हाति घोड़ा रथध्वनि।
ताहाँ पुष्पारण्य भृङ्ग-पिकनाद शुनि ॥
इहाँ राजवेश सब सङ्गे क्षत्रियगण।
ताहाँ गोपगण सङ्गे मुरली वदन ॥
व्रजे तोमार संगे जेइ सुख आस्वादन।
से सुखसमुद्रेर इहाँ नाहि एक कण ॥
आमा लइया पुनः लीला कर वृन्दावने।
तबे आमार मनोवाञ्छा हयेत पूरणे ॥

चै. च. म. १३.१२०-१२५

प्रभुका भाव श्रीव्रजवनिताका भाव है। व्रजभावमें विभावित होकर उन्होंने श्रीमद्भागवतका एक और श्लोक पूर्ववत् उच्च स्वसे पाठ किया। वह श्लोक था—

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥

श्रीम. भा. १०.८२.४६

भावार्थ—कुरुक्षेत्रमें गोपिकागणके साथ मिलकर श्रीकृष्ण भगवान्ने उनको तत्त्व ज्ञानकी शिक्षा दी। उसे सुनकर गोपिकाएं कहने लगीं—"हे अज्ञानध्वान्त-भास्कर! तुम्हारे तत्त्वज्ञानके आतपसे हम दग्ध हो रही हैं। हम तुम्हारे मुखचन्द्रके मधुकी प्यासी चकोरी हैं। तुम्हारे सुस्निग्ध मुखचन्द्रकी ज्योत्स्नाके आलोकमें हम जीवन धारण करती हैं। अतएव हे गोपीजनवल्लभ! तुम वृन्दावनमें आकर हमको जीवन दान करो। हे नलिनाभ! योगेश्वर लोग तुम्हारे पदारविन्दका अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं। परन्तु हम उसको अपने हृदयके ऊपर धारण करके जीवित हैं। योगेश्वर लोग गम्भीर बुद्धि रखते हैं। वे तुम्हारे पाद-पद्मका चिन्तन कर सकते हैं, उनमें यह शक्ति है। हमारे भीतर वह शक्ति नहीं है; क्योंकि हम बुद्धिहीन अबला जाति हैं, तुम्हारे पाद-पद्मका चिन्तन करते ही हमें मूर्च्छा आ जाती है। तुम्हारे अभय पाद-पद्मका चिन्तन करनेसे जीवगण संसार-कूपसे उद्धार पाते हैं, परन्तु जो तुम्हारे विरह-समुद्रमें डूब रहे हैं, उनका उद्धार

---

* अर्थ—किसी नायिकाने नर्मदा नदीके तटपर कृत क्रीड़ा-निमित्त उस स्थानके प्रति सम्यक् उत्सुक होकर अपने घरपर सखीसे कहा था, कि—"जिससे मुझसे विवाह किया था, वही मेरे अभिमत हैं। परन्तु आज वही चैत्र मासकी रात है वही मालती कुसुमकी सुरभिको लेकर कहने वाली कदम्बवन वायु विद्यमान है, तथापि मेरा मन सुरतव्यापारके विषयमें नर्मदा नदीके तटपर वेतसी तरुके तले जानेके लिए समुत्कण्ठित हो रहा है। अर्थात् मेरा मन उसी स्थानमें जानेकी अभिलाषा कर रहा है।

इस चिन्तनसे नहीं होता। हम व्रजकी गोपिकाएँ हैं, हमने बाल्यकालसे ही सांसारिक सुखका त्याग कर दिया है। अतएव हम संसार-कूपमें पतित नहीं हैं, बल्कि हम तुम्हारे विषम विरह-सागरमें डूब गयी हैं। अतएव तुम्हारे पाद-पद्मका चिन्तन हमारे लिए व्यर्थ है। हे श्रीकृष्ण ! हे प्राणवल्लभ, यदि कहते हो कि—"तुम लोग द्वारका चलो, वहाँ तुम लोगोंके साथ नित्य-विहार करूँगा, तो इसका उत्तर हम क्या दें ? हम किसी भी प्रकारसे वृन्दावन त्याग नहीं कर सकतीं। वहाँ तुम्हारे मयूर-पुच्छके भूषणमें, और मुरली रञ्जित-वदनमें जो माधुर्य प्रकाशित होता है उसीमें हमारी रुचि है। अतएव हे वृन्दावन-धन ! हे वृन्दावन-बिहारी ! तुम श्रीवृन्दावनमें उदय हो जाओ, तुम्हारे व्रजभूमिका दर्शन करनेसे ही हमारा सारा सन्ताप दूर हो जायगा। परन्तु तुम्हारे स्मरणके द्वारा हमारा दुःख दूर न होगा।"

यहाँ प्रभुके मनका यही भाव है। उन्होंने गोपी-भावमें विभावित होकर यह श्लोक पाठ किया। स्वरूप गोसाईंके साथ प्रभु अपने वासापर एकान्तमें बैठकर इन सब श्लोकोंके मर्मका आस्वादन करते हैं। यहाँ गोपी-भावमें विभावित होकर प्रेमाविष्ट होकर वे इन श्लोकोंका पाठ कर रहे हैं, और श्रीजगन्नाथजीके श्रीवदनकी ओर देखकर मृदु-मधुर नृत्य-विलास कर रहे हैं। भावावेशमें प्रभु कभी भूतलपर बैठकर मुँह नीचा करके आँसू बहाते हैं, और तर्जनी नखके अग्रभागसे भूमिपर लिखते है। प्रभु मनका भाव प्रेम-पत्रिका द्वारा प्रकट करके प्राणवल्लभके पास भेजेंगे, यही उनकी वासना है। इसी कारण वे प्रेमावेशमें भूतलपर बैठकर प्रियतमके पास प्रेम-पत्री भेज रहे हैं। स्वरूप प्रभुके पास बैठे हैं, और इस भयसे कि उनकी करांगुली क्षत-विक्षत हो जायगी, वे व्यथित होकर अपने हाथसे प्रभुका हाथ पकड़कर इस कार्यसे निवृत्त कर रहे हैं।

प्रभुका पुनः भाव परिवर्तन हुआ, वे उठ खड़े हुए। भक्तगणके साथ वे अब श्रीजगन्नाथजीको छोड़कर बलराम और सुभद्रा जिस रथपर चढ़े थे, उसी रथके सामने आकर प्रेमावेशमें नृत्य करने लगे। यह मानो उनका अभिमानका भाव है। मानो वे श्रीजगन्नाथजीके प्रति अभिमान करके चले गये। यह मान अति सुन्दर है।

रथ क्रमशः मृदुमन्द गतिसे बलगण्डीमें जा पहुँचा। रथ वहाँ जाकर रुक गया। बलगण्डीके वाम भागमें विप्रशासन नारिकेल वन है, दक्षिण भागमें परम सुन्दर पुष्पोद्यान। इस सुरम्य स्थानको देखते ही मनमें वृन्दावनकी स्मृति उत्पन्न होती है। श्रीश्रीजगन्नाथजी रथमें बैठकर उद्यानकी शोभा अवलोकन कर रहे थे, और प्रभु उनके आगे प्रेमानन्दमें मधुर नृत्य कर रहे थे। प्रभुकी नृत्य-भङ्गी देखकर श्रीविग्रहके श्रीमुखमें हँसी दीख पड़ी।

इस परम पवित्र स्थानमें रथयात्राके दिन श्रीश्रीजगन्नाथजीको भोग लगता है। यह चिर प्रचलित रीति है। जगन्नाथजीके छोटे-बड़े जितने भक्त हैं, आज इस स्थानपर जगन्नाथजीको अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य उत्तम-उत्तम भोग देते हैं। राजा प्रतापरुद्र और उनकी रानियाँ, सभासदगण, तथा नीलाचलवासी सब लोग, सारे विदेशी यात्री आज श्रीश्रीजगन्नाथजीको भोग देते हैं।

जिसको जहाँ इच्छा हो रही है, भोग दे रहा हैं, विस्तीर्ण उद्यानके सामने, पीछे, दोनों बगल, उपवनमें सर्वत्र भोग लगरहा है। बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हुई है। कोटि-कोटि भोग जगत्पति जगन्नाथजीने आज प्रेमानन्दसे आस्वादन किया।

प्रभु श्रान्त होकर प्रेमावेशमें उपवनमें जाकर पीठाके ऊपर बैठ गये। उनका श्रीअङ्ग पसीने-पसीने हो रहा था। उपवनके सुस्निग्ध समीरणसे उनके श्रीअङ्ग शीतल होने लगे। भक्तवृन्द और

कीर्तन-दलके लोग एक-एक करके वृक्ष-तले बैठकर कीर्तनकी थकावटको दूर करने लगे। उपवनकी अपूर्व शोभा हो रही थी। राजा प्रतापरुद्र दूर खड़े होकर सार्वभौम भट्टाचार्यके साथ कुछ गुप्त परामर्श करने लगे।

रथके आगे प्रभुका नृत्य-विलास गौरभक्तोंके लिए ध्यानका विषय है। पूज्यपाद श्रीरूप गोस्वामी अपने श्रीचैतन्याष्टक स्तवमालाके एक श्लोकमें लिखते हैं—

रथारूढ़स्यारादधिपदवि नीलाचलपते-
रदभ्रप्रेमोर्मि-स्फुरित-नटनोल्लास विवशः।
सहर्षं गायद्भिः परिवृत-तनुर्वैष्णवजनैः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥७॥

श्लोकार्थ—जो श्रीनीलाचलपति श्रीजगन्नाथजीके रथके आगे प्रेमोल्लासमें भरकर नृत्य करते-करते विवश होकर गिर पड़ते हैं, तथा वैष्णवगण जिनको घेरकर परमानन्दपूर्वक संकीर्तन करते हैं, वे श्रीकृष्ण चैतन्यदेव क्या पुनर्बार मेरे नयन-पथके पथिक होंगे?

रथके आगे प्रभुका यह नृत्य भक्तोंके चित्त-विनोद और जगतके मङ्गलके लिए था। श्रीभगवान्‌की सारी लीला अपूर्व होती है। प्रभुका यह अपूर्व नृत्य-विलास देखकर जगत्‌के जीवके कलुषित चित्त शुद्ध हो गये। उनका मन आनन्दित हो उठा। उनका जीवन सार्थक हो गया। जिनको भाग्यवश प्रभुका यह भुवन-मङ्गल नृत्य-विलास दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे भव-वन्धनसे मुक्त हो गये। इस अपूर्व लीलाका जो भक्तिपूर्वक श्रवण या पाठ करते हैं, वे भी भव-वन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। श्रीगौराङ्ग भगवान्‌के चरणोंमें उनकी रति-मति हो जाती है, उनको प्रेम-भक्ति प्राप्त होती हैं। श्रीगौराङ्ग धर्ममें सुदृढ़ विश्वास होता है। यह बात पूज्यपाद कविराज गोस्वामी लिख गये हैं। यथा,

इहा जेइ शुने, सेइ गौरचन्द्र पाय।
सुदृढ़ विश्वास सह प्रेमभक्ति हय॥

चै. च. म. १३.१९९

द्वादश अध्याय

राजा प्रतापरुद्रपर कृपा

सब भक्तेर आज्ञा लैल जोड़ हाथ हैया।
प्रभु पद धरि पड़े साहस करिया॥
आँखि बूजि प्रभु प्रेमे भूमिते शयन।
नृपति नैपुण्ये करे पाद सम्वाहन॥

चै. च. म.१४.५,६

उद्यानमें विश्राम करते हुए प्रभु

प्रभु उपवनमें वृक्षके मूलमें कीर्तनसे थककर भूतलपर सो गये। कनक-केतकी सदृश अपने नयन-द्वयको मुद्रित करके वे प्रेमावेशमें जड़वत् निःस्पन्द भावसे भूतलपर सोये हैं। उनके परिधानका अरुण वस्त्र क्षीण कटिदेशको वेष्टित करके अपूर्व शोभा पा रहा है। भावनिधि प्रभु अपने शिव-विरञ्चि-वन्दित, कमला-सेवित रक्तकमल-चरणको फैलाकर शयन करके भावसागरमें मग्न हैं। वे आँखें मूँदकर श्रीकृष्ण भगवान्‌के पादपद्मका ध्यान कर रहे हैं तथा अति

मृदु-मधुर स्वरसे निम्नलिखित भागवतीय श्लोक पाठ कर रहे हैं—

"अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं
हंसाः श्रयेरन्नरविन्द लोचन ।"

श्रीम. भा. ११.२९.३.

अर्थात् हे पद्मलोचन ! इसी कारण परमहंसगण आनन्दप्रद तुम्हारे इन चरण-कमलोंका आश्रय लेते हैं ।

कीर्तनसे श्रान्त भक्तवृन्द उपवनके प्रत्येक वृक्षके मूलमें दो-एक आदमी शयन करके विश्राम कर रहे हैं । सार्वभौम भट्टाचार्य और गोपीनाथ कविराज प्रभुके निकट हैं । सार्वभौम भट्टाचार्य आदि भक्तवृन्दके परामर्शसे आज राजा प्रभुके साथ इस सुरम्य उपवनमें इसी शुभ घड़ीमें मिलेंगे । वह शुभ समय उपस्थित है । यह बात गोपनीय होनेपर भी सार्वभौम भट्टाचार्यने गोपीनाथ आचार्यसे कही है । गोपीनाथ आचार्य इतस्ततः ताकते हुए राजाके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । प्रेमावेशमें निःस्पन्द भावमें कीर्तन श्रान्त भक्तवृन्दको वृक्षके तले सोते देखकर वे मन ही मन बोले—

निष्पन्दमुज्ज्वलरुचः सुशिखाः सुपूर्ण-
स्नेहास्तमः क्षयकृतः प्रति शाखिमूलम् ।
आभान्ति शोभनदशास्त इमे महान्तो
निर्वातमंगलमहोत्सव दीपकल्पाः ॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ८.५१

श्लोकार्थ—अहा ! प्रभुके भक्तवृन्द प्रत्येक वृक्षके तले निर्वात स्थानमें मङ्गलोत्सवके दीपके समान सुशोभित हो रहे हैं । ये सब प्रेमावेशमें स्पन्दहीन (निश्चल) हैं । इनके वचन अति निर्मल हैं, इनके मस्तकपर रमणीय शिखा है, ये सब प्रणय-रससे पूर्ण हैं (स्नेह=तैलसे पूर्ण हैं) अज्ञान (तमः) का नाश करते हैं, इनकी कृष्ण-प्रेमकी विविध दशा (बत्ती) शोभा दे रही है ।

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके बहुत समीप हैं । वे अत्यन्त उद्विग्न होकर राजाके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

राजा प्रतापरुद्र द्वारा पाद-संवाहन

इसी समय राजवेश परित्याग करके राजा गजपति प्रतापरुद्र भयसे दीन वैष्णव-वेशमें साधारण जनके समान प्रभुके पास अकेले आये । उनके साथ कोई सेवक न था । एक साधारण वस्त्र पहने हुए थे । उन्होंने एक बार चारों ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देखा । कीर्तनसे थके सब भक्तगण प्रेमावेशमें वृक्षोंके नीचे विश्राम कर रहे थे । भक्तिके साथ सबको प्रणाम करके उनकी अनुमति लेकर राजा प्रतापरुद्र धीरे-धीरे पादविक्षेप करते हुए अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक प्रभुके पास जा पहुँचे । राजाके उस समयके भावको श्रीपाद कविकर्णपूर गोस्वामीने अपने श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकमें अति सुन्दर एक श्लोकमें वर्णन किया है । यथा,

उत्कण्ठा भयतर्कयोर्बलवतोराच्छादनं कुर्वती
मामुच्चैस्तरली करोति चरणौ हा धिक् कथं स्तम्भुतः।
हंहो दैवपरीक्षयाद्य भवतः प्रायः परीक्षा मम
प्राणानामपि भावनी नहि मम प्राणेषु कोऽपि ग्रहः ॥

चै. चं. ना. ८. ५२

अर्थात् राजा सोच रहे हैं—"हाय ! अति प्रबल तर्क और भयको पराजय करके यह बलवती उत्कण्ठा मुझको अत्यन्त चञ्चल कर रही है । अहा ! मेरे पदद्वय क्यों निश्चल हो रहे हैं ? अहो भाग्य ! आज तुम्हारी परीक्षाके साथ-साथ मेरे जीवनकी भी परीक्षा होगी । मुझको जीवनके प्रति अब कुछ भी ममता नहीं है । यह सोचकर राजा गजपति प्रतापरुद्र सार्वभौम भट्टाचार्यकी चरण-धूलि लेकर एक बार प्रभुके चरण-तलमें बैठकर उनकी पाद सेवाके कार्यमें लग गये । भाग्यवान् राजा अत्यन्त निपुणता पूर्वक प्रभुकी पाद सेवा करने लगे । इस निपुणतामें वे अभ्यस्त नहीं थे, परन्तु प्रभुकी कृपासे असाध्य भी साध्य हो जाता है ।

सार्वभौम भट्टाचार्य राजाके इस साहसको देखकर कुछ चिन्तित हुए । यदि प्रभुने राजाका प्रत्याख्यान किया तो क्या अनर्थ घटित होगा, इस-

भयसे वे अभिभूत हो उठे। गोपीनाथ आचार्य आड़में होकर भक्त और भगवान्‌के इस अपूर्व मिलन-रङ्गको देख रहे थे, और मन ही मन हँस रहे थे।

प्रभुके द्वारा प्रेमालिंगन

प्रभुने प्रेमानन्दके आवेशमें आँखें मूँदकर राजाको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए धीरे-धीरे मृदु मन्द मधुर स्वरमें इस भागवतीय उत्तम श्लोकका पाठ किया—

को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम्।
न भजेत् सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः॥

श्रीम. भा. ११.२.२

श्लोकार्थ—भजनोपयोगी इन्द्रियोंके रहते मरणशील कौन मनुष्य अमर वृन्दके द्वारा उपासनीय श्रीभगवान्‌के चरणारविन्दका भजन नहीं करेगा ?

यह उत्तम श्लोक प्रभु बारम्बार पाठ करने लगे। इस श्लोकका पाठ प्रभुने इस समय क्यों किया ? यह कृपालु रसज्ञ पाठकवृन्द अवश्य ही समझ गये होंगे। प्रभु आँखें मूँदकर वृक्षके नीचे सोये-सोये इससे पहले जिस श्लोकार्द्धका पाठ कर रहे थे, उसके साथ इस श्लोकको मिलाकर देखिये। इससे समझमें आ जायगा कि प्रभुके मनका भाव क्या था, तथा इस समय यह बात बोलनेका क्या तात्पर्य था। श्रीभगवान्‌का पादपद्म-मधु ब्रह्मानन्दसे भी अधिक मधुर और आनन्दप्रद है। परमहंस लोग ब्रह्मानन्द प्राप्त करके कृतार्थ होकर भी श्रीभगवान्‌के पादपद्मकी धूलिके आस्वादनके लिए व्यग्र रहते हैं। राजा प्रतापरुद्र श्रीगौर भगवान्‌के उसी पादपद्म-मधुका आस्वादन कर रहे हैं। अब प्रभुकी बातका तात्पर्य समझ लीजिये।

राय रामानन्द भी इस उपवनमें उपस्थित थे। परन्तु वे दूरसे ही सब कुछ देख रहे थे। उन्हींके आदेश और उपदेशसे राजा प्रतापरुद्र प्रभुकी पाद सेवा करते हुए रास-पञ्चाध्यायीके मधुर श्लोकोंका पाठ करने लगे। राय रामानन्द सुचतुर रसिक भक्त थे। उन्होंने राजा प्रतापरुद्रको ठीक उपदेश दिया था। कौन श्लोक, किस प्रकार किस भावसे पढ़कर प्रभुको सुनाया जाय, यह उन्होंने राजाको सिखला दिया था।

पहले कहा जा चुका है कि प्रभुने राजाको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया है। प्रभुके सुकोमल बाहुयुगलसे आबद्ध होकर राजा प्रतापरुद्र किस प्रकार अवस्थित हैं, यह गोपीनाथ आचार्यके मुखसे निःसृत निम्नलिखित श्लोकका आस्वादन करके भक्तवृन्द समझ ले सकते हैं, यथा,

महामल्लैर्यस्य प्रकट भुजवक्षः स्थलतटी
विनिष्पेयाद्भग्नास्थितिरिव विदध्रे विकलता।
स एवायं माद्यत् करिवरकराक्रान्तकदली
तरुस्तम्भाकारो भवति भगवद्बाहुदलितः॥

चै. चं. ना. ८.५६

श्लोकार्थ—अहा ! जिसके बाहु द्वारा वक्षःस्थलमें निष्पेषण होनेसे महामल्लगण भग्नास्थि होकर व्याकुल हो उठते हैं, वही महाराज गजपति प्रताप-रुद्र श्रीगौर भगवान्‌के कोमल बाहु द्वारा विचलित होकर मत्त करिवरके शुण्डसे आक्रान्त कदली स्तम्भके समान सुशोभित हो रहे हैं।

राय रामानन्दने राजाको सबसे पहले प्रभुकी चरण-सेवा करनेके लिए कह दिया था। शास्त्र कहते हैं—

स वै भगवतः श्रीमत् पादस्पर्शहताशुभः।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम्॥

श्रीम. भा. १०.३४.९

राजा प्रतापरुद्रने सोचा कि, जब शास्त्र कहते हैं कि श्रीभगवान्‌के पाद स्पर्शसे सारे अशुभ विनष्ट हो जाते हैं, तब उनका भय करना व्यर्थ है। यह सोचकर वे चित्त स्थिर करके मनः संयमपूर्वक श्रीगौर भगवान्‌की चरण-सेवाके कार्यमें लग गये।

राजा द्वारा गोपी गीत पाठ

एकान्त निष्ठा और भक्तिपूर्वक अतिशय निपुणताके साथ राजाने प्रभुकी चरण-सेवा करते-करते राय रामानन्दके कथनानुसार गोपीगीतका प्रथम श्लोक सुस्वरमें पाठ किया। भक्तिमान् राजा प्रतापरुद्र भागवतके परम पण्डित थे। वह श्लोक रत्न था—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयति दृश्यतां दिक्षु भावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

श्रीम. भा. १०.३१.१

श्लोकार्थ—गोपिकागण बोली—"हे दयित! तुम्हारे जन्म लेनेसे हमारी ब्रजपुरी जययुक्त हो गयी है। अतः लक्ष्मीदेवी भी ब्रजमण्डलको अलंकृत करके यहाँ नित्य विराजमान रहती हैं। इससे सब व्रजवासी असीम आनन्द प्राप्त करते हैं। हे नाथ! हे प्रिय! अभागिनी व्रजगोपिकाएँ तुम्हारे लिए किसी प्रकार प्राण रक्षा कर रहीं हैं, वे तुम्हारे विरहमें नितान्त कातर होकर तुमको ढूँढ़ती फिर रही हैं। कृपा करके उनको दर्शन दो।"

प्रभुको बाह्यज्ञान नहीं हैं। वे अन्तर्जगतके भाव सिन्धुमें निमग्न हैं। भावविधि प्रभु अब अप्राकृत भाव-राज्यमें विहार कर रहे हैं। यह श्लोक सुनते ही उनका मुखचन्द्र मानो प्रफुल्लित जान पड़ा। इस श्लोकका भावार्थ किञ्चित् श्लेषात्मक था। व्रजाङ्गनाएँ श्रीकृष्णको सम्बोधन करके कह रही हैं, "हे प्रियतम! तुम सर्वानन्द-प्रद हो, यह हम तुम्हारे जन्म-दिनसे अनुभव करती आ रही हैं। क्योंकि तुम्हारे जन्म-दिनके उपरान्त यह व्रजधाम स्वर्गसे भी बढ़कर समृद्धिशाली होता जा रहा है। वैकुण्ठमें तुम्हारी स्वरूप शक्ति लक्ष्मीजीकी सब पूजा करते हैं, परन्तु व्रजधाममें वे यत्न करके व्रजकी ऐश्वर्य-समृद्धिको बढ़ा रही हैं। व्रजमें सभी सुखी हैं, केवल हमलोग तुमको अपना प्राण समर्पण करके दुःखका आश्रय बन गयी हैं। अतएव तुमसे प्रेम-प्रार्थिनी होकर इस व्रजधाममें किसी दुःखसे निष्कृति पानेके लिए हम तुमसे प्रार्थना नहीं करती। परन्तु एक बार हमारी ओर शुभदृष्टिपात करके अपने नेत्रोंको सफल करो। हमको अपने कर्मानुसार फल मिल रहा है या नहीं, यह एक बार देखना तुम्हारे लिए उचित है। तुमसे प्रेम-प्रार्थना करनेवाली व्रजाङ्गनाएँ कङ्गालिनीके समान वन-वन तुमको ढूँढ़ती फिर रही हैं, इससे अधिक प्रिय दृश्य तुम्हारे लिए और क्या हो सकता है? तुम्हारी विरह विधुरा व्रजाङ्गनागण काफी दुःख भोग रही हैं, और यह दुःख तुम दे रहे हो। इसमें सन्देह नहीं कि तुमने हमको विपन्न किया है। तुम्हारे सहचरगण, जिनकी सहायतासे हमारे ये कोमल और सरल प्राण तुझमें समर्पित हुए हैं, उनके द्वारा हमारे प्राणोंको यदि तुम हमारे शरीरोंमें प्रत्यर्पित कर देते तो तुम्हारे विरहानलमें भस्मीभूत होकर हम चिरशान्तिका उपभोग कर पातीं। किन्तु क्या करें? तुमने हमारे प्राणोंको बहुत सुखमें रक्खा है, क्योंकि ये तुम्हारे पास हैं, परन्तु हमारे देहको तुमने विरहानलमें भस्मीभूत कर रक्खा था। अच्छा, यदि इसीमें तुमको सुख है तो यही करो। परन्तु एक बार अपने सुन्दर सरल चन्द्रमुखको दिखलाकर हमारे जन्मकी साध पूर्ण करो। तुम्हारे सामने यही मेरी भीख है।" कृष्ण विरहिनी व्रज गोपिकागणका कैसा सुन्दर आत्म निवेदन है! कैसी सुन्दर प्रार्थना है!

प्रभु इस प्रकार व्रज-गोपिकाओंके भावमें विभावित होकर कृष्ण-विरह सागरमें डूब रहे हैं। वे जिस भावराज्यमें विचरण करते हैं, राजा प्रताप-रुद्रने सुयोग जानकर समयोपयोगी उसी राज्यकी चर्चा चलायी। अतएव प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। आनन्दमें उनका श्रीवदन प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने कहा—"बोलो, और भी बोलो।" राजा

प्रतापरुद्रने तब साहस पाकर अगला श्लोक पाठ किया—यथा,

शरदुदाशये साधुजात सत्
सरसिजोदर श्रीमुषा दृशा।
सुरत नाथ तेऽशुल्कदासिका
वरेद् निघ्नतो नेह किं बधः।।

श्रीम. भा. १०.३१.२

भावार्थ—व्रज-गोपाङ्गनाएँ कह रही हैं—"हे श्रीकृष्ण! तुम्हीं हमारे दुःखके कारण हो। तुमने इच्छापूर्वक हमको ऐसे दुःखके समुद्रमें निमग्न किया है। तुम जो कटाक्षपात करके सुरत याचना करते हुए अभीष्ट फल प्रदान करते हो, उसमें पुनः राशि-राशि प्रेमाग्नि निक्षेप करके अपनी दुःखिनी दासियोंका प्राणबध कर रहे हो। हे निजजन-निष्ठुर! बतलाओ तो—सामान्य अस्त्रकी सहायताके बिना ही नयन-बाणसे बध करनेसे क्या हिंसा नहीं होती? तथा इन निरपराधिनी नारियोंके बधका पाप क्या तुमको नहीं लगेगा? विशेषतः हमारे ऊपर तुम्हारा अपना आधिपत्य नहीं जँचता; क्योंकि हम लोगोंको शुल्क प्रदान करके तुमने क्रय भी नहीं किया, अथवा परिणयके द्वारा बन्धनमें भी नहीं डाला। हम तुम्हारी क्रीतदासी नहीं हैं, तुम्हारी निजस्व सम्पत्ति भी नहीं हैं, जो तुम हमारे ऊपर यथेच्छ व्यवहार कर सको। तुमने इच्छा करके हमको ग्रहण नहीं किया। हम लोग तुम्हारे भुवन-मोहन स्वरूप मदनमोहन रूपसे मुग्ध होकर बिना मूल्य तुम्हारे चरणोंकी दासी हैं। यह दोष हमारा नहीं है, यह तुम्हारा ही दोष है; क्योंकि जो दूसरोंका मोह और उन्मादावस्थामें सर्वस्व अपहरण करते हैं, उस प्रकारके चोरोंके तुम अधिपति हो। तुम चौराग्रगण्य हो।* शरत्कालीन स्वच्छ सरोवरमें विकसित कमलकी सौन्दर्यकान्ति अपहरण करके तुमने जैसे अपने कमलायतन लोचनमें निविष्ट किया है, वैसे ही तुमने अपने अपूर्व नेत्रद्वयको व्रजाङ्गनाओंके हृदयपुरमें बलात् प्रवेश कराकर उनकी आँखोंमें धूल डालकर मोहित कर दिया है। अन्तमें उनके प्राण-मन-धन, सर्वस्व लूटकर चोरके समान भाग गये हो। हमारा दही चुराया गया प्राण-धन तुम्हारे पास धरोहर है। अतएव हे कृष्ण। हे मन-प्राण-चौर! तुम विचार करके देखो, तुमने ही हमारा सर्वस्व अपहरण किया हैं, जिससे हम निष्प्राण हो गयी हैं। तुम कुछ भी क्यों न कहो, ये सहस्र-सहस्र नारी-बधके पाप केवल तुमको लगेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हैं। यदि तुमको नारी-बधके महापापका भय है, तो एक बार दर्शन दो।"

प्रभुके तत्कालीन मनके भाव इसी प्रकारके थे। अतएव यह श्लोक सुनकर उनका हृदय-सिन्धु उन्मथित हो गया, और प्राणोंमें आनन्दकी तरङ्ग उठने लगी। उस समय भी प्रभुकी आँखें मुँदी थी। उनके श्रीवदनपर मानो मृदु मधुर हँसीकी रेखा दिखायी दी। वे उत्कण्ठापूर्वक राजासे बोले—"बोलो, बोलो, उसके बाद क्या हुआ? गोपिकाओंने और क्या कहा?" राजा प्रतापरुद्रके साथ प्रभु इसी प्रकार कथा-वार्त्ता करने लगे। राजाके मनमें आनन्दकी सीमा न रही। उनके हृदयमें आनन्द-सिन्धु उमड़ आया। प्रेमानन्दमें गद्गद होकर उन्होंने व्रजगोपिकाओंकी उक्तिका गोपी-गीतका अगला श्लोक अति कष्टसे धीरे-धीरे पाठ किया—

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसात्
वर्षमारुतात् वैद्युतानलात्।

---

*व्रजे प्रसिद्धं नवनीतचौरं
गोपाङ्गनानाञ्च दुकूलचौरम्।
श्रीराधिकायां हृदयस्य चौरं
चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि॥
अनेकजन्मार्जित पापचौरं
नवाम्बुदश्यामलकान्तिचौरम्।
पदाश्रितानाञ्च समस्तचौरं
चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि॥
—श्रीरूप गोस्वामी कृत चौराष्टक।

वृषमयात्मजात् विश्वतोभया-
द्वृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ।।
श्रीम. भा. १०.३१.३

भावार्थ—कृष्ण-विरह विधुरा व्रजगोपिकागण बोलीं—"हे प्राणरमण । यदि हमारा इसी प्रकार प्राण लेनेकी तुम्हारी इच्छा थी, तो पहले विपदाओंसे तुमने हमारी रक्षा क्यों की ? जब प्राण सङ्कट रूपी विपद्से तुमने इन अभागिनियोंकी रक्षा की है, तब अपने हाथों इनका प्राण बध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं हैं । कालीय नागका दमन करके जो तुमने आत्मत्राण किया था, उससे हमारे जीवनकी रक्षा हुई हैं । एक-एक करके विषजल-पान, अघासुर, वृषभासुर, व्योमासुर, वर्षा, वात, अग्निपात्, वज्रपात आदि विपदसे तुमने हमारी प्राणरक्षा की है। अब मदनके पञ्चवाणसे हम तुम्हारे लिए निरन्तर जर्जरित हो रही हैं । मदनके शररूपी अग्निसे भीत होकर हमने तुम्हारी शरण ली है। इस समय इस विपदसे रक्षा करना तो दूर रहा, तुम जान-बूझकर उससे भी कोटि-गुणा अधिक अपना विरहानल हमारे हृदयमें प्रज्वलित करके प्राणको दग्ध कर रहे हो, क्या इससे तुम्हारे ऊपर विश्वासघातकताका पाप नहीं लगता है ?*

प्रभु जड़वत् निश्चेष्ट होकर राजाके द्वारा पठित श्लोकका भाव ग्रहण कर रहे हैं, घूँट-घूँट व्रजरसका आस्वादन कर रहे हैं, श्लोकके अक्षर-अक्षरसे मधु-क्षरण हो रहा है, प्रभु उसे पानकर परमानन्द लाभ कर रहे हैं। राजा प्रतापरुद्र प्रभुकी पादसेवा कर रहे हैं, और एक-टक उनके श्रीमुखकी अपूर्व शोभाका दर्शन कर रहे हैं। श्लोक-पाठ समाप्त होनेपर प्रभुने मुद्रित नयन हो अति धीरे-धीरे कहा—"कहो, कहो उसके बाद क्या बोलीं ?"

राजाके नयनोंके आनन्दाश्रुकी धारासे प्रभुके रक्त कमल-चरण धौत हो रहे हैं। राजा प्रेमानन्दमें विभोर होकर श्लोक-पाठ करते हैं, उनका कण्ट-स्वर रुद्ध होता जा रहा है। उन्होंने बड़े कष्टसे अगले श्लोकका पाठ किया । यथा,

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्
अखिल देहिनामन्तरात्मदृक् ।
विरवनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ।।
श्रीम. भा. १०.३१.४

भावार्थ—व्रजाङ्गनाएँ सरल हृदय थीं, कृष्ण-प्रेमाकांक्षिणी थीं। उन्होंने सोचा कि अपने प्राण-रमण श्रीकृष्णको स्त्रीवध-पातकी, विश्वासघातक आदि कह दिया गया है। यदि श्रीकृष्ण रुष्ट होकर कहें कि—"तुम लोगोंने हमको कठोर शब्द कहा है, अब मैं सदाके समान तुम लोगोंको दर्शन न दूँगा, मैं निर्जनमें अकेले रहूँगा।" तो बड़ा बुरा होगा। इस प्रकारकी मर्मभेदी चिन्तासे गोपिकावृन्दने कातर होकर श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिए उनसे पुनः प्रिय संभाषण करते हुए कहा—"हे हृदयस्वामिन् ! हे जीवन सर्वस्वधन ! हे प्राण-रमण ! तुम हमारे ऊपर वृथा दोषारोपण न करो। लोकदृष्टिमें तुम यशोदानन्दन रूपमें प्रतीत होनेपर भी तुम जो वस्तु हो वह हमने भागुरी, गार्गी और पौर्णमासीके मुखसे सुना है। तुम सब जीवोंके अन्तरात्मा हो हे अन्तर्यामी । तुम हमारे अन्तःकरणकी सारी बातें जानते हो। तुम विश्वविधाता हो। सामान्य मानवके समान तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। जीवका जन्म कर्मानुसार भोगके लिए होता है, तुम्हारा जन्म विश्वके पालनके लिए है, जीवोंके उद्धारके लिए है। हे यदुकुल-तिलक ! तुम्हारे उदय होनेपर सब जीव आनन्द सागरमें निमग्न हो जाँयगे, सारा जगत् सुधा-रससे परिप्लावित हो जायगा। तब फिर, बतलाओ तो, हे दयामय ! इन विरहिणी व्रज-गोपिकाओंकी मर्म व्यथा बढ़ाकर तुम्हें क्या

* यहाँ व्रज-गोपाङ्गनाओंने जो भावी अरिष्ट और व्योमासुरका उल्लेख किया है, वह केवल गर्गाचार्यके मुखसे श्रीकृष्णकी जन्म-पत्रिकाका फल सुनकर किया है।

सुख हो रहा है ? हम तुम्हारी प्रणय-भिखारिणी, चरणोंकी दासी हैं। हम तुम्हारे अपार प्रेम-समुद्रमें निमग्न हैं। हम अब गोते खा रही हैं। हमारे प्राण कण्ठमें आ गये हैं। अब कृपा करके केश पकड़कर हमको किनारे लगाओ, अथवा अपने प्रेम समुद्रमें निमज्जित करके बिल्कुल आत्मसात् कर लो, यह तुम्हारे इच्छाधीन है। तुम इच्छामय स्वतन्त्र पुरुष हो। इच्छा होनेपर तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम्हारे सृष्ट जीवोंमें अपनी प्रणय-भिखारिणी प्रेयसीगणके प्रति कोई ऐसा व्यवहार नहीं करता। इतनी लाञ्छना, इतनी मर्म व्यथा कोई किसीको नहीं देता। हे दुःखहारी ! तुम अपनी प्रेयसीगणके दुःखमें सुखी हो सकते हो तो कहो, हे रसमय रसिक-शेखर ! क्या हमको तुम्हारे प्रति उलाहनाके दो शब्द बोलनेका भी अधिकार नहीं है ? तुमने नन्द-पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लिया है, इसका कोई लक्षण हमारे देखनेमें नहीं आता। दूसरेके साधारण दुःखको देखते ही यशोदा माता उसको दूर करनेके लिए प्राणपनसे चेष्टा करती हैं। माता यशोदाके इस गुणका रञ्च मात्र भी तुम्हारे भीतर हमको नहीं दिखलायी देता। एक और बात है, यदि तुम कहते हो कि ब्रह्माकी प्रार्थनासे जगतके मङ्गल-विधानके लिए तथा प्रजाकी सृष्टिके लिए तुमने जन्म लिया है, तो यह भी हमको ठीक नहीं जँचता, क्योंकि हम इस किशोर वयसमें ही कोटि-कोटि नारियोंका प्राण हरनेके लिए कृतसङ्कल्प हो, न जाने अवस्थामें तुम क्या करोगे ? प्रजाकी सृष्टि तो दूर रही, तुम्हारे द्वारा प्रजाका विनाश होनेका प्रयत्न हो रहा है। यदि दुष्ट जरासन्ध आदि दुराचारियोंके पर-दारापहरण, परद्रव्य ग्रहण, मात्सर्य और हिंसा आदि विभिन्न पापाचरण और दुष्टताके निवारणके लिए तुम्हारा जन्म ब्रह्माको अभिप्रेत है तो यह भी भ्रमात्मक है; क्योंकि तुमने इस अल्प वयसमें ही इन सब दुष्ट कार्यों और उपद्रवोंमें किसीको नहीं छोड़ा है। हम ही इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। तुम परात्पर परमात्मा हो। नरलीला करनेके लिए तुमने भूतलपर जन्म ग्रहण किया है। इस नरलीलाको छिपानेके लिए ही यदि तुम इन सारे अत्याचारोंको करते हो, तो हम यह कहेंगी कि हमारे ऊपर अब इन सब अत्याचारोंके प्रदर्शनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमने तुमको जान लिया है, तुम्हारे प्रकृत तत्त्वको सुना है, तुम हमारे सामने अज्ञेय होकर भी पकड़में आ गये हो, अब तुमको छिपने-छिपानेकी आवश्यकता नहीं है। तथापि एक बात कहना है, हे बहुवल्लभ ! हे प्राण-रमण ! तुम अपना परदार-ग्रहण दोष त्याग न करना, क्योंकि तुम्हारे इस दोषसे ही हम अनुगृहीत और कृतार्थ हुई हैं।''

भावनिधि प्रभु भावावेशमें भावसागरमें डूब गये हैं। वे व्रज-गोपीभावमें विभावित होकर स्वयं श्रीकृष्णके समीप उपस्थित होकर मानो ये सब बातें कर रहे हैं। इस प्रकारसे वे भाव-जगत्में व्रजभावके राज्यमें विचरण कर रहे हैं। अभी तक प्रभुके कमल-नयन द्वय मुद्रित हैं। वे राजाके द्वारा पठित व्रजगोपिकाओंकी उक्तिके इस रसमय श्लोकका रसास्वादन कर रहे हैं और आनन्द रसमें डूब रहे हैं। प्रेमानन्द-रसमें निमग्न होकर प्रभु प्रेम-गद्गद भावसे बोले—''कहो-कहो, उसके बाद गोपियोंने श्रीकृष्णसे क्या कहा ?''

राजा प्रतापरुद्रका कण्ठ अवरुद्ध हो आया। वे और कोई बात कह न सके। प्रभुकी अवस्था देखकर वे प्रेमाकुल होकर अजस्र आँसू बहाने लगे। प्रभुके नयन मुँदे थे, राजाकी अवस्था वे देख नहीं पा रहे थे। वे अन्तर्यामी भगवान् हैं। सब कुछ जानते हैं, सब कुछ समझते हैं। राजाने बहुत धीरेसे क्रन्दनके सुरमें अति कष्टपूर्वक अगला श्लोक पाठ किया। यथा,

विरचिताभयं वृष्णिधूर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
कर सरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकर ग्रहम्॥

श्रीम. भा. १०.३१.५

व्रज गोपिकाओंने उसके बाद सोचा कि, जान पड़ता है उनके प्राणधन श्रीकृष्ण उनकी कातरोक्तिको सुनकर सदय होकर कह रहे हैं—"हे प्रियवादिनीगण ! तुम्हारी प्रणयकोपोक्ति रूप अभिमानपूर्ण अमृतके पानके लिए ही मैं अब तक छिपा था। अब मेरे मनकी साध पूर्ण हो गयी—अर्थात् तुम लोगोंके मुँहसे ऐसी उलाहनाकी बात सुननेकी मेरी बड़ी साध हो गयी थी, उस साधको तुमने पूर्ण कर दिया, अब तुम क्या चाहती हो—बोलो। मैं उसे पूर्ण करूँगा।" श्रीकृष्णके मुखसे इस प्रकारकी आश्वासन-वाणी सुननेकी कल्पना करके सब गोपाङ्गनाओंने पृथक्-पृथक् प्रार्थना करते हुए अपने मनोभावोंको प्रकट किया। उन्होंने कहा—"हे वृष्णिकुलप्रदीप ! हे देव ! तुम्हारे चरण-कमलमें काम-ध्वंसकी अतुल सामर्थ्य है। हमने कन्दर्प-वाणसे अत्यन्त व्यथित होकर तुम्हारे चरणोंकी शरण ली है, तुम हमारे सिरपर अपना पद्महस्त प्रदान करके इस कामशरको व्यर्थ कर दो। हे करुणानिधि ! हे दयामय ! ऐसा न कहना कि इस सामान्य कार्यके साधनकी शक्ति तुझमें नहीं है। क्योंकि, इस घोर संसारसे भयभीत होकर मुमुक्षुगण जब तुम्हारे चरणोंकी शरण लेते हैं तो तुम उनका सहज ही उद्धार करते हो। तुममें असीम सामर्थ्य है, यह हम जानती हैं। इसी कारण कहती हैं कि इस सामान्य कन्दर्प-भयसे हमारी रक्षा करना तुम्हारे लिए विचित्र नहीं है। यदि कहते हो कि इसके लिए तुम हमारे वक्षःस्थलपर हाथ रक्खोगे, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक और सत्य है, इससे तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि हो सकती है, किन्तु यह होगा नहीं। उस समय हम लोग लक्ष्मीके समान बलपूर्वक तुम्हारा हाथ पकड़कर निवारण कर देंगी।"

प्रभु यह श्लोक सुनकर भावावेशमें जड़वत् निश्चेष्ट हो गये। उनके श्रीअङ्गकी पुलकावली दूनी बढ़ गयी। मुद्रित कमलनयनसे शतधारामें प्रेमाश्रु बह चले। राजा प्रतापरुद्रने विस्मित होकर देखा कि प्रभुके प्रत्येक अङ्ग विधाताकी अपूर्व सृष्टि हैं। उनके प्रत्येक अङ्गकी अपूर्व शोभासे राजाका मनः प्राण मुग्ध हो गया। प्रभु वृक्षके नीचे जड़वत् सोये थे, राजा उनकी चरण-सेवा कर रहे थे। कुछ देरके बाद बाह्यज्ञान होनेपर प्रभु अतिशय उत्कण्ठित भावमें बोले—"कहो, कहो—उसके बाद गोपिकाओंने क्या कहा ?" राजा प्रतापरुद्रने रोते हुए अगला श्लोक पाठ किया—

व्रजजनार्त्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥

श्रीम. भा. १०.३१.६

भावार्थ—दूसरी गोपिका श्रीकृष्णसे बोली—"हे यदुकुलचन्द्र ! हे कृष्ण ! तुम यथार्थ वीर हो; क्योंकि हम सहस्रों गोपियाँ अपने-अपने रूप-यौवन और सौन्दर्य-गर्वमें गर्वित होकर तुमको मुग्ध करनेके अभिप्रायसे अग्रसर हुई थीं, परन्तु तुम्हारा कैसा अद्‌भुत प्रभाव है ? तुमने केवल अपने चन्द्रविनिन्दित मुख-कमलका मधुर हास्य प्रदर्शित करके हमारे सौन्दर्याभिमान और यौवन-गर्वको चूर-चूर कर दिया है। अतएव तुम्हारी सर्वतोभावेन विजय हुई है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अब हम तुम्हारे चरणोंकी आश्रिता दासी मात्र है। ज[illegible] तुमने प्रेम-रणमें परास्त करके हमको अप[illegible] चरणोंमें आश्रय प्रदान किया है, तो देखना, दूसर[illegible] कोई तुम्हारे अधीन, श्रीचरणकी दासियोंको पराजित न करे। क्योंकि इसमें हमारे पराजयके साथ-साथ तुम्हारा भी पराजय हो जायगा, क्योंकि इस समय हम पूर्णतः तुम्हारे प्रेमाधीन हैं, तुम्हारे चरणोंकी आश्रिता दासी मात्र हैं। हमारा शत्रु काम है। वही शत्रु इस समय हमारे देहदुर्गमें आश्रय लेकर तुम्हारे साथ युद्धमें प्रवृत्त है। अब तुम केवल हँसकर उसे नहीं उड़ा सकते। हम तुम्हारी मधुर

हँसीसे मुग्ध हैं, क्योंकि हम अवला हैं। अबला-दमनके उपायस्वरूप केवल हास्य प्रदर्शन करके तुम हमारे इस प्रवल शत्रु कामको निवारण नहीं कर सकोगे। कृपा करके तुम अपने कन्दर्प-दर्पहारी मनोहर मुख-कमलको एक बार हमको दिखाओ। दुरात्मा मदन सदाके लिए हमारे हृदयसे प्रस्थान करे। इससे उसके द्वारा फिर हमको पराजित नहीं होना पड़ेगा।"

प्रभु आवेशमें भरकर प्रेमानन्दमें श्लोक सुन रहे हैं। उनमें अब इस समय बात करनेकी शक्ति नहीं है। पूर्ण घनानन्दसे उनका हृदय भरपूर है, वे जड़वत् निःस्पन्द होकर श्रीअङ्गको शिथिल करके भूतलपर पड़े हैं। राजा प्रतापरुद्र मनके साधसे उनके शिव-विरञ्चि-अभिवाञ्छित, कमलासेवित चरणोंकी सेवा कर रहे हैं; और मृदु-मधुर स्वरसे श्लोक-पाठ कर रहे हैं, उनके नयनचकोर एक बार प्रभुके श्रीवदन सुधाका पान कर रहे हैं; और एक बार चरण मधुका पान कर रहे हैं। वे प्रभुके रक्त कमलचरणकी सेवाका अधिकार पाकर कृतार्थ हो रहे हैं। राजाने जब देखा कि प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर हो गये हैं, और उनको कुछ बोलनेकी शक्ति नही है, इस बार उन्होंने प्रभुकी आज्ञाकी अपेक्षा न करके अगला श्लोक पाठ किया—

प्रणतदेहिनां पापकर्षनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्॥

श्रीम. भा. १०. ३१.७

भावार्थ—व्रजगोपिकागण नित्यसिद्धा हैं। कामको चरितार्थ करके तृप्त होना, उनका उद्देश्य नहीं हो सकता। उनके इस भावके द्वारा श्रीकृष्ण तृप्त होंगे, और उनके सङ्गके प्रभावसे हृदयसे काम भाव दूर हो जायगा—यही गोपिकाओंके मनोभाव हैं। इसी कारण उन्होंने रति प्रार्थना न करके श्रीकृष्णके पास कामध्वंसकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा, "हे मदनमोहन! हे कन्दर्पदर्पहारी! तुम हमारे कुचोंके ऊपर चरण रखकर हमारी कामवृत्तिको पद दलित करके समूल नाश करो, जिससे यह पुनः प्रकट होकर हमको यातना न दे सके।" व्रजगोपिकागण प्रेमवती हैं, वे कामाभिलाषिणी नही हैं। प्रेमके बिना केवल कामकी सहायतासे कभी श्रीकृष्ण भगवान् प्राप्त नहीं होते, यही शास्त्रका अभिप्राय है। गोपियोंने भी अपनी बातके द्वारा यही तत्त्व समझाया। व्रजगोपिकाएँ बहुत चतुर और वाक्पटु थीं। उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि रमणीके वक्षःस्थलपर पदाघात करनेपर पीछे पाप होगा, ऐसा श्रीकृष्ण आपत्ति न करें, यह सोचकर बोलीं, "हे गोविन्द! तुम्हारे कमलचरणपर प्रणत होनेपर देहीके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उन्हीं चरणोंके आघातसे क्या हमारे कामोन्नत कुचद्वय काममुक्त न होंगे? तुम्हारे इन सुकुमार कोमल चरणोंमें इस कार्यसे किसी प्रकारकी व्यथा अनुभूत न होगी, क्योंकि तुम वन-वन गौएँ चराते हो, तुम्हारे चरणोंमें तृणांकुर चुभते हैं, उसका क्लेश तुम सहन कर सकते हो, हमारे स्तनोंपर चरण अर्पण करनेसे वैसा कष्ट तुम्हें न होगा, बल्कि सुखानुभव ही होगा, यह हमारी धारणा है। फिर यदि तुम कहते हो कि नाना रत्नालङ्कार आदिसे मण्डित पयोधरके ऊपर चरण प्रदान करना नितान्त असङ्गत है, तो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि जब हमारे पीनोन्नत पयोधर अलङ्कारसे सुशोभित होनेकी वस्तु हैं, तो फिर ये सर्वैश्वर्यरूपिणी साक्षात् लक्ष्मीके नित्य आवास-स्थल तुम्हारे चरणकमल-रूपी ब्रह्माण्डके सार अलङ्कारसे क्यों वञ्चित हों? परन्तु यदि कहो कि हमारे पतिदेवके भयसे यह कार्य करनेमें अग्रसर नहीं हो रहे हो, तो यह बात भी बेजोड़ है; क्योंकि तुमको किसीसे भी भय नहीं होता—यह बात हमने प्रत्यक्ष देखी है। अतुल पराक्रमशाली महाक्रोधी, विषधर कालीय नागके कालरूप सहस्र फणके ऊपर पद अर्पण करनेमें जब तुम रञ्चमात्र भी भयभीत

नहीं होते, तब तुम इन साधारण गोप-पतियोंसे क्या भय करोगे ?"

प्रभु श्रीअङ्गको फैलाकर सुस्निग्ध वृक्षके तले सोये हुए पूर्णानन्दमें बेसुध होकर इन सब श्रेष्ठ श्लोकोंका रसास्वादन कर रहे थे। उनके मनमें यह इच्छा हो रही थी कि जो इस प्रकारके सुन्दर श्लोक पढ़ रहा है, जिसके द्वारा उनके मनमें इस प्रकार आनन्द प्राप्त हो रहा है, उसको उठाकर एक बार प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करें। परन्तु उनको उठनेकी सामर्थ्य नहीं है, बात कहनेकी भी शक्ति नहीं है। राजा प्रतापरुद्र प्रभुकी ऐसी अपूर्व अवस्था देखकर व्याकुल होकर श्लोक पाठ कर रहे हैं; क्योंकि वे समझते हैं कि उससे प्रभुके मनमें सुख होता है। राजाने इसके बाद अगले श्लोकका पाठ किया। यथा—

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
वुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती—
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥

श्रीम. भा. १०.३१.८

भावार्थ—व्रज-गोपिकाओंने मन-ही-मन कल्पना किया कि श्रीकृष्ण मानो मधुर स्वरसे उनको कह रहे हैं, "हे व्रजसुन्दरीगण ! तुम सब मेरे प्राणोंसे भी प्रियतमा हो। तुम लोग ललनागणमें ललामस्वरूपा हो। जीवन रहते मैं तुम लोगोंके प्रति उदासीन नहीं हो सकता। तुम्हारी प्रेमश्रृङ्खलामें आवद्ध होकर तुम्हारे पास मैं सतत वास करता हूँ। तुम्हारा अपने हाथके कङ्कणके ऊपर जैसे विश्वास और कर्त्तृत्व है, मेरे ऊपर भी तुम्हारा विश्वास और कर्त्तृत्व उससे कम नहीं है। कर-रेखाके समान मैं तुम्हारे साथ नित्य संयुक्त हूँ, यह जान लो।" श्रीकृष्णका यह सरस और मधुर प्रणय वचन सुनकर व्रजगोपिकाएँ आनन्दोत्फुल्ल होकर बोलीं, "हे पद्मपलाशलोचन! हे प्राणरमण! हे प्राणवल्लभ ! तुम्हारे मधुमय, सरस वचन स्रोतमें पड़कर हमारी जैसी अवला नारी तो क्या, शास्त्रतत्त्वज्ञ, विचक्षण पण्डित लोग भी प्रेमावेगमें कितना बह जाते हैं, इसका हिसाब नहीं है। हम नारी जाति है, सरस, मधुर प्रेमपूर्ण बातोंसे ही हम स्वभावतः मुग्ध हो जाती हैं। तुम्हारे मदन-मोहन, अपरूप रूपमाधुरीसे पूर्ण श्रीमुखचन्द्रका स्मरण करके हम बेसुध हो जाती हैं, हम तुम्हारी अधरसुधाके प्रयासी हैं। हे प्राणरमण ! तुम एक बार हमको अपना अधरामृत-पान कराकर हमारे मोहका निवारण करो। हम मोहग्रस्त नारी हैं। हमको तुम इस प्रकार मोहित करो जिससे हमको पुनः बाह्यसङ्ग प्राप्त न हो।"

प्रभु अब भी आँखें मूँदकर श्रीअङ्ग फैलाकर भावसागरमें डूबकर गोपी भावामृतमय श्लोकका पाठ सुन रहे थे। बीच-बीचमें एक-एकबार मानो चौंक उठते थे। जान पड़ता था मानो उठनेकी चेष्टा कर रहे हैं, पर उठ नहीं पा रहे हैं। राजा देखते हैं कि प्रभुको अब भी पुनः श्लोक सुननेकी प्रवल इच्छा है। तब वे अगले श्लोकका पाठ करने लगे। यथा—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः।

श्रीम. भा. १०.३१

भावार्थ—व्रजगोपिकाओंने श्रीकृष्णसे क[illegible] "हे गोविन्द ! तुम्हारे विरहमें हमारी मृत्यु भी न[illegible] हो रही है। नहीं जानती कि तुम्हारे श्रीमुख[illegible]त्राणीकी कैसी अपूर्व महिमा है। उसके श्रवण पर्यन्त मृत्यु भी मेरे पास नहीं आ सकती। सुकृतिवान् जनके मुखसे सुनी गयी तुम्हारी कथा स्वर्गामृत औ[illegible] मोक्षामृतकी अपेक्षा भी अधिक स्वादु, तथा जीवके लिए हितकर होती है—यह हमारा विश्वास है। तुम्हारी कथारूपी अमृतके द्वारा मोह-रोग, भव-ताप तथा तुम्हारे विरहसे उत्पन्न सन्ताप—सब कुछ उपशमित हो जाते हैं। ध्रुव-प्रह्लाद आदि भक्तोंकी

उक्तिमें स्पष्ट रूपसे प्रकाश है जो भगवल्लीलामृतमें निमग्न रहनेवाले व्यक्तिके प्रारब्ध-जनित पापको नष्ट करता है। तुम्हारे लीलामृतकी प्राप्तिके लिए स्वर्ग-मोक्ष आदिकी प्राप्तिके समान क्लेश भी नहीं सहन करना पड़ता। बिना प्रयास और बिना परिश्रमके, आचार्यादि वक्ताके मुखसे निःसृत तुम्हारी लीलाकथाका रस जैसे ही जीवके कर्णकुहरमें प्रविष्ट होता है, वैसे ही सारे पाप समूह अपने आप भाग जाते हैं जैसे वनमें सिंहके प्रवेश करते ही श्वापदगण भाग खड़े होते हैं। अहा! जो लोग यह दुर्लभ भगवल्लीलामृत रस जगत्के जीवोंको बाँटते हैं वे ही यथार्थ दानी है। तुम्हारे लीलाकथामृतके दाताको सर्वस्व प्रदान करनेपर भी उनके ऋणका परिशोध नहीं होता। हमारे भाग्यसे तुम्हारे लीलाकथामृतके दाता कोई महापुरुष यहाँ उपस्थित होकर तुम्हारी लीलाकथा श्रवण कराते-कराते तुम्हारा दर्शन कराकर हमें कृतार्थ करेंगे? हमने सुना है कि जिस स्थानपर तुम्हारी लीलाकथाका गान होता है ,वहाँ तुम स्वयं आगमन करते हो। तुम्हारी लीलाकथाके गानके साथ-साथ यदि तुम्हारा दर्शन प्राप्तहोता है,तभी तुम्हारे नाम-गानकी सार्थकता और मधुरता सिद्ध हो सकती है। नहीं तो हमारे लिए वह महा अनिष्टकर जान पड़ता है। हे प्राणैकवल्लभ! तुम्हारा दर्शन होनेपर, तुम्हारे कथामृतके पानके अभावमें मृत्यु हमारे सामने आकर उपस्थित हो जाती है, वह तप्त तैलमें जल डालनेके समान हमारे सन्तप्त जीवनके अमङ्गलकी ही वृद्धि करती है। हे कृष्ण! यदि कहो कि भागवत् आदि पुराणमें तुम्हारी लीलाकथा इतनी विस्तृत रूपमें क्यों वर्णित हुई? तो इसका उत्तर यह है—व्यासादि कवियोंका ऐसा वर्णन करनेका स्वभाव ही था। तुम्हारी लीला-कथा सुननेसे पाप तो नष्ट होता है, परन्तु अग्निमें दग्ध सुवर्णके समान तुम्हारे विरहानलमें हृदयके प्रदग्ध हुए बिना नहीं। अतएव तुम्हारी लीलाकथा सुनने-पर जो आपाततः विषम दुःख पैदा होता है, उसपर ध्यान न देकर जो सुननेमें प्रवृत्त होते हैं, निःसन्देह वे ही कल्याणके भागी होते हैं। ऐश्वर्य मदमें मत्त दुष्ट लोगोंके द्वारा ही जनता नाना प्रकारके क्लेश भोगती है। प्रचुर धन व्यय करके देश-देश गाँव-गाँव पौराणिकोंको नियुक्त कर केवल जनताका प्राण हरनेकी व्यवस्था होती है। उन पुराण पाठकोंको व्याधके समान हिंसक समझकर बुद्धिमान् पुरुष उनसे दूर ही रहते हैं। व्रजगोपिकाओंने इस प्रकार श्रीकृष्णकी लीलाकथा और कथाकारको वक्रोक्ति द्वारा सर्वोत्कृष्ट बताकर व्याजस्तुति की है।

इस श्लोकका सारांश यह है कि गोपियोंने श्रीकृष्णसे कहा—"हे प्राणवल्लभ! तुम्हारे विरहमें हमारी मृत्यु उपस्थित हुई थी। तुम्हारा कथामृत पान कराकर पुण्यवान् व्यक्तिने मृत्युके हाथसे हमारी रक्षा की है। तुम्हारी लीलाकथा स्वर्णामृत और मोक्षामृतसे भी उत्कृष्ट है, क्योंकि संसार-तप्त और तुम्हारे विरह-तप्त, दोनों प्रकारके लोगोंको यह मृत संजीवनी-सुधाके समान जीवित रखती है। उनकी सारी यन्त्रणाको निवारण करती है। अन्य अमृतद्वय यह नहीं कर सकता। तत्त्वज्ञ बुद्धिमान् पुरुष तुम्हारे लीलाकथामृतकी स्तुति करते है, परन्तु अन्य अमृतद्वयकी स्तुति नहीं करते। तुम्हारा लीलाकथामृत सारे कल्मषका नाश करता है, तथा श्रवण मात्रसे मङ्गल प्रदान करता है। सारे मङ्गल कार्योंसे उत्कृष्ट, सर्वव्यापी और सर्वाभीष्टप्रद है, किन्तु दूसरे अमृतद्वय ऐसे नहीं हैं। अतएव संसारमें जो सुकृतिमान् जन तुम्हारी कथारूपी अमृतका कीर्तन करते हैं, वे भूरिद अर्थात् भूरिदाता हैं। वे सर्वोत्कृष्ट दाता, प्राणदानकर्त्ता हैं। जब तुम्हारे कथामृतदाता ही धन्य हैं, तब तुम्हारा साक्षात् दर्शन करनेवाले साधुजनोंकी तो बात ही क्या कहना? हे कृष्ण! हे प्राणरमण! हम तुम्हारे दर्शनकी भिखारी हैं। हाथ जोड़कर तुम्हारे चरणोंमें हम प्रार्थना करती हैं, तुम एक बार हमको दर्शन देकर कृतार्थ करो।"

राजा प्रतापरुद्रपर कृपा

प्रभु अब स्थिर न रह सके। वे प्रेमावेशमें, जड़वत् निश्चेष्ट भावमें परम आनन्दपूर्वक वृक्षके तले सोये थे। अब प्रबल हुङ्कार गर्जन करते हुए उठ बैठे और भूरिदा भूरिदा कहकर राजाको प्रेमावेशमें प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान किया। उस समय भी प्रभुके दोनों कमलनयन अर्द्धमुद्रित थे। प्रेमावेशमें तन्द्रित थे। वे प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गद भावमें राजासे बोले—

तुमि मोरे दिले बहु अमूल्य रतन।
मोर किछु दिते नाहिं, दिनू आलिंगन॥

चै.च.म. १४. १०

अर्थात् "मैं भिक्षुक संन्यासी हूँ, तुमको देनेके लिए मेरे पास कुछ नहीं है। तुमने मुझे जो वस्तु प्रदानकी, उसके बदलेमें मैंने यह प्रेमालिङ्गन प्रदान किया।" इतना कहकर प्रभु "तव कथामृतं" श्लोक प्रेमावेशमें बारम्बार उच्च स्वरसे पाठ करने लगे। राजा प्रतापरुद्र प्रेमानन्दमें अजस्र आँसू बहा रहे थे, प्रभुके कमलनयनमें प्रेमाश्रुधारकी नदी बह रही थी, दोनों ही प्रेमसे थर-थर काँप रहे थे—

"दुइ जनार अंगे कम्प-नेत्रे अश्रुधार।"

चै. च. म. १४. ११

प्रभु और राजा दोनों ही परस्पर आलिङ्गन-बद्ध होकर कुछ देर बाह्यज्ञान शून्य हो गये। पश्चात् प्रभु प्रेम गद्गद भावमें राजाके प्रति परम मङ्गल, शुभ दृष्टिपात करके मधुर स्वरमें बोले—

"के तुमि ? करिले मोर हित।
आचम्बिते आसि पियाओ कृष्णलीलामृत॥"

चै. च. म. १४. १५

राजा प्रतापरुद्रने रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें गिरकर निवेदन किया।

—"आमि तोमार दासेर अनुदास।
भृत्येर भृत्य कर मोरे—एइ मोर आश॥"

चै. च. म. १४. १६

प्रभुने राजाकी बात सुनकर उनके ऊपर सन्तुष्ट होकर उनको कुछ ऐश्वर्य दिखलाया। क्या ऐश्वर्य दिखलाया ?—इसका कोई विशेष वर्णन किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता। प्रभुने कृपा करके उनको स्व-स्वरूप दिखलाया, यह निश्चित है। ऐसा न होता तो प्रच्छन्न अवतार हमारे प्रभुने राजाको मना नहीं किया होता कि, "यह बात किसीसे न कहना।"

काँहो ना कहिबे इहा निषेध करिला।

चै. च. म. १४.१७

राजा प्रेमानन्दमें ज्ञानशून्य होकर प्रभुके चरणोंमें जड़वत् पड़े रहे। प्रभु क्षणभरमें यह लीलारङ्ग प्रकट करके राजाको उसी अवस्थामें छोड़कर रथारूढ़ श्रीश्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिए तीरके समान द्रुतगतिसे चल पड़े। गोपीनाथ आचार्य पास ही थे। उन्होंने राजाके पास जाकर उनको उठाया। मधुर सान्त्वनाके वचनके द्वारा उनको सुस्थिर करके बोले, "महाराज ! आपकी मनोकामना पूर्ण हो गयी है, भक्तकी जय हुई है, आज हमको परमानन्द प्राप्त हुआ है। प्रभु श्रीजगन्नाथका दर्शन करने गये हैं; चलिये हम भी चलें।"

राजा प्रतापरुद्र अवाक् होकर निःस्पन्द भावसे बातें सुनते रहे। परन्तु प्रेमावेगमें कोई बात बोल न सके। उनका सर्वाङ्ग नयनजलसे सिक्त था। प्रेमानन्दमें सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। वे कठपुतलीके समान सब भक्तोंकी चरण वन्दना करके प्रभुके दर्शनके लिए चले। उनका सौभाग्य देखकर सब भक्तगण उनको धन्य-धन्य कहने लगे। राजा रोते-रोते दीनातिदीनके समान भक्तगणके साथ-साथ रथयात्रा दर्शन करने चले। रथके आगे प्रभुको देखकर दूरसे ही उनको शतबार साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। अब प्रभु रथारूढ़ श्रीजगन्नाथजीकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके कथञ्चित सुस्थिर होकर भक्तगणके साथ पुनः प्रेमानन्दमें उपवनमें लौट

आये। सब देख रहे हैं कि आज राजा प्रतापरुद्रमें अपूर्व परिवर्तन घट रहा है। वे दीनसे भी दीन, तृणसे भी नीचके समान आँखोंमें आँसू भरकर हाथ जोड़कर सब भक्तजनसे कृपा भिक्षा माँग रहे हैं, सबकी चरणधूलि ले रहे हैं। उनकी आँखोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह रही है। मुखपर निरन्तर हरिनाम है। वे दोनों हाथ जोड़े हुए हैं, सिर अवनत रहता है। राजाका यह भक्तजनोचित मधुर भाव देखकर भक्तोंने समझा कि उनकी मनकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी है। प्रभुने उनपर विशेष कृपा की है।

गौरभक्तगणने उसी दिनसे प्रभुका एक नाम रक्खा 'प्रतापरुद्र संत्राता'।

वलगण्डि भोग

राजा प्रतापरुद्रके मनमें आज बड़ा आनन्द है। आज उनके चिर जीवनकी आशा पूर्ण हो गयी है। मनमें आनन्द होनेपर बाहर कार्यमें वह प्रकट होता है, यह स्वाभाविक नियम है। इस नियमके अनुसार राजा प्रतापरुद्रके आदेशसे श्रीश्रीजगन्नाथजीके विशिष्ट राजभोगका आयोजन हुआ है। मध्याह्नकाल उपस्थित है। स्वयं सार्वभौम भट्टाचार्यके ऊपर राजाने इस कार्यका विशेष भार सौंपा है। उनके साथ हैं राय रामानन्द और वाणीनाथ! ये लोग भार-भार, राशि-राशि, उत्तम-उत्तम प्रसाद लेकर यथासमय उपवनमें जा उपस्थित हुए। इसका नाम है वलगण्डि भोग। प्रभुके भोगके निमित्त तथा उनके असंख्य भक्तोंके प्रसादके लिए राजा प्रतापरुद्रने कैसा आयोजन कर रक्खा है, इसका विस्तृत वर्णन कविराज गोस्वामीने अपने श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीग्रन्थमें लिखा है।

भक्त पाठकगण! भक्तिशास्त्रके मतसे श्रीभगवान्‌का प्रसाद दर्शन, ग्रहण तथा वन्दना आदि भक्तिके अङ्ग हैं, यह आपको अवश्य ज्ञात होगा। प्रसादका वर्णन—श्रवण भी भक्तिका अङ्ग है। आप लोग भक्तिपूर्वक श्रीश्रीजगन्नाथजीके प्रसादकी वन्दना करके कविराज गोस्वामी कथित प्रसादका अति सुन्दर वर्णन श्रवण करके अपने कानोंको पवित्र करें। उन्होंने लिखा है—

बलगण्डि भोगेर प्रसाद उत्तम अनन्त।
निसकड़ि प्रसाद आइल—जार नाहिं अन्त॥

चै. च. म. १४. २३

यहाँ इस निसकड़ि अर्थात् दाल-भात-रोटी तरकारीके सिवा अन्य नाना प्रकारके घृतपक्व प्रसादका विशेष विवरण सुनिये—

छेना, पाना, पैड़, आम्र नारिकेल काँठाल।
नाना विध कदलक आर बीजताल॥
नारंग छोलंग ढारा कमला वीजपूर।
बादाम छोहरा प्राक्षा पिण्डखर्जूर॥
मनोहरा लाड्डू आदि शतेक प्रकार।
अमृत गुटिका आदि क्षीरसा अपार॥
अमृतमण्डा छाना-बड़ा आर कर्पूरकूलि।
सरामृत सरभाजा आर सरपुलि॥
हरिबल्लभ सेवति कर्पूर मालति।
डालिमा मरिछालाड्डू नवात अमृति॥
पद्मचिनि चन्द्रकान्ति खाजा खण्डसार।
वियड़ी कदमा तिला खाजार प्रकार॥
नारंग छोलंग आम्र वृक्षेर आकार।
फलफूल पत्रयुक्त खण्डेर विकार॥
दधि दुग्ध दधितक्र रसाला शिखरिणी।
स-लवण मुग्दांकुर आदा खानि खानि॥
लेबू कोलि आदि नाना प्रकार आचार।
लिखिते ना पारि प्रसाद कतेक प्रकार॥

चै० च० म० १४. २४-३२

यह सब स्वनामप्रसिद्ध जगन्नाथजीका उक्त प्रसाद अब तक श्रीक्षेत्रमें पाया जाता है। वलगण्डिके विस्तृत उपवनमें लगभग आधा स्थान प्रसादसे भर गया। प्रसाद दर्शन करके, अत्यन्त प्रसन्न होकर, साष्टाङ्ग प्रणाम करके प्रभुने प्रसादकी वन्दना और

परिक्रमा की। श्रीश्रीजगन्नाथजी नित्य इसी प्रकार राजभोग भोजन करते हैं, यह सोचकर प्रभुके आनन्दकी सीमा न रही। प्रसाद देखकर उनके नेत्र जुड़ा गये।

प्रसादके साथ-साथ पाँच-सात बोझा केया-फूलके पत्तेका दोना आया। एक-एक आदमीके पत्तलपर दस-दस दोने रक्खे गये। भक्तवृन्द और कीर्तनकारी लोगोंको श्रान्त देखकर भक्तवत्सल प्रभु स्वयं उनकी परिचर्यामें लग गये। वे पत्तलोंकी पाँति बिछाकर उनके चारों ओर दोना सजाकर स्वयं परोसने लगे। भक्तगणको बैठाया, परन्तु कोई भोजन नहीं करता था। प्रभुके भोजनपर बैठे बिना क्या कोई भोजन कर सकता था? तब स्वरूप गोसाईंने आकर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—

आपन बैसह प्रभु भोजन करिते।
तुमि ना खाइले केह ना पारे खाइते॥

चै. च. म. १४.३९

प्रभुको तब पता चला कि बात सत्य है। तब वे अपने गणको लेकर भोजन करने बैठे। स्वरूप दामोदर, गोपीनाथ आचार्य, जगदानन्द पण्डित आदि कुछ लोग परोसने लगे। कृष्णकथा-रसरङ्गमें प्रभुने भक्तगणको भर पेट भोजन कराकर भोजन महोत्सवको समाप्त किया। बारम्बार हरिध्वनिसे उपवन प्रकम्पित होने लगा। राजा प्रतापरुद्रने इतनी अधिक मात्रामें प्रसादका प्रबन्ध किया था कि भक्तगणको परम सन्तोषपूर्वक भोजन कराकर भी सहस्रों लोगोंके लिए प्रसाद बच रहा।

प्रभुके आदेशसे गोविन्द तब कङ्गाल, दीन, दरिद्रको प्रसाद-वितरण करने लगे। प्रभु खड़े होकर यह सब कङ्गाल-भोजका तमाशा देख रहे थे, और प्रेमानन्दमें उच्च स्वरसे हरिध्वनि कर रहे थे। उनके साथ-साथ सहस्रों आदमी हरि-हरि ध्वनि कर रहे थे, और प्रेमानन्द सागरमें डूब रहे थे। सब भक्तगण यह अपूर्व कङ्गाल-भोजका तमाशा देखकर प्रभुकी जय-जयकार कर रहे थे। बलगण्डीका उपवन आनन्द काननमें परिणत हो गया, सभी आनन्दसागरमें डूब रहे थे। वहाँ सब लोग वैकुण्ठके सुखका अनुभव कर रहे थे।

रथ-चालन

इस प्रकार प्रेमानन्दमें वन-भोजनोत्सव समाप्त होनेपर कुछ विश्राम करके अपराह्नमें सब मिलकर पुनः रथ खींचने गये। पहले गौड़ीय वैष्णव प्राणपनसे रथ खींचने लगे, परन्तु रथ चल नहीं रहा था। तब उन्होंने हताश होकर रथकी रस्सी छोड़ दी और उदास होकर एक ओर खड़े हो गये। राजा प्रतापरुद्र वहाँ उपस्थित थे। यह देखकर वे अपने दरबारियोंको लेकर व्यस्त होकर रथके सामने आ गये। महाबलशाली पहलवानोंको रथ खींचनेमें लगाया। मत्त गजराज रथकी रस्सीमें लगाये गये, परन्तु श्रीश्रीजगन्नाथजीका रथ टससे मस नहीं हुआ। अंकुशके आघातसे हाथी चीत्कार करने लगे। सब लोग घबरा उठे, परन्तु रथ नहीं चला।

राजा प्रतापरुद्रका मुँह सूख गया, उनके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। सबका मुख विषादसे पूर्ण हो गया। प्रभु जूही फूलके उद्यानमें विश्राम कर रहे थे। यह सब देखकर वे धीरे-धीरे उठकर दूर खड़े होकर श्रीश्रीजगन्नाथजीके चन्द्रवदनका निरीक्षण कर रहे थे। वे प्रेमानन्दमें विभोर थे। इधर क्या हो रहा है—यह देखनेका उनको अवसर न था। अचानक उनको बाह्यज्ञान हो गया, तब सबने देखा और समझमें आया कि बात क्या है। उनके आदेशसे सब हाथी बन्धन-मुक्त कर दिये गये। वे अपने भक्तवृन्दको पुकारकर रथकी रस्सी पकड़नेको आदेश देकर स्वयं रथके पीछे जाकर रथदण्डको मस्तक लगाकर ठेलने लगे। तत्काल रथ हड़हड़ाता हुआ द्रुतवेगसे चल पड़ा। सब लोग परम आनन्दसे हरिध्वनि करने लगे। 'जय जगन्नाथ' ध्वनिसे दिशाएँ काँप उठीं। क्षण भरमें रथ गुण्डिचा

मन्दिरके द्वारपर आ पहुँचा। प्रभुका अपूर्व प्रभाव और दुर्दान्त प्रताप देखकर सब लोग चकित होकर 'जय गौरचन्द्र ! जय नवद्वीप चन्द्र ! जय श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु !' शब्दसे महा कोलाहल करने लगे। सब लोग प्रभुको धन्य-धन्य कहने लगे। राजा प्रतापरुद्र अपने दरवारियोंको साथ लेकर प्रभुकी इस अपूर्व लीलाको देखकर प्रेमानन्दमें अधीर हो उठे।

श्रीनीलाचलचन्द्र अपने सिंहासनपर आकर बैठे। सेवकगणने परम आनन्दपूर्वक पाण्डु विजयोत्सव किया। सुभद्रा और बलराम भी सिंहासनपर बैठे। स्नान-भोग-आरती सब कुछ सम्पन्न हुई। प्रभुने अपने भक्तगणके साथ श्रीमन्दिरके आङ्गनमें नाम-कीर्तन आरम्भ किया। उनका अपूर्व नृत्य-विलास देखकर सब लोग प्रेम-समुद्रके तरङ्गमें डूबने लगे। उस प्रेम-समुद्रके प्रबल तरङ्गमें सारा जगत गोते खाने लगा। सब लोग उन्मत्त होकर 'जय गौरचन्द्र ! जय श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु !' कहकर प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगे।

रथयात्रा महोत्सवमें नीलाचलमें प्रभुका यह अपूर्व लीलारङ्ग देखकर सब देशके लोगोंने उनके श्रीचरणोंका आश्रय लिया। अनेक देशोंसे अनेक लोग इस महोत्सवमें नीलाचलमें आये थे। उन लोगोंने अपने-अपने देशोंमें वापस जानेपर वहाँ वालोगोंको प्रभुकी अद्भुत लीलाकी बात कह सुनायी, उसे सुनकर बहुत-से लोग श्रीगौराङ्ग प्रभुके उपचरणोंमें आकृष्ट हुए। इस प्रकार जगत् श्रीगौराङ्ग-महिमासे पूर्ण हो गया।

श्रीजगन्नाथजीकी सन्ध्या आरती देखकर प्रभु पुनः उपवनमें आये। उस उपवनका नाम जगन्नाथबल्लभ उपवन था। प्रभु इस रथयात्राके बाद कई दिन अपने बासेपर नहीं गये। दिन-रात उसी सुरम्य उपवनमें नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें तथा भक्तोंके साथ कृष्ण-रथा रस-रङ्गमें बिताया।

राजा सपरिवार धन्य

रातमें राजा अपने घर गये। राजकुमारपर प्रभुने कृपा की थी, आज उन्होंने राजापर कृपा की। राज-रानियाँ भी प्रभुकी कृपासे वञ्चित नहीं हुईं। उन सबने प्रभुको पार्षदोंसहित प्रणाम किया, उनपर हीरा, मुक्ता, स्वर्ण न्यौछावर किया। उनकी प्रसादी माला ग्रहण की, और हरिनाम ग्रहण किया।

अतएव राजा प्रतापरुद्र सगोष्ठी गौराङ्ग-भक्त हो गये। उनके अन्तःपुरमें श्रीगौराङ्ग सपार्षद पूजित होने लगे। गौराङ्ग-भजनके आनन्दमें राजा सपरिवार मत्त हो गये।

राजाका अद्भुत स्वप्न

उस दिनरातके अन्तिम पहर राजा प्रतापरुद्रने एक अद्भुत स्वप्न देखा। प्रभुके प्रेम-विकार भावको उन्होंने अपनी आँखों दर्शन किया था। प्रेमावेशमें प्रभुके श्रीवदनसे दिव्य धार बहती थी, नासिकासे प्रेमामृत-धारा बहती थी। उनके श्रीअङ्ग धूलसे, लारसे और नासिकाकी प्रेमधारासे सदा भूषित रहते थे। वह एक अपूर्व दृश्य था ! राजा प्रतापरुद्रने प्रभुके इस प्रकारके प्रेमभावका प्रकृत मर्म न समझकर मनमें सन्देह किया था कि—"क्या ईश्वर इस रूपमें लीला करते हैं ?" यह बात उन्होंने किसीके सामने प्रकट नहीं की थी। रातमें सोते समय राजाने क्या स्वप्न देखा ? सुनिये—

सुकृति प्रतापरुद्र रात्रे स्वप्न देखे।
स्वप्ने गियाछेन जगन्नाथेर सम्मुखे।।
राजा देखे जगन्नाथ-अङ्ग धूलामय।
दुइ श्रीनयने जेन गंगाधारा बय।।
दुइ नासिकाय जल पड़े निरन्तर।
श्रीमुखेर लाला पड़े, तिते कलेवर।।
स्वप्ने राजा मने चिन्ते "ए की रूप लीला।
बूझिते ना पारि जगन्नाथेर कि खेला।।"
जगन्नाथ-चरण स्पर्शिते राजा चाय।
जगन्नाथ बोले "राजा एत ना जुयाय।।

कर्पूर कस्तूरी गन्ध चन्दन कुंकुमे।
लोपित तोमार अङ्ग सकल उत्तमे॥
आमार शरीर देख—धूला-लाला-मय।
आमा परशिते कि तोमार योग्य हय॥
आमि जे नाचिते आजि तुमि गिया छिला।
घृणा कैले मोर अंगे देखि धूला लाला॥
सेइ धूला लाला देख सर्वांगे आमार।
तुमि महाराजा—महाराजार कुमार॥
आमारे स्पर्शिते कि तोमार योग्य हय ?"
एत बलि भृत्य चाहि हासे दयामय॥
सेइ क्षणे देखे राजा सेइ सिंहासने।
चैतन्य गोसाञि बसि आछेन आपने॥
सेइ मत सकल श्रीअंग धूलामय।
राजारे बोलेन हासि "एत योग्य नय॥
तुमि जे आमारे घृणा करि गेला मने।
आर तुमि आमा परशिबा कि कारणे॥"
एइ मत प्रताप रुद्रेरे कृपा करि।
हासेन श्रीगौरांग सुन्दर नरहरि॥

चै. भा. अं० ५.१६६-१७९

राजा प्रतापरुद्र इस अद्‌भुत स्वप्नको देखकर रोते-रोते जागकर शय्यापर बैठ गये। वे प्रभुको देखनेके लिए व्यग्र हो उठे। राजा प्रतापरुद्र अपराधी थे, उनके मनमें विषम आत्म-ग्लानि पैदा हो गयी। वे शय्यासे भूतलपर गिरकर पछाड़ खाकर उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे।

महा अपराधी मुञि पापी दुराचार।
ना जानिनु चैतन्य—ईश्वर अवतार॥

चै. भा. अं० ५.१८१

राजाकी प्रधान रानी चन्द्रकला भी जाग गयीं। राजाको अकस्मात् इस प्रकार विह्वल होकर क्रन्दन करते देखकर विषम व्याकुल होकर कारण पूछने लगीं। राजाने सारी बात खोलकर रानीसे कह दी। तब पति-पत्नी दोनों मिलकर अजस्र आँसू बहाने लगे। प्रातः राजा अति दीन भावमें जगत् वल्लभ उपवनमें प्रभुसे पुनः मिलनेके लिए चले। प्रभु अपने पार्षदोंके साथ बैठे थे। वहाँ जाकर राजा उनके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते स्तुति करने लगे—

त्राहि त्राहि कृपासिन्धु सर्वजीवनाथ।
मुञि पातकीरे कर शुभ दृष्टिपात॥
त्राहि त्राहि स्वतन्त्र विहारी कृपासिन्धु।
त्राहि त्राहि श्रीकृष्ण चैतन्य दीनबन्धु॥
त्राहि त्राहि सर्ववेदगोप्य रमाकान्त।
त्राहि त्राहि भक्तजनवल्लभ एकान्त॥
त्राहि त्राहि महाशुद्धसत्वरूपधारी।
त्राहि त्राहि संकीर्तनलम्पट मुरारि॥
त्राहि त्राहि अविज्ञात-तत्त्व-गुण-नाम।
त्राहि त्राहि परम कोमल गुणधाम॥
त्राहि त्राहि अज-भव-वन्द्य-श्रीचरण।
त्राहि त्राहि संन्यास धर्मेर विभूषण॥
त्राहि त्राहि श्रीगौराङ्ग सुन्दर महाप्रभु।
एइ कृपा कर नाथ न छाड़िबा कभु॥"

चै. भा. अं० ५.१९१-१९७

प्रभुने स्थिर होकर बैठकर राजा प्रतापरुद्रके स्तुतिवादको सुन लिया। प्रसन्न वदनसे राजाके प्रति प्रभुने उस दिन शुभ कृपादृष्टि की। उनको श्रीहस्तसे पकड़कर उठाया। भक्तवत्सल श्रीगौराङ्ग भगवान् सहास्य वदन होकर राजासे बोले—

—"कृष्ण भक्ति हउक तोमार।
कृष्ण कार्य बिने तुमि ना करिह आर॥
निरन्तर गिया कर कृष्ण संकीर्तन।
तोमार रक्षिता विष्णुचक्र सुदर्शन॥"

चै. भा. अं. ५.१९९-२००

इतना कहकर राजाको प्रभुने इशारेसे एकान्तमें बुलाया। भक्तवृन्दने समझा कि प्रभुने एकान्तमें राजाको कुछ कहा है। राजा प्रतापरुद्र प्रभुके सामने काँपते हुए खड़े हैं, प्रभुके श्रीअङ्गमें अपूर्व ज्योति प्रकाशित हो रही हैं। राजाको प्रभुने अपनी अपूर्व षड्भुज ऐश्वर्य-मूर्त्ति दिखलायी। चकित होकर क्षणमात्रके लिए राजाने प्रभुकी उस सर्वोत्तम

ऐश्वर्य-मूर्त्तिको देखा। श्रीगौर भगवान्‌ने राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्यको भी इसी प्रकार ऐश्वर्य मूर्त्ति दिखलायी थी। क्षणमात्रमें प्रभुने अपने ऐश्वर्यको संवरण कर लिया। राजा जडवत् आनन्दस्वरूप होकर निष्पन्द हो रहे थे, प्रभुकी इच्छासे उनको भी बाह्य ज्ञान प्राप्त हुआ। तब प्रभु हँसकर राजासे एकान्तमें बोले—

सबे एकमात्र वाक्य पालिवा आमार।
मोरे ना करिवा तुमि कोथाओ प्रचार॥

चै. भा. अं० ५. २०२

प्रभु कलिके प्रच्छन्न अवतार थे, वे आत्म गोपन करनेके लिए निरन्तर उत्सुक रहते थे। अतएव राजाको यह बात एकान्तमें बोल गये। राजा प्रतापरुद्रको प्रभुने भय दिखलाकर पुनः कहा—"तुम यह बात यदि प्रकट करते हो, अथवा मेरा प्रचार करते हो तो मैं नीलाचल छोड़कर चला जाऊँगा। यह बात निश्चय जानो।" इतना कहकर प्रभुने अपने गलेकी प्रसादी माला राजाके गलेमें पहना दी। उपस्थित भक्तगण हरि ध्वनि करने लगे। राजा प्रतापरुद्रने अति दीन-हीन भावसे बारम्बार प्रभुको साष्टांग प्रणाम करके रोते-रोते प्रभुसे विदा ग्रहण की। भक्तवृन्दने देखा कि राजाके प्रति अब प्रभुकी असीम कृपा है। वे लोग राजा प्रतापरुद्रको धन्य-धन्य कहने लगे।

प्रभुने बारम्बार राजा प्रतापरुद्रको प्रत्याख्यान किया है, मनःकष्टसे राजा जीवन्मृत हो गये थे। वे भक्तिमान् राजा थे। भगवान्‌के सामने भक्तकी परीक्षा बहुत कठिन वस्तु है। उन्होंने उस परीक्षामें उत्तीर्ण होकर प्रभुकी कृपा प्राप्त की। दो दिन पहले उनके समान दुःखी जीव जगत्‌में कोई नही था। उन्होंने अपने मुखसे यह बात बारम्बार कही थी। एक-एक करके सब भक्तोंके सामने मनका दुःख प्रकट करके प्रभुकी कृपा प्राप्त करनेके लिए प्राणकी भी बाजी लगा दी थी। राजाके दुःखसे श्रीनित्यानंद प्रभु, सार्वभौम भट्टाचार्य, राय रामानन्द, गोपीनाथ आचार्य आदि सब भक्तोंको मार्मिक कष्ट था। प्रभुकी कृपाका लेश प्राप्त करनेकी आशासे राजा गजपति प्रतापरुद्रने जैसी गुरुतर मानसिक उत्कण्ठा और उद्वेग सहन किया, उन बातोंको पढ़ने या श्रवण करनेसे पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाते हैं, महापाखण्डीके हृदयमें भी भक्तिका उद्रेक होता है। इस सम्बन्धमें एक कहानी कहूँगा। यह सत्य घटना है। जीवाधम ग्रन्थकार द्वारा लिखित एक लेखमें बहुत पहले श्रीविष्णुप्रिया पत्रिकामें प्रकाशित हो चुकी है। कृपालु पाठकवृन्दकी अनुमति लेकर वह कहानी यहाँ उद्धृत की जाती है।

भोपालके डाक्टर साहब

"सम्प्रति एक महीनासे अधिक हुआ कि मैं सरकारी कार्यसे मध्य भारतमें भूपालमें बदली होकर आया हूँ। भूपालकी बेगमका नाम बहुतोंने सुना होगा। यहाँ मुसलमानी राज्य है, अंग्रेजोंका अधिकार नहीं है। अंग्रेजोंका कानून नहीं चलता है। यहाँके हिन्दू प्रायः मुसलमान भावापन्न हैं। हिन्दुओंकी संख्या भी अधिक नहीं है। यहाँ तीन बंगाली हैं, उनमें दो ईसाई हैं, तीसरे ब्राह्मण हैं, जो फरासडाङ्गाके निवासी हैं, नाम दुर्गाराम वन्द्योपाध्याय है। वे होमियोपैथिक डाक्टर हैं। उम्र ७० वर्ष है। वृद्ध हो गये हैं, परन्तु शारीरिक अवस्था अभी ठीक है। भूपालमें यह ४० वर्षसे हैं। यह एक विज्ञ और कुशल चिकित्सक हैं। १५ रुपये देखनेकी फीस हैं, घरसे बाहर नहीं जाते। उनके साथ बातें करके ज्ञात हुआ कि वे कोई धर्म नहीं मानते। यौवनमें उच्छृङ्खल थे, मुसलमानोंके बीचमें दीर्घकाल तक नित्रास करनेके कारण मुसलमान भावापन्न हो गये हैं। भूपालमें आनेपर पहले उनके साथ मेरा परिचय हुआ। श्रीगौराङ्गके विषयमें बातें चलनेपर उन्होंने कहा कि श्रीगौराङ्गका केवल नाम मात्र सुना है, यह बाल्य कालकी बात है। वे उनके सम्बन्धमें कुछ विशेष नहीं जानते थे। मैंने उनसे विशेष अनुरोध करके प्रथम खण्ड निमाई-

चरित पढ़नेके लिए दिया। उन्होंने भी आग्रह पूर्वक मुझसे पुस्तक ले ली। पुस्तकका कुछ अंश पढ़कर एक दिन मुझसे बोले—"महाशय! ऐसी वस्तु जगत्‌में थी, यह मुझको अब तक किसीने नहीं बतलाया था। मेरे बड़े भाग्य है जो आपने अनुग्रह करके यह अमूल्य धन मुझको दिया है। पुस्तक मुझको बड़ी मधुर लगती है। मैं नहीं जानता था कि प्रभु श्रीगौराङ्ग इतने दयालु थे।" मैंने उत्तर दिया—"जो देनेवाला है, उसीने आपको दिया है, आप सारी पुस्तक पढ़ें।" डाक्टर महाशयकी बात सुनकर मेरे मनमें बड़ा आनन्द हुआ। मन-ही-मन सोचने लगा कि औषधि काम कर गयी है। प्रथम खण्ड उन्होंने समाप्त कर डाला। मुझसे फिर साक्षात्कार होनेपर डाक्टर साहब अतिशय कातर भावसे बोले—"महाशय, मैं जगाई-माधाई हूँ। क्या प्रभु मेरा उद्धार नहीं करेंगे?" यह बात कहते-कहते वृद्धकी आँखोंमें आँसू भर आये, वे और कुछ बोल न सके। मैं डाक्टर साहबकी गति-विधि देखकर चकित हो गया। प्रभुने कृपा की है, यह सोचकर मेरे मनमें अपार आनन्द हुआ। डाक्टर साहबके मुँहकी ओर ताककर देखा कि उनके शुभ्रकेश, और शुक्ल गुच्छ युक्त मुखमण्डलमें दिव्य ज्योति विकसित हो रही है। वे प्रेमानन्दमें श्रीगौर सुन्दरका नाम ले रहे थे और प्रेमाश्रु विसर्जन कर रहे थे। मैंने उनके पास बैठकर कुछ गौर चर्चा की। उन्होंने तन्मय होकर सुना। आते समय उन्होंने मुझसे बारम्बार विनती करते हुए कहा, कि अमिय निमाई चरित द्वितीय खण्ड जैसे हो शीघ्र भेजिये।

उन्होंने यह भी कहा कि यह पुस्तक पढ़नेके लिए उन्होंने सब काम बन्द कर दिया है। पुस्तक भेजनेमें कारणवश कुछ विलम्ब हो गया। परन्तु डाक्टर साहब इसको सहन न कर सके। आदमीपर आदमी भेजकर उन्होंने पुस्तक मँगा ली। इस प्रकार एक-एक करके छः भाग तक सारी पुस्तक उन्होंने १०-१२ दिनमें पढ़ ली। केवल पढ़कर ही चुप नहीं बैठे। उनकी लीला-रसके आस्वादनकी अपूर्व क्षमता देखकर मैं चकित और मुग्ध हो गया। श्रीगौराङ्ग चरितकी प्रत्येक घटनाका आद्योपान्त वृत्तान्त मेरे सामने कहते-कहते वे विभोर हो जाते थे। उनकी आँखोंसे झर-झर अश्रु प्रवाहित होते देखकर मैं आनन्द-विह्वल हो जाता। सारी पुस्तकका पाठ अभी तक समाप्त नहीं हुआ था। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा, "महाशय! राजा प्रतापरुद्रके लिए मेरे मनमें बड़ा दुःख होता है। इतने बड़े भक्तिमान् राजाका इतना आर्त्तभाव, इतना दैन्यभाव कभी सुननेमें नहीं आया। तथापि उनको प्रभुकी कृपा प्राप्त नहीं हो रही है। राजाके दुःखसे मैं रोते-रोते मर गया।" मैंने यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"प्रभुकी कृपा प्राप्त करनेका उनका अभी समय नहीं हुआ था। श्रीभगवान्‌का कृपापात्र बननेके लिए बहुत सुकृति चाहिये। उनके सामने राजा और दरिद्र, सब समान हैं।" राजा प्रताप रुद्रके दुःखसे बूढ़े डाक्टरको मैंने बड़ा ही सन्तप्त देखा।

दूसरे दिन उनसे भेंट होनेपर उन्होंने कहा—"महाशय! गत रात मेंने दो अद्‌भुत स्वप्न देखे हैं, पहला स्वप्न यह है कि—मैं मानो श्रीधाम शान्तिपुरमें अद्वैत प्रभुके घर गया था। वे अपने घरके भीतर मुझको ले गये। अच्छे स्थानमें मुझको बैठाया, और चलते समय कई सुवर्ण मुद्रा मेरे हाथमें देकर मुझे विदा किया। मैंने उसे लिया नहीं। मैंने कहा—"मैं यह लेकर क्या करूँगा? आप पदधूलि मुझे दीजिये।" यह कहते-कहते नींद टूट गयी। दूसरा स्वप्न वृत्तान्त और भी विस्मयजनक है। राजा प्रतापरुद्रने डाक्टर साहबके ऊपर सन्तुष्ट होकर श्रीजगन्नाथजीका मानो प्रसाद लिफाफेमें भेजा है। पत्र तो डाक्टर साहबको मिल गया है, परन्तु प्रसाद खोज रहे हैं, कहीं प्रसाद मिल नहीं रहा है। प्रातःकाल ही आकर उन्होंने मुझसे यह स्वप्न कह सुनाया। पहले दिन हमारे आफिसके

एक क्लर्कके पिताने श्रीक्षेत्रसे आकर मुझको श्रीजगन्नाथजीका कुछ प्रसाद दिया था। मैंने उसे पास रक्खा था। डाक्टर साहबको दिया। उन्होंने अत्यन्त भक्ति भावसे प्रसाद लेकर कहा—"महाशय! मेरा स्वप्न सत्य हो गया है। आप पोष्ट मास्टर हैं। आपने जब अपने हाथोंसे लाकर मुझे प्रसाद दिया तो वह डाकसे ही प्राप्त हुआ। राजा प्रतापरुद्रका पत्र क्या आपने डाक घरसे चुराकर रख लिया था?"

इतनी बात कहते-कहते वृद्ध ब्राह्मणकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगा। श्रीजगन्नाथजीका प्रसाद पाकर मानो वे कृतार्थ हो गये।

कृपालु पाठकवृन्द! इस कहानीको पढ़कर आपने क्या समझा? भक्तचूड़ामणि श्रीप्रतापरुद्रका दुःख क्या था?—श्रीगौराङ्ग-विरह। उनके इस दुःखसे दुःखित होकर डाक्टर साहबने उनके लिए निष्कपट भावसे दो बूँद आँसू गिराकर उनकी कृपा प्राप्त की थी। उन्होंने उनको श्रीजगन्नाथजीका प्रसाद भेज दिया। भक्तकी कृपा प्राप्त करके श्रीगौर भगवान्से सम्बन्ध जुड़ गया। वे क्या थे और क्या हो गये? जय राजा प्रतापरुद्रकी जय! जय श्रीगौराङ्ग प्रभुकी जय! जय गौरभक्त-वृन्दकी जय!"

यह प्रबन्ध एकदम अप्रासङ्गिक नहीं है। सत्-चिन्तनके द्वारा महाजन साधु-वैष्णवके भावमें अपना भाव मिलाकर उनके लिए यदि कोई दो बिन्दु अश्रुजल विसर्जन करे तो उनकी कृपा उससे आकर्षित होगी, उनकी करुणा अर्जित होगी, वे कृपा करके हृदयमें आविर्भूत होकर अपनी स्वभाव-सिद्ध अहैतुकी करुणा विस्तार करेंगे। यही समझानेके लिए यहाँ इस प्रबन्धकी अवतारणा की गयी है।

राजा प्रताप रुद्रकी इस उद्धार-लीलाकी फल-श्रुति पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इस प्रकार लिखी है—

श्रद्धा करि एइ लीला शुने जेइ जन।
अचिराते पाय सेइ चैतन्य चरण॥

चै. च. म. १५.२६५

त्रयोदश अध्याय

रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचलमें भक्तगणके साथ प्रभुका आनन्दोत्सव

भक्तगण संगे प्रभु उद्याने आसिया।
वृन्दावन विहार करे भक्तगण लैया॥

चै. च. म. १४.६४

वृन्दावन-भावमें प्रभुका उद्यान-विहार और जलकेलि

पहले कहा जा चुका है कि रथ-यात्राके बाद कई दिन तक प्रभुने उद्यानमें विहार किया। वलगण्डीका उपवन, जगन्नाथ उद्यान, आइ टोटा (जूही पुष्प उद्यान) आदि सुन्दराचलके निकटवर्ती सुरम्य उपवनमें श्रीगौर भगवान्ने रथयात्राके बाद कई दिन तक भक्तगणके साथ परम आनन्दपूर्वक वन-विहार किया। इस समय प्रभुके मनमें वृन्दावन भाव रहा। कभी श्रीराधा-भावमें विभावित होकर

श्रीकृष्णके दर्शनके आनन्दमें प्रेम-विह्वल होकर मधुर नृत्य करते हैं, कभी श्रीकृष्ण-भावमें श्रीराधिकाके दर्शनकी लालसामें कातर होकर प्रेमावेशमें उपवनमें उन्मत्त भावमें दौड़ रहे हैं। प्रभु सोचते हैं कि श्रीवृन्दावनमें उनके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण आये हैं। वे सखीवृन्दके साथ प्राणवल्लभके सहित प्रेमानन्दमें मत्त हैं। वे श्रीराधा भावमें वृनन्दाव-विहार कर रहे हैं। श्रीकृष्ण भावमें भी वे श्रीराधिकाके सङ्ग-सुखका अनुभव कर रहे हैं—

इस प्रकार व्रजभावमें विभावित होकर प्रभु नीलाचलके मनोरम उद्यानमें वृन्दावन-विहार लीलारङ्ग कर रहे हैं। यह नायक-नायिका उभयविध भावकी संमिश्रण लीला जीवके लिए दुर्बोध्य है। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

तेंह कृष्ण तेंह गोपी परम विरोध।
अचिन्त चरित्र प्रभुर अति सुदुर्बोध॥
इथे तर्क करि केह ना कर संशय।
कृष्णेर अचिन्ध्य शक्ति एइ मत हय॥

चै. च. आ. १७.२९५,२९६

प्रभुके नृत्यलीला रङ्गकी तुलना महाजनगणने गोपिकागणके मधुर नृत्यके साथ की है। गोपिका-नृत्य अति मधुर है। उसमें भावोद्गमके फलस्वरूप विषमय दृश्य दिखलायी नहीं देते। प्रभुके नृत्यमें क्षण-क्षण नित्य नूतन भावका उदय होता है। भावके आवेशमें वे भूतलपर पछाड़ खाकर भीषण रूपमें गिरते हैं और मूर्च्छित हो जाते हैं। यह भक्तवृन्दके लिए सुखद नहीं होता। गोपिका नृत्यमें यह सब नहीं होता। केवल आनन्द और मालिन्य; केवल कोमलता और केवल मधुरता होती है। रास-मण्डलके गोपिका-नृत्य और संकीर्तन यज्ञमें प्रभु और उनके भक्तोंके उद्दण्ड नृत्यके भाव एकदम पृथक् होते हैं। परन्तु इसके भीतर एक बात है। जो नृत्य करता है उसके मनमें जो सुख और आनन्द होता है, उसकी कोई तुलना नहीं है। मनमें भरपूर आनन्द हुए बिना नृत्य करनेमें चरण नहीं उठते, और नृष्य करते-करते आनन्दकी चरम अनुभूति हुए बिना, भावोद्गम रहीं होता। भावोद्म होनेपर चित्तमें धैर्य नहीं रहता, देहज्ञान लुप्त हो जाता है। बाह्यज्ञान जाता रहता हैं। नृत्यानन्द जनित दैहिक क्लेशको नर्तकगण अनुभव नहीं कर सकते। कृष्ण-प्रेमकी यह अद्भुत महिमा पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने अति सुन्दर भावमें वर्णन किया है। यथा,

बाह्ये विषेद-ज्वाला हय, भितरे आनन्दमय,
कृष्णप्रेमार अद्भुत चरित।

चै० च० म० २.४४

इस अद्भुत प्रेमका आस्वादन कैसा होता है? यह बतलाते हुए उन्होंने लिखा है—

एइ प्रेमार आस्वादन, तप्त-इक्षु-चर्वण,
मुख ज्वले, ना जाय त्यजन।
सेइ प्रेमा जार मने, तार विक्रम सेइ जाने,
विषामृते एकत्र मिलन॥

चै. च. म. २.४५

इसका मर्म सुनिये। ईख आगमें तपाकर उष्णावस्थामें चूसनेके समय मुखमें जो उत्ताप लगता है, उससे मुख जलता है, कष्ट होता है, परन्तु इससे ईखके रसका स्वाद बढ़ता है, और उसके कारण मुख-दाह भी प्रीतिजनक और उपादेय जान पड़ता है। इसका भावार्थ यह है कि, तप्त ईखको चबानेसे स्वादके बढ़नेसे, उष्णताके कारण होनेवाला मुख-दाह जैसे तप्त ईख चबानेवालेको अत्याज्य औ[र] उपादेय जान पड़ता है, उसी प्रक[ार] कृष्णप्रेमाधिक्यकी स्वादुताकी अधिकताके कार[ण] नृत्यकालीन विषम क्लेशप्रद पतन और मूर्च्छा भ[ी] प्रेमी भक्तगणके लिए परम सुखकर, और पूर्ण स्वेच्छा-प्रेरित तथा भगवत्-वाच्छित होती है।

अतएव गोपिका नृत्य और सङ्कीर्तनमें प्रेमिक भक्तवृन्दका नृत्य एक वस्तु होनेपर भी विभिन्न भावोद्दीपन, तथा दोनोंकी महिमा और माहात्म्यकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करना ही भजनका रहस्य है। सङ्कीर्तन-लीला और रासलीला जैसे तत्त्वतः एक

वस्तु हैं, वैसे ही ये उभयविध नृत्यलीलारङ्ग विभिन्न भावमें स्फूर्त होनेपर भी वस्तुतः समभावपूर्ण हैं। कलिहत जीवका युगधर्म सङ्कीर्तन है। मधुर नृत्योत्सव इस धर्मका प्रधान अङ्ग हैं। श्रीरासमण्डलस्थ गोपिकागणके नृत्यानन्दका इसमें अनुभव होता है। इस महामहिमामय नृत्योत्सवके सृष्टिकर्त्ता कलिके प्रच्छन्नावतार सङ्कीर्तन यज्ञेश्वर श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र हैं। इस भुवन मङ्गल प्रेम नृत्योत्सवकी जय हो, और जय हो उस परम सुन्दर सर्वचित्ताकर्षक नदियाके ब्राह्मण कुमारकी, जो इस सर्वविघ्नविनाशक हरिसङ्कीर्तन यज्ञके सृष्टिकर्त्ता, तथा प्रेमानन्दमें पुलकिताङ्ग भक्तगणके हृदयमें इस अभूतपूर्व नृत्यानन्दके प्रतिष्ठाता हैं। इस प्रकारके अपूर्व भावविकारपूर्ण नृत्यानन्दकी बात वेदमें भी सुनी जाती है। इसी कारण महाजन ऋषिने लिखा है—

"चारि वेदे गुप्तधन चैतन्येर लीला।"

प्रभु इस समय परमानन्दमें हैं। उपवन-विहार लीलामें वे श्रीश्रीराधाकृष्णके कुञ्जमें युगल मिलन सुखका अनुभव कर रहे हैं। प्रातःकालमें स्नान करके वे श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करते हैं, सारा दिन उपवनमें मनके आनन्दसे भक्तवृन्दके साथ नृत्य-कीर्तन विलास करते हैं। सन्ध्याकालमें आरती दर्शन करते हैं; गुण्डिचा मन्दिरके प्राङ्गणमें मधुर रङ्गभङ्गी करके नृत्यकीर्तन करते हैं, पुनः उपवनमें मन करते हैं। प्रातः और सन्ध्याकाल श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें प्रभुके अपूर्व नृत्यविलासका लीलारङ्ग होता है। वे स्वयं नृत्य करते हैं, तथा भक्तवृन्दको नचाते हैं।

कभू अद्वैत नाचे, कभू नित्यानन्द।
कभू हरिदास नाचे कभू अच्युतानन्द॥
कभू वक्त्रेश्वर, कभू आर भक्तगणे।
सन्ध्या कीर्तन करे गुण्डिचा प्राङ्गणे॥
चै० च० म० १४.६६, ७०

इन्द्रद्युम्न सरोवर उद्यानके पास है। यह नीलाचलमें एक प्रख्यात प्राचीन मनोहर स्वच्छ-सलिलपूर्ण सरोवर है। इच्छामय प्रभुने एक दिन अपने निजजनके साथ उस सरोवरमें जलकेलि करनेकी इच्छा की। प्रभुके साथ लगभग चार सौ भक्त थे—दो सौ नदियाके भक्त, और दो सौ नीलाचलके भक्त। उन चार सौ भक्तोंको साथ लेकर प्रभु जलकेलि लीलारङ्ग करनेके लिए इन्द्रद्युम्न सरोवरमें उतरे। प्रभु वृन्दावन-भावमें विभावित थे, भक्तवृन्दको उसी भावमें विभावित करके जलकेलि करने लगे। श्रीयमुनामें व्रजसुन्दरीगणको लेकर श्रीकृष्णने जिस प्रकार जलकेलि लीलारङ्ग किया था, भावोन्मत्त प्रभु भी वही कर रहे हैं। पहले प्रभु जलमें कूद पड़े, और उनके साथ-साथ शत-शत भक्त जलमें कूद पड़े। उनमें श्रीअद्वैत प्रभु हैं, श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं, श्रीपाद परमानन्द पुरी और ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं हैं। स्वरूप दामोदर सार्वभौम भट्टाचार्य, नरहरि, गदाधर, श्रीवास पण्डित, दामोदर, जगदानन्द, मुकुन्द, मुरारि गुप्त सभी हैं। सबका बाल्य भाव है, सब चपल हो रहे हैं। प्रभु स्वयं सब भक्तोंके शरीरपर और विशेष करके आँखोंमें जलके छींटे देरहे हैं, भक्तवृन्द भी उनको घेरकर उनके सर्वाङ्गमें जलके छींटे दे रहे हैं। एक-एक मण्डली बनाकर भक्तगण प्रभुको घेर लेते हैं। सब जल-मण्डूक वाद्य कर रहे हैं। जलके ऊपर मण्डूकके समान प्लुत गतिके द्वारा आघातसे जो अति विचित्र वाद्य शब्द उत्थित होता है, उसका नाम जल-मण्डूक वाद्य है। इस समय जलकेलिका यह कौशल लुप्त हो गया है। प्रभु जलकेलिके रङ्गमें उन्मत्त हैं। वे श्रीवृन्दावनमें श्रीयमुनामें सखियोके साथ जल-क्रीडा कर रहे हैं—यह उनका विश्वास है। सरोवरके जलमें स्नात श्रीगौराङ्ग प्रभुकी अपूर्व शोभा हो रही है। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने प्रभुके तत्कालीन रूपका वर्णन करते हुए लिखा है—

अरुणारुण पादपङ्कजो
द्रुतचामीकर गौर विग्रहः ।
करुणारुण लोचनद्वय-
स्त्रिविधोत्तापविरामकृत् सदा ॥
अविलम्ब्य स इत्थमञ्जसा
सरसीं सारससालसेक्षणः ।
क्षणवाद् जलकेलि कौतुके
सह तैस्तैरमृतांशुवद्बभौ ॥

चै. च. महाकाव्य १८. ९, १०

अर्थ—जिनका पादपद्म पूर्ण अरुण वर्ण है, श्रीअङ्ग कषित काञ्चनके समान गौरवर्ण है, कमल-नयनद्वय कारुण्य पूर्ण और रक्ताभ हैं। जो आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक—इन त्रिविध भावोंके विनाशक हैं, वे पद्मनेत्र श्रीश्रीगौरचन्द्र उत्सवानन्दाभिलाषी होकर सरोवरमें उतरकर भक्तगणके साथ जलकेलि कौतुकमें अमृतांशु शशधरके समान दीप्तिमान हो उठे।

अब दो-दो भक्तोंमें जलयुद्ध आरम्भ हो गया। प्रभु दर्शक थे। कोई हार रहा था, कोई जीत रहा था। प्रभु जलमें खड़े होकर तमाशा देख रहे हैं, श्रीअद्वैत प्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुमें एक ओर जलयुद्ध हो रहा है। इस युद्धमें शान्तिपुरनाथ हारकर श्रीनिताई चाँदको लगातार गाली दे रहे हैं। दूसरी ओर स्वरूप दामोदर और पुण्डरीक विद्यानिधिमें विषम जलयुद्ध चल रहा है। श्रीवास पण्डितके साथ गदाधर पण्डित जलक्रीड़ामें मत्त हो रहे हैं। वक्त्रेश्वर पण्डित और राघव पण्डितमें जलयुद्ध चल रहा है। प्रभुके सामने राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्य बालकके समान हाथमें हाथ मिलाकर जलकेलि कर रहे हैं। दोनों ही बाल्यभावमें विभावित हैं; मान-संभ्रम, स्थिरता, गम्भीरताका किसीको कुछ बोध नहीं है।

प्रभु इस जलकेलि-रसतरङ्गमें श्रीअङ्गको ढालकर सतृष्ण नयनोंसे कौतुक देख रहे हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य और राय रामानन्दकी अतिशय चपलताको देखकर प्रभु अपनी हँसी न रोक सके। गोपीनाथ आचार्य प्रभुके समीप थे। उनको बुलाकर प्रभु हँसते-हँसते बोले, "देखो आचार्य! भट्टाचार्य और रामानन्द दोनों ही पाण्डित्य और गाम्भीर्यमें प्रामाणिक आदमी हैं। उनके लिए ऐसी चपलता करना ठीक नहीं लगता। उनको ऐसा करनेसे मना कर दो। लोग निन्दा करेंगे।" गोपीनाथ आचार्य प्रभुके एकान्त भक्त थे। उन्होंने हँसकर उत्तर दिया, "हे प्रभु! तुम्हारे कृपा समुद्रके एक बिन्दुमें सुमेरु, मन्दराचल आदि बड़े-बड़े पर्वत डूब जाते हैं, उसमें ये क्षुद्र दो पहाड़ डूब जाँय, इसमें कहना ही क्या? तर्कनिष्ठ मन भट्टाचार्यको सूखी खली खाते-खाते जीवन बीत गया, उनको तुमने अपना लीलामधु पान कराकर उन्मत्त कर दिया है, यह केवल तुम्हारी अपार कृपाका निदर्शन मात्र है।"

गोपीनाथ आचार्य सार्वभौम भट्टाचार्यके बहनोई थे। इस सुयोगमें उन्होंने पाण्डित्याभिमानी सालेके लिए तीव्र श्लेषात्मक वाक्यका प्रयोग किया। यह सुनकर प्रभु मधुर मुस्कराये।

उसके बाद प्रभुने अद्वैताचार्यको पकड़कर जलमें उनके वक्षःस्थलपर बैठकर शेषशायी अनन्त देवकी लीला प्रकट की। महाविष्णुके अवतार अद्वैत प्रभु भी प्रेमानन्दमें निजशक्ति प्रकट करके प्रभुको वक्षःस्थलपर धारण करके सरोवरके जलके ऊपर तैरने लगे।* भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें उच्च हरिध्वनि करने लगे।

इन सब गणमान्य लोगोंकी जलक्रीड़ा देखने लिए वहाँ बहुत-से लोग जमा हो गये। सबने देखा कि यह एक अद्भुत काण्ड है। चार सौ भव्य-भव्य लोग सरोवरके जलमें बालकके समान बहुत देर तक जो जलक्रीड़ा रङ्ग करते रहे, यह भी उनका एक प्रधान भजनाङ्ग था। वैष्णवके भोजनमें भजन,

* सुनिपाल्य कृपानिधिस्तदा प्रभुमद्वैतमधोजलान्तरे।
तदुपर्यपि सालसः स्वयं परिसुप्तः स ययौ सनिद्रताम् ॥

चै० च० महाकाव्य १८. १४

क्रीड़ामें भजन, शयनमें भजन—वैष्णवके सब कार्यमें भजन होता है, क्योंकि वे जो कुछ करते हैं, प्रेमानन्दमें कृष्ण-सेवामें नियुक्त होकर कृष्णप्रीत्यर्थ करते हैं। इसमें उनकी आत्मसुखाभिलाषा नहीं होती। व्रजगोपियोंकी श्रीकृष्णके प्रति अनुरक्ति जैसे काम नहीं है, प्रेम है—उसी प्रकार वैष्णवगणका प्रभुके साथ जो क्रीड़ा रङ्ग है, वह व्यर्थ कालक्षेप करनेवाला क्रीड़ा-कौतुक रङ्ग नहीं है, वह उनका भजनाङ्ग है।

प्रतिदिन प्रभुका इसी प्रकार भक्तगणके साथ जलकेलिरङ्ग कई दिन तक चलता रहा। इन्द्रद्युम्न सरोवर और नरेन्द्र सरोवर एक दूसरेके पास हैं। इन दोनों सरोवरोंमें प्रभुने भक्तजनके साथ नित्य जलकेलिरङ्ग किया। यह जलविहार केवल भक्तगणको लेकर ही नहीं, बल्कि सुसज्जित नौकापर दिव्य अलङ्कारसे विभूषित राम-कृष्णको परम समारोहके साथ चढ़ाकर सरोवरके ऊपर नौकाविहार होता है। लाखों-लाखों आदमी एकत्रित होकर जलमें घूम-फिरकर अपूर्व जलविहारोत्सव दर्शन करते हैं। इसी कारण इस जलक्रीड़ारङ्गका विशेषत्व और अभिनवत्व है।

श्रीगोविन्द रामकृष्ण विजय नौकाय।
लक्ष लक्ष लोक जले आनन्दे वेड़ाय॥

चै. भा. अं. ६. १२५

श्रीनीलाचल धाममें बहुत-से साधु-संन्यासी तथा ज्ञानी पण्डित रहते हैं। प्रभुकी इस जलकेलि और नृत्य-कीर्तन विलासरङ्गके दर्शनका सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं है। जो लोग अभागे हैं, वे लोग प्रभुके इस अपूर्व लीलारङ्गके दर्शनके आनन्दसे वञ्चित हैं। इन अभागे लोगोंमें पण्डित, ज्ञानी, वेदान्ती, मायावादी संन्यासी आदिकी संख्या अधिक है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

अल्पभाग्ये श्रीचैतन्य गोष्ठी नाहि पाइ।
केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि॥
भक्ति बिना केवल विद्याय तपस्याय।
किछुइ ना हय, सबे दुःख मात्र पाय॥

साक्षाते देखह एइ सेइ नीलाचले।
एतेक चैतन्य-सङ्कीर्तन-कुतूहले॥
जत महा-महा-नाम संन्यासी सकल।
देखितेओ भाग्य कारो नहिल केवल॥
आरो बोले "चैतन्य वेदान्त पाठ छाड़ि।
कि कार्य करेन कीर्तन-हुड़ाहुड़ी॥
सर्व्वदाइ प्राणायाम—एइ से यतिधर्म।
नाचिब काँदिब—एइ कि संन्यासीर कर्म॥

चै. च. अं. ६. १२८-१३३

प्रभुके प्रकट कालमें भी इन सब लोगोंका ऐसा ही मत था। यदि आज ऐसे मतके लोग हों तो आश्चर्य ही क्या है? बड़े भाग्यसे जीव गौरभक्त पदवी प्राप्त करता है। थोड़े पुण्यसे किसीकी श्रीगौराङ्ग धर्ममें रति-मति नहीं होती।

विद्याभिमान, पाण्डित्याभिमान, जाति-कुलका अभिमान, ज्ञानका अभिमान श्रीगौराङ्गधर्मकी साधनामें अनुकूल नहीं होता। 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोकका आचरण अभिमान-शून्य होकर करना पड़ता है। वैष्णव होना बड़ा कठिन काम है। प्राचीन महाजन कवि लिख गये हैं—

वैष्णव हइब बलि मने छिल साध।
तृणादपि श्लोके ते पड़े गेल वाद॥

श्रीचैतन्य भागवतमें लिखा है कि,

"वैष्णव चिनिते पारे काहार शकति।"

चै. भा. म. ६. २३८

अर्थात् वैष्णवको पहचानना सरल नहीं है।

श्रीनीलाचलमें इस वर्ष रथयात्राके उपलक्ष्यमें जो अपूर्व आनन्दोत्सव हुआ, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इतना लोक समागम भी नहीं हुआ था।

जलविहारके बाद उपवनमें बैठकर नित्य भोजन विलास उत्सव होने लगा। महाराज प्रतापरुद्रके आदेशसे, तथा सार्वभौम भट्टाचार्यके प्रयत्नसे कई दिन तक उपवनमें नित्य नवीन उत्तम प्रसाद आता था और प्रभु भक्तगणके साथ प्रेमानन्दमें भोजन विलास लीलारङ्ग करते थे। जूही पुष्पोद्यानमें प्रभु

भक्तवृन्दके साथ अधिक देर तक रहते थे। यह महाराज प्रतापरुद्रका बड़ा प्रिय उपवन था। यहाँ केवल जूही पुष्पकी बाटिका थी। सुगन्धवाही धीर समीरण इस सुन्दर पुष्पगन्धको लेकर समस्त नीलाचलको सुगन्धित कर देता था। प्रभु यहाँ परम आनन्दपूर्वक श्रीवृन्दावन विहार लीला करते थे। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने श्रीनीलाचलके उपवनकी शोभाका अति सुन्दर वर्णन किया है। कृपालु संस्कृत पाठकवृन्दके आस्वादनके योग्य कुछ श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

नवजाति-कुन्द-करवीर-यूथिका-
नवमालिका-ललितमाधवी चयैः।
बकुलैः रसाल शिशुभिश्च चम्पकैः
परितः समावृतममन्दविभ्रमम्॥
परितः प्रसूनभरमाश्लिषंस्तथा
सरसां वहन् सरसशीकरोत्करन्।
तदनुसङ्गि-घर्मकणिकाः समाहर
न्नभजत् प्रभुं लघु लघु क्षणं मरुत्॥
वनदेवताभिरनिशं मनोरमै-
र्नवपल्लवैर्नवशिरीषचामरैः।
लघुवीज्यमानतनुरुत्सुकात्मभिः
सदृशं बभौ विहित गौरविग्रहः॥

चै. च. महाकाव्य १७. ४-६

प्रभुकी अपूर्व रूपराशिका दर्शन करके उपवनके तरु-तृण-लता राजि सब कुसुमित और प्रफुल्लित हो उठे। प्रत्येक वृक्षके नीचे प्रभु नृत्य करते थे। प्रत्येक लताके साथ वे मानो प्रेमरसकी बातें करते थे। मृदुमन्द समीरण बह रहा था, भ्रमर-भ्रमरी तथा कोकिलकुल सुमधुर प्रेमका गान गाते थे। प्रभुके प्रियभक्त मधुर कण्ठसे गान करनेवाले मुकुन्द और वासुदेव अपने-अपने भावके अनुसार एक-एक वृक्षके नीचे बैठकर एक-एक मधुर गीत गारहे थे। प्रेमावेशमें प्रभु वह अपूर्व व्रजरसमय गीत सुनकर प्रेमानन्दमें हाव-भावसे मधुर-मधुर प्रेमनृत्य करते थे।

यह प्रभुका मधुर नृत्य वस्तुतः गोपिका नृत्य था। वे धीरे-धीरे कमर डुलाकर नाना प्रकारके हाव-भाव दिखाकर मधुर-मधुर नृत्य करते थे। प्रभुका भाव व्रजगोपिका-भाव है। वे मानो एक चौदह वर्षकी कृष्णविरहिणी व्रजबाला हैं। उनके श्रीवदनको देखनेसे ही ऐसा लगता है। व्रजगोपिका भावमें विभावित होकर प्रभु वृन्दावनमें वनविहार कर रहे हैं।

इतनी देर तक वे अकेले नाच रहे थे। अब वक्त्रेश्वर पण्डितको प्रभुने नाचनेका इशारा किया। वक्त्रेश्वरके समान सुन्दर सुपुरुष प्रभुके भक्तवृन्दमें कोई दूसरा न था। प्रभुको वक्त्रेश्वरका नृत्य बड़ा अच्छा लगता था। वक्त्रेश्वर पण्डितके नृत्यमें मधुरता थी, वे नृत्यकलामें अति प्रवीण थे। सारा दिन नृत्य करनेपर भी उनको थकावट नहीं जान पड़ती थी। वे अतिशय नृत्यप्रिय थे। प्रभुने उनके भीतर शक्ति-सञ्चार करके उनको ऐसा बनाया था।

वक्त्रेश्वर पण्डितने जब नाचना प्रारम्भ किया तो प्रभुने स्वरूप दामोदरको लेकर मधुर स्वरमें धीरे-धीरे कीर्तनका सुर पकड़ा। अब जो मधुर स्वरमें मधुर कीर्तनका तरङ्ग उठा, इससे वहाँ प्रेमका ज्वार उमड़ पड़ा। उस ज्वारके स्रोतमें जगत् बह चला।

होरा पञ्चमी महोत्सव

नौ दिन तक प्रभु नीलाचलके उपवनमें इस प्रकार प्रतिदिन भक्तगणके साथ प्रेमानन्दमें वनविहार लीलारङ्ग करते रहे। इसके बाद होरा पञ्चमी उत्सवका दिन आया। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें श्रीलक्ष्मीदेवी जिस पञ्चमी तिथिमें रथारूढ़ श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने जाती हैं, उस दिन नीलाचलमें जो उत्सव होता है, उसका नाम है "होरा पञ्चमी"। महाराज गजपति प्रतापरुद्रने काशीमिश्रको बुलाकर कहा—

कालि होरा पञ्चमी—श्रीलक्ष्मीर विजय।
ऐछे उत्सव कर जैछे कभू नाहि हय॥

महोत्सवेर कर तैछे विशेष सम्भार ।
देखि महाप्रभुर जैछे हय चमत्कार ॥
चै. च. म. १४. १०५, १०६

पहले कहा जा चुका है कि इस वर्ष रथयात्रा उत्सव अतिशय समारोहके साथ सुसम्पन्न हुआ था। पहले कभी किसीने इतना समारोह नहीं देखा था। इतनी भीड़ भी पहले कभी नहीं हुई थी। राजा प्रतापरुद्र प्रभुकी सन्तुष्टिके लिए तुच्छ ऐश्वर्यकी ममता छोड़ चुके थे। वे चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने आदेश किया—

"ऐछे उत्सव कर जैछे कभू नाहि हय।"

कृपालु पाठकवृन्द इसीसे समझ सकते हैं कि "होरा पञ्चमी" उत्सवमें राजा प्रतापरुद्रने कैसा उद्योग करनेका आदेश दिया था। राजाने यह भी कहा कि—

ठाकुरेर भाण्डारे, आर आमार भाण्डारे ।
चित्र वस्त्र आर छत्र किङ्किणी चामरे ॥
ध्वज पताका घण्टा दर्पण करह मण्डली ।
नाना वाद्य नृत्ये दोला करह साजनी ॥
द्विगुण करिया कर सब उपहार ।
रथयात्रा हैते जैन हय चमत्कार ॥
सेइत करिह—प्रभु लञा निजगण ।
स्वच्छन्दे आसिया जेन करेन दर्शन ॥
चै. च. म. १४. १०७-११०

राजाका यह आग्रह उनकी श्रीगौराङ्गके प्रति पूर्ण प्रीतिका परिचायक है। राजाने अति सुस्पष्ट भाषामें काशीमिश्रसे कहा था कि, "इस प्रकारसे उत्सवका आयोजन करें, जिसे देखकर चैतन्य महाप्रभुके मनमें सन्तोष हो, और ऐसा प्रबन्ध करें कि वे भक्तवृन्दके साथ स्वच्छन्द होकर महोत्सवका दर्शन कर सकें।"

गौरभक्त राजाने श्रीगौराङ्गकी पूजाकी व्यवस्था पहले ही की थी। दूसरे दिन "होरा पञ्चमी" महोत्सव अतिशय धूमधामके साथ प्रारम्भ हुआ। राजाके आदेशसे काशीमिश्रने प्रभुको भक्तगणके साथ समादर पूर्वक अच्छे स्थानमें बैठाया। स्वरूप दामोदर गोसाईं प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त थे। वे वृन्दावन रसतत्त्व जितना समझते थे, दूसरोंको उसका कणमात्र भी नहीं ज्ञात था। प्रभुने स्वरूप गोसाईंसे पूछा—

यद्यपि जगन्नाथ करे द्वारका-विहार ।
सहज प्रकट करे परम उदार ॥
तथापि वत्सर मध्ये हय एक बार ।
वृन्दावन देखिबारे उत्कण्ठा अपार ॥
वृन्दावन सम एइ उपवनगण ।
ताहा देखिबारे उत्कण्ठित हय मन ॥
बाहिर हइते करे रथयात्रा छल ।
सुन्दराचल जाय प्रभु छाड़ि नीलाचल ॥
नाना पुष्पोद्याने ताहाँ खेले रात्रिदिने ।
लक्ष्मीदेवी संगे नाहि लय कि कारणे ?
चै. च. म. १४. ११५-११६

प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त स्वरूप गोसाईं रसज्ञ थे। प्रभुके मनको जानकर उत्तर दिया—

—शुन प्रभु कारण इहार ।
वृन्दावन-क्रीड़ाय लक्ष्मीर नाहि अधिकार ॥
वृन्दावन क्रीड़ार सहाय गोपीगण ।
गोपीगण बिना कृष्णेर हरिते नारे मन ॥
चै. च. म. १४. १२०-१२१

प्रभुने यह सुनकर कहा—"सबको ज्ञात है कि श्रीजगन्नाथ रथयात्रामें गये हैं, साथमें बहिन सुभद्रा और बड़े भाई बलदेव हैं। गोपीगणके साथ उपवनमें जो लीलाकी गयी, वह गुप्त है, किसीको ज्ञात नहीं। अतएव प्रकटमें श्रीकृष्णका कोई दोष नहीं है। तब लक्ष्मीजी इतना रोष क्यों करती है?"

यह लक्ष्मीदेवीका रोष उत्सवके उपलक्ष्यमें प्रभुने अपने आँखों देखा। यह बात आगे कही जायगी। श्रीकृष्णकी रासलीलामें लक्ष्मीदेवीका अधिकार नहीं था। गोपियोंकी अनुगामिनी हुए बिना श्रीवृन्दावनकी रासलीला रङ्गका अधिकार नहीं मिलता। लक्ष्मीदेवी नारायणकी वक्षविलासिनी

परम ऐश्वयवती हैं, वे व्रजाङ्गनाओंकी अनुगामिनी कैसे हो सकती थीं ? इसके कारण श्रीकृष्णके ऊपर उनका मान कैसा था, इसका अभिनय दिखलाना ही होरा लक्ष्मीके उत्सवका मुख्य उद्देश्य है। स्वरूप दामोदर गोस्वामी प्रभुके प्रश्नके उत्तरमें बोले, 'प्रेमवती नारीका स्वभाव ही ऐसा होता है। प्राणवल्लभकी उदासीनतासे उनके मनमें मानसूचक क्रोधभावका उदय हुआ है। इस क्रोधभावका मूल केवल अभिमान है। नायिकाका अभिमानपूर्ण क्रोधभाव नायकके लिए अत्यन्त सुखकर होता है।" प्रभु और स्वरूप दामोदर गोसाईंमें इस प्रकार व्रजरस-कथा हो रही थी, उसी समय क्रोधाविष्ट, उन्मत्त-सी लक्ष्मीदेवी सुवर्णखचित डोलीपर चढ़ कर शत-शत देवदारियोंसे परिवेष्टित होकर श्रीजगन्नाथजीके सिंहद्वारपर आकर उपस्थित हो गयीं। लक्ष्मीजीके आदेशसे उनकी दासियोंने क्या किया ?सुनिए—

श्रीजगन्नाथेर जत मुख्य भृत्यगण।
लक्ष्मीदासीगण तारे करेन बन्धन॥
बान्धिया आनिया पाड़े लक्ष्मीर चरणे।
चोरे जेन दण्ड करे लय नाना धने॥
अचेतनवत् तार करेन ताड़ने।
नाना मत गालि देन भण्डेर वचने॥

चै. च. म. १४. १३०-१३२

लक्ष्मी देवीका क्रोध देखकर तथा उनकी दासियोंका यह व्यापार देखकर प्रभु हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। सब भक्तोंके साथ वे इस लीलारङ्गका दर्शन कर रहे थे। स्वरूप दामोदर गोसाईंने प्रभुसे कहा—"प्रभु ! लक्ष्मी देवीका मान लीलारङ्ग देखकर आप हँस रहे हैं, व्रज-गोपिकाओंका मान इसकी अपेक्षा भी अधिक रसमय था। सत्य-भामाकी अपेक्षा श्रीराधिकाका मान रसिक-शेखर श्रीकृष्णके लिए अधिक सुखकर होता था।" तब प्रभु प्रेमातिशयसे स्वरूप गोसाईंका गला पकड़कर बोले—

"कह व्रजेर मानेर प्रकार।"

चै. च. म. १४.१३८

स्वरूप गोसाईंने उत्तर दिया—

"गोपी मान प्रेमनदी शतधार।"

चै. च. म. १४.१३८

यह कहकर वे मानके लक्षणादि, नायिकाके स्वभाव और प्रेमवृत्तिकी बातें एक-एक करके प्रभुको बतलाने लगे। स्वरूप गोसाईं रसिक चूड़ामणि हैं, प्रभु रसिक-शेखर रसराज हैं, और बातें हो रही हैं रसतत्त्वकी। वहाँ रसका स्रोत उमड़ पड़ा है। स्वरूप गोसाईं वक्ता हैं और प्रभु श्रोता हैं। धीरा, अधीरा, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, वामा-दक्षिणा आदि नायिका-भेदमें मानका लक्षण, नायिकाकी प्रकृति आदि सब स्वरूप गोसाईं प्रभुको एक-एक करके कह गये। रसराज रसिकचन्द्र प्रभुने सुना और आनन्दमें विह्वल होकर बोल उठे—"कहो-कहो—और कहो।" तत्पश्चात् स्वरूप गोसाईंने भावकी चर्चा आरम्भ की। श्रीराधिकाके अधिरूढ़ भावकी व्याख्या करके अष्ट सात्विक भाव, बीस प्रकारके भावालङ्कार, किलकिञ्चित भावादि अष्ट भावके सम्मिलनसे महाभावकी उत्पत्ति, तथा महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिकाजीके भाव-भूषण आदिकी विस्तृत व्याख्या की। यह सब भावराज्यकी बात है। भावुक भक्तगण उज्ज्वल-नीलमणि रस-शास्त्रमें मानिनी नायिकाके भाव प्रकरणको देख सकते हैं। लीलाग्रन्थमें उसकी विस्तृत व्याख्या आवश्यक न समझ कर लिखा नहीं जा सकता।

लक्ष्मीजीके क्रोधसे भयभीत होकर श्रीश्रीजगन्नाथजीके सेवकगण हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े होकर कहने लगे—"कल जगन्नाथ भगवान्को आपके सम्मुख अवश्य उपस्थित कर दिया जायगा।"

ऐश्वर्य और व्रज-रस वर्णन

श्रीवास पण्डित गृही वैष्णव थे। श्रीलक्ष्मीदेवीके प्रति उनकी अचला भक्ति थी। उनका यह अपूर्व ऐश्वर्य लीलारङ्ग देखकर नारदावतार श्रीवास पण्डित स्वरूप दामोदरको सम्बोधन करके हँसते हुए रहस्यमय वचन बोले—"हमारी लक्ष्मीदेवीकी सम्पद् अनिर्वचनीय है। तुम्हारी गोपीगण दूध गरम करती हैं, दधि-मन्थन करती हैं और हमारी ठाकुरानी रत्न-सिंहासनपर विराजती हैं।"

श्रीवास पण्डितका ऐश्वर्य भाव था। स्वरूप दामोदरका व्रजका शुद्ध मधुर भाव था। प्रभुने श्रीवास पण्डितकी बात सुनकर हँसकर यह बात उनको समझा दी।

स्वरूप दामोदर गोसाईंका विशुद्ध व्रजभाव था, इस बातको प्रभुने यद्यपि श्रीवास पण्डितको एक प्रकारसे समझा दिया था, तथापि स्वरूप दामोदर गोसाईं अपने सर्वोच्च व्रजभावकी उत्कर्षता उनको समझानेसे न चूके। उन्होंने श्रीवास पण्डितकी ओर देखकर सबके सामने ब्रजरसमें उन्मत्त होकर प्रेमावेगमें कहा—

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो।
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्॥
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी।
चिदानन्द ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च॥

चै. च. म. १४.१४ (ब्रह्मसंहिता ५.५६)

श्लोकार्थ—वृन्दावनमें कृष्ण-कान्तागण सभी लक्ष्मी हैं, कान्त परम-पुरुष श्रीकृष्ण हैं। वहाँके वृक्ष सभी कल्पवृक्ष हैं, सभी भूमि चिन्तामणिगणमयी है, जल सभी अमृत है, सहज बोल-चाल गान है, सहज गमन नृत्य है, वंशी प्रिय सखी है, चिदानन्द ही परम ज्योति स्वरूप चन्द्र-सूर्य हैं, एवं यह चिदानन्द वस्तु ही आस्वाद्य है।

स्वरूप गोसाईंके मुखसे मधुर हृत्कर्ण रसायन व्रजमहिमा-कीर्तिगान सुनकर श्रीवास पण्डित हर्षित होकर प्रेमावेशमें नृत्य करने लगे। हाथसे ताली बजाकर हँसते-हँसते उन्होंने व्रज-रस कीर्तनका गान प्रारम्भ किया। स्वरूप गोसाईं भी व्रज-रसमें उन्मत्त होकर व्रज-रस कीर्तन करने लगे। भावनिधि प्रभुके हृदयमें प्रवल भावोच्छ्वास उठा। वे स्थिर न रह सके। वे व्रजरसके आवेशमें स्वरूप दामोदरका गान सुन रहे थे और प्रेमानन्दमें हुङ्कार गर्जन करके कह रहे थे—'बोलो, बोलो'। प्रभु अब प्रेमोन्मत्त होकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। सब भक्तोंके साथ संकीर्तन यज्ञेश्वर श्रीश्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उच्च स्थानसे नीचे उतरकर अपूर्व नयन-रञ्जन नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें मत्त हो गये।

लक्ष्मीदेवीको लेकर उनके दास-दासीगण घर गये। होरा लक्ष्मीका उत्सव समाप्त हुआ, परन्तु प्रभुके नृत्य-कीर्तनोत्सवका अन्त न हुआ। चार संकीर्तन दल गठित करके प्रभुने भक्तवृन्दके साथ उस दिन नीलाचलमें जो प्रेम-नृत्य-कीर्त्तनका तरङ्ग उठाया, उससे सारा श्रीनीलाचल धाम प्रेममें डूब गया।

प्रभुका नृत्य तृतीय प्रहर तक समभावसे चलता रहा। श्री नित्यानन्द प्रभु श्रीगौर भगवान्के अपूर्व नृत्य विलास-रङ्गका दर्शन कर रहे थे दूर खड़े होकर। वे समीप नहीं आ रहे थे, कहीं प्रभुका भावावेश छूट न जाय, रसभङ्ग न हो जाय। अवधूत श्रीनिताई चाँद चिरसुन्दर प्रभुको आज सुन्दरतम देख रहे हैं। उनकी अपूर्व नृत्य-भङ्गिमा उनको आज बहुत ही अच्छी लग रही है। बलाई चाँद अपने छोटे भाई कन्हाई लालकी अपूर्ब व्रजप्रेम विकाशक नृत्यानन्द मूर्त्ति देखकर प्रेमानन्दमें विभोर हो गये हैं, इसी कारण दूर ही खड़े होकर देख रहे हैं।। बीच-बीचमें दूरसे छिपे-छिपे वे प्रभुको मन ही मन प्रणाम कर लेते हैं। अवधूत श्रीनित्यानन्दके कमल-नयनमें झर-झर प्रेमाश्रु धारा बह रही है। प्रभु दूरसे उनको देख रहे हैं, और नाना प्रकारके हाव-भाव दिखलाकर क्षीण कटि डुलाकर अपूर्व

प्रेम-नृत्य कर रहे हैं। कीर्तन नियमसे चल रहा है, प्रभुका आवेश समभावमें हैं।

तृतीय प्रहर बीतते देखकर स्वरूप दामोदरने अवसर देखकर भक्तोंके श्रान्त होनेकी बात प्रभुके श्रीचरणोंमें निवेदन कर दी। कीर्तन-रणवीर श्रीगौराङ्ग प्रभुको एक मात्र श्रीनित्यानन्द प्रभु कीर्तन-रणसे निवृत्त करनेमें समर्थ हैं। किन्तु वे आज स्वयं भाव समुद्रमें मग्न हैं, व्रज-रसमें मत्त और अधीर हैं। उनको भी बाह्यज्ञान नहीं है। नृत्य-कीर्तनका अवसान कैसे हो? भावनिधि अन्तर्यामी प्रभुने भक्तके भावको समझा, स्वरूप गोसाईंकी बात सुन ली। भक्त-वत्सल प्रभु भाव संवरण करके भक्तवृन्दके साथ पुष्पोद्यानमें चले। वहाँ जाकर कुछ देर तक विश्राम करके स्नानादि दैनिक कृत्य समाप्त किया।

उद्यानमें राजाके आदेशसे प्रसादान्न आया। श्रीश्रीलक्ष्मीजीका प्रसाद भी आया। सब भक्तोंके साथ प्रभुने प्रेमानन्दसे भोजन-लीला-रङ्ग सम्पादन किया। श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके यथानियम दैनिक नृत्य-कीर्तन किया।

रथयात्राकी वापसी

आठ दिन तक निरन्तर आनन्दोत्सवके पश्चात् वापसी रथपर आरोहण करके श्रीश्रीनीलाचल चन्द्र महासमारोहसे अपने मन्दिरमें आये। उस दिन पुनः पाण्डु विजयोत्सव हुआ। पूर्ववत् उसी प्रकार आनन्दोत्सव होता रहा। बहुत-से लोग इकट्ठे हुए। अपने सभासदोंके साथ राजा प्रतापरुद्र वहाँ उपस्थित होकर बड़े समारोहसे श्रीश्रीजगन्नाथजीको पूर्ववत् श्रीमन्दिरमें ले गये। मन्दिरमें ले जाते समय पाटकी रस्सी छिन्न-भिन्न हो गयी, रुईकी गद्दी बिखर गयी। उससे रुईकी राशि उड़ने लगी। पार्षदोंके साथ प्रभु वहाँ खड़े होकर यह पाण्डु विजय लीलारङ्ग देख रहे थे। उनके साथ कुलीन ग्रामके भक्तिमान् धनी जमीदार सत्यराज खान् थे। रामानन्द वसु थे। प्रभुने उनको आदेश दिया—

> **एइ पट्टडोरीर तुमि हओ यजमान।**
> **प्रति वर्ष आनिबे डोरी करिया निर्माण॥**
>
> चै. च. म. १४.२३४

इतना कहकर प्रभुने वह छिन्न-भिन्न डोरी उनके हाथमें दी, और कहा—"इसको समझकर बहुत मजबूत डोरी बनाना। इसमें अनन्त देवका अधिष्ठान है, जो दश रूप* धारण करके भगवान्की सेवामें रत रहते हैं।"

सत्यराज खान् और रामानन्द वसुने सिर झुकाकर प्रभुके आदेशको शिरोधार्य किया तथा उनके चरणोंमें गिरकर पदधूलि ग्रहण की। आज तक उनके वंशधर प्रभुके उस कृपादेशका पालन करते आ रहे हैं।

इस वर्ष रथयात्राका उत्सव इस प्रकार समाप्त हुआ। श्रीनीलाचलमें नौ दिनों तक लगातार आनन्द उत्सव चलता रहा। प्रभु नौ दिन तक बासेपर नहीं गये, उपवनमें ही रहे।

नदियाके भक्तों द्वारा प्रभुकी भिक्षा

नदियाके सब भक्तवृन्दकी इच्छा थी कि प्रभुको निमन्त्रित करके अपने-अपने घर भिक्षा करावें। रथयात्राके नवें दिन श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीवास पण्डित आदि नदियाके प्रमुख नौ भक्तोंने प्रभुको अपने-अपने वासापर निमन्त्रित किया।

नदियाके भक्तोंने स्त्री-पुत्रको छोड़कर चार महीने नीलाचलमें वास करके चातुर्मास्य व्रतका उद्यापन किया। उनका उद्देश्य प्रभुको अपने-अपने वासापर कमसे कम एक दिन निमन्त्रित करके भिक्षा करानेका था। घरसे वे लोग अपने हाथों

---

* १. छत्र, २. चामर, ३. पादुका, ४. आसन, ५. शैया ६. गृह, ७. उपाधान, (तकिया), ८. वसन, ९. यज्ञसूत्र, १०. निवास-स्थान—इन दश रूपोंसे अनन्तदेव भगवान्की सेवा करते हैं।

और यत्नपूर्वक तैयार करके नाना प्रकारके भोजनका सामान लाये थे।

नवद्वीपसे दो सौ भक्त आये थे, वे सभी गृही वैष्णव थे। इन चार महीनों तक वे लोग प्रभुके साथ सुख और आनन्दमें गृहस्थी और स्त्री-पुत्रादि सबको भूल गये। वे लोग यह भी भूल गये कि घर उनके कौन-कौन कार्य करनेके लिए पड़े हैं। उन लोगोंके सब कर्मोंका सार था प्रभु-सेवा, प्रभुको आनन्द प्रदान करना। वह कार्य उनको मिल गया था, छोड़ते क्यों? इन चार महीनों तक उनको जो सुख मिला, उसको वे ही जानते थे या उनके प्राणोंके देवता श्रीप्रभु।

सबकी इच्छा प्रभुको एक दिन अपने-अपने वासापर निमन्त्रण करनेकी थी। इन चार महीनोंके एक सौ बीस दिनोंको एक सौ बीस आदमियोंने बाँट लिया। इसमें बहुतोंको वञ्चित होना पड़ता था, यह देखकर परामर्श करके एक-एक दिनमें दो-तीन आदमियोंने प्रभुको निमन्त्रित करनेका अधिकार प्राप्त किया। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद आश्विन—इन चार महीनों तक नदियाके भक्तगण प्रभुके साथ श्रीनीलाचलमें रहे।

नवद्वीपके भक्तोंकी देखा-देखी नीलाचलके भक्त भी इसी प्रकार निमन्त्रण-रस-रङ्गमें मत्त हो गये। वे लोग भी प्रभुको इसी सिलसिलेमें निमन्त्रित करने लगे। भक्त-वत्सल प्रभु अकातर भावसे निमन्त्रणकी रक्षा करने लगे। उनका वेदोक्त नाम था श्रीविश्वम्भर। वे इस वेदोक्त नामकी पूर्ण सार्थकता करने लगे। भक्तके लिए श्रीभगवान् सब कुछ कर सकते थे। यह तो साधारण बात थी।

ज्वलन्त अनल कृष्ण भक्त लागि खाय।
भक्तेर किङ्कर हय आपन इच्छाय॥

चै. भा. म. १०.४७

श्रीभगवान् भक्तके बिना और कुछ नहीं जानते। इस अनन्त पृथ्वीपर भक्तके समान प्रियतम वस्तु और कुछ नहीं है। श्रीगौराङ्ग प्रभु संसाराश्रम-त्यागी विरक्त संन्यासी थे। उनके लिए अति भोजन, अनेक बार भोजन निषिद्ध था। परन्तु भक्तकी मनस्तुष्टिके लिए उन्होंने इसे किया। इसको ही कहते हैं भक्तके भगवान्।

नवद्वीपके भक्तगण प्रायः सभी गृहस्थ थे, वे प्रभुको जानते थे। रथयात्रा उत्सव समाप्त हो जानेपर प्रभुने उनसे कहा—"तुम सब लोग अब घर जाओ। तुम्हारी घर-गृहस्थी है, स्त्री-पुत्र हैं, गृह-कर्म है। तुम्हारे बिना सब काम बिगड़ जायगा, परिवारके लोग कष्ट पावेंगे, मुझसे साक्षात्कार हो गया। तुम्हें देखकर मेरा मन बड़ा आनन्दित हुआ। सब लोग अब अपने घर जाकर कृष्णकी सेवा करो, कृष्णनाम संकीर्तन करो। इसीसे मैं पूर्ण सन्तुष्ट होऊँगा, परम आनन्दित होऊँगा।"

श्रीअद्वैताचार्यने नदियाके भक्तोंका पक्ष लेकर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! तुम्हें छोड़कर जानेका हमारा मन नहीं करता। हम लोग यहाँ चार मास रहेंगे। तुम्हारी कृपासे हमारे स्त्री-पुत्रादिको कोई कष्ट न होगा। तुम्हारे लिए ही हम सब कर्म करते हैं। तुम नवद्वीप छोड़कर नीलाचल चले आये हो, वहाँ फिर हमारे लिए क्या काम रह गया है? हम नीलाचल आये हैं तुम्हारी चरण-सेवा करने, तुम्हारे श्रीचरणोंकी धूलि झाड़ने, तुम्हारे श्रीमुखकी दो मधुर बातें सुनने, तुम्हारे श्रीवदनकी मधुमय मुस्कान देखने, और तुमको हृदय खोलकर भोजन कराने। इसके समान सुख, इतना सुख हमको और किसी वस्तुमें नहीं है। हे प्रभु! हमको इस सुखसे वञ्चित न करो। इस बार हम लोग आये हैं, अगले वर्ष तुम्हारी दासीकी दासी हमारी गृहिणीगण भी आयेंगी, आकर अपने मनकी साधसे भोजन बनाकर तुमको खिलाएँगी। तुम हमारे इस सुखमें बाधक न बनना। तुम्हारे चरणोंमें हमारी यही विनती है।"

प्रभुने सिर नीचा करके सब कुछ सुना। कुछ लज्जित हुए, और कोई बात बोल न सके। नदियाके भक्तवृन्दकी प्रेम-रज्जुसे प्रभु सदाके लिए बँधे हुए हैं। नदियाके भक्तवृन्द उनके प्राण स्वरूप हैं, और नदियावासीके वे प्राण हैं। ऐसी दशामें जो होना होता है वही हुआ। प्रभु हार गये, नदियाके भक्तगण जीत गये। रथयात्राके बाद चार महीने तक वे लोग प्रभुके सङ्ग-सुख रूपी समुद्रमें एकबारगी डूबे रहे।

यह प्रभुकी नित्य-निमन्त्रण केलि एक-एक वृहद् व्यापार, महामहोत्सव रूप थी। जो प्रभुको निमन्त्रित करते थे, उनके भक्तवृन्द भी उनके साथ ही निमन्त्रित हो जाते थे। भक्तके घर उस दिन महामहोत्सवका आयोजन होता था। प्रेमानन्दमें सब भक्तगण मिलकर प्रभुको आनन्दसे भोजन कराते थे, तथा वे भी प्रसाद पाते थे। कोई प्रसादान्न लाकर महोत्सव करता था, कोई घरपर सब रसोई तैयार करके महोत्सव करता था। इसीको कहते हैं वैष्णवोंका भोजनमें भजन। वैष्णवका कोई कर्म भजन-शून्य नहीं होता।

एक दिन प्रभु हरिदासको दर्शन देकर, वासापर आकर प्रेमानन्दमें हरिनाम संकीर्तन कर रहे थे। उसी समय श्रीअद्वैत प्रभु कुछ नदियाके भक्तोंके साथ पूजाका सब सामान लेकर प्रभुके वासापर आकर उपस्थित हुए। पाद्य, अर्घ्य, तुलसी, चन्दन, धूप, दीप, वस्त्र आदि पूजाके सब द्रव्य संभार लेकर श्रीअद्वैत प्रभु साश्रुनयन प्रभुके पद तलमें बैठ गये। प्रभु श्रीअद्वैताचार्यके इस व्यापारको देखकर हँसने लगे, और पहले कुछ न बोले। शान्तिपुरनाथने पाद्य-अर्घ्य देकर यथाविधि श्रीगौराङ्ग-पूजा प्रारम्भ कर दी। प्रभुके श्रीअङ्गमें चन्दन-लेपन किया, चरण धोकर शुष्क नवीन वस्त्रसे श्रीचरण-कमलको पोंछ दिया, गलेमें सुन्दर मालती पुष्पकी माला पहना दी। चरणोंमें तुलसी पत्र चढ़ाते समय प्रभुने निषेध किया, अतएव उनके श्रीमस्तकपर तुलसी मञ्जरी चढ़ायी। अन्तमें हाथ जोड़कर श्रीकृष्णके स्तोत्रमें प्रभुकी स्तुति करने लगे।[१]

प्रभु अब तक स्थिर होकर बैठे थे; क्योंकि शान्तिपुरनाथ उनको श्रीकृष्णके रूपमें पूज रहे थे। भक्तकी पूजा समाप्त होनेपर भक्तावतार श्रीगौर भगवान्ने भक्त-पूजा प्रारम्भ कर दी। पूजाके पात्रमें जो तुलसीदल—पुष्पादि बचा था, उसे लेकर प्रभुने श्रीअद्वैताचार्यकी निम्न लिखित मन्त्र पढ़कर पूजा की, और मुखवाद्य करने लगे—

'योऽसि सोऽसि नमो नित्यं
योऽसि सोऽसि नमोस्तु ते ॥'[२]

अर्थात् तुम जो हो सो हो, तुम्हें नित्य नमस्कार। गाल बजाकर इस मन्त्रसे प्रभुने पूजा की, इससे श्रीअद्वैत तत्त्वको प्रकट किया। श्रीअद्वैत प्रभुने श्रीकृष्णके प्रति नमस्कार और स्तुतिसे उनकी पूजा समाप्त की थी, इसमें उनका निजतत्त्व प्रकट किया था, प्रभुने भी वही किया। भक्तने श्रीभगवान्को प्रकट किया, और श्रीभगवान् भक्तको प्रकाशमें लाये। प्रभुने शान्तिपुरनाथकी देव-देव महादेवके समान पूजा की। इसके बाद दोनों आदमी प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध होकर प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े।

सब भक्तोंके सामने काशी मिश्रके घर श्रीअद्वैत प्रभुने नीलाचलमें श्रीगौराङ्गकी पूजा की। नदियाके भक्तोंने पहले नदियामें श्रीअद्वैत प्रभुके द्वारा यथाविधि कृत श्रीगौराङ्ग-पूजाका दर्शन किया था। अब यहाँ श्रीनीलाचलके भक्तोंने भी किया। प्रभुकी

१ प्रथमं परिगृह्य सादरं प्रभुपूजार्थमुपायनं बहुः।
पुलकाश्रुझराकुलः मुखं प्रभुरद्वैत इहागमस्तदा ॥
पदयोः विनिवेद्य भक्तितः सलिलं शुद्धतमं सुवासितम्।
मलयोद्भव पङ्क सञ्चरैरथ भालस्थलमालिलेप सः ॥
चै. च. महाकाव्य १८.३०,३१

२ प्राचीन पुस्तकका पाठ—
राधे कृष्ण रमे विष्णो सीते राम शिवे शिव।
यासि सासि नमो नित्यं योऽसि सोऽसि नमोस्तुते ॥

प्रकटावस्थामें श्रीगौराङ्ग-पूजा श्रीअद्वैताचार्यने की, सार्वभौम भट्टाचार्यने की, श्रीवास पण्डितने की, और बहुत-से भक्तोंने की। प्रभु कलिके प्रच्छन्न अवतार हैं। अपनेको प्रकट करनेका उन्होंने निषेध कर रक्खा था। उस निषेधको इन लोगोंने नहीं माना। भक्तके सामने श्रीभगवान्‌की हार हुई। भक्त जीत गये, भगवान् हार गये। भक्तके भगवान् श्रीश्रीनवद्वीप चन्द्र कलिके प्रच्छन्न अवतार होकर भी भक्तके द्वारा प्रकट कर दिये गये।

जन्माष्टमी उपलक्ष्यमें नन्दोत्सव

उसके बाद श्रीश्रीनीलाचलमें जन्माष्टमी उत्सवके उपलक्ष्यमें बड़ी धूम-धाम हुई। नन्दोत्सवके दिन प्रभुने मनोहर गोपवेष धारण किया। उनके भक्तोंके भी गोपवेष थे।

"गोपवेष हैला प्रभु लैया भक्त सब।"

चै. च. म. १५.१८

भक्तोंके कन्धोंपर दही-दुग्धका भार था, हाथमें लाठी थी और मस्तकपर पाग। सबके मुखसे हरि-हरि ध्वनि निकल रही थी। इकट्ठे होकर सब भक्तोंने इस नन्दोत्सवमें योग दिया। नीलाचलके भक्त कानाई खूँटियाने नन्द महाराजका वेष धारण किया। जगन्नाथ माहाती नामक एक प्रभुका उड़िया भक्त व्रजेश्वरी बना। उनके बीच राजा प्रतापरुद्र सार्वभौम भट्टाचार्य, राजगुरु काशी मिश्र भी थे। श्रीजगन्नाथजीके प्रधान पण्डा तुलसी पात्रने सब प्रबन्ध कर रक्खा था। श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीवास पण्डित आदि नदियाके भक्तगण भी गोप वेषमें थे।

नीलाचल और नदियाके भक्तगण दोनों दल एक साथ होकर प्रेमानन्दमें नन्दोत्सव कर रहे हैं। सभी प्रेम-रसमें उन्मत्त होकर श्रीकृष्णकी जन्म-लीलाका कीर्तन कर रहे हैं। पवित्र दधि-हरिद्राके जलमें सबने स्नान किया। प्रभु गोपवेषमें अङ्ग-भङ्गी करके मधुर-नृत्य करने लगे। श्रीअद्वैत प्रभु उनके सामने कमर डुलाकर नृत्य कर रहे हैं, और प्रभुके श्रीवदनकी अपरूप शोभा देख रहे हैं। दोनोंकी जब चार आँखें हुई, तब अद्वैत प्रभुने हँसी करते हुए कहा—"हे प्रभु! क्रोध न करना, गोपवेशमें आज तुम खूब सज रहे हो, यदि तुम ग्वालेके समान लाठी फिरा सको तो तुम सचमुच ग्वालेके लड़के जान पड़ोगे।" प्रभु तब इधर-उधर देखकर एक लाठी हाथमें लेकर अपूर्व कौशलपूर्वक उसे अलातचक्र* के समान फिराने लगे। उनकी देखा-देखी श्रीनित्यानन्द प्रभुने भी वही किया। प्रभुने इस प्रकार यह लीलारङ्ग अभिनय किया।

श्रीअद्वैत प्रभु चकित होकर प्रभुके इस लागुड़-धारण लीलारङ्गको देखने लगे। प्रभुका गोपभाव देखकर आज उनके मनमें बड़ा आनन्द हो रहा है। गोपराज नन्द-नन्दन गोपकुमारका कार्य कर रहे थे, वह अति स्वाभाविक, अति मधुर और अति सुन्दर था। श्रीअद्वैत प्रभु भावावेशमें मग्न हो गये थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुका भी यही भाव था। वे पूर्वलीलाके रोहिणी-नन्दनका पूर्ण परिचय दे रहे थे। गौरीदास पण्डित आदि भक्तोंका भी यही भाव था। प्रभुके नित्य शुद्ध एकान्त अन्तरङ्ग भक्त जानते थे कि निताई-गौर क्या वस्तु हैं। दूसरा कोई इसका मर्म क्या समझता? कविराज गोस्वामीने इसी कारण लिखा है—

"के जानिबे ताँहा दोंहार गोपभाव गूढ़।"

चै. च. म. १५.२७

राजा प्रतापरुद्रने इस नन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें बहुत धन व्यय किया। भोजन वस्त्र आदि दान किये, प्रेमोन्मत्त प्रभुके श्रीमस्तकपर एक स्वर्ण खचित बहुमूल्य रेशमी वस्त्र बाँध दिया। सब भक्तोंको नवीन वस्त्र पहनाया। प्रभु प्रेमानन्दमें श्रीमस्तकपर बहुमूल्य रेशमी वस्त्रका पाग बाँधकर मधुर नृत्य करने लगे। उनका अपूर्व प्रेमभाव तथा अपरूप रूप देखकर राजा प्रतापरुद्र प्रेमानन्दमें विभोर होकर प्रभुके चरण-तलमें गिर गये।

---

* अलातचक्र चक्राकारमें भ्राम्यमाण ज्वलन्त काष्ट होता है।

कानाई खूँटिया तथा जगन्नाथ महाति, दोनों ही धनी आदमी थे। वे नन्द महाराज और व्रजेश्वरी बने थे। प्रेमावेशमें स्वाभाविक वात्सल्य भावमें उनके घर जो कुछ था, सब इस शुभ उत्सवके उपलक्ष्यमें दान कर दिया। उनकी प्रेम-भक्तिका परिचय पाकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। पिता-माताके रूपमें उनको उन्होंने बड़े सत्कारके साथ नमस्कार किया। वे लोग प्रेमानन्दमें विभोर थे, बाह्यज्ञान-शून्य थे। प्रभुने जो उनको प्रणाम किया, इसका भी उनको भान न हुआ। यदि वे इसे जान पाते तो प्रभुके चरणोंमें अपना सिर पटकने लगते।

राजा द्वारा प्रदत्त रेशमी वस्त्र

राजा प्रताप रुद्रके दिये वहुमूल्य रेशमी वस्त्रको श्रीमस्तकपर बाँधे प्रभु प्रेमावेशमें नृत्य करते हुए राजपथ होकर अपने बासे पर आये। प्रेमोन्मत्त प्रभुके मनमें इसकी तनिक भी धारणा न हुई कि वे संन्यासी हैं, कौपीन और कन्था उनका संवल है, तथा विषयीकी दी हुई वस्तु उनको ग्रहण नहीं करनी चाहिये। उनके मनमें यह भी नहीं आया कि लोगोंकी दृष्टिमें यह निन्दनीय है। वे विरक्त संन्यासी थे, बहुमूल्य रेशमी वस्त्रसे उनको क्या प्रयोजन था ? राजा प्रताप रुद्रं प्रभुको विशेष रूपसे जानते थे, उन्होंने ही क्यों दिया ? यह सब गूढ़ रहस्यकी बातें आगे स्पष्ट होंगी।

प्रभु जब अपने वासापर आये तो गोविन्दने उनके चरण पखार दिये। श्रीमस्तकके बहुमूल्य वस्त्रको प्रभुने गोविन्दके हाथमें दिया। गोविन्दने अति यत्नपूर्वक उसे एक पिटारीमें बन्द करके रख दिया।

वहाँ श्रीपाद परमानन्द पुरी गोस्वामी उपस्थित थे। प्रभु पुरी गोस्वामीको गुरु तुल्य मानते थे। बासेपर आकर सुस्थिर होनेपर प्रभुके मनमें हुआ कि राजाका दान बहुमूल्त रेशमी वस्त्र ग्रहण करके उन्होंने अच्छा नहीं किया। इस सम्बन्धमें अब उन्होंने श्रीपाद परमानन्द पुरी गोस्वामीसे पूछा। जब प्रभुने वस्त्र ले लिया तो उसे क्या करें, किसको दें—यही बात उन्होने पूछी। यथा—

इदं श्रीमज्जगन्नाथनिर्माल्यं परमांशुकम्।
प्रताप रुद्रेण च मे दत्तं परम दुर्लभम्॥
कस्मै दास्यामि तन्नूनं गदितुं त्वमिहार्हसि।
मया सन्दिग्धमनसा स्थीयते साम्प्रतं खलु॥

चैं० च० महाकाव्य १९.१०.११

अर्थात् प्रभु बोले—"हे श्रीपाद ! यह उत्कृष्ट वस्त्र श्रीजगन्नाथजीका निर्माल्य है, राजा प्रतापरुद्रने मुझको दिया है, यह अति दुर्लभ वस्तु है। हे स्वामिन्। यह बहुमूल्य वस्त्र लेकर मैं क्या करूँ ? किसको दूँ ? आप इस विषयमें मुझको उपदेश दीजिये। इस वस्त्रको लेकर मेरे मनमें बड़ी व्यग्रता हो गयी है।"

श्रीपाद परमायन्द पुरी गोसाईं परम विज्ञ सिद्ध महापुरुष थे। प्रभुके मनका भाव समझनेमें उनको कुछ बाकी न रहा। प्रभु पूर्व आश्रममें क्या थे, और इस समय क्या हैं—यह पुरी गोसाईंको अविदित न था। प्रभुकी परम सुन्दरी युवती गृहिणी घरपर हैं. शची माताके हृदयका शूल बनकर वह नदियामें रहती हैं। यह सब पुरी गोसाईं जानते हैं, वह बहुमूल्य साड़ी प्रभुकी गृहिणीके उपयुक्त है, यह भी वे जानते थे। प्रभुने राजासे यह दान क्यों ग्रहण किया है, तथा इस सम्बन्धमें उनसे क्यों पूछ रहे हैं, यह सब बात पुरी गोसाईंके समान विज्ञ और विचक्षण सिद्ध महापुरुषके जाननेसे बाकी न था। श्रीगौर भगवान्की इच्छा थी कि उस वस्त्रको नवद्वीप भेज दें। उनकी दुःखिनी माता वह वस्त्र परिधान न करेंगी, इसे वे जानते थे। उनके नामसे भेजनेपर गौर वक्षविलासिनी श्रीविष्णुप्रिया देवीको पहनाकर वे सुखी होंगी। यही कपट संयासीकी आन्तरिक इच्छा थी। श्रीपाद परमानन्द पुरी प्रभुको कह नहीं सकते थे कि यह बहुमूल्य वस्त्र अपनी प्रियतमा श्रीविष्णुप्रिया देवीके लिए नवद्वीप

भेजिये। इसी कारण उन्होंने शचीमाताका नाम लिया। यथा श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्यमें—

इत्युक्तोऽसौ पुरी स्वामी वभाषेऽथ महाप्रभुम्।
जनन्यै देयमेतत्तु मर्मतन्मतमुत्तमम्॥

चै. च. महाकाव्य १९.१२

पुरी गोस्वामीकी बात सुनकर प्रभु मनमें बड़े ही आनन्दित हुए। गोविन्दकी ओर तदनुसार इशारा किया। प्रभुके नित्यदास गोविन्दने समझा कि इस वस्त्रको भली-भाँति रखनेका आदेश प्रभुका हुआ है। उन्होंने उसे पहले ही पिटारीमें बन्द कर रक्खा था। नवद्वीपके भक्तवृन्द जब अपने घर लौटेंगे तब यह बहुमूल्य वस्त्र उनके द्वारा वहाँ भेजा जायगा—यही प्रभुका आदेश हुआ। इस लीलारङ्गमें प्रभुका वक्षःविलासिनी श्रीविष्णुप्रिया देवीके प्रति दृढ़ानुरागका पूर्ण परिचय मिलता है। वे संन्यासी हो गये हैं, संसारसे विरक्त संन्यासी शिरोमणिके नामसे प्रसिद्ध हैं। वह भी केवल जीवोद्धारके लिए।

प्रभुके कपट संन्यासकी आलोचना

वे कपट संन्यासी हैं—यह उन्होंने स्वयं श्रीमुखसे स्वीकार किया है, उनके भक्तोंने सैकड़ों बार यह मुक्तकण्ठसे कहा है, और उनके अनेक कार्योंसे यह प्रकट भी हो चुका है। इस सम्बन्धमें यहाँ कुछ विचार किया जाय।

प्रभुने नीलाचलमें आकर सर्वप्रथम सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा था—

घर मने पड़े तेजि काँदि राधा बलि।
कीर्त्तनेर माझे तेजि करिये विकलि॥

चै. म.

ठाकुर लोचनदासने श्रीचैतन्य-मङ्गल श्रीग्रन्थमें यह बात लिखी है। वे प्रभुके मधुर भावके उपासक थे, और माधुर्यलीलाके लेखक थे। वे नरहरि ठाकुरके मन्त्र शिष्य थे। नरहरि ठाकुर प्रभुके नित्य पार्षद थे, उनका नदिया-नागरी भाव था। उनके साथ रहकर उनके शिष्य ठाकुर लोचनदासने प्रभुके माधुर्य लीला-रसका आस्वादन किया था। पूर्व लीलामें ठाकुर नरहरि थे व्रजकी मधुमती। नित्य-सिद्धा व्रज-गोपिकागण श्रीकृष्णकी अन्तरङ्गा शक्ति हैं। श्रीगौराङ्ग-लीलामें नित्य सिद्ध भक्तवृन्द भी श्रीगौर भगवान्‌की अन्तरङ्गा शक्ति हैं। श्रीराधिकाका नाम लेकर प्रभु सदा कीर्तनमें क्रन्दन करते थे। क्योंकि उनको घर-गृहस्थी याद आती थी। प्रभुकी घर-गृहस्थी नवद्वीपमें थी। वे संन्यासी थे, माता और गृहिणीका नाम लेकर नहीं रो सकते थे। कोई बहाना लेकर रोना था, इसी कारण प्रभुने कहा था—

"घर मन पड़े तेजि काँदि राधा बलि।"

ठाकुर लोचनदासने पूज्यपाद नरहरि ठाकुरके आदेशसे श्रीगौराङ्ग लीला वर्णन करके श्रीचैतन्य मङ्गल श्रीग्रन्थको लिखा था। ठाकुर नरहरिके श्रीमुखसे श्रवण करके उन्होंने यह लीला वर्णन की थी। ठाकुर नरहरिने अपनी आँखों प्रभुकी नवद्वीप लीला दर्शन की थी। प्रभुके कपट संन्यासकी बात जहाँ तक उनको ज्ञात थी, वहाँ तक वह दूसरोंके लिए संभव न थी।

प्रभुने अपने श्रीमुखसे कहा था—

मातृसेवा छाड़ि आमि करियाछि संन्यास।
धर्म नहे, कैल आमि निज धर्म नाश॥

चै. च. म. १५.४९

कि कार्य संन्यासे मोर प्रेम निज धन।
जे काले संन्यास कैल, छन्न हैल मन॥

चै. च. म. १५.५२

श्रीपाद प्रवोधानन्द सरस्वतीने प्रभुकी वन्दनाके श्लोकमें लिखा है—

प्रवाहैरश्रूणां नवजलदकोटि इव दृशौ
दधानं प्रेमर्दध्या परमपदकोटी प्रहसनम्।
वमन्तं माधुर्यैरमृतनिधिकोटिरिव तनु-
च्छटाभिस्तं वन्दे हरिमहह संन्यासकपटम्॥

श्रीचैतन्य चन्द्रामृतम् १२

श्लोकार्थ—प्रेमाश्रु-प्रवाहसे जिनके दोनों नयन कोटि नवजलधरकी शोभा धारण किये हैं, सबको प्रेमसम्पत् अर्पणके द्वारा जो कोटि वैकुण्ठका उपहास करते हैं, जो भुवन मोहन अङ्गकान्तिसे एवं अपने अनिर्वचनीय माधुर्यसे कोटि-कोटि अमृतसागर सृष्ट करते हैं, अहा, संन्यासीके छद्मवेशी सर्वमनोहर श्रीगौरहरिकी हम वन्दना करते हैं।

पूज्यपाद ठाकुर नरहरिने प्रभुको संन्यासवेषी लम्पट गुरु कहकर स्तवन किया है। उनके द्वारा रचित श्रीगौराङ्गाष्टकके प्रथम श्लोकमें यह लिखा है।

गोपीनां कुचकुंकुमेन निचितं वासः किमुच्चारुणं
निन्दन् काञ्चनकान्ति रास रसिकाश्लेषेण गौरं वपुः।
तासां गाढ़तराभिवन्धन रसाल्लोमोद्गमो दृश्यते
आश्चर्यं सखि पश्य लम्पटगुरोः संन्यासिवेषं क्षितो ॥

—श्रीनरहरि ठाकुर।

प्रभुके कपट संन्यासकी बात उनके सभी भक्त जानते थे। जिन्होंने वस्तुतः मूल गौराङ्गतत्त्वको समझा है, वे निश्चय पूर्वक इस बातको भी समझते हैं। श्रीभगवान् कलिमें संन्यास ग्रहण करेंगे, ऐसा शास्त्रमें लिखा है। षडैश्वर्यपूर्ण, सर्व शक्ति समन्वित, सर्वकारण कारण श्रीभगवान्का दीन-हीन भिखारीका वेष धारण करना, उनका एक कपट भाव था, यह उनके सब भक्त जानते थे। यह कपट वेष धारण न करते तो कलिग्रस्त जीवका कठिन हृदय द्रवित न होता। इसी कारण प्रभुने कङ्गाल संन्यास वेष धारण किया।

श्रीभगवान्की नरलीला सर्वोत्तम लीला है। उन्होंने माता-पिता, स्त्री-जन आदिके साथ मायाबद्ध जीवके समान गृहस्थाश्रम किया था, इनसे उनके मनमें बड़ा सुख हुआ था। कलिके जीव भगवान्के इस संसार सुखमें बाधक बने। श्रीभगवान्का आविर्भाव जीवोद्धारके लिए था, निज सुख-साधनके लिए नहीं था। वे सब कुछ कर सकते थे, लोक-शिक्षाके लिए आत्मसुखको तिलाञ्जलि देना उनके लिए कुछ कठिन न था। परन्तु वे नर वपु धारण करके पृथ्वीपर आविभूत हुए थे, नर प्रकृतिको ग्रहण किया था, नर-भावमें विभावित होकर सब लीलारङ्ग किये थे। शोक-दुःख, हर्ष आनन्द, क्रोध-भय, लज्जा सब कुछ उनकी नर-प्रकृतिमें थे। प्रत्येक लीलारङ्गमें उन्होंने इसको प्रकाशित किया है। निर्विकार होकर भी उन्होंने मायिक संसारा सक्तिमें लीलारङ्ग प्रदर्शन किया था, निर्गुण होकर भी गुणमय हो गये थे। अजन्मा होकर भी उन्होंने जन्म ग्रहण किया था। यह सब श्रीभगवान्के नर-लीलारङ्गका अभिनय मात्र था। श्रीगौर भगवान् यदि कपट संन्यासी बनें तो इसमें विचित्रता ही क्या है ?

राजा प्रतापरुद्रने प्रभुको बहुमूल्य रेशमी वस्त्र दिया है, और उसे प्रभु माताका नाम लेकर नवद्वीप अपनी प्रियतमा श्रीविष्णुप्रिया देवीको भेजेंगे, यह अति स्वाभाविक बात है। श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईंको जब उन्होंने इस वस्त्रके सम्बन्धमें पूछा कि—"श्रीपाद ! राजा प्रतापरुद्रके द्वारा प्रदत्त यह बहुमूल्य वस्त्र लेकर मैं क्या करूँगा ? यह मैं किसे दूं ? इस प्रसादी वस्त्रको मैं त्याग नही कर सकता। मैं विषम समस्यामें पड़ा हूँ। आप मुझको सदुपदेश प्रदान करें।" उस समय प्रभुके मनका जो भाव था, उसे भावुक और प्रेमिक भक्त अनुभव कर सकते हैं।

नर प्रकृति विशिष्ट प्रभुका मन अपने बड़े साधके गृह-संसारके लिए रो उठा है। उनका कोमल हृदय उन्मथित हो गया है। वृद्धा जननी और नवीना सुन्दरी गृहिणीके हृदयमें शूल मारकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया है, इससे प्रभुके मनमें विषम अन्तस्ताप उपस्थित हुआ है। बड़े साधसे उन्होंने श्रीविष्णुप्रिया देवीको द्वितीय विवाहमें अपनी अङ्कलक्ष्मीके रूपमें ग्रहण किया था। उनको साथ लेकर गृहस्थाश्रममें रहकर नवद्वीपमें आनन्द लीला करनेकी प्रेममय प्रभुके मनमें बड़ी साध थी।

अभागिनी जननीको सुख देने, वृद्धावस्थामें उनकी सेवा करनेके लिए शचीमाताके सामने वे वचनबद्ध थे। लेकिन पाषाण हृदय हताभाग्य कलिके जीवने उनके द्वारा प्रदत्त भवरोगकी महौषधि मधुर हरिनामको ग्रहण नहीं किया। श्रीभगवान्‌के ऐश्वर्य सुखमें बाधा पड़ी। जीवोद्धारके लिए यद्यपि संसार-सुखको तिलाञ्जलि देकर वे भिखारी बने, परन्तु उनके मनमें विषम दुःख रह गया। वह दुःख प्रभुको बीच-बीचमें बहुत कातर बना देता था, क्योंकि षडैश्वर्यपूर्ण स्वयं भगवान् होकर भी लीलाके उद्देश्यसे नर-वपु धारण उन्होंने किया था। यह न करनेपर उनकी सर्वोत्तम नर-लीला पूर्णतः अभिव्यक्त न होती।

प्रभु उस दिन चुपचाप सन्ध्याकालमें एकान्तमें समुद्रके तीरपर जाकर बैठे। किसीको कुछ न कहा, कोई कुछ जान न सका। नीलाम्बुराशिके अपूर्व तरङ्गोच्छ्वासमें उनका मन आकृष्ट न हुआ, सुस्निग्ध सान्ध्य समीरणके मृदु हिल्लोलमें उनका मन स्निग्ध न हुआ। आज उनको बड़े साधका नदियाका घर-द्वार याद आ रहा था, दुःखिनी माताकी याद आयी, अनाथिनी प्राण प्रियतमा याद आयी। जीवाधम ग्रन्थकारने उस कपट संन्यासीके तत्कालीन मनके भावको लेकर कुछ पद रचना की थी। वे करुण रसात्मक पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। नवद्वीप-लीलारसज्ञ कृपालु पाठकवृन्द इससे नवद्वीप-रसका आस्वादन करेंगे।

आमि ए कि करिलाम ?

काँदाये जननी, काँदाये घरणी,
केन यति साजिलाम।
वृद्धा मा आमार, करे हाहाकार,
मुखे सदा मोर नाम॥
बालिका घरणी, लुटाय घरणी,
कि करे राखि गो प्राण।
नदियार लोक, पाइल कि शोक,
किछु नाहि बूझिलाम॥
आमि ए कि करिलाम ?

(२)

कि काज सन्न्यासे मोर ?
चखे जल मा र, धरम कि तार,
से हय पातकी घोर।
मन उचाटन, कि हबे साधन,
(मोर) सार ह'ल आँखि लोर॥
केउ नाहि आर, अभागिनी मार,
(ताँर) जीवनेर निशि भोर।
ए वृद्ध वयसे, दिनु कि साहसे,
यातना विषम घोर॥
(ओगो) कि काज संन्यासे मोर ?

(३)

(आमार) सब ह'ल जाना जानि।
भाइ गेल चले, कत कथा बले,
आशा दिनु माके आमि।
पितृ शोके मार, गेछिल आहार,
(तिनि) काँदितेन दिन यामि॥
मुख चेये मोर, सहिलेन घोर,
आशा कथा मने मानि।
करिनु कि काज, मने पाइ लाज,
(एखन) दुइ दिके टाना टानि॥
(आमार) सब हल जाना जानि॥

(४)

(मोर) कि धरम इ'थे हबे ?
सोनार संसार, दिये छार खार,
छाड़िलाम गृह जबे।
अङ्गने पड़िया, अङ्ग आछाड़िया,
मा काँदिल उच्च र वे॥
शुनिनु प्रियार, मृदु हाहाकार,
मो सम दुखीके भवे।
अनुगत जन, मागिल मरण,
एर चेये दुःख किबे ?
(मोर) कि धरम इ' थे हबे ?

(५)

(आमार) केन एत काँदे प्राण ?
बुझिते ना पारि, बुझाइते नारि,
प्राण करे आन्‌चान्‌ ॥
कि भावि सदाइ, कोथाय वा जाइ,
भूले जाइ हरिनाम ॥
माँके काँदाइये, प्रियारे मारिये,
पा'नु वेश प्रतिदान ।
सब चेये मोर, हृदि ज्वाला घोर,
(एइ) कपट संन्यास भान ॥
(आमार) ताइ एत काँदे प्राण ।

(६)

(ओगो) कि करि एखन आमि ?
राखिते दुकूल, हयेछि व्याकुल,
ताइ काँदि दिन-यामि ।
नदेवासी सब, दुःखेते नीरव,
मुखे नाहि सरे वाणी ॥
आधमरा जत, आछे अविरत,
आमि ताहा भाल जानि ।
मा'र दुःख देखे, धारा बहे आँखे,
(तारा) खाय ना अन्नपानि ॥
(ओगो) कि करि एखन आमि ?

(७)

(आमि) कोथा गेले सुख पाइ ।
नीलाचले एसे, कथा कहि हेसे,
लोके जाने दुख नाइ ।
मरि जे मरमे, ना बलि सरमे,
(सदा) नदियार गुण गाइ ॥
शोकेते अधीर, जीर्ण शरीर,
नदेय र'येछे आइ ।
विष्णुप्रियार, दुनिया आँधार,
त्रिभुवने नाहि ठाँइ ॥
(आमि) कोथा गेले सुख पाइ ॥

(८)

(दुखे) छाड़िलाम नीलाचल ।
मनेर दुखेते, भ्रमिते भ्रमिते,
देखिलाम नाना स्थल ॥
तीर्थ भ्रमण, करि अगणन,
मते नहि ह'ल बल ।
भावि अनुक्षण, मायेर चरण,
जीवनेर संवल ॥
गेनू वृन्दावन, जुड़ाते जीवन,
कत ना करिया छल ।
(दुखे) छाड़िलाम नीलाचल ॥

(९)

(पुन) नीलाचले एनु फिरि ।
नदियावासीर, कि दुख गभीर,
बुझिलाम भाल करि ॥
वरषे वरषे, नीलाचले एसे,
(मोरे) देखे गो पराण भरि ।
जहा भालवासि, ताहा लये आसि,
देय गो यतन करि ॥
(आमि) मरि जे सरमे, मनेर भरमे,
मरिनु संन्यास करि ।
(पुन) नीलाचले एनु फिरि ॥

(१०)

(फिरि) नदे जेते मन करे ।
देखे नदे वासी, आँखि नीरे भासि,
हृदि मोर दुखे ज्वरे ।
अपराधी मत, शिर करि नत,
(पूछि) मा आछे केमन घरे ॥
ना पारि बलिते, जाहा चाय चिते,
(केउ) मुख चेपे जेन धरे ।
एकि ह'ल दाय, नदेर मायाय,
सदा मोर आँखि झरे ॥
(फिरे) नदे जेते मन करे ॥

(११)

लोके बले प्रेमे काँदि ।
मनेर वेदन, करि निवेदन,
(पाइ) मनेर मानुष यदि ।
प्रियार विरह, बड़इ असह,
खरधार जेन नदी ।।
दुकुल जाहिंया, उठि उछलिया,
व्याकुलित करे यदि ।
राधार भावेते, मन जाय मेते,
(करि) मने मने साधा साधि ।।
लोके वले प्रेमे काँदि ।।

(१२)

(आमि)ए दुःख काहारे बलि ।
गम्भीराय बसि, काँदि दिवानिशि,
भूमे पड़ि माखि धूलि ।
मरमेर दुखे, पियासे ओ भुखे,
ज्वलित ज्वलने ज्वलि ।।
उठि आर बसि, भिते मुख घसि,
(कोथा)चले जाइ भूलि भूलि ।
सागरेर तीरे, फिरि घूरे घूरे,
तपत बालुका दलि ।।
(आमि) ए दुख काहारे बलि ।।

(१३)

(सदा) निरजन भाल वासि ।
नदीयार सुख, देय मोरे दुःख,
मन माझे दिवानिशि ।।
चिरदिन तरे, माना जेते घरे,
ताइ भाबि वने वसि ।
भावि आर काँदि, जपि निरवधि,
प्रियतमा मुखशशी ।।
जाय प्राण जा'बे, राधिकार भावे,
साजियाछि प्रेमदासी ।
(ताइ) निरजन भाल वासि ।।

(१४)

इहा बलिवार नय कथा ।
गुमुरे गुमुरे निशिदिन झूरे,
गेल नाक मन व्यथा ।
स्वरूप जाने ना, रामराये माना,
कहिते मरम गाँथा ।।
(मोर) मरम वेदना, रहिबे अजाना,
प्रिया जाने आर माता ।
संन्यासेर लीला, दरविबे शिला,
जे वलिबे यथा तथा ।।
(इहा) वलिवार नहे कथा ।।

(१५)

(आमि) केदे सारा रात जागि ।
नर वपु धरि, हइये भिखारी,
संसार सुखेर लागि ।।
एलाम नदीया, सुखेर लागिया,
(आमि) आपन करम भोगी ।
अविरत बहि, अनुताप अहि,
आमि जे विषम-रोगी ।।
तिले तिले तिले, नयन सलिले,
मायेर प्रसाद मागि ।
(आमि) केंदे केंदे रात जागि ।।

(१६)

(पदकर्त्ताकी उक्ति)

(गौर हे) कपट संन्यासी तुमि ।
प्रच्छन्न हइया, असिले नदीया,
भारते पुण्यभूमि ।।
स्वरूप देखाले, निज जन छले,
पतिते करिले मुनि ।
काँदा काटि तव, माधुरी वैभव,
वेदे भागवते शुनि ।।
अनादि अनन्त, तुमि गुणवन्त,
शचीर नयनमणि ।
(ओहे) कपट संन्यासी तुमि ।।

(१७)

(तोमार) गुणे बलिहारी जाइ।

विष्णुप्रियार, तुमि हृदिहार,

तिनिओ तोमार ताइ।

मिलन-विच्छेद, नाहि भेदाभेद,

नित्यलीलार ठाँइ॥

तुमि आछ जेथा, विष्णुप्रिया सेथा,

तथाय तोमार आइ।

नित्य सखा-सखी, नित्य देखा-देखी,

विरह सेथाय नाइ॥

(तोमार) गुणे बलिहारी जाइ॥

(१८)

कलिर जीवेर, कठोर हृदेर,

जड़ता करिते दूर।

आपनि काँदिले, प्रियारे काँदाले,

आसियां नदीयापुर॥

लोकशिक्षा हेतु, भाङ्गिले हे सेतु,

संसार सागर माझे।

ए दृश्य नूतन, डूबिल भुवन,

(तुमि) तारिले नाविक साथे॥

सबाइ काँदिल, हृदय गलिल,

सवाई तरिया गेल।

ना गलिल हिया, हरि अभागिया,

तातेइ वञ्चित भेल॥

कृपालु पाठकवृन्द! जीवाधम ग्रन्थकारको क्षमा करेंगे। भावके स्रोतमें पड़कर बहुत दूर बह गया हूँ। भावराज्य अति विस्तृत और अद्भुत राज्य है। इस राज्यके राजा भावनिधि स्वयं भगवान् हैं। भावुक और प्रेमिक भक्तगण उनकी प्रजा हैं। भावभक्ति इस राज्यमें प्रवेशका द्वार है। इस अद्भुत भावराज्यका राजा भी पागल है, प्रजा भी पागल है। यह प्रभुके श्रीमुखकी वाणी राय रामानन्दके प्रति है। यथा—

आमि एक बातुल तुमि द्वितीय वातुल।

अतएव तोमाय आमाय हइ समतूल॥

चै. च. म. ८.२४२

भक्त और भगवान्के सारे लीलारङ्ग भावमय हैं, अतएव साधारण बुद्धिमें यह पागलपन सिवा और कुछ नहीं है। बुद्धिमान् शास्त्रदर्शी पण्डितोंको यह पागलपन निश्चित ही अच्छा नहीं लगेगा। परन्तु भावग्राही लीला रसमय विग्रह श्रीभगवान् अपने भावुक भक्तके हृदयके अन्तस्तलकी मर्मभेदी बात सुनना बहुत पसन्द करते हैं। भावनिधि श्रीगौराङ्ग सुन्दर हमारे प्रेमके देवता हैं, भावके राजा हैं, प्रेम राज्यके राज्येश्वर हैं, वे भावराज्यके महाराजा हैं। जीवाधम ग्रन्थकारके ये प्रलाप-वचन कृपालु पाठकवृन्द पागलपनके सिवा और कुछ नहीं कहेंगे, यह निश्चित है। परन्तु भावनिधि श्रीगौर भगवान्के सामने उनकी पागल संन्तानकी ये सारी बातें अति आदरणीय हैं। पागल भक्तके पागलपनको वे बहुत पसन्द करते हैं। जीवाधम ग्रन्थकार भक्त नहीं है, यह वे अच्छी तरह जानते हैं, इसको भक्ताभिमान नहीं है। परन्तु पागलपन इसमें काफी है। कृपालु पाठकवृन्दको इसका पर्याप्त परिचय मिल चुका है और आगे मिलेगा।

पागलकी बातसे कोई क्रोध नहीं करता, यही मङ्गल है। इसी साहससे एक और पागलपन करनेकी इच्छा हुई है। जीवाधम ग्रन्थकारके द्वारा रचित इसी भावका एक और पद यहाँ सन्निविष्ट किया जाता हैं।

यहाँ कपट संन्यासी छिपकर रोते नहीं हैं, नदियावासी भक्तवृन्दको सम्बोधन करके वे रोते-रोते कह रहे हैं—

यथा राग।

आयरे ओ भाइ, जाइ नदियाय,

विष्णुप्रिया पड़ेछे मने।

तारे एकूला फेले, एसेछि नीलाचले,

मन छुटेछे देखवो बले, पराणधने॥

(आमि) करङ्ग कौपीन फेलि,

नदीयाय जाब चलि।

देखवो गिये, विष्णुप्रिये आछे केमने ।
(आमार) विष्णुप्रिया पड़ छे मने ।।
ओ भाई !
नदीयाय आबार जाब,
कोन मुखेते देखा देवो,
(आमि) ताइ भावि मने मने ।।
(आमि) वूड़ा मायेर शुनिनि कथा,
प्रियार मने दियेछि व्यथा,
सेइ पापे आर अनुतापे,
पथे घाटे देश-विदेशे,
(आमि) वेड़ाइ कैंदे रात्रि दिने ।।
मनेर वेदन मने धरि,
दिवा निशि कैंदे मरि,
(आमि) कइने कथा कारु सने ।
(आमार) विष्णुप्रियार चन्द्रमुख,
जननीर शोक दुख,
स्मरण ह'ले अङ्ग कांपे,
हिया ज्वले अनुतापे,
(आमि)ताइ पड़े जाइ धरासने ।।
(आवार) आपनि उठे मनेर खेदे
आमि, हाते धरि जने ।
(आमार) विष्णुप्रिया पड़ेछे मने ।।
निजजने दिये साजा,
प्रेमेर भिखारी साजा,
(आमार) पूर्ण ह'ल प्रायश्चित्त-विधि-विधाने ।
(एतदिने) विष्णुप्रिया पड़ेछे मने ।।
कय हरिदास चरण धरि,
(ओहे) नदेर चाँद गौरहरि,
(एक बार) एस फिरे नदेपुरे;
(आमि)देखबो तोमाय प्रिया सने,—शच-अङ्गने ।
(भाल) एत दिने विष्णुप्रिया पड़ेछे मने ।।
शचीर आङ्गन माजे,
नदीया नाट्या साजे,
मोरा सब नदेवासो,
आड़ नयने मुच्कि हासि,
देखबो तोमाय विष्णुप्रियार धरते चरणे ।
(तोमाय) साधिते काँदिते हबे,
(ए सब) भारि भूरि कोथा रबे,
नदे माझे लाज पाबे,
तबे प्रिया कथा कबे,
(तार) अभिमान दूरे जाबे,–मान भञ्जने ।
(तोमार) विष्णुप्रिया पड़ेछे मने ।।
(पूर्वलीलाय) तुमि भञ्जेछ राधिकार मन,
(ताते) नाहिक तोमार अपमान,
सबाइ जाने कपट तुमि,
निठुरेर शिरोमणि,
(तोमाय) निजजन-निठुर बले, महा महाजने ।
ओहे विष्णुप्रिया-वल्लभ !
(तोमार) दासेर दास हरिदासे रेख चरणे ।।

श्रीनीलाचलमें प्रभुने भक्तगणको साथ लेकर चार मास तक निरन्तर आनन्दोत्सव किया । इसमें रामलीला-अभिनय भी हुआ । प्रभुका हनुमान भाव था, और भक्तवृन्द वानर सेना बने । प्रभु वृक्षकी शाखा लेकर गिरि-पर्वत तोड़ते थे और क्रोधकम्पित स्वरमें हुङ्कार-गर्जन करके कहते थे—"अरे रावण ! तू जगन्माता सीताजीको हर ले गया है । तू महापापी हैं । मैं तेरा सवंश विनाश करूँगा । प्रभु क्रोधमें रुद्रावतार हो गये थे । सब लोग उनमें हनूमानका आवेश भाव दर्शन करके प्रेमानन्दमें जय-जय ध्वनि करने लगे । श्रीनीलाचलमें प्रतिवर्ष रामलीला होती थी, परन्तु इस वर्ष प्रभुने जिस प्रकार यह अद्भुत लीला-रङ्ग प्रकट किया, ऐसा पहले कभी किसीने नहीं देखा था । नीलाचल-वासी आबालवृद्ध-वनिता उनके चरणोंमें गिरकर उनकी कृपाभिक्षा माँगने लगे ।

इसके बाद श्रीक्षेत्रमें दीपावली और रासयात्रा उत्सव भी बड़े समारोहसे सम्पन्न हो गया । श्रीनीलाचलमें देवोत्थान एकदशी बड़े समारोहसे मनायी जाती है । मुक्त हस्तसे दीन-दरिद्रको प्रसाद बाँटा जाता है । नृत्य-कीर्तन, गीत वाद्य आदि आनन्दोत्सवमें प्रभु अपने भक्तवृन्दके साथ

श्रीनीलाचल धाममें इन चार महीनोंप्रेमानन्द सागरमें डूबे रहे। नदियाके भक्तोंको इन चार महीने क्षणभरके लिए भी घरकी चिन्ता करनेका अवसर न मिला। वे सब गृहस्थ थे, परन्तु प्रभुके प्रेम-फाँसमें पड़कर गृहस्थ होकर भी उदासीके समान हो गये थे। घर गृहस्थी, स्त्री-पुत्रकी बातकी चिन्या दिन-भरमें एक बार भी उनके मनमें उदय नहीं होती थी। भक्तवत्सल प्रभु उनपर पुत्रके समान स्नेहभाव रखते थे, उनका मत्त देखकर कार्य करते थे, उनकी मनोबाञ्छा पूर्ण करते थे। वे लोग निरन्तर प्रभुके पास रहते थे।

राजा प्रतापरुद्र, सार्वभौम भट्टाचार्य, राय रामानन्द आदि भक्तगणने एक दिन प्रभुसे कहा—"प्रभु! आपके कारण ही सब वैष्णवोंके दर्शनका सौभाग्य हम सबको मिला है।"

नदियाके भक्तवृन्दको उद्‌देश्य करके उन्होंने यह बात कही। वहाँ श्री अद्वैत प्रभु उपस्थित थे, उन्होंने उत्तर दिया—"ये सब वैष्णव देवताओंको भी नहीं दीखते।"

इतना कहकर शान्तिपुरनाथ वैष्णव-महिमा कीर्तन करने लगे। वे बोले—

यथा सौमित्रि-भरतौ यथा सङ्कर्षणादयः।
तथा तेनैव जायन्ते मर्त्तलोकं यदृच्छया॥
पुनस्तेनैव यास्यन्ति तद्विष्णोः शाश्वतं पदम्।
न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानाञ्च विद्यते॥

प. पु. उ. खं. २५७.५७.

श्रीअद्वैताचार्यके मुखसे, वैष्णव माहात्म्य कीर्तन श्रवण करके प्रभुने परमानन्द प्राप्त किया वे अपनी आजानुलम्बित युगल भुजाएँ ऊपर उठाकर कीर्तनके स्वरमें बोले—

एस हे एस हे आमार वैष्णव गोसाञि।
कलि जीवे तराइते आर केह नाइ॥

भक्तवृन्दके साथ श्रीअद्वैत प्रभुने इस उच्च कीर्तनमें योग दिया आनन्दका तरङ्ग उठा। श्रीनीलाचलमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी। उस प्रेमकी बाढ़में सब लोग बह चले।

हइल जनम किन्तु तरवन ना हैल।
दास हरिदास से सुखे वञ्चित भेल॥

चौदहवाँ अध्याय

नीलाचलसे नदियाके भक्तवृन्दकी विदाई

प्रभुर विच्छेदे भक्त करये रोदन।
भक्तेर विच्छेदे प्रभुर विषण्ण हैल मन॥

चै. च. म. १५.१८०

स्वयं आचरण द्वारा शिक्षा

प्रभु हमारे संन्यासी है। संन्यासी पुत्रको उनके माता-पिता भी नमस्कार करते हैं। 'सोऽहं' वादियोंकी यही शास्त्र-विधि है। परन्तु धर्म-रक्षके, शास्त्र मर्यादा पालक प्रभुने शास्त्रकी यह आज्ञा नहीं मानी। वे वैष्णव संन्यासी थे, मायावादी संन्यासी नहीं थे। 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोकके सृष्टि-कर्त्ता क्या सोऽहंवादीके शास्त्रके अनुसार चल सकते थे? श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु सबको नमस्कार

करते हैं। सबके सामने प्रभु अतिशय विनीत रहते हैं। अपने आश्रम-धर्मका उल्लङ्घन करके भी वे वैष्णवोंका सम्मान करते हैं। वे स्वयं भगवान् होकर भी भक्त-भावापन्न हैं। गृहस्थ वैष्णवको भी वे नमस्कार करते हैं, वैष्णव, तुलसी, गङ्गा और प्रसादमें प्रभुकी दृढ़ भक्ति देखकर भक्तवृन्द आश्चर्य करते हैं। वैष्णवकी महिमा, तुलसी गङ्गाकी महिमा, तथा भक्ति और प्रसाद माहात्म्य समझानेके लिए ही उन्होंने स्वयं आचरण करके अपने भक्तवृन्दको शिक्षा दी है।

इसमें नीलाचलवासी मायावादी संन्यासी प्रभुको दोष देते हैं, परन्तु प्रभु उसपर तनिक भी ध्यान नहीं देते। तुलसी माताके प्रति प्रभुकी कैसी अचला भक्ति थी, यह श्रीवृन्दावनदास लिखित निम्नलिखित कतिपय पयार श्लोकोंका पाठ करनेसे सहज ही समझमें आ सकता है।

तुलसीर भक्ति एबे शुन मन दिया।
जेरूपे कैलेन लीला तुलसी लइया॥
एक क्षुद्र भाण्डे दिव्य मृत्तिका पूरिया।
तुलसी देखेन सेइ घटे धारोपिया॥
प्रभु बोले "मुञि तुलसीरे ना देखिले।
भाल नाहि वासों जेन मत्स्य बिने जले॥"
जबे चले संख्या नाम करिया ग्रहण।
तुलसी लइया अग्रे चले एक जन॥
पथेओ चलेन प्रभु तुलसी देखिया।
बहये आनन्दधारा सर्वाङ्ग बहिया॥
संख्या नाम लैते जे स्थाने प्रभु वैसे।
तथाइ थोयेन तुलसीरे प्रभु पाशे॥
तुलसीरे देखेन, लयेन संख्या नाम।
ए भक्तियोगेर तत्त्व के बूझिवे आन॥
पुन सेइ संख्या नाम सम्पूर्ण करिया।
चलेन ईश्वर अग्रे तुलसी देखिया॥
शिक्षा गुरु नारायण जे करायेन शिक्षा।
इहा जे मानये सेइ जन पाय रक्षा॥

चै. भा. अं. ८. १५३-१६१

गङ्गा महिमा कीर्तन करके गङ्गादेवीको सम्बोधन करके प्रभु कहते हैं—

प्रेम रसस्वरूप तोमार दिव्य जल।
शिव से तोमार तत्त्व जानेन सकल॥
सकृत तोमार नाम करिले श्रवण।
तार विष्णुभक्ति हय, कि पुनः भक्षण॥
तोमार प्रसादे से 'श्रीकृष्ण' हेन नाम।
स्फुरये जीवेर मुखे, इथे नाहि आन॥
कीट पक्षी श्रृगाल-कुकुर यदि हय।
तथापि तोमार यदि निकटे वसय॥
तथापि ताहार अत भाग्येर उपमा।
अन्यत्रेर कोटीश्वर नाहै तार समा॥
पतित तारिते से तोमार अवतार।
तोमारे समान तुमि बइ नाहि आर॥

चै. भा. अं. १.११२-११७

महाप्रसादमें विश्वास देखकर प्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा था—

आजि निष्कपटे तुमि हैला कृष्णाश्रय।
कृष्ण निष्कपटे हैला तोमारे सदय॥
आजि से खण्डिल तोमार देहादि बन्धन।
आजि छिन्न कैले तुमि मायार बन्धन॥
आजि कृष्ण प्राप्ति योग्य हैल तोमार मन।
वेदधर्म लङ्घि कैले प्रसाद भक्षण॥

चै. च. म. ६.२१०-२१२

प्रभु स्वयं आचरण करके कलिवस्त जीवको वैष्णवधर्मके आचरणकी सारी शिक्षा दे गये हैं। शत-शत धर्मशास्त्र-निर्दिष्ट उपदेशकी अपेक्षा स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत उपदेश वाणीको हम श्रेष्ठ मानते हैं। कविराज गोस्वामीने भी लिखा है—

श्रीकृष्ण चैतन्य वाणी अमृतेर धार।
तिहों जे कहये वस्तु सेइ वस्तु सार॥

चै. च. म. २५.४९

भक्तोंकी विदाई

आश्विन मासके अन्तमें नदियाके भक्तवृन्द नवद्वीप लौट जानेका उद्योग करने लगे। प्रभुको

नीलाचलमें छोड़कर नवद्वीप लोटनेकी उनकी इच्छा न थी, परन्तु प्रभुका आदेश हुआ कि—"तुम लोग यहाँसे नवद्वीप लौट जाओ। प्रति वर्ष रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचलमें आकर मुझसे मिला करो।"

प्रभुने यह आदेश श्रीनित्यानन्द प्रभुसे परामर्श करके दिया। एक दिन एकान्तमें दोनों भाइयोंने एक साथ बैठकर कुछ परामर्श किया, वह किसीको कुछ ज्ञात न हुआ। उसीके फल स्वरूप प्रभुका यह आदेश हुआ था।

भक्तवत्सल प्रभुने अपने नदियाके भक्तोंको घर जानेका आदेश तो दिया, परन्तु इससे उनके मनमें सुख न हुआ। उन्होंने देखा कि सभी भक्तवृन्द गृहस्थ हैं। चार महीने तक घर-द्वार, स्त्री-पुत्रादिको छोड़कर उनके साथ नीलाचलमें आनन्दोत्सवमें मत्त रहे हैं। अब उनको स्वदेश भेज देना उचित है। उनके बिना स्त्री-पुत्रादि कष्ट पा रहे होंगे, घर-गृहस्थी खराव हो रही होगी।

इसका ज्ञान भक्तोंको नहीं था, क्योंकि वे प्रभुके सङ्ग-सुखमें उन्मत्त रहे हैं। परन्तु भक्त-वत्सल प्रभु अपने भक्तोंके सुख-दुःखकी सब प्रकारसे खोज करते रहते हैं। इसी गुणसे उन्होंने प्रभुके चरणोंमें सर्वस्व समर्पण किया है।

नदियाके सब भक्तगण प्रभुके वासापर एकत्रित हो गये हैं, गत दिवस विजया दशमी बीत गयी है। आज एकादशी है। प्रभुके वासेपर हरि वासरके कीर्तनके आनन्दमें सारी रात सब जागते रहे। नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें मत्त होकर सब भक्तोंको साथ लेकर प्रभुने उस दिन हरिवासर किया। दूसरे दिन प्रभुके वासापर द्वादशीका पारण करके भक्तगण विदा हुए। उस दिन प्रभुके वासापर महामहोत्सव हुआ। राजा प्रतापरुद्रको संवाद मिला कि नदियाके भक्तगण देश जा रहे हैं। उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा राशि-राशि प्रसादान्न प्रभुके वासापर उनके भक्तवृन्दके लिए भेजा। प्रभुने उस दिन सबको स्वयं परोसा। भर पेट भक्तगणको प्रसाद भोजन कराया।

भोजनोपरान्त सबको लेकर प्रभु आङ्गनमें बैठे। नदियाके सब भक्तगण प्रभुको घेरकर बैठ गये। सबकी आँखें छल-छला आयी, मुँह उदास हो गया, किसीकी भी इच्छा नहीं हो रही थी कि प्रभुको छोड़कर देश जाँय। वे सबके सब गृहस्थ थे। प्रभुकी आज्ञा थी कि गृहस्थ घर-गृहस्थी छोड़कर उनके साथ नहीं रह सकता। गृहस्थ वैष्णव घरपर रहकर भजन करे। यही प्रभुका उपदेश था। इसी कारण प्रभुसे कोई कुछ बोल नहीं पा रहा है।

प्रभुके सामने श्रीअद्वैताचार्य हैं, उनके बगलमें श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं, उनके बाद श्रीवास आदि भक्त बैठे हैं। प्रभुने पहले सम्मान पूर्वक शान्तिपुर नाथको सम्बोधन करके कहा—"आचार्य ! आप जगद्-गुरु हैं। कृपा करके आचाण्डाल सबको कृष्ण-भक्ति प्रदान करेंगे। आप कृष्ण-भक्तिके भण्डारी हैं। मूर्ख, नीच, दरिद्र, स्त्रीजन, चाण्डाल, जो भी सामने मिले, उसे ही कृष्णनाम देंगे। यह कार्य करते रहनेपर मैं सदा आपके सामने ऋणी रहूँगा।" श्रीअद्वैत प्रभु रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। प्रभुका आदेश मस्तकपर धारण कर वे कृतार्थ हो गये। प्रेमावेगमें वे और कुछ न बोल सके।

करुणामय प्रभुने तब अवधूत श्रीनिताई चाँदके श्रीवदनकी ओर करुण नयनसे देखकर कहा—"श्रीपाद ! आप भी इन लोगोंके साथ गौड़ देश जाँय। आप प्रेमदाता हैं। निर्वाध प्रेम-भक्तिका प्रचार करके कलिके जीवोंका उद्धार कीजिये। आपसे यही मेरी प्रार्थना है।"

श्रीनित्यानन्द प्रभु यह आदेश सुनकर कुछ देर चुप रहे। पश्चात् आखोंमें आँसू भरकर प्रभुसे उनने कहा—"हे प्रभु ! मैं तो गृहस्थ नहीं हूँ, मैं अवधूत संन्यासी हूँ। मेरा घर-द्वार नहीं है। तुम्हीं मेरे सब कुछ हो। तुम्हें छोड़कर मैं कहीं भी न जा

सकूँगा। मुझको यह आदेश आप न दो। नदियाके गृहस्थ भक्तोंको विदा करते समय तुम मुझको लेकर खींचा-तानी क्यों कर रहे हो? इसका मर्म मेरी समझमें नहीं आया। कृपा करके मुझको छोड़ दो। मुझको नदियामें भेजना और मेरा वध करना एक ही बात है।" इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु बालकके समान उच्च स्वरसे रो पड़े।

प्रभु इसके ऊपर कोई उत्तर न दे सके। श्रीनिताई चाँदके करुण रुदनसे सारे भक्तगण व्याकुल हो उठे। तब प्रभु मृदु मधुर स्वरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुको सम्बोधन करके बोले—"श्रीपाद! तब तुम कुछ दिन और यहाँ रहो। परन्तु तुम्हें गौड़ देशमें लौटकर जाना पड़ेगा। तुमको गौड़ देशमें भेजनेका कुछ कारण है। यह मैं पीछे बतलाऊँगा।"

श्रीनित्यनन्द प्रभुके मनमें विषम सन्देह उपस्थित हो गया। प्रभुने किस उद्देश्यसे उनको अलग करनेके लिए सोचा है, यह चिन्ता करके वे व्याकुल हो उठे। प्रभु उनकी ओर अब न देखकर श्रीवास पण्डितके पास गये, उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनके द्वारा कृतार्थ करके, गलेमें बाँह डालकर प्रेमाश्रुपूर्ण नयनोंसे एकान्तमें मृदु और करुण वचन बोले—

तोमार घरे कीर्तने आमि नित्य नाचिब।
तुमि देखा पाबे, आर केह ना देखिब॥

चै. च. म. १५.४७

नवद्वीप-स्फुर्ति, माता द्वारा प्रदत्त प्रसाद ग्रहण

इतनी बात कहते-कहते प्रभुके मनमें नवद्वीपकी स्फूर्ति हो आयी। नदियाकी अतुल सम्पत्तिकी बात याद आयी। अपनी सांसारिक सुखकी सारी बातें एक-एक करके मनमें आयीं। दुःखिनी माता, अनाथिनी गृहिणी, अर्द्धमृत आत्मीय स्वजन, शून्य श्रीवास-आङ्गण, निरानन्द गङ्गातट, एक-एक करके सब प्रभुके स्मृति पटपर उदय होने लगे। उन्होंने प्रेममें भरकर व्याकुलता पूर्वक रोते हुए श्रीवास पण्डितसे दुःखिनी माताके विषयमें कहा—"पण्डित! मैंने संन्यासाश्रम ग्रहण करके बड़ा ही दुष्कर्म किया है। वृद्धा जननीकी सेवा त्याग कर मैं क्या धर्म अर्जन करूँगा? उनको कष्ट देकर मैं क्या सुख पाऊँगा? मैं सर्व धर्म नष्ट करके संन्यासी हुआ हूँ। मैंने पागलके समान कार्य किया है। मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, इसीसे मैंने यह अपकर्म किया। पण्डित! मेरी जननी मेरे विरहमें न जाने कितना कष्ट उठा रही है। वह ऐसा दारुण दुःख सहन करके जीवित हैं, यह केवल श्रीकृष्णकी कृपा मात्र है। कुपुत्र अवश्य हो सकता है, परन्तु कुमाता कभी नहीं होती। पागल कुपुत्रका अपराध माता-पिता कभी नहीं गिनते। मैं जननीका कुपुत्र हूँ, पागल सन्तान हूँ। क्या वह मेरा अपराध क्षमा नहीं करेंगी? पण्डित! मेरी शपथ, तुम नवद्वीपमें जाकर मेरी यह बातें मेरी दुःखिनी मातासे कहना। उनके चरणोंमें मेरा कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम कहकर मेरे सैकड़ों अपराधोंको क्षमा कराना। पण्डित! तुम मेरे परम हितकारी बन्धु हो। कृपा करके मेरा यह उपकार करना।"

इतना कहते-कहते मातृभक्त प्रभुका कण्ठ रुद्ध हो गया। वे दोनों भुजाओंसे श्रीवास पण्डितका गला जकड़कर बालकके समान उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। श्रीवास पण्डित स्थविरके समान जड़वत् बैठे रहे। उनके दोनों नेत्रोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बहने लगी। प्रभुके नयन-जलमें उनका नयन-जल मिलकर वहाँ प्रेमनदी प्रवाहित होने लगी। भक्तवृन्द स्त्रीजनके समान व्याकुल होकर सब फूट-फूटकर रोने लगे। सबने वस्त्रसे मुँह ढक लिया। कोई प्रभुकी ओर मुँह उठाकर देख नहीं पाता था। श्रीश्रीनवद्वीप चन्द्रको आज नवद्वीपकी बात याद आ गयी थीं, दुःखिनी जननीकी बात मनमें आयी थी, अनाथिनी विष्णुप्रियाकी दशा याद हो आयी थी। आज तक प्रभुके मुखसे कृष्ण-कथाके सिवा अन्य कोई बात किसीके सुननेमें नहीं आयी थी।

इन चार महीनों तक प्रभु श्रीकृष्ण कथा-रस-रङ्गमें मत्त रहे। और कोई बात उनके मनमें स्थान न पा सकी। आज उनका यह विपरीत भाव देखकर भक्तवृन्दका कोमल हृदय उन्मथित हो गया। आज उनको स्पष्ट जान पड़ा कि प्रभु वस्तुतः कपट संन्यासी हैं।

कुछ देर तक सब लोक स्तब्ध रहे। प्रभु भी कुछ शान्त हुए। वे सिर नीचा करके कुछ सोचने लगे। पश्चात् प्रेमावेशमें श्रीवास पण्डितका गला पकड़कर क्रन्दन करते हुए पुनः कहने लगे—

नीलाचले आछो मुञि ताँहार आज्ञा ते।
मध्ये मध्ये आसिमु ताँर चरण देखिते॥
नित्य जाइ देखि मुञि ताँहार चरणे।
स्फूर्त्ति ज्ञाने तेंहो ताहा सत्य नाहि जाने॥

चै. च. म. १५. ५३,५४

इतना कहकर प्रभु प्रेमावेशमें विह्वल होकर लुढ़क पड़े। उनका मन आज अत्यन्त उत्तेजित हुआ है। अत्यन्त गोपनीय बात भी वे आज मनमें नहीं रख पा रहे हैं। भक्तके सामने भगवान्‌को कुछ छिपाना नही है। वे निष्कपट भावसे श्रीवास पण्डितसे आज अपने मनकी बात बोल रहे हैं। छिपानेकी बात है, परन्तु प्रभुने आज कुछ भी छिपाकर नहीं रक्खा। सबके सामने मातृभक्त प्रभुने शचीमाताकी महिमा कीर्तन करके अपनेको प्रकट कर दिया। सबने आज प्रभुके श्रीमुखसे उनकी भगवत्ताकी अपूर्व बात सुनी।

प्रभुने श्रीवास पण्डितसे कहा—"पण्डित! सुनो एक दिनकी बात कहता हूँ। गत विजया दशमीके दिन मेरी दुःखिनी माताने नवद्वीपमें बैठकर क्या किया, बताता हूँ। यह सब बड़ी गुह्य बात है। उनकी मनस्तुष्टिके लिए मैंने क्या किया, यह भी सुनो। तुम मेरे अत्यन्त अन्तरङ्ग भक्त हो, मुझे छिपाना कुछ नहीं है। इसीलिए कहता हूँ कि नवद्वीपमें जाकर मेरी परम पूजनीया जननीको सारी बातें कहकर उनको विश्वास दिलाना। वे मेरी मायामें आवद्ध हैं, पुत्र स्नेहमें वे अत्यन्त विह्वल हैं। इन सब बोतोंसे उनको विश्वास होगा या नहीं, मुझे सन्देह हैं। इतना कहकर प्रभु मधुर शब्दोंमें कहने लगे—

एक दिन शाल्यन्न व्यञ्जन पाँच सात।
शाक, मोचा घण्ट, भ्रष्ट पटोल, निम्बपात॥
लेबू आदाखण्ड, दधि, दुग्ध, खण्डसार।
शालग्रामे समर्पिले बहु उपहार॥
प्रसाद लइया कोले करेन क्रन्दन।
निमाञिर प्रिय मोर ए सब व्यञ्जन॥
निमाञि नाहिक घरे, के करे भोजन?
मोर ध्याने अश्रुजले भरिल नयन॥
शीघ्र जाइ मुञि सव करिनु भक्षण।
शून्यपात्र देख अश्रु करिया मार्जन॥
के अन्न व्यञ्जन खाइल शून्य केन पात?।
हेन बुझि बाल गोपाल खाइल सब भात॥
किवा मोर मनः कथाय भ्रम हैया गेल।
किवा कोन जन्तु आसि सकल खाइल॥
किवा आमि भ्रमे अन्न पाते ना बाड़िल।
एत चिन्ति पाक पात्र जाइया देखिल॥
अन्न व्यञ्जन पूर्ण देखि सकल भाजन।
देखिया संशय किछु चमत्कार मन॥
ईशान द्वाराय पुनः स्थान लेपाइल।
पुनरपि गोपालेरे अन्न समर्पिल॥
एइ मत जबे करेन उत्तम रन्धन।
मोरे खाओयाइते करेन उत्कण्ठा क्रन्दन॥
ताँर प्रेमे आमि मोरे कराय भोजने।
अन्तरे मानये सुख, बाह्ये नाहि माने॥
यह विजयादशमीते हैल एइ रीति।
ताँहाके पूछिया ताँरे कराइह प्रतीति॥

चै. च. म. १५.५५.६७

इतनी वात कहते-कहते प्रभु प्रेमावेगमें विह्वल हो गये, और वह बात न कर सके। श्रीवास पण्डितने उनको गोदमें उठा लिया। अपने हृदय-धन-प्राण गौराङ्गको हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने सन्तप्त

प्राणको शीतल किया, नयन-जलसे प्रभुके श्रीअङ्गको धो डाला श्रीवास पण्डितके मनमें आज शची माताका भाव आ गया। वे परम स्नेह पूर्वक प्रभुके श्रीअङ्गपर हाथ फेरने लगे, और अजस्र आँसू बहाने लगे।

अब प्रभुकी इस अपूर्व बातपर कुछ विचार कीजिये। प्रभु स्वयं भगवान् हैं, अनुरागी भक्तकी अनुराग भरी पुकार सुनकर वे स्थिर नहीं रह सकते, यह उन्होंने अपने श्रीमुखसे स्वीकार किया है। शची माता परम अनुरागमें भरकर शुद्ध वात्सल्य भावमें श्रीगौराङ्ग भजन करती हैं। उनके घर भी श्रीनारायण विग्रह, श्रीबालगोपालकी मूर्त्ति है। उनकी पूजा, भोग आदि सब कुछ होता है। शची माताने विजया दशमीके दिन उत्तम-उत्तम अन्न-व्यञ्जन रन्धन करके गृहदेवताको भोग लगाया, परन्तु उसी समय उनको अपना संन्यासी पुत्र याद आ गया। निमाईको जो-जो वस्तु पसन्द थी, वही-वही वस्तु ठाकुरके भोगमें प्रस्तुत थी। ठाकुरका भोग उपलक्ष्य मात्र था। निमाईकी प्रीतिके लिए ही उनका मन उत्कण्ठित था। "अहा ! मेरा निमाई यह सब शाक-व्यञ्जन आदि पसन्द करता था। यदि मेरा निमाई आज यहाँ होता तो निमाईको यह सब पदार्थ खिलानेमें मुझे कितना सुख मिलता ?" यही शची माताका ध्यान था। इसीको अनुराग भजन कहते हैं। अच्छी वस्तुएँ देवताको भोग लगानेमें अवश्य सुख होता है। प्राकृत दृष्टिमें वे खाते नहीं हैं, यह देखकर दुःख होता है। यदि वे खाते हैं और वह देखनेमें आता है तो इससे बढ़कर और कोई सुख नही होगा। निमाईको शची माता अपने इष्टदेवसे भी अधिक मानती हैं, परन्तु शची माताके मनमें यह नहीं आता कि निमाई उसका इष्टदेव है, सर्वदेव पूज्य स्वयं भगवान् है। क्योंकि उनका भजन ऐश्वर्य-शून्य है। निमाईको कोई भगवान् कहता है तो उनके मनमें क्रोध होता है। वे अपने मनमें सोचती हैं कि इससे उनके पुत्रका अकल्याण होगा।

श्रीगौर भगवान्ने स्पष्ट कह दिया कि उनकी दुःखिनी माता जब ठाकुरको भोग लगाकर प्रसाद लेकर पुत्रके ध्यानमें बैठी तो मातृभक्त पुत्र नीलाचलमें स्थिर न रह सका। वह नवद्वीप आ गया, जननीकी मनस्तुष्टिके लिए प्रसाद भोजन किया, किन्तु साक्षात् दर्शन नहीं दिया। सूक्ष्म देहसे यह सब कार्य किया। परन्तु अनुराग भजन करने वाले भक्त श्रीभगवान्के इस प्रकारके ऐश्वर्यपूर्ण कृपालाभसे सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहते हैं कि श्रीभगवान् आकर उनके साथ बातें करेंगे, उनके मुखसे अनुराग पूर्ण बातें सुनेंगे, उनके दिये हुए भक्ति-उपहारको अपने हाथों ग्रहण करेंगे, उनके यत्न पूर्वक संग्रहीत भक्ष्य द्रव्यको सामने बैठकर भोजन करेंगे, और मधुर वचन कहेंगे—"अच्छा बना है, और दो।" यही श्रीभगवान्, प्रेमानुरागी भक्तकी भजन-प्रणाली है।

अनुरागकी पुकारसे श्रीभगवान्को आना ही पड़ता है। शची माताने परम अनुराग पूर्वक पुकारा, श्रीगौर भगवान्को जाना पड़ा, परम प्रेमानुरागमें भरकर माताने रोते-रोते मनमें सोचा—"ये सब व्यञ्जन निमाईको अत्यन्त प्रिय हैं, वह तो घरमें है नहीं, कौन इनको आस्वादन करे।" वैसे ही भक्तवत्सल प्रभुको भोजन करनेके लिए आना पड़ा। श्रीभगवान्में इस प्रकारकी परमा प्रीतिका नाम है अनुराग भजन। प्रभुने कहा—

ताँर प्रेमे आनि आमाय कराय भोजने।

चै. च. म. १५.६६

शची माताके वात्सल्य स्नेहमें आबद्ध होकर भक्तवत्सल प्रभुको नीलाचलसे नवद्वीपमें आकर उनकी मनस्तुष्टिके लिए भोजन करना पड़ता था। प्रभु मातृभक्त शिरोमणि थे, उनके प्रति शची माताका वात्सल्य भाव अतुलनीय था। प्रभु यद्यपि माताकी आज्ञासे नीलाचलमें रहते थे, परन्तु अपनी

माताको दर्शन देनेके लिए नित्य नवद्वीपमें जाते थे। यह बात उन्होंने स्वयं कही है—

नित्य जाइ देखि मुञि ताँहार चरणे।

चै. च. म. १५.५४

प्रभुका यह नीलाचलसे नित्य नवद्वीप जाना लोक चक्षुमें अलौकिक जान पड़नेपर भी अविश्वास करने योग्य नहीं है। श्रीभगवान् सर्वत्र सदा ही अवस्थित रहते हैं। भक्तकी पुकारसे वे स्थिर नहीं रह सकते। भक्तवृन्द जहाँ श्रीभगवान्‌का नाम कीर्तन करते हैं, वहाँ वे उपस्थित होते हैं।* शची माताकी अनुरागकी पुकारसे प्रभुका नवद्वीपमें जाना असम्भव नहीं है। शची माता श्रीभगवान्‌की वैष्णवी मायासे अभिभूत होकर कुछ समझ नहीं पाती हैं। वे मनश्चक्षुसे सब कुछ देख पाती हैं, ध्यानस्थ होते ही प्रियतम पुत्रको सर्वदा ही सामने पाती हैं। मनमें वासना करते ही वह वासना तत्काल पूर्ण होती है, यह उनकी समझमें आता है। परन्तु बाह्यदृष्टिसे और ही भाव बोध होता है। इससे शची माताका मन नहीं मानता। यही श्रीभगवान्‌का लीला रहस्य है। शची माताके हृदयमें सुख है, क्योंकि वे अपने प्रियतम पुत्रको सदा हृदयमें देख पाती हैं, परन्तु बहिर्दृष्टिसे नहीं देख पाती हैं, यही उनके दुःखका कारणहै। इसी कारण प्रभुने कहा कि,

अन्तरे मानये सुख बाह्ये माहि माने।

चै. च. म. १५.६६.

यह सारी भजनकी बातें गूढ़ रहस्यसे भरी हैं। श्रीभगवान्‌की लीला कथामें निष्कपट विश्वास हुए बिना इसके मर्मको हृदयङ्गम करना अति कठिन है।

प्रसादी रेशमी वस्त्र

प्रभु श्रीवास पण्डितकी गोदमें विह्वल होकर पड़े हैं। गोविन्द प्रभुके इशारेसे राजा प्रतापरुद्रके दिये हुए रेशमी वस्त्रको हाथमें लेकर खड़ा है। नाना प्रकारका श्रीजगन्नाथजीका प्रसाद प्रभुने मँगाया है। नवद्वीप जननीके निमित्त भेजेंगे। कुछ देरके बाद प्रभुने अपनेको सँभाला। श्रीवास पण्डितका हाथ पकड़कर रोते हुए कहने लगे—

एइ वस्त्र माताके दिह ए सब प्रसाद।
दण्डवत् करि आमार क्षमाइह अपराध॥

चै. च. म. १५.४८

इतना कहते-कहते प्रभुका प्रेमावेगमें कण्ठ रूँध गया। प्रेमावेगमें वे और कुछ न बोल सके।

यहाँ श्रीगौर-विष्णुप्रिया भजनके सम्बन्धमें दो एक बातें कहनी आवश्यक है। राजा प्रतापरुद्र प्रभुके एक अनुरागी भक्त थे। उन्होंने प्रभुको जो बहुमूल्य रेशमी वस्त्र दिया है वह प्रभुके लिए नहीं है। राजा जानते हैं कि प्रभुकी परम सुन्दरी नवीना गृहिणी घरपर है। उनकी सेवा बड़े भाग्यसे प्राप्त होती है। श्रीगौराङ्ग भजनमें उनकी वक्ष-विलासिनीको छोड़ देनेसे भजन पूर्ण नहीं होता। युगल-भजन ही पूर्ण भजन है। यह सुवर्ण सूत्र-ग्रथित रेशमी वस्त्र राजाने प्रभुको उस दिन जन्माष्टमीके उपलक्ष्यमें दिया था, उनका अभिप्राय यह था कि नवद्वीपसे भक्तवृन्द आये हैं, उनके द्वारा प्रभु अवश्य यह वस्त्र नवद्वीप भेज देंगे। नवद्वीपमें जानेपर यह गौर वक्ष विलासिनी श्रीविष्णुप्रिया देवीके श्रीअङ्गपर चढ़ेगा, इससे श्रीगौराङ्ग-प्रियाकी शोभा वृद्धि होगी। शची माता यह देखकर मनमें सुख पायेंगी। राजा प्रतापरुद्र प्रभुके अनुरागी भक्त थे, भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगौर भगवान्‌ने भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण की।

एक और बात है। श्रीमती विष्णुप्रिया देवीके मनमें भी इससे सुख मिलेगा। क्योंकि वे प्रभुकी विरह-ज्वालासे जर्जर हो रही हैं। उनके प्राणवल्लभने उनको स्मरण किया है, यह बहुमूल्य उनके लिए उन्होंने भेजा है, यह सोचकर विरह-विधुरा प्रियाजीके प्राणमें आनन्द होगा। यह वस्त्र

---

* नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

वे पहनें या न पहने, प्रभुके द्वारा दिया हुआ उपहार उनके लिए अमूल्य धन है। राजा प्रतापरुद्रने श्रीगौराङ्ग प्रभुकी कृपा प्राप्त की है, अब गौर-वक्ष-विलासिनी श्रीविष्णुप्रिया देवीकी श्रीचरण-कृपा प्राप्तिके लिए व्यग्र होकर मन ही मन बहुत सोच विचार करके प्रभुको यह बहुमूल्य वस्त्र दिया है। प्रति वर्ष जन्माष्टमीके उत्सवपर वे प्रभुको इस उद्देश्यसे एक बहुमूल्य रेशमी वस्त्र देते थे, और वह वस्त्र प्रभु विष्णुप्रिया देवीके लिए माताके नामपर नवद्वीप भेजा करते थे। राज प्रतापरुद्र नदिया युगल भजनानन्दी थे। इस प्रकार श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया युगल भजनमें उनका मन निविष्ट हो गया। यह प्रभुकी कृपासे ही हुआ। राजा प्रताप-रुद्रके समान भक्तिमान् राजाके लिए श्रीविष्णुप्रिया तत्त्वको समझनेमें देर न लगी। उन्होंने अपने मानस मन्दिरमें नदिया-युगल श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की।

श्रीश्रीगौराङ्ग-सुन्दरके वाम भागमें श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको बैठाकर जो लोग श्रीगौराङ्गका युगल भजन करते हैं, उनका बड़ा सौभाग्य है। यह सौभाग्य करोड़ोंमें किसी एकको प्राप्त होता है। श्रीगौराङ्गके मधुर भजनका प्रवर्त्तन उनके विशिष्ट कृपा पात्र महाजन गणने किया था। ठाकुर नरोत्तम दासने प्रियाजीके साथ श्रीगौराङ्ग प्रभुके युगल विग्रहकी प्रतिष्ठा पहले पहल खेतरीमें की। इसके उपलक्ष्यमें जो महा-महोत्सव हुआ, उसमें श्रीश्रीजाह्नवी गोस्वामिनी, श्रीश्रीअच्युतानन्द प्रभु तथा गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके सारे प्रधान-प्रधान आचार्योंने योग दिया। श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया युगल-भजन गृहस्थ वैष्णवके लिए सर्वमङ्गलप्रद है। श्रीश्रीलक्ष्मीनारायणके समान घर-घर सब गृहस्थ वैष्णवोंके वास-मन्दिरमें नदिया युगल मूर्त्ति प्रतिष्ठित और पूजित होनेपर सारे अमङ्गलोंको दूर करके चिर शान्तिरूपा लक्ष्मीजी विराजती हैं।

राघव पण्डित

कृपालु पाठकवृन्द ! अब एक बार प्रभुके समीप आइये। वे इस समय कुछ सुस्थिर हो गये हैं। श्रीवास पण्डितको तदवस्थामें रखकर वे राघव पण्डितकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर बोले— "राघव ! तुम्हारी निष्ठा, भक्ति और शुद्ध प्रेमसे मैं सदाके लिए ऋणी हो गया हूँ।" राघव पण्डित सिर नीचा करके आँसू बहा रहे थे। आत्म-प्रशंसा उनको अच्छी न लगी उनको मर्मान्तक पीड़ा हो रही थी। वे सोच रहे थे कि प्रभुको छोड़कर घर जानेकी अपेक्षा तो मर जाना मङ्गल जनक है। प्रभुने जो उनकी प्रशंसा की, उसके सुननेका अवकाश उनके पास न था। हमारे भक्तवत्सल प्रभु शत-मुखसे भक्तकी महिमा कीर्तन करते हैं। उन्होंने राघव पण्डितके मनोभावको समझा। उपस्थित भक्तवृन्दके प्रति करुण नयनसे देखकर उनकी कृष्णभक्तिका विस्तृत विवरण करने लगे—

"राघव पण्डितकी सेवा परम पवित्र और सर्वोत्तम है। नारियल एक-एक पैसामें बाजारमें मिलता है। इनके अपने बगीचेमें भी नारियलके बहुतसे वृक्ष हैं। तो भी जब सुनते हैं कि अमुक जगहका नारियल बहुत अच्छा है तो एक-एक नारियलका चार-चार आना मूल्य देकर भी बहुत दूर-दूरके स्थानोंसे ढोकर मंगाते हैं। पाँच-सात नारियल ठण्डा करनेके लिए जलमें डुबाकर रखते हैं और भोगके समय उनको छील-छालकर शंखाकार बनाकर मुखमें छिद्र बनाकर भोगके लिए रखते हैं। भगवान् उस नारियलका जल कभी तो पान कर लेते हैं, कभी उसको जल पूर्ण कर देते हैं। जल-शून्य श्रीफल देखकर राघव पण्डित बहुत प्रसन्न होते हैं और उस फलको काटकर उसकी गिरी पवित्र पात्रमें भरकर ध्यान लगाकर भगवान्को समर्पण करते हैं। भगवान् कृष्ण उस गिरीका भोग लगाकर पात्र खाली कर देते हैं, कभी उसको पूर्ण रख देते हैं। एक दिन दस फलोंका संस्कार करके भोग लगानेको सेवक लेकर आया। विलम्ब हो जानेसे फल-पात्र हाथमें लिये सेवक द्वारपर खड़ा रहा और द्वारपर भीतके सहारे एक हाथ लगा दिया और

फिर उसी हाथसे फलको स्पर्श कर किया। पण्डितने इसको देख लिया और कहा कि 'लोग चलते-फिरते रहते हैं तब उनकी पद-धूलि उड़कर दिवालपर लगती है, उसी दिवालको तुमने स्पर्श करके उसी हाथसे फलका स्पर्श कर दिया, इसलिए यह श्रीकृष्णके भोगके लायक नही रहा, अपवित्र हो गया। उन फलोंको फेंकवा दिया। इसके बाद पवित्र नारियलको संस्कार कराकर उसको भोग लगाया। इसी प्रकार केला, आम, कटहल आदि फल जहाँ-जहाँसे उत्तम [प्रकारके स्वादिष्ट मिलते, वहाँ-वहाँसे दूर देशसे अति व्यय करके मँगाकर भोग लगाते। ऐसी इनकी पवित्र सेवा है। इसी प्रकार सब तरहके शाक, मूल, कन्द, फल, चिउड़ा, संदेश, पीठा, पाना, क्षीर, ओदन, आचार, गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार आदि दिव्य वस्तुओंके द्वारा इनकी प्रेम सेवा होती है।"

इतना कहकर भक्तवत्सल प्रभुने राघव पण्डितको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। राघव लज्जासे मर्माहत हो उठे ओर व्याकुल होकर रो पड़े। राघव पण्डित थे प्रभुके एक अनुरागी भक्त। प्रतिवर्ष 'राघवकी झाली' नीलाचलपर आती थी। उनकी भक्तिमती विधवा बहिन दमयन्ती प्रभुके लिए नाना प्रकारकी भोजनकी वस्तु तैयार करके नीलाचलपर भेजती थी। उसके विषयमें आगे वर्णन आयगा। राघव पण्डितका निवास-स्थान था श्रीश्रीपाट पानिहाटिमें। इस महापुरुषके घरमें पानिहाटिमें श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुका अभिषेक हुआ था, राघव पण्डितकी श्रीनित्यानन्दके प्रति अतुलनीय प्रीति थी। उनके घरके जम्बीर वृक्षमें कदम्बके फूल खिले थे। उसी कदम्ब पुष्पके द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुके आदेशसे उनका अभिषेक हुआ था। राघव पण्डितकी भक्तिमती भगिनी दमयन्तीदेवी प्रतिदिन गौर-नित्यानन्दका भोग तैयार करती थी, वे पाकविद्यामें अति निपुणा थी।

राघवेर गृहे रान्धे राधा ठाकुरानी।।
दुर्वासार ठाञि तिहों पाइयाछेन वरे।
अमृत हइते ताँर पाक अधिक मधुरे।।

चै. च. अं. ६.११४.११५

शिवानन्द सेन, वासुदेव दत्त

राघवको छोड़कर प्रभुने शिवानन्द सेनकी ओर देखा। शिवानन्द सेन काञ्चनपाड़ाके निवासी थे। वे प्रभुके एकान्त अनुरक्त भक्त थे। श्रीगौराङ्ग चरणके सिवा वे और कुछ नहीं जानते थे। वे गृहस्थ होकर भी उदासीन थे। विषय-वासना उनको स्पर्श नहीं कर सकती थी। वे अनासक्त होकर गृहस्थाश्रम चलाते थे। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामी उन्हींके पुत्र थे। उनको प्रभुके पदांगुष्ठको चाटनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इन कृपासिन्धु महाकविने श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य तथा श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक आदि श्रीग्रन्थ लिखकर श्रीगौराङ्ग-लीलाका वर्णन किया है।

करुणामय प्रभु शिवानन्द सेनकी ओर देखकर बोले—"शिवानन्द! श्रीकृष्णकी इच्छासे तुम अनेक व्यक्तियोंके प्रतिपालनमें समर्थ हो। तुम मेरे एकान्त अनुगत निजजन हो। तुम प्रति वर्ष नदियाके मेरे भक्तोंको लेकर नीलाचल आओगे, तथा रास्तेमें इनको कोई कष्ट न हो, इसका ख्याल रक्खोगे।" शिवानन्द सेनने प्रभुके चरणोंमें मस्तक नत करके उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली।

वहाँ मुकुन्दके बड़े भाई वासुदेव दत्त बैठे थे। वे भी काञ्चन पाड़ाके निवासी थे, अतएव शिवानन्द सेनके पड़ौसी थे। वासुदेव दत्त परम उदारचेता थे। उनकी 'यत्र आय तत्र व्यय' की नीति थी। एक कौड़ी भी सञ्चय करना वे नहीं जानते थे। प्रभु अपने भक्तवृन्दके विषयमें सारी बातोंका पता रखते थे।

शिवानन्द सेन सम्पत्तिशाली गृहस्थ थे। वासुदेव दत्तके पड़ौसी थे। प्रभुने शिवानन्द सेनसे कहा—"शिवानन्द! तुमसे एक और बात कहता हूँ, सुनो। इस वासुदेव दत्तके ऊपर कुछ दृष्टि रखना।

ये वहुत उदार हैं। जिस दिन जो आय होती है, उसी दिन उसको व्यय कर देते हैं, कुछ भी बचाकर नहीं रखते। ये गृहस्थ हैं, इनको कुछ सञ्चय करना चाहिये, सञ्चय किये बिना कुटुम्ब पालन नहीं होता। तुम इसके आय-व्ययपर ध्यान रखना, जिससे व्यवहार ठीकसे चलता रहे।"

शिवानन्द सेनने परम आनन्दपूर्वक प्रभुके आदेशको शिरोधार्य कर लिया। दयामय प्रभु वासुदेवका गुण-गान सहस्र वदन होकर करने लगे। उन्होंने वासुदेव दत्तको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

वासुदेव दत्त प्रभुके श्रीमुखसे अपना गुण कीर्तन सुनकर व्यथित हो उठे, लज्जासे सिर नीचा करके प्रभुके श्रीचरणोंको धारण कर रोते-रोते बोले—"हे प्रभु! जगतका उद्धार करनेके लिए तुम्हारा अवतार है। तुम दयामय सर्वसमर्थ हो। मेरा एक निवेदन स्वीकार करो। तुम चाहो तो अनायास वह कार्य हो सकता हैं। जीवोंका दुःख देकर मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है। सब जीवोंका पाप मेरे ऊपर दे दो, मैं उनके लिए नरक-भोग करूँगा, लेकिन सब जीवोंका भवरोग मिटा दो।"

वासुदेव दत्त श्रीगौराङ्ग प्रभुके परम अनुरागी भक्त थे। प्रभु जो जीवोद्धारके लिए भिखारी संन्यासी बने थे, यह उनको अच्छा नहीं लगता था। वे देश-देश घूमकर जो हरिनाम कीर्तन करके जीवोंके पापको दूर करते थे, तथा इस कार्यके लिए जो दिन–रात अथक परिश्रम करते थे, उसे वासुदेव सह्य नहीं कर पाते थे। उन्होंने प्रभुके तत्त्वको समझा था, वे भली-भाँति जानते थे कि प्रभु सर्व शक्तिमान् स्वयं भगवान् हैं, वे यह भी जानते थे कि सब जीवोंके पाप नाशका कार्य भार लेकर प्रभु नदियामें अवतीर्ण हुए हैं। यह कार्य अत्यन्त गुरुतर है, यह भी वासुदेव दत्त समझते थे। प्रभु इतना कष्ट क्यों उठावें? कलिग्रस्त जीवके लिए प्रभुके दुःख और कष्टको देखकर वासुदेवका हृदय उन्मथित हो उठता था। वे विशेष रूपसे जानते थे कि प्रभु सर्वशक्तिशाली हैं। इच्छा होते ही वे अपने कष्ठ और जीवोंके दुःखको क्षण मात्रमें मिटा दे सकते हैं। गौरभक्तवर वासुदेवके मनमें एक अपूर्व वासना उत्पन्न हुई, मनमें एक अद्भुत भाव उदय हुआ, वह अपूर्व वासना थी—

जीवेर पाप लञा मुजि करों नरक भोग।

चै. च. म. १५.१६३

ऐसी अपूर्व वासना क्या कभी किसीके मनमें उदय हो सकती है? भक्ति जगत्में यह एक अभिनव वस्तु है। भक्त हृदयकी यह अभिनव वासना पूर्णतः नवीन वस्तु है, ऐसी वासना वासुदेवके मनमें उदय क्यों हुई? उन्होंने देखा कि उनके सर्वस्व-धन, जीवनके जीवन श्रीगौराङ्ग प्रभु जीवके पाप नाशके कार्यका भार अपने कन्धेपर लेकर अत्यन्त व्यस्त हैं। उनके मनमें सुख नही है, पहननेके लिए वस्त्र नहीं है, उदरके लिए अन्न नहीं है। दिन-रात जीवके दुःखसे वे रोते हैं, और अथक परिश्रम करके जीवके भव-दुःखको दूर करते हैं। उन्होंने गृहस्थाश्रम त्याग दिया है, नदियाके भोग-विलासको तुच्छ करके पथके भिखारी बन गये हैं। कलिके जीवोंकी पाप राशिका नाश करनेके लिए वे सर्व त्यागी बनकर कठोर वैराग्य धर्मका आचरण कर रहे हैं। यह वासुदेवके समान अनुरागी भक्तके प्राणोंको असह्य हो गया। प्रभुके चरणकमलमें गिरकर रोते-रोते निष्कपट हृदयसे उन्होंने एक अपूर्व प्रार्थना की—

सब जीवेर पाप प्रभु! देह मोर शिरे।

चै. च. म. १५.१६२

वासुदेव जानते थे कि प्रभु सर्व शक्तिमान् हैं। वे उनकी प्रार्थना पूर्ण कर सकते हैं। श्रीभगवान्‌का कष्ट दूर करनेके लिए सब जीवोंके पाप-भारको वहन करके अनन्त नरक यन्त्रणाको भोगना वासुदेवके समान भक्तके लिए अति तुच्छ बात थी। श्रीभगवान्‌के कृपागुणके परिशोधार्थ जीवके लिए

यही एक मात्र उपाय देखकर भक्त चूड़ामणि वासुदेव दत्तने प्रभुके चरणोंमें यह अति अद्‌भुत प्रार्थना की थी। ऐसी अद्‌भुत प्रार्थना श्रीभगवान्‌से कभी किसीने नहीं की थी, और न कभी कोई कर सकेगा। यदि किसीने ऐसी प्रार्थना कभी की या करता है तो केवल मौखिक, कार्य रूपमें नहीं। यहाँ वासुदेवकी यह अद्‌भुत् प्रार्थना बिल्कुल निष्कपट थी। क्योंकि उन्होंने यह प्रार्थना साक्षात् श्रीभगवान्‌से की थी। श्रीगौराङ्ग प्रभुको स्वयं भगवान्‌के रूपमें जानकर वे उनके सामने कपट प्रदर्शन नहीं कर सकते थे। श्रीगौर भगवान् भी वैसे कपटी भक्तको कभी प्रश्रय नहीं दे सकते थे।

वासुदेवकी यह अद्‌भुत प्रार्थना सुनकर प्रभुका कोमल हृदय एक वारगी द्रवित हो गया। वे परम स्नेह पूर्वक कुछ देर तक वासुदेवकी ओर करुण नयनोंसे देखते रहे। नयनाश्रुधारासे उनका वक्षः स्थल भीग गया। भक्तवृन्द वासुदेवकी यह अपूर्व वर प्रार्थना सुनकर स्तम्भित रह गये। वे लोग वासुदेव दत्तकी गौराङ्गानुरागकी बातसे विशेष परिचित थे। वे इतने उच्चाधिकारी हैं, यह पहले उनकी समझमें नहीं आया था।

प्रभुके श्रीअङ्गमें अपूर्व पुलकावली दीख पड़ी, नयनद्वयसे प्रेमनदी बहने लगी, प्रेमावेगमें काँपते-काँपते उन्होंने गद्‌गद स्वरमें वासुदेवसे कहा—"तुम तो प्रह्लादके समान हो, तुम्हारे लिए ऐसी याचना कोई विचित्र नहीं है। तुम्हारे ऊपर श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा है। जो भक्त चाहता है, उसकी कामना श्रीकृष्ण अवश्य पूर्ण करते हैं। तुमने ब्रह्माण्डके जीवोंका निस्तार चाहा है, तो बिना पाप भोगे उनका उद्धार होगा। श्रीकृष्ण असमर्थ नहीं हैं। तुमको औरोंके पापका फल क्यों भुगवायँगे। तुमने जिनके हितकी कामना की है वे सब वैष्णव हो गये। वैष्णवके सब पाप श्रीकृष्ण दूर करते हैं।"

इतना कहकर प्रभुने ब्रह्म संहिताका एक श्लोक पाठ किया। यथा,

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-
वृद्धानुरूप फलभाजनमातनोति।
कर्माणि निर्दहति च भक्तिभाजां
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्रह्मसंहिता ५.५४

जो इन्द्रगोप (सूक्ष्म रक्तवर्ण कीट विशेष) अथवा देवराज तकको उनके कर्मानुसार फल प्रदान करते हैं, तथा अपने भक्तोंके कर्मोंको निःशेष रूपमें विनष्ट कर देते हैं, उस आदि पुरुष गोविन्दको मैं भजता हूँ।

उसके बाद प्रभु बोले—"एक उदुम्बर (गूलर) के वृक्षपर हजारों-लाखों फल होते हैं, उनमें-से एक फल गिर जाय तो उस वृक्षकी कोई हानि नहीं होती, ऐसे ही विरजा (कारण समुद्र) में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड होते हैं, उनमें-से एक ब्रह्माण्ड मुक्त होकर कम हो जाय तो श्रीकृष्ण कोई हानि नहीं मानते। श्रीकृष्णके वैकुण्ठ आदि धाम अनन्त ऐश्वर्य है, कारुणाब्धि उनकी एक खाई है। उसमें मायासे अनन्त ब्रह्माण्ड भासमान होते हैं जैसे एक भाण्डमें राईके दाने भरे हों। उसमें-से एक राईका दाना गिर पड़े तो उससे कोई हानि नही होती। इसी प्रकार कोटि ब्रह्माण्डमें-से एक ब्रह्माण्ड न रहे तो श्रीकृष्ण कोई हानि नहीं मानते। कोटि कामधेनु-पतिकी जैसे एक बकरी मर जाय वैसे ही षडैश्वर्य पति श्रीकृष्णको एक ब्रह्माण्ड नहीं रहनेसे कोई कमी नहीं होती। अतएव तुम्हारी इच्छा मात्रसे ब्रह्माण्डका मोचन होगा। श्रीकृष्णको सबको मुक्त कर देनेमें भी कोई श्रम नहीं है।"

इतना कहकर प्रभुने पुनः एक और श्रीमद्‌भागवतके श्लोकका पाठ किया। यथा,

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥

श्रीम. भा. १०.८७.१४

श्लोकार्थ—हे अजित ! तुम्हारी जय जय ! स्थावर-जङ्गम शरीर धारी जीवोंकी अविद्या तुम दूर करते हो। उस अविद्याको नष्ट करनेमें तुम्हारी कोई हानि नहीं होती। क्योंकि तुम स्वरूपभूत परमानन्द शक्तिके द्वारा पूर्णैश्वर्यको प्राप्त हो। तुम स्व-स्वरूपमें सब जीवोंकी निखिल शक्तिके उद्बोधक हो। अतएव तुम्हें अविद्याकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस समय अर्थात् सृष्टि कालमें जब तुम मायाके साथ क्रीड़ा करते हो तथा सत्य ज्ञानादि रस स्वरूपमें विद्यमान रहते हो उस समय श्रुतियाँ तुम्हारा प्रतिपादन करती हैं।

प्रभुने वासुदेव दत्तको समझाया कि—"श्रीकृष्ण भगवान् भक्तकी वाञ्छा पूर्ण करते हैं, इस कार्यके सिवा उनका अन्य कोई कार्य नहीं है। तुमने ब्रह्माण्डके जीवोंके निस्तारकी प्रार्थना की है, अतएव वे पापको भोगे बिना ही उद्धारको प्राप्त होंगे। तुम भक्तचूड़ामणि हो। तुम्हारी मनोवाञ्छा श्रीकृष्ण पूर्ण करेंगे। वे सब कुछ कर सकते हैं। सर्व-शक्तिमान्के लिए कोई कार्य असम्भव नहीं है। तथापि तुम्हारे जैसे भक्त चूड़ामणिको कष्ट नहीं दे सकते। तुमने जो प्रार्थना की है, ऐसी प्रार्थना श्रीकृष्णसे कभी किसीने नही की है। श्रीकृष्ण अनन्त ब्रह्माण्डके अधिपति हैं। उनका ऐश्वर्य अनन्त है। वे सर्व कारण-कारण, सर्व शक्तिमान् हैं। तुम्हें वे क्यों कष्ट देंगे ? इस क्षुद्र कार्यके लिए श्रीकृष्ण तुम्हारे समान भक्त चूड़ामणिके सिरपर सर्व जीवोंकी अनन्त पापराशि उडेलनेके लिए प्रस्तुत नहीं होंगे। तुम्हारी इस सदिच्छा और प्रार्थनाके बलसे उनकी पापराशि नष्ट हो जायगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

वासुदेव दत्त प्रभुके चरणोंमें गिरकर दोनों हाथोंसे उनके चरण-कमल वक्षःस्थलमें धारण करके अजस्र आँसू बहाने लगे। सब भक्तवृन्द परम आनन्दित हो हरि-हरि ध्वनि करने लगे।

कुलीन ग्रामीण भक्त

इसके बाद प्रभुने कुलीन ग्राम वासी भक्तोंके ऊपर शुभ दृष्टि पात किया। सत्यराज खान, रामानन्द वसु, गुणराज खान आदि भक्तोंकी ओर देखकर भक्तवत्सल प्रभुने कहा—"हे सत्यराज ! हे रामानन्द ! मैं पहले कह चुका हूँ कि आप लोग श्रीश्रीजगन्नाथजीके रथके लिए रेशमकी डोरी लेकर नीलाचल आवेंगे। अपने वंशके लोगोंको आदेश कर देंगे कि यह सेवाकर्म वे लोग निरन्तर करते रहेंगे। बहुत भाग्यसे यह सेवा भार आप लोगोंको प्राप्त हुआ है।"

इसके बाद प्रभुने कहा—"गुणराज खानने जो 'श्रीकृष्ण विजय'* श्रीग्रन्थ लिखा है वह मेंने पढ़ा है—

गुणराज खान कैल 'श्रीकृष्ण विजय'।
ताहाँ एक वाक्य ताँर आछे प्रेममय॥
'नन्दनन्दन कृष्ण मोर प्राणनाथ।'
एइ वाक्ये बिकाइनु तार वंशेर हात।
तोमार कथा, तोमार ग्रामेर कुकुर।
सेहो मोर प्रिय, अन्य जन रहु दूर॥

चै. च. म.१५. १००-१०२

---

* डा. श्रीराधा गोविन्द नाथने अपनी श्रीचैतन्य चरितामृतकी 'गौर-कृपा-तरङ्गिणी' टीकामें इस पयारकी टीकामें उल्लेख किया है—"गुणराज खानने 'श्रीकृष्णविजय' नामक एक ग्रन्थ बंगला पयारादि छन्दोंमें प्रणयन किया था। यही श्रीमद्भागवतका पद्यानुवाद है, किन्तु अक्षरिक अनुवाद नहीं हैं। इसमें श्रीमद्भागवतके दशम एवं एकादश स्कन्धके आख्यायिका अंशका एवं एकादश स्कन्धके तात्विक अंशका तात्पर्यानुवाद ही दीखता है। प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवतका बंगभाषामें 'श्रीकृष्णविजय' ही सर्वप्रथम अनुवाद है। श्रीकृष्णविजयकी उक्तिसे जाना जाता है कि १३९५ शकाब्दमें इस ग्रन्थका लेखन आरम्भ हुआ एवं १४०२ शकाब्दमें सम्पूर्ण हुआ, अतएव श्रीमन् महाप्रभुके आविर्भाव कालके पूर्वही इसका लेखन सम्पूर्ण हो चुका था।

कुलीन ग्रामवासियोंके प्रति प्रभुकी कैसी आन्तरिक प्रीति थी, यह उनकी इस बातसे सहज ही समझा जा सकता है। कुलीन-ग्रामवासी भक्तगण प्रभुको अति प्रिय थे। प्रभुके प्रेमपूर्ण, स्नेहार्द्र, हृत्कर्ण रसायन मधुर वचन सुनकर कुलीन ग्रामवासी सब भक्तोंका हृदय भक्ति-रससे आप्लुत हो गया। वे सब लोग एस साथ प्रभुके चरणोंमें गिर कर रोने लगे। रामानन्द वसु और सत्यराज खान उनमें प्रधान थे। इस सुअवसरपर प्रभुसे उन्होंने कुछ उपदेश करनेकी प्रार्थना की। उनने प्रश्न किया—

गृहस्थ विषयी आमि कि मोर साधने।
श्रीमुखे आज्ञा कर प्रभु निवेदि चरणे॥

चै. च. म. १५.१०४

प्रभुने प्रसन्न मुख होकर उपदेश किया, यथा—

प्रभु कहे—कृष्णसेवा वैष्णव सेवन।
निरन्तर कर कृष्ण नाम संकीर्तन॥

चै. च. म. १५. ०५

सत्यराज खान हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभु! वैष्णवको कैसे पहचानेंगे? वैष्णवके सामान्य लक्षणोंका कुछ वर्णन करें।

सत्यराज कहे—वैष्णव चिनिब केमने?
के 'वैष्णव' कह तार सामान्य लक्षणे॥

चै० च० म० १५. १०६

प्रभुने प्रसन्न मुख हो उत्तर दिया—

प्रभु कहे—जार मुखे शुनि एक वार।
कृष्णनाम, पूज्य सेइ श्रेष्ठ सभाकार॥
एक कृष्णनामे करे सब पापक्षय।
नवविध भक्तिपूर्ण नाम हैते हय॥
दीक्षा पुरश्चर्या विधि अपेक्षा ना करे।
जिह्वा स्पर्शे आचाण्डाले सबारे उद्धारे॥
आनुसङ्ग फले करे संसारेर क्षय।
चित्त आर्कषिया करे कृष्ण प्रेमोदय॥

चै. च. म. १.५१०७-११०

आकृष्णिः कृतचेतसां सुमनसामुच्चाटनं चांहसाम्-
आचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्मश्च मुक्तिप्रियः।
नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्या मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

पद्यावल्याम् २९

अर्थ—यह श्रीकृष्णनाम स्वरूप मन्त्र किसी प्रकारकी तान्त्रिकी या वैदिकी सदाचार या पुरश्चर्या विधिकी अपेक्षा नहीं करता। केवल रसना-स्पर्श मात्रसे फलित होता है। यह कृष्णनाम स्वभावतः ही महत्पुरुषोंके चित्तको आकर्षण करता है, महापाप समूहको उच्चाटन करता हैं। आचाण्डाल वाक् शक्ति सम्पन्न पुरुषके लिए सुलभ है, और मोक्ष-सम्पत्तिको वशीभूत करता है।

अतएव जार मुखे एक कृष्णनाम।
सेइ वैष्णव, करि तार परम सम्मान॥

चै. च. म. १५.१११

प्रभुका उपदेश था कि जो एकवार भी कृष्णनाम लेता है, वह पूज्य है, वह सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है, उसका सम्मान और सत्कार करना चाहिये। वैष्णव-सेवाके सम्बन्धमें इससे बढ़कर श्रेष्ठ उपदेश और कोई नहीं हो सकता। कृष्णनामकी महिमाका बोध करानेवाला इससे बढ़कर उच्च आदर्श और कोई देखनेमें नहीं आता।

श्रीखण्डके भक्त

इसके बाद प्रभुका शुभ दृष्टिपात हुआ श्रीखण्डके भक्तवृन्दके ऊपर। उनमें मुकुन्द प्रधान थे। उनके ठाकुर नरहरिके ज्येष्ठ भ्राता, तथा रघुनन्दनके पिता थे। मुकुन्द वैद्य थे, गौड़के राजाके गृह-चिकित्सक थे। वे बड़े आदमी थे, सब लोग उनको जानते थे, सम्मान करते थे। ठाकुर नरहरि उनके छोटे भाई थे, जो बालब्रह्मचारी थे। गृहस्थाश्रममें रहते थे, परन्तु उनका प्राण अपने जीवन-सर्वस्वधन श्रीगौराङ्गके चरणोंमें लगा रहता था। 'नरहरिके प्राण गौर' नरहरिके प्राणनाथ थे।

रघुनन्दन शैशव कालसे ही कृष्णभक्त थे। वे सबके प्रिय थे। जब वे पाँच वर्षके थे तो उन्होंने अनुरागमें भरकर श्रीकृष्ण भगवान्‌को लड्डू खिलाया था। जाग्रत बालगोपाल मूर्त्ति उनके घरमें बहुत दिनसे पूजित और सेवित होती आ रही थी। बालक रघुनन्दनने एकदिन उनको लड्डू भोग दिया था। उन्होंने रघुनन्दनके प्रेममें मुग्ध होकर उस प्रेमोपहारको अपने हाथसे ग्रहण करके भोजन किया था। अब तक वह लड्डू हाथमें लेकर श्रीकृष्ण-भगवान् श्रीखण्डमें विराजमान हैं। इस सम्बन्धकी एक विस्तृत कहानी है।

प्रभु मुकन्दकी ओर देखकर बोले, "मुकुन्द ! बतलाओ तो कि रघुनन्दन तुम्हारे पिता हैं या तुम रघुनन्दनके पिता हो ? इस विषयमें सन्देह है, तुम्हारे मुखसे यथार्थ बात सुनने पर मेरा यह सन्देह दूर हो जायगा।" भक्तचूड़ामणि मुकुन्दने प्रभुकी बातका मर्म समझा। वे प्रेमानन्दमें द्रवित होकर बोले, "हे प्रभु ! मैं रघुनन्दनका पुत्र हूँ। तुम यह बात निश्चय जानो। क्योंकि रघुनन्दनके द्वारा ही हम सबके मनमें कृष्ण भक्तिका उदय हुआ है।"

यह बात सुनकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ, वे मधुर-मधुर मुस्काते हुए बोले, "मुकुन्द ! तुमने यथार्थ बात कही है। जिससे कृष्णभक्ति प्राप्त हो वही गुरु हैं। अतएव रघुनन्दन तुम्हारा गुरु है, केवल पिता ही नहीं।" सब भक्तवृन्द प्रभुकी यह बात सुनकर प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करने लगे।

जो रघुनन्दन लज्जासे शिर अवनत करके प्रभुके चरणोंका दर्शन कर रहे थे, आत्म प्रशंसा सुनकर उनके मनमें विषम आत्मग्लानि पैदा हुई। उनके मुखका भाव देखकर प्रभु मृदु-मधुर मुस्करा रहे थे। रघुनन्दनको इस भावमें देखकर प्रभु शतमुखसे मुकुन्दकी प्रशंसा करने लगे, "मुकुन्दका निर्मल निगूढ़ प्रेम तपाये हुए स्वर्णके समान है। बाहरसे वैद्यराज होकर राजसेवा करते हैं और अन्तरमें श्रीकृष्णप्रेम भरा है, जो किसीको दिखायी नहीं देता।"

इतनी बात कहकर प्रभुने मुकुन्दके कृष्णप्रेमकी एक कथा सुनायी—"एक दिन मुसलमान राजा ऊँचे मंच पर बैठे थे, वहाँ मुकुन्द उनसे चिकित्सा सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे। इसी समय एक सेवक मोरपंखका पंखा लेकर राजाको हवा करने लगा। मोरपंख देखकर मुकुन्द प्रेमाविष्ट होकर ऊँचे मंचसे नीचे गिर पड़े। राजा समझा कि राजवैद्य तो मर गये होंगे। स्वयं नीचे उतरकर उनको चेतना करायी और पूछा—'कहाँ चोट लगी और कैसे गिर पड़े।' मुकुन्दने उत्तर दिया—'कोई चोट नहीं लगी। मुझको मृगीका रोग है।' राजा बड़े समझदार थे, उनने सब बात मान ली और मुकुन्दको बड़ा सिद्ध समझने लगे।"

मुकुन्दके विषयमें कहानी कहकर प्रभुने पुनः रघुनन्दनकी ओर देखा। रघुनन्दनने लज्जामें सिर झुका लिया। भय था कि कहीं प्रभु फिर उनकी प्रशंसा न करने लगें। परन्तु प्रभुने वही किया। वे प्रेमानन्दमें विभोर होकर बोले, "भक्तवृन्द ! सब लोग सुनो, इस रघुनन्दनके प्रति कृष्णकी कृपाके विषयमें मैं क्या कहूँ ? श्रीखण्डमें ठाकुरके द्वार पर एक पुष्करिणी है। उसके किनारे एक कदम्बका वृक्ष है। उसमें बारहों महीने फूल खिलते हैं, रघुनन्दनको प्रतिदिन दो कदम्बके फूल मिलते हैं, उनके द्वारा यह श्रीकृष्णकी पूजा करते हैं।"

रघुनन्दन लज्जासे एकवारगी सिटपिटा गये। वे प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते कहने लगे, "हे प्रभु ! अब मुझको इस प्रकार मत मारिये। श्रीचरणोंके आघातसे एकवारगी मार डालिये।"

यह बात सुनकर भक्तवत्सल प्रभुने मुस्कराते हुए पुनः मुकुन्दकी ओर देखा। मुकुन्दके मनमें भी भय हुआ कि प्रभु कहीं उनके सम्बन्धमें पुनः प्रशंसा न करने लगें। परन्तु प्रभुने इस बार दूसरी बात छेड़ दी। उन्होंने मुकुन्दकी ओर देखकर हँसते हुए कहा, "मुकुन्द ! तुम धर्म-कर्म साधनके लिए धनोपार्जन करते रहो, रघुनन्दनको कृष्ण-सेवा करने

दो। क्योंकि कृष्ण-सेवाके सिवा अन्य किसी कार्यमें इसका मन नहीं लगेगा। नरहरि विवाह नहीं करता है तो हमारे भक्तगणके साथ रहे। तुम लोग तीन जन यही तीन कार्य करो। तीनोंने सिर झुकाकर प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। नरहरिका प्राण गौर-प्रेमका स्रोत था। ये लोग जातिके वैद्य थे। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी कृपासे ये जगत्पूज्य हो गये। श्रीखण्डके ठाकुर-वंशके लोग भजनमें सिद्ध हो गये हैं।

सार्वभौम और वाचस्पति

नदियाके भक्तोंके साथ सार्वभौम भट्टाचार्यके भाई वाचस्पति भट्टाचार्य आये थे। वे नवद्वीपके प्रधान नैयायिक पण्डित और प्रभुके एकान्त भक्त थे। दोनों भाई एक साथ नीलाचलमें श्रीगौराङ्ग भजन कर रहे थे। सार्वभौम भट्टाचार्यको गौरभक्त होते देखकर वाचस्पति भट्टाचार्यके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। दोनों भाई दिनरात गौरकथा कहते थे। सार्वभौम भट्टाचार्य अपने भाईसे प्रभुकी नवद्वीपलीला कथा श्रवण करते हैं, क्योंकि प्रभुका नवद्वीप लीलारङ्ग देखनेका सौभाग्य उनको नहीं प्राप्त हुआ था। दोनों भाई नदियाके भक्तवृन्दके बीच बैठे हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य भक्तवृन्दको विदा करने आये हैं।

प्रभुने अब इन दोनों भाइयोंकी ओर प्रेमदृष्टिसे देखा। तत्काल उन दोनोंका हृदय प्रेमानन्दमें नाच उठा। क्योंकि प्रभुकी कृपादृष्टिके सभी भिखारी थे। प्रभु दोनों भाइयोंको सम्बोधन करके मधुर वचन बोले—"दारुब्रह्म और जलब्रह्म रूपसे श्रीकृष्ण इस समय प्रकट हैं। दारुब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करनेसे और जलब्रह्म श्रीगंगाजीमें स्नान करनेसे जीवकी मुक्ति होती है। सार्वभौम दारुब्रह्मकी आराधना करे और वाचस्पति जलब्रह्मकी आराधना करे।"

सार्वभौम भट्टाचार्यने अपने भाईके साथ प्रभुके चरणोंमें गिरकर परम प्रेमपूर्वक बहुत देर तक आत्मनिवेदन किया। वाचस्पति यह सोचकर कि प्रभुको छोड़कर जाना पड़ेगा, व्याकुल होकर रोने लगे। करुणामय प्रभुने दोनों भाइयोंके अङ्गपर श्रीकरस्पर्श करके उनको मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट किया।

मुरारि गुप्त

अब प्रभुकी शुभदृष्टि पड़ी अपने एकान्त भक्त मुरारि गुप्तके ऊपर। मुरारि गुप्त प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त थे। वे रामोपासक वैष्णव थे। महाजनगण उनको हनूमानका अवतार कहते थे, यह बात प्रभुने स्वयं श्रीमुखसे कही है।

"साक्षात् हनूमान तुमि श्रीरामकिङ्कर।"

चै. च. म. १५-१५६

इसी मुरारि गुप्तकी कृपासे हम लोग श्रीगौराङ्ग लीलाकथा जाननेमें समर्थ हुए हैं। इन्होंने सूत्ररूपमें अति सहज संस्कृत भाषामें एक करचा लिखा है। उसका नाम है 'मुरारिका करचा'। इस करचाका अवलम्बन करके ठाकुर लोचनदासने श्रीचैतन्यमङ्गल, ठाकुर वृन्दावनदासने श्रीचैतन्य भागवत तथा कृष्णदास कविराज गोस्वामीने अपना परम मङ्गल श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ लिखा है।

मुरारि गुप्त श्रीचैतन्य प्रेममें विभोर थे। श्रीगौराङ्ग प्रभुने उनको लक्ष्य करके कहा, "भक्तवृन्द! सब लोग सुनें। इस मुरारि गुप्तकी विशेष परीक्षा करके मैंने बारम्बार देखा है, इनकी इष्टमें एकनिष्ठता अतुलनीय है। मैंने इनको श्रीकृष्ण भजनके लिए बहुत लोभ दिखाया था। मैंने इनको कहा था, "श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्, सर्वांशी, सर्वाश्रय, विशुद्ध निर्मल अखिल रसामृत मूर्त्ति, विदग्ध, चतुर, धीर, रसिकशेखर, समस्त सद्गुण रूप रत्न-समूहके आकर हैं। श्रीकृष्णके मधुर चरित्र और मधुर विलास है। रासलीलामें अपने चातुर्य और वैदग्धीकी पराकाष्टा प्रदर्शन करते हैं। तुम उन्हीं श्रीकृष्णका आश्रय लेकर उन्हींको भजो। श्रीकृष्णकी उपासनाके अतिरिक्त अन्य उपासनासे मेरा मन प्रसन्न नहीं होगा।"

जब मैंने इस प्रकार मुरारिको श्रीकृष्ण-भजनमें लोभ दिखलाया, तब मेरी बातसे इसका मन कुछ फिरा। इसने मुझसे कहा—"प्रभु! मैं तुम्हारा आज्ञाकारी दास हूँ। मैं तुमसे स्वतन्त्र नहीं हूँ।" इतना कहकर मुरारि चिन्तित चित्त होकर घर गये। सारी रात रोते-रोते काटी। इसके मनको शान्ति नहीं मिली। इसने एकाग्र चित्तसे प्रार्थना की—

केमने छाड़िब आमि रघुनाथेर चरण ।
आजि रात्रे प्रभु मोर कराह मरण ।।

चै. च. म. १५. १४६

दूसरे दिन प्रातःकाल आकर मेरा चरण पकड़कर रोते-रोते कहा—

रघुनाथेर पाये मुजि बेचियाछि माथा ।
काड़िते ना पारों माथा मने पाङ् व्यथा ।।
श्रीरघुनाथ चरण छाड़ान ना जाय ।
तोमार आज्ञा भङ्ग हय, कि करीं उपाय ।।
ताते मोरे एइ कृपाकर दयामय ।
तोमार आगे मृत्यु हउक जाउक संशय ।।

चै० च० म० १५.१४९-१५१

मुरारिकी इष्टमें एकनिष्ठता देखकर मेरा मन बड़ा आनन्दित हुआ, परन्तु इसकी अवस्था देखकर बड़ा दुःख हुआ। तब मैंने इसको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके अपने मनकी बात खोलकर कह दी—"मुरारि! तुम्हारा सुदृढ़ भजन उत्तम है। मेरी बातसे भी तुम्हारा मन नहीं टला। प्रभुके चरणोंमें ऐसीही प्रीति होनी चाहिये। तुम्हारी भावनिष्ठा जाननेके लिए ही मैंने तुमको ऐसा आग्रह किया था। तुम तो साक्षात् हनुमान हो, श्रीरामके किङ्कर हो, उनके चरणकमल क्यों छोड़ोगे।" मुरारि मेरे लिए प्राणोंके समान है। इनका दैन्य देखकर मेरा हृदय फटने लगता है।

आमार वचने तोमार ना टलिल मन ।।
एइ मत सेवकेर प्रीति चाहि प्रभुपाय ।
प्रभु छाड़ाइले पद छाड़ान ना जाय ।।
तोमार भावनिष्ठा जानिवार तरे ।
तोमारे आग्रह आमि कैनु वारे-वारे ।।
साक्षात् हनूमान तुमि श्रीराम किङ्कर ।
तुमि केन छाड़िबे ताँर चरणकमल ।।
सेइ मुरारि गुप्त एइ मोर प्राणसम ।
इँहार दैन्य शुनि मोर फाटये जीवन ।।

चै० च० म० १५.१५३-१५७

मुरारिगुप्त एक पार्श्वमें बैठकर सिर नीचा करके प्रभुकी बात सुन रहे थे, और आत्मग्लानिसे जर्जरित होकर छटपटा रहे थे। वे झटपट छिन्नमूल तरुके समान प्रभुके पदतलमें गिरकर उच्च स्वरसे रोने लगे। उनके क्रन्दनसे सब भक्तोंका हृदय व्यथित हो उठा। प्रभुने उनको श्रीकरसे पकड़कर उठाया और हृदयसे लगाकर दृढ़ प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध कर लिया। मुरारिके अश्रुजलमें प्रभुका प्रेमाश्रुजल मिलकर प्रेमके स्रोतके रूपमें प्रवाहित हुआ, उसमें भक्तवृन्द निमज्जित होने लगे।

विदाईका दृश्य

इस प्रकार प्रभुने एक-एक करके सब भक्तोंका गुणगान करके सबको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर विदा किया। नदियाके सब भक्तवृन्द आकुल होकर रो पड़े। भक्तोंके वियोगसे प्रभुका मन बड़ा ही विषण्ण हो गया।

प्रभुर विच्छेदे भक्त करये रोदन ।
भक्तेर विच्छेदे प्रभुर विषण्ण हैल मन ।।

चै. च. म. १५. १८०

प्रभुका श्रीवदन मलिन हो गया, उनके नयनद्वयसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह चली। सब भक्तगण एक-एक करके उनकी चरणधूलि लेने लगे, और प्रभु एक-एक करके सबको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करने लगे। वह विदा होते समयका मर्मघाती करुण दृश्य बड़ा ही हृदय विदारक था। नीलाचलके भक्तगण इसे देख रहे थे, राजा प्रतापरुद्र भी इसे अपनी आँखोंसे देख रहे थे, और रोकर नयनजलसे अपना वक्षःस्थल निमज्जित कर रहे थे। इसके पहले ऐसा करुण दृश्य कभी किसीने नहीं देखा था।

प्रभु स्थिर होकर खड़े थे, और नदियाके भक्तगण एक-एक करके उनकी श्रीचरणधूलि लेकर नवद्वीपकी ओर लौट रहे थे। वे लोग दो पग आगे जाकर फिर घूमकर प्रभुके श्रीवदनको देखते थे। उनके पैर मानो आगे नहीं बढ़ रहे थे। 'जय श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रकी जय, जय शचीनन्दनकी जय' की ध्वनिसे दिगन्त कम्पित करते हुए नदियाके भक्तवृन्द प्रभुके वासासे श्रीश्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके द्वारपर जाकर श्रीविग्रहका दर्शन करके राजपथसे वाहर निकले। राजा प्रतापरुद्रने उनके मार्गका कष्ट दूर करनेका सब उपाय कर दिया।

प्रभुके साथ नीलाचलमें श्रीनित्यानन्द प्रभु, गदाधर पण्डित, हरिदास ठाकुर जगदानन्द, दामोदर और शङ्कर पण्डित, गोपीनाथ आचार्य, स्वरूप दामोदर गोसाईं काशीश्वर पण्डित और वासुदेव घोष रह गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रिय भृत्य रामदास और गदाधर दास भी रहे। वे लोग परम दयालु श्रीनिताई चाँदको छोड़कर घर न जा सके।

गदाधर पण्डितने क्षेत्र संन्यास ग्रहण करके यमेश्वर टोटामें श्रीश्रीगोपीनाथजीकी सेवा ले ली। वे अब प्रभुको छोड़कर कहीं नहीं जाँयगे, इसीलिए क्षेत्र संन्यास ग्रहण किया था। क्योंकि प्रभुने मातासे वादा किया था कि नीलाचल छोड़कर कहीं न जाँयगे। 'गदाधरके प्राणनाथ' ने अपने प्रियतम गदाधरको पास ही रक्खा।

इसके अतिरिक्त श्रीपाद परमानन्द गोसाईं, सार्वभौम भट्टाचार्य, गोविन्द आदि सब लोग प्रभुके साथ नीलाचलमें रह गये। राजा प्रतापरुद्र सपरिवार श्रीगौराङ्ग-भजन करने लगे। स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग सुन्दरने हरिनाम महामन्त्रमें सपरिवार राजा प्रतापरुद्रको दीक्षित किया था। श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु उनके सचल जगन्नाथ थे। वे दिन रात श्रीगौराङ्ग चरणका ध्यान करते थे। सार्वभौम भट्टाचार्य और राय रामानन्द प्रति दिन राजाके पास जाकर गौर-कथा कहते थे।

श्रीनीलाचलके भक्तोंके मुखपर अब गौर-कथाके सिवा और कोई बात न थी। श्रीगौराङ्ग दर्शनके सिवा उनका और कोई कार्य न था। राजा प्रतापरुद्र नरेन्द्र सोरवरके तीर जो भागवत पाठ होता था, उसे सुनने नित्य जाते थे। गदाधर पण्डित भागवत बाँचते थे। श्रीगौर नित्यानन्द श्रोता थे, सार्वभौम भट्टाचार्य आदि भक्तगण वहाँ नित्य पाठ सुनने जाते थे।

नदियाके भक्तगणको विदा करके प्रभु विषण्ण मनसे अपने मन्दिरमें बैठ गये। उनका मन बड़ा अप्रसन्न था, मुँहसे कोई बात नहीं करते थे। भक्तवृन्द और नित्यानन्द प्रभु पास बैठे थे। सभी दु:खित थे। सबकी दृष्टि प्रभुके श्रीमुखचन्द्रपर थी। उस दिन फिर कृष्ण-कथा प्रसङ्ग न हुआ। प्रभु माला लेकर संख्या-नाम जपमें बैठ गये। भक्तवृन्द उनको प्रणाम करके विषण्ण मनसे अपने घर गये।

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीनित्यानन्द प्रभुको गौड़ भेजना

प्रभु कहे नित्यानन्द, सब जीव हैल अन्ध,
केह त ना पाइल हरिनाम ।
एक निवेदन तोरे, नयाने देखिबे जारे,
कृपाकरि लओयाइबे नाम ।।
कृतपापी दुराचार, निन्दुक पाखण्ड आर,
केह जेन वञ्चित ना हय ।
शमन बलिया भय, जीवे जेन नाहि हय,
मुखे जेन हरिनाम लय ।।
कुमति तार्किक जन, पडुया अधमगण,
जन्मे-जन्मे भकति विमुख ।
कृष्णप्रेम दान करि, बालक पुरुष नारी,
खण्डाइवा सबाकार दुःख ।।
संकीर्तन प्रेमरसे, भासाइया गौड़ देशे,
पूर्ण करि सबाकार आश ।
हेन कृपा अवतारे, उद्धार नहिल जारे,
कि करिबे बलराम दास ।।

नित्यानन्द प्रभुका नीलाचलमे रहन-सहन

प्रभु अब श्रीनीलाचलमें कुछ अन्तरङ्ग भक्तोंको साथ लेकर परम आनन्दपूर्वक रहते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रेमानन्दमें सारे नीलाचलका भ्रमण करते हैं। उनके अपूर्व बाल्यभावको देखकर सभी नीलाचल-वासी मुग्ध हैं। कहीं उनका निर्दिष्ट निवास नहीं है। सब जगह वे रहते हैं। उनके बाल स्वभाव पर सब मुग्ध हैं। वे जब बाहर रास्तेपर निकलते हैं तो उनके साथ अनेक बालक हो जाते हैं। बालकोंको वे हरिनाम गानकी शिक्षा देते हैं, उनके साथ गौर-कीर्तन करते हैं, तथा अपूर्व हावभावसे नृत्य-विलास करते हैं। भिक्षा करके उनको मिष्ठान्न भोजन कराते हैं।

जब श्रीनिताई चाँद श्रीजगन्नाथ दर्शनके लिए जाते हैं, तब मन्दिरके सेवक गण भयसे व्याकुल हो जाते हैं। क्योंकि वे कभी बलरामको पकड़ने जाते हैं, कभी जगन्नाथको गोदमें उठाने जाते है। श्रीनिताई चाँदको असीम बल है। कोई उनको पकड़कर नहीं रख पाता। जब वे प्रभुके सामने जाते हैं, तब बड़े भले आदमीकी तरह रहते हैं। प्रभु उनको देखते ही आसन छोड़कर खड़े होकर वन्दना करते हैं, और अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु केवल हँसते हैं, कुछ बोलते नहीं। नित्य तीन बार वे प्रभुके दर्शनके लिए आते हैं।

नवद्वीपमें उन्होंने जिस प्रकार प्रभुका प्रचार किया था श्रीनीलाचलमें भी वही करना प्रारम्भ कर दिया है।

भज गौराङ्ग कह गौराङ्ग लह गौराङ्ग नाम ।
जे जन गौराङ्ग भजे सेइ आमार प्राण ।।

जिसे ही देखते हैं, उसीसे श्रीनिताई चाँद यही बात बोलते हैं। इसके सिवा नीलाचलमें उनका दूसरा कार्य नहीं है। प्रभुने इसे सुना। वे स्वयं नीलाचलमें थे और गौड़ देशमें उनके बिना सब प्राणी हाहाकार कर रहे थे, बहुत लोग हरिनामामृत-पानकी आशासे रास्ता देख रहे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुको गौड़देश भेजनेके लिए प्रभुने एक दिन उनको याद किया। क्योंकि प्रभुके मनमें बड़ी व्यथा थी कि सब जीवोंको मधुर हरिनाम प्राप्त न हुआ, उनके द्वारा यह कार्य पूर्णरूपसे सम्पन्न न हुआ। श्रीनित्यानन्द उनके प्रधान सहायक थे। मनका दुःख उनको नहीं कहते तो किसे कहते? इसी कारण प्रभुने एक साथ अपनी इच्छा और क्रिया शक्ति श्रीनित्यानन्द प्रभुको स्मरण किया। उसी समय अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु आकर श्रीगौर भगवान्‌के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

सदानन्द श्रीनिताई चाँदके सहास्य वदनको देखकर दयामय प्रभुके मनमें एक अपूर्व भावका तरङ्ग उठा। उस भावमें मधु भी था और दुःख भी था। क्षणमात्रके लिए प्रभुका मुख विषण्ण हो गया। प्रभु जानते थे कि श्रीनिताई चाँद उनको छोड़कर क्षणमात्र भी कहीं नहीं रह सकते। उनके आदेशसे श्रीनित्यानन्दको श्रीनीलाचल छोड़कर गौर-शून्य गौड़देशमें जाना पड़ेगा। यह उनके लिए मृत्युदण्डके समान था। प्रभुके आदेशका उल्लङ्घन वे कर न सकेंगे, श्रीगौर भगवान् यह सोचकर ही विषण्ण हो गये। कैसे यह बात वे श्रीनिताई चाँदसे कहें? सदानन्द श्रीनित्यानन्द यह बात सुनते ही निरानन्दके सिन्धुमें मग्न हो जाँयगे, करुणामय प्रभु यह सोचकर व्याकुल हो गये। बहुत सोच विचार कर प्रभुने उस दिन और कुछ न कहा। मनकी बात मनमें ही रख ली। श्रीनिताई चाँदके साथ एक जगह बैठकर बहुत देर तक कृष्ण कथा कहते रहे।

सर्वज्ञ निताई चाँदके मनमें कुछ सुख न था, उन्होंने सब कुछ समझ लिया था, अलग होते समय उन्होंने प्रभुसे साश्रु-नयन होकर प्रेम-गद्गद भावसे कहा—"हे प्रभु! तुम्हारा नित्यानन्द सब कुछ सहन कर सकता है, परन्तु तुम्हारा विरह सहन करते समय इसके प्राण नहीं रह सकते। यह बात तुम याद रखो।" प्रभु और कोई बात नहीं बोल सके।

श्रीनित्तानन्दको गौड़ भेजना

एक दिन प्रभु उदास चित्तसे बैठकर माला जप कर रहे थे। स्वरूप दामोदर गोसाईं प्रभुके पाद-मूलमें बैठे थे, गोविन्द पास ही थे। प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखकर स्वरूप गोसाई समझ गये कि प्रभुके हृदयमें गम्भीर भक्त विरह दुःख-सिन्धुकी प्रबल तरङ्ग उठी है। नदियाके भक्तवृन्दको विदा करके जिस समय प्रभु वासापर आये, उस दिन भी उनके मुखके भाव ठीक इसी प्रकारके थे। स्वरूप गोसाईं प्रभुके एकान्त अन्तरङ्ग भक्त थे, और गोविन्द उनके एकान्त अनुरक्त सेवक। दोनों एक-दूसरेके मुखकी ओर ताक रहे थे। दोनोंने एक दूसरेके मनका भाव समझा। प्रभुसे कुछ कहनेका साहस उनको न हुआ, प्रभु भी कुछ न बोले। स्वरूप गोसाईं और गोविन्दके मनमें कुछ विषम चिन्ता हुई। क्योंकि वे जानते थे कि प्रभुका मन अप्रसन्न होनेपर वे कोई न कोई काण्ड कर बैठते हैं। अब प्रभु क्या काण्ड करेंगे, यही उनके चिन्ताका विषय था।

प्रभु अपनी कुटीरमें बैठकर माला जप कर रहे थे और मन ही मन श्रीनित्यानन्द प्रभुको स्मरण कर रहे थे। उसी समय परम दयालु श्रीनिताई चाँद नृत्य करते हुए आकर प्रभुके सामने खड़े हो गये। उनको देखर प्रभु ससम्मान उठ खड़े हुए, और उनकी स्तुति-वन्दना करके पासमें आसनपर बैठाया। दोनों भाई जब एकत्र हुए तो स्वरूप गोसाईं और गोविन्दने समझा कि आज कुछ गुप्त बात होने वाली है। अतएव वे वहाँसे उठकर चले गये। प्रभुने तब श्रीनिताई चाँदके दोनों हाथ पकड़ कर अत्यन्त करुण शब्दोंसें कहा—"नित्यानन्द! मैंने प्रतिज्ञा करी है कि मूर्ख, नीच, दरिद्र सबको प्रेममें डुबा दूँगा। यदि तुम भी सब कुछ-छोडकर मुनिधर्मका अवलम्बन करके रहोगे तो संसारमें मूर्ख-नीच जितने पतित हैं, उनका उद्धार कैसे होगा? भक्तिरसके दाता तो तुम्हीं हो। यदि यह नहीं करना हैं तो संसारमें क्यों आये? यदि मेरी प्रतिज्ञा सत्य करना चाहते हो तो तुम शीघ्र गौड़ देशको जाओ, और—

मूर्ख, नीच, पतित, दुःखित जत जन।
भक्ति दिया कर गिया सबार मोचन॥

चै. भा. अं. ५.२२८

श्रीनित्यानन्द प्रभुका बाल चापल्य भाव दूर हो गया। उनके सदानन्द श्रीमुखका भाव निरानन्दमें परिणित हो गया। उन्होंने परम गम्भीर भाव धारण करके मुँह नीचा करके प्रभुकी इस कठोर

आदेशवाणीको सुना। कोई उत्तर नहीं दिया। तब प्रभुने फिर कहा—"श्रीपाद ! अपने मनकी व्यथा तुमसे कहता हूँ। जीवने हरिनाम नहीं लिया। मैं हरिनाम प्रचार करनेके लिए कलिके जीवोंके प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ। इसीलिए बड़ी साधसे यह अवतार मैंने ग्रहण किया है। मेरी साध अपूर्ण ही रह गयी। तुम ही मेरे प्रधान सहायक हो। जीवके सामने मैं ऋणसे आवद्ध हूँ। तुम मुझको ऋणमुक्त करो। मैं तुम्हारे प्रेममें मुग्ध होकर स्वयं प्रेम दान करनेमें असमर्थ हूँ। जीवका दुःख नहीं गया, हाहाकार नहीं गया। तुम इसका उपाय करो। गौड़ देशके लोग बड़े कुतार्किक हैं। पाण्डित्याभिमान, जात्याभिमान, ज्ञान-गर्व उनमें अत्यिधिक मात्रामें है। अतएव तुम गौड़देश जाओ। तुम्हारे बिना गौड़ देशमें और कोई हरिनामका प्रचार न कर सकेगा।"*

श्रीनिताई चाँदने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु नयनके जलसे उनका वक्षःस्थल भीग गया। प्रभुको छोड़कर उन्हें गौड़ देश जाना पड़ेगा, यह बात वे मनमें भी नहीं ला सकते थे। वे अवधूत संन्यासी थे। प्रभुने भी संन्यास ग्रहण किया था। उनका दृढ़ विश्वास था कि दोनों एक स्थानपर रहेंगे। कभी गौर-विरह-सन्ताप उनको भोगना न पड़ेगा। अब उन्होंने देखा कि दुर्दैव उनके गौर-सङ्ग-सुखमें बाधक हो रहा है।

प्रभु ही उनके विधाता थे। उन्होंने मनमें निश्चय किया कि बाधाताको सामने पाकर दो बातें सुना दूँगा। परन्तु उन्होंने देखा कि उनके विधाताके नयन छलछला गये हैं, श्रीवदन विषण्ण है, मनमें दारुण व्यथा है। तब श्रीनिताई चाँदका रोष दूर हो गया। क्या उपाय करनेसे प्रभुके मनकी व्यथा दूर हो सकती है, किस उपायसे उनका विषण्ण मुख प्रसन्न हो सकता है, यह सोचकर अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु आकुल हो गये। उनके दोनों नेत्रोंसे भी झरझर अश्रुधारा बहने लगी। दोनों भाई बहुत देर तक बैठकर अजस्र आँसू बहाते रहे। उनके नयन-जलसे धरातल सिक्त हो गया। वहाँ प्रेमनदी बह चली।

प्रभुके मनके दुःखको दूर करनेके लिए श्रीनिताई चाँद प्राण दे सकते थे, उनसे श्रीचरणमें कण्टक विद्ध होनेपर अवधूत श्रीनित्यानन्दके हृदयमें मानो शूल चुभ जाता था। प्रभुको छोड़कर गौड़ देशमें जाना तो एक तुच्छ बात है। इससे यदि प्रभुके मनमें सुख हो, और इसमें यदि मेरा प्राण भी जाता हो तो यह भी मेरे लिए अच्छा होगा। गौर विरहानलमें वे आजीवन जलते रहें, तौ भी वह अच्छा होगा, यदि उससे प्रभुका दुःख दूर होता है।

इस प्रकार मन ही मन स्थिर करके, वे रोते-रोते प्रभुसे बोले—"हे प्रभु ! तुमने जो आदेश दिया है, उसे मैंने शिरोधार्य कर लिया। इस आदेशसे तुम्हारे नित्यानन्दको मरना पड़े तो भी कुछ दुःख नहीं होगा। तुम्हारी आदेश वाणी मेरे लिए वेद वाक्यसे भी श्रेष्ठ है। मैं गौड़ देशमें जाऊँगा, और तुम्हारे आदेशको ठीक-ठीक पालन करूँगा। जीवोद्धार करना तुम्हारा कार्य है, अपना कार्य तुम आप करोगे। में निमित्त मात्र हूँ। तुम जो कहते हो कि यह कार्य तुम्हारे द्वारा नहीं हुआ, इसपर मैं विश्वास नहीं करता।"

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी बात सुनकर प्रेमानन्दमें प्रभु उनके गलेको अपनी सुवलित बाहु युगलसे

---

* एक प्राचीन पदमें प्रभुकी यह मनोव्यथा वर्णित है। यथा.

आमार मन जेन आज करे केमन, आमाय धर निताई।
निताइ जीवके हरिनाम विलाते. उठिल बेऊ प्रेमनदी ते,
सेइ तरङ्गे आमि एखन भासिया जाइ॥
जे व्यथा आमार अन्तरे, एखन व्यथित केवा कर कारे,
जीवेर दुःखे आमार हिया विदरिया जाय।
आमार सञ्चित धन फुराइल, जीव उद्धार नाहि हलो,
ऋणेर दाये आमि एखन विकाइया जाइ॥

वेष्टित करके प्रेमावेगमें रोने लगे। दोनों आदमी इस अवस्थामें बहुत देर तक रहे। एक दूसरेके नयन जलसे दोनोंका स्नान हो गया। जब प्रभु प्रकृतिस्थ हुए तो श्रीनिताई चाँद उनके दोनों चरण-कमल दोनों हाथोंसे पकड़कर रोने लगे। प्रभुको बाह्यज्ञान न रहा। वे कुछ भी बोल न सके।

निर्जन गृहमें लोक-चक्षुसे अगोचर यह करुण दृश्य संघटित हुआ। कोई कुछ जान न सका। एकान्तमें बैठकर दोनों भाइयोंने यह जो गुप्त मन्त्रणा की, वह कलिग्रस्त जीवके मङ्गलके लिए था। अधम-पतित कलिके जीवके उद्धारके लिए पतित-पावनावतार गौर-नित्यानन्द, दोनोंने जो क्रन्दन किया, उससे जीव-जगत्का परम कल्याण साधन हुआ। इससे ही जीवोद्धार कार्य सम्पन्न हुआ। श्रीभगवान्की इच्छा होते ही उनके सारे ईप्सित कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। कलिग्रस्त जीवके लिए जो दोनों प्रभुके प्राण रो उठे, इसींसे उनका उद्धार हो गया।

कुछ देरके बाद दोनों प्रभु सुस्थिर होकर बैठे। इतनी देर तक रोते-रोते दोनों प्रभुके नेत्र अन्धेके समान हो गये। श्रीवदन उठाकर कोई किसीकी ओर देख नहीं पा रहा था। अब गौर-नित्यानन्दकी आँखें चार हुईं। दोनोंने एक दूसरेके प्रसन्न मुखको देखा। क्योंकि प्रभुने श्रीनिताई चाँदके मनका भाव समझ लिया था, और श्रीनिताई चाँदने प्रभुके मनका भाव समझ लिया था। दोनोंने एक दूसरेके मनकी व्यथा समझी। प्रभु निताई चाँदने मनकी व्यथासे व्यथित थे, और श्रीनिताई चाँद प्रभुके मनकी व्यथासे व्यथित थे। अतएव किसीके मनमें कोई गाँठ न रही। इसी कारण उनके मुखचन्द्र प्रसन्न थे।

नित्यानन्द प्रभुने तब हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! तुम्हारे आदेशसे मैं तो गौड़ देशमें चला। परन्तु एक बात तो बतलाओ। गौड़ देशमें अपनी दुःखिनी माता और जन्मभूमिको देखनेके लिए तुम्हारा शुभागमन कब होगा?" प्रभुने मृदु मुस्कानके साथ उत्तर दिया—"श्रीपाद! जब तुम गौड़ देशमें जा रहे हो तो मुझे भी एक बार जाना ही पड़ेगा। कृपा करके मुझे आकर्षण करना। तुम्हारी कृपा होनेसे जननी और जन्मभूमिके दर्शनका मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा।"

श्रीनिताई चाँद प्रभुके दैन्य वचनको सुनकर मर्माहत हो उठे। वे और कोई बात न बोल सके। हमारे प्रभु दैन्यके अवतार थे। इतना दीनतापूर्ण और मधुमय वाक्य क्या कभी किसीके सुननेमें आया होगा?

श्रीनिताई चाँद प्रभुसे एक और बात पूछनेके लिए मन ही मन विचार कर रहे थे, इतनेमें उनके अरुण नयनद्वय अश्रुपूर्ण हो गये। गला अवरुद्ध हो गया। सर्वज्ञ प्रभु उनके मनके भावको समझकर निताई चाँदके गलेमें अपनी सुवलित दोनों भुजाएँ डालकर स्नेहपूर्वक मधुर शब्दोंमें बोले—"श्रीपाद! तुम श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेके लिए बीच-बीचमें नीलाचलमें आते रहना और मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करते रहना, परन्तु जल्दी-जल्दी नहीं आना। तुम्हारे ऊपर बड़ा उत्तरदायित्व आ गया है। जीवोद्धार कार्य सर्वापेक्षा श्रेष्ठ कर्म है, इस दूर देशमें बराबर यातायात करके वृथा समय नष्ट करना ठीक न होगा।"

श्रीनित्यानन्द प्रभु भी यही सोच रहे थे। [illegible] मनमें हो रहा था कि प्रभुने गौड़ देश जानेकी [illegible] दे दी, पर नीलाचलमें आनेका निषेध तो नहीं [illegible] वर्षमें दो बार आकर प्रभुको देख जाऊ[illegible] नीलाचलमें फिर घर करनेमें क्या आपत्ति होगी[illegible]

चतुर चूड़ामणि प्रभुने श्रीनिताई चाँदके मनकी बात समझकर उनके हृदयकी दोनों बातोंका उत्तर दे दिया। प्रभुने गम्भीर भावसे कहा—"नीलाचलमें आनेकी तुमको मनाही नहीं है। परन्तु जब-तब आना ठीक नहीं, इस जीवोद्धार कार्यमें क्षति

होगी।" श्रीनित्यानन्द प्रभु जानते थे कि महाप्रभु क्या वस्तु हैं, प्रभु भी जानते थे कि श्रीनित्यानन्द क्या वस्तु हैं। चतुर-चतुरमें मनके सङ्केतसे बातें हुई, प्रश्न हुआ, और उसका समाधान हुआ।

श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ रामदास, गदाधरदास, रघुनाथ पण्डित, परमेश्वरदास, पुरन्दर पण्डित और वासुदेव घोष भी गये। ये सभी कृष्णप्रेममें पागल थे, तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुके अतरङ्ग भक्त थे। वे भी प्रभुके आदेशसे श्रीनिताई चाँदके साथ गौड़ देश गये।

नित्यानन्द स्वरूपेर जत आप्तगण।
निष्यानन्द संगे सभे करिला गमन॥

चै० भा० अं० ५.२३२

यहाँ एक बात कहनी है। प्रभुका यह आदेश नित्यानन्दके सिवा दूसरा कोई पालन करनेमें समर्थ न था। प्रभुने यह जानकर ही उनको आदेश दिया था। आदेश था जीवोद्धार करना। यह स्वयं भगवान्का कार्य था। श्रीभगवान्की इच्छाके बिना जीवका उद्धार नहीं हो सकता। इसी कारण उनकी इच्छाशक्ति श्रीनित्यानन्द प्रभुके ऊपर इस दुरूह कार्यका भार पड़ा।

श्रीनिताई चाँदके प्रति प्रभुका आदेश हुआ, "जो सामने आवे उसको कृपा करके हरिनाम उच्चारण करनेके लिए प्रेरित करें।" कलिके जीवोंके उद्धारके लिए हरिनाम महा अस्त्र धारण जो करके जिसको सामने देखें, उसको ही आत्मसात् करें—यही प्रभुका आदेश था। अर्थात् हरिनाम देनेमें भले-बुरेका विचार न करें। वैसा करनेसे कलिके जीवोंके उद्धारका कार्य न होगा। क्योंकि कलियुगमें पतित, पाखण्डी, दुराचारी और निन्दककी संख्या ही अधिक है। इनको छोड़ देनेसे काम न चलेगा। अर्थात् जो जितना पापी है। जितना दुराचारी है। उसके प्रति उतनी ही अधिक करुणा आवश्यक है। क्योंकि वे ही दयाके यथार्थ पात्र हैं। भगवान्की दयासे उनको कभी बञ्चित नहीं करना चाहिये।

"कृत पापी दुराचार निन्दुक पाखण्डी आर,
केह जेन बञ्चित ना हय।"

इनके प्रति हमारे परम करुणामय प्रभुके मनमें बड़ी भावना रहती है। क्योंकि इनके लिए और कोई परवा नहीं करता। इनके दुःख अपार और अनन्त हैं, इनका हाहाकार विश्वव्यापी है। इनके दुःखको मनुष्य दूर नहीं कर सकता। श्रीभगवान्की दयाके सिवा इनके उद्धारका और कोई उपाय नहीं है। अनाथ बन्धु, पतितपावन, दीन-दयामय, जीवन-बन्धु श्रीभगवान्के सिवा इनका दूसरा और कोई नहीं हैं। अतएव प्रभुका आदेश हुआ कि कलिके एकमात्र भजन हरिनामसे ये बञ्चित न होने पावें। इन सब अभागे लोगोंको हरिनाम महा-मन्त्रकी आवश्यकता है। कलिग्रस्त जीवके भवरोगके विनाशके लिए एक मात्र हरिनाम महामन्त्र महौषधि है। दीनबन्धु, पतितपावन श्रीगौर भगवान्ने इसी कारण दीनदयाल श्रीनिताई चाँदको इन सब कलिग्रस्त पतित जीवोंके उद्धारके लिए नियुक्त करके गौड़ देशमें भेजा।

इसमें एक और बात है। यह जीवोद्धार करनेका आदेश श्रीभगवान्के सिवा और कोई नहीं कर सकता। शचीनन्दन श्रीगौरहरिने जो इस अपूर्व आदेशका प्रचार किया, इससे ही उनकी भगवत्ताका प्रकृत परिचय प्राप्त होता है। तथा जिनको आदेश दिया, उनकी भी योग्यता और स्वरूप शक्तिका परिचय प्राप्त होता है। जिन अभागे जीवोंको सर्वावतारसार श्रीगौराङ्ग प्रभुके अवतारमें विश्वास नहीं है, वे यदि स्थिर चित्तसे एकबार भी इस घटना पर विचार करें तो उनकी भगवत्ताकी उपलब्धि कर सकेंगे। इस प्रकार निष्कपट भावसे अपनी अभय आदेश-वाणीका प्रचार करना साक्षात् भगवान्के सिवा और कोई नहीं कर सकता। 'मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ' कहकर सबके सामने विष्ण

सिंहासन पर बैठकर जो भगवान् भावमें नवद्वीपके तत्कालीन विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ लोगोंके द्वारा तुलसी चन्दन आदिसे पूजा ग्रहण कर सकते थे, वे ही केवल इस प्रकार श्रीभगवान्‌की आदेशवाणीका प्रचार करनेमें समर्थ हैं।

श्रीनित्यानन्द प्रभु किस प्रकार प्रेम-विभावित चित्तसे नीलाचलसे गौड़देशमें आये, रास्तेमें उनके साथियोंके मनमें किस प्रकारके उद्दाम प्रेमभावका उदय हुआ, गौर-प्रेममें उन्मत्त होकर श्रीगौराङ्ग परिकर गणने किस प्रकार अलौकिक लीलाएँ की—इसका विस्तृत विवरण श्रीगौराङ्ग लीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुर श्रीचैतन्य भागवत श्रीग्रन्थ (अन्त्य खण्ड ५.२३४-२४८) में लिख गये हैं।

पानिहाटी ग्राममें राघव पण्डितके घर

इस प्रकार प्रेमोन्मत्त भावसे रास्ता चलते-चलते श्रीनिताईचाँद अपने परिकर गणके साथ गङ्गाके तट पनिहाटी ग्राममें राघव पण्डितके घर जा उपस्थित हुए। राघत्र पण्डितके विषयमें पहले कहा जा चुका है। पनिहाटी ग्राममें इन महापुरुषका निवास स्थान था। श्रीनित्यानन्द प्रभुको अपने घर पाकर उनके आनन्दकी सीमा न रही। श्रीनिताई चाँदके शुभागमनके उपलक्ष्यमें पानिहाटी ग्राममें महा-महोत्सव हुआ। महासङ्कीर्तनमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने स्वयं नृत्य किया, उनके उद्दण्ड नृत्यसे पृथ्वी डगमगा गयी। माधव घोष कीर्तनीया थे, और दो भाई गोविन्द और वासुघोष गायक थे।

माधव गोविन्द वासुदेव—तिन भाई।
गाइते लागिला, नाचे ईश्वर निताइ॥
चै. भा. अं. ५. २५६

बहुत देर तक नृत्य कीर्तनके बाद कुछ देर विश्राम करके श्रीनित्यानन्द प्रभुने भगवान् भावमें विष्णु सिंहासन पर बैठकर आदेश दिया—"मुझको अभिषेक करो।" तत्काल भक्तगण सहस्रों कलस सुभासित गङ्गाजल लाये, माला-चन्दन और तुलसीका ढेर लग गया। श्रीनिताई चाँदको नया वस्त्र पहनाया गया, उनके श्रीअङ्गमें सुगन्धित चन्दन लेप हुआ, नाना जातिके फूलोंकी मालासे उनका सर्वाङ्ग विभूषित हुआ। अभिषेक मन्त्र पाठ करके भक्तगण उनके सिरके ऊपर गङ्गाजल ढालने लगे। राघवानन्द पण्डितने छत्र धारण किया। चतुर्दिक आनन्दध्वनि होने लगी।

श्रीनित्यानन्द प्रभुने विष्णु सिंहासन पर बैठकर राघव पण्डितको आदेश दिया—

—शुन राघव पण्डित।
कदम्बेर माला गाँथि आनह त्वरित॥
बड़ प्रीति आमार कदम्ब पुष्प प्रति।
कदम्बेर वने नित्य आमार वसति॥
चै. भा. अं. ५. २७७,२७८

राघव पण्डितने प्रेममें भरकर रोते-रोते निवेदन किया, "हे प्रभु! यह कदम्ब पुष्पका समय नहीं है।" श्रीनिताईचाँदने हँसकर कहा, "उद्यानके भीतर जाकर देखो तो, किसी जगह कदम्ब विकसित हुआ है।" राघव पण्डितने उद्यानमें जाकर देखा कि एक जम्भीरके वृक्षमें कुछ कदम्बके फूल खिले हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी यह अलौकिक लीला देखकर वे प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े। तथा तत्काल उस जम्बीर वृक्षसे कदम्ब-पुष्पोंको चयन करके उसकी एक माला गूँथकर ले आये। कदम्ब पुष्पकी माला देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु प[illegible] आनन्दित हुए। राघव पण्डितने जब वह अ[illegible] माला श्रीनिताईचाँदके गलेमें पहना दी, तब उन[illegible] अपूर्व शोभा हुई।

कदम्ब पुष्पके दिव्य गन्धसे चतुर्दिक आमोदित हो उठा। विष्णु सिंहासन पर बैठकर श्रीनिताई चाँदने हँसते-हँसते भक्तगणसे पूछा, "बतलाओ तो यह गन्ध किसका है?" वे हाथ जोड़कर बोले, "हे प्रभु! यह तो दिव्य दमनक पुष्पका गन्ध है।"

तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने एक निगूढ़ बात कही। यथा—

प्रभु बोले—'शुन सभे परम रहस्य।
तोमरा सकल इहा जानिवा अवश्य॥
चैतन्य गोसाञि आजि शुनिते कीर्तन।
नीलाचल हैते करिलेन आगमन॥
सर्वाङ्गे परिवा दिव्य दमनक माला।
एक वृक्षे अवलम्ब करिया रहिला॥
सेइ श्रीअङ्गेर दिव्य दमनक गन्धे।
चतुर्दिक पूर्ण हइ आछये आनन्दे॥
तोमा सभाकार नृत्य कीर्तन देखिते।
आपने आइसे प्रभु नीलाचल हइते॥
एतेके तोमरा सर्व कार्य परिहरि।
निरवधि कृष्ण गाओ आपना पासरि॥
निरवधि श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र यशे।
सभार शरीर पूर्ण हओ प्रेम रसे॥

चै० भा० अं० ५. २९३-२९९

इतनी बात कहकर श्रीनिताईचाँद प्रेमानन्दमें विह्वल होकर हुङ्कार गर्जन करके दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर हरिध्वनि करने लगे। सब भक्तगण प्रेमावेशमें उच्च हरिसङ्कीर्तनके आनन्दमें मग्न हो गये। राघव पण्डितके घर आज जो आनन्दका तरङ्ग उठा, उसमें सारा गौड़ मण्डल निमज्जित हो गया। भक्तवृन्द आनन्दके स्रोतमें बहकर आनन्द स्वरूप हो गये। प्रेममय श्रीनित्यानन्द प्रभुने अपने भक्तवृन्दको जो प्रेमभक्ति प्रदान किया, वह अमूल्य वस्तु थी। इसीको गोपीप्रेम कहते हैं। गौराङ्गलीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने यह बात लिखी है—

जे भक्ति गोपिकादिगेर कहे भागवते।
नित्यानन्द हैते ताहा पाइल जगते॥

चै. भा. अं. ५. ३०३

इस परमोत्कृष्ट प्रेमभक्तिके दानके फलस्वरूप भक्तोंकी जो दशा हुई, वह भी ठाकुर वृन्दावनदास लिख गये हैं। यथा—

अश्रु, कम्प, स्तम्भ, धर्म, पुलक, संचार।
स्वरभङ्ग, वैवर्ण, गर्जन सिंह सार॥
श्रीआनन्द-मूर्च्छा आदि जत प्रेमभाव।
भागवते कहे जत कृष्ण-अनुराग॥
सभार शरीरे पूर्ण हइल सकल।
हेन नित्यानन्द स्वरूपेर प्रेमबल॥
जे दिगे देखेन नित्यानन्द महाशय।
सेइ दिगे महाप्रेम भक्ति वृष्टि हय॥
जाँहारे चाहेन सेइ प्रेम मूर्च्छा पाय।
वस्त्र ना संवरे, भूमि पड़ि गड़ि जाय॥

चै. भा. अं. ५.३१०-३१४

इसीको कहते हैं श्रीनित्यानन्द शक्ति। इस अद्भुत शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण ही श्रीगौर भगवान्‌ने उनके ऊपर जीवोद्धार-कार्यका भार दिया है। कर्मजड़ कलिग्रस्त जीवको इस रूपमें परानन्द दान करनेकी शक्तिका नाम है नित्यानन्द-शक्ति। और यह नित्यानन्द-शक्ति ही कलिके जीवोंके उद्धार-कार्यका मूल है।

पानिहाटि ग्राममें राघव पण्डितके घर श्रीनित्यानन्द प्रभुका शुभ अभिषेक कर्म बड़े समारोह-से सुसम्पन्न हुआ। वहाँ तीन महीने निरावाध इस परानन्दका स्रोत चलता रहा।

श्रीनित्यानन्दचन्द्रने पूरे तीन महीने तक पानिहाटि ग्राममें रहकर अपने परिकर वृन्दके साथ इस प्रकार प्रेमलीलारङ्ग किया। पानिहाटि ग्राममें जो प्रेमकी बाढ़ आयी, उसमें सारा गौड़देश बह गया।

भज गौराङ्ग कह गौराङ्ग लह गौरांग नाम।
जे भजे गौरांग चाँद सेइ आमार प्राण॥

यह है श्रीनिताईचाँदकी श्रीमुखकी वाणी। वे स्वयं दिनरात गौरकीर्तन करते थे। और जिसको देखते थे उसे ही गौरभजनकी शिक्षा देते थे। सङ्कीर्तन रसमें वह सर्वदा विह्वल रहते थे।

कि भोजने कि शयने किवा पर्यटने ।
क्षणेको ना जाय व्यर्थ सङ्कीर्तन बिने ।।
चै. भा. अं. ५. ३६०

उनका अपूर्व बाल्यभाव है। सर्वाङ्गमें अलङ्कार पहनकर नाना प्रकारके रङ्गोंकी पगड़ी सिर पर बाँधकर वे मधुर नयन-रञ्जन नृत्य करते हैं। गङ्गाजीके किनारे-किनारे जितने नगर और ग्राम हैं, श्रीनिताईचाँद अपने गणके साथ सङ्कीर्तनानन्दमें सर्वत्र परिभ्रमण करते हैं। वे स्थिर होकर कहीं बैठ नहीं सकते। बालकोंके वे प्राण हैं। उनके साथ सैकड़ों बालक 'जय श्रीकृष्ण चैतन्य जय नित्यानन्द' कहकर परम आनन्दित हो आहार-निद्रा त्याग करके चलते हैं।

यह केवल आनन्दरसमय लीलाविग्रह श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे ही सम्भव है। वे सबको पुत्रवत् पालते हैं और अपने हाथोंसे खिलाते हैं।

पुत्र प्राय करि प्रभु सभारे धरिया ।
करायेन भोजन आपने हस्त दिया ।।
चै. भा. अं. ५. ३६९

एड़ियादहमें गदाधर दासके यहाँ

कुछ दिनके बाद श्रीनिताईचाँद एड़ियादह गाँवमें गदाधर दासके घर आये। उस गाँवमें एक दुष्ट काजी था। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे उनके परमभक्त गदाधर दासने उस दुष्ट यवनको हरिनाममें उन्मत्त कर दिया था।* इस गदाधर दासके शरीरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका अधिष्ठान होता था गदाधर दासके घरमें श्रीनिताई चाँदने कुछ दिन लीला विलास किया। गदाधरका गोपीभाव था।

मस्तके धरिया गंगाजलेर कलस ।
निरवधि डाकेन 'के किनिवे गोरस' ।।
चै. भा. अं. ५. ३७३

उसके बाद अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु निजगणके सहित शचीमाताके चरणोंका दर्शन करनेके लिए नवद्वीप गये। रास्तेमें खड़दहमें आकर पुरन्दर पण्डितके घर कुछ दिन रहकर नृत्य कीर्तन किया। वहाँके लोगोंको हरिनाममें पागल कर दिया।

सप्तग्राममें उद्धारण दत्तके यहाँ

वहाँसे वे लोग सप्तग्राममें आये। इसी स्थानमें सप्तऋषि रहते थे, और त्रिवेणीके घाट पर तपस्या करते थे। इस स्थान पर जाह्नवी, यमुना और सरस्वती नदीका सङ्गम स्थान था। इसी तीर्थ स्थानमें परम भाग्यवान् उद्धारण दत्तका निवास था। वे जातिके सुवर्णकार थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर उनको अपना लिया। इस स्थान पर बहुत-से धनी लोग वास करते थे। अधम उद्धारण श्रीनित्यानन्द प्रभुने सप्तग्राममें वणिक समुदायको हरिनाम महामन्त्र देकर कृतार्थ किया। सप्तग्राममें कीर्तन तरङ्ग उठा और वह समस्त गौड़देशमें व्याप्त हो गया।

शान्तिपुरमें अद्वैत प्रभुके घर

सप्तग्रामसे श्रीनिताई चाँद गणके सहित शान्तिपुरमें आये। श्रीअद्वैत प्रभुके घर वे अतिथि हुए। शान्तिपुरनाथके आनन्दकी सीमा न रही। दोनों एक दूसरेको देखकर प्रेमावेशमें अधीर हो उठे। दोनों एक दूसरेका चरण स्पर्शके लिए एक दूसरेको पकड़कर आँगनमें लोट-पोट होने लगे।

कुछ देरके बाद सुस्थिर होकर श्रीअद्वैत प्रभु प्रेमानन्दमें विह्वल होकर हाथ जोड़कर श्रीनित्यानन्द प्रभुकी स्तुति करने लगे।

श्रीगदाधरदास शाखा सर्वोपरि ।
काजीगणेर मुख जे बोलाइल हरि ।।
—चै. च. आ. १०.५१

तुमि नित्यानन्द मूर्त्ति नित्यानन्द नाम ।
मूर्त्तिमन्त तुमि चैतन्येर गुणग्राम ।।
सर्वजीव परित्राण तुमि महा सेतु ।
महा प्रलयेते तुमि सत्य धर्म सेतु ।।
तुमि से बुझाओ चैतन्येर प्रेमभक्ति ।
तुमि जे चैतन्यवृक्षे धर पूर्ण शक्ति ।।
ब्रह्मा शिव नारदादि भक्त नाम जार ।
तुमि से परम उपदेष्टा सभाकार ।।
विष्णु भक्ति सभे लयेन तोमा हैते ।
तथापिह अभिमान ना स्पर्शे तोमाते ।।
पतित पावन तुमि दोषदृष्टि शून्य ।
तोमारे जे जाने तार आछे बहु पुण्य ।।
सर्वयज्ञमय एइ विग्रह तोमार ।
अविद्या बन्धन खण्डे स्मरणे जाहार ।।
यदि तुमि प्रकाश ना कर आपनारे ।
तबे कार शक्ति आछे जानिते तोमारे ।।
अक्रोध परमानन्द तुमि महेश्वर ।
सहस्र वदन आदिदेव महीधर ।।
रक्षकुलहन्ता तुमि श्रीलक्षणचन्द्र ।
तुमि गोपीपुत्र हलधर मूर्त्तिमन्त ।।
मूर्ख नीच अधम पतित उद्धारिते ।
तुमि अवतीर्ण हइयाछ पृथिवीते ।।
जे भक्ति वाञ्छये योगेश्वर सब मने ।
तोमा हैते ताहा पाइवेक जे ते जने ।।

चैतन्य भागवत अं. ५. ४७७-४८८

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी महिमा गाते-गाते श्रीअद्वैत प्रभु प्रेमानन्दमें बाह्यज्ञान शून्य हो गये। श्रीनिताईचाँद हँसते-हँसते उनको गोदमें लेकर नृत्य करने लगे। श्रीअद्वैतभवनमें परानन्दका तरङ्ग उठा। उस तरङ्गमें सारा शान्तिपुर बह चला। कुछ दिन शान्तिपुरमें रहकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने गौर-भक्त-गणके साथ मन भरके गौरकथामें बिताया। शान्तिपुरनाथके मनमें गौरकथाका तरङ्ग उठाकर वे अपने गणके साथ नवद्वीपमें आये।

नवद्वीपमें शचीमाँके पास

नवद्वीपमें आते ही वे एक वारगी प्रभुके श्रीमन्दिरमें जा पहुँचे और शचीमाताके चरणोमें साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। उनको देखते ही शचीमाताका दुःखसमुद्र उमड़ पड़ा। उनके पुत्र-विरह-सिन्धुमें प्रबल तरङ्ग उठने लगी। निताई आया है, निमाई भी आवेगा—इस आनन्दमें शचीमाता विभोर हो उठी। वे श्रीनिताईचाँदके श्रीअङ्ग पर स्नेह पूर्वक हाथ फेरते हुए रोते-रोते कहने लगी—"बेटा ! तुम अन्तर्यामी हो। में तुमको देखनेके लिए बड़ी व्यग्र थी, तुमने तत्काल आकर मुझको दर्शन दिया। बेटा ! नवद्वीपमें तुम कुछ दिन ठहरो। दस दिन, एक पखवारा, एक मास तुम्हें देखकर मैं अपने सन्तप्त प्राणको शीतल करूँगी। तुम मेरे बेटा विश्वरूप हो। मैं बड़ी दुःखिनी हूँ। बड़े भाग्यसे बहुत दिनके बाद आज मैंने तुम्हारा दर्शन पाया।

सदानन्द श्रीनित्यानन्द प्रभु शचीमाताकी बात सुनकर हँसते हुए आकुल हो गये। श्रीनिताईचाँदकी इस हँसीका मर्म था। शचीमाताका भाव यह था कि श्रीनित्यानन्द उनके विश्वरूप हैं। मानो वे विश्वरूपके साथ बातें कर रही हैं। श्रीनित्यानन्द और श्रीमद्विश्वरूप एक ही तत्त्व हैं। श्रीनिताईचाँदके देहमें श्रीविश्वरूप विराजते हैं। बहुत दिनके बाद विश्वरूपको पाकर शचीमाता निमाईकी बात भूल गयी। इसी कारण श्रीनित्यानन्द प्रभुको इतनी हँसी आयी। अपने भावको संवरण करके श्रीनिताईचाँदने मधुर शब्दोंमें शचीमातासे कहा, "माँ ! तुमको देखनेके लिए ही मैं नवद्वीप आया हूँ। तुम्हारे आदेशसे मैं यहाँ ही रहूँगा।"

स्नेहमयी शचीमाताका कोमल हृदय श्रीनिताईचाँदके श्रीमुखका मधुमय 'माँ' सम्बोधन सुनकर प्रेमानन्दमें द्रवीभूत हो गया। तत्काल उनको निमाईचाँदकी याद आ गयी, वे आकुल होकर रो पड़ी और श्रीनिताईचाँदसे पूछने लगी—"बेटा निताई! तू अकेला आया, मेरा निमाई कहाँ है? वह कैसे है? मेरा सोनेका बच्छा अपनी अभागिनी माँको याद तो करता है?" शचीमाताकी उक्तिका, प्राचीन प्रेमिक कवि भक्त प्रेमदासकृत एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है।

क्षुधार समय, जननी बलिया,
कखन किछू कि पूछे?
से अति कोमल, ननीर पुतुल,
आतंके मिलाय जे।
यतिर नियमे, नाना देश ग्रामे,
केमने भ्रमये से॥
एक तिल जारे, ना देखि मरिताम,
बाड़ीर वाहिर द्वारे।
से एखन दूरे, छाड़िया आमाय,
कोथा नीलाचले पुरे॥
मुञि अभागिनी, आछि एकाकिनी,
जीवने मरण पारा।
कोथा वा जाइव, कारे कि कहिब,
प्रेमदास ज्ञान हारा॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने रोते-रोते उत्तर दिया—

—"माता स्थिर कर मन।
कुशले आछये माता तोमार नन्दन॥
तोमार देखिते मोरे पाठाइया दिल।
तोर पदयुगे कर प्रणति करिल॥"

कानूदास

शचीमाता श्रीनिताईचाँदको गोदमें लेकर रोने लगी। निताईचाँदको अकेला देखकर उनके प्राण शीतल न हुए, निमाईके लिए शचीमाताके प्राण इतने व्याकुल हो उठे, कि उनका बाह्यज्ञान जाता रहा। तब अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु बड़ी विपद्‌में पड़ गये। विपदमें पड़ने पर लोग जो काम करते हैं, उन्होंने भी वही किया। उन्होंने श्रीगौराङ्गका नाम स्मरण किया। उच्च स्वरसे गौर-कीर्तन आरम्भ कर दिया। शचीमाताकी मूर्च्छा दूर हुई। वे निमाई निमाई कहती हुई उठ बैठी। नदियाके सब भक्तगण वहाँ उपस्थित थे, वे 'हा गौराङ्ग' कहकर रोते-रोते आकुल हो उठे। सारी नदियामें प्रबल वेगसे गौर-विरह तरङ्ग उठा। नदियावासीके घर-घरमें गौर-कीर्तन आरम्भ हो गया। श्रीनित्यानन्द प्रभु उस कीर्तनके नेता थे। "भज गौराङ्ग कह गौराङ्ग, लह गौराङ्ग नाम रे।" यही एकमात्र उनकी बोली थी। वे कोर्तनानन्दमें मत्त हो गये।

निताईचाँदका मल्ल वेष था। उनके श्रीमस्तक पर नाना वर्णोंकी लटपटी पगड़ी थी। उसके ऊपर पुष्पमालिका विलसित हो रही थी। कण्ठदेशमें मणिमुक्ताका हार था, कानोंमें सुवर्ण कुण्डल थे, हाथमें वलय थे, सारा अङ्ग चन्दन-चर्चित था। हाथमें लौहदण्ड था, शुक्ल-नील-पीत नाना वर्णोंके चित्र-विचित्र रेशमी वस्त्र पहने थे। वंशी और बेत उनके कमरमें सुशोभित हो रहे थे। पैरोंमें चाँदीके नूपुर थे, उनकी मधुर ध्वनि जिसके कानोंमें पड़ती थी, वह उनका सङ्ग नहीं छोड़ पाता था। इस प्रकार अपूर्व मल्लवेषमें वे सारी नदियामें भ्रमण करते थे। नवद्वीपके निकटवर्ती गाँवोंमें भी श्रीनित्यानन्द प्रभु कीर्तन-विलास करते थे। उनके साथ अगणित भक्तवृन्द थे।

तबे नित्यानन्द सब परिषद् सङ्गे।
प्रति ग्रामे-ग्रामे भ्रमे संकीर्तन रंगे॥

खानाखोड़ा आर बड़गाछि दोगाछिया ।
गंगार ओपार कभू जायेन फूलिया ॥
चै. भा. अं० ६. ७२, ७३

दोगाछिया ग्राम और द्विज बलरामदास ठाकुर

दोगाछिया ग्राममें श्रीनित्यानन्द प्रभुके मन्त्र शिष्य प्रसिद्ध पदकर्त्ता द्विज बलरामदास ठाकुरका निवास स्थान था। उसी महापुरुषके वंशमें जीवाधम ग्रन्थकारका जन्म हुआ है । पाँच सौ वर्ष पूर्व दोगाछिया ग्राम एक सुरम्य उपवन था। उस सुन्दर उपवनमें बहुत-से साधु-संन्यासी तपस्या करते थे। बलरामदास ठाकुरके पिताका नाम था श्रीपाद सत्यभानु उपाध्याय। वे ही श्रीगौराङ्ग प्रभुके सर्वप्रथम कृपापात्र थे। वे ही श्रीचैतन्य भागवतोक्त बाल गोपाल-उपासक अतिथि तैर्थिक विप्र थे। इस भाग्यवान् विप्रके अर्पित किये हुए बालगोपालके भोगका अग्रभाग बालगौराङ्गने तीन बार खा लिया था। पश्चात् उनको अपना स्वरूप दिखलाकर कृतार्थ किया था। यह सब लीलाकथा प्रभुकी बाललीलामें वर्णित है। श्रीगौराङ्ग प्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों ही इस पुण्य स्थान श्रीपाट दोगाछिया ग्राममें आकर बलराम दास ठाकुरके द्वारा प्रतिष्ठित बालगोपालजीके श्रीमन्दिरमें नृत्य-कीर्तन करते थे। श्रीनिताईचाँदने अपने प्रिय शिष्य बलराम दास ठाकुरको अपनी मस्तककी पगड़ी दान दी थी। उस परम पवित्र पगड़ीका जीर्णांश आज भी श्रीपाट दोगाछिया ग्राममें विद्यमान है। बलराम दास ठाकुरके तिरोभावके दिन प्रत्येक वर्ष अग्रहनके महीनेमें कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको इस गाँवमें एक महोत्सव होता है। उसी अवसर पर श्रीनित्यानन्द प्रभुकी व्यवहृत पगड़ीका दर्शन होता है। इस ग्राममें बलराम दास ठाकुरके वंशज आजभी निवास करते हैं। श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने अपने श्रीचैतन्य भागवत श्रीग्रन्थमें ठाकुर बलराम दासके सम्बन्धमें लिखा है—

प्रेम रसे महामल्ल बलराम दास ।
जाँहार बातासे सब पाप जाय नाश ॥
चै. भा. अं० ६.९९

द्विज बलराम दास ठाकुरके पदकर्त्तृत्वके विषयमें वैष्णव जगत्में एक भ्रमात्मक धारणा बहुत दिनोंसे है। कुछ लोग कहते हैं कि खण्डवासी वैद्यवंश संभूत प्रेमविलास ग्रन्थके रचयिता बलराम दास कविराज ही पदकर्त्ता हैं तथा बलराम दास भणिता युक्त प्राचीन पदावली उनकी ही रची हुई है। साहित्य परिषद पत्रिकाके भाग २० संख्या २ में 'प्राचीन पदावली और पद कर्त्तृगण' शीर्षक प्रबन्धके लेखक सुविख्यात श्रद्धास्पद श्रीयुत सतीशचन्द्रराय एम.ए. महाशयने द्विज बलराम दास ठाकुरके पदकर्त्तृत्वके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की है। उसके बाद मत्प्रणीत द्विज बलराम दास ठाकुरकी जीवनी और पदावली ग्रन्थकी भूमिकामें इस सम्बन्धमें मैंने जो आलोचना की है, उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ। इसको पढ़नेके बाद बहुतोंका यह भ्रम दूर हो जायगा, इसीलिए इस विषयकी यहाँ आलोचना की गयी है।

श्रीपाट दोगाछिया निवासी श्रीश्रीनित्यानन्द परिकर द्विज बलराम दास ठाकुर ही प्राचीन प्रसिद्ध पदकर्त्ता थे, यह पहले बहुत कम लोग जानते थे। १३१० सालमें प्रकाशित गौरपद तरङ्गिणी श्रीग्रन्थकी उपक्रमणिकामें स्व० गौरभक्तप्रवर जगबन्धु भद्र महाशयने द्विज बलराम दास ठाकुरके पदकर्त्तृत्वके सम्बन्धमें जो कुछ थोड़ासा विचार किया है, उसके फलस्वरूप आधुनिक वैष्णव समाजको इस प्रसिद्ध प्राचीन वैष्णव पदकर्त्ताके विषयमें यत्किञ्चित परिचय प्राप्त हुआ है। स्व० कनिष्ठ भ्राता गुरुद्वास गोस्वामीके द्वारा इस सम्बन्धमें जगबन्धु भद्र महाशयको जो पत्र मैंने लिखाया था, उसका कुछ अंश गौरपद तरङ्गिणीकी भूमिकामें प्रकाशित हुआ है। द्विज बलराम दास ठाकुर हमारे पूज्यपाद पूर्वज हैं। उनके विषयमें जितना हम जानते हैं, उतना दूसरा कोई नहीं जान सकता।

द्विज बलराम दास ठाकुरका पदकर्त्तृत्व इतने दिनों तक प्रेमविलास ग्रन्थके रचयिता वैद्य वंशावतंस श्रीखण्डवासी बलराम दास कविराजके ऊपर आरोपित था। दोनोंका नाम एकसा होनेके कारण, अथवा द्विज बलराम दास ठाकुरके पदर्त्तृत्वके विषयमें साधारण लोगोंकी अनभिज्ञताके कारण इस प्रकारका भ्रम अवश्यम्भावी था। श्रीखण्डवासी बलराम दासका गुरुप्रदत्त नाम था श्रीनित्यानन्द दास। श्रीश्रीनित्यानन्द गृहिणी श्रीजाह्नवा गोस्वामिनी इन नित्यानन्द दासकी दीक्षागुरु थी। वैद्य बलराम दास अति अल्पावस्थामें मातृ पितृ विहीन होकर ठाकुरके स्वप्नादेशसे श्री जाह्नवा गोस्वामिनीके शरणापन्न हुए। उन्होंने विवाह नहीं किया, ऐसा सुनते हैं। अपने रचे हुए प्रेमविलास ग्रन्थमें उन्होंने इस प्रकार आत्म परिचय दिया है।

माता सौदामिनी पिता आत्मारामदास।
अम्बष्ठ कुलेते जन्म श्रीखण्डे ते वास॥
आमि एक पुत्र मोरे राखिये बालक।
पिता माता दोंहे चलि गेला परलोक॥
अनाथ हइया आमि भावि अनिवार।
रात्रिते स्वप्न एक देखि चमत्कार॥
जाह्नवा इश्वरी कहे कोन चिन्ता नाइ।
खड़दहे गिया मन्त्र लह मोर ठाँइ॥
स्वप्न देखि खड़दहे केला आगमन।
इश्वरी करिला मोरे कृपार भाजन॥
बलराम दास नाम पूर्वे मोर छिला।
एवे नित्यानन्द दास श्रीमुखे राखिला॥

वैरागी वैष्णव महाजन लोग गृहस्थाश्रमका त्याग करनेके बाद गुरुके द्वारा प्रदत्त नामसे ही वैष्णव जगतमें प्रसिद्ध होते हैं। श्रीजाह्नवा गोस्वामिनीके पास दीक्षा ग्रहण करके बलराम दास वैष्णवने संन्यास ग्रहण किया, जिसको प्रचलित भाषामें भेष ग्रहण या भेषाश्रय कहते हैं। अति अल्पावस्थामें उन्होंने श्रीनित्यानन्द गृहिणीके चरणोंमें आत्म-समर्पण किया था, यह उन्होंने स्वयं अपने श्रीमुखसे स्वीकार किया है। इतनी अल्पावस्थामें उनका रस तत्त्वपूर्ण माधुर्यमय शब्दालङ्कार विभूषित अपूर्व कवित्वपूर्ण मधुर रसके पदोंकी रचना करना विश्वसनीय नहीं है। उनका गुरु प्रदत्त नाम नित्यानन्ददास भणितायुक्त कोई पद देखनेमें नहीं आता। उनके सब पदोंकी भणितामें पूर्वाश्रमका बलराम दास नाम ही प्रयुक्त हुआ है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे इन सब पदोंके रचयिता नहीं थे। वे चरिताख्यान लेखक वैष्णव-ग्रन्थकर्त्ता थे। उनका लिखा प्रेमविलास ग्रन्थ आद्योपान्त सरस पयार छन्दोंमें लिखा गया है। इस ग्रन्थके सिवा उन्होंने और चार पाँच वैष्णव ग्रन्थ लिखे थे। यथा, वीरचन्द्र चरित, रसकल्पसार, कृष्णलीलामृत, हाट-वन्दना तथा गौराष्टक। प्राचीन वैष्णव ग्रन्थकर्त्ता स्वरचित ग्रन्थोंमें तत्कालीन पद्धतिके अनुसार अपने स्वरचित पदोंका संयोजन करना पसन्द करते थे। सब पयार ग्रन्थोंमें यह बात पायी जाती है। श्रीखण्डवासी बलराम दास रचित पयार वैष्णव ग्रन्थमें उनके नामकी भणितासे युक्त कोई पद देखनेमें नहीं आता। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे पद कर्त्ता नहीं थे, किन्तु कविराज थे। उनके द्वारा रचित प्रेम-विलास श्रीग्रन्थ सरल पयार छन्दमें लिखित वैष्णव इतिहास है, यदि यह कहें तो अत्युक्ति न होगी। प्राचीन ग्रन्थकर्त्तागण उन दिनों पयार छन्दोंमें ही ग्रन्थ रचना करते थे।

प्रेमविलास रचयिता कविराज बलराम दास द्विज बलराम दास ठाकुरके आविर्भावके बहुत पीछे वैष्णव जगतमें उदय हुए थे। उनका जन्मकाल अनुमानसे १५०१ शकाब्द है। परन्तु द्विज बलराम दास ठाकुर श्रीश्रीमन्महाप्रभुके समकालीन हुए और उनके साथ परिचित थे। यह महापुरुष अनुमानतः १४१७ शकाब्दमें श्रीधाम नवद्वीपमें पैदा

हुए। १५०८ शकाब्दमें अगहन महीनेकी कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको उनका तिरोभाव हुआ। ये श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुके मन्त्रशिष्य थे। नदिया जिलाके कृष्ण नगरके समीप श्रीपाट दोगाछिया गाँवमें रहते थे। ये पद रचना और संगीत विद्यामें पारंगत थे। स्वरचित मधुर पदावली बलराम दास ठाकुर सुर ताल-लयके साथ जब गाते थे तो उसे सुनकर सब मुग्ध हो जाते थे। प्राचीन वैष्णव पदकर्त्ता महाजन कवि नरहरि सरकार ठाकुर वासुदेव घोष, गोविन्ददास आदि श्रीश्रीमन्महाप्रभुके अन्तरङ्ग भक्तवृन्द केवल पद रचना करके ही श्रीगौर भगवान्‌के लीलामधुका आस्वादन करते थे, और उन सब पदोंको सुर ताल और लयके संयोगसे गान करके परम आनन्द प्राप्त करते थे। यही उनका भजनाङ्ग था। द्विज बलराम दास भी इसी श्रेणीके साधक महाजन कवि थे। प्राचीन पदावली-साहित्यमें उनका नाम चिरस्मरणीय और प्रसिद्ध है। इस महापुरुषकी संक्षिप्त जीवन चरित सुधा जो अति कष्ट पूर्वक संग्रह कर सका हूँ, उसे पहले पहल प्रकाशित कर रहा हूँ। उनकी रचित मधुर पदावली वैष्णव जगत्‌में सुपरिचित और सर्वजन-विदित है। प्रेम-विलास ग्रन्थके रचयिता बलराम दासके नामसे वे सब पदावली स्वतन्त्ररूपसे प्रकाशित हुई है। अतएव उनका पुनः छापना आवश्यक न समझकर उनका सन्निवेश इस छोटी पुस्तकमें नहीं किया गया है। तथापि कृपालु पाठकोंके आस्वादनके लिए ग्रन्थके परिशिष्टमें उनके द्वारा रचित कुछ पद उद्धृत किये गये हैं। द्विज बलराम दास ठाकुरकी वंशावली भी इसके साथ-साथ प्रकाशित हुई है।''

गौड़देशमें प्रेमकी बाढ़

श्रीगौराङ्ग प्रभुके आदेशको परम दयालु निताई चाँद ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं। गौड़ देशमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी है। 'शान्तिपुर डुबु-डुबु नदे भेसे जाय'—की इस समय स्थिति है। श्रीनिताई चाँद चाण्डाल पर्यन्त सबको प्रेम वितरण कर रहे हैं। सिद्ध भक्त कवि प्रेमदासने गाया है—

भव विरञ्चिर, बाञ्छित जे प्रेम,
जगते फेलिल ढालि।
कांगाल पाइया, खाइया नाचये,
बाजाइया कर तालि॥
हासिया कान्दिया, प्रेमे गड़ागड़ि,
पुलके व्यापिल अंग।
चाण्डाले ब्राह्मणे, करे कोलाकूलि,
कबे वा छिल ए रंग॥

श्रीनिताई चाँद अब गौर नाम और गौर धर्मके प्रचारमें व्यस्त हैं। वे इस समय जिसको देखते हैं उसीसे कहते हैं 'बोल गौर हरि बोल, गौर हरि बोल, गौर हरि बोल।' वे अब—

निरवधि श्रीकृष्ण चैतन्य संकीर्त्तन।
करायेन करेन, लइया भक्तगण॥

चै. भा. अं. ५.३२९

सोलहवाँ अध्याय

अमोघ–उद्धार

तुमि त ईश्वर मुञि क्षुद्र जीव छार।
एक ग्रास माधुकरी कर अङ्गीकार॥

चै. च. म. १५.२४०

लक्षपतिके यहाँ भिक्षाका नियम

प्रभु विषण्ण-वदन बैठे नाम जप कर रहे थे, उसी समय एक नीलाचलवासी भक्तने आकर उनको वन्दना करके भिक्षाके लिए निमन्त्रित किया। उसके साथ और भी कई विष्णुभक्त विप्र थे। उनकी इच्छा प्रभुको एक-एक दिन अपने घर निमन्त्रित करनेकी थी। वैष्णव गणको देखकर प्रभुका मन प्रफुल्लित हो उठा, उनका विषण्ण वदन सुप्रसन्न दीख पड़ा। रङ्गीले प्रभुने उन ब्राह्मणोंके साथ इतने दुःखके बीच भी एक अपूर्व लीलारङ्ग किया—

भिक्षा निमन्त्रणे प्रभु बोले हासिया।
चल तुमि आगे लक्षेश्वर हओ गिया॥
तथा भिक्षा आमार जे हय लक्षेश्वर॥

चै. भा. अं० १०-११७

अर्थात् 'तुम पहले लखपती बनो, तब मुझे निमन्त्रित करना।' प्रभुकी यह बात सुनकर वे दरिद्र ब्राह्मण बहुत ही चिन्तित हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु ! लखपतीकी तो बात क्या ? हमारे घरमें हजार रुपये भी नहीं हैं, हम सब दरिद्र गृहस्थ ब्राह्मण हैं। तुम यदि हमारा निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते तो हमारी गृहस्थीको धिक्कार है।' इतना कहकर विप्रगण मनमें दुःखित होकर रोने लगे। दयामय प्रभुने तब कौतुकरङ्ग छोड़कर अपने मनकी वात खोलकर कह दी। उन्होंने कहा—

प्रभु बोले जान 'लक्षेश्वर' बलि कारे।
प्रतिदिन लक्ष-नाम जे ग्रहण करे॥
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर'।
तथा भिक्षा आमार, ना जाइ अन्य घर॥

चै. भा. अं. १०.१२१,१२२

प्रभुकी बात सुनकर विप्रगणकी चिन्ता दूर हुई, उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुसे निवेदन किया—"हे प्रभु ! तुम भिक्षा स्वीकार करो, हम लक्ष नामका जप करेंगे।"

करुणामय प्रभु करुणा करके कलिग्रस्त जीवको किस उद्देश्यसे किस प्रकार धर्मोपदेश देते थे, किस प्रकार अद्भुत ढङ्गसे उनके चित्तको धर्म कार्यमें लगाते थे, इसका प्रकृत प्रमाण इस लीला-रङ्गमें पाया जाता है। विप्रगणके प्रति इस उपदेश-वाणीका जो शुभफल हुआ, उसे सुनिये। सब नीलाचल वासियोंने लाख हरिनाम जपना प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि एक तो यह प्रभुका आदेश था, दूसरे ऐसा न करनेपर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उनके घर भिक्षा नहीं करते। प्रभुको जो एक दिन अपने घर भिक्षा करा लेता था, वह अपने को परम सौभाग्यशाली मानता था। परम कौशली श्रीगौर भगवान् इस प्रकार कौशल जाल फैलाकर युगधर्म हरिनाम महामन्त्रका प्रचार करते थे, और उसके द्वारा जीवोद्धार कार्य सम्पन्न करते थे—

प्रतिदिन लक्ष नाम सर्व विप्रगणे।
लयेन चैतन्यचन्द्र-भिक्षार कारणे॥

चै. भा. अं. १०.१२५

प्रभुके श्रीमुखसे भक्तिचर्चाके सिवा और कोई बात नहीं निकलती जिसके मुखसे वे कृष्ण-कथा या भक्तिचर्चा नहीं सुनते, प्रभु उसका मुख भी नहीं देखते।

भक्ति लअयाइते श्रीचैतन्य अवतार।
भक्ति बिना जिज्ञासा ना करे प्रभु आर॥

प्रभुबले—"जे जनेर कृष्णभक्ति आछे।
कुशल मङ्गल तार नित्य थाके काछे।।"
जार मुखे भक्तिर महत्त्व नाहि कथा।
तार मुख गौरचन्द्र ना देखेन सर्वथा।।

चै. भा. अं. १०.१२७-१२६

प्रभुने विप्रगणको मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट करके विदा किया वे प्रभुकी चरण-वन्दना करके चले गये।

अमोघ उद्धारकी भूमिका

भक्तकी सर्वत्र जय होती है। षडैश्वर्यपूर्ण स्वयं भगवान्‌के सामने भक्त विजयी 'होता है। भक्तकी निष्कपट भक्तिसे भगवान् सर्वतोभावेन वशीभूत हो जाते हैं। 'अहं भक्तपराधीनः' यह उनका वाक्य है। ऐकान्तिक भक्तिके द्वारा जब भक्त श्रीभगवान्‌की प्रेम-पूजा करता है, भक्तवशी भगवान् तब स्थिर नही रहते। भक्तके प्रति उनकी अपार दया होती है, असीम करुणा होती है। भक्तका भगवान् सम्बन्ध मानते हैं। भक्तके अयोग्य आत्मीय स्वजनके प्रति भी श्रीभगवान्‌की असीम दया होती है। वे भक्तिहीन हों या दयाके अपात्र हों, भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तका निज जन समझकर उनके प्रति कृपा करते हैं। सार्वभौमके अयोग्य जामाता अमोघका उद्धार श्रीगौर भगवान्‌ने किस प्रकार किया था, उस अपूर्व लीला यहाँ वर्णन होगी। सार्वभौमके जामाता अमोघ प्रभुके एक निन्दक, दुर्जन पाखण्डीके रूपमें प्रसिद्ध थे। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

सार्वभौम गृहे भुञ्जन स्वनिन्दकममोघकम्।
अङ्गीकुर्वन् स्फुटां चक्रे गौरः स्वां भक्तवश्यताम्।।

चै. च. म. १५.१

अर्थात् श्रीगौराङ्ग प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यके घर भोजन करते समय स्वनिन्दक,सार्वभौम जामाता अमोघ नामक ब्राह्मणको अङ्गीकार करके अपनी भक्तवश्यताका पूर्ण परिचय दिया था।

सार्वभौम द्वारा प्रभुको आमन्त्रण

नदियाके भक्तवृन्द नवद्वीप चले गये हैं। अब प्रभुको निमन्त्रित करके अच्छी तरह भिक्षा करानेका अवसर देखकर सार्वभौम भट्टाचार्यने एक दिन प्रभुके वासापर आकर डरते-डरते हाथ जोड़कर निवेदन किया—

एबे मोर घरे भिक्षा कर मास भरि।

चै. च. म. १५.१८६

प्रभुको दो एक दिन निमन्त्रित करनेपर उनके मनमें सुख नहीं होगा, इसी कारण महीने भरके लिए आमन्त्रित किया। नदियाके भक्तगणके कारण चार महीने तक सार्वभौम भट्टाचार्य अपने मनकी वासना पूर्ण न कर सके। अब शुभ सुयोग पाकर प्रभुको उन्होंने एक मास तक अपने घर भिक्षा करनेका अनुरोध किया।

प्रभुने यतिधर्म ग्रहण किया था, वे संन्यासी थे। संन्यासीको किसीके घर एक दिनसे अधिक भिक्षा ग्रहण नहीं करना चाहिये। प्रभुने उत्तर दिया—"भट्टाचार्य! तुम्हारे इस अनुरोधको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। कारण, यह यतिधर्म-विरोधी है। सार्वभौम भट्टाचार्य तब विषण्ण होकर बोले—"तब प्रभु बीस दिन मेरे घर भिक्षा करें।" प्रभुने पुनः हँसकर कहा—"भट्टाचार्य! यह भी संन्यासीके लिए उचित नहीं है।" सार्वभौम भट्टाचार्य क्या करें, और भी पाँच दिन घटाकर पन्द्रह दिनकी भिक्षाकी बात बोले। प्रभुने कहा—"नहीं, तुम्हारे यहाँ एक दिनका निमन्त्रण स्वीकार किया।" सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके इस दारुण वचनसे मर्माहित होकर उनके चरण पकड़कर निवेदन किया—"हे प्रभु! आपको हमारी कुटीरमें दस दिन भिक्षा करना ही होगा, इसके विरुद्ध आप कुछ न कहें।"

प्रभुने बहुत कष्ट पूर्वक और भी पाँच दिन कम करके केवल पाँच दिनका निमन्त्रण स्वीकार किया। सार्वभौम भट्टाचार्य इस विषयमें और कुछ न बोल सके। परन्तु प्रभुके चरणोंमें एक और निवेदन किया। इस निवेदनके मूलमें गूढ़ रहस्य था, जो आगे प्रकट हो जायगा।

सार्वभौम भट्टाचार्यने निवेदन किया—"तुम्हारे साथ दस संन्यासी और हैं। पाँचदिन परमानन्द पुरी गोसाईंकी भिक्षा मेरे घर होगी, यह मैं तुमको पहिले कह चुका हूँ। बाकी आठ संन्यासियोंकी प्रत्येककी दो-दो दिन, इस प्रकार २६ दिन हो गये। दो दिन स्वरूप दामोदर, दो दिन एकादशीके इस प्रकार पूरे मास मेरी कुटीरपर भोजनोत्सव रहेगा।"

कृपालु पाठकवृन्द ! सार्वभौम भट्टाचार्यके इस निवेदनको आपने समझा न ? उन्होंने प्रभुसे कहा—

तुमि निज छाया सङ्गे आसिवे मोर घर।
कभु सङ्गे आसिबेन स्वरूप दामोदर ॥

चै. च. म. १५.१९६

अर्थात् तुम केवल अपनी छायाके साथ अकेले आओगे, स्वरूप दामोदर कभी संगमें आ सकते हैं।

प्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईं, ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं, स्वरूप दामोदर आदि दस संन्यासी हैं। प्रभुको जो निमन्त्रण करते हैं, उनके साथ इनका भी निमन्त्रण हो जाता है। यही नियम है, और यही प्रभुकी इच्छा है। परन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य अकेले प्रभुको इच्छानुसार सामग्री देकर मन भरके भिक्षा करायेंगे। उनके साथ कोई आवेगा तो वे भोजन करनेमें सङ्कोच करेंगे, यह सार्वभौम भट्टाचार्य खूब जानते थे। इसी कारण उन्होंने प्रभुको समझा दिया। उनके सङ्गी-संन्यासियोंको उन्होंने पहले ही निमन्त्रित किया है, और पीछे भी करेंगे। परन्तु इस समय वे प्रभुको अकेला चाहते हैं। भक्तवत्सल प्रभुने भक्तके मनोभावको समझकर सार्वभौम भट्टाचार्यके घर उसी दिन निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

प्रभुका भोजनोत्सव

भट्टाचार्यके आनन्दकी सीमा न रही। वे प्रभुकी चरण-वन्दना करके वहाँसे विदा होकर झटपट अपने घर आये। सार्वभौम-पत्नी रन्धन कार्यमें निपुणा, परमा भक्तिमती थी। श्रीश्रीमहाप्रभुके चरणोंमें उसकी अचला भक्ति थी। उसके समान स्नेहमयी रमणी नीलाचलमें कोई दूसरी न थी, वह अपने पतिके मुखसे अपने घर उस दिन श्रीश्रीमहाप्रभुके निमन्त्रणकी बात सुनकर परम आनन्दित हुई। अत्यन्त व्यस्त होकर रसोईका प्रबन्ध किया। उनके पतिकी आज्ञाके अनुसार सारा आयोजन हुआ। सार्वभौम भट्टाचार्यके घर किसी वस्तुकी कमी न थी। वे स्वयं रसोई-घरमें रहे। जितने शाक व्यञ्जन प्रभुको प्रिय थे, वे सब पकाये जा रहे थे। सार्वभौम भट्टाचार्य स्वयं रसोई बना रहे थे। क्योंकि उनके मनमें आज बड़ा आनन्द था, प्रभु अकेले आकर भोजन करेंगे। सार्वभौम भट्टाचार्यके पुत्र चन्दनेश्वर और कन्या षाटि सब प्रकारसे सहायता कर रहे थे। घरमें धूम मची थी। सचल जगन्नाथका आज सार्वभौमके घरमें भोग लगेगा।

सार्वभौम भट्टाचार्यके घरमें गृहदेवता नारायण थे। बहुत दिनोंसे उनके घर श्रीश्रीनारायणकी पूजा-सेवा होती आ रही थी। परन्तु जिस दिनसे श्रीभट्टाचार्यने श्रीगौर भगवान्के चरणोंमें अपना सिर समर्पण किया था, उसी दिनसे उनके घर श्रीगौराङ्गकी पूजा और भोगकी भी व्यवस्था हो गयी थी। जिस घरमें श्रीनारायणका भोग लगत[illegible] था, उसके साथ श्रीगौराङ्गके भोगका कोई सम्[illegible] न था। अन्यत्र भोगका घर निर्मित हुआ [illegible] उसमें प्रभुके लिए स्वतन्त्र भोगकी व्यवस्था [illegible] उस नये घरमें प्रभुका भोग लगता था। उस नि[illegible] गृहका एक द्वार रसोई घरसे लगा हुआ था। उ[illegible] द्वारसे प्रभुको परोसा जाता था। बाहर एक द्वा[illegible] था। उसी द्वारसे प्रभु भोगगृहमें जाते थे। घरके भीतर बैठकर प्रभुका भोजन-विलास लीलारङ्ग होता था।

सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुको स्वयं भगवान् समझकर उनके लिए इस प्रकार स्वतन्त्र भोग

रागकी व्यवस्था की थी। अनिवेदित अन्न-व्यञ्जनसे प्रभुका भोग लगता था। केवल अन्न-व्यञ्जनके ऊपर तुलसी मञ्जरी दी जाती थी। वह भी प्रभुके सन्तोषके लिए। प्रभुके श्रीहस्तमें आचमनी दी गयी थी।

सार्वभौम भट्टाचार्यके समान नैष्ठिक ब्राह्मण पण्डित उन दिनों भारतमें कोई दूसरा था या नहीं, सन्देह है। सब विद्यामें वे पारङ्गत थे। इसी कारण महाराजा गजपति प्रतापरुद्रने उनको अपनी राजसभाके प्रधान पण्डितके रूपमें नियुक्त किया था। इस सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुको पहले अपने पास वेदान्त पढ़नेके लिए कहा था। प्रभुकी अवस्था उस समय चौबीस वर्षकी थी। इस समय उनकी अवस्था सत्ताईस वर्षकी थी। वे नवीन संन्यासी थे। उनका श्रीअङ्ग मानों नवनीतके समान चिक्कण था, कषित काञ्चनकी अपेक्षा भी उज्ज्वल था, रूपकी अवधि न थी। सारा अङ्ग अपूर्व ज्योतिपूर्ण था, श्रीवदनकी अपरूप शोभामें कोटिचन्द्र लज्जित होते थे, श्रीमुखकी वाणीमें अमृतकी नदी प्रवाहित होती थी। सार्वभौम भट्टाचार्य वृद्ध हो गये थे। उनकी अवस्था अब साठ वर्षसे अधिक होगी। ऐसे सर्वदेश पूज्य, सर्वलोकमान्य, सर्वशास्त्रविद् परम निष्ठावान् वृद्ध ब्राह्मण प्रभुको स्वयं भगवान् जानकर उनकी पृथक् पूजा करते थे, भोग देते थे, उनकी [illegible]तव-स्तुति रचना करके ध्यान-वन्दना करते थे। [illegible] गौर भगवान्के अवतार-तत्त्वका इसकी अपेक्षा [illegible] उत्कृष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है? इन [illegible] बातोंकी आलोचना यहाँ अनावश्यक है। [illegible] क्रमसे यत्किञ्चित लिखा गया है। [illegible]लाकथाका रसभङ्ग हुआ है, इसके लिए कृपालु [illegible]ठकवृन्द क्षमा करेंगे।

सार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी भक्तिमती गृहिणीने प्रभुके भोगके लिए कैसा आयोजन किया था, कौन-कौन पदार्थ राँधे गये थे, इसका वर्णन पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने विस्तार पूर्वक किया है। कृपालु पाठकवृन्द! प्रभुके भोगका विस्तृत विवरण सुनकर कृतार्थ होवें। यथा—

> बत्रिशा-कलार एक आङ्गठिया पात।
> तिन-मान तण्डुलेर ताते धरे भात।।
> पीत-सुगन्धि-घृते अन्नसिक्त कैल।
> चारिदिके पाते घृत बहिया चलिल।।
> केयापत्र कलार खोला डोङ्गा सारि-सारि।
> चारिदिके धरियाछे नाना व्यञ्जन भरि।।
> दश प्रकार शाक, निम्ब सुकुतार झोल।
> मरिचेर झाल, छनाबड़ा बड़ी-घोल।।
> दुग्ध-तुम्बी, दुग्ध-कुष्माण्ड, वेसारि, लाफरा।
> मोचाघण्ट, मोचाभाजा विविध शाकरा।।
> वृद्ध कुष्माण्ठबड़ीर व्यञ्जन अपार।
> फूलवड़ी फलमूले विविध प्रकार।।
> नवनिम्बपत्र सह भृष्ट वार्त्ताकी।
> फूल बड़ी पटोल भाजा कुष्माण्ड मानचाकी।।
> भृष्ट–माष, मुद्ग-सूप अमृते निन्दय।
> मधुराक्त बड़ाम्लादि अम्ल-पाँच-छय।।
> मुद्ग-बड़ा मास-बड़ा कला-बड़ा मिष्ट।
> क्षीरपुलि नारिकेलपुलि आर जत पिष्ट।।
> काँजि बड़ा दुग्धचिड़ा दुग्धलकलकी।
> आर जत पिठा कैल कहिते ना शकि।।
> घृतसिक्त परमान्न मृत्कुण्डिका भरि।
> चाँपा कला घन दुग्ध आम्र ताँहा धरि।।
> रसाला, मथित दधि, सन्देश अपार।
> गौड़े उत्कलें जत भक्ष्येर प्रकार।।
>
> चै. च. म. १५. २०५-२१६

सार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी भक्तिमती गृहिणीने दो पहरके भीतर यह सब रसोई तैयार कर ली है। प्रातःकाल प्रभुको निमन्त्रण करके आनेपर भट्टाचार्य अपनी स्त्रीको साथ लेकर स्वयं रसोई बनाते रहे हैं। दोनोंने मिलकर यह सारा आयोजन और रसोई करके श्रीगौर भगवान्के लिए उत्तम भोग प्रस्तुत किया है। एक सुन्दर चित्रित पीठके ऊपर नूतन धौत वस्त्र बिछाकर

दिव्यासन प्रस्तुत किया है। दोनों बगलमें सुगन्धित शीतल जलसे पूर्ण दो झारी रक्खी गयी है। सुचारु रूपसे अन्न-व्यञ्जनादि सारी भोजन-सामग्री सजायी गयी है। अन्न-व्यञ्जनके ऊपर कोमल तुलसी मञ्जरी रक्खी गयी है। श्रीश्रीजगन्नाथजीका उत्तम प्रसाद अमृत गुटिका और पीठा पाना मँगाया गया है। परन्तु यह प्रसाद अलग रक्खा गया है, क्योंकि यह निवेदित है।

सार्वभौम भट्टाचार्यके इस कार्यसे स्पष्ट समझा जा सकता है कि वे श्रीगौर भगवान्‌को स्वतन्त्र रूपसे भोग देते थे। गौरमन्त्रमें वे दीक्षित थे तथा गौरमन्त्रसे श्रीगौराङ्गकी पूजा करते थे। स्वतन्त्र रूपसे श्रीगौर भगवान्‌को पृथक भोग देते थे। गृह देवता नारायणकी सेवा घरमें नैमित्तिक भावमें उन्होंने रखखी थी, किन्तु गौराङ्ग भजनको ही जीवनका सार बना लिया था। यथा—

सार्वभौम हैला प्रभुर भक्त एकतान।
महाप्रभु विने सेव्य नाहि जाने आन॥
'श्रीकृष्णचैतन्य शचीसुत गुणधाम।'
एइ ध्यान, एइ जप, लय एइ नाम॥

चै. च. म. ६.२३१,२३२

प्रभुकी प्रकट लीलामें ऐसी व्यवस्था अनेक भक्तोंने की थी। इस समय अप्रकट कालमें कोई-कोई महापुरुष गौरमन्त्र स्वीकार नहीं करते।

जब भोगकी सारी तैयारी हो गयी तो मध्याह्न कृत्य समाप्त करके प्रभु अकेले सार्वभौमके घर पधारे। भक्तवत्सल प्रभु भक्तका मन देखकर अकेले आये। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुसे कहा था कि स्वरूप दामोदर गोसाईंको साथ ला सकते हैं, परन्तु प्रभु किसीको साथ न लाये। भक्तकी मनस्तुष्टिके लिए वे एकाकी आये। प्रभुने अब तक कहीं भी भक्तोंको छोड़कर एकाकी भिक्षा नहीं ली थी। नीलाचलमें पहले पहल भक्तवत्सल प्रभुने इस प्रकार अपने भक्तकी मनोकामना पूर्ण की थी।

सार्वभौम भट्टाचार्यने स्वयं श्रीगौर भगवान्‌के पाद प्रक्षालन किया। प्रभुने प्रसन्न मुखसे भोगगृहमें प्रवेश किया। भोगकी सजावट देखकर वे चकित हो गये। परम सन्तुष्ट होकर सार्वभौम भट्टाचार्यसे बोले, "ये सब अन्न-व्यंजन बड़े अलौकिक हैं। दो पहर समयके भीतर इनका रंधन कार्य कैसे हो गया? सौ चूल्हों पर सौ आदमी यदि पाक करें, तो इतने व्यंजन इतने समयमें रन्धन नहीं कर सकते। इन पर तुलसी मञ्जरी पड़ी है, इससे अनुमान करता हूँ कि श्रीकृष्णको भोग लगाया गया है। तुम बड़े भाग्यवान हो जो इतना उद्योग करके श्रीराधाकृष्णको ऐसा भोग लगाये हो। अन्नकी सौरभ और इनका वर्ण अति मनोरम है। इससे प्रतीत होता है कि श्रीराधाकृष्णने साक्षात् इसका भोग लगाया है। तुम्हारे भाग्यकी मैं क्या प्रशंसा करूँ। मैं भी बड़ा भाग्यवान् हूँ जो इस अवशेष प्रसादको पा रहा हूँ।"

प्रभु कलिके प्रच्छन्न अवतारके समान बात कर गये। वे भक्तके सामने इसी प्रकार आत्मगोपन करते थे, परन्तु समय और सुयोग देखकर अपनेको प्रकट भी करते थे। सार्भभौम भट्टाचार्यको उन्होंने अपना ऐश्वर्य षड्भुजमूर्त्ति दिखलायी, उनके सामने अपनेको प्रकट किया। उन्होंने समझ लिया था कि प्रभुका प्रकृत तत्त्व क्या है, वे क्या वस्तु हैं। इसी कारण उनको परतत्त्व स्वयं भगवान् मानकर पूजा भोग आदि देते थे, उनका नाम जप करते थे, त[illegible] उनका रूप ध्यान करते थे। प्रभुने इस समय[illegible] बातें की, उससे सार्वभौम भट्टाचार्यके चित्तमें उ[illegible] भगवत्ताके सम्बन्धमें किसी प्रकारका विकार उ[illegible] नहीं हुआ। वे प्रभुकी चतुरता समझकर हँ[illegible] लगे। इन सब बातोंका कोई उत्तर नहीं दिया। य[illegible] देखकर प्रभु पुनः बोले, "भट्टाचार्य! श्रीकृष्णका भोग अति उत्तम हुआ है। अब श्रीकृष्णका आसन हटाकर मुझको अलग पात्रमें कुछ प्रसाद दें।" इस बार सार्वभौम भट्टाचार्यने उत्तर दिया। उत्तर दिये बिना काम न चला। क्योंकि उन्होंने प्रभुके लिए

आसन लगाया था, उनके लिए ही उत्तम-उत्तम पूर्ण भोग उपस्थित किया था। वे आसन पर बैठेंगे, बैठकर अन्न-व्यञ्जन आदि भोजन करेंगे, तभी भट्टाचार्यके मनमें सुख होगा। क्योंकि जो श्रीकृष्ण हैं, वही श्रीगौरभगवान् हैं। इसकी सार्वभौम भट्टाचार्यने विशेष रूपसे परीक्षा कर ली थी। उनके मनमें कोई सन्देह नहीं था। तब भट्टाचार्यने प्रभुकी बातका उत्तर देते हुए कहा, "प्रभु! विस्मयकी बात न करें। जो भोजन करता है, उसीकी शक्तिसे भोग सिद्ध होता है। न यह मेरे उद्योगसे हुआ और न मेरी गृहिणीके। जिसकी शक्तिसे हुआ है, वह उसको जानता है।"

सार्वभौम भट्टाचार्य शास्त्रज्ञ पण्डित थे। उन्होंने एक गूढ़ बात कही। उन्होंने कहा कि जो भोजन करेगा उसकी शक्तिसे श्रीविग्रहका भोग सिद्ध होगा। यहाँ सार्वभौम भट्टाचार्यके मनका भाव इस प्रकारका था। प्रभुके भोजनके लिए भोग प्रस्तुत था। प्रभु भोजन करनेवाले थे, ईश्वर भावमें हो या भक्तभावमें। उनको भोजन करना था, इसी कारण भोग इतना उत्तम बन सका था, उसमें इतनी सफलता मिली थी। यह उन्होंने स्वमुखसे पहले ही कहा था। इस विषयमें दो तत्त्व हैं। श्रीभगवान्का भोग श्रीभगवान्के नाम पर ही सिद्ध हुआ था। श्रीभगवान्के नामपर भक्तिपूर्वक भोग देने पर वे [illegible]से भोजन करते हैं, और इसी कारणसे प्रसाद [illegible]ना स्वादिष्ट हो जाता है। क्योंकि यह अप्राकृत [illegible] है, उनका अधरामृत है। यह हुआ प्रथम [illegible]। द्वितीय तत्त्व यह है। भक्तके मुखसे भगवान् [illegible]जन करते हैं, यह शास्त्र सम्मत है। भक्त जब [illegible]भगवान्को निवेदित प्रसाद भोजन करता है तो उसकी शक्तिसे भी भोग सिद्ध होता है। क्योंकि उसके भोजनमें ही श्रीभगवान्का भोजन होता है, और श्रीभगवान्के भोजनसे सारी रसोई स्वादुपूर्ण हो जाती है। यह उनकी अपार महिमाका परिचय, और कृपाका निदर्शन है।

सार्वभौम भट्टाचार्यने जो कुछ प्रभुको कहा, उसे सुनकर प्रभु हँसने लगे। परन्तु सार्वभौम भट्टाचार्यने जब प्रभुको आसन पर बैठकर भोजन करनेके लिए विशेष रूपसे अनुरोध किया, तब उन्होंने कहा, "यह तो श्रीकृष्णका आसन है, यह पूज्य हैं, मैं इस पर कैसे बैठूँगा? तब भट्टाचार्यने कहा, "हे प्रभु! मेरा अपराध क्षमा करें, आपके सामने शास्त्रकी बात करनेमें मुझे लज्जा आती है। भगवान्का प्रसादी अन्न-व्यञ्जन और बैठनेका आसन इन दोनोंकी गिनती उनके प्रसादमें ही होती है, आप प्रसादान्न भोजन करेंगे और आसन पर बैठेंगे, इसमें अपराध ही क्या है?"

सार्वभौम भट्टाचार्य लज्जासे प्रभुके सामने इस सम्बन्धका शास्त्रीय वचन उद्धृत न कर सके। परन्तु प्रभु उनकी ओरसे श्रीमद्भागवत्का निम्नलिखित श्लोक सुनाया—

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कार चर्चिताः।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि॥

श्रीम. भा. ११.६.४६

अर्थ—हे भगवान्! आपके उपयुक्त माल्य, गन्ध, रुद्र और अलङ्कारसे अलंकृत, तथा आपके उच्छिष्ट भोजी दास हम अनायास ही आपकी माया पर विजय प्राप्त करते हैं।

इतना कहकर प्रभु आसनपर बैठकर श्रीभोगके प्रति शुभदृष्टिपात करके बोले, "भट्टाचार्य! इतना प्रसादान्न क्या मनुष्य खा सकता है? तुमने यह क्या किया है?" सार्वभौम भट्टाचार्य उस समय प्रभुके समीप बगलमें द्वार पर बैठे थे। वे बोले—"हे प्रभु! आप मेरे सामने अधिक चतुराई न कीजिये। आपको मैंने पहचान लिया है। आपने ही कृपा करके अपना निजतत्त्व मुझको समझा दिया है। आप इस नीलाचलमें ५२ बार भोजन करते हो! एक-एक भोगमें शतशत मन अन्न-व्यञ्जन होता है। तुमने द्वारकामें सोलह हजार पटरानियोंके मन्दिरमें दोनों संन्ध्या भोजन किया है। तुमने

गोवर्द्धन यज्ञमें राशि-राशि अन्न-व्यञ्जन भोजन किया है। इन सबकी तुलनामें मेरी कुटीरमें तुम्हारा यह सामान्य भोग तुम्हारे लिए एक ग्रास मात्र है। तुम सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हो, और मैं तुम्हारा दासानुदास क्षुद्र जीव हूँ। हे प्रभु ! भृत्यकी कुटीरमें आज कृपा करके एक ग्रास मधुकरी ग्रहण करो।"

प्रभु और कोई बात नहीं कर सके। वह सार्वभौम भट्टाचार्यके मुखकी ओर देखकर मुस्कराते हुए भोजन करने बैठ गये। भट्टाचार्य परम आनन्दपूर्वक परोसने लगे। सार्वभौम-गृहिणी और उनकी कन्या षाटी घरके भीतर खड़ी होकर प्रभुका भोजन लीलारङ्ग दर्शन करने लगी। सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुको परोस रहे थे, और लाठी हाथमें लेकर द्वार पर भोगसंभारकी रक्षा भी कर रहे थे।

अमोघ द्वारा प्रभुकी निंदा

सार्वभौमका जामाता अमोघ बड़ा पाखण्डी था। सार्वभौमने कुलीन घरमें अपनी एकलौती कन्याको दान किया था। उनका जामाता कुलके अहङ्कारमें स्फीतवक्ष कपोतके समान सर्वदा सिर उठाये चलता था, किसीको वह कुछ समझता न था, अपनेको सर्वश्रेष्ठ मानता था। नीलाचलमें अपने सुप्रसिद्ध श्वशुरके घर रहकर उनका अन्नसंहार करनेके अतिरिक्त उसको और कोई काम न था। सर्वनिन्दक अमोघ उसी समय कहींसे आ न जाय, इस भयसे सार्वभौम भट्टाचार्य भोगगृहके द्वार पर लाठी हाथमें लेकर बैठे थे। परन्तु बीच-बीचमें प्रभुको परोसने जाकर उनकी भोजनलीलाका रङ्ग देखकर मुग्ध हो जाते थे।

उसी अवसर पर सर्वनिन्दक अमोघ वहाँ आकर उपस्थित हो गया। आते ही प्रभुका भोग देखकर बोला—"इतने अन्नसे दस-बारह व्यक्तियोंकी तृप्ति हो सकती है, जितना यह अकेला संन्यासी खाता है।"

सार्वभौम भट्टाचार्यके देखते ही वह भयसे भाग खड़ा हुआ। भट्टाचार्य उसके पीछे लाठी लेकर मारनेके लिए दौड़े। परन्तु उसको पकड़ न पाये। प्रभुके पास लौटकर दुःखित मन होकर वे दुराचारी जामाताको शाप देने लगे, और हजारों गालियाँ देने लगे। अमोघकी निन्दा, भट्टाचार्यकी गाली और अभिशाप सुनकर दयामय प्रभु हँसते-हँसते भोजन करने लगे।

भक्तिमती सार्वभौम गृहिणीकी श्रीगौराङ्ग चरणोंमें एकनिष्ठ भक्ति थी। वह अन्तरालसे जामाताके मुखसे प्रभुकी निन्दा सुनकर दुःखित हो गयी, क्षोभ और घृणासे सिर पर कराघात करके छाती पीटती हुई रोती-रोती कहने लगी, "षाटी मेरी विधवा हो जाय।"

भक्तवत्सल प्रभुने यह अपने कानों सुना। भट्टाचार्य और उनकी भक्तिमती गृहिणीके दुःख और मनःकष्टको निवारण करनेके लिए प्रभु अधिक मन लगाकर भोजन करने लगे। उनको तुष्ट करनेके लिए अन्न व्यञ्जन माँगकर लिया। अमोघने उनकी निन्दा की है, इस पर उन्होंने बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया।

प्रभुका भोजन-विलास समाप्त होने पर भट्टाचार्यने उनको आचमन कराकर दूसरे घरमें बैठा दिया। तुलसी मञ्जरी, लवङ्ग-एलायची आदि मुखशुद्धि दी। प्रभुके श्रीअङ्गमें सुगन्धित चन्दन विलेपन किया। सार्वभौम भट्टाचार्यके मनमें आज बड़ी अशान्ति थी। प्रभुको अपने घर लाकर जामाताके द्वारा उनकी निन्दा करायी, इस आत्मग्लानिसे उनको बड़ी वेदना हो रही थी। उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था। प्रभुको विदा करते समय वे लम्बायमान होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े और रोते-रोते कहने लगे—"प्रभु ! मैंने तुमको अपने घर बुलाकर तुम्हारी निन्दा करायी, यह अपराध मेरा क्षमा करना।"

भक्तवत्सल प्रभुने उनको प्रेमपूर्वक उठाकर प्रेमालिङ्गन दानसे कृतार्थ करते हुए कहा, "भट्टाचार्य ! तुम्हारा जामाता तो मेरी निन्दा

करता नहीं, वह तो सहज और स्पष्ट बात ही बोलता है। इसमें उसका या तुम्हारा कोई अपराध नहीं होता।

इतनी बात कहकर प्रभु अपने निवास स्थानकी ओर चले। भट्टाचार्य उनके साथ-साथ गये। प्रभुने मना नहीं किया। सार्वभौम भट्टाचार्यने समझा कि प्रभुने यह बात ऊपरी मनसे कह दी है। भीतरसे नहीं कही है। प्रभु स्वयं भगवान् हैं, उनकी क्या निन्दा हो सकती है? और निन्दा करनेसे ही वे दु:खित क्यों होंगे? साधुके लिए जब निन्दा और स्तुति दोनोंको एक-सी है, तब श्रीभगवान्‌के लिए भी यह बात निश्चित हैं। परन्तु श्रीभगवान् जब नरवपु धारण करके नरलीला करते हैं, तब वे इच्छा करके लीलाके उद्देश्यसे नर प्रकृति धारण करते हैं। प्रभु अनायास सार्वभौमके घर बैठकर उनको और उनकी स्त्रीको सान्त्वना दे सकते थे। वे जानते थे कि इनको मर्मान्तिक कष्ट हुआ है।

जामाताके व्यवहारसे सार्वभौम दम्पतिको विशेष दु:ख है। ऐसी अवस्थामें साधारण आदमी जैसा करता है। उनने भी वही किया। मनमें व्यथा पाकर आदमी साधारणतः उपवास करते हैं। सार्वभौम-दम्पतिने भी वही किया। सर्वज्ञ प्रभु यह जानते थे।

लीलारसका गाढ़त्व प्रतिपादन करनेके लिए श्रीगौर भगवान् सार्वभौम गृहसे विदा होकर अपने वासा पर गये। सार्वभौम भट्टाचार्य जब उनके साथ-साथ चलने लगे तो प्रभुने उनसे कोई बात नहीं की। वासा पर जाकर सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुके चरणोंमें गिरकर नाना प्रकारसे अपनी निन्दा करने लगे। आत्मग्लानिके बिषसे उनका हृदय जर्जर हो गया। प्रभुने उनको मधुर वचन कहकर घर भेज दिया।

भट्टाचार्य दोनों हाथोंसे प्रभुके श्रीचरणकी धूलि ग्रहण करके रोते-रोते घर लौटे। घरपर आकर गृहिणीको संक्षुब्ध होकर कहने लगे—"जिसके मुँहसे प्रभुकी निन्दा सुनी, उसका वध करनेसे या अपना प्राण त्याग करनेसे ही उसका प्रायश्चित हो सकता है। किन्तु ब्राह्मणके लिए दूसरेका वध या आत्मघात, दोनोंही निषिद्ध हैं। अब उस निन्दकका मुख नहीं देखूँगा और न उसका नाम लूँगा। साठिको कहो कि वह भी उसका त्याग कर दे। पतित भर्ताका त्याग ही उचित है।"*

कृपालु पाठक वृन्द! सार्वभौम भट्टाचार्यकी बातपर थोड़ा शान्त चित्तसे विचार करें। उनकी बातसे उनकी गौराङ्गैकनिष्ठताका पूर्ण परिचय मिलता है। उन्होंने कहा—"जो श्रीगौराङ्ग प्रभुकी निन्दा कानसे श्रवण करता है, उसे इस तुच्छ जीवनको रखना ठीक नहीं। और जिसके द्वारा यह घोर पाप कर्म अनुष्ठित होता है, उसको भी जीवन धारण करना उचित नहीं है। श्रीगौराङ्ग-निन्दकका प्राण ले लेना कर्त्तव्य है, अन्यथा गौराङ्ग निन्दा-श्रवण रूप महापापके प्रायश्चित स्वरूप अपने प्राणका उत्सर्ग करना आवश्यक है। सार्वभौम भट्टाचार्य बड़ी कड़ी बात बोल गये। परन्तु वे शास्त्रज्ञ पण्डित थे, इस स्थलमें ब्राह्मण-बधके पापसे डर गये। प्रभुके निन्दक जामाताका मुख नहीं देखूँगा—यह प्रतिज्ञा कर ली। इससे भी उनके मनका दु:ख नहीं गया। उन्होंने गृहिणीसे कहा कि षाटीको कहो कि अपने पतिका त्याग करे, क्योंकि वह पतित है। साध्वी स्त्रीके लिए पतित स्वामी त्याज्य है। यह शास्त्र-वाक्य है।" यह भी बड़ी विषम बात है। अपनी कन्याको ऐसी बात कहना सहज नहीं है। सार्वभौम-गृहिणीने भी कहा है कि 'मेरी षाटी विधवा हो जाय।' कन्या और जामाताके प्रति इस प्रकारका व्यवहार माता-पिताके लिए जगत्‌में निन्दनीय माना जाता है। परन्तु सार्वभौम

---

* सन्तुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक्।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पति त्वपतितं भजेत्॥
श्रीमद्भागवत ७.११.२८

भट्टाचार्यके समान सर्वलोक पूज्य, परम विज्ञ पण्डित, तथा उनकी गृहिणीके समान स्नेहमयी और भक्तिमती स्त्रीने सबके सामने यह सब बातें कह दी। इसका कारण यह था कि उनके अयोग्य जमाताने उनके जीवन-सर्वस्व भजन-धन श्रीगौराङ्ग प्रभुकी निन्दा की थी। उस निन्दाको उन्होंने अपने कानों सुना था। प्रभुकी निन्दाके श्रवण रूपी महापातकका प्रायश्चित्त करना होगा, इसी कारण उन्होंने प्रतिज्ञावद्ध होकर उपवास किया। प्रभुका प्रसाद पर्यन्त त्याग दिया। इतनेपर भी उनके मनः कष्टकी सीमा न रही।

अमोघ उद्धार

इधर सार्वभौम-जामाता अमोघ जो वहाँसे भागा तो रात भर घर नहीं आया। प्रातःकाल वह विसूचिका रोगसे आक्रान्त हो गया। सार्वभौम भट्टाचार्यने इसे सुना तो मनमें वहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सबसे कहा—"आज मेरा बड़ा भाग्य है, दैव मेरा सहायक हो गया है, श्रीश्रीमहाप्रभुके निदकके पापका प्रायश्चित्त हाथों हाथ फल गया।"

आयुः श्रियं यशो धर्म लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ।।
श्रीभागवत १०.४.४६

श्लोकार्थ—साधुजनका विद्वेष केवल मृत्युका ही कारण नहीं बनता। बल्कि उससे पूर्ण पुरुषार्थ-सम्पन्न पुरुषकी भी आयु, श्री, यश, धर्म, स्वर्गादि लोक-कल्याण, तथा सब प्रकारके श्रेय नष्ट हो जाते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोपीनाथ आचार्य प्रभुके दर्शनके लिए उनके वासापर गये। वे सार्वभौम भट्टाचार्यके बहनोई थे। उनके ही बासापर रहते थे। करुणामय सर्वज्ञ प्रभुने उनसे भट्टाचार्यके विषयमें पूछ-ताछ की। गोपीनाथ आचार्य बोले—"भट्टाचार्य और उनकी गृहिणीने उपवास किया है। अमोघको विसूचिका व्याधि हो गयी है। उसका जीवन संशयमें है।" यह सुनकर भक्तवत्सल प्रभु स्थिर न रह सके। वे गोपीनाथ आचार्यको साथ लेकर अमोघके पास चल पड़े। दयाके अवतार प्रभु क्या स्थिर रह सकते थे? भक्तिहीन, दुष्टमति अमोघ विषम विसूचिका रोगके आक्रान्त होकर अचेतन अवस्थामें पड़ा था। दयामय प्रभुने उसके वक्षःस्थलपर श्रीकरसे स्पर्श करते हुए मधुर वचन कहा—"ब्राह्मण हृदय तो श्रीकृष्णके निवास योग्य सहज निर्मल होता है। इसमें मात्सर्य चाण्डालको बैठाकर इसको तुमने अपवित्र क्यों कर दिया। सार्वभौमके संगके प्रतापसे तुम्हारे सारे पाप क्षय हो गये। जब तुम उठो और श्रीकृष्ण नाम लो। तुम्हारेपर शीघ्र श्रीकृष्ण-कृपा होगी।"

प्रभुकी कैसी मधुरसे भी मधुर, सुन्दर मीठी वाणी है। बोलनेकी क्या अद्भुत शैली है। करुणासे अनुलिप्त उनके श्रीमुखकी उपदेश वाणी कितनी मधुर है। यह पढ़ने और सुननेसे प्राण शीतल हो जाते हैं, जुड़ा जाते हैं। ऐसी मधुमयी वाणी, ऐसी करुणापूर्ण वाणी किसी अधम दुराचारी कलिग्रस्त जीवको कभी किसीने नहीं सुनायी। ऐसा सदुपदेश पतित पाखण्डी जीवको और किसीने नहीं दिया। करुणामय प्रभुने पाखण्डी अमोघके वक्षःस्थलपर श्रीहस्त देकर स्नेहसिक्त मधुर शब्दोंमें कहा—"अमोघ! तुम ब्राह्मण कुमार हो, तुम्हारा हृदय सहज ही निर्मल है, तुम्हारा हृदय श्रीकृष्ण भगवान्के बैठनेका उपयुक्त आसन है, तुमने इस परम पवित्र स्थानमें मात्सर्य रूपी चाण्डालको क्यों बैठाया? इस स्थानको तुमने अपवित्र क्यों किया? तुम्हारे श्वशुर सार्वभौम भट्टाचार्य परम भागवत है। उनके सङ्ग गुणसे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो गये हैं। पाप नाश हुए बिना कोई कृष्णनाम ग्रहण नहीं करता। अमोघ! तुम उठो, कृष्ण-कृष्ण कहो, श्रीकृष्ण तुम्हारे ऊरर कृपा करेंगे।"

प्रभुके श्रीकर-स्पर्शको प्राप्त कर अमोघको चेतना आयी, उनकी कृपासे अमोघकी व्याधि तत्काल दूर हो गयी, वह कृष्ण-कृष्ण कहता हुआ

उठ खड़ा हुआ, और प्रेमोन्मत्त भावमें उच्च हरिध्वनि करके प्रभुके सामने नृत्य करने लगा। अश्रु, कम्प, पुलक, कदम्ब, स्तम्भ, स्वेद, स्वर-भङ्ग आदि प्रेम-भक्तिके सब लक्षण अमोघके अङ्गमें दृष्ट होने लगे। प्रभु यह देखकर हँसने लगे।

गोपीनाथ आचार्य प्रभुके साथ थे। वे अमोघके प्रति प्रभुकी इस अपार कृपाकी बात याद करके प्रेमानन्दमें रोते हुए आकुल हो उठे। अमोघ कुछ देर तक प्रेमावेगमें नृत्य कीर्तन करके प्रभुके चरणोंमें गिरकर अतिशय दैन्य और आर्त्तभावसे अपने कुकर्मके लिए रोते-रोते क्षमा प्रार्थना करने लगा। उसके क्रन्दनसे प्रभुका कोमल हृदय द्रवित हो गया।

इससे भी अमोघके मनकी आत्मग्लानि दूर न हुई। तब वे मनमें क्षुब्ध होकर अपने ही हाथों अपने गालपर जोरसे तमाचे मारने लगा, और रोते-रोते कहने लगा—"मैंने इस क्षुद्र मुखसे प्रभुकी निन्दा की है। अब इस मुखको उन्हें न दिखाऊँगा।" अमोघका गाल सूज गया। विषम आत्मग्लानिके विषसे उसका सारा अङ्ग जर्जर हो गया। वह अपने जीवनको धिक्कार देने लगा। तब गोपीनाथ आचार्यने स्नेह पूर्वक हाथ पकड़ अमोघको शान्त किया।

प्रभु पुनः उसका अङ्गस्पर्श करके उसको आश्वासन देते हुए कहने लगे—"अमोघ! सार्वभौमके सम्बन्धसे तुम मेरे स्नेह पात्र हो। तुम्हारे श्वशुरके घरकी दास-दासी, यहाँ तक कि कुत्ते-बिल्ली भी मुझे प्रिय हैं। तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुम अब घर जाकर कृष्ण नाम लो।" इतना कहकर प्रभु अमोघको साथ लेकर सार्वभौमके घर गये। गोपीनाथ आचार्य भी प्रभुके साथ थे।

सार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी गृहिणी पूर्व दिनके उपवाससे कातर शरीर और विषण्ण वदन होकर घरमें बैठे हताश पड़े थे, उसी समय अचानक प्रभु वहाँ जाकर उपस्थित हो गये। प्रभुको देखते ही सार्वभौम भट्टाचार्य उठकर प्रभुका चरण पकड़ कर भूमिमें पड़कर अजस्र रुदन करने लगे। कृपानिधि प्रभुने उनका श्रीहस्त पकड़कर उठाया और गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया।

तत्पश्चात प्रभु दिव्यासनपर बैठकर भट्टाचार्यको स्नेह पूर्वक मधुर शब्दोंमें बोले—"अमोघ तो बालक है। इसका दोष ही क्या है? उसके प्रति रोष कैसा और क्यों उपवास करते हो। उठो, स्नान करके श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करके शीघ्र आकर प्रसाद पाओ, तब मुझे प्रसन्नता होगी। जब तक तुम प्रसाद नहीं पाते हो तब तक मैं यहीं बैठा हूँ।"

भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान्‌ने भक्त-दुःखसे कातर होकर जो बात कही, उससे सार्वभौमका हृदय गल गया। गुणनिधि प्रभुके गुणोंका स्मरण करके वे रोकर व्याकुल हो उठे। भक्तके लिए श्रीभगवान् किस प्रकार कष्ट स्वीकार करते हैं, भक्तके उपवास करनेपर वे कितना उद्विग्न होते हैं, मनमें कितना दुःखी होते हैं, यह प्रभुकी बातसे प्रकट हो गया।

सार्वभौम भट्टाचार्यने गोपीनाथ आचार्यके मुखसे अपने अयोग्य, दुर्वृत्त, अवैष्णव जामाताके प्रति प्रभुकी आयाचित अपार कृपाकी सारी बातें सुनीं, सुनकर वे अत्यन्त प्रेमविह्वल भावमें प्रभुसे बोले—"हे प्रभु! हे कृपानिधि! अमोघ अपने कर्मदोषसे मरता तो अच्छा ही होता। आपने इसे बचाया क्यों?" करुणामय प्रभु बोले—"भट्टाचार्य! अमोघ तुम्हारा पुत्रस्थानीय बालक है। क्या पिता बालक पुत्रके दोषको देखता है? तुम इसे पुत्र रूपमें प्रतिपालन कर रहे हो, उसके दोषको देखना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है। अस्तु, वह अब वैष्णव हो गया है। कृष्णनाम ले रहा है, इसका अपराध नष्ट हो गया है। अब तुम इस पर कृपा करो।"

सार्वभौम भट्टाचार्य अब अमोघके सम्बन्धमें कोई बात न कहकर प्रभुसे बोले—"हे प्रभु ! चलिये जगन्नाथका दर्शन करें। स्नान करके फिर यहाँ आवेंगे।" दयामय प्रभु राजी हो गये और गोपीनाथ आचार्यको आज्ञा दी—"आचार्य ! तुम यहाँ ही रहोगे। भट्टाचार्य जगन्नाथका दर्शन करके आकर जब प्रसाद पा लें तो मुझको इसकी सूचना दोगे।"

इतना कहकर प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यको साथ लेकर जगन्नाथका दर्शन करने गये। दोनोंने एक साथ मनकी साध पूरी करके श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके मुखचन्द्रका दर्शन करके परमानन्दसे नृत्य-कीर्तन किया। स्नान करके भट्टाचार्य घर लौट आये, और प्रभु अपने वासापर गये। अलग होते समय भट्टाचार्यने जब प्रभुके चरणोंकी वन्दना की, तो प्रभुने कहा—"भट्टाचार्य तुम उपवासी हो। घर जाकर प्रसाद पाओ। अमोघको कुछ न कहना।"

भट्टाचार्य प्रभुके कृपा-वचन सुनकर प्रेमावेगमें क्रन्दन करने लगे। उन्होंने घर आकर प्रसाद पाया, उनकी भक्तिमती गृहिणीने भी प्रसाद पाया। अमोघने प्रभुकी कृपासे नव जीवन प्राप्त किया। उसी दिनसे वह प्रभुका एकान्त भक्त बन गया। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

सेइ अमोघ हइल प्रभुर भक्त एकान्त।
प्रेमे नृत्य, कृष्ण नाम लय महाशान्त॥
चै. च. म. १५.२९०

भक्तवत्सल प्रभुका यह लीलारङ्ग जो भक्ति और श्रद्धाके साथ पाठ करते हैं या सुनते हैं, वे शीघ्र चैतन्य-चरणको प्राप्त होते हैं। यह कविराज गोस्वामीका कथन है—

श्रद्धा करि एइ लीला शुने जेइ जन।
अचिराते पाय सेइ चैतन्य चरण॥
चै. च. म. १५.२९५

सत्रहवाँ अध्याय

शिखि माहिति श्रीनित्यानन्द-महिमा

"नीलाचले लीलारंग अद्भुत कथन।"

प्रभुके गृहस्थ-भक्त

प्रभु श्रीनिताई चाँदको विदा करके अत्यन्त विषण्ण हो उठे। उनके श्रीवदनके भावको देखते ही भक्तगणको यह पता चल गया। नदियाके प्रायः सभी भक्तवृन्द पहले ही चले गये थे। जो कुछ बचे थे, वे भी श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ चले गये। प्रभुके पास रह गये केवल कुछ विरक्त संन्यासी भक्त। गृही भक्त अब कोई नीलाचलमें नहीं रह गया था। सार्वभौम भट्टाचार्य नदियाके भक्त होकर भी नीलाचल-वासी थे। वे ही एक मात्र गृही वैष्णव थे। प्रभुकी कृपा गृही वैष्णवके प्रति अधिक थी। इसका परिचय उन्होंने स्वयं श्रीमुखसे दिया था। शिवानन्द सेन जब स्त्री-पुत्रको लेकर नीलाचलमें उनका दर्शन करने आये, तब प्रभुने गोविन्दसे कहा—

शिवानन्देर प्रकृति पुत्र यावत हेथाय।
मोर अवशेष पात्र तारा जेन पाय॥
चै. च. अं. १२.५२

इतनी कृपा उन्होंने अपने संसार-विरक्त संन्यासी भक्तोंके ऊपर कभी नहीं की। बल्कि उनका आदेश था कि उनका अवशिष्ट प्रसाद, उनका पादोदक किसीको भी न दिया जाय। जैसे,

गोविन्देर महाप्रभु करियाछे नियम।
मोर पादोदक जेन ना लय कोन जन।।

चै. च. अं. १६.४०

गृहस्थ भक्तगण स्त्री-पुत्र आदिको साथ लेकर संसार चलाते थे, परन्तु उनका चित्त सर्वदा श्रीगौराङ्ग-चरणमें लगा रहता था। वे लोग अनासक्त होकर गृहस्थ-धर्मका पालन करते थे। स्त्री-पुत्र, आत्मीय स्वजनकी माया उनको अविभूत नहीं कर सकती। व्रजगोपिकाओंका जैसा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके प्रति प्रेमभाव था, नदियामें गृही-भक्तोंका शचीनन्दन श्रीगौर भगवान्‌के प्रति ठीक वैसा ही भाव था। वे शरीरसे गृह-कार्य करते थे. परन्तु मन सर्वदा श्रीगौराङ्गके चरणोंमें निविष्ट रहता था उनका शरीर नदियामें रहता था, परन्तु मन निरन्तर नीलाचलमें प्रभुके चरण-कमलका मधु-पान करता था। यह प्रेमका भजन बहुत साधनाके फलसे प्राप्त होता है। कामिनी-काञ्चनमें रहकर भी वे सब महापुरुष पूर्णतः अनासक्त होकर श्रीगौर भजन करते थे। सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुसे कहा था:—

शिरे वज्र पड़े यदि पुत्र मरि जाय।
ताहा सहि, तोमार विच्छेद सहन न जाय।।

चै. च. म. ७.४७

इस प्रकार प्रेम-भक्तिके डोरसे नदियाके गृही-भक्तोंने प्रभुको बाँध रक्खा था। भक्तवत्सल प्रभु संन्यासी होकर भी अपने भक्तवृन्दकी मनस्तुष्टिके लिए आश्रम-धर्म तकके परित्यागके लिए बाध्य हुए थे। श्रीभगवान् भक्तके अधीन थे, उनके सर्वथा वशीभूत थे। उन्होंने श्रीमुखसे यह बात कही थी—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः।।

श्रीम. भा. ९. ४. ६३

अर्थात् मैं भक्तके अधीन हूँ, अतएव पराधीन हूँ। मैं स्वाधीन नहीं हूँ, मैं अपने भक्तवृन्दको प्रेम करता हूँ, वे मुझे अति प्रिय हैं, मेरे हृदयको उन्होंने पूर्णतः ग्रस्त कर लिया है, अतएव अपने हृदयके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है। श्रीभगवान्‌के पक्षमें इस प्रकारका आत्म-दान शोभता है। प्रभुके नीलाचलके कई भक्त गृहस्थ थे, उनके घर भी प्रभु भिक्षा करते थे, उनमें बड़े-बड़े लोग थे। स्वयं राजा प्रतापरुद्र सपरिवार श्रीगौराङ्ग भजन करते थे। भवानन्द रायके पाँचों पुत्र प्रभुके दासानुदास थे। जनार्दन दास, कृष्णदास, शिखि माहिति, मुरारि माहिति, प्रहरराज महापात्र, विष्णुदास और परमानन्द महापात्र, प्रद्युम्न मिश्र आदि जगन्नाथजीके बड़े-बड़े सेवक थे, जो श्रीक्षेत्रके रत्न थे, वे भी प्रभुके एकान्त अनुरक्त दास हो गये। उनके साथ लेकर प्रभु नीलाचलमें लीलारङ्ग करते थे। प्रभुकी नवद्वीप-लीला, माधुर्य-लीला तथा नीलाचल-लीला ऐश्वर्य-लीला थी। नदियाके भक्तवृन्दको प्रभुने अपनी माधुर्य लीलासे मुग्ध किया था। श्रीभगवान्‌की ऐश्वर्य-लीला देखकर जीव उनको भक्ति पूर्वक दूरसे ही प्रणाम करते थे, माधुर्य-लीला देखकर उनको प्राणपनसे प्रेम करते थे और अपना लेते थे। श्रीभगवान्‌को वे लोग अपने परिवारके बीच लाकर निजजन बना लेते थे। प्रभुके नीलाचलके भक्तवृन्द श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी विभूतिकी पूजा करते थे, उनकी ऐश्वर्यपूर्ण परम सुन्दर अपूर्व संन्यास मूर्त्तिकी उपासना करते थे, नदियाके भक्तवृन्द श्रीशचीनन्दन गौर हरिका माधुर्य भजन करते थे, वे प्रभुकी नदिया-नागर-भावपूर्ण प्रेममय श्रीमूर्त्तिकी पूजा करते थे। श्रीगौराङ्ग उपासनाके सम्बन्धमें भक्तगणमें कोई विरोध न था। श्रीविष्णुप्रियाके प्राणवल्लभ गौर हरि, और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु वस्तुतः पृथक् वस्तु नहीं थे, अतएव विरोधका कोई

कारण न था। नीलाचलके भक्तवृन्द उनको और श्रीजगन्नाथजीको पृथक् वस्तु नहीं मानते थे। सभी उनको सचल जगन्नाथ समझते थे।

माहिति परिवार

इन नीलाचलके भक्तोंमें श्रीश्रीजगन्नाथजीके सेवक माहिति वंशमें महाप्रभुके तीन महान् भक्तोंकी एक कथा सुनिये। पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य-चरितामृत श्रीग्रन्थमें लिखा है कि, प्रभुने कृपा करके कलिके जीवको जो अति गूढ़, उन्नत और उज्ज्वल प्रेम-रस प्रदान किया, उसके सम्यक् रूपसे आस्वादनके अधिकारी केवल साढ़े तीन आदमी थे। प्रथम स्वरूप दामोदर गोस्वामी, द्वितीय रामानन्द राय, तृतीय शिखि माहिति, तथा चतुर्थ अर्थात् आधीशिखी माहितिकी बहिन माधवी दासी थी। स्त्रीजन होनेके कारण जान पड़ता है इनको आधा गिना है।

शिखि माहिति श्रीश्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके कार्यका हिसाब-किताब लिखते थे। वे एक प्रेमिक भक्त थे, परम भागवत थे तथा अतिशय दयावान् थे। कवि कर्णपूर गोस्वामीने उनको 'नील शैल तिलक' कहकर वर्णन किया है। यथा,

अस्ति तत्र विमलः शिखिनामा
माहितीति पुरुषोत्तमभूमौ।
नीलशैलतिलकस्य महात्मा
दासवत् करुणतां समुपेतः॥

श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य १३.८९

शिखि माहितिके एक कनिष्ठ भ्राता थे, उनका नाम था मुरारि, और एक कनिष्ठ बहिन थी, उसका नाम था माधवी। ये दोनों ही श्रीगौर भगवान्के एकान्त अनुरक्त दास थे। मुरारि और माधवी श्रीगौराङ्ग प्रभुको दर्शन मात्रसे ही साक्षात् श्रीश्रीवृन्दावन चन्द्रके रूपमें विश्वास करते थे।[1] उनके ज्येष्ठ भ्राता शिखि माहितिको यह सौभाग्य प्राप्त न हुआ। माधवी देवी एक प्राचीन स्त्रीकवि और परम पण्डिता थी, वह परम वैष्णवी थी। इसी कारण नीलाचल वासी सब लोग उनको तीन भाई कहते थे। शुद्धाभक्ति और विद्याके बलसे स्त्री होकर भी माधवी देवी पुरुषाख्याको प्राप्त थी। वह सर्वदा भजन-साधन करती रहती थी। वह साहस पूर्वक प्रभुके सामने नहीं जा सकती थी, दूरसे ही प्रभुका दर्शन करके कृतार्थ हो जाती थी। इस भक्तिमती तपस्विनी माधवीके यहाँसे प्रभुकी सेवाके लिए तण्डुल भिक्षा लानेके कारण छोटे हरिदास प्रभुके द्वारा वर्जित हो गये थे। यह सब लीलाकथा आगे आयगी।

श्रीगौर गणोद्देश दीपिकामें लिखा है कि श्रीकृष्णावतारमें शिखि माहिति और माधवी देवी श्रीमती राधिकाकी दासी थे, उनका नाम था रागलेखा और कलाकेलि। वे श्रीमती राधिकाकी शय्याको सजाती थी।[2] माधवी देवी कवि थी। वे संस्कृत, उड़िया और बङ्गला भाषा जानती थीं। उन्होंने अपनी आँखों दर्शन करके प्रभुकी नीलाचल लीलाके पद लिखे थे। यह कहना पड़ेगा कि उस युगमें कोई स्त्री-वैष्णव कवि न था। इसी कारण उनकी पदावली गौड़ीय वैष्णवोंमें विशेष रूपसे

---

[1] अस्य कोप्यवरजोऽस्ति मुरारिर्नाम तस्यच तथानु कनिष्ठ[illegible]
शुद्धबुद्धिरथ माधवीदेवी भ्रातरस्त इति तत्र समास[illegible]
भ्रातरौ पुनरिमौ प्रियानुजौ गौरचन्द्र निरतौ वभूव[illegible]
निश्चला हि सहजा मतिः सुभा विस्मृतं नहि दधाति कर्हि[illegible]
गौरचन्द्र इह सम्प्रति वृन्दारण्यचन्द्र उदियाय धरण्य[illegible]
एतयोरिति शुभा मतिरासीत् सन्ततं विदधतो रतिगाशिम्[illegible]

श्रीचैतन्य चरित महाकाव्य १३.९०.९१,९३

[2] राग लेखा कलाकलौ राधा दास्यौ पुरास्थिते।
ते ज्ञेये शिखि माहाति तत् श्वसा माधवी देवी॥

गौर गणोद्देश दीपिका।

आदरणीय हो गयी है। बहुत कठिनाईसे मैं इस परम वैष्णवी गौर पागलिनीके द्वारा विरचित दो प्राचीन पदोंका संग्रह कर पाया हूँ। गौरभक्त कृपालु पाठकवृन्दके आस्वादनके लिए उसे नीचे उद्धृत करता हूँ।

(१)

कलह करिया छला, आगे पहुँ चलि गेला,
भेंटिवारे नीलाचल राय।
चातक भकतगण, हैया सकरुण मन,
पदचिह्न अनुसारे जाय॥
निताइ विरह अनले भेल धस्त॥ध्रु०॥
आठार नाला हैते, कान्दिते कान्दिते पथे,
जय निताइ अवधौतचन्द्र।
सिंह दुयारे गिया, मरमे वेदना पाइया,
दाँड़ाइलेन नित्यानन्द राय।
हरे कृष्ण हरि बले, देखियाइ संन्यासीये,
नीलाचल वासीरे सुधाय॥
जाम्बून्द हेम जिनि, गौराङ्ग चरण खानि,
अरुण वसन शोभे गाय।
प्रेमभरे गरगर, आँखि युग झरझर,
हरि हरि बोल बोले जाय॥
छाड़ि नागराली वेष, भ्रमे पहुँ देश देश,
एबे भेल संन्यासीर वेश।
श्रीमाधवी दासी कय, अपरूप गोरा राय,
भक्तगृहे करिल प्रवेश॥

(२)

नित्यानन्द संगति मुकुन्द गदाधरे।
देखिलेन गौरचन्द्र सार्वभौम घरे॥
प्रतप्त काञ्चन कान्ति अरुण वसन।
प्रेमे छल छल दुइ अरुण नयन॥
आज्ञानुलम्बित भुज चन्दने शोभित।
उन्नत नासिका ऊर्ध्व तिलक मण्डित॥
गोपीनाथ, वाणीनाथ, सार्वभौम, काशी।
गोरारूप देखे सब नीलाचल वासी॥
दक्षिणे वसिल निताइ, वामे गदाधर।
मिलिलेन गोरा चाँदेर जत अनुचर॥
जे देखये गोरा मुख सेइ प्रेमे भासे।
माधवी वञ्चित हैला निज कर्म दोषे॥

प्रथम पद प्रभुकी दण्डभङ्ग लीलाका प्रभुके नीलाचल धाम आगमनके उपलक्षमें रचित हैं, और दूसरा पद सार्वभौम-गृहमें प्रभुके शुभागमनके दर्शनमें लिखित है। कृपालु पाठक वृन्द देखेंगे कि माधवी देवीका प्रथम श्रीगौराङ्ग दर्शनमें नवानुरागमें मनका कैसा भाव हुआ था। मुरारि और माधवीने प्रभुको देखते ही उनके चरणोंमें आत्म समर्पण करके कुलशीलको खो दिया। परन्तु उनके ज्येष्ठ भ्राता शिखि माहिति ऐसा न कर सके। यही प्रभुकी अपूर्व लीलाका रहस्य है। यह लीला रहस्य आगे उद्घाटित होगा।

तीनोंने जब प्रभुका प्रथम दर्शन किया तो दोके मनमें तत्काल यह धारणा हुई कि वे साक्षात् ईश्वर हैं। एक आदमीको इसमें कुछ देर हुई। तीनों जन घर आकर प्रभुके सम्बन्धमें बातें करने लगे। मुरारि और माधवी देवी एक ओर थे, तथा शिखी माहिति दूसरी ओर। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी भगवत्ताके सम्बन्धमें विचार प्रारम्भ हुआ। शिखी माहिति पण्डित, शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान् थे। वे विचार करके कार्य करते थे। मुरारि और माधवीने कहा—"भैया! इस नवीन संन्यासीको आज देखा, यह साक्षात् व्रजेन्द्र नन्दन हैं, यह सचल जगन्नाथ हैं।" शिखी माहिति दाँतसे जीभ काटते हुए बोले—'भातृगण! जीवमें ईश्वर बुद्धि करने पर महापाप होता है। तुम लोगोंका चित्त बड़ा दुर्बल है, इसीसे ऐसा बोलते हो। ऐसी बात मुँहपर न लाना। वे परम भक्त, परम सुन्दर महापुरुष हैं, भक्तभावमें उनकी वन्दना करो, पूजा करो, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु उनको भगवान् कहनेसे दोष लगेगा।'

बड़े भाईकी बात सुनकर मुरारि और माधवीको मार्मिक दुःख हुआ। वे रो पड़े और बड़े भाईका चरण पकड़कर बोले—"भैया! तुम जो बात बोल

गये, इसे फिर मुँहपर न ले आना। श्रीगौर भगवान् तुम्हें सुमति दें, जिससे वे तुम्हें साक्षात् नीलाचल चन्द्रके रूपमें दीखें।" शिखी माहिति बड़े असमंजसमें पड़े। वे मन ही मन सोचने लगे—"तर्कके द्वारा इस नवीन संन्यासीको मैं भगवान् नहीं मान सकता। परन्तु यदि कृपा करके ये कुछ ऐश्वर्य दर्शन करावें तो समझमें आवे कि मुरारि और माधवीकी बात ठीक है।" यह विचार कर उसने उनके साथ कोई तर्क-वितर्क नहीं किया। परन्तु इस बातको लेकर उनके सुदीर्घ भ्रातृस्नेहमें अन्तर आ गया।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। मुरारि और माधवी मनोव्यथासे कातर होकर रात-दिन अपने बड़े भाईकी दुर्मतिके लिए रोते थे और प्रभुसे प्रार्थना करते थे कि—"हे प्रभु! भैयाको सुमति देकर अपने चरणोंमें स्थान दो।" इधर शिखी माहिति नित्य श्रीश्रीजगन्नाथके चरणोंमें निवेदन करते थे कि—"हे जगन्नाथ! मेरे भाई-बहिनकी कुबुद्धि दूर करके सुबुद्धि दो। क्यों इनकी ऐसी दुर्मति हुई है? जीवमें भगवान् बुद्धि कुबुद्धि नहीं तो और क्या है? हे नीलाचलनाथ! ये लोग तुम्हारे स्थानमें इस नवीन संन्यासीको बैठाना चाहते हैं, कैसा दुर्भाग्य है।" यह वोलते थे और रोते थे।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। घरमें तीनों भाई बहिनमें अब पहले जैसा भाव न रहा। मुरारि और माधवी देवी अपने बड़े भाईको श्रीगौराङ्ग चरणमें आकृष्ट करनेके लिए विधिपूर्वक चेष्टा करते थे। परन्तु शिखी माहितिका मन कदापि उस ओर नहीं जाता।

अग्रजं प्रति च नीलगिरीन्द्र प्रेमभृत्यमनयोरतियत्नः।
गौरचन्द्रभजनार्थ मथासीन्नैष तत्र निरतश्च वभूव॥
चै. च. महाकाव्य १३.९४

मुरारि और माधवीने देखा कि बड़े भाईका सङ्ग छोड़नेके सिवा अब और कोई उपाय नहीं है। शिखि माहिति भी उनको अपने मतमें लानेके लिए ताड़ना करनेसे नहीं चूकते थे। इसका फल यह हुआ कि मुरारि और माधवीने बड़े भाईका साथ छोड़ दिया शिखि माहिति भी उनका मुख देखना नहीं चाहते थे। सब एक घरमें रहते थे, परन्तु शिखि माहिति किसीके साथ बातें नहीं करते थे। मुरारि और माधवी एक घरमें थे, और शिखि माहिति दूसरे घरमें रहने लगे। पहले तीनों ही एक घरमें रहते थे।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन रातमें शिखि माहिति शयन कर रहे थे। उस दिन प्रातःकाल मुरारिके साथ श्रीगौराङ्गके सम्बन्धमें कुछ चर्चा हुई थी। रातके अन्तिम पहरमें एक अद्भुत स्वप्न देखकर वे व्याकुल चित्तसे मुरारि और माधवीको चिल्लाकर जगाने लगे। उनका चिल्लाना सुनकर दूसरे घरसे मुरारि और माधवी दौड़े आये। आकर जो देखा उससे उनका हृदय द्रवित हो गया। शिखि माहिति शय्यापर बैठकर 'हा गौराङ्ग' कहकर अजस्र आँसू बहा रहे थे। छोटे भाईको देखते ही उसका गला जकड़कर रोने लगे।* तीनों भाई परस्पर एक दूसरेका गला पकड़कर प्रेमाश्रुधारासे गृहके भूतलको सिक्त करने लगे। शिखि माहातिका कण्ठ स्वर रुद्ध हो गया था। वे बात नहीं कर पा रहे थे। कुछ देरके बाद सुस्थिर होकर उन्होंने कहा—

भ्रातरौ शृणुत मे तदीक्षितं
स्वप्नतो यदिति चित्रमेव तत्।
अप्रमेय महिमा शचीसुतः
प्रत्ययोऽद्य खलु केवलमासीत्॥
श्रीचैतन्यःचरित महाकाव्या १३.९९

* भ्रातरौ पुनरनेन कनिष्ठौ गौरचन्द्रपद पङ्कजदृष्टौ।
तत्क्षणे स्वमपि जागरयन्तौ स्वप्नदृष्टि चकितं ददृशाते॥
चित्रदर्शन भवत पुलकौघैर्हर्षतो द्विगुण एवं बभूव।
उन्मिमील शनकैर्जलपूर्णे लोचने तदनु तौ च ददर्श॥
तौ विलोक्य निज जागरणार्थमागतौ सविधमेव महान्तौ।
आलिलिङ्ग स दृढं परिहृष्टो बिस्मितावभवतां च तदा तौ॥
श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य १३.९६-९८

अर्थात् हे भाई ! तुम लोगोंकी कृपासे मैं आज गौराङ्गकी महिमा समझ पाया हूँ। तुम लोगोंके अनुरोधसे मुझको उन्होंने अपना स्वरूप दिखलाया है, और निजतत्त्वको समझाया है।

शिखि माहितिके अङ्ग पुलकित थे, गद्गद वाणी थी, और आँखोंसे झरझर अश्रुधारा बह रही थी। मुरारि और माधवी अपने बड़े भाईकी यह दशा देखकर प्रेमानन्दमें रोते हुए आकुल हो उठे। शिखि माहिति रोते-रोते पुनः कहने लगे—"अरे भाई ? मैं क्या कहूँ ? मैंने आज स्वप्नमें देखा कि श्रीगौराङ्ग प्रभुने जगन्नाथका दर्शन करते समय एक अद्भुत लीलारङ्ग किया। वह बात कहते समय मेरे प्राण काँप रहे हैं। यदि तुम लोगोंसे न कहूँगा तो किससे कहूँगा ? मैंने देखा कि श्रीगौराङ्ग जगन्नाथजीकी मूर्त्तिमें प्रवेश कर गये, फिर बाहर निकल आये—इस प्रकार तीन बार उन्होंने मूर्त्तिमें प्रवेश किया और उससे अद्भुत रीतिसे बाहर निकलने लगे, और मेरे प्रति कृपादृष्टि करने लगे। मुझको बड़ा भय लग रहा था, परन्तु वे हँस रहे थे। तब मैं रोने लगा। तब तुम्हारे कृपानिधि ठाकुरने मेरे पास आकर मधुर स्वरमें मुझसे बातें की। मुझको अपने आजानुलम्बित बाहु युगल द्वारा आवेष्टित करके प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। अब मेरे मनमें कुछ नहीं है, मैं मानो उनके शीतल क्रोड़में आबद्ध हूँ, मुझको मानो उन्होंने आदर करके अपने चरणोंमें स्थान दे दिया।" इतना कहते-कहते शिखि माहातिका कण्ठ अवरुद्ध हो गया, वे मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पड़े।

नील शैलतिलकं विलोकयं
स्तत्र स प्रविशति प्रतिक्षणम्।
भूय एव वहिरेत्य पश्यति
प्रायशो व्यतनुतैवमेव सः॥
चित्रमेव बहुचित्रमेष तत्
सोऽधुनापि तदवस्थ ईक्षते।
ईश्वरः परम विभ्रमेक्षण
भ्रान्तिभागिव विलोचनद्वयम्॥
मां च तन्निकटगं खलु नाम
ग्राहमाश्लिषदसीमकृपाब्धिः।
दीर्घ पीवर भुजा द्वितयेन
श्रीमता ललितजानु गतेन॥

श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य १३.१००-१०२

मुरारि और माधवी दोनों मिलकर अपने गौराङ्ग कृपापात्र आनन्द मूर्च्छागत बड़े भाईकी सेवा सुश्रूषा करने लगे, तथा कृपानिधि प्रभुकी इस अयाचित कृपाकी बात याद करके, और गुण-निधिके असीम गुणोंका स्मरण करके आकुल चित्तसे रो पड़े। उस समय दोनों मिलकर गौर-कीर्तन करने लगे, तब शिखि माहितिको बाह्यज्ञान हुआ। उस समय उषा कालका समय था। उसी समय प्रभु सिंहद्वारपर गरुड़ स्तम्भके बगलमें खड़े होकर श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करते थे। मुरारि और माधवी अपने बड़े भाईको लेकर प्रभुके दर्शनके लिए चले।

शिखि माहितिके पैर उठ नहीं रहे थे। वे प्रेमानन्दमें जड़वत् हो रहे थे। दोनों भाई उनको पकड़कर ले चले। श्रीमन्दिरमें जाकर देखा कि प्रभु जगमोहनके पास खड़े होकर प्रेम-विह्वल भावमें जगन्नाथ-दर्शन कर रहे हैं। उनके कमलनयनकी प्रेमाश्रुधारासे प्रेमनदी प्रवाहित हो रही है। तीनों आदमी प्रभुको देख रहे हैं। श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेका उनको अवसर न मिला। प्रभुके मुखचन्द्रसे वे आँख नहीं हटा पा रहे थे। प्रातः सूर्यकी रश्मिके समान प्रभुके श्रीअङ्गसे अपूर्व स्निग्ध रक्ताभ ज्योति बाहर निकल रही थी, दिव्यगन्धसे श्रीमन्दिरका प्राङ्गण परिपूरित हो रहा था।

शिखि माहितिने प्रभुको स्वप्नमें देखा था, इस समय ठीक उसीं रूपमें देख रहे थे। इससे उनके मनका सारा भ्रम दूर हो गया, प्रेमानन्दमें वे विभोर हो गये। तीनों आदमी दूर खड़े होकर इस अपरूप श्रीगौराङ्ग विग्रहका दर्शन कर रहे थे। कुछ देरके बाद प्रभुको बाह्यज्ञान हुआ। उन्होंने इन तीनोंके

प्रति शुभ दृष्टिपात किया, तथा शिखि माहितिको इशारेसे पास बुलाया। माधवी दूर ही खड़ी रही। मुरारि अपने बड़े भाईका हाथ पकड़े प्रभुके पास गये।

शिखि माहिति प्रेमानन्दमें थर-थर काँप रहे थे, उनका सारा अङ्ग पुलकित हो रहा था। दोनों भाई जब प्रभुके पास पहुँचे, तब करुणामय प्रभुने शिखि माहितिसे कहा—"तुम मुरारिके अग्रज हो, आओ तुमको आलिङ्गन करूँ।" इतना कहकर आजानुलम्बित बाहुयुगल फैलाकर उनको वहाँ ही गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। शिखि माहिति प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे आनन्दस्वरूप हो गये। कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

> **सोऽपि भूरिकरुणोऽथ मुरारे-**
> **रग्रजस्त्वमिति दोर्द्वितयेन।**
> **आलिलिङ्ग स च तन्मतिरासीत्**
> **मूर्त्तिमान् समुदयः सुखराशेः॥**
> चै. च. महा. १३. १०८

मुरारिके सम्बन्धसे भक्तवत्सल श्रीगौर-भगवान्ने उनके अग्रज शिखि माहितिको जिस प्रकार कृपा पात्र बनाया, इससे उनकी भक्तवत्सलता प्रमाणित हुई, केवल इतनी ही बात नहीं है। शिखि माहिति प्रभुकी भगवत्तामें विश्वास न कर सकनेके कारण उनके विरुद्ध आचरण करने-से भी नहीं हिचकते थे। खुलकर उनकी निन्दा करने-से भी नहीं चूकते थे। परन्तु दयामय श्रीगौराङ्ग प्रभु भक्तसे सम्बन्ध करके क्या उसे छोड़ सकते हैं? मुरारि और माधवी प्रभुके एकान्त भक्त हैं। श्रीगौराङ्ग-चरणके ध्यानके सिवा उनकी अन्य उपासना नहीं है। श्रीगौराङ्ग गुणगानके सिवा उनके मुखमें और कोई बात नहीं रहती। उनके बड़े भाई शिखि माहिति श्रीजगन्नाथजीके भक्त और सेवक होकर भी उनके इष्ट श्रीगौरके विरोधी हैं। इससे मुरारि और माधवीके मनमें कष्ट हुआ है, अन्तर्यामी श्रीगौरभगवान्ने इसे जानकर उनके अग्रजको भी उनके सम्बन्धसे आत्मसात् कर लिया। यह बात उन्होंने स्पष्ट कही। इससे मुरारि और माधवी बहुत लज्जित हुए, तथा शिखि माहिति भी समझ गये कि उनके दोनो भाई-बहिनोंके अनुग्रहसे प्रभुने उनके ऊपर कृपा की हैं।

तबसे शिखि माहिति श्रीगौराङ्ग प्रभुके एकान्त भक्त हो गये। पहले उन्होंने श्रीश्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना की थी कि 'उनके दोनों भाइयोंकी मतिको फेर दो, उनकी जीवमें भगवान् बुद्धि हुई है जो अच्छी बात नहीं है। यह दुर्बुद्धि और दुर्मति है। इसको दूर करके ऐसा करो कि तुम्हारे चरणोंमें उनकी अस्थिर मति और एकान्त भक्ति हो।' मुरारि और माधवीने भी श्रीगौराङ्गके चरणोंमें प्रार्थना की थी कि 'उनके ज्येष्ठ भ्राताकी बुद्धि खराब हो गयी है, श्रीगौराङ्गमें जीव बुद्धि करते हैं, श्रीगौराङ्ग साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं, वे सचल जगन्नाथ हैं। जो श्रीकृष्ण हैं, वेही श्रीगौराङ्ग हैं। जो जगन्नाथ हैं वेही श्रीगौराङ्ग हैं' बड़े भाईकी इस प्रकार दुर्बुद्धि देखकर उनके मनमें दारुण व्यथा हुई। उन्होंने प्रभुके चरणोंमें रोकर कहा था, "प्रभु! भैयाको सुमति दो, इन पर कृपा करो।" श्रीश्रीजगन्नाथजीने शिखि माहितिको दिखलाया कि वे जो वस्तु हैं, श्रीगौराङ्ग भी वही वस्तु हैं। शिखि माहितिको मति भ्रम हो गया था, मुरारि और माधवीकी कातर प्रार्थना भक्तवत्सल प्रभुने सुनी। उनके अग्रजको दिखला दिया कि अचल जगन्नाथ सचल होकर नीलाचलमें रहते हैं, और उनको आत्मसात् कर लिया।

शिखि माहिति अब सारा जगत् गौरमय देखने लगे। श्रीगौराङ्गके सिवा उनको और कुछ नहीं दीखता, गौर-कथाके सिवा वे और कुछ नहीं सुनना चाहते, गौर-नामके सिवा वे और कोई जप नहीं करते। प्रभुकी कृपासे वे ब्रजके गूढ़ रसके आस्वादनके अधिकारी बन गये हैं। कविराज गोस्वामीने लिखा है कि व्रजके निगूढ़ रसके

आस्वादनके अधिकारी जगत्में साढ़े तीन आदमी थे। स्वरूप दामोदर गोसाईं, राय रामानन्द, शिखि माहिति और माधवी दासी। माधवीको स्त्रीजन होनेके कारण आधा गिना है।

अब शिखि माहिति सर्वत्यागी होकर श्रीगौराङ्ग भजन करने लगे। श्रीगौराङ्ग सेवा उनका नित्य-नैमित्तिक कार्य हो गया, अन्तिम जीवनका एकमात्र व्रत हो गया। यथा—

तत्प्रभृत्ययममुष्य पदाब्ज-
द्वन्द्वगन्धलबविस्मृत सर्वः।
सर्वदैव निजदैवतमैनं
सेवते प्रतिदिनं गुरुभाग्यः॥

चै. च. महा. १३. १०६

प्रभु इस प्रकार श्रीनीलाचलमें लीलारङ्ग करते थे, और भक्तगण उनका लीलामधु पान करके परितृप्त हो जाते थे। श्रीगौरभगवान् गुप्तरूपसे ऐश्वर्य प्रदर्शन करते थे, बाहरसे उनका अपूर्व भक्तभाव था। वे नित्य तीन वार श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करते थे, सैकड़ों बार श्रीमन्दिरकी प्रदक्षिणा करते थे, और तीन सौ भगवत्स्तोत्र पाठ करते थे। दिन रात कीर्तन करते रहते थे। सारी रात जपमें मग्न रहते थे। दूर-देशोंसे बहुत-से लोग आकर उनका चरण दर्शन करते थे। वे उनको हरिनाम महामन्त्रका उपदेश करते थे।

एक ब्राह्मण द्वारा महाप्रभुके निकट श्रीनित्यानन्दकी शिकायत

श्रीनित्यानन्द प्रभु गौड़ देशमें जाकर—

अकैतव रूपे सर्व जगतेर प्रति।
लओयायेन श्रीकृष्णचैतन्य रति मति॥

चै. भा. अं. ७.४

उनकी वेषभूषा, उनकी भावभक्ति, उनका आचार-व्यवहार और विलास-विभ्रम देखकर बहिरङ्ग लोग नाना प्रकारकी बातें करते। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुके अपूर्व लीलारङ्गको देखकर नवद्वीपके एक ब्राह्मणके मनमें हुआ कि संन्यासीका तो यह धर्म नहीं है। श्रीनित्यानन्द यह सब क्या करते हैं? उसके मनमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रति कुछ अविश्वास उत्पन्न हुआ। वह ब्राह्मण प्रभुका सहपाठी था, श्रीगौराङ्ग-चरणमें उसकी दृढ़ भक्ति थी, परन्तु वह श्रीनित्यानन्द तत्त्वसे अवगत न था। वह प्रभुके श्रीचरणके दर्शनकी अभिलाषासे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र चला। यथा समय नीलाचल पहुँचकर प्रभुके चरणोंका दर्शन किया। उसके मनमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके सम्बन्धमें जो कुतर्क उठा था उसे वह मनमें छिपाकर न रख सका। वह प्रतिदिन प्रभुका दर्शन करने जाता था। वह परम पण्डित और गौरभक्त था। दैवयोगसे एक दिन प्रभुको एकान्तमें पाकर उस ब्राह्मणने अपने मनकी बात हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—प्रभु! यदि आप सुनें, तो मैं आपके चरणोंमें एक निवेदन करना चाहता हूँ। निवेदन यह है कि श्रीनित्यानन्द नवद्वीपमें जो लीला करते हैं, वह कुछ समझमें नहीं आती। संन्यासी होकर भी वे कर्पूर-ताम्बूल खाते हैं, स्वर्ण, रजत और मुक्ताके अलङ्कार धारण करते हैं, गेरुवा वस्त्र, कोपीन आदिकी जगह रेशमी वस्त्र चन्दनकी माला आदि विलासी सामग्री धारण करते हैं, संन्यास दण्डकी जगह लोहेका दण्ड रखते हैं, शूद्रोंके घरोंमें रहते हैं। इससे मेरे मनमें अनेक शंकाएँ होती हैं। अतः आप मुझे अपना दास जानकर, इसका निवारण कीजिये।

शुभ क्षणमें उस सुकृतिमान विप्रने श्रीगौर भगवान्से यह प्रश्न किया था। यदि साहस करके वह यह प्रश्न प्रभुसे न करते तो वैष्णव जगत्में श्रीनित्यानन्द तत्त्व अपूर्ण रह जाता। प्रभुने उस विप्रके प्रश्नके उत्तरमें जो अपने श्रीमुखसे उपदेश दिया है, तथा तत्त्वकी बात कही है, वह गौड़ीय वैष्णवके लिए वेदवाणीसे भी बढ़कर है। विप्रका प्रश्न सुनकर प्रभु पहले तो मुस्कराये। प्रभुके

मुस्करानेका मर्म यह था कि अबोध विप्र श्रीनित्यानन्द तत्त्वको नहीं जानता, इसे समझाना पड़ेगा।" यह सोचकर श्रीगौर भगवान्‌ने कहा—"हे विप्र! जो महा-अधिकारी होते हैं, उनको गुण-दोष कुछ भी नहीं लगता।"

यह कहकर श्रीमद्‌भागवतके निम्नलिखित श्लोकका पाठ किया।

न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः।
साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम्॥

श्रीम. भा. ११.२०.३६

अर्थ—भगवान्‌ने कहा कि जो रागादि दोषोंसे रहित हैं, जो सर्वभूतोंमें समदर्शी भाव रखते हैं। अतएव जो प्रकृतिमें अतीत परमेश्वरको प्राप्त हैं, मेरे उन एकान्त भक्तोंको विधि-निषेध जनित पाप-पुण्यके साथ कोई सम्पर्क नहीं होता।

प्रभु पुनः कहने लगे—"जिस प्रकार पद्म-पत्रके ऊपर जल नहीं लगता, इसी प्रकार नित्यानन्दके निर्मल स्वरूपको विधि-निषेध जनित पाप-पुण्यका कोई स्पर्श नहीं होता। हे विप्र! तुम निश्चय समझ लो, कि परमार्थ तत्त्वमें श्रीकृष्ण उनके शरीरमें सदा विहार करते हैं। अधिकारीके बिना कोई उनके जैसा आचरण करेगा तो निश्चय ही वह पाप-तापका भागी होगा। रुद्रके अतिरिक्त और कोई यदि विषपान करेगा तो वह निश्चय ही मृत्युको प्राप्त होगा। कोई महा अधिकारी यदि गर्हित कर्म करता दिखायी दे, तो उसकी तरफ हंसनेवाला भी नाश हो जाता है, निन्दा करनेकी बात तो दूर रही।"

इतना कहकर प्रभुने ब्रह्माके छ पुत्रोंकी पुराणोक्त कहानी वर्णन की। किसी समय ब्रह्मा कामान्ध होकर अपनी पुत्रीके प्रति आर्काषित हुए, यह देखकर प्रजापति, मरीच उनके छ पुत्र उनके ऊपर हँस पड़े। इस पापसे वे लोग असुर योनिको प्राप्त हुए। असुर योनिको प्राप्त होकर गर्भवासकी यन्त्रणा भोग करके तथा देवगणके द्वारा विनाशको प्राप्त होकर योगमायाकी कृपासे उन्होंने देवकीके गर्भमें प्रवेश किया। वहाँ भी वे कंसके द्वारा मारे गये। उसके बाद राजा बलिके घर उनका जन्म हुआ। जब श्रीकृष्ण भगवान्‌को उनकी माताने उन छ पुत्रोंको लानेका अनुरोध किया, तब श्रीकृष्णने राजा बलिके पूछने पर इस कथाका रहस्योद्‌घाटन किया था। श्रीकृष्णके भुक्तावशेष देवकीके स्तनके दूधको पीकर शापग्रस्त ब्रह्माके वे छ पुत्र शापमुक्त हुए। उन्होंने पितृ निन्दा नहीं की थी, केवल पिताके गर्हित आचरणको देखकर हँसे थे।

इस पौराणिक कहानीको कहकर प्रभु बोले—"ऐसे सिद्ध व्यक्तियोंको ऐसी यातना भोगनी पड़ी, साधारण असिद्ध व्यक्ति इस प्रकार वैष्णवके प्रति हँसे या उनकी निन्दा करें तो उनको भी जन्म-जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है।"

तब विप्रको विषम आत्मग्लानि उपस्थित हुई। वह सोचने लगा कि श्रीनित्यानन्द प्रभुकी निन्दा करके वह महापाप-ग्रस्त हो गया है। वह सिर नीचा करके प्रभुके श्रीमुखकी उपदेश वाणी सुन रहा था, और अजस्र आँसू बहा रहा था। सर्वज्ञ प्रभु विप्रके मनके भावको समझकर फिर बोले—"हे प्रिय! नित्यानन्दके प्रति द्विविधा सर्वथा छोड़ दो। नित्यानन्दका स्वरूप परम अधिकारी हैं। उनमें कोई अलोकिक चेष्टा भी देखनेमें आवे, तो भ[illegible] उनका आदर करना चाहिये। पतितोंके उद्धा[illegible] लिए ही उनका अवतार हुआ है। उनके आच[illegible] विधि–निषेधके परे हैं। उनके प्रति कुभाव हो[illegible] भक्तिमें बाधा पड़ती है। मैं तो श्रीनित्यानन्दके [illegible] यहाँ तक कहता हूँ कि—

गृहणीयाद् यवनीपाणि विशेद्वा शौण्डिकालयम्।
तथापि ब्रह्मणो वन्द्यं नित्यानन्दपदाम्बुजम्॥

चै. भा. अं. ७.६; ८.१

अर्थात्—यदि श्रीनित्यानन्द यवनीका कर भी ग्रहण करें, अथवा मद्य-विक्रेताके घरमें प्रवेश करें,

तो भी नित्यानन्दके चरणकमल ब्रह्माके लिए भी वन्दनीय हैं।"

विप्र तब रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें जा गिरा। दोनों हाथोंसे प्रभुके चरणोंको धारण करके मर्म-पीड़ित स्वरमें कातर कण्ठसे बोला—हे प्रभु! मैं नित्यानन्दके चरणोंमें अपराधी हूँ, अब मेरा कोई निस्तार नहीं है।" इतना कहकर आत्मग्लानिके विषसे जर्जर होकर विप्र प्रभुका चरण पकड़कर व्याकुल होकर रोने लगा। दयामय प्रभु तब उनको श्रीहस्त द्वारा उठाकर स्नेह पूर्वक बोले—"विप्र! तुम्हें कोई भय नहीं है। तुमने निष्कपट भावसे अपने मनके भाव मेरे सामने व्यक्त किया है। मैंने भी निष्कपट भावसे तुम्हें श्रीनित्यानन्द तत्त्व कहा है। तुम अब जाओ, नवद्वीपमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करो। वे दयाके सागर हैं किसीका अपराध ग्रहण करना जानते ही नहीं। वे तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे।" विप्रने तब कुछ आश्वस्त होकर प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके उसी दिन नीलाचलसे नवद्वीपकी यात्रा की। नवद्वीपमें आकर सर्वप्रथम वह श्रीनित्यानन्द प्रभुके निकट गया। उनके चरण-कमलमें गिरकर निष्कपट भावसे सारी बातें निवेदन की। क्रोधविहीन, परमानन्द श्रीनित्यानन्द प्रभुने इस भाग्यवान् विप्रको अपना दास बना लिया।

उस विप्रने प्रभुके श्रीमुखके उपदेश तथा श्रीनित्यानन्दकी महिमा नदियाके सारे लोगोंसे कही। तभीसे वह श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंका दास बन गया। और उनके सङ्ग लग गया।

वृन्दावन-यात्रामें बाधा

श्रीगौराङ्ग प्रभुकी अब श्रीनीलाचलसे श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छा हुई। उन्होंने अपने मनकी बात भक्तोंसे कही। राजा प्रतापरुद्रने भी इसे सुना। जिससे प्रभुका श्रीवृन्दावन जाना न हो, इसके लिए वे विधिपूर्वक चेष्टा करने लगे। क्योंकि राजा प्रतापरुद्र प्रभुको देखे बिना एक दण्ड भी नीलाचलमें नहीं रह सकते। श्रीगौराङ्ग-भजनमें वे सिद्ध हो गये हैं, गौराङ्ग-विरह उनके लिए असह्य हो जायगा। राजा प्रतापरुद्रने निरुपाय होकर सार्वभौम भट्टाचार्य और राय रामानन्दको पकड़ा। इन दोनोंकी बात प्रभु मानते हैं, राजा प्रतापरुद्र यह जानते थे। दोनों आदमीका हाथ पकड़कर राजाने विनयपूर्वक कहा—

नीलाद्रि छाड़ि प्रभुर मन अन्यत्र जाइते।
तोमरा करिह यत्न ताँहारे राखिते॥
ताँहा बिना एइ राज्य मोरे नाहि भाय।
गोसाञि राखिते करिह अनेक उपाय॥

चै. च. म. १६.४,५

राजाको सान्त्वना वाक्यसे सन्तुष्ट करके दोनों आदमी प्रभुके पास गये। प्रभुने स्वयं उन लोगोंसे वृन्दावन जानेके लिए परामर्श किया। दोनोंने ही उस समय तीर्थयात्रा करनेकी राय नहीं दी। यह वैशाख मासकी बात है। उन्होंने प्रभुसे कहा कि रथयात्रा दर्शन करके कार्तिक मासमें श्रीवृन्दावनकी यात्रा करना ठीक होता है। भक्तवत्सल प्रभु कोई बात न कर सके। भक्तबाञ्छा कल्पतरु प्रभु भक्तकी बात टाल न सके। कार्तिक मास आया, प्रभुने श्रीवृन्दावन यात्राकी बात फिर चलायी। तब उन्होंने कहा कि इस समय भयानक शीत पड़ रही है, होलीके बाद जाना ठीक होगा। इस प्रकार अनेकों उपाय ढूँढ़कर उन्होंने प्रभुको नीलाचलमें रक्खा। राजा प्रतापरुद्र इससे बहुत सन्तुष्ट हुए। नीलाचलके भक्तोंने प्रभुको नहीं छोड़ा। भक्तवत्सल प्रभुने भक्तकी मनोकामना पूर्ण की।

यद्यपि स्वतन्त्र प्रभु—नहे निवारण।
भक्त इच्छा बिना तबू ना करे गमन॥

चै. च. म. १६. १०

प्रभुकी श्रीवृन्दावन यात्रा उस वर्ष स्थगित रही।

—※—

अठारहवाँ-अध्याय

नदियाके भक्तोंका नीलाचलमें पुनरागमन

श्रीरथयात्रार आसि हइल समय ।
नीलाचले भक्तगोष्ठीर हैल विजय ॥
चै. भा. अं० ९.२

नदियाके भक्तोंकी नीलाचलको द्वितीय यात्रा

नदियाके भक्तोंको प्रभुका आदेश था कि प्रति वर्ष सभी रथ-यात्रा दर्शन करने आया करें। इस आदेशका पालन करके नदियाके सब भक्तगण प्रति वर्ष प्रभुका दर्शन करने नीलाचल आते थे।

उन दिनों पैदल ही तीर्थ भ्रमण करना पड़ता था। बहुत दिन लग जाते थे, बहुत कष्ट होता था। जीवनमें एकबार कोई तीर्थयात्रा कर पाता था या नहीं, वह सन्देहास्पद है।

नदियाके भक्तवृन्द प्राय: सभी गृहस्थ थे। उनका अपना गृह-परिवार था, काम-धन्धा था। परन्तु उससे क्या? प्रभुका आदेश है तो प्रति वर्ष रथयात्राके समय जायेंगे ही, इससे उनके चरणोंके दर्शनका सौभाग्य भी होगा। सैकड़ों असुविधाओंके होने पर भी, बहुत परिश्रम करके, यहाँ तक कि प्राण भी चला जाय, तो भी यह करना ही है। यही नदियाके भक्तवृन्दके मनका सङ्कल्प था।

नवद्वीपसे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र एक मासका रास्ता था। रास्तेकी विपद् उस समय पूर्णत: दूर नहीं हुई थी। परन्तु राजा प्रतापरुद्रकी कृपासे विपद बहुत कुछ कम हो गयी थी।

नदियाके भक्तगण होलीके बाद प्रभुका जन्मोत्सव सम्पन्न करके रथयात्राके लिए श्रीक्षेत्र जानेके लिए प्रस्तुत हुए। पहली बार केवल पुरुषगण दो-एक स्त्रियोंको साथ लेकर प्रभुका दर्शन करने गये थे। इस बार वैष्णव गृहिणीगणने सुयोग न छोड़ा। वे भी चलनेकी तैयारी करने लगी। पुरुषोंने भी निषेध नहीं किया। श्रीगौराङ्ग-दर्शनके लिए जाना था, निषेध क्यों करते? रथयात्रा तो उपलक्ष मात्र था।

स्त्री-पुरुष सब मिलकर नदियाके प्राय: चार पाँच सौ आदमी इस बार श्रीक्षेत्र जानेके लिए तैयार हुए। शुभ दिन स्थिर करके सब आकर प्रभुके आङ्गनमें उपस्थित हुए। सबने श्रीगौराङ्ग-जननीकी पदधूलि लेकर उनसे आज्ञा प्राप्त की।

शची माताने रोते-रोते सबसे कहा—"तुम सब लोग मेरे निमाईचाँदको इस बार साथ ही ले आना। सोनेके बाटेका चाँद मुख मैंने बहुत दिन हुए नहीं देखा। निमाईसे कहना कि अपनी दु:खिनी माताको एक बार मुँह दिखा दे। मैं उससे और कुछ नहीं चाहती।" शची माताकी कातरोक्ति सुनकर सब रोती हुई व्याकुल हो उठी।

श्रीमती विष्णुप्रिया देवी आड़में खड़ी होकर सब कुछ देख रही थी, सब कुछ सुन रही थी। नयनजलसे उनका वक्ष:स्थल डूबा जा रहा था। उनकी सखी काञ्चनमाला भी इस बार मालि[illegible] देवीके साथ नीलाचल जा रही थी। रोते-[illegible] गौरवक्ष विलासिनी श्रीविष्णुप्रियादेवी उससे अ[illegible] मनका दु:ख कह रही थी।* वैष्णव गृहिणी[illegible] देवीके श्रीवदनकी ओर अधिक देख न सकी।

---

* जिनको बंग भाषा पढ़ने और समझनेका अभ्यास है, उन्हें ग्रन्थकार द्वारा रचित 'श्रीश्रीविष्णुप्रियामङ्गल' पढ़ना चाहिये। प्राप्ति स्थान—श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गकुञ्ज, बुड़ाशिवतला, श्रीधाम नवद्वीप। पत्र व्यवहार बंगलामें करना चाहिये।

प्रभुके लिए सबने नाना प्रकारकी भोजनकी सामग्री ले ली। नदियाके भक्तवृन्द जानते थे कि किस वस्तुमें उनकी प्रीति अधिक है। उसी वस्तुको उन्होंने यत्न पूर्वक तैयार करके साथ ले लिया। शची-विष्णुप्रियाकी दी हुई भोज्य वस्तु मालिनी और सर्वजया देवीने अपने साथ ले ली। सर्वजया देवी शचीमाताकी बहिन थी, वे श्रीपाद चन्द्रशेखर आचार्यकी गृहिणी थीं।

शान्तिपुरसे श्रीअद्वैत प्रभु सस्त्रीक शचीमातासे अनुमति प्राप्त करनेके लिए नवद्वीप आये। सीता ठकुरानीको देखकर शचीमाता रोती-रोती व्याकुल हो उठी। दोनों एक दूसरेका गला पकड़कर बहुत देर तक उच्च स्वरसे रोती रही। सीता ठकुरानी श्रीमती विष्णुप्रियादेवीको वक्ष-स्थलमें धारण करके रो-रोकर व्याकुल हो उठीं। उनके नयनजलसे शचीका आङ्गन भीग गया। विदाईके समय शचीमाताने सीता ठकुरानीके दोनों हाथ पकड़कर रोते-रोते कहा, "दीदी! जब तुम जा रही हो तो मेरा ही जाना हो रहा है। मैं निमाईकी माता व्यर्थ हूँ, उसकी माता तुम्हीं हो। इस बार मेरे वाछाको साथ लेती आना। मैं उसे एकबार देखूँगी, उसको देखे बिना मैं मर भी नहीं पा रही हूँ।" सीता ठकुरानीका कण्ठ रुँध गया। वे इस बातका उत्तर न दे सकीं। श्रीअद्वैत प्रभु दूरसे ही श्रीगौराङ्ग [मन्]दिरमें साष्टाङ्ग प्रणाम करके विदा हुए। उन्होंने [अन्]त:पुरमें प्रवेश नहीं किया।

नदियाके प्रायः सभी भक्तगण इसबार सपत्नीक [नील]ाचल चले।

से वत्सर प्रभु देखिते सब ठकुराणी।
चलिला आचार्य संगे अच्युत जननी॥
श्रीवास पण्डित संगे चलिला मालिनी।
शिवानन्द संगे चले ताँहार गृहिणी॥
शिवानन्देर बालक—नाम चैतन्यदास।
तेँहो चलियाछे प्रभु देखिते उल्लास॥
आचार्यरत्न संगे ताँहार गृहिणी।
ताँहार प्रेमेर कथा कहिते ना जानि॥
सब ठकुरानी महाप्रभुके भिक्षा दिते।
प्रभुर प्रिय नाना द्रव्य निल घर हैते॥

चै. च. म. १६. २०-२४

आईका दर्शन करने दामोदर पण्डित आये थे, वे भी चले। शिवानन्द सेनकी भक्तिमती स्त्री बालक पुत्र चैतन्यदासको साथ लेकर चलीं। कुलीन ग्रामवासी भक्तगण श्रीजगन्नाथजीकी पट्टडोरी लेकर साथ-साथ चले। उनमें प्रधान थे सत्यराज खान, और रामानन्द वसु। राघव पण्डित अपनी भक्तिमती विधवा बहिन दमयन्तीको लेकर प्रभुके लिए झाली सजाकर चले।

श्रीनित्यानन्द प्रभु इसबार भी निजजनको साथ लेकर प्रभुके दर्शनके लिए चले। प्रभुकी मनाही होने पर भी वे रुक न सके।

इन लोगोंको नीलाचल ले जानेका भार प्रभुने शिवानन्द सेनके ऊपर दिया था। शिवानन्द सेन बड़े आदमी थे। वे गौराङ्गके सिवा और कुछ नहीं जानते थे। रास्तेमें वे ही सबके ठहरने और आहार आदिकी सुव्यवस्था बड़ी तत्परतासे करते थे; जिसमे किसीको किसी प्रकारका कष्ट न हो क्योंकि यही प्रभुका आदेश था। सबकी सुख-सुविधाकी मीमांसा उन्हींके पास होती थी। जिनकी आवश्यकता पूरी नहीं होती थी, वे शिवानन्दके ऊपर बिगड़ जाते थे। शिवानन्द उनका हाथ पकड़कर उन्हें शान्त करते थे। इस प्रकार परम आनन्दपूर्वक वे सभी रास्ते पर चले जा रहे थे।

घाट पार करनेमें विपत्ति

श्रीनीलाचलके समीप रेमुनाके पास आते ही रास्तेमें भक्तवृन्दके ऊपर एक विपत्ति आयी। वहाँका घाट-पाल बड़ा ही दुष्ट आदमी था। पथिकोंसे घाटका कर वसूल करनेके लिए वह

राजाके द्वारा नियुक्त था। पहल वह राजा प्रतापरुद्रका अमात्य रह चुका था। यवन राज्यके साथ युद्धके समय राजाने उसके ऊपर घाटकी रक्षाका भार दिया था। यह दायित्वपूर्ण कार्य पाकर वह लोगोंके ऊपर बड़ा अत्याचार करता था। नदियाके भक्त संख्यामें पाँच सौ से भी अधिक थे। वह दुष्ट घाटवाला प्रत्येक यात्रीसे निर्धारित करकी अपेक्षा एक रुपया अधिक कर माँगता था। भक्तोंके प्रतिनिधि और प्रतिपालक शिवानन्द सेनने आकर घाटवालेके साथ बहुत तर्क-वितर्क किया। वे लोग कोई नये नीलाचलमें नहीं जा रहे हैं। राजा प्रतापरुद्र उनको जानते हैं। वे लोग श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके दास-दासी हैं। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जो हैं, श्रीनीलाचलचन्द्र भी वही हैं। राजा प्रतापरुद्रके द्वारा नियुक्त होकर यदि घाटपाल उन लोगोंके ऊपर इस प्रकार अत्याचार करता है तो इसे सुनकर राजा उसको दण्डित करेगा। घाटपालने शिवानन्द सेनकी बात सुनकर क्रोधोन्मत्त होकर उनको कारागारमें काष्ठ निर्मित हथकड़ी-बेड़ी डालकर बन्दकर दिया। भक्तवृन्द स्नान-आह्निक, पूजा, आहार आदि छोड़कर दुःख सागरमें डूब गये। विपद्में पड़कर शिवानन्द सेनने श्रीगौराङ्ग चरणोंका स्मरण किया। अब उनके मनमें कोई दुःख न रहा। वे कारागारमें रहकर परम आनन्द-पूर्वक श्रीगौराङ्ग चरणका ध्यान करने लगे।

भक्तवृन्द तथा उनके परिवारवर्गके मनमें दारुण चिन्ता हुई। शिवानन्दकी गृहिणी बहुत कातर हो उठी। सब मिलकर भक्त दुःखहारी श्रीगौर भगवान्‌का नाम कीर्तन करने लगे।

घाटपाल बड़ा आदमी था उसके आधीन बहुतसे आदमी थे। शिवानन्द सेनको कारागारमें बन्दकर वह घर चला गया। रातके समय उसके आदमी आकर शिवानन्दको पुकारकर बोले, "चलो घाटपालके पास चलो, तुम्हारी पुकार हुई है।" शिवानन्द सेनने सोचा कि जान पड़ता है अब मार खानी पड़ेगी। क्या करते गौराङ्ग चरणोंका स्मरण करके डरते-डरते प्रहरीके साथ चले। घाटपालके पास जाने पर शिवानन्द सेनको क्रुद्ध नेत्रोंसे देखकर उसने पूछा, "तुम लोग बहुत आदमी हो। तुम्हारे ऊपर पहलेका और इस बारका बहुत कर पावना है। परन्तु एक बात ठीक-ठीक बोलो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। तुम लोग कहते हो कि तुम्हारे प्रभु श्रीगौराङ्ग साक्षात् भगवान् हैं। अब बतलाओ कि वे बड़े हैं या श्रीजगन्नाथजी बड़े हैं।" एक निष्ठ शिवानन्दसेनने बिना कुछ बिचारे अम्लान वदनसे तत्काल उत्तर दिया—"श्रीगौराङ्ग बड़े हैं।" घाटपालने आँखें लाल करके उनकी ओर देखा, और प्रहरीसे बोला, "इसको फिर कारागारमें डाल दो। कल इसको दण्ड दूँगा।" शिवानन्द सेन हथकड़ी बेड़ीमें पुनः कारागारमें डाल दिये गये।

शिवानन्द सेन श्रीगौराङ्गके उपासक थे, उनकी गौराङ्गैकनिष्ठता चिर प्रसिद्ध थी। वे श्रीगौराङ्ग तत्त्व जानते थे। अचल जगन्नाथकी अपेक्षा सचल जगन्नाथ बड़े हैं, यह उनको ज्ञान हो गया था। वे यदि जगन्नाथ सेवक होते तो कहते कि 'जगन्नाथ बड़े हैं।' परन्तु वे थे श्रीगौराङ्ग—उपासक। इष्टमें एक निष्ठता ही साधनामें सिद्धि प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। शिवानन्दके लिए सारा संसार एक ओर था, और श्रीगौराङ्ग एक ओर थे। उनके प्राण, मान, धन, परिजन—सबके ऊपर श्रीगौराङ्ग थे। तुच्छ घाटपालके हाथसे त्राण पानेके लिए वे अपने इष्टको छोटा न बना सके। इससे शिवानन्द सेनक[illegible] गौरांगैकनिष्ठताका यथार्थ परिचय मिलता है। इ[illegible] महापुरुषके उपयुक्त पुत्र कवि कर्णपूर गोस्वामी श्रीगौराङ्गलीला ग्रन्थकी रचना करवे गौरभक्तवृन्दको चिरऋणमें आबद्ध कर रक्खा है।

उसी रात घाटपालने स्वप्न देखा कि प्रभु नृसिंह रूप धारण करके उसकी छाती पर बैठकर व्रजगम्भीर स्वरमें कह रहे हैं, 'मेरे भक्तवृन्दको अभी छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारा कलेजा चीर दूँगा।"

घाटपाल महाभयसे भयभीत होकर जाग उठा और उसने आज्ञा दी, "वे लोग अभी छोड़ दिये जाँय।" उसी रातको शिवानन्द सेन कारागार-मुक्त हो गये। प्रातःकाल घाटपालने जाकर उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना की। उनके साथ दो दीपधारी लगा दिये। वे सबको रास्ता दिखलाते हुए ले चले।

श्रीअद्वैत प्रभु आदि सभी शिवानन्दको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए, और तब स्नान-आह्निक आदि करने लगे।

शिवानन्द सेनकी प्रेमभक्ति अतुलनीय थी। वे प्रभुके एकान्त अन्तरङ्ग भक्त थे। उनके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात। उस महापुरुषका पवित्र नाम स्मरण करनेसे हृदयमें गौर-भक्ति उच्छ्वसित होती है।

क्षीरचोरा गोपीनाथ और साक्षी-गोपालके दर्शन करते हुए श्रीक्षेत्र पहुँचना

नदियाके भक्तवृन्द रेमुना जा पहुँचे, वे लोग रास्ते भर कीर्तन करते हुए जा रहे थे। उनके साथ कीर्तनका दल था, मृदङ्ग करताल थे। हरिनाम सुधा वर्षण करके सब लोगोंके प्राणको शीतल करते हुए प्रभु दर्शनके लिए नीलाचल जा रहे थे। वे लोग जहाँ एक रात रहते थे, वहाँके रहनेवाले लोग वैकुण्ठके सुखका अनुभव करते थे। उस स्थानके सब लोग वैष्णव हो जाते थे।

[illegible] इस प्रकार रेमुनामें आकर उन लोगोंने [illegible]ीगोपीनाथका दर्शन किया, श्रीअद्वैत प्रभु प्रेमानन्दमें [illegible]ोमन्दिरमें नृत्यकीर्तन करने लगे। प्रेमावेशमें [illegible]न्मत्त होकर भक्तवृन्दने कीर्तनमें योगदान किया। रेमुनामें प्रेमानन्दका तरङ्ग उठा। श्रीनित्यानन्द प्रभुके उद्दण्ड नृत्यसे पृथ्वी डगमगाने लगी। श्रीगोपीनाथके भक्तोंने नदियाके भक्तोंका खूब सम्मान किया और उनको क्षीर प्रसाद प्रदान किया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उसे सबको बाँट दिया। श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीकी कथा, श्रीगोपाल मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा, गोपीनाथकी क्षीरचोरी जो श्रीनिताईचाँदने प्रभुके मुखसे पहले सुना था वह सबको सुनाया। भक्तवृन्द सुनकर आनन्दसे तन्मय हो गये। उस दिन रेमुनामें महा महोत्सव हुआ। दूसरे दिन उन्होंने कटककी यात्रा की। कटकमें आकर साक्षीगोपालका दर्शन करके सबने आनन्दसे नृत्य कीर्तन किया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने यहाँ भी साक्षीगोपालकी वह अपूर्व कथा सबको सुनायी।

अब प्रभुके दर्शनके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित होकर भक्तवृन्द जल्दी-जल्दी नीलाचलकी ओर चले। तत्पश्चात् जब आठारनालाके पास पहुँचे तो श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने उनके आगमनका समाचार पाकर सबसे पहले गोविन्दको दो प्रसादी पुष्पमाला देकर भेजा। गोविन्द प्रभुके एकान्त चरण-सेवक थे। वहाँ पहुंचकर आगे जाकर उन्होंने प्रभुकी दी हुई दोनों मालाएँ श्रीअद्वैत और श्रीनित्यानन्द प्रभुके गलेमें पहनाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रभुकी दी हुई माल्य प्रसादी पाकर वे प्रेमानन्दमें अधीर होकर कीर्तन करने लगे। महासङ्कीर्तन ध्वनिसे आठारनाला गूँज उठा।

प्रभुने पुनः द्वारका स्वरूप गोसाईं आदि निजगणको नदियाके भक्तवृन्दकी अभ्यर्थना करनेके लिए भेजा उन लोगोंने भी जाकर रास्तेमें सबको माल्यचन्दनसे भूषित किया। नरेन्द्र सरोवरके किनारे वे नदियाके भक्तोंसे मिले। उस दिन नरेन्द्र सरोवरमें श्रीश्रीजगन्नाथजीकी नौकाविहारलीला हो रही थी।

प्रभु अपने नीलाचलवासी अनेक भक्तोंके साथ नरेन्द्र सरोवरके किनारे उपस्थित हुए। प्रभुका कनककान्ति कलेवर चन्दनसे चर्चित था, गलेमें सुगन्धित पुष्पोंकी माला झूल रही थी। ललाटमें उज्ज्वल तिलक शोभायमान था, लाल वस्त्र पहने थे। आजानुलम्बित सुवलित वाहुयुगल ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे हरिध्वनि करते हुए वे अपने नदियाके भक्तवृन्दके सामने आये। दूरसे ही प्रभुकी

न्यग्रोधमण्डल–दीर्घाकृति श्रीमूर्त्ति देखकर नदियाके भक्तोंने उनको पहचान लिया। प्रेमानन्दमें विह्वल होकर वे दूरसे ही दण्डवत् होकर भूतलपर गिरकर प्रभुके चरणोंमें साष्टाङ्ग नति-स्तुति करने लगे। नीलाचलकी भक्तगोष्ठी तथा नदियाकी भक्तगोष्ठीमें परस्पर देखा–देखी और मिला–मिली हुई। दोनों गोष्ठीके मुँहसे निकले उच्च हरिध्वनिसे नीलाचल गगन प्रकम्पित हो उठा। हरिध्वनि और जयध्वनिके सिवा और कुछ नहीं सुनायी पड़ रहा था।

दूरसे सबसे पहले शान्तिपुरनाथ श्रीअद्वैत प्रभुको देखकर प्रभु प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठे। उनके नयनद्वयसे शतधारामें प्रेमाश्रु वर्षण होने लगा। उन्होंने भी दूरसे दण्डवत् नमस्कार किया। उधर श्रीअद्वैत प्रभु श्रीगौर भगवान्‌का दर्शन करके दूरसे वारम्वार भूमि विलुण्ठित होकर दण्डवत् कर रहे थे। कोई आगे नहीं बढ़ पा रहा था। केवल अश्रुपात, और वारम्वार दण्डवत् प्रणाम तथा उच्च हरिध्वनिके सिवा और कुछ देखा या सुना नहीं जा रहा था। कोई प्रेमावेगमें रास्तेमें ही मूर्च्छित होंकर गिर रहा था, कोई पुलकित होकर थर-थर काँप रहा था।

जब दोनों गोष्ठीका शुभ मिलन हुआ, तब उच्च हरिध्वनि तथा आनन्द क्रन्दनके कोलाहलसे दिङ्‌मण्डल परिपूर्ण हो गया।

मनुष्ये कि पारे इहा करिते वर्णन।
सबे वेद व्यास आर सहस्र वदन॥

चै० भा० अं० ९.७२

श्रीअद्वैत प्रभु श्रीगौर भगवान्‌की पूजाकी सारी सामग्री लेकर आये थे। वे प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर पूजा न कर सके। पूजाकी सामग्री जहाँकी तहाँ पड़ी रह गयी। प्रभुने उनको क्रोड़में लेकर नयन-जलसे उनका अङ्गसिञ्चन किया। शान्तिपुरनाथ प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे आनन्द स्वरूप बन गये। कुछ देरके बाद दोनों ही कुछ सुस्थिर हुए। तब नीलाचलके भक्तोंने श्रीअद्वैत प्रभुको एक-एक करके दण्डवत् प्रणाम किया।

भक्तवत्सल प्रभुने तब एक-एक करके नदियाके भक्तवृन्दको वक्षःस्थलमें धारण करके प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। एक-एक करके सबके गलेमें सुवलित बाहुयुगल वेष्टन करके प्रेमानन्दमें अजस्र आँसू बहाने लगे।

राजाकी आज्ञासे उसी समय श्रीश्रीजगन्नाथजीका सहस्र-सहस्र माल्यप्रसाद लेकर प्रधान पण्डा तुलसी पड़िछा वहाँ आकर उपस्थित हुए। उनके हाथसे माल्य प्रसाद लेकर प्रभुने प्रेमानन्दमें अपने हाथसे सब भक्तोंको माल्यचन्दनसे विभूषित किया। सबसे पहले प्रभुने श्रीअद्वैत प्रभुको मनके साधसे सजाया। प्रभुकी यह कृपा देखकर सब हरिध्वनि करने लगे, तथा उनके चरणकमलमें गिरकर सबने वर प्रार्थना की। यथा—

सभेइ मागेन वर श्रीचरण धरि।
"जन्मे-जन्मे जेन प्रभु तोमा ना पासरि॥
कि मनुष्य पशु पक्षी घरे जन्मि यथा।
तोमार चरण जेन देखिये सर्वथा॥
एइ वर देह प्रभू करूणासागर।"
पादपद्म धरि कान्दे सर्व अनुचर॥

चै. भा. अं० ९. ९१-९३

सब वैष्णव गृहिणीगण दूसरे प्रभुको रक्तवस्त्र पहिने अपूर्व ज्योतिपूर्ण संन्यासवेष देखकर व्याकुल होकर रोने लगीं। उनमें-से बहुतोंने अभी तक प्रभुके संन्यास वेषको नहीं देखा था। नदिया-नाग[र] श्रीविष्णुप्रिया वल्लभ इस समय भिखारी संन्यासी वेषमें थे। उनका सिर मुंडा हुआ था। यह स[ब] उनको कैसे सह्य हो सकता था। वे सब प्रभुके संन्यास मूर्त्ति देखकर व्याकुल होकर रोने लगीं। वे सब वैष्णव गृहिणीगण वैष्णवी शक्तियाँ थी। उनके पतियोंकी अपेक्षा ज्ञान और भक्तियोगमें यह सब महावैष्णवीगण किसी अंशमें न्यून न थी। यह प्रभुके श्रीमुखका वचन है।

दश दण्ड बेला बीतने पर प्रभु नदियाके भक्तवृन्दको साथ लेकर आठारनालासे नरेन्द्र सरोवरके किनारे आये। श्रीनित्यानन्द प्रभुको पाकर प्रेमानन्दमें श्रीगौर भगवान्‌ने उनको कलेजेसे लगाकर जकड़ लिया। बहुत देर तक नरेन्द्र सरोवरके तटपर बैठकर दोनों आदमी एकाङ्गीभूत होकर अजस्र आँसू बहाने लगे। श्रीअद्वैत प्रभु आदि नदियाके भक्तगण श्रीगौर नित्यानन्द युगलविग्रहकी प्रदक्षिणा करके प्रेमानन्दमें नृत्यकीर्तन करने लगे। कुछ देरके बाद दोनोंको बाह्य ज्ञान हुआ। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उठकर धूलि-धूसरित अङ्गसे श्रीअद्वैत प्रभुको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध कर लिया। दोनों तब एकत्र होकर मत्तसिंहके समान उद्दण्ड नृत्य करने लगे।

नरेन्द्र सरोवरमें जल-विहार

नदियाके भक्तवृन्द अद्‌भुत कीर्तन कर रहे थे, नरेन्द्र सरोवरके तीरपर अगणित लोगोंकी भीड़ इकट्ठी थी। उस दिन श्रीश्रीजगन्नाथजी और वलरामजीकी जलविहार लीला थी। नानाविध वाद्यभाण्ड बज रहे थे, वारम्वार हरिध्वनि हो रही थी। बड़े समारोहके साथ विग्रहद्वयको नरेन्द्र सरोवरमें नूतन नोकापर आरोहण कराया गया। प्रभु 'जय जगन्नाथ' कहकर जलमें कूद गये। भक्तवृन्द भी उनके साथ-साथ जलमें उतरे। जगन्नाथ-गोष्ठी और गौराङ्ग गोष्ठी दोनोंमें तब जलकेलि आरम्भ हो गयी। नरेन्द्र सरोवरमें आनन्दकी तरङ्ग उठी।

पूर्वे यमुनाय जेन शिशुगण मेलि।
मण्डली हइया करिलेन जलकेलि॥
सेइरूप सकल वैष्णवगण मेलि।
परस्पर करे धरि हइला मण्डली॥
गौड़देशे जलकेलि आछे 'कया' नामे।
सेइ जलक्रीड़ा आरम्भिलेन प्रथमे॥
'कया-कया' बलि करतालि देन जले।
जले वाद्य बाजायेन वैष्णव मण्डले॥
गोकुलेर शिशुभाव हइल सभार।
प्रभूओ हइला गोकुलेन्द्र अवतार॥

चै. भा. अं. ९.११२-११६

श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र नौका पर जल विहार कर रहे थे, और श्रीश्रीनवद्वीचन्द्र भक्तगणके साथ सरोवर जलमें जलकेलि कर रहे थे। सचल जगन्नाथकी जलकेलिका रङ्ग अचल जगन्नाथ नौका पर बैठकर देख रहे थे, और मृदु-मृदु मुस्करा रहे थे। जाह्नवी और श्रीयमुनाका भाग्य आज नरेन्द्र सरोवरको प्राप्त है।

जलकेलि रङ्ग समाप्त करके प्रभुने वहिर्वास परिवर्तन किया। तीरपर प्रभुका वहिर्वास लेकर गोविन्द खड़े थे। प्रभुने सुन्दर तिलक लगाया। भक्तवृन्दने उनके श्रीअङ्गको पुनः चन्दन चर्चित किया, माल्यभूषणसे विभूषित किया। सब भक्तगण वस्त्र बदलकर तिलक लगाकर प्रभुके साथ श्रीश्रीजगन्नाथका दर्शन करने चले।

कीर्तनकारियोंने मृदङ्ग करतालको ध्वनित किया। सब भक्तगण प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर उच्च स्वरमें हरि-हरि ध्वनि करने लगे। सङ्कीर्तन-यज्ञेश्वर श्रीगौर भगवान्‌ने सङ्कीर्तन यज्ञके आगेके भागमें खड़े होकर, अपनी आजानुलम्बित बाहुयुगलको ऊपर उठाकर बारम्बार उच्च हरिध्वनिसे दिङ्‌मण्डलको पूर्ण कर दिया।

श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें

सब भक्तगणके साथ श्रीगौर भगवान् कीर्तन करते हुए श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके सिंहद्वारपर जा पहुँचे। 'जय जगन्नाथ' की ध्वनिसे गगनमण्डल पूर्ण हो गया। जगन्नाथजीके सेवकोंने सिंह द्वारसे भक्तवृन्दको पुनः माल्यचन्दन देकर शुभ आह्वान किया। श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें जब प्रभु भक्तगणके

साथ प्रविष्ट हुए, तब भक्तवृन्द अचल श्रीजगन्नाथजीकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके उनको प्रणाम करते हैं, और सचल जगन्नाथ प्रभुकी मधुर नटन-विलासपूर्ण आनन्दमयी मूर्त्तिका दर्शन करके उनको भी प्रणाम करते हैं।

काशीमिश्रने श्रीजगन्नाथजीके गलेकी माला प्रसाद रूपमें लाकर प्रभुके गलेमें पहना दी। प्रभु श्रीमस्तक अवनत करके माल्यप्रसाद ग्रहण करके प्रेमावेशमें मधुर नृत्य करने लगे। श्रीमन्दिरके प्रशस्त आङ्गनमें भयङ्कर भीड़ थी। सबकी दृष्टि प्रभुके मुखचन्द्रकी ओर थी। अचल जगन्नाथका दर्शन करके अब वे लोग सचल जगन्नाथके मधुर नयनरञ्जन भुवन-पावन परम-मङ्गल नृत्यविलासको देख रहे थे। भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें बेसुध हो गये। वे लोग प्रभुके चरणोंमें गिरकर भूतल पर लोटने और क्रन्दन करने लगे।

स्वरूप गोसाईंने प्रभुके कानोंमें कुछ कहा। तत्काल प्रभुने नृत्य बन्द कर दिया। उस समय तीसरे पहरकी बेला थी। भक्तवृन्द और प्रभुने तब तक जलस्पर्श तक नहीं किया था। यही बात स्वरूप दामोदरने प्रभुके कानोंमें कही।

तब भक्तवृन्दके साथ प्रभु अपने वासा पर आये। उसी समय वाणीनाथ और काशीमिश्रने राजा प्रतापरुद्रके आदेशसे प्रचुर परिमाणमें उत्तम-उत्तम प्रसाद लाकर प्रभुके वासा पर ढेर लगा दिया। प्रभु अपने हाथसे भक्तवृन्दको प्रसाद बाँटने लगे। प्रेमानन्दमें भक्तगणने इस भोजन महोत्सवमें योगदान किया। प्रभुने भी प्रसाद पाया। उनके अधरामृतके लिए भक्तवृन्दमें बड़ी धक्कमपेल मच गयी। उसका कण-कण लोगोंने लूट लिया। यह दृश्य देखनेका जिनको सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनके चरणोंमें कोटिशः प्रणाम।

पूर्व वर्षके समान प्रभुके आदेशसे नदियाके भक्तवृन्दके लिए यथा योग्य स्थान पर वासाका प्रबन्ध किया। उनके अपने-अपने वासे पर चले जानेके बाद प्रभुने विश्राम किया। राजा प्रतापरुद्रके आदेशसे नदियाके भक्तवृन्दके लिए सारा बन्दोवस्त करनेका गुरुतर भार लिया गोपीनाथ आचार्यने। जो लोग सपत्नीक आये थे, उनके लिए वासाका विशेष प्रबन्ध हुआ। दास-दासी, वस्तु आदिका कोई अभाव न रहा।

शिवानन्दसेनका पञ्चवर्षीय पुत्र

शिवानन्द सेन अपने पञ्चम वर्षीय पुत्रको साथ लेकर प्रभुके दर्शनके लिए आये थे। प्रभु जब अपने अन्तरङ्ग भक्तगणके साथ अपूर्व ज्योतिपूर्ण यतिराज वेषमें नरेन्द्र सरोवरके किनारे उदय हुए, और जब श्रीअद्वैत प्रभु आदि सब लोग उनके चरणोंमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे, तब शिवानन्दका बालक पुत्र चैतन्यदास माताकी गोदसे कूदकर पिताके पास आकर परम कौतूहल पूर्वक बोला—"बाबा ! प्रभु कौन हैं ? मुझको एकबार दिखा दो, मैं लोगोंकी भीड़में देख नहीं पा रहा हूँ।" शिवानन्द सेन पुत्रको स्नेह पूर्वक गोदमें लेकर बोले—

विद्युद्दामद्युतिरतिशयोत्कण्ठकण्ठीरवेन्द्रे—
क्रीडागामीकनकपरिघद्राघिमोद्दामबाहुः ।
सिंहग्रीवो नवदिनकरद्योत विद्योति वासाः
श्रीगौराङ्गः स्फुरित पुरतो वन्द्यतां वन्द्यतां भोः ॥

चै. च. नाटक १०.७

अर्थ—वत्स ! देख, देख, जिसके श्रीअङ्गकी शोभाने सौदामिनी समूहको गमनने मृगपतिको, तथा आजानुलम्बित बाहुयुगलने स्वर्ण दण्डको पराजित किया है, वे सिंहके समान ग्रीबा वाले श्रीश्रीगौरचन्द्र नवोदित दिनमणिके समान अरुण वसनमें अपूर्व शोभा पा रहे हैं, तुम उनको दण्डवत् प्रणाम करो, उनकी चरण वन्दना करो।

बालक चैतन्यदासने पिताके गोदसे कूदकर श्रीगौराङ्गके चरणोंमें सिर झुकाकर दण्डवत् प्रणाम किया। भक्तवत्सल प्रभुने बालकका हाथ पकड़कर

उठाया और अपने गोदमें लेकर प्यार किया, तथा शिवानन्दसे पूछा—"इसका नाम क्या है?" शिवानन्दने हाथ जोड़कर कहा,—"हे प्रभु! यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र है, आपका दासानुदास है। बड़े साधसे इसका नाम चैतन्यदास रक्खा हूँ। इस बालकके मस्तकपर श्रीचरणोंका स्पर्शकर आशीर्वाद दीजिये।" रङ्गीले प्रभुने मुस्कराकर कहा, "शिवानन्द! अपने पुत्रका तुमने क्या नाम रक्खा है, यह मैं समझ न सका।" शिवानन्दने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "हे प्रभु! अपने दासका नाम आपने ही रक्खा है, अब इस पर कृपा करो, जिससे बालक इस नामके योग्य बने।" प्रभुने मधुर मुस्कानके साथ बालकके मस्तक पर श्रीचरणका स्पर्श कर दिया। चैतन्यदास प्रेमानन्दमें पुलकित होकर हरिध्वनि करते हुए प्रभुके सामने नृत्य करने लगा। शिवानन्द आनन्दमें गद्‌गद होकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर प्रेमावेशमें मूर्च्छित हो गये।

रथ-यात्रा

रथयात्राका दिन आया। पूर्व वर्षके समान प्रभुने सब भक्तोंको साथ लेकर श्रीगुण्डिचा मन्दिरका मार्जन किया। रथके आगे उसी प्रकार सर्वचित्ताकर्षक नृत्य किया। इस बार कुलीन ग्रामवासियोंकी लायी हुई पट्टडोरीसे श्रीश्रीजगन्नाथजीका रथ खींचा गया। इसके लिए प्रभुने सत्यराज खान और रामानन्द वसुको अपने हाथसे माल्यचन्दनसे भूषित करके प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। पूर्व वर्षके समान प्रभुकी उद्यान लीला, नृत्यकीर्तन, उद्यान भोजन, होरा पञ्चमी-उत्सव-दर्शन आदि सब सम्पन्न हुए।

इस बार राढ़ देशसे एक श्रीनित्यानन्द प्रभुके परम भक्त रथयात्राके उपलक्षमें प्रभुके दर्शनके लिए नीलाचलमें आये थे। उनका नाम था कृष्णदास। उस महात्माने नीलाचलमें बैठकर घटपूर्ण जलसे सबके सामने कीर्तनसे प्रभुका अभिषेक किया। कृपानिधि प्रभुने कृष्णदासके प्रति कृपादृष्टि की, और उसको निजजन बना लिया।

(श्रीचै. च. महाकाव्य १८. ४३-४६)

राजा प्रतापरुद्रने इस वर्ष नदियाके भक्तवृन्द और उनके परिवार तथा आत्मीय स्वजनके स्नान-यात्रा-उत्सवके दर्शनकी सुविधाके लिए राजप्रसादका ऊपरी हिस्सा, जहाँसे रानियाँ उत्सव देखती थी, उनके लिए छोड़ दिया। काशीमिश्रको बुलाकर कह दिया—

ये गौड़ीया इह भगवतः पार्षदास्तज्जना वा
तेषां मे वा तदनुगामिनो हन्त ये वा सभृत्या।
सर्वेऽस्मत्स्त्रीतनयसुहृदो यत्र यत्रोपविश्य
स्नानं पश्यन्त्यपि सुखमनी सन्तु तत्रोपविष्टाः॥

चैतन्य चन्द्रोदय नाटक १०.१०

काशीमिश्रने राजाकी आज्ञाका पालन किया। प्रभुने अपने पार्षदोंके सहित आकर राजा प्रतापरुद्रके द्वारा निर्दिष्ट उच्च सौधके ऊपर आसन ग्रहण किया। श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीवास पण्डित आदि नदियाके सब भक्तगण श्रीगौर भगवान्‌को घेरकर बैठ गये। उज्ज्वल तारकराशिसे वेष्टित पूर्णिमाके चन्द्रके समान भक्तमण्डलीमें प्रभु शोभा पाने लगे। उच्च अट्टालिकाके एक पार्श्वमें पूर्णिमाके चन्द्रके समान भक्तमण्डलीके बीच प्रभु शोभा पा रहे थे। उच्च अट्टालिकाके एक पार्श्वमें जहाँ रानियाँ बैठकर उत्सव देखती थी, वहाँ वैष्णव गृहिणीगण बैठी थीं। परमानन्दपूर्वक वे श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राके उत्सवका दर्शन कर रही थीं।

राजा और रानियोंका उत्सव-दर्शन

राजा प्रतापरुद्रने इस बार निश्चय किया कि अपनी रानियोंको लेकर अन्य स्थानमें बैठकर उत्सव दर्शन करेंगे। उन्होंने अपने पुरोहितसे कहा कि, "इस वर्ष मैं यहाँ रहकर ही श्रीश्रीजगन्नाथजीके स्नानोत्सवका दर्शन करूँगा। मैं प्रभुके निकट

जाऊँगा तो उनका आनन्दोल्लास संकुचित हो जायगा।" पुरोहितजीने कहा, "उचितमेवैतत्।"

राजा गजपति प्रतापरुद्रकी पटरानीका नाम चन्द्रकलादेवी। वह परम भक्तिमती थी। उन्होंने भी श्रीगौराङ्गके चरणों का आश्रय लिया था। दासीने आकर राजासे कहा, रानियाँ उत्सव देखनेके लिए आयी हैं। परन्तु दर्शनकी सुविधा नहीं हो रही है। राजा प्रतापरुद्रने गुरु और पुरोहितको प्रणाम करके विदा कर दिया, और रानियोंके पास आकर कहा—"प्रियतमे! इस वर्ष हम लोग यहाँ बैठकर स्नानोत्सव दर्शन करेंगे। श्रीगौर भगवान्‌को सपार्षद दर्शन करनेका सुयोग यहाँ ही होगा। वह देखो, भुवन-पावन सर्वमङ्गलमय श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु पार्षदोंके सहित ऊँची अट्टालिकापर बैठे सुशोभित हो रहे हैं। प्रभुको प्रणाम करो।" रानियों ने प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर गलेमें वस्त्र डालकर सपार्षद श्रीमन्महाप्रभुको प्रणाम किया।

राजा प्रतापरुद्रने दूरसे, अनेक भक्तोंसे परिवेष्टित प्रभुको दिखलाकर रानियोंसे कहा—

अविरल जनसंघे सर्वमूर्द्धोर्ध्ववर्त्ती
स्फुरित भगवतोऽयं मण्डलः श्रीसुखस्य।
तरदुरुविधहंसे वारिराशाविवोच्चैः
कलय किमपि हेम्नः पद्मसुद्दण्डनालम्॥

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक १०.१४

श्लोकार्थ—प्रिये! देखो, अत्यन्त भीड़-भाड़में भी जिसका श्रीमुख मण्डल सबके मस्तकके उपरिभागमें विविध हंसावलीसे परिशोभित वारि-राशि में एक अति रमणीय काञ्चन कमलके समान सुशोभित हो रहा है, उस भुवन-पावन श्रीगौराङ्ग प्रभुको नयन भरकर दर्शन करो। नयनोंको सार्थक करो।

चन्द्रकला देवीने राजाकी इस बातको सुनकर दिव्य ज्योतिर्मय श्रीश्रीगौराङ्ग मूर्त्तिका दर्शन करके कहा—

महः पूरः सद्यो विषयरससंशोषणविधौ
प्रचंडो मार्त्तंड व्यतिकर इवाद्य प्रसृमरः।
आहार्यं माधुर्यं भगवदनुरागामृतकिरो
महावर्याः कोऽयं कनकनिधिरक्ष्णोः पथिगतः॥

अपि च,

निर्मञ्ज्नया विधुभिर्मुखबिम्बमस्य
नीराजयानि च रुचं कनक प्रदीपैः।
संपूजयानि च पदपद्ममधु प्रसूनैः
प्रत्याददानि करुणामपि लक्ष देहैः॥

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाक १०.१५,१६

अर्थ—रानीने आनन्दसे गद्‌गद होकर राजासे कहा—"महाराज! काञ्चन मणिके समान जो अकस्मात् हमारे नयन पथमें आ पड़े हैं, वे कौन हैं? प्रचण्ड मार्त्तण्डके समान अपूर्व तेजराशिसे यह सर्वजीव हृदयके विषम विषय-रसको संशोषण कर रहे हैं, इनकी अपूर्व रूप माधुरीको देखते ही अन्तः करण भगवदनुरागामृतसे अभिषिक्त हो रहा है। मेरे मनमें बड़ी साध हो रही है कि कोटि चन्द्रमाको इनके श्रीमुखपर न्यौछावर कर दूँ, और शतशः स्वर्णदीपकके द्वारा इनके श्रीअङ्गकी आरती लूँ। अपने इस जीवन कुसुमके द्वारा इनके रक्त कमल चरणको अर्घ्य प्रदान करूँ तथा लक्ष-लक्ष देह पात करके भी इनकी कृपाका लेशमात्र प्राप्त कर कृतार्थ होऊँ।"

इतना कहकर चन्द्रकला देवीने अश्रुसिक्त नयनोंसे प्रभुकी श्रीमूर्त्तिकी ओर देखकर भूमि विलुण्ठित होकर गलेमें वस्त्र डालकर प्रणाम किया। राजा प्रतापरुद्र रानीकी यह श्रीगौराङ्ग प्रीति देखकर प्रेमविह्वल चित्तसे बोले—"प्रियतमे! तुम यथार्थ अनुभव कर रही हो। तुम्हारा गौराङ्गानुराग देखकर मेरे मनमें बड़ा आनन्द हुआ है। तुम परम सौभाग्यवती रमणी हो। प्रभु तुम्हारे ऊपर कृपा करें। श्रीगौराङ्गमें तुम्हारी एकनिष्ठ रति-मति हो। इससे अधिक श्रेष्ठ आशीर्वाद मैं नहीं जानता।" यह कहकर महाराज प्रतापरुद्र

बालकके समान रोने लगे। उनका प्रेमविह्वल भाव देखकर सब रानियाँ प्रेमानन्दमें गद्गद होकर मुँह-पर अञ्चल डालकर सुबक-सुबक रोने लगी। नयनोंके झर-झर अश्रु प्रवाहसे सबका वक्षःस्थल डूब गया। वहाँ गौर-प्रेमका तरङ्ग उठा। राजा और रानियाँ गौर-प्रेमके तूफानमें उतराने लगे। उनके जीवनकी सारी साध गौरप्रेमके तूफानमें बह गयी। एकमात्र गौर हरिकी चरण-नौकाको लक्ष्य करके वे अपार समुद्रमें बहने लगे।

रानी चन्द्रकला राजाकी अवस्था देखकर उनके पास आकर बैठ गयी। दोनोंने पुनः गौर-कथा प्रारम्भ कर दी। रानीने कहा—"महाराज। आपकी कृपासे हमको आज श्रीगौराङ्ग चरण दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ हैं। वह देखिये, श्याम चाँद और गौर चाँद एक दूसरेके अभिमुख होकर निर्निमेष नयनोंसे परस्पर एक दूसरेको देख रहे हैं। श्रीजगन्नाथजीका स्नान जल और श्रीगौराङ्गका नयन-जल एक जान पड़ता है। दोनोंका आज स्नानोत्सव हो गया। श्रीश्रीगौराङ्ग अपने नयन-जलसे अभिषिक्त हुए और श्रीनीलाचल चन्द्र स्नान जलसे अभिसिक्त हुए।

राजा प्रतापरुद्रने प्रेमविह्वल भावमें उत्तर दिया—"प्रियतमे ! तुम जो कहती हो, सब सत्य है। श्रीगौराङ्ग प्रभुने तुम्हारे ऊपर कृपा करके अपना प्रकृत तत्त्व समझा दिया है। तुमने उनको ठीक पहचाना है। तुम्हारी बात सुनकर मेरे प्राण जुड़ गये हैं। कान पवित्र हो गये हैं।" रानी चन्द्रकला आत्मप्रशंसा सुनकर लज्जित हो उठीं। वे सिर नीचा करके अजस्र आँसू बहाने लगी।

श्रीश्रीजगन्नाथजीके स्नानोत्सवके पश्चात् पन्द्रह दिन तक उनका दर्शन नहीं हुआ। प्रभु श्रीविग्रहका दर्शन न होनेके कारण अत्यन्त विरह-कातर हो उठे। राजा प्रतापरुद्रने यह समाचार सुना। उन्होंने यह भी सुना कि प्रभु स्नान, तुलसी सेवा, चक्र दर्शन, हरिनाम ग्रहण आदि कुछ भी नहीं कर रहे हैं। यहाँ तक कि आहार-निद्रा भी छोड़ दिया है। वे निरन्तर श्रीजगन्नाथके विरहमें रुदन करते हैं।

यह सुनकर राजा प्रतापरुद्रका हृदय उन्मथित हो उठा, वे विषादके सिन्धुमें डूब गये। किन्तु मन ही मन सोचने लगे कि श्रीश्रीजगन्नाथजीके अदर्शनमें प्रभुका विरह-कातर होना संभव है। क्योंकि प्रेमानन्द मूर्त्ति श्रीगौर भगवान् जब जिस विषयकी भावना करते हैं, उसमें अत्यन्त अभिनिविष्ट चित्त हो जाते हैं। यह केवल लोक-शिक्षाके लिए करते हैं। भगवद्विरह क्या वस्तु है, यह जीवको बतानेके लिए वे इस प्रकार विरह-कातर हो जाते हैं।

राजा प्रतापरुद्रने अन्तःपुरमें जाकर अपनी पटरानी चन्द्रकला देवीसे प्रभुकी उत्कट विरह-व्याधिकी बात कही। राज परिवारके सब लोग विषण्ण होकर रोने लगे। राजा, राजपुत्र तथा रानियाँ सभी गौर-गत-प्राणा हो गये हैं। प्रभुके चरणोंमें एक कण्टक चुभनेपर उनके हृदयमें मानो शूल चुभ जाता है। प्रभुकी विरह दशाकी बात सुनकर वे शोक सागरमें डूब गयी।

काशीमिश्र राजगुरु थे। वे राज परिवारके दुःखकी बात सुनकर उनको सान्त्वना देनेके लिए आये। राजा प्रतापरुद्रने उनकी स्तुति वन्दना करके उन्हें दिव्यासनपर बैठाया। प्रभुके उत्कट विरहकी बात उठाकर राजाने काशी मिश्रसे कहा—"इसका क्या उपाय करेंगे?" काशी मिश्रने उत्तर दिया—"महाराज, प्रभुके भक्तगण मधुर हरिनाम संकीर्तन करके प्रभुके हृदयमें रसान्तरके अभ्युदयकी चेष्टा करेंगे। प्रभु विरह-रसमें विवश हो गये हैं, उनके हृदयमें अन्य रसका प्रवेश होनेपर उनका विरहावेश कुछ शिथिल हो सकता है। यह विवेचना करके स्वरूप गोसाईं आदि भक्तवृन्दने रोहिणी कुण्डके तीर प्रभुको ले जाकर मधुर स्वरमें सङ्कीर्तन आरम्भ कर दिया है।"

राजा प्रतापरुद्र यह सुनकर अत्यन्त व्यग्र चित्तसे बोले—"क्या इस मधुर सङ्कीर्तन-यज्ञके दर्शनका सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा ?" काशी मिश्रने कहा—"महाराज, आप इस प्राचीरपर आरोहण करके उसे देख सकते हैं।" राजा प्रतापरुद्र सामान्य दीन-दुःखीके समान वेश बनाकर अतिकष्ट पूर्वक गुप्तभावसे प्राचीरके ऊपर चढ़कर बैठ गये। काशीमिश्र भी उनके साथ थे।

रोहिणी-कुण्डके किनारे महासङ्कीर्तन यज्ञका अनुष्ठान हो रहा था, उच्च सङ्कीर्तनकी ध्वनिसे दिङ्मण्डल प्रतिध्वनित हो उठा। मृदङ्ग-करतालके मधुर निक्वणसे सब लोगोंका हृदय आनन्दसे नाच रहा है। सङ्कीर्तन यज्ञेश्वर श्रीश्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु भक्तवृन्दसे परिवृत होकर आनन्द घन मूर्त्तिसे सुशोभित हो रहे हैं। काशी मिश्रने राजाको सम्बोधन करके कहा—"महाराज ! देखिये, देखिये—

विरह व्यथैव मूर्त्या करुणो
रस एव मूर्तिमान् दिवसम्।
आसीत् य एष सम्प्रति
कीर्तनकलतोऽयमन्यथा जातः ॥

चै. चं. ना. १०.२२

अर्थ—जो दिन-भर मूर्तिमती विरह वेदना और मूर्त्तिमान् करुण रसके समान अवस्थित थे, सम्प्रति मधुर हरि-सङ्कीर्तन ध्वनि सुनकर उनके मनमें एक अन्य ही भाव उदय हो गया है।

राजा प्रतापरुद्र प्रभुकी आनन्दमयी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके विशेष पुलकित होकर बोले—"हाँ, यह हो सकता है। क्योंकि स्फटिक निर्मित घट, रक्त और कृष्ण आदि वर्णोंके रससे परिपूरित होनेपर जैसे तत्तत् वर्णको धारण करता है, उसी प्रकार प्रेमानन्दसे पूर्ण यह भगवत्-शरीर जब जिस भावको स्पर्श करता है, तब उसको ही प्रकाशित करता है।"

हरि सङ्कीर्तनकी मधुर-ध्वनि गगन-मण्डलको भेद कर ऊपर उठी है, सहस्र कण्ठसे मधुर हरिनाम-सङ्गीत-गान हो रहा है, जगतीतलपर मानो सुधा वृष्टि हो रही है। नदियाके भक्तवृन्द पदगान कर रहे हैं। वे श्रीकृष्णकी मुरलीकी माधुरीके वर्णनका गान कर रहे हैं। यथा,

मुरलीर स्वरे, रहिबे के घरे,
गोकुल युवति गणे।
आकुल हइया, बारि हइबे,
ना चाबे कुलेर पाने ॥

(चण्डीदास)

प्रभु प्रेमाकुल होकर गीत सुन रहे हैं और वृन्दावन भावमें विभावित होकर अपूर्व हावभावके साथ मधुर नृत्य कर रहे हैं। राजा प्रतापरुद्रने उस गानका अर्थ न समझकर काशी मिश्रसे पूछा, और उनके द्वारा जब इस मधुमय पदका मर्म ग्रहण किया, तब उनका हृदय प्रेमानन्दमें भर गया। उन्होंने अपने मनका भाव प्रकट किया। यथा,

गौरः कृष्ण इति स्वयं प्रतिफलन्
पुण्यात्मानां मानसे,
नीलाद्रौ नटतीह संप्रथयते
वृन्दावनीयं रसम् ॥
आद्यः कोऽपि पुमान् नवोत्सुक वधू
कृष्णानुराग व्यथा
स्वादी चित्रमहो विचित्रमहहो
चैतन्य लीलायितम् ॥

चै. चं. ना. १०.२४

अर्थ—अहा ! कैसा आश्चर्य है ! यह गौरचन्द्र पुण्यात्माओंके हृदयमें स्वयं श्रीकृष्ण रूपमें प्रतिफलित होकर श्रीवृन्दावनके सुमधुर रसका विस्तार करते हुए नीलाचलमें नृत्य कर रहे हैं, और स्वयं आदि पुरुष होकर भी नवीना व्रज रमणियोंकी कृष्णानुराग जनित अपूर्व वेदनाका अनुभव कर रहे हैं, अतएव श्रीचैतन्य लीला अति विचित्र है।

राजाने बहुत देर तक कीर्तन सुनकर काशी मिश्रसे पूछा—"ये लोग संगीतका एक पद पकड़कर उसे ही बहुत देर तक क्यों गाते हैं ?" काशी मिश्रने

राजाको समझा दिया कि भगवन्नाम और लीलामें जहाँ एक बार प्रभुका मन निविष्ट होता है, वहाँसे फिर विचलित नहीं होता। भक्तवृन्द भाव निधि प्रभुके भावको समझकर एक ही पदको बारम्बार गाते हैं, एक ही नामका बारम्बार कीर्तन करते हैं। इससे प्रेममें प्रगाढ़ता आती हैं, हृदयमें नाम और लीलाके माहात्म्यकी दृढ़ स्फूर्ति होती हैं।

राजा प्रतापरुद्र गौड़ीय वैष्णवोंके हरिनाम सङ्कीर्तनके प्रकृत मर्मको समझकर अत्यन्त आनन्दित हुए। वे प्रभुके प्रेमोन्मत्त भावको देखकर आनन्दविह्वल होकर उनके प्रत्येक अङ्गके सौन्दर्य और माधुर्यको अनिमेष नयनसे दर्शन करने लगे। राजा प्रतापरुद्रकी प्रभु दर्शनकी लालसा मानो आज परितृप्त नहीं हो रही है। वे काशीमिश्रको पास बुलाकर गद्‌गद स्वरमें कहने लगे, "प्रभुको देखिये, प्रभुके अपूर्व श्रीअङ्गकी माधुरीको अवलोकन कीजिये।" इतना कहकर राजा प्रतापरुद्र प्रभुके प्रेमोन्मत्त अपरूप रूपका वर्णन करने लगे। यथा, श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटकमें—

जानूत्क्षेप भुजावधूनन पदन्यासाक्षि विक्षेपणैः।
हन्ता नन्दयतो मनासि सुहृदां विश्वं जडीकुर्वतः॥
निष्ठेवैः मुखमस्य भाति सुभगस्मेरं महानन्दतः।
फेनैर्हेमसरोरुहं द्रुतमिव स्त्यानैरिवेन्दुहिमैः॥

चै० च० ना० १०.२५

अर्थ—अहा! देखो, देखो! प्रभुकी अपूर्व श्रीअङ्गमाधुरीको देखो। वह जानुद्वयके उत्क्षेपण, बाहु-कम्पन, पद-सञ्चालन तथा अपूर्व नयन भङ्गिमाके द्वारा अपने भक्तवृन्दके मनमें परम आनन्द उत्पन्न करते हुए समस्त विश्व ब्रह्माण्डके निवासीको आनन्द-सिन्धुमें निमग्न कर रहे हैं। अहा! प्रभुके प्रेमानन्दपूर्ण निष्ठावनमें (श्रीमुखनिःसृत लालामें) उनका श्रीमुखमण्डल दिव्य सुगन्धि युक्त फेनपुञ्जमें आवृत होकर स्वर्णकमल अथवा शुभ्र शिशिरावृत निशाकरके समान शोभा पा रहा है।

राजा उस उच्च प्राचीर पर बैठकर देख रहे हैं। एक महा सौभाग्यवान् श्रीगौराङ्गपार्षद निर्भय होकर प्रभुके श्रीबदनसे निःसृत उस अपूर्व अमिय राशि (फेनपुञ्ज) को प्रेमानन्दसे पान कर रहा है, और प्रेमावेशमें नृत्य कर रहा है। दूरसे जान पड़ता है मानो चकोर चन्द्रमाका सुधापान कर रहा है।

क एष निःसाध्वससमास्य मण्डलान्निष्ठेव माकृष्य पिवन् प्रमोदते।
चन्द्राद्विहिर्भूतमिवामृत द्रवस्योल्लासिनं फेनमहो चकोरकः॥

चै० च० ना० १०.२६

काशीमिश्र राजा प्रतापरुद्रसे बोले, "इन परम भाग्यवान् वैष्णवका नाम शुभानन्द है। ये प्रभुके एकान्त भक्त हैं।" राजाने उस महात्माके उद्देश्यसे कोटि-कोटि प्रणाम किया।

कीर्तनकारी लोग एक पद लेकर कीर्तन कर रहे हैं। इतनेमें दोपहर बीत गया। राजा प्रतापरुद्रने काशीमिश्रसे कहा कि, "श्रीजगन्नाथजीके विरह सागरमें निमग्न होकर प्रभुने स्नान आह्निक, आहार-निद्रा त्याग दिया था। इस हरिसङ्कीर्तनके आनन्दमें उन्मत्त प्रभुकी अवस्था तो तद्रूप ही देख रहा हूँ, प्रभु कब सुस्थिर होंगे? आहारादि कब करेंगे?" प्रभुकी प्रेमोन्माद दशा देखकर राजाके मनमें ऐसी चिन्ता उदय होने लगी। प्रेमभक्तिका यही लक्षण है। राजा प्रतापरुद्रने प्रभुके बाह्य दुःख भावको देखकर कातर होकर काशीमिश्रसे पूछा।

काशीमिश्रने उत्तर दिया, "महाराज! प्रभुका विरहावेश उनके भक्तगणके लिए नितान्त दुःसह है। इसी कारण उन्होंने कीर्तन आरम्भ करके प्रभुको नृत्योत्सवमें प्रवृत्त कर रक्खा हैं। श्रीगौर भगवान् पूर्णानन्दमय हैं। सर्वदा वे आनन्दरसमें निमग्न रहते हैं। उनकी प्रेमचेष्टा अद्‌भुत है। वे जीवबुद्धिके लिए अगम्य है। वह देखिये, भक्तगण उनको

वासापर ले जा रहे हैं। तब राजाने आश्वस्त होकर कहा, "तो प्रभु इस समय वासापर जाकर आह्निकादि करेंगे ? तथा भिक्षा भी करेंगे ? हम लोग वहाँ चलकर देखें।"

प्रभुके प्रति राजा प्रतापरुद्रकी प्रेमोत्कण्ठा अति विचित्र है। इसी गुणसे श्रीगौर भगवान्ने उनके ऊपर कृपा की है। राजराजेश्वर होकर भी साधारण आदमीके समान प्राचीरके ऊपर बैठकर इतनी देर तक, सारा कष्ट सहन करके उन्होंने श्रीगौराङ्ग प्रभुकी दिव्योन्माद दशाके सारे अपूर्व भाव विकारोंके लक्षणका जो दर्शन किया, इसीसे उनकी श्रीगौराङ्ग प्रीतिका पूर्ण परिचय मिल गया। धन्य हैं महाराज गजपति प्रतापरुद्र ! धन्य है आपकी गौरांगैकनिष्ठा ! धन्य है आपकी प्रेमोत्कण्ठापूर्ण आवेगमय गौराङ्ग लीलाकथा ! आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात !

श्रीअद्वैत प्रभुकी पूजा और बालक गोपालका आवेश

श्रीअद्वैत प्रभु जबसे नीलाचल आये हैं, नित्य तुलसी-चन्दनके द्वारा श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभुके श्रीचरणोंकी पूजा करते हैं। श्रीगौराङ्ग-पूजा बिना किये वे जल नहीं ग्रहण करते। वे जब प्रभुकी पूजा करने जाते हैं तो प्रभु भी उनके पूजावशेष गन्धपुष्प लेकर हँसते-हँसते 'ॐ नमः शिवाय' कहकर उनकी पूजा करते हैं, और गाल बजाते हैं। इससे दोनोंको परम आनन्द प्राप्त होता है।

प्रातः प्रत्यहमर्घ्यगन्धतुलसी पुष्पादिभिर्पूजय-
त्यद्वैते भगवन्तमन्तर सुखावेशोल्लसद्रोमणि ।
स्थित्वा तैर्हठतो हृतैरतिरसेनाद्वैतमभ्यर्चयन्
देवो बूर्बुरितैर्मुखेऽगुलिदलैरुद्वाद्यवाद्यं व्यधात् ॥

चै. च. ना. २०.२८

भक्तवृन्द श्रीगौराङ्ग प्रभुकी शिव पूजा तथा श्रीअद्वैत प्रभुकी गौराङ्ग पूजा दर्शन करके प्रेमानन्दमें नृत्य करते हैं। प्रेमावेशमें नृत्य करते करते बीच-बीचमें शान्तिपुरनाथके कटिका वस्त्र स्खलित हो जाता है। प्रभु अपने हाथ से उनको बहिर्वास पहना देते हैं। प्रभुके वासापर नित्य यह लीलारङ्ग होता है।

श्रीअद्वैत प्रभु इस बार अपने बालक पुत्र गोपालको साथ लाये हैं। सीता ठकुरानी अपने गोदके बालकको छोड़कर आ नहीं सकती थीं। गोपाल पिताके साथ प्रभुका दर्शन करने जाता है। एक दिन प्रभु नृत्यानन्दमें विभोर थे। गोपाल पिताके पास खड़ा होकर प्रभुकी अपूर्व नृत्य-भङ्गिमाका दर्शन कर रहा था। रङ्गीले प्रभुकी इच्छा हुई कि अद्वैत-बालक गोपालको लेकर कुछ लीलारङ्ग करें। उन्होंने अपने श्रीअङ्गके स्पर्शसे बालकको शक्तिशाली कर दिया। गोपाल तत्काल बालगोपालके समान मधुर नयन-रञ्जन नृत्य करने लगा। प्रेमावेशमें तथा नृत्यानन्दमें गोपाल मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पड़ा। उसको बाह्यज्ञान न रहा। कोई जान न सका कि वह मृत है या जीवित। श्रीअद्वैत प्रभु यह देखकर व्याकुल होकर रोने लगे। तब दयामय श्रीगौराङ्ग भगवान्ने अपने श्रीकरके स्पर्शसे गोपालको चेतना प्रदानकर उसे पुनर्जीवित किया। गोपाल भूमिशय्यासे उठकर प्रभुकी चरणधूलि लेकर पुनः प्रेमानन्दमें नृत्यकीर्त्तन करने लगा। भक्तवृन्द आनन्दसे हरिध्वनि करने लगे। श्रीअद्वैतप्रभु प्रेमावेशमें पुत्र को गोदमें लेकर श्रीगौर भगवान्के चरणोंमें गिरकर अजस्र आँसू बहाने लगे। करुणामय प्रभुने उनको उठाकर गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

अद्वैत प्रभुके यहाँ भिक्षा

पूर्व वर्षके समान इस वर्ष भी प्रभु नदियाके भक्तवृन्दके घर निमन्त्रित होकर प्रतिदिन भिक्षा करने लगे। श्रीवृन्दावन ठाकुरने लिखा है—

जे द्रव्ये प्रभुर प्रीति पूर्व शिशुकाले ।
सकल जानेन ताहा वैष्णव मण्डले ॥
सेइ मत द्रव्य सभे प्रेमयुक्त हैया ।
आनियाछेन प्रभुर भिक्षार लागिया ॥
सेइ सब द्रव्य प्रीते करिया रन्धन ।
इश्वरेरे आसिया करेन निमन्त्रण ॥
जे दिन जे भक्तगृहे हय निमन्त्रण ।
तथाइ परमप्रीते करेन भोजन ॥
श्रीलक्ष्मीर अंश जत वैष्णव गृहिणी ।
कि विचित्र रन्धन करेन, नाहि जानि ॥
निरवधि सभार नयने प्रेमधार ।
कृष्णनामे परिपूर्ण श्रीमुख सभार ॥
पूर्वे इश्वरेर प्रीति जे सब व्यञ्जने ।
नवद्वीपे श्रीवैष्णवी सभे ताहा जाने ॥
प्रेमयोगे सेइ मत करेन रन्धन ।
प्रभुओ परम प्रेमे करेन भोजन ॥

चै. भा. अं. १०.४-११

एक दिन श्रीअद्वैत प्रभुने प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया, "हे प्रभु ! कृपा करके आप आज मेरी कुटी पर भिक्षा करें । मैं स्वयं एक मुष्ठि अन्न पाक करके आपको भिक्षा कराऊँगा। मेरे हाथ सफल हो जाँयगे ।" दयामय भक्तवत्सल प्रभुने उत्तर दिया—"आचार्य ! तुम्हारे अन्नके खानेसे श्रीकृष्ण भक्ति प्राप्त होती है। तुम्हारा अन्न तो मेरा जीवन है । तुम्हारे द्वारा रंधन किया हुआ नैवेद्य तो माँगकर खानेका मेरा मन होता है ।"

भक्तवत्सल प्रभुकी भक्तवात्सल्यमयी मधुर बात सुनकर शान्तिपुर-नाथ आनन्द सागरमें मग्न हो गये । प्रभुकी चरण वन्दना करके उनसे बिदा होकर दौड़ते हुए वे बासा पर आये । गृहिणीको यह शुभ समाचार सुनाया, तथा दोनों मिलकर श्रीगौर-भगवान्के भोगकी सामग्रीका आयोजन करने लगे । श्रीसीता ठाकुरानी साक्षात् योगमाया हैं। श्रीलक्ष्मीजीके अंशसे उनका जन्म है। प्रभुको वे शिशुकालसे ही पुत्रवत् स्नेह करती हैं। वे प्रभुके लिए शान्तिपुरसे नाना प्रकारकी भोजनकी सामग्री लायी है; प्रभु जो खाना पसन्द करते हैं, वह उनको ज्ञात है । सीता ठाकुरानीने बहुत थोड़े समयमें भोजनका सारा वन्दोवस्त कर लिया । श्रीगौराङ्ग स्मरण करके शान्तिपुरनाथ स्वयं भोजन बनाने लगे ।

रन्धने बसिला श्रीअद्वैत महाशय ।
चैतन्य चन्द्रेरे करि हृदये विजय ॥

चै. भा. अं. १०.२१

शाकमें प्रभुकी अतिशय प्रीति है, यह जानकर श्रीअद्वैत गृहिणीने दस प्रकारके शाककी व्यवस्था कर दी । नाना प्रकारका व्यञ्जन तैयार हो गया । श्रीअद्वैत प्रभु प्रेमानन्दमें भोजन बना रहे थे, और उनकी भक्तिमती गृहिणी सारा प्रबन्ध कर रही थी । रसोईघरमें दोनों ही आनन्द सिन्धुमें गोते लगा रहे थे । शान्तिपुर-नाथने गृहिणीको सम्बोधन करके अपनी मनकी बात कही ।

उनका मनोगत भाव यह था कि प्रभु यदि अकेले आकर उनके घर भिक्षा करें तो मनकी साधसे पेट भर उनको भोजन करा सकूँगा । संन्यासी-दलके साथ आने पर प्रभु भोजन करनेमें सङ्कोच करेंगे, यह श्रीअद्वैत प्रभु जानते हैं । उन्होंने स्वयं भोजन बनाया है, और यही सोच रहे हैं, तथा गृहिणीके साथ परामर्श कर रहे हैं ।

मध्याह्नकाल उपस्थित है । प्रभु बासा पर हैं । अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान् शान्तिपुरनाथके मनोभावको जानते हैं । वे मध्याह्न क्रिया समाप्त करनेके लिए प्रस्तुत हो गये । यह देखकर उनके सङ्गी संन्यासी भक्तवृन्द अपनी-अपनी मध्याह्न क्रिया समाधान करने चले । उसी समय अकस्मात् बड़े वेगसे वर्षा होने लगी । बीच-बीचमें वज्राघात और प्रचण्ड झंझावातसे दिङ्मण्डल धूलिकणसे अन्धकाराच्छन्न हो गया । उस समय कोई कहीं जा

नहीं सकता था, और न अन्धकारमें रास्ता ढूँढ़ सकता था। परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि श्रीअद्वैत प्रभु जहाँ रसोई बना रहे थे, वहाँ सामान्य ही वर्षा हुई, वर्षाका सामान्य ही लक्षण दिखलायी दिया।

प्रभुके साथ जो संन्यासी भिक्षा करते थे, वे छिन्न-भिन्न होकर कहाँ चले गये, इसका पता न लगा। प्रभु अकेले बासा पर थे। उन्होंने श्रीअद्वैत-भवनमें अकेले ही भिक्षा करनेके लिए जानेका विचार किया। वे भक्तवत्सल थे, उन्होंने भक्तकी कामना पूरी की।

इधर श्रीअद्वैत प्रभुने रन्धन आदि समाप्त करके श्रीगौर भगवान्के लिए दिव्य भोग प्रस्तुत किया। श्रीअन्न-व्यञ्जन भोग बड़े-बड़े केलेके पत्ते पर समजाये गये। उसके साथ दही, दूध, घी, मक्खन, नवनीत, पायस, पीठा, चीनी, सन्देश, केला आदि प्रभुके भोगके लिए क्रमशः सजाये गये। भोगकी सब सामग्रीके ऊपर नवीन तुलसी मञ्जरी चढ़ायी गयी। यह सब करके श्रीअद्वैत प्रभु श्रीगौर-भगवान्को अपनी कुटीर पर एकाकी लानेके लिए ध्यान करने बैठे।

उसी समय भक्तवत्सल श्रीश्रीगौर भगवान् अकेले 'हरे कृष्ण हरेकृष्ण' कहते हुए श्रीअद्वैत-प्रभुके बासा पर आकर उपस्थित हुए। उनको अकेला देखकर शान्तिपुरनाथने आनन्दमें गद्गद होकर पादपद्मकी वन्दना करके बैठनेके लिए दिव्यासन दिया। उन्होंने सपत्नीक प्रभुकी पदप्रक्षालन-सेवा की, श्रीअङ्गपर सुगन्धित चन्दन लेपन किया। ग्रीष्मकाल था, प्रभुको पंखा झलकर सुस्थिर किया।

उसके बाद कुछ देर विश्राम करके प्रभु भोजनके लिए बैठे, श्रीअद्वैतप्रभु स्वयं परोसने लगे। प्रभु प्रेमानन्दमें सब भोजन करने लगे; व्यञ्जन और शाकमें प्रभुकी बड़ी प्रीति थी, श्रीअद्वैत प्रभुने नाना प्रकारका व्यञ्जन, और अनेक प्रकारके शाक बड़े प्रेमके साथ राँधे हैं। प्रभुको जितना शाक-व्यञ्जन दे रहे हैं, वे सब बड़े प्रेमसे भोजन कर रहे हैं।

प्रभु कुछ-कुछ व्यञ्जनका अवशिष्ट भाग पात्रमें रखते हैं; और हँसते हुए श्रीअद्वैत प्रभुकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर कहते हैं, "आचार्य! मैंने शाक-व्यञ्जनका कुछ-कुछ क्यों अवशिष्ट रक्खा है, यह आप जानते हैं? यह जाननेके लिए कि आपने कितने प्रकारका व्यञ्जन तैयार किया है। आपने ऐसी सुन्दर रसोई बनानेका काम कहाँ सीखा है? आप तो स्त्री नहीं हैं, पुरुष हैं। स्त्रीका कार्य आपको किसने सिखलाया? मैंने तो इतना सुन्दर शाक कभी खाया नहीं। आपने जो जो शाक बनाये हैं। सभी अत्यन्त सुन्दर हुए हैं। मैं भोजन करके बड़ी तृप्ति अनुभव करता हूँ।"

शान्तिपुरनाथ यह सुनकर प्रेमानन्दमें गद्गद होकर और भी शाक-व्यञ्जन और अन्न प्रभुके पत्तल पर देने लगे। आचार्य दम्पतिकी मनुस्तुष्टिके लिए भक्तवत्सल प्रभुने सब खा लिया। जब प्रभुका भोजन-विलास पूर्ण हो गया, तब श्रीअद्वैत प्रभु प्रमुदित हो हाथ जोड़कर इन्द्रदेवकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

आजि इन्द्र जानिनु तोमार अनुभव।
आमि जानिलाङ तुमि निश्चय 'वैष्णव'॥
आजि हैते तोमारे दिवाङ पुष्प जल।
आजि इन्द्र! तुमि मोरे किनिला केवल॥

चै. भा. अं. १०. ६१, ६२

अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान् सब कुछ जानते हैं, तथापि चकित होकर उन्होंने पूछा, "आचार्य! आज तुम अचानक इन्द्रदेवके भक्त कैसे बन गये? खुलकर बतलाओ, क्या कारण है?" श्रीअद्वैत-प्रभुने उत्तर दिया, "हे प्रभु! तुम भोजन करो, यह सब बातें सुननेकी आवश्यकता नहीं है।" तब प्रभुने श्रीअद्वैत प्रभुके मुँहकी ओर देखकर कहा,

"आचार्य ! मैं सब कुछ जान लेता हूँ, तुम अपने मनका भाव छिपाते क्यों हो ? यह जो अचानक तूफान–वज्रपात आदि उपस्थित हो गया, यह तुम्हारा ही कार्य था। तुमने इच्छा करके इस विषम उत्पातकी सृष्टि की है, यह मुझे ज्ञात हो गया है। जिस उद्देश्यसे तुमने यह सब किया, वह भी मुझे ज्ञात है। संन्यासी लोगोंके साथ आने पर मैं कुछ भोजन न करूँगा, यही तुम्हारा मनोभाव था। इसी कारण यह सब उत्पात सृजन करके संन्यासियोंको अपने घर आनेसे रोक दिया।"

यह बात कहकर भक्तवत्सल प्रभु भोजन-पात्रके सामने बैठे ही श्रीअद्वैत महिमा कीर्तन करने लगे—"इन्द्रका अहोभाग्य है कि वह तुम्हारी भक्ति करता है। जिसका संकल्प श्रीकृष्ण भी टाल नहीं सकते, जो श्रीकृष्णको साक्षात् प्रकट कर सकते हैं, जिनकी आज्ञाको यम-काल-मृत्यु भी सिरपर धारण करते हैं, उनके लिए इस प्रकार वृष्टिकी झड़ी लगा देना कोई अद्भुत कार्य नहीं है। तुम्हारे रहस्यको कौन जान सकता है ? तुम्हारी कृपासे ही भक्ति-फलकी प्राप्ति होती है।"

शान्तिपुरनाथ आत्म-स्तुति सुनकर बहुत लज्जित हुए। वे प्रभुका भक्तवात्सल्य गुण स्मरण करके विह्वल भावसे रोते-रोते उनके चरणकमलमें भूमि विलुण्ठित होकर मधुर शब्दोंमें आत्मनिवेदन करने लगे—"हे प्रभु ! मुझमें कोई गुण नहीं है, जिसके द्वारा तुम्हें प्रसन्न कर सकूँ। तुम भक्तवत्सल हो, यही बल मेरा बड़ा बल है। तुम्हारी भक्तिके प्रभावसे मैं सिंहकी तरह सर्वविजयी हूँ। मुझको यह वर दो, कि किसी भी समय मैं तुम्हारे श्रीचरणसे दूर न होऊँ।" यही श्रद्धा भक्ति है, इसमें जो भक्ताभिमानका लेश है, उसे अभिमान नहीं कह सकते। भगवान्की भक्तिके बलसे भक्तकी सर्वत्र विजय होती है। यह समझानेके लिए विष्णुभक्त-श्रेष्ठ शङ्करावतार शान्तिपुरनाथने प्रभुसे कहा—

"सर्वकाल सिंह आमि तोर भक्ति बले।"
चै. भा. अं. १०.७९

श्रीअद्वैत-भवनमें श्रीश्रीगौर भगवान्के इस भोजन-लीला-रङ्गमें एक अति गूढ़ बात सीखनेकी है। श्रीअद्वैतप्रभु तत्कालीन ब्राह्मण-समाजके आचार्य थे। बहुतोंके दीक्षा गुरु थे, सर्वशास्त्र-विशारद, सर्वलोकपूज्य, देशप्रसिद्ध पण्डित थे। वे वृद्ध ब्राह्मण प्रभुके पिताके समवयस्क थे। प्रभुकी जन्मलीलासे ही वे उनके प्रति विशेष रूपसे ध्यान रखते आ रहे थे। अब उनको अपना इष्टदेव समझकर साक्षात् स्वयं भगवान् भावमें पूजा और भोग दे रहे थे। प्रभुको उन्होंने जो यह भोग दिया था, इसमें अन्य देवताकी आराधना न थी, अन्य देवताका भोग न था, अन्य किसी देव या देवीका नाम भी न था। पूजा और भोगका सारा आयोजन एकमात्र श्रीगौर-भगवान्के निमित्त था। श्रीगौराङ्ग मन्त्रसे श्रीगौराङ्ग पूजा, उसी मन्त्रसे उनका भोग, और उसी मन्त्रसे उनका आह्वान आदि सारे कार्य श्रीगौराङ्गके प्रीत्यर्थ उस वृद्ध ब्राह्मणने नीलाचलमें बैठकर किया था। घरसे शालग्राम शिला नहीं लाये थे। श्रीश्रीजगन्नाथजीका प्रसाद नहीं मंगाया। श्रीगौराङ्गप्रभु ही उनके नारायण थे, उनके सचल जगन्नाथ थे। श्रीअद्वैत प्रभुने जो किया, वही कार्य सर्वदेशपूज्य, पण्डित शिरोमणि सार्वभौम भट्टाचार्यने भी किया था। एकनिष्ठ गौरभक्तका यही कर्तव्य है। श्रीगौराङ्ग प्रभुका तत्त्व उन्होंने समझा था, वे भी इस पथका आलम्बन करेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। श्रीगौराङ्गके एकनिष्ठ भक्तोंने केवल श्रीगौराङ्गकी अर्चना करके ही सब देव-देवियोंकी प्रीति प्राप्त की है, तथा उनके कृपा-भाजन हुए हैं। श्रीअद्वैत प्रभु और सार्वभौम-भट्टाचार्यने जो पथ दिखलाया है, उसका अनुसरण करना प्रत्येक गौरभक्तका कर्त्तव्य है। जिनके घरमें श्रीगौराङ्ग विग्रह है, वे किसी दूसरे विग्रहकी अर्चना आवश्यक नहीं समझते। गौरकृष्ण अभेद

तत्त्वमें जिनका दृढ़ विश्वास नहीं, उनके लिए गौरार्चना अन्य देव-देवियोंकी पूजाके तुल्य हैं। ऐसा करना परम नारायण आदि रुक्माङ्ग पुरुष गौरभगवान्के प्रकृत तत्त्वको लघुत्व प्रदान करना है। अपने इष्टदेवको छोटा बनाना है। सर्वावतारसार गौराङ्गावतारके महत्वको कम करना है।

प्रभु भोजन-विलास समाप्त करके उठे। श्रीअद्वैत प्रभुने उनको आचमन आदि करा दिया। सुगन्धित लवङ्ग-एलायची आदि मुखशुद्धि देकर उनको दूसरे घरमें दिव्य आसन पर बैठाया। प्रभुके निमन्त्रणके उपलक्ष्यमें सीता ठाकुरानीने नदियाके वैष्णव गृहिणीगणको उनका भोजन-विलास दर्शन करनेके लिए अपने बासापर निमन्त्रण करके बुलाया था। श्रीवास पण्डितकी गृहिणी मालिनी देवी तथा श्रीपाद चन्द्रशेखर आचार्यरत्नकी गृहिणी सर्वजया देवी भी उनमें हैं। प्रभुकी अनुमति लेकर श्रीअद्वैत प्रभुने उनको अपने घर बुलाया था। शचीमाताकी बात वे लोग प्रभुको कहेंगी, तथा प्रभुकी बात सुनकर शचीमाताको जाकर कहेंगी। इसी उद्देश्यसे इस शुभ संयोगमें श्रीअद्वैत प्रभुने श्रीगौर भगवान्के साथ नदियाके वैष्णव गृहिणी-गणका यह मिलन कराया था।

प्रभुने अपनी पूजनीया मौसीको देखकर दण्डवत् प्रणाम किया, अवनत सिर करके दुःखिनी माताकी बात पूछी, और प्रेममें गद्गद होकर हाथ जोड़कर रोते-रोते बोले, "मेरी माँ जीवित है न ?" यह बात सुनकर वैष्णव गृहिणीगण आँचलसे मुँह ढँककर फुँकार मारकर रोने लगी। उनके प्रेम-क्रन्दनके कोलाहलसे घर भर गया। प्रभुके नयन जलसे घरकी भूमि द्रवित हो गयी, वैष्णव गृहिणीगणके नयनजलसे घरका द्वार कीचड़-कीचड़ हो गया। प्रभु अब अधिक देर तक वहाँ न रह सके। श्रीअद्वैत प्रभुको इशारा करके वे उठ खड़े हुए। पुनः गुरुजनके उद्देश्यसे वैष्णव गृहिणीगणको दण्डवत् प्रणाम करके प्रभु विषण्ण मनसे अन्य मनस्क होकर अपने बासापर गये। श्रीअद्वैत प्रभु उनको पहुँचाने उनके साथ चले। मार्गमें प्रभुने उनके साथ और कोई बात नहीं की। बासापर पहुँचने पर प्रभुकी चरणवन्दना करके अद्वैतप्रभु अपने घर लौटे।

श्रीचैतन्य भागवतकार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने प्रभुकी अद्वैतभवनकी इस लीला कथाको श्रीअद्वैत प्रभुके श्रीमुखसे सुनकर वर्णन किया है—

अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा।
सत्य सत्य सत्य इथे नाहिक अन्यथा ॥
शुनिते ए सब कथा जार प्रीत नय।
से अधम अद्वैतेर अदृश्य निश्चय ॥
हरि-शङ्करेर जेन प्रीत सत्य कथा।
अवुध प्राकृतगणे ना बूझे सर्वथा ॥
एकेर अप्रीते हय दोहाँर अप्रीत।
हरि-हरे जेन—तेन चैतन्य-अद्वैत ॥
निरवधि अद्वैत ए सब कथा कय।
जगतेर त्राण लागि कृपालु हृदय ॥
अद्वैतेर वाक्य बूझिवार शक्ति आर।
जानिह ईश्वर सङ्गे भेद नाहि तार ॥

चै. भा. अं. १०. ८१-८६

तत्पश्चात् उन्होंने प्रभुके श्रीअद्वैत भवनकी भोजन-लीलाके रङ्गके श्रवणकी फलश्रुति लिखी है—

भक्ति करि जे शुनिये ए सब आख्यान।
कृष्णे भक्ति हय तार सर्वत्र कल्याण ॥

चै. भा. अं. १०.८

दामोदर पण्डित और प्रभु

दामोदर पण्डित प्रभुके साथ नीलाचलमें रहते थे। बीच-बीचमें नवद्वीप जाकर शचीमाताको प्रभुका समाचार सुनाते थे। प्रभु उनके हाथ माताके लिए प्रसाद भेजते थे, वस्त्र भेजते थे। शचीमाता भी दामोदर पण्डितके हाथों अपने निमाईचाँदके

लिए अपने घरसे भोज्य वस्तु तैयार करके भेजती थी। श्रीमती विष्णुप्रिया देवी और शचीमाता दोनों मिलकर प्रभुको जो वस्तु पसन्द थी वे ही तैयार करके भेजती थीं। दामोदर पण्डित परम विरक्त वैष्णव थे, वे निरपेक्ष आदमी थे, और प्रभुके एकान्त भक्त थे। प्रभुने नवीन वयसमें संन्यास ग्रहण किया था, वे यतिधर्मकी जिससे रक्षा कर सकें, उसके लिए दामोदर पण्डित विशेष सावधान रहते थे। इस कारण प्रभु उनको विशेष रूपसे मानते थे। वह भी नदियाके भक्तवृन्दके साथ पुनः नीलाचलमें आकर प्रभुकी सेवामें लग गये हैं।

एक दिन करुणामय प्रभुने दामोदर पण्डितको एकान्तमें बुलाकर माताका कुशल समाचार पूछा। शचीमाताकी सारी बातें दामोदर पण्डितने प्रभुके चरणोंमें निवेदन कर दिया। प्रभु भी उत्कण्ठित चित्तसे जननीकी एक-एक बात पूछने लगे। प्रभु चतुर शिरोमणि हैं। वे अपनी माताकी बात लेकर दामोदर पण्डितकी गौराङ्गजननी-भक्तिकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे गंभीरता पूर्वक बोले, "पण्डित, बतलाओ—तुम तो माँके पाससे आ रहे हो। उनमें क्या विष्णुभक्ति है? सच सच कहना।" प्रभुकी यह बात सुनकर दामोदर पण्डित क्रोधसे आपाद मस्तक जल गये। उनका सर्वाङ्ग थर-थर काँपने लगा। उनका मुखमण्डल रक्तवर्ण हो गया। क्रोधावेशमें उनके मुँहसे बात नहीं निकल रही है, तथापि उन्होंने प्रभुकी बातका उत्तर देनेके लिए [illegible]णपनसे चेष्टा की। उनके ओष्ठ काँपने लगे। [illegible]रक्त नयनसे दामोदर पण्डित प्रभुके श्रीवदनकी [illegible]र कठोरता पूर्वक देखकर बोले—

कि बलिला गोसाञि! आइर कि भक्ति आछे?
इहाओ जिज्ञासो प्रभु तुमि कोन काजे।
आइर प्रसादे से तोमार विष्णु भक्ति।
जत किछु तोमार, सकल तार शक्ति॥
जतेक तोमार विष्णुभक्तिर उदय।
आइर प्रसादे सब जानिह निश्चय॥
अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार।
जतेक आछये विष्णु भक्तिर विकार॥
क्षणेको आ[illegible]र देहे नाहिक विराम।
निरवधि श्रीवदने सबे कृष्णनाम॥
आइरो भक्तिर कथा जिज्ञासा गोसाञि।
'विष्णुभक्ति' जारे बोले, सेइ देख आइ॥
मूर्त्तिमन्त भक्ति आइ, कहिल तोमारे।
जानिआओ माया करि जिज्ञासा आमारे॥
प्राकृत शब्देओ जे वा बलिवेक 'आइ'।
आइ-शब्द प्रभावे ताहार दुःख नाइ॥

चै. भा. अं. १०.९५-१०२

दामोदर पण्डितके निर्भीक और निरपेक्ष स्नेह वचन सुनकर प्रभु विस्मययुक्त नेत्रोंसे उनके वदनकी ओर कुछ देर तक देखते रहे। उनके मुखसे माताकी महिमा सुनकर प्रभुके आनन्दकी सीमा न रही। वे प्रेमावेगमें दामोदर पण्डितको अपनी छातीसे लगाकर बारंबार प्रेमालिगन प्रदानकर कृतार्थ करने लगे। प्रभुके कमल-नयनसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित होने लगी वे प्रेम गद्‌गद कण्ठसे मधुर शब्दोंमें कहने लगे—

आजि दामोदर! तुमि आमारे किनिला।
मनेर वृत्तान्त सब आमारे कहिला॥
जत किछु विष्णुभक्ति सम्पत्ति आमार।
आइर प्रसादे सब—द्विधा नाहि आर॥
ताहान इच्छाय मुञि आछों पृथिवीते।
तान ऋण आमि किछु ना पारि शुधिते॥
आइ-स्थाने बद्ध आमि शुन दामोदर।
आइरे देखिते आमि आछि निरन्तर॥

चै. भा. अं. १०.१०५-१०८

अब दामोदर पण्डितका क्रोध दूर हो गया। वे प्रभुके श्रीमुखसे मातृमहिमा सुनकर प्रेमानन्दमें

अधीर होकर उनके चरणोंमें गिर पड़े। प्रभुके दोनों चरण-कमलको अपने हाथोंसे वक्षःस्थलमें दबाकर व्याकुलता पूर्वक रो पड़े। भक्तवत्सल प्रभुने दामोदर पण्डितको भूतलसे उठाकर पुनः गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

प्रभु ग्रामीण बातें नहीं करते थे। केवल 'कुशल' शब्दके बदले 'भक्ति' शब्दका व्यवहार करते थे। जिसमें भक्ति है, उसका सर्वत्र और सदा कुशल ही है, और जिसको भक्ति नहीं है उसे पद-पदपर अमङ्गल है। प्रभु जो 'कुशल' शब्दके बदले 'भक्ति' शब्दका व्यवहार करते थे,* उसमें एक विशेष गूढ़ मर्म था। श्रीविष्णुप्रिया देवी साक्षात् मूर्त्तिमती भक्तिदेवी है। श्रीविष्णुप्रियातत्त्व और भक्तितत्त्व एक ही विषय हैं। इसे प्रभु अपने मुखसे प्रकट नहीं कर सकते थे, अतएव श्रीअद्वैत प्रभुके श्रीमुखसे प्रियाजीके तत्त्वको प्रकट किया था। यह निगूढ़ तत्त्व श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटकमें श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है। इसकी विस्तृत व्याख्या श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी नवद्वीप लीला श्रीग्रन्थमें की गयी है। सर्वमङ्गला, साक्षात् भक्तिस्वरूपिणी श्रीविष्णुप्रिया देवी वैष्णवजननी और जीवोंकी भक्तिदायिनी हैं। वे जगन्माता जगदीश्वरी हैं। श्रीगौर भगवान् कलिके प्रच्छन्न अवतार हैं। श्रीकृष्ण भगवान् सर्वदा राधानामकी बाँसुरी बजाते थे, श्रीराधिकाके गुणगानमें दिन-रात मत्त रहते थे। कलिके प्रच्छन्न अवतार श्रीगौराङ्ग सुन्दर भक्तिके नामका डंक्का बजाते हैं, भक्तिकी महिमा दिन-रात गाते हैं। क्योंकि भक्ति ही उनकी स्वरूप शक्ति है। उसी भक्तिकी मूर्त्ति इस अवतारमें श्रीविष्णुप्रिया देवी हैं। भक्तितत्त्व और भगवत्तत्त्वकी स्वरूप-शक्तिविशेष जो ह्लादिनी, सन्धिनी और संवित् तीन शक्तियाँ हैं, इनकी समष्टि ही श्रीगौराङ्गावतारमें देवी विष्णुप्रिया हैं। इसी कारण श्रीगौर भगवान्ने कलियुगमें निज स्वरूप-शक्ति भक्तिकी प्रधानता बढ़ायी है। हमारे प्रभुने संन्यास ग्रहण किया है, श्रीविष्णुप्रिया देवीका नाम नहीं ले सकते हैं, इसी कारण भक्तिका नाम लेकर दिन-रात प्रियाजीको स्मरण करते हैं।

"भक्ति बिना जिज्ञासा ना करे प्रभु आर।'

चै. भा. अं. १०.१२७

"भक्ति जार नाहि, तार सर्व अमङ्गल॥"

चै. भा. अं. १०.११४

"भक्ति स्थाने अपराध दरशन बाध।"

ये सब श्रीमुखके वाक्य हैं।

दामोदर पण्डित और शचीमाताकी बात हो रही थी। प्रभुकी इच्छासे यहाँ श्रीविष्णुप्रियाकी चर्चा शुरू हो गयी। क्योंकि दामोदर पण्डित नवद्वीपसे आये थे। प्रभु उनसे माताकी बात पूछ रहे थे, प्रियाजीकी बात पूछ नहीं सकते थे। मनकी बात मनमें ही दबाकर केवल मर्मपीड़ा भोग रहे थे। उनकी मर्मव्यथा समझने वाला क्या कोई न था? भक्ति ही भगवान्का एकमात्र निजजन होता है, तथा भगवान् भक्त के जीवन सर्वस्व होते हैं। भगवान् भक्त-हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे अधिष्ठान करते हैं, और भगवान्के हृदयमें भक्तका चिरनिवास निर्दिष्ट है।* भक्तवत्सल प्रभुके मनकी बात भक्तके सामने गुप्त न रख सके। श्रीभगवान्के पेटकी बात भक्तने खींचकर बाहर निकाल लिया। इससे भक्तके

कुशल शब्देर अर्थ व्यक्त करिबारे।
भक्ति आछे करि वार्त्ता लयेन सभारे॥

चै. भा. अं. १०-११२

* साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

श्री. म. भा. ९.४.६८

मनमें अपार आनन्द हुआ, भगवान्की मनोव्यथा कुछ कम हुई। यदि कहो कि भगवान्की मनोव्यथा कैसी ? तो वे जब नरवपु धारण करके नरलीला करनेके लिए भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं तो उनको सब कुछ होता है। यदि मनोव्यथा न होती तो अपनी माताको लक्ष्य करके वे क्यों कहते ?—

ताँर सेवा छाँड़ि आमि करियाछि संन्यास।
धर्म्म नहे, कैल आमि निज धर्मनाश॥
ताँर प्रेमवश आमि, ताँर सेवा धर्म्म।
ताहा छाड़ि करियाछि बातुलेर कर्म॥
वातुल बालकेर माता नाहिं लय दोष।
एत जानि माता मोरे जानिबे सन्तोष॥
कि काज संन्यासे मोर प्रेम निजधन।
जे काले संन्यास कैल, छन्न हैल मन॥

चै. च. म. १५. ४९-५२

श्रीभगवान्की नरलीला सर्वोत्तम है। उनकी इस सर्वोत्तम लीलाके प्रत्येक अङ्ग भक्तोंके लिए स्मरणीय, साधनीय, आलोचनीय और आस्वादनीय हैं। श्रीभगवान्की नरलीलामें मनोव्यथा-लीला-कथाका आस्वादन करनेपर ही भव-यन्त्रणा दूर होती है, मनकी सारी व्यथा शान्त होती है। सर्वव्यथाहारी भगवान्की मनोव्यथा केवल जीवोद्धारके लिए होती है। श्रीगौर भगवान्की यह मनोव्यथा केवल पापी-तापी जीवके लिए है। कलिके जीव बड़े ही दुःखी और सन्तप्त हैं। कलिपावनावतार श्रीगौराङ्ग सुन्दर इन दुःखी-तापी जीवोंके दुःख-ताप और नित्यके हाय-हायको दूर करनेके लिए जो करुण रसकी लीलाएँ कर गये हैं, उनसे महापातकीका पाषाण हृदय भी द्रवित हो उठता है। भगवत्-लीलाके पढ़ने या सुननेमें हृदय द्रवित न हो तो उस हृदयमें श्रीभगवान्का दिव्य आसन प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। श्रीभगवान्के लीलावतार इसी उद्देश्यसे भूतलमें अवतीर्ण होकर जीवोद्धार करनेके लिए करुण रसकी लीला प्रकट करते हैं।

दामोदर पण्डितने प्रभुको एकान्तमें ले जाकर कुछ कहा, उसे कोई जान न सका। यह सब भक्त भगवान्का लीला रहस्य था। प्रभु जब अपनी भक्तगोष्ठीमें आकर बैठे, तब दामोदर पण्डित वहाँ आकर सबके सामने आईकी महिमा कीर्तन करने लगे। सब भक्तगण निविष्ट चित्तसे कान लगाकर सुनने लगे। वे प्रभुके चन्द्रवदनकी ओर देखकर हँसते-हँसते कहने लगे, "हे प्रभु ! तुम्हारी दुःखिनी माताने तुमको स्मरण किया है। वे तुम्हारे विरह-सिन्धुमें निरन्तर निमग्न रहती हैं। वे कृष्णप्रेममें उन्मादिनी हो गयी हैं। वे सर्वदा हरिनाम रसमें मग्न रहती हैं, और तुम्हारे श्रीमुखचन्द्रका ध्यान करती हैं। मैंने उनकी जैसी अपूर्व और अश्रुतपूर्व विष्णुभक्ति देखी है, वह श्रीगौराङ्ग जननीके सिवा और किसीमें नहीं हो सकती। उनके प्रसादसे ही तुम्हारी यह विष्णु-भक्ति हैं। तुम्हारे भीतर मैं जो कुछ देखता हूँ, वह सब मातृभक्तिके बलसे ही तुम्हें मिला है। हे प्रभु ! तुम्हारी माताकी कोई उपमा नहीं है।"

प्रभु बैठे हुए थे। मातृमहिमा-कीर्तनगान श्रवण करके उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा, उनके नयन द्वयसे प्रेमाश्रुधारा बह चली। उन्होंने हुङ्कार गर्जन करते हुए, उछलकर दामोदर पण्डितको हृदयसे लगाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया। भक्तवृन्दने 'जय शचीमाताकी जय, जय शचीमाताकी जय' की ध्वनिसे दिगन्तको कम्पायमान कर दिया। प्रभुके मन्दिरमें प्रेमानन्दका तरङ्ग उठा। प्रेमावेगमें प्रभुके मुखसे बात न निकल सकी। स्नेहमयी दुःखिनी माताकी बात उन्हें याद आयी। वे प्रेमानन्दमें जड़वत् निष्पन्द होकर भूतल पर पड़े रहे।

श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईंको श्रीनवद्वीप-धाममें श्रीगौराङ्ग-जननीके चरणोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उस उपलक्ष्यमें कवि

कर्णपूर गोस्वामीने अपने श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्यमें आईकी महिमाका कीर्तन किया है—

जननी जगतीत्रयस्य या
पृथिवीकोटिसहिष्णुरञ्जसा ।
सुरनद्यभिकाति पावनी सतत
स्नेहमयी महाशया ॥
ननु भक्तिसुधातनुमयी किं
प्रियता किं ननु माधुरीमयी ।
तव वेक्ष्य तदैव भिक्षया सा
सुतभावादवृणोन्महामतिम् ॥

श्री चै. च. महाकाव्य १३.११७,११८

अर्थात् जो त्रिजगत्की जननी हैं, जो कोटि पृथिवीका भार सहन कर सकती हैं, सुरनदी गङ्गासे भी जो अधिक पवित्रकारिणी हैं, जो सतत् स्नेहमयी और महाशया और भक्तिरूप सुधाकी मूर्त्ति हैं, वे कितनी प्रियकारिणी, अथवा माधुर्यमयी हैं, यह कोई निश्चय नहीं कर सकता, उन जगन्माता शचीदेवीने अपने हाथसे सन्तान भावसे भिक्षा ग्रहण करायी थी।

प्रभु मातृ-महिमाका कीर्तन निविष्ट चित्तसे सुन रहे थे। उनके कनककेतकी सदृश नयनद्वयसे झरझर प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। वे सिर नीचा करके बैठे थे। जिस स्थान पर बैठे थे वह स्थान अश्रुजलसे कर्दमाक्त हो गया।

वे धीरे-धीरे उठे, सब भक्तवृन्दके प्रति करुण नयनसे देखकर दोनों कोमल करपल्लव जोड़कर मुँह ऊँचा करके मातृभक्ति शिरोमणि हमारे प्रभु जननीकी स्तुति करने लगे। श्रीगौर-भगवान् मातृ उद्देश्यसे हाथ जोड़कर बोले—माँ री !

तुमि विश्व जननी केवल भक्तमयी ।
तोमारे से गुणातीत सत्त्वरूपा कहि ॥
तुमि यदि शुभ दृष्टि कर जीव प्रति ।
तबे से जीवेर हय कृष्णे रतिमति ॥
तुमि जे केवल मूर्त्तिमती विष्णुभक्ति ।
जाहा हैते सब हय तुमि सेइ शक्ति ॥
तोमार प्रभाव बलिवार शक्तिकार ।
सभार हृदये पूर्ण बसति तोमार ॥
विष्णुभक्ति जे किछु हइयाछे आमार ।
केवल एकान्त सब प्रसाद तोमार ॥
कोटि दास दासेरो से सम्बन्धे तोमार ।
सेइ जन प्राण हैते बल्लभ आमार ॥
वारेको जे जन तोमा करिबे स्मरण ।
तार कभू नहिवेक संसार बन्धन ॥
सकल पवित्र करे जे गन्ध तुलसी ।
तानाओ हवेन धन्य तोमारे परशि ॥
तुमि जत करियाछ आमार पालन ।
आमार शक्तिये ताहा ना हय शोधन ॥
दण्डे-दण्डे जत स्नेह करिला आमारे ।
तोमार सद्गुण्य से ताहार प्रतिकारे ॥

चै. भा. अं. ४.२४१-२४३, २४७, २५३-२५८

इस प्रकारसे मातृस्तव करके मातृभक्त प्रभुने वहाँ दण्डवत् होकर मातृचरणके उद्देश्यसे कोटि-कोटि प्रणिपात किया। भक्तवृन्द उच्च स्वरसे 'शचीमाताकी जय' 'जय शचीनन्दनकी जय' की वारम्वार जय ध्वनि करने लगे। नदियाके भक्तवृन्द एकत्रित होकर श्रीगौर भगवान्के चरणोंमें गिरकर वन्दना करने लगे—

"वन्दे तं श्रीगौराङ्गं मातृभक्तशिरोमणिम् ।"

केशव भारती और प्रभु, ज्ञानसे भक्तिका श्रेष्ठत्व

प्रभुके संन्यास-गुरु श्रीपाद केशव भारती नदियाके भक्तवृन्दके साथ नीलाचलमें आये थे अथवा वे नीलाचलमें पहलेसे थे, इसका कोई विशेष विवरण ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। प्रभु जब संन्यास ग्रहण करके कण्टक नगरीसे श्रीवृन्दावनकी ओर प्रेमावेगमें भागे थे, उस समय श्रीपाद केशव भारती उनके साथ-साथ प्रेमोन्मत्त भावमें कुछ दूर गये थे। परन्तु वे प्रभुके साथ उस समय नीलाचल आये या

नहीं, इसका सटीक विवरण ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। परन्तु वे कुछ दिन नीलाचलमें रहे, यह वृत्तान्त श्रीचैतन्य भागवतमें वर्णित है। नदियाके भक्तवृन्द जब दूसरी वार नीलाचल आये, उस समय प्रभुके संन्यास-गुरु श्रीपाद केशव भारती नीलाचलमें थे, और उनके साथ प्रभुकी भक्ति और ज्ञानके सम्बन्धमें एक लीला कथा श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने वर्णन की है। प्रभुकी वह लीलाकथा यहाँ वर्णनकी जा रही है।

प्रभु नीलाचलमें अपने वासापर एक दिन बैठे थे। वहाँ सभी भक्तवृन्द उपस्थित थे। श्रीपाद केशव भारती प्रभुके सामने बैठे थे। प्रभुने भक्तिपूर्वक उनके चरणोंकी वन्दना करके उनसे एक प्रश्न पूछा, "श्रीपाद ! ज्ञान और भक्ति, उन दोनोंमें क्या श्रेष्ठ है, विचार करके कहिये ?" श्रीपाद भारतीजीने मन ही मन विचार करके उत्तर दिया, "ज्ञानसे भक्तिका महत्व अधिक है।" प्रभुने पूछा— "क्यों ? तब संन्यासी लोग ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों कहते हैं ? भक्तिकी अपेक्षा ज्ञान कैसे श्रेष्ठ है, यह शास्त्र प्रमाण देकर समझाइये।" तब श्रीपाद केशव भारती बोले, "संन्यासी लोग जो ज्ञानको श्रेष्ठ कहते हैं, वे शास्त्रके यथार्थ मर्मको ग्रहण नहीं कर पाते। महाजनगण जिस पथसे गये हैं, वह वेद और शास्त्र सम्मत पथ है। जो बुद्धिहीन हैं, वे ही महाजनके द्वारा प्रदर्शित पथको त्यागकर अन्य पथसे गमन करते हैं। इतना कहकर वे कुछ उत्तेजित होकर बोले—

ब्रह्मा शिव नारद प्रह्लाद शुक।
सनकादि नन्द युधिष्ठिर - पञ्चरूप॥
प्रियव्रत, पृथु, ध्रुव, अक्रूर, उद्धव।
'महाजन' हेन नाम जत आछे सब॥
भक्ति से मागेन सभे ईश्वर-चरणे।
ज्ञान बड़ हैले, भक्ति माँगे कि कारणे॥
विनि विचारिया कि से सब महाजन।
मुक्ति छाड़ि भक्ति केने मागे अनुक्षण॥
सभार वचन एइ पुराणे प्रमाण।
कि वर मागिला ब्रह्मा ईश्वरेर स्थान॥

चै० भा० अं० १०.१३७-१४१

इतना कहकर भारतीजीने श्रीमद्भागवतका निम्नाङ्कित ब्रह्माजीकी उक्तिका श्लोक पाठ किया—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभाग्ये
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहं मे कोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पाद पल्लवम्॥

श्रीम. भा. १०.१४.३०

अर्थ—ब्रह्माने भगवान्‌से कहा, "हे नाथ ! मेरे उस सौभाग्यका उदय हो, जिस सौभाग्यके प्रसादसे मैं ब्रह्मयोनिमें अथवा पशु-पक्षी आदि किसी भी जन्ममें रहकर तुम्हारे अनुगत जनोंमें-से एक जन होकर तुम्हारे चरण-कमलकी सेवा कर सकूँ।"

तत्पश्चात् उन्होंने विष्णु पुराणका श्लोक पाठ किया। यथा—

नाथ ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥

वि० पु० १.२०.१८

अर्थ—प्रह्लादने भगवान्‌से कहा, "नाथ ! मैं सहस्रों योनियोंमें जिस-जिस योनिमें जन्म ग्रहण करूँ, हे अच्युत ! उन-उन योनियोंमें निश्चय रूपसे च्युतिहीन होकर मैं सदा तेरी भक्ति करूँ।"

भारतीजी कह रहे हैं और प्रभु एकाग्रचित्तसे सुन रहे हैं। भक्तवृन्द दोनोंके मुँहकी ओंर एकटक देख रहे हैं। प्रभुका श्रीवदन हर्षोत्फुल्ल है, अति प्रसन्न है। वे मानो आनन्दके समुद्रमें डूब रहे हैं, श्रीपाद केशव भारतीका वदन परम ज्योतिपूर्ण है। वे परम तेजस्विताके साथ भक्ति-तत्त्वकी व्याख्या कर रहे हैं। प्रभुके संन्यास-गुरु वक्ता हैं, और स्वयं भगवान् श्रोता हैं। वहाँ श्रद्धा-भक्तिका स्रोत

प्रवाहित हो रहा है। अन्य श्रोतागण भक्तिरस-समुद्रके तरङ्गोंमें पड़कर डुब्की खा रहे हैं।

श्रीपाद केशव भारतीने श्रीमद्भागवतका एक और श्लोक उद्धृत किया। यथा—

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।
मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे॥

श्रीम. भा. १०.४७.६७

अर्थ—व्रजके गोपगण उद्धवसे कहते हैं—जगदीश्वरकी इच्छासे हम कर्मानुसार जिस किसी योनिमें क्यों न भ्रमण करें, हमारे मङ्गल अनुष्ठान तथा दानादि शुभ कर्मोंके प्रभावसे परमेश्वर श्रीकृष्णमें ही हमारा अनुराग हो।

इस प्रकार भक्तिकी प्रधानताका वर्णन करके उन्होंने अन्तमें कहा—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्था॥

म. भा. वनपर्व ३१३.११७

अर्थात् तर्ककी स्थिरता नहीं है, श्रुतियाँ विभिन्न हैं, ऐसा कोई ऋषि नहीं, जिसका मत भिन्न न हो, धर्मका तत्त्व गिरिकी गुफाके समान दुर्गम स्थानमें अवस्थित है। अतएव महाजन जिस मार्गसे गये हैं, वही प्रकृत पथ है।

प्रभु अब तक स्थिर बैठकर गुरुमुखसे भक्तितत्त्वके प्राधान्यकी व्याख्या सुन रहे थे। वे प्रेमानन्दमें विह्वल होकर उठे, अब स्थिर न रह सके। वे उच्च हरिध्वनि करके हुङ्कार गर्जन करते हुए उठकर गुरुके चरणोंको धारण करके बोले, "गुरुदेव! आपकी कृपाके बलसे मैं और भी कुछ दिन इस भूतलपर रहूँगा। आज यदि आप भक्तिकी अपेक्षा ज्ञानको बड़ा कहते, तो निश्चय ही मैं समुद्रके जलमें कूदकर मर जाता।" शिष्य गुरु प्रेमानन्दसे प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध हो गये। श्रीपाद केशव भारतीने मन ही मन, प्रेमावेशमें, प्रभुके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार किया।

गुरुओ प्रभुरे नमस्करे प्रीतमने।

चै. भा. अं. १०.१४८

प्रभु प्रेमानन्दमें विह्वल होकर बोले—

—"जार मुखे नाहि भक्तिकथा।
तप शिखा-सूत्र-त्याग तार सब व्यथा॥

चै. भा. अं. १०.१४९

यह सुनकर भक्तवृन्द उच्च स्वरसे हरिध्वनि करने लगे। प्रभुके श्रीवदनमें भक्तिकी चर्चाके सिवा और कोई चर्चा न थी। इसमें एक निगूढ़ रहस्य था। सर्वदा ही भक्तिरसमय विग्रह हमारे प्रभु भक्तिरसमें मत्त रहते थे। प्रेमानन्दमें भक्तवृन्दको रात-दिनका ज्ञान नहीं रहता था। सदा ही वे लोग प्रभुके सङ्ग भक्तिरसमें मत्त रहकर नृत्य कीर्तन करते थे।

कृपालु प्रियतम पाठक वृन्द! अब भक्तितत्त्व समझनेकी चेष्टा करें। श्रीगौराङ्ग-गृहिणीके श्रीपाद पद्मका स्मरण करके, गौरवक्षविलासिनीके शरणापन्न होकर, श्रीविष्णुप्रिया-वल्लभकी कृपा याचना करके परम दयालु श्रीनिताईचाँदके चरणोंका ध्यान करके आर्त्त-चित्त होकर प्राणपनसे, एकान्तमें बैठकर दो बूंद अश्रुजल विसर्जन करें, और हाथ जोड़कर प्रार्थना करें, "दयामयि नवद्वीपेश्वरि! कृपामयि गौरवक्ष-विलासिनि जगत् जननि! पतितपावनी अधमतारिणि माँ! पतित अधमके प्रति कृपा करके उसके मनमें अपने प्रकृत-तत्त्वकी स्फूर्त्ति कर दो। माँ! अपना तत्त्व तुम स्वयं ही जाननी हो और जानते हैं नदियाके वे ब्राह्मण बालक। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ परामर्श करके महाविष्णुके अवतार श्रीअद्वैत प्रभुके मुखसे स्वयं प्रभुने ही तुम्हारे स्वरूप तत्त्वको प्रकट किया है। दयामयी माँ! तुम नवद्वीपमयी

नवद्वीपेश्वरी हो, तुम गौर शक्ति, और गौरभक्तिका मूलमन्त्र हो। माँ ! तुम्हारे कृपा-कटाक्षके बिना तुम्हारे तत्त्वको हृदयङ्गम करना दुःसाध्य है। कृपामयि माँ ! तुम्हारी कृपा अहैतुकी हैं। कलिके अधम-पतित-जीवोद्धारकार्यमें तुम श्रीश्रीगौर भगवान्‌की प्रधान सहायक हो। माँ ! तुम्हारी सहायतासे उन्होंने भुवनमङ्गल हरिनामका जगतमें प्रचार करके कलिग्रस्त जीवोंकी त्रिविध तापकी ज्वालाको शमन किया है। दयामयि माँ ! तुम गौरप्रेमदात्री हो, गौरभक्तिदात्री हो। तुम श्रीगौराङ्गकी शक्ति हो, मूर्तिमती श्रीगौराङ्गभक्ति हो। माँ ! श्रीगौराङ्ग भजनमें मति दो। जिससे श्रीगौराङ्गनाममें इस जीवाधमकी रति मति हो। इसके सिवा यह और कुछ नहीं चाहता। अन्तकालमें उस विषम अवसर पर जिससे 'हा गौराङ्ग' कहकर इस नश्वर शरीरका त्याग करूँ, यह आशीर्वाद दो। इसके सिवा यह और कुछ नहीं चाहता।

"गौराङ्ग, बलिया जीवन
त्यजिब एबड़ उच्च आशा।
हबे कि कपाले ए हेन सुदिन
हरि जे करम नाशा॥

श्रीविष्णुप्रिया तत्त्व अति निगूढ़ है, कलिहत जीवने अभी तक श्रीगौराङ्ग तत्त्वको ठीक-ठीक नहीं समझा। श्रीविष्णुप्रिया तत्त्व तो दूरकी बात है। साक्षात् भक्ति-स्वरूपिणी श्रीश्रीविष्णुप्रियादेवीके कृपा कटाक्षके बिना उनके तत्त्वको हृदयङ्गम करना दुष्कर है। इसीसे कहता हूँ।

विष्णुप्रिया ठाकुरानीर चरण धरिया।
कान्द सबे मूढ़ जीव ! दिवस रातिया॥
मूढ़ जीव ! सार कर मायेर चरण।
अनायासे लभ्य हबे भकति रतन॥
गौरप्रेम सुधा-सिन्धु अपार्थिव धन।
ताहार भण्डारी हन सुता-सनातन॥
गौराङ्ग-घरणी तिहो जगत-जननी।
दयावती मातृमूर्त्ति नारी-शिरोमणि॥
श्रीगौराङ्ग, कृपालाभ यदि इच्छा कर।
दास हरिदास कहे मातृ पद धर॥

इस कलियुगमें श्रीमती विष्णुप्रिया देवी मूर्त्तिमती भक्तिदेवी हैं। भक्तिदेवीकी स्वरूप मूर्त्ति यदि कोई देखना चाहे तो उसे गौरशक्ति श्रीविष्णुप्रिया देवीका ध्यान करना चाहिये।

उन्नीसवाँ अध्याय

नदियाके भक्तगणकी विदाई और नीलाचलमें आदि गौरसंकीर्तन यज्ञ

श्रीचैतन्य नारायण करुणा सागर।
दीन दुःखितेर बन्धु मोरे दया कर॥

श्रीअद्वैत मुखनिःसृत आदि गौर कीर्तन

वैष्णव-गृहिणीगणसे मिलन और विदा

नदियाके भक्तोंने पूर्व वर्षके समान इस वर्ष भी चातुर्मास्य किया। प्रभुको सबने अपने-अपने बासा पर निमन्त्रित करके उत्तम-उत्तम भोज्य वस्तु देकर भिक्षा करायी। आश्विन मासमें नदियाके भक्तगण नवद्वीप लौटे। इस वर्ष उनके साथ स्त्री पुत्रादि परिवार भी था। प्रभुके बासा पर सब लोग विदा होने के लिए चले। पूर्व वर्षके समान प्रभुने भक्तगण को एक-एक करके आलिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए विदा किया। विदाके समयका करुण दृश्य देखकर नीलाचलवासी नर-नारीका हृदय प्रेमरससे आर्द्र हो गया। प्रभुके और नदियाके भक्तवृन्दके नयन-जलसे प्रेमनदी बह चली। उसका तरङ्ग सारे नीलाचलमें व्याप्त हो गया। सभी नीलाचलवासी व्याकुलता पूर्वक क्रन्दन करने लगे।

वैष्णव गृहिणीगण प्रभुको देखनेके लिए व्याकुल हो उठीं। अद्वैत प्रभुको यह सूचना दी गयी। उन्होंने प्रभुसे कुछ चुपकेसे कहा। भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान् अपने वासासे उठकर अद्वैत भवनमें उपस्थित हुए। सीता ठकुरानी, मालिनी देवी, सर्वजया देवी, शिवानन्द सेनकी गृहिणी आदि नदियावासिनी मातृ-स्थानीया सब वैष्णवी वहाँ इकट्ठी होकर प्रभुके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थी। शुभ शङ्ख बजाकर तथा मङ्गल हुलू ध्वनि देकर उन्होंने श्रीश्रीनवद्वीप-चन्द्रका शुभ स्वागत किया। प्रभु मातृ उद्देश्यसे गुरुजनको दण्डवत् प्रणाम करके दिव्यासन पर बैठे।

नदियाके भक्तगणके साथ इस यात्रामें श्रीश्रीविष्णु-प्रियाकी सखी काञ्चनमाला आयी है, यह वर्णन पहिले आचुका है। मातृ-स्थानीया वैष्णवगृहणीके साथ प्रभुके सम्मुख उपस्थित होनेका अवसर काञ्चनमालाने किसी प्रकार प्राप्त कर लिया। उस समय जैसी परिस्थिति बनी, उसका वर्णन नदिया लौटकर काञ्चनमालाने अपनी सखी विष्णुप्रियाके सम्मुख किया वह बड़ा ही करूण है। बंगलाका वह पद यहाँ उद्धत किया जा रहा है—

कनइ साधिनु, कतइ काँदिनु,
गौरार चरण धरे।
एक बार एसे, नदीया नगरे,
देखा दिये जाओ तारे॥
नाम ना लइनु, पाछे नाहि शुने,
कथागुलि अबलार।
सावधाने ताँरे, कत ना वलिनु
नदीयार समाचार॥
सकलि शुनिल, कत-ना पुछिल
छाड़ा सुधु एक धनि।

(ताँर) मुखेर भावे ते, बुझिलाम ताँरे,
चतुरेर शिरोमणि ॥
निजने पाइया, भये भये आमि,
विरले पूछिनु ताँरे ।
नारीर चातुरी, खेलिनु तखन,
सखीर प्रबोध तरे ॥
पूछिलाम आमि, ओहे उदासीन,
विष्णु भक्त बड़ नुमि ।
बाञ्छा बड़ मोर विष्णुनाम-सुधा,
तव मुखे शुनि आमि ॥
नदीयाय आछे, अभागिनी एक,
नाम तार विष्णुप्रिया ।
सखि तार आमि, पाठायेछे मोरे,
माथार दिव्य दिया ॥
शुनिते नामेर, आखर चारिटि,
तोमार वदन-चन्द्रे ।
बल देखि यति, सेइ से नामटि,
ललित मधुर छन्दे ॥
आर किछु नाइ, बलिते आमार,
(तार) नाम करो एक बार ।
पुराओ वासना, ओहे न्यासीवर,
मन-साध अबलार ॥

तखन—
चमकि उठिल, सखीर नामेते,
विनत करिल आँखि ।
आर ना चाहिल, कथा ना कहिल,
मरमे हइल दुखी ॥
(आमि) चलिया आइनु, धीरे धीरे धीरे,
(तार) किछु नाहि बलिलाम ।
सखिर नामेर, मोहिनी शकति,
भाल करि बुझिलाम ॥
भणे हरिदासी, काञ्जना दिदि,
(तोमार) सखीरे जाइया कह ।
गौर-हृदये, से रूपेर खनि,
जागितेछे अहरह ॥

उन्होंने अपनी मौसी सर्वजया देवीके साथ माताके सम्बन्धमें दो-एक बातें की । स्नेहमयी जननीका नाम लेते ही मातृभक्त प्रभुके कमलनयनसे झर-झर अश्रुधारा बहने लगी । उनके नयनजलसे भूतल सिक्त हो गया । वैष्णव गृहिणीगण प्रभुको इस दशामें देखकर उच्च स्वरसे उन्मादिनीके समान क्रन्दन करने लगीं । उनकी लज्जाका बाँध एकवारगी टूट गया । करुणामय प्रभु प्रेम और करुणाका स्रोत बहाकर नदियाकी भक्तिमती वैष्णव गृहिणीगणसे विदा लेकर 'हरे कृष्ण' कहते हुए विषण्ण मनसे अपने बासा पर लौट गये ।

श्रीनित्यानन्दसे प्रभुकी एकान्त वार्ता

नवद्वीप-यात्राके लिए सभी तैयार हो गये हैं । उसी समय श्रीगौरभगवान्‌ने श्रीनिताईचाँदको अकेले बुलाकर कुछ कहा । प्रभुके इशारेसे वहाँ श्रीअद्वैत प्रभु भी आकर उपस्थित हो गये थे। एकान्तमें इन तीनोंने क्या बातें की, क्या युक्ति सोची—इसे कोई जान न सका । कविराज गोस्वामीने लिखा है—

चातुर्मास्य-अन्त्ये पुन नित्यानन्द लैया ।
किवा युक्ति करे नित्य निभृते बसिया ॥
आचार्य गोसाञिके प्रभु कहे ठारे ठोरे ।
आचार्य तर्जा पड़े केह बूझिते ना पारे ॥
ताँर मुख देखि हासे शचीर नन्दन ।
अङ्गीकार जानि आचार्य करेन नर्त्तन ॥
किवा प्रार्थना, किवा आज्ञा, केह ना बूझिल ।
आलिङ्गन करि प्रभु ताँरे विदाय दिल ॥

चै. च. म. १६.५८-६१

यह जो जटिल निगूढ़ रहस्यमय कुछ बातें हैं, इनका मर्म समझनेकी शक्ति मुझमें नहीं हैं । कविराज गोस्वामी ने स्वयं लिखा है—

चैतन्य-चन्द्रेर लीला—अगाध गम्भीर ।
प्रवेश करिते नारि, स्पर्शि रहि तीर ॥

चै० च० म० ६.३३५

तब औरोंकी क्या बात ? उन्होंने यह भी लिखा है कि,

अनन्त चैतन्य कथा—कहिते ना जानि।
लोभे लज्जा खाञा तार करि टानाटानि ॥

चै. च. म. ६.३३१

जीवाधम ग्रन्थकार कीटानुकीट है। लीला लेखक महाजनगणका उच्छिष्ट भोजी है। उनके चरणचिह्नोंका अनुसरण करके, उनसे कृपाभिक्षा करके, उनके चरणोंका ध्यान करके, लज्जा छोड़कर कुछ कहनेका लोभ हुआ है। यह लोभ दुःसाहसमात्र है, यह जानता-समझाता हूँ। परन्तु इसे छोड़ नहीं पाता। दयामय प्रभुने मेरे मनमें जो भाव उठाया है, उसे लिखता हूँ। कृपालु पाठकवृन्द कृपा करके धृष्टता क्षमा करेंगे। गौरभक्तकी कृपा ही इस जीवाधमका एक संवल है। वे अपनी कृपासे वञ्चित न करें।

श्रीगौर भगवान्‌ने श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ एकान्तमें जो परामर्श किया, वह परम दयालु निताई चाँदके लिए बड़ी विषम बात थी। श्रीनिताई चाँद अवधूत संन्यासी हैं। बारह वर्षकी अवस्था तक वे माता-पिताके स्नेह बन्धनमें रहकर गृहत्यागी होकर सर्वतीर्थ भ्रमण करके प्रभुके साथ श्रीनवद्वीप धाममें मिले थे। अब प्रभु भी संन्यासी हैं और वे भी संन्यासी हैं। श्रीनिताई चाँद श्रींगौराङ्गके सिवा और कुछ नहीं जानते। श्रीगौराङ्ग सेवा उनके जीवनका व्रत है तथा श्रीगौराङ्ग नाम उनकी साधना है। उनकी हार्दिक कामना है, मनकी साध है कि वे रात दिन प्रभुके साथ रहें। गत वर्ष प्रभुने जो आदेश किया था, उससे वे अधमरा हो गये हैं। प्रभुने उनको गौड़ देशमें रहकर कलिग्रस्त जीवोंके उद्धारका कार्य करनेकी आज्ञा दी है। दूसरे भक्तोंके लिए उनका आदेश है कि वे प्रत्येक वर्ष रथ यात्राके अवसर पर नीलाचल आकर उनसे साक्षात्कार करें। परन्तु श्रीनिताई चाँदके लिए ऐसा आदेश न था। वे कभी-कभी कदाचित् नीलाचल आ सकते हैं। उनके वारंवार नीलाचल आनेसे जीवोद्धार-कार्यमें बाधा पड़ेगी, व्यर्थ समय नष्ट होगा। इसीकारण जीवबन्धु, कृपासिन्धु श्रीगौर भगवान्‌का अपने प्राणोंसे भी प्रियतम श्रीनिताई चाँदके लिए यह कठोर आदेश था। प्रभुभक्त श्रीनिताई चाँदने प्रभुके आदेशको सिर पर धारण कर लिया था, गौड़ देशमें जाकर वे जीवोद्धार कार्यके व्रती हो गये थे। परन्तु प्रभुको देखे बिना वे गौड़ देशमें एक दण्ड भी ठहर नहीं सकते थे। अतएव प्रभुकी मनाही होने पर भी वे इस वर्ष नदियाके भक्तवृन्दके साथ नीलाचलमें आये हैं।

चतुर चूड़ामणि सर्वज्ञ प्रभुने देखा कि उनको इसकी अपेक्षा और कठोर आदेश देना आवश्यक है। नदियाके प्रभुका अबतार जीवोंके उद्धारके लिए था, सब जीवोंको बिना विचारे नाम-प्रेम प्रदान करनेके लिए था। स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु निज-कार्य साधनके लिए अपने निज-जनके ऊपर विषम कठोरता करनेसे कुण्ठित नहीं होते। अपने पूर्व आदेशमें उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभुको अधमरा कर दिया था। इस बार जो आदेश करेंगे, उसके द्वारा उनका एकवारगी बधकर डालेंगे। इसीलिए श्रीगौर भगवान्‌ने उनको अकेले बुलाया, बुलाकर इस बार भी परम गम्भीर भावसे बोले।

नित्यानन्द कहे प्रभु—शुनह श्रीपाद।
एइ आमि मागि, तुमि करह प्रसाद ॥
प्रतिवर्ष नीलाचले तुमि ना आसिबा।
गौड़े रहि मोर इच्छा सफल करिबा ॥
ताहा सिद्धि करे हेन अन्य ना देखिये।
आमार दुष्कर कर्म तोमा हइते हये ॥

चै. च. म. १६.६२-६४

श्रीनिताई चाँदने सिर झुकाकर प्रभुके आदेशको सुना। कोई उत्तर नहीं दिया। प्रभु पुनः बोले, "श्रीपाद ! मैं तो संन्यासी हो गया हूँ, तुम भी यदि मुनिधर्म ग्रहण करके मेरे साथ व्यर्थ कालक्षेप

करोगे तो कलिके जीवकी क्या गति होगी ? क्या तुम पहलेकी सारी बातें भूल गये ? तुम्हारा और मेरा इस भूतलमें आगमन किस लिए हुआ है ? इसपर स्थिर चित्तसे विचार करके देखो । मेरे द्वारा जीवोद्धार कार्य सम्पन्न नहीं हुआ । मैं अपने प्रेममें विभोर होकर किधर बह रहा हूँ, यह मेरी समझमें नहीं आता । तुम भी यदि उदासीन होकर इस प्रकार मेरे सङ्ग अपने प्रेममें आप उन्मत्त रहोगे तो कलिके जीवोंकी क्या दशा होगी ?"

इतनी बात कहते-कहते प्रभु प्रेममें भरकर आकुल हो क्रन्दन करने लगे । जीवदु:खसे जीवबन्धु प्रभुका कोमल हृदय मानो विदीर्ण हो गया । कुछ देरके बाद आत्मसंवरण करके उन्होंने पुनः श्रीनित्यानन्द प्रभुके दोनों हाथ पकड़ कर अति कातर प्रेम गदद स्वरसें कहा, "श्रीपाद नित्यानत्द ! अपने अन्तर की व्यथा और मनकी बात तुम्हारे सिवा और किससे कहूँगा ? जीवके दु:खसे मेरा हृदय फटा जा रहा है । मेरा जो सञ्चित गुप्त धन था, उसको अकातर भावसे बाँटकर मैं निर्धन हो गया हूँ, तथापि कलिग्रस्त जीवका उद्धार नहीं हुआ । सबको प्रेमधन नहीं ,मिला । मैं अब जीवके सामने ऋणी होकर बँधा हुआ हूँ । क्योंकि उनके सामने मेरी प्रतिज्ञा है कि प्रेमदान करके उनका उद्धार करूँगा । तुम मुझको इस ऋणके बन्धनसे मुक्त करो । मेरे इस कार्यको सम्पन्न करनेकी शक्ति तुम्हारे सिवा और किसीमें नहीं है । मेरे द्वारा जो कार्य नहीं हुआ, वह तुम्हारे द्वारा होगा । श्रीपाद ! तुम गौड़ देश जाकर गृहस्थ धर्म पालन करो । तुम्हारे द्वारा और तुम्हारे परिवारके द्वारा कलिके जीवोंके उद्धारका कार्य सम्पन्न होगा, तो मैं भी तुम्हारे घरमें पुनः अवतीर्ण होऊँगा, और प्रेमभक्ति बितरण करूँगा ।"

चञ्चल निताई चाँद स्थिरता पूर्वक बैठकर एकाग्र मनसे प्रभुकी आदेश वाणी सुन रहे थे । जब प्रभुकी बात समाप्त हुई, तब उन्होंने समझा कि दयामय प्रभु इस वार उनका एक वारगी प्राणबध करनेके लिए बैठे हैं । आजन्म ब्रह्मचारी अवधूत यति सन्यासीको गृहस्थ बननेके लिए कहना, और उसका बध करना एक ही बात है । परन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभुमें दासाभिमान अत्यधिक था । श्रीगौर भगवान् उनके प्रभुथे, और वे उनके दास थे । दासका कर्त्तव्य है प्रभुकी आज्ञा पालन करना; इसके सिवा दासका और कोई कर्म नहीं है । श्रीगौराङ्ग-दास श्रीनिताई चाँदने बिना ननु-नच किये प्रभुके आदेश-को तत्काल शिरोधार्य कर लिया ।

उन्होंने हाथ जोड़कर रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया, "हे प्रभु ! मैं देह हूँ और तुम प्राण हो । देह और प्राण भिन्न नहीं होते । तुम इच्छामय स्वतन्त्र प्रभु हो । जो इच्छा हो वही करो । तुम जो करते हो उसीमें तुम्हारी अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव देख पाता हूँ । तुम्हारी जो इच्छा हुई है, मैं स्वच्छन्दतापूर्वक उसको पूर्ण करनेकी चेष्टा करूँगा । तुम्हारा आदेश मेरे लिए वेदवाणीसे भी बढ़कर है । हे प्रभु ! तुम क्रन्दन मत करो । तुम्हारी आँखोंमें आँसू देखने पर मेरा कलेजा फट जाता है । जीव-दु:खसे कातर होकर तुमने मुझको जो आदेश दिया है उसे मैं और मेरी गोष्ठी सदा आनन्दसे पालन करती रहेगी । तुम्हारी कृपासे कलिके जीव मधुर हरिनाम सुधा पान करेंगे । वे तुम्हारी कृपासे देवताओंसे भी बड़े हो जाँयगे ।"

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी बात सुनकर श्रीगौर भगवान्‌ने प्रेमानन्दमें गद्गद होकर उनको हृदयसे लगाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया । प्रभुके मनमें आज बड़ा उल्लास था । श्रीनित्यानन्द प्रभुने कलिके जीवोंके उद्धारके कार्य काभार ले लिया । उनके सिरका भार श्रीनिताई चाँदके सिर पर पड़ा । यह अत्यन्त गुरुतर भार था । श्रीनित्यानन्दके सिवा और कोई इस गुरुतर भारको ग्रहण नहीं कर सकता था । श्रीनिताई चाँदने प्रसन्न मुखसे प्रभुका आदेश शिरोधार्य करके श्रीगौर भगवान्‌के मनमें

जो आनन्द आज प्रदान किया, उस आनन्दसे हमारे प्रभु आनन्द-स्वरूप हो गये। श्रीनिताई चाँदका अद्‌भुत स्वार्थ-त्याग और अपूर्व दास्यभाव देखकर श्रीगौर भगवानका हृदय एक वारगी प्रेमरससे द्रवीभूत हो गया। वे प्रेममें भरकर श्रीनिताई चाँदको क्रोड़में भरकर बालकके समान रोने लगे। उनके श्रीमुखसे कोई बात बाहर न निकल सकी। प्रेमावेगमें उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

श्रीनिताई चाँद प्रभुके वक्ष: स्थलसे आलिङ्गन-मुक्त होकर अपने बहिर्वाससे उनके कमल-नयनके आँसू पोंछकर मृदु मधुर वचन बोले, "हे प्रभु! हे अनाथबन्धु! तुम अब रोना मत, तुम अपना कार्य करो, मैं तो उपलक्ष्य मात्र हूँ। अपना कार्य तुम स्वयं करोगे, मैं केवल तुम्हारे नामका प्रचार करूँगा। तुम्हारे नामकी महिमाके गुणसे कलिके जीव हरिनाम लेंगे, उनके चिर जीवनका हाहाकार दूर हो जायगा। कलिके जीवको मैं गौराङ्ग भजन सिखाऊँगा, हमारी गोष्ठी तुम्हारी कृपाके बलसे चाण्डाल पर्यंन्त तक हरिनामामृत वितरण करेगी। तुम्हारी शक्तिसे शक्तिशाली होकर वे जगद्‌गुरु बनेंगे। तुम निश्चिन्त होकर प्रेम रसका आस्वादन करो।"

प्रभुका रुदन रुक नहीं रहा था। उनके मुखसे बात नहीं निकलती थी, परन्तु नेत्रोंसे शतधारा प्रवाहित हो रही थी। मानो वे नेत्रोंके द्वारा अपने हृदयकी बात कह रहे थे, वे श्रीनित्यानन्द प्रभुकी ओर देखकर निरन्तर आँसू बहा रहे थे। श्रीनिताईचाँदके प्रसन्न मुख और प्रशान्त चित्तको देखकर प्रभु विस्मित और विह्वल हो उठे। उनको जो आदेश मिला था वह अति कठिन था, अत्यन्त निर्मम था। उसका पालन करनेमें उनका हृदय विदीर्ण हो जायगा, परन्तु प्रभुके एकान्त अनुरागी श्रीनिताईचाँदको इसकी तनिक भी परवा न थी। प्रभुका आदेश प्राप्त करनेमें उनको सुख था, चाहे वह आदेश कैसा ही हो। क्योंकि वे जानते थे कि प्रभु सदाके प्रभु हैं, दास सदा ही दास है। प्रभुकी आज्ञाका पालन ही दासका कार्य है, आज्ञामें फिर विचार कैसा? आज्ञा, सदा ही आज्ञा है। यही प्रकृत दास्यभाव है।

प्रभुने अब कुछ सुस्थिर होकर निताईचाँदसे एक बात कही। वह बात बड़ी ही निगूढ़ थी। निताईचाँदके दोनों हाथ पकड़कर मृदु मधुर वचनसे श्रीगौर भगवान बोले, "श्रीपाद! मैंने जो तुमको श्रीनीलाचल आनेसे मना किया है, इससे यह न समझना कि तुमको मेरा दर्शन न होगा। तुम जहाँ नृत्य करोगे और मेरी माता जहाँ मेरे लिए रसोई करेगी, निःसन्देह इन दोनों स्थानोंमें मैं उपस्थित रहूँगा, तुम लोग मुझे वहाँ ही देख पावोगे।"

प्रभुके श्रीमुखकी यह आश्वासन-वाणी सुनकर श्रीनिताईचाँद प्रेमानन्दमें भूतलपर धूलिमें लोटने-पोटने लगे। प्रेमावेशमें वे अधीर हो गये, उनको बाह्यज्ञान न रहा। इस अवसर पर सुयोग पाकर प्रभुने उनकी चरणधूलि ले ली।

श्रीनिताईचाँदकी चरण-धूलिकी लूट मच गयी। श्रीअद्वैतप्रभु कुछ दूर खड़े थे, उन्होंने भी आकर श्रीनित्यानन्द प्रभुकी चरण-धूलि ग्रहण की। उनकी देखा-देखी भक्तवृन्द भी आये। सबने मिलकर परमं दयालु श्रीनिताईचाँदकी चरण-धूलिकी लूट की। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुको इसका कुछ पता न चला।

प्रभुने इतनी देर तक श्रीनिताईचाँदसे एकान्तमें जो बात की थी, उसे दूसरा कोई नहीं जान सका। केवल इशारेसे प्रभुने श्रीअद्वैतप्रभुको इस सम्बन्धमें दो-एक बातें बतलायी, श्रीअद्वैतप्रभु भी श्रीगौरभगवान्‌की बातका मर्म समझकर आनन्दित हो नृत्य करने लगे। इतनी देरके पश्चात् प्रभुके श्रीमुख पर हँसीकी रेखा दीख पड़ी।

श्रीअद्वैत प्रभुके आनन्दका कारण यह था—श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा गौरगोष्ठीका आचार्यवंश

प्रतिष्ठित होगा। प्रभुके आनन्दका कारण यह था कि श्रीअद्वैत आचार्यने इस कार्यका अनुमोदन किया है, तथा अवधूत श्रीनित्यानन्दने इस कार्यको अङ्गीकार किया है। यह सब बातें केवल संकेतसे हो गयीं। दूसरा कोई इसको समझ न सका। श्रीअद्वैत प्रभुको पुनः उन्होंने प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करके विदा किया।

प्रभुने जो अवधूत निताईचाँदको गृहस्थ बनकर गौड़ीय आचार्यवंश प्रतिष्ठित करनेका आदेश दिया, उसके दो उद्देश्य थे। प्रथम रेत ब्रह्मका प्रकाश, द्वितीय गृहस्थ वैष्णवोंको युक्त-वैराग्यकी शिक्षा प्रदान करना।

श्रीनित्यानन्द प्रभुने अवधूत संन्यासी होकर भी दो वैष्णवी शक्ति सुन्दरी भार्याका पाणिग्रहण किया। उनके श्रीगर्भसे पुत्र-कन्या उत्पादन किये। अनेकों शिष्य-प्रशिष्य तैयार किये। भोग-विलास किया, तथापि कहीं आसक्त न हुए। अनासक्त भावसे गृहस्थाश्रममें रहकर भजन-साधन कैसे करना होता है, युक्त वैराग्य क्या वस्तु है, इसका स्वयं आचरण करके उन्होंने जीवको शिक्षा दी। गार्हस्थ धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

उदासीन यतिराजको गृहस्थ बनाकर श्रीगौर भगवान्‌ने गार्हस्थ्य आश्रमके धर्मकी प्रधानताको प्रतिष्ठित किया। गौड़ीय वैष्णवोंके गुरुकुलका सृजन दूसरा उद्देश्य था। रेत-ब्रह्म और शब्द-ब्रह्म द्वारा गौराङ्ग-गोष्ठी संवर्द्धित करनाही-पतित पावन प्रभुकी इस अपूर्व लीलाका लक्ष्य था।

रेत-ब्रह्म द्वारा वैष्णव-सृष्टि, तथा शब्द-ब्रह्म द्वारा शिष्य-शाखाकी अभिवृद्धि, इन दोनों धाराओंके द्वारा गौड़ीय वैष्णव जाति परिचालित हो रही हैं। साधु-महन्तगण उदासीन हैं। शब्द ब्रह्मके द्वारा उनकी शिष्य शाखा उद्भूत हो रही है। इनके द्वारा भी वे जीवोद्धार कर रहे हैं। उदासीन साधु महाजनकी शक्तिके बलसे बलवान होकर शब्द-ब्रह्म सिद्धमन्त्रके उपदेशके द्वारा ये लोग जीवका अत्यन्त मङ्गल विधान कर रहे हैं। परन्तु कौशली प्रभुका उद्देश्य नया ही है। उन्होंने महापुरुषके औरस पुत्रके द्वारा आचार्य वंशकी सृष्टि करनेके लिए ही यह प्रथम सूत्रपात किया था। पहले भी इन दो भावोंमें गुरुकुलकी सृष्टि होती थी। रेतब्रह्मका प्रकाश क्षीण हो चला था। शब्द-ब्रह्म-प्रसूत शिष्य-शाखा प्रणाली दूषित हो गयी थी। महापुरुषगण प्रायः उदासीन भावसे जीवन यापन कर रहे थे। वे संसारमें आबद्ध नहीं होते थे। अतएव आचार्य वंशमें महापुरुषोंका अभाव हो गया था। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुको गृहस्थाश्रममें प्रवेश करानेका उद्देश्य था गौड़ीय आचार्य कुलके मूल और भित्तिको दृढ़ करना। श्रीनित्यानन्द-वंशीय महात्मागण प्रेमदानमें असीम शक्तिशाली होनेके कारण आज भी गौड़ीय वैष्णव जगतमें प्रसिद्ध हैं। श्रीनिताईचाँदको संसारमें आबद्ध किये बिना प्रभुका उद्देश्य सफल नहीं होता। इसी कारण अवधूत निताईचाँदको बध करके भी उन्होंने अपने उद्देश्यको सिद्ध किया। वे स्वतन्त्र ईश्वर थे। उनके इन सब निगूढ़ लीलाओंका रहस्य जीवबुद्धिके लिए अगोचर है।

नीलाचलमें प्रभुके नामका कीर्तन

नवद्वीप-यात्राके पूर्व एक दिन हमारे गौर-आना गोसाईंने नीलाचलमें प्रभुको लेकर एक महाकाण्ड कर डाला। वह काण्ड कोई सहज काण्ड न था। प्रभुके नदिया और नीलाचलके सारे भक्तोंने एकत्रित होकर एक दिन श्रीक्षेत्रमें गौर-कीर्तन आरम्भ किया। महाविष्णुके अवतार श्रीअद्वैतप्रभु इस गौरकीर्तनके आदि नेता बने। उन्होंने सब भक्तोंको एक दिन हुङ्कार गर्जन करते हुए कहा—

शुन भाइ सब ! एक कर समवाय।
मुखभरि गाइ आजि श्रीचैतन्यराय॥
आजि आर कोन अवतार गाओया नाञि।
सर्व-अवतारमय—चैतन्य गोसाञि॥

जे प्रभु करिल सर्व्व जगत - उद्धार ।
आमा सभा लागि जे प्रभुर अवतार ।।
सर्व्वत्र आमरा जाँर प्रसादे पूजित ।
संकीर्तन हेन धन जे कैल विदित ।।
नाचि आमि, तोमरा चैतन्य यश गाओ ।
सिंह हइ बोल, पाछे मने भय पाओ ।।

चै. भा. अं. १०.१५३-१५७

प्रच्छन्न अवतार श्रीगौर भगवान् आत्मगोपनमें सतत रत रहते हैं। कोई उनको भगवान् कहे तो उनको अच्छा नहीं लगता। नवद्वीपमें उनके सामने किसीने गौरकीर्तन करनेका साहस नहीं किया। उनके पीछे भक्तगण उनका गुणगान करते थे, उनका नामगान करते थे। प्रभुके सामने प्रकट रूपमें गौरकीर्तन करनेका अब तक किसीको साहस नहीं हुआ था। सबको भय था कि प्रभु नाराज होंगे।

परन्तु गौर-आना गोसाईंने अब प्रभुका डर त्याग दिया। उन्होंने सोचा कि इस विषयमें अब डरनेसे काम न चलेगा। इसी कारण वे आदि-गौरकीर्तनके पथ-प्रदर्शक बने। उन्होंने स्पष्ट रूपमें सबसे कह दिया कि, "हे भक्तवृन्द ! हे भाइयो ! आप लोगोंको कोई भय नहीं है। मैं गौरकीर्तनानन्दमें आज प्रभुके सामने नृत्य करूँगा, उसमें यदि प्रभुने क्रोध किया तो मुझपर क्रोध करेंगे। मेरा नाम है अद्वैतसिंह, प्रभुकी कृपाके बलसे मैं बलवान् होकर आज इस नीलाचलपर आदि गौरका संकीर्तन यज्ञ अनुष्ठान करूँगा। जो युग-युगान्तर भव-भय-पीड़ित जीवके लिए परम-मङ्गलमय कीर्तित होगा, जिसके प्रभावसे जीवोंका यमभय दूर हो जायगा। हे गौर भक्तवृन्द ! आप लोगोंको तनिक भी भय नहीं है। निःसङ्कोच आज आप लोग मेरे साथ गौर-कीर्तन करके जीवनको सार्थक करें।"

श्रीअद्वैत प्रभुकी यह तेजस्वी आश्वासन वाणी सुनकर भक्तवृन्द गौरकीर्तनके आनन्दमें मग्न हो गये। वे लोग प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर 'जय श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रकी जय, जय शचीनन्दन गौर हरिकी जय' की ध्वनिसे दिगन्तको कम्पित करने लगे। ऐसा कौन था जो श्रीअद्वैत प्रभुके वचनका उल्लङ्घन करता ?

परन्तु उस समय तक गौरकीर्तनकी गीत रचना नहीं हो पायी थी। श्रीअद्वैत प्रभुने तत्काल पदरचना करके धूहा पकड़ा—

श्रीचैतन्य नारायण करुणा सागर ।
दीन—दुःखितेर बन्धु मोरे दयाकर ।।

चै. भा. अं. १०.१६३

गौरकीर्तनका यह आदि पद है। इसके रचयिता स्वयं गौर-आना-गोसाईं हैं। नीलाचलमें महासङ्कीर्तन यज्ञका आरम्भ हो गया। नदिया और नीलाचलके सब भक्तोंने श्रीअद्वैत प्रभुके वासाके सामने इकट्ठे होकर उच्च स्वरसे यह गौरकीर्तन आरम्भ कर दिया। सभी आज अपूर्व कीर्तनानन्दमें विह्वल हो उठे। श्रीअद्वैतप्रभु प्रेमावेशमें सङ्कीर्तन यज्ञके आगे कमर हिला-हिलाकर मधुर नृत्य करने लगे। आज उनके मनमें अपूर्व आनन्दका तरङ्ग उठा है। श्रीकृष्ण कीर्तन करनेसे उनको जो आनन्द होता था, उससे कई गुना आनन्दसे अभिभूत होकर वे लोग नृत्य कर रहे हैं, और प्रेमानन्दमें गा रहे हैं—

श्रीचैतन्य नारायण करुणासागर ।
दीन-दुःखितेर बन्धु ! मोरे दयाकर ।।

चै. भा. अं. १०.१६३

क्रमशः जब संकीर्तनके आनन्दमें भक्तगण उन्मत्त हो गये, तब कीर्तन दल गठित हुए। श्रीवास पण्डितने गाया।

जय-जय श्रीशचीनन्दन, जय गौरचन्द्र नारायण ।

चै. भा. अं. १०.१६५

श्रीनित्यानन्द प्रभुने धूहा पकड़ा—

जय संकीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल ।
जय भक्तजनप्रिय पाखण्डीर काल ।।

चै. भा. अं. १०.१६६

नीलाचलके राजपथमें सर्वप्रथम गौरकीर्तन इस प्रकार प्रारम्भ हुआ। प्रकट अभिनव अवतारके इस परम उन्मादकारी नाम और यशको श्रवण करके सारे वैष्णवोंका हृदय द्रवित हो उठा। सबने प्रेमानन्दमें उन्मत्त हो कीर्तनमें योगदान किया। परन्तु इस स्वल्पाक्षर ग्रथित नामगानसे भक्तवृन्दके मनकी साध न मिटी। श्रीगौराङ्ग प्रभुके रूप-गुण और कीर्तिके प्रकाशक पदोंका गान करनेके लिए उनका मन लालायित हो उठा। उन्होंने अद्वैत प्रभुसे अपने मनकी बात कही। शान्तिपुरनाथने तत्काल गौरकीर्तनके लिए लीलागानके पदोंकी रचना करके स्वयं उनका धूहा पकड़ा—

श्रीराग

पुलके रचित गाय, सुखे गड़ागड़ि जाय,
देख रे चैतन्य-अवतारा।
वैकुण्ठ-नायक हरि, द्विजरूपे अवतरि,
संकीर्तन करेन विहारा॥
कनक जिनिञा कान्ति, श्रीविग्रह शोभेरे,
आजानुलम्बित माला साजे रे।
संन्यासीर रूपे, आपन रसे विह्वल,
ना जानि केमन सुखे नाचे रे॥
जय-जय श्रीगौर— सुन्दर करुणासिन्धु,
जय-जय वृन्दावन-राया रे।
जय जय सम्प्रति नवद्वीप-पुरन्दर,
चरण-कमल देह छाया रे॥

चै. भा. अं. १०.१६८-१७०

प्रधान गायक मुकुन्द यह पद गाते-गाते क[illegible]मानन्दमें मग्न हो गये। शान्तिपुरनाथ नृत्यानन्दमें उन[illegible]भोर थे, उनको बाह्यज्ञान न था। अवधूत उ[illegible]ताईचाँदने उद्दण्ड नृत्यावेशमें गौर-आना गोसाईंको [illegible] पकड़कर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध कर लिया, एक-एक बार भूमिमें लोटकर उनकी चरणधूलि ले रहे हैं। शान्तिपुरनाथ एकबारगी बाह्यज्ञान शून्य है। वे कुछ भी नहीं समझ पा रहे हैं। भक्तवृन्द उच्च स्वरसे जयध्वनि कर रहे हैं। इस अपूर्व कीर्तनानन्दका तरङ्ग सारे नीलाचलमें व्याप्त है। राजपथमें लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी है।

उच्च कीर्तनकी ध्वनि प्रभुके कानोंमें पहुँची। वे अपने वासापर थे। प्रभु झटपट कीर्तनस्थलमें जा उपस्थित हुए। परन्तु वहाँ पहुँचकर अपने कानोंसे जो कुछ सुना उससे उनको तत्काल वह स्थान छोड़ना पड़ा। उन्होंने श्रीकृष्णनाम कीर्तनके बदले अपना नाम कीर्तन सुना। 'विष्णु' 'विष्णु' कहकर दोनों कानोंपर हाथ रखकर वे बासापर जाकर एकान्तमें सो रहे।

प्रभुको देखकर श्रीअद्वैत प्रभुके इशारेसे भक्तवृन्द और अधिक उत्साहके साथ निर्भय चित्तसे उच्च गौरकीर्तन करने लगे। प्रभुको देखकर किसीके मनमें भय न हुआ। वहाँसे वे रुष्ट होकर चले गये, इस पर भी कोई गौरकीर्तनसे विरत न हुआ। प्रभुने कुटीरका द्वार बन्द कर लिया, परन्तु कीर्तन बन्द न हुआ। श्रीश्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके चतुर्दिक पथमें भक्तवृन्द उस दिन तीसरे पहर तक परमानन्दपूर्वक गोरकीर्तन करते रहे। राजा प्रतापरुद्रको आज नवीन अवतारके अपूर्व नामकीर्तनको सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे भी अपने गणके साथ इस महासंकीर्तन यज्ञमें योगदान करके धन्य हो गये।

गौरकीर्तन करते-करते अद्वैतादि प्रमुख भक्तवृन्द प्रभुके दर्शनार्थ उनके श्रीमन्दिके द्वारपर उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उस समय भी क्रुद्ध होकर अपने मन्दिरमें शयन कर रहे थे। गोविन्दने जाकर प्रभुसे कहा—

वैष्णव सकल आसियाछेन दुयारे।

चै. भा. अं. १०.१९०

भक्तवत्सल प्रभुने उनको भीतर आनेका आदेश दिया। परन्तु वे मन्दिरमें सोये ही रहे। उठे नहीं। भक्तगणके पास आने पर उन्होंने उनकी ओर नहीं देखा। उनका यह प्रणय-कोप देखकर भक्तगण भयभीत होकर उनका चरण चिन्तन करने लगे।

श्रीअद्वैत प्रभु सबके आगे थे। प्रभुके श्रीमन्दिरका द्वार खुला। भक्तवृन्दने देखा कि प्रभु मुँह फेरकर शयन कर रहे हैं।

इस प्रकार कुछ समय बीत गया। भक्तवत्सल प्रभु अधिक देर तक क्रोध न कर सके। वे धीरे-धीरे उठे। देखा कि सामने श्रीअद्वैत प्रभु हैं। उनको कुछ न कहकर श्रीवास पण्डितको सम्बोधन करके बोले—

—"आये वैष्णव सकल ॥
अये अये श्रीनिवास पण्डित उदार।
आजि तुमि सब कि करिला अवतार॥
छाड़िया कृष्णेर नाम, कृष्णेर कीर्तन।
कि गाइला आमारे त बूझाह एखन॥
चै. भा. अं. १०.१९३-१९५

प्रभुका प्रणयकोप शान्तिपुरनाथके ऊपर अधिक था। क्योंकि वे ही इस काण्डके मूल थे, वे ही अभिनयके नेता थे। परन्तु प्रभुने उनको कुछ न कहा, इसका कारण है। श्रीअद्वैतसिंहको कुछ बोलनेपर संभव था कि पुनः एक और काण्ड कर बैठें, उस भयसे उनको कुछ कहनेका साहस प्रभु न कर सके। श्रीअद्वैतसिंहको भय नहीं है। सब लोग प्रभुके भयसे भयभीत हो रहे हैं। परन्तु गौर-आना गोसाईंके भयसे स्वयं श्रीगौर भगवान् भयभीत हैं। वे कलिके प्रच्छन्न अवतार थे, सदा अपनेको छिपाना पसन्द करते थे। परन्तु भक्तगण उनको प्रकट करते थे। इससे भक्तवृन्दके मनमें आनन्द होता था, किन्तु प्रभुके मनमें उससे सुख नहीं होता था। इसी कारण शान्तिपुरनाथको प्रभुने कुछ नहीं कहा। प्रभुके मनको कष्ट पहुँचाना निश्चय पूर्वक श्रीअद्वैत प्रभुका उद्देश्य न था, उनका उद्देश्य था श्रीगौर-भगवान्‌को प्रकाशमें लानेका। कलिके प्रच्छन्न अवतारको कलिके जीव जाने, समझें, उनका गुणगान करके भवसागरसे पार हों, यही शान्तिपुर-नाथके मनोगत भाव थे।

श्रीवास पण्डित महावक्ता थे। उन्होंने भक्तवृन्दमें मुखिया बनकर प्रभुकी बातका उत्तर दिया, "हे प्रभु! मूलतः जीवमें स्वतन्त्र शक्ति कुछ भी नहीं है। तुम ही जीवशक्तिके मूलाधार हो, 'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।' तुम जैसा कराओगे, हम वही बोलेंगे और करेंगे। आजका यह काण्ड तुम्हारी ही इच्छासे हुआ है, हे प्रभु! हमको दोष न देना।"

प्रभु यह सुनकर सिर नीचा करके मृदु स्वरमें बोले,—

—"तुमि सब हइया पंडित।
लुकाय जे, केन तारे करह विदित॥"
चै. भा. अं. १०.१९८

कलिके प्रच्छन्न अवतारका ऐसा सुस्पष्ट प्रमाण और कहाँ मिलेगा? प्रभुकी यह बात सुनकर अद्वैतप्रभु आदि सब लोग मन ही मन खूब हँसे। उनका सारा भ्रम दूर हो गया। प्रच्छन्न अवतारकी प्रच्छन्नता प्रकाशमें आ गयी। इससे भक्तगणके मनमें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।

श्रीवास पण्डितने प्रभुकी बातका उत्तर न देकर एक तमाशा किया। मध्याह्न गगनमें उस समय सूर्यदेव रश्मि विस्तार कर रहे थे। प्रभुने जैसे ही श्रीवदनको उठाकर श्रीवास पण्डितकी ओर करुण नयनसे देखा, उसी समय वे दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्यदेवको ढंकनेका छल करके मन ही मन हँसने लगे।

यह देखकर प्रभुने कहा, "पण्डित! तुम हाथके द्वारा क्या संकेत कर रहे हो? यह तो मैंने नहीं समझा, खोलकर बोलो।" तब श्रीवास पण्डितने प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर कहा–प्रभु! मैंने हाथसे सूर्यको ढँकनेका प्रयास किया था। लेकिन क्या सूर्य हाथसे ढका जा सकता हैं? इसी तरह क्या तुम छिपे रह सकते हो? जो क्षीर सागरमें भी छिप न सका, जिसका निर्मल यश दिक्-दिगन्तमें व्याप्त है, उसके

कीर्तनसे सारा ब्रह्माण्ड पूर्ण हो गया। अब तुम किस-किसको दण्ड दोगे ?

प्रभु अपने प्रकोष्ठमें बैठे हैं, भक्तवृन्द द्वारपर खड़े हैं। श्रीवास पण्डित प्रभुके सामने खड़े होकर हाथ जोड़े ये सारी बातें कर रहे हैं। उसी समय प्रभुके वासाके बाहरी द्वारपर महा कोलाहल सुन पड़ा। श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके सहस्रों आदमी प्रभुके बासाके द्वारपर आकर 'जय श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी जय' की ध्वनिसे गगन मण्डलको कम्पित करने लगे। उन लोगोंमें कोई त्रिपुरा निवासी थे, कोई चट्टग्रामवासी, कोई श्रीहट्टवासी, तथा कोई बङ्गदेशके थे। वे लोग पुरुषोत्तम क्षेत्रमें श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेके लिए आकर प्रभुका नामकीर्तन सुनकर उनके श्रीचरणोंका दर्शन करने आये थे। वे सब लोग गौरकीर्तन करते-करते श्रीगौराङ्ग-मन्दिरके द्वारपर जा पहुँचे। उनका गौरकीर्तन पद सुनिये—

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य वनमाली :
जय जय निजभक्ति-रस कुतूहलि ।।
जय जय परम संन्यासी रूपधारी ।
जय जय सङ्कीर्तन-रसिक मुरारि ।।
जय जय द्विजराज वैकुण्ठविहारी ।
जय जय जय जगतेर उपकारी ।
जय श्रीकृष्णचैतन्य श्रीशचीर नन्दन ।।
कृपा करि माथे दाओ तोर श्रीचरण ।।

चै. भा. अं. १०.२११-२१४

सहस्र-सहस्र कण्ठकी उच्च संकीर्तन ध्वनिसे नीलाचल पूर्ण हो गया। सहस्र-सहस्र मुखसे आज एकमात्र भुवन मङ्गल गौरकीर्तन सुना जा रहा है। अन्य अवतारोंका कोई प्रसङ्ग ही नहीं है। यह सुनकर उपस्थित भक्तवृन्द आनन्दसे आकुल हो उठे। उन्होंने भी जाकर पुन: इस गौरकीर्तनमें योगदान किया। श्रीवास पण्डितने तब हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"प्रभु ! अब क्या करोगे ? अब कहाँ छिपोगे ? इन लोगोंको मैंने तो सिखाया नहीं है। सारा संसार ही ऐसे गा रहा है। तुम अदृश्य, अव्यक्त होकर भी करुणासे साक्षात् हुए हो। तुम ही अपने आपको छिपाते हो और तुम ही प्रकाश करते हो। जिसपर अनुग्रह करते हो, वही तुमको पहचान लेता है।"

करुणामय भक्तवत्सल गौरभगवान्‌ने तब भक्तके सामने पराजय स्वीकार किया। भक्तकी जय सर्वत्र होती है। भगवान्‌के सामने भक्तकी विजय सदासे होती आ रही है।

भक्तके भगवान् श्रीगौराङ्गप्रभु भक्तकी महिमा वर्णन करते हुए श्रीवास पण्डितसे बोले, "श्रीवास पण्डित ! तुम महा भागवत और सर्वशक्तिशाली हो। तुमने निज शक्तिको प्रकट करके लोगोंके मुखसे जो यह नवीन कीर्तनकी ध्वजा फहरायी है, इसको मैं समझ रहा हूँ। पण्डित ! तुम्हारे सामने मैंने पराभव स्वीकर कर लिया, अब शान्त हो जाओ।"

श्रीवास पण्डित प्रभुके श्रीमुखसे अपनी आत्मप्रशंसा सुनकर लजा गये। वे प्रेमानन्दमें विह्वल होकर प्रभुके चरण पकड़कर अजस्र आँसू बहाने लगे। प्रभु उनको उठाकर गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करते हुए बहिर्द्वारपर आकर खड़े हो गये। लाखों-लाखों आदमी उनकी भुवनमोहिनी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके धूलि धूसरित हो दण्डवत् प्रणाम करने लगे। 'जय श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रकी जय' 'जय श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी जय'—की ध्वनिसे पृथिवी प्रकम्पित हो उठी।

प्रभुने सबके ऊपर शुभ कृपादृष्टि प्रदान की। उनका श्रीवदन हास्यमय था, श्रीहस्तमें हरिनामकी माला थी, सुगन्धित चन्दनसे चर्चित श्रीअङ्ग था, प्रशस्त ललाट फलकपर उज्ज्वल तिलक था, गलेमें पुष्पमाला थी, रक्ताम्बर परिधान किये थे। हास्यमुखसे श्रीगौरभगवान् सब वैष्णवोंको विदा

करके अपने मन्दिरमें गये। वैष्णवगण और कीर्तनसे थके भक्तवृन्द तब अपने-अपने बासेपर गये।

प्रभुने अपने मन्दिरमें बैठकर एकबार शान्तिपुरनाथको एकान्तमें बुलाया। उन्होंने निर्भय हँसते-हँसते प्रभुके सामने आकर कीर्तन शुरू किया—

"श्रीचैतन्य नारायण करुणा सागर।
दीन-दुःखितेर बन्धु मोरे दया कर॥

चै. भा. अं. १०.१६३

'मोरे दया कर'—यह अन्तिम बात कहते-कहते वे प्रभुके चरणोंमें लम्बे पड़कर अजस्र आँसू बहाने लगे। भक्तवत्सल प्रभुने उनको उठाकर गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करते हुए कहा, "आचार्य! शान्त हो जाओ। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो गयी है। तुमने मुझको खूब नचाया है। इस नीलाचलमें मुँह दिखानेमें मुझे लज्जा आती है।" शान्तिपुरनाथ मधुर मुस्कानके साथ बोले—"हे प्रभु! अब तुमको अधिक दिन छिपाये रखना ठीक नहीं है। अब पूर्णतः प्रकट हो जानेका समय आ गया है।"

नीलाचलमें यह जो गौरकीर्तनका सूत्रपात हुआ, श्रीअद्वैत प्रभुके द्वारा जो गौरकीर्तनके पद रचे गये, सब श्रीगौर भगवान्‌की इच्छासे हुए। गौर-आना-गोसाईं गौरको लाकर ही निश्चित नहीं हुए, वे प्रभुकी प्रकट-लीलाको प्रकाशित करके जीवोंका पूर्ण कल्याण कर गये। उन्होंने कलिके प्रच्छन्न अवतारकी प्रच्छन्नताकी रक्षा नहीं की।

इसी समयसे श्रीगौराङ्ग लीलाके पद और ग्रन्थ लिखे और रचे जाने लगे। गौर-आना-गोसाईं महाविष्णुके अवतार थे। श्रीअद्वैतप्रभु श्रीगौराङ्ग-लीलाके आदि पदकर्त्ता थे। उन्होने स्वयं गौरकीर्तनके पदोंकी रचना करके मार्ग प्रदर्शन किया। वे श्रीगौर भगवान्‌के चरणोंमें केवल तुलसी गंगाजल चढ़ाकर पूजा करके ही सन्तुष्ट न हुए। कलिग्रस्त जीवकी मङ्गल कामनासे उन्होंने भुवनमङ्गल गौरकीर्तन किया। कृपालु पाठकवृन्द! आइये, सब आइये, एक साथ मिलकर भुवनपावन अपने गौर-आना-गोसाईं, कुवेरनन्दन, करुणानिधि, सीतानाथ श्रीश्रीअद्वैत प्रभुका जयगान करके आत्मशुद्धि करें।

जय जय अद्वैत आचार्य दयामय।
जार हुँहुँकारे गौर अवतार हय॥
प्रेमदाता सीतानाथ करुणा सागर।
जार प्रेमरसे आइला गौराङ्गनागर॥
जाहारे करुणा करि कृपाहष्टे चाय।
प्रेमरसे सेइ जन चैतन्य गुण गाय॥
ताँहार पदे ते जे वा लइला शरण।
से जन पाइल गौरप्रेम महाधन॥
एमन दयार निधि केन ना भजिनु।
लोचन बले निज माथे बजर पाड़िनु॥

यह ठाकुर लोचनदासका पद है। पदके अन्तिम चरणको सब लोग कृपा करके याद रक्खेंगे।

कुलीन ग्राम निवासियोंका वैष्णव श्रेष्ठ सम्बन्धी प्रश्न

नदियाके भक्तवृन्दको जब प्रभुने विदा किया, तो रामानन्द आदि कुलीन ग्रामके निवासियोंने हाथ जोड़कर उनसे पूर्व वर्षके समान एक प्रश्न किया। रामानन्द वसुने कहा, "हे प्रभु! हमारे कर्त्तव्य क्या हैं? इसका उपदेश दीजिये।" प्रभुने उत्तर दिया—

—"वैष्णव सेवा, नाम सङ्कीर्तन।
दुइ कर, शीघ्र पाबे श्रीकृष्ण चरण॥

चै. च. म. १६-६

उन्होंने उत्तर दिया—"हे प्रभु! कैसे वैष्णवको पहचानेंगे? वैष्णवका लक्षण क्या है?" प्रभुने उनके मनोभाव समझकर मधुर मुस्कानके साथ कहा—

कृष्णनाम निरन्तर जाहाँर बदने।
से वैष्णव श्रेष्ठ, भज ताँहार चरणे॥

चै. च. म. १६.७१

पूर्व वर्ष भी उन लोगोंने प्रभुसे ऐसे ही प्रश्न किये थे, इस बार भी किया, इक बार प्रभुने और भी विशेषरूपसे कहा—

जाँहार दर्शने मुखे आंइसे कृष्णनाम ।
तांहार जानिह तुमि वैष्णव प्रधान ।।

चै. च. म. १६.७३

प्रभुने इस बार वैष्णवका लक्षण कहकर श्रेष्ठताका क्रम समझाया। उन्होंने तीन प्रकारके वैष्णवोंकी बात कही। पूर्व वर्ष कुलीन ग्रामवासी भक्तोंके प्रश्नके उत्तरमें प्रभुने कहा था—

—जार मुखे शुनि एक बार ।
कृष्णनाम, पूज्य सेइ श्रेष्ठ सभाकार ।।

चै. च. म. १५.११७

इस बार बोले, "जिसके मुखसे निरन्तर कृष्णनाम सुनो, उसको वैष्णव श्रेष्ठ जानकर उनके चरणोंकी निरन्तर सेवा करो।" इसके साथ ही उन्होंने और भी कहा, "जिसके दर्शनमात्रसे दर्शकके मुखमें सहज ही कृष्णनाम आता है, उसको वैष्णव श्रेष्ठ महाभागवत जानो।" इन तीन प्रकारके प्रभुके वाक्योंपर विचार करनेसे जान पड़ता है कि वैष्णव, वैष्णवतार और वैष्णवतम, इन तीन प्रकारके वैष्णवोंकी श्रेणी निर्द्धारित करना ही प्रभुके वाक्यका मर्म है। सनातन शिक्षामें देखनेमें आता है—

श्रद्धावान् जन हय भक्त्ये अधिकारी।
उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ—श्रद्धा अनुसारी ।।
शास्त्र युक्त्ये सु-निपुण दृढ़ श्रद्धा जाँर ।
उत्तम अधिकारी सेइ तरये संसार ।।

चै० च० म० २२.३८,३९

प्रभुके प्रथम उपदेशका तात्पर्य यह जान पड़ता है कि जिसने विष्णुमन्त्रमें दीक्षा ग्रहण करली है, और अपराधशून्य होकर एक बार भी कृष्णनाम नहीं लेता, उसके प्रति वैष्णव सेवा प्रयोज्य नहीं है। परन्तु वैष्णव जानकर उनका सम्मान अवश्य करना चाहिये। जिसके मुखसे निरन्तर कृष्णनाम निकलता है, उसको कनिष्ठ वैष्णवकी अपेक्षा श्रेष्ठ मध्यम भागवत जानकर आदर-सम्मान और सेवा करे, उसकी चरण-वन्दना करे। जिस वैष्णवको देखते ही द्रष्टाके मुखमें स्वभावतः कृष्णनाम आता है, तथा मनमें प्रेमानन्दका उदय होता है उसको महाभागवत जाने। भगवान्, भक्ति और भक्त इन त्रिविध विषयोंमें जिनकी अप्राकृत दृष्टि होती है, वे ही महाभागवत हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ।।"

श्रीम. भा. ११.२-४५

कुलीन ग्रामवासी भक्तवृन्द प्रभुके उपदेशसे सन्तुष्ट होकर उनकी चरण-वन्दना करके विदा हुए।

पुण्डरीक विद्यानिधि उस वर्ष नीलाचलमें रह गये। स्वरूप दामोदर गोसाईंके साथ उनकी बड़ी मित्रता थी। दोनों आदमी एक साथ रहते थे, वे दिन रात कृष्ण-कथा प्रसङ्गमें मत्त रहते थे। पुण्डरीक निद्यानिधिका कुछ परिचय पहले दिया जा चुका है। इन्हीं महापुरुषके शिष्य गदाधर पण्डित थे। प्रभुने पुण्डरीक विद्यानिधिका नाम रक्खा था 'प्रेमनिधि।' वे वृषभानुके अवतार थे। इसी कारण प्रभु उनको 'बाबा पुण्डरीक' कहकर पुकारते थे।

बीसवाँ अध्याय

नीलाचलमें पुण्डरीक विधनिधि ।

आर कि कहिब प्रेमनिधिर महिमा ।
जाँर शिष्य गदाधर एइ प्रेम सीमा ।।
चै. भा. अं. ११.८०

गदाधरका पण्डित और प्रभु

रथयात्राके कुछ दिन पहले एक दिन गदाधर पण्डित प्रभुको एकान्तमें पाकर बोले, "हे प्रभु ! तुम्हारे चरणोंमें मेरा एक निवेदन है। मेरा इष्टमन्त्र जान पड़ता है किसी प्रकार प्रकट हो गया है। इस कारण मेरे मनमें इष्ट देवकी वैसी स्फूर्ति नहीं होती, इससे मेरे मनमें बड़ी अशान्ति हो रही है, मेरा बड़ा दुर्भाग्य है, तुम कृपा करके मुझको इष्टमन्त्र फिरसे सुना दो। इसके बिना मेरा निस्तार नहीं है ।"

धर्म-मर्यादा-रक्षक जगद्गुरु श्रीगौरभगवान्ने गदाधर पण्डितकी बात सुनकर कहा—"तुम्हारे गुरु हैं, उनके बिना और कोई यह कार्य नहीं कर सकता। सावधान, कहीं गुरुके सामने अपराधी न बन जाओ।" गदाधर पण्डितने पुनः हाथ जोड़कर कहा, "हे प्रभु ! मेरे गुरुदेव तो इस बार रथयात्रा दर्शन करने नहीं आये। वे कब आवेंगे, पता नहीं है। जगद्गुरु तुम ही हो, यह कार्य करके मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ? मेरे मनमें बड़ी अशान्ति हो रही।

सर्वज्ञ श्रीगौरभगवान्ने उत्तर दिया, "गदाधर ! तुम चिन्ता क्यों करते हो ? कुछ दिनोंमें तुम्हारे गुरुदेव यहाँ आवेंगे। कई दिनसे मेरा मन उनके लिए बड़ा ही व्यग्र हो रहा है। इससे जान पड़ता है कि तुम्हारे आकर्षणसे वे शीघ्र ही नीलाचल आवेंगे। रथयात्राके पहले ही तुम्हें उनका दर्शन प्राप्त होगा। गदाधर पण्डित प्रभुके विनयपूर्ण आश्वासनसे कुछ लज्जित हुए, किन्तु उनको मन ही मन बड़ा आनन्द हुआ।

गदाधर पण्डित नीलाचलमें प्रभुके पास ही रहते थे। वे नित्य श्रीमद्भागवत पाठ करते थे और प्रभु श्रवण करते थे। जिस समय गदाधर पण्डित भागवत पाठ करते रहते थे, उस समय प्रेमाश्रुजलसे उनका वक्षःस्थल डूब जाता था, नयनजलसे श्रीग्रन्थ भीग जाता था। प्रभु यह देखते थे और प्रेमाश्रु विसर्जन करते थे। कभी-कभी गदाधरका बहिर्वाससे वदन भी पोंछ देते थे, उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान करते थे। गौर-गदाधर-लीला माधुमयीलीला थी। गौर-गदाधर तत्त्वको जानने वाले भक्त वृन्द श्रीगौरभगवान्की इस माधुर्यमय लीलामें श्रीश्रीराधाकृष्णके प्रेमरस-लीलारङ्गका दर्शन करते थे। प्रभुकी नवद्वीप लीला और नीलाचल लीला, दोनों लीलाओंमें गदाधर पण्डित उनके प्रधान सहायक थे।

भागवतके प्रह्लाद और ध्रुव चरित सुननेमें प्रभुको बड़ा आनन्द मिलता था। भक्तचरित सैकड़ों वार सुनकर भी भक्तावतार प्रभुके मनमें तृप्ति नहीं होती थी। रासलीला पाठ करते समय वे बोलते नहीं थे। क्योंकि सबके सामने उसकी व्याख्या उचित न थी। आजकल देखा जाता है कि जहाँ-तहाँ गोस्वामीगण रासलीलाका पाठ करते फिरते हैं। यह श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा अनुमोदित नहीं है।

स्वरूप दामोदरके गानकी मस्तीमें प्रभुकी कूप-पतन लीला।

संन्यासी भक्तोंमें दो आदमी प्रभुके अति प्रिय थे—स्वरूप दामोदर और परमानन्दपुरी। स्वरूप दामोदरका नित्यका कार्य था प्रभुको प्राचीन महाजनकृत पदावलीका कीर्तन सुनाना। उनका मधुर कण्ठ-स्वर प्रभुको वंशीध्वनि-सा लगता था। उनका गान सुनकर वे स्थिर न रहकर प्रेमानन्दमें नृत्य करते थे। श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर जिस प्रकार व्रज सुन्दरियोंका हृदय आनन्दसे नृत्य करने लगता था, स्वरूपके मधुर स्वरकी मधुमयी गीत-ध्वनि सुनकर भावनिधि प्रभु भाव-विह्वल होकर प्रेमानन्दमें नृत्य करते थे। स्वरूप दामोदर गोसाईं मानो एक संगीतरसमय विग्रह थे। रसराज रसिक शेखर प्रभु क्षण मात्रके लिए भी उनका सङ्ग नहीं छोड़ते थे।

ये महापुरुष पुण्डरीक विद्यानिधिके मित्र थे। श्रीगौर भगवानने जिस दिन गदाधर पण्डितके साथ उनके इष्ट मन्त्रके सम्बन्धमें विद्यानिधिका उल्लेख किया था, उसके दूसरे दिन नीलाचलमें उन्होंने एक अद्‌भुत लीला रङ्ग प्रकट किया। कीर्तन हो रहा था, स्वरूप गोसाईं गा रहे थे, प्रभु प्रेमाविष्ट होकर नृत्य कर रहे थे। उनको बाह्यज्ञान न था। सामने एक कूप था। अकस्मात् प्रभु नृत्य करते-करते उसमें गिर पड़े। भक्तवृन्द हाय-हाय करने लगे। वहाँ अद्वैत प्रभु भी थे; क्योंकि यह लीलारङ्ग प्रभुने रथयात्रा शुरू होनेके पहले प्रकट किया था।

सब लोग सिर पीटकर हाय-हाय करते हुए क्रन्दन करने लगे। सब लोग कि-कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर कूपमें उतरनेको के लिए चले। श्रीअद्वैत प्रभुने कूपमें कुछ दूर उतर कर देखा कि प्रभु प्रेमानन्दमें जलमें उतरा रहे हैं। कूप नवनीत-सा हो गया है। प्रभुको किसी जगह चोट नहीं लगी है। प्रभुको कन्धे पर लेकर वे ऊपर आये। ऊपर आने पर प्रभुको बाह्य ज्ञान हुआ। उनको यह ज्ञान न था कि वे कूपमें गिर पड़े थे। ऊन्होंने सबसे पूछा, "तुम लोग क्या कह रहे हो? मैंने क्या किया है?"

अद्वैत प्रभु और दूसरे भक्तगण प्रभुके रंगढंगको देखकर हँसी रोक न सके। प्रभु तो मानो कुछ जानते ही न थे, वे फिर बोले, "तुम सब लोग हँस क्यों रहे हो? मैंने क्या कोई कुकर्म किया है?" तब श्रीअद्वैत प्रभु बोले, "नहीं प्रभु! तुमने ऐसा कोई काम नहीं किया है। इस कूपमें तुम गिर पड़े थे, सबने मिलकर तुम्हें ऊपर निकाला है। देखो, तुम्हारे सारे अङ्गमें कीचड़ पानी लगा है।"

प्रभु विस्मित होकर कूपकी ओर देख कर बोले, "आप लोग कह रहे हैं कि मैं कुएँमें गिरा था, मुझे तो कुछ पता नहीं है। ओह! आप लोगोंने मेरे लिए न जाने कितना कष्ट उठाया हैं?"

प्रभुकी बात सुनकर फिर सब लोग हँसने लगे। श्रीअद्वैत प्रभु बोले, "हे प्रभु! आज तुम्हारे जीवनकी रक्षा हुई है, यह हमारा परम सौभाग्य है। ऐसा काम फिर न करना। सब भक्तगण तुम्हारे लिए कूपमें गिरने जा रहे थे। मैं न रहता तो आज बड़ा ही विषम काण्ड हो जाता।"

प्रभु विशेष रूपसे लज्जित हुए। स्वरूप गोसाईंके मुँहकी ओर एक बार देखा। इसका मर्म यह था कि "तुम लोग कहाँ रहे?" प्रभुकी रक्षाका भार उनके ऊपर न्यस्त था। गोविन्द नया वहिर्वास लाने बासा गये थे, स्वरूप दामोदर प्रभुके मनोभावको समझकर उनके चरणों पर गिरकर रोने लगे।

पुण्डरीक विद्यानिधिका आगमन और औड़न षष्ठी उत्सव

उसी समय पुण्डरीक विद्यानिधिको प्रभुने स्मरण किया। नदियाके भक्तवृन्दके साथ विद्यानिधि रथयात्रा दर्शन करके आ नहीं सके थे। वे गृहस्थी आदमी थे। नाना कार्योंमें रत रहनेके कारण पिछड़ गये थे। उसी दिन वे अकेले अपने

आदमियोंको साथ लेकर नीलाचलमें पहुँच गये थे। सर्व प्रथम वे प्रभुके वासापर जा उपस्थित हुए। प्रभु वहाँ नहीं थे, गोविन्द प्रभुका बहिर्वास लेने उसी समय वहाँ आये थे। वे पुण्डरीक विद्यानिधिको देखकर उनको दण्डवत् प्रणाम करके, उन्हें साथ लेकर प्रभुके पास आये। प्रभु उस समय उसी अवस्था में कूपके समीप बैठे थे। विद्यानिधिको देखकर प्रेमानन्दमें विभोर होकर हँसते-हँसते बोले—"आओ बापजी, आओ। प्रभुने विद्यानिधिको 'बाप' कहकर क्यों सम्बोधन किया—इसका तत्त्व प्रभुकी नवद्वीप लीलामें लिखा जा चुका है। पुण्डरीक विद्यानिधि पूर्वलीलामें राजा वृषभानु थे। श्रीराधा-भावमें विभोर होकर प्रभुने प्रेममें भरकर उनको 'बाप विद्यानिधि' कहकर पुकारा।

पुण्डरीक विद्यानिधिको पाकर प्रभु प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठे। विद्यानिधि प्रभु-दर्शनके आनन्दमें विह्वल होकर प्रेमावेशमें छिन्नमूल तरुके समान प्रभुके चरणोंमें जा गिरे। भक्तवत्सल प्रभु उनको उठाकर कलेजेसे लगाकर अजस्र आँसू बहाने लगे। भक्तवृन्द भी चतुर्दिक प्रेमानन्दमें आँसू बहाने लगे। वहाँ सब लोग उस समय वैकुण्ठके सुखका अनुभव करने लगे।

गदाधर पण्डित आकर विद्यानिधिके चरणोंमें गिरे। स्वरूप गोसाईं उनके पूर्व परिचित मित्र थे। प्रभुके सामने उनको देखकर विद्यानिधि प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर उनकी चरणधूलि लेनेके लिए आगे बढ़े। स्वरूप गोसाईं विद्यानिधिकी चरण-धूलिकी प्रत्याशामें व्यस्त थे। दोनोंमें ठेला-ठेली, धक्काधुक्की होने लगी। दोनों ही परम बलवान् थे। कोई किसीकी चरण-धूलि न ले सका। प्रभु उनका यह रङ्ग देखकर हँसने लगे।

प्रभुको अब बाह्य ज्ञान हो गया था। वे विद्यानिधिके दोनों हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमें बोले—"आप कुछ दिन नीलाचल वास करें।" प्रभुका यह आदेश स्वीकार करके विद्यानिधि ठाकुर नदियाके भक्तवृन्दके साथ गौड़ देश लौटकर नहीं गये। वे नीलाचलमें ही कुछ दिन रह गये।

प्रभुने विद्यानिधिको अपने पास रक्खा। समुद्रके तटपर यमेश्वरमें उनको एक उत्तम स्थान दिया। पुण्डरीक विद्यानिधिका जीवन विषयी और विलासी जैसा था, परन्तु इससे प्रभु उनका सङ्ग न करें, ऐसी कोई बात न थी। विद्यानिधिका प्रेमभक्तिभाव अपूर्व था। वे गृही होते हुए भी उदासीन थे, विलासी होते हुए भी भिखारी थे। वे अनासक्त भावसे विषय भोग करते थे। इस महान् गुणसे भक्तिजगत्‌में उनकी महिमा प्रकट थी। इसी गुणसे पञ्च-तत्त्वमें एक तत्त्व राधा-शक्ति गदाधर पण्डितने उनसे दीक्षामन्त्र ग्रहण किया था। श्रीगौराङ्ग लीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने यथार्थ ही लिखा है—

> **आर कि कहि प्रेमनिधिर महिमा॥**
> **जार शिष्य गदाधार एइ प्रेम सीमा॥**
> **जार कीर्ति बाखाने अद्वैत श्रीनिवास।**
> **जार कीर्ति बोलेन मुरारि हरिदास॥**
> **हेन नाहि वैष्णव जे ताने ना बाखाने।**
> **पुण्डरीको सर्वभक्त कायवाक्य मने॥**
>
> **चै. भा. अं. ११.८०-८२**

गदाधर पण्डितने प्रभुकी इच्छासे अपने गुरुदेवके द्वारा पुनः इष्ट मन्त्र ठीक कर लिया। पुण्डरीक विद्यानिधि अपने प्रिय शिष्य गदाधरको पाकर आनन्द सिन्धुमें गोता लेने लगे। विद्यानिधि और स्वरूप दामोदर गोसाईं दोनों आदमी नीलाचलमें रहते हुए एक साथ नित्य श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करते और कृष्ण-कथा रस-रङ्गमें दिवानिशि लगे रहते।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये, उसी समय श्रीजगन्नाथजीकी ओड़न षष्ठी यात्राके उत्सवका दिन आ उपस्थित हुआ। उस दिन श्रीश्रीनीलाचल-

चन्द्र नवीन वस्त्र परिधान करते हैं। वस्त्र धोकर देनेकी प्रथा नहीं है। माँड़ युक्त नया कपड़ा श्रीविग्रहको पहना दिया जाता है। यही उस समयकी रीति तथा चिर प्रचलित पद्धति है।

से दिन माण्डुया-वस्त्र परेन ईश्वरे।
तान जेइ इच्छा सेइ मत दासे करे॥

चै. भा. अं. ११.८९

इस उत्सवका नाम 'ओड़न षष्ठी' हैं। क्योंकि मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी तिथिमें यह ओड़न षष्ठी यात्रा प्रारम्भ होती है। और पौष पूर्णिमा तक रहती है। नीलाचलमें इसके उपलक्ष्यमें बड़ी धूम होती है। वाद्य-नृत्य-गीतसे श्रीक्षेत्र मुखरित हो जाता है। बड़ी भीड़ इकट्ठी होती हैं। श्रीश्रीनीलाचल चन्द्र इस अवसरपर नाना प्रकारके रङ्गके अभिनव वस्त्र परिधान करते हैं। वे नाना प्रकारके पुष्पोंसे सज्जित होकर विहार करते हैं।

प्रभु अपने पार्षद वृन्दके साथ यह ओड़नषष्ठी उत्सव देखनेके लिए गये। नये वस्त्र के परिधानमें श्रीनीलाचल चन्द्रकी नयी शोभा होती है। प्रभु अनिमेष नयनसे श्रीविग्रहकी अपरूप रूपराशिका दर्शन कर रहे हैं। उनके कनक केतकी सदृश नयन-द्वयसे शत धारामें अश्रु प्रवाह हो रहा हैं। उपस्थित सब लोग उनके जगजन-मनोहर अपूर्व रूपका दर्शन करने लगे। जगन्नाथजीका दर्शन उनके दिमागसे उठ गया। सचल जगन्नाथके रूपपर मुग्ध होकर वे लोग अचल जगन्नाथको भूल गये। पूजा और भोगआरती दर्शन करके प्रभु भक्तवृन्दके साथ अपने वासापर लौटे। वासापर आकर भक्तगणको विदा किया। वे एकान्तमें अपने प्रकोष्ठमें बैठकर माला जप करने लगे।

स्वरूप दामोदर गोसाईं अपने प्रिय मित्र पुण्डरीक विद्यानिधिके साथ प्रभुके वासापर चले। दोनों आदमी जब एक साथ रास्तेमें जा रहे थे तो विद्यानिधिने स्वरूप गोसाईंसे पूछा—"गोसाईं! बतलाओ तो इस देशके लोग माँड़ीदार वस्त्र जगन्नाथजीको क्यों देते हैं? इस देशमें श्रुति-स्मृति और सदाचारकी चलन है, फिर अशुद्ध वस्त्र बिना धोये ईश्वरको क्यों देते हैं?" स्वरूप दामोदर गोसाईंने हँसकर उत्तर दिया—"विद्यानिधि! यह इस देशका बहुत दिनोंसे प्रचलित देशाचार हैं। यहाँ इनमें दोष नहीं है। यही श्रीश्रीजगन्नाथजीकी इच्छा हैं। इसी कारण राजा भी निषेध नहीं करते।"

विद्यानिधिने कहा—"ईश्वरकी बात स्वतन्त्र है, उनकी जो इच्छा हो, वही कर सकते हैं। परन्तु उनके सेवकोंके लिए तो ऐसा करना कदापि कर्त्तव्य नहीं हो सकता। राजपात्र, पड़िछा, पुजारी, तथा पण्डा लोग सभी इस माँड़ीदार वस्त्रको स्पर्श करते हैं, हाथ धोते नहीं, अशुद्ध हाथसे सेवाका सब कार्य करते हैं, राजा भी मस्तकपर माँड़ीदार वस्त्र बाँधते हैं। यह सब तो सदाचार नहीं हैं। श्रीश्रीजगन्नाथजी साक्षात् ईश्वर हैं, उनके लिए सब संभव है, परन्तु क्या सब लोगोंको उनके आचरणका अनुकरण करना चाहिये?

इसपर स्वरूप दामोदर गोसाईंने उत्तर दिया—

परंब्रह्म-जगन्नाथ रूप अवतार।
विधि बा निषेध एथा ना करे विचार॥

चै. भा. अं. ११.११५

पुण्डरीक विद्यानिधिको यह बात ठीक नहीं लगीं। वे बोले—"श्रीजगन्नाथजी परंब्रह्म विग्रह हैं, उनके लिए विधि-निषेधके लंघनमें दोष नहीं; किन्तु ये लोग भी नीलाचलमें रहकर ब्रह्मरूप हो गये क्या, जो इन्होंने सब लोक व्यवहार छोड़ दिया?"

विद्यानिधिकी बात सुनकर स्वरूप गोसाईं अपनी हँसी न रोक सके। दोनों एक दूसरेका हाथ पकड़कर हँसते-हँसते निवास स्थानपर चले। विद्यानिधिके यहाँ उनके मित्र स्वरूप गोसाईं आज भिक्षा करेंगे। इसी कारण दोनों आदमी एक साथ जा रहे थे।

अपराह्न कालमें प्रभुके वासापर आकर दोनों आदमी जाकर उनसे मिले। सर्वज्ञ प्रभु सब कुछ जानते थे। उन्होंने कृष्णकथा:रसरङ्गमें उन लोगोंके साथ दोपहर रात बिता दी। उस दिन पुण्डरीक विद्यानिधि रातमें मित्रके पास ही रह गये। स्वरूप गोसाईं प्रभुके पास रहते थे। एक प्रकोष्ठमें विद्यानिधिके लिए उन्होंने शय्या सजा दी। यथा समय रातमें दोनों मित्र दोनों प्रकोष्ठमें सो गये।

उसी रात जगन्नाथ रूपी सर्वज्ञ श्रीगौर भगवान्ने रातमें विद्यानिधिके साथ एक अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया।

विद्यानिधिने स्वप्नमें देखा कि श्रीजगन्नाथजी उसकी ओर क्रोध-दृष्टिसे देख रहे हैं और दोनों भाई (कृष्ण-बलराम) मिलकर दोनों गालोंपर जोर-जोरसे थप्पड़ लगा रहे हैं, जिससे गाल फूल गये और अँगुलियोंके निशान पड़ पये। दु:खी होकर विद्यानिधि भगवान्से रक्षाके लिए पुकार करने लगे और चरणोमें गिरकर अपराधके लिए क्षमा-याचना करने लगे और पूछने लगे कि मेरे किस अपराधका यह दण्ड हैं। प्रभु श्रीजगन्नाथजीने कहा कि तेरे अपराधोंका अन्त नहीं है, मेरी और मेरे सेवकोंकी कोई जाति नहीं है—यह जानकर भी तुम इस जाति-नाशक स्थानपर क्यों ठहरे हो, जाति-रक्षक अपने घर जाओ। मैंने जो ओड़न-षष्ठी-यात्राकी व्यवस्था बनायी है, उसमें तुम अनाचार समझते हो और मेरे सेवकोंकी निन्दा करते हो, माण्डयुक्त वस्त्रोंमें दोष देखते हो।

विद्यानिधि बहुत डर गये और क्रन्दन करते हुए श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर बोले—"हे प्रभु! मुझ पापिष्ठके सब अपराध क्षमा करिये, जिस मुँहसे आपके सेवकोंकी बुराई करके उनके प्रति मैं हँसा था, उस मुखको दण्ड देकर अच्छा किया आपने। आज मेरा सौभाग्य है मेरे कपोलोंपर आपके श्रीहस्तका स्पर्श हुआ।"

श्रीजगन्नाथ प्रभु बोले—"तुमको सेवक समझकर ही दण्ड दिया गया है।" और विद्यानिधिके प्रति प्रेम दृष्टि करके दोनों भाई (कृष्ण-बलराम) अपने देवस्थानपर लौट आये।

पुण्डरीक विद्यानिधिने अन्तिम रात तक यह स्वप्न देखनेके बाद जागकर देखा कि सचमुच उनके दोनों गाल भयानक रीतिसे फूले हुए हैं, और उनमें विषम वेदना हो रही है। परन्तु इससे उनको तनिक भी कष्ट या दु:ख न हुआ। उनके मनमें आज असीम आनन्द था, जगन्नाथजीने उनको अपराध करनेके कारण अपने हाथोंसे दण्ड दिया था। प्रेममें गद्गद होकर वे शय्यासे उतर कर 'जय जगन्नाथ' कहकर भूतलपर लोटकर उच्चस्वरसे क्रन्दन करने लगे। प्रभुने विद्यानिधिका नाम रक्खा था। प्रेमनिधि प्रेमनिधिका प्रेम-पारावार उमड़ उठा। उनके नयनद्वयसे प्रेमनदी बह चली। अश्रु-कम्प-पुलक-कदम्ब-भावभूषणमें उनका सर्वाङ्ग विभूषित हो उठा। प्रेमावेशमें वे भूतलमें लोटने-पोटने लगे, तथा 'हा गौराङ्ग, हा जगन्नाथ' कहकर उच्च स्वरसे रोने लगे।

रात प्राय: बीत चुकी थी। रोनेकी आवाज सुनकर स्वरूप गोसाईं उठे। झटपट विद्यानिधिके प्रकोष्ठमें जा पहुँचे। आकर जो देखा उससे वे अत्यन्त विस्मित हुए। विद्यानिधि उनको देखकर उठ बैठे, और प्रेमावेगमें अधिकतर आर्त्तभावसे मुँहपर हाथ देकर फुङ्कार मारकर रोने लगे। स्वरूप गोसाईं अपने प्रियमित्रको गोदमें लेकर बैठ गये। उन्होंने देखा कि विद्यानिधिके दोनों गालोंमें काफी सूजन है उसपर श्रीश्रीजगन्नाथ-बलरामकी अंगुलिके चिह्न स्पष्ट दीख रहे हैं। उनका मुँह लाल हो गया है, दोनों नेत्र छोटे जान पड़ते हैं। मुँहकी अवस्था देखकर वे पहचाननेमें नहीं आ रहे हैं। विद्यानिधिने कुछ सुस्थिर होकर प्रेमानन्दमें अपने स्वप्नका वृत्तान्त स्वरूप गोसाईंको रोते-रोते सुनाया। श्रीजगन्नाथ और बलरामने दो दण्ड समय तक उनके गालपर लगातार तमाँचे मारे थे।

उनके प्रति जगन्नाथका यह साक्षात् कृपा निदर्शन देखकर स्वरूप गोसाईं प्रेमानन्दमें विह्वल होकर प्रिय मित्रका चरण पकड़ कर रोते-रोते बोले—"विद्यानिधि, प्रेमनिधि ! तुम धन्य हो। तुमने प्रभुकी कृपासे आज जो सौभाग्य प्राप्त किया, यह कोटि-कोटि लोगोंमें शायद ही किसीको प्राप्त होता है। तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात करता हूँ।" यह कहकर उनके चरणकी धूलि ले ली।

प्रेमनिधिको बाह्य ज्ञान न था। वे प्रेम विह्वल भावमें बैठकर अजस्र आँसू बहाते रहे। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया था। बोलनेकी शक्ति न थी, तथा बाह्यचेष्टा भी बन्द थी। इस प्रकार दोनों मित्रोंने एकत्र बैठकर रोते-रोते बाकी रात बितायी। प्रातःकाल विद्यानिधि किसी प्रकार सुस्थिर हुए।

उनका गाल सूजा हुआ देखकर सब हँसने लगे। उनके प्रति श्रीजगन्नाथ–बलरामकी असीम कृपाकी वात सबने सुनी। विद्यानिधिने रोते-रोते सबको हाथ जोड़कर कहा—"जैसा अपराध किया था, उसका दण्ड पाया, यह बड़ा अच्छा हुआ थोड़ेमें ही छूट गया।"

प्रभुने प्रेमनिधिकी अवस्था देखी। यह कार्य उन्हींका था, अपना कार्य देखकर प्रभु अपने ही हँसे। विद्यानिधिका गुण गाते हुए वे भक्तगणसे बोले—"विद्यानिधिकी महिमा देखो, सेवकपर दयाकी यह सीमा है। अपने पुत्र प्रद्युम्नको भी इस प्रकार न थप्पड़ मारे और न प्रेरणा दी। जिसका अपराध होता है उसको साक्षात्में भगवान और उनकी शक्ति रूपिणी जानकी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि दण्ड देते हैं। स्वप्नमें कृपा-रूपी दंड कहीं देखा सुना नहीं। स्वप्नका दण्ड या प्रसाद (अर्थ लाभ) जागनेपर प्रत्यक्षमें लोगोंके दृष्टिगोचर हो तो उसके समान भाग्यवान् और कोई नहीं। स्वयं भगवान्ने स्वप्नमें मारा है, प्रेमनिधिके प्रति इस कृपाका सभी दर्शन करें।"

इस प्रकार भक्तवत्सल प्रभु सब भक्तोंके सामने प्रेमनिधिकी महिमा कीर्तन करने लगे। पुण्डरीक विद्यानिधिने लज्जासे सिर नीचा कर लिया। स्वरूप गोसाईंने उनको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कहा—"ऐसा अद्भुत काण्ड देखने सुननेमें कहीं नहीं आया कि स्वप्नमें भगवान् स्वयं आकर शास्ति करें; जैसी कृपा उनने तुम्हारे ऊपर की है।

तब दोनों मित्र एक साथ प्रेमानन्दमें निमग्न हो गये। नीलाचलवासी भक्तवृन्द विद्यानिधिके सौभाग्यको देखकर चकित हो उठे। प्रभु जिसको बाप कहकर पुकारते हैं, उनकी महिमा कौन कह सकेगा? राधाशक्ति गदाधर पण्डित जिनके मंत्रशिष्य हैं, उनके प्रभावकी बात वर्णनातीत है।

इन महापुरुषकी पुण्यकथा प्रभुकी नवद्वीप लीलामें कुछ लिखकर मैं आत्मशुद्धि कर चुका हूँ! ये इस भयसे गङ्गा स्नान नहीं करते हैं कि पतित-पावनी गंगाके जलमें पद-स्पर्श हो जायगा। वे गंगाका दर्शन करते हैं, और गंगाजल पान करते हैं। गङ्गाका दर्शन भी वे जब तब नहीं करते, निशीथ कालमें जब कोई गङ्गाके किनारे नहीं रहता, तब प्रेमनिधि गङ्गाजीका दर्शन करते हैं। रातमें क्यों गङ्गादर्शन करते हैं, यह बतलाता हूँ। दिनमें लोग गङ्गाजलमें कुल्ला करते हैं, अशुद्ध वस्त्र धोते हैं, यह भक्तचूड़ामणि विद्यानिधि देख नहीं पाते। यह देखकर दुःखसे उनका हृदय फट जाता है। इसी कारण वे निशीथमें गङ्गाके तटपर जाकर गङ्गा-दर्शन करते हैं, तथा स्तवन-स्तुति करके पतित-पावनी गङ्गाजीको प्रणाम करते हैं। धन्य है प्रेमनिधिकी गङ्गाभक्ति! उनके चरणोंमें कोटिशः नमस्कार! साधसे प्रभु उनको बाप कहकर आदर करते हैं।

हेन पुन्डरीक विद्यानिधिर प्रभाव ।
इहाने से गौरचन्द्र प्रभु बोले 'बाप'' ।।

चै. भा. अं. ११.१७७

पुण्डरीक विद्यानिधिके प्रति श्रीश्रीजगन्नाथजीके कृपा वितरण लीला-रङ्गकी इस कथाका निगूढ़ अर्थ है। श्रीजगन्नाथजीके सेवककी महिमा प्रकट करना ही इस अपूर्व लीलारङ्गका उद्देश्य है। भगवत्-सेवक, या भगवद्-दासकी महिमा सब लोग नहीं जानते, श्रीभगवान् भक्तकी महिमा प्रकट करनेमें निरन्तर चेष्टित रहते हैं। भक्त-महिमाका कीर्तन वे शतमुखसे करते हैं।

श्रीगौर भगवान्‌ने अपने भक्त विद्यानिधिके मनमें माँड़ीदार वस्त्रकी अशुद्धताके विषयमें जो भ्रम उत्पन्न किया था, उस भ्रमका उच्छेद भी उन्हींने किया। भ्रम-उत्पादनके कर्त्ता भी वे ही थे, भ्रमके विनाशक भी वे ही थे—यही उनका लीलारङ्ग है। इस लीलारङ्गके द्वारा प्रभुने दिखलायी अपनी भक्तवत्सलता और भक्तकी महिमा। और दिखलाया अपने भक्तके दण्ड ग्रहणकी क्षमताका विकास। विद्यानिधिके भ्रमका संशोधन करके दिखलाया कि श्रीभगवान् विधि-निषेधके परे हैं। श्रीजगन्नाथजीके सेवक नित्य सिद्ध भगवद्दास हैं, उनके कार्य भी विधि-निषेधके परे हैं। श्रीविग्रहके सेवक भगवद्दासके आचार-व्यवहार, तथा श्रीविग्रहकी सेवाके विधि-नियमके विषयमें तर्क-वितर्क करना भक्तिके अनुकूल नहीं है। विशेषतः तीर्थस्थानके देशाचार तथा चिरकालसे प्रचलित व्यवहार आदर और सम्मान करने योग्य है।

इस अपूर्व लीलारङ्गकी फल श्रुति लिखते हुए श्रीवृन्दावन दास ठाकुर कहते हैं—

पुंडरीक विद्यानिधिर चरित्र शुनिले ।
अवश्य ताहारे कृष्ण पादपद्म मिले ।।

चै. भा. अं. ११.१८०

इक्कीसवाँ अध्याय

प्रभुर हइल इच्छा जाइते वृन्दावन ।
शुनिआ प्रतापरुद्र हइला निमन ।।

चै. च. म. १६.२

प्रभुकी श्रीवृन्दावन दर्शनकी अभिलाषा और नीलाचलके भक्तोंका विरह

श्रीवृन्दावन-दर्शनकी इच्छा संन्यास-ग्रहणके दिनसे ही प्रभुके हृदयमें बलवती हो गयी थी। उनकी इच्छासे उनकी यह अभिलाषा अब तक पूरी न हो सकी। जब प्रभुके मनमें श्रीवृन्दावनकी बात उदय होती तो वे अत्यन्त व्याकुल हो उठते थे। वे संन्यास ग्रहणके बाद ही श्रीवृन्दाबनके रास्तेकी ओर भागे थे। उनकी इच्छाशक्ति श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनकी ही इच्छासे उनको श्रीयमुनाके भ्रममें गङ्गाजीके तीर शान्तिपुरमें पहुँचाया था। श्रीअद्वैत-भवनमें नदियाके शोकाकुल भक्तवृन्द तथा पुत्र-विरह-कातरा शची माताके साथ भेंट कराकर उनको आनन्द प्रदान किया था।

जब प्रभुके मनमें श्रीवृन्दावन-भाव उदय होता है, तब उनको नवद्वीप भी याद आता है, और उनके

हृदयमें नवद्वीप-विरह प्रज्वलित हो उठता है। नवद्वीप-विरह और वृन्दावन-विरह तुल्य वस्तु है। श्रीवृन्दावनधाम और नवद्वीपधाम एक वस्तु हैं। जिस प्रकार शचीनन्दन गौरहरि और व्रजेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण अभिन्न तत्त्व हैं, उसी प्रकारसे श्रीवृन्दावन और नवद्वीप धाम भी अभिन्न तत्त्व हैं।

प्रभु नवद्वीपके भक्तोंको विदा करके कुछ दिन नीलाचलमें रहे तो, परन्तु नवद्वीप-विरहमें वे कातर हो उठे। इस प्रकारकी मानसिक अवस्थामें प्रभुने इस बार श्रीवृन्दावनकी यात्राका सङ्कल्प किया। यह तत्त्वतः तथा प्रकृत नवद्वीप यात्राका सङ्कल्प था।

पूरे चार वर्ष बीत चुके थे जब उन्होंने गृह-त्याग किया था। पाँचवाँ वर्ष शुरु हो गया था, दक्षिण देशकी यात्रासे लौटनेके बाद वे प्रति वर्ष श्रीवृन्दावन दर्शनकी अभिलाषा अपने भक्तोंके सामने प्रकट करते आ रहे थे। परन्तु उन लोगोंने उनको किसी प्रकार भुलाकर रक्खा था। इस महीने नहीं उस महीने, इस वर्ष नहीं उस वर्ष—इस प्रकार करते-करते भक्तवृन्दने प्रभुको नाना प्रकारसे भुलावेमें डालकर श्रीवृन्दावन नहीं जाने दिया। उनके मनमें भय था कि प्रभुके एक बार वृन्दावन जाकर लौटनेमें सन्देह है। यह भय, यह सन्देह अमूलक हो—ऐसी बात न थी। हमारे भक्तवत्सल प्रभुने भक्तकी मनोभिलाषा पूर्णकी थी। इस बार स्वतन्त्र ईश्वर जाँयगे। इच्छामय प्रभुकी इच्छाको रोकनेकी शक्ति किसमें हैं ? गत वर्षोंके समान इस वर्ष भी नदियाके भक्तगण रथयात्राके उपलक्ष्यमें प्रभु दर्शनके लिए आये। दूसरी वार वे रथयात्राका नर्शन करके चार मास नीलाचलमें वास करते थे, इस बार रथयात्रा देखकर ही वे लोग नवद्वीप लौट गये।

पञ्चम वत्सरे गौड़ेर भक्तगण आइला।
रथ देखि ना रहिला गौड़े चलिला॥

चै. च. म. १६.८५

वे लोग इस वर्ष नीलाचल अधिक दिन न रहे, इसका भी एक रहस्य था। भक्तवत्सल श्रीगौरभगवान् अपनी श्रीवृन्दावन दर्शनकी इच्छा, तथा उसके साथ जननीं और जन्मभूमिके दर्शनकी इच्छाको मन ही मन गोप्य न रख सके। पहले उन्होंने अपने मनकी बात सार्वभौम भट्टाचार्य तथा राय रामानन्दके सामने प्रकट करके विदा होनेकी इच्छा प्रकट की। यथा श्रीचैतन्य चरितामृतमें प्रभु वाक्य—

बहुत उत्कण्ठा मोरे जाइते वृन्दावन।
तोमा हठे दुइ वत्सर ना कैल गमन॥
अवश्य चलिब, दोंहे करह सम्मति।
तोमा दोंहे बिना मोर नाहि अन्य गति॥
गौड़ देशे हय मोर दुइ समाश्रय।
जननी जाह्नवी एइ दुइ दयामय॥
गौड़ देश दिया जाब ताँ सभा देखिया।
तुमि दोंहे आज्ञा देह प्रसन्न हइया॥

चै. च. म. १६.८७-९०

नदियाके भक्तवृन्द रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचलमें आये हैं। पूर्व वर्षके समान शची माताने अपने प्रिय पुत्रके लिए अपने हाथसे पकाकर उत्तम भोजनकी सामग्री भेजी है। श्रीवास पण्डितने वह सब सामग्री प्रभुके सामने रखकर प्रभुसे कहा—"हे प्रभु! शचीमाता तुम्हारे शोकसे बड़ी कातर हो गयी हैं। तुमको एक बार देखना चाहती हैं। तुम करुणा सागर हो। करुणा करके एक बार नवद्वीप चलो। दुःखिनी वृद्धा जननीकी मनोकामना पूरी करो।"

प्रभुके कमलनयनद्वय प्रेमाश्रुधारासे परिपूर्ण हो उठे। वे वाष्पाकुल नेत्रोंसे श्रीवास पण्डितकी ओर देखकर गद्गद स्वरमें बोले—"पण्डित! मैं भी अपनी स्नेहमयी जननीको बिना देखे अब रह नहीं सकता। उनके चरण-दर्शनके लिए मन बड़ा व्याकुल हो रहा है। इसी विजया-दशमी तिथिमें मैं नवद्वीप

होते हुए श्रीवृन्दावनभी यात्रा करूँगा। इस उपलक्षमें जननीकी चरण-धूलि लेकर कृतार्थ होऊँगा।"

प्रभुकी यह बात सुनकर नदियाके सब भक्तवृन्द परम आनन्दित हुए। उन्होंने सोचा कि यह शुभ संवाद शची माताको शीघ्र देना चाहिये और ऐसा बन्दोवस्त करना चाहिये कि प्रभुके नवद्वीप जानेपर सब लोग उनका दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हो सकें। यह सोचकर वे लोग इस बार रथयात्राके बाद ही नवद्वीप लौट गये। इसी कारण वे लोग—

रथ देखि ना राहिला गौड़े चलिला।

चै. च. म. १६.८५

प्रभुके आदेशको लल्लङ्घन करके इस वर्ष श्रीनित्यानन्द प्रभु नीलाचल नहीं आये। परन्तु श्रीअद्वैत प्रभुके द्वारा श्रीगौर भगवान्के पास कहला भेजा कि वे प्रभुके आदेशका पालन नहीं कर पा रहे हैं, शीघ्र ही प्रभुका दर्शन करने नीलाचल आवेंगे। यह सुनकर प्रभुने कुछ उत्तर न दिया। परन्तु श्रीपाद नित्यानन्दके लिए उनके कोमल प्राण रो उठे। प्रभुके नयनोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह चली।

राजा गजपति प्रतापरुद्रने सुना कि प्रभु श्रीवृन्दावनकी यात्रा करेंगे। इस बार प्रभुका इस विषयमें दृढ़ सङ्कल्प है। सार्वभौम भट्टाचार्य तथा राय रामानन्द बहुत चेष्टा करके भी इस बार प्रभुको रोक नहीं पा रहे हैं, क्योंकि इस बार प्रभु नवद्वीप-विरह-कातर थे। दुःखिनी वृद्धा जननीके लिए उनके प्राण रो रहे थे।

ओर भी एक व्यक्तिके लिए प्रभुके प्राण रो रहे थे, परन्तु यह बात कहनेकी नहीं है, अतएव प्रकट नहीं की गयी। गौर-वक्ष-विलासिनी, विरहकातरा, अनाथिनी श्रीविष्णुप्रिया देवी इतने दिनोंके बाद याद आयी हैं। उनको एक बार दर्शन देंगे, देखेंगे या नहीं—यह वे ही जानें। इस जीवनमें एक बार दर्शन देनेके उद्देश्यसे ही प्रभुने नवद्वीप होकर श्रीवृन्दावन जानेका सङ्कल्प किया है। परन्तु यह प्रभुके मनकी बात है।

सार्वभौम भट्टाचार्य तथा राय रामानन्दने प्रभुके मनोभावको समझा है, अतएव अधिक आग्रह नहीं किया। परन्तु उनके मनमें भय हुआ कि प्रभु एक बार वृन्दावन जाकर फिर न लौटें। श्रीवृन्दावनका नाम लेनेपर वे प्रेमानन्दमें मूर्च्छित हो जाते थे, उपवन देखते ही उनके मनमें श्रीवृन्दावनकी स्मृति उदय होती है, नदी देखते ही उनको श्रीयमुनाका भ्रम हो जाता है। वे श्रीवृन्दावन जाकर फिर क्या लौटेंगे? इस चिन्तासे दोनों आदमी विशेष कातर हुए।

राजा प्रतापरुद्रके पास जाकर उन्होंने सारी बातें कही। राजा भी बोले कि उनको भी यही भय है। यह बात कहते कहते-कहते राजा गजपति प्रतापरुद्रके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। प्रबल प्रतापान्वित चक्रवर्ती राजा सामान्य बालकके समान रोने लगे। राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्य दोनोंने मिलकर राजाको बहुत सान्त्वना दी। उन्होंने कहा, महाराज! श्रीवृन्दावन धाम यद्यपि प्रभुको प्रिय है, तथापि पतित-पावन श्रीगौर भगवान् आपामर सर्वजीवोंके निस्तारकर्त्ता हैं। सचल जगन्नाथ अचल जगन्नाथके इस गुरुभारको हल्का करनेके लिए निश्चय ही पुनः श्रीपुरुषोत्तम धाममें लौटेंगे।

आपामरं प्राणिन उद्दिधीर्षो-
नीलाचलेन्दोरति भारमेतम्।
लघू करिष्यन् पुरुषोत्तमस्थो
भूयोऽपि भावी पुरुषोत्तमोऽयन्॥

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ९.-

इस आश्वासनकी बातको सुनकर राजाका मन किसी प्रकार सुस्थिर हुआ वे बोले—"आप लोग प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त हैं, उनकी सारी बातोंसे आप अवगत हैं, आपकी बातोंसे मुझे आश्वासन मिला।"

राय रामानन्दने कहा—"चातुर्मास्यके बाद विजया-दशमी तिथिके दिन प्रभु श्रीवृन्दावनकी यात्रा करेंगे, यह बात उन्होंने स्वयं मुझसे कही है। विजयादशमीके दिन प्रभु हमको छोड़कर चले जाँयगे, इससे हमारे लिए जीवित रहना कठिन है। उनको बिना देखे हम प्राण कैसे धारण करेंगे, यही सोचकर व्याकुल हो रहा हूँ।"

चातुर्मास्यान्तरे नाथं कर्हिचिद् गमनोद्यतं।
उवाच बहु दुःखेन श्रीरामानन्द-रायकः ॥
दशम्यां विजयां तु गमनं भविता प्रभोः।
दशम्यां विजयायां तु दशायामहमग्रतः ॥

श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य १६.४,५.

सार्वभौम भट्टाचार्य जड़वत् निश्चेष्ट भावमें बैठे रहे। प्रभुके विरहकी आशङ्कासे वे संज्ञाशून्य होकर जड़वत् हो गये हैं, यह देखकर राजा प्रतापरुद्र अपने भावी गौर-विरह शोकके आवेगको संवरण करके भट्टाचार्यके निकट आये। उन्होंने अत्यन्त मृदु और मधुर शब्दोंमें उनसे कहा, भट्टाचार्य! आप मुझको सान्त्वना देने आये हैं। श्रीगौराङ्गविरह बड़ा ही दुःसह है, यह मैं जानता हूँ। आप लोग मुँह से जो कहते हैं, उसे कार्य रूपमें परिणत न सकेंगे। प्रभुके नीलाचलसे चले जाने पर हमारी जीवन रक्षा दुष्कर हो जायगी। अभीसे इसके लिए उपाय सोचना होगा।"

सार्वभौम भट्टाचार्य निश्चेष्ट भावमें बैठे थे। वे कहाँ है, इतना भी ज्ञान उनको न था। राजाको पास देखकर समझा कि वे राजमहलसे आये हैं। कुछ देरके बाद समझमें आया कि वे राजाको सान्त्वना देने आये थे। अपनेको अस्वस्थ देखकर बहुत लज्जित हुए, तथा अपनेको संभालनेकी चेष्टा करने लगे, परन्तु सँभाल न सके। भावी गौर-विरहकी आशङ्कासे वे मृतप्राय हो गये थे। वे बात नहीं कर पा रहे थे। इसी एकनिष्ठ गौरभक्त महापुरुषने एक दिन कहा था,—

शिरे वज्र पड़ि यदि पुत्र मरि जाय।
ताहा सहि तोमार विच्छेद सहन ना जाय ॥

चै. च. म. ७.४७

राजा प्रताप रुद्रने सार्वभौम भट्टाचार्यके दुःखको समझा। उनको और कुछ न कहकर राय रामानन्दसे बोले, "इस समय आप भट्टाचार्यको लेकर प्रभुके दर्शनके लिए जाँय। अभी प्रभुके श्रीवृन्दावन यात्राके बहुत दिन हैं। आप लोग उनको नीलाचल रखनेके लिए प्राणपनसे चेष्टा करें।"

इतना कहकर राजा गजपति प्रताप रुद्र, राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्यको विदा करके, एकान्तमें एक प्रकोष्ठमें जाकर बैठे। द्वारपालको द्वार नन्द करनेके लिए कहा। वे घरमें अकेले बैठकर सोच रहे हैं, "अहा! भट्टाचार्यकी श्रीगौराङ्गमें कैसी अपूर्व प्रीति है! भावी गौर-विरहकी आशङ्कासे इस महापुरुषकी इस समय जो दशा उपस्थित हुई है, उसकी विरहकी चरम दशाके साथ तुलना की जा सकती है। पता नहीं, जब प्रभु श्रीवृन्दावनकी यात्रा करेंगे तो इनकी कैसी दशा होगी? इनकी गौराङ्गैकनिष्ठताका एक कण भी मिल जाय तो मैं अपनेको कृतार्थ समझूँ। श्रीभगवान्में इस प्रकारकी एक निष्ठताका भाव हुए बिना वे कभी निज जन नहीं होते।" राजा प्रतापरुद्र इस प्रकार सोच रहे थे और अजस्र आँसू बहा रहे थे। आँखोंके झर-झर अश्रुप्रवाहसे उनका वक्षःस्थल भीग रहा था। राजराजेश्वर होकर भी वे आज दीनातिदीनके समान, मर्म-पीड़ित दुःखी और सन्तप्तके समान मनोव्यथासे क्रन्दन कर रहे थे। यह मनोव्यथा क्या थी?—भगवद्विरह। भावी गौराङ्ग विरह-सन्तापमें राजा वाणविद्ध हरिणीके समान छट-पटा रहे थे। वे उच्चासन पर बैठे थे, भूतल पर जा गिरे; और धूलमें लोटते हुए वालकके समान 'हा गौराङ्ग, गुणनिधि!' कहकर व्याकुल होकर रोने लगे। वे रो रहे थे, और कह रहे थे—

यदपि जगदधीशो: नीलशैलस्य नाथ:
प्रकट परम तेजा भाति सिंहासनस्थ: ।
तदपि च भगवत् श्रीकृष्णचैतन्यदेवे
चलति पुनरुदीचीं हन्त शून्या त्रिलोकी ।।

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ९.६

अर्थात् यद्यपि जगत्पति नीलाचल नाथ इस नीलाचलमें सिंहासनके ऊपर असीम प्रभाव प्रकट करते हुए सुशोभित हो रहे हैं, तथापि भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके श्रीवृन्दावन गमन करने पर हमारे लिए त्रिभुवन शून्य हो जायगा।

कृपालु पाठकवृन्द ! राजा गजपति प्रताप रुद्रकी इस बात पर कुछ निविष्टचित्तसे विचार करें। वे सूर्यवंशी महापराक्रमी स्वाधीन हिन्दू राजा थे। उनके पूर्वज श्रीश्रीजगन्नाथजीको साक्षात् ईश्वर मानकर बहुत दिनसे पूजते आ रहे थे। श्रीश्रीगन्नाथजीके सिवा अन्य किसी देवताको वे लोग नहीं मानते थे। राजा प्रताप रुद्र केवल प्रबल प्रतापी और ऐश्वर्यशाली राजा ही नहीं थे, बल्कि परम भागवत, शास्त्रज्ञ और विज्ञ पण्डित थे। उनने भारत वर्षके सर्वश्रेष्ठ वेदान्ती और नैयायिक पण्डितको लाकर नीलाचलमें अपना राजपण्डित बनाया था। श्रीश्रीजगन्नाथजीके सेवा-भोगके निमित्त उनकी सारी राज सम्पत्ति उत्सर्गीकृत थी। देव-सेवामें उन्होंने जीवन पर्यन्त उत्सर्ग कर रखा था। वे अपने हाथसे स्वर्ण सम्मार्जनी लेकर श्रीश्रीनीलाचल चन्द्रकी रथयात्राके समय रथके आगे मार्ग साफ करते चलते थे। इस प्रकारके भक्तिमान् राजा पहले नीलाचलमें कोई नहीं हुए थे। वे कहने लगे कि प्रभुने नीलाचल त्याग किया तो श्रीश्रीजगन्नाथजीकी श्रीमूर्त्ति देखकर उनके प्राणोंको परितृप्ति न होगी, हृदय शीतल न होगा। श्रीगौराङ्गसे विहीन होने पर उनका त्रिभुवन शून्य हो जायगा। श्रीगौराङ्ग प्रभुको राजा प्रतापरुद्र सचल जगन्नाथ मानते थे। सचल जगन्नाथको पाकर अचल श्रीविग्रहमें उनका मन नहीं लगता था। श्रीभगवानके विग्रहकी सेवाका फल उनको हाथों हाथ मिल गया है। उनकी प्रेम-भक्तिके बल अचल जगन्नाथ सचल होकर नीलाचलके उदित हुए हैं। उनको क्या राजा छोड़ सकते हैं? राजा प्रताप रुद्रका गौराङ्गानुराग और गौरांगैकनिष्ठता जगतमें अतुलनीय है। उनके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम।

इधर राय रामानन्द सार्वभौम भट्टाचार्यको लेकर प्रभुके वासा पर आये। सार्वभौम भट्टाचार्यने रास्तेमें राय रामानन्दके साथ एक बात भी नहीं की। प्रभुके पास आकर उन्होंने उनकी चरण वन्दना की। उनके एक बगलमें बैठकर श्रीगौराङ्गके मुखचन्द्रका दर्शन करके प्राणको शीतल किया, उनकी वचन-सुधा पान करके पिपासित कण्ठको शीतल किया। राय रामानन्दने श्रीवृन्दावनकी चर्चा चलायी, श्रीवृन्दावनका नाम सुनते ही प्रभु पुलकित हो गये। वे प्रेममें गद्गद होकर बोले, आप लोगोंसे पहले ही कह चुका हूँ कि इस वर्ष मैं श्रीवृन्दावनकी यात्रा करूँगा। श्रीवृन्दावनके लिए मेरा मन बड़ा ही व्याकुल हो रहा है। आप लोगोंकी कृपाके बिना श्रीवृन्दावन दर्शनका सौभाग्य मुझे प्राप्त न होगा। आप दोनों आदमी प्रसन्नता पूर्वक मुझको विदा कीजिये।"

राय रामानन्द राजा प्रतापरुद्रके अनुरोधसे प्रभुको एकबार और अनुनय विनय करके कुछ कहनेका निश्चय करके भट्टाचार्यको साथ लेकर उनके पास आये थे। परन्तु प्रभुकी बात सुनकर और कुछ कहनेका साहस न हुआ। इस सम्बन्धमें प्रभुके साथ जिद्द करना उनको अच्छा नहीं जान पड़ा। दोनों आदमियोंने विचार करके अन्तमें यह निश्चय किया कि।

"प्रभु सने अति हठ कभू भाल नय।"

चै. च. म. १६.६१

तब दोनों आदमी बोले, "हे प्रभु ! अभी तो वर्षाकाल है, अभी रास्ता नहीं चल सकेंगे। पहले आपने जो विजय दशमी तिथि स्थिर किया था, वही ठीक है । उसी शुभ दिनमें आप श्रीवृन्दावनकी यात्रा करेंगे।

भक्तवत्सल प्रभु यह बात सुनकर भक्तोंकी मनस्तुष्टिके लिए वर्षाकालमें नीलाचलमें रह गये।

विजयादशमी तिथिको प्रभुने नीलाचलसे नवद्वीपकी यात्रा की । यह वैष्णवीय* तिथि है. गौरभक्तके लिए अति शुभ दिन है। क्योंकि इसी पुण्य तिथिमें, इसी शुभ दिनमें श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रने जननी और जन्मभूमिका दर्शन करनेके उद्देश्यसे नीलाचलसे नवद्वीपकी यात्रा की थी। संन्यासियोंके लिए शास्त्र विधि है कि वे जीवनमें केवल एक बार जननी और जन्मभूमिका दर्शन कर सकते हैं। इसी कारण जन्मकी दुःखिनी माताको, और विरहिणी देवीको एक बार दर्शन देनेके लिए प्रभुकी यह शुभ-यात्रा हुई । गौर-शून्य नदियामें श्रीगौराङ्ग सुन्दर जा रहे हैं, इसकी अपेक्षा शुभ दिन और क्या हो सकता है ?

आश्विन मासकी शुभ विजया दशमी तिथिमें प्रभु नवद्वीप यात्रा करेंगे, यह संवाद सारी भक्त मण्डलीने सुना। राजा प्रताप रुद्रने भी सुना। वे दुःखित मन होकर कटक चले गये। प्रभुने जिस दिन नीलाचलको छोड़ा, उससे दो घण्टा पहले ही राजा प्रतापरुद्र श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र त्यागकर कटक चले गये। प्रभुकी विदाईका दृश्य वे देख नहीं सकते थे, इसी कारण ऐसी व्यवस्था की।

प्रभुके सङ्गी सब अन्तरङ्ग भक्तोंने निश्चय किया कि वे प्रभुके साथ श्रीवृन्दावन जाँयगे। उनमें श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईं भी थे। स्वरूप दामोदर गोसाईं और जगदानन्द पण्डित थे। मुकुन्ददत्त और काशीश्वर पण्डित थे। वक्त्रेश्वर पण्डित, हरिदास ठाकुर, गोपीनाथ आचार्य, दामोदर पण्डित और गोविन्द आदि सभी थे। गदाधर पण्डितने क्षेत्रसंन्यास ग्रहण किया था, उन्होंने भी क्षेत्र संन्यास त्याग करके प्रभुके साथ श्रीवृन्दावन जानेका सङ्कल्प किया।

नीलाचलके भक्तवृन्द मुरारि, शिखि माहिति, काशीमिश्र आदि सबने कहा कि वे भी प्रभुके साथ श्रीवृन्दावन जाँयगे।

सार्वभौम भट्टाचार्यने कुछ नहीं कहा कि वे क्या करेंगे। राय रामानन्दने मन ही मन सोच लिया कि प्रभुके साथ कटक तक जाकर गजपति प्रतापरुद्रके साथ एक बार भेंट करा देंगे।

राजा नीलाचल छोड़कर कटक चले गये, यह प्रभुने भी सुना। उन्होंने एक दिन राय रामानन्दसे कहा, "राय रामानन्द ! बहुत दिन हो गया साक्षी गोपालका दर्शन नहीं किया। मैं कटक जाकर गोपाल-दर्शन करके श्रीवृन्दावनकी यात्रा करूँगा। आप मेरे साथ कटक तक चलें।" राय रामानन्द भक्तवत्सल प्रभुके मनका भाव समझ गये। उनकी भक्तवत्सलताका परिचय पाकर प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठे। राजाको दर्शन दिये बिना प्रभु वृन्दावन नहीं जाँयगे, यह भी समझ लिया। उन्होंने उत्तर दिया, यदि आज्ञा हो तो इस अधीन की भी इच्छा श्रीवृन्दावन पर्यन्त जाने की है।" प्रभुने उत्तर दिया, "सार्वभौम और आपके नीलाचलमें नहीं रहने पर राजा प्रताप रुद्रको विशेष असुविधा होगी।" राय रामानन्द और कुछ न बोल सके।

* विजयादशमी तिथि वैष्णवोंकी स्मरणीय तिथि है, इसका एक और कारण है, गौड़ीय वैष्णवधर्मके प्रवर्त्तक श्रीश्रीगौर सुन्दरने ब्रह्म सम्प्रदाय ग्रहण किया था। इस ब्रह्म सम्प्रदायमें मध्ययुगके आचार्यके रूपमें ऋषिवर मध्वमुनिका उदय हुआ था। अतएव गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायको कोई-कोई माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय कहते हैं। विजयादशमी तिथि पूज्यपाद मध्वमुनिके आविर्भावका दिवस है। अतएव गौड़ीय वैष्णवोंके लिए यह तिथि आराधनीय है। यह वैष्णवीय पर्वतिथि है।

बाईसवाँ-अध्याय

प्रकाशानन्द सरस्वती और प्रभु

संन्यासी प्रकाशानन्द बसये काशीते ।
मोरे खण्ड-खण्ड देटा करे भाल मते ।।

चै. भा. म० २०-३३

प्रकाशानन्द-परिचय

प्रकाशानन्द सरस्वतीके नामसे सभी गौरभक्त परिचित हैं । उनका एक और नाम था प्रबोधानन्द । वे शङ्काराचार्यके द्वारा प्रवर्तित तत्कालीन मायावादी संन्यासी सम्प्रदायके नेता थे । पश्चात् करुणामय प्रभुने उनको कैसे आत्मसात् किया, यह बात आगे कही जायगी । वे सर्वशास्त्रविशारद जगत्प्रसिद्ध पण्डित थे । वे पहले प्रभुकी निन्दा किया करते थे और युगधर्म संकीर्तनके विरोधी थे । प्रभुने जब उनके ऊपर कृपा की तो परिव्राजक चूड़ामणि प्रकाशानन्द सरस्वती और उनके दस हजार संन्यासी शिष्य कृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर काशीके राजपथ पर धूलि धूसरित होकर लोटने लगे थे । प्रभुके श्रीमुखसे हरिनाम महामन्त्र पाकर प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करके काशीनगरीको कम्पित कर दिया था । पश्चात् वे प्रभुके कृपादेशसे व्रजमें रहकर हरिभजन करने लगे, तथा श्रीगौराङ्गके निन्दारूपी पापके प्रायश्चित्तमें संस्कृत भाषामें श्रीगौराङ्गके सम्बन्धमें एक श्रीग्रन्थकी रचना की । इस परम उपादेय ग्रन्थका नाम श्रीचैतन्यचन्द्रामृत है । इस ग्रन्थके पूज्यपाद टीकाकारने लिखा है—

श्रीश्रीपाद परिव्राजक राजो वेदान्त-सांख्य-वैशेषिक - पातञ्जल - मीमांसागम-निगम - पुराण महापुराण - सेतिहास पञ्चरात्रालङ्कार - काव्य-नाटकादि-रहस्य-सिद्धान्तानर्गल - वक्तृत्वोज्ज्वली-कृतासंख्यकाशीवास्यन्तेवासिकजनानामन्तःकरणकः सर्वावतारिणः स्वयंभगवतेऽङ्गीकृताह्लादिनी शक्तिसारभूत-श्रीराधिकाभावरूपस्य श्रीश्रीकृष्ण-चैतन्यमहाप्रभोः कृपादृष्टिपातेन स्फुरित यथार्थ सिद्धान्तः प्रबोधानन्द सरस्वती परममहानुभाव-स्तस्यैवोपास्यत्वं निर्णयन् तद्गुणवर्णनप्रधानचैतन्य-चन्द्राभिधानमङ्गलस्वरूप ग्रन्थमारभते ।"

अर्थात् "भारतके एकमात्र परिव्राजक शिरोमणि श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वती जो वेद-वेदाङ्ग, तर्क-सांख्य, वैशेषिक, ज्ञान, मीमांसा, आगम-निगम, पुराण, महापुराण, इतिहास, पञ्चरात्र, अलङ्कार-काव्य, नाटकादिके रहस्य सिद्धान्तके विषयमें धारा प्रवाह वक्तृताके द्वारा काशीके असंख्य पण्डितों और छात्रोंके हृदयमें आनन्दरस उत्पादन करते थे, वे श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके कृपाकटाक्षसे भक्ति-पथके पथिक होकर श्रीगौराङ्ग प्रभु और उनके भक्तोंका गुण वर्णन करके परम मङ्गल श्रीचैतन्यचरितामृत श्रीग्रन्थकी रचना करते हैं ।"

पुण्यभूमि काशी नगरीमें साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व यह महापुरुष असंख्य मायावादी संन्यासी शिष्योंसे परिवेष्टित होकर भारतवर्षके तत्कालीन ज्ञानपिपासु लोगोंको ज्ञानाञ्जन प्रदान करते थे । काशीके बिन्दु माधव श्रीहरिके मन्दिरके पास इन संन्यासी चूड़ामणिका प्रकाण्ड मठ था । यह संन्यासियोंके गुरु थे । शङ्कराचार्य मतावलम्बी होकर ये ज्ञान चर्चा करते थे । प्रबोधानन्द निराकार ब्रह्मवादी जप-तप ध्यान निष्ठा परायण परम साधु पुरुष थे । भगवान्में और अपनेमें वे भेद नहीं मानते थे । वे वेदान्त साधनके सर्वोच्च स्तरमें पहुँचे हुए थे । उनके

सम्प्रदायमें बहुतसे मायावादी संन्यासी थे। उनका प्रधान कार्य था वेदान्त पाठका श्रवण करना और साधना करना।

श्रीगौराङ्ग प्रभुने जो सार्वजनीन प्रेम-धर्मका प्रचार किया, उसका एक उद्देश्य संन्यासियोंका गर्व खर्व करना भी था। उस समय भारतवर्ष मायावादी संन्यासी-प्रधान देश हो गया था। संन्यासियोंने ब्राह्मण्य धर्मके ऊपर आधिपत्य जमा रखा था। प्रबोधानन्द सरस्वती तत्कालीन संन्यासी-दलके सर्वप्रधान नेता थे। भारतवर्षमें उस समय उनके समकक्ष कोई नहीं था। वे सर्वदेशपूज्य संन्यासी गुरुके रूपमें समस्त भारतवर्षमें प्रसिद्ध थे। वे श्रीभगवान्‌का विग्रह नहीं मानते थे।

काशीके प्रकाशानन्द सरस्वती जैसे महान् पण्डित और संन्यासियोंके गुरुके रूपमें प्रख्यात थे, नीलाचलके सार्वभौम भट्टाचार्य भी उसी प्रकार सारे भारतमें न्यायशास्त्र और वेदान्तमें सर्वप्रधान पण्डितके रूपमें विद्वत्समाजमें परिचित और आहृत थे। प्रकाशानन्द सरस्वती सार्वभौम भट्टाचार्यको विशेष रूपसे जानते थे। सार्वभौम भट्टाचार्य भी प्रकाशानन्द सरस्वतीको जानते थे। परन्तु दोनोंका साक्षात्कार नहीं हुआ था।

श्रीगौर भगवान्‌ने शुष्क विचार-प्रवण और तर्कनिष्ठ-मन वाले सार्वभौम भट्टाचार्यको किस प्रकार केश पकड़कर भक्तिमार्गमें लाकर आत्मसात् किया, इससे कृपालु पाठकगण अवगत हैं। प्रबोधानन्द सरस्वतीने काशीमें रहते हुए यह समाचार सुना। उन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य नामक नवीन संन्यासीका नाम तथा उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म-सम्प्रदायकी बात पहले सुन ली थी, सार्वभौम भट्टाचार्यके समान देश विख्यात, सर्वशास्त्र विशारद पण्डितने इस नवीन संन्यासीके नवीन मतका समर्थन किया है, वेदान्त-पाठ छोड़कर नृत्य-कीर्तन कर रहे हैं, भावुक बनकर रो रहे हैं, यह सुनकर तेजस्वी परिव्राजक शिरोमणिके मनमें बड़ा दुःख और द्वेष हुआ। द्वेष हुआ इस नवीन भावुक संन्यासीके ऊपर। उन्होंने सोचा कि इस संन्यासीने सार्वभौम-भट्टाचार्यके समान सर्वशास्त्र विशारद पण्डितको जब मन्त्रमुग्ध करके उनका सर्वनाश कर दिया है तो उसके बारा हिन्दू धर्मका, विशेषतः संन्यास-धर्मका विशेष अनिष्ट होनेकी संभावना है। इससे जगत्‌के जीवोंके लिए अमङ्गलकी आशङ्का है। अतएव नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभुके ऊपर उनको विशेष हिंसा, द्वेष और क्रोध हुआ। यही क्रोध उनके उद्धारका कारण बना।

प्रभुके साथ प्रकाशानन्दका पत्राचार

प्रभुकी श्रीवृन्दावन यात्राके कुछ पहले काशीमें बैठे-बैठे प्रबोधानन्द सरस्वतीके मनमें यह हुआ कि वे इस सम्बन्धमें इस नवीन संन्यासीको कुछ लिखकर भेजें। यह इच्छा उनके मनमें इच्छामय श्रीगौर भगवान्‌ने ही उदय कर दी। प्रबोधानन्द सरस्वतीके मनमें हुआ कि इस नवीन संन्यासीको दुःसाहस और धृष्टताका फल भोगना चाहिये। उसी समय काशीसे एक गौड़ीय वैष्णव नीलाचल जा रहे थे, उन नीलाचल-यात्री वैष्णवके हाथ प्रबोधानन्द सरस्वतीने प्रभुको एक श्लोक लिखकर भेजा। श्लोक यह है—

यत्रास्ते मणिकर्णिका मलहरा स्वर्दीर्धिका - दीर्घिका
रत्नस्ताक मोक्षदं तनुमृते शम्भुः स्वयं यच्छति।
एतत्त्वद्भुद्धामतः सुरतुरो निर्वाण मार्गस्थितं
मूढ़ोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति॥

अर्थ—जिस स्थानपर मणिकर्णिका और पापनाशिनी मन्दाकिनी दीर्घिका हैं, तथा जिस स्थानमें स्वयं महादेव तारक, मोक्षप्रद देवताओंके

आगे निर्वाण पथ स्थित रत्न प्रदान करते हैं, मूढ़गण इस प्रकृत रत्नका त्याग करके जैसे पशु मृगतृष्णिकामें दौड़ते हैं, उसी प्रकार आभाके चक्करमें अन्यत्र दौड़ते हैं।

प्रकाशानन्द सरस्वतीने अपने हाथसे यह श्लोक लिखकर उस पर अपना हस्ताक्षर किया। नीलाचल यात्रीको कह दिया कि यह पत्र श्रीकृष्ण चैतन्य संन्यासीके हाथमें देना, और कहना कि काशीवासी परिव्राजक प्रवर प्रकाशानन्द सरस्वतीने उनको यह दिया है।

इस श्लोकमें काशी-माहात्म्य कीर्तित हुआ है, और मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण जिसे वैष्णव लोग अति तुच्छ समझते हैं, उसकी प्रधानता वर्णन की गयी है। काशीवासीको स्वयं त्रिलोचन मुक्ति प्रदान करते हैं, अतएव काशीवासके सिवा जीवके लिए अन्य धर्म-कर्मका अनुष्ठान पशुश्रम मात्र है— यह कहा गया है। सबके अन्तमें अन्यान्य तीर्थवासियोंको साधु-पुरुषोंको नरपशु कहकर गाली दिया गया है। यह श्लोक श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके नामसे आदमीके द्वारा भेजकर उनकी और उनके द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्मकी निन्दाकी गयी है। उनको स्पष्ट कहा है कि, "तुम नीलाचलमें बैठकर मूढ़के समान व्यर्थ कालक्षेप कर रहे हो। तुम संन्यासी हो, संन्यासधर्न पालन करो, काशी-धाममें आकर देवदेव महादेवसे मोक्ष कामना करो।"

प्रकाशानन्द सरस्वती साधु पुरुष थे, संन्यासी थे। दूसरेके धर्मके ऊपर इस प्रकार कटूक्तिपूर्ण वाक्य प्रयोग करना उनको शोभा नहीं देता। इससे उनके ज्ञानगर्व और दाम्भिकताका परिचय प्राप्त होता है। विशेषतः वे जानते हैं कि जगत्में सनातन वैष्णव धर्मके नामसे एक धर्म है, जिसका अनादि अनन्त कालसे साधुजन याजन करते आ रहे हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उसी सनातन वैष्णव धर्मके प्रवर्त्तक और नेता हैं, भारतवर्षके तत्कालीन प्रधान नैयायिक और वेदान्ती पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रभुने आत्मसात् कर लिया है। उनके प्रभावसे वैष्णव धर्मका प्राधान्य सारे दक्षिण देशमें स्थापित हो गया है। पूर्व देशमें वैष्णव धर्म पूर्णरूपसे प्रचलित है, उड़ीसा प्रदेशके स्वाधीन राजा गजपति प्रतापरुद्रने अपने राज्यमें इस सनातन वैष्णवधर्मकी प्रतिष्ठा की है, तथा सार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकृष्ण-चैतन्य प्रभुको स्वयं भगवान्के रूपमें अङ्गीकार किया है—प्रकाशानन्द सरस्वतीने यह सब कुछ सुना है। उनके मनमें विषम आशंका उत्पन्न हुई है कि कहीं शंकराचार्यके द्वारा प्रवर्त्तित मायावादका उच्छेद न हो, वेदान्त धर्मका अधःपतन न हो। इस आशंकासे ज्ञानगर्वी और पाण्डित्याभिमनी प्रकाशानन्द सरस्वतौ अपने सिद्धान्तकी प्रधानता स्थापित करनेके उद्देश्यसे प्रभुकी निन्दा करके उनको क्रुद्ध करके काशीमें लाकर उनके साथ शास्त्रार्थ करके उनको परास्त करनेकी कामनासे यह जाल फैलाया। यह इच्छामय प्रभुकी इच्छा थी, ऐसा न होनेपर इस प्रकारका भाव प्रकाशानन्द सरस्वतीके मनमें उदय क्यों होता? वे अपने ही फन्देमें आप क्यों फँसते?

यथा समय पत्री आकर नीलाचलमें प्रभुके हाथोंमें पहुँची। वे श्लोक पढ़कर कुछ मुस्कराये। प्रकाशानन्द सरस्वती जगत्प्रसिद्ध सर्वलोकपूज्य संन्यासी शिरोमणि थे। पत्रवाहकको बहुत सम्मान किया, और स्वरूप गोसाईंके द्वारा उस श्लोकका एक उत्तर लिखवाकर भेजा। वह उत्तर भी श्लोकबद्ध था। यथा,

धर्मम्भो मणिकर्णिका भगवतः
पादाम्बु भागीरथी
काशीनाम्पतिरर्द्धमेव भजते
श्रीविश्वनाथः स्वयम्।
एतस्यैव हि नाम शम्भु नगरे
निस्तारकं तारकं
तस्मात्कृष्णपदाम्बुजं भज सखे
श्रीपादनिर्वाणदम्॥

अर्थ—मणिकर्णिका भगवान्‌का घर्मजल है, और भागीरथी भगवान्‌का चरणवारि है। काशीपति विश्वनाथ जिसमें निमग्न होकर भजन करते हैं, ओर वाराणसी नगरीमें जिसका नाम निस्तारक है, हे सखे ! उस श्रीकृष्णके निर्वाणप्रद चरणकमलका भजन करो।

प्रभुने जो बात कही, वह वैष्णव-धर्मकी सार वस्तु है। इसमें सर्व धर्मका सार तत्त्व निहित है। वे प्रकाशानन्द सरस्वतीको सखा सम्बोधन करके अति मधुर भाषामें उनको श्रीकृष्ण-भजन करनेका उपदेश देते हैं। प्रकाशानन्दने जो उनको गाली दिया है, उनकी निन्दा की है, उसको प्रभुने हँसकर उड़ा दिया। सर्वज्ञ प्रभु जानते हैं कि यह श्लोक पढ़कर प्रकाशानन्द सरस्वती क्रोधाभिभूत होकर उनको अधिक कटूक्तिसे पूर्ण पत्री लिखेंगे। निराकार ब्रह्मोपासकको मूर्त्तिपूजा करनेका उपदेश जैसे अपमान जनक होता है वैसा ही प्रकाशानन्द सरस्वतीके लिए कृष्ण भजनका उपदेश था।

यथा समय प्रकाशानन्द सरस्वतीको उत्तर मिला। वे इस नवीन संन्यासीकी धृष्टता देखकर आग बबूला हो गये। उनकी ज्ञानबुद्धि लुप्त हो गयी। उन्होंने तत्काल श्लोक लिखकर अपने आदमीके द्वारा नीलाचलमें प्रभुके पास भेजा।

विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशिनः
एते स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्टैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवाः
तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्दुस्तरेत्सागरम्॥

अर्थ—विश्वामित्र-पराशर आदि मुनिगण वायु, जल और पत्र मात्र भक्षण करके भी मनोहर स्त्रीके मुखका दर्शन करते ही मोहको प्राप्त हो जाते थे। जो लोग घृत-दधि-युक्त धान्यका अन्न भक्षण करते हैं, वे भी यदि इन्द्रिय-निग्रह कर सकते हैं, तो चटक पक्षी भी समुद्र पार कर सकता है।

इस श्लोकका तात्पर्य कृपालु पाठकवृन्द अवश्य समझते होंगे। प्रकाशानन्दके समान साधु-पुरुषकी लेखनीके द्वारा भी ऐसा जघन्य कुरुचिपूर्ण वैष्णव-धर्मका निन्दावाद प्रकट हो सकता है—यह कभी कोई सोच नहीं सकता। प्रभु श्रीश्रीजगन्नाथजीका प्रसाद ग्रहण करते हैं, यह उनका अपराध है। संन्यासियोंके लिए विहित जो आहार होता है, वैसा ही प्रभु ग्रहण करते हैं। जगन्नाथजीके भोगका प्रसाद वे त्याग नहीं सकते। ज्ञानगर्वी प्रबोधानन्द श्रीविग्रह-सेवाके विरोधी थे। प्रकाशानन्द सरस्वती भगवत्प्रसादका महत्त्व क्या जाने ? इसी भगवत्प्रसादको लक्ष्य करके उन्होंने इस श्लोकके द्वारा प्रभुको और उनके भक्तवृन्दको जैसी अशिष्ट भाषामें गाली दी है, उसके प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने जो ग्रन्थ लिखा, उसे पाठ करनेपर जाना जा सकता है कि उनको इसके कारण कितनी आत्मग्लानि हुई थी। इस प्रकार नति-स्तुति-प्रकाशक हृदयका निष्कपट आर्त्तिपूर्ण आत्मनिवेदन इससे पहले कभी जगत्‌में किसीने लिखा है या नहीं सन्देहास्पद हैं। कृपालु पाठकवृन्द कृपा करके श्रीचैतन्यचन्द्रामृत श्रीग्रन्थ एक बार सम्पूर्ण पाठ करें। स्वर्गीय महात्मा शिशिर कुमार घोषने इस अपूर्व ग्रन्थका पाठ करके श्रीश्रीमन्महाप्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया था।

प्रकाशानन्द सरस्वतीके प्रेरित श्लोकको पढ़कर प्रभु हँसे और बोले, इसके उत्तरकी अब आवश्यकता नहीं है। परन्तु उनके भक्तोंको प्रभुके प्रति प्रकाशानन्दकी कटूक्तिसे पूर्ण इस पत्रको पढ़कर मर्मान्तिक पीड़ा हुई। प्रभुको न कहकर उन सबने परस्पर परामर्श करके निम्नलिखित श्लोक उस पत्रवाहकके द्वारा काशी उनके पास भेज दिया। इस श्लोकके रचयिताका पता नहीं है।

सिंहो बली द्विरद शूकर मांसभोजी
संवत्सरेण कुरुते रतिमेकवारम्।
पारावतस्तृणशिखा कण मात्र भोगी
कामी भवेदनुदिनं वद कोऽत्र हेतुः॥

अर्थ—महा बलवान् सिंह हाथी, शूकर आदिका मांस भक्षण करके भी वर्षभरमें एक बार कामक्रीड़ा करता है, परन्तु कपोत साधारण तृणके कण मात्रको भक्षण करके भी दिन-रात कामक्रीड़ामें रत रहता है, बतलाइये इसका हेतु क्या है ?

प्रकाशानन्द सरस्वतीके ऊपर इस श्लोकका क्या प्रभाव पड़ा, यह ग्रन्थमें नहीं है। प्रभुके प्रति उनका क्रोध तो था ही, अब प्रबल हिंसा और घृणाका उद्रेक हुआ। वे दिन-रात इसी चिन्तामें रहने लगे कि किस प्रकार उनको लाञ्छित करें? यह चिन्ता ही उनके उद्धारका कारण बनी। कंसके मनमें जिस प्रकार दिन-रात श्रीकृष्णकी हिंसाके सिवा और किसी चिन्ताका उदय नहीं होता था, उसी प्रकार प्रकाशानन्दके जप-तप, धारणा-ध्यान, वेदान्त-पाठ आदि सब कर्मोंके ऊपर गौराङ्ग-निन्दाकी बातें, तथा उनके द्वारा प्रवर्त्तित भक्ति-धर्मके उच्छेदके साधनकी चिन्ता सवार हो गयी। इन्हीं दो प्रकारकी चिन्ताओंमें उनके दिन-रात व्यतीत होने लगे, तथा इसीसे उनको श्रीगौराङ्गके चरणोंकी प्राप्ति हुई। शत्रुभावसे कंसने श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त की थी। प्रकाशानन्दके भाग्यमें भी यही बदा था।

सार्वभौम भट्टाचार्यकी काशी-यात्रा

सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रकाशनन्द सरस्वतीके रचे गोराङ्ग-निन्दामूलक दोनों श्लोकोंको स्वयं पढ़ा था। प्रभुने ही उनको पढ़नेके लिए दिया था। काशीमें जैसे प्रकाशानन्द सरस्वती देशपूज्य पण्डित और संन्यासी-गुरु थे, वैसे ही नीलाचलमें सार्वभौम भट्टाचार्य सर्वलोक पूज्य पण्डित-शिरोमणि और संन्यासी-गुरु थे। दोनों एक दूसरेको विशेष रूपसे जानते थे। सार्वभौम भट्टाचार्य पहले प्रकाशानन्द सरस्वतीका मत तथा दण्डी-संन्यासीके सिद्धान्तको पोषण करते थे। अब प्रभुकी कृपासे भक्तिपथके पथिक होकर मधुर भक्ति-रसका आस्वादन करके उन्होंने अपना मत परिवर्तन कर दिया है। अब वे निराकार ब्रह्मवादियोंके सिद्धान्तको नास्तिकता समझते हैं। मायावादी संन्यासियोंके प्रति अब उनकी वह पहले जैसी श्रद्धा नहीं रही। इसके अतिरिक्त अब प्रकाशानन्द सरस्वतीके मुखसे प्रभुकी निन्दाकी बात सुनकर उनके मनमें सन्यासियोंके प्रति एक प्रकारकी अश्रद्धाका भाव पैदा हो गया है। उन्होंने एक दिन खुलकर प्रकाशानन्दको गाली दे दी।

प्रकाशानन्दके मुखसे प्रभु-निन्दा सुनकर भट्टाचार्य क्रोधसे अधीर हो उठे। इस क्रोधसे ही प्रबोधानन्द सरस्वतीके प्रति उनके हृदयमें दयाका उद्रेक हुआ। उन्होंने मनमें सोचा कि—"इतने बड़े विद्वान्, बुद्धिमान्, सर्वलोकमान्य, सर्वदेशपूज्य मनुष्यको कुपथमें जाने देना ठीक नहीं है। दयामय प्रभुने जब मेरे जैसे कुतर्की, शुष्क तर्क विचारनिष्ठ मनको भक्तिरससे द्रवित कर दिया है तो प्रकाशानंद सरस्वतीको भी केश पकड़कर वे सुपथ पर ले आवेंगे।" ऐसा विचार आते ही उनका मन आनन्दित हो उठा, क्रोध जाता रहा।

प्रभुकी कृपासे वे जिस अपूर्व भक्तिसुधाका पान कर रहे हैं, उसका एक बिन्दु प्रकाशानन्द सरस्वतीको देंगे, ऐसा सोचकर सार्वभौम भट्टाचार्यने काशी जानेका विचार किया। अपने मनकी बात वे छिपाकर रख न सके। एक दिन प्रभुके पास जाकर अकेलेमें बोले—"हे प्रभु ! तुम्हारे चरणोंमें मेरा एक निवेदन है। मैं एक बार काशी जाऊँगा। प्रकाशानन्द सरस्वती और उनके संन्यासी शिष्योंको मैं भक्तितत्त्व समझाऊँगा। तुम्हारी कृपाके बलसे मैं शास्त्रार्थमें विजयी हूँगा—इसकी मुझे पूर्ण आशा है। तुम कृपा करके अनुमति प्रदान करो, मैं काशीयात्रा करूँ।"

सर्वज्ञ प्रभु भट्टाचार्यके मनका भाव समझ गये। प्रकशानन्द सरस्वतीने प्रभुकी निन्दा की है, यह भट्टाचार्यने सुना है। इससे उनका मन बड़ा व्यथित

हुआ है, तथा उनको क्रोध भी आया है, यह भी सर्वज्ञ प्रभुने समझा है। भक्तितत्त्व समझानेका बहाना करके वे प्रकाशानन्द सरस्वतीको दण्ड देनेके लिए काशी जा रहे हैं, प्रभुने यह सब कुछ जान लिया है यह भी प्रभुको ज्ञान था कि काशी जैसे मायावादी संन्यासियोंके गढ़में भक्तिधर्मकी प्रधानता प्रचार करना सरल नहीं है। यह बड़ा कठिन कार्य है। यह सब बातें सोचकर प्रभुने उनसे कहा—"भट्टाचार्य ! काशी बड़ी भयानक जगह है। कोमल-हृदय-जीव भक्तिका अधिकारी है। काशी संन्यासी प्रधान स्थान है। उनका हृदय कुतर्क परायण और मन पाषाणके समान कठिन होता है। आपका श्रम व्यर्थ हो जायगा, कोई फल न निकलेगा। आप व्यर्थ श्रम करने वहाँ न जाँय। अपने सङ्ग-सुखसे मुझको वञ्चित न करें।"

सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुकी बातका कोई उत्तर न देकर चुप हो रहे। उनका मन शान्त न हुआ। प्रभुके मना करनेपर भी उनसे छिपाकर सार्वभौम भट्टाचार्यने काशीकी यात्रा की। भट्टाचार्यकी यह काशीयात्रा इच्छामय प्रभुकी इच्छासे ही हुई। उन्होंने जानेका जो निषेध किया था, वह उनका लीलारङ्ग रहस्य मात्र था। सार्वभौम भट्टाचार्यने जो प्रभुके आदेशका उल्लङ्घन किया, यह अमान्य न था। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा हैं—

"आज्ञा पालने कृष्णेर जनेक परितोष।
प्रेमे आज्ञा भाङ्गिलें कोटि गुण सुखबोध ।।"

चै. च. अं. १०.७

प्रकाशानन्द सरस्वतीके पास गौरगुणगान करने जा रहे हैं, भक्तिकी बात करने जा रहे हैं, उनके नीरस हृदयको भक्तिरससे सिञ्चित करने जा रहे हैं। यही उनका मुख्य उद्देश्य है। इसी उद्देश्यसे उन्होंने प्रभुकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है। इसको ही प्रेममें आज्ञाका उल्लङ्घन कहते हैं। यह वास्तवमें आज्ञा-उल्लङ्घन जैसा पाप कार्य नहीं हैं।

प्रकाशनन्द सरस्वती प्रभुकी निन्दा करते हैं, इससे उनके भक्तोंके मनमें व्यथा हो रही है, सार्वभौम भट्टाचार्यको यह असह्य हो गया है। वे प्रकाशानन्दको जानते हैं, प्रकाशानन्द भी उनको जानते हैं, दोनोंका साक्षात्कार होनेपर श्रीगौराङ्गके सम्बन्धमें प्रकाशानन्दका द्वेषभाव दूर हो सकता हैं। प्रकाशानन्द सरस्वती जैसे प्रतापशाली भारत प्रसिद्ध पण्डितको प्रभुकी कृपासे भक्तिपथमें लानेपर वैष्णव धर्मकी विशेष उन्नति हो सकती है, ऐसा सोचकर सार्वभौम भट्टाचार्यने स्वयं दल-बलके साथ काशीकी यात्रा की। यही उनके काशी-गमनका उद्देश्य था। तीर्थ करनेके लिए वे काशी नहीं जा रहे थे।

रथयात्राके कुछ दिन पूर्व ही सार्वभौम भट्टाचार्यने अपने शिष्यवृन्दके साथ काशीकी यात्रा की। उनकी इच्छा रथयात्राके समय नीलाचल लौट आनेकी थी। क्योंकि नदियाके भक्तवृन्द आने वाले हैं, प्रभु रथके आगे नृत्य करेंगे, सङ्कीर्तनके तरङ्गमें नीलचल प्लावित हो जायगा, इसे देखे बिना वे काशीमें न रह सकेंगे।

सार्वभौम भट्टाचार्य श्रीगौराङ्ग-चरणका चिन्तन करके शुभ दिनमें काशीकी यात्रा की। रास्तेमें जयपुरमें नदियाके भक्तोंके साथ उनकी भेंट हो गयी। श्रीअद्वैत प्रभु, हरिदास ठाकुर आदि सभी सार्वभौम भट्टाचार्यको देखकर परम आनन्दित हुए। सार्वभौम भट्टाचार्यने स्वरचित श्लोकके द्वारा श्रीअद्वैत प्रभुका प्रणाम किया।

अद्वैताय नमस्तेऽस्तु महेशाय महात्मने।
यत्प्रसादेन गौराङ्ग चरणे जायते रतिः ।।

चै च. महा. १४.४५

इतना कहकर प्रेमाश्रुनयनसे भूमि विलुण्ठित होकर उन्होंने श्रीअद्वैत प्रभुकी चरण-धूलि ले ली। हरिदास ठाकुरको देखकर उन्होंने प्रेमसे पुलकित

होकर उनको भी श्लोकबद्ध दण्डवत् प्रणाम किया। यथा—

"कुलजात्यनपेक्षाय हरिदासाय ते नमः।

चै. च. महा. १४.४८

श्रीअद्वैत प्रभुने प्रेमावेशमें सार्वभौम भट्टाचार्यको गोदमें उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। हरिदास ठाकुरने भट्टाचार्यको प्रणाम करते देखकर रोते-रोते दूर जाकर रास्तेमें धूलि धूसरित होकर अनेक बार दण्डवत् प्रणाम किया, और गम्भीर आर्त्त स्वरसे हाय-हाय करने लगे। भट्टाचार्यने उनकी स्तुति और प्रणाम किया था, इससे दैन्यावतार हरिदास ठाकुरके मनमें विषम ग्लानि उत्पन्न हो गयी। प्रभुकी कृपासे सार्वभौम भट्टाचार्यका मन निर्मल हो गया था। हरिदासकी महिमाका ज्ञान उनको प्रभुकी कृपासे हो गया था, इसीसे उनको भक्ति पूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया था। शिवानन्द सेन आदि अन्यान्य भक्तवृन्दके साथ सार्वभौम भट्टाचार्यने यथारीति प्रेमालिङ्गन और सादर सम्भाषण किया।

श्रीअद्वैत प्रभुको सार्वभौम भट्टाचार्यने अपने काशी जानेका उद्देश्य कहा। यथा, श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य में—

ततःस गद्गदां वाचमुवाच द्विजपुङ्गवः।
पुलकैः कण्टकीभूतं वपुर्दिभ्रद् गलत्क्लमः॥
श्रीगौरचन्द्र-चरण-कमलस्याप्यनाज्ञया ।
वेदान्तान्यार्थकृतये तदज्ञानां तारणाय च॥
चिरादध्यात्मयोगस्य भावना शुष्ककण्ठिनः।
एतया भक्तिसुधया जीवयामीति गम्यते॥
अत्र प्रभो मत्प्रतिज्ञाश्रवणानन्तरं यथा।
वाचो विलासं मा कार्षीर्वृथा श्रममति स्फुटम्॥

चै. च. महा १४.४९-५२

अर्थात् वे बोले, "प्रभुकी आज्ञा न लेकर मैं काशी जा रहा हूँ। वहाँ प्रकाशानन्द सरस्वती आदि प्रमुख मायावादी संन्यासीगण भक्तिधर्मके विरोधी होकर प्रभुकी निन्दा करने लगे हैं। मैं वेदान्तका अन्यार्थ, अर्थात् साकार ब्रह्मकी स्थापना और वेदान्त-तत्त्वज्ञोंको भक्तिसुधा दान करनेके निमित्त काशी जा रहा हूँ। वे लोग चिरकाल तक अध्यात्म योगके चिन्तनके द्वारा शुष्क कण्ठ और शुष्क हृदय हो गये है, भक्तिसुधाके द्वारा इनको जीवित करना होगा। आप लोग कृपा करके आशीर्वाद दें, जिससे मेरी मनोभिलाषा पूरी हो।"*

श्रीअद्वैतप्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कहा, "भट्टाचार्य! आपने गुरुतर कार्यमें हाथ डाला है। श्रीगौर भगवान् आपका मङ्गल करें।" सार्वभौम भट्टाचार्य सब भक्तवृन्दकी कृपा याचना करके उनसे विदा होकर काशी गमन किये। नदियाके भक्तवृन्द जयपुरसे याजपुरको चले।

सार्वभौम भट्टाचार्य यथासमय काशी पहुँच गये। प्रकाशानन्द सरस्वतीसे उनकी क्या बातें हुईं, क्या विचार हुए, ग्रन्थोंमें इसका कुछ उल्लेख नहीं है। प्रभुकी वाणी सफल हुई, वे काशीसे विफल मनोरथ होकर नीलाचल लौट आये। प्रभुके निषेधकी परवा न करके सार्वभौम भट्टाचार्यने काशी गमन किया, इसके लिए प्रभुने उनके ऊपर कोई विरक्तिका भाव प्रकट नहीं किया। रथयात्राके पूर्व ही वे झटपट नीलाचल लौट आये। जब प्रभुके पास जाकर उन्होंने चरण वन्दना की तो प्रभुने हँसकर कहा, "भट्टाचार्य! आप काशी जाकर कुछ न कर सके, इसमें दुःख न मानें। श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वतीने जब आपके समान कृष्णभक्तका सङ्ग प्राप्त किया है, तब उनके हृदयमें कृष्णभक्तिका बीज वपन हो गया, यह आप निश्चय जानें। इसके फल स्वरूप वे अविलम्ब कृष्णदास हो जाँयगे, इसमें सन्देह नहीं है।"

---

*तथाप्युत्कण्ठया यामि काशीं परमनिस्त्रपः।
मनोरथो मे सफलो यथा स्यात्तत् कृपां कुरु॥

श्रीचैतन्य चरितामृत काव्य १४.५५

सार्वभौम भट्टाचार्य अवनत वदन बैठे रहे। प्रभुके निषेधकी अवज्ञा करके वे काशी गये थे, इसी कारण कुछ फल न हुआ, यह उनका दृढ़ विश्वास था। प्रभुके सामने इसके लिए वे अपराधी थे। अपराधीके समान हाथ जोड़कर भट्टाचार्य प्रभुके सामने दण्डायमान हो गये, उनके नयनद्वयसे अश्रुधारा बहने लगी। भक्तवत्सल प्रभुने उनके मनोभावको समझा। पुनः स्नेहमें भरकर प्रभुने उनसे कहा, "भट्टाचार्य। आपका यह परिश्रम व्यर्थ न जायगा। संन्यासियोंके शुष्क हृदयको भक्तिरससे द्रवित करनेमें बहुत दिन लगता है, परन्तु श्रीकृष्णकी कृपा होनेसे यह कार्य क्षण भरमें सिद्ध हो जाता है। भक्तके अनुग्रहसे भगवानकी कृपा होती है। आपने कृपा करके श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वतीको दर्शन दिया है, कृष्ण उनके ऊपर शीघ्र ही कृपा करेंगे।"

भट्टाचार्य प्रभुकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके काशी गये थे, इस कारण उनके मनमें दारुण कष्ट था, इसके सिवा प्रभुके मुखसे अपनी आत्मप्रशंसा सुनी, इससे उनके मनमें अत्यन्त आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। वे हृदयाग्निमें दग्ध होने लगे, और प्रभुके सामने खड़े होकर अजस्र आँसू बहाने लगे। कृपानिधि श्रीगौर भगवान्ने उनको प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध करके पास बैठाया। उनके अङ्गपर श्रीकर-पल्लव स्पर्श करके परम स्नेह पूर्वक मधुर वचन बोले, "भट्टाचार्य! भक्ति बहिर्मुख जीवको भक्तिसुधा पान करानेमें आपकी आन्तरिक उत्कण्ठा देखकर मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूँ। आपके गुणों पर मैं मुग्ध हूँ। मैं दरिद्र संन्यासी हूँ। आपको देनेके लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। आपके गुणोंसे मैं आपके सामने चिर-ऋणमें आबद्ध हो गया हूँ।" यह कहकर कृपानिधि श्रीगौरभगवान् अपने सुवलित सुकोमल आजानुलम्बित बाहुयुगल द्वारा भट्टाचार्यके गलेको आवेष्टित करके अपने वक्षःस्थलमें श्रीवदनको छिपाकर आकुल होकर रोने लगे। प्रभुके नयन-जलसे सार्वभौमका परिधेय वस्त्र भीग गया। भट्टाचार्यके नयन-जलसे प्रभुके श्रीअङ्ग भी धुल गये। वहाँ प्रेमनदी बह चली, भक्तगण प्रेमतरङ्गमें डूबने लगे। सार्वभौम भट्टाचार्य आनन्द स्वरूप हो गये। उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। भक्त-भगवान् एकीभूत हो गये। जिसके भाग्यमें भक्त-भगवान्का यह शुभमिलन-दर्शन घटित हुआ, उनको वैकुण्ठका आनन्द प्राप्त हुआ।

पहले कहा जा चुका हैं कि रथयात्राके कुछ दिन पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य काशी गये थे। नदियाके भक्तवृन्दके साथ उनका साक्षात्कार हुआ था। उन्होंने नीलाचलमें लौटकर रथयात्राका दर्शन किया। रथके आगे प्रभुका नयन रञ्जन अपूर्व नृत्य दर्शन किया और नदियाके भक्तवृन्दके साथ इष्ट गोष्ठी की। नदियाके भक्तवृन्द चातुर्मास्य न करके प्रभुसे विदा होकर चले गये, तदुपरान्त प्रभुने श्रीवृन्दावनकी यात्राका दृढ़ सङ्कल्प किया। उस समय राजा प्रतापरुद्रके विशेष अनुरोधसे राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुको नीलाचलमें रखनेके लिए और एकबार विशेष चेष्टा की। परन्तु इसबार भी प्रभुका मन टससे मस न हुआ। इसका कारण पहले कहा जा चुका है। वे इस बार नवद्वीप दर्शनके लिए जा रहे हैं। नवद्वीप-विरहमें उनका हृदय बड़ा ही कातर हो रहा है। स्वतन्त्र ईश्वर श्रीभगवान्की इच्छाको कौन रोक सकता है? श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र नवद्वीप जा रहे हैं, यह सोचकर भट्टाचार्य और राय रामानन्दने और कोई बात नहीं की।

तेईसवाँ अध्याय

प्रभुकी वृन्दावन-यात्रा

ललल्लीलो ललल्लीलो
लोलो लोलो लललललः ।
लीलालोलोऽलिलीलालीं
लीलालीं लोललां ललुः ॥ (एकाक्षरः)
चै. च. महाकाव्य १९.२५*

श्रीक्षेत्रसे प्रस्थान

श्रीचैतन्यचरितामृत-महाकाव्यके रचयिता पूज्यपाद श्रीपाद कविकर्णपूर गोस्वामीने इस ग्रन्थके उन्नीसवें सर्गमें प्रभुकी श्रीवृन्दावन यात्राकी लीलाका वर्णन किया है । शिवानन्द सेन प्रभुके अन्तरङ्ग पार्षद भक्त हैं । उनके पुत्र कवि कर्णपूर गोस्वामी प्रभुके कृपासिद्ध महाकवि थे । उनके द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्यमें इस प्राचीन महाकविकी कवित्व प्रतिभा पूर्णरूपमें परिस्फुरित हुई हैं । विशेषतः उन्नीसवें सर्गमें उन्होंने नाना प्रकारके मधुर छन्दोंमें तथा सुललित वाक्य-विन्यासकी छटामें प्रभुकी श्रीवृन्दावनयात्राकी लीलाको जिस प्रकारके मनोमुग्धकारी भावोंमें वर्णन किया है, उसका पाठ करनेसे मन भक्तिरससे आप्लुत हो जाता है । श्रीवृन्दावन-यात्राके बहाने प्रभु नवद्वीप जा रहे हैं, पतित-पावनी गङ्गा और दुःखिनी माताका दर्शन करेंगे, और साथ ही अपनी विरहिणी प्राण-प्रियतमा श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको एक बार दर्शन देंगे । इस भावसे विभावित होकर कृपासिन्धु भक्त कविका हृदय आनन्दसे नृत्य करने लगा था, इसी कारण उन्होंने अति सरस और सुललित विविध छन्दोंमें श्रीग्रन्थके इस सर्गको

*पदच्छेद—ललल्लीलः ललल्लीलः लोलः लोलः लललललः
१ २ ३ ४ ५
लीलालोलः अलिलीलालीं लीलालीं लोललां ललुः ।
६ ७ ९ ८ १०

ललन्ती शोभमाना व्रजगमनरूपा लीला यस्य स **ललल्लीलः** । ललन्ती लड़योरैक्यात् लड़न्ती क्षिपन्ती लीलाचलवासरूपा लीला यस्य स **ललल्लीलः** । **लोल**श्चञ्चलः पूनर्लोलः सतृष्णः व्रजगमानार्थं इत्यर्थात् । **लोल**श्चलसतृष्णयो रित्यमरः । **ललल्** ईप्सन् **ललः** लड़ः समस्तजनप्रेरणरूपः क्षेपो यस्य सः । नीलाचलं त्यक्त्वा व्रजगमनार्थमेतादृगवस्थोऽपि महाप्रभुः **लीलालोलः** लीलया विलासेन लोलश्चञ्चल आसीत् । तदर्थमेव भक्तोत्कण्ठामाह अलीति । अलीनां भ्रमराणां लीलालीव लीला ताम् **अलिलीलाली**मित्युपमितसमासः । अत्र लीलां चेष्टां भ्रमरचेष्टामिवेत्यर्थः । **लोललां** लौलस्य चञ्चल-चितस्य ला ग्रहणं यया सा तां । यथा प्रभुर्ध्रियेत तथेत्यर्थः । **लीलालीं** चेष्टाकुलं ललुः प्रापुश्चक्रुरित्यर्थः । अत्र भक्ता इति योज्यं । चञ्चलदलमपि जलजं यथा मधुलुब्धोऽलिर्न त्यजति पुनस्तदवरोहणायैव यतते तथा प्रभुसङ्गसुखिनो गोविन्द-दामोदरादयोऽपि त्यजन्तमपि शचीनन्दनं न तत्यजुः । किन्तु स्थापयितुमेव ययतिरे । प्रथमावधि द्वितीयार्द्धस्य लीलालोल एतत् पर्यन्तं प्रभुविशेषणम् । ललुरिति ला ल ग्रहणे इत्यदादिकात् लिटि (ठ्यां) रूपमिति विवेकः ।,

नीलाचल-लीलाको छोड़कर व्रजगमन-रूप लीला ही जिनको अभिप्रेत है, अतएव उस निमित्त ही महाप्रभु सतृष्ण और चञ्चल होकर सब भक्तोंको छोड़कर विलासमें चञ्चल-मना हुए । अनुगामी भक्तगण भी जिस प्रकार उन चञ्चलमना गौरचन्द्रको पकड़ सकें, उस प्रकार भ्रमणगणकी लीलाकी तरह विविध लीला करने लगे ।

इसका तात्पर्यार्थ इस प्रकार है—वायुसे पुष्पके सञ्चालित होने पर मधुलुब्ध भ्रमर जैसे पुष्पको किसी प्रकार भी त्याग नहीं करते, वल्कि उनके ऊपर बैठनेकी ही चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार प्रभुपादानुरक्त भक्तगण वृन्दावन गमनार्थ चञ्चल-चित्त प्रभुको न छोड़कर पकड़नेकी ही चेष्टा करनेमें तत्पर हुए ।

लिखा है। संस्कृतज्ञ पाठकवृन्द कृपा करके मूल ग्रन्थसे प्रभुकी इस अपूर्व लीला-कथा पाठ करके मनमें अपार आनन्द प्राप्त करेंगे। इस अध्यायके आरम्भमें उद्धृत श्लोक और वहीं पाद टिप्पणीमें दिये गये श्लोकके भावार्थसे समझमें आ जायगा कि नीलाचलवासी प्रभुके अनुरागी भक्तगणने उनकी श्रीवृन्दावन-यात्राके उपलक्ष्यमें किस प्रकार व्याकुल होकर उनका अनुगमन किया था।

वर्षाकाल बीत गया। शरदागमसे धरित्री नव शोभासे सुशोभित हो उठी। श्यामल तरु-तृण-लता गुल्मसे परिशोभित होकर पृथ्वी देवीने श्रीगौर भगवान्‌के मनमें श्रीवृन्दावन स्मृतिका उदय करा दिया। आश्विन मासकी विजया दशमी तिथिमें श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र नवद्वीप जानेके लिए तैयार हो गये। उनको श्रीवृन्दावनकी यात्रा करनी थी, फिर इतनी तैयारीकी क्या आवश्यकता थी? वे आज बहुत व्यस्त थे। जगन्नाथजीका जितने प्रकारका प्रसाद मिला था, सब साथ ले लिया। चन्दन डोर आदि कुछ भी न छोड़ा।

जगन्नाथेर प्रसाद प्रभु जत पाइयाछिला।
कड़ार चन्दन डोर सब सङ्गे लैला॥

चै. च. म. १६.६४

वे नवद्वीप जा रहे थे। निज जनको प्रसाद बाँटना था, डोर चन्दन देना था। इसी कारण सब कुछ साथ ले लिया। श्रीवृन्दावन यात्राके बहाने नदिया-पुरन्दर श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र नवद्वीप चले। प्रभुके मनमें आज बड़ा आनन्द था। प्रातःकल उठकर वे जगन्नाथजीका दर्शन करने गये। उनकी आज्ञा-माला ग्रहण करके प्रभुने प्रभातमें ही शुभयात्रा की।

उनके आदेशसे भक्तगणने तब महासंकीर्तन यज्ञका अनुष्ठान किया। संकीर्तन-यज्ञेश्वर श्रीगौर भगवान् संकीर्तनके आगे खड़े हो गये। वे सहास्य और प्रफुल्ल श्रीवदन, सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित, गलेमें लटकतीं हुई सुगन्धित पुष्पोंकी माला, रक्ताम्बर पहने, श्रीहस्तमें एक श्रीगीता ग्रन्थ लिये, आजानुलम्बित सुवलित वाहुयुगल ऊपर उठाकर बारंबार उच्च स्वरसे हरिध्वनि करने लगे। साथ ही मधुर नयनरञ्जन नृत्य करने लगे। समस्त नीलाचलवासी नर-नारी, बाल-वृद्ध-युवा एकत्रित होकर उनकी अपरूप रूपराशिका दर्शन करते हुए उच्चस्वरमें उनकी हरिध्वनि सुनकर प्रेमानन्दमें विह्वल होकर भावी विरहकी आशङ्कासे बालकके समान रुदन कर रहे हैं।

श्रीश्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके द्वार पर खड़े होकर प्रभुने उस दिन यह अपूर्व महासङ्कीर्तन आरम्भ किया। वहाँ पहले प्रभुने स्वरूप गोसाईंको खोजा, पर उनको देख न पाये। अपने प्राणप्रिय स्वरूपको न देख सकनेके कारण प्रभु अग्रसर नहीं हो रहे थे। स्वरूपके सिवा दूसरा कौन उनके कीर्तन गानका धूहा धरेगा? प्रभु बारंबार हरिध्वनि कर रहे थे, प्रेमोन्मत्त होकर विशाल हुङ्कार गर्जन कर रहे थे, और अत्यन्त उत्कण्ठित होकर इधर उधर देख रहे थे। स्वरूप दामोदर गोसाईं अब तक नहीं आ सके। स्वरूपकी अनुपस्थितिसे प्रभु अधीर हो रहे थे, उनके मनमें तब विषम प्रणय कोप उत्पन्न हो आया।

दैवगतिसे स्वरूप गोसाईंके आनेमें देर हो गयी थी। पहले दिन प्रभुने उनसे कह दिया था कि, "स्वरूप! मैं जगन्नाथजीका दर्शन करके ही कीर्तन प्रारम्भ करूँगा, तुम मेरे साथ गाओगे, इसमें अन्यथा न होने पावे। मैं जगन्नाथजीका दर्शन करके कीर्तन करते हुए शुभ यात्रा करूँगा।" शुभ यात्राके समय स्वरूप दामोदरको न देखकर प्रभु विचलित हो गये। सिंहद्वार पर खड़े रह गये, अग्रसर न हो सके।

महाकवि श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने प्रभुके तत्कालीन मनोभावको लेकर एक सुन्दर द्वयाक्षर श्लोककी रचना की है। इसमें स्वरूप

दामोदर गोस्वामीकी महिमा कीर्तित हुई है। वह श्लोक इस प्रकार है—

भावाभावाभिभावाभिभवभावे वभौ भवः।
विभावेवम्भाव भावे वभूव भुवि वैभवम् ॥

(द्वाक्षरः) चै. च. महा. १९.१७

पदच्छेद—

भाव अभाव अभिभाव अभिभव भावे वभौ भवः
विभौ एवं भाव भावे वभूव भुवि वैभवम् ॥

अन्वय—भाव अभाव अभिभाव अभिभव भावे भवः वभौ, विभौ एवं भाव भावे (सति) भुवि वैभवं वभूव।

दामोदरागमनेन प्रभोर्व्याकुलतामाह भावेत्यादि-द्वयक्षर श्लोकेन। **भावः** सत्ता तस्य **अभावः** असत्ता अविद्यमानता सच श्रीदामोदरस्येति ज्ञेयम्। तेन भावाभावेन **अभि** समन्तात् यो **भावः** वियोगदशा तेन **योऽभिभवः** तस्य भावे सति **भवो** जन्म श्रीदामोदरस्येत्यर्थः। **वभौ** शुशुभे। **विभौ** प्रभौ श्रीगौराङ्गे **एवं भावस्य** एवं प्रकार भावस्य **भावो** विद्यमानता यस्मिन् तादृशे **सति भुवि** पृथिव्यां **वैभवं** गौरवं **वभूव** आसीत्। इदमत्र तात्पर्य, एवं पूर्वोक्त प्रकारेण श्रीदामोदरस्याभावजनितदुःखेन प्रभौ व्याकुले सति श्रीदामोदरस्य जन्मैव वभौ। यद्विरहे प्रभोर्व्याकुलता तस्यैव जन्म सफलं तस्यैव गौरवञ्चेति फलितम्। इत आरभ्य एकद्वित्र्यादि श्लोकानन्तरमेकैकं चित्र्यकाव्यं विद्यते॥

इसका भावार्थ इस प्रकार है—अभाव जनित वियोगसे महाप्रभुके व्याकुल होनेके कारण स्वरूप दामोदर गोस्वामीका जन्म सार्थक हो गया, और भूमण्डलमें उनकी महागौरव वृद्धि हुई। अर्थात् गौरभगवान् जिसके विरहमें व्याकुल हैं, उसीका जन्म सफल है, और जगत्में उसीको प्रकृत गौरव प्राप्त हैं।

कवि कर्णपूर गोस्वामीने इस श्लोकमें अपनी कवित्व शक्तिका तथा भावग्राही श्रीगौरभगवान्की भावोपलब्धि और भावानुभूतिका पूर्ण परिचय प्रदान किया है। उनके चरणोंमें कोटिशः प्रणिपात।

धन्य हो तुम स्वरूप दामोदर! हमारे कृपानिधि प्रभुकी इस प्रकारकी अपार और अपूर्व कृपाके पात्र एकमात्र तुम्हीं हो। तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात! इस जीवाधम ग्रन्थकारको तुम अपने चरणोंकी धूलि बना लो।

कृपानिधि प्रभु स्वरूप दामोदर गोसाईके साथ कीर्तनानन्दमें उन्मत्त हो गये। स्वरूप गोसाईंने गानका धूहा पकड़ा—"**तुया चरणे मन लागइ रे।**" उनके मधुर कण्ठसे जो मधु-सागरकी तरङ्ग उठी, लाखों-लाखों आदमी उसको आकण्ठ पान करके परितृप्त हो गये। कीर्तन सुधासमुद्रके तरङ्गमें सारा नीलाचल प्लावित हो गया। प्रभुने तब नयन-रञ्जन मनोमुग्धकारी भुवन मोहन मधुर नृत्य आरम्भ किया, भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें मत्त होकर प्रभुके साथ नृत्य करने लगे। नृत्य-कीर्तनानन्दमें नीलाचल मुखरित हो उठा। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने प्रभुके इस कीर्तनके सम्बन्धमें एक सुन्दर श्लोक लिखा है। यह श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

कीर्त्तनं चक्रिरे केच समुत्सुकमनोलयाः।
नर्त्तनं चक्रिरे के च समुत्सुकमनोलयाः॥

चै. च. महा. १९.२१

यह श्लोक गोमूत्रिका बन्धमेंगोमूत्र-पतन-धारा-क्रममें रचित है। इसका पाठक्रम इस प्रकार है, ऊपरके 'की' से नीचेके 'र्त्तं', एवं वहाँसे ऊपरके नं, वहाँसे नीचेके 'च', तथा वहाँसे ऊपरका 'क्रि', तथा वहाँसे नीचेका 'रे' इत्यादि रूप, और नीचेके 'न' से ऊपरके 'र्त्तं', और वहाँसे नीचेके 'नं' इत्यादि।*

इस श्लोक-रचनामें श्रीपाद महाकवि कर्णपूर गोस्वामीकी कवि प्रतिभाका अपूर्वरूपसे पूर्ण विकास हुआ है।

---

*की र्त नं च क्रि रे के च स मु त्सु क म नो ल याः।

न र्त नं च क्रि रे के च स मु त्सु क म नो ल याः॥

इसका भावार्थ है—"इसके बाद कितने ही भक्तवृन्द अतिशय उत्सुक चित्तसे कीर्तन करने लगे, और कितने ही भक्तवृन्द उत्सुक चित्तसे नृत्य करने लगे।

प्रभुके साथ सब भक्तगण हैं। नीलाचलके भक्तगण श्रीजगन्नाथजीकी सेवा छोड़कर बहुत दूर न जा सके। काशी मिश्र आदि सब लोग कुछ दूर जाकर प्रभुके सङ्केतसे लौट आये (चै. च. महा. १६.२२)। प्रभुके साथ चले श्रीपाद परमानन्दपुरी गोसाईं, ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं, स्वरूप दामोदर गोसाईं, जगदानन्द पण्डित, हरिदास ठाकुर, वक्रेश्वर पण्डित, गोपीनाथ आचार्य, काशीश्वर पण्डित, मुकुन्द और गोविन्द आदि एवं नदियाके बहुतसे भक्तगण जो नीलाचलमें थे। इनके बीच रामाई—नन्दाई भी थे।

राय रामानन्द पैदल नहीं चल पाते थे, वे सुखी और बड़े आदमी थे। कभी पैदल चलनेकी आदत न थी। वे डोली पर चढ़कर प्रभुके साथ चले (चै. च. महा. १६.२६)। सार्वभौम भट्टाचार्य पैदल ही चले। सूर्य नारायण आकाशमें उदित हो गये। तरुण रविकी अरुण किरणें दिङ्मण्डलको प्रतिभासित करने लगीं।

प्रभु वृन्दावन भावमें विभोर होकर प्रेमानन्दमें नृत्य कर रहे हैं, किसी ओर उनका लक्ष्य नहीं है। वे इस समय प्रेमानन्दमें बाह्यज्ञान शून्य हो रहे हैं।

प्रभु प्रेमोन्मत्त होकर नृत्यावेशमें रास्तेपर चले जा रहे हैं, उनके साथ अनेक लोग हैं। कोई प्रभुका साथ देनेमें समर्थ नहीं हो रहा है। प्रभु कभी रास्तेमें दौड़े जा रहे हैं, कभी वनमें आड़में छिप जाते हैं। इस प्रकार भयानक जन-समूहसे दूर निकल गये। बहुतसे लोग उनके साथ दौड़ न पानेके कारण असमर्थ होकर रास्तेमें लोट रहे हैं, और रो रहे हैं। बहुत-से निराश होकर पेड़के नीचे बैठ गये हैं। इस प्रकार क्रमशः भीड़ छटने लगी है।

राय रामानन्द एकबार डोलीसे उतरकर कुछ दूर पैदल चलकर रास्तेमें थक जाते हैं और फिर डोलीपर चढ़ जाते हैं। इस प्रकार वे प्रभुके साथ साथ चले जा रहे हैं। प्रभुने उनको देखकर पहले नीलाचल लौट जानेके लिए अनुनय-विनय किया, पश्चात् प्रणयकोप प्रकाशित करते हुए उनको बुरा-भला कहनेसे नहीं चूके। तथापि गौराङ्ग-गतप्राण राय रामानन्दने प्रभुका सङ्ग नहीं छोड़ा। प्रभुने उनके साथ इस प्रकार प्रेमकलह करनेके लिए एक स्थानपर कुछ देर रुकनेका विचार किया। राय रामानन्द दुःखसे व्यथित चित्त हो गये। एक तो प्रभुके विरहके कारण उनका हृदय जर्जरित हो रहा था, उसके ऊपर उनकी ओर प्रभुकी इस उपेक्षामें मरजाना ही ठीक जान पड़ने लगा।

इस प्रकार प्रेमोन्मत्त प्रभुके साथ-साथ सब लोग भवानीपुर जा पहुँचे। राजा प्रतापरुद्रके आदेशसे इस स्थानमें वाणीनाथ जगन्नाथजीका बहुतसा प्रसाद लेकर आ गये। श्रीक्षेत्रसे राशि-राशि प्रसाद बहुतसे लोगोंके द्वारा बड़े यत्नसे यहाँ आया था। यह उत्तम प्रसाद-राशि देखकर प्रभु आनन्दसे उत्फुल्ल हो उठे। भक्त महाकवि श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने प्रेमानन्दमें द्रवित होकर इस महाप्रसाद वैभवके सम्बन्धमें एक अति सुन्दर एकाक्षर श्लोक लिखा है। यथा,

"नानाना नुनि नानेनेनानानूननन्नूननु ।
नानान्नूने नाननान्नोने नो नाना ननुन्ननु ॥

(एकाक्षर) चै० च० महा० १६.३७

पदच्छेद—

नानाना नूनि नाना इनेनान् आ-अणून् अनणून् अनु
२ ३ ४ ५ ६ ७ ८
नाना अणूने न आनन अन्न ऊने नो नाना न नुत् ननु।
६ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १

टीका—**ननु** भो **नानाना** इनेनान् अनूनन्
 १ २ ३ ४

नाना पुरुषः कोऽपि इत्यर्थः। **नूनि** सानुनयं यथा
 ५ ६

तथा (आ-अनून्) आनून् आ सम्यक् प्रकारेण
 ७

अनून अल्पान् **अनु** लक्षीकृत्य प्रचुरतया मत्वेत्यर्थः।
 ८

नाना-अनुने नानाप्रकार बहुतरे अतएव **न**
 ९ १० ११

आनन् अन्न ऊने **(नाननान्नोने)** आननस्य
 १२ १३ १४

मुखस्य यदन्नं तस्मात् ऊनं हीनं न तादृगिति तत्तस्मिन् अधरामृतस्याल्पतरत्वविषये इत्यर्थः।
नो (न) **नाना न** बहुतरः इति **नुत्** प्रेरकः
१५ १६ १७ १८

एतद्वादी न आसीदिति शेषः। इदमाकूतं यत्, कोऽपि महात्मा अल्पानपि प्रभुसदृश प्रभु प्रसादान् सविनयं अनल्पान् दृष्ट्वा तेषां च विविध प्रकारत्वे बहुपरिमितत्वे अधरामृतस्याल्पतरत्वे च विषये 'न प्रचुराः' इति न अवादीत् किन्तु प्रचुरान् एव अवादीदिति। प्रभु प्रसादान् अनल्पान् अपि बहुतया सम्मानितवान् इति संक्षेपः। अयमभिप्रायः। श्रीमन्महाप्रभुप्रभावात् यः कोऽपि पुरुषः एवं सिद्धान्तसारं निश्चिकाय यत् प्रभुतुल्यत्वं महाप्रसादस्य। तथा च श्रीहरिभक्तिविलासोद्धृत ९।४०३,४०४ वृहद्विष्णुपुराणे—

नैवेद्यं जगदीशस्य अन्नपानादिकं च यत् ।४०३
ब्रह्मवन्निर्विकारेदं यथा विष्णुस्तथैव तत् ।।४०४

इत्यादि

नु वितर्कापमानयोः। विकल्पा नुनयेत्यादि। मेदिनी। विरुद्धधर्मं समवाये भूयसां स्यात् सधर्म कत्वमिति न्यायेन। अनेकदन्त्यनकारसंसर्गात् 'अणून आनणून् इत्यत्राणोर्णकारस्य दन्त्यत्वं। इनः प्रभुः। अजहत्-स्वार्थलक्षणया तत्प्रसादो ज्ञेयः। इनेन तुल्यः इनतुल्यस्तादृशः इनः। इति मध्यपदलोपी समासः। इनः पत्यौनृपार्कयोरिति मेदिनी। कृतमिति विस्तरतः परं सुगमं ।।

अर्थ—साधारण व असाधारण भक्त (प्रसादकी महिमाको न जानने वाले) अल्पसंख्यकोंको सानुनय प्रेरणा देते हैं कि सर्वोत्कृष्ट (ईश्वरीय) मुखारविन्दके प्रसादी अन्नको पाकर कोई हीन नहीं होता किन्तु भलीभाँति समृद्ध होता है।

प्रभु अपने गणके साथ प्रसाद पाकर कुछ देर विश्राम करनेके बाद पुनः नृत्यानन्दमें विभोर होकर रास्तेपर बाहर निकले। कुछ दूर जानेपर एक गाँवमें जा पड़े। उस गाँवमें बहुत लोगोंका वास था। सब लोग प्रभुका दर्शन करने आये। उनकी अपरूप रूपराशि देखकर मुग्ध होकर वे लोग एकटक उनके मुखचन्द्रकी ओर देखते रह गये। गाँवके सभी नर-नारी आनन्दके समुद्रमें डूब गये। सब काम छोड़कर प्रभुको देखते रहे। रसिक भक्त महाकवि श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने इस स्थानकी लीलाका वर्णन करते हुए एक और अति सुन्दर द्वयक्षर रसमय श्लोक लिखा है—यथा,

लीला लोलालि-ललना ललन्नलिन लालनैः।
नलाल ललनालीनां लीलां लाननिलो ललन् ।।
चै. च. महा. १९.४१

पदच्छेद—

लीला लोलालि ललना ललन् नलिन्-अलालनैः
 ३ ६ २

नलाल ललनाः अलीनां लीलां लान् अनिलः ललन्
१० ५ ४ ७ ८ १ ९

अन्वय :—

अनिलः नलिनलालनैः लीला लोलालिललना
१ २ ३

अलीनां ललनाः ललन् लीलां लान् ललन् नलाल
४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

टीका—**अनिलः** पवनः **नलिनलालनैः** कमलचालनैः
१ २

लीला लोलालिललनाः लोलया विलासेन लोलानां
३

अलीनां भ्रमराणां **ललनाः** कामिनीः भ्रमरीरित्यर्थः ।
४ ५

ललन् ईप्सन् ललनालीनां ललना स्थितां **लीलां**
१ ७

केलीं **लान्** गृह्णन **ललन्** ईप्सन् सुखितः
८ ९

सन्नित्यर्थः । **नलाल** चचाल ।
१०

लड़ कु भ्रंशे अत्रऽलयोरैक्यं स्वीकार्यं । प्रथमत्र ललत् केप्से इति निर्विरोधः । लीला केलिविलासयोरिति मेदिनी । ला ल ग्रहणे इत्यदादिकात् शतृप्रत्ययः । अन्योऽपि पतिर्यथा विलासिनीं वनितां करेणाह्वयति । तथा वायुरपि पद्मकरचालनैर्विलासशालिनीः भ्रमर-वनिताः अभिलसन् चचालेति भावः ।

भावार्थ—पवन देवने भी पद्म सञ्चालन द्वारा विलासशालिनी अलिमालाका अभिलाष करके ही मानो इतस्ततः सञ्चरण किया था ।

इस प्रकार प्रेमोन्मत्त होकर सब लोगोंमें प्रेम वितरण करते हुए प्रभु रास्तेसे चले जा रहे हैं । जो उनको एक बार देखता है, वही प्रेमोन्मत्त होकर भुजाएँ ऊपर उठाकर नृत्य करने लगता है । प्रभु जिस ओर शुभदृष्टिपात करते हैं, उधर ही मानो प्रेमवृष्टि होने लगती है । प्रेममय प्रभुकी प्रेमचेष्टा देखकर सब लोग प्रेमानन्द सागरमें डूब रहे हैं । सङ्गके भक्तगण आनन्दस्वरूप हो रहे हैं ।

प्रभुके मनमें इस समय श्रीवृन्दावन-भावका पूर्ण विकास हो गया है । रास्तेके बगलके उपवनको देखकर उनके मनमें वृन्दावनकी स्मृति उदय हो गयी है । वे प्रेमावेगमें क्या कर रहे हैं ? इसका वर्णन कवि कर्णपूर गोस्वामीने चैतन्य चरितामृत महाकाव्य (१९.४३-४६) के अति सुन्दर चार श्लोकों द्वारा लिपिबद्ध किया है । यथा,

अथ वीक्ष्य द्रुमं श्रेष्ठं धावन्नारादवारितः ।
स्कन्धमुत्प्लुत्य धृत्वा च लम्बमानः श्रियं दधे ॥४३॥

अर्थ—एक वृक्षको देखकर निर्बाध दौड़कर उछलकर एक वृक्षके स्कन्धको धारण करके लम्बमान होकर यिशेष शोभाको प्राप्त हुए ॥४३॥

आलिलिङ्ग तरुं भूयो लोचनाम्बुभिराप्लुतः ।
कं वा केन प्रकारेण नोद्दधार महाप्रभुः ॥४४॥

अर्थ—महाप्रभु फिर लोचन-जलसे आप्लुत होकर वनमें वृक्षोंको आलिङ्गन करने लगे । अतएव किस प्रकार किसका उद्धार किया, कहा नहीं जा सकता ॥४४॥

का के ने व वने केका
लावकेन न केवलं ।
शुद्धासार रसाद्धाशु
नु ति रासु सुरा तिनु ॥*॥४५॥
(प्रतिलोमानुलोमपादः)

परार्द्धका पदच्छेद—
'शुद्ध आसार रसा अद्धा नुति रा सुसुरा अतिनु ।'

टीका—वने कानने काकेन वायसेन इव लावकेन तदाख्य पक्षिणा न केवला अकेवला पूर्णेत्यर्थ । शुद्धः

* अस्यं पाद चतुष्टये अनुलोम-विलोम पाठे । अर्थात् वामाद्दक्षिणतो, दक्षिणात् वामतस्तुल्यपाठः ॥

आसारः धारासम्पातः यत्र सः शुद्धासारः वर्षर्तुः तत्र रस अनुरागः यस्याः तादृशी केका मधुर-वाणी। केका बाणी मयूरस्येत्यमरः। नु धायोर्भावे क्तिः नुतिः स्तवः तां राति ददातीनि रा धातोः कर्त्तरि डः स्त्रियामाप्। तादृशी या सु-सुखदा सुरा तामपि अतिक्रम्य नुः स्तवनं यत्र तादृशं यथा तथा दिदीपे इति शेषः ॥४५॥

अर्थ—काककी तरह लावक नामक पक्षिगणकी ध्वनि सहित मयूरकी उच्च ध्वनि काननमें पूर्ण हुई। वास्तवमें मयूर-ध्वनि विशुद्ध वर्षा ऋतुके सम्बन्धके कारण उत्कृष्ट होकर मानो मदमत्त व्यक्तिको भी अतिक्रम करके उच्च स्तवपाठकी तरह शोभा पाने लगी ॥४५॥

वृन्दावनद्रुमानित्थमालिङ्गपति विह्वलः।
तथा लिलिङ्गः स तरुं यथा चूर्णायते मुहुः ॥४६॥

अर्थ—इस प्रकार गौरचन्द्र विह्वल होकर वृन्दावनके वृक्षोंको आलिङ्गन करने लगे, एवं प्रभुने उसी प्रकार आलिङ्गन किया था जिससे मुहुर्मुहु वृक्षोंको चूर्ण कर सके ॥४६॥

इनका भावार्थ—मार्गमें कुसुमित तरु-राजिको देखकर प्रभुके मनमें श्रीवृन्दावनकी स्मृति जाग्रत हुई। वे गोपीभावमें विभोर होकर अपने प्राण-वल्लभ कृष्णको अन्वेषण करने लगे। वे सोचने लगे कि इस वृन्दावनमें बृक्षकी शाखापर श्रीकृष्ण कौतुक करके छिपे हुए हैं। यह सोचकर प्रभु कूदकर एक वृक्षकी शाखा पकड़कर प्रेमानन्दमें झूलने लगे। इससे उनकी अपूर्व शोभा हुई। पुनः उन्होंने वृक्षकी शाखा छोड़कर दूसरे वृक्षके नीचे जाकर उसके तनेको दोनों भुजाओंसे आवेष्टित करके प्रेममें भरकर आलिङ्गन किया। प्रेमावेशमें उनके नयनद्वयसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। वनभूमिकी अपूर्व शोभा देखकर प्रभुका मन आनन्दरससे आप्लुत हो गया। वनमें मयूर-ध्वनि सुनायी पड़ रही थी, उसके साथ लावक नामक पक्षीका कलरव मिश्रित होकर अतीव कर्ण-रसायन जान पड़ता था। प्रभु सोच रहे थे, मानो वे पक्षीगण मधुर स्वरमें श्रीभगवान्‌का स्तव पाठ कर रहे हों। वनभूमिके प्रति वृक्षोंको देखकर प्रभु दौड़कर प्रेममें भरकर उनको आलिङ्गन कर रहे हैं, कुसुमित लता-गुल्म देखकर परम प्रीतिपूर्वक प्रेमचुम्बन प्रदान कर रहे हैं। इससे वृक्षोंकी शाखाएँ तथा लता-गुल्म समूह चूर-चूर हो रहे हैं। मदमत्त हस्तीके समान प्रेमोन्मत्त प्रभु वनभूमिको दलित कर रहे हैं।

प्रभुके इस अपूर्व श्रीवृन्दावन-भावको सब अन्तरङ्ग भक्तवृन्द समझ रहे हैं। इससे प्रभुको जो दैहिक बाह्य कष्ट हो रहा है, वह वास्तविक कष्ट नहीं हैं, वह उनकी प्रेमचेष्टा मात्र है। परमानन्दमें वे श्रीवृन्दावनलीलामें मग्न हैं। परन्तु भक्तगणका हृदय उनके प्रेमचेष्टा-जनित बाह्य कष्टको सहन नहीं कर पा रहा है। वनान्तरालमें निम्न भूमिमें कण्टक वनमें प्रभु गिरने ही वाले थे कि श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईं तथा अन्यान्य भक्तोंने बाहु फैलाकर उनको पकड़ लिया। प्रभु तब परिपूर्ण आनन्दघन रूपमें श्रीवृन्दावनमें विराजने लगे।

अचानक पुरी महाशयके अङ्ग स्पर्शसे उनको बाह्य चेतना हुई। वे प्रेममें विह्वल होकर उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करते हुए बोले—"देखो, देखो—मेरे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण प्रत्येक वृक्षपर विलास कर रहे हैं,मैं कृष्णमय जगत् देख रहा हूँ।" यह कहकर वे आकुल होकर रोने लगे। पुरी गोस्वामीने प्रभुकी अवस्था समझकर उनको पकड़कर रखनेकी चेष्टाकी, पर सफल न हुए।

प्रेमावेशमें प्रभु पुनः उन्मत्तके समान चल पड़े। उनको दिग्विदिग् ज्ञान न रहा। भक्तगणके मनमें तब दारुण भयका उद्रेक हुआ कि वे कहीं कुए या गड्ढेमें न गिर जाँय, कही कण्टकसे उनके श्रीअङ्ग क्षत-विक्षत न हो जाँय, इस भयसे भक्तगण प्रभुके पीछे-पीछे दौड़े।

प्रभु प्रेमानन्दमें वृन्दावन-भावमें विभोर होकर अपने प्राण वल्लभके साथ केलि-विलास करने लगे। उनको सर्वत्र और सर्ववस्तुमें अपने प्राणवल्लभ कृष्ण ही दीख पड़ते हैं। उनकी आँखोंमें जगत् कृष्णमय दीख रहा है। वर्षाके अन्तमें शरद्-कालके सुस्निग्ध संमीरणसे आन्दोलित कुसुमित उपवन-राजिके मध्य द्रुमदल शोभित विस्तीर्ण उच्च भूखण्डके ऊपर चढ़कर प्रभु जब अपने आजानुलम्बित बाहुयुगलको ऊपर उठाकर कूदकर वृक्षकी शाखा पकड़कर 'ये कृष्ण-ये कृष्ण' कहकर प्रेमानन्दमें अजस्र आँसू बहाने लगे और बाह्यज्ञान शून्य होकर तत्काल भूतलपर पछाड़ खाकर गिर पड़े। यह देखकर भक्तोंके हृदयमें भी व्रज-रसका तरङ्ग उठा। वे भी प्रभुके साथ व्रज-बालाओंके समान प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर कृष्णान्वेषणमें दौड़ धूप करने लगे, और वृक्षोंकी शाखाएँ पकड़कर झूलने लगे। सबका अपूर्व व्रजभाव था।

इस प्रकार वृन्दावन रसमें मग्न होकर निजजनके साथ प्रभु बहुत कष्ट पूर्वक भुवनेश्वरमें जा पहुँचे। प्रभुके लिए वहाँ भी श्रीक्षेत्रसे जगन्नाथजीका प्रसाद पहुँच गया। राजा प्रतापरुद्रके आदेशसे बहुत व्यय करके नित्य यह प्रसाद पहुँचता था। प्रभु महाप्रसाद पाकर शतमुखसे प्रेमानन्दमें प्रसादका गुण गान करते थे। राय रामानन्द प्रभुके साथ ही थे।

राजाके आदेशसे रास्तेमें भी बीच-बीचमें प्रभुके विश्रामके लिए नये विश्रामागार तैयार किये गये रहे। उनको परिष्कृत और गोमय-लेपित देखकर प्रभु परम आनन्द पूर्व श्रीपाद परमानन्द पुरीके साथ उनमें रात बिताते थे।

उस दिन प्रभुने दिनमें श्रीभुवनेश्वर शिवलिङ्गका दर्शन किया। श्रीमन्दिरमें बहुत देर तक प्रेमानन्दमें नृत्य-कीर्तन किया। रामानन्द रायके साथ कृष्ण-कथारङ्गमें सारी रात व्यतीत की।

भुवनेश्वरसे होकर प्रभु राजधानी कटककी ओर चले। रास्तेमें इस बार पूर्ववत् चञ्चलता नहीं दिखलायी। वे नाम जप करते हुए रास्तेपर चले जा रहे थे। प्रभुके दोनों कमल-नयनोंसे अविरल प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। प्रभुके दोनों बगल पुरी गोसाईं और स्वरूप दामोदर थे। रामानन्द राय भी पीछे-पीछे आ रहे थे। भक्तवृन्द सङ्गमें ही थे।

प्रभुके माला जपमें कुछ विशेषत्व था। एक नया तुलसी वृक्ष मिट्टीके वर्तनमें लेकर एक भक्त प्रभुके आगे-आगे चलता था। शिक्षा गुरु श्रीगौर भगवान् उस तुलसी देवीका दर्शन करते हुए प्रेमाश्रुपूर्ण नयनोंसे पथमें चले जा रहे थे। श्रीहस्तमें उनकी हरिनामकी जप-माला थी, और नयनोंमें झर-झर प्रेमाश्रुधारा। नाम और नामीको अभेद जानकर वे अपने प्राणवल्लभकृष्णको सर्वक्षण दर्शन कर रहे थे। उनको बाह्य ज्ञान न था। हमारे प्रेममय प्रभु अन्धेके समान रास्तेपर जा रहे थे।

प्रभुके लिए माला जप या पूजा पाठ बिडम्बना मात्र है। तथापि वे इनको करते थे। क्योंकि वे शिक्षागुरु थे। स्वयं आचरण करके कलिके जीवोंको शिक्षा देनेके लिए उन्होंने नदियामें अवतार ग्रहण किया था।

श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईं आदिको अग्रसर होनेके लिए कहकर प्रभुने एक दिन रास्तेमें अकेले रामानन्द रायके साथ कृष्णकथा-रसरङ्गमें यापन किया। नये पवित्र घरमें अकेले रामानन्द कृष्णकथा-रस सिन्धुमें निमग्न हो गये। वहाँ उस दिन जो प्रेम-तरङ्ग उठा उससे कलस भर-भर कर मधु निकला, और दोनों जने आकण्ठ कृष्ण-कथामधु पान करते रहे। तथापि तृप्ति न हुई।

प्रातःकाल प्रभुने कटककी यात्रा की। उन्होंने पहले ही पुरी गोस्वामीको कह दिया था, कि आप लोग आगे कटक चलें, गोपीनाथजीके श्रीमन्दिरमें हमारे साथ मिलन होगा।

प्रभु कटकमें

पहले कहा जा चुका है कि राजा गजपति प्रतापरुद्र कटकमें चले गये थे, वे जानते थे कि प्रभु आ रहे हैं। उन्हींके आदेशसे रास्ते रास्ते प्रभुके लिए ताजा और उत्तम प्रसादका सुन्दर प्रबन्ध किया गया था। उन्हींके आदेशसे बीच-बीचमें प्रभुके विश्राम और रात्रिकालमें निवासके लिए नये आवास बनाये गये थे। वे उत्कण्ठापूर्वक प्रभुके आनेकी बाट जोह रहे थे। प्रभु इस मार्गसे नहीं भी आ सकते थे, परन्तु भक्तके भगवान् भक्तको दर्शन दिये बिना क्या जा सकते थे? राजा प्रतापरुद्रने प्रभुको भक्तिभावमें बाँध रक्खा था। वे जिस मनके दुःखसे श्रीक्षेत्रसे कटक चले आये थे, अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान्‌को वह जाननेसे बाकी नहीं था। भक्तवत्सल प्रभु भक्तकी मनस्तुष्टिके लिए कटकके रास्तेसे चले थे।

राजा प्रतापरुद्र भक्तिमान् नृपति थे। करुणासिन्धु प्रभुके शुभागमनकी बात सुनते ही उन्होंने अपने हाथसे कटकके समस्त तीर्थोंके घाट-बाटको परिष्कृत कर दिया।

आयाति करुणासिन्धुरिति श्रुत्वा गजेश्वरः।
आज्ञया सकलं तीर्थं चकारकर लालितम्॥

(निरोष्ठ्यः) चै. च. महा. १९.६५

(इस श्लोकमें औष्ठ्य-वर्ण नहीं है। श्रीपाद महाकवि कर्णपूरमें अद्भुत कवित्व शक्ति है। श्रुत्वा और गजेश्वर संयुक्त व दन्त्य हैं।)

प्रबल पराक्रान्त, अतुल ऐश्वर्यशाली स्वाधीन नरपति राजा गजपति प्रतापरुद्र अपने हाथों घाटोंको परिष्कृत कर रहे हैं, यह देखकर कटकवासी नरनारीवृन्द आश्चर्यचकित हो गये, राज-कर्मचारीगण विस्मित हो उठे। उन लोगोंने जगन्नाथजीकी रथयात्राके दिन राजाको स्वर्ण-सम्मार्जनी हाथमें लेकर श्रीक्षेत्रके राजपथको परिष्कृत करते देखा था। उन लोगोंने सोचा कि क्या श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र कटकमें प्रकट होंगे? एक प्रमुख कर्मचारीने साहस पूर्वक राजासे पूछा—"महाराज यह नीच कार्य आप स्वयं क्यों कर रहे हैं? आज्ञा दीजिये कि भृत्य द्वारा सब कार्य करा लिया जाय।" राजाने भृकुटि टेढ़ी करके एक बार कर्मचारियोंकी ओर देखा। उनके मुँहका भाव देखकर जान पड़ा कि वे कुछ विरक्त हो गये हैं। कर्मचारी तब स्वयं राजाके साथ इस पथ-परिष्कारके कार्यमें लग गये। कुछ देरके बाद राजाने उनसे कहा—'क्या तुम लोग नहीं जानते कि श्रीश्रीनीलाचलसे सचल जगन्नाथजी आज कटकमें आ रहे हैं। उनके भक्तवृन्द भी आ रहे हैं। श्रीक्षेत्रमें अचल जगन्नाथजीकी रथयात्राके समय मैंने अपने हाथों पथ परिष्कार किया था। आज सचल जगन्नाथ श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु मेरी राजधानीको पवित्र करेंगे; मेरा आज सौभाग्य है, अतएव मैं प्रभु और उनके भक्तोंके स्वच्छन्द गमनके लिए पथ-घाट स्वयं परिष्कार करनेका लोभ संवरण न कर सका।" राज-कर्मचारियोंने राजाके भावको समझा, और लज्जासे सिर अवनत करके वे भी राजाके साथ साथ पथ-परिष्कारके कार्यमें लग गये। फिर कोई बात बोलनेका साहस उनको न हुआ।

कटकमें रामानन्द रायका एक परम रमणीय उद्यान था। नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे पूर्ण उस सुरम्य उद्यानमें प्रभुके रहनेका निश्चय रामानन्द रायने मन ही मन कर लिया था। भक्तगणको परम आदरके साथ वहाँ टिकाया गया। रामानन्द रायने प्रभुसे आगे आकर सारा बन्दोबस्त कर लिया, और राजा प्रतापरुद्रके साथ साक्षात्कार करके उनको प्रभुके शुभागमनका संवाद दिया। कृष्णविरहिणी व्रजाङ्गनागणके समान राजा अपने प्राणवल्लभ श्रीगौराङ्ग सुन्दरके दर्शनकी आशामें बाट जोह रहे थे। राजाकी तत्कालीन प्रेमोत्कण्ठा क्षण-क्षणमें नये-नये भाव धारण करने लगी। भक्त

प्रवर कवि कर्णपूर गोस्वामीने राजाकी इस प्रेमोत्कण्ठाकी तुलना तरुणी भार्याके साथ करके एक अति सुन्दर श्लोककी रचना की है। यथा,

उत्कण्ठां तरुणीं प्राप्य निरन्तर नवां नवाम्।
रराज राजा मधुर सुश्रीक इव चैत्रिकः॥

चै. च. महा. १६.६७

अर्थात् राजा गजपति प्रतापरुद्र क्षण-क्षणमें नव-नव उत्कण्ठा रूपी तरुणीको प्राप्त करके शोभाविशिष्ट वसन्त कालके समान सुशोभित होने लगे।

पुरी गोसाईंके साथ श्रीगौर भगवान् यथा समय कटकमें जा विराजे। राजधानीके चतुर्दिक यह घोषणा हो गयी। प्रभुका दर्शन करके सब लोग कृतार्थ हो गये। एक ब्राह्मणने आकर पुरी गोस्वामीको निमन्त्रित किया। स्वप्नेश्वर नामक एक भक्त विप्रने प्रभुको निमन्त्रित किया। गोपीनाथका दर्शन करके भिक्षा ग्रहण करनेके बाद प्रभु परमानन्द पुरी गोसाईंके साथ अपराह्न कालमें रामानन्द रायके उद्यान-गृहमें उपस्थित हुए। सब कटक-निवासियोंने देखा मानो वहाँ एक तप्त काञ्चन शैलका उदय हो गया हो। प्रभुको देखकर सब भक्तगण प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करने लगे। सुरम्य पुष्पोद्यानमें एक वकुल-वृक्षके नीचे प्रभु बैठ गये। उनका सहास्य वदन, प्रसन्न भाव, सर्वचित्ताकर्षक श्रीअङ्गकान्ति देखकर भक्तवृन्द आनन्दसागरमें डूब गये।

राजा गजपति प्रतापरुद्रको राय रामानन्दने स्वयं जाकर संवाद दिया कि प्रभुके दर्शनका यही उपयुक्त समय है। राजा चतुरङ्ग-बल-समन्वित होकर प्रभुके चरण-कमलका दर्शन करनेके लिए निकले। रामानन्द राय साथ-साथ चले। राजा प्रतापरुद्रके साथ बहुत-से लोग, हाथी-घोड़ा-पैदल सेना, सामन्त आदि थे। राजमहलसे राय रामानन्दका उद्यान-भवन बहुत दूर था। राजा प्रतापरुद्र उस उद्यान-भवमसे कुछ दूरपर शिविर सन्निवेश करके हाथीसे उतरकर राजपरिच्छद त्याग कर दीनवेशमें उद्यानमें प्रविष्ट हुए।

राजा प्रतापरुद्रने दूरसे देखा कि कनककान्ति विशिष्ट श्रीश्रीगौराङ्गसुन्दर वकुलवृक्षके मूलमें बैठे हुए हैं। दर्शन मात्रसे उनके नयनद्वयसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह चली। प्रेमानन्दमें उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। शरीर थर-थर काँपने लगा। अति धीरे-धीरे पदसञ्चार करते हुए वे प्रभुके पास अग्रसर होने लगे। दो पग आगे बढ़ते थे और दण्डवत् होकर प्रणाम करते थे, उनका सर्वाङ्ग धूलिधूसरित हो गया, आगे उनसे चला नहीं जाता था। प्रेमानन्दमें उनके सारे अङ्ग अवश हो गये। रामानन्द रायने उनकी अवस्था देखकर हाथ पकड़ लिया। राजा उनके अङ्गसे अङ्ग सटाकर मृदु गतिसे प्रभुके सामने उपस्थित होकर उनके चरणोंमें गिर पड़े। वे आविष्टके समान अनेक बार उठे और गिरे, पश्चात् हाथ जोड़कर श्रीगौर भगवान्की स्तुति करने लगे। राजाके अश्रुजलसे भूतल सिक्त हो गया। प्रभुके श्रीमुख पद्मसे वे आँखें नहीं हटा पा रहे हैं।

रसिकशेखर प्रभु वकुल वृक्षके मूलमें हाव-भावमें बैठे हुए हैं। वृक्षके मूलमें उनका श्रीअङ्ग अर्द्ध निद्रितावस्थामें है। वाम करतल कपोल देशमें विन्यस्त है, दक्षिण हस्तमें जपमाला है, युगलकमल-चरण वृक्षके मूलमें वेदीके नीचे लटक रहे हैं।

उस भव-विरञ्चि-वन्दित कमल-चरणके सामने राजा प्रतापरुद्र भूतलपर लौटते हुए अजस्र आँसू बहा रहे हैं। भक्तवत्सल प्रभु अब स्थिर न रह सके। राजा प्रतापरुद्र विषयी थे, और प्रभु विरक्त संन्यासी थे। प्रभुके लिए तो 'आकारादपि भेतव्यं स्त्रीणां विषयिणामपि।' यह श्लोक वे ही पहले अपने श्रीमुखसे कह चुके हैं, और राज-संस्पर्शसे वे सर्वदा दूर रहते हैं। भक्तके भगवान् भक्तके दैन्य और

आर्त्त-भावको देखकर यह सब भूल गये। प्रभुके कमल-नयनसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह चली। वे पुलकित हो उठे, और उनने राजा प्रतापरुद्रको हृदयसे लगाकर प्रेम-संभाषणपूर्वक गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। प्रभुके नयन-जलसे राजाका सर्वाङ्ग सिक्त हो गया। वे आनन्दसागरमें मग्न हो गये।

राजाके प्रति प्रभुकी ऐसी अपार कृपा देखकर भक्तवृन्द और कर्मचारीगण आनन्दसे विह्वल हो उठे। उस वकुल वृक्षके जड़में बैठे-बैठे श्रीगौर भगवान्‌ने राजा प्रतापरुद्रसे प्रेमालाप किया। राजा प्रभुके चरण-तलमें वृक्षकी वेदीके निम्न देशमें बैठकर एक टक होकर उनके अमृतमय बचनसुधाका पान करते हुए श्रीवदन चन्द्रकी अपरूप शोभाका दर्शन करने लगे।

यह अति मधुर दृश्य था। यदि मैं चित्रकार होता तो इस सुन्दर दृश्यको चित्रपट पर अङ्कित कर लेता। प्रभुने यह सौभाग्य जिनको दिया है वे इस कार्यको अवश्य करेंगे।

भक्त और भगवान्‌में जो प्रेमालाप हुआ, उसे वे ही जानते हैं। प्रभुसे विदा होते समय राजा प्रतापरुद्रने क्रन्दनमय आर्त्तवचनसे कहा था—"प्रभु! कब फिर आपके चरणोंका दर्शन पाऊँगा?" भक्तवत्सल प्रभुने परम स्नेहमें भरकर करुण-नयनसे राजाकी ओर देखकर मधुर वचनोंसे उत्तर दिया, "महाराज! श्रीनीलाचलनाथको छोड़कर मैं अधिक दिन नहीं रह सकता। शीघ्र ही आप लोग मुझे पुरुषोत्तम धाममें खींच लेंगे।"

राजाने वारम्वार भूमि-विलुण्ठित होकर प्रभुकी चरणधूलि लेकर अपने सिरपर रखकर विदा होकर अपने शिविरमें आकर, प्रधानमन्त्री मङ्गराज तथा हरिचन्दनके साथ प्रभु और उनके भक्तोंको कोई कष्ट न होने पावे—इस विषयमें परामर्श करके यथोचित आदेश दिया। राजाने आदेश दिया, "दोनों मन्त्री प्रभुके साथ जायँगे। रामानन्द राय भी साथ जाँयगे। मार्गमें बीच-बीचमें जहाँ प्रभु विश्राम करेंगे, वहाँ प्रभु और उनके भक्तोंके लिए पाँच-सात नये घर बनाने पड़ेंगे। गाँवके जमीदार और विशिष्ट ब्राह्मण पण्डितोंके ऊपर प्रभु और उनके भक्तवृन्दकी सेवाका भार रहेगा, वे सब प्रकारके अभाव और असुविधाओंको दूर करेंगे। एक नयी नौका करके प्रभुको चित्रोत्पला नदी पार कराकर राजमन्त्री द्वय उनके पीछे-पीछे जाँयगे।" राजाज्ञाकी पत्री क्रमशः प्रेरित हुई।

कटकके पास बहनेवाली महानदीकी एक शाखा चित्रोत्पला नदी है। इस चित्रोत्पला नदीके जिस घाटपर पार होकर श्रीगौर-भगवान् बङ्गदेशमें गये, राजा गजपति प्रतापरुद्रकी आज्ञासे उस घाटपर एक महान् स्तम्भ निर्मित हुआ था। प्रभुके नवद्वीपमें पुनरागमनके स्मृति चिह्नके रूपमें इस स्तम्भसे सुशोभित चित्रोत्पला नदीका घाट महातीर्थके रूपमें राजा प्रतापरुद्रके द्वारा घोषित किया गया (चै. च. म. १६.६८,६६)। इस आज्ञाको सर्वत्र घोषित करनेके लिए आदेश देकर राजाने रोते-रोते सबके सामने कहा, "एक नयी नौका लाकर इस नदीके किनारे रक्खो, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु अभी स्नान करके नदी पार जाँयगे। वे जिस स्थानपर स्नान करेंगे, वह स्थान पवित्र तीर्थस्थान होगा। उस स्थानपर एक स्तम्भ निर्माण करो, मैं नित्य आकर इसी महातीर्थमें स्नान करके परम पवित्र और कृतार्थ हो जाऊँगा। यदि मेरा सौभाग्य होता तो इस परम पवित्र-पुण्य-तीर्थ स्नानमें मैं देह त्याग करूँगा (चै. च. म. १५.११३,११४)।

महाराज प्रतापरुद्र! तुम धन्य हो, और धन्य है तुम्हारी गौराङ्ग प्रीति! तुम्हारे जैसा अनुरागी भक्त प्रभुको प्राणसे भी प्रिय होता है। तुम्हारे गौराङ्गानुरागकी तुलना नहीं है, तुम्हीं उसकी सीमा हो। तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात! तुम्हारी कृपादृष्टि पड़नेसे गौर-प्रेम प्राप्त होता है,

तुम्हारा नाम स्मरण करनेसे अङ्ग पुलकित हो उठता है। 'प्रतापरुद्र सन्त्राता' श्रीगौराङ्ग-सुन्दरकी श्रीमूर्त्ति हृदय पटपर अपने आप अङ्कित हो जाती है। जीवाधम ग्रन्थकारको तुम्हारे गुणगान करनेकी शक्ति दो। तुम्हारी पुण्य चरित-कहानी वर्णन करनेकी क्षमता दो, तुम्हारे चरण-रेणु होकर रहनेका अधिकार दो। तुम्हारे समान एकनिष्ठ गौरभक्तकी कृपासे श्रीगौराङ्ग-चरणधूलि प्राप्त होती है, श्रीगौराङ्ग चरणोंमें दृढ़ भक्ति होती है।

नयी नौकापर चढ़कर चित्रोत्पला नदी पार होकर रातमें प्रभु चतुर्द्वार पर जा पहुँचे। शरत्कालकी ज्योत्स्नामयी रजनी है, मृदु मन्द पवन बह रहा है, निजजनके सङ्ग आकर प्रभु नूतन गृहमें अवस्थित हुए। चतुर्द्वार हरिनाम संकीर्तनसे मुखरित हो उठा। असंख्य लोग आकर प्रभुका दर्शन करके आनन्द-सागरमें बह चले। रामानन्द राय प्रभुके साथ थे। चतुर्द्वारको लोग चौदुआर कहते थे। राजा प्रतापरुद्रके सुप्रबन्धसे श्रीक्षेत्रसे उनके लोग इतनी दूर तक ताजा और उत्तम प्रसाद लेकर उपस्थित हो गये। परमानन्दपूर्वक प्रभुने भक्तगणको साथ लेकर श्रीजगन्नाथका प्रसाद पाया। प्रभुके साथ लाखसे अधिक आदमी थे, चतुर्द्वार साधारण गाँव था, वहाँ उस रात सबको स्थान न मिला। लोगोंने सारी रात जागकर काटी। कोई मार्गमें, कोई वनमें, कोई खेतमें, कोई वृक्षके तले, जिसको जहाँ सुविधा जान पड़ी, पड़ रहा। श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

लोकैर्लक्षावधिभिरपितु स्थानमेवात्रनाये।

चै. च. महा. १९.१००

गदाधर पण्डितके प्रति
'निजजन निठुर' की निठुरता

अब गदाधर पण्डितकी बात सुनिये। उनकी अद्भुत कथा है। श्रीगौराङ्ग प्रभुका एक नाम है 'गदाधरके प्राणनाथ'। अतएव गदाधरकी श्रीगौराङ्ग-विरह कहानी अत्यद्भुत और अपूर्व है। उनकी गौराङ्गैकनिष्ठताकी तुलना नहीं है। प्रभुके निषेध करनेपर भी वे उनके साथ जा रहे हैं। उन्होंने क्षेत्र संन्यास ग्रहण किया है, अर्थात् श्रीक्षेत्र छोड़कर कहीं अन्यत्र जानेका उनका अधिकार नहीं है। यही क्षेत्र-संन्यासकी शास्त्रीय विधि है। इसके अतिरिक्त उन्होंने गोपीनाथकी सेवा ग्रहणकी है। प्रभुने वारम्वार निषेध किया कि "गदाधर! तुमने क्षेत्र-संन्यास ग्रहण किया है, गोपीनाथकी सेवा ली है, तुम नीलाचलमें रहो, मेरे साथ न जाओ।" गदाधर इस पर कान न देकर इतनी दूर प्रभुके साथ आ गये हैं।

प्रभुने जब चित्रोत्पला नदीके किनारे नावपर चढ़कर चतुर्द्वारकी यात्राकी, तो उसके पूर्व ही गदाधरको एकान्तमें ले जाकर फिर एक बार समझाकर कहा, "गदाधर! तुम क्षेत्र संन्यास न छोड़ना।" गदाधरने कोई उत्तर न दिया, प्रभुके सामने मुँह लटकाये खड़े रहे। उनके नयन-जलसे वक्षःस्थल भीग गया। वे प्रभुसे बहुत बातें नहीं करते थे। परम प्रेमास्पद गदाधरको देखनेपर प्रभुको माया होती है, स्नेह रसमें द्रवित होकर वे गदाधरको लक्ष्य कर नाना प्रकारका रङ्ग करते हैं। यदि कदाचित गदाधर कुछ बोलते भी हैं तो उनकी बात प्रेमरसमें भरी होती है। उनकी बात सुनकर प्रभु गदाधरके प्रेममें द्रवित हो जाते हैं। उनको बलात्कार प्रेमालिङ्गन करते हैं। गदाधर भागनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु प्रभुके सामने उनकी नहीं चलती है, निश्चेष्ट होकर खड़े हो जाते हैं। गदाधरके प्राणनाथके साथ गदाधरका यह प्रेमरङ्ग देखकर भक्तगणने प्रभुका नाम रक्खा है 'गदाधरके प्राणनाथ'।

गदाधरने जब प्रभुकी बातका कोई उत्तर न दिया, केवल रोने लगे—तो प्रभुने देखा कि अच्छी बात कहने-से गदाधर नीलाचल नहीं लौटेंगे। उनका

क्षेत्र-संन्यास धर्म नष्ट हो जायगा। शिक्षागुरु श्रीगौर भगवान्‌को लोक-शिक्षाके लिए कभी-कभी बड़ा ही कठोर बनना पड़ता था। इसी कारण प्रभुका एक नाम 'निजजन निठुर' है। प्रभुने जब नीलाचलसे श्रीवृन्दावनकी यात्रा की तो प्रभुने गदाधरको समझा दिया कि क्षेत्र-संन्यास नहीं छोड़ना चाहिये, छोड़नेसे महापाप लगेगा। गदाधर गौराङ्गके सिवा और कुछ नहीं जानते थे। उन्होंने अति सरल भावसे उत्तर दिया, "हे प्रभु! तुम जहाँ हो, वही मेरा नीलाचल है। मेरा क्षेत्र-संन्यास रसातलमें जाय, इसमें मुझे तनिक भी दुःख नहीं है।

प्रभु यह सुनकर मनमें बहुत सन्तुष्ट हुए। परन्तु गदाधरकी धर्म-रक्षाकी विवेचना करके पुनः बोले, "गदाधर! तुमने श्रीगोपीनाथजीकी सेवा ग्रहणकी है, श्रीक्षेत्रमें रहकर श्रीविग्रहकी सेवा करो। तुम्हारे जानेसे श्रीविग्रहकी सेवामें त्रुटि होगी, इससे तुम्हें पाप लगेगा।" गदाधरने पूर्ववत् स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया, "हे प्रभु! तुम्हारे चरणोंका दर्शन करनेसे कोटि गोपीनाथकी सेवाका फल मिलेगा। मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा।"

प्रभुने देखा कि गदाधर सहज ही उनका सङ्ग छोड़ने वाले नहीं है। इसलिए उनको कुछ भय दिखलाते हुए कहा, "गदाधर! तुम मेरे लिए क्षेत्र-संन्यास त्याग करोगे, गोपीनाथकी सेवा छोड़ोगे, इससे देवताके स्थानमें मेरा अपराध होगा। यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो मेरे सन्तोषके लिए तुम नीलाचलमें रहकर श्रीविग्रहकी सेवा करो।

> **"प्रभु कहे सेवा छाड़िबे, आमार लागे दोष।**
> **इहाँ रहि सेवा कर आमार सन्तोष॥"**
>
> चै. च. म. १६.१३२

गौराङ्ग-गत-प्राण गदाधर बहुत अच्छे आदमी थे। प्रभुकी बात सुनकर उनको इसबार क्रोध हुआ। उन्होंने देखा कि प्रभु उनको सङ्गमें जानेके सम्बन्धमें नाना प्रकारका प्रतिबन्ध लगा रहे हैं। उनको साथ नहीं ले जाँयगे—यह प्रभुकी दृढ़ प्रतिज्ञा है। वे मुँह लटकाये, क्रन्दनके स्वरमें एक हाथसे दूसरे हाथके नखको खूँटते हुए अभिमानिनी रमणीके समान प्रभुसे बोले, "हे प्रभु! हे प्राणवल्लभ! क्षेत्र-संन्यास त्याग, प्रतिज्ञा और सेवाभङ्ग—इसमें जो कुछ दोष, अपराध या पाप है, सब मेरा है, मैं ही इसका एकमात्र भागी हूँ।" इतनी बात कहकर फिर अभिमानमें भरकर कहा, "मैं आपके सङ्ग नहीं जाऊँगा, अकेले नवद्वीप आईका दर्शन करने जाऊँगा, तुम्हारे लिए या तुम्हारे साथ मैं न जाऊँगा। इससे तुमको कोई दोष नहीं लगने पावेगा।" इतना कहकर क्रोध मिश्रित अभिमानके साथ गदाधर पण्डित कटक तक प्रभुसे पृथक चलकर आये। कटक आनेपर प्रभुने उनको साथ ले लिया। वहाँ फिर वे कोई बात न बोले। गदाधर पण्डितने सोचा कि जान पड़ता है प्रभुने उनको साथ न ले जानेका सङ्कल्प त्याग दिया है। यह सोचकर उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

प्रभुने जब फिर वही बात शुरू की, तब गदाधरका मुँह सूख गया। यहाँसे भी यदि गदाधर पण्डित लौट जाँय तो उनका क्षेत्र-संन्यास अक्षुण्ण बना रहेगा—यह सोचकर प्रभुने सबके सामने एक कठिन बात कही। प्रभु प्रणय-रोषमें भरकर बोले, "देखो गदाधर! तुम क्षेत्र-संन्यास और प्रतिज्ञाका त्यागकर मेरे साथ जाओगे, यही तुम्हारा उद्देश्य है। तुम यहाँ तक आ गये, अब तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध हो गया। तुम आत्म-सुखाभिलाषी होकर मेरे साथ रहना चाहते हो। इससे तुम्हारे धर्म और प्रतिज्ञा, दोनोंका उल्लङ्घन होता है, और इससे मेरे मनमें बड़ा दुःख होता है। गदाधर! तुम बड़े आत्म-सुखी हो आत्म-सुखके लिए तुम मुझको दुःख क्यों देते हो? यदि तुम सचमुच मुझसे प्रेम करते हो, और मुझको सुखी करना तुम्हारा उद्देश्य है तो तुम अभी नीलाचल लौट जाओ। मेरी शपथ है जो

इस पर तुम कोई बात बोलो।" इतनी बात कहकर प्रभु नौकापर चढ़ गये। गदाधर पण्डित तत्काल मूर्च्छित होकर नदीके किनारे गिर पड़े। वहाँ सार्वभौम भट्टाचार्य खड़े थे। प्रभुने उनको पास बुलाकर कहा, "भट्टाचार्य! तुम गदाधरको लेकर नीलाचल लौट जाओ।" इतना कहकर प्रभुने नाविकको तत्काल नौका खोलनेकी आज्ञा दी।

एत बलि महाप्रभु नौकाते चड़िला।
मूर्च्छित हैया पण्डित तथाय पड़िला॥
पण्डिते लञा जाइते सार्वभौमे आज्ञा दिला।

चै. च. म. १६.१४१,१४२

सार्वभौम भट्टाचार्यकी अवस्था भी अति शोचनीय थी। वे प्रभुका आदेश सुनकर स्तम्भित हो गये। उनकी इच्छा भी कमसे कम चतुर्द्वार.तक प्रभुके साथ जाने की थी। उनकी इस इच्छाको प्रभुने पूर्ण नहीं किया। उनके ऊपर अपने विरह विदग्ध प्रिय गदाधरका भार देकर प्रभु अम्लान वदन चले गये। सार्वभौम भट्टाचार्य गदाधर पण्डितके पास बैठ गये, उनको प्रेमपूर्वक गोदमें ले लिया, परन्तु उनके नेत्रद्वय प्रभुकी नौकाके ऊपर थे। नौकापर प्रभु खड़े थे, उनको सब लोग देख सकते थे। जब तक प्रभु दीख पड़े तब तक सार्वभौम भट्टाचार्य उनको देखते रहे। प्रभुकी नौका दृष्टिसे ओझल होते ही उन्होंने गदाधरके मुँहकी ओर देखा। गदाधर अभी तक बाह्यज्ञान शून्य थे। निश्चेष्ट होकर भट्टाचार्यके गोदमें पड़े थे।

प्रभुकी कृपासे गदाधरको कुछ देरके बाद होश आया। तब सार्वभौम भट्टाचार्यने अपनेको सँभाला, गदाधर पण्डितके दुर्जय-गौरविरहाङ्कित विषण्ण वदनको देखकर वे अपना दुःख भूल गये। उनको सान्त्वना देते हुए वे बोले—"पण्डित! तुम शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान हो। श्रीभगवान्‌की लीलाका रहस्य समझना तुम्हारे लिए बाकी नहीं है। श्रीकृष्ण भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं रख सके। परन्तु भीष्मकी प्रतिज्ञाकी रक्षा की। क्योंकि भक्तवत्सल भगवान् भक्तके अधीन हैं। भक्तके लिए वे सब कुछ कर सकते हैं। तुम्हारे जैसे एकान्त भक्तका वियोग सहन करके प्रभुने तुम्हारी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिए जो किया है, वह भगवान्‌के अनुरूप ही है, इसके लिए तुम दुःखी न होओ। यह कहकर सार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमद्भागवतका निम्नलिखित श्लोक पाठ किया—

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्त्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥

श्री म. भा. १.९.३७

अर्थ—भीष्मने कहा, अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर मेरी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिए सहसा अर्जुनके रथसे उतरकर सुदर्शनचक्र धारण करके उसी प्रकार वह मेरे ऊपर दौड़ पड़े जैसे हस्तीको मारनेके लिए उसपर सिंह टूट पड़ता है। उस समय उनके पद-न्याससे पृथिवी चलायमान हो उठी और उनका उत्तरीय वस्त्र श्रीअङ्गसे स्खलित हो गया।

गदाधर पण्डित बात न कर सके। सार्वभौम भट्टाचार्य उनको साथ लेकर अति कष्टपूर्वक नीलाचल लौट गये। प्रभुने जब दक्षिण देशकी यात्रा की थी, तब सार्वभौम भट्टाचार्यने उनसे कहा था—

शिरे वज्र पड़े यदि पुत्र मरिजाय।
ताहा सहि, तोमार विच्छेद सहन ना जाय॥

चै० च० म० ७.४७

गदाधरके कारण इस बार उन्होंने सब कुछ सह लिया। उन्होंने अपने दुःखको फिर प्रकट न किया। प्रभुने आदेश किया था कि, 'गदाधरको देखो'। प्रभुका आदेश उनकी विरहकी अपेक्षा बड़ा मानकर एकान्त गौरनिष्ठ भक्तचूड़ामणि सार्वभौम

भट्टाचार्यने गौरभक्तिकी पूर्ण पराकाष्टा दिखलादी। गौराङ्ग-प्रीतिकी सीमा दिखलादी।

गदाधर पण्डितकी अपूर्व गौराङ्ग-प्रीतिके विषयमें कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"पण्डितेर चैतन्यप्रेम बूजान ना जाय।
प्रतिज्ञा श्रीकृष्ण-सेवा छाड़िल तृण प्राय॥
चै० च० म० १६.१३६

'तृण-प्राय' शब्दके द्वारा गदाधर पण्डितके गौराङ्ग-प्रेमकी चरम सीमा दिखायी गयी है। इसीको कहते हैं इष्टमें एकनिष्ठता; यही साधनामें सिद्धि प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। गौरभक्तोंका सर्व प्रधान गुण था उनकी गौरांगैकनिष्ठता, और इसी कारण वे सर्वविजयी हुए। साध करके श्रीपाद-प्रवोधानन्द सरस्वतीने लिखा है—

तृणादपि च नीचता सहज सौम्यमुग्धाकृतिः
सुधामधुर भाषिता विषयदग्धथूत्कृतिः।
हरिप्रणय विह्वला किमपि धीरनालम्बिता
भवन्ति किल सदगुणा जगति गौरभाजाममी॥
श्रीचैतन्यचरितामृतम् २४

अर्थ—तृणसे भी लघु, स्वभावसिद्ध शीतल मनोहर मूर्त्ति, अमृतके समान मधुर बोली, विषयगन्धमें थू-थू करना, तथा अनन्याश्रित हरि-प्रणय-विह्वलबुद्धि विशिष्टता आदि सारे गुण जगत्में केवल एकमात्र गौरभक्तोंमें होते हैं।

याजपुरमें प्रभुका लीलारङ्ग

प्रभु निजजनके सङ्ग यथा समय याजपुर जा पहुँचे। वहाँसे उन्होंने मङ्गराज और हरिचन्दन दोनों राज-मन्त्रियोंको विदाकर दिया। रामानन्द रायको भी लौट जानेके लिए कहा, परन्तु उन्होंने बहुत अनुनय विनय करके और भी कुछ दिन प्रभुके साथ रहनेकी अनुमति प्राप्त कर ली। प्रभु रामानन्द रायको नहीं छोड़ पा रहे हैं। रामानन्द रायके साथ कृष्ण-कथा कहने-सुननेमें प्रभुको जो सुख मिलता है, वैसा सुख उनको और कोई नहीं दे सकता।

याजपुर बहुत लोगोंसे पूर्ण वृहत् नगरी है। वहाँ बहुतसे देव-मन्दिर हैं, अति पवित्र स्थान है। प्रभु वहाँ एक दिन ठहर गये। वहाँ भी राजाके आदेशसे उनके लिए नया घर बना था, भक्तवृन्दके लिए नाना प्रकारकी भोजनकी सामग्री तैयार थी। याजपुरमें बहुतसे ब्राह्मणोंका वास है। सब लोग प्रभुका दर्शन करने आये, और 'श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कहाँ हैं, एक बार उनके चरणोंका दर्शन करके कृतार्थ होऊँ, जीवनको सार्थक करूँ'—ऐसा कहकर सब लोग प्रभुके सामने गये। इससे पहले उन्होंने प्रभुको कभी नहीं देखा था। केवल उनका नाम सुना था। सब लोग प्रभुको देखनेके लिए विशेष उत्कण्ठित थे।

हमारे रङ्गीले प्रभुने यहाँ एक अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया। श्रीपाद परमानन्द पुरी गोसाईं प्रभुके साथ थे। उन्होंने गोसाईंको दिखाकर कहा, "यही श्रीकृष्ण चैतन्य है।" पुरी गोसाईं बड़ी विपदमें पड़कर बोले, "अजी, मैं श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नहीं हूँ, बल्कि जो कह रहे हैं कि मैं श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नहीं हूँ, वही प्रतापरुद्र-संत्राता नीलाचलके सचल जगन्नाथ हैं। इनको प्रणाम करो।"

भक्तावतार हमारे रङ्गीले प्रभुने पुरी गोसाईंको प्रणाम करके हँसते हुए कहा, "यह देखो, मैंने इनको प्रणाम किया, यही तुम लोगोंके प्रभु हैं।" समागत विप्रगण और उनके साथी बड़ी विपदमें पड़े। कौन प्रभु हैं, यह निश्चय न कर सकनेके कारण पुरी गोसाईंके चरणोंमें उन्होंने पहले प्रणाम किया। पुरी गोसाईं क्या करते, उनकी बात कोई सुनने वाला न था। उन्होंने बड़े विपद्में पड़कर राय रामानन्दकी सहायता चाही। तब राय रामानन्दने सबको यथार्थ बात बतला दी, और तब सब लोग प्रभुके चरणोंमें भूमि विलुण्ठित होकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। लाखों-लाखों लोगोंने 'जय श्रीकृष्णचन्द्र महाप्रभुकी जय' के नादसे

दिगन्तको कम्पित कर दिया। तब प्रभु सब लोगोंके सामने उठकर खड़े हो गये। बीच-बीचमें अपने आजानुलम्बित मृणाल-सदृश भुजयुगलको ऊपर उठाकर उच्च हरिध्वनि करने लगे। उपस्थित जन-समूहके मुखसे वह हरिध्वनि प्रतिध्वनित हो उठी। सारी नगरी आनन्द कोलाहलसे पूर्ण हो गयी।

उस रात याजपुरमें रहकर प्रभुने रामानन्द रायके साथ मधुर कृष्ण कथामें काल यापन किया। दिनमें सब मन्दिरोंमें जाकर श्रीविग्रहके दर्शन किये। प्रत्येक मन्दिरमें अपूर्व नृत्य कीर्तन किया।

रेमुनासे राय रामानन्दकी विदाई

अब प्रभुके साथ राजाके मन्त्रियोंमें केवल रामानन्द राय रह गये थे। वे प्रभुके साथ रेमुना तक आये। भद्रक रेमुनाके समीप है। राजा प्रतापरुद्रके राज्यकी सीमा यहीं समाप्त होती है। यहाँसे रामानन्द रायके लौटनेकी बात थी। प्रभुने उनको कैसे विदा किया, कविराज गोस्वामीने इसका वर्णन तीन पयारोंमें लिखा हैं। यथा—

एइ मत चलि प्रभु रेमुना आइला।
तथा हैते रामानन्द राये विदाय दिला॥
भूमिते पड़िला राय नाहिक चेतन।
राय कोले करि प्रभु करये क्रन्दन॥
रायेर विदाय कथा ना जाय कथन।
कहिते ना पारि एइ ताहार वर्णन॥

चै. च. म. १६.१५१-१५३

भक्त और भगवान्‌का यह विदा-सङ्गीत गानेकी सामर्थ्य और शक्ति जीवाधम ग्रन्थकारमें नहीं है। कृपानिधि प्रभुकी अपार कृपाके बलसे ही उनके भक्तगण अपने विरह-सन्तापको सहन करके जीवन धारण करते है। नहीं तो, ऐसी अवस्थामें जीवन धारण करना बड़ा कठिन हो जाता।

राय रामानन्द जानते थे कि प्रभु उनको किस कारण विदा करेंगे; क्योंकि वे राज-कर्मचारी थे, विषयी थे, गृहस्थ थे, उनको लेकर श्रीवृन्दावन जाना प्रभुको अभिप्रेत न था। ऐसा मनमें सोचकर राय रामानन्दने अपनेको शतशः धिक्कार दिया। मनका भाव मनमें ही रक्खा। प्रभुने जब विदा होनेकी बात उठायी, तो रामानन्द राय उनके श्रीमुखसे यह दारुण बात सुनते ही मूर्च्छित होकर उनके चरणोंमें जा गिरे। प्रभुने गदाधर पण्डितको चित्रोत्पला नदीके किनारे मूर्च्छितावस्थामें छोड़कर नौकापर चढ़कर यात्राकी थी, परन्तु रामानन्द रायको उस अवस्थामें छोड़कर न जा सके। वे प्रेमावेगमें विह्वल होकर राय रामानन्दके पास बैठ गये और उनको गोदमें लेकर अजस्र आँसू बहाने लगे। कोई बात उनके मुँहसे न निकल सकी। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। राय रामानन्द अचेतन अवस्थामें पड़े हैं। उनको वाह्यज्ञान नहीं है, सर्वाङ्ग धूलि-धूसरित हैं, नयन-जलसे वक्षःस्थल डूब रहा है। वे प्रभुके गोदमें सोये हुए हैं। प्रभुके नयन-जलसे उनका स्नान हो गया, तथापि उनकी चेतना नहीं आयी। इस अवस्थामें निष्ठुरतापूर्वक उनको भूतलपर शयन कराकर प्रभुको जाना पड़ा। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"रायेर विदाय कथा ना जाय कथन।"

प्रभुके मनका दुःख प्रभु ही जानते हैं। रामानन्दको विदा करके प्रभु विषण्ण वदन होकर रास्तेपर चले। किसीसे कोई बात न बोले। भक्तगण प्रभुके श्रीवदनकीं ओर देख न सके। डरते-डरते चुपचाप वे लोग प्रभुके साथ चले। प्रभु गदाधरको सार्वभौम भट्टाचार्यके हाथमें समर्पण करके आये थे। रामानन्द रायको उनके आदमियोंके हाथमें समर्पण करके आना पड़ा। उनका कोई अपना अन्तरङ्गी वहाँ न रहा। इसी कारण उनको यह दारुण कष्ट हुआ। भक्त-विरह-दुःख-कातर श्रीगौराङ्ग भगवान्‌ने मनके दुःखसे रास्तेमें हरिनाम जप तक

नहीं किया, कीर्तन भी नहीं किया। वे चुपचाप रास्तेपर चले जा रहे थे।

प्रभुकी इच्छासे रामानन्द रायके प्राण किसी प्रकार बच गये। परन्तु वे प्रभुके विरहमें जीवन-मृत हो गये। उनके आदमियोंने उनको राजधानी कटकमें पहुँचाया। राजा प्रतापरुद्रके साथ साक्षात्कार होनेपर वे कोई बात न बोल सके। दोनों एक दूसरेको सुदृढ़ प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध करके बालकके समान फूट-फूट कर रोने लगे।

सार्वभौम भट्टाचार्य गदाधर पण्डितके साथ पहले ही नीलाचलमें लौट आये थे। वे कटकमें राजाके साथ साक्षात्कार करके आये थे। राजा प्रतापरुद्र उनको देखते ही व्याकुल होकर रो उठे थे।

राजा प्रतापरुद्र जानते थे कि अपने प्रियतम भक्त रामानन्दको छोड़कर प्रभु कहीं न जा सकेंगे। रामानन्द भी प्रभुको किसी प्रकार छोड़ न सकेंगे। सार्वभौम भट्टाचार्यने सुना कि प्रभुने रामानन्द रायको भद्रकसे छोड़ दिया है। रामानन्द राय मृतवत् होकर नीलाचल आ रहे हैं। राजा प्रताप रुद्रको उन्होंने यह संवाद दिया। यह बात सुनकर मनमें दुःखित होकर राजाने कहा—"रामानन्द रायके आग्रह रूपी रज्जुके शिथिल होनेके कारण प्रभुने नीलाचलसे प्रस्थान किया है।

सार्वभौम भट्टाचार्य राजाको यथा साध्य सान्त्वना देते हुए बोले—"महाराज! स्वयं भगवान्के साथ अत्यधिक हठ करना ठीक नहीं है, तथापि रामानन्द रायने उनको नाना कथाओंमें फँसाकर उनकी श्रीवृन्दावन यात्रा दो वर्षों तक स्थगित कर रक्खी थी।" यह बात सुनकर राजा प्रतापरुद्रने अपनेको कुछ सँभाला। वे रामानन्द रायके गुणोंको याद करके रोते-रोते बोले—"भट्टाचार्य! रामानन्द रायने मेरा बड़ा उपकार किया है। उन्हींकी कृपासे मुझे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणोंका दर्शन प्राप्त हुआ है। उन्हींकी चेष्टासे मेरे जैसे विषय-कीटके भाग्यमें प्रभुके दुर्लभ श्रीचरणोंकी धूलिका स्पर्श वदा है। उन्हींके अनुरोधसे करुणामय प्रभुने इस जीवाधामके साथ बातें करके कानोंमें सुधा वर्षण किया है। रामानन्द रायके गुणोंकी सीमा नहीं है। उनका ऋण शोध मैं कभी नहीं कर सकूँगा (चै. चं. ना. ९.५)

राजा प्रतापरुद्रने मर्म पीड़ित होकर कहा था कि प्रभुके प्रति रामानन्द रायकी प्रणय-रज्जुकी शिथिलताके कारण प्रभु चले गये। मनोव्यथासे उनके मुख द्वारा अति दुःखसे ऐसी मर्मान्तिक बात बाहर हुई थी। अब उनके मनमें विषम अनुतापाग्नि जल उठी। इसी कारण उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यको यह बात कहकर सावधान कर दिया। सार्वभौम भट्टाचार्य अतिशय विचक्षण पण्डित थे। उन्होंने राजासे कहा—"महाराज! राय रामानन्द परम भागवत हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि जिसने प्रणय-रज्जुके द्वारा श्रीभगवान्के चरण-कमलको हृदयमें धारण किया है, वही भागवतोत्तम हैं। रामानन्द रायके प्रेममें प्रभु वशीभूत हो गये हैं, इसी कारण उनके अनुरोधसे उन्होंने आपके प्रति करुणा की है।"

राजा प्रतापरुद्रने भट्टाचार्यकी बातसे सन्तुष्ट होकर प्रभुके सम्बन्धमें अनेक बातें पूछी। भट्टाचार्य एक-एक करके सब बातोंका उत्तर देकर विदा हुए।

यथा समय राय रामानन्द नीलाचलमें लौटे। राजा प्रतापरुद्र भी उस समय राजकार्यके उपलक्ष्यमें राजधानीसे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आये थे। राय रामानन्द अपने घर न जाकर सबसे पहले राजा प्रतापरुद्रके पास जाकर उनको प्रणाम करके बालकके समान फूट-फूटकर रोने लगे। राजा भी रामानन्द रायके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर जकड़कर उनके प्रेम क्रन्दनके सुरमें सुर मिलाकर अजस्र क्रन्दन करने लगे।' प्रेम क्रन्दन ध्वनिसे

दिगन्तको कम्पित कर दिया। तब प्रभु सब लोगोंके सामने उठकर खड़े हो गये। बीच-बीचमें अपने आजानुलम्बित मृणाल-सदृश भुजयुगलको ऊपर उठाकर उच्च हरिध्वनि करने लगे। उपस्थित जन-समूहके मुखसे वह हरिध्वनि प्रतिध्वनित हो उठी। सारी नगरी आनन्द कोलाहलसे पूर्ण हो गयी।

उस रात याजपुरमें रहकर प्रभुने रामानन्द रायके साथ मधुर कृष्ण कथामें काल यापन किया। दिनमें सब मन्दिरोंमें जाकर श्रीविग्रहके दर्शन किये। प्रत्येक मन्दिरमें अपूर्व नृत्य कीर्तन किया।

रेमुनासे राय रामानन्दकी विदाई

अब प्रभुके साथ राजाके मन्त्रियोंमें केवल रामानन्द राय रह गये थे। वे प्रभुके साथ रेमुना तक आये। भद्रक रेमुनाके समीप है। राजा प्रतापरुद्रके राज्यकी सीमा यहीं समाप्त होती है। यहाँसे रामानन्द रायके लौटनेकी बात थी। प्रभुने उनको कैसे विदा किया, कविराज गोस्वामीने इसका वर्णन तीन पयारोंमें लिखा हैं। यथा—

एइ मत चलि प्रभु रेमुना आइला।
तथा हैते रामानन्द राये विदाय दिला॥
भूमिते पड़िला राय नाहिक चेतन।
राय कोले करि प्रभु करये क्रन्दन॥
रायेर विदाय कथा ना जाय कथन।
कहिते ना पारि एइ ताहार वर्णन॥
चै. च. म. १६.१५१-१५३

भक्त और भगवान्‌का यह विदा-सङ्गीत गानेकी सामर्थ्य और शक्ति जीवाधम ग्रन्थकारमें नहीं है। कृपानिधि प्रभुकी अपार कृपाके बलसे ही उनके भक्तगण अपने विरह-सन्तापको सहन करके जीवन धारण करते है। नहीं तो, ऐसी अवस्थामें जीवन धारण करना बड़ा कठिन हो जाता।

राय रामानन्द जानते थे कि प्रभु उनको किस कारण विदा करेंगे; क्योंकि वे राज-कर्मचारी थे, विषयी थे, गृहस्थ थे, उनको लेकर श्रीवृन्दावन जाना प्रभुको अभिप्रेत न था। ऐसा मनमें सोचकर राय रामानन्दने अपनेको शतशः धिक्कार दिया। मनका भाव मनमें ही रक्खा। प्रभुने जब विदा होनेकी बात उठायी, तो रामानन्द राय उनके श्रीमुखसे यह दारुण बात सुनते ही मूर्च्छित होकर उनके चरणोंमें जा गिरे। प्रभुने गदाधर पण्डितको चित्रोत्पला नदीके किनारे मूर्च्छितावस्थामें छोड़कर नौकापर चढ़कर यात्राकी थी, परन्तु रामानन्द रायको उस अवस्थामें छोड़कर न जा सके। वे प्रेमावेगमें विह्वल होकर राय रामानन्दके पास बैठ गये और उनको गोदमें लेकर अजस्र आँसू बहाने लगे। कोई बात उनके मुँहसे न निकल सकी। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। राय रामानन्द अचेतन अवस्थामें पड़े हैं। उनको वाह्यज्ञान नहीं है, सर्वाङ्ग धूलि-धूसरित हैं, नयन-जलसे वक्षःस्थल डूब रहा है। वे प्रभुके गोदमें सोये हुए हैं। प्रभुके नयन-जलसे उनका स्नान हो गया, तथापि उनकी चेतना नहीं आयी। इस अवस्थामें निष्ठुरतापूर्वक उनको भूतलपर शयन कराकर प्रभुको जाना पड़ा। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"रायेर विदाय कथा ना जाय कथन।"

प्रभुके मनका दुःख प्रभु ही जानते हैं। रामानन्दको विदा करके प्रभु विषण्ण वदन होकर रास्तेपर चले। किसीसे कोई बात न बोले। भक्तगण प्रभुके श्रीवदनकीं ओर देख न सके। डरते-डरते चुपचाप वे लोग प्रभुके साथ चले। प्रभु गदाधरको सार्वभौम भट्टाचार्यके हाथमें समर्पण करके आये थे। रामानन्द रायको उनके आदमियोंके हाथमें समर्पण करके आना पड़ा। उनका कोई अपना अन्तरङ्गी वहाँ न रहा। इसी कारण उनको यह दारुण कष्ट हुआ। भक्त-विरह-दुःख-कातर श्रीगौराङ्ग भगवान्‌ने मनके दुःखसे रास्तेमें हरिनाम जप तक

नहीं किया, कीर्तन भी नहीं किया। वे चुपचाप रास्तेपर चले जा रहे थे।

प्रभुकी इच्छासे रामानन्द रायके प्राण किसी प्रकार बच गये। परन्तु वे प्रभुके विरहमें जीवन-मृत हो गये। उनके आदमियोंने उनको राजधानी कटकमें पहुँचाया। राजा प्रतापरुद्रके साथ साक्षात्कार होनेपर वे कोई बात न बोल सके। दोनों एक दूसरेको सुदृढ़ प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध करके बालकके समान फूट-फूट कर रोने लगे।

सार्वभौम भट्टाचार्य गदाधर पण्डितके साथ पहले ही नीलाचलमें लौट आये थे। वे कटकमें राजाके साथ साक्षात्कार करके आये थे। राजा प्रतापरुद्र उनको देखते ही व्याकुल होकर रो उठे थे।

राजा प्रतापरुद्र जानते थे कि अपने प्रियतम भक्त रामानन्दको छोड़कर प्रभु कहीं न जा सकेंगे। रामानन्द भी प्रभुको किसी प्रकार छोड़ न सकेंगे। सार्वभौम भट्टाचार्यने सुना कि प्रभुने रामानन्द रायको भद्रकसे छोड़ दिया है। रामानन्द राय मृतवत् होकर नीलाचल आ रहे हैं। राजा प्रताप रुद्रको उन्होंने यह संवाद दिया। यह बात सुनकर मनमें दुःखित होकर राजाने कहा— "रामानन्द रायके आग्रह रूपी रज्जुके शिथिल होनेके कारण प्रभुने नीलाचलसे प्रस्थान किया है।

सार्वभौम भट्टाचार्य राजाको यथा साध्य सान्त्वना देते हुए बोले—"महाराज ! स्वयं भगवान्‌के साथ अत्यधिक हठ करना ठीक नहीं है, तथापि रामानन्द रायने उनको नाना कथाओंमें फँसाकर उनकी श्रीवृन्दावन यात्रा दो वर्षों तक स्थगित कर रक्खी थी।" यह बात सुनकर राजा प्रतापरुद्रने अपनेको कुछ सँभाला। वे रामानन्द रायके गुणोंको याद करके रोते-रोते बोले— "भट्टाचार्य ! रामानन्द रायने मेरा बड़ा उपकार किया है। उन्हींकी कृपासे मुझे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणोंका दर्शन प्राप्त हुआ है। उन्हींकी चेष्टासे मेरे जैसे विषय-कीटके भाग्यमें प्रभुके दुर्लभ श्रीचरणोंकी धूलिका स्पर्श वदा है। उन्हींके अनुरोधसे करुणामय प्रभुने इस जीवाधामके साथ बातें करके कानोंमें सुधा वर्षण किया है। रामानन्द रायके गुणोंकी सीमा नहीं है। उनका ऋण शोध मैं कभी नहीं कर सकूँगा (चै. चं. ना. ९.५)

राजा प्रतापरुद्रने मर्म पीड़ित होकर कहा था कि प्रभुके प्रति रामानन्द रायकी प्रणय-रज्जुकी शिथिलताके कारण प्रभु चले गये। मनोव्यथासे उनके मुख द्वारा अति दुःखसे ऐसी मर्मान्तिक बात बाहर हुई थी। अब उनके मनमें विषम अनुतापाग्नि जल उठी। इसी कारण उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यको यह बात कहकर सावधान कर दिया। सार्वभौम भट्टाचार्य अतिशय विचक्षण पण्डित थे। उन्होंने राजासे कहा—"महाराज ! राय रामानन्द परम भागवत हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि जिसने प्रणय-रज्जुके द्वारा श्रीभगवान्‌के चरण-कमलको हृदयमें धारण किया है, वही भागवतोत्तम हैं। रामानन्द रायके प्रेममें प्रभु वशीभूत हो गये हैं, इसी कारण उनके अनुरोधसे उन्होंने आपके प्रति करुणा की है।"

राजा प्रतापरुद्रने भट्टाचार्यकी बातसे सन्तुष्ट होकर प्रभुके सम्बन्धमें अनेक बातें पूछीं। भट्टाचार्य एक-एक करके सब बातोंका उत्तर देकर विदा हुए।

यथा समय राय रामानन्द नीलाचलमें लौटे। राजा प्रतापरुद्र भी उस समय राजकार्यके उपलक्ष्यमें राजधानीसे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आये थे। राय रामानन्द अपने घर न जाकर सबसे पहले राजा प्रतापरुद्रके पास जाकर उनको प्रणाम करके बालकके समान फूट-फूटकर रोने लगे। राजा भी रामानन्द रायके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर जकड़कर उनके प्रेम क्रन्दनके सुरमें सुर मिलाकर अजस्र क्रन्दन करने लगे।' प्रेम क्रन्दन ध्वनिसे

राजप्रसाद भर गया। राज-परिवारके सब लोग वहाँ आ उपस्थित हुए। रानियाँ और राजपुत्र भी आये। प्रभुको विदा करके राय रामानन्द नीलाचल आये हैं, उनको देखकर राजा प्रभुके विरहमें विह्वल होकर क्रन्दन कर रहे हैं। यह देखकर राज-परिवारके सब लोगोंने उस क्रन्दनमें योग दिया। राज-प्रासादमें प्रेम-क्रन्दनका प्रबल तरङ्ग उठा। उसमें सारे कर्मचारी, दास-दासी सभी निमग्न हो गये।

कुछ देरके बाद राजाने आत्म-संवरण करके प्रेम-गद्गद वचनोंसे राय रामानन्दसे कहा—"राय रामानन्द ! आप कितनी दूर प्रभुके साथ गये थे ? रामानन्दने रोते-रोते उत्तर दिया—"महाराज ! प्रभुके बारम्बर मना करनेपर भी मैं उनके साथ भद्रक तक गया था। परन्तु लौकिक व्यवहारके कार्यको छोड़ना अति कठिन है। मैं स्वार्थी अपना कार्य साधन करनेके लिए प्रभुको छोड़कर आपके पास आया हूँ। मेरे प्राण बड़े कठोर हैं। सिरपर वज्रपात होकर मेरे प्राण पखेरु क्यों न उड़ गये ?"

इतना कहकर राय रामानन्द राजा प्रतापरुद्रके चरणोंमें गिरकर रोते हुए व्याकुल हो गये। राजा स्वयं गौर-विरह-पीड़ित होकर भी राय रामानन्दकी अवस्था देखकर अपने दुःखको भूल गये। उनको भूतलसे उठाकर परम स्नेहमें भरकर अपने पास बैठाया। अपने वस्त्रके द्वारा उनके आँसू पोंछ दिये। तब राजा रामानन्द रायको आश्वासन देनेके लिए बैठे। उसी समय सार्वभौम भट्टाचार्य वहाँ आकर उपस्थित हुए। दोनोंकी तत्कालीन दशा देखकर उन्हें कुछ समझना बाकी न रहा। वह भी राजाके सङ्केतसे राय रामानन्दको प्रबोध देते हुए बोले, ईश्वरकी लीला इसी प्रकारकी होती है। श्रीकृष्ण भगवान् व्रजवासियोंको दुःखके समुद्रमें डालकर श्रीवृन्दावन परित्याग करके मथुरा चले गये थे, पुनः मथुरासे द्वारकामें गये थे, और द्वारकासे अनेक स्थानोंमें गये। पूर्वापर सबने भगवद्विरहको सहन किया था। भगवद्विरह अतिशय दुःसह होता है। श्रीभगवान्की कृपाके बलसे ही वह सहा जा सकता है। इसके लिए वृथा अनुताप करना ठीक नहीं है। उनकी लीला-कथा सुनने और कीर्तन करनेसे विरहमें लघुता आती है। इस समय महाराजको प्रभुकी लीलारङ्गकी कथा सुनाकर सान्त्वना देना आवश्यक है। मेरे लौट आनेके बाद प्रभुने क्या-क्या लीलाएं की, उसे अब कहिये। उसको सुनकर राजाका प्रभु-विरह-दुःख प्रशमित होगा।"

राय रामानन्द परम पण्डित और विज्ञ थे। भट्टाचार्यकी बातकी सारवत्ता अनुभव करके उन्होंने अपना चित्त स्थिर किया। याजपुर और चतुर्द्वारमें प्रभुने जो सब लीलाएँ की थी, वे एक-एक करके राजाको कह सुनायी। राजाने ध्यान देकर सब सुना। सब लोग गौराङ्ग-लीला-सागरमें डूब गये। रामानन्द राय वक्ता थे, राजा प्रतापरुद्र और सार्वभौम भट्टाचार्य श्रोता थे। राज-परिवारके लोगोंने अन्तरालमें खड़े होकर गौर-कथा सुनी। प्रेमाश्रुधारामें सबके वक्षःस्थल डूब गये। गौराङ्ग-लीला तरङ्गमें राज-प्रासाद उच्छ्वसित हो उठा। उससे राज परिवारकी गौर-विरह ज्वाला प्रशमित हुई।

चौबीसवाँ अध्याय

(रास्तेमें पतितोद्धार लीला-रङ्ग)

अधम यवन कुले केने जन्म हैल।
विधि मोरे हिन्दुकुले केने ना जन्माइल॥
हिन्दू हैले पाइताम तोमार चरण-सन्निधान।
व्यर्थ मोर एइ देह, जाउक पराण॥
चै. च. म. १६.१७९-१८०

उड़िशा राज्यकी सीमापर यवन-राजप्रतिनिधिपर कृपा

प्रभुके साथ भद्रकसे राय रामानन्द अलग-विलग हुए। भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान् भक्त-विरहसे कातर होकर अनमना रास्तेपर जा रहे हैं। किस रास्तेसे जा रहे हैं—इसका उनको कुछ भान नहीं है। नीलाचलसे गौड़ देशके जितने मार्ग हैं, प्रायः सभी विपद-संकुल हैं। क्योंकि यवन राजाके साथ राजा गजपति प्रतापरुद्रका अब भी युद्ध चल रहा है। प्रभुने जब उड़ीसा राजकी सीमा पारकी तो उस समय वहाँके हिन्दु राज्याधिकारी प्रभुके साथ मिले। उन्होंने प्रभुको दो चार दिन निजजनके सहित आदर पूर्वक रक्खा। उनकी और भक्तोंकी उन्होंने बड़ी आव भगत और सेवा की।

वे हिन्दू अधिकारी राजा प्रतापरुद्रके द्वारा नियुक्त राजकर्मचारी थे। सीमान्त प्रदेशकी रक्षा करनेके लिए सैन्य-सामन्त लेकर वहाँ शिविर डालकर यवन सेनाकी गतिको रोकनेका उनको आदेश था। उन्होंने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करके निवेदन किया—"प्रभु ! इसके आगे यवनोंका राज्य है। यवन राजा मद्यपान करने वाला, अति दुर्वृत्त और भीषण अत्याचारी है। उसके भयसे कोई रास्ता नहीं चल पाता। यहाँसे पिछलदा तक उसके राज्यमें है। दुर्वृत्त यवनके भयसे वह नदी कोई पार नही हो सकता था। आप यहाँ कुछ दिन विश्राम करें। मैं यवन राजके साथ सन्धिका प्रस्ताव करता हूँ, पश्चात् सुविधानुसार नौका द्वारा आपको गौड़ देशमें भेज दूंगा।" यह बात सुनकर प्रभु मुस्कराये, कोई उत्तर न दिया।

प्रभु जहाँ जाते थे, उनके साथ लाखों आदमी चलते थे, सर्वत्र महा-कोलाहल होता था, उच्च हरिध्वनिसे गगन-मण्डल कम्पित हो उठता था। सीमान्त प्रदेशके राज्याधिकारी यह देखकर भयभीत हो उठे। वे प्रभुको कुछ बोल न सके। वे 'प्रतापरुद्र सन्त्राता' है, यह वात उस राज्याधिकारीको मालूम थी। नदीके दूसरे पार दुर्दान्त यवन अधिकारीको पता लगा कि सीमान्त प्रदेशमें भारी भीड़ जमा हो रही है, उन्होंने सोचा कि—"जान पड़ता है, राजा प्रतापरुद्र स्वयं आये हैं। यह सोचकर यवन अधिकारीने एक गुप्तचर भेजा।

वह गुप्तचर हिन्दू वेषमें था। वह प्रभुके भक्तोंके साथ मिला, और उनकी कृपासे उसकी श्रीगौर भगवान्से भेंट हुई। प्रभुने उसके ऊपर कृपा दृष्टि की। तत्काल वह यवन दूत प्रेमोन्मत्त होकर सबके सामने 'हरि-हरि' कहकर नाचने लगा। भक्तगणने उस सौभाग्यवान् गुप्तचरपर कृपा की। स्वयं भगवान्का दर्शन प्राप्त करके उसने पञ्चम पुरुषार्थ प्राप्तकर लिया। प्रभुके अद्भुत चरित्र और अपरूप रूपको देखकर मुग्ध होकर वह राजकर्मचारी यवन अधिकारीके पास जाकर बोला—"एक संन्यासी जगन्नाथजीसे आया है। उसके साथ अनेक सिद्ध पुरुष हैं, जो निरन्तर श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हैं और सब हँसते, नाचते, गाते और क्रन्दन करते हैं। उनका दर्शन करने लाखों लोग आते हैं, और फिर घर नहीं लौट पाते। वे सब लोग भी पागलकी

तरह 'कृष्ण' कहकर नाचते, रोते और लोट-पोट होते हैं। इसका वर्णन नहीं हो सकता, देखने-से ही पता चलता है। उस संन्यासीका ऐसा प्रभाव है, कि लोग उसको भगवान् मानते हैं।"

यह बात कहते-कहते वह परम सौभाग्यवान् यवन-चर अधिकारीके सामने ही प्रेमानन्दमें उच्च हरिनाम कीर्तन करने लगा। वह कभी हँसता, कभी रोता, ठीक पागलके समान चेष्टा करने लगा।

यवन अधिकारी उस प्रदेशका राजप्रतिनिधि था। उसकी असीम क्षमता थी। अत्याचार और अविचार उसके अङ्गका भूषण था। उसका हृदय पाषाणसे भी कठोर था। मधुर हरिनामकी ऐसी महिमा है कि प्रभुके कृपापात्र अपने गुप्तचरके मुखसे मधुर हरिनाम सुनकर उस महा पाखण्डी यवन अधिकारीका पाषाण हृदय द्रवित हो उठा, उसका मन फिर गया। उसने अपने विश्वस्त प्रधान कर्मचारीको शत्रुशिविरमें हिन्दू अधिकारीके पास भेजा।

यवन अधिकारीकी हार्दिक अभिलाषा एक बार प्रभुका दर्शन करने की थी। यह प्रार्थना उसने अपने विश्वासी कर्मचारीके द्वारा प्रकट की। हरिनामकी ऐसी महिमा है, मधुर हरिनामकी ऐसी अद्भुत शक्ति है कि विधर्मी यवन अधिकारी एक बार हरिनाम सुनते ही नामके साथ नामीका सम्बन्ध समझ गया। उसके कानोंमें मानो सुधावृष्टि हुई। सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। जिसका नाम सुननेसे इतना आनन्द होता है, वह क्या वस्तु हैं, उनको देखनेके लिए यवन अधिकारीका मन अत्यन्त चञ्चल हो उठा। वह अब स्थिर न रह सका। उस प्रबल प्रतापशाली यवन राज-प्रतिनिधिके मनमें प्रभुके दर्शनकी लालसा इतनी प्रबल हो उठी, कि वह अपना कर्त्तव्य भूल गया। दूत द्वारा पहले ही सन्धिका प्रस्ताव भेज दिया।

उस समय गौड़के बादशाहका प्रताप व्याप्त था। यवन पक्षसे पहिलै सन्धिका प्रस्ताव होगा, यह आशा कभी किसीके मनमें नहीं आ सकती थी। परन्तु यवन अधिकारीने अपने प्रधान कर्मचारीको यह कहकर भेजा कि यदि प्रभुके साथ उसका मिलन संभव है तो वह सन्धि करनेके लिए प्रस्तुत है, किसी प्रकारके युद्धका भय नहीं है।

यवन राजप्रतिनिधिको प्रभुके दर्शनकी इतनी उत्कण्ठा हुई कि उसने बादशाहकी अनुमति लिये बिना सन्धि करना मंजूर कर लिया। प्रधान कर्मचारी दौत्य-कार्यमें नियुक्त होकर प्रभुके दर्शनके लिए आया। वह प्रभुको देखते ही उनके चरणोंमें गिरकर 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठा। वह भी यवन था। पतित-पावन श्रीगौर भगवान्‌ने उसके ऊपर भी कृपा करके उसको गोलोककी सम्पत्ति निज गुप्त-वित्त प्रेमधन दान किया। 'कृष्ण-कृष्ण, हरि-हरि' कहकर यवन-राज-कर्मचारी रोते-रोते व्याकुल होकर भूतलपर धूलमें लोटने-पोटने लगा। यह देखकर सब लोग परम विस्मित हुए।

प्रभुके पाससे विदा होकर यवन-राज कर्मचारीने उड़िया अधिकारीके पास जाकर उनको नमस्कार करके कहा—"यवन-राज्याधिकारीने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। यदि तुम्हारी अनुमति हो तो वह यवन-अधिकारी यहाँ आकर प्रभुसे मिलना चाहता है। बहुत उत्कण्ठाके साथ उसने विनय की है कि यही तुम्हारे साथ सन्धि है, युद्धका कोई भय न करना।"

हिन्दू अधिकारी उड़िया महापात्र यह बात सुनकर विस्मित होकर मन ही मन सोचने लगा—"यह प्रभुका कैसा विचित्र लीला-रहस्य है। मैं मन ही मन सन्धिकी बात सोच रहा था. क्योंकि प्रभुको गौड़ देश भेजना था। अन्तर्यामी प्रभुने यवन अधिकारीके द्वारा पहले ही सन्धिका प्रस्ताव करा दिया। यह प्रभुकी असीम कृपा परिचय है।" यह

सोचकर उड़िया महापात्रकी आँखोंमें आँसू आ गये। उसने बहुत कष्टपूर्वक अपनेको सँभाला। परन्तु मन ही मन पुनः सोचा कि शराबी विधर्मी यवनका क्या विश्वास ? इसमें कोई षड़यन्त्र है या नहीं, इसका क्या विश्वास ?

यह सोचकर उसने यवन राजकर्मचारीको कहा—"आप लोगोंके अधिकारी प्रभुके दर्शनके लिए आवेंगे, यह अच्छी बात है। उनको पाँच-सात आदमी साथ लेकर निरस्त्र होकर आनेके लिए कहें।" यवन राज-कर्मचारीने प्रभुकी और भक्तवृन्दकी चरण वन्दना करके अपने अधिकारीके पास जाकर सारी बातें कही। यह भी गुप्तचरके समान 'कृष्ण-कृष्ण, हरि-हरि' कहकर प्रेमानन्दमें विह्वल होकर कभी हँसता था, कभी रोता था।

यवन-राज-प्रतिनिधि अपने दो कर्मचारियोंकी ऐसी अवस्था देखकर यह समझ गया कि प्रभु क्या वस्तु हैं। अब प्रभुके दर्शनसे उसकी अपनी क्या दशा होगी, यही वह सोचने लगा। वह यवन था, परन्तु हिन्दू वेष बनाकर शत्रुके शिविरमें अकेले कुछ विश्वासी नौकरोंको साथ लेकर आया था।

प्रभु भक्तगणके साथ बैठे थे। उनके श्रीहस्तमें जप माला थी, रक्तवस्त्र पहने थे, सर्वाङ्ग चन्दन-र्चाचित था, प्रसर ललाटपर उज्ज्वल तिलक था, गलेमें पुष्पमाला थी। यवन-राज प्रतिनिधिने दूरसे प्रभुका दर्शन करके भूतलमें लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया। उड़िया महापात्र उसको बहुत सम्मानपूर्वक प्रभुके पास ला रहा था। परन्तु वह यवन-राज-प्रतिनिधि धूलमें लेटते-लेटते पुलकित शरीर होकर प्रभुके सामने आया। प्रभुको देखते ही उसके मुखसे 'कृष्ण' नाम निकल पड़ा। वह 'हरि-हरि, कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए हाथ जोड़कर प्रभुके सामने खड़ा हो गया।

करुणामय प्रभुने एक बार करुण-नयनसे उसके ऊपर दृष्टिपात किया। दुर्विनीत, दुर्दान्ति, परम दाम्भिक, मद्यपान करनेवाला यवन-राज-प्रतिनिधि प्रभुके एक कृपाकटाक्षसे मिट्टीकी पुतला बन गया। हृदयमें पूर्ण आर्त्त और दैन्य भावके साथ रोते-रोते उसने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—

अधम यवन कुजे केन जन्म हैल।
विधि मोरे हिन्दू कुले केन ना जन्माइल॥
हिन्दू हैले पाइताम तोमार चरण-सन्निधान।
व्यर्थ मोर एइ देह, जाउक पराण॥

चै. च. म. १६. १७९-१८०

कृपालु पाठकवृन्द ! एक बार स्थिर चित्तसे इस विषयपर विचार करें। एक आजन्म कुपथगामी पापमति, विधर्मी यवनके मनमें प्रभुके दर्शन मात्रसे जिस प्रकारके वैष्णवोचित दैन्य और आर्त्तभावका उदय हुआ, वह अति अपूर्व, अति मधुर, अति पवित्र था। उस पाप-मति यवनकी सारी पाप राशि क्षणमात्रमें तुलाराशिके समान दग्ध हो गयी, उसमें यवनत्वका नाम भी नहीं रह गया, वह वैष्णव हो गया। श्रीभगवान्का साक्षात् दर्शन प्राप्त होनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। यह समझानेके लिए लीला-रङ्ग-प्रिय श्रीगौर भगवान्ने यह लीला-रङ्ग प्रकट किया। उन्होंने दुराचारी, विधर्मी यवनको उसी शरीरसे मुनि-ऋषि बना दिया। उस भाग्यवान् यवन-राज-प्रतिनिधिके मुखसे जो आरति और दैन्योक्तिपूर्ण आत्म निवेदनकी गूढ़ मर्मकथा उन्होंने बाहर की, वैसी बात साधन-निष्ठ जप-तप परायण साधु-संन्यासीके मुखसे नहीं सुननेको मिलती। प्रभुकी अलौकिक शक्तिके प्रभावसे असंभव भी संभव हो गया। दुराचारी पाखण्डी यवन भी साधु-महापुरुषकी प्रकृतिको प्राप्त हो गया, उसकी मधुर-हरिनाममें रति हो गयी। पाप-कलुषित चित्त क्षणभरमें शुद्ध हो गया। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी भगवत्तामें जिनको पूर्ण विश्वास करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं है, वे कृपा करके प्रभुकी पतितोद्धारकी सारी कथाओंका स्थिर चित्तसे अनुशीलन और

चिन्तन करें, जीवाधम ग्रन्थकारकी यह प्रार्थना है।

यवन-राज प्रतिनिधिकी आर्त्त दैन्योक्तिको सुनकर उड़िया हिन्दू अधिकारी प्रेमानन्दमें आविष्ट चित्त होकर प्रभुके चरण पकड़कर उनकी स्तुति वन्दना करने लगा। वह रोते-रोते बोला—"हे प्रभु! तुम्हारे लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है। तुम सर्वेश्वर हो, तुम परमेश्वर हो। हे कृपानिधि! तुम्हारी कृपाका अन्त नहीं है, तुम्हारी करुणाकी सीमा नहीं है। तुमने इस यवन-राजप्रतिनिधिके ऊपर जो कृपादृष्टिकी है, उसका लेशमात्र भी प्राप्त कर यह जीवाधम अपनेको कृतार्थ समझेगा। दयानिधे! गुणनिधे! इस अधमपर कृपा करो।" इतना कहकर प्रभुके चरण पकड़कर वह फूट-फूट कर रोने लगा। दयानिधि प्रभुने उसके ऊपर कृपादृष्टि की। उसको अपने हाथोंसे भूमिसे उठाकर प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे उड़िया हिन्दू अधिकारी आनन्द स्वरूप होकर आँखोंमें आँसू भरकर बोला—

चण्डाल पवित्र जाँर श्रीनाम श्रवणे।
हेन तोमार एइ जीव पाइल दर्शने॥
इहार जे एइ गति, कि इहा विस्मय।
तोमार दर्शन-प्रभाव एइ मत हय॥

चै. च. म. १६. १८२, १८३

यह कहकर उड़िया अधिकारीने निम्नलिखित भागवत श्लोक पाठ किया—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्
यत्प्रह्वणात् यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वदोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥

श्रीम. भा. ३.३३.६

अर्थ—हे भगवन्! श्वपच भी कदाचित् यदि तुम्हारा नाम श्रवण, कीर्तन, नमस्कार अथवा स्मरण करता है तो वह तत्काल सोमयाजी ब्राह्मणके समान पूज्य हो जाता है, अतएव तुम्हारे दर्शनसे पवित्र होनेकी तो बात ही क्या है?

प्रभुने पुनः उनकी ओर करुण दृष्टिसे देखा। उस दृष्टिसे मानो कृपावृष्टि हुई। उड़िया हिन्दू अधिकारीने यवन-राजप्रतिनिधिके भाग्यकी खूब सराहना करके उसको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया।

यवन-राजप्रतिनिधि महा-अपराधीके समान प्रभुके सामने खड़ा था। मानो वह उनके आदेशकी प्रतीक्षामें हो। सर्वज्ञ प्रभुने उसके ऊपर कृपादृष्टि करके मधुर शब्दोंमें कहा—"तुम कृष्ण नाम लो; हरिनाम लो।

प्रभुने इस प्रकार म्लेच्छ यवनको हरिनाम दान किया। यवन-राजप्रतिनिधिने कृतार्थ होकर रोते-रोते अधमोंके उद्धारक प्रभुके चणणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया—

—"मोरे यदि कैले अङ्गीकार।
एक आज्ञा देह, सेवा करि जे तोमार॥
गो-ब्राह्मण-वैष्णव हिंसा करेछि अपार।
सेइ पाप हैते मोर हउक निस्तार॥

चै. च. म. १६. १८५-१८६

प्रभु मुस्कराये। परन्तु मुँहसे कुछ न बोले।

मुकुन्द दत्त प्रभुके निकट थे। वे प्रभुकी ओरसे बोले—'महाशय! प्रभुकी इच्छा गङ्गातीर जाने की है, गङ्गाका दर्शन करेंगे। आप यदि अनुग्रह करके इस विषयमें सहायता करें तो बड़ा उपकार हो।" यवन-राजप्रतिनिधिने सबसे पहले प्रभुकी चरण-वन्दना करके परम आनन्द पूर्वक विदा ग्रहण की। हिन्दू अधिकारीने यवन-राज प्रतिनिधिको बहुत-सा सामान भेंट देकर विदा किया, और उनको प्रेमालिङ्गन दान कर अपनेको धन्य माना। तबसे दोनों परम मित्र हो गये।

प्रभु प्रेमानन्दमें मत्त थे। उनको कोई चिन्ता न थी। पथ विपद-संकुल था, चारों ओर शत्रु-सेना

थी, गौड़ देश जानेके मार्गमें अनेक विघ्न थे। परन्तु यह बात उनसे कहनेका किसीको साहस नहीं होता। वे कीर्त्तनानन्दमें मत्त हैं, कृष्ण कथा रसमें डूबे हुए हैं। ग्राम्य चर्चा उनके कानोंमें नहीं पहुँच पाती। मुकुन्द दत्तने यवन-राजप्रतिनिधिसे जो कुछ कहा, वह प्रभुके कानोंमें प्रवेश न कर सका।

दूसरे दिन प्रभात कालमें वह कृपापात्र यवन-अधिकारी बहुत सी नौकाएँ और लोगोंको भेजकर प्रधान राज-कर्मचारीके साथ प्रभुको तथा उनके साथियोंको नदीके पार बुलवाया। एक नयी नौका भली-भाँति धोकर प्रभुके लिए तैयार रक्खी। प्रभु अपने निज-जनके सङ्ग नौकापर बैठे।

उड़िया अधिकारी प्रभुके साथ आये थे। प्रभुने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर विदा किया। नदीके किनारे खड़े-खड़े वे अजस्र आँसू बहाने लगे। जब तक प्रभुकी नौका आँखसे ओझल न हुई, तब तक एक-टक उनकी ओर देखते रहे।

यवन अधिकारी स्वयं प्रभुके साथ चला। दस नावें भरकर सैनिक ले लिये। इसका कारण यह था कि मार्ग बड़ा ही विपद् संकुल था। प्रभुके चरणोंमें उन्होंने अपनेको समर्पण कर दिया था। जिससे प्रभुके तथा उनके भक्तोंके श्रीअङ्गमें काँटा न गड़े, इस चिन्तासे बहुत सावधानीपूर्वक वह स्वयं उनके साथ चला। उच्च हरिध्वनिके साथ प्रभुकी नयी नौका सबके आगे तीरके समान वेगसे छूटी। यवन अधिकारी अपने सैन्य-सामन्तको लेकर उनके आगे-आगे चला। आगे मन्त्रेश्वर नामक नदीमें जलदस्युओंका बड़ा भय था। सेनाके साथ प्रभुको वह नदी पार कराकर पिछल्दा गाँव तक यवन अधिकारी उनके साथ आये। यहाँ अब कोई भयकी बात न थी। वहाँसे प्रभुने यवन-अधिकारीको विदा किया। विदा होते समय उस महाभाग्यशाली यवन-अधिकारीकी प्रेम चेष्टा और क्रन्दन वर्णनातीत था।

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

तारे विदाय दिला प्रभु सेइ ग्राम हैते।
सेकाले तार प्रेमचेष्टा ना पारि वर्णिते॥

चै. च. म. १६.१६७

और क्या कहें। पतित-पावन कृपानिधि प्रभुकी कलिग्रस्त पतित-अधम जीवके प्रति कृपाकी सीमा नहीं है। जननीके लिए जगन्नाथजीका उत्तम-उत्तम प्रसाद लेकर प्रभु नवद्वीप जा रहे हैं। मनोहरा नामक उत्तम प्रसाद भी उनमें था। प्रभुने उस यवन अधिकारीके प्रति परम सन्तुष्ट होकर वह मनोहरा प्रसाद श्रीहस्तमें लेकर उस भाग्यवान् यवनके हाथमें दिया। यवन अधिकारी प्रेमानन्दमें विह्वल होकर तत्काल उसे खा गया। और उच्च स्वरसे हरिध्वनि करने लगा। उसका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। आँखोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह चली। तब वह प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करने लगा। सब लोग प्रेमानन्दमें उच्च हरिध्वनि करने लगे।

प्रभुकी नौका उनके भक्तवृन्दको लेकर तीरके समान वेगसे चल पड़ी। क्षणमात्रमें वह दृष्टिपथसे ओझल हो गयी। प्रभुके विरहमें यवन अधिकारी नदीके किनारे पछाड़ खाकर उच्च-स्वरसे रोने लगा। नौकामें प्रभु प्रेमानन्दसे निजगणको लेकर कीर्तन करते हुए चले। नाविकोंने भी कीर्तनमें योगदान करते हुए नक्षत्रवेगसे नौकाको खेया और एक दिनमें ही पनिहाटी ग्राममें जा पहुँचे।*

श्रीभगवान्‌की लीला अपूर्व है, उनकी दया अनन्त है, उनके लीलारहस्यका पता लगाना मनुष्यकी बुद्धिसे परे है। वे अयोग्य पात्रके ऊपर भी कृपा करते हैं और योग्य पात्रकी उपेक्षा करते

---

* तदाज्ञया भगवत्कीर्तनं कुर्वन्तस्ते नाविकास्तथ तरणिमवाहयन्तो यथैकेनाह्न पानीयहाटि ग्रामे समुत्तीर्णाः स्म।

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक

हैं। वे कब किस उद्देश्यसे क्या लीला-रङ्ग करते हैं, यह मनुष्यकी ज्ञानबुद्धिके लिए अगम्य है। श्रीरामचन्द्रजी अति निकृष्ट जाति, चाण्डाल-राज गुहके साथ सख्य सम्बन्धमें आबद्ध होकर उसके घर अतिथि बने थे, परन्तु श्रीकृष्ण भगवान् प्रजापति ब्रह्माके करबद्ध स्तुति करनेपर भी मौन बैठे रहे, कोई उत्तर न दिया। इस स्थलमें श्रीगौर भगवान्‌ने दुर्वृत्त यवन-राजप्रतिनिधिको बिना साधनाके अहैतुकी कृपा की। अयाचित भावसे गोलोककी सम्पत्ति निज गुप्तवित्त प्रेमधन दान किया। क्या ही साधसे पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

> चिराददत्तं निजगुप्तवित्तं ।
> स्व प्रेमनामामृतमत्युदारः ॥
> आपामरं यो विततार गौरः ।
> कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये ॥
>
> चै. च. म. २३.१

कृपालु पाठकवृन्द ! कृपा करके स्थिर चित्तसे इस पतितोद्धार लीला-रङ्गमें श्रीगौर-भगवान्‌की अपार कृपा और अनन्त शक्तिके विषयमें तनिक विचार करें। सर्व प्रथम नदीके दूसरे किनारे गगनभेदी उच्च हरिसङ्कीर्तनकी अपूर्व मधुर ध्वनि श्रवण करके दुराचारी यवन अधिकारीका मन मुग्ध हो गया। हरिध्वनि श्रवण करके जो उसका मन चलायमान हुआ, इसको वह उस समय न समझ सका। वह दुर्वृत्त यवन हरिनामकी महिमा क्या जाने ? उसने समझा कि यह शत्रु सेनाका कोलाहल है। इसी कारण चुहचाप गुप्तचर भेजा। यवन अधिकारीके कानमें मधुर हरिनामकी ध्वनि प्रविष्ट होते ही उसका मन चञ्चल हो उठा। कीर्तनकारी लोगोंको देखनेकी उसकी इच्छा हुई। इसीलिए उसने अपना आदमी भेजकर तथ्यका पता लगाया। जिसको इस कार्यमें लगाया, वह आदमी यवन था। परन्तु यवन होनेसे क्या होगा ? उसका भाग्य असीम था। वह हरिनाम संकीर्तन सुनकर और भक्तोंका सङ्ग करके आवेशमें आ गया। जिसने आदेश दिया था, उसका और ही उद्देश्य होनेपर भी हरिनाम श्रवणके फल-स्वरूप उस उद्देश्यने अन्य ही रूप धारण किया। गुप्तचरको साक्षात् भगवद्दर्शनका फल हाथों हाथ मिल गया। उसके मुँह पर अपने आप मधुर हरिनाम आ गया। 'हरि-हरि' 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर वह अचेत होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। पतितपावन कृपानिधि प्रभुने कृपा करके उसको प्रेमदान दिया। विधर्मी यवन वैष्णवाग्रगण्य हो गया। 'हरिबोल' बोलते हुए वह प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगा। वह जब लौटकर यवन अधिकारीके पास गया, तब वह यवन नहीं रह गया था। वह महाभागवत, परम वैष्णव हो गया था। उसके दर्शन, स्पर्श और सङ्गसे यवन अधिकारीका पाप कलुषित चित्त शुद्ध हो गया। उसने उच्च पदस्थ एक यवन-राजकर्मचारीको भेजकर प्रभुके चरणोंके दर्शनका प्रस्ताव किया। अनन्त लीलामयी प्रभुकी अचिन्त्य शक्तिके बलसे थोड़े ही समयमें ये सारे अलौकिक कार्य सिद्ध हो गये। युग-युगान्तर साधना करके जप-तप द्वारा ऋषि-मुनिगण जिसे नहीं प्राप्त कर सकते हैं, गोलोककी वह सम्पत्ति, वह प्रेमधन क्षणमात्रमें एक दुराचारी, विधर्मी यवनको प्राप्त हो गया, और इस प्रेमधनसे धनी होकर वह भी परम शक्तिशाली हो गया। प्रथम गुप्तचर यवन प्रभुके श्रीमुखसे हरिनाम प्राप्तकर नाम ब्रह्मकी शक्तिके बलसे शक्तिमान् होकर दुर्वृत्त यवन अधिकारीकी चित्तशुद्धिका कारण बना। इस कृपापात्र यवनके दर्शन और सङ्गके गुणसे उसकी प्रभुदर्शनकी इच्छा हुई। तब उसने द्वितीय यवन-राजकर्मचारीके द्वारा प्रभुके समीप अपनी मनोभिलाषा प्रकट की। वह यवन राजकर्मचारी भी प्रभुका कृपापात्र बना, प्रभुका भक्त हो गया। उसका सौभाग्य अधिक था। वह हिन्दू अधिकारी उड़िया भक्त महापुरुषका आनुगत्य प्राप्तकर उनके

साथ प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध होकर धन्य हो गया। भक्तकी कृपाके बलसे प्रभुका दर्शन प्राप्तकर उसने सर्व-सिद्धियाँ प्राप्त की। प्रभुने उसको भी हरिनाम दान किया। कृष्ण-प्रेममें पागल होकर वह यवन अधिकारीके पास लौट आया। उसके मुखसे मधुर हरिनाम सुनकर, उसका सङ्ग प्राप्त करके यवन अधिकारीकी सारी पापराशि ध्वंस हो गयी। क्षणमात्रमें उसकी पर्वताकार पापराशि जलकर एकबारगी भस्म हो गयी। पाप नाशके उपरान्त जो होता है वही उसकी भी दशा हुई। उसके हृदयमें भगवद्दर्शनकी प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गयी, मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। भक्तके सङ्गके गुणसे यह सब क्षणमात्रमें हो गया। फलस्वरूप वह यवन अधिकारी श्रीगौर-भगवान्‌का पदाश्रय प्राप्तकर कृतार्थ हो गया प्रभुने उसके ऊपर जैसी कृपाकी, वैसी कृपा पहले कभी किसीने किसीके ऊपर नहीं की थी। माताके लिए जो जगन्नाथजीका उत्तम प्रसाद ले जा रहे थे, उसका अग्रभाग अपने हाथसे निकालकर उस महाभाग्यवान् महापुरुषको दे डाला। अब वह यवन न रहा, परम वैष्णव हो गया।

पतित-पावन श्रीगौराङ्ग प्रभुने मार्गमें इस प्रकार पतितोद्धार लीलारङ्ग करके जगत्‌के जीवका परम-मङ्गल साधन किया। अधम पतितके प्रति इस प्रकारकी दया कभी और किसीने नहीं दिखलायी। अतएव महाजन कवि वासुदेव घोषने प्रभुके अप्रकट सम्वादमें रोते-रोते गाया है—

गोरा लागि प्रान काँदे कि बुद्धि करिव।
से हेन गुणेर निधि कोथा गेले पाव॥
के आर करिबे दया पतित देखिया।
दुर्लभ हरिर नाम के दिबे याचिया॥
अकिञ्चन देखि के वा उठिबे काँदिया।
गोरा बिनु शून्य हइल सकल नदीया॥
वासुदेव घोष काँदे गुण सङरिया।
केमने रहिबे प्राण गोरा ना देखिया॥

यह महाजन कवि प्रभुके नित्य पार्षद थे। उनका सारा लीला-रङ्ग इन्होंने अपनी आँखोंसे देखा था। वह गौराङ्ग-विरहमें यह कहकर रोये थे—

"के आर करिबे दया पतित देखिया।"

इस एक ही वाक्यमें भक्त महाजन कविने श्रीगौराङ्गकी महिमा अति सुन्दरतापूर्वक कीर्तनकी है। ऐसे पतितके बन्धु, ऐसे अधम-उधारण कृपासिन्धु, ऐसे परम दयालु दीनबन्धु श्रीभगवान्‌का अवतार इससे पूर्व कभी न हुआ, न होगा। यह भी साधक महाजनका वचन है, निम्नलिखित पदांशमें यह बात व्यक्त हुई है।

औ मन! गौराङ्ग बिने नाहि आर।
हेन अवतार, हबे कि हतेछे
हेन प्रेम परचार॥

(मनःशिक्षा)

इसी कारण सिद्ध महाजन कवि ज्ञानदासने कहा है—

कि कहब शत शत तुया अवतार।
एकेला गौरांगचाँद जीवन आमार॥

साध करके महाजन कविने कैसा गाया है—

गाओरे गौरांग गुण गाओ।
गेये देख, केमन जुड़ाओ॥

पच्चीसवाँ अध्याय

गौड़ देशमें भक्तवृन्दका मिलन

'प्रभु आइला' बलि लोकेर हैल कोलाहल ।
मनुष्ये भरिल सब जल आर स्थल ॥

चे. च. म. १६.२००

प्रभु पानिहाटीमें

प्रभुके नदियाके सब भक्तगण जानते थे कि प्रभु श्रीवृन्दावनकी यात्राके मार्गमें गौड़-देशमें शुभागमन करेंगे। नवद्वीपमें अपनी माता और गङ्गाजीका दर्शन करेंगे। सबकी इच्छा थी कि प्रभुको एकवार अपने घर ले जाँयगे। उनके मनमें विश्वास था कि कृपानिधि भक्तवत्सल प्रभुका चरण पकड़कर रोनेपर वे उनकी प्रार्थना पूर्ण करेंगे। सब नवद्वीप वासियोंने अपना-अपना घर सुसज्जित कर रक्खा है। प्राङ्गण परिष्कृत कर रक्खा है। नदियाके घाट-वाटको सुसंस्कृत कर दिया है। प्रभु नदीके मार्गसे आ रहे हैं, यह संवाद उनको मिल गया है। गङ्गाके किनारे जिनका वास है, उन्होंने गङ्गाके घाटोंको साफ सुथरा कर दिया है।

आश्विन मासके बीतते-बीतते विजयादशमीके दिन प्रभुने नीलाचलसे यात्रा की थी, अब कार्तिक वीत रहा था, इतना शीघ्र प्रभु गौड़-देशमें आ जाँयगे, यह किसीको आशा न थी। फिर भी प्रबन्धमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई थी। प्रभुके लिए रुचिकर भोजनका सामान उन्होंने माँगकर रख लिया था। प्रभुके सङ्गके भक्तोंकी सेवाके लिए नाना प्रकारकी भोजन सामग्रीसे भण्डार पूर्ण कर रक्खा था। गौर-आवाहनके लिए बाजे-गाजे और नये-नये कीर्तनके दल तैयार थे। श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रके नदियामें शुभागमनकी प्रतीक्षामें सब लोग वाट जोह रहे थे।

ऐसे समयमें एक दिन प्रातःकाल पानिहाटी गाँवमें गङ्गाके घाटपर प्रभुकी नौका आ पहुँची। श्रीगौराङ्ग सुन्दर भुवन-मङ्गल हरिसङ्कीर्तनके साथ नवद्वीपमें उदय हुए थे। उनका जहाँ ही शुभागमन होता था, वह भुवन-मङ्गल हरिसङ्कीर्तन साथ-साथ चलता था। जहाँ हरिसङ्कीर्तन होता था, वहाँ ही श्रीगौर-भगवान्‌का अधिष्ठान था, और जहाँ श्रीगौराङ्ग प्रभु रहते थे वहाँ हरिसङ्कीर्तन यज्ञका अनुष्ठान होता था। अपने प्रिय पुत्र कीर्तनको छोड़कर प्रभु एक दिन भी नहीं रह सकते थे।

समस्त जलमार्गमें प्रभु नौकामें कीर्तन करते आ रहे थे। गङ्गाके पर पार असंख्य लोग उनका दर्शन पाकर प्रेमोन्मत्त होकर साथ हो गये। नौकाके ऊपर खड़े होकर आजानुलम्बित दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर प्रभु उच्च स्वरसे हरिध्वनि करते हुए सब लोगोंको कृपाशीर्वाद प्रदान करते हुए पानिहाटी ग्राममें आ उपस्थित हुए। उनकी नौकाके साथ तीरे-तीरे लाखों आदमी आ रहे थे। सबके मुखमें हरिध्वनि थी। पानिहाटीके सब लोग इस अगणित लोकसिन्धुमें मिल गये। सारा स्थान मनुष्यमय हो गया। गङ्गाके तीरसे लेकर गाँवकी सीमापर स्थित विस्तृत मैदान तक केवल नरमुण्डके सिवा और कुछ नहीं दीखता था।

पूज्यपाद श्री कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है कि पृथिवीके रजकणने मानो मनुष्यका रूप धारण कर लिया है, अथवा आकाशके सारे नक्षत्र मानव मूर्त्ति धारण करके भूतलमें निपतित हुए हैं।

यावद्देवो न सुरसरितस्तीरसीमानमाप्त-
स्तावत् सर्वं जनमयमभूद्धन्त किं तद् ब्रवीमि ।

किं तत्रासन्न हह धरणीधूलयो लोकरूपाः
किं तारा वा मनुजवपुषः पेतुरुर्व्यां नभस्तः ॥
चै. च. नाटक ६.११

पानिहाटि ग्राममें राघव पण्डितका घर है। वे प्रभुके शुभागमनकी अपेक्षा कर रहे थे। उन्होंने भी अपने घर प्रभुके आवाहन करनेकी सारी तैयारी कर रक्खी थी। लोगोंकी भीड़में बड़ी कठिनाईसे गङ्गाके तीर आ करके वे प्रभुको अपने घर ले गये।

प्रभुने एक दिन राघव पण्डितके घर वास किया। इसी स्थानपर प्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभुका मिलन हुआ। प्रभुकी इच्छासे वे इस समय पानिहाटीमें आकर निजजनके सहित राघव पण्डितके घर ठहरे थे। गौर-नित्यानन्दका मिलन हुआ गङ्गाके घाटपर। इस शुभ मिलनमें जो प्रेमका तरङ्ग उठा, वह अवर्णनीय था। प्रभुने अवधूत नित्यानन्द प्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीनिताईचाँदने बाह्यज्ञानशून्य होकर प्रभुको वक्षःस्थलमें धारण करके प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया। वहाँ दोनोंकी अश्रुधारासे प्रेमनदी बह चली। उस प्रेमतरङ्गकी शतधारमें सब लोग बहने लगे। अत्यधिक लोक-संघट्टके भयसे दोनों भाई क्रमशः आत्म-संवरण करके राघव पण्डितके घर चले।

राघव पण्डित परम गौरभक्त थे। 'राघवके झाली' की बात पहले कही जा चुकी है। उनकी भक्तिमती भगिनी दमयन्ती प्रतिवर्ष प्रभुके लिए यह झाली तैयार करती थी। रथयात्राके समय प्रभुके दर्शनार्थ राघवानन्द अपनी भगिनीके साथ वह झाली लेकर जाते थे। उस झालीसे प्रभुके सब प्रकारके उत्तम-उत्तम भोजनके सामान अति यत्नपूर्वक तैयार होते थे। भक्तवत्सल प्रभु नीलाचलमें रहकर भक्तोंके द्वारा प्रदत्त इन सब प्रीतिजन्य भोजनकी सामग्रियोंका आस्वादन करते थे।

प्रभु जब राघवानन्दके घर पहुँचे तो गाँवकी सारी कुलनारियाँ वहाँ एकत्रित होकर बारम्बार मङ्गलसूचक हुलूध्वनि करने लगी। शत-शत शङ्ख-ध्वनिके द्वारा प्रभुका मङ्गल आवाहन किया। राघव पण्डित प्रभुके चरणोंमें लोटकर प्रेमानन्दमें आकुल होकर उनके रक्तचरणकमलको हृदयमें धारण करके रोने लगे। करुणामय प्रभु उनको श्रीहस्तसे उठाकर कलेजेसे लगाकर बैठ गये। प्रभुके नयन-जलसे राघव पण्डितके सारे अङ्ग सिक्त हो गये। राघव पण्डित प्रेमानन्दमें विभोर होकर बाह्यज्ञानशून्य हो गये।

भक्तवत्सल प्रभु भक्तका मान बढ़ानेके लिए सदातत्पर रहते हैं। राघव पण्डितके प्रकृतिस्थ होनेपर वे उनको लक्ष्य करके सबके सामने सुधा मधुर वचनोंसे स्नेहमें भरकर कहने लगे—

—"राघवेर आलये आसिया।
पासरिलुं सब दुःख राघव देखिया ॥
गंगार मज्जन कैले जे सन्तोष हय।
सेइ सुख पाइलाम राघव-आलय ॥
चै. भा, अं. ५.८१, ८२

प्रभुके श्रीमुखसे आत्म प्रशंसा सुनकर राघव पण्डित संकोचमें गड़ गये। वे लज्जासे सिर झुकाकर अजस्र आँसू बहाने लगे। राघव पण्डितका यह अपूर्व प्रेम-भाव देखकर रङ्गीले प्रभु मुस्कराते हुए फिर बोले—"राघव! शीघ्र जाकर श्रीकृष्णके भोगके लिए रसोई बनाओ। मैं प्रसाद पाऊँगा।"

राघव पण्डित प्रभुकी यह आज्ञा प्राप्त कर पाकशालामें जाकर रसोई बनाने लगे। उन दिनोंके वैष्णव लोग रसोई बनानेमें सिद्ध हस्त थे। श्रीअद्वैत प्रभु अपने हाथसे रसोई बनाकर प्रभुको भोग देते थे। सार्वभौम भट्टाचार्य भी यही करते थे। वैष्णव गृहिणीगण उपस्थित होकर अपने हाथसे पाक करके क्यों प्रभुको भोग देती थीं? कारण यह था कि इसमें प्रभुकी बड़ी प्रीति थी, और उनको भी प्रीति

होती थी। प्रभुको जो भोजन पसन्द था, वही प्रेमपूर्वक वे अपने हाथसे राँधकर प्रभुको भिक्षा कराते थे। राघव पण्डितकी भक्तिमती बहन दमयन्तीने राँधनेका सारा उद्योग कर दिया। प्रभुको शाक प्रिय था, मोचा-घण्ट (केलेके पुष्प-कोषका व्यञ्जन) प्रिय था।

ब्राह्मणने अतिशय यत्नपूर्वक नाना प्रकारके शाक, व्यञ्जन पाक करके प्रभुको भोग दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभुको साथ लेकर निज जनके साथ श्रीगौर भगवान् राघव पण्डितके घर भोजन करने बैठे। राघय पण्डित स्वयं परोसने लगे, और भक्तवत्सल प्रभु उनके मुँहकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर एक-एक करके सारे व्यञ्जनकी प्रशंसा करने लगे।

प्रभु बले—"राघवेर कि सुन्दर पाक।
एमत कोथाओ आमि नाहि खाइ शाक ॥"

चै. भा. अं. ५.८८

प्रेमानन्दमें नाना रङ्गमें भोजन विलास समाप्त करके प्रभुने विश्राम किया। अपराह्न कालमें आड़ियादहसे गदाधर दास आकर प्रभुसे मिले। वे प्रभुके एकान्त अन्तरङ्ग भक्त थे और श्रीनित्यानन्द प्रभुके पदाश्रित थे। वे सर्वदा व्रजरसमें मत्त रहते थे। उनका शुद्ध गोपीभाव था। प्रभुके आदेशसे नीलाचलसे श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ गौड़ देशमें आये थे। युगधर्म हरिनामके प्रचारमें वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रधान सहायक थे। श्रीनित्यानन्दने मुसलमान काजीको हरिनाम महामन्त्र देकर उद्धार किया था। यह सब कथा पहले आ चुकी है। श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है—

प्रभुर परम प्रिय—गदाधर दास।
भक्तिसुखे पूर्ण जार विग्रह प्रकाश ॥

चै. भा. अं. ५.९२

भक्तवत्सल प्रभु गदाधर दासको देखकर आनन्द विह्वल हो उठे। गदाधर दासने जब प्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया, तब कृपानिधि प्रभुने कृपा करके—

श्रीचरण तूलिया दिलेन ताँर शिरे।

चै. भा. अं. ५.९३.

गदाधर दास प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे आनन्द स्वरूप हो गये। उनके मुँहसे वाणी न निकल सकी। वे प्रभुके रक्त कमल-चरणको हृदयसे लगाकर अजस्र आँसू बहाने लगे।

पुरन्दर पण्डित, परमानन्द दास, मकरध्वज कर, रघुनाथ वैद्य आदि भक्तगण आकर वहाँ प्रभुसे मिले। पानिहाटि ग्राममें आनन्दका तरङ्ग उठा। कीर्तन-उत्सवमें सभी मत्त हो गये। कीर्तनके आगे-आगे प्रभु अपूर्व नृत्य कर रहे थे। उस नयन-रञ्जन, भुवन-मङ्गल नृत्यका दर्शन करके लाखों-लाखों लोगोंका उद्धार हो गया। प्रभुकी सर्वचिन्ताकर्षक अपरूप रूप राशिको देखकर सब लोग उन्मत्त होकर हरि-ध्वनि करने लगे। प्रभु अरुणवस्त्र पहने थे, सर्वाङ्ग चन्दन-चर्चित था, श्रीमस्तक मुण्डित था, कनक-केतकी सदृश ढुल-ढुल प्रेमपूर्ण नयन थे, पद-नखमें कोटि चन्द्रकी शोभा थी, आजानुलम्बित सुकोमल वाहुद्वय ऊपर उठाकर जब वे उच्च स्वरसे हरिध्वनि करते थे, तब जान पड़ता था मानो ब्रह्माण्ड भेद करके वह ध्वनि निकल रही हो। स्वर्ग-मर्त्य:रसातलके लोग उस ध्वनिको सुन पाते थे। प्रभुके हुङ्कार गर्जनसे पृथिवी कम्पित हो रही थी। पानिहाटि ग्राम वैकुण्ठ धाममें परिणित हो गया। केवल एक दिन प्रभु वहाँ रहे। उसी एक दिनमें प्रभुने लाखों-लाखोंका उद्धार कर दिया। प्रकट लीलाके दर्शनमें ही उद्धार था।

कीर्तनसे थककर प्रभु रातमें बैठ गये। अन्तरङ्ग भक्तवृन्द उनके साथ थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु कुछ दूर बैठे थे। प्रभु राघव पण्डितको पास

बुलाकर चुपके-से बोले—

राघव ! तोमारे आमि निज गोप्य कइ।
आमार द्वितीय भाइ नित्यानन्द बइ॥
एइ नित्यानन्द जेइ करायेन आमारे।
सेइ करि आमि, एइ बलिल तोमारे॥
आमार सकल कर्म—नित्यानन्द द्वारे।
एइ आमि अकपटे कहिल तोमारे॥
जेइ आमि, सेइ नित्यानन्द, भेद नाइ।
तोमार घरेइ सब जानिवा एथाइ॥
महा योगेन्द्रेरो जाहा पाइते दुर्लभ।
नित्यानन्द हैते ताहा हइब सुलभ॥
एतेके हइया तुमि महा सावधान।
नित्यानन्द सेविह जे हेन भगवान्॥

चै. भा. अं. ५.१००-१०५

प्रभुने श्रीनित्यानन्द-भक्त राघव पण्डितके घर बैठकर इस प्रकार श्रीनित्यानन्द-महिमा कीर्तन कीं। इस परम पवित्र स्थानमें गत वर्ष बड़े समारोहसे श्रीनित्यानन्द प्रभुका शुभ अभिषेक कार्य सम्पन्न हुआ था। राघव पण्डितके घर उन्होंने आत्म प्रकाश किया था, उनको ऐश्वर्य दिखलाया। राघव पण्डित श्रीनिताईचाँदके परम अनुरक्त भक्त थे। तथापि प्रभुने उनको सावधान कर दिया। इसका रहस्य है। प्रभुके आदेशसे निताईचाँद गृहस्थधर्म अवलम्बन करेंगे, विवाह सूत्रमें आवद्ध होंगे, वंशकी रक्षा करेंगे। यह देखकर कोई उनके प्रति श्रद्धा कम न करे, यह समझानेके लिए करुणामय प्रभुने राघव पण्डितको उपलक्ष्य करके श्रीनित्यानन्द प्रभुके सम्बन्धमें सबको सावधान कर दिया। राघव पण्डितने हाथ जोड़े खड़े होकर। प्रभुके श्रीमुखकी आदेशवाणी एकाग्र चित्तसे सुनी। श्रीनित्यानन्द-महिमा श्रवण करके वे पुलकित हो उठे। वे प्रभुके चरणोंमें सिर रखकर अजस्र आँसू बहाने लगे।

उसके बाद प्रभुने मकरध्वज करकी ओर करुण-नयनसे देखकर कहा—"मकरध्वज ! तुम राघवकी सेवा करना। राघवके प्रति तुम्हारी प्रीति देखकर मैं परम प्रसन्न हूँ, यह निश्चय जानो। राघवकी सेवा करनेसे मेरी सेवा हो जायगी, इसमें तनिक भी सन्देह न करना।" मकरध्वज करने परम आनन्दपूर्वक प्रभुकी आज्ञा सिरपर धारण कर ली, और भूमि-विलुण्ठित होकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

गदाधर दासको भी प्रभुने मीठी बातोंसे सन्तुष्ट किया, उनके सामने भी श्रीनित्यानन्दकी महिमा कीर्तन की। सब भक्तोंको कृपानिधि प्रभुने प्रेमालिङ्गन प्रदान करके विदा किया। उस रात प्रभुने राघव पण्डितके घर ही विश्राम किया। राघव पण्डित प्रभुकी सेवाका अधिकार पाकर कृतार्थ हो गये।

वराह नगरमें

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु नौका करके बराह नगरमें पहुँचे। बराहनगर पानिहाटिके पास ही था। गङ्गाके दूसरे किनारे लाखो-लाखों लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। उच्च हरिध्वनिसे गगन-मण्डल पूर्ण हो गया। 'हे प्रभु, हे प्रभु' शब्दसे महा कोलाहल उत्पन्न हुआ। जल-स्थल दोनों स्थानोंमें आदमी भर गये। वराहनगरमें प्रभुकी नौका लगानेकी कोई आवश्यकता न थी। प्रभुने देखा कि बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गयी है, सबकी प्रबल उत्कण्ठा प्रभुके श्रीचरणके दर्शन की, तथा उनके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम सुननेकी है। प्रभुका यह अवतार जीवोद्धारके लिए ही है। कलि पावनावतार श्रीगौराङ्ग प्रभुने जीवकी उत्कण्ठा देखकर नाविकोंको वराहनगरके घाटपर नौका लगानेके लिए कहा। प्रभु जब भक्तगणके साथ गङ्गाके घाटपर उतरे तो लाखों-लाखों आदमियोंने हरिध्वनि करके उनका शुभ स्वागत किया। कीर्तन करते-करते सङ्कीर्तन यज्ञेश्वर नौकासे उतरे। साथमें श्रीनित्यानन्द प्रभु थे। दोनों भाई एक-दूसरेका हाथ पकड़ करके नृत्यानन्दमें मग्न हो गये। भक्तगण गौर-

नित्यानन्दको घेरकर कीर्तन करने लगे। गङ्गाके घाटपर प्रेमानन्दका स्रोत बह गया। उस स्रोतके सलिलमें वराहनगर और पड़ोसके सारे ग्राम डूबने उतराने लगे।

उस वराहनगरमें एक भागवत-वेत्ता, निष्ठावान् विप्रभक्त वास करते थे। श्रीमद्भागवतमें उनका विशेष अधिकार था। वे भागवत पाठ करते थे। प्रभु जब अपराह्नमें गाँवके बीचमें आये तो उस भाग्यवान् विप्रको अपने घर बैठकर भागवत पाठ करते देखा। प्रभुको देखकर वह अतिशय आग्रहके सहित भक्तियोगकी व्याख्या करने लगे। साक्षात् भगवत्-दर्शनसे उनके मनमें भक्तितत्त्वकी पूर्ण स्फूर्त्ति हुई। प्रभु निजजनके साथ वहाँ भागवत सुनने बैठ गये। आविष्ट होकर प्रभु भागवत सुनने लगे, और प्रेमावेशमें हुङ्कार गर्जन करके बीच-बीचमें मधुर नृत्य करने लगे। वहाँ प्रेमानन्दका तरङ्ग उठा। प्रभुको बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। भागवत पाठकको भी बाह्यज्ञान न था। वे परमानन्दमें मग्न होकर परम आविष्ट-भावमें भक्तिकी महिमाको सूचित करने वाले श्लोकोंका पाठ कर रहे थे। प्रेमोन्मत्त प्रभु प्रेमावेशमें नृत्य करते-करते भूतलपर बारम्बार पछाड़ खाकर गिर रहे थे। इस प्रकार रातके तीन पहर गीत गये। श्रोताओंकी मण्डलीमें कोई उठ न सका। प्रेमावतार प्रभु तब आत्म संवरण करके भागवत-पाठक भाग्यवान् विप्रको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए मधुर वचन बोले—

—भागवत एमत पड़िते।
नभू नाहि शुनि आर काहारो मुखेते॥
एतेके तोमार नाम 'भागवताचार्य'।
इहा बइ आर कोन ना करिह कार्य॥

चै. भा. अं. ५.११८-११९

अब उस महा भाग्यवान् विप्रका प्रभुदत्त नाम भागवताचार्य हो गया। प्रभुका आदेश वे पूर्णतः पालन करने लगे। भक्तवृन्द उन भाग्यवान् विप्रके प्रभु द्वारा प्रदत्त पदवी लाभ करनेपर महा-आनन्दित होकर बारम्बार जयध्वनि करने लगे। परम सुकृतिवान् वे विप्र उस दिनसे प्रभुके चरणोंका आश्रय करके अपनेको कृतार्थ समझने लगे। आज भी वराहनगरमें भागवताचार्यका प्राचीन श्रीपाट है, सम्प्रति इसका संस्कार हुआ है।

कुमारहट्टमें

प्रभु वराहनगरसे नौका द्वारा कुमारहट्टमें आये। कुमारहट्ट गाँव कांचनपाड़ाके निकट है। आजकल कुमारहट्टको कामारहाटि, और काञ्चन पाड़ाको काँचड़ापाड़ा कहते हैं। इसी कुमारहट्ट ग्राममें श्रीवास पण्डितका आदि निवास था। उनका नवद्वीपका घर उस समय सूना था। प्रभुके संन्यास ग्रहणके बादसे वे मनमें दुःख मानकर अपने ग्राममें जाकर रहते थे। बीच-बीचमें शची माताका दर्शन करने नवद्वीप जाया करते थे। श्रीवास पण्डितको भी पता था कि प्रभु गौड़ देशमें आ रहे हैं। उन्होंने भी प्रभुके लिए सारा प्रबन्ध कर रक्खा था। प्रभुको जो शाक प्रिय था उसे अपनी वाटिकामें पहलेसे लगा रक्खा था। अपने हाथसे उसमें नित्य-जल सिञ्चन करते थे। श्रीवासका गौर-सेवानुराग अद्भुत था। वे अपने हाथसे विग्रह सेवा करते थे। सर्वदा श्रीगौराङ्ग-चरणके ध्यानके आनन्दमें मग्न रहते थे। एक दिन वे अपने इष्टदेवके श्रीचरणका ध्यान कर रहे थे, उसी समय अचानक अपने घर प्रभुका साक्षात् दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ।

प्रभु नौकासे उतरकर एकवारगी श्रीवास पण्डितके घर जा उपस्थित हुए। प्रभु छिपे-छिपे नहीं आये, उनके साथ लाखों आदमी थे। परन्तु श्रीवास पण्डित देवगृहमें ध्यानानन्दमें मग्न थे। उनको इसका कुछ पता न था। प्रभुको सामने देखते ही उनका ध्यान भङ्ग हो गया। वे जिनका ध्यान कर रहे थे, उनको सामने पाकर परम आनन्दित हुए। प्रभुके चरण-तलमें गिरकर

भव-विरञ्चिके द्वारा अभिवाञ्छित उनके रक्तकमल-चरणोंको दोनों हाथोंसे हृदयमें लगाकर उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। करुणामय प्रभु श्रीवास पण्डितको प्रेमपूर्वक क्रोड़में लेकर बैठ गये। निज-नयन-जलकी प्रेमधारासे उनके सारे अङ्गको धो डाला। श्रीवास-गृहिणी मालिनीदेवी, उनके चारों भाई परिवारके लोग. दास-दासी सभी प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े। बहुत दिनोंके बाद श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रको अपने घर पाकर श्रीवासका समाज परमानन्दमें मग्न हो उठा। श्रीवास पण्डितने अपने सिरपर उठाकर उत्तम आसन लाकर प्रभुको बैठनेके लिए दिया। प्रभु दिव्यासन पर बैठ गये। अन्तरङ्ग भक्तवृन्द उनको घेरकर बैठ गये। श्रीवास-गृहमें प्रभु तारका-वेष्टित पूर्णचन्द्रके समान शोभा पाने लगे। पुरनारीवृन्दने शुभ शङ्ख बजाकर और हुलुध्वनि करके मङ्गलाचरण किया। प्रभुने मुस्कराते हुए अमृतमयी वाणीसे सबको सन्तुष्ट किया।

पुरन्दर आचार्य प्रभुके शुभागमनका सम्वाद पाकर दौड़े आये। वे परम भागवत थे, प्रभु उनको पितृ सम्बोधन करने थे। पुरन्दर आचार्यको देखकर प्रेमपूर्वक उनको हृदयसे लगा लिया। दोनों आदमी एकाङ्ग होकर बैठ गये। प्रभुको देखकर पुरन्दर आचार्य अत्यन्त व्याकुल होकर प्रेमानन्दमें क्रन्दन करने लगे।

श्रीवास गृहमें प्रेमका तरङ्ग उठा। भक्तवृन्दके नयन-जलसे प्रेमनदी प्रवाहित हो गयी। सभी मानो आनन्द स्वरूप हो गये। वह आनन्द क्या वस्तु है, भाषाके द्वारा इसका वर्णन नहीं हो सकता।

प्रभु कुमारहट्ट गाँवमें आये हैं, यह सुनकर महा व्यग्र होकर शिवानन्द सेन और वासुदेव दत्त आत्मीय जनके साथ श्रीवास पण्डितके साथ प्रभुके दर्शनके लिए आये। शिवानन्द सेनका घर काञ्चन-पाड़ा, कुमारहट्ट गाँवके बिल्कुल समीप था। सबकी इच्छा थी कि प्रभुको एकवार अपने घर ले जाँय। वासुदेव दत्त शिवानन्द सेनके पड़ोसी थे। वे प्रभुके एकान्त अन्तरङ्ग भक्त थे, परम परोपकारी थे, वह प्राचीन पदकर्त्ता थे। इनकी पदावलीके गीत सुनकर पाषाण भी द्रवित हो जाते हैं। दोष-दर्शन करना वे बिल्कुल ही नहीं जानते थे। वे महापुरुष प्रभुके अत्यन्त प्रिय थे, प्रभुके रसिक भक्त थे। वे श्रीविष्णुप्रिया-देवीके विरह विषयक कई पदोंकी रचना कर गये हैं। जिनका पाठ करनेसे पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाते हैं। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने वासुदेव दत्तके सम्बन्धमें लिखा है—

प्रभुर परम प्रिय—वासुदेव दत्त।
प्रभुर कृपाय से जानेन सर्व तत्त्व॥
जगतेर हितकारी—वासुदेव दत्त।
सर्वभूते कृपालु—चैतन्य रसे मत्त॥
गुणग्राही अदोषदरशी सभा प्रति।
ईश्वरे वैष्णवे यथायोग्य रतिमति॥
वासुदेव दत्तेर जतेक गुण सीमा।
वासुदेव दत्त विनु नाहिक उपमा॥

चै. भा. अं. ५.१६-२१,२५

ऐसे गुणनिधि वासुदेव दत्तको देखकर प्रभुने सबके सामने कहा—"मैं निश्चय ही वासुदेवका हूँ।" वासुदेव लज्जासे सिर नीचा करके प्रभुके चरणोंमें गिरकर अजस्र आँसू बहाने लगे। भक्तवत्सल प्रभुने उनको श्रीहस्तसे उठाकर हृदयसे लगाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया, और बारम्बार कहने लगे—

ए शरीर वासुदेव दत्तेर आमार॥
दत्त आमा यथा बेचे तथाइ बिकाइ।
सत्य सत्य इहाते अन्यथा किछु नाइ॥
वासुदेव दत्तेर वातास जार गाय।
लागिया छे तारे कृष्ण रक्षिब सदाय॥
सत्य आमि कहि—शुन वैष्णव मण्डल।
ए देह आमार वासुदेवेर केवल॥

चै. भा. अं. ५.२७-३०

वासुदेव दत्त प्रभुके श्रीमुखसे आत्मप्रशंसा सुनकर बहुत लज्जित हुए। वे प्रभुके सामने लम्बे होकर भूतलमें गिरकर धूलिमें लोटते हुए रोने लगे। उनके नयन-जलसे वहाँकी भूमि कीचड़-कीचड़ हो गयी। भक्तका गुणगान करनेमें भक्तवत्सल प्रभु शतमुख हो जाते हैं। उनके मनमें बड़ा आनन्द होता है। भक्तका सम्मान बढ़ानेके लिए वे सर्वदा तत्पर रहते हैं। परन्तु आत्म-प्रशंसा सुनकर भक्त जो लज्जा बोध करता है, कृपानिधि प्रभु यह समझकर भी ध्यान नहीं देते। वासुदेव दत्त आत्म-प्रशंसा सुनकर जो लज्जासे गड़े जाते हैं, दयामय प्रभु यह देखकर भी नहीं देखते। भक्तका गुण गाकर भगवान्‌के मनमें जो आनन्द होता है, वैसा आनन्द और किसी बातसे उनको नहीं होता। अपने प्रेमके आनन्दमें विभोर होकर वे भक्तके दुःखको नहीं समझ पाते। वासुदेव दत्तके कानोंमें उनके सम्बन्धमें प्रभुके मुखसे निकली हुई आत्म-स्तुति मानो शूलके समान लगती है। वे कानोंमें अंगुलि देकर रोते हैं, और धूलमें लोट-पोट करते हैं, तथापि प्रभु भक्तका गुणगान करनेसे नहीं चूकते।

प्रभु वासुदेव दत्तको बध करनेका उद्योग कर रहे हैं, यह देखकर श्रीवास पण्डितने अति सावधानीसे प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर मृदु-स्वरसे निवेदन किया—"हे प्रभु! वासुदेव तुम्हारे श्रीमुखसे आत्म-प्रशंसा सुनकर मर रहा है। दयामय! निवृत्त हो जाओ।" भक्तवत्सल प्रभुको तब होश आया। वे प्रेमाविष्ट होकर भक्त गुण गा रहे थे, प्रेमानन्दमें वाह्यज्ञान शून्य होकर वासुदेवका गुण वर्णन कर रहे थे। श्रीवासकी बात सुनकर श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुको मानो चेतना आयी। वे दिव्यासन पर बैठे थे। झटपट उठकर वासुदेवदत्तको श्रीहस्तसे उठाया, युगल बाहु फैलाकर प्रेमपूर्वक वक्षःस्थलसे लगाकर बारम्बार प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर उनको कृतार्थ किया। स्नेह पूर्वक श्रीहस्तसे पकड़कर वासुदेवको अपने पास बैठाया, और अपने वहिर्वासके द्वारा उनके अङ्गसे धूलि झाड़ी, आँखोंसे आँसू पोंछे। भगवान्‌के आदरसे भक्त एकवारगी द्रवित हो उठा, उसके सारे दुःख दूर हो गये। वासुदेव दत्तके प्रति प्रभुकी इस प्रकार कृपादृष्टि देखकर भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें जयध्वनि करने लगे। 'जय श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रकी जय', 'वासुदेव दत्तकी जय' की ध्वनिसे गृहका प्राङ्गन पूर्ण हो गया।

नवद्वीपमें श्रीवासके आङ्गनमें प्रभुने आत्म-प्रकाश किया था। प्रभुकी नवद्वीप-लीलाकी केन्द्रभूमि श्रीवासका प्राङ्गण था। अब श्रीवास पण्डित अपने गाँव कुमारहट्टमें वासकर रहे थे। भक्तवृन्दके मनमें प्रभुकी श्रीवास-प्राङ्गणकी अनेक लीलाएँ स्मृति पटपर उदय हुई। परिजन-वर्गके साथ श्रीवास पण्डित प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े, और उनसे कुछ दिन वहाँ रहनेका अनुरोध करने लगे। भक्तवत्सल प्रभुने भक्तकी कामना पूरी की। नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें प्रभु निजजनके साथ कुछ दिन कुमारहट्टमें रहे। इस परम पवित्र स्थानमें नृत्य-कीर्तनानन्दमें प्रभुने श्रीवासके आङ्गनके अभिनयको दुहरा दिया।

प्रभु ग्राम्य चर्चा नहीं करते थे। भक्तगुणगान कृष्णतत्त्व और कृष्ण कथाके सिवा उनके मुखसे और कोई बात कोई नहीं सुन पाता था। भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान् भक्तके लिए सब कुछ कर सकते थे। अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करके श्रीकृष्ण भगवान्‌ने भक्तचूड़ामणि भीष्मकी प्रतिज्ञा रखखी थी। श्रीगौर भगवान् अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करके भक्तके साथ सांसारिक बातें करें तो इसमें आश्चर्य क्या है?

एकदिन भक्तवत्सल प्रभुने श्रीवास पण्डितको अकेले पुकारकर उनके साथ कुछ सांसारिक बातें की। प्रभुने श्रीवास पण्डितको हँसते-हँसते कहा—पण्डित! देखता हूँ तुम घरसे कहीं नहीं जाते हो, तुम्हारा परिवार बड़ा है, कैसे तुम्हारी गृहस्थी

चलती है ?" श्रीवास पण्डितने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभु ! कृष्ण सेवा छोड़कर मेरा कहीं जानेका चित्त नहीं चाहता, तुमको यह मनकी बात कहता हूँ ।" प्रभु पुनः हँसकर बोले—"पण्डित ! तुम गृहस्थ हो, तुम्हारे परिवारमें बहुत आदमी हैं, उनका प्रतिपालन करना तुम्हारा कर्त्तव्य है । तुम कार्य करते नहीं, घरसे बाहर जाते नहीं—यह तो अच्छी बात नहीं हैं ।" श्रीवासने उत्तर दिया—"हे प्रभु ! जिसके भाग्यमें विधाताने जो लिखा है, वही होगा, जीवकी जिसने सृष्टि की है, आहार भी वही देंगे । इसके लिए मैं सोच नहीं पाता । मेरे चिन्तनके विषय एक मात्र तुम हो और तुम्हारे ये चरण-कमल है ।

श्रीगौर भगवान् श्रीवास पण्डितकी परीक्षा कर रहे थे । वे फिर बोले—"पण्डित ! तब तुम मेरे समान संन्यासाश्रम ग्रहण करो ।" श्रीवास पण्डितने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभु ! यह बड़ा कठिन कर्म हैं । मैं कर न सकूँगा ।" तब प्रभुने उनको गंभीर भावसे कहा—

—संन्यास ग्रहण ना करिबा ।
भिक्षा करिते ओ कारो द्वारे ना जाइबा ।।
केमते करिबा पारिवारेर पोषण ।
किछुइ त न बूझों मुजि तोमार वचन ।।
ए काले ते कोथाओ न गेले ना आइले ।
वट मात्र द्वारे आसि काहू के ना मिले ।।
ना मिलिल यदि आसि तोमार दुयारे ।
तबे तुमि कि करिबा ? बोल देखि मोरे ।।

चै. भा. अं. ५.४४-४७

श्रीवास पण्डितने इस बार प्रभुकी बातका कोई उत्तर न दिया । वह सिर हिलाकर हाथसे तीन ताली देते हुए 'एक-दो-तीन' कहकर प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखकर केवल हँसने लगे । प्रभुने इसका कुछ मर्म न समझकर श्रीवास पण्डितसे पूछा, "पण्डित ? इसका अर्थ क्या हैं ? मुझको खोलकर कहो । तुम्हारी तीन ताली देनेका मर्म तो मैंने कुछ भी नहीं समझा ।" श्रीवास पण्डित बोले—"यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि तीन उपवास करनेपर भी आहार न मिला तो गलेमें घड़ा बाँधकर गंगामें प्रवेश कर जाऊँगा ।"

श्रीवास पण्डितके मुखसे यह बात सुनते ही भक्तवत्सल प्रभुका भक्तवात्सल्य-रस सिन्धु एक वारगी उमड़ आया । उनका भक्त अन्नके अभावमें उपवास करेगा, यह बात भक्तके भगवान् श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रके प्राणोंको सह्य न हुई । वे प्रेमावेशमें हुङ्कार-गर्जन करते हुए खड़े हो गये । उनका मुख-मण्डल लाल हो गया । सारे अङ्गसे दिव्य-ज्योति निकलने लगी । ज्योतिसे श्रीअङ्ग चतुर्दिक् आलोकित हो उठा । वायुमें पद्म-गन्ध प्रवाहित होने लगा । उस समय उनका भगवान् भाव था । उन्होंने हुङ्कार-गर्जन करके श्रीवास पण्डितसे कहा—

—"कि वलिल ! पण्डित श्रीवास !
तोर कि अन्नेर दुःखे हइव उपवास ।।
यदि कदाचित वा लक्ष्मीओ भिक्षा करे ।
तथापिह दारिद्रच नहिब तोमार घरे ।।
आपने जे गीता शास्त्रे वलियाछों मुजि ।
ताहो कि श्रीवास ! एबे पासरिलि तुजि ।।

चै. भ. अं. ५.५३-५५

यह कह करके प्रभु भगवान् भावमें उच्च स्वरसे श्रीगीताके इस श्लोकका पाठ करने लगे—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता ९.२२

श्रीगौर भगवान् पुनः कहने लगे—

जे जे जने चिन्ते मोरे अनन्य हइया ।
तारे भक्ष्य देइ मुजि माथाय बहिया ।।
जेइ मोरे चिन्ते, नाहि जाय कारो द्वारे ।
आपने आसिया सर्व्वसिद्धि मिले तारे ।।

धर्म अर्थ काम मोक्ष—आपने आइसे ।
तथापिह ना चाय ना लय मोर दासे ।।
मोर सुदर्शन चक्रे राखे मोर दास ।
महाप्रलयेओ जार नाहिक विनाश ।।
जे मोहोर दासेरेओ करये स्मरण ।
ताहारेओ करों मुञि पोषण पालन ।।
सेवकेर दास से मोहोर प्रिय बड़ ।
अनायासे सेइ से मोहोरे पाय दढ़ ।।
कौन् चिन्ता मोर सेवकेर 'भक्ष्य' करि ।
मुञि जार पोष्टा आछों सकल उपरि ।।
सुखे श्रीनिवास ! तुमि वसे थाक घरे ।
आपनि आसिब सब तोमार दुयारे ।।
अद्वैतेरे तोमारे आमार एइ वर ।
जराग्रस्त नहिब दोहाँर कलेवर ।
चै. भा. अं. ५.५६-६४

ये सब बातें प्रभु सबके सामने भगवान् भावमें श्रीवास पण्डितको बोले । श्रीवास पण्डित हाथ जोड़कर प्रभुके सामने खड़े होकर अजस्र आँसू बहाते-बहाते प्रभुके श्रीमुखकी इन सारी बातोंको सुनते रहे । कृपानिधि भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान्ने जब भाव संवरण किया, तब श्रीवास पण्डित उनके चरणोंमें लोटते हुए आकुल होकर रोने लगे । दयामय प्रभुने अपने हाथोंसे उनको उठाकर कलेजेसे लगाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया ।

श्रीवास पण्डितके रामाई कनिष्ठ भ्राता थे, प्रभुके परम भक्त थे। उनको पास बुलाकर कृपानिधि भक्तवत्सल प्रभु बोले—

ज्येष्ठ भाइ श्रीवासेरे तुमि सर्वथाय ।
सेविबे ईश्वर-बुद्धये आमार आज्ञाय ।।
प्राणसम तुमि मोर, श्रीराम पण्डित ।
श्रीवासेर सेवा न छाड़िबा कदाचित ।।
चै. भा. अं. ५.६६-६७

प्रभुकी इस बातसे उनकी भक्त-प्रीतिकी पराकाष्ठाका पता लगता है । राघव पण्डितके घर जाकर प्रभुने मकरध्वज कर-को श्रीराघवकी सेवा करनेका आदेश दिया । श्रीवासके घर जाकर रामाई पण्डितके ऊपर श्रीवास पण्डितकी सेवाका भार अर्पित किया । भक्तके भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभु भक्तके लिए कितने उत्कण्ठित थे, यह बात उनकी इन सब लीलाओंको देखनेसे समझी जा सकती है ।

श्रीराम पण्डित अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीवास पण्डितकी गुरुके समान सेवा-भक्ति करते थे, तथापि प्रभुने उनको जो आज्ञा दी, उसे उन्होंने शिरोधार्य कर लिया । प्रभुके चरणोंमें मस्तक रखकर हाथ जोड़कर उन्होंने रोते-रोते निवेदन किया—"हे प्रभु ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी यह प्रार्थना है कि मुझे सदा अपने ज्येष्ठ भ्राताकी चरण-धूलि प्राप्त होती रहे । वे जिस भावसे कृष्ण सेवा करते हैं, मैं ठीक उसी भावसे उनकी सेवा करता रहूँ । आप सर्वशक्तिमान् हैं, मुझको ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे अपने पूज्य ज्येष्ठ भ्राताकी सेवा देव-सेवाके समान मैं कर सकूँ । प्रभु श्रीराम पण्डितकी बात सुनकर परमानन्दित होकर कहने लगे—"श्रीराम ! तुम भक्तिमान् हो, अतः शक्तिमान् हो, तुम ऐसा कर सकोगे ।" इतना कहकर भक्तवत्सल प्रभुने प्रेमालिङ्गन प्रदान कर उनको कृतार्थ किया ।

प्रभुके इस प्रकारके आदेशका गूढ़ मर्म है । संसारमें जो कृष्णसेवारत हैं उनके द्वारा सांसारिक कार्य, तथा निज देहका तत्वानुसन्धान संभव नहीं होता । इन सब भक्तराज गृहस्थोंका गृह कार्य सम्पादनके लिए तथा निजी सेवाके लिए संसारके दूसरे आदमीको प्रस्तुत होना पड़ेगा । इसी कारण श्रीरामई पण्डितको प्रभुने यह आदेश दिया ।

मालिनी देवी नित्य नाना प्रकारके उत्तम-उत्तम प्रिय शाक-व्यञ्जन राँधकर प्रभुको भोजन कराती हैं । शचीमाताके आँचलके निधि नवद्वीप जा रहे हैं ।

शचीदुलाल निमाई चाँदको आई शीघ्र देख पावेगी। इस आनन्दसे श्रीवासका सारा परिवार हर्षोत्फुल्ल हो रहा है। वे लोग भी साथ-साथ नवद्वीप जानेके लिए प्रस्तुत हो गये।

कुमारहट्टसे विदा होते समय प्रभु वहाँसे एक मुट्ठी मृत्तिका लेकर अपने बहिर्वासमें बाँधकर आनन्दसे नृत्य करने लगे। कुमारहट्ट श्रीपाद ईश्वर पुरी गोसाईंका जन्मस्थान था। पुरी गोसाईंके पास जगद्गुरु श्रीगौराङ्ग प्रभुने लोकशिक्षाके लिए दीक्षा-मन्त्र ग्रहण किया था। लोकशिक्षाके लिए शिक्षागुरु प्रभुने गुरु-पादका दर्शन किया, वहाँकी मृत्तिका वहिर्वासमें बाँधकर प्रेमानन्दमें नृत्य करते हुए बोले आज मेरा शुभ दिन है, आज मैं अपने गुरु पाटका दर्शन करके धन्य हो गया। इस पुण्य स्थानके कीट-पतङ्ग पर्यन्त मुझे प्रिय हैं। इस स्थानकी मृत्तिका भी पवित्र है।" इतना कहकर शिक्षा-गुरु श्रीगौर भगवान् धूलमें लोटकर आकुल होकर रोने लगे। अपने श्रीगुरुपाटकी मृत्तिका बहिर्वासके अञ्चलमें बाँधकर हमारे प्रभुने स्वयं आचरण करके गुरु-भक्तिकी शिक्षा दी।

कुमारहट्टसे काञ्चनपाड़ा

प्रभुके साथ जगदानन्द पण्डित थे। वे जब गौड़में थे तो प्रायः शिवानन्द सेनके घर रहते थे। शिवानन्द सेन जगदानन्दको बड़े भाईके समान सत्कार करते थे। शिवानन्द सेनने जगदानन्दसे कहा—"मैं प्रभुको अपनी कुटियामें ले जाऊँगा। मैं सङ्ग न रहूँ तो सम्भव है वे अन्यत्र चले जाँय। पण्डित! तुम पहले ही काञ्चनपाड़ामें मेरे घर जाकर सब प्रबन्ध करो।" जगदानन्द प्रभुको बिना कुछ कहे चुप-चाप कुमारहट्टसे काञ्चनपाड़ा चले गये। शिवानन्द सेनने प्रभुसे कहा—"हे प्रभु! दयानिधे हमारी पर्णकुटीमें एक रात्रिके लिए चरण-धूलि प्रदान करें।" भक्तवत्सल प्रभु मुस्कराकर बोले—"अच्छी बात है, चलो।"

प्रभुके साथ लाखों आदमी थे। कुमारहट्टसे काञ्चनपाड़ा तक प्रभु रास्तेमें कीर्तन करते हुए चले। भीड़ इतनी अधिक बढ़ गयी कि प्रभु बड़ी कठिनाईसे आगे बढ़ पा रहे थे। साधारण रास्तेपर चलनेमें बहुत समय लग गया। कीर्तन-तरङ्गमें कुमारहट्ट ग्राम निमज्जित हो गया। सुविस्तृत ग्राम्य-पथमें जनसमूह तरल-तरङ्गित सुरधुनिके समान शोभा पाने लगा। शिवानन्द सेनके पुत्र कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

अथो अविच्छिन्न शुभ प्रवाहा
निरन्तराया चपलोर्मिहस्ता।
निरन्तरं विष्णुपदावतारा
गङ्गेव दीर्घा जनपंक्तिरासीत्॥

चै. चं. नाटक ९.१२

अर्थात् गङ्गाकी अविच्छिन्न धाराके समान लोक-प्रवाह अविराम चल रहा था, चञ्चल तरङ्गके समान लोग आनन्दसे हाथ डुला रहे थे, विष्णुपादोद्भवा द्रवमयी गङ्गाके निरन्तर विष्णुपाद पद्म संस्रवके समान इस भीषण जन समूहका निरन्तर प्रभुपदमें मन समाहित हो रहा था।

कवि कर्णपूर गोस्वामी महाकवि थे। यहाँ उनकी अपूर्व कवि प्रतिभा प्रभुदत्त कृपाके बलसे पूर्णरूपमें परिस्फुट हुई हैं। श्रीवासके वास-स्थानसे गङ्गाजीके तट तक जिन-जिन स्थानोंमें श्रीगौर भगवान्ने पदार्पण किया था, सङ्गके सब लोगोंके द्वारा उनके परम पवित्र चरण-धूलिकी प्राप्तिकी आशासे हस्तार्पण करनेसे रास्तेमें बड़े-बड़े गर्त हो गये थे। यह बात कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखी है।

यत्र यत्र पदमर्पयतोश स्तत्र पादरजसां ग्रहणाय।
प्राणिपाणि पतनेन स पन्था हन्तगर्तमय एव बभूव॥

चै. च. नाटक. ९.१३

नौकाके द्वारा प्रभु निजजनके सङ्ग काञ्चनपाड़ामें शिवानन्दके भवनकी ओर चले।

अत्यन्त तड़के प्रभु नौकापर सवार हुए। कुमारहट्ट वासी और पड़ोसके गावोंके लोग भोरसे ही चहार दीवारीके ऊपर तथा वृक्षोंकी डालियोंपर चढ़कर उत्कण्ठित होकर प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। क्योंकि रास्तेमें तिल धरनेकी जगह नहीं थी। सबके मुखसे हरिध्वनि और जयध्वनि हो रही थी। इस प्रकार आनन्द-कोलाहलके बीच प्रभु नौकापर चढ़े।

प्राचीरस्योपरि विटपिनां सर्व शाखासु भूमौ
रथ्यां रथ्यामनु पथि पथि प्राणिषु प्राप्तवत्सु।
उच्चैरुच्चैर्वद हरिमिति प्रौढ़ घोषेषु देवो
रात्रिशेषे तरिमधि शिवानन्दनीतः प्रतस्थे ।।

—श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ९.१४

इधर जगदानन्दने काञ्चनपाड़ामें जाकर जिस पथसे प्रभु शिवानन्द सेनके घर जाने वाले थे, उसके दोनों किनारे कदली स्तम्भ, पूर्णकुम्भ, नवपल्लव आदि स्थापन करके दीपावली द्वारा सुशोभित कर दिया। वासुदेव दत्तका घर भी काञ्चन पाड़ामें था। उन्होंने भी आगे जाकर इसी प्रकार अपने गृह-पथको सुशोभित किया। काञ्चन पाड़ाके प्रत्येक घर सजाये गये थे। कुल नारीवृन्दने प्रभुके शुभागमनके उपलक्ष्यमें अपने-अपने घरके द्वार अति सुन्दर रूपसे लीप डाले। सामनेके रास्ते तक चित्रितकर डाले। घर-घर आनन्द ध्वनि होने लगी।

यथा समय प्रभुकी नौका आकर काञ्चन-पाड़ाके घाटपर लगी। लाखो-लाखों कण्ठकी उच्च हरिध्वनिके साथ प्रभु अपने पार्षदोंके साथ नौकासे उतरे। संकीर्तन यज्ञेश्वर श्रीगौर भगवान् सङ्कीर्तन करते हुए गाँवके बीचसे चले। प्रभुने देखा कि शिवानन्दके घर जानेका मार्ग घाटसे गृह द्वार तक पत्र-पुष्पसे सुशोभित है, प्रत्येक घरके द्वारपर पूर्णकुंभ स्थापित हैं। वे समझ गये कि यह जगदानन्दका कार्य है। क्योंकि शिवानन्द उनके साथ थे। यह सोचकर प्रभु शिवानन्दके मुँहकी ओर देखकर मुस्कराये।

प्रभुने यह भी देखा कि वासुदेव दत्तके घर जाने वाला बायें ओरका मार्ग भी सुसज्जित है। वे यह निश्चय न कर सकनेके कारण कि किस मार्गसे चले, वहाँ कुछ देर खड़े हो गये। उसी समय सामने वासुदेव दत्तको देखा। वे स्वजन वर्गके साथ प्रभुका आवाहन करने आये थे। प्रभुको खड़े होते देखकर वासुदेवने हाथ जोड़कर कहा—"हे प्रभु ! पहले शिवानन्दका घर चरण-धूलि देकर पवित्र करें"—इतना कहकर दक्षिण दिशाके पथसे शिवानन्दके घरकी ओर प्रभुको ले चले।

प्रभुको देखते ही प्रेमानन्दमें विह्वल होकर जगदानन्द पण्डितने झट-पट जलपूर्ण स्वर्णकी झारीसे प्रभुके चरण-कमलको धो डाला। प्रभुने हँसते-हँसते शिवानन्द सेनके साथ उनके देवगृहमें प्रवेश किया। शिवानन्दकी गृहिणीने पुर-नारीवृन्दके सहित शुभ शङ्ख बजाकर तथा मङ्गल सूचक हुलुध्वनि करके मङ्गलाचरण किया। गोष्ठीके सहित शिवानन्द सेन प्रभुको अपने घरमें पाकर आनन्द-सागरमें मग्न हो गये।

इधर जगदानन्द पण्डितने क्या किया ? सुनिये—प्रभुका चरणोदक लेकर घरके ऊपर छींट कर घरको पवित्र किया। सब उपस्थित मनुष्योंको यह शिव-विरञ्चि अभिवाञ्छित अति दुर्लभ वस्तु दिल खोलकर बाँट दी। पश्चात् उसे अत्यन्त यत्नपूर्वक अन्तःपुरमें पुरकी स्त्रियोंके लिए भेज दिया।

जगदानन्दके मनमें आज बड़ा आनन्द था। वे उदासीन थे, गौड़ देशमें जब तक रहे, शिवानन्द सेनके घर उनका वास रहा। अतएव जगदानन्द प्रभुको अपने घर पाकर प्रेमानन्दमें एकवारगी आनन्द-स्वरूप हो गये।

वे प्रभुको मधुर भावमें भजते थे। अपनेको अभिमानिनी रमणी मानते थे और प्रभुको अपना प्राणवल्लभ। उनको प्रभुको अच्छा खिलाने, अच्छा पहनानेकी इच्छा रहती थी। प्रभुने संन्यास ग्रहण किया है, यह उनके मनमें आता ही नहीं था। इस

सम्बन्धमें प्रभु कुछ बोलते तो जगदानन्दको बड़ा अभिमान होता था, रोष होता था, प्रभुके साथ कलह करके वे उपवास करते थे। जगदानन्दके इस भावको देखकर महाजनगणने उनको सत्यभामाका प्रकट अवतार कहकर ग्रन्थमें वर्णन किया है।

जगदानन्द पण्डितके साथ प्रभुकी अनेक लीला-कथाएँ हैं। उनकी गौराङ्गैकनिष्ठा अनुपम थी। उनके लिखे प्रेम-विवर्त्त ग्रन्थसे इसका पूर्ण परिचय मिलता है। जगदानन्द पण्डित-कृत एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है।

एहेन गौराङ्ग चाँद, ना भजिले परमाद,
भजिले परम सुख हय।
दयार ठाकुर तेंह, ताँके कि भूलिवे केह,
एत दया दासे वितरय ॥
चैतन्य आमार प्रभु, चैतन्ये ना छाड़ि कभू,
सेइ मोर प्राणेर ईश्वर।
जे चैतन्य वलि डाके, उठे कोल दिइ ताके,
सेइ मोर प्राणेर सोदर ॥
हा चैतन्य प्राणधन, ना बलिल जेइ जन,
मुख तार ना देखि नयने।
चैतन्ये भूलिल जेवा, यदि ओ से देवी देवा,
कुप्रभात तार दरशने ॥
चैतन्ये छाड़िया अन्य, संन्यासीरे करे मान्य,
तारे यष्टि करिव प्रहार।
छाड़िया चैतन्य कथा, अन्य इतिहास वृथा,
वले जेइ मुखे आगुन तार ॥
चैतन्येर जाहे सुख, ताहे यदि घरे दुःख,
चिर दुःख भोग हकउ मोर।
से यदि ससुख त्यजे, यतिधर्म कभु भजे,
आमि ताहे दुःखेते विभोर ॥

(प्रेमविवर्त)

शिवानन्द सेनके घर कुछ देर ठहर कर प्रभु वासुदेव दत्तके घर गये। वासुदेव अपने घर प्रभुको प्राप्त करके 'किं कर्त्तव्य विमूढ़' होकर इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे। वे प्रभुको बैठनेके लिए आसन देना तक भूल गये। जगदानन्द पण्डित साथ ही थे, उन्होंने प्रभुको बैठनेके लिए आसन दिया, तब वासुदेव दत्तको ज्ञान हुआ। वे दौड़कर आये और प्रभुके चरण धुलाये। प्रभुने वासुदेव दत्तके घर बैठकर निज-जनके साथ कृष्ण-कथा कही। वैष्णव गृहिणीगण आड़में खड़ी होकर सुन रही थी। प्रभुका संन्यास-वेश दर्शन करके वे हाहाकार करने लगीं। वस्त्रके आँचलसे मुख ढँककर वे फुङ्कार मार कर रोने लगीं।

शान्तिपुरकी ओर

उसके बाद प्रभुने पुनः नौकाके द्वारा शान्तिपुरकी यात्रा की। प्रभु जब नौकापर चढ़े तो उनके साथ लाखों आदमी गङ्गाके घाटपर नौकाको घेर कर खड़े हो गये। सबको प्रभुके श्रीचरणोंके स्पर्श, और चरणोदक पान करनेकी अभिलाषा थी। नौका धीरे-धीरे गङ्गाके धारमें आगे बढ़ी, सब लोग अत्यन्त व्यस्त होकर कण्ठभर जल तक घुसते हुए पतित-पावन, कृपानिधि प्रभुके चरण-कमलकी ओर सतृष्ण नेत्रोंसे देखते रहे। बहुत लोग नौकाके साथ-साथ तैरने लगे। गङ्गामें केवल आदमियोंके सिर ही सिर दीख रहे थे। कृपानिधि श्रीगौर भगवान्ने जीवका आग्रह देखकर नाविकको नौका रोकनेकी आज्ञा देकर स्वयं नौकाके मध्य प्रान्तमें बैठकर अपने अज-भव-वाञ्छित, कमलासेवित कमलचरण-द्वयको नीचे लटका दिया। सब लोग अनायास उनका पादोदक प्राप्तकर उच्चस्वरसे हरिध्वनि करने लगे। कृपानिधि श्रीगौर भगवान्की कृपादृष्टि देखकर नौकारूढ़ भक्तगण प्रेमानन्दमें अधीर होकर गौर-कीर्तन करने लगे। नीलाचलमें श्रीअद्वैत प्रभुने उनको मार्ग दिखला दिया है, अब उनको भय क्या है? प्रभुसे उनको भय न हुआ। साथमें पदकर्त्ता वासुदेव घोष थे। उन्होंने तत्काल पद रचना करके

धूहा पकड़ा—

जय-जय जगन्नाथ शचीर नन्दन।
त्रिभुवने करे जार चरण वन्दन॥
नीलाचले शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर।
नदीयानगरे दण्ड कमण्डलु कर॥
केह वले पूरवे रावण बधिला।
गोलोकेर विभव लीला प्रकाश करिला॥
श्रीराधार भावे एबे गौर अवतार।
हरे कृष्ण नाम गौर करिला प्रचार॥
वासुदेव घोष कहे करि जोड़ हात।
जेइ गौर, सेइ कृष्ण, सेइ जगन्नाथ॥

प्रभु श्रीवदन फिराकर गङ्गादर्शन करने लगे, भक्तवृन्दको मना नहीं किया। लाखों कण्ठसे 'जय शचीनन्दनकी जय'—'जय नवद्वीपचन्द्रकी जय' की ध्वनिसे पृथिवी कम्पित हो उठी। प्रभुकी नौका जब बीच गङ्गामें आयी, तब वे श्रीनित्यानन्द प्रभुकी ओर करुण-नयनसे देखकर अति मृदुल स्वरमें बोले—"श्रीपाद! आप क्या करते हैं? क्या दूसरा कीर्तन नहीं है?" अवधूत श्रीनित्यानन्दने उत्तर दिया—"हे प्रभो! तुमको अब हम छिपा नहीं सकते। तुम इच्छामय हो, स्वतन्त्र ईश्वर हो। तुम्हारी इच्छासे ही हम तुम्हारा गुण गाकर कृतार्थ हो रहे हैं। अब हम निरन्तर तुम्हारा ही गुणगान करेंगे। तुम कृपा करके हम लोगोंको शक्तिदान करो. जिससे तुम्हारा गुण गाकर हम त्रिभुवनको मत्त कर सकें। तुम्हारे गुणगानके द्वारा मत्त हुए बिना कलिके जीवका उद्धार न होगा। तुम्हारे चरणोंमें हमारी यही प्रार्थना है। इस सम्बन्धमें तुम और कुछ मुझको न कहो।" भक्तवत्सल प्रभु और कुछ न बोल सकें।

भक्तवृन्द परमानन्दपूर्वक गौर-सङ्गमें गौर-कीर्तन करते-करते शान्तिपुरमें जा पहुँचे। काञ्चन-पाड़ासे नौका द्वारा शान्तिपुर आते समय गङ्गाके दोनों किनारे प्रभुके दर्शनके लिए लाखों-लाखों आदमी एकत्रित हुए थे। श्रीगौर भगवान् नौकासे और कहीं नहीं उतरे। वे नौकाके ऊपर खड़े होकर आजानुलम्बित बाहु युगल ऊपर उठाकर बारम्बार हरिध्वनि कर रहे थे, तथा अगणित जन-समूहकी ओर शुभदृष्टिसे देख रहे थे। इससे सब लोगोंके प्राणोंमें विशुद्ध प्रेमानन्दका स्रोत बहने लगा। ये लोग भी गङ्गाके किनारे-किनारे प्रभुकी नौकाका अनुगमन करते हुए शान्तिपुर घाटपर आ गये।

गौर-आना-गोसाई सर्वज्ञ श्रीअद्वैत प्रभु निश्चिन्त होकर अपने मन्दिरमें बैठे थे। प्रभुके आनेका संवाद उनको मिला था। तथापि वे निश्चिन्त थे। अपने पञ्चवर्षीय पुत्र अच्युतानन्दके साथ प्रेमाविष्ट होकर वे बालकके समान क्रीड़ा कर रहे थे। श्रीअद्वैत-चरित अतिशय गम्भीर है। वे ऐसे समयमें निश्चिन्त बैठकर जो पुत्रके साथ इस प्रकार क्रीड़ा कर रहे थे, इस रहस्यका उद्घाटन करना मनुष्यके लिए असाध्य है। तथापि उनके ही पादपद्मका स्मरण करके प्रभुके सम्बन्धमें बालकाल्यसे शान्तिपुरनाथके भावके अनुसार हृदयमें वे ही जो भाव उत्पन्न कर रहे हैं, वही कह रहा हूँ।

श्रीअद्वैत प्रभुके मनके भाव इस प्रकार थे। सचमुच ही प्रभु यदि उनके ऊपर कृपा करते हैं, दास कहकर स्वीकार करते हैं, तो वे स्वयं आकर केश पकड़कर उद्धार करेंगे। उनके ही घर भक्तवत्सल प्रभु आवेंगे, और उनको दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे। नवद्वीपसे श्रीअद्वैत प्रभु इस प्रकार दास्यभावका अभिमान लेकर शान्तिपुरमें जाकर वास करते थे। भक्तवत्सल प्रभुने शान्तिपुर जाकर उनके ऊपर जिस प्रकार कृपावृष्टि की थी, इसे कृपालु गौरभक्त पाठकवृन्द अवश्य अवगत होंगे। श्रीभगवान् जैसे भक्तकी परीक्षा करते हैं, भक्त भी बीच-बीचमें श्रीभगवान्‌की उसी प्रकार परीक्षा किया करते हैं।

जानिला अद्वैत कैल प्रभुर प्रकाश।
परीक्षिते चलिलेन शान्तिपुर वास।।

चै. भा. म. २.१५४

वे मन ही मन प्रतिज्ञा करके चले–

सत्य यदि प्रभु हय, मुञि हइ दास।
तबे मोरे बान्धिया आनिब निज पास।।

चै. भा. म. २.१५५

श्रीअद्वैत प्रभुने सोचा कि प्रभुको यदि उनसे प्रेम है, तो वे अवश्य अपने दासकी कुटीपर पद-धूलि देंगे। यदि प्रभुके मनमें 'किन्तु' होगा तो अपने चरणाश्रित दासको इस सुखसे वञ्चित करेंगे। यही है भक्तकी भगवान्-परीक्षा। शान्तिपुरनाथ श्रीगौर भगवान्की परीक्षा करनेके लिए इस समय निश्चिन्त होकर पुत्रको साथ लेकर आनन्द कर रहे हैं। प्रभु शान्तिपुरमें गङ्गा घाटपर आये हैं, परन्तु श्रीअद्वैत प्रभु अपने घरमें बैठकर पुत्रप्रेममें आविष्ट होकर आनन्द कर रहे हैं। अद्वैत प्रभुके पुत्र हैं श्रीअच्युतानन्द ! उनके साथ प्रेमानन्दमें मग्न होकर शान्तिपुरनाथ प्रभुको भूल कर इस समय घरपर क्यों मग्न हो रहे हैं, इस सम्बन्धमें श्रीवृन्दावन दासने प्रभुकी एक अद्भुत लीला कहानी लिखी है। उस अद्भुत लीलाकहानीका वर्णन करनेके पूर्व उन्होंने लिखा है—

जे निमित्त अद्वैत आविष्ट पुत्र-सङ्गे।
से बड़ अद्भुत कथा, कहि शुनि रङ्गे।।

चै. भा. म. ४.१३७

अब वही लीला-कथा सुनिये। श्रीअद्वैत प्रभुके पञ्चवर्षीय पुत्र श्रीअच्युतानन्द आङ्गनमें धूलमें खेलकर रहे हैं, वे धूलि-धूसरित दिगम्बर वेषमें बहुत सुशोभित हो रहे है। उनका उज्ज्वल गौरवर्ण शरीर धूलि-धूसरित हो रहा है। श्रीअद्वैत प्रभु पुत्रका बाल्यक्रीडारङ्ग देख रहे हैं। उसी समय एक तेजस्वी संन्यासी आकर उनके घर उपस्थित हुआ। शान्तिपुरनाथको देखकर संन्यासी कुछ सङ्कोच भावमें खड़ा हो गया। श्रीअद्वैत प्रभुने संन्यासीको नमस्कार करके बैठनेके लिए आसन दिया। संन्यासी-प्रभुके आसनपर बैठनेके बाद उन्होंने विनीत भावसे पूछा—"संन्यासीजी ! आज मेरे गृह आप अतिथि हैं, यहाँ ही आप कृपा करके भिक्षा ग्रहण करेंगे।" संन्यासीने उत्तर दिया—"मैं जो चाहता हूँ, पहले वही भिक्षा दीजिये। फिर दूसरी बात होगी। आपसे मुझे कुछ पूछना है।" श्रीअद्वैत प्रभुने उत्तर दिया—"संन्यासीजी ! पहले आप विश्राम करें, पीछे वे सब बातें होंगी।" संन्यासीने उनको नहीं छोड़ा। पहले अपने प्रश्नका उत्तर चाहिये, पीछे और कोई बात होगी। जब संन्यासी ऐसा जिद्द करने लगा तो शान्तिपुरनाथ बोले—"कहिये, आपको क्या पूछना है ?" तब संन्यासीजी बोले—"ये केशव भारती चैतन्यके कौन होते हैं ?"

श्रीअद्वैत प्रभु संन्यासीका प्रश्न सुनकर कुछ चिन्तित हुए। इस प्रश्नका उत्तर दोनों पक्षसे दिया जा सकता था। पहला था लौकिक व्यवहार पक्ष, और दूसरा था परमार्थ पक्ष। परमेश्वरके माता-पिता कोई नहीं हैं, तथापि लौकिक व्यवहारमें देवकीनन्दन, नन्दनन्दन, शचीनन्दन कहकर सब लोग उनकी स्तुति वन्दना करते हैं, परमार्थतः भगवान्के गुरु कोई नहीं हो सकते। क्यों कि वे सर्वदेवपूज्य हैं, सर्व-जगद्गुरु हैं, उनका गुरु फिर कौन होगा ? अस्तु, परमार्थभावमें संन्यासीजीके इस प्रश्नका उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है। लौकिक व्यवहारमें उत्तर दिया जा सकता है। ऐसा मन ही मन सोचकर श्रीअद्वैत प्रभु बोले—"श्रीपाद केशव भारती श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके गुरु हैं। आप तो यह जानते हैं, फिर मुझसे क्यों पूछते हैं ?"

अद्वैत-तनय बालक अच्युतानन्द वहाँ खेल रहे थे। पिताजीकी बात उनके कानोंमें गयी। केशव भारती प्रभुके गुरु हैं—पिताके मुखसे यह बात सुनते ही पञ्च वर्षीय बालक क्रुद्ध होकर पिताके समीप

आकर क्रोधसे कम्पित स्वरमें बोला—"पिताजी ! आपने क्या कहा ? आपके विचारमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके भी गुरु हैं ? आपने किस साहसके बलपर यह बात कहीं ? आप भी ऐसा कहते हैं, तो मालुम होता है कि यहाँ भी कलिका प्रवेश हो गया। अथवा श्रीचैतन्य भगवान्‌की परम दुस्तर माया, जिससे ब्रह्मा-शङ्कर मोहित हो जाते हैं, आपके ऊपर भी चढ़ गयी है जो आप श्रीचैतन्य भगवान्‌का गुरु बता रहे हैं। श्रीचैतन्यदेवकी इच्छासे अनन्त ब्रह्माण्ड उनके रोमकूपमें लगे हैं। उन्हींकी अचिन्त्य इच्छासे जब उनके नाभि-कमलसे ब्रह्माका जन्म होता है और उनमें कोई शक्ति न होनेसे, उनकी भक्तिसे सन्तुष्ट प्रभुने उनको तत्वोपदेश किया, तब उन्हींकी शक्तिसे ब्रह्माने सृष्टि-रचनाकी और वही तत्त्वोपदेश सनकादि ऋषियोंने ब्रह्मासे प्राप्त कर, कृपा वत्सल हो उसका संसारमें प्रचार किया। ऐसे महाप्रभुका कोई दूसरा व्यक्ति गुरु है—यह आपने कैसे कह दिया। आप शिक्षागुरु होकर ऐसा क्यों कहते हैं।"

इतनी बात कहकर बालक अच्युतानन्द मुँह नीचा करके चुप हो गया। श्रीअद्वैत प्रभु बालक पुत्रके मुखसे ऐसी गम्भीर और निगूढ़ गौराङ्ग-तत्त्वकी बात सुनकर एक साथ विस्मय और आनन्द रससे आप्लुत हो उठे। विस्मयकी बात यह थी कि ऐसी गौराङ्ग तत्त्वकी बात पाँच वर्षके बालकके मुखसे कभी किसीने नहीं सुनी, और आनन्दका कारण यह था कि उनका पुत्र इतनी न्यूनावस्थामें ही श्रीगौराङ्ग तत्त्वका ज्ञाता हो गया। परानन्दमें मग्न होकर वृद्ध ब्राह्मणने प्रेममें भरकर पुत्रको गोदमें लेकर उसके मुखपर शत-शत प्रेम चुम्बन प्रदान किया, नयन-जलसे पुत्रके सारे अङ्गको सिञ्चित करके रोते-रोते कहा—

"तुमि से जनक बाप्‌ ! मुञि से तनय ।
शिखाइते पुत्ररूपे हइले उदय ॥
अपराध करिलूँ, क्षमह बाप ! मोरे ।
आर ना बलिमू, एइ कहिलूँ तोमारे ॥

चै. भा. अं. ४.१७४-१७५

अच्युतानन्द धूलि धूसरित अङ्ग दिगम्बर रूपमें पिताके समीप अब भी क्रुद्ध भावमें खड़े हैं। उनके सर्वाङ्गसे ज्योति निकल रही है। पिताके मुखसे आत्म-स्तुति सुनकर उन्होंने लज्जासे सिर अवनत कर लिया। उनके नयन द्वयसे प्रेमाश्रुधारा गिरने लगी। पिता-पुत्रके प्रेम क्रन्दनसे वहाँ प्रेमानन्दका स्रोत फूट पड़ा। आगन्तुक संन्यासीने वहाँ बैठे-बैठे सब कुछ देखा और सुना। वे और कोई बात न कहकर आसनसे उठकर एकबारगी श्रीअद्वैत-तनयके चरणोंमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम करके बोले,

—"योग्य-योग्य अद्वैत नन्दन ।
जेन पिता, तेन पुत्र,—अचिन्त्य कथन ॥
एत ईश्वरेर शक्ति बिने अन्य नहे ।
बालकेर मुखे कि एमत कथा हये ॥
शुभ लग्ने आइलाम अद्वैत देखिते ।
अद्भुत महिमा देखिलाङ नयनेते ॥

चै. भा. अं. ४.१७८-१८०

इतना कहकर पुत्रके सहित शान्तिपुरनाथको नमस्कार करके संन्यासीने हरि स्मरण करके वहाँसे चुपचाप प्रस्थान किया। उनकी मरोकामना पूरी हो गयी। बालकके मुखसे आज उन्होंने जो गौराङ्ग-तत्त्व सीखा, वह उनके जीवनका साधन हो गया। अद्वैत-तनय श्रीअच्युतानन्द प्रभु संन्यासीजीके गुरु बन गये।

श्रीअद्वैत प्रभुके मनमें आज इतना आनन्द हुआ है। पुत्रकी महिमा देखकर वे आज इतना प्रेमोन्मत्त हो गये हैं कि संन्यासीने उनके पुत्रको दण्डवत्-प्रणाम किया है और भिक्षा ग्रहण किये बिना ही उठकर चले गये हैं—इन सब बातोंकी ओर उनका ध्यान ही नहीं गया है। वे सारा काम छोड़कर पुत्रको गोदमें लेकर प्रेमानन्दसे अजस्र आँसू बहा रहे हैं।

प्रेमानन्दमें पुत्रके अङ्गकी धूलि लेकर वह अपने अङ्गमें लेपन कर रहे हैं, और—

"चैतन्येर पार्षद जन्मिला मोर घरे।"
चै. भा. अं. ४.१८६

यह कहकर हाथसे ताली बजाते हुए मधुर भाव-भङ्गीके साथ नृत्य कर रहे हैं। उसी समय भुवन-मङ्गल हरिसङ्कीर्तनके साथ प्रभु अपने पार्षदोंके साथ आकर श्रीअद्वैत भवनमें उपस्थित हुए।

श्रीअद्वैत प्रभुके हाथमें मानो आकाशका चाँद आ गया। वे श्रीगौराङ्गके चरणोंके ध्यानमें निमग्न थे, पुत्रके मुखसे प्रभुका तत्त्व सुनकर वे प्रेमानन्दमें मग्न हो गये। उसके ऊपर भक्तवत्सल प्रभुका साक्षात् दर्शन पाकर वे आनन्द स्वरूप हो उठे, और प्रभुको देखते ही 'हरि-हरि' कहकर हुङ्कार करते हुए उनके चरणोंमें लम्बे पड़ गये, उनका वाह्यज्ञान लुप्त हो गया। श्रीसीता ठाकुरानी आदि शान्तिपुरकी वैष्णव-गृहिणीगणने आनन्दसे शत-शत शुभ शङ्ख बजाकर तथा मङ्गल-सूचक हुलुध्वनि देकर प्रभुका मङ्गलाचरण किया।अद्वैत-भवनमें आनन्दका तरङ्ग उठा। प्रभु शान्तिपुरनाथको क्रोड़में लेकर आङ्गनमें बैठे हैं। भक्तगण उनको चारों ओरसे घेरकर बेड़ा कीर्तन कर रहे हैं। प्रभुके नयन-जलसे श्रीअद्वैत प्रभुके सारे अङ्ग सिञ्चित हो गये। प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे शान्तिपुरनाथको वाह्यज्ञान हुआ, वे दोनों हाथोंसे करुणामय प्रभुके दोनों चरणकमलको हाथमें लेकर हृदयसे लगाकर अजस्र आँसू बहाने लगे। चतुर्दिक भक्तगण कीर्तन कर रहे थे, और प्रेम क्रन्दन करते थे। अद्वैत भवनमें आज प्रेममय प्रभुने प्रेमभक्तिकी धारा-प्रपात वृष्टि की। श्रीगौराङ्ग लीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

कि अद्भुत प्रेम हैल ना जाय वर्णन।
चै. भा. अं. ४.१८५

कुछ देरके बाद श्रीअद्वैतप्रभु प्रकृतिस्थ हुए। तब झटपट उठकर प्रभुको बैठनेके लिए उत्तम आसन दिया। तब उन्होंने देखा कि प्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द तथा उनके अन्तरङ्ग भक्तगण हैं। उस समय श्रीअद्वैत-नित्यानन्दमें प्रेमानन्दमें किलोल शुरू हो गया। तब भक्तवृन्दने शान्तिपुरनाथको दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने भी सबको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

अद्वैत तनय श्रीअच्युतानन्द प्रभु अब तक पिताके साथ प्रभुके प्रेमरस लीलारङ्गको देख रहे थे। अब पिताको कुछ सुस्थिर देखकर दौड़कर दिगम्बर वेशमें धूलिधूसरित अङ्गसे प्रभुके चरण-कमलमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। कृपानिधि प्रभुने उनको परम आदर और स्नेहपूर्वक गोदमें उठा लिया। उनके कमल-नयनकी प्रेमाश्रुधारासे श्रीअच्युतानन्दका धूलि-धूसरित अङ्ग धुल गया। उनको प्रभु कलेजेसे लगाये हुए हैं, और छोड़ नहीं पा रहे हैं। बालक अच्युतानन्द, जान पड़ता है कि, एक वारगी प्रभुके शरीरमें प्रविष्ट हो गये हैं। भक्तवृन्द इस भाग्यवान् अद्वैत-तनयके प्रति प्रभुकी इस प्रकारकी कृपावृष्टि देखकर प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े।

श्रीअच्युतानन्द प्रभुने व्याह नहीं किया। वे श्रीगौर भगवान्के साथ श्रीनीलाचलमें ही रहते थे। उन्होने गदाधर पण्डितसे दीक्षा मन्त्र ग्रहण किया था। श्रीगौराङ्गके एकनिष्ठ पार्षदोंमें वे भी एक मुख्य पार्षद थे। प्रभुके जितने भक्तवृन्द थे, सब उनको प्रिय थे। श्रीअच्युतानन्दकी श्रीगौरांगैकनिष्ठता अतुलनीय थी, जैसे पिता थे, वैसे ही पुत्र भी। श्रीचैतन्य भागवतकारने लिखा है—

इहाने वलि योग्य अद्वैत नन्दन।
जे चैतन्य-पादपद्मे एकान्त-शरण॥
चै. भा. अं. ४.१८२

कविराज गोस्वामीने भी लिखा है—

अच्युतेर जेइ मत सेइ मत सार ।

चै. च. आ. १२.७२

प्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत-भवनमें कई दिन रहे। सीता ठाकुरानीने पहले ही दिन नवद्वीपमें शचीमाताके पास यह शुभ संवाद भेज दिया था। श्रीअद्वैत प्रभुने अपने आदमी भेजकर शचीमाताको शान्तिपुर लानेके लिए डोली भेज दी।

नवद्वीपमें शचीमाता

शचीमाताने सुना कि उनके सोनेके निमाईचाँद फिर नदिया आवेंगे, दुःखिनी माताकी इतने दिनके बाद उनको याद आयी है। वे सर्वदा यशोदा भावमें विभोर रहती हैं। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने अपने श्रीचैतन्य भागवतमें शचीमाताके तत्कालीन प्रेमभावका एक बहुत सुन्दर चित्र अंकित किया है। कृपालु पाठकवृन्दके सामने मैं उस चित्रको प्रस्तुत करता हूँ, कृपा करके स्थिर चित्तसे अन्तश्चक्षु उन्मीलन करके एक बार इस अपूर्व चित्रका दर्शन करें, और प्राण भरकर रुदन करें। श्रीचैतन्य भागवतकारने लिखा है—

प्रेम-रस-समुद्रे डूबिया छेन आइ ।
कि बोलेन कि शुनेन बाह्य किछु नाइ ॥
सम्मुखे जाहारे आइ देखेन, ताहारे ।
जिज्ञासेन "मथुरार कथा कह मोरे ॥
रामकृष्ण केमत आछेन मथुराय ।
पापी कंस केमत वा करे व्यवसाय ॥
चोंर अक्रूरेर कथा कह आन के ।
राम-कृष्ण मोर चूरि करिलेक जे ॥
शुनिलाम पापी कंस मरि गेल हेन ।
मथुरार राजा कि हैल उग्रसेन ॥"
'रामकृष्ण' बलिये कखन डाके आइ ।
"झाट गाभी दोह दुग्ध बेचिवारे जाइ ॥"
हाते बाड़ि करिया कखनो आइ धाय ।
"धर-धर सबे एइ ननी चोरा जाय ॥
कोथा पलाइबा आजि एड़िम् बान्धिया ।"
एत बलि धाय आइ आविष्ट हइया ॥
कखनो बोलेन आइ सम्मुखे देखिया ।
"चल जाइ यमुनाय स्नान करि गिया ॥"
कखनो वा उच्च करि करेन क्रन्दन ।
संसार द्रवये ताहा करिते श्रवण ॥
अविच्छिन्न-धारा दुइ नयनेते झरे ।
से काकू शुनिते काष्ठ-पराण विदरे ॥
कखनो वा ध्याने कृष्ण साक्षात्कार करि ।
अट्ट-अट्ट हासे आइ आपना पासरि ॥
हेन से आनन्द हास्य—अद्भुत परम ।
दुइ प्रहरेओं कभू नहे उपशम ॥
कखनो जे आइ हये आनन्द-मूर्च्छित ।
प्रहरेक धातु नाहि थाके कदाचित ॥
कखनो वा हेन कम्प उपजे आसिया ।
पृथिवीते केहो जेन तोले आछाड़िया ॥
आइर जे कृष्णावेश—कि तार उपमा ।
आइ बइ अन्य आर नाहि तार सीमा ॥
गौरचन्द्र श्रीविग्रहे जत कृष्णभक्ति ।
आइरेओ प्रभु दियाछेन सेइ शक्ति ॥
अतएव आइर जे भक्तिर विकार ।
ताहा वर्णिवेक सब—हेन शक्ति कार ॥
हेन मते परानन्द-समुद्र-तरङ्गे ।
भासेन दिवस निशि आइ महारंगे ॥
कदाचित आइर जे किछु बाह्य हय ।
से तो विष्णुपूजा लागि—जानिहि निश्चय ॥

चै. भा. अं. ४.२१३-२३२

श्रीगौराङ्ग जननी शचीमाताकी तत्कालीन प्रेम-विकारावस्था इसीं प्रकारकी थी, वे वाह्यज्ञान-शून्य थी। उसी समय उनके पास शान्तिपुरसे जाकर एक आदमीने संदेश दिया—"शान्तिपुरमें श्रीगौर-सुन्दर आये हैं, हे माता ! आप शीघ्र उन्हें देखने चले।"

शचीमाताको वाह्यज्ञान नहीं था। उन्होंने इस शुभ वार्त्ताका मर्म नहीं समझा। किन्तु आँखोंसे

देखा कि घरके द्वारपर डोली लेकर लोग खड़े हैं। पाँच वर्ष पूर्व प्रभु संन्यास ग्रहण करके जब शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत-भवनमें ठहरे थे, तब नित्यानन्द प्रभु शचीमाताको लेने के लिए नवद्वीप आये थे, उस दिन भी प्रभुके श्रीमन्दिरके द्वारपर डोली आयी थी। द्वारपर डोली देखकर पुत्र-विरह-कातरा शचीमाताको वह दिन याद आया। पाँच वर्ष पूर्वकी स्मृति एक-एक करके उनके मनमें जाग उठी। वे पहले व्याकुल होकर उच्च स्वरसे रो पड़ी, उनके मुखसे कोई बात न निकली। उसके बाद शचीमाता जड़वत् घरके द्वारपर बैठ गयी। नयन-जलसे उनका वक्षःस्थल भीग गया। अब वाह्यज्ञान होनेपर उन्होंने समझा कि उनके खोये रत्न निमाईचाँद शान्तिपुरमें आये हैं, सीता ठाकुरानीने उनको ले आनेके लिए डोली भेजी है। प्रभुके गौड़देशमें शुभागमनकी बात शचीमाताके कानमें पहले ही पड़ चुकी थी। अब उन्होंने समझा कि उनके अञ्चलकी निधि निमाईचाँद देशमें आ गये हैं।

शचीमाताके मनका भाव समझनेकी वस्तु नहीं है, अनुभवकी वस्तु है। श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको नवद्वीपमें अकेली छोड़कर उनको शान्तिपुर जाना पड़ेगा। पाँच वर्ष पहले उन्होंने जो किया था, इस बार भी उनको यही करना पड़ेगा। उस बार अवधूत निताईचांद अपनी महान् नित्यानन्द शक्तिके प्रभावसे श्रीगौराङ्ग जननीको नवद्वीपसे शान्तिपुर ले गये थे। इस वार वे नहीं आये थे। पुत्रवधूको अकेली घरमें रखकर कैसे शचीमाता शान्तिपुर जाँय, इसी चिन्तामें कातर होकर सिरपर हाथ रखकर वे बैठी हैं।

श्रीमती विष्णुप्रिया देवीके मनमें अब कोई आशा नहीं है, केवल एकवार अपने प्राण-वल्लभके श्रीचरणका दर्शन कर पानेपर वे अपनेको कृतार्थ समझती। प्रभु नवद्वीपमें आवेंगे, यह शचीमाता जानती थी, वे यह भी जानती थी कि उनको और विष्णुप्रियाको दर्शन दिये बिना निमाईचाँद कहीं न जाँयगे। श्रीअद्वैत प्रभु और सीता ठाकुरानीका मन नहीं मान रहा है। इसी कारण उन्होंने शचीमाताको शीघ्र शान्तिपुर लानेके लिए डोली और आदमी भेजे हैं।

शचीमाताने धीरे-धीरे उठकर घरमें प्रवेश किया। देखा कि श्रीविष्णुप्रिया देवी प्रभुके शयन-गृहमें अकेली बैठकर चुपचाप अजस्र आँसू बहा रही रही है। उन्होंने सब सुन लिया था, सब समझती थी। सासु और पुत्रवधूकी जब आँखें मिलीं तो दोनों ही फुङ्कार मारकर रोने लगीं। दोनोंने एक दूसरेकी हृदयाग्निको दबाये रखनेकी प्रबल चेष्टा की। परन्तु दबा न सकीं। प्राचीन महाजन गणने श्रीविष्णुप्रिया देवीको भूस्वरूपिणी कहा है। पृथ्वी देवीका एक और नाम है सर्वसहा। यह भी तद्रूप हैं। वे सब कुछ सहन कर सकती हैं, उनके जैसी धैर्यवती रमणी जगत्में कहीं किसीने नहीं देखी। शोकाकुल वृद्धा सासुके विषादपूर्ण चेहरोको देखकर श्रीविष्णुप्रियादेवी अश्रुपूर्ण नयनोंसे बोलीं—"माँ! तुम शान्तिपुर जाओ। मैं नवद्वीपमें अकेली रहूँगी। वे तो यहाँ आवेंगे। माँ! तुम जाओ, पहले जाकर उनको देखकर अपना पुत्रवियोग-जनित दुःख दूर करो। सन्तप्त प्राणको शीतल करो।"

पुत्रवधूके मुखसे यह बात सुनकर शचीमाताका दुःख समुद्र और भी उमड़ उठा। श्रीविष्णुप्रिया देवीकी सहिष्णुता, धैर्यशीलता, तथा सुशीलता आदि गुणोंकी तुलना नहीं है। पुत्र शोकातुरा वृद्धा सासुके मनमें दुःख न हो, इसके लिए उन्होंने अपने आवेगपूर्ण हृदय-समुद्रमें धैर्यका बाँध बाँधकर एकदम बन्द कर दिया है, उनके साथ जाना नहीं चाहती। ऐसे समयमें ऐसी बात जगत्में कोई रमणी नहीं बोल सकती। यह सोचकर शचीमाता पुत्रवधूके गुण पर मुग्ध होकर व्याकुल होकर रो पड़ी। श्रीविष्णुप्रिया देवीने सान्त्वना देकर शान्तिपुर भेज दिया।

शचीमाता शान्तिपुरमें

शचीमाताके साथ-साथ प्रभुके परम प्रिय पात्र गङ्गादास पण्डित, मुरारी गुप्त, चन्द्रशेखर आचार्य आदि नदियाके भक्तवृन्द चले। सब लोग यथा समय शान्तिपुरमें जा पहुँचे। श्रीअद्वैत भवनके द्वार देशमें शचीमातीकी डोली पहुँचते ही प्रभु सत्वर सबके आगे आकर साष्टाङ्ग दण्डवत् होकर पूजनीया माताके चरणोंमें गिर पड़े। शचीमाता अपने खोये निधि निमाईचाँदके चन्द्रवदनको देखते ही प्रेमानन्दमें जड़वत् स्तब्ध हो गयी। उनके मुखसे केवल इतना ही निकला कि, "बाछा निमाई! और एकवार मैं तेरे चन्द्रमुखको देख रही हूँ।" इतना कहकर वह जड़वत् नीरव हो गयीं। और कोई बात न बोल सकीं। उनके नयनजलसे वक्षःस्थल डूब गया। मातृ-भक्तचूड़ामणि प्रभु जननीकी प्रदक्षिणा करते हुए यह कहकर स्तुति करने लगे—

"तुमि विश्व जननी केवल भक्तिमयी।
तोमारे जे गुणातीत सत्त्वरूपा कहि॥
तुमि यदि शुभदृष्टि कर जीव प्रति।
तबे से जीवेर हय कृष्णे रति मति॥
नुमि से केवल मूर्त्तिमती विष्णुभक्ति।
जाहा हैते सब हय—तुमि सेइ शक्ति॥
तुमि गंगा देवकी यशोदा देवहूति।
तुमि पृश्नि अनसूया कौशल्या अदिति॥
जत देखि सब तोमा हैते से उदय।
पालह तुमि से, तोमाते से लीनो हय॥
तोमार प्रभाव वलिवार शक्ति कार।
सभार हृदये पूर्ण वसति तोमार॥"

चै. भा. अं. ४.२४२-२४७

मातृभक्तचूड़ामणिने इसी प्रकार पद्यवद्ध मातृस्तुति की। वारम्वार दण्डवत् प्रणाम किया। उनके कमलनयनोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा प्रबल वेगसे प्रवाहित हो रही थी। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

कृष्ण बइ-ओ कि पितृ-मातृ-गुरु-भक्ति।
करिवारे एमत धरये केहो शक्ति॥

चै. भा. अं. ४.२४९

धर्मसंस्थापक प्रभु स्वयं आचरण करके कलिके जीवोंको धर्मकी शिक्षा दे गये हैं, वे मातृभक्तशिरोमणि थे। प्रभुकृत मातृस्तवमें जगन्माता शचीमाताके सारे तत्त्व निहित हैं। शचीमाता क्या वस्तु है, इसको श्रीगौर भगवान्ने श्रीमुखसे सबके सामने प्रकट कर दिया।

शचीमाता कठपुतलीके समान खड़ी थी, और प्रभु उनकी इस प्रकार विनती-स्तुति कर रहे थे। शचीमाता अवाक् थीं, और भक्तवृन्द दूर खड़े होकर चुपचाप रो रहे थे। सीतादेवी आदि वैष्णव-गृहिणीगण आड़में खड़ी होकर मुखको वस्त्रसे ढँक कर फुङ्कार मारकर रो रही थी। ऐसा करुण दृश्य कभी किसीने नहीं देखा था। सभी करुण रस सिन्धुमें डूब रहे थे।

प्रभुने पुनः माताको सम्बोधन करके कहा—

—"विष्णुभक्ति जे किछु आमार।
केवल एकान्त सब प्रसाद तोमार॥
कोटि दास-दासेरो जे सम्बन्धे तोमार।
सेइ जन प्राण हैते वल्लभ आमार॥
वारेको जै जन तोमा करिबे स्मरण।
तार कभू नहिबेक संसार बन्धन॥
सकल पवित्र करे जे गंगा तुलसी।
तानाओ हयेन धन्य तोमारे परशि॥
तुमि जत करियाछ आमार पालन।
आमार शक्तिये ताहा ना हय शोधन॥
दण्डे-दण्डे जत स्नेह करिला आमारे।
तोमार सद्गुण्य से ताहार प्रतिकारे॥

चै. भा. अं. ४.२५३-२५८

प्रभुकी बातोंपर थोड़ा विचार कीजिये। उन्होंने पहले ही कहा है कि उनमें जो कुछ विष्णुभक्ति है, वह सब उनकी दयामयी जननीकी कृपासे प्राप्त है।

यह बहुत सहज बात नहीं है। प्रभुकी विष्णुभक्ति सहज वस्तु नहीं है, और वह जिस प्रकार भक्तिका आचरण करते हैं, वह भी सहज बात नहीं है। शचीमाताकी कृपाके बलसे उनको यह अमूल्य भक्ति-धन प्राप्त है, इसे प्रभुने अपने श्रीमुखसे स्वीकार किया है। केवल इसी एक बातसे पाठकवृन्द आइके माहात्म्यको समझ सकते हैं।

मातृभक्ति-शिरोमणि प्रभुने अपनी दूसरी बातमें शचीमाताकी महिमाको और ऊँचा उठाया है, उन्होंने कहा है कि तुम्हारे सम्बन्धसे दासानुदास तस्यदास प्रभृति कोटि जन्म पर्यन्त जो तुम्हारा नाम लेगा, वह मेरे प्राणोंसे भी प्रियतम है।" यह बड़ी ही ऊँची बात है। गौरआना गोसाईंने साधपूर्वक कहा है—

प्राकृत शब्दे ओ जे वा बलिबेक आइ।
आइ शब्द प्रभावे ताहार कोन दुःख नाइ॥

चै. भा. अं. ४.२६८

प्रभुकी तीसरी बात बहुत ही मधुर है। उन्होंने कहा हैं, "माँ! जो एकवार भी तुम्हारे पवित्र नामको स्मरण करेगा, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जायगा।" इससे बढ़कर ऊँची, भावपूर्ण, महान् स्तुति और क्या हो सकती है? संसार-बन्धन ही जीवके लिए भगवत् साधनामें प्रधान विघ्न है, और इस संसार-बन्धनको छिन्न करना बड़ा ही कठिन कार्य है। भव-बन्धनसे मुक्त पुरुष ही ईश्वरानुग्रहको प्राप्त करता है। कलिपावनावतार प्रभुने इसी कारण शचीके माहात्म्यके कीर्तनको कलिके जीवके लिए भवरोगकी औषधि बतलाया है।

प्रभुकी चौथी बात उनकी मातृपूजाका शेष और अन्तिम आवाहन है। तुलसी और गङ्गाके समान परम पवित्र वस्तु त्रिभुवनमें और कुछ नहीं है। श्रीगौर भगवान्ने कहा है कि उनकी जननी तुलसी और गङ्गाकी अपेक्षा भी पवित्र है। जननीके प्रति प्रभुकी श्रीमुखकी वाणी है—

तानाओ हबेन धन्य तोमारे परशि।

चै. भा. अं. ४.२५६

अर्थात् गौराङ्ग-जननीके साथ तुलसी और गङ्गाकी भी तुलना नहीं हो सकती।

सबके अन्तमें प्रभुने मातृ-ऋण शोधनमें अपनी असमर्थता प्रकट की है। इसमें उन्होंने भक्तके सामने अपनी पराजय स्वीकार की है। श्रीकृष्ण भगवान्ने ठीक ऐसी ही बात प्रजगोपिकाओंसे कही थी।

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या मा भजन् दुर्जरगेह शृङ्खला
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

श्रीमद्भागवत १०.३२-२२

आइ—महिमा कीर्तन करके, गौराङ्ग-जननीकी पुण्य चरित-कथाकी आलोचना करके मनमें कितना आनन्द होता है, कितने शत-शत भाव उदय होते हैं, उनको मैं लिखकर भाषाके द्वारा वर्णन नहीं कर सकता। कृपालु पाठकवृन्दके चरणमें यह करवद्ध प्रार्थना है कि वे कृपा करके एकवार 'जय शचीमाताकी जय', 'जय गौराङ्ग-जननीकी जय' कहकर जीवाधम ग्रन्थकारको कृतार्थ करें। श्रीगौराङ्ग-जननीकी श्रीमूर्त्ति गौरभक्तके घर-घरमें पूजित हो, शचीनन्दनके सहित शचीमाताकी पूजा वात्सल्य रसका भजन है। शचीमाताके गोदमें श्रीश्रीगौर-गोपाल बहुत सुशोभित होते हैं। श्रीवृन्दावनधाममें गौरगोपाल मूर्त्ति इस प्रकारके वात्सल्य भावमें व्रजवासी भक्तजनके द्वारा सेवित हो रही है। इस श्रीमूर्त्तिको मैंने अपनी आँखों दर्शन करके आँखोंको सार्थक किया है। श्रीधाम नवद्वीपमें भी गौरगोपालके साथ श्रीशचीमाताकी सेवापूजा होती है।

पहले कह चुका हूँ कि शचीमाता जड़वत् खड़ी थी। प्रभुने जो इतनी बातें कही, वह उनके कानोंमें पहुँची या नही, इसमें सन्देह है। वे अनिमेष दृष्टिसे

अपनी खोयी हुई निधि, प्रिय पुत्रके चन्द्रवदनको निरख रही हैं। और किसी ओर उनकी दृष्टि नहीं है। उनका पुत्र क्या वस्तु है, इसको आइने समझ लिया है। वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं, इच्छामय हैं। जब उनको जो इच्छा होती है, तब वे वही करते हैं। शचीमाताने यह भी अच्छी तरह समझ लिया है।

आइ जाने अवतीर्ण प्रभु नारायण।
जखन जे इच्छा तान करेन तेमन ।।

चै. भा. अं. ४.२६०

शचीमाता अपने संन्यासी पुत्रको अब भगवान् भावमें देख रही हैं। वे देख रही हैं कि उनका पुत्र एक उनका ही नहीं है। लाखों-करोड़ों लोग उनके श्रीचरणके दर्शनके लिए लालायित हैं, लाखों-करोड़ों कण्ठसे उनके पुत्रका जयगान हो रहा है। उनका पुत्र बहुवल्लभ है। वह सारे जगत्का गुरु है, सब जीवोंका उद्धारक है। प्रभुकी इच्छासे शचीमाताके मनमें तब इस प्रकारके ऐश्वर्य भावका उदय हुआ। वे किसी प्रकार चित्तको स्थिर करके कम्पित-कलेवर होकर धीरे-धीरे पुत्रको सम्बोधन करके बोलीं, "बेटा निमाई! तुम्हारी बातका मर्म समझनेकी शक्ति किसीमें नहीं हैं। नदीमें जैसे मृतदेह डूब जाती है, और स्रोत उसे जिधर ले जाना चाहे ले जा सकता है, उसी प्रकार संसार-सागरमें सारे जीव डूब रहे हैं, तुम्हारे मायारूपी स्रोतमें तुम जिधर उनको ले जाना चाहते हो उधर ही वे जाते हैं। तुम जानते हो कि जीवका मङ्गल कैसे होगा। तुमने जो मेरी स्तुति-नमस्कार और प्रदक्षिणा की है, इसका मर्म मैंने कुछ भी नहीं समझा है। तुम अपनी इच्छानुसार जो चाहते हो करते हो।"

शचीमाताके मुखसे इस समय यह अपूर्व बात सुनकर भक्तवृन्द जयजयकार करके उनका गुण गाने लगे। पहले कहा जा चुका है कि इच्छामय प्रभुने अपनी दुःखिनी माताके मनमें इस प्रकारका ऐश्वर्य भाव जान बूझकर उत्पन्न किया है। इसका कारण है। वृद्ध जननीके मनमें शान्ति प्रदान करना ही प्रभुका उद्देश्य है, यही उनका कर्त्तव्य कर्म है। वे स्वयं संन्यासी हो गये हैं, कौपीन-करङ्ग धारण कर लिया है। अब यह आशा नहीं है कि वे स्वयं घरपर रहकर संसार-सुख-भोगके द्वारा जननीको शान्ति प्रदान करेंगे। इस समय जननीके प्राणमें भगवद्भाव उद्दीपित करनेका प्रयोजन समझकर और इस उपायसे उनके सन्तप्त हृदयको शीतल करनेके अभिप्रायसे श्रीगौर भगवान्ने यह लीलारङ्ग प्रकट किया। शचीमाताने अपने पुत्रको साक्षात् नारायणरूपमें देखा। इसी भावसे उन्होंने यह बात कही। शचीमाताके मुख-मण्डलपर इस समय विषादका भाव नहीं है, मनमें कोई दुःख नहीं है। सब आनन्दित हो उठे। परन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभुके मनमें बड़ा भय था। वह भी शचीमाताका भाव देखकर श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

प्रभु देखि सन्तोषे पूर्ण हैला आइ।

चै. भा. अं. ४.२६९

वहाँ सब भक्तगण उपस्थित थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु भी थे। सब सोच रहे थे कि इतने दिनके बाद पुत्रका मुख देखकर शचीमाता न जाने क्या काण्ड करेंगी, परन्तु उन्होंने देखा कि शचीमाताका मन प्रफुल्ल है। उनके अपूर्व सन्तोषके भावको देखकर आनन्द-सागरमें निमग्न हो गये।

श्रीअद्वैत प्रभुने देवकीकी स्तुतिका पाठ करके शचीमाताको प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम किया। मुरारिगुप्त, हरिदास ठाकुर, श्रीगर्भ, नारायण, जगदीश, गोपीनाथ आदि सभी भक्तवृन्द गौराङ्ग-जननीकी चरणधूलि लेकर धन्य हो गये। सभी आनन्द-सागरमें निमग्न हो गये। यह देखकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

श्रीअद्वैत प्रभु तब शचीमाताका हाथ पकड़कर अन्तःपुरमें ले गये। माताके पास प्रभु आज भिक्षा

करेंगे, इसके लिए शान्तिपुरनाथने उनसे अनुमति माँगी। सीता ठाकुरानीके साथ जब शचीमाताकी भेंट हुई, उस समय अन्तःपुरमें उच्च क्रन्दनसे कुहराम मच गया। वह करुण क्रन्दन-ध्वनि बाहर दालानमें पहुँची, प्रभुके कानोंमें भी प्रविष्ट हुई। उन्होंने सिर नीचा कर लिया, नयनाश्रुधारसे भूतलको सिक्त कर दिया।

प्रभु अद्वैत-भवनमें आज माताके हाथसे भिक्षा ग्रहण करेंगे, सीता ठाकुरानीने यह सोचकर आत्मसंवरण किया। शचीमाताको स्नान कराकर वे उनको पाकगृहमें ले गयीं। श्रीअद्वैत गृह साक्षात् लक्ष्मीका भण्डार था। वह सर्वदा सब प्रकारके भोज्य पदार्थोंसे परिपूर्ण रहता था। क्षणमात्रमें योगमाया रूपिणी सीता ठाकुरानीने श्रीगौर भगवान्‌के भोगके समस्त पदार्थोंका आयोजन कर दिया।

परम आनन्दपूर्वक शचीमाता गौराङ्ग-स्मरण करके रन्धन करने लगीं। अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाये, साधारण व्यक्ति जिनके नाम भी नहीं जानता। प्रभुको शाक बहुत अच्छे लगते हैं, अतः बीसों प्रकारके शाक बनाये। एक-एक वस्तुके दस-दस बीस-बीस प्रकारके व्यञ्जन तैयार किये। इस प्रकार अनेक प्रकारकी सामग्री बनाकर भोजनके स्थानपर सजायी गयी। सब प्रकारके व्यञ्जनोंके ऊपर तुलसीमञ्जरी देकर भोग लगाया। चारों ओर सामग्री रखकर बीचमें उत्तम आसन बिछाया गया।

प्रभुकी भिक्षा

श्रीअद्वैत प्रभु स्वयं श्रीगौर भगवान्‌को भोजन गृहमें ले गये। उनके साथ पारिषदवृन्द भी आये। प्रभु श्री अन्न व्यञ्जनपर शुभ दृष्टिपात करके दण्डवत् प्रणाम करके हँसते हुए बोले—"इस अन्नके भोजनकी बात दूर रही, इसके दर्शन मात्रसे जीव-बन्धन-मुक्त हो जायँगे। क्या अद्भुत रन्धन हुआ है? इस अन्नकी गन्ध मात्रसे श्रीकृष्णमें भक्ति हो जायगी। प्रतीत होता है कि स्वयं श्रीकृष्णने सपरिवार इस अन्नको ग्रहण किया है।"

कृपालु पाठकवृन्द याद रखेंगे कि वह अन्न-व्यञ्जन अनिवेदित हैं। श्रीगौर भगवान्‌को श्रीअद्वैत गृहमें स्वतन्त्र भोग लगता था। शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत भवनमें श्रीमदन गोपालका श्रीविग्रह था, उनको स्वतन्त्र भोग लगता है। श्रीनीलाचलमें भी श्रीअद्वैत प्रभुने श्रीगौर भगवान्‌को स्वतन्त्र भोग लगाया था, यह बात पहले कही जा चुकी है। प्रभुकी मनस्तुष्टिके लिए अन्न-व्यञ्जनके ऊपर केवल तुलसी मञ्जरी दी जाती थी। किन्तु भोग अनिवेदित होता था, प्रभुने जो कहा कि इस उत्तम अन्न-व्यञ्जनका भोग श्रीकृष्ण भगवान्‌ने सब परिवारके साथ स्वीकार किया है, वह प्रच्छन्न अवतारके उपयुक्त बात थी। सब पार्षदवर्गके साथ वे भोजन करने आये थे, इसी कारण यह बात बोले।

श्रीगौर भगवान् श्रीअन्न-व्यञ्जन भोगकी प्रदक्षिणा करके दिव्यासनपर भोजन करने बैठे। प्रभुके आदेशसे सब भक्तगण चारों ओर उनका भोजन-विलास दर्शन करने बैठे। अन्य अवसरोंपर भक्तवृन्दको साथ लेकर प्रभु भोजन-विलास करते थे, परन्तु श्रीअद्वैत भवनमें जननीके सामने ऐसा नहीं किया। वे अकेले भोजन करनेके लिए बैठे, और भक्तवृन्दको अपना भोजन-विलास दर्शन करनेका सुयोग प्रदान किया। क्यों ऐसा किया, इसका भी मर्म है। उन्होंने जननीको ऐश्वर्य दिखलाकर उनके मनको शान्ति प्रदान की है। यह प्रभुका एकाकी भोजन-विलास भी उनके ऐश्वर्य भावकी परिपोषक लीला है। भक्तवृन्द उनका प्रसाद पावेंगे। उनमें श्रीनित्यानन्द प्रभु भी हैं। प्रभु उनको साथ लेकर भोजन करने नहीं बैठे।

शचीमाता देख रही हैं कि साक्षात् नरनारायण भोजन करने बैठे हैं, वे अपने हाथसे रसोई करके नारायणको भोग प्रदान कर रही हैं। उनके मनमें यह नहीं आता कि वे पुत्रको खिला रही हैं। यह

भी इच्छामय प्रभुकी इच्छा है। शचीमाता आँखें भरकर साक्षात् नारायणका भोजन विलास दर्शन कर रही हैं, उनके समान भाग्यवती स्त्री इस लोकमें कौन है ?

श्रीगौर भगवान् प्रत्येक व्यञ्जनको विशेष रूपसे आस्वादन कर रहे हैं। शाकपर प्रभुकी विशेष प्रीति है। वे भोजन कर रहे हैं, और श्रीशाककी प्रशंसा कर रहे हैं। यह सुनकर अन्तरङ्ग भक्तवृन्द तथा वैष्णव गृहिणीगण हँस रही हैं। प्रभु किस प्रकार शाककी प्रशंसा कर रहे हैं, सुनिये—

—" एइ जे अच्युता नामे शाक।
इहार भोजने हय कृष्णे अनुराग।।
पटोल वास्तुक-काल-शाकेर भोजने।
जन्म जन्म विहरये वैष्णवेर सने।।
शालिञ्चा हिलश्चा शाक भक्षण करिले।
आरोग्य थाकये तारे कृष्णभक्ति मिले।।"

चै. भा. अं. ४.१६६-२६८

इस प्रकार बीसों प्रकारके शाकमें प्रत्येककी महिमा वर्णन करके प्रभु परम आनन्दपूर्वक भोजन-विलास कर रहे हैं। भक्तवृन्द सुनकर आनन्द-सागरमें निमज्जित हो रहे हैं। पुरकी नारियाँ गृहमें आड़में खड़ी होकर प्रभुके भोजन-विलासका दर्शन कर रही हैं। और उनके श्रीमुखकी सुधामयी वाणी सुनकर अपने प्यासे कानोंकी तृप्त कर रहीं हैं। शचीमाताके मनमें आज बड़ा आनन्द है। वे बहुत दिनोंके बाद आज पास बैठकर निमाई चाँदको अपने हाथसे राँधकर भोजन करा रही है। उनके सारे दुःख दूर हो गये हैं, वे सब कुछ भूलकर प्रभुके मुखचन्द्रकी ओर एक-टक देख रही हैं।

प्रभुका भोजन-विलास समाप्त होनेपर जैसे ही वे आचमन करके विश्राम गृहमें बैठे, वैसे ही श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु तथा सारे भक्तवृन्द उनके भोजनावशिष्ट अधरामृतको लूटने लगे। लूटते समय भक्तवृन्द प्रेमोन्मत्त होकर क्या-क्या बोल रहे थे, सुनिये—

कोई कहता है—"इसमें ब्राह्मणका क्या अधिकार है ? मैं तो शूद्र हूँ, मेरे लिए उच्छिष्ट मिलना युक्तियुक्त है।"

कोई कहता है—"मैं ब्राह्मण नहीं हूँ।" और बगलसे झपट कर भाग जाता है।

कोई कहता है—"यह उच्छिष्ट शूद्रके योग्य नहीं हैं।" उत्तर मिलता है—"है या नहीं—इसके लिए शास्त्र क्या कहता है, उसपर विचार करो।" कोई कहता है—"मुझे अवशेषान्न नहीं चाहिये, केवल पत्तल मात्र मिल जाय तो मैं ले जाऊँ।" कोई कहता है—"मैं तो सर्वदा पत्तल उठाकर फेंका करता हूँ, यह मेरा अधिकार है, तुम लोग तो केवल अपनी ठकुराई चला रहे हो।"

उनमें ब्राह्मण थे, शूद्र थे, संन्यासी थे और ब्रह्मचारी थे। प्रभुके अधरामृतको पानेकी लालसासे सभी महा व्यग्र होकर भूखे दीन-दरिद्रके समान टूट पड़े और मारपीट करनेमें भी सङ्कोच नहीं करते हैं। शचीमाताके रन्धन और प्रभुके अधरामृतमें किसको लोभ नहीं होगा ? कौन इस दुर्लभ वस्तुका लोभ संवरण कर सकेगा अद्वैत भवनमें आनन्दकी तरङ्ग उठ रही है। भक्तगण प्रभुका अधरामृत पाकरके परम आनन्दमें मग्न हो रहे हैं। उसके बाद श्रीअद्वैत प्रभुने उनको पेटभर वैष्णव-भोजन कराया। उनके घरमें आज महा महोत्सव है। श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है—

ए सब आनन्द पड़े शुने जेइ जन।
अवश्य मिलये तारे प्रेमभक्ति धन।।

चै. भा. अं. ४.२७५

× × ×

ए यशेर यदि करे श्रवण पठन।
तबे से जीवेर खण्डे अविद्या बन्धन।।

चै. भा. अं. ४.३०४

कृपामय पाठकवृन्द ! दयामय श्रोतागण ! आप लोगोंको कोई चिन्ता नहीं है। भक्तिपूर्वक श्रीगौराङ्गकी लीला-कथा पाठ या भक्तके मुखसे

श्रवण करें—और आप लोगोंको और कोई साधना नहीं करनी पड़ेगी। भगवल्लीला पठन या श्रवणके बराबर और कोई श्रेष्ट साधना नहीं है—यह शास्त्र-वचन है। भक्तिके विना ज्ञान-प्राप्ति सम्भव नहीं है। श्रीभगवान्‌के गुण और लीलाका श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्तियोगमें किसीका भी अवलम्बन करके साधना करनेसे जो भक्ति उदय होती है, उसीके द्वारा जीवका उद्धार हो सकता है। ज्ञानकी प्राप्तिके लिए विशेष परिश्रम न करके जो लोग केवल गौरभक्त अकिञ्चन साधुओंका सङ्ग करते हैं, वे भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि भक्तके संसर्गसे भगवत्कथा और भगवल्लीलाकी कथा दिन-रात श्रवण रन्ध्रमें प्रविष्ट होती रहती है। वे लोग तीर्थादि पर्यटनका प्रयास न करके यदि एकान्तिक मनसे अनायास श्रुत भागवत्-लीलाकथामें निष्कपट श्रद्धा और विश्वास करके मन-वचन-कर्मसे श्रीभगवान्‌के चरणमें आत्म समर्पण करते हैं, भगवद्भक्तका आनुगत्य स्वीकार करके विनीत भावसे वैष्णवोंको नमस्कार और स्तुति करते हैं, श्रीभगवान् अजित होते हुए भी उनके श्रवण कीर्तनशील पवित्र हृदयमें निरन्तर वास करते हैं, उनके सामने वे प्रेम रज्जुसे आवद्ध होते हैं*। स्वयं ब्रह्माजीने श्रीकृष्ण भगवान्‌से यह बात कही है उन्होंने यह भी कहा है कि भगवत्प्राप्तिके लिए उनके चरणोंमें एक मात्र उपाय है। जीवके हृदयमें भक्तिका उदय होता है भगवल्लीला श्रवण और कीर्तन से। साधकगण पहले शुद्ध योगावलम्बनसे आत्मानात्म-विचार पूर्वक यम-नियमादि साधनके द्वारा योगके सर्वोच्च स्तरमें आरोहण करके स्पष्टतः समझ जाते हैं कि योग-सिद्धि होनेपर भी भगवत्साक्षात्कारकी प्राप्ति नहीं होती। अतएव पुनः संसारमें पतनकी संभावना रहती है। संसारमें पुनर्जन्मसे बचनेका प्रधान उपाय हैं भगवत्साक्षात्कार। अतएव योगसिद्ध महापुरुषोंने श्रद्धापूर्वक भक्तियोगका अवलम्बन करके वर्णाश्रमोचित निष्काम कर्मोंके अनुष्ठान, तथा भगवल्लीलाके श्रवण और कीर्तनादिके द्वारा आत्मशुद्धि करके श्रीभगवान्‌के रूप, गुण और लीलाका प्रत्यक्ष अनुभव किया है, तथा परम गति लाभ किया है*। अतएव भगवल्लीला श्रवण और कीर्तनके समान श्रेष्ठ साधना दूसरी नहीं है। कृपालु पाठकवृन्द! श्रीगौराङ्ग लीला-समुद्रमें निमग्न हो जाइये। निमग्न होकर देखिये कि कैसा आनन्द मिलता है। महाजनोंके वचनमें सुदृढ़ विश्वास करके श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भगवल्लीला श्रवण और कीर्तन कीजिये, और कुछ नहीं करना पड़ेगा। लीलाकथा छोड़कर बहुत दूर तत्त्व कथामें मैं आ गया हूँ।

मुरारि गुप्त और प्रभु

प्रभु नदियाके भक्तवृन्दसे परिवेष्टित होकर भोजनके पश्चात् विश्राम गृहमें बैठ गये। उनके बीचमें मुरारि गुप्त भी थे। वे श्रीराम-उपासक थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्राष्टक लिखी है। यह बात प्रभुके कानोंमें पहुँची थी। मुरारिको देखते ही प्रभुको यह याद आ गया। वे उनकी ओर करुण-नयनोंसे देखकर बोले—"मुरारि! तुमने जो श्रीरामचन्द्रका अष्टक लिखा है, उसे मुझे सुनाओ। आज्ञा पाकर मुरारि गुप्तने हाथ जोड़कर भावाविष्ट होकर प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे स्वरचित संस्कृत श्लोकबद्ध

* ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।
स्थानेस्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनेभि-
र्ये प्रायशोऽजितजितोऽप्यसि तैस्त्रिलोकम्॥
श्रीमद्भागवत १०.१४.३

* पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम्॥
श्रीमद्भागवत १०.१४.५

श्रीरामचन्द्राष्टक प्रभुको सुनाया--

राजत् किरीटमणिदीधितिदीपिताशं—
उद्यद् बृहस्पति कविप्रतिमेव हन्त ।
द्वे कुण्डलेऽङ्करहितेन्दु समान वक्त्रं
रामं जगत्-त्रय-गुरुं सततं भजामि ॥१॥
उद्यद् विभाकर मरीचिविरोधिताब्जनेत्रं
सुविम्बदशनच्छद चारुनासम् ।
शुभ्रांशुरश्मि-परिनिर्जित-चारुहासं
रामं जगत्-त्रय-गुरुं सततं भजामि ॥२॥
तं कम्बुकण्ठमजमम्बुजतुल्यरूपं
मुक्तावली कनकहारधृतं विभान्तम् ।
विद्युद्वलाकगण संयुतमम्बुदं वा
रामं जगत्-त्रय-गुरुं सततं भजामि ॥३॥
उत्तान हस्ततलसंस्थ सहस्र पत्रं
पञ्चच्छदाधिकशतं प्रवरांगुलीभिः ।
कुर्वत्य शीत कनकद्युति यस्यासीता—
पार्श्वेस्थिता रघुवरं सततंभजामि ॥४॥
अग्रे धनुर्धरवरं कनकोज्ज्वलाङ्गो
ज्येष्ठानुसेवनरतो वरभूषणाढ्यः ।
शेषाख्य धाम वर लक्ष्मण नाम यस्य
रामं जगत्-त्रय-गुरुं सततं भजामि ॥५॥
यो राघवेन्दुकुलसिन्धु सुधांशुरूपो
मारीचराक्षससुवाहु सुखान्निहत्य ।
यज्ञं ररक्ष कुशिकान्वय पुण्यराशि
रामं जगत्-त्रय-गुरुं सततं भजामि ॥६॥
हत्वा खरत्रिशिरसौ सगणौ कबन्धं
श्रीदण्डकाननमदूषणमेव कृत्वा ।
सुग्रीवमैत्रमकरोद्विनिहत्य शत्रुं
तद्राघवं दशमुखान्तकरं भजामि ॥७॥
भक्त्वापि नाकममरोज्जनकात्मजाया-
वैवाहिकोत्सवविधिं पथि भार्गवेन्द्रम् ।
जित्वा पितुर्मुहमुवाद ककुत्स्थवर्य
रामं जगत्-त्रय-गुरुं सततं भजामि ॥८॥
इत्थं निशम्य रघुनन्दन राजसिंह-
श्लोकाष्टकं स भगवान् चरणं मुरारेः ।
वैद्यस्य मूर्ध्नि विनिधाय लिलेख भाले
त्वं रामदास इति भो भव मत्प्रसादात् ॥९॥

स्तोत्र सुनाकर मुरारि गुप्त प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। मुरारि गुप्तके इस अष्टकको सुनकर प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर होकर उनके मस्तकपर श्रीचरणोंको रखते हुए बोले—

"शुन गुप्त ! एइ तुमि आमार प्रासादे ।
जन्म जन्म रामदास हओ निर्विरोधे ॥
क्षणेको जे करिवेक तोमार आश्रय ।
सेहो राम पदाम्बुज पाइब निश्चय ॥
चै. भा. अं. ४.३४०-३४१

मुरारि गुप्तके प्रति प्रभुकी कृपादृष्टि देखकर तथा उनके इस अपूर्व वरदानकी बात सुनकर भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें जय-जय ध्वनि करने लगे।

उस दिन रातमें प्रभुने अद्वैत मन्दिरमें कीर्तनानन्दमें उन्मत्त होकर मधुर नृत्य किया। बहुत दिनोंके बाद शचीमाताने अपने पुत्रके कीर्तन विलास-रङ्गको देखा, और वे परमानन्दमें मग्न हो गयीं। प्रभु प्रेमावेशमें नृत्य करते-करते पछाड़ खाकर गिर रहे हैं, और शचीमाता आँखें मूँदकर गोविन्द-स्मरण कर रही हैं, जननीके कोमल हृदयमें भीषण आघात लगा रहा है। वे रोते-रोते श्रीनित्यानन्द प्रभुका नाम लेकर उच्च स्वरसे बोलीं—"निताई ! निमाईको पकड़, बाछाकी बाँह टूट तो नहीं गयी ?" शचीमाताके प्रभुके प्रति इस वात्सल्य भावको लेकर जीवाधम ग्रन्थकारने एक पदरचना की है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है।

शचीमाताकी उक्ति—

निताइ धर धर ।
गोरार सोनार अङ्ग काँपे थर थर ॥
जेन भूमे ना लुटाय अङ्ग, थेक सदा तुमि तार सङ्ग,
पड़े गेले जे से व्यथा पाबे कोमल अङ्गे
अति गुरुतर, निताइ धर धर ।
बाछा जे पड़िछे आछाड़ि, मा हये कि सहिते पारि,

कीर्तन कर वन्ध ह'ल जे निशि भोर,
निमाइ एखनो भावे विभोर,-निताइ धर धर ।।
तोरा थाकिते एत सङ्गी, बाछार हात पा गेल भांगि,
सारा निशि जागि हल अचेतन-निताइ धर-धर ।।

शान्तिपुरमें अद्वैत भवनमें प्रभु छः दिन रहे। इन छः दिनोंमें प्रभुने माताके पास भिक्षा ग्रहण की।

श्रीअद्वैत प्रभुके घरमें प्रभुके शुभागमनके उपलक्ष्यमें नित्य महामहोत्सव होने लगा। सैकड़ों हजारों लोग प्रतिदिन उनके घर परम समादरपूर्वक प्रसाद पाने लगे। इन छः दिनोंमें प्रभुने जो लीलाएँ की थी, उनमें एक दो अपूर्व लीला कहानी श्रीचैतन्य भागवतमें वर्णित है। प्रथम लीला है भक्तद्रोही, वैष्णव निन्दक चापाल गोपालका श्रीवास पण्डितके सामने अपराध भञ्जन। दूसरी लीला है श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी गोस्वामीके तिरोभावकी पुण्य तिथिकी आराधना महोत्सव। प्रभुकी इन्हीं दोनों लीला-कथाओंका यहाँ वर्णन किया जाता है।

वैष्णवापराधी चापाल गोपाल

कृपानिधि प्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत भवनमें भक्तवृन्दको लेकर बैठे हुए हैं। उसी समय नवद्वीप-वासी एक ब्राह्मण जो कुबुद्धिवश श्रीवास पण्डितके द्वारपर काली पूजाकी सामग्री रखकर, और उनकी निन्दा करके कुष्ट व्याधि ग्रस्त हो गया था, प्रभुके सामने आकर आर्त्तनाद करके उनके चरणोंपर गिर पड़ा। उसका नाम चापाल गोपाल था। प्रभुके संन्यास ग्रहणके बाद अपने किये हुए दुष्कर्मके लिए उसके मनमें विशेष आत्मग्लानि उत्पन्न हुई और वह दारुण मनोव्यथासे दिन यापन कर रहा था। प्रभु शान्तिपुरमें आये हैं, यह सुनकर वह कुष्टव्याधि-ग्रस्त विप्र झट-पट जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। महा आर्त्तनाद करके दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर रोते, हुए उसने प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"संसारके उद्धार करनेके लिए आप पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हो। दूसरेके दुःखसे आप स्वभावसे कातर होते हो। इसलिए में आपके पास आया हूँ। कुष्ट रोगकी ज्वालासे मरा जा रहा हूँ। मुझे उपाय बताओ, मैं क्या करूँ?"

शिक्षागुरु श्रीगौर भगवान् लोकशिक्षाके लिए नदियामें अवतीर्ण हुए थे। वह घृणित रोग ग्रस्त विप्र वैष्णव-निन्दा रूपी महापापसे लिप्त होकर सबके सामने हेय हो गया था। रोगकी विषम यातनासे छट-पटा रहा था। वैष्णव निन्दासे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है। श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है कि श्रीगौराङ्ग अवतारमें सब प्रकारके पापियोंका उद्धार होगा 'व्यतिरिक्त वैष्णव-निन्दक दुराचार'। परन्तु कृपालु श्रीगौर भगवान् इनके पापोंके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था भी कर गये हैं। उसी व्यवस्थाका सर्वसाधारणमें प्रचार करनेके लिए शिक्षा-गुरु श्रीगौर भगवान्‌ने उस कुष्ठ व्याधिग्रस्त विप्रकी बात सुनकर कोधमें गर्जन-तर्जन करते हुए उससे कहा—"मेरे सामनेसे दूर हो, तुमको कोई परम धार्मिक भी देख लेगा तो दुःखका भागी होगा। तुमने वैष्णव-निन्दा की है। अभी तो तुमको कुंभी-पाक नरकमें वास करना है। वैष्णव सेवासे भगवत् प्राप्ति होती है। ब्रह्मादि देवता भी वैष्णवका गायन करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं श्रीमद्भागवत ११.१४.१५ में उद्धवको कहते हैं कि मुझे ब्रह्मा, शङ्कर, संकर्षण भी ऐसे प्रिय नहीं है जैसे तुम। जैसे वैष्णवकी निन्दा करने वालेका विद्या, तप, कुल सब विफल हैं भगवान् भी उसकी पूजा स्वीकार नहीं करते। वैष्णवके नृत्यसे पृथिवी अपनेको धन्य मानती है। वैष्णवकी दृष्टि मात्रसे दशों दिशाओंके पाप क्षय होते हैं। ऐसे महाभागवत श्रीवास पण्डितकी तुम पापीने निन्दा की है। केवल कुष्ट ज्वालासे ही तुम्हारा छुटकारा होने वाला नहीं है, अभी तो धर्मराजके यहाँ तुम्हारा न्याय होगा। तुम मेरी दृष्टिसे दूर हो जाओ। मैं तुम्हारी निष्कृति नहीं कर सकता।"

श्रीवास पण्डित प्रभुके साथ आये थे और पास ही बैठे थे। प्रभुके मुखसे आत्म-प्रशंसा सुनकर उनके ऊपर सौ घड़ा पानी पड़ गया, लज्जासे सिर अवनत हो गया। भक्तवृन्द प्रभुके श्रीमुखकी वाणी सुनकर भीत और चकित हो गये। कुछ देर बाद श्रीवास पण्डित चुपके-से वहाँसे उठकर चले गये।

उस अभागे कुष्ट व्याधिग्रस्त विप्रने प्रभुकी कृपावाणी सुनकर अत्यन्त कातर कण्ठसे रोते-रोते पुनः उनके चरणोंमें आत्म निवेदन किया—"हे प्रभु! मैंने प्रमत्त होकर वैष्णव-निन्दाका कार्य किया, उसका पर्याप्त फल पा लिया, अब आप ही मेरा उद्धार करें, मैं आपनी शरण हूँ। इसका जो भी प्रायश्चित हो आप मुझे बतावें।"

पतित-पावन प्रभुने उस हतभाग्य विप्रके दैन्य और आर्त्तभावको देखकर समझा कि इसके मनमें निजकृत पूर्व दुष्कर्मके लिए वस्तुतः विषम अनुतापाग्नि प्रज्वलित हो रही है। निष्कपट भावसे निजकृत पापकी बात स्वीकार करके उसके लिए कातर हृदयसे पाश्चात्ताप करनेपर पापका वास्तविक प्रायश्चित्त हो जाता है। उस हिसाबसे उस दुराचारी विप्रके पापका प्रायश्चित्त हो गया था। परन्तु धर्मरक्षक, शिक्षागुरु श्रीगौर भगवान्‌ने उसके वैष्णव-निन्दारूपी महापापकी अन्य प्रकारकी प्रायश्चित्तकी व्यवस्थाकी। वे उस विप्रको सम्बोधन करके बोले—"वैष्णव-निन्दा करने वालेके लिये यहाँ जो भी दुःख भोगना पड़े, उसके अतिरिक्त चौरासी हजार प्रकारकी यम-यातना एकके वाद एक करके भोगनी पड़ती हैं। जिसके प्रति अपराध हुआ हो उसका कृपा-प्रसाद प्राप्त होनेपर ही अपराधसे निष्कृति हो सकती हैं। तुमको उपाय बता दिया। श्रीवास पण्डित यदि तुम्हारे ऊपर कृपा करके क्षमा कर दें तब ही तुम्हारा दुःखसे छुटकारा हो सकता है। पण्डित श्रीवास बड़े सरल शुद्ध स्वभावके हैं। उनके पास जाओ तो वे क्षमा करके तुम्हारा निस्तार कर सकते हैं।"

भक्तगण प्रभुकी उपदेश वाणी सुनकर जय ध्वनि करने लगे। विप्र मर्म-व्यथासे कातर स्वरमें रोते-रोते श्रीअद्वैतके आङ्गनमें पड़कर धूलमें लोटने-पोटने लगा। सब भक्तगणने उसके ऊपर कृपादृष्टि डालकर श्रीवास पण्डितको दिखला दिया। तब विप्रने सब भक्तोंको दण्डवत् प्रणाम करके, प्रभुकी चरण वन्दना करके श्रीवास पण्डितके पास जाकर उनका चरण पकड़कर कातर स्वरसे उनसे क्षमा प्रार्थना की। परम उदारचरित श्रीवास पण्डितने उस कुष्ट व्याधिग्रस्त विप्रको पास बैठाया, उसके साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके प्रसन्न मनसे उसके पूर्व अपराधको क्षमा किया। वह हतभाग्य विप्र तब वैष्णव प्रसादसे कुष्ट रोगसे मुक्त होकर हरिनाम महामन्त्रमें दीक्षित होकर परम वैष्णव हो गया।

शिक्षा गुरु श्रीगौर भगवान्‌ने उस विप्रको उपलक्ष्य करके वैष्णव निन्दक महापापीगणको जो उपदेश दिया, वह वैष्णवमात्रको हृदयमें स्वर्णाक्षरोंमें लिख लेने योग्य है। वैष्णव निन्दा महापाप है। जिसकी निन्दाकी जाती है, उनके सिवा अन्य कोई इस महापापसे उद्धार नहीं कर सकता। श्रीमद्‌भागवतमें अम्वरीष राजाके उपाख्यानमें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने ठीक यही बात दुर्वासा ऋषिको कही थी। श्रीश्रीगौरकृष्ण एक तत्त्व हैं, यह लीलासे ही जाना जाता है।*

माधवेन्द्र पुरीकी पुण्यतिथि

कृष्ण-भक्त-शिरोमणि श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोस्वामीका नाम कृपालु पाठकवृन्द अवश्य ही जानते

* कुछ लोगोंका मत है कि वह विप्र 'वैष्णव-वन्दना' ग्रन्थके लेखक देवकीनन्दन दास थे। ४१६ गौराब्दकी अन्तिम संख्यामें श्रीविष्णु-प्रिया पत्रिकामें इस सम्बन्धमें भक्तवर श्रीमृणाल कान्ति घोषने कुछ विचार किया है।
—ग्रन्थकार

होंगे। इस महापुरुषके शिष्य श्रीपाद ईश्वर पुरी गोस्वामी थे, जिनसे लौकिक आचारमें श्रीगौर भगवान्ने गयाधाममें मन्त्रदीक्षा ग्रहण की थी। श्रीअद्वैत प्रभुने श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी गोस्वामीसे मन्त्रदीक्षा ग्रहण की थी। श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने इस कृष्णभक्त शिरोमणि महापुरुषका गुण कीर्तन करते हुए लिखा है—

माधवेन्द्र पुरीर प्रेम—अकथ्यकथन।
मेघ-दरशने मूर्च्छा हय सेइ क्षण॥
कृष्णनाम शुनिलेइ करेन हुङ्कार।
दण्डेके सहस्र हय कृष्णेर विकार॥
देखिया ताँहार विष्णु-भक्तिर उदय।
बड़ सुखी हइला अद्वैत महाशय॥
तार ठाञि उपदेश करिला ग्रहण।
हेन मते माधवेन्द्र-अद्वैत-मिलन॥

चै. भा. अं. ४.४३३-४३६

कृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर इन महापुरुषने एक दिन प्रेमावेगमें कहा था—

सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु भवते
ओः स्नान तुभ्यं नमो
भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ
नाहं क्षमः क्षम्यताम्।
यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलो-
त्तं सस्य कंसद्विषः
स्मारं स्मारमघं हरामि तदलं
मन्ये किमन्येन मे॥

श्रीअद्वैत प्रभुने अपने गुरुदेवकी तिरोभाव-पुण्यतिथिकी आराधना करनेके लिए एक सुवृहत् आयोजन किया। दैवक्रमसे वह तिथि फाल्गुन कृष्णा द्वादशी प्रभुके छ दिनके शान्तिपुरके आवास कालके भीतर पड़ गयी। इससे श्रीअद्वैत प्रभुके आनन्दकी सीमा न रही। श्रीमन्महाप्रभु भी यह जानकर बड़े प्रसन्न हुए।

शचीमाताने इस महा महोत्सवमें रन्धनका भार अपने ऊपर लिया। वैष्णव गृहिणीगण उनकी सहकारिणी बनी। श्रीनित्यानन्द प्रभुने स्वयं वैष्णव-सेवाका भार लिया। किसीने चन्दन घिसनेका भार लिया। किसीने माला गूँथनेका भार लिया। कुछ लोग गङ्गाजल लानेके लिए प्रस्तुत हो गये। शेष लोग स्थानकी सफाईमें लग गये। कुछ भक्त लोगोंने निमन्त्रित वैष्णवोंके चरण प्रक्षालनका भार लिया।

अद्वैत भवनके आँगनमें सुन्दर वृहत् चन्द्रातप सुशोभित हो उठा। ध्वजा-पताका, पत्र-पुष्पसे प्राचीर, गृहद्वार और पथ सजा दिये गये। भण्डारी बने श्रीवास पण्डित। पुण्य तिथिकी पूजाके आचार्य बने श्रीपाद चन्द्रशेखर आचार्यरत्न। उच्च संकीर्तन ध्वनिसे अद्वैत भवन पूर्ण हो गया। कीर्तनीय दलके प्रधान बने मुकुन्द। शङ्ख, घण्टा, मृदङ्ग, मञ्जरी आदिकी ध्वनिसे शान्तिपुर मुखरित हो उठा। अद्वैत भवन वैकुण्ठवासमें परिणित हो गया।

सीता ठाकुरानीका लक्ष्मीका भाण्डार है। अनेक प्रकारके अन्न, शाक-सब्जी, फल-फूल, पान-सुपारी, नारियल आदि सामग्रीकी कोई गणना नही। प्रभु स्वयं जाकर परमानन्द पूर्वक भाण्डारकी सजावटको देखकर प्रसन्न हो उठे।

श्रीगौर भगवान् यह सब अलौकिक द्रव्यसम्भार देखकर विस्मित होकर बोले—

'ए सम्पत्ति मनुष्येर नय।
'आचार्य महेश' जेन मोर चित्ते लय॥
मनुष्येरो एमत कि सम्पत्ति संभवे।
ए सम्पत्ति सकले संभबे महादेवे॥
बूझिलाङ—आचार्य महेश अवतार।
एइ मत हासि प्रभु बोले बार-बार॥

चै. भा. अं. ४.४६६-४६८

इस बहाने प्रभुने अपने श्रीमुखसे श्रीअद्वैत-तत्त्वको प्रकट किया। शिवावतार शान्तिपुरनाथको

किस वस्तुका अभाव हो सकता था ? साक्षात् शिवसुन्दरी योगमाया जिनकी गृहिणी हैं उनके घरमें लक्ष्मीका भाण्डार हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

प्रभु भाण्डारकी सजावट देखकर कीर्तन-स्थलमें आये। उनको देखते ही भक्तवृन्द परानन्दमें विह्वल होकर उच्च कीर्तन करने लगे। हरि-हरि ध्वनिसे गगन-मण्डल परिपूर्ण हो गया। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

सर्व वैष्णवेर अङ्ग चन्दने भूषित ।
सभार सुन्दर वक्ष—मालाय पूर्णित ।।
सभेइ प्रभुर पारिषदेर प्रधान ।
सभे नृत्य गीत करे प्रभु विद्यमान ।।
महानन्दे उठिल श्रीहरिसंकीर्तन ।
जे शुनि पवित्र करे अनन्त भुवन ।।

चै. भा. अं. ४.४८६-४८८

श्रीनित्यानन्द प्रभु वाल्य भावमें विह्वल होकर प्रेमानन्दमें उद्दण्ड नृत्य करने लगे। हरिदास ठाकुरने भी अद्भुत नृत्य किया।

श्रीअद्वैत प्रभुने स्वयं नाना भावभङ्गी करके कटि हिला-हिलाकर मधुर नृत्य लिया। सबके अन्तमें श्रीगौराङ्ग सुन्दरने नयनरञ्जन मधुर नृत्यविलास रङ्ग प्रदर्शित किया। सारी भक्त-मण्डलीके बीचमें खड़े होकर आजानुलम्बित भुजयुग्म ऊपर उठाकर नाना प्रकारकी भावभङ्गीके साथ प्रभुने जो नयनरञ्जन मधुर नृत्य किया, उसे देखकर सब लोग प्रेमानन्दमें मग्न हो गये। अद्वैत भवनमें प्रेमानन्दका तफान उठा। भुवन मङ्गल हरिध्वनिसे जगत् पूर्ण हो गया। यह मधुर हरिध्वनि जिसके कानोंमें प्रविष्ट हुई, उनका भवबन्धन टूट गया।

अपराह्न-पर्यन्त उच्च सङ्कीर्तन होता रहा। श्रीअद्वैत प्रभुने तब सबकी अनुमति लेकर भोजन महोत्सवका अनुष्ठान किया। बहुतसे लोगोंने क्षणभरमें सारा प्रबन्ध कर दिया। श्रीमन्महाप्रभु अपने पार्षदोंके साथ आङ्गनमें भोजन-पंक्तिमें बैठे। भक्तगण उनको घेरकर बैठ गये।

बसिलेन महाप्रभु करिते भोजन ।
मध्ये प्रभु—चतुर्दिके सर्वभक्तगण ।।
चतुर्दिके भक्तगण जेन तारामय ।
मध्ये कोटिचन्द्र जेन प्रभुर उदय ।।

चै. भा. अं. ४.४९७,४९८

प्रभु भोजनमें बैठकर भजन कर रहे थे। श्रीपाद माधवेन्द्र गोस्वामीकी कृष्णभक्ति मूलक कहानी कह रहे हैं और भक्तवृन्द सुन रहे हैं। वैष्णवके भोजनमें भी भजनकी विधि है। भोजन भी चल रहा है, और साथ ही भजन भी हो रहा है। इस प्रकारका अन्य कोई सम्प्रदाय नहीं है। पुरी गोस्वामीका गुण वर्णन करते हुए प्रभु बोले—श्रीमाधवेन्द्र पुरीकी आराधना तिथिमें प्रसाद ग्रहण करनेसे गोविन्दमें भक्ति होती है।"

इस प्रकार अपरूप प्रेमरङ्गमें प्रभुने भक्तवृन्दके साथ भोजन-लीला समाप्त की। हजारों लोग इस महामहोत्सवमें प्रसाद पाकर कृतार्थ हो गये।

प्रभु आचमन करके अब दिव्यासनपर बैठे तो श्रीअद्वैत प्रभुने राशि-राशि माल्य-चन्दन ला करके प्रभुके सामने रक्खा। श्रीगौर भगवान्ने सबसे पहले श्रीनित्यानन्द प्रभुके गलेमें माला डाल दी, अपने हाथसे उनका सर्वाङ्ग सुगन्धित-चन्दनसे चर्चित किया। उसके बाद एक-एक करके सारे वैष्णवोंको प्रभुने अपने हाथसे चन्दन-माला दी। प्रभुके श्रीहस्तका चन्दन-माला-प्रसाद पाकर वैष्णवगण कृतार्थ होकर आनन्द सिन्धुमें डूबने उतराने लगे। श्रीअद्वैत प्रभुके मनमें आज प्रेमानन्दका तूफान आ गया। वे नृत्य करते ही रहे। प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखकर भावभङ्गीके साथ कटि हिला-हिलाकर मधुर नृत्य करते रहे। उनका नृत्य रुक ही नहीं रहा था। उनके नयनद्वय प्रभुके श्रीमुखचन्द्रमें

मानो लिप्त हो रहे थे। प्रभुके दर्शनके आनन्दमें विभोर होकर श्रीअद्वैत प्रभु अपने आपको भूलकर नाच रहे थे। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

किवा से आनन्द हैल कहिते ना जानि।

चै. भा. अं. ४.५०७

इस उत्सवके दूसरे दिन प्रभु गङ्गादास पण्डितको एकान्तमें बुलाकर बोले, "पण्डित! आप माताजीको लेकर पहले नवद्वीप जाँय, मैं पीछे आऊँगा।" गङ्गादास पण्डितने प्रभुके मनोभावको समझा। दुःखिनी श्रीविष्णुप्रिया देवी अकेली घरपर हैं, शचीमाताको और अधिक दिन शान्तिपुरमें रहना उचित नहीं है। प्रभु जननीको प्रणाम करके बोले, "माँ! तुम नवद्वीप चलो, मैं पुनः वहाँ तुम्हारे पादपद्मका दर्शन करके कृतार्थ होऊँगा।" शचीमाता अतिशय बुद्धिमती स्त्री थीं। उन्होंने प्रभुके मनके भावको समझ लिया। पुत्रके चन्द्रवदनके दर्शनके आनन्दमें विभोर होकर वह नदियाकी बात भूल गयी थी। प्रभुकी बात सुनकर श्रीविष्णुप्रिया देवी उनको याद आ गयी। उन्होंने और कोई बात न कहकर तत्काल गङ्गादास पण्डितके साथ नवद्वीपकी यात्रा की। कतिपय भक्तगण शचीमाताके साथ नवद्वीप लौट गये।

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुका नवद्वीपमें शुभागमन

नवद्वीप आदि सर्वदिके हैल ध्वनि।
"वाचस्पति घरे आइला न्यासी चूड़ामणि॥"

चै. भा. अं. ३.२७७

विद्या नगरमें विद्या वाचस्पतिके यहाँ महाप्रभु

प्रभुने श्रीअद्वैताचार्यसे विदा लेकर नौका द्वारा चुपचाप नवद्वीपकी यात्रा की। गम्भीर रातमें प्रभु अपने अन्तरङ्ग भक्तगणको साथ लेकर शान्तिपुरके घाटपर नौकापर आरूढ़ हुए। प्रभुकी इच्छा थी कि वे एकान्तमें कुछ दिन नवद्वीपमें वास करेंगे। दिनरात लोगोंकी भीड़से उनका चित्त अशान्त हो गया था, अतएव प्रभुने इस प्रकारकी व्यवस्था की। श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीवास पण्डित आदि अन्तरङ्ग भक्तगण प्रभुके इस सङ्कल्पको सुनकर हँसे, परन्तु कुछ बोल न सके।

नवद्वीपके प्रान्तरमें विद्या नगर है। वहाँ ही सार्वभौम भट्टाचार्यके भ्राता विद्यावाचस्पति निवास करते थे। वाचस्पति मिश्र घरमें सोये हुए थे, बहुत तड़के प्रभुने उनके द्वारपर जाकर मृदु मधुर स्वरमें उनको जगाया। प्रभुका मधुर स्वर वाचस्पतिके कानोंमें मानो श्यामकी बाँसुरीके समान बज उठा। वे सोये हुए थे। चकित होकर उठे, आँखें मलते-मलते द्वार खोलकर बाहर आकर देखा—

सर्व परिषद सङ्गे श्रीगौरांग सुन्दर।
आचम्बिते आसि उत्तरिला तार घर॥

चै. भा. अं. ३.२६५

प्रभुको देखते ही उनको इतना आनन्द हुआ जिसका वर्णन नहीं हो सकता। वे प्रेमानन्दमें विह्वल होकर धूलिमें लोटकर प्रभुके चरणोंमें जा गिरे। भक्तवत्सल प्रभुने उनको श्रीहस्तसे उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए उनके कानोंमें चुपकेसे कहा—"मेरा व्रज-दर्शन करनेका विचार है। मैं यहाँ रहकर कुछ दिन गङ्गा-स्नान करना चाहता हूँ। मुझे एकान्तमें कोई स्थान रहनेके लिए दे दो।"

वाचस्पतिके मुखसे बात नहीं निकल रही थी। उनके नयनद्वयसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। अति कष्टपूर्वक परम विनीत भावसे हाथ जोड़कर उन्होंने प्रभुसे कहा—"मेरे सारे वंशका अहो भाग्य जो तुम्हारी चरण-धूलि यहाँ पहुँची। मेरा घर-द्वार सब तुम्हारा है। यहाँ सुखपूर्वक रहो, किसीको पता नहीं लगेगा।"

वाचस्पतिकी बात सुनकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। उनके घर वे एकान्तमें रह सकेंगे, यह सुनकर प्रभुका श्रीवदन प्रसन्न हो उठा। उन्होंने प्रेमावेशमें वाचस्पतिको पुनः प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन किया।

सूर्यनारायणको क्या कभी कोई आच्छादन कर सकता है। प्रभुके विद्यानगरमें आनेका समाचार बिजलीके समान सारे नवद्वीपमें फैल गया। सबने सुना कि प्रभु विद्यानगरमें वाचस्पतिके घर पधारे हैं। सारा काम छोड़कर प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर उच्च हरिध्वनि करते-करते आबालवृद्ध वनिता सब लोग विद्यानगरकी ओर चल पड़े। भीड़के कारण मार्ग नहीं मिलनेसे लोग वृक्षोंके डाल, छोटे पौधे आदि तोड़कर जिधरसे भी मार्ग मिला, जाने लगे। भीड़के कारण वन-बाग भी मार्ग बन गये।

लाखों-लाखों आदमी श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके दर्शनके लिए चले। सबने सुना था कि संन्यास ग्रहण करनेके बाद प्रभुकी महामहिमामयी यश-प्रतिष्ठा दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो गयी है। उनके सामने श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीका यश और भक्ति प्रभा भी मलिन हो गयी है। उन्होंने यह भी सुना था कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका संन्यास रूप परम ज्योतिर्मय और अतिशय अपरूप है। उस अपरूप रूपके प्रभावमें जगत्‌के जीव परम मुग्ध हो रहे हैं, महा पाखण्डीका भी मन भक्ति-रसमें द्रवित हो रहा है। वे लम्बी साँस लेते विद्यानगरकी ओर चले जा रहे हैं।

जानेवालोंमें कोई कह रहा है—"मैं उनके चरण पकड़कर—मेरा बन्धन नष्ट हो जाय—यह वर मागूँगा।" कोई कहता है—"मैं नेत्र भरकर देख लूँ। इसीमें सब कुछ मिल जायगा, माँगना क्या है।" कोई कहता है—"उनकी महिमा जाने बिना मैंने उनकी कितनी निन्दाकी है। अब उनके चरण-कमल हृदयमें धारण करके मागूँगा कि किस प्रकार मेरा पाप दूर हो।" कोई कहता है—"मेरा पुत्र बड़ा जुआरी है, वह जुआ खेलना छोड़ दे—यह वर मैं मागूँगा।" कोई कहता है—"मैं तन-मनसे यही वर माँगता हूँ कि उनके चरण-कमलोंका कभी विस्मरण न हो।"

विद्यानगर जानेमें उन दिनों गङ्गाका एक घाट पार करना पड़ता था। यह भीषण लोगोंकी भीड़ जब पार जानेवाले घाटपर आकर उपस्थित हुई, तब घाटके नाविक बड़ी विपदमें पड़े। क्योंकि सहस्र-सहस्र लोग एक-एक नावमें चढ़ने लगे, जिससे बड़ी-बड़ी नाव भी टूटने लगी। पार जानेवालोंमें जो सम्पन्न थे, नाववालोंको वस्त्रादि पुरस्कार देकर पार होने लगे। कोई घड़ेके सहारे, कोई केलेके वृक्षके सहारे तैरकर पार होने लगे। कोई अपने बाहुबलसे तैरकर पार जाने लगे।

गङ्गाके दूसरे पार विद्यानगर था। वाचस्पति महाशय विद्यानगरमें एक बड़े आदमी थे। उनका मान-सम्मान, और यश नवद्वीपमें सर्वत्र व्याप्त था। यहाँ जो लाखों-लाखों कण्ठोंसे हरिध्वनि हो रही

थी, इसे वे घर बैठे सुन रहे थे, इसका कारण भी उनको जाननेसे बाकी न रहा। नदीके घाटका महा कोलाहल भी उनके कानोंमें गया। उन्होंने स्वयं गङ्गाके घाटपर जाकर यातायातका सुन्दर प्रबन्ध कर दिया।

परन्तु उन्होंने देखा कि लोग नौकाकी प्रतीक्षा नहीं कर रहे हैं। जिसको जो सुविधा जान पड़ती है, वह वैसे ही करके पार हो रहा है। प्रभुके दर्शनकी लालसामें उनका मन इतना व्यग्र हो रहा है कि उनको अपने प्राणका उतना मोह नहीं है। यह देखकर वाचस्पति महाशयकी आँखोंमें जल आ गया। वे प्रभुकी अपूर्व महिमा और अनुपम गुण स्मरण करके रोते-रोते घर लौटे। इधर वह भीषण जनसमूह गङ्गा पार करके क्रमशः विद्यानगरमें घुस गया। वहाँ, 'न स्थानं तिलधारणं' जैसी हालत थी।

वाचस्पति महाशय घरमें आकर सोचने लगे कि प्रभुको वचन दिया हूँ, उनको छिपाकर रक्खूँगा। परन्तु यह क्या मेरे लिए साध्य है? अब लाखों आदमी मेरा घर घेर लेंगे, लाखों कण्ठसे उच्च गगनभेदी हरिहरि ध्वनि ब्रह्माण्डको विदीर्ण कर रही है। इनको रोकना मेरे बशका नहीं है। सूर्यका आलोक जैसे लोप होने वाला नहीं, हमारे घरमें प्रभुका आगमन भी उसी प्रकार छिपानेकी वस्तु नहीं है।

प्रभु एक घरमें भक्तवृन्दको लेकर कृष्ण-कथा रस-रङ्गमें मग्न हैं। इतने लोगोंका कोलाहल उनके कानोंमें प्रवेश नहीं कर रहा है। परन्तु गगनभेदी उच्च हरिध्वनि सुनकर वे चकित और विचलित हो उठे। हरिनाम सुनकर वे प्रेमानन्दमें पुलकिताङ्ग हो उठे। सर्वज्ञ प्रभु जान गये कि नवद्वीपके लोग उनके दर्शनकी लालसासे विद्यानगरमें आ गये हैं। वाचस्पति महाशय वहाँ नहीं थे। प्रभुके भयसे वे बाहर दालानमें बैठे थे। उसी समय वह भयानक भीड़ उनके द्वारपर आकर खड़ी हो गयी। वाचस्पति महाशयको देखतेही बहुतसे लोग उनका चरण पकड़कर कहने लगे—

परम सुकृति तुमि महाभाग्यवान्।
जार घरे आइला चैतन्य भगवान्॥
एतेके तोमार भाग्य के बलिते पारे।
एखने निस्तार कर आमा सभाकारे॥
भवकूपे पतित पापिष्ठ आमि सब।
एक ग्रामे—ना जानिल तान अनुभव॥
एरवने देखाओ तान् चरणयुगल।
तबे आमि पापी सब पाइये सकल॥

चै. भा. अं. ३.३०६-३०९

उन सब लोगोंके निष्कपट दैन्य और आर्त्तभावको देखकर विद्या वाचस्पति महाशय प्रेमावेगमें आकुल होकर रो पड़े। उनके साथ बहुत आदरपूर्वक प्रभुके सम्बन्धमें बातें करते रहे। धीरे-धीरे लोगोंकी भीड़ और अधिक बढ़ने लगी। उच्चतरसे उच्चतम गगनभेदी स्वरमें हरिध्वनि दिङ्मण्डलमें व्याप्त हो गयी। हरिध्वनि सुनकर भक्तवत्सल प्रभु घरके भीतर छिपे न रह सके। वे परम आनन्दपूर्वक वाचस्पति महाशयके घरके सामने रास्तेमें आकर खड़े हो गये। उनका अपरूप संन्यास रूप महाऐश्वर्यमय था।

प्रभुके तत्कालीन अपरूप रूपका प्रसङ्ग उठाकर श्रीचैतन्य भागवतकार लिखते हैं—

कि से श्रीविग्रहेर सौन्दर्य मनोहर।
से रूपेर उपमा—सेइ से कलेवर॥
सर्वदाय प्रसन्न श्रीमुख विलक्षण।
आनन्दधाराय पूर्ण दुइ श्रीनयन॥
भक्तगणे लेपियाछे सर्वांगे चन्दन।
मालाय पूर्णित वक्ष गजेन्द्र गमन॥
आजानुलम्बित दुइ श्रीभुज तुलिया।
'हरि' बलि सिंहनाद करिल गर्जिया॥

चै. भा. अं. ३.३१५-३१८

प्रभुके संन्यास रूपका अपूर्व सौन्दर्य और माधुर्य देखकर लोग भूमिपर विलुण्ठित होकर दण्ड-प्रणाम करने लगे और हरि-हरि बोलते हुए, दोनों हाथ ऊपर उठाकर नृत्य करने लगे, तथा प्रार्थना करने लगे—"प्रभु ! मुझ पापीका उद्धार करो।"

पतित पावन कृपासिन्धु श्रीगौर भगवान्‌ने अपनी आजानुलम्बित दोनों श्रीभुजाओंको ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे हरिध्वनि करके सब लोगोंको आशीर्वाद दिया—

—"कृष्णेते हउ मति।
बोल कृष्ण, भज कृष्ण, शुन कृष्ण नाम।
कृष्ण हउ सभार जीवन धन प्राण।।

चै. भा. अं. ३. ३२२, ३२३

यह शुभाशीर्वाद सुनकर सब लोग प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करने लगे। वे लोग हाथ जोड़कर प्रभुकी स्तुति करने लगे—"जगत्‌के उद्धारके लिए तुम गुप्त रूपमें नवद्वीपमें शचीके घरमें अवतीर्ण हुए हो। हम सब पापिष्ठ तुमको न पहचानकर अन्धकूपमें पड़े हैं। तुम करुणा-सागर परहितकारी हो। ऐसी कृपा करो जिससे फिर तुमको न भूलें।"

इस प्रकार सब लोग करुणासागर महाप्रभुकी स्तुति-नति करने लगे। क्रमशः भीड़ बढ़ती गयी, यह देखकर प्रभु पुनः घरमें जाकर छिप गये। तब सब लोग मनमें दु;खित होकर हाहाकार करने लगे। वाचस्पति महाशयको पकड़कर तब वे लोग खीचा-खींची करने लगे। वे विषम विपत्तिमें पड़कर प्रभुके चरणाश्रित हुए। करुणामय परम दयालु प्रभु पुनः बाहर प्रकट हो गये। और अधिक उच्च कण्ठसे वारम्वार हरिध्वनि सुनायी पड़ी। प्रभुने आजानुलम्बित बाहुयुगल ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे हरिध्वनि करके सब लोगोंके ऊपर शुभ दृष्टिपात किया, तब सब लोगोका सारा दुःख दूर हो गया।

गुप्त रूपसे कुलिया नगरको प्रस्थान

नवद्वीपसे लगातार लोग आ रहे थे। गङ्गाके घाटपर, किनारे जलमें, नौकापर सर्वत्र केवल अगणित नर मुण्ड दिखलायी पड़ते थे। विद्यानगर छोटा-सा गाँव था, बहुत-से लोगोंका जमघट बढ़नेसे उसके ध्वंसका-सा उपक्रम होने लगा। यह देखकर प्रभुने चुपके-से वह स्थान छोड़नेका सङ्कल्प किया। वाचस्पति महाशयको न कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा कुछ अन्तरङ्ग भक्तोंको साथ लेकर रातमें प्रभु कुलिया ग्राममें माधव दासके घर चले आये। वाचस्पतिने यह स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि प्रभु इस प्रकार छल करके चुपचाप चलें जाँयगे।

रातमें नवद्वीपसे आये हुए सब लोग विद्यानगरमें रहे। कोई लौटकर नवद्वीप नहीं गया। प्रातःकाल प्रभुका दर्शन करनेकी इच्छासे इतना कष्ट सहते हुए भी वे लोग रह गये। इधर रातमें सबसे छल करके प्रभु चुपकेसे कुलिया ग्राममें चले गये। दूसरे दिन प्रभातमें वाचस्पति महाशयके द्वारपर पुनः लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। वाचस्पति एक तो प्रभुके विरहमें मर रहे थे, उसपर सहस्रों-सहस्रों आदमी उनको प्रभुका दर्शन करानेके लिए परेशान करने लगे। वे रोते-रोते बोले—"प्रभु बिना कुछ कहे चुप-चाप न जाने कहाँ चले गये।" किसीने उनकी बातपर विश्वास नहीं किया, किसीने उनके मनके दुःखको नहीं समझा। तब वे ऊपर मुँह करके आकाशकी ओर देखकर उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे, और हाथ जोड़कर श्रीगौर भगवान्‌को पुकारने लगे—"हे गौराङ्ग ! हे कृपानिधे ! हे करुणामय ! हे भक्तवत्सल ! मेरी इस विपद्‌से रक्षा करो। एक बार दर्शन दो।"

सब सोच रहे थे कि प्रभुको उन्होंने छिपा रखा है। प्रभु एकान्तमें बैठे हैं, हरिध्वनि सुनते ही बाहर प्रकट होते हैं, यह सोचकर सब लोग उच्च कण्ठसे बारम्बार हरिध्वनि करने लगे। परन्तु प्रभु

बाहर नहीं निकले। वाचस्पतिने रोते-रोते सबको समझाया—"मैं तुम लोगोंको यह बिल्कुल सत्य बात कह रहा हूँ कि मुझ पापीको छोड़कर न जाने प्रभु कितनी रात्रिमें किस ओर चल दिये।

कौन उनकी बातका विश्वास करता? सबको विश्वास था कि प्रभु भीड़ देखकर छिप गये हैं। कोई-कोई अधीर होकर वाचस्पति महाशयको अकेलेमें खींच ले जाकर कानों-कानोंमें कह रहे हैं—"केवल मुझको दर्शन करादो, मैं अकेला हूँ।

"प्रभुका दर्शन कराओ, हम लोग एक बार मात्र उनके चरणोंका दर्शन करके घर लौट जाँयगे।" यह कहकर सब लोग वाचस्पति महाशयको परेशान करने लगे। वे जितना ही विनय पूर्वक उनको समझाते, उतना ही वे लोग उत्तेजित होते जाते थे। अन्तमें वे लोग उनको ऊँची नीची बात कहनेसे भी बाज न आये। कोई अत्यन्त रुष्ट होकर मानसिक दुःखसे उनकी ओर मुँह फेर कर बोला—"वाचस्पति महाशय! तुमने न्यासीवरको घरमें छिपा रक्खा है और हम लोगोंको झूठ बोलकर धोखा दे रहे हो। तुम अपने अकेलेका उद्धार करके बड़े सुखी होओगे। हमारा भी उद्धार हो, इसमें तुमको क्या दुःख है?"

कोई बोला—"स्वजनका तो यही धर्म है कि दया करके सबका उद्धार करे, केवल अपना ही भला न देखे।" कोई बोला—"अच्छा मिष्ठान्न लाकर अकेले भोगना अपराध माना जाता है" दूसरा कोई बोला—"इनके हृदयमें कपट लगता है, दूसरेका उपकार नहीं होने देना चाहते।"

एक तो वाचस्पति महाशय प्रभुके विरहमें मर्माहत थे, उसके ऊपर उनके प्रति इस प्रकार अत्याचार और उत्पीड़न होनेसे वे अत्यन्त कातर होकर कातर कण्ठसे दयामय प्रभुको पुकारने लगे—'हे गौराङ्ग! हे विपद-भञ्जन, शरणागत पालक! तुम्हारे चरणोंमें मैंने क्या अपराध किया है, यह कुछ भी मेरी समझमें नहीं आता। तुम कृपानिधान हो, मैं भक्तिहीन मूढ़ पामर हूँ। तुम्हारे चरणोंमें मैं सदाका अपराधी हूँ। शरणागतको चरणसे न ठेलो। विपद्-भञ्जन दयानिधे! दया कर इस विपदसे मेरी रक्षा करो।"

भक्तकी कातर कण्ठध्वनि भक्तवत्सल प्रभुके कानोंमें पहुँची। उसी समय एक ब्राह्मणने आकर वाचस्पतिके कानोंमें कहा—"श्रीचैतन्य देव तो कुलियानगर पहुँच गये हैं, अब जो उचित हो सो करो।"

वाचस्पति महाशयका प्राण बचा। उनका निवेदन प्रभुके कानोंमें पहुँचा है, कृपा करके प्रभुने इस विप्रके द्वारा संवाद भेजा है, यह सोचकर वे प्रेमानन्दमें व्याकुल होकर रोने लगे। श्रीभगवान्‌की कृपानुभूति इसी प्रकार समझी जाती है। भक्तगणको श्रीभगवान्‌ने अपनी कृपानुभूतिकी शक्ति दी है, इसी कारण वे प्रत्येक कार्यमें उस करुणानिधिकी करुणाकी अनुभूति करके प्रेमानन्दमें मुग्ध हो जाते हैं, श्रीभगवान्‌की कृपानुभूतिकी हृदयमें स्फूर्त्ति हुए बिना उनके चरणोंमें दृढ़ भक्ति नहीं होती। जीवकी जो कुछ सुख-सम्पद है सब श्रीभगवान्‌की कृपासे हैं, उनके प्रत्येक कार्यमें करुणामय परमेश्वरकी अपार करुणा-राशिका परिचय मिलता है। महा दुःखके बीच भी उनकी अपार करुणा दृष्टिगोचर होती है, शोकके बीच भी भगवान्‌की करुणाराशि विद्यमान् होती है। ऐसा न होता तो शोक और दुःखमें पड़कर जीव प्राणसे हाथ धो डालता। नैराश्यके बीचमें आशाका आलोक देकर श्रीभगवान् अपने अपार करुणा-कणका विस्तार करते हैं। यह सब उनकी कृपाका निदर्शन है। जिसमें इस कृपाकी अनुभूतिकी शक्ति है, वे ही सच्चे साधक और भक्त हैं। वाचस्पति महाशय परम भक्त थे। श्रीगौराङ्ग उनके जीवन-धन थे, साधन-धन थे। ये अपने जीवन-धन श्रीगौर भगवान्‌को कातर-कण्ठसे पुकारते थे, तत्काल प्रभु विप्ररूप धारण करके उनके सामने

प्रकट ही गये, और कह दिया कि वे कुलिया नगरमें माधव दासके घर हैं। वाचस्पति महाशयने उस विप्रके शुद्ध कलेवरमें श्रीगौराङ्गका दर्शन किया। उनकी वार्त्तामें प्रभुकी कण्ठध्वनि सुनी। प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर, उस विप्ररूपी भक्त-बाञ्छाकल्पतरु श्रीगौर भगवान्‌को वक्षःस्थलमें धारण करके प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन द्वारा उनके प्राण शीतल हो गये, हृदय जुड़ा गया। प्रेमानन्दमें उनका बाह्यज्ञान जाता रहा। किन्तु प्रभुकी कृपासे तत्काल प्रकृतिस्थ होकर सबसे विनयपूर्वक कहने लगे—"तुम लोग वास्तविकता जाने बिना व्यर्थ मुझपर दोषारोपण कर रहे हो कि मैंने प्रभुको छिपा रक्खा है। अब तुम्हारे सामने इस ब्राह्मणने आकर बताया है कि प्रभुतो कुलिया नगर पहुँच गये। चलो सब लोग वहाँ चलें।"

कुलियानगरका आकर्षण

इतना कहकर वाचस्पति महाशय सबके साथ कुलियाकी ओर चले। विद्यानगरसे कुलिया ग्राम जानेमें पुनः गङ्गा पार करना पड़ता है। नवद्वीपमें सबने सुना कि प्रभु कुलियामें आ गये हैं तो वहाँके लोग भी कुलियाके लिए चल पड़े। नवद्वीपके दूसरे पार कुलिया ग्राम है।

किं वा मूकः किन्नु पंगुः किमन्धः
किं वा वृद्धः किं शिशुः किं स्त्रियो वा।
ये ये सर्वे श्रीनवद्वीप भूस्थाः
प्रीत्युद्रेकास्ते तत्र वाथ जग्मुः॥
यावत्तस्थौ तत्र गौराङ्ग चन्द्र—
स्तावत् सर्वे सर्वतो लक्ष कोट्यः।
गाढ़ोत्कण्ठा निर्भरार्त्ताः समीयु—
र्द्रष्टुं तं ते किं स्त्रियः किं पुमांसः॥

श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य। २०.२७,२८

विद्यानगरमें जितनी भीड़ एकत्र हुई थी उससे कई गुना अधिक भीड़ कुलिया नगरमें जमा हो गयी। न मालुम कहाँसे इतनी नौकाएँ लोगोंको पार ले जानेको आ गयीं, कितनी ही नौकाएँ अत्यधिक बोझके कारण गंगामें उलट गयी। फिर भी लोग तैर कर पार हो गये, कोई भी डूबा नहीं। कितने ही लोग अपने आप तैर कर गंगा पार करके कुलिया पहुँचे। कुलियाके आस-पासके खेत, गली, बाजार सब लोगोंकी भीड़से खचाखच भर गये।

यह भयानक भीड़-भाड़, प्रभुके दर्शनकी आकांक्षाके लिए उनकी अद्‌भुत प्रेम चेष्टा, दारुण उत्कण्ठा श्रीगौर भगवान्‌की सर्वचित्तकर्षक अद्‌भुत प्रभावका पूर्ण पपिचायक है।

ठाकुर वृन्दावनदासने लिखा है—"कुलियाके आकर्षणका वर्णन सहस्रवदन अनन्तदेव ही कर सकते हैं, और किसीकी सामर्थ्य नहीं। (चै. भा. अं. ३.३७३)।"

उन लोगोंमें चौदहों भुवनके लोग थे, तेतीस कोटि देवता थे, गन्धर्व-किन्नर, यक्ष-रक्ष, पिशाच-सभी थे। भगवान्‌की लौकिक लीला जीवोद्धारके लिए थी। इस कार्यमें वे भले बुरेका विचार नहीं करते थे। सर्व चित्त आकर्षण किये बिना वे श्रीभगवान् कैसे होते? सर्वचित्त आकर्षण करनेके कारण ही उनका नाम श्रीकृष्ण है। श्रीगौराङ्ग रूपमें स्वयं भगवान् नदियामें उदय हुए थे। सब जगत्‌के लोग नदियामें उनके चरण-कमलका दर्शन करनेके लिए एकत्रित हुए थे। सब देवगण, सब जीववृन्द, क्या ऊँच, क्या नीच, सभीको श्रीगौर भगवान्‌ने अपने चरण-कमलमें आकर्षण करके परम अद्‌भुत भगवद्-महिमाको जगत्‌में प्रकट किया था। कुलिया ग्राम ब्रह्माण्डमें परिणत हो गया। श्रीभगवान्‌की इच्छासे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डका कुलिया ग्राममें आविर्भाव हुआ है। यह श्रीभगवान्‌की नरलीलाकी महिमा है, इस भयानक जन संख्याको देखकर कुलिया ग्राममें यह अद्‌भुत और अलौकिक काण्ड देखकर श्रीगौर भगवान्‌की

महामहिमामयी महाशक्तिका प्रभाव, उनकी सर्वचित्ताकर्षक असीम और अनन्त गुणराशिकी महिमा समझी जा सकती है। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी भगवत्ताके सम्बन्धमें जिनके मनमें सन्देह है, वे प्रभुकी इस अपूर्व लीलाको शान्तिमें मन ही मन चिन्तन करके अपने सन्देहका निवारण कर लें, यह सुयोग न छोड़ें।

वाचस्पतिने लोगोंके साथ विद्यानगरसे दौड़ते-दौड़ते कुलिया ग्राममें आकर बहुत कष्टपूर्वक माधवदासके घरपर प्रभुका पता लगाया। प्रभुने सुना कि वाचस्पति आये हैं। उन्होंने उनको अकेले बुलाया।

वाचस्पति महाशयने लम्बे होकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते उनका स्तवन किया—"जिनने संसारके उद्धारके लिए चैतन्य-रूपसे प्रकट होकर संसार कूपमें गिरे हुए सबको तार दिया, उन कृपासिन्धु श्रीगौर सुन्दरके चरण-कमलोंमें मेरा चित्त जन्म-जन्ममें सर्वदा निवास करे। जो जगतके मनुष्योंको संसार-समुद्रमें मग्न देखकर कृपा करके निरन्तर प्रेमकी वर्षा करते हैं, ऐसे वे अतुल कृपामय धाम श्रीगौर सुन्दर मेरे हृदयमें निरन्तर स्फुरण हों (चै. भा. अं. ३.३८९-३९२)।'

प्रभुने वाचस्पतिको परम स्नेहपूर्वक बैठनेका आदेश देकर उनकी ओर करुण दृष्टिसे देखा। वाचस्पति महाशय खड़े ही रहे, और हाथ जोड़कर पुनः प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे दयामय ! तुम स्वच्छन्द परमानन्द रूप हो, तुम्हारे सब कार्य अपनी इच्छासे होते हैं। तुम अपनेको जनाओ, तभी कोई तुमको जान सकता है। सबलोग रहस्य जाने बिना मुझे दूषते हैं कि मैंने तुमको अपने घरमें छिपा रक्खा है। तुम एक क्षणके लिए बाहर सबको आकर दर्शन दे दो तो लोगोंके विश्वास हो कि मैं ब्राह्मण हूँ। असत्य नहीं बोलता।"

भक्तवत्सल प्रभु वाचस्पतिकी बात सुनकर प्रेमानन्दमें हँसने लगे। भक्तवाञ्छा कल्पतरु श्रीगौर भगवान्ने तत्काल भक्तकी वाञ्छा पूर्ण कर दी। वे माधव दासके घरसे बाहर निकल कर रास्तेमें खड़े हो गये। उनका अपरूप संन्यास रूप दर्शन करके सब लोग उन्मत्त होकर हरिध्वनि करने लगे। वह रूप कैसा था ?

"स्वर्णकी कान्तिको जीतने वाला प्रकाण्ड शरीर आजानुबाहु, गम्भीर नाभि प्रदेश, सिंहकी-सी ग्रीवा, हाथी सदृश स्कन्ध कमलके समान नेत्र, कोटि चन्द्र भी मुखकी समानता नहीं कर सकते, सुरङ्ग अधर, मुक्तापंक्तिको जीतने वाले दशन, कामदेवकी धनुषके समान भ्रूभङ्ग संचालन, चन्दन चर्चित सुन्दर वक्षःस्थल, सुन्दर कमरसें सुशोभित गैरिक वस्त्र, रक्त-कमल जैसे चरण-युगल, दसदर्पण जैसे दस नख मानो किसी राज्यके कोई राजपुत्र संन्यासी बने भ्रमण कर रहे हैं (चै. भा. अं. ४.२९-३३)।"

प्रभुके चरण-कमलमें सब लोगोंने दण्डवत् होकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अर्द्ध बाहु होकर प्रेमाश्रु-नयनसे बहुतसे लोग स्तुति-वन्दना करने लगे। हजारों-हजारों कीर्तनके दल तत्काल संगठित हो गये, वे लोग जगह-जगहपर अपनी मण्डली बनाकर कीर्तन करने लगे। उच्च ध्वनिसे दिगन्त कम्पित हो उठा। चारों ओर आनन्दका कोलाहल सुनायी देने लगा। सब लोग मानो आनन्दके समुद्रमें डूब गये। नवद्वीपके लोगोंके मनमें जो आनन्दका तरङ्ग उठा, उसके साथ ब्रह्मानन्दकी तुलना भी नहीं हो सकती।

ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि लोकोंके सुख जिस सुखकी कलाके लेशमात्र हैं, जिसके लेशमात्रसे योगीन्द्र-मुनीन्द्र मतवाले हुए डोलते हैं, उसी सुखका गौर भगवान् संन्यासी रूपसे पृथिवीपर प्रसारित करा रहे हैं। जो मायावश ऐसी भगवत्तामें विश्वास नहीं करते, उनका जन्म, कर्म, विद्या, ब्रह्मण्य आचार सब मिथ्या है (चै. भा. अं. ३.४०९-४१२)।

दुर्भाग्यवश स्वयं श्रीगौराङ्ग प्रभुकी भगवत्ताके विषयमें जिनको अविश्वास है, वे इस बातसे अवश्य

विरक्त होंगे, क्रोध करेंगे। परन्तु विरक्त होने या क्रोध करनेका कोई कारण नहीं है। प्रकृत गौर-भक्तोंका सङ्ग करनेपर उनका यह दुर्भाग्य दूर हो जायगा और सौभाग्यका उदय होगा प्रत्येक एकनिष्ठ गौर भक्त एक-एक ध्रुव-प्रह्लाद हैं। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने लिखा है—

तावद्ब्रह्म कथा विमुक्ति पदवी
तावन्न तिक्ती भवेत्
तावच्चापि विशृङ्खलत्वमयते
न लोकवेदस्थितिः।
तावच्छात्रविदां मिथः कलकलौ
नाना बहिर्वत्मसु
श्रीचैतन्यपदाम्बुज प्रियजनो
यावन्न दृग गोचरः।।

श्रीचैतन्य चन्द्रामृतम् १९.

अर्थात्—जब तक श्रीचैतन्य चरण-कमल प्रिय भक्तजन दृग्गोचर नहीं होते, तभी तक ब्रह्मविचार और मुक्तिमार्ग तिक्त नहीं लगते, तभी तक लोक मर्यादा और वेद मर्यादा विश्रृङ्खल नहीं जान पड़ती और तभी तक वहिर्मार्गमें पड़े, वेदान्तादि शास्त्रोंके पारस्परिक विवाद चलते हैं।

प्रकृत एकनिष्ठ गौरभक्तका सङ्ग किये बिना श्रीगौराङ्गको कोई नही पहचान पाता, श्रीगौराङ्ग तत्त्वको नहीं जान पाता, तथा श्रीगौराङ्गके अवतार तत्त्वमें विश्वास उत्पन्न नहीं होता। एक और बात है, व्रजके निगूढ़ रसके भण्डारी एकमात्र गौर भक्तवृन्द हैं। उनका आनुगत्य स्वीकार किए बिना, 'व्रज रस क्या वस्तु है तथा श्रीवृन्दावनका तत्त्व क्या है—यह कोई नहीं जान सकता। ऐसा श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने कहा है।

आचार्यं धर्मं परिचर्यं विष्णुं
विपर्य तीर्थान् विचार्य वेदान्।
विना न गौरप्रियपाद सेवां
वेदादि दुष्प्राप्यपदं विदन्ति।।

श्रीचैतन्य चन्द्रामृतम् २२

प्रभुको घेर कर सब लोग चारों ओर सहस्रों कीर्तन दल संगठित करके परम आनन्दपूर्वक कीर्तन करने लगे। सङ्कीर्तन-यज्ञेश्वर श्रीगौर भगवान् सङ्कीर्तनके आनन्दमें विभोर होकर सङ्कीर्तनके आगे-आगे आजानुलम्बित बाहुयुगल ऊपर उठाकर हुङ्कार गर्जन करते हुए हरिध्वनि कर रहे थे, और मधुर मनमोहन नृत्य कर रहे थे। प्रेमाश्रुधारामें उनका विशाल वक्षःस्थल डूब रहा था। सामने जिस कीर्तन-दलको देखते थे उसीके सामने खड़े होकर नयन-रञ्जन नृत्य करने लगते थे।

श्रीनित्यानन्द प्रभु संकीर्तनमें विह्वल होकर प्रभुका श्रीहस्त धारण करके उनको नचा रहे हैं, और स्वयं उनके साथ मधुर-नृत्य कर रहे हैं। सब लोग प्रभुके भुवन-मङ्गल अपूर्व नृत्य-विलासको देखकर सर्व पापसे मुक्त हो गये। प्रभु जब नवद्वीपमें श्रीवासके आङ्गनमें नृत्य-विलास करते थे तो घरका द्वार बन्द कर देनेका आदेश देते थे। बहुत साध्य-साधना करके भी कोई प्रभुके नृत्य-विलासका दर्शन नहीं कर पाता था। केवल उनके अन्तरङ्ग भक्त साथ रहते थे। प्रभुने कुलियामें अनन्त कोटि लोगोंके बीच जो अपूर्व नृत्य-विलास किया, उसके दर्शनसे अनन्त कोटि लोगोंका उद्धार हुआ। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने लिखा है—

कुलियार प्रकाशे जतेक पापी छिल।
उत्तम अधम नीच सबे पार हइल।

चै. भा. अं. ३.४२९

कुलिया ग्राममें माधव दासके घर प्रभु पाँच-छ दिन रहे। उनके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम सुनकर सब लोग परम वैष्णव हो गये। पाखण्डी, पतित, भक्तद्रोही सब लोग परम भागवत हो गये।

श्रीगौराङ्ग-लीला अति अपुर्व और अतिशय गम्भीर हैं। श्रीगौराङ्ग-लीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है—

एको दिवसेर जत चैतन्य विहार।

कोटि वत्सरेओ ताहा नाहि वर्णिवार ।।

चै. भा. अं. ४.५१०

कुलिया ग्राममें प्रभुका यह अपूर्व कीर्तन-विलास एक महा अद्‌भुत काण्ड था। ऐसा काण्ड किसी आदमीने पहले कहीं नहीं देखा था। उन लाखों आदमियोंमें-से किसीके भी मनमें कभी एक बार भी नहीं आया था कि ऐसा काण्ड भी कहीं उपस्थित हो सकता है। सबने एक मतसे स्वीकार कर लिया कि श्रीगौराङ्ग प्रभु साक्षात् भगवान् हैं, स्वयं भगवान् हैं, तथा उनका यह अपूर्व लीलारङ्ग श्रीभगवान्‌की अचिन्त्य लीला है, जिसका रहस्य समझनेकी शक्ति मनुष्यमें नही है, उन सब लोगोंमें अनेक महामहोपाध्याय पण्डित थे, बुद्धिजीवी व्यवसायी थे, आजन्म तपस्वी ब्रह्मचारी थे, विचार-निष्ठ ज्ञानालोक-सम्पन्न शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण थे। सब एक स्वरसे श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रका जय-कीर्तन करने लगे, सब लोग कीर्तनानन्दमें विभोर होकर उच्च-नीच, ज्ञानी-अज्ञानी, पण्डित-मूर्ख, चाण्डाल-ब्राह्मणकी भेदबुद्धि छोड़कर प्राणके आवेगमें प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध हो गये। यह अति अपूर्व दृश्य था। प्रेमधर्म जात-पातका विचार नहीं करता। श्रीगौराङ्ग प्रभुके द्वारा प्रवर्त्तित धर्मभाव अति उदार था, परम उदार था। सब जीवोंके प्रति समभाव, सार्वजनीन प्रेमभाव ही धर्मकी भित्ति है। जगत्‌के जीवोंको इस प्रेमधर्मकी शिक्षा देनेके लिए ही प्रभुने नदियामें अवतार ग्रहण किया। महाजन कविने साधसे लिखा हैं—

हाँसिये काँदिये, प्रेमे गड़ा गड़ि,
पुलके व्यापिल अङ्ग।
चण्डाल ब्राह्मणे, करे कोलाकूलि,
कबे वा छिल ए रङ्ग ।।

प्रभु कुलियामें हैं। उनका एक बार दर्शन करनेके लिए, उनके साथ एक बात करनेके लिए, उनके श्रीमुखसे एक उपदेश वाणी सुननेके लिए लाखों-लाखों आदमी उत्कण्ठित होकर गर्दन उठाकर देख रहे हैं, परन्तु सुयोग नहीं पा रहे हैं। जो अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, वे किसी अन्तरङ्ग भक्तकी कृपासे अति कष्टपूर्वक प्रभुके पास पहुँच पाते हैं।

नवद्वीपके एक ब्राह्मण

इस प्रकार एक दिन नवद्वीपका एक ब्राह्मण, जिसका नाम ग्रन्थमें नहीं है, प्रभुके सामने आकर दृढ़तासे उनके चरण पकड़कर बोला—"प्रभु ! मेरा एक निवेदन है, यदि आप कुछ मन लगाकर सुनें तो कहूँ। मुझ पापीने भक्तिका प्रभाव न जाननेके कारण 'कलियुगमें कैसा वैष्णव और कैसा कीर्तन' इस प्रकार बहुत निन्दा की है। उन पापकर्मोंका स्मरण करके मेरा चित्त जलता रहता है। तुम्हारे सिंह-प्रतापसे संसारका उद्धार हो रहा है, मुझे भी बताओ कि मेरा पाप कैसे दूर हो (चै. भा. अं. ३.४३४-४३८)।"

प्रभु जब नवद्वीपमें प्रकट हुए थे तो इस विप्रने उनकी निन्दा की थी, और कीर्तनका विरोध किया था। अब प्रभुने संन्यास ग्रहण किया है, संन्यास बुद्धिसे उनको प्रणाम करनेसे ब्राह्मणकी चित्तशुद्धि हो गयी है। निजकृत पापकर्मके लिए दारुण आत्मग्लानि उपस्थित हो गयी है। अनुतापकी अग्निमें हृदय धक्-धक् प्रज्वलित हो रहा है। अतएव प्राणोंकी परवा न करके इस भीषण भीड़में आकर प्रभुके चरण-कमलमें शरण लिया है। वह मनोवेदनासे कातर होकर निश्छल भावसे प्रभुके पादपद्ममें अपने अपकर्मोंकी बात खुलकरके बोला। तब सर्वज्ञ प्रभु उस सरल विप्रकी निश्छल बातसे सन्तुष्ट होकर हँसते हुए बोले—"हे विप्र ! जिस मुखसे विष-पान किया हो उसीसे अमृत पान भी किया जाय तो विषके प्रभावसे जीर्ण हुआ देह भी अमर हो जाता है—यही तुम्हारे प्रश्नका उत्तर है। तुमने निन्दा रूपी विष-पान किया हैं, अब कृष्ण-गुण

गानरूपी परम अमृतका पान करो। जिस मुखसे तुमने वैष्णव-निन्दा की है, उसीसे वैष्णव-वन्दन करो। पद-रचना करके भक्तिकी महिमाका विस्तार और गुणगान करो। श्रीकृष्ण-यश-गानका परानन्द अमृत तुम्हारे निन्दारूप विषका सम्पूर्ण नाशकर देगा। यह बात केवल तुम्हारे लिए नही, बल्कि सभीके लिए कहता हूँ कि जिसने कभी अनजानमें भी वैष्णव निन्दाकी हैं, वह यदि फिर कभी निन्दाकर्म नहीं करता तो विष्णु-वैष्णवकी निरन्तर स्तुति करने-से उसके वे सब पाप दूर हो जाँयगे, जो करोड़ों प्रायश्चित करनेपर भी दूर नहीं हो सकते (चै. भा. अं. ३.४४०-४५०)।"

प्रभुके श्रीमुखका यह उपदेश एक अमूल्य वस्तु है। यह वेदवाणीसे भी श्रेष्ठ है। शास्त्र सबके लिए शिरोधार्य है। परन्तु श्रीभगवान्के श्रीमुखकी एक बात उससे भी श्रेष्ठ है। अनन्त कोटि ऋषियोंके अनन्त कोटि उपदेशकी अपेक्षा श्रीभगवान्के श्रीमुखकी एक उपदेश वाणी श्रेष्ठ है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

श्रीकृष्णचैतन्य-वाणी अमृतेर धार।
तेहों जे कहये वस्तु सेइ तत्त्वसार॥

चै. च. म. २५.४९

प्रभु जब नवद्वीपमें गार्हस्थ्य लीला करते थे तो वह इस विप्रको अच्छा नहीं लगता था। प्रभुके मुखका मधुर हरिसंकीर्तन भी इसको अच्छा नहीं लगता था। प्रभुके गार्हस्थ्य और सुखैश्वर्यको देखकर इसके मनमें ईर्ष्या होती थी। जगन्नाथ मिश्रके पुत्र निमाई भी पण्डित हैं, और हम भी विप्र-सन्तान हैं, हम भी पढ़े लिखे हैं, हम भी पण्डित हैं, फिर निमाई पण्डितके सामने हम क्यों झुके? उनकी बात क्यों मानें? उनके मतसे क्यों चलें? उनका दौरात्म्य क्यों सहें? (क्योंकि प्रभु गोपीभावमें उन्मत्त होकर नवद्वीपके आगम वागीशको दौड़ाकर लाठी लेकर मारने गये थे) इस प्रकारके हिंसा-द्वेषसे प्रेरित होकर नदियाके छात्र पण्डितगणने जब श्रीगौर भगवान्की गार्हस्थ्य लीलाको अमर्यादित किया, यहाँ तक कि उनको मारनेके लिए उद्यत हुए, श्रीभगवानके सामने अपराधी बने, तब दीन-दयालु, करुणानिधि प्रभुने जीवके दुःखसे दुःखित होकर संन्यास ग्रहण करनेका सङ्कल्प किया, गृह-त्याग करके दीन-दरिद्र भिखारीके वेषमें जीवके दरवाजे-दरवाजे भिक्षा करनेका सङ्कल्प किया। जीवोद्धारके उद्देश्यसे उन्होंने नदियामें अवतार ग्रहण किया था। चाहे जैसे भी हो, उनको जीवोद्धार करना था। इसीलिए उन्होंने यह मार्ग अवलम्बन किया तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुको निर्जनमें पुकारकर कहा—

—शुन नित्यानन्द महाशय।
तोमारे कहिये निज हृदय निश्चय॥
भाल से आइलाम आमि जगत तारिते।
तरण नहिल आइलाङ् संहारिते॥
आमारे देखिया कोथा पाइब बन्ध-नाश।
एक गुण बन्ध आरो हैल कोटि पाश॥
देख कालि शिखा सूत्र सब मुण्डाइया।
भिक्षा करि बेड़ाइमु सन्यास करिया॥
जे जे जने चाहियाछे मोरे मारिवारे।
भिक्षुक हइमु कालि ताहार दुयारे॥
तबे मोरे देखि सेइ धरिब चरण।
एइ मते उद्धारिब सकल भुवन॥
सन्यासीरे सर्वलोक करें नमस्कार।
संन्यासीरे केहो धार ना करे प्रहार॥

चै. भा. म. २५.२१९-२२०, २२३-२२६

वह विप्र कौन था? मैं नहीं जानता। परन्तु देवकीनन्दनदास कृत वैष्णव वन्दना पाठ करनेसे जान पड़ता है कि वे ही प्रभुके कृपापात्र थे। प्रभुने उनसे कहा था—

"गीत कवित्व विप्र कर गिया तुमि।"

चै. भा. अं. ३.४४५

तब पयार श्लोकमें देवकीनन्दनने जो वैष्णव-वन्दनाकी है, वह अति प्राचीन है और अद्यावधि वैष्णव लोग उसका पाठ करते हैं। उस महापुरुषके चरणोंका अनुसरण करके जीवाधम ग्रन्थकारने भी एक और वैष्णव-वन्दना लिखी है। सर्वज्ञ प्रभुने केश पकड़कर यह ग्रन्थ लिखाया है, क्योंकि वे जानते हैं कि जीवाधम ग्रन्थकारकी वैष्णवनिन्दाके पापका अन्त नहीं है।

अस्तु, उस भाग्यवान् विप्रने प्रभुके उपदेशको श्रवण करके तदनुरूप कार्य किया। वे प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते हुए उनका गुण गाने लगे। सब भक्तगण प्रभुके इस उपदेशको सुनकर जयध्वनि करने लगे।

देवानन्द पण्डित

वे विप्र प्रभुकी चरण वन्दना करके विदा हुए। तब नवद्वीपके देवानन्द पण्डित आकर प्रभुके चरणोंमें गिरे। देवानन्द नवद्वीपमें एक प्रधान अध्यापक थे। उनके विद्यालयमें छात्रोंको संस्कृत साहित्यके ज्ञानार्थ श्रीमद्‌भागवत् श्रीग्रन्थ पढ़ाया जाता था। भक्तिग्रन्थके रूपमें उसकी पढ़ायी नहीं होती थी। उन्हींके घर श्रीवास पण्डित भागवत-पाठ सुननेके लिए जाकर लाञ्छित और अपमानित हुए थे। प्रभु जब नवद्वीपमें गार्हस्थ्य लीला करते थे, जब सङ्कीर्तन यज्ञमें उन्होंने आत्म-प्रकाश किया था, उस समय विद्याभिमानी देवानन्द पण्डितने पाखण्डियोंके हाँ-में-हाँ मिलाकर प्रभुकी निन्दाकी थी, उनकी भगवत्तामें अविश्वास किया था।

प्रभुने जब गृह त्याग करके संन्यास ग्रहण किया तो सौभाग्यवश देवानन्द पण्डित परम गौर-भक्त वक्त्रेश्वर पण्डितके सत्सङ्गसे कृतार्थ हुए। दैवयोगसे परम भागवत, प्रभुके परम प्रिय पात्र वक्त्रेश्वर पण्डितको कुछ दिन देवानन्द पण्डितके घर रहनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। वक्त्रेश्वर पण्डित परम रूपवात् पुरुष थे, वे अति सुन्दर नृत्य कर सकते थे, प्रेमरसमें उन्मत्त होकर वे जब नृत्यानन्दमें विभोर हो जाते थे तो देवानन्द पण्डित साथमें रहकर उनके अपूर्व नृत्यका दर्शन करते थे, बेंत हाथमें लेकर लोगोंको हटाते थे, पछाड़ खाकर गिरनेपर उनको गोदमें उठा लेते थे, अङ्गकी धूल झाड़कर भक्तिपूर्ण मनसे उनकी सेवा करते थे। इस वैष्णव-सेवाके फलसे, तथा गौरभक्तके सङ्गके गुणसे देवानन्द पण्डितके मनमें श्रीगौराङ्ग प्रभुकी भगवत्तामें विश्वास उत्पन्न हुआ।

परम भागवत श्रीवक्त्रेश्वर पण्डितके सम्बन्धमें श्रीचैतन्य भागवतकारने लिखा है—

वक्त्रेश्वर पण्डित—चैतन्य-प्रिय पात्र।
ब्रह्माण्ड पवित्र जाँर स्मरणेइ मात्र॥
निरवधि कृष्णप्रेम-विग्रह विह्वल।
जाँर नृत्ये देवासुर—मोहित सकल॥
अश्रु, कम्प, स्वेद, हास्य, पुलक, हुङ्कार।
वैवर्ण्य-आनन्द-मूर्च्छा-आदि जे विकार॥
चैतन्य कृपाय मात्र नृत्ये प्रवेशिले।
सकल आसिया वक्त्रेश्वर देहे मिले॥

चै. भा. अं. ३.४६०-४६३

दैवयोगसे देवानन्द पण्डितको इस भक्त-शिरोमणिका सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। गौरभक्तके सङ्गसे उनका श्रीगौराङ्गचन्द्रमें विश्वास पैदा हुआ। देवानन्द पण्डित निश्चयपूर्वक अधार्मिक नहीं थे। वे बाल-ब्रह्मचारी थे, ज्ञानवान, जितेन्द्रिय, निर्लोभी, निरहंकारी, विषयाशक्तिशून्य आदि साधु पुरुषोचित्त सारे ही गुण उनमें थे। किन्तु दुर्भाग्यवश श्रीगौर-भगवान्‌में उनका विश्वास न था। गौर-भक्तके सत्सङ्गसे अब उनकी दुर्बुद्धि नष्ट हो गयी और श्रीगौराङ्गचरणमें रति हुई। वैष्णव सेवाका फल उनको हाथों-हाथ मिल गया। शास्त्रमें लिखा है कि कृष्ण-सेवासे भी वैष्णवसेवा या भक्तसेवा बढ़कर

है।* देवानन्द पण्डित इस शास्त्रवाक्यके ज्वलन्त प्रमाण-स्वरूप हो गये हैं। उन्होंने वक्रेश्वर पण्डितकी कृपासे श्रीगौर भगवान्‌का दर्शन प्राप्त किया।

प्रभु भक्तवृन्दसे आवेष्टित होकर बैठे थे। देवानन्द पण्डित आकर उनके चरणोंमें भूमि विलुण्ठित होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके भीत और संकुचित भावमें एक ओर हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

नवद्वीपसे लोगोंकी इस भीषण भीड़में बहुत कष्टपूर्वक देवानन्द पण्डित कुलियामें प्रभुके निकट आये हैं। प्रभुने उनको देखकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। वे एक ओर खड़े थे, दयामय प्रभु उनको लेकर एकान्तमें चले गये। एकान्तमें बैठनेमें भी एक रहस्य था। उनके साथ प्रभु कुछ तत्त्व चर्चा करना चाहते थे। देवानन्द पण्डित श्रीमद्भागवतका अध्यापन करते थे, तथापि भक्ति तत्त्व नहीं समझ पाते थे। उनके मनमें यह अभिमान था कि भागवतमें वे विशेष अधिकार रखते हैं, वे ज्ञानाभिमानी पण्डित थे। किस भावसे भागवत पाठ किया जाता है, कैसे हृदयमें भक्तितत्त्व और भक्तिभावकी स्फूर्त्ति होती है अर्थात् भागवतका प्रकृत अर्थ बोधगम्य होता है, ये सारी बातें देवानन्द पण्डितको समझानेके लिए ही प्रभु उनको लेकर एकान्तमें बैठे।

भक्तवत्सल प्रभुने उनको मृदु स्वरसे मधुर शब्दोंमें कहा—"तुमने वक्रेश्वरकी सेवा की है, इसीलिए तुम मेरे पास पहुँच पाये हो। वक्रेश्वर पण्डित श्रीकृष्णकी पूर्ण शक्ति हैं। जो उनकी भक्ति करता है, उसको निश्चय कृष्ण-प्राप्ति होती है। वक्रेश्वरके हृदयमें श्रीकृष्णका वास है। वक्रेश्वरके नृत्यमें श्रीकृष्ण नृत्य करते हैं। जिस स्थानका वक्रेश्वरसे सम्बन्ध जुड़ जाता है, वही सब तीर्थमय और बैकुण्ठमय हो जाता है।"

भक्तवत्सल प्रभु भक्तके गुण और महिमाके वर्णनके सामने और कुछ नहीं चाहते। वक्रेश्वर पण्डित प्रभुके अतिप्रिय भक्त थे। देवानन्द पण्डितने उनके सङ्गसे गौर-भक्तोचित गुणोंको प्राप्त कर लिया। दैन्य और आर्त्तभाव गौर-भक्तका भूषण है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने लिखा है—

तृणादपि च नीचता सहज सौम्यसुग्धाकृतिः।
सुधा मधुर भाषिता विषयगन्ध थूथूत्कृतिः।
हरिप्रणय-विह्वला किमपि धीरनालम्बिता
भवन्ति किल सद्गुणा जगति गौरभाजामयी॥

श्रीचैतन्य चरितामृतम् २४

अर्थात् तृणसे भी लघुत्व, स्वभावसिद्ध सौम्य मनोहर आकृति, अमृतके समान मधुर वाणी, विषयगन्धशून्यता तथा अनन्याश्रित-हरि-प्रणय-विह्वलता आदि सारे गुण जगतमें एकमात्र गौरभक्त गणमें ही दृष्ट होते हैं।

गौरभक्त श्रीवक्रेश्वर पण्डितके सत्सङ्गसे देवानन्द पण्डितका मन पवित्र हो गया है, चित्तशुद्धि हो गयी है, निष्कपट दैन्य और आर्त्तभावके साथ श्रीभगवान्‌के चरणोंमें आत्म निवेदनकी शिक्षा प्राप्त हो गयी है। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे कृपामय! जगतके उद्धारके लिए तुम नवद्वीपमें प्रकट हुए हो। मैं पापी दैवदोषसे तुमको पहचान न सका, इसलिए तुम्हारे आनन्दसे बञ्चित रहा। सबके प्रति तुम स्वभावसे ही कृपालु हो। मैं यही वर माँगता हूँ कि तुम्हारेमें मेरा अनुराग बना रहे।"

इतना कहकर रोते-रोते वे प्रभुके चरणोंमें लोट गये। प्रभुने उनको श्रीहस्तसे उठाकर पास बैठाकर

---

* सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम्।
निः संशयस्तु तद्भक्त परिचर्यारतात्मनाम्॥
(वराह पुराण) चै. भा. अं. ३.६

मीठे वचनोंसे सुस्थिर किया। तब देवानन्द पण्डितने अपने मनकी बात प्रभुके चरणोंमें निवेदन की। वे बोले, "हे प्रभु ! तुम्हारे चरणोंमें मेरा एक निवेदन है। मैं अधम और अज्ञ हूँ। यह सत्य है कि श्रीमद्भागवत ग्रन्थका मैं अध्यापन करता हूँ, परन्तु इस परम मङ्गल श्रीग्रन्थका मर्म मैं कुछ नहीं समझता। आप यदि कृपा करके मुझको इस सम्बन्धमें कुछ उपदेश प्रदान करें, जिससे मैं कृतार्थ होऊँ। प्रभुने हँसकर उत्तर दिया—"हे विप्र ! ध्यान देकर सुनो। तुम भागवतकी भक्तिपरक व्याख्या करो। भागवतके आदि, मध्य और अन्तमें अक्षय-अव्यय विष्णु-भक्तिही नित्य सिद्ध है। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें केवल विष्णु भक्ति ही सत्य है। महाप्रलयमें भी उसकी पूर्ण शक्ति रहती है। नारायण मोक्ष देकर भक्तिको छिपा लेते हैं। ऐसी भक्तिको कृष्णकी कृपा बिना नहीं जाना जा सकता। भागवतके समान कोई शास्त्र नहीं है। भागवतमें उसी भक्तिका वर्णन है। जिस प्रकार मत्स्य-कूर्म आदि अवतारोंका आविर्भाव तिरोभाव होता है, इसी प्रकार भागवतका भी अपनी इच्छासे आविर्भाव तिरोभाव होता है, यह किसीकी कृति नहीं है। श्रीकृष्ण कृपासे ही भक्तियोगके द्वारा व्यासजीकी जिह्वापर श्रीभागवतका स्फुरण हुआ। जिस प्रकार ईश्वर-तत्त्व समझ पाना कठिन है, वही बात भागवतके सम्बन्धमें है जो यह मानता है कि मैं भागवत समझता हूँ। वह भागवतके तथ्यको नहीं समझता। जो अज्ञ बनकर भागवतकी शरण लेता है, उसीको भागवतका दिव्य अर्थ दिखायी पड़ेगा। प्रेममय भागवत श्रीकृष्णका श्रीअङ्ग है, जिसमें श्रीकृष्णके सब गोप्य लीलाका वर्णन है। वेद-शास्त्र-पुराणोंकी रचना करके भी वेदव्यासजीको प्रकाश और शान्ति नही प्राप्त हुए। जिस समय श्रीमद्भागवतका जीह्वापर स्फुरण हुआ, उसी क्षण उनकी चित्तवृत्ति खिल उठी। ऐसे ग्रन्थको पढ़कर भी कोई-कोई संकटमें पड़ जाते हैं। हे विप्र ! मैं तुमको निष्कपट भावसे कहता हूँ—तुम सब प्रकारसे भागवतके आदि, मध्य और अन्तमें भक्तियोगकी ही व्याख्या करो, तब तुमसे और अपराध नही होगा और उसी समय चित्तवृतिमें प्रसन्नताका अनुभव करोगे। वैसे तो सभी शास्त्रमें कृष्ण भक्तिका ही वर्णन है, परन्तु भागवत तो विशेष रूपसे भक्ति-रसमय ग्रन्थ है। कृष्णभक्तिका अमृत सबको पिलाओ। बस, इसी प्रकार जाकर भागवत पढ़ना-पढ़ाना (चै. भा. अं. ३.४६५-५१३)।"

देवानन्द पण्डितने अत्यन्त एकाग्र चित्तसे प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत उपदेश-वाणी सुनकर परमानन्द प्राप्त किया। वे प्रभुको पुन;-पुनः दण्डवत् प्रणाम करके प्रेमानन्दमें रोते हुए घर चले। घर जाकर वे जैसे ही श्रीमद्भागवत पाठ करने लगे, प्रेमाश्रुधारसे पोथीके अक्षर दिखलायी नहीं पड़े। श्रीग्रन्थके पन्ने-पन्नेमें पंक्ति-पंक्तिमें उनको भक्तिसुधा स्रवित होती दीख पड़ी। श्रीग्रन्थरूपी श्रीकृष्ण भगवान्‌का उनको साक्षात्कार प्राप्त हुआ। वे सब लोगोंको समझाने लगे—"श्रीमद्भागवत मूर्त्तिमन्त्र भक्तिरस है, इसको वही समझ सकता है, जो भागवतका कृपापात्र है। जिनके घरमें भागवतका ग्रन्थ विराजमान है उसका कोई अमङ्गल नहीं हो सकता। भागवतकी पूजासे साक्षात् श्रीकृष्णकी पूजा होती है। 'भागवत'-शब्दके दो ही अर्थ है, (१) श्रीकृष्णका विग्रह भागवत ग्रन्थ और (२) श्रीकृष्ण-कृपापात्र। जो नित्य भागवतका पूजन-पठन-श्रवण करता है वह वास्तवमें 'भागवत' हो जाता है — इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। (चै० भा० अं० ३.५१८-५२३)।"

भागवत ग्रन्थके सम्बन्धमें इस प्रकारका व्याख्यान करके वे साथ ही साथ श्रीगौराङ्ग-गुण-गान करने लगे। नवद्वीपके लोगोंने देवानन्द पण्डितमें अद्भुत परिवर्तन देखकर समझा कि प्रभुने उनके ऊपर कृपा की है। वक्रेश्वर पण्डितके सत्सङ्गसे उनको यह सुमति प्राप्त हुई है। तबसे

देवानन्द पण्डित परम गौरभक्त हो गये। तथा प्रभुने शक्ति सञ्चार करके उनके द्वारा बहुत जीवोंका उद्धार किया।

जन-शून्य नवद्वीप

नवद्वीपमें अब आदमी नहीं रह गये हैं, यह कहना ही पड़ेगा। क्योंकि प्रायः सब लोग कुलियामें प्रभुका दर्शन करने चले गये हैं।

नवद्वीपमें अध्यापक-पण्डित सहस्रोंकी संख्यामें थे। उनमें बहुतसे पण्डिताभिमानी और ज्ञानगर्वी थे। परन्तु उससे क्या? सर्वचित्ताकर्षक श्रीगौर-भगवान्के अद्भुत आकर्षणसे आकर्षित होकर सब कुलियामें आ गये हैं। प्रभु जब घरपर थे, तब इन लोगोंका उनकी भगवत्तामें विश्वास न था।

प्रभुको गृहत्याग किये पाँच वर्ष हो गये हैं, इस बीचमें उन्होंने दक्षिण देशका उद्धार किया है, नीलाचलमें अनेक अद्भुत लीलारङ्ग किये हैं, उड़ीसाके स्वाधीन राजा गजपति प्रतापरुद्र और जगद्विख्यात नैयायिक पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्यने उनको सचल जगन्नाथ मानकर पूजा की है, ये सारी बातें नदियाके भक्ति बहिर्मुख ज्ञानगर्वी अध्यापकोंने सुनी है। अब प्रभुको एकबार देखनेके लिए उनका मन बड़ा ही व्यग्र हो गया है। इन लोगोंकी भीड़में इतना कष्ट उठाकर गङ्गापार करके नदियाके सारे अध्यापक पण्डित प्रभुके दर्शनके लिए कुलियामें आये हैं। कुलियामें आकर उन्होंने जो देखा वह जीवनमें कभी देखा न था। श्रीगौर-भगवान्की अपार महिमा और अनन्त शक्ति देखकर उन्होंने उनके चरणोंमें शरण ली। पूर्वके अपराधोंकी क्षमा-प्रार्थना की तथा श्रीगौराङ्गके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया। कृपानिधि प्रभुने उनको अपना निजजन बना लिया।

जब नवद्वीप लोगोंसे शून्य हो गया, तब शोकातुर वृद्धा शचीमाता श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको लेकर गङ्गाके घाटपर गयीं। गङ्गाके पार लाखों कण्ठोंसे 'जय श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रकी जय' की ध्वनिसे दिगन्त कम्पित हो रहा था। दुःखिनी शचीमाताके खोये निधि, विरहिणी श्रीविष्णुप्रिया देवीके प्राणवल्लभ, मुण्डित-मस्तक, आजानुलम्बित भुजयुगल ऊपर उठाकर उच्च भूखण्डके ऊपर खड़े होकर उच्च स्वरसे हुङ्कार गर्जन करते हुए हरिध्वनि कर रहे थे। लाखों लोगोंके बीचमें भी उनका श्रीमस्तक और उनके श्रीभुजयुगल गङ्गाके इस पारसे स्पष्ट दृष्टिगत हो रहे थे। पुत्र-विरह-कातरा शचीमाता देख रही थी, विरह-विधुरा श्रीविष्णुप्रिया देवी भी देख रही थी। प्रभुका उच्च कण्ठ-स्वर भी उनको सुनायी पड़ रहा था। घूँघट में श्रीविष्णुप्रिया देवीके नयन-जलसे वक्षःस्थल निमज्जित हो रहा था उनका क्षीण श्रीअङ्ग थर-थर काँप रहा था। शचीमाता उनको वक्षःस्थलमें धारण करके खड़ी थी। साथमें प्रभुके घरका पुराना नौकर ईशान उनको आगे करके खड़ा था। गङ्गाके इस पार लोगोंकी भीड़ कम थी, इसी कारण उनको खड़ा होनेका स्थान मिल गया था।

नवद्वीपमें प्रभुका पदार्पण

प्रभु पाँच छः दिन कुलियामें रहे। अन्तिम दिन वे गङ्गा पार करके जन्म-भूमिका दर्शन करनेके लिए नवद्वीपमें आये। माताके साथ शान्तिपुरमें उनकी भेंट हुई थी। जन्मभूमिका दर्शन करनेके लिए प्रभुने पुनः नवद्वीपमें पदार्पण किया।

प्रभु अपने हृदयकी बात किसीसे नहीं कही। श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको दर्शन देनेके लिए ही वे जन्मभूमिका दर्शन करने जा रहे हैं, यही उनके हृदयकी बात है। प्रभु गङ्गा पार करके संन्यासी वेषमें खड़ाऊँ पहने नदियाके मार्गसे अन्तरङ्ग भक्तगणके साथ पहले शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घर गये। शचीमाताने वहाँ जाकर पुत्रका मुख देखकर

रोते हुए नयन-जलसे भूतलको आर्द्र कर दिया। ठाकुर लोचनदासने लिखा है—

शचीर कान्दना देखि पृथिवी विदरे।
आछुक मानुषेर काज ए पाषाण झुरे॥

प्रभुने माताके साथ नाना प्रकारकी बातें करके उनको सान्त्वना देकर विदा किया। वे रोती-रोती घर जाते समय रास्तेमें नदियावासी जिस किसीको आते देखती हैं उनका स्नेहपूर्वक हाथ पकड़कर विनती करते हुए कहती हैं—

'पुनः नवद्वीपे आइल आमार निमाइ।
धरिया राखह लोक किछु दोष नाइ॥

चै. म.

नदियाकी पुरनारीवृन्द भीड़के भयसे प्रभु-दर्शनके लिए कुलिया या विद्यानगर न जा सकीं थीं। प्रभु नवद्वीपमें आ गये है, उच्च अट्टालिकाके ऊपर वातायनके मार्गसे, गृह द्वारपर पर अगणित कुल कामिनीवृन्द एकत्रित होकर शुभ शङ्ख बजा रही हैं, और हुलुध्वनि कर रही हैं। उनकी आनन्द ध्वनिसे नदिया नगरी चतुर्दिक परिपूर्ण हो रही है।

प्रभु नवद्वीपमें अधिक देर न रहे। वे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घरसे भक्तगणके साथ अपने मन्दिरकी ओर चले। उनके साथ लाखों-लाखों आदमी हरिध्वनि करते हुए उन्मत्तके समान पीछे हो लिये। प्रभुने सदाके लिए नवद्वीप वासियोंसे विदा ली। उनका वदन विषण्ण था, मुखमण्ठल गम्भीर था। जन्मभूमिके प्रति, तरु-गुलमलताके प्रति वे करुण-नयनसे देखते-देखते चले जा रहे हैं। उनकी आँखोंसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है।

नदियाके राजपथसे श्रीश्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु अगणित लोगोंके साथ अपने मन्दिरके द्वारपर आकर कुछ देर स्थिर होकर खड़े हो गये। शचीमाता पुत्रवधूको लेकर द्वारपर खड़ी होकर प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। गौरवक्ष-विलासिनी विरहिणी श्रीविष्णुप्रियादेवी बहिर्द्वारके अन्तरालमें खड़ी होकर बहुत देरके बाद प्रणवल्लभके श्रीचरण-कमलका दर्शन करके कृतार्थ हो गयीं। प्रभुके श्रीवदनकी ओर वे देख न सकीं। प्रेमावेगमें उनका बाह्यज्ञान जाता रहा। वे मलिन वस्त्र पहने हुए थीं, और सर्वाङ्ग वस्त्राच्छादित था। वे बाह्यज्ञानशून्य होकर सब लोगोंके सामने रास्तेमें प्राणवल्लभके चरणोंमें धराशायी हो गिर पड़ीं। शचीमाता जाकर उनके पास खड़ी हो गयीं। साथका जनसमुद्र नीरव और स्तब्ध था। किसीके मुँहसे एक बात भी नहीं निकली। सबके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे।

प्रभुने एक बार अपने कमल-नयनोंसे प्रियतमाको देखा। गम्भीरता पूर्वक पूछा—"तुम क्या चाहती हो?" धूलिधूसरित, अवगुण्ठनवती श्रीमती विष्णुप्रिया देवीने कातर स्वरमें रोते-रोते कहा—"हे प्रभु! मैं कुछ भी नहीं चाहती हूँ, केवल आपकी चरण-धूलि। श्रीचरणके चिह्न स्वरूप अपनी चरण पादुका मुझे प्रदान कीजिये। मैं उसकी पूजा करूँगी और हृदयसे लगा कर मरूँगी।"

प्रभुने 'तथास्तु' कहकर अपने चरणोंकी दोनों पादुका श्रीविष्णुप्रिया देवीको प्रदान कर जननी और जन्मभूमिसे सदाके लिए विदा लेकर नवद्वीपसे गमन किया। चारों ओर लोग हाहाकार करने लगे। शचीमाता और श्रीविष्णुप्रिया देवी मूर्च्छित होकर रास्तेमें पड़ी रहीं। स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु गङ्गा पार होकर चले।

मत्प्रणीत श्रीविष्णुप्रियाचरित* श्रीग्रन्थमें प्रभुका यह हृदय विदारक लीलारङ्ग विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कृपालु पाठकवृन्द कृपा करके उपर्युक्त ग्रन्थसे प्रभुकी यह करुण रसात्मक लीला एक बार पाठ करें।

---

* श्रीविष्णुप्रिया-चरित्र एवं श्रीविष्णुप्रिया नाटकका हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जन्म-स्थानसे उपलब्ध हैं।

हुसेनशाह बादशाह

प्रभु अब वृन्दावन यात्राकी इच्छा प्रकट करके भक्तगणके साथ गङ्गाके किनारे-किनारे चले। उनके साथ अगणित लोग जा रहे थे। जन समूहके बीचमें प्रभु गङ्गाके रास्तेसे जा रहे हैं। चतुर्दिक आनन्द-कोलाहलसे पूर्ण है। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओंके राजपथपर बाहर निकलनेपर भी इतनी भीड़ दृष्टिगोचर नहीं होती है। घोर युद्धके कोलाहलकी अपेक्षा भी अधिक उच्च हरि-ध्वनिसे पूर्ण आनन्द-कोलाहल अधिकतर प्रवल और प्रचण्ड होता जा रहा है।

धीरे-धीरे गङ्गाके किनारे-किनारे बहुतेरे जनपद और गाँवोंको नाम प्रेममें डुबाते हुए श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु दल-बलके साथ बड़े समारोहसे मुसलमान राजाकी राजधानी गौड़के निकट गङ्गातीरस्थ रामकेलि नामक एक गाँवमें जा पहुँचे। उस गाँवमें अनेक ब्राह्मण सज्जन रहते थे। प्रभुके शुभागमनकी बात बिजलीकी गतिसे चारों ओर फैल गयी। भीड़ दूनी बढ़ गयी, कोलाहल चौगुना बढ़ गया।

पास ही दुर्वृत्त राजा हुसेन शाहकी राजधानी थी। गङ्गाके इस पार रामकेलि ग्राम था, और दूसरे पार गौड़की राजधानी थी। यह भीषण भीड़ और कोलाहलकी ध्वनि सुनकर बादशाह हुसेन शाह राजमहलकी अट्टालिकापर चढ़कर अपनी आँखों देखने लगा कि यह व्यापार क्या है। इतनी भीड़ उसने कभी देखी न थी, और राजधानीके समीप इतना निर्भय होकर उच्च हरिध्वनि करनेका साहस अब तक किसीने नहीं किया था। यह देख-सूनकर बादशाहके मनमें भय उत्पन्न हुआ। उसने गुप्तचर भेजकर पहले पता लगाया।

गुप्तचरने आकर संवाद दिया कि रामकेलि ग्राममें एक संन्यासी आया है, वह निरन्तर हिन्दुओंका संकीर्तन करता है, उसके साथ बड़ी भीड़ है, पता नहीं कितने आदमी हैं।

बादशाहने अतिशय उत्कण्ठापूर्वक पूछा—"वह संन्यासी कैसा है? क्या खात है? क्या नाम है? देहकी गठन कैसी है?"

बादशाहका गुप्तचर रामकेलि ग्रामका कोतवाल था। वह जातिका हिन्दू था और बादशाहका वेतन भोगी नौकर था। कोतवालने हाथ जोड़कर निवेदन किया—

—"शुन शुनह गोसाईं।*
एमत अद्भुत कभू देखि शुनि नाइ॥
संन्यासीर शरीरे सौन्दर्य देखिते।
कामदेव-सम हेन ना पारि बलिते॥
चै. भा. अं. ४.२७.२८

इतना कहकर वह गद्‌गद स्वरमें अश्रुपूर्ण नयनोंसे अपरूप श्रीगौराङ्गके रूपका वर्णन करने लगा। भाग्यसे उसको प्रभुके अपरूपका दर्शन प्राप्त हुआ है। उस रूपकी झलक उसकी आँखोंमें मानो बनी ही रहती है। उसको क्या वह जीवनमें कभी भूल सकेगा? वह प्रेमानन्दमें नाना प्रकारके हाव-भावमें बादशाहके सामने एक-एक करके प्रभुके प्रत्येक अङ्गके सौन्दर्य और माधुर्य राशिका वर्णन करने लगा। वह बोला—"हे महाराज! ऐसा रूपवान् पुरुष तो कभी किसीने आँखों नहीं देखा। कभी किसीको पता भी न था कि मनुष्य इतना रूपवान् हो सकता है। इस संन्यासीके शरीरका वर्ण कच्चे सोनेके वर्णसे भी उत्तम है। शरीर प्रकाण्ड है। इतना बड़ा आदमी कभी किसीने नहीं देखा। इनकी आजानुलम्बित दो भुजाएँ, सुगम्भीर नाभी-पद्म, सिंहके समान गर्दन, गजके समान स्कन्ध और कनक केतकीके समान दोनों नयन हैं, कोटि चन्द्रके साथ इस संन्यासीके बदनकी तुलना नहीं हो सकती। ऐसा सुन्दर लाल अधर-ओष्ठ कभी किसीने नहीं देखा।

* बादशाहको गोसाईं महाराज कहकर संबोधन करनेकी तत्कालीन कर्मचारियोंकी रीति थी। बादशाह इससे सन्तुष्ट होता था।

मुक्ताके समान दमकती दन्त-राजि, और अति सुन्दर बङ्किमभ्रू-युगल मानो कामदेवके धनुषके समान लगते हैं। इस अपूर्व संन्यासीके पहननेमें कौपीन सर्वाङ्ग चन्दन-चर्चित है, तथा कटिमें अरुण वर्णका वस्त्र है। उनके दोनों चरण मानो दो विकसित रक्त-कमल हैं। पदनख एक-एक स्वच्छ दर्पणके समान निर्मल जान पड़ते हैं। मुझे ऐसा लगता है मानो कोई राजकुमार संसारसे विरक्त होकर संन्यासीके रूपमें भ्रमण कर रहा है, परन्तु राजाके लड़के इतना पछाड़ खाकर नहीं गिरते, इतना मूर्च्छित भी नहीं होते।

नवनीत हैतेओ कोमल सर्व अङ्ग।
ताहाते अद्भुत गुण आछाड़ेर रङ्ग॥
एक दण्डे पड़ेन आछाड़ शतशत।
पाषाण भाङ्गये तबू अङ्ग नाहि क्षत॥

चै. भा. अं. ४.३५-३६

और एक आश्चर्यकी बात मैंने देखी—इस संन्यासीकी उर्द्ध्व रोमावली है। इनके अङ्गका पुलक कटहलके समान है, जैसे कटहलके काँटे जड़में फूले हुए होते हैं, इसी प्रकार इनके पुलकित रोम-समूहके मूलका मांस भी फूला रहता है। क्षण-क्षणमें शरीरमें ऐसा कम्प होता है कि बहुतसे लोग मिलकर भी पकड़ नहीं पाते। अश्रुधारा नदीकी तरह प्रवाहित होती है। कभी ऐसा अट्टहास करते हैं, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। कीर्तनमें ऐसे मूर्च्छित हो जाते हैं कि उनकी अचेतन अवस्था देखकर सब डर जाते हैं।

और उस संन्यासीका कृत्य क्या कहें? सुनिये—

बाहु तुलि निरन्तर बोले हरिनाम।
भोजन शयन आर नाहि किछु काम॥

चै. भा. अं. ४.४२

राजदूतने यह भी कहा कि चारों ओरसे अगणित लोक आये हुए हैं, जो एक बार भी इस अपूर्व संन्यासीके अपरूप रूपको देखता है, उसका मन फिर घर जानेके लिए नहीं चाहता, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। लोग निरन्तर आ रहे हैं, परन्तु कोई लौटकर नहीं जा रहा है। घर-गृहस्थी, स्त्री-पुत्रादि सबको भूलकर केवल इस संन्यासीके मुखकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देखते रहते हैं। खुदावन्द! मैं हिन्दू हूँ, मेरी उम्र भी अधिक हो गयी है, मैंने बहुतसे संन्यासी, योगी-मुनि और ज्ञानी पुरुषोंको देखा है। परन्तु ऐसा अद्भुत और अपरूप संन्यासी कभी नहीं देखा। इस महापुरुषके आगमनसे आपका राज्य धन्य हो गया। यह संन्यासी कुछ खाते नहीं, कुछ माँगते नहीं, किसीसे बातें नहीं करते, केवल उच्च हरिनाम सङ्कीर्तन करते हैं।

ना खाय, ना लय कारो, ना करे संभाष।
सबे निरबधि एक कीर्तन-विलास॥

चै. भा. अं. ४.४६

इतना कहकर राजदूत कोतवाल साहब चुप हो गये। उनकी आँखोंसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। श्रीमन्महाप्रभुका नाम लेनेसे प्रेमोदय होता है। अब तक इस भाग्यवान् पुरुषने श्रीगौराङ्गका गुण गाया। इससे उसके मनमें जो प्रेमानन्दका उदय हुआ, उस पर कृपालु पाठकवृन्द ध्यान दें।

हुसेन शाह दुर्वृत्त बादशाह था। कोतवालके मुखसे प्रभुकी अपूर्व लीला-कहानी सुनकर उसका पाषाण हृदय द्रवित हो उठा। केशव खान उसके मन्त्री थे, उनको तत्काल बुलाकर पूछा—"केशव खान! श्रीकृष्ण चैतन्य नाम वाला मनुष्य कैसा व्यक्ति है जिसके देखनेको चारों ओरसे इतने आदमी एकत्र हुए हैं? वह क्यों आया है?"

केशव खान हिन्दू थे। साधु संन्यासीके प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। प्रभुको वे जानते थे। बादशाहकी बात सुनकर उनके मनमें भय हुआ कि पीछे कहीं वह उनको दल-वलके सहित उत्पीड़ित

न करे। यह सोचकर उन्होंने बादशाहसे कहा, "खुदावन्द! यह संन्यासी एक साधारण दरिद्र भिखारी है, वृक्षतलवासी है, इसके लिए आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।"

हुसेन शाह सुचतुर बादशाह था। उसने कौतवालके मुखसे प्रभुके रूप और गुणकी सारी महिमा सुनी थी। उसके फल स्वरूप उसका चित्त शुद्ध हो गया था, श्रीगौराङ्ग गुण श्रवणसे उसको तत्त्वज्ञान हो गया था। उसने मन्त्रीको सम्बोधन करके कहा—"केशव खान! तुम इस संन्यासीको दरिद्र भिक्षुक मत कहो, यह बात मुँहसे निकालनेपर तुमको पाप लगेगा। हिन्दू लोग जिसको कृष्ण बोलते हैं, हम लोग जिसको खुदा कहते हैं, यह संन्यासी निश्चय ही वह परम पुरुष भगवान् है। मेरी आज्ञा मेरे राज्यमें ही चलती है, परन्तु इस संन्यासीकी आज्ञा सब देशमें सब लोग पालन करते हैं। हमारे राजाको प्रजागणमें बहुतसे लोग खराब कहते हैं, मेरे कर्मचारी लोग छः महीना तनख्वाह न पावें तो मेरे विरुद्ध षड़यन्त्र करेंगे, मेरे विरोधी हो जाँयगे। परन्तु बिना वेतनके लाखों-आदमी इस संन्यासीके साथ भृत्यकी भाँति चलते हैं, अपना खाकर उनकी सेवा करते हैं। अतएव यह ईश्वर हैं, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। इसको दरिद्र भिक्षुक मत कहना। यह राजाओंका राजा है। यह जहाँ इच्छा हो रहें, जहाँ इच्छा स्वच्छन्द गमन करें, अपने धर्मके अनुसार जिसको चाहें उपदेश करें, सब लोगोंको लेकर आनन्दसे कीर्त्तन करें, और निर्जनमें बैठकर भजन करें। मेरा आदेश है कि कोई किसी प्रकार उनको विरक्त न करे, उनके लोगोंके साथ कोई किसी प्रकारका उपद्रव न करे, काजी हो या कोतवाल ही क्यों न हो, जो कोई भी मेरे इस आदेशका उल्लङ्घन करेगा, उसको मैं प्राणदण्ड दूँगा।"

यह आदेश देकर होसेन शाह अन्तःपुरमें चले गये। राजमन्त्री केशव खान बादशाहके आदेशको सुनकर प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े। उन्होंने म्लेच्छ राजाके उपद्रवके भयसे प्रभुको छिपानेकी चेष्टा की, परन्तु स्वयं बादशाह उनको प्रकाशमें लाया। इससे श्रीगौर भगवान्का सर्वेश्वरत्व पूर्णरूपसे प्रतिपन्न हो गया। मुसलमान बादशाहका मन क्यों द्रवित हुआ, यह कृपालु पाठकवृन्द अवश्य समझ गये होंगे। कोतवालके मुखसे श्रीगौराङ्गके रूपगुणको श्रवण करके यवन राजाका हृदय शुद्ध हो गया था। इसी कारण उसनी मति इस प्रकार बदल गयी। यह भी श्रीगौराङ्ग नामकी महिमाका परिचायक है, तथा उनके गुणगान-श्रवणके फलका बोधक है।

राजमन्त्री केशव खानने इस राज्यादेशकी समूचे राज्यमें घोषणा करवा दी। इस राज्यादेशका प्रसार होते ही हिन्दू मुसलमान एकत्र होकर प्रभुके शरणापन्न हुए। कृपानिधि प्रभुने उनके प्रति शुभ दृष्टिपात करके नाम प्रेम प्रदान किया। उनका उद्धार हो गया। श्रीचैतन्य भागवतकारने लिखा है—

जे होसेन साहा सर्व उड़ियार देशे।
देवमूर्त्ति भाङ्गिलेक देउल-विशेषे॥
हेन यवनेओ मानिलेक गौरचन्द्र।
तथापिह एव ना मानये जन अन्ध॥

चै. भा. अं. ४.६७,६८

सबके अन्तमें उन्होंने लिखा है—

हेन श्रीचैतन्य यशे जार असन्तोष।
सर्वगुण थाकिलेओ तार सर्व दोष॥

चै. भा. अं. ४.७२

श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ठाकुरने इसी कारण लिखा है—

अप्यगण्यमहापुण्यमनन्यशरणं हरेः।
अनुपासित चैतन्यमधन्यं मन्यते मतिः॥

श्रीचैतन्य चरितामृतम् ३१.

यह सब साधक महाजनोंकी बात हैं, श्रीगौराङ्ग प्रभुके एक निष्ठ भक्तका कथन है। वे ऋषि महाजन थे, शास्त्रदर्शी थे, उनकीं बात हँसकर उड़ा देनेकी वस्तु नहीं है।

अतएव सब मिलकर कहो—

जय-जय श्रीगौराङ्ग विष्णुप्रिया नाथ।
जीव प्रति करो प्रभु शुभ दृष्टिपात॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रभुकी श्रीवृन्दावन यात्रामें विघ्न

जार संगे चले एइ लोक लक्षकोटि।
वृन्दावन-यात्रार ए नहे मारिपाटि॥
चै. च. म. १.२१०

हुसेनशाहके हिंदू मंत्रियोंकी आशंका

केशव खान जातिके क्षत्रिय थे। उनकी उपाधि 'खान' बादशाहके द्वारा प्रदत्त हुई थी। वे गौड़के बादशाह होसेन शाहके प्रधानमन्त्री नहीं थे। उनके चार-पाँच और भी मन्त्री थे, जो विभिन्न कार्योंमें नियुक्त थे। केशव खान भी उनमें-से एक थे। बादशाहने जब प्रभुके सम्बन्धमें अपने आदेशका प्रकटमें प्रचार कराया तो इससे हिन्दू कर्मचारी विशेष सन्तुष्ट हुए, परन्तु उन लोगोंको इसका मतलब समझमें नहीं आया।

दुर्दान्त हुसेन शाहकी कूट राजनीतिका छल उनको भली भाँति ज्ञात था, अतएव यवन राजाकी बातपर उनकोपूरा विश्वास न हो सका। उन्होंने सोचा कि प्रभु इतने आदमियोंको साथ लेकर राजधानीके इतने समीप रहते हैं, उनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे लोगोंकी भीषण भीड़ बादशाहके राजकर्मचारियोंके लिए भयोत्पादक नहीं हो रही है—यह बात उनको जँच नहीं रही है। यवन राजाकी बातका विश्वास नहीं है, यवन राजकर्मचारियोंके कार्यमें हिन्दुओंके ऊपर विषम द्वेष और घोर पक्षपातका व्यवहार दीखता है। अतएव प्रभुको इस स्थानसे किसी प्रकार सम्मानपूर्वक विदा कर सकें तब ही मङ्गल है। यह सोचकर केशव खान तथा अन्यान्य हिन्दू राजकर्मचारीगणने परामर्श करके प्रभुके पास यह सूचना देनेके लिए एक ब्राह्मणको छिपे तौरपर रामकेलि ग्राममें भेंजा।

प्रभु स्वप्रेमानन्दमें मग्न थे। दिन-रात नृत्य-कीर्तन चल रहा था। लाखों-लाखों आदमी उनके साथ प्रेमानन्दमें कीर्तनानन्दका उपभोग कर रहे थे। उनके अन्य कोई कार्य न था। प्रभु भी दिन-रात कीर्तनानन्दमें मग्न थे।

केशव खानने जिस ब्राह्मणको भेजा था, उसे प्रभुका दर्शन तो प्राप्त हुआ, परन्तु उनसे बात करनेका कोई अवसर न मिला। उसने देखाकि प्रभुके निजजन भी उनके साथ बात करनेका अवसर नहीं पाते, अन्यकी तो बात ही क्या? वह क्या करें, कुछ भी विचार निश्चित न कर सकनेके कारण तीन दिन तक वहाँ रहा, तथापि प्रभुके साथ बात करनेका अवसर न पाया। लाचार उनके भक्तोंसे उसको वह गोपनीय बात कहनी पड़ी। उसने

प्रभुके एकान्त भक्तोंसे कहा—"तुम सब लोग महाप्रभुके भक्त हो, अवसर निकालकर उनको कहना कि केशव खान आदि सब सज्जनोंने प्रभुको यह स्थान परित्याग करनेका परामर्श दिया है, क्योंकि यवन राजाके समीप रहना प्रभुके लिए मङ्गल जनक नहीं हैं।"

ब्राह्मणकी बात सुनकर भक्तवृन्दमें कोई-कोई चिन्ताग्रस्त हो उठे, किसीने हँसकर बातको उड़ा दिया। वे बोले—"जो प्रभु जीवोंका उद्धार करनेके लिए अपनी इच्छासे पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं, जिनके यम, काल आदि भृत्य हैं उनको राजासे क्या भय है।"

इस प्रकार तर्कवितर्क करने लगे। विप्रने प्रभुकी चरण-वन्दना करके विदा ग्रहण की।

श्रीमुख-वाणी

अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान् भक्तके मनोभावको जान गये। एक दिन प्रभु भक्तगणको लेकर एकान्तमें बैठकर हँसते-हंसते बोले—"तुम लोग डर रहे हो कि कहीं राजा मुझे बुला न भेजे। जो मुझको चाहता है, उसको मैं भी चाहता हूँ। राजा मुझे बुलायगा तो मैं स्वयं चलकर उसके पास जाऊँगा। राजाकी क्या शक्ति है कि वह मुझे बुलावे, जब तक मैं स्वयं मुझको बुलानेको उसको प्रेरित न करूँ।"

इतनी बात कहते-कहते प्रभु भगवान् भावमें प्रेमाविष्ठ हो गये। तब वे हुङ्कार गर्जन करके कहने लगे—"वेद, पुराण, महाभारत, देवर्षि, राजर्षि, मुझे ढूँढ़ते रहते हैं, तब भी पा नहीं सकते। फिर राजाकी क्या शक्ति है। सङ्कीर्तनके लिए मेरा अवतार हुआ है, इससे सब पतितोंका उद्धार होगा। जो दैत्य, यवन आदि मुझे नहीं मानते, वे भी मेरा नाम लेकर प्रेममें रो देंगे। जितने अस्पृश्य, यवन, चाण्डाल स्त्री, शूद्र आदि नीच जाति कहे जानेवाले हैं, उन सबको इस युगमें भक्तिका दान प्राप्त होगा, जिसकी देवता, मुनि व सिद्धगण भी कामना करते हैं। विद्या-धन-कुल-तपस्या आदिके अहङ्कारमें जो मेरे भक्तोंका असम्मान करते हैं, केवल वे ही इस युगमें भक्तिसे वंचित रहेंगे।"

प्रभुकी इस श्रीमुखकी वाणीमें उनके भगवद्भावका निगूढ़ तत्त्व निहित है। प्रभुका इस समय भगवान्-भाव है। उनके दो भाव थे, भक्त-भाव और भगवान्-भाव। भक्त-भावमें जब वे बात करते थे, तब भक्तगण समझते थे कि भावनिधि प्रभु लोक शिक्षाके लिए ऐसी बात बोल रहे हैं, और जब वे भगवान् भावमें बात करते थे तो वे समझते थे कि स्वयं भगवान् जगत्के जीवके प्रति अपनी भुवन-मङ्गल आदेश-वाणी प्रचार कर रहे हैं। प्रभुकी इस आदेश-वाणीमें उनकी भगवत्ताका पूर्ण विकास परिदृष्ट होता है। उन्होने सबके सामने कह दिया कि पतित-अधम जीवका उद्धार करनेके लिए सङ्कीर्तनारम्भमें उनका अवतार हुआ है। म्लेच्छ यवन, पतित, पाखण्डी—जो उनको नहीं मानते, इस कलियुगमें वे भी उनका नाम लेकर प्रेमानन्दमें रोवेंगे, और रोनेसे ही वे सर्व पापोंसे मुक्त हो जाँयगे, ऋषि-मुनि आदिके द्वारा आकांक्षित दुर्लभ हरिभक्तिकी प्राप्तिके अधिकारी बनेंगे। इस युगमें इस प्रकारके प्रेमानन्दसे कौन लोग वञ्चित होंगे? यह भी करुणामय प्रभुने करुणा करके सुस्पष्ट वाक्यमें कह दिया है। भक्तद्रोही, विद्याभिमानी, धनगर्वी, जाति-कुलाभिमानी तथा ज्ञानमार्गी मायावादी संन्यासीगण प्रभुके पुण्य चरित्र और लीला-पाठसे आनन्द प्राप्त नहीं करेंगे, और उनकी भगवत्ताको स्वीकार नहीं करेगे। उन्होने भगवान्-भावमें यह भविष्यवाणी की कि भूतलपर जितने नगर और गाँव हैं, सर्वत्र उनके परम पवित्र नामका प्रचार होगा।

स्वयं भगवान्के श्रीमुखकी वाणी क्या कभी निष्फल हो सकती है? अब तक बहुतसे लोगोंने

पण्डितोंने, कुलीन ब्राह्मणोंने, संन्यासियोंने, तपस्वियोंने–बहुतोंने श्रीगौराङ्ग अवतारमें विश्वास नहीं किया है। दीनातिदीन भावमें पिपासु होकर जिज्ञासु होकर गौरभक्तका सङ्ग किये बिना उनका भाग्य सुप्रसन्न नहीं हो सकता। ये लोग वैष्णवोंको देखते ही 'नेड़ा-नेड़ीका दल जाता है। कहकर हँसी' उड़ाते हैं, सरल पयार छन्दमें लिखित गौराङ्गलीला ग्रन्थको वे स्पर्श भी नहीं करते, श्रुत्न मङ्गल हरिसंकीर्तनकी ध्वनि, मृदङ्ग करतालकी ध्वनि सुनकर अपने कानोंमें ताला लगा लेते हैं। इन सब भक्तिवहिर्मुख अभागे लोगोंको उद्देश्य करके करुणानिधि श्रीगौर भगवान्ने इस भविष्यद्वाणीका प्रचार किया।

ये लोग सदा ही भक्तिवहिर्मुख रहे, सदा यह पाखण्डियोंका दल त्रितापाग्निमें दग्ध होते रहें—यह करुणामय प्रभुकी इच्छा नहीं है। वे इच्छामय स्वतन्त्र ईश्वर हैं। वही इस पाखण्डी दलके सृष्टिकर्त्ता हैं, उनकी सृष्टिके सब कार्योंके मूलमें गूढ़ रहस्य निहित है। ये सब पाखण्डियोंके दल श्रीगौराङ्ग लीलाके जटिला-कुटिला रस-पोष्टा हैं। पण्डित जगदानन्दने लिखा है—

"गौर-वैरी रसपोष्टा बलि जेन।"

यदि जटिला-कुटिला न होते तो श्रीकृष्णलीला रसकी पुष्टि न होती, वैसे ही इन पाखण्डियोंके दलकी सृष्टि न होती तो श्रीकृष्ण लीला-रसकी परिपुष्टि न होती। इसी कारण प्रभुकी इच्छासे भक्तिवहिर्मुख इन मुट्ठीभर जीव समष्टिकी सृष्टि हुई है। गौर-भक्तोंको इनका सङ्ग परित्याज्य है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने लिखा है—

**वासो मे वरमस्तु घोरदहनज्वालावली पञ्जरे
श्रीचैतन्य पदारविन्द विमुखैर्मा कुत्रचित् संगमः।
वैकुण्ठादिपदं स्वयं च मिलितं नो मे मनो लिप्सते
पादाम्भोजरजच्छय यदि मनाक् गौरस्य नोरस्यते॥**

श्रीचैतन्य चरितामृत ६५.

अर्थ—यदि भयङ्कर अग्नि शिखाकी राशिके पञ्जरमें भी रहना पड़े तो वह अच्छा है, परन्तु श्रीचैतन्य पदारविन्द विमुख व्यक्तिके साथ कभी मेरा सङ्ग न हो। मेरा मन यदि उनके पाद पद्मके रजकी छटाका तनिक भी आस्वादन कर सके तो मुझे स्वयं प्राप्त हुए वैकुण्ठादि स्वर्गोंको भोगनेकी इच्छा न होगी।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि इनके उद्धारकी चेष्टा ही न करें।

हुसेन शाह और मंत्री श्रीरूप-सनातन

प्रभु कुछ दिन रामकेलि ग्राममें रहे। यवन राजा हुसेन शाह निरन्तर गौराङ्ग-रूप-गुण-श्रवणके फलस्वरूप अस्थिर चित्त हो गया। मन ही मन उसको विश्वास हो गया कि यह नवीन संन्यासी साक्षात् खदा है। मन्त्री केशव खानकी बातपर उसको यकीन न आया। उसने अन्तःपुरमें जाकर कुछ देर बिचार करके अपने दो प्रधान हिन्दू राजमन्त्री, दबीर खास और साकर मल्लिकको बुलाया। उनका हिन्दू नाम था रूप और सनातन। वे दोनों सहोदर थे। दक्षिणी ब्राह्मण, कुलमें उनका जन्म था। वङ्ग देशमें आकर निवास करने लगे थे। मुसलमान राजाके अधीन उच्च पद प्राप्त किया था। बादशाहके द्वारा प्रदत्त 'दवीर खास' और 'साकर मल्लिक' की पदवीके नामसे परिचित थे।

कानाईकी नाट्यशाला ग्राममें वे दोनों भाई राज अट्टालिकापर वास करते थे। वे लोग लोकदृष्टिमें यवन-सङ्ग-जनित अहिन्दू भावापन्न होते हुए भी भीतरसे परम कृष्णभक्त वैष्णव थे। कानाई नाट्यशाला ग्राममें इन दोनों भाइयोंने श्रीकृष्ण-लीलाकी अनेक मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा की थी, बहुत व्यय करके देवमन्दिर निर्माण कराया था। आज भी उसका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

वे लोग साधु-संन्यासियोंका प्रतिपालन करते थे। नवद्वीपके बहुतसे अध्यापक पण्डित इनसे वृत्ति प्राप्त करते थे।

यवनराज होसेन शाहने अपने इन दोनों विश्वस्त मन्त्रियोंको अपने पास एकान्तमें बुलाकर पूछा, "हे दरीब खास ! हे साकिर मल्लिक ! तुम दोनों ही हिन्दू हो और मेरे परम विश्वासी कर्मचारी हो। तुम लोगोंसे एक बात पूछता हूँ, मुझको ठीक-ठीक उत्तर देना। रामकेलि ग्राममें जो नवीन संन्यासी आये हैं, उनके अपरूप रूप और अलौकिक महिमाके गुणसे सब मुग्ध हो रहे हैं। वे कौन हैं बतलाओ तो ?

दरीब खासका प्रभुदत्त नाम श्रीरूप था, और साकिर मल्लिकका नाम श्रीसनातन था। श्रीरूपने उत्तर दिया, "खुदावन्द ! यह नवीन संन्यासी जिसकी बात आप कर रहे हैं, इनका जन्म नवद्वीप में है, जो आपके राज्यमें है। आपका परम सौभाग्य है कि आपके राज्यमें ये उदय हुए हैं। जिन्होंने आपको इस गौड़ देशका राजा बनाया है, वे ही भगवान् साक्षात् संन्यासी रूपधारी श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु सर्वदा आपका मङ्गल चाहते हैं। इन्हींके आशीर्वादसे आपकी सर्वत्र जय हो रही है। आप हमसे पूछ क्यों रहे हैं ? अपने मनसे ही पूछ लें। आप देशके राजा हैं, विष्णुके अंशसे आपका जन्म है। आपके चित्तमें ये अपूर्व संन्यासी कैसे लग रहे हैं ?"

यवन राजने यह बात सुनकर अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक कहा,

"शुन मोर मने हेन लय ।
साक्षात् ईश्वर इहाँ नाहिक संशय ।।

चै. च. म. १.१७०

इसके बाद होसेन शाह अपने अन्तःपुरमें चले गये। श्रीरूप और सनातन दोनों भाई परम सन्तुष्ट होकर घर आ गये। घरमें आकर दोनों भाइयोंने युक्ति करके वेष बदलकर प्रभुका दर्शन करनेके लिए जानेका संकल्प किया। वे लोग राजमन्त्री थे, वे जब घरसे बाहर निकलते थे तो बहुतसे हाथी-घोड़े-पैदल उनके साथ चलते थे, बहुतसे सामन्त साथ जाते थे। अतएव उन्होंने वेष परिवर्तन करके प्रभुका दर्शन करनेके लिए जानेका निश्चय किया।

प्रभुके सम्मुख रूप-सनातन

अर्द्ध-रात्रिमें दोनों भाई दो मलिन वस्त्र धारण करके दीन-हीन कङ्गालके वेषमें रामकेलि ग्राममें आये। गम्भीर रात थी, चारों ओर उस समय भी लोग अनवरत हरिध्वनि कर रहे थे। प्रभु कहाँ हैं, यह उनको पता न था। वे लोग प्रभुके पार्षदवृन्दका अनुसन्धान करने लगे। बहुत कष्ट उठाकर उन्होंने दीनदयाल श्रीनिताईचाँद और देन्यावतार हरिदास ठाकुरका दर्शन प्राप्त किया। उनके सामने अत्यन्त दीन भावसे अपना परिचय प्रदान कर प्रणाम करके अपने मनकी बात कह सुनायी।

वहाँ नदियाके भक्तगण भी थे। उनका परिचय पाकर उन्होंने श्रीरूप-सनातनको पहचाना। वे लोग जानते थे कि ये नदियाकी पण्डित मण्डलीका प्रतिपालन करते हैं।

निताईचाँद और हरिदास ठाकुर अत्यन्त सावधानीसे दोनों भाइयोंको प्रभुके पास ले गये। प्रभुका दर्शन करते ही श्रीरूप-सनातन दोनों भाई—

दुइ गुच्छ तृण दुहें दशने करिया ।
गले वस्त्र बाँधि पड़े दण्डवत् हइया ।।

चै. च. म. १.१७५

वे लोग लम्बे होकर रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। कृपानिधि प्रभुने उनके ऊपर कृपादृष्टि डालकर प्रेमगद्गद स्वरमें स्नेहपूर्वक कहा—"उठो, उठो, तुम्हारा मङ्गल हो।" प्रभुके श्रीमुखके

सुमधुर वचन सुनकर परम आश्वस्त होकर दोनों भाई उठकर हाथ जोड़कर रोते रोते स्तवन करने लगे, "श्रीकृष्ण चैतन्य ! दयामय। पतितपावन ! आपकी जय हो। यवनके साथ रहनेसे, उसकी सेवा द्वारा आजीविका चलानेसे हम लोग भी नीच जाति हो गये हैं। आपने पतित तारनेके लिए अवतार लिया है। जगाई–माधाईका उद्धार किया है। वे नीच सेवा नहीं करते थे, वे आपकी निन्दा करने मैं आपका नाम उच्चारण करते थे, इस नामाभासने उनके सारे पाप नष्ट कर दिये और वही उनकी पापसे मुक्तिका कारण बन गया। जगाई–माधाईसे कोटिगुणा अधिक पतित पापी हम लोग हैं।[1] क्योंकि हम लोग म्लेच्छ सेवी हैं, जो गौं–ब्राह्मणके द्रोही हैं। हमारा उद्धार करनेवाला त्रिभुवनमें कोई नहीं दीखता। हम लोगोंका उद्धार करके दिखाओ, तब आपका पतितपावन नाम सफल होगा। हम लोग सत्य कहते हैं कि हमारे समान दयाका पात्र[2] दूसरा कोई नहीं है। हम लोगोंपर दया करके अपना दयालु नाम सफल करिये, जिससे सारा ब्रह्माण्ड आपकी दयाका बल देख सके। अपनी अयोग्यता देखकर तो बड़ा क्षोभ होता है, लेकिन आपके गुण देखकर भरोसा होता है। जैसे वामन व्यक्ति चाँद पकड़ना चाहे वैसे ही हमारी वाञ्छा है।"

(चै. च. म. १.१७८-१९३)

इस प्रकार अपूर्व दैन्यपूर्वक प्रभुकी स्तुति करके निम्न लिखित श्लोक पाठ करके स्तव समाप्त किया।

भवन्तमेवानुचरन्तिरन्तरं
प्रशान्तनिः शेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिक-नित्यकिङ्कर
प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्॥

यामुने मुनि विरचित स्तोत्ररत्न ४६

हे नाथ ! मैं कब तुम्हारा ऐकान्तिक नित्य किंकर होकर सर्वदा तुम्हारा चिन्तन करके सेवा करते हुए सनाथ जीवनमें आनन्द प्राप्त करूँगा ? अर्थात् इस समय तुम्हारे नित्य किंकरत्वके अभावमें अनाथ होकर दुःखित हूँ। तुम्हारा ऐकान्तिक नित्य किंकर होनेपर सनाथ हो जाऊँगा, सब दुःख दूर हो जाँयगे और जीवनमें परमानन्दकी प्राप्ति होगी।

दोनों भाइयोंकी यह परम आर्त्तदैन्योक्ति सुनकर प्रभु परम आनन्दित हुए। इससे पहले पत्र द्वारा श्रीरूप-सनातनने प्रभुसे कृपा भिक्षा की थी। कृपानिधि प्रभुको वह याद था। शिक्षागुरु श्रीगौर-भगवान्‌ने उनके पूर्व पत्रके उत्तरमें कुछ उपदेश दिया था। उस उपदेशके प्रभावसे उनके मनमें इस समय ऐसा अपूर्व दैन्यभाव उदय हुआ है, प्रभुके चरणोंमें आत्म समर्पणकी ऐसी प्रबल वासना हुई है। सर्वज्ञ प्रभुने श्रीरूप सनातनके हृदयकी वासना समझकर निम्नलिखित एक श्लोक उनको पत्रमें लिखा था—

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु :
तदेवास्वादयस्यन्तर्नवसङ्गरसायनम्॥

चै. च. म. १.१३

अर्थात् जो रमणी उपपतिमें अत्यन्त आसक्त होती है, वह गृह कार्यमें व्यग्र होकर भी उपपतिके सङ्गके सुखका मन ही मन आस्वादन करके जैसे आनन्दित होती है, भक्तजन उसी प्रकार गृह कर्ममें आसक्त होकर भी हरिलीला रसास्वादन करके मन ही मन आनन्द प्राप्त करते हैं।

---

[1] मत्तुल्यो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन।
परीहारेऽपि लज्जा मे किं ब्रूवे पुरुषोत्तम॥
भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.२५४

[2] न मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे तदा दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः॥
यामुने मुनि विरचित स्तोत्ररत्न ५०

भक्तवत्सल प्रभुने उसी बालको उठाकर अब श्रीरूप-सनातनको पास बैठाकर चुपकेसे कहा—"तुम दोनों भाई मेरे पुराने दास हो। आजसे तुम दोनोंका नाम रूप-सनातन हुआ। तुम्हारे दैन्यसे मेरा कलेजा फटा जा रहा है, अतः दैन्यको छोड़ो। तुमने बार-बार मुझे दैन्य-पत्री भेजी, उसीसे मुझे तुम्हारी स्थितिका पता लग गया। तुम्हारी वासना जानकर ही एक श्लोक भेजा था। मेरा यहाँ आगमन ही केवल तुम लोगोंसे मिलनेके उद्देश्यसे ही हुआ है। इसको न जानकर लोग कहते हैं कि मैं रामकेलि ग्राममें क्यों आया। अच्छा हुआ तुम लोग आकर मिल लिये। अब घर जाओ, मनमें कोई शंका-भय न करना। तुम लोग जन्म जन्मके मेरे किंकर हो। शीघ्र ही श्रीकृष्ण तुम लोगोंका उद्धार करेंगे।"

इतना कहकर करुणामय प्रभुने दोनों भाइयोंके सिरपर श्रीकर-स्पर्श करके आशीर्वाद दिया। दोनों भाई तब प्रेमानन्दमें विह्वल होकर प्रभुके युगल चरण कमलको अपने-अपने मस्तकपर धारण करके प्रेमावेगमें व्याकुल होकर रो पड़े। भक्तवत्सल प्रभुने दोनोंको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया और भक्तवृन्दको पुकार कर कहने लगे—

"सबे कृपा करि उद्धार एइ दुइ जने।"

चै. च. म. १.२०३

भक्तगण श्रीरूप सनातनके प्रति प्रभुकी कृपादृष्टि देखकर प्रेमानन्दमें हरि ध्वनि करने लगे। प्रभुने कृपा करके उनको जो नाम दिया, उसी नामसे अब वे भक्तसमाजमें परिचित हुए।* ज्येष्ठ भ्राताका नाम हुआ सनातन, और कनिष्ठका नाम हुआ रूप। प्रभुके श्रीचरणको छोड़कर तब श्रीरूप सनातन भक्तवृन्दके चरणोंमें गिरे। सब लोग उनको धन्य-धन्य करने लगे।

नित्यानन्द हरिदास श्रीवास गदाधर।
मुकुन्द जगदानन्द मुरारि वक्रेश्वर॥
सबार चरण धरि पड़े दुइ भाइ।
सबे बले—धन्य तुमि, पाइले गोसाञि॥

चै. च. म. १.२०५-२०६

प्रभुने जिन षड् गोस्वामियोंकी सृष्टि की थी, तथा उन सबको श्रीवृन्दावन भेजा था, श्रीरूप और सनातन उन छ गोस्वामियोंमें दो थे। यह सब बात आगे आयगी।

सब भक्तवृन्दकी चरणधूलि लेकर दोनों भाई जब प्रभुके चरणोंमें विदा लेने आये, तब सनातनने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें धीरे-धीरे एक बात निवेदन की—"प्रभु! यद्यपि गोड़ राजा तुम्हारी भक्ति करता है, तो भी वह यवन है, उसकी प्रतीति नहीं की जा सकती, इसलिए आप यहाँसे शीघ्र चले जाय। तीर्थ-यात्रामें भी इतनी भीड़ साथ ले जाना ठीक नहीं लगता और वृन्दावन-यात्राकी तो यह परिपाटी है ही नहीं।"

श्रीसनातनकी पहली बातसे प्रभुको हँसी आ गयी। उनकी दूसरी बात प्रभुके मनमें जँची। उन्होंने सोचा कि सनातनके मुखसे परम रङ्गीले श्रीवृन्दावनचन्द्रने उनको यह शिक्षा दी है। यह सोचकर वे रामकेलि ग्रामसे चलकर प्रातःकाल भक्तवृन्दके साथ राजमहलके निकट कानाईकी नाट्यशाला ग्राममें पहुँचे। उस ग्राममें श्रीरूप-सनातनका वास था। वहाँ प्रभु एक दिन ठहरे। श्रीरूप सनातनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण-लीलाकी श्रीमूर्त्तियोंका दर्शन करके प्रभु मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए।

---

* राजाकी दी हुई उपाधि परमार्थमें नहीं लगती। अतएव प्रभुने श्रीरूप सनातनकी यवन राजदत्त उपाधि छुड़ाकर उनको विषय-मुक्त कर दिया। श्रीरूप-सनातन उनके प्रभुदत्त नाम थे। उनके पिताका नाम कुमारदेव था। वे दाक्षिणात्य प्रदेशके किसी राजवंशके ब्राह्मण थे।

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी प्रभुके एक परम भक्त थे। वे श्रीनृसिंहजीके उपासक थे। प्रभुके श्रीवृन्दावन जानेकी बात सुनकर उन महापुरुषने मानसिक रूपमें कुलिया नगरसे 'कानाईकी नाट्यशाला' नगर पर्यन्त सारे पथ मणिरत्न द्वारा सुसज्जित कर दिये। कोमल पुष्प-पँखुड़िया मार्गमें बिछा दी, जिससे प्रभुके चरज-कमलमें कोई आघात न लगे। पथके दोनों ओर मानसिक रूपमें सुन्दर पुष्पित वकुल वृक्ष रोप दिये। पथमें बीच-बीचमें दोनों ओर दिव्य पुष्करिणी बनवा दी। उनके घाट दिव्य मणिरत्नके द्वारा बँधवा दिये। उनके भीतर विकसित कमलदल सुशोभित होने लगे। निर्मल जल था, नाना प्रकारके पक्षी आनन्दित मनसे मधुर ध्वनि कर रहे थे, मृदु-मन्द समीरण बह रहा था। मनोरम पुष्पगन्धसे चतुर्दिक आमोदित हो रहा था। इस प्रकार मानसमें प्रभुके श्रीवृन्दावन जानेके पथको कान्हाईकी नाट्यशाला पर्यन्त ठीक-ठाक करके उनका मन और आगे अग्रसर न हुआ। इससे भक्तचूड़ामणि नृसिंहानन्दने समझा कि प्रभुको इसबार श्रीवृन्दावन जाना नहीं होगा। इस कान्हाईकी नाट्यणालासे वे लौटेंगे।

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीने अपने मनकी बात भक्तोंको कह सुनायी। भक्तगण उनकी बात सुनकर खूब हँसे। नृसिंहानन्दकी यह सेवा मानसिक सेवा कहलाती है, इस प्रकारकी मानसिक सेवासे भगवत् भजन सुष्ठुरूपमें संसिद्ध होता है। साधक भक्तगण इसी मानसिक सेवासे अपने-अपने अभीष्ट देवको प्राप्त होते हैं। श्रीमन्महाप्रभुके मतसे यह सर्वोत्कृष्ट भजन है। श्रीमद्दास गोस्वामीको प्रभुने यह मानस सेवा देकर ही वृन्दावन भेजा था।

श्रीसनातनकी बातसे प्रभुका मन फिर गया। उन्होंने अब श्रीवृन्दावन-यात्राका संकल्प त्याग दिया। नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीका वाक्य सिद्ध हो गया। भक्तवृन्दको प्रभुने बुलाकर कहा कि वह इस बार श्रीवृन्दावनकी यात्रा नहीं करेंगे। नीलाचल लौट जाँयगे। वे लोग नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीको धन्य-धन्य कहने लग गये। भक्तके भगवान् श्रीगौराङ्ग सुन्दरने भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण की। प्रभु कान्हाई नाट्यशालासे शान्तिपुरके रास्तेसे लौटे। प्रभु रास्तेमें जा रहे थे, उनके साथ वे ही लाखों-लाखों आदमी थे। श्रीसनातनकी बात याद करके प्रभु मन-ही-मन सोच रहे थे—

मथुरा जाइव आमि एत लोक संगे।
किछु सुख ना पाइव हइवे रसभंगे॥
एकाकी जाइव—किवा संगे एकजन।
तबे से शोभये वृन्दावनेरे गमन॥

चै. च. म. १.२१५,२१६

प्रभुका शान्तिपुर प्रत्यावर्तन एवं रघुनाथदाससे मिलन

प्रभुके मनमें अब उतनी स्फूर्ति नहीं है, वे श्रीवृन्दावन जा न सके। लोगोंकी भयङ्कर भीड़से व्याकुल होकर वे पुन: शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत भवनमें आ उपस्थित हुए। श्रीअद्वैत प्रभु उनको पाकर आनन्द सागरमें निमग्न हो गये। पाँच-सात दिन प्रभु शान्तिपुरमें रहे। श्रीअद्वैत प्रभुको मनकी बात कहकर किञ्चित् सुस्थिर हुए।

शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत भवनमें श्रीरघुनाथदाससे मिलन हुआ। वे भी छ गोस्वामियोंमें-से एक हैं। इस महापुरुषकी पुण्य जीवन कथा संक्षेपमें यहाँ वर्णन की जा रही है।

रघुनाथदासके पिताका नाम था गोवर्द्धनदास। उनके पिताके ज्येष्ठ भ्राता थे हिरण्यदास। ये दोनों उन दिनों प्रसिद्ध सप्तग्रामके शासनकर्त्ता थे। सप्तग्राम सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित था। गङ्गा यमुना और सरस्वतीके सङ्गम स्थल पर ही यह सप्तग्राम था। उसको त्रिवेणी घाट भी कहते थे।

सेइ सप्त ग्रामे आछे सप्त ऋषि स्थान ।
जगते विदित जे त्रिवेणी घाट नाम ।।
सेइ गंगा घाटे पूर्वे सप्त ऋषिगण ।
तप करि पाइलेन गोविन्दचरण ।।

चै. भा. अं. ५.४४३,४४४

सप्तग्राम महातीर्थ स्थान है। इसी सप्तग्राममें रघुनाथदासका जन्म हुआ था। उनके पिताके पास अतुल ऐश्वर्य था। उस जमानेमें बारह लाख रुपयेकी वार्षिक आय थी। हिरण्यदासको कोई पुत्र न था। गोवर्द्धनदासके एकमात्र पुत्र थे रघुनाथदास। बाल्यकालमें वे विलासिताकी गोदमें पाले पोसे गये थे। उनके पिताने उनको संस्कृतकी शिक्षा दी थी। बाल्यकालसे ही रघुनाथदास विषयोंसे उदासी थे।

शैशव कालसे ही उनके हृदयमें विषय-वैराग्य और भगवद्भक्तिका भाव उदय हुआ था। रघुनाथदासने बाल्यकालमें हरिदास ठाकुरकी कृपा प्राप्त की थी। बलराम आचार्य गोवर्द्धनदासके कुल पुरोहित थे। वे चाँदपुर गाँवके निवासी थे। रघुनाथदास उनके पास संस्कृत पढ़ते थे। हरिदास ठाकुर जब चाँदपुरमें जाते थे तो रघुनाथदास नित्य उनके पास हरिसङ्कीर्तन सुनते थे। हरिदास ठाकुरने उनपर कृपा की। उनकी कृपासे रघुनाथ दासको विषयोंसे वैराग्य हो गया।

प्रभुने जब संन्यास ग्रहण किया तो सारे देशमें हा-हाकार मच गया। सप्तग्राममें गोवर्द्धनदास और हिरण्यदास यह समाचार सुनकर मृतवत् हो गये। रघुनाथदासकी अवस्था उस समय १५ या १६ वर्षकी थी। उन्होंने यौवनमें अभी पदार्पण ही किया था। पितासे आज्ञा प्राप्तकर शान्तिपुरमें आकर उन्होंने सर्वप्रथम प्रभुके संन्यास वेषका दर्शन किया। नदियानागर श्रीगौराङ्ग सुन्दरके संन्यासी वेषको देखकर रघुनाथदास विक्षिप्त-से हो गये। वे अधीर होकर भूतलपर मूर्च्छित हो गिर पड़े। उनको कुछ अच्छा न लगता था। उनके पिता और पितृव्य श्रीश्रीअद्वैत प्रभुके चरणाश्रित थे। श्रीअद्वैत प्रभुकी कृपासे रघुनाथदास श्रीगौर भगवान्‌का अधरामृत पाकर गौरप्रेममें उन्मत्त हो गये। प्रभु जब तक शान्तिपुरमें रहे, क्षणमात्रके लिए भी रघुनाथदासने उनका चरणाश्रय न छोड़ा।

प्रभुका अधरामृत पान करके रघुनाथदासके हृदयमें गौरप्रेमका प्रबल तरङ्ग उठा। परन्तु उनको प्रभुका सङ्ग छोड़कर विषण्ण मनसे घर आना पड़ा। घर आकर वे गौरप्रेममें उन्मत्त हो गये, विषयोंमें और ऐश्वर्यमें उनकी तनिक भी अनुरक्ति न रही।

श्रीगौरानुराग ऐसी ही अपूर्व वस्तु है। रघुनाथदासका गौरानुराग इस भूतलपर एक अपूर्व वस्तु थी। उनको पता चला कि प्रभु नीलाचलमें अवस्थान करते हैं। रघुनाथने अनेक बार घरसे भागनेकी चेष्टा की। परन्तु उनके माता-पिताने पता पाकर अत्यन्त कठोर शासनमें उनको बाँधकर घरपर रखा।

पुत्रका वैराग्य भाव देखकर उनके माता-पिताने एक सर्व सुलक्षणा परम सुन्दरी कन्याके साथ रघुनाथदासका शुभ विवाह कर दिया। परन्तु रघुनाथदासका उदासीन मन कदापि घरपर रहनेके लिए राजी न हुआ। इन सब गृह-बन्धनोंके बीचमें रहकर भी रघुनाथदासका मन निरन्तर श्रीगौराङ्गके चरणोंके दर्शनके लिए लोलुप रहने लगा। उनको कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ईश्वरानुरागका यही स्वधर्म है।

इस प्रकार पाँच वर्ष बीत गये। प्रभुका जब पुनः गौड़ देशमें शुभागमन हुआ तो रघुनाथदास यह समाचार पाकर आनन्द सागरमें निमग्न हो गये। प्रभुके श्रीचरणोंके दर्शनकी लालसामें वे नितान्त उत्कण्ठित होकर पिताके चरणोंमें जा गिरे। पिताके आदेशको प्राप्त किये बिना वे कहीं जा नहीं सकते थे। पितृ गृहमें एक प्रकारसे कारागृहमें बन्द थे।

रघुनाथदासने रोते-रोते अपने पितासे कहा, "बाबा! मुझको अनुमति दीजिये। एकबार

शान्तिपुर जाकर प्रभुके चरणोंका दर्शन कर आऊँ। आप यदि अनुमति न देंगे, तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे।"

आज्ञा देह जाइ देखि प्रभुर चरण।
अन्यथा ना रहे मोर शरीरे जीवन॥

चै. च. म. १६.२३०

गोवर्द्धनदासने लाचार होकर पुत्रको बहुत आदमियोंके साथ बहुमूल्य द्रव्यादि देकर शान्तिपुर भेजा। रघुनाथदास दौड़ते-दौड़ते शान्तिपुर जाकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर अनाथ बालकके समान उच्च स्वरसे रोने लगे। वे सात दिन प्रभुके साथ शान्तिपुरमें रहे। अपने मनके सारे दु:खोंको प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया और पूछा कि "रक्षकोंके हाथसे मेरा छुटकारा कैसे हो?"

करुणानिधि प्रभुने भक्तके मनके दु:खको समझा, और उसको तदुपयुक्त उपदेश दिया। प्रभुके श्रीमुखकी उपदेश वाणी जगत्‌में परम दुर्लभ वस्तु है। प्रभुने हँसते-हँसते स्नेहपूर्वक रघुनाथदाससे कहा—"पागलपन मत करो, स्थिर होकर घर जाओ। लोक दिखाऊ मर्कट-वैराग्य ठीक नहीं। अनासक्त होकर यथा योग्य भोग भोगते रहो। भीतरमें निष्ठा रक्खो, बाहरसे लोक व्यवहार करते रहो। श्रीकृष्ण शीघ्र तुम्हारा उद्धार करेंगे। वृन्दावन यात्रा करके जब मैं नीलाचल लौट आऊँ। तब तुम किसी प्रकार छल करके मेरे पास आ जाना, उस छलकी भी तुमको उसी समय स्फुरणा होगी। जिस पर श्रीकृष्ण कृपा करते हैं, उसको बन्धनमें कौन रख सकता है।"

रघुनाथदासको उद्देश्य करके शिक्षागुरु श्रीगौराङ्ग प्रभुने सब जीवोंको यह मूल्यवान उपदेशरत्न प्रदान किया है। इस भवसागरको एकवारगी पार करना कठिन है। साधन-भजन करके क्रमशः जीव इसका किनारा प्राप्त करता है। परन्तु यह साधन-भजन आन्तरिक और निष्कपट होना चाहिये। लोगोंको दिखलानेके लिए मर्कट वैराग्य करनेसे कोई लाभ न होगा। उससे उलटा फल होगा। हृदयमें शुद्ध प्रेम होना चाहिये। आन्तरिक वैराग्य हुए बिना श्रीभगवान्‌के चरणोंमें ऐकान्तिक भक्तिका उदय नहीं होता। मन निर्दोष होना चाहिये। बाह्य लोक व्यवहार करो, इसमें कोई हानि नहीं है, परन्तु हृदयमें विषयोंसे वैराग्य होना चाहिये, भीतर निष्ठा होनी चाहिये। यथायोग्य विषयभोग करनेमें कोई क्षति नहीं है, परन्तु उसमें आसक्त नहीं होना चाहिये।

प्रभुने यह सब उपदेश देकर रघुनाथदासको विदा किया। रघुनाथने घर लौटकर प्रभुके उपदेशका पालन किया। उनके माता-पिता पुत्रमें यह अद्भुत परिवर्तन देखकर परम आनन्दित हुए। तब उन्होंने पुत्रके ऊपरसे कड़ा पहरा हटा लिया और बन्धन भी हटा दिया।

रघुनाथदास उत्कण्ठापूर्वक प्रभुके श्रीवृन्दावनसे नीलाचल लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

परमपूज्यपाद रघुनाथदास गोस्वामीके उत्कट विषय त्यागकी बात विस्तार पूर्वक कही जायगी। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

अनन्त गुण रघुनाथेर के करिबे लेखा।
रघुनाथेर नियम जेन पाषाणेर रेखा॥

चै० च० अं० ६.३०३

गौरीदास पण्डितके घर

प्रभुने शान्तिपुर होकर भक्तगणके साथ श्रीनीलाचलकी ओर यात्रा करनेका मन ही मन सङ्कल्प किया। परन्तु भक्त बाञ्छा कल्पतरु श्रीभगवान्‌की भक्तवाञ्छाकी पूर्ति अपने निजी सङ्कल्पसे बड़ी होती है। गौरीदास पण्डित प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त, ब्रजके सखा सुबल थे। उनके अनुरोधसे प्रभुने इस समय श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ एकबार श्रीगौरीदास पण्डितके घर अम्बिका कालनामें पदार्पण किया।

गौरीदास पण्डित एकान्त गौरभक्त थे, उनका व्रजभाव था। श्रीगौर नित्यानन्दको वह साक्षात् श्रीकृष्ण-बलराम देखते थे, सखाभावमें उनकी सेवा करते थे। श्रीगौर भगवान् जब श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि भक्तगणको साथ लेकर भक्तचूड़ामणि गौरीदास पण्डितके घर जाकर उपस्थित हुए तो पण्डितके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने उन लोगोंकी परम समादर पूर्वक सेवा-पूजा की। इस उपलक्ष्यमें कालनामें महामहोत्सव हुआ।

गौरीदास पण्डितने दोनों प्रभुओंके चरण पकड़ कर रोते हुए निवेदन किया—"तुम दोनों यहीं रहो, यदि छोड़कर चले जाओगे तो निश्चय समझो, मेरे प्राण नही रहेंगे।"

प्रभु इस बातसे मन ही मन सन्तुष्ट होकर स्नेह पूर्वक बोले—"गौरीदास ! तुम क्या पागल हो गये हो ? मैं इस शरीरसे तुम्हारे पास कैसे रहूँगा ? तुम यह दुराशा छोड़ दो। तुम मेरी मूर्त्ति प्रतिष्ठा करो, तुम निश्चय जानो कि मैं उस मूर्त्तिमें प्रकाशित होऊँगा। मेरी बात मानो, सुस्थिर हो जाओ।"

प्रभुकी यह बात सुनकर गौरीदास पण्डित मर्मान्तिक पीड़ा अनुभव करते हुए, लम्बी साँस ले लेकर उच्च स्वरसे रोने लगे। किसी प्रकारसे भी उनके मनको धैर्य नहीं होता था। तब दोनों प्रभुओंने उनको बहुतेरा समझाया, परन्तु उनका मन न माना। वे रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें लोटते हुए बोले—"हे प्रभु ! मैं तुम दोनों भाइयोंको कदापि न छोड़ूँगा। बहुत भाग्यसे तुम्हें मैंने घरपर प्राप्त किया है। मैं तुम लोगोंको अपने घरपर रक्खूँगा, रक्खूँगा।"

भक्तके भगवान् भक्तवत्सल प्रभुने तब निताई चाँदके साथ चुपकेसे परामर्श करके भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण करते हुए गौरी दास पण्डितसे कहा—"अच्छा, हम दोनों भाई तुम्हारे पास रहेंगे।" इस प्रकार कहकर दोनों जन दो मूर्त्ति लेकर आये और इस प्रकार चार जन खड़े हो गये और गौरीदाससे कहा—"तुम्हारी इच्छा हो उन दो जनको अपने घरमें रख लो तुम्हारी प्रतीतिके लिए हम तुम्हारे पास ही मांगकर खायँगे।"

तब गौरीदास पण्डितने क्या किया ? सुनिये—

सुनिया पण्डितराज, करिला रन्धन काज,
चारि जने भोजने वसिला।
पुष्पमाला वस्त्र दिया ताम्बूलादि समर्पिया,
सर्व अङ्गे चन्दन लेपिला ॥

इस प्रकार प्रभुद्वयने भक्त चूड़ामणि गौरीदास पण्डितका मन फेरकर उनको अपनी अभिन्न श्रीमूर्त्तिकी सेवा प्रदान करके सन्तुष्ट किया।

नाना मते परतीत, कराइया फिराइल चित,
दोंहार राखिया निज घरे।
पण्डितेर प्रेम लागि दुइ भाइ खाय माँगि,
दोंहे गेला नीलाचल पुरे ॥

इस प्रकार श्रीमूर्त्ति रूपमें गौर निताई दोनों भाई गौरीदास पण्डितके घर रह गये। अम्बिका कालनाकी श्रीमूर्त्ति प्रभुद्वयकी आदि मूर्त्ति है। ऐसी सुन्दर मूर्त्ति कभी किसीके देखनेमें नहीं आयी। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी आदि श्रीमूर्त्ति चार स्थानोंमें अब तक पूजी जाती है। उन्होंने पूर्वदेशमें गमन करके अपनी माता महीको अपनी श्रीमूर्त्ति प्रदान की थी। ढाका दक्षिण ग्राममें* वह अति सुन्दर गौर कृष्ण श्रीमूर्त्ति आज तक गौर भक्तोंके गौर विरहको दूर कर रही है। काशीश्वर पण्डितको प्रभुने जब श्रीनीलाचलसे श्रीवृन्दावन भेजा था तो उनको भी अपनी श्रीमूर्त्ति देकर उनके गौर-विरह-तापको शमन किया था। श्रीवृन्दावनमें वह सुन्दर गौर-गोविन्द श्रीमूर्त्ति आज भी विद्यमान है। अम्बिका कालनाकी श्रीमूर्त्ति प्रभु प्रदत्त आदि

* पाकिस्तान—बंगलादेश बनने सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गया।

श्रीमूर्त्ति है। श्रीनवद्वीपकी गौराङ्ग मूर्त्तिको प्रभुके स्वप्नादेशसे श्रीविष्णुप्रिया देवीकी इच्छासे श्रीवंशीवदन ठाकुरने प्रतिष्ठापित किया था। यह सब श्रीमूर्त्ति प्रभुके प्रकट कालमें ही प्रतिष्ठित और पूजित हुई थी। उसके बाद प्रभुकी अनन्त मूर्त्तियाँ अनन्त स्थानोंमें प्रतिष्ठित होकर पूजित और सेवित हो रही हैं।

पहले जो पदाँश उद्धृत किये गये हैं, वे श्यामानन्द ठाकुर कृत हैं। श्रीगौरी दास पण्डितने सख्य-रसकी स्नेह रज्जुमे भुवन-दुर्लभ निताई-गौर दोनों भाइयोंको सदाके लिए अपने घर बाँध रक्खा। इस महापुरुषके सम्बन्धमें श्यामानन्द ठाकुरने अपने पदकी भणितामें लिखा है—

निताइ चैतन्य विने, आर किछु नाहि जाने,
के कहिवे प्रेमेर बड़ाइ।
साक्षाते राखिल घरे, हेन के करिते पारे,
निताइ-चैतन्य दुइ भाइ॥
प्रेमे लम्फ झम्प जार, पुलकित हुहुङ्कार,
क्षणेक रोदन क्षणे हास।
ताँर पाद पद्म रेणु, भूषण करिया तनु,
कहे दीन हीन कृष्ण दास॥

जगदीश पण्डितके यहाँ

श्रीश्रीमन्महाप्रभु कालनासे शान्तिपुर जाते समय एक बार यशोड़ामें जगदीश पण्डितके घर गये। 'जगदीश विजय चरित्र' ग्रन्थमें प्रभुकी यह लीला कहानी वर्णित है। साथमें श्रीनिताई चाँद थे। दोनों भाई एक साथ लीलारङ्गमें यशोड़ामें आये।

यहाँ जगदीश पण्डितके विषयमें कुछ परिचय दिया जा रहा है। पहले वे श्रीहट्टके निवासी थे। यह पूर्व ही कहा जा चुका है कि प्रभुके प्रधान-प्रधान भक्तोंका आदिम निवास श्रीहट्ट था। उनकी स्त्रीका नाम दुःखिनी था, वह परम भक्तिमती थी। शचीमाताकी पड़ोसिनी और सङ्गिनी थी। जगदीश पण्डित विप्र पुरन्दरके समवयस्क थे, दोनोंमें बन्धुत्व था। निमाई जब तीन वर्षके शिशु थे तो एक दिन वे रोते-रोते व्याकुल हो उठे। उस दिन एकादशी तिथि थी। जगदीश पण्डितके घर हरिवासरका नैवेद्य प्रस्तुत था। बाल गौराङ्गने उस एकादशीके नैवेद्यको खानेका हठ पकड़ लिया। शचीमाता यह बात सुनकर व्यग्र हो उठीं, दुरन्त निमाईको बहुतेरा समझाया, पर वह न माना। केवल उस नैवेद्यको खानेके लिए हठ करके रोने लगा। जगदीश पण्डितकी भक्तिमती स्त्री दुःखिनीने यह बात अपने पतिसे जाकर कही। जगदीश पण्डित परम भक्त थे, उन्होंने सोचा कि शिशु गौराङ्गके देहमें गोपाल विराज रहे है, और शिशुरूपमें वे यह नैवेद्य चाहते हैं। तत्काल उन्होंने एकादशीका नैवेद्य लाकर गौराङ्गको दे दिया, तब वे शान्त हुए। यह लीला प्रभुकी नवद्वीप लीलामें विस्तार पूर्वक वर्णित है।

जगदीश पण्डित और उनकी भक्तिमती स्त्री निमाई चाँदको पुत्रवत् स्नेह करते थे। जब प्रभुने संन्यास ग्रहण करके गृह त्याग किया, तब इनके हृदयमें जो शूल चुभा, वह वर्णनातीत है। शचीमात और विष्णुप्रिया देवीकी तत्कालीन दशा देखकर वे विषम व्यथित चित्तसे नवद्वीप छोड़कर यशोड़ामें जा बसे। वहाँ जगन्नाथ मूर्त्ति स्थापित की। अपने मनका दुःख किसीपर प्रकट न होने दिया।

प्रभु जब संन्यास ग्रहणके बाद नवद्वीपमें आये तो सब लोग उनका दर्शन करने शान्तिपुर गये। परन्तु जगदीश नहीं गये। अभिमान और रोषके वश होकर वे घर बैठे श्रीगौराङ्ग भजन करते रहे। अन्तर्यामी प्रभुने भक्तकी मनोवेदनाको समझा। वे स्वयं श्रीनिताई चाँदको साथ लेकर एक दिन शान्तिपुरसे यशोड़ामें श्रीजगदीश पण्डितके घर जाकर उपस्थित हुए।

बहुत दिनोंके बाद जगदीश पण्डित और उनकी भक्तिमती स्त्री दुःखिनी देवी निमाई चाँदको अपने

घर पाकर परम आनन्दित हुए। क्या करें, क्या न करें—कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे थे। निताई चाँदको साथ देखकर वे लोग और भी प्रेमानन्दमें विह्वल होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। बहुत देरके बाद चित्त स्थिर करके दुःखिनी देवीने निताई-गौराङ्गके लिए पायसान्न प्रस्तुत करके उनको भोजन कराया। उसी समय जगदीश पण्डितको पुत्र-वियोग हुआ था। परन्तु उस दुर्जय पुत्र शोकको उन दोनोंने तृणवत् समझा और श्रीश्रीनिताई गौराङ्गकी सेवामें नियुक्त हुए। श्रीवास पण्डितके समान जगदीश पण्डितने भी अपनी स्त्रीसे कहा—"अब शोक-दुःख करनेसे काम न चलेगा, ऐसा करो जिससे हमारे निताई-गौराङ्गकी सेवामें कोई त्रुटि न हो।"

धन्य हो जगदीश! इस प्रकारकी एकनिष्ठ भक्ति न होती तो श्रीगौर भगवान् तुम्हारे वशीभूत कैसे होते? तथा पुत्र रूपमें वह तुम्हारे घर कैसे रहते? धन्य हैं तुम्हारी भक्तिमती स्त्री दुःखिनी देवी। उनके अपूर्व वात्सल्य स्नेहकी अधिकता से तुमने गौर भगवान्‌को पुत्र रूपमें प्राप्त किया था। तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात।

जगदीश पण्डितकी इच्छा थी कि श्रीगौराङ्ग प्रभुको पुत्र रूपमें यशोड़ामें रक्खें। भक्तवत्सल इच्छामय प्रभुने भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण की। इसके फलस्वरूप उसी समय यशोड़ामें गौरमूर्त्ति स्थापित हुई। वह अपूर्व जीवन्त प्रत्यक्ष मूर्त्ति थी। उस अपूर्व मूर्त्तिको देखकर जगदीश पण्डित और उनकी पुत्र-शोकातुरा स्त्री दुःखिनी देवी दुर्जय पुत्र शोकको भूल गये, तथा वात्सल्य भावमें गौर भजन करने लगे। आज भी वह मूर्त्ति यशोड़ामें विद्यमान है।

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी इच्छासे श्रीगौर सुन्दरने यह अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया। वे प्रभुकी इच्छा शक्ति थे। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी अपरूप मूर्त्तिका दर्शन करके प्रेमानन्दमें विभोर होकर श्रीनिताई चाँदने उस समय क्या कहा और किया—यह 'जगदीश चरित्र विजय' ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है—

गौर प्रेमे मत्त सदा नित्यानन्द राय।
एक बार गौरांग प्रभुर पाने चाय।।
आर बार प्रतिमूर्त्ति करे दरशन।
किछु भेद नाइ देखि परानन्द मन।।
दुइ महाप्रभु तिंह एकत्र देखिया।
जगदीश प्रति कहे प्रसन्न हइया।।
धन्य धन्य जगदीश कहिये तोमारे।
दुइ गौर प्रकट कैला तब गृहे।।

श्रीगौराङ्ग-लीला मधुके भी मधुमयी तथा अपूर्व है। एक-एक लीलारङ्ग एक-एक प्रेमानन्दका स्रोत है। उससे शत-शत धाराएँ प्रबाहित होती हैं, उस धाराके स्निग्ध और सुशीतल प्रेम-सलिलमें भक्तवृन्द स्नात होते हैं। यह जो अपूर्व लीला-रसका स्नान है, यह गङ्गा स्नानसे भी परम पवित्र है। श्रीकविराज गोस्वामी कह गये हैं—

अनन्त चैतन्य कथा कहिते न पारि।
लोभे लज्जा खाइया तार करि टानाटानि।।

चै. च. म. ६.३३१

अट्ठाईसवाँ अध्याय

द्वितीय बार प्रभुका श्रीहट्ट गमन

सेइ भाग्ये अद्यापि ओ सर्व वंग देशे।
श्रीचैतन्य सङ्कीर्तन करे स्त्री-पुरुषे ॥

चै. भा. आ. १०.८०

माताका आदेश

श्रीमन् महाप्रभुकी नवद्वीप लीलामें उनके पूर्व-वङ्ग भ्रमनके प्रसङ्गमें प्रथम बार श्रीहट्ट गमनका विवरण लिखा जा चुका है। श्रीहट्टके ढाकादक्षिण ग्राममें प्रभुकी पितामही शोभादेवीको दर्शन देने, तथा उनको गौरकृष्ण श्रीमूर्त्ति प्रदान करनेकी लीला-कथा पहले वर्णित हो चुकी है।

प्रभु जब संन्यास ग्रहण करके पाँच वर्षके बाद शान्तिपुर आये, तो शचीमाता नवद्वीपसे वहाँ गयी। बहुत दिनोंके बाद अपने जीवन सर्वस्व निमाई चाँदके चन्द्रमुखको देखकर सन्तप्त प्राणोंको शीतल किया। अपने हाथसे नाना प्रकारका व्यञ्जन तैयार करके अपने प्रियतम पुत्रको मनकी साधसे भिक्षा कराया, यह सब लीला-कथा पूर्व अध्यायमें लिखी जा चुकी है, इसी समय शचीमाताके मनमें अचानक एक बात उदय हुई। वही प्रसङ्ग यहाँ लिखने जा रहा हूँ।

शचीमाताके जीवन सर्वस्व निमाई चाँद जब उनके श्रीगर्भसे उदय हुए, तब वह श्वशुरके घर श्रीहट्टमें थी। श्रीचैतन्य उदयावली श्रीग्रन्थमें यह बात लिखी है। इसका विस्तृत विवरण नवद्वीप लीलामें हो चुका है। गर्भिणी शचीमाताके श्वशुरालयमें रहते समय उनकी सासु शोभा देवीने एक अद्भुत स्वप्न देखा, मानो कोई महापुरुष उनको कह रहा हो—"तुम्हारी पुत्रवधूके इस गर्भसे स्वयं भगवान् नारायण नररूपमें उदय होने वाले हैं, तथा वे गङ्गाके किनारे नवद्वीपमें आविर्भूत होंगे, अतएव अपनी भाग्यवती पुत्रवधूको नवद्वीपमें भेज दो।" जब यह अपूर्व स्वप्नकी बात ज्ञात हो गयी तो शचीमाता अपने स्वामीके साथ नवद्वीपमें आयीं। श्रीअद्वैत प्रभु भी मिश्र पुरन्दर और उनकी पत्नीके साथ उसी समय अपने देश श्रीहट्टके नवग्राममें गये थे। वे भी उनके साथ ही नवद्वीप लौट आये।

यथा समय नवद्वीपमें नवद्वीपचन्द्र रूपी स्वयं भगवान् उदय हुए। श्वशुरके घरसे आते समय शचीमाताकी सासुने उनका हाथ पकड़कर विशेष रूपसे कहा था कि—"बहू! तुम्हारे इस गर्भसे जो पुत्र सन्तान उत्पन्न होगी, उसको मुझे एक बार दिखलाना।" अब शची माताके मनमें शान्तिपुरमें अचानक यह बात आयी कि सासुका आदेश पालन न करनेके कारण ही जान पड़ता है मेरा निमाई चाँद गृह त्यागी हो गया है। यह बात याद आते ही उनका शरीर सिहर उठा, और निमाई चाँदको एकान्तमें बुलाकर यह बात बोली। मातृभक्त शिरोमणि प्रभुने माताकी बातको शिरोधार्य कर लिया।

यद्यपि प्रभु पूर्ववङ्गमें एक बार गये थे, परन्तु उस समय शचीमाताने उनको भयानक पद्मानदीको पार करके श्रीहट्ट जाकर यह कार्य सम्पन्न करनेके लिए कहनेका साहस नहीं किया। क्योंकि निमाई उस समय बालक थे। परन्तु उनके असीम साहसी बालक पुत्रने उस समय भी असीम साहसका परिचय दिया था। वे श्रीहट्ट गये थे, पितामहीसे भेंट की थी, परन्तु उनके घर नहीं गये, और शचीमाताने उनको सासुकी आज्ञा भी नहीं बतलायी थी। अब प्रभु आज्ञा पाकर मातृभक्त

शिरोमणि हमारे प्रभुने पुनः श्रीहट्टकी यात्रा की।

यह सारी लीला-कथा गौरभक्तप्रवर श्रीयुक्त अच्युत चरण तत्त्वनिधिने अपने ग्रन्थमें लिखी है।* इस अध्यायकी लीलाकथा उन्हींके ग्रन्थसे सङ्कलित की गयी है।

पहले लिख चुका हूँ कि पहले शचीमाताको अपने पुत्र-रत्नसे सासुके मनकी अभिलाषा करनेका साहस नहीं हुआ। अब शान्तिपुरमें पुनः भेंट होनेपर उस अभिलाषाको व्यक्त किया है। यथा श्रीचैतन्य विलासमें—

"तब पितामही काछे, ए रूप प्रतिज्ञा आछे,
तोमाके पाठाते ताँर ठाँइ।
तथा जाइया एक बार, बाञ्छा पूर्ण कर ताँर,
तब काछे एइ भिक्षा चाइ॥"

मातृभक्त चूड़ामणि प्रभुने माताकी आज्ञाके पालनके लिए शान्तिपुरसे श्रीहट्टदेशकी यात्रा की। उनके साथ गये उनके मामा विष्णुदास।

श्रीमन्महाप्रभुका द्वितीय बार पूर्ववङ्ग भ्रमण काल संक्षिप्त था। उनका मुख्य उद्देश्य था माताकी आज्ञा पालन करना तथा इसी उद्देश्यसे हरिनाम प्रचारके द्वारा जीवोंका उद्धार करना। वे आसाम तक गये थे।

मुखडोबामें

अपने भ्रमण लीला-रङ्गमें पूर्व वङ्गमें मुखडोवा नामक एक स्थानमें जा उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने एक भाग्यशाली विप्रके घर भिक्षा की। उनके साथी विष्णुदास उनकी सेवामें नियुक्त थे। भोजनके अन्तमें उन्होंने पूर्वदिनकी सञ्चित एक खण्ड हरीतकी प्रभुको दी। संन्यासी चूड़ामणि श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुने तिरछी नजरोंसे अपने मामाकी ओर देखकर कहा, "सञ्चयबुद्धि रखकर आप संन्यासीके सङ्गी नहीं हो सकते। आप यहाँ ही वास करें, गृहस्थाश्रममें रहकर धर्मार्जिन करें।" विष्णुदासको दुःख और क्षोभसे मर्मान्तिक व्यथा हुई और वे क्रन्दन करने लगे, और प्रभुको विनती करते हुए बोले, कि "ऐसा काम वे फिर कभी नहीं करेंगे, उनको सङ्ग जानेके लिए अनुमति दी जाय।" परन्तु प्रभु जो बोलते थे, वही करते थे। उनका सङ्कल्प अटूट था। प्रभु बिना कुछ कहे सुने अकेले चुप-चाप चले गये।

विष्णुदास मुखडोवामें रह गये और विवाहादि करके वहीं अपना संसार बसाया। नीलाम्बर चक्रवर्तीका वंश इस प्रकार मुखडोबामें फैला। आज भी विष्णुदासके वंशज वहाँ निवास करते हैं। नवद्वीपमें नीलाम्बर चक्रवर्ती वंशज अब नहीं है।

मुखड़ोबाके विष्णुदासके वंशज अपनेको श्रीविष्णुप्रियाके परिवारका बतलाते हैं। वे कहते हैं कि श्रीविष्णुप्रिया मन्त्रमें वे दीक्षित हैं। वे माला-तिलक धारण नहीं करते, गोस्वामी कहनेसे बुरा मानते हैं। इस वंशके कोई-कोई श्रीपाद खडदहके नित्यानन्द वंशके गोस्वामियोंको अपना गुरुवंश कहकर आत्मपरिचय देते हैं। इन लोगोंके घर दुर्गा पूजाके समय श्रीविष्णुप्रिया देवीकी पूजा होती है। इनके घर एक प्राचीन ग्रन्थ है, उसमें उन लोगोंकी यह भजन-पूजन पद्धति लिखी हुई है—ऐसा वे कहते हैं, परन्तु किसीको दिखलाते नहीं हैं। यही सब बातें नवद्वीपवासी किसी विष्णुदास-वंशीय

---

* इस ग्रन्थका नाम "श्रीगौराङ्गेर पूर्वाञ्चल परिभ्रमण या आसाम ओ ढाका दक्षिण लीला प्रसङ्ग" है। इस ग्रन्थमें इन सब बातोंके प्रमाण हैं। उन्होंने लिखा है कि "श्रीचैतन्य भागवत या श्रीचैतन्य चरितामृतमें इस लीलकथाका कोई वर्णन या उल्लेख न होनेपर ही इसको निराधार या मिथ्या नहीं माना जा सकता। अगाध चैतन्य लीला-वारिधिसे जिससे जितना हो सका है, रत्नोद्धार किया है। सारी लीला यदि एक या दो ग्रन्थोंमें प्राप्त होती, तो विभिन्न व्यक्तियोंके विभिन्न ग्रन्थोंके प्रचारकी सार्थकता नहीं होतीं। श्रीचैतन्य चरितामृतकारने स्वयं इस बातको बारम्बार याद किया है। यह बात परम सत्य है और मैंने इसका पूर्ण अनुमोदन किया है।

—ग्रन्थकार

भक्तके मुखसे मैंने सुनी है। इसमें विशेष अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता है।

प्रभु मुखडोबासे लीलाके बहाने श्रीहट्टमें कुरुङ्गामें जा पहुँचे। वे एक पुराने अश्वत्थ वृक्षकी शीतल छायामें जा बैठे। उन दिनों वसन्त ऋतु थी। प्रकृति देवीने नवीन साजमें सजकर प्रभुको अभिवादन किया। उस समय मध्याह्न काल था, भीषण धूपमें तपता हुजा एक कृषक हलसे खेत जोत रहा था, दोनों बैल पसीने-पसीने हल खींच रहे थे। बैलोंके दुःखसे प्रभुका करुण हृदय द्रवित हो उठा। वे कृषकको पास बुलाकर बोले, "कृषक ! बैलोंको अब कष्ट न दो, कृपा करके इनका बन्धन खोल दो।" कषक हाथ जोड़कर बोला—"प्रभु ! क्षमा करो, मेरा खेत सूख रहा है, खेत जोतूँ नहीं तो क्या खाऊँगा ?" प्रभु कृषककी बात सुनकर प्रेमावेगमें रो पड़े। और गद्गद कण्ठसे बोले—

"हरि ! हरि ! एकि सर्वनाश !
क्षेत्र नष्ट हैबे बलि कर धर्मनाश ॥"

श्रीश्रीचैतन्य रत्नावली

कृषक करुणमय प्रभुके अश्रुधारासिक्त श्रीवदनसरोजको देखकर विस्मित हो गया, उसको अपनी सुध न रही। उसने देखा कि बैल प्रभुको देखकर तथा उनके श्रीमुखसे उच्चारित मधुर शब्द सुनकर कान खड़े करके आनन्दसे पूँछ उठाकर खड़े हो गये, और एक साथ मानो हरिनाम उच्चारण किया।* प्रभुकी महिमा असीम है, उन्होंने अनेक बार पशु-पक्षीके मुखसे हरिनाम उच्चारण कराया है। यह उनका कोई अभिनव लीलारङ्ग नहीं है।

उस कृषकका नाम रामदास था। रामदास यह देखकर और सुनकर, भयभीत और चकित होकर श्रीप्रभुके श्रीचरणोंमें धूलि धूसरित हो पड़ गया। वहाँके सब लोगोंने उसे देखा और सुना। वहाँ वह 'रामदयाल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

इस कुरुङ्गा ग्राममें प्रभुकी जाति-परिवारके लोग वास करते हैं। परन्तु प्रभु इस बार किसीके घर नहीं गये। उनके जाति-भाई गौरी कान्त प्रभुके साथ रास्तेमें मिले। और परस्पर परिचय हुआ उनका भतीजा लगने वाला श्रीगर्भ भी वहाँ आकर उपस्थित हुआ। दोनोंने प्रभुके चरण-कमलमें आत्मसमर्पण किया, तथा उनसे हरिनाम मन्त्र प्राप्त करके धन्य हो गये। कृषक रामदास महावैष्णव होकर देशमें लोकोद्धारके काममें लग गया। गौरी कान्त और श्रीगर्भ प्रभुकी कृपासे महाशक्तिशाली हुए। उन दोनोंने पतित-पावन रूपमें अनेक जीवोंका उद्धार किया।

प्रभु कुरुङ्गामें जिस अश्वत्थ वृक्षके मूलमें बैठे थे, वह स्थान परम पवित्र तीर्थ रूपमें परिणत हो गया। अब तक वह स्थान 'श्रीचैतन्य वाड़ी' के नामसे प्रसिद्ध है। बहुत-से लोग आज भी भूतलपर लेटकर उस पवित्र स्थानमें दण्डवत् प्रणाम करते हैं।

ढाका दक्षिणमें*

वहाँसे प्रभु ढाका दक्षिणमें आये। उनके साथ कुरुङ्गावासी अनेक आदमी थे। रामदास, गौरीकान्त और श्रीगर्भने उनका सङ्ग नहीं छोड़ा। संध्याकालमें गोधुलीके समय प्रभु पितामहीके घर अतिथि रूपमें उपस्थित हुए। कोई उनको पहचान न सका। प्रभुके ताऊ परमानन्द मिश्रकी परम भक्तिमती पत्नी श्रीमती सुशीला देवीने पहले इस अपूर्व रूपवान् नवीन संन्यासीको देखकर मनमें नाना

* "मध्याह्ने तम्मुखीच्छत्व गावश्चक्रे हरिध्वनिम् ।"
श्रीकृष्ण चैतन्यो दयावली

* नवद्वीप लीलाके १८ वें अध्यायमें ढाका दक्षिण जानेका विवरण 'पद्मावलीके दूसरे पार-पितामह-पितमहीसे मिलन' शीर्षक प्रसंगमें देखिये—
—प्रकाशक

प्रकारके तर्क-वितर्क करते हुए अपनी वृद्ध और जर्जर सासुको इसकी सूचना दी। शोभा देवी अति कष्ट पूर्वक बाहर आयी। संन्यासीको देखकर नारायण समझकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, परन्तु उनको पहचान न सकी। प्रभुने स्वयं अपना परिचय दिया, और वहाँ अपने फिरसे आनेका कारण बतलाया। तब शोभा देवी प्रेमानन्दमें अधीर होकर रो पड़ीं। और अपने संन्यासी नातीको बाहरी दालानसे भीतर अन्तःपुरमें ले गयी। उनकी पुत्रवधू सुशीला देवीने परम आनन्दपूर्वक पायस-पिष्टक और भाँति-भाँतिका अन्न व्यञ्जन तैयार करके प्रभुको प्रेमपूर्वक भिक्षा करायी।

वृद्धा शोभादेवीने प्रभुके साथ बहुत-सी घर गृहस्थीकी बातें की, और प्रभुने प्रेमपूर्वक उसे सुना। 'मन-सन्तोषिणी' नामक एक ग्रन्थ है, जिसका पाठ करनेसे ज्ञात होता है कि उस समय वृद्धाके दो पुत्र जीवित थे, और उनकी अति दीनावस्था हो गयी थी। वे सारी दुःखकी बातें शोभादेवीने अपने नातीको कह सुनायी। प्रभुने संन्यासीके समान कोई व्यवहार नहीं किया। पितामहीने देखाकि उनका नाती नाम मात्रका संन्यासी है, उनका अपरूप गौररूप अचानक उनकी इच्छासे उनकी पितामहीके सामने कृष्णरूपमें परिणित हो गया। उन्होंने देखा कि उनका यह अपूर्व शक्तिशाली नाती केवल गौराङ्ग नहीं हैं, वह कृष्ण भी है। तब वृद्धाकी धारणा हो गयी कि लोग जो कहते हैं वह सत्य है। श्रीकृष्ण भगवान् ही गौररूपमें इस बार नदियामें अवतीर्ण हुए हैं। प्रभुने जो अपने गौर-कृष्ण रूपको भाग्यवती शोभादेवीको दिखलाया यह उनका आदि रूप और स्वयं रूप था। संन्यासी रूपको गुप्त करके इस आदि रूपमें जब वे पितामहीके सामने प्रकट हुए, तो वृद्धा क्षणमात्रके लिए विह्वल हो गयी, मूर्च्छाको प्राप्त हो गयी। प्रभुने श्रीहस्तसे उनका अङ्ग स्पर्श करके मूर्च्छा भङ्ग कर दी। तब शोभादेवीने रोते-रोते अपने नातीका हाथ पकड़कर कहा—"निमाई! तुम इन दोनों ही रूपोंमें मेरे पास रहो। मैं तुम्हारे इन दोनों रूपकी श्रीमूर्त्ति देखते-देखते देह त्याग कर सकूँ।

निगद्य युगधर्मादीन् कृष्णरूप विधाय यः।
दर्शयामास वृद्धायै स्व-स्वरूपं दयानिधि॥

श्रीकृष्ण चैतन्योदयावली।

प्रभुकी अनुमतिसे गौरकृष्ण मूर्त्ति ढाका दक्षिणमें शोभादेवीके घर प्रतिष्ठित हुई। श्रीगौरसुन्दरके साथ युगल श्रीश्याम सुन्दर श्रीमूर्त्ति एक मात्र ढाका दक्षिणमें प्रतिष्ठित है, और कहीं नहीं। यहाँ गौर कृष्ण जाग्रतमूर्त्ति अनेकों अलौकिक अलौकिक लीलारङ्ग आज भी कर रही है। यह श्रीमूर्ति प्रभुके प्रकट कालका श्रीविग्रह है।

प्रभु एक रात ढाका दक्षिणमें पितामहीके घर रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल ही वहाँसे चल दिये। वृद्धा पितामहीने बहुत आग्रह अनुरोध किया, बहुत रोने लगीं, पर प्रभुके ऊपर उसका कुछ भी असर न पड़ा।

ढाका दक्षिणसे प्रस्थान-मार्गके कार्य

वहाँसे वे समीपवर्ती 'कैलास शृङ्ग' पर गये। वहाँ शिवमूर्त्ति और अमृत कुण्डका दर्शन किया। शिव मन्दिरमें बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन किया।

उसी समय प्रभुने अपने श्रीहट्टवासी आत्मीय भाग्यवान् भक्तोंके ऊपर कृपा की। हरिनाम महामन्त्रसे उनको दीक्षित करके परम शक्तिशाली बना दिया। प्रभुने उनको हरिनामके प्रचारके कार्यमें नियुक्त किया।* उनका नाम रामदास और माधव दास भ्रातृद्वय, तथा ज्ञानवर और कल्याणवर था। रामदास और माधव दास श्रीहट्ट कछार अञ्चलके उत्तर भागमें प्रचार कार्यके लिए निकल गये। तथा ज्ञानवर और कल्याणवर हेडम्बराज्य (वर्त्तमान कछार) में इस कार्यमें लगे। इन चारोंने

---

* 'रसतत्त्व विलास' नामक एक प्राचीन ग्रन्थमें यह विवरण प्राप्त होता है।

इस अञ्चलके आबालवृद्ध नर-नारियोंको नाम-प्रेमके तरङ्गमें निमज्जित कर दिया। हेडम्ब राज्य वैष्णव प्रधान देश हो गया। ज्ञानवर और कल्याणवर राजासे आदेश प्राप्त करके १४७५ शकाब्दमें अपने देश लौठ गये।*

श्रीहट्टके उत्तराञ्चलमें सर्वत्र रामदास और माधवदासने प्रचार कार्य किया था। वर्तमान सुनामगञ्ज तथा सुसङ्ग दुर्गापुर आदि स्थानोंमें इन दोनों शक्तिशाली महापुरुषोंके प्रचार कार्यका क्षेत्र रहा। उस समय मैंमनासह जिलाकी सृष्टि नहीं हुई थी। सुसङ्ग दुर्गापुर आदि स्थान श्रीहट्टके अन्तर्गत थे।

श्रीयुत अच्युतचरण तत्त्वनिधिने लिखा है कि "सुसङ्ग दुर्गापुरम वसनेवाली हाज जातिके लोग वैष्णव धर्मावलम्वी थे। उनके घर गोवरस लिपे पुते और साफ सुथरे रहते थे। प्रत्येक घरमें तुलसीकी वेदी होती थी। वे लोग विनीत, अतिथि-सेवा परायण और जीवहिंसा विरत होते थे। वे कीर्तन करते थे, गुरु और पञ्च तत्त्वादिके प्रणामके श्लोकोंकी परम्परासे जानकारी रखते थे। वे लोग जन्माष्टमी, दोल यात्रा आदि उत्सव करते थे। उनके अधिकारी गृहमें कहीं कहीं राधाकृष्णकी और कहीं कहीं गौर मूर्त्तिकी पूजा होती थी।

सभी असभ्य जातियाँ स्थितिशील थीं। दूसरोंका अनुकरण नहीं करती थीं। वे अपने पूर्वजोंके द्वारा आचरित रीति-नीतिको प्राण जानेपर भी नहीं छोड़ते थे। ऐसी दशा में उन असभ्य हाज लोगोंका ऐसा वैष्णव आचार व्यवहार ग्रहण करना एक असाधारण बात थी, इसमें सन्देह नहीं है। पूछनेपर वे लोग बतलाते थे कि वे लोग प्राचीन महापुरुषोंके अनुगत हैं। विचार करने पर सहज ही ज्ञात होता है कि वे प्राचीन महापुरुष रामदास और माधवदास ही थे।

"श्रीमन्महाप्रभुके साक्षात् कृपापात्र इन महापुरुषोंका वैष्णवधर्म प्रचार कार्य उनके ही कृपादेशसे सम्पन्न हुआ था, उनका प्रयत्न इस प्रकार सफल होनेमें फिर आश्चर्य ही क्या है?

"जब ढाका दक्षिणकी गौरकृष्ण मूर्त्तिकी प्रतिष्ठाकी बात चारों ओर फैली तो उस देश तथा बाहरके लोग उस परम पवित्र तीर्थ स्थानोंमें आने जाने लगे। ढाका दक्षिणको श्रीकृष्ण चैतन्योदयावली ग्रन्थके लेखक श्रीमन्महाप्रभुके जाति भाई पूज्यपाद प्रद्युम्न मिश्रने 'गुप्त वृन्दावन' नाम प्रदान किया हैं।

एव श्रीकृष्ण चैतन्य जीव निस्तारणाय च।
द्वयोर्मूर्त्ति विधयात्र स्व गोत्रान् प्रतिपालयन्।
गुप्त वृन्दावने रम्ये गुप्त पार्षद संवृतः॥

श्रीकृष्ण चैतन्योदयावली।

श्रीअच्युत चरण चौधरी महाशयने लिखा है—"आजकल श्रीगौराङ्ग और श्रीकृष्ण युगल विग्रह जिस घरमें है, वह प्राचीन घर नहीं है। प्राचीन घरसे युगल विग्रह दूसरे घरमें स्थान्तरित हो गये हैं, और वह प्राचीन 'मिश्रगृह' जङ्गलमय और विलुप्त हो गया है। ऐसा सर्वत्र ही होता है, श्रीवृन्दावन भी विलुप्त हो गया था। नवद्वीपका गौर-जन्मस्थान अनिर्दिष्ट है। श्रीहट्टके लाउड प्रदेशमें श्रीअद्वैतका जन्मस्थान भी जंगलसे आच्छादित और विलुप्त था। परन्तु स्वतः प्रकाश नित्यधाम बहुत दिनों तक लोक-लोचनके बहिर्गत नहीं रह सकता। 'मिश्रगृह' भी नहीं रह सका।

गुलाबराय दीवान

मुसलिम शासनमें श्रीहट्टमें दीवान नामक राजस्व-विभागका एक श्रेष्ठ कर्मचारी होता था। बहुत पूर्वकालसे श्रीहट्टके स्वर्गीय राजा गिरिशचन्द्रके पूर्वपुरुषोंके स्थानके निवासी एक धर्मात्मा दीवान पदके अधिकारी होते आ रहे थे, परन्तु १७४० ई०

---

* राज आज्ञा लैया मित्र पुत्रादि सङ्गे लैया।
चौद्दशत पाँच शाके प्राच्ये उत्तरिल॥
रस तत्त्व विलास।

के पूर्व दूसरे स्थानके निवासी एक धर्मातमा दीवानने इस पदको अलंकृत किया। उनका नाम गुलाब राय था। श्रीहट्टमें आनेपर उनको ज्ञात हुआ कि ढाका दक्षिणमें श्रीमन्महाप्रभुका एक विग्रह विराजमान है। तब उनको विग्रहका दर्शन करनेकी बड़ी लालसा हुई। परन्तु वहाँ तक जानेका रास्ता ठीक न रहनेके कारण उन्होंने शहरसे महाप्रभुके गृह पर्यन्त सड़क बनवानेके लिए सम्बन्धित जमींदारोंके नाम परवाना जारी कर दिया। तत्काल उसके आदेशका पालन किया गया। निश्चित समयके भीतर सड़क बनकर तैयार हो गयी। ढाका दक्षिणके जमीदारको एक मन्दिर निर्माग करनेका आदेश हुआ। दीवान जब देव दर्शनके लिए आया तो विग्रहको उस मन्दिरमें स्थानान्तरित किया गया।

पास ही में कहीं एक मस्जिद थी। जमीदारने परिश्रमकी न्यूनताके लिए उस टूटी-फूटी मस्जिदसे ईंटें मँगवाकर उस मन्दिरमें लगवायी थीं।

देवताकी देवलीलाको समझना दुष्कर है। रातको दीवानने एक विचित्र स्वप्न देखा। जो विश्वपिता हैं, जिसकी सब सन्तान हैं, वही मानो श्रीविग्रह-रूपमें बोल रहे हैं—"मैं ब्राह्मणकी जीर्ण-कुटियामें मजेमें था, यह मन्दिर मस्जिदकी ईंटोंसे बना है, यहाँ मैं क्यों लाया गया ?" प्रातःकाल जागनेपर दीवानने पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि स्वप्न सत्य है। तब दीवान श्रीविग्रहको तुरन्त स्थान्तरित करनेमें लग गये।

मिश्रवंशके लोग परिवारके बढ़नेके कारण अलग-अलग घर बनाकर उस प्राचीन घरके पास ही रहते थे। उनकी प्रार्थनाके अनुसार दीवानने सबकी सुविधा देखकर प्राचीन उच्च स्थानसे श्रीमूर्त्तिको हटाकर सबके घरोंके बीच स्थानमें श्रीमूर्त्ति ले आनेका विचार किया, तथा इस समय जहाँ श्रीविग्रहद्वय है, वहाँ मन्दिर निर्माण कराकर श्रीविग्रहको स्थान्तरित किया। केवल इतना ही नहीं, सुचारु रूपसे श्रीमूर्त्तिकी सेवा परिचालनके लिए उसने वहुत-सी देवोत्तर भूमि दान कर दी। उस भूमिका अधिकांश अब नहीं रहा। केवल 'श्रीचैतन्यका छेगा' नाम इस समय भी उस स्मृतिकी रक्षा कर रहा है। दीवानका वह मन्दिर भी पूर्व स्मृतिको जागृत कर रहा है। दीवानने जो पोखरा खुदवाया था, उस दीवानके पोखरेके किनारे 'श्रीचैतन्य गञ्ज बाजार' बसा है, और दीवानके द्वारा बनवायी वह 'दीवानकी सड़क' कृषकोंके द्वारा प्रति वर्ष काटी जानेपर भी अभी वर्त्तमान है।

उपेन्द्र मिश्रका घर जहाँ शोभादेवीके साथ संन्यासी श्रीचैतन्यकी भेंट हुई थी, जिस स्थानने उनकी पवित्र चरण रेणुके स्पर्शसे वैकुण्ठकी सम्पत्ति प्राप्त की थी, वह मिश्रवाड़ीके नामसे प्रसिद्ध है। इस समय वह परिष्कृत हो गया है और संन्यासी श्रीचैतन्यके आगमनकी स्मृतिको उन्मुक्त करने वाली श्रीचैतन्य महाप्रभुकी संन्यासमूर्त्ति वहाँ प्रतिष्ठित हुई है।*

श्रीयुक्त अच्युत बाबूके उपर्युक्त विवरणके प्रमाण संग्रहीत हुए हैं। उन्होंने अप्रामाणिक कोई बात नही लिखी है।

आसाम भ्रमण

अब श्रीमन्महाप्रभुकी आसाम भ्रमणकी कहानी जो अच्युत बाबूने प्रकाशित की है, यहाँ संक्षेपमें लिखी जायगी। प्रभु ढाका दक्षिणसे आसामके प्रसिद्ध ब्रह्मकुण्डका दर्शन करने गये थे। इस प्रदेशके हाजो ग्राममें अति प्राचीन और प्रसिद्ध माधवका मन्दिर है। प्रभुने पहले इस स्थानमें आकर

* मिश्रवंशके प्रभुपाद श्रीयुक्त इन्द्रकुमार मिश्रके ऐकान्तिक प्रयत्नसे यह मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई है परन्तु सर्व साधारणमें यह 'महाप्रभुके दादाकी बाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है।

माधवका दर्शन किया, और इस पवित्र स्थानके वराहकुण्डके ऊपर एक निर्जन गुफामें विश्राम किया।

इस स्थानमें लीलामय प्रभुने रत्नेश्वर नामक एक विप्रको कृपा करके हरिनाम महामन्त्र प्रदान कर कृतार्थ किया था। इस महाभाग्यवान् विप्रको उन्होंने भागवतकी शिक्षा दी और माधव मन्दिरका भागवत-पाठक नियुक्त किया।

रत्नेश्वर महाप्रभुके कृपासिद्ध भक्त थे। भागवत-पाटसे उनको अपूर्व क्षमता प्राप्त हुई। वे माधव मन्दिरमें माधवको भागवत सुनाते थे। श्रोताकी अपेक्षा नहीं करते थे। उनको सब लोग रत्नेश्वर पाठक कहते थे और सम्मान करते थे।

हाजोसे प्रभुने परशुराम कुण्डमें गमन किया। वहाँसे ब्रह्मकुण्डमें जाकर स्नान करके पुनः माधव मन्दिरमें लौट आये। उस एकान्त गुफामें प्रभु कई दिन रहे। अब तक उनके स्मृतिचिह्न स्वरूप उस एकान्त स्थानको 'चैतन्यकी गुफा' के नामसे पुकारते हैं।

कहा जाता है कि इसी स्थानमें बैठकर प्रभुने मान्तरीष तर्कभूषण और कविशेखरको भागवतकी शिक्षा दी थी। वे इस समय हरिनाम गानमें मत्त रहते थे। ग्रन्थमें लिखा है कि वीणा यन्त्रकी मददसे उन्होंने नारदके समान हरिनामका गान करके उस देशके निवासियोंको मुग्ध कर दिया था।

दामोदर नामक एक महात्माने उन दिनों आसाममें 'दामोदरी सम्प्रदाय' चलाया था। आसाम प्रदेशमें वे सर्वलोक पूज्य थे। उनको सब लोग अवतारके रूपमें स्वीकार करते थे। वे दामोदर देव माधवजीका दर्शन करने आये और संन्यासी श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्र महाप्रभुको वहाँ देखकर उनके चरणोंमें जा गिरे तथा उनको स्वयं भगवान् मानकर आत्म समर्पण किया। प्रभुने उनके ऊपर कृपा की, हरिनाम महामन्त्रमें दीक्षित करके उनको और शक्तिशाली बना दिया। महाप्रभुके कृपासिद्ध भक्त होकर उन्होंने वैष्णव धर्मके प्रचारमें आसाम प्रदेशमें नाम प्रेमकी धारा बहा दी। आज भी वह आसाममें देवताके समान पूजे जाते हैं।*

नदियाके अवतार श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभुके आसाममें आगमनकी बात सर्वत्र घोषित हो गयी। तत्कालीन आसामके प्रधान धर्म प्रवर्त्तक शङ्करदेव नामके प्रसिद्ध महात्मा** यह शुभ संवाद सुनकर प्रभुका दर्शन करनेके लिए हाजो ग्राममें जा उपस्थित हुए। परन्तु उनकी आशा पूर्ण न हुई। प्रभु उस समय हाजो छोड़कर चले गये थे।

शङ्करदेव अपने गुरु श्रीअद्वैताचार्यके मना करनेपर आसाममें आये थे। अद्वैत-विमुख होनेके कारण उनको प्रभुका दर्शन नहीं हुआ। परन्तु करुणामय प्रभुने इस महापुरुषको नीलाचलमें दर्शन देकर कृतार्थ किया था।

इसके बाद महाप्रभु पूर्वबङ्गसे लोटकर कुछ दिन शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर विश्राम करके नीलाचल चले गये।

---

* इस दामोदर देवके प्रधान शिष्य भट्टदेव कविरत्नने आसामी भाषामें 'सम्प्रदाय कथा' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उसी ग्रन्थसे यह सब वृत्तान्त संग्रह किये गये हैं।

** यह शङ्करदेव श्रीअद्वैत प्रभुके शिष्य थे। योग वासिष्ठके ज्ञानमार्ग शुष्क कथा श्रीअद्वैत प्रभुके मुखसे श्रवण करके जब वे श्रीगौराङ्ग प्रभुके द्वारा प्रवर्त्तित भक्तिमार्गको ग्रहण करनेके लिए सहमत न हुए तो श्रीअद्वैताचार्यने उनको त्याग दिया। तब वे आसाममें गये और वहाँ अपने मनके अनुसार धर्मवादकी स्थापना की।

उन्तीसवाँ अध्याय

प्रभुका नीलाचलमें लौटना और पुनः श्रीवृन्दावनकी यात्रा

सर्व्व नीलाचल-देशे उपजिल ध्वनि।
'पुन आइलेन प्रभु न्यासी चूड़ामणि'॥
महानन्दे सर्वलोके 'जय जय' बोले।
'आइल सचल जगन्नाथ नीलाचले॥'
चै. भा. अं. ५.१२४,१२५

प्रभु नीलाचलमें

प्रभु श्रीनीलाचलमें पहुँचनेपर श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके श्रीमन्दिरमें बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन करते रहे। बहुत दिनके बाद जगन्नाथजीका दर्शन करके प्रभुने प्रेमानन्दमें विभोर होकर अपूर्व नृत्य किया। प्रभु-विरहसे कातर समस्त भक्तगण आकर प्रभुका दर्शन करके प्रेमानन्दमें आकुल होकर अश्रु-प्रवाह करने लगे।

उनके बीच सार्वभौम भट्टाचार्य थे, राय रामानन्द थे, गदाधर पण्डित, काशीमिश्र, वाणीनाथ प्रद्युम्न मिश्र, शिखि माहाति आदि सभी थे। भक्तवत्सल प्रभुने एक-एक करके सब भक्तोंको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर सुखी किया। सबका कुशल मङ्गल पूछा।

प्रभु अपने वासापर काशीमिश्रके घर आकर सुस्थिर होकर भक्तगणके साथ बैठकर गौड़की कथा कहने लगे। उनका श्रीवृन्दावन जाना नहीं हुआ, यह समाचार नीलाचलके भक्तोंको मिल गया था, परन्तु क्यों नहीं जाना हुआ, रास्तेमें क्या विघ्न पड़ा। यह वे लोग कुछ भी नहीं जानते थे। गदाधर पण्डित प्रभुके विरहमें मलिन हो गये थे, उनका मुँह सूख गया था, शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया था। एक ओर बैठकर वे प्रभुके श्रीवदनकी शोभा देख रहे थे। 'गदाधरके प्राणनाथ' गदाधरके निकट आ गये थे, अब उनको कोई दुःख न था। वे प्रफुल्ल मनसे अपने प्राणवल्लभकी अपरूप रूपसुधा पान करने लगे, और श्रीमुखकी अमृतमयी मधुर कथा सुनने लगे। प्रभुने गदाधरकी ओर करुण-नयनसे देखकर कहा—"मैं यह सोचकर गया था कि गौड़ देश होकर श्रीगङ्गाजी और माताके चरण दर्शन करके वृन्दावन चला जाऊँगा। बहुतसे भक्तगण साथ हो गये। लाखों लोग कौतुक देखनेको आ मिले। इतनी भीड़ हो गयी कि रास्ता चलना कठिन हो गया। जिधर आँख उठाओ उधर ही जहाँ तक दृष्टि जा पाती, भीड़ ही भीड़ दिखायी देती। किसी प्रकार कष्ट सहकर रामकेलि ग्राम पहुँचा। वहाँ श्रीकृष्णके कृपापात्र दो भाई रूप और सनातन मेरे पास आये। वे व्यवहारमें बड़े कुशल राजमन्त्री थे, और विद्या, भक्ति, बुद्धिबलमें परम प्रवीण थे। तब भी वे अपनेको तृणसे भी दीन मानते थे। उनका दैन्य देखकर पाषाण भी द्रवित हो जाता है। मैंने सन्तुष्ट होकर उन दोनों भाइयोंको कहा कि 'तुम इतने बड़े होकर भी अपनेको हीन मानते हो, श्रीकृष्ण तुम्हारा शीघ्र उद्धार करेंगे।' इतना कहकर मैंने उनको विदा किया। जाते समय सनातनने एक पहेली कही—'लाखों लोगोंकी भीड़ साथ लेकर वृन्दावन जानेकी परिपाटी नहीं है।' मैंने उनकी बात केवल सुन ली, उधर ध्यान कुछ नहीं दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल कानाई-नाटशाला ग्राममें आया और रात्रिको सनातनकी पहेलीपर विचार करने लगा। तब मुझे लगा—सनातनने ठीक ही तो कहा है कि इतने लोगोंकी भीड़ देखकर लोग मनमें सोचेंगे कि मैं लोगोंको तमाशा दिखाकर अपनी महिमा ख्यापनकी चेष्टा कर रहा हूँ। एकान्त वृन्दावन बहुत दुर्लभ और दुर्गम है। वहाँ तो अकेला ही जाना चाहिये अथवा अधिकसे अधिक कोई एक

व्यक्ति साथमें ले लिया जाय। श्रीमाधवेन्द्र पुरी भी वहाँ अकेले ही गये थे, दुग्ध-दानके बहाने श्रीकृष्ण साक्षात् आकर उनसे मिले। वाजीगरका-सा प्रचार करते हुए सेना-सी साथ लेकर अपना डंका बजाते हुए वृन्दावन जानेकी अपनी परिपाटीको धिक्कार देकर मैं बड़ा आथिर हो गया और अपनी यात्रासे निवृत्त होकर चला आया। अब मैं निर्विघ्न वृन्दावन जाना चाहता हूँ, सब लोग प्रसन्नताके साथ मुझे अनुमति दो।"(चै. च. म. १६.२५४-२७४)

प्रभु गदाधर पण्डितके मुखकी ओर फिर करुणदृष्टिसे देखकर प्रेममें भरकर बोले—"गदाधरको छोड़कर गया, उससे इनको भी बड़ा दुःख हुआ, इसी कारण मेरा वृन्दावन जाना नहीं हो पाया।"

गौर-गदाधर मधुर भजनकी वस्तु है। गदाधरके गौराङ्ग प्रेमकी कहीं तुलना नहीं है। श्रीराधाशक्ति गदाधर पण्डितका गौराङ्गानुराग श्रीमती वृषभानु नन्दिनीके कृष्णानुरागके अनुरूप है। गौरविरहमें गदाधर पण्डित इन कुछ महीनोंमें किस प्रकार नीलाचलमें रहे, यह श्रीगौर भगवान् ही जानते हैं। भक्तवत्सल श्रीगौराङ्गसुन्दरने गदाधरके मनके दुःखके उपशमके लिए ही यह अन्तिम बात कही। गदाधरको प्राणबध करके ही वे गौड़ देश गये थे, यह बात कृपालु पाठकोंको अवश्य याद होगी। यह क्यों कहा है, इसको बतलाता हूँ। गदाधरका प्राण प्रभुके साथ था केवल देह नीलाचलमें रह गया था। श्रीगौराङ्गके विरहमें उनका प्राण देहच्युत हो गया था। तो वे जीवित कैसे रहे? वह प्रभुके चरणोंके दर्शनकी आशामें उनकी अचिन्त्य शक्तिके बलसे प्राकृत देहकी रक्षा कर सके। अपने प्राणनाथको देखकर अब गदाधरके प्राण उनके शरीरमें आ गये। उनको मानो पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। प्रभु उनके प्राणको निकाल ले गये थे, अब उसको लौटा दिया। भगवान्के विरहमें भक्तकी इसी प्रकार मृत्यु होती है। परन्तु भगवान्की कृपासे वे पुनर्जीवित होते हैं। यह भगवान्की गूढ़लीलाका रहस्य है। भक्तका प्राण लेकर भगवान् लीला-क्रीड़ा करते हैं। इसके भक्त प्राण-विरहित होकर भी सुख पाते हैं, भगवान्के मनमें भी आनन्द होता है। भक्त-भगवान्के अपूर्व लीला-रङ्गका नाम है साधना—जिसे शास्त्रकार लोग भगवत्प्राप्तिका उपाय बतलाते हैं।

गदाधर पण्डित प्रेमानन्दमें विह्वल होकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोने लगे। प्रभुके श्रीमुखकी वाणी सुनकर आज उनके आनन्दकी सीमा न रही। उनके तत्कालीन मनोभावको समझकर स्वरूप दामोदर गोसाईंने गानका ध्रुहा पकड़ा—

बँधू तोमार गरबे गरबिनी आमि
रूपसि तोमार रूपे।
हेन मने करि, ओ दुहि चरण
सदा लइया राखि बुके॥
अन्येर आछे अनेक जना,
आमार केवल तुमि।
पराण हइते शत शत गुणे
प्रियतर करि मानि॥
नयने अञ्जन अङ्गेर भूषण
तुमि से कालिया चान्दा।
ज्ञानदास कय तोमार पीरिति
अन्तरे अन्तरे बान्धा॥

गान सुनकर प्रभु प्रेमानन्दमें गदाधरके अङ्गपर ढुल पड़े। वह एक अपूर्व गौर-गदाधर-मिलन रङ्गलीला यहाँ प्रकटित हुई, सब भक्तगण प्रेमानन्दमें विभोर होकर गाने लगे—

गदाधर अंगे पँहु अङ्ग मिलाइया।
वृन्दावन-गुण-गान विभोर हइया॥
क्षणे हासे क्षणे काँदे बाह्य नाहि जाने।
राधार भावे आकुल प्राण गोकुल पड़े मने॥
अनन्त अनंग जिनि देहेर बलनि।
कत कोटि चाँद काँदे हेरि मुख खानि॥

त्रिभुवन दरविल ए दोहाँर रसे ।
ना जानि मुरारि गुप्त बञ्चित कोन दोषे ॥

यह पद श्रीपाद मुरारि गुप्त द्वारा रचित है। वहाँ वह उपस्थित थे या नहीं, इसका विचार गौरभक्तगण कर लें।

गदाधरेर प्राण गौरांग ताँहार—
"शीतेर ओढ़ना धिया गीरिबेर वा ।
वरिषार छत्र प्रिया दरियार ना ॥"

अर्थात्—गौराङ्ग गदाधरके प्राण है। वे ही उनके शीतकालके ओढ़ना, ग्रीष्मके वायु, वर्षाके छत्र और नदीके नाव हैं।

गौराङ्ग-गदाधर एकाङ्ग होकर बाह्यज्ञानशून्य हो गये। भक्तगणमें कौन क्या बोल रहा है, इसकी उनको खबर नहीं है।

कुछ देरके बाद गौर-गदाधरको बाह्यज्ञान हुआ। सलज्ज भावसे गदाधर कुछ दूर हटकर बैठ गये। तत्पश्चात् उन्होंने अपने प्राणवल्लभके रक्तकमल चरणको परम प्रेमपूर्वक वक्षःस्थलमें धारण करके रोते-रोते कहा—

"तुमि जाँहा-जाँहा रह—ताँहा वृन्दावन ।
ताँहा यमुना गंगा सर्व्वतीर्थगण ॥

चै० च० म० १६.२७७

यह बड़े ही उच्चाधिकारीकी बात है। गदाधर पण्डितकी श्रीगौरांङ्गैक निष्ठताकी उपमा नहीं है। वे प्रभुके लिए क्षेत्र-संन्यास और कृष्ण सेवा तृणवत् त्यागनेमें कुण्ठित नहीं होते। वे श्रीवृन्दावन, गङ्गा, यमुना आदि तीर्थ स्थानोंको अपने प्राणवल्लभके श्रीचरणारविन्दमें ही देखते हैं। जहाँ प्रभुकी स्थिति है, वहाँ उनको सर्वतीर्थमय दीखता है। गदाधर पण्डित अपने प्राणनाथके श्रीमुखचन्द्रको देखकर जो सुख पाते हैं, उनके चरणतलमें बैठकर श्रीमुखसे मधुमयी रसमय वाणी सुनकर जो आनन्द लेते है, उसकी तुलनामें वे ब्रह्मानन्दको भी तुच्छ मानते हैं।

प्रभु जब गौड़देशसे नीलाचलमें लौटे, तब वर्षाकाल था। प्रभुकी श्रीवृन्दावन-गमनकी उत्कण्ठा देखकर गदाधर पण्डितने कहा—"तुम्हारा वृन्दावन जाना तो केवल लोक शिक्षाके लिए हैं। जो तुम्हारी इच्छा हो, तो करना। अभी तो वर्षाऋतु सामने है। इन चार महीनोंमें नीलाचल रहकर उसके बाद जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करना। तुमको रोक भी कौन सकता है?"

तत्काल सब भक्तगण आनन्द ध्वनि करके बोल उठे—"पण्डित गदाधरने सबके मनकी बात कही है।"

भक्त वाञ्छाकल्पतरु श्रीगौर भगवान् भक्तकी इच्छासे चार मास नीलाचलमें रहे। उनकी श्रीवृन्दावन जानेकी प्रबल इच्छाको भक्तगणने इस प्रकार अवरुद्ध किया। श्रीभगवान् भक्तके पूर्णतः अधीन है। इस कार्यसे प्रभुने अपने वाक्यको सफल किया।

अहं भक्तपरधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

श्रीम० भा० ९-४-६३

अर्थात् मैं भक्तके अधीन हूँ। अतएव पराधीन हूँ। मुझको स्वतन्त्रता नहीं है। मैं अपने भक्तगणको बहुत प्यार करता हूँ, वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरे सारे हृदयको वे ग्रस्त किये रहते हैं, अतएव अपने हृदयके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है।

गदाधर पण्डितने प्रभुको उसी दिन आमन्त्रित किया। भक्तवृन्दके साथ प्रभुने गदाधर पण्डितके बासेपर भिक्षा ग्रहण की। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

भिक्षा ते पण्डितेर स्नेह, प्रभुर आस्वादन ।
मनुष्येर शक्त्ये दुइ ना जाय वर्णन ॥

चै. च. म. १६.२८४

नित्यानन्द आगमन—प्रभुसे मिलन

प्रभु रथयात्राके पूर्व ही नीलाचल आ गये थे। नदियाके भक्तोंको उस वर्ष रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचल आनेसे मना कर दिया था। श्रीनित्यानन्द प्रभु उनके मना करनेपर भी दो चार अन्तरङ्ग भक्तोंको लेकर लुक-छिपकर दौड़ते हुए नीलाचल आ गये। वे जानते थे कि प्रभु रथयात्रा बिना देखे वृन्दावन नहीं जाँयगे। प्रभुके साथ ही वे आ सकते थे, परन्तु वैसा नहीं किया क्योंकि प्रभु उनको आने नहीं देते। वे प्रभुके पीछे-पीछे आये थे। वहाँ श्रीपुरुषोत्तमके एक निर्जन पुष्पोद्यानमें 'हा गौराङ्ग' कहकर अजस्र आँसू बहा रहे थे। कभी 'गौर-गौर' कहकर हुङ्कार-गर्जन करते थे, कभी श्रीगौराङ्ग-चरणके ध्यानके आनन्दमें विभोर होकर जड़वत् बैठ जाते थे।

अन्तर्यामी श्रीगौर-भगवान्‌ने जान लिया कि अवधूत श्रीनित्यानन्द नीलाचलमें आ गये हैं। वे किसीको कुछ न कहकर अकेले उस पुष्पोद्यानमें चले गये। उन्होंने श्रीनिताई चाँदको ध्यानमग्न अवस्थामें देखा। प्रभुने उनकी प्रदक्षिणा करके निम्नलिखित श्लोक पाठकर श्रीनित्यानन्दकी स्तुति की।

गृह्णीयाद् यवनीपाणिं विशेद्वा शौण्डिकालयम्।
तथापि ब्रह्मणो वन्द्यं नित्यानन्दपदाम्बुजम्॥

चै. भा. अं. ८.१

यह प्रभुके श्रीमुखसे निकला हुआ श्लोक था। प्रभुकी इच्छासे श्रीनिताईचाँदका ध्यान भङ्ग हो गया। 'गौर-गौर' कहकर हुङ्कार-गर्जन करते हुए वे भी प्रभुकी प्रदक्षिणा करने लगे। दोनोंने लेटकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करके प्रेमानन्दमें अश्रु प्रवाहित करके वहाँ प्रेमनदीकी धारा बहा दी। दोनों परस्पर प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध होकर परानन्दरसमें मग्न हो गये। भूतलमें पड़कर दोनों प्रभु प्रेमानन्दमें धूलिमें लोटने-पोटने लगे। दोनोंके हुङ्कार-गर्जनसे प्रशान्त पुष्पोद्यान प्रकम्पित हो उठा। उस प्रेम हुङ्कार-गर्जनकी प्रतिध्वनिसे प्रेमतरङ्गके घात-प्रतिघातमें सारे नीलाचलमें प्रेमध्वनि उत्थित हुई।

कुछ सुस्थिर होकर पुष्पोद्यानमें एकान्तमें बैठकर दोनों भाइयोंमें तब कथा-वार्त्ता आरम्भ हुई। अवधूत श्रीनिताई चाँदकी नाना प्रकारसे स्तव-स्तुति करके प्रभु हाथ जोड़कर बोले—"जितने नीच, पतित, अधम हैं, उन सबका उद्धार तुमसे ही हुआ है।"

पतित पावन श्रीनिताईचाँदने चुपचाप प्रभुकी बातें सुनी। अविरल प्रेमाश्रुधारामें उनका वक्षःस्थल डूब गया। प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखकर उनके दोनों श्रीहस्तको धारण करके रोते-रोते वे कहने लगे—"तुम प्रभु होकर मेरी स्तुति करते हो, यह तुम्हारा भक्तवात्सल्य है। तुम प्रदक्षिणा करो या नमस्कार करो, मारो या रक्षा करो, जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो, तुम्हारे सामने मैं क्या कहूँ। तुम दिव्य दृष्टिसे सब कुछ जानते हो। तुम सबके मन, प्राण और ईश्वर हो। तुम जो कराओ, वही मैं करता हूँ। जितने तुम्हारे प्रियगण हैं, उन सबको तप, भक्ति आचरणकी शिक्षा दी और मेरा दण्ड धारण छुड़वाकर मुझे संसारी गृहस्थ बना दिया, जिसको देखकर सब मेरा उपहास करते हैं। मैं तो तुम्हारा नर्तक हूँ, जैसे नचाओ, वैसे नाचता हूँ। मेरे द्वारा जो कार्य करा रहे हो, वह तुम मेरे प्रति अनुग्रह कर रहे हो या निग्रह कर रहे हो, इसके तुम ही प्रमाण हो। अपनी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा तुम जड़ वृक्षसे भी जो चाहो सो कार्य करा सकते हो।'

श्रीनिताईचाँद बहुत दुःखसे प्रभुको अकेले पाकर मर्मकी बातें खोलकर कह डाले। प्रभुने उनको गृहस्थ धर्मका अवलम्बन करनेका आदेश दिया था। वे आजन्म ब्रह्मचारी संन्यासी थे। उनके लिए संन्यास धर्म छोड़कर गृहस्थ धर्म ग्रहण करना एक प्रकारकी मृत्यु थी। परन्तु प्रभुके आदेशसे वे सब

कुछ कर सकते थे। मुनि धर्म छोड़कर वे गृहस्थ हो गये, अपरूप वेष धारण किया, जिससे देखकर सब लोग उपहास करने लगे, परन्तु इसकी उन्होंने तनिक भी परवा न की। वे सदा आनन्दमय रहे, प्रेमरससे उनका हृदय सदा ही भरपूर रहा।

जब श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीगौर भगवान्‌के मनकी बात कही तो सर्वज्ञ प्रभु उनको समझानेके लिए बैठे। करुणानिधि प्रभु श्रीनिताई चाँदके दोनों हाथोंको अपने श्रीहस्तमें धारण करके कहने लगे— "तुम्हारे शरीरपर जो अलङ्कार हैं, वे श्रवण-कीर्तन आदि नवधा भक्तिको छोड़कर और कुछ नहीं है। शङ्करजीके नाग विभूषण है, उसका रहस्य सब लोग नहीं समझते। परमार्थमें अनन्त देव ही महादेवजीके जीवन है। इसीलिए नागके बहाने वे अनन्त देवको ही धारण करते हैं। तुमने वृन्दावन लीलामें नन्दव्रजमें भी कौतुक पूर्वक अनेक अलंकार धारण किये थे। तुम्हारे साथ जितने बालक रहते हैं, वे श्रीराम-सुदाम आदि गोप ही है। जो तुम्हारी इन सब लीलाओंको देखकर प्रसन्न होते हैं, उन्हें अवश्य श्रीकृष्ण प्राप्त होंगे।"

श्रीनित्यानन्द प्रभुने सिर झुकाकर प्रभुकी सारी बातें सुनी। कुछ देर तक चुप रहकर अपने प्रसंशक वाक्य सुननेसे वचनेके लिए हुङ्कार-गर्जन करते हुए उस स्थानसे भाग खड़े हुए। प्रभुने उनको पकड़कर पुष्पोद्यानमें बैठकर अनेक गुह्य बातें की, उनका किसी ग्रन्थमें विवरण नही मिलता। श्रीवृन्दावन दासने लिखा है—

ईश्वरे परमेश्वरे हैल कि कथा।
वेदे से इहार तत्त्व जाने न सर्वथा॥

चैं० भा० अं० ८,७३

प्रभुके साथ जब-जब श्रीनिताई चाँदका साक्षात्कार होता था तो दोनों एकान्तमें बैठकर अपने मनकी बातें करते थे। प्रभुकी इच्छासे वहाँ कोई आ नहीं पाता था। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी इच्छा थी कि एकान्तमें बैठकर प्रभुसे दो बातें करता। अन्तर्यामी प्रभु उनके मनको जानकर अकेले आकर उनके पास उपस्थित हो जाते थे, और प्रभुके इस अभिप्रायको जानकर श्रीनिताईचाँद भी अकेले आकर उनके साथ मिला करते थे। दोनोंके बीच जो बातें होती थी उसे अन्य कोई नहीं जान पाता था। क्योंकि वे सब गुह्य बातें होती थी।

श्रीनिताईचाँदसे विदा होकर प्रभु अपने वासेपर आये। श्रीनित्यानन्द प्रभु पहले प्रभुका दर्शन करके पश्चात् श्रीजगन्नाथका दर्शन करने चले। प्रभुके पास उनको जाना न पड़ा। प्रभुने स्वयं ही उनके पास जाकर दर्शन दिया। श्रीनिताईचाँदने जगन्नाथ दर्शन करके आनन्दमें विभोर होकर बहुत देर तक श्रीमन्दिरमें भक्तगणके साथ उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन किया। जगन्नाथजीके सेवकोंने माल्यचन्दनसे उनको भूषित किया। नीलाचलमें उनको सब लोग जानते थे। किसी-किसी नये सेवकने पूछा कि, ये कौन हैं? पुराने सेवकोंने उत्तर दिया कि यह कृष्णचैतन्य महाप्रभुके बड़े भाई हैं। सब लोगोंने उनको प्रणाम किया, और स्तुति वन्दना करने लगे—

नित्यानदमहं वन्दे कर्णे लम्बितमौक्तिकम्।
चैतन्याग्रजरूपेण पवित्रीकृतभूतलम्॥

दयालु श्रीनिताई चाँदने सबको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया, अपने नयन जलसे उनके सारे अङ्ग सिञ्चित कर दिये—

गदाधरके यहाँ श्रीनित्यानन्द एवं श्रीमन्महा प्रभुका प्रसाद पाना

जगन्नाथजीका दर्शन करके वे एकबार गदाधरके वासाकी ओर चले। उनके भक्तगण उनके साथ ही थे। गौड़ देशसे श्रीनिताईचाँद गदाधरके ठाकुर

गोपीनाथकी सेवाके लिए एक मन उत्तम सुगन्धित बारीक चावल लाये थे, तथा एक सुन्दर रङ्गीन वस्त्र लाये थे। गदाधर पण्डित श्रीनित्यानन्दको देखते ही प्रेमानन्दमें विह्वल होकर दूर ही से उनको दण्डवत् प्रणाम करते हुए सामने आकर उनके चरणोंमें लम्बे होकर गिर पड़े। श्रीनिताईचाँदने उनका हाथ पकड़कर उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कहा, "गदाधर! तुम्हारे ठाकुरके लिए मैं एक वस्त्र लाया हूँ, और सेवाके लिए कुछ उत्तम चावल। तुम ठाकुरको भोग लगाकर प्रसाद पाना।

गदाधर ए तण्डुल करिया रन्धन।
श्रीगोपीनाथेरे दिया करिबा भोजन॥

चै० भा० अं० ८.१२८

चावल देखकर गदाधर पहले हँसकर आकुल हो उठे। एक मन चावल गौड़देशसे लोगोंके सिरपर श्रीनिताईचाँद लाये हैं, यह साधारण प्रीतिका कार्य नहीं है। यह सोचकर वे प्रेममें भरकर आकुलतापूर्वक क्रन्दन करने लगे। तब वे चावलकी प्रशंसा करते हुए बोले—"हे प्रभु! ऐसा सुन्दर बारीक चावल तो मैंने देखा नहीं। यह आप वैकुण्ठ लोकसे लाये हैं, केवल श्रीश्रीलक्ष्मीजी इस चावलको राँधती हैं, श्रीकृष्ण भगवान् इसके भोक्ता हैं, उसके बाद भक्तजन इसका प्रसाद पाकर कृतार्थ होते हैं।

रङ्गीन वस्त्र लेकर श्रीगोपीनाथके श्रीअङ्गमें पहना दिया। श्रीविग्रहकी अपूर्व शोभा हो गयी, यह देखकर गदाधर आनन्दसे आत्म विस्मृत हो गये।

श्रीनित्यानन्द प्रभु भक्तगणके साथ आज गदाधर पण्डितके बासापर भिक्षा करेंगे। गदाधरने स्वयं रन्धनका प्रबन्ध किया। आङ्गनमें अपने आप टोटाका शाक उत्पन्न हुआ है, उसे किसीने रोपा नहीं है। यह बिना बोया हुआ शाक है। गदाधर पण्डितने यत्नपूर्वक उस शाकको तोड़कर राँधा। उनके वासाके समीप एक इमलीका वृक्ष था, उससे सुकोमल पत्ते तोड़कर उसे अम्ल बनाया। श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा प्राप्त उत्तम चावल राँधकर श्रीगोपीनाथको भोग दिया।

उसी समय श्रीगौराङ्गसुन्दर प्रेममें भरे 'गदाधर-गदाधर' पुकारते वहाँ जा पहुँचे। 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण' कहते हुए सामने आकर जब प्रभु खड़े हो गये तो गदाधरने प्रभुको देखकर झटपट उठकर चरण-वन्दना की। रङ्गीले प्रभु तब मधुर मुस्कानके साथ परम प्रेममें भरकर उनसे कहने लगे—"क्यों गदाधर, क्या मैं निमन्त्रणमें शामिल नहीं हूँ? मैं तुम दोनोंसे भिन्न तो हूँ नहीं! मुझे सामिल नहीं भी करोगे तो मैं बलपूर्वक सामिल हो जाऊँगा। नित्यानन्द द्वारा लाया गया, तुम्हारे द्वारा रंधन किया गया, गोपीनाथके भोग लगाया गया, इसमें मेरा भी भाग है।"

गदाधरने लज्जासे सिर नीचा कर लिया। वे प्रभुके सामने खड़े होकर सिर नीचा करके हाथके नख खूँटने लगे। गदाधरका यह प्रेम-भाव अति मधुर था। वे श्रीराधा-शक्ति हैं। वे प्रभुके सामने लज्जावनत-मुखी नवीना रसिक रमणीके समान विह्वल भावमें खड़े थे। उनके नयन-चकोर प्रभुके श्रीचरण-मधुका पान कर रहे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु पास ही खड़े थे। वे गौर-गदाधरकी यह अपूर्व रसरङ्गलीला देख रहे थे और दिल खोलकर हँस रहे थे। तब प्रभु हँसते-हँसते गदाधरसे बोले, "गदाधर! अब विलम्ब क्या है? प्रसाद लाओ।" गदाधर अपने प्रति प्रभुकी यह अयाचित कृपा देखकर आनन्दसे विभोर हो गये। उन्होंने समस्त निवेदित अन्न-व्यञ्जनको लाकर प्रभुके सामने रक्खा। प्रसादकी सुगन्धिसे चतुर्दिक पूर्ण हो गया। प्रभुने हाथ जोड़कर प्रसादकी वन्दना करते हुए कहा—"तीन समान भाग कर लो, हम तीनों जन एक साथ बैठकर प्रसाद पाँयगे।"

इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके सहित श्रीगौराङ्ग सुन्दर एकत्र भोजन करने बैठे। गदाधर हाथ जोड़कर खड़े रहे। वे उनके साथ न बैठ सके। कैसे बैठते ? अपने प्राणनाथको भोजन कराये बिना क्या वे भोजन करनेके लिए बैठ सकते थे ? प्रभुने उनके लिए एक भाग प्रसाद अलग करके रख दिया। भोजन करते-करते प्रभु अन्न-प्रसादकी प्रशंसा करके कहने लगे—"इस अन्नके तो सौरभ मात्रसे कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं। गदाधर तुम्हारा कितना मनोहर पाक है। इमलीके पत्तोंका ऐसा व्यञ्जन और ऐसा पाक तो कभी खानेको नहीं मिला। मालुम होता है, तुम्हीं वैकुण्ठमें भी रुंधन करते हो। अब अपनेको छिपाते क्यों हो ?"

प्रभुने गदाधरको वैकुण्ठकी लक्ष्मी कहा। वस्तुतः गदाधर पण्डित लक्ष्मी भी थे, और श्रीराधा भी थे। इस प्रकार हास-परिहास करते हुए प्रभुद्वय भोजन करने लगे। प्रभुका भोजन विलास समाप्त होनेपर उन्होंने गदाधरको भोजन करनेके लिए बैठाया। जब तक गदाधरका भोजन करना समाप्त न हुआ, तब तक प्रभु वहाँ बैठे रहे।

प्रेमानन्दमें तीनों आदमीका भोजन-विलास समाप्त होनेपर भक्तवृन्द अवशेष पात्रपर टूट पड़े। तीनों प्रभुओंके अधरामृतको सबने बाँट लिया। प्रेमानन्दमें भक्तोंने उस दिन गदाधर पण्डितके वासापर प्रसाद पाया।

प्रभु कुछ देर विश्राम करके अपने वासापर चले गये। श्रीनित्यानन्द प्रभु गदाधर पण्डितको साथ लेकर नीलाचलके भक्तोंसे मिले। उनको देखकर नीलाचलवासी आवाल वृद्ध वनिता आनन्द-सागरमें डूब गये। सब लोग समझते थे कि वे प्रभुके बड़े भाई हैं। प्रभुके नीलाचल लौटनेपर वे आनन्दसे विह्वल हो गये थे, अब श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखकर उनके आनन्दकी सीमा न रही।

राजा प्रतापरुद्र नीलाचलमें

राजा गजपति प्रतापरुद्र अपनी राजधानी कटकमें थे। नीलाचलमें प्रभुका आगमन सुनकर वे तत्काल सारा राज्यकार्य छोड़कर श्रीक्षेत्रमें आ गये।* राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्यको बुलाकर उनसे प्रभुके गौड़देश-भ्रमणका सारा वृत्तान्त सुना। प्रभुकी अपूर्व लीला-कथा सुनते-सुनते राजा प्रेमानन्दमें विह्वल होकर रोने लगे। गोपीनाथ आचार्य भी प्रभुके साथ गौड़ देश गये थे। वे राजाके सामने प्रभुकी लीला-कथा एक-एक करके वर्णन करने लगे। यह सुनकर राजा प्रतापरुद्र आनन्दसे अधीर हो गये।

यह जानकर कि प्रभु पुनः शीघ्र ही श्रीवृन्दावनकी यात्रा करेंगे, राजा मर्माहत हो उठे। सार्वभौम भट्टाचार्य और राय रामानन्दसे उन्होंने बहुत विनती करके कहा कि आप लोग एकबार फिर चेष्टा करें जिससे प्रभु नीलाचलमें ही रहें, अन्यत्र न जाँय। राजाने जब सुना कि प्रभुने इस वार अकेले चुपचाप श्रीवृन्दावन यात्रा करनेका सङ्कल्प किया है तो वे एकदम हताश हो गये।

राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्यकी कृपासे राजा प्रतापरुद्रको बड़ी कठिनाईसे एक बार प्रभुका दर्शन प्राप्त हुआ। क्योंकि गौड़ देशसे आकर प्रभु चार मास एकान्तमें रहे। वे सर्वदा श्रीवृन्दावन भावसे विभावित रहते थे। बहुधा उनको बाह्य ज्ञान नही रहता था। भक्तगणमें कौन आया, कौन गया, क्या कहा, प्रभुको कुछ भी भान नहीं रहता था। राजा गजपति प्रताप रुद्र जो प्रभुका दर्शन

---

* प्रतापरुद्रेर स्थाने हइल गोचर।
नीलाचले आइलेन श्रीगौरसुन्दर॥
सेइ क्षणे शुनि मात्र नृपति प्रताप।
कटक छाड़िया आइलेन जगन्नाथ॥
चै० भा० अं० ५.१३८,१३६

करने गये, करुणामय प्रभुने उनके प्रति शुभदृष्टिपात किया, पर कोई बात न बोले। प्रभुके श्रीमुखमें केवल वृन्दावनकी बात थी। वह जिसको देखते थे उसीसे कहते थे कि,

"आमाय बोल् रे कत दूर वृन्दावन।
आमार दिबेन कि कृष्ण दरशन॥"

वृन्दावन जानेका संकल्प और यात्राकी तैयारी

देखते-देखते वर्षाके चार मास बीत गये। आश्विनका महीना आ गया। शरत्‌कालकी दिव्य ज्योत्स्नामयी रजनीमें एक दिन प्रभुने राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर गोसाईके साथ एकान्तमें बैठकर परामर्श किया कि, आज मैं रातमें अकेले ही वनके मार्गसे लुकछिपकर श्रीवृन्दावनकी यात्रा करूँगा। श्रीवृन्दावन-विरह-कातर प्रभु दोनों आदमियोंका हाथ पकड़कर विनती करते हुए बोले—"यदि तुम दोनों मेरी सहायता करो तो मेरा वृन्दावन जाना हो सकता है। मेरी इच्छा है कि आज ही रात्रिके समय मैं अकेला ही चुपचाप वृन्दावन चला जाऊँ, किसीको भी साथमें न लूँ। पीछेसे कोई जाना चाहे तो उसको तुम लोग समझा-बुझाकर रोक लेना। यदि तुम लोग बिना दुःख किये प्रसन्नतासे अनुमति दे दो तो मुझे भी मार्गमें प्रसन्नता रहेगी।"

राय रामानन्द और स्वरूप गोसाईं प्रभुके श्रीमुखकी यह दृढ़ सङ्कल्पवाणी सुनकर उनके श्रीवदनकी ओर अधिक देख न सके। प्रभु-विरहकी आशङ्कासे उनका मन इतना क्षुब्ध हुआ कि वे लोग एक दम बालकके समान व्याकुल होकर रोने लगे। ये खूब जानते थे कि इस बार प्रभुका सङ्कल्प सुदृढ़ है, वह कदापि भङ्ग न होगा। अतएव वे प्रभुको इस सम्बन्धमें और कोई बात न कहकर उनके श्रीवृन्दावन-गमनके सङ्गी-साथीकी बात उठाकर कहने लगे—"तुम परतन्त्र तो हो नहीं, स्वतन्त्र ईश्वर हो, जो चाहोगे सो करोगे। जब तुमने कहा कि हम लोग भी प्रसन्न रहें और तुम भी प्रसन्न रहो, तो हमको बड़ी प्रसन्नता होगी यदि हमारा एक निवेदन स्वीकार करो। अपने साथ एक ब्राह्मणको ले जाओ जो तुम्हारा पात्र, वस्त्रादि सम्हाल ले तथा भिक्षाकी व्यवस्था कर ले।"

प्रभु व्रजरसमें उन्मत्त थे। श्रीवृन्दावन जानेके लिए विशेष व्यग्र थे। श्रीवृन्दावनका नाम लेते ही उनके मन-प्राण मुँचड़ कर रो पड़ते। वे एक बार श्रीवृन्दावनकी यात्रामें असफल हो चुके हैं, इससे उनके मनमें बड़ा कष्ट है। बहुत लोगोंकी भीड़-भाड़ इकट्ठी होनेके कारण उनको व्रज-दर्शन प्राप्त न हो सका। रामकेलिमें सनातनकी बात उनके मनमें दृढ़ रूपसे अङ्कित हो गयी है। इस बार उन्होंने अकेले जानेका सङ्कल्प कर लिया है। अतएव प्रभुने उत्तर दिया—"स्वरूप! मैं अकेले श्रीवृन्दावन जाऊँगा। एक आदमीको साथ लेनेसे दूसरेके मनमें दुःख होगा, मैं ऐसा काम नहीं कर सकूँगा। तथापि यदि कोई बिल्कुल अपरिचित साथी मिल जाय, और वह स्थिर चित्त हो तो उसे साथ ले सकता हूँ।"

स्वरूप गोसाईं राय रामानन्दके मुँहकी ओर देखने लगे। दोनोंने बहुत देर तक विचार करके निश्चय किया कि बलभद्र भट्टाचार्य जो इस वर्ष गौड़ देशसे पहले पहल नीलाचल आये हैं, तथा जिसके साथ एक ब्राह्मण सेवक है, उनको प्रभुके साथ वृन्दावन भेजना ठीक रहेगा। बलभद्र भट्टाचार्य तीर्थ पर्यटनके लिए आये हैं, वे परम पण्डित और सज्जन, कष्ट सहिष्णु हैं। वे बहु भाषी नहीं हैं। प्रभुके साथ अधिक बातें नहीं करेंगे, वे प्रभुके मनके अनुकूल आदमी होंगे। ऐसा सोचकर स्वरूप गोसाईंने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"यह बलभद्र भट्टाचार्य, जो गौड़से प्रारम्भमें तुम्हारे साथ आये थे, बड़े सरल और शुद्ध आचरणके हैं, तुम्हारे प्रति प्रीति रखने वाले हैं, इनकी भी सब तीर्थ-दर्शनकी इच्छा

है। इनके साथ एक ब्राह्मण-भृत्य है। मार्गमें सब सेवाका कार्य और भिक्षा आदिकी व्यवस्था कर देंगे। इनको यदि साथ ले जाओ तो सबको बड़ी प्रसन्नता होगी। वन मार्गमें चलनेमें तुमको भी कष्ट नहीं होगा। ये विप्र भृत्य वस्त्र और जल-पात्र ले चलेगा, वलभद्र भट्टाचार्य भिक्षाटन करके भिक्षाकी व्यवस्था कर देगा।"

बलभद्र भट्टाचार्य परम गौरभक्त थे। अतएव स्वरूप गोसाईंने प्रभुसे कहा—"तोमाते सुस्निग्ध बड़ (चै. च. म. १७.१४)। बलभद्र भट्टाचार्यके सौभाग्यकी सीमा न थी। प्रभुने सब भक्तगणको छोड़कर उनको श्रीवृन्दावनका सङ्गी बनाया। इससे बढ़कर कृपानिधि प्रभुकी कृपाका परिचय और क्या हो सकता है? स्वरूप गोसाईं और राय रामानन्दने उसी रात बलभद्र भट्टाचार्यको बुलाकर प्रभुके सम्बन्धमें सारी बातें समझा दी, और सिखला दिया कि कब क्या करना चाहिये। बलभद्र भट्टाचार्य यह सुनकर कि वह गौराङ्गरूपी श्रीश्रीवृन्दाबन चन्द्रके साथ श्रींवृन्दावन जाँयगे, आनन्दसे नाच उठे। तत्काल उन्होंने सारा प्रबन्ध कर लिया। ब्राह्मण भृत्यको लेकर प्रभुके आदेशसे रातमें प्रभुके वासापर जाकर सो रहे।

उस दिन आधी रात तक प्रभु राय रामानन्दके साथ श्रीवृन्दावनकी रसमयी कथा कहते रहे। रोते-रोते रामानन्द राय बिदा हुए। भक्तवत्सल प्रभु उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करते हुए बोले—"रामराय! तुम लोगोंको छोड़कर मैं अधिक दिन वृन्दावन न रह सकूँगा। मैं शीघ्र लौट आऊँगा।" रामानन्द राय प्रभुके विरहमें मृतवत् होकर घर चले। स्वरूप दामोदर प्रभुके पास ही रहे। उस रात प्रभुको नींद न आयी। श्रीवृन्दावन-यात्राकी उत्कण्ठामें माला जप करते-करते उन्होंने सारी रात बिता दी।

वृन्दावनके झारखण्ड बनप्रदेश मार्गमें

उस दिन रातमें प्रभु जगन्नाथजीका दर्शन करके आज्ञा-माला लेकर तैयार होकर बैठे थे। रात बीतते ही बहुत चुपके-से किसीको कुछ कहे बिना नीलाचल छोड़कर झारखण्डके वनके मार्गसे प्रभुने वृन्दावनकी यात्रा की। बलभद्र भट्टाचार्य और उनका ब्राह्मण भृत्य, दोनों प्रभुके साथ चले।

उस दिन भी विजया दशमी थी। पहले वर्ष भी प्रभुने इसी शुभ तिथिमें श्रीवृन्दावनकी यात्रा की थी। इस वर्ष भी उसी पुण्य तिथिमें श्रीवृन्दावनकी यात्रा की। श्रीविजयादशमीं इसी कारण वैष्णवतिथि है। वैष्णव लोग इसी कारण इस शुभ तिथिको उत्सव मनाते हैं।

राय रामानन्द, स्वरूप दामोदर गोस्वामी और दो एक मर्मी भक्त प्रभुके इस गुप्त भावमें श्रीवृन्दावन यात्राकी बात जानते थे, और कोई नहीं जानता था। प्रातःकालमें प्रभुको न देखकर भक्तगण व्याकुल होकर चतुर्दिक अन्वेषण करने लगे। कहीं भी उनको न पाकर वे हाहाकार करने लगे। स्वरूप गोसाईंने यथार्थ बात कहकर सबको अन्वेषण करनेसे रोका। प्रभुने श्रीवृन्दावनकी यात्रा की है, यह समाचार सारे नीलाचलमें व्याप्त हो गया, सब लोग हाहाकार करने लगे। प्रभुके विरहमें श्रीश्रीनीलाचल चन्दका श्रीवदन मलिन लगने लगा। राजा गजपति प्रतापरुद्र मनके दुःखसे श्रीक्षेत्र छोड़कर कटक चले गये।

प्रभु प्रसिद्ध पथ छोड़कर पगडण्डी पकड़कर चले। कटकको दाहिनी ओर छोड़कर उन्होंने निविड़ वनका मार्ग पकड़ा। वह वन अत्यन्त भयङ्कर था। इस प्रकारके भीषण वनके मार्गसे आदमी नहीं चलते। प्रभुका सारा लीलारङ्ग अलौकिक था। कविराज गोस्वामीने क्या ही साध करके लिखा है—

आद्योपान्त चैतन्य लीला अलौकिक जान।
श्रद्धा करि शुन इहा सत्य करि मान॥

चै. च. म. १८.२१६

प्रभु 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे' यह श्लोक उच्च स्वरसे कहते-कहते रास्तेसे चले जा रहे थे, उनके श्रीमुखसे मधुर नाम सुनकर वनके हाथी, बाघ, गैंड़े, सूअर आदि हिंस्र जन्तु रास्ता छोड़ देते थे।

प्रभु प्रेमावेगमें निर्भय चले जा रहे हैं, किसी वस्तुका उनको ध्यान नहीं है, किसी दिशाका भान नहीं है। उनके साथी बलभद्र भट्टाचार्य भयसे व्याकुल होकर पीछे-पीछे जा रहे हैं। प्रभुके प्रबल तेजसे वनके हिंस्र जन्तु उनको देखकर एक बगल हो जाते हैं। यह देखकर भट्टाचार्य और उनके साथी विप्रको बड़ा आश्चर्य हो रहा है। प्रभुके इस वन-भ्रमणकी एक दिनकी कथा सुनिये।

एक दीर्घकाय भयङ्कर व्याघ्र वन-पथमें सोया था। कृष्ण-कृष्ण कहते हुए प्रेमावेगमें हुङ्कार गर्जन करते हुए नृत्य करते-करते प्रभु उसी मार्गसे जा रहे हैं। अचाचक प्रभुका श्रीचरण उस भयानक शार्दूलके देहसे छू गया। बाघने मुँह खोलकर प्रेम पूर्वक प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखा। प्रभुने उसका शरीर स्पर्श करके कहा—'कृष्ण कहो, कृष्ण कहो'। तत्काल वह प्रभुके पदरजसे पुनीत शरीर वाला पशुराज कृष्ण नाम उच्चारण करके आगेके दोनों पैरोंको ऊपर उठाकर मनोहर नृत्य करने लगा।

प्रभु कहे—'कृष्ण-कृष्ण' व्याघ्र उठिल।
'कृष्ण-कृष्ण' कहि व्याघ्र नाचिते आगिल॥

चै. च. म. १७.३८

वह व्याघ्र तब पशु न रहा। स्वयं भगवान्से उसको कृष्ण नाम महामन्त्र प्राप्त हुआ। पशुराज होकर वह द्विजराजसे भी श्रेष्ठ हो गया। उसके भाग्यकी अभिवाञ्छा देवता लोग भी करने लगे। पशुयोनि छोड़कर वह देवयोनिको प्राप्त हुआ। उसने फिर प्रभुका सङ्ग न छोड़ा।

और एक दिनकी बात सुनिये। प्रभु नदीमें स्नान करने गये। उसी नदीमें मत्त वन्य गज यूथ जल पीनेके लिए आये। वे धीरे-धीरे प्रभुके पास पहुँचे। प्रभुने उनको प्यारसे पास बुलाया, उनके शरीरपर नदीका जल छिड़क कर बोले—'कृष्ण कहो, कृष्ण कहो।' पश्चात् तुरन्त उस मत्त गज यूथमें-से कोई आनन्दसे सूँड़ ऊपर उठाकर नाचने गाने लगा, कोई भूमिपर लोटते हुए चीत्कार करने लगा। यह देखकर बलभद्र भट्टाचार्यके आश्चर्यकी सीमा न रही।

प्रभु इसी भावमें वनके मार्गसे उच्च संकीर्तन करते चले जा रहे थे। उनके उच्च स्वरकी मधुर ध्वनि सुनकर सारे हरिण-हरिणी प्रभुके पास दौड़े आये ओर साथ हो गये, वे आनन्दसे नृत्य करते-करते प्रभुके दोनों बगल चलने लगे। उनकी दृष्टि प्रभुके श्रीवदनके ऊपर थी। उनके श्रीमुखकी मधुर हरिध्वनि सुननेके लिए वे सब कान खड़े किये चले जा रहे थे। प्रभुने प्रेम पूर्वक उनके अङ्गोंपर अपने श्रीहस्तको फेर दिया। उनके मुख पकड़कर आदर-दुलार करने लगे, और यह श्लोक पढ़ने लगे—

धन्याः स्म मूढ़मतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

श्रीमद्भागवत १०.२१.११

अर्थ—हे सखि! ये हरिणियाँ विवेक रहित होनेपर भी धन्य हैं, जो विचित्र वेष धारी नन्दनन्दनके वेणुनादको श्रवण करके अपने पति कृष्ण सारादि मृगोंके साथ प्रणयावलोकन रूपी पर्याय द्वारा पूजा कर रही हैं।

उसी समय उस मृगयूथमें पाँच सात भयङ्कर बाघ आकर उपस्थित हो गये। बाघ-बाघिन, हरिण-हरिणी, सब एक साथ पूँछ उठा उठाकर प्रभुके साथ चले। किसीने किसीके प्रति हिंसा न की। यह देखकर प्रभुके मनमें श्रीवृन्दावनकी स्मृति उदय

हुई। तब वह प्रेमानन्दमें नृत्य करते-करते यह श्लोक पढ़ने लगे—

यत्र नैसर्ग दुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः।
मित्राणीवाजितावास द्रुतरुट्तर्षणादिकम् ॥

श्रीमद्भागवत १०.१३.६०

अर्थ—श्रीकृष्णके निरन्तर वासके कारण क्रोध-लोभ आदि जहाँसे भाग गये हैं, उस श्रीवृन्दावनमें स्वाभाविक वैरशाली अति-नकुलादि प्राणी एक साथ होकर तथा मनुष्य और सिंह आदि मित्रवत् वास कर रहे हैं।

व्याघ्र-मृगसे परिवेष्टित होकर भीषण वनमार्गसे प्रभु चले जा रहे हैं, वह उच्च स्वरसे कीर्तन कर रहे है, और बीच-बीचमें उन सब मृग-शार्दूल आदिकोंके प्रति करुण दृष्टिसे देखकर 'कृष्ण कहो—कृष्ण कहो' कह रहे हैं, तब व्याघ्र-मृग आदि एक दूसरेका आलिङ्गन और मुख चुम्बन करते हुए नाचने और क्रन्दन करने लगे।

यह सब कौतुक देखते-देखते प्रभु आनन्दित मनसे वनके मार्ग पर चले जा रहे हैं। वे व्याघ्र-मृगके प्रेमालिङ्गन तथा चुम्बनादि रस-रङ्गको देखकर हँसने लगे। बलभद्र भट्टाचार्य और उनका भृत्य भयसे दुबक कर प्रभुके साथ चले जा रहे हैं।

शुक-सारिका और मयूर आदि पक्षियोंके समूह प्रभुके वन-पथके नित्य सहचर हैं। वे निरन्तर उनके साथ रहते हैं। प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत मधुर कृष्ण नाम सुनकर वे आनन्दित मनसे मत्त होकर नयन-रञ्जन नृत्य करते हैं। प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत हरिध्वनि सुनकर वृक्ष-लता-गुल्म आदि वृक्ष उत्फुल्ल दीख रहे हैं।

पर्वत देखते ही प्रभुके मनमें गिरि गोवर्द्धनकी स्मृति स्फुरित होती है, नदी देखते ही श्रीयमुनाकी स्फूर्त्ति होती है। प्रेमावेशमें दौड़कर वे पर्वतको आलिङ्गन करना चाहते हैं, नदीके जलमें कूदने जाते हैं।

झारखण्डके स्थावर-जङ्गम, कीट-पतङ्ग आदि सबको प्रेममय श्रीगौराङ्ग प्रभुने व्रजप्रेममें उन्मत्त कर दिया। वन-प्रदेशमें छोटे-छोटे गाँव थे। प्रभु वहाँ विश्राम करते थे और भिक्षा करते थे। वे जिस ग्राममें एक दण्ड भी रहते थे, उस गाँवके सब लोग कृष्ण-प्रेममें उन्मत्त हो जाते थे।

किस प्रकार अपूर्व भावमें यह अपूर्व प्रेम वितरण कार्य सम्पन्न हो रहा है, यह भी पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने खोलकर लिख दिया है। यथा,

केहो यदि ताँर मुखे शुने कृष्णनाम।
ताँर मुखे आन शुने, ताँर मुखे आन ॥
सब 'कृष्ण हरि' बलि नाचे कान्दे हासे।
परस्पराय वैष्णव हैल सर्वदेशे ॥

चै. च. म. १७.४५-४६

प्रभु भीड़-भाड़के भयसे वनके मार्गसे जा रहे हैं, यद्यपि लोगोंके भयसे वे अपने प्रेम-भावको गुप्त रखनेकी चेष्टा करते हैं, तथापि उनके श्रीमुखके दर्शन, तथा श्रीमुखकी सुधामयी वाणीके श्रवणके प्रभावसे सब जीवोंके प्राणमें कृष्ण-भक्तिका तरङ्ग उठ रहा है। झारखण्ड वन-प्रदेशके लोग सब कोल-भीलके समान असभ्य और परम पाखण्डी हैं। पतित-पावन हमारे प्रभुने मधुर हरिनाम महामन्त्र देकर और उसके साथ-साथ गोलोककी सम्पत्ति प्रेमधन वितरण करके उनका उद्धार कर दिया। यही प्रभुकी अलौकिक लीलाका-रहस्य है। इसको समझनेकी शक्ति जीवमें नहीं है।

बलभद्र भट्टाचार्यको स्वरूप गोसाईंने सावधान कर दिया था कि प्रभुके साथ अधिक बात न करेंगे, व्यर्थकी बात न करेंगे, केवल उनकी सेवापर ध्यान देंगे। वे यही काम करते आ रहे हैं। जिस ग्राममें प्रभु विश्राम करते हैं, उस गाँवके लोग दही, दूध, घी, चावल लाकर देते हैं। बलभद्र भट्टाचार्य वन्य शाक, मूल आदि व्यञ्जन राँधते हैं। प्रभुको यह बहुत पसन्द है, वे आनन्दसे भिक्षा करते हैं। प्रभु

नित्य इसी प्रकार वन-भोजन करके मनमें बड़ा सुख पाते हैं। बलभद्र भट्टाचार्य भिक्षाकी वस्तु कुछ-कुछ साथ रखते हैं। जब प्रभु दो चार दिन वन-मार्गमें चलते रहते हैं, और बीचमें कोई गाँव दिखलायी नहीं देता, तो वह संग्रहीत भिक्षाद्रव्यको पाक करके प्रभुको भिक्षा कराते हैं, अन्तर्यामी प्रभु सब कुछ जानते और समझते हैं। उस संग्रहके विषयमें बलभद्र भट्टाचार्यको वे कभी कुछ नहीं बोलते, क्योंकि वे गृही वैष्णव थे।

प्रभु झरनेके उष्ण जलमें तीन बार स्नान करते हैं। प्रातः और रातमें अग्निके उत्तापमें बैठकर प्रेमानन्दमें माला जपते हैं। शीतकालकी ऋतु है। इस प्रकारसे प्रभु झारभण्डके रास्तेसे श्रीवृन्दावन जा रहे हैं। उनके मनमें बड़ा आनन्द है।

एक दिन प्रभु बलभद्र भट्टाचार्यकी सेवासे सन्तुष्ट होकर उनसे बोले—बलभद्र ! मैंने अनेक देशोंमें पर्यटन किया है, किन्तु वन-पथकी यात्रा जैसा सुख कहीं नहीं मिला। कृपालु कृष्णने बड़ी कृपा की कि मुझे वन-पथमें लाकर मुझे इतना सुख दिया। पहले वृन्दावन जानेका विचार किया था तब यह भी भावना थी कि माता, गंगा और भक्तगणके भी दर्शन हो जायेंगे। इसी विचारसे गौड़ देश गया, सबके दर्शन-स्पर्शनसे बड़ा आनन्द मिला। तब भक्तगणको साथ लेकर वृन्दावन-यात्राको चल पड़ा। लाखों-लाखों लोग साथ हो लिये। भगवान्ने सनातनके मुख द्वारा मुझे शिक्षा दी और उस यात्रामें विघ्न उपस्थित करके अबकी बार वन-पथसे ले आये। भगवान् दीन-हीनोंके प्रति बड़े दयामय है, उनकी कृपाके बिना ऐसा सुख सम्भव नहीं।"

इतना कहकर भक्तवत्सल प्रभु प्रेमावेशमें बलभद्र भट्टाचार्यको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन देकर पुनः स्नेहपूर्वक प्रेमगद्गद स्वरसें बोले—"तुम्हारे ही प्रसादसे मुझे इतना सुख मिला है।"

भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान्ने भक्तकी प्रेमसेवाके वशीभूत होकर भक्तचूड़ामणि बलभद्र भट्टाचार्यका मान बढ़ाकर जो कुछ कहा, वह भक्तावतार प्रभुके उपयुक्त बात थी। परन्तु भक्तके हृदयमें यह बात रुची नहीं। बलभद्र भट्टाचार्य यह बात सुनकर लज्जासे मर्माहत हो उठे। वे इतने दिनों तक भयसे प्रभुके साथ कोई बात नहीं कर रहे थे, इस समय कृपानिधि प्रभुने उनको जो कुछ कहा, इससे अब वे अपने मनकी बात छिपा कर नहीं रख सके। वह रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें प्रेमपूर्वक बोले—

—"तुमि कृष्ण, तुमि दयामय।
अधम जीव मुञि मोरे हइला सदय॥
मुञि छार, मोरे तुमि सङ्गे लञा आइला।
कृपा करि मोर हाते भिक्षा जे करिला॥
अधम काकेरे कैला गरुड़ समान।
स्वतन्त्र ईश्वर तुमि स्वयं भगवान्॥

चै. च. म. १७.७४-७६

इतना कहकर परम पण्डित बलभद्र भट्टाचार्यने श्रीपाद श्रीधर स्वामी कृत श्रीमद्भागवत्के १.१.१ की टीकासे निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करके पढ़ा—

मूकं करोति वाचालं पंगु लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥

इस प्रकार हाथ जोड़कर रोते-रोते वे प्रभुकी स्तुतिकरने लगे। दयानिधि प्रभुने सन्तुष्ट होकर उनको पुनःपुनः प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

इस प्रकार व्रज-प्रेमके आनन्दमें उन्मत्त होकर प्रभु झारखण्डके वन-पथसे श्रीवृन्दावनकी ओर चले जा रहे थे। वन-पथमें भ्रमण करके प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हो रहा था। प्राकृतिक दृश्य देखते हुए स्वच्छन्द वन-विहार करते हुए श्रीवृन्दारण्यके दर्शनाभिलाषी प्रभु काशीमें पदार्पण करेंगे, यह उनके कतिपय काशीवासी भक्तोंको ज्ञात न था।

उनमें तपन मिश्र मुख्य थे। वे प्रभु-पद-पद्मका ध्यान करके काशीवास कर रहे थे। यही प्रभुका आदेश था। प्रभुके श्रीचरणोंके दर्शनके लिए वे अधीर हो रहे थे। भक्तवत्सल श्रीगौर-सुन्दर भक्तकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिए श्रीवृन्दावनके मार्गमें अकस्मात् एक दिन काशी जा पहुँचे। साथमें बलभद्र भट्टाचार्य और उनके सङ्गी विप्र भी थे। वन-पथका अतिक्रमण करके जब प्रभुकी कृपासे वे काशीमें आ गये तो उनके मनमें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।

श्रीगौराङ्ग-लीला मधु-प्रस्रवण है। मधुर गौराङ्ग-लीलाका पाठ करनेसे पाषाण भी द्रवित हो उठता है। परन्तु पाखण्डियोंका पाषाण हृदय द्रवित नहीं होता। अब भी ऐसे बहिर्मुख शिक्षित नामधारी अनेक अपूर्व जीव हैं, जो गौराङ्ग-लीला पाठ या श्रवण करना तो दूर रहे, पतित-पावन श्रीगौराङ्ग नाम तक उनके श्रवण गोचर नही होता। उनका हृदय कैसे निर्मल होगा ?

"मधुर गौरांग लीला, जार कर्णे प्रवेशिला,
हृदय निर्मल भेल तार।"

इस बातके मर्मको कौन अनुभव करेगा ? अथवा करायेगा ही कौन ? अब सर्वप्रधान प्रयोजन है श्रीगौराङ्ग नाम और लीलके प्रचार करनेका। जब संसारकी सब भाषाओंमें गौराङ्ग चरित और लीला-कथा अनुवादित होगी, तब प्रभुके श्रीमुखकी महावाणी—

"पृथिवी ते जत आछे नगरादि ग्राम।
सर्वत्र हइबे प्रचार मम नाम।"

सफल होगी। इसमें केवल अर्थकी आवश्यकता है। बहुतसे श्रीमान् गौर-भक्त हैं, जिनके प्रति प्रभुका कृपादेश होगा, वही इस कार्यमें अग्रसर होगा। जीवाधम ग्रन्थकारको प्रभुने दीन दरिद्र बनाकर अपने संसारमें भेजा है। यह अपनी सामर्थ्यसे बाहर कार्य कर रहा हैं। एक मात्र गौर-भक्तवृन्दकी कृपा ही इसका संबल है। वे अपनी कृपासे इनको वञ्चित न करें, केवल यही एक मात्र उनसे प्रार्थना है।

तीसवाँ अध्याय

श्रीवृन्दावन जाते समय काशी और प्रयागमें

भावकाली वेचिते आमि आइलाम काशीपुरे।
ग्राहक नाहि, ना बिकाय लञा जाब घरे॥
भारि बोझा लैया आइलाम केमने लञा जाब।
अल्प-स्वल्प मूल पाइले—एथाइ बेंचिब॥

चै. च. म. १७.१३५,१३६

काशीमें तपनमिश्रके यहाँ प्रभु

प्रभुने श्रीवृन्दावन दर्शनकी आशासे दिशाओं और अवान्तर दिशाओंके ज्ञानसे शून्य होकर सीधा वन-पथका आश्रय लिया था। उस वन-पथकी प्राकृतिक शोभासे आकृष्ट होकर वे परमानन्दमें थे। सङ्गी बलभद्र भट्टाचार्य भी उनके साथ परमानन्दमें

थे। इस वन-पथको पार करनेमें कितने दिन लगे, इसका उल्लेख ग्रन्थोंमें नहीं है।

झारखण्ड वन प्रदेशको अतिक्रम करके साधारण मार्गसे प्रभु अब काशी नगरीमें जा पहुँचे। काशीमें प्रभुने यह पहले-पहल पदार्पण किया था। काशी प्राचीन नगरी है। मायावादी संन्यासियोंका वहाँ प्रबल प्रताप विराजमान था। गङ्गाके घाटोंपर सहस्रों आदमी स्नान कर रहे थे। एक अपूर्व रूपवान् नवीन संन्यासी उसी समय प्रेममें झूमते हुए स्नान करने मणिकर्णिका घाटपर आये। उनके श्रीमुखमें अविरल कृष्णनाम, मुण्डित मस्तक तथा सर्वाङ्गमें हरिनाम अङ्कित, था, और विशुद्ध स्वर्णके वर्णका परम सुन्दर परम ज्योतिर्मय देह था। आजानुलम्बित बाहुयुगल ऊपर उठाकर वे बारम्बार उच्च स्वरसे हरिध्वनि कर रहे थे।

कषित काञ्चन वर्णके श्रीअङ्गकी ज्योतिसे दशो दिशाएँ आलोकित हो रही थी सब लोगोकी दृष्टि उस अपूर्व नवीन संन्यासीके ऊपर पड़ी। जिसकी दृष्टि जिस अङ्गपर पड़ी, वह वहाँसे दृष्टि हटा न सका। काशीके घाटपर सहस्रों आदमी स्नान कर रहे थे, सहस्रों आदमियोंके सहस्र नयन उस दिव्य ज्योतिर्मय अपूर्व संन्यासीकी श्रीमूर्त्तिके ऊपर पड़ी। सब लोग अतृप्त-नयनसे उनकी अपरूप रूपसुधाका पान करने लगे। वह अपरूप रूपशाली संन्यासी कौन हैं, यह कोई नहीं जानता था।

उनमें-से एक आदमीने नदियाके अवतार श्रीश्रीगौराङ्ग सुन्दरको देखते ही पहचान लिया। प्रभुकी जब अठारह या उन्नीस वर्षकी अवस्था थी, तब वह पूर्व वङ्गमें भ्रमण करने गये थे उसी समय तपन मिश्र नामक एक ब्राह्मण साध्य साधनतत्त्वकी जिज्ञासा करने उनके पास गये थे। प्रभुने उनको हरिनाम महामन्त्र देकर कहा था कि काशीमें पुनः उनसे भेंट होगी। प्रभुके आदेशसे वे सपरिवार काशीवासी होकर उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रभुको उन्होंने साक्षात् भगवान्के रूपमें विश्वास करके उनके चरणोंमें आत्म समर्पण किया था। यह सब लीला-कथा प्रभुकी नवद्वीप लीलामें वर्णित है।

प्रभुने संन्यास ले लिया हैं, यह बात तपन मिश्र जानते थे। वारह वर्षके बाद संन्यास वेषमें देखकर उन्होंने उनको पहचान लिया। मणिकर्णिकाके घाटपर उनके चरणोंपर गिरकर वे प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े। कृपानिधि प्रभुने उनको श्रीहस्तसे पकड़ कर उठाया और परम प्रेमपूर्वक प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

तपन मिश्र शान्त होकर प्रभुको साथ लेकर विश्वनाथजीका दर्शन करने गये। प्रभुने विश्वनाथजीका दर्शन करके प्रेमानन्दमें श्रीमन्दिरमें बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन किया। पश्चात् श्रीविन्दुमाधवका दर्शन करके प्रभु तपन मिश्रके साथ उनके घर गये। तपन मिश्रने प्रभुको अपने घर पाकर सपरिवार सिलकर उनकी सेवा की। सबने मिलकर प्रभुका चरणोदक पान करके आनन्दसे नृत्य किया।

बलभद्र भट्टाचार्यने तपन मिश्रके घर पाक किया। प्रभुके भोजनोपरान्त शयन करनेपर तपन मिश्रके बाल पुत्र रघुनाथने उनका पाद संवाहन किया। प्रभुके भोजनावशेष पात्रको लेकर तपन मिश्र सपरिवार प्रभुके अधरामृत प्रसादको पा करके कृतार्थ हो गये।

काशीमें प्रभुके एक और भक्त रहते थे। उनका नाम चन्द्रशेखर दास था, जातिके वैद्य थे। वे तपन मिश्रके परम मित्र थे, नवद्वीपमें प्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर चुके थे। अब काशीवास कर रहे थे। वे लिखन-वृत्ति द्वारा जीविकोपार्जन कर रहे

थे। प्रभु तपन मिश्रके घर आये हैं, यह सुनकर वे दौड़ते हुए आये और प्रभुके चरणोंमें लोट गये। भक्तवत्सल प्रभुने अपने पूर्वदासको पहचान कर, आदरपूर्वक उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर सन्तुष्ट किया। चन्द्रशेखरने रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया--

—"प्रभु बड़ कृपा कैला।
आपने आसिया भृत्ये दरशन दिला।।
आपन प्रारब्धे बसि वाराणसी स्थाने।
'माया ब्रह्म' शब्द बिना नाहि शुने काने।।
'षड् दर्शन व्याख्यां बिना कथा नाहि एथा।
मिश्र कृपा करि मोरे शुनान कृष्ण कथा।।
निरन्तर दुँहे चिन्ते तोमार चरण।
सर्वज्ञ ईश्वर तुमि दिला दरशन।।

चै. च. म. १७.९०-९३

चन्द्रशेखरकी बात सुनकर प्रभु मुस्कराये। कुछ उत्तर न दिया। तपन मिश्रके घर काशीमें प्रभु दस दिन रहे।

प्रकाशानन्द सरस्वती एवं महाराष्ट्री विप्र

वाराणसीमें मायावादी संन्यासियोंका बड़ा प्रताप था। दस सहस्र संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द सरस्वती काशीमें विराज रहे थे। प्रभुके साथ उनका पत्र द्वारा परिचय हुआ था, यह बात पहले कही जा चुकी है। वे प्रभुकी निन्दा करते थे, भक्तिधर्मके विरोधी थे। मायावादी संयासियोंका मत ही काशीमें प्रबल था। प्रकाशानन्द सरस्वतीने सुना था कि सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुको साक्षात् भगवान् मान लिया है, यह सुनकर वे प्रभुके प्रति अधिक रुष्ट थे।

भारतवर्षमें उस समय दो ही सर्वप्रधान प्रतिभाशाली विद्वान् थे, एक तो नवद्वीपवासी नैयामिका-शिरोमणि वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य, ओर दूसरे मायावादी संन्यासियोंके गुरु वेदान्ती प्रकाशानन्द सरस्वती। सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुके चरणोंमें आत्म समर्पण किया था, बाकी थे सरस्वती महोदय। प्रभुसे वे बड़ा विद्वेष रखते थे, यह पहले ही कहा जा चुका है। प्रभु काशीमें आ गये थे, तपन मिश्रके घर ठहरे थे, नित्य मणिकर्णिका घाटपर स्नान करते थे, विन्दुमाधवके श्रीमन्दिरमें नृत्य-कीर्तन करते थे, लाखों लोग उनका अपरूप रूप देखकर, उनके श्रीमुखसे अपूर्व हरिनाम संकीर्तन सुनकर मुग्ध हो गये। एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मणने प्रभुके अपूर्व प्रेमभावको देखकर उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया। वे भी परम विद्वान् थे, प्रकाशानन्द सरस्वतीसे भी परिचित थे। प्रभुका दर्शन करने वे महापुरुष तपन मिश्रके घर आये। प्रभुको निमन्त्रण दिया, उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया—भय था कि कहीं संन्यासीका सङ्ग न हो जाय।

महाराष्ट्रीय विप्र दुःखित होकर प्रकाशा नन्द सरस्वतीके मठमें चले। उस समय वे बहुतसे शिष्योंको लेकर वेदान्त पढ़ा रहे थे। महाराष्ट्रीय विप्र उनके पास जाकर बैठ गये। पाठ समाप्त होनेपर उन्होंने कहा—"श्रीजगन्नाथ-धामसे एक संन्यासी आये हैं, जिनके प्रभाव और महिमाका वर्णन नहीं हो सकता। उनका दीर्घ-काय शरीर, शुद्ध काञ्चन जैसा वर्ण, आजानु बाहू, कमल जैसे नयन—भगवत्ताके जितने सुलक्षण हैं, सब उनमें दिखायी देते हैं। उनको देखते ही ऐसा प्रतीत होता है, मानों ये साक्षात् नारायण हैं। जो भी कोई व्यक्ति उनको देखता है, उसके मुखसे स्वतः ही बिना प्रयासके कृष्ण-संकीर्तन होने लगता है। श्रीमद्भागवतमें महाभागवत्के जो लक्षण बताये हैं, वे सब उनमें प्रकट दिखायी देते हैं। उनकी जिह्वा निरन्तर कृष्ण-नाम गाती है और दोनों नेत्रोंसे गङ्गाकी धारा सदृश अश्रु बहते हैं। कभी नाचते हैं, कभी हँसते और गाते हैं, कभी क्रन्दन करते हैं, कभी सिंह-गर्जना जैसी हुङ्कार करते हैं। जगतका मंगल करने वाले उनका

'श्रीकृष्ण चैतन्य' नाम है। उनके नाम-रूप-गुण सब अनुपम है। ईश्वरकी तरह उनकी अलौकिक बातें हैं, जो देखनेसे ही जानी जा सकती है, केवल सुननेसे प्रतीति नहीं होती।"

ज्ञानगर्वी संन्यासी शिरोमणि प्रकाशानन्द सरस्वती यह बात सुनकर हँसते-हँसते लोटपोट हो गये और महाराष्ट्रीय विप्रका उपहास करते हुए बोले—"हाँ-हाँ, हमने भी सुना है–केशव भारतीका शिष्य गौड़ देशका चैतन्य नामका एक भावुक-सा संन्यासी लोगोंको ठगता और नचाता फिरता है। वह बड़ा मायावी है, जो उसको देखता है, वही उसके चक्करमें आ फँसता है। सार्वभौम भट्टाचार्य जैसा प्रकाण्ड पण्डित भी उसके संगसे पागल हो गया। संन्यासी तो केवल दिखावेके लिए है, वास्तवमें तो वह बड़ा इन्द्रजाली है। काशीपुरीमें उसकी बाजीगरी नहीं चलेगी। तुमतो वेदान्तका श्रवण करो, उसके पास भी मत फटकना, नहीं तो उसके जैसे उच्छृङ्खलके साथ तुम्हारे दोनों लोक नाश हो जायँगे।"

महाराष्ट्रीय विप्र प्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर चुके थे, प्रभुकी भगवत्तामें उनका अटल विश्वास हो गया था। वे प्रकाशानन्दके मुखसे प्रभुकी इस प्रकार निन्दा सुनकर बहुत दुःखी हुए। कानमें अंगुलि देकर कृष्ण स्मरण करके वे वहाँसे चल दिये। प्रभुकी कृपासे उनका चित्त शुद्ध हो गया था, भक्तिवहिर्मुख संन्यासीकी बात उनको अच्छी न लगी। भक्तिरसमें उनका हृदय भरपूर हो गया था। भक्तिरसमय प्रभुके श्रीचरणोंका दर्शन प्राप्तकर वे कृतार्थ हो चुके थे। वे मायावादी संन्यासियोंकी मङ्गल-कामनासे उनके गुरुके पास प्रभुके विषयमें कहने गये थे। विप्रके मनमें यह भाव था कि यह नवीन संन्यासी साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। मायावादी संन्यासी श्रीकृष्ण नहीं मानते थे। यदि श्रीकृष्ण-चैतन्यरूपी श्रीकृष्ण भगवान्का एकबार भी वे दर्शन करते, उनका सङ्ग करते तो समझ पाते कि श्रीकृष्ण क्या वस्तु है। संन्यासियोंके मनमें प्रभुके दर्शनकी इच्छा बलवती करनेके लिए ये भक्तिमान् महापुरुष प्रकाशानन्द सरस्वतीके मठमें गये थे। परन्तु उस मठके अधिकारीके मुखसे प्रभुकी निन्दा श्रवण करके मर्माहत होकर रोते-रोते तपन मिश्रके घरमें प्रभुके पास लौट आये। श्रीगौर-भगवान्की चरण वन्दना करके विप्रने सारी बात आद्योपान्त उनके चरणोंमें निवेदन कर दी। सर्वज्ञ प्रभु यह सुनकर जरा मुस्करा उठे, और कोई बात न बोले। प्रभुने कोई बात न कही, यह देखकर विप्रने पुनः उनसे कहा—"उनके सम्मुख तुम्हारी चर्चा करते ही उसने कहा कि वे तुमसे परिचित है और हीनताके विचारसे तुम्हारा नाम भी पूरा उच्चारण न करके 'चैतन्य-चैतन्य' ही कहते गये, एक बार भी 'कृष्ण-चैतन्य' कहकर कृष्ण-नाम नहीं मुँहपर आने दिया। इस अवज्ञासे मुझे बड़ा दुःख हुआ है। तुमको देखते ही मेरी जिह्वापर स्वतः कृष्ण-नाम आने लगता है, उनको ऐसा क्यों नहीं होता?—इसका कारण तो समझाओ।"

प्रभु द्वारा महाराष्ट्र विप्रकी शंकाका निवारण

इस बार प्रभु उत्तर दिये बिना न रह सके। मायावादी संन्यासीके मुखपर कृष्ण-नाम क्यों नहीं आता, यह प्रभुने उस भक्तिमान् विप्रको समझा दिया। विप्रको उपलक्ष्य करके शिक्षा-गुरु गौर-भगवान्ने सब जीवोंको कृष्णनाम माहात्म्यकी शिक्षा दी है। कृपानिधि प्रभुने गम्भीर भावसे कहा—"मायावादी संन्यासी श्रीकृष्णके अपराधी है, क्योंकि वे लोग मायाधीन जीवको मायाधीश ईश्वरके साथ अभेद मानते हैं, और अपनी व्याख्यामें 'ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य'—इन तीन शब्दोके अतिरिक्त श्रीकृष्णादि शब्दोंका प्रयोग करते ही नहीं। उनके परस्परके आलापमें भी कृष्ण-शब्द सुननेमें नहीं आता। श्रीकृष्णका नाम, श्रीकृष्णका विग्रह,

श्रीकृष्णका स्वरूप—तीनों अभेद सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। किन्तु जीवके नाम और देहके साथ जीवके स्वरूपका विभेद (पार्थक्य) है। प्रमाण भक्तिरसामृत सिन्धु धृत पद्मपुराण वचनम्—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य रसविग्रहः।
पुर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नात्मा नामनामिनोः।
भ० र० सिं० १.२.२३३

अतएव श्रीकृष्णके नाम, देह, स्वरूपादि अप्राकृत चिन्मय होनेके कारण प्राकृयिक इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है, यदि ऐसा होता तो सब समय, सब जगह हमको भगवद्दर्शन मिलता, कारण वे तो सर्वदा सर्वत्र विद्यमान हैं ही। श्रीकृष्णके नाम, रूप, लीला, गुणादि सब चिदानन्द स्वरूप हैं। नाम जब कृपा करके स्वयं जिह्वापर स्फुरित हो, तब ही जीव नाम ग्रहण कर सकता है। श्रीकृष्ण जब स्वयं कृपा करके आत्म प्रकाश करें, तब ही जीव उनके दर्शन कर सकता है। श्रीकृष्णकी लीला जब कृपा करके आत्म-प्रकाश करें, तभी जीव उस लीलाका दर्शन पा सकता है, एवं श्रीकृष्णके गुण भी कृपा करके आत्म-प्रकाश करें तभी जीव उनका अनुभव कर सकता है। श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला–सभी श्रीकृष्णके स्वरूपकी तरह स्वप्रकाश एवं चिदानन्दमय हैं। प्रमाण—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेबोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥
भ० र० सिं० १.२.२३४

ब्रह्मका स्वरूप अनुभव करके जो आनन्द प्राप्त होता है, उसकी अपेक्षा श्रीकृष्ण लीलाके आस्वादनका आनन्द बहुत अधिक होता है, जो ब्रह्म ज्ञानीको भी आकृष्ट करके श्रीकृष्ण-भजन कराता है। प्रमाण—श्रीमद्भागवत १२.१२ का अन्तिम श्लोक 'स्वसुखनिभृत ·· ······ ····व्याससूनुं नतोऽस्मि' देखिये।

श्रीकृष्णके गुणोंका अनुभव जनित आनन्द—ब्रह्मानुभव जनित आनन्दकी अपेक्षा बहुत अधिक होता है, इसीलिए श्रीकृष्णके गुण आत्माराम (ब्रह्मसुख-निमग्न) मुनि गणके चित्तको भी आकर्षण करता रहता है। प्रमाण—श्रीम. भा. १.७-१० 'आत्मारामाश्च ···············इत्थंभूत गुणो हरिः' देखिये।

श्रीकृष्ण-लीला और श्रीकृष्ण-गुणकी बात छोड़िये—श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पित तुलसी दलका सौरभ भी आत्माराम गणके चित्तको हरण करता रहता है। प्रमाण— श्रीम. भा. ३.१५-४३ 'तस्यारविन्दनयनस्य··· ··· ······ ···· अक्षरजुलामपि चित्ततन्वो।' देखिये।

अतएव श्रीकृष्ण-विद्वेषी एवं श्रीकृष्णके अपराधी होनेके कारण प्रकाशानन्दके मुखमें श्रीकृष्णनाम स्फुरित नहीं होता।" (श्रीचै. च. म. १७.१२५-१३४)

प्रभुने शास्त्रीय प्रमाणोंका प्रयोग करके समझा दिया कि नाम और नामीमे अभेद है, चैतन्य रसमूर्त्ति वह सब प्रकारकी शक्तिसे पूर्ण है, मायागन्धसे रहित है, तथा नित्यमुक्त चिन्तामणिके समान सर्वाभीष्टप्रद श्रीकृष्ण ही नामरूपमें आविर्भूत हुए हैं। श्रीकृष्णनाम, देह और लीला चिदानन्द स्वरूप है, अतएव वे प्राकृत इन्द्रियोंका विषय नहीं होते। जिह्वादि इन्द्रियाँ भगवन्नामादिके ग्रहणमें जब प्रवृत्त होती हैं तो नामादि उससे स्वतः ही प्रकाशित होते हैं। जिनका चित्त ब्रह्मानन्दसे पूर्ण है, जैसे सनकादि ऋषिगण,—वे भी श्रीकृष्णके नाम और लीलाको श्रवण करके पुलकित होते हैं। उनके चरणोंमें अर्पित तुलसीके गन्धसे प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठते हैं। मायावादी संन्यासी कृष्ण-बहिर्मुख जीव हैं, शुष्क हृदय हैं, अतएव इनके मुखमें कृष्णनाम नही आता है।

महाराष्ट्रीय विप्र प्रभुकी उपदेश वाणी श्रवण करके प्रेमानन्दमें विह्वल हो उठे। प्रभुकी निन्दा

सुननेसे जो उनके मनमें दुःख उत्पन्न हुआ था, वह कुछ शान्त हुआ। प्रभुने नाम-माहात्म्यकी व्याख्या करके प्रकाशानन्द सरस्वतीकी एक बातका उत्तर दिया।

प्रभुको प्रकाशानन्द सरस्वतीने उस विप्रके द्वारा और भी कहा था कि,

काशीपुरे न विकाबे तार भाव काली।

चै. च. म. १७.११६

अर्थात् काशीमें उस इन्द्रजालीकी बाजीगरी नहीं चलेगी याने भावनिधि प्रभुके भाव-भक्तिपूर्ण नृत्य कीर्तनमें कोई मुग्ध न होगा। उनका प्रेमधन यहाँ न विकेगा।

चतुर चूड़ामणि प्रभु वाक्पटुतामें विशेष पारदर्शी थे। उन्होंने विप्रसे कहा—

"भावकाली बेचिते आमि आइलाम काशीपुरे।
ग्राहक नाइ, ना विकाय लञा जाब घरे॥
भारि बोझा लञा आइलाम केमने लञा जाब।
अल्प-स्वल्प मूल्य पाइले—एथाइ बेचिब॥"

चै. च. म. १७.१३५,१३६

अर्थात् प्रभुने कहा कि, इस मायावादी-संन्यासी प्रधान स्थानमें मैं गोलोकको सम्पत्ति प्रेमधन बेचनेके लिए आया, परन्तु देखता हूँ कि यहाँ इसका ग्राहक नहीं है। थोड़ा-बहुत मूल्य मिलनेपर भी मैं इस अमूल्य प्रेमधनको देनेको तैयार हूँ, अर्थात् एकबार माँगनेपर ही दूँगा, यही सोचकर आया था। परन्तु इसका ग्राहक कोई देखनेमें नहीं आता। मेरा बोझा बड़ा भारी है, सोचता हूँ कि यहाँ बिना माँगे ही साराका सारा बाँट दूँ।"

महाराष्ट्रीय विप्र प्रभुके श्रीमुखसे उनकी यह अपार कृपाकी बात सुनकर आनन्दसे उत्फुल्ल होकर भूमिविलुण्ठित होकर उनके चरण-कमलमें लम्बायमान होकर पड़ गये। आदर पूर्वक कृपालु प्रभुने उनको उठाकर प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। विप्रने यह सारी बातें अपने मनमें ही रख ली। प्रकाशानन्द सरस्वतीके मठमें वे बीच-बीचमें जाया करते थे। प्रभुकी निन्दा करनेपर अब उनके पास जानेकी उस विप्रकी इच्छा नहीं होती। उन्होंने मायावादी संन्यासियोंका सङ्ग त्याग दिया।

प्रयागकी ओर प्रस्थान

दूसरे दिन प्रभात कालमें उठकर भुप्रने मथुराकी यात्रा की। तपन मिश्र, चन्द्रशेखर तथा उस महाराष्ट्रीय विप्रने साथ जाना चाहा। प्रभुने मना कर दिया। बहुत दूर तक वे लोग रोते-रोते प्रभुके साथ गये। करुणामय प्रभुने उनको मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट करके घर वापस कर दिया। प्रभु-विरहमें वे लोग जीते ही मृतवत् हो गये। गौर-कथा-रसमें मग्न होकर, गौराङ्गके चरणोंका स्मरण करके वे तीनों आदमी काशीमें पुनः प्रभुके शुभागमनके दिनकी प्रतीक्षा करने लगे—

प्रभुर विरहे तिने एकत्रे मिलिया।
प्रभु गुणगान करे प्रेमे मत्त हैया॥

चै. च. म. १७.१३९

उनको अन्य कोई कार्य न था, अन्य कोई साधना न थी, गौराङ्ग-गुणगानमें वे दिनरात मग्न रहते थे।

प्रभु काशीसे प्रयाग पहुँचे। प्रयागमें वे यमुनाका दर्शन करके प्रेमावेगमें जलमें कूद पड़े। बलभद्र भट्टाचार्यने अति कष्टपूर्वक उनको पकड़कर उठाया। त्रिवेणीके घाटपर स्नान करके प्रभुने प्रयागमें बेनीमाधवका दर्शन किया। वे तीन दिन प्रयागमें रहे। लाखों-लाखों लोग प्रभुका दर्शन करके रूप मुग्ध हो गये। जो एकबार देखता, वह उनका सङ्ग छोड़ना नहीं चाहता था। प्रभुने त्रिवेणीके घाटपर नृत्य-कीर्तन किया, प्रयागके सब लोग इस अपूर्व संन्यासीके अपूर्व-नृत्यको देखने आये। प्रभुके

श्रीमुखका उच्च हरिनाम सङ्कीर्तन सुनकर वे मन्त्रमुग्ध होकर हरिनाम कीर्तन करने लगे। सारा प्रयाग धाम हरिनामसे मुखरित हो उठा। प्रभुके श्रीमुखसे भुवन-मङ्गल हरिनाम महामन्त्र पाकर सब जीव तर गये।

तीन दिन प्रयाग तीर्थमें वास करके प्रभुने वहाँसे मथुराकी यात्रा की। जितना ही वे श्रीवृन्दावनके समीप पहुँचने लगे, उतना ही उनके हृदयमें श्रीवृन्दावन-भावका उद्दीपन अधिकाधिक बलवान् होने लगा। वे प्रेमावेशमें दिशा-विदिशाके ज्ञानसे शून्य होकर दौड़ते हुए रास्तेपर चलने लगे। उनके दोनों साथी उनका साथ नहीं दे पा रहे थे। रास्तेमें जहाँ श्रीयमुनाका दर्शन होता था, वहाँ ही नदीके जलमें कूदकर प्रभु अचेतन होकर पड़ रहते थे। बलभद्र भट्टाचार्य उनके कारण बड़ी विपदमें पड़ गये। उनकी अद्भुत प्रेमचेष्टा देखकर दोनों साथी आश्चर्य चकित हो गये। जहाँ प्रभु एक दण्ड रुकते थे वहाँके लोग उनका दर्शन करके प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर नृत्य करने लगते थे। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

मथुरा चलिते प्रेमे जाहां रहि जाय।
कृष्ण नाम प्रेम दिया लोकेरे नचाय॥
पूर्वे जैछे दक्षिण जाइते लोक निस्तारिल।
पश्चिम देश तैंछे सब वैष्णव करिल॥
पथे जाहाँ जाहाँ हय यमुना दर्शन।
ताहाँ झाँप दिया पड़े—प्रेमे अचेतन॥

चै. च. म. १७.१४३-१४५

इस प्रकार प्रभुने तीर्थ दर्शन करते हुए कार्तिक मासके अन्तमें श्रीमथुरा मण्डलमें प्रवेश किया।

एकतीसवाँ अध्याय

श्रीवृन्दावनमें श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र

'वृन्दावनेपुनः कृष्ण प्रकट हइल।'
जाहाँ ताहाँ लोक सब कहिते लागिल॥

चै. च. म. १८.८४

प्रभु श्रीवृन्दावनके मार्गपर उन्मत्तके समान चले जा रहे हैं। उनको दिक्-विदिक् ज्ञान नहीं है। बलभद्र भट्टाचार्य बहुत कष्टपूर्वक उनको सँभाले लिये जा रहे हैं। प्रभु आँखें मूँदकर चलते हैं, प्रेमावेशमें उनके चरण उठ रहे हैं। किधर पैर पड़ रहा है। इसका भान नहीं है। जिस प्रकार कृष्ण-प्रेममें उन्मादिनी राधाकिशोरी वनके मार्गमें सखियोंके साथ श्रीकृष्णके दर्शनके लिए जा रही थीं और सखियोंने उनसे कहा था—

"—राइ किशोरि।
अमन करें जाइस् ना, जाइस् ना, धीरे चल्।
तुइ नयन मूदे चलो जाबि,
प्रेमेर द्वारे कि प्राण हाराबि ?

उसी प्रकार बलभद्र भट्टाचार्य सखिभावमें प्रभुको सँभालते-सँभालते रास्तेपर चले जा रहे हैं।

प्रभु प्रेमानन्दमें अधीर हैं। श्रीवृन्दावनका नाममात्र सुनते ही उनकी जैसी अवस्था होती थी, कृपालु पाठक वर्ग इसको जानते हैं, उसी प्रेमधाम श्रीवृन्दावनमें प्रेममय प्रभु जा रहे हैं। उनके हृदयमें प्रेमका तूफान उठा है। श्रीमुखसे प्रेमकी बाढ़ पुकार रही है। जितना ही वे श्रीमथुरा मण्डलके समीप होते जा रहे हैं, उतना ही प्रेमका तूफान बढ़ता जा रहा है, उन्होंने वृन्दावन-रस-सिन्धुके प्रेम-तरङ्गमें अपना शरीर छोड़ दिया है, रङ्गमें और भावभङ्गीमें वे रस-तरङ्गमें बहे चले जा रहे हैं। उनको बाह्यज्ञान नहीं है।

मथुरामें विश्राम घाटपर

क्रमशः श्रीवृन्दावन दर्शनके लिए उन्मत्त प्रभुने आकर श्रीमथुरा मण्डलमें प्रवेश किया। परन्तु इसका उनको ज्ञान न था। प्रेमानन्दमें नृत्य कीर्तन करते-करते वे जब मथुरामें विश्राम घाटपर जा पहुँचे, तब बलभद्र भट्टाचार्यने प्रभुके कानोंके समीप जाकर उच्च स्वरसे कहा, "प्रभु! यह श्रीमथुराधाम है, सामने श्रीयमुनाका विश्राम घाट है।" तत्काल प्रभु परम प्रेमाविष्ट होकर भूतलपर लम्बे पड़कर श्रीधामको पुनः-पुनः दण्डवत् प्रणाम करने लगे। प्रेमावेगमें कूदकर श्रीविश्रामघाटपर श्रीयमुनामें स्नान किया। स्नानोपरान्त तीरपर खड़े होकर आजानुलम्बित बाहुयुगल ऊपर उठाकर बारम्बार हुङ्कार-गर्जन करके हरिध्वनि करने लगे।

विश्राम घाट मथुराका प्रसिद्ध घाट है। बहुत लोग इस घाटपर स्नान करते हैं। नवीन संन्यासीकी अपरूप-रूपराशिका दर्शन करके, उनके श्रीमुखसे अपूर्व मधुर हरिनाम कीर्तन सुनकर सब लोग मुग्ध हो गये। वहाँ बहुतसे लोगोंका जमाव हो गया। क्षणभरमें सारी मथुरा नगरीमें प्रचार हो गया कि एक अपूर्व नवीन वैष्णव संन्यासी आकर मधुर हरिकीर्तनसे मथुरा वासियोंको मन्त्रमुग्ध कर रहा है। सब काम-धाम छोड़कर मथुराके सारे नर-नारी विश्राम घाटकी ओर दौड़ चले। वहाँ आकर जो देखा उससे उनके मनमें हुआ कि मानो मथुरा नगरमें पुनः श्रीकृष्ण उदय हो गये हैं। यह समाचार विद्युत् गतिसे सारे नगरमें पहुँच गया।

कंसके कारागारके श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर

विश्राम घाटपर स्नान करके, कंसके कारागारमें श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर जाकर प्रभुने श्रीकेशवदेव श्रीविग्रहके दर्शन करके उनको प्रणाम किया एवं वहाँ प्रेमानन्दमें नाचने, गाने, सघन-हुङ्कार करने लगे, जिसको देखकर लोग बड़े चमत्कृत हुए और सब लोग प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर उनके साथ नृत्य करने लगे। उनके मुखपर अपने आप कृष्णनाम आ गया।

मथुरा आसिया कैल विश्रान्तितीर्थे स्नान ।
जन्मस्थाने केशव देखि कहिला प्रणाम ।।
प्रेमानन्दे नाचे गाय सघन-हुङ्कार ।
प्रभुर प्रेमावेश देखि लोके चमत्कार ।।

चै. च. म. १७.१४७,१४८

आश्चर्यसे आँखें फाड़-फाड़कर प्रभुके अपरूप रूपको देखकर प्रेमानन्दमें वे कहने लगे,

ए रूप ए प्रेम लौकिक कभू नय ।।
जाहाँर दर्शने लोक प्रेमे मत्त हैया ।
हासे कान्दे नाचे गाय कृष्णनाम लैया ।।
सर्व्वथा निश्चित इहो कृष्ण-अवतार ।
मथुरा आइला लोकेर करिते निस्तार ।।

चै. च. म. १७.१५२-१५४

व्रजवासीवृन्द प्रभुके नित्य परिकर है, प्रभुको पहचाननेमें उनको अधिक समय न लगा। एक बार दर्शन होते ही उन्होंने प्रभुको पहचान लिया कि यह निश्चय ही हमारे नन्ददुलारे कन्हाईलाल हैं। निजधामके नित्य कृष्णदासके लिए प्रभुको

पहचाननेमें अधिक कष्ट क्यों होता ? भक्तवत्सल प्रभुने अपने नित्यदासवृन्दके प्रति सदय होकर उनके मनमें अपनी पूर्व-लीलाकी स्फूर्त्ति कर दी। उन्होंने अपने चर्मचक्षुओंसे श्रीगौराङ्ग मूर्त्तिमें श्रीकृष्ण-मूर्त्तिका दर्शन करके समझ लिया कि सब कुछ ठीक-ठाक है, केवल वर्ण गौर है। उन्होंने पहले सुना था कि श्रीकृष्ण गौरवर्ण धारण करके नवद्वीपमें उदय हुए हैं, श्रीगौड़-मण्डलमें इस समय लीलारङ्ग कर रहे हैं।

श्रीनित्यानन्द प्रभुने सब तीर्थ भ्रमण करके श्रीकृष्णकी खोजमें जब व्रज मण्डलमें आकर देखा कि श्रीकृष्ण भगवान्‌का हिंसासन शून्य है, तब विशेष खोज करनेपर श्रीपाद ईश्वरपुरी गोसाईंके श्रीमुखसे उनको पता लगा कि श्रीकृष्ण श्रीधाम नवद्वीपमें उदय हुए हैं,उनके प्राण कन्हाई नवद्वीपमें अभिनव लीलारङ्ग कर रहे हैं। श्रीनिताई चाँद वहाँसे दौड़ धूप करते नवद्वीपमें जाकर प्रभुसे मिले।

प्रभुके इस वर्ण विपर्ययसे व्रजवासियोंके मनमें कोई सन्देह न हुआ। उन्होंने निःसन्देह प्रभुको श्रीकृष्णके साक्षात् अवतारके रूपमें विश्वास किया। अतएव कहा—

सर्व्वथा निश्चित इहोकृष्ण अवतार।

चै. च. म. १७.१५४

धन्य है व्रजवासीका कृष्ण-प्रेम ! धन्य है उनकी प्रेम-साधना ! धन्य है उनकी विचार शक्ति ! एक ही दिनमें अपने जीवन सर्वस्व प्राण-कन्हाईको उन्होंने पहचान लिया। युग-युगान्तर बीत गये, पर तनिक भी कृष्ण विस्मृति उनको नहीं हुई। अपने जीवन-सर्वस्व-धन हृदय वल्लभको एक बार दर्शन करते ही उनके श्रीमुखकी एक वाणी सुनते ही उनको पहचान डाला, उनको पाकर परमानन्दमें मत्त हो गये। इसको ही कृष्णप्रेम कहते हैं।

व्रजवासी कृष्णदास विप्र

प्रभु जब प्रेमावेशमें मत्त होकर विश्राम घाटपर अपूर्व नृत्य-कीर्तन करते थे तो एक वृद्ध व्रजवासी विप्र आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। प्रभुने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान किया, उठाकर दोनों हाथ पकड़कर उनके साथ प्रेम-नृत्य करने लगे। कुछ देरके बाद हाथ छुड़ाकर दोनों आदमी दोनों बाहु ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे हरिनाम संकीर्तन करने लगे। उस व्रजवासी विप्रका अपूर्व प्रेम देखकर प्रभु विस्मित हो उठे। कीर्तनसे थक कर जब प्रभु यमुनाके तीरपर विश्राम घाटपर बैठे तो उस परम सौभाग्यशाली व्रजवासी विप्रको पास बुलाकर एकान्त में कहा—

"आर्य सरल तुमि वृद्ध ब्राह्मण।
काहाँ हैते पाइले तुमि एइ प्रेमधन॥

चै. च. म. १७.१५६

वृद्ध ब्राह्मणने प्रेमानन्दमें द्रवित होकर हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—

"—श्रीपाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी।
भ्रमिते भ्रमिते आइला मथुरा नगरी॥
कृपा करि तैहो मोर निलये आइला।
मोरे शिष्य करि मोर हाते भिक्षा कैला॥
गोपाल प्रकट करि सेवा कैल महाशय।
अद्यापिह तांर सेवा गोवर्द्धने हय॥"

चै. च. म. १७.१५७-१५९

प्रभुने यह बात सुनते ही उस व्रजवासी विप्रकी चरण-वन्दना की। विप्र भयसे दूर हट गया, पश्चात् दौड़कर प्रभुके चरणोंमें पड़ गया। तब प्रभुने सम्मान पूर्वक विप्रको उठाकर परम प्रेमपूर्वक कहा—"हे व्रजवासी द्विज-चूड़ामणि ! तुम मेरे गुरुतुल्य पुज्य हो, मैं तुम्हारे शिष्यके समान हूँ। मुझको प्रणाम करना तुम्हें उचित नहीं है।

उन भाग्यवान् विप्रका नाम कृष्णदास था। वे श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईंके मन्त्र शिष्य थे।

इसी सम्बन्धसे प्रभुने उनको गुरु तुल्य कहकर सम्मान किया। कृष्णदासने प्रभुकी बात सुनकर विस्मित होकर उनके श्रीवदनकी ओर प्रेमाश्रुनयनसे देखा, और भयसे दूर खड़े होकर हाथ जोड़कर पुनः निवेदन किया—"हे प्रभु! तुम संन्यासी होकर ऐसी बात मुझको क्यों कहते हो? तुम्हारी अपूर्व चेष्टा देखकर मुझको ऐसा लगता है कि मेरे गुरुदेवके साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध है। श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईंके सम्बन्धके बिना इस प्रकारके अपूर्व प्रेमकी गन्ध भी कहीं नहीं पायी जाती।

प्रभुने स्वयं कोई बात न कही। परन्तु बलभद्र भट्टाचार्यने उनको सारी बातें खोलकर कह दी। तब व्रजवासी विप्र प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगा। प्रभुको निमन्त्रित करते अपने घर ले गया। प्रभु हँसते-हँसते विप्रके साथ चले, उनके साथ-साथ बहुतसे लोग चलने लगे।

मथुरामें कृष्णदासके घर जाकर प्रभु अतिथि बने। बलभद्र भट्टाचार्य रसोईका प्रबन्ध करने लगे, यह देखकर प्रभुने कृष्णदासकी ओर करुण-नयनसे देखकर कहा—

पुरी गोसाञि तोमार ठाञि करियाछे भिक्षा।
मोरे तुमि भिक्षा देह, सेइ मोर भिक्षा॥

चै. च. म. १७.१६८

यह सुनकर कृष्णदास ने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! मैं सनाढ्य ब्राह्मण हूँ, संन्यासीगण मेरे घर अन्न भिक्षा नहीं करते। आप यदि मेरे घर अन्न भिक्षा करेंगे तो लोग आपकी निन्दा करेंगे।" यह सनाढ्य विप्रवंश पहले तप शील, निष्ठावान् और सदाचारी था। कालके प्रभावसे क्रियाहीन होनेके कारण उसका अन्न अभोज्य हो गया। पश्चात् श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईंकी कृपा प्राप्त करके पुनः पूज्य हो गया। प्रभुने जब विप्रकी बात नहीं मानी, तब उसने दैन्य-पूर्वक उनके चरणोंमें निवेदन किया—

तोमारे भिक्षा दिव, बड़ भाग्य से आमार।
तुमि ईश्वर, नाहि तोमार विधि व्यवहार॥
मूर्ख लोग करिबेक तोमार निन्दन।
सहिते ना पारिब सेइ दुष्टेर वचन॥

चै. च. म. १७.१७२,१७३

प्रभु तब 'महाजनो येन गतः स पन्था' श्लोक आवृत्ति करके बोले—"श्रुति, स्मृति, ऋषिगण—कोई एकमत नहीं है, अतएव महाजनगण जिस पथसे गये हैं, वही पथ श्रेष्ठ है। पूज्यपाद श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोस्वामीने तुम्हारे घर भिक्षा ग्रहण की है, मैं उन्हींके पथका अनुसरण करूँगा।"

"पुरी गोसाञि आचरण, सेइ धर्मसार।

चै. च. म. १७.१७५

इतना कहकर प्रभुने कृष्णदासको अपने मनकी बात समझा दी। परम आनन्द पूर्वक कृष्णदासने उस दिन प्रभुको स्वयं रन्धन करके भिक्षा करायी, और उनको अपने घर रखकर प्रेम-सेवा करने लगे। इस लीला-रङ्गसे प्रभुने स्वयं आचरण करके दिखलाया है कि विष्णुमन्त्रोपासक वैष्णवोंमें किसी प्रकारका ऊँच-नीचका विचार नहीं होता। जातिगत भेदबुद्धि नहीं होती।

प्रभु मथुरामें हैं, इसी बीच यह समाचार श्रीवृन्दावनमें फैल गया। सब कह रहे हैं कि श्रीकृष्ण मथुरामें आ गये हैं। दलके-दल व्रजवासी आकर मथुरा नगरमें छा गये। लाखों-लाखों लोगोंने आकर कृष्णदासके घरको घेर लिया। प्रभु तब घरसे बाहर निकले। सब लोगोंने देखा कि एक दिव्य ज्योतिर्मय, परम सुन्दर, स्वर्णवर्ण अपूर्व संन्यास-मूर्त्ति अपने आजानुलम्बित भुजयुगलको ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे प्रेमानन्दमें 'हरि-हरि' ध्वनि कर रहीं है। इतना बड़ा दीर्घ आकार, सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष, ऐसी अपरूप रूप राशि, ऐसा

मधुमय कण्ठ स्वर उन्होंने न आखोंसे देखा था और न कानोंसे सुना था। उनको यह भी पता न था कि मनुष्य भी इतना रूपवान् हो सकता है। वे लाखों आदमी प्रभुके साथ हरिसङ्कीर्तनमें मत्त हो गये। प्रभुके श्रीवदनमें एक मात्र हुङ्कार गर्जन ध्वनि 'बोल हरि बोल, हरि हरि बोल' सुनकर मथुराके प्रशस्त राजपथपर उनका उद्दण्ड प्रेम-नृत्य और कीर्तन देखकर सब लोग प्रेममें उन्मत्त होकर कीर्तन करने लगे, तथा उनकी मुँहकी उच्च हरि-ध्वनिसे दिगन्त कम्पित हो उठा। सारी मथुरा नगरी मुखरित हो उठी।

बाहु तुलि बले प्रभु "बोल हरि हरि।"
प्रेमे मत्त नाचे लोके हरिध्वनि करि॥

चै. च. म. १७.१७८

पहले कभी मथुरा नगरमें लोगोंकी ऐसी भीड़ नहीं हुई थी, ऐसा कीर्तन और आनन्दोत्सव नहीं हुआ था। बहुत बड़े-बूढ़े व्रजवासी भी कहने लगे कि श्रीव्रजमण्डलमें ऐसा मधुर उच्च नाम संकीर्तन कभी किसीने सुना नहीं, ऐसा नयन-रञ्जन सुमधुर नृत्य भी कभी किसीने नहीं देखा।

इसके बाद प्रभुने यमुनाजीके चौबीस घाटोंपर स्नान किया और वहाँपर स्वयम्भू, विश्राम, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या (देवी मूर्ति), गोकर्ण आदि स्थानोंके दर्शन किये।

वन दर्शन

इसके बाद कृष्णदासके साथ ही प्रभु वन-दर्शन करनेके लिए चले।

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने वन-दर्शनके समयके वर्णनमें लिखा है—

पथे गावी घटा चरे—प्रभुके देखिया।
प्रभुके बेड़ये आसि हुङ्कार करिया॥
गावी देखि स्तब्ध प्रभु प्रेमेर तरङ्गे।
वात्सल्ये गाभी प्रभुर चाटे सब अङ्गे॥

सुस्थ हञा प्रभु करे अङ्ग-कण्डूयन।
प्रभु संगे चले,—नाहि छाड़ै धेनुगण॥
कष्टे-सृष्ट्ये धेनु सब राखिल गोपाल।
प्रभु-कण्ठध्वनि शुनि आइसे मृगीपाल॥
मृग-मृगी मुख देखि प्रभु अङ्ग चाटे।
भय नाहि करे—संगे जाय बाटे बाटे॥
*अंगेन सौरभे मृग-मृगी-शृङ्ग उठे।
कृपा करि प्रभु हस्त दिला तार पिठे॥
पिक भृङ्ग प्रभुके देखि पञ्चम गाय।
शिखि गण नृत्य करि प्रभु-आगे जाय॥
प्रभु देखि वृन्दावनेर वृक्ष-लतागण।
अंकुर पुलक, मधु अश्रु वरिषण॥
फूले फले भरि डाल पड़े प्रभु-पाय।
वन्धु देखि बन्धु जेन भेट लञा जाय॥
प्रभु देखि वृन्दावनेर स्थावर-जङ्गम।
आनन्दित—बन्धु जेन देखे वन्धुगण॥
ता-सभार प्रीति देखि प्रभु भावावेशे।
सभा सने क्रीड़ा करे हञा तार वशे॥
प्रति वृक्ष-लता प्रभु करे आलिङ्गन।
पुष्पादि ध्याने करेन कृष्णे समर्पण॥
अश्रु कम्प पुलक प्रेमे शरीर अस्थिरे।
'कृष्ण बोल, कृष्ण बोल' बोले उच्च स्वरे॥
स्थावर जंगम मिलि करे कृष्ण-ध्वनि।
प्रभुर गम्भीर स्वरे जैन प्रतिध्वनि॥
मृगेर गला धरि प्रभु करेन क्रन्दन।
मृगेर पुलक अङ्ग—अश्रु नयन॥
वृक्ष-डाले शुक-सारी दिल-दरशन।
ताहा देखि प्रभुर किछु शुनि ते हैल मन॥
शुक-सारिका प्रभुर हाते उड़ि पड़े।
प्रभुके शुनाञा कृष्णेर गुण श्लोक पढ़े॥
शुक मुखे शुनि तवे कृष्णेर वर्णन।
शारिका पड़ये तबे राधिका वर्णन॥

---

* किसी-किसी ग्रन्थमें ये दो पंक्तियाँ नहीं है।

पुनः शुक कहे—कृष्ण मदन मोहन।
तबे आर श्लोक शुन करिल पठन॥
पुनः शारि कहे शुके करि परिहास।
एत शुनि प्रभुर हैल विस्मय प्रेमोल्लास॥
शुक शारी उड़ि पुनः गेला वृक्ष डाले।
मयूरेर नृत्य प्रभु देखे कुतूहले॥
मयूरेर कण्ठ देखि कृष्ण स्मृति हैला।
प्रेमावेशे महाप्रभु भूमिते पड़िला॥

चै. च. म. १७. १८३. २०४.

कवि कर्णपूर गोस्वामीने प्रणुके वन-भ्रमणके अनुरागसे पूर्ण कतिपय अति सुन्दर श्लोक स्वरचित श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटकमें नवम अङ्कमें लिखे हैं। कृपालु पाठकोंके चित्तविनोदके लिए वे उद्धृत किये जा रहे हैं। संस्कृतानुरागी, पाठकवृन्द इन श्लोकोंका आस्वादन करके सुखी होंगे, और मनमें आनन्द प्राप्त करेगे।

क्वचन च यमुनावनान्तलक्ष्मी-
मवकलयन्ननुरक्तिमुक्तकण्ठम्।
विलपति परिरभ्य लोभ्यबाहुः
प्रतिलतिकं प्रतिशाखि सोऽखिलेशः॥२१॥
नैचिकीनिचयवीक्षणमोदादुन्मदः—
स्खलितवाग्गलदस्रः।
स्यन्दमानसुरसिन्धुरिवासीद्वातभग्न
इव मेरुतटान्तः॥२२॥
मदमुदितमयूरकण्ठकान्त—
द्युतिमभिवीक्ष्य कुतश्चिदप्यकस्मात्।
स्खलति लुठति वेपते विरौति
द्रवति विषीदति हन्त मूर्च्छतीशः॥२३॥
क्वापि वत्सकुलमुच्चलपुच्छं
धावमानमनुवीक्ष्य वनान्तः।
कण्टकावलिनि वर्त्मनि सद्यो
वीक्षिताङ्गमभितः स्खलतीशः॥२४॥
कुञ्जसीमनि कदापि यदृच्छा
मूर्च्छया निपतितस्य धरण्याम्।
आलिहन्ति हरिणा मुखफेना—
नापिबन्ति शकुना नयनाम्भः॥२५॥
पतयालुरसावुपत्यकायामपि
गोवर्द्धनभूधरस्य देवः।
अनुरागसुधाब्धिमध्यमग्नो
नहि भग्नोऽपि बहिर्व्यथां विवेद॥२६॥
अनुवनमनुकुञ्जवीक्षमाणे
रुदति विभावनुरक्तिमुक्तकण्ठम्।
रुरुदुरिव लताश्च शाखिनश्च
द्विजमृगराजिरभाजि मूर्च्छयेव॥२७॥
विलपति करुणस्वरेण देवे
जलधरधीरगभीरनिःस्वनेऽपि।
चिरमनुविलपन्ति बाष्पकण्ठाः
क्वचनच लास्यमपास्य नीलकण्ठाः॥२८॥

बलभद्र भट्टाचार्य और कृष्णदास प्रभुके साथ साथ रहे। प्रभुके वहिर्वासको जलमें भिगोकर उसके द्वारा बहुत सावधानीसे प्रभुके श्रीवदन और आँखोंपर जलका छींटा देकर उनके कानोंके समीप हरि ध्वनि और कृष्ण नाम लेकर बहुत कठिनाईसे उनकी मूर्च्छा दूर की। प्रभु बाह्यज्ञान प्राप्त होते ही प्रेमानन्दमें व्रजके रजमें लोट-पोट करने लगे। उनको दिक्-विदिक्का ज्ञान न रहा। कण्टक, कंकड़, वन-झाड़ीका ज्ञान न था। प्रभु जो प्रेमावेशमें व्रजके रजमें वन-वन लोटते चलते थे, इससे उनके श्रीअङ्ग क्षत-विक्षत हो रहे थे। बलभद्र भट्टाचार्य और कृष्णदास यह देखकर हाहाकार करने लगे। वे प्रभुके स्वर्णकान्ति अङ्गके प्रति देख न सके। बलभद्र भट्टाचार्य अब स्थिर न रह सके, वे तुरन्त दोड़कर रोते-रोते प्रभुको गोदमें लेकर एक स्थानमें बैठ गये। प्रेमोन्मत्त प्रभुको पकड़े रखना किसके वशकी बात थी? भक्तबाञ्छा-कल्पतरु प्रभुने भक्तकी बाञ्छा पूर्ण करनेके लिए कुछ देर वहाँ विश्राम किया।

कण्टक दुर्गम वने अंग क्षत हैल।

भट्टाचार्य कोले करि प्रभु सुस्थ कैल ।।

चै. च. म. १७.२०८

इस प्रकार प्रेमोन्मत्त भावमें प्रभुने कृष्णदास और वलभद्र भट्टाचार्यके साथ व्रजके द्वादश वनोंमें परिभ्रमण किया । कविराज गोस्सामीने लिखा है—

नीलाचले छिला जैछे प्रेमावेश-मन ।
वृन्दावने जाइते पथे हैल शतगुण ।।
सहस्र गुण बाड़े मथुरा दर्शने ।
लक्ष गुण प्रेम बाड़े भ्रमे जबे वने ।।
अन्य देशे प्रेम उछले वृन्दावन नामे ।
साक्षात् भ्रमये एवे सेइ वृन्दावने ।।
प्रेमे गरगर मन रात्रि-दिवसे ।
स्नान-भिक्षादि निर्वाह करेन अभ्यासे ।।

चै. च. म. १७.२१२-२१५

इस प्रकार प्रेमावेशमें प्रभु वन-वनमें भ्रमण कर रहे थे । प्रभुकी वन-भ्रमण-लीला वर्णनका विषय नहीं है, यह ध्यान और अनुभवकी वस्तु है । श्रीश्रीवृन्दावनचन्द्र श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रके रूपमें वहुत दिनोंके बाद व्रजमें उदय हुए हैं । व्रजवासीगण वहुत दिनोंके बाद अपना खोया हुआ रत्न पाकर आनन्दमें मत्त हो गये हैं । प्रभु व्रजके वनोंके दर्शनसे आनन्दित है और व्रजवासीगण प्रभुके दर्शनसे आनन्दित है । व्रजके घर-घरमें आनन्दका श्रोत बह रहा है । श्रीव्रजमण्डलमें आनन्दकी ध्वनि उठी है—

वृन्दावने पुनः कृष्ण प्रकट हइल ।

चै. च. म. १८.८४

उसके बाद प्रभु काम्यवन, नन्दगाँव आदि दर्शन किये और वहांके पावन कुण्डोंमें स्नान किया नन्दगाँव पर्वतपर जाकर लोगोंसे जिज्ञासा की कि पर्वतकी गुफामें कोई देव विग्रह है क्या ? वहाँके व्रजवाँसियोंने वनाया—"इस नन्दीश्वर पर्वतकी गुफाके भीतर एक सुन्दर बाल-गोपालकी मूर्त्ति हैं । उसके दोनों तरफ पुष्ट-कलेवर पिता-माता नन्द-यशोदा हैं । श्रीमूर्त्तित्रयका दर्शन करके श्रीनन्द-यशोदाके चरणोंकी वन्दना की और प्रेममें भरकर बाल-गोपालके सारे अङ्गोंका स्पर्श किया । वहाँ प्रायः सारे दिन प्रेमावेशमें नृत्य-कीर्तन करते रहे ।

यहाँसे प्रभुने खदिर वन जाकर लीला-स्थलीके दर्शन किये । वहाँ शेषशायी और लक्ष्मीजीके दर्शन करके प्रेमावेशमें निम्न श्लोकका पाठ किया—

यत्ते सुजानचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीनाः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ।।

श्रीम. भा. १०.३१.१९

अर्थ—हे प्रिय ! तुम्हारे जिन कोमल चरण-कमलोंको हम अपने कठोर स्तनोंपर डरते हुए धीरे-धीरे धारण करती हैं, तुम उन चरण-कमलों द्वारा वन-वनमें भ्रमण करते हो, जिससे उन कोमल चरण-कमलोंको तीक्ष्ण-सूक्ष्म शिला द्वारा व्यथा नहीं होती क्या ? उनको अवश्य व्यथा होती होगी–यह विचार कर हमारा चित्त निरतिशय व्याकुल होता है; कारण, तुम्हीं हमारे जीवन हो ।

तत्पश्चा्त् वह खेला तीर्थ दर्शन करके भाण्डीर वन आये । यहाँसे श्रीयमुना पार करके भद्रवनमें आकर उपस्थित हुए । उसके बाद श्रीवन (बेलवन), लौहवन आदि भ्रमण करते हुए महावनमें आये । वहाँसे गोकुलमें श्रीकृष्णके जन्म-स्थानका दर्शन किया । गोकुलमें यमलार्जुन भङ्ग स्थान देखकर प्रभु प्रेमसे उन्मत्त हो उठे । सारी पूर्व स्मृति उनके मनमें उदय हो गयी, और—

प्रेमावेशे प्रभुर मन हैल टलमल ।

चै. च. म. १८.६१

गोकुलसे प्रभु पुनः मथुरामें आये। कृष्णदास साथमें ही थे। वे उनको अपने घर ले गये। प्रभु पुनः मथुरामें आये हैं, यह सुनकर सब लोग उनके चरण-कमलका दर्शन करनेके लिए आये। वहाँ बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गयी। इस कारण प्रभु मथुरा छोड़कर चुपचाप अक्रूर तीर्थमें आकर रहने लगे।

श्रीराधाकुंड उद्धार

इस प्रकार अपूर्व प्रेम-भावमें विभावित होकर प्रभु नाचते-नाचते श्रीराधाकुण्डके निकट, अरिष्ट ग्रामसे समीप जाकर उपस्थित हुए। वे बाह्यज्ञान-शून्य होकर व्रजके वन-पथसे जा रहे थे। अचानक यहाँ आकर उनको बाह्यज्ञान हो गया। प्रभुने अरिष्ठ गाँवमें आकर श्रीश्रीराधाकुण्डका पता लगाया। आधुनिक श्रीराधाकुण्ड नामक गाँवको ही पहले अरिष्ट गाँव कहते थे। क्यों कि कोई नहीं जानता था कि इसी स्थानपर श्रीराधाकुण्ड अवस्थित था। प्रभुके साथ कृष्णदास थे, व्रजवासी होते हुए भी वे प्रभुको श्रीराधाकुण्डका पता न बतला सके। लुप्त तीर्थ श्रीश्रीराधाकुण्डका उद्धार करके उसे प्रकाशमें लानेके उद्देश्यसे उस अरिष्ट ग्रामके धानके खेतमें जो थोड़ा-थोड़ा जल था, उसीमें स्नान करके प्रभु हाथ जोड़कर यह श्लोक पढ़कर श्रीश्रीराधाकुण्डकी स्तुति करने लगे—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्या कुण्ड प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त वल्लभा ।।

लघुभागवतामृत उत्तरखण्डे (४५)
उद्धृत पद्मपुराण वचन

श्रीश्रीराधाकुण्डका नाम मात्र व्रजवासी लोग जानते थे, परन्तु व्रजके किस स्थानमें यह परम पवित्र तीर्थ अधिष्ठित है, यह कोई नहीं जानता था। अरिष्ट गाँवके लोग और प्रभुके साथी सब विस्मित होकर प्रभुकी ओर देखने लगे। श्रीश्रीराधाकुण्डके नामपर प्रभुकी आँखोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। वे प्रेमावेशमें बाह्यज्ञान-शून्य होकर उसी धानके खेतमें स्नान करके अपूर्व नयन-रञ्जन नृत्य करने लगे, और प्रेमानन्दमें श्रीश्रीराधाकुण्डकी महिमा कीर्तन करने लगे। यथा, श्रीचैतन्य चरितामृत में—

सब गोपी हैते राधा कृष्णेर प्रेयसी।
तैछे राधाकुण्ड प्रिय—प्रियार सरसी।।
जेइ कुण्डे नित्य कृष्ण राधिकार संगे।
जले जलकेलि करे,—तीरे रासरंगे।।
सेइ कुण्डे जेइ एक बार करे स्नान।
तारे राधा-सम-प्रेम कृष्ण करे दान।।
कुण्डेर माधुरी जेन राधा मधुरिमा।।
कुण्डेर महिमा जेन राधार महिमा।।

चै. च. म. १८.६-९

श्रीगोविन्द लीलामृत ग्रन्थमें श्रीश्रीराधाकुण्डकी महिमा इस प्रकार कीर्तित हुई है।

श्रीराधेव हरेस्तदीय-सरसी प्रेष्ठाद्भुतैः स्वैर्गुणैः
यस्यां श्रीयुत माधवेन्दुरनिशं प्रीत्या तथा क्रीडति।
प्रेमास्मिन् तव राधिकेव लभते यस्यां सुकृत् स्नानकृत्
तस्या वै महिमा तथा मधुरिमा केनास्ते वर्ण्यः क्षितौ।।

श्रीगोविन्द लीलामृतम् ७.१०२

अर्थ—अपने अद्भुत गुणोंके कारण श्रीराधाकुण्ड श्रीराधाके समान श्रीकृष्णके लिए अतिशय प्रिय है। जिसमें व्रजचन्द्र श्रीमाधव प्रियतमा श्रीराधाके साथ निरन्तर केलि करते हैं। जो व्यक्ति इसमें एक बार भी स्नान करता है, वह श्रीराधाके समान श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्त करता है। अतएव श्रीराधाकुण्डकी महिमा और मधुरिमा कौन वर्णन कर सकता है?

प्रभु प्रेमाविष्ट होकर श्रीश्रीराधाकुण्डमें श्रीश्रीराधा-कृष्णकी लीला स्मरण करके प्रेमानन्दमें उस धानके खेतमें खड़े होकर अद्भुत प्रेम-नृत्य

करने लगे। वहाँकी मृत्तिका लेकर प्रभुने अपने हाथसे सुन्दर तिलक लगा लिया। उनका दर्शन करके ग्रामवासी व्रजवासी आनन्द-सागरमें मग्न हो गये। बलभद्र भट्टाचार्यने अतिशय भक्तिपूर्वक श्रीकुण्डकी कुछ मृत्तिका साथमें ले ली। व्रजमें परम मङ्गल श्रीश्रीराधाकुण्ड तीर्थका यह प्राकट्य केवल इच्छामय प्रभुकी इच्छासे हुआ। पहले यह परम पवित्र तीर्थ लुप्त अथवा गुप्त था।

मुसलमान राजाके अत्याचारसे सारे तीर्थ-स्थान श्रीविग्रहके समान छिप गये थे, श्रीमन्महाप्रभुके कृपादेशसे उनके द्वारा प्रेरित छः गोस्वामी गणके द्वारा श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार हुआ तथा सब गुप्त श्रीविग्रह प्रकट हुए। केवल यही नहीं, इन छ महापुरुषोंके द्वारा श्रीश्रीराधाकृष्णकी नित्य-लीला प्रकाशमें आयी। ठाकुर नरोत्तमदासने गाया है—

एइ छय गोसाञि सबे व्रजे कैल वास।
राधाकृष्णेर नित्य लीला करिला प्रकाश॥

कविकर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

कालेन वृन्दावन केलि वार्त्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य।
कृपामृतेनाभिविषेच देव-
स्तत्रैव रूपं च सनातनं च॥

चै. चं. ना. ९.३८

अर्थात् श्रीकृष्णकी वृन्दावन-विलास वार्त्ता कालक्रमसे विलुप्त हो गयी थी, यह देखकर पुनः उसका विशेष रूपसे प्रचार करनेके लिए श्रीगौर भगवान्ने श्रीरूप और सनातनको करुणारूपी अमृतके द्वारा अभिषिक्त करके शक्तिशाली बनाया था।

सारे व्रजमण्डलमें यह समाचार फैल गया कि अरिष्ट ग्राममें श्रीश्रीराधाकुण्ड प्रकट हुआ है। लाखों लाखों आदमी श्रीकुण्डमें स्नान करके कृतार्थ हो गये। धनी मानी लोगोंने श्रीकुण्डपर घाट बँधवा दिया। तभीसे अरिष्ट ग्रामका नाम श्रीश्रीराधाकुण्ड हो गया।

कुसुम-सरोवरपर

प्रभु अरिष्ट ग्राममें श्रीराधाकुण्ड लुप्त-तीर्थको प्रकट करके कुसुम-सरोवरपर आये। वह गिरिराज श्रीगोवर्द्धनके दर्शन करके लम्बे होकर भूतलमें लौटकर गिरिराजको दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीश्रीगिरि गोवर्द्धन श्रीकृष्ण भगवान्के अङ्ग हैं। प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर वे एक-एक शिलाखण्डको प्रेमपूर्वक वक्षःस्थलमें धारण करके आलिङ्गन करने लगे तथा निम्न श्लोक पढ़कर मधुर नृत्य करने लगे—

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीय सूयवस-कन्दर-कन्दमूलैः॥

श्रीम. भा. १०.२१.१८

अर्थ—हे अवलागण! यह गोवर्द्धन गिरि हरिदासोंमें श्रेष्ठ है, क्योंकि रामकृष्णके चरण स्पर्शसे हृष्ट होकर उत्तम जल, कोमल, उपवेशनादिके लिए गुहा, तथा कन्द-मूलके द्वारा गोगण और वत्सगणके साथ रामकृष्णकी इन्होंने पूजा की है।

श्रीगोवर्द्धनमें

गोवर्द्धन ग्राममें प्रसिद्ध श्रीविग्रह हरिदेवके श्रीमन्दिरमें जाकर प्रभु बहुत देर तक प्रेमानन्दमें नृत्य कीर्तन करते रहे। गाँवके सब लोग प्रभुके अद्‌भुत प्रेमनृत्यको देखकर चकित हो गये। कोई उनका सङ्ग न छोड़ सका। हरिदेवजीके सेवकोंने प्रभुको माल्य-चन्दनसे विभूषित किया। ब्रह्मकुण्डमें स्नान करके प्रभु उस दिन वहीं रहे। बलभद्र भट्टाचार्यने प्रभुके लिए उस ब्रह्मकुण्डके किनारे भोजन बनाया। उस दिन प्रभुने कुण्डके किनारे बैठकर भिक्षा किया।

गोवर्द्धन गिरिके ऊपर अन्नकूट नामक ग्राममें श्रीगोपालजीका मन्दिर है। पर्वतपर चढ़कर श्रीमूर्त्तिका दर्शन करना पड़ता है। रातमें सोते समय प्रभुने मन-ही-मन सोचा —

गोवर्द्धन उपरे आभि कभू ना चढ़िब ।
गोपालदेवेर दरशन केमने पाइब ॥

चै. च. म. १८.२०

प्रभु इस प्रकार मन-ही-मन सोच रहे थे। उसी समय अन्तर्यामी श्रीगोपालजीने एक अपूर्व लीलारङ्ग किया। अन्नकूट गाँवमें बहुतसे राजपूत रहते थे। उस दिन रातमें एक आदमीने आकर बताया—"तुम्हारे ग्रामको लूटनेकी यवनोंके एक प्रधान योद्धाने एक योजना बनायी है। आज रातमें ही ग्राम छोड़कर अपने गोपाल ठाकुरजीको लेकर चले जाओ। कल ही वे लोग लूट-मार करेंगे।"

यवनोंके अत्याचारसे भयभीत होकर ग्रामवासियोंने श्रीगोपालजीको लेकर पहले गाँठुली ग्राममें रक्खा। सारे गाँवके लोग जहाँ-तहाँ भाग गये। गाँठुली ग्राम गोवर्द्धन गिरिके निम्न भागमें अवस्थित है। एक विप्रके घर श्रीगोपालजी छिपाकर रक्खे गये। म्लेच्छोंके भयके बहाने श्रीगोपालजी प्रभुको दर्शन देनेके लिए गोवर्द्धन गिरिसे उतरकर गाँठुली ग्राममें आकर विप्रके घरमें छिपे हैं। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है —

अनारुरुक्षवे शैलं स्वस्मै भक्ताभिमानिने ।
अवरुह्य गिरेः कृष्णो गौराय स्वमदर्शयत् ॥

चै. च. म. १८.४

अर्थात्—श्रीगोपालदेवने गोवर्द्धनसे अवतरण करके - पर्वतपर आरोहण करनेको अनिच्छुक, भक्ताभिमानी, (राधाकान्ति द्वारा समाच्छादित श्यामकान्ति) अपने गौर स्वरूपको स्वदर्शन दिया था।

श्रीगिरिराज-परिक्रमा

प्रभु प्रातःकाल मानस-गङ्गामें स्नान करके गिरिराजकी परिक्रमाके लिए चल पड़े। मार्गमें गोविन्दकुण्डमें स्नान किया और गाँठुली ग्राममें श्रीगोपालजीका अधिष्ठान सुनकर वहाँ दौड़ चले। उस गाँवमें जाकर विप्रके घर श्रीवालगोपालजीकी मूर्त्तिका दर्शन करके प्रेमावेशमें श्रीविग्रहके सामने बहुत देर तक नृत्य कीर्तन करते रहे। श्रीबालगोपालकी श्रीमूर्त्तिकी अपरूप रूप छटा देखकर प्रभु प्रेमानन्दमें विह्वल होकर यह श्लोक पढ़कर नृत्य करने लगे।

वामस्तामरसाक्षस्य भुजदण्डः स पातु वः ।
क्रीड़ा-कन्दुकतां येन नीतो गोवर्द्धनो गिरिः ॥

भ० र० सि० २.१.६२

अर्थ—जिन्होंने गोवर्द्धन पर्वतको गेंदके समान ऊपर उठा लिया था, पद्मलोचन श्रीकृष्णका वह वाम भुजदण्ड आप लोगोंकी रक्षा करे।

प्रभुने उस गांवमें तीन दिन वास करके मनके साधसे श्रीगोपाल मूर्त्तिका दर्शन किया। चौथे दिन श्रीगोपालजी पर्वतके ऊपर अपने मन्दिरमें गये।

यह अपूर्व लीलारङ्ग, प्रभुकी श्रीमूर्त्ति-दर्शनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए बालगोपाल रूपी महाप्रभुने किया। अपनी इच्छा उन्होंने स्वयं पूर्ण की। वे इच्छामय स्वतन्त्र पुरुष हैं, सब कुछ कर सकते हैं। श्रीरूप सनातनको भी श्रीश्रीबालगोपालने इसी प्रकार दर्शन किया था। भक्तवत्सल श्रीभगवान्की भक्तके प्रति दयाका प्रकाश इसी प्रकार होता है। वे भावग्राही हैं, भक्तके भावके अनुसार कार्य करके भक्तके प्राणमें आनन्द प्रदान करते हैं।

एइ मत गोपालेर करुण स्वभाव ।
जेइ भक्तजनेर देखिते हय भाव ॥
देखिते उत्कण्ठा हय ना चढ़े गोवर्द्धने ।
कोन छले गोपाल उतरे आपने ॥

कभू कुञ्जे रहे, कभू रहे ग्रामान्तरे ।
सेइ भक्त ताँहा आसि देखये ताँहारे ।। *

चै. च. म. १८.३६-३८

---

* गोपालदर्शनके लिए जिनकी प्रवल उत्कण्ठा होती है, तथापि पाद-स्पर्शके भयसे श्रीगोवर्द्धन पर्वतपर चढ़कर दर्शन नहीं कर पाते, भक्तवत्सल गोपाल उनको किसी भी कौशलसे दर्शन देते हैं । वृद्धावस्थाके कारण गोवर्द्धन जानेमें असमर्थ होनेके कारण, तथा पाद-स्पर्श-भयसे गिरिराज पर्वतपर चढ़नेमें अनिच्छुक होनेसे, गोपालजीने श्रीरूप-सनातनपर भी कृपा करी थी । यथा—

पर्व्वते ना चढ़े दुइ—रूप सनातन ।
एइ रूपे ताँ-सभारे दियाछेन दर्शन ।।
वृद्धकाले रूप गोसाञि ना पारि जाइते ।
वाञ्छा हैल गोपालेर सौन्दर्य देखिते ।।
म्वेच्छ भये आइल गोपाल मथुरा नगरे ।
एक मास रहिल विट्ठलेश्वर-घरे ।।
तवे रूप गोसाञि सब निज-गण लञा ।
एक मास दर्शन कैल मथुरा रहिञा ।।
सङ्गे गोपाल भट्ट, दास रघुनाथ ।
रघुनाथ भट्ट गोसाञि आर लोकनाथ ।।
भूगर्भ गोसाञि, आर जीव गोसाञि ।
श्रीयादव-आचार्य, आर गोविन्द गोसाञि ।
श्रीउद्धवदास, आर माधव-दुइ जन ।
श्रीगोपालदाम, आर दास नारायण ।।
गोविन्द भट्ट, आर वाणी कृष्णदास ।
पुण्डरीकाक्ष, ईशान, आर लघु हरिदास ।।
एइ सब मुख्य भक्त लञा निज-सङ्गे ।
श्रीगोपाल दरशन कैल बहु रङ्गे ।।
एक मास रहि गोपाल गेला निज स्थाने ।
श्रीरूप गोसाञि आइला श्रीवृन्दावने ।।

चै. च. म. १८.३९-४८

श्रीश्रीवृन्दावनमें पदार्पण

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीवृन्दावनमें शुभ कार्तिक पूर्णिमाके दिन पदार्पण किया था । प्रतिवर्ष इस तिथिको श्रीवृन्दावन धाममें यह उत्सव मनाया जाता है ।

प्रभुकी श्रीवृन्दावन दर्शन लीला वर्णन करना अतिशय दुःसाध्य है । श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—

आविर्भावादवधि स निजानन्दवृन्दैककन्दो ।
यद्यप्युच्चैः प्रथयतितरां तद्विकार प्रकारान् ।।
वृन्दारण्योपगमसमये हन्त ते ते तरंगा ।
वृद्धि प्रापुर्यदुपरि वचश्चित्तयोर्न प्रवेशः ।।

चै. चं. ना. ९.२०

अर्थ—"अपने आनन्दवृन्दके मूलस्वरूप गौर भगवान्‌ने जन्मसे लेकर यद्यपि विविध प्रेमानन्दके विकारोंको प्रकट किया है, तथापि श्रीवृन्दावन गमनके समय वे प्रेमतरङ्ग इतने संवर्द्धित हुए कि उसमें हमारे चित्त और वाणी प्रवेश नहीं कर सकते ।"

यह हुई प्रभुकी श्रीवृन्दावनमें आने समयकी प्रेमचेष्टाकी बात । अब वे श्रीवृन्दावनमें आ गये है, और वन-वनमें भ्रमण कर रहे हैं। उनकी इस समयकी अपूर्व प्रेमचेष्टा और प्रेमविकारावस्थाकी नव-नव कथा भाषामें प्रकट करनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है । व्रजवासी नित्यदास वृन्दके कृपाकटाक्षके बिना प्रभुकी लीला-कथा-सिन्धुकी भाव-तरङ्गकी हृदयमें स्फूर्त्ति नहीं होती । १३१८ सालके कार्त्तिक मासमें जीवाधम ग्रन्थकारने श्रीवृन्दावनमें प्रभुके शुभागमनके वार्षिकोत्सवमें योगदान करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तिथिमें प्रतिवर्ष यह उत्सव श्रीवृन्दावन धाममें अनुष्ठित होता है । व्रजवासी वैष्णव वृन्दके आदेशसे, तथा उनके कृपाबलसे तदुपलक्ष्यमें जीवाधम ग्रन्थकार रचित एक कविता वहाँकी विराट् सभामें

पढ़ी गयी थी। कृपालु पाठकवृन्दके चित्तविनोदके लिए वह कविता यहां उद्धृत की जातीं है।

(१)

एत दिन परे श्रीवृन्दावन,
श्रीकृष्ण चैतन्य हेरिल।
पुलकित चिते रज माखि गाय,
भावे गद्गद हइल ।।
स्नान करिया यमुनार जले,
प्राण भरिया कृष्ण-कृष्ण बले।
प्राणेर आवेगे नेचे नेचे चले,
सबे बले कृष्ण आइल ।।

(२)

वृन्दावन धाम स्मरणे जाँहार,
रसेर सागर उथले।
सेइ पूत धामे उपस्थित प्रभु,
मिलित भक्त सकले ।।
यमुनार नामे चित व्याकुलित,
वेणुरव शुने हलेन मूर्च्छित।
नाम स्मरणे सदा पुलकित,
सिक्त नयन सलिले ।।

(३)

सेइ रम्य स्थान वृन्दावन धामे,
गौराङ्ग भ्रमेन पुलके।
तरु,तृण, लता, जीव-जन्तु सब,
सबे देखे प्रभु चमके ।।
हाम्वारव करि श्यामली धवली,
मनेर आनन्दे उच्चे पुच्छ तुलि।
चिर परिचित जेन वनमालि,
घेरिल सकले प्रभुके ।।

(४)

राखाल बालक गोपाल फेलिया,
दले दले आसि घेरिछे।
सुखे शुक सारी उड़िया उड़िया,
प्रभुर श्रीअङ्गे बसिछे ।।
मयूर मयूरी करिछे नृत्य,
(जेन) चिर परिचित प्रभुर भृत्य।
जीव जन्तु सब आनन्दे मत्त,
प्रभु सङ्गे सबे नाचिछे ।।

(५)

गलदेश धरि मृगेर शावके,
(प्रभु) चुम्बन करेन आदरे।
चक्षें बहे धारा आनन्दे विह्वल,
भासेन प्रेमेर पाथारे ।।
जत मधुकर श्रीवदन घेरि,
प्रेम गीति गाय गुन-गुन करि।
पुष्प मधु वर्षे श्रीअङ्ग उपरि,
मधु झरे मधु-अधरे ।।

(६)

बहु दिन कार हाराधन जेन,
फिरे पाइयाछें ताहारा।
हासे नाचे गाय घिरिया घिरिया,
आँखि कोने बहे त्रिधारा ।।
वृक्ष देखि प्रभु करि आलिङ्गन,
कोले टेने लन बलि निजजन।
लता पाता देखि हन अचेतन,
कि जानि जेन गो कि हारा ।।

(७)

छिन्न पत्र हेरि आकुल पराणें,
हाते तुलि लन काँदिया।
राखि वक्षोपरि करेंन आदर,
वार वार तारें चुम्बिया ।।
(बले) "के निष्ठुर सेइ छिंडिल इहारे,
भासे दुहि आँखि नयनेर धारें,
विगलित देह आनन्द सागरें,
चले छेंन प्रभु नाचिया ।।

(८)

कुसुमित ह'ल तरु लता तृण,
पुष्प वरिषे मस्तके।

चारिदिके घेरि भ्रमरा भ्रमरी,
मधुपान करें पुलके ।।
चले छेँन प्रभु नाचिया नाचिया,
व्रजवासी सब पुलकित हिया ।
छुटिछें श्रीधामे लहरी अमिया,
भासिछें ताहाते सकले ।।

(९)

अधिष्ठात्री देबी बरजधामेर,
हाराधन जेन पाइल ।
बहुदिन परें व्रजवासी हृदे,
प्रेमेर तरङ्ग उठिल ।।
वृन्दावन-धन श्यामसुन्दर,
मदनमोहन कृष्ण नटवर ।
एइ सेइ बँधु गौराङ्ग सुन्दर,
व्रजवासी पुन हेरिल ।।

(१०)

यमुना पुलिने वने-वने-वने,
पुनः सेइ लीला प्रकाशे ।
व्रजवाला पुन हेरिया कानाइ,
पुलकित ह'ल हरिषे ।।
राखाल बालक हरषित मन,
कुसुमित हल पुनः मधुवन,
नवशोभा धरें श्रीवृन्दावन,
प्रभु पदरज परशे ।।

प्रभुका श्रीवृन्दावनमें आगमन एक अद्‌भुत घटना थी । मथुरामें जब वह पहले आये तो जो लोगोंकी भीड़ वहाँ हुई थी, श्रीवृन्दावनमें वह चौगुनी बढ़ गयी । व्रजमण्डलमें सर्वत्र प्रचार हो गया कि,

"वृन्दावने पुनः कृष्ण प्रकट हइल ।"

चै. च. म. १८.८४

उन्होंने अक्रूर तीर्थमें एकान्तमें रहनेका विचार किया था और वहाँसे श्रीवृन्दावनका दर्शन करना चाहते थे । पहले दिन प्रभुने यही किया ।

प्रभुने जिस दिन श्रीवृन्दावनमें पदार्पण किया । उस दिन मथुरा और वृन्दावनके सब लोक एकत्रित हो गये ।

कालियादमन ह्रदमें स्नान करके श्रीयमुनाके किनारे-किनारे प्रस्कन्दन तीर्थ, द्वादश आदित्य, केशीघाट आदि सब लीलास्थलोंका दर्शन किया ।

श्रीकृष्णकी रासस्थली दर्शन करके वे प्रेमानन्दमें मूर्च्छित हो गिर पड़े । बहुत कष्टसे उनकी मूर्च्छा भङ्ग हुई । दिन भर प्रभु वहाँ नृत्य कीर्तन करते रहे । उनके नयनोंके अश्रु प्रवाहसे वहाँ प्रेमनदी वह चली । उच्च नाम संकीर्तनसे श्रीवृन्दावनकी भूमि मुखरित हो उठी । वहाँ बहुत लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हुई । सब लोग कहने लगे—ये साक्षात् कृष्ण हैं, इतना प्रेम स्वयं भगवान्‌को छोड़कर और किसीमें संभव नहीं है ।

दिनमें प्रभुको इतना भी भान नहीं होता कि उन्होंने भिक्षा नहीं ली है, वे प्रेमानन्दमें विभोर होकर नृत्य कीर्तन करते रहते थे । बलभद्र भट्टाचार्य साथमें थे, पर वे करते क्या ? प्रेमोन्मत्त प्रभुके साथ बात करनेका भी अवसर उनको नहीं मिलता था । सन्ध्या कालमें प्रभु अक्रूर-तीर्थमें लौटे, और आकर वहाँ उसदिन भिक्षा ली ।

दूसरे दिन प्रभात कालमें प्रभुने चीरघाटपर स्नान करके श्रीयमुनाके किनारे इमलीके वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम किया । वह इमलीका वृक्ष बहुत पुराना था । कविराज गोस्वामीने लिखाहै—

कृष्णलीला कालेर वृक्ष पुरातन ।
ताँर तले पिंड़ि बान्ध परम चिक्कन ।।
निकटे यमुना वहे शीतल समीर ।
वृन्दावन शोभा देखे यमुनार नीर ।।

चै. च. म. १८.६९,७०

आज भी उस प्राचीन वृक्षका स्मृति चिह्न विद्यमान है । उस इमलीके पेड़के नीचे बैठकर प्रभु उच्च नाम सङ्कीर्तन करने लगे । अक्रूर तीर्थमें भीड़के भयसे वे यहाँ चुपचाप आकर मनके साधसे

कीर्तनानन्दमें मग्न हो गये। किन्तु यहाँ भी निस्तार न था। क्या सूर्यको कहीं कोई छिपा सकता है? यहाँ भी लोगोंकी भीड़ जमा हो गयी और उच्च हरिध्वनिसे स्थान परिपूर्ण हो गया।

राजपूत कृष्णदास

प्रभुको मथुरामें एक 'कृष्णदास' मिले थे, जो अब भी प्रभुके साथ थे। श्रीवृन्दावनमें एक और कृष्णदासने उनके चरणोंका आश्रय लिया। वे जातिके राजपूत गृहस्थ थे, श्रीयमुनाके उस पारमें रहते थे, व्रजवासी परम वैष्णव थे। केशीघाटपर यमुना-स्नान करके वे कालियदह जा रहे थे, रास्तेमें इमलीके पेड़के नीचे प्रभुके श्रीमुखसे मधुर कीर्तन सुनकर उनके पास जाकर खड़े हो गये। वहाँ जाकर जो देखा, उससे कृष्णदासको पूर्वरातका अपना स्वप्न याद आ गया। उन्होंने रातमें स्वप्नमें श्रीकृष्ण भगवान्को देखा था। इसी कारण प्रेमावेगमें श्रीयमुना पार होकर आज ही श्रीवृन्दावन आये थे। प्रभुके अपरूप रूपको देखकर वे आनन्दमें विह्वल होकर उनके चरणोंमें गिर पड़े।

कृपानिधि प्रभुने कृष्णदासके ऊपर कृपादृष्टि करके मधुर स्वरमें पूछा, "तुम कौन हो? तुम्हारा घर कहाँ है?" प्रभुका सुमधुर कण्ठ स्वर कृष्णदासके कानोंमें मानो श्यामकी वंशीके समान बज उठा। ऐसा अपरूप रूपका मनुष्य हो सकता है, यह कृष्णदास नहीं जानते थे, इसी कारण प्रथम दर्शनमें ही उनके मनमें आया कि यह साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। जिन्होंने कृपा करके रातमें स्वप्नमें दर्शन दिया है, वे ही ये हैं। भाग्यवान् कृष्णदास प्रभुके चरणोंको पकड़कर रोते-रोते इस प्रकार आत्म निवेदन करने लगे—

—"मैं हूँ गृहस्थ पामर ॥
राजपूत जाति मेरी उस पार घर।
मेरी इच्छा है—बनूं वैष्णव किङ्कर॥
किन्तु आज एक स्वप्न देखा है मैंने।
वही स्वप्न प्रत्यक्ष, पाया है तुम्हें॥

चै० च० म० १८.७८-८०

कृपालु प्रभुने उनके ऊपर कृपा करके प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। उनके श्रीअङ्गका स्पर्श प्राप्तकर कृष्णदासके सारे अङ्ग प्रेम पुलकित हो उठे। वे प्रभुके साथ हरि सङ्कीर्तन करते हुए, प्रेमोन्मत्त होकर मधुर नृत्य करने लगे। प्रभु जब अपराह्नमें अक्रूर तीर्थमें भिक्षा करने आये, तो ये नये कृष्णदास भी उनके साथ आये। दयानिधि श्रीगौर भगवान्ने उनको अपना अधरामृत प्रदानकर कृतार्थ किया।

"प्रभुर अवशिष्ट पात्र प्रसाद पाइल।"

चै० च० म० १८.८२

कृष्णदास फिर घर नहीं गये, उन्होंने प्रभुका सङ्ग नहीं छोड़ा। स्त्री-पुत्र, गृह-परिवार त्याग करके वे प्रभुका जलपात्र ढोकर प्रभुकी सेवामें लग गये। वैष्णवोंका दास बननेकी उनको बड़ी साध थी। भक्तवत्सल श्रीगौराङ्ग भगवान्ने भक्तकी बाञ्छा पूर्ण की। कृष्णदास उदासीन वृत्ति धारण करके वैष्णव सेवाके व्रती बने।

लाहोरके कृष्णदास गुञ्जामाली

श्रीवृन्दावनमें आनेपर प्रभुको दो कृष्णदास मिले। एक थे मथुराके सनाढ्य ब्राह्मण, और दूसरे थे राजपूत कृष्णदास। अब तीसरे कृष्णदासके विषयमें सुनिये। यह अति अद्भुत कथा है। प्रभुके अनन्त दास हैं, अनन्त स्थानोंमें अनन्त भावसे विराजमान हैं। उनकी चरित कहानी चतुर्दिक बिखरी हुई है। यदि कोई महात्मा गौर-भक्तोंके चरित संग्रह करें, गौर-भक्त चरित कथारूपी सुगन्धित पुष्पोंको एकत्रित करके एक मनोहर माला ग्रन्थित करें तो वह माला बहुत शोभायमान बनेगी, उसकी सुगन्धिसे त्रिभुवनके लोग मुग्ध हो जाँयगे।

एक-एक गौर-भक्त एक-एक ध्रुव-प्रह्लाद है। यदि कहें कि एक-एक भक्तका चरित एक-एक गीता-भागवत है, तो अत्युक्ति न होगी।

लाहोरके इन कृष्णदास गुञ्जामालीकी कथा (बङ्गलाके) श्रीश्रीभक्तमाल ग्रन्थमें विस्तारसे वर्णित है।

कृष्णदास गुञ्जामालीका वास स्थान पञ्जाबके लाहौर नगरमें था। ब्राह्मण कुलमें उनका जन्म हुआ था। उनकी अवस्था जब सात वर्षकी हुई तो गौर भगवान्‌ने उनके हृदयमें प्रवेश किया था। कहाँ लाहौर और कहाँ नदिया? नदियाके ब्राह्मण कुमार अलक्षित भावमें लाहौर जाकर उस परम सौभाग्यवान् ब्राह्मणके हृदयमें प्रकट हुए थे। उस बालकने कभी प्रभुका दर्शन नहीं किया था, उनका नाम भी नहीं सुना था। परन्तु एक दिन रातमें निद्रावस्थामें स्वप्न देखा कि एक सुवर्ण-वर्ण सुन्दर पुरुष उसको दर्शन देकर उसके साथ अत्यन्त मधुर शब्दोंमें बातें कर रहा है। वह कह रहा है—"मैं नदियाका अवतार श्रीगौराङ्ग हूँ। तुम्हारे ऊपर कृपा करनेके लिए यहाँ आया हूँ। श्रीवृन्दावनमें तुम्हारे साथ मेरा साक्षात्कार होगा। तुम्हारे द्वारा मैं कोई विशेष कार्य कराऊँगा।"

नीद टूटनेपर वह बालक "हा गौराङ्ग! कहकर रो उठा। उसके मनको कुछ भी अच्छा न लगता। उसको चतुर्दिक गौरमय दीखने लगा। श्रीगौराङ्गका मधुमय कण्ठ-स्वर उसके कानोंमें मानों निरन्तर ध्वनित हो रहा था। वह अब घरपर न रह सका। किसीको कुछ न कहकर चुपचाप रोते हुए घर त्याग दिया।" 'हा गौराङ्ग हा गौराङ्ग!' कहते हुए पूर्व दिशाकी ओर चल पड़ा। बालकके दोनों नेत्रोंमें झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। केवल जलाहार और फलाहार करके 'कहाँ हो हे दीन-शरण गौराङ्ग सुन्दर! एकवार दर्शन दो' कहकर रोते-रोते बिना जाने सुने पथपर वह बालक चल पड़ा।

श्रीकृष्ण चैतन्य बलि कान्देन बालक।
किछु नाहि भाव चिते करे धक्-धक्॥
गृह हैते बाहिर हैया पूर्व मुखे।
धाइया चलिला श्रीचैतन्य बलि डाके॥
दुनयने बहे धारा उन्मत्तेर न्याय।
फल जल गव्य मात्र आहार करय॥

श्रीश्रीभक्तमाल ग्रन्थ

पहिले कहा जा चुका है। एक गौर-भक्त एक-एक ध्रुव प्रह्लाद हैं। इस बातको अतिरञ्जित कोई न समझे। इसका साक्षात् प्रमाण कृष्णदास गुञ्जामाली हैं। बालक ध्रुव जिस प्रकार प्राणके आवेगमें 'कहाँ हो हे पद्मपलाशलोचन दीनबन्धु हरि! एकबार दर्शन दो' कहते हुए वनमें ईश्वरकी खोजमें निकल पड़े थे, बालक कृष्णदास भी उसी प्रकार उसी उद्देश्यसे श्रीवृन्दावनके रास्ते आकुल प्राण चल पड़े। इनको ध्रुव न कहें तो क्या कहें?

बहुत कष्ट उठाकर बहुत दिनोंके बाद पथश्रान्त कृष्णदास श्रीवृन्दावन जा पहुँचे। समस्त श्रीवृन्दावन खोजकर प्रभुको न पाकर रोते-रोते वनमें खोजनेके लिए निकल पड़े। गोवर्द्धनमें जाकर पुरीगोस्वामीके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगोपाल मूर्त्ति देखकर बालक कृष्णदास आनन्दमें विभोर होकर वहाँ कुछ दिन पुजारीजीके पास रहे। बालक कृष्णदास गोपालजीका दर्शन करके प्रेमपूर्वक रोते हुए और प्राणपनसे 'हा गौराङ्ग!' कहकर पुकारने लगे। श्रीगौराङ्ग किसका नाम है, वे क्या है, कहाँ है—पुजारी भी यह नहीं जानते थे।

कृष्णदास जब गोवर्द्धनमें गये तो श्रीगोपालजीके पुजारीने उसको अत्यन्त यत्नपूर्वक श्रीमन्दिरका सेवक बनाकर अपने पास रक्खा, और स्वयं श्रीगौराङ्ग प्रभुकी खोजमें लग गये। पता लगा कि गौड़देशमें श्रीकृष्ण 'गौराङ्ग' रूपमें उदय हुए हैं। बालक कृष्णदास यह सुनकर आनन्दसे उत्फुल्ल होकर व्रजसे गौड़देशमें जानेके लिए प्रस्तुत हो गये।

श्रील माधवेन्द्रपुरी गोसाञिर सेवक ।
गोपालेर पुजारी देखे अपूर्व बालक ।।
गोपाल हेरिया जे नयन जले भासे ।
'गौराङ्ग' बलिया डाके प्रेमेर आवेशे ।।
देखिया आनन्द हैल परम जतने ।
निकटे राखिला अति प्रेमेर विधाने ।।
सेवक हैला शिशु पुजारिर स्थाने ।
उत्कण्ठा हइल श्रीगौराङ्ग दरशने ।।

भक्तमाल

इसी समय प्रभु नीलाचलसे श्रीवृन्दावनमें आये। भक्तके आकुल आह्वानसे वे नीलाचलमें स्थिर न रह सके। वे कृष्णदासको दर्शन देनेके लिए ही व्रजमें आये। सात वर्षकी अवस्थामें बालक कृष्णदास श्रीगौराङ्गके अनुसन्धानमें व्रजमें आये थे। उस समय उसकी किशोरावस्था थी, इतने दिनों तक कृष्णदास श्रीगौराङ्गकी खोजमें वन-वन भटकते रहे। जिससे भेंट होती थी, उसीसे श्रीगौराङ्गके विषयमें पूछ-ताछ करते थे। उन्मत्तके समान अपने स्वप्नदृष्ट अपरूप रूपका वर्णन करते थे। परन्तु कोई उनको इतने दिन तक उनके मनचोर अपूर्व वस्तुका पता न बता सका। कृष्णदासने जब सुना कि उनके मनचोर विदेशी बन्धु गौड़देशमें उदय हुए हैं, तब उनका चित्त नवद्वीपकी ओर दौड़ा। परन्तु उनके प्राणबन्धु श्रीगौराङ्ग स्थिर न रह सके और स्वयं उनको देखनेके लिए श्रीवृन्दावनमें आ उपस्थित हुए।

उत्कण्ठा हइल श्रीगौरांग दरशने ।।
गौड़ देशे जाइबारे उद्युक्त हैला ।
सेइ काले श्रीगौरांग वृन्दावन आइला ।।
दरशन करि श्रीगौरांग बलि कान्दे ।
वामन जेमन हाते पाइलेक चान्दे ।।

भक्तमाल

'हा गौराङ्ग' कहकर रोते-रोते कृष्णदास प्रभुके चरणोंमें लोट गये और बोले—

शिशु कहे—मोर हृदे प्रवेशिला जेइ ।
देखिया जानिनु प्रभु तुमि हओ सेइ ।।
शरण लइनु प्रभु कृपा कर मोरे ।
निजदास बलिया करह अंगीकारे ।।

भक्तमाल

प्रभु कृष्णदासकी बात सुनकर कुछ मुस्कराये, और उनको श्रीहस्तसे पकड़कर उठाया। प्रेमपूर्वक अपने गलेसे गुञ्जामाला उतारकर अपने हाथों उनके गलेमें पहना दी। अपने पास बैठाकर कृष्णदासके अङ्गोंपर प्रभुने परम स्नेह भावसे श्रीहस्त फेरते हुए कहा, "कृष्णदास! आजसे तुम्हारा नाम 'गुञ्जामाली' हो गया। तुम पश्चिम प्रदेशमें जाकर भक्ति धर्मका प्रचार करो। लाहौर मुलतान आदि भक्तिहीन देशके निवासियोंको तुम कृष्ण भक्ति प्रदान करो। भक्तिवहिर्मुख पश्चिम देशवासियोंपर वहाँ जाकर तुम शासन करो।"

मुचकि हासिया प्रभु दयार्द्र हइला ।
निज कण्ठ हैते गुञ्जामाला ताँरे दिला ।।
अंगे हस्त बुलाइया बहु स्नेह कैला ।
'गुञ्जामाली' बलिया आख्यान ताँरे दिला ।।
सेइ हैते 'गुञ्जामाली' नाम ताँर हैल ।
'गुञ्जामाली' बले नाम भुवने व्यापिल ।।
शक्ति सञ्चारिया प्रभु आज्ञा कैल ताँरे ।
पश्चिम देशेते कर भक्तिर प्रचारे ।।
पञ्जाब लाहोर आर मुल्तानादि करि ।
शासन करगा कृष्णभक्ति दान करि ।।

भक्तमाल

सर्व शक्तिमान् नदियाके अवतार स्वयं-भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभुने सुदूर पञ्जाब देशवासी ब्राह्मण बालकको अपनी शक्ति दान करके परम शक्तिशाली बना दिया। वे स्वयं पश्चिम प्रदेशमें नहीं जा सकते थे, पूर्व देश और दक्षिण देशवासियोंका उद्धार उन्होंने स्वयं किया था। पश्चिम देशका उद्धार करनेके लिए कृष्णदास गुञ्जामालीको उन्होंने अपनी शक्ति प्रदान की।

लीला-रस-विग्रह श्रीगौराङ्ग सुन्दरका लीलारहस्य कौन समझेगा ? यह कृष्णदास प्रभुके नित्यसिद्ध पार्षद थे। पश्चिम देशका उद्धार करनेके लिए यह महापुरुष लाहौरमें उदय हुए थे।

प्रभुने जब कृष्णदासको जीवोद्धार-कार्यमें नियुक्त किया, तब नवीन किशोर वयस्क बालकने भयभीत होकर प्रभुके चरण कमलमें लोटकर रोते-रोते हाथ जोड़कर निवेदन किया, "हे प्रभु ! मैं सामान्य जीव हूँ, दुर्बल और भजन-साधनहीन हूँ, मुझमें क्या शक्ति है, जो मैं भक्तिदान करूँ ? मेरे प्रति ऐसा असंभव आदेश क्यों हुआ ?"

प्रभु तब अपूर्व तेजपूर्ण नेत्रोंसे कृष्णदासके प्रति देखकर हुङ्कार गर्जन करते हुए कहने लगे—

प्रभू कहे—"आमार विभूति तुमि हओ ।
मोर शक्त्ये शासन हइबे तुमि जाओ ।।"

भक्तमाल

यह बात प्रभुने कृष्णदासको भगवान्-भावमें कही। कृष्णदासने देखा कि प्रभुके प्रत्येक अङ्गसे अपूर्व ज्योति निकल रही है, मानो सहस्र सूर्य वहाँ उदय हो गये हैं। वे और कोई बात कहकर भूतलमें लेटकर प्रभुके चरणोंमें बारम्बार साष्टाङ्ग दण्डवत् करके हाथ जोड़कर स्तम्भित भावमें खड़े हो गये। तत्काल भावनिधि करुणामय प्रभुने भाव संवरण किया। पुनः प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करते हुए कृष्णदासको निजशक्ति प्रदान कर पञ्जाबमें जीवोद्धार कार्यके लिए भेज दिया।

उन्होंने पञ्जाब और गुजरातमें जाकर क्या किया, यह भी भक्तमालमें लिखा है। नीचे वह उद्धृत किया जाता है।

प्रथमे मुलताने गिया सेवा प्रकाशिया ।
लोक निस्तारिल कृष्णभक्ति प्रचारिया ।।
बड़इ प्रताप हैल, लोके चमत्कार ।
अलौकिक दरशन आकार प्रचार ।।
जारे कृपा करे सेइ कृष्णभक्त हय ।
श्रीचैतन्यपदे तार मति उपजय ।।
चैतन्य भजये लोक तार उपदेशे ।
प्रभुर दोहाइ जे फिरिल देशे-देशे ।।
परम्परा सम्प्रदाय क्रमे सब लोक ।
वैष्णव हैल, गेल संसारेर रोग ।।
तथा निज भ्रातुष्पुत्र वनयारि चन्द्र ।
ताँरे शिष्य करि भक्ति दिला प्रेमानन्द ।।
गादिर महान्त करि ताँरे वसाइया ।
आपनि चलिया पुन गुजरात जाइया ।।
सेवाय शृङ्खला तथा बड़इ करिला ।
श्रीचैतन्य विग्रह तथा प्रकाशिला ।।
तथाकार लोक धर्म-कर्म नाहि जाने ।
शिश्नोदर परायण धनी सब जने ।।
गुञ्जामाली गोसाञि देखिया मूढ़ लोक ।
दयार्द्र हइया मने पाइल अति दुःख ।।
कृपा करि निज शक्ति भक्ति प्रकाशिया ।
उद्धारिल सब लोक कृष्ण मन्त्र दिया ।।
वैष्णव हइल सबे बले हरि हरि ।
प्रेमानन्दे नाचये जतेक नरनारी ।।

भक्तमाल

मुलतान और गुजरातमें श्रीगौराङ्ग मूर्त्ति प्रतिष्ठा करके गुञ्जामाली कृष्णदास गोसाईने उसी अञ्चलमें गौराङ्ग-धर्म प्रचार किया। आज तक वह सेवा चल रही है। गौर-भक्तगण वहां परम आनन्दपूर्वक नृत्यकीर्तन करके जीवोद्धार कर रहे हैं।

प्रभुने एक और भक्तको पश्चात् केश पकड़कर कृष्णदासकी सहायताके लिए पश्चिम देशमें भेजा था। वह श्रीअद्वैत प्रभुकी शाखामें थे, नाम था चक्रपाणि। चक्रपाणि विरक्त वैष्णव थे, वे परम भक्तिमान् साधक और प्रभुके भक्त थे। प्रभुके आदेशसे वे पश्चिम देशमें वैष्णव धर्मका प्रचार करनेके लिए गये। उन्होंने गुजरात प्रदेशमें जाकर गुञ्जामाली कृष्णदास गोसाईका नाम सुना। पता लगाकर उनसे भेंट की। गुञ्जामाली कृष्णदास चक्रपाणिको पाकर आनन्दसे नृत्य करने लगे। दोनों आदमी प्रेमानन्दमें

माघ मासके अन्तमें मकर स्नान करेंगे, प्रभुको यह बात कहनेके लिए परामर्श किया।

बलभद्र भट्टाचार्यने एक दिन सुविधा देखकर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—

सहिते ना पारि आमि लोकेर गड़बड़ि।
निमन्त्रण लागि लोक करे हुड़ाहुड़ि॥
प्रातःकाले आइसे लोक तोमारे ना पाय।
तोमारे ना पाञा लोक मोर माथा खाय॥
तबे सुख हय—यदि गङ्गा पथे जाइ।
एबे यदि जाइ प्रयागे मकर स्नान पाइ॥
उद्विग्न हइल प्राण, सहिते न पारि।
प्रभुर जे आज्ञा हय, सेइ शिरे धरि॥

चै. च. म. १८.१३८-१४१

प्रभु भक्तवाञ्छा-कल्पतरु थे, सदासे भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण करते आ रहे थे। यद्यपि उनका श्रीवृन्दावन छोड़नेका मन नहीं हो रहा था, परन्तु भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिए वे अपने इतने प्रिय श्रीवृन्दावनको भी छोड़नेपर राजी हो गये। प्रभुने मधुर वचनसे बलभद्र भट्टाचार्यको कहा—"तुमने ही यहाँ लाकर मुझे व्रज भूमिका दर्शन कराया है। मैं इस ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकता। तुम जैसा कहोगे, वही मैं करूँगा, जहाँ ले चलोगे, वहीं चलूंगा।"

कैसी मधुर वाणी है! ऐसी मधुमयी वाणी क्या कभी किसीने सुनी होगी? जगत्के सारे धर्म ग्रन्थ खोजनेपर भी ऐसी विनम्र मधुमयी वाणी कहीं किसीको नहीं मिल सकती। भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान्की मधुमयी वाणी भक्तके हृदयमें जो सुधाकी लहरी उठा देती है, उसकी अनुभूति नस-नसमें होने लगती है, उनके अपरूप रूपके ध्यान और गुणगानसे प्रत्येक अङ्ग नाच उठता है, सहस्र मुखसे भी उनका गुणानुवाद करके मन परितृप्त नहीं होता। ऐसे भक्तवत्सल दयानिधिके श्रीचरणोंके आश्रयके बिना शान्ति लाभका अन्य उपाय नहीं है, त्रिताप ज्वाला दूर करनेका अन्य मार्ग नहीं है। एक दिन प्राणके आवेगमें मैंने एक पद लिखा था, उसका शेषांश यहाँ उद्धृत करता हूँ।

सोनार वरण, गौर-चरण, चिर शान्ति निकेतन।
जगत् आनन्द, गौरपद द्वन्द्व, कर सबे आराधन॥
शान्ति पाइबे, दुःख जाइबे, घूचे जाबे हाहाकार।
हा गौराङ्ग बलि, दुटि बाहु तुलि, नाचो देखि एकबार॥
'गौर गौरांग', बल देखि भाइ, अकपटे हृदि खुले।
करितालि दिये, लाज-मान थुए, नाच देखि दुले दुले॥
देखिबे केमन चारु सुशीतल गौर चरण तल।
त्रिताप ज्वालाय, शान्ति निलय, तृषाय पानीय जल॥
शान्ति ना मिले, दुनिया खूंजिले, बिना गौरपदाश्रय।
ना जानिल इहा, भवमद लेहा हरिदास नीचाशय॥

बलभद्र भट्टाचार्य प्रभुकी बात सुनकर अत्यन्त लज्जित हुए। वे और कोई बात न बोल सके। प्रभुकी अपार कृपाकी बात स्मरण करके वे प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े।

प्रयाग यात्रा-मार्गमें यवनोंसे भेंट

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभुने श्रीयमुनामें स्नान किया। श्रीवृन्दावन छोड़ना पड़ेगा, यह बात याद आते ही उनको अपूर्व प्रेमावेश हो गया। इससे वे वहाँ न रुक सके। उसी दिन बलभद्र भट्टाचार्यने प्रभुको लेकर प्रयाग जानेका परामर्श किया था। कृष्णदासने प्रभुका सङ्ग न छोड़नेका निश्चय करके व्रजवास त्याग दिया। उनके साथ प्रभुके राजपूत भक्त भी चले।

बलभद्र भट्टाचार्यने प्रभुसे धीरे-धीरे कहा—"हे प्रभु! चलो महावनमें चलें।" ऐसा कहकर प्रभुको नौकापर बैठाया। कठपुतलीके समान इच्छामय प्रभु बिना कुछ कहे नौकापर बैठ गये। श्रीयमुनाके नील सलिलके तरङ्गोंमें बल खाती हुई नौका हिलते-डुलते प्रभुको लेकर चली। किसीको पता न चला कि प्रभु कहाँ जा रहे हैं। लोगोंकी भीड़के

भयसे बलभद्र भट्टाचार्य प्रभुको लेकर श्रीवृन्दावनसे निकल भागे।

व्रजवासीवृन्द पुनः कृष्ण विहीन होकर हाहाकार करने लगे। बहुत दिनोंके बाद वे अपनी खोयी निधि पाये थे। उन्होंने सुना कि श्रीकृष्ण नीलाचल चले गये। व्रजवासीगण दलके-दल उस वर्ष श्रीजगन्नाथका दर्शन करने चले।

उस समय प्रभुको यह ज्ञान न था कि वे श्रीवृन्दावन छोड़कर जा रहे हैं। यह ज्ञान होता तो वे नौकासे कूदकर श्रीयमुनाके जलमें डूब जाते। श्रीयमुना पार होकर वे लोग स्थलके मार्गसे चले। प्रभु संख्या नाम जप करते-करते चुपचाप रास्तेसे जा रहे थे।

राहकी थकावट दूर करनेके लिए वे एक वृक्षके नीचे बैठे। उनके चार साथी भी उनके साथ वहाँ बैठे। वहाँ मैदानमें बहुत-सी गायें चर रही थीं। प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर होकर श्यामल तृणमयी भूमिमें सुन्दर गौवोंका क्रीड़ा रङ्ग देखने लगे। वहाँ गोप बालक गण भी क्रीड़ा कर रहे थे। उनमें एक आदमीके हाथमें एक बाँसुरी थी, उसने बाँसुरी बजायी। वंशी ध्वनि सुनकर तत्काल वह वहाँ प्रेमावेशमें वाणविद्ध हरिणीके समान मूर्च्छित हो गिर पड़े। उनका श्वास अवरुद्ध हो गया, श्रीवदनसे फेनपुञ्ज निकलने लगा। उनके साथी भयभीत होकर प्रभुके पास बैठकर सेवा-सुश्रूषा करने लगे। प्रभुकी अवस्था देखकर वे व्याकुल होकर रोने लगे।

उसी समय वहाँ दस यवन अश्वारोही सैनिक आ उपस्थित हुए। उनमें यवन राजपुत्र बिजली खाँ थे। उनके धर्म गुरु एक पीर साहब थे, और दूसरे आठ आदमी पदाधिकारी पठान सैनिक थे। प्रभुको अचेत अवस्थामें वृक्षतले सोया देखकर वे सब घोड़ेसे उतर गये। अचैतन्य प्रभुको भूतलपर पड़ा देखकर राजपुत्र बिजली खाँ के मनमें हुआ कि जान पड़ता है, सुन्दर संन्यासीके पास सुवर्ण मुद्राएँ थी, इन लोगोंने इसको धतूरा खिलाकर मार डाला है, और स्वर्ण मुद्रा छीन लिया है। यह सोचकर उसने तत्काल सबको बाँधनेकी आज्ञा दी। बोलते ही राजपुत्रकी आज्ञा पाली गयी। प्रभुके साथी लोग यवन-सेनाके हाथमें बन्दी हो गये। उन्होंने तलवार निकालकर उनको काटना चाहा। सब लोग प्राणके भयसे काँपने लगे, और प्रभुके श्रीचरणकी ओर सजल नयन हो देखने लगे।

प्रभु उस समय भी संज्ञाशून्य थे। उनके श्रीवदनसे फेनोद्गम हो रहा था, वे जड़वत् निविष्ट भावमें वृक्षके नीचे पड़े हैं। प्रभुके राजपूत और माथुर ब्राह्मण भक्त बड़े साहसी पुरुष थे। निर्भय होकर यवन राजकुमारसे कहा—"तुम्हारे बादशाहकी दुहाई। चलो, तुम्हारे सेनाध्यक्षके पास चलें। ये यति हमारे गुरु हैं, कभी-कभी व्याधिसे मूर्च्छित हो जाते हैं। अभी ये सचेतन हो जाँयगे, तब इनसे पूछ लेना और पीछे हम सबको मारना। यदि पहले कुछ कर बैठे तो समझ लो कि हमारे एक सौ जन बादशाहके पास सेवामें है वे तुम लोगोंको छोड़ेंगे नहीं।"

गौड़ीय सेवकोंको डरसे काँपते देखकर पठानोंने समझा कि ये जरूर ठग है और उनको मार डालना चाहा।

व्रजके भक्तने यवन राजपुत्रसे विनती भी की, और भय भी दिखलाया, परन्तु अपनी बातका कुछ परिणाम होते न देखकर वह फिर बोला—"हमारा घर यहाँ निकटके ही ग्राममें है। एक सौ तुरक सैन्य अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित मेरे पुकारनेपर अभी आकर तुम्हारे घोड़े और अन्य सामग्री लूट लेंगे और तुम सबको भी मार डालेंगे। ये गौड़ीय ठग नहीं, ठग-लुटेरे तो तुम लोग हो, जो तीर्थाटन करने वालोंको लूटना और मारना चाहते हो।"

यवन राजकुमारने उनको ठग बताया था, इसीसे क्रोधाभिभूत होकर राजपूत भक्तने अपना परिचय देकर इस प्रकार भय दिखलाया। इसका सुन्दर फल देखनेमें आया। यवन राजपुत्र भयभीत होकर इधर-उधर करने लगा। उसी समय प्रभुको चेतना आयी। वे हुङ्कार गर्जन करके हरिध्वनि करते हुए उठ बैठे। परन्तु उनकी दृष्टि किसी ओर नहीं थी। वे प्रेमावेशमें उठकर आजानुलम्बित दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर प्रेमानन्दमें उच्च सङ्कीर्तन करने लगे। अपने पीछे अपने साथियोंकी बन्धन दशा प्रभुको नहीं देखनी पड़ी। यवनगणने प्रभुके अपूर्व रूप लावण्य और अद्भुत नृत्य-कीर्तनको देखकर उनको बन्धन-मुक्त कर दिया, और प्रभुके चरणोंमें वन्दना की—

"म्लेच्छगण आसि प्रभुर वन्दिल चरण।"

चै. च. म. १८.१७१

यवनगणको देखकर उनको बाह्यज्ञान हुआ। तब यवन राजकुमारने विनयपूर्वक उनसे कहा—तुम्हारे यह साथी ठग हैं, इन्होंने तुमको धतूरा खिलाकर पागल कर दिया है, और तुम्हारा रुपया-पैसा ले लिया है।

दयानिधि प्रभुने करुण-नयनोंसे यवन राजपूतकी ओर देखकर मुस्कराते हुए उत्तर दिया—

—"ठग नहे, मोर संगी जन।
भिक्षुक संन्यासी—मोर नाहि किछु धन॥
मृगी व्याधि ते आमि हइ अचेतन।
एइ चार दया करि करेन पालन॥"

चै. च. म. १८.१७३,१७४

प्रभुकी बात सुनकर यवनोंको विश्वास हुआ कि ये साधु फकीर हैं, और ये इनके चेले हैं।

यवनोंके धर्मगुरु और प्रभु

उन सब यवनोंमें यवन राजपूत बिजली खाँका एक धर्मगुरु था। वह परम गम्भीर प्रकृतिका आदमी था, स्वधर्मनिष्ठ और ईश्वर परायण था। लोग उसको पीर कहते थे। उसने प्रभुको देखते ही जान लिया कि ये महायोगेश्वर और सिद्ध पुरुष हैं। तब वह प्रभुके साथ शास्त्रालापमें प्रवृत्त हुआ। वह मुसलमान शास्त्रमें परम पण्डित था। अद्वय ब्रह्मवाद और निर्विशेष ब्रह्मका प्रश्न उठाकर वह प्रभुके साथ धर्मतत्त्वका विचार करने लगा। करुणामय प्रभुने उसकी दी हुई शास्त्रयुक्तिसे ही उसके सारे धर्मसिद्धान्तका खण्डन कर दिया। वह यवन-पीर प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत उपदेशामृत-पानसे अपनेको धन्य समझकर हाथ जोड़कर बोला—

—" जेइ कह तुमि सेइ सत्य हय।
शास्त्रे लिखियाछे, केह लैते ना पारय॥
निर्विशेष गोसाञि लैञा करेन व्याख्यान।
'साकार गोसाञि सेवा' कारो नाहि ज्ञान॥
सेइ त गोसाञि तुमि साक्षात् ईश्वर।
मोरे कृपा कर, मुञि अयोग्य पामर॥
अनेक देखिनु मुञि म्लेच्छ शास्त्र हैते।
साध्य साधन-वस्तु नारि निर्धारिते॥
तोमा देखि जिह्वा मोर बले 'कृष्ण' नाम।
'आमि बड़ ज्ञानी' एइ गेल अभिमान॥
कृपा करि बल मोरे साध्यसाधने।"
एत बलि पड़े महाप्रभुर चरणे॥

चै. च. म. १८.१८६-१९४

यवन राजपुत्रके धर्मगुरुने इस साधु-फकीर नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते साध्य-साधन तत्त्वका उपदेश करनेकी प्रार्थना की। करुणामय प्रभु उसकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर मधुर वचन बोले—

—"उठ, कृष्ण नाम तुमि लैले।
कोटि जन्मेर पाप गेल पवित्र हइले॥

चै. च. म. १८.१९५

इतना कहकर जगद्गुरु श्रीगौर भगवान्‌ने उस भाग्यवान् यवनको कृष्णनाम महामन्त्र प्रदान करके

उसको परम वैष्णव बना दिया। उसके साथी यवन-गण भी प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत मधुर कृष्णनाम श्रवण करके प्रेमानन्दमें 'कृष्ण कृष्ण' कहने लगे। इस यवन राजपुत्रके फकीर धर्मगुरुका नाम प्रभुने रामदास रक्खा। यथा, चैतन्य चरितामृतमें—

'कृष्ण कह कृष्ण कह' कैल उपदेश।
सबे 'कृष्ण' कहे सबार हैल प्रेमावेश॥
'रामदास' बलि प्रभु तार कैल नाम॥

चै. च. म. १८.१९६,१९७

मुसलमान हिन्दू हो गया। यवन फकीरका नाम हो गया रामदास। रामदास प्रभुके चरणोंमें गिरकर 'कृष्ण कृष्ण' उच्च स्वरसे कहकर रोने लगा।

राजपुत्र बिजली खाँ ने भी अपने गुरुके द्वारा प्रदर्शित पथका अनुसरण किया। वह भी प्रेमावेशमें 'कृष्ण कृष्ण' कहकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर लोटने लगा। करुणामय श्रीगौर भगवान्ने उसके मस्तकपर अपने श्रीचरणको स्थापित करके कृपाकी पराकाष्ठा दिखला दी।

दस यवन प्रभुकी कृपासे क्षणमात्रमें परम वैष्णव हो गये। उनका यवनत्व नहीं रहा। वे भाग्यवान् थे, स्वयं भगवान्के द्वारा हरिनाम और कृष्णमन्त्रकी दीक्षा पाकर वे धन्य हो गये। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

ता सभारे कृपा करि प्रभु त चलिला।
सेइ त पाठान सब वैरागी हइला॥
'पाठान-वैष्णव' बलि हैल तार ख्याति।
सर्वत्र गाइया बूले महाप्रभुर कीर्ति॥
सेइ बिजुली खान हैल महा भागवत।
सर्व तीर्थे हैल तार परम महत्त्व॥

चै. च. म. १८. २००.२०२

इसी एक लीलासे प्रभुकी भगवत्ताका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। साक्षात् भगवान्के सिवा कोई दूसरा क्षणमात्रमें इतना बड़ा अद्भुत काण्ड नहीं कर सकता। गो-ब्राह्मण-द्वेषी म्लेच्छ यवनगण प्रभुके एक बारके दर्शनसे, उनके श्रीमुखसे एक बार कृष्णनाम सुनकर अपने धर्मको त्यागकर वैष्णव हो गये—इसका क्या अर्थ है? कृपालु पाठकवृन्द स्थिर चित्तसे प्रभुके इस लीला-रङ्गपर विचार करके देखें। प्रभुने किसी मामूली यवनको, अथवा अशिक्षित, गिरे हुए लोगोंको पकड़कर हिन्दू नहीं बनाया। उन्होंने चुनकर यवन राजपुत्रको पकड़ा, उसके धर्मगुरु फकीरको पकड़ा, उनके साथी अनेक सैनिक पदाधिकारियोंको पकड़ा। और उनके कानमें हरिनाम देकर उनको वैष्णव बनाकर छोड़ दिया। क्योंकि उनके द्वारा दूसरे मुसलमानोंके बीच वैष्णव धर्मका प्रचार होगा, और हुआ भी यही। उन सब प्रभुके साक्षात् कृपासिद्ध पठान वैष्णवोंने मिलकर एक सम्प्रदाय संगठित किया। उनका यह नवीन सम्प्रदाय धीरे-धीरे बढ़ता गया। पश्चात् पठान वैष्णव सम्प्रदायके नामसे उनकी ख्याति हुई। वे लोग सर्वत्र प्रभुका नाम और गुण गान करने लगे।

सर्वत्र गाइया बुले महाप्रभुर कीर्ति।

चै. च. म. १८.२०१

जगद्गुरु श्रीगौराङ्ग प्रभुने जिस उद्देश्यसे राजा गजपति प्रतापरुद्र सार्वभौमि भट्टाचार्य तथा प्रकाशानन्द सरस्वतीको आत्मसात् किया था, उसी उद्देश्यसे यवन राजपुत्र बिजली खान और उसके धर्मगुरुको आत्मसात् किया। देशके सर्वश्रेष्ठ लोग यदि किसी नये धर्मका अवलम्बन करते हैं तो निम्नश्रेणीके लोग स्वभावतः उनका अनुसरण करते हैं। इसी कारण प्रभुकी कृपादृष्टि इन सब उच्च श्रेणीके लोगोंके ऊपर पड़ी। इनके द्वारा प्रभुने अपने धर्मप्रचारके कार्यके मार्गको सुगम बनाया था। वे पतितपावन, अधम-उधारण थे। इस लीलासे उन्होंने अपने पतितपावन नामको सार्थक किया।

आकुल होकर क्रन्दन करने लगे। श्रीगौराङ्ग नामसे उनकी आंखोंसे प्रेमनदी बह चली। उसके तरङ्गोंमें देश निमज्जित हो गया। चक्रपाणि गोसाईंने भी गुजरातके अन्य स्थानोंमें श्रीनिताई-गौराङ्ग मूर्त्ति प्रतिष्ठा करके सेवा प्रकाशित की। इन दोनों गोसाइयोंने मिलकर उस प्रदेशमें गौरधर्मका प्रचार किया था। उनके बहुत शिष्य-प्रशिष्य हैं।

गुञ्जामाली गोसाईंकी गद्दीका नाम बड़ी गौड़िया गद्दी है, और चक्रपाणि गोसाईंकी गद्दीका नाम छोटी गौड़िया गद्दी है। आज तक उस प्रदेशमें उनका प्रचारहै।

छोट गौड़िया आर बड़ जे गौड़िया।
अद्यापि आछये ख्याति जगत व्यापिया।।

भक्तमाल

गुञ्जामाली कृष्णदास गोसाईं गुजरातसे ओलम्बा नगरमें आये। वहाँ पुनः श्रीगौराङ्ग सेवा-प्रतिष्ठा करके कुछ दिन वास करके बहुतसे शिष्य-प्रशिष्य बनाये। जनार्दन नामक एक कृष्णभक्त विप्रको वहाँकी गद्दीका महन्त बनाया। जनार्दन अपने कनिष्ठ भ्राता श्यामजी गोसाईंको अपनी गद्दी देकर परलोक सिधारे। यहाँ से ही गुञ्जामाली कृष्ण दास गोसाईं सिन्ध देशमें गये। वहाँ जाकर क्या किया? सुनिये—

पञ्जाबेर पश्चिमेते सिन्धु नामे देश।
उद्धार करिते जीव करिला प्रवेश।।
हिन्दू तो जतेक छिला वैष्णव करिला।
मोछलमान जत छिला हरिभक्त हैला।
गोसाँञिर संकीर्तन शुनिया यवन।
दीक्षाभावे सेइ नाम करिल ग्रहण।।
हरिनाम जपे माला तिलक धारण।
यवनेर आचार तेजिल सर्वजन।।
वैष्णव आचार करे नाम संकीर्तन।
अद्यावधि सेइ राज्ये मोछलमान गण।।

श्रीगौर भगवान्‌ने कृष्णदासको निजशक्ति प्रदान कर पश्चिम देशमें इस प्रकार जीवोद्धार करनेके लिए भेजा। उनकी कृपाके बलसे उन्होंने यवन तकको परम वैष्णव बनाया। यह प्रभुकी निज शक्तिके बिना हो नहीं सकता था। उन्होंने स्वयं जो किया था, अपने भक्तोंके द्वारा वही कराया और करा रहे हैं। भक्त हृदयमें ही उनका पूर्ण प्रकाश दिखलायी देता है। भक्तकी इच्छा ही उनकी इच्छा है। यह भाग्यवान् गुञ्जामाली कृष्णदास इसका विशिष्ट प्रमाण है।

कृष्णदासकी बात अभी समाप्त नहीं हुई है। कृपालु पाठकवृन्द लीला-रसभङ्ग दोषसे जीवाधम ग्रन्थकारके प्रति रुष्ट न होंगे। पहले ही कह चुका हूँ कि एक-एक गौर-भक्तकी पुण्य जीवन-कथा एक-एक गीता भागवतके समान उपदेशपूर्ण है। श्रीभगवान्‌के लीला-रसके आस्वादनमें जो सुख है, भक्त चरितके आस्वादनमें भी वही सुख है, वही आनन्द है।

पञ्जाब, गुजरात और सिन्ध देशके निवासियोंको कृष्ण-प्रेममें मत्त करके कृष्णदास सौराष्ट्र प्रदेशमें आये। वहाँ भी श्रीविग्रह सेवा प्रकाशित करके उन्होंने गौराङ्ग धर्मका प्रचार किया। उस देशके लोगोंको भी वैष्णव बनाया। वहाँ भी उनकी गद्दी है। वहाँ श्रीनित्यानन्द परिवारके कथाकार श्रीपण्डित गोसाईंको गद्दीपर बैठाकर कृष्णदास गुञ्जामाली गोसाईं वृद्धावस्थामें श्रीवृन्दावनमें आ गये।

तबे गुञ्जामाली सर्व विषय तेजिया।
वृन्दावने वास कैला एकाकी हइया।।

भक्तमाल।

प्रभुके वृन्दावनके साथी तृतीय कृष्णदासकी कथा यहाँ आकर समाप्त हुई। कृष्णदास गुञ्जामाली गोसाईंको प्रभुने जिस प्रकार शक्ति सञ्चार किया था, उस प्रकार अन्य किसींको नहीं किया। इन

महापुरुषको प्रभुकी कृपासे श्रीनित्यानन्द-शक्ति प्राप्त हुई थी। श्रीगौराङ्ग नाम-प्रचार कार्यमें उन्होंने जो अद्‌भुत शक्ति दिखलायी, वह नित्यानन्द शक्तिके अतिरिक्त अन्यसे नहीं हो सकती थी। गौर भक्तोंकी शक्ति अद्‌भुत है, उनमें-से एक-एक जनने संसारको तारनेकी शक्ति धारण की थी।

वृन्दावनमें कृष्ण-दर्शन

श्रीव्रज मण्डलमें सर्वत्र प्रचरित हो गया कि श्रीकृष्ण पुन: श्रीवृन्दावनमें प्रकट हुए हैं—

वृन्दावने पुनः कृष्ण प्रकट हइल।
जाहा ताँहा लोक सब कहिते लागिल॥

चै. च. म. १८.८४

यह सुनकर झुण्डके-झुण्ड लोग श्रीवृन्दावन आने लगे। एक दिन प्रात:कालमें मथुराके बहुतसे लोग श्रीवृन्दावनसे महा कोलाहल करते हुए प्रभु जहाँ थे वहाँ आकर उन्होंने उनकी चरण-वन्दना की। प्रभुने हँसकर पूछा, "कहाँसे तुम लोग आये हो? क्यों इतनी भीड़ हुई हैं?" उन्होंने परम उत्कण्ठा पूर्वक उत्तर दिया—

—"कृष्ण प्रकट कालिदहेर जले।
कालीय शिरे नृत्य करे फणारत्न ज्वलें।

चै. च. म. १८.८७

इसे लोगोंने साक्षात् देखा है,इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, उसी कृष्णका दर्शन करने हम यहाँ आये हैं।" यह सुनकर प्रभु हँसकर बोले—"हाँ, यह सत्य बात है।" इस प्रकार तीन रात कालीय-दहके घाटपर रातमें प्रतिदिन बहुत बड़ी भीड़ इकट्‌ठी होती रही। सब प्रभुके पास आकर कहने लगे—"हम श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त कर धन्य हो गये।"

सबे आसि कहे कृष्ण पाइलूँ दरशन।

चै. च. म. १८.८९

प्रभु हँसे, और कुछ बोले नहीं। उनकी हँसीका मर्म कविराज गोस्वामीने लिखा है। यथा—

महाप्रभु देखि सत्य कृष्ण दरशन।
निज ज्ञाने सत्य छाड़ि असत्ये सत्य भ्रम॥

चै. च. म. १८.९१

बलभद्रभट्टाचार्यने इन सब लोगोंकी बात सुनकर श्रीकृष्ण दर्शनके लोभके वश होकर प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—

"आज्ञा देह जाइ करि कृष्ण दरशने।

चै. च. म. १८.९२

प्रभु यह सुनकर हँसते हुए उनकी पीठपर एक थप्पड़ जमाकर परम प्रेमपूर्वक बोले—"तुम पण्डित होकर मूर्खोंकी बातोंमें आ गये। कलिकालमें श्रीकृष्ण इस प्रकार क्यों दर्शन देंगे? लोग भ्रमसे कोलाहल कर रहे हैं। यदि तुमको यथार्थताका विश्वास न हो तो कल रात्रिमें तुम भी चले जाना।"

उसके दूसरे दिन प्रात:काल पुन: भव्य-भव्य बड़े-बूढ़े लोग कालीयदहके घाटसे प्रभुके पास आये। प्रभुने उनसे भी पूछा—"कालीयदहके जलमें श्रीकृष्ण उदय हुए हैं, क्या यह सत्य है?" वे लोग जो प्रभुके पास आये थे ज्ञानवान् वृद्ध और परम भागवत थे उन्होंने उत्तर दिया—"रात्रिके समय नावपर चढ़कर मशाल लेकर मछुए जालमें मछली पकड़ते है। उसको देखकर भ्रम होता है कि कालीयके मस्तकपर कृष्ण नृत्य कर रहे हैं। सीधे-साधे लोग नावको कालीय, दीपकको रत्नकी चमक, मछुएको कृष्ण मान बैठे। लेकिन यह बात सत्य है कि कृष्ण वृन्दावन आये हैं और लोगोंने उनको देखा भी है। स्थाणु (शाखा-पल्लव हीन वृक्ष) में जैसे ना समझ व्यक्ति मनुष्यका भ्रम कर लेता हैं और कृष्णको साधारण मनुष्य मान लेता है, वही बात है।"

इन सब ज्ञानियों और भक्तोंके मनमें दृढ़ विश्वास हो गया है कि प्रभु स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् हैं। इसी कारण उन्होंने कहा कि लोगोंको श्रीकृष्णका

दर्शन तो प्राप्त हुआ है, यह बात मिथ्या नहीं हैं, परन्तु कालीय दमन घाटपर रात्रिमें श्रीकृष्ण दर्शनकी वात मिथ्या है, यह लोगोंका भ्रम मात्र है।

सर्वज्ञ प्रभु सब कुछ जानते हैं। इन सब लोगोंके मनमें जो भाव उदय हुआ है, वह भावग्राही श्रीगौर भगवान् सब जानते और समझते हैं। तथापि रङ्गीले प्रभुने उत्कण्ठापूर्वक उनसे पूछा—"तुम्हें कृष्णका दर्शन कहाँ प्राप्त हुआ, बतलाओ तो ?" उन सब वृद्ध तत्त्वज्ञ, तथा भक्तिमान् पुरुषोंने सुयोग और सुविधा पाकर तव प्रभुसे अति स्पष्ट भाषामें कहा—

—"संन्यासी ! तुमि जंगम-नारायण ।।
वृन्दावने हैले तुमि कृष्ण अवतार ।
तोमा देखि सब लोक हइल निस्तार ।।"

चै. च. म. १८. १०२,१०३

यह सुनकर कलिके प्रच्छन्न अवतार श्रीगौराङ्ग सुन्दरने अपने कानोंमें श्रीअंगुली डालकर कहा—

—"विष्णु विष्णु ! इहा ना कहिय ।
जीवाधमे कृष्ण ज्ञान कभू ना करिय ।।
संन्यासी चित्कण जीव किरणकणसम ।
षडैश्वर्य पूर्ण कृष्ण हय सूर्योपम ।।
जीव आर ईश्वर तत्त्व कभू नहे सम ।
जलदग्नि राशि जैंछे स्फुलिङ्ग कण ।।
जेइ मूढ़ कहे—जीव ईश्वर हय सम ।
सेइ त पाखण्डी हय, दण्डे तारे यम ।।

चै. च. म. १८. १०४-१०७

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाखण्डी भवेद् ध्रुवम् ।।

हरिभक्तिविलास । १.१.११७

प्रभुकी यह भूल-भुलैयामें डालने वाली बात कौन सुनता ? प्रभुको देखकर उन सब तत्त्वज्ञ पुरुषोंके मनमें जो विश्वास हुआ था, उसे वे प्रभुके चरणोंमें निवेदन करनेमें कुण्ठित न हुए। उन्होंने प्रेममें भरकर रोते-रोते हाथ जोड़कर निवेदन किया—"साधारण जीवको नारायण माननेसे अपराध हो सकता है, लेकिन तुम तो जीव नहीं हो। तुम्हारी देहकान्तिको पीतवर्णने छिपा रक्खा है। क्या कस्तूरी कपड़ेमें बाँधकर छिपायी जा सकती हैं ? तुमको देखकर जगत कृष्ण-प्रेममें पागल सा हो रहा है। स्त्री, बाल, वृद्ध, चाण्डाल, यवन जो भी तुम्हारा दर्शन कर लेता है वही कृष्णनाम लेकर उन्मत्त हो नाचने लगता है। दर्शनकी बात तो दूर रही, जो तुम्हारा नाम सुन लेता है वही कृष्ण-प्रेममें उन्मत्त हो जाता है। तुम्हारा नाम सुनकर श्वपच भी पवित्र हो जाता है। ऐसी तुम्हारी अलौकिक शक्ति है जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्
यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ।।

श्रीम. भा. ३.३३.६

यह तुम्हारी महिमा ही बता रही है कि तुम व्रजेन्द्रनन्दन हो (चै. च. म. २८.१०८-११६)।

भक्तवत्सल प्रभुने इन सब सरल विश्वासी लोगोंके साथ और कुछ व्यर्थ तर्क नहीं किया। उन्होंने जान लिया कि ये उनके नित्य दास हैं, उनको पहचान लिया है, इनको कदापि विश्वास न होगा कि वे कृष्ण नहीं हैं। भगवान् भक्तके सामने पराजित होकर चुप हो गये। इन सब व्रजवासियोंको प्रभुने अपनी गोलोककी सम्पत्ति प्रेमधन दान करके विदा किया। ये लोग प्रेमोन्मत्त होकर आनन्दसे नृत्य करते हुए अपने-अपने घर गये।

सेइ सब लोके प्रभु प्रसाद करिला ।
प्रेमे मत्त हइया लोक निज घरे गेला ।।

चै. च. म. १८०-११७

यह जो प्रभुने अपूर्व लीला-रङ्ग प्रकट किया, इसमें उन्होंने लोगोंके देखनेमें श्रीवृन्दावनमें आत्मप्रकाश कर दिया। सहस्रों लोगोंने उनको साक्षात् कृष्ण समझ कर पूजा की, स्तुति की, युक्ति और प्रमाणसे उनको बतलाया कि वे ही साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन हैं। वे कुछ उत्तर न देकर चुप रहे। 'मौनं सम्मति लक्षणम्'—यह समझकर उनके नित्यदास व्रजवासीगण जहाँ-तहाँ कहने लगे—

वृन्दावने पुनः कृष्ण प्रकट हइल।
जाँहा ताँहा लोक सब कहिते लागिल॥

चै. च. म. १८.८४

व्रज छोड़नेकी योजना

इसी भयसे प्रभु कुछ दिन अक्रूर तीर्थमें रहे। मथुरा और श्रीवृन्दावनके सब लोग आकर उनको निमन्त्रित करने लगे। एक साथ दस-बीस आदमी प्रभुको निमन्त्रित करने आते थे, परन्तु बलभद्र भट्टाचार्य एकसे अधिक आदमीका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते थे। लोग भट्टाचार्यकी बहुत खुशामद बरामद करने लगे। लोगोंके निमन्त्रणके दबावसे प्रभु और उनके सङ्गी बलभद्र भट्टाचार्य बहुत अस्थिर हो उठे। इस प्रकार भी कुछ दिन बीत गये।

एक दिन अक्रूर घाटपर बैठकर प्रभु श्रीयमुनाकी शोभा देख रहे थे, और मन ही मन विचार कर रहे थे कि इस घाटपर अक्रूरने वैकुण्ठका दर्शन किया था, व्रजवासीगणने इस परम पवित्र घाटपर गोलोकका दर्शन प्राप्त किया था। इस प्रकार चिन्तन करते-करते प्रभु प्रेमावेशमें अचानक उठकर छलाँग मारकर श्रीयमुनामें कूद पड़े। और बहुत देर तक जलमें डूबे रहे। उनके साथ कृष्णदास थे, बलभद्र भट्टाचार्य कुछ दूर थे। कृष्णदासने चिल्लाकर क्रन्दन करसे भट्टाचार्यको पुकारा। बलभद्र भट्टाचार्य दोड़कर वहाँ आये और प्रभुको नहीं देखा। जो कुछ सुना, उससे उनके प्राण सूख गये। वे भी यमुनाके जलमें कूद गये और बहुत देर तक ढूँढ़कर प्रभुको पकड़कर किनारे ले आये। प्रभु प्रेमानन्दमें विभोर थे, उनको कुछ भी बाह्यज्ञान न था। कुछ देरके बाद उनको चेतनता आयी। वे प्रेमावेशमें इधर-उधर देखने लगे। उनको कुछ भी याद न था कि उन्होंने क्या किया था।

बलभद्र भट्टाचार्यने कृष्णदासके साथ एकान्तमें बैठकर विचार किया—"आज तो मैं यहाँपर था, यमुनाजीमें-से प्रभुको निकाल लाया। यदि वृन्दावनमें ऐसी घटना हो, तो क्या होगा? लोगोंकी भीड़ निमन्त्रणोंका जंजाल, प्रभुका निरन्तर आवेश—ये सब ठीक नहीं। किसी प्रकार प्रभुको यहाँसे ले चला जाय तो अच्छा हो।"

दोनोंने परामर्श किया कि प्रभु वृन्दावनमें रहेंगे तो प्राणसे हाथ धो लेंगे। किसी प्रकार इनको वृन्दावनसे ले जानेमें ही मङ्गल है।

प्रभु कार्तिक मासके अन्तमें श्रीवृन्दावनमें आये थे। अब माघ मास आरम्भ हो गया था। प्रभुको इतने दिनों न आहार निद्राका बोध हुआ और न दिन-रातका ज्ञान था। वे प्रेमावेशमें विभोर होकर वन-वन घूमते थे, व्रजके रजमें जब तब लोटने लगते थे, रोते-रोते उनकी दोनों आँखें अन्धी हो रही थी। अनाहार और अनिद्रासे स्वर्ण-वर्ण श्रीअङ्ग जीर्ण-शीर्ण हो रहा था, प्रखर आतपके तापमें, तथा श्रीवृन्दावनके प्रबल शीतमें कच्चे सोने जैसा उनका वर्ण मलिन हो गया।

बलभद्र भट्टाचार्य प्रभुके अनुरागी भक्त थे, वे प्राणपनसे प्रभुकी सेवा कर रहे थे। उनके प्राणोंको यह सह्य कैसे होता? उन्होंने परामर्श करके प्रभुको श्रीवृन्दावनसे प्रयाग ले जानेका प्रबन्ध किया।

कृष्णदासने भी ऐसा परामर्श दिया, क्योंकि प्रभु गङ्गाका दर्शन करके बहुत सुखी होंगे। प्रयागमें

कुम्भमेलामें प्रभु

वहाँसे प्रभुने सोरा क्षेत्रमें जाकर गङ्गास्नान करके गङ्गाकी महिमा कीर्तन की।* प्रभुने वहाँसे कृष्णदास और राजपूत भक्तको विदा करना चाहा तो वे उनके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते कहने लगे—"प्रयाग पर्यन्त हम लोगोंको साथ चलने दें। फिर पता नहीं आपके चरण दर्शन कब होगें। यहाँके लोग कोई उत्पान करें तो आपके साथी यहाँकी भाषा नहीं जाननेसे उनसे ठीकसे बातचीन भी नहीं कर पायँगे।"

यह बात सुनकर बलभद्र भट्टाचार्यकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर प्रभु मुस्कराये। प्रयाग पर्यन्त दोनों आदमी प्रभुके साथ चले। प्रयागके रास्तेमें जहाँ प्रभु क्षण भरके लिए रुकते थे, वहाँ के लोग उनका दर्शन करके कृतार्थ हो जाते थे, उनके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम सुनकर वैष्णव हो जाते थे, वे लोग उनका सङ्ग छोड़ना नहीं चाहते थे। इस प्रकार अपनी शक्ति प्रकट करके श्रीगौराङ्ग-प्रभुने पश्चिम देश-वासियोंका उद्धार किया। कृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

दक्षिण जाइते जैछे शक्ति प्रकाशिल।
सेइ सत पश्चिम देश प्रेमे भासाइल॥

चै. च. म. १८.२११

इस प्रकार पश्चिम देशवासी सब लोगोंको प्रेमोन्मत्त करके प्रभु माघ मासमें मकर स्नानके समय तीर्थमें जा पहुँचे। दस दिन वहाँ रहकर त्रिवेणीमें स्नान किया। उस समय कुम्भ मेला लगा था। प्रयागमें लाखों-लाखोंकी भीड़ इकट्ठी हुई। थी प्रभुकी अपरूप रूपराशिका दर्शन करके, उनके श्रीमुखके उच्च हरिनाम-संकीर्तनको श्रवण करके सब लोग मुग्ध हो गये। ऐसा रूपवान् नवीन संन्यासी कभी किसीने देखा न था, ऐसा नाम संकीर्तन भी कभी किसीने नहीं सुना था। मकर स्नान करने लाखों संन्यासी आये थे, परन्तु इस नवीन अपूर्व रूपशाली सुन्दर संन्यासीके ऊपर सबकी दृष्टि पड़ी। सब लोग प्रभुको घेरकर उनके श्रीमृखसे अपूर्व उच्च हरि-सङ्कीर्तन सुनने लगे, और हरि-हरि ध्वनि करके उनका जयगान करने लगे।

गौड़ीय वैष्णव संन्यासीकी संख्या कुम्भ मेलामें अति विरल थी, दूसरे वैष्णव-सम्प्रदायके संन्यासी तथा मायावादी संन्यासियोंका दल ही अधिक था। बहुत-से संन्यासी अपना सम्प्रदाय छोड़कर प्रभुके साथ हरि-संकीर्तनमें योग देकर नृत्य करने लगे। यह देखकर सब लोग आनन्दसे हरि-ध्वनि करने लगे। बारंबारकी उच्च हरि-ध्वनिसे त्रिवेणीका घाट मुखरित हो उठा। इस नवीन संन्यासीके अपूर्व प्रभाव को देखकर सब लोग मुग्ध होकर उनके चरणोंका आश्रय लेनेके लिए व्यग्र हो उठे।

अलौकिक लीला प्रभुर अलौकिक रीति।
शुनिलेओ भाग्यहीनेर ना हय प्रतीति॥
आद्योपान्त चैतन्यलीला अलौकिक जान।
श्रद्धा करि शुन इहा सत्य करि मान॥
जेइ तर्क करे इहा—सेइ मूर्ख राज।
आपनार मुण्डे से आपनि पाड़े बाज॥

चै० च० म० १८.२१५.२१७

* कोई-कोई कहते हैं कि उस समय प्रभु कुरुक्षेत्र होकर प्रयाग गये। कुरुक्षेत्रमें भद्रकालीके मन्दिरके पास श्रीगौर विग्रह आज भी विद्यमान है।

बत्तीसवाँ अध्याय

प्रयाग में प्रभु और श्रीरूप गोस्वामी

गङ्गा यमुना प्रयाग नारिल डुबाइते।
प्रभु डुबाइल कृष्णप्रेमेर वन्याते ॥

चै. च. म. १९. ३९

एक बिन्दुकी डुबानेकी शक्ति

प्रभु केवल दस-दिन प्रयागमें रहे। परन्तु दस दिनमें उन्होंने सारे प्रयाग क्षेत्रको प्रेमकी बाढ़में बहा दिया। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

चैतन्यचरित एइ अमृतेर सिन्धु।
जगत आनन्दे भासाय तार एक बिन्दु ॥

चै० च० म० १८. २१८

एक बिन्दु अमृतमें जगत् कैसे डूब सकता है? इस विषयको लेकर एक दिन श्रीवृन्दावन-धाममें बैठकर हमारी इष्ट-गोष्टी हुई थी। उसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

प्रभुके कृपा बिन्दुसे जैसे सारे जगत्के जीवोंका उद्धार हो सकता है, उसी प्रकार प्रभुके लीलासिन्धुके एक बिन्दुमें सारा जगत् डूब जा सकता है। प्रभुकी कृपा उनके भक्तोंकी निजस्व अमूल्य सम्पत्ति है। जिसने श्रीगौर भगवान्की एक बूँद कृपा प्राप्त की, वह अनन्त, असीम सम्पत्तिका अधिकारी हो गया। वह भगवान्का कृपा-पात्र है। उनके कृपापात्र अनेक हुए हैं, और कृपापात्रके कृपापात्र अनेक हो गये। इस प्रकार भगवद्भक्तके द्वारा श्रीभगवान्के अनन्त कृपासिन्धुके अनन्त कण, अनन्त भावमें जगत्में विस्तृत होने लगे। भक्तके द्वारा भगवान् अपने कृपा-वितरणकार्यको सम्पन्न करते रहते हैं, भाग्यवान् भक्त भगवान्की एक बिन्दु कृपा पाकर जिस प्रकार उस कृपा-बिन्दुको जगत्-जीवके प्रति वर्षण करते हैं, श्रीभगवान्के लीला समुद्रका एक बिन्दु, उनकी चरित कथाका एक कथामृत-बिन्दु अनन्त साधु-सज्जनके मुखसे जगत्में व्याप्त होकर सारे देशको प्लावित करता है।

यह बात कुछ और विशद रूपमें समझानी पड़ेगी। महाजनगणने लिखा है कि प्रभुने जब दक्षिण देशमें भ्रमण किया, पूर्व देशमें उदय हुए, पश्चिम देशको विजय किया, तो वे सब देश प्रेमकी बाढ़में बह गये। सब देशोंमें हरिनामका प्रचार हुआ। सब लोग वैष्णव हो गये। इसका अर्थ अतिसूक्ष्म है। प्रभुका जिसने साक्षात् दर्शन किया, वे महा-भाग्यवान् थे, उन्होंने भगवद्दर्शनके प्रभावसे ईश-शक्ति प्राप्त की। वे महाशक्तिशाली हो गये, जिन्होंने स्वयं भगवान्के श्रीमुखसे भुवन मङ्गल हरिनाम महामन्त्रको प्राप्त किया, वे परम शक्तिशाली हुए, ये लोग उसी क्षण कृपासिद्ध महापुरुष हो गये। उनको असीम शक्ति प्राप्त हुई। उनका दर्शन, उनका सङ्ग, उनके श्रीमुखसे हरिनाम महामन्त्रका ग्रहण, यह सब जीवके लिए परम सौभाग्यकी बात थी। यह सौभाग्य जिनको मिला, वे भी शक्तिशाली हो गये, और उन्होंने भी यह शक्ति दूसरेको दी, इसी प्रकार भक्तवृन्दके द्वारा श्रीभगवान्की निजशक्ति सञ्चार-क्रिया सम्पन्न होती है। इस क्रियायोगसे अद्भुत रूपमें जीवोद्धार कार्य सम्पन्न होता है। एक आदमीसे दूसरा, उससे तीसरा—इस प्रकार एक गाँवसे दूसरा गाँव, एक नगरसे दूसरा नगर, एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें भक्तवृन्दके द्वारा श्रीभगवान्की कृपाके प्रसारके

साथ-साथ उनकी लीला और पुण्यचरित कथा महाजन भक्तोंके मुखसे जगत्में फैल जाती है। श्रीभगवान्का जब प्राकट्य होता है, अवतारके रूपमें नरवयु धारण करके जब वे भुवनमें उदय होते हैं तो इसी प्रकार उनका नाम, गुण और लीला-कथा भक्तोंके सुखसे सर्वत्र परिव्याप्त होती है, और उसे सुनकर सारे जगत्के जीवोंके प्राणमें आनन्दका स्त्रोत बहने लगता है। इसीकारण सिद्ध महाजन कविने कहा है—

चैतन्य चरित एइ अमृतेर सिन्धु ।
जगत् आनन्दे भासाय तार एक बिन्दु ।।

चै. च. म. १८.२१८

श्रीसनातनका वंदी होना—श्रीरूप और अनुपम का गृहत्याग

प्रभु जब प्रयागमें आये तो, पहले जिस श्रीरूप-सनातनकी बात कही जा चुकी है तथा जिनके साथ प्रभु रामकेलि ग्राममें मिले थे, उनमें-से एक आदमी अर्थात् श्रीरूप, जो गौड़के बादशाहके मन्त्री थे तथा जिनका नाम दबीरखास था, वे आकर प्रयागमें प्रभुसे मिले। कृपालु पाठक वृन्दको याद होगा कि प्रभुने श्रीरूपको रामकेलि ग्राममें रखकर प्रयागकी यात्रा की थी। परन्तु उस वर्ष श्रीवृन्दावनकी यात्रा उन्होंने नहीं की। क्योंकि इनके ज्येष्ठ भ्राता श्रीसनातनने प्रभुसे कहा था कि इतने लोगोंको साथ लेकर श्रीवृन्दावनकी यात्रा करना उचित नहीं है। यह बात प्रभुको जँच गयी, और उन्होंने समझा कि श्रीकृष्ण भगवान्ने ही सनातनके मुखसे यह बात उनसे कही है। प्रभु इसी कारण श्रीवृन्दावन न जाकर नीलाचल लौट गये थे। प्रभुने उन दोनों भाइयोंको कह दिया था कि श्रीवृन्दावनमें फिर हमसे भेंट होगी। इस समय श्रीरूप इसी आशासे सर्वत्यागी होकर प्रभुके दर्शनके लिए श्रीवृन्दावन जा रहे थे, रास्तेमें प्रयागमें उनका प्रभुके साथ साक्षात्कार हुआ।

अब श्रीरूपके गृह त्यागका वृत्तान्त सुनिये। यह अति अद्भुत कथा है। श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वतीने गौर-भक्तोंके गुणके विषयमें बोलते समय कहा था कि विषयका जहाँ लेश भी वे देखते हैं उसे दूर ही त्याग देते हैं, श्रीरूप सनातनके गृह-त्यागकी वार्ता पढ़कर सरस्वती महाराजकी यह बात हमको याद आ जाती है।

रामकेलि ग्राममें प्रभुके साथ मिलकर श्रीरूप और सनातन दोनों भाई अपने घर जाकर विषय त्याग करनेका उपाय सोचने लगे। वे दोनों ही बादशाहके प्रधान मन्त्री थे। बादशाहके नीचे उनकी हुकूमत चलती थी। उनका बड़ा सम्मान था। वे सम्पत्तिशाली पुरुष थे। राजभवनमें रहते थे। अनेकों दास-दासियाँ थे। बहुत-से लोगोंका भरण पोषण करते थे। देव-सेवा, कुटुम्बका पालन-पोषण, अतिथि-सेवा, दीन-दुःखियोंको दान, यह सब कुछ उनके द्वारा होता था। इतने अतुल ऐश्वर्यका लोभ संवरण करना सहज बात नहीं है। परन्तु प्रभुकी कृपासे श्रीरूप-सनातन देश-व्यापी, राजप्रतिष्ठा और अतुल ऐश्वर्य तृणवत् त्याग करनेमें समर्थ हुए थे।

दोनों भाइयोंने प्रचुर दक्षिणा देकर दो ब्राह्मणोंके द्वारा श्रीचैतन्य-चरण शीघ्र प्राप्तिके लिए कृष्ण-मन्त्रका पुरश्चरण कराया। श्रीरूप नावमें अपना धन भरकर घर ले आये। आधा तो ब्राह्मण वैष्णवोंको दे दिया। एक चौथाई परिवार पोषणके लिए दे दिया। राजा कोई दण्ड वैगरह दे तो उसके छुटकारेके लिए विश्वास्त ब्राह्मणोंके पास सुरक्षित कर दिया। दस हजार मुद्रा सनातनके लिए छोड़ दी कि आवश्यकतानुसार उनका उपयोग करे।

इस प्रकार श्रीरूपको प्रभुकी कृपासे विषय-गर्त्तसे निस्तार मिला। उन्होंने सुना कि प्रभु नीलाचल पहुँच गये हैं, और वहाँसे वनके मार्गसे श्रीवृन्दावन गमन करेंगे। यह सुनकर उन्होंने अपने दो विश्वासी आदमियोंको नीलाचल भेजा। उन्होंने

आकर समाचार दिया कि प्रभुने श्रीवृन्दावनके लिए प्रस्थान कर दिया है। श्रीरूप अब क्षणभर भी अपने घर न रह सके। उन्होंने राज-कार्य भार पहले ही त्याग दिया था, तथा विषय-लोभ छोड़ चुके थे। उनको घोर वैराग्य हो गया।

उन्होंने श्रीसनातनको पत्र लिखा—"हम दोनों भाई (रूप और अनुपम) प्रभुसे मिलने जा रहे हैं। दस हजार मुद्रा मोदीके पास छोड़ दी है, उसके द्वारा किसी प्रकार छुटकारा पाकर तुम भी वृन्दावन आ जाना।"

श्रीरूप-सनातनकी कोई सन्तान नहीं थी। उनके कनिष्ठ भ्राता अनुपम मल्लिकको एक पुत्र था। उसका नाम था श्रीजीव। अनुपम भी परम भक्त थे, उनको भी विषयोंसे वैराग्य हो गया था। बालक पुत्र श्रीजीवको यत्किञ्चित सम्पत्ति देकर वे भी पथके भिखारी बनकर श्रीरूपके साथ प्रभुके दर्शनके लिए श्रीवृन्दावनकी यात्रा पर चले। उनके पास एकमात्र संवल था छिन्न कन्था और कौपीन। कङ्गाल बने बिना कङ्गालके प्रभु श्रीगौराङ्गके चरणोंका दर्शन नहीं होता।

सनातन राजाके कारागृहमें बन्द हो गये थे। वे क्यों वन्दी हुए, यह कथा आगे कही जायगी। श्रीरूपने उनको जो पत्र लिखा था, उसमें श्रीसनातनके कारागारमें बन्दी होनेका उल्लेख है। यह संवाद श्रीरूपको मिल गया था, और उसी समय उन्होंने प्रभुके दर्शनके लिए श्रीवृन्दावनकी यात्रा की। प्राण-प्रिय भाई कारागृहमें बन्दी हैं, उनका उद्धार करना चाहिये—यह सोचने विचारनेका उनको अवसर न था। वे प्रभुका दर्शन करने श्रीवृन्दावन जा रहे थे, उनका मन कुछ भी विचलित न हुआ। परन्तु उन्होंने श्रीसनातनको लिखा कि वहाँ मोदीके पास दस हजार सुवर्ण मुद्रा जमा है, वह धन देकर कारागारसे मुक्तिकी चेष्टा करेंगे, और शीघ्र श्रीवृन्दावन चले आवेंगे।

श्रीरूप और अनुपम दोनों भाई एक साथ घर छोड़कर प्रभुके अन्वेषणके लिए बाहर निकले। अनुपमका दूसरा नाम था श्रीबल्लभ। वे भी परम वैष्णव थे।

अब श्रीसनातनकी बात सुनिये। वे राजकार्य नहीं कर पा रहे थे। श्रीगौराङ्ग-चरण-दर्शनकी लालसामें उनका मन बड़ा उत्कण्ठित हो रहा था। उनके भाई श्रीरूप बन्धन-मुक्त हैं, नौकरी छोड़कर प्रभुके दर्शनके आनन्दमें हैं। इससे उनको परम आनन्द है, परन्तु भाईके साथी नहीं बन सके, इसका उनको परम दुःख है। बादशाह उनके मनकी अवस्था क्या समझेगा? श्रीसनातनके समान बुद्धि-जीवी विचक्षण पुरुष उसके राज्यमें कोई नहीं था। वह श्रीसनातनके ऊपर राजकार्यका सारा भार देकर निश्चिन्त था। परन्तु श्रीसनातन मन-ही-मन सोचने लगे कि बादशाहके इस प्रीतिबन्धनसे कैसे मुक्ति प्राप्त करें? कैसे यह कठिन दासत्व शृङ्खला टूटेगी? उन्होंने सोचकर निश्चय किया कि बादशाहके क्रुद्ध होनेपर ही उनको निष्कृति मिल सकती है। यह सोचकर श्रीसनातन रोगका बहाना करके घर बैठ रहे। राजकार्यमें जाना छोड़ दिया। निम्नपदस्थ लोभी कायस्थ कर्मचारी सुविधा और सुयोग पाकर यथेच्छानुसार करने लगे। वे अपने घर बैठकर पण्डितों और भक्तोंके साथ शास्त्र-चर्चा करते थे, और भागवतके श्लोककी व्याख्या करते थे।

गौड़के बादशाहके कानमें ये सारी बातें पहुँची। वह सनातनको अपने छोटे भाईके समान मानता था, और सम्मान करता था तथा उनके गुणोंपर मुग्ध था। बादशाह एक दिन अचानक श्रीसनातनके घर जा पहुँचा। उस समय राजमन्त्री पण्डित-सभामें बैठकर शास्त्र चर्चा कर रहे थे। बादशाहको देखकर सबने आदरपूर्वक उठकर नमस्कार किया। श्रीसनातनने उनको यथोचित सम्मान करके आसन पर बैठाया। बादशाहने तब श्रीसनातनसे पूछा,

"सनातन ! तुम्हारा मतलब क्या है, एकबार मुझको बतलाओ। तुम्हारी बीमारीका संवाद पाकर मैंने तुम्हारे पास राजवैद्यको भेजा था। वैद्यराजने मुझको संवाद दिया कि तुम स्वस्थ हो। मैं भी देख रहा हूँ, तुम बीमार नहीं हो। फिर तुम मेरा काम छोड़कर घरपर क्यों बैठ गये? मेरा सारा राजकार्य नष्ट हो रहा है। अब तुम्हारे मनमें क्या है, मुझे बतलाओ।" बादशाहकी बात सुनकर श्रीसनातनने सिर झुकाकर हाथ जोड़कर कहा, "खुदावन्द ! मेरे द्वारा अब राजकार्य नहीं हो सकता है, आप किसी दूसरे उपयुक्त आदमीको ठीक करके मुझको राजकार्यसे अवकाश दीजिये।"

यह बात सुनकर क्रुद्ध होकर बादशाहने श्रीसनातनसे फिर कहा,

"तोमार बड़ भाइ करे दस्यु-व्यवहार ।।
जीव बहु मारिया बाकला कैल खास ।
एथा तुमि मोर सर्वकार्य कैले दाश ।।

चै. च. म. १९.२३,२४

अर्थात्—तुम्हारा बड़ा भाई दस्युका-सा व्यवहार करता है। बहुतसे जीवोंको सताकर बाकला परगनापर अपना अधिकार जमा लिया है। इधर तुम मेरे राजकार्यका सर्वनाश करनेपर तुले हो।" *

यह बात सुनकर श्रीसनातनने आदरपूर्वक उत्तर दिया, "आप स्वाधीन राजा हैं, आप जो चाहें कर सकते हैं, यदि मैं कोई अन्याय कर रहा हूँ तो मुझे उचित दण्ड दे सकते हैं।"

मन्त्रीके मुखसे यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखित चित्तसे बादशाह वहाँ बैठकर कुछ सोचता रहा। पश्चात् श्रीसनातनको राजबन्दी बनानेका आदेश देकर राजभवनमें जाकर सुना कि उड़ीसाके राजाके साथ पुनः महायुद्ध हो रहा है। तव वह अपने बन्दी राजमन्त्रीके पास आकर पुनः स्नेहपूर्वक बोला, "सनातन ! तुम मेरे साथ चलो, मैं तुमको अभी कारागृहसे मुक्त करता हूँ।" श्रीसनातनने उत्तर दिया, "खुदावन्द ! आप देवताको दुःख देने उड़ीसामें जा रहे हैं, मैं आपके साथ न जा सकूँगा।"

बादशाहने यह बात सुनते ही क्रोधान्ध होकर पुनः श्रीसनातनको कारागृहमें डालदेनेका आदेश देकर युद्ध यात्रा की। श्रीसनातनको इस अवस्थामें छोड़कर श्रीरूप और उनके छोटे भाई अनुपमने प्रभुके दर्शनके लिए श्रीवृन्दावनकी यात्रा की।

प्रयागमें श्रीरूप-अनुपम

अब वे प्रयाग पहुँच गये। प्रयागमें जाकर प्रभु सङ्कीर्तन-लीलारङ्गमें मत्त हो गये। त्रिवेणीके घाट-पर वेणीमाधवके श्रीमन्दिरमें वे परम आनन्दपूर्वक नृत्य कीर्तन कर रहे थे। लाखों लोग उनका अपूर्व नृत्य-विलास देख रहे थे। उस भयानक भीड़में-से होकर निकलनेकी सामर्थ्य किसीमें न थी। श्रीरूप और श्रीवल्लभ दोनों भाइयोंने सुना कि प्रयागमें एक नवीन संन्यासी आये हैं, उनका अपरूप रूप है, असाधारण शक्ति है, वे सदा हरिनाम संकीर्तनमें उन्मत्त रहते हैं, उनके श्रीअङ्गका वर्ण कच्चे सोनेसे भी उज्ज्वल है, साढ़े चार हाथ ऊँची दीर्घाकृति उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर श्रीमूर्ति है। यह वर्णन सुनकर वे लोग समझ गये कि प्रभु ही प्रयागमें उदय हुए हैं। दोनों भाई एक साथ वेणीमाधवके श्रीमन्दिरमें प्रभुका दर्शन करनेके लिए दौड़े। प्रभु वहाँ नृत्य-कीर्तन कर रहे थे, लोगोंकी बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। बहुत कष्टसे उन लोगोंको प्रभुकी श्रीमूर्तिका दर्शन मिला। देखते ही पहचान गये कि यही उनके प्राण-वल्लभ हैं। तब उनके आनन्दकी सीमा न रही,

* इन पयार छन्दोंकी श्रीराधागोविन्द नाथकी टीका देखिये।

प्रेमाश्रुधारामें उनका वक्षःस्थल डूब गया। दूरसे ही प्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके दोनों भाई बगलमें खड़े होकर उनके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

प्रयागमें एक प्रभुके परिचित दक्षिण देशवासी विप्र थे। उस दिन वे प्रभुको निमन्त्रित करके भिक्षाके लिए अपने घर ले जा रहे थे। प्रभु श्रीमन्दिरसे निकलकर निर्जन पथसे उस ब्राह्मणके साथ उसके घर जा रहे थे। श्रीरूप और श्रीवल्लभ चुपकेसे प्रभुके पीछे-पीछे चले। प्रभु जैसे ही उस विप्रके घर सुस्थिर होकर बैठे, उसी समय दोनों भाई दाँत तले तृण गुच्छ लेकर रोते हुए उनके चरणोंमें जा गिरे, और श्लोकबद्ध प्रभुकी स्तुति वन्दना करने लगे। प्रभुके दर्शनसे प्रेमावेशमें होकर वह वारम्वार दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

श्रीरूपको देखकर कृपानिधि प्रभुका मन बड़ा प्रसन्न हुआ। वे श्रीहस्त द्वारा श्रीरूपका अङ्गस्पर्श करके मधुर वचन बोले, "रूप तुम आ गये! आओ, उठो उठो। कृष्णकी कृपासे तुम दोनो भाई विषय-गर्त्तसे निकल आये, यह बड़े ही आनन्दका विषय है।" इतनी बात कहकर श्रीगौर भगवान्ने दोनों भाइयोंके मस्तकपर श्रीचरण स्पर्श करके निम्नलिखित पौराणिक श्लोक पाठ करते हुए उनको उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥

ह. भ. वि. १०.१२७

अर्थात् चतुर्वेदका अभ्यासी विप्र यदि मेरा भक्त नहीं है तो वह मुझे प्रिय नहीं, परन्तु चाण्डाल यदि मेरा भक्त है तो वह मुझें प्रिय है। ऐसा चण्डाल-भक्त यथार्थ दान-पात्र एवं ग्रहण-पात्र है। भक्त मेरे समान ही पूज्य है।

प्रभुके प्रेमालिङ्गनसे मुक्त होकर दोनों भाई प्रेमानन्दमें गद्गद होकर पुनः उनके चरणोंमें जा गिरे। श्रीरूप और श्रीवल्लभने तब हाथ जोड़कर रोते-रोते प्रभुको प्रणाम और स्तुति की।

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

श्रीरूप गोस्वामी वाक्यम्

अर्थ—कृष्णप्रेम प्रदान करनेवाले महावदान्य गौरकान्ति कृष्ण स्वरूप तुमको मैं नमस्कार करता हूँ।

योऽज्ञानमत्तं भुवनं दयालु-
रुल्लाघयन्नप्यकरोत् प्रमत्तम्।
स्वप्रेम सम्पत्सुधयाद्भुतेऽहं
श्रीकृष्ण चैतन्यममुं प्रपद्ये॥

श्रीगोविन्द लीलामृत १.२

जो परम दयालु हैं, जीवोंके भवरोगको शमन करते हुए अपनी प्रेमसम्पत्ति रूप-सुधाके द्वारा जो प्रमत्त करते हैं, उस आश्चर्यकर्मा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके मैं शरणापन्न होता हूँ।

कृपानिधि प्रभुने परम आदर पूर्वक श्रीरूपको निकट बैठाकर श्रीसनातनका समाचार पूछा। श्रीरूपने कहा, "वह राजाके कारागृहमें बन्दी हैं, आप यदि कृपा करके उनका उद्धार करें, तो उनका कल्याण हो सकता है।" दयामय प्रभुने हँसकर कहा, "सनातन तो कारामुक्त हो चुके हैं, मेरे साथ उनका शीघ्र मिलन होगा।"

उस दिन उस दक्षिणात्य ब्राह्मणके घर प्रभुने भिक्षा ग्रहण की। श्री रूप और श्रीवल्लभ उस दिन वहीं रह गये। प्रभुके सङ्केतसे बलभद्र भट्टाचार्यने दोनों भाईयोंको निमन्त्रण दिया। प्रभुने कृपा करके दोनों भाइयोंको उस दिन अपना अधरामृत प्रदानकर कृतार्थ किया।

प्रभुके शेष प्रसादको दोनों भाइयोंने पाया। प्रभु भिक्षा करके त्रिवेणी घाटपर अपने वासापर गये। श्रीरूप और श्रीवल्लभने प्रभुके वासाके पास ही अपने रहनेकी व्यवस्था की।

दूसरे दिन प्रयाग तीर्थके पर पार अंगुलि ग्राम निवासी श्रीवल्लभ भट्ट प्रभुका दर्शन करनेके लिए आये। वे वैष्णव समाजमें श्री बल्लभाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। उनका एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है। श्रीवल्लभाचार्यने अनेकों वैष्णव ग्रन्थ लिखे हैं। वे बालगोपालके उपासक थे। उनके सम्प्रदायके वैष्णव गोकुलके गोस्वामीके नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीवल्लभाचार्यको वे भगवान् मानकर पूजते हैं। श्रीवल्लभाचार्यने प्रभुका नाम सुना था। नदियाके एक ब्राह्मण कुमार संन्यासी होकर भारतवर्षमें सर्वत्र भक्तिकी गङ्गा बहा रहे हैं, वे इस समय प्रयागमें पधारे हैं–यह सुनकर वे एक बार इस अपूर्व नवीन संन्यासीको बिना देखे घरपर नहीं रह सकते थे। प्रयागके पर पार अंगुलि या आड़ाइल ग्रामसे वे शिष्य-प्रशिष्यगणको साथ लेकर प्रयाग आये। आड़ाइल ग्राम श्रीयमुनाजीके किनारे अवस्थित है। नौकापर चढ़कर वहाँ जाना पड़ता है।

श्रीवल्लभाचार्यसे मिलन

प्रयागमें आकर श्रीवल्लभाचार्यने प्रभुके वासापर जाकर उनको दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभुने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके सन्तुष्ट किया, और समीप ही आसनपर बैठाकर बहुत देर तक उनके साथ कृष्ण कथाकी चर्चामें व्यतीत किया।

कृष्ण कथा कहते-कहते प्रभुका प्रेमसमुद्र उमड़ आया। उन्होंने वल्लभाचार्यजीको देखकर प्रेमसंकोच करनेकी चेष्टा की, किंतु सफल न हुए। वल्लभाचार्यजी प्रभुके अपूर्व प्रेमविकार भावको देखकर परम विस्मित हुए।

वहाँ श्रीरूप और उनके भाई अनुपम उपस्थित थे। प्रभुने श्रीवल्लभाचार्यके साथ उनकी भी भेंट करा दी। दूरसे ही भूमि विलुण्ठित होकर दोनों भाइयोंने श्रीवल्लभाचार्यको दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीवल्लभाचार्य जैसे ही उनके साथ मिलनेके लिए अग्रसर हुए, वैसे ही दोनों भाई उनसे दूर भागने लगे और बोले, "हम अस्पृश्य पामर हैं। हमको आप स्पर्श न करें।" यह देखकर वल्लभाचार्य बहुत चकित हुए। परन्तु श्रीरूपका यह दैन्यभाव देखकर प्रभुके मनमें बड़ा हर्ष हुआ।

श्रीवल्लभाचार्यने देखा कि उन दोनोंके मुखसे अविराम कृष्णनाम उच्चारण हो रहा है, उनके जिह्वाग्रपर निरन्तर कृष्णनाम नृत्य कर रहा है, अतएव ये लोग नीच नहीं हो सकते। यह लोग सर्वोत्तम भक्त हैं। अतएव वल्लभाचार्य बोले—

दोहार मुखे कृष्णनाम करिछे नर्त्तन।
ए दुइ अधम नहे, हये सर्वोत्तम॥

चै. च. म. १९.६७

इतना कहकर उन्होंने श्रीमद्भागवत्के इस श्लोकको पढ़ा—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्याः
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

श्रीम. भा. ३.३३.७

प्रभुने वल्लभाचार्यजीके मुखसे यह भक्तियोग सम्बन्धी श्लोक सुनकर उनकी परम प्रशंसा करके स्वयं भी निम्नलिखित दो श्लोकोंको पढ़ा—

शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्ध दुर्जाति कल्मषः।
श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेदज्ञोऽपि नास्तिकः॥१॥
भगवद्भक्तिहीनस्य जाति शास्त्रं जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥२॥

हरिभक्ति सुधोदय (चै. च. म. १९.५,६)

अर्थ—सद्भक्तिकी दीप्ताग्निसे जिसके दुर्जाति रूप पाप दग्ध हो गये हैं, ऐसा श्वपच भी शुचि है और पण्डितोंके द्वारा श्लाघ्य है, परन्तु नास्तिक अर्थात् भक्तिहीन वेदज्ञ भी हो तो वह पण्डितोंके द्वारा श्लाघ्य नहीं है॥१॥

भगवद्भक्तिहीन जनकी जाति, स्वाध्याय, पुरश्चरण, पञ्चतप आदि तपस्या प्राणहीन देहके अलङ्कारके समान लोकरञ्जन मात्र है ।।२।।

प्रभुने जब श्लोक पढ़कर प्रेमावेशमें श्रीवल्लभाचार्यको प्रेमालिङ्गन प्रदान किया, तब उनको प्रभुकी अचिन्त्य शक्तिका परिचय प्राप्त हुआ। प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे उनका सारा शरीर पुलकित हो गया, वे एक अपूर्व प्रेमभावमें विभावित हो उठे, उनके हृदयमें आनन्दकी लहर उठने लगी। उन्होंने देखा कि यह नवीन संन्यासी एक अपूर्व वस्तु है। तब उनको इच्छा हुई कि प्रभुको अपने घर ले जाँय। उन्होंने खोलकर अपने मनकी बात प्रभुके चरणोंमें निवेदन कर दी। दयामय प्रभुने मुस्कराते हुए उसे स्वीकार किया। वल्लभाचार्यजीने प्रभुके साथियोंको भी निमन्त्रित किया।

नौका करके वे सब लोग उनके घर चले। भवकर्णधार प्रभुको लेकर तरणी श्रीयमुनाके नील सलिलमें प्रेमानन्दसे नृत्य करते-करते चली। श्रीयमुना बहुत दिनोंके बाद अपने चिरबाञ्छित हृदय धनको वक्षःस्थलमें पाकर अपूर्व तरङ्गोंमें विलासित होकर प्रेमानन्दमें उत्फुल्ल हो उठी। प्रभु यमुनाका नील सलिल देखकर प्रेमावेगमें उसमें कूद पड़े। सबके प्राण उड़ गये, सबने मिलकर उनको पकड़कर नौकामें उठाकर बैठाया। तब प्रभु नौकाके ऊपर प्रेमावेगमें अपूर्व प्रेम नृत्य करने लगे। उनके पदभारसे नौका डोलने तथा ऊबड्डब होने लगी। बहुत कठिनाईसे प्रभुने प्रेमावेगको संवरण किया।

प्रभुकी नौका आडेल ग्रामके मैदानके सामने लगी। बहुत सम्मानपूर्वक वल्लभाचार्य प्रभुको लेकर अपने घर गये। ग्रामवासी लोग प्रभुको देखकर जयध्वनि करने लगे। वल्लभाचार्यने घर पहुँचनेपर स्वयं प्रभुका पद प्रक्षालन किया। उनको दिव्यासनपर बैठाकर नूतन बहिर्वास पहननेके लिए दिया। गन्ध-पुष्प-धूप-दीपके द्वारा प्रभुकी पूजा की। श्रीगौर भगवान्‌का पादोदक लेकर मस्तकपर धारण किया। बलभद्र भट्टाचार्यका सम्मान करके उनके द्वारा प्रभुके भिक्षाके लिए नाना प्रकारके अन्न-व्यञ्जन और शाक रसोई बनवाये। अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उस दिन प्रभुको अपने घर भिक्षा कराया। प्रभुके साथियोंको बहुत आदर पूर्वक भोजन कराया। बलभद्र भट्टाचार्यने प्रभुके सङ्केतसे श्रीरूप और उनके भ्राताको श्रीगौर भगवान्‌का अवशेष पात्र प्रदान किया। उन दोनों भाइयोंके प्रति करुणामय प्रभुकी अपार करुणा थी। प्रभुके अवशेष पात्रकी कामना ब्रह्मा आदि देवगण करते हैं। प्रभुकी कृपासे श्रीरूप और श्रीवल्लभने देवताओंके द्वारा अभिवाञ्छित श्रीगौर भगवान्‌के अधरामृतको पान किया। उनके पुण्यका क्या कहना ? प्रभुने भोजनके अन्तमें कुछ विश्राम किया।

तिरहुतके रघुपति उपाध्याय

श्रीवल्लभाचार्यके घर एक और तत्कालीन प्रधान पण्डितसे भेंट हुई। उनका नाम था रघुपति उपाध्याय। वे तिरहुतके निवासी थे, परम वैष्णव और भक्तचूड़ामणि थे। रघुपति उपाध्याय एक प्रसिद्ध कवि थे। उनकी रची हुई अनेक कविताएँ पद्यावलीमें संग्रहीत हैं। उन्होंने सुना कि नदियाके अवतार श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके घर आये हैं, तो उन्होंने झटपट आकर प्रभुके चरणोंकी वन्दना की। प्रभुने आशीर्वाद दिया कि— "कृष्णे मतिरस्तु।"

प्रभुके श्रीमुखका आशीर्वाद सुनकर रघुपतिके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। प्रभुने उनको कभी देखा न था। वे यह भी नहीं जानते थे कि ये

कृष्णभक्त कवि हैं। परन्तु उनको आदेश दिया—"रघुपति ! तुम कृष्णलीला वर्णन करो।"

रघुपतिने परम आनन्दपूर्वक स्वरचित निम्नलिखित दो श्लोकोंको पढ़कर सुनाया।

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीता :
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥

अर्थ—कुछ लोग भयभीत होकर श्रुतिका सेवन करते हैं, दूसरे लोग स्मृतिका सेवन करते हैं, और अन्य कुछ लोग महाभारतका सेवन करते हैं, परन्तु मैं नन्द महाराजकी वन्दना करता हूँ जिनके अलिन्द (बरामदे) में परम ब्रह्म बालकके रूपमें विराज रहे हैं।

प्रभु प्रेमावेशमें सुन रहे थे, श्लोक सुनकर उनके श्रीअङ्ग पुलकित हो उठे। नयनोंसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा बहने लगी। रघुपतिके मुखकी ओर करुण-नयनसे देखकर करुणामय प्रभु बोले, "रघुपति ! और भी बोलो।" रघुपतिने प्रभुके श्रीचरणकी धूलि लेकर पुनः श्लोक पाठ किया।

कं प्रति कथयितुमीशे संप्रति को वा प्रतीति मायातु।
गोपतितनयाकुञ्जे गोपवधूटीविटं ब्रह्म ॥

अर्थ—मैं यह बात किसके सामने कहूँ, और कहनेपर विश्वास भी कौन करेगा ? कि यमुनाके तीर कुञ्जमें लम्पट परंब्रह्म गोपवधुओंके साथ लीला-रङ्ग कर रहा है।

श्लोक सुनकर प्रेममय प्रभु प्रेमानन्दमें अधीर हो उठे, उनके श्रीअङ्ग प्रेमावेगमें शिथिल हो गये, मन आनन्दसे उत्फुल्ल हो गया, हृदय प्रेमावेगमें नृत्य करने लगा। वे प्रेममें तन्मय हो गये। रघुपति उपाध्याय भक्त-चूड़ामणि थे। उन्होंने प्रभुकी उस अवस्थाको देखकर समझा कि यही साक्षात् ईश्वर हैं, यही श्रीकृष्ण हैं।

प्रभुने तब आत्म संवरण किया। वे प्रकृतिस्थ होकर रघुपतिके साथ कृष्ण कथा कहने लगे।

प्रभु बोले—"रघुपति ! तुम भगवान्‌के किस रूपको श्रेष्ठ मानते हो ?" रघुपतिने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"श्यामसुन्दरके अपरूप रूपकी अपेक्षा श्रेष्ठवस्तु और कुछ नहीं है।" प्रभु उत्तर सुनकर प्रेमानन्दमें द्रवित हो गये। उन्होंने फिर पूछा—"रघुपति ! तुम श्यामरूपकी किस लीलास्थलीको श्रेष्ठ समझते हो ?" रघुपति बोले—"श्रीवृन्दावनके तुल्य श्रेष्ठ धाम और नहीं है।" प्रभुका हृदय प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगा। उन्होंने उत्सुकतापूर्वक फिर पूछा—"रघुपति। श्रीकृष्णकी बाल, पौगण्ड और किशोर—इन तीनों लीलाओंमें कौन सी श्रेष्ठ है ? रघुपतिने कहा—"श्रीकृष्णकी किशोरावस्थाकी लीला ही श्रेष्ठ है, अतएव ध्येय है।"

प्रभु बैठे थे, उठ गये, उठकर प्रेमानन्दमें अपूर्व नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते पुनः रघुपतिकी ओर करुण-नयनसे देखकर पूछा—"रघुपति ! कहो तो, रसोंमें कौन रस श्रेष्ठ है ?" रघुपतिने उत्तर दिया—"मधुर रस सर्वश्रेष्ठ रस है।" तब प्रभुने प्रेमावेशमें श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोसाईं रचित

श्याममेव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः ॥

पद्यावली ४३

श्लोक पाठ करके रघुपतिको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। रघुपति प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शके आनन्दसे प्रेमोन्मत्त होकर प्रभुके साथ मधुर नृत्य करने लगे।

वल्लभाचार्यजीने यह सब अपनी आँखों देखा और अपने कानों सुना। प्रेमनिधि प्रभुकी अपूर्व प्रेमचेष्टा और अलौकिक प्रेम-भाव देखकर उनका मन आनन्द और विस्मयमें एक साथ आप्लुत हो उठा। रघुपतिकी अवस्था देखकर वे विस्मयमें पड़ गये।

प्रभुने उन सबके ऊपर कृपा की। वल्लभाचार्यके घर प्रेमानन्दका तरङ्ग उठा और उस तरङ्गमें सारा गाँव प्लावित हो उठा। ग्रामवासी सब लोग प्रभुके दर्शनके लिए आये। सभी परम वैष्णव

होकर अपने घर गये। सारे गाँवके लोग कृष्णभक्त हो गये। ग्रामके ब्राह्मणोंने प्रभुको निमन्त्रित किया। वल्लभाचार्यजीने प्रभुको कहीं जाने न दिया। उनको डर था कि कहीं प्रभु फिर श्रीयमुनामें कूद न जांय। वे उनको नौका करके प्रयागमें उनके वासेपर पहुँचा कर तब स्थिर हुए।

श्रीरूप और उनके भाई अनुपमने प्रभुका सङ्ग नहीं छोड़ा। त्रिवेणीके घाटपर प्रभुका वासा था। भीड़के भयसे वे दशाश्वमेघ घाटपर एकान्तमें जाकर बैठ रहे। प्रयागके इस दशाश्वमेघ घाटपर बैठकर प्रभुने श्रीरूप गोस्वामीको शक्ति सञ्चार करके वैष्णव धर्मके सारे तत्त्वोंकी शिक्षा दी थी।

श्रीरूप, सनातनके छोटे भाई थे, परन्तु श्रीमहाप्रभुने उनके ऊपर पहले कृपा की थी, अतएव वैष्णव लोग श्रीरूपका नाम सबसे पहले लेते हैं। प्रभुकी कृपाकी प्राप्ति सब विषयमें श्रेष्ठत्व मूलक है। इसी कारण महाजन कविगण सबसे पहले श्रीरूपका नाम लेकर उनकी वन्दना करते है।

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ॥

तेतीसवाँ अध्याय*

प्रयागमें श्रीरूप-शिक्षा

श्रीचैतन्य दश दिन प्रयागे रहिया।
श्रीरूपे शिक्षा दिल शक्ति सञ्चारिया॥

चै. च. म. १९.१२२

प्रभुने श्रीरूपपर कृपा करके शक्ति सञ्चार की थी। वे परम पण्डित, अपूर्व कवि, शास्त्रज्ञ और व्रज-रसज्ञ थे। श्रीरूप जब नीलाचलपर गये थे तो प्रभुने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीके सामने उनका परिचय इस प्रकार दिया था—

—इहो आमाय प्रयागे मिलिला।
योग्य पात्र जानि इँहाय मोर कृपा हैला॥
तबे शक्ति सञ्चारि आमि कैल उपदेश।
तुमि कहिओ इहाँय रसेर विशेष॥

चै. च. अं. १.८०.८१

प्रभुकी कृपाके बलसे श्रीरूपको असाधारण कवित्व-प्रतिभा प्राप्त थी, उनका दीनातिदीन भाव, मधुमय सरस वचन, सब जीवोंपर समभाव, तथा सर्वोपरि उनकी गौराङ्ग-एकनिष्ठता धर्मजगत्में अतुलनीय है। अतुल ऐश्वर्यके अधिकारी होकर वे छिन्न कन्था-कौपीन मात्र संवल लेकर पथके भिखारी हो गये। गौर प्रेममें उन्मत्त होकर गौड़देशसे भागे भागे प्रयागमें जाकर उन्होंने प्रभुका दर्शन प्राप्त किया। श्रीरूपकी बड़ी इच्छा थी कि प्रभु स्वयं उनको कुछ शिक्षा दें, परन्तु यह बात प्रभुसे कहनेका साहस उनको नहीं हुआ। परन्तु अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान्ने अपने जीवोद्धार कार्यकी सिद्धिके लिए स्वयं प्रवृत्त होकर प्रयागमें बैठकर दस दिन तक श्रीरूपको वैष्णव-धर्मके सारे सूक्ष्म तत्त्वोंकी शिक्षा दी। प्रभुके उन सब उपदेशोंको श्रीचैतन्य चरितामृतमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने कुछ-कुछ लिखकर

* श्रीरूपशिक्षाका डा० श्रीराधा गोविन्दनाथकी टीकाका हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जन्मस्थान, मथुरासे प्राप्त हो सकता है।

कलिग्रस्त जीवोंका परम उपकार किया है। उन्होंने लिखा है—

श्रीरूप उपरे प्रभु जैछें कृपा कैल।
अत्यन्त विस्तार कथा संक्षेपे कहिल॥

चै. च. म. १९.२१३

श्रीरूप गोस्वामीके प्रति प्रभुकी सारी उपदेश-वाणी कविराज गोस्वामीने अपने परम मङ्गल श्रीचैतन्य चरितामृतमें संक्षेपमें लिपिवद्ध किया है। अन्य लीला ग्रन्थोंमें इन तत्त्वकी बातोंको विशेष रूपसे किसीने नहीं लिखा है। पूज्यपाद कविराजके चरणोंका स्मरण करके उनके द्वारा लिखित प्रभुकी इस अमूल्य उपदेश वाणीका यत्किञ्चित आभास यहाँ अति संक्षेपमें वर्णन करनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। जीवाधम ग्रन्थकार महाजन-गणका उच्छिष्ट भोजी है, प्रभुके उपदेशामृतमें किसको लोभ नहीं होता ? परन्तु इस अमूल्य वस्तुके पानेके अधिकारी कितने आदमी हैं ? अनधिकारीके लिए इस सम्बन्धमें उच्छिष्ट भोजनके सिवा और कोई उपाय नहीं है। महाजनका उच्छिष्ट परम वस्तु है। यह भी कितनोंके भाग्यमें बदा होता है ?

प्रभुने श्रीरूपसे कहा, "भक्तिरस-समुद्र अति गम्भीर और असीम है, उसका पूर्णरूपसे वर्णन करना असंभव है, तथापि यत्किञ्चित् तुमको आस्वादन करानेकी मैं चेष्टा करूँगा। यह तुम केवल सूत्ररूप जानना।"

प्रभुकी यह बात सुनकर श्रीरूपका मन प्रेमानन्दमें उत्फुल्ल हो गया। वे प्रभुके चरणोंमें लोट गये।

जीव तत्त्व

प्रभु कहने लगे, "श्रीभगवान्के अनादि-अनन्त विश्वरूपका सूक्ष्मादपि सूक्ष्म जो अंश है, उसीका नाम जीव है। केशाग्रको शत भागमें विभक्त करके पुनः उसको शत-शत भागोंमें विभक्त करनेपर जो अति सूक्ष्म वस्तु बचती है, जीवका स्वरूप उसकी अपेक्षा भी सूक्ष्म है। वस्तुतः जीवात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, सूक्ष्मतरसे भी सूक्ष्मतर है, सूक्ष्मतमसे भी सूक्ष्मतम है। यही जीवका स्वरूप है।"

केशाग्रशतभागस्य शतांशसदृशात्मकः।
जीवः सूक्ष्मस्वरूपोऽयं संख्यातीतो हि चित्कणः॥
बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेय इति चाह पराश्रुतिः॥

चै. च. म. १४.१५,१६

इसके बाद प्रभुने कहा कि श्रीभगवान्ने श्रीमुखसे कहा है, सूक्ष्माणामप्यहं जीवः (श्रीम. भा. ११.१६.११) अर्थात् सूक्ष्म पदार्थोंके बीच मैं हूँ। अर्थात् जीव मेरी सूक्ष्म विभूति है।

प्रभुने एक और श्रीमद्भागवतका श्लोक पाठ किया—

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुवं नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया॥

श्रीम. भा. १०.८७.३०

अर्थ—श्रुतिगणने श्रीकृष्णको कहा—"हे नित्य ! असंख्य एवं नित्य जीवगण यदि सर्वगत (व्यापक) हों, तो (जीव ईश्वर तुल्य हो जाता है—ऐसा होनेपर जीव ईश्वरके) शासनाधीन है—यह नियम नहीं रहता; किन्तु अनुरूप होनेपर अर्थात् जीव व्यापक न होकर सूक्ष्म हो, तो उक्त नियममें व्याघात नहीं होता; बल्कि जिसके विकार रूपसे जीव उत्पन्न होता है (अर्थात् जिस कारणसे कोई भी कार्य उत्पन्न हो), कारणत्वका त्याग न करके भी (कारण रूपसे विद्यमान रहकर भी) वह (उस कार्यका या जीवका) नियामक होता है (अतएव, ईश्वरसे जीवकी उत्पत्ति होनेके कारण ईश्वर नियन्त्रा, जीव नियम्य है)। (कार्यको कारणके—

जीवको ईश्वरके) समान जो मानते हैं, उनका मन दुष्ट है, (वेद विरुद्ध होनेके कारण) उनका मन दोष युक्त है।

जीवमें ईश्वर बुद्धि पाखण्डी मत है, यही बात प्रभुने बतलायी है। जीवका स्वरूप पहले कह चुके हैं, अब जीवोंके भेद और श्रेष्ठताको बतलाते हैं। प्रभु बोले, "जीव शब्दसे स्थावर जङ्गमात्मक प्राणीमात्रका बोध होता है। सारे जीव श्रीभगवान्‌के पूर्ण चित्स्वरूपके अति सूक्ष्म चित्कण मात्र हैं। यदि स्थावरको छोड़कर जङ्गमको देखा जाय तो वह तीन भागोंमें विभक्त हो सकते हैं, (१) तिर्यक् (२) जलचर और (३) स्थलचर। स्थलचर जीवोंमें मनुष्य बहुत ही अल्पसंख्यक हैं। मनुष्योंमें भी म्लेच्छ, यवन, वौद्ध और पुलिन्द अधिकहैं। वेदनिष्ठ मनुष्य बहुत कम हैं। उनमें भी अधिकांश केवल वेदकी प्रधानता मौखिक स्वीकार करते हैं, परन्तु कार्य क्षेत्रमें वेद-विरुद्ध आचरण करते हैं। इन वैदिक धर्माचारी मनुष्योंमें बहुतसे कर्मनिष्ठ हैं, सहस्रों कर्मनिष्ठ मनुष्योंमें एक ज्ञानी पाया जाता है। कोटि ज्ञानियोंमें कोई एक मुक्त पुरुष देखनेमें आता है, और कोटि जीवन्मुक्त पुरुषोंमें एक कृष्ण-भक्त होना सुदुर्लभ है। मुक्ति, भुक्ति और सिद्धिकी कामना करनेवाले पुरुष अशान्त होते हैं। निष्काम कृष्ण भक्त ही वस्तुतः शान्त पुरुष हैं।

नारायण-परायणकी दुर्लभता

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने।।

श्रीम. भा. ६.१४.५

अर्थ—सिद्धि प्राप्त करनेवाले कोटि-कोटि मुक्त पुरुषोंमें हरि भक्ति परायण एक आदमी भी सुदुर्लभ है। इसका भावार्थ यह है कि, कृष्ण भक्त ही एकमात्र कामना शून्य होता है. और कृष्णानिष्ठ होनेके कारण वह शान्त होता है। स्वर्ग आदिके भोगोंकी कामनावाले कर्मी होते हैं, निर्वाण आदि मुक्तिकी कामना करनेवाले ज्ञानी होते हैं, और अणिमा आदि अष्टादश सिद्धिकी कामना करनेवाले योगी होते हैं, ये स्व-स्व-कामनाओंके वशीभूत होकर उनके अभावमें अशान्त चित्त रहते हैं, और कामनाकी तृप्ति होनेपर भी असत्‌की प्राप्तिके कारण कृष्णनिष्ठताके अभावमें अशान्त रहते हैं।

श्रीरूप निविष्ट चित्तसे प्रभुकी उपदेश वाणी सुन रहे हैं, उनके दोनों नयन मानों प्रभुके श्रीमुखमण्डलमें लिप्त हो रहे हैं। उनके मुखसे कोई बात नहीं निकल रही है, कान लगाकर वे प्रभुके उपदेशामृतको पान कर रहे हैं। प्रभु परम प्रेममें भरकर बोलते चले जा रहे थे, श्रीरूपके कानोंमें उनके वचन मानों अमृतकी धार उडेल रहे थे।

भक्ति-लता

प्रभु बोले, "ब्रह्माण्ड भ्रमण करते-करते यदि कोई भाग्यशाली जीव श्रीगुरु और श्रीकृष्णके प्रसादसे भक्तिलताके एक क्षुद्र बीजानुबीजको भी प्राप्त कर सके, और मालीके समान यत्न करके उसे हृदय-क्षेत्रमें रोपकर उसके मूलमें श्रवण कीर्तन रूप साधन जलको सींच सके तो एक-न-एक दिन वह बीज अंकुरित होकर, लताके रूपमें बढ़कर ब्रह्माण्डको भेदकर ऊपर उठेगा। वह विरजा ब्रह्मलोकको भेद करके परव्योमको पार होकर गोलोक वृन्दावन पर्यन्तको स्पर्श करेगा।*

---

* ब्रह्माण्ड अर्थात् चतुर्दश भुवनमें भक्तिलताका आश्रय कोई वृक्ष नहीं है। ब्रह्माण्डकी किसी वस्तुके लिए भक्तिका प्रयोग नहीं हो सकता। ब्रह्माण्ड भेद करके विरजा नदी बहती है। वहाँ गुणमय-साम्यावस्था दीख पड़ती है। विरजाके दूसरे पार बैकुण्ड धाम है। वहाँ मायाका अधिकार नहीं है। बैकुण्ठके ऊपरी भागमें गोलोक

(टिप्पणीका शेष अगले पृष्ठ पर)

वह भक्तिलता तब श्रीकृष्णके चरण रूप कल्पवृक्षके तले मस्तक रखेगी। वहाँ फैलनेपर इसमें प्रेमफल फलेगा। परन्तु उस भक्तिलताके मूलमें अत्यन्त सावधान होकर श्रवण कीर्तन आदि रूप जल नित्य सिञ्चन करते रहना पड़ेगा। इससे इसका मूल सदा सरस रहेगा। इसमें वैष्णवापराध रूप मत्त हाथी, भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा रूप उपशाखाएँ, और निषिद्धाचार, जीवहिंसा, लाभ, पूजा-प्रतिष्ठादि रूप पर-गाछ और सन्देह रूप घासफूस प्रकट न होने पावे। इस विषयमें विशेष सतर्क रहना चाहिये।

वैष्णव अपराध छः प्रकारका होता है। जैसे, वैष्णव ताड़न, अर्थात् वैष्णवके ऊपर प्रहार करना, निन्दा अर्थात् दोष कीर्तन करना, द्वेष, शत्रुता, अनभिनन्दन, अपमान तथा दर्शन होनेपर हर्षित न होना। इन सब वैष्णवापराधोंका अर्जन करनेपर मनुष्य भक्ति-मार्गसे च्युत हो जाता है। यह वैष्णवापराध रूप मत्त हस्ती भी हाथीके समान है। यह सुकोमल भक्तिलताका परम शत्रु है।

भक्तिमान् साधकके मनमें यदि विषय-भोगकी वासनाका उदय होता है, मुक्ति-वासना, लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाकी प्राप्तिकी वासना यदि हृदयमें उपस्थित होती है तो भक्ति-मार्गसे उसका पैर खिसकने लगता है। ये सब वासनाएं भक्तिलताकी उपशाखाएँ हैं, ये उपशाखाएँ निकलती हों तो इनको काट देना चाहिये। अधिक दिन स्थायी होनेपर ये इतनी बद्धमूल हो जाती हैं कि इनको काटनेमें विशेष कठिनाई होती है। इन सब उपशाखाओंको काट डालनेपर ही भक्तिलताकी वृद्धि होकर श्रीकृष्णचरण रूपी कल्पवृक्षका आश्रय लेनेमें वह समर्थ होती है। तब उसमें फल-फूल लगते हैं।

भक्तमाली इस भक्तिलताका अवलम्बन करके श्रीकृष्णचरणरूप कल्पवृक्षका फल, प्रेमधन प्राप्त करता है। इस प्रेमफलके आस्वादनमें वह परम पुरुषार्थ प्राप्त करता है। उसके सामने चतुर्विध पुरुषार्थ अति तुच्छ वस्तु है।

ऋद्धा सिद्धिब्रंजविजयिता सत्यधर्मा समाधि-
र्ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत्।
यावत् प्रेम्णां मधुरिपुवशीकार सिद्धौषधीनां
गन्धोऽप्यन्तः करण सरणी पान्थतां न प्रयाति ॥

ललित माधव ५.२

अर्थ—जब तक अन्तःकरण कृष्णवशीकरणशील सिद्धौषधिरूप प्रेमका आस्वाद नहीं पाता, तभी तक समृद्धिमान् सब सिद्धियाँ, सत्यधर्मजनित योगादि तथा महान् ब्रह्मानन्द अपने-अपने चाकचिक्यसे जीवको चमत्कृत करते हैं।

जिस बीजसे श्रीभगवान्की सेवारूप लता उत्पन्न होती है, उसका नाम भक्तिलता बीज है। भक्तिलताका मूल कारण गुरु कृपा और कृष्ण कृपा है। अन्याभिलाष बीज, कर्मबीज और ज्ञानबीजसे वे वृक्ष उत्पन्न होते हैं। इन सब बीजोंसे भक्तिलताका बीज पृथक् होता है। गुरु-गौराङ्गकी प्रसन्नता भक्तिलता बीजका उत्पत्ति स्थान है। उनके अप्रसन्न होनेपर अन्याभिलाष कर्म, ज्ञान बीजके कर्म अथवा ज्ञान-बीजकी प्राप्ति होती है। श्रद्धावान् जीव ही

(टिप्पणी ५३२ का शेष)

वृन्दावन अवस्थित है। वहाँ भक्तिलता श्रीकृष्णके चरण रूप कल्पवृक्षका आश्रय करती है। उसमें प्रेमफल लगता है। कृष्ण नामरूपगुणलीला श्रवण-कीर्तनादि रूप जल उस भक्तिलताके बीजके ऊपर नित्य सिञ्चन करना पड़ता है। प्रेमफल परम लोभनीय अप्राकृतिक वस्तु है। यह श्रीकृष्णका निज गुप्तवित्त है, निजस्व वस्तु है। बद्धजीवकी भोगमयी प्राकृत जड़ बुद्धिको वह गोचरीभूत नहीं होता है। भक्तिलताके चारों ओर बेडा लगाकर घेर देना आवश्यक है। बेड़ा का अर्थ है कृष्णके अभक्तोंका सङ्ग वर्जन रूप आवरण। अभक्तोंका सङ्ग होनेपर अपराधरूप हस्ती आकर भक्तिलताको पददलित करके छिन्नभिन्न कर देगा। यही भावार्थ है।

गुरुके चरणोंका आश्रय लेता है। गुरुके द्वारा प्रदत्त अनुग्रह मन्त्र, और प्रदर्शित पथको ही भक्तिपथ कहते हैं।

श्रीरूप-अतिशय निविष्ट चित्तसे प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखकर उनके उपदेशामृतको पानकर रहे हैं। प्रभु गम्भीर भावसे उनको भक्तिकी शिक्षा दे रहे हैं। अब वे शुद्धा भक्तिका लक्षण बता रहे हैं।

शुद्धाभक्ति

प्रभु बोले, 'शुद्धा भक्तिसे ही प्रेम उत्पन्न होता है। शुद्धा-भक्तिका प्रकृत अर्थ है, उत्तमा भक्ति। त्रिगुणातीत कर्मज्ञान मिश्रेतरा अहैतुकी निर्गुणा जो उत्तमा भक्ति है, वही शुद्धा भक्ति है।

अतएव शुद्धाभक्तिका लक्षण कहता हूँ सुनो—

अन्य बाञ्छा अन्य पूजा छाड़ि ज्ञानकर्म।
आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिय कृष्णानुशीलन॥
एइ शुद्ध भक्ति, इहा हैते प्रेम हय।
पञ्चरात्ये भागवते एइ लक्षण कय॥

चै. च. म. १९.१४८,१४९

इस पयार श्लोकको प्रत्येक बातकी व्याख्या करके प्रभुने समझाया—यथा, (१) 'अन्यवाञ्छा'—कृष्णेतर वासना अर्थात् श्रीभगवत्सेवाके अतिरिक्त अन्य निज सुखकी वाञ्छा। (२) 'अन्य पूजा'—कृष्णेतर पूजा, श्रीभगवद्दास बुद्धिके अतिरिक्त स्वतन्त्र ईश्वर रूपमें अन्य देवता आदिकी पूजा। (३) 'छाड़ि ज्ञानकर्म' ज्ञान, निर्भेद ब्रह्मानुभवरूप ज्ञान—,किन्तु भगवत्तत्त्वानुसन्धान रूप ज्ञान नहीं। कर्म, फलभोगेच्छापूर्ण काम्यकर्म निषिद्ध है, परन्तु भगवत्परिचर्यात्मक कर्म निषिद्ध नहीं है। (४) 'आनुकूल्ये'—श्रीकृष्णको रुचनेवाली प्रवृत्तिके साथ अर्थात् कृष्ण प्रीतिके उद्देश्यसे कृष्णसेवा, (५) 'सर्वेन्द्रिय'—सर्वेन्द्रिय द्वारा अर्थात् जो इन्द्रिय जिस प्रकारसे भगवत्सेवाके योग्य हो, उसके द्वारा जड़बुद्धि रहित होकर कृष्णानुशीलन करना चाहिये। पायू-उपस्थ श्रीभगवत्सेवाके लिए उपयोगी नहीं होनेके कारण त्याज्य हैं।

प्रभुने अब कतिपय निम्नलिखित शास्त्र प्रमाण उद्धृत करके श्रीरूपको और भी विषद रूपमें शुद्धाभक्ति-तत्त्व समझा दिया—

सर्वोपाधिबिनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते॥

नारद पञ्चरात्र

अर्थ—सर्वेन्द्रिय द्वारा हृषीकेशकी सेवाको भक्ति कहते हैं। इस सेवाका तटस्थ लक्षण दो प्रकारका है, सर्वोपाधिसे मुक्त भावमें अवस्थान, तथा केवल कृष्ण-निष्ठ होकर स्वयं निर्मल भावमें स्थिति।

मद्गुण श्रुति मात्रेण मपि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्यु दाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

श्रीम. भा. ३.२९.११-१२

अर्थ—कपिलजी अपनी जननीसे कह रहे हैं—जैसे समुद्राभिगामिनी गङ्गाकी गति अविच्छिन्न होती है, उसी प्रकार मेरा गुण श्रवण मात्रसे सर्वान्तर्यामी मुझमें फलानुसन्धान रहित, ज्ञानकर्मादि व्यवधानसे शून्य मनकी अविच्छिन्न गति हो जाना वही निर्गुण भक्ति योगका लक्षण है।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीपमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥

श्रीम. भा. ३.२९.१३

अर्थ—मेरे भक्तगण केवल मेरी सेवाके सिवा सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य और सारूप्य मुक्ति प्रदान करनेपर भी ग्रहण नहीं करते हैं। सालोक्य=समान लोक अर्थात् वैकुण्ठादिमें वास, सार्ष्टि=समान ऐश्वर्य, सामीप्य=समीपमें अवस्थित। सारूप्य=समानरूपत्व।

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥
श्रीम. भा. ३.२९.१४

अर्थ—यही आत्यन्तिक भक्ति योगके नामसे अभिहित है। इसके द्वारा जीव त्रिगुणात्मिका मायाको अतिक्रम करके मद्भाव अर्थात् मदीय विमल प्रेमको प्राप्त होता है।

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदिवर्तते।
तावद्भक्ति सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥
भ. र. सि. १.२.२२

प्रभुने कहा कि यह श्रद्धा-भक्ति ही प्रेमकी प्रसूति है। पिशाची रूपिणी दुःखदायिनी भुक्ति-मुक्तिकी वासना हृदयमें उदित रहते समय क्या उस हृदयमें प्रेमका बीज रोपित हो सकता है? क्या वह हृदय भक्ति-सुखका आधार हो सकता है?

हृदयमें कर्मफल-भोगकी वासना, अथवा संसार बन्धनसे मुक्त होनेकी वासना रहनेपर तादृश फलाकांक्षासे युक्त व्यक्ति यदि चौसठ प्रकारकी भक्ति-साधनाका अनुष्ठान करे तो भी कोई फल प्राप्त न होगा। अतएव साधन-भक्तिके फलस्वरूप होनेवाले प्रेमकी प्राप्ति न होगी।

साधन-भक्ति

प्रभु अब साधन मार्ग भक्तिके सारे अङ्गोंको बतला रहे हैं। यथा,

साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हैले तार 'प्रेम' नाम कय ॥
प्रेमवृद्धि क्रमे नाम—स्नेह, मान, प्रणय।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय ॥
जैछे बीज, इक्षु, रस, गुड़ खण्ड सार।
शर्करा, सिता, मिश्रि उत्तम मिश्रि आर ॥
एइ सब कृष्ण-भक्ति-रसेर स्थायि भाव।
स्थायि भावे मिले यदि विभाव अनुभाव ॥
सात्त्विक-व्यभिचारी-भावेर मिलने।
कृष्णभक्ति रस हय अमृत-आस्वादने ॥
जैछे देखि सिता घृत मरीच कर्पूर।
मिलने 'रसाला' हय अमृत-मधुर ॥
चै. च. म. १९.१५१-१५६

साधन भक्ति—कृतिसाध्या भवेत् साध्या भावा सा साधनाभिधा–अर्थात् जो भक्ति इन्द्रिय व्यापार द्वारा साध्य, तथा भाव भक्तिसे साधित होती है, उसको साधन भक्ति कहते हैं। यह साधन भक्ति वैधी और रागानुगा भेदसे दो प्रकारकी होती है। अतएव गुरुके चरणोंका आश्रय, मन्त्र, दीक्षा आदि तथा श्रवण कीर्तन आदि सारे साधन भक्तिके अन्तर्भुक्त हैं। पहले आनुकूल्यमय कृतार्थ अनुशीलनको भक्ति कहा है, अतएव गुरुपादाश्रयरूप अनुशीलन कृष्ण निमित्त ही होता है। हृदयमें नित्यसिद्ध भावका प्रकाश ही साधन है।

इस साधन भक्तिसे रति उदय होती है, और रति ही प्रगाढ़ होनेपर प्रेम नामसे अभिहित होती हैं। अब यह बतलाते हैं कि रति है क्या वस्तु? रतिका दूसरा नाम भाव है। भाव अनर्थ शून्य होनेपर रति नामसे परिचित होता है।

शुद्ध सत्त्व विशेष अर्थात् ह्लादिनी शक्तिका सार जिसका स्वरूप है, प्रेमरूपी सूर्यके किरणके सदृश, रुचि अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिए तदीय आनुकूल्य और सौहार्दमें अभिलाषा द्वारा चित्तकी स्निग्धता सम्पादक जो भक्ति विशेष है, उसका नाम भाव है। भाव ही भक्ति है, इस अर्थमें भावभक्ति शब्दका प्रयोग हुआ है।

प्रेमभक्ति

शुद्धसत्त्व विशेषात्मा प्रेमसूर्यांशु साम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते ॥
भ. र. सि. १.३-१

प्रेम किसे कहते हैं, अब प्रभु यही समझा रहे हैं। जिससे चित्त अतिशय स्निग्ध होता है, तथा जिसके द्वारा श्रीकृष्णमें अतिशय ममता उत्पन्न होती है, उस गाढ़त्वपूर्ण भावको पण्डित लोग प्रेम कहते हैं।

सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥

भ. र. सिं. १.४.१

यहाँ सान्द्रात्मा शब्द प्रेमका लक्षण स्वरूप है। सान्द्रत्व भावका अर्थ है। घनीभूत भाव। दूसरे दो विशेषण तटस्थ लक्षण हैं।

प्रेमसे ही प्रेम भक्तिका उदय होता है। श्रीभगवान्‌की संवित् और ह्लादिनी शक्तिका सार अंशरूपी रति प्रेमाख्या भक्ति भक्त और भगवान्‌के बीच परस्पर प्रीति सम्बन्ध जोड़नेमें नियुक्त रहती है। श्रीभगवान्‌की इस उभयविध शक्तिके सार अंशरूप रतिको प्रेमभक्ति कहते हैं। भक्तिकी तीन अवस्थाएँ हैं—(१) साधनावस्था, (२) भावावस्था और (३) प्रेमावस्था।

श्रीभगवान्‌के प्रति जीवका प्रेमभाव जितना ही बढ़ता है, उससे उतने ही स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इनमें-से एक-एक क्या वस्तु हैं, तथा उनके क्या लक्षण हैं, अब प्रभु इसीको समझा रहे हैं।

प्रेम जब अपेक्षाकृत गाढ़ होता है तो वह चित्तको द्रवित करता हैं, उसीको स्नेह कहते हैं। स्नेहमें क्षणिक विरह भी सह्य नहीं होता।

सान्द्रश्चित्तद्रवं कुर्वन् प्रेमा स्नेह इतीर्यते।
क्षणिकस्यापि नेहस्याद्विश्लेषस्य सहिष्णुता ॥

भ. र. सि. ३.२.८४

स्नेह गाढ़ताको प्राप्त होकर चित्तको नव माधुर्य विशेषका अनुभव कराकर वाह्यदृष्टिसे जब अदाक्षिण्य अर्थात् कौटिल्य प्रदर्शन करता है तो उसको मान कहते हैं।

स्नेहस्तत् कृष्टतावाप्त्या माधुर्यं मानयन्नवम्।
यो धारयत्यदाक्षिण्यं स मान इति कीर्त्यते ॥

उ, नी. १४.९६

मान गाढ़ताको प्राप्त होकर जब विश्रम्भ धारण करता है तो उसको प्रणय कहते हैं, प्रियजनके साथ अभेद मनको विस्रम्भ कहते हैं।

मानो दधानो विश्रम्भं प्रणयः प्रोच्यते बुधैः।

उ. नी. १४.१०८

जो प्रणय-गाढ़ताके कारण कृष्णसङ्ग आदिमें अधिकतर दुःखको भी चित्तमें सुखरूपमें अनुभव कराता है, उसको राग कहते हैं। यह राग हृदयमें उत्पन्न होनेपर कृष्ण प्राप्तिकी सम्भावना होती है, और जब तक प्राप्ति नहीं होती, तब तक दुःख भी सुखरूप जान पड़ता है।

दुःखेमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते।
यतस्तु प्रणयोत्कर्षात् स राग इति कीर्त्यते ॥

उ. नी. १४.१२६

जो राग प्रगाढ़तावश नव-नवायमान रूपमें अनुभव होकर प्रियतमकी सतत अनुभूति होनेपर भी नव-नवायमान रूपमें उसकी अनुभूति कराता है, उसे अनुराग कहते हैं,

भाव

सदानुभूतमपि यः कुर्यान्नवनवं प्रियम्।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्यते ॥

उ. नी. १४.१४६

अनुराग यदि पावदाश्रय वृत्तिमें रहता है तब वह स्वसंवेद्य दशा अर्थात् महाभावोन्मुखताको प्राप्त होकर प्रकाशित होता है तो वह भाव नामसे अभिहित होता है।

अनुरागं स्वसंवेद्यदशाँ प्राप्य प्रकाशितः।
यावदाश्रय वृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते ॥

उ. नी. १४.१५४

महाभाव ही सर्वश्रेष्ठ भाव है । केवल श्रीराधिका और व्रज-देवियोंके लिए संवेद्य जो भाव है उसे महाभाव कहते हैं, श्रीकृष्णकी महिषीगणके लिए भी यह भाव दुर्लभ है । श्रीराधिका महाभाव स्वरूपिणी हैं, और व्रजगोपिकावृन्द उनके इस भावमें साहाय्यकारिणी हैं ।

मुकुन्दमहिषीवृन्दैरप्यसावति दुर्लभः ।
व्रजदेव्येक संवेद्यो महाभावाख्य योच्यते ।।

उ. नी. १४.१५६

प्रभु अब सारी गूढ़ बातें दृष्टान्त द्वारा समझा रहे हैं । इक्षु बीज जैसे उत्तरोत्तर गाढ़ होकर इक्षु, रस, गुड़, खाँड़, राब, चीनी, मिश्री, उत्तम मिश्रीके रूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार रति उत्तरोत्तर गाढ़ होकर महाभाव पर्यन्त अत्युत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त होती है । स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव, ये सब प्रेमके विलास हैं, इसी कारण प्रेम शब्दसे अभिहित होते हैं । मिश्री भाव स्थानीय है और उत्तम मिश्री महाभाव स्थानीय है । जैसे मिश्रीके द्विविध भेद हैं, उसी प्रकार भाव और महाभाव भेदसे भाव भी दो प्रकार का है । प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, इच्छा सब स्थायी भाव हैं ।

अब यह बतला रहे हैं कि स्थायीभावका क्या रूप है ? जो अतिरुद्ध (हास्यादि) और विरुद्ध (क्रोधादि) भावोंको वंशगत करके सुराज्यके समान विराजता है उसको स्थायी भाव कहते हैं । भक्ति प्रकरणमें श्रीकृष्ण विषयक रति स्थायी भाव है ।

अविरुद्धान विरुद्धाँश्च भावान् यो वशतां नयन् ।
सुराजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते ।।
स्थायि भावोऽत्र स प्रोक्तः श्रीकृष्णबिषया रतिः ।।

भ. र. सि. २.५.१,२

अब विभाव क्या है, यह बतला रहे हैं ।

विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ।
विभावो नाम सद्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः ।।

भ. र. सि. २.१.१५

रत्यादि जिससे विभावित हो उसको आलम्बन विभाव, तथा जिसके द्वारा रत्यादि उद्बुद्ध होते हैं, उसको उद्दीपन विभाव कहते हैं ।

कृष्णश्च कृष्णभक्ताश्च बुधैरालम्बना मताः ।
रत्यादे र्विषयत्वेन तदाधारतयापि च ।।

भ. र. सि. २.१.६.

रतिके विषय और आधार भेदसे आलम्बन दो प्रकारका होता है । इनमें रतिके विषय श्रीकृष्णको विषयालम्बन कहते हैं, और रतिके आधार अन्तरङ्ग भक्त हैं, अर्थात् रतिका मूल पात्र कृष्ण-भक्त हैं, अर्थात् लीला-परिकरको आश्रयालम्बन कहते हैं ।

अब उद्दीपन विभाव क्या वस्तु है, यह समझा रहे हैं ।

उद्दीपनास्तु ते प्रोक्ता भावमुद्दीपयन्ति ये ।
ते नु श्रीकृष्ण चन्द्रस्य गुणाश्चेष्टाः प्रसाधनम् ।।
स्मिताङ्गसौरभे वंश-शृङ्ग-नूपुर कम्वरः ।
पदाङ्क क्षेत्र तुलसी भक्त तद्वासरादयः ।।

भ. र. सि. २.१.३०१,३०२

जो वस्तु भावको उद्दीप्त करती है, उसको उद्दीपन कहते हैं । भावका अर्थ यहाँ रति है, जिसकी सीमा महाभाव पर्यन्त है । श्रीकृष्णके गुण, चेष्टा, वेष, मन्द हास्य, श्रीअङ्ग-सौरभ, वंशी, शृङ्ग, नूपुर, शङ्ख, पदाङ्क, श्रीवृन्दावन आदि क्षेत्र, तुलसी, भक्त तथा वासर आदि सब उद्दीपन विभाव हैं ।

अब अनुभाव क्या वस्तु है, यह बतला रहे हैं ।

अनुभावास्तु चित्तस्थ भावानायवबोधकाः ।
ते वहिर्विक्रिया प्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्यया ।।
नृत्यं विलुठितं गीतं क्रोशनं तनुमोहनम् ।
हुङ्कारो जृम्भणं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता ।।
लालास्रव्वोऽट्टहासश्च घूर्णाहिक्कादयोऽपि च ।।

भ. र. सि. २.२.१,२

चत्तगत भावके ज्ञापक कार्यको अनुभाव कहते हैं। अनुभावका लक्षण है लोटना-पोटना, गीत, चीत्कार, देह ऐंठना, हुङ्कार, जम्हुआई, श्वास बाहुल्य, लोकापेक्षा त्याग, लालास्राव, अट्टहास, घूर्णा और हिक्का आदि।

इसके बाद प्रभु अष्ट सात्त्विक भावकी बात उठाकर बोले कि उपर्युक्त भावोंके साथ अष्ट सात्त्विक भाव और व्यभिचारी भावके मिश्रणसे कृष्ण-भक्ति-रसका अपूर्व आस्वादन होता है। जैसे सिता, घृत, मीर्च और कर्पूर मिलाकर रसाला रूपमें दधि अपूर्व स्वादिष्ट बनता है, उसी प्रकार इन सब भावोंसे मिलित कृष्ण-रति भी रसरूपमें अपूर्व स्वादु बन जाती है।

अब सात्विक भावकी बात कह रहे हैं,

कृष्णसम्बन्धिभिः साक्षात् किञ्चिद्वा व्यवधानतः।
भावैश्चितमिहाक्रान्तं सत्त्वमित्युच्यते बुधैः॥
सत्त्वादस्यात् समुत्पन्ना ये भावास्ते तु सात्विकाः।
स्निग्धा दिग्धास्तथा रुक्षा इत्यमी त्रिविधा मताः॥

भ. र. सि. २.३.१,२

साक्षात् श्रीकृष्ण सम्बन्धी अथवा उसकी अपेक्षा किञ्चित् व्यवधान विषयक भावोंके द्वारा चित्त आकृष्ट हो तो उसको पण्डित लोग सत्त्व कहकर निर्देश करते हैं। इस सत्त्वसे उत्पन्न भाव समूहको सात्त्विक भाव कहते हैं। दिग्ध सात्त्विक भाव तीन प्रकारके हैं, स्निग्ध, और रुक्ष। अष्ट सात्त्विक भाव इन त्रिविध लक्षणोंमें विभक्त है।

ते स्तम्भ स्वेद रोमाञ्चाः स्वरभेदोऽथ वेपथु।
वैवर्णमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥

भ. र. सि. २.३.१६.

अष्ट सात्त्विक भावोंके नाम हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु कम्प, वैवर्ण, अश्रु, प्रलप (चेष्टा-शून्यता)—ये अष्ट सात्त्विक भावके लक्षण हैं।

इसके बाद प्रभुने व्यभिचारी भावोंकी बात उठायी। ये व्यभिचारी भाव तैंतीस प्रकारके हैं।

निर्वेदोऽथ विषादो, दैन्यं ग्लानिश्रमौ च मदगर्वे,
शङ्कात्रासावेगा, उन्मादापस्मृति तथा व्याधिः।
मोहो मृतिरालस्यं जाड्यं ब्रीडावहित्था, च।
स्मृतिरथ वितर्क चिन्तामतिधृतयो हर्ष उत्सुकत्वञ्च॥
उग्रर्यामर्षासूयाश्चापल्यञ्चैव निद्रा च सुप्ति-
बोध इतीमे भावा व्यभिचारिणः समाख्याताः॥

भ. र. सि. २.४.४-६

अर्थ—निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शङ्का, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जड़ता, ब्रीड़ा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति और बोध—ये तैंतीस प्रकारके व्यभिचारी भाव हैं।

ये कभी प्रादुर्भूत होते हैं, कभी तिरोहित होते हैं। इस प्रकार जो भाव स्थायी-भावकी ओर विशेष रूपसे व्यक्त होते हैं, वे व्यभिचारी भाव हैं। इनके द्वारा सब प्रकार के भाव गतिसञ्चार करते हैं, अतएव इनको सञ्चारी भाव भी कहते हैं। ये वाणी, भ्रू-नेत्रादि अङ्गों, तथा सत्वोत्पन्न भावोंके द्वारा प्रकाशित होते हैं। स्थायी भावोंकी बात पहले कही जा चुकी है। वे अमृत-समुद्र हैं। सञ्चारी या व्यभिचारी भाव स्थायी-भाव-समुद्रके तरङ्ग हैं। ये क्रमशः स्थायी-भाव-समुद्रके रूपको प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्ण-विषयक रतिरूप स्थायीभाव श्रवण-कीर्तनादिके द्वारा पुष्ट होते हैं। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव और व्यभिचारी भाव द्वारा भक्त-हृदय विशेष रूपसे पुष्ट होता है, और उसमें भक्तिरसकी सृष्टि होती है। विभाव कारण है, अनुभाव और सात्त्विक भाव कार्य हैं, ये

व्यभिचारी भावके सहकारी हैं, इन सबके द्वारा रति स्वाद्य होकर रसरूपमें परिणत होती है। स्नेहादि जैसे प्रेमके स्थायी भाव हैं, वैसे ही दास्य, सख्य, वात्सल्य, शान्त और मधुर, ये पाँचों प्रेमके स्थायी रस और स्थायी भाव हैं।

रति

भक्त पञ्च प्रकारके हैं, अतएव रति भी पाँच प्रकारकी है। वस्तुतः रति एक है, किन्तु भक्तभेदसे वह पाँच प्रकारमें प्रकट होती है। प्रभु बोले,

भक्तभेदे रति भेद पञ्च परकार।
शान्त रति दास्य रति सख्यरति धार॥
वात्सल्य रति मधुर रति ए पञ्च विभेद।
रति भेदे कृष्ण भक्ति रस पञ्चभेद॥
शान्त दास्य सख्य वात्सल्य मधुर रस नाम।
कृष्ण भक्ति रस मध्ये ए पञ्च प्रधान॥

चै. च. म. १९.१५७-१५९

पहले शान्त रसकी बात कह गये। अब पाँच प्रकारकी रति या रसका लक्षण कहते हैं।

बिहाय विषयोन्मुख्यं निजानन्दस्थितिर्यतः।
आत्मनः कथ्यते सोऽत्र स्वभाव शम इत्यसौ॥
प्रायः समप्रधानानां ममता गन्धवर्जिता॥
परमात्मतया कृष्णे जाता शान्ति रतिर्मता॥

भ. र. सि. २.५.१७.१८

जिससे विषपोन्मुखता दूर होती है, तथा मन निजानन्दमें अवस्थित होता है, उस भावको शान्त रति या शम कहते हैं। शमगुण-प्रधान साधुजन प्रायः ममता शून्य होते हैं। परमातम बुद्धिजनित श्रीकृष्ण में उनकी जो रति होती है, उसे शान्त रस कहते हैं।

स्वस्माद् भवन्ति ये नानास्तेऽनग्राह्या हरेर्मताः।
आराध्यत्वात्मिका तेषां रति प्रीतिरिहोदिता॥
तत्रासक्तिकृदन्यत्र प्रीति संहारिणी ह्यसौ॥

भ. र. सि. २.५.२७,२८

दास्यभावको महाजनगणने प्रीति नामसे कथन किया है, जो लोग भगवान्से अपनेको न्यून या हीन समझते हैं, वे भगवान्के अनुग्रह प्रार्थी हैं। भगवान् उनके आराध्य हैं, सेवाकी वस्तु हैं। प्रीति सेवा करके उनको तुष्ट करना पड़ता है। इस प्रकारके भावका नाम है दास्य रति। श्रीकृष्णमें आसक्ति, उनकी सेवाके सिवा अन्य कार्यमें अप्रीति, यही दास्य रतिका धर्म है।

ये स्युस्तुल्या मुकुन्दस्य ते सखायः सतां मताः।
सा स्याद्विश्रम्भरुपैषाँ रतिः सख्यमिहोच्यते॥
परिहास-प्रहासादिकारिणीयमयन्त्रणा॥

भ. र. सि. २.५.३०

जो अपनेको श्रीभगवान्के बराबर मानकर अभिमान करते हैं. उनको सखा बोलते हैं। उनकी श्रीकृष्णमें विश्वासमयी जो परम रति होती है, उसका नाम है सख्य रति। असङ्कुचित भावसे श्रीभगवान्के साथ परिहास, तथा उच्च हास्य, आदि सखा-भावके कार्य हैं।

गुरवो ये हरेरस्य ते पूज्या इति विश्रुताः।
अनुग्रहमयी तेषां रति र्वात्सल्यमुच्यते॥
इदं लालनभव्याशीश्चिबुक स्पर्शनादिकृत्॥

भ, र. सि. २.५.३३

जो अपनेको श्रीभगवान्का गुरुमानकर अभिमान करते हैं, श्रीकृष्ण उनके स्नेहकी वस्तु है, आदरके पात्र हैं, श्रीकृष्ण विषयमें उनकी जो अनुग्रहमयी रति होती है, उसका नाम वात्सल्य रति है। लालन-पालन, शुभाशीर्वाद करण, चिबुक स्पर्श आदिके द्वारा आदर सोहाग वात्सल्य रसकी चेष्टा है।

मधुर रति की बात प्रभुने अन्तमें कही।

मिथो हरेर्मृगाख्याश्च सम्भोगस्यादिकारणम्।
मधुरापर पर्याया प्रियताख्योदिता रति॥
अस्यां कटाक्ष भ्रूक्षेप प्रियवाणी स्मितादयः॥

भ. र. सि. २.५.३६.

श्रीकृष्णके साथ उनकी प्रेयसी भावमें भक्तका जो मधुर सम्बन्ध होता है, और उस प्रिय सम्बन्धके कारण परस्पर जो सम्भोग भाव होता है, उसका नाम मधुर रति है। श्रीकृष्णके साथ मधुर रसके भक्तोंका यह सम्भोग आठ प्रकारका होता है। यथा, स्मरण, कीर्तन, दर्शन, केलि, गुह्यभाषण, सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रियानिवृत्ति। कटाक्ष, भ्रूभङ्गी, प्रियवाणी और मन्दहास्य मधुर रसाश्रित भक्तोंकी चेष्टाएँ हैं।

भक्तिरस

प्रभु पञ्चविध भक्तोंके पञ्च प्रकारके रसोंकी बात बोल गये। अब इन पाँच प्रकारके भक्तिरसोंकी व्याख्या कर रहे हैं, शान्त रसके साधक गण श्रवण द्वारा अपना हृदय भक्तिरससे पूर्ण करते हैं। शान्त भक्तिरसमें परमात्मा, परब्रह्मादिके रूपमें प्रतीत होनेवाले चतुर्भुज नारायण रूपी श्रीकृष्ण, अथवा कृष्णभक्तकी कृपासे लब्धरति आत्माराम मुनिगण (सनकादि) और जो केवल मुक्तिके लिए भजन करते हैं, वे तापसगण आश्रयालम्बन हैं। शान्तरसमें महोपनिषद् श्रवण, तथा निर्जन स्थान सेवन आदि उद्दीपन हैं।

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम् ।
नीता चेतासि भक्तानां प्रीतभक्तिरसोमतः ॥

भ. र. सि. ३.२.३.

दास्य भक्तिरसमें प्रीतिका वाहुल्य देखनेमें आता है। दास्य भक्तिरसको प्रीति-भक्तरस भी कहते हैं। प्रीतिरति आत्मोचित विभागद्वारा भक्तहृदयमें आस्वाद्य होकर प्रीति भक्तिरसमें परिणत होती हैं।

इस प्रीति भक्तिरसमें ब्रजमें द्विभुज, अन्यत्र द्विभुज या चतुर्भुज ईश्वर परमाराध्य, तथा सर्वज्ञादि गुणोंसे युक्त श्रीकृष्ण विषयालम्बन होते हैं, हरिदास विशेषादि आश्रयालम्बन होते हैं। श्रीभगवान्‌की कृपा, चरणरज, भुक्तावशिष्टकी प्राप्ति, तथा उनके भक्तोंका सङ्ग आदि उद्दीपन हैं, सर्वापेक्षा उनकी आज्ञाका पालन, उनके भक्तोंके साथ मैत्री, उनमें अतिशय निष्ठा, तथा पूर्वोक्त नृत्यगीत आदि यथा-संभव अनुभाव हैं। स्तम्भादि अष्ट सात्त्विक भाव यथासंभव दृष्ट होते हैं। श्रम, मद, त्रास, अपस्मार, आलस्य, उग्र, अमर्ष, असूया और निद्रा आदि विभिन्न व्यभिचारी भाव भी दृष्ट होते हैं।

अब प्रभु सख्य भक्तिरसकी बात कर रहे हैं।

स्थायी भावो विभावाद्यैः सख्यमात्मोचितैरिह ।
नीतश्चित्ते सतां पुष्टिं रस प्रेयानुदीर्यते ॥

भ. र. सि. ३.३.१

स्थायी सख्यरति स्वयोग्य विभावादिके द्वारा जब भक्तके चित्तमें परिपुष्ट होती है तो उसको सख्य भक्तिरस कहते हैं। उसको प्रेयान् भक्तिरस भी कहते हैं।

सख्यरसमें विविध-भाषा-वेत्ता, सुवेष, अतिशय बलवान्, दयालु, वीर चूड़ामणि, बुद्धिमान्, क्षमाशील, सुखी आदि गुणोंसे युक्त पूर्ववत् द्विभुज और चतुर्भुज श्रीकृष्ण विषयालम्बन हैं। वय, रूप, शृङ्ग, वेणु, शङ्ख, विनोद, नर्म, विक्रम और उनके प्रेष्ठजन आदि उद्दीपन हैं। वाहु युद्ध, वाह्यवाहादि केलि, और परिहासादि अनुभाव हैं। इस सख्य रसमें सारे सात्त्विक भाव परिलक्षित होते हैं। उग्रता, त्रास और आलस्यके सिवा सारे व्यभिचारी भाव भी परिदृष्ट होते हैं।

विभावाद्येस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः ।
एष वत्सलनामात्र प्रोक्तो भक्तिरसो बुधैः ॥

भ. र. सि. ३.४.१

वात्सल्य भक्तिरस मधुर रसके नीचे अवस्थित है। वात्सल्य भक्तिरसमें ममता, स्नेह आदि गुण वर्तमान हैं। स्थायी भाव वात्सल्य रतिमें विभाव आदिके द्वारा जब भक्तचित्त परिपुष्ट होता है, तब हृदयमें जो रससृष्टि होती है, उसका नाम वात्सल्य भक्तिरस है। ऐसा पण्डित लोग कहते हैं।

श्याम अङ्गकी कान्तिके लिए सब प्रकारके सत् लक्षणोंसे युक्त, मृदु, प्रियवचन, सरल, सलज्ज, विनयी, मान्य आदिको मानकारी, और दाता आदि गुणोंसे युक्त श्रीकृष्ण इस वात्सल्य रसके विषयालम्बन हैं। माता-पिता आदि गुरुजन, इस रसके आश्रयालम्बन हैं। कुमारावस्था, रूप, वेष, शैशव, चापल्य, जल्पित और मन्दहसित आदि उद्दीपन हैं। मस्तक-घ्राण, करद्वारा अङ्ग मार्जन, आशीर्वाद, आदेश, लालन, प्रतिपालन और हितोपदेश, दान आदि अनुभाव हैं। इस वात्सल्य रसमें स्तम्भादि अष्ट तथा स्तन्यस्राव, कुल नव सात्त्विक भाव दृष्टिगोचर होते हैं।

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतां हृदि।
मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः॥

भ. र. सि. ३.५.१

मधुर रस सब रसोंमें श्रेष्ठ होता है। पण्डित लोग कहते हैं कि स्थायीभाव मधुर रति अपने अनुकूल विभावादिकोंके द्वारा भक्तके हृदयमें जब पुष्टिको प्राप्त होता हैं तो उसको मधुर भक्ति रस कहते हैं।

इस मधुर रसमें असमोर्द्ध सौन्दर्य, लीला और विदग्धताके आश्रय श्रीकृष्ण विषयालम्बन हैं। उनकी प्रेयसी वर्ग आश्रयालम्बन हैं। नव जलधर, मयूर-पिच्छ, मुरलीध्वनि आदि उद्दीपन हैं। कटाक्ष, मन्दहास्य आदि अनुभाव हैं; स्तम्भादि अष्ट सात्त्विक भाव तथा आलस्य और उग्रताके अतिरिक्त निर्वेदादि व्यभिचारी भाव इस मधुर रसमें परिलक्षित होते हैं। इस मधुर रतिसे बढ़कर न कोई रति है, न कोई रस है।

प्रभुने शान्त, दास्य, सख्य वात्सल्य तथा मधुर—इन पाँच रसोंकी बात कहकर सप्तविधि गौण रसोंके विषयमें कहने लगे। हास्य, अद्‌भुत, वीर, करुण, रौद्र वीभत्स और भय—ये सात प्रकारके गौणरस पञ्चविध भक्तोंमें परिदृष्ट होते हैं। शान्त आदि पाँच प्रकारकी रतिके आधार शान्तादि पाँच प्रकारके भक्तोंमें, हास्य आदि सात प्रकारकी गौण रति स्वानुकूल विभाव आदिके द्वारा हास्य आदि सप्त प्रकारके गौण रसरूपमें प्रकट होती है। शान्त आदि रति स्वयं संकुचित होकर विभावोत्कर्षजनित जिस भाव विशेष (हास-विस्मययादि) को अनुग्रहीत करती है, उस भावविशेषको गौणीरति कहते हैं। अतएव जैसे शान्त आदि रति कभी अपने आधारसे च्युत नहीं होती, उस प्रकारकी प्रकृति हास्यादि सप्तविध गौणी रतिकी नहीं है। ये किसी लीलाके सम्वन्धमें कुछ समय तक किसी-किसी भक्तमें स्थायी होकर रहती हैं, इसी कारण इनको आगन्तुक कहते हैं, इन गौण रसोंके लक्षण, आश्रय, आलम्वन, उद्दीपन आदि सब होते हैं। वे रस शास्त्रमें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। बाहुल्य भयसे यहाँ लिखे नहीं जाते।

अब प्रभु शान्तादि पञ्चविध स्थायी रसके भक्त महाजनगणके नाम बतलाते हैं।

श्रीमद्‌भागवतके एकादश स्कन्धमें उक्त कवि, हवि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन. आविर्होत्र, द्रविड़, चमश, और करभाजन नव योगेन्द्र हैं, ये शान्तभक्त हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, और सनत्कुमार ब्रह्माके चार मानसपुत्र भी शान्त भक्त हैं।

दास्य भावके भक्त सर्वत्र ही दृष्ट होते हैं, श्रीहनुमान विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। सख्य भावके भक्त श्रीकृष्णके ब्रजमें श्रीदाम, सुबल, मधुमंगल, आदि सखागण एवं द्वारकामें भीम और अर्जुन आदि हैं। श्रीभगवान्‌के वात्सल्य-भक्त माता-पिता तथा अन्यान्य गुरुजन, नन्द-यशोदा, उपानन्द आदि हैं। बजाङ्गनाएँ मधुर रसके मुख्य भक्त हैं, उनके अतिरिक्त महिषीगण और लक्ष्मीगग गौण भक्त हैं। ये लोग मधुर रसके भक्त होकर भी ब्रजाङ्गनाओंके तुल्य नहीं हैं।

अब प्रभु कहते हैं कि यह कृष्णभक्ति रस दो भागोंमें विभक्त है—(१) ऐश्वर्य ज्ञान मिश्र और (२) केवला। अनुरागात्मिका भक्ति शुद्ध और अहैतुकी होती है।

केवला भक्ति एकमात्र गोकुलमें ब्रजवासियोंमें विद्यमान है। जिस भावमें ऐश्वर्यका लेश भी नहीं होता, केवल अपना ममतामय सम्बन्ध सदा स्फुरित होता है, उसका नाम केवला रति है। इसका दूसरा नाम अनुरागात्मिका रति है। केवला रतिकी रीति है कि श्रीकृष्णके ऐश्वर्यको देखकर भी यह उसको नहीं मानती। किन्तु शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य रसमें ऐसी बात नहीं है। इसके उदाहरण स्वरूप कहते हैं कि कंस-वधके बाद श्रीकृष्ण और बलरामने वसुदेव और देवकीके चरणोंकी वन्दनाकी तो उनकी पुत्रबुद्धि नष्ट हो गयी, और श्रीकृष्णमें ईश्वरबुद्धि हो गयी; इसलिए पुत्रोंको उनने आलिंगन नहीं किया। (श्रीम. भा. १०.४४.५१)

श्रीकृष्णका विश्वरूप देखकर अर्जुनके भय हुआ और अपने सख्य भावकी धृष्टताके लिए क्षमा माँगी (गीता. ११.४१,४२)।

श्रीकृष्णने अब परिहासके रूपमें रुक्मिणीको परित्याग करनेका भय दिखलाया तो बहुत भयभीत होकर वे भूतलपर गिर पड़ी। उनके हाथका वलय, व्यजन आदि छूटकर पृथिवीपर गिर पड़े (श्रीम. भा. १०.६०.२४)। परन्तु यशोदाने श्रीकृष्णके अनेक अलौकिक कार्य देखकर भी, जो वेदमें इन्द्र, उपनिषदमें ब्रह्म, सांख्यमें पुरुष और भक्तिशास्त्रमें सात्वतगणके द्वारा भगवान् कहे जाते हैं, उस परब्रह्मरूप श्रीकृष्णको सामान्य पुत्र जानकर रज्जु द्वारा उलूखलमें बाँध दिया था (श्रीम. भा. १०.८.४५;१०.९.१४)। श्रीदाम आदि सखागण मित्रभावमें श्रीकृष्णके कन्धेपर चढ़कर घूमते थे (श्रीम. भा. १०.१८.२४)।

सौभाग्यवती ब्रजसुन्दरीगणने सौभाग्य गर्वमें गर्विता होकर श्रीकृष्णसे कहा था—

"न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः।

श्रीम. भा. १०.३०.३८

अर्थात् मैं चलनेमें अशक्त हूँ, मुझको जहाँ तुम्हारी इच्छा हो ले चलो। गोपियाँ श्रीकृष्णके रूप और प्रेममें मुग्ध होकर काम-तृप्तिके लिए रासमण्डलमें आकर श्रीकृष्णकी प्रीतिमें इतनी अधीरा हो गयी थी कि श्रीकृष्ण एकमात्र उनके ही हैं, इस प्रकारका उनको अभिमान हो गया था। दर्पहारी श्रीकृष्ण भगवान्ने उनका दर्प चूर्ण किया था। वे उनको छोड़कर अन्य एक गोपीके समीप अन्तर्धान हो गये। तब निगृहीत होकर ब्रजगोपियाँ विलाप करके कहने लगीं, 'हे अच्युत ! हम पति-पुत्रादिको विसर्जित करके तुम्हारे पास किसलिए आयी हैं, यह तुम जानते हो। हम तुम्हारे सङ्गीतपर मुग्ध हैं, तुम्हारे अपरूप रूपपर मुग्ध हैं। हे श्रेष्ठ ! जो अवला रातके समय स्वयं आती है, उसको कौन रसिक पुरुष प्रत्याख्यान करेगा (श्रीम. भा. १०.३१.१६) ?

प्रभुने बतलाया कि शान्त रसमें ऐश्वर्य कहाँ-कहाँ कृष्णनिष्ठताकी वृद्धि, तथा दास्य रसमें दास्य भक्तकी सेवाकी वृद्धि करता है। परन्तु वात्सल्य, सख्य और मधुर रसमें ऐश्वर्य माता-पितामें, सख्यवृन्दमें, तथा प्रेयसीवृन्दमें परमेश्वर बुद्धि उत्पादन करके स्वसम्बन्धको विस्मृत करके भाव संकोचन करता है। यह प्रभुने उदाहरणके द्वारा समझा दिया।

पुनः शान्तरसकी चर्चा चलाते हुए प्रभु बोले,

शमो मन्निष्ठतावृद्धेरिति श्रीभगवद्वचः।
तन्निष्ठा दुर्घटा बुद्धेरेतां शान्तिरतिं विना॥

भ. र. सि. ३.१.४७

पञ्चरसकी प्रकृतिभेदसे श्रीभगवान्‌में एक निष्ठताका नाम ही शान्त रस है। शान्त रसके बिना भगवान्‌में निष्ठाबुद्धि नहीं पैदा होती।

शान्तरसके दो गुण हैं, संसार-वासना परित्याग और भगवान्‌के चरणोंमें एकाग्रता। आकाशके गुण जैसे उत्तरोत्तर पञ्चभूतोंमें विद्यमान् हैं, उसी प्रकार शान्तरसके ये दो गुण अन्यान्य रसोंमें अवस्थित हैं।

प्रभु पर्याय क्रमसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य रसके सब गुणोंका वर्णन कर रहे हैं।

शान्तभक्तका स्वभाव है कि श्रीकृष्णमें उनकी ममता नाम मात्रकी भी नहीं होती। अर्थात् मेरे प्रभु, मेरे सखा, मेरे पुत्र, मेरे पति—इस प्रकारकी कोई उनकी ममता श्रीकृष्णमें नहीं होती है। वे केवल श्रीकृष्णको चिदानन्दमय स्वरूप जानते हैं, और उनके चिदैश्वर्यको अनुभव करके उनमें निष्ठा, तथा तदतिरिक्त वस्तुमें तृष्णाका त्याग करते हैं और शान्त-भक्त स्वर्ग और मोक्षको नरकके समान मानते हैं।

श्रीकृष्ण परम ऐश्वर्यपूर्ण प्रभु हैं, यह ज्ञान दास्य रसमें होता है। अतएव शान्तरसकी अपेक्षा प्रभु रूपमें श्रीकृष्णमें ममता रखना दास्य रतिका कार्य है। परन्तु श्रीकृष्णको प्रभु मानकर ममता रखनेमें ईश्वर ज्ञानजनित प्रचुर सम्मानका भाव रहता है, और उस दशामें अभीष्ट सेवामें सङ्कोच करना पड़ता है।

सख्यरस गौरव-सम्भ्रमहीन होता है। अतएव सख्यरसके भक्तोंकी श्रीकृष्णमें अधिक ममता होती है।

वात्सल्य रसमें श्रीकृष्णमें ममताका आधिक्य दीख पड़ता है। क्योंकि इसमें ताड़न, भर्त्सन, लालन, पालन सब होता है। इसी कारण वात्सल्य रसको अमृतके समान कहा है।

अब प्रभुकी अन्तिम बात मधुर रसके सम्बन्धमें है।

शान्तरस द्वारा ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता हैं, और अन्तःकरण निर्मल होता है। दास्यरति द्वारा "श्रीभगवान् षडैश्वर्य पूर्ण हैं, वे उपास्य हैं मैं उपासक हूँ"—यह ज्ञान उत्पन्न होता है। सख्यरति द्वारा, "श्रीभगवान् मेरे परम आत्मीय हैं, उनके सामने मेरा कोई संकोचका भाव नहीं है, अतएव उनके साथ हास-परिहास, क्रीड़ा-कौतुक आदि किया जा सकता है, वे प्रेमके पात्र हैं"—यह ज्ञान उत्पन्न होता है। वात्सल्य रति द्वारा, "श्रीभगवान् मेरे पुत्र हैं, अतएव प्रतिपाल्य बालक हैं, उनका मङ्गल-अमङ्गल मेरे ऊपर निर्भर करता है"—यह ममतापूर्ण ज्ञान पैदा होता है। परन्तु मधुर रतिमें केवल प्रीतियुक्त आत्म समर्पण होता है। कान्ताभावमें निजाङ्ग देकर सेवन एकमात्र केवल मधुर रस द्वारा सम्पन्न होता है, और "हे नाथ! मैं सर्वतोभावेन तुम्हारा ही हूँ।"—यह ज्ञान उत्पन्न होता है। मधुर रतिमें पञ्चविध भक्तिके पञ्चविध गुण विद्यमान रहते हैं, मधुर रतिमें सर्वभावोंका पर्यवसान होता है। इसमें पाँचों प्रकारके रस समभावमें स्थित होते हैं। अतएव मधुर रतिसे बढ़कर न कोई रति है, न कोई रस है। यह सब रसोंमें श्रेष्ठ है। इसीके द्वारा गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया था। परन्तु इस सर्वश्रेष्ठ रसके अधिकारी विरले ही होते हैं।

प्रभुने यह सारा रसतत्त्व श्रीरूपको समझाकर अन्तमें कहा—

एइ भक्तिरसेर कैल दिग्दर्शन।
इहार विस्तार मने करिह भावन॥

भाविते भाविते कृष्ण स्फुरये अन्तरे।
कृष्ण कृपाय अज्ञ पाय रस सिद्ध पारे॥

चै. च. म. १९.१९३,१९४

इतना कहकर करुणामय प्रभुने श्रीरूपको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया और शक्ति सञ्चार किया। श्रीरूपने प्रभुके चरणोंमें गिरकर हाथ जोड़कर रोते-रोते निवेदन किया, "हे प्रभु! तुमने बानरके गलेमें मुक्ताकी माला पहना दी। तुम्हारे उपदेशका मर्म मैं क्या जानूँ? मैं अति नीच, मूर्ख और अधम हूँ। तुमने जो मुझपर कृपा की है, यह तुम्हारी अपार करुणाका परिचायक है। तुम करुणामय हो, तुम्हारी करुणाका अन्त नहीं है, दयाकी सीमा नहीं है। मैं जीवाधम, अस्पृश्य पामर तुम्हारी अपार करुणाका मर्म क्या समझूँगा?" इतना कहकर श्रीरूप बालकके समान उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। भक्त-वत्सल प्रभुने उनको स्नेहमय वचनसे शान्त करके पुनः प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

श्रीरूपको वृन्दावन भेजना

प्रयागमें बैठकर प्रभुने अपने छ गोस्वामियोंमें अग्रणी श्रीरूप गोस्वामीको इस प्रकार भक्तितत्त्वकी शिक्षा देकर वहाँसे वाराणसी जानेका सङ्कल्प किया। वे श्रीवृन्दावनसे श्रीनीलाचलकी ओर लौट रहे थे। रास्तेमें प्रयाग तीर्थमें मकर स्नान करके काशी नगरीकी ओर प्रस्थान करेंगे। दूसरे दिन प्रभातमें उठकर अपने साथियोंको लेकर जैसे ही प्रभु चलनेको तैयार हुए, वैसे ही श्रीरूप आकर उनके चरणोंमें गिरकर रोते हुए बोले, "हे प्रभु! कृपानिधे! तुम्हारा वियोग मैं सहन नहीं कर सकूँगा। आदेश दें कि मैं भी आपके साथ चलूँ।" प्रभुने श्रीरूपकी ओर गम्भीर भावसे देखा। उनके श्रीवदनका भाव देखकर श्रीरूपका मुँह सूख गया। प्रभु कुछ रूखे स्वरमें बोले, "रूप! मेरा आदेश पालन करो। मेरा दर्शन पा गये हो, अब श्रीवृन्दावन जाओ, और अपना कर्त्तव्य पालन करो, जीवोंका मङ्गल साधन करो। पश्चात् एक बार श्रीवृन्दावनसे गौड़देश होते हुए नीलाचलमें आकर मुझसे मिलना।" इतना कहकर श्रीरूपको और कुछ कहनेका अवसर न देकर स्वतन्त्र पुरुष प्रभु उनको पुनः प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करते हुए झटपट नौकापर चढ़ गये। श्रीरूप मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पड़े।

उस दक्षिण देशके विप्रने बहुत कष्टपूर्वक श्रीरूपकी मूर्च्छा भङ्गकी—और परम आदरपूर्वक घर ले जाकर उनकी सेवा-सुश्रूषा की। दो एक दिन प्रयागमें रहकर श्रीरूप और उनके भाई अनुपम दोनोंने श्रीवृन्दावनकी यात्रा की।

प्रभुके द्वारा श्रीरूपकी यह शिक्षा सूत्ररूपमें वर्णित हुई हैं। इसी शिक्षारूप शक्ति सञ्चारके द्वारा कृपानिधि प्रभुने श्रीरूपके द्वारा भक्तिग्रन्थ लिखवाये थे। ये सारे निगूढ़ भक्तितत्त्व श्रीरूप गोस्वामी अपने ग्रन्थोंमें विस्तार रूपसे व्यक्त करके भक्ति-जगत्‌में जो रत्न छोड़ गये हैं, उनकी कोई तुलना नहीं है। कालके प्रभावसे श्रीकृष्णकी वृन्दावन-लीलाकी कथा लुप्तप्राय हो गयी थी, श्रीकृष्ण-लीला-स्थली भी लुप्त हो गयी थी। प्रभुने श्रीरूप-सनातनको निजशक्ति सञ्चार करके लुप्त तीर्थोंका उद्धार, तथा लुप्त पूर्व लीला-कथाओंका प्रचार करनेके लिए श्रीवृन्दावनमें भेजा था।

कालेन वृन्दावन केलिवार्त्ता
लुप्तेति तां ख्यापवितुं विशिष्य।
कृपामृतेनाभिषिषेच देव-
स्तत्रैव रूपञ्च सनातनञ्च॥

चै. च. ना. ९.३८

कृपालु पाठकवृन्द! लीला कथाके साथ-साथ तत्त्वकथाका भी कुछ-कुछ अनुशीलन करें। क्योंकि कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"तत्त्व बलि ना करहि अलस।"

तत्त्वके साथ लीला-रसका आस्वादन ही प्रकृत भजनका आदर्श है।

चौंतीसवाँ अध्याय

व्रजमें श्रीरूप और काशीधाममें श्रीसनातन

सनातन कहे—कृष्ण आमि नाहि जानि ।
आमार उद्धार-हेतु तोमार कृपा मानि ।।

चै. च- म. २०.५६

श्रीरूपका सुबुद्धि रायसे मिलन

प्रभुने अपने साथियोंको लेकर प्रयागसे काशीकी यात्रा की। श्रीरूप अपने भाई अनुपमको साथ लेकर व्रज पहुँचे। प्रभुके विरहमें वे विशेष कातर हुए, किन्तु उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके व्रजमें जाकर कठोर वैराग्य अवलम्बन करके भजन करने लगे।

श्रीरूप जब मथुरा पहुँचे, प्रभुकी इच्छासे ध्रुव घाटपर उनको सुबुद्धि रायके साथ भेंट हो गयी। (चै० च० म० २५.१३९)

सुबुद्धि रायकी कथा

ये सुबुद्धि राय पहले गौड़ देशके राजा थे। अब भिखारीके वेषमें प्रभुके आदेशसे व्रजमें वास करके हरिभजन करते थे। सुबुद्धि रायका वृत्तान्त सुनिये।

सुबुद्धि राय जब गौड़ देशके राजा थे, उस समय हुसेन सा उनके अधीन एक उच्च कर्मचारी थे। राजा सुबुद्धि राय परम भगवद्भक्त थे। पोखरा खुदवानेमें, देवमन्दिर प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्योंमें वे बहुत धन व्यय करते थे। एक बड़ा पोखरा खुदवानेका भार उन्होंने हुसेन सा के ऊपर दिया। यह कार्य हुसेन सा भलीभाँति सम्पादित नहीं कर पाया। उसने कृपणता करके कार्यको नष्ट कर दिया। इससे राजा सुबुद्धि रायने क्रुद्ध होकर उसको अपने हाथों बेंतसे पीटा। हुसेन सा-ने राजदण्ड सहन किया, परन्तु उनकी पीठपर चोटका चिह्न रह ही गया। कुछ दिनके बाद गौड़में हिन्दू राजत्व समाप्त हो गया। दिल्लीके बादशाहने गौड़पर अधिकार करके हुसेन साको गौड़का राजा बना दिया। सुबुद्धि रायका राज चला गया, परन्तु वे मुसलमान राजा हुसेन साके अधीन उच्च पदपर काम करने लगे। उनको राजमन्त्रीका पद प्राप्त हुआ। हुसेन सा गौड़का बादशाह हो गया। वह स्वयं सुबुद्धि रायका बहुत सम्मान करता था, और लोगोंके सामने सर्वदा उनका सम्मान बढ़ाता था।

"सुबुद्धि रायेरे तिहों बहु बाड़ाइल।"

चै० च० म० २५.१४२

एक दिन हुसेन साकी बेगमने अपने पतिकी पीठपर बेत्राघातका चिह्न देखकर पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि सुबुद्धि रायने उनको बेंत मारा था और उसीका यह चिह्न है। स्त्रीबुद्धि प्रलयङ्कारी होती है। उसके मनमें प्रतिहिंसाकी आग जल उठी। वह सुबुद्धि रायको मरवा डालनेके लिए पतिको वारंवार अनुरोध, उपरोध और उत्तेजित करने लगी। हुसेन सा धर्मभीरु और भला आदमी था, उसने अपनी स्त्रीको समझाकर कहा कि राजा सुबुद्धि रायने पूर्वकालमें हमारा पालन किया है, पिताके समान पूज्य है, उसको मैं कैसे मरवा सकता हूँ? यह तो अच्छी बात नहीं है। उनकी बेगमके हृदयमें प्रतिहिंसाकी आग जल रही थी। उसने पतिकी बात न सुनी। उसने बहुत अनुनय विनय करके अपने पतिसे कहा, "यदि तुम उसका प्राण नहीं लेना चाहते हो तो उसकी जाति ले लो।"

हुसेन सा बड़ी विपद्में पड़े। वे जानते थे कि सुबुद्धि राय परम हिन्दू हैं, जाति चली जानेपर वह मर जायगा। उन्होंने अपनी बेगमको यह बात खोलकर कह दिया—परन्तु उनकी दुष्टा स्त्रीका मन कदापि न टला। वह किसी प्रकार भी उसको शान्त न कर सकनेके कारण लाचार होकर—

"करोयार पानि तार मुखे दे पाइला।"

चै. च. म. २५.१४६.

सुबुद्धिरायकी जाति चली गयी, उनका सर्वनाश हो गया। जातिच्युत होकर समाजमें रहनेकी अपेक्षा मर जाना मङ्गलप्रद समझकर वह समस्त विषय-वैभवकी माया छोड़कर वैराग्य ग्रहण करके गौड़ देशको छोड़कर निकल पड़े। उन्होंने काशीकी यात्रा की। काशीमें जाकर पण्डितोंसे इस पापकी व्यवस्था ली। उन्होंने व्यवस्था दी कि "उत्तप्त घी पान करके प्राण त्याग करो।"

सुबुद्धिराम प्रायश्चित्त व्यवस्था सुनकर हतप्रभ हो उठे। श्रीगौर-भगवान्ने कृपा करके उनको सुबुद्धि दी। वे गौड़के राजा थे, उन्होंने नदियाके अवतारका नाम सुना था। उन्होंने यह भी सुना कि वे काशीधाममें उपस्थित हैं। और किसीको कुछ न कहकर वे सीधे प्रभुके शरणापन्न हुए। सारी बात प्रभुके चरणोंमें निवेदन करके रोते-रोते उनसे उपदेशकी प्रार्थना की। कृपानिधि प्रभुने उनको समुचित सम्मान प्रदान कर पास बैठाया। परम आदर पूर्वक मधुर वचनोंसे कहा—

—"इहाँ हैते जाह वृन्दावन।
निरन्तर कर कृष्णनाम-सङ्कीर्तन ॥
एक नामाभासे तोमार पाप दोष जाबे।
आर नाम हैते कृष्ण चरण पाइबे॥

चै. च. म. २५.१५१,१५२

पतित-पावन प्रभुके श्रीमुखसे प्रायश्चित्तकी व्यवस्था सुनकर सुबुद्धिराम आनन्दमें गद्गद् होकर उनके चरणोंमें गिरकर अजस्त्र आँसू बहाने लगे। प्रभुने मधुर वचनोंसे उनको शान्त किया। प्रभुकी कृपासे तत्काल उनके सारे पाप ध्वंस हो गये। इसके बाद वे प्रयाग, अयोध्या, नैमिषारण्य आदि तीर्थोंमें परिभ्रमण करते हुए मथुरा धाममें जा उपस्थित हुए। वाराणसीसे प्रभु वृन्दावन दर्शन करके प्रयाग लौट चुके थे।

श्रीधाममें आकर सबसे पहले सुबुद्धि रायने प्रभुका पता लगाया। उनको वहाँ न देखकर बहुत दुःखित हुए। कठोर वैराग्य अवलम्बन करके वे श्रीमथुरा धाममें बस गये। कविराज गोस्वामीने उनके वैराग्य और वैष्णव-सेवाके सम्बन्धमें लिखा है—

राय शुष्क काष्ठ आनि बेचे मथुराते।
पाँच छय पैसा पाय एक-एक बोझाते॥
आपने रहे एक पैसार चाना चाबाना खाइया।
आर पैसा वानिया स्थाने राखेन धरिया॥
दुःखी वैष्णव देखि करान भोजन।
गौड़िया आइले दधिभात तैल मर्द्दन॥

चै. च. म. २५.१५६-१५८

'जीवे दया नामे रुचि वैष्णव सेवन'—प्रभुका यह उपदेश वे ठीक-ठीक पालन करने लगे।

प्रभुकी कृपासे उसी समय सुबुद्धिरायके साथ श्रीरूप गोस्वामीका मिलन हुआ। श्रीरूप गोस्वामीका सङ्ग पाकर वे कृतार्थ हो गये। सुबुद्धिरायके साथ उन्होंने द्वादश बन परिभ्रमण किया।

सुबुद्धिराय इस प्रकार श्रीरूप-गोस्वामीके अनुग्रह भाजन हो गये। प्रभुकी कृपासे वे पीछे श्रीसनातन गोस्वामीके भी कृपा पात्र हो गये। सुबुद्धिरायने बहुत यत्न से श्रीसनातन गोस्वामीको अपने पास रखनेकी चेष्टा की थी, परन्तु वे एक स्थानमें नहीं रहते थे। वे महाविरक्त वैष्णव संन्यासी थे वे स्नेह—आदरके वशीभूत क्यों होंगे? कविराज गोस्वामीने लिखा है—

सुबुद्धि राय बहु स्नेह करे सनातने।
व्यवहार स्नेह सनातन नाहि माने॥
महाविरक्त सनातन भ्रमे बने बने।
प्रति वृक्षे प्रति कुञ्जे रहे रात्रि दिने॥
मथुरा माहात्म्य शास्त्र संग्रह करिया।
लुप्ततीर्थ प्रकट कैला बने ते भ्रमिया॥

चै. च. म. २५.१६५-१६७

सुबुद्धिरायके द्वारा प्रभुने दिखलाया कि कलिके जीवके पापका प्रायश्चित्त करनेके लिए स्मृति शास्त्रकी व्यवस्था लेनेकी आवश्यकता नहीं है। कलिग्रस्त जीवके पापका प्रायश्चित्त एक मात्र नाम संकीर्तन है। पाप, चाहे जानबूझकर ही क्यों न हो, उसके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था तप्त तेल भक्षण नहीं है। एकमात्र हरिनाम, कृष्णनाम, गौरनाम कीर्तनमें ही कलिके जीवके सब पापोंका पूर्ण प्रायाश्चित्त है। प्रभुका उपदेश है, हे गौर-भक्तवृन्द! अपने-अपने हृदयमें स्वर्णाक्षरोंमें लिख रक्खो। उन्होंने सुबुद्धिरामसे कहा था—

एक नामाभासे तोमार पाप दोष जावे।
आर नाम हैते कृष्णचरण पाइबे॥

चै.च. म. २५.१५२

सुबुद्धिरायको सुबुद्धि हो गयी थी, इसी कारण उन्होंने प्रभुके चरणोंमें शरण ली थी। इसका फल उनको हाथों हाथ मिल गया। कलिके जीवोंको सुबुद्धिरायके समान सुबुद्धि हो। इससे ही उनके सारे पाप नष्ट हो जाँयगे।

काशीधाममें प्रभु

प्रभु काशीधाममें आ गये। जिस दिन वे काशीमें आये, उसके पहले दिन रातमें प्रभुके काशीवासी भक्त चन्द्रशेखरने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि प्रभु उनके घर आ गये हैं। वे प्रातः काल उठकर नगरके बाहर आकर प्रभुकी प्रतीक्षामें राह देखते हुए खड़े हो गये। अकस्मात् प्रभुको देखकर उनके चरणोंमें गिरकर रोने लगे। उनके आनन्दकी सीमा न रही। वे प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त थे, जातिके वैद्य थे। काशीवास करते थे। प्रभुके पादपद्मका ध्यान करते थे, और उनका गुणगान करते थे। प्रभुने कृपा करके स्वप्नमें उनको दर्शन दिया था, अव अकस्मात् साक्षात् दर्शन दिया। चन्द्रशेखरको मानो आकाशका चाँद हाथ लगा। परम आनन्दपूर्वक वे प्रभुको अपने घर ले गये।

तपन मिश्र प्रभुका शुभागमन सुनकर चन्द्रशेखरके घर दौड़े आये, और उनके चरणोंमें गिर पड़े। दयानिधि प्रभुने अपने भक्तको मधुर वचनसे सन्तुष्ट किया। तपन मिश्रने प्रभुको निमन्त्रित किया और प्रभुके चरण पकड़कर बोले—

एक भिक्षा मागि मोरे देह कृपा करि।
यावत् तोमार हये काशीपुरे स्थिति॥
मोर घरे बिना भिक्षा ना करिवे कति॥

चै च. म. १९.२०७,२०८

प्रभुने पहले तपन मिश्रके घर बासा किया था, और उनका निमन्त्रण स्वीकार किया था। इस बार वासा किया चन्द्रशेखरके यहाँ और भिक्षाका निमन्त्रण स्वीकार किया तपन मिश्रका। क्योंकि काशीमें उनको थोड़े ही रहना था और उन्होंने काशीवासी किसी संन्यासीके घर भिक्षा न लेने का सङ्कल्प कर लिया था।

प्रभु जानेन दिन-पाँच-सात से रहिब।
संन्यासीर सङ्गे भिक्षा काहों ना करिब॥
एत जानि तार भिक्षा कैल अंगीकार।
वासा-निष्ठा कैल—चन्द्रशेखेर घर॥

चै.च. म. १९.२०९,२१०

वे महाराष्ट्र विप्र भी आकर प्रभुसे मिले। प्रभुने उनके ऊपर कृपा की। प्रभुका यह द्वितीय बार काशीधाममें आना हुआ था। काशीवासी वैष्णवोंको जब मालूम हुआ कि प्रभु आये हैं तो सबने आकर प्रभुका दर्शन किया।

श्रीसनातनकी कारागारमें मुक्ति और वाराणसी यात्रा।

पहले कहा जा चुका है कि श्रीसनातन कारागृहमें वन्द थे। श्रीरूप उनको कारागृहसे छुड़ानेके लिए दस सहस्र स्वर्णमुद्रा एक मोदीके पास धरोहर रखकर आये थे। यह बात पत्रके द्वारा उनको सूचित की थी। कारागृहमें श्रीसनातन श्रीरूपके इस पत्रको पाकर अतिशय आनन्दित हुए। उन्होंने कारागृह अधिकारीको चुपकेसे कहा—"तुम महापुण्यवान जिन्दापीर (सिद्ध महापुरुष) हो। तुमको अपने धर्मशास्त्र कुरानका अच्छा ज्ञान है। एक बन्दीको वन्धनमुक्त करनेवालेको भगवान संसार-बन्धनसे मुक्त कर देते हैं। पूर्वकालमें मैंने तुम्हारा उपकार किया है, अब तुम मुझे बन्धन-मुक्त करदो तो प्रत्युपकार भी होगा और तुमको पाँच सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी प्राप्त होगी। पुण्य-लाभ और अर्थ लाभ दोनों होंगे।

कारागृहका रक्षक मुसलमान स्वधर्मनिष्ठ और शास्त्रमें पण्डित था। उसको श्रीसनातनने जिन्दापीर कहा था। जिन्दापीर शब्दका अर्थ है जीवित पीर अर्थात् सिद्ध व्यक्ति। वह बोला, "महाशय! मैं बादशाहसे बहुत डरता हूँ। यह कार्य मुझसे न होगा।" श्रीसनातन बोले, "बादशाह दक्षिण देश गया है, बहुत दिनोंके बाद जब दक्षिण देशसे लौटे तो कह देना—"वह शौचादिके लिए गङ्गा किनारेकी तरफ गया था। वहाँ गङ्गामें बेड़ी पहिने ही कूद पड़ा और डूब मरा लगता है, कहीं उसका पता नहीं लगा।" श्रीसनातनने आश्वासन दिया—"तुम डरो मत, मैं इस देशमें नहीं रहूँगा, फकीर होकर मक्का चला जाऊँगा।"

कारागृहका रक्षक मुसलमान सीधा आदमी था। यह बात कहे बिना उसको भुलावेमें डालना कठिन था। श्रीसनातन हिन्दू थे, यह सब जानते थे। वे मुसलमान होकर मुसलमानके तीर्थ मक्कामें जाँयगे—यह बात सुनकर वह गवाँर मुसलमान बड़ा खुश होगा और इस कार्यमें अवश्य सहायता करेगा—ऐसा विचारकर चतुर राजमन्त्रीने इस समय राजनीतिका आश्रम लिया, परन्तु कारागृहके रक्षकका मन इससे भी प्रसन्न न हुआ। उस दिन रातमें सनातनने एक और जाल बिछाया। उन्होंने सात हजार स्वर्णमुद्रा मंगा करके काराध्यक्षके सामने रखखा। जिन्दापीर कारारक्षक इस बार स्वर्ण मुद्राका लोभ संवरण न कर सका। श्रीसनातन तत्काल कारामुक्त हो गये। उनको रातमें नौका करके गङ्गापार कर दिया। श्रीसनातनके साथ उनका पुराना नौकर ईशान भी चला।

उन दिनों गौड़ नगरके किलेके द्वारसे दिल्लीकी ओर जाने वाले प्रशस्त राजपथको साधारण लोग गढ़ी द्वार कहते थे। श्रीसनातन गङ्गापार करके गड़ी द्वारसे नहीं गये। क्योंकि भय था कि कहीं पीछे फिर पकड़े न जाँय। वे अन्यमार्गसे दिनरात चलकर पातड़ा पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँके जमीदारकी सहायतासे पर्वत पार किया।

ईशानके पास आठ सोनेके मुहर थे। उसे वह छिपाकर साथ लाया था। जमीदारने उसे देखा था। अर्थके लोभ से वह जमीदार श्रीसनातनको रातमें अपने आदमियोंके द्वारा पर्वतको पार कराना चाहता था। दो दिन श्रीसनातनको भोजन नहीं मिला था, जिसकी उन्हें कोई चिन्ता न थी। परन्तु उस जमीदारने उनके लिए बहुत यत्नपूर्वक रसोईका प्रबन्ध कर दिया था। श्रीसनातनने नदीमें स्नान करके उस पर्वतपर उस दिन रन्धन करके भोजन किया। वे मन ही मन सोचने लगे कि यह जमीदार इतनी आवभगत क्यों कर रहा है। यह सोचकर उन्होंने ईशानसे पूछा—"क्या तुम्हारे पास कुछ है?" सरल स्वभावका ईशान निष्कपट भावसे बोला—"मेरे पास सात मुहर है।" यह सुनकर श्रीसनातनने ईशानको खूब फटकार कर कहा—

सङ्गे केन आनियाछ एइ काल यम।
चै. च. म. २०.२४

इतना कहकर उन्होंने उसके हाथसे सात मुहर लेकर उस अर्थलोभी जमीदारको देकर मधुर वचनोंसे कहा—"ये सात मोहरें हमारे पास हैं। इनको लेकर धर्म समझकर हमको पर्वत पार करा दो। राजबन्दी होनेके कारण मैं गढ़द्वार मार्गसे जा नहीं सकता। पर्वत पार करानेसे तुमको बहुत पुण्य होगा।"

तब वह जमींदार हँसते-हँसते बोला—"मुझे पहले ही ज्ञात हो गया था कि तुम्हारे इस नौकरके पास आठ सुवर्ण मोहर है, इस मोहरके लिए आज रातमें तुम लोगोंको मरवा डालनेका विचार किया था। तुमने यह जो बता दिया, इससे बड़ा कल्याण हुआ। नर हत्याके पापसे मुझे त्राण मिला। मैं तुम्हारे व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हूँ। मैं तुमसे कुछ भी न लूंगा, केवल धर्मके लिए पर्वत पार करा दूँगा।"

श्रीसनातनने समझाया कि अर्थलोभसे कोई भी हमारा प्राण ले सकता है, अतएव आप इसे ले ले, और लेकर हमारी प्राण-रक्षा करें।"

उन्होंने उस अर्थलोभी जमीदारको सात मोहर दे दी। जमींदारने उनके साथ चार रक्षक लगाकर उन्हें पर्वत पार करा दिया। पर्वत पार होकर श्रीसनातनने ईशानसे कहा—"तुम्हारे पास और क्या है, सच बतलाओ।" ईशानने उत्तर दिया—"केवल एक मोहर और है।" श्रीसनातन बोले—"श्रीवृन्दावन जानेका राहका संवल मोहर नहीं है, तुम इस एक मोहरके साथ घर लौट जाओ।"

इतना कहकर श्री सनातन ईशानको वहाँसे विदा करके अकेले चले। उनके हाथमें मिट्टीका करङ्ग और गात्रमें छिन्न कन्था, और परिधानमें कौपीन था, उनको अब भय किस बातका था?

उनको दिशा-ज्ञान न रहा, आहार-निद्राका प्रयोजन न था, वे दिन-रात रास्ता चलते रहे। गौर प्रेममें मत्त होकर वे श्रीवृन्दावनके रास्तेपर चले जा रहे थे। रास्तेमें जिस किसीको देखते, उसीसे पूछते—"क्या आप बतला सकते हैं? एक नवीन संन्यासी, कच्चे सोने जैसा वर्ण, साढ़े चार हाथ लम्बी सुन्दर देह, मस्तक मुण्डित, कोपीन पहने, श्रीमुखसे सर्वदा 'हरे कृष्ण' नाम लेते इस रास्तेसे गये हैं? उनको क्या आपने देखा है?" कोई उनकी बातका उत्तर नहीं दे पाता। क्योंकि प्रभु उस रास्तेसे नहीं गये थे। जिस मार्गसे जिस देशमें, जिस ग्रामसे प्रभु एक बार गये, उस देशके लोग क्या उनको भूल सकते थे? श्रीसनातन केवल दौड़ रहे थे, गौर दर्शनमें उनकी अपार उत्कण्ठा थी, अनन्त चेष्टा थी, उनका चित्त कदापि शान्त नहीं हो रहा था। कहीं भी उनका मन रुकता नहीं था।

इस प्रकार चलते-चलते वे हाजीपुर जा पहुँचे और वहाँ पहुँचकर सन्ध्याके समय एक उद्यानमें बैठ गये।

हाजीपुरमें उनके एक बहनोई राजकीय कार्यके उपलक्ष्यमें रहा करते थे। उनका नाम था श्रीकान्त। वे भी गौड़के बादशाहके वेतन भोगी कर्मचारी थे। बादशाहने उनको घोड़ा खरीदनेके लिए तीन लाख रुपया देकर हाजीपूरमें भेज रक्खा था। वहाँ रहकर वे घोड़ा चालान करते थे। श्रीकान्त उसी उद्यानमें थे। अपने कमरेसे श्रीसनातनका कण्ठ स्वर सुनकर उन्होंने उनको पहचान लिया था। वे उच्च स्वरमें "हा गौराङ्ग" कहकर रो रहे थे।

रातमें एक आदमीको साथ लेकर श्रीकान्तने उद्यानमें आकर अपने सालेसे भेंट की। श्रीकान्त जानते थे कि श्रीसनातन राजाके कारागृहमें बन्दी थे। उनको हाजीपूर इस अवस्थामें देखकर रो

पड़े। राजमन्त्री सनातन इस समय छिन्न कन्था-करङ्ग-कोपीनधारी होकर पथके भिखारी हो गये हैं, यह उनको कहाँ तक सहन हो सकता था ? श्रीसनातनने अपनी कहानी अपने बहनोईको कह सुनायी। श्रीकान्तने उनको बहुत समझाया बुझाया। बहुत दुखः प्रकट किया, परन्तु श्रीसनातन कदापि शान्त न हुए। कुछ भी उनकी बातपर ध्यान न दिया। श्रीकान्तने कहा—

एहेन सुखेर देहे एतेक कलेश।
केमने सहिव ए दुःखेर नाहिं शेष॥
वैराग्य ना कर गृहे वसि कृष्ण भज।
आइस आइस गृहे मलिन वस्त्र त्यज॥

भक्तमाल।

श्रीसनातन बोले—एक क्षणके लिए भी मैं यहाँ न ठहरूँगा। आप कृपा करके मुझको गङ्गा पार करा दें, मैं अभी जाऊँगा।"

श्रीकान्तने तब समझा कि, इनको घर ले जानेकी चेष्टा करना व्यर्थहै, इस उत्कट वैराग्यको मैं कदापि निवारण न कर सकूँगा। यह सोचकर उन्होंने और कुछ नहीं कहा।

उस समय शीत काल था। हाजीपूर पश्चिमाञ्चलमें है, वहाँ भीषण सर्दी पड़ती है। श्रीकान्तने श्रीसनातनको शीत निवारणके लिए एक जोड़ा शाल लाकर दिया। उन्होंने हँसंकर उसे दूर कर दिया। तब श्रीकान्तने एक अच्छी वानात लाकर दी, परन्तु श्रीसनातनने उसे भी नहीं लिया। श्रीकान्तने तब मन ही मन विचार करके एक भोट कम्बल लाकर सनातनको दी, और रोते-रोते बोले, यह कम्बल ले लीजिये, इस देशमें बड़ा जाड़ा पड़ता है, रास्तेमें आपको जाड़ेमें बड़ा कष्ट होगा। लाचार अपने बहनोईको तुष्ट करनेके लिए श्रीसनातनने भोट कम्बल ले लिया। और तत्काल वहाँसे उठे। उसी रातको श्रीकान्तने उनको गङ्गा पार करा दिया।

गङ्गा पार होकर श्रीसनातन काशीधामकी ओर बढ़े। उनके मुँहसे केवल एक बात निकल रही थी—"हा गौराङ्ग कृपानिधे! तुम कहाँ हो ? एक बार दर्शन दो। उनकी आँखोंकी अश्रुधारासे वक्षःस्थल डूब रहा था, वे पागलके समान रास्तेपर चले जा रहे थे। दो-दो, तीन-तीन, दिनके बाद वे कदाचित आहार करते थे। उनको आहार-निद्राकी चेष्टा ही नहीं हो रही थी। गौर-प्रेममें उन्मत्त होकर वे चले जा रहे थे।

काशीधाममें श्रीसनातन और प्रभुसे साक्षात्कार

कई दिनके बाद वे काशी धाममें जा पहुँचे। सारी काशी नगरी भ्रमण करके उन्होंने अपने इष्टदेवकी खोज की। उनकी आँखोंसे झर-झर अश्रुधारा बह रही थी। फकीरके समान वेष था। दाढ़ी-मोंछ, केश, नख आदि बहुत बढ़ गये थे, एक मैला कौपीन पहने थे, भोट कम्बल कन्धेपर था। काशीमें रास्ते-रास्ते"

श्रीचैतन्य बलिया पुकारे बारबार।
गद्‌गद भावे वहे गलदश्रुधार॥
जारे तारे पूछे भाइ गौराङ्ग सुन्दर।
केह देखियाछ कोथा गुणेर सागर॥

भक्तमाल

उन्मत्तके समान श्रीसनातन इसी प्रकार सारी काशी नगरीमें खोजते हुए घूम रहे थे। अन्तमें उन्होंने सुना कि चन्द्रशेखरके घर एक नवीन संन्यासी विराजमान हैं। वे दौड़ते हुए वहाँ जा पहुँचे, जाकर दरवाजेपर बैठ गये। भीतर जानेका साहस न हुआ, क्योंकि वे अपनेको नीच, अधम, अस्पृश्य समझते थे।

अन्तर्यामी प्रभु जान गये कि सनातन बाहर द्वारपर बैठे हैं, उन्होंने चन्द्रशेखरसे कहा देखो जो बाहर एक वैष्णव बैठा हुआ हैं,

उसको यहाँ ले आओ।" चन्द्रशेखरने जाकर बाहर द्वारपर देखा कि वहाँ कोई वैष्णव नहीं है, एक दरवेश फकीर बैठा है। उन्होंने आकर यह बात प्रभुसे कही। प्रभुने हँसकर कहा—"उसी दरवेशको मेरे पास यहाँ लाओ।"

श्रीसनातनने प्रभुकी आज्ञा प्राप्त कर आनन्दमें गद्गद होकर प्रभुके शिव-विरञ्चि-वन्दित चरणोंका दर्शन करनेके लिए चन्द्रशेखरके साथ घरके भीतर प्रवेश किया। उनको आङ्गनमें देखते ही भक्तवत्सल प्रभु अपना आसन छोड़कर आगे दौड़कर उनको पकड़कर प्रेमाविष्ट होकर एकबारगी गाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध कर लिया। प्रभुने सनातनको दण्ड-प्रणाम करनेका अवसर ही नहीं दिया।

श्रीसनातन प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे पुलकित होकर केवल रोते हुए बोले—"हे प्रभु! हे कृपानिधे! मैं नीच हूँ, अस्पृश्य हूँ। मैं आपके स्पर्श योग्य नहीं हूँ। कृपा करके मुझको छोड़ दीजिये, मत छूइये।"

श्रीभगवान् अपने भक्तसे किस भावमें मिलते हैं, वे भक्तको कितना प्यार करते हैं, यह बात कृपालु पाठकवृन्द! गौराङ्ग-सनातन-मिलन देख कर समझ लें। ऋषि महाजनगण भी साध पूर्वक कह गये हैं कि श्रीभगवान्‌के लिए भक्तके समान प्रिय वस्तु और कुछ नहीं है। श्रीभगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कहा है कि 'मद्भक्त पूजाभ्यधिका' (श्रीम. भा. ११.१९.२१) अर्थात् मेरी पूजाकी अपेक्षा मेरे भक्तकी पूजा अतिशय श्रेष्ठ है। उन्होंने उद्धवसे कहा है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च संकर्षणो न श्रीर्मेवात्मा च यथा भवान्॥

श्रीम. भा. ११.१४ १५

अर्थ—हे उद्धव! मुझको भक्त जैसे प्रियतम है, ब्रह्मा पुत्र होकर भी, शङ्कर स्वरूपभूत होकर भी, सङ्कर्षण भ्राता होकर भी लक्ष्मी भार्या होकर भी उतने प्रिय नहीं हैं। और क्या? मेरी आत्मा भी उतनी प्रिय नहीं।

भक्त-भगवान्‌का यह मिलन बड़ा ही मधुमय है। दोनों आदमी मिलकर गलेसे गला मिलाकर प्रेमाश्रु-वर्षण कर रहे हैं। दोनोंके नयन-जलसे दोनोंके अङ्ग सिंचित हो रहे हैं। चन्द्रशेखर यह देखकर चकित हो गये।

प्रभुने जब श्रीसनातनको प्रेमालिङ्गनसे मुक्त किया तो वे

दुइ गोछा तृण करे, एक गोछा दन्ते धरे,
पड़िला गौराङ्ग राङ्गा पाय।

तब चन्द्रशेखरने उनको देखा कि,

दु नयने शत धारा, राज दण्डीजन पारा,
अपराधी आपना मानय॥

(भक्तमाल)

श्रीसनातनने प्रभुके आलिङ्गनसे मुक्त होकर हाथ जोड़कर रोते-रोते उनके चरणोंमें गिरकर निवेदन किया—

तोमार चरण नाहि, अजि मोर गति एहि,
संसार भ्रमणे सदा फिरि।
कदर्य विषय भोग, कामादिषड़ वर्ग योग,
ताहे भ्रमि सुख बुद्धि करि॥
नीच सङ्गे सदा स्थिति, नीच व्यवहारे मति,
नीच कर्मे सदाइ उल्लास।
ए हेन दुर्लभ जन्म, पाइया कि कैनु कर्म्म,
केवल हइल उपहास॥
शरण लइनु प्रभु, हे नाथ गौराङ्ग विभु,
करुणा कटाक्ष मोरे कर।
ओ राङ्गा चरणे मति, त्रैलोक्येर सार गति,
ए अधम जनारे विचार॥

(भक्तमाल)

प्रभु सनातनके दैन्य और आर्त्त भावको देखकर नयन जल संवरण न कर सके। पुनः दौड़कर परम

प्रेममें भरकर श्रीसनातनको प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध करना चाहा, पर सनातन प्रभुको अपना अङ्ग स्पर्श करनेसे रोकते हुए रोते-रोते बोले, "हे प्रभु ! हे कृपामय ! कृपा करके अङ्ग स्पर्श न करें। मेरा यह अपवित्र शरीर आपके स्पर्श योग्य कदापि नहीं है।" यथा,

सनातनेर आर्त्तनाद, शुनिया दैन्य विषाद;
छल छल प्रभुर नयन।
आलिंगन दिते चाय, सनातन पिछे धाय,
कहे मोरे ना कर स्पर्शन।
तोमा स्पर्श योग्य प्रभु, मुञि छार नहि कभु,
घृणास्पदमय एइ देह।
पापमय सुकदर्य, साधुर सभाव वर्ज्य,
मोरे स्पर्श कभू ना करह ॥

भक्तमाल

भक्तवत्सल श्रीगौरभगवान्‌ने सनातनकी बात न सुनी। वे परम समादरपूर्वक अतिशय स्नेहसे अपने श्रीहस्तमें उनका श्रीहस्त धारण करके सनातनको अपने पास पीढ़ाके ऊपर बैठाया। बैठाकर प्रभु श्रीहस्तसे स्वयं उनका मलिन गात्र मार्जन करने लगे। सनातन बड़ी विपदमें पड़कर उच्च स्वरसे रोते हुए कहने लगे—'हे प्रभु ! मैं अत्यन्त नीच हूँ, अस्पृश्य हूँ, आप कृपा करके मुझको न छूइये (चै. च. म. २०.५३,५४)।"

प्रभु कहे सनातन, दैन्य कर संवरण,
तोर दैन्ये फाटे मोर बुक।
कृष्ण जे दयाल हय, भाल मन्द ना गणय,
हइल जे तोमार सन्मुख ॥
कृष्णकृपा तोमा परि, जतेक कहिते नारि,
उद्धारिला विषय कूपेते।
निष्पाप तोमार देह, कृष्ण भक्ति मति अह,
तोमा स्पर्शि पवित्र हइते ॥

(भक्तमाल)

इतना कहकर भक्तवत्सल प्रभुने निम्नलिखित तीन शास्त्रवचन उद्धृत किये—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो।
तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता ॥

श्रीम. भा. १.१३.१०

अर्थ—युधिष्ठिरने विदुरसे कहा—"हे प्रभो ! आपके जैसे भागवत लोग तीर्थस्वरूप हैं, जब सब तीर्थ पापियोंके संसर्गसे मलिन हो जाते हैं, तो आप लोग तीर्थमें जाकर हृदयस्थ गदाधर भगवान्‌के द्वारा सारे मलिन तीर्थोंको पवित्र कर देते हैं।"

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥

ह. भ. वि. १०.१२७

उद्धृत इतिहास समुच्चयोक्त भगवद्वाक्यम्।

अर्थ—भगवान् कह रहे हैं—चतुर्वेदका अभ्यास करनेवाला विप्र यदि मेरा भक्त नहीं है, तो वह मुझे प्रिय नहीं, परन्तु चाण्डाल भी यदि मेरा भक्त हो तो मेरा बड़ा प्रियतम है। मेरे चाण्डाल भक्तको सत्पात्र समझकर दान दे और उससे प्रतिग्रह ग्रहण करे।

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

श्रीम. भा. ७.९.१०.

अर्थ—धर्म, सत्य, दम, तप, अद्वेष, ह्री, तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति, और वेदाध्ययन—इन द्वादश गुणोंसे युक्त ब्राह्मण यदि भगवत्पदारविन्दमें रतिहीन है और भक्तिहीन है, तो उसकी अपेक्षा वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसकी वाणी, मन, चेष्टा, अर्थ और प्राण भगवान्‌में अर्पित है; क्योंकि वह चाण्डाल कुलको पवित्र करता है। परन्तु गर्वित ब्राह्मण अपनेको पवित्र नहीं कर सकता।

प्रभुकी वात सुनकर दैन्यावतार श्रीसनातन परम लज्जित हुए। उनके मुँहसे कोई बात न निकल सकी। जड़वत् निश्चेष्ट होकर प्रभुके बगलमें हाथ जोड़कर बैठ रहे। उनके नयनद्वयसे झरझर प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। वदन अवनत करके वे आत्मग्लानिरूप अग्निमें दग्ध हो रहे थे। भक्तवत्सल प्रभु भक्तमहिमाका गान करने बैठे थे। इससे उनके मनमें बड़ा आनन्द है। श्रीभगवान्का गुण कीर्तन करके भक्तके मनमें आनन्दानुभव होता है, भक्तकी महिमा कीर्तन करके तदपेक्षा अधिक आनन्द श्रीभगवान् अनुभव करते हैं, प्रभु पुनः सनातनकी ओर देखकर प्रेमानन्दमें विभोर होकर बोले—

तोमा देखि, तोमा स्पर्शि, गाइ तोमार गुण।
सर्वेन्द्रिय फल एइ शास्त्र निरूपण॥

चै. च. म. २०.५६

इतना कहकर प्रभुने निम्नलिखित शास्त्र वाक्यकी आवृत्तिकी—

अक्ष्णोः फलं त्वादृशदर्शनं हि
तन्वाः फलं त्वादृशगात्रसंगः।
जिह्वाफलं त्वादृशकीर्तनं हि
सुदुर्लभा भागवता हि लोके॥

(हरिभक्ति सुधोदय १३-२) चै. च. म. २०.५

अर्थात् तुम्हारे जैसे हरिभक्तका दर्शन ही चक्षुका फल है। तुम्हारे जैसे भक्तके अङ्गका सङ्ग ही शरीर धारण करनेका फल है। तुम्हारे जैसे परम भागवतका गुण कीर्तन ही जिह्वा पानेका फल है, क्योंकि तुम्हारे जैसे भागवत संसारमें अति दुर्लभ हैं।

प्रभुकी यह सारी बातें सनातनके मर्म-मर्ममें शूलके समान चुभने लगी। परन्तु प्रभुकी अपार कृपाके बलसे वे स्थिर रहे। उनको वाह्यज्ञान नहीं रह गया था। प्रभु जो कुछ बोलते थे, वह उनकी समझमें नहीं आ रहा था। परन्तु इतना वे समझते थे कि यह सब उनकी आत्म प्रशंसा थी। तथा यह समझकर ही वे संकोचवश मरे जाते थे।

अब भक्तवत्सल प्रभुने भक्तका कुशल मङ्गल पूछनेके बहाने कहा—

"—सुन सनातन।"
कृष्ण बड़ दयामय पतित-पावन॥
महा रौरव हैते तोमार करिल उद्धार।
कृपार समुद्र कृष्ण गम्भीर अपार॥"

चै. च. म. २०.५७,५८

श्रीसनातन प्रभुकी कृपासे अब सुस्थिर हुए। अब तक वे निःस्पन्द भावमें प्रभुके सामने हाथ जोड़कर बैठे थे। वे कुछ भी बोल नहीं पा रहे थे, वाक् शक्तिहीन होकर बैठे थे। प्रभु अब उनसे कुशल-मङ्गलकी बात कर रहे हैं, यह देखकर उनकी वाक्स्फुर्ति हुई। आत्म-प्रशंसा सुनकर जो भीषण यन्त्रणा हो रही थी, उससे त्राण पाकर धीरे-धीरे प्रभुके परम माधुर्यमय सुन्दर श्रीवदनकी ओर देखकर रोते-रोते बोले, "प्रभो! हे गुणनिधे! हे कृपानिधे! मैं कृष्णको नहीं जानता। तुम्हारी कृपासे मैंने विषम विषयकूपसे उद्धार पाया है। मैं इतना ही जानता हूँ। तुमको ही मैं कृष्ण मानता हूँ, और तुम्हारी कृपामें ही कृष्णकृपा बोध करता हूँ।"

सनातनकी बात सुनकर कृपामय प्रभु मुस्कराये। परन्तु इस बातका कोई उत्तर न देकर बोले, "सनातन! बतलाओ तुम्हारा विषय-विष कैसे छूटा?" श्रीसनातनने तब प्रभुके सामने शुरूसे अन्त तक सारी बातें कह सुनायी।

प्रभुने तब उनके दोनों भाई श्रीरूप और अनुपमकी श्रीवृन्दावनकी यात्राकी बात कह सुनायी। प्रयागमें उनके साथ साक्षात्कार हुआ था, यह भी बतलाया। श्रीसनातन तब अपने दोनों भाइयोंके प्रति प्रभुकी अपार कृपाकी बात सुनकर आनन्दमें गद्गद होकर उनके चरणोंमें गिर पड़े।

श्रीसनातनका तपन मिश्र और चन्द्रशेखरसे परिचय

इसके बाद प्रभुने सनातनके साथ चन्द्रशेखर और तपन मिश्रका परिचय कराया। सनातनके प्रति प्रभुकी कृपादृष्टि देखकर दोनों ही चकित हो उठे। तपन मिश्रने उस दिन श्रीसनातनको निमन्त्रित किया।

प्रभु चन्द्रशेखरको पास बुलाकर बोले, "चन्द्रशेखर! सनातनका यह वेष दूर कर दो। क्षौर कर्म कराकर उसको भद्र करो।" चन्द्रशेखरने श्रीसनातनको गङ्गाके किनारे ले जाकर क्षौर कर्म कराकर दिव्य वैष्णव वेष बना दिया। उनको एक नया वस्त्र दिया। परन्तु उसे उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उन्होंने एक पुराना व्यवहृत वस्त्र ग्रहण किया। चन्द्रशेखरने घर आकर प्रभुसे यह बात कही। प्रभु यह सुनकर विशेष आनन्दित हुए।

उस दिन प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द था। श्रीसनातनको पाकर वे आनन्दसागरमें डूब रहे थे। मध्याह्न कृत्य करके जब प्रभु तपन मिश्रके घर भिक्षा करने चले तो परम स्नेहसे सनातनको पुकारकर साथ ले लिया। तपन मिश्रके घर पाद प्रक्षालन करके प्रभु जब भोजनके लिए बैठे तो उन्होंने मिश्रसे कहा, "सनातनको पहले भिक्षा दो।" तब मिश्र बोले, "प्रभु! सनातनका कुछ कृत्य अभी बाकी है। आप भिक्षा करें, सनातन पीछे भिक्षा करेंगे।" प्रभु समझ गये कि सनातन आज उनका प्रसाद पावेंगे। उन्होंने और कुछ नहीं कहा। प्रभुका भोजन विलास समाप्त होने पर जब वे विश्राम करने गये, तब तपन मिश्रने उनका अवशेष पात्र सनातनको दे दिया। प्रभुका अधरामृत पाकर सनातन कृतार्थ हो गये। अपने जीवनको सार्थक समझने लगे। सनातनके मनमें आज अपार आनन्द था, प्रेमानन्दमें वे विह्वल हो रहे थे। प्रभुका अधरामृत पाकर वे आज आनन्द-स्वरूप हो गये, उनका वैराग्य चौगुना बढ़ गया। तपन मिश्रने उनको बहुत आदरपूर्वक एक नवीन वस्त्र दिया; वैराग्यके अवतार श्रीसनातनने उसे ग्रहण न करके हाथ जोड़कर निवेदन किया—

मोरे वस्त्र दिते यदि तोमार हय मन।
निज परिधान एक देह पुरातन॥

चै. च. म. २०.७२

तपन मिश्रने समझा कि प्रभुकी कृपासे सनातन विषयमुक्त हो गये हैं। उन्होंने और कुछ न कहकर अपने व्यवहारमें लायी पुरानी धोती सनातनको दे दी। सनातनने उसे फाड़कर एक कौपीन और वहिर्वास बनाकर पहन लिया।

तवे मिश्र पुरातन एक धूति दिल।
तिहों दुइ वहिर्वास कौपीन करिल॥

चै. च. म. २०.७३

वर्णाश्रम धर्म त्यागकर परम ऐकान्तिक वैष्णव संन्यासीका यही शास्त्र-सम्मत वेष है। इस वेषको ग्रहण करनेमें नवीन वस्त्रकी आवश्यकता नहीं है। मन्त्र या गुरुकी आवश्यकता नहीं है। केवल किसी महात्माका परिधेय वस्त्र लेकर कौपीन और वहिर्वास बनाकर पहिन लेनेसे वेष ग्रहण हो जाता है। अतएव श्रीसनातन गोस्वामीने श्रीतपन मिश्रके परिधेय वस्त्रको भिक्षा करके उसके द्वारा कौपीन और वहिवास तैयार कर लिया। तथा उसे पहन लिया। इस वेषका नाम भेक है।

श्रीसनातनकी वैराग्य-परीक्षा

तपनमिश्रके घर प्रभुके भक्त और उस महाराष्ट्र ब्राह्मणके साथ श्रीसनातनका परिचय हुआ। प्रभुने स्वयं सनातनका परिचय दिया। महाराष्ट्र विप्र परम आनन्दित होकर बोले— सनातन तुम जब तक काशीमें रहो, मेरे यहाँ ही भिक्षा करना।

श्रीसनातन वैराग्यके अवतार थे। उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया—

—आमि माधुकरी करिव।
ब्राह्मणेर घरे केन एकत्र भिक्षा लव॥

चै. च. म. २०.७६

यह बात सुनकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीभगवान् अपने भक्तकी सब प्रकार परीक्षा करके तब निज दास बनाते हैं। सनातनका उत्कट वैराग्य प्रभु देख रहे हैं। देखकर उनको आनन्द हो रहा है। परन्तु फिर भी श्रीभगवान्ने परीक्षा लिए बिना उनको न छोड़ा। वे सनातनके वैराग्यकी परीक्षा करनेके लिए उनके शरीरके ऊपर पड़े हुए कम्बलकी ओर बारंबार दृष्टिपात करने लगे।

पाठकवृन्दको याद होगा कि वह कम्बल शीत निवारण करनेके लिए हाजीपूरमें उनके बहनोई श्रीकान्तने उनको दिया था। माघमासके दारुण शीतमें अवधूत श्रीसनातनके पास यही एक कम्बल संवल था। मङ्गलमय प्रभुकी उसपर दृष्टि पड़ी। श्रीसनातन अत्यन्त बुद्धिमान आदमी थे। उन्होंने समझा कि प्रभुको यह अच्छा नहीं लग रहा है। उनने उस कम्बलको त्यागनेका उपाय सोच लिया।

वे बाह्य कृत्य करनेके बहाने गङ्गाके किनारे गये। वहाँ देखा कि एक गौड़ीय वैष्णवने अपना एक छिन्न कन्था धोकर सूखनेके लिए फैलाया है। वे उनके पास जाकर अति दीन भावसे बोले—"भाई! मेरा एक उपकार करो। मेरा यह भोट कम्बल लेकर अपना कन्था मुझे दे दो।"

गौड़ीय वैष्णवने समझा कि श्रीसनातन उससे उपहास कर रहे हैं, क्योंकि भोट कम्बल बहुमूल्य वस्तु है, उसको देकर फटा कन्था लेंगे—यह आश्चर्यकी बात है। उन्होंने अपने मनका भाव प्रकट करके कहा—"मैं वैष्णव हूँ, आप भी प्रवीण वैष्णव जान पड़ते हैं, मेरे साथ उपहास करना आपको उचित नहीं है।" तब श्री सनातन बोले—मैं आपसे उपहास कर अपराधी क्यों बनूँगा? मैं सत्य कह रहा हूँ, एक पुराने फटे कन्थेकी मुझे आवश्यकता है, इसीसे यह भोट कम्बल देकर आपसे कन्था भिक्षा करता हूँ। कृपा करके मेरे इस अनुरोधकी रक्षा कीजिये।"

गौड़ीय वैष्णवने तब श्रीसनातनके प्रस्तावको स्वीकार किया। बहुमूल्य भोट कम्बलके साथ छिन्न कन्था परिवर्तित हुआ। श्रीसनातन परम आनन्द-पूर्वक गलेमें वे छिन्न कन्था बान्ध कर प्रभुके निकट आये।

सर्वज्ञ प्रभु सब कुछ जानते हैं, तथापि श्रीसनातनसे पूछा—"सनातन! तुम्हारा भोट कम्बल कहाँ गया?" श्रीसनातनने हाथ जोड़कर प्रभुके चरणोंमें सब कुछ निवेदन किया तो वे हँसकर बोले—"श्रीकृष्णने तुम्हारे विषय-भोग छुड़वाये तो वे शेष बचे विषय-भोगको भी कैसे रहने देंगे। सद्वैद्य चिकित्सा करते हैं तो थोड़ा-सा भी रोग शेष नहीं रहने देते। मधुकरी मांगकर खानेवाला यदि मूल्यवान भोट कम्बल रखे तो धर्मकी हानि तो होती हैं, लोग भी उपहास करते हैं।"

श्रीसनातनने अत्यन्त दैन्यपूर्वक सिर अवनत करके प्रभुके चरणोंमें रोते हुए निवेदन किया—"जिनने कुविषय-रोग दूर किया, उनकी ही इच्छासे यह शेष बचा हुआ विषय भी दूर हुआ है।"

इतना कहकर वे प्रभुके चरणोंमें लोटने लगे। कृपानिधि श्रीगौर भगवान्ने उनको श्रीहस्तसे पकड़ कर उठा करके प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया और आदर करके उनको पास बैठाया। श्रीसनातनकी बड़ी इच्छा हुई कि प्रभुके श्रीमुखसे कुछ तत्त्वकथा सुनें। अन्तर्यामी श्रीगौर भगवान्ने उनका मन बूझकर उनको वैष्णवधर्मके निगूढ़ रस तत्त्वके सम्बन्धमें प्रश्न करनेकी शक्ति प्रदान की।

काशीधाममें श्रीतपन मिश्रके घरमें बैठकर स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभुके निकट श्रीसनातन गोस्वामीने जो अपूर्व शिक्षा प्राप्त की थी। उस प्रकारकी उच्च और सूक्ष्म धर्मतत्त्व शिक्षा एकमात्र जगत् गुरु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके सिवा और कोई नही दे सकता। और उनकी कृपाशक्तिसे सम्पन्न व्यक्तिके सिवा और कोई आदमी भी इस प्रकारका प्रश्न नहीं कर सकता । कविराज गोस्वामीने लिखा है—

प्रसन्न हइया प्रभु ताँरे कृपा कैल।
ताँह कृपाय प्रश्न करिते तार शक्ति हैल ।।
पूर्वे जैछे राय पाश प्रभु प्रश्न कैल।
ताँर शक्त्ये रामानन्द तारे उत्तर दिल ।।
इहाँ प्रभुर शक्त्ये प्रश्न करे सनातन।
आपने महाप्रभु करे तत्त्व निरूपण ।।

चै. च. म. २०.८९-९१

अगले अध्यायमें यह तत्त्वकथा विस्तारपूर्वक वर्णित होगी।

पैंतीसवाँ अध्याय

(श्रीसनातन गोस्वामीकी शिक्षा)[1]

कृष्णस्वरूपमाधुर्यैश्वर्य भक्तिरसाश्रयम् ।
तत्त्वं सनातनायेशः कृपयोपदिदेश सः ।।[2]

चै. च. म. २०.६

दैन्यपूर्वक श्रीसनातनके प्रश्न

श्रीतपन मिश्रके गृह प्रभु दिव्यासनपर बैठे हैं। कुछ दूर बगलमें श्रीसनातन हाथ जोड़े खड़े होकर श्रीवदनकी ओर अनिमेष नेत्रोंसे देखते हुए उनकी अपरूप रूप सुधाका पान कर रहे हैं। उनको प्रभुके पास कुछ तत्त्वोपदेश सुननेकी मनमें बड़ी साध थी। वे जानते थे कि किस प्रकार वैष्णवीय दीनताके साथ तत्त्व-जिज्ञासु होना पड़ता है। दाँतमें तृण गुच्छ धारण करके अत्यन्त दैन्य और विनयपूर्वक प्रभुके चरणोंमें श्रीसनातनने आतम निवेदन किया—

"*नीचजाति नीचसङ्गी पतित अधम।
कुविषय कूपे पड़ि गोङाइनु जनम ।।
आपनार हिताहित किछुइ ना जानि।
ग्राम्य व्यबहारे पण्डित, ताहि सत्य मानि ।।
कृपा करि यदि मोरे करियाछ उद्धार ।।
आपन कृपाते कह 'कर्त्तव्य आमार'।।

चै. च. म. २०.९३-९५

१ श्रीसनातन शिक्षाकी डा० श्रीराधागोविन्दनाथकी टीकाका हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्णजन्मस्थान, मथुरासे उपलब्ध है।

२ अर्थ—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको श्रीकृष्णके स्वरूप और ऐश्वर्य-माधुर्य तथा भक्ति-रस जिसके आश्रय है उस तत्त्वका कृपा करके उपदेश दिया था।

* 'नीचजाति' वस्तुतः श्रीसनातन नहीं थे। उन्होंने ब्राह्मण कुलमें जन्म लिया था, परन्तु यवनराजकी सेवा की थी। 'नीच जाति' दैन्य वचन है, यवन सङ्ग करनेसे नीच हैं—यही भावार्थ है।

कृपालु श्रीगौर भगवान् मृदु मुस्कानके साथ श्रीसनातनको पास बैठनेकी आज्ञा देकर बोले—"तुम प्रश्न करो।"

श्रीसनातनने तब प्रश्न किया—

"के आमि, केन आमाय जारे तापत्रय ?।
इहा नाहि जानि केमने हित हय ?"॥
साध्य साधन तत्त्व पूजिते ना जानि।
कृपाकरि सब तत्त्व कहत आपनि ॥

चै. च. म. २०.९६,९७

महाप्रभु द्वारा उत्तर—जीवनत्व वर्णन

श्रीसनातनने जो यह प्रश्न किया कि "मैं कौन हूँ ? तापत्रय क्यों मुझको दग्ध कर रहे हैं ?—इसीमें सारे तत्त्व निहित हैं। इसके उत्तरमें ही सब तत्त्वोंकी मीमाँसा होगी, सारे सन्देह दूर हो जाँयगे।

इसी कारण सुबुद्धिमान् राजमन्त्री श्रीसनातनने धर्मके सम्बन्धमें कोई प्रश्न न करके पहले सब जीवोंके मङ्गलार्थ यह प्रश्न किया।

चतुर चूड़ामणि प्रभु श्रीसनातनके प्रति कृपादृष्टि करके अपनी स्वाभाविक भक्तवत्सलता और चतुरताके साथ भक्तके मानको बढ़ाते हुए बोले—"सनातन ! तुम्हारे ऊपर श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा है। तुम सब तत्व जानते हो। तुमको ताप त्रय नहीं हैं। तुम्हारेमें कृष्णभक्ति है। तुम तत्त्वको जानकर भी उनको दृढ़ करनेके लिए पूछते हो—यह साधुका स्वभाव होता है। भक्तिधर्मं प्रवर्त्तनकी तुममें योग्यता है। तुमको क्रमसे सब तत्त्व बताता हूँ, ध्यान देकर सुनो।"

अचिरादेव सर्वार्थः सिध्यत्येषामभीप्सितः।
सद्धर्मस्यावरोधाय येषां निर्वेन्धिनी मतिः॥

भ. र. सि. १.२.१०३

अर्थ—जिनकी बुद्धि भागवतधर्म जाननेके लिए अतिशय आग्रहशालिनी है, उनके अभिवाञ्छित सर्वअर्थ शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं।

इतना कहकर सर्वप्रथम प्रभु जीव तत्त्व कहने लगे। प्रभु बोले—

जीवेर स्वरूप हय—कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति—भेदाभेद प्रकाश॥
सूर्यांश किरण जैछे अग्नि ज्वालाय चय।
स्वाभाविक कृष्णेर तिन शक्ति हय॥
कृष्णेर स्वाभाविक तिन शक्ति परिणति।
चिच्छक्ति, जीव शक्ति आर माया शक्ति॥

चै० च० म० २०.१०१-१०३

परमात्मा अपरिमित चित्स्वरूप है। जीवात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्कण है। अपरिसीम चित्स्वरूपके साथ जीवरूपी चित्कण नित्ययोगमें आबद्ध है। यह योग किसी प्रकार भी भङ्ग होने वाला नहीं है। एक तो अनन्त, अपरिसीम तथा महान् है, और दूसरा क्षुद्र, बद्ध और चिदंश है। एक आश्रय है और दूसरा आश्रित। इनकी सत्ता एक होते हुए भी प्रकृति भेदसे ये विभिन्न दीख पड़ते हैं।

इसी भेदाभेदको वैष्णव शास्त्र 'अचिन्त्य भेदाभेद वाद' कहकर पुकारते हैं। इसको दृष्टान्तके द्वारा समझाया जा रहा है। एक भ्रमर मधुपान करनेके लिए पुष्पोंके अन्वेषणमें मँडराता है, पुष्प देखते ही पहले आनन्दित होकर उसके चतुर्दिक मँडराकर गुन-गुन स्वरमें गान करता है, फिर सुयोग पाकर पुष्पके ऊपर बैठकर धीरे-धीरे पंखुड़ियोंको भेद करके पुष्प-मधु पान करनेमें प्रवृत्त होता है। मधु-पान करते-करते अन्तमें एक बारगी आनन्दमें विभोर हो जाता है। वह भ्रमर तब मधुके साथ मिलकर मधुमय हो जाता है। भ्रमर जब तक मधु पान नहीं कर पाता, तब तक वह पुष्पस्थित मधुसे अपनेको पृथक् समझता है। जब पुष्पस्थ मधु-कोषमें प्रवेश करके आनन्दसे मधुपान करता हैं तब उसको बाह्य जगत्का या मधुभण्डारका, किसीके स्वतन्त्र आस्तित्वका कुछ ज्ञान नहीं रहता। उस समय उसको सब मधुमय

जान पड़ता है, तथापि आत्मबोध और मधुबोधका एक अचिन्तनीय भेदाभेद' ज्ञान उनको रहता हैं। जीव और ब्रह्मके सम्बन्धमें भी ठीक इसी प्रकारका 'अचिन्त्य भेदाभेद' दिखलायी देता है।

प्रभुने जीवका स्वरूप बतलाया कि वह श्रीकृष्णका नित्यदास हैं। अर्थात् अनादि कालसे अनन्त काल तक सब समय जीव श्रीकृष्णका नित्यदास रहता है। अतएव नित्यबद्ध जीव मायाके वशमें 'मैं कृष्णदास हूँ' यह ज्ञान खो देता है, तब अभिज्ञ जन उसको कृष्णदास कहकर सम्मान करते हैं।

जो शक्ति न अन्तरङ्गा है, न बहिरङ्गा, उसे तटस्था शक्ति कहते हैं, भगवान्‌की इस तटस्था शक्तिके साथ अन्तरङ्गा और बहिरङ्गा शक्तिका सम्बन्ध हो सकता है। और भगवान्‌के साथ यह किसी अंशमें अभेद, और किसी अंशमें भेद सा दीखता है, इसी कारण प्रभुने इसको 'भेदाभेद प्रकाश' कहा है। प्रभुने दृष्टान्त देकर इसे समझा दिया—

"सूर्यांशे किरण जैछे अग्नि ज्वाला चय।
चै० च० म० २०.१०२

सूर्यकी किरणोंके अणु सूर्यसे तेज रूपमें अभिन्न हैं, वे छायासे आच्छन्न होकर सूर्यके सामने जानेमें असमर्थ होनेके कारण सूर्यसे अभिन्न हैं। इसी प्रकार अग्नि स्फुलिङ्ग समूह अग्निसे तेज रूपमें अभिन्न हैं, परन्तु उनसे पृथक् होकर अन्धकारमें पड़ जानेके कारण भिन्न हैं। इसी प्रकार जीवात्मा चिदानन्द अंशमें भगवान्‌से अभिन्न है, परन्तु मायामें मुग्ध होकर भगवत् साम्मुख्य प्राप्त न कर सकनेके कारण भिन्न है। इसके द्वारा श्रीशङ्कराचार्यके अद्वैतवाद ओर श्रीमाध्वाचार्यके द्वैतवादके कारण वेदान्तके सम्प्रदायोंमें जो विरोध है, उसका समाधान श्रीमन्महाप्रभु सम्मत अचिन्त्य भेदाभेदवादसे हो जाता है।

प्रभुने इस विषयमें जो शास्त्रप्रमाण दिया, उसे नीचे उद्‌धृत करते हैं।

एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥
वि० पु० १.२२.५६

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः॥
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता।
वि० पु० १.३.२,३

इसके बाद प्रभुने श्रीकृष्ण भगवान्‌की तीन स्वाभाविकी शक्तिकी बात कही। यथा–चिच्छक्ति, (अन्तरङ्गा)–जीवशक्ति (तटस्था) और मायाशक्ति (बहिरङ्गा)।

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥
वि० पु० ६.७.६१

यह पराशक्ति अन्तरङ्गा है, अपरा या अविद्या शक्ति बहिरङ्गा है और कर्मसंज्ञा शक्ति तटस्था है। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
गीता ७.५

अर्थात् पूर्वोक्त आठ प्रकारकी प्रकृति अपरा अर्थात् निकृष्टा प्रकृति है। उससे पृथक् और एक मेरी जीवभूत प्रकति है, जिसके द्वारा यह जगत धारण किया जाता है। इसको ही जीवशक्ति कहते हैं।

इसके बाद प्रभु जीवके दुःखके विषयमें बोले—
'कृष्ण' भूलि सेइ जीव—अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार-दुःख॥
कभू स्वर्गे उठाय कभू नरके डुबाय।
दण्डय जने राजा जेन नदीते चुबाय॥
साधु शास्त्र कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।
सेइ जीव निस्तारे, माया तहारे छाड़य॥

मायामुग्ध जीवेर नाहि स्वतः कृष्ण ज्ञान।
जीवेरे कृपाय कैल कृष्ण वेद-पुराण।।
शास्त्र-गुरु-आत्मा-रूपे आपना जानान।
'कृष्ण मोर प्रभु त्राता' जीवेर हय ज्ञान।।

चै० च० म० २०.१०४-१०८

श्रीकृष्ण जिस प्रकार सच्चिदानन्द रूप चैतन्य पुरुष और प्रभु हैं, उसी प्रकार जीव उनका अंशाश अणु चैतन्य और दास है। परन्तु जीव जब माया-स्वरूप भगवान्के साथ अपने पाशको छिन्न करनेमें समर्थ होता है, तब वह अपने यथार्थ सम्बन्धको समझ जाता है। फलतः भगवान्की मायामें बद्ध भगवद्बहिर्मुख जीव स्व-स्वरूपको भूलकर और देहमें आत्मबुद्धि करके 'मैं ईश्वरसे पृथक् हूँ' इस प्रकारकी भ्रान्त बुद्धिसे परिचालित होता है। किन्तु जब गुरु और भगवान्की कृपासे उसको दिव्यज्ञान उत्पन्न होता है, तब उसका अहंज्ञान अपने आप नष्ट हो जाता है। शास्त्रमें इस तुम और मैं' के पृथकत्व और एकत्वको माया नामसे कल्पित किया है।

इसको एक दृष्टान्तके द्वारा समझ लीजिये। जैसे रेशमका कीड़ा अपने मुखसे निःसृत लालाके द्वारा घर बनाकर स्वयं अपने बनाये घरमें आबद्ध हो जाता है, और समय पाकर स्वभाववश स्वयं इस घरको भग्न करके परम सुन्दर प्रजापति रूप ग्रहण करके मुक्त आकाशमें विचरण करता है। उसी प्रकार जीव भी स्वकल्पित और स्वसंस्थापित जगत्की मायामें आबद्ध होता है और समय आनेपर गुरु और शास्त्रोपदेशसे जब उसके ज्ञानचक्षु उन्मीलित होते हैं तब 'संसार मिथ्या है और एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है'—यह दिव्य ज्ञान प्राप्त करके संसारके मायाजालसे मुक्त हो जाता है। परन्तु जीवके लिए यह उतनी सहज बात नहीं है, क्योंकि भगवान्की माया दुस्तर, गुणमयी और अद्भुत है। जो जीव श्रीभगवान्के चरणोंका आश्रय लेकर उनकी आराधना करते हैं, केवल वे ही इस दुस्तर मायासे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

गीता. ७.१४.

मायामुग्ध जीवको श्रीकृष्ण विषयक ज्ञान नहीं होता। अनादि कालसे माया-द्वारा मुग्ध होकर वह आत्मज्ञान तथा कृष्ण-स्मृति ज्ञान—दोनोंसे च्युत हो गया है। अतएव दयामय श्रीभगवान् दया करके असंख्य वेद-पुराणादि शास्त्र, नारद-सनकादि उपदेष्टा तथा सर्वोपरि स्वयं अन्तर्यामिरूपमें, एवं वेदादि शास्त्रग्रन्थमें आज्ञा रूपमें प्रकट होकर मायाके वशीभूत भ्रान्त जीवोंको सत्पथमें ले जाते हैं, तब उनके हृदयमें कृष्ण स्मृति ज्ञानका उदय होता है, और वे कहते हैं कि कृष्ण ही हमारे प्रभु और परित्राता श्रीभगवान् मङ्गलमय हैं, जीवकी मङ्गल-कामनासे वे शास्त्ररूपमें उदय होकर गुरु रूपमें उपदेश देते हैं।

वेद-शास्त्रमें क्या उपदेश हैं, तथा किस प्रकार वेद जीवको कृष्ण-उपदेश प्रदान करता है, यह बात अब प्रभु बतलाते हैं।

सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्व

वेद-शास्त्रे कहे सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन।
कृष्ण-प्राप्य सम्बन्ध, भक्ति—प्राप्येर साधन।।
अभिधेय नाम—भक्ति,—प्रेम प्रयोजन।
पुरुषार्थ शिरोमणि प्रेम महाधन।।
कृष्णमाधुर्य-सेवानन्द प्राप्तिर कारण।
कृष्णसेवा करे कृष्णरस-आस्वादन।।

चै. च. म. २०.१०९,१११

वेद-शास्त्रमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनका उल्लेख है। सम्बन्ध प्रतिपाद्य-प्रतिपादकतारूप है अर्थात् वेदका प्रतिपाद्य कृष्ण हैं, और कृष्णका प्रतिपादक वेद हैं। अभिधेय श्रवणादि साधन-भक्ति

है। इस साधन भक्तिके द्वारा श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है। प्रयोजन प्रेम है। इस प्रेमधनके अर्जनमें साध्य भक्तिका प्रयोजन है। वह प्रेम धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, इस चतुर्विध पुरुषार्थका शिरोमणि है। अर्थात् पञ्चम पुरुषार्थरूप है। अतएव जीवका पञ्चम पुरुषार्थ प्रेमधन है, और यही उसका प्रयोजन है।

प्रभुने इस संम्बन्धमें एक सुन्दर दृष्टान्त दिया। एक सर्वज्ञ पुरुषने आकर एक दरिद्र पुरुषसे पूछा, "तुमको इतना दुःख क्यों है? तुम्हारे पिताका बहुत धन है, मृत्युके समय वह तुमको बतला नहीं गये।" वह दरिद्र सर्वज्ञ पुरुषकी बात सुनकर पितृधनके खोजमें लगा। परन्तु वह धन है कहाँ? इस बातको न जानकर वह सर्वज्ञके शरणापन्न हुआ। तब सर्वज्ञने कहा,-"दक्षिण मत खोदना, वर्रेका छत्ता है; पश्चिम मत खोदना, यक्ष है; उत्तर मत खोदना, कृष्ण-सर्प है। पूर्व दिशामें खोदना, धन पाओगे।" इसका भावार्थ नीचे लिखा जाता है।

वर्रेके दंशनके समान तीव्र दाहकारी कर्म है, अर्थात् वर्रेके दंशनसे जैसे महायन्त्रणा भोगनी पड़ती है, इसी प्रकार कर्मासक्त जीव विविध यन्त्रणाओंकी खानि है। यक्ष योग स्थानीय है। अर्थात् यक्ष जिस प्रकार धनकी रक्षा करता है, स्वयं भोग नहीं कर पाता, और दूसरोंको भी भोगने नहीं देता। इसी प्रकार योग मार्गमें परमात्मरूपमें भगवान्को योगी लोग अनुभव करते हैं, परन्तु स्वयं श्रीभगवन्माधुर्य अनुभव नहीं कर सकते, और न दूसरेको करने देते हैं। कृष्ण अजगरके समान ज्ञान-मार्ग है। जिसको यह कृष्ण अजगर ग्रास करता है, उसको जीवित रहकर सुखभोग करनेकी संभावना नहीं रहती, इसी प्रकार ज्ञानमार्ग जिसको ग्रास करता है, उसके भाग्यमें भक्तिरसके आह्लादनकी संभावना नहीं होती। इस दृष्टान्तमें प्रभुने दिशाका निर्णय किया है। इसका भी मर्म है। दक्षिण दिशामें सूर्यका तेज मन्द होता है, इस कारण शीत अधिक पड़ती है। शीतसे लोगोंमें जाड्य उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जीवका विश्वास-रूप सूर्य दक्षिण दिशामें उदय, होने पर अर्थात् कर्मसंयत होने पर उसका तेजमन्द पड़ जाता है, अर्थात् वहाँसे आगे नहीं जा सकता। कर्म-विश्वासी जीव कर्मोपदेशरूप शीत उत्पादन करके दूसरोंको भी कर्मजड़ बनाता है।

पश्चिमकी ओर सूर्यके अस्त-गमनके समय केवल आलोक मात्र रहता है, किन्तु सूर्यका तेज कुछ नहीं रहता, इसी प्रकार विश्वासरूप सूर्य योग रूप पश्चिम दिशामें अस्त होता है तो उसका तेज बढ़नेके स्थानमें घटने लगता है। उत्तर में सुमेरु पर्वत पर सूर्यके आच्छन्न होने पर घोर अन्धकार सारे जगत्को ग्रास कर लेता है, इसी प्रकार ज्ञान मार्गरूप उत्तर दिग्वर्ती विश्वास सूर्य जगत्को अन्धकारसे आवृत करता है। पूर्व दिशामें सूर्यके उदय होने पर अन्धकारका नाश होता है, और क्रमशः उसका तेज बढ़ता है, और वह सारे जगत्में प्रकाश करता है। इसी प्रकार विश्वासरूप सूर्य भक्ति मार्गरूपी पूर्व दिशामें उदय होते ही जगत्के अज्ञानान्धकारका नाश करता है, और क्रमशः जैसे जैसे तेज बढ़ता जाता है, सारा जगत् आलोकित हो उठता है। परन्तु सूर्योदय होने पर उल्लू आदि कितने ही प्राणी जैसे अन्धे हो जाते हैं, उसी प्रकार भक्तिरूप विश्वास-सूर्यके उदय होने पर कुछ बहिर्मुख जीव अन्धे हो जाते हैं। प्रभुने दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, पूर्व दिशाको कर्म, योग, ज्ञान और भक्तिका स्थान निर्णय करके यही सिद्ध किया है।

इस दृष्टान्तके द्वारा प्रभुने समझाया, कि, धन जैसे सर्वज्ञके द्वारा निर्दिष्ट स्थानमें पाया जाता है, साधु उपदेष्टाके उपदेशके अनुसार भक्तिमार्ग अवलम्बन करने पर वैसे ही श्रीभगवान्की प्राप्ति होती है। शास्त्रवचन इसका प्रमाण है प्रभुने निम्नलिखित श्रीमद्भागवतके दो श्लोक पाठ किये।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।।

श्रीम. भा. ११.१४.२०

अर्थ - श्रीभगवान् बोले, हे उद्धव ! मद्विषयक दृढ़ा भक्ति जिस प्रकार मुझको वशीभूत करती है, अष्टाङ्ग योग, सांख्य योग, वेदाध्ययन, तपस्या और संन्यास भी उस प्रकारसे मुझको वशीभूत नहीं कर सकते ।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।।

श्रीम. भा. ११.१४.२१

अर्थ—हे उद्धव ! केवल श्रद्धायुक्त भक्तिके द्वारा ही साधुजन मुझको आतमारूपमें प्राप्त करते हैं। मेरे प्रति निष्ठाभक्ति चाण्डाल तकको जाति-दोषसे पवित्र करती है ।

प्रभु कहने लगे--

ऐछे शास्त्र कहे—कर्म ज्ञान योग त्यजि ।
भक्त्ये कृष्ण वश हय भक्त्ये ताँरे भजि ।।
अतएव भक्ति—कृष्ण-प्राप्तिर उपाय ।
अभिधेय बलि तारे सर्व शास्त्रे गाय ।।
धन पाइले जैछे सुखभोग फल पाय।
सुखभोग हैते दुःख आपनि पलाय ।।
तैछे भक्तिफल कृष्णे प्रेम उपजाय।
प्रेमे कृष्णास्वाद हैले भव नाश पाय ।।
'दारिद्र्य-नाश भव-क्षय' प्रेमेर फल सब।
'भोग प्रेम सुख' मुख्य प्रयोजन हय ।।
वेद शास्त्रे कहे—सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन।
कृष्ण, कृष्णभक्ति, प्रेम,—तिन महाधन ।।
वेदादि सकल शास्त्रे कृष्ण मुख्य सम्बन्ध।
तार ज्ञाने आनुषङ्गे जाय मायाबन्ध।।

चै. च. म. २०.१२१-१२७

अतएव यह सिद्धान्त हुआ कि जीवके लिए कृष्णकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय भक्ति है। जैसे धनलाभका फल सुखलाभ है, उसी प्रकार भक्तिलाभका फल कृष्णप्रेमकी प्राप्ति है। प्रेमभक्ति द्वारा श्रीकृष्ण भजन करनेसे भवभय नाश होता है, जीव संसारसे मुक्त हो जाता है। जीवके लिए प्रेम-सुख-भोग ही मुख्य प्रयोजन है। भव-क्षय आदि आनुषङ्गिक फल है। वेदादि सब शास्त्रोंके मुख्य प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण हैं, यह ज्ञान होने पर जीव माया बन्धनसे मुक्त होता है ।

वेदादि सर्व शास्त्रोंमें श्रीकृष्ण ही प्रतिपाद्य हैं, इसके प्रमाण स्वरूप प्रभुने निम्नलिखित दो श्लोक पढ़े ।

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ।
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद् वेद कश्चन ।।
मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ।।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ।

श्रीम. भा. ११.२१.४२,४३

अर्थ—श्रीभगवान् उद्धवसे बोले, "वेदके कर्मकाण्डमें क्या विधान है? ज्ञान काण्ड किसके सहारे तर्क करता है? श्रुतिका तात्पर्य क्या है? इन सब बातोंको मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। श्रुतियाँ उक्त रूपमें मुझको ही विधि प्रदान करती हैं, देव रूपमें मुझको ही प्रकट करती हैं, और मेरा ही सहारा लेकर तर्क करती हैं, यही निखिल वेदका अर्थ है। सारे वेद पहले मुझे ही परमात्मरूपमें आश्रय बनाकर पीछे भेदात्मक मायाको दिखलाकर पुनः उसका प्रत्याख्यान करके उपसंहार करते हैं।

श्रीकृष्ण-तत्त्व

श्रीगौराङ्ग-प्रभु जीवतत्त्व तथा जीवके साथ श्रीकृष्णका जो सम्बन्ध है, इस विषयमें श्रीसनातनको उपदेश देकर अब उनको श्रीकृष्णतत्त्व समझा रहे हैं। वे बोले,

कृष्णेर स्वरूप-विचार शुन सनातन।
अद्वय-ज्ञानतत्त्व व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ।।

सर्वादि सर्व्व-अंशी किशोर-शेखर।
चिदानन्ददेह सर्वाश्रय सर्वेश्वर॥
चै. च. म. २०.१३१,१३२

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण अद्वय ज्ञान तत्त्व हैं। वे स्वयं भगवान् सर्वेश्वर्य-पूर्ण, सर्वावतारी, सर्वरस-सागर, सर्वचित्ताकर्षक, पीताम्बरधारी, बनमाली, अप्राकृत नवीन मदन, तथा मन्मथके भी साक्षात् मनोमथनकारी है। वे सर्वेश्वर हैं, सर्वाश्रय हैं, सच्चिदानन्द विग्रह तथा सर्वकारण कारण हैं। वे अनन्त ब्रह्माण्डके एकमात्र पति है, अनन्त वैकुण्ठके एकमात्र ईश्वर हैं, अनन्त अवतारके एकमात्र अवतारी हैं। भक्त साधक उपासकवृन्दके वे ही एकमात्र आश्रय, साधन-भजनके वे ही एकमात्र विषय हैं। सारे रस, तत्त्व, ज्ञान, तथा तर्कोंका पर्यवसान एकमात्र उनमें ही होता है। वे किशोर शेखर, उज्ज्वल श्याम वर्ण पुराणपुरुष हैं। क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या जङ्गम—वे सबके चित्ताकर्षक हैं। यहाँ तक कि अपने सौन्दर्य और माधुर्यमें वे आप ही विभोर हैं।

कृष्णेर स्वरूप अनन्त वैभव अपार।
चै. च. म. २०.१२१

यह कहकर प्रभुने ब्रह्मसंहिताका (५.१) श्लोक पाठ किया।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणः॥

अर्थ—श्रीकृष्ण परम-ईश्वर हैं, वे सच्चिदानन्द विग्रह, अनादि, किन्तु सबके आदि, गोबिन्द एवं समस्त कारणोंके कारण है।

श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् है। उनका और एक नाम गोविन्द है। वे सर्वेश्वर्य पूर्ण हैं, गोलोक उनका नित्यधाम है।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥
श्रीम. भा. १.३.२८

श्रीसूतजीने कहा कि पहले जिन अवतारोंका उल्लेख हुआ है, तथा जिनका उल्लेख नहीं हुआ है, वे परम पुरुषके अंश या कला मात्र हैं, परन्तु उन सब अवतारोंमें बीसवें अवतारके रूपमें जो कृष्णका वर्णन आया है, वे स्वयं भगवान् हैं। असुरोंसे त्रस्त जनताका कल्याण करनेके लिए युग-युगमें अवतार होते हैं।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं और अद्वय अज्ञान तत्त्व है, इस अद्वय ज्ञान तत्त्वको तत्त्वज्ञ महाजनगणने ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् नामसे अभिहित किया है।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
श्रीम. भा. १.२.११

ज्ञान, योग और भक्तिकी साधनाके अनुसार श्रीकृष्ण ही साधकोंके लिए ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् रूपमें प्रकट होते हैं। प्रभु कहने लगे—

स्वयं भगवान् कृष्ण—गोविन्दापर नाम।
सर्वैश्वर्यपूर्ण जाँर गोलोक नित्यधाम॥
ज्ञान, योग, भक्ति,—तिन साधनेर वशे।
ब्रह्म, आत्मा, भगवान्,—त्रिविध प्रकाशे॥
ब्रह्म—अङ्गकान्ति ताँर निर्विशेष प्रकाशे।
सूर्य जेवन चर्मचक्षे ज्योतिर्मय भासे।*

---

*यस्य प्रभा प्रभावतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेष भूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्रह्म संहिता ५.४०

***परमात्मा वर्जेहो तेंहो कृष्णेर एक अंश ।**
आत्मार आत्मा हय कृष्ण सर्व-अवतंस ॥*
भक्त्ये भगवानेर अनुभवे पूर्ण रूप ।
एकइ विग्रह तार अनन्त स्वरूप ॥
चै. च. म. २०.१३३-१३७

उपर्युक्त तृतीय पयारका अर्थ इस प्रकार है। सूर्यके कर-चरणादि विशिष्ट रूप होते हुए भी मनुष्यके चर्मचक्षुमें सूर्य निर्विशेष है, अर्थात् जिसमें किसी प्रकारकी शक्ति, धर्म, गुणादिका प्रकाश नहीं होता, केवल विशिष्टाकारमें प्रकाशित होता है, इसी प्रकार ज्योतिर्मण्डल रूपमें प्रकाशित होता है, परन्तु देवगणके दिव्यचक्षुमें सूर्यनारायणकी शक्ति, धर्म और गुण आदिका प्रकाश होता है, इसी प्रकार ज्ञानमार्गमें विचारणशील ज्ञानियोंके ज्ञानचक्षुमें श्रीकृष्णके अङ्गका निर्विशेष ज्योतिर्मण्डल ब्रह्म प्रकाशित होता है, किन्तु भक्तके भक्तिचक्षुमें श्रीकृष्णकी शक्ति, धर्म, गुण और कर-चरणादि प्रकाशित होते हैं।

परमात्मा भी श्रीकृष्णका एक अंश है। जैसे आकाशस्थ एक सूर्य अनन्त स्फटिकमें प्रतिविम्बित होकर अनन्त रूपमें प्रकाशित होता है, उसी प्रकार नित्य धामस्थ श्रीकृष्ण भगवान् अनन्त जीवको परमात्मरूपमें प्रतीयमान् होते हैं।

प्रभुने अन्तमें कहा कि भक्तगण ही श्रीभगवान्‌के पूर्ण स्वरूपका अनुभव कर सकते हैं। वे लोग एक श्रीविग्रहमें भगवान्‌के अनन्त स्वरूपको देख पाते हैं।

भगवान्‌के तीन श्रेष्ठरूप

श्रीभगवान्‌के अनन्त रूपमें तीन रूप श्रेष्ठ हैं। उन्हीं तीनों रूपोंके विषयमें अब प्रभु बोल रहे हैं।

स्वयं रूप तदेकात्मरूप आवेश नाम ।
प्रथमेइ तिन रूपे रहे भगवान् ॥
स्वयं रूपे स्वयं प्रकाश, दुइ रूपे स्फूर्ति ।
स्वयं रूप एक—य कृष्ण व्रजे गोपमूर्ति ॥
चै. च. म. २०.१३८,१३९

श्रीभगवान् कृष्ण, गुरु, शक्ति, भक्ति, अवतार और प्रकाश—इन छः प्रकारके रूपोंमें विलास करते हैं। उनके अनन्त रूपोंमें स्वयं रूप तदेकात्मरूप और आवेशरूप श्रेष्ठ हैं।

जिनका स्वरूप अन्यापेक्षी हैं अर्थात् स्वतः सिद्ध है, अन्य द्वारा व्यक्त नहीं होता, वे ही आनन्दघन, प्रेमघन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण स्वयं-रूप हैं।

अनन्यापेक्षि यद्रूपं स्वयं रूपः स उच्यते ।
ल. भा. १.१२

जो स्वयं रूपके साथ अभिन्न स्वरूपमें विराजमान है, किन्तु आकृति, वेष और चरित आदिके द्वारा अन्यके समान प्रकट होते हैं उनको तदेकात्मरूप कहते हैं।

यद्रूपं तदभेदेन स्वरूपेण विराजते ।
आकृत्यादिभिरन्यादृक् स तदेकात्मरूपकः ॥
ल. भा. १.१४

जिन महत्तम जीवोंमें ज्ञान, शक्ति आदिके अंश द्वारा भगवान् आविष्ट होते है, उनको आवेशरूप कहते हैं।

ज्ञान शक्त्यादि कलया यत्राविष्टो जनार्दनः ।
स आवेशो निगद्यन्ते जीवा एष महत्तमाः ॥
ल. भा. १.१८

स्वयं रूपमें श्रीभगवान् स्वयं प्रकट होते हैं, और तदेकात्म और आवेशरूपमें उनकी स्फूर्ति होती है। गोपमूर्ति व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके स्वयं रूप हैं। श्रीभगवान्‌का स्वयं रूप दो भावमें प्रकाशित होता

*अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥
गीता १०.४२

है, एकका नाम प्रभाव है और दूसरेका नाम वैभव है। स्वयं रूपके विलासके लिए अन्य रूपमें यदि भगवान्‌की आकृति प्रकाशित होती है, और शक्तिमें भी आत्मतुल्य दृष्ट होती है, तो उस रूपको विलास रूप कहते हैं। यह प्राभव और वैभव, दोनों ही विलास रूपके अन्तर्गत है। प्राभव विलासमें एक कृष्ण सोलह हजार स्त्रियोंसे व्याह करके एक देहसे एक समयमें उनके साथ विहार करते हैं।

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक्।
गृहेषु द्व्यष्ट साहस्रं स्त्रिय एक उदावहत्॥

श्रीम. भा. १०.६९.२

पुनः रासमण्डलमें मण्डलाकारमें खड़ी कोटि-कोटि गोपिकाओंमें दो-दोके बीचमें एक ही श्रीकृष्णने अनेक रूपोंमें प्रकट होकर उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान किया था। जिससे प्रत्येक गोपिकाके मनमें विश्वास हो गया था कि श्रीकृष्ण केवल उनके ही साथ विहार कर रहे हैं।

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः॥

श्रीम० भा० १०.३३.३

अतएव प्रभुने कहा—

प्राभव-वैभव रूपे द्विविध प्रकाशे।
एक वपु बहु रूप जैछे हैल रासे॥
महिषी विवाहे हैल मूर्त्ति बहुविध।
'प्रभाव प्रकाश' एइ शास्त्रे परसिद्ध॥
सौभर्यादि-प्राय सेइ कायव्यूह नय।
कायव्यूह हैले नारदेर विस्मय ना हय॥
सेइ वपु सेइ आकृति पृथक् यदि भासे।
भावावेश भेदे नाम 'वैभव प्रकाशे'॥
अनन्त प्रकाशे कृष्णेर नाहि मूर्त्तिभेद।
आकार-वर्ण-अस्त्रभेदे नाम विभेद॥

चै. च. म. २०.१४०-१४४

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोककी आवृत्ति की।

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्॥

श्रीम. भा. १०.४०.७

अर्थ—श्रीयमुना जलमें श्रीकृष्ण मूर्त्ति दर्शन करके अक्रूरने कहा था कि यथाविधि बोधित नियममें दीक्षित और विफल मनोरथ होकर जो लोग तुम्हारे स्वरूप चिन्तनमें निमग्न होते हैं, और नारायण रूप एक मूर्त्ति होनेपर भी वासुदेवादि विविध मूर्त्तिमें प्रकाशित त्वदीय किसी भी मूर्त्तिका चिन्तन करने वाले तुम्हारा ही भजन करते हैं।

अतएव कहा था कि,

अनन्त प्रकाशे कृष्णेर नाहि मूर्त्ति भेद।

चै. च. म. २०.१४४

यह सब श्रीकृष्णके प्राभव विलासकी बात हैं अब उनके वैभव विलासके वारेमें कह रहे हैं।

एकइ विग्रह किन्तु आकार हय आन।
अनेक प्रकार हय 'विलास' तार नाम॥
जैछे बलदेब पर व्योमे नारायण।
जैछे वासुदेव प्रद्युम्नादि संकर्षण॥

चै. च. आ. १०.३८,३९

वैभव विलासमें एक ही विग्रह भिन्न रूपमें प्रकाशित होता है।

वैभव प्रकाश कृष्णेर—श्रीबलराम।
वर्णमात्र-भेद, सब कृष्णेर समान॥
वैभव-प्रकाश जैछे—देवकी तनुज।
द्विभुज-स्वरूप, कभू हय चतुर्भुज॥
जे काले द्विभुज—नाम 'प्राभव-प्रकाश'।
चतुर्भुज हैले नाम 'वैभव-विलास'॥*

---

* किसी-किसी ग्रन्थमें १४७ पमारका पाठ इस प्रकार है—

जे काले द्विभुज नाम वैभव-प्रकाश।
चतुर्भुज हैले नाम प्राभव प्रकाश॥

इस पाठके साथ पूर्वोल्लिखित 'एक वपु बहुरूप जैछे हैल रासे' इत्यादि १४० पयारोक्त प्रभाव-प्रकाशके लक्षणोंसे

(टिप्पणीका शेष अगले पृष्ठ पर)

स्वयंरूपे गोपवेश गोप-अभिमान।
वासुदेवेर क्षत्रिय वेश–'आमि क्षत्रिय' ज्ञान॥
सौन्दर्य-ऐश्वर्य-माधुर्य-वैदग्ध्य विलास।
व्रजेन्द्र नन्दने इहा अधिक उल्लास॥

चै. च. म. २०.१४५-१४६

वैभव प्रकाश वैभव-विलासका नामान्तर मात्र है। प्राभव विलास या प्रकाश श्रीकृष्णकी द्विभुज मूर्त्ति है। चतुर्भुज मूर्त्ति वैभव प्रकाश है। श्रीकृष्णका स्वयं रूप वेणुकर गोपवेष है, अतएव गोप-अभिमानमें उनका सौन्दर्य और माधुर्य अधिक दीख पड़ता है। वासुदेव श्रीकृष्णका क्षत्रिय वेष है अतएव उनका क्षत्रिय ज्ञान है। वह गोपाभिमानवर्जित हैं, अतएव वैदग्ध-विलाससे बञ्चित हैं। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण जो हैं, वासुदेव श्रीकृष्ण वही हैं, किन्तु नन्दनन्दनका अपूर्व सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य तथा वैदग्ध-विलास देखकर उनके मनमें बड़ा क्षोभ होता है। वे अपने सौन्दर्यमें आप मोहित होकर अपने माधुर्यमें आप विभोर होकर अपनेको ही आस्वादन करनेमें सतृष्ण हैं।

उद्गीर्णाद्भुतमाधुरी परिमलस्याभीटलीलस्यमे
द्वैतं हस्त समीक्षयन् मुहुरसौ चित्रीयते चारणः।
चेतः केलिकुतुहलोत्तरलितं सत्यं सखे मामकं
यस्य प्रेक्ष्य स्वरूपतां व्रजवधूसारूप्यमन्विच्छति॥

ललित माधव नाटक ४.१९

अर्थ—मथुरामें गन्धर्व-नृत्यके समय गोपवेश-नन्दनन्दन कृष्णके वेशधारी गन्धर्वको देखकर वासुदेवने उद्धवसे हर्ष सहित कहा था—"हे सखे। अहो (नन्दनन्दन वेशधारी) यह नट अद्भुत माधुर्य-परिमल-प्रकाशक एवं गोपलीलाकारी मेरे अर्थात् श्रीकृष्णके द्वितीय रूप अर्थात् कृत्रिम रूपका प्रदर्शन कर बार-बार मुझे चमत्कृत करता है। इस नटकी अपनी जैसी मूर्त्ति देखकर (गोपलीलाकारी श्रीकृष्णके सहित) केलि कौतुकके लिए अतिशय चञ्चलता प्राप्त मेरा मन व्रजवधू श्रीराधाका सारूप्य धारण करनेके लिए इच्छा करता है—यह मैं सत्य कहता हूँ।"

अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्य पूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥

ललितमाधव नाटक ८.३४

अर्थ—मणि-भित्तिके प्रतिबिम्बित अपने माधुर्यको देखकर श्रीकृष्ण विस्मय पूर्वक कहते हैं—"अहो अननुभूतपूर्व चमत्कारजनक एवं गरीयान् (श्रेष्ठ) कैसी अनिर्वचनीय मेरी यह माधुर्य-राशि प्रकाश पा रही है, जिसको देखकर यह मैं भी विषादयुक्त और लुब्धचित्त होकर श्रीराधाकी तरह उत्सुकतापूर्वक उपभोग करनेकी अभिलाषा करता हूँ।"

प्रभु अब श्रीकृष्णके त्वदेकात्म रूप और प्रभाव-वैभवकी बात कह रहे हैं।

त्वदेकात्मरूपेर 'विलास' 'स्वांश' दुइ भेद।
विलास-स्वांशेर भेद—विविध विभेद॥
प्राभव वैभव भेदे 'विलास' द्विधाकार।
विलासेर विलासभेदे अनन्त प्रकार॥
प्राभव विलास—वासुदेव सङ्कर्षण।
प्रद्युम्न अनिरुद्ध—मुख्य चारि जन॥

चै. च. म. २०.१५३-१५५

श्रीकृष्णके स्वयं रूपसे पृथक् रूपका नाम है त्वदेकात्म रूप। यह द्विविध रूपमें प्रकाशित है—विलास और स्वांश। यह विलास-रूप भी प्रकाश-भेदसे नाना रूपमें विभक्त है। उनमें वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार प्रधान

(पृष्ठ ५६४ की टिप्पणीका शेष)

सामञ्जस्य नहीं रहता, इसलिए यह पाठ ग्रहीत नहीं हुआ। द्विभुज स्वरूपमें स्वयंरूपके साथ एकरूप आकार ही रहताहै, इसलिए द्विभुज स्वरूप प्राभव-प्रकाश है। और चतुर्भुज रूपमे द्विभुज स्वयंरूपसे आकार या अङ्ग-सन्निवेशका पार्थक्य रहनेके कारण चतुर्भुजरूप वैभव-प्रकाश है। (डा० राधागोविन्द नाथकी टीकासे)

हैं। इनको श्रीकृष्णका काव्य व्यूह कहते हैं। वासुदेव चित्त-तत्त्व हैं, सङ्कर्षण अहङ्कार तत्त्व हैं, प्रद्युम्न काम तत्त्व हैं, और अनिरुद्ध लीलातत्त्व हैं। श्रीकृष्णके ये चार प्रभावविलास मूर्त्ति हैं, द्वारका और मथुरा धाममें इनका वास है।

इन चार प्रभाव-विलास मूर्त्तियोंसे चौबीस मूर्त्तियाँ प्रकट होती हैं। अस्त्र भेदसे वह विभिन्न नाम धारण करती हैं, श्रीकृष्ण वासुदेवादि चतुर्व्यूहको लेकर पुनः नारायण रूपमें परव्योममें अधिष्ठान करते हैं, वहाँसे ही वे इस चतुर्व्यूहको प्रकट करते हैं तब अपने आवरण रूपमें प्रकट होते हैं।

चतुर्व्यूहमें प्रत्येकमें तीन-तीन मूर्त्तियाँ प्रकाशित करती हैं, इन मूर्त्तियोंके द्वारा श्रीकृष्णके विलासकी स्फूर्त्ति होती है। चक्रादि धारण करनेसे इनके विभिन्न नाम है। जैसे वासुदेवकी विलासमूर्त्ति केशव, नारायण और माधव हैं। संकर्षणकी विलासमूर्त्ति गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन हैं। यह गोविन्द व्रजेन्द्रनन्दन नहीं हैं। प्रद्युम्नकी विलास मूर्त्ति हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर हैं। ये द्वादश मासके देवता हैं, यथा, मार्गशीर्षमें केशव, पौषमें नारायण, माघमें माधव, फाल्गुणमें गोविन्द चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें मधुसूदन, ज्येष्ठमें त्रिविक्रम, आषाढ़में वामन, श्रावणमें श्रीधर, भाद्रमें हृषीकेश, आश्विनमें पद्मनाभ, कार्तिकमें दामोदर हैं, इन द्वादश नामोंको मूर्त्ति पञ्जर न्यासान्तवर्ती करके द्वादश तिलक धारण करनेकी वैष्णव शास्त्र विधि है।

श्रीकृष्णके इन वासुदेवादि चतुर्व्यूहकी आठ विलास मूर्त्तियाँ हैं। उनके नाम हैं, पुरुषोत्तम, अच्युत, नृसिंह, जनार्दन, हरि, कृष्ण, अधोक्षज तथा उपेन्द्र। वासुदेवकी विलासमूर्त्ति अधोक्षज और पुरुषोत्तम हैं, सङ्कर्षणकी विलासमूर्त्ति उपेन्द्र और अच्युत हैं, प्रद्युम्नकी विलासमूर्त्ति नृसिंह और जनार्दन हैं, और अनिरुद्धकी विलासमूर्त्ति हरि और कृष्ण हैं। ये चौबीस प्रकारकी श्रीमूर्त्तियाँ श्रीकृष्णके प्रभाव विलासकी प्रधान मूर्त्तियाँ हैं। विभिन्न अस्त्र धारण करनेके कारण इनके विभिन्न नाम हैं। इनमें आकार और वेष भेदसे विलास और वैभवके भेद हैं। श्रीकृष्णके इस चतुर्व्यूहके बीस प्रकारके विलास हैं। ये पृथक्-पृथक् वैकुण्ठमें पृथक् रूपमें विलास करते हैं। यद्यपि इन सबका नित्यधाम परम व्योम है, तथापि लीला वैभवमें इनके पृथक् स्थान वैकुण्ठमें निर्दिष्ट हैं। नारायणका नित्य अधिष्ठान परव्योमके बीच है। उसके ऊपर कृष्णलोककी विभूति, [अर्थात् श्रीगोलोक धाम अवस्थित है। कृष्णलोक तीन प्रकारके हैं—गोकुल, मथुरा और द्वारका। गोकुलका वैभव गोलोक धाम है "यत्तु गोलोक नाम स्यात् तत्तु गोकुल वैभवम्।" मथुरा धाममें केशवका नित्य अधिष्ठान है। श्रीपुरुषोत्तममें जगन्नाथजीका अधिष्ठान है। प्रयागमें माधव, मन्दारमें मधुसूदन, आनन्दारण्यमें वासुदेव, पद्मनाभमें जनार्दन, विष्णु-काञ्चीमें विष्णु, मायापुरमें हरि—इस प्रकार सप्तद्वीप नवखण्डमें नाना स्थानोंमें श्रीभगवान्‌की विभिन्न विलास मूर्त्तियाँ अधिष्ठित हैं। इनमें-से किसी-किसीकी गणना अवतारोंमें होती है। यथा त्रिविक्रम, विष्णु, नृसिंह, वामन आदि। अस्त्र धारण भेदसे इनके नाम भेद हैं। सिद्धार्थ संहिता ग्रन्थमें श्रीभगवान्‌की चौबीस विलास मूर्त्तियोंके अस्त्र धारणका विवरण लिखा हुआ है। ये सभी चतुर्भुज श्रीकृष्ण भगवान्‌की ऐश्वर्य-विलास मूर्तियाँ हैं।

महाप्रभु श्रीकृष्णके इस प्रकट विलासकी बात कहकर अब उनके स्वांश विलासकी बात कह रहे हैं, इस स्वांश-विलासमें श्रीभगवान्‌का स्वरूप अनन्त रूपमें अवतीर्ण होता है, उनमें पुरुषावतार, लीलावतार, गुणावतार मन्वन्तरावतार, युगावतार और शक्त्यावेशावतार वे छ अवतार प्रधान हैं, जैसे महासमुद्रसे कोटि-कोटि क्षुद्र जल प्रवाह निकल

करके नदीनामसे अभिहित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि श्रीकृष्ण भगवान्‌से असंख्य अवतार जगत्‌में अवतीर्ण हुए हैं।

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिर्धेद्विजाः।
यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

श्रीम० भा० १.३.२६

पहले महाप्रभु श्रीकृष्णके पुरुषावतारकी बात कह रहे हैं। पुरुषाख्य भगवान्‌के तीन रूप हैं। उनमें एक रूप महत्तत्त्वके स्रष्टा कारणाब्धिशायी सङ्कर्षण है। द्वितीय रूप गर्भोदकशायी प्रद्युम्न हैं। तृतीय रूप सर्वभूतान्तर्यामी क्षीरोदशायी अनिरुद्ध हैं।

विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः।
एकस्तु महतः स्रष्टृद्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्॥
तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते॥

ल० भा० १.३३

भगवानकी तीन प्रधान शक्तियाँ

श्रीकृष्ण भगवान्‌की अनन्त शक्तियोंमें इच्छा-शक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति प्रधानहै। वासुदेव ज्ञानके अधिष्ठाता पुरुष हैं, सङ्कर्षण क्रिया और इच्छाशक्तिके अधिष्ठाता पुरुष हैं, इन दोनों शक्तियोंके द्वारा भगवान्‌की सृष्टि लीला प्रकटित होती है।

इच्छा ज्ञान-क्रिया बिना ना हय सृजन।
तिनेर तिन शक्ति मिलि प्रपञ्च-रचन॥
क्रियाशक्ति-प्रधान संकर्षण बलराम।
प्राकृताप्राकृत सृष्टि करेन निर्माण॥
अहंकारेर अधिष्ठाता कृष्णेर इच्छाय।
गोलोक बैकुण्ठ सृजे चिच्छक्ति द्वाराय॥
यद्यपि असृज्य नित्य चिच्छक्ति-विलास।
तथापि संकर्षण-इच्छाय ताहार प्रकाश॥

चैं० च० म० २०.२२०-२२३

सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम्।
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसम्भवम्॥

ब्रह्म संहिता ५.२

जो सहस्रदल कमलके आकारका गोकुल नामक सर्वोत्कृष्ट स्थान बलदेवके अंश अर्थात् ज्योति विभाग विशेषके द्वारा आविभूत है, वही श्रीकृष्णका परम धाम है।

श्रीकृष्ण भगवान्‌की यह सारी शक्ति प्रपञ्च रूपमें अवतीर्ण होकर अवतार नाम ग्रहण करती है। मायातीत परव्योममें इनकी नित्य अवस्थिति है, किन्तु ये जगत्‌की सृष्टिके लिए माया ईक्षणके द्वारा अवतार ग्रहण करते हैं।

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया॥

श्रीम. भा. १.३.१

तीन पुरुषावतार

पुरुषावतार तीन हैं। प्रथम कारणाब्धिशायी आत्मापुरुष, द्वितीय विराट् पुरुष, तृतीय महाविष्णु ये पुरुषावतार हैं। वे कैसे महान् हैं, और उनका स्वरूप कैसे महिमान्वित है, यह समझा रहे हैं।

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य
कालः स्वभावः सदसन्मनश्च।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णुभूम्नः॥

श्रीम. भा. २.६.४१

अर्थात् जो महापुरुष प्रकृतिका प्रवर्त्तक है, वही भगवान्‌का प्रथम अवतार है। वही काल, स्वभाव, कार्यकारण रूप प्रकृति, महत्तत्त्व, महाभूत, अहङ्कार सत्त्वादि गुण, इन्द्रियाँ, समष्टि शरीर, समष्टि जीव, स्थावर जङ्गम सब कुछ है। वही—

आद्य—अवतार महापुरुष भगवान्।
'सर्व—अवतारबीज सर्वाश्रय धाम॥

चै. च. आ. ५.७०

वे मायाके द्वारा ब्रह्माण्डका सृजन करते हैं। उद्धवने नन्दजीसे कहा है—"हे व्रजराज! राम और कृष्ण दोनों विश्वके बीज हैं, और योनि अर्थात्

निमित्त उपादान कारण हैं क्योंकि पुरुष और प्रकृति इन्हींका अंश और शक्ति है। ये ही पुराण पुरुष हैं। ये दोनों ही भूत समूहमें अनुप्रविष्ट होकर जीव और समस्त भूतवर्गके नियन्ता हैं। और उनको अपने कार्यमें परिचालित करते हैं।"

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी
रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम्।
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य
ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ॥

श्रीम. भा. १०.४६.३१

इस प्रथम पुरुषावतार श्रीसङ्कर्षणका नाम कारणाब्धिशायी है। वे जगत्‌के कारण परम पुरुष श्रीबलराम हैं। वे अवतार ग्रहण करके क्या करते हैं, अब यह बतलाते हैं—

सेइ पुरुष विरजाते करिल शमन।
'कारणाब्धिशायी' नाम जगत्-कारण॥
कारणाब्धि-पारे हय मायार नित्य स्थिति।
विरजार पारे परव्योमे नाहि गति॥
मायार जे दुइ वृत्ति—'माया आर प्रधान'।
'माया' निमित्तहेतु विश्वेर उपादान 'प्रधान'॥
सेइ पूरुष माया-पाने करे अवधान।
प्रकृति क्षोभित करि करे वीर्याधान॥
साङ्ग विशेषा भास रूपे प्रकृति-स्पर्शन।
जीवरूप बीज ताते कैल समर्पण॥

चै. च. म. १०.२३०-२३४

दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्।
आधत्त वीर्यं सासूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम्॥

श्रीम. भा. ३.२६.१९

कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान्॥

श्रीम. भा. ३.५.२६

जीवके अदृष्टवश प्रकृतके गुणोंमें क्षोभ होनेपर पर-पुरुष प्रकृतिमें जीव नामक चिद्रूपी शक्तिको अपने अधीन करता है, उससे उस प्रकृतिमें प्रकाश-बहुल महतत्त्वकी उत्पत्ति होती है। कपिलजीने अपनी माता देवहूतिसे कहा था कि कामवश प्रकृतिमें गुणक्षोभ होनेपर परमपुरुष उस प्रकृतिकी अभिव्यक्तिके स्थलमें निज जीवरूप चैतन्य बीजका आधान करता हैं। तत्काल वह प्रकृति वैचित्र्यमय महत्तत्त्वको प्रसव करती है।

महत्तत्त्वके उत्पन्न होनेपर उससे त्रिविध अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई। जिसके द्वारा देवगण, इन्द्रियगण और भूतगणका प्रसार हुआ। इस प्रकार सब तत्त्वोंके सम्मिलनसे अनन्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। इस प्रथम पुरुषमें कैसी महान् शक्ति थी, अब प्रभु यही बतला रहे हैं।

एहो महत्स्रष्टा पुरुष—'महाविष्णु' नाम।
अनन्त ब्रह्माण्ड जार लोमकूपे धाम॥
गवाक्षे उड़िया जैछे रेणु आय जाय।
पुरुष-विश्वास-सह ब्रह्माण्ड बाहिराय॥
पुनरपि विश्वास-सह जाय अभ्यन्तर।
अनन्त ऐश्वर्य ताँर सब मायापर॥
समस्त ब्रह्माण्ड गणेर एहों अन्तर्यामी।
कारणाब्धिशायी सब जगतेर स्वामी॥

चै. च. म. २०.२३७-२४०

इतना कहकर प्रभुने ब्रह्मसंहिताका एक श्लोक पाठ किया। यथा,

यस्यैकनिःश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्र. सं. ५.४८

अब प्रभुकी कही हुई प्रथम पुरुषावतारकी बात समाप्त हुई। अब वे द्वितीय पुरुषावतारकी बात कह रहे हैं।

एइ त कहिल प्रथम पुरुषेर तत्त्व।
द्वितीर पुरुषेर एबे शुनह महत्त्व।
सेइ पुरुष अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड सृजिया।
एकैक मूर्त्ये प्रवेशिला बहु मूर्त्ति हैया॥

प्रवेश करिया देखे सब अन्धकार।
रहिते नाहिक स्थान, करिला विचार॥
निजाङ्ग स्वेद जले ब्रह्माण्डार्द्ध भरिल।
सेइ जले शेष-शय्याय शयन करिल॥
तार नाभि-पद्म हैते उठिल एक पद्म।
सेइ पद्मे हैल ब्रह्मार जन्म-सद्म॥
सेइ पद्मनाले हैल चौद्द भुवन।
तेंहों ब्रह्मा हञा सृष्टि करिल सृजन॥
विष्णुरूप हआ करेब जगत-पालने।
गुणातीत विष्णु—स्पर्श नाहि माया-सने॥
रुद्ररूप धरि करे जगत-संहार।
सृष्टि-स्थिति-प्रलय इच्छाय जाँहार॥
ब्रह्मा विष्णु शिव ताँर गुण-अवतार।
सृष्टि-स्थिति-प्रलय तिनेर अधिकार॥
हिरण्यगर्भ-अन्तर्यामी गर्भादकशायी।
सहस्रशीर्षादि करि वेदे जारे गाइ॥
एइ त द्वितीय पुरुष ब्रह्माण्ड-ईश्वर।
मायार ईश्वर हय तब माया पर॥

चै. च. म. २०.२४१-२५१

इस अखिल जगत्‌की सृष्टि करके, सृष्टिके अभ्यन्तर जो विराट् पुरुषरूपी भगवान्‌का अंश अवस्थित है, उसको द्वितीय पुरुषावतार कहते हैं।

अब तृतीय पुरुषावतारके विषयमें कह रहे हैं। जो महान् पुरुष सृष्ट-जीवके हृदयमें वास करके उसका पालन करता है, वह तृतीय पुरुषावतार महाविष्णु है। उसको गुणावतार भी कहते हैं। वह क्षीरोदशायी है।

तृतीय पुरुष विष्णु गुण-अवतार।
दुइ अवतार भितर गणना ताँहार॥
विराट् व्यष्टि-जीवेर तेंहों अन्तर्यामी।
क्षीरोदकशायी तेंहों पालन कर्त्ता स्वामी॥

चै. च. म. २०.२५२,२५३

लीला अवतार व गुणावतार

महाप्रभु अब लीलावतारकी बात कह रहे हैं। श्रीभगवान्‌के लीलावतार असंख्य हैं। उनमें प्रधान हैं—मत्स्य, अश्व, कच्छप, वाराह, नृसिंह, हंस, क्षत्रिय, विप्र इत्यादि।

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥

श्रीमद्भागवत. १०.२.४०

इसके आगे गुणावतार है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव—ये तीन श्रीकृष्ण भगवान्‌के गुणावतार हैं। सत्त्व, रज और तमोगुणमें चैतन्य प्रदान करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपमें श्रीभगवान् सृष्टि-स्थिति और लय कर रहे हैं।

ब्रह्मा-विष्णु-शिव—तिन गुण-अवतार।
त्रिगुणाङ्गी करि करे सृष्ट्यादि-व्यवहार॥
भक्तिमिश्र-कृतपुण्य कौन जीवोत्तम।
रजोगुणे विभाजित करि तार मन॥
गर्भोदकशायी द्वारे शक्ति-सञ्चारि।
व्यष्टि-सृष्टि करे कृष्ण ब्रह्मा-रूप धरि॥*

---

* भास्वान् यथास्म सकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्त्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

—ब्रह्म-संहिता ५.४९

अर्थ—जिस प्रकार सूर्यकान्त-मणिमें सूर्य अपना तेज प्रकट करते हैं, उसी प्रकार जो ब्रह्मा होकर (जीव-विशेषमें सृष्टि-शक्ति सञ्चारित करके उसको ब्रह्मा बनाकर) व्यष्टि-सृष्टिकर्त्ता होकर रहते हैं, उन्हीं आदि-पुरुष गोविन्दको मैं भजता हूँ।

कौन कल्पे यदि योग्य जीव—नाहि पाय।
आपने ईश्वर तबे अंशे ब्रह्मा हय॥
निजांश-कलाय कृष्ण तमोगुण अङ्गी करि।
संहारार्थे माया-सङ्गे रुद्र रूप धरि॥
माया संगे विकारी रुद्र भिन्नाभिन्न रूप।
जीव तत्त्व नरे नहे कृष्णेर स्वरूप॥
दुग्ध जेन अम्लयोगे दधिरूप धरे।
दुग्धान्तर-वस्तु नहे, दुग्ध हैते नारे॥*
शिवमायाशक्तिसङ्गी तमोगुणावेश।
मायातीत गुणातीत विष्णु परमेश॥

चै. च. म. २०.२५८-२६५

प्रभुने इसके प्रमाणस्वरूप श्रीमद्‌भागवतके निम्नलिखित दो श्लोकोंका पाठ किया। यथा,

शिवः शक्तियुतः शश्वत् त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा॥
हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
स सर्वदृक् उपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत्॥

श्रीम. भा. १०-८८.३,५

अर्थ—शुकदेवजीने परीक्षित्‌से कहा था कि शिव अर्थात् रुद्र निरन्तर प्रकृतिके साथ संयुक्त है, इसलिए गुण-क्षोभके बाद त्रिगुणोपाधियुक्त होते हैं, और वे गुणत्रयमें आवृत होकर जब सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे त्रिविध अहङ्कारसे युक्त होते हैं, तब वे अहङ्कारके अधिष्ठाता रुद्र भी त्रिगुणोपाधियुक्त होते हैं। श्रीहरि निर्गुण पुरुष, साक्षात् प्रकृतिके परे अर्थात् साक्षी रूपसे समस्त पर्यवेक्षण कर रहे हैं, तथा सबके उपदेष्टा हैं, अतएव वे प्रकृतिके अतीत हैं। उनकी उपासना करनेसे जीव गुणातीत अर्थात् मायातीत हो जाता है।

स्वरूप-ऐश्वर्य-पूर्ण कृष्णसम प्राय।
कृष्ण अंशी, तेहो अंश वेदे हेन गाय॥*
ब्रह्माशिव—आज्ञाकारी भक्त अवतार।
पालनार्थे विष्णु—कृष्णेर स्वरूप आकार॥

चै. च. म. २०.२६७,२६८

यथा श्रीमद्‌भागवतमें ब्रह्माकी नारदके प्रति उक्ति—

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्॥

श्रीम. भा. २.६-३१

ब्रह्मा कहते हैं—"मैं उनके द्वारा नियुक्त होकर विश्वकी सृष्टि करता हूँ, महेश्वर उनके ही अधीन रहकर सृष्टिका संहार करते हैं; परन्तु वे स्वयं पुरुषरूपमें जगत्‌की रक्षा करते हैं।"

मन्वन्तरावतार

अब महाप्रभु श्रीसनातनसे मन्वन्तरावतारकी बात कह रहे हैं।

एक-एक मनुके शासनकालको 'समन्वन्तर' कहते हैं। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चार युगोंका एक दिव्य युग होता है। इकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। इस हिसाबसे एक मन्वन्तरमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ये प्रत्येक मिलाकर २८४ बार (७१×४) होते हैं। एक-एक मन्वन्तरमें एक-एक मनु शासन करते हैं। प्रत्येक

---

* क्षीरं यथा दधिविकारविशेषयोगात्
संजायते न तु ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्यात्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
ब्रह्मसंहिता ६.४.५

* दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतु समानधर्मा।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
ब्रह्मसंहिता ५.४६

मन्वन्तरमें भगवान् मुकुन्द देवगणके बीच आविर्भूत होकर, उस मन्वन्तरके इन्द्रकी सहायता करते हैं एवं साधारणतया इन्द्रके शत्रु आदिका भी विनाश करते हैं। मुकुन्दके इस प्रकारके अविर्भावको 'मन्वान्तरावतार' कहते हैं।

मन्वन्तारावतार असंख्य हैं। इसका कारण यह है कि चौदह मन्वन्तरका ब्रह्माका एक दिन होता है। इस प्रकारसे ३० दिनका ब्रह्माका एक मास और बारह मासका एक वर्ष है। ऐसे एक-सौ वर्षकी ब्रह्माकी आयु होती है। अतः ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर हुए। एक मासमें १४×३०=४२० और एक वर्षमें ४२०×१२=५०४० एवं १०० वर्षमें ५०४०×१००=५,०४,००० मन्वन्तरावतार हुए। इस हिसाबसे एक ब्रह्माके आयुकालमें एक ब्रह्माण्डमें पाँच लाख, चार हजार मन्वन्तरावतार हुए। ब्रह्माण्डोंकी संख्या अनन्त है; अतएव समष्टि ब्रह्माण्डके मन्वन्तरावतारोंकी संख्या भी अनन्त हुई। यह हुई एक ब्रह्माके आयुकालके मन्वन्तरावतारकी बात। महाविष्णुके एक निश्वासका समय एक ब्रह्माका आयुकाल होता है; उनके निश्वासोंका भी अन्त नहीं है। अतः मन्वन्तरावतारकी संख्याका भी कोई कूल-किनारा अर्थात् अन्त नहीं है।

असंख्य होनेके कारण सब मन्वन्तरावतारोंका विवरण दिया जाना संभव नहीं है। इसलिए ब्रह्माके एक दिनके अन्तर्गत केवल चौदह मनु और चौदह मन्वन्तरावतारोंके नाम उल्लेख किये जाते हैं।

चौदह मनुओंके नाम—१. स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८. सावर्ण, ९. दक्षसावर्ण, १०. ब्रह्मसावर्ण, ११. धर्मसावर्ण, १२. रुद्रसावर्ण, १३. देवसावर्ण और १४. इन्द्रसावर्ण। प्रथम ६ मनु शेष हो चुके हैं। अब सातवें मनु वैवस्वतका समय चल रहा है। इस मन्वन्तरके २७ चतुर्युग (दिव्ययुग) बीत चुके। इस समय २८ वें चतुर्युगका कलियुग चल रहा है।

चौदह मन्वन्तरावतारोंके नाम—उक्त १४ मनुओंके समयमें यथाक्रमसे निम्नलिखित १४ मन्वन्तरावतार होते हैं—१. यज्ञ, २. विभु, ३. सत्यसेन, ४. हरि, ५. वैकुण्ठ, ६. अजित, ७. वामन, ८. सार्वभौम, ९. वैकुण्ठ, १०. विश्वक्सेन, ११. धर्मसेतु, १२. सुधामा, १३. योगेश्वर एवं १४. बृहद्भानु। वर्तमान मन्वन्तरके अवतार हैं—'वामन'।

युगावतार

इसके बाद महाप्रभु युगावतारकी बात कहते हैं।

युगावतार कहि एवे शुन सनातन।
सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि-चारि युगेर गणन॥
शुक्ल, रक्त, कृष्ण, पीत—क्रमे चारि वर्ण।
चारि वर्ण धरि कृष्ण कराय युगधर्म॥

चै. च. म. २०.२७९,२८०

इसके प्रमाणमें प्रभुने श्रीमद्भागवतका निम्न श्लोक पाठ किया—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥

श्रीम. भा. १०.८-१३

"सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि-इन चारों युगोंमें भगवान् क्रमसे शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण—इन चार वर्णोंकी मूर्त्ति धारण करके भूतलपर अवतीर्ण होते हैं।"

सत्य युगे धर्म ध्यान कराय शुक्लमूर्त्ति धरि।
कर्दमके वर दिला जेंहो कृपा करि॥
कृष्ण ध्यान करे लोक ज्ञान 'अधिकारी'।
त्रेताय धर्म यज्ञ कराय रक्तवर्ण धरि॥

कृष्णपदार्चन हय द्वापरेर धर्म।
कृष्णवर्णे कराय लोके कृष्णार्चनकर्म ।।

चै. च. म. २०.२८१-२८३

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः ।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ।।

श्रीम. भा. ११.५-२७

अर्थात्—द्वापर युगमें भगवान् श्याम वर्ण, पीतवसन, तथा चक्रादि आयुधधारी होकर श्रीवत्स और कौस्तुभादि चिह्नोंके साथ अवतीर्ण होते हैं। द्वापर युगके श्रीकृष्णार्चनका मन्त्र यह है—

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ।।

श्रीम. भा. ११-५-२९

एइ मन्त्रे द्वापरे करे कृष्णार्चन ।
कृष्णनाम-संकीर्तन--कलियुगेर धर्म ।।
पीत वर्ण धरि तबे कैल प्रवर्त्तन ।
प्रेम-भक्ति दिला लोके लैञा भक्तगण ।।
धर्म-प्रवर्त्तन करे व्रजेन्द्रनन्दन ।
प्रेमे गाय नाचे लोक करे सङ्कीर्तन ।।

चै. च. म. २०.२८४-२८६

इतना कहकर महाप्रभुने प्रमाण स्वरूप श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकको पढ़ा—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ।।

श्रीम. भा. ११.५.३२

अर्थ—जो भीतर कृष्ण, अर्थात् साक्षात् कृष्णस्वरूप हैं तथा बाहर गौर, अर्थात् जो कृष्ण होते हुए भी गौर हैं, उनकी कलियुगमें बुद्धिमान् लोग अङ्ग-उपाङ्ग-अस्त्र और पार्षदोंके साथ संकीर्तन-बहुल यज्ञके द्वारा अर्चना करते हैं।

इसके बाद प्रभु कलियुगकी महिमा कीर्तन करते हुए बोले—

आर तिन युगे ध्यानादिते जेइ फल हय।
कलियुगे कृष्णनामे सेइ फल पाय ।।

चै. च. म. २०.२८७

कलेर्दोषनिधे राजन् ! अस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ।।
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।।

श्रीम. भा. १२.३.५१,५२

श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा है कि— "हे राजन् ! दोष-सागर कलियुगमें यह एक महान् गुण है कि मनुष्य हरिनाम-संकीर्तन करके ही बन्धनमुक्त होकर परमधाममें गमन करता है। सत्ययुगमें विष्णुके ध्यानद्वारा, त्रेतायुगमें यज्ञादिके द्वारा और द्वापरमें परिचर्याके द्वारा जो फल प्राप्त होता है, कलियुगमें केवल हरिनाम-संकीर्तनके द्वारा वही फल प्राप्त होता है।"

विष्णुपुराणमें भी यही लिखा है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ।।

वि. पु. ६.२-१७

श्रीमद्भागवतमें पुनः यही बात कहते हैं— यथा,

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ।।

श्रीम. भा. ११.५.३६

अर्थात् कलियुगमें एकमात्र नाम-संकीर्तनके द्वारा सर्वार्थसिद्धि होती है, यह जानकर गुणज्ञ सारग्राही साधुगण इस युगकी प्रशंसा करते हैं।

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंके अवतारोंके विषयमें महाप्रभुने श्रीसनातनको बतलाया। श्रीसनातनने प्रभुसे पहला प्रश्न किया था—"मैं कौन हूँ? मुझे तापत्रय क्यों सन्तप्त करते हैं?" और कोई बात नहीं पूछी। केवल प्रभुके मुखसे निःसृत मधुर उपदेश-वाणी सुनते जा रहे थे। प्रभुके श्रीमुखसे कलियुगका अवतार-तत्त्व सुनकर वे मानो चकित हो उठे। वे वृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। प्रभु ही स्वयं कलियुगके

अवतार हैं, यह राजमन्त्री सनातनके समान चतुर और बुद्धिमान् आदमीके लिए समझना बाकी न रहा। उनके मनमें आया कि प्रभुसे इस विषयमें स्पष्ट रूपमें कुछ पूछूँ। अबतक वह चुपचाप एकाग्र चित्तसे प्रभुकी उपदेश-वाणी सुन रहे थे। अब हाथ जोड़कर निःसङ्कोच-भावसे प्रभुके चरणोंमें परम चतुरताके साथ निवेदन किया—

अति क्षुद्र जीव मुक्ति—नीच नीचाचार।
केमते जानिव—कलिते कोन अवतार॥

चै. च. म. २०.२९१

सर्वज्ञ प्रभु सब कुछ जानते हैं। उन्हींकी कृपा-प्रेरणासे श्रीसनातनने यह प्रश्न किया था। प्रभुने मधुर मुस्कानके साथ उत्तर दिया—

अन्यावतार शास्त्र द्वारा जानि।
कलि-अवतार तैछे शास्त्र वाक्ये मानि॥
सर्वज्ञ सुनिर वाक्य शास्त्र—परमाण।
आया सभा जीवेर हय शास्त्र द्वारा ज्ञान॥
अवतार नाहि कहे—'आमि अवतार'।
मुनि सब जानि करे लक्षण विचार॥

चै. च. म. २०.२९२-२९४

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतका यह श्लोक पाठ किया—

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः॥

श्रीम. भा. १०.१०-३४

यमलार्जुनने श्रीकृष्णसे कहा था कि, देहधारियोंमें विद्यमान् रहकर भी जो दैहिक धर्म-शून्य हैं, उन भगवान्के अवतारोंको देहधारियोंके द्वारा वेद्य होना सम्भव नहीं है। अनिवार्य, अद्भुत और अतुलवीर्य पराक्रमके द्वारा वे ज्ञात होते हैं।

स्वरूप-लक्षण आर तटस्थ-लक्षण।
एइ दुइ लक्षणेर वस्तु जाने नुनिगण॥
आकृति प्रकृति एइ—स्वरूप लक्षण।
कार्य द्वारा ज्ञान एइ—तटस्थ लक्षण॥

भागवतारम्भे व्यास मङ्गलाचरण।
परमेश्वर निरूपिल ए दुइ लक्षणे॥

चै. च. म. २०.२९५-२९७

यह कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतका प्रथम श्लोक 'जन्माद्यस्य·····' सुनाया।

श्रीसनातन प्रभुके श्रीवदनकी ओर देख रहे थे। उनके मनमें आज बड़ा आनन्द था। प्रभु पहले ही कह चुके थे—

अवतार नाहि कहे आमि अवतार।

चै. च. म. २०.२९४

अर्थात् तुम लक्षण देखकर विचार करो कि वे कलिके अवतार हैं या नहीं। श्रीसनातनको प्रभुकी कृपासे प्रश्न करनेकी शक्ति प्राप्त हुई है। उन्होंने निःसंकोच भावसे प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया—

—जाते ईश्वर लक्षण।
पीतवर्ण, कार्य—प्रेम-दान—संकीर्त्तन॥
कलि काले सेइ कृष्णावतार निश्चय।
सुदृढ़ करिया कह, जाउक संशय॥

चै. च. म. २०.२०२,२०३

अर्थात् "हे प्रभु! ईश्वरके सारे लक्षण तुममें दृष्ट होते हैं। कलिके अवतारका लक्षण है, पीतवर्ण कार्य-प्रेमदान और हरि-संकीर्त्तन। ये सभी तुममें दीख पड़ते हैं। तुम निश्चय ही कलियुगके कृष्णावतार हो। हे प्रभु! श्रीमुखसे तुम एक बार यह बात कह दो, मेरे मनका सारा संशय दूर हो जाय।"

कलिके प्रच्छन्न अवतार श्रीश्रीगौर भगवान् चतुर-चूड़ामणि हैं, परन्तु उनके भक्तगण भी बहुत चतुर हैं। भक्तगण उनको प्रकट करनेमें निरन्तर यत्नशील रहते हैं, और वे प्रकठ होनेके लिए कभी राजी नहीं होते। महाप्रभुने गम्भीरभावसे श्रीसनातनसे कहा, "सनातन! तुम चतुराई छोड़ो।"

शक्त्यावेशावतार

श्रीसनातन और कोई बात न कह सके। तब प्रभु शक्त्यावेशावतारकी बात कहने लगे। शक्त्यावेशावतार असंख्य होनेपर भी मुख्य और गौण भेदसे दो प्रकारका होता है। जिसमें जब भगवान्‌की शक्ति प्रकट होती है, तब उसको 'शक्त्यावेशावतार' कहते हैं। जैसे सनकमें ज्ञान' नारदमें भक्ति, पृथुमें पालन, परशुराममें दुष्टदलन इत्यादि। श्रीभगवान् जिन जीवोंमें ज्ञानादि शक्तिका प्रकाश करते हुए प्रवेश करते हैं, उनके उस प्रकाशके कारण उन महापुरुषोंको 'आवेशावतार' कहते हैं—

शक्त्यावेशावतार कृष्णेर असंख्य-गणन।
दिग्दरशन कहि मुख्य मुख्य जन॥
शक्त्यावेश दुइ रूप - गौण मुख्य देखि।
साक्षात् शक्त्ये 'अवतार' आभासे 'विभूति' लिखि।
सनकादि, नारद, पृथु, परशुराम।
जीवरूप ब्रह्मार 'आवेशावतार' नाम॥
वैकुण्ठे शेष—धरा धरये अनन्त।
एइ मुख्यावेशावतार-विस्तारे नाहि अन्त॥
सनकाद्ये ज्ञानशक्ति, नारदे भक्ति-शक्ति।
ब्रह्मार सृष्टिशक्ति, अनन्ते भूधारण-शक्ति॥
शेषे-स्वसेवन-शक्ति पृथुते पालन।
परशुरामे दुष्टनाशक-वीर्य सञ्चारण॥

चै. च. म. २०.३०५-३१०

ज्ञानशक्त्यादि-कलया यत्राविष्टो जनार्दनः।
त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥

ल. भा. १.१८

महाप्रभुने कहा कि ये सारे तत्त्व श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनसे गीताके १०.४१,४२ श्लोकोंमें कहे हैं।

लीला-प्राकट्य

अब प्रभु श्रीकृष्णके वयोधर्म तथा नाना रहस्यकी बात कह रहे हैं—

वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिरसाश्रयः।
धर्मो किशोर एवात्र नित्य नानाविलासवान्॥

भ. र. सि. २.१.६३

अर्थ—वयस्‌का कौमारु पौगण्ड और कैशोर आदि विविध प्रकारसे भेद रहनेपर भी सर्वभक्तिरसाश्रय, सर्वगुणान्वित और नित्य-नूतन लीला-विशिष्ट कैशोर वयस् ही श्रीकृष्णकी प्रशस्त वयस् है।

परम माधुर्यमय, लीला-परायण श्रीकृष्ण वयोधर्मके वैचित्र्यसे पूर्ण भक्तिरसायन किशोर-वयस्क होकर नित्य-लीला करते हैं। उनकी बाल्य और पौगण्ड लीला भी मधुमय होती है। प्रभु इसका विचार कर रहे हैं।

नित्यकिशोरधर्मी व्रजेन्द्रनन्दन जब प्रकट लीला करनेका मन करते हैं, तब पहले माता-पिता और भक्तगणको प्रकट करते हैं। पीछे स्वयं प्रकट होकर क्रमसे जन्मादि लीला करते हैं। पूतना-वध आदि जितनी लीलाएँ हैं, सबको क्रमसे प्रकट करते हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं जिनकी गणना नहीं हो, सकती। कोई-न-कोई लीला किसी-न-किसी ब्रह्माण्डमें प्रकट रहती है। जैसे गङ्गाकी धाराका आरम्भसे लेकर अन्ततक कहीं विच्छेद नहीं है, उसी प्रकार माता-पिताके प्रकटनसे लेकर मौसलान्त-तक सब लीलाएँ या उनके अन्तर्गत कोई भी खण्ड लीला किसी भी समय अति अल्पकालके लिए भी अप्रकट नहीं होती। जन्म-लीलाके बाद बाल्य-लीला, उसके बाद पौगण्ड-लीला, उसके बाद कैशोर-लीला प्रकट करते हैं। कैशोरमें ही रास आदि लीला प्रकट करते हैं। कैशोरमें ही श्रीकृष्णकी नित्य स्थिति है। उसके बाद प्रौढ़ या वार्द्धक्य-लीला नहीं है।

श्रीकृष्णकी लीला नित्य है—यह सभी शास्त्र बताते हैं। लेकिन किस प्रकार नित्य है—यह समझमें नहीं आता। इसको दृष्टान्तसे समझा रहे हैं

कि ज्योतिश्चक्रकी तरह श्रीकृष्ण-लीलाकी नित्यता है। ज्योतिश्चक्रमें जिस प्रकार सूर्य रात-दिन भ्रमण करता है, और सप्तद्वीप तथा सप्त-सिन्धुको पार करता रहता है अर्थात् दिन-रातमें कहीं-न-कहीं सूर्यका प्राकट्य और अप्राकट्य होता रहता है। दिन-रात साठ दण्डका होता है, एक दण्डके साठ पल होते है। इस प्रकार दिन-रातमें ६०×६०=३६०० पल होते हैं। सूर्योदयके आरम्भसे लेकर क्रमसे ३ दिन ६० पलोंतक एक दण्डका समय होता है और आठ दण्डका एक प्रहर होता है। क्रमशः लगभग चार प्रहर समय बीतनेपर सूर्य अस्त होता है और फिर उसी प्रकार लगभग चार प्रहर रात्रि बीतनेपर पुनः उसी स्थानपर सूर्योदय होता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण-लीला चौदह मन्वन्तरोंमें समस्त ब्रह्माण्ड-मण्डलमें व्याप्त होकर क्रम-क्रमसे होती रहती है। सवासौ (१२५) वर्ष पर्यन्त श्रीकृष्ण भगवान्‌की लीलाका प्रकट-प्रकाश है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने इस पृथिवीतलपर व्रजमें वर्तमान रहकर लीलाएँ प्रकट कीं।

एक जलते हुए लकड़ीके टुकड़ेको चक्राकार घुमानेसे चक्रका जो आकार देखनेमें आता है, उसे 'अलातचक्र' कहते हैं। यह लकड़ीका टुकड़ा जिस प्रकार यथाक्रमसे चक्रके प्रत्येक स्थानपर घूमता रहता है, श्रीकृष्ण-लीला भी उसी प्रकार यथाक्रमसे सब ब्रह्माण्डोंमें प्रकट होती रहती है। वहाँ प्रत्येक स्थानपर जन्म, बाल्य, पौगण्ड और कैशोरका क्रमसे प्रकाश होता रहता है एवं पूतना-वधसे लेकर मूसल-लीलापर्यन्त सब लीलाएँ प्रत्येक जगह क्रमसे होती रहती है। किसी-न-किसी ब्रह्माण्डमें कोई-न-कोई लीला होती रहती है,इसीसे शास्त्र इसको नित्य लीला, कहते हैं।

गोलोक और गोकुल-धाम भी श्रीकृष्णकी तरह विभु (सर्वव्यापी) हैं। श्रीकृष्णकी इच्छासे ही भिन्न-भिन्न समयमें ब्रह्माण्डमें उनके प्रकट-लीला-स्थल गोलोक-गोकुल आदिका संक्रमण (आविर्भाव) होता रहता है।

श्रीकृष्ण गोलोक छोड़कर किसी ब्रह्माण्डमें नहीं आते; वे नित्य गोलोकमें ही रहते हैं। गोलोक विभु होनेके कारण सब ब्रह्माण्डोंके स्थानको घेरकर विद्यमान् है, अतएव सब ब्रह्माण्डव्यापी उनकी लीला सर्वदा होती रहती है; किन्तु मायारूपी यवनिकाके अन्तरालमें होनेके कारण जीव उसको देख नहीं पाता। वे कृपा करके जब, जिस ब्रह्माण्डके सामनेकी यवनिका उठा लेते हैं, उसी समय उस ब्रह्माण्डके लोग इस लीलाको देख पाते हैं। एक ब्रह्माण्डके पश्चात् दूसरे ब्रह्माण्डके सामनेकी यवनिका उठाकर उस ब्रह्माण्डमें यथाक्रमसे अपनी लीला प्रकट करते हैं—

श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-माधुर्य-आदि व्रजमें पूर्णतम रूपसे प्रकाशित हुए हैं, इसलिए वे व्रजमें पूर्णतम हैं। मथुरामें पूर्णतर और द्वारकामें पूर्ण हैं—

हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिधा।
श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैर्नाट्ये यः परिपठ्यते।
प्रकाशिताखिलगुणः स्मृतः पूर्णतमो बुधैः।
असर्वव्यञ्जकः पूर्णतरः पूर्णोऽल्पदर्शकः॥
कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ताभूद् गोकुलान्तरे।
पूर्णता पूर्णतरता द्वारकामथुरादिषु॥

भ. र. सि. २.१.२२१-२२३

श्रीमन्महाप्रभुने बताया कि श्रीकृष्णके स्वरूपका बहुत संक्षेपमें वर्णन किया है। इनका इतना अनन्त विस्तार है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

धाम-तत्त्व

अब महाप्रभु श्रीसनातनको श्रीकृष्ण भगवान्‌के धामका तत्त्व बता रहे हैं—

जिस प्रकार अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्यसे पूर्ण श्रीकृष्ण-भगवान्‌के ऐश्वर्यका भी अन्त नहीं है माधुर्यकी भी अवधि नहीं है, अनन्त लीला-कथाका भी अन्त नहीं है, वैसे ही लीलाधाम भी असंख्य हैं। जड़ातीत धामका नाम 'वैकुण्ठ' है।

एक-एक वैकुण्ठका परिमाण शत-सहस्त्र-अयुत-लक्ष-कोटि योजन है। एक-एक वैकुण्ठ कोटि-योजन विस्तारयुक्त होनेसे आपतनः दृष्टिमें परिच्छिन्न और सीमावद्धसे लगनेपर भी वस्तुतः परिच्छिन्न और सीमावद्ध नहीं है। उनमेंसे प्रत्येक ही व्यापक, सर्वग, अनन्त, विभु है। अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे इन धाम-समूहोंकी परिच्छिन्नता और व्यापकता युगपत् वर्तमान है। प्रत्येक वैकुण्ठ ही आनन्दमय, चिन्मय है; अपने-अपने धामाधिपतिके पार्षदोंसे परिपूर्ण है एवं षड्-ऐश्वर्य पूर्ण तथा व्यापक है। इस प्रकार अनन्त वैकुण्ठ जिस परव्योमके एक अंशमें वर्तमान है, उस परव्योमका विस्तार-वर्णन करना असम्भव है। अनन्त वैकुण्ठमय परव्योम और कृष्णलोक—इन सबका मिलित आकार एक पद्मकी तरह है। कृष्णलोक इस पद्मका कर्णिका-स्थानीय है एवं परव्योममें वैकुण्ठ-समूह उसके दलश्रेणी-स्थानीय है। यह वर्णन परिच्छिन्न-सा लगनेपर भी स्वरूपतः सब भगवद्धाम सर्वग-अनन्त-विभु हैं। इस प्रकार भगवान्‌के सब धाम, सब अवतार, सब पार्षद षड़ैश्वर्यमय, अचिन्त्य शक्ति-युक्त हैं, जिसका ब्रह्मा-शिव आदि भी अन्त नहीं पाते, फिर जीवकी तो शक्ति ही क्या है—

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीड़सि योगमायाम् ॥

श्रीम. भा. १०.१४.२१

अर्थ—ब्रह्मा श्रीकृष्णसे कहते हैं—"हे भूमन्! हे षड़ैश्वर्य-परिपूर्ण भगवन्! हे सर्वान्तिर्यामिन्! हे योगेश्वर! कैसा आश्चर्य है! आप जब अपनी स्वरूपशक्ति योगमायाका विस्तार करके क्रीड़ा करते हैं, तब आपकी लीला कहाँ, किस प्रकारसे, कितनी संख्यामें एवं किस समयमें सम्पादित होती है, इस बातको त्रिभुवनमें कौन जान सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं जान सकता।"

श्रीकृष्ण-गुणोंकी अनन्तता

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईश्वरस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैः
भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥

श्रीम. भा. १०.१४.७

अर्थ—ब्रह्माने श्रीकृष्णसे कहा—"स्वरूप-भूत गुणोंसे गुणी जो आप है एवं विश्वके हितके निमित्त अवतीर्ण जो आप हैं। उनके गुणोंको गिननेमें कौन समर्थ है? यथोपयुक्त समय पानेसे निपुण व्यक्ति पृथिवीके परमाणुओंको, आकाशके हिमकणोंको, सूर्यादिके किरण-कणोंको गिन सकते हैं, किन्तु वे भी आपके गुण-समूहकी गणना करनेमें असमर्थ हैं।"

चतुर्मुख ब्रह्मा, पञ्चमुख शिवकी तो बात ही क्या है—सहस्रवदन अनन्तदेव भी निरन्तर गुण-कीर्तन करते रहनेपर भी श्रीकृष्णके गुणोंका अन्त नहीं पाते।

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते
मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽवरा ये ।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः
शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥

श्रीम. भा. २.७.४१

अर्थ—ब्रह्माने नारदसे कहा—"तुम्हारे अग्रज सनकादि मुनिगण भी परमपुरुष श्रीकृष्णके मायाबलका अन्त नहीं पाते; यहाँतक कि मैं भी नहीं पाता, तब अन्यकी बात क्या कही जाय? सहस्रवदन अनन्तदेव उनका गुणगान अनादिकालसे करते हैं तो भी अभीतक उसका अन्त नहीं पा सके।"

इन सबकी बात तो दूर रही, श्रीकृष्ण स्वयं सर्वज्ञ होकर भी अपने गुणोंका अन्त नही पाते

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः ।
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यत् श्रुतय-
स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥

श्रीम. भा. १०-८७-४१

अर्थ—श्रीकृष्णको लक्ष्य करके श्रुतियोंने कहा—"हे भगवन् ! स्वर्गादि-लोकाधिपति ब्रह्मादि देवगण भी आपका अन्त नहीं पाते, यहाँ-तक कि स्वयं अनन्त होनेके कारण आप स्वयं भी अपना अन्त नहीं पाते। आकाशमें धूलिकण-समूह जिस प्रकार घूमता-फिरता रहता है, उसी प्रकार आपके बीच सावरण ब्रह्माण्ड-समूह कालचक्रके द्वारा (परिवर्तित होकर) युगपत् परिभ्रमण करते रहते हैं। इसीसे, आपमें ही समाधिप्राप्ता श्रुति सब अतद्वस्तु निरसनपूर्वक आपको विषयीभूत करके ही सफलता प्राप्त करती है।"

जानन्त एव जानन्तु कि बहूक्तया न मे प्रभो।
मनसो बपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥

श्रीम. भा. १०.१४.३८

अर्थात् ब्रह्माने श्रीकृष्णसे कहा--"हे प्रभो ! व्यर्थ बहुत कथनसे क्या फल ? 'तुम्हारे वैभवसे मैं अवगत हूँ'—यह बात जो कहते हैं, वे जानते हैं तो जानें, परन्तु वह मेरे काय-मन-वाणीके लिए अगोचर हैं।"

ये सारे श्रीमद्भागवतशास्त्रके प्रमाणका प्रयोग करके श्रीकृष्णके अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्यका वर्णन करते-करते प्रभुका मन तथा इन्द्रियाँ ऐश्वर्यके समुद्रमें एक बारगी डूब गयीं। वे प्रेमावेशमें अपने-आपको भूल गये—

ऐश्वर्य कहिते स्फुरिल ऐश्वर्य-सागर ।
मनेन्द्रिय डूबिल प्रभुर, हइला फाँफर ॥

चै. च. म. २१-२५

तत्काल प्रभु आत्म-संवरण करके स्थिर हो गये और श्रीसनातनको निम्नलिखित श्रीमद्भागवतका श्लोक पाठ करके सुनाया। केवल सुनाया ही नहीं; प्रभुने भावावेशमें स्वयं व्याख्या करके आस्वादन किया। वह पुण्य श्लोक यह है—

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः
स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः
किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥

श्रीम. भा. ३.२.२१

अर्थ—उद्धवसे महामति विदुर कह रहे हैं, "कृष्ण ही त्रिभुवनके एकमात्र ईश्वर हैं, उनके समान या उनसे बढ़कर कोई नहीं है। वे स्वाराज्य-लक्ष्मी प्राप्त करके अनन्त भोगैश्वर्यको प्राप्त हो रहे हैं, लोकपालगण जब उनको नाना उपचारोंसे अर्चना करके प्रणाम करते हैं, तब उनके किरीटके मणि श्रीकृष्णके पादपीठसे संलग्न होकर अति अपूर्व मधुर ध्वनि उत्पादन करते हैं।"

प्रभुने इस श्लोककी व्याख्या करके श्रीसनातनको समझा दिया। वे बोले, श्रीकृष्णने ब्रह्मादि आदिपुरुषोंके प्रभु होकर भक्ताधीनताके वश उग्रसेनका दासत्व स्वीकार किया था, उनके भक्तवशीभूतभावको भुलाना नितान्त दुष्कर और दुरूह है। इस ब्रह्माण्डमें उनसे उत्कृष्टकी बात तो दूर रही, उनके समान भी कोई नहीं है। वे महतस्रष्टा आदिपुरुषोंके भी ईश्वर हैं, चैतन्य-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति उसी परमपुरुष श्रीकृष्णसे उत्पन्न हैं। वे अपनी शक्ति, भक्तशक्ति और लीलाशक्तिसे परिवृत होकर अपार ऐश्वर्य और माधुर्य रसमें निरन्तर विराजते हैं। उनका यह भाव स्वीय राजत्व तथा स्वाराज्यलक्ष्मीस्वरूप है, अतएव अभीष्ट प्राप्तिकी उनको कोई अपेक्षा नहीं होती। अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डमें सृष्टिकर्त्ता,

पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु और महादेवभी अनन्त हैं।

जब किरीटधारी लोकपालगण अवनत सिर होकर उस परमपुरुषके पाद-पद्ममें प्रणाम करते हैं तो दूसरे और किसी स्तवनकी क्या अपेक्षा है? पादपीठके संलग्न किरीटकी ध्वनिसे अपूर्व स्तवनका कार्य सम्पन्न होता है।

प्रभु पुनः कहने लगे—

परम ईश्वर कृष्ण स्वयं भगवान्।
ताँते बड़, ताँर सम, केह नाहि आन॥

चै. च. म. २१.२७.

ब्रह्म-संहितामें भी लिखा है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्द सर्वकारणकारणम्॥

ब्र. सं. ५.१.

"ब्रह्मा, विष्णु और हर—इस सृष्टि आदिके ईश्वर हैं। तीनों श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं। श्रीकृष्ण सबके अधीश्वर हैं।"

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्॥

श्रीम. भा. २.६.३१

श्रीकृष्णके तीन धाम हैं—मथुरा, द्वारका और वृन्दावन। श्रीवृन्दावन उनका अन्तःपुर-जैसा है। श्रीवृन्दावनमें उनकी नित्य स्थिति है। उनकी दासी योगमाया है। माता-पिता और सखा-वृन्दके साथ वे यहाँ माधुर्य-लीला करते हैं, गोलोक श्रीवृन्दावन है। इसके नीचे परव्योम विष्णुलोक है। यह उनकी विलासमूर्त्ति नारायणका धाम है। इस धाममें श्रीकृष्ण अनन्त-शय्यापर नारायण मूर्त्तिमें श्रीलक्ष्मीजीके साथ विराजते हैं। उसके नीचे देवीधाम, महेशधाम और हरिधाम है—

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीम-हेश-हरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्र. सं. ५.५२.१

गोलोकधाममें विरजा नामकी नदी नारायणके स्वदजलसे प्रवाहित हो रही हैं तथा गङ्गा आदि रूपमें सबका शुभ साधन कर रही है। उस विरजाके पर पार त्रिपाद् विभूतिरूप सनातन परव्योम विद्यमान है। यह परव्योम धाम ही '**अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम्**' है।'

देवी-धाममें जीवलोककी बस्ती है। प्राकृत सम्पत्-रूपा जगत्-लक्ष्मी इस देवीधामकी अधिष्ठात्री देवी, कर्त्री है। यहाँ माया दासीरूपमें सबकी परिचर्या करती है। यह धाम चित्-शक्ति सम्पन्न होनेके कारण 'त्रिपाद् ऐश्वर्य' नामसे अभिहित हैं, अर्थात् श्रीकृष्ण इस धामको त्रिपाद् ऐश्वर्यका स्थान होनेके कारण त्रिपाद्भूत कहते हैं। अन्य सब धाम मायाविभूति होनेके कारण एक पाद है—

त्रिपद्विभूते धामत्त्वात् त्रिपाद्भूतं हि तत्पदम्॥
विभूति मायिकी सर्वा प्रोक्ता पादात्मिका यतः॥

लघुभागवतमृतम् १.५६३.

अर्थ—त्रिपाद् विभूतिके (ऐश्वर्यके) आश्रय होनेके कारण यह परव्योम-धाम त्रिपाद्भूत हैं; क्योंकि सम्पूर्ण मायिक ऐश्वर्यको एकपाद कहते हैं।

इतना कहकर प्रभुने श्रीकृष्णकी एकपाद-विभूतिकी एक शास्त्रीय कथा सुनायी—

एक दिन द्वारकामें श्रीकृष्णसे मिलने ब्रह्मा आये। द्वारपालने श्रीकृष्णको इसकी सूचना दी। श्रीकृष्णने लीला करनेके लिए पूछा—"कौनसे ब्रह्मा आये हैं।" द्वारपालने आकर ब्रह्मासे पूछा। ब्रह्माने विस्मित होकर उत्तर दिया—"सनकादिके पिता

चतुर्मुख ब्रह्मा।" श्रीकृष्णको बताकर द्वारपाल ब्रह्माको भीतर ले गया। ब्रह्माके दण्डवत् करनेके बाद यथोचित संवर्द्धना करनेके पश्चात् श्रीकृष्णने ब्रह्मासे आनेका कारण पूछा। ब्रह्माने कहा—"कारण तो पीछे निवेदन करूँगा, पहले मेरा संशय निवारण कीजिये। आपने 'कौन ब्रह्मा' कैसे पूछा? मेरे अतिरिक्त और भी कोई ब्रह्मा इस जगत्में है क्या?"

श्रीकृष्णने मुस्कुराकर सब ब्रह्माओंका स्मरण किया। उसी क्षण असंख्य ब्रह्मा आकर उपस्थित हुए। किसीके सौ, किसीके हजार, किसीके लाख, किसीके करोड़, किसीके अर्वुद मुख थे, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती। लाखों-करोड़ों मुखवाले रुद्रगण और लाखों-नेत्रोंवाले इन्द्रगण आ उपस्थित हुए। यह सब देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा घवरा गये। हाथियोंके बीच जैसे खरगोशकी हालत होती है, वैसे ही चतुर्मुख ब्रह्माको अपनी क्षुद्रताका अनुभव होने लगा।

श्रीकृष्णके पाद-पीठको सामनेसे दण्डवत् प्रणाम किया और मुकुटका पादपीठसे स्पर्श कराया। मुकुटके अग्रभागके साथ पादपीठका संघर्षण होनेसे जो ध्वनि हो रही थी, उसको सुनकर ऐसा लगता था, मानो मुकुट पादपीठकी स्तुति कर रहे हों। हाथ जोड़कर ब्रह्मा-रुद्रादि स्तुतिकर रहे हैं—"हे प्रभो! आपने बड़ी कृपा की कि अपने चरणोंके दर्शन दिये। हमारे बड़े भाग्य है कि आपने दास रूपसे स्मरणकर हमको बुलाया। अब क्या आज्ञा है, बताइये, जिसे हम शिरोधार्य करें।"

श्रीकृष्णने अपनी अचिन्त्य शक्तिसे, जितने ब्रह्मा आदि थे, उतनी मूर्तियाँ धारणकर सबसे एक साथ अलग-अलग बातचीत की। इसको कोई लक्ष न कर सका। सब समझते थे कि श्रीकृष्ण मुझसे ही बात कर कहे हैं। श्रीकृष्णने कहा—"तुमको देखनेका मन हुआ, इसलिये बुला लिया। तुम जाकर अब सुखपूर्वक रहो, दैत्योंका भय अब नहीं रहा।" उन लोगोंने कहा—"आपके प्रसादसे सब मङ्गल है। पृथ्वीपर जितना भार था, आपने अवतीर्ण होकर उसका नाश कर दिया।"

प्रत्येक ब्रह्माको ऐसा लगता था कि श्रीकृष्ण उन्हींके ब्रह्माण्डमें हैं। द्वारका आदि श्रीकृष्ण-धाम एवं कृष्ण-तनु सर्वग, अनन्त, विभु (सर्वव्यापक) हैं—इस दृष्टान्तद्वारा यही प्रमाणित होता है। श्रीकृष्णके ऐश्वर्यके साथ-साथ द्वारकाके ऐश्वर्यका भी इस लीलासे अनुभव होता है। वहाँ असंख्य ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्रादिक एकत्रित हुए थे, किंतु उनमें-से किसीने भी एक-दूसरेको नहीं देखा।

तब श्रीकृष्णने सब ब्रह्मादिकोंको विदा किया और वे सब दण्डवत्-प्रणाम करके अपने-अपने लोकोंको चले गये। यह सब लीला देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा चमत्कृत हो उठे और आगे बढकर श्रीकृष्णके चरणोंको नमस्कार किया और बोले—

जानन्त एव जानन्तु कि बहूक्त्या न मे प्रभो।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचर॥

श्रीम. भा. १०.१४.३८.

अर्थ—जो कहते हैं कि हम श्रीकृष्णकी महिमा जानते हैं, वे जानें। अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं; हे प्रभो आपकी महिमा मेरे मनके, देहके या वाक्यके गोचर नहीं है।

तब श्रीकृष्णने ब्रह्मासे कहा—"यह जो तुम्हारा ब्रह्माण्ड है, यह पचास कोटि योजन विस्तृत है। तुम चतुर्मुख होकर भी बहुत छोटे हो—"

कोन ब्रह्माण्ड, शत कोटि को लक्ष कोटि।
कोन नियुत कोटि, कोन कोटि-कोटि॥
ब्रह्माण्डानुरूप ब्रह्मार शरीर-बदन।
एइ रूपे पालि आमि ब्रह्माण्डे गण॥

चै. च. म. २१. ६९,७०

इतना कहकर श्रीकृष्णने चतुर्मुख ब्रह्माको विदा किया। यह अद्भुत लीला-कथा कहकर

महाप्रभुने श्रीसनातनसे कहा, "अब विवेचना करके देखो। श्रीकृष्णका ऐश्वर्य कैसा है तथा द्वारका-धामकी महिमा कैसी है !"

प्रभुने कहा—

"श्रीकृष्ण स्वाराज्यलक्ष्मीरूपी अपनी चिच्छक्तिके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। भगवान्‌की चिच्छक्ति सम्पत्तिको ही 'षडैश्वर्य' कहते हैं। चिच्छक्ति चिन्मय शक्तिमान् विग्रहकी निज शक्ति है तथा कृष्णशक्ति और कृष्ण-सेविका है। मायाशक्ति चिद्विग्रहके ईक्षणसे क्रियावती होनेपर भी शक्तिमान्‌को मायिक, अनित्य और भोगलिप्त बना देती है।"

श्रीकृष्णका माधुर्य

श्रीकृष्णके ऐश्वर्यकी बात कहते-कहते भावनिधि प्रभु एक बारगी भावसिन्धुमें डूब गये। उनके मनमें श्रीकृष्णकी स्फूर्ति हुई, कृष्णके श्रीअङ्ग-माधुर्यके रसमें उनके मन-प्राण निमज्जित हो गये। उन्होंने प्रेमावेगमें प्रेमाश्रुपूर्ण नयनोंसे श्रीमद्भागवतका यह श्लोक पढ़ा—

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोग-
मायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥

श्रीम. भा. ३.२.१२

"श्रीभगवान् सर्वोत्तम लीलोपयोगी जिस मूर्त्तिको ग्रहण करते हैं, उसमें भूषणकी अपेक्षा नहीं रहती; उस अपरूप रूपके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सम्पूर्ण शोभाके आकर होते हैं तथा सब भूषणोंके भूषणस्वरूप होते हैं। अपने ऐश्वर्यमें आप परिपूर्ण श्रीभगवान् अपनी योगमायाके बलसे अपनी सामर्थ्य प्रकट करते हुए नर-लीलाके लिए उपयोगी विग्रह धारण करते हैं।" श्रीभगवान्‌की नर-लीला सर्वोत्तम है। उनके मर्त्य-लीलाके उपयोगी रूपकी कहीं तुलना नहीं है। वह उनके वैकुण्ठके रूपकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है; क्योंकि उन्होंने इस रूपको सर्वसमृद्धि प्रदान करके इतना सर्वचित्ताकर्षक बना लिया था कि वैकुण्ठनाथको भी उसके दर्शनकी इच्छा हुई थी।

इस अपरूप-रूपको देखकर जब श्रीकृष्ण स्वयं अपनी रूप-माधुरीको पान करनेमें सतृष्ण हैं, तब दूसरेकी तो बात ही क्या ? इतना कहकर परम प्रेममय प्रभु प्रेमाविष्टभावमें श्रीकृष्णकी उस अपरूप-रूप-माधुरीका वर्णन करने लगे। यथा चैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डके २१ वें परिच्छेदमें—

कृष्णेर जतेक खेला, सर्वोत्तम नर-लीला,
नरवपु ताँहार स्वरूप।
गोपवेष वेणुकर, नवकिशोर नटवर,
नर-लीलार हय अनुरूप॥८३॥

श्रीकृष्णकी गोकुल-लीला, वासुदेव-संकर्षणादि परव्योम-लीला, कारणार्णवादिशायी पुरुषावतार-लीला, मत्स्य-कूर्मादि अवतार-लीला, ब्रह्मा-शिवादि गुणावतार-लीला, पृथु-व्यासादि आवेशावतार-लीला, सविशेष-परमात्मादि-लीला, निर्विशेष ब्रह्म आदि अनन्त क्रीड़ामय भगवान्‌की लीलाओंमें तारतम्यके विचारसे नर-लीला ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीकृष्णका स्वरूप है, नरवपु-गोपवेश, वेणु-हस्त, नवकिशोर और नटवर।

कृष्णेर मधुर रूप शुन सनातन।
जे रूपेर एक कण, डुबाय सब त्रिभुवन,
सर्व प्राणी करे आकर्षण॥८४॥
योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्ध-सत्त्व-परिणति,
तार शक्ति लोके देखाइते।
एइ रूप-रतन, भक्तगणेर गूढ़ धन,
प्रकट कैल नित्य लीला हैते॥८५॥

कृष्णके मधुर-रूपका एक कण गोकुल, मथुरा और द्वारका-भुवनत्रयको डुबानेमें समर्थ है, अर्थात् इन तीनों भुवनोंके प्राणियोंको कृष्ण-रूप-माधुरीमें समाकृष्ट करता है। परव्योम आदिमें विशुद्धसत्त्व-परिणति-रूपा चिच्छक्ति योगमायाकी अवस्थिति नहीं है। उस योगमायाकी अपूर्व असामान्य

शक्तिका कार्य दिखलानेके लिये भक्तगणके लिये नितान्त गोपनीय वर्त्मस्वरूप नित्य-लीलाको गोलोकसे प्रपञ्चमें प्रकट कर दिया ।

रूप देखि आपनार, कृष्णेर हय चमत्कार,
आस्वादिते मने उठे काम ।
'स्वसौभाग्य' जार नाम, सौन्दर्यादि गुणग्राम,
एइ रूप तार नित्य धाम ॥८६॥

अपना रूप देखकर श्रीकृष्णको स्वयं चमत्कार होता है और उसके आस्वादनकी कामना होती है । सौन्दर्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, यश, वैराग्य—षड़ैश्वर्य उनमें नित्य रहते हैं ।

भूषणेर भूषण अङ्ग, ताहे ललित त्रिभङ्ग,
तार ऊपर भ्रूधनु-नर्तन ।
तेरछ-नेत्रान्त वाण, तार दृढ़ सन्धान,
विन्धे राधा-गोपीगण मन ॥८७॥

अलङ्कार अङ्गका भूषण है, किन्तु अलंकारके अलंकार कृष्णके अङ्ग हैं; उनकी शोभा ऐसी अपरूप है । उसपर फिर ललित त्रिभङ्ग, भ्रूभङ्गी, अपाङ्ग दृष्टि आदिसे व्रजके श्रीराधा-गोपीगणका मन हरण करते हैं ।

कोटि ब्रह्माण्ड परव्योम, ताहाँ जे स्वरूप गण,
ता-सवार बले हरे मन ।
पतिव्रता-शिरोमणि, जारे कहे वेदवाणी,
आकर्षये सेइ लक्ष्मीगण ॥८८॥

श्रीकृष्णका यह रूप केवल जगत्के प्राणियों और देवताओंका ही मन हरण नहीं करता, बल्कि ब्रह्माण्डके ऊपर स्थित परव्योमस्थ नारायणादि स्वरूपके मनको भी हरण करता है । वेदमें जिस लक्ष्मीको पतिव्रता-शिरोमणि कहते हैं, वे भी अपरूप कृष्ण-सौन्दर्यसे परमाकृष्ट होकर कृष्ण-सङ्गकी अभिलाषा करती हैं ।

चढ़ि गोपी-मनोरथे, मन्मथेर मन मथे,
नाम धरे 'मदनमोहन' ।
जिनि पञ्चशरदर्प, स्वयं नव कन्दर्प,
रास करे लञा गोपीगण ॥८९॥

जो गोपियोंके मनरूपी रथपर चढ़कर, मन्मथके मनका मथन करके 'मदनमोहन' नाम धारण करते हैं और स्वयं नव कन्दर्परूपसे गोपीगणके साथ रास करके पञ्चशर (कामदेव) के दर्पपर विजय प्राप्त करते हैं ।

निज सम सखा सङ्गे, गोगण-चारण-रङ्गे
वृन्दावने स्वच्छन्द विहार ।
जार वेणुध्वनि शुनि, स्थावर-जङ्गम प्राणी,
पुलक-कम्प-अश्रु वहे धार ॥९०॥

वेश-भूषा, वयस् और व्यवहार आदिमें अपने ही समान सखागणके साथ गोचारण-रङ्गमें श्रीकृष्ण यथेच्छभावसे विहार कर रहे हैं, जिनकी वेणुध्वनि सुनकर स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको पुलक, कम्प हो रहे हैं और अश्रुधारा बह रही है ।

मुक्ताहार-बकपाँति, इन्द्रधनु पिच्छ ताति,
पीताम्बर विजुरी संचार ।
कृष्ण नव जलधर, जगत-शस्य-उपर,
वरिषये लीलामृतधार ॥९१॥

नवजलधर श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर दोलायमान श्वेत मुक्तामाला आकाशमें उड़ते बक-श्रेणीके समान शोभित हो रहा है, चूड़ास्थित मयूरपिच्छ इन्द्रधनुषकी शोभा पा रहा है, पीताम्बर बिजलीकी शोभा पा रहा है, जगत्के जीवरूपी शस्यपर लीलारूप अमृतकी धारा वृष्टि हो रही है ।

माधुर्य भगवत्ता-सार, व्रजे कैल परचार,
ताहा शुक—व्यासेर नन्दन ।
स्थाने स्थाने भागवते, वर्णियाछे नाना मते,
जाहा शुनि माते भक्तगण ॥९२॥

भगवत्ताका सार ऐश्वर्य-लीला-वेणु-रूप-माधुर्य व्रजमें ही विराजमान है, जिसका व्यासनन्दन श्रीशुकदेवने श्रीमद्भागवतमें अनेक जगह वर्णन किया है, जिसको सुनकर भक्तगण मस्त हो जाते हैं ।

इतना कहकर प्रेमाविष्ट हो महाप्रभुने श्रीसनातनका हाथ पकड़कर श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोककी आवृत्ति की—

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ईश्वरस्य ॥

श्रीम. भा. १०.४४.१४

अर्थात्—रङ्गभूमिमें श्रीकृष्णका दर्शन करके मथुरा-नागरीगण परस्पर कहने लगीं—"अहो ! गोपिकाओंने कौन-सी अनिर्वचनीय तपस्या की है ! वे सर्वदा चक्षुद्वारा श्री, ऐश्वर्य और यशके एकान्त आस्पद, दुष्प्राप्य, अनन्य सिद्ध, समानाधिक वर्जित लावण्य-साररूप श्रीकृष्णकी रूप-सुधा पान करती हैं ।"

प्रभु कृष्ण-प्रेममें आविष्ट होकर श्रीसनातनका हाथ पकड़कर पुनः कहने लगे—

तारुण्यामृत-पारावार, तरङ्ग-लावण्य-सार,
ताते से आवर्त्त भावोद्गम ।
वंशीध्वनि चक्रवात, नारीर मन-तृण-पात,
ताहाँ डुबाय, ना हय उद्गम ॥९४॥

श्रीकृष्णके तारुण्य रूपी अमृतके अपार सागरमें उनके अपरूप लावण्यकी लहरें खेल रही हैं, जिनमें उनके मृदुहास्य, कटाक्ष, भ्रूनर्तन आदि चित्त-उन्मादकारी भावसमूह आवर्त्त (भँवर) हैं, उस आवर्त्तमें वंशीध्वनिरूपी चक्रवातके द्वारा उड़ाकर ले गये गोपीगणके मनरूपी तृण-पात गिरकर ऐसे डूब जाते हैं कि फिर निकल नहीं पाते ।

सखि हे, कौन तप कैल गोपीगण ?
कृष्णरूप सुमाधुरी, पिवि-पिवि नेत्र भरि,
श्लाध्य करे जन्म-तनु-मन ॥९५॥

हे सखि ! गोपीगणने कौन-सा तप किया है, जो श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीको नेत्र भरकर पीकर, अपने जन्म, तनु और मनको सार्थक किया ।

जे माधुरीर उर्ध्व आन, नाहि जार समान,
परव्योम स्वरूपेर गणे ।
जिहों सब अवतारी, परव्योमेर अधिकारी,
ए माधुर्य नाहि नारायणे ॥९६॥

ताते साक्षी सेइ रमा, नारायणेर प्रियतमा,
पतिव्रतागणेर उपास्या ।
तेहों से माधुर्य लोभे, छाड़ि सब काम-भोगे,
व्रत करि करिल तपस्या ॥९७॥

श्रीकृष्णके जितने रूप परव्योममें हैं, उनमें किसीमें भी उनके समान माधुर्य नहीं है। जो अवतारोंके मूल (अवतारी) वैकुण्ठमय परव्योमके अधिपति नारायण हैं, उनमें भी ऐसा माधुर्य नहीं है। इसकी साक्षी पतिव्रताओंकी उपास्या, नारायणकी प्रियतमा श्रीलक्ष्मीजी हैं, जिन्होंने श्रीकृष्णके माधुर्यके लोभमें व्रत लेकर तपस्या की ।

सेइ त माधुर्यसार, अन्य सिद्धि नाहि तार,
तेहों माधुर्यादि गुणखनि ।
आर सब प्रकाशे, ताँर दत्त गुण भासे,
जाहा जत प्रकाशे कार्य जानि ॥९८॥

श्रीकृष्णका स्वयंसिद्ध माधुर्य ही सब माधुर्योंका सार और खान है, जिसके लिए अन्य सिद्धिकी आवश्यकता नहीं। अन्य स्वरूपोंका माधुर्य भी श्रीकृष्णके माधुर्यके प्रकाशसे ही प्रकाशित है।

गोपीभाव दर्पण, नव-नव क्षणेक्षण,
तार आगे कृष्णेर माधुर्य ।
दोंहे करे हुड़ाहुड़ी, बाड़े मुख नाहि मुड़ि,
नव-नव दोंहाँर प्राचुर्य ॥९९॥

गोपियोंके भाव (प्रेम)-रूप (स्वसुखकी वासना-रूप मलिनताशून्य)-दर्पणके सम्मुख श्रीकृष्णका माधुर्य प्रतिक्षण बढ़ता है। गोपीभाव और श्रीकृष्ण-माधुर्य—दोनों दौड़ लगाकर बढ़ते रहते हैं, कोई मुँह नहीं मोड़ते और प्रतिक्षण नये-नये लगते है।

कर्म तप योग ज्ञान, विधि-भक्ति तप ध्यान,
इहा हैते माधुर्य दुर्लभ ।

केवल जे रागमार्गे, भजे कृष्णे अनुरागे,
तारे कृष्ण-माधुर्य सुलभ ।।१००।।

कर्म, जप, योग, ज्ञान, विधि-भक्ति, तप, ध्यान–इनसे माधुर्य-आस्वादन दुर्लभ है। केवल राग-मार्गसे जो अनुरागपूर्वक श्रीकृष्णको भजते हैं, उन्हींको श्रीकृष्ण-माधुर्य सुलभ है।

सेइ रूप व्रजाश्रय, ऐश्वर्य माधुर्यमय,
दिव्य गुणगण रत्नालय।
आनेर वैभव सत्ता, कृष्णदत्त भगवत्ता,
कृष्ण सर्व-अंशी सर्वाश्रय ।।१०१

श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-माधुर्यमय दिव्य गुण-समूह-रूप रत्नोंका आलय और आश्रय व्रजधाम ही है। अन्य स्वरूपोंको वैभवकी सत्ता श्रीकृष्णद्वारा ही प्रदत्त है। श्रीकृष्ण ही सबके अंशी और आश्रय हैं।

श्री, लज्जा, दया, कीर्त्ति, धैर्य, वैशारदी मति,
एइ सब कृष्णे प्रतिष्ठित।
सुशील, मृदु, वदान्य, कृष्ण सम नाहि अन्य,
कृष्ण करे जगतेर हित ।।१०२।।

सौन्दर्य, लज्जा, दया, कीर्ति, धर्म, निपुणा बुद्धि–ये सब श्रीकृष्णमें प्रतिष्ठित हैं। श्रीकृष्णके समान सुशील, मृदु, दाता और कोई भी नहीं है। श्रीकृष्ण सारे जगत्‌का हित करते है।

कृष्ण देखि नाना जन, कैल निमिष-निन्दन,
व्रजे विधि निन्दे गोपीगण।"
सेइ सब श्लोक पड़ि, महाप्रभु अर्थ करि,
सुखे माधुर्य करे आस्वादन ।।१०३।।

व्रजमें गोपीजनने श्रीकृष्ण-दर्शनमें बाधा देनेवाली आँखोंकी पलकें बनानेवाले विधिकी निन्दा की है, उसी श्लोकको पढ़कर उसका अर्थ करके महाप्रभु उसके माधुर्यका सुखपुर्वक आस्वादन करते हैं।

प्रभु श्रीकृष्ण-माधुर्य-सिन्धुमें एकबारगी मग्न हो गये हैं,-इस समय उनका शुद्ध गोपीभाव है। श्रीसनातनके दोनों हाथोंको पकड़कर, उनको परम प्रेममें भरकर 'सखी' सम्बोधन कर रहे हैं; उनके मुँहकी ओर देखकर श्रीकृष्णके अपरूप सौन्दर्य और माधुर्यकी बात कह रहे हैं और श्लोक पढ़ रहे हैं। श्रीकृष्णके दर्शनके समय आँखोंका निमेष स्थिर भावसे दर्शन करनेमें प्रतिबन्धक हो रहा है, इसके प्रमाणस्वरूप प्रभुने निम्नलिखित भागवतके श्लोकका पाठ किया—

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिवन्त्यो
नार्यो-नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ।।
श्रीम. भा. ९.२४.६५

अटनि यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ।।
श्रीम. भा. १०.३१-१५

गोपी-भावमें मन-प्राण-विभावित हुए बिना इस अपूर्व रस-सम्भोगके लिये अन्य उपाय नहीं है। प्रभुका इस समय गोपीभाव है। उनकी कृपासे श्रीसनातन भी गोपीभावमें विभावित होकर यह सब रसकी बातें सुन रहे हैं। महाप्रभुने उनको उपयुक्त अधिकारी समझकर ही इस अपूर्व मधुर-रसास्वादनका सुयोग और सौभाग्य प्रदान किया है।

कामगायत्री

महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर पुनः कहने लगे—

कामगायत्री मन्त्ररूप, हय कृष्ण स्वरुप,
सार्द्ध चव्वीश अक्षर तार हय।
से अक्षर चन्द्र हय, कृष्णे करि उदय,
त्रिजगते कैल काममय ।।१०४।।

काम-बीज श्रीकृष्णरूपी श्रीमदनगोपालका बीजमन्त्र है। कामगायत्री इस अभिनव कंदर्पकी गायत्री है। श्रीमदनगोपालकी उपासनाका मन्त्र कामबीज है और उनकी गायत्री भी कामगायत्री है। यह कामगायत्री साढ़े चौबीस अक्षरोंकी है। यह कामगायत्री-मन्त्र श्रीकृष्णका स्वरूप है, अतएव कामगायत्री-मन्त्र श्रीमदनगोपालका स्वरूप है। कामगायत्री इस प्रकार है—

"क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय
धीमहि तन्नोऽनङ्ग प्रचोदयात् ।"

यह कामगायत्री व्रजमदनगायत्री है। इसके अक्षरोंमें पूर्ण सौन्दर्य और माधुर्यमय श्रीकृष्णके श्रीअङ्ग-प्रत्यङ्गादि विभावित होते हैं। कविराज गोस्वामीने इसके एक-एक अक्षरको एक-एक चन्द्र कहा है। इसकी संस्कृत भाषामें एक व्याख्या है, जिसे श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने लिखा है। 'भजन-निर्णय' ग्रन्थ श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकृत है। उसमें लिखा है—

व्रजबाला कैल जेमन सर्वकर्मार्पण ।
नन्दपुत्र आश मात्र एइ मने मर्म ॥
काम बीज सह मन्त्र गायत्री भजिले ।
राधाकृष्ण लभे गिया श्रीरासमण्डलें॥
कृष्णेर ह्लादिनीप्रिय राधा ठाकुरानी ।
कामेर कंदर्प हइल श्रीकृष्ण आपनि ॥
राधाकृष्ण पाइते कामबीज-सार जान ।
कामबीज हैते हैल भजन-विधान ॥
कामेर गायत्री सार कामबीज जानि ।
सर्वदा जानिबे लोक गुरु मुखे शुनि ॥

कविराज गोस्वामीने कामगायत्रीके एक-एक अक्षरको चन्द्र कहकर श्रीकृष्णके प्रत्येक अवयवके साथ वर्णन किया है। गायत्र्यात्मक देवताके ध्यानमें प्रत्येक अक्षरको चन्द्र कहकर वर्णन करनेकी रीति है।

श्रीकृष्णचन्द्र-समाज

सखि हे ! कृष्णमुख द्विजराजराज ।
कृष्ण वपु सिंहासने, वसि राज्यशासने,
करे सङ्गे चन्द्रेर समाज ॥१०५॥

हे सखि ! कृष्ण-मुख-द्विजराज कृष्ण-वपु-सिंहासनपर बैठकर चन्द्र-समाजको लेकर राज्य-शासन करते हैं। अब चन्द्र-समाजका वर्णन कर रहे हैं—

दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि मणिदर्पन,
सेइ दुइ पूर्णचन्द्र जानि ।
ललाटे अष्टमी-इन्दु, ताहाते चन्दन-बिन्दु,
सेहो एक पूर्णचन्द्र मानि ॥१०६॥

करनख चान्देर हाट, वंशी उपर करे नाट,
तार गीत मुरलीर तान ।
पद-नख-चन्द्रगण, तले करे नर्तन,
नूपुरेर ध्वनि जार गान ॥१०७॥

मणि-दर्पणकी चमकको मात करनेवाले श्रीकृष्णके सुचिक्कण दोनों कपोल दो पूर्ण चन्द्र हैं। ललाट अष्टमी-इन्दु (अर्द्धचन्द्र) है। उसपर चन्दन-बिन्दु एक पूर्णचन्द्र है। इस प्रकार ४॥ चन्द्र हुए—मुख १, दोनों कपोल २, ललाट-अर्द्ध एवं ललाटका चन्दन-बिन्दु १। हाथोंकी दस अँगुलियोंके दस नख १० चन्द्र और पैरोंकी दस अँगुलियोंके दस नख १० चन्द्र। इस प्रकार कुल २४॥ चन्द्र हुए। कर-नख-रूप दस चन्द्रगण वंशीके ऊपर वंशीध्वनि-रूप गीतकी ताल-तालपर नृत्य करते हैं। चरणोंकी अँगुलियोंके दस नखरूपी चन्द्रमा भी पद-संचालनके साथ मानो नृत्य कर रहे हैं और पदस्थित नूपुरकी ध्वनि उनका गान है।

नाचे मकर-कुण्डल, नेत्र-लीला-कमल,
विलासी राजा सतत नाचाय ।
भ्रू-धनु नासिका बाण, धनुर्गुण दुइ कान,
नारीगण लक्ष्य विन्धे ताय ॥१०८॥

मुख-सञ्चालनके साथ कर्ण-स्थित मकर-कुण्डल भी नृत्य कर रहे हैं। श्रीकृष्णके चक्षुरूप कमल ही कृष्ण-मुख-रूप विलासी राजाके लीला-कमल-तुल्य हैं, जिनको वे सतत नचाते हैं। दोनों भ्रू धनुषके तुल्य हैं, नासिका वाण-तुल्य है, दोनों कान धनुषके गुण (ज्या-प्रत्यञ्चा-डोरी) तुल्य हैं, जिनके द्वारा गोपीगणको विद्ध करते हैं। मर्मार्थ यह है कि श्रीकृष्णकी भ्रू, नासिका और कर्णकी अपूर्व चाहनासे मुग्ध होकर कृष्णकान्ता गोपीगण वाणविद्ध हरिणीकी तरह अन्यत्र जानेकी सामर्थ्य खो डालती हैं।

एइ चाँदेर बड़ नाट, पासरि चाँदेर हाट,
विनिमूले बिलाप निजामृत।
काँहो स्मित-ज्योत्स्नामृते, काहाके अधरामृते,
सब लोके करे आप्यायित ॥१०९॥

श्रीकृष्ण-मुखरूप चन्द्रकी बड़ी लीला है। चन्द्र-हाटका विस्तार करके बिना मूल्य लिए आगन्तुकोंके अपने अमृतका वितरण करता है। कौन-सा अमृत बिना मूल्य वितरण करते हैं—यह बताते हैं। किसीको मृदु-मन्द हँसी-ज्योत्स्ना-रूप अमृत, किसीको अधरामृत देते हैं। इस प्रकार सबको आप्यायित करते हैं।

विपुल-आयतारुण, मदन मद घूर्णन,
मन्त्री जार ए दुइ नयन।
लावण्य-केलि-सदन, जन-नेत्र-रसायन,
सुखमय गोविन्द-वदन ॥११०॥

मदनके मदका घूर्णन करनेवाले आकर्ण-विस्तृत दोनों अरुण नयन उनके मन्त्री हैं। सुखमय गोविन्द-वदनके लावण्यरूपी लीला-स्थल जन-नेत्र-रसायन हैं।

जार पुण्यपुञ्जफले, से मुख-दर्शन मिले,
दुइ अक्षे कि करिबे पान।
द्विगुण बाड़े तृष्णा-लोभ, पीते नारे मनःक्षोभ,
दुःखे करे विधिर निन्दन ॥१११॥

ना दिल लक्ष कोटि, सबे दिल आँखि दुटि,
ताहे दिले निमेष-आच्छादने।
विधि जड़ तपोधन, रसशून्य तार मन,
नाहि जाने योग्य सृजन ॥११२॥

जे देखिबे कृष्णानन, तार तरे द्विनयन,
विधि हआ हेन अविचार।
मोर यदि बोल धरे, कोटि आँखि तार करे,
तबे जानि योग्य सृष्टि तार ॥११३॥

अनेक जन्मोंके पुण्योंके प्रभावसे श्रीकृष्ण-मुख-चन्द्रका दर्शन प्राप्त हो तो दो छोटी-छोटी आँखोंसे उसका पान कैसे हो? तृष्णा तो बढ़ती रहती है, मनकी तृप्तिपूर्वक पान नहीं हो पाता, इससे क्षोभ बढ़ता है ओर दुःखके मारे विधि (ब्रह्मा)की निन्दा करते हैं—कि लक्ष-कोटि आँखें न देकर केवल दो तो आँखेंदीं, उसपर भी पलक लगा दी, जो पल-पलमें आँखोंको ढकती रहती है। तपोधन विधि जड़ और रसशून्य मनवाला है जो ठीकसे सृजन करना भी नहीं जानता। श्रीकृष्ण-आनन देखनेको दो नयन देना—यही विधाताका अविचार (भूल) है, यदि इसके लिए कोटि आँखें दी जातीं तभी वह योग्य स्रष्टा होता।

कृष्णाङ्ग-माधुर्य

कृष्णाङ्ग माधुर्य-सिन्धु, मुख सुमधुर इन्दु,
अति मधुर स्मित-सुकिरणे।
ए-तिने लागिल मन, लोभे करे आस्वादन,
श्लोक पड़े स्वहस्तचालने ॥११४॥

श्रीकृष्ण अङ्ग माधुर्यका सिन्धु है, उनका मुख सुमधुर इन्दु है, जिसकी मन्द हास्यरूपी किरणें सुमधुर है। अङ्गमाधुर्य, मुखमाधुर्य और स्मितमाधुर्य—इन तीनोंमें महाप्रभुका मन आविष्ट हो गया और उसके आस्वादनका लोभ उत्पन्न हुआ, जिसके कारण हाथ सञ्चालनपूर्वक परवर्ती श्लोक पढ़ने लगे।

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो-
मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥

कृष्णकर्णामृत ९२

महाप्रभु प्रेमावेशमें यह श्लोक पढ़कर प्रेमानन्दमें व्याख्या कर रहे हैं—

सनातन ! कृष्णमाधुर्य अमृतेर सिन्धु ।
मोर मन सान्निपाति, सब पिते करे मति,
दुर्दैव वैद्य ना देय एक बिन्दु ॥११५॥

सनातन ! श्रीकृष्णका माधुर्य अमृतका सिन्धु है, जिसको सम्पूर्णको पी जानेके लिए सन्निपातके वशीभूत मेरा मन इच्छा करता हैं, किन्तु मेरे दुर्दैववश वैद्य एक बिन्दु भी पीने नहीं देता।

कृष्णाङ्ग लावण्यपूर, मधुर हैते सुमधुर,
ताते एइ मुख-सुधाकर ।
मधुर हैते सुमधुर, ताहा हैते सुमधुर,
ताते जेइ स्मित ज्योत्स्नाभर ॥११६॥

श्रीकृष्णका अङ्ग लावण्यका समुद्र है, मधुरसे भी अति मधुर हैं, उस लावण्य समुद्रमें उनका मुख ही चन्द्रमा है, मन्द हास्य ही चन्द्र किरण है।

मधुर हैते सुमधुर, ताहा हैते सुमधुर,
ताहा हैते अति सुमधुर ।
आपनार एक कणे, व्यापे सब त्रिभुवने,
दश दिके व्यापे जार पुर ॥११७॥

उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग एकसे-एक सुमधुर हैं। उस माधुर्यका एक कण दसों दिशाओंमें बहता हुआ सारे त्रिभुवनको माधुर्य-प्लावित्त करनेमें समर्थ है।

स्मित किरण सुकर्पूरे, पैशे अधर मधुरे,
सेइ मधु माताय त्रिभुवने ।
बंशी छिद्र-आकाशे, तार गुण शब्दे पैशे,
ध्वनि रूपे पाइआ परिणामे ॥११८॥

मन्द हास्यरूपी कर्पूर अधर सुधासे मिलकर त्रिभुवनको मत्त कर रहा है। वंशीके छिद्ररूपी आकाशमें उसका गुण शब्द प्रवेश करके ध्वनि रूपमें परिणत होता है।

से ध्वनि चौदिके धाय, अण्ड भेदि वैकुण्ठे जाय,
बले पैशे जगतेर काने ।
सभा मातोयाल करि, बलात्कारे आने धरि,
विशेषतः युवतीर गणे ॥११९॥

वह ध्वनि चारों ओर फैलती हुई ब्रह्माण्डका भेदनकर वैकुण्ठमें पहुँचती है और जगत्वासियोंके कानोंमें बलपूर्वक प्रवेश करके मतवाला बना देती है और उनको बलात्कारसे पकड़ लाती है, विशेष करके युवतीगणको।

ध्वनि बड़ उद्धत, पतिव्रतार भांगे व्रत,
पतिकोले हैते काढि आने ।
वैकुण्ठेर लक्ष्मीगणे, सेइ आकर्षणे,
तार आगे केवा गोपीगणे ॥१२०॥
नीवि खसाय पति आगे, गृह कर्म कराय त्यागे,
बले धरि आने कृष्णस्थाने ।
लोकधर्म लज्जा भय, सब ज्ञान लुप्त हय,
ऐछे नाचाय सब नारीगणे ॥१२१॥

वह ध्वनि ऐसी उद्धत है कि युवतीगणको उनके पतिकी गोदसे खींचकर ले आकर उनका पतिव्रत धर्म भङ्ग कर देती है। जो वैकुण्ठकी लक्ष्मीगणको भी आकर्षित कर लेती है, उसके सामने गोपीगणकी तो बात ही क्या है। पतिके सम्मुख उनकी नीवि ढीलीकर, गृहकार्यका त्याग करके बलपूर्वक श्रीकृष्णके पास ले जाती है। लोकधर्म, लज्जा, भय—सब ज्ञान लुप्त हो जाता है; इस प्रकार सब नारीगणको नचाती है।

कानेर भितरे वासा करे, आपने ताहाँ सदा स्फुरे,
अन्य शब्द ना देय प्रवेशिते ।
आन कथा ना शुने कान, आन बलिते बोलाय आन,
एइ कृष्णेर वंशीर चरिते ॥१२२॥

एकबार वंशीका शब्द कानमें प्रवेश कर जानेके बाद वही ध्वनित होता रहता है, दूसरा शब्द प्रवेश ही नही कर पाता। श्रीकृष्णकी वंशीका ऐसा चरित्र है कि उसकी तन्मयतामें कानमें न तो दूसरा शब्द प्रवेश कर पाता है और जो चाहे सो बुलवाता है।

प्रभु प्रेमावेशमें आत्मज्ञान खोकर श्रीकृष्णके माधुर्यका वर्णन कर रहे हैं, और श्रीसनातन निविष्ट चित्तसे प्रेमानन्दमें विभोर होकर उसे सुन रहे हैं तथा प्रभुके श्रीवदनकी ओर एकटक देख रहे हैं। प्रभु श्रीकृष्णके सम्बन्धमें जो वर्णन कर रहे हैं, श्रीसनातन अविकल रूपसे वह सब अपूर्व सौन्दर्य और माधुर्य-राशि प्रभुके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें देख रहे हैं। वे देखते हैं कि सर्वोत्तम नर-लीलाके पूर्ण उपयोगी अपूर्व सौन्दर्य और माधुर्यपूर्ण सर्वाङ्गसुन्दर परम पुरुष उनके सामने बैठे हैं। और अपने प्रत्येक अङ्गकी अपूर्व शोभासे जगत्‌को आलोकित कर रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि प्रभुने पहले ही कह दिया है—

सेहो रहु सर्वज्ञ शिरोमणि श्रीकृष्ण।
निज गुणेर अन्त ना पान हयेन सतृष्ण॥

चै. चः म. २१.१०

अब प्रभुने स्वयं निज श्रीमुखसे निःसृत वाणीको सफल कर दिया। चतुरचूड़ामणि सर्वज्ञ प्रभुने श्रीसनातनके मनके भावको समझकर किञ्चित् भाव संवरण किया। फिर सुस्थिर होकर उनसे कहा—"श्रीकृष्णने तुम्हारे प्रति कृपा करके मेरेमें चित्तभ्रम उत्पन्न करके अपने ऐश्वर्य और माधुर्यकी बात मेरे मुखसे तुमको सुनवायी। मैं भी पागल हो गया, और श्रीकृष्णके माधुर्यामृत-स्रोतमें बहकर कुछ कहते कुछ कह डाला।"

इतना कहकर महाप्रभु कुछ देर चुप हो गये। उनके अतुलनीय श्रीवदनके अपूर्व ज्योतिपूर्ण दिव्यभाव देखकर श्रीसनातनने समझा कि वे ही वह अखिल-रसामृत-सिन्धु तथा सर्व-सौन्दर्यके आकर हैं, सर्वमाधुर्यके सारभूत श्रीश्रीमदनमोहन श्रीकृष्ण-मूर्त्ति हैं, स्वमाधुर्यमें स्वयं विभोर हो रहे हैं, स्वसौन्दर्यमें स्वयं विमोहित हैं, स्वप्रेमनामामृत-पानमें स्वयं उन्मत्त हैं।

महाप्रभुने धैर्य धारण किया। वे भूल गये थे कि वे श्रीसनातनको शिक्षा दे रहे हैं। उनको 'सखि' सम्बोधन करके व्रजगोपीभावमें श्रीकृष्णके ऐश्वर्य और माधुर्यके सम्बन्धमें बातें कर रहे थे। कहते-कहते विभोर हो गये, अब धैर्य धारण करके कुछ सुस्थिर हुए। पुनः श्रीसनातनको शिक्षा देने लगे—

अभिधेय तत्त्व

महाप्रभु अब अभिधेय तत्त्वकी शिक्षा देते हैं। वे सनातनसे बोले—

एबे कहि शुन अभिधेय लक्षण।
जाहा हैते पाइ कृष्ण प्रेमधन॥

चै. च. म. २१.३

श्रीकृष्णके भजनका नाम ही अभिधेय भक्ति है। इस भजनके सिवा जीवकी और कोई गति नहीं है। यह मातृरूपिणी श्रुतियाँ, भगिनीरूपिणी स्मृतियाँ तथा भ्रातृरूप पुराणादि एकस्वरसे उपदेश देते हैं। प्रभु कहने लगे—"श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं ही अद्वयज्ञान तत्त्व हैं। वे स्वयं ही विभिन्न भगवत्-स्वरूपोंमें एवं विभिन्न शक्तियोंके विकास रूपमें अवस्थान करते हैं। वे स्वांशरूपसे और विभिन्नांश रूपसे आत्म-प्रकाश कर अनन्त कोटि वैकुण्ठ और ब्रह्माण्डोंमें विहार करते हैं। चतुर्व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) एवं मत्स्यादि अवतारगण श्रीकृष्णके स्वांश हैं। और जीवकी श्रीकृष्णकी तटस्था शक्तिमें गणना होकर भी वह उनका विभिन्नांश है। जीव दो प्रकारके हैं, एक नित्यमुक्त और एक नित्य-संसारी। जो नित्यमुक्त हैं, वे नित्य श्रीकृष्ण-चरणके उन्मुख रहते हैं और सेवा-सुखका

उपभोग करते हुए 'श्रीकृष्ण पार्षद' कहलाते हैं। दूसरे नित्यवद्ध श्रीकृष्णसे नित्य बहिर्मुख और नित्य संसारी होकर नरकादि दुःख भोगते हैं। इसीसे माया-पिशाचीद्वारा दण्डित होकर आध्यात्मिक तापत्रयमें जलते रहते हैं। काम-क्रोधके दास होकर उनकी लात खाते हुए भ्रमते-भ्रमते यदि कभी साधु वैद्यको पा जाते हैं तो उनके उपदेश-मन्त्रसे माया-पिशाची भाग जाती है, तब उनको कृष्ण-भक्ति मिलती है और श्रीकृष्णके निकट पहुँच पाते हैं।"

मुक्त जीवकी श्रीकृष्ण-सेवाके सिवा और कोई कामना नहीं होती, मुक्त जीवकी आसक्ति अनित्य संसारमें नहीं होती, श्रीकृष्णके चरणोंमें होती है। महाप्रभु पुनः कहने लगे—

कर्म, योग और ज्ञान, ये भक्तिका मुँह ताकते रहते हैं। इनके साधनका फल अति तुच्छ है। कृष्ण-भक्तिकी सहायताके विना ये अपना-अपना फल देनेमें असमर्थ है, इनमें किसीकी भी स्वतः फल देनेकी सामर्थ्य नहीं होती। नारदजीने व्यासजीसे कहा था कि जब निरुपाधि शुद्ध ब्रह्मज्ञान भी हरिभक्तिरहित होनेपर फल प्रदान नहीं करता, तब जीवका अकाम कर्म अथवा दुःखद कर्म भगवान्‌में समर्पित हुए बिना व्यर्थ हो जायगा—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव वर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥

श्रीम. भा. १.५.१२

शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌से कहा था कि तपःशील, दाता, यशस्वी, योगी, मन्त्रवेत्ता तथा सदाचारी आदि सभी महत्पुरुष यदि अपनी स्व-स्व तपस्यादिको श्रीभगवान्‌के चरणोंमें समर्पित नहीं करते तो उनका मङ्गल न होगा—

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनास्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

श्रीम. भा. २.४.१७

महाप्रभु इस प्रकार शास्त्रयुक्तिद्वारा कृष्ण-भक्तिकी महिमा समझाते हुए बोले—

केवल-ज्ञान मुक्ति दिते नारे भक्ति बिने ।
कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय बिना ज्ञाने ॥

चै. च. म. २२.१६

अर्थात् भक्तिके बिना केवल ज्ञान मुक्ति नहीं दे सकता। परन्तु कृष्ण-सेवा-परायण भक्त, ज्ञानहीन होनेपर भी केवल भक्ति-साधनाके द्वारा मुक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। जो लोग सर्वशुद्धप्रद तथा मङ्गलकारी भक्ति-पथका उल्लङ्घन करके केवल शुष्क ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छाके वशीभूत होकर परिश्रम करते हैं, वह श्रम तण्डुलकी कामनासे तुषावघातन करनेवालेके समान व्यर्थ जाता है, केवल क्लेशमात्र उनके हाथ लगता है, अर्थात् वे तण्डुल त्याग करके भूसी ग्रहण करते हैं—

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

श्रीम. भा. १०.१४.४

वर्णाश्रम धर्मका प्रसङ्ग उठाकर महाप्रभु कहते हैं—

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥
य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥

श्रीम. भा. ११.५.२,३

"ब्राह्मणादि चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमके लोग यदि श्रीकृष्णका भजन न करके

अपने-अपने वर्णाश्रमविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, तो भी वे रौरव-यन्त्रणासे परित्राण न पावेंगे। जो स्वयंभू पुरुषरूपी साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान्‌की अर्चना न करके उनके प्रति भक्ति-प्रदर्शन करनेमें हिचकते हैं, उनको वर्णाश्रमसे भ्रष्ट होकर नरकगामी होना पड़ता है।"

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनः
त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्‌घ्रयः ॥

श्रीम. भा. १०.२-३२

देवगण भगवान्‌का स्तवन करते-करते कहने लगे, "हे अरविन्दनेत्र ! यदि तुझमें भक्ति नहीं है तो बुद्धि परिशुद्ध न होगी। इसी प्रकार जो अविशुद्ध मनवाले व्यक्ति हैं, तथा अपनेको मुक्त होनेका अभिमान करते हैं, वे बहुत श्रमपूर्वक परम पदको प्राप्त होकर भी त्वदीय पादपद्मकी अवज्ञाके अपराधसे अधःपतनको प्राप्त होते हैं।"

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

वा. रामायण ६.१८-३३

"हे प्रभो ! मैं तुम्हारा हो गया"—यह कहकर जो एकवार प्रार्थना करते हैं, उनको भगवान् सदाके लिए अभय प्रदान करते हैं, यह उनका व्रत है।"

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

श्रीम. भा. २.३.१०

महाराज परीक्षित्‌से श्रीशुकदेवजी कहते है— "महाराज ! सुख-वासनादिशून्य एकान्त भक्त, अथवा धनादि-सर्वकामकर्मी, अथवा मोक्षकाम ज्ञानी— कोई भी क्यों न हो, यदि वे उदार बुद्धि हों, तो एकन्तिक भक्तिके साथ परमपुरुष भगवान्‌को भजते हैं।"

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता—
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥

श्रीम. भा. ५.१९.२७

श्रीभगवान् प्रार्थित होकर मनुष्यको उसका प्रार्थित विषय दान करते हैं—"यह सत्य है, तो भी वे परम अर्थके दाता नही हुए। इसलिए प्रार्थित वस्तु देनेके पश्चात् भी वह व्यक्ति प्रार्थनाकारी हुआ रहता है। उस भगवत्-चरण-प्राप्तिकी कामनाहीन भजनकारीकी अन्य कामना आच्छादक अपने चरण-पल्लव उसे स्वयं दान करते हैं।"

कुछ लोग विषय-सुखकी आशामें कृष्ण भजन करते हैं। पश्चात् उनको विषय अच्छा नहीं लगता, तब वे विषय-वासना परित्याग करके श्रीकृष्णके चरणोंका दास होनेकी इच्छा करते हैं।

स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं
त्वां प्राप्तवान् देवमुनीन्द्रगुह्यम् ।
काचं विचिन्वन्निव दिव्यरत्नं
स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे ॥

हरिभक्तिसुधोदय ७.१८

ध्रुव कहते हैं—"हे प्रभो ! काचका अन्वेषण करते-करते लोग जैसे दिव्य रत्नको प्राप्त कर लेते हैं, मैंने भी उसी प्रकार पितृसिंहासन प्राप्त करनेके निमित्त तपस्या करते-करते देवेन्द्र और मुनीन्द्र-गणके लिए भी दुर्लभ आपके चरण प्राप्त किये हैं। हे स्वामिन् ! मैं इससे कृतार्थ हो गया हूँ, अब मैं और कोई वर नहीं चाहता।"

साधु-सङ्गका प्रभाव

इसके बाद प्रभु साधुसंगके प्रभावका वर्णन करते हैं। नदीके स्रोतमें बहती हुई लकड़ी जैसे दैवयोगसे किनारे लगती है, उसी प्रकार भवारण्य-भ्रमण करते-करते यदि भाग्यवान् जीव सौभाग्यवश

श्रीभगवान्‌के चरणोंकी भक्ति प्राप्त करता है तो वह भवसागरको पार हो सकता है। श्रीभगवान्‌की कृपासे तब उनकी संसार-वासना दूर हो जाती है, और साधु-सङ्ग प्राप्त होता है । साधु-सङ्गसे भगवान्‌में रति उत्पन्न होती है। रति उत्पन्न होनेपर सद्‌गति प्राप्त होती है ।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेत्
जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्‌गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ।।

श्रीम. भा. १०.५१.५४

श्रीकृष्णको लक्ष्य करके मुचकुन्दने कहा – हे अच्युत ! इस संसारमें भ्रमण करते-करते कोई व्यक्ति संसार-क्षयोन्मुख होता है, तब उसको भगवद्‌भक्तका संग मिलता है । जब भगवद्‌भक्त-सङ्ग मिलता, तब ही (भक्तकी कृपासे) साधुगणकी एक-मात्र गति एवं कार्य-कारण-नियन्तृस्वरूप तुममें रति उत्पन्न होती है ।

भगवान्‌की कृपासे जीव सत्सङ्ग प्राप्त करता है, और उन्हींकी कृपासे सद्‌गुरुकी प्राप्ति होती है। वे गुरु और अन्तर्यामी रूपमें भाग्यवान् जीवोंके हृदयमें प्रवेश करके भक्तिकी शिक्षा प्रदान करते हैं—

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश
ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्
आचार्य चैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ।।

श्रीम. भा. ११.२९.६

उद्धवने भगवान्‌से कहा—हे प्रभो ! वाहरसे गुरुरूपसे तत्त्वोपदेशादिद्वारा एवं अन्तरसे अन्तर्यामी रूपसे सत्प्रवृत्तिद्वारा देहधारियोंके भक्तिके प्रतिकूल विषय-वासनादि दूर करके आप निजरूप (अथवा स्वविषयक अनुभव) प्रकाशित करते हैं। सर्वज्ञ ब्रह्मविद् व्यक्तिगण ब्रह्माके समान परमायु प्राप्त करके भी आपके इस उपकारका प्रत्युपकार करके आपके निकट उऋण नहीं हो सकते। आपके उपकारोंकी बात स्मरण करके ही उनका परमानन्द बर्द्धित होता है ।

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ।।

श्रीम. भा. ११.२०.८

श्रीकृष्ण उद्धवके प्रति कहते हैं—हे उद्धव ! किसी परम स्वतन्त्र भगवद्‌भक्तके सङ्गसे और तत्कृपाजात भाग्योदयसे मेरी कथादिमें (मेरे नाम-गुणादिके श्रवण-कीर्तनमें) जिसकी श्रद्धा उत्पन्न हुई है, एवं जो संसारसे अत्यन्त निर्वेदयुक्त (विरक्त) भी नहीं है—उस व्यक्तिका ही भक्तियोग सिद्धिप्रद (सफल) होता हैं, अर्थात् प्रेमोत्पादक होता है ।

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्‌घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ।।

श्रीम. भा. ७.५.३२

प्रह्लादने अपने गुरुपुत्रसे कहा—जबतक विषयाभिमानशून्य साधुगणकी चरण-धूलिद्वारा अभिषेक न हो, तबतक लोगोंकी मति भगच्चरणको स्पर्श नहीं कर सकती, अर्थात् तबतक श्रीकृष्ण-पाद-पद्ममें उनकी मति नहीं होती—श्रीकृष्ण-पाद-पद्ममें मति उत्पन्न होनेसे ही सब अनर्थोंकी निवृत्ति हो जाती है ।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।।

श्रीम. भा. १.१८.१४

शौनकादिके प्रति श्रीसूतजीने कहा—भगवद्‌भक्तोंके साथ जो अति अल्प संग है, उसके

फलके साथ स्वर्ग और मुक्तिकी तुलना नहीं की जा सकती (धन-राज्य-सम्पद्-प्राप्तिके सम्बन्धमें) मनुष्यके आशीर्वादकी बातें क्या कहूँ ?

महत्कृपाके बिना अन्य किसी कर्मद्वारा भक्ति प्राप्त नहीं होती। जबतक अकिञ्चन भगवद्भक्त साधुके पदरजके द्वारा मस्तक अभिषिक्त नहीं होता, तबतक श्रीभगवच्चरणमें रति नहीं उत्पन्न होती। सब शास्त्रोंमें साधु-सङ्गकी महिमा कीर्तित है। भगवत्सङ्गीके सङ्गका अत्यल्प भी महाफल प्रदान करता है, उसके साथ स्वर्ग या मोक्षकी लेशमात्र भी तुलना नहीं हो सकती।

तत्पश्चात् महाप्रभुने कृपानिधि श्रीकृष्णने अर्जुनको जो प्रेमभक्तिपूर्ण उपदेश दिया था, वह सुनाया—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

गीता. १८.६४-६५

यह अपूर्व उपदेश-वाणी श्रीकृष्ण भगवान्के श्रीमुखसे निःसृत है। श्रीमद्भगवद्गीतामें उन्होंने अर्जुनको उपलक्ष्य करके कहा है—"हे अर्जुन! जो सब प्रकारसे गुह्यसे भी गुह्य है, मैं अब तुमको वे परम श्रेष्ठ वचन कहता हूँ, सुनो! तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसी कारण तुमसे यह बात कह रहा हूँ। तुम मुझमें अपना मन अर्पण करके मेरा भजन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी अर्चनामें निरत हो जाओ, और मुझको ही दण्डवत् प्रणाम करो। तुम मेरे प्रिय हो, अतएव तुम्हारी शपथ लेकर कहता हूँ कि तुम निश्चय ही मुझको प्राप्त करोगे।"

श्रीकृष्ण भगवान्के इस आज्ञा-उपदेशके द्वारा वैदिक, स्मार्त्त सारे कर्म शेष हो गये। यह आज्ञा-वाणी बलवान् है, अतएव सर्वकर्मत्याग करके श्रीकृष्ण भजन करे, यही उत्कृष्ट विधि है, तथा भगवान्की मुख्य आज्ञावाणी है। इस भगवदाज्ञाके बलसे भक्तिमार्गका अनुगमन करनेकी जिनकी श्रद्धा होती है, वे सर्वकर्मत्याग करके श्रीकृष्ण भजन करके कृतार्थ होते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा है—

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥

श्रीम. भा. ११.२०.९

श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा था कि जब तक निर्वेद अथवा मेरी लीलाकथा-श्रवण-कीर्त्तन आदिमें सुदृढ़ विश्वास न हो जाय, हे उद्धव! तबतक ज्ञानी और भक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मोका अनुष्ठान करता रहे। श्रद्धा शब्दका अर्थ है सुदृढ़ विश्वास। श्रीभगवान्की लीला-कथामें सुदृढ़ विश्वासी श्रद्धावान् व्यक्ति ही भक्ति-साधनाका अधिकारी होता है।

भक्त-श्रेणी

अब प्रभु भक्तिसाधनके अधिकारी-भेदकी बात कह रहे हैं—

श्रद्धावान् जन हय भक्त्ये अधिकारी।
उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ—श्रद्धा अनुसारी ॥
शास्त्र-युक्त्ये सुनिपुण दृढ़ श्रद्धा जाँर।
'उत्तम अधिकारी' सेइ तरये संसार ॥
शास्त्रयुक्ति नाहि जाने दृढ़ श्रद्धावान्।
'मध्यम अधिकारी' सेइ महा भाग्यवान् ॥
जाहार कोमल श्रद्धा से 'कनिष्ट जन'।
क्रमे क्रम तिहों भक्त हइबे उत्तम ॥
रति प्रेम तारतम्ये भक्ति तरतम।
एकादश स्कन्धे तार करियाछे लक्षण ॥

चै. च. म. २२.३८-४२

सर्वभूतेषु यः पश्येत् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

श्रीम. भा. ११.२.४५

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥

श्रीम. भा. ११.२.४६

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृत॥

श्रीम. भा. ११.२.४७

भावार्थ—श्रद्धावान् अर्थात् सुदृढ़ निश्चयात्मक विश्वाससे विशिष्ट व्यक्ति ही प्रकृत अधिकारी है। भक्तके विश्वासके निश्चयात्मक दास्यके तारतम्यमें ही अधिकारका उत्तम, मध्यम और कनिष्ठत्व निर्भर करता है। श्रीरूपगोस्वामिपादने लिखा है—

शास्त्रे युक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढ़निश्चयः।
प्रौढ़श्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः॥

भ. र. सि. १-२.१७

अर्थात्—भक्तिशास्त्रमें दक्ष, उसके अतिरिक्त मार्गके निरसनमें दृढ़ युक्तिपटु प्रौढ़श्रद्ध व्यक्ति ही भक्तोंमें उत्तमाधिकारी है।

यः शास्त्रादिष्वनिपुणः श्रद्धावान् स तु मध्यमः।
यो भवेत् कोमलश्रद्धः स कनिष्ठो निगद्यते॥

भ. र. सि. १.२.८

अर्थात्—मध्यम भक्त श्रद्धावान् होकर भी शास्त्रादि तात्पर्यमें उतना कुशल नहीं होता। कोमल श्रद्धावान् कनिष्ठ अधिकारी होता है। कनिष्ठाधिकारी भक्तोंके सङ्गसे कृष्ण-पाद-पद्म लाभ रूप कोमल श्रद्धासे च्युत हो सकता है। मध्यमाधिकारी शास्त्रादि विचारतात्पर्यद्वारा अभक्तके सङ्गके कुफलसे तत्काल मुक्त न हो सकनेपर भी शास्त्रादि और भक्तसङ्गके प्रभावसे दृढ़ता प्राप्त करते हैं।

श्रीभगवान्‌के चरणोंमें जिनकी अचल भक्ति है, उनके शरीरमें सारे सद्‌गुण ही दृष्ट होते हैं। वे सारे गुण साधु वैष्णव महापुरुषोंके लक्षणमें आते हैं। वैष्णवका गुण अवर्णनीय हैं, क्योंकि कृष्णभक्तके शरीरमें श्रीकृष्णकी गुणराशि दीख पड़ती है। अब महाप्रभु कृष्णभक्तके प्रधान गुण बतला रहे हैं—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥

श्रीम. भा. ३.२५.२१

एइ सब गुण हय वैष्णव-लक्षण।
सब कहा नाहि जाय, करि दिगदरशन॥
कृपालु, अकृतद्रोह, सत्यसार, सम।
निर्दोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिञ्चन॥
सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैकशरण।
अकाम, अनीह, स्थिर, विजित षड्‌गुण॥
मितभुक्, अप्रमत्त, मानद, अमानी।
गम्भीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्ष, मौनी॥

चै. च. म. २२.४४-४७

कृपालु—पर संसार-दुःख सहिष्णु। अकृतद्रोह-अपने द्रोही लोगोंके प्रति भी द्रोहभाव न रखना। सत्यसार—सत्य ही जिसका बल है। सम—सुख-दुःखमें सम ज्ञान। निर्दोष-असूया आदि दोषरहित। वदान्य—दानशील। मृदु—कोमलचित्त। शुचि—सदाचार। अकिञ्चन—अपरिग्रह। सर्वोपकारक—यथाशक्ति सबका उपकार करनेवाला। शान्त—नियत अन्तःकरण। अनीह—व्यवहारिक क्रियाशून्य। जितषड्‌गुण—क्षुत्पिपासा, शोक, मोह, जरा-मृत्यु इत्यादि षडूर्मिको जिसने जीत लिया है। अप्रमत्त—सावधान। गम्भीर—निर्विकार। करुण-करुणाके द्वारा जो प्रवर्तित होते हैं। मैत्र—अवञ्चक। कवि—बन्ध-मोक्षज्ञ। दक्ष परबोधनमें निपुण।

असत्सङ्गका त्याग

इसके बाद महाप्रभु असत्सङ्गकी बात कह रहे हैं। महाजनगण साधु-सेवाको भगवत्भक्तिका द्वार, और स्त्रीसङ्गको नरक द्वार कहकर वर्णन करते हैं। जीवके हृदयमें कृष्ण-भक्ति उदयका मूल कारण

साधु-सङ्ग है। साधु-सङ्गके द्वारा हृदयमें कृष्ण-प्रेम उदय होता है। भक्तिमार्गकी साधनाका यही प्रधान अङ्ग है। वैष्णव-शास्त्रके मतसे स्त्री-सङ्गीका सङ्ग तथा असाधुका सङ्ग सर्वथा त्याज्य है।

स्त्री-सङ्गीका अर्थ है-कामी स्त्री-सङ्गी। धर्मपत्नी-सङ्गको स्त्री-सङ्गी नहीं कहते हैं। असाधु अर्थात् कृष्ण-भक्तिहीन व्यक्तिका सङ्ग न करे, इसी प्रकार योषित-क्रीड़ामृगगणका भी सङ्ग न करे। क्योंकि स्त्री-सङ्गी और स्त्री-सङ्गीका सङ्ग जैसे मोह और बन्धनका कारण होता है, अन्य संसर्ग उतने अहितकर नहीं होते। असत्सङ्गके प्रभावसे सारे सद्‌गुण नष्ट हो जाते हैं।

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद् याति संङ्क्षयम्॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीड़ामृगेषु च॥
न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसंगतः।
योषित्संगाद् यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः॥

श्रीम. भा. ३.३१.३३-३५

श्रीकपिलदेवजीने माता देवहूतिसे कहा—जिनके सङ्गके सत्य, शौच, दया, मौन, सद्‌बुद्धि, श्री, लज्जा, कीर्ति, सहिष्णुता, शम, दम एवं भग (उन्नति) सम्यक् रूपसे क्षयको प्राप्त हों—उन सब अशान्त, मूढ, शोचनीय दशाग्रस्त, देहमें आत्मबुद्धि-विशिष्ट एवं स्त्रियोंके क्रीड़ामृग-तुल्य असाधु व्यक्तियोंका सङ्ग न करे। स्त्री-सङ्ग एवं स्त्री-सङ्गीके सङ्गसे पुरुषको जिस प्रकारका मोह और संसार-बन्धन होता है, अन्य लोगोंके सङ्गसे वैसा नहीं होता।

इसके बाद महाप्रभु कहते हैं—

एइ सब छाड़ि आर वर्णाश्रमधर्म।
अकिञ्चन हञा लय कृष्णेर शरण॥

चै. च. म. २२.५०

इन सब प्रकारके असत्सङ्गका त्याग, वर्णाश्रम-धर्मकी आसक्तिका त्याग, अकिञ्चन होकर श्रीकृष्णके चरणोंका आश्रय—ये जीवके सारे पापोंको हर लेते हैं।

शरणागति

अब महाप्रभु शरणागतिकी बात कह रहे हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गीता. १८.६६

प्रभु कहते हैं—ऐसे भक्त-वत्सल श्रीकृष्णको परित्याग करके पण्डित लोग उनके सिवा अन्य तुच्छ वस्तुका भजन नहीं करते। कृष्णगुण-ज्ञान होते ही अभिज्ञ व्यक्ति अन्यकी उपासना छोड़कर कृष्ण-भजन करते हैं।

अकिञ्चन शरणागत भक्तके अनेक लक्षणोंके होते हुए आत्मसमर्पण सर्वापेक्षा प्रधान है। शरणागति छः प्रकारकी होती है—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रतिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्‌विधा शरणागतिः।
तवास्मीति वदन् वाचा तथैव मनसा विदन्।
तत्स्थानमाश्रितस्तन्वा मोदते शरणागतः॥

ह. भ. वि. ११.६७६,६७७

अर्थ—१. भजनके अनुकूल विषयोंका व्रतरूपमें ग्रहण, २. प्रतिकूल विषयोंका त्याग, ३. भगवान् निश्चय ही मेरी रक्षा करेंगे—इस प्रकारका दृढ़ विश्वास, ४. रक्षाकर्त्ताके रूपमें उनका वरण, ५. श्रीकृष्णमें आत्म-समर्पण एवं ६. श्रीकृष्ण-चरणोंमें आर्त्ति-ज्ञापन—ये छः प्रकारके शरणागतिके लक्षण हैं। हे भगवन्! मैं तुम्हारा ही हूँ—मुखसे ऐसा कहकर, मनसे भी उसी प्रकार जानकर एवं शरीर-द्वारा वृन्दावन आदि भगवत्-लीला-स्थानका आश्रय लेकर शरणागत व्यक्ति आनन्दोपभोग करते हैं।

शरणागत भक्तजनको भक्तवत्सल श्रीभगवान् अपना बना लेते हैं—

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ॥
श्रीम. भा. ११.२९.३४

अर्थ—श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा—मनुष्य जब अन्य कर्मोंका त्याग करके मुझमें आत्मसमर्पण करता है, तब उसके लिए विशेष कुछ करनेकी मेरी इच्छा होती है । उसके फलस्वरूप वह मनुष्य जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त होकर मेरे ऐश्वर्य-भोगके योग्य हो जाता है ।

साधन-भक्ति

इसके बाद महाप्रभुने श्रीसनातनको साधन-भक्तिके विषयमें कहा । इस साधन-भक्तिके द्वारा कृष्णप्रेम महाधन प्राप्त होता है । साधन-भक्तिका लक्षण कह रहे हैं—

श्रवणादि क्रिया साधन-भक्तिका स्वरूप-लक्षण है, अर्थात् श्रवणादि क्रिया साधन-भक्तिसे अभिन्न होकर साधन-भक्तिका बोधक है । साधन-भक्तिका तटस्थ-लक्षण प्रेमा-भक्ति है, अर्थात् प्रेमा-भक्ति श्रवणादि क्रियासे भिन्न होकर उत्पादकरूपमें श्रवणादि क्रियारूप साधन-भक्तिका बोधक होनेके कारण तटस्थ लक्षण है । नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम साध्यवस्तु नहीं है । दर्पण अतिशय मलिन हो तो उसमें सूर्यदेव प्रतिबिम्बित नहीं होते, परन्तु जब वह परिष्कृत होकर स्वच्छ हो जाता है तो उसमें सूर्यदेव प्रतिबिम्बित होते हैं । इसी प्रकार श्रवणादि साधन-भक्तिके द्वारा चित्तके शुद्ध होनेपर उसमें नित्य सिद्ध कृष्णप्रेम उदय होता है ।

यह साधन-भक्ति दो प्रकारकी है, एक वैधी और दूसरी रागानुगा । जिनका भगवान्में अनुराग नहीं पैदा हुआ है, वे नरकादिके भयसे भीत होकर शास्त्रके शासनमें जो भक्ति करते हैं, उसका नाम वैधी भक्ति है । इस वैधी भक्तिके गुरुपदाश्रय आदि चौसठ साधनाङ्ग हैं । जैसे—

१ गुरुपदाश्रय, २ श्रीकृष्ण-मन्त्रसे दीक्षापूर्वक भागवत्धर्म-शिक्षादि, ३ प्रीतिपूर्वक श्रीगुरुदेवकी सेवा, ४ साधुवर्त्मानुगमन, ५ सद्धर्मपृच्छा, ६ श्रीकृष्णके लिए भोगादिका त्याग, ७ द्वारकादि कृष्णतीर्थ एवं गङ्गादिके समीप वास, ८ यावत्-निर्वाह-प्रतिग्रह, ९ एकादशी आदि व्रत, १० धातृ (आँवला), अश्वत्य (पीपल) आदि वृक्षोंका पूजन—ये दस अङ्ग साधन-भक्तिके आरम्भस्वरूप हैं । भ.र.सि. १.२.२४-२७

११ भगवद्-बहिर्मुख जनोंका दूरसे संग-त्याग, १२ बहुतसे शिष्य करनेका त्याग, १३ बहुत आडम्वर-त्याग, १४ बहुत ग्रन्थ-कलादिका अभ्यास और व्याख्या या विवादादि परिवर्जन, १५ व्यवहारमें कृपणता-त्याग, १६ शोकादिके वशीभूत न होना, १७ अन्य देवताकी अवज्ञा न करना, १८ प्राणिमात्रसे उद्वेग-त्याग, १९ सेवापराध और नामापराध होते ही प्रयत्नपूर्वक उससे परित्राणकी चेष्टा, २० श्रीकृष्ण और भक्तके प्रति द्वेष एवं निन्दादिमें असहिष्णुता—ये दस अंग वर्जनात्मक हैं । भ. र. सि. २८-३१

भक्तिमार्गमें प्रवेशके लिए ये बीस अंग द्वार-स्वरूप हैं; किन्तु गुरुपदाश्रय आदि तीन अंग तो प्रधान अंग हैं ।

२१ वैष्णव-चिह्न-धारण, २२ शरीरपर हरिनामाक्षर लिखन, २३ निर्माल्य-धारण, २४ श्रीहरिके सम्मुख नृत्य, २५ दण्डवत्-नमस्कार, २६ श्रीमूर्त्ति-दर्शनमें अभ्युत्थान, २७ श्रीमूर्त्तिके पीछे-पीछे गमन, २८ श्रीभगवदधिष्ठान-स्थानमें गमन, २९ परिक्रमा, ३० अर्चन, ३१ परिचर्या, ३२ गीत, ३३ संकीर्तन, ३४ जप, ३५ विज्ञप्ति (निवेदन), ३६ स्तवपाठ, ३७ नैवेद्य-आस्वादन ३८ चरणामृत-आस्वादन, ३९ धूप-माल्यादि सौरभ-ग्रहण,

४० श्रीमूर्त्ति-स्पर्शन, ४१ श्रीमूर्त्तिदर्शन, ४२ आरती और उत्सव आदि दर्शन, ४३ श्रवण, ४४ श्रीकृष्णकी कृपाके प्रति निरीक्षण, अर्थात् श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त करनेके लिए प्रार्थना और आशा, ४५ स्मरण, ४६ ध्यान, ४७ दास्य, ४८ सख्य, ४९ आत्मनिवेदन, ५० श्रीकृष्णको निवेदनके लिए उपयोगी शास्त्रविहित द्रव्यादिमें-से अपनी प्रिय वस्तु श्रीकृष्णको अर्पण, ५१ श्रीकृष्णार्थ अखिल चेष्टा, अर्थात् जो कुछ करे वह मानो श्रीकृष्ण-सेवार्थ है, ५२ सब प्रकारसे श्रीकृष्णमें शरणागति, ५३, तुलसीसेवा, ५४ श्रीमद्भागवत आदि शास्त्र-सेवा, ५५ मथुराधाम-सेवा, ५६ वैष्णवादि सेवा, ५७ अपनी परिस्थितिके अनुसार द्रव्यादि द्वारा भक्तवृन्दके साथ महोत्सव-करण, ५८ कार्तिकादि व्रत (नियम सेवादि), ५९ जन्माष्टमी आदि उत्सव, ६० श्रद्धाके साथ श्रीमूर्त्ति-सेवा ६१ रसिकभक्तके साथ श्रीमद्भागवतका अर्थास्वादन, ६२ सजातीय आशय-युक्त (समभावापन्न) अपनेसे श्रेष्ठ एवं स्निग्ध प्रकृतिके साधुका संग, ६३ नाम-संकीर्तन एवं ६४ मथुरामण्डल-अवस्थिति—इस प्रकार ६४ अङ्ग साधन-भक्तिके हैं। इनमें शेषोक्त पाँच अङ्ग सर्वश्रेष्ठ हैं। भ.र.सि. १.२.३२-४१.

इनकी प्रत्येककी अलग-अलग व्याख्या भक्तिरसामृतसिन्धुके पूर्वविभाग-साधन-भक्ति-लहरीके प्रकरणमें देखिये।

साधन-भक्तिके चौसठ अङ्गोंमें ये शेषोक्त पाँच अङ्ग सर्वापेक्षा अधिक प्रभावशाली हैं। इन पाँच अङ्गोंका अल्पसङ्ग होनेपर भी हृदयमें कृष्णप्रेमका बीज अङ्कुरित होता है।

प्रभुने पुनः कहा—"कोई भक्त एक अङ्गका साधन करता है, कोई बहुत-सोंका। एक अङ्गके साधनसे भी बहुतोंने सिद्धि पायी है। अम्बरीषादिने बहुत अङ्गोंका साधन भी किया है।

दुरूहाद्भुतवीर्येऽस्मिन् श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भावजन्मने॥

भ. र. सि. १.२.६३,६४

अर्थ—इन दुर्ज्ञेय और आश्चर्यजनक (पाँच) भजनांगोंमें श्रद्धा न हो तो भी इनसे अलगमात्र सम्बन्ध रहनेसे ही निरपराध व्यक्तियोंके चित्तमें अविलम्व भावका उदय हो जाता है।

इतना कहकर प्रभुने यह श्लोक पाठ किया—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

भ. र. सि१. २.२६५.

अर्थात्—भगवान्के गुणादि-श्रवणमें राजा परीक्षित्, कीर्तनमें व्यासपुत्र शुकदेव, स्मरणमें प्रह्लाद, पादसेवनमें लक्ष्मी, पूजामें पृथुराज, अभिवन्दनमें अक्रूर, दास्यमें कपिराज पवननन्दन हनूमान्, सख्यमें अर्जुन तथा सर्वस्व आत्म-निवेदनमें राजा बलिने श्रीकृष्णको प्राप्त किया था। इनकी साधना ही परम श्रेष्ठ है।

महाप्रभुने फिर कहा—'जो सब जीवोंमें समदृष्टि रखकर सर्वतोभावेन शरणागत-प्रतिपालक श्रीकृष्णके शरणपान्न होता है, वह देव-ऋषि-पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है, वह इनमेंसे किसीका दास नहीं होता।'

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां
न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

श्रीम. भा. ११.५.४१.

भूत, मनुष्य, कुटुम्ब तो दूर रहें, जो विधि मार्ग त्यागकर कृष्णकी अर्चना करता है, उसका मन कभी पापपथमें नहीं दौड़ता। यहाँ विधिधर्मसे

काम्यादि कर्मविधिको समझना चाहिये। भक्तिके अङ्गभूत अर्चनादि विधिधर्मका याजन परित्याज्य नहीं है।*

ये विधिकर्मत्यागी भक्त यदि अज्ञान या भ्रान्तिवश कोई पापाचरण करते हैं तो भक्तवत्सल भगवान् उनके अन्तःकरणमें अधिष्ठित होकर, बिना प्रायश्चित्त किये उसको शुद्ध करके पवित्र करते है-

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिःपरेशः।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चित्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः॥

श्रीम. भा. ११.५.२४.

श्रीकृष्ण भगवान् उद्धवसे कहते हैं कि "मदेकनिष्ठ भक्तयोगीके पास ज्ञान और संसार त्याग रूप वैराग्य न हो तो भी केवल मदेकनिष्ठताके गुणसे उनको श्रेयकी प्राप्ति होती है।"

रागानुगा भक्ति

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥

श्रीम. भा. ११.२०.३१

महाप्रभु साधन-भक्तिकी बात अति संक्षेपमें कहकर अब रागानुगा भक्तिकी बात कहते हैं। एकमात्र व्रजवासी लोग ही इस रागानुगा भक्तिके साधक हैं; और जो लोग उनके अनुगत होकर व्रजका भजन करते हैं, वे लोग भी सर्वश्रेष्ठ भक्तिके साधक हैं।

अब रागानुगा भक्तिका लक्षण अति संक्षेपमें कह रहे हैं। अभीष्ट वस्तुमें श्रवण-कीर्तनादि अनपेक्षित स्वाभाविक प्रेममयी गाढ़ तृष्णाका नाम राग या अनुराग है। अर्थात् इष्ट वस्तुमें स्वाभाविकी परमाविष्टताका नाम 'राग' है। स्व-स्व इष्टमें इस प्रकारकी अनुरागमयी भक्तिका नाम रागात्मिका भक्ति, है—

इष्टे स्वरसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिका मता॥

भ. र. सि. १.२.८१

इष्ट वस्तुमें प्रगाढ़ तृष्णा रागानुगा भक्तिका स्वरूप-लक्षण है, और इष्ट वस्तुमें आविष्टता अर्थात् तन्मयता उसका तटस्थ-लक्षण है। इष्टमें गाढ़ तृष्णा, रागसे अभिन्न होकर रागका बोधक होनेके कारण तटस्थ-लक्षण है। यदि कोई भाग्यवान् व्रजवासियोंकी रागमयी भक्तिकी बात सुनकर लोभाकृष्ट होता है, तो उसको व्रज-गोपियोंका अनुगत होकर रागात्मिका भक्तिका याजन करना होगा। यह रागानुगा या रागात्मिका भक्ति शास्त्रयुक्ति नहीं मानती है, अर्थात् उत्पत्तिके समय लोभ शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा नहीं करता, परन्तु उत्पन्न हो जानेपर शास्त्र-युक्तिकी अपेक्षा करता है। इसके बिना भजन-पद्धतिके जाननेका कोई दूसरा उपाय नहीं है।

चै. च. म. २२.८६-८८

नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम्।

भ. र. सि. १.२.९६

अब महाप्रभु इस रागानुगा भक्ति-साधन का उपाय बतलाते हैं—

इस सर्वश्रेष्ठा रागानुगा भक्तिके साधककी साधन-प्रणाली दो प्रकारकी होती है। बाहरसे साधकदेहसे वैधीभक्ति-साधनाके समान श्रवण-कीर्तनादि भक्तिके अङ्गका अनुष्ठान और भीतरसे व्रजभावकी किसी सखी या माता-पिताके आदर्शके स्वरूपका अबलम्बन करके सिद्धदेहमें, अर्थात् उनके समान सिद्ध देह प्राप्त हो गयी है इस प्रकार मनमें चिन्तन करके वाह्य और सिद्धदेहसे व्रजमें दिन-रात

---

* श्रुतिस्मृतिपुराणादि पञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥
भ. र. सि. १.२.१०१

श्रीकृष्णका सेवन करना। रागानुगा भक्तिकी साधनामें श्रीभगवान्‌को आत्मवत् प्रिय, पुत्रवत् स्नेहास्पद, सुहृदतुल्य विश्वासी, गुरुतुल्य उपदेष्टा, सखाके समान रहस्यज्ञाता, इष्टदेवके समान पूजनीय तथा देवताओंके समान मनोकामना पूर्ण करनेवाला समझकर भक्त-साधक उनका भजन करता है। रागानुगा भक्तिकी साधनामें साधकके हृदयमें श्रीकृष्णकी कृपासे प्रेमका उदय होता है, उस प्रेमके अङ्कुरित होनेपर उससे रति और भाव उत्पन्न होता है। श्रीकृष्णके प्रति रति और भावके प्रगाढ़ होनेपर वह भक्तके वशीभूत हो जाते हैं।" चै. च. म. २२.८८-९४

प्रयोजन-तत्त्व

महाप्रभु अब श्रीसनातनको प्रयोजन-तत्त्वके सम्बन्धमें उपदेश देने लगे। पहले जो रति और भावका उल्लेख किया था, अब उसकी मार्मिक व्याख्या करने लगे। वे बोले—

एबे शुन भक्ति फल प्रेम प्रयोजन।
जाहार श्रवणे हय भक्ति रस ज्ञान॥
कृष्णे रति गाढ़ हैले प्रेम अभिधान।
कृष्णभक्ति रसेर एइ स्थायीभाव नाम॥

चै. च. म. २३.२,३

"आत्मा जब शुद्ध सत्त्वगुण-विशिष्ट होता है, प्रेमरूप सूर्यके तेजसे साम्यभाव ग्रहण करता है, तथा रुचि-शक्तिके प्रभावसे मन निर्मल होता है, तब हृदयमें भाव उत्पन्न होता है—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥

भ. र. सि. १.३.१

शुद्ध सत्त्वविशिष्ट-स्वरूप विशेषण, भावसे अभिन्न होकर भावका बोधक-हेतु स्वरूप-लक्षण है। तथा रुचि-भावसे भिन्न होकर भावका बोधक होनेके कारण तटस्थ-लक्षण है। ये दो प्रकारके भावके स्वरूप और तटस्थ लक्षण भी दो-दो प्रकारके होते हैं।

जो भाव सर्वतोभावेन विमलीकृत, स्नेहातिशय-समन्वित तथा घनीभूतस्वरूप होता है, पण्डितगण इस प्रकारके भावको 'प्रेमा' कहते हैं—

सम्यङ्‌मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥

भ. र. सि. १.४.१

अन्यविषयक ममत्ववर्जित तथा एकमात्र श्रीकृष्णमें ममताधिक्य होनेपर उसको 'प्रेमभक्ति' कहते हैं। यह भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदिका मत है—

अनन्यममताविष्टौ ममता प्रेमसंगता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्म-प्रह्लादोद्धवनारदैः॥

ह. भ. वि. ११.६.३४

"अत्यन्त सौभाग्यवश जीवकी श्रीभगवान्‌के प्रति भक्ति होती है, उनके भजनमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। उस श्रद्धासे साधुसङ्ग-प्राप्तिकी इच्छा होती है। और साधुसङ्ग करते-करते जब श्रवण-कीर्तनादिके द्वारा वह साधनाङ्गके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होता है, तब उसके सारे अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं। इस अनर्थ-निवृत्तिके साथ भक्ति और निष्ठा उत्पन्न होती है। निष्ठासे भगवान्‌के नाममें रुचि होती है। रुचिसे आसक्ति, आसक्तिसे भाव होता है और भावोत्पत्ति होनेपर साधकके हृदयमें प्रेमकी उत्पत्ति होती है। इस भावोत्पत्तिका दूसरा नाम 'प्रीत्यङ्कुर' है। जैसे चन्दनके लेपके ऊपर अनेक बार प्रलेप देनेपर क्रमशः घनीभूत आकार धारण करता है, उसी प्रकार भक्त हृदयमें भाव-चन्दनके ऊपर भावका प्रलेप पड़नेपर भावके घनीभूत होनेपर प्रेमकी उत्पत्ति होती है। वह प्रेम ही सर्वानन्दका आकर तथा जीवके लिए सर्वतोभावेन प्रयोजनीय है।" चै. च. म. २३.५-९।

आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चतिः ।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः ।।

भ. र. सि. १.४.६.७

जिसके हृदयमें भावांकुर या प्रीत्यांकुर उत्पन्न हुआ है, उसमें ये सारे गुण-लक्षण दीख पड़ते हैं। क्षान्ति, अव्यर्थकालता, अर्थात् व्यर्थकालशून्यता, मानाभिमानशून्यता, विराग, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, भगवान्‌के नामगानमें रुचि, गुण-वर्णनमें आसक्ति तथा वसति-स्थानमें प्रीति—ये नौ गुण उत्पन्न होनेपर प्राकृत क्षोभसे उसका हृदय कभी क्षुब्ध नहीं होता—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता ।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः ।।
आसक्तिस्तद्‌गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले ।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युजति भावांकुरे जने ।।

भ. र. सि. १.३.१२-१४

राजा परीक्षित् ब्रह्म-शाप सुनकर ब्राह्मणोंको सम्बोधन करके कह रहे हैं, "मैं शरणागत हूँ, आप लोग मुझको अङ्गीकार करें, पुण्यसलिला भागीरथी मुझको आश्रित रूपमें अपने चरणोंमें स्थान प्रदान करें, विप्रकी क्रोधाग्निसे उत्पन्न माया अथवा तक्षक मुझको दंशन करे, इसमें मुझको तनिक भी क्षोभ नहीं, आप लोग आनन्दसे कृष्णनाम-कीर्तन करें, मैं श्रवण करूँगा"—

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गंगा च देवी धृतचित्तमीशे ।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ।।

श्रीम. भा. १.१९,१५

इसके बाद महाप्रभु बोले—वे लोग कृष्ण-गुण-कीर्तनके सिवा अन्य विषयमें व्यर्थ कालक्षेप नहीं करते। निरन्तर वाणीके द्वारा स्तव, मनके द्वारा स्मरण, देहके द्वारा प्रणति करते हुए तथा नेत्रजलसे अभिषिक्त होकर श्रीकृष्ण भगवान्‌के उद्देश्यसे सारा जीवन अतिवाहित करते हैं।

वाग्भिस्स्तुवन्तो मनसा स्मरन्त-
स्तन्वा नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः ।
भक्ताः स्रवन्नेत्रजलाः समग्र-
मायुर्हरेरेव समर्पयन्ति ।।

भ. र. सि. १.३.२६

महाराज भरतने भगवच्चरणोंकी प्राप्तिकी अभिलाषासे कठपुतलीके समान हृदयमें निरन्तर विराजमान स्त्री-पुत्र, सुहृद् तथा राज्यसुखको-- यौवनावस्थासे ही मलवत् परित्याग किया था और श्रीभगवान्‌के भजनमें एकान्त रत होकर भिक्षाके लिए शत्रुके नगरमें जाकर चाण्डालतककी वन्दना की थी।

यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ।
जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ।।

श्रीम. भा. ५.१४.४३

सर्वोत्तम भक्त 'कृष्ण मुझपर कृपा करेंगे'—यह निश्चय करके अपनेको हीनसे भी हीन समझता है। उसका मन सर्वदा कृष्ण-कथा-श्रवणमें उत्कण्ठित रहता है, उसकी लालसा सदा कृष्ण-गुण-गानमें उद्दाम रहती है, उसका मन सर्वदा श्रीकृष्ण-लीला-स्थलीमें वास करनेके लिए लालायित रहता है। श्रीकृष्ण-विषयक रतिके ये सब चिह्न हैं—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या-
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ।।

श्रीम. भा. ११.२.४०

कृष्णप्रेमके चिह्न

अब महाप्रभु कृष्णप्रेमके चिह्न एक-एक करके श्रीसनातनको बतलाकर प्रेमका क्रमोत्कर्ष भाव

समझाते जा रहे हैं। ईखका रस जैसे अग्नि-तापसे पाक होते-होते गुड़, शर्करा, मिश्रीके रूपमें परिणत होकर क्रमशः परिष्कृत और मधुरसे-मधुर होता जाता है, उसी प्रकार प्रेम क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर घनीभूत होकर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभावमें परिणत होता है। चै. च. म. २३.२०–२२।

पहले जो रतिकी बात कही गयी है, वह अवस्था-भेदसे साधकके हृदयमें पञ्चविध रूपमें उदय होती है। शान्तरस प्रेम-पर्यन्त उठ सकता है—सनक, सनन्दन आदि मुनिगण शान्तरसके साधक थे। दास्यरस राग-पर्यन्त उठ सकता है—कृष्णके सारथी दारुक दास्य-रसके अधिकारी थे। सख्य और वात्सल्य-रस अनुराग-पर्यन्त उठ सकता है—अर्जुन सख्य-रसके और नन्द महाराज वात्सल्य-रसके अधिकारी थे। परन्तु सर्वश्रेष्ठ मधुररस भाव और महाभावतक उठ सकता है—और उठता है। इस मधुर-रसकी ही संभोगावस्थामें भगवान्‌के प्रति भक्तके स्नेह, मान, कोप और प्रणय आदि उपस्थित होते हैं। सत्यभामाने भक्तिके बलसे कृष्णको बेच दिया था। अभिमानिनी श्रीराधिकाने अपने कुञ्जसे फटकार करके उनको निकाल दिया था।

यह मधुर-रस महाभावमें परिणत होनेपर उससे रसिक भक्तके हृदयमें दो भाव उत्पन्न होते हैं। एकका नाम है—रूढ़ और दूसरेका नाम है—अधिरूढ़। द्वारकावासिनी रुक्मिणी आदि पटरानियोंका रूढ़ भाव है, व्रजसुन्दरियोंका अधिरूढ़ भाव है। ये दोनों भाव केवल मधुर-रसके भक्तोंमें ही दीख पड़ते हैं—

रूढ़ अधिरूढ़ भाव केवल मधुरे।
महिषीगणेर 'रूढ़' 'अधिरूढ़' गोपिका-निकरे॥
चै. च. म. २३-३७

यह अधिरूढ़ भाव फिर दो प्रकारका होता है। सम्भोगावस्थाका नाम 'मादन' है और विरहावस्थाका नाम 'मोहन' है—

सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा॥
उ. नी. १४.२१९

मोदनः रुद्वयोर्यत्र सात्त्विकोद्दीप्ति सौष्ठवन्॥
उ. नी. १४.१७३

"ह्लादिनी-सार–अर्थात् सर्वविध प्रेमभावके उद्गममें उल्लासी होनेपर उसको 'मादन' कहते हैं। जो मादन परात्पर अर्थात् उत्कर्षकी चरम सीमामें उपस्थित होता है। यह केवल श्रीराधिकामें विद्यमान होता है। जिसमें सारे सात्त्विक भाव उद्दीप्त होकर प्रकाशित होते हैं, उस महाभावको 'मोहन' कहते हैं।" मादनमें चुम्बन, आलिङ्गन आदि रस-वैचित्र्य दीख पड़ते हैं, परन्तु मोहनमें उद्घूर्णा, चित्रजल्परूप नाना विभाव परिलक्षित होते हैं। विरह-हेतुविशिष्ट नाना प्रकारकी विलक्षण चेष्टाको 'उद्घूर्णा' कहते हैं। प्रियतमके सुहृदके दर्शनसे हृदयमें जो गूढ़ रोषविजृम्भित बहुंभावसूचक उत्कण्ठा होती है, तज्जनित उक्तिको 'चित्रजल्प' कहते हैं। इस चित्रजल्पके दस अङ्ग * होते हैं। भ्रमर-गीतमें इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। विरह-विवशताके कारण नाना प्रकारकी चेष्टाका नाम 'उद्घूर्णा' है। उद्घूर्णाका दिव्योन्माद एक भेद है। मोहनाख्य महाभाव किसी अनिवर्चनीय अवस्थाको प्राप्त होकर भ्रान्तिमय वैचित्र्यको उत्पन्न करता है। इसको 'दिव्योन्माद' कहते हैं। दिव्योन्माद

---

* प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प प्रतिजल्प, और सुजल्प। उज्ज्वलनीलमणि, स्थायीभाव प्रकरण (१४.१९९-२१७) में इनकी व्याख्या देखिये।

भावमें विभोर होकर भक्त सब वस्तुओंमें श्रीकृष्णमूर्त्ति निरीक्षण करता है। यहाँतक कि अपनेको भी कृष्ण समझता है।

चै. च. म. २३.३९-४१

एतस्य मोहनाख्यस्य गतिं कामप्युपेयुषः।
भ्रमाभा कापि वैचित्री दिव्योन्माद इतीर्यते ।।

उ. नी. १४.१९०

शृङ्गार-रस

अब महाप्रभु शृङ्गार-रसकी बात कहते हैं—

सम्भोग, विप्रलम्भ—द्विविध शृङ्गार।
'सम्भोग'—अनन्त अंग नाहि अन्त तार ।।

चै. च. म. २३.४२

शृङ्गार-रस दो प्रकारका होता है, सम्भोग और विप्रलम्भ। सम्भोगके अनन्त अङ्ग हैं; परन्तु विप्रलम्भ चार प्रकारका होता है। आनुकूल्यमय दर्शन तथा आलिङ्गन आदिके निषेवनद्वारा नायक-नायिकाके उल्लासको बढ़ानेवाले भावको 'सम्भोग' कहते हैं, और युक्त अथवा अयुक्त नायक-नायिकाके आलिङ्गनादिकी अप्राप्तिके उत्कर्ष-साधक और सम्भोगके उन्नति-साधक भावको 'विप्रलम्भ' कहते हैं—

दर्शनालिङ्गनादीनामनुकूल्यान्निसेवया ।
यूनोरुल्लासमारोहन् भावः सम्भोग ईर्यते ।।

उ. नी. १५.१८८

यूनोरयुक्तयोर्भावो युक्तयोर्वाथ ये मिथः।
अभीष्टालिंगनादीनामनवाप्तौ प्रकृष्यते।
स विप्रलम्भो विज्ञेयः सम्भोगोन्नतिकारकः ।।

उ. नी. १५.२

अब चतुर्विध विप्रलम्भको बतला रहे हैं—

विप्रलम्भ चतुर्विध पूर्वराग, मान।
प्रवासाख्य, आर प्रेमवैचित्य-आख्यान ।।

राधिकाद्ये 'पूर्वराग' प्रसिद्ध 'प्रवास' 'माने'।
'प्रेम वैचित्य' श्रीदशमे महिषीगणे ।।

चै. च. म. २३.४३-४४

श्रीराधिकाका पूर्वराग 'प्रवास' नामसे प्रसिद्ध है, और द्वारकावासिनी पटरानियोंका प्रेमवैचित्य भाव श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित है। सङ्गमके पूर्व नायक-नायिकाकी दर्शन और श्रवण-जनित जो रति उद्बुद्ध होती है, पण्डित लोग उसे 'पूर्वराग' कहते हैं। परस्पर अनुरक्त नायक-नायिकाके एक स्थानमें विद्यमान होनेपर भी परस्पर आलिङ्गन तथा दर्शन आदिके जो विरोधी भाव हैं, उनको 'मान' कहते हैं। मिलनेके बाद नायक-नायिकाके देशान्तरगमन-जनित व्यवधानको 'प्रवास' कहते हैं, तथा प्रियतमके समीप रहते हुए भी प्रेमोत्कर्षके स्वभावके वश विश्लेष बुद्धिसे जो आर्त्तभाव उत्पन्न होता है, उसे 'प्रेमवैचित्य' कहते हैं। ये सारे भाव कृष्णभक्ति-रसके स्थायीभाव हैं। इनके साथ यदि विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी-भावका सम्मिलन होता है, तो—

दधि जेन खण्ड-मरिच-कर्पूर-मिलने।
'रसाला'ख्य रस हय अपूर्वास्वादने ।।

चै. च. म. २३.२९

विभाव दो प्रकारके होते हैं, आलम्बन और उद्दीपन। भगवान्का दर्शन 'आलम्बन विभाव' है। वंशीध्वनि-श्रवण 'उद्दीपन विभाव' है। रसके आलम्बन नायक-नायिका हैं, आश्रय भक्त हैं। इस आलम्बन तथा आश्रयके बिना रासकेलि या रसलीला सम्पन्न नहीं होती। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण नायकशिरोमणि हैं* और श्रीमती राधिका

---

* नायकानां शिरोरत्नं कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महागुणाः ।।

भ. र. सि. २.१.१७

नायिका-शिरोमणि हैं। श्रीकृष्ण चौसठ महागुणके[1] आधार हैं और इसी कारण वे गुणमणि हैं; तथा श्रीमती राधिका अनन्त गुणशालिनी हैं; तथापि पचीस गुण[2] उनमें प्रधान रूपमें अधिष्ठित हैं। इन गुणोंके द्वारा ही उन्होंने श्रीकृष्णको वशीभूत किया है। (चै. च. म. २३.४५-४७)

महाप्रभु अन्तमें बोले—

नायक नायिका दुइ—रसेर 'आलम्बन'।
सेइ दुइ श्रेष्ठ—राधा ब्रजेन्द्रनन्दन॥
एइ मत दास्ये दास,—सख्ये सखागण।
वात्सल्ये माता पिता—आश्रयावलम्बन॥

चै. च. म. २३.४८,४९

प्रभु सबके अन्तमें बोले–"सनातन ! तुमको जो मैंने यह व्रजके निगूढ़ रसतत्त्वकी बात बतलायी है, यह अभक्तोंके लिए तथा सर्वसाधारणके लिए आस्वाद्य नहीं है। विशेष-गुण-विशिष्ट कृष्णभक्तगण व्रजके इस उज्ज्वल रसका आस्वादन करके परम आनन्द प्राप्त करते हैं।"

इस प्रकार महाप्रभु प्रयोजन-तत्त्वकी शिक्षा श्रीसनातनको देकर बोले—

संक्षेपे कहिल एइ 'प्रयोजन' विवरण।
पञ्चम-पुरुषार्थ एइ—कृष्ण प्रेमधन॥
पूर्वे प्रयोगे आमि रसेर विचारे।
तोमार भाइ रूपे कैल शक्ति सञ्चारे॥
तुमिह करिह भक्ति रसेर विचार।
मथुरार लुप्ततीर्थेर करिह उद्धार॥
वृन्दावने कृष्णसेवा वैष्णव-आचार।
भक्ति-स्मृति-शास्त्र करिह प्रचार॥

चै. च. म. २३.५२-५५

प्रभुने श्रीसनातनको युक्त वैराग्यके मर्यादाकी सारी शिक्षा दी, शुष्क वैराग्य और शुष्क ज्ञान अर्जन करनेका निषेध किया। उन्होंने श्रीकृष्ण-भगवान्‌के श्रीमुखसे निःसृत (गीता १२.१३-२०) सारे वचनोंको पढ़कर प्रकृत साधु भक्तके सारे लक्षणोंको एक-एक करके श्रीसनातनको समझाकर कहा, "साधुगण धनसे मदान्ध पुरुषकी उपासना क्यों करें ? क्या जीर्णवस्त्र-खण्ड राहमें पड़ा नहीं मिलता ? वृक्ष क्या फल-फूलके द्वारा अन्यका पोषण नहीं करते ? क्या उनसे फल भिक्षा करनेपर नहीं मिलेगा ? क्या नदियाँ सारी सूख गयी हैं ? पर्वतकी गुफाएँ क्या बन्द हो गयीं है ? श्रीकृष्ण भगवान् क्या अपने आश्रित जनकी रक्षा नहीं करते ?—

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्‌घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद्‌भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान्॥

श्रीम. भा. २.२.५

तबे सनातन सब सिद्धान्त पूछिला।
भागवत सिद्धान्त गूढ़ सकलि कहिला॥

चै. च. म. ६३.५७

श्रीसनातन ध्यानपूर्वक अबतक प्रभुके श्रीमुखकी मधुमय वाणी सुन रहे थे। अब प्रभुके चरणोंमें गिरकर हाथ जोड़कर उनकी अनुमति लेकर श्रीमद्‌भागवतके सारे गूढ़ सिद्धान्तोंको पूछकर समझा। इन सब गूढ़ सिद्धान्तोंमें श्रीकृष्ण भगवान्‌की मौसल-लीला, अर्थात् यदुकुल-क्षय, उनकी अन्तर्धान-लीला, केशावतार[1], महिषीहरण

---

१ श्रीकृष्णके ६४ गुणोंका विवरण भ. र. सि. २.१.१९-३६ में देखिये।

२ श्रीराधाके गुणोंका विवरण उ. नी. ४.११-१६ में देखिये।

१ केशावतार—महाभारत और 'विष्णुपुराणमें लिखा है कि श्रीहरिने अपने मस्तकसे दो काले-सफेद बाल निकाले। उनमें सफेदके अवतार श्रीबलराम हैं और काले केशके अवतार श्रीकृष्ण हैं।

आदि लीलाओंके रहस्य* बताये हैं।

श्रीसनातन गोस्वामीका दैन्य

श्रीसनातन तब प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर पुनः प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते अत्यन्त दैन्य और आर्त्तभावसे बोले—"मैं नीचसेवी, नीचजाति और पामर हूँ। ब्रह्माके अगोचर सिद्धान्त तुमने सिखाये, जो अमृतके सिन्धुके समान हैं। किन्तु मेरा तुच्छ मन उसके एक विन्दुका ग्रहण करनेमें भी सक्षम नहीं है। तुम सर्वशक्तिमान् हो, पंगुको भी नचा सकते हो। मुझे यह बरदान दो कि जो कुछ तुमने सिखाया है, वह मेरे हृदयमें स्फुरित हो।"

श्रीगौर भगवान्‌ने परम सन्तुष्ट होकर श्रीसनातनके मस्तकपर श्रीकर-कमलका स्पर्श करके यह वरदान दिया—'तथास्तु'—

'एइ सब स्फुरुक तोमारे'

चै. च. म. २३.६६

यह परम सौभाग्यवान्, महाप्रभुके साक्षात् कृपापात्र तथा प्रेम-रसपात्र श्रीसनातन प्रसिद्ध छः गोस्वामी-वृन्दमें-से एक थे। प्रभुकी कृपासे उन्होंने भक्ति-शास्त्रकी रचना की, श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार किया, गुप्त श्रीविग्रहको प्रकट किया। इनके अद्‌भुत वैराग्यकी बात सुनकर आश्चर्य होता है। श्रीवृन्दावनधाममें जाकर वे कैसे रहते थे, इसे सुनिये! यथा—

अनिकेतन दोंहे रहे जत वृक्षगण।
एकेक वृक्षेर तले एकेक रात्रि शयन॥
विप्रगृहे स्थूल भिक्षा काहाँ माधुकरि।
शुष्क रुटि चाना खाय भोग परिहरि॥
करोया मात्र हाथे कान्था छिड़ा बहिर्वास।
कृष्णकथा कृष्णनाम नर्त्तन उल्लास॥
अष्ट प्रहर कृष्ण भजन—चारिदण्ड शयने।
नाम संकीर्तने सेहो नहे कोन दिने॥
कभू भक्तिरस-शास्त्र करये लिखन।
चैतन्य कथा शुने, करे चैतन्य-चिन्तन॥

चै. च. म. १६.११५-११६

प्रभुके कृपासिद्ध भक्तचूड़ामणि श्रीसनातन गोस्वामीकी शिक्षा स्वयं भगवान्‌के द्वारा काशीधाममें इस प्रकार पूर्ण हुई। श्रीतपन मिश्रके घरमें बैठकर प्रभुने उनको इन निगूढ़ तत्त्वोंकी शिक्षा दी।*

'आत्मारामश्च' श्लोकके सम्बन्धमें

अब श्रीसनातन गोस्वामीने प्रभुसे 'आत्माराम' श्लोककी व्याख्या सुननेकी इच्छा प्रकट की। वे बोले—"हे प्रभु! तुमने इस श्लोककी अठारह प्रकारकी व्याख्या पहले सार्वभौम भट्टाचार्यके सामने की थी, यह मैंने सुना है। सुनकर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ था, मनमें अत्यन्त उत्कण्ठा है। यदि कृपा करके जीवाधमको एक बार सुनाओ तो मेरे ये श्रवण शीतल हो जायँ।" चतुरचूड़ामणि प्रभुका उत्तर सुनिये—

प्रभु कहे—आमि वातुल आमार वचने॥
सार्वभौम वातुल—ताहा सत्य करि माने॥
किवा प्रलापिनाम, किछु नाहिक स्मरणे।
तोमार संगबले यदि हय किछु मने॥
सहजे आमार किछु अर्थ नाहि भासे।
तोमा सभार संग बले जे किछु प्रकाशे॥

चै. च. म. २४.५-७

महाप्रभुके दैन्य और भङ्गिमाकी बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामीके हृदयमें विषम आत्म-ग्लानि उपस्थित हुई। वे बहुत लज्जित हुए। महाप्रभुने

---

* इनका विस्तृत वर्णन श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरासे प्रकाशित 'सनातन शिक्षा' में देखिये।

*आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्ययुरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
श्रीम. भा. १.७.१०

इस श्लोककी* ६१ व्याख्या करके उनको समझायी।

प्रभुके श्रीमुखसे इस श्लोकके अर्थ सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी एकवारगी विस्मयान्वित हो उठे। वे प्रेमानन्दमें विगलित होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े और रोते-रोते स्तुति करने लगे—

साक्षात् ईश्वर तुमि ब्रजेन्द्रनन्दन।
तोमार निश्वासे सब वेद प्रवर्त्तन॥
तुमि वक्ता भागवतेर तुमि जान अर्थ।
तोमा बिनु अन्य जानिते नाहिक समर्थ॥

चै. च. म. २४.२२९,२३०

महाप्रभुने मुस्कराकर उत्तर दिया—

—'केन कर आमार स्तवन।
भागवतेर स्वरूप केन ना कर विचारण?॥
कृष्ण-तुल्य भागवत—विभु सर्वाश्रय।
प्रति श्लोके प्रति अक्षरे ना अर्थ कय॥

चै. च. म. ४.२३१-२३२

श्रीसनातन गोस्वामी और क्या उत्तर देते? वे सजल-नयन होकर प्रभुकी ओर देखते रह गये। वे देख रहे थे कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उनके साथ बातें कर रहे हैं। वे प्रच्छन्न अवतार होकर भी उनके सामने कृपा करके प्रकट हो रहे हैं।

वैष्णव-स्मृति

बहुत देरतक सनातन चुप बैठे रहे। पश्चात् पुनः दोनों हाथ जोड़कर प्रेमाश्रु-नयनसे प्रभुके चरणोंमें कातर भावसे निवेदन किया—"तुमने वैष्णव-स्मृति-प्रणयन करनेकी आज्ञा दी है। मैं तो बहुत नीच हूँ, कोई आचार-विचार जानता नहीं, मुझसे वैष्णव-स्मृतिका प्रचार कैसे होगा? यदि तुम कुछ सूत्ररूपमें भी उपदेश करो और स्वयं मेरे हृदयमें विराजकर स्फुरणा करो, तभी कुछ हो सकता है।"

इसके उत्तरमें महाप्रभुने वैष्णव-स्मृति*का दिग्दर्शनरूप अति संक्षेपमें श्रीसनातन गोस्वामीको सूत्र-मात्र बताये, जो इस प्रकार हैं—"गुरु-आश्रय, गुरु-लक्षण, शिष्य-लक्षण, दोनोंका एक-दूसरेद्वारा परीक्षण, सेव्य भगवान, मन्त्र विचार, मन्त्र-अधिकारी, मन्त्रका सिद्ध-साध्यादि शोधन, दीक्षा, प्रातःकृत्य शौच, आचमन, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्यादि वन्दन, गुरु-सेवा, उर्ध्वपुण्ड्र चक्रादि धारण, गोपीचन्दनका तिलक,तुलसी-काष्ठकी माला-धारण, तुलसी-आहरण, भगवान्के वस्त्र-पीठ-मन्दिर संस्कार, भगवत्-विग्रहका निद्रासे जागरण, पञ्चोपचार-षोडषोपचार-पञ्चाशत उपचारसे अर्चन, पञ्चकाल पूजा, आरती, नैवेद्य-निवेदन, शयन, श्रीमूर्त्ति-लक्षण, शालग्राम-लक्षण, श्रीकृष्णके लीलाक्षेत्रकी यात्रा,श्रीकृष्ण-मूर्त्ति-दर्शन,नाम-महिमा, नामापराधवर्जन, वैष्णव लक्षण, सेवापराध-वर्जन, शङ्ख-जल-गन्ध-पुष्प-धूपादि लक्षण, जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत्, वन्दन, पुरश्चरण-विधि, कृष्ण-प्रसाद-भोजन, अनिवेदित त्याग, वैष्णव-निन्दादि वर्जन, साधु-लक्षण, साधुसंग, साधु-सेवा, असत्सङ्ग त्याग, श्रीभागवत-श्रवण, दिन-कृत्य, पक्ष-कृत्य, एकादशी आदि बिवरण, मास-कृत्य, जन्माष्टमी आदि विधि-विचारण, एकादशी-जन्माष्टमी- -वामनद्वादशी—-रामनवमी—नृसिंह-चतुर्दशीका विद्धात्याग औरअविद्धा-ग्रहण, अकरणका दोष, करनेसे भक्ति-लाभ, श्रीमूर्त्ति और विष्णु-मन्दिर-निर्माण-लक्षण, सामान्य सदाचार, वैष्णव आचार, कर्त्तव्य, अकर्तव्य, स्मार्त व्यवहार।"

---

* श्रीम. भा. १.७-१० की ६१ व्याख्याओंकी डा० श्रीराधागोविन्द नाथकी टीकासहित हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरासे उपलब्ध है।

* वैष्णव स्मृतिका डा० राधागोविन्द नाथकी टीकाका हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरासे उपलब्ध है।

सबके लिए पुराण आदि शास्त्रोंके प्रमाण देनेके लिए भी महाप्रभुने आदेश दिया और कहा कि जब तुम काम करोगे, तब श्रीकृष्ण स्वयं स्फुरणा करेंगे। (चै. च. म. २४.२४०-२५७)

श्रीसनायन गोस्वामीने प्रभुके चरणोंकी धूलिमें लोट-पोट करते हुए उनके शुभ आशीर्वादको भक्ति-पूर्वक सिरपर धारण किया। अब सनातन-शिक्षा समाप्त हो गयी। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइ त कहिल प्रभुर सनातने प्रसाद।
जाहार श्रवणे भक्तेर खण्डे अवसाद॥
चै. च. म. २४-२५८

ये सारी तत्त्वकथा परम और चरम सिद्धान्तपूर्ण हैं। लीला-कथाकी अपेक्षा नीरस होनेपर यह अवश्य आस्वादनीय और अनुशीलनीय है। कविराज गोस्वामीने कहा है--

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस।
इहा हैते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥
चै. च. आ. २.९९

श्रीसनातन गोस्वामी और पूज्यपाद कविराज गोस्वामीके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपातके साथ यह अध्याय समाप्त हुआ।

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ॥
एइ छय गोसायिर चरण-वन्दन।
जाहा हैते विघ्ननाश, अभीष्ट पूरण॥
एइ छय गोसाञिर जुञि हइ दास।
ता सबार पदरेणु मोर पञ्चग्रास॥

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुसे जो अपूर्व आत्मनिवेदन किया है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

चिराददत्तं निजगुप्तवित्तं
स्वप्रेमनामामृतमत्युदारः।
आपामरं यो विततार गौरः
कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये॥
चै. च. म. २३-१

छत्तीसवाँ अध्याय

काशीमें प्रभु और प्रकाशानन्द सरस्वती

सब काशीबासी करे नाम संकीर्तन।
प्रेमे हाँसे काँदे गाय करये नर्त्तन॥
संन्यासी पण्डित करे भागवत विचार।
वाराणसी पुरी प्रभु करिल निस्तार॥
चै. च. म. १५.११८,११९

काशीके भक्तोंका दुःख और प्रकानन्दको प्रभुसे मिलानेकी योजना

प्रभुने प्रयागमें रहकर दस दिन तक श्रीरूप गोस्वामीको शिक्षा दी थी। उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामीको काशीमें रहकर दो महीनेतक शिक्षा दी। श्रीवृन्दावनसे काशी आनेमें उनको दो मास लग गये थे। अब श्रीवृन्दावनको छोड़े उनको चार मास हो गये थे। प्रयागमें उन्होंने मकर-स्नान किया था, अतएव अब फाल्गुन बीत चला था।

काशीमें प्रभुके भक्तोंकी संख्या बहुत कम थी। काशीधाम मायावादी संन्यासी-प्रधान स्थान था। काशीमें उनके प्रवीण भक्त थे श्रीतपन मिश्र, चन्द्रशेखर वैद्य, कीर्तनिया परमानन्द और वे धनी

महाराष्ट्रीय विप्र। परमानन्द और चन्द्रशेखर प्रभुको कीर्तन सुनाते थे । प्रभु श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा देते और कुछ अन्तरङ्ग भक्तोंको साथ लेकर कीर्तन करते थे ।

संन्यासियोंकी प्रभुने अबतक बिल्कुल उपेक्षा कर दी है, यह देखकर इन मुट्ठीभर भक्तोंके मनमें बड़ा दुःख है। क्योंकि वे जानते हैं कि प्रभु क्या वस्तु हैं। वे स्वयं-भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं, इस बातको उन्होंने समझ लिया है। भक्तिधर्मकी शिक्षा देकर जीवोद्धार करनेके लिए उन्होंने नदियामें अवतार ग्रहण किया है। मायावादी संन्यासियोंका उद्धार कैसे होगा, इस चिन्तामें उनका मन निरन्तर व्यग्र रहता है।

परम सौभाग्यके बलसे जिन्होने गौर-भगवान्की कृपाका बल प्राप्त किया है, गौराङ्ग-कृपासे उनको पञ्चम पुरुषार्थ प्रेमधन प्राप्त हुआ है। उनकी सदा ही इच्छा होती है कि सबको अपनी साधनाके धन, कलिके प्रच्छन्न अवतारको पहचानवा दें और गोलोककी सम्पत्ति, अपने प्राप्त किये प्रेमधनका अंश सबको देकर प्रेमधनका धनी बना दें। यह प्रेमदान न कर पानेसे उनके मनमें दुःख होता हैं, क्योंकि वे दाता-शिरोमणि हैं, भूरिदा हैं। इसको ही वैष्णव लोग साधु प्रकृति कहते हैं। प्रभुके कृपापात्र, काशीके ये भक्त-चतुष्टय—सभी वैष्णव साधु प्रेमधनके धनी हैं। इन लोगोंके मनमें और विषम दुःख है, प्रकाशानन्द सरस्वती आदि काशीके मायावादी संन्यासी प्रभुकी निन्दा करते हैं और उनको कानसे वह निन्दा सुननी पड़ती है। उन्होंने दुःखी होकर प्रभुसे निवेदन किया—

कतेक शुनिब प्रभु तोमार निन्दन।
ना परि सहिते एबे छाड़िब जीवन॥
तोमाके निन्दये जन संन्यासी गण।
शुनिते ना पारि फाटे हृदय श्रवण॥

चै. च. आ. ७.४८,४९

प्रभुकी निन्दा सुनते-सुनते भक्तगण अधीर हो रहे हैं, उनका हृदय विदीर्ण हो गया है। प्रभुके महाराष्ट्रीय भक्तके मनमें प्रभुकी प्रेरणासे एक शुभ सङ्कल्प उदय हुआ—"जो एक बार प्रभुका स्वभाव देख लेता है, वही उनके स्वरूपको समझकर इनको भगवान् मानने लगता है। यदि किसी प्रकार प्रकाशानन्द और प्रभुका मिलन हो जाय तो सारे संन्यासी इनके भक्त हो जायँगे। अतएव महाप्रभुके साथ काशीके संन्यासियोंकी भेंट करानी होगी।"

तपन मिश्र और चन्द्रशेखरके साथ परामर्श करके वे धनी महाराष्ट्रीय भक्त अपने घर एक महती संन्यासी-सभाका आह्वान करनेके लिए कृतसङ्कल्प हो उठे। उस सभामें काशीके दस हजार संन्यासी आमन्त्रित किये गये। प्रकाशानन्द सरस्वती उस संन्यासी-सभाके सभापति बने; उनकी उस महाराष्ट्रीय धनी व्यक्तिसे पहलेसे ही घनिष्ठता थी। उन्होंने अत्यन्त आनन्दपूर्वक इस निमन्त्रणको स्वीकार किया।

उस महाराष्ट्रीय विप्रने प्रभुके चरणोंमें उपस्थित होकर संन्यासी-सभाकी बात कही और उनके चरण पकड़कर उस सभाके लिए उनको आमन्त्रित किया। भक्तवाञ्छा-कल्पतरु प्रभुने मुस्कराकर महाराष्ट्रीय विप्रके निमन्त्रणको स्वीकार किया। वे सर्वज्ञ थे, काशीके मायावादी संन्यासियोंका उद्धार करनेके लिए ही प्रभुने यह निमन्त्रण स्वीकार किया था। भक्त-दुःख-निवारण भी इसमें एक कारण था। महाराष्ट्रीय विप्रके आज आनन्द-की सीमा न रही।

महाराष्ट्रीय विप्रने तपन मिश्रको कहा—"अब कोई चिन्ता नहीं है। प्रभुकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन करके, उनके श्रीमुखसे मधुर हरिनाम-सङ्कीर्तन सुनकर संन्यासियोंकी बुद्धि बदल जायगी, यह बात मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ।" तपन मिश्रको इससे आश्वासन प्राप्त हुआ और प्रभुको उन्होंने और कुछ नहीं कहा।

महाराष्ट्रीय विप्र धनी आदमी थे, यह पहले ही कहा जा चुका है। उन्होंने अपने घर काशीधामके दस सहस्त्र संन्यासियोंको निमन्त्रित करके एक महती सभा बुलायी। उस सभाके सभापति बने संन्यासी-शिरोमणि प्रकाशानन्द सरस्वती। उन्होंने सुना कि उस सभामें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु आमन्त्रित हैं। उन्होंने यह भी सुना था कि प्रभु काशीधाममें आये हैं, परन्तु मन-ही-मन इच्छा होनेपर भी अपनी मर्यादा-उल्लङ्घन होनेके भयसे वे ज्ञानगर्वी संन्यासी-चूड़ामणि प्रभुसे नहीं मिल सके थे। उनका संन्यासधर्म प्रभुप्रवर्तित भक्तिधर्मका विरोधी था, अतएव वे भी प्रभुके विरोधी थे। उनके असंख्य संन्यासी शिष्य थे; उनमें-से एक महाभाग्यवान् संन्यासीने एक बार प्रभुका दर्शन पाकर ही समझ लिया था कि प्रभु क्या वस्तु हैं। संन्यासी सभाके पूर्व दिन अपनी गद्दीमें बैठकर प्रकाशानन्द सरस्वतीसे उस शिष्यकी प्रभुके सम्बन्धमें अनेक तर्क-वितर्क-युक्त बातें हुईं। शिष्यने अपने गुरुदेवसे स्पष्ट कह दिया—"कृष्ण-चैतन्य साक्षात् नारायण है।" प्रकाशानन्द सरस्वती यह बात सुनकर विस्मित और क्रुद्ध हो गये, तथा शिष्यको रूढ़ वाक्यसे तिरस्कृत करते हुए वैसी बात फिर न कहनेके लिए निषेध किया। शिष्यने उस दिन गुरुसे और कुछ न कहा। प्रकाशानन्द सरस्वतीके मनमें एक बार प्रभुका दर्शन करनेकी प्रबल इच्छा हुई। प्रभुकी कृपासे वह सुयोग प्राप्त भी हो गया। काशीमें जो संन्यासी-सभा आहूत हुई, वह प्रभुकी प्रेरणा से हुई—

"संन्यासीर कृपा-लागि ए भङ्गी ताँहार।"

चै. च. आ. ७.५४

प्रकाशानन्द सरस्वतीको उस रात नींद नहीं आयी। उन्होंने प्रभुके दर्शनके लिए आकुल होकर सारी रात जागकर काटी।

प्रकाशानन्दका प्रभुसे मिलन

दूसरे दिन काशीके संन्यासियोंकी मण्डली एकत्रित होकर प्रकाशानन्द सरस्वतीको साथ लेकर महाराष्ट्रीय ब्राह्मणके घर सभा-स्थलमें पहुँची। सुविस्तीर्ण चन्द्रातपके तले उस महती सभाका आयोजन हुआ। दस हजार मायावादी संन्यासी शिष्य लेकर भारतके सर्वश्रेष्ठ वेदान्ती पण्डित प्रकाशानन्द सरस्वती उस सभाके मध्य उच्च आसनपर आसीन हुए।

चारों ओर संन्यासी और दण्डीगणसे परिवेष्टित सभा-मण्डलके प्रवेशद्वारपर साधु-संन्यासियोंके पैर धोनेका स्थान निर्दिष्ट था। महाराष्ट्रीय विप्र वहाँ उपस्थित थे और प्रभुके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय चारों भक्तोंके साथ दिव्य कनकोज्ज्वल वर्ण, मुण्डित मस्तक, रक्ताम्बर पहने, प्रशान्त आकार, परम प्रेममयी मूर्त्ति, श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु अपनी आजानुलम्बित दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे हरिध्वनि करते-करते वहाँ आकर उदय हो गये।

सभामें उपस्थित सब मायावादी संन्यासियोंकी दृष्टि उस नवागत अपूर्व नवीन संन्यासीके ऊपर पड़ी। ऐसा अपरूप रूप-सम्पन्न अपूर्व संन्यासी उनमें-से किसीने भी कहीं नहीं देखा था। मनुष्य भी इतना रूपवान् हो सकता है, इसकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी। अतएव महाप्रभुका दर्शन करते ही वे सब विस्मयके समुद्रमें मग्न हो गये। प्रकाशानन्द सरस्वती भी उनके बीचमें थे। उन्होंने दूरसे देखा कि परम ज्योतिर्मय एक अपूर्व महापुरुष सभास्थलमें उदित हो गया है।

महाप्रभुने सभाद्वारमें प्रवेश करते ही एक बार सभाके सब लोगोंकी ओर शुभ दृष्टिपात किया। वे दूरसे ही संन्यासियोंको नमस्कार करके पद-प्रक्षालनके स्थानमें गये। महाराष्ट्रीय विप्रने प्रभुकी

चरण-वन्दना करके उनके श्रीचरणोंको धो दिया। उनके चारों भक्त भी उनको घेरकर वहाँ ही बैठ गये। उनके सङ्ग श्रीसनातन गोस्वामी भी थे। वे भी वहाँ ही बैठ गये।

महाराष्ट्रीय विप्रने प्रभुको वहाँ बैठनेसे बारंबार निषेध किया, परन्तु प्रभुने उसकी एक न सुनी। उस पाद-प्रक्षालनके स्थानमें अपनी गोष्ठीके साथ बैठकर प्रभुने एक अद्‌भुत ऐश्वर्य प्रकट किया—

बसिया करिला किछु ऐश्वर्य-प्रकाश।
महातेजोमय वपु—कोटि सूर्याभास॥

चै. च. आ. ७.५८.

प्रभुके श्रीअङ्गसे कोटि सूर्यका तेज निकलने लगा। सभामें बैठे संन्यासियोंके नयन उस तेजसे झुलस गये। तब वे अपना-अपना आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। सभापति प्रकाशानन्द सरस्वती भी उठ गये। वे लजाते हुए प्रभुके पास आये और समादरपूर्वक बोले—"श्रीपाद! अति तुच्छ अपवित्र स्थानमें आप क्यों बैठ गये? आइये आपके लिए सभाये विशेष स्थान निर्दिष्ट है।" प्रभु तब अतिशय दीनभावसे हाथ जोड़कर उनसे बोले, "मैं अति हीन सम्प्रदायका हूँ। आप लोगोंकी सभामें बैठने-योग्य नहीं हूँ।"

श्रीशङ्कराचार्यके सम्प्रदायके संन्यासी गिरि, पुरी, भारती, तीर्थ, आश्रम, बन अथवा कानन, पर्वत, सरस्वती—इन दस नामोंसे विख्यात हैं। इन संन्यासियोंमें गिरि और पुरीके दण्ड शङ्कराचार्यने निकाल लिये थे, और भारतीका दण्ड तोड़कर आधा कर दिया था। अतएव गुरुसे दण्डित होनेके कारण भारती सम्प्रदाय शङ्करसम्प्रदायमें हीन समझा जाता था। प्रकाशानन्द सरस्वतीने इसी कारण अवज्ञा करके प्रभुके पास आदमी भेजकर यह बात कह दी थी। सार्वभौम भट्टाचार्य भी यह प्रसङ्ग उठाकर प्रभुको पुनः योगपट्ट देना चाहते थे। प्रभुने अब वही पुरानी बात उठाकर प्रकाशानन्द सरस्वतीसे कही—

—"आमि इह हीन सम्प्रदाय।"
तोमा सभार सभाय बसिते ना जुयाय॥

चै. च. आ. ७.६२

इसको प्रभुकी दैन्योक्ति कहें या वक्रोक्ति, ज्ञानगर्वी अभिमानी प्रकाशानन्द सरस्वतीके रग-रगमें यह बात बैठ गयी। वे लज्जित हो गये और इस सम्वन्धमें और कोई बात न कहकर आदर-पूर्वक प्रभुका श्रीहस्त पकड़कर सभामें ले जाकर बहुत सम्मानपूर्वक यथायोग्य आसनपर बैठाया और स्वयं उनके पास बैठ गये। तब संन्यासियोंकी वह सभा अपूर्व शोभाको प्राप्त हुई। दस सहस्र संन्यासियोंकी दृष्टि प्रभुके परम मङ्गल, कनकोज्ज्वल, अपूर्व दिव्य श्रीमूर्त्तिके ऊपर पड़ी। सबने अपने-अपने आसनसे उठकर महाप्रभुका सम्मान किया।

प्रकाशानन्द सरस्वतीके तब प्रभुसे पूछा—"आपका नाम श्रीकृष्ण-चैतन्य बहुत दिनोंसे मैं सुनता आ रहा हूँ। आप श्रीपाद केशवभारतीके शिष्य हैं, यह भी मैं जानता हूँ। इस काशीधाममें आपका शुभागमन हुआ है, यह भी मैंने सुना है। आप हमारे सम्प्रदायके संन्यासी हैं; परन्तु हमको दर्शन नहीं देते, क्या इसका कारण हम जान सकते हैं? और एक बात हम आपसे पूछते हैं, आप संन्यासी होकर नाचते-गाते हैं? भावक लोगोंके साथ उच्चस्वरसे सङ्कीर्तन करते हैं, यह तो संन्यासीका धर्म नहीं है। वेदान्तपाठ, ज्ञान-चर्चा, ध्यान, धारणा—इत्यादि संन्यासीका धर्म है। आपने संन्यास-धर्मको क्यों छोड़ा? आपका अपूर्व प्रभाव देखकर जान पड़ता है कि आप साक्षात् नारायण हैं। आप यह सब हीन आचार क्यों करते हैं?"

अपराधवश भक्ति-महिमा और भक्त-माहात्म्यसे अनभिज्ञ होनेके कारण श्रीभगवान्‌के नाम-संकीर्तन

और तज्जनित आनन्दनृत्यको प्रकाशानन्द सरस्वतीने 'हीनाचार' कहा। पश्चात् इन सब पापोंका उन्होंने पूर्ण प्रायश्चित्त किया था, यह बात आगे कही जायगी।

प्रभुने दीनातिदीन भावमें उत्तर दिया—"श्रीपाद! इसका कारण बताता हूँ, सुनिये! गुरुने मुझे मूर्ख समझकर आदेश दिया, 'तुम्हारा वेदान्तमें अधिकार नहीं है। तुम कृष्ण-मन्त्रका जप करो! यही सार है, इसीसे तुम्हारा संसार-मोचन हो जायगा। कृष्ण-नामसे ही तुमको श्रीकृष्ण-चरणकी प्राप्ति हो जायगी। कलिकालमें नाम छोड़कर दूसरा धर्म नहीं है। यही सार मन्त्र है, यही शास्त्र-मर्म है।' इतना कहकर उन्होंने मुझे यह श्लोक सिखाया—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

इसके बाद प्रभुने कहा—

"यह आज्ञा पाकर मैं प्रतिक्षण नाम लेता हूँ। नाम लेते-लेते मेरा मन भ्रान्त हो गया और धैर्य खोकर मैं उन्मत्त हो गया। मदमत्तकी तरहसे हँसने, गाने, नाचने और रोने लगा। तब मैंने सोचा कि कृष्ण-नामने मेरा ज्ञान आच्छन्न कर दिया, इसमें मैं पागल हो गया और धैर्य खो बैठा। ऐसा सोचकर मैंने गुरुसे निवेदन किया—'आपने कैसा मन्त्र दिया है, जिसके जपने मुझे पागल बना दिया और जो मुझे हँसाता है, नचाता है, रुलाता है।' यह सुनकर गुरुने मुझे कहा, 'कृष्ण-नाम महामन्त्रका यही स्वभाव है कि जो उसको जपता है, उसमें भावका उदय होने लगता है। कृष्णप्रेम ही परम पुरुषार्थ है, इसके सामने चारों पुरुषार्थ तृणके समान हैं। प्रेमानन्द-अमृत-सिन्धु ही पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसके सामने ब्रह्मानन्द एक बिन्दुके समान है। सब शास्त्रोंका यही मत है कि कृष्ण-नामके फलसे प्रेमाभक्ति होती है। सौभाग्यसे वही प्रेमाभक्ति तुम्हारेमें उदय हुई है। उसीके प्रभावसे चित्तमें क्षोभ होता है और श्रीकृष्ण-चरण-प्राप्तिमें लोभ होता है। उसीके प्रभावसे भक्त हँसता, रोता, गाता है और उन्मत्त होकर नाचता है और इधर-उधर दौड़ने लगता है। इसीसे उसको स्वेद, कम्प, रोमाञ्च, गद्गदता, वैवर्ण्य, उन्माद, विषाद, हर्ष और दैन्य आदि होते हैं। इस प्रकार नाम श्रीकृष्णने आनन्दामृत-सागरमें भक्तको डुबा देता है। अच्छा हुआ कि तुमको परम पुरुषार्थ प्राप्त हुआ है। तुम्हारे प्रेममें मैं भी कृतार्थ हो गया हूँ।' इतना कहकर उन्होंने मुझको एक भागवतका श्लोक बताया—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या-
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौतिगाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोक बाह्यः॥

श्रीम. भा. ११.२-४०

अर्थ—कवि योगीन्द्रने राजा निमिसे कहा—"महाराज! भगवद्भक्ति-परायण भक्त अपने प्रिय भगवन्नामके कीर्तनके द्वारा जातानुराग होकर द्रुतचित्त हो जाता है। वह कभी हँसता है, कभी रोता है, कभीं गाता है और कभी नाचता है।

प्रभुने और कहा—

"मैं गुरुके वाक्यमें दृढ़ विश्वास करके निरन्तर कृष्ण-नाम-संकीर्तन करता हूँ। वही कृष्ण-नाम कभी मुझको गवाता है, कभी नचाता है। मैं अपनी इच्छासे नाचता-गाता नहीं हूँ। कृष्ण-नामसे जो आनन्द-सिन्धुका आस्वादन मिलता है, उसके सम्मुख ब्रह्मानन्द खद्योतके समान है।"

प्रभुके श्रीमुखसे मधुमयी ये सारी बातें सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती आदि मायावादी संन्यासियोंका मन फिर गया। तत्काल उनकी चित्तशुद्धि हो गयी। सब लोग प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखकर उनके अपरूप-रूप और वचन-सुधाका

पान करने लगे। प्रकाशानन्द सरस्वती तब बोले, "श्रीपाद ! आपने जो कहा, वह सब सत्य है। जिसके हृदयमें कृष्ण-प्रेमका उदय हुआ है, वह बड़ा भाग्यशाली है, इसमें सन्देह नहीं। आप जो श्रीकृष्ण-भगवान्की भक्ति करते हैं, यह हम सबके लिए विशेष सन्तोषका कारण है, परन्तु आपसे एक बात पूछता हूँ, आप वेदान्त-श्रवण क्यों नहीं करते ? क्या वेदान्त-पाठ करने या श्रवण करनेमें दोष है ?"

प्रभुने विनीत भावसे मधुर मुस्कानके साथ उत्तर दिया—"श्रीपाद ! आप मेरी बातसे दुःखित न हों तो इस प्रश्नका उत्तर मैं दूँ। आप लोगोंके मनमें दुःख पहुँचाकर मैं कोई बात नहीं कहना चाहता। आप लोग यदि अनुमति प्रदान करें तो इस सम्बन्धमें मैं कुछ कहूँ।"

प्रभुका यह सदैन्य मधुर वचन सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती और उनका संन्यासी दल एक साथ बोल उठा—

तोमाके देखिया जैछे साक्षात् नारायण ।।
तोमार वचन शुनि जुड़ाय श्रवण ।
तोमार माधुरी देखि जुड़ाय नयन ।।
तोमार प्रभावे सभार आनन्दित मन ।
कभू असंगत नहे तोमार वचन ।।

चै. च. आ. ७.९८-१००

प्रभुको देखकर सबका चित्त द्रवित हो गया है। सभी उनके अपरूप रूपमें और असाधारण गुणमें मुग्ध हो रहे है। वे कोई आयुक्तिपूर्ण या असङ्गत बात कहेंगे, यह उनके मनमें नहीं आता। यद्यपि प्रभुकाका धर्म और उनका धर्म विभिन्न है, परन्तु धर्मके विषयमें प्रभुकी बात मायावादी संन्यासी मण्डली अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सुननेके लिए उत्सुक हो उठी।

श्रीशंकराचार्यके मतपर प्रभुका प्रवचन

तब प्रभु सब लोगोंके प्रति शुभ दृष्टिपात करके गम्भीर भावसे कहने लगे—

प्रभु कहे—वेदान्त सूत्र ईश्वर वचन ।
ध्यानरूपे कैल जाहा श्रीनारायण ।।
भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा करुणापाटव ।
ईश्वरेर वाक्ये नाहि दोष एइ सब ।।
उपनिषद् सहित सूत्र कहे जेइ तत्त्व ।
मुख्यवृत्ति सेइ मर्म--परम महत्त्व ।।
गौणवृत्त्ये जेवा भाष्य करिल आचार्य ।
ताहार श्रवणे नाश जाय सर्व कार्य ।।
ताँहार नाहिक दोष, ईश्वराज्ञा पाञा ।
गौणार्थ करिल मुख्य-अर्थ आच्छादिया ।।
ब्रह्म-शब्दे मुख्य-अर्थे कहे—भगवान् ।
चिदैश्वर्य–परिपूर्ण—अनूर्ध्व–समान-- ।।
ताँहार विभूति देह—सब चिदाकार ।
चिद्विभूति आच्छादि ताँरे कहे 'निराकार' ।।
चिदानन्द तेंह—तार स्थान परिवार ।
ताँरे कहे--प्राकृत सत्त्वेर विकार ।।
ताँर दोष नाहि तेंहो आज्ञाकारी दास ।
आर जेइ शुने, तार हय सर्वनाश ।।
विष्णुनिन्दा आर नाहि इहार ऊपर ।
प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर ।।
ईश्वरेर तत्त्व—जेन ज्वलित ज्वलन ।
जीवेर स्वरूप—जैछे स्फुलिङ्गेर कण ।।
जीवतत्त्व शक्ति, कृष्णतत्त्व शक्तिमान् ।
गीता-विष्णुपुराणादि इथे प्रमाण ।।*
हेन जीवतत्त्व लैया लिखि परतत्त्व ।
आच्छन्न करिल श्रेष्ठ ईश्वरमहत्त्व ।।
व्यासेर सूत्रेते कहे परिणामवाद ।
'व्यास भ्रान्त' बलि ताँहा उठाइल विवाद ।।

---

* अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो मयेदं धार्यते जगत् ।।
गीता ७.५

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा ।
अविद्या कर्म संज्ञान्या तृतीया शक्तिरीष्यते ।।
विष्णुपुराण ६.७-६१

परिणामवादे ईश्वर हयेन विकारी।
एत कहि विवर्त्तवाद स्थापन जे करि॥
वस्तुत परिणामवादे सेइ त प्रमाण।
'देहे आत्मबुद्धि' एइ विवर्त्तेर स्थान॥
अविचिन्त्य शक्तियुक्त श्रीभगवान्।
इच्छाय जगत-रूपे पाय परिणाम॥
तथापि अचिन्त्यशक्ते हय अधिकारी।
प्राकृत चिन्तामणि ताहे दृष्टान्त जे धरि॥
नाना रत्न राशि हय चिन्तामणि हैते।
तथापिह मणि रहे स्वरूप अविकृते॥
प्राकृत वस्तुते यदि अचिन्त्यशक्ति हय।
ईश्वरेर अचिन्त्य शक्ति इथे कि विस्मय?॥
प्रणव जे महावाक्य—वेदेर निदान।
ईश्वर स्वरूप प्रणव सर्व विश्वधाम॥
सर्वाश्रय-ईश्वरेर प्रणव उद्देश।
तत्त्वमसि वाक्ये हय वेदेर एकदेश॥
प्रणवमहावाक्य—ताहा करि आच्छादन।
महावाक्ये करि तत्त्वमसिर स्थापन॥
सर्व वेदसूत्रे करे कृष्णेर अभिधान।
मुख्यवृत्ति छाड़ि कैल लक्षणा-व्याख्यान॥
स्वतःप्रमाण वेद—प्रमाण-शिरोमणि।
लक्षणा करिले स्वतःप्रमाणता-हानि॥

चै. च. आ. ७.१०१-१२५

प्रभुने अन्तमें कहा कि श्रीपाद शङ्कराचार्यने ईश्वरके आदेशसे इस प्रकार प्रत्येक वेदान्त-सूत्रका सहजार्थ त्यागकर कल्पना करके गौणार्थ व्याख्या और प्रचार किया है—

एइ मत प्रति सूत्रे सहजार्थ छाड़िया।
गौणार्थ व्याख्या करे कल्पना करिया॥

चै. च. आ. ७.१२६

वेदान्तका अद्वैतवाद-अर्थ अति कुरूह वस्तु है। प्रभुने अति सहज और संक्षेपमें जो कुछ कहा, उसका सहज मर्म यहाँ दिया जाता है।

प्रभुने सर्वप्रथम कहा—"वेदान्त-सूत्र ब्रह्मवाक्य है। व्यासरूपी नारायणने स्वयं इस वेदान्त-सूत्रको लिपिबद्ध किया है। अतएव ब्रह्मवाक्यमें भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करुणा-पाटव आदि दोष नहीं रह सकते। एक वस्तुमें जो दूसरी वस्तुका ज्ञान होता है, उसका नाम 'भ्रम' है। लक्ष्य-वस्तुमें अमनोपयोगिताका नाम 'प्रमाद' है। अन्य विषयमें चित्तके विक्षेपको 'विप्रलिप्सा' कहते हैं। इन्द्रियोंकी अपटुताको 'करुणापाटव' कहते हैं। ये सब दोष ब्रह्मवाक्यमें नहीं रह सकते। सारे ब्रह्मसूत्र स्वल्पाक्षर, सन्देहविशिष्टपदशून्य, असारताहीन, अमोक्षगामी आदि सारी त्रुटियोंसे हीन तथा अनिन्दनीय हैं। ब्रह्मसूत्र उपनिषद्के साथ एक योगमें जो तत्त्व प्रकट करता है, वही महातत्त्वरूप मुख्यवृत्ति है।

"शब्दकी स्वाभाविक शक्तिद्वारा जो अर्थ प्रतिपन्न होता है, उसका नाम 'मुख्यवृत्ति' है। अलङ्कार-शास्त्रके पण्डित इसको वाच्यार्थ, मुख्यार्थ तथा अभिधेय कहते हैं। यथा—'गौः' शब्दका उच्चारण करते ही इसकी स्वाभाविक शक्तिद्वारा गलकम्बल, पुच्छ-विषाणादिविशिष्ट एक चतुष्पाद जीव-विशेषका बोध होता है। अतएव यही गो-शब्दकी मुख्यवृत्ति है। परन्तु बड़े ही दुःखकी बात है कि श्रीमत् शङ्कराचार्य स्वामीने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें गौणीवृत्तिमें व्याख्या करके ब्रह्मसूत्रोंको अधःकृत कर दिया है। प्रकृतार्थ-त्याग करके कष्टपूर्वक सूत्रके अर्थकी योजना करनेको 'गौणीवृत्ति' कहते हैं। शङ्कराचार्यने ब्रह्मसूत्रकी इस प्रकार गौणीवृत्तिमें व्याख्या की है। सूत्रका अर्थ बहुत स्पष्ट समझमें आता है, किन्तु शङ्कराचार्यकृत मूलभाष्य सूत्रको जटिल बना देता है। भाष्यका उद्देश्य है-मूल सूत्रकी विशद रूपसे व्याख्या करना। शङ्कराचार्यका उद्देश्य और ही प्रकारका है। सूत्रके मुख्य अर्थको आच्छादन करके कपोलकल्पित अर्थ-द्वारा उन्होंने जीवको भ्रममें डालनेकी चेष्टा की है।

इस कारण इस भाष्यको सुननेसे श्रवणादि भक्तिके अङ्ग नष्ट हो जाते हैं। परन्तु यह उनका दोष नहीं हैं। उन्होंने यह कार्य श्रीकृष्ण-भगवान्की आज्ञासे किया है।*

आप लोग जिसको "ब्रह्म" कहते हैं, वह षडैश्वर्यपूर्ण श्रीकृष्ण-भगवान् हैं—

बृहत्वात् बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्म परमं विदुः।

वि. पु. १-१२.५७

"अर्थात् जो सर्वापेक्षा बृहत् है, तथा सबको बृहत् करता है उससे ब्रह्म-शब्दके इस मुख्यार्थके द्वारा बृहत्त्व और बृंहणत्व धर्मके कारण निर्विशेष पदार्थका बोध न होकर षडैश्वर्यपूर्ण श्रीभगवान्का बोध होता है। उनकी विभूति और देह सब चिदाकार हैं, उनके चिन्मय वैभव, अर्थात् गृह-परिच्छदादिको आच्छादन करके हम उनको 'निराकार ब्रह्म' कहते हैं, **सत्त्वगुणका विकार** कहते हैं। इससे अधिक विष्णु-निन्दा और क्या है? ईश्वरके चिदानन्दमय कलेवरको जो प्राकृत मानते हैं, उनके समान प्रचण्ड शत्रु और कौन होगा? ईश्वरका स्वरूप 'प्रभूत चैतन्य' है और जीवका स्वरूप 'अणु चैतन्य' है; ईश्वर दहकती अग्नि हैं और जीव चिनगारीके कण हैं। यह शास्त्र प्रमाणकी बात है। जीव जो अणु चैतन्य और ईश्वरकी शक्ति है, उसको परतत्त्व कहनेसे ईश्वरकी महिमापर पर्दा डाला जाता है, उसके महत्त्वको घटाया जाता है। इससे महा अपराध होता है। वेदव्यासने ब्रह्मसूत्रकी रचना करके उसमें परिणामवादकी स्थापना की है। वस्तुकी अवस्थान्तर-प्राप्तिका 'नाम परिणाम' है। जैसे दुग्धका परिणाम दधि, मृत्तिकाका परिणाम कुम्भ, सुवर्णका परिणाम कुण्डल हैं।[1] 'जन्माद्यस्य यतः' आदि सूत्रमें परिणामवाद कहा गया है। अर्थात् सद्रूप ईश्वर जगत्-रूपमें परिणत हुआ है, यही प्रतिपादन किया गया है। परन्तु श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने व्यासको भ्रान्त कहकर, 'परिणामवादमें ईश्वर विकारको प्राप्त होता है'—यह दोष दिखलाकर स्वयं विवर्त्तवादकी स्थापना की है। पूर्वावस्था परित्याग न करके अवस्थान्तरवत् प्रकट होनेका नाम 'विवर्त्त' है। जैसे रज्जुमें सर्पबुद्धि। यह विवर्त्त निरवयव पदार्थमें दृष्ट होता है। जैसे आकाशमें तल अर्थात् अधोमुख, इन्द्रनीलमणिमें कटाहतुल्यत्व और मालिन्य, अर्थात् नीलवर्णता। आकाशके स्वरूपसे अनभिज्ञ जन ऐसी कल्पना करते हैं, प्रकृत प्रस्तावमें परिणामवाद ही प्रामाणिक मत है। देहमें आत्मबुद्धि, अर्थात् 'अहं ब्रह्म'—यह विवर्त्तवाद जगत्के लिये नितान्त अमङ्गलकारी है। मायामुग्ध जीवके त्राणके लिए भगवान् व्यासने कृपा करके ब्रह्मसूत्रकी रचना की और श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने उस सूत्रपर मायावादी भाष्य रचना करके स्वमतावलम्बी लोगोंकी प्रतारणा की है तथा मायामुग्ध जीवको निरयके पथपर जानेका उपदेश दिया है, यह बात केवल मैं ही नहीं कह रहा हूँ, श्रीपाद रामानुजस्वामी भी यही कह गये हैं।[2] अचिन्त्यशक्ति सर्वशक्तिमान् इच्छापूर्वक जगद्रूपमें परिणत होकर अविकृत रहते हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसका दृष्टान्त प्राकृत-चिन्तामणि है। यह जैसे रत्नराशिको

---

*भगवान्ने महादेवसे कहा है—

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं हि जनान् मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोतरा॥

प. पु. उ, ६२.३१ चै. च. म. ६.१३

---

१. अवस्थान्तरापत्तिरेकस्य परिणामिता।
स्यात्क्षीरात् दधि मृत्कुम्भः सुवर्णं कुण्डलं यथा॥

पञ्चदशी

२. सूत्रस्य भाष्यं पृथगेव कृत्वा प्रतारयन्ति स्वमतान् प्रपन्नान्॥

श्रीरामानुज-उक्ति

प्रसव करके भी अविकृत रहती है, उसी प्रकार ईश्वर जगत्-रूपमें परिणत होकर भी अविकृत रहते हैं। इसमें फिर आश्चर्यकी बात क्या है? महावाक्य प्रणव ॐ वेदका आदि है और यह प्रणव-स्वरूप ईश्वर समस्त जगत्का आश्रय है।* तत्त्वमसि वेदका आंशिक वाक्य हैं। परन्तु श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने प्रणवरूप महावाक्यको आच्छादन करके 'तत्त्वमसि' वाक्यका प्राधान्य स्थापित किया है। यह नितान्त असङ्गत है, क्योंकि उपर्युक्त चार वेद-वाक्य हैं। वेदका एकदेश होनेके कारण महावाक्य नहीं हो सकता। अतएव 'वेदः प्रणव एकाग्रे' इत्यादि वचनोंके द्वारा समस्त वेदका निदान और ईश्वर-स्वरूप तथा विश्वका आश्रय प्रणव ही यथार्थ महावाक्य है। इस प्रणवको आच्छादन करके श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने असङ्गत कार्य किया है। और एक बात है, वेद स्वतःप्रमाण हैं और समस्त प्रमाणके शिरोमणि हैं। श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने लक्षणा द्वारा उस स्वतःप्रमाण वेदके प्रामाण्यको नष्ट किया है। सब वेदान्तसूत्रोंमें मुख्यावृत्तिद्वारा श्रीकृष्ण-भगवान्का गुण-कीर्तन ही दृष्ट होता है। इस मुख्यावृत्तिको त्याग करके श्रीशङ्कराचार्यने लक्षणाद्वारा व्याख्या की है। मुख्यार्थका बाध होकर तदयुक्त अन्यार्थकी जिससे प्रतीति होती है, उसका नाम 'लक्षणा' है। यह कल्पनामात्र है। श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने कल्पनाके बलसे वेदकी गौणार्थ व्याख्या करके वेदका सम्मान घटाया है। जैसे स्वप्रकाश सूर्यको प्रकाशित करनेके लिए दीपालोककी आवश्यकता नहीं होती, इसी प्रकार स्वतःप्रमाण वेदको और किसी प्रमाणसे प्रमाणित नहीं किया जाता। परन्तु आलोक जलाकर सूर्यको देखने जायँ तो जैसे सूर्यकी स्वप्रकाशताका अपलाप होता है, उसी प्रकार वेदका मुख्यार्थ-आच्छादन करनेपर उसकी सहज आज्ञाकी अन्य प्रकारसे व्याख्या होनेके कारण जान पड़ता है कि वेदकी स्वतःप्रमाणता है ही नहीं। श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने अपने भाष्यमें स्वतःप्रमाण वेदका कदर्थ किया है। अतएव यह सुनने या पाठ करनेसे भक्तिधर्म नष्ट होता है।"

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके मुखसे यह महातेजस्वितापूर्ण वाक्य सुनकर प्रकाशानन्द आदि काशीवासी दस हजार संन्यासीवृन्द एकबारगी हक्का-बक्का हो गये। अबतक किसीने शङ्कर भाष्यका इस प्रकार शास्त्रीय विश्लेषण करके दोष दिखलानेका साहस नहीं किया था। काशीधाम पण्डितोंका स्थान है, मायावादी वेदान्ती संन्यासी-प्रधान स्थान है। इस सभामें जो दस हजार संन्यासी उपस्थित हुए थे, वे सभी महा-महा-पण्डित थे। प्रकाशानन्द सरस्वती काशीके पण्डितों और वेदान्ती संन्यासियोंके राजा थे। प्रभु बाहरसे आये थे और एकाकी थे; साथमें केवल उनके चार भक्त थे। वे सब भी प्रभुके इस अलौकिक काण्डको देखकर अवाक् हो गये। उनके अपूर्व साहसको देखकर भीत हो गये। दस हजार मायावादी संन्यासी-वृन्दके मध्यमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने अकेले निर्भीक होकर उनके परमगुरुके मतका खण्डन-मण्डनरूप निन्दावाद उनके सामने ही किया।

---

*षड्विध लिङ्गद्वारा जिससे वेद-तात्पर्य निर्णीत हुआ है, उसी वेदवाक्यका नाम 'महावाक्य' है। श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने वेदकी चार शाखाओंसे चार महावाक्य निकाले हैं। प्रथम—ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यक नामक शाखाका महावाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म'। द्वितीय—यजुर्वेद शाखाके बृहदारण्यक उपनिषद्का महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' तृतीय—सामवेदीय छांदोग्य श्रुतिगत महावाक्य 'तत्त्वमसि'। चतुर्थ—अथर्ववेदीय महावाक्य 'अयमात्मा'। इन चतुर्वेदीय महावाक्योंमें 'तत्त्वमसि' सर्वप्रधान है।

शास्त्र-तात्पर्य षड्विध लिङ्गद्वारा निर्णीत होता है। जैसे—उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति।

भक्तगण प्रभुकी यह अलौकिक लीला देखकर चकित हो उठे ।

उससे भी अधिक चकित हुए प्रकाशानन्द सरस्वती । अब उनकी समझमें आया कि श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु श्रीशङ्कराचार्य स्वामीकी अपेक्षा भी महाप्रभावशाली और प्रतिभा-सम्पन्न महापुरुष हैं । उन्होंने इतने दिनोंतक भ्रममें पड़कर इस महा पुरुषरूपी अपूर्व नवीन संन्यासीका सङ्ग नहीं किया, बल्कि अयथार्थ उनकी निन्दा की । अब वे अपना दोष समझकर प्रभुके सामने लज्जित हो गये । मन-ही-मन उनको आत्मग्लानि होने लगी । वे बहुत प्रतिष्ठापूर्वक प्रभुसे बोले—"श्रीपाद ! आप जो कुछ बोल गये, उसमें हमको कुछ विषाद नहीं है । आपका व्याख्यान मूलसूत्रानुमोदित और सरल है, यह हम समझ रहे हैं और हमारे आचार्यका भाष्य कपोलकल्पित है, यह भी समझमें आ रहा है । तथापि सम्प्रदायके अनुरोधसे हमको उसे मान्यता देनी है । अस्तु, आपने कहा कि वेदान्तसूत्रका एक मुख्यार्थ है । अब उसकी आप कुछ व्याख्या करें, हम सुनकर कृतार्थ होंगे ।"

प्रभु कहने लगे—

बृहद्वस्तु ब्रह्म कहि श्रीभगवान् ।
षड्विध-ऐश्वर्यपूर्ण परतत्त्व-धाम ।।
स्वरूप ऐश्वर्य ताँर—नाहि मायागन्ध ।
सकल वेदेर हय भगवान् से 'सम्बन्ध' ।।
ताँरे निर्विशेष कहि चिच्छक्ति ना मानि ।
अर्द्ध स्वरूप ना मानिले पूर्णता हय हानि ।।
भगवान् प्राप्तिहेतु जे करि उपाय ।
श्रवणादि भक्ति—कृष्ण-प्राप्तिर सहाय ।।
सेइ सर्ववेदेर 'अभिधेय' नाम ।
साधन-भक्ति हैते हय प्रेमेर उद्गम ।।
कृष्णेर चरणे यदि हय अनुराग ।
कृष्ण बिनु अन्यत्र तार नाहि रहे राग ।।
पञ्चमपुरुषार्थ सेइ प्रेम महाधन ।
कृष्णेर माधुर्यरस कराय आस्वादन ।।
प्रेम हैते कृष्ण हय निज भक्त-वश ।
प्रेम हैते पाइ कृष्ण सेवा-सुख-रस ।।
सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन नाम ।
एइ तिन अर्थ सर्वसूत्रे पर्यवसान ।।

चै. च. आ. ७.१३१-१३९

इसकी संक्षिप्त व्याख्या नीचे लिखी जाती है । महाप्रभु बोले—"वेद और पुराणमें जो ब्रह्मके स्वरूप-का निरूपण हुआ है, वह ईश्वर-लक्षणविशिष्ट बृहद्वस्तु तथा षडैश्वर्यपूर्ण स्वयं-भगवान् हैं । जो स्वतः बृहत् और अन्यको बृहत् करनेमें समर्थ है, वह ब्रह्म है । ब्रह्म-शब्दका मुख्य अर्थ बृहत्वके कारण, षडैश्वर्य-पूर्णता और दूसरेको बृहत् करनेमें समर्थताके कारण पूर्णशक्तिमत्ताविशिष्ट भगवान्का प्रतिपादन होता है; निर्विशेष वस्तुका प्रतिपादन नहीं करता । श्रीशङ्कराचार्य स्वामीने इस प्रकारकी बृहद्वस्तु ब्रह्मकी निराकारके रूपमें कल्पना की है । श्रुतिने यद्यपि उनको निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें वर्णन करते हुए प्रकृत वस्तुका निषेध करके अप्राकृत वस्तुकी स्थापना की है, तथापि जीवकी प्रकृतिकी पर्यालोचना करनेपर देखा जाता है कि जीव निर्विशेष (निराकार, ईश्वरके सम्बन्धमें नितान्त ज्ञानहीन है । अतएव वे उपास्य नहीं हो सकते । दूसरी ओर, जो श्रुतियाँ निराकार ब्रह्मका वर्णन करती हैं, वे ही श्रुतियाँ अन्यत्र साकार ब्रह्मके रूपका वर्णन भी करती हैं । अतएव श्रुतिके दोनों स्थलोंका विचार करके देखनेपर सविशेष अर्थात् साकार ब्रह्मके पक्षमें प्रभूत प्रमाण मिलते हैं । यदि कोई कहता है कि—'ऐश्वर्यमात्र मायिक और शक्ति जड़ है और बृहत्वके कारण यदि आकार है तो उसकी उत्पत्ति और नाश अवश्यम्भावी है'—इसके उत्तरमें कहा जा सकता है कि स्वरूपभूत ऐश्वर्य, अर्थात् भगवान्का ऐश्वर्य भी उनके समान

ही चिदानन्दमय है। उसमें मायाका सम्बन्ध नहीं है और उनकी शक्ति भी चिद्रूप है। श्रीशङ्कराचार्य स्वामी ब्रह्मके आकार, ऐश्वर्य और शक्तिको स्वीकार नहीं करते, केवल ब्रह्मकी सत्तामात्रको स्वीकार करते हैं। यह मत दोषपूर्ण है। भगवान्‌को चिदैश्वर्य, चिदाकार तथा चित्-शक्ति न मानकर केवल सत्तामात्र माननेपर, उसका अर्द्धस्वरूप अस्वीकार करना पड़ता है। इससे भगवान्‌की पूर्णताकी हानि होती है। श्रीकृष्ण-कृपा और उनके भक्तकी कृपाके बलसे कृष्ण-प्राप्ति होती है, यह निश्चय है; परन्तु श्रवणादि भक्तिके द्वारा श्रीकृष्ण और कृष्णभक्तकी कृपा-अर्जन करनी पड़ती है। वह श्रवणादि भक्ति सब वेदोंका अभिधेय है। साधन-भक्तिके द्वारा हृदयमें कृष्णप्रेम उदय होता है। श्रीकृष्णके चरणोंमें यदि जीवका प्रेमानुराग होता है तो कृष्ण-सम्बन्धके सिवा अन्यत्र या अन्य विषयमें उनकी रुचि नहीं होती। यह प्रेम पञ्चम पुरुषार्थ है। इसके द्वारा निखिलरसामृतसिन्धु श्रीकृष्णके माधुर्य-रसका आस्वादन प्राप्त होता है। इस प्रेमके द्वारा भक्तगण श्रीकृष्णको वशीभूत करते हैं तथा इसी प्रेमसे वे कृष्ण-सेवा-सुखका रसास्वादन करते हैं। श्रीकृष्ण-सम्बन्ध, श्रीकृष्णभक्ति अभिधेय, तथा प्रेम-प्रयोजन है, ये ही तीन विषय सारे वेदान्तसूत्रोंमें प्रतिपन्न हुए हैं।''

प्रभुने इतना कहकर वेदान्त और ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक सूत्रके मुख्यार्थकी व्याख्या करके समस्त संन्यासी मण्डलीको चकित कर दिया। प्रकाशानन्द सरस्वती स्तम्भित होकर प्रभुके तेजस्वितापूर्ण श्रीवदनकी ओर ध्यानपूर्वक एकटक देख रहे हैं और सोचते हैं कि—'ये हैं कौन ?' 'क्या ये ही साक्षात् नारायण हैं। उनकी समझमें आ गया कि श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु नामके ये नवीन संन्यासी कोई साधारण संन्यासी नहीं हैं। ये जैसे परम सुन्दर हैं, सर्वचित्ताकर्षक हैं और परम भक्त हैं, वैसे परम पण्डित और सर्वशास्त्रदर्शी हैं। इनको शास्त्रार्थमें कोई पराजित नहीं कर सकता।'

प्रकाशानन्द सरस्वतीके मनमें बड़ा अहङ्कार था कि उनके समान सब शास्त्रोंका ज्ञाता पण्डित भारतवर्षमें दूसरा कोई नहीं है। अब उनका वह अहङ्कार चूर्ण-चूर्ण हो गया, यह अभिमान सदाके लिए लुप्त हो गया। दर्पहारी श्रीगौर भगवान्‌ने विधिपूर्वक उनके ज्ञानगर्वको चूर-चूर कर दिया। प्रभुने दिखलाया कि वेदान्त और ब्रह्मसूत्रका अर्थ बहुत सरल है, शङ्कर-भाष्यने इसको जटिल कर दिया है। प्रभुने जब सूत्रके मुख्यार्थकी व्याख्या की, तब संन्यासी-सभामें हलचल मच गयी, सबकी मानो आँखें खुल गयीं। प्रकाशानन्द सरस्वती उनके गुरु थे। वे विस्मित होकर गुरुके मुखकी ओर देखने लगे और गुरु भी स्तम्भित होकर शिष्योंके मुखकी ओर ताकने लगे। किसीके मुँहसे कोई बात नहीं निकली, किसीको कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ।

इतनी देरके बाद प्रभुने कुछ विश्राम किया। प्रकाशानन्द सरस्वतीने तब आत्म-संवरण करके अपने शिष्योंकी ओर देखकर कहा—

आचार्येर आग्रह—'अद्वैतवाद' स्थापिते।
ताते सूत्रार्थ व्याख्या करे अन्य रीते।।
'भगवत्ता' मानिले 'अद्वैत' ना जाय स्थापन।
अतएव सर्वशास्त्र करये खण्डन।।
जेइ ग्रन्थकर्त्ता, चाहे स्वमत स्थापिते।
सहज शास्त्रेर अर्थ ना हय ताँहा हैतें।।
मीमांसक कहे—ईश्वर हय कर्मेर अङ्ग।
सांख्य कहे-जगतेर प्रकृति-कारण प्रसङ्ग।।
न्याय कहे—परमाणु हैते विश्व हय।
मायावादी— निर्विशेष ब्रह्म हेतु' कय।।
पातञ्जल कहे ईश्वर स्वरूप ज्ञान।
वेदमते कहे—तेजि स्वयं भगवान्।।
छयेर छय मत व्यास कैल आवर्त्तन।
सेइ सब सूत्र लैया वेदान्त वर्णन।।

वेदान्त मते ब्रह्म—साकार निरूपण ।
निर्गुण व्यतिरेके तेंहो हय त सगुण ।।
परम कारण ईश्वर—केहो नाहि माने ।
स्व-स्व-मत स्थापे पर-मतेर खण्डने ।।
ताते छय दर्शन हैते तत्त्व नाहि जानि ।
महाजन जेइ कहे सेइ सत्य मानि ।।
श्रीकृष्ण चैतन्य वाणी अमृतेर धार ।
तेंहो जे कहेन वस्तु सेइ तत्त्व सार ।।

चै. च. म. २५.३९-४९

प्रकाशानन्द सरस्वतीकी बात सुनकर दस हजार संन्यासी एकत्र मिलकर प्रभुका जय-जयकार करने लगे। संन्यासी-सभाने एक मतसे प्रभुके मतका समर्थन किया। प्रभुका भक्त वह महाराष्ट्रीय विप्र, जिसके उद्योग और आयोजनसे काशीमें उस महती संन्यासी-सभाका अधिवेशन हुआ था, अपना उद्देश्य सफल समझकर महा आनन्दमें उन्मत्त होकर वहाँ आकर सबके सामने नृत्य करने लगा। तब सब लोग एक वाक्यसे कहने लगे कि जो श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं, वही मत ठीक है।

प्रभुके भक्तचतुष्टयके आज आनन्दकी सीमा न रही। वे सब प्रेमानन्दमें नृत्य करते हुए कृष्ण-कीर्तन करने लगे। प्रकाशानन्द सरस्वती परम पण्डित और विशाल हृदयके व्यक्ति थे। महाप्रभुका प्रकृत-तत्त्व न समझनेके कारण उन्होंने पहले महाप्रभुकी निन्दा की थी, यह सोचकर उनके मनमें विषम ग्लानि उपस्थित हुई। तब वे प्रभुके सामने अपराधीके समान खड़े होकर हाथ जोड़कर उनसे बोले—

वेदमय मूर्त्ति तुमि साक्षात् नारायण ।
क्षमा अपराध पूर्वे जे कैनु निन्दन ।।

चै. च. आ. ७.१४१

प्रकाशानन्द सरस्वतीने कहा, "श्रीपाद ! आपके सामने मैं अपराधी हूँ। आपको बिना देखे, बिना जाने मैंने बड़ी निन्दा की है, आपका अपवाद किया है। अब मैंने आपका दर्शन करके और आपके श्रीमुखकी मधुर उपदेश-वाणी सुनकर समझा है कि आप साक्षात् वेदमय मूर्त्ति नारायण हैं। आज आपसे प्रकृत शास्त्रार्थ और भक्ति-तत्त्वकी मैंने शिक्षा ग्रहण की, अतएव आप मेरे गुरु हुए। श्रीकृष्ण-तत्त्व क्या वस्तु है, यह आज मैंने आपसे सीखा। श्रीकृष्ण भगवान्‌की जय हो! श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी जय हो ! वे मेरे अपराधको क्षमा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हों।"

इतना कहते-कहते प्रकाशानन्द सरस्वतीकी दोनों आँखें छलछला आयीं। इस जीवनमें उनकी आँखोंमें कभी जल नहीं आया था। शुष्क तर्क-वितर्कमें उनका सारा जीवन नीरस रहा। हृदय शुष्क होनेपर आँखोंमें जल नहीं आता। आज उनको नवजीवन प्राप्त हुआ। सभाके बीचमें वे 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर बालकके समान रो पड़े। और इसके साथ ही दस हजार संन्यासी उच्च स्वरसे कृष्ण-नाम-कीर्तन करने लगे। यह देखकर चतुर्दिक् लाखों-लाखों आदमी उच्चस्वरसे हरिध्वनि करने लगे। संन्यासी-सभा भुवनमङ्गल हरिध्वनिसे मुखरित हो उठी। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु स्थिर भावसे अबतक सभामें बैठे थे, अब कीर्तनमें मत्त हो गये। भावनिधि श्रीगौर-भगवान्‌ने भक्त-भावमें विभावित होकर दस हजार संन्यासियोंको लेकर काशीधाममें उस दिन महासङ्कीर्तन-यज्ञका अनुष्ठान किया। उसे देखकर काशीवासी आबालवृद्ध वनिता हरिनाममें उन्मत्त हो गये।

उसके बाद प्रभुने भाव-संवरण करके प्रकाशानन्द सरस्वतीका हाथ पकड़कर परम आदरपूर्वक पास बैठाया और उनके साथ मधुर कृष्ण-कथा करने लगे। उन्होंने उस सभामें सबके सामने 'हरेर्नामैव केवलम्' की विस्तृत व्याख्या की। उन्होंने सबको विशद रूपमें समझा दिया कि कलिकालमें हरिनामके सिवा अन्य कोई गति नहीं

है, अर्थात् योग, त्याग, तपस्या, व्रत-पूजा, ध्यान-अर्चना, सेवा आदि किसी भी उपायसे कलिग्रस्त जीवकी प्रकृत गति न होगी। केवल हरिनाम-सङ्कीर्तनसे गति होगी। कलियुगमें अन्य किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है।

महाप्रभुके इस उपदेशसे प्रकाशानन्द सरस्वती आदि काशीके मायावादी संन्यासियोंका मन फिर गया। उन्होंने प्रभुसे हरिनाम महामन्त्र-ग्रहण किया तथा कृष्णनाम जप करने लगे—

सेइ हैते संन्यासीर फिरि गेल मन।
कृष्ण कृष्ण नाम सदा करये ग्रहण॥

चै. च. आ. ७.१४२

प्रभुने प्रसन्न होकर सबको कृष्ण-नाम-उपदेश किया—

एइ मत ता सभार क्षमि अपराध।
सबाकारे कृष्ण-नाम करिला प्रसाद॥

चै. च. आ. ७.१४३

इसके बाद सब संन्यासियोंने प्रभुके साथ उस महाराष्ट्रीय विप्रके घर उस दिन भिक्षा की। भिक्षा करके प्रभु अपने भक्तगणके साथ अपने स्थानपर चले गये। प्रभुके भक्तगणके मनमें आज बड़ा आनन्द था। प्रभुको साथ लेकर वे लोग आज महामहोत्सव और महासङ्कीर्तनमें मत्त हो गये।

प्रभुने काशीवासी मायावादी संन्यासियोंको इस प्रकार वैष्णव बनाया, प्रकाशानन्द सरस्वतीको शिष्य बनाया, हरिनाम-महामन्त्र देकर सबका उद्धार किया। विशाल काशीनगरीमें श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुकी विजय-पताका फहरा उठी। महाप्रभुका यह अद्भुत लीलारङ्ग श्रीसनातन गोस्वामीने काशीधाममें बैठकर अपनी आँखोंसे देखा, उन्होंने वृन्दावन जाकर सबको यह बात कह सुनायी। इसी कारण पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

वैष्णवीकृत्य संन्यासीमुखान् काशीनिवासिनः।
सनातनं सुसंस्कृत्य प्रभुर्नीलाद्रिमागतम्॥

चै. च. म. २५.१

प्रकाशानन्द सरस्वतीकी उद्धारकी कहानी अगले अध्यायमें वर्णित होगी।

सैंतीसवाँ अध्याय

प्रकाशानन्द सरस्वतीका उद्धार—काशीधाममें प्रभुका प्रभाव

"वाराणसी हैल द्वितीय नदिया नगर।"

चै. च. म. २५.१२०

प्रेमधनका अमूल्य वितरण

संन्यासी-सभामें प्रभुके साथ प्रकाशानन्द सरस्वतीके मिलनके बाद केवल पाँच दिन श्रीगौराङ्ग प्रभु काशीधाममें रहे। इन पाँच दिनोंमें काशीके अधिकांश लोग वैष्णव हो गये। काशीमें तहलका मच गया। लाखों-लाखों आदमी प्रभुका दर्शन करने

आने लगे। प्रभु जब श्रीविश्वनाथजीका दर्शन करने जाते हैं; अथवा गङ्गास्नानके लिए जाते हैं तो लाखों आदमी उनके साथ हो जाते हैं। एक बार प्रभु अपनी सुवलित आजानुलम्बित दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर हरिध्वनि करते हैं तो लाखों कण्ठोंसे वह ध्वनि निकलकर मानो स्वर्ग नर्क-पातालको भेद देती है।

प्रभु अपने स्थानपर जाकर अपने भक्तगणको लेकर एकान्तमें बैठ गये। सबका हृदय आज प्रफुल्लित था, किसीके मनमें कोई दुःख न था। भक्तदुःखहारी श्रीगौर-भगवान्‌ने उनके मनके दुःखको दूर कर दिया है, सभी भक्तवत्सल प्रभुके चरणोंमें गिरकर चरण-वन्दना करके उनके श्रीमुखकी ओर देख रहे हैं। तब परमवाक्पटु, रसिकचूड़ामणि प्रभु हँसते-हँसते कहने लगे, "काशीनगरीमें बेचनेके लिए मैं भावकाली (प्रेमभक्ति) लाया था—लेकिन कोई ग्राहक नहीं मिला। बोझा ढोकर वापस ले जाना भी सम्भव नहीं। मेरे बोझा उठाकर ले जानेसे तुम लोगोंको भी दुःख होता, इसलिए तुम लोगोंका मन देखकर बिना मूल्य ही मैंने उसको बेच डाला।"

ऐसी बातकी मधुर भङ्गिमा, ऐसी रसिकता क्या कभी किसीको ज्ञात हुई है? ऐसी सरस मधुमयी वाणी क्या कभी किसीने सुनी है? ऐसे भक्तवत्सल और भक्तवशी प्रभुको क्या कभी किसीने देखा है? भक्तगणका दुःख दूर करनेके लिए श्रीगौर-भगवान्‌ने काशीके मायावादी संन्यासियोंको बिना विचारे और बिना मूल्य प्रेमधन वितरण किया। उनका केश पकड़कर उद्धार किया। उन्होंने प्रेमदान करनेके लिए ही काशीमें पदार्पण किया था, परन्तु किसीने लेना न चाहा, मायावादियोंकी घोर विषम मायामें प्रेमके मर्मको किसीने नहीं समझा, अमूल्य प्रेमधनकी महामहिमा क्या है, यह किसीने नहीं जाना। इसी कारण प्रेममय प्रेमिक-चूड़ामणि प्रभुको प्रेमधनका बोझा लेकर नीलाचलको वापस ले जाना पड़ता। कहावत है कि भक्तका बोझ भगवान् वहन करते हैं। यहाँ भी वही बात थी; भक्तोंने इसको समझा। इससे उनको बड़ा दुःख हुआ। प्रभु बोझा वहन करेंगे, यह कैसी बात है? भक्तगण क्या इसे सहन कर सकेंगे? श्रीगौर-भगवान् प्रेमदाता हैं, कलिग्रस्त जीवको अकातर भावसे प्रेमदान करना ही उनका कार्य है। कलिका जीव दुर्भाग्यवश भक्तिवहिर्मुख है, शुष्कप्राण है, कठिन हृदय है; गोलोकके धन प्रेमका मर्म वह क्या समझेगा? भक्तोंकी इच्छा हुई कि कृपानिधि प्रभु यदि कृपा करके इन सब अभागे कलिग्रस्त काशीवासी जीवोंको बिना विचारे प्रेमधन बाँट जाते, तो उनका बोझा भी कम हो जाता और इन सब दुर्बुद्धि भक्तिवहिर्मुख लोगोंका उद्धार भी हो जाता। भक्तवत्सल प्रभुने अपने भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूरी की। उन्होंने बिना विचारे काशीवासी आपामर सर्वसाधारणको प्रेमधनका धनी कर दिया, गोलोककी सम्पत्ति, राह-घाटमें जहाँ जिसको देखा, उसीको बाँट दी। भक्त-दुःख दूर करनेके लिए भक्तवत्सल श्रीगौर-भगवान्‌ने काशीके मायावादी संन्यासियोंको भी प्रेमदान किया। पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

चिराददत्तं निजगुप्तवित्तं
स्वप्रेमनामामृतमत्युदारः।
आपामरं यो विततार गौरः
कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये॥
चै. च. म. २३.१

अर्थात्—हे दाताशिरोमणि भगवन्! तुमने गौररूपमें नदियामें अवतीर्ण होकर अपने निज गुप्त वित्त प्रेमामृत और नामामृतको आपामर जनतामें वितरण कर दिया। हे गौर-कृष्ण! मैंने तुम्हारे चरणोंकी शरण ली है।

भक्तगण प्रभुकी मधुर वाणी सुनकर प्रेमानन्दसे द्रवित हो गये। उन्होंने रोते-रोते प्रभुके चरण

पकड़कर कहा—"लोकोद्धारके लिए तुम्हारा अवतार है। पूर्व, दक्षिण और पश्चिमको तो तार दिया, केवल वाराणसी तुमसे विमुख था। अब उसका भी निस्तार करनेसे हम सबको बड़ा सुख मिला है।"

प्रभुने यह बात सुनकर प्रेमानन्दमें मुस्कुराकर सबको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

प्रकाशानन्दद्वारा प्रचार एवं नृत्य

प्रकाशानन्द सरस्वती अपने गणके साथ अपने मठमें आये। सारी काशीनगरीमें संन्यासी-सभाकी बात, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी बात बिजलीकी भाँति फैल गयी। सब लोगोंको प्रभुकी बात मालूम हुई; वे उनको देखनेके लिए आये। प्रकाशानन्द सरस्वतीके धर्ममत-परिवर्तनकी बात काशीके समस्त संन्यासियोंमें फैल गयी। सब आकर उनके मठमें एकत्रित हुए। वहाँ दूसरे दिन पुनः काशीवासी संन्यासियोंकी एक महती सभा हुई। प्रकाशानन्द सरस्वतीका चित्त शुद्ध हो गया था। उन्होंने उस सभामें भी सबके सामने प्रभुका गुणगान करके पहले जो कहा था, इस बार भी वही कहा; किसी प्रकारका संकोच नहीं किया वे अपना भ्रम समझ गये थे। सम्प्रदायके लिए उसे छिपानेकी उनको इच्छा न हुई। वे महान्, सदाशय और सहृदय पुरुष थे। उन्होंने सुस्पष्ट शब्दोंमें सबसे कह दिया कि, "श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने जो कुछ कहा है, वही शास्त्रोंका सार है और वैष्णव-धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। मैंने आजसे उनको गुरुरूपमें स्वीकार कर लिया है। श्रीकृष्ण-भजन ही जीवके भव-बन्धनका एकमात्र उपाय है, नाम-ब्रह्मकी उपासना ही कलियुगके जीवका एकमात्र धर्म है। आप लोग मेरे शिष्य, अनुशिष्य और अनुगत हैं। मैं आप लोगोंको अब इस नवीन भक्तिपथपर चलनेका उपदेश देता हूँ। आप लोग कृष्ण सङ्कीर्तन करें, सब मिलकर हरि-हरि बोलें।" इतना कहते ही उस महती सभामें भक्तिका महातरङ्ग उठा, उससे सभामें सबका हृदय उद्वेलित हो उठा। लाखों कण्ठोंसे हरिध्वनि सुन पड़ी। सब लोग प्रेमोन्मत्त होकर उच्चस्वरसे 'कृष्ण-कृष्ण', 'हरि-हरि' ध्वनि करने लगे। सबके कुछ सुस्थिर होनेपर प्रकाशानन्द सरस्वतीने निम्नलिखित श्लोककी आवृत्ति की—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

म. भा. वन. ३१३.१२७

वे बोले "श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने जो उपदेश दिया है, वही हमारे लिए अवश्य पालनीय है; क्योंकि वे महाजन हैं। महाजनानुमोदित पथ ही अनुसरणीय है। वे शास्त्र-सम्मत भक्तिपथमें चल रहे हैं, हम लोग भी आजसे उनके पथका अनुसरणकर कृतार्थ होंगे। काशीवासी समस्त संन्यासी-समाजने अपने गुरु प्रकाशानन्द सरस्वतीके उपदेश-वाक्यको अवनत-मस्तक करके ग्रहण किया। मायावादी सब संन्यासी उस दिनसे वैष्णव संन्यासी हो गये। अतएव कविराज गोस्वामीने लिखा है—

वाराणसी हैल द्वितीय नदिया नगर।

चै० च० म० २५.१२०

प्रभु दूसरे दिन पञ्चगङ्गामें स्नान करके श्रीबिन्दुमाधवका दर्शन करने गये। उनके साथ लाखों आदमी हो गये। श्रीबिन्दुमाधवका दर्शन करके प्रेमावेगमें आविष्ट होकर श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें वे मधुर प्रेम-नृत्य करने लगे। श्रीविग्रहका अपूर्व सौन्दर्य देखकर भावावेशमें उन्होंने अपने आदि कीर्तनका सुर पकड़ा—

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ॥

प्रभुके साथ श्रीसनातन गोस्वामी थे, महाराष्ट्रीय विप्र थे, तपन मिश्र थे, चन्द्रशेखर थे और परमानन्द थे। इन पाँचोंने कीर्तनको दुहराना शुरू किया। इन पाँचोंने मिलकर वहाँ अपूर्व कीर्तन शुरू कर दिया। गगनभेदी हरिनाम-ध्वनिसे सारी काशीनगरी पूर्ण हो गयी। प्रकाशानन्दका मठ श्रीबिन्दुमाधवके मन्दिरके निकट था। यह अपूर्व हरि-सङ्कीर्तन-ध्वनि मठमें बैठे-बैठे उन्होंने सुनी। वे अपने संन्यासी शिष्योंको लेकर कौतूहलसे आक्रान्त होकर प्रभुका कीर्तन सुननेके लिए श्रीबिन्दुमाधवके मन्दिरमें आये।

उन्होंने देखा कि प्रभु अपूर्व हाव-भावसे क्षीण कटि डुलाकर मधुर-नयन-रञ्जन नृत्य कर रहे हैं। प्रकाशानन्द सरस्वतीने कभी जीवनमें ऐसा प्रेमनृत्य नहीं देखा था। प्रभुकी श्रीअङ्ग-माधुरीने उनका मन हर लिया। वे अब स्थिर न रह सके। शिष्यगणोंके साथ वे भी हरि-हरि बोलते हुए नृत्य करने लगे। उनके शरीरमें अष्ट सात्त्विक भाव उदय हो गये, आँखोंमें प्रेमाश्रुधारा वह चली। उन्होंने प्रेमानन्दमें विभोर होकर हरि-संकीर्तनमें योग दिया। काशीवासी सब लोगोंने प्रकाशानन्द सरस्वतीके उस नृत्यको देखा और चकित हो गये। उनको देखनेके लिए भी बहुतसे लोग इकट्ठे हुए—

देखि प्रभुर नृत्य—देहेर माधुरी ।
शिष्यगण सङ्गे सेइ बले हरि हरि ॥
कम्प स्वरभंग स्वेद वैवर्ण्य स्तम्भ ।
अश्रुधाराय भिजे लोक – पुलक-कदम्ब ॥
हर्ष-दैन्य-चापल्यादि सञ्चारि-विकार ।
देखि काशीवासी लोकेर हैल चमत्कार ॥

चै. च. म. २५.५७-५९

लोगोंकी भीड़ देखकर प्रभुने भाव-संवरण किया। नृत्य-कीर्तन स्थगित हो गया। भक्तगणके साथ प्रभु श्रीमन्दिरके आँगनमें बैठ गये। तब प्रकाशानन्द सरस्वतीने आकर प्रभुके चरणोंकी वन्दना की। प्रभु उनके प्रति शुभ दृष्टिपात करके आदरपूर्वक उठकर दीनभावसे बोले—"श्रीपाद! आप जगद्‌गुरु हैं, हमारे पूज्य हैं, मैं जीवाधम आपके शिष्यके तुल्य भी नहीं हूँ। आपने सर्वश्रेष्ठ होकर हीनकी वन्दना क्यों की? इससे हमारा अकल्याण होगा। आपका सब जीवोंमें ब्रह्मज्ञान है, आपकी बात और ही है; परन्तु मेरा तो अ-कल्याण हो गया। आपके समान महान् व्यक्तिको ऐसा काम नहीं करना चाहिये। इसको लोक-शिक्षा नहीं कहते।" इतना कहकर प्रभुने उनको प्रणाम करके उनकी चरण-वन्दना की। प्रकाशानन्द सरस्वती महालज्जित होकर रोते-रोते प्रभुका चरण पकड़कर बोले—"श्रीपाद! आपको न जानकर पहले मैंने बहुत निन्दा की है। आपके पवित्र श्रीचरणरेणुके स्पर्शसे उस महापापसे मुक्ति पानेकी आशासे मैंने आपके चरणोंकी शरण ली है। कृपा करके आप मुझको क्षमा करें!" इतना कहकर उन्होंने निम्नलिखित श्लोककी आवृत्ति की।

जीवन्मुक्ता अपि पुनर्यान्ति संसारवासनाम् ।
यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः ॥

अर्थात्—यदि अविचिन्त्य महाशक्ति भगवान्‌में अपराध होता है तो जीवन्मुक्त पुरुष भी कर्मोंके द्वारा संसारमें अधःपतित होते हैं।

प्रभुने यह सुनकर "विष्णु-विष्णु" कहकर कानोंमें अँगुली डाल ली। वे अत्यन्त विनयपूर्वक बोले—"श्रीपाद! जीवमें भगवान्-बुद्धि महा अपराध है। मैं जीवाधम हूँ, मुझको यह सब बात न कहें।" प्रकाशानन्द सरस्वतीने समझा कि प्रभु आत्म-गोपनकी चेष्टा कर रहे हैं।

प्रभुकी उन्होंने पहले अवज्ञा की थी, उनकी बड़ी निन्दा की थी। अब इसी कारण उनके मनमें विशेष अनुताप और आत्मग्लानि उदय हुई है।

अतएव वे कहने लगे, "हे प्रभु ! तुम तो निश्चय ही भगवान् हो, तथापि यदि तुम भक्ताभिमान करते हो तो तुम हमारी अपेक्षा श्रेष्ठ हो, क्योंकि भक्त शुष्क ज्ञानी से श्रेष्ठ होता है। यह मैं तुम्हारी कृपासे समझ पाया हूँ, इसी कारण तुम्हारे चरणोंमें भक्तिकी प्राप्तिके लिए तुम्हारी शरण ली है।"

प्रभुद्वारा भक्तितत्त्वकी शिक्षा

महाप्रभु मुस्कुराये, और कुछ उत्तर न दिया। उन्होंने देखा कि मायावादी संन्यासी-गुरुको दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया है। भक्तिकी महिमा, भक्ति-माहात्म्य, यह सब उन्होंने कृष्णकी कृपासे समझ लिया है। अब और भी कुछ भक्तितत्त्वकी शिक्षा देना ठीक है। ऐसा सोचकर श्रीगौर-भगवान्‌ने उनको लेकर श्रीबिन्दुमाधवके मन्दिरके प्राङ्गणके एक प्रान्तमें एकान्तमें बैठकर नाना प्रकारके भक्ति-तत्त्वका उपदेश दिया। प्रभुने प्रथम श्रीमद्भागवतका प्राधान्य वर्णन किया। यथा, श्रीचैतन्यचरितामृत-में—

प्रभु कहे—आमि जीव अति तुच्छ ज्ञान।
व्यास सूत्रेर गभीरार्थ,—व्यास भगवान॥
ताँर सूत्रेर अर्थ कोन जीव नाहि जाने।
अत एव आपने सूत्रेर करियाछे व्याख्याने॥
जे सूत्रकर्त्ता, से यदि करये व्याख्यान।
तबे सूत्रेर मूल अर्थ लोकेर हय ज्ञान॥
प्रणवेर जेइ अर्थ, गायत्री ते सेइ हय।
सेइ अर्थ चतुःश्लोकीते विवरिया कय॥
ब्रह्मारे ईश्वर चतुःश्लोकी जे कहिल।
ब्रह्मा नारदेरे सेइ उपदेश कैल॥
सेइ अर्थ नारद व्यासरे कहिल।
शुनि वेदव्यास मने विचार करिल॥
एइ अर्थ—आमार सूत्रेर व्याख्यारूप।
श्रीभागवत करि सूत्रेर भाष्य स्वरूप॥
चारिवेद उपनिषद्—जत किछु हय।
तार अर्थ लञा व्यास करिल सञ्चय॥
जेइ सूत्रे जेइ ऋक् विषय वचन।
भागवते सेइ ऋक् श्लोक निबन्धन॥
अत एव सूत्रेर भाष्य—श्रीभागवत।
भागवतश्लोक उपनिषद्—कहे एक अर्थ॥

चै. च. म. २५.७५-८४

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धका एक श्लोक पाठ करके दृष्टान्तस्वरूप समझा दिया कि ऋक्‌से वेदान्तसूत्र हुए हैं और उन सूत्रोंसे श्रीमद्भागवतके श्लोक रचे गये हैं। श्लोक यह है—

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

श्रीम. भा. ८.१.१०

अर्थ—इस लोकमें जो कुछ पदार्थ हैं, वे सब ईश्वरकी सत्ता और चैतन्यद्वारा व्याप्त हैं। अतएव जो कुछ भोग्य पदार्थ हो, ईश्वरार्पण करके भोग करो, अपने लिए किसीके धनकी आकांक्षा न करो।

यह एक श्लोक पढ़कर प्रभुने केवल दिग्दर्शनमात्र किया। उसके बाद उन्होंने प्रकाशानन्द सरस्वतीको सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन-तत्त्व समझाये। उस समय महाप्रभुने कुछ ऐश्वर्य दिखलाया। वे प्रेमावेगमें भगवान् भावमें कहने लगे—

आमि सम्बन्ध तत्त्व'; आमार ज्ञान-विज्ञान।
आमा पाइते साधन भक्ति 'अभिधेय' नाम॥
साधनेर फल प्रेमा—मूल 'प्रयोजन'।
सेइ प्रेमे पाय जीव—आमार सेवन॥
एइ तिन तत्त्व आमि कहिल तोमारे।
जीव तुमि, एइ तिन नारिबे जानिवारे॥
जैछे आमार स्वरूप, जैछे आमार स्थिति।
जैछे आमार गुण कर्म षड़ैश्वर्य शक्ति॥
आमार कृपाय स्फुरुक ए सब तोमारे।
एत बलि तिन तत्त्व कहिल ताहारे॥

चै. च. म. २५.८६-९०

महाप्रभुके दो भाव थे, भक्तभाव और भगवान्-भाव। उपर्युक्त बातें उन्होंने भगवान्-भावमें प्रकाशानन्द सरस्वतीसे कहीं। प्रभु जब भगवान्-भावमें बात करते थे तो उनके श्रीअङ्गमें अपूर्व दिव्य ज्योति निकलती थी, श्रीवदनपर महा-महिमान्वित ऐश्वर्यके चिह्न लक्षित होते थे। प्रकाशानन्द सरस्वतीको प्रभुकी कृपासे आज उनके भगवान्-भावका परिचय प्राप्त हुआ। उन्होंने उनको साक्षात् नारायण कहा था, अब देखा कि वे वस्तुतः साक्षात्-भगवान् हैं। प्रभुके अद्भुत क्रियाकलापको देखकर उन्होंने उनके तत्त्वको कुछ-कुछ समझा था, अब कृपा करके कृपानिधि प्रभुने श्रीमुखसे उनके सामने निजतत्त्व और ऐश्वर्यका कुछ प्रकाश किया। प्रभु नवद्वीपमें जिस प्रकार 'मैं वही हूँ, मैं वही हूँ'—कहकर भगवान्-भावमें श्रीमस्तकको डुलाकर भक्तवृन्दके सामने आत्म-प्रकाश करते थे, यहाँ भी उसी प्रकार प्रकाशानन्द सरस्वतीसे बोले—

जैछे आमार स्वरूप जैछे आमार स्थिति।
जैछे आमार गुणकर्म षडैश्वर्य शक्ति॥
आमार कृपाय स्फुरुक एसब तोमारे।

चै. च. म. २५.८९.९०

इतना कहकर शिक्षागुरु श्रीगौर-भगवान्ने भक्तिशास्त्रके सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन—इन तीनों तत्त्वोंको श्रीमद्भागवतके अनुसार सिद्धान्त-द्वारा समझा दिया। प्रभु बोले—

कृष्णभक्तिरसस्वरूप श्रीभागवत।
ताते वेद शास्त्र हैते परम महत्त्व॥
अतएव भागवत करह विचार।
इहा हैते पाबे सूत्रे—श्रुतिर अर्थ सार॥
निरन्तर कर कृष्णनाम-संकीर्तन।
हेलाय मुक्ति पाइबे, पावे कृष्ण प्रेमधन॥

चै. च. म. २५.११०-११२

इतना कहकर उन्होंने इस श्लोककी आवृत्ति की—

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥

अर्थ—कोई भी मनुष्य जो परम मधुर, मङ्गलोंके लिए मङ्गल, सारे निगमके सुन्दर फलस्वरूप, चिन्मय कृष्णनामका अनायास या श्रद्धापूर्वक एक बार भी गान करता है, हे भृगुवर! वह कृष्णनाम उसका उद्धार करता है।

भागवतरूपी श्रीगौरभगवान्ने श्रीमद्-भागवतका माहात्म्य कीर्तन करके निम्नलिखित दो और श्लोकोंकी आवृत्ति करके प्रकाशानन्द सरस्वतीको सुनाया। यथा,

निगनकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं-
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

श्रीम. भा. १.१.३

अर्थ—हे परम मङ्गलालय भगवत्प्रीतिरसज्ञ भावुक गण! शुकदेवके श्रीमुखसे निःसृत, वैकुण्ठसे भूतलपर आनीत अमृतसार, दुर्लभ और रसमय वेदरूप कल्पतरुका भागवतरूपी फल आप लोग बारम्बार पान करें।

वयंतु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे॥

श्रीम. भा. १.१.१९

"रसज्ञ लोग श्रवणमें पड़ते ही जिसको पद-पदपर परम स्वादु अनुभव करते हैं, हे सूत! उत्तम-श्लोक श्रीकृष्णका वह मधुमय चरित श्रवण करके हम कदापि परितृप्त नहीं हो पा रहे हैं।"

प्रभुने इस प्रकार भक्तिका जाल बिछाकर प्रकाशानन्द सरस्वतीके समान जगत्-विख्यात

वेदान्तके पण्डित-चूड़ामणिको उसमें फाँस लिया। उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्यको इसी भक्ति-जालमें आवद्ध किया था। भारत-प्रसिद्ध दो सर्वशास्त्रविद् नैयायिक और वेदान्तिक पण्डित-शिरोमणिको किस प्रकार किस भावसे उन्होंने भक्ति-पथका पथिक बनाकर आत्मसात् कर लिया, यह सार्वभौमने निजमुखसे ही प्रकट किया है। यथा,

वैराग्यविद्या निजभक्तियोग-
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी—
कृपाम्बुधियस्तमहं प्रपद्ये ॥
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजंयः
प्रादुष्कर्त्तुं कृष्ण चैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे
गाढ़ं गाड़ं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥

अर्थ—वैराग्य-विद्या और निज भक्तियोगकी शिक्षा देनेके लिए श्रीकृष्णचैतन्यरूपधारी एक सनातन पुराण पुरुष, जो कृपाके समुद्र हैं, उनके चरणोंमें मैं प्रपन्न होता हूँ। समयानुसार निजभक्ति-योंगको विनष्टप्राय देखकर जो कृष्णचैतन्यनामा पुराणपुरुष उसका पुनः प्रचार करनेके लिए अवतीर्ण हुए हैं, उनके पादपद्ममें मेरा चित्तभृङ्ग प्रगाढ़ रूपसे लीन हो जाय।

प्रकाशानन्दके भाव

प्रकाशानन्द सरस्वतीलिखित श्रीचैतन्य-चन्द्रामृत श्रीग्रन्थकी बात पहले ही कही जा चुकी है। यह श्रीग्रन्थ एक अपूर्व वस्तु है। श्रीगौराङ्ग गुण-वर्णनमें श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वती सिद्ध-हस्त हैं। वे प्रभुके कृपासिद्ध भक्त होनेके कारण ही ऐसा परम उपादेय श्रीग्रन्थ लिखनेमें समर्थ हुए हैं। इस श्रीग्रन्थमें उन्होंने सब लोगोंको श्रीगौर-भगवान्के चरणोंमें शरण लेनेके लिए अनुरोध करते हुए जो श्लोक लिखा है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है। इसी एक श्लोकसे उनकी गौराङ्गैक-निष्ठताका प्रकृत परिचय प्राप्त होता है—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य
कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि।
हे साधवः सकलमेव विहाय दूरात्
गौराङ्गचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम् ॥

श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम् ९०

अर्थ—हे साधुगण! मैं दाँतोंमें तृण दबाकर आप लोगोंके चरणोंमें गिरकर शत-शत आर्त्तभावसे विनय पूर्वक कहता हूँ कि आप लोग सर्वधर्म परित्याग करके श्रीगौराङ्ग प्रभुके चरणकमलमें अनुरक्त हों।

श्रीगौराङ्ग प्रभुकी भगवत्ताका प्रमाण इसकी अपेक्षा और क्या हो सकता है? कृपालु पाठकवृन्दके सामने जीवाधम ग्रन्थकारका विनीत निवेदन है कि वे कृपा करके श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वतीरचित श्रीचैतन्यचन्द्रामृत श्रीग्रन्थ एकबार आद्योपान्त पढ़ जायँ। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो इस परम मङ्गल श्रीग्रन्थका पाठ करेगा, वह गौर-भक्त बन जायगा। एक-एक गौरभक्त एक-एक ध्रुव-प्रह्लाद हैं, यह कहें तो अत्युक्ति न होगी। श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वतीने गौर-भक्तगणको कितना उच्च स्थान प्रदान किया है, सुनिये—

आस्तां वैराग्यकोटिर्भवतु
शमदमक्षान्तिमैत्रादि कोटिः।
तत्त्वानुध्यानकोटिर्भवतु
भवतु वा वैष्णव भक्ति कोटिः ॥
कोटयांशोऽप्यस्य न स्यात्तदपि
गुणगणो यः स्वतः सिद्ध आस्ते।
श्रीमच्चैतन्यचन्द्रप्रियचरण
नखज्योतिरामोदभाजाम् ॥

श्रीचैतन्यचन्द्रामृत २६

अर्थात्—कोटि वैराग्यसे क्या, कोटि शम, दम, क्षान्ति, मैत्री आदिसे क्या, कोटि-कोटि परमात्मा

और जीवात्माके एकत्त्व-चिन्तनसे क्या तथा कोटि-कोटि विष्णुभक्तिसे क्या, श्रीमच्चैतन्यचन्द्रके प्रिय भक्तगणके चरण-नख-ज्योतिद्वारा हर्ष-प्राप्त मानवमें जो स्वभाव-सिद्ध गुण होते हैं, उनके कोटि अंशका एक अंश भी अन्यत्र नहीं है।

ये सब किसके वचन हैं? कृपालु पाठकवृन्द कुछ स्थिरचित्तसे विवेचना करके देखें। प्रकाशानन्द सरस्वतीकी पुण्यचरित कहानी पाठ करनेपर हृदयमें श्रीगौराङ्ग-तत्त्व स्वतः परिस्फुट होगा और उनके ग्रन्थको पढ़नेसे श्रीगौराङ्ग-चरणमें रति-मति होगी, एकनिष्ठा भक्ति होगी।

श्रीगौराङ्ग-भगवान्‌ने इस जगद्-विख्यात पण्डितशिरोमणिको किस प्रकार आत्मसात् किया था तथा किस प्रकार एकाग्रता और एकनिष्ठतापूर्ण भजन-बल प्रदान किया था, इसके प्रमाणस्वरूप उनका रचा हुआ एक और श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है। श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वतीने लिखा है—

अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरम्।
न भजेत् सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः॥

श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम् ९५

अर्थात्—जगत्‌का कोई प्राणी यदि ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा उपास्य सर्वजननियन्ता स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका भजन नहीं करते हैं तो उनके केवल मृत्यु ही हाथ लगेगी।

इष्टमें एकनिष्ठता ही सब प्रकारके साधन-भजनका मूलमन्त्र है। प्रकाशानन्द सरस्वती इसके उज्ज्वल दृष्टान्त हैं। इससे अधिक इस विषयमें और क्या कहें?

श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वतीका एक और नाम है—प्रबोधानन्द सरस्वती। श्रीवृन्दावनमें निवास करते समय भक्ति-साधनामें रहते हुए वे इसी नामसे परिचित थे। ये श्रीराधिकाके गण थे। वैष्णव महात्माओंने उनको कृष्णलीलाकी सखी गुणचूड़ा नाम प्रदान किया है।

प्रकाशानन्द-परिचय

इस महापुरुषका एक संक्षिप्त पूर्व परिचय सुनिये। कावेरी नदीके तीरपर श्रीरङ्गक्षेत्रमें पवित्र विप्रवंशमें इनका जन्म हुआ था। प्रभुने दक्षिण देश भ्रमण करते समय श्रीरङ्गक्षेत्रमें इनके पिताके घर चातुर्मास्य बिताया था। ये तीन भाई थे, ज्येष्ठका नाम वेङ्कट भट्ट, मध्यमका नाम त्रिमल्ल भट्ट और कनिष्ठका नाम प्रकाशानन्द था। यह नाम इनका संन्यास नाम था। पूर्वाश्रमके नामका पता ग्रन्थोंसे नहीं लगता।

वेङ्कट भट्टके पुत्र गोपालभट्ट प्रकाशानन्द सरस्वतीके भतीजे थे। ये श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी महाप्रभुके विशेष कृपापात्र, श्रीवृन्दावनके छः गोस्वामियोंमें-से एक गोस्वामी थे।

प्रकाशानन्द सरस्वती बाल्यकालसे ही परम पण्डित थे और संसाराश्रम त्यागकर शङ्करमतमें संन्यास ग्रहण किया था। ये भारतके सब तीर्थोंका पर्यटन करके काशीधाममें मठ करके निवास करते थे। काशीके श्रीविन्दुमाधवके मन्दिरके पास इनका मठ था। ये वेद और वेदान्त-शास्त्रके अद्वितीय विद्वान् थे। अपने भतीजे श्रीगोपाल भट्टको इन्होंने बाल्यकालमें गढ़कर आदमी बनाया था। ये इनको पुत्रवत् स्नेह करते थे। बाल्यकालसे ही उसे सर्वशास्त्रवेत्ता बनाया था। प्रकाशानन्द सरस्वती संसार-त्यागी होकर भी भतीजेका मोह नहीं छोड़ सके और मनको भी वशमें न कर सके।

भारतवर्षमें अद्वितीय पण्डित होनेका इनके मनमें बड़ा अहङ्कार था। इन्होंने संन्यासी होकर कुलधर्मका त्याग कर दिया। श्रीरङ्गक्षेत्रका भट्ट परिवार परम वैष्णव था और लक्ष्मीनारायणका

उपासक था, परन्तु प्रकाशानन्द सरस्वती ज्ञानमार्गका अवलम्बन करके निराकार ब्रह्मके उपासक हो गये।

काशीमें रहते हुए इन्होंने सुना कि इनका भतीजा गोपालभट्ट श्रीकृष्णचैतन्य नामके किसी एक बङ्गाली वैष्णव संन्यासीके मायाजालमें पड़कर वेद-वेदान्तका पाठ छोड़कर भावुक बन गया है। यह सुनकर दुःखित होकर इन्होंने उस वैष्णव संन्यासीके बारेमें अनुसन्धान करना शुरू कर दिया। मन-ही-मन प्रकाशानन्द सरस्वतीको इनके ऊपर बड़ा क्रोध हुआ और साथ ही द्वेषका भाव उत्पन्न हो गया। तभीसे ये श्रीगौराङ्ग प्रभुके द्वेषी हो गये और उनको द्वेष और घृणाकी आँखोंसे देखने लगे। क्योंकि इनको विश्वास था कि उनके भतीजेको भुलावेमें डालकर श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभुने उसको कुपथमें डाल दिया है। इससे प्रकाशानन्द सरस्वतीने अपनेको अपमानित समझा था और इसी कारण प्रभुके ऊपर इनका इतना राग-द्वेष था।

प्रकाशानन्द सरस्वती सार्वभौम भट्टाचार्यको भी जानते थे। ये जैसे भारतमें वेद-वेदान्तके पण्डितशिरोमणि थे, वैसे ही सार्वभौम भट्टाचार्य न्याय-शास्त्रके सर्वश्रेष्ठ पण्डित थे। वे वेदान्तके भी पण्डित थे दण्डी संन्यासी लोग उनके पास श्रीक्षेत्रमें वेद भी पढ़ते थे। प्रकाशानन्द सरस्वतीने जब सुना कि सार्वभौम भट्टाचार्य वङ्गदेशवासी उस नवीन संन्यासी श्रीकृष्णचैतन्यके प्रेममें पागल हो रहे हैं और उनसे वैष्णव-धर्ममें दीक्षित हुए हैं, तब प्रभुके प्रति इनका राग-द्वेष दूना हो गया। तब ये खुलकर प्रभुकी निन्दा करने लगे। निन्दापूर्ण श्लोक लिखकर आदमीके द्वारा काशीसे नीलाचलमें प्रभुके पास भेजा। इस प्रकार शत्रु-भावसे ये गौर भगवान्‌का मन-ही-मन निरन्तर चिन्तन करने लगे। इस चिन्तनके फलस्वरूप इनको श्रीगौराङ्ग-चरणकी प्राप्ति हुई।

श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने श्रीचैतन्य-चन्द्रामृत श्रीग्रन्थके सिवा और भी तीन भक्ति-ग्रन्थोंकी रचना की। उनका नाम श्रीवृन्दावन-रसामृत, श्रीवृन्दावन-शतक और श्रीराधा-रस-सुधानिधि है। श्रीवृन्दावन-शतक और रसामृत श्रीग्रन्थमें एक सौ शतक हैं, अर्थात् इस श्रीग्रन्थमें दस हजार श्लोक हैं। इन दस हजार श्लोकोंमें श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने श्रीवृन्दावनधामकी महिमाका कीर्तन किया है। श्रीराधारस-सुधानिधि श्रीग्रन्थमें अति मनोहर भाष्य और छन्दमें उन्होंने श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाकी महिमा कीर्तन की है। यह परम उपादेय ग्रन्थ खण्ड-काव्य है। कोई-कोई कहते हैं कि प्रकाशानन्द और प्रबोधानन्द दोनों एक व्यक्ति नहीं हैं, परन्तु ऐसा जान नहीं पड़ता। क्योंकि श्रीराधारस-सुधानिधिके अन्तिम श्लोकमें सरस्वती महोदयने स्वयं इस सन्देहको दूर कर दिया है। यथा,

स जयति गौरपयोधिर्मायावादार्कतापसन्तप्तम्।
हृन्नभ उदशीतलयत् यो राधारससुधानिधिना ॥

अर्थ—उस गौरपयोधिकी जय हो, जिसने मायावादके सूर्यतापसे सन्तप्त मेरे हृदय-नभको राधारस-सुधानिधिके द्वारा शीतल कर दिया है।

श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती प्रभुके आदेशसे श्रीवृन्दावनमें जाकर हरिभजन करने लगे। कालियदमनके घाटपर उनकी भजन-कुटी थी। वे रागमार्गके साधक थे। श्रीराधाकृष्ण मिलिततनु श्रीगौराङ्गमूर्त्ति ही उनकी उपास्य थी। उनकी पवित्र देह श्रीवृन्दावनधाममें कालियदमनके घाटपर श्रीयमुनाके किनारे समाहित है। तथा गौरभक्तोंके द्वारा आज भी बहुत सम्मानके साथ पूजित होती है।

पहले कह चुका हूँ कि प्रभुने पाँच दिनमें सारे काशीवासी मायावादी संन्यासियों तथा अन्यान्य भक्तिबहिर्मुख लोगोंका उद्धार किया था। पहले

दिन संन्यासी-सभामें उनके साथ प्रकाशानन्द सरस्वतीका शास्त्रार्थ हुआ, दूसरे दिन श्रीविन्दु-माधव-मन्दिरमें प्रभुका भुवनमङ्गल नृत्य-कीर्तन तथा प्रकाशानन्द सरस्वतीको तत्त्वोपदेश, तीसरे दिन "आत्मारामांश्च मुनयः" इस श्लोककी ६१ प्रकारकी व्याख्या, चौथे दिन भक्तोंसे विदा लेकर तथा श्रीसनातन गोस्वामीको श्रीवृन्दावन जानेका आदेश देकर, पाँचवें दिन महाप्रभुने श्रीनीलाचलकी यात्रा की ।

प्रभुका काशीसे प्रस्थान

प्रभुने रातको चुप-चाप उठकर काशीधाम त्याग करनेका सङ्कल्प किया । काशीमें लोगोंकी भीड़ होनेसे वे बहुत ही परेशान थे । अतएव निर्जन वनके मार्गसे श्रीनीलाचल-यात्रा करनेका सङ्कल्प किया । परन्तु उनके पाँचों भक्त उनके साथ जानेके लिए विशेष जिद्द करने लगे । उन तपन मिश्र आदि पाँचों प्रभुके काशीवासी भक्तोंने प्रभुके साथ नीलाचल जानेका निश्चय किया । किन्तु प्रभुने उनको मना करते हुए कहा कि यदि आप लोगोंकी इच्छा हो तो आप लोग पीछे आवें । मैं अकेला झारखण्डके पथसे जाऊँगा, अभी मेरे साथ कोई मत जाओ ! प्रभुका आदेश अलङ्घनीय था । वे लोग दुःखित होकर काशीमें ही रह गये ।

श्रीसनातन गोस्वामीको महाप्रभुने कहा—"सनातन ! तुम श्रीवृन्दावन-गमन करो, तुम्हारे दोनों भाई वहाँ गये हैं । हमारे गौड़ीय कङ्गाल भक्त जो श्रीवृन्दावनमें जायँ, उनकी खोज-खबर लेना । उनका सारा भार तुम्हारे ऊपर देकर मैं निश्चिन्त हो गया ।" इतना कहकर सबको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करते हुए विदा लेकर द्रुत गतिसे अकेले मार्गपर निकल गये । स्वतन्त्र प्रभुने फिर लौटकर नहीं देखा ।

भक्तगण प्रभु-विरहमें मूर्च्छित हो गिर पड़े । उनके दुःखकी सीमा न रही । गौर-विरहमें वे लोग मृतप्राय हो गये । प्रभुकी कृपासे उनसे प्राण बच गये । कुछ देर बाद उनकी मूर्च्छा भङ्ग हुई । प्रभुको न देखकर वे सब लोग एक साथ व्याकुल होकर बालकके समान उच्च-स्वरसे क्रन्दन करने लगे । उनके आर्त्तनादको सुनकर पशु-पक्षी भी रो पड़े । बहुत देरके बाद प्रभुकी कृपासे भक्तगण कुछ सुस्थिर होकर दुःखित अन्तःकरणसे अपने-अपने स्थानोंपर चले । श्रीसनातन गोस्वामीने विलम्ब किये बिना तत्काल श्रीवृन्दावनकी यात्रा की ।

प्रभुकी मध्य लीला यहाँ समाप्त होती है । यह बहुत संक्षेपमें वर्णित हुई है । पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

संक्षेपे कहिल एइ मध्य लीला-सार ।
कोटि ग्रन्थे वर्णन ना जाय, इहार विस्तार ।।

चै. च. म. २५.२१५

श्रीभगवान् कृपा करके जिसको शक्ति-दान करते हैं, उसीके द्वारा भगवद्-लीला विस्तारपूर्वक वर्णित होती है । जीवाधम ग्रन्थकार महाजनोंका उच्छिष्टभोजी है । चर्वित-चर्वणके सिवा इसके लिए अन्य उपाय नहीं है । केवल आत्मशोधनके लिए श्रीगौराङ्ग-लीला-समुद्रमें पड़कर यह डूब-उतरा रहा है । कृपालु गौर-भक्तवृन्दकी कृपादृष्टिके बिना इसके उद्धारका और कोई उपाय नहीं है । जीवाधम ग्रन्थकार क्षुद्र जीव है । लीला-समुद्रके तरङ्गोंके आवर्त्तमें पड़कर इसके प्राण निकल रहे हैं । तथापि यह लीला-मधु-समुद्रसे निकलना नहीं चाहता ।

श्रीगौराङ्ग-लीला मधुका समुद्र है । इस मधु-समुद्रमें डूबने-उतरानेसे मधुलिप्त बनना पड़ता है । मधुलिप्त होकर लीला-मधु-आस्वादन करते-करते सारा शरीर मधुमय हो जाता है । सारे विषय मधुमय जान पड़ते हैं, सारी इन्द्रियाँ मधुपानसे उन्मत्त हो जाती हैं, तब उसका बाह्यज्ञान लुप्त हो जाता है । अतएव मधु-समुद्रमें डुबकी लगानेपर उसके पास निकलनेकी शक्ति नहीं रहती ।

भगवान्‌के लीला-रसपानमें भक्त इतना उन्मत्त हो जाता है कि ऐहिक और पारलौकिक सुख-भोगकी उसे अभिलाषा नहीं रहती। इसीको डूबना-उतराना कहते है। श्रुतियोंने भगवान्‌की स्तुति करते समय कहा है—"हे जगदीश्वर! हे सर्वकारण! तुम्हारे परम तत्त्वका निरूपण करना जीवके लिए अत्यन्त असंभव है, अतएव तुम स्वेच्छासे अवतार-विग्रह धारण करके, भूतलपर अवतीर्ण होकर, निज अगणित और अनिर्वचनीय लीला-रस-रङ्गका परिचय देते हो। तुम्हारे भक्तगण तुम्हारे उस अपूर्व लीला-रस-समुद्रके गम्भीर अन्तस्तलमें निमग्न होकर, निरन्तर गोता खाकर, अतिशय परिश्रान्त होकर भी उस लीला-रस-समुद्रका आलोडन करनेसे विरत नहीं होते। और उसे छोड़कर अन्यत्र जाते भी नहीं। वे लोग सर्वकर्म और सर्वधर्म-परित्यागपूर्वक तुम्हारे चरण-कमलके सन्निधानमें रमणशील राजहंसके समान एकान्त भक्तके सङ्गमें तुम्हारी लीला-कथाका श्रवण तथा लीला-कीर्त्तन-रूप अपूर्व व्यापारकी निरन्तर आलोचनासे घर-द्वार सब कुछ भूलकर इतना आनन्द अनुभव करते हैं कि उनके लिए तुम्हारे मधुर लीला-रसका आस्वादन परित्याग करना एक प्रकारसे असंभव हो जाता है। वे तुम्हारे लीला-रसके आस्वादनके बदले अपवर्गस्वरूप मुक्ति प्राप्त करनेकी कभी वासना नहीं करते—

दुरवगमारमतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो—
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोज-हंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः॥

श्रीम. भा. १०.८७.२१

कृपालु पाठकवृन्द जीवाधम ग्रन्थकारके इस प्रकार मनोभाव प्रकट करनेको आत्म गौरवेच्छा न समझें। वस्तुतः श्रीगौराङ्ग लीला-समुद्रमें पड़कर इसके प्राण छटपटा रहे हैं, फिर भी इसका विषयानुराग दूर नहीं हुआ, संसार-बन्धन नहीं छूटा। इसको विषय-कूपसे उद्धार करनेके लिए कोई नहीं मिला, यह सोचकर इसके मनमें बड़ा दुःख होता है। आश्चर्य होता है। परन्तु तो भी लीला-रस-समुद्रकी शोभाका दर्शन करना छोड़ता नहीं। लीला-रस-समुद्रके स्रोतमें प्रवाहित होनेपर भी इसको भय नहीं हैं, तरङ्गाघातसे गोते खानेपर भी इसको शङ्का नहीं है। इसको केवल गौरभक्तके चरणोंका भरोसा है, गौर-भक्तवृन्दकी कृपादृष्टि ही इसका संवल है। महाजन कविने गाया है—

दयार सागर मोर वैष्णव गोसाञि।
कि साधने मुञि पापी ताँर कृपा पाई॥

इसी सुरमें-सुर मिलाकर मैं भी गाता हूँ—

कृपार समुद्र मोर गौर भक्तवृन्द।
कृपा करि शिरे धर चरणारविन्द॥

पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीने मध्यलीलाके अन्तमें श्रीगौराङ्ग-लीला-माहात्म्यके सम्बन्धमें निम्नलिखित उपदेश-वाणी लिखकर उपसंहार किया है—

कृष्णलीलामृत सार, तार शत-शत धार,
दश दिकेये बहे जाहा हैते।
से चैतन्य लीला हय, सरोवर अक्षय,
मनोहंस चराह ताहाते॥
भक्तगण शुन मोर दैन्य वचन।
तोमा सभा पद धूलि, अङ्गे विभूषण करि,
किछु मुञि करों निवेदन॥
कृष्णभक्ति-सिद्धान्तगण, जाते प्रफुल्ल पद्मवन,
तार मधु कर आस्वादन।
प्रेमरस-कुमुद-वने, प्रफुल्लित रात्रि दिने,
ताते चराओ मनो भृङ्गगण॥
नाना भावे भक्तजन, हंस चक्रवाकगण,
जाते सभे करेन विहार।

कृष्ण-केलि सुमृणाल, जाहाँ पाइ सर्वकाल,
भक्त हंस करये आहार ॥
सेइ सरोवरे गिया, हंस चक्रवाक हैया,
सदा ताँहा करह विलास ।
खण्डिवे सकल दुःख, पाइबे परम सुख,
अनायासे हबे प्रेमोल्लास ॥
एइ अमृत अनुक्षण, साधु महान्त मेघगण,
विश्वोद्याने करे परिषण ।
ताते फले प्रेम-फल, भक्त खाय निरन्तर,
तार शेषे जिये जग जन ॥
चैतन्यलीलामृत पूर, कृष्णलीला-सुकर्पूर,
दोंहे मिलि हय सुमाधुर्य ।
साधु-गुरु-प्रसादे, ताहा जेइ आस्वादे,
सेइ जाने माधुर्य प्राचुर्य ॥
जे लीला-अमृत बिने, खाय यदि अन्नपाने,
तबू भक्तेर दुर्बल जीवन ।
जार एक बिन्दु पाने, उत्फुल्लित तनु मने,
हासे गाय करये नर्तन ॥
ए अमृत कर पान, जाहा सम नाहि आन,
चित्ते करि सुदृढ़ विश्वास ।
ना पड़ कुतर्क-गर्त्ते, अमेध्य कर्कशावर्त्ते
जाते पड़िले हय सर्वनाश ॥
श्रीचैतन्य नित्यानन्द, अद्वैतादि भक्तवृन्द,
आर जत श्रोता भक्तगण ।
तोमा सभा श्रीचरण, शिरे करि विभूषण,
जाहा हैते अभीष्ट पूरण ॥
श्रीरूप सनातन, - रघुनाथ-जीव-चरण,
शिरे धरि जार करों आश ।
कृष्ण लीलामृतान्वित, श्रीचैन्य-चरितामृत,
कहे किछू दीन कृष्णदास ॥

चै. च. म. २५.२२३-२३३

इस उपदेशामृतको आस्वादन करनेकी शक्ति इस जीवाधम लेखकमें नहीं है। किसी वस्तुका स्वयं आस्वादन किये बिना उसके स्वादके विषयमें यह कैसे कुछ कह सकता है? कृपालु गौरभक्त पाठकवृन्द! इसका आस्वादन करके जब उच्छिष्ट त्याग करेंगे, तब इस अभागे जीवाधमको एक बार याद कर लेंगे—

दुर्गमे पथि मेऽन्धस्य स्खलत् पादगतेर्मुहुः ।
स्वकृपा-यष्टिदानेन सन्तः सन्त्ववलम्बनम् ॥

चै. च. अं. १.२

अर्थ—मुझ अन्धेका इस दुर्गम पथमें बार-बार पादस्खलन हो रहा है, अतएव साधुगण कृपा-यष्टि-दान करके मेरे अवलम्बन बने।

अड़तीसवाँ अध्याय

(प्रभुका श्रीनीलाचल पुनरागमन)

अद्यास्माकं सफलमभवज्जन्म नेत्रे कृतार्थे
सर्वस्तापः सपदि विरतो निर्वृत्तिं प्राप चेतः ।
किंवा ब्रूमो बहुलमपरं पश्य जन्मदन्तरं नो
वृन्दारण्यात् पुनरुपगतो नीलशैलं यतीन्द्रः ।
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ९.३९

नीलाचलके मार्गमें गोप-युवकका मट्ठा-पान

प्रभु झारखण्डके रास्तेसे काशीसे नीलाचल चले । जिस रास्तेसे वे नीलाचलसे आये थे, पुनः उसी निर्जन वन्य पथसे वनके पशुओंके साथ अपूर्व लीलारङ्ग करते हुए चले । उनके साथ बलभद्र भट्टाचार्य थे और वे विप्र-भृत्य कृष्णदास थे । प्रभु प्रेमावेशमें चले; उनको दिशाका ज्ञान न था । प्रभुको श्रीनीलाचलचन्द्रका स्मरण हो आया है । बहुत दिनोंसे उनके श्रीमुखचन्द्रका दर्शन नहीं हुआ है । वे दीर्घसाँस लेकर चल पड़े हैं । उनके श्रीवदनसे केवल 'हा जगन्नाथ ! हा जगन्नाथ !' की करुण ध्वनि निकल रही है । मत्तसिंहके समान प्रेमोन्मत्त भावसे वे वनके मार्गसे चले जा रहे हैं । साथी लोग प्रभुको पकड़ नहीं पा रहे हैं । वे पीछे छूट गये हैं । प्रभु अकेले दुर्गम वनके भीतर होकर चले जा रहे हैं ।

उस वन-प्रदेशके प्रान्तरमें एक गाँव था । एक गोप-युवक मट्ठेकी मटकी सिरपर रखकर गाँवमें मट्ठा बेचने जा रहा था । प्रभुने पथश्रान्त होकर प्याससे व्याकुल होनेका लीलारंग रचा । गोप-युवकके सिरपर मट्ठेकी मटकी देखकर उन्होंने कातर भावसे कहा—

"घोल देह गोप मोरे लागिल पियास ।"
चै. म.

गोपयुवक प्रभुकी सुन्दर श्रीमूर्त्तिको देखकर रूपमुग्ध हो गया । उसने सिरसे मट्ठेकी मटकी उतारकर प्रभुके सामने हाथ जोड़कर कहा—"बाबा ! आपको प्यास लगी है । यह मटकी ले लीजिये और जितनी इच्छा हो, मट्ठा पीकर प्यास बुझाइये ।"

प्रभु प्यासे थे, प्राणभर मट्ठा पान कर गये, खाली मटकी पड़ी रही । गोप-युवकको यह बात कहकर प्रभु चल पड़े कि जो मेरे साथी पीछे आ रहे हैं, उनसे मूल्यके पैसे ले लेना ।

गोप-युवक स्तम्भित होकर वहाँ मन्त्रमुग्धके समान खड़ा रहा । प्रभु फिर आगे बढ़ गये । वह सोचने लगा कि "यह संन्यासी बाबा हमारा एक मटकी मट्ठा पी गये, घरके लोग मुझको क्या कहेंगे ? एक पैसा भी मुझे नहीं मिला ।" यह सोच ही रहा था कि प्रभुके पीछे छूटे हुए साथी वहाँ आकर उपस्थित हुए । गोप-युवकसे उन्होंने पूछा, "इस रास्तेसे जाते क्या एक नवीन संन्यासीको देखा है ?" उसने उत्तर दिया, "हाँ, देखा है । वह मेरा एक मटकी मट्ठा पी गये हैं और तुम लोगोंसे मूल्य लेनेको कह गये हैं ।"

बलभद्र भट्टाचार्य विनीत भावसे बोले, "बाबू ! हम लोगोंके पास तो कुछ नहीं है । हम लोग उसी संन्यासीके भृत्य हैं, अतएव हम लोग भी संन्यासी हैं । तुमने प्यासे संन्यासीको मट्ठा देकर उनकी प्यास बुझायी है, तुमको बहुत पुण्य होगा ।" यह सुनकर गोप-युवकने उत्तर दिया, "अच्छा, अच्छी बात है, मैंने संन्यासीकी सेवामें मट्ठा अर्पण किया है । आप लोग उस सुन्दर नवीन संन्यासीके चरणोंमें मेरा दण्डवत् प्रणाम कहेंगे ।"

सबके चले जानेपर जब वह शून्य मटकीको उठाने लगा तो वह उसे बहुत भारी लगने लगी। उठा न सकनेपर उसने ढक्कन हटाकर देखा कि मटकी स्वर्णमुद्रासे भरी पड़ी है।

उस सरल प्रकृति गोप-युवकको तब ज्ञात हुआ कि प्रभु क्या वस्तु हैं? वह स्वर्णमुद्रासे पूर्ण उस मटकीको वहाँ ही छोड़कर प्रभुकी खोजमें दौड़ा। प्रभु कुछ दूर जाकर साथियोंकी प्रतीक्षामें वृक्षके मूलमें बैठे विश्राम कर रहे थे। गोप-युवक वहाँ जाकर प्रभुके चरणोंमें लम्बा होकर पड़ गया और रोते-रोते कृपाकी याचना की। कृपानिधि प्रभुने उसके ऊपर कृपा की और मधुर स्वरमें बोले—"तुम घर जाओ! तुमपर श्रीकृष्णने कृपा की है। यहाँ धन लेकर आरामसे रहो! अन्तकालमें तुम श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें पहुँच जाओगे!"

वह सरल गोप-युवक तभीसे परम गौरभक्त हो गया। दयामय प्रभुने उनको अर्थ और परमार्थ, दोनों वस्तु प्रचुरमात्रामें प्रदान कीं। तब वह गोप प्रेमोन्मादमें नाचने लगा।

इस लीलारङ्गसे प्रभुने दिखला दिया कि जीव किसी भी प्रकारसे श्रीभगवान्को तुष्ट कर ले तो इससे उसको स्वार्थ और परमार्थ—दोनों प्राप्त हो जाते हैं। प्रभु प्यासे थे, गोप-युवकने उनकी प्यास बुझाने के लिए, बिना कुछ कहे-सुने, सिरसे मट्ठेकी मटकी उतारकर सामने रख दी। प्रभुने मट्ठा-पान करके संतुष्ट होकर उसकी अभीष्ट-सिद्धि कर दी। गोप-युवकको अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति तो हुई, उसके साथ ही परमार्थ-लाभ भी हो गया। श्रीभगवान्की कृपाकी सीमा नहीं है। ये मधुका भण्डार लेकर बैठे हैं। अमृतका भाण्ड हाथमें लेकर निरन्तर जीवको पुकार रहे हैं—"जीव! आ जा, इस अमृतको ग्रहण कर, तुम्हारे त्रिविध ताप दूर हो जायँगे, भव-बन्धन टूट जायगा।" अबोध जीव प्रभुके पास जाकर अमृत न लेकर एक टुकड़ा गुड़ माँग रहा है। श्रीभगवान् दयाके समुद्र हैं। वे किसीको भी किसी वस्तुसे बञ्चित नहीं करते। जो आदमी जो कुछ माँगता है, वही पाता है। जीव बड़ा ही अज्ञानी है, अमृतके बदले गुड़ पाकर अपनेको कृतार्थ मान रहा है। परन्तु वह युवक गोप होनेपर भी अज्ञानी नहीं था, वह गुड़ पाकर संतुष्ट न हुआ। श्रीगौर-भगवान्के पास दौड़कर उसने अमृतकी प्रार्थना की। कृपानिधि प्रभुने उनको गुड़ भी दिया और अमृत भी दिया। उनकी कृपासे गोप-युवकको अर्थ और परमार्थ—दोनों एक साथ प्राप्त हो गये।

प्रभुकी यह लीला-कहानी श्रीपाद मुरारिगुप्तके करचामें भी वर्णित है। इस करचासे लेकर ठाकुर लोचनदासने विस्तारपूर्वक लिखा है।

नीलाचलमें आगमन और भक्तोंसे मिलन

प्रभु निर्जन वन-पथसे वन्य पशु-पक्षियोंके साथ प्रेमानन्दमें लीलारङ्ग करते हुए यथासमय नीलाचल पहुँचे। उनके साथ बलभद्र भट्टाचार्य और कृष्णदास थे। अठारहनालामें आकर प्रभुने कृष्णदाससे कहा—"भक्तगणको समाचार दो कि मैं आ गया हूँ।" कृष्णदास तुरंत दौड़ पड़े। नीलाचलके भक्तगण प्रभुके विरहमें जीवन्मृत हो रहे थे; उनके,शुभागमनका समाचार पाकर मानो उनको पुनर्जीवन प्राप्त हुआ।

आनन्द-विह्वल होकर भक्तगण अठारहनालाकी ओर चल पड़े। उनमें पुरी गोसाईं, भारती गोसाईं, जगदानन्द और काशीश्वर पण्डित, वक्रेश्वर पण्डित, काशी मिश्र, प्रद्युम्न मिश्र, शङ्कर पण्डित और गोविन्द आदि सभी थे। नरेन्द्र-सरोवरके निकट वे सब लोग प्रभुसे मिले। प्रभुने पहले पुरी और भारती गोसाईंके चरणोंकी वन्दना की। सब लोग प्रेमावेशसे अधीर होकर भुजाएँ फैलाकर प्रभुको

प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध करके रोने लगे। प्रेमावेगमें उनके मुँहसे बात न निकल सकी। अन्यान्य भक्तगग प्रेमानन्दमें विभोर होकर प्रभुके चरणोंमें लम्बे पड़कर आँखोंकी प्रेमानन्दकी धारासे भूतलको सिक्त करने लगे। उनके अश्रुजलसे वह स्थान कीचड़मय हो गया। कृपानिधि प्रभुने स्नेहपूर्वक एक-एक करके सब भक्तगणको अपने श्रीहस्तसे पकड़कर उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके संतुष्ट किया। सबके साथ मधुर हँस-हँसकर मीठी-मीठी बातें कीं। प्रभुके श्रीचरणका दर्शन करके वे आनन्द-सागरमें डूब गये। उनके सारे दुःख दूर हो गये।

सारे नीलाचलमें प्रभुके पुनरागमनकी बात फैल गयी। धीरे-धीरे बहुत लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। सबके साथ नृत्य-कीर्तन करते-करते प्रभु तब श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिए चले। श्रीमन्दिरके सिंहद्वारपर जाकर प्रभुने प्रेमानन्दसे हुङ्कार-गर्जन करके 'जय जगन्नाथ' ध्वनिसे दिगन्तको कम्पित कर दिया। उनके कण्ठ स्वरको सुनकर वहाँ बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। सार्भभौम भट्टाचार्य, राय रामानन्द आदि अन्यान्य भक्तगण वहाँ आकर प्रभुसे मिले। उन्होंने प्रेमानन्दमें अधीर होकर प्रभुके चरणोंकी वन्दना की। प्रभुने भी उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। सब कहने लगे—

अद्यास्माकं सफलमभवत् जन्मनेत्रे कृतार्थे,
सर्वस्तापः सपदि विरतेमा निर्वृ ति प्राप चेतः।
किं वा ब्रूमो बहुलमपरं पश्य जन्मान्तरं नो,
वृन्दारण्यात् पुनरुपगतो नीलशैलं यतीन्द्रः॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ९.३९

अर्थ—अहा! आज हमारा जन्म सफल हो गया, नयनद्वय सार्थक हो गये। क्षणमात्रमें सारे दुःख-संताप दूर हो गये, हृदयमें परम आनन्द हुआ। अधिक और क्या कहें? क्योंकि श्रीवृन्दावनसे श्रीगौराङ्गचन्द्र पुनः नीलाचलमें आनेपर आज हमार पुनर्जन्म हो गया।

नीलाचलवासी भक्तोंने सोचा था कि प्रभु फिर श्रीवृन्दावन छोड़कर नीलाचलमें नहीं लौटेंगे। श्रीवृन्दावनके नाममात्रसे जिनको प्रेममूर्च्छा होती है, वे श्रीवृन्दावनधाम छोड़कर पुनः नीलाचल लौट आवेंगे, यह किसीने आशा न की थी। प्रभुको पुनः नीलाचलमें देख पानेकी आशा त्यागकर वे जीवन्मृत हो रहे थे। अतएव कहा है कि 'आज हमारा पुनर्जन्म हो गया।'

प्रभुने जैसे ही श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें प्रवेश किया, श्रीजगन्नाथजीके प्रधान सेवक तुलसी पड़िछाने आकर उनकी चरण-वन्दना की, चन्दन-माल्यसे उनका सर्वाङ्ग-विभूषित कर दिया। प्रभु प्रेमाविष्ट होकर प्रेमाश्रुविगलित नेत्रोंसे श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके श्रीमुखचन्द्रका निरीक्षण करने लगे। वे जड़वत् निस्पन्द होकर खड़े थे। उनके नयनके पलक नहीं गिर रहे थे, एकटकसे देख रहे थे। प्रभु श्रीजगन्नाथका दर्शन कर रहे थे और सब लोग प्रभुका दर्शन कर रहे थे। प्रभुको बाह्यज्ञान न था। भक्तवृन्द प्रभुको घेर करके खड़े थे। बहुत देरके बाद प्रभुको बाह्यज्ञान हुआ। वे हुङ्कार-गर्जन करके अपूर्व नयन-रञ्जन नृत्य करने लगे। भक्तगणने सुयोग समझकर कीर्तनका धूहा पकड़ा। प्रभु नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें मग्न हो गये। बहुत देरतक वे भक्तोंके साथ श्रीमन्दिरमें नृत्य कीर्तन करके काशी मिश्रके घर अपने स्थानपर आये। सब भक्तगण उनके साथ ही थे। प्रभुने अपने स्थानपर आकर स्थिरतापूर्वक बैठकर पुरी गोस्वामीके साथ दो-एक वातें कीं। प्रभु बोले—

तीर्थद्वयं यदपि तुल्यमिदं महान्तः
काश्यादयोऽपि पुरतः कलुषापहारी।
आनन्ददाः किल तथापि महान्त एव
यद्युष्मदीक्षणसुखं हि सुखायते नः॥

चै. च. नाटक ९.४०

अर्थ—यद्यपि श्रीक्षेत्र और श्रीवृन्दावन दोनों ही तुल्य तीर्थ हैं, तथा आगे श्रीवाराणसीधाम आदि महत् तीर्थ हैं और यद्यपि ये सारे पुण्य-तीर्थ-स्थान सब मनुष्योंके पापका संहार करते हैं, तथापि साधुवृन्द ही अतिशय आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। अतएव आप लोगोंका दर्शन करके मेरा चित्त आनन्द-रसमें निमग्न हो गया है। अतएव आप लोगोंका सङ्ग तीर्थ-दर्शनसे भी अधिक रमणीय है—यही निश्चय करके मैं शीघ्र श्रीवृन्दावनसे चला आ रहा हूँ।

पुरी गोस्वामी महाप्रभुकी बात सुनकर लज्जित हो उठे। प्रभु दैन्यके अवतार हैं, चतुरशिरोमणि हैं, वाक्पटुतामें परम सिद्ध हैं। उनके साथ बात करनेमें कोई समर्थ नहीं—यह सोचकर पुरी गोस्वामी प्रभुकी इस बातका उत्तर न देकर दूसरे ही प्रकारसे बोले—"आइये! यह हम लोगोंके लिए अतिशय सौभाग्यकी बात है कि बहुत दिनों तक आपके विरहरूपी दावाग्निमें हमको दग्ध नहीं होना पड़ा। यह बात सुनकर प्रभु मुस्कराये।

प्रभु अब अपने बासापर बैठकर बहुत दिनके बाद अपने प्रियतम भक्तोंके साथ नाना प्रकारकी बातें करने लगे। उस दिन सार्वभौम भट्टाचार्यने प्रभुको निमन्त्रित किया। प्रभु बोले—"भट्टाचार्य! आज मैं जगन्नाथकी कृपासे बहुत दिनोंके बाद अपने प्राणसर्वस्व भक्तोंसे मिला हूँ। आज मैं यहाँ बैठकर सबको साथ लेकर भिक्षा करूँगा। तुम यहाँ प्रसाद ले आओ!" सार्वभौम भट्टाचार्य और काशीमिश्र दोनों ही यह बात सुनकर परम आनन्दित हुए। दोनोंने मिलकर उत्तम-उत्तम पदार्थ प्रभुके वासापर लाकर उपस्थित कर दिये। भक्तवत्सल प्रभु भक्तगणके साथ परमानन्दपूर्वक उस दिन भोजन-लीलारङ्गमें निरत रहे।

नदियाके भक्तोंकी श्रीक्षेत्रयात्रा

प्रभु नीलाचल लौट आये हैं, स्वरूप दामोदर गोस्वामीने यह समाचार दामोदर पण्डितके द्वारा शचीमाताके पास नवद्वीप भेज दिया। शचीमाता और श्रीविष्णुप्रिया देवी यह समाचार सुनकर परम आनन्दित हुईं। नदियाके भक्तवृन्द यह शुभ संवाद पाकर प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगे। सब लोग तभीसे प्रभुके दर्शनके लिए नीलाचल जानेकी तैयारीमें लग गये।

शिवानन्द सेनके पास सबसे पहले समाचार पहुँचा। इस उपलक्ष्यमें प्रभुके दर्शनके लिए पुरुषोत्तम-यात्रा करनेका उन्होंने निश्चय किया। श्रीखण्ड, कुलियाग्राम, काञ्चनपाड़ा, कुमारहट्ट आदि स्थानोंमें आदमी भेजकर यह संवाद भेजा गया। शिवानन्द सेन, नरहरि, रघुनन्दन, सत्यराजखान आदि सब भक्तगण नवद्वीपमें आकर धीरे-धीरे एकत्रित हो गये। वे लोग शचीके आँगनमें एकत्रित, उनको प्रणाम करके और उनकी अनुमति लेकर एक साथ श्रीक्षेत्रकी यात्रापर निकल पड़े। शान्तिपुरनाथ श्रीअद्वैतप्रभु भी अपने गणके साथ उसमें उपस्थित थे। पुत्रशोकातुरा शचीमाता और पतिविरहिणी श्रीविष्णुप्रिया देवीने पूर्ववत् नाना प्रकारकी भोज्य वस्तुएँ अपने हाथों प्रस्तुत करके प्रभुके लिए भक्तगणके द्वारा नीलाचल भेजीं।

शिवानन्द सेन प्रभुके आदेशसे सब भक्तगणको समाधान करके उनका सारा व्यय-भार बहन करके साथ-साथ चले। उनके साथ एक भक्त कुक्कुर चला। वे उसको यत्नपूर्वक खाना-दाना देते हुए साथ ले चले। उस कुत्तेको वे उच्छिष्ठ खानेके लिए नहीं देते थे।

श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने श्रीचैतन्य-चन्द्रोदय नाटकमें इस कुत्तेके सम्बन्धमें एक कहानी लिखी है। वह कुत्ता साथ-साथ बहुत दूरतक एक नदीके किनारे आया। नदी पार करते समय नाविकने कुत्तेको नावपर चढ़ानेसे इनकार कर दिया। शिवानन्द सेन नाविकको काफी पैसा देकर

कुत्तेको नावपर चढ़ाकर पार ले गये। उस कुत्तेसे उनको इतना स्नेह था। रास्तेमें एक दिन शिवानन्द सेन घाटवालेसे लेन-देनमें व्यस्त रहे, इधर नौकर कुत्तेको खाना देना भूल गया, रातमें शिवानन्द सेन जब वासापर आकर भोजन करने बैठे, तब उन्होंने नौकरसे पूछा, "कुत्तेको प्रसाद दिया गया है?" नौकरने कहा कि कुत्तेने अभी प्रसाद नहीं पाया। यह सुनकर वह अत्यन्त दुःखित हुए। चारों ओर आदमी भेजे, परन्तु कुत्तेका कुछ पता न लगा। वे भी रातको उपवासी रह गये। प्रातःकाल भी कुत्तेका कुछ पता न पाकर बहुत दुःखित हो शिवानन्द सेन नीलाचलकी ओर चले। प्रभुका दर्शन करनेके लिए जब वहाँ गये तो देखा कि वह भाग्यवान् कुत्ता प्रभुसे कुछ दूर बैठा हुआ है और प्रभु अपनी प्रसादी नारिकेल शष्य फेंक रहे हैं और कुत्ता उसे प्रेमानन्दसे भक्षण कर रहा है। प्रभु हँसते-हँसते उससे कह रहे हैं, "कृष्ण कह, राम कह, हरि बोल' और वह महाभाग्यवान् कुत्ता प्रेमानन्दमें अपनी पूँछ उठाकर "हरि-हरि, कृष्ण-कृष्ण, राम-राम" कहकर उच्चस्वरसे कीर्तन कर रहा है। यह देखकर शिवानन्द सेनने उस कुक्कुररूपी महापुरुषको दण्डवत् प्रणाम करके अपने अपराधके लिए क्षमा-प्रार्थना की।

सब भक्तोंने कुत्तेके साथ प्रभुके इस अपूर्व लीलारङ्गको अपनी आँखों देखा। उनके हृदयमें एक साथ विस्मय और आनन्दका तरङ्ग उठा। सब लोग प्रेमानन्दमें प्रभुके चरण-कमलमें लोटकर रोने लगे। उस भाग्यवान् कुत्तेको उस दिनके बाद फिर कभी किसीने नहीं देखा। कवि कर्णपूर गोस्वामीने लिखा है—"मन्ये तेनैव शरीरेण रूपान्तरं लब्ध्वा लोकान्तरं प्राप्तः।"

कविराज गोस्वामीने लिखा है—

आर दिन कहे तार देखा ना पाइल ॥
सिद्ध देह पाआ कुक्कुर वैकुण्ठेते गेला ॥

चै. च. अं. १.२७

उन्होंने और भी लिखा है—

ऐछे दिव्य लीला करे शचीर नन्दन।
कुक्कुरके 'कृष्ण' कहाइ करिल मोचन ॥

चै. च. अं. १.२८

श्रीनित्यानन्द प्रभुका शिवानन्दके साथ लीलारङ्ग

नदियाके भक्तवृन्दके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु भी आये हैं। रास्तेमें आते-आते शिवानन्द सेनके साथ श्रीनिताई चाँदने एक अद्भुत लीलारङ्ग प्रकट किया। उस परम मधुर और अपूर्व लीला-कथाको यहाँ कहूँगा।

प्रभुका आदेश था कि श्रीनित्यानन्द प्रभु गौड़देशमें रहकर हरिनामका प्रचार करें, जीवोद्धार करें, प्रेम-दान करें। उनको प्रति वर्ष नीलाचलमें आनेसे प्रभुने मना कर दिया था। परन्तु अवधूत निताईचाँद प्रभुके मना करनेपर भी उनका दर्शन करनेके लिए नीलाचलपर आये। प्रभु बोले, "श्रीपाद! प्रतिवर्ष यहाँ आनेमें आपको बड़ा कष्ट होता है, व्यर्थ कालक्षेप होता है, आप गौड़देशमें रहकर जीवोद्धार-कार्य करें, आपके हाथमें गुरुतर कार्य है। कलिग्रस्त जीवका आपके सिवा और कोई उद्धार न कर सकेगा, इसी कारण आपको बहुत सोच-विचार करके मैंने गौड़देशको भेजा है।" श्रीनिताईचाँदने कुछ उत्तर न दिया, केवल हँसते रहे।

प्रत्येक वर्ष ये बातें होती, परन्तु श्रीनिताईचाँद नीलाचल आते रहे। शिवानन्द सेनके साथ इस बार भी वे प्रभुके लिए नीलाचल आये हैं। एकदिन रास्तेमें घाटपालने शिवानन्द सेनको रोक लिया और सब लोगोंको छोड़ दिया। शिवानन्दके बिना रास्तेमें वासा और भोजन आदिका प्रबन्ध करनेमें कोई समर्थ न था। श्रीनित्यानन्द प्रभु उस दिन बहुत थक गये थे; भूख भी खूब लग गयी थी;

बासाका कोई ठिकाना न था। वे भूख-प्याससे व्याकुल होकर शिवानन्दको न देख पाकर उन्हें कटु वाक्य कहने लगे—"शिवानन्द अभी तक नहीं आया, न रहनेका ठिकाना है, न खानेका। उसके तीन पुत्र मर जाँय।"

शिवानन्दसेनकी पतिव्रता स्त्री सामने थी। अन्यान्य वैष्णव गृहिणीगणके साथ वे भी प्रभुका दर्शन करने जा रही थी। श्रीनिताईचाँदकी इस प्रकारके कठिन हृदय विदारक अभिशापयुक्त बात सुनकर शिवानन्दकी गृहिणी भाव और दुःखसे व्याकुल होकर रो पड़ी। सब लोग अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगे। उसी समय शिवानन्द सेन दौड़ते हुए वहाँ जा उपस्थित हुए। आते ही उनकी गृहिणीने रोते-रोते सारी बात उन्हें कह सुनायी।

शिवानन्द सेन श्रीनिताईचाँदके एकान्त अनुरक्त भक्त थे। वे हँसकर स्त्रीसे बोले, "पगली! तू श्रीनित्यानन्द प्रभुकी महिमा क्या जानेगी? तीन पुत्र मरें, इसमें मुझे कोई दुःख नहीं, किन्तु श्रीनिताईचाँदके चरणोंमें अपराधी न बनूँ। तू रो मत। मैं उनके पास जाकर उनको तुष्ट करता हूँ।" इतना कहकर वह श्रीनिताईचाँदके पास झट-पट जा पहुँचे।

भूख-प्याससे कातर, क्रोधान्ध और लीलामय श्रीनिताईचाँदने शिवानन्द सेनको देखते ही क्रुद्ध होकर उन पर पदाघात किया। भाग्यवान् शिवानन्दने श्रीनित्यानन्दके पाद प्रहारको परम आनन्दपूर्वक महान् कृपाशीर्वादके रूपमें ग्रहण किया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके प्रसन्न मुखसे तत्काल उनके बासा और आहारादिका सारा वन्दोवस्त करके उनको स्वस्थ किया। उनके भोजन आदिके समाप्त होने पर हाथ जोड़कर विनीत भावसे शिवानन्दसेनने उनके चरणोंमें निवेदन किया—"आज तुमने मुझे भृत्यरूपमें अगीकार करके अपराधके अनुरूप शासनके छलसे मेरे ऊपर कृपा करी है, यह तुम्हारी करुणा है। त्रिजगतमें तुम्हारा चरित्र कौन समझ सकता है। ब्रह्माको भी दुर्लभ तुम्हारी चरण-रेणुने आज मेरे अधम शरीरका स्पर्श करके मेरा जन्म सफल बना दिया। आज मुझे श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त हुई।"

सदानन्द श्रीनिताइ चाँदने शिवानन्दकी यह बात सुनकर प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर उनको वक्षःस्थलमें धारण करके प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

कृपालु पाठकवृन्द! श्रीनित्यानन्दतत्त्वज्ञ शिवानन्दके निताई-प्रेमकी प्रगाढ़ताका अनुभव करें, और मन ही मन निश्चय करें कि शिवानन्द सेन हैं क्या वस्तु? वे परम धनी, सर्वजन-मान्य एक शिक्षित भद्र-पुरुष हैं। बहुत अर्थ-व्यय तथा बहुत शारीरिक क्लेश सहन करके नदियाके भक्तोंकी सब प्रकारकी प्रयोजनीय वस्तुओंको जुटाते हुए वे उनको प्रभुके आदेशसे नीलाचल लिये जा रहे हैं। बिना अपराधके आज वे किस प्रकार श्रीनिताई चाँदके हाथों लाञ्छित और अपदस्थ हुए, परन्तु इस लाञ्छना और अपमानको उनने परम सौभाग्य माना, इसको श्रीनित्यानन्द महाप्रभुकी महाकृपा समझा। निताई-पद-रजकी प्राप्तिसे उनके प्राण आनन्दित हो उठे। वे इस दण्डको महाकृपा समझ कर प्रेमानन्द सिन्धुमें डूब गये। ये महापुरुष महाकवि श्रीपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीके पिता थे,

श्री श्रीगौराङ्ग प्रभुके पार्षद भक्त थे। श्रीगौराङ्गके सिवा जीवनमें और कुछ नहीं जानते थे।

शिवानन्दके भानजे
श्रीकान्तका नीलाचल गमन

शिवानन्दके साथ उनके भांजे श्रीकान्त थे। वे युवा पुरुष थे। मामाको इस प्रकार अपमानित होते देखकर उनके मनमें बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने

सोचा कि उनके पूज्यपाद मामा प्रभुके प्रधान भक्त हैं, उनके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभुने ऐसा व्यवहार किया, यह अत्यन्त दुःखकी बात है। यह सोचकर और सबको कहकर अभिमान और क्रोधमें श्रीकान्त उनका सङ्ग छोड़कर सबसे आगे नीलाचलमें प्रभुके पास पहुँचे।

सर्वज्ञ प्रभु जानते थे कि नदियाके भक्तगण आ रहे हैं। वे यह भी जानते थे कि श्रीकान्त मनमें दुःख पाकर पहले ही उनके पास आ रहे हैं। प्रभु अपने वासा पर पुरी गोसाईंके साथ कृष्ण कथा-रसमें मग्न थे। वहाँ स्वरूप गोसाईं और गोविन्द भी थे। उसी समय श्रीकान्तने आकर प्रभुके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। वह शरीरमें जामा पहने हुए थे। गोविन्दने कहा, "श्रीकान्त! जामा उतार कर प्रणाम करो।" यह विधि भक्तिका चिह्न है। सर्वाङ्ग आवरण शून्य होकर साष्टाङ्ग प्रणाम करनेका ही नियम है। प्रभुने हँसकर गोविन्दसे कहा, "श्रीकान्त मनमें दुःख पाकर यहाँ मेरे पास आया है, उसको जैसे सुख मिले, वैसा ही करो, उसे कुछ कहो मत।"

इतना कहकर प्रभुने श्रीकान्तसे नदियाके भक्तोंका समाचार पूछा। श्रीकान्तने अपने पूजनीय मामाजीके अपमानकी बात प्रभुसे कुछ नहीं कही। वे बोले, "हे प्रभु! इस साल आपके सब भक्तगण आ रहे हैं, नवद्वीपमें कोई नहीं रहा। जिनको पहले जन्म न लेनेके कारण आपके श्रीचरणोंके दर्शनका सौभाग्य नहीं मिला था, वे भी आये हैं।" प्रभुने तुष्ट होकर कहा, "वे कौन?" श्रीकान्तने उत्तर दिया, "श्रीअद्वैताचार्यके दोनों पुत्र विष्णुदास और गोपालदास आये हैं, और आचार्यके साथ उनका एक परम प्रिय भक्त श्रीनाथ नामक ब्राह्मण आया है।"

प्रभुने प्रकारान्तरसे पूछा, "श्रीनाथ तुम्हारे मामाके साथ न आकर श्रीअद्वैताचार्यका सङ्ग क्यों पकड़ा?" श्रीकान्तने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "हे प्रभु! श्रीनाथ अद्वैताचार्यका बड़ा प्रियपात्र है। उन्होंने उससे कहा है कि एकान्तमें आपके साथ मिलन करा देंगे, और आपके चरणोंका दास बना देंगे। इसी आशासे श्रीनाथने आचार्यका सङ्ग पकड़ा है।" प्रभु यह सुनकर मुस्कराते हुए स्वरूप दामोदरसे बोले—

अद्वैतोपायनमिदमिति स्वादुभावीति कार्यं
प्रेमैतस्मिन् किमपि भवताप्यत्र मैत्रीस्वरूप।
त्वं चास्मिन् शङ्कर सुमधुरं भावमुद्भावयेथाः
सर्वेषां हि प्रकृतिमधुरो हन्त तुल्येन योगः॥

चै. च. नाटक १०.५

स्वरूप! सुनो। अद्वैताचार्यकी लायी हुई यह परम उपादेय सामग्री अतीव सुस्वादु होगी। यह समझकर श्रीनाथके प्रति तुम विशेष दृष्टि रक्खोगे। उससे स्नेह करोगे। हे शङ्कर! तुम भी श्रीनाथसे प्रेम करोगे।*

इतना कहकर भक्तवत्सल प्रभुने श्रीकान्तसे पुनः पूछा, "और कौन आया है?" श्रीकान्तने उत्तर दिया, "मेरे दो ममेरे भाई आये हैं, वासुदेवदत्तका पुत्र भी आया है। मामाजीके कनिष्ठ पुत्रने आपके श्रीचरणोंका दर्शन अभी नहीं किया है। रामानन्द वसुके भी दो पुत्र आये हैं।"

---

* यह श्रीनाथ पण्डित पूज्यपाद कवि कर्णपूर गोस्वामीने मन्त्र गुरु थे, और महाप्रभुकी कृपासे प्रेरित होकर उन्होंने श्रीमद्भागवतकी एक उपादेय टीका 'श्रीचैतन्य मञ्जूषा' लिखी, जिसके मङ्गलाचरणका प्रथम श्लोक यह है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता॥
श्रीमद्भागवतं पुराणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नापरः॥

प्रभु इन सब नवागत वाल-भक्तोंके आगमनका वृत्तान्त सुनकर बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने श्रीकान्तसे आग्रहपूर्वक पूछा कि, "गौड़ मण्डलके सकल भक्तोंके बालकोंको क्या उन्होंने पहले देखा था?" श्रीकान्तने कहा कि, उसके मामाके कनिष्ठ पुत्र तथा अन्यान्य बालकोंको उनके श्रीचरण दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, इसी कारण वे अपने माता-पिताके साथ जिद्द करके आये हैं।

भक्तवत्सल प्रभु यह सुनकर प्रेमगद्गद हो उठे, उनके दोनों कमलनयनमें प्रेमाश्रुविन्दु दीख पड़े। भक्तवशी श्रीगौर भगवान्‌के भक्त-वात्सल्यका साक्षात् परिचय पाकर श्रीकान्त प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े।

प्रभुके संन्यास ग्रहणके बाद इन सब वालकोंका जन्म हुआ था। अपने माता-पिताके मुखसे प्रभुका नाम और गुणगान सुनकर उनके चरणोंमें वे आकृष्ट हुए हैं, प्रभुके प्रति उन सब भक्त बालकोंका स्वाभाविक सहज प्रेम है। उनके माता-पिताने कह दिया है कि महाप्रभु साक्षात् भगवान् हैं, सचल जगन्नाथ हैं, सरल प्राण बालकोंके मनमें वेद-वाक्यके समान इस बातका विश्वास हो गया है, उनके सरल प्राणमें प्रभुके दर्शनकी इच्छा प्रबल रूपसे बलवती हो गयी है। उनके माता-पिता रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचलमें सचल जगन्नाथको देखने जा रहे हैं, यह देखकर उन्होंने भी प्रेमानन्दमें साथ जाना चाहा, कदापि सङ्ग न छोड़ा। माता-पिताने भय दिखाया, पर उसका कुछ फल न निकला। तब उन्होंने सोचा कि इनको भी साथ ले जाना ही ठीक है। प्रभुके चरणदर्शनकी इनकी बड़ी कामना हो गयी है, ये परम सुकृतिमान् हैं। यह सोचकर भक्तोंकी कुलस्त्रीगण दूर देशस्थ तीर्थ भ्रमणके इस विषम कष्टको सहते हुए भी उन बालकोंको गोदमें लेकर साथ ला रही हैं।

श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र नीलाचलमें परम आनन्द-पूर्वक विराज रहे हैं, उनकी भक्तवत्सलता अतुलनीय है। श्रीकान्तको देखकर उन्होंने एक-एक करके नदियाके सब भक्तोंके विषयमें पूछा, नवागत बालभक्तोंके बारेमें विशेष करके पूछा, तथा स्वरूप दामोदर और पुरी गोसाईंको लक्ष्य करके प्रभु बोले, "अस्मिन्नब्दे एतेषां कृते खल्वमी मद्दर्शनं लिप्सन्ते"—अर्थात् प्रभु बोले कि इस वर्ष इन बालकोंके कारण भक्तगण मेरा दर्शन पायेंगे। प्रभुकी बातका मर्म पुरी गोस्वामी और स्वरूप दामोदरमें कोई समझ न सका। न समझनेकी चेष्टा ही की।

प्रभु श्रीवृन्दावन गये थे। भक्तवृन्दने सोचा था कि वे फिर नीलाचल नहीं लौटेंगे। वे अपने धाम गये हैं, अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन जान पड़ा कि फिर ब्रजसे नहीं निकलेंगे। प्रभुके भक्तवृन्द व्रजके परिकर हैं—उनके नित्यदास भक्तगण व्रजके अनुचर हैं। उनके बालकगण व्रजके बालक हैं। नदिया-बालक और नदिया-बालिका, तथा ब्रज-बालक और व्रज-बालिका अभिन्न तत्त्व हैं। प्रभुके लिए जब नदियाके बालकोंका मन रो पड़ा तो उनके लिए भी प्रभुका मन रो पड़ा। नदिया-बालकोंका मन जैसे प्रभुके दर्शनके लिए उत्कण्ठित हुआ, प्रभुका मन भी वैसे ही नदिया बालकोंके दर्शनके लिए उत्कण्ठित हो उठा। वे भक्तोंको दर्शन देनेके लिए श्रीवृन्दावनसे नीलाचल भागे। नदिया बालकवृन्द भी प्रभुका दर्शन करनेके लिए नवद्वीपसे नीलाचल चले। उनके माता-पिता कदापि उनको घरपर न रख सके। अतएव उनको साथ लाना पड़ा। इसी कारण प्रभु बोले कि, "इस वर्ष इन बालभक्तोंके कारण ये मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे।" बालकको कौन नहीं प्यार करता? उनके सरल प्राणकी निष्कपट व्याकुलतापूर्ण पुकारपर श्रीभगवान् स्थिर नहीं रह सकते, बालक ध्रुवके प्राणकी पुकारसे श्रीकृष्ण भगवान्‌को वनमें आना पड़ा था, नदिया बालकोंके सरल प्राणकी पुकारसे श्रीगौर भगवान्‌को श्रीवृन्दावन छोड़कर

नीलाचल आना पड़ा तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

शिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र और महाप्रभु

शिवानन्द सेनके साथ नदियाके भक्तगण स्त्री-पुत्र परिवार आदिको लेकर नीलाचल जा पहुँचे। प्रभुके साथ सबका मिलन हुआ। वैष्णव गृहिणीगणने दूरसे ही प्रभुका दर्शन किया। प्रभुका दर्शनकर वे व्याकुल होकर रोने लगी। पूर्ववत् सबको नीलाचलमें अलग-अलग रहनेके लिए वासाका प्रबन्ध हुआ। किसीको कोई असुविधा या कष्ट न था। प्रभुकी कृपासे सब परम आनन्द-पूर्वक रहे।

शिवानन्द सेन अपने तीन पुत्रोंको लेकर दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभुके दर्शनके लिए आये। उनके कनिष्ठ पुत्रको देखते ही प्रभुने उसका नाम पूछा। शिवानन्द बोले कि इसका नाम है परमानन्द दास। पहले जब शिवानन्द सेन प्रभुके दर्शनके लिए आये थे उस समय उनकी गर्भवती स्त्री साथ थी। प्रभुने उसको कृपाशीर्वाद देते हुए कहा था कि अबकी बार जो पुत्र हो उसका नाम पुरीदास रखना। उसी वर्ष शिवानन्द सेनको एक पुत्र-सन्तान हुई। प्रभुकी बात मानकर उन्होंने उसका नाम रक्खा परमानन्द दास।

प्रभुर आज्ञाय धरिल नाम 'परमानन्द दास'।
चै. च. अं. १२-४८

वह बालक उस समय पाँच वर्षका परम सुन्दर बालक था। पुरी गोसाईंको लक्ष्य करके प्रभु उस अपूर्व बालकको पुरीदास कहकर सम्बोधन करते हुए उसके साथ हास-परिहास करने लगे। शिवानन्द सेनने अपने पुत्रको प्रभुके चरणोंमें समर्पण करके हाथ जोड़कर निवेदन किया, "हे प्रभु! इस बालकको चरणकी धूलि देकर कृपा करो। बालकने जब प्रभुके श्रीचरण तलमें गिरकर उनके पादांगुष्ठके प्रति सतृष्ण नयनोंसे देखा तो कृपानिधि प्रभुने उस परम सौभाग्यवान् बालकके मुँहमें अपना पदांगुष्ठ दे दिया। बालक प्रेमानन्दमें उनके चरण-मधुको पान करके चरणतलमें लोटकर हा गौराङ्ग!' कहकर प्रेमानन्दमें रोने लगा। शिवानन्द यह देखकर प्रेमावेगमें अधीर होकर पुत्रको गोदमें लेकर प्रभुके सामने प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगे। पुत्रके सौभाग्यसे पिताको परमानन्दकी प्राप्ति हुई। उन्होंने अपनेको धन्य समझा।

वही बालक पीछे चलकर कवि कर्णपूर गोस्वामीके नामसे विख्यात हुआ। वह महाप्रभुकी कृपासे महाकवि हो गया। उसने संस्कृत भाषामें श्रीगौराङ्ग-लीला लिखी। श्रीचैतन्य चरित महाकाव्य और श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक इन दो श्रीग्रन्थोंमें उन्होंने जो आश्चर्यजनक काव्य प्रतिभा प्रदर्शितकी है, असाधारण कवित्व शक्ति दिखलायी है, वह भगवत्कृपाके बिना संभव नहीं है। कवि कर्णपूर गोस्वामी महाप्रभुके कृपासिद्ध भक्त थे। तभी इस प्रकारका परम उपादेय श्रीगौराङ्ग-लीला ग्रन्थ लिखनेमें समर्थ हुए हैं।

प्रभुने अन्तर्द्धान होनेपर जब राजा गजपति प्रताप रुद्र अत्यन्त कातर हो गये, तब नीलाचल वासी गौर-भक्तोंके आदेशसे भाग्यवान् कवि कर्णपूर गोस्वामीने उनका गौर-विरह-शोक निवारण करनेके लिए उपर्युक्त दो ग्रन्थ लिखकर सुनाये थे। कवि कर्णपूर गोस्वामीके साथ राजा प्रताप रुद्रका विशेष परिचय था। वे महापुरुष नीलाचलमें कुछ दिन रहे। गौर-विरह-दग्ध, जीवन्मृत राजा प्रताप रुद्रने उनसे कहा, "आप प्रभुके कृपापात्र महाकवि हैं। आप महाप्रभुके कृपासिद्ध महापुरुष हैं। मैं

---

* शिवानन्दके कनिष्ठ पुत्रके साथ महाप्रभु द्वितीय लीलारङ्गका वर्णन ५४ वें अध्याय में है।

गौराङ्ग-विरह-विषसे जर्जरित हूँ प्रभुके विरहमें मुझे चतुर्दिक अन्धकार दीख पड़ता है। श्रीजगन्नाथदेव भी मुझको अच्छे नहीं लग रहे हैं। आप कृपा करके प्रभुकी लीलाकथा नाटकके रूपमें लिखकर मुझको सुनावें। उस नाटकका अभिनय किया जाय। इससे मेरी प्राण रक्षा होगी। गौराङ्ग लीला-मधुके पान करनेके सिवा अन्य उपायसे गौर-विरह-ज्वाला दूर न होगी।" यही है श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटककी भूमिका। कवि कर्णपूर गोस्वामीने यह ग्रन्थ लिखकर गौर-विरह-जर्जरित भक्तोंके प्राणकी रक्षाकी है।

शिवानन्द सेन युक्त-वैराग्यवान् गृही वैष्णव थे। उनके प्रति प्रभुकी असीम कृपा थी। उनके परिवारके सब लोग प्रभुके कृपा पात्र थे। प्रभुने उस दिन अपने प्रियतम भृत्य गोविन्दको सबके सामने आदेश दिया—

'शिवानन्देर प्रकृति-पुत्र यावत् हेथाय।
आमार अवशेषपात्र तारा जेन पाय॥"

चै. च. अं. १२.५२

स्वयं भगवान् श्रीगौर गोविन्दने नीलाचलपर बैठकर शिवानन्द सेनपर आज जिस रूपमें कृपा की, वैसी कृपा वे ब्रह्मादि देवताओंके प्रति भी नहीं करते। चार मास तक सपरिवार नीलाचल धाममें बैठकर शिवानन्द सेनने प्रभुका अधरामृत प्रसाद पाया। शिवानन्दके ऊपर प्रभुकी यह अपरचित और अपूर्व कृपा-दृष्टि देखकर भक्तगण चकित हो गये। सब लोग उनको धन्य-धन्य कहने लगे। केवल भक्तोंकी सेवा करके शिवानन्द सेनने प्रभुकी यह अनर्पित कृपाप्राप्तिका सौभाग्य प्राप्त किया।

नवद्वीपका पड़ोसी भक्त परमेश्वर मोदक

इस वर्ष नवद्वीपसे प्रभुके परमेश्वर मोदक नामक एक पड़ोसी प्रभुको देखने आये। नवद्वीपमें प्रभुके श्रीमन्दिरके निकट उनका घर, और मिष्ठान्नकी एक दूकान थी। शैशवसे ही प्रभुके प्रति उसका बड़ा स्नेह था। परमेश्वरकी मिष्ठान्नकी दूकानके मोदक, दुग्ध खण्ड प्रभुने शैशवमें अनेक बार खाये थे। प्रभुको देखते ही परमेश्वर परम आदरपूर्वक गोदमें लेकर उनके हाथमें उत्तम-उत्तम मिष्टान्न देते थे। शैशवमें प्रभु उनके घर जाकर नाना प्रकारका उपद्रव करते रहते थे।

प्रभुके ऊपर परमेश्वर और उनकी भक्तिमती पत्नीका बड़ा स्नेह था। इस वर्ष परमेश्वर सपरिवार प्रभुका दर्शन करने नीलाचल आये। उनके पुत्रका नाम मुकुन्द था। वे लोग अब वृद्ध हो गये थे, उनकी गृहिणी भी प्रभुको अपने पुत्रसे अधिक मानती थी, स्नेह करती थी।

परमेश्वरने आकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते कहा, "हे प्रभु! मैं तुम्हारा वही परमेश्वर हूँ, मैं आ गया हूँ।" प्रभु परमेश्वरको देखकर परम आनन्दित होकर बोले, "परमेश्वर! तुम अच्छे तो हो? तुम आये, अच्छा हुआ, तुम्हें देखकर मेरे मनमें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।"

परमेश्वर प्रभुके श्रीमुखकी मधुरवाणी सुनकर आनन्दसे गद्गद होकर बोला—"हे प्रभु! मुकुन्दकी माँ भी आयी है।" स्त्रीकी बात सुनकर प्रभु कुछ संकुचित हुए। परमेश्वर सपरिवार प्रभुके दर्शनके लिए आया है, उसकी स्त्री भयसे दूर ही खड़ी है। प्रभुने संन्यास ग्रहण किया है, वे स्त्रीका मुख नहीं देखते। स्त्रीका नाम तक कानसे नहीं सुनते, सरल चित्त निरीह वात्सल्य-रसके भक्त परमेश्वरको यह ज्ञान नहीं है। वे निःसङ्कोच सपरिवार प्रभुका दर्शन करने गये हैं। प्रभुको कुछ सङ्कोच तो हुआ, परन्तु परमेश्वरको कुछ नहीं कहा। उसकी सरल प्रकृति देखकर प्रभु मन ही मन बहुत सन्तुष्ट हुए।

परमेश्वर प्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके वासापर चला गया। भक्तगणने जाते समय उसको मना

किया कि अब सपरिवार प्रभुके दर्शनके लिए न आना। परमेश्वर इस बातका मर्म न समझकर विस्मित होकर उनके मुँहकी ओर ताकता रह गया, कोई बात न बोला।

भक्तगणका चातुर्मास वास और तत्पश्चात् विदाई

प्रभु भक्तगणके साथ पूर्ववत् आनन्द करते रहे। गुण्डिचा-मार्जन, रथके आगे नर्तन, नरेन्द्र सरोवरमें जलकेलि आदि सब लीलाएँ की। वैष्णव गृहिणी गण आयी हैं, वे प्रभुके लिए देशसे उत्तम-उत्तम भोज्य वस्तुएँ लायी हैं, एक-एक दिन, एक-एक भक्तके घर प्रभु भिक्षाके लिए आमन्त्रित हुए। श्रीवास गृहिणी मालिनी देवी, चन्द्रशेखर आचार्यकी गृहणी सर्वजया देवी आदि भक्तिमती वैष्णव गृहिणीगणने अपने हाथ रसोई बनाकर प्रभुको भिक्षा कराया।

नदियाके भक्तगणने पूर्ववत् नीलाचलमें चातुर्मास्य किया। आश्विन मासमें महाप्रभुने भक्तगणको घर जानेकी आज्ञा दी। भक्तगण रोकर व्याकुल हो उठे। सबने मिलकर प्रभुको आमन्त्रित किया। उनके चरण पकड़कर अपने मनके दुःख कह सुनाये। भक्तवत्सल प्रभु भी भक्तोंके साथ प्रेमानन्दमें रोने लगे। उस स्थानमें करुण रसका तरङ्ग उठा। भक्तगणके क्रन्दनसे कृपानिधि प्रभुका कोमल हृदय एकवारगी द्रवीभूत हो गया भक्तगण भी रोते रहे, प्रभु भी रोते रहे, इस प्रकार बहुत समय बीत गया। पश्चात् प्रभुने आत्म संवरण करके अति मधुर स्वरमें गद्गद वचनसे भक्तोंको सम्वोधन करके कहा—"तुम लोग सब प्रतिवर्ष मुझसे मिलने आते हो। आने-जानेमें बहुत कष्ट होता है, इसको देखते मैं तुम लोगोंको निषेध करना चाहता हूँ। लेकिन तुम्हारे सङ्गके सुखका लोभ छोड़ते भी नहीं बनता। नित्यानन्दको मैंने गौड़में रहनेको कहा था, लेकिन उनने प्रीतिके कारण मेरीं बात नहीं मानी। अद्वैताचार्य मेरे ऊपर कृपा करके आते हैं, उनके प्रेमऋणसे मैं उऋण नहीं हो सकता। मेरे लिए सब लोग घर-द्वार छोड़कर आते हैं, दुर्गम पथसे यात्रा करनी पड़ती है। मैं तो यही नीलाचलमें आरामसे बैठा रहता हूँ, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। मैं संन्यासी हूँ, मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, किस प्रकार तुम लोगोंके ऋणका शोधन करूँ, समझमें नहीं आता।"

प्रेममय प्रभुके श्रीमुखसे अमृत वर्षा हो रही है, उनके अपूर्व प्रेमभावमें और प्रत्येक बातमें भक्तवृन्दका हृदय परमानन्द-रसमें सरावोर हो रहा है उस आनन्दका वर्णन वाणीके द्वारा नहीं हो सकता। मानो भक्तगणके हृदय-सिन्धुको मन्थन करके प्रभुने अमृत निकाला है। देवताओने समुद्रको मन्थन करके जो अमृत निकाला था, उस अमृतकी तुलना इस भक्तहृदय सिन्धु-मथित प्रेमानन्द रूप अमृतके साथ नहीं हो सकती प्रभुके श्रीमुखसे निकली एक-एक बात एक-एक अमृत-कलस है। भक्तवत्सल प्रभुने भक्तवृन्दको सुखी करनेके लिए अपने हृदयके करुण-रसका भण्डार सदाके लिए एकवारगी खोल दिया है।

वहाँ सभी हैं, श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं, श्रीअद्वैत प्रभु हैं, और नदियाके सब भक्तगण हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवदन अवनत करके अजस्र आँसू बहा रहे हैं, उनके नयन-जलसे प्रेमनदी बह रही है। श्रीअद्वैत प्रभु जड़वत् स्थिर होकर स्थावरके समान खड़े हैं। उनकी आँखोंमें आँसू नहीं है। नयनद्वय मधुमत्त-भृङ्गके समान प्रभुके चरणकमलमें मानो लिप्त हो गये हैं। श्रीवास पण्डित दुःखित मनसे एक वगलमें कपोल देशमें वाम हस्त न्यस्त करके बैठे हैं, उनके नयन-द्वयसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। अन्यान्य भक्तगण प्रभुके श्रीवदनकी ओर एक टक देख रहे हैं।

प्रभुके श्रीमुखकी मधुमय कथा अभी समाप्त नहीं हुई है। सबके अन्तमें एक-एक करके सबके

गलेमें श्रीहस्त धारण करके रोते-रोते प्रभु बोले—

देह मात्र धन आमार कैल समर्पण।
ताँहाइ बिकाइ जाहाँ वेचिते तोमार मन॥
चै. च. अं. १२.७३

अर्थात् प्रभुने कहा—"हे भक्तगण ! तुम लोग मेरे जीवन सर्वस्व धन हो। मैं भिखारी संन्यासी हूँ। मेरे पास कुछ भी नहीं है, जिसे देकर तुम्हारे इस प्रेम ऋणका शोधन करूँ ? मेरा एकमात्र धन मेरी यह क्षण भंगुर देहयष्टि है, इसे मैं तुम्हारे हाथोंमें स्वेच्छासे समर्पण करता हूँ इसको लेकर तुम लोग चाहो सो कर सकते हो" यह बात कहते-कहते मानो प्रभुका कोमल हृदय शतधा विदीर्ण हो गया। वे प्रेमावेगसे आकुल होकर रो पड़े। रोते-रोते आँखोंके जलसे वक्षःस्थल प्रवाहित करते हुए वे एक-एक करके सबको प्रेमालिङ्गन दानकर कृतार्थ करने लगे।

प्रभु सवार गला धरि करेन रोदन।
काँदिते काँदिते सभाय कैल आलिङ्गन॥
चै. च. अं. १२.७५

प्रभुने इस प्रकार नदियाके भक्तगणको उस वर्ष विदा किया। परन्तु भक्तगणमें कोई भी प्रभुको छोड़कर उस दिन जा न सका। उनका मन नितान्त अस्थिर हो गया, प्राण व्याकुल हो गये। वे लोग और भी पाँच सात दिन नीलाचलमें रह गये। इन पाँच-सात दिनों वे लोग रात-दिन अजस्र आँसू बहाते रहे।

इसके बाद एक दिन श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैत प्रभुने श्रीगौर भगवान्के चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु ! करुणानिधे ! तुम्हारे गुणोंसे सहज ही सारे जगत्के लोग मोहित हैं। तुम्हारे चरणोंमें वे आकृष्ट हैं, उनके ऊपर अपनी इस प्रकारकी मधुसे भी मधुर कृपा-वचन-सुधाकी वृष्टि द्वारा तुम उनको परिपुष्ट करते हो। कृपा वचनकी डोरसे अपने अज-भव-वन्दित, कमला सेवित चरण-कमलमें उनको दृढ़से दृढ़तर बन्धनमें डालते हो, उनकी क्या मजाल जो तुमको छोड़कर कहीं जाँय ?"

दयामय प्रभु यह सुनकर कुछ देर चुप रहे, मानो कुछ सोचने लगे थे। तत्पश्चात् मधुर वचनसे सबको परितोष देकर विदा किया। सबके अन्तमें उन्होंने श्रीनिताई चाँदके दोनों हाथ पकड़कर एकान्तमें ले जाकर कहा—"श्रीपाद ! तुम अब इतना कष्ट उठाकर नीलाचल बारम्बार मत आओ। वहाँ ही तुमको मेरा सङ्ग प्राप्त होगा।" श्रीनिताई चाँद प्रभुके श्रीवदनकी ओर देखते रह गये, कोई बात बोल न सके। उनके कमल-नयनसे झर-झर प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित होकर भूतलको सिक्त करने लगी। प्रभुने उनको गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर विदा किया।

उच्च स्वरसे क्रन्दन करते हुए नदियाके भक्तवृन्द अपने घर चले। प्रभु भक्तगणको विदा करके विषण्ण मनसे अपने बासापर बैठकर माला जप करने लगे। उस दिन प्रभुने और किसीके साथ बातालाप नहीं किया। प्रभुके तात्कालिक मनोभावको पदकर्त्ता वासुदेव घोषने एक पदमें परिस्फुट किया है। यथा, पदांश—

"कि करिलाम काज, संन्यासे पड़ुक वाज,
मोर बड़ हृदय पाषाण।
ना रहिब नीलाचले, थाकिव भकत कोले,
इहा बलि हरल ज्ञेयान॥"

प्रभुको संन्यास ग्रहण किये छः सात वर्ष हो गये। इस समय उनकी अवस्था पूरी तीस वर्षकी है। उनकी अपूर्व रूपराशि फूटकर बाहर निकल रही है, वे रूपके महासागर हैं। उनके गुणोंका वर्णन करके पार नहीं पाया जा सकता। इतना

रूप, इतना गुण मनुष्यमें नही हो सकता। श्रीभगवान् जब नर रूप धारण करते हैं, तब वे रूपका महासागर लेकर आते हैं। सर्व-चित्ताकर्षक रूप-गुण हुए विना सब जीवोंका मन कैसे हरेंगे ? अतएव वे सर्वचित्ताकर्षक रूप गुण लेकर भूतलमें अवतीर्ण होते हैं। वे सर्वगुण निधि हैं। नवद्वीपका दरिद्र ब्राह्मण बालक पवित्र विप्रकुलमें अवतीर्ण होकर आलोक-सामान्य रूप-गुणसे विभूषित था। उनका अपूर्व संन्यास रूप भी परम शोभनीय और मनोमुग्धकारी था। सब बहिरङ्ग लोग इस संन्यास रूपमें आकृष्ट होते थे। जिसने उनकी नव नटवर, नदिया नागर, रसराज-श्रीमूर्ति दर्शन नहीं की, उनको प्रभुकी अपूर्व संन्यास मूर्त्ति ही परम रमणीय जान पड़ती थी। परन्तु उनके अन्तरङ्ग भक्तवृन्दको यह संन्यास रूप शूलके समान चुभता था। प्रभुका श्रीकृष्ण चैतन्य नाम तक मुँहमें लानेमें उन्हें कष्ट बोध होता था, नाम और नामी अभेद हैं, प्रभुका संन्यास नाम लेते ही उनका मुण्डित मस्तक, कौपीन परिधान, संन्यास मूर्त्ति याद आ जाती है, और आँखोंके ऊपर तैरने लगती है, नवद्वीप-रस-रसिक भक्तोंके लिए यह असह्य है। जो जिस रसका रसिक है, उसे उसी रसकी श्रीमूर्त्ति परम आनन्द दायक और ध्येय होती है। भगवदुपासना अपने-अपने भावके अनुसार होती है, और हमारे गौराङ्ग सुन्दर भावग्राही हैं। जिसका जो भाव होता है, उसके लिए वही सर्वोत्तम है। यही शास्त्र कहते हैं।

उनचालीसवाँ अध्याय

नीलाचलमें प्रभु और श्रीरूप गोस्वामी

कालेन वृन्दावनकेलिवार्त्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य।
कृपामृतेनाभिषिषेच देव-
स्तत्रैव रूपञ्च सनातनञ्च॥
(श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक ९.३७)

श्रीरूपकी नीलाचल-यात्रा और नाटक लेखनका सूत्रपात

नदियाके भक्तोंके नीलाचलमें रहते समय श्रीरूप प्रभुका दर्शन करनेके लिए श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आये थे। प्रभुके आदेशसे वे प्रयागसे श्रीवृन्दावन गये थे। उनके साथ उनके भाई अनुपम भी गये थे। श्रीवृन्दावन जानेपर श्रीरूपको कृष्ण-लीलाका नाटक लिखनेका मन हुआ। श्रीयमुनाके तीर वृक्षके नीचे बैठकर उन्होंने कृष्ण-लीला नाटककी प्रस्तावना शुरु की। श्रीग्रन्थका मङ्गलाचरण और नान्दी श्लोक उन्होंने श्रीवृन्दावनमें बैठकर लिखा था।

गुरुदेवद्विजालीनां स्तुतिर्यत्र प्रवर्तते।
आशीर्वचनसंयुक्ता सा नान्दी परिकीर्तिता॥

श्रीरूप और उनके भ्राता अनुपम दोनों श्रीवृन्दावनसे गौड़ देशकी ओर चले। रास्तेमें श्रीरूप

अपने कृष्ण-लीला नाटककी बात सोचते आ रहे थे, और कुछ-कुछ करचा लिखते जा रहे थे। यहाँ ही ललित माधव और विदग्ध माधव नाटकका सूत्रपात हुआ।

गौड़ देशमें आनेपर अनुपमको अकस्मात् गङ्गालाभ हो गया। इस कारण श्रीरूपको प्रभुदर्शनके लिए नीलाचल आनेमें कुछ बिलम्ब हो गया। नदियाके भक्तगणके साथ वे न जा सके। पश्चात् वे श्रीक्षेत्रमें आकर प्रभुसे मिले, और दस महीनेतक उनके साथ रहे। श्रीरूप जिस समय अपने कृष्ण-लीला नाटकके विषयमें सोचते हुए श्रीक्षेत्रके मार्गमें जा रहे थे, उस समय रास्तेमें उड़ीसा देशमें सत्यभामापुर नामक एक गाँवमें वे एक रात रह गये। रातमें उन्होंने स्वप्न देखा कि श्रीमती सत्यभामाजी उनके सिरहाने बैठकर कह रही है—

आमार नाटक पृथक् करह रचन।
आमार कृपा ते नाटक हबे विचक्षण॥

चै. च. अं. १.३७

श्रीरूपकी नींद टूट गयी। वह शय्यापर बैठकर प्रेमानन्दमें अजस्र आँसू बहाने लगे, और मन-ही-मन सोचने लगे—"मैंने व्रजलीला और पुरलीला अर्थात् द्वारकालीला एकत्र वर्णन करनेका संकल्प किया है सो ठीक नहीं हैं। अब दो पृथक् ग्रन्थ लिखूँगा।" यह हुआ दो पृथक् नाटक लिखनेका सूत्र—पात।

श्रीरूपने अपने इस स्वप्नकी बात मनमें ही रक्खी। अपने प्रति सत्यभामा देवीकी अपार कृपा स्मरण करके वे प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े।

नीलाचलमें श्रीरूप हरिदास ठाकुरकी कुटियापर

वे नीलाचलमें आकर सर्वप्रथम हरिदास ठाकुरकी कुटीके द्वारपर आ उपस्थित हुए। हरिदास ठाकुर अब अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। प्रभुने उनको अपने वासाके पास स्थान दिया था। प्रतिदिन समुद्र स्नान जानेके समय वे हरिदास ठाकुरकी कुटियापर एक बार जाते थे, उनके साथ कृष्ण-कथा होती थी। गोविन्द प्रतिदिन प्रसाद ले जाकर हरिदास ठाकुरको भिक्षा कराते थे। ठाकुर हरिदासके प्रति महाप्रभुकी असीम कृपा थी।

श्रीरूप हरिदास ठाकुरसे पूर्व परिचित थे। हरिदास ठाकुर जैसा अपनेको जाति-भ्रष्ट, नीच और हीन समझते थे, वे भी अपनेको उसी प्रकार नीच, यवनसङ्ग दूषित समझकर और कहीं न जाकर सर्व प्रथम हरिदास ठाकुरकी कुटियापर जाकर उनको दण्डवत् प्रणाम करके बैठे। श्रीरूपको पाकर हरिदास ठाकुरको मानो आकाशका चाँद हाथ लग गया। वे अपना जपका आसन छोड़कर उठे और उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध करके प्रेमानन्दमें आकुल होकर रो पड़े। दोनों आदमी प्रेममें गद्गद होकर एक दूसरेका गला जकड़कर अजस्र रुदन करने लगे। दोनोंके अङ्ग दोनोंके नयन-जलसे सिञ्चित हो गये।

कुछ देरके बाद सुस्थिर होकर हरिदास ठाकुरने अति दीन भावसे कहा—"महाभाग! आप नीलाचल आवेंगे, प्रभुने यह मुझको पहले ही बतला दिया था। वे भी आपका आशापथ देख रहे हैं।" श्रीरूपका मन प्रभुके चरणोंके दर्शनके लिए विशेष उत्कण्ठित देखकर हरिदास ठाकुरने फिर कहा—"प्रभु अभी यहाँ मुझको अपनी चरण-धूलि देनेके लिए शुभागमन करेंगे।"

और दिन तो प्रभु समुद्र जानेके समय आते थे, आज वे श्रीजगन्नाथजीका उपल-भोग देखकर ही अचानक असमय ही हरिदासकी कुटियापर आकर उपस्थित हो गये। अन्तर्यामी प्रभु हमारे भक्तके भगवान् हैं। श्रीरूपको देखनेके लिए वे आज असमय ही जैसे आकर उपस्थित हो गये, वैसे ही

श्रीरूप महाआर्त्त भावसे लम्बायमान होकर प्रभुके चरणोंमें लोट गये। हरिदास ठाकुर प्रेमानन्दमें रोते हुए प्रभुसे बोले, "हे प्रभु! तुम्हारे रूप तुमको दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं।" भक्तवत्सल प्रभुने हरिदास ठाकुरको पहले प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करके श्रीरूपको अपने श्रीहस्तसे उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध कर लिया। भक्त भगवान्‌के इस अपूर्व प्रेम-मिलनमें वहाँ प्रेमानन्दका स्रोत बह गया, प्रेमका तरङ्ग उठा। दोनों ही प्रेमावेगमें वेसुध हो गये। कुछ देरके बाद आत्म-संवरण करके प्रभुने आसन ग्रहण किया, तथा हरिदास ठाकुर और श्रीरूपको आदरपूर्वक अपने दोनों ओर बैठाया।

प्रभुने कुशलवार्त्ता और श्रीसनातनका समाचार पूछा। श्रीरूप बोले, "हे प्रभु! उनके साथ मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ। मैं एकान्त गङ्गापथसे आ रहा हूँ, और वे राजमार्गसे गये हैं, इसी कारण भेंट होनेकी संभावना नही थी। प्रयागमें आकर सुना कि वे श्रीवृन्दावन गये हैं। अनुपमको गङ्गा लाभ हो गया है।"

अनुपमके देहत्यागकी बात सुनकर प्रभु दुःखित हुए। श्रीरूप और हरिदास ठाकुरके साथ इष्ट गोष्ठी करके प्रभु प्रेमानन्दमें नृत्य कीर्तन करते हुए अपने वासापर चले गये।

दूसरे दिन प्रभुने नदिया और नीलाचलके सब भक्तोंके साथ श्रीरूपका परिचय करा दिया। एक-एक छोटे-बड़े सब भक्तोंको श्रीरूपने दीनातिदीन भावसे दण्डवत् प्रणाम किया और उन सबोंने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैत प्रभुको श्रीगौर-भगवान्‌ने विशेष रूपसे हाथ पकड़कर कहा, "आप लोग मेरे रूपपर सर्वान्तःकरणसे कृपा करेंगे। आप लोग भक्तिके भण्डारी हैं। आप दोनोंकी कृपा होनेपर इनको श्रीकृष्णलीला-रसमाधुरी तथा कृष्णभक्ति वर्णन करनेकी शक्ति प्राप्त होगी।" दोनों प्रभुओंने मुस्कराकर श्रीरूपके प्रति कृपादृष्टि की। श्रीरूप इस प्रकार प्रभुके सब भक्तोंके परम स्नेह और कृपाके पात्र हो गये।

हरिदास ठाकुर और श्रीरूप एकत्र एक वासापर रहते हैं। प्रतिदिन प्रभु आकर उनको दर्शन देते हैं। केवल दर्शन देकर ही भक्तवत्सल प्रभु शान्त नहीं रहते, श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरसे वे जो प्रसाद पाते हैं, वहिर्वासमें बाँधकर ले आकर दोनोंको बाँट देते हैं।

ऐसे भक्तवत्सल प्रभु, ऐसे दयामय प्रभु कहीं किसीने देखा है? प्रभुके इसी गुणसे भक्तगण आज भी उनका नाम लेकर रो मरते हैं, और सदा रोते रहेंगे। श्रीगौराङ्ग प्रभु भक्तके भगवान्, भक्तके धन तथा भक्तके प्राण हैं। वे स्वयं आचरण करके भक्त-महिमासूचक सारे भागवतीय वाक्यको सफल कर गये हैं। भक्ति और भक्त-महिमारूचक सब वस्तुओंका स्वयं आचरण करके वे शिक्षा दे गये हैं, इसी कारण महाजनगण उनको शिक्षागुरु भगवान् कहते हैं।

नीलाचलमें आकर श्रीरूप प्रेमानन्दमें है। अपने प्रति प्रभुकी अपार कृपा देखकर उनके मनमें असीम आनन्द है। वे प्रसाद पाते हैं, भक्तसङ्ग करते हैं, तथा दिनमें अनेक बार प्रभुका दर्शन करते हैं। हरिदास ठाकुर नीचजातिके कारण श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने नहीं जाते, प्रभु यह जानते हैं, इसी कारण सचल जगन्नाथ हमारे प्रभु नित्य उनकी कुटीपर जाकर उनको दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं।

श्रीरूपने भी नीलाचलमें आकर हरिदास ठाकुरके द्वारा आचरित पथका अवलम्बन किया है, वे भी अपनेको अस्पृश्य समझकर श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरमें नहीं जाते। श्रीसनातनने भी नीलाचलमें आकर इसी पथका अवलम्बन किया था। प्रभु

यह भी जानते हैं, इसी कारण वे श्रीरूपको दर्शन देनेके लिए भी हरिदास ठाकुरकी कुटीपर बारंबार नित्य उदय होते हैं। हरिदास ठाकुर और श्रीरूप इस प्रकार प्रभुकी अपार कृपा प्राप्तकर परमानन्दमें रहते हैं। दोनों प्रेमानन्दमें दिन-रात नाम-कीर्तन करते हैं, और प्रभुका अधरामृत प्रसाद पाते हैं।

एक दिन अचानक सर्वज्ञ प्रभुने श्रीरूपसे कहा—

कृष्णके वाहिर नाहि करिह व्रज हैते।
व्रज छाड़ि कृष्ण कभू ना जाय काँहाते॥*

चै. च. अं. १.६१

इतनी बात कहकर प्रभु उठकर मध्याह्न कृत्य करनेके लिए चले गये। श्रीरूप गोस्वामी प्रभुकी बात सुनकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। वे सोचने लगे—"सत्यभामाजीने भी पृथक नाटक करनेकी आज्ञा दी और अब प्रभुकी भी ऐसी ही आज्ञा है। पहिले एक ही नाटक रचनाका बिचार था, अब उसके दो भाग करके घटनाक्रमका वर्णन करना होगा। दोनोंकी नान्दी प्रस्तावना भी पृथक्-पृथक् होगी।"

भगवत्प्रेरणाके पूर्व सत्यभामा देवीने श्रीरूप-गोस्वामीको जो स्वप्नादेश दिया था, स्वयं भगवान्ने अब यही बात संकेतसे कही है। बुद्धिमान् और सुचतुर भक्तचूड़ामणि श्रीरूपने श्रीगौर-भगवान्का संकेत समझकर कार्य किया। उन्होंने दोनों नाटकोंको पूर्णतः पृथक् कर दिया।

---

* कृष्णोऽन्यो यदुसम्भूतो यः पूर्णः सोऽस्यतः परः।
वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति॥

लघु भागवतम् १.७४०

रथयात्राके समय श्रीरूप द्वारा प्रभुके भावानुकूल श्लोककी रचना

रथ-यात्राका दिन आया। प्रभुने रथके आगे यथारीति मधुर-नृत्य-कीर्तन किया। नृत्य करते-करते प्रेमावेशमें श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके श्रीवदनकी ओर देखकर यह श्लोक पढ़ा—

यः कौमारहरः स एव हि वर-
स्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः
प्रौढा कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-
व्यापारलीलाविधौ-
रेवारोधसि वेतसीतरुतले
चेतः समुत्कण्ठचते॥

चै. च. म. १.६, अं. १.७

अर्थ—कोई रसवती स्त्री अपनी सखीको सम्बोधन करके कह रही है, "हे सखि! जिसने रेवा तटपर वेतसी तरुके मूलमें मेरे कौमार्यको हरण करके अपूर्व रसास्वादन प्रदान किया था, अब उनको ही मैंने पति रूपमें प्राप्त किया है। हे सखि! मधु-यामिनीमें उनके साथ मेरा प्रथम मधु-मिलन हुआ था, इस समय वही मधु-यामिनी है। उस समय भी प्रस्फुटित मालती पुष्पके सौरभसे चतुर्दिक आमोदित हुआ था, उस समय भी कदम्ब-कुसुम गन्धवाही मृदुमन्द मलय-पवन बहता था, इस समय भी सब कुछ वैसा ही है, परन्तु फिर भी मेरा हृदय रेवातटके उसी बेतसी तरुके तले सुरत-व्यापारके लिए व्याकुल हो रहा है। हे सखि! वह वही है, और मैं वही हूँ। हम दोनों उसी प्रकार मिलते हैं, परन्तु वह निभृत गुप्त मिलनका सुख इस समय मैं नहीं पा रही हूँ।"

यह श्लोक साधारण नायिकाकी उक्ति है। यह काव्यप्रकाश ग्रन्थमें एवं साहित्य दर्पणमें दृष्ट होता

है। यह भक्ति-ग्रन्थका श्लोक नहीं है, परन्तु इसका भाव अति निगूढ़ प्रेमभक्ति-रस-रहस्यपूर्ण है। प्रभु रथके आगे नृत्य कर रहे हैं, भगवत्प्रेममें वे उन्मत्त हैं, ऐसे समयमें एक साधारण रसिका नायिकाकी उक्तिका यह श्लोक उन्होंने क्यों पढ़ा, यह बात भक्तवृन्दमेंसे किसीकी समझमें नहीं आयी। स्वरूप दामोदर रसिक और रसज्ञ भक्त थे। वे प्रभुके अन्तःकरणको जानते थे। उन्होंने ही केवल इस श्लोकका मर्म समझा तथा प्रभुके भावके अनुसार गीत गाया।

सेइत पराणनाथ पाइनु।
जाहा लागि मदन-दहने झुरि गेनु॥

चै. च. म. १.५०

श्रीरूप प्रभुके श्रीमुखसे साधारण नायिकाकी उक्तिका यह श्लोक सुनकर अन्यमनस्क हो गये। वहाँ खड़े होकर कुछ सोचने लगे। प्रभुकी कृपासे वहाँ ही उनको यह श्लोकार्थ-बोध हुआ। वे घर आकर तालपत्रपर इस श्लोकके अनुरूप दूसरा श्लोक लिखकर घरके छतमें रखकर स्नान करने चले गये। रथके आगे नृत्य करके जब प्रभु घर गये तो वे हरिदास ठाकुरकी कुटी होकर गये। उस समय वहाँ श्रीरूप उपस्थित न थे। प्रभु आसनपर बैठकर ऊपरकी ओर ताकते ही छतमें घुसाये तालपत्रके ऊपर उनकी दृष्टि गयी। उन्होंने अपने हाथों उसे निकालकर पढ़ा तो उसमें निम्नलिखित श्लोक लिखा हुआ मिला—

प्रियं सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्र मिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥

चै. च. म. १.७; अं. १.८

अर्थ—श्रीराधिका अपनी सखी ललितासे कह रही हैं, "हे सखि! आज कुरुक्षेत्रमें अपने उस प्राण-वल्लभ कृष्णके सङ्गका सुख प्राप्त किया। परन्तु मुझको उससे तृप्ति नहीं मिली। वे वही श्रीकृष्ण हैं, और मैं वही राधिका हूँ, संग-सुखमें भी कोई तारतम्य नहीं था। किन्तु यमुना-पुलिनपर वनमें मधुर-मुरलीके स्वरसे चित्तमें उन्मत्त होकर कृष्ण-सङ्गम सुखके अपूर्व माधुर्यका जो अनुभव हुआ, यहाँ वैसा कुछ बोध नहीं हो रहा है। री सखि! मेरा मन उसी मधुर-मुरलीके पञ्चम स्वरमें मोहित होकर श्रीवृन्दावनके लिए व्याकुल हो रहा है।

श्रीरूपने स्नान करके आकर देखा कि महाप्रभु अतिशय निविष्ट चित्तसे उस श्लोकको पढ़ रहे हैं। उनके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो रहा है। कमलनयनद्वय प्रेमाश्रुभारसे कातर जान पड़ते हैं, वे एकान्त भावमें बैठकर श्लोक पढ़ रहे हैं। श्रीरूप निजकृत श्लोक प्रभुको पाठ करते देखकर लज्जित-भावसे उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करने लगे, उसी समय प्रभुने प्रेमानन्दमें अधीर होकर उनकी पीठपर थपेड़ा देकर कहा—"मेरे 'यः कौमारहर..........'श्लोकके उच्चारण करनेके अभिप्रायःको कोई भी नहीं जानता। तुमने कैसे जान लिया।"

इतना कहकर प्रभुने आजानुलम्बित दोनों भुजाएँ फैलाकर श्रीरूपको अपने वक्षःस्थलमें धारण करके प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। श्रीरूप प्रभुके श्रीअङ्ग-स्पर्शके आनन्दमें प्रेमावेगमें वहाँ ही मूर्च्छित हो गिर पड़े। वे आनन्द स्वरूप हो गये।

उनपर इस प्रकार कृपा करके प्रभु अपने निवासपर आकर स्वरूप गोसाईंको श्लोक दिखाकर विस्मित-से होकर बोले, "स्वरूप! मेरे मनकी बात रूपने कैसे जानी?" स्वरूप गोसाईंने हँसकर उत्तर दिया—"श्रीरूप गोस्वामी तुम्हारे मनोगत भावको जान सके, इसीसे समझा जा सकता है कि वे तुम्हारे कृपापात्र हैं।"

प्रभु हँसकर बोले—"स्वरूप ! रूप योग्य पात्र है। मैंने उसको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर उसमें शक्ति-सञ्चार किया है। तुम उसको रस-शास्त्रके सम्बन्धमें निगूढ़ बातोंका उपदेश दो।" स्वरूप बोले, "प्रभु ! रूपके श्लोकको देखकर ही मैंने जान लिया है कि तुमने शक्ति-सञ्चार करके उसके ऊपर कृपा की है। तुम्हारी इस अपार कृपाके बलसे श्रीरूप कलिग्रस्त जीवोंके हृदयमें व्रज-लीलारसका तरङ्ग उठायँगे, व्रजमें राधा-कृष्णकी नित्य-लीला प्रकटित होगी।" स्वरूप गोसाईंकी बात सुनकर प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

रथयात्राका उत्सव समाप्त हो गया है। चातुर्मास्य करके गौड़ीय वैष्णवोंने गौड़देशकी यात्रा की। श्रीरूप नीलाचलमें प्रभुके पास रह गये।

श्रीरूप द्वारा रचित नाटकका प्रभु द्वारा अवलोकन एवं प्रचार

हरिदास ठाकुरके वासापर बैठकर श्रीरूप एक दिन नाटक लिख रहे थे। हरिदास ठाकुर माला जप कर रहे थे। उसी समय अचानक प्रभु वहाँ आ उपस्थित हुए। दोनों आदमियोंने झट-पट उठकर प्रभुके श्रीचरण-कमलकी वन्दना करके बैठनेके लिए आसन दिया। भक्तवत्सल प्रभुने दोनोंको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करते हुए आसन ग्रहण करके श्रीरूपकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देखकर हँसते हुए कहा, "रूप ! तुम कौनसी पुस्तक लिख रहे हो, देखूँ ?" इतना कहकर अपने श्रीहस्तद्वारा पुस्तकका एक पन्ना लेकर देखने लगे।

श्रीरूपके हस्तलिखित अक्षर मानो मुक्ताकी पंक्ति है। प्रभु पहले उनकी सुन्दर लिपिकी प्रशंसा करने लगे। पश्चात् उस तालपत्रपर लिखे एक श्लोकको पढ़कर प्रेमाविष्ट हो गये। वह अपूर्व श्लोक 'विदग्ध-माधव नाटकके प्रथम अङ्कका १५ वाँ श्लोक है, श्लोक इस प्रकार है—

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्
चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ॥

नान्दीमुखीको पौर्णमासी कहती है, "हे वत्से ! नहीं जानती, 'कृष्ण' ये दो वर्ण किस प्रकारके अमृतसे उत्पन्न हुए हैं। ये दो वर्ण जब जिह्वाग्र पर नृत्य करते हैं तो बहुत-सी जिह्वा-प्राप्तिकी अभिलाषा होती है, श्रवण-विवरमें अङ्कुरित होने पर अर्वुद संख्यक कर्ण-प्राप्तिकी अभिलाषा होती है, तथा मनोरूप प्राङ्गणमें प्रविष्ट होने पर सारे इन्द्रिय व्यापार इसके सामने पराभूत हो जाते हैं।

हरिदास ठाकुर यह श्लोक श्रीमहाप्रभुके मुखसे सुनकर प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर श्लोककी प्रशंसा करके नृत्य करने लगे। श्रीरूप-लज्जावनत मुखसे हाथ जोड़े बगलमें खड़े हैं। प्रभु आत्म संवरण करके आसनसे उठे। उठकर पहले श्रीरूपको, पश्चात् हरिदास ठाकुरको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए समुद्र स्नानके लिए चले।

प्रभु जानते थे कि श्रीरूपने कृष्ण लीला नाटक लिखना प्रारम्भ किया है। अब उन्होंने देखा कि श्रीरूपने अपना नाटक प्रायः सम्पूर्ण कर दिया है। श्रीगौर भगवान् भक्त-महिमा-कीर्तन कर पावें तो उनको और कुछ इच्छा नहीं होती। भक्तका गुण गाकर उनके मनमें जो आनन्द होता है, वैसा आनन्द और किसी प्रकार नहीं होता। श्रीभगवान्का गुण गाकर भक्तके मनमें जो आनन्द होता है, उससे कहीं अधिक आनन्द और सुख होता है भक्तका गुण गाकर श्रीभगवान्को।

प्रभुके नीलाचलके प्रधान भक्त थे राय रामानन्द और सार्वभौम भट्टाचार्य। वे लोग भक्तिशास्त्रज्ञ, रसज्ञ और सरस्वतीके कृपापात्र थे। इच्छामय प्रभुकी इच्छा हुई कि श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा

रचित कृष्ण-लीला नाटक इनको दिखलावें, रूपके साथ इनका विशेष परिचय करा दें, इनके निकट श्रीरूपका गुण गावें। यह सोचकर एक दिन प्रभु श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके सार्वभौम भट्टाचार्य, राय रामानन्द आदि नीलाचलके भक्तोंको साथ लेकर हरिदास ठाकुरकी कुटिया पर आकर उपस्थित हुए। स्वरूप दामोदरको भी साथ ले लिया। रास्तेमें आते समय प्रभुने श्रीरूपका गुण गाना प्रारम्भ किया। भक्तवत्सल प्रभुने श्रीरूप-रचित दो श्लोककी व्याख्या करके परम आनन्द प्राप्त किया। भक्तका गुण गानेके लिए वह पञ्चमुख हो गये।

राय रामानन्द भी नाटकके आचार्य थे, सार्वभौम भट्टाचार्य तो सब विद्यामें पारदर्शी परम पण्डित थे। उनकी परीक्षा करनेके लिए भक्त चूड़ामणि प्रभु उनको श्रीरूपके पास ले चले, और दोनोंके सम्मुख श्रीरूपकी शत मुखसे प्रशंसा करने लगे। श्रीगौर भगवान्‌ने अपने भक्तोंकी अशेष-विशेष परीक्षा करके तब कृपा सञ्चार की है।

प्रभु भक्तगणके साथ हरिदास ठाकुरकी कुटी पर उपस्थित हुए। वहाँ श्रीरूप भी थे। श्रीरूप और हरिदास ठाकुरने सत्कार पूर्वक प्रभुके श्रीचरणकी वन्दना की। भक्त वत्सल प्रभुने श्रीरूपको नीलाचलके भक्तवृन्दोंके साथ मिलाया। प्रभु कुटीर द्वार पर आसन पर बैठ गये। उनके सङ्गी नीलाचलके भक्तवृन्द उनको घेरकर बैठ गये। तारकावेष्टित पूर्णचन्द्रके समान प्रभु सुशोभित हो उठे। हरिदास ठाकुर और श्रीरूप कुटीर-द्वारके नीचे आङ्गनमें बैठ गये। भक्तवृन्दके साथ एकत्र बैठनेके लिए वे सम्मत न हुए। क्योंकि वे अपनेको नीच समझते थे, सतत ही डरते रहते थे कि कहीं कोई अपराध न हो जाय।

प्रभु आसन पर बैठकर श्रीरूपके प्रति शुभदृष्टिपात करके हँसते-हँसते बोले, "रूप ! अपने रचे पूर्व दो श्लोकोंका पाठ करो, ये लोग सुनने आये हैं।" श्रीरूप लज्जासे सिर अवनत करके चुप हो रहे। यह देखकर कृपानिधि प्रभुने स्वरूप गोसाईंको श्लोक पाठ करनेके लिए इशारा किया। तब स्वरूप गोसाईंने वही 'प्रियः सोऽयं' श्लोक पाठ किया। यह श्लोक सुनकर राय रामानन्द, सार्वभौम भट्टाचार्य आदि भक्तगण चकित हो गये। ऐसा मधुर रसात्मक अपूर्व कवित्वपूर्ण श्लोक उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था। अब उन लोगोंने समझा कि महाप्रभुके द्वारा रथके आगे नृत्यकालमें पठित 'यः कौमारहरः' श्लोकका मामार्थ क्या है।

राय रामानन्दने प्रभुके श्रीचरणोंमें निवेदन किया, 'हे प्रभु ! तुम्हारी कृपादृष्टिके बिना तुम्हारा हृदय कोई जान नहीं सकता। मेरे प्रति कृपा-कटाक्ष करके पहले तुमने जो सिद्धान्तकी बातें कही हैं, उसके मर्मसे ब्रह्मा भी अवगत नहीं है। इसीसे मैंने समझ लिया है कि श्रीरूपको तुम्हारा कृपा-प्रसाद प्राप्त हो गया है। इनमें तुमने शक्ति सञ्चार किया है। इसी कारण यह ऐसे अपूर्व श्लोककी रचनामें समर्थ हुए हैं। तुम्हारी कृपाके बिना क्या कोई तुम्हारे हृदयका भाव समझ सकता है ?

प्रभुने यह सुनकर मुस्कराते हुए श्रीरूपसे कहा, "रूप ! अपने नाटकके उस श्लोकको पढ़ो तो, जिसे सुननेसे सब जीवोंका दुःख दूर होता है।"

श्रीरूप तब तक लज्जासे सिर अवनत करके बैठे थे। आत्म प्रशंसा सुनकर उनको अन्तर्दाह हो रहा था। प्रभु बारम्बार कह रहे थे, "रूप ! श्लोक पढ़कर इनको सुनाओ।" श्रीरूप तब फिर क्या करते ? 'तुण्डे ताण्डविनी' श्लोक उन्होंने पाठ किया। इस अपूर्व नाम महिमासूचक श्लोकको सुनकर रामानन्द राय आदि भक्तोंका हृदय एक साथ विस्मय और आनन्द रससे आप्लुत हो उठा। सब कहने लगे कि नामकी महिमा तो बहुत सुनी

है, परन्तु इस प्रकार माधुर्यपूर्ण, भक्तिरसमय नाम महिमा सूचक श्लोककी रचना कभी किसीने नहीं की।

तब राय रामानन्दने पूछा, "यह कौन ग्रन्थ लिख रहे हैं?" स्वरूप गोस्वामीने उत्तर दिया, "कृष्ण-लीला नाटकमें श्रीरूप व्रजलीला और पुरलीला एकसाथ लिख रहे थे, परन्तु प्रभुकी आज्ञा पाकर अब दोनों नाटक पृथक्-पृथक् लिख रहे हैं। इन दोनों नाटकोंका नाम विदग्धमाधव और ललितमाधव है। इन दोनों नाटकोंमें अत्यद्भुत व्रजप्रेमरस वर्णित हुआ है।"

राय रामानन्द बोले, "नान्दी श्लोक पढ़िये, जरा मैं सुनूँ।" प्रभुकी आज्ञासे श्रीरूपने तब निजकृत विदग्ध माधव नाटकका नान्दी श्लोक पाठ किया। यथा,

सुधानां चान्द्रीणामपि मधुरिमोन्माददमनी
दधाना राधादिप्रणयवनसारैः सुरभिताम्।
समन्तात् सन्तापोद्गमविषमसंसारसरणि-
प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरिलीलाशिखरिणी॥

विदग्धमाधवम् १.१

अर्थ—जो हरिलीला-शिखारिणी चन्द्रसुधाके माधुर्य जनित अहङ्कारको दमन करनेवाली, तथा श्रीराधा आदि ब्रज देवियोंके प्रणय रूप कर्पूर द्वारा सुगन्धित है, वह तुम्हारे निरन्तर आध्यात्मिकादि त्रिविध तापोंको पैदा करनेवाली संसारके आवागमन रूपी श्रमसे जनित तृष्णाको हर ले।

यह नान्दी श्लोक सुनकर सब भक्तजन श्रीरूपको धन्य-धन्य कहने लगे। राय रामानन्द श्रीरूपकी कवित्व शक्ति, और अपूर्व कृष्ण भक्ति देखकर विस्मित हो उठे। इसके बाद उन्होंने पूछा, "अपने इष्टदेवका कैसा वर्णन किया है, सुनाइये।"

प्रभु बहाँ उपस्थित थे, वही उनके इष्टदेव थे। श्रीरूपको सङ्कोच हो गया। वे और कुछ न कह सके। यह देखकर सर्वज्ञ प्रभु मधुर मुस्कानके साथ बोले, "रूप! लज्जाकी क्या बात है? बोलो न! ग्रन्थका फल वैष्णवोंको सुनानेमें फिर लज्जा क्या?" तब श्रीरूप गोस्वामीने अपने इष्टदेवके वर्णनका श्लोक पाठ किया, जैसे—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ,
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

विदग्धमाधवम् १.२

अर्थ—जो सत्य, त्रेता, द्वापर आदि किसी युगमें किसी अवतारके द्वारा अर्पित नहीं हुआ, वही अपने उज्ज्वल रस अर्थात् श्रृंगार रसके द्वारा परिपुष्ट भक्तिरूप सम्पत्ति सर्वसाधारणमें वितरण करनेके लिए जो कृपा करके कलियुगमें अवतीर्ण हुए हैं, जो स्वर्णसे भी कान्ति युक्त है, वे शचीनन्दन हरि हमारी हृदयरूपी कन्दरामें स्फुरित हों।

यह श्लोक सुनकर प्रभु श्रीवदन अवनत करके बहुत धीरे-धीरे बोले, "यह अतिस्तुति हो गयी।" परन्तु भक्तवृन्द यह श्लोक सुनकर कृतार्थ हो गये और प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगे, और शतमुखसे श्रीरूपकी प्रशंसा करने लगे—

दयानिधि प्रभुने श्रीरूपके प्रति एकबार कृपावलोकन किया, श्रीरूपने भी प्रभुके श्रीचरण-कमलमें अपने दोनों नेत्रोंको लिप्त करके रक्खा।

राय रामानन्दने श्रीरूप गोस्वामीके नाटकके सम्बन्धमें बहुतसे प्रश्न किये। श्रीरूप एक-एक करके अपने ग्रन्थसे श्लोक पढ़कर सबको उत्तर देने लगे। प्रभु श्रोता थे, उनकी प्रेरणासे श्रीरूपने व्रज प्रेमके सब भावोंका वर्णन किया है। प्रेमोत्पत्तिका कारण, पूर्वराग, रागचेष्टा, कामलिखन, भावका स्वभाव, सहज प्रेमके लक्षण, वंशी-ध्वनिका मर्म, आदि सारे विषय जो उन्होंने स्वरचित नवीन नाटकमें वर्णन किये थे, सब कह गये। श्रीचैतन्य चरितामृतके अन्त्य खण्डके प्रथम अध्यायमें ये सारी

बातें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। राय रामानन्द स्वयं रसज्ञ कवि और नाट्याचार्य थे। उन्होंने अतिशय सन्तुष्ट होकर श्रीरूपसे कहा—

कवित्व ना हम एइ—अमृतेर धार।
नाटक-लक्षण सब सिद्धान्तेर सार॥
प्रेमपरिपाटी एइ अद्भुत वर्णन।
शुनि चित्त-कर्णेर हम आनन्द घूर्णन॥

चै. च. अं. १.१३९,१४०

इसके बाद श्रीरामानन्दने श्रीरूप-प्रणीत द्वितीय नाटकके विषयमें पूछा, उसका नाम था ललित-माधव। उस नाटकमें श्रीरूपने अपने अभीष्ट देवका इस प्रकार वर्णन किया है—

निजप्रणयितां सुधामुदयमाप्नुवन् यः क्षितौ,
किरत्यलमुरीकृतद्विजकुलाधिराजस्थितिः।
स लुञ्चिततमस्ततिर्मम शचीसुताख्यः शशी,
वशीकृत जगन्मनाः किमपि शर्म विन्यस्यतु॥

ललितमाधव १.४

अर्थ—जो भूतलपर उदित होकर स्वयं निज प्रेमामृत विकरण कर रहे हैं, जो द्विजकुलके अधिराजा हैं, जो जगत्‌की तमोराशिको अपसारित करते हैं, सारे जगत्‌के मनको जिनने वशीभूतकर रक्खा है, वे शचीसुत नामक शशि हमको कोई अनिर्वचनीय सुख प्रदान करें।

प्रभु वहीं विराजमान थे। श्रीरूप अपने इष्टदेवके सामने ही उनकी स्तुति-वन्दनाका श्लोक पाठ कर रहे हैं। इससे प्रभु लौकिक आचारमें लज्जित होनेपर भी मन ही मन बड़ा सुख पा रहे हैं, किन्तु वाह्य प्रणय रोष प्रकट करके श्रीरूपकी ओर देखकर वे बोले—

"कृष्णरसकाव्य-रूप अमृतका सिन्धुमें यह मिथ्या स्तुतिरूप क्षार-बिन्दु क्यों?"

राय रामानन्दने प्रभुकी बात सुनकर हँसते हुए सगर्व उत्तर दिया—

"श्रीरूपके वाक्य अमृतका समुद्र है, उसमें उनने यह थोड़ा-सा कर्पूर मिलाया है।"

प्रभु तब राय रामानन्दकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर बोले—"राय रामानन्द! इससे तुम्हारे मनमें उल्लास हो सकता है, परन्तु इसको सुनकर मुझे लज्जा लगती है, और लोग उपहास करते है, यह तुम नहीं समझते, यही मेरा दुःख है।

मर्मी भक्तवर राय रामानन्द छोड़नेवाले पात्र न थे, वे प्रभुकी बात सुनकर पुनः बोले—"आपकी स्तुति सुनकर मेरे श्रवण जुड़ा जाते हैं, सुख होता है, मङ्गलाचरणमें अभीष्ट देवकी स्तुति परम मङ्गलजनक है।" कृपानिधि प्रभु और बात न बोल सके। भक्तके भगवान् भक्तकी स्तुति-वन्दनासे कभी असन्तुष्ट नहीं होते। श्रीगौर भगवान् कलिके प्रच्छन्न अवतार हैं, वे सतत आत्मगोपन करनेमें व्यस्त रहते हैं। इसी कारण इस प्रकारकी लीला प्रदर्शित की, यह उनका वाह्य भाव मात्र था।

इसके बाद रायरामानन्दने श्रीरूपसे उनके ललित-माधव नाटकके सम्बन्धमें दो एक और प्रश्न किये। श्रीरूप गोस्वामी नाटकके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और लक्षणके सम्बन्धमें संक्षेपमें सारी बातें कह गये। राय रामानन्दने तब प्रभुसे कहा—"तुम्हारी शक्तिके बिना जीवमें ऐसी वर्णन-शक्ति नहीं आ सकती। मेरा अनुमान है कि तुमने ही शक्ति देकर यह सब कहलवाया है।"

प्रभुने हँसकर उत्तर दिया—"इनके साथ प्रयागमें मिलना हुआ था। इनके गुणोंके कारण इनके प्रति मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इनकी रचना अत्यन्त मधुर कवित्वपूर्ण, अलङ्कारपूर्ण एवं चित्तकी प्रसन्नता-साधक है। ऐसे कवित्वके बिना रसका प्रचार नहीं हो सकता। तुम लोग सब कृपा करके इनको वरदान दो, जिससे ये सर्वदा व्रजप्रेमका वर्णन कर सकें। इनके ज्येष्ठ भ्राता सनातन हैं, उनके समान विज्ञ पृथिवीपर कोई नहीं है।

तुम्हारी तरहसे उनने विषय-त्याग किया है; दैन्य, वैराग्य और पण्डित्य भी उनमें है। इन दोनों भाइयोंको भक्तिशास्त्र प्रवर्तनकी शक्ति देकर मैंने वृन्दावन भेजा है।''

प्रभुके श्रीमुखसे आत्म-प्रशंसा सुनकर राय रामानन्द बहुत लज्जित हुए। वे अवनत मुख होकर प्रभुके चरण-कमलके प्रति दृष्टिपात करके बोले—

'तुम ईश्वर हो, काठकी पुतलीको तुम नचा सकते हो। मेरे मुखसे जिस रसका प्रचार कराया, वही सब इनके लेखनमें भी देख पड़ता है। भक्तोंपर कृपा करनेके उद्देश्यसे व्रजरसको प्रकट करना चाहते हो। जिससे जो करना चाहोगे वही वह करेगा। सारा जगत तुम्हारे वशमें है।''

राय रामानन्दकी बात सुनकर प्रभु भीतर ही भीतर बहुत सन्तुष्ट हुए। उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, सब लोग वहाँ उपस्थित थे। सबने प्रभुकी प्रेरणासे श्रीरूपको प्रेमालिङ्गनसे शक्तिशाली बनाया।

प्रभु अब भक्तगणके साथ हरिदास ठाकुरकी कुटीसे उठे। श्रीरूपको उन्होंने कलेजेसे लगाकर पुनः प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनसे आवद्ध कर लिया। भक्त और भगवान् बहुत देर तक प्रेमालिङ्गनमें एकीभूत होकर रहे। वह दृश्य अत्यन्त सुन्दर था। जिन्होंने इसे देखा वे बड़े भाग्यवान् थे। जीवनमें वे इसको भूल न सके। प्रभुके नेत्रोंके प्रेमजलसे श्रीरूपका सर्वाङ्ग सिञ्चित हो गया, वह प्रेमजल उनकी अस्थि-मज्जामें प्रविष्ट कर गया। वे प्रेमानन्दमें मूर्च्छित हो गये। कृपानिधि प्रभुने उनको श्रीहाथोंसे पकड़कर उठाया, पुनः पुनः प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ किया। श्रीरूप सब भक्तगणके चरणोंमें लोट पड़े। सबने कृपा करके उनको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। श्रीरूपके लिए वह बड़ा शुभ दिन था, उनके आनन्दकी सीमा न थी। वे आकुल होकर रो पड़े।

प्रभुने हरिदास ठाकुरको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर वहाँसे प्रस्थान किया। हरिदास ठाकुर बूढ़े हो गये थे, दौड़कर भाग न सके। पहले प्रभुको देखकर दूरसे ही दण्डवत् प्रणाम करते थे, दूर खड़े रहते थे। अब वे बूढ़ेके समान एक स्थानपर बैठे रहते हैं। उठकर जानेकी उनमें शक्ति नहीं है। अतएव प्रभु बलपूर्वक जो कुछ उनके साथ करते हैं, उसे वे सहन करते हैं।

प्रभुको बिदा देकर हरिदास ठाकुरने श्रीरूपसे कहा, ''रूप ! तुम बड़े भाग्यवान् पुरुष हो। तुमने अपने नाटकमें जो वर्णन किया है, उसका मर्म और महिमा समझनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तुम धन्य हो।'' श्रीरूप अत्यन्त दैन्यपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर बोले, ''ठाकुर ! मैं इसमें कुछ भी नहीं जानता। कृपानिधि प्रभुने मुझसे जो कुछ कराया हैं, मैंने केवल वही किया है। इसमें मेरा कृतित्व कुछ नहीं है। यह आप निश्चय जाने।'' हरिदास ठाकुरने यह सुनकर रोते-रोते दोनों भुजाएं फैलाकर श्रीरूपको प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध कर लिया। गुणनिधि प्रभुका गुण स्मरण करके दोनों आदमी आकुल होकर रोते रहे।

नदियाके भक्तवृन्द नीलाचलमें चातुर्मास्य बिताकर गौड़ देश गमन किये। प्रभुकी इच्छासे श्रीरूप दोल यात्रा (होली) पर्यन्त नीलाचलमें रह गये। इन कालमें प्रभुने उनको और भी बहुत उपदेश दिया। शिक्षागुरु श्रीगौर भगवान्ने नीलाचलमें बैठकर इस प्रकार श्रीरूपकी शिक्षा पूरी की।

श्रीरूपकी विदाई

दोलयात्राके बाद प्रभुने एक दिन श्रीरूपको पास बुलाकर कहा,

वृन्दावन जाओ तुमि, रहिओ वृन्दावने।
एक बार पठाइओ सनातने॥
व्रजेर रसशास्त्र कर निरूपण।
तीर्थ सब लुप्त, तार करिह प्रचारण॥
कृष्ण सेवा रसभक्ति करिह प्रचार।
आमिह देखते ताँहा जाव एक बार॥

चै. च. अं. १.१६१-१६३

इतना कहकर प्रभुने श्रीरूपको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए विदा किया। श्रीरूप प्रभुके चरणोंमें अपना सिर रखकर रोते-रोते बोले, "हे प्रभु! अपने शिव विरञ्चिवन्दित, लक्ष्मीसेवित रक्त कमलचरणको एकबार इस नीच अस्पृश्य जीवाधमके सिरपर रक्खो और एकबार अपने श्रीमुखसे कहो कि इस अस्पृश्य, पामर, नीच, जीवाधमको अपने रक्तकमल चरणकी धूलि बनाकर रक्खोगे।" भक्तवत्सल प्रभु श्रीरूपके दैन्य और आर्त्तभावको देखकर कातर हो उठे। वे श्रीहस्तसे श्रीरूपको उठाकर सजलनयन होकर बोले, "रूप! तुम दैन्य संवरण करो। तुम्हारे दैन्य और आर्त्त-भावको देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है। तुम मेरे प्राणसे भी अधिक प्रियतम हो। मैं तुम्हारा सङ्ग छोड़कर नहीं रह सकता। तुम जहाँ रहोगे, मैं तुम्हारे साथ रहूँगा, यह तुम निश्चय जानो।" प्रभुके कृपावाक्यको सुनकर श्रीरूप आकुल होकर रो पड़े। प्रेमावेगमें उनके मुँहसे बात न निकल सकी।

प्रभुकी आज्ञासे श्रीरूप जो श्रीवृन्दावन गये तो आजीवन उन्होंने कभी भी श्रीवृन्दावनको नहीं छोड़ा। प्रभुसे यह उनकी अन्तिम विदा थी। श्रीरूपको विदा करके श्रीगौर भगवान् अनमना हो गये। नीलाचलके सभी भक्तगण विषण्ण हो उठे। हरिदास ठाकुर मृतप्राय हो गये। इस वृद्धावस्थामें श्रीरूपके समान सत्सङ्गी उनको कहाँ मिलेगा? श्रीरूपके विरह विषसे उनका शरीर जर्जर हो गया। नीलाचलके भक्तोंकी समझमें आ गया कि हरिदास ठाकुर अव और अधिक दिन नहीं बचेंगे। प्रभुने भी ऐसा ही समझा। वे अब हरिदास ठाकुरके वासापर दिनमें दो-तीन बार जाने लगे।

प्रभु और एकबार श्रीरूपसे मिले और उनको अन्तिम रूपसे विदा किया। भक्त और भगवान् इस प्रकार उस समय एक दूसरेसे विदा हुए। श्रीरूप गौड़ देश होते हुए यथा समय श्रीवृन्दावन जा पहुँचे।

चालीसवाँ अध्याय

नीलाचलमें प्रभु और श्रीसनातन गोस्वामी

बलात्कारे प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैल।
कण्डूक्लेद महा प्रभुर श्रीअंगे लागिल ॥

चै. च. अं. ४.२०

नीलाचलके मार्गमें श्रीसनातन

पहले कहा जा चुका है कि श्रीरूप और सनातन दोनों भाई विभिन्न मार्गसे श्रीवृन्दावन आये गये थे, इस कारण दोनों भाईयोंकी परस्पर भेंट नहीं हुई। श्रीरूप और अनुपमने वृन्दावनसे प्रयागकी यात्रा गंगा मार्गसे की थी और श्रीसनातन प्रयागसे वृन्दावन राजपथसे गये थे। अनुपमको लेकर श्रीरूप श्रीवृन्दावनसे गौड़ देश लौट आये। वहाँ पहुँचनेपर अनुपमको गङ्गालाभ हो गया। तत्पश्चात् श्रीरूप नीलाचल जाकर महाप्रभुसे मिले। महाप्रभुके आदेशसे उन्होंने नीलाचलसे सीधे श्रीवृन्दावनकी यात्रा की।

श्रीसनातन वाराणसी धाममें प्रभुके पास दो महीने शिक्षा ग्रहण करके उनके आदेशसे श्रीवृन्दावन गये। वहाँ जाकर उनकी श्रीरूप और अनुपमसे भेंट नहीं हुई। कुछ दिन श्रीवृन्दावनमें रहनेके बाद प्रभुके चरणोंका दर्शन करनेके लिए उनका मन अति व्याकुल हुआ। वे श्रीवृन्दावनसे श्रीरूपके उद्देश्यसे गौड़ देश न जाकर सीधे नीलाचल चले। वे भी प्रभुके द्वारा प्रदर्शित झारखण्डके मार्गसे वनके बीच होते हुए अकेले नीलाचल जा पहुँचे। प्रभुने भी उसी मार्गसे श्रीवृन्दावनकी यात्रा की थी।

यह वनका मार्ग बड़ा ही दुर्गम और भयानक था। बहुत कष्टसे श्रीसनातन इस मार्गसे प्रभुके दर्शनके लिए नीलाचल आये। मार्गके कष्ट, उपवास तथा नाना स्थानके जलके दोषसे उनके शरीरमें खुजली हो गयी, सारे शरीरमें फोड़े होकर बहने लगे।

वह रास्तेमें विरक्त होकर मन ही मन विचार करते आ रहे थे—

"मेरा शरीर नीच जाति होनेसे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन मैं कर नहीं सकता। प्रभुके दर्शन भी रोज-रोज होंगे नहीं। सुना है कि उनका निवास मन्दिरके निकट है। मैं मन्दिरके निकट जा नहीं सकता। कार्यसे श्रीजगन्नाथजीके सेवक आते-जाते रहते हैं। उनका स्पर्श हो जानेसे अपराध बन जायगा। पवित्र स्थानमें इस देहको अर्पण कर दिया जाय तो दुःख भी मिट जाय और सद्गति भी हो जाय। अतः जब रथ-यात्रामें श्रीजगन्नाथजी बाहर निकलेंगे, तब उनके रथके चक्केके नीचे श्रीजगन्नाथजीको देखते हुए, श्रीमहाप्रभुके सम्मुख शरीर त्याग देनेमें ही परम पुरुषार्थ है।"

श्रीसनातन दैन्यके अवतार थे, उन्होंने जो अपनेको नीच जाति कहकर परिचय दिया है, यह उनकी दैन्योक्ति है। वे जातिके ब्राह्मण थे, यवन राजाका मन्त्रीत्व स्वीकार करके अपनेको यवन-सङ्ग दोषसे दूषित समझते थे। उन्होंने कर्णाटक विप्रकुल शिरोमणि जगद्गुरु वंशमें जन्म ग्रहण किया था, और उन्होंने यवनका दासत्व करते हुए वैष्णवी सदाचारकी रक्षा की थी।

उनके सर्वाङ्गमें खुजली हो गयी थी, उनका शरीर विकृत हो गया था, मन ही मन यवन सङ्ग जनित दुष्कर्मके लिए विशेष पश्चात्ताप हो रहा

था, अनुतापकी अग्निमें उनका हृदय दग्ध हो रहा था। उन्होंने मन ही मन स्थिर किया कि इस देहको मैं अब न रक्खूँगा। रथयात्रा आ रही है, रथके आगे प्रभु नृत्य करेंगे, श्रीजगन्नाथजीके सामने, प्रभुके श्रीवदनको देखते-देखते रथके चक्केके तले पड़कर मैं अपना प्राण त्याग करूँगा, यही उनकी आन्तरिक इच्छा थी।

हरिदास ठाकुरकी कुटियापर श्रीसनातन

सारे रास्तेमें इस प्रकार विचार करते हुए वे यथासमय नीलाचलमें जा उपस्थित हुए। ठाकुर हरिदासकी कुटियापर श्रीरूप उतरे थे, श्रीसनातनने भी यही किया। दोनों भाइयोंका उद्देश्य एक था, हरिदास ठाकुर जातिभ्रष्ट हैं, और अपनेको भी वे लोग जातिभ्रष्ट समझ रहे हैं। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें प्रवेशका अधिकार उनको नहीं है, सेवक-गण उनको स्पर्श करके अपवित्र हो जाँयगे, इससे उनको अपराध लगेगा, यही वे लोग सोचते थे, और इसी भयसे वे राजपथपर बाहर नहीं निकलते थे।

श्रीसनातनको पाकर हरिदास ठाकुरको मानो आकाशका चाँद हाथ लग गया। वे प्रेमानन्दमें प्रफुल्लित हो उठे, परम आदरपूर्वक श्रीसनातनको प्रेमालिङ्गन प्रदान किया, और दोनों आदमी एक-दूसरेका गला जकड़कर रोने लगे। उसके बाद दोनों ही बैठकर गौर-कथा-रसमें निमग्न हो गये।

महाप्रभुके चरणोंके दर्शनकी लालसासे श्रीसनातनका मन बड़ा उत्कण्ठित हैं, यह देखकर ठाकुरने कहा—"वे अभी यहाँ ही आवेंगे।" यह बात कहते ही भक्तवाञ्छा कल्पतरु प्रभु अचानक वहाँ आकर उपस्थित हो गये। प्रभुको देखते ही दोनों आदमी उनके चरणोंमें लम्बायमान होकर गिर पड़े, और क्रन्दन करने लगे। दयानिधि प्रभुने हरिदास ठाकुरको श्रीहस्तसे पकड़कर उठाया और प्रगाढ़ प्रेमानिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। हरिदास ठाकुरने तब रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! गुणनिधे! कृपानिधे! तुम्हारे सनातन आये हैं, देखो भूतलपर तुम्हारे चरणोंमें पड़कर क्रन्दन कर रहे हैं।" श्रीसनातनको उस अवस्थामें देखकर महाप्रभु चकित हो उठे, और प्रेमानन्दमें उनको आलिङ्गन करनेके लिए उद्यत हुए। प्रभु जैसे ही अपने सुवलित बाहुयुगलको फैलाकर उनको पकड़ने चले, वैसे ही सशङ्कित भावसे उठकर कुछ पीछे हटकर सनातनने हाथ जोड़कर रोते-रोते कहा—"हे प्रभु! मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, मुझे मत छूना। एक तो मैं अधम नीच हूँ और खुजलीकी मवाद ऊपरसे बह रही है।

भक्तवत्सल प्रभुने इन बातोंपर ध्यान न देकर बलपूर्वक सनातनको वक्षःस्थलमें धारण करके प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध कर लिया। प्रभुके श्रीअङ्गमें खुजलीके पीब आदि लग गये। "हाय! प्रभुने क्या किया! हाय! प्रभुने क्या किया।" कहकर श्रीसनातन चिल्लाकर रोने लगे। परन्तु भक्तवत्सल प्रभुने कदापि उनको वक्षःस्थलसे अलग न किया। बहुत देरतक उनको छातीसे लगाकर प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करके प्रभुने छोड़ा।

श्रीसनातन प्रभुके आलिङ्गनसे मुक्त होकर उनके चरणोंमें गिरकर धूलमें लोटने लगे। और उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। उनके मनमें विषण्ण आत्मग्लानि उदय हुई। प्रभुके सोनेके अङ्गमें लोग सुगन्धित चन्दन चर्चित करते हैं, और आज उन्होंने यह क्या किया? यह सोचकर वे मर्माहत हो उठे, प्राणोंकी मर्मव्यथासे व्यथित हो व्याकुलतापूर्वक रो पड़े।

सर्वज्ञ महाप्रभु उनके मनके भावको समझकर श्रीहस्तसे उनको उठाकर आदरपूर्वक निकट बैठाकर कुशलवार्त्ता पूछने लगे। श्रीवृन्दावनके वैष्णवोंका कुशल पूछा। श्रीसनातन सुस्थिर होकर एक-एक

करके सारी बातें प्रभुके चरणोंमें निवेदन करके प्रेमाश्रुपूर्ण-नयनोंसे कहने लगे—"हे प्रभु! हे कृपानिधि! तुम्हारे चरणोंका दर्शन प्राप्त हुआ, यह मेरा परम मङ्गल है।"

तब प्रभु बोले—"सनातन! तुम्हारे भाई रूप यहाँ आये थे। दस महीने लगभग रहकर अभी लगभग दस दिन हुए हैं कि वे वृन्दावन चले गये। बड़े दुःखकी बात है कि तुम्हारे साथ उनकी भेंट न हो सकी। तुम्हारे छोटे भाई अनुपमको गङ्गालाभ हो गया, इसके कारण मैं बड़ा दुखित हूँ, उनकी श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें दृढ़ भक्ति थी।

श्रीसनातनको महाप्रभुके श्रीमुखसे प्रियतम भाईके वियोगका समाचार मिला। उनके हृदयमें भ्रातृस्नेहका समुद्र उमड़ पड़ा। वे रोते हुए दैन्यभावके साथ प्रभुके चरणोंमें अपने रामभक्त प्रियतम भ्राता अनुपमका गुण गाने लगे—"हे प्रभु! बालकपनसे अनुपम श्रीरघुनाथजीकी उपासनामें दृढ़ थे। दिन रात उनका नाम लेते ओर उन्हींका ध्यान करते तथा रामायण सुनते और स्वयं भी गाते। हम लोगोंके साथ वे कृष्ण-कथा और भागवत भी सुनते। हम लोगोंने अनुपमकी परीक्षा करनेके लिए उसको कहा कि श्रीकृष्णका सौन्दर्य-माधुर्य-प्रेम-विलास बहुत अधिक है। हम लोगोंके साथ तुम भी कृष्ण-भजन करो तो हम तीनों भाई कृष्ण-कथा-रङ्गमें लगे रहेंगे। इस प्रकार बार-बार कहनेपर अनुपमका मन थोड़ा फिरा। उसने कहा कि—"तुम दोनोंकी आज्ञा कबतक उल्लङ्घन करूँगा, मुझे दीक्षा मन्त्र दिया जाय, मैं भी तुम्हारे संग कृष्ण-भजन करूँगा।' किन्तु रात्रिमें नींद नहीं आयी। सारी रात रोता रहा कि श्रीरघुनाथजीका चरण कैसे छोड़ूँ। प्रातःकाल उसने हम लोगोंसे निवेदन किया कि 'मैंने तो रघुनाथजीके चरणोंमें अपना मस्तक बेच दिया है। अब उससे अलग होनेमें मुझे बहुत व्यथा होती है, मेरा हृदय फटा जा रहा है। कृपा करके आप दोनों जने मुझे आज्ञा दें कि मैं श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी ही जन्म-जन्ममें सेवा करता रहूँ।' तब हम लोगोंने उसको आलिङ्गन करके साधुवाद देकर उसकी बड़ी प्रशंसा की।"

श्रीसनातन गोस्वामी भ्रातृ-प्रेममें विभोर होकर प्राण भरकर भाईका गुण-गान कर रहे थे। ये सब बातें कहते समय नयन-जलसे उनका वक्षःस्थल डूब रहा था। प्रभु धैर्यपूर्वक सुनते जा रहे थे, प्रेमावेगमें उनकी आँखोंसे भी झर-झर प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। श्रीसनातनने अन्तमें कहा—"हे प्रभु! मेरा ऐसा गुणवान् भाई मुझको छोड़कर चला गया है"—इतना कहकर वे महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर रोने लगे। दयामय प्रभुने उनको श्रीहस्तसे पकड़कर उठाया और सान्त्वना देते हुए कहा—"इसी प्रकार एक बार मैंने भी मुरारि गुप्तकी परीक्षा की थी। वही भक्त धन्य है जिसकी एक निष्ठा है और अपने इष्टके चरणोंको नहीं छोड़ते। यदि दुर्दैवसे अन्य तरफ मन लगाता है तो वे प्रभु धन्य है जो अपने सेवकको केश पकड़कर अपनी ओर खींच लेते हैं।"

इतना कहकर उनको आश्वासन देते हुए प्रभु मधुर वचनोंसे पुनः बोले—सनातन! तुम यहाँ आये, अच्छा हुआ हरिदासके साथ इस वासापर तुम एक साथ रहो। भक्त चूड़ामणि हरिदास ठाकुरकी महिमा कीर्तन करते हुए प्रभु बोले—'तुम दोनों ही कृष्ण-भक्ति-रसके मर्मज्ञ हो, उस रसका आस्वादन करो और कृष्ण-नामका जप करो।"

इतना कहकर महाप्रभु वहाँसे उठे। जाते समय प्रभुने पुनः दोनोंको प्रेमालिंगन प्रदान कर कृतार्थ किया। पुनः श्रीसनातनने भागनेकी चेष्टा की; किन्तु भाग न सके। प्रभुने वासापर जाकर उस दिन गोविन्दके द्वारा दोनोंके लिए प्रसाद भेज दिया।

श्रीसनातन श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने नहीं जाते थे। श्रीमन्दिरमें जानेका उनको अधिकार नहीं। श्रीमन्दिरके शीर्षस्थानींय चक्रको देखकर वे दूरसे ही दण्डवत् प्रणाम करते हैं, महाप्रभु नित्य आकर हरिदास ठाकुरके वासापर उनको दर्शन दे जाते हैं। श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरमें जो प्रसाद पाते हैं, बहिर्वासमें बाँधकर ले आकर दोनोंको देते हैं। ऐसे परम दयालु भक्तवत्सल प्रभु क्या कहीं किसीने देखा है ?

प्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीकी नीलाचलके भक्तोंसे एक-एक करके भेंट करा दी। सब लोग उनको पाकर परम आनन्दित हुए। भक्तवृन्दने देखा कि श्रीसनातन एक अपूर्व वस्तु हैं। उन्होंने श्रीरूपको देखा था, अब श्रीसनातनको भी देख लिया। भक्ति-कल्पतरुके एक डालीमें मानो दो सौरभपूर्ण प्रस्फुटित पुष्प हैं। उन्होंने समझ लिया कि ये दोनों भाई प्रभुके चिह्नित दास हैं, विशेष कृपापात्र हैं।

श्रीसनातनकी आत्महत्याकी भावनापर
प्रभु द्वारा उलाहना

एक दिन प्रभु हरिदास ठाकुरके वासापर आकर अचानक श्रीसनातनके ऊपर करुण दृष्टिसे देखकर कहने लगे—"सनातन ! यदि देह त्याग करनेसे ही श्रीकृष्ण मिलते हों तो क्षणभरमें करोड़ों लोग देह त्याग सकते हैं। श्रीकृष्ण तो भजन करने-से ही प्राप्त होते हैं। भक्तिके बिना श्रीकृष्णको पानेका और कोई उपाय नहीं है। देह त्याग करना तो तामस धर्म है, राजस और तामस धर्मसे श्रीकृष्णका मर्म नहीं मिलता। भक्तिके बिना प्रेमोदय नहीं होता, प्रेम बिना श्रीकृष्ण नहीं मिलते।"

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतका यह श्लोक पाठ किया—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

श्रीम. भा. ११.१४.२०

अर्थ—श्रीकृष्णजी उद्धवसे बोले—"हे उद्धव ! मद्विषपक दृढ़ा भक्ति जैसे मुझको वशीभूत कर सकती है, अष्टाङ्ग योग, सांख्य योग, वेदाध्ययन, तपस्या तथा संन्यास भी उस प्रकार मुझको वशीभूत नही कर सकते।"

प्रभुकी बात अभी समाप्त नहीं हुई थी। वे कहने लगे—"देह त्याग तामस धर्म तो पातकका कारण है, इससे साधकको कृष्ण-चरण प्राप्ति नहीं होती। प्रेमी भक्त गाढ़ अनुरागसे वियोग सह न सकनेके कारण अपना मरण चाहता है। लेकिन प्रेमसे श्रीकृष्ण मिल जाते हैं और वह मरने नहीं पाता।"

इतना कहकर प्रभुने श्रीमद्भागवतके एक और श्लोकका पाठ किया।

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्॥

श्रीम. भा, १०.५२.४३

अर्थ—श्रीकृष्णको उद्देश्य करके रुक्मिणीजी कह रही हैं—"हे आम्बुजाक्ष ! उमापतिके समान महानुभाव अपने तमके नाशके लिए जो त्वदीय पाद-पद्म-रजमें स्नान करनेकी अभिलाषा करते हैं, यदि तुम्हारे उस प्रसादसे मैं वञ्चित होती हूँ, तो अनाहार रहकर प्राणोंको त्याग करूँगी, इससे शत जन्मोंमें भी शायद तुम्हारे प्रसादको प्राप्त कर सकूँ।

महाप्रभु बोले—"यह अनुरागी भक्तका विरहोच्छ्वास मात्र है। देह-त्यागसे कृष्णकी प्राप्ति नहीं होती, भजनसे होती है। सनातन ! तुम कुबुद्धि छोड़कर भजन करो।"

महाप्रभु पुनः बोले, "सनातन ! तुम जो सोचते हो कि नीच जाति भजनके योग्य नहीं है, यह

तुम्हारा विषम भ्रम है। कृष्ण-भजनमें जाति कुलका विचार नहीं होता। नीच और अधमके प्रति श्रीकृष्णकी अधिक दया होती है।"

महाप्रभुकी बात अभी भी समाप्त नहीं हुई थी। उन्होंने श्रीसनातनको कहा—"कलिकालमें श्रेष्ठ भजन नवधा भक्ति है और उसमें भी सर्वश्रेष्ठ है नाम संकीर्तन।"

करुणामय महाप्रभुने इतनी बात श्रीसनातनको क्यों कही, यह कृपालु पाठकवृन्द अवश्य समझ गये होंगे। श्रीसनातनने दुःखसे रथके चक्रसे पिसकर प्राण-त्याग करनेका विचार किया था। सर्वज्ञ और अन्तर्यामी श्रीगौर-भगवान्‌ने उनके मनकी बात जानकर उनको यह सब उपदेश दिया।

महाप्रभुका उपदेश सुनकर श्रीसनातन चकित हो उठे। उस समय उनकी समझमें आ गया कि उनका आत्म-घातका संकल्प प्रभुको अच्छा नहीं लगा, इसी कारण उन्होंने ऐसा उपदेश दिया है। श्रीसनातन तब विशेष लज्जित होकर महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर रोते-रोते बोले—

सर्वज्ञ कृपालु तुमि ईश्वर स्वतन्त्र।
जैछे नाचाओ, तैछे नाचि, जेन काष्ठ यन्त्र॥
नीच पामर मुञि अधम स्वभाव।
मोरे जीयाइले तोमार कि हइबे लाभ॥
चै. च. अं. ४.६९,७०

श्रीसनातनके मुखकी अन्तिम बात महाप्रभुके हृदयमें शूलके समान चुभ गयी। उन्होंने परम गम्भीर भाव धारण किया। उनके श्रीवदनकी ओर देखकर श्रीसनातनके मनमें भय उत्पन्न हो गया, वे फिर ताक न सके। वदन अवनत करके हाथ जोड़कर किनारे खड़े हो गये। महाप्रभुके कमलनयन-द्वय छलछला गये, वह गद्‌गद स्वरमें बोले—"सनातन! तुमने मुझे आत्म-समर्पण किया है, तुम्हारा शरीर मेरी सम्पत्ति है। दूसरेका द्रव्य नाश करनेका तुमको क्या अधिकार है? तुम्हारे शरीरसे मुझे बहुत काम कराने हैं। भक्त-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व, कृष्ण-तत्त्व, प्रेम-तत्त्व, वैष्णवकृत्य, वैष्णव आचार, कृष्ण-भक्ति, कृष्ण-प्रेम, कृष्ण-सेवा आदिका प्रचार, लुप्ततीर्थ उद्धार, वैराग्य-शिक्षण—ये सब तुम्हारे शरीरके द्वारा कराना है। मथुरा-वृन्दावन मेरे प्रिय स्थान हैं, वहाँ मैं इन बातोंका प्रचार तुमसे करना चाहता हूँ। माताकी आज्ञासे मुझे तो नीलाचलमें ही रहना है, इसलिए मेरे द्वारा वहाँ कुछ कार्य नहीं हो सकता। जिस शरीरसे मैं ये काम करवाना चाहता हूँ, उसको तुम नष्ट करना चाहते हो, इसको मैं कैसे सहन कर सकता हूँ।"

प्रभुके श्रीमुखकी स्नेहपूर्ण मधुमय वाणी उनके भगवान्-भावकी बात थी, इसको थोड़ा विचार करनेपर ही कृपालु पाठकवृन्द समझ जायेंगे। प्रभुने पहले ही कहा कि, "तुमने मुझको आत्म-समर्पण किया है, अतएव तुम्हारा शरीर मेरा हो गया है।" यह ऐश्वर्य-भावकी बात है। इसके बाद बोले, "मेरा जो निज प्रिय-धाम मथुरा-वृन्दावन है, वहाँ मैं तुम्हारे द्वारा कृष्ण-भक्ति, कृष्ण-प्रेम तथा भक्ति-शास्त्रका प्रचार कराना चाहता हूँ, अतएव तुम्हारे इस शरीरके द्वारा मैं बहुत-सा प्रयोजन सिद्ध करूँगा।" यह भी भगवान्-भावकी बात है। अन्तमें बोले—"माताकी आज्ञासे मैं नीलाचलमें रहता हूँ, यहाँसे मैं स्वयं धर्म-शिक्षा नहीं दे सकता और मुझको तुम्हारी आवश्यकता है"—प्रभुकी इस बातमें भी एश्वर्यका गन्ध है। नीलाचलमें श्रीजगन्नाथजीकी महिमाके गुणसे वैष्णवाचार और विधि-नियम आदिका सम्यक् अनुष्ठान निष्प्रयोजन है, परन्तु अन्यत्र यह वैष्णवके लिए अवश्य कर्त्तव्य है। इसी कारण प्रभुने स्वयं श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा द्वारा वैष्णवीय कृत्य और आचार, भक्तिशास्त्र तथा विधि-नियम आदिका प्रचार करनेका उपदेश दिया।

श्रीगौर-भगवान्ने जब यह सारी बातें श्रीसनातन गोस्वामीको कही, तब उनके श्रीमुख-मण्डलका अपूर्व दिव्य ज्योतिपूर्ण ऐश्वरिक भाव दीख पड़ा। उनके प्रत्येक अङ्गसे मानो ऐश्वर्य-भाव प्रकट होने लगा। श्रीसनातन तब महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते बोले, "हे प्रभु! कृपानिधे! तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात। तुम्हारी परम-गम्भीर हृदयकी बात, तुम्हारे मनके गूढ़-भाव समझनेकी शक्ति किसमें है? जीव कठपुतली है, तुम जैसे नचाते हो, वह वैसे ही नाचता है।

काष्ठेर पुतलि जेन कुहके नाचाय।
आपने ना जाने पुतलि—किवा नाचे गाय॥
जैछे जारे नाचाओ, तैछे से करे नर्त्तने।
कैछे नाचे, केवा नाचाय, सेह नाहि जाने॥
चै. च. अं. ४.८०,८१

यह बात सुनकर प्रभु मुस्कराये तथा अपने भावको संवरण किया एवं हरिदास ठाकुरकी ओर देखकर बोले—"हरिदास! देखो, यह दूसरेके द्रव्यका नाश करना चाहता है। किसीका थाती दिया हुआ धन न तो कोई स्वयं काममें लेता है और न दूसरेको देता है। इसको समझना कि अन्याय न करें।"

श्रीसनातन हाथ जोड़े श्रीमहाप्रभुके चरणोंमें बैठे हैं। नयनजलसे उनका वक्षःस्थल प्लावित हो रहा है। कृपानिधि प्रभुकी अपार कृपाकी बात याद करके वे प्रेमानन्दमें बेसुध हो रहे हैं। हरिदास ठाकुरको प्रभुने जो कुछ कहा, वह उनके कानोंमें प्रविष्ट नहीं हुआ।

हरिदास ठाकुरने प्रभुकी बात सुनकर उनके चरणोंमें लम्बायमान होकर निवेदन किया, "हे प्रभु! हे पतित-पावन! हे दयानिधे! तुम इच्छामय स्वतन्त्र ईश्वर हो। हम क्षुद्र जीव हैं, तुम्हारे गम्भीर हृदयको समझ न सकनेके कारण वृथा अभिमान करते हैं। किसको किस कार्यमें किस प्रकार किस उद्देश्यसे तुम नियुक्त करते हो, यदि तुम स्वयं न बतलाओ तो इसे कौन जान सकेगा? तुमने सनातनको जिस प्रकार अङ्गीकार किया है, यह निश्चय है कि इनके द्वारा तुम कोई महत् कार्य सिद्ध करोगे। भाग्यवान् सनातनके भाग्यकी सीमा नहीं है।"

प्रभु यह बात सुनकर मधुर-मधुर मुस्कुराये। वे और कुछ न कहकर आसनसे उठे, तथा श्रीसनातन और हरिदास ठाकुरको प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ करते हुए मध्याह्न कृत्य समापन करनेके लिए चले।

ठाकुर हरिदास और सनातन

हरिदास ठाकुरने तब श्रीसनातनको प्रेमालिङ्गनमें आवद्ध करके मधुर शब्दोंमें कहा—"सनातन! तुम्हारे समान भाग्यवान् कोई नहीं है, जो तुम्हारे देहको प्रभु अपना मानते हैं। जो कार्य वे स्वयं नहीं कर सकते, वह कार्य वे तुमसे मथुरा-मण्डलमें करायेंगे। भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त विषयक-शास्त्र और वैष्णवोंके आचार सम्बन्धी मीमांसा तुम्हारे द्वारा प्रचार करायेंगे—ऐसी प्रभुकी इच्छा है। भारत-भूमिमें जन्म लेकर भी मेरा शरीर व्यर्थ रहा, जो प्रभुके कोई काम न आ पाया।"

दैन्यावतार हरिदास ठाकुरने जिस प्रकार भक्त-महिमा गाकर आत्मशोधन किया, श्रीसनातनने इसके उत्तरमें वही किया। वे हरिदास ठाकुरकी महिमा कीर्तन करते हुए बोले—"हरिदास! महाप्रभुके गणोंमें तुम सबसे अधिक भाग्यवान् हो। प्रभुका अवतार नाम प्रचारके लिए हुआ है, जो वे तुम्हारे द्वारा कर रहे हैं। तुम प्रतिदिन तीन लाख नाम-संकीर्तन करके सबको नामकी महिमा बता रहे हो। कोई तो स्वयं आचरण करता है और प्रचार नहीं करता, कोई प्रचार करता है और स्वयं

आचरण नहीं करता। तुम दोनों करते हो, अतः सबमें श्रेष्ठ हो और सबके गुरु हो।"

हरिदास ठाकुरने आत्म-प्रशंसा न सुन सकनेके लिए कानोंमें अंगुलि डाल ली। वे श्रीसनातनके मुँहपर हाथ देकर बोले, "सनातन! चुप रहो। ऐसी बात मुँहपर न लाओ। मैं बड़ा अधम और नीच हूँ। सर्वगुणनिधि परम दयालु महाप्रभुका गुण गाओ। आओ, दोनों आदमी मिलकर अब गौर-कीर्तन करें।" इतना कहकर दोनोंने कीर्तनका सुर पकड़ा।

श्रीचैतन्य नारायण करुणा सागर।
दीन दुःखितेर बन्धु मोरे दया कर॥

यह पद श्रीअद्वैत प्रभुके श्रीमुखसे निःसृत श्रीगौराङ्ग प्रभुका आदि संकीर्तन है। दोनों आदमी उच्च-कण्ठसे जब गौर-कीर्तन करने लगे, तो वहाँ आनन्दकी तरङ्ग उठी। दोनों आदमी प्रेमानन्दमें दोनों भुजाएँ उठाकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। हरिदास ठाकुर वृद्ध होते हुए भी कीर्तनमें युवाके समान नृत्य करने लगे। हरिदास ठाकुरका कुटीर वैकुण्ठ-भवन बन गया। दोनों सुस्थिर होकर बैठकर उसके बाद कृष्ण-कथा रसरङ्गमें निमग्न हो गये।

फिर रथयात्रा आयी। वैसाखके महीनेमें श्रीसनातन गोस्वामी नीलाचलमें आये थे। गौदेड़शसे पूर्ववत् नदियाके भक्तवृन्द आये। रथके आगे प्रभुने उसी प्रकार नयनरंजन मधुर नृत्यविलास किया। महाप्रभुकी अपूर्व नृत्यभङ्गी देखकर श्रीसनातन आनन्द सागरमें डूब गये। प्रभुका ऐसा मधुर नृत्य-विलास उन्होंने पहले कभी देखा नहीं था। रथके आगे प्रभुका मधुर नृत्य देखकर वे परम विस्मित हुए। पहले जो उन्होंने रथके चक्रके आगे पड़कर देह-त्याग करनेका संकल्प किया था, उसे याद करके परम लज्जित हुए।

ज्येष्ठ मासमें सनातनकी परीक्षा

रथयात्रा उत्सव समाप्त हुआ। भक्तवत्सल महाप्रभुने श्रीसनातनको एक-एक करके श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीवास पण्डित, वक्रेश्वर, वासुदेव घोष, मुरारि गुप्त, राघव पण्डित, दामोदर पण्डित आदि सब भक्तोंके साथ मिलन करा दिया। राय रामानन्द, सार्वभौम भट्टाचार्य, परमानन्द पुरी और भारती गोस्वामीआदि नीलाचलवासी भक्तोंके साथ विशेष रूपसे परिचय करा दिया। सबने उनके ऊपर कृपा की। भक्तवत्सल प्रभुने शतमुखसे श्रीसनातनके गुण गाये। नदियाके भक्तवृन्द चातुर्मास्य करके यथाकाल गौड़देशमें लौट गये। श्रीसनातनने नीलाचलमें प्रभुके साथ रहकर दोलयात्राका दर्शन किया।

ज्येष्ठ मासमें एक दिन महाप्रभु यमेश्वर टोटामें गये। भक्तवृन्दके अनुरोधसे उस दिन उन्होंने वहाँ भिक्षा की। उस स्थानमें बैठकर श्रीगौर-भगवान्ने अपने प्रियतम भक्त श्रीसनातनकी एक विषम परीक्षा की। भक्तकी श्रीभगवान् अशेष-विशेष परीक्षा करते हैं। भगवान्की परीक्षाका अन्त नहीं है। श्रीसनातनकी श्रीगौर-भगवान्ने नाना भावसे विभिन्न प्रकारकी परीक्षा ली। उनके तीव्र वैराग्यकी परीक्षा ली, उनके मनकी परीक्षा ली, उनकी दृढ़ भक्तिकी परीक्षा ली। फिर भी प्रभुने नीलाचलमें बैठकर उनकी और एक बार परीक्षा लेनेका संकल्प किया। यथा श्रीचैतन्य चरितामृतमें—

"ज्येष्ठ मासे प्रभु ताँरे परीक्षा करिल"
चै. च. म. १.२४६

अब वह विषम परीक्षा क्या थी, सुनिये! ज्येष्ठ मासकी धूप कितनी प्रखर होती है, यह किसीको बतलानेकी बात नहीं है। प्रभु यमेश्वरमें थे, वहाँ जानेके दो रास्ते हैं, एक समुद्रके बालुकामय तीर होकर और दूसरा श्रीमन्दिरके सिंहद्वारके सामनेसे। मध्याह्न भोजनके समय दयामय प्रभुने

श्रीसनातनको यमेश्वरमें भिक्षा करनेके लिए बुला भेजा। श्रीसनातन कहीं नहीं जाते हैं, प्रभु यह जानते थे। वे यह भी जानते थे कि सिंहद्वारके रास्तेसे सनातन कदापि यमेश्वर नहीं आयेंगे। समुद्रपथ प्रखर रौद्रसे नितान्त अगम्य था। रौद्रके समय उस रास्तेसे कोई नहीं चलता।

श्रीसनातन हरिदास ठाकुरके वासापर बैठकर कृष्ण-कथा कह रहे थे, उसी समय दयामय प्रभुका आदेश पहुँचा कि उनको यमेश्वर टोटापर भिक्षाके लिए जाना होगा। परम आनन्दसे श्रीसनातन चल पड़े। प्रभुने कृपा करके बुलाया है, इसपर क्या वे बिलम्ब कर सकते थे? उत्तप्त बालुकाके ऊपरसे होकर वे उर्ध्वश्वास लेकर चल पड़े। रौद्रतप्त बालुकाके स्पर्शसे उनके पैरोंमें जो फफोले पड़ गये, इसका उनको ज्ञान न रहा। उत्तप्त बालुकाके स्पर्शसे उनके दोनों चरण एकबारगी अग्निदग्ध हो गये, परन्तु इसका उनको कोई भान न था। दयामय प्रभुने उनको स्मरण किया है, इस आनन्दमें गौरभक्त चूड़ामणि श्रीसनातनको आत्म आत्म-विस्मृत हो गयी है, उनको देहानुसन्धान नहीं है।

भोजन-विलासके बाद प्रभु विश्राम कर रहे थे, उस समय श्रीसनातन हाँफते-हाँफते यमेश्वरके टोटा* पर जा पहुँचे। गोविन्द वहाँ थे। प्रभुका अवशेष पात्र उन्होंने श्रीसनातनको दिया। परमानन्दसे श्रीसनातनने प्रभुका अधरामृत प्रसाद पाकर उनके पास जाकर श्रीचरणकी बन्दना की।

दयामय अन्तर्यामी महाप्रभुने उनसे पूछा, "सनातन! तुम किस मार्गसे आये?" श्रीसनातनने उत्तर दिया, "हे प्रभु! मैं समुद्र-पथसे आया हूँ।" सर्वज्ञ प्रभुने पुनः उत्कण्ठित चित्तसे पूछा, "सनातन! समुद्र-पथसे उत्तप्त बालुकाके ऊपर होकर तुम इस मध्याह्न कालमें कैसे आये? सिंहद्वारका पथ शीतल था, उधरसे क्यों नहीं आये? उत्तप्त बालुकासे तुम्हारे पद-द्वय दग्ध हो गये हैं। सनातन! तुमने ऐसा कार्य क्यों किया?

सनातनने हाथ जोड़कर निवेदन किया, 'हे प्रभु! मुझे तो कोई कष्ट नहीं मालूम पड़ता है, पैरमें कोई बेदना हो रही हो—ऐसा भी अनुभव नहीं होता। मैं नीच जाति हूँ, अस्पृश्य हूँ। सिंहद्वारके रास्तेसे जानेका मेरा अधिकार नहीं है। उस रास्तेसे सर्वदा जगन्नाथजीके सेवक आते-जाते हैं। मेरा यह अपवित्र देह यदि उनके देहसे स्पर्श हो गया, तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। इसी भयसे मैं उस मार्गसे नहीं आया।"

यह सुनकर दयामय महाप्रभु विशेष सन्तुष्ट होकर बोले—"सनातन! तुम जगत्के पावन-कर्त्ता हो, तुमको स्पर्श करके देव-मुनिगण पवित्र होते हैं। तथापि मर्यादा-पालन साधुका भूषण है। मर्यादाका लंघन करनेसे उपहास भी होता है और इहलोक-परलोकका नाश भी होता है। तुम्हारे द्वारा मर्यादा-रक्षणसे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। तुम ऐसा नहीं करोगे तो और कौन करेगा।"

इतना कहकर दयामय प्रभुने उनको प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान किया। श्रीसनातनके शरीरकी खुजलीके पीव आदि प्रभुके श्रीअङ्गमें पुनः लग गये। श्रीसनातन बारम्बार निषेध करने लगे, परन्तु प्रभुने उनकी एक न सुनी। श्रीसनातनके दुःखकी सीमा न रही। वे और क्या करते? प्रभु एक नहीं सुनते थे। बलपूर्वक उनको आलिङ्गन करते थे, हृदयमें दबा लेते थे। भक्तके देहमें भगवान् विराजते हैं, उनका शरीर किसी भी कारणसे अपवित्र नहीं होता। महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीके खुजलीके पीवसे भरे शरीरको आलिङ्गन करके यह बतलाया कि भक्तका देह सदा पवित्र रहता है। भक्तके देहमें श्रीभगवान् अधिष्ठान करते हैं। उसको जो अपवित्र

* टोटा=उद्यान, पुष्प-वाटिका।

समझता है, वह भगवान्‌के चरणोंमें अपराधी होता है।

महाप्रभु यमेश्वर टोटासे यथासमय अपने वासापर आये। पश्चात् श्रीसनातन भी हरिदास ठाकुरकी कुटीपर आये। श्रीगौर भगवान्‌की अन्तिम परीक्षामें श्रीसनातन उत्तीर्ण हुए। परन्तु उनके मनका दुःख नहीं गया। प्रभु जो उनके खुजलीके पीवसे भरे हुए देहको परम आदरपूर्वक आलिङ्गन करते हैं और उनके सोनेके देहमें दुर्गन्ध पीव लगता है, इसका सनातनको इतना दुःख है कि वह असीम हो रहा है।

जगदानन्द, सनातनकी खुजली और प्रभु

एक दिन जगदानन्द पण्डित हरिदास ठाकुरकी कुटियापर उनसे मिलनेके लिए आये। दोनों आदमियोंने कृष्ण-कथा-रस-रङ्गमें परम आनन्द प्राप्त किया। श्रीसनातनने जगदानन्द पण्डितसे अपने मनके दुःखको प्रकट किया। वे रोते-रोते बोले—"पण्ठित ! मैं यहाँ आया तो था प्रभुके वियोग जनित अपने दुःखको दूर करनेके लिए। मनमें शरीर-त्यागकी बात सोची, वह भी प्रभुने नहीं करने दी। मना करनेपर भी प्रभु आलिङ्गन किये बिना नहीं मानते, जिससे मेरी खुजलीका मवाद उनके शरीरमें लग जाता है। मेरे इस अपराधका कोई निस्तार नहीं है। आया था हितके लिए, हो गया विपरीत। मेरी समझमें नहीं आता कि मैं क्या करूँ।"

जगदानन्द पण्डित बहुत सरल आदमी थे। उन्होंने श्रीसनातनको अनेक प्रकारसे उपदेश दिया—"तुम्हारे लिए वृन्दावन-वास ही उचित है, रथ-यात्रा दर्शन करके तुम वृन्दावन चले जाओ। तुम दोनों भाइयोंके लिए प्रभुकी भी ऐसी आज्ञा है कि तुम लोग वृन्दावनमें रहो। प्रभुके दर्शनोंके लिए आये थे, उनका चरण-दर्शन हो ही गया।"

श्रीसनातन यह सुनकर बोले—"पण्डित ! तुमने जो उपदेश दिया है, वही ठीक है। मैं श्रीवृन्दावन जाऊँगा। मेरे लिए यहाँ रहना अब ठीक नहीं है। महाप्रभु मुझको अपने दर्शन सुखसे वञ्चित करना चाहते हैं, यही उनकी इच्छा है। इच्छामय श्रीगौर भगवान्‌की इच्छा पूर्ण होगी। मैं प्रभुकी अनुमति लेकर शीघ्र ही श्रीवृन्दावन जाऊँगा।" इतनी बात कहकर उन्होंने जगदानन्द पण्डितको दण्डवत् प्रणाम किया। उसके बाद दोनों अपने-अपने कार्यमें चले गये।

दूसरे दिन महाप्रभु नियमपूर्वक हरिदास ठाकुरकी कुटियापर आये। वह हरिदास ठाकुरको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर श्रीसनातनको बारम्बार स्नेहपूर्वक पुकारने लगे, परन्तु वे दूर खड़े थे। श्रीसनातन जानते थे कि महाप्रभु उनको क्यों पुकार रहे हैं। प्रभुका प्रेमालिङ्गन सुख मधुसे भी मधुर होता है, अमृतसे भी अमृत होता है, परन्तु श्रीसनातन उसे नहीं चाहते। क्यों नही चाहते यह पहले कहा जा चुका है। इसी कारण वे दूर खड़े हैं, महाप्रभुके पुकारनेपर भी उनके पास नहीं गये। दूरसे ही वे महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम करने लगे, और हाथ जोड़कर आकुल प्राणसे रोने लगे। तब महाप्रभु स्वयं उनके पास गये। यह देखकर श्रीसनातन घबराकर भागनेके लिए तैयार हो गये, परन्तु भाग न सके। महाप्रभुने उनको पकड़कर बलपूर्वक आलिङ्गन किया और उनका हाथ पकड़कर अपने साथ लाये। हरिदास ठाकुरके वासापर पींड़ा (चबूतरे) के ऊपर दोनों आदमी बैठ गये। श्रीसनातनने तब बहुत दैन्य और आर्त्तभावपूर्वक रोते-रोते महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु ! मैं आया तो था अपना भला सोचकर, लेकिन होगया उल्टा। सेवा करने योग्य तो मैं हूँ नहीं, अपराध प्रतिदिन होता है। मैं स्वाभाविक नीच-पापाशय हूँ, तुम्हारे स्पर्शसे मुझपर अपराध चढ़ता है, ऊपरसे मेरे शरीरका रक्त-रस तुम्हारे शरीरमें

लगता है क्योंकि तुम बलपूर्वक मेरा स्पर्श करते हो। इस अपराधसे मेरा सर्वनाश हो जायगा। इससे यहाँ रहनेमें मेरा कल्याण नहीं है, तुम आज्ञा दो, कि मैं रथ-यात्रा दर्शन करके वृन्दावन चला जाऊँ। जगदानन्दसे भी मैंने सलाह की थी; उनकी भी ऐसी ही सम्मति हैं।

श्रीसनातनकी अन्तिम बात सुनकर मर्यादारक्षक महाप्रभु जगदानन्द पण्डितके ऊपर बहुत क्रुद्ध हुए। श्रीसनातनको जगदानन्द पण्डितने उपदेश दिया है, यह सुनकर महाप्रभुका सर्वाङ्ग क्रोधसे लाल हो गया। वे रोषमें आकर हुङ्कार गर्जन करके जगदानन्द पण्डितको लक्ष्य करके श्रीसनातनसे कहने लगे—"कलका छोकरा जगदानन्द, उसको इतना घमण्ड हो गया कि वह तुमको उपदेश देता है। व्यवहार और परमार्थमें तुम उसके गुरु तुल्य हो। तुम तो मुझको उपदेश कर सकते हो। तुम्हारे वाक्य प्रमाण है। वह छोकरा तुमको उपदेश देता हैं।"

प्रभुके रोषका कारण यह था कि, जगदानन्द पण्डितने मर्यादालङ्घन करके अपनी अपेक्षा उम्रमें बड़े, ज्ञानमें प्रवीण, भजनमें पारदर्शी, वैराग्यश्रेष्ठ श्रीसनातकको उपदेश दिया था तथा वृन्दवन जानेका परामर्श दिया था। मर्यादारक्षक, शिक्षागुरु श्रीगौर भगवान्‌ने जगदानन्दको उपलक्ष्य करके लोकशिक्षा दी कि इस प्रकार मर्यादाको हानि पहुँचाने वाला कार्य वैष्णव कभी न करे। यह वैष्णवोचित कार्य नहीं हैं।

जगदानन्द महाप्रभुके एकान्त अभिमानी अन्तरङ्ग भक्त थे। प्रभुने कृपा करके उनके ऊपर जो प्रणय कोप प्रकट किया, वह वस्तुतः बड़ा मधुर था। इसकी मधुरताको रसज्ञ भक्त श्रीसनातनने जैसा समझा, दूसरे उसको वैसा नहीं समझ सकते। जगदानन्द पण्डितके प्रति महाप्रभुकी कृपा अधिक थी, उनका सौभाग्य-बल अधिक था, इसी कारण महाप्रभुने उनको शासन किया। नितान्त अपना न होनेपर कोई किसीको इस प्रकार शासन नहीं कर सकता, न करना चाहता है। भाग्यवान् जगदानन्दको श्रीगौर भगवान् नितान्त निज जन समझते थे, इसी कारण उनके ऊपर प्रणय-कोप करके उनको हितोपदेश दिया। श्रीसनातन गोस्वामी अपने भाग्यके दोषसे प्रभुके पास अबतक मर्यादा और गौरव सूचक बातें सुनते आ रहे थे। जगदानन्दके भाग्यको देखकर उनको ईर्ष्या हुई। वे मनके भावको छिपा न सके। महाप्रभुके दोनों रक्त चरणोंको पकड़कर रोते हुएबोले—"जगदानन्दके सौभाग्यका और मेरे अपने दुर्भाग्यका आज पता लगा। जगदानन्दको तो तुम आत्मीय-सुधा-रस पिलाते हो और मुझे गौरव-स्तुति रूप निम्बका रस पिलाते हो। मेरा बड़ा अभाग्य है कि मेरे प्रति तुमको आत्मीयता नहीं है।"

श्रीसनातनके मुखसे ऐसी बात सुनकर महाप्रभु लज्जित हो गये। सनातन राजमन्त्री थे, बुद्धिमें वे वृहस्पतिके तुल्य थे, वाक्पटुतामें वे विशेष पारदर्शी थे। परन्तु उनके अभीष्ट देव उनसे भी चतुर थे। श्रीसनातनके सन्तोषके लिए चतुर-चूड़ामणि महाप्रभुने हँसकर कहा—"सनातन! तुमसे अधिक प्रिय जगदानन्द नहीं है, लेकिन मैं मर्यादाका उल्लंघन सहन नहीं कर सकता। कहाँ तो तुम शास्त्रोंमें प्रवीण, जिसके वाक्य प्रमाण हैं और कहाँ जगदानन्द कलका नया वटुक। तुम्हारेमें मुझको भी सलाह देनेकी शक्ति है (वृन्दावन जाते समय रामकेलि ग्राममें श्रीसनातनने भीड़ लेकर वृन्दावन न जानेकी सलाह दी थी)। तुमको जगदानन्द उपदेश देवें, यह मैं सहन नहीं कर सकता, इसलिए मैंने उसकी भर्त्सना की। तुम्हारा स्तवन मैं बहिरङ्ग समझकर नहीं करता, तुम्हारे गुण ही ऐसे हैं जो स्तुति करवाते हैं। किसीकी ममता बहुत जनोंमें होनेपर भी प्रीतिके स्वभावके अनुसार ही भावका उदय होता है। तुमको अपना शरीर विभत्स लगता है, मुझे अमृत-सा लगता है। तुम्हारा देह अप्राकृत है, प्राकृत नहीं है, तो भी तुम्हारी उसमें प्राकृत बुद्धि है। प्राकृत भी

माना जाय तो भी मैं तुम्हारे देहकी उपेक्षा नहीं कर सकता। प्राकृत वस्तुमें अच्छे-बुरेका पार्थक्य नहीं हुआ करता। अच्छा-बुरा मानना तो मनका धर्म है और भ्रम है। मैं संन्यासी हूँ, मेरे लिए समदृष्टि धर्म है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

गीता ५.१८

ज्ञानविज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥

गीता ६.८

इसलिए तुम्हारे प्रति घृणा बुद्धि करनेसे और तुमसे अलग रहनेसे मेरा अपना धर्म नष्ट होता है।

श्रीसनातन और कोई बात न बोल सके। महाप्रभुने उनके कार्यका उद्देश्य उनको भली-भाँति समझा दिया, परन्तु उनका गुणगान करनेसे मुँह न मोड़ा। महाप्रभु श्रीसनातनसे बोले—

''तोमार गुणे स्तुति कराय ऐछे तोमार गुण।'

चै. च. अं. ४.१६५

इस बातका सनातन फिर क्या उत्तर देते? वे सिर झुकाकर चुप बैठे रहे। हरिदास ठाकुर वहाँ बैठकर सारी बातें सुन रहे थे। सुयोग पाकर उन्होंने दयानिधि महाप्रभुको निजदैन्य प्रकट करते हुए मूल-तत्त्व कह दिया—''हे प्रभु! तुम जो कुछ कह गये, यह सब बाहरी बातें हैं, यह सब बातका बतंगड़ है। तुम परम दयामय हो, यह सब तुम्हारी कृपा-मात्र है। यह कृपाके बिना और कुछ नहीं हैं। हे प्रभु! हम लोगोंको अब अधिक प्रतारणा न करो।''

हरिदास ठाकुरकी यह बात सुनकर प्रभु मुस्कुराये। वे चतुरशिरोमणि थे, भक्तोंको शिक्षा देनेके लिए उन्होंने अवतार ग्रहण किया था। भगवान्‌की कृपाके बलसे जीव सर्वसिद्धि प्राप्त करता है, यह सत्य है। परन्तु जीवके लिए इस सुकृतिके अर्जनका प्रयोजन है। साधनका प्रयोजन है। श्रीसनातन और हरिदास ठाकुरने पूर्वजन्मार्जित सुकृति और साधनके बलसे श्रीगौर-भगवान्‌की कृपा प्राप्त की थी। श्रीभगवान्‌के लिए जीव उनकी सन्तानके तुल्य है। वे पिताके समान सन्तानके सारे उपद्रवोंको सहन करते हैं, सन्तानके मल-मूत्र आदिसे जैसे माता-पिताको घृणा नहीं होती, भक्तके प्राकृत शरीरके क्लेदादिसे भी श्रीभगवान्‌के मनमें उसी प्रकार कोई विकार नहीं होता। इसी कारण महाप्रभुने श्रीसनातन और हरिदास ठाकुरको हँसकर कहा—''हरिदास! सनातन! सुनो, मैं तत्त्वकी बात बताता हूँ। मैं तुम लोगोको लाल्य और अपनेको लालक मानता हूँ। जैसे बालकके मल-मूत्र आदिसे माताको घृणा नहीं होती, वैसे ही तुम लोगोंको बालक मानकर मुझे भी तुम्हारी गन्दगीसे घृणा नहीं होती, बल्कि वह चन्दनके समान सुख देनेवाली लगती है। इसी प्रकार सनातनकी खुजलीका रस मुझे लगता है।

श्रीसनातन चुपचाप सुनते जा रहे थे। वे सिर अवनत करके बैठे थे। प्रभु जो उनकी बड़ाई कर रहे थे। वह उनको अच्छा नहीं लग रहा था। वे क्या करते? महाप्रभु इतनी बात बोल गये, पर उन्होंने सुना नहीं। अतएव वे और बातें नहीं कर रहे हैं; चुपचाप बैठकर केवल अजस्र आँसू बहा रहे हैं। हरिदास ठाकुर महाप्रभुकी बातोंका दो एक उत्तर दे रहे हैं। उन्होंने महाप्रभुसे कहा—''हे प्रभु! तुम दयामय ईश्वर हो, तुम्हारा हृदय गम्भीर है। हम क्षुद्र अधम जीव हैं। तुम्हारी अपार दयाकी बात हम क्या समझें? तुम्हारे मनमें क्या है, यह हम कैसे जान सकते हैं? गलित कुष्ठ रोगाक्रान्त वासुदेवको तुमने प्रेमालिङ्गन प्रदान कर उनको कंदर्पके समान शरीरधारी बना दिया। तुम्हारी कृपाका अन्त नहीं है।''

प्रभु तब भक्त-शरीरकी महिमा कीर्तन करने लगे—

प्रभु कहे वैष्णव देह 'प्राकृत' कभू नय ।
'अप्राकृत' देह भक्तेर चिदानन्दमय ।।
दीक्षाकाले भक्त करे आत्म समर्पण ।
सेइ काले कृष्ण ताँरे करे आत्मसम ।।
सेइ देह करे ताँर चिदानन्दमय ।
अप्राकृत देहे ताँर चरण भजय ।।

चै. च. अं. ४.१८३-१८५

इतना कहकर महाप्रभुने श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकका पाठ किया—

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ।।

श्रीम. भा. ११.२९.३४

अर्थात्—श्रीभगवान्‌ने कहा, "मनुष्य जब सारे कर्म त्याग कर मुझमें आत्म-समर्पण करता है, तब वह जीवन्मुक्त होकर मेरे समान ऐश्वर्य-लाभके योग्य हो जाता है ।"

प्रभुकी बात अभी समाप्त नहीं हुई । वे कलिके प्रच्छन्न अवतार थे। स्वयं आचरण करके धर्म-शिक्षा देनेके लिए उन्होंने नदियामें अवतार ग्रहण किया था । हरिदास ठाकुरकी ओर करुण-दृष्टिसे देखकर भक्तावतार श्रीगौर-भगवान्‌ने कहा—"श्रीकृष्णने सनातनके शरीरमें खुजली प्रकट करके मेरी परीक्षा करनेको उसको यहाँ भेजा है। यदि मैं घृणासे उसको आलिङ्गन नहीं करता, तो मैं श्रीकृष्णके पास अपराधी होता। इस पारिषद देहमें दुर्गन्ध नहीं होती, प्रथम दिन ही इसमें मुझे चतुःसम (चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम और अगुरु) गन्धकी प्रतीति हुई थी ।"

अब महाप्रभुकी बातपर विचार करें। उन्होंनें कहा है कि श्रीकृष्णने उनकी परीक्षा करनेके लिए श्रीसनातनके देहमें खुजलीका पीव उत्पन्न कर दिया । प्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं, अतएव उन्होंने अपनी परीक्षा आप की । यह परीक्षा क्यों हुई ? लोक-शिक्षाके लिए । लोक-शिक्षाके लिए वे श्रीगौराङ्ग-रूपमें नदियामें उदय हुए थे । भक्तदेह अप्राकृतिक है, इसके प्रमाणमें प्रभुने कहा कि सनातनको आलिङ्गन करते ही उनके देहमें पहले चतुःसमका गन्ध अनुभूत हुआ । लोक-दृष्टिसे श्रीसनातनके देहमें खुजलीका पीव दिखलायी देता था, परन्तु गौर-भगवान्‌ने देखा कि वह दिव्य देह है और दिव्य-गन्धसे अनुलिप्त है । वस्तुतः महाप्रभुके स्पर्श और आलिङ्गनके प्रभावसे पीव चन्दनमें परिणत हो गया, पूतिगन्ध तत्काल सुगन्धमें परिणत हो गया । इसी कारण उन्होंने कहा कि भक्तका देह अप्राकृत होता है । श्रीभगवान् जब भक्त-हृदयमें वास करते हैं, तब वे चिदानन्दमय होते हैं । उनके अधिष्ठानके कारण प्राकृत देह भी अप्राकृत हो जाता है ।

हरिदासके साथ इस प्रकार वाग्युद्ध करके महाप्रभुने श्रीसनातनके प्रति कृपादृष्टि करके कहा— "सनातन ! तुम दुःख न मानना । तुमको आलिगन करनेसे मुझे बड़ा सुख मिलता है। इस वर्ष-तुम यहाँ मेरे पास रहो । इसके बाद तुमको वृन्दावन भेज दूँगा ।"

इतना कहकर श्रीगौर-भगवान्‌ने पुनः श्रीसनातनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया, उनका दुःख दूर करनेके लिए प्रभुने कुछ ऐश्वर्य दिखलाया । जैसे ही प्रभुने श्रीसनातनको प्रेमालिङ्गन प्रदान किया, वैसे ही उनका कंदर्पके समान शरीर हो गया ।

"कण्डू गेल, अङ्ग हैल सुवर्णेर सम ।"

चै. च. अं. ४.१९२

श्रीसनातनको दिव्य देहकी प्राप्ति हुई। उनका नव कलेवर हो गया। हरिदास ठाकुर उनको देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। परन्तु सोचने लगे कि महाप्रभुकी कृपासे क्या नहीं हो सकता है? वे श्रीगौर-भगवान्‌के चरणोंमें लोटकर प्रेमानन्दमें रोते हुए बोले—"जिस झारखण्डके जलको तुमने पान किया, उसी जलसे सनातनको खुजली उपजा दी। खुजली उपजाकर सनातनकी परीक्षा की। तुम्हारी इस अजब लीलाको कोई नहीं समझ सकता।"

दयामय श्रीगौर-भगवान् मधुर मुस्कानके साथ दोनों आदमियोंको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करते हुए अपने वासापर चले गये। हरिदास ठाकुर और श्रीसनातन उनके चरणोंमें गिरकर आकुल होकर रो पड़े। श्रीसनातन अपने प्रति प्रभुकी यह अपार कृपा स्मरण करके आनन्दमें विभोर होकर जड़वत् हो गये। जहाँ तक प्रभुकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन होता रहा, दोनों आदमी एकटक मार्गमें उस ओर देखते रहे। पश्चात् कुछ सुस्थिर होकर हरिदास ठाकुरके साथ श्रीसनातन गौरकथा-रसमें मग्न हो गये।

महाप्रभुके आदेशसे उस वर्ष श्रीसनातन नीलाचलमें ही रहे। श्रीवृन्दावनमें जाकर उनको क्या-क्या करना होगा, महाप्रभुने वह सब बतला दिया।

सनातनकी विदाई

दोलयात्राके बाद प्रभुने श्रीसनातनको विदा किया। जिस वनके मार्गसे प्रभु श्रीवृन्दावन गये थे, श्रीसनातन गोस्वामीने भी उसी मार्गसे श्रीवृन्दावन जानेका सङ्कल्प किया। बलभद्र भट्टाचार्यके पास रास्तेका समस्त वृत्तान्त, प्रभुके लीला-स्थान, लीलाकथा एक-एक करके सुनकर सब लिख लिया। महाप्रभु जिस-जिस मार्गसे गये थे, जो-जो नदियाँ पार की थी, जिस-जिस वृक्षके तले बैठकर विश्राम किया था, जिस-जिस गाँवमें रातको रहे थे, जिस स्थानपर जो-जो लीलाएँ की थी, सब एक-एक करके लिपिबद्ध कर लिया।

महाप्रभुसे जिस समय श्रीसनातन विदा हुए, वह दृश्य अजीव करुण था। उसका वाणीके द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रभु और श्रीसनातन दोनों एक दूसरेके वियोगमें कातर हो गये। भगवान्‌के विरहमें भक्त मृतप्राय हो गया, भक्तके विरहमें भगवान् म्रियमाण हो गये। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

जे-काले विदाय हैल प्रभुर चरणे।
दुइ जनार विच्छेद-दशा ना जाय वर्णने॥

चै. च. अं. ४.१९९

भक्त और भगवान्‌की विच्छेद-दशा वर्णनकी वस्तु नहीं है। यह अनुभवका विषय है, ध्यानकी वस्तु है। कृपालु पाठकवृन्द! कृपा करके एकबार आँख मूँदकर स्थिर चित्तसे इस भक्त-भगवान्‌की विच्छेद-दशाके चित्रको मनमें अङ्कित करें। जिनको ध्यान करनेकी शक्ति है, वे ध्यान करें। जो चित्रकार हैं, वे इस करुण दृश्यको अपने हृदयमें अङ्कित करके चित्रकलाके द्वारा व्यक्त करें। ऐसा करनेसे भक्त-भगवान्‌का सम्बन्ध समझमें आयेगा। भगवान्‌की कृपा प्राप्त होगी, भक्तका अनुग्रह प्राप्त होगा।

वृन्दावनमें श्रीरूप-सनातन

श्रीसनातन यथाकाल श्रीवृन्दावन जा पहुँचे। प्रभुके कृपादेशके अनुसार उन्होंने कार्य आरम्भ कर दिया।

उनके भाई श्रीरूप गौड़देशमें गये थे। वहाँ उनको एक वर्ष विलम्ब हो गया। जो उनकी स्थावर सम्पत्ति थी, उसको कुटुम्बमें बाँट दी। जो

नगद सम्पत्ति थी उसको कुटुम्ब, ब्राह्मण और देवालयमें बाँट दिया। जो कुछ लोगोंको कहना था, वह सब कह-सुनकर निश्चिन्त होकर श्रीरूप-वृन्दावन आये।

श्रीरूप और श्रीसनातन दोनों भाइयोंने मिलकर प्रभुके आदेशके अनुसार श्रीवृन्दावनमें वास करके कार्यारम्भ किया। उन्होंने क्या-क्या कार्य किये, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—दोनोंने अनेक शास्त्र-ग्रन्थ संग्रह करके, उनके अनुसार वृन्दावनके कौनसे स्थानपर कौनसे तीर्थ हैं, उसका निर्णय करके लुप्त तीर्थ प्रकट किये और वृन्दावनमें श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा करके कृष्ण-सेवाका प्रचार किया।
(चै. च. अं. ४.२०६)

श्रीसनातनमें मुख्य ग्रन्थोंकी रचना की वे हैं—श्रीवृहद्भागवतामृत जिससे भक्ति-तत्त्व, भक्ततत्त्व और कृष्ण-तत्त्वका ज्ञान होता है, श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी टीका जिसमें कृष्ण-लीलारस और प्रेम विषयके अनेक तत्त्वोंका वर्णन है तथा सिद्धान्तके सार-मर्म है और हरिभक्ति-विलास जिसमें वैष्णव आचार और कर्तव्यादिके सम्बन्धमें शास्त्रीय व्यवस्था पायी जाती है। और भी अनेक ग्रन्थ लिखे जिनकी कोई गणना नहीं है। श्रीमदनमोहन श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा करके सेवा स्थापना की (चै. च. अं. ४.२१०-२१३)।

श्रीरूपने भक्ति-रसामृत-सिन्धु जिसमें कृष्णभक्ति-रसका विस्तार है, उज्ज्वल नीलमणि जिसमें सखा, सखी, प्रेमतत्त्व आदिका विवरण है, विदग्धमाधव, ललितमाधव दो नाटक, जिनमें सम्पूर्ण कृष्ण-लीलाका वर्णन है, दानकेलि कौमुदी जिसमें श्रीकृष्णकी दानलीलाका चमत्कार रूपसे वर्णन है। इसके सिवाय और भी बहुतसे ग्रन्थ व्रजरसके लिखे (चै. च. अं. ४.२१४-२१७)।

श्रीसनातन गोस्वामीके कनिष्ठ भ्राता अनुपमके एकलौते पुत्र श्रीजीव गोस्वामी भी वैराग्य ग्रहण करके श्रीवृन्दावनमें रहने लगे। वे भी बहुत भक्तिग्रन्थ लिख गये हैं। उनके ग्रन्थ है—भागवत सन्दर्भ जिसमें तत्त्वसे सन्दर्भ, भगवत् सन्दर्भ, परमात्म सन्दर्भ, श्रीकृष्ण सन्दर्भ, भक्तिसन्दर्भ, प्रीतिसन्दर्भ—६ तत्त्व ग्रन्थ हैं; गोपालचम्पु जिसमें श्रीकृष्णकी व्रजलीला वर्णित है।
(चै. च. अं. ४.२१८-२२१)।

श्रीसनातन और रूप-गोस्वामीकी अद्भुत जीवनीके सम्बन्धमें बहुत कथाएँ प्रचलित हैं। इस श्रीग्रन्थमें उनकी आलोचना सम्भव नहीं है। श्रीसनातन गोस्वामी छः गोस्वामियोंमें-से एक थे। प्रभुने उनको निज-शक्ति प्रदानकर शक्तिशाली किया था। श्रीवृन्दावनमें इस महापुरुषने श्रीश्रीमदनगोपालकी सेवा प्रकाशित की। श्रीश्रीमदनगोपालके मन्दिरके समीप उनकी समाधि है, उसकी पूजा आज भी लाखों-लाखों वैष्णव करते हैं।

ओहे रूप-सनातन ! कर मोरे दया।
हरिदास शिरे धर श्रीचरण छाया ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीश्रीमन्महाप्रभुका आविर्भाव लीलारङ्ग

शचीर मन्दिरे आर नित्यानन्द-नर्तने ।
श्रीवास-कीर्तने आर राघव-भवने ।।
एइ चार ठाञि प्रभूर सतत आविर्भाव ।
'प्रेमाकृष्ट हये' प्रभुर सहज स्वभाव ।।

चै. च. अं. २.३३,३४

महाप्रभुकी नीलाचल-लीलाके छः वर्ष बीत गये। सातवाँ या आठवाँ वर्ष बीत रहा था। उन्होंने संन्यास ग्रहण करके इस थोड़ेसे समयमें किस प्रकार अलौकिक रूपमें जीवोद्धार कार्य किया, यह कृपालु पाठकवृन्द समझ रहे होंगे। अब महाप्रभुकी अवस्था बत्तीस वर्ष हो गयी थी। वे दीर्घाकृति सुन्दर युवा पुरुष थे, अपरूप रूपराशि मानो सर्वाङ्गसे फूटकर बाहर निकल रही थी। श्रीअङ्गकी दिव्य कान्ति सौ-गुना बढ़ गयी थी। परन्तु श्रीमुखमण्डलका भाव ज्योंका त्यों। वह अपूर्व भाव क्या था, सुनिये—

प्रभुका श्रीमुख देखते ही जान पड़ता था कि वे एक पतिविरहिणी द्वादश वर्षीया नव-विवाहिता नवबाला हैं। नवीन प्रेममाधुरीसे परिपूर्ण सलज्ज नयन मानो नवीन भावमें सदा ही छलछलाये, प्रणयीजन-दर्शनकी लालसामें सतत् चञ्चल थे। उनके सारे अङ्गमें राधाभावद्युति मानो सदा झलकती रहती थी। सदा ही प्रभुके श्रीमुखका यह मधुर-भाव उनके भावुक भक्तोंके ध्यानकी वस्तु था। अब उनकी वयोवृद्धि हो रही थी, तथापि श्रीमुखके इस अपूर्व मधुमय भावमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। रसिक भक्तवृन्दके नयनचकोर सदा ही प्रभुकी इस अपूर्व, अद्भुत और अलौकिक भावपूर्ण श्रीवदनकी मधुरिमा-सुधा पान करते थे। उनके श्रीअङ्गमें कुछ-कुछ परिवर्तन दीख पड़ता था, परन्तु श्रीवदनमें कोई परिवर्तन न था। यह एक परम रहस्यकी बात थी।

छः वर्षतक तीर्थभ्रमण आदि नाना प्रकारके लीला-रङ्ग करके महाप्रभु अठारह वर्ष नीलाचलमें रहे। वे और कहीं नहीं गये। नीलाचलमें जाकर उनके श्रीचरणका दर्शन करना सबके भाग्यमें नहीं वदा था। कलिके जीव नाना प्रकारके उपद्रवसे क्लान्त थे, नाना प्रकारके रोगोंसे उत्पीड़ित थे, तापकी ज्वालासे जर्जर हो रहे थे, दूरदेशसे आनेमें उनको बहुत विघ्नोंका सामना करना पड़ता था। कलिपावनावतार श्रीगौर-भगवान् कलिग्रस्त जीवोंका उद्धार करनेके लिए नदियामें अवतीर्ण हुए थे। वे माताके आदेशसे श्रीनीलाचलमें अधिष्ठित थे। नदियाके भक्तगण यद्यपि प्रति वर्ष नीलाचलमें आकर उनका दर्शन कर जाते थे, परन्तु प्रभुका दर्शन सबके भाग्यमें वदा न था। दयानिधि प्रभुने अन्तर्यामी रूपमें सब जीवोंके दुःखको समझा, और नीलाचलमें बैठकर उन सब जीवोंके उद्धारका उपाय कर दिया।

श्रीभगवान्‌के अवतारके द्वारा जीवोद्धारके तीन उपाय या मार्ग वर्णित हैं। प्रथम—उनके अवतार देहका साक्षात् दर्शन, द्वितीय—योग्य भक्तदेहमें प्रवेशरूप आवेशके द्वारा, तथा तृतीय—उपयुक्त स्थानमें भक्तोंके चिन्तन मात्रसे स्वयं आविर्भावके द्वारा। इस त्रिविध उपायके द्वारा श्रीगौर-भगवान्‌ने कलिग्रस्त जीवोंका उद्धार किया था। साक्षात् दर्शनके द्वारा प्रभुने बहुतसे लोगोंका उद्धार किया

था। एक बार जिसने उनकी श्रीमूर्त्तिका दर्शन किया, उसको फिर भवबन्धनका भय नहीं रहा।

साक्षात् दर्शने सब जगत् तारिल।
एक बार जे देखिल, से कृतार्थ हैल ।।

चै. च. अं. २.६

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण शचीनन्दनके रूपमें नदियामें उदय हुए हैं, वे श्रीनीलाचलमें अधिष्ठान कर रहे हैं—इसकी खबर जगत्के जीवोंको हो गयी थी। जो लोग भाग्यवान् थे वे नीलाचलमें आकर साक्षात् भगवद्दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हो रहे थे। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

आर नाना देशेर लोक आसि जगन्नाथ।
चैतन्यचरण देखि हइल कृतार्थ ।।
सप्तद्वीपेर लोक आर नवखण्डवासी।
देव गन्धर्व किन्नर मनुष्य वेशे आसि ।।
प्रभुके देखिया जाय 'वैष्णव' हइया।
'कृष्ण' कहि नाचे प्रेमाविष्ट हैया ।।

चै. च. अं. २.८-१०

जो लोग दैवकी विडम्बनामें पड़कर संसार-बन्धनको छोड़कर नहीं आ सकते, श्रीगौर-भगवान् कृपा करके उपयुक्त भक्तके हृदयमें प्रवेश करके आवेश द्वारा उसमें अपनी शक्ति सञ्चार करके उसके द्वारा जीवोंका उद्धार करते हैं, ऐसे महापुरुष भक्तजनके दर्शनसे भी जीवोंका उद्धार होता है।

नकुल ब्रह्मचारीमें आवेश

यहाँ प्रभुकी अनन्त कोटि आवेश लीला-रङ्गकी कथा वर्णनकी जा रही है।

गौड़ देशमें स्वयं श्रीगौर-भगवान्के उदय होनेपर भी वहुतसे पाखण्डी पण्डितोंका उद्धार नहीं हुआ। 'दिया तले अँधेरा' की कहावत प्रसिद्ध ही है। आध्यात्मिक जगत्में भी यह कहावत चरितार्थ होती जान पड़ती है। श्रीगौर-भगवान् गौड़ देशकी राजधानी नवद्वीपमें उदय हुए थे, उसी गौड़ देशके पतित पाखण्डी लोगोंका उद्धार करनेके लिए उनको गृह-संसारके सुख-ऐश्वर्य परित्याग करके पथका भिखारी बनना पड़ा। अवधूत श्रीनित्यानन्दको संसारी बनना पड़ा। एवं नीलाचलमें बैठकर भी महाप्रभुको गौड़ देशके पतित पाखण्डियोंके लिए चिन्तन करके वहाँ ही आविर्भाव और आवेश लीला-रङ्ग प्रकट करना पड़ा था। इसी सूत्रमें प्रभुने नकुल ब्रह्मचारीके हृदयमें प्रवेश किया। नकुल ब्रह्मचारी नामक एक अति निष्ठावान् विप्र जम्बु गाँवमें रहते थे, वे परम वैष्णव थे।

तब नकुल ब्रह्मचारीकी अवस्था क्या हुई, सुनिये—

ग्रहग्रस्तप्राय नकुल प्रेमाविष्ट हइया।
हासे कान्दे नाचे गाय उन्मत्त हइया ।।
अश्रु कम्प स्तम्भ स्वेद—सात्त्विक विकार।
निरन्तर प्रेमे नृत्य सघन-हुङ्कार ।।

चै. च. अं. २.१७,१८

सब लोग कहने लगे कि इनके शरीरमें महाप्रभुका आवेश हुआ है। गौड़ देशके लोग उनका दर्शन और पूजा करनेके लिए एकत्रित हो गये।

गौरत्विषा कपिशयन् ककुभः समन्ता-
दानन्दभोगपरिलोपितबाह्यवृत्तिः।
आबालवृद्धतरुणैरथ लक्षसंख्यै-
र्लोकैरमूर् प्रणयिभिः परिपूज्यमानः ।।

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक ९.३

नकुल ब्रह्मचारी जिसको देखते उसीको कहते—कृष्ण कहो, कृष्ण कहो'। उनका दर्शन करके लोगोंके हृदयमें अपूर्व प्रेमोद्गम होने लगा।

नकुल ब्रह्मचारी गौरवर्ण, परम सुन्दर पुरुष थे। उनका दर्शन करके आबाल वृद्ध वनिता सब कहने लगे कि उनके देहमें महाप्रभुका आविर्भाव हुआ है।

महाप्रभुके परम भक्त शिवानन्द सेनके कानोंमें यह बात पहुँची, वे भी वहाँ गये और सब कुछ देखा। उनके मनमें सन्देह हुआ। यह सन्देह महाप्रभुकी इच्छासे ही उनके मनमें उत्पन्न हुआ। महाप्रभुकी प्रेरणासे ही उन्होंने नकुल ब्रह्मचारीकी परीक्षा करनेका सङ्कल्प किया। शिवानन्द सेन मन-ही-मन विचार करके बाहर आकर बैठ गये। वे सोचने लगे, इनके देहमें महाप्रभुका आवेश हुआ है, इसका प्रमाण क्या है ? मैं कैसे विश्वास करूँ ? ये यदि भृत्य समझकर मुझको पुकारें, और मेरा इष्ट मन्त्र बतला सकें तो मैं समझूँ कि इनके शरीरमें सचमुच ही महाप्रभुका आवेश हुआ है। ऐसा मन-ही-मन स्थिर करके शिवानन्द सेन घरके बाहर कुछ दूर एक स्थानपर बैठ गये।

बहुत लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हुई है। कितने लोग आ जा रहे हैं, उनकी संख्या नहीं है। भीड़के कारण नकुल ब्रह्मचारीका दर्शन दुष्कर हो गया है। बहुत-से लोग हताश होकर लौट जा रहे हैं। शिवानन्द सेन दूर बैठकर सब देख रहे हैं। उसी समय कुछ लोग घरके भीतरसे आकर उच्च-स्वरसे 'शिवानन्द कौन है ? शिवानन्द कहाँ हैं ?' कहकर पुकारने लगे। यह सुनकर शिवानन्द सेन वहाँ आकर बोले—'मैं शिवानन्द हूँ'। पुकारने वालेने कहा—"ब्रह्मचारी तुमको बुलाते हैं, चलो।"

शिवानन्द सेनने तब लोगोंकी भीड़को ठेलते हुए अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक भीतर प्रवेश किया। वे नकुल ब्रह्मचारीको दण्डवत् प्रणाम करके पास बैठे। तब प्रेमाविष्ट-भावमें प्रेमावेशमें ब्रह्मचारीने उनसे कहा—"शिवानन्द ! तुम्हारे मनमें जो सन्देह है, वह व्यर्थ है। तुम्हारा चतुराक्षर गौर-गोपाल मन्त्र है। तुम सन्देह दूर करो।"

तब शिवानन्द सेनके मनका सन्देह दूर हो गया। उन्होंने भक्तिपूर्वक पुनः नकुल ब्रह्मचारीको दण्डवत् प्रणाम करके उनकी पद-धूलि ले ली। उन्होंने जान लिया कि सचमुच इस महापुरुषके देहमें महाप्रभुका आविर्भाव हुआ है।

इस प्रकारके आविर्भावको आवेश भाव कहते हैं। श्रीगौर-भगवान्के आवेश-भावसे विशिष्ट ये भक्तगण उस समयके लिए आवेशावतार कहलाते हैं। इस प्रकार सामयिक आवेशावतार द्वारा जीवके उद्धारका कार्य होता है।

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीके यहाँ आविर्भाव

अब महाप्रभुकी आविर्भाव लीलारङ्गकी बात सुनिये। मर्मी और एकान्त अन्तरङ्ग भक्त-महाप्रभुको बिना देखे एक दण्ड भी नहीं रह सकते। महाप्रभु भी क्षणमात्रके लिए उनका सङ्ग नहीं छोड़ सकते। बहुत दूर रहनेपर भी सूक्ष्म देहमें श्रीगौर-भगवान् इस प्रकार कृपासिद्ध भक्तके घर उपस्थित होकर भक्तके दिये हुए प्रेमोपहारको ग्रहण करते हैं, भक्तके द्वारा निवेदित भोगादि उपहार अङ्गीकार करते हैं। शचीमाताके श्रीमन्दिरमें, श्रीनित्यानन्द प्रभुके नर्त्तनमें, श्रीवास पण्डितके कीर्तनमें और राघव पण्डितके घर महाप्रभुका नित्य-आविर्भाव होता था। नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीके घर भी महाप्रभुने इसी प्रकार एक दिन आविर्भूत होकर भोजन-विलास-रङ्ग प्रकट किया था। वह अपूर्व लीला-कथा यहाँ वर्णित होगी।

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीका पूर्वनाम था प्रद्युम्न ब्रह्मचारी। वे महाप्रभुके एकान्त भक्त, नृसिंह-मन्त्रके उपासक और सिद्ध पुरुष थे। नृसिंह-मन्त्रका उपासक होनेके कारण प्रभुने उनका नाम रक्खा था नृसिंहानन्द। श्रीकान्त सेन शिवानन्द सेनके भानजे थे। वे भी महाप्रभुके परमभक्त थे। एक बार वे अकेले महाप्रभुके दर्शनके लिए नीलाचल आये थे। प्रभुने उनको अकेला देखकर अतिशय यत्नपूर्वक उनको अपने पास दो महीने रक्खा। वे जब गौड़ देश लौटे तो प्रभुने कहला भेजा कि नदियाके

भक्तोंको इस साल नीलाचल नहीं आना चाहिये। प्रभुने कहा था—

ए वत्सर ताँहा आमि जाइव आपने।
ताहाँइ मिलिव सब अद्वैतादि सने॥
शिवानन्दे कहियो—आमि एइ पौष मासे।
आचम्विते अवश्य जाइब ताँहार आवासे॥
जगदानन्द हय ताहाँ तेंहो भिक्षा दिबे।
सभाके कहियो-ए-वर्ष केहो ना आसिबे॥
चै. च. अं. २०.४०-४२

श्रीकान्त सेनने गौड़ देशमें आकर महाप्रभुकी यह कृपादेश वाणी अपने मामा तथा अन्यान्य सब भक्तोंको कह सुनायी। यह बात सर्वत्र फैल गयी। महाप्रभु पुनः इसी भावमें गौड़में आवेंगे. यह समाचार सुनकर सभी आनन्द सागरमें निमग्न हो गये। श्रीअद्वैत प्रभु आदि सब भक्तोंने उस वर्ष नीलाचल यात्रा बन्द कर दी।

महाप्रभु पौषके महीनेमें आवेंगे, उस समय शीतकाल रहेगा; शाक, मोचा, थोड़ आदि जो उनको अत्यन्त प्रिय है, उस समय ठीक पैदा नहीं होता, इसलिए पहलेसे ही उनके परम भक्त शिवानन्द सेनने अपने घर नाना प्रकारके शाकके बीज वपन किये। जगदानन्दने उत्तम गर्भ-थोड़ और मोचाका वन्दोवस्त करनेका भार ग्रहण किया। दोनों आदमियोंने मिलकर नाना प्रकारके उत्तम-उत्तम भोजनकी सामग्री इकठ्ठी करनेका आयोजन किया।

पौषका महीना आया। शिवानन्द सेन और जगदानन्द दोनों ही प्रतिदिन महाप्रभुकी सन्ध्या पर्यन्त सतृष्ण नयनोंसे बाट देखते हैं। इस प्रकार सारा पौषका महीना बीत गया, परन्तु महाप्रभु नहीं आये। इससे वे लोग मनमें अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगे।

उसी समय एक दिन अचानक नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी शिवानन्द सेनके घर आकर उपस्थित हुए। शिवानन्द सेन और जगदानन्दने बड़े आदरपूर्वक उनको बैठनेके लिए आसन दिया, तथा अपने मनका दुःख उनसे निवेदन किया। दोनों आदमीके मनके कष्टको देखकर नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे भी प्रभु-विरहमें कातर थे। आनेके लिए कहकर महाप्रभु आये क्यों नहीं? इसी चिन्तामें सब लोग आतुर थे। नृसिंहानन्द मन ही मन कुछ देर तक न जाने क्या सोचते रहे। पश्चात् उन्होंने हँसकर कहा, "हे शिवानन्द! हे जगदानन्द! तुम लोग चिन्ता न करो। आजसे तीसरे दिन मैं प्रभुको तुम्हारे घर लाऊँगा।"

शिवानन्द सेन और जगदानन्द यह सुनकर प्रेमानन्दमें आकुल होकर रोते हुए ब्रह्मचारीका चरण पकड़कर बोले, "स्वामिन्! आनेके लिए कहकर महाप्रभु आये क्यों नहीं? प्रभुके लिए नाना प्रकारकी शाक-सब्जी हम यत्न करके जुटाये हैं। उनकी ये परम प्रिय वस्तुएँ नष्ट होते देख हमारा हृदय विदीर्ण हो रहा है।

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीने उनको मधुर वचनसे सान्त्वना देकर कहा, "मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि तीसरे दिन महाप्रभु यहाँ आवेंगे। अपनी सारी प्रिय भोज्य वस्तुएँ तुम्हारे घर बैठकर वे भोजन करेंगे।" नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी इतना कहकर वहाँ ही ध्यानमें बैठ गये। महाप्रभुके उस कृपासिद्ध महापुरुषकी महिमा और प्रभाव शिवानन्द और जगदानन्द दोनों ही जानते थे। अतएव उनकी बातपर विश्वास करके वे लोग कुछ शान्त हुए।

दो दिन ध्यान करके नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीने शिवानन्द सेनसे कहा—"प्रभुको पानिहाटिमें राघव पण्डितके घर लाया हूँ। कल दोपहरको वे तुम्हारे घर आकर भोजन विलास करेंगे। तुम रसोईकी तैयारी करो। मैं अपने हाथसे रसोई बनाकर प्रभुको भिक्षा कराऊँगा।"

इतनी बात सुनकर प्रेमानन्दमें शिवानन्द और जगदानन्दने झटपट प्रभुके भोगके लिए पाकका

सारा उद्योग कर दिया। दूसरे दिन प्रातःकालसे नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी स्वयं पाक करने लगे। नाना प्रकारके शाक-सुक्ता, व्यञ्जन, रसा, मिष्ठान्न पायस आदि पाक करके उन्होंने महाप्रभुके भोगकी तैयारी की। उन्होंने तीन भोग प्रस्तुत किये। महाप्रभुका एक भोग पृथक् परोसा, और दो भोगमें एक श्रीजगन्नाथजी का, और दूसरा अपने इष्टदेव श्रीनृसिंहजीके लिए परोसा। तीनों भोगोंमें तुलसी मञ्जरी देकर तीनों देवताओंको समर्पण करके बाहर आकर ध्यानमें बैठ गये।

ध्यानके अन्तमें करवाद्य करके भोगगृहके भीतर जाकर देखते हैं कि श्रीगौर भगवान्ने स्वयं आकर तीनों भोगकी सामग्री भोजन कर लिया, कुछ भी शेष नहीं छोड़ा। भक्तचूड़ामणि श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी प्रभुके इस अपूर्व भोजन-विलास रङ्गका दर्शन करके प्रेमानन्दमें गद्गद होकर अजस्र आँसू बहाते हुए उन्होंने रोते-रोते प्रभुसे कुछ कहा, "हाय ! हाय, तुमने यह क्या किया। जगन्नाथ और तुम तो एक ही हो, इसलिए उनका भोग खाया सो तो ठीक, लेकिन नृसिंह भोग क्यों खा लिया। मालुम होता है आज नृसिंहको उपवासी रहना पड़ेगा। मेरे ठाकुर उपवासी रहेंगे तो मैं दास कैसे जीऊँगा।"

महाप्रभुका भोजन-लीलारङ्ग दर्शन करके नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीके मनमें परमानन्द तो हुआ, परन्तु अपने इष्टदेवको उपवासी देखकर उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ। यह दुःख, वस्तुतः दुःख न था, यह तो इष्टमें एकनिष्ठताका प्रमाण मात्र था। महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं, श्रीजगन्नाथजी भी वही हैं, श्रीनृसिंहजी भी वही हैं। यह तत्त्व नृसिंहानन्दको समझानेके लिए पूर्णब्रह्म, सनातन, स्वयं भगवान्, महाप्रभुने यह अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया।

महाप्रभु शिवानन्दके घर भोजन-विलास समाप्त करके पानिहाटि चले गये। प्रभुके इस सूक्ष्म देहमें आविर्भाव, और भोजन-विलास रङ्गको केवल उनके कृपासिद्ध भक्त नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीने देखा। शिवानन्द सेन और जगदानन्दने केवल इतना ही देखा कि प्रभुके लिए जो भोग लगाया था, वह अब नहीं है। उन्होंने प्रेमानन्दमें विह्वल होकर रोते-रोते नृसिंहानन्दसे पूछा—"स्वामिन् ! यह क्या हुआ ? बतलाइये। आप इस प्रकार फुफुकारते क्यों हैं ?" नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी उस समय भी प्रेमावेशमें मग्न थे, केवल मुँहसे फुफुकारी दे रहे थे। उनका सर्वाङ्ग पुलकित था। उन्होंने प्रेमगद्गद वचनसे कहा, "अपने प्रभुका व्यवहार देखो, तीनोंका भोग वे अकेले ही खा गये।"

शिवानन्द यह सुनकर चकित हो गये, उनके मनमें सन्देह हुआ कि क्या यह सच बात है ? अथवा प्रेमावेशमें ब्रह्मचारी प्रलाप कर रहे हैं ? उन्होंने फिर नृसिंहानन्दसे पूछा।

ब्रह्मचारी अब प्रकृतिस्थ हो गये थे, उनकी प्रेमावेशकी अवस्था चली गयी थी। उन्होंने पुनः रसोई बनानेकी इच्छा प्रकट की। क्योंकि उनके इष्टदेव उपवासी रह गये थे। अब शिवानन्दकी समझमें आया कि महाप्रभु उनके इष्टदेव श्रीनृसिंहजीका भोग भी भोजन कर गये हैं, नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी जो कुछ कह रहे हैं, वह परम सत्य है। वे उनके अपूर्व प्रभाव और अलौकिक महिमाको जानकर उनके चरणोंमें गिर पड़े। पुनः रसोईका प्रबन्ध कर दिया। नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीने तब पुनः पाक करके अपने इष्टदेवको भोग लगाया। तत्पश्चात् परम आनन्दपूर्वक सबने उस दिन एक साथ बैठकर प्रसाद पाया।

दूसरे वर्ष जब शिवानन्द सेन रथयात्राके उपलक्ष्यमें नदियाके भक्तगणके साथ महाप्रभुके दर्शनके लिए नीलाचल गये तो एक दिन सब भक्तोंको साथ लेकर अपने वासापर बैठकर भक्तवत्सल प्रभुने बातों-ही-बातोंमें नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीका प्रसङ्ग उठाकर कहा—

गत वर्षे पौष मासे आमा कराइल भोजन ।
कभू नाहि खाइ ऐछे मिष्ठान्न व्यञ्जन ॥
चै. च. अं. २.७६

भक्तगण यह सुनकर परम आश्चर्यमें आ गये। तब शिवानन्दके मनमें दृढ़ विश्वास हो गया कि प्रभुने सचमुच ही पौष मासमें उनके घर स्वयं आविर्भूत होकर भोजन-विलास लीलारङ्ग किया था। वे प्रेमानन्दमें विह्वल होकर महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर पछाड़ खा-खाकर रोने लगे।

महाप्रभु अपने इस आविर्भाव लीलारङ्गका दर्शन शची माताको सदा सर्वदा कराते थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुके नृत्यकालमें उसी प्रकार महाप्रभुका आविर्भाव होता था।

श्रीवास पण्डितके घर जब कीर्तन होता था तो वहाँ भी वे आविर्भूत होते थे। राघव पण्डितके घर भी उनका इसी प्रकार आविर्भाव होता था। ये सभी भाग्यवान् कृपासिद्ध भक्तगण महाप्रभुका सर्वदा दर्शन पाते थे। वे भक्तके वश रहते हैं, भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं। भक्त प्रेमके वशीभूत होकर, उनकी अनुरागपूर्वक पुकारसे उनको नीलाचलसे आना पड़ता था, उनके दिये हुए प्रेमोपचारके द्रव्योंको ग्रहण करना पड़ता था।

प्रेमवश गौर प्रभु जाँहा प्रेमोत्तम ।
प्रेमवश हैया ताहाँ देन दरशन ॥
चै. च. अं. २.८०

महाप्रभुने अपने आविर्भाव लीलारङ्गका वृत्तान्त स्वयं दामोदर पण्डितके द्वारा अपनी स्नेहमयी जननीको कहला भेजा था। विजया-दशमीके दिन महाप्रभुने अपनी माताके समीप आविर्भूत होकर उनके दिये हुए ठाकुरके प्रसादान्न व्यञ्जनको भोजन किया था। शचीदेवी शून्यपात्र देखकर विस्मित होकर सोचने लगी, "जान पड़ता है, कोई जीव-जन्तु आकर ठाकुरका भोग खा गया है।" उन्होंने पुनः रसोई बनाकर नारायणको भोग दिया था। यह सारी लीला कथा पहले वर्णित हो चुकी है।

प्रभुके ये दो अपूर्व लीलारङ्ग हैं आवेश और आविर्भाव लीला। ये उनकी ऐश्वर्य लीलाएँ हैं, अतएव अलौकिक हैं। श्रीभगवान्‌की अलौकिक लीलामें निष्कपट विश्वास हुए बिना उनका ऐश्वर्य तत्त्व समझमें नहीं आ सकता। षड़ैश्वर्यपूर्ण श्रीभगवान्‌का ऐश्वर्य ही उनकी भगवत्ताका प्रकृष्ट प्रमाण है। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

अलौकिक लीलते जार ना जन्मे विश्वास ।
इहलोक परलोक तार हय नाश ॥
चै. च. म. ७ १०८

भगवत्-प्रभाव और महिमाको समझनेके लिए सबसे पहले उनकी अलौकिक ऐश्वर्य लीलाओंकी प्रकृष्ट रूपमें आलोचना और आस्वादन करना पड़ता है। श्रीकृष्ण भगवान्‌की पूतना-बध आदि बाल्य लीलाएँ ऐश्वर्य भावसे पूर्ण हैं, अतएव अलौकिक हैं। गर्गाचार्यने उन सब अलौकिक लीलाओंकी चर्चा करके नन्द महाराजसे कहा था कि उनका पुत्र साक्षात् भगवान् है। श्रीगौराङ्ग लीला परम अद्भुत और परम गुह्य है। भक्त महाजनने कहा है कि यह वेदगोप्य है, चारों वेदका गुप्त धन है। यह परम सत्य है। यह—

कहिवार कथा नहे, कहिले केह ना बुझये,
ऐछे चित्र चैतन्येर रङ्ग ।
सेइ से बूझिते पारे, चैतन्येर कृपा जारे,
हय ताँर दासानुदास-सङ्ग ॥
चै. च. म. २.७२

यह बात जिस तिसकी नहीं हैं, पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीका कथन है। वह एक स्थानमें और कहते हैं—

आद्योपान्तलीला अलौकिक जान।
श्रद्धा करि शुन इहा सत्य करि मान॥
जेइ तर्क करे इहा—सेइ मूर्खराज।
आपनार मुण्डे जे आपनि पाड़े वाज॥

चै. च. म. १८.२१७

अतएव—

चैतन्य चरित्र शुन श्रद्धा-भक्ति करि।
मात्सर्य छाड़िया मुखे बल 'हरि हरि'॥
एइ कलिकाले आर नाहि अन्य धर्म।
वैष्णव, वैष्णव शास्त्र कहे एइ मर्म॥

चै. च. म, ९.३३३,३३४

इस प्रकार सुस्पष्ट भाषामें कौन युगधर्म प्रचार कर गया? श्रीचैतन्यचरितामृतकार पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामी। गौर लीला, गौराङ्ग-चरित पठन-पाठन, अनुशीलन और आस्वादन करनेसे व्रजलीला स्वतः हृदयमें परिस्फुट होगी, व्रजरसमें मन मत्त होगा। श्रीकृष्ण लीला गौरलीलाके अन्तर्भुक्त है, अतएव इस कलियुगमें श्रीचैतन्यचरितानुशीलन और श्रीगौराङ्ग लीला आस्वादनके सिवा अन्य कोई धर्म नहीं है। अतएव पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने दृढ़तापूर्वक तार-स्वरमें कलिग्रस्त जीवको उपदेश दिया है—

"एइ कलिकाले आर नाहि अन्य धर्म।"

चै. च. म. ९.३३४

बोलो, सब प्रेमानन्दमें बोलो, "जय श्रीगौराङ्गकी जय!" "जय श्रीविष्णुप्रिया-बल्लभकी जय!" "जय श्रीनवद्वीप धामकी जय!!"

बयालीसवाँ अध्याय

भगवान आचार्य और छोटे हरिदास

प्रभु कहे—बैरागी करे प्रकृति सम्भाषण।
देखिते ना पारि आमि ताहार वदन॥

चै. च. अं. २-११६

भगवान् आचार्य

भगवान् आचार्यकी बात पहले कही जा चुकी हैं। वे महाप्रभुके साथ नीलाचलमें रहते थे। स्वरूप दामोदर गोस्वामीके साथ उनकी बड़ी मित्रता थी। वे परम भागवत और बड़े विद्वान् थे। महाप्रभुके वे एकान्त अनुरक्त भक्त थे।

उनके पिताका नाम था श्रद्धानन्द खान। वे धनी और विषयानुरक्त थे। उनकी 'खान' की उपाधि यवनराजसे प्राप्त हुई थी। परन्तु उनका यह पुत्र शैशवसे ही विषयोंसे विरक्त था।

महाप्रभुने जब संन्यास ग्रहण किया, उसी समय भगवान् आचार्यका विषयोंसे वैराग्य प्रवल

हो उठा। उस समय वे युवक थे, तो भी गृहस्थाश्रममें अब रह न सके और गृह त्याग करके नीलाचल चले आये। नीलाचलमें आकर वे महाप्रभुकी सेवामें लग गये।

वे महापुरुष महाप्रभुके एकान्त अनुरागी मर्मी भक्त थे। उनका ब्रजभाव तथा सख्य रसाधिक्य सरलचित्त देखकर महाजनगण उनको गोपावतार कहते थे।

भगवान् आचार्य बीच-बीचमें महाप्रभुको अपने घरपर निमन्त्रित करके भिक्षा कराते थे। अपने हाथसे पाक करके नाना प्रकारके शाकादि व्यञ्जन तैयार करके बड़ी साधसे वे महाप्रभुको भिक्षा कराते थे।

भगवान् आचार्यके छोटे भाई गोपाल भट्टाचार्य काशीमें वेदान्त पढ़ते थे। वेदान्तकी पढ़ाई समाप्त करके वे बड़े भाईके पास नीलाचलमें आये। भगवान् आचार्यने उनको एक दिन प्रभुके साथ मिलाया। गोपालका सङ्ग करके प्रभुको मनमें सुख नहीं प्राप्त हुआ। उन्होंने बाह्य प्रीति दिखलाकर आदरपूर्वक उनको विदा किया।

एक दिन और भगवान् आचार्य अपने छोटे भाईको साथ लेकर स्वरूप गोस्वामीके पास गये। वे स्वरूप गोस्वामीके मित्र थे। मित्रभावमें ही उनसे बोले—"गोपाल वेदान्त पढ़कर आया है, उससे भाष्य सुननेको सब लोग वहाँ आवें।"

श्रीशङ्कराचार्य कृत वेदान्त ब्रह्मसूत्रका भाष्य वैष्णवोंके लिए श्रोतव्य नहीं है—यह बात महाप्रभुने श्रीमुखसे कही थी। गोपाल काशीसे यह भाष्य पढ़कर आये थे। स्वरूप गोस्वामी निरपेक्ष समालोचक थे। वे भगवान् आचार्यकी बात सुनकर प्रणव-कोपमें भरकर उनसे बोले—"गोपालके संगसे तुम्हारी भी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, जो मायावाद सुननेका मन हो रहा है। वैष्णव होकर शारीरक भाष्य सुने और सेव्य-सेवक भाव छोड़कर अपनेको ईश्वर मानें, तो श्रीकृष्णको प्राणधन मानने वाले महाभागवतका भी मायावादके श्रवणसे मन फिर जा सकता है।"

भगवान् आचार्यने उत्तर दिया—"गोसाईं! हम लोगोंका कृष्ण निष्ठ चित्त है, मायावाद सुनकर हम लोगोंका मन दूषित नहीं हो सकता।"

स्वरूप गोसाईंने उत्तर दिया—"तो भी मायावाद श्रवणमें ब्रह्म चिद्वस्तु है, यह जगत समस्त ही ब्रह्म है, ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, माया द्वारा जगतकी प्रतीति होती है, जीव अज्ञतासे साकार और सगुण ईश्वरकी कल्पना करता है, इत्यादि—ये ही बातें सुननेमें आती है, कहीं भी कृष्ण-नाम सुननेको नहीं मिलता। इससे भक्तका मन और कान फटने लगते हैं।"

भगवान् आचार्य लज्जासे और कोई बात न बोल सके। उसके दूसरे दिन अपने छोटे भाईको देश भेज दिया।

वेदान्त सूत्र अवश्य ही वैष्णवके लिए पाठ्य है, परन्तु स्वामी शङ्कराचार्य कृत भाष्य वैष्णवके लिए पाठ्य नहीं है श्रवणीय भी नहीं है। मूलसूत्रकी व्याख्या करके महाप्रभुने श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीको यह समझा दिया था। मूल अर्थको आच्छादन करके स्वामी शङ्कराचार्यने सारा भाष्य अपने मनसे कल्पना करके लिखा है। भगवान् आचार्यके भाई गोपाल भट्टाचार्यको उपलक्ष्य करके शिक्षागुरु श्रीगौर-भगवान्ने स्वरूप दामोदर गोस्वाभीके द्वारा यह शिक्षा दी।

छोटे हरिदास

नीलाचलमें प्रभुके दो भक्त वास करते थे। दोनोंका ही नाम हरिदास था। बड़े हरिदास थे हमारे पूज्यपाद नाम ब्रह्मके आचार्य हरिदास ठाकुर और छोटे हरिदास थे महाप्रभुके कीर्त्तनीया

उदासीन वैष्णव हरिदास। बड़े हरिदासको महाप्रभु सम्मान करते थे, छोटे हरिदासको स्नेह करते थे, प्रेम करते थे—इसी कारण उनको पास रक्खा था। उनके मुखसे नाम कीर्तन सुनकर महाप्रभु प्रेमानन्दमें विह्वल हो जाते थे। छोटे हरिदासका गला जैसे सुरीला था, वैसे ही वे सुन्दर पुरुष थे। वे प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त थे। एक दिन भगवान् आचार्यने महाप्रभुको निमन्त्रित किया। उन्होंने छोटे हरिदासकों बुलाकर कहा—"हरिदास! महाप्रभु आज मेरे यहाँ भिक्षा करेंगे, आप शिखि माहितीकी बहिन माधवी देवीके पास जाकर मेरा नाम लेकर कुछ बढिया महीन चावल भिक्षा करके ले आवें।"

वह माधवी देवी वृद्धा और तपस्विनी, तथा परम वैष्णवी थी। प्रभुकी एकान्त भक्त थी, महाप्रभु उनको राधिकाका गण कहा करते थे। इस परम भाग्यवती रमणीकी बात पहले कही जा चुकी है। महाप्रभु कहते थे कि जगत्में केवल साढ़े :तीन आदमी रसके पात्र हैं,स्वरूप गोसाई, राय रामानन्द, शिखि माहिति—ये तीन आदमी, और शिखि माहितिकी बहिन माधवी देवी आधी हैं।

छोटे हरिदासने बिना कुछ कहे सुने भगवान् आचार्यके आदेशका पालन किया। उत्तम चावल देखकर भगवान् आचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने हाथसे महाप्रभुके लिए उनके सारे शाक व्यञ्जन रन्धन किये। और उस उत्तम चावलका अन्न प्रस्तुत किया। सर्वज्ञ महाप्रभुने यथासमय आकर भोजनके लिए बैठकर उत्तम अन्न-भोग देखकर पूछा—"ऐसे बढ़िया चावल कहाँसे आये?"

भगवान् आचार्यने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"शिखि महातिकी बहिन माधवी देवीसे भिक्षा करके आया है। महाप्रभुने उनके मुँहकी ओर वक्रभावसे देखकर पूछा—"कौन यह भिक्षा करके लाया?" भगवान् आचार्यने निःसङ्कोच भावसे कहा—"आपका छोटा हरिदास।" महाप्रभु और कुछ न बोले। वह अन्न व्यञ्जनकी खूब प्रशंसा करके भोजन-लीला समाप्त करके अपने वासापर आये। आकर गोविन्दको पुकार कर बोले—"आजसे मेरी इस आज्ञाका पालन हो, छोटे हरिदासको यहाँ मत आने देना।"

गोविन्द महाप्रभुकी बात सुनकर चकित हो गये। वे तो आज्ञावाही भृत्यमात्र थे। तत्काल प्रभुकी आज्ञा पालन की गयी। छोटे हरिदास महाप्रभुके मुखसे दण्डाज्ञा सुनकर मर्माहत होकर वहाँ मूर्छित होकर गिर पड़े, तीन दिनतक उपवास किया। सभी भक्तवृन्द छोटे हरिदासके प्रति महाप्रभुकी कठोर आदेशवाणी सुनकर मर्मान्तिक दुःख पाये। परन्तु कोई भी इसका कारण न जान सका। महाप्रभुसे पूछनेका साहस किसीको न हुआ।

तीन दिनके बाद स्वरूप गोसाईंने भक्तोंके साथ महाप्रभुके चरणोंमें बैठकर धीरे-धीरे हाथ जोड़कर निवेदन किया—"हे प्रभु! छोटे हरिदासने तुम्हारे चरणोंमें ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो उनको अपने द्वारपर आनेकी मनाही कर दी है? वह आज तीन दिनसे उपवासी है।" यह बात सुनकर महाप्रभुके श्रीवदनने गम्भीर भाव धारण किया। उनके कमल-नयनसे दिव्य ज्योति निकलने लगी। वे क्रोधमें भरकर वज्रगम्भीर स्वरमें बोले—"बैरागी होकर जो स्त्रीके साथ सम्भाषण करे, मैं उसका मुख नहीं देख सकता। दुर्दमनीय इन्द्रियाँ विषय ग्रहण करती रहती हैं। काष्ठकी स्त्री-मूर्ति भी जितेन्द्रिय मुनियोंका मन चञ्चल कर देती है।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

श्रीमद्भागवत ९.१९.१७

अर्थात्—माता, बहिन और कन्याके साथ सङ्कीर्ण आसनपर उपवेशन न करे। क्योंकि बलवती इन्द्रियाँ विद्वान् पुरुषको भी आकर्षित करती हैं।

इतना कहकर महाप्रभु आसन त्याग कर भीतर चले गये। महाप्रभुके श्रीमुखसे इस प्रकारका क्रोध व्यञ्जक वाक्य सुनकर भक्तगण बहुत चिन्तित हुए। उनको इस समय और कुछ बोलना युक्ति-सङ्गत न लगा, यह सोचकर सब चुप रह गये। परन्तु छोटे हरिदासके लिए उनके प्राण रो उठे। स्वरूप गोसाईंने सबसे कहा—आज यहीं तक, कल फिर महाप्रभुके चरणोंमें इस विषयमें और कुछ निवेदन करूँगा।"

दूसरे दिन पुनः सब भक्तगण मिलकर डरते-डरते प्रभुके वासापर आये। वे उस समय आसनपर बैठकर माला जप कर रहे थे। उनकी चरण-वन्दना करके सब हाथ जोड़कर खड़े हो गये। कृपानिधि भक्तवत्सल महाप्रभुने उनको बैठनेकी अनुमति दी। तब उन सबने मिलकर डरते-डरते महाप्रभुके पीछे आसन ग्रहण किया। स्वरूप दामोदरने पुनः हाथ जोड़कर महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! हे भक्तवत्सल! हे करुणामय! छोटे हरिदासने तुम्हारे चरणोंमें सामान्य ही अपराध किया है, उसको उपयुक्त दण्ड दिया जा चुका है, अब कृपा करके उसका अपराध क्षमा करो।"

महाप्रभु सहास्य वदन थे, परम गम्भीर हो गये। उनके कनक-केतकी सदृश कमल-नयनसे मानो अपूर्व तेज-पुञ्ज निकलने लगा। छोटे हरिदासकी बात उठाते ही उनका मन अप्रसन्न हो गया। वे पूर्व दिनके समान क्रोधावेशमें आँखें लाल-लाल करके वज्रगम्भीर नादमें बोले, "मेरा मन मेरे वशमें नहीं है। जो वैरागी स्त्रीने साथ सम्भाषण करता है, उसको देखनेको मेरा मन नहीं मानता। यह व्यर्थकी बात छोड़ो, अपना काम करो, फिर यदि इसकी चर्चाकी तो मुझे यहाँ नहीं देखोगे।"

महाप्रभुके श्रीमुखसे यह दारुण वचन सुनकर भक्तवृन्द कानोंमें अंगुलि डालकर उनके चरणोंकी वन्दना करके अपने-अपने कार्यमें लग गये। प्रभु अकेले वासामें बैठकर मालाजप करने लगे। पूर्व दिन महाविरक्त होकर वे स्वयं उठकर घरके भीतर चले गये थे, आज भक्तगण उनके पाससे सशङ्कित होकर चले गये। कुछ देरके बाद प्रभु मध्याह्न कृत्य करने चले।

उस दिन भक्तोंके मनमें बड़ी अशान्ति हुई। महाप्रभुने जो बात कही, वह बड़ी ही विषम, बड़ी ही कठिन बात थी। छोटे हरिदासकी बात यदि पुनः उठायी गयी तो वे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र छोड़कर अन्यत्र चले जाँयगे। इसके बाद फिर बातें करनेका साहस किसको हो सकता था? भक्तगण बहुत ही विषण्ण और विपन्न हो गये। छोटे हरिदास अभी उपवासी ही थे।

भक्तोंके मनकी दारुण अशान्तिकी बात कृपालु पाठकवृन्द एक बार मन-ही-मन समझ लें। एक अत्यन्त अनुगत भक्तको महाप्रभु निरपराध ही वर्जित करते हैं, इस विषयमें कोई कुछ अनुरोध या उपरोध करने जाता है तो उनको विषम क्रोध होता है, वे जो नहीं बोलना चाहिये, वही बोलते हैं। भक्तवत्सल महाप्रभुके मुखसे इस प्रकारकी कठोर बात पहले किसीने कभी नहीं सुनी। उनकी भाव गति देखकर सभी स्तम्भित, विस्मित और चिन्तित हो गये।

उनमें भगवान् आचार्य भी हैं। उनके मानसिक सन्तापकी सीमा नहीं है, मर्म-वेदनाका पारावार नहीं है। उनके कारण ही छोटे हरिदासकी यह दुर्गति हुई है। वे यदि उनको माधवी देवीके पास तण्डुल भिक्षा करनेके लिए नहीं भेजते तो उनकी ऐसी दुर्गति न होती। भगवान् आचार्य परम भागवत थे, महाप्रभुके श्रीमुखसे कठोर आज्ञावाणी सुनकर उनके मनमें विषम आत्म-ग्लानि उपस्थित हो गयी। वे दिन-रात अजस्र आँसू बहाने लगे और

सोचने लगे—"हाय ! क्यों मैंने छोटे हरिदासको तण्डुल भिक्षा करनेके लिए भेजा ? क्यों मैंने यह कुकर्म किया ?"

दूसरे दिन नीलाचलवासी सब भक्तगण युक्ति करके श्रीपाद परमानन्दपुरीके पास गये। सब लोग जानते थे कि पुरी गोस्वामीको महाप्रभु गुरुवत् सम्मान करते हैं। उनके सिवा अन्य कोई उनको प्रसन्न नहीं कर सकता। सबने मिलकर पुरी गोस्वामीका चरण पकड़कर रो-रोकर छोटे हरिदासके सम्बन्धकी सारी बातें कहकर उनसे अनुरोध किया—"श्रीपाद ! आप महाप्रभुको प्रसन्न करें।" पुरी गोस्वामी अकेले प्रभुके वासापर गये। महाप्रभुने उनको दण्डवत् प्रणाम करके दिव्य आसन पर बैठाया, और विनीत वचन बोले—"क्या आज्ञा है ? आपने कैसे कष्ट किया ?"

पुरी गोस्वामी महाप्रभुके गुरु भाई थे। उन्होंने डरते-डरते छोटे हरिदासके विषयमें निवेदन किया। हरिदासका नाम सुनते ही अकस्मात् महाप्रभुका प्रसन्नवदन गम्भीराकारमें बदल गया। वे गम्भीर भावसे बोले "गोसाईजी ! सब वैष्णवोंको साथ लेकर आप यहाँ रहिये, मुझे आज्ञा दीजिये, मैं केवल गोविन्दको साथ लेकर अकेला अलालनाथ रहूँगा।"

इतनी बात कहकर महाप्रभुने अपने प्रियतम भृत्य गोविन्दको पुकारा, और पुरी गोस्वामीकी चरण-वन्दना करके तत्काल उस स्थानसे चले। महाप्रभुको इस प्रकार बाहर निकलते देखकर आकुल होकर पुरी गोस्वामी उनके साथ-साथ आकर बहुत अनुनय-विनय करके उनको वासापर लौटा ले गये। महाप्रभु विषण्ण मनसे वासापर लौटे। दोनों आदमी पुनः आसनपर बैठे। तब पुरी गोस्वामीने महाप्रभुसे कहा—"तुम स्वतन्त्र ईश्वर हो, जो चाहे सो करो, तुम्हारे ऊपर कोई क्या बोल सकता है। लोक-हितके लिए तुम्हारे सब कार्य होते हैं, हम लोग तुम्हारे हृदयकी गम्भीरताको नहीं समझ सकते।"

इतना कहकर पुरी गोसाईं अपने वासापर लौट आये। भक्तगणने जब सुना कि महाप्रभुने पुरी गोसाईंकी भी बात नहीं सुनी, तब वे हताश होकर छोटे हरिदासके पास गये। जीवन्मृत छोटे हरिदास मनः कष्टसे आहार त्याग करके भूतलपर पड़े-पड़े रो रहे थे। उनकी अवस्था देखकर पाषाण भी द्रवित हो जाता था। भक्तवृन्दने उनको धीरे-धीरे उठाया। उपवाससे वे जितना कातर थे, उससे अधिक दारुण-मनःपीड़ासे कातर हो रहे थे। उनके मुँहसे बात नहीं निकल रही थी, आँखोंसे अश्रुधार प्रवाहित हो रही थी। स्वरूप गोस्वामी भक्तोंके मुख्य पात्रके रूपमें उनको सम्बोधन करके बोले—"हरिदास ! विश्वास करो, हम लोग सब तुम्हारा हित चाहनेवाले हैं। प्रभुने हठ कर लिया है, वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं, किन्तु अन्तरमें दयालु है, कभी-न-कभी कृपा करेंगे ही। तुम हठ रक्खोगे, तो उनका भी हठ बढेगा। तुम स्नान-भोजन करो, उनका क्रोध अपने आप शान्त हो जायगा।"

दोनों ओर जिद्द करनेसे क्रोधका शमन नहीं होता, बल्कि वृद्धि ही होती है। इसी कारण सुविज्ञ स्वरूप गोसाईंने छोटे हरिदासको ऐसा उपदेश दिया। विशेषतः छोटे हरिदासका शरीर उपवाससे कातर हो रहा था। प्राणरक्षाके लिए स्नान-भोजनकी आवश्यकता थी। जब भक्तगणने छोटे हरिदासको स्नान-भोजन करनेके लिए बारम्बार अनुरोध किया तो उन्होंने उस दिन नाम मात्रके लिए स्वल्पाहार किया। भक्तवृन्द उनको नाना प्रकारसे सान्त्वना देकर बासा पर लौटे।

प्रभुने छोटे हरिदासको वर्जित किया है, यह बात नीलाचलकी सब भक्त-मण्डली ने सुनी। दूसरे लोगोंने भी सुनी। इस वर्जनका कारण भी सबको मालूम हो गया। शिखि माहातिकी बहिन माधवी देवीने भी सुना। सब लोग मर्मान्तिक मनःकष्टसे दिन काटने लगे। नीलाचलके भक्तवृन्दके मनमें एक विषादकी छाया पड़ी। छोटे हरिदास प्रभुके

दर्शनकी लालसामें छिपकर रास्तेमें आड़में बैठे रहते थे और रोते थे। महाप्रभु जब जगन्नाथ मन्दिरके रास्तेपर निकलते थे तो दूर ही से वे उनके श्रीचरणोंका दर्शनकर कृतार्थ हो जाते। महाप्रभु उनको देख नहीं पाते थे, क्योंकि वे इसी प्रकार नित्य गुप्त भावसे उनका दर्शन करते थे।

शिक्षा-गुरु श्रीगौर भगवान्के इस अपूर्व लीलारङ्गको समझनेकी शक्ति किसमें है? धर्मनीतिकी शिक्षा देनेके लिए उन्होंने अपने निज भक्तको दण्ड देकर दूसरेको शिक्षा दी। कहावत है कि, 'धियाको पीटना-बहूको सिखाना।' प्रभुका यह लीलारङ्गरहस्य भी ठीक उसी प्रकारका है। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

महाप्रभु कृपासिन्धु, के पारे बूझिते।
प्रिय भक्ते दण्ड करे—धर्म बुझाइते॥

चै. च. अं. २.१४१

छोटे हरिदासके प्रति दयामय महाप्रभुकी कठोर आज्ञा सुनकर सब भक्तोंके मनमें विषम त्रास उत्पन्न हुआ। इस विषम दण्डविधिका कारण वे लोग अवश्य जानते थे। स्त्री सम्भाषण तक विरक्त उदासीन वैष्णवके लिए अत्यन्त निषिद्ध है, यह वे लोग जानते थे। परन्तु वृद्धा तपस्विनी परम वैष्णवी माधवीदेवीके समान स्त्रीके पास महाप्रभुके भोगके लिए साधारण स्थूल तण्डुलकी भिक्षा करना स्त्री-सम्भाषण है, यह वे लोग जानकर भी समझ नहीं पा रहे थे। दण्डाज्ञा सुनकर अब उनकी समझमें आया कि वैष्णव संन्यासीके लिए स्त्रीमुख दर्शन तक निषिद्ध है। उन्होंने धर्मरक्षक महाप्रभुके भीषण शासनसे भयभीत होकर स्वप्नमें भी स्त्री-सम्भाषणका त्याग कर दिया।

यह महाप्रभुका भीषण शासन केवल छोटे हरिदासके प्रति ही नहीं था, बल्कि सारे विरक्त वैष्णव भक्तवृन्दके प्रति था। छोटे हरिदासको उपलक्ष्य करके उन्होंने अपने भक्तवृन्दको इस प्रकारसे शासन किया।

छोटे हरिदासका नीलाचल त्याग—प्रयागमें देह विसर्जन

छोटे हरिदास इस प्रकार एक वर्ष तक नीलाचलमें बैठकर प्रतिदिन प्रभुकी पुनः अनुग्रह-प्रसाद-भिक्षाकी प्रतीक्षा करने लगे। उनकी सहिष्णुताका अन्त नहीं था। उनके मनःकष्टकी सीमा न रही। परन्तु दयामय प्रभुकी उनके ऊपर कृपादृष्टि नहीं हुई। वे कदापि अपने सङ्कल्पसे च्युत न हुए। उनके दण्डादेशका लेशमात्र भी उल्लङ्घित न हुआ।

सम्पूर्ण एक वर्ष तक रहनेके बाद छोटे हरिदास एक दिन रातमें महाप्रभुके उद्देश्यसे दण्डवत् प्रणाम करके बिना किसीको कुछ कहे प्रयाग चले गये। महाप्रभुके श्रीचरणकी प्राप्तिके लिए सङ्कल्प करके पवित्र त्रिवेणी सङ्गममें देह त्याग करनेका निश्चय किया। श्रीभगवान्के समान भक्तका जैसा सङ्कल्प होता है, वैसा ही कार्य होता है। छोटे हरिदासने प्रयागमें जाकर त्रिवेणीके सङ्गममें प्रवेश करके अपने नश्वर पञ्चभूतात्मक देहको त्याग दिया।

परम दयाल भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान्ने उनकी मनोबाञ्छा पूरी कर दी। दिव्य चिन्मय देहमें भक्तचूड़ामणि नित्यदास छोटे हरिदास तत्काल प्रभुके पास आ गये। वे अन्तरीक्षमें रहकर सूक्ष्म गन्धर्व देहमें प्रतिदिन रातमें महाप्रभुको पूर्ववत् कीर्तन सुनाने लगे। भक्त और भगवान्का इस प्रकार पुनर्मिलन हुआ। अन्य किसीको इसका पता न चला और रातमें होनेवाले छोटे हरिदासके कीर्तनको भी कोई सुन न सका।

एक दिन रङ्गीले महाप्रभु बहाना करके बोले, "छोटा हरिदास कहाँ है? उसे मेरे पास ले आओ।"

भक्तगणने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "हे प्रभु ! छोटा हरिदास तुम्हारी कृपा भक्तिकी आशामें पूरा एक वर्ष यहाँ रहा । तत्पश्चात् एक दिन रातमें कहीं चला गया, किसीको कुछ पता न चला ।" अन्तर्यामी महाप्रभु यह बात सुनकर मुस्कराये । भक्तोंके मनमें बड़ा विस्मय उत्पन्न हुआ । इतने दिनोंके बाद प्रभुने छोटे हरिदासको क्यों याद किया ? इसमें कुछ रहस्य है—यही वे लोग सोचने लगे ।

स्वरूप गोसाईं जगदानन्द पण्डित, काशीश्वर, दामोदर, शङ्कर, मुकुन्द और गोविन्द सब मिलकर इस घटनाके दूसरे दिन स्नान करनेके लिए समुद्र-तटपर गये । रास्तेमें छोटे हरिदासके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें हुईं । महाप्रभुने इतने दिनोंके बाद उन्हें क्यों स्मरण किया, यह चर्चा भी उठी । वे लोग समुद्र स्नान करके लौटे आ रहे थे, उसी समय दूरसे छोटे हरिदासकी मधुर कण्ठध्वनि सुन पड़ी । मानो हरिदास उसी प्रकार मधुर कण्ठसे कीर्तन कर रहे थे । उनको कोई देख नहीं पाता था, परन्तु उनके मधुर कण्ठकी मधुमयी कीर्तन ध्वनि सबको सुनायी देती थी ।

तब गोविन्द आदि बहुतोंने अनुमान किया कि हरिदासने विष खाकर आत्महत्या करली है, उसी पापसे वह ब्रह्म-राक्षस हो गया है ।

स्वरूप गोस्वामी बोले, "यह तुम्हारा अनुमान मिथ्या है । जिसने आजन्म कृष्ण-सङ्कीर्तन किया, महाप्रभुकी सेवा की, उसका यदि शरीर श्रीक्षेत्रमें छूटता है तो उसकी ऐसी दुर्गति नहीं हो सकती, सद्गति ही होगी । वे महाप्रभुके परम कृपापात्र थे । महाप्रभुका लीला रहस्य पीछे ज्ञात हो जायगा ।" गोविन्दकी बात सुनकर स्वरूप गोस्वामीको बुरा लगा था, गौरभक्त वैष्णवके ब्रह्म-राक्षस होनेकी बात वे सहन न कर सके । इसी कारण ऐसी बात बोले । यह सुनकर गोविन्द आदि भक्तगण बहुत लज्जित हुए ।

इस प्रकार कुछ दिन बीतनेके बाद प्रयागसे एक गौड़ीय वैष्णव नवद्वीप जाकर छोटे हरिदासके त्रिवेणीमें देहत्याग करनेका समाचार नदियाके भक्तोंको कह सुनाया । यह दारुण समाचार सुनकर सब लोग दुःखसे हाहाकार करने लगे । उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि भक्तवत्सल दयामय महाप्रभुने इस प्रकारकी कठोर आज्ञा क्यों दी ?

अगले वर्ष शिवानन्द सेन नदियाके भक्तवृन्दको साथ लेकर रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचल पहुँचे । महाप्रभुके चरणोंका दर्शन करके श्रीवास पण्डितने सबसे पहले छोटे हरिदासके विषयमें पूछा । महाप्रभुने तीन शब्दोंमें इस बातका उत्तर दिया— 'स्वकर्मफलभुक् पुमान्'—पुरुष अपने-अपने कर्मोंका फल भोगता है । हरिदासने जैसा कर्म किया था, वैसा ही फल पाया । श्रीवास पण्डितने तब सब भक्तवृन्दके सामने छोटे हरिदासके त्रिवेणीमें देहत्याग करनेका वृत्तान्त महाप्रभुको कह सुनाया । दयामय प्रभु कुछ मुस्कराकर बोले—"विरक्त वैष्णव संन्यासीके लिए प्रकृति-दर्शनके पापका यही यथार्थ प्रायश्चित्त है ।"

तब स्वरूप गोसाईंकी बात भक्तोंको याद आयी । उन सब लोगोंने छोटे हरिदासके कण्ठके स्वरको सुना था । उन लोगोंने इसका विचार करके समझ लिया कि त्रिवेणीके प्रभावसे हरिदास प्रभुके पास पहुँच गये ।

दयामय धर्म-मर्यादा-रक्षक महाप्रभु लोक-शिक्षाके लिए श्रीमुखसे चाहे जो कुछ कहें, उन्होंने अपने प्रिय भक्त नित्यदास छोटे हरिदासपर कृपा करके उनको पुनः पास बुलाकर चरणोंमें स्थान दिया है, यह बात निश्चित है । यही समझानेके लिए महाप्रभुने यह लीलारङ्ग प्रकट किया ।

महाप्रभुका यह दृढ़ सङ्कल्प और निज-जनके प्रति यह कठिन दण्डाज्ञा केवल लोक-शिक्षाके लिए थे । छोटे हरिदासको जो उन्होंने दण्ड दिया था,

वह दण्ड नहीं था, कृपा थी। भक्तचूड़ामणि छोटे हरिदास प्राकृत शरीर त्यागकर अप्राकृत चिन्मय देहसे अपने अभीष्ट देवके साथ जा मिले। प्रभु जिसको अत्यन्त प्रेम करते हैं, उसीको अत्यधिक दण्ड देते हैं। श्रीभगवान्‌की कृपा और दण्ड समान वस्तु है। बल्कि भगवत्कृपासे कृपादण्ड भक्तके लिए अधिक उपकारी होता है। देवराज इन्द्रने श्रीभगवान्‌से कहा है—

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो
दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे
मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम्॥

श्रीम. भा. १०.२७.६

अर्थ—इन्द्रने कहा—"हे भगवन्! ब्रह्माण्डमें स्थित प्राणियोंके आप ही एक मात्र पिता, उपदेष्टा, गुरु तथा सबके अधिपति और नियन्ता हो। आप ही दण्डधारणमें दुरतिक्रमणीय, कालरूपमें विराजमान होकर हमारे जैसे ईश्वराभिमानी लोगोंके अभिमानको दूर कर वास्तविक हित-साधनार्थ स्वेच्छामय विग्रह धारण कर सारे कार्य करते हैं।"

श्रीभगवान् सर्वतोभावेन मङ्गलमय हैं। वे ही साक्षात् कालरूपमें यमदण्ड हाथमें लेकर दण्ड प्रदानके बहाने निरन्तर अपने सृष्ट जीवोंको शासन और संशोधन कर रहे हैं। अतएव उनका दण्ड, दण्ड नहीं है, कृपा है। दण्ड प्रदानके बहाने कृपा प्रदर्शन करके वे निरन्तर जीवका मङ्गल विधानकर रहे हैं। पिता-पुत्रको जिस प्रकार दण्ड देकर शासन करता है, श्रीभगवान् अपने सृष्ट जीवको ठीक उसी प्रकार कृपादण्ड देकर संशोधन और शासन करते हैं। अबोध जीव इस कृपादण्डका मर्म न समझकर व्यर्थ दुःख करता है।

महाप्रभुने यह लीलारङ्ग प्रकट करके चार उद्देश्य सिद्ध किये। इससे उन्होंने (१) अपने उदासीन भक्तोंको स्त्री-सम्भाषण करनेसे पूर्णरूपसे निषेध किया। (२) श्रीभगवान्‌के चरणोंमें भक्तका जो प्रगाढ़ अनुराग होता है, उसका निग्रह होनेपर भी वह समान रूपमें अवस्थित रहता है, तनिक भी ह्रासको प्राप्त नहीं होता—यह भी समझा दिया। (३) भगवत्कृपा-प्राप्तिसे बञ्चित होकर आत्म त्याग करनेसे जो लाभ होता है, यह भी दिखला दिया। (४) अपने भक्तगणको कैसे शिक्षा दी जाती है, किस प्रकार आत्मसात् किया जाता है, यह भी दिखला दिया। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइ मत लीला करे शचीर नन्दन।
जाहार श्रवणे भक्तेर जुड़ाय कर्णमन॥

चै. च. अं. २.१६५

उन्होंने यह भी लिखा है—

मधुर चैतन्यलीला—समुद्र गम्भीर।
लोके नाहि बूझे, बूझे जेइ भक्तधीर॥

चै. च. अं. २.१६८

भक्तके भगवान् श्रीश्रीमन्महाप्रभुका लीला-रहस्य उनके भक्तगण ही जानते हैं, वह दूसरेकी बुद्धिके लिए अगम्य है। गौर-भक्तके संगके बिना इन सब निगूढ़ लीलाओंके रहस्यके मर्मको समझनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है। इस सम्बन्धमें पूज्यपाद कविराज गोस्वामीके निम्नलिखित उपदेशको सदा याद करना चाहिये।

विश्वास करिया शुन चैतन्य चरित।
तर्क ना करिह, तर्के हबे विपरीत॥

चै. च. अं. २.१६६

पूज्यपाद सार्वभौम भट्टाचार्यने कहा है—

"वन्दी करियाछ मोरे अशेष बन्धने।
विद्या धने कुलें—तोमा जानिमू केमने॥

चै. भा. अं. ३.१२३

"तार्किक शृगाल सङ्गे भेउ भेउ करि ।
सेइ मुखे एबे सदा कहि 'कृष्ण-हरि' ।।
चै. च. म. १२.१८०

प्रेमानन्दसे बोलो—गौर हरि बोल ।

छोटे हरिदासके वर्जन लीलारङ्गमें श्रीमन्महाप्रभुके परम पवित्र चरित्रका एक अपूर्व वैषम्य भाव परिस्फुट हुआ है। आदर्श वैष्णव-चरित्रका एक अत्युज्ज्वल विचित्र चित्र प्रतिफलित हुआ है। वैष्णवीय दैन्यके अवतार हैं हमारे श्रीगौर-सुन्दर, मूर्त्तिमान् क्षमाके अवतार हैं हमारे श्रीविष्णुप्रिया-वल्लभ। उनके सर्वश्रेष्ठ गुणका नाम है अदोषदर्शी—वे अपराधका विचार नहीं करते, वे—'बिनु भजे देहिं प्रेमधन।'—ऐसे हमारे भक्तवत्सल, भक्तवशी, भक्तबाञ्छा-कल्पतरु श्रीगौराङ्ग-सुन्दर हैं, उन्होंने अपने प्रियतम पार्षद भक्त, अपने निजी कीर्तनीया छोटे हरिदासके प्रति ऐसी कठोर दण्डाज्ञा क्यों प्रदान की ? इसका उत्तर पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने स्वयं प्रदान किया है। यथा—

"महाप्रभु कृपासिन्धु, के पारे बूझिते ।
प्रिय भक्ते दण्ड करे—धर्म शिखाइते ।।
चै. च. अं. २.१४१

श्रीमन्महाप्रभुके मुखसे परुष बचन कभी किसीने नहीं सुना, उनके कुसुम-कोमल हृदयमें कठोरताके लिए स्थान न था, उनके श्रीमुखकी वाणी मधुसे भी मधुर थी। वे कभी किसीके साथ मर्यादाका उल्लङ्घन करके कोई बात नहीं बोलते थे, परन्तु इस अपूर्व लीलारङ्गसे उनके परम पवित्र चरित्रकी एक विचित्रता थी। उन्होंने यह विशिष्टता क्यों दिखलायी ? पूज्यपाद कविराज गोस्वामी इसके भी उत्तरका समाधान कर गये हैं। श्रीमन्महाप्रभुके पवित्र चरित्रका ऐसा विचित्र भाव—

"देखि त्रास उपजिल सब भक्तगणे ।
स्वप्नेहो चाड़िल सभे स्त्री संभाषणे ।।
चै. च. अं. २.१४३

इस भीषण दण्डाज्ञा, इस भीषण शासनकी आवश्यकता महाप्रभुके प्रकट कालमें हुई थी। उनकी प्रकट लीलामें इस प्रकारका एक सर्वजन भयप्रद भीषण शासनकी सृष्टि न होनेसे परम पवित्र वैष्णव-धर्मकी मर्यादाकी रक्षा नहीं हो सकती थी। दुर्जनके लिए शासन चाहिये, पापाचारीके लिए दण्ड-विधान चाहिये, अपराधके लिए शास्ति चाहिये। अपने निज-जनके ऊपर श्रीमन्महाप्रभुने यह भीषण दण्ड प्रदान करके लोकशिक्षा दी। यह छोटे हरिदासके पापका दण्ड नहीं था, यह उनके निजकृत सामान्य अपराधका दण्ड न था, यह उनको उपलक्ष्य करके दुष्ट, दुराचारी, अबैध स्त्रीसङ्ग करनेवाले उदासीन वैष्णवोंके प्रति भीषण शासन मात्र था। सामान्य अपराधसे श्रीमन्महाप्रभुने छोटे हरिदासको जो कठिन शासन प्रदान किया, उसे स्मरण करनेपर हृदय काँप उठता है, प्राणोंमें एक विषम त्रास उत्पन्न होता है, मनमें विषम शङ्का उत्पन्न होती है। यह हृत्कम्प, यह त्रास, यह शङ्का जिसके मनमें उदय नहीं होती, उसके अपराधका शमन नहीं होता। उसके प्रति स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभु विमुख हो जाते हैं। कलिग्रस्त जीवके पापकलुषित-चित्त, तथा सदाचार-भ्रष्ट कठिन हृदयको द्रव करानेके लिए उनके परम-मङ्गल-साधनके लिए परम दयालु कलिपावनावतार श्रीश्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखकी यह भीषण दण्डाज्ञा थी, यह वज्रसे भी कठिन आदेश था।

श्रीमन्महाप्रभुका यह अपूर्व लीला-रहस्य पूर्णरूपसे हृदयङ्गम करना कठिन है। उदासीन वैष्णव यदि जानबूझकर, स्त्रीसङ्ग तो दूर रहे, स्त्रीका दर्शन भी करता है तो इससे उसको बहुत पाप लगता है, अतएव भावी जन्मको निर्दोष

बनानेके लिए जानबूझकर किये हुए स्त्री सम्भाषणके पापके प्रायश्चित्त रूपमें उसके प्राण-त्याग करनेकी विधि है। यही छोटे हरिदासकी वर्जन-लीलाका गूढ़ रहस्यपूर्ण मर्मार्थ है। श्रीमन्महाप्रभुके इस तीव्र कठोर शासनके रहते जो उदासीन वैष्णव स्त्रीसङ्ग या स्त्री-सम्भाषण करते हैं, वे वैष्णव कहलाने योग्य नहीं है। अपने भक्तगणके चरित्रको सुधारना ही श्रीमन्महाप्रभुका उद्देश्य था। पवित्र सदाचार बल ही परम बल है, तथा भगवद्भक्तके लिए इस प्रकारका सुनिर्मल चरित्र कितना उच्च और कितना शोभनीय होता है, यह दिखलानेके लिए उन्होंने स्वयं शिक्षागुरुके रूपमें इस कठोर दण्डाज्ञाका प्रचार किया। अपने निज पार्षद भक्त छोटे हरिदासको प्रकट रूपमें त्यागकर जीवके प्रति अपनी परम दयाको प्रकट किया। अपने भक्तकी साधारण भूलको भी श्रीमन्महाप्रभु सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने लोकशिक्षाके लिए आत्मत्यागकी पराकाष्ठा दिखलायी। इस छोटे हरिदासके वर्जन लीलारङ्गमें एकान्त और अनुगत अपने पार्षद भक्तको त्याग करना ही प्रकृत आत्म त्याग है। इस आत्मत्यागका ही प्रकृत महत्त्व है। श्रीमन्महाप्रभुके आत्मत्यागका यह समुज्ज्वल दृष्टान्त भक्तिजगत्के उज्ज्वल आलोकके रूपमें चिरकाल तक भक्तगणके भक्ति-पथका प्रदर्शक होगा। अनन्त कालके अनन्त भक्तके पवित्र जीवनका प्रधान लक्ष्य होगा।

चैतन्येर दण्डे जार चित्ते नाहि भय।
जन्मे-जन्मे से पापिष्ठ यम दण्डचहय॥

चै. भा. म. २१.७९

श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी नीलाचल-लीला

तैतालीसवाँ अध्याय

महाप्रभुके प्रति दामोदर पण्डितका वाक्य-दण्ड

(प्रभु वाक्य)

"तोमा सम निरपेक्ष नाहि आमार गणे।"

चै. च. अं. ३.२२

दामोदर पण्डित

दामोदर पण्डितकी बात पहले कही जा चुकी है। महाप्रभुने नीलाचलमें बैठकर उनके साथ एक अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया। महाप्रभुके लीलारङ्गका गूढ़ मर्म हृदयङ्गम करना अत्यन्त कठिन है। वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं, किस लिए कौन लीला प्रकट करते हैं, यह वे ही जाने। उनके लीला-लेखकगण कृपासिद्ध साधु पुरुष थे। वे ही लीला-रहस्यके उद्घाटनमें समर्थ थे। बाह्य अर्थ ग्रहण करके लीला-रसके आस्वादनमें जो आनन्द

हम प्राप्त करते हैं, उसके सामने ब्रह्मानन्द तुच्छ वस्तु है। श्रीभगवान्‌के निगूढ़ लीला-रहस्यका भेद एकमात्र श्रीभगवान्‌के कृपासिद्ध भक्तगण ही कर सकते हैं। हम क्षुद्रजीव हैं, क्षुद्र बुद्धि लेकर भगवत्-लीलाके बाह्य अर्थको यदि कुछ हृदयङ्गम कर सकें तो हम कृतार्थ हो जायँगे। इसी कारण पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

> **चैतन्येर लीला गम्भीर कोटि समुद्र हैते।**
> **कि लागि कि करे, केह ना पारे बूझिते।।**
> **अतएव गूढ़ अर्थ किछुइ ना जानि।**
> **बाह्य अर्थ करिवारे करि टानाटानि।।**
>
> चै. च. अं. ३.४६,४७

श्रीभगवान् अपने भक्तको कभी-कभी दण्ड देते हैं, उनके भक्तगण भी कभी-कभी उनको दण्ड देते हैं, यह भी महाप्रभुने अपने अपूर्व लीलारङ्गमें दिखलाया है। छोटे हरिदासके प्रति महाप्रभुने साधारण अपराधके लिए किस प्रकार कठिन दण्डका आदेश दिया, यह पूर्व अध्यायमें वर्णित हो चुका है। अब गौर-भक्त दामोदर पण्डितने स्वयं भगवान् श्रीश्रीमन्महाप्रभुको क्योंकर वाग्दण्ड प्रदान किया, वह यहाँ वर्णित होगा।

दामोदर पण्डित महाप्रभुके एकान्त अनुगत भक्त थे। वे नदियाके भक्त थे, आजन्म ब्रह्मचारी थे। महाप्रभुके संन्यास ग्रहण करनेपर दामोदर मनमें दुःखित होकर उदासीन वृत्ति अवलम्बन करके नीलाचलमें प्रभुकी सेवामें लग गये। वे पाँच भाई थे। सभी गौराङ्ग-गत-प्राण थे, सभी विरक्त वैष्णव थे। सबसे छोटे शङ्कर पण्डित थे।

दामोदर पण्डितने महाप्रभुकी सारी लीला अपनी आँखोंसे दर्शन की थी। वे मुरारि गुप्तके बाल सखा थे। मुरारि गुप्तका करचा महाप्रभुकी लीलाका आदि ग्रन्थ है। यह श्रीग्रन्थ सरल संस्कृत श्लोकोंमें रचित है। ये श्लोक दामोदर पण्डितके रचे हैं। मुरारि गुप्त प्रभुकी लीला-कथा अपने मुखसे दामोदर पण्डितके निकट वर्णन करते थे, और दामोदर पण्डित उसे श्लोकबद्ध करते थे।

वे स्पष्ट वक्ता और निरपेक्ष महापुरुष थे। उचित बात किसीको भी कहनेसे नहीं हिचकते थे। उनको निरपेक्ष और स्पष्ट वक्ताके रूपमें विशेषरूपसे सब लोग जानते थे, और सभी उनसे डरते थे। स्वयं महाप्रभु भी उनसे डरते थे। श्रीवृन्दावन यात्राके समय महाप्रभुने दामोदर पण्डितको लक्ष्य करके कहा था—"मैं तो संन्यासी हूँ, दामोदर पण्डित ब्रह्मचारी हैं। जिसमें मेरी कोई आलोचना होनेकी संभावना हो, ऐसा कोई भी काम मेरे द्वारा होता दीखे तो दामोदर सदा सावधान रहकर मुझे शिक्षा दण्ड देते हैं। इनके सामने मैं व्यवहार नहीं जानता, इनको मेरा चारित्र्य-स्वातन्त्र्य अच्छा नहीं लगता। कृष्ण-कृपासे इनको लोकापेक्षाकी परवाह नहीं है, मुझसे लोकापेक्षा छूटती नहीं।'

चै. च. म. ७.२४-२६

प्रभुके प्रति वाक्य-दण्ड

इस प्रकारके गुणनिधि दामोदर पण्डितके साथ महाप्रभुने नीलाचलमें रहकर जो अद्भुत लीलारङ्ग किया था, वही इस अध्यायमें वर्णित होगा।

श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें एक परम सुन्दर पितृहीन उड़िया ब्राह्मण बालकके साथ महाप्रभुकी बड़ी प्रीति हो गयी थी। परन्तु दामोदर पण्डितको वह बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगता था। वह परम सुन्दर विप्रकुमार महाप्रभुके पास नित्य आता था, वे उससे स्नेह करते थे, प्रेम करते थे, उससे बातें करते थे, उसके शरीरपर हाथ फेरकर दुलार करते थे। वह बालक भी प्राणपनसे महाप्रभुको प्रेम करता था। बालस्वभाव महाप्रभु उस बालकको लेकर नीलाचलमें लीलारङ्ग करते थे। दामोदर पण्डित विप्र बालकको प्रभुके पास देखते ही मन ही मन विरक्त होते थे, उसका आना पसन्द नहीं करते थे।

उसको प्रभुके वासापर आनेसे चुपकेसे मनाही करते थे, परन्तु वह बालक महाप्रभुको देखे बिना नहीं रह सकता था। बालकोंको जहाँ प्रेम मिलता है, लाड़-प्यार होता है, वहाँ ही जाते हैं। महाप्रभु उसे आदर करते हैं, प्रसाद देते हैं, वह नित्य उनके पास आता है। दामोदर पण्डितकी बात वह नहीं सुनता। इससे वे मन-ही-मन दुःखी होते हैं। क्यों दुःखी होते हैं, यह उनकी बातसे ही आगे प्रकट हो जायगा।

एक दिन वह विप्र बालक महाप्रभुके पास आया। वे उसके साथ परम प्रीतिपूर्वक नाना प्रकारकी बातें करने लगे। मानों दोनों ही किसी सम्बन्ध-सूत्रमें आबद्ध हैं, ऐसा लगता था। दामोदर पण्डित इस बातको उस दिन सहन न कर सके। बालकके चले जानेपर वे महाप्रभुके पास आकर क्रोधित होकर बोले—"दूसरेको उपदेश देनेमें तो तुम बड़े पण्डित हो। अब तुम्हारी गोसाईं गिरीका पता लगेगा, जब सब लोग चर्चा करेंगे, और पुरुषोत्तम क्षेत्रमें तुम्हारी बड़ी प्रतिष्ठा होगी।"

महाप्रभु दामोदर पण्डितकी यह बात सुनकर अवाक् हो गये। वे इस बातका कुछ भी मर्म न समझ सके। दामोदर पण्डितकी बात उनको पहेली-सी जान पड़ी। वे विस्मित होकर पहले उनके मुँहकी ओर करुण दृष्टिसे देखने लगे। पश्चात् धीरे-धीरे परम नम्र होकर बोले—"दामोदर! बात क्या है? खुलकर बोलो। मैंने क्या अपराध किया?" तब दामोदर पण्डित क्रोधसे कम्पित स्वरमें कहने लगे—"तुम तो स्वतन्त्र ईश्वर हो, जो चाहो सो करो, तुमको कोई क्या कह सकता है। दुनियाँके लोगोंका मुख कौन पकड़ सकता है। तुम समझदार होकर भी विचार क्यों नहीं करते? विधवा ब्राह्मणीके बालकसे प्रीति क्यों करते हो? भले ही वह ब्राह्मणी परम तपस्विनी हो, लेकिन उसमें एक दोष है कि वह परम सुन्दरी है, और तुम परम सुन्दर युवा हो। लोगोंको कानाफुसी करनेका अवसर क्यों देते हो?"

इतनी बात कहकर निरपेक्ष दामोदर पण्डित चुप होकर एक ओर खड़े हो गये, उनके मुखसे यह स्पष्ट बात सुनकर प्रभुका आश्चर्य दूर हुआ। वे मन ही-मन उनकी इस स्पष्टवादितासे बहुत सन्तुष्ट हुए। महाप्रभु मुस्कराये और मन-ही-मन विचार करने लगे—

इहाके कहिये शुद्ध प्रेमेर तरङ्ग।
दामोदर सम मोर नाहि अन्तरङ्ग॥

चै. च. अं. ३.१८

वे दामोदर पण्डितको तब और कोई बात न कहकर उस दिन मध्याह्न कृत्य करने चले गये। दामोदर पण्डितने महाप्रभुके श्रीमुखकी मधुर हँसी और भाव देखकर समझा कि उनकी बातसे महाप्रभु क्रुद्ध नहीं हुए हैं। इस घटनाके बाद दो-चार दिन बीत गये।

दामोदरको नदिया भेजना

एक दिन कृपानिधिने दामोदर पण्डितको एकान्तमें बुलाकर कहा—"दामोदर! तुमने मुझे सावधान किया—इस तुम्हारी स्पष्टवादितासे मुझे बड़ी प्रसन्नता है। तुम नदिया माताकी सेवामें जाओ। वहाँ नदियाके लोगोंके लिए तुम्हारे सिवाय और कोई आदमी रक्षक नहीं दीखता। तुम्हारे सामने वहाँ कोई भी स्वच्छन्द आचरण नहीं करेगा। बीच-बीचमें आकर मुझसे भी मिलते रहना।"

महाप्रभुने दामोदर पण्डितको नवद्वीपमें जाकर अपनी जननीकी देख-भाल करनेका कृपादेश किया। इस कृपादेशका गूढ़ कारण भी था। दामोदर पण्डित नीलाचलमें महाप्रभुकी सेवाके व्रती थे, अब उनके आदेशके उनकी माताकी सेवामें नियुक्त हुए। महाप्रभुकी इस कृपादेश-वाणीके भीतर एक परम

गुह्य बात थी। उनकी नवीना गृहिणी श्रीविष्णुप्रियादेवी नवद्वीपमें माता पास थी, माता अब वृद्ध हो रही थी, घरमें दूसरा कोई उपयुक्त अभिभावक था नहीं। दामोदर पण्डितके द्वारा वाक्यदण्ड प्राप्त कर महाप्रभुको अपने घरकी याद आयी। उन्होंने मनमें सोचा कि ऐसा निरपेक्ष अभिभावक और कहाँ मिलेगा ? पति-विरह-विधुरा नवयुवती श्रीविष्णुप्रियादेवीका प्रकृत रक्षक और अभिभावक दामोदर पण्डितके सिवा और कोई नहीं हो सकता था। अतएव चतुर-चूड़ामणि महाप्रभुने उनसे कहा कि—'तोमा बिना ताँहार रक्षक नाहि देखि आन।' महाप्रभुने अपनी माताका उल्लेख करके बात की; क्योंकि संन्यासी होनेके कारण वे स्त्रीका नाम भी नहीं ले सकते थे। उनके मनमें भाव यह था कि दामोदर पण्डित उनकी वक्ष-विलासिनी श्रीविष्णुप्रियादेवीका रक्षक और अभिभावक होकर नवद्वीपमें वास करगे। यही उनकी इच्छा थी, और इसलिए उनका यह कृपादेश था।

दामोदर पण्डित परम सौभाग्यशाली पुरुष थे। वे साक्षात् सम्बन्धसे प्रभुसेबासे बञ्चित हुए, परन्तु कृपानिधि महाप्रभुने उनको अपनी पूजनीया माताकी सेवा तथा श्रीविष्णुप्रियाकी सेवा, दोनों ही सेवाएँ प्रदान की। अन्तरङ्ग भक्तोंमें दामोदर पण्डित सर्व प्रधान थे, अतएव यह उच्चाधिकार महाप्रभुने उनको ही प्रदान किया। उन्होंने श्रीमुखसे कहा था—

दामोदर सम मोर नाहि अन्तरङ्ग।
चै. च. अं. ३.१८

इस आत्यन्तिक प्रीतिसम्बन्धके फलस्वरूप दामोदर पण्डित जिस दायित्वपूर्ण उच्च सेवाकार्यमें नियुक्त हुए, उसकी तुलना नहीं है। शची-विष्णुप्रिया-सेवा श्रीगौराङ्ग-सेवासे भी उच्च है। श्रीगौर-भगवान् अपने निज-सेवककी अपेक्षा अपने भक्त-सेवकको अधिक मानते-जानते हैं। भक्तोंके भक्त ही उन्हें प्रिय हैं। यह बात उन्होंने श्रीमुखसे कही है।

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्तेमे भक्ततमा मताः॥
लघु भागवतामृत उत्तर ६ (आदि पुराण वचन)

दामोदर पण्डित महाप्रभुकी यह कृपादेशवाणी सुनकर हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े रहे। कोई बात उनके मुँहसे नहीं निकली। वे क्या सोचने लगे, इसे वे ही जाने। महाप्रभुकी चरण-सेवा छोड़कर उनको नवद्वीपमें जाना पड़ेगा, यह आदेश उनको बड़ा ही कठिन जान पड़ा। उन्होंने महाप्रभुको वाग्दण्डदिया था, महाप्रभुने भी उनको यह दण्डाज्ञा दे दी, जान पड़ता है वे यही सोच रहे थे। परन्तु मनके भावको खोलकर कुछ नहीं कह रहे हैं। सर्वज्ञ महाप्रभुने दोमोदर पण्डितको जो कार्यभार सौंपा, वह अत्यन्त गुरुतर था। उनको छोड़कर दामोदर पण्डितको नवद्वीप जाना पड़ेगा, इससे उनको विशेष असुविधा होगी, तथा मनमें दुःख होगा, यह वे जानते थे, परन्तु वे अपनी सुविधा-असुविधा दुःख-कष्टके लिए कुछ नहीं सोचते। उनकी सारी चिन्ता भक्तोंके लिए थी। दामोदर पण्डितके समान निरपेक्ष, विश्वासी और एकान्त अनुगत प्रिय-भक्तके सिवा वे किसके ऊपर वृद्धा माता और नवीन गृहिणीके देख भालका भार सौंपेंगे ?

दामोदर पण्डितसे महाप्रभुने फिर कहा—

माताको कहियो मोर कोटि नमस्कारे।
मोर सुख-कथा कहि सुख दिह ताँहारे॥
चै. च. अं. ३.२६

दुःखिनी माताकी बात स्मरण करते ही मातृभक्त चूड़ामणि करुणानिधि महाप्रभुके कमल-नयन अश्रुजलसे परिपूर्ण हो गये। छल-छलाते नेत्रोंसे वह दामोदर पण्डितसे बोले। तुम नवद्वीप

जाकर मेरी स्नेहमयी मातासे कहना कि मैंने तुमको मेरी बातें सुनाकर माताको सुख पहुँचानेके लिए भेजा है और उनको गुह्य बात स्मरण कराना।

निरन्तर निज कथा तोमारे शुनाइते।
एइ लागि प्रभु मोरे पाठाइल इहाँते।।
एत कहि मातार मने सन्तोष जन्माइह।
आर गुह्य कथा तारे स्मरण कराइह।।

चै. च. अं. ३.२७,२८

प्रेमविह्वल भावमें महाप्रभुने दामोदर पण्डितको एकान्तमें बुलाकर माताको कहनेके लिए चुपके-से सारी गुह्य बातें कह सुनायी—"मैं बार-बार तुम्हारे पास आकर मिष्ठान्न व्यन्जन भोजन करता हूँ। तुमको जानकारी भी होती है, लेकिन बाहरी विरहके कारण तुम उसको स्वप्न मान लेती हो। गत माघकी संक्रान्तिके दिन नाना प्रकारके व्यञ्जन, क्षीर, पीठा-पायस आदि बनाकर कृष्णको भोग लगाकर जब तुमने ध्यान किया तब तुमको मेरा स्मरण हो आया और तुम्हारी आँखें भर गयी। मैंने जाकर सब खा लिया, जिसको देखकर तुमको बड़ी प्रसन्नता हुई। आँखें पोंछकर तुमको खाली पात्र देखकर ऐसा लगा कि तुमने स्वप्न देखा है कि निमाईने खाया। किन्तु बाहरी विरहके कारण तुमको भ्रान्ति हो गयी कि तुमने भोग रक्खा ही नहीं। पाक पात्र भी तुमको सब भरे दीख पड़े। तब तुमने स्थान संस्कार करके फिरसे भोग लगाया। इस प्रकार तुम्हारे शुद्ध प्रेमसे आकर्षित होकर मैं बारबार भोजन कर जाता हूँ। तुम्हारी आज्ञासे यद्यपि मैं नीलाचलमें हूँ, तथापि तुम्हारा प्रेम-वल मुझे बार-बार खींच कर ले जाता है।"

इतना कहकर प्रेमाश्रु-नयनसे मातृभक्त शिरोमणि महाप्रभु दामोदर पण्डितसे पुनः बोले—"माताको इस प्रकार मेरा बारम्बार स्मरण कराना और मेरा नाम लेकर मेरी ओरसे उनकी चरण बन्दना करना।"

महाप्रभुने जो यह परम गुह्य बात कही, वह उनके आविर्भाव लीला-रङ्गकी बात थी। माताके मन्दिरमें नदियामें जो महाप्रभुका आविर्भाव होता था, प्रसङ्ग-क्रमसे यहाँ श्रीमुखसे वही वात दामोदर पण्डितको सुना दी। विजया-दशमीके दिन वह ठीक इसी प्रकार माताके मन्दिरमें आविर्भूत होकर उनके द्वारा दिये गये ठाकुरजीके भोगके अन्न व्यञ्जनको खाकर आये थे।

दामोदर पण्डितके मुँहसे अभीतक कोई बात नहीं निकली, वे महाप्रभुके श्रीमुखकी बात सुन रहे थे और अजस्र आँसू बहा रहे थे।

प्रभुका आदेश अलङ्घनीय है, यह दामोदर पण्डित जानते थे। अतएव व्यर्थ कुछ कहना सुनना अनावश्यक समझकर वे चुप रहे। महाप्रभुने गोविन्दके द्वारा श्रीजगन्नाथका प्रसाद मँगवाया। नदियाके भक्तोंके लिए और माताके लिए अलग-अलग महाप्रसाद दामोदर पण्डितके हाथोंमें देकर उनको प्रेमालिगन प्रदान कर विदा किया। विदा करते समय भक्तवत्सल महाप्रभुने पुनः उनको एकान्तमें कुछ कहा। दामोदर पण्डितने रोते-रोते महाप्रभुकी पद-धूलि लेकर चादरमें बाँध ली। यह चरणधूलि ही उनका संवल बना। शोकावेगमें वे और कुछ बोल न सके। उसी दिन उन्होंने नवद्वीपकी यात्रा की।

दामोदर पण्डितके द्वारा मातृभक्तशिरोमणी महाप्रभुने अपनी माताके लिए बहुत-सी बातें कहीं। विरह-विदग्धा अपनी गृहिणीके लिए मुखसे कुछ भी नहीं कहा, परन्तु भीतर ही भीतर कपट संन्यासीके हृदयमें जो वेदना हुई, वह उनके कार्यसे प्रकट हुई। महाराज गजपति प्रतापरुद्रकी दी हुई बहुमूल्य रेशमी साड़ीका प्रसाद दामोदर पण्डितके द्वारा श्रीविष्णुप्रिया देवीके लिए उन्होंने नवद्वीप भेज दिया।

दामोदर पण्डित प्रभुके एकान्त अन्तरङ्ग भक्त थे, उनके द्वारा वे माता और गृहिणीके साथ सम्बन्ध

रखते थे। प्रतिवर्ष दामोदर पण्डित नीलाचल आकर उनको नवद्वीपका समाचार देते थे, माता और गृहिणीकी सारी बातें बतलाते थे, उनकी दी हुई भोजनकी वस्तुएँ उनको लाकर देते थे। इससे प्रभुके मनको बड़ा सुख मिलता था। शचीमाता और श्रीविष्णुप्रिया देवीको भी सुख मिलता था। दामोदर पण्डित इस प्रकार पारिवारिक सम्बन्धमें महाप्रभुके गुप्त संवाद वाहकका काम करते थे।

शची-विष्णुप्रियाकी सेवाका अधिकार महाप्रभुने सर्वप्रथम वंशीवदन ठाकुरको दिया था, अब वह सेवाधिकार दामोदर पण्डितको दिया। इन दोनों महापुरुषोंके भाग्यकी लालसा शिव-विरञ्चिके लिए वाञ्छनीय है।

दामोदर द्वारा विष्णुप्रिया-सेवा

दामोदर पण्डितने किस प्रकार महाप्रभुके कृपादेशका पालन किया, किस प्रकार उन्होंने श्रीविष्णुप्रिया देवीकी सेवा की, यह कथा सुननेपर आँखोंसे अश्रुप्रवाह रोके नहीं रुकता, काष्ठ और पाषाण तक द्रवित हो जाते हैं। शचीमाताके परलोक गमनके बाद श्रीविष्णुप्रिया देवीने अपने अन्तःपुरका गृह-द्वार एकबारगी बन्द कर लिया। वहाँ प्रवेशाधिकार किसीको न था। श्रीविष्णुप्रियादेवीकी अन्तरङ्गा सखी एकमात्र काञ्चन माला उनके पास रहती थी। महाप्रभुके पुराने सेवक ईशान और दामोदर पण्डित केवल श्रीमन्दिरके बाहरी बैठकेमें रहते थे।

दामोदर पण्डित भी अतिशय वृद्ध हो गये थे। उनकी कमर टूट गयी थी, कुबड़े शरीरसे किसी प्रकार चलते थे। परन्तु प्रतिदिन तड़के उठकर गङ्गाजीसे दो कलसी जल लाकर बहुत कष्ट पूर्वक सीढ़ीसे अन्तःपुरकी प्राचीर को लाँघकर श्रीमती विष्णुप्रियादेवीके प्रातः स्नानके लिए श्रीमन्दिरके बरामदे पर रखते थे, और उनकी सेवाके लिए जितना गङ्गाजल आवश्यक होता था, दामोदर पण्डित स्वयं उसे लाते थे। प्रत्येक बार प्राचीरसे सीढ़ी लगाकर ऊपर चढ़ना पड़ता था, तभी भीतर जा सकते थे। क्योंकि श्रीविष्णुप्रिया देवीके आदेशसे अन्तःपुरका द्वार एकदम बन्द था। इस वृद्धावस्थामें दामोदर पण्डित इस प्रकार गौराङ्ग-गृहिणीकी सेवा करके प्रभुकी आज्ञाका पालन करते थे। दिन-रात वे महाप्रभुके गृहद्वार पर बैठे रहते थे, और अजस्त्र आँसू बहाते रहते थे।

यद्यपि दामोदर पण्डित अतिशय वृद्धि हो गये थे, परन्तु उनके निरपेक्ष स्वभावके कारण सभी उनसे डरते थे। किसी प्रकारका मर्यादाके विपरीत कार्य देखकर वे किसीको फटकारे बिना नहीं रहते थे। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

दामोदर आगे स्वातन्त्र्य ना हय काहार।
ताँर भये सभे करे सङ्कोच-व्यवहार॥
प्रभु गणे जार देखे अल्प मर्यादा-लङ्घन।
वाक्यदण्ड करि करे मर्यादा-स्थापन॥

चै. च. अं. ३.४३,४४

दामोदर पण्डितके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणिपात। वही महाप्रभुके यथार्थ अन्तरङ्ग भक्त थे। इसी कारण-वृद्धावस्थामें वे शची-विष्णुप्रियाकी सेवामें नियुक्त हुए थे, प्रियाजीके अन्तःपुरमें जानेका अधिकार प्राप्त किया था। इन महापुरुषका अन्तिम जीवन इस परम दुर्लभ सेवाकार्यमें अतिवाहित हुआ था। महाप्रभुको उन्होंने वाग्दण्ड देकर वह फल प्राप्त किया जो फल योगी, ऋषि, मुनिगण कोटिकल्प योग-याग, ध्यान-धारणा और तपस्या करके भी नहीं पाते।

शची-विष्णुप्रियाके गौर-विरहकी वात वे नीलाचलमें महाप्रभुके पास जाकर अकेलेमें कहते थे। यह अधिकार एक मात्र महाप्रभुने उनको ही दिया था। और महाप्रभुकी विरह लीलाकहानी वे नदियामें आकर शची-विष्णुप्रियाके पास वर्णन

करते थे। इस प्रकार वह श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी युगल-सेवा करते थे। प्रियाजीके दिये हुए और उनके अपने हाथसे तैयार किये भोज्य-पदार्थको दामोदर पण्डित सिर पर उठाकर नीलाचलमें ले जाकर महाप्रभुके श्रीहस्तमें अर्पण करते थे। वे उसे बड़े आदरसे ग्रहण करते और प्रेमविह्वल चित्तसे उन सब पदार्थोंको अङ्गीकार करते थे। तथा प्रभुके दिये प्रसाद और वस्त्रको लेकर नवद्वीपमें आकर वह प्रियाजीके श्रीहस्तमें समर्पण करते थे। श्रीविष्णुप्रियादेवी उसे देखकर व्याकुलता पूर्वक रोने लगती, अपने प्राण-वल्लभके दिये महाप्रसादको मस्तक पर धारण करके दामोदर पण्डितको दिल खोलकर आशीर्वाद देती थी। इस प्रकारकी नदिया-युगल-सेवा दामोदर पण्डितने भाग्यवश निजगुणसे प्रभु और प्रियाजीकी कृपासे प्राप्त की थी।

दामोदर आजन्म ब्रह्मचारी थे, तथा महाप्रभुके सेवाकार्यमें जीवन उत्सर्ग किया था। महाप्रभुने उनके सेवा कार्यसे सन्तुष्ट होकर अपना सर्वश्रेष्ठ दान, नवद्वीपमें शची-विष्णुप्रिया-सेवा कार्य उनके ही ऊपर अर्पित किया था। भक्तिस्वरूपिणी, महाप्रभुकी ह्लादिनी शक्ति, श्रीश्रीविष्णुप्रिया देवीकी सेवा, तथा उनकी पूजनीया जगज्जननी मातृदेवी शचीमाताकी सेवा आजतक श्रीधाम नवद्वीपमें प्रकटित है।

नवद्वीपेश्वरी श्रीविष्णुप्रिया देवीका तत्त्व अत्यन्त निगूढ़ है। यह परम निगूढ़ तत्त्व अब क्रमशः प्रकट हो रहा है। श्रीनवद्वीपमें शची-विष्णुप्रियाकी सेवाका भार लेकर दामोदर पण्डितने जिस प्रकार श्रीगौराङ्ग-भजन किया, उसको आदर्श मानकर उनके अनुगत होकर जो यह भजन करेगा, उनके भाग्यकी कामना शिव विरञ्चि भी करते हैं। 'जय गौर विष्णुप्रिया' नामकी उच्च कीर्तन ध्वनिसे आज गौड़ मण्डल मुखरित है। सारे बङ्गदेशमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया युगल सेवा अब अनेकों जगह प्रचलित हो गयी है। इसके मूल गौर-विष्णुप्रिया-सेवा-निष्ठ सिद्ध महापुरुष दामोदर पण्डित थे। श्रीविष्णुप्रिया देवीकी कृपादृष्टिके बिना श्रीगौराङ्ग-भजन परिपूर्णरूपसे सिद्ध नहीं होता। इसके साक्षी दामोदर पण्डित हैं।

चौवालीसवाँ अध्याय

नीलाचल में ठाकुर हरिदास और प्रभु

सब कहा ना जाय हरिदासेर अनन्त चरित्र।
केहो किछु कहे करिते आपना पवित्र।।
चै. च. अं. ३.८९

पहले नामब्रह्मके आचार्य हरिदास ठाकुरके पवित्र चरित्रकी कथा कुछ-कुछ अनुशीलन करके आत्मशुद्धिकी चेष्टा की गयी है। अब इन

महापुरुषकी शेष जीवन-कथा वर्णन करनेका सौभाग्य प्राप्त करनेका दुःसाहस हो रहा हैं।

"आत्म शोधन तरे दुःसाहस कैनु।"

इस महाजन-वाक्यके ऊपर निर्भर करके तथा महाप्रभुके चरणोंका स्मरण करके भक्तमहिमा कीर्तन करनेकी कामना हो रही है। जीवाधम ग्रन्थकार क्षुद्रसे भी क्षुद्र, विषयोंका कीट है, इसके मनमें यह दुःसाहस हुआ क्यों? भक्त-महिमा-कीर्तन अति विस्तृत कार्य है, परम सुकृतिका फल है। गौरभक्तवृन्दकी कृपा भिक्षा करके मैं इस दुरुह कार्यका व्रत ले रहा हूँ।

विप्रकुलतिलक, सर्वलोकपूज्य, पण्डित-शिरोमणि श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्यने हरिदास ठाकुरको यह कहकर भूमि विलुण्ठित होकर प्रणाम किया था—

कुलजात्यानपेक्षाय हरिदासाय ते नमः।

श्रीअद्वैतप्रभुने पितृपितामहके श्राद्ध पात्रके रूपमें हरिदास ठाकुरको भोजन कराकर अपनेको कृतार्थ माना था—

श्रीगौराङ्ग लीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है—

सकृत जे बलिबेक हरिदास नाम।
सत्य सत्य सेइ जाइबेक कृष्णधाम॥

चै. भा. आ. ११.२४४

× × × ×

सत्य सत्य हरिदास जगत-ईश्वर।
चैतन्यचन्द्रेर महामुख्य अनुचर॥

चै.भा. आ. ११.१३९

ठाकुर हरिदास द्वारा नाम महिमा उद्घाटन

दामोदर पण्डितको नवद्वीप भेजकर उदास होकर महाप्रभु अपने वाससे श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिए निकले। जगन्नाथजीका दर्शन करके हरिदास ठाकुरकी कुटिया पर जा पहुँचे। हरिदास ठाकुरने सत्कार पूर्वक उठ कर प्रभुकी चरण वन्दना करके उनको आसन पर बैठाया। रङ्गीले महाप्रभुने हरिदास ठाकुरके साथ कुछ देर सत्सङ्ग करके उनसे प्रश्न किया—

"हरिदास! कलिकालमें यवनलोग गो-ब्राह्मण हिंसा करके जो महादुराचार कर रहे हैं, उनका निस्तार कैसे होगा? उनके लिए मुझे बड़ा दुःख है।"

हरिदास ठाकुर महाप्रभुके श्रीमुखसे यह प्रश्न सुनकर मृदु मन्द-मन्द मुस्करा उठे। श्रीगौर भगवान्ने इस महापुरुषमें शक्ति सञ्चार करके जगत्में नाम-माहात्म्यका प्रचार किया है। वे हरिदास ठाकुरके मुखसे नामकी महिमा प्रकट करके प्रचार करानेके उद्देश्यसे प्रकारान्तरसे यह प्रश्न पूछ रहे हैं। सर्वज्ञ हरिदास ठाकुर इसे समझकर हँस पड़े। वे महापण्डित और सर्वशास्त्रवेत्ता थे। उन्होंने महाप्रभुकी प्रेरणासे इस प्रश्नका उत्तर दिया,—"प्रभु! तुम चिन्ता न करना। यवनोंका कृत्य देखकर दुःख न करो। ये सब अनायास तर जायेंगे। ये 'हा राम! हा राम! नामाभास रूपमें कहते हैं। भक्त 'हा राम। हा राम।' प्रेमसे कहते हैं। यवनोंका भाग्य देखो, वे लोग नामाभासके रूपमें वह नाम लेते हैं, तो क्या नामका तेज नाश हो जायगा?"

इतना कहकर हरिदास ठाकुरने नृसिंह पुराणके निम्नलिखित श्लोक को पढ़ा।

दंष्ट्रि दंष्ट्राहतो म्लेच्छो हारामेति पुनः पुनः।
उक्त्वापि मुक्तिमाप्नोति किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥

चै. च. अं. ३.२

अर्थ—जब बाराहके दष्ट्रासे आहत होकर एक म्लेच्छ 'हा राम' शब्दका उच्चारण करके मुक्त हो गया, तब श्रद्धापूर्वक हरिनाम लेने पर यदि मुक्ति

होती हो तो इससे कहना ही क्या ? अर्थात् इससे प्रेमकी भी प्राप्ति हो सकती है।

वे पुनः कहने लगे—"अजामिलने 'नारायण' नामसे अपने पुत्रको पुकारा था तो भी विष्णुदूतोंने अजामिलको बन्धनसे छुड़ा दिया। 'हा राम' में 'राम' दो अक्षर दूर-दूर नहीं है, साथमें प्रेमवाची 'हा' शब्द भी है। यदि दोनों अक्षर दूर हो तो भी अपना प्रभाव नहीं त्यागते।

नामैकं यस्य वाचि स्मरण पथ गतं श्रोत्रमूल गतं वा
शुद्धं वा शुद्ध वर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्।
तच्चेद्देह द्रविण जनता लोभपाखण्ड मध्ये
निःक्षिप्तं स्यान्नफलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र॥

ह. भ. वि. ११.५२७ उद्धत पद्मपुराण वचन

अर्थ—श्रीभगवान्‌का कोई भी नाम यदि वागेन्द्रियके द्वारा उच्चारित हो, अथवा मनके द्वारा स्मरण किया जाय, अथवा कर्णगोचर हो तो वह शुद्ध वर्ण हो या अशुद्ध वर्ण हो, अव्यवहित अथवा व्यवहित हो, अथवा किसी अशमे रहित हो तो भी वह निश्चयही सब पापोंसे, सब अपराधोंसे तथा संसारसे उद्धार करता है। परन्तु जो पाखण्डी लोग धन-जन देह, पुत्र-कलत्र आदिमें मुग्ध रहते हैं, उनके हृदयमें यह नाम निक्षिप्त होने पर भी इस लोकमें शीघ्र फलप्रद नहीं होता।

नामाभाससे सारे पाप क्षय हो जाते हैं, संसार क्षय हो जाता है। नामाभाससे मुक्ति भी होती है— इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत्में अजामिल है।

इतना कहकर हरिदास ठाकुरने पुनः श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकको पढ़ा—

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥

श्रीम. भा. ६.२.४९

अर्थ—शुकदेवजी राजा परीक्षतसे कह रहे हैं कि, अजामिल नामक एक व्यक्तिने मरते समय अपने पुत्रके नामपर ईश्वरके नामका उच्चारण किया था। इस कारण उसको वैकुण्ठ पद प्राप्त हुआ। अतएव श्रद्धापूर्वक यदि नाम उच्चारण करनेसे वैकुण्ठ मिलता हो तो इसमें कहना क्या ?

श्रीगौर भगवान् हरिदास ठाकुरके मुखसे नाम माहात्म्य सुनकर आनन्दसे गद्गद हो गये।

शास्त्रमें म्लेच्छ जातिका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

गोमांस खादको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते।
धर्माचार विहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते॥

म्लेच्छ वंश केवल मुसलमान ही नहीं हैं, अंग्रेज-फ्रांसीसी आदि श्वेताङ्ग जाति भी म्लेच्छ हैं। मुसलमान 'हा राम' शब्द उच्चारण करते हैं, परन्तु श्वेताङ्ग म्लेच्छ जाति ऐसा नहीं करती। वे लोग 'हा राम' शब्दके बदले अंग्रेजीमें 'Oh God' (ओ गोड) शब्द उच्चारण करते हैं। 'Oh' अंग्रेजी शब्द हमारे 'हा' शब्दका पर्याय प्रेम वाचक है। अंग्रेजी 'God' शब्दमें तीन अक्षर हैं। 'गोर' नाममें भी तीन अक्षर हैं। अंग्रेजीमें ग, (जी), ओ, और ड़ (डी), अक्षर मिलकर 'God—गोड' शब्द बंगलाके ग, ऊ और र से मिलकर बने गौर शब्दका अपभ्रंश है। अतएव श्वेताङ्ग म्लेच्छ लोग जो 'Oh God' कहते हैं, उसमें 'हा गौर' नामका आभास मिलता है। मुसलमान लोग जैसे 'हा राम' कहकर नामाभाससे उद्धार प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार श्वेताङ्ग म्लेच्छ जाति 'हा गौर' कहकर उद्धार प्राप्त करते हैं। हरिदास ठाकुर यदि अंग्रेज जातिके मुखसे 'Oh God' शब्द सुनते तो इसके साथ महाप्रभुको यह बात भी बोल देते। नामाभाससे मुक्ति होती है। श्रीगौराङ्गके नामाभासमें अंग्रेज जातिका भी उद्धार होता है, यह बात उनको समझा देने पर, गौर तत्त्व उनके हृदयमें वद्धमूल कर देनेपर श्रीगौर भगवान्‌के

चरणोंमें उनकी दृढ़ भक्ति होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हरिदास ठाकुरने केवल मुसलमानोंके उद्धारकी बात कही, उनका उच्छिष्ट भोजी, कुक्कुराधम, एक अन्य वृथा 'हरिदास' नामधारी जीवाधमने महाप्रभुके चरणोंमें श्वेताङ्ग ईसाई म्लेच्छोंके उद्धारकी बात निवेदन की। यह भी महाप्रभुकी प्रेरणासे हुआ।

हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्त्तितोऽहं वराक रूपोऽपि।
तस्य हरेः पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य॥

—भक्तिरसामृत सिन्धु १.१.२

श्रीगौर भगवान्‌ने प्रकारान्तरसे हरिदास ठाकुरसे फिर कहा—

"पृथिवीते बहु जीव स्थावर-जंगम।
इहा सभार कि प्रकारे हइबे मोचन ?॥"

चै. च. अं. ३.६२

भक्त चूड़ामणि हरिदास ठाकुरने हाथ जोड़कर महाप्रभुके सामने खड़े होकर उत्तर दिया, "हे प्रभु! तुम्हारी कृपाने स्थावर-जङ्गम सबका उद्धार कर दिया। तुमने जो उच्च स्वरसे कीर्तन किया, वह स्थावर-जङ्गम सबको सुनायी दिया। सुनते ही जङ्गमका तो संसार-क्षय हो गया। स्थावरसे उसकी प्रतिध्वनि निकली वह प्रतिध्वनि नहीं, उनका कीर्तन है। सबके उच्च संकीर्तनको सुनकर स्थावर-जङ्गम सब प्रेमसे नाचने लगते हैं जैसे वृन्दावन जाते समय झारखण्डमें स्थावर-जङ्गम नाचने लगे थे। वासुदेव दत्तकी सब जीवोंके उद्धारको प्रार्थना तुमने सब भक्तोंके सम्मुख स्वीकार की है। जगत्‌के उद्धारके लिए ही तुम्हारा यह अवतार है, इसीलिए तुमने भक्तभाव अङ्गीकार करके उच्च संकीर्तनके प्रचार द्वारा चर-अचर सब जीवोंका संसार-बन्धन छुड़वा रहे हो।"

प्रभु मुस्कराकर प्रेमानन्दमें बोले—"हरिदास! तुमने जो कुछ कहा, सब सत्य है। बतलाओ, यदि सब जीव इसी प्रकार मुक्तिप्राप्त करे तो यह ब्रह्माण्ड कैसे चलेगा ? तब ब्रह्माण्ड जीवशून्य हो जायगा।"

हरिदास ठाकुरने प्रभुके प्रश्नका क्या ही सुन्दर उत्तर दिया सुनिये—

हरिदासने कहा—"तुम्हारी जब तक इस मर्त्यलोकमें स्थिति है, उस कालके जितने स्थावर-जङ्गम जीव है, उन सबको मुक्त करके स्वधाम भेज दोगे और अन्य सूक्ष्म जीवोंके—जिनने भोगायतन स्थूल देह नहीं पायी है, जो अभी कर्मफलको लेकर सूक्ष्म रूपमें है, कर्मफल उद्‌बुद्ध होकर, वे ही आकर अपने-अपने कर्मानुसार इस ब्रह्माण्डमें स्थावर-जङ्गम रूपमें भर जायेंगे, जिस प्रकार भगवान् श्रीराम सारी अयोध्याको लेकर स्वधाम गये और अन्य जीवोंसे अयोध्याको भर दिया था। पूर्वकालमें ब्रजमें श्रीकृष्णने अवतार लेकर सब जीवोंका संसार-बन्धन काट दिया था, उसी प्रकार नवद्वीपमें अवतार लेकर तुमने सबका निस्तार कर दिया।

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते॥

श्रीमद्‌भागवत १०.२९.१६

अर्थ—शुकदेवजीने परीक्षितसे कहा कि हे राजन्! योगेश्वरेश्वर, अज, भगवान् श्रीकृष्णके विषयमें विस्मय मत करो। उनसे चराचर, सब जीवमुक्ति प्राप्त करते हैं।

अयं हि भगवान् कीर्तितश्च संस्मृतश्च द्वेषानुबन्धेनापि अखिलसुरासुरादिदुर्लभं फलं प्रयच्छति, किमुत सम्यग्भक्तिमनामिति।

वि. पु. ४.१५.४७

अर्थ—अहो भगवान् तो द्वेषानुबन्धके कारण भी कीर्तन और स्मरण करनेसे सम्पूर्ण सुर-असुरोंको दुर्लभ परमफल देते हैं, फिर सम्यक् भक्ति-सम्पन्न लोगोंकी तो बात ही क्या है।"

अन्तर्यामी श्रीगौरभगवान् हरिदास ठाकुरकी बातसे प्रसन्न हुए। उनके इस गूढ़ लीलारहस्यको हरिदास ठाकुरने कैसे जान लिया, यह सोचकर वे चकित हो उठे। इस बातको महाप्रभुने अपने मनके अन्दर ही रखखा। प्रकट रूपमें कुछ न कहकर दोनों भुजाएँ फैलाकर प्रेममें भरकर उनको कलेजेसे लगाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया।

हरिदास ठाकुर प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे पुलकित हो गये। अति कष्टसे आलिङ्गन-मुक्त होकर उनके चरणोंमें गिरकर धूलमें लोटपोट करते हुए प्रेमानन्दमें आकुल होकर रोने लगे। गुणनिधि महाप्रभुने उनसे विदा लेकर वासापर जाकर अपने भक्तोंके पास शतमुखसे हरिदास ठाकुरका गुण कीर्तन किया। श्रीभगवान्का गुण गाकर भक्तके प्राणमें जो सुख होता है, भक्तका गुण गाकर भगवान्के हृदयमें उसकी अपेक्षा कहीं शत गुना अधिक सुख होता है।

हरिदास ठाकुरकी जो माहात्म्य-कथाका वृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्य भागवतमें कीर्तन किया है, उसके अतिरिक्त इस महापुरुषकी दो-तीन और माहात्म्य कहानी कविराज गोस्वामी अपने श्रीचैतन्यचरितामृत श्रीग्रन्थमें कीर्तन कर गये हैं। कृपालु पाठक वृन्द कृपा करके उसे पढ़ लेंगे।

साक्षात् भगवान् शक्ति योगमाया परम सुन्दरी, मोहिनी मूर्त्ति रमणीका वेष धारण करके हरिदास ठाकुरकी परीक्षा करने आयी थी। उस समय हरिदास ठाकुर युवा पुरुष थे, विकट वैराग्य ग्रहण करके वेणापोलके निर्जन वनमें एक कुटीमें नाम-ब्रह्मकी उपासना करते थे। वे जब इस मायादेवीकी विषम परीक्षामें उत्तीर्ण हुए, तब योगमाया उनके सामने अपने स्वरूपमें प्रकट होकर उनको नमस्कार करके बोली—

तबे नारी कहे ताँरे करि नमस्कार—।
"आमि माया, करिते आइ लाम परीक्षा तोमार॥"
ब्रह्मादि जीवेर आमि सभारे मोहिल।
एकेला तोमारे आमि मोहिते नारिल॥
महाभागवत तुमि तोमार दर्शने।
तोमार कीर्तन-कृष्णनाम-श्रवणे॥
चित्त मोर शुद्ध हैल, चाहे कृष्णनाम लैते।
कृष्णनाम उपदेशि कृपा कर मोते॥
चैतन्यावतारे वहे प्रेमामृत-वन्या।
सब जीव प्रेमे भासे पृथिवी हैल धन्या॥
एइ वन्याय जे ना भासे सेइ जीव छार।
कोटि कल्पे कभो तार नाहिक निस्तार॥
पूर्वे आमि राम नाम पाञाछि शिव हैते।
तोमार संगे लोभ कैल कृष्णनाम लैते॥
मुक्तिहेतुक 'तारक' हये रामनाम।
कृष्ण नाम 'पारक' हये—करे प्रेमदान॥
कृष्णनाम देह सेवों, कर मोरे धन्या।
आमाके भासाय जैछे एइ प्रेमवन्या॥
चै. च. अं. ३.२३७-२४५

इतना कहकर भगवत् शक्ति मायादेवी हरिदास ठाकुरके चरणोंमें गिर पड़ी। हरिदास ठाकुरने उसको तारक हरिनाम दान करके कृष्ण-संकीर्तन करनेका उपदेश देकर विदा किया।

इन सब लीला-कथाओंमें अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि,

चैतन्यावतारे कृष्णप्रेम लुब्ध हैया।
ब्रह्मा-शिव-सनकादि पृथिवीते जन्मिया॥
कृष्णनाम लय नाचे, प्रेमवन्याय भासे।
नारद प्रह्लाद आसि मनुष्ये प्रकाशे॥
लक्ष्मी आदि सभे कृष्णप्रेमे लुब्ध हैया।
नाम-प्रेम आस्वादये मनुष्ये जन्मिया॥
अन्येर का कथा, आपनि व्रजेन्द्रनन्दन।
अवतरि करे प्रेम-रस आस्वादन॥

मायादासी प्रेम मागे, इथे कि विस्मय ।
साधुकृपा बिने प्रेम नाहि हय ।।
चैतन्य गोसाञिर लीलार एइ त स्वभाव ।
त्रिभुवन नाचे गाय पाञा प्रेम भाव ।।
कृष्ण आदि आर जत स्थावर जङ्गम ।
कृष्ण प्रेमे मत्त करे कृष्ण-सङ्कीर्तन ।।
चै. च. अं. ३.२४९-२५५

हरिदास ठाकुरकी अद्भुत चरित कहानी लिखते हुए पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

तर्क ना करिह, तर्क-अगोचर ताँर रीति ।
विश्वास करिया शुन करिया प्रतीति ।।
चै. च. अं. ३.२१५

ठाकुर हरिदासकी तिरोभाव-लीला

हरिदास ठाकुरकी महिमा अनन्त है। उनकी माहात्म्य-कथा वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। आत्मशुद्धिके लिए जिनको जो कुछ मिला, वर्णन कर गये हैं। अब इन महापुरुषके तिरोभावकी अपूर्व कथा वर्णन की जायगी यह अति अद्भुत कथा है।

महाप्रभु नीलाचलमें भक्तवृन्दके साथ परम आनन्दपूर्वक रहते हैं, दिनमें वे नृत्य-कीर्तन करते हैं, श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करते हैं। रातमें स्वरूप गोसाई और रायरामानन्दको लेकर कृष्ण-कथाका रसास्वादन करते हैं। कृष्ण विरहानलमें महाप्रभुका हृदय जब दग्ध होता है, तब स्वरूप गोसाईं और राय रामानन्द कृष्ण-कथा-रसके द्वारा उनके विरहानलको निर्वापित करते हैं। ये दोनों रातमें महाप्रभुके सहायक रहते हैं। दिन महाप्रभु किसी प्रकार नृत्य-कीर्तन करके व्यतीत करते हैं, परन्तु रातमें उनको लेकर विषम विपद आ जाती है। सारी रात उनको नींद नहीं आती।

दिने दिने बाड़े विकार रात्र्ये अतिशय ।
चिन्ता-उद्वेग प्रलापादि जत शास्त्रे हय ।।
चै. च. अं. ११.१३

अन्तरङ्ग भक्तगण उनके कारण रातभर परेशान रहते हैं। दिनमें प्रभु किसी प्रकार प्रकृतिस्थ होते हैं, भक्तगणके साथ कृष्ण-कथा कहते हैं, सबका समाचार पूछते हैं।

हरिदास ठाकुर अब अतिशय वृद्ध हो गये हैं। महाप्रभु अब उनके वासापर नित्य नहीं जा पाते। गोविन्दने एक दिन प्रसाद लेकर हरिदास ठाकुरके वासापर जाकर देखा कि वे सोये हुए हैं और धीरे-धीरे संख्या नाम-संकीर्तन कर रहे हैं। गोविन्दने उनसे कहा—"ठाकुर ! उठिये, प्रसाद ग्रहण कीजिये।" हरिदासजीने धीरे-धीरे उत्तर दिया—"आज तो लंघन होगा, नाम-सङ्कीर्तनकी संख्या पूरी नहीं हो पायी, तो कैसे खाऊँ, महाप्रसादकी उपेक्षा भी कैसे करूँ।" इतना कहकर उन्होंने महाप्रसादकी वन्दना की, और उसमें-से एक कणमात्र लेकर खा लिया। हरिदास ठाकुर उस दिन उपवासी रहे।

यह बात दयानिधि प्रभुके कानोंमें पहुँची। दूसरे दिन उन्होंने हरिदास ठाकुरके वासापर जाकर उनसे पूछा—"हरिदास ! तुम स्वस्थ तो हो?" हरिदास ठाकुर प्रेमानन्दमें गद्गद होकर प्रभुकी चरण-वन्दना करके बोले—"शरीर तो अस्वस्थ नहीं है; किन्तु मन-बुद्धि अस्वस्थ हैं।" अर्थात् उन्होंने किसी शारीरिक व्याधिका नाम नहीं लिया, दोष दिया केवल अपने मन और बुद्धि का। एकमात्र वैष्णवके मुखसे ही यह सब बात सुनी जाती है और उनके मुखसे ही शोभा पाती है।

महाप्रभुने उत्तर दिया—"हरिदास ! वह बात अभी रहने दो। तुम्हें कौन रोग है? खुलकर बतलाओ।" ठाकुरने रोते-रोते हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे प्रभु ! हे अधम उद्धारण ! तुम तो सब

कुछ जानते हो, तुम्हारे लिए तो कुछ भी अविदित नहीं है। अब मेरे द्वारा संख्या नाम-कीर्तन पूरा नहीं होता, इसी दुःखसे मुझे मर्मान्तक पीड़ा होती है। दयानिधे ! मेरे समान पतित अधमकी गति क्या होगी ? तुम अगतिके गति हो, इस समय मेरी एक गति करो।" इतना कहकर वृद्ध हरिदास ठाकुर बालकके समान रोकर महाप्रभुके चरणोंमें लम्बायमान होकर धूलमें लोट-पोट करने लगे।

सर्वज्ञ श्रीगौर भगवान् सब कुछ जानते हैं, पर दिखलाते हैं मानो वे कुछ जानते ही नहीं। यह उनका लीलारङ्ग है। वे भक्तके दुःखसे विशेष कातर हुए, परन्तु मुखपर वह भाव प्रकट नहीं होने दिया। हरिदास ठाकुर वृद्ध हो गये हैं। वे प्रतिदिन तीन लाख नाम कीर्तन किये बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करते। इतने दिन इसी प्रकार वे भजन-साधन करते आ रहे थे, अब वृद्धावस्थामें शरीर असमर्थ हो गया है, अब संख्या-नाम-जप पूर्ण नहीं कर पाते, इसी दुःखसे बीच-बींचमें उपवास कर जाते हैं। भजन-विज्ञ महापुरुषके लिए इससे बढ़कर और दुःख क्या हो सकता है ? हरिदास ठाकुरके मुखसे यह बात सुनकर भक्तवत्सल महाप्रभुका कोमल हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने मनके भावको छिपाकर उनको उपदेश देनेके बहाने कहा—"हरिदास ! तुमने जीवन भर तीन लाख नाम संकीर्तन किया। तुम तो सिद्ध भक्त हो, तुमको साधनकी कोई आवश्यकता नहीं है। लोक-शिक्षाके लिए तुम ऐसा करते रहे हो। अब तुम वृद्ध हो गये हो नाम-सङ्कीर्तनकी संख्या कुछ कम कर दो।"

एक तो संख्या नाम जप वह पूर्ण नहीं कर पाते, इससे उनको मर्मव्यथा होती है, इसके ऊपर महाप्रभुकी वह स्तुतिवाणी हरिदास ठाकुरके प्राणोंमें मानो आत्मग्लानिका विष ढाल देती है। उन्होंने उच्च स्वरमें क्रन्दन करते हुए उनके चरणोंमें गिरकर हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभु ! ऐसी बात मत कहो। हीन जातिमें मेरा जन्म है, निन्द्य कलेवर है, मैं अधम पामर, हीन कर्ममें रत, अस्पृश्य-ऐसेको तुमने अंगीकार किया, रौरवसे निकालकर वैकुण्ठ तक चढ़ाया। तुम इच्छामय स्वतन्त्र ईश्वर हो, जैसे इच्छा होती है, जगतको नचाते हो। मुझपर भी कृपा करके मुझे नचाया, विप्रका श्राद्ध-पात्र तक खिलाया।"

भक्तवत्सल महाप्रभु हरिदास ठाकुरकी दैन्योक्ति और आर्त्त वचन सुनकर और उनके विषादपूर्ण शुष्क वदनकी ओर देखकर मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुधारा बह चली, वे कुछ उत्तर न दे सके। चुप-चाप हरिदासके मुखकी ओर देरतक देखते रहे।

प्रभुको देखकर हरिदास ठाकुरका हृदय-समुद्र आज प्रेम-तरङ्गमें उद्वेलित हो उठा। उनके मनकी साध थी कि "प्रभुके युगलचरण हृदयमें धारण करके उनके चन्द्र-वदनका दर्शन करते-करते, उनके पतित-पावन नामको जिह्वासे उच्चारण करते-करते मेरे प्राण निकल जाते। यह देहयष्टि प्रभुके चरणोंमें लोटती रह जाती।"

हरिदास ठाकुरके मनकी यह साध सर्वज्ञ महाप्रभुको अविदित न रही। वे इस साधको पूरा करेंगे, यही उनका सङ्कल्प है। भक्तके मनकी वासना भगवान् कभी अपूर्ण नहीं रखते। श्रीगौर भगवान्की प्रेरणासे हरिदास ठाकुरने अपने मनकी वासना आज प्रकट करके उनके चरणोंमें निवेदन करदी। वे रोते-रोते प्रभुके चरण पकड़कर बोले—"मुझे ऐसा लगता है कि अब तुम लीला संवरण करना चाहते हो। मेरी बहुत दिनोंसे एक बासना है। तुम अपनी अन्तर्धान लीला मुझे न दिखाना अपने समक्ष ही मेरा देह-पात करा देना। हृदयमें तुम्हारे चरण-कमलोंका ध्यान करते हुए, आँखोंसे तुम्हारा चन्द्रवदन देखते हुए, जिह्वासे तुम्हारा नाम उच्चारण करते हुए मेरे प्राण निकले—ऐसी मेरी इच्छा है।"

अपना सङ्कल्प सिद्ध करने, तथा भक्तकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिए चतुरचूड़ामणि भक्तवत्सल श्रीगौर-भगवान्‌ने भक्तचूड़ामणि हरिदास ठाकुरके मुखसे यह अन्तिम बात कहलायी। परन्तु कलिके प्रच्छन्नावतारने फिर भी प्रच्छन्न रहनेकी चेष्टा की। वे हरिदास ठाकुरके दोनों हाथ पकड़कर छलछलाती हुई आँखोंसे मधुर शब्दोंमें बोले— हरिदास! तुम जो चाहोगे, कृपानिधि श्रीकृष्ण तुम्हें वही प्रदान करेंगे, यह सुनिश्चित है। परन्तु हम लोगोंको छोड़कर चले जाना, क्या तुम्हारे लिए उचित है? हमको जो कुछ सुख प्राप्त है वह तुमको लेकर ही है।" इतनी बात कहते-कहते प्रेमाश्रुधारासे महाप्रभुका वक्षःस्थल डूब गया।

महाप्रभुके ऐसा कहनेका अभिप्राय यह था कि उनका नाम-प्रेम-प्रचार-लीलारङ्ग, नाम-माहात्म्य-प्रचार-कार्य केवल हरिदासको लेकर था। इस कलियुगमें उन्होंने अपने नाममें अनन्त शक्ति निहित की थी। नामब्रह्मके आचार्य हरिदास ठाकुर उनके इस नाम-प्रेम-प्रचार और नाम-दान-लीलाके प्रधान सहायक थे। हरिदास ठाकुर सर्वज्ञ और सिद्ध पुरुष थे। उनको ज्ञात था कि महाप्रभु लीला-संवरण करेंगे। परन्तु उनकी कामना थी कि वे उनके पहले देह त्याग करें। क्योंकि वे प्रभुकी अन्तर्धान लीला देखना नहीं चाहते थे।

चतुरचूड़ामणि भक्तवत्सल महाप्रभुने भक्तकी वह बात उलटकर कहा—"हरिदास! तुम्हारे हेतु मेरी यह अवतार लीला है। यदि तुम चले जाओगे तो मैं भी चलूँगा।" यह है भक्त-भगवान्‌का प्रीतिरस-आलापरङ्ग! चतुर लोगोंमें आपसमें जब वार्तालाप होता है तो ऐसा ही होता है। श्रीभगवान् चतुरचूड़ामणि हैं। परन्तु भक्त उनकी ही कृपासे उनकी चतुरताके रहस्यका भेद जाननेमें समर्थ होता है और भक्तवृन्द इस चतुरतामें भगवान्‌के समकक्ष नहीं होते हैं, फिर भी समय-समय पर भक्तके सामने उनको पराजय स्वीकार करना पड़ता है।

हरिदास ठाकुर प्रभुके श्रीमुखकी स्नेहमयी वाणी सुनकर आनन्दमें गद्‌गद हो उठे। वे प्रभुके चरण पकड़कर बोले—"प्रभु! मेरे साथ छल नहीं करना, इस अधमपर अवश्य कृपा करना। मेरेसे भी श्रेष्ठ कितने ही लोग तुम्हारी लीलामें सहायक हैं। चींटी जैसे मेरे एक कीटके जानेसे पृथिवीका कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। हे भक्तवत्सल! मुझ भक्ताभासकी इच्छा अवश्य पूरी करोगे ऐसी आशा करता हूँ।"

महाप्रभु और कोई बात नहीं बोले भक्तवाञ्छा-कल्पतरु श्रीगौर-भगवान् भक्तकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं। उन्होंने देखा कि हरिदासका अन्तिम समय उपस्थित है। इसी समय भक्तके प्रति भक्तवत्सल भगवान्‌का जो शेष कार्य है, वह करना पड़ता है। किस प्रकार यह कार्य करना होगा, अन्यमनस्क होकर यही सोचते-सोचते महाप्रभु उस दिन मध्याह्न कृत्य करनेके लिए वहाँसे चले आये। आते समय उन्होंने ठाकुर हरिदासको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान करके कृतार्थ किया। हरिदास ठाकुरने देखा कि महाप्रभुके नयन-जलसे उनका श्रीअङ्ग सिक्त हो रहा है। महाप्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शसे हरिदासका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया, सन्तप्त प्राण शीतल हो गये, तथा मन सुस्थिर हो गया। महाप्रभुको विदा करके वे पुनः लेटकर धीरे-धीरे नाम सङ्कीर्तन करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल महाप्रभु श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके सब भक्तोंको साथ लेकर हरिदास ठाकुरकी कुटियापर आये। अन्य दिन वे अकेले आते थे, आज वे सब भक्तोंको साथ लेकर क्यों आये? यह किसी भक्तकी समझमें नहीं आया। भक्तोंने सोचा कि आज वे कोई विशेष लीलारङ्ग

प्रकट करेंगे। हरिदास ठाकुरके प्राङ्गणमें जब महाप्रभु सपरिकर उदय हुए तब हरिदासने समझा कि, भक्तवाञ्छा-कल्पतरु दयामय श्रीगौर-भगवान् उनकी मनोवाञ्छा पूरी करने आये हैं। वे लेटे हुए धीरे-धीरे नाम-सङ्कीर्तन कर रहे थे। महाप्रभुको देखकर उन्होंने उठकर बैठनेकी चेष्टा की, पर उठ न सके। लेटे-लेटे ही हाथ जोड़कर उनकी चरण वन्दना की। नयनाश्रुधारासे उनका वक्षःस्थल डूब गया। उन्होंने रोते-रोते लेटे हुए ही सब भक्तोंकी यथारीति चरण-वन्दना की।

महाप्रभुने उनके सिरहाने आसन ग्रहण करके श्रीकरकमलसे उनके सिरको स्पर्श करके स्नेहपूर्वक मधुर-वचनसे पूछा—"हरिदास! अच्छे तो हो?" क्षीण-कण्ठसे हरिदास ठाकुरने उत्तर दिया—"हे प्रभु! हे दीनबन्धु! हे पतितपावन! तुम्हारे कृपा-प्रसादसे इस अधम-जनका क्या कोई अमङ्गल हो सकता है? तुम सर्वमङ्गलमय हो, तुम्हारे परिकरवृन्द मङ्गल-निधान हैं। तुम जब कृपा करके सपार्षद इस समय इस पतित अधमके सामने आकर उपस्थित हुए हो तो मुझे अब कोई चिन्ता नहीं है। आज मेरा बड़ा शुभ दिन है। हे प्रभु! हे सङ्कीर्तन-यज्ञेश्वर! इस दीन-हीन, पतित, अधम, दासानुदासके ऊपर तुम्हारी असीम करुणा है। तुम्हारी करुणाकी सीमा नहीं है। मेरे सामने खड़े होकर प्राङ्गणमें सपार्षद आज तुम नृत्यकीर्तन करो। मैं आँखें भरकर तुम्हारी मधुर मनमोहन नृत्य-लीला देखकर जीवनको सार्थक करूँ। मेरे नयन अपलक रहें, तुम्हारे चरण-कमलमें अन्तिम समयमें मेरे अपलक नयनद्वय लिप्त हो जायँ, तुम मुझको यह वरदान दो।"

हरिदास ठाकुरकी कातरोक्ति सुनकर भक्तवत्सल महाप्रभुका कोमल हृदय उन्मथित हो गया। वे और कोई बात न कह सके। वे प्राङ्गणमें आकर खड़े हो गये। उनकी नयनाश्रुधारासे उनका वक्षःस्थल डूब गया। आजानुलम्बित बाहुयुगल ऊपर उठाकर उन्होंने भुवनमङ्गल हरिकीर्तन प्रारम्भ कर दिया। महाप्रभुके आदेशसे भक्तगण हरिदास ठाकुरको उठाकर कुटीसे बाहर आङ्गनमें ले आये। वक्रेश्वर पण्डितने नृत्य आरम्भ किया। स्वरूप गोसाईं आदि भक्तगण हरिदास ठाकुरको घेरकर बेड़ा कीर्तन करने लगे। महाप्रभुने सर्वप्रथम शतमुखसे हरिदास ठाकुरके गुण और महिमाका कीर्तन किया। भक्त-महिमा कीर्तन करते-करते भक्तके भगवान् प्रेमानन्दमें बेसुध हो गये।

भगवान्‌के श्रीमुखसे भक्तमहिमा सुनकर उपस्थित भक्तोंके हृदयमें भी प्रेमानन्दका तरङ्ग उठा। सबने मिलकर अपने भक्त चूड़ामणि हरिदास ठाकुरकी चरण वन्दना की।

हरिदास ठाकुर भक्तगणके द्वारा वेष्टित होकर आङ्गनके बीचमें लेटे थे। धीरे-धीरे नाम-सङ्कीर्तन कर रहे थे, और मन-ही-मन महाप्रस्थानकी तैयारी कर रहे थे। महाप्रभु प्रेमानन्दमें कीर्तन करने लगे, सब भक्तोंने उनका साथ दिया। महासङ्कीर्तन ध्वनि ब्रह्माण्ड भेदकर ऊपर जा रही है। स्वर्गमें देवगण अन्तर्हित होकर कलिके युगधर्म महासङ्कीर्तन यज्ञका दर्शन कर रहे हैं। वे अन्तर्हित होकर पुष्प वर्षा करने लगे। करुणामय महाप्रभु प्रेमाश्रुपूर्ण नयनोंसे हरिदास ठाकुरकी ओर बारम्बार शुभ कृपादृष्टिपात करने लगे। महाप्रस्थानके लिए उद्यत हरिदास ठाकुरने इशारेसे महाप्रभुको अपने सामने बैठाया। अतिक्षीण कण्ठसे मृदुस्वरमें उन्होंने दोनों हाथोंसे महाप्रभुके चरण-कमलको पकड़कर कहा—'हे प्रभु! हे दीनबन्धु! हे अशरणशरण! हे पतितपावन! आओ मेरे हृदयवल्लभ! मेरे हृदयमें आओ। अन्तिम कालमें आँखें भरकर एक बार मैं तुम्हारे चन्द्रवदनको सदाके लिए देख लूँ। तुम्हारे इस अज-भव-वन्दित, लक्ष्मीसेवित चरण-कमलको हृदयमें धारण करूँ। तुम्हारे मधुसे भी मधुर श्रीकृष्ण चैतन्य नामको एक बार सदाके लिए जिह्वासे उच्चारण कर लूँ। आओ, हृदयके धन!

हृदयमें आओ।" इतना कहकर भक्तचूड़ामणि हरिदास ठाकुरने क्या किया ? सुनिये—

हरिदास निजाग्रेते प्रभु बसाइल ।
निज नेत्र दुइ भृङ्ग मुखपद्मे दिल ।।
स्वहृदये आनि धरिल प्रभुर चरण ।
सर्वभक्तेर पदरेणु मस्तके भूषण ।।
'श्रीकृष्णचैतन्य' शब्द बोले बार-बार ।
प्रभु-मुख-माधुरी पिये नेत्रे जलधार ।।
'श्रीकृष्णचैतन्य' शब्द करिते उच्चारण ।
नामेर सहित प्राण कैल उत्क्रमण ।।

चै. च. अं. ११.५२-५५

हरिदास ठाकुर श्रीगौर-भगवान्को अपने वक्षःस्थलमें धारण करके महासमाधिको प्राप्त हो गये। महापुरुषोंकी इस प्रकारकी इच्छा-मृत्युको महासमाधि या महाप्रस्थान कहते हैं।

भक्तवत्सल महाप्रभु भक्तविरहमें विह्वल हो उठे। उपस्थित भक्तोंके मनमें भीष्मपितामहके महाप्रस्थानकी याद आ गयी। सब लोग 'हरेकृष्ण-हरेकृष्ण' नाम उच्चारण करके हरिदासके शोकमें व्याकुल होकर रोने लगे।

हरेकृष्ण शब्दे सभे करे कोलाहल ।
प्रेमानन्दे महाप्रभु हइल विह्वल ।।

चै. च. अं. १.५७

तब भक्तवत्सल प्रभुने फिर क्या किया ?

हरिदासेर तनु (प्रभु) कोले लैल उठाइया ।
अङ्गने नाचेन प्रभु प्रेमाविष्ट हैञा ।।

चै. च. अं. ११.५८

हरिदास ठाकुरकी मृत देहको कन्धेके सहारे गोदमें लेकर जब आङ्गनमें प्रभु नृत्य करने लगे, तब उनके श्रीअङ्गकी एक अपूर्व शोभा हुई। पुत्रशोकार्त्त पिता जैसे शोकग्रस्त होकर मृत शिशु पुत्रको गोदमें लेकर आर्त्तनाद करता है, भक्तवत्सल महाप्रभुकी अवस्था भी वैसी ही हो गयी। पुत्र-शोकसे आतुर होकर पिता व्यग्रचित्तसे हाहाकार और आर्त्तनाद करता है, महाप्रभु उसके स्थानमें गगनभेदी और भक्तगणके हृदयभेदी उच्च कण्ठ स्वरसे भुवनमङ्गल हरिसंकीर्तन करने लगे, इतना ही अन्तर पड़ा। महाप्रभुके मनमें आज जो दुःखका तूफान उठा है, उसको वे ही जानते हैं। भक्तविरहके दुःखसे वे परम विह्वल होकर कीर्तन कर रहे हैं, उन्मत्तके समान नृत्य कर रहे हैं। उपस्थित भक्तगण उनके अपूर्व प्रेमावेशको देखकर सब उनके साथ प्रेमविह्वल भावमें नृत्यकीर्तन कर रहे हैं। इस प्रकार बहुत देर तक महा संकीर्तन चलता रहा।

हरिदास ठाकुरके मृत देहको कन्धेपर लेकर महाप्रभु परम प्रेमावेशमें नृत्य कर रहे हैं। उस महानृत्यका विराम नहीं है। स्वरूप दामोदर गोसाईंने इस बीचमें महाप्रभुसे एकबार कुछ निवेदन किया। सर्वज्ञ प्रभुने समझा कि हरिदासके मृतदेहका संस्कार करना होगा। तब उन्होंने धीरे-धीरे आत्म संवरण किया। तब सब मिलकर महाप्रभुके कन्धेसे हरिदास ठाकुरके मृतदेहको नीचे उतारकर विमानपर चढ़ाकर कीर्त्तन करते हुए समुद्रके तीरपर ले गये। महाप्रभु संकीर्तनके आगे नृत्य करते हुए चले। वक्रेश्वर पण्डित आदि भक्तगण पीछे-पीछे नृत्य कीर्तन करते हुए चले।

समुद्रके तीर जाकर शव-देहको समुद्रके जलमें स्नान कराया गया। तब महाप्रभु बोले, "आजसे समुद्र महातीर्थ हो गया।"

हरिदासेर पादोदक पिये भक्त गण ।
हरिदासेर अंगे दिल प्रसाद-चन्दन ।।

चै. च. अं. ११.६४

महाप्रभुके भक्तोंमें ब्राह्मण, कायस्थ, शूद्र, संन्यासी, ब्रह्मचारी सभी थे। उन्होंने हरिदास ठाकुरके मृतदेहको उठाया और उनके शव शरीरका

पादोदक लिया। भक्तके पादोदकको पान करके वे प्रेमोन्मत्त हो गये। भक्तवत्सल महाप्रभु वहाँ खड़े होकर सब देख रहे थे, प्रेमाश्रुधारामें उनका वक्षःस्थल डूब रहा था। बीच-बीचमें उच्च स्वरसे कभी-कभी 'हरि बोल, हरि बोल' ध्वनि कर रहे थे।

उसके बाद भक्तोंने श्रीजगन्नाथजीकी प्रसादी पट्टडोरी और प्रसादी वस्त्र ठाकुर हरिदासके शवके अर्पण किया, शरीरपर प्रसादी चन्दनका लेप किया और बालुकाके गर्तमें उनको सुलाया। चारों ओर कीर्तन होने लगा। पण्डित वक्रेश्वर आनन्द-नृत्य करने लगे। भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान्ने तब श्रीहस्तमें अञ्जलि-भर बालुका लेकर हरिध्वनिके साथ हरिदास ठाकुरके श्रीअङ्गपर अर्पित की।

सबने मिलकर तब समुद्रके तीरपर हरिदास ठाकुरके लिए एक सुन्दर बालुकाका समाधि मन्दिर बनवाया। उसके चारों ओर बालुकाका आवरण दे दिया।

समुद्रके तीरपर बालुकाका समाधि मन्दिर अपूर्व शोभा धारणकर रहा था। सब भक्तोंके साथ तब महाप्रभुने पुनः कीर्तन आरम्भ किया। उसके बाद महाप्रभुने भक्तोंके साथ समुद्र स्नान करके सपार्षद पुनः हरिदास ठाकुरकी समाधिके पास आकर उनकी प्रदक्षिणा की। भक्तगणने प्रणाम किया।

इसके पश्चात् महाप्रभु कीर्तन करते हुए सपार्षद श्रीमन्दिरके सिंह द्वारपर आकर उपस्थित हुए। उनका मन आज उदास था। वे अनमना होकर इधर-उधर देख रहे थे। आँखोंसे अविरल प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। सिंह द्वारपर आनन्द बाजारमें नाना प्रकारकी पंसारीकी दूकानें थीं। सभी महाप्रभुको पहचानते थे। हमारे भक्तवत्सल महाप्रभु अपना वहिर्वासका आंचल फैलाकर अपने भक्तचूड़ामणि हरिदास ठाकुरके तिरोभाव महोत्सवके लिए भिक्षा करने लगे। जब उन्होंने सजल नयन हो गद्गद कण्ठसे कहा—

हरिदास ठाकुरेर महोत्सव-हरे।
प्रसाद मागिये भिक्षा देह त आमारे।।

चै. च. अं. ११.७३

उनके भक्तविरहकातर श्रीमुखकी ओर देखकर सभी पंसारी दुकानदार प्रेमविह्वल होकर अपनी टोकरी उलटाकर सारा प्रसाद उनके श्रीकर-कमलोंमें देनेके लिए तैयार हो गये। तब स्वरूप दामोदर गोस्वामीने इशारेसे पंसारियोंको मना कर दिया, तब वे चुप हो गये। स्वरूपने महाप्रभुसे कहा—"हे प्रभु! तुम वासापर चलो। मैं भिक्षा करके ले आता हूँ।"

भक्तवत्सल महाप्रभु स्वरूप गोसाईंके मुखकी ओर देखकर बालकके समान उच्च स्वरसे रो उठे। स्वरूप दामोदर भी व्याकुल होकर रोने लगे। भक्तवृन्दके साथ महाप्रभुको उन्होंने वासापर भेज दिया। उनके तत्कालीन मनके भावको उनके अन्तरङ्ग और मर्मी भक्त स्वरूप दामोदरने समझा। भक्तवत्सल महाप्रभुकी इच्छा थी कि वे भली-भाँति हरिदास ठाकुरके तिरोभाव महोत्सवको मनावेंगे। वे भिखारी संन्यासी थे, भिक्षाके सिवा उनका और कोई संबल न था, उनके मनकी आशा कैसे पूरी होती? अतएव स्वयं भगवान् अपना आञ्चल पसारकर भक्तके तिरोभाव महोत्सवके लिए भिक्षा करनेके लिए उद्यत हो गये। वे जानते थे कि यदि वे स्वयं भिक्षाके लिए निकलेंगे तो सब लोग अति परिमाणमें भिक्षा देंगे, बहुत सामग्री इकट्ठी हो जायगी, महासमारोहसे वे हरिदासका तिरोभाव महोत्सव मनावेंगे। भक्तचूड़ामणि स्वरूप दामोदर गोसाईंने नहीं चाहा कि षडैश्वर्यपूर्ण श्रीभगवान्के श्रीहस्तमें भिक्षाकी झोली दें। यह

दृश्य उनके मनको नहीं रुचा। भक्तगणके रहते स्वयं श्रीभगवान् क्यों इस प्रकार भिक्षा करेंगे? यह सोचकर उन्होंने महाप्रभुको भिक्षा कार्यसे हटाकर वासापर भेज दिया।

उसके बाद स्वरूप गोसाईंने महोत्सवका आयोजन आरम्भ किया। चार वैष्णव और चार सामान ढोनेवालोंको साथ लेकर पंसारियोंसे कहा—"प्रत्येक प्रकारके सामानका एक-एक ढेर तुम लोग दो।" इस प्रकार अनेक प्रकारकी सामग्री चारों आदमियोंके सिरपर लेकर आये। केवल इतना करके ही वे श्रान्त न हुए। वे वाणीनाथ और काशीमिश्रको विशेष करके कह आये कि आज उत्तम-उत्तम महाप्रसाद प्रचुर परिमाणमें महाप्रभुके वासापर भेजवा दें। काशीमिश्र राजगुरु थे, श्रीमन्दिरके प्रसादका सारा भार उनके ऊपर था। राजा गणपति प्रताप रुद्रका आदेश था कि महाप्रभुके लिए जब जो प्रयोजन हो, बिना ननु नच किये अकातर भावसे सब दिया जाय। भारमें लाद-लादकर श्रीजगन्नाथजीका उत्तम प्रसाद महाप्रभुके वासापर पहुँचा।

वासा पर उत्तम-उत्तम प्रसादका ढेर लगा देखकर महाप्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होने सब वैष्णवोंको पंक्तियोंमें पत्तल देकर बैठाया। वे स्वरूप गोसाईं, जगदानन्द पण्डित, काशीश्वर पण्डित, और शङ्कर पण्डित, चारों भक्तोंको लेकर परोसने लगे। भक्तवत्सल महाप्रभुके हाथसे थोड़ा-थोड़ा करके परोसा नहीं जाता, एक-एक आदमीके पत्तेपर पाँच-पाँच आदमियोंका भोजन परोसते चले जा रहे हैं।

स्वरूप गोसाईंने प्रभुसे कहा—"हे प्रभु! तुम महोत्सव दर्शन करो। परोसनेका काम हम लोगोंपर छोड़ दो। महाप्रभुके भोजनमें बैठे बिना कोई भोजनके लिए बैठ नहीं सकता। इसी कारण स्वरूप गोसाईंने उनको यह बात कही।

महाप्रभुको उस दिन काशीमिश्रने निमन्त्रण दिया था। वे स्वयं प्रसाद ले आये थे। सबके अनुरोधसे पुरी और भारती गोसाईंके साथ महाप्रभु भोजन करने बैठे। तब वैष्णव लोग परम आनन्द-पूर्वक हरि-ध्वनि करने लगे। महाप्रभु प्रेमानन्दमें सबके साथ भोजन करते थे, और श्रीमुखसे केवल 'दो, दो' शब्द बोलते थे। उनके साथ एक पंक्तिमें उस दिन सब वैष्णवोंने खूब पेट भरकर भोजन किया। बीच-बीचमें महाप्रभु प्रेमानन्दमें उच्च हरिध्वनि करते थे, और शतमुखसे हरिदास ठाकुरका गुण-कीर्तन करते थे। उनके साथ-साथ सब वैष्णव लोग 'जय हरिदास' की ध्वनिसे दिगन्तको पूर्ण कर रहे थे।

इस प्रकार भोजन महामहोत्सव समाप्त होनेपर सबने यथाविधि आचमन किया। उनके बाद महाप्रभुने अपने हाथोंसे सब वैष्णवोंको माला-चन्दन पहनाया, और प्रेमाविष्ट होकर सबको वरदान दिया—

> **"हरिदासेर विजयोत्सव जे कैल दरशन।**
> **जेइ ताँहा नृत्य कैल, जे कैल कीर्तन॥**
> **जे ताँरे बालू दिते करिल गमन।**
> **ताँर महोत्सवे जेइ करिल भोजन॥**
> **अचिरे हरबे ता-सबार कृष्ण-प्राप्ति।**
> **हरिदास-दरशने ऐछे हय शक्ति॥**
> चै. च. अं. ११.९०-९२

वैष्णवगण प्रभुके श्रीमुखसे यह शुभाशीर्वाद-वाणी सुनकर प्रेमानन्दमें नृत्य करने लगे। भक्तवत्सल महाप्रभुकी बात अभी भी समाप्त नहीं हुई थी। वे पुनः सब भक्तगणके सामने गद्गद कण्ठसे हरिदास ठाकुरका गुण गाते हुए बोले—"भगवान्ने कृपा करके मुझे उनका सङ्ग दिया था, किन्तु वे परम स्वतन्त्र हैं, अपनी इच्छासे यह सङ्ग तोड़ दिया। जब हरिदासकी जानेकी इच्छा हो गयी, तो मेरेमें शक्ति नही थी कि उनको रोक सकूँ।

अपनी इच्छामात्रसे उनने अपने प्राणोंका निष्क्रमण किया जैसे पूर्वकालमें भीष्म पितामहने किया था। हरिदास पृथिवीके शिरोमणि थे, उनके जानेसे धरती शून्य हो गयी।"

इतना कहकर भक्तवत्सल महाप्रभुने सजल-नयनसे सब वैष्णवोंके प्रति शुभ दृष्टिपात करके अपने आजानुलम्बित बाहु-युगलको ऊपर उठाकर कीर्तनका सुर पकड़ा—

……जय जय जय हरिदास।
नामेर महिमा जेइ करिला प्रकाश॥

चै. च. अं. ११.९८

सब वैष्णवोंने कीर्तनमें योग दिया। महाप्रभु भङ्गिमाके साथ मधुर मनमोहन नृत्य करने लगे। वहाँ प्रेमानन्दका तरङ्ग उठा। उस तरङ्गका घात-प्रतिघात सारे नीलाचल वासियोंके घर पहुँचा। सारे नीलाचलवासी वैष्णव हरिदास ठाकुरके शोकमें अधीर हो उठे।

भक्तगण उस दिन महाप्रभुके वासासे अपराह्णमें विदा हुए। तब उन्होंने थोड़ा विश्राम किया।

हर्ष विषादे प्रभु विश्राम करिल।

चै. च. अं. ११.९९

प्रभुको हर्ष क्यों हुआ? क्योंकि उनको स्वयं अपने हाथसे हरिदास ठाकुरकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करनेका सुयोग मिला। विषादका कारण था श्रेष्ठ भक्तका वियोग। भक्त और भगवान्‌में जो अच्छेद्य प्रेम-सम्बन्ध है उसको महाप्रभुने स्वयं आचरणमें लाकर भक्तोंको दिखला दिया। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

चैतन्येर भक्तवात्सल्य इहातेइ जानि।
भक्तवाञ्छा पूर्ण कैल न्यासि-शिरोमणि॥
शेष काले दिल ताँरे दर्शन-स्पर्शन।
ताँरे कोले करि कैल आपने नर्त्तन॥
आपनि श्रीहस्ते ताँरे कृपाय बालू दिल।*
आपने प्रसाद मागि महोत्सव कैल॥
महा भागवत हरिदास परम विद्वान्।
ए-सौभाग्य लागि आगे करिला प्रयाण॥

चै. च. अं. ११.१०१-१०४

हरिदास ठाकुरके सौभाग्यकी सीमा नहीं है। उनके समान सौभाग्यवान् महापुरुष इस जगत्‌में कहीं कोई पैदा नहीं हुआ। साध करके ठाकुर वृन्दावनदासने क्या ही अच्छा गाया है—

सकृत् जे बलिबेक हरिदास नाम।
सत्य सत्य से जाइबेक कृष्ण धाम॥

चै. भा. अं. ११.२४४

कविराज गोस्वामीने हरिदास ठाकुरको प्रणाम किया है—

नमामि हरिदासं तं चैतन्यं तञ्च तत्प्रभुम्।
संस्थितामपि मन्मूर्त्ति स्वांगे कृत्य र्तनन पः॥

चै. च. अं. ११.१

---

* श्रीनिवास आचार्यके श्रीक्षेत्रमें पहुँचनेके पूर्व ही गौड़ीय वैष्णवोंने समुद्रके तीर हरिदास ठाकुरका एक समाधि मन्दिर बनवाया था। यथा, भक्तिरत्नाकरमें—

"श्रीनिवास शीघ्र समुद्रेर कूले गेला।
हरिदास ठाकुरेर समाधि देखिला॥
भूमेते पड़िया कैल प्रणति विस्तर।
निज-नेत्रजले सिक्त हैल कलेवर॥
भागवतगण श्रीसमाधि सन्निधाने।
श्रीनिवासे स्थिर कैल सस्नेह वचने॥
पुनः श्रीनिवास श्रीसमाधि प्रणमिया।
जे विलाप कैल ता शुनिते द्रवे हिया॥"

भक्तिरत्नाकर ३.२२२,२२३.२२७.२२८

हरिदास ठाकुरके समाधि क्षेत्रमें करीब डेढ़ सौ वर्ष पहले श्रीगौर-नित्यानन्द-अद्वैत मूर्त्तित्रयकी पूजा प्रचलित हुई। केन्द्रापाड़ाके भ्रमरवर नामक एक उत्कल भक्तकी अनुकूलतासे स्वर्ग द्वारमें एक स्थायी श्रीमन्दिर निर्मित हुआ। टोटा गोपीनाथके पुजारियोंकी देख-रेखमें पूजा थी। अब वह सम्पत्ति दूसरेके हाथमें बिक गयी है और वही सेवा-पूजाकी व्यवस्था चला रहे हैं।

—

पैंतालीसवाँ अध्याय

नीलाचलमें प्रद्युम्न मिश्र, रायरामानन्द और महाप्रभु

संन्यासि पण्डितगणेर करिते सर्वनाश।
नीचशूद्र द्वारे करे धर्म्मेर प्रकाश।।
भक्तितत्त्व प्रेम कहे राये करि बक्ता।
आपनि प्रद्युम्नमिश्र सह हय श्रोता।।
चै. च. अं. ५.८१,८२

प्रभुकी विरह यन्त्रण

हरिदास ठाकुरके तिरोभावके बाद महाप्रभु कई दिनों तक भक्त-विरह यन्त्रणा भोग करते रहे। जिसको देखते उसीको पकड़कर हरिदासके अनन्त गुणोंकी बात सुनाने लगते, उनकी महिमा कीर्तन करते थे। हरिदासका नाम लेनेपर प्रभुके दोनों कमल-नयन अश्रुसे पूर्ण हो जाते थे। हरिदासके बिना उनको चतुर्दिक शून्य दीखने लगा। वे नित्य हरिदासकी कुटियामें जाकर उनका दर्शन कर आते थे। भक्त और भगवान्के बीच परम प्रीतिका ज्वलन्त निदर्शन हरिदास और महाप्रभु थे। भक्तको भगवान् देखे बिना नहीं रह सकते। दर्शन देनेके बहाने वे अपने प्रिय भक्त हरिदासको नित्य देख आते थे। हरिदास ठाकुरके तिरोभावके बाद महाप्रभुने कई दिन तक समुद्र स्नान बन्द कर दिया था। क्योंकि वहाँ जानेके समय हरिदासकी कुटियाके सामनेसे होकर जाना पड़ता था। हरिदास नहीं थे, उनकी कुटिया शून्य पड़ी हुई थी। भक्तवत्सल, कोमलहृदय महाप्रभु उस ओर देख नहीं सकते थे। वे अब अपने वासापर रहते थे, श्रीजगन्नाथका दर्शन करते थे, और किसीके साथ विशेष बात-चीत नहीं करते थे। उनके विषण्ण वदनको देखकर किसीको उनसे कुछ पूछनेका साहस नहीं होता था। स्वरूप दामोदर गोसाईं सदा उनके पास रहते थे, उनको कीर्तन सुनाते थे, उनके साथ कृष्ण-कथा कहते थे। परन्तु भक्तवत्सल महाप्रभु सदा अनमना रहते थे। स्वरूप गोसाईं जानते थे कि महाप्रभुका हृदय हरिदास-विरह-व्यथासे जर्जर है, हरिदासके सङ्गके अभावमें उनका मन सदा खिन्न रहता है। उनके श्रीवदनको देखनेसे जान पड़ता है कि वे पुत्रशोकसे जर्जर हैं। भक्त और भगवान्का सम्बन्ध नित्य है, वह कभी छिन्न नहीं हो सकता।

श्रीगौर-भगवान् नरवपु धारण करके नदियामें अवतीर्ण हुए हैं। नर-लीला सर्वोत्तम लीला है। इसी कारण प्रभु स्वयं आचरण करके इस नर-लीलाके सारे अङ्गोंको सम्यक् रूपसे अभिनय कर रहे हैं। भक्तगण भगवान्के पुत्र हैं। हरिदासके विरहमें श्रीगौर-भगवान्को दुःसह पुत्रशोक प्राप्त है। हरिदासके विरहमें सच्चिदानन्द परम ब्रह्मके मनमें निरानन्द उदय हुआ है। लोकशिक्षाके लिए शिक्षागुरु श्रीभगवान्की यह लौकिकी-लीला है। उन्होंने इस लीलारङ्गमें दिखलाया है कि भक्तविरह श्रीभगवान्के लिए भी असह्य है। भक्तका एकमात्र दुःख है भगवद्विरह, श्रीभगवान्का भी एकमात्र दुःख है भक्त-विरह। निर्विकार श्रीभगवान् शोक-दुःखातीत होनेपर भी अवतार ग्रहण करनेपर भक्त-विरहानलमें दग्ध होते हैं, क्योंकि वे भक्तके सङ्गके बिना नहीं रह सकते। भक्तके लिए वे सब कुछ सहन कर सकते हैं।

ज्वलन्त अनल कृष्ण भक्त लागि खाय।
भक्तेर किङ्कर हय आपन-इच्छाय।।
भक्त वइ कृष्ण आर किछुइ ना जाने।
भक्तेर समान नाहि अनन्त-भुवने।।
चै. भा. म. १०.४७,४८

प्रद्युम्न मिश्रका कृष्णकथा सुननेके लिए आगमन

उसी समय एक दिन श्रीपाद प्रद्युम्न मिश्र श्रीहट्टसे नीलाचलमें आ उपस्थित हुए। वे महाप्रभुके परम आत्मीय थे। उनके पितृव्यके कुलके लोग श्रीहट्टमें वास करते थे। उसी पवित्र कुलमें इन महापुरुषका जन्म हुआ था। महाप्रभु संन्यासी थे, वे जाति-कुटुम्बका सम्पर्क नहीं रखते थे। सभी उनको प्रणाम करते थे। श्रीपाद प्रद्युम्न मिश्र महाप्रभुका नाम सुनकर नीलाचलमें आये थे। उनकी इच्छा उनसे कथा-वार्त्ता करनेकी, तथा उसी प्रसङ्गमें परिचय प्राप्त करनेकी थी। परन्तु उन्होंने सुना कि महाप्रभु कृष्ण-कथाके सिवा और कोई बात ही नहीं करते। अतएव वे उनके पास जाकर उनको प्रणाम करके बोले—

—"मुञि दीन गृहस्थ अधम।
कोन् भाग्ये पाइयाछों तोमार दुर्लभ चरण॥
कृष्ण-कथा शुनिवारे मोर इच्छा हय।
कृष्ण-कथा कह मोरे हइया सदय॥"

चै. च. अं. ५.४,५

श्रीपाद प्रद्युम्न मिश्रने प्रभुके सामने अपने आपको व्यक्त नहीं किया कि वे किस सम्बन्धसे महाप्रभुके घनिष्ठ जातीय हैं। उसे व्यक्त करनेका साहस न कर सके। क्योंकि विरक्त संन्यासी महाप्रभुके सामने यह सब ग्राम्य कथा ही थी। परन्तु सर्वज्ञ महाप्रभु सब जानते थे। उन्होंने समझा कि उनके साथ जाति सम्बन्ध होनेके कारण श्रीपाद प्रद्युम्न मिश्रके मनमें कुछ अभिमान है। वे मुखसे चाहे जो कुछ कहें, भीतर ही भीतर वे अभिमान पोषण कर रहे हैं। क्योंकि वह उनके भक्तोंकी उपेक्षा करके उनसे कृष्णकथा सुनने आये हैं। नीलाचलमें उनके असंख्य भक्त हैं, कृष्णकथा-रसरङ्गमें वे जीवन यापन कर रहे हैं। उनमें एक-एक ध्रुव-प्रह्लाद हैं। उनके पास न जाकर प्रद्युम्न मिश्र महाप्रभुके पास कृष्णकथा सुनने आये हैं, इससे उनके मनकी दाम्भिकताका भाव कुछ-कुछ अनुभूत होता है। चतुर चूड़ामणि सर्वज्ञ प्रभु यह जानकर उनसे बोले—

—कृष्ण कथा आमि नाहिं जानि।
सबे रामानन्द जानेन, ताँर मुखे शुनि॥
भाग्य तोमार—कृष्णकथा शुनिते हय मन।
रामानन्द पाश जाइ करह श्रवण॥
कृष्णकथा-रुचि तोमार, बड़ भाग्यवान्।
जार कृष्णकथाय रुचि—सेइ हय भाग्यवान्॥

चै. च. अं. ५.६-८

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विसक्सेनकथासु यः।
नोत्पादमेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

श्रीम. भ. १.२.८

प्रद्युम्न मिश्र और कुछ उत्तर न दे सके। वे महाप्रभुके पाससे विदा होकर उस दिन राय रामानन्दका पता लगाते हुए उनके वासा पर जाकर उपस्थित हुए। कृष्णकथा सुननेकी उनके मनमें प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हुई थी, इसके अतिरिक्त महाप्रभुका आदेश था, वे अविलम्ब राय रामानन्दके घर आये। परन्तु दुर्भाग्यवश उस समय राय रामानन्द अन्तः पुरमें देव पूजामें रत थे, अतएव भेंट न हुई। राय रामानन्दके सेवकोंने अत्यन्त सम्मान पूर्वक उनको आसन पर बैठाकर पैर धो दिये। तब उन्होंने पूछा—"राय रामानन्द कहाँ हैं? उनसे कब भेंट हो सकती है?" सेवकने उत्तर दिया, "वे एकान्त उद्यानमें बैठकर देवदासियोंको निजकृत नाटकके अभिनयकी शिक्षा दे रहे हैं, आप कुछ देर अपेक्षा करें, वे अभी आवेंगे।"

श्रीपाद प्रद्युम्न मिश्रने यह बात सुनकर आश्चर्य किया। राय रामानन्द परम वैष्णव हैं, महाप्रभुके विशेष कृपापात्र हैं। एकान्तमें स्त्रियोंको लेकर नाटकाभिनय करते हैं, उनको नृत्य गीत आदिकी

शिक्षा देते हैं। यह सुनकर उनके मनमें राय रामानन्दके प्रति कुछ अश्रद्धा उत्पन्न हुई। वे और कुछ न पूछकर मन-ही-मन सोचने लगे कि महाप्रभुने क्यों मुझको इनके पास कृष्णकथा सुननेके लिए भेजा है? वे क्या मेरी परीक्षा करते हैं?

राय रामानन्द व्रजके परकीया मधुर रसके भजनके कितने बड़े अधिकारी साधक थे, यह महाप्रभु और उनके सब अन्तरङ्ग भक्तगण जानते थे। प्रद्युम्न मिश्रको यह ज्ञात न था। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने रसिक भक्त राय रामानन्दके देवदासी लेकर गुह्य भजन करनेका वृत्तान्त श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीग्रन्थके अन्त्यलीला, पञ्चम परिच्छेदमें १४-२४ पयारोंमें लिखा है, जिसका भाव इस प्रकार है—

"रामानन्द राय उन दोनों देवदासियोंको अपने हाथसे अभ्यङ्ग-मर्दन (तेल मालिस) करते हैं, अपने हाथसे गात्र-सम्मार्जन (स्नान) कराते हैं, अपने हाथसे वस्त्र पहिनाते और सर्वाङ्ग-मण्डन (सम्पूर्ण अङ्गोंमें यथा योग्य वेश-भूषा करते हैं। इतने पर भी उनका मन निर्विकार रहता है। जिस प्रकार साधारण काष्ठ-पाषाणके स्पर्शसे भाव होता है, वैसा ही भाव देवदासियोंके स्पर्शसे उनका रहता है। वे देवदासियों को सेव्य मानकर और स्वयंमें दासी भावका आरोप करके उनकी सेवा करते हैं। महाप्रभुके भक्तोंकी महिमा बड़ी दुर्गभ है। उनमें रामानन्द रायकी प्रेमभक्तितो सीमा तक पहुँच चुकी। वे दोनोंको नृत्य सिखाकर नाटकके गीतके गूढ़ अर्थका अभिनय कराते हैं। सञ्चारी, सात्विक और स्थायी भावके लक्षण मुख और नेत्रोंके द्वारा अभिनय करके प्रकट कराते हैं। दर्शकोंके निकट, जिससे आन्तरिक भाव प्रकाश पा सके इस प्रकारका जो नृत्य सिखाते हैं, वही श्रीजगन्नाजीके सम्मुख अभिनयके समय दोनों देवदासियाँ प्रत्यक्ष दिखाती हैं। इस शिक्षाके पश्चात् दोनों देवदासियोंको महाप्रसाद खिलाकर, उनको अपने-अपने घर भेज देते हैं। अभिनय शिक्षा-कालमें प्रतिदिन वे इसी प्रकारसे करते हैं। इस रहस्यको हम क्षुद्रजन कैसे समझ सकते हैं।"

महाप्रभुके गणमें राय रामानन्दके समान मधुर रसका उच्चाधिकारी भक्त और कोई न था। महाप्रभुने यह बात श्रीमुखसे स्वीकार की है—

एक रामानन्देर हय एइ अधिकार।

चै. च. अं. ५.४०

प्रद्युम्न मिश्र राय रामानन्दके बैठकेमें बैठकर इस प्रकार सोच रहे थे, उसी समय अन्दर महलसे राय रामानन्दने शीघ्रता पूर्वक आकर बहुत सम्मानपूर्वक उनकी चरण वन्दना करके कहा—"आपको प्रतीक्षा करते बहुत देर हो गयी, मुझे किसीने इसकी सूचना नहीं दी। मेरा आपके चरणोंमें बड़ा अपराध हो गया। आपके आगमनसे मेरा घर पवित्र हो गया। अब मुझे आज्ञा कीजिये यह किङ्कर क्या सेवा करे।"

राय रामानन्दके साथ प्रद्युम्न मिश्रका यह प्रथम परिचय था। वैष्णवोचित दैन्यके साथ उन्होंने अपने किञ्चित् विलम्बसे आनेका अपराध स्वीकार करके क्षमा प्रार्थना की। प्रद्युम्न मिश्र राय रामानन्दके वैष्णवीय दैन्यको देखकर परम मुग्ध हो गये, किन्तु उनके भजन-वृत्तान्तको सुनकर उनके मनमें जो एक प्रकारकी श्रद्धा-हीनता उत्पन्न हुई थी, उसको वे दूर न कर सके। उनसे कृष्णकथा सुननेकी उनकी इच्छा नहीं हुई। वह बात अब न उठाकर वे दैन्य-पूर्ण वचनसे बोले—"रामानन्द राय! आपका नाम सुना था, अब आपका दर्शन प्राप्त किया। इससे मैं अपनेको पवित्र अनुभवकर रहा हूँ।" यह बात सरल हृदयकी बात न थी। राय रामानन्द भीतरी बात कुछ समझ न सके। परन्तु आत्म-प्रशंसा सुनकर बहुत लज्जित हुए।

प्रद्युम्न मिश्र और कुछ न कहकर उस दिन वहाँसे वैसे ही विदा हो गये।

दूसरे दिन महाप्रभुके पास जाते ही सर्वज्ञ श्रीगौर भगवान्ने उनसे पूछा, "रामानन्दसे कैसी कृष्णकथा सुनी ?" प्रद्युम्न मिश्रने सिर झुकाकर महाप्रभुके सामने राय रामानन्दके सम्बन्धमें अपने मनके भाव प्रकटकर दिये। उन्होंने सरल हृदयसे सारी बातें कह दी, और यह भी कह दिया कि उनके भाग्यमें श्रीरामानन्द रायसे कृष्णकथा सुनना क्यों नहीं बदा था। अर्थाद् उन्होंने स्पष्टतः महाप्रभुको कह दिया कि राय रामानन्दके पास कृष्णकथा सुननेकी उनकी श्रद्धा न हुई।

महाप्रभुके साथ प्रद्युम्न मिश्र जिस समय ये बातें कर रहे थे, उस समय वहाँ उनके अन्तरङ्ग भक्तगण उपस्थित थे। शिक्षागुरु श्रीगौर भगवान्ने प्रद्युम्न मिश्रको उपलक्ष्य करके अपने सब भक्तोंके उपदेशके बहाने कहा—"मैं संन्यासी हूँ। और अपनेको विरक्त मानता हूँ, तो भी दर्शन तो दूरकी बात है, प्रकृति (स्त्री) का सुननेसे ही मनमें विकार आने लगता है। स्त्रीको देखकर कौन स्थिर रह सकता है ? रामानन्द रायकी जो विशेषता है बड़ी आश्चर्यजनक है। सुन्दरी तरुणी देवदासीकी अङ्गसेवा स्वयं अपने हाथसे करते हैं, स्नानादि कराते हैं वस्त्राभूषण पहनाते हैं, गुह्य अङ्गोका दर्शन-स्पर्शन होता है। नाना भावोद्गमका शिक्षण कराते हैं, तो भी काष्ठ-पाषाणके समाना उनका मन निर्विकार रहता है—यह कितनी आश्चर्यकी बात है। केवल एक रामानन्दका ही इसमें अधिकार है। इससे ऐसा लगता है कि उनका शरीर अप्राकृतिक है। उनको समझ सके ऐसा भी कोई और व्यक्ति नहीं है। किन्तु शास्त्र दृष्टिसे एक बात बताता हूँ, जिसमें भागवत प्रमाण है। गोपियोंके संग जो श्रीकृष्णका रास हुआ था, उसको जो भी विश्वास पूर्वक पढता है, सुनता है, उसके हृदरोग कामका तत्काल नाश हो जाता है। वह महाधीर बन जाता है उसके ऊपर तीनों गुणोंका असर नहीं होता। उसको उज्ज्वल मधुर प्रेम भक्ति प्राप्त होती है, आनन्द पूर्वक श्रीकृष्णके माधुर्यमें मग्न रहता है।

बिक्रीडितं ब्रजवधूभिरिदंच विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

श्रीमद्भागवत १०.३३.४०

अर्थ—जो ब्रजवधूगणके साथ श्रीकृष्णकी रासक्रीडामें श्रद्धापूर्वक श्रवण कीर्तन करता है, वह शीघ्र श्रीकृष्णमें प्रेमभक्ति प्राप्त करके तत्काल धीर होकर हृदयके रोग कामका परित्याग करता है।

रागानुमार्गका रामानन्दका भजन है। उनका शरीर सिद्ध देहके समान है। मन प्राकृत नहीं, अप्राकृत है। मैं भी रामानन्दसे कृष्ण-कथा सुनता हूँ। यदि तुम्हारी भी कृष्णकथा सुननेकी इच्छा हो तो फिर उनके पास जाओ और उनको कहना कि कृष्णकथा सुननेको तुमको मैंने भेजा है।"

राय रामानन्दका इस प्रकार गुण कीर्तन करके महाप्रभु प्रद्युम्न मिश्रके प्रति कृपा कटाक्ष करके कहने लगे—

शीघ्र जाह यावात् तिनि आछेन सभाते।

चै. च. अं. ५.५१

राय रामानन्द उसी समय अपने घरपर बाहर बैठकमें भक्तोंके साथ सत्सङ्ग करते थे, इसी कारण महाप्रभुने यह बात कही। श्रीपाद प्रद्युम्न मिश्रका आत्माभिमान चूर्ण करके सबके सामने श्रीगौर भगवान्ने भक्तचूडामणि राय रामानन्दको भजन

राज्यके जिस उच्च स्थानपर आसीन किया, वैसा उच्च स्थान वे अपने अन्तरङ्ग एकान्त प्रियतम भक्तको भी नहीं प्रदान करते। प्रद्युम्न मिश्र उनके आत्मीय निजजन हैं। उनके मनमें अहङ्कार है, अभिमान है। वे महाप्रभुके आत्मीय हैं, वे उच्च वंश सम्भूत विप्र हैं, शास्त्रज्ञ पण्डित हैं, राय रामानन्द विषयी शूद्र हैं। महाप्रभुका प्रियभक्त होनेपर भी प्रद्युम्न मिश्रकी अपेक्षा वह किसी अंशमें निकृष्ट नहीं हैं। राय रामानन्दके पास कृष्णकथा सुननेके लिए जब महाप्रभुने उनको आदेश दिया था, उस समय उनके मनमें यह खट्का लगा था। परन्तु करते क्या? महाप्रभुके आदेशको उल्लङ्घन करनेकी शक्ति उनमें नहीं थी। उन्होंने महाप्रभुके आदेशका पालन किया। परन्तु राय रामानन्दके सम्बन्धमें जो सुना, उससे उनका अभिमानपूर्ण दुर्बल चित्त और भी दुर्बल हो गया। राय रामानन्दके मुखसे कृष्णकथा सुननेकी उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई। वे कुछ भी बात न करके वहाँसे चले आये। सरल चित्त विप्रने सरलतापूर्वक ही निष्कपट भावसे महाप्रभुके पास अपने मनके भावको प्रकट करके सारी बात कह दी थी। श्रीगौरभगवान् इससे सन्तुष्ट हुए थे, तथा राय रामानन्द क्या वस्तु है यह उनको समझाकर कहा था कि, "तुम फिर अति शीघ्र उनके पास जाओ, इस समय वे बाहरी बैठकमें हैं, मेरा नाम लेकर उनसे सम्मानपूर्वक कहना कि, "आपके पास कृष्णकथा सुननेके लिए उन्होंने मुझको भेजा है।"

प्रद्युम्न मिश्रने तब समझा कि प्रभुकी इस आदेशवाणीका कुछ मर्म है, इसमें कुछ रहस्य है। वे तत्काल राय रामानन्दके घरकी ओर चले। दोनोंमें फिर भेंट हुई। राय रामानन्दने दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर निवेदन किया—"आज्ञा करो क्या सेवा करूँ?"

प्रद्युम्न मिश्रका चित्त उस समय शुद्ध हो गया था। महाप्रभुकी बात सुनकर उनका अभिमान दूर हो गया था। चित्त शुद्धि हुए बिना कृष्णकथा सुननेका जीव अधिकारी नहीं होता और अभिमान-शून्य हुए बिना कृष्णकथामें रुचि नहीं होती। उन्होंने राय रामानन्दको महाप्रभुकी आदेशवाणी सुनायी। राय रामानन्दने प्रेमानन्दमें वैष्णवोचित दैन्यके साथ हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभुकी आज्ञासे आप कृष्णकथा सुननेके लिए आये हो, इससे बढ़कर मेरा और सौभाग्य क्या होगा।"

इतना कहकर वे उनको एकान्तमें ले जाकर बैठ गये और हँसते-हँसते पूछा, "श्रीपाद! आप कौन कथा सुनना चाहते हैं, आदेश करें।" प्रद्युम्न मिश्र तब बोले—"राय रामानन्द! आपने विद्यानगरमें गोदावरीके तीर महाप्रभुरके साथ जो तत्त्वकथा कही थी, वही मुझको क्रमपूर्वक सुनाइये। आप महाप्रभुके भी उपदेष्टा हैं, मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ, अच्छा-बुरा कुछ भी प्रश्न करना मैं नहीं जानता। मुझको दीनहीन भिक्षुक, कृष्णकथा-पिपासु समझकर कृपा करके आप स्वयं जो अच्छा समझें, कहें। मैं आपके मुखसे मधुर कृष्णकथा सुनकर अपने पिपासित कानोंको शीतल कर लूँ।"

राय रामानन्दके मुखसे तब मधुर कृष्णकथा रसका स्रोत फूट पड़ा, रससिन्धु उमड़ गया—उन्होंने स्वयं प्रश्न किया—और स्वयं अपने सिद्धान्तका समाधान करने लगे। प्रद्युम्न मिश्र प्रेमाविष्ट भावमें श्रवण कर रहे थे। वे मानो कृष्णकथामृत सिन्धुमें गोते लगा रहे थे। उनका वाह्यज्ञान जाता रहा। वक्ता और श्रोता दोनों ही बेसुध हो रहे थे। इस प्रकार दिनका तीसरा पहर बीत गया, तथापि कृष्णकथारस तरङ्गकी निवृत्ति नहीं हुई।

राय रामनन्दका नौकर जाकर तब कृष्णकथाके रसमें भङ्ग डालते हुए बोला—'दिन हैल अवसान'—तब राय रामानन्दको चेत हुआ कि दिन करीब-करीब समाप्त हो रहा है, ब्राह्मण अब तक बिना

खाये पिये बैठा है—यह सोचकर उन्होंने खूब लज्जित होकर अपराधीके समान प्रद्युम्न मिश्रसे क्षमा प्रार्थना करके बहुत सम्मानपूर्वक उनको विदा किया। प्रद्युम्न मिश्र तब आनन्दमें विह्वल होकर 'कृतार्थ हो गया' कहकर नाचने लगे। प्रेमानन्दमें नृत्य करते-करते वे तब अपने वासापर आये। स्नानाह्निक भोजनादि समाप्त किया। उस दिन सन्ध्याकालमें वे पुनः महाप्रभुके दर्शनके लिए आये। उनके मनमें आज बड़ा आनन्द था। कृपानिधि महाप्रभु मधुर हास्यके साथ पूछने लगे—"कृष्णकथा कैसी श्रवण की?" उन्होंने प्रेमानन्दमें गद्‌गद होकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे हाथ जोड़कर महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! तुम्हें मैं क्या कहूँ? तुमने मुझे कृष्णकथा-रस-सागरमें एक बारगी डुबा दिया है, मैं अब गोते खा रहा हूँ। हे कृपानिधि! मुझपर जो कृपा तुमने की है, वह बड़े भाग्यसे प्राप्त होती है। राय रामानन्द मनुष्य नहीं है, वे साक्षात् रसमय रसिक कृष्ण-भक्तस्वरूप हैं। उनके मुखसे मैंने जो कृष्णकथा रसतत्त्व सुना है, वह ब्रह्माके लिए भी अगोचर है। उन्होंने मुझको यह भी कहा है—"मुझे कृष्णकथाका वक्ता मत समझना। मेरे मुखसे स्वयं गौरचन्द्र कथा कहते हैं। वे जो कथा कहाते हैं वैसे ही वीणा यन्त्रकी तरह स्वयं निकलने लगता है। मेरे मुखसे कथा कहकर वे प्रचार करते हैं यह उनकी लीला है।"

"हे रसनिधि! तुमने आज मुझको जो अपूर्व कृष्णकथा रसपान कराया इसके लिए तुम्हारे सामने मैं सदाके लिए चिर-कृतज्ञताके पाशमें आवद्ध हो गया हूँ।" महाप्रभुने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"रामानन्द विनयकी खान है, अपनी बात दूसरेके सिरपर डाल देते हैं। महानुभावका ऐसा ही स्वभाव होता है अपना गुण प्रकट नहीं होने देते।"

कविराज गोस्वामीने लिखा है—

भक्त गुण प्रकाशिते गौर भाल जाने।
नाना भङ्गीते गुण प्रकाशि निज लाभ माने॥
आर एक स्वभाव गौरेर शुन भक्तगण।
ऐश्वर्य स्वभाव गूढ़ करे प्रकटन॥
संन्यासी-पण्डितगणेर करिते गर्वनाश।
नीचशूद्र द्वारा करे धर्मेर प्रकाश॥
भक्तितत्त्व प्रेम कहे राये करि वक्ता।
आपने प्रद्युम्नमिश्र सह हय श्रोता॥
हरिदास द्वाराय नाम-माहात्म्य-प्रकाश।
सनातन द्वाराय भक्ति सिद्धान्तविलास॥
श्रीरूप द्वाराय व्रजेर प्रेमरसलीला।
के बूझिते पारे गम्भीर चैतन्येर खेला॥

चै. च. अं. ५.७९-८४

प्रद्युम्न मिश्रको महाप्रभुने राय रामानन्दके पास कृष्णकथा सुननेके लिए क्यों भेजा था, कृपालु पाठकवृन्द अब इस बातको समझ गये होंगे। मन्दारमें श्रीमधुसूदनका दर्शन करनेके लिए जाकर ज्वरके बहाने भवरोगकी महौषसि विप्रपादोदक पान करके जिन महाप्रभुने विप्रभक्तिकी पराकाष्ठा प्रदर्शित की थी उन्हीं महाप्रभुने पाण्डित्य और ब्रह्मण्यके अहङ्कारसे भरे, जात्याभिमान गर्वसे गर्वित अपने परम आत्मीय श्रीपाद प्रद्युम्न मिश्रको शूद्रके पास कृष्णकथा सुननेके लिए भेजकर अपने श्रीमुखसे निःसृत वाणीको सफल किया।

किवा विप्र किवा न्यासी शूद्र केन नय।
जेइ कृष्ण तत्त्ववेत्ता—सेइ गुरु हय॥

चै. च. म. ८.११०

पण्डिताभिमानी, जात्याभिमान गर्वित ब्राह्मण पण्डित, तथा सोऽहंवादी संन्यासियोंका अहङ्कार चूर्ण करनेके लिए कलिपावनावतार श्रीश्रीमन्महाप्रभु नीच शूद्रके द्वारा विशुद्ध वैष्णव

धर्मके गूढ़ मर्मको प्रकट कर गये हैं। राय रामानन्दके मुखसे उन्होंने जो गूढ़ रसतत्त्व प्रकट किया है, वह सत्य, त्रेता तथा द्वापर युगोंके ऋषि महात्मागणको भी अविज्ञात था। यहाँ तक कि ब्रह्मादि देवतागण भी इसे नहीं जानते थे। राय रामानन्द गृही वैष्णव थे, किन्तु वे अनासक्त भावसे संसारमें रहते थे। विषयी होकर भी वे निर्विषयी थे, गृहस्थ होते हुए भी वे उदासीन थे, संसारी होते हुए भी वे अनासक्त महायोगी थे। वे युक्त वैराग्यवान् महापुरुष थे। वे इन्द्रियोंके वशमें नहीं थे, बल्कि इन्द्रियाँ उनके वशीभूत थी। वे विषयी होकर भी संन्यासियोंको तत्वोपदेश प्रदान कर कृतार्थ करते थे। इसी कारण चतुर चूड़ामणि महाप्रभुने उनकी अनन्त गुणराशि और अपार महिमा सारे भक्तसमाजमें प्रचार करनेके लिए प्रद्युम्न मिश्रको उनके पास कृष्णकथा-रसतत्त्वका उपदेश ग्रहण करनेके लिए भेजा था। श्रीगौराङ्ग-लीला अतिशय गम्भीर है। इसका यथार्थ मर्म समझनेकी शक्ति कोटि-कोटि मनुष्योंमें-से किसी एकमें है या नहीं, यह संशयात्मक है। श्रीगौराङ्ग-लीला अमृतका समुद्र है, इसके एक बिन्दुमें त्रिलोकी डूब जा सकती है। यह बात पूज्यपाद कविराज गोस्वामी लिख गये हैं—

श्रीचैतन्य लीला एइ अमृतेर सिन्धु।
जगत भासाइते पारे जार एक विन्दु॥
चैतन्य चरितामृत नित्य कर पान।
जाहा हैते प्रेमानन्द भक्ति तत्त्व ज्ञान॥

चै. च. अं. ५.८५,८६

ऐसी अपूर्व रसपूर्ण, अप्राकृत भावविशिष्ठ, परम अद्भुत श्रीगौराङ्ग-लीला है, ऐसा प्रेमानन्दपूर्ण, हृदय-मन-स्निग्धकारी, अपरूप श्रीचैतन्यचरितामृत है, जिसके आस्वादनमें, अनुशीलनमें, तथा पठन-पाठनमें कलिग्रस्त जीव अप्राकृत व्रज-रस आस्वादनका अधिकारी होता है, जिसके अचिन्त्य प्रभावसे कलिके जीवके भवबन्धन टूट जाते हैं, वह परम मङ्गल, भुवनपावनी, मधुसे भी मधु, परम और चरम तत्त्व,—

"चैतन्य चरित्र शुन श्रद्धा भक्ति करि।
मात्सर्य छाड़िया मुखे बल 'हरि हरि'॥
एइ कलिकाले आर नाहि अन्य धर्म।
वैष्णव, वैष्णव शास्त्र एइ कहे मर्म॥

चै. च. म. ६.३३३,३३४

वोलो प्रेमानन्दमें, गौर हरि बोल !

छियालीसवाँ अध्याय

स्वरूप दामोदर गोसाईंकी ग्रन्थ-समालोचना

> ग्राह्, भागवत पढ वैष्णबेर स्थाने।
> एकान्त आश्रय कर चैतन्य चरणें॥
> चैतन्येर भक्तगणेर कर नित्य सङ्ग।
> तबे त जानिबे सिद्धान्त-समुद्र-तरङ्ग॥
>
> चै. च. अं. ५.१२३,१२४

नदियाके अवतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें विराज रहे थे। उनका नाम उस समय भारतवर्षमें सर्वत्र प्रख्यात हो चुका था, उनकी महिमा भारतमें सर्वत्र प्रसिद्ध हो गयी थी। सब जगहके लोग आकर उनके श्रीचरणोंका आश्रय करते थे। उनके साथ एक बात हो जानेपर—एकबार उनके रक्त कमलचरणका दर्शन हो जानेपर सब लोग अपनेको कृतार्थ समझते थे। भक्त कविगण भक्ति-ग्रन्थ लिखकर बहुत दूर देशसे बहुत परिश्रम करके महाप्रभुको सुनानेके लिए श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आते थे। पण्डित स्वरूप दामोदर गोस्वामी महाप्रभुके अन्तरङ्ग भक्त और प्रियतम पार्षद थे। भक्त कविगण पहले उनकी कृपा याचना करके अपने-अपने ग्रन्थको श्रीश्रीमन्महाप्रभुको सुनानेके लिए उनके हाथोंमें देते थे। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ग्रन्थके दोष-गुणका विचार करके यदि उसको अपनी रुचिके अनुसार पाते, तब वे उस ग्रन्थको प्रभुको सुनाते थे। सिद्धान्त–विरुद्ध तथा रसाभाससमन्वित कोई वर्णन सुनकर महाप्रभुके मनमें सुख नहीं होता था, वे हृदयमें दुःख पाते थे, इसके लिए स्वरूप दामोदर गोसाईंको उन्होंने सावधान कर दिया था। इसी कारण नियम बना था। भक्तकवि और पण्डित लेखकोंको इसी कारण नीलाचलमें आकर सर्वप्रथम स्वरूप दामोदर गोसाईंका आश्रय लेना पड़ता था।

उसी समय एक बङ्गाली ब्राह्मण बङ्गालसे एक नाटक लिखकर नीलाचलमें महाप्रभुको सुनाने आये। ब्राह्मण भक्तिमान् और परम पण्डित थे। नाटक उन्होंने संस्कृत भाषामें लिखा था। उस ग्रन्थमें उन्होंने पर्याप्त कवित्व और पाण्डित्य प्रदर्शित किया था। महाप्रभुके एकान्त भक्त भगवान् आचार्यके साथ उस बङ्गाली ब्राह्मणका पूर्व परिचय था। भगवान् आचार्य उस समय नीलाचलवासी थे। वे महाप्रभुको छोड़कर नहीं रह सकते थे। इस महापुरुषका कुछ परिचय पहले आ चुका है। बङ्गाली ब्राह्मण बङ्गदेशसे नीलाचल आकर भगवान् आचार्यके घर अतिथि बने और पहले स्वरचित नाटक उनको सुनाया। नीलाचलवासी अनेकों वैष्णवोंने उस नाटकको सुना। सब लोग एक स्वरसे ग्रन्थकी खूब प्रशंसा करने लगे। सबके मनमें हुआ कि इस अपूर्व नाटकको महाप्रभु एक बार सुनें। सबने भगवान् आचार्यसे अनुरोध किया कि वे सुयोग देखकर स्वरूप दामोदर गोस्वामीके हाथमें यह ग्रन्थ प्रदान करें। भगवान् आचार्यने एक दिन डरते-डरते स्वरूप दामोदर गोसाईंके सामने यह बात उठायी। वे बोले—"पहिले तुम सुन लो, सुनकर यदि तुमको ठीक लगे तो महाप्रभुको सुनाना।"

स्वरूप गोस्वामी परम रसज्ञ और शास्त्रज्ञ थे। वे बिना बिचारे कोई बात नहीं बोलते थे, और जैसे-तैसे ग्रन्थको पढ़ते नहीं थे। भक्तिग्रन्थ यदि रसाभास और सिद्धान्त विरुद्ध दोषसे रहित होता था तो उसको पढ़ते थे। वे भगवान् आचार्यकी बात सुनकर हँसकर बोले—"भगवान् आचार्य! तुम परम उदार हो। जिस किसी ग्रन्थको पढ़ने और

सुननेकी तुम्हारी इच्छा होती है। जिस किसी शास्त्रको सुननेमें भी तुम्हारी आपत्ति नहीं है। परन्तु मैं अभी तुम्हारे समान उदार नहीं हो सका हूँ। जिस किसी कविके काव्यमें नाना स्थलोंमें रसाभास दोष लक्षित होता है, और सिद्धान्त विरुद्ध अनेक बातें होती हैं, उनको सुनकर मनमें उल्लास नहीं होता। रस और रसाभासके अन्तरको जो नहीं जानते, वे भक्ति-तत्त्व-सिद्धान्तके समुद्रको कैसे पार कर सकते हैं? तुम कहते हो कि इस ग्राम्य कविके ग्रन्थमें श्रीकृष्णलीला वर्णित है। श्रीकृष्णलीला अथवा श्रीगौराङ्ग-लीला, दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही लीलाएँ विशेष रूपसे दुर्गम हैं। गौर-कृष्णके चरणोंमें जिनकी दृढ़ भक्ति नहीं है, वे लीला ग्रन्थ नहीं लिख सकते।

यह बङ्गालका कवि क्या उसी प्रकारका ग्रन्थकार था? श्रीरूप गोस्वामीने जैसे दो काव्य ग्रन्थ लिखे हैं, उस प्रकारके भक्तिरसपूर्ण ग्रन्थको पढ़नेपर मनमें अपार आनन्द होता है। भगवान् आचार्य! तुमने तो उन दोनों ग्रन्थोंका मुखबन्ध सुना है। बतलाइये, कैसा आनन्द मिलता है?"

स्वरूप गोस्वामीकी बात सुनकर भगवान् आचार्यने उनसे कहा—"गोसाईं! ग्रन्थको आप एक बार सुनें और सुनकर ग्रन्थकी भलाई-बुराई पर बिचार करें—यही मेरी प्रार्थना है।" स्वरूप गोसाईंने उस दिन और कुछ नही कहा—और ग्रन्थ सुननेमें आग्रह नही प्रकट किया। परन्तु भगवान् आचार्य छोड़नेवाले पात्र न थे। उन्होंने उस दिन तो उनको फिर कष्ट नही दिया। परन्तु दो चार दिन वे स्वरूप गोसाईंसे इस विषयमें एकान्त भावसे विशेष अनुरोध करते रहे। लाचार स्वरूप गोसाईंको ग्रन्थ सुननेकी इच्छा हुई।

तब एक दिन सब भक्तोंको लेकर वे ग्रन्थ सुननेके लिए बैठे। भगवान् आचार्यके मनमें बड़ा आनन्द था। ग्रन्थकार स्वयं अपना ग्रन्थ पढ़ने लगे। पहले नान्दी श्लोकको* पढ़ा। ग्रन्थकार भी

---

* विकच कमलनेत्रे श्रीजगन्नाथ संज्ञे
कनकरुचिरिहात्मन्यात्मतां यः प्रपन्नः।
प्रकृति जडमशेषं चेतयन्नाविरासीत्
स दिशतु तव भव्यं कृष्णचैतन्य देवः॥

अर्थ—जो प्रकृतितः जड़ समस्त विश्वको चैतन्य करनेके लिए कनककान्ति प्रकट किये हैं, जिनके कमलनयन प्रफुल्ल कमलके तुल्य है उस श्रीजगन्नाथ रूप देहमें जो आत्मारूपमें आविर्भूत हैं, वे श्रीकृष्णचैतन्यदेव तुम्हारा मङ्गल करें।

श्लोकका अन्वय—यः कनकरुचिः कनकस्य स्वर्णस्य इव रुचिः कान्तिर्यस्य स गौरः, इह अस्मिन् पुरुषोत्तम क्षेत्रे विकचे प्रफुल्ले कमले इव नेत्रे यस्य तस्मिन् श्रीजगन्नाथ संज्ञे श्रीजगन्नाथ इति संज्ञा नामधेयं यस्य आत्मनि शरीरे आत्मनां देहित्वं प्रपन्नः सन् अशेषं चतुर्दशभुवनं प्रकृतिजडं प्रकृत्या चेतयन् आविरासीत् प्रकटीवभूव, सः कृष्णचैतन्य देवः तव भव्यं कल्याणं दिशतु विदधातु।

भावार्थ—श्रीजगन्नाथ विग्रहको दारुमय प्रतिमा समझकर विलासशील और प्राकृत द्रव्य गठित जडवस्तुमात्र माननेपर अपराध होता है, क्योंकि भक्तगण प्रेमाज्जन स्फुरित भक्तिचक्षुके द्वारा साक्षात् पूर्ण सच्चिदानन्दविग्रहका दर्शन करते हैं।

'यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गा विचरन्ति' इस श्रुतिवाक्योक्त प्रमाणसे जीव स्फुलिङ्गके समान चित्कण है। मायावश होनेपर जीवमें जड़ावद्ध होनेकी योग्यता आती है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने नर शरीर धारण किया है, इस कारण उनमें जड़ाधीन क्षुद्र जीवत्व नहीं है, क्योंकि वे मायाधीश पूर्ण षडैश्वर्य भगवान् यशोदानन्दन हैं। वे मायाधीश होकर भी जो मायावश होते हैं, उनका विचित्र लीलारङ्ग मात्र है। दो स्थानोंमें श्रीजगन्नाथजीको तथा श्रीकृष्णचैतन्य

[टिप्पणीका शेषांश अगले पृष्ठपर]

एक गौरभक्त थे। यह श्लोक सुनकर सब लोग परम आनन्दित होकर भाग्यवान् ग्रन्थकारकी प्रशंसा करने लगे, क्योंकि इस श्लोकमें उन्होंने श्रीश्रीमन्महाप्रभुके पूर्णावतारको प्रमाणित कर गुणगान किया था और उनको सचल जगन्नाथ बतलाया था। परन्तु तीक्ष्णबुद्धि, भक्ति-ग्रन्थ समालोचक स्वरूप गोस्वामी चुप रहे। नान्दी श्लोक सुनकर उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने क्रुद्ध होकर ग्रन्थकारको सबके सामने कहा—

आरे मूर्खं! आपनार कैलि सर्वनाश।
दुइ त ईश्वरे तोर नाहिक विश्वास॥
पूर्णानन्द चित्स्वरूप—जगन्नाथ राय।
ताँरे कैलि—जड़े नश्वर प्राकृत काय॥
पूर्ण षडैश्वर्य चैतन्य स्वयं भगवान्।
ताँरे कैलि क्षुद्रजीव स्फुलिङ्ग समान॥

दुइ ठाञि अपराधे पाइबि दुर्गति।
'अतत्त्वज्ञ तत्त्व वर्ण' तार एइ रीति॥
आर एक करियाछ परम प्रमाद।
देहदेहि भेद ईश्वरे कैले अपराध॥
ईश्वरेर नाहि कभू देहदेहि भेद।
स्वरूप-देह 'चिदानन्द'—नाहिक विभेद॥
काँहा पूर्णानन्दैश्वर्य कृष्ण—मायेश्वर।
काँहा क्षुद्रजीव दुःखी—मायार किङ्कर॥

चै. च. अं. ५.११३-११६

स्वरूप दामोदर गोस्वामीका क्रोधपूर्वक उचित वचन सुनकर उपस्थित भक्तवृन्द विस्मित होकर उनके मुँहकी ओर देखने लगे। तब सबकी समझमें आ गया कि ग्रन्थकारके प्रति यह तिरस्कारके वाक्योंका प्रयोग सर्वथा उचित है, क्योंकि ग्रन्थका दोष अत्यन्त गुरुतर और अपरिमार्जनीय है। वे लोग एक बार स्वरूप गोसाईंके मुखकी ओर देखते हैं और दूसरी बार ग्रन्थकारके विषण्ण वदनकी ओर देखते हैं। ग्रन्थकार लज्जा, भय और विस्मयसे सिर अवनत करके बैठे हैं। उनके मुँहसे बात नहीं निकल रही है। ब्राह्मणका दुःख देखकर सबको दुःख हुआ। स्वरूप गोसाईंका मन भी द्रवित हुआ। तब उन्होंने क्रोध संवरण करके उस बङ्गदेशीय विप्रको उपदेश देते हुए कहा—

जाह, भागवत पढ़ वैष्णवेर स्थाने।
एकान्त आश्रय कर चैतन्यचरणे॥
चैतन्येर भक्तगणेर नित्य कर सङ्ग।
तबे त जानिबे सिद्धान्त-समुद्र-तरङ्ग॥
तबे त पाण्डित्य तोमार हइबे सफल।
कृष्णेर स्वरूप-लीला वर्णिबे निर्मल॥
एइ श्लोक करियाछ पाइया सन्तोष।
तोमार हृदयेर अर्थ दोँहाय लागे दोष॥
तुमि जैछे तैछे कह ना जानिया रीति।
सरस्वती सेइ शब्दे करियाछे स्तुति॥

चै. च. अं. ५.१२३-१२७

[पूर्व पृष्ठकी टिप्पणीका शेष]

महाप्रभुको प्रपञ्चके अन्तर्गत लाकर विचार करना और एकको प्राकृत देह, तथा दूसरेको प्राकृत देहमें चित्कण प्रवेश समझना, दोनों ही स्थलमें अपराध होता है।

ईश्वरके देह तथा देही ईश्वरको विभिन्न वस्तु माननेमें अपराध होता है। प्राकृत जगत्में त्रिगुणात्मिका मायामें आवद्ध जीवकी देह सत्ता होती है तथा जीवमायासे गठित जीवानुभूति होतीं है। ईश्वर और बद्ध जीवमें भेद इतना ही है कि ईश्वर कर्मफलदाता और कर्मफलाधीश है, जीव बद्धावस्थामें कर्मफलभोक्ता और कर्मफलाधीन है। ईश्वर मायावश नहीं है, बद्धजीव मायाधीन हैं। ईश्वर अपरिमेय हैं, जीव परिमेय है। बद्धजीवका नश्वर अनित्य देह मायिक है, शुद्ध जीवका अप्राकृत देह नित्य है। सभी शुद्ध जीव हैं। मायातीत ईश्वर नित्य, सविशेष विग्रह है। प्रपञ्चमें नित्य विग्रह उदय होकर कभी वह प्रापञ्चिक धर्मविशिष्ट मायिक नहीं होता। नित्य विग्रहको निर्विशेष करनेके बहाने देह-देही भेद करनेमें अपराध होता है—

भक्तिविनोद भाष्य।

पूज्यपाद कृष्णदास गोस्वामी वंगीय विप्रको उपलक्ष्य करके उपर्युक्त पयार श्लोकोंमें तीन बातोंका सारे जगत्को अति सारगर्भित उपदेश दे गये हैं। गौड़ीय वैष्णवोंके पक्षमें ये सब उपदेश अत्यन्त हितकारी हैं। कविराज गोस्वामीके इन उपदेश वाक्योंको सब गौर-भक्तोंने मानो कृपा करके कण्ठहार बना रक्खा है। उन्होंने तीन अति सारगर्भित बात कही है—(१) वैष्णवके पास श्रीमद्भागवत पाठ करना कर्त्तव्य है। (२) श्रीगौराङ्ग-चरणमें एकान्त भावसे आश्रय करना कर्त्तव्य है, अर्थात् उनके चरणोंमें एकनिष्ठा भक्ति प्रयोजनीय है। तथा (३) गौर-भक्तोंका सङ्ग नित्य करना आवश्यक है। इससे वैष्णवीय भक्ति-सिद्धान्त हृदयङ्गम होंगे। विद्याभ्यास सफल होगा। भागवत शास्त्र भक्ति-शास्त्र है। प्रकृत भक्तिमान् वैष्णवके पास यह श्रीग्रन्थ पढ़ना आवश्यक है। देवानन्द पण्डित भागवत शास्त्र पढ़ाते थे, परन्तु वे भक्तिमान् नहीं थे। श्रीवास पण्डित उनके घर जाकर भागवतोक्त कृष्णलीला सुनकर प्रेममें गद्गद होकर व्याकुल होकर रो पड़े थे। यह देखकर देवानन्दके छात्रोंने उनको वहाँसे दूर हटा दिया था, क्योंकि इससे उनके पाठमें विघ्न होता था। देवानन्द पण्डित विद्या-बुद्धिमें बृहस्पति तुल्य होनेपर भी भक्तिमान् वैष्णव नहीं थे, अतएव श्रीगौराङ्ग प्रभुके चरणोंमें पहले उनको दृढ़ाभक्ति उदय नहीं हुई। पश्चात् महाप्रभुने कृपा करके उनका अपराध दूर किया, तब उन्होंने श्रीगौराङ्ग चरणोंमें आत्म-समर्पण किया देवानन्दके अपराध-भञ्जनका पाठ आज भी विद्यमान है।

इसी कारण स्वरूप गोसाईंने कहा—

'भागवत पढ़ वैष्णवेर स्थाने'।

भक्तिशास्त्रका अध्ययन करनेके लिए भक्तिमान् वैष्णव अध्यापकको ढूँढ़ना होगा। जिस किसीके पास, विशेषत: पाण्डित्याभिमानी और विद्यागर्वित अध्यापक कभी भागतके अध्यापनके अधिकारी नहीं हो सकते। यही स्वरूप गोस्वामीका प्रथम उपदेश है, और यह अतिसार तत्त्व है।

उनका द्वितीय उपदेश था—

"एकान्त आश्रय कर चैतन्य चरणे।"

भागवत भक्तिशास्त्र है, श्रीकृष्ण इस श्रीग्रन्थके प्रतिपाद्य विषय हैं। श्रीकृष्ण लीला-रसका आस्वादन करनेके लिए श्रीकृष्ण-तत्त्वको समझना आवश्यक है। भागवतकी कथा श्रीकृष्णलीला तत्त्वसे पूर्ण है। गौर-कृष्ण अद्वय-तत्त्व हैं। जो गौर हैं, वही कृष्ण हैं। नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभु इस समय नीलाचलमें प्रकटित हैं, और अपूर्व लीला-रङ्ग कर रहे हैं भाग्यवान् जीव उनके चरणोंका आश्रय लेकर कृतार्थ हो रहा है। श्रीगौराङ्ग-चरणमें रति-मति हुए बिना, भागवतके अर्थके मर्मको समझना दु:साध्य है। लीला रहस्यका मर्मबोध दुर्घट हैं, तथा भक्तितत्त्वके सिद्धान्तोंकी यथार्थ विचार-क्षमता प्राप्त करना दूरकी बात है। इसलिए परम गौरभक्त पण्डित स्वरूप गोस्वामीने वङ्गीय विप्रको उपलक्ष्य करके जगत्के जीवोंको उपदेश दिया कि कलिके जीवके लिए सबसे पहले श्रीगौराङ्गके चरणोंके आश्रयके सिवा श्रीमद्भागवतके प्रकृत अर्थके मर्मको ग्रहण करना एक प्रकारसे दु:साध्य है। उन्होंने यह भी कहा कि, एकान्त भावसे श्रीगौराङ्गके चरणोंका आश्रय लेना पड़ेगा। स्वयं भगवान् समझकर श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्रके चरण-कमलमें एकनिष्ठ भक्तिकी आवश्यकता है। इसके बिना कलिग्रस्त जीवके लिए भक्तिमार्ग अत्यन्त दुर्गम जान पड़ेगा, और सारे भक्तिशास्त्र दुर्बोध जान पड़ेंगे।

तृतीय उपदेश देते समय स्वरूप गोसाईंने साधु-सङ्गका निर्देश करते हुए कहा—

"चैतन्येर भक्तगणेर नित्य कर सङ्ग।"

साधु-सङ्गके बिना धर्मार्जन या श्रीभगवत्प्राप्ति कुछ भी सम्भव नहीं है। गौरभक्तगण परम वैष्णव हैं, भक्ति-जगत्में उनका स्थान अत्युच्च है। उनकी सङ्गति बहुत भाग्यसे प्राप्त होती है। श्रीपाद प्रबोधानन्दने गौर-भक्तोंकी महिमा वर्णन करते हुए निम्नलिखित उत्तम श्लोक अपने ग्रन्थमें लिखा है–

तावत् ब्रह्मकथा विमुक्तिपदवी तावन्नतिक्ती भवेत्
तावच्चापि विशृंखलत्वमयते नो लोकवेदस्थितिः।
तावच्छास्त्रविदां मिथः कलकलो नाना वहिर्वर्त्मसु
श्रीचैतन्यपदाम्बुज प्रियजनो यावन्न दृग्गोचरः॥

चैतन्यचन्द्रामृतम् १६

अर्थ—जब तक श्रीगौराङ्ग चरण-कमल-मधुप विप्र भक्तगण दृष्टिगोचर नहीं होते, तब तक ब्रह्म-विचार, और मुक्तिमार्ग तिक्त नहीं लगता, तब तक लोकमर्यादा और वेद मर्यादा विशृङ्खल नहीं जान पड़ती, और तभी तक बहिरङ्ग मार्गगामी लोगोंकी, वेदान्तादि शास्त्रयोंकी पारस्परिक विवादकी संभावना नहीं रहती।

स्वरूप गोस्वामी कहते हैं कि गौर-भक्तोंका नित्य सत्सङ्ग करना पड़ेगा, इससे उनकी कृपा प्राप्त होकर श्रीगौराङ्गके चरणोंमें रति-मति होगी, भक्तिशास्त्रके सिद्धान्त सहज ही समझमें आएँगे। भक्तिगन्थके लेखक और श्रीभगवान्के लीला-वर्णन कर्त्ता भाग्यवान् ग्रन्थकारगण सामान्य मनुष्य नही थे, वे लोग श्रीभगवान्के परम श्रेष्ठ चिह्नित दास थे, साधक-श्रेष्ठ थे। स्वाध्याय और साधुसङ्गके प्रभावसे, तथा भक्तिशास्त्रावलोकनके द्वारा उनके मन पवित्र और चित्त निर्मल हो गये थे, इसी कारण वे लोग श्रीभगवान्की अपूर्व लीला वर्णन करनेमें सक्षम थे। उस वङ्गीय विप्रने साधु-सङ्ग न किया हो, ऐसी कोई बात नहीं थी। साधुसङ्ग किये बिना भक्ति-ग्रन्थ लिखनेकी वासना होती ही नहीं। परन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण-लीला विषयक नाटक लिखा था, तथा नान्दी श्लोकमें श्रीगौर महिमाका कीर्तन किया था। उस श्लोकमें सिद्धान्त विरुद्ध दो बातें लिखी थी। इतने दिन गौरभक्तके सङ्गसे वञ्चित रहनेके कारण इस प्रकारके भ्रम और प्रमादका शिकार बनना पड़ा। सर्वदर्शी विचक्षण वैष्णव पण्डित चूड़ामणि स्वरूप गोसाईने यह समझकर ही यह तीसरा उपदेश उनको दिया। उनके उपदेशका सार मर्म यह था कि गौरभक्तके सङ्गके बिना श्रीगौराङ्ग-चरणमें रति-मति नहीं होती, तथा श्रीगौराङ्ग चरणमें रति हुए बिना श्रीकृष्ण-लीला या श्रीगौराङ्ग-लीला वर्णनकी शक्ति नहीं आती। इसी कारण कविराज गोस्वामीने कहा है—

कृष्ण लीला गौर लीला जे करे वर्णन।
कृष्ण गौर पाद पद्म जार प्राणधन॥

चै. च. अं. ५.१०३

वङ्गीय विप्र सिर नीचा किये बैठे थे स्वरूप गोस्वामीका उपदेश सुनकर उनको ज्ञान हो गया। अब उनके मनमें शान्ति प्राप्त हुई है। परन्तु लोक-लज्जा बड़ी विपत्ति है। सबके सामने स्वरूप गोस्वामीने उनके रचे हुए नाटकके नान्दी श्लोककी जिस प्रकार कटु आलोचना की, उनकी जैसी भाषामें भर्त्सना की, उससे उनको ऐसी लज्जा होना स्वाभाविक है। वे अब सिर नहीं उठा रहे हैं। स्वरूप गोस्वामी तब ब्राह्मणके सम्मानकी रक्षाके लिए नान्दीश्लोककी दूसरी व्याख्या करते हुए बोले– "विप्र! तुम्हारा यह श्लोक भी श्रीभगवान्की स्तुतिसे पूर्ण है। तुमने जिस प्रकार वर्णन किया है, उसमें भी एक अच्छा अर्थ निकलता है, परम पण्डित स्वरूप गोस्वामीने तब उस मनःक्षुब्ध ब्राह्मणके चित्त-विनोदनसे लिए उनके रचे श्लोककी दूसरे

ढंगसे व्याख्या की। यथा,

जगन्नाथ हय कृष्णेर आत्मस्वरूप।
किन्तु इँह दारुब्रह्म स्थावर-स्वरूप॥
ताँहा सह आत्मता एक रूप हैञा।
कृष्ण एकतत्त्व रूप दुइ रूप हैञा॥
संसार-तारन हेतु जेइ इच्छाशक्ति।
ताहार मिलने करि एकता एछे प्राप्ति॥
सकल संसारी लोकेर करिते उद्धार।
गौर जंगमरूपे कैल अवतार॥
जगन्नाथ-दरशने खण्डये संसार।
सबदेशेर सबलोक नारे आसिवार॥
श्रीकृष्णचैतन्य गोसाञि देशे-देशे जाञा।
सब लोक निस्तारिल जंगम ब्रह्म हञा॥
सरस्वतीर अर्थ एइ कैल विवरण।
एहो भाग्य तोमार, ऐछे करिले वर्णन॥
कृष्णे गालि दिते करे नाम उच्चारण।
सेइ नाम हय तार मुक्तिर कारण॥

चै. च. अं. ५. १३९-१४६

स्वरूप गोस्वामीके उपदेश, तथा श्लोककी दूसरी व्याख्या सुनकर ब्राह्मणका मन आनन्दित हो गया। वे उपस्थित भक्तवृन्दके चरणोंमें गिरकर रोने लगे। स्वरूप गोस्वामीके उपदेशके अनुसार उन्होंने रोते-रोते दाँतमें तृण दबाकर सब गौर-भक्तोंके चरणोंमें शरण लिया। सबने उनके ऊपर कृपा की। उसके बाद सबने समयानुसार मिलकर उस भाग्यवान् विप्रका गुणगान करके श्रीमन्महाप्रभुके साथ उनकी भेंट करा दी। तभीसे गौर-भक्तोंकी कृपासे उन वङ्गीय विप्रकी विषय वासना दूर हो गयी। वे सर्वस्व त्याग करके महाप्रभुके श्रीचरणोंका आश्रय लेकर नीलाचल रहने लगे।

कविराज गोस्वामीने इस भाग्यवान् विप्रके सम्बन्धमें लिखा है—

"अज्ञ हैया श्रद्धाय पाइले प्रभुर चरण।"

चै. च. अं. ५.१५२

शास्त्रसे अनभिज्ञ रसज्ञान विहीन मनुष्यमें भी यदि श्रद्धा है तो उसपर श्रीभगवान् कृपा करेंगे। इसी कारण वैष्णव शास्त्रमें लिखा हुआ है कि, 'आद्यौ श्रद्धा'। दुःखकी बात है कि किसी ग्रन्थमें इस भाग्यवान् विप्रका नाम-धाम, परिचय कुछ नहीं मिलता। इस लीला-कथाकी फलश्रुति कविराज गोस्वामी लिखते हैं—

श्रद्धा करि एइ लीला जेइ जन शुने।
गौरलीला-भक्ति-भक्त-रसतत्त्व जाने॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

नीलाचलमें श्रीरघुनाथ दास और महाप्रभु

रघुनाथ मने कहे – कृष्ण नाहि जानि।
तोमार कृपाय काडिल आमाय, एइ आमि मानि ।।
चै. च. अं. ६.१९२

श्रीरघुनाथदासकी पूर्व-कथा

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके कृपासिद्ध भक्त थे। वे षड गोस्वामी गणमें-से एक थे। उनका संक्षिप्त परिचय पहले आ चुका है। वे जातिके कायस्थकुल-तिलक थे, सप्तग्रामके जमीदार गोवर्द्धन दासके एक मात्र पुत्र थे। गोवर्द्धनदास वार्षिक बीस लाख रुपया आमदनी जमीदारके मालिक थे, बड़े धनवान् और भक्तिमान् महापुरुष थे। उस समयके नवद्वीपके सारे ब्राह्मण पण्डित उनके वृत्तिभोगी थे। रघुनाथदासके हृदयमें बाल्यकालसे ही विषय-वैराग्यके भाव दीखने लगे थे। श्रीश्रीमन्महाप्रभु जब संन्यास ग्रहण करके शान्तिपुरमें श्रीअद्वैत भवनमें विराज रहे थे, उस समय बालक रघुनाथदासने हृदयावेगमें दौड़कर वहाँ पहुँचकर महाप्रभुके उस मुण्डित सिर और संन्यास वेषका दर्शन किया था। इससे उनके हृदयका आजन्म पोषित विषय-वैराग्य दूना बढ़ गया और वे गृहत्याग करके महाप्रभुके साथ रहनेकी अपनी मनोवासना प्रकट करने लगे। सर्वधर्म रक्षक श्रीगौराङ्ग प्रभुने उनको अनासक्त भावसे रहकर गृहस्थाश्रम करनेके लिए कहा। उनका यह उपदेश अमूल्यरत्न है। गृही वैष्णवोंको यह अमूल्य रत्न कण्ठहार बनाकर रखना चाहिये। महाप्रभुने कहा—

स्थिर हाज घरे जाहँ, न हओ बातुल।
क्रमे क्रमे पाय लोक भवसिन्धुकूल ।।
*मर्कट वैराग्य ना कर लोक देखाइया ।।
यथायोग्य विषय भुन्ज अनासक्त हैया ।।
अन्तर्निष्ठा कर, बाह्ये लोक व्यवहार।
अचिराते कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार ।।
चै. च. म. १६.२३५-२३७

रघुनाथदास महाप्रभुके इस अमूल्य उपदेशको शिरोधार्य करके घर लौटे, तथा महाप्रभुके कथनानुसार अनासक्त भावसे विषय भोग करने लगे। इससे उनके हृदयका वैराग्य सौ गुना बढ़ने लगा। महाप्रभुके उपदेशसे उन्होंने बाहर घर-गृहस्थीमें मन लगाया, परन्तु मन-ही-मन निरन्तर श्रीचैतन्य चरणका चिन्तन करने लगे। उनके सांसारिक व्यवहारसे माता-पिताके मनमें आनन्द हुआ उन्होंने समझा कि अब पुत्रके गृह-त्यागकी संभावना नहीं है। इससे वे आनन्दित हो उठे। क्योंकि रघुनाथ उनके एकलौते पुत्र थे। परम सुन्दरी नवीना पुत्रबधू, अतुल ऐश्वर्य—सारे सुखसम्भोगके एक मात्र आधिकारी रघुनाथ थे। रघुनाथके विषम वैराग्यको देखकर उनके मनमें विषम भय उत्पन्न हुआ था। महाप्रभुकी कृपासे जीवनाधार एकलौते पुत्रकी मति बदलते देखकर उनके

---

*मर्कट वैराग्य—जब हृदयमें वास्तविक वैराग्यभाव उदय नहीं होता, तथापि वैरागीका वेष ग्रहण करके वैष्णव बननेकी साध जिनको होती है, वे मर्कट वैरागी हैं।

आनन्दकी सीमा न रही। वे लोग श्रीश्रीमन्महाप्रभुके चरणोंमें नित्य कोटि-कोटि प्रणाम करने लगे, और सर्वत्र उनकी जय-जयकार मनाने लगे।

इच्छामय महाप्रभुकी इच्छाको कौन समझ सकता है? श्रीवृन्दावनसे जब वे नीलाचल लौटे तो उसी समय रघुनाथके मनमें उनके श्रीचरणके दर्शनकी लालसा अत्यन्त प्रबल हो उठी। वे उनके श्रीचरणके दर्शनके लिए चुपकेसे नीलाचलकी यात्राकी तैयारी करने लगे।

ठीक उसी समय एक दुर्घटना घटी। एक मुसलमान चौधरी सप्तग्रामके तत्कालीन शासनकर्त्ता थे। उनके प्रबल अत्याचारसे समस्त हिन्दू सन्त्रस्त थे। वे बादशाहके वेतन भोगी नौकर थे, परन्तु राजस्व वसूल करके उनको एक पैसा भी नहीं भेजते थे। राजाके राजस्वको वसूल करके वे स्वयं बादशाहके समान सब हड़प जाते थे। अतएव बादशाहने उनको दण्ड देकर सप्तग्रामकी जमीदारीके लिए नया बन्दोवस्त किया। हिरण्यदास और गोवर्द्धनदास, दो भाइयोंने मिलकर उसी समय सप्तग्रामकी जमीदारीकी मुखत्यारीमें दिल्लीके बादशाहके हाथसे कर बसूली और शासनका अधिकार प्राप्त किया। बादशाहके साथ इस प्रकारका वन्दोवस्त हुआ कि राजकोषमें बारह लाख रुपये वार्षिक राजस्वके देने पड़ेंगे। राजस्वकी वसूली हो या न हो। उस समय सप्तग्रामकी जमीदारीकी आय प्रायः बीस लाख रुपया थी। अतएव इस वन्दोवस्तमें उनको विशेष लाभ था।

अब दुर्घटनाकी बात सुनिये। उपर्युक्त मुसलमान चौधरीकी सारी आय मारी गयी। वह इस वन्दोवस्तको देखकर ईर्ष्याकी आगमें जलने लगा। उसने नाना प्रकारका षडयन्त्र करके दिल्लीके बादशाहके कानोंमें इस जमीदारीसे बीस लाख रुपयेकी अधिक आय होनेकी बात उठायी। बादशाह भी कुचक्रियोंकी कुमन्त्रणाके वश होकर पुनः पूर्व शासन कर्त्ताकी बात मानकर सेनाके साथ बजीरको भेजकर दोनों भाइयोंको गिरफ्तार करनेका हुक्म दिया। जब बादशाहकी सेना सप्तग्राममें आयी तो जान बचाकर हिरण और गोवर्द्धनदास देश छोड़कर भाग गये। उस समय वे लोग अपने इकलौते पुत्रकी बात भूल गये। बादशाहके लोगोंने रघुनाथको वन्दी करके उनके ऊपर तरह-तरहका अत्याचार करना शुरू किया। पिता और ताऊके भाग जानेके कारण रघुनाथको बहुत कुवाक्य सुनने पड़े। परन्तु श्रीगौराङ्ग-चरणाश्रित युवक रघुनाथका मन इस विपद कालमें तनिक भी विचलित न हुआ। वे दिन-रात श्रीगौराङ्गके चरणोंका चिन्तन करने लगे।

सप्तग्रामके चौधरी एक बूढ़े मुसलमान थे, रघुनाथने एक दिन उनसे बिनती करके कहा, "चौधरी साहब! मेरे बाप और ताऊ दोनों आपके भाई हैं, भाई-भाईमें झगड़ा-फसाद होता ही रहता है, फिर प्रेम भी हो जाता है, यह झगड़ा-फसाद चिरस्थायी नहीं है। आप मेरे पितातुल्य हैं। मैं जैसे गोवर्द्धनदासका पुत्र हूँ, उसी प्रकार आपके स्नेहका भिखारी, और प्रतिपाल्य हूँ। आप मेरे प्रतिपालक होकर मुझे दुःख क्यों दे रहे हैं? आप जिन्दा पीर हैं, सब शास्त्रोंको जानते हैं। आप वृद्ध हैं, मैं आपका बालक हूँ। मुझको अपना बालक समझकर आपको कृपा करना उचित है।"

इस प्रकार हाथ जोड़कर रघुनाथने जब उस वृद्ध मुसलमानसे कृपाकी प्रार्थना की, तो उसका पाषाण हृदय भी द्रवित हो उठा। रघुनाथके विषण्ण-बदनको देखकर, और उनके मुँहकी कातरोक्ति सुनकर वृद्ध अपने आँसू रोक न सके। उनकी अश्रुधारासे श्मश्रु भीग गया। वे रघुनाथका हाथ पकड़कर बोले, "रघुनाथ! आजसे तुम मेरे पुत्र हुए, चाहे जैसे होगा, वैसे मैं आज तुमको बन्धन-मुक्त करूँगा। तुम कोई चिन्ता न करो।" उस वृद्धने बादशाहके बजीरसे कहकर उसी-दिन

रघुनाथको कारामुक्तकर दिया और कहा, "रघुनाथ ! तुम अपने ताऊको मेरे पास ले आओ, मैं उनसे बातें करके जिसमें तुम्हारा मङ्गल होगा, वही करूँगा।" रघुनाथने अपने ताऊको लाकर चौधरी साहबके साथ भेंट करा दी, और फलस्वरूप सप्तग्रामकी जमीदारीके नवीन बन्दोबस्तकी सारी गड़बड़ी दूर हो गयी। बादशाहका बजीर अपनी सेनाके साथ राजधानी लौट गया।

हिरण्यदास और गोवर्द्धनदास पुनः सप्तग्रासके पूर्व खण्डके अधिकारी बने । सुचतुर और भक्तिमान् रघुनाथकी बुद्धिके बलसे उनके पिता और ताऊको पुनः सारी सम्पत्ति प्राप्त हुई।

रघुनाथदास श्रीगौराङ्ग प्रभुके एकान्त दास और एकनिष्ठ भक्त थे। भक्तवत्सल श्रीगौर-भगवान् सदासे भक्तोंके सारे दुःख छुड़ाते आ रहे हैं। उन्होंने रघुनाथके दुःखको भी छुड़ाया। रघुनाथदास तथा उनकी गोष्ठीके लोगोंने भी इसको समझा। इस घटनासे उन लोगोंका मन श्रीगौराङ्गके चरणोंमें और भी आकृष्ट हुआ। श्रीगौर-भगवान्का यह विचित्र लीलारङ्ग है।

इसके बाद एक वर्ष बीत गया। श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञासे रघुनाथदास उनके उपदेशानुसार अनासक्त भावसे संसार निर्वाहकर रहे थे। परन्तु उनका मन संसारमें रहना नहीं चाहता था। श्रीगौराङ्ग-चरण-मधुका पान करनेके लिए उनका मन-प्राण नीलाचलकी ओर चला। उन्होंने चुपचाप गृह-त्याग किया। परन्तु सप्तग्रामसे वहुत दूर जाने पर अपने पिताके भेजे हुए आदमियोंके द्वारा पकड़े जाने पर फिर घर चले आये।

वे श्रीगौराङ्ग-चरण-दर्शनकी लालसामें उन्मत्त हो गये। उनके मन प्राण नीलाचलमें रहने लगे, फिर क्या वे स्थिर रह सकते थे ? फिर एक दिन रातके समय भाग निकले। इस बार भी पकड़ाकर उन्हें घर लौटना पड़ा। इस प्रकार दो बार और हुआ। तब उनकी स्नेहमयी माताने समझा कि उसके पुत्रका दिमाग खराब हो गया है। उन्होंने अपने पतिसे अनुरोध किया कि पुत्रको घर पर बाँधकर रक्खें। गोवर्द्धनदास महाप्रभुके भक्त थे और शास्त्रज्ञ थे। वे पुत्रके मनकी सारी अवस्था जानते और समझते थे, उन्होंने कातर भावसे अपनी गृहिणीसे कहा—"इन्द्रके समान ऐश्वर्य, अप्सरा जैसी पत्नी जब इसको नहीं बाँध सके तब डोरीका बन्धन इसको कैसे रख सकेगा। प्रारब्धका कोई खण्डन नहीं कर सकता। इस पर चैतन्यकी कृपा हुई है, उनके बावले व्यक्तिको कौन रख सकता है !"

रघुनाथकी माता अपने पतिकी बात सुनकर कुछ बोल न सकी। दुःखिनी माता आकुल होकर रो पड़ी। गोवर्द्धनदासने अपनी स्त्रीको अनेक सान्त्वना की बातें कहकर प्रवोधित किया।

रघुनाथ निताईचान्दके पास

-दही चुड़ा महोत्सव

रघुनाथने मनही मन सोचा कि श्रीनिताई-चाँदकी कृपा हुए बिना उनका भव बन्धन छिन्न नहीं हो सकता। परम दयालु श्रीनिताई-चाँदकी कृपाके बिना श्रीगौराङ्ग-चरणमें स्थान पाना दुर्लभ है। ऐसा सोचकर इस बार रघुनाथदास—श्रीनित्यानन्दजीके पास चले।

अवधूत श्रीनिताईचाँद उन दिनों पानिहाटी ग्राममें भक्तगणके साथ लीलारङ्ग कर रहे थे। रघुनाथने एक दिन अचानक वहाँ जाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुका दर्शन किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु गङ्गा किनारे वृक्षमूलमें वेदीपर विराज रहे थे, मानों सूर्योदय हुआ है। उनके साथ बहुतसे कीर्तनीया थे। उनको देखकर रघुनाथ बड़े विस्मित हुए।

रघुनाथ श्रीनिताईचाँदको देखते ही कुछ दूरपर ही दण्डवत् जा गिरे। तब एक भक्तने निताईचाँदको निवेदन किया—"प्रभो ! रघुनाथ आपको दण्डवत्-प्रणाम कर रहे हैं।" श्रीनिताईचाँद रघुनाथके प्रति शुभ दृष्टिपात करके प्यारसे बोले—"चोर कहींका ! बहुत दिनोंपर मिला है। आज तुमको दण्ड दिया जायगा।" इतना कहकर परम दयालु निताई चाँदने रघुनाथको निकट बुलाया। किन्तु रघुनाथ भयपूर्वक उनके पास नहीं आना चाहते। तब उन्होंने उसका बलात् आकर्षण करके उसके मस्तकपर चरण रक्खा। इसीको कहते हैं अयाचित कृपा, अहैतुकी कृपा—केश पकड़कर कृपा करना। परम दयालु गौर-निताई इसी प्रकार कलिग्रस्त जीवपर कृपा करते हैं। रघुनाथ इसी प्रकार निताईचाँदकी कृपा प्राप्त करके प्रेमानन्दमें क्रन्दन कर रहे हैं, सब भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें उच्च हरिध्वनि करने लगे। पानिहाटीमें प्रेमानन्दका तरङ्ग उठा रघुनाथके मुँहसे और कोई बात नहीं निकली।

श्रीनित्यानन्दने कहा—"चोर कहींका ! दूर-दूर भाग रहा है, मेरे पास नहीं आता। आज दही-चिड़ाका प्रसाद सबको भरपेट खिलाना पड़ेगा–यही तुमको दण्ड दिया जा रहा है।" यह बात सुनकर रघुनाथके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

यह कृपादेश पाते ही रघुनाथने उसी समय अपने आदमियोंको गाँवमें भेजकर चिड़ा, दही, दूध, संदेश, चिनिया केला आदि सब बस्तुएं मँगाकर वहाँ रखवादी। महोत्सव सुनकर चारों ओरसे अनगिनित ब्राह्मण आदि बहुतसे लोग आने लगे। और ग्रामोंसे भी सामग्रियों मँगायी गयी। मिट्टीके सैकड़ों भाण्ड आदि मँगाये गये। गरम दूधमें चिड़ा भिजाकर, उनमेंसे आधा छानकर. उनमें दही और चिनिया केला मिलाया गया। बाकी आधेमें गाढ़ा दूध करके चाँपा केला, चीनी, घृत, कर्पूर मिलाया गया।

धोती धारण किये हुए प्रभु वेदीपर विराज रहे थे, उनके सम्मुख सात कुण्डे सामानके रक्खे गये। उनके साथ विशिष्टगण बैठे थे। वेदीके चबूतरेपर गोलाकार मण्डली बनाकर सब बैठ गये। उन विशेष जनोंमें रामदास, सुन्दरानन्द, गदाधरदास, मुरारि, कमलाकर, सदाशिव, पुरन्दर, धनञ्जय, जगदीश, परमेश्वरदास, महेश, गौरीदास, कृष्णदास उद्धारण आदि अनेक लोग थे। इस महोत्सवमें बहुतसे पण्डित भट्टाचार्य आये थे। स्वयं श्रीनित्यानन्द चन्द्रने उनका सम्मान करके ऊपर बैठाया।

और जितने अनगिणित लोग थे सबको वेदीके चबूतरेके आस-पास मण्डलीबन्ध बैठाया गया। जिनको बैठनेका स्थान न मिल सका वे गङ्गा किनारे बैठ गये। जिनको वहाँ भी स्थान न मिला, वे गङ्गाजीमें नाभी पर्यन्त जलमें खड़े हो गये।

सबको दो-दो मट्टीके कुण्डे दिये गये, एक दूध-चुड़ा, और दूसरा दही-चुड़ाके लिए। बीस-बीस आदमी तीनों जगहोंमें परोसने लगे।

यह चिड़ा महोत्सव, यह भक्तोंके सङ्ग पुलिन-भोजन लीलारङ्ग श्रीनित्यानन्द प्रभुकी अपूर्व कीर्ति है। आज तक पानिहाटी ग्राममें प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मासमें यह महोत्सव होता है। उसी महा महोत्सवका यह स्मरणोत्सव है।

इस प्रकार चिड़ा दधि-दुग्धका महोत्सव होता है। इसी समय पानिहाटीवासी महाप्रभुके श्रेष्ठ भक्त राघव पण्डित आकर उपस्थित हुए और इस महा महोत्सवको देखकर चकित हो गये। वे अपने साथ निःसखरी प्रसाद लाये थे, उसको उपस्थित भक्तोंको बाँटकर श्रीनिताईचाँदसे हाथ जोड़कर बोले—"मैंने तो तुम्हारे लिए भोग लगाया था, तुमने यहीं उत्सव कर लिया, घरका प्रसाद तो धरा ही रह गया।" तब परम दयालू भक्तवत्सल

श्रीनिताई चाँदने मधुर मुस्कानके साथ उत्तर दिया—"आज तो दिनमें यही प्रसाद पाऊँगा, रात्रिको तुम्हारे घर प्रसाद पाऊँगा। हम तो गोप जाति हैं, बहुत-से गोपगण साथमें हैं, उनके साथ पुलिन भोजनमें बड़ा आनन्द आता है।" और वही राघव पण्डितको भी बैठा लिया और दो कुण्डे उनको भी दिये।

इस प्रकार जब उपस्थित सब लोगोंके सामने मिट्टीके वर्तनमें चिड़ा दही-दूधके साथ भीजने लगा, तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने ध्यानस्थ होकर श्रीमन्महाप्रभुको इस चुड़ामहोत्सवमें आह्वान किया। अवधूत श्रीनिताई चाँदके ध्यानमें नीलाचलसे भक्तोंके भगवान् महाप्रभुको पानिहाटीमें आना पड़ा। यथा—

सकल लोकेर चिड़ासम्पूर्ण जबे हइल।
ध्याने तबे प्रभु महाप्रभुरे आनिल॥

चौ. च. अं. ६.७६

तब क्या हुआ? महाप्रभुको आये देख नित्यानन्द प्रभु उठे और उनको लेकर सबके चिड़ा देखने लगे, सबमें-से एक-एक ग्रास महाप्रभुके मुखमें दिया गया। महाप्रभु भी हँसकर और एक ग्रास उठाकर नित्यानन्द प्रभुके मुखमें देने लगे। इस प्रकार सबकी मण्डलीमें नित्यानन्द प्रभु घूमने लगे।

पानिहाटीमें महाप्रभुके इस आविर्भावको सब लोग न देख सके, यह कोई-कोई भाग्यवान् ही देख पाया।

कि करिया बेड़ाय, इहा केहो नाहि जाने।
महा प्रभुर दर्शन पाय कोन भाग्यवाने॥

चै. च. अं. ६.८१

इस प्रकार ध्यान योगमें अलक्ष्य भावमें श्रीमन्महाप्रभुको नीलाचलसे आकर्षण करके श्रीनिताईचाँद पानिहाटीमें यह चुड़ामहोत्सव कर रहे हैं।

इसके बाद क्या हुआ, उसे भक्तिपूर्वक श्रवण करिये—"तब नित्यानन्द मुस्कुराकर अपने आसनपर बैठे और अपने दाहिनी ओर चार कुण्डा उन चिड़ाका रक्खा जिसमें-से प्रभुद्वयने एक दूसरेको एक-एक ग्रास दिया था और वहाँ आसन देकर महाप्रभुको बैठाया और दोनो भाइयोंने चिड़ा आरोगना प्रारम्भ किया।"

महाप्रभुको साथ लेकर निताई चाँदका भोजन करना, दोनों ही के लिए विशिष्ट आनन्दप्रद है, विशेषतः अवधूत श्रीनिताई चाँद महाप्रभुको पाकर आज प्रेमानन्द उन्मत्त हो रहे हैं।

देखि नित्यानन्द प्रभु आनन्दित हैला।
कत कत भावावेश प्रकाश करिला॥

चै. च. अं. ६.८४

उन्होंने तब प्रेमानन्दमें उच्चस्वरसे हरिध्वनि करते हुए सबको भोजन करनेके लिए बैठनेकी आज्ञा दी, तब सबको पुलिन-भोजनकी स्मृति हो आयी।

महाप्रभुका यह अपूर्व आविर्भाव लीलारङ्ग, श्रीनिताईचाँदका यह अनन्त प्रभाव प्रदर्शन, केवल रघुनाथदासके भाग्यमें पानिहाटिमें श्रीनिताईचाँदकी कृपासे संघटित हुआ। अतएव कविराज गोस्वामीने लिखा है।

रघुनाथेर भाग्ये इहा कैल अङ्गीकार।

चै. च. अं. ६.८७

श्रीनिताईचाँदकी अपूर्व महिमा वर्णन करके कविराज गोस्वामीने लिखा है—

नित्यानन्द प्रभुर कृपा जानिबे कोन जन।
महाप्रभु आनि कराय पुलिन भोजन॥

चै. च. अं. ६.८८

तत्पश्चात् जब चिड़ा महोत्सवमें उपस्थित भक्तजन भोजनके लिए बैठे, तो क्या हुआ? सुनिये—"महोत्सवकी बात सुनकर गाँवोंमें पंसारी लोग चिड़ा, दही, सन्देश, केला आदि बेचनेके लिए लेकर आये। जितना सामान आता, सबका मूल्य देकर ले लिया जाता और उन सब लोगोंको भी प्रसाद पानेके लिए बैठा दिया जाता। जो लोग तमाशा देखने आये उनको भी चिड़ा, दही, केला भर पेट खिलाया गया।

जब श्रीनिताईचाँदकी भोजन लीला समाप्त हुई तो उन्होंने आचमन करके अपने हाथसे चार कुण्डीका अवशेष प्रसाद रघुनाथको दे दिया।

उसके बाद और तीन कुण्डिकामें जो अवशिष्ट प्रसाद था वह इसी विप्रने पहले दधि-दुग्धके साथ चिड़ा भिगोकर सब भक्तोंको दिया था। उसी ब्राह्मणने पुनः गौर-निताईका प्रसाद सब भक्तोंमें बाँटा। उन्होंने ही पुष्पकी माला लाकर श्रीनिताई चाँदके गलेमें पहना दी, और उनके दिव्य श्रीअङ्गमें चन्दन लेपन कर दिया।

तब किसी सेवकने ताम्बूल सेवा अर्पित की। अवधूत चाँद हँस-हँसकर ताम्बूल चर्वण करने लगे।

रघुनाथदास भी यह शेष प्रसाद पाकर अपने साथियोंको बाँटकर खाने लगे।

यह है पानिहाटिमें श्रीनिमाई चाँदका प्रसिद्ध चुड़ा महोत्सव, जो अब तक प्रति वर्ष यहाँ बड़े समारोहके साथ मनाया जाता है। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एइत कहिल नित्यानन्देर विहार।
'चिड़ा दधि महोत्सव' ख्याति हैल जार।।

चै. च. अं. ६.६६

तत्पश्चात् श्रीनिताई चाँद कुछ देर विश्राम करके अपने गणोंके साथ राघव पण्डितके घर जाकर कीर्तन करने लगे।

क्योंकि वहाँ पुनः रातमें महा-महोत्सव होना है, अतः राघव पण्डितके घर वह महा-संकीर्तन यज्ञ आरम्भ हुआ। उसमें भी महाप्रभुका आविर्भाव हुआ था। यथा, श्रीचैतन्य चरितामृतमें—

भक्त सब नाचाइया नित्यानन्द राय।
शेषे नृत्य करे—प्रेमे जगत भासाय।।
महाप्रभु ताँर नृत्य करेन दर्शन।
सबे नित्यानन्द देखे, ना देखे अन्य जन।।

चै. च. अं. ६.१०१,१०२

श्रीनिताई चाँदके नृत्यमें महाप्रभुकी नृत्य प्रकाश लीला दर्शन करके सब लोग कृतार्थ हो गये।

नित्यानन्द नृत्य जेन ताँहारि नर्तन।
उपमा दिवारे नाहि ए तिन भुवन।।

चै. च. अं. ६.१०३

इस नृत्यकीर्तनके बाद जब श्रीनिताई चाँदने विश्राम किया, तब राघव पण्डितने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभु! प्रसाद प्रस्तुत है। भोजनार्थ आगमन करें"—तब अवधूत निताईचाँद अपने गणोंके साथ बैठे और अपनी दाहिनी ओर महाप्रभुके लिए आसन लगाया। गौराङ्गपार्षद श्रेष्ठ भाग्यवान् राघव पण्डितके घर महाप्रभुका आविर्भाव होता था, वे उनको साक्षात् दर्शन देते थे। इस बार भी वैसा ही हुआ—

महाप्रभु आसि सेइ आसने बसिला।
देखि राघवेर मने आनन्द बाड़िला।।

चै. च. अं. ६.१०७

राघव पण्डितने देखा कि महाप्रभु स्वयं आकर भोजन विलास कर रहे हैं। यह उनके लिए आज

कोई नयी बात न थी। क्योंकि वे स्वयं पाक करके भोग लगाते थे तो प्रतिदिन महाप्रभु आकर भोजन करते थे और बीच-बीचमें उनको दर्शन भी देते थे। उस दिन निताई-गौर दोनों भाईको एकत्र पाकर भक्तवर राघव पण्डित प्रेमानन्दमें विभोर होकर परोस रहे थे और यत्नपूर्वक खिला रहे थे।

कत उपहार आने, हेन नाहि जानि।
राघवेर घरे राँधे राधा ठाकुरानी॥

चै. च. अं. ६.११४

भक्तवृन्द भी उस प्रसाद भोजनमें बैठे थे, नाना प्रकारके प्रसाद प्रस्तुत करके राघवने गौराङ्ग प्रभुको भोग दिया है—

नाना प्रकार पिठा पायस दिव्य शाल्यान्न।
अमृत निन्दये ऐछे विविध व्यञ्जन॥
राघवेर ठाकुरेर प्रसाद—अमृतेर सार।
महाप्रभु जाहा खाइते आइसे बार-बार॥

चै. च. अं. ६.१०९,११०

रघुनाथदास एक ओर खड़े होकर यह महामहोत्सव दर्शन कर रहे थे, वह प्रसाद भोजन करने नहीं बैठे। उनको बैठनेके लिए लोग अनुरोध करते हैं तो राघव पण्डित कहते हैं कि ये पीछे प्रसाद पायँगे।

इसका तात्पर्य है, जो पश्चात् प्रकटित होगा। भक्तगणने भर पेट भोजन किया। प्रेमध्वनि करते हुए सबने आचमन किया। तब राघव पण्डितने सबको माल्यचन्दन अर्पित किया, ताम्बूल दिया। सबके अन्तने उन्होंने रघुनाथको अकेले बुलाकर निताई-गौर दोनों भाइयोंका अवशेष पात्र प्रसाद देकर हँसते हुए कहा—

'चैतन्य गोसाञि' करिया छेन भोजन।
ताँर शेष पाइले, तोमार खण्डिल बन्धन॥

चै. च. अं. ६.१२२

रघुनाथकी मनकी वासना पूर्ण होगी, उनका भवबन्धन दूर हो जायगा, जिसके लिए उन्होंने श्रीनित्यानन्दके चरणोंमें आश्रय लिया था, और जिसके लिए पानिहाटीमें उनका आगमन हुआ था। गौराङ्ग पार्षदश्रेष्ठ राघव पण्डितके मुखसे उनका आभास पाकर वे प्रेमानन्दमें विभोर उनके चरणोंमें गिरकर अजस्र आँसू बहाते हुए रुदन करने लगे। पश्चात् किञ्चित् सुस्थिर होकर परम भक्तिभावसे प्रसाद ग्रहण करके प्रेमानन्दमें पुनः नृत्य करने लगे। इसी कारण वे पंगतमें प्रसाद ग्रहण करनेके लिए नहीं बैठे थे। ऐसा सौभाग्य सबको नहीं प्राप्त होता। धन्य हो रघुनाथ! तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम।

श्रीगौर भगवान् भक्तवत्सल हैं, भक्तके वशमें रहते हैं और भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं, उनका निवास ही भक्तहृदयमें और भक्तगृहमें होता है। कभी वे प्रकट रूपमें भक्तके घर भोजन-विलास आदि लीला-रङ्ग करते हैं, कभी गुप्तभावसे आविर्भाव लीलारङ्ग, भोजनादि लीलारङ्ग करते हैं। वे सर्वव्यापक हैं, सर्वत्र उनका अधिष्ठान है, सर्वत्र उनका वास है—

इहाते संशय जार, सेइ जाय नाश।

चै. च. अं. ६.१२४

रघुनाथको आशीर्वाद

राघव पण्डितके घर उस दिन रातमें महा-महोत्सव समाप्त होनेपर दूसरे दिन प्रभातमें श्रीनिताई चाँद गङ्गा स्नान करके अपने गणके साथ गङ्गाके तीर उसी बृक्षके मूलमें बैठकर स्वच्छन्द आनन्दविहार कर रहे थे। उसी समय रघुनाथदास वहाँ पहुँचे और उनकी चरण-वन्दना करके राघव पण्डितके द्वारा अपने मनोभाव निवेदन किया—"मुझ अधम, पामर, जीवाधमकी इच्छा श्रीचैतन्य-चरण प्राप्तिकी है। मैं वामन होकर चाँद

पकड़ना चाहता हूँ। मैंने घर छोड़ कर भागनेके अनेक प्रयत्न किये, किन्तु कभी सफलता नहीं मिली। मेरे माता-पिता मुझे बाँधकर रखते हैं। तुम्हारी कृपा होनेपर अधम भी श्रीचैतन्य-चरणकी प्राप्ति कर सकता है। मेरे सिरपर अपने चरण रखकर कृपा करके आशीर्वाद दो, जिससे मैं निर्विघ्न श्रीचैतन्य-चरण प्राप्त कर सकूँ।"

लखपती जमीदारके पुत्र रघुनाथ दासके मुखसे यह अपूर्व दैन्योक्ति सुनकर उपस्थित सब भक्तगण परमानन्दमें उच्च हरिध्वनि देने लगे। श्रीनिताई चाँदने हँसकर भक्तगणसे कहा—"इसको इन्द्रके समान भोग मिले हैं लेकिन श्रीचैतन्य-कृपासे इसको अच्छे नहीं लगते। सब लोग इसको आशीर्वाद करो जिससे यह श्रीचैतन्य-चरणको प्राप्त हो सके।"

परम दयालु निताई चाँदने सबसे पहले रघुनाथके लिए भक्तोंके आशीर्वादकी याचना की। इससे उन्होंने उपस्थित समस्त भक्तोंको शिक्षा दी कि, सबसे पहले भक्तोंके आशीर्वादकी आवश्यकता है, स्वयं महाप्रभुने भक्तोंके आशीर्वादकी याचना की थी। उनकी नवद्वीप लीलामें देखते हैं कि—

भक्तआशीर्वाद प्रभु शिरे करि लय।
चै. च. आ. ८.४६

उसके बाद परम दयालु निताई चाँदने रघुनाथ दासको पास बुलाकर उसके मस्तकके ऊपर अपने चरण रक्खें।

यह विशेष कृपा है, यह कृपा महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु जिस-किसीको नहीं देते, विशेष चिह्नित दास ही उनके इस अपूर्व कृपा वैभवका सम्भोग करके धन्य हुए हैं। रघुनाथके सिरपर श्रीचरण-धारण करके परम दयालु श्रीनिताई चाँदने हँसते-हँसते मधुर शब्दोंमें कहा—"तुमने जो पुलिन भोजन कराया, उसमें तुम्हारे ऊपर कृपा करके गौर भगवान् पधारे, और चिड़ा-दुग्ध आदिका भोग लगाया। रात्रिमें नृत्य आदिके बाद उनने राघव पण्डितके यहाँ भी भोजन किया। तुम्हारा उद्धार करनेके लिए ही गौर भगवान् स्वयं आये। अब तुम्हारी जितनी विघ्न-बाधा है, सब दूर हो गये। तुमको वे स्वरूप गोसाईंको समर्पण करेंगे और तुमको अन्तरङ्ग मानकर अपने चरणोंमें स्थान देंगे। अब तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ, शीघ्र ही तुमको निर्विघ्न श्रीचैतन्य-चरणकी प्राप्ति होगी।"

इस प्रकार कृपाशीर्वाद करके परम दयालु निताई चाँदने पुनः सब भक्तगणसे उनको आशीर्वाद दिलाया और रघुनाथने सबके चरणोंमें भूतलपर लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीनिताई चाँदका आदेश ग्रहण करके उपस्थित भक्तवृन्दकी आज्ञा माँगकर विदा होते समय रघुनाथ दासने राघव पण्डितके साथ एकान्तमें परामर्श करके नित्यानन्द प्रभुके भण्डारीको उनकी सेवाके निमित्त एक सौ मुद्रा और सात तोला सुवर्ण दिया।

श्रीनिताईचाँदको स्वर्ण दक्षिणा देनेका साहस रघुनाथको नहीं हुआ, अतएव उनकी सेवाके लिए उनके भाण्डारीके हाथमें देकर उनको मना कर दिया कि प्रभुको अभी नहीं कहना, वे अपने घर पहुँच जाँय तब निवेदन कर देना।"

इस प्रकार नित्यानन्द प्रभुका सम्मान करके रघुनाथने भक्तगणसे विदा ली। तब राघव पण्डित उनको अपने घर ले गये। ठाकुरके दर्शन कराके माला-चन्दन दिया और पथमें खानेके लिए अनेक प्रकारका प्रसाद दिया।

महाप्रभुके द्वारा प्रदर्शित वैष्णवीय भजन-पथमें यत्र-तत्र प्रसादकी धूम है, प्रसाद भोजन करनेका ऐसा सुन्दर वन्दोवस्त और सुव्यवस्था और कहीं नहीं है। परन्तु दुःखकी बात है कि फिर भी इस

भजन-पथमें कोई आना नहीं चाहता। प्रसादके लोभसे भी यदि कोई इस पथमें आता है तो उसका भी भाग्य जाग जाता है, क्योंकि वैष्णवोच्छिष्ट प्रसाद खानेसे ही प्रकृत वैष्णवता आती है, चित्त शुद्धि होती है।

रघुनाथने प्रसाद पाकर सिरपर धारण करके हाथ जोड़कर राघव पण्डितसे निवेदन किया—"प्रभुके साथ जितने महान्त, भृत्य और उनके आश्रित जन हैं, उन सबकी मैं चरण-अर्चा करना चाहता हूँ। सबको दस, बीस, पचास सौ मुद्रा, जो जिस योग्य हो उसी प्रकार विचारकर दे दीजिये।"

महान्त-महाजन, गोसाईं-गोविन्द आदिको विदा महाजन गणने भी किया है, अब भी यह प्रथा प्रचलित है। वैष्णवोंका सम्मान और उत्सवके अन्तमें करणीय लीलाको यहाँ प्रदर्शित किया है।

रघुनाथका पुनः गृह-त्याग और नीलाचल आगमन

इस प्रकार साधु महान्त वैष्णवोंका उपयुक्त सम्मान करके रघुनाथ सप्तग्राम अपने घर लौटे। पानिहाटिसे रघुनाथ दास अपने घर लौटकर फिर अन्तःपुरमें प्रविष्ट नहीं हुए, बाहर दुर्गामण्डपमें रहने लगे, वहीं शयन करते।

अब उनपर द्वार-रक्षकगण सदा कड़ा पहरा देते रहते हैं कि वे फिर कभी जा न सकें। उनके पिताके आदेशसे इस प्रकारके कड़े पहरेका वन्दोवस्त है। क्योंकि पहले कई बार वे चुप-चाप घर छोड़कर भाग चुके थे।

उसी समय गौड़देशसे गौड़ भक्तगण रथयात्राके उपलक्ष्यमें नीलाचल गये। रघुनाथ दास उनके साथ न जा सके, इसके कारण उनको मर्मान्तिक दुःख हुआ। परन्तु वे पराधीन थे, काराबद्ध कैदीके समान अपने घरमें सदा आबद्ध रहते थे, कहीं जानेकी उनकी क्षमता न थी। उनके मनके दुःखको कोई नहीं जान सका, उनके गृह-त्यागमें कोई सहायक न हो सका, देवी-मण्डपमें सोये-सोये एक दिन रातमें सोच रहे थे, उस समय रात चार दण्ड वाकी थी, उसी समय उनके गुरुदेव यदुनन्दन आचार्य वहाँ आकर अचानक उपस्थित हो गये।

रघुनाथ दासने अपने गुरुदेवके चरण पकड़कर रो-रोकर अपने मनके सारे दुःख निवेदन कर दिये। वे शिष्यकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिए तत्काल तैयार न थे, तथापि महाप्रभुकी इच्छासे किसी प्रकार कौशलसे रघुनाथ उनकी सहायतासे उस दिन घरसे बाहर निकले।

यदुनन्दन आचार्य श्रीअद्वैत प्रभुके मन्त्रशिष्य थे, वासुदेव दत्तके अनुगृहीत और श्रीगौराङ्ग प्रभुके परम भक्त थे। वे रघुनाथ दासके गुरु और पुरोहित दोनों ही थे। वे एक प्रसिद्ध पदकर्त्ता हो गये हैं।

घर छोड़कर रघुनाथ आहार-निद्रा-दिशा-ज्ञानशून्य होकर नीलाचलकी ओर चल पड़े। उनको केवल श्रीगौराङ्ग-चरणकी चिन्ता थी। मार्गमें चलते समय प्रकार समय कभी चना-चबेना चबा करके, कभी दुग्ध-पान करके, जो मिल गया वही खाकर प्राण धारण करते थे। इस प्रकार सारी यात्रामें केवल तीन दिन भोजन कर पाये। इस प्रकार रास्ते चलकर बारह दिनमें वे श्रीक्षेत्र जा पहुँचे।

रघुनाथका विकट वैराग्य और भक्ति-साधन जगत्‌में अतुलनीय था। उनका यह बारह दिनमें सप्तग्रामसे पहले पूर्वदिशामें चलकर फिर दक्षिण दिशामें छत्र भोग पार करके कुग्राम होकर वनके रास्ते श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें पहुँचना अत्यन्त आश्चर्य-जनक व्यापार है। वे दिन भरमें १५ कोस चलते रहे। क्या मनुष्य ऐसा कर सकता है? रघुनाथ साधारण मनुष्य नहीं थे। उनके वैराग्यकी

कोई तुलना नहीं है। श्रीगौर भगवान्‌की कृपाके आकर्षणसे वे ऐसा दुःसाध्य कार्य करनेमें समर्थ हुए थे।

नीलाचल धाममें श्रीगौराङ्ग प्रभु काशीमिश्रके घरपर स्वरूप दामोदर आदि भक्तोंसे परिवेष्टित होकर बैठे कृष्ण-कथा-रसमें मग्न थे, उसी समय रघुनाथ दासने आङ्गनमें दूरसे ही डरते-डरते महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया। वे हाथ जोड़कर खड़े-खड़े सपार्षद महाप्रभुका चरण दर्शन करने लगे और अजस्र आँसू बहाने लगे।

मुकुन्द दत्त वहाँ थे उन्होंने रघुनाथको देखते ही प्रेमानन्दमें उत्फुल्ल होकर कहा, "प्रभु ! ये हमारे रघुनाथ आ गये हैं।" भक्तवत्सल महाप्रभुने अपने चरणाश्रित दासके प्रति शुभदृष्टि पात करके हँसते हुए कहा—"आओ रघुनाथ, आओ।" यह बात सुनते ही प्रेमावेगमें दौड़कर रघुनाथ लम्बायमान् होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। महाप्रभुने उठकर उनको श्रीहस्तसे पकड़कर उठाया और प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। रघुनाथ प्रेमानन्दमें अधीर होकर जड़वत् हो गये। कुछ देरके बाद प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने स्वरूप दामोदर आदि सब भक्तोंकी चरण-वन्दना की। उन सब लोगोंने भी एक-एक करके रघुनाथको प्रेमालिङ्गन प्रदान कर सुखी किया। महाप्रभुने तब प्रकारान्तरसे रघुनाथको परम प्रेमपूर्वक मुस्कुराते हुए कहा—

—"कृष्णकृपा बलिष्ठ सबा हैते।
तोमाके काड़िल विषय-विष्टा-गर्त्त हैते॥"
चै. च. अं. ६.१९१

एकनिष्ठ गौर-भक्त रघुनाथने महाप्रभुके मुखचन्द्रकी ओर देखकर निर्भय चित्तसे कहा—

—"आमि कृष्ण नाहिं जानि।
तोमार कृपाय काड़िल आमा, एइ आमि मानि॥"
चै. च. अं. ६.१९२

निताईचाँदकी कृपासे रघुनाथने प्रकृत गौर-तत्त्वको भली-भाँति समझा था, इसी कारण उनके चरणोंमें एकनिष्ठ भक्ति प्राप्त हुई थी। इस एकनिष्ठ भक्तिके बलसे उनको इस प्रकार महाप्रभुके सामने बोलनेका साहस हुआ। इस बातका मर्म यह है कि—"मैं कृष्णको नहीं जानता, तुम्हें ही साक्षात् कृष्ण जानता मानता हूँ, तुम्हारे ही कृपासे मैं विषय-गर्त्तसे निकलनेमें समर्थ हुआ हूँ, यही मेरी धारणा है। कृष्ण-कृपा मैं नहीं जानता, मैं इसे तुम्हारी ही कृपा समझता हूँ।"

रघुनाथकी इस बातसे महाप्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वे चतुरचूड़ामणि हैं, रघुनाथकी गौराङ्गैक-निष्ठताको देखकर और अपने चरणोंमें उसकी एकनिष्ठ-भक्ति देखकर महाप्रभुने अपने मनका भाव छिपाया। रघुनाथके बाप और ताऊकी विषयनिष्ठाको लक्ष्य करके उन्होंने परिहासके बहाने उसे उपदेश दिया—"रघुनाथ ! अपने नाना नीलाम्बर चक्रवर्तीके सम्बन्धसे तुम्हारे पिता और ताऊको मैं 'आजा'* कहकर सम्मान करता हूँ। अपने नानाके सम्बन्धसे मैं उनसे परिहास भी कर सकता हूँ, इसी कारण कहता हूँ कि तुम्हारे बाप और ताऊ विषय-गर्त्तके कीट हैं। वे विषय संभोगको परम सुख मानते हैं, विषयमें जो महापीड़ा है, उसे नहीं समझ पाते। यद्यपि वे ब्राह्मण-सेवा करते हैं, और सब बातोंमें ब्राह्मणोंकी सहायता करते हैं, परन्तु वे वैष्णवसे लगनेपर भी शुद्ध वैष्णव नहीं है। विषयी स्वभावने उनको महा अन्धा बना दिया है। वे जो कुछ करते हैं, उसीसे भव-बन्धनमें पड़ते जाते हैं। रघुनाथ ! इस प्रकारके विषय-विषसे कृष्णने तुम्हारा उद्धार किया। इसमें श्रीकृष्णकी ही कृपाकी महिमा समझो।

---

* 'आजा' नानाको कहते हैं।

रघुनाथने चुपचाप महाप्रभुके वचन ध्यानपूर्वक सुने, इस बार कुछ उत्तर देनेका साहस नहीं किया। कृष्ण-कृपाका अर्थ उन्होंने अभी तक नहीं समझ पाया। गौराङ्ग-कृपा ही कृष्ण-कृपा है, इस विषयमें महाप्रभुके साथ तर्क करना उचित नहीं समझा।

स्वरूप दामोदरके रघुनाथ

महाप्रभुने भी रघुनाथको और कुछ बोलनेका मौका न देकर उनके पथश्रान्त मलिन-वदन और अनाहारसे विलष्ट शरीर देखकर दयार्द्रचित्त होकर स्वरूप दामोदरके प्रति करुण-नयनोंसे देखकर कहा—"इस रघुनाथको मैं तुमको सौंपता हूँ, पुत्र-भृत्यरूपसे इसको स्वीकार करो। हम लोगोंकी मण्डलीमें तीन रघुनाथ हैं। आजसे इसका नाम हुआ 'स्वरूपका रघुनाथ'।

इतना कहकर भक्तवत्सल महाप्रभुने रघुनाथको स्वरूप दामोदर गोसाईंके हाथोंमें हाथों-हाथ समर्पित कर दिया। स्वरूप गोस्वामीने 'जो आज्ञा प्रभु' कहकर पुनः रघुनाथको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

महाप्रभुके सारे लीलारङ्ग निगूढ़ भाव और परम रहस्यसे पूर्ण हैं। स्वरूप दामोदरके हाथमें रघुनाथको समर्पण करनेमें भी एक गूढ़ रहस्य निहित है। स्वरूप दामोदरके सिवा रघुनाथकी और गति न थी। रघुनाथ साधन करेंगे, और स्वरूप उनको व्रजके निगूढ़ भजन-साधनकी शिक्षा देंगे। रघुनाथकी दीक्षा हो गयी थी, अब शिक्षागुरुकी आवश्यकता थी। साधन पथमें शिक्षागुरु और दीक्षागुरुकी महिमा और प्रभाव तुल्य ही है। यह दिखलानेके लिए सर्व-धर्म-मर्यादा-रक्षक महाप्रभु रघुनाथ दासको उपयुक्त सद्‌गुरुके हाथमें समर्पण करके निश्चिन्त हो गये। स्वरूप दामोदरके समान शिक्षागुरु और कहाँ मिलेगा? वे पूर्वलीलाकी ललिता सखी है, श्रीराधिकाजीकी प्रधान सहचरी है। उनकी कृपाके बिना सर्वश्रेष्ठ भजन, श्रीश्रीराधागोविन्दके युगल-विलासकी हृदयमें स्फूर्ति नहीं होती। रघुनाथदासको महाप्रभु व्रजकी उन्नतोज्ज्वल मधुर परकीया रसके सर्वश्रेष्ठ साधक बनावेंगे, फिर वे इस मधुर परकीया रसके भजनके गुरु बनेंगे। यही सोचकर चतुर चूड़ामणि श्रीगौराङ्ग-सुन्दरने उनको स्वरूप दामोदरके हाथमें समर्पण किया।

भक्तवत्सल महाप्रभुके भक्तवात्सल्यकी सीमा नहीं है। रघुनाथ रास्तेकी थकावटसे दुर्बल और श्रान्त हो गये थे, दयामय प्रभुने यह देखकर गोविन्दको बुलाकर कहा—"मार्गमें इसने बहुत लंघन किये हैं। अब कुछ दिन अच्छी प्रकार खिला-पिलाकर ठीक करो।"

अहा! ऐसे परम दयालु भक्तवत्सल प्रभुको क्या कभी किसीने देखा है? रघुनाथने देखा कि उनके प्रति महाप्रभुका स्नेहाधिक्य उनके पिताकी अपेक्षा भी अधिक है। यह बात याद आते ही वे बालकके समान उच्च स्वरसे रो पड़े। दयामय महाप्रभुने अपना पद्महस्त रघुनाथके शरीरपर रखते हुए उनको शान्त करते हुए पुनः स्नेहपूर्वक कहा—"रघुनाथ! दो पहर दिन हो गया है, तुम समुद्र स्नान करने जाओ। जगन्नाथजीका दर्शन कर आओ, और यहाँ आकर प्रसाद पाओ।"

इतना कहकर वे स्वयं भी मध्याह्न कृत्य करनेके लिए उठे। रघुनाथ भी सब भक्तोंके साथ मिलकर समुद्र स्नान करके जगन्नाथका दर्शन करके महाप्रभुके मन्दिरमें गोविन्दके पास आये। महाप्रभुकी भोजन लीला उस समय समाप्त हो गयी थी। उनके आदेशसे उनका अवशिष्ट भोजन-पात्र गोविन्दने भाग्यवान् रघुनाथको दिया। रघुनाथ, परम आनन्दपूर्वक महाप्रभुका अधरामृत पाकर कृतार्थ हो गये। गोविन्दने इसी प्रकार पाँच

दिन तक रघुनाथको सुन्दर रूपमें महाप्रभुका प्रसाद दिया। रघुनाथ इस प्रकार कुछ दिन प्रसाद पाकर स्वस्थ शरीर हुए।

इसके बाद रघुनाथ भिक्षान्न भोजी हुए। विरक्त वैष्णवकी सनातन प्रथाके अनुसार वे जगन्नाथके सिंहद्वारपर बैठकर हरिनाम जप करने लगे। यात्रीगण जगन्नाथजीका दर्शन करके लौटते समय इस प्रकारके अकिञ्चन वैष्णवोंको प्रसाद खरीदकर भिक्षा दिया करते थे। वह भिक्षान्न ही रघुनाथका संवल था।

वे दिनमें बिना कुछ खाये भजन करते रहते थे। रातमें जगन्नाथजीकी पुष्पाञ्जलिका दर्शन करके सिंहद्वारपर खड़े रहते थे। जो कुछ भिक्षा मिलती लेकर अपने भजन-कुटीरपर चले जाते थे। प्रभुके श्रीमन्दिरमें पाँच दिन प्रसाद लेनेमें कुछ लज्जा बोध हुई थी, इसी कारण उन्होंने यह साधु-वैष्णवोचित भिक्षावृत्ति अवलम्बन की थी।

महाप्रभुका उपदेश

एक दिन महाप्रभुने अपने भृत्य गोविन्दसे पूछा, "क्या रघुनाथ यहाँ प्रसाद नहीं पाता ?" गोविन्दने उत्तर दिया—"रघुनाथ सिंहद्वारपर खड़े होकर भिक्षा माँगकर खाते हैं।" प्रभु यह सुनकर परम सन्तुष्ट हुए। रघुनाथको उपलक्ष्य करके उन्होंने इसी समय एक दिन सब भक्तोंको उपदेश दिया कि विरक्त वैष्णव संन्यासीका क्या कर्त्तव्य है ? उनने कहा—"रघुनाथने वैरागीधर्म आचरण करके बड़ा अच्छा किया। वैरागीका यही धर्म है कि सर्वदा नाम-संकीर्तन करे। भिक्षाके द्वारा जीवन-रक्षा करे। जो वैरागी होकर दूसरेकी अपेक्षा करता है, उसका कार्य सिद्ध नहीं होता, भगवान् उसकी उपेक्षा करते हैं। वैरागीका कर्त्तव्य है सदा-नाम-सङ्कीर्तन करना और शाक-पात, फल-मूल जो मिल जाय उसीसे पेट भर लेना। जिह्वाकी लालसासे जो इधर-उधर दौड़ता रहता है, उस शिश्नोदर परायणको श्रीकृष्ण-प्राप्ति नहीं होती।"

महाप्रभुके उपदेशोंको गौड़ीय वैष्णव कण्ठका हार बनाकर रख लें। वेद-वेदान्त सांख्य-दर्शन, पुराण, शास्त्रविधि एक ओर, और महाप्रभुकी उपदेशवाणी दूसरी ओर है। शास्त्रोपदेश परोक्ष आदेश है, यह श्रीभगवान्का प्रत्यक्ष आदेश है, अतएव इसका मूल्य और महिमा अधिक है।

रघुनाथ महाप्रभुके सामने कोई बात बोलनेका साहस नहीं करते। वे उनका दर्शन करते है और उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करते हैं। महाप्रभुने उनको स्वरूप दामोदर गोसाईंके हाथमें समर्पण कर दिया है। रघुनाथने एक दिन स्वरूप गोसाईंके सामने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"महाप्रभुसे एक बार कृपा करके पूछें कि अब मेरा कर्त्तव्य क्या है ? महाप्रभुके श्रीमुखसे उपदेश सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा हो रही है।" स्वरूप गोसाईंने महाप्रभुके चरणोंमें रघुनाथका निवेदन जा सुनाया। वे मुस्कराकर रघुनाथको पास बुलाकर बोले—तुमको उपदेशके रूपमें स्वरूपको दिया है। साध्य-साधन-तत्त्व इन्हींसे सीखो। जितना ये जानते हैं उतना मैं नहीं जानता।"

महाप्रभुकी प्रत्येक बात निगूढ़ रहस्यपूर्ण है, वे धर्ममर्यादारक्षक हैं, मर्यादाका उल्लङ्घन होते देखकर वे अपने भक्तगणको अत्यन्त सावधान कर देते हैं। रघुनाथको उन्होंने स्वरूप दामोदरके हाथमें सौंप दिया है। स्वरूप दामोदर गोस्वामी उनके शिक्षागुरु हैं। उनके पास वह साध्य-साधन तत्त्वकी शिक्षा ग्रहण करेंगे, यही उनका कर्त्तव्य है। और स्वरूप दामोदर गोस्वामी ऐसे तैसे लोग नहीं है। वे सर्वशास्त्रवेत्ता परम पण्डित तथा भजन-विज्ञ महात्मा हैं।

भक्तका सम्मान बढ़ानेमें भक्तवत्सल महाप्रभु जैसे सर्वदा तत्पर रहते हैं, वैसा और कोई देखनेमें नहीं आता। स्वरूप दामोदर गोसाईंका किस प्रकार सम्मान बढ़ाया, देखिये। उन्होंने कहा—

आमि तत नाहि जानि इहों जत जाने।
चै. च. अं. ६.२३२

क्या श्रीभगवान्‌से इनकी अपेक्षा भी उच्च सम्मान किसीको प्राप्त हुआ है? यही सम्मानकी सीमा है, और यही श्रीभगवान्‌का सर्वोत्कृष्ट दान है। यह कहकर महाप्रभुने स्वरूप दामोदर गोसाईंको वैष्णव जगत्‌के सर्वप्रधान गुरुपदपर वरण किया है, और अपने अनुगत भक्तोंको दिखा दिया है कि, शिक्षागुरु होना ऐसी वैसी बात नहीं है, दीक्षागुरु और शिक्षागुरुमें कोई भेद नहीं है।

रघुनाथको उन्होंने समझाया कि, स्वरूप दामोदर गोसाईंके पास वे जो शिक्षा प्राप्त करेंगे, वैसी शिक्षा स्वयं भगवान्‌के निकट भी वे नहीं प्राप्त कर सकते।

महाप्रभुकी यह बात सुनकर रघुनाथ दास बहुत उदास हो गये, और लज्जावश वे फिर उनके वदनकी ओर देख न सके। परन्तु भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगौराङ्ग प्रभु भक्तके मनके भावको समझकर उनकी मनोकामना पूर्ण करनेके इच्छुक हुए। रघुनाथके मनकी वासना थी कि वह महाप्रभुके श्रीमुखका कुछ उपदेश श्रवण कर कृतार्थ हो जाँय। भक्तवत्सल प्रभु भक्तकी मनोकामना पूर्ण करके हँसते हुए बोले—

"तथापि आमार आज्ञाय श्रद्धा यदि हय।
आमार एइ वाक्य तबे करिह निश्चय॥
ग्राम्यकथा ना शुनिवे, ग्राम्यवार्त्ता ना कहिबे।
भाल ना खाइबे, आर भाल ना परिबे॥
अमानी मानद कृष्णनाम सदा लबे।
व्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिबे॥
एइ त संक्षेपे आमि कैल उपदेश।
रूपरूपेर ठाँञि इहार पाबे विशेष॥
चै. च. अं. ६.२३३-२३६

महाप्रभुके ये उपदेश आश्रमातीत वैराग्यवान् रागानुगी वैष्णव साधक भक्तोंके लिए प्रयुज्य हैं। रघुनाथ उपलक्ष्य मात्र हैं। इन सब उपदेशोंका पालन बहुत दुष्कर है। कृष्ण और कृष्णभक्ति विषयक बातोंके सिवा अन्य सब बातें ग्राम्य हैं। महाप्रभुने कहा कि कृष्णकथाके अतिरिक्त अन्य कोई बात न कहे, और न सुने। यह बड़ा कठिन कार्य है। न अच्छा खावे, न अच्छा पहने, इसका मर्म अतिशय निगूढ़ है। **श्रीमूर्त्तिकी सेवा, जिसको सब विरक्त वैष्णवोंने भजनके अंगके रूपमें ग्रहण किया है, इसमें श्रीभगवान्‌को उत्तम-उत्तम वस्तु भोग लगावे, और उस प्रसादको साधु-वैष्णवोंमें बाँटे। स्वयं मधुकरी करके जीवन यात्राका निर्वाह करे। वह जिह्वाकी लोलुपताको बिल्कुल त्याग दे।** भोग-लालसाके रहते विरक्त वैष्णवका भजन-पथमें अग्रसर होना दुर्लभ है। इसी कारण धर्मरक्षक महाप्रभुने आश्रयातीत वैष्णव संन्यासियोंके लिए यह व्यवस्था की है। उन्होंने यह भी कहा कि वैष्णव संन्यासी स्वयं अमानी होकर दूसरोंको सम्मान दे, और सदा सर्वदा कृष्ण-नाम सङ्कीर्तन करे। यह बात उन्होंने अपने शिक्षाष्टकोंमें भी कही है—

"अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।"

यह भी अतिशय कठिन कार्य है। सबके अन्तमें महाप्रभु सारतत्त्व बोले—

"व्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिबे।
चै. च. अं. ६.२३५

यह मानसिक राधा-कृष्ण सेवा अतिशय गुह्य भजन है। सिद्ध देहकी बात है, सिद्धावस्थाका भजन हैं। श्रीमन्दिर प्रतिष्ठा करके उसमें श्रीविग्रहको स्थापित कर नियमपूर्वक पूजा-भोगकी व्यवस्था

सबके लिए साध्य नहीं है, श्रीविग्रहकी सेवाके लिए उत्तम-उत्तम वस्तुओंको जुटाना और उनके द्वारा नित्य भोग लगाना, तथा भोगका प्रसाद ग्रहण करना, यह सभी भगवद्भक्त करते हैं। **गृही वैष्णवके लिए यही व्यवस्था है। किन्तु विरक्त वैष्णव संन्यासीके लिए यह व्यवस्था नहीं हो सकती।** विरक्त वैष्णव संन्यासी संसारके कर्मबन्धनको छिन्न करके वैराग्य पथमें साधन करने आये थे। उनको पुनः जागतिक कार्यमें फँसना न पड़े, इसी हेतु महाप्रभुने उनको उपदेश दिया कि वे राधा-कृष्णकी मानसिक सेवा करें।

राधा-कृष्णकी मानसिक सेवा क्या वस्तु है, इसे बहुतसे लोग जानते-बूझते नहीं हैं, महाप्रभु इसका स्वयं आचरण करके अपने भक्तोंको दिखला गये हैं, और साधक भक्तवृन्दने इस कठिन पथके पथिक होकर सिद्ध देहमें इन सब श्रेष्ठ साधनोंको किया है। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी कृपाके बिना इस सर्वोत्कृष्ट साधन-पथका पथिक होकर सिद्धि प्राप्त करना असम्भव है। मानसमें राधा-कृष्ण लीला स्मरण करते-करते साधकवृन्द किस प्रकार सिद्धावस्थाको प्राप्त करते हैं, यह भक्तावतार स्वयंभगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभु स्वयं आचरण करके दिखला गये हैं। प्रसङ्गवश यहाँ उनके इस अद्भुत लीला-रङ्गका एक चित्र कृपालु पाठकवृन्दके सामने रक्खा जा रहा है। मानसमें राधाकृष्णकी सेवा करना, कितना कठिन है—इसे समझ लें। यही सर्वविध वैष्णवीय साधकोंकी सर्वश्रेष्ठ साधना है। रघुनाथ दास गोस्वामीको महाप्रभुने सर्वश्रेष्ठ साधनाकी शिक्षा दी थी, और उससे वे सिद्ध हो गये थे।

महाप्रभु नीलाचलमें चटक पर्वतको देखकर गोवर्द्धन गिरिके भ्रमसे वायुवेगसे रास्तेपर दौड़ने लगे। उनके साथी उनका सङ्ग न पकड़ सके। इनके साथ उनके मर्मी भक्त और उनके व्रजके भजनके सर्व प्रधान सहायक स्वरूप गोसाईं थे। बीच-बीचमें महाप्रभु रास्तेमें बाह्यज्ञान शून्य होकर भूतलपर पछाड़ खाकर गिरते हैं। उस समय उनके श्रीअङ्गमें अष्ट सात्त्विक भावोंका उद्गम दीख पड़ता है। तब सब भक्तगण उनके पास बैठकर सब मिलकर उनके कानोंके पास उच्च-स्वरसे कृष्ण नाम सङ्कीर्तन कर रहे हैं। इस प्रकार बहुत देर तक और अनेक बार कीर्तन करते-करते महाप्रभु अचानक 'हरिबोल' बोलते हुए उठ बैठे। भक्तवृन्द आनन्दसे हरिध्वनि करने लगे। महाप्रभु चकित-से होकर इधर-उधर ताक रहे थे, मानो वे किसी वस्तुको खोज रहे हों, मानो अपना कोई खोया धन खोज रहे हों। सामने स्वरूप दामोदरको देखते ही प्रेममें भरकर दोनों भुजाएँ उनके गलेमें डालकर रोते-रोते करुण वचन बोले—"तुम लोग गोवर्द्धनसे मुझे यहाँ क्यों ले आये ? श्रीकृष्ण-लीला प्राप्त करके भी मैं उसके दर्शन नहीं कर सका। मैं यहाँसे गोवर्द्धन गया था। वहाँ श्रीकृष्ण गायें चरा रहे थे। गोवर्द्धनपर चढ़कर उनने वेणु-वादन किया। वेणुनाद सुनकर श्रीराधा ठाकुरानी वहाँ आयीं। उनके रूपका वर्णन संभव नहीं। श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णने कन्दरामें प्रवेश किया। किसी सखीने फूल उठाना चाहा। इसी समय तुम लोग कोलाहल करके मुझे वहाँसे यहाँ पकड़ लाये। तुम लोग मुझे वृथा दुःख देनेको क्यों यहाँ ले आये ? श्रीकृष्ण-लीला प्राप्त करके भी मैं उसके दर्शन नहीं कर सका।"

चै. च. अं. १४.९९-१०५

इस प्रकार व्रजभावमें विभावित होकर महाप्रभु छटपटाते हुए वहाँ गिरकर रोने लगे, तथा पथके धूलमें लोट-पोट करने लगे। उनका यह अपूर्व प्रेमविह्वल भाव देखकर उनके भक्तगण रोते-रोते व्याकुल हो उठे।

इसको ही कहते हैं मानसमें राधा-कृष्ण सेवा। अविश्वासी अभक्त लोग इसका विश्वास न करेंगे। शिक्षित-सम्प्रदायभुक्त बुद्धिमान् लोगोंकी बुद्धिमें यह बात नहीं आयेगी। परन्तु यह परम सत्य बात है, तथा वैष्णव धर्मका यही परम रहस्यपूर्ण गुह्य

भजन-पथ है। सिद्ध-देहमें मानसमें राधा-कृष्ण सेवाका फल और क्रिया बाह्य देहमें प्रकट होती है, इसका शत-शत प्रमाण साधु-वैष्णव महात्माओंके पुण्य चरितमें देखा जाता है। वह सारी बातें विस्तारपूर्वक लिखनेपर ग्रन्थका विस्तार हो जायगा, अतएव इस लीला ग्रन्थमें उस निगूढ़ तत्त्वकी आलोचना करना संभव नहीं है।

श्रीगौराङ्ग प्रभुने रघुनाथ दासको इस प्रकार अति संक्षेपमें कुछ उपदेश प्रदान करके उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। स्वरूप दामोदर गोसाई उसी जगह थे, महाप्रभुने पुनः उनके हाथमें रघुनाथको समर्पण किया। रघुनाथ उनके पास परम आनन्दपूर्वक व्रजकी निगूढ़ भजन-साधनकी शिक्षा लेने लगे।

रघुनाथ भिक्षान्नपर जीवन धारण करते थे, और महीनेमें दो दिन अपने भिक्षा-लब्ध सामग्रीसे महाप्रभुको भिक्षा कराते थे। भक्तवत्सल महाप्रभु रघुनाथकी कुटीमें आकर परम आनन्दपूर्वक भिक्षा ग्रहण करते थे।

इस प्रकार दो वर्ष बीत गये। रघुनाथने मन ही मन विचार किया कि भिक्षासे प्राप्त विषयीके अन्न द्वारा महाप्रभुको भिक्षा कराना अतिशय गर्हित कार्य है, इसी कारण उनका मन मेरे प्रति प्रसन्न नहीं हो रहा है। महाप्रभुकी बात तो दूर रहे। उनका अपना मन इस अवैष्णवीय कार्यसे दुष्ट होता है, यह वे खूब समझते हैं। अनुरोधपर केवल महाप्रभु उनका निमन्त्रण स्वीकार करते हैं। क्योंकि वे भक्तवत्सल हैं। इन सब बातोंका विचार करके रघुनाथने महाप्रभुको निमन्त्रित करना एक दम बन्द कर दिया। स्वरूप दामोदर गोसाईंको उन्होंने अपने मनकी बात कही। वे इस बातको सुनकर मुस्कराये, परन्तु मन ही मन बहुत आनन्दित हुए।

एक दिन महाप्रभुने स्वरूप गोसाईंसे पूछा—"रघुनाथने मुझे निमन्त्रण देना क्यों बन्द कर दिया?"

तब स्वरूप गोसाईंने सारी बातें उनके चरण कमलमें निवेदन कर दी। रङ्गीले महाप्रभु वह सब बातें सुनकर हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। रघुनाथकी विचार-बुद्धि देखकर परम आनन्दित होकर उपस्थित अन्तरङ्ग भक्तवृन्दको इस सम्बन्धमें उपदेश देते हुए उनने कहा—"विषयीका अन्न खानेसे मन मलिन होता है, मलिन मनके द्वारा श्रीकृष्णका स्मरण नहीं होता। विषयीके अन्नके द्वारा जो निमन्त्रण होता है, वह राजस होता है, इससे दाता और भोक्ता दोनोंका मन मलिन होता है। उसके संकोचके कारण मैं उसका निमन्त्रण स्वीकार करता था। अच्छा हुआ उसने स्वयं ही इसको समझकर छोड़ दिया।"

रघुनाथने जो सोचा था सर्वज्ञ महाप्रभुने ठीक वही कहा, भक्तके अनुरोधसे भक्तके भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभु इन सब निमन्त्रणोंकी रक्षा करनेके लिए बाध्य होते थे, उन्होंने यह बात अपने श्रीमुखसे ही स्वीकारकी है।

गोवर्द्धन शिला और गुञ्जामाला

महाप्रभु जब नीलाचल रहे, उसी समय शङ्करनन्द सरस्वती श्रीवृन्दावनसे गोवर्द्धन शिला और गुञ्जामाला लेकर आये, उन्होंने ये दो वस्तुएँ उनको भेंट की। महाप्रभुने अत्यन्त सन्तुष्ट चित्तसे उन दोनों वस्तुओंको हृदयमें धारण कर लिया। वे जब नाम स्मरण करते थे, तब प्रेमपूर्वक गुञ्जामाला गलेमें पहनते थे, और गोवर्द्धन शिलाको कभी-कभी मस्तकपर, कभी हृदयमें, कभी नेत्रके ऊपर धारण करके प्रेमानन्दमें प्रेमाश्रुविसर्जन करते थे। कभी नासिकाके निकट गोवर्द्धन शिला लेकर आघ्राण करते थे। उनकी अश्रुधारासे वह

गोवर्द्धनशिला सदा सिञ्चित होती रहती थी। महाप्रभु उस शिलाको श्रीकृष्णका कलेवर समझकर प्रेमानन्दमें दर्शन, स्पर्शन, आघ्राण तथा आस्वादन करके पुलकित होकर आनन्दमें विभोर हो जाते थे। तीन वर्ष तक इसी प्रकार उन्होंने गोवर्द्धन शिलाका भजन पूजन किया।

एक दिन रघुनाथ महाप्रभुके श्रीचरणकमलका दर्शन करने आये। महाप्रभु उस समय उनके प्रति अतिशय प्रसन्न थे। अपने श्रीहस्तसेवित नयनोंके प्रेमाश्रुसे सिञ्चित और श्रीवक्षःस्थलमें रक्षित, प्राणसे भी प्रियतम श्रीकृष्ण कलेवर तुल्य गोवर्द्धन शिलाको अपनी कृपाके निदर्शनके रूपमें अपने प्रिय भक्त रघुनाथके हाथमें समर्पित कर दिया। वह गोवर्द्धन शिला और गुञ्जामाला रघुनाथके हाथमें देकर परम प्रेमपूर्वक गद्गद वचन बोले—

"यह शिला श्रीकृष्णका विग्रह है। तुम आग्रहपूर्वक इसकी सेवा करना। एक कुञ्जा जल, दो पत्ते तुलसीदलके बीच कोमल मञ्जरी—इस प्रकारकी आठ मञ्जरी लेकर श्रद्धा और शुद्ध भावसे इसकी सात्विक पूजा करनेसे शीघ्र ही श्रीकृष्ण-प्रेमधनकी प्राप्ति होगी।"

दुइ दिके दुइ प्रत्र मध्ये कोमल मञ्जरी।
एइ मत अष्टम मञ्जरी दिबे श्रद्धा करि॥
चै. च. अं. ६.२९१

महाप्रभु बोले कि इस गोवर्द्धन शिलाकी सात्त्विक भावसे पूजा करना। पूजा तीन प्रकारकी होती है सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सात्त्विक पूजाकी व्यवस्था प्रभुने स्वयं श्रीमुखसे रघुनाथको बतला दी। जल और तुलसी इस पूजाके उपकरण हैं। गङ्गाजल और तुलसीके द्वारा सात्त्विक पूजा करके ही श्रीअद्वैत प्रभु गोलोकसे श्रीगौर भगवान्‌को मर्त्यलोकमें लाये थे। शास्त्र कहते हैं—

"जल तुलसीर सेवाय ताँर जत सुखोदय।
षोडशोपचार-पूजाय तत सुख नय॥"
चै. च. अं. ६.२९६

तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यः भक्तवत्सलः॥
—गोतमी तन्त्रमें नारद वचन ह. भ. वि. २१.२६१

दुइ दिके दुइ पत्र मध्ये कोमल मञ्जरी।
एइ मत अष्ट मञ्जरी दिने श्रद्धा करि॥
चै. च. अं. ६.२९१

इसका यह भाव भी है—

महाप्रभुने कहा कि श्रीकृष्ण कलेवर गोवर्द्धन शिलाके दोनों चरणोंमें दो तुलसीदल देना, और उनके बीचमें कोमल मन्जरी देना। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक अष्ट मञ्जरी देकर पूजा करे। इसका मर्मार्थ समझनेकी शक्ति हमारे भीतर नहीं है। परन्तु श्रीगौराङ्ग चरण स्मरण करके, तथा उनके नित्य सिद्ध भक्तवृन्दके चरणोंका ध्यान करके इसका मर्मार्थ समझनेका प्रयास करूँगा। स्वरूप दामोदर गोसाईं कह गये हैं—

चैतन्येर भक्तगणेर नित्यकर संग।
तबे त जानिबे सिद्धान्त-समुद्र-तरंग॥
चै. च. अं. ५.१२४

महाप्रभुने कहा है कि, गोवर्द्धन शिलाके दोनों ओर दो तुलसी पत्र देना। इसका भावार्थ यह है कि राधा और कृष्णके युगलचरणमें दो तुलसी दल देना। श्रीराधा और माधवके युगलचरणमें एक कोमल तुलसी मञ्जरी देना अर्थात् श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलचरणकी पूजा करके, उसके बाद एक-एक करके प्रधान अष्ट सखीकी पूजा करे। सखियोंके साथ श्रीश्रीराधागोविन्दकी युगल भजन-प्रणाली महाप्रभुने अपने अन्तरङ्ग भक्त रघुनाथको इशारेसे

बतला दी। सद्गुरुकी कृपासे अब प्रकृत श्रीगौरतत्त्व और परतत्त्वको जिन्होंने सम्यक् रूपसे समझा है, वे श्रीश्रीराधाकृष्णके मिलितवपु श्रीगौराङ्ग सुन्दरके चरणकमलमें दो तुलसी देकर श्रीश्रीराधा-कृष्णके युगल चरण भजनानन्दमें विभोर हो जाते हैं, और उन्हींके चरणोंमें अष्ट मञ्जरी देकर अष्ट सखियोंके साथ श्रीश्रीराधामाधवका मधुर भजन करते हैं।

यही मानसिक उपासना और सात्त्विक पूजा विधि है। राजसिक पूजा षोडशोपचारमें, दशोपचारमें, पञ्चोपचारमें हो सकती है। घृत, दीप, नैवेद्य, वस्त्रालङ्कार, गन्ध, चन्दन, भोग, आरती आदि राजसिक पूजाके उपकरण हैं। तामसिक पूजा तामसिक भक्त किया करते हैं, जिनको शास्त्रोंमें भक्ताधम कहकर वर्णन किया गया है। वृन्दावन ठाकुरने लिखा हैं—

श्रद्धा करि मूर्त्ति पूजे, भक्त ना आदरे।
मूर्ख-नीच-पतितेरे दया नाहि करे॥
एक अवतार भजे, ना भजये आर।
कृष्ण रघुनाथे करे भेद-व्यवहार॥
बलराम-शिव प्रति प्रीति नाहि करें।
'भक्ताधम' शास्त्रे कहे ए सब जनारे॥

चै. भा. म. ५.१४२,१४४,१४५

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥

श्रीम. भा. ११.२.४७

अर्थ—जो श्रीहरिकी प्रीतिके निमित्त श्रद्धा सहित केवल श्रीविग्रहकी पूजा करता है, किन्तु श्रीहरिके भक्तोंके लिए या किसीके लिए कुछ नहीं करता, वह प्राकृत (साधारण श्रेणीका) भक्त कहलाता है।

एक और प्रकारकी तामसिक पूजा तामसिक तान्त्रिक भक्तगण किया करते हैं, वह भगवत्पूजाके नामपर आत्मपूजा मात्र है। पञ्चमकारके साथ पूजना, जीवहिंसा करके पूजना—यह सब तामसिक पूजाके अन्दर हैं।

महाप्रभुने सात्त्विक भावसे रघुनाथको गोवर्द्धन शिलाकी पूजा करनेके लिए कहा। प्रेमानन्दपूर्वक रघुनाथ दासने महाप्रभुके द्वारा दी हुई तथा उनकी पूजी गोवर्द्धन शिलाको मस्तकपर रख लिया और प्रेमपूर्वक सेवा करने लगे। उनके शिक्षागुरु स्वरूप गोसाईंने उनको आधे हाथ लम्बे दो वस्त्र दिये, उसके साथ एक छोटा काठका पीढा, तथा जल लानेके लिए एक कुञ्जा दिया। यही हुई रघुनाथकी ठाकुर पूजाकी सामग्री। वे परम प्रीतिपूर्वक गोवर्द्धन शिलाकी सेवा करने लगे। पूजाके समय वे देखते थे कि प्रभुकी दी हुई वह गोवर्द्धन शिला साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं, और अश्रुजलसे उनका वक्षःस्थल डूब जाता था।

इसी कारण कुछ दिन कट गये। एक दिन स्वरूप गोसाईंने रघुनाथको आज्ञा दी कि वह अपने ठाकुरको आठ कोड़ीका खाजा और संदेश भोग दे सकते हैं। प्रेमानन्दमें उन्मत्त रघुनाथने वही किया। इस आदेशका भी मर्म था। रघुनाथ महाप्रभुके आदेशसे जल-तुलसीके द्वारा अपने सर्वस्व-धनकी सात्त्विक भावसे पूजा करते थे। परन्तु उनके मनमें बीच-बीचमें वासना होती थी कि अपने प्राण-प्रियतम इष्टदेवको कुछ भोग दें। महाप्रभुकी उपदेशवाणीको वे अक्षरशः पालन करते थे। अन्तर्यामी महाप्रभुकी प्रेरणासे स्वरूप गोस्वामीके मनमें जो यह भाव उदय हुआ, यह भी उनकी भक्तवत्सलताका परिचायक था। उन्होंने रघुनाथकी मनोकामना पूर्ण की।

रघुनाथकी मानस-श्रीश्रीराधाकृष्ण सेवा चिन्तनकी वस्तु है, देखनेकी वस्तु नहीं है। उनको जब महाप्रभुने गोवर्द्धन शिला दे दी, तो उनके मनमें आया कि उन्होंने उनको गोवर्द्धनमें स्थान

दिया। गुञ्जामाला पाकर उन्होंने समझा कि महाप्रभुने कृपा करके उनको श्रीराधिकाजीके श्रीचरणोंमें समर्पण कर दिया। यह सोचकर वे बाह्यज्ञानशून्य होकर श्रीश्रीराधाकृष्णके युगल-विलास-रसमें मग्न हो गये। नीलाचल उनका वृन्दावन हो गया, श्रीगौराङ्ग चरण उनके श्रीश्रीराधागोविन्दके युगल चरण हो गये। प्रकृत तत्त्व यही है, इसे सर्वतत्त्वज्ञ स्वरूप गोसाईने रघुनाथको भली-भाँति समझा दिया था। अतएव वे काय-मन-वचनसे श्रीगौराङ्ग चरणका ध्यान करने लगे। आठ पहर दिन-रातमें उनका साढ़े सात पहर भजनमें व्यतीत होता था। आहार-निद्रा आदि वाह्य क्रियाके लिए उन्होंने केवल चार दण्ड रक्खा था। किसी-किसी दिन वह भी नहीं बचता था। वे कभी नियम भङ्ग नहीं करते थे, अतएव कविराज गोस्वामीने लिखा है—

'रघुनाथेर नियम जेन पाषाणेर रेखा।'

चै. च. अं. ६.३०३

उनके इस विकट वैराग्यकी बात याद करनेपर भी मन पवित्र हो जाता है। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

वैराग्येर कथा ताँर अद्भुत कथन।
आजन्म ना दिल जिह्वाय रसेर स्पर्शन॥
छिण्ड़ा कानि काँथा बिनु ना परे बसन।
सावधाने प्रभुर कैल आज्ञार पालन॥
प्राणरक्षा लागि जेवा करेन भक्षण।
ताहा खाञा आपनाके करे निर्वेद वचन॥

चै. च. अं. ६.३०५-३०७

रघुनाथका तीव्रतम वैराग्य

रघुनाथने अब सिंहद्वारकी भिक्षावृक्ति त्याग दी है, क्योंकि वहाँ विषयीके अन्नके सिवा अन्य कुछ नहीं मिलता। अब वह छत्रमें जाकर प्रसाद भिक्षा करके जीवन रक्षा करते हैं, अन्तर्यामी महाप्रभु सब कुछ जानते हैं। उन्हींकी प्रेरणासे रघुनाथको यह तीव्र वैराग्य हुआ है, और इस वैराग्यके फलसे उनका ऐसा अपूर्व भाव है। सर्वज्ञ महाप्रभुने एक दिन स्वरूप गोसाईंसे पूछा, "स्वरूप! रघुनाथको तो अब सिंहद्वार पर नहीं देखता। वह आजकल क्या करता है?" स्वरूप दामोदरने कहा, "रघुनाथ आजकल मध्याह्न कालमें छत्रमें जाकर प्रसाद भिक्षा करके जीवन धारणकर रहा है।" सर्वधर्म रक्षक शिक्षागुरु श्रीश्रीमन्महाप्रभुने मुस्कराकर कहा—

—"भाल कैल छाड़िल सिंहद्वारः।
सिंहद्वारे भिक्षावृत्ति वेश्यार आचार॥"

चै. च. अं. ६.२७९

कैसी भयानक बात है! अकिञ्चन वैष्णव संन्यासियोंकी भिक्षावृत्ति ही जीवन-धारणका प्रधान अवलम्बन है, और यही उनके लिए शास्त्रनिर्दिष्ट मार्ग है। महाप्रभुने इस भिक्षावृत्तिकी तुलना वेश्या वृत्तिसे की। स्वरूप दामोदर प्रभृति उपस्थित भक्तवृन्द महाप्रभुके मुखसे यह बात सुनकर चकित होकर उनके श्रीवदनकी ओर देखने लगे। अन्तर्यामी महाप्रभुके लिए उनके मनका भाव समझनेमें कुछ बाकी न रहा। तब उन्होंने स्वयं अपने श्रीमुखके वचनकी व्याख्या करके भक्तवृन्दको स्वरचित श्लोक पढ़कर समझा दिया। यथा—किमर्थम्?

अयमागच्छति, अयं दास्यति;
अनेन न दत्तं, अयमपरः समेत्ययं दास्यति।
अनेनापि न दत्तं, अन्यः समेष्यमि स दास्यति॥

अर्थात् यह आदमी आ रहा है, यह दान करेगा; इस आदमीने नहीं दिया और एक आदमी आ रहा है वह करेगा; इसने भी नहीं दिया, यह दूसरा आ रहा है वह देगा; इस प्रकार मनमें सोचकर भिक्षा करना, वेश्यावृत्तिके समान है।

भक्तगणने तब महाप्रभुके उपदेशका प्रकृत अर्थ और निगूढ़ मर्म समझा, तथा प्रेमानन्दमें आत्मविस्मृत होकर चरणोंमें गिर पड़े। भक्तवत्सल महाप्रभुने उनको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया।

वैराग्यवान् रघुनाथके कानोंमें यह बात पहुँची। वे एक बारगी मर्माहत हो उठे, उनका तीव्र वैराग्य तीव्रतरसे तीव्रतम हो गया। दमामय महाप्रभुने अपने अति प्रियतम भक्त रघुनाथके ऊपर प्रखर दृष्टि रक्खी।

कृपालु पाठक वृन्द ! रघुनाथके इस विकट वैराग्यकी परीक्षा अभी तक समाप्त नहीं हुई। श्रीगौर-भगवान्‌की परीक्षा अतिशय कठिन है। उन्होंने रघुनाथकी सब प्रकारसे विशेषरूपमें परीक्षा करके श्रीवृन्दावन-वासके लिए उपयोगी बनाया, यही उनकी आन्तरिक इच्छा थी। रघुनाथ अब छत्रमें प्रसाद पानेके लिए नहीं आते। महाप्रभु कुछ नहीं बोलते, परन्तु रघुनाथने अपने मनसे छत्रमें भिक्षा लेना बन्दकर दिया है। वे अब कैसे जीवन धारण करते हैं, यह बात भक्तिपूर्वक सुनिये।

श्रीश्रीजगन्नाथ क्षेत्रमें आनन्द बाजारमें प्रसाद बिकता है, यह सब लोग जानते हैं। दुकान करने वाले पसारी लोग प्रसादान्न यात्रियोंको बेंचते हैं। जो प्रसादान्न दो तीन दिन तक नहीं बिकता, और जो सड़कर नष्ट हो जाता है, वह सब अन्न सिंहद्वार पर तेलेङ्गा गायोंको खानेके लिए डाल देते हैं। सड़नकी गन्धसे गायें भी उसे खा नहीं सकती, वही प्रसाद रघुनाथ रातमें इकट्‌ठा करके अपने भजनकुटीमें ले जाते हैं। बहुत अधिक जलमें उस वासी अन्नको धोकर उसमें-से जिस अन्न में मध्यभाग ठीक रहता था, उसको अलग करके रखते थे। इस प्रकार अंगुलिसे दाबकर किसी प्रकार दो-एक ग्रास अन्न संग्रह करके उसमें नमकका छींटा देकर वही परम आनन्दपूर्वक भोजन करके देहकी रक्षा करते थे। इसीसे उनकी प्राण रक्षा होती थी, जगन्नाथके महाप्रसादके ऊपर उनको प्रगाढ़ विश्वास था। भिक्षावृत्ति न करनेकी प्रतिज्ञा करके उन्होंने प्राण-रक्षाके लिए यह अद्‌भुत उपाय अवलम्बन किया था। स्वरूप गोसाईंने एक-दिन रघुनाथकी कुटीर पर आकर यह अपनी आँखों देखा, और हँसकर उनके पास यह अपूर्व महाप्रसाद मांग करके कुछ खाया। वह प्रसाद पाकर रघुनाथसे हँसते हुए बोले—

—"ऐछे अमृत खाओ निति-निति।
आमा सभाय नाहिं देओ, कि तोमार प्रकृति।"
चै. च. अं. ६.३१३

रघुनाथ अत्यन्त लज्जित हुए, अपने शिक्षागुरुकी बात सुनकर सिर नीचा कर लिया। और क्या उत्तर देते ? लोग गुरुदेवको उत्तम-उत्तम वस्तु दान करते हैं, उत्तम भोजन कराते हैं, आज उनकी कुटी पर उनके गुरुदेवने वासी प्रसदान्न भोजन किया, इससे रघुनाथके मनमें दुःखकी सीमा न रही। अतएव कुछ न बोलकर सिर नीचा करके रोने लगे।

स्वरूप दामोदरने यह बात एक दिन गोविन्दसे कह दी। गोविन्दने भी मौका पाकर यह बात महाप्रभुके कानोंमें पहुँचायी। यह सुनकर भक्तवत्सल महाप्रभुके मनमें बड़ा दुःख हुआ। साथ ही आनन्द भी हुआ। रघुनाथ जो महाप्रसाद पाते थे, उसके प्रति उनको लोभ भी हुआ। वे स्वयं दूसरे दिन स्वरूपको साथ लेकर अचानक रघुनाथकी कुटी पर जा पहुँचे। रघुनाथ उस वासी अन्नको एकत्रित करके प्रसाद पानेका उद्योग कर रहे थे। उसी समय अचानक महाप्रभुको अपनी कुटीके द्वार पर देखकर प्रेमानन्दमें विह्वल होकर घबराये

हुए उनके चरणों पर गिर पड़े। महाप्रभु रघुनाथको प्रेमाङ्गिन प्रदानकर कृतार्थ करते हुए आसन पर बैठकर महाप्रसादका दर्शन कर हँसते हुए बोले—"तुम ऐसा प्रसाद अकेले खाते हो, हमको भी क्यों नहीं देते ?" इतनी बात कहकर, उसी वासी प्रसादान्नका एक ग्रास उठाकर प्रभुने मुँहमें डाल लिया। जैसे ही वह दूसरा ग्रास लेने लगे, वैसे ही स्वरूप गोसाईंने हाय-हाय करके प्रभुके श्रीहस्तसे बलपूर्वक उसे छीनकर रोते-रोते अतिशय दुःखित अन्तःकरणसे बोले, "हे प्रभु! यह तुम्हारे योग्य नहीं है।" स्वरूपकी ओर प्रभुने एक बार करुण दृष्टिसे देखा, और प्रेम-गद्‌गद स्वरमें बोले—"यह प्रति दिन यह प्रसाद खाता है, ऐसा सुन्दर स्वाद और किसी प्रसादमें नहीं है।"

रघुनाथ कुटीके एक कोनेमें हाथ जोड़कर जड़वत् खड़े थे, अपने क्षीण शरीर पर सैकड़ों गाँठका वस्त्र खण्ड लपेटे थे और अश्रुप्रवाहमें उनका वक्षःस्थल डूब रहा था। महाप्रभुका यह प्रसाद-भोजन-लीलारङ्ग देखकर वे मनमें दुःखित और लज्जित तथा अनुतप्त होकर अत्यन्त कातर भावमें जड़वत् निश्चेष्ट खड़े थे। वे सोच रहे थे कि "आज कैसा अनर्थ हो गया! सर्वेश्वर स्वयं भगवान् महाप्रभुको मैंने क्या भोग दिया? कितने लोग कितनी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ उनको भोग लगाते हैं, आज मेरी कुटीमें इन्होंने श्रीहस्तसे क्या खाया? मेरा यह परम सौभाग्य है जो आज मेरे यहाँ कृपा करके पदार्पण किये हैं, परन्तु इन्होंने यह क्या किया?" इस प्रकार मनके दुःखसे तथा मार्मिक पीडासे रघुनाथ नितान्त कातर होकर खड़े-खड़े रो रहे हैं। भक्तवत्सल महाप्रभु उनकी ओर करुणनयनसे देखकर मृदु मधुर मुस्करा रहे हैं।

भक्तके भगवान् भक्तके लिए क्या नहीं करते? और क्या नहीं कर सकते हैं? रघुनाथके साथ श्रीगौराङ्ग भगवानका यह लीलारङ्ग इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है। महाप्रभुके इस लीलारङ्गका मर्म समझना होगा। इस अपूर्व लीलारङ्गके द्वारा उन्होंने अपने भक्तवृन्दको महाप्रसादका माहात्म्य समझाया, तथा उसके साथ-साथ भक्तवात्सल्यकी पराकाष्टा दिखलायी। रघुनाथके वैराग्यकी सीमा दिखला दी है। इस कार्यसे रघुनाथका गौराङ्ग-प्रेम लाखों गुना बढ़ गया, भक्तवृन्दके मनमें महाप्रसादका माहात्म्य सुदृढ़ रूपसे अङ्कित हो गया, और वे लोग महाप्रभुके भक्तवात्सल्यका पूर्ण परिचय प्राप्तकर उनका जय गान करने लगे। इससे उनके मनमें भी गौराङ्ग प्रीति सौगुना बढ़ गयी। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

एक लीलाय करे प्रभु कार्य पाँच सात।

चै. च. अं. २.१६७

यहाँ भी वही हुआ। महाजन कह गये हैं कि श्रीगौराङ्ग-लीलासमुद्र-वारि-की एक-एक धारासे सैकड़ों धाराएँ प्रवाहित होकर जगत्‌को प्लावित करती हैं। यह ध्रुव सत्य है, इस कथाका अक्षर-अक्षर सत्य है।

इसी रघुनाथको महाप्रभुने श्रीवृन्दावनधामके योग्य बनाकर श्रीवृन्दावनमें भेजा था। श्रीश्रीराधाकुण्डमें वे निर्जन भजन करते थे। उनके अनन्त गुणोंका वर्णन करनेकी शक्ति जीवाधम ग्रन्थकारमें नही है। पूज्यपाद कविकर्णपूर गोस्वामीने अपने ग्रन्थमें रघुनाथदास गोस्वामीके सम्बन्धमें लिखा है—

आचार्यो यदुनन्दनः सुमधुरः श्रीवासुदेवप्रिय—
तच्छिष्यो रघुनाथ इत्यधिगुणः प्राणाधिको माद्दशा न्।
श्रीचैतन्यकृपातिरेक सततं स्निग्ध स्वरूपप्रियो
वैराग्यैकनिधिर्न कस्य विदितो नीलाचले तिष्ठताद्॥

चै. च. ना. १०.३

अर्थात् वासुदेव दत्तके परम प्रियतम, परम प्रेमवान् रघुनन्दन आचार्यके प्रियतम शिष्य, विविध गुणके गुणमणि रघुनाथदास हमारे प्राणाधिक हैं, नीलाचल स्थित जनगणमें ऐसा कौन है जो श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके कृपातिशयकी प्राप्तिसे परम स्निग्ध, तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामीके परम-प्रिय पात्र, एवं वैराग्यके समुद्र रघुनाथको नहीं जानता ?

रघुनाथ दासको महाप्रभुने अपने विशेष कृपापात्र छः गोस्वामियोंमें एक गोस्वामी बनाकर जगत्को शिक्षा दी कि धर्म जगत्में जाति-कुलका कोई विचार नहीं है, जो कृष्ण-तत्त्ववेत्ता वही है गुरु है। हरिभक्ति परायण चाण्डाल भी द्विजकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। रघुनाथको महाप्रभुने ब्राह्मणकी अपेक्षा भी उच्च पद प्रदान किया। उन्होंने काशीमें रहते समय श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा दी थी—

किवा न्यासी किवा विप्र शूद्र केने नय।
जेइ कृष्ण तत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥

चौ. च. म. ८.१००

महाप्रभुने अपनी इस महावाणीको सार्थक किया रघुनाथके द्वारा। रघुनाथ शूद्र होकर भी वर्णश्रेष्ठ विप्रसे भी श्रेष्ठ हो गये, विप्रके भी गुरु हो गये।

रघुनाथदास गोस्वामी रचित 'श्रीगौराङ्ग स्तव कल्पतरुः' स्तोत्र गौर-भक्तवृन्दके नित्य पाठ और आस्वादनकी वस्तु है। वे नीलाचलमें रहकर श्रीगौराङ्ग-लीला अपनी आँखों देखकर द्वादश श्लोक पूर्ण यह 'गौराङ्गस्तव कल्पतरुः' प्रणयन कर गये हैं। उसमें-से यहाँ यह श्लोक उद्धृत किया जाता है।

महासम्पद्दारादपि पतितमुद्धृत्य कृपया
स्वरूपे यः स्वीये कुजनमपि मां न्यस्य मुदितः।
उरोगुञ्जाहारं प्रियमपि च गोवर्द्धनशिलां
ददौ मे गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥

इसी रघुनाथदास गोस्वामीके मुखसे श्रीगौराङ्ग प्रभुकी यह अपूर्व नीलाचल लीला सुनकर पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीने स्वरचित श्रीचैतन्य-चरितामृत श्रीग्रन्थमें उसका वर्णन किया है, और उस श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थसे महाप्रभु और रघुनाथदास प्रसङ्ग इस अध्यायमें विस्तृत रूपसे वर्णित हुआ है।

"अनन्त गुण रघुनाथेर के करिये लेखा ?

चौ. च. अं. ६.३०३

तथापि जितनी शक्ति महाप्रभुने कृपा करके दी है, उसी शक्तिके बलसे इस सिद्ध महाजन महापुरुषका कुछ गुणगान करके आत्मशुद्धि कर रहा हूँ। रघुनाथदास महाप्रभुके बड़े प्रिय पात्र थे, वे बड़े प्रेमसे उनको पुकारते थे–'स्वरूपके रघुनाथ !' वही—

स्वरूपेर रघुनाथ दया कर मोरे।
(जेन) जन्मे-जन्मे तब गुण गाहि प्राण भरे॥
दुरमति दुरजन दास हरिदासे।
उद्धारह कृपानिधि ! धरि तार केशे॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

नीलाचलमें जगदानन्द और महाप्रभु

जगदानन्देर सौभाग्येर के करिबे सीमा ।
जगदानन्देर सौभाग्येर तेहइ उपमा ।।
चै. च. अं. १२.१५२

पण्डित जगदानन्द

पण्डित जगदानन्द महाप्रभुके अतिशय ही प्रेमपात्र थे। जब महाप्रभु संन्यास ग्रहण करके नवद्वीपको अन्धकारमय करके नीलाचलमें आये तो जगदानन्द भी उनके साथ-साथ आ गये। वे नवद्वीपवासी थे, श्रीगौराङ्ग प्रभुके एक पड़ौसीके पुत्र और उनके बाल-सखा थे। वे महाप्रभुके अभिमानी भक्त थे। वैष्णव ग्रन्थोंमें इसी कारण उनको सत्यभामाका अवतार कहा गया है। श्रीगौराङ्ग-सेवा ही उनका प्रधान कार्य था। यही उनका भजन-साधन था। मधुर भावमें वे महाप्रभुका भजन करते थे, उनका भाव ठीक श्रीमती अभिमानिनी सत्यभामाजीके समान था। प्राणपति श्रीगौराङ्ग सुन्दरने संन्यास ग्रहण कर लिया था, इस कारण उनके प्रति उनके मनमें बड़ा मान था। महाप्रभु भी अपने इस मानी भक्तकी इस प्रकारकी परम प्रीति-सेवा बहुत पसन्द करते थे। वे संन्यासी हो गये थे, इससे जगदानन्दके मनमें अतिशय दुःख था। इस विषयको लेकर बीच-बीचमें महाप्रभुके साथ उनका रसमय हास-परिहास होता रहता था। इस हास-परिहासमें जगदानन्द जीत जाते थे और महाप्रभु हारते थे। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

पण्डित जगदानन्द प्रभुर प्राणरूप ।
लोके ख्याति जेहो—सत्यभामार स्वरूप ।।
प्रीते करिते चाहे प्रभुर लालन-पालन ।
वैराग्य-लोक-भये प्रभु ना माने कथन ।।
दुइ जने खटमटि लागाय कोन्दल ।
चै. च. आ. १०.१९.२१

जगदानन्द महाप्रभुके एकान्त मर्मी भक्त थे। उनके आदेशसे जगदानन्द नीलाचलसे बीच-बीचमें नवद्वीप जाकर शचीमाता, विष्णुप्रियादेवी और नदियाके भक्तवृन्दका समाचार लाकर उनको सुनाते थे। यह सांसारिक गुप्त संवाद बहनका भार था पण्डित जगदानन्दके ऊपर। महाजनकृत प्राचीन पदमें पण्डित जगदानन्दकी नवद्वीप-आगमनकी कहानी पढ़ते समय आँखोंसे अश्रु प्रवाह रोके नहीं रुकता। श्रीगौराङ्ग लीलारस लोलुप कृपालु पाठकवृन्दके आस्वादनके लिए इस सम्बन्धके दो पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

(१) धानश्री

नीलाचल हैते, शचीरे देखिते, आइसे जगदानन्द ।
रहि कत दूरे, देखे नदियारे, गोकुल पुरेर छन्द ।।
भावये पण्डित राय ।
पाइ कि ना पाइ, शचीरे देखिते, एइ अनुमाने जाय ।
लता तरु जत, देखि शम-शत, अकाले खसिछे पाता ।

रविर किरण, ना हय फुटन, मेघगण देखे राता ।।
शाखे बसि पाखी, मूंदि दुटि आँखि, फल जल तेयागिया ।
काँदये फुँकरि, डुकरि-डुकरि, गोराचाँद नाम लैया ।।
धेनु यूथे-यूथे, दाँड़ाइया पथे, कारु सुखे नाहि रा ।
माधवीदासेर, ठाकुर पण्डित, पड़िल आछाड़ि गा ।।

(२)

क्षणेके रहिया, चलिल उठिया, पण्डित जगदानन्द ।
नदिया नगरे, देखे घरे-घरे, काहार नाहिक स्पन्द ।।
ना मेले पसार, ना करे आहार, कारो मुखे नाहि हासि ।
नगरे नागरी, काँदये झुमरि, थाकये विरले बसि ।।
देखिया नगर, ठाकुरेर घर, प्रवेश करिल जाइ ।
आधमरा हेन, पड़ि आछे जेन, अचेतने शचीमाइ ।।
प्रभुर रमणी, सेइ अनाथिनी, प्रभुरे हइये हारा ।
पड़िया आछेन, मलिन वसने, मुदित नयने धारा ।।
विश्वासी प्रधान, किङ्कर ईशान, नयने शोकाश्रु झरे ।
तबू रक्षा करे, शाशुड़ी बधूरे, सर्वदा शुश्रुषा करे ।।
दास दासी सब, आछये नीरव, देखिया पथिक जन ।
सुधाइछे तारे, कह मो सबारे, कोथा हइते आगमन ।।
पण्डित कहेन, मोर आगमन, नीलाचल पुर हैते ।
गौराङ्ग सुन्दरे, पाठाइल मोरे, तोमा सबारे देखिते ।।
शुनिया वचन, सजल नयन, शचीरे कहल गिया ।
आर एक जन, चलिल तखन, श्रीवास मन्दिरे धाञा ।।
शुनिया उल्लास, मालिनी श्रीवास, जत नवद्वीपवासी ।
मरा हेन छिल, अमनि धाइल, पराण पाइल आसि ।।
मालिनी आसिया, शची विष्णुप्रिया, उठाइल त्वरा करि ।
बले चाहि देख, पाठाइला लोक, तत्त्व लैते गौरहरि ।।
शुनि शचीमाइ, सचकित चाइ, देखिलेन पण्डितेरे ।
कहे तार ठाँइ, आमार निमाइ, आसियाछे कत दूरे ।।
देखि प्रेम सीमा, स्नेहेर महिमा, पण्डित काँदिया कय ।
सेइ गौरमणि, युगे-युगे जानि, तुया प्रेमे वश हय ।।
गौराङ्ग चरित, हेन नीतरीत, सवाकारे शुनाइया ।
पण्डित रहिला, नदिया नगरे, सवाकारे सुख दिया ।।
ए चन्द्रशेखर, पशुर सोसर, विषय विषेते प्रीति ।
गौरांग चरित, परम अमृत, ताहाते ना लय चित ।।

यह मधुर पद महाप्रभुके मौसा चन्द्रशेखर आचार्य द्वारा रचित जान पड़ता है। महाप्रभुके संन्यासके बाद वे नवद्वीपमें ही थे। महाप्रभुके विरह-में वे छटपटाते रहते थे। पण्डित जगदानन्दको देखकर, और उनसे प्रभुकी नीलाचल कथा सुनकर उनके गौर-विरह-दग्ध मृत प्राणमें मानो संजीवनी सुधावृष्टि हुई। उन्होंने अश्रुजलके द्वारा इस पद-रत्नकी रचना की थी।

जगदानन्द पण्डित महाप्रभुकी आज्ञा लेकर नवद्वीप आये थे। उन्होंने श्रीजगन्नाथजीका प्रसादी एक बहुमूल्य वस्त्र जगदानन्दके हाथ माताके लिए भेजा था और उसके साथ कुछ प्रसाद भी दिया था। वह वस्त्र संन्यासी महाराजको कैसे मिला? वे तो संन्यासी थे, वस्त्र कहाँ पाया? महाराज गजपति प्रताप रुद्र प्रत्येक वर्ष रथयात्रा और जन्माष्टमीके उत्सवके उपलक्ष्यमें श्रीमन्महाप्रभुको एक बहुमूल्य रेशमी वस्त्र प्रदान करते थे। महाप्रभु जब श्रीश्रीजगन्नाथजीके रथके सामने प्रेमावेशमें बाह्यज्ञानशून्य होकर अपूर्व प्रेम-नृत्य करते थे, उसी समय जगन्नाथजीके सेवक राजाके आदेशसे उस बहुमूल्य रेशमी वस्त्रको उनके सिरपर बाँध देते थे। बाह्यज्ञानशून्य महाप्रभु जब प्रेमावेगमें नृत्य करते-करते भूतलपर पछाड़ खाकर गिर पड़ते थे, तो वह बहुमूल्य वस्त्र उनके सिरसे राजपथमें धूलमें गिर पड़ता था। उनके विश्वासी भक्त गोविन्द प्रभुके पास ही रहते थे। राजाकी इच्छासे तथा पार्षद भक्तगणके इशारेसे वे सारे वस्त्र गोविन्द अति यत्नपूर्वक संग्रह करके छिपा रखते थे, जब कोई नवद्वीप जाता तो महाप्रभुकी सम्मतिसे वह वस्त्र उनके घर भेजते थे।

महाप्रभु जानते थे कि उनकी वृद्धा माता उस बहुमूल्य वस्त्रको नहीं पहनेंगी। तब किसके लिए वह बहुमूल्य वस्त्र नवद्वीप भेजते थे? इसका मर्म कृपालु पाठकवृन्द समझ लें। महाप्रभु क्या अपनी चरणोंकी दासी, चिर दुःखिनी श्रीविष्णुप्रिया देवीको भूल सकते थे? कदापि नहीं। मुखसे नाम लें, हृदयमें वे उनके लिए रोते थे। इसी कारण महाप्रभुकी इच्छासे ये उत्तम-उत्तम रेशमी वस्त्र प्रतिवर्ष नवद्वीप भक्तोंके हाथ भेजे जाते थे।

महाप्रभुका कपट-संन्यास वर्णन

महाप्रभुका संन्यास कपट संन्यास था, यह महाजनगण अति स्पष्ट रूपमें लिपिबद्ध कर गये हैं। ठाकुर नरहरिने अपने गौराङ्गाष्टकके प्रथम श्लोकमें प्रभुके संन्यास वेषको कपट संन्यास वेषके नामसे अभिहित किया है। उनके शिष्य ठाकुर लोचन दासने श्रीचैतन्य-मङ्गल ग्रन्थमें प्रभुके कपट संन्यासी भावको साधक शिरोमणि सार्वभौम भट्टाचार्यकी उक्तिसे जिस प्रकार परिस्फुट किया है, महाप्रभुके मधुर भजन निष्ठ भाग्यवान् भक्तवृन्दके मनमें यह मधुर-भाव बड़ा अच्छा लगता है। वह रसमयी कथा यहाँ बिना कहे मैं नहीं रह सकता।

नदियाके अवतार श्रीगौराङ्ग प्रभुने जब संन्यास ग्रहण किया और पहले-पहल नीलाचलपर उदय हुए, तब उनको देखकर सार्वभौम भट्टाचार्यके मनमें अनेक भाव उदय हुए थे। उसमें एक भाव यह भी था कि—"यह नवीन संन्यासी इतना रोता क्यों है? 'राधा-राधा' कहकर इतना अन्यमनस्क क्यों होता है?" उनके मनमें धारणा हुई थी कि—

घर मने पड़े तेज्ञ राधा बलि काँदे।
विपाके पड़िला न्यासी संन्यासीर फाँदे॥

चै. म.

सार्वभौम भट्टाचार्य सर्वशास्त्रोंमें निष्णात थे, अतिशय विचक्षण सनातनी पण्डित थे। उनके मनमें जो भाव उठा, उसका तत्काल ही समाधान कर लिया। उस समय महाप्रभु वहाँ उपस्थित न

थे। सार्वभौम भट्टाचार्य उस समय अपने छात्रोंको पढ़ाते थे, ओर मन-ही-मन इस विषयपर विचार करते थे, तथा अपने मनोभावको छिपा न सकनेके कारण उन्होंने इसे अपने शिष्योंके सामने व्यक्त कर दिया था। उसी समय महाप्रभु अचानक वहाँ जाकर उपस्थित हो गये थे। उनको देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य चकित हो गये थे। महाप्रभुके साथ उनके दो-एक अन्तरङ्ग भक्त भी थे।

महाप्रभु आसनपर बैठकर अत्यन्त सम्मानपूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्यसे बोले—"भट्टाचार्य महाशय' आप मुझको जो वेदान्त पढ़ाना चाहते हैं, वह बहुत अच्छी बात है। मैंने इस तरुण अवस्थामें संन्यास ग्रहण करके अच्छा काम नहीं किया—

"तरुण वयस नहे संन्यासेर धर्म।"

मेरे लिए जो आप अच्छा समझें, उसीकी व्यवस्था कर दें, आपने जो सोचा है, वह पूर्णतः सत्य है।

घर मने पड़े तेञि कान्दि राधा बलि।
कीर्त्तनेर माझें तेञ करिये विकलि॥

चै. म.

महाप्रभुके श्रीमुखसे सार्वभौम भट्टाचार्य अपने मनके भाव इस प्रकार स्पष्ट शब्दोंमें सुनकर कुछ देर तक चुप ही रहे। वे मन ही मन अत्यन्त संकोच करके सोचने लगे कि मेरे मनकी बात इस नवीन संन्यासीने कैसे जान ली? इनकी बात स्वभाविक है या व्यंग्य? इतना सोचकर वे मुँहसे कुछ बोल न सके। महाप्रभु भी उस दिन अधिक और कुछ न बोल सके। दोनोंके मनके भाव मन हीमें रह गये।

महाप्रभुकी यह लीला उनकी सर्वोत्तम नर-लीलाका पूर्ण परिचायक है। अपने कपट संन्यासको उन्होंने छिपाया नहीं। महाप्रभुने अपने इस गुप्त भावको सिद्ध महाजन कवि ठाकुर लोचनदासके मनमें स्वयं उदय कर दिया हैं, वे सूत्र रूपमें अपने ग्रन्थमें इसको लिपिबद्ध कर गये हैं।

अब साधारण भक्त समाजमें अनधिकारियोंके बीच महाप्रभुका कपट संन्यास भाव गृहीत नहीं हो सकता। इसका कारण वे बतलाते हैं कि शिक्षागुरु श्रीगौर भगवान्‌ने कपटाचरण किया था, यह बात शास्त्रयुक्ति विरुद्ध और धर्मनीति विरुद्ध है। यह बात सत्य है, परन्तु स्वयं भगवान् सर्वविधिभाव सन्निविष्ट हैं। वे भावग्राही हैं, चौर्यभाव, लम्पट भाव, कपटता भावका उनके प्रति आरोप किया है सिद्ध महाजनगणने। श्रीरूप गोस्वामिपादने अपने चौराष्टकमें लिखा है—'चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि।' ठाकुर नरहरि सरकारने लिखा है—'लम्पट गुरु' इत्यादि। इस भावमें भी भावग्राही श्रीगौर भगवान्‌का भजन सिद्ध होता है, परन्तु इस भावके अधिकारी बिरले होते हैं। परन्तु इस कारण इस भावकी निन्दा करना महापाप है।

पूर्वकालके सिद्धमहाजनगण जो लिख गये हैं, उसको न माननेके साहसको हम दुःसाहस ही कहेंगे। महाप्रभुके कपट संन्यासके प्रमाण कुछ नीचे उद्धृत हैं—

(१)

प्रभु बले "शुन सार्वभौम महाशय।
संन्यासी आमारे नाहि जानिह निश्चय॥

चै. भा. अं. ३-११

(२)

सेह त कपट न्यासी, तार लीला भालबासि,
मधुमाखा कथा शुनि तार।
जे भाव व्रजेते तबे, पुनः सेई भाव एबे,
बूझे ओ ना बूझि आर बार॥

पण्डित जगदानन्द।

(३)

वमन्तं माधुर्येरमृतनिधि कोटिरिव तनु—
च्छटाभिस्तं वन्दे हरिमहह संन्यास कपटम्।

प्रबोधानन्द सरस्वती (चै. चं. १२)

(४)

"आश्चर्य सखि !

पश्य लम्पटगुरो संन्यासीवेषं क्षितौ ।"

ठाकुर नरहरि ।

(५)

मातृ सेवा छाड़ि आमि करियाछि संन्यास ।
धर्म नहे, कैल आमि निज धर्म नाश ।।

चै. च. म. १५.५२

× × ×

जे काले संन्यास कैल, छन्न हैल मन ।

चै. च. म. १५.५२

(६)

कि करिलाम काज, संन्यासे पड़ुक बाज,
मोर बड़ हृदय पाषाण ।
नाहि जाब नीलाचले, थकिब भकत कोले,
इहा बलि हरल गेयान ।।

(महाप्रभुकी उक्ति)—वासुघोष ।

(७)

कपट संन्यास गोरार के बूझिते पारे ।
कत रूपे उद्धारिल जगत् संसारे ।।

सिद्धान्त चन्द्रोदय ।

इस प्रकारके बहुतसे प्रमाण, महाप्रभुके कपट संन्यासके महाजनोंके ग्रन्थमें हैं ।

कृपालु पाठकवृन्द ! बातों ही बातोंमें बहुत दूर चला आया । लीलारस भङ्ग अपराधका मैं अपराधी हो गया हूँ, आप लोग निज गुणोंसे मेरे अपराधको क्षमा करेंगे । दुष्ट मन लीला-रसमें मग्न नहीं होना चाहता, जीवाधम लेखकके दुष्ट मनके शासनकर्त्ता वस्तुतः आपही लोग हैं । कृपा करके हाथमें शासनदण्ड ग्रहण करें, मैं शिर झुकाये हूँ । महाप्रभुको कपट संन्यासी कहनेसे बहुतसे लोग जीवाधामके प्रति खड्गहस्त होंगे, यह जान करके ही यह प्रार्थना कर रहा हूँ ।

शचीमाताके पास जगदानन्द

पण्डित जगदानन्दके साथ महाप्रभुकी लीलाकथा अतिशय रसमय है । वह सब रसमय अपूर्व कथा अब सुनिये । नवद्वीपमें आकर पण्डित जगदानन्दने शचीमाताकी वन्दना की, महाप्रभुकी तरफसे दण्डवत निवेदन किया । प्रभुकी विनती-स्तुति मातासे कही और श्रीजगन्नाथका प्रसादी वस्त्र निवेदन किया । जगदानन्दके आनेसे माताको बड़ा आनन्द हुआ और प्रभुकी बातें रात-दिन सुनती रहतीं । जगदानन्दने माताको बताया—"किसी-किसी दिन प्रभु तुम्हारे यहाँ आकर भोजन करते हैं और भोजन करके कहते हैं कि आज माँने आकण्ठ भोजन कराया है । माताके मनमें होता है कि आज बड़े बढ़िया व्यञ्जन बनाये हैं, निमाईको खिलाऊँ—ऐसा मन करता है और मेरे साक्षात् खानेके बाद वे समझती हैं कि मैंने स्वप्न देखा ।"

संन्यास लेते समय महाप्रभुने अपनी शोकातुरा जननीसे कहा था—"माँ ! तुम रोना मत । तुम अनुरागपूर्वक जब मुझे पुकारोगी, मैं तुम्हारे पास आऊँगा । तुमको दिखलायी दूँगा, तुम्हारे हाथका पकाया अन्न व्यञ्जन खाऊँगा ।" दयामय श्रीगौर भगवान् वात्सल्य प्रेमके वशीभूत होकर नीलाचलसे नवद्वीपमें आविर्भूत होकर बीच-बीचमें अपनी स्नेहमयी जननीकी मनस्तुष्टिके लिए ठाकुरका भोग खा जाते थे । मायामुग्ध शचीमाता सोचती कि उनका ठाकुरका भोग कौन खा गया ? अनर्थ हो गया ! वह पुनः रसोई बनाकर ठाकुरको भोग लगाती थीं । महाप्रभु यह सब बातें अपने मर्मी भक्तके द्वारा पूजनीया जननीको कहला भेजते थे । तब शचीमाताको विश्वास होता था । महाप्रभुके इस अद्भुत आविर्भाव और भोजन लीलाङ्गकी कथा पहले विस्तार वर्णित हुई हैं ।

प्रभुके लिए चन्दनादि तैल

पण्डित जगदानन्द नवद्वीप होकर शान्तिपुर गये, और अद्वैत प्रभुसे मिले। पश्चात् शिवानन्द सेनके घर गये। वहाँसे उन्होंने महाप्रभुके लिए एक घड़ा चन्दनादि तैल संग्रह किया। पण्डित जगदानन्द समझते थे कि वात और पित्तकी अधिकतासे महाप्रभुका मस्तिष्क विकृत हो गया है, इसी कारण वे मेरी बात नहीं सुनते, अच्छा खाते नहीं, अच्छा पहनते नहीं, अच्छी शय्यापर शयन नहीं करते। यह चन्दनादि तेल नीलाचलमें ले जाकर वे महाप्रभुको लगावेंगे। उनके सिरपर भली-भाँति मालिश करेंगे, इससे उनका मस्तिष्क ठण्डा और सुस्थिर होगा। यह सोचकर पण्डित जगदानन्द स्वयं मस्तकपर उठाकर एक घड़ा चन्दनादि तेल बहुत यत्नपूर्वक बङ्गदेशसे नीलाचल ले गये। महाप्रभुसे छिपाकर उन्होंने उनके विश्वासी भृत्य गोविन्दके हाथमें वह सुगन्धित तेलका घड़ा देकर कहा—"गोविन्द ! इस तेलके घड़ेको यत्नपूर्वक रखना, इसके द्वारा महाप्रभुके श्रीअङ्गकी सेवा करनी है।

गोविन्दने यह बात महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन की और कहा, "पण्डित बहुत यत्नपूर्वक अपने शिरपर ढोकर यह उत्तम सुगन्धित तेल आपके व्यवहारके लिए गौड़ देशसे लाये हैं। इसको सिरपर लगानेसे आपका वात-पित्त प्रकोप शान्त होगा।" महाप्रभुने गम्भीर भावसे उत्तर दिया—"संन्यासीको तैल-मालिसका अधिकार नहीं है, और उसपर भी सुगन्धित तैल। यही बड़ी बुरी बात है। यह तैल श्रीजगन्नाथजीके दीपकके लिए दे दो, जिससे जगदानन्दका परिश्रम सफल हो।

प्रभुकी यह बात सुनकर गोविन्द मन ही मन दुःखित हुए। वे पण्डित जगदानन्दको यह बात कैसे कहें, यही सोचने लगे। क्योंकि वे जानते थे कि यह बात सुनकर पण्डितके मनमें बड़ी व्यथा होगी। वैष्णवकी भगवत्प्रीति और धर्मनीति गोविन्द भली-भाँति जानते थे। 'प्राणीमात्रको उद्विग्न न करे'—यह बात गोविन्दको याद आयी। परन्तु उनके लिए महाप्रभुका आदेश सर्वापेक्षा बलवान् था। अतएव यह मनको कष्ट देनेवाली विषम बात वे एक दिन जगदानन्दसे डरते-डरते बोले। जगदानन्दकी प्रकृतिको गोविन्द भली-भाँति जानते थे। वे महाप्रभुके अभिमानी भक्त थे, बात ही बातमें उनके साथ विषम हास-परिहास करने लगते थे। अतएव गोविन्दने डरते-डरते प्रभुका आदेश उनको कह सुनाया।

पण्डित जगदानन्द महाप्रभुका यह आदेश सुनकर कुछ देर चुप हो रहे—कुछ भी न बोले। उनके तत्कालीन भावको देखकर गोविन्दका भय बढ़ गया। वे वहाँसे उठकर चले गये। जगदानन्द भी अपने कुटी पर चले गये। इस प्रकार दस दिन बीत गये, इस विषयमें और कोई बात न हुई। जगदानन्दसे गोविन्दकी नित्य भेंट होती थी, वे कुछ बोलते न थे, गोविन्दको भी कुछ बोलनेका साहस नहीं होता था। परन्तु जगदानन्दके मुखका भाव देखकर गोविन्द समझ रहे थे कि वे महाप्रभुके वचन और व्यवहारसे मर्मान्तिक पीड़ित हो रहे हैं, और वही इस मर्मान्तिक दुःखदायी आदेशके वाहक हैं। गोविन्दने मन ही मन सोचा कि एकबार और महाप्रभुसे इस सम्बन्धमें कहकर देखूँ। यह सोचकर वे सुयोग देखकर एक दिन रातमें उनकी चरण सेवा करते समय डरते-डरते बोले—"हे प्रभु ! पण्डित जगदानन्दकी बड़ी इच्छा है कि मैं उनके लाये सुगन्धित तेलसे आपके श्रीअङ्गकी सेवा करूँ।" यह बात सुनते ही महाप्रभुने परम गम्भीरतापूर्वक क्रुद्ध होकर गोविन्दकी भर्त्सना करते हुए कहा—

"तैल मर्दनके लिए एक मर्दनिया रक्खो। इसी सुखके लिए मैंने संन्यास लिया है। तुम लोगोंका यह परिहास है और मेरा सर्वनाश है। रास्ते चलते जब इसकी सुगन्ध लोगोंको लगेगी तो सब मुझे सारी (स्त्री-संगी) संन्यासी कहने लगेंगे।"

महाप्रभुके श्रीमुखसे यह बात सुनकर गोविन्दने लज्जासे सिर झुका लिया, और कोई बात न बोल सके, महाप्रभु भी कुछ न बोले।

दूसरे दिन प्रातःकाल महाप्रभुका दर्शन करने पण्डित जगदानन्द आये, उस समय वे हाथसे माला लेकर आसनपर बैठे थे। जगदानन्दको देखकर पहले ही बोल उठे—"पण्डित! तुम गौड़से इतना कष्ट उठाकर चन्दनादि सुगन्धित तैल लाये हो, मैं तो संन्यासी हूँ, उसका उपयोग कर नहीं सकता। श्रीजगन्नाथजीके दीपकमें जलानेको इसको दे दो तो तुम्हारा सारा श्रम सफल हो जायगा।"

जगदानन्दका अभिमान

पण्डित जगदानन्द गोविन्दके मुखसे महाप्रभुकी यह आदेशवाणी पहले एकबार सुनकर चुप हो गये थे, कोई बात नहीं बोले थे। वे अभिमानी भक्त थे। सोचने लगे कि देखें, महाप्रभु स्वयं यह बात उनसे कैसे बोलते हैं। गोविन्दको कहा है, वह और बात है। दस दिन तक उन्होंने मनकी बात मनमें ही दबाये रक्खी। गोविन्दके प्रति महाप्रभुका आदेश वस्तुतः कार्यान्वित होता है या नहीं, यह परीक्षा करनेके लिए ही मानो जगदानन्द पण्डितने दस दिन तक प्रतीक्षा की। वह परीक्षा आज समाप्त हो गयी। उन्होंने देखा और समझा कि महाप्रभुके श्रीमुखका आदेश सर्वत्र समान रूपसे कार्यान्वित होता है।

उनके मनमें एक और गुप्त भावतरङ्ग गुप्तरूपसे क्रीड़ा कर रही थी। श्रीगौराङ्ग सुन्दर उनके प्राणवल्लभ हैं। गोविन्द प्रभुका भृत्य है। भृत्यके द्वारा अपने प्रियतमाके प्रति जो आदेश जारी किया है, वह साक्षात् प्रियतमाके समक्ष कार्यान्वित होता है या नहीं, यह भी जगदानन्दकी परीक्षाका विषय था। यह परीक्षा ही अन्तिम परीक्षा थी। कठोर संन्यासी महाशयके सामने जगदानन्दकी इस अन्तिम परीक्षाका कोई फल न हुआ, यह भी अब उनकी समझमें आ गया। और यह भी वे समझ गये कि वह अपूर्व संन्यासी केवल उनका ही प्राणवल्लभ नहीं है। वह बहुवल्लभ है। बहुतोंका मन उन्हें रखना पड़ता है। इसी कारण उन्होंने उनके अनुरोधको नहीं माना। वहुबल्लभका उत्तरदायित्व भी बहुत होता है, अनेक प्रकारसे अनेक लोगोंके मनको तुष्ट करना ही उनका प्रधान कार्य है। वह प्रत्येक अनुरागिणीकी मनस्तुष्टि करनेके लिए बाध्य है। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'—यह बात उन्होंने गीतामें श्रीमुखसे कही है। यहाँ उन्होंने जगदानन्द पण्डितकी मनोबाञ्छा पूर्ण नहीं की। इससे अभिमानी भक्तका अभिमान-समुद्र उमड़ उठा। यह अत्यन्त स्वभाविक था। जगदानन्दके मुँह और आँखें लाल हो गये। मानिनी प्रोषित-पतिकाके समान प्राणवल्लभके मुखचन्द्रकी ओर रोषकषायित नयनोंसे एकबार ताककर क्रोधसे कम्पित स्वरमें बोले—"किसने तुमसे झूठ-मूठ कहा है कि मैं गौड़से तुम्हारे लिए तैल लाया हूँ? जिसने तुमको यह बात कही है, वह मिथ्यावादी है।" इतना कहकर महाप्रभुके प्रकोष्ठमें प्रवेश करके उस सुगन्धि तेलके घड़ेको उठाकर उन्होंने महाप्रभुके आगे आङ्गनमें जोरसे पटक दिया। घड़ा फूटकर चूर-चूर हो गया। सुगन्धित तेलका स्रोत सारे आँगनमें बह चला। गन्धसे सारा आश्रम आमोदित हो गया।

यह कार्य करके अभिमानी भक्त जगदानन्द पण्डित क्रोधमें लाल पीले होकर अपनी कुटीपर

जाकर किवाड़ बन्द करके अभिमानमें भरकर पड़ रहे। मानो वह महाप्रभुकी मानिनी रमणी हैं और सब बातोंमें उनको कहने सुननेका अधिकार है! और बोलने और कहनेसे वह यदि नहीं सुनते तो उसके बाद क्या करनेसे हठी स्वामीको वशमें किया जा सकता है, पण्डित जगदानन्दने वही अपने इस कार्यके द्वारा प्रदर्शित किया है।

वह अपनी कुटीके भूतलपर पड़े हैं, क्रोध और अभिमानमें उनका हृदय जर्जर हो रहा है, आहार-निद्रा त्याग दिया है, एकमात्र चिन्तन है महाप्रभुके चन्द्र-वदनका, और सुननेकी इच्छा है उनके श्रीमुखकी मधुर वाणी। इस समय कैसी मधुर वाणी? मान भञ्जन करनेवाली अनुरागमयी खुशामदसे भरी वाणी। प्राणवल्लभ स्वयं आकर नाना प्रकारसे खुशामद करके इस दुर्जय मानको भञ्जन करेंगे, तब उनके इस अभिमानी भक्तके क्रुद्ध मनको शान्ति मिलेगी। तब वे पहले उनसे वक्रोक्तिमें बातें करेंगे, जब उनके प्राणवल्लभ इस प्रकार खुशामद करेंगे तो वे आहार करेंगे।

पूरे तीन दिन तक अभिमानी भक्त जगदानन्द पण्डितके मनमें यह दुर्जय अभिमान प्रबल रूपसे विराजमान रहा और उनको सर्वतोभावेन उत्पीड़ित करता रहा। गौराभिमानिनी नदिया नागरी भावमें वे उस समय विभावित थे। दुर्जय अभिमानके ज्वरमें वे बाणविद्ध हरिणीके समान छटपटा रहे थे। इधर महाप्रभुके मनमें भी सुखका लेश न रहा। उनकी ऐसी अवस्था अत्यन्त स्वाभाविक थी। स्त्री अभिमान करके आहार-निद्रा त्याग करके किवाड़ बन्द करके पड़ रहे तो स्वामीका मन स्थिर नहीं रह सकता। महाप्रभुकी अवस्था भी ठीक इसी प्रकारकी थी। परन्तु पुरुषका हृदय अपेक्षाकृत कठिन होता है। सहज ही उनका स्वाभाविक पुरुष भाव खर्व नहीं होता।

प्रथम दिन चला गया, महाप्रभुने किसीको कुछ नहीं कहा, केवल गोविन्द सब कुछ जानते थे। वे महाप्रभुके अन्तरङ्ग भक्त और भृत्य थे। उन्होंने देखा कि उस दिन महाप्रभुका भजनमें मन नहीं लगा। दूसरा दिन भी बीता। उस दिन महाप्रभु सिन्धु स्नान करने भी नहीं गये, जगन्नाथजीका दर्शन करने भी नहीं गये। गोविन्द सब कुछ जान बूझ रहे थे, पर कोई बात नहीं बोलते थे। उस दिन महाप्रभुने अच्छी तरह भोजन नहीं किया। यह देखकर गोविन्दके मनमें बड़ा दुःख हुआ, वे फिर करते ही क्या? पति-पत्नीके प्रेम-कलहमें क्या दास-दासी कोई बात नहीं कह सकते? पर क्या कहनेका साहस करते हैं? गोविन्दकी अवस्था भी उसी प्रकार की थी।

जगदानन्द तीन दिनसे द्वार बन्द करके अनाहार पड़े हुए हैं, यह महाप्रभुने भक्तोंके मुखसे सुना और आँखोंसे भी देखा, परन्तु किसीको कुछ कहा नहीं। स्वरूप गोसाईं आदि भी जगदानन्दको उनकी कुटीसे बाहर नहीं निकाल सके, यह भी बात महाप्रभुके कानोंमें पहुँची है।

मान भञ्जन

तीसरे दिन उनका हृदय स्थिर न रह सका, मन नहीं माना। वे प्रातः कृत्य करके सीधे जगदानन्दकी कुटी पर जा पहुँचे। द्वारके कपाटको खटखटाया, और प्रेमगद्गद कण्ठसे मधुर स्वरमें बोले, "पण्डित! उठो, आज मैं तुम्हारे यहाँ भिक्षा करूँगा। रसोई बनाकर प्रसाद देना, मैं अभी जगन्नाथजीके दर्शनके लिए जा रहा हूँ। दोपहरको आकर तुम्हारी कुटियामें प्रसाद पाऊँगा।" इतनी बात कहकर वे अपने कार्यमें चले गये।

जगदानन्दके कानोंमें उनके परम प्रेममय प्राणवल्लभकी प्रेम-परिप्लुत वाणी प्रवेश करते ही उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा, अभिमानिनी

रमणीका सारा अभिमान दूर हो गया। स्वामीकी एक मधुर और सरस बात ही इस समय उनके अभिमान-विष-जर्जर प्राणोंकी रक्षाकी महौषधि हो गयी। वैद्यराज महाप्रभु जगदानन्दके इस अकथनीय व्याधिकी महा महौषधि देकर चले गये। व्याधिके उपयुक्त औषधि मिलते ही रोगी उठ बैठता है। जगदानन्द भी उठकर बैठ गये। वे व्याधिमुक्त होने लगे, मन और शरीरमें कुछ बल पानेका विश्वास करके उन्होंने कुटियाका द्वार खोला। गोविन्दने अवसर पाकर रसोईका सारा जोगाड़ कर दिया। जगदानन्द पण्डित बिना कुछ कहे सुने स्नान करके रसोई घरमें गये।

महाप्रभुको नाना प्रकारके व्यञ्जन प्रिय थे, अतएव उन्होंने शीघ्रतापूर्वक नाना प्रकारके शाक व्यञ्जन राँध लिये। जगदानन्दके प्रियजन रामाई पण्डित और रघुनाथ उस दिन उनके इस पाक कार्यमें सहायक रहे। नाना प्रकारका शाक, मोचाका घण्ट, सूक्त और नाफरा व्यञ्जन, जो महाप्रभुको अतिशय प्रिय था, वही प्रचुर परिमाणमें जगदानन्दने पकाया। उत्तम शाल्यान्न पकाया। महाप्रभु मध्याह्न कृत्य करके अपने कथनानुसार जगदानन्दकी कुटिया पर अकेले आकर उपस्थित हुए।

उनको अकेला देखकर जगदानन्दके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। इसका कारण सुचतुर पाठकवृन्द अवश्य समझ गये होंगे। साथमें किसीके आने पर प्रभु प्रसाद पानेमें सङ्कोच करेंगे, और उनको पेट भर प्रसाद खिलावेंगे, तब थोड़ा प्रसाद स्वयं पावेंगे। जगदानन्द यह खूब जानते थे। स्वामीके चरित्रको जैसा स्त्री जानती है, वैसा दूसरा कोई क्या जानेगा? महाप्रभुको अकेले आते हुए देखकर जगदानन्दके आनन्दकी उस दिन सीमा न रही। उन्होंने धीरे-धीरे महाप्रभुके श्रीचरणकमलको प्रक्षालन करके आसन पर बैठाया। महाप्रभु रसोई घरमें बैठकर अन्नव्यज्जनकी ओर शुभ दृष्टिपात करने लगे, और जगदानन्द उनके लिए स्वतन्त्र भोग प्रस्तुत करने लगे।

अर्थात् जगन्नाथका प्रसाद पहले पृथक् करके महाप्रभुके लिए केलेके पत्ते पर स्तूपाकार अनिवेदित स्वतन्त्र अन्न-व्यञ्जनका भोग प्रस्तुत किया। केलाके पत्तेका दोना बनाकर पत्तेके चारों ओर नाना प्रकारका व्यञ्जन सजाया। सघृत अन्न (चावल)के ऊपर नवीन तुलसी मञ्जरी देकर महाप्रभुको भोग लगाया। गण्डूषके लिए जल हाथमें देकर उनको भोजनके लिए बैठाया। ऐसे समयमें रसराज रसिक शेखर महाप्रभुने मुस्कराकर जगदानन्दके मुँहकी ओर करुण नयनसे देखकर परम रसिकता पूर्वक कहा—"दूसरे पत्ते पर अन्न व्यञ्जन सब सामग्री और रक्खो, आज तुम और मैं दोनों एक साथ भोजन करेंगे।"

रसराज श्रीगौराङ्ग प्रभुकी यह बात अतिशय प्रीतिमयी थी। मधुर रसकी अन्तिम बात थी. यह प्रभु और सेवककी बात नहीं थी, नौकरको प्रभु कदापि यह बात नहीं बोल सकते। महाप्रभुकी इस बातसे स्पष्ट हो जाता है कि जगदानन्दके साथ उनका प्रभु-भृत्य सम्बन्ध नहीं था। यह दास्य भावकी बात भी नहीं थी, मधुरोज्ज्वल परकीया मधुर भावकी बात स्पष्ट सिद्ध होती है। पूर्व लीलामें श्रीकृष्णके साथ सत्यभामाका जो प्रणय सम्बन्ध था, महाप्रभुके साथ पण्डित जगदानन्दका भी वही सम्बन्ध था। अभिमानिनी स्त्रीकी मनस्तुष्टिके लिए पुरुषको नाना प्रकारके उपाय काममें लाने पड़ते हैं, नानाप्रकारकी प्रीति-व्यञ्जक बातें करनी पड़ती हैं। यह स्वाभाविक पति-पत्नीके प्रेमका लक्षण है। श्रीमन्महाप्रभु नरवपु धारण करके सर्वोत्तम नरलीला प्रकटकर

रहे हैं। उन्होंने पूर्वलीलाके नायकके रूपमें नायिका जगदानन्दकी मनस्तुष्टिके लिए यह प्रीति व्यञ्जक बात उससे कही। पतिप्राणा साध्वी स्त्री अपने प्राणप्रियके मुखसे इस प्रकार प्रेमरसरङ्गसे पूर्ण परम प्रीतिकी वात सुनकर जिस प्रकार कुछ लज्जित होकर मुँह फेरकर मुस्काती है और पतिके अनुरोधकी रक्षा न कर सकनेके कारण जैसे लज्जित होकर प्रेमगद्‌गद होकर कहती है कि, "तुम पहले खाओ, मैं पीछे खाऊँगी।" पण्डित जगदानन्दने भी ठीक यही किया। उन्होंने महाप्रभुके मुखचन्द्रकी ओर विलोल दृष्टिसे देखकर मृदु मुस्कराते हुए प्रेमपूर्वक कहा—

आपनि प्रसाद लयेन, पाछे मुञि लइमु।
तोमार आग्रह आमि केमने खण्डिमु॥

चै. च. अं. १२.१२८

यह बात सुनकर महाप्रभु मनमें वहुत आनन्दित हुए, और परम आनन्द-पूर्वक भोजन करनेके लिए बैठे। जगदानन्दने बहुत बढ़िया भोजन वनाया है, कहकर महाप्रभुने भोजन करके परम परितुष्ट होकर परिहास करते हुए कहा—"क्रोधावेशमें बनाये हुए पाकका ऐसा स्वाद हो सकता है, इसीसे प्रतीत हुआ कि तुम्हारे ऊपर श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा है। श्रीकृष्ण तुम्हारे हाथका व्यञ्जन ग्रहण करेंगे, इसीलिए तुम्हारे द्वारा ऐसा उत्तम रंधन कराया है। ऐसा अमृत अन्न तुम श्रीकृष्णके अर्पण करते हो, तुम्हारे भाग्यकी सीमाका वर्णन कौन कर सकता है।"

कलिके प्रच्छन्न अवतार महाप्रभुने उनके उपयुक्त ही बात कही—"स्वयं श्रीकृष्ण भोजन करेंगे, इस विचारसे तुमने अपने हाथसे पाक करके इस अमृत तुल्य अन्न व्यज्जनका भोग दिया है, तुम परम भाग्यवान् हो।" जगदानन्दने किसके लिए यह उत्तम-उत्तम व्यज्जन पकाया है? क्या सर्वज्ञ महाप्रभु इस बातको नहीं जानते? अन्तर्यामी गौर-भगवान्‌ने छलपूर्वक अपने भक्तके सामने निजतत्वको प्रकट कर दिया। जगदानन्दके समान रसिक और चतुर भक्तराजके सामने अब कुछ समझनेके लिए बाकी न रहा। उन्होंने भी छल और कौशलसे महाप्रभुकी बातका जो उत्तर दिया, वह भी निगूढ़ तत्त्वसे पूर्ण है। वे बोले—"जो खानेवाला है, वही पाककर्त्ता है। मैं तो केवल सामग्री संग्रह करनेवाला हूँ।"

रसिक भक्तशिरोमणि जगदानन्दने सारा कर्तृत्व श्रीभगवान्‌में आरोपकर दिया। यह बात सुनकर महाप्रभुका मन अतिशय प्रफुल्ल हो उठा।

महाप्रभु प्रेमानन्दमें जगदानन्दकी कुटियामें बैठकर भोजनलीलारङ्गकर रहे थे। जगदानन्द पास बैठकर प्रेमानन्दसे अपने प्राणवल्लभको दिल खोलकर भोजन करा रहे थे। महाप्रभुको शाक व्यञ्जन बहुत प्रिय था। अतएव वे बारंवार उनके पत्तेपर शाक व्यञ्जन परोसते थे। भयसे प्रभु कुछ कहनेका साहस नहीं कर रहे थे, फिर पीछे कहीं जगदानन्दको अभिमान न हो जाय। वे जो कुछ दे रहे थे, वही परम आनन्दपूर्वक प्रभु भोजन कर रहे थे।

महाप्रभु भोजनानन्दमें थे, और जगदानन्द भी परोसनेके आनन्दमें विभोर थे। महाप्रभुको भोजन करनेमें सुख था, और जगदानन्दको सुख था उनको भोजन करानेमें। महाप्रभुके सुखकी अपेक्षा जगदानन्दका सुख अधिक था। भोक्ता अतिथिके सुखकी अपेक्षा भोजन दाताका सुख अधिक होता है। क्योंकि अति भोजनमें भोक्ता कष्ट पाता है, परन्तु भोजन-दानमें दाताको कोई कष्ट नहीं होता।

अन्य दिनकी अपेक्षा महाप्रभुने उस दिन बहुत अधिक भोजन किया। बारंबार उनको उठनेका मन होता था, क्योंकि पेट भर गया था, परन्तु वे करते क्या? उठनेकी बात सोच रहे हैं, उसी समय जगदानन्द पुनः उनके पत्ते प्र

व्यञ्जन परोस देते हैं। भक्तवत्सल प्रभु कुछ भी बोल नहीं पाते, एक-एक बार उनके मुखकी ओर करुण नयनसे देखते हैं और डरते-डरते कुछ-कुछ खा रहे हैं। भय इस बातका है कि वह अभिमानी भक्त फिर कहीं रुष्ट होकर उस दिनके समान उपवास न करे। महाप्रभुका भय परम प्रीतिका लक्षण है।

वे विश्वम्भर हैं, भोजनमें कातर नहीं होते। महाप्रकाशके दिन नवद्वीपमें विष्णु सिंहासनपर बैठकर जिन्होंने सैकड़ों हजारों भक्तवृन्दकी दी हुई भोजनकी राशि अनायास ही एक दिनमें खाकर समाप्त कर दी, और 'और भी लाओ' कहकर भक्तवृन्दको लज्जित किया था। सबके अन्तमें सूपाकार ताम्बूल खाकर भोजन लीलारङ्गको समाप्त किया था। नीलाचलमें बैठकर जिन्होंने एक दिन नदियाके भक्तवृन्दके लाये हुए राशि-राशि भोज्यवस्तुको खाकर भक्तवृन्दके मनमें आनन्द वर्द्धित किया था, वे जगदानन्दके सामने भोजन लीलारङ्गमें पराजय स्वीकार करेंगे, यह संभव नहीं। भक्तके भगवान् भक्तकी मनस्तुष्टिके लिए सब कुछ कर सकते हैं। जगदानन्द उनके मर्मीभक्त हैं। मनोरञ्जनके लिए महाप्रभुने दस गुना आहार किया तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

जगदानन्दने जब परोसनेमें किसी प्रकार हार नहीं माना, तब महाप्रभुने कातर भावसे विनय करके परम सम्मानपूर्वक जगदानन्दके मुखकी ओर करुण नयनसे देखकर कातर स्वरमें कहा—"दस गुणा तो खिला चुके, अब तो बन्द करो।"

महाप्रभुके तत्कालीन विनय-कातर चन्द्र-वदनको देखकर स्वभावतः जगदानन्दके मनमें दुःख हुआ, और उनके श्रीमुखसे सम्मानसूचक बात सुनकर उनके प्रति मन-ही-मन दयाका उद्रेक हुआ। महाप्रभुने इतना कसकर भोजन किया था कि प्राण कण्ठगत आ गये थे। वे आसनसे उठ नहीं पा रहे थे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर किसके मनमें दुःख न होगा? वे अति कातर भावसे विनती करके कहते हैं—"रक्षा करो, और मत खिलाओ, पेट फट गया जगदानन्द! तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, तुम और कुछ न देना।" आकण्ठ पूर्ण भोजन कर लेनेके बाद भोक्ताके मुखसे इस प्रकारकी कातरोक्ति सुनकर किसके मनमें उसके ऊपर दया न आयगी? जगदानन्द तो महाप्रभुके शत्रु नहीं थे। उनके इस अति भोजनके दुःखसे कातर होकर अब उनको और परेशान नहीं किया।

महाप्रभु भोजन लीला समाप्त करके बड़े कष्टसे उठ खड़े हुए। जगदानन्दने जलसे भरी झारी ला दी। महाप्रभुने आचमन किया। उसके बाद उन्होंने महाप्रभुको मुखशुद्धि देकर माल्य चन्दनसे विभूषित किया। महाप्रभुने अब स्थिर होकर वहाँ ही कुछ देर विश्राम किया। अब उनमें उठनेकी शक्ति न रही। अति गुरुत्तर भोजनसे वे कातर हो रहे थे। तब उन्होंने जगदानन्दके मुँहकी ओर कृपादृष्टि करके हँसते हुए प्रेमगद्गद वचनसे कहा—"जगदानन्द! तुम मेरे सामने बैठकर अन्न भोजन करो. मैं तुम्हारी प्रसाद भोजन लीला देखकर नयन सार्थक करूँ।"

रसराज महाप्रभुके श्रीमुखसे यह रसिकता सुनकर जगदानन्द मुँह विचकाकर मुस्करा उठे, उनके हँसनेका मर्म यह था कि, प्रभुने कैसी लज्जाकी बात कही? भला ऐसा भी कहीं होता है? स्वामीके सामने बैठकर स्त्री भोजन करेगी? यह कभी नहीं हो सकता।

प्रभुने जो यह बात कही, इससे उनके मनका भाव दो प्रकारसे व्यक्त हुआ। प्रथम, जगदानन्द तीन दिनके उपवासी थे, उनके सामने बैठकर भोजन करते तो उनको बड़ा सुख मिलता, आनन्द होता।

द्वितीयतः जगदानन्दको क्रोध हो गया था, वह तीन दिनसे अनाहार थे, उनको भोजन कराकर ही महाप्रभुको अन्य कार्य करना था। भारी भोजनके बाद विश्राम करना एक ओर था, और एक ओर यह कार्य भी था। मन-ही-मन यह सोचकर ही वे यह बात बोले।

जगदानन्द शुद्ध रसिक भक्त थे, चतुर शिरोमणि थे, उनकी भाव-भङ्गी मानिनी सत्यभामाके समान थी। वे महाप्रभुकी साध्वी-स्त्री थे। पतिव्रता साध्वी-स्त्री कभी पतिके सामने भोजन नहीं कर सकती। स्वामीका अवशेष मात्र ही उसके लिए ग्रहणीय है। इस स्वकीया भावमें विभावित होकर जगदानन्दने प्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभु! तुम जाकर विश्राम करो, मैं तृप्तिपूर्वक प्रसाद ग्रहण करूँगा। रामाई और रघुनाथने रन्धन कार्यमें हाथ बँटाया है, ये भी तो प्रसाद पायँगे।"

भावग्राही सर्वज्ञ महाप्रभुने अपने मर्मी भक्तके मनके भावको समझकर इस विषयमें उनसे फिर अनुरोध नहीं किया। जगदानन्दकी बातोंसे उनको ज्ञात हो गया कि उनका अभिमान जनित क्रोध शान्त हो गया है, और अब भयका कोई कारण नहीं है। परन्तु दूसरे ही क्षण उनके मनमें आया कि जगदानन्दका कोई विश्वास नहीं है। गोविन्द उनके साथ ही थे, उन्होंने गोविन्दसे कहा—"गोविन्द! तुम यहीं ठहरो, पण्डित जगदानन्द भोजन कर लें, तब मुझे बताना।"

जगदानन्द क्या करते हैं? भोजन करते हैं या नहीं? यह देखनेके लिए अपने विश्वासी एकान्त अनुगत भृत्यको उनके पास रख दिया।

महाप्रभुका वासा काशीमिश्रके घरपर था, और जगदानन्दकी कुटिया उनके घरसे लगे हुए उद्यानमें थी। महाप्रभु विश्राम करने चले गये। आकण्ठ भोजन करके वे कातर हो रहे थे, बहुत दूर जाना न पड़ा, यह सोचकर उनके मनमें आनन्द हुआ। 'हरे कृष्ण' कहकर वह वहाँसे उठकर अपने वासापर चले गये।

अब जगदानन्दने देखा कि महाप्रभु गोविन्दको यहाँ पहरा देनेके लिए रख गये हैं, उन्होंने अतिरिक्त भोजन किया है, भोजनके अन्तमें गोविन्दने यदि उनकी पद-सेवा न की तो उनको पूर्ण विश्राम नहीं मिल पायगा। यह जगदानन्द भली-भाँति जानते थे, गोविन्द भी यह जानते थे। परन्तु गोविन्द क्या करते? महाप्रभुका आदेश ही ऐसा था। परन्तु जगदानन्दने एक जाल रचा। वह बहुत सोच-विचार कर गोविन्दसे बोले—"गोविन्द! तुम जाकर प्रभुकी पाद-संवाहन सेवा करो, उनको बोल देना कि पण्डित भोजन करने बैठ गये। तुम्हारे लिए प्रभुका अवशेष रख छोड़ूंगा, प्रभुके सो जानेके बाद तुम आकर भोजन करना।" इस प्रकार कहकर जगदानन्दने गोविन्दको बिदा कर दिया। उसके बाद उन्होंने रामाई, नन्दाई गोविन्द और रघुनाथको प्रसादान्न बाँट दिया, और सबके अन्तमें उन्होंने अपने प्राण बल्लभका अधरामृत प्रसाद पाया।

गोविन्द महाप्रभुकी पदसेवामें लग गये। महाप्रभुके सामने वे कोई बात नहीं छिपाते थे। जगदानन्दके कहनेसे वे उनकी पद सेवा करने आये हैं, यह उन्होंने उनसे कह दिया। जगदानन्दने अभी प्रसाद नहीं पाया है, यह भी उन्होंने महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन कर दिया। और यह भी कहा कि जगदानन्दने उनको झूठ बोलनेकी शिक्षा दी है। महाप्रभु गोविन्दकी बात सुनकर मुस्कराये। उस हँसीका मर्म गोविन्द समझ गये।

गोविन्दको जगदानन्दके पास रखना, प्रभुके द्वारा जगदानन्दकी अन्तिम परीक्षा थी। महाप्रभुकी भक्तवात्सल्य रीति अद्भुत है। वे अपने भक्तकी

विशेष परीक्षा लेते हैं. परन्तु निज-जन बना लेते हैं, महाप्रभुने अपनी पद-सेवा त्याग कराकर गोविन्दको जगदानन्दके पास कड़े पहरेमें लगाया। उनका उद्देश्य था जगदानन्दकी गौराङ्ग प्रीतिकी परीक्षा करना। जगदानन्द महाप्रभुकी इस अन्तिम परीक्षामें भी उत्तीर्ण हो गये, यह देखकर उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वे मनका भाव छिपाकर गोविन्दसे बोले—"तुम जाकर देखो कि जगदानन्द प्रसाद पा रहे हैं या नहीं। शीघ्र आकर मुझे समाचार देना।"

उन्होंने गोविन्दको इस बहाने पुनः जगदानन्दकी कुटीपर भेजा। पूर्वोक्त कारण महाप्रभुके मनका एक भाव था, परन्तु एकऔर भाव तरङ्ग महाप्रभुके मनमें क्रीड़ा कर रही थी। उनको यहाँ समझनेकी चेष्टा करूँगा। जगदानन्द उनके अभिमानी मर्मी भक्त हैं, उनके विषम अभिमान और दुर्जय मानको महाप्रभुने जो स्वयं दिखलाया है, वह अन्य किसीके लिए अनुभवनीय नहीं। जगदानन्दका उनको विश्वास नहीं है। अभिमानमें पड़कर वह सब कर सकते हैं, इतना करके भी महाप्रभुने अपने भक्तका मन अनुकूल बनाया है या नहीं, इसमें उनको घोर सन्देह है। अतएव गौविन्दको फिर भेजा और कह दिया कि—"शीघ्र जाकर देख आओ कि जगदानन्दने भोजन किया या नहीं।'

गोविन्द तब दौड़कर गये और देखकर महाप्रभुके पास आकर समाचार दिया कि—पण्डितने भोजन कर लिया तव उन्होंने सुस्थिर होकर शयन किया।

अव सुचतुर गौरभक्तवृन्द विचार करें कि जगदानन्दकी प्रेमभक्ति महाप्रभुके प्रति अधिक थी, या महाप्रभुका भक्तवात्सल्य जगदानन्दके प्रति अधिक था। इस विचारका भार आप लोग ही ग्रहण करें, भक्तके सामने भगवान्का पराजय इतने दिनोंसे सुनते आ रहे हैं, अब इस लीला प्रसङ्गमें इसे दिव्यचक्षुसे देख लें। यह सब अपूर्व लीलारङ्ग अपनी आँखोंसे देखकर रघुनाथ दास गोस्वामीने कृष्णदास कविराज गोस्वामीसे कहा और वही कविराज गोस्वामीने अपने अमूल्य श्रीग्रन्थ श्रीचैतन्य चरितामृतमें लिपिबद्ध करके जगत्का महान् उपकार किया है। उन्होंने लिखा है—

जगदानन्देर सौभाग्येर के करिब सीमा।
जगदानन्देर सौभाग्येर तेहइ उपमा॥
चै. च. अं.१२.१५२

वस्तुतः जगदानन्दका चरित्र और श्रीचैतन्य प्रेम अति अद्भुत और बड़ा ही मधुमय है। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण और सत्यभामाकी प्रेम-रंग कहानी केवल सुनी थी, नीलाचलमें श्रीगौराङ्ग और जगदानन्दके अपूर्व प्रेमविवर्त्त-विलासका साक्षात् दर्शन करके महाजनगण जो पदमें या ग्रन्थमें लिपिबद्ध कर गये हैं, उसका पाठ करनेपर प्रेमानन्दसे मन गौरलीलारङ्गसे पुलकित हो उठता है। भगवत्प्रेम क्या वस्तु है, और इसका क्या स्वरूप है—वह इस अपूर्व लीला-रङ्गके पाठ और आस्वादन करनेसे जाना जा सकता है। अमूल्य प्रेम-धन आहरण करनेका यदि कोई उपाय है तो वह है इस अपूर्व मधुर लीला रसास्वादनमें निमग्न रहना। अतएव हे कृपालु पाठकवृन्द ! श्रीगौराङ्ग लीलामधु पाठ करने और सुननेमें सर्वतोभावेन मनको लगा दें, आपको ज्ञात हो जायगा कि भगवत्प्रेम क्या वस्तु है, और उसको अर्जन करनेकी आप चेष्टा कर सकेंगे।

महाप्रभुने नीलाचलमें रहकर अपने रसिक भक्त जगदानन्दके साथ अनेक प्रकारके प्रेम लीलारङ्ग प्रदर्शित किये थे। महाजन कविने उनमेंसे कुछको अपने पदोंमें लिपिबद्ध किया है। यह सब मधुर लीलाकहानी रसिक गौर-भक्तोंके लिए प्राणस्वरूप- है। पहले कह चुका हूँ कि महाप्रभुने जो संन्यास लिया था, वह जगदानन्दको बिल्कुल ही पसन्द न

था। उनकी संन्यास श्रीमूर्त्तिकी ओर देखनेपर जगदानन्दका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता था। उनका आहार, व्यवहार, दैन्य—कुछ भी उनको अच्छा न लगता था। कृष्ण-विरहमें महाप्रभुका हृदय जर्जर, मन व्याकुल और शरीर क्लिष्ट रहता था। वे इस समय अति क्षीणकाय हो गये थे। उनके श्रीवदनको देखनेपर वे पहचाने नहीं जाते थे। यह पण्डित जगदानन्दके लिए मृत्यु-तुल्य था। वे महाप्रभुके श्रीवदनकी ओर मुँह उठाकर देख नहीं पाते थे। उनके साथ बातें करते समय आँखोंके जलसे हृदय प्रवाहित हो उठता था। अन्तर्यामी महाप्रभु सब कुछ जानते और समझते थे। परन्तु बूझकर भी अबूझ थे। वे कठोरता करते थे, और दिन-दिन उसकी वृद्धि हो रही थी। इससे जगदानन्दके हृदयकी व्यथा दिन-दिन बढ़ रही थी, यह समझकर भी वे नहीं समझते थे। यह उनका बड़ा दोष था। श्रीभगवान्‌का दोष कोई देख नहीं पाता। परन्तु जगदानन्द उसे देख पाते थे। वे भगवत्सेवा-प्रेममें अन्धे होकर भगवान्‌का दोष देखते थे, इसलिए उनको दुःख था, और यह दुःख ही उनका सुख और आनन्द था और सौभाग्य भी था। इसी कारण कविराज गोस्वामीने लिखा है—

> **"जगदानन्देर सौभाग्येर के करिब सीमा।"**
>
> चै. च. अं. १२.१५२

जगदानन्द द्वारा कोमल शय्याका उद्योग

अब महाप्रभु कठोरताकी चरम सीमापर पहुँच गये। कविराज गोस्वामी कहते हैं—

> **कृष्णेर विच्छेद दुःखे क्षीण मनकाय।**
> **भावावेशे तभू कभू प्रफुल्लित हय॥**
> **कलार शरलाते शयन, क्षीण अतिकाय।**
> **शरलाते हाड़े लागे व्यथा लागे गाय॥**
>
> चै. च. अं. १३.३,४

महाप्रभु कृष्ण-विरहमें जर्जर होकर अति क्षीणकाय हो गये हैं, उनके आदेशसे शुष्क केलेका पत्ता बिछाकर गोविन्द शय्या सजाते हैं, उसीके ऊपर वे अपने मन्दिरमें शयन करते हैं। महाप्रभुकी वह नव नटवर नवीन कमनीय देह अब अस्थि मात्र अवशिष्ट है, शुष्क काष्ठके समान केलेके पत्तेपर सोनेसे शरीरमें वेदना होती है। यह देखकर भक्तवृन्दका हृदय विदीर्ण हो जाता है। जगदानन्द तो यह देखकर रो-रोकर दोनों आँखें अन्धी कर बैठे हैं। महाप्रभुका इस प्रकारका दैहिक कष्ट दूर करनेके लिए सोच-सोचकर उन्होंने एक उपाय ढूँढ़ निकाला। सूक्ष्म वस्त्रको गैरिक रंगवाकर उसमें सेमलकी रुई भरवायी, उसी तरहका तकिया बनवाया।

प्रेमकी रीति इस प्रकारकी होती है। जगदानन्द जानते हैं कि महाप्रभु इस प्रकारकी रुईकी शय्यापर सोना स्वीकार न करेंगे। तथापि उनके मनको समाधान नहीं हो रहा है, इसी कारण एक बार चेष्टा करके देख लिया। इस प्रेमचेष्टामें भी सुख है। गोविन्दके हाथमें यह रुईकी तोशक देकर उनसे कहा—"गोविन्द! महाप्रभुको इस तोशकपर शयन कराओ।"

गोविन्द जानते हैं कि महाप्रभु इसे स्वीकर नहीं करेंगे। वे उनके भृत्य हैं, कोई भी प्रभुको कुछ प्रीतिपूर्वक देता है, उसको वे लेनेके लिए बाध्य हैं। अतएव जगदानन्दकी दी हुई वस्तु उन्होंने प्रभुके लिए ग्रहण की, परन्तु जगदानन्दकी इस बातका कोई उत्तर न दिया। जगदानन्द भी भीतर ही भीतर जानते हैं कि गोविन्दके कहनेसे महाप्रभु यह तोशक स्वीकार न करेंगे। अतएव वे स्वरूप गोस्वामीको हाथ पकड़कर एकान्तमें ले जाकर बहुत ही अनुनय विनयपूर्वक बोले—"गोसाईं! आज आप स्वयं जाकर महाप्रभुको शयन करावें। आज मैंने नयी तोशक उनके लिए तैयार करके गोविन्दके हाथ भेजी है।"

स्वरूप गोसाईं भी जगदानन्दसे डरते हैं, उनके अनुरोधकी रक्षा करना उन्होंने स्वीकार किया। महाप्रभुके शयनकालमें स्वरूप गोसाईंने जगदानन्दकी दी हुई तोशक बिछा दी। महाप्रभुने रुईकी तोशक तकिया देखकर क्रोधसे आँखें लाल करके गोविन्दसे पूछा—"इसको किसने बनवाया?"

स्वरूप गोसाईंने जब जगदानन्दका नाम लिया तो महाप्रभु कुछ बोल न सके। परन्तु गोविन्दके द्वारा वह रुईका तोशक उठवा कर अन्यत्र रख दिया और केलेके सूखे पातकी शय्यापर वे पूर्ववत् सो गये। स्वरूप गोसाईंने तब धीरे-धीरे प्रभुसे कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं क्या कहूँ? इससे पण्डित जगदानन्दको बहुत दुःख होगा।"

महाप्रभुका क्रोध मनका मनमें रह गया, केवल जगदानन्दका नाम सुनकर चुप हो गये। क्योंकि जगदानन्दसे वे बहुत डरते थे। परन्तु जब स्वरूप गोसाईंने पुनः उनको उस रुईकी तोशकपर सोनेका अनुरोध किया, तब पुनः उनका क्रोध उद्दीप्त हो उठा। वे क्रुद्ध होकर स्वरूपकी ओर देखते हुए बोले—"एक खटिया और मँगायी जाय। जगदानन्दकी इच्छा है मुझसे विषय-भोग करवाने की। संन्यासीको भूमि-शयन उचित है। इस मुण्डित मस्तकके लिए खटिया, गद्दा, तकिया बहुत शोभाकी बात होगी।"

स्वरूप गोसाईं और कोई बात न बोल सके। महाप्रभुका क्रोध शान्त करनेके लिए कृष्ण-कथाका प्रसङ्ग उठाया। वे परम आनन्दपूर्वक अपने पहले विस्तरेपर लेटकर स्वरूपके मुखसे कृष्ण-कथा सुनते-सुनते सो गये। स्वरूप गोसाईं गोविन्दके ऊपर रातमें महाप्रभुकी देखभालका भार सौंपकर अपनी कुटीपर आकर सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने जगदानन्दको सारी बातें कह सुनायीं, सुनकर उनको मनमें मर्मान्तिक पीड़ा हुई। उन्होंने मनके दुःखको मन-हीमें रक्खा, किसीको कोई बात न कही। स्वरूप गोसाईं जगदानन्दके मुँहकी ओर देखकर जान गये कि उनके हृदयमें मानो अग्नि प्रज्वलित हो रही है, उसके भीतर एक आत्यन्तिक दुःखका प्रबल स्रोत बह रहा है।

उन्होंने तब अपने प्राणवल्लभके मन लायक शय्या सजानेका एक नया उपाय खोज निकाला। नाना प्रकारके केलेके सूखे पत्र इकट्ठे किये। उनको नखसे चीर-चीरकर अति सूक्ष्म किया। महाप्रभुके दो वहिर्वासके बीचमें केलेके इन सूक्ष्म सूत्रोंको बिछा दिया। और उसके द्वारा दो तोशक तैयार किया। एकको जमीनपर बिछा कर महाप्रभु शयन करेंगे और एकको ओढ़ लेंगे। क्योंकि उस समय शीतकाल था।

स्वरूप गोसाईंने महाप्रभुको जगदानन्द पण्डित कृत वह अभिनव तोशक दिखलायी, परन्तु इसपर भी उनका मन न माना, वे कुछ भी न बोले। अन्तमें कुछ न कहकर महाप्रभुने मानो डरते-डरते बड़ी अनिच्छासे वह सुख-शय्या अङ्गीकार की। इससे स्वरूप आदि भक्तोंके मनको सुख प्राप्त हुआ। किन्तु—

"जगदानन्देर भितर क्रोध बाहिरे महा दुःखी।
चै. च. अं. १३.१९

क्योंकि उनकी रुचिके अनुसार वह तोशक न था और महाप्रभुके उपयुक्त भी न था। अब उन्होंने महाप्रभुको और कुछ न कहा। मनके दुःखसे उनको हार्दिक व्यथा हुई।

महाप्रभुका तीव्र वैराग्य क्रमशः तीव्रसे तीव्रतर हो रहा था, उसकी कठोरता क्रमशः घनीभूत होती जा रही थी। जगदानन्दके लिए यह असह्य हो रहा था। वे बड़े सङ्कटमें पड़े। उनके मनमें कभी-कभी

होता था कि नीलाचलमें न रहें, आँखोंसे महाप्रभुकी यह दशा न देखें, यहांसे वृन्दावन चले जायँ। वृन्दाबनमें तीर्थयात्रा करनेका उनका मनोभाव न था, आंखोंसे महाप्रभुकी यह दशा न देखनी पड़ेगी, इसी हेतु उनको वृन्दावन जानेकी इच्छा हुई। परन्तु महाप्रभुको देखे बिना वे कैसे रह सकेंगे, यह भी उनको एक विषम चिन्ता थी। जगदानन्द पण्डित उभयतः सङ्कटापन्न होकर विषम चिन्ता-सागरमें निमग्न हो गये।

जगदानन्दका वृन्दावन जानेका उद्योग

वहुत कुछ सोच विचार करके जगदानन्दने निश्चय किया कि उनके लिए वृन्दावन भागना ही मङ्गलजनक है। पहले एक बार उन्होंने अपनी वृन्दावन दर्शनकी इच्छा महाप्रभुके सामने प्रकट की थी, परन्तु उस समय उन्होंने अनुमति नहीं दी थी। जगदानन्दके भाग्यमें वृन्दावन दर्शन लिखा न था। वे सोचते थे कि महाप्रभु जहाँ हैं वही उनके लिए वृन्दावन है, नीलाचल ही उनके लिए वृन्दावन है।" जहाँ तुम हो, वही वृन्दावन है।"—यही उनके मुँहसे निकलता था। अव महाप्रभुके विकट वैराग्यजनित दुःखसे अधीर होकर उन्होंने नीलाचल छोड़नेका सङ्कल्प किया। अचानक एक दिन उन्होंने महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"मुझे अनुमति दीजिये, मैं मथुरा जाऊँगा।" उनका हृदय अभिमान और क्रोधसे भरा था, परन्तु बाहरसे प्रकट नहीं कर रहे थे।

अन्तर्यामी प्रभुने जगदानन्दके मनके भावको जानकर कहा—"मेरे ऊपर क्रोध करके तुम मथुरा जाकर भिखारी बनोगे, तुम मुझको दोष दोगे, और लोग भी दोष देंगे, ऐसा नहीं होगा।" जगदानन्दने तब छल किया। महाप्रभुके दोनों चरण-कमल हृदयमें लगाकर अति कातर भावसे निवेदन किया, "ना प्रभु, तुम जो सोचते हो वैसी बात नहीं है। पहलेसे ही मेरी बड़ी इच्छा है कि एक बार श्रीवृन्दावनका दर्शन करके कृतार्थ हो जाऊँ, जीवन सफल करूँ। यह बात पहले भी तुमसे कही थी, उस समय तुमने अनुमति नहीं दी थी। अब कृपा करके अनुमति दो, मैं श्रीवृन्दावन दर्शन करके धन्य हो जाऊँ।" महाप्रभुने हँसकर उत्तर दिया—"नही, यह नहीं होगा।"

जगदानन्दने भीतर ही भीतर समझ लिया कि, महाप्रभु उनको सहज नहीं छोड़ेंगे, अपनी अन्तिम दशा दिखाकर छोड़ेंगे। मनके भावको भीतर ही रखकर, हृदयके दुःखको भीतर ही दबाकर वे बारम्बार महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर विनती करके श्रीवृन्दावन जानेकी आज्ञा मांगने लगे। परन्तु प्रभुने कदापि स्वीकर न किया।

महाप्रभुके इस अपूर्व लीला-रङ्गका मर्म अतिशय निगूढ़ है। वे जगदानन्दको श्रीवृन्दावन जानेकी अनुमति क्यों नहीं दे रहे हैं? व्रजके भजन साधन तत्त्वका थोड़ा ध्यानपूर्वक अनुशीलन करनेपर जाना जा सकता है कि व्रज-गोपिकागणकी अनुगामिनी हुए बिना कोई व्रजके मधुर भजनका अधिकारी नहीं हो सकता। जगदानन्द व्रज-गोपिकाका अनुगामी हुए बिना, व्रजके भजनकी शिक्षा ग्रहण किये बिना एकवारगी ब्रजेन्द्रनन्दनके चरणकी प्राप्तिकी वासना कर रहे हैं, व्रजगोपिकाकी प्रधान सखी ललिता स्वरूप दामोदरके रूपमें नीलाचलमें वर्तमान है। जगदानन्द उनके पास न जाकर सीधे महाप्रभुके पास वृन्दावन गमनके लिए अनुमति लेने आये हैं। इसी कारण धर्ममर्यादा रक्षक तथा धर्मनीति पालक श्रीगौराङ्ग प्रभुने उनको व्रज जानेकी अनुमति नहीं दी, और न दे सकते थे। मर्यादाका उल्लङ्घन महाप्रभु स्वयं कभी नहीं करते, और न अपने अनुगत निज-जनको करने देते हैं। विशेषतः भजन राज्यमें इस प्रकारका मर्यादाका उल्लङ्घन बड़ी विषम बात है।

महाप्रभुने जगदानन्दको व्रजकी भजन रीतिकी शिक्षा देनेके लिए यह लीला-रङ्ग प्रकट किया।

बहुत अनुरोध करनेपर भी जब जगदानन्दको प्रभुकी अनुमति नहीं मिली, तब वे स्वरूप दामोदर गोसाईंके शरणापन्न हुए। यही महाप्रभुकी इच्छा थी, और यही जगदानन्दको सर्वप्रथम करना था। व्रजके भजन राज्यमें व्रज गोपिकागण ही अधीश्वरी हैं। उनका अनुगत बननेपर व्रजके भजन राज्यमें प्रवेशाधिकार प्राप्त होता है। यही शिक्षा देनेके लिए महाप्रभुने यह रङ्ग किया है।

स्वरूप दामोदर गोसाईं पूर्वलीलाकी ललिता सखी हैं। महाप्रभुकी प्रेरणासे इस समय जगदानन्दके मनमें व्रजके प्रकृत भजन तत्त्वका रहस्य स्फुरित हो गया, प्रकृत भजन-पथकी अनुभूति हुई। महाप्रभुने कृपा करके उनको स्वरूप गोसाईंकी शरण लेनेकी शिक्षा दी। जगदानन्दने निष्कपट भावसे स्वरूप गोसाईंके चरणोंमें मनकी सारी बात व्यक्त कर दी। वे बोले—"गोसाईं! वृन्दावन जानेके पहलेसे ही मेरा मन बड़ा चञ्चल है। महाप्रभुकी अनुमतिके बिना कैसे जा सकता हूँ? उनके चरणोंमें आज्ञा माँगनेके लिए गया, उन्होंने आज्ञा नहीं दी। क्रुद्ध होकर उत्तर दिया, 'जाओ।' ऐसी अवस्थामें मेरा वृन्दावन जाना ठीक नहीं है। परन्तु मन नहीं मानता है, व्रज-लीलास्थली दर्शनके लिए मन बड़ा चञ्चल है, आप महाप्रभुके बड़े प्रियपात्र हैं, एकबार मेरे लिए उनके चरणोंमें निवेदन कर दें। मैं आपके चरण पकड़कर विनयपूर्वक कहता हूँ, आप मेरा यह कार्य करके मुझको सदाके लिए खरीद लें।" यही है सखीका अनुगमन, यही है व्रजकी मधुर भजन रीति।

स्वरूप दामोदर गोसाईंने जब महाप्रभुके पास जाकर जगदानन्दकी वृन्दावनके लिए व्याकुलताकी बात प्रकट करते हुए कहा—"जगदानन्दकी वृन्दावन जानेकी बड़ी इच्छा है। उसको अपनी अनुमति दे दो कि जैसे गौड़ देश माताको देखने जाते हैं, वैसे ही एकबार वृन्दावन भी हो आवें।"

महाप्रभु कलिके प्रच्छन्न अवतार थे, उनकी प्रच्छन्न लीलाके सारे प्रच्छन्न भाव थे। ललिता सखीरूप स्वरूप दामोदरने साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दनरूपी महाप्रभुके चरणोंमें जगदानन्दकी मनोकामना निवेदन की। यह निवेदन भी प्रच्छन्न भावमें किया। वे बोले, "जगदानन्द तो आपकी माताको देखनेके लिए बीच-बीचमें नवद्वीप जाते ही हैं, उसी प्रकार इस बार एकबार वृन्दावन भी देख न आवें।" अन्तर्यामी सर्वज्ञ सुचतुर महाप्रभुने स्वरूपकी इस चतुरतापूर्ण बातको सुनकर मुस्कराते हुए जगदानन्दको वृन्दावन जानेकी अनुमति दे दी। भीतरी बात किसीने किसीसे खोलकर नहीं कही।

महाप्रभुने तब जगदानन्दको पुनः पास बुलाया। जगदानन्दने आकर उनकी चरणवन्दना की, स्वरूप गोस्वामीने स्वयं महाप्रभुकी अनुमति उनको सुना दी। यह सुनकर वे चुप हो गये। महाप्रभुने जगदानन्दके मुँहकी ओर एकबार करुण नयनसे देखा, दोनोंकी आँखें मिलनेपर दोनों ही कुछ देर तक चुप सिर झुकाये रहे। महाप्रभुको छोड़कर जाना पड़ेगा यह सोचकर जगदानन्द परम विह्वल हुए। जगदानन्दको छोड़कर रहना होगा, यह सोचकर महाप्रभु भी परम विह्वल हुए। दोनोंकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगे। स्वरूप दामोदर गोसाईंने इसको विशेष रूपसे लक्ष्य किया, और समझ गये कि दोनों विशेष रूपसे विरह-कातर हो रहे हैं, किसीके मुखसे कोई बात नहीं निकल रही है।

चतुर चूड़ामणि प्रभु अपने मनका भाव छिपानेमें विलक्षण पटु थे। उन्होंने भाव संवरण

करके जगदानन्दको हाथ पकड़कर पास बैठाया, तथा वृन्दावनकी यात्राकी बात उठाकर उपदेश देने लगे। यह उपदेश भक्तवात्सल्यकी सीमा है।

महाप्रभुने पहले वाराणसी तक निःशङ्क होकर जानेकी बात कहकर आगेके श्रीवृन्दावनके मार्गकी डाकुओं द्वारा लूटे जानेकी विपत्तिकी बात सुनाकर और उससे उद्धारकी किसी क्षत्रियके साथ यात्रा करनेकी उपाय बतलाकर जगदानन्दको सबसे पहले सनातन गोस्वामीका सङ्ग करनेके लिए कहा। उसके बाद कहा कि व्रजवासियोंके प्रति सम्मानका भाव रखना, परन्तु उनके साथ एकत्र वास न करना, क्योंकि उनके आचार व्यवहार कृष्ण प्रीति और प्रेमचेष्टा सब अद्भुत हैं, तथा हमारे लिए अभिनव हैं, और अनुभवगम्य नहीं है। उनका अनुकरण करनेकी चेष्टा विफल हो जायगी। वह न तो अनुकरणीय है, न अनुभवगम्य ही है। दूरसे ही उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम करना। क्षण मात्रके लिए भी सनातन गोस्वामीका सङ्ग न छोड़ना, क्योंकि ऐसा सत्सङ्ग जीवनमें कहीं न मिलेगा। बहुत दिन वृन्दावनमें वास न करना, शीघ्र चले आना।

महाप्रभुकी इस बातके दो अर्थ किये जा सकते हैं। पहले तो वे जगदानन्दको बहुत प्यार करते थे, उनको छोड़कर रह नहीं सकते थे, अतएव ऐसी बात कह गये। दूसरी बात यह है कि वृन्दावन-वासकी अपेक्षा वृन्दावन-विरह-व्यथा सुखकर है। श्रीवृन्दावनमें शारीरिक वासकी अपेक्षा मानसिक वास ही परम श्रेय है। वृन्दावनमें वास करनेपर वृन्दावनवासीके प्रति वृन्दावन-प्रीतिके अभावके कारण अपराधकी संभावना है, परन्तु दूर रहकर वृन्दावनका ध्यान और चिन्तन करनेसे व्रजवासीके प्रति प्रीति बढ़ती है। मिलनकी अपेक्षा विरहमें अधिक सुख होता है, यह शास्त्र वचन है। इसी कारण जान पड़ता है कि महाप्रभुने स्वयं वृन्दावनमें वास नहीं किया।

अन्तमें उन्होंने जगदानन्दको आदेश दिया—

गोवर्द्धने ना चड़िह देखिते गोपाल।

चै. च. अं. १३.३८

गोवर्द्धन गिरिके ऊपर श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामीके द्वारा सेवित वाल-गोपाल मूर्त्ति विराजमान है, उसका दर्शन करनेके लिए जानेपर श्रीकृष्णरूपी गिरिराजको लाँघना पड़ता है। गोवर्द्धन गिरि श्रीकृष्णके कलेवर हैं, उनको लाँघकर श्रीवालगोपाल मूर्त्तिका दर्शन करनेको जगदानन्दको निषेध करके महाप्रभुने बतलाया कि श्रीकृष्णमूर्त्ति और गोवर्द्धन अभिन्न तत्त्व हैं। महाप्रभुकी इच्छा एकबार और श्रीवृन्दावन जानेकी थी, अतएव अन्तमें जगदानन्दसे कहा—

'आमिह आसतेछि' कहियो सनातने।

चै. च. अं. १३.३९

यह सब बातें कहकर भक्तवत्सल महाप्रभुने जगदानन्दको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ करते हुए विदा किया। जगदानन्दने प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनकी चरणवन्दना की। स्वरूप आदि भक्तवृन्द विदाके समयके गौर-जगदानन्दके लीलारङ्गको देखकर आकुल होकर रो पड़े। क्योंकि महाप्रभुके कमलनयनमें झर-झर प्रेमाश्रुधार बह रही थी, जगदानन्दका विरह उनको असहनीय हो रहा था, भक्तगण को वह विलक्षण लगा।

जगदानन्दको उन्होंने किस रूपमें देखा, यह भी सुनिये। महाप्रभुसे विदा लेकर हाथ जोड़कर जगदानन्द आँगनमें खड़े हैं, आँखें भरकर अपने प्राणवल्लभके अपरूप रूपको निहार रहे हैं, और अजस्र आँसू बहा रहे हैं, उनकी आँखें पलकविहीन हो रही हैं, उनके निर्निमेष नयन मानो महाप्रभुके चन्द्रवदनमें एकवारगी लिप्त हो गये हैं, उनकी नयनाश्रुधारासे भूतल सिक्त हो रहा है। वे मानो

महाप्रभुका आँगन नहीं छोड़ पा रहे हैं। बहुत समय इसी प्रकार बीत गया। भक्तवृन्द चुपचाप भक्त और भगवान्‌के इस अपूर्व प्रेमलीला-रङ्गको देख रहे हैं और सोचते हैं—

जगदानन्देर सौभाग्येर तेहइ उपमा।

चै. च. अं. १२.१५२

महाप्रभु अब तक सिर नीचा किये रहे। अब उन्होंने एकबार सजल करुण नयनसे जगदानन्दके मुँहकी ओर देखा, जगदानन्दने लज्जासे मुँह फेर लिया, तथा अपना भाव संवरण किया। विदाईके अन्तिम क्षण तक जगदानन्दने अपने स्वभावसिद्ध भावकी रक्षा की। उसके दूसरे दिन एक-एक करके सब भक्तोंसे विदा लेकर वनके मार्गसे वृन्दावनकी यात्रा की।

महाप्रभुको छोड़कर जगदानन्दकी यह वृन्दावन यात्रा निगूढ़ रहस्यसे पूर्ण है। महाप्रभुके दुःख और कष्टको देखनेमें असमर्थ होकर उन्होंने नीलाचल त्याग किया, उनकी सेवा त्याग दी। यह त्याग वस्तुतः त्याग नहीं है, यह प्रीतिकी पराकाष्ठा है, प्रेम-भक्तिकी चरमावस्था है। इस वृन्दावन यात्राके समय पण्डित जगदानन्दके मनकी अवस्था कैसी थी, तथा वृन्दावन यात्रा कैसी हुई, इसको उन्होंने अपने 'प्रेम-विवर्त्त' नामक ग्रन्थमें स्वयं ही लिपिवद्ध किया है। वह अपूर्व और मधुर पद यहाँ उद्धृत किया जाता है। कृपालु पाठकवृन्द इसका आस्वादन करें।

गौराङ्ग तोमार, चरण छड़िया,
चलिनु श्रीवृन्दावने।
पूर्वलीला तब, देखिब बलिया,
हइल आमार मने।।
केन सेइ भाव, हइल आमार,
एखन काँदिया मरि।
तोमारे ना देखि, प्राण छाड़ि जाय,
ना जानि एबे कि करि।।
ओ राङा चरण, मम प्राण धन,
समुद्र बालिते राखि।
कि देखिते आइनु, निज माथा खाइनु,
उड़ु उड़ु प्राणपाखि।।
जत चलि जाइ, मन नाहि चले,
तबू जाइ जेद करि।
प्रेमेर विवर्त्त, आमार नाचाय,
ना बूझिया आमि मरि।।
गौराङ्गेर रङ्ग, बूझिते नारिनु,
पड़िनु दुःख-सागरे।
आमि चाइ जाहा, नाहि पाइ ताहा,
मन जे केमन करे।।
गौराङ्गेर तरे, प्राण दिते जाइ,
ना हय मरण तबू।
मरिब बलिया, पड़िया समुद्रे,
खाइ मात्र हाबू डुबू।।
से चन्द्रवदन, देखिबार लोभे,
शीघ्र उठि सिन्धु तटे।
पुन नाहि देखि, प्राण उड़ि जाय,
चलि पुन टोटा वाटे।।
गोपीनाथाङ्गने, देखि गोरामुख,
पड़ि अचेतन हञा।
पण्डित गोसांञि, मोरे लञा राखे,
देखि पुनः संज्ञा पाञा।।
गौर गदाधर, वसिया दुजने,
बलेन आमार कथा।
अमनि काँदिया, जाइ गड़ागड़ि,
ना विचारि यथा तथा।।
क्षणेक विरह, सहिते ना पारि,
गौर मोर हृदे नाचे।
मरिते ना देय, बाँचिले कोन्दल,
किसे मोर प्राण वाँचे।।
हेन अवस्थाय, गौर पद छाड़ि,
मोर वृन्दावन आसा।

ए बुद्धि हइल, केन नाहि जानि,
इह—परकाल नाशा ॥
आज्ञा लइनु जाइते, आज्ञा ना पालिले,
ताते हय अपराध ।
गौराचाँद मुख, ना देखिया मरि,
सब दिके मोर बाध ॥
गोरा प्रेम जार, शङ्कट ताहार,
प्राण लजा टानाटानि ।
गदाधर गणे, एइ त दुर्दशा,
सबे करे काणाकाणि ॥

एक और पदमें पण्डित जगदानन्दने महाप्रभुकी उक्तिके द्वारा उनके भक्तविरहका वर्णन किया है। उसमें यह बतलाया है कि उनकी वृन्दावन यात्रा बिडम्बना मात्र है। यथा,

भाइ रे वृन्दावने जाओया आर हलो ना ।

गोरामुख ना देखिया, गोरारूप धेयाइया,
पथ भूले जाइ अन्य देश ।
सेखान हइते फिरि, पुन यदि धीरि धीरि,
पुन आसि देखि से प्रदेश ॥
एइ रूपे कत दिने, जाब आमि वृन्दावने,
ना जानि कि हबे दशा मोर ।
वृक्षतले वसि वसि, काटि आमि अहर्निशि,
कभू मोर निद्रा आसे घोर ॥
स्वप्ने बहुदूर गिया, सिन्धुतटे प्रवेशिया,
देखि गोरार अपूर्व नर्तन ।
गदाधर नाचे सङ्गे, भक्तवृन्द नाचे रङ्गे,
गाय गीत अमृत वर्षण ॥
नृत्य गीत अवसाने, गोरा मोर हात टाने,
बले—"तुमि क्रोधे छाड़ि गेले ।
आमार कि दोष बल, तब चित्त सुचञ्चल,
व्रजे गेले आमा हैथा फेले ॥
आइस आलिङ्गन करि, तब वक्षे वक्ष धरि,
छाँड़ो मुजि चित्तेर विकार ।
मध्याह्ने करिया पाक, देह मोरे अन्न शाक,
क्षुन्निवृत्ति हउक आमार ॥
छाड़िया जगदानन्दे, मोर मन निरानन्दे,
भोजनादि लैल कत दिन ।
कि बूझिया गेले तुमि, दुःखेते पडिनु आमि,
जगा मोर सदा दयाहीन ॥
शीघ्र व्रज निरखिया, आइस तुमि सुखी हजा
मोरे देह शाकान्न व्यञ्जन ।
तबेत बाँचिव आमि, ताते सुखी हबे तुमि,
क्रोधे मोरे ना छाड़ कखन ॥"
निद्रा भाङ्गि देखि आमि, बहुदूर व्रजभूमि,
निकटेते जाह्नवी पुलिन ।
आहा ! नवद्वीप-धाम, नित्य गौर-लीला ग्राम,
व्रजसार अति समीचीन ॥
आनन्देते मायापुरे, प्रवेशिनु अन्तःपुरे,
नमि आमि आइ-माता-पद ।
गौराङ्गेर कथा बलि, शीघ्र आइलाम चलि,
देखि नवद्वीप सुसम्पद ॥
भाविलाम वृन्दावन, करिलाम दरशन,
आर केन जाब दूर देश ।
गौर दरशन करि, सब दुःख परिहरि,
छाड़ि दिव बिरहज क्लेश ॥

यह जगदानन्द पण्डितका नवद्वीप दर्शनमें व्रजदर्शनका भाव उनकी गौरांगैकनिष्ठताका पूर्ण परिचायक है। जिस प्रकार अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन श्रीगौराङ्ग सुन्दर हैं, उसी प्रकार अभिन्न वृन्दावन उनकी जन्म लीला स्थली श्रीनवद्वीप धाम है। पण्डित जगदानन्दने एक और पदमें लिखा है—

"षोल क्रोश नवद्वीपे वृन्दावन मानि ।"
यशोदानन्दने आर शचीर नन्दने ।
जे जन पृथक् देखे से ना मरे केने ॥

नवद्वीपे ना पाइल जेइ वृन्दावन।
वृथा से तार्किक केन धरये जीवन।।

प्रेमविवर्त्त।

जगदानन्दकी श्रीगौराङ्ग-प्रीतिकी उपमा नहीं है। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके सर्वप्रधान पार्षद श्रीसनातन गोस्वामीने पण्डित जगदानन्दकी अद्भुत गौरांगैकनिष्ठताका विशेष परिचय पाकर आश्चर्य-चकित होकर उनसे कहा था—

ऐछे चैतन्य-निष्ठा योग्य तोमाते।
तुमि ना देखाइले, इहा शिखिन केमते।।

चै. च. अं. १३.५८

जगदानन्द व्रजमें

जगदानन्द वृंन्दावन जाकर महाप्रभुके आदेशानुसार सनातन गोस्वामीके संग रहने लगे। सनातन गोस्वामी मधुकरी करके जीवन धारण करते थे, और जगदानन्द देवालयमें अपने हाथसे पाक करके महाप्रभुको निवेदन करके प्रसाद पाते थे। परन्तु दोनों आदमी एक ही साथ रहते थे।

एक दिन पण्डित जगदानन्दने सनातन गोस्वामीको निमन्त्रित किया। उन्होंने नित्यकृत्य समाप्त करके देवालयमें पाक प्रारम्भ किया। महावनमें मुकुन्द सरस्वती नामक एक अन्य सम्प्रदायके संन्यासी रहते थे। उन्होंने सनातन गोस्वामीको एक गेरुआ रङ्गका बहिर्वास दिया था। सनातन गोस्वामी वह बहिर्वास मस्तकपर बाँधकर जहाँ जगदानन्द पाक कर रहे थे, वहाँ आकर खड़े हो गये। महाप्रभु अरुण वस्त्र परिधान करते थे, सनातनके मस्तकपर अरुण वर्णका बहिर्वास देखकर जगदानन्दके मनमें हुआ कि यह वस्त्र प्रभुदत्त है तथा उनके श्रीअङ्गमें सेवित प्रसादी वस्तु है। यह बात याद आते ही वे परम प्रेमाविष्ट हो गये। पश्चात् सुस्थिर होकर सनातन गोस्वामीसे पूछा—"गोसाईं! महाप्रभुका प्रसाद यह गेरुआ वस्त्र कहाँ पाये?"

सनातन गोस्वामीने तब उत्तर दिया—"यह महाप्रभुका प्रसादी वस्त्र नहीं है, मुकुन्द सरस्वतीने मुझको दिया है।" यह बात सुनकर एकनिष्ठ गौरभक्तराज जगदानन्दका हृदय क्रोध और दुःखसे जर्जर हो गया। वे क्रोधसे आग बबूला हो गये। उस समय वे रसोई बना रहे थे, भातकी हाँड़ी उठाकर सनातन गोस्वामीको मारनेके लिए तैयार हो गये। उनको बहुत अपशब्द कहने लगे। उस समय उनको भले-बुरेका ज्ञान नहीं रह गया था। सनातन गोस्वामी महाप्रभुके तत्कालीन सर्वप्रधान पार्षद भक्त थे, वे उनके द्वारपर आज निमन्त्रित अतिथि थे। महाप्रभुका आदेश था कि सनातनका विशेषरूपसे सम्मान करना। यह सारी बातें जगदानन्द एकबारगी भूल गये।

सनातन गोस्वामी पण्डित जगदानन्दको पहलेसे ही जानते थे। उनके स्वरूप और स्वभावको भी विशेष रूपसे जानते थे। क्यों जगदानन्दके मनमें इतना भयानक क्रोध हुआ है, यह भी वे जानते थे। अतएव उन्होंने महा स्तम्भित और लज्जित भावमें अपराधीके समान सिर नीचा कर लिया। जगदानन्द तब भातकी हाँडी चूल्हे पर रखकर क्रोधित होकर उनकी ओर ताककर कहने लगे—"तुम महाप्रभुके प्रधान पार्षद हो, तुम्हारे समान उनका और कोई प्रिय नहीं है। तुम दूसरे संन्यासीका वस्त्र सिर पर धारण करते हो, इसको कौन सहन कर सकता है?"

तव सनातन गोस्वामी जगदानन्दके क्रोधाविष्ट वदनकी ओर देखकर स्थिरतापूर्वक आदर भावसे बोले—"पण्डित महाशय! महाप्रभुका तुम्हारे समान और कोई प्रिय नहीं है। तुम्हारेमें ऐसी चैतन्य-निष्ठा योग्य ही है। तुम इस प्रकार मार्ग-दर्शन न करो तो हम लोग कैसे सीख पायँगे।

जिस वस्त्रुको देखनेके लिए यह वस्त्र मैंने मस्तक पर बाँधा, वह अपूर्व प्रेम प्रत्यक्ष देखा। वैष्णवके लिए रक्त वस्त्र धारण करता उचित नहीं है। इसका कोई प्रयोजन नहीं है, इसको किसीको दे दिया जायगा।" (चै. च. अं. १३.५७.६०)

जगदानन्द महाप्रभुके प्रसादके सिवा अन्य प्रसाद ग्राह्य नहीं करते थे—यह उनकी एकनिष्ठ भक्तिका परिचायक था। महाप्रभुके प्रधान पार्षद सनातन गोस्वामीको अन्य सम्प्रदायके संन्यासीका वस्त्रप्रसाद सिर पर बाँधे देखकर वे अपने क्रोधको संवरण न कर सके। उन्होंने सोचा कि इससे सर्वेश्वर महाप्रभुको हीन बना दिया गया। इसीकारण वे महाप्रभुके सर्वप्रधान पार्षदको भी लाञ्छित करनेसे न चूके। पण्डित जगदानन्दकी गौराङ्गप्रेमकी गम्भीरता कितनी थी, उनके इस कार्यसे ही कृपालु पाठक वृन्द इसका पता लगाले सकते हैं।

सनातन गोस्वामीको उन्होंने निमन्त्रित किया था, अतिथिके सारे अपराध क्षम्य हैं। गौराङ्ग प्रेमके प्रबल प्रतापमें जगदानन्द पण्डित अपने कर्त्तव्यको भूल गये। भातकी हाँड़ीसे निमन्त्रित अतिथिको मारनेके लिए उद्यत हो गये। सनातन गोस्वामीका अपराध सामान्य ही था, परन्तु जगदानन्दने उनको अति गुरुतर भावमें दण्ड दिया।

सनातन गोस्वामीका यह कार्य छलमात्र था, यह उनकी अपनी उक्तिसे स्पष्ट ज्ञात होता है। उन्होंने कहा कि जिसको देखनेके लिए यह वस्त्र सिर पर बाँधा, उस अपूर्व गौराङ्ग-प्रेमलीलारङ्गको अपनी आँखों देखकर कृतार्थ हो गया। उन्होंने जगदानन्दकी गौराङ्गैक निष्ठताकी बात लोगोंके मुखसे सुनी थी, आज उसे प्रत्यक्ष देखकर अपनेको धन्य माना, और निष्कपट भावसे स्वीकार किया कि यह उन्होंने जगदानन्दसे शिक्षा ग्रहण करनेके लिए छल-मार्ग अवलम्बन किया था। सनातन गोस्वामीको महाप्रभुने साधन-भजनके सम्बन्धमें सारी शिक्षा दी थी, केवल यही शिक्षा बाकी थी। उनकी प्रेरणासे जगदानन्दने आज उनके सर्व प्रधान पार्षदको यह शिक्षा प्रदान की। सनातन गोस्वामीकी शिक्षा आज पूर्ण हो गयी। अतएव उन्होंने प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर जगदानन्दसे कहा,

तुमि ना दिखाइले इहा शिखिब केमते।
चै. च. अं. १३.४८

इस कार्यसे जगदानन्द पण्डितको उन्होंने गौराङ्गैकनिष्ठा-भक्ति-दाता गुरुके रूपमें स्वीकार किया। गौरभक्त महापुरुषोंमें जगदानन्दका अति उच्च आसन है। उनके साथ महाप्रभुके लीलारङ्ग अनन्त हैं। यह मधुमय लीला विस्तार करनेकी शक्ति जीवाधम ग्रन्थकारमें नहीं है। जो कुछ महाप्रभुने कृपा करके केश पकड़कर लिखाया, कृपालु गौर-भक्तवृन्द इसको सूत्ररूपमें ग्रहण करेंगे। महाप्रभुके शक्तिशाली कृपापात्र भाग्यवान् योग्य लीला-लेखकगण उनकी यह मधुर लीला और भी विस्तार-पूर्वक लिखेंगे, जिसे पढ़कर कलिग्रस्त जीवका भव-सन्ताप दूर होगा। ठाकुर नरहरिने लिखा है —

"गौर लीला दरशने, बाञ्छा हय मने-मने,
भाषाय लिखिया सब राखि।
मुञ्ित अति अधम, लिखिते ना जानि क्रम,
केमन करिया ताहा लिखि॥
किछु किछु पद लिखि, यदि केह इहा देखि,
प्रकाश करये प्रभु लीला।
नरहरि पाबे सुख, घूचिबे मनेर दुःख,
ग्रन्थ गाने दरविरे शिला॥"

जगदानन्द नीलाचलमें

जगदानन्द महाप्रभुके आदेशानुसार अतिशीघ्र वृन्दावनसे नीलाचल लौट आये। उन्होंने जो

सङ्कल्प किया था कि, अब नीलाचल नहीं लौटूँगा, उस सङ्कल्पकी रक्षा वे नहीं कर सके। महाप्रभुकी विरहाग्नि उनके हृदयमें दहक उठी। अपने प्राण-वल्लभके मुखचन्द्रको देखे उनको बहुत दिन हो गये थे, वे एक दण्ड भी वृन्दावन न रुक सके। आहार-निद्रा त्याग करके वे अति शीघ्र नीलाचल लौट आये। कविराज गोस्वामीने इसी कारण लिखा है कि—

शीघ्र चलि नीलाचले गेला जगदानन्द।
चै. च. अं. १३.७०

पण्डित जगदानन्दने नीलाचल पहुँचते ही सर्व प्रथम महाप्रभुकी चरण वन्दना करके उनके चन्द्रवदनका दर्शन किया। बहुत दिनोंके बाद उनका दर्शन करके वे मनमें परम आनन्दित हुए। महाप्रभु भी जगदानन्दको पाकर प्रेमानन्दमें उत्फुल्ल हो उठे। प्रेमालिङ्गन प्रदान करते हुए उनको वक्षःस्थलसे लगाकर हृदयको शान्त किया। भक्त जिस प्रकार भगवान्‌के विरहमें कातर था भगवान् उसकी अपेक्षा कहीं अधिक भक्त-विरहमें कातर थे। यही भाव महाप्रभुने इस लीलारङ्गमें दिखलाया। जगदानन्द प्रभुके चरणोंमें लम्बायमान होकर पड़ गये और अजस्त्र आँसू बहाने लगे। महाप्रभु बारंबार श्रीहस्तसे उनको उठाकर प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ करने लगे। जगदानन्द भी प्रेमावेगमें बारंबार प्रभुके चरणोंमें गिरकर प्रेमाश्रु वर्षण करके उनके चरणकमलको धोने लगे। भक्तगण महाप्रभुके इस प्रेमलीलारङ्गका मनोरम दृश्य देखकर आनन्दसे उच्च हरिध्वनि करने लगे। विरहके बाद भक्त और भगवान्‌का मधुमिलन कैसा मधुमय होता है, यह प्रत्यक्ष दर्शन करके आज उन्होंने अपनेको धन्य माना।

जगदानन्द पण्डित महाप्रभुके लिए श्रीवृन्दावनसे भेंट लाये थे। प्रेमावेश और प्रेमावेगमें उनको देना भूल गये। अब उनको याद आया। वहिर्वासकी एक पोटली खोलकर उन्होंने महाप्रभुके सामने रख दी। उसमें श्रीरासमण्डलका रज था, राधारानीका प्रसादी वस्त्र था, निधुवनकी मृत्तिका थी, और भी क्या-क्या न था, वृन्दावनका सुमिष्ठ पीलू फल भी था। महाप्रभुने प्रेमानन्दमें व्रजकी रजके लिए हाथ फैलाया और प्रेमगद्‌गद स्वरमें बोले, "जगदानन्द ! सबसे पहले मुझको कुछ व्रजका रज दो, मैं सिर पर धारण करके कृतार्थ हो जाऊँ।" जगदानन्दके कानोंमें यह बात नहीं पहुँची। उन्होंने झटपट सिल लोढ़ा लेकर उसके द्वारा पीलू फलको बाँटकर महाप्रभुको खानेके लिए दिया। सर्वज्ञ महाप्रभुने जगदानन्दके मनके भावको समझकर कर अपने हाथसे कुछ व्रज रज उठा लिया और प्रेमानन्दमें उसे सिर पर धारण किया, कुछ श्रीवदनमें भी लगा लिया। उसके बाद जगदानन्दके दिये हुए पीलू फलको खाकर अपने प्रेमिक रसिक भक्तकी मनस्तुष्टि की। उसके बाद उपस्थित भक्तोंने वृन्दावनके उस पीलूफलको जो जानते थे, उनने चूसके खाया और जो नहीं जानते थे, उनने चबा लिया, जिससे उनके मुँहमें छाले हो गये और लार गिरने लगी।

लीलामय महाप्रभु इस प्रकार अपने रसिक भक्तराज जगदानन्दको लेकर अपूर्व प्रेमलीला रसरङ्गमें मत्त हो गये। उनको पाकर आज प्रभुके आनन्दकी सीमा न रही। नीलाचल वासी भक्तवृन्द जगदानन्दको बहुत दिनके बाद देखकर प्रेमानन्द रसमें निमग्न हो गये।

जगदानन्दजीके द्वारा रचित 'प्रेमविवर्त्त' श्रीग्रन्थ प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है। वे पदकर्त्ता भी थे। उनके पद बड़े ही मधुर हैं। उनके रचे हुए मधुर रसका गौराङ्ग विषयक एक पद कृपालु पाठक वृन्दके आस्वादनके लिए यहाँ उद्धृत किया गया है।

श्रीराग।

चाँद निङ्गाड़ि केवा, अमिया छानल रे,
ताहे माजल गोरा मुख।
मोतिम दरपण, सिन्दुरे माँजल,
हेरइते कतई सुख॥
भूतले कि उयल चाँद॥
मदन बेयाध कि, नारी हरिणी,
पातल नदियामें फाँद॥
गेओ मझु धरम, गेओ मझु सरम,
गेओ मझु कुलशीलमान।
गेओ नझु लाज भय, गुरु गञ्जना चाय,
गोरा बिनु अथिर पराण॥
गौर-पोति हम, भेल गरबित,
कुल माने आनल भेजाइ।
जगदानन्द कह, धनि-धनि तुमा लेह,
मारि जाङ् लैया बलाई॥
—गौर पद तरङ्गिणी।

यह नदिया-नागरी भावका पद है, यह मधुर रसका अजस्त्र स्त्रोत है। इसके मूल प्राचीन गौराङ्ग पार्षदगण हैं। नदियानागरी भाव नया नहीं है, यह प्राचीन सिद्ध भक्त महाजनगणका भाव है, यह वैष्णव भजन राज्यमें श्रेष्ठतम भजनपथ है। अव किस साहस पर इन सब महाजनी पदोंको अमर्यादित करके कोई-कोई कहते हैं कि नदिया नागरी भावके पद आधुनिक हैं, और यह भाव शास्त्र-युक्तिविरुद्ध है। ठाकुर नरहरि, पण्डित जगदानन्द, वासुदेव घोष आदि प्राचीन महाजनोंके भजनपथका अनुसरण करके यदि नरकमें भी जाना पड़े तो वह भी मंजूर है। तथापि हम किसी प्रकार भी उनके मतका अनादर नहीं कर सकते। गौराङ्ग नागर अपने नदिया-नागरी-भाव-सिद्ध रसिक भक्तोंके प्राणबल्लभ थे। वे गदाधरके प्राणनाथ थे, नरहरिके चितचोरा थे, जगदानन्दके प्राणबल्लभ थे। वासुघोषके प्राणपति थे। महाजन कवि कृष्णदासने गाया है—

"स्मर रे मन गौरचन्द्र नागर वनोयारी।"

यह नागरत्व ही उनकी स्वयं भगवत्ताका प्रकृष्ट प्रमाण है।

उनचासवाँ अध्याय

नीलाचलमें नदियाके भक्तोंके साथ प्रभुकी इष्टगोष्ठी और भोजनानन्द

शत जनेर भक्ष्य प्रभु दण्डेके खाइल ।
आर क्छिु आछे ? बलि गोविन्दे पूछिल ।।

चै. च. अं. १०.१२४

पहले कहा जा चुका है कि नदियाके भक्तवृन्द रथयात्राके उपलक्ष्यमें प्रभुका दर्शन करके नीलाचलमें आया करते थे, वे वहाँ रहकर चातुर्मास्य करके नदिया लौट जाया करते थे। उनमें श्रीअद्वैत और नित्यानन्द प्रभु भी थे। महाप्रभुने श्रीनित्यानन्दचन्द्रको नीलाचल आनेसे मना किया था, परन्तु फिर भी वे आते थे। अनुरागी भक्त विधि-निषेध मानकर नहीं चल सकते। महाप्रभुके दर्शनके हेतु ही उन्होंने निषेधाज्ञाका उल्लङ्घन किया था। इसमें अनुरागी भक्तगण अपनेको दोषी नहीं मानते। इसका दृष्टान्त है कि श्रीकृष्णने व्रजगोपिकाओंको रास-स्थलीसे घर चले जानेका उपदेश दिया था, परन्तु वे कृष्णानुरागिणी व्रज-युवतीवृन्द कृष्णका सङ्ग त्याग कर घर नहीं गयीं, और अनायास श्रीकृष्णकी आज्ञाकी अवहेलना करके रास-स्थलीमें रह गयीं। शास्त्र कहते हैं—

आज्ञा पालने कृष्णेर जतेक परितोष ।
प्रेमे आज्ञा भाङ्गिले हय कोटिगुण सुखपोष ।।

चै. च. अं. १०.७

रागानुरागीका भजन-पथ ही इसी प्रकारका है। अतएव श्रीनित्यानन्द प्रभु महाप्रभुकी आज्ञाकी सहज ही अवहेलना करके उनका दर्शन करनेके लिए नीलाचल आये थे। नदियाके बहुतसे भक्त सपत्नीक आये थे। श्रीअद्वैतगृहिणी सीतादेवी, श्रीवासगृहिणी मालिनीदेवी, श्रीचन्द्रशेखर आचार्यकी गृहिणी सर्वजया देवी, श्रीशिवानन्दगृहिणी, श्रीमुरारि-गृहिणी आदि अनेक नारायणी शक्ति वैष्णवगृहिणी पति-पुत्रके साथ नीलाचल महाप्रभुका दर्शन करने आयी थी। वासुदेवदत्त, वासुदेव घोष, गदाधर पण्डित, श्रीमान् सेन, श्रीमान् पण्डित, मुरारि गुप्त, मुरारि पण्डित, गरुड़ पण्डित, भगवान् पण्डित, बुद्धिमन्त खाँ, सञ्जय, पुरुषोत्तम पण्डित, शुक्लाम्बर तथा नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी आदि नदियाके सब भक्तगण नीलाचल आये थे। कुलीन ग्रामवासी भक्तगण और खण्डवासी नरहरि सरकार गोष्ठीके सहित आये थे। महाप्रभुके एकान्त भक्त राघव पण्डित अपनी भक्तिमती बहिन दमयन्तीके साथ महाप्रभुके लिए नाना प्रकारकी खाद्य सामग्री सजाकर ले आये थे। उन महापुरुषका निवास स्थान पानिहाटी ग्राममें था।

महाप्रभुने जब नीलाचलसे जननी और जन्मभूमिका दर्शन करनेके लिए नवद्वीपमें शुभागमन किया था, तब उन्होंने एक दिन राघव पण्डितके घर विश्राम करके उनको कृतार्थ किया था। राघव पण्डितके घर ही गदाधर दास, पुरन्दर पण्डित परमेश्वर दास तथा राघवके शिष्य मकरध्वज कर-के साथ महाप्रभुका प्रथम मिलन हुआ था। श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुने राघवके घरपर तीन महिना वास करके सगोष्ठी उनको धन्य किया था।

राघव पण्डितकी विधवा बहिन, परम भक्तिमती दमयन्ती देवीकी गौराङ्ग प्रीति अतुलनीय थी। वे अपने हाथसे नाना प्रकारके खाद्य द्रव्य प्रस्तुत करके एक झाली भरकर देती। उसको राघव पण्डित अपने सिरपर लेकर प्रतिवर्ष महाप्रभुके लिए नीलाचल ले जाते थे। उसे महाप्रभु बारहों महीने भोजन करते थे राघवकी झालीका नाम न जानता हो ऐसा कोई भी गौरभक्त नहीं होगा।

दमयन्तीकी भोजन सामग्री

इस वर्ष राघवके आदेशसे दमयन्ती देवी दूनी भोजन सामग्री परम यत्नपूर्वक तैयार करके बहुत सुन्दरतापूर्वक झाली सजाकर दी थी। तीन आदमी बारी-बारी उस झालीको ढोकर लाये थे। मकरध्वज कर-के ऊपर इस झालीके देखभालका सारा भार था। वह उस झालीको प्राणसे भी प्रियतम वस्तु समझकर अतिशय यत्नपूर्वक पानिहाटिसे नीलाचल ले आये थे।

उस झालीमें महाप्रभुके लिए कौन-कौन खाद्य वस्तु थी, इसका विवरण कविराज गोस्वामीके शब्दोंमें सुनिये—

नाना अपूर्व भक्ष्यद्रव्य प्रभुर योग्य भोग।
वत्सरेक प्रभु करिबेन उपयोग॥
आम्र-कासुन्दी, आदा-कासुन्दी,
झाल-कासुन्दी नाम।
नेम्बू आदा आम्र-कोलि
विविध विधान॥
आमसी आम्रखण्ड, तैलाम्र आमता।
यत्न करि गुण्डि करि पुराण सुकुता॥
सुकुता बलिया अवज्ञा ना करिह चित्ते।
सुकुताय जे सुख प्रभुर, ताहा नहे पञ्चामृते॥
भावग्राही महाप्रभु स्नेह मात्र लय।
सुकुतापाता कासुन्दीते महासुख पाय॥
मनुष्य बुद्धि दमयन्ती करे प्रभुर पाय।
'गुरु भोजने उदरे कभु आम हैञा जाय॥
सुकुना खाइले सेइ आम हइबेक नाश।'
एइ स्नेह मने भावि प्रभुर उल्लास॥
धनिया-महूरी-तण्डुल चूर्ण करिया।
लाड्डू बान्धियाछे चिनि पाक करिया॥
शुण्ठीखण्ड नाड्डू आर आम पित्त हर।
पृथक्-पृथक् बान्धि वस्त्रेर कोथलीभितर॥
कोलिशुण्ठी कोलिचूर्ण कोलिखण्ड* आर।
कत नाम लैब, शत प्रकार आचार॥
नारिकेलखण्ड नाड्डू आर नाड्डू गङ्गाजल।
चिरस्थायी खण्डविकार करिल सकल॥
चिरस्थायी क्षीरसार मण्डादि विकार।
अमृतकर्पूर आदि अनेक प्रकार॥
शालिकाँचुटि-धान्येर आतप-चिड़ा करि।
नूतन वस्त्रेर बड़ खली सब भरि॥
कथोक चिड़ा हुडुम करि घृतेते भाजिया।
चिनि पाके नाड्डु कैल कर्पूरादि दिया॥
शालि-तण्डुल भाजा चूर्ण करिया।
घृतसिक्त चूर्ण कैल चिनि पाक दिया॥
कर्पूर मरिच एलाचि लवङ्ग रसवास।
चूर्ण दिया लाड्डू कैल परम सुवास॥
शालि धान्येर खै पून घृतेते भाजिया।
चिनि पाके उखड़ा कैल कर्पूरादि दिया॥
फूट कलाइ चूर्ण करि घृते भाजाइल।
चिनिपाके कर्पूरादि दिया लाड्डू कैल॥
कहिते ना जानि नाम ए जन्मे जाहार।
ऐछे नाना भक्ष्य द्रव्य सहस्र प्रकार॥

चै. च. अं. १०.१३-३१

* कुल चूर्ण, कुल और चीनी मिश्रित खाद्य द्रव्यको कोलिखण्ड कहते हैं।

महाप्रभुकी अनुरागिणी भक्ता दमयन्ती देवी अपने भ्राताकी आज्ञासे ये सब अति उत्तम भक्ष्यद्रव्यसंभार लेकर उनके साथ नीलाचल आयी थी। गोविन्द महाप्रभुके मर्मी भक्त, विश्वासी भृत्य और भण्डारी थे। ये सब यत्नपूर्वक लाये हुए भक्ष्यद्रव्य उनके पास रखकर भक्तगण निश्चिन्त हो जाते थे। गोविन्द समय और सुयोग देखकर नदियाके भक्तोंके दिये हुए भक्ष्यद्रव्य महाप्रभुको भोजन कराते थे। भक्तगणको गोविन्दके द्वारा सब समाचार मिलता था कि भक्तवत्सल महाप्रभुने किस दिन किसका कौन द्रव्य स्वीकार किया।

अन्यान्य भक्तोंके भक्ष्य द्रव्य—सबका एक बारमें भक्षण

राघवकी झालीके अतिरिक्त महाप्रभुके भण्डारमें अन्यान्य भक्तोंके दिये हुए नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ स्थान-स्थानपर सजाकर रक्खे गये हैं। उनकी इच्छा हो तो कुछ-कुछ स्वीकार करते हैं, इच्छा न होनेपर गोविन्दसे कहते हैं, "आज रहने दो।" गोविन्द महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन करते हैं कि अमुक भक्तने अमुक पदार्थ भेजा है, अमुक भक्त यह लाया है, भक्तका नाम लेकर महाप्रभुको भोजन करनेके लिए अनुरोध करते हैं, परन्तु वे भोजन नहीं करते हैं, केवल यही कहते हैं कि—"रक्खो-रक्खो।" इस प्रकार उनका भाण्डार घर परिपूर्ण हो गया, सैंकड़ों आदमियोंके भोजनकी सामग्री इकठ्ठी हो गयी।

सब परम आग्रह पूर्वक गोविन्दसे पूछते हैं, "गोविन्द ! क्या महाप्रभुने मेरे दिये हुए भोज्यपदार्थमें-से कुछ भी ग्रहण किया है ?" सबकी इच्छा है कि गोविन्दके मुखसे महाप्रभुकी भोजन-लीलाकी बात सुनकर चित्तको स्थिर करें। गोविन्द क्या करें ? कैसे उत्तर दें ? निश्चय नहीं कर पाते। सच्ची बात कहनेपर भक्तगण मनमें दुःख पावेंगे, इस कारण उनको कभी-कभी झूठ बोलकर भी उन सब अनुरागी भक्तोंको सुखी करना पड़ता है।

महाप्रभुके लिए वे लोग गोड़देशसे अपने सिरपर ढोकर अनेक भक्ष्य सामग्री लाये हैं, महाप्रभुके ग्रहण करनेपर वे कृतार्थ हो जायेंगे। परन्तु उन्होंने उसे अब तक ग्रहण नहीं किया है। उनके घरके कोनेमें सारा भक्ष्य द्रव्य ढेरका ढेर पड़ा हुआ है। गोविन्दको इससे बड़ा दुःख है, उनसे भी अधिक दुःख भक्तवृन्दको है। गोविन्दने एक दिन महाप्रभुके चरणोंमें कातर भावसे हाथ जोड़कर निवेदन किया—"हे प्रभु ! श्रीश्रीअद्वैताचार्य आदि महाशयगण अतिशय यत्नपूर्वक आपको खिलानेके लिए मेरे पास यह सब उपादेय खाद्य वस्तु दे जाते हैं, आप इनमें-से कुछ भी ग्रहण नहीं करते, वे मुझसे बारम्बार पूछते है कि आपने खाया है या नहीं, मैं अब कितनी बार झूठ बोलूँ और बञ्चना करूँ, मेरा छुटकारा कैसे हो ? इतना कहकर दुःखित अन्तःकरणसे गोविन्द सजल-नयन हो हाथ जोड़कर महाप्रभुके सामने खड़े हो गये। भक्त वाञ्छाकल्पतरु महाप्रभुने मुस्कराकर गोविन्दसे कहा—

—'आदिवश्या !' दुःख काहे माने।
कि कि दियाछे, सब आनह एखाने॥
चै. च. अं. १०.११३

---

* कृपालु पाठकवृन्द यहाँ प्रश्न कर सकते हैं कि महाप्रभुने गोविन्दको 'आदिवश्या' सम्बोधन क्यों किया ? 'आदिबश्या' शब्दका अर्थ अधिकांश लोग नहीं जानते। यह द्रविड़ (तामिल) भाषाका सम्बोधन सूचक शब्द है। गोविन्द द्रविड़ भाषाके पण्डित थे, अतएव रङ्गीले प्रभु इसी भाषामें उनको सम्बोधन करके सुखी होते थे। 'आदिवश्या' शब्दका अर्थ है 'अतिप्रिय' इसको स्नेह सूचक गाली भी कह सकते हैं।

[टिप्पणीका शेषांश अगले पृष्ठपर]

इतना कहकर तत्काल स्वयं भगवान् श्रीविश्वम्बर चन्द्र प्रेमानन्दमें भोजनपर बैठ गये। गोविन्दके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वे प्रत्येक भक्तका नाम लेकर उनकी दी हुई या लायी हुई भक्ष्य वस्तु एक-एक करके महाप्रभुको निवेदन करने लगे और श्रीविश्वम्भरचन्द्र वह सब लीलापूर्वक परम प्रीतियुक्त होकर आस्वादन करने लगे। केवल आस्वादन ही नहीं, सब भक्ष्य वस्तु एकवारगी उदरस्थ करने लगे।

इस प्रकार नदियाके अवतार श्रीविश्वम्भरचन्द्रने एक घड़ीमें सौ आदमियोंकी सारी भोजन सामग्री चट करके भोजनलीला समाप्त की, तथा गोविन्दके मुखकी ओर देखकर कहा, और कुछ है ?"

महाप्रभुकी यह भोजन-लीला अलौकिक और परम रहस्यपूर्ण है। वे संन्यासी थे, किसी प्रकार जीवन धारण कर रहे थे। भोग सुखको एकवारगी तिलाञ्जलि दे रक्खी थी। जगदानन्द आदि उनके मर्मी भक्तगण भी कदापि उनको उत्तम वस्तु खिला नहीं सकते थे। परन्तु इस बार यह कैसा लीलारङ्ग ? यह तो त्यागी संन्यासीका काम न था। महाप्रभु आहार-विहारके विषयमें जगदानन्द आदि मर्मी भक्तोंकी बात नहीं सुनते थे, परन्तु नदियाके भक्तवृन्दकी मनस्तुष्टिके लिए उन्होंने यह कैसी अपूर्वलीला कर दी ? गृही वैष्णवोंके प्रति वे जैसी कृपावृष्टि कर गये हैं, वैसी कृपा अपने उदासीन भक्तोंके प्रति नहीं दिखलाते।

जगदानन्द उदासीन भक्त थे, उन्होंने वैष्णव संन्यास ग्रहण किया था, उनके साथ प्रभुकी जैसी प्रीति थी, इससे वे उनकी इच्छाके अनुरूप सब काम कर सकते थे, परन्तु ऐसा वे करते नहीं थे। इसी कारण प्रायः दोनोंमें प्रेम-कलह होता रहता था। वे क्यों नहीं जगदानन्दके कथनानुसार स्वछन्द आहार-विहार करते थे ? भक्तको सुख प्रदान करना ही तो उनका व्रत है, जगदानन्द तो उनके एकान्त अन्तरङ्ग भक्त थे। किस अपराधसे उनको इस प्रकार दण्डित होना पड़ा ? इसमें भी कुछ रहस्य है। जगदानन्द उदासीन थे, महाप्रभु भी उदासीन थे, प्रभुके साथ-साथ उन्होंने भी गृहत्याग करके संन्यास ग्रहण किया था। वे गृहस्थ न थे। महाप्रभुका प्रत्येक कार्य, प्रत्येक पदविक्षेप शिक्षामूलक होता था। वे शिक्षा–गुरुके रूपमें जगत्में अवतीर्ण हुए थे। जगदानन्दको वैराग्यकी शिक्षा देनेके लिए महाप्रभु उनकी मनोकामना पूर्ण नहीं करते थे। उन्होंने स्वयं आचरण करके धर्मकी शिक्षा दी है। स्वयं कठोर वैराग्य आचरण करके जगदानन्दको शिक्षा दी है कि, वैरागीका वैराग्य ही सर्वप्रधान धर्म है, वैराग्य-विद्या वैष्णव-संन्यासीके लिए शिक्षणीय है।

नवद्वीपके गृही वैष्णवगण महाप्रभुके परम प्रिय भक्त थे। वे जब गृहस्थाश्रममें थे, तब ये लोग गृहस्थ धर्म सम्मत नाना प्रकारके अन्न-व्यञ्जन, शाक आदि द्वारा ठाकुरको भोग लगाकर उनको निमन्त्रित करके परम परितोषपूर्वक भोजन कराते थे। महाप्रभु उस समय स्वयं गृही थे, अब उदासीन हो गये हैं। वे उदासीन होकर उदासीनको जिस प्रकार शिक्षा दे रहे है, वह शिक्षा गृहस्थके लिए उपयोगी नहीं है। उन्होंने अपने गृहस्थ भक्तोंके दिये हुए सारे प्रीति-उपहारको परम प्रीतिपूर्वक भोजन करके

[पूर्व पृष्ठकी टिप्पणीका शेष]

यह शब्द महाप्रभु गोविन्दके लिए व्यवहार करते थे। इसका कारण पहले कहा जा चुका है। प्रभुने एक दिन और गोविन्दसे कहा था—

आदिवश्या ! एत क्षण आछिस बसिया।

चै. च. अं, १०.८६

आदिवश्या ! एइ स्त्रीके नाकर वर्ज्जन।

चै. च. अं. १४.२४

दिखला दिया कि गृहस्थ धर्म उदासीन धर्मसे पृथक् है। गृही-वैष्णवका भजन मार्ग भी वैष्णव-संन्यासीके भजनमार्गसे भिन्न है। गृही-वैष्णवकी ठाकुर पूजा, ठाकुर भोग, उनकी नारायणी शक्ति वैष्णव-गृहिणीगणके हाथका उत्तम सिद्ध किया हुआ भोजन-पदार्थ प्रीतिपूर्वक अति यत्नसे बहुत दूर देशसे महाप्रभुके भोगके लिए वे लोग नीलाचलमें लाते हैं तथा उनके विशेष आग्रहसे वे प्रभु उसे ग्रहण करते है। भक्तके भगवान् उसे ग्रहण करके उनको परम तुष्ट करते हैं। शिक्षागुरु महाप्रभुकी इस शिक्षासे नदियाके भक्तवृन्द गृहस्थ धर्ममें तथा ठाकुर पूजामें अधिक मन लगाते हैं। श्रीविग्रह-सेवा और अतिथि-सेवा गृही-वैष्णवको भली-भाँति करना चाहिये। जान पड़ता है कि यही महाप्रभुके इस भोजन-लीलारङ्गका तात्पर्य है।

महाप्रभुने जब भोजन-लीला समाप्त कर गोविन्दसे कहा कि, "और कुछ है ?" तो गोविन्दने मृदु मुस्कानके साथ उत्तर दिया, "केवल राघवकी झाली है।" प्रभुने हँसते हुए कहा, "आज रहने दो, उसे पीछे देखूँगा।" गोविन्द और कुछ न बोल सके। महाप्रभुने उस दिन आचमन करके शयन किया।

दूसरे दिन गोविन्दने नदियाके सब भक्तवृन्दसे प्रभुकी इस अपूर्व भोजन-लीलाकी कथा कह सुनायी। वे लोग सुनकर परमानन्दमें मग्न हो गये। उसके दो-चार दिनके बाद एक दिन महाप्रभुने राघवकी झालीके भोज्य पदार्थोंका आस्वादन किया। स्वरूप गोसाईं परोसनेवाले थे। वे चुन-चुनकर रातमें महाप्रभुको कुछ-कुछ पदार्थ भोग देते थे।

प्रत्येक भक्तके घर भिक्षा ग्रहण

महाप्रभु नीलाचलमें प्रेमानन्दमें इष्ट गोष्ठी कर रहे थे, और इधर चातुर्मास्य प्रायः समाप्त हो आया। श्रीअद्वैतप्रभु, श्रीवास पण्डित आदि भक्तोंकी इच्छा हुई कि महाप्रभुको एक-एक दिन अपने वासेपर निमन्त्रित करके भिक्षा करावें। वैष्णव गृहिणीगणको बड़ी साध थी कि पहलेके समान अपने हाथसे रसोई बनाकर महाप्रभुको भोजन करावें। भक्तवत्सल प्रभुके पास उनका यह निवेदन पहुँचा। भक्तवाञ्छा कल्पतरुने भक्तकी निमन्त्रण पत्री स्वीकार की।

पहले श्रीअद्वैत गृहिणी सीतादेवीने उनको निमन्त्रण किया। उन्होंने महाप्रभुकी रुचिके अनुरूप नाना प्रकारके व्यञ्जन, शाक-सूक्त आदि रन्धन किये। इसके ऊपर फिर उत्तम-उत्तम जगन्नाथजीका प्रसाद है।

महाप्रभु प्रायः अकेले इन सब स्थानोंमें निमन्त्रणकी रक्षा करने जाते हैं। किसी-किसी जगह अपने उदासीन भक्तोंको साथ ले जाते हैं। श्रीअद्वैत-गृहिणीने स्वयं पास बैठकर महाप्रभुको परम परितोषपूर्वक भोजन कराया। महाप्रभु वहाँ उस दिन अकेले गये थे।

इसी प्रकार श्रीवास-गृहिणी मालिनीदेवी, चन्द्रशेखर आचार्य गृहिणी सर्वजयादेवी, विद्यानिधिकी गृहिणी, नन्दनाचार्यकी गृहिणी, राघव पण्डितकी भगिनी दमयन्तीदेवी, सबने एक-एक करके अपने हाथसे रसोई बनाकर प्रभुको परम आनन्दपूर्वक भोजन कराकर अपनेको कृतार्थ समझा। ये सभी ब्राह्मणी थीं।

वासुदेव दत्त, वासुदेव घोष, गदाधर दास, मुरारि गुप्त, शिवानन्द सेन, कुलीन ग्रामवासी तथा खण्डवासी भक्तोंने जगन्नाथजीका प्रसाद लाकर महाप्रभुको अपने वासापर निमन्त्रित करके भोजन कराया।

शिवानन्द सेनके प्रति प्रभुकी बड़ी कृपा थी। उनके वासापर निमन्त्रणमें प्रभुने जो अपूर्व भोजन

लीलारङ्ग दिखलाया, उसे श्रवण करें। शिवानन्द सेन भी सपरिवार नीलाचल आये थे, उनके ज्येष्ठ पुत्र चैतन्य दास भी आये थे। महाप्रभुके साथ चैतन्य दासका परिचय करानेके लिए ही शिवानन्द उनको इतनी दूरसे यहाँ लाये थे। चैतन्य दासने जब महाप्रभुके चरणोंमें धूलिमें लोटकर दण्डवत् प्रणाम किया तो शिवानन्दने स्वयं पुत्रका परिचय दिया। महाप्रभुने पहले उनका नाम पूछा। चैतन्यदास नाम सुनकर रङ्गीले प्रभुने बहाने वाजीसे बालकसे पूछा—

"किवा नाम धरियाछ, बूझन ना जाय।"
चै. च. अं. १०.१४१

शिवानन्दने हँसकर उत्तर दिया, "जिसने इस नामका मर्म समझा है, उसीने इसे रक्खा है।" महाप्रभु और कुछ न कह सके।

शिवानन्दने अपने गणके साथ प्रभुको जगन्नाथके नाना प्रकारके बहुमूल्य प्रसाद लाकर परम परितोषपूर्वक भोजन कराया। उनके तथा उनकी भक्तिमती गृहिणीके प्रीत्यर्थ भक्तवत्सल महाप्रभुने सब भोजन किया। उस दिन उनका भोजन बहुत भारी हो गया, क्योंकि नाना प्रकारका मिष्ठान्न भोग था। इससे महाप्रभुका मन उतना प्रसन्न नहीं हुआ।

इसे कोई समझ न सका। समझते कैसे? यह तो महाप्रभुके मनका भाव था। वे मिष्ठान्न भोजनसे उतना परितृप्त नहीं होते। अन्न-व्यञ्जन, शाक उनको बहुत प्रिय है। भोजनके अन्तमें महाप्रभु अपने वासापर गये। इसके बाद और एक दिन शिवानन्दके बालक पुत्र चैतन्य दासने महाप्रभुको निमन्त्रित किया। महाप्रभुकी रुचिके अनुसार उसने स्वयं प्रसादकी व्यवस्था की, जिनमें दही, निम्बू, अदरख, फूलवड़ी आदि नमकीन सामग्री थी।

उस दिन महाप्रभु शिवानन्दके वासापर अकेले आये। प्रसादको देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने प्रसन्न चित्तसे शिवानन्दकी ओर देखकर कहा —

—एइ बालक आमार मन जाने।
सन्तुष्ट हइलाम आमि इहार निमन्त्रणे।।
चै. च. अं. १०.१४७

इतनी बात कहकर महाप्रभु भोजनके लिए बैठे। दधि-भात और जगन्नाथका प्रसादी व्यञ्जनादि भोजन करके चैतन्यदासपर कृपा करके उसको अधरामृत दान किया। चैतन्यदासके भाग्यकी सीमा न थी। ब्रह्मादि देवगण जिनके अधरामृतके लिए लालायित रहते हैं, उसे आज अनायास शिवानन्दके पुत्र चैतन्यदासने प्राप्त कर लिया। चैतन्यदास ही श्रीकृष्णचैतन्य प्रभुके यथार्थ दास थे।

शिवानन्द सेनके प्रति महाप्रभुकी अतिशय कृपा थी, यह पहले कहा जा चुका है। ये कवि कर्णपूर गोस्वामीके पिता, और महाप्रभुके एकान्त मर्मी भक्त थे। नदियाके भक्तवृन्दको सब प्रकारकी व्यवस्था करके प्रतिवर्ष नीलाचलमें लानेका सम्पूर्ण भार एकमात्र उन्हींके ऊपर था। भक्त-सेवा कृष्ण-सेवासे भी बढ़कर है, इसी कारण महाप्रभुकी उनके ऊपर इतनी प्रीति थी। शिवानन्द सेन जब सब भक्तगणके साथ पहले नीलाचलमें आये, और महाप्रभुसे मिले, तो भक्तवत्सल श्रीगौर भगवान्‌ने गोविन्दको कृपादेश देकर कहा था कि जब तक शिवानन्दका परिवार यहाँ है, इनको बराबर मेरा अवशेष पात्र मिलता रहे।

ऐसी कृपा उन्होंने अन्य किसी भक्तको नहीं दिखलायी। गृही वैष्णवके प्रति महाप्रभु असीम दया दिखला गये हैं। अतएव हे गृही वैष्णव

पाठकवृन्द ! आप लोंगोंके सौभाग्यकी सीमा नहीं है। आप लोग ही श्रीमन्महाप्रभुके प्रवर्त्तित वैष्णव धर्मके रक्षक हैं, युक्त वैराग्यके आप लोग ही आदर्श हैं। दक्षिण देश भ्रमण कालमें महाप्रभुने गृह-त्याग करनेके लिए तैयार विप्र कूर्मको जो उपदेश दिया था, उसे स्मरण करें—

प्रभु कहे—ऐछे बात कभू ना कहिबा।
गृहे वसि कृष्णनाम निरन्तर लैबा।।
जारे देख-तारे कर कृष्ण उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हैया तारो एइ देश।।
कभू ना बान्धिबे तोमार विषय तरङ्ग।
पुनरपि एइ ठांञि पाबे मोर सङ्ग।।

चै. च. म. ७.१२४-१२६

श्रीगौरलीला-मधुपान आप लोग घर बैठकर करें, यही हुआ यथार्थ परोपकार अर्थात् परम उपकार। आप लोग करके यह लीला ग्रन्थ पाठ करेंगे, और पाठ करके दूसरोंको सुनावेंगे, यही कीर्तन है। अपने कुलके ठाकुर गुणनिधि श्रीगौराङ्गका ऋण यदि किसी प्रकार परिशोध कर सके तो इसे कर्त्तव्य समझें। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इसी कारण लिखा है—

चैतन्य चरितामृत जेइ जन शुने।
ताँहार चरण धुञा करो मुञि पाने।।

चै. च. अं. २०.१४२

इससे बढ़कर अपूर्व दीनता प्रकाशक हृदयकी मार्मिक बात भाषामें व्यक्त हुई है या नहीं, इसमें सन्देह है। परन्तु यह पूज्यपाद कविराज गोस्वामीके निष्कपट सरल मनकी अतिशय सरल उक्ति है। गौर-भक्तवृन्द निष्कपट दीनतामें जगत्में सर्वश्रेष्ठ हैं, इसका ज्वलन्त प्रमाण श्रीचैतन्य चरितामृतकार कविराज गोस्वामीकी यह एक उक्ति है। आधुनिक विद्वत्समाजने निरपेक्ष भावसे विचार करके कहा है कि श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ धर्मग्रन्थोंमें सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस सर्वश्रेष्ठ भक्तिग्रन्थके ग्रन्थकारका दैन्य भी तद्रूप ही सर्वश्रेष्ठ है।

कविराज गोस्वामी सर्वशास्त्रवेत्ता थे, परम पण्डित और श्रीगौराङ्ग प्रभुके परम भक्त थे। इसी कारण गर्वरूप पर्वत उनके हृदयमें उत्पन्न नहीं हो सकता था अभिमान-शिला उनके मानसक्षेत्रमें स्थान नहीं पा सकती थी।

महाप्रभु नवद्वीपके भक्तोंके घर-घर नित्य भिक्षाके लिए जाते हैं। अब भक्तके भगवान् भक्त-चित्त-विनोदनार्थ प्रसाद-भोजनकी आनन्द-लीलामें मग्न हैं। भक्तवृन्द भी परमानन्दपूर्वक प्रसाद पा रहे हैं। इस प्रकार नीलाचलमें चार महीने कट गये। तथापि सब भक्तोंके वासापर श्रीमन्महाप्रभु निमन्त्रण-रक्षा नहीं कर सके। चार सौ नदियाके भक्तवृन्द महाप्रभुका दर्शन करने नीलाचल आये थे। एक-एक आदमीके वासापर यदि एक दिन भी प्रभु भिक्षा करते। तो एक वर्षसे भी अधिक समय लगता। अतएव सबके भाग्यमें महाप्रभुको भिक्षा दान करनेका सौभाग्य उदय न हुआ। कविराज गोस्वामीने इसीसे लिखा है—

चारि मास एइ रूप निमन्त्रणे जाय।
कोन कोन वैष्णव दिवस नाहि पाय।।

चै. च. अं. १०.१४९

इसमें भी फिर महाप्रभुके कुछ बँधे हुए नियम थे कि मासमें अमुक दिन या अमुक तिथिमें गदाधर पण्डित या सार्वभौम भट्टाचार्यके वासा पर भिक्षा करेंगे। इस नियमका उल्लङ्घन करनेकी क्षमता स्वयं महाप्रभुमें भी नहीं थी। इसके ऊपर नीलाचलके अन्यान्य भक्तवृन्द भी बीच-बीचमें उनको अपने घर निमन्त्रित करके ले जाते हैं। उनमें गोपीनाथ आचार्य, जगदानन्द, काशीश्वर भगवान्

आचार्य, शङ्कर और वक्रेश्वर पण्डित प्रधान हैं। अतएव नदियाके समस्त भक्तवृन्दकी मनोकामना महाप्रभु कैसे पूर्ण करें ?

नदियाके भक्तवृन्द महाप्रभुके आदेशसे प्रतिवर्ष रक्षयात्राके उपलक्ष्यमें उनका दर्शन करने आते हैं। उनका दर्शन करके उन्हें जो सुख होता है, उनको भोजन करानेमें उन्हें उससे भी अधिक सुख और आनन्द होता है। आनन्दमय महाप्रभु भक्तवृन्दका आनन्द बढ़ानेके लिए नीलाचलमें प्रतिवर्ष इसी प्रकार भोजन लीला रङ्ग करते हैं। यह देखकर नीलाचलवासी और नदियावासी भक्तवृन्दके मनमें बड़ा आनन्द होता है। विशेषतः जगदानन्द आदि अनुरागी उदासीन भक्तोंके मनमें इससे आनन्दकी सीमा नहीं रहती। क्योंकि नदियाके भक्तवृन्दके सामने महाप्रभुका कठोर नियम और वैराग्यभाव नहीं चलता।

गोसाईं रामचन्द्र पुरीके समान वैष्णवोंके विचारसे निश्चय ही संन्यासी चूड़ामणि महाप्रभुका यह भोजन-विलास दूषणीय जान पड़ता है। उन्होंने इसी कारण महाप्रभुको कठोर वचन कहकर उनकी भिक्षा संकुचित कर दी थी।

वैष्णवोंके सारे कर्म कृष्ण-प्रीत्यर्थ अनुष्ठित होते हैं। वैष्णवके भोजनमें भी भजनाङ्ग लक्षित होता है। वे लोग श्रीभगवान्‌का अधरामृतप्रसाद भोजन करते हैं, बाँटते हैं, तथा प्रेममें भरकर वे अप्राकृत वस्तु सर्वाङ्गमें लेपन भी करते हैं। भोजनके पूर्व और भोजनके अन्तमें भी श्रीनाम-कीर्तन करते हैं। बीच-बीचमें प्रेमध्वनिके द्वारा रसपुष्टि भी करते हैं। महाप्रभुका यह भोजन लीलारङ्ग उनके भक्तोंके ध्यानकी वस्तु है। ठाकुर नरोत्तमकृत महाप्रभुके भोजन-लीलाके पद उनकी भोग-आरतिके समय भक्तगणके द्वारा श्रीमन्दिरमें नित्य गाये जाते हैं। यथा—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु कर अवधान।
भोग मन्दिरे प्रभु करह पयान॥
वामेते अद्वैत प्रभु दक्षिणे निताइ।
मध्यासने बसिलेन चैतन्य गोसाञि॥
चौसट्ठी मोहान्त आर द्वादश गोपाल।
छय चक्रवर्ती आर अष्ट कविराज॥
शाक शुकुता आदि नाना उपहार।
आनन्दे भोजन करेन शचीर कुमार॥
दधि दुग्ध घृत छाना आर लूची पूरी।
आनन्दे भोजन करेन नदिया बिहारी॥
भोजन करिया प्रभु कैला आचमन।
सुवर्ण खड़िकाय कैला दन्तेर शोभन॥
बसिते आमन दिला रत्न सिंहासने।
कर्पूर ताम्बूल तार योगाय प्रिय भक्तगणे॥
फूलेर चौयारी घर फूलेर केओयारी।
फूलेर रत्न सिंहासन चाँदोया मसारि॥
फूलेर मन्दिरे प्रभु करिला शयन।
गोविन्द दास करेन पाव सम्बाहन॥
फूलेर पापड़ी सब उड़ि पड़ि गाय।
तार माझे महाप्रभु सुखे निद्रा जाय॥
श्रीकृष्णचैतन्य प्रभुर दासेर अनुदास।
सेवा अभिलाष मागे नरोत्तम दास॥

महाप्रभुका वैराग्य जीवशिक्षाके लिए कपट-वैराग्य था, और उनका संन्यास जीवोद्धारके लिए कपट-संन्यास था। उन्होंने यह बात स्वयं श्रीमुखसे कही है। भक्तोंके भगवान् रसराज श्रीगौर-गोविन्द नदियानागर रूपमें सदा रसिक भक्तके सम्मुख रसिक शेखर-रूपमें ही प्रतीयमान् होते हैं। उनका सिर भी मुण्डित नहीं है, वे कठोरता भी नहीं करते। इसीकारण महाजन कविने गाया है—

मधुकररञ्जित मालतीमण्डित-
जतघनकुञ्चिकेशम्।
तिलकविनिन्दित-शशधररूपक
युवति-मनोहरवेसम्॥

सखि कलय गौरमुदारम्।
निन्दित हाटक कान्ति कलेवर
गर्वित मारकमारम्।
मधुमधुरस्मित लोभिततनुभृतम्
अनुपमभावविलासम् ॥
निधुवननागरीमोहितमानस
विकथितगद्‌गदभाषम् ।
परमाकिञ्चन-किञ्चन नरगण-
करूणावितरणशीलम् ॥
क्षोभित दुर्मति राधामोहन
नाम निरूपमनीलम् ।

श्रीगौराङ्ग-महाप्रभुके ध्यानमें भी देखा जाता है । यथा—

श्रीमन्मौक्तिक दामबद्धचिकुर
सुस्मेर चन्द्राननं
श्रीखण्डागुरु चारुचित्रवसनं
स्रक दिव्य भूषाञ्चितम् ।
नृत्यावेश रसानुमोदमधुरं
कन्दर्पवै शोज्ज्वलं
गौराङ्गं कनकद्युति निजजनैः
संसेव्यमानं भजे ॥

इससे श्रीमन्महाप्रभुका कपट संन्यासी भाव ही सूचित होता है । श्रीगौर-भगवान् माधुर्यरसमय रसिक शेखर आनन्दघन शृङ्गारस-मूर्त्ति हैं, वैराग्य तो उनके षडैश्वर्यमें एक ऐश्वर्य मात्र है । संन्यासी वे नामके हैं । संन्यास उनकी अनन्तलीलामें एक लीला है । वे कपट संन्यासी है, इसके शास्त्रीय प्रमाण अन्यत्र लिखे गये हैं ।

पचासवाँ अध्याय

(रामचन्द्रपुरी गोसाईं और महाप्रभु)

प्रभु गुरु बुद्धये करे सम्भ्रम-सम्मान ।
तिहो छिद्र चाहि बुले, एइ ताँर काम ॥
चै. च. अं. ८.४४

रामचन्द्र पुरीका स्वभाव परिचय

रामचन्द्र पुरी गोसाईं नीलाचलमें महाप्रभुका दर्शन करने आये थे । वे माधवेन्द्रपुरी गोसाईंके शिष्य तथा श्रीपाद ईश्वरपुरी गोसाईंके गुरु भाई थे । महाप्रभु उनका गुरुबुद्धिसे सम्मान करते थे । परमानन्द पुरी गोसाईंके बासा पर वे रहते थे ।

महाप्रभुके साथ जिस दिन रामचन्द्रपुरीका प्रथम मिलन हुआ तो उनको महाप्रभुने आदरपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया । रामचन्द्रपुरीने महाप्रभुको

आलिङ्गन किया। परमानन्दपुरी, रामचन्द्रपुरी और महाप्रभु इन तीनोंमें बहुत देर तक इष्ट गोष्ठी हुई।

जगदानन्द पण्डितने उस दिन रामचन्द्रपुरी गोसाईंको निमन्त्रित किया। जगदानन्दने पहले उनके विषयमें सुन रक्खा था कि वे विश्व-निन्दक हैं, इस डरसे प्रचुर परिमाणमें उत्तम-उत्तम प्रसाद लाकर इकट्ठा किया था। अतिशय यत्नपूर्वक रामचन्द्र पुरीको उन्होंने आकण्ठ भोजन कराया। तथापि बहुत-सा प्रसाद बच गया। रामचन्द्रपुरीने आचमन करके आग्रह पूर्वक वह सारा प्रसाद स्वयं परोस कर जगदानन्दको भोजन कराया। जगदानन्दने भी परम परितोष पूर्वक भोजन किया।

भोजनके अन्तमें पुरी गोसाईंने अपने स्वभावसिद्ध भावमें जगदानन्दके प्रति कटाक्ष करते हुए कहा—"सुननेमें आया कि चैतन्यके गण बहुत खाते हैं। उस वाक्यकी सत्यता आज प्रत्यक्ष देखली। संन्यासीको इतना खिलानेसे उसका धर्म-कर्म नाश हो जाता है। वैरागी होकर इतना खाना—इसमें वैराग्यका आभास भी नहीं है।" जगदानन्दने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, वे समझ गये कि मनुष्यका स्वभाव कदापि नहीं जाता।

रामचन्द्रपुरी गोसाईंका निन्दक स्वभाव चिरविख्यात और सर्वजनविदित था। इस प्रकार दोष-दर्शन और निन्दक स्वभावके कारण वे अपने गुरुके क्रोधाग्निमें पड़े थे। माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी जगद्गुरु थे, वे कृष्णप्रेमके मूल मन्त्र थे। आकाशमें मेघ देखने पर उनके मनमें श्रीकृष्ण स्मृति उदय हो जाती थी। वे जो कृष्ण-प्रेमका अङ्कुर रोपण कर गये थे, वही श्रीगौराङ्ग प्रभु रूपी वृक्षमें पल्लवित और पुष्पित हुआ।

उन्होंने जब देह त्याग किया था तो उनके शिष्य यही रामचन्द्रपुरी उनके पास थे। माधवेन्द्रपुरी गोसाईं दिन-रात कृष्णनाम सङ्कीर्तन रसमें मग्न रहते थे, बीच-बीचमें प्रेमावेगमें—

'मथुरा ना पाइल' बलि करेन क्रन्दन।

चै. च. अ. ८.१८

रामचन्द्रपुरी अपने पूज्यपाद श्रीगुरुदेवके विप्रलम्भ भावोत्थ इस कृष्णोन्माद वाक्यका क्या मर्म समझते? वे शिष्य होकर उस समय गुरुको प्राकृत अभावके कारण शोक-कातर देखकर उपदेश देने लगे—"पूर्ण-ब्रह्मका स्मरण करो, तुम स्वयं चिद् ब्रह्म होकर क्रन्दन क्यों करते हो।"

देह त्यागके समय शिष्यके मुखसे इस प्रकार शुष्क ब्रह्मज्ञानकी बात सुनकर माधवेन्द्रपुरी गोसाईंको मर्मान्तिक कष्ट हुआ, और रामचन्द्रपुरीको पापिष्ट सम्बोधन करके अपने सामनेसे उनको दूर भगा दिया, तथा तिरस्कृत करते हुए फटकार सुनायी—"न मैंने श्रीकृष्णको पाया और न व्रजवास पाया। मैं जो अपने दुःखसे मर रहा हूँ, ऊपरसे मुझे ब्रह्मका उपदेश देकर तुम और जला रहे हो। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चले जाओ, मुझे अपना मुँह और न दिखाना। तुम्हारा मुख देखकर मरनेसे मेरी दुर्गति होगी।"

इतना कहकर माधवेन्द्रपुरी गोसाईंने अपने शिष्य रामचन्द्रपुरीको अपने सामनेसे दूर हटा दिया। श्रीपाद ईश्वरपुरी भी वहाँ गुरु सेवामें रत थे। वे अपने हाथसे गुरुके मलमूत्रादि साफ करते थे, और उनको सर्वदा कृष्ण नाम सुनाते थे। माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी अपनी समस्त शक्ति और प्रेमधन अपने प्रियशिष्य ईश्वरपुरी गोस्वामीको दान कर गये थे। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने गयाक्षेत्रमें ईश्वरपुरीको श्रीगुरुरूपमें वरण किया था।

रामचन्द्र पुरी गोस्वामी विशुद्ध ब्रह्मज्ञानी थे। गुरुकृपासे वञ्चित होनेके कारण उनकी कृष्णभक्ति

लोप हो गयी थी। सब लोगोंका दोष निकालना उनके जीवनका प्रधान कार्य हो गया था।

रामचन्द्रपुरी द्वारा महाप्रभुमें छिद्रान्वेषण और प्रभु द्वारा भिक्षामें संकोच

रामचन्द्र पुरी गोसाईंको महाप्रभु गुरुबुद्धिसे सम्मान करते थे। और उनका सत्सङ्ग करते थे। परन्तु रामचन्द्र पुरी महाप्रभुके अशेष गुणोंको तनिक भी स्पर्श न कर पानेके कारण अपने स्वभाव-दोषसे उनके छिद्रान्वेषणमें प्रवृत्त रहने लगे और उनके रहन-सहन, खान-पान, शयन-गमन आदि सब कार्योंपर प्रखर दृष्टि रखने लगे।

महाप्रभु संन्यासी होकर जगन्नाथजीका प्रसाद मिष्ठान्न आदि भक्षण करते हैं, अन्न व्यञ्जन प्रसाद पाते हैं—यह बात रामचन्द्रपुरी सबको कहकर उनकी निन्दा करने लगे। वे नीलाचलमें बैठकर इस प्रकार महाप्रभुकी निन्दा करते फिरते थे, किन्तु प्रतिदिन उनका दर्शन करने भी जाते थे। सारी बातें महाप्रभुके कानोंमें पहुँचती थी तथापि वे उनको गुरुबुद्धिसे सदा सम्मान और आदर प्रदान करते थे।

एक दिन प्रातःकाल रामचन्द्र पुरी गोसाईं महाप्रभुके वासापर आये। उन्होंने उनको बहुत सम्मान करके बैठनेके लिए आसन दिया। आसनपर बैठते ही उन्होंने देखा कि घरमें बहुत-सी चीटियाँ पंक्तिबद्ध होकर चली जा रही हैं, यह देखकर व्यङ्गपूर्वक प्रभुको उद्देश्य करके कहा—

"रात्रावत्र ऐक्षवमासीत् तेन पिपीलिकाः सञ्चरन्ति। अहो! विरक्तानां संन्यासीनामियम् इन्द्रियलालसेति ब्रुवन्नुत्थाय गतः।" अर्थात् गत रात इस घरमें मिष्ठान्न था, इसी कारण इतनी चींटियाँ यहाँ इधर-उधर विचरण कर रही हैं। कैसे आश्चर्यकी बात है! विरक्त संन्यासियोंकी ऐसा जिह्वा-लालसा!" यह बात कहते-कहते वह वहाँसे उठकर चले गये।

रामचन्द्र पुरी गोसाईंकी बात सुनकर महाप्रभु सिर नीचा करके कुछ देर सोचते रहे। पहले उन्होंने लोगोंके मुँहसे उनके निन्दा-स्वभावकी बात सुनी थी, अब उसे अपनी आँखों देखा। महाप्रभुके छिद्रान्वेषणमें विफल-मनोरथ होकर अब उनके घरमें चींटियोंकी पंक्ति देखकर एक कल्पित दोषारोपण करके उनपर आक्षेप किया। महाप्रभुका परम उदार स्वभाव था। उन्होंने रामचन्द्रपुरी गोसाईंके वाक्यप्रहारको सन्तुष्ट चित्तसे सिरपर ले लिया। उन्होंने गोविन्दको पास बुलाकर कहा—

आजि हैते भिक्षा मोर एइ त नियम।
पिण्डा भोगेर एक चोठि,* पाँच गण्डार व्यञ्जन॥
इहा बहि आर अधिक किछु ना आनिबा।
अधिक आनिले आमा हेथा ना देखिबा॥

चै. च. अं. ८.५०,५१

पहले महाप्रभुके निमन्त्रणका नियम था चार पाण कौड़ीका प्रसाद। इसके द्वारा तीन आदमीका भोजन होता था—महाप्रभु, काशीश्वर पण्डित और गोविन्द का। अब उन्होंने किस प्रकार भयावह रूपमें भिक्षा-सङ्कोच किया, यह कृपालु पाठकवृन्द एक बार विचार करके देखें। जगन्नाथके पिण्डा-भोगका एक चतुर्थांश और पाँच गण्डाका व्यञ्जन मात्रका नियम रक्खा। गोविन्दके मुखसे भक्तवृन्द उनकी इस प्रकार भिक्षा-सङ्कोचकी बात सुनकर हाहाकार करने लगे। उनके सिरपर मानो अचानक वज्रपात हुआ। सब लोग रामचन्द्रपुरी गोसाईंके ऊपर महाक्रोधित होकर उनका तिरस्कार करने लगे।

महाप्रभुको खिलानेमें ही जिनको सुख और आनन्द है, उनको परम परितोषपूर्वक भोजन कराना ही जिनका भजनाङ्ग है, उनके मनका दुःख और

* जगन्नाथजीका प्रसाद मिट्टीकी हण्डियोंमें आता है। प्रमाणकी हाँडीके चतुर्थ भागको चौठीं कहते हैं।

हृदयका ताप, रामचन्द्रपुरीकी दुष्ट बुद्धि और परनिन्दा कार्यसे, दिन प्रतिदिन गाढ़से प्रगाढ़तर होने लगा। यह दुःख क्रमशः उनके लिए असह्य हो उठा।

उसी दिन एक ब्राह्मणने आकर महाप्रभुको निमन्त्रित किया। गोविन्दने उस विप्रको रोते-रोते भिक्षा सङ्कोचके विषयमें सूचित किया। वह विप्र सिर पीटकर रह गया। परन्तु करता क्या? यह महाप्रभुका आदेश था, उसका उल्लङ्घन करनेकी किसीमें सामर्थ्य न थीं। उन्होंने कहा था कि इस आदेशका उल्लङ्घन होनेपर वे नीलाचल छोड़कर चले जाँयगे, इसी भयसे कोई कुछ बोलनेका साहस नहीं करता। ब्राह्मणने महाप्रभुके आदेशके अनुसार भिक्षाके पदार्थ लाकर दिये। उन्होंने उसका आधा भोजन किया, और आधा प्रसाद गोविन्द और काशीश्वर पाये। उस दिन प्रायः सबको उपवास रहना पड़ा। एकाहारमें अर्द्ध भोजन, और उपवास एक ही बात है। यह देखकर अन्यान्य भक्तगणमें किसीने उस दिन प्रसाद नहीं पाया।

भक्तवत्सल महाप्रभुने सोचा कि उनके कारण उनके दोनों भृत्य क्यों कष्ट पावें? उन्होंने गोविन्द और काशीश्वर पण्डितको पास बुलाकर आज्ञा दी—"तुम दोनों अन्यत्र भिक्षा करके पेट भरो।" दोनों आदमी कोई उत्तर न देकर सिर झुकाकर अश्रु बहाने लगे। इस प्रकार बड़े दुःखसे कुछ दिन कटे। भक्तवृन्दके दुःखकी सीमा न रही।

नदियाके भक्तवृन्द चले गये हैं, उनके साथ-साथ नीलाचलके भक्तोंके सुखके दिन चले गये। वे लोग सोच रहे हैं कि यदि नदियाके भक्तगण यहाँ रहते तो महाप्रभु इस प्रकार भिक्षा-सङ्कोच नहीं कर सकते थे। रामचन्द्र पुरीके ऊपर सारे भक्तगण इतने क्रुद्ध हो उठे हैं कि उनका प्राण लेनेमें भी उनको हिचकिचाहट नहीं है। परन्तु महाप्रभु उनका काफी सम्मान और आदर करते हैं, वे नित्य उनके पास आते हैं, महाप्रभु उनको गुरुबुद्धिसे दण्डवत् प्रणाम करते हैं। वे लोग महाप्रभुके भयसे कुछ कर नहीं सकते, कुछ बोल नहीं सकते। नीलाचलके भक्तवृन्दके लिए बड़ी विपद्के दिन हैं, बड़े दुःखके दिन बीत रहे हैं। सभी प्रायः आधापेट एक बार खाते हैं। किसी प्रकार प्राण रक्षा करते हैं। उनके मनमें लेशमात्र भी सुख नहीं।

जगदानन्द तो मृतप्राय हो रहे हैं। सबकी अपेक्षा उन्हींको अधिक दुःख है। क्योंकि वे महाप्रभुमें पतिबुद्धि रखते हैं, उनको अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खिलाना पसन्द करते हैं, इस विषयमें गोविन्द उनके सहायक हैं। इस कार्यमें जगदानन्दको जितना सुख मिलता है, उतना सुख भजनमें नहीं मिलता। यही उनका भजन है। जगदानन्द केवल रोते हैं और रामचन्द्र पुरीको उठते-बैठते अकथ्य भाषामें गाली देते हैं। यह भी उनका भजनाङ्ग है।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। रामचन्द्रपुरी महाप्रभुके पास प्रतिदिन आते थे। महाप्रभु उनके सम्मान और आदरमें तनिक भी त्रुटि नहीं करते थे। बल्कि पहलेकी अपेक्षा अधिक सम्मान करते थे। महाप्रभुसे रामचन्द्रपुरीने हँसते हुए कहा—"संन्यासीका धर्म इन्द्रिय-तर्पण नहीं है, किसी प्रकार पेट भर लेना चाहिये। तुम क्षीणकाय हो रहे हो, इससे प्रतीत होता है कि तुम आधा ही भोजन करते हो। यह भी शुष्क वैराग्य है, जो संन्यासीके लिए उचित नहीं। ठीकसे पेट भी भर लेना चाहिये और जिह्वा इन्द्रियका विषय-भोग भी नहीं करना चाहिये, तभी संन्यासीका ज्ञानयोग सिद्ध होता है।"

महाप्रभुने उनके पूर्व श्लेषवाक्यको सुनकर आहार सङ्कोच किया है, यह रामचन्द्र पुरी जानते हैं। यह बात अब कोई गुप्त बात नहीं रह गयी है। नीलाचलमें सर्वत्र यह बात फैल गयी है, अब लोग इसके लिए उनकी निन्दा करते हैं। महाप्रभु जो अर्द्धाशन करके देह सुखा रहे हैं, यह भी सब लोग देख पा रहे हैं, रामचन्द्र पुरी भी देखते हैं इन सब कारणोंसे उनके मनमें थोड़ा-सा

दुःख हुआ यह उनकी बातोंके भावसे ही स्पष्ट है, इसी कारण वे महाप्रभुको उपर्युक्त उपदेश देने आये हैं। महाप्रभु चतुर-चूड़ामणि हैं, उन्होंने अतिशय विनीत भावसे उत्तर दिया—

—"अज्ञ बालक मुञि शिष्य तोमार।
मोरे शिक्षा देह, एइ भाग्य आमार॥"

चै. च. अं. ८.६४

रामचन्द्रपुरी गोसाईं और कोई बात न कह सके। वे महाप्रभुकी बातका कुछ भी मर्म न समझ सके। लोकशिक्षाके लिए महाप्रभुका यह अवतार ग्रहण था। गुरुभक्ति क्या वस्तु है? तथा गुरुसे सम्बन्धित माननीय व्यक्तिका किस प्रकार सम्मान करना चाहिये, उनके सहस्रों दोष होनेपर भी किस प्रकार उनकी उपेक्षा करनी पड़ती है, यह बात रामचन्द्रपुरी गोसाईंके साथ व्यवहारके प्रसङ्गसे महाप्रभुने भली-भाँति अपने भक्तगणको समझा दी।

परमानन्द पुरीको लेकर भक्तोंका प्रभुके पास जाना

भक्तगण भी प्रभुके साथ-साथ अर्द्ध आहार ले रहे हैं, महाप्रभुने यह बात सुनी, परन्तु इसकी कोई व्यवस्था नहीं की। उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ। परमानन्द पुरी गोस्वामीको भी प्रभु गुरुबुद्धिसे सम्मान करते थे। वे प्रभुके साथ नीलाचलमें रहते थे। उनको साथ लेकर एक दिन भक्तवृन्द प्रभुके पास आये। उनका उद्देश्य था परमानन्द पुरी गोसाईंके द्वारा महाप्रभुसे इस विषयमें अनुनय-विनय करके कुछ कहने का। परमानन्द पुरी गोसाईं आदि प्रमुख भक्तगण महाप्रभुके बासापर जाकर सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। सर्वज्ञ महाप्रभुने उनको बैठनेकी आज्ञा देकर पुरी गोसाईंको सम्मान-पूर्वक पास बैठाया। परमानन्द पुरी गोसाईं तब कहने लगे—

"रामचन्द्र पुरी महा निन्दक स्वभावके आदमी हैं। उनकी बातसे तुम भिक्षा सङ्कोच करके अच्छा काम नहीं कर रहे हैं। तुम स्वयं भी दुःख पाते हो, और अपने भक्तवृन्दको दुःख दे रहे हो। रामचन्द्र पुरीने जगदानन्दके वासापर निमन्त्रित होकर आकण्ठ भोजन किया था, और स्वयं परोसकर जगदानन्दको भी आकण्ठ भोजन कराया था। स्वयं खिलाकर फिर स्वयं ही उनकी निन्दा भी की। कौन कैसा व्यवहार करता है, कैसा भोजन करता है—यही अनुसन्धान करते हुए वे घूमते रहते हैं, यही उनका कार्य है। परछिद्रान्वेषणमें वे परम पटु हैं, दोषदर्शन उनका स्वभाव है। इस प्रकारके व्यक्तिकी बातसे आपने आहार त्याग कर दिया है, यह बड़ी ही दुःखकी बात है। हम लोगोंका अनुरोध मानकर पूर्ववत् निमन्त्रणकी रक्षा करें, अपने जीवनकी रक्षा करें, तथा अपने भक्तगणका प्राण बचावें।"

इतना कहकर उन्होंने गीताका निम्नलिखित श्लोक पढ़ा—

नात्यश्नस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

गीता. ६.१६,१७

अर्थ—श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहते हैं, "हे अर्जुन! अति भोजनसे योग नहीं होता, तथा भोजन-रहित होनेपर भी योग नहीं होता। अधिक निद्रा या निद्रात्याग द्वारा भी योग नहीं होता। आहार-विहार आदि सारी कर्मचेष्टाएँ, तथा निद्रा और जागरण नियमित होनेपर ही दुःखनाशक योग होता है।

महाप्रभुने चुपचाप पुरी गोसाईंकी सारी बात एक-एक करके सुन ली। वे सिर झुकाये हुए थे।

चन्द्रवदनको उठाकर पुरी गोसाईंकी ओर देखकर करुण स्वरमें केवल दो बातें बोले—"गोसाईं ! रामचन्द्रपुरी गोसाईंके ऊपर आप लोग इतना रोष क्यों कर रहे हैं ? उन्होंने तो मुझको केवल संन्यासीके धर्मका उपदेश दिया है। इसमें उनका क्या दोष है ? संन्यासीके लिए जिह्वा-लोलुपता बड़ा दोष है, प्राण-रक्षाके लिए सामान्य आहार करना संन्यासीका धर्म है। यही धर्म उन्होंने मुझको उपदेश दिया है, यह तो अति उत्तम बात है।"

चतुर चूड़ामणि महाप्रभुकी बातका उत्तर देनेकी किसीमें शक्ति नहीं थी। वे सरस और स्निग्ध वाक्पटुतामें सिद्ध थे। विचार-तर्क या वाग्युद्धमें उनको परास्त करनेवाला कोई भूतलमें पैदा नहीं हुआ। परमानन्द पुरी गोसाईं आदि भक्तगण और कोई बात न कहकर उनका बहुत अनुनय-विनय करने लगे। भक्तके भगवान् भक्तके अनुरोधको ठुकरा न सके। उन्होंने तब अपने निमन्त्रणके पूर्व नियमका आधा हिस्सा रख लिया, अर्थात् चार पण कौड़ीके स्थानमें दो पण निर्दिष्ट किया।

इससे भक्तवृन्दके मनमें कुछ सुख तो हुआ, परन्तु उनके मनमें आनन्द न हुआ। महाप्रभुने नितान्त अन्तरङ्ग भक्तोंके लिए कोई नियम नहीं रक्खा। इनमें गदाधर पण्डित, भगवान् आचार्य, सार्वभौम भट्टाचार्यका नाम ग्रन्थोंमें मिलता है। भक्तवत्सल महाप्रभुने भक्तकी मनोबाञ्छापूर्ण करके दिखला दिया कि, भक्तके सामने उनके लिए प्रतिज्ञाकी रक्षा करना बहुत कठिन है। उन्होंने भक्तके मनोरञ्जनके लिए अनेक स्थलोंमें अपनी प्रतिज्ञा भङ्गकी है। भक्तके भगवान् भक्तके हाथकी कठपुतली हैं। इस लीलाके द्वारा महाप्रभुने यही दिखलाया है।

रामचन्द्र पुरी गोस्वामी नीलाचलमें हैं, बीच-बीचमें महाप्रभुके पास आते हैं। कभी तो प्रभु स्वयं भृत्यसे बन जाते हैं और कभी उनको तृणके समान देखने लगते हैं। ईश्वर-चरित्र बुद्धिके लिए अगोचर होता है।

प्रभु जब रामचन्द्रपुरीको तृणवत् अवज्ञा करते हैं, तब भक्तवृन्दके मनमें बड़ा आनन्द होता है। महाप्रभु कोई काम छिपाकर नहीं करते। रामचन्द्र पुरीने अब समझ लिया कि महाप्रभु उनको पहचान गये हैं। वे फिर नीलाचलमें नहीं रह सके। तब महाप्रभुके भक्तोंने चैनकी साँस ली। उनके सिरका पत्थरका बोझा मानो जमीनपर जा गिरा। उनके आनन्दकी सीमा न रही।

महाप्रभु अब स्वच्छन्न भोजन-विलास करने लगे, और भक्तगणके मनमें कोई दुःख न रहा। वे लोग परम आनन्दपूर्वक पहलेके समान महाप्रभुको साथ लेकर नृत्य कीर्तन करने लगे।

रामचन्द्र पुरीके साथ महाप्रभुके इस लीलारङ्गमें दो बहुमूल्य उपदेशरत्न ग्रथित हैं। गुरुके कोपानलमें जब शिष्य पड़ता है तो उसका कैसा कुफल होता है, इसे शिक्षागुरु महाप्रभुने रामचन्द्र पुरीके द्वारा दिखलाया। गुरुके सामने अपराध करनेपर वह अपराध ईश्वर तक पहुँचता है, क्योंकि गुरु और ईश्वरमें अभेद है। दोषदर्शनका स्वभाव बड़ा भयानक होता है। क्षुद्र-क्षुद्र दोष देखते-देखते दोषदर्शनका स्वभाव क्रमशः बढ़ते-बढ़ते बड़ी-बड़ी वस्तुओंमें लिप्त होता है, अन्तमें विश्वनिन्दक लोग ईश्वरका दोष भी देखने लगते हैं। रामचन्द्र पुरीके दोषदर्शन-स्वभावका अन्तिम फल यही हुआ। उन्होंने स्वयं भगवान्का दोष देखा, और उनको भी उपदेश देनेमें सशंकित नहीं हुए। अदोषदर्शी महाप्रभुने रामचन्द्र पुरीका कोई दोष ग्रहण नहीं किया, यह भी केवल लोक-शिक्षाके लिए। परन्तु रामचन्द्र पुरीका दोषदर्शनका और परनिन्दाका फल हाथों

हाथ मिल गया। वे नीलाचलसे भगा दिये गये। महाप्रभुके दर्शन, और उनके सङ्ग लाभसे बञ्चित हो गये, गुरु-कोपानलसे उद्धार न पा सके। शिक्षागुरु महाप्रभुके सारे लीलारङ्ग जीवके लिए परम मङ्गलजनक उपदेशसे परिपूर्ण हैं। जो भाग्यवान् हैं, वे इन सब लीलाओंका आस्वादन कर अपने चरित्रका गठन करके धन्य हो सकते हैं, गौराङ्ग-लीला-समुद्र अतिशय गम्भीर है। गौरभक्तके सिवा अन्य किसीका इसमें प्रवेशाधिकार बड़ा कठिन है। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

निगूढ़ चैतन्य लीला बूझिते कार शक्ति।
सेइ बूझे गौरचन्द्रे दृढ़ जार भक्ति।।

चै. च. अं. ७.१५३

और इस गौराङ्ग-लीला सरोवरमें डूबे बिना कृष्णलीला रसास्वादनका अन्य उपाय नहीं है। इसी कारण कविराज गोस्वामीने लिखा है—

कृष्णलीलामृतसार, तार शत-शत धार,
दशदिगे बहे जाहा हैते।

से चैतन्य लीला हय, सरोवर अक्षय,
मन हंस चराह ताहाते।।

चै. च. म. २५.२२३

इसी कारण उन्होंने आदेश दिया है—

चैतन्य चरित्र लिखि शुन एक मने।
अनायासे पाइबे प्रेम श्रीकृष्ण चरणे।।

चै. च. अं. ८.९५

अब सब मिलकर उच्चस्वरमें बोलो—

जय जय श्रीगौराङ्ग विष्णुप्रियानाथ।
जीव प्रति करो प्रभु दृष्टिपात।।

इक्यावनवाँ अध्याय

प्रभु-भृत्य संवाद

गोविन्द कहे मने—आमार सेवा से नियम।
अपराध हउक, किंवा नरके गमन।।

चै. च. अं. १०.९२

नीलाचलमें रथयात्राके बाद एक उत्सव होता है। इस उत्सवमें श्रीश्रीजगन्नाथजी नरेन्द्र सरोवरके जलमें नौकापर चढ़कर जलक्रीडा करते हैं। इस आनन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें नृत्यकीर्तनानन्दमें नीलाचलवासी वैष्णव विभोर हो जाते हैं। नदियाके भक्तोंके नीलाचलमें रहते ही इस उत्सवका अनुष्ठान हुआ था। महाप्रभुने अपने निज गणके साथ इस उत्सवमें योगदान करके अद्भुत कीर्तनानन्दमें अगणित दर्शकवृन्दका मन हरण किया था। श्रीअद्वैत आदि भक्तगणके साथ अपूर्व जलक्रीडा की। प्रतिवर्ष वे भक्तोंको साथ लेकर इसी प्रकार आनन्द करते थे।

महासंकीर्तन

एक दिन श्रीजगन्नाथजीका शय्योत्थान देखनेके लिए जाते समय महाप्रभुके मनमें महासङ्कीर्तन-यज्ञका भाव उदय हुआ। उन्होंने तत्काल श्रीमन्दिरमें ही भक्तवृन्दको सात दलोंमें बाँट दिया। श्रीमन्दिर परिक्रमाके बाद बेड़ाकीर्तन आरम्भ हो गया। मृदङ्ग-करतालकी ध्वनिसे नीलाचल गगनपूर्ण हो गया।

"ता ता थै थै मृदङ्ग बाजइ
झनर झनर करताल।"

श्रीजगन्नाथजीके सेवकोंने भी इस महासङ्कीर्तनमें योग दिया। उन्होंने—

"तन तन तम्बूर, वीणा सुमधुर,
बाजत यन्त्र रसाल।"

इस वाद्ययन्त्रकी मधुमय ध्वनिसे श्रीमन्दिर मुखरित हो उठा। सात दलोंमें सात विशिष्ट जनने नृत्य आरम्भ किया। इन सात आदमियोंमें दो प्रभु थे श्रीअद्वैत और श्रीनित्यानन्द; तथा दूसरे पाँच आदमी थे वक्रेश्वर पण्डित, श्रीअच्युतानन्द, श्रीवास पण्डित, सत्यराज खान् और ठाकुर नरहरि दास। कुछ ही देरमें श्रीमन्दिरमें लोगोंकी भीड़ जमा हो गयी। सारे नीलाचलवासी आनन्दमें उत्फुल्ल होकर सङ्कीर्तन यज्ञमें शामिल हो गये।

राजा प्रतापरुद्र उस समय नीलाचलमें थे। वे मन्त्रियोंके साथ दूरसे ही इस भुवन मङ्गल महासङ्कीर्तन यज्ञको देख रहे थे। रानियाँ अट्टालिकाके ऊपर चढ़कर देख रही थी।

श्रीमन्दिरसे सदल-बल सङ्कीर्तन-यज्ञेश्वर महाप्रभु अब नृत्यावेशमें राजपथपर बाहर निकले। सब लोगोंके मुखसे बारम्बार केवल उच्च हरिध्वनि सुनायी पड़ रही थी। प्रेमोन्मत्त भक्तवृन्दके पदभारसे पृथ्वी मानो प्रकम्पित हो रही थी। रास्तेमें लोगोंकी इतनी भीड़ हो गयी कि लोग जानेका रास्ता न पाकर कीर्तनमें योग देते जा रहे थे। ऐसा अद्भुत मनोरम दृश्य नीलाचलमें पहले कभी किसीने नहीं देखा। प्रेमोन्मत्त महाप्रभु सात दलोंके बीचमें खड़े होकर कमर डुला-डुलाकर मधुर-मधुर नयन रञ्जन अपूर्व नृत्य कर रहे थे। उस अपूर्व नृत्य कलाको देखनेके लिए लोग महा-कोलाहल कर रहे थे। महाप्रभु प्रेमावेशमें नृत्य कर रहे थे और निम्नलिखित उड़िया पदका धूहा पकड़े थे—

"जगमोहन परिमुण्डा जाङ"—

अर्थात् "हे जगमोहन! तुम्हारी बलि-बलि जाऊँ।" वे आजानुलम्बित सुवलित बाहु युगलको ऊपर उठाकर बारम्बार उच्चस्वरसे कह रहे थे, 'बोल, हरि बोल, बोल हरि बोल'। इस प्रकार कभी वे मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पड़ते थे, श्वासशून्य हो जाते थे, मानो शरीरमें प्राण ही नहीं हो। कुछ देरके बाद पुनः अचानक हुङ्कार गर्जन करके हरिध्वनि करते हुए उठकर उद्दण्ड नृत्य करते थे। उनके श्रीअङ्ग पुलक-कदम्ब-केशरीसे परिपूर्ण थे, रोम-रोममें रक्तोद्गम दृष्टिगोचर हो रहा था। गद्गद वचन बोलते थे, अब वे 'जगमोहन परिमुण्डा जाङ्' पूरा-पूरा गा नहीं सकते थे। 'ज ज ग ग परि'—इस प्रकार असम्बद्ध शब्दमात्र उनके श्रीमुखसे निकल रहे थे। उनके श्रीमुखसे निकलकर फेनपुञ्ज वक्षःस्थलपर गिर रहे थे, कमल-नयन निर्निमेष हो रहे थे, प्रेमावेशमें डबडबाये हुए थे। मधुर नृत्यावेशमें उनको बाह्यज्ञान नहीं था।

इस प्रकार तीसरा प्रहर दिन बीत गया, तथापि महाप्रभुका नृत्य-कीर्तन समाप्त नहीं हुआ। उनके भक्तोंकी दशा भी वैसी ही थी। श्रीनित्यानन्द प्रभुने

देखा कि कीर्तन बन्द किये बिना महाप्रभुकी और उनके भक्तोंकी प्राणरक्षा नहीं हो सकती। शचीमाताका आदेश-वाक्य उनको स्मरण हुआ। तत्काल उनके पास जाकर उन्होंने कानोंमें कुछ कहा, महाप्रभुने भक्तवृन्दके कीर्त्तन श्रमक्लान्त वदनको देखकर अपना भाव संवरण करके कीर्त्तन बन्द किया।

कुछ देर सुस्ताकर उसके बाद सब लोग एक साथ समुद्र स्नानके लिए चले। वहाँ अपूर्व जलकेलि-रङ्ग प्रकट किया। उसके बाद वासापर आकर भक्तगणके साथ प्रभुने प्रसाद पाया। उस समय केवल दो घड़ी दिन था। वह दिन इसी प्रकार बीत गया।

गोविन्द द्वारा पाद-सम्बाहन-सेवा

भोजनके अन्तमें महाप्रभु कुछ विश्राम किया करते थे। उनके भृत्य गोविन्दका यह नित्यका नियम था कि उनका पाद संवाहन सेवा करके पीछे वे प्रसाद पाते थे।

एक दिन भोजनोपरान्त अपने गम्भीरा मन्दिरके द्वारपर महाप्रभु लेट गये। सारा द्वार घेर करके वे श्रीअङ्गकी रक्षा कर रहे थे। गृहमें प्रवेशका और कोई द्वार न था। वे भोजनोपरान्त निद्राविष्ट हो गये। गोविन्द दरवाजेपर खड़े होकर सोचने लगे कि, कैसी विपद है! कैसे घरके भीतर जाकर प्रभुकी पद सेवा करूँ।

गोविन्द जानते थे कि प्रभु निद्राग्रस्त नहीं है, उन्होंने हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें निवेदन किया—"एक तरफ हट जाओ, मुझे भीतर जाने दो।" महाप्रभुने व्यंग्यपूर्वक कहा—"मेरेमें हिलने-डुलनेकी शक्ति नहीं है।"

गोविन्द बोले—"मुझे पादसम्बाहन करना है"

महाप्रभुने उत्तर दिया—"जो तुम्हारी इच्छा हो करो।"

महाप्रभु गोविन्दके मनकी परीक्षा ले रहे थे, वे सोच रहे थे कि उनकी नियमित सेवाके नियमको भङ्ग करके उनकी परीक्षा करें। श्रीभगवान्के सामने भक्तकी परीक्षा बड़ी कठिन होती है। वे अपने निज-जनकी भी परीक्षा करते हैं। भक्तगण श्रीभगवान्की परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं। भगवान् इसे देखकर बहुत आनन्द प्राप्त करते हैं, और अपने परीक्षोत्तीर्ण भक्तको गोदमें लेकर बहुत स्नेह-सत्कार करते हैं।

गोविन्द महाप्रभुके एकान्त अनुगत भृत्य थे। गोविन्दके ऊपर उनकी बड़ी कृपा थी। गोविन्द उनके श्रीगुरुदेव ईश्वर पुरीके भृत्य और शिष्य थे। पुरी गोसाईंके अन्तर्धानके बाद उनके आदेशसे महाप्रभुकी सेवा करनेके लिए वे नीलाचलमें आये थे। महाप्रभु पहले गोविन्दकी सेवा ग्रहण करनेके लिए तैयार न थे, क्योंकि वे उनके गुरु भाई थे। परन्तु उनके भक्तोंने उन्हें समझाया कि जब यह गुरुका आदेश है, तब अवश्य पालनीय है। शास्त्राज्ञा परोक्ष आदेश है और गुरुकी आज्ञा प्रत्यक्ष आदेश है। अतएव यह बलवान् है। इसी कारण महाप्रभुने गोविन्दकी सेवा स्वीकार की।

महाप्रभु लेटे थे। प्रभु-भृत्यमें और कोई बात नहीं हुई। गोविन्द द्वारपर खड़े होकर कुछ देर तक कुछ सोचते रहे। कुछ देरके बाद सेवानिष्ठ गोविन्दने जो कुछ किया, उसे सुनिये।

महाप्रभुका बहिर्वास बाहर सूख रहा था, उससे प्रभुके श्रीअङ्गको आच्छादित करके उछलकर श्रीअङ्गको लाँघकर वे गम्भीरा मन्दिरके भीतर चले गये, और उनके चरण-तलमें बैठकर उनका पाद-सम्बाहन करने लगे। अन्तर्यामी महाप्रभुने सब देखा और समझा, परन्तु उस समय और कोई बात नहीं कही। गोविन्दने उनकी पीठ और कमरको मृदु हस्तसे मर्दन कर दिया। प्रभु दो

दण्डके लिए सुखकी नींद सोये। निद्राभङ्ग होनेपर उन्होंने अपने बगलमें गोविन्दको देखकर कपट क्रोधाविष्ट होकर कहा—

आदिवस्या ! केन एतक्षण आछिस् बसिया ?
निद्रा हैंले केन नाहि गेला प्रसाद पाइते ?

चै. च. अं. १०.८९-९०

अर्थात्—आदिवस्या ! तुम इतनी देर तक क्यों बैठे रहे ? मुझे निद्रा आनेपर तुम प्रसाद पाने क्यों नहीं गये ? भक्तवत्सल महाप्रभु अपने भृत्यकी नियम-सेवाकी सारी बात जानते हैं, गोविन्द अपना नित्यकर्म, महाप्रभुका पाद-संवाहन किये बिना प्रसाद नहीं पायेंगे, यह महाप्रभु खूब जानते हैं, इसी कारण स्नेहपूर्वक क्रुद्ध होकर यह बात बोले। अब गोविन्दका उत्तर सुनिये—

गोविन्दने कहा—"तुम द्वार रोके सोये थे, कैसे मैं प्रसाद पाने जाता ?" सर्वज्ञ महाप्रभुने भावभङ्गी-पूर्वक पुनः कहा—"तुम भीतर जैसे आये थे, वैसे ही बाहर क्यो नहीं चले गये ?" गोविन्दने महाप्रभुकी इस बातका प्रकट रूपमें उत्तर न देकर मन ही मन कहा—"सेवा मेरा नियम है, इसके लिए भले कोटि अपराध हो, चाहे नरकमें जाना पड़े लेकिन अपने लिए अपराधके आभाससे भी डर लगता है।"

गोविन्दकी बातका मर्म परम निगूढ़ प्रेमभक्ति तत्त्वसे पूर्ण है। उन्होंने कहा, "हे प्रभु ! तुम्हारी सेवा करना ही मेरा नियम है, उसके लिए मुझसे अपराध हो जाय या नरक भी जाना पड़े तो उसे मैं परम मङ्गल मानता हूँ। तुम्हारी सेवाके लिए कोटि अपराधको भी मैं तृण तुल्य समझता हूँ। किन्तु दयामय, मैं निजके लिए अपराधके आभास मात्रसे भी बहुत डरता हूँ। तुम्हारी सेवाके लिए तुम्हें लाँघकर कर घरके भीतर आया हूँ, तो फिर क्या मैं इस पापी पेटके लिए फिर तुम्हें लाँघकर जाऊँ ? हे प्रभु ! हे दयामय ! ऐसी बुद्धि तुम्हारे इस दासानुदासको न हो—यही तुम्हारे चरणोंमें मेरी एकान्त प्रार्थना है।"

गोविन्दने भक्तितत्त्वका ऊच्चतम आदर्श जगत्को दिखलाया। ऐसी निगूढ़ भक्तितत्त्वपूर्ण लीलाकथा धर्म-जगत्के इतिहासमें कहीं न मिलेगी। एकमात्र श्रीगौराङ्ग-चरणाश्रित भक्ति-तत्त्वज्ञ महाजनगण ही इस प्रकारके निगूढ़ भक्तिरसके भाण्डारी हैं। प्रेमभक्तितत्त्व यदि सीखना हो, प्रेमभक्ति क्या वस्तु है, यदि यह जानना हो तो एकमात्र गौर-भक्तवृन्दके पास ही वह सीखा जा सकता है। कृपालु पाठकवृन्द ! आप लोग गौर-भक्तकी महिमासे अवश्य ही अवगत होंगे, तथापि आत्मशुद्धिके लिए श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती कृत गौरभक्त महिमा-सूचक एक श्लोककी व्याख्या करनेकी चेष्टा करूँगा। प्रबोधानन्द सरस्वती भारत-विख्यात पण्डित थे, दस हजार मायावादी संन्यासियोंके गुरु थे, काशीमें उनका विशाल मठ था। श्रीगौराङ्ग प्रभुने उनके ऊपर कृपा करके उनको अपनाया था। उन्होंने लिखा है—

आस्तां वैराग्य कोटिर्भवतु
शमदमक्षान्ति मैत्रादि कोटि-
स्तत्त्वानुध्यान कोटिर्भवतु
भवतु वा वैष्णवी भक्ति कोटिः।
कोट्यांशोऽप्यस्य न स्यात्तदपि
गुणगणो यः स्वतः सिद्ध आस्ते
श्रीमच्चैतन्यचन्द्रप्रियचरण-
नखज्योतिरामोदभाजाम्॥

चै. चं. काव्य. २६

इसका भावार्थ सुनिये। सरस्वती महाराज दृढ़तापूर्वक कह रहे हैं—तुम्हारे कोटि-कोटि वैराग्यसे ही क्या होगा, तुम्हारे कोटि-कोटि शम-दम, क्षान्ति-मैत्र अर्थात् शुचित्व आदि गुणोंसे ही क्या होगा, निरन्तर 'तत्त्वमसि' अर्थात् परमात्मा और जीवात्माके ऐक्य विषयक कोटि-कोटि चिन्तनसे ही क्या मिलेगा, तथा विष्णु-विषयक कोटि-कोटि भक्तिसूत्र रचनासे ही क्या लाभ होगा ? यदि श्रीश्रीचैतन्य चरणाश्रित प्रिय भक्तवृन्दके पदनख

ज्योति द्वारा उल्लसित परम सौभाग्यवान् मानवके हृदयमें जो स्वभावसिद्ध गुण वर्तमान होते हैं उनके कोटि अंशमें-से एक अंश भी तुमने प्राप्त नहीं किया ।

इतना बड़ा प्रशंसापत्र किसी पण्डितने किसीको देनेका साहस अब तक नहीं किया है। सर्वशास्त्र विशारद भारत प्रसिद्ध वेदान्ती पण्डितशिरोमणि श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने परम सौभाग्यवश गौर भक्तोंका सङ्ग प्राप्त करके गुणोंकी परीक्षा करके, उनके हृदयको टटोल कर, उनके मनके भीतर प्रवेश करके जो पाया है, जो देखा है, जो समझा है, उसे निष्कपट भावसे अपने ग्रन्थमें लिपिबद्ध कर दिया है। इसको अतिस्तुति नहीं कह सकते, खुशामद नहीं कह सकते, गौर भक्तवृन्दके गुणोंसे मुग्ध होकर सरस्वती महाराजने अपने अन्तःकरणकी बात बाहर प्रकट कर दी हैं। उन्होंने बहुत विचार करके तब अपनी लेखनी द्वारा इन गौर-भक्तोंकी गुणावली कीर्तन करके आत्मशुद्धि की है। सरस्वती महाराजके रचे एक और श्लोकको सुनिये--

आचर्य धर्म परिचर्य विष्णुं
विचर्य तीर्थान् विचार्य वेदान् ।
बिना न गौरप्रियपाद सेवां
वेदादि दुष्प्राप्यपदं विदन्ति ।।

चै. चं. काव्य. २२

अर्थ—तुम वर्णाश्रमादि धर्मोंका आचरण करो, श्रीविष्णुकी सेवा करो, समस्त तीर्थ पर्यटन करो अथवा वेदार्थका विचार करो, श्रीगौराङ्गचरणाश्रित भक्तराजगणकी चरण-सेवाके बिना वेदादि विचार द्वारा दुष्प्राप्य अति मनोरम स्थान अर्थात् श्रीवृन्दावनको नहीं जान सकोगे ।

व्रजरसतत्त्व क्या वस्तु है, व्रजका गोपीभजन कैसा मधुमय है, व्रजका भाव कैसी निगूढ़ वस्तु है, श्रीगौराङ्ग-दासानुदासके कृपाकटाक्षके बिना उनको समझने, जानने या आस्वादन करनेका अधिकार प्राप्त करना दुर्घट है, यह अतिसार वस्तु हैं, इसमें तनिक भी अतिरञ्जित कोई बात नहीं है। बुद्धिमान् और भक्तिमान् पुरुषोंको यह समझना चाहिये। व्रजके भजनराज्यमें प्रवेशाधिकार प्राप्त करना गौर-भक्तके सङ्गके बिना अति दुर्लभ है। सरस्वती महाराजने भजन राज्यमें भ्रमण करके खूब ऊहापोहके साथ उसकी सीमाका विचार करके सीमानिर्देश किया है। से स्वयं बहुशास्त्रदर्शी एक विशिष्ट साधक-प्रवर थे। ध्यान-धारणाके परे, साध्य-साधनकी अन्तिम सीमा जो अप्राकृत श्रीवृन्दावन धाम और व्रजका गोपी-भजन है, वह एकमात्र गौराङ्ग कृपाके बलसे ही अनुभूत होता है, यही सरस्वती महाराजके कथनका मर्म है।

अब और अधिक कुछ नहीं कहना है। गौर-भक्तवृन्दके गुणोंका वर्णन करना जीवाधम ग्रन्थकारकी क्षुद्र शक्तिसे परे है। महाजनगण जो कुछ कह गये हैं, उसको ही हृदयङ्गम करना इसके लिए दुःसाध्य है। गौरभक्त महाजनगणके चरणोंमें किसी प्रकारका अपराध न हो, इस भयसे ही हृदय सदा प्रकम्पित रहता है, एवं महाजन कविका सावधान वाक्य सतत स्मरण होता रहता है। यथा—

महान्त सन्तान कि वा, महान्तेर जन जे वा,
इहा सवार स्थाने अपराध ।
ना हय उद्गम कभू, भये प्राण काँपे प्रभु,
ए साधे ना पड़ें जेन वाद ।।

—परमानन्द

बावनवाँ अध्याय

नीलाचलमें रघुनाथ भट्ट और महाप्रभु

रघुनाथ भट्ट पाके अति सुनिपुण ।
जेइ राँधे, सेइ हय अमृतेर सम ।।
परम सन्तोषे प्रभु करेन भोजन ।
प्रभुर अवशेष पात्र भट्टेर भक्षण ।।

चै. च. अं. १३.१०६,१०७

महाप्रभु और देवदासीका गीत

लीलामय श्रीगौराङ्ग प्रभु नीलाचलमें लीलारङ्गमें हैं। वे प्रतिदिन श्रीश्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने जाते हैं। एक दिनकी एक अति अद्भुत लीलाकथा वर्णन करके महाप्रभुके साथ श्रीपाद रघुनाथभट्ट गोस्वामीकी मिलन-लीला वर्णन होगी।

महाप्रभु एक दिन प्रेमावेशमें दिग्विदिग-ज्ञान-शून्य होकर यमेश्वर टोटाकी ओर दौड़े जा रहे थे। साथमें उनके चिर-भृत्य गोविन्द थे। उसी समय दूरसे सुमधुर गीतध्वनि सुनकर प्रेममय महाप्रभु रास्तेमें खड़े होकर उसी ओर कान लगाकर देखने लगे। एक देवदासी गुर्जरी रागमें अति सुमधुर कण्ठसे गीत गोविन्दका 'मङ्गलगीतम्' पद गा रही थी—

श्रित कमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ।।१
दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।
मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ।।२
कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ।।३
मधुमुरनरकविनाशन गरुडाशन ए ।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ।।४
अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ।
त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ।।५
जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए ।
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ।।६
अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए ।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ।।७
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ।।८
श्रीजयदेव कवेरिदं कुरुते मुदं ।
मङ्गलमुज्ज्वल गीतं जय जय देव हरे ।।९

प्रेमोन्मत्त महाप्रभु प्रेमावेशमें गीत सुनते-सुनते प्रेमावेगसे उसी ओर दौड़े। उनका किसी दूसरी ओर ध्यान न रहा। कण्ठ स्वर बड़ा मधुर लग रहा था, व्रजभावावेशमें वे मुग्ध होकर दौड़े जा रहे थे, रास्तेमें झाड़ीका काँटा श्रीपदमें गड़ रहा है, श्रीअङ्गमें लग रहा है, इसका उनको अनुभव नहीं होता है। महाप्रभु जब प्रेमावेशमें दौड़ते हैं तो उनका साथ पकड़ना कठिन हो जाता है।

गोविन्द उनके पीछे-पीछे दौड़े। वे समझ रहे थे कि यह स्त्रीका कण्ठ है, देवदासी गा रही है। कैसी विपत्ति है! महाप्रभु इसे बिल्कुल नहीं समझते। वे तो स्त्रीका मुख नहीं देखते, नाम तक कानसे नहीं सुनते! दयामय! यह क्या किया? यह कहते हुए गोविन्द लम्बी साँस छोड़कर पीछे पीछे दौड़ रहे हैं, गीतमुग्धा देवदासीके अति

सन्निकट महाप्रभुके पहुँचते ही गोविन्दने हाँफते-हाँफते उनको पकड़कर जोरसे क्रोड़में बाहुबद्ध करके कानोंमें कहा—"प्रभु ! यह तो स्त्री गा रही है।" 'स्त्री' का नाम सुनते ही महाप्रभुको बाह्यज्ञान हो गया और वे तुरन्त जिस रास्तेसे आये थे उसी रास्तेपर लौट पड़े। उन्होंने गोविन्दकी ओर करुण नयनसे देखकर प्रेमगद्गद वाणीसे कहा—"गोविन्द ! आज तुमने मेरी जीवन रक्षा की है। स्त्रीका स्पर्श हो जाता तो मेरा मरण निश्चित था। तुम्हारे इस ऋणका बदला मैं कभी नहीं चुका सकूँगा।"

गोविन्द यह बात सुनकर विशेष लज्जित हुए। वे महाप्रभुके श्रीचरणकी धूलि लेकर बोले—"हे प्रभु ! तुम्हारी श्रीजगन्नाथजीने रक्षा की है। मैं तो तुच्छ जीव हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ।" महाप्रभुने तब उनकी पीठपर स्नेहपूर्वक पद्महस्त देते हुए कहा—"तुम सर्वदा मेरे साथ रहा करो और जहाँ-तहाँ मेरी रक्षामें सावधान रहना।"

इतनी बात कहकर वे यमेश्वर टोटामें चले गये। गोविन्दके मुखसे स्वरूप-गोसाईं आदि महाप्रभुके अन्तरङ्ग भक्तोंने यह बात सुनी। सुनकर वे लोग बहुत भयभीत हुए। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि, महाप्रभुके सङ्ग कोई-न-कोई सर्वदा अवश्य रहे।

महाप्रभुका यह लीलारङ्ग भी लोकशिक्षाके हेतु था। इसके द्वारा उन्होंने भक्तवृन्दको यह शिक्षा दी कि, कृष्ण-प्रेमसङ्गीत मधुसे भी मधुर क्यों न हो स्त्रीके द्वारा गाये जानेपर उदासीन विरक्त वैष्णव साधुके लिए उसका श्रवण निषिद्ध है। प्रेमिक वैष्णव-साधु विरक्त संन्यासीको उन्होंने सावधान कर दिया।

रघुनाथ भट्ट गोस्वामी और महाप्रभु

इस घटनाके कुछ दिन बाद तपन मिश्रके पुत्र रघुनाथ भट्टाचार्य काशीसे गौड़देश होते हुए महाप्रभुके दर्शनके लिए नीलाचलमें आये। यह रघुनाथ भट्ट गोस्वामी नामसे अभिहित पूज्यपाद षट् गोस्वामीगणमें-से एक थे। १४२६ शकाब्दमें इस महापुरुषका जन्म हुआ था, तथा १५०१ शकाब्दमें श्रीवृन्दावनमें उनका देहान्त हुआ। रघुनाथ भट्टने महाप्रभुके आदेशसे विवाह नही किया था, वे अठ्ठाइस वर्ष पर्यन्त गृहस्थाश्रममें रहे। जिस समय महाप्रभु श्रीवृन्दावन दर्शन करके काशी धाममें रहकर दो मास तक श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षादान किया था, उस समय रघुनाथ बालक थे। वे महाप्रभुका पाद-संवाहन करते थे, और नाना प्रकारसे उनकी सेवा करते थे। महाप्रभुने उस बालककी सेवासे सन्तुष्ट होकर उसे अपना लिया था।

वे रघुनाथ अब युवक हो गये थे और भागवत शास्त्रमें परम पण्डित थे। वे अतिशय सुन्दर पुरुष थे और उनका कण्ठ बड़ा मधुर था। वे महाप्रभुका दर्शन करने नीलाचलमें आये और साथमें उनका एक नौकर उनकी उपयोगी सामग्रीको ढ़ोते हुए आया था।

रास्तेमें रामदास विश्वास नामक रामोपासक एक वैष्णवके साथ उनका परिचय हुआ। वे भी नीलाचलमें जगन्नाथजीका दर्शन करने जा रहे थे। दोनों एक साथ नीलाचल आये। रास्तेमें रामदासने रघुनाथभट्टकी बहुत प्रकारसे सेवा करके उनकी प्रीति और प्रसाद प्राप्त किया था।

महाप्रभु पार्षदोंके सहित अपने मन्दिरमें बैठे थे। रघुनाथभट्ट आकर उनको श्रीचरणतलमें भूमि विलुण्ठित सिरसे दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर एक ओर खड़े हो गये। महाप्रभुने रघुनाथको पहचान कर स्वयं उठकर उनको प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। काशीमें उनके पिता तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर महाप्रभुके एकान्त

भक्त थे। उन्होंने बड़े आग्रहपूर्वक उन लोगोंका कुशल पूछा। रघुनाथको देखकर उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने स्नेहपूर्वक उनकी पीठपर पद्महस्त रखकर कहा—"रघुनाथ! तुम आ गये, अच्छा किया। जगन्नाथजीका दर्शन करो और आज मेरे यहाँ प्रसाद पाओ।"

रघुनाथने महाप्रभुके श्रीकरस्पर्शको प्राप्तकर तथा श्रीवदनके अमृतमय स्नेह-वचनको सुनकर प्रेमानन्दमें गद्गद होकर बारम्बार उनकी श्रीचरण-धूलि लेकर सिरपर धारण की।

भक्तवत्सल महाप्रभुने गोविन्दको कहकर रघुनाथके लिए वासा ठीक कर दिया। स्वरूप दामोदर गोस्वामी आदि भक्तगणके साथ उनका परिचय करा दिया। रघुनाथके प्रति महाप्रभुकी यह कृपा देखकर सब भक्तवृन्द उनके ऊपर कृपा करने लगे।

रघुनाथ पाकशास्त्रमें अतिशय निपुण थे। विविध शाक-व्यञ्जन राँधकर वे बीच-बीचमें महाप्रभुको अपने यहाँपर निमन्त्रित करते हैं। उनकी रसोई अमृत समान होती है। महाप्रभु परम सन्तोषपूर्वक रघुनाथके यहाँ भिक्षा करते हैं और उनका अवशेष पात्र रघुनाथ पाते हैं। रघुनाथका भाग्य बडा ही उज्ज्वल है। वाल्यकालमें उन्होंने महाप्रभुके अधरामृतका मधुर आस्वादन प्राप्त किया था, उसका मधुर स्वाद वह जीवनमें भूल नहीं सकते, उस अमृतका आस्वाद मानो उनकी जिह्वामें लग गया है। अब पुनः वह सौभाग्य प्राप्त करके वे परमानन्दमें मग्न हो गये हैं।

प्रभुका सङ्ग, भक्तोंका सङ्ग, जगन्नाथजीका दर्शन, नृत्य-कीर्तन आदि भजनानन्दमें रघुनाथने आठ महीने नीलाचलमें बिता डाले।

रघुनाथके साथ जो रामदास विश्वास आये थे, वे एक दिन महाप्रभुसे मिले परन्तु महाप्रभुने उनके ऊपर विशेष कृपा नहीं की। क्योंकि वे मुक्तिकामी (भक्तिकामी नहीं) और विद्यागर्वी थे। अभिमान-शून्य हुए बिना श्रीभगवान्की कृपाकी प्राप्ति दुर्घट है, यह महाप्रभुने इस उपेक्षा द्वारा दिखलाया है। रामदासने सत्सङ्ग किया था, उनकी इष्टमें एकान्तिक भक्ति थी, परन्तु हृदय अभिमान शून्य नहीं हुआ था। इसी कारण वे श्रीगौराङ्गकी पूर्ण कृपासे वञ्चित हो गये। वे काव्यशास्त्रमें परम पण्डित थे। व नीलाचलमें रहते समय वाणीनाथ पट्टनायक गोष्ठीको काव्य पढ़ाने लगे।

रघुनाथ भट्ट एक दिन महाप्रभुके पास बैठे थे। उनके प्रति शुभदृष्टिपात करके प्रभु बोले, "रघुनाथ! तुम अब काशी लौट जाओ, अपने माता-पिताकी सेवा करो। वैष्णवोंके पास भागत अध्ययन करो। विवाह मत करना। फिर एकबार नीलाचलमें आना।" यह सब उपदेशकी बातें कहकर महाप्रभुने अपने गलेकी प्रसादी माला रघुनाथके गलेमें पहना कर उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर विदा किया।

रघुनाथ उनके चरणोंमें लम्बायमान होकर पड़ रहे, और प्रेमानन्दमें अजस्त्र आँसू बहाने लगे। महाप्रभुको छोड़कर काशी जानेका मन बिल्कुल ही नहीं हो रहा; परन्तु करते क्या? महाप्रभुका आदेश था, और उसके सामने दूसरी कोई बात नहीं हो सकती थी। वे रोते-रोते महाप्रभुके पाससे विदा होकर स्वरूप गोसाईं आदि भक्तवृन्दकी आज्ञा लेकर काशी लौट गये।

प्रभुकी आज्ञासे काशीमें चार वर्षतक उन्होंने माता-पिताकी सेवा की, वैष्णव पण्डितके पास भागवत अध्ययन किया, प्रभुके उपदेशोंका पालन किया।

माता-पिताके स्वर्गवास होने पर वे उदासीन वृत्ति अवलम्बन करके पुनः नीलाचलमें आये। महाप्रभु उस समय उनको देखकर बहुत आनन्दित हुए। पुनः आठ मास तक रघुनाथ भट्ट गोस्वामीने नीलाचलमें प्रभुकी सेवा की, भक्तोंका सत्सङ्ग किया।

इस लीलारङ्गके द्वारा शिक्षागुरु महाप्रभुने अपने अनुगत भक्तोंको यह शिक्षा दी कि, वृद्ध माता-पिताके वर्तमान रहते उदासीन वृत्ति अवलम्बन करना शास्त्र-युक्ति-सम्मत नहीं है। वृद्ध माता-पिताकी सेवा त्याग करके उदासीन धर्मकी साधना नहीं हो सकती। क्योंकि वैराग्यवान् साधु वैष्णवोंके प्रति महाप्रभुका यह उपदेश उपयोगी था।

नीलाचलमें रहते समय एक-दिन महाप्रभुने रघुनाथ भट्ट गोस्वामीको अचानक उपदेश दिया—"मेरी आज्ञा मानकर वृन्दावन जाओ, और वहाँ श्रीरूप-सनातनके साथ रहना श्रीमद्भागवतका अध्ययन करना, श्रीकृष्णनाम जपना इससे शीघ्र ही श्रीकृष्ण कृपा करेंगे।"

रघुनाथ भट्टके सिर पर वज्र गिर पड़ा। वे बड़ी आशा करके महाप्रभुकी सेवा करने नीलाचल आये थे। महाप्रभु ऐसा कठोर आदेश देंगे, यह उन्होंने सोचा भी न था। परन्तु क्या करें, महाप्रभुके आदेशके ऊपर कोई बात कहनेकी शक्ति किसीमें नहीं हैं। वे चुपचाप उनकी श्रीचरण-नख-कमलछटाके ऊपर दृष्टि डाले सिर नीचा किये अजस्त्र आँसू बहाते रहे।

पहले दिन महोत्सव था। महाप्रभुको किसी भक्तने चौदह हाथ लम्बी जगन्नाथजीकी प्रसादी तुलसीकी मालाका भक्ति-उपहार दिया था। उसके साथ छुट्टा पान भी था। महाप्रभुने परम प्रेम पूर्वक वह प्रसादी माला और छुट्टा पान रघुनाथको दे दिया। रघुनाथने प्रभुके दिये उस प्रसादी माला और पानको अपने इष्टदेवके समान सम्मान करके हृदयसे लगाकर शिर पर धारण करके अपने आपको कृतार्थ समझा।

वृन्दावनमें श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी

महाप्रभुके आदेशसे वे नीलाचल त्यागकर श्रीवृन्दावन गये और श्रीरूप और सनातन गोस्वामीके शरणापन्न हुए। रघुनाथ भागवतमें परम पण्डित हो गये थे। महाप्रभुकी साक्षात् कृपाके बलसे वे भागवतके अर्थकी ऐसी सुन्दर व्याख्या करते थे कि उसको श्रवण करके बड़े अभक्तके हृदयमें भी भक्तिका सञ्चार हो जाता था।

श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप गोसामीकी महासभामें वे जब भागवत पाठ करते थे, तब प्रेममें पागलसे हो जाते। अश्रु, कम्प, कण्ठावरोधन आदिके कारण पढ़ नहीं पाते। कोकिल जैसे मधुर कण्ठसे अनेक राग-रागिनीमें एक-एक श्लोक पाठ करते, तब श्रोतागण झूमने लगते। श्रीकृष्णके माधुर्य-सौन्दर्यके वर्णन करनेमें प्रेमसे विह्वल हो जाया करते।

कविराज गोस्वामीने स्वयं रघुनाथ भट्टके इस भागवत पाठको सुनकर ऐसा लिखा है। रघुनाथ भट्ट श्रीवृन्दावनके भक्तोंमें पूजनीय थे।

जयपुरके महाराज मानसिंह रघुनाथ भट्ट गोस्वामीके शिष्य थे। श्रीवृन्दावनका वर्तमान श्रीगोविन्दजीका पुराना मन्दिर राजा मानसिंहका बनवाया हुआ है। भट्ट गोस्वामीने अपने शिष्यको कहकर इस मन्दिरको निर्माण कराया था तथा श्रीगोविन्दजीके श्रीअङ्गके बहुमूल्य अलङ्कारोंका प्रबन्ध कराया था। श्रीवृन्दावनमें वे किस भावसे भजन करते थे, उसका वर्णन कविराज गोस्वामीकी भाषामें सुनिये—

ग्राम्य वार्त्ता नाहि शुने—ना कहे जिह्वाय।
कृष्ण कथा पूजादिते अष्ट प्रहर जाय॥
वैष्णवेर निन्दा कर्म नाहि शुने काने।
सबे कृष्ण भजन करे—एइ मात्र जाने॥

चै. च. अं. १३.१३१.१३२

श्रीश्रीमन्महाप्रभुके दिये हुए माला प्रसादको कड़ाके साथ गलेमें बाँधकर नाम स्मरण करते थे। रघुनाथ भट्ट गोस्वामीका वैराग्य उदासीन विरक्त वैष्णवोचित था। एक प्राचीन पदमें भट्ट गोस्वामीकी गुणराशिका कुछ आभास मिलता है। वह पद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

राधाकृष्ण लीला गुणे, दिवानिशि नाहि जाने,
तुलना दिबार नाहि ठाञि। ध्रु०।
चैतन्येर प्रेमपात्र, तपन मिश्रेर पुत्र,
वाराणसी छिल जार वास।
निज गृहे गौरचन्द्रे, पाइया परमानन्दे,
चरण सेविला दुइ मास॥
श्रीचैतन्य नाम जपि, कत दिन गृहे थाकि,
करिलेन पितार सेवने।
ताँर अप्रकट हैले, आसि पुन नीलाचले,
रहिलेन प्रभुर चरणे॥
महाप्रभु कृपा करि, निज शक्ति सञ्चारि,
पाठाइया दिला वृन्दावन।
प्रभुर शिक्षा हृदे गुनि, आसि वृन्दावन भूमि,
मिलिलेन रूप-सनातन॥
दुइ गोसाञि तारे पात्रा, परम आनन्द हैया,
राधाकृष्ण प्रेमरसे भासे।
अश्रु पुलक कम्प, नाना भावावेशे अङ्ग,
सदा कृष्ण कथार उल्लासे॥
सकल वैष्णव सङ्गे, यमुना पुलिने रङ्गे,
एकत्र हैया प्रेमसुखे।
श्रीमद्भागवत कथा, अमृत समान गाथा,
निरवधि शुने जार मुखे॥
परम वैराग्य सीमा, सुनिर्मल कृष्णप्रेमा,
सुस्वर अमृतमय वाणी।
पशु पक्षी पुलकित, जार मुखे कथामृते,
शुनिते पागल हय प्राणी॥
श्रीरूप श्रीसनातन, सर्वाराध्य दुइ जन,
श्रीगोपाल भट्ट रघुनाथ।
ए राधाबल्लभ बले, पड़िनु विषम भोले,
कृपा करि कर आत्मसाथ॥

महाप्रभुकी नीलाचललीलामें बहुतसे भक्तोंके सम्मिलनकी लीलाकथा है। ऐसे विरले भक्त होंगे जो उनका दर्शन करने नीलाचल न जाते हों। सबकी बात ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक नहीं लिखी है। महाजनगण सूत्ररूपमें कुछ-कुछ लिख गये है। उन सूत्रोंका अवलम्बन करके उन सब लीलाकथाओंको विस्तार पूर्वक लिखनेकी मनमें बड़ी वासना होती है, परन्तु ग्रन्थवाहुल्यके भयसे संक्षेपमें वर्णन किया जाता है। आत्मशुद्धिके लिए यत्किञ्चित भक्त-चरित्रकी आलोचना करके—

"जैछे तैछे लिखि करि आपन पावन।"

चै. च. अं. ११.९

यहाँ गौरभक्त पाठकवृन्दकी कृपा ही मेरा संवल है। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीके सुरमें सुर मिलाकर कहता हूँ—

"श्रोतापद रेणु करों मस्तके भूषण।
तोमरा ए अमृत पींले सफल हम श्रम॥"

चै. च. अं. २०.१८३

उन्होंने और भी कहा है—

श्रूयतां श्रूयतां नित्यं गीयतां गीयतां मुदा।
चिन्त्यतां चिन्त्यतां भक्ताश्चैतन्यचरितामृयम्॥

चै. च. अं. १२.१

अर्थात् हे भक्तगण! बारंबार चैतन्य चरितामृत परमानन्द पूर्वक श्रवण करो, कीर्तन करो और स्मरण करो। इससे तुम्हारा परम मङ्गल होगा।

यह गौराङ्गलीला महासमुद्र है, तथा यह अत्यन्त निगूढ़ है। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"निगूढ़ चैतन्यलीला बूझिते कार शक्ति।
सेइ बूझे गौर चन्द्रे दृढ़ जार भक्ति॥

चै. च. अं. ७.१५३

तिरपनवाँ अध्याय

राय रामानन्दकी गोष्ठी और महाप्रभु

राजार कौड़ि ना देय, आमा के फुकारे।
एइ महादुःख इहा के सहिते पारे॥
प्रभुवाक्य चैतन्य चरितामृत अं. ९.९०

कृष्ण-विरहसें जर्जरित प्रभु

महाप्रभु नीलाचलमें कृष्णविरहमें जर्जरित हो रहे हैं। उनके भीतर-बाहर कृष्णविरह-दुःख सागरकी तरङ्गावली लक्षित हो रही है। उनका तन और मन अपने प्राणवल्लभ कृष्णके लिए सर्वदा व्याकुल रहता है। प्रेमावेशमें वे दिनमें नृत्यकीर्तन करते हैं, प्रेमानन्दमें नित्य जगन्नाथजीका दर्शन करते हैं, रातमें स्वरूप गोसाईं और रामानन्द रायके साथ कृष्ण-कथा-रसके आस्वादनमें मत्त रहते हैं। जगन्नाथजीके दर्शनके बहाने बहुतसे देश-देशान्तरके लोग नीलाचलमें सचल जगन्नाथ महाप्रभुका दर्शन करने आते हैं। महाप्रभुका नाम, यश, गुण और ख्याति अब दिगन्त व्याप्त हो रही है। सब देशके लोग उनके श्रीचरणके दर्शनकी अभिलाषासे, उनके श्रीमुखकी एक बात सुननेके लिए दूर-दूरके देशोंसे नीलाचलमें आते हैं। दयामय महाप्रभुकी असीम दयासे कोई बञ्चित नहीं होता। जो भी एकबार उनका दर्शन करता है, जो भी उनके श्रीमुखकी एक बात सुन लेता है, वही कृष्ण प्रेममें उन्मत्त हो जाता है।

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है कि मनुष्यका वेष धारण करके देवता, गन्धर्व तथा ऋषि लोग नीलाचलमें आकर सचल जगन्नाथ महाप्रभुका दर्शन करके प्रेममें मत्त हो जाते हैं।

प्रभु अपने गम्भीरा मन्दिरके भीतर भजनमें उन्मत्त रहते हैं, बाहर लाखों आदमी उनके श्रीचरणके दर्शनकी लालसासे एकत्रित होकर उनको उच्च स्वरसे पुकारते हैं, "श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु हे! करुणैकसिन्धु हे! पतितपावन हे! एक बार दर्शन दो।" भक्तवत्सल महाप्रभु तत्काल श्रीहस्तमें जपमाला धारण किये श्रीमन्दिरके बाहर आकर खड़े हो जाते हैं और गद्गदकण्ठसे कहते हैं—'कृष्ण कहो।'

महाप्रभुका दर्शन पाकर सब लोग प्रेमानन्दमें उच्चस्वरसे हरिध्वनि करने लगे। उनके आनन्दकी सीमा न रही। इस प्रकार स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभु नीलाचलमें अपूर्व लीलारङ्ग कर रहे थे और साक्षात् दर्शन प्रदान करके तीनों लोकोंके त्रितापदग्ध हृदयको जुड़ा रहे थे।

गोपीनाथको राजदण्ड और महाप्रभु

उसी समय वैषयिक सम्बन्धको लेकर एक भक्तने एक दिन महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"हे प्रभु! बड़े राजपुत्र पुरुषोत्तमने तुम्हारे राय-रामानन्दके भाई गोपीनाथको 'चाङ्गपर चढ़ा दिया है,'* उनका प्राणनाश निश्चय है। भवानन्द राय

* 'चाङ्गपर चढ़ाना—यह प्राचीन घटना है। कोई भारी अपराधका अपराधी होनेपर तत्कालीन प्रथाके अनुसार राजाकी आज्ञासे एक ऊँचा मञ्च निर्माण करके अपराधीको उसके ऊपर चढ़ा दिया जाता था। मञ्चके नीचे सान चढ़ायें हुए खड्ग आदि शस्त्र रखे जाते थे। ऊपरसे अपराधीको नीचे जोरसे गिराकर प्राणबध किया जाता था। इसीको 'चाङ्गपर चढ़ाना' कहते थे।

सगोष्ठी तुम्हारे सेवक हैं। उनके पुत्रकी यदि तुमने रक्षा न की तो उसका निस्तार नहीं है।"

महाप्रभु गम्भीर भावसे बोले—"राजा क्यों गोपीनाथको ऐसी ताड़ना दे रहे हैं? इसका क्या कारण है? खोलकर कहो।" तब उस भक्तने महाप्रभुके सामने गोपीनाथके अपराधका विस्तार-पूर्वक विवरण निवेदन किया।

गोपीनाथ राय रामानन्दके सहोदर भाई हैं। वे राजा प्रतापरुद्रकी सरकारमें नौकरी करते हैं। राजस्व वसूल करनेका भार उनके ऊपर था। वे दो लाख कार्षापण राजस्वके लिए राजसरकारके ऋणी हैं। जब राजाने यह बाकी रकम चुकानेका आदेश किया तो गोपीनाथ बोले—"मेरे हाथमें तो कुछ भी नहीं है, सब खर्च कर चुका हूँ, हमारे पास जो सम्पति या द्रव्यादि है, उसे बेंच करके दूंगा।" इतना कहकर उन्होंने अपने निजी दस बारह उत्तम घोड़े राजद्वारपर लाकर दे दिये। राजपुत्र घोड़ेका मूल्य जानते थे, इसलिए राजाने उनको घोड़ेका मूल्य निश्चय करनेके लिए भेजा। राजपुत्रने गोपीनाथके अश्वके उचित मूल्यको कुछ कम कर दिया। इसमें गोपीनाथ बहुत रुष्ट हुए।

राजपुत्रमें एक मुद्रा दोष था, वह गर्दन फेरकर बीच-बीचमें ऊपरकी ओर देखता था। गोपीनाथने राजपुत्रको गर्वसूचक उपहास वाक्यमें कहा—मेरे घोड़े तो गर्दन घुमाते नहीं, ऊपर देखते नहीं, इसलिए उनका सस्ता मूल्य लगाना तो उचित नहीं है।

राजभृत्यके मुखसे यह उपहास वाक्य सुनकर राजपुत्रके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने राजाके पास जाकर यह बात कही, और अतिरञ्जित करके गोपीनाथका अपराध उनके कानोंमें डालकर उसे चाङ्गपर चढ़ानेकी आज्ञा ले ली। राजाने कहा—"जैसे हो वैसे राजस्व वसूल करो।"

महाप्रभुको अब गोपीनाथका अपराध समझमें आ गया, और रोषमें भरकर बोले—"राजाका राजस्व वसूल करके खा गया है, राजाने दण्ड दिया है, इसमें राजाका क्या दोष है? राजाका धन वेश्या और नर्तकीको देकर खर्च कर दिया है, उसका उपयुक्त दण्ड मिला है। जैसा कर्म था वैसा ही फल मिला है।"

यह सब बातें हो ही रही थी कि एक आदमी दौड़ते हुए आया और महाप्रभुसे बोला कि—"वाणीनाथ आदि सब कोई राजाज्ञासे कैद कर लिये गये।" वाणीनाथ महाप्रभुके एक एकान्त भक्त थे, वे भी राय रामानन्दसे भाई थे। महाप्रभु यह सुनकर बोले—"मैं विरक्त संन्यासी और भिखारी हूँ, मैं उनका क्या करूँ?" तब स्वरूप गोसाईं आदि विशिष्ट भक्तोंने मिलकर महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया—"रामानन्द रायकी गोष्ठीके लोग सब तुम्हारे दास हैं, उनके प्रति उदासीन होना तुमको उचित नहीं।"

यह सुनकह महाप्रभुके मनमें बड़ा रोष हुआ। वे क्रोधपूर्वक बोले—"तब तुम लोग मुझे राजाके पास जाकर आँचल पसारकर भीख माँगनेकी आज्ञा देते हो। मैं पाँच कौड़ीका संन्यासी ब्राह्मण, मुझे कोई दो लाख कार्षापण क्यों देगा?"

महाप्रभुका यह श्लेष और रोषपूर्ण वाक्यदण्ड पाकर स्वरूप गोसाईं आदि भक्तगणने सिर नींचा कर लिया। उसी समय एक और आदमी दौड़कर आया और बोला—"सान चढ़ाये हुए तलवारके ऊपर गोपीनाथको फेंक रहे हैं, अनर्थ हो गया।" यह सुनकर उपस्थित भक्तवृन्द व्याकुल हो उठे। उन्होंने पुनः उनसे अनुनय-विनय करके चरण पकड़कर कहा—"हे प्रभु! इस विपदमें तुम्हारे विना कौन रक्षा करेगा?" महाप्रभु उस समय भी क्रुद्ध होकर चुपचाप बैठे थे। उन्होंने उत्तर दिया—

"मैं भिक्षुक हूँ, मेरे द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता, परन्तु यदि तुम्हारा मन उसकी रक्षा करनेका हो रहा है तो सब मिलकर जगन्नाथजीके चरण पकड़ो, वे सब करनेमें समर्थ हैं।" इतना कहकर वे चुप हो गये।

भक्तगणने महाप्रभुको और कुछ न कहकर तत्काल राजमन्त्री हरिचन्दनके पास जाकर सारी बातें कह सुनायी। हरिचन्दनने राजाको सब बात समझाकर कही और महाप्रभुकी प्रेरणासे उन्होंने आदेश दिया कि—"गोपोनाथ प्राणदण्डकी आज्ञासे मुक्त किये जाँय और उनके जिम्मे पड़ा राजस्व धीरे-धीरे वसूल किया जाय।"

राजाज्ञासे गोपीनाथका प्राण बच गया उनके घोड़ोंका यथार्थ मूल्य निर्धारित हुआ। उनके भाई वाणीनाथ बन्धनमुक्त हो गये।

जो लोग वाणीनाथके गिरफ्तार होनेका समाचार लेकर आये थे उनसे महाप्रभुने पूछा— "जब वाणीनाथको बांधकर लाया गया तो उसने क्या किया ?

उस आदमीने उत्तर दिया—

"वाणीनाथ निर्भये लय कृष्ण नाम।
'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' कहे अविश्राम॥
संख्या लागि दुइ हाते अंगुलिते लेखा।
सहस्रादि पूर्ण हैले अङ्गे काटे रेखा॥

चै. च. अं. ६.५५,५६

यह सुनकर महाप्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ कि वाणीनाथने बन्धनमें पड़कर भी भगवन्नाम स्मरण नहीं भुलाया।

महाप्रभुने जो यह लीलारङ्ग किया, वह निगूढ़ रहस्यपूर्ण था। उन्होंने गोपीनाथको उपलक्ष्य करके गृही भक्तोंको शिक्षा दी कि, "असत् उपायसे अर्थोपार्जन करना अथवा राजाके राजस्वको वसूल करके खर्च कर डालना महापाप है। और वह पाप करके जब लोग राजदण्डसे दण्डित हों तो उसे सन्तुष्ट चित्तसे सिर झुकाकर ग्रहण करना चाहिये। वैसा न करके श्रीभगवान्‌से 'मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो' कहकर बारम्बार चिल्लानेसे कोई फल नहीं होता। और एक बात यह है कि असद् व्यक्ति भक्त हो या अभक्त हो, पापका दण्ड उसको भोगना ही पड़ेगा।"

गोपीनाथ रामानन्द रायके भाई, और भवानन्दके पुत्र थे। महाप्रभुके साथ रामानन्द रायकी विशेष घनिष्ठता थी। इस कारण रामानन्दकी दोहाई देकर भक्त-गणने गोपीनाथको बचानेके लिए महाप्रभुसे अनुरोध किया था। धर्म-रक्षक महाप्रभुने इस अवसरपर धर्मकी मर्यादा, राजनीतिकी मर्यादा राजाका गौरव आदि सबकी रक्षा की। गोपीनाथ दोषी थे, उनको उपयुक्त दण्डकी आवश्यकवा थी, और वही दण्ड राजाने उनको दिया था, या दे रहे थे। उसमें बाधा डालना अन्याय होगा—ऐसा विचारकर महाप्रभुने निरपेक्ष भावसे न्याय पथका अवलम्बन करके राजाज्ञाके सम्मानकी रक्षा की। भक्तका भाई होनेके कारण गोपीनाथके प्रति सब भक्तगणके सनिर्बन्ध अनुरोध होनेपर भी उन्होंने प्रत्यक्षरूपमें कोई कृपा नहीं दिखलायी। परन्तु वे भक्तवत्सल थे, भक्तका सम्बन्ध मानते थे। इसी कारण परोक्ष प्रेरणाके द्वारा हरिचन्दनको प्रेरित करके राजा प्रतापरुद्रके मनको शान्त किया, तथा कौशलपूर्वक राजाके द्वारा राजाज्ञाको खण्डित किया। परम कौशली महाप्रभुने कौशल करके चतुर्दिककी रक्षा की। चतुर चूड़ामणिकी चतुराई समझनेकी शक्ति किसमें है ? तथा कृपामय महाप्रभुकी कृपाका मर्म कौन समझ सकता है ? पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इसी कारण लिखा है कि—

"के बूझिते पारे गोरेर कृपार-छन्दबन्ध ?"

चै. च. अं. ६.५७

सब उनकी कृपा है, उनका अनुग्रह और निग्रह, दोनों ही उनकी कृपा है। भ्रमवश जीव इसको समझ नहीं पाता। इसी कारण जीवका सारा दुःख और हाहाकार है। मङ्गलमय भगवान्‌के सारे कार्य ही मङ्गलमय हैं। करुणामय महाप्रभुके सारे लीलारङ्ग जीवकी कल्याण-शिक्षाके लिए हैं। यह बात समझ लेनेपर जीवके दुःखका मूलोच्छेद हो जाता है। हाहाकार सदाके लिए मिट जाता है।

महाप्रभुके पास संवाद आया कि राजाकी आज्ञासे गोपीनाथकी प्राणरक्षा हो गयी है। वाणीनाथ बन्धनमुक्त हो गये हैं, भक्तवृन्द आनन्दसे उनका जय-जयकार कर रहे हैं और राजाको आशीर्वाद दे रहे हैं।

उसी समय काशी मिश्र महाप्रभुके पास आये। वे राजगुरु थे, उन्हींके घरपर महाप्रभुका वासा था। महाप्रभु उनके ऊपर विशेष कृपा करते हैं, और सम्मान भी करते हैं। महाप्रभुने अत्यन्त उद्वेगपूर्ण शब्दोंमें उनसे उस दिन कहा—"मिश्रजी! अब मैं यहाँ नहीं रह सकता, मैं आलालनाथ जानेका विचार कर रहा हूँ। यहाँ नाना प्रकारके उपद्रव हो रहे हैं, किसी प्रकारकी शान्ति नहीं है। भवानन्द रायका सारा परिवार राज सरकारका कर्मचारी है, सब राजाका राजस्व खाते हैं, इसमें राजाका क्या दोष है? वे दण्ड देते हैं, आज गोपीनाथको चाङ्गपर चढ़ाया था, वाणीनाथको गिरफ्तार किया था। जगन्नाथने उनकी रक्षा की है। परन्तु मेरे पास बार बार लोग आते थे, मैं भिक्षुक संन्यासी हूँ, निर्जन कुटीमें वास करता हूँ। मैं क्या कर सकता हूँ? विषयकी बात सुनकर मेरा मन क्षुब्ध हो जाता है, भजनमें विघ्न होता है, इसी कारण यहाँ रहना मुझे युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता।

काशीमिश्र परम पण्डित और भक्तितत्त्वके ज्ञाता थे। उन्होंने महाप्रभुके हृदयकी वेदना समझी, मनके भावको जाना, उनके चरण पकड़कर निवेदन किया, "हे प्रभु! इससे आप मनमें क्षुब्ध क्यों होते हैं? आप विरक्त संन्यासी हैं। आपका किससे सम्बन्ध है? जो विषय व्यवहारको लेकर तुम्हारा भजन करता है, वह अज्ञानी है, वह मोहान्ध है।

सेइ शुद्ध भक्त—तोमा भजे तोमा लागि।
आपनार सुख-दुःखे हय भोग-भोगी॥

चै. च. अं. ९.४७

रामानन्दने तुम्हारे लिए दक्षिणात्यके राज्यको छोड़ दिया, सनातनने बादशाहके मन्त्री पदको तुच्छ समझा, रघुनाथ दासने बारह लाख रुपयेके अपनी मिलकियतको मलमूत्रवत् त्याग दिया। रामानन्दके भाई गोपीनाथ तुम्हारे भक्त हैं, तुम्हारे पास विषय लाभकी आशासे वे नहीं आते। उनका दुःख देखकर उनके आदमी तुम्हारे चरणोंमें केवल उनका दुःख निवेदन करने आये थे। तुम्हारी कृपादृष्टि पाकर ही वे कृतार्थ हो जाते हैं। हे प्रभु! तुम यहीं रहो, आलालनाथ न जाओ, अब कोई तुम्हारे कानोंमें विषयकी बात नहीं सुनायेगा। यदि किसीकी रक्षा करनेकी तुम्हारी इच्छा होती है, तो आज जिसने गोपीनाथकी रक्षाकी है, उसीके द्वारा वह काम सिद्ध हो जायगा।" महाप्रभुने सिर नीचा करके काशीनाथ मिश्रकी सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनी, परन्तु कोई उत्तर न दिया। काशीमिश्र महाप्रभुको प्रणाम करके अपने घर गये।

काशीमिश्रकी बात बहुत सारगर्भित थी। महाप्रभुने उसे समझा, और उसके द्वारा उनके मनका उद्वेग कुछ प्रशमित हुआ। काशीमिश्रकी अन्तिम बात बहुत महत्वपूर्ण है।

काशीमिश्र बोले, "तुम इच्छामय हो, तुमने गोपीनाथकी रक्षा करनेकी इच्छा की थी, तभी वह जगन्नाथकी कृपासे आज बच सका। तुम मुखसे

चाहे जो कहो, भीतरसे भक्तकी शुभकामना करते हो। तुम जो सोचते हो जगन्नाथ वही करते हैं, क्योंकि तुम और जगन्नाथ एक वस्तु हो। वे अचल हैं, तुम सचल हो, अतएव तुम्हारी महिमा ही अधिक है, इसी कारण विषयमें पड़कर लोग तुम्हारे पास आते हैं। तुम जगत्के जीवके प्रति शुभ दृष्टिपात करते हो, सब लोगोंकी शुभ कामना करते हो, सारे शुभ अनुष्ठान तुम्हारे द्वारा ही सिद्ध होते हैं। तुम इच्छामय हो, तुम्हारी इच्छासे ही यह सारा ब्रह्माण्ड सञ्चालित हो रहा है, सारे शुभाशुभ संघटित हो रहे हैं। तुम जिसके ऊपर एकबार कृपादृष्टि डालते हो, जगन्नाथ सर्वतोभावेन उसकी रक्षा करते हैं। तुमने गोपीनाथके ऊपर कृपादृष्टि की थी, इसीसे आज उसकी प्राणरक्षा हुई।"

काशीमिश्रकी अन्तिम बातका यही मर्म है। महाप्रभुका यह लीलारङ्गाभिनय अभी समाप्त नहीं हुआ था। गोपीनाथकी प्राण रक्षा तो हो गयी, परन्तु दो लाख कार्षापण राजस्व उन्हें राजाको देना पड़ेगा। वह महाप्रभुके श्रेष्ठभक्तके भाई हैं, और स्वयं भी प्रभुभक्त हैं। इस उत्तरदायित्वसे उनकी रक्षा करनेके लिए भक्तवत्सल प्रभुका मन हुआ। वे मुँहसे कुछ नहीं बोलते, परन्तु कार्यरूपमें सब करते हैं। कैसे करते हैं—काशीमिश्रको महाप्रभुने इस कार्यका व्रती बनाया।

पहले कहा जा चुका है कि काशीमिश्र राजगुरु थे। राजा प्रतापरुद्र अत्यन्त गुरुभक्त थे। उनका नियम था कि जब नीलाचलमें रहते थे तो नित्य गुरुके आश्रममें जाकर, उनका पाद-संवाहन करते थे, और जगन्नाथजीकी सेवाके सारे वृत्तान्त सुनते थे। उस दिन वे गुरु-गृहमें जाकर गुरुपादपद्मकी सेवा कर रहे थे, उसी समय गुरुदेवने उनको यह विषम संवाद सुनाया, "महाप्रभु क्षेत्र छोड़कर अलालनाथ जाना चाहते हैं।"

राजा प्रतापरुद्र महाप्रभुको सचल जगन्नाथ मानते थे। उन्होंने अपनी आँखों देखा था कि जो जगन्नाथ हैं, वे ही श्रीगौराङ्ग हैं—यह लीलाकथा पहले विस्तारपूर्वक वर्णित हो चुकी है। वे यह विकट समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुए। हाथ जोड़कर गुरुदेवके श्रीचरणोंको पकड़कर इसका कारण पूछा। काशीमिश्रने गोपीनाथको चाङ्ग चढ़ानेसे लेकर महाप्रभुके साथ इस घटनाके सम्बन्धमें जो बातें हुई थी, सब एक-एक करके राजाको सुना दी। और कहा कि महाप्रभु कहते हैं, लोग राजाका राजस्व अपहरण करेंगे, और जब उनको राजदण्ड मिलेगा तो मुझे परेशान करेंगे, इसी कारण वे राजधानी छोड़कर जा रहे हैं।

राजोचित कौड़ि ना देय, आमाके फुकारे।
एइ महादुःख, इहा के सहिते पारे ? ॥
चै. च. अं. ९.९०

इसी कारण वे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र छोड़कर आलालनाथ जानेका विचार कर रहे हैं। यह बात सुनकर राजा प्रतापरुद्र मनमें व्यथित होकर बोले, "गुरुदेव! महाप्रभु यहाँ रहें तो मैं अपना सर्वस्व त्याग सकता हूँ। क्षणमात्रके लिए भी उनके श्रीचरणका दर्शन कोटि चिन्तामणिकी प्राप्तिसे श्रेष्ठ है। दो लाख कार्षापण राजस्व तो सामान्य बात है, मैं अपना यह तुच्छ प्राण भी महाप्रभुके चरणोंमें विना क्लेशके उपहार देनेके लिए प्रस्तुत हूँ।

काशीमिश्रने राजाको आश्वासन देते हुए कहा, "राजन्! महाप्रभुकी यह इच्छा नहीं है कि आप गोपीनाथसे अपना राजस्वका बकाया न लें, वे तो केवल दूसरोंके दुःखसे दुःखी हो जाते हैं।"

राजाने तब कातर भावसे कहा, "मैं तो उसको कोई दुःख नहीं देता, उसको चाङ्ग चढ़ानेकी घटना

भी मुझको मालूम नहीं है। मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि, गोपीनाथने मेरे ज्येष्ठ पुत्र पुरुषोत्तमको अपमानसूचक बात कही है, और जान पड़ता हैं कि इसी कारण कुमारने उनको भय दिखलाकर रुपये वसूल करनेकी चेष्टा की थी। जो हो, आप जैसे हो वैसे महाप्रभुको यहाँ रखनेका प्रबन्ध करें, मैंने गोपीनाथका सारा भार ग्रहण कर लिया।" काशीमिश्र फिर बोले, "बकाया रुपया छोड़नेसे महाप्रभुका मन सन्तुष्ट न होगा।" राजाने उत्तर दिया, "मैं रुपया छोड़ दूँगा, यह बात आप उनसे न बोलें, केवल कह दें कि राजाने उनके दोषको क्षमा कर दिया। भवानन्द राय मेरे पूजनीय हैं, उनके पुत्रगण मेरे प्रिय बान्धव हैं।" यह बात कहकर राजा प्रतापरुद्र गुरुदेवकी चरणधूलि लेकर उस दिनके लिए विदा हुए।

घर जाकर राजा प्रतापरुद्रने गोपीनाथको राजदरबारमें बुलवाया और कहा—"गोपीनाथ ! तुमको बाकी रुपयोंके दायित्वसे मैंने मुक्तकर दिया। तुमको पहली नौकरी पर बहाल किया, और तुम्हारा वेतन दूना बढ़ा दिया। ऐसा काम फिर मत करना।" यह कहकर राजाने उनको विशिष्ट राजकीय परिच्छदसे विभूषित किया। गोपीनाथ परम आनन्दपूर्वक राजाकी वन्दना करके विदा हुए।

महाप्रभुकी कृपादृष्टिका मर्म समझनेकी मुझमें कुछ शक्ति नहीं है, फिर भी कुछ समझनेकी चेष्टा करूँगा। रामानन्द रायके सम्बन्धसे उनके भाई गोपीनाथके ऊपर महाप्रभुकी कृपाका अन्त नहीं है, कृपाविन्दुसे धीरे-धीरे उनके ऊपर कृपावृष्टि हुई। परमार्थ भावमें महाप्रभुने बहुतसे भक्तोंपर कृपा की है। उसका क्या फल हुआ, यह बात मैं यहाँ न कहूँगा। विषयभोगके द्वारा भी महाप्रभु अपने विषयी गृही भक्तगणपर कृपा करते थे। इसका दृष्टान्त गोपीनाथ पट्टनायक हैं। राजदण्डसे दण्डित होकर वे मरने ही वाले थे, परन्तु इसके स्थानमें उनको जीवन दान मिला, पुनः उनको वही उच्च पद प्राप्त हो गया, उनका वेतन दूना बढ़ गया, वे राजसम्मानसे सम्मानित हुए।

महाप्रभुकी इस असीम कृपाका अनुभव करके एकान्तमें बैठकर गोपीनाथ बालकके समान रोने लगे, और विपद-निवारण महाप्रभुके सुशीतल चरणकमलका स्मरण करने लगे। उनका स्वभाव पूर्णतः एकवारगी बदल गया। अनुतापानलसे उनका हृदय निर्मल हो गया, उनके नयन-जलसे सारे पाप धुल गये। वे महाप्रभुके एकान्त भक्त हो गये, और अनासक्त भावसे विषयभोग करते हुए भजनमें रत हो गये। वे फिर विषय विषमें मग्न नहीं हुए। महाप्रभुकी इस कृपादृष्टिके प्रभावसे रामानन्दके परिवारकी गौराङ्ग भक्ति दृढ़से दृढ़तर हो गयी।

महाप्रभुके इस लीला रहस्यमें एक और निगूढ़ तत्त्व निहित है। गोपीनाथको विषय सुख देनेका उनका शुरूसे ही मन न था, किन्तु काशीमिश्रकी इच्छासे और निवेदनके प्रभावसे महाप्रभुका मन चलायमान हुआ। उन्होंने गोपीनाथको विषय सुख प्रदान किया। भक्तके निवेदनकी भक्तके भगवान् रक्षा करते हैं, भक्तकी प्रार्थना पूर्ण करनेके लिए श्रीभगवान्‌को अपना सङ्कल्प तक त्यागना पड़ता है। इसके प्रमाण भक्तिके ग्रन्थोंमें सैकड़ों मिलते हैं। भक्तके निवेदनके प्रभावके बलसे जो फल फलता है, उसके द्वारा भी हृदयकी शुद्धि होती है। गोपीनाथकी विषय प्राप्ति उनके भजनमें सहायक हुई, उन्होंने इस भगवद्दत्त विषयको भगवत्कार्यमें लगाकर युक्त वैराग्यवान् होकर अनासक्त भावसे भगवद्भजनमें मन लगाया। श्रीभगवान्‌के सामने भक्तके निवेदन-प्रभावकी जो अद्भुत शक्ति है,

उसको बतलानेके लिए महाप्रभुने यह अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया। अतएव पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

के कहिते पारे गौरेर आश्चर्य स्वभाव।
ब्रह्मा शिव आदि जार ना पाय अन्तर्भाव॥
चै. च. अं. ६.११३

काशीमिश्र महाप्रभुके एकान्त अन्तरङ्ग भक्त थे। वे उनके सामने कुछ भी नहीं छिपाते थे। राजा प्रतापरुद्रने गोपीनाथके सम्बन्धमें जो कुछ किया, वे सब बात एक-एक करके काशीमिश्रने महाप्रभुको निष्कपट भावसे कह सुनायी। दयामय महाप्रभुने सुनकर विस्मय विस्फारित नेत्रोंसे कहा—"काशीमिश्र ! तुमने यह क्या किया ? तुमने मुझको राजप्रतिग्रही बना दिया। अर्थात् मेरे खातिर राजाने गोपीनाथ पर जिस प्रकार दया की है, इससे उन्होंने मानो मेरे ही ऊपर दया की है। जो विषयसुख उन्होंने गोपीनाथको दिया है, वह मानो मुझको ही दिया है, अतएव मैंने ही मानो राजपरिग्रह स्वीकार किया। मैं संन्यासी हूँ, मेरा धर्म नष्ट हो गया।" महाप्रभुके श्रीमुखकी बातका यही भावार्थ है।

काशीमिश्रने महाप्रभुके चरणोंमें हाथ जोड़कर निवेदन किया, "हे प्रभु ! राजाने निष्कपट भावसे उनको क्षमा किया है, उनका सम्मान किया है, उनकी वेतन वृद्धि कर दी है, बकाया राजकरसे मुक्त कर दिया है। भवानन्दराय राजाके प्रिय मित्र हैं, उनके परिवारके साथ राजाका चिरकालसे प्रीति सम्बन्ध है। उसी प्रीति सम्बन्धसे उन्होंने ऐसा किया है। आपको चिन्तित होनेका कोई हेतु नहीं है। आपके लिए उन्होंने यह कार्य नहीं किया है।

काशीमिश्रके वचन-कौशल-जालसे महाप्रभुका मन शान्त हुआ। भक्तके भगवान् भक्तके सामने सदासे पराजित हैं। यही दिखलानेके लिए सर्वज्ञ प्रभु काशीमिश्रकी बातोंमें भूल गये। राजा प्रताप रुद्रकी सदाशयताका परिचय पाकर महाप्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

यह सब बातें जिस समय महाप्रभु काशीमिश्रसे कह रहे थे, उसी समय भवानन्द राय अपने पाँचों पुत्रोंके साथ महाप्रभुके वासा पर आये। सबने एक साथ उनके श्रीचरणकमलमें लम्बायमान होकर दण्डवत् प्रणाम किया। दयामय महाप्रभुने भवानन्दको श्रीहस्तसे पकड़कर उठाया और गाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ किया। तब भवानन्द रायने रोते-रोते उनके चरणोंमें निवेदन किया—"मेरा सारा वंश तुम्हारा किंकर है। इस विपदसे उबारकर तुमने मुझे खरीद लिया है। जिस प्रकार पूर्वकालमें पञ्चपाण्डवोंकी रक्षा की थी तुमने अपने भक्तवात्सल्यको प्रकट किया है।"

रामानन्द राय, वाणीनाथ, गोपीनाथ आदि पाँचों भाई महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर व्याकुल होकर प्रेमाश्रुवर्षण करने लगे। भक्तवत्सल महाप्रभुने एक-एक करके सबको उठाकर प्रेमालिङ्गन प्रदान कर कृतार्थ किया। सबको बैठनेका आदेश दिया।

भवानन्द राय वृद्ध हो गये थे। श्रीगौराङ्ग-चरणमें उनकी अचल भक्ति थी। रामानन्द और वाणीनाथ विषय-संश्रव त्याग करके महाप्रभुकी सेवा कर रहे हैं—यह देखकर उनके मनमें बड़ा आनन्द होता था। वे चाहते थे कि उनके पाँचों पुत्रोंको अपनाकर महाप्रभु उनको विषयोंसे विरक्त कर दें, और साथ ही उनका विषयकूपसे उद्धार करें। उन्होंने अपने मनकी बात महाप्रभुके चरणोंमें निवेदनकर दी—"हे प्रभु ! तुम्हारे श्रीचरणोंके स्मरणके फलस्वरूप गोपीनाथकी जीवन-रक्षा हुई है, उसको विषयभोग प्राप्त हुआ है, परन्तु हे दयामय ! तुम्हारे चरण-कमलके स्मरणका यह

फल नहीं, फलाभास मात्र है। तुमने कृपा करके रामानन्द और वाणीनाथको निर्विषय किया है, मुझ पर और मेरे दूसरे तीन पुत्रों पर भी कृपा करके हमको इस विषमय विषय कूपसे केश पकड़कर उद्धार करो, तुम्हारे चरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है। विषय सम्बन्धके हटे बिना तुम्हारे चरणोंमें शुद्ध मति नहीं हो सकती।"

भक्तवत्सल महाप्रभुने मुस्कराकर मधुमय भाषामें उत्तर दिया—"यदि तुम्हारे पाँचों पुत्र संन्यासी बन जायँगे तो इतने बड़े कुटुम्बका भरण-पोषण कौन करेगा ? विषय भोग करो अथवा उदासीन रहो, तुमलोग जन्म-जन्मके मेरे दास हो। मेरी एक बात मानना। राजाके मूलधनका व्यय नहीं करना। उस मूलधनसे जो कुछ प्राप्त हो, उसीको नाना प्रकारके धर्म-कर्ममें व्यय करना। असद् व्यय नहीं करना, जिससे दोनों लोकोंका नाश होता है।"

महाप्रभुका यह उपदेश गृही वैष्णवके लिए प्रयोज्य है। उन्होंने भवानन्द रायसे कहा कि गृहस्थके पाँचों पुत्र यदि संन्यासी हो जाँयगे तो परिवारका भरण पोषण कौन करेगा ? आत्मीय स्वजनका पालन रक्षण कौन करेगा ? दो पुत्र विषय-मुक्त हो गये हैं, इतना ही पर्याप्त है। महाप्रभु एक और बात बोले वह। निगूढ़ तत्त्व और रहस्यसे पूर्ण था। उन्होंने भवानन्द रायसे कहा, "तुम लोग मेरे जन्म-जन्मान्तरके दास हो, तुम लोग चाहे महाविषयी रहो अथवा विरक्त उदासीन होओ, मेरी कृपा तुम्हारे ऊपर सदा सम भावसे रहेगी।"

अब एक तत्त्वकी बात सुनिये। लीलाकथा कहते-कहते तत्त्व कथा भी आवश्यक है, इन सब बातोंको सुननेमें आलस्य करनेसे काम नहीं चलेगा। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस।
इहा हैते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥
चैतन्य-महिमा जानि एसब सिद्धान्ते।
चित्त दृढ़ हञा लागे महिमा ज्ञान हैते॥

चै. च. आ. २.९९,१००

गोस्वामी शास्त्रमें लिखा है कि भवानन्द रायके पाँच पुत्र पाँच पाण्डव थे। युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई श्रीकृष्ण भगवान्‌के नित्यदास थे। 'व्रजेन्द्रनन्दन जेइ शचीसुत हैल सेइ'—श्रीकृष्ण और श्रीगौराङ्ग एक वस्तु हैं, अतएव भवानन्द रायका परिवार, रामानन्द आदि पाँच भाई महाप्रभुके नित्यदास हैं। नित्यदासवृन्द श्रीभगवान्‌के पार्षद होते हैं। सर्वोत्तम नरलीलाकी सहायताके लिए वे श्रीभगवान्‌के अवतारके समय उनके साथ भूतलमें अवतीर्ण होते हैं, और लीलाका अवसान होने पर उनके साथ नित्यधाममें चले जाते हैं। यह शास्त्रके सिद्धान्तकी बात है। नित्यदासगणको श्रीभगवान् जिस प्रकार भूतलमें लाते हैं, जिस कर्ममें लगाते हैं, वही उनके लिए सर्वोत्तम होता है, और वही श्रीभगवान्‌का परम प्रिय होता है। वे किसीको विषयी बनाते हैं, किसीको परम उदासीन वृत्ति देते हैं, इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। वे लोग श्रीभगवान्‌के दास हैं, कोई महाविषयी होकर भी पूर्ण अनासक्त भावमें श्रीभगवान्‌के संसारका पोषण करता है। और कोई महाविरक्त संन्यासी भावमें उदासीन रहकर जगत्‌का उपकार और भगवद्भजन करता है सर्वधर्मरक्षक महाप्रभु यह समझानेके लिए बोले—

महा विषय कर किवा विरक्त उदास।
जन्मे जन्मे तुमि पञ्च मोर निज दास॥

चै. च. अं. ९.१३९

उसके बाद उन्होंने विषय व्यवहारका प्रसङ्ग उठाकर गोपीनाथको उपदेश दिया, वह उपदेश श्रीभगवान्‌की सर्वोत्तम नरलीलाका पूर्ण परिचायक है।

महाप्रभुका उपदेशामृत पानकर भवानन्द राय और उनके पाँचों पुत्रोंके मन-प्राण और शरीर शीतल हो गये, भवक्षुधाकी निवृत्ति हो गयी। वे लोग प्रेमानन्दमें महाप्रभुके श्रीचरणतलमें गिरकर उनका चरणमधु पान करने लगे। और अजस्र अश्रु बहाने लगे। दयामय भक्तवत्सल महाप्रभुने उनको श्रीहस्तसे उठाकर एक-एक करके सबको प्रेमालिङ्गन दानकर कृतार्थ करके बिदा किया।

उपस्थित भक्तवृन्द भवानन्दके परिवारके प्रति महाप्रभुकी कृपादृष्टि देखकर विस्मय और आनन्दसे विह्वल होकर उच्च हरिध्वनि करने लगे।

श्रीभगवान् भक्तके सम्बन्धको मानते हैं, यह बड़ी ही आशाप्रद बात है। जिस किसी परिवारमें यदि एक भगवान्का दास जन्म लेता है, तो वह केवल अपने परिवारका ही उद्धार नहीं करता, बल्कि सात पीढ़ी ऊपर और नीचे तकका उद्धार करता है, यह शास्त्र वाक्य हैं।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुंधरा सा वसतिश्च धन्या।
नृत्यन्ति स्वर्गे पितरोऽपि तेषां
येषां कुले वैष्णवनामधेयम्॥
—पद्मपुराण।

रामानन्द राय महाप्रभुके अन्तरङ्ग भक्त थे, उस सम्बन्धसे उनके परिवारके प्रति उन्होंने जो कृपा प्रदर्शित की, उसमें भक्तवात्सल्यकी पराकाष्ठा थी। गृही वैष्णबके प्रति महाप्रभुकी अपार कृपा थी. यह बात पहले कही जा चुकी है। इस लीलारङ्ग द्वारा उन्होंने गृही-वैष्णवके कर्त्तव्यकी शिक्षा दी है, तथा उनके ऊपर अपनी कृपाकी पराकाष्ठा दिखला दी है। गृही वैष्णव अनासक्त भावसे गृहस्थी चलाते हुए श्रीभगवान्के चरण कमलमें मन-प्राण समर्पण करनेमें समर्थ होता है। वह विषयमें रहते हुए विषयशून्य, भोग विलासमें रहते हुए भी भोगस्पृहा-शून्य, प्रलोभनके बीच पड़कर भी निर्लोभी, पद्मपत्रमें जैसे जल नहीं लगता, उसी प्रकार किसी सांसारिक आसक्तिके बन्धनमें बद्ध नहीं होता। वह युक्त वैराग्यवान् महायोगी तथा संसार निर्लिप्त महापुरुष होता है। श्रीवास पण्डित, शिवानन्द सेन, मुरारि गुप्त, पुण्डरीक विद्यानिधि आदि श्रीगौराङ्ग-पार्षद भक्तगण इसी श्रेणीके महापुरुष थे। श्रीगौर-भगवान्की कृपा इस प्रकारके गृहस्थ भक्तोंके ऊपर अधिक थी। ठाकुर नरोत्तम दासने लिखा है—

गृहस्थ वैष्णवेर गुण शुन रे पामर।
पद्मपुष्प भासे जेन जलेर ऊपर॥

महाप्रभुका अपूर्व लीलारङ्ग समझनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। उनका चरित्र जिस प्रकार गम्भीर है, उनका लीला-समुद्र भी उसी प्रकार गम्भीर है। उनके चरणोंमें जिनकी दृढ़ और स्थिर भक्ति है, महाप्रभुके लीलारङ्गका मर्म वही समझ सकता है। एक-एक लीलारङ्गमें वे पाँच-सात कार्योंका उद्धार करते हैं, उनके सारे लीलारङ्ग लोक-शिक्षाके लिए होते हैं। श्रीगौराङ्ग-लीला कथा मधुसे भी मधु और परम गुह्य, अर्थात् वेदातीत है। श्रीभगवान्का लीलारहस्य भी वेदगुह्य है। यह मेरी बात नहीं है, यह महाजन गण विचार करके लिख गये हैं, श्रीगौराङ्ग-लीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है—

चारिवेद-गुप्तधन चैतन्येर कथा।
चै. भा. म. १५.६७

अतएव कृपालु पाठकवृन्द! गौराङ्ग-लीलाका अनुशीलन और अनुध्यान करें। श्रीभगवान्की

निजस्व सम्पत्ति, चिर-गुप्तवित्त जो अमूल्य प्रेमधन है, उसको प्राप्त करनेका एक मात्र उपाय है उनके लीलामधुको पान करना, और उनके लीला-मधुप भक्तोंका सङ्ग करना। इसीलिए पूज्य-पाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

चैतन्य चरितामृत कर नित्य पान।
जाहा हैते प्रेमादन्द भक्तितत्त्व-ज्ञान॥

चै. च. अं. ५.८६

चौवनवाँ अध्याय

(नदियाके भक्तगण पुनः नीलाचलमें, वैष्णवोच्छिष्टकी महिमा, गौराङ्ग और विभीषण संवाद)

कृष्णेर उच्छिष्ट हय 'महाप्रसाद' नाम।
भक्तशेष हैले 'महा-महाप्रसाद' आख्यान॥
भक्तपद धूलि आर भक्तपदजल।
भक्तभुक्त-अवशेष — तिन महाबल॥
एइ तिन सेवा हइते कृष्णप्रेमा हय।
पुनः पुनः सर्वशास्त्रे फुकारिया कय॥

चै. च. अं. १६.५४-५६

नदियाके भक्त पुनः नीलाचलमे

और भी एक वर्षका समय बीत गया। रथयात्रा उत्सवके उपलक्ष्यमें नदियाके भक्तगण महाप्रभुका दर्शन करने पुनः नीलाचलमें आये। इस समय महाप्रभुकी दिव्योन्माद अवस्था थी। कृष्णविरह-दशा ग्रस्त होकर वे रात-दिन व्याकुल भावमें केवल यही कहते थे—

हा हा कृष्ण ! प्राणनाथ ! व्रजेन्द्रनन्दन।
काँहा जाङ ? काँहा पाङ ? मुरलीवदन॥

चै. च. अं. १२.४

इसके सिवा महाप्रभुके मुखसे और कोई बात नहीं निकलती थी, उनके नयनद्वयसे सर्वदा प्रेमनदी बहती थी। रातमें गम्भीरा मन्दिरमें बैठकर स्वरूप गोसाईं और रामानन्द राय उनके साथ कृष्ण-कथा कहते थे, इससे महाप्रभुकी कृष्ण विरह-व्यथा कुछ शान्त होती थी। दिनमें वे नियमपूर्वक भक्तसङ्ग करते थे, जगन्नाथजीका दर्शन करते थे। उनका मन अत्यन्त उदास रहता था। शरीर क्षीण होता जाता था। प्राणमें शान्ति नहीं थी।

महाप्रभुजीकी ऐसी स्थितिमें नदियाके भक्तगण नीलाचलमें आकर उपस्थित हुए। महाप्रभुके साथ सबका पूर्ववत् मिलन हुआ। स्त्रियोंने दूरसे ही उनका दर्शन किया। महाप्रभुके आदेशसे गोविन्दने पूर्ववत् सबका बासा ठीक कर दिया, महाप्रभुके वासापर उस दिन सबको महाप्रसादके लिए निमन्त्रण दिया गया।

शिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र और महाप्रभु

नीलाचलमें नदियाके भक्तगणके साथ महाप्रभु प्रेमानन्दमें मग्न थे। शिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र इस वर्ष भी साथ आये थे। शिवानन्द सेन बीच-बीचमें पुत्रोंके सहित प्रभुका दर्शन करने आते थे। उनका कनिष्ठ पुत्र पुरीदास नितान्त बालक होते हुए भी पिताके साथ प्रभुका दर्शन करनेके लिए बहुत व्यग्र हो जाता था। उसको साथ लेकर न आनेपर वह रोते-रोते व्याकुल हो उठता था। अतएव अनेक असुविधा होनेपर भी शिवानन्द सेन पुरीदासको साथ लेकर महाप्रभुके वासापर आते थे। महाप्रभु भी पुरीदासके साथ नाना प्रकारके हास्य-कौतुक लीलारङ्ग करते थे।

एक दिन प्रभु उस बालकको आदरपूर्वक पास बैठाकर बारम्बार कहने लगे—"कृष्ण कहो, कृष्ण कहो।" पुरीदास चुप रहा, कुछ भी न बोला, महाप्रभुकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया, स्थिर होकर बैठा रहा।

'कृष्ण कह' बलि प्रभु बोले बारम्बार ।
तभु कृष्ण-नाम बालक ना करे उच्चार ॥

चै. च. अं. १६.६२

शिवानन्द सेन तथा उपस्थित भक्तगण बालककी यह दुर्बुद्धि देखकर आश्चर्य करने लगे। शिवानन्द सेन स्वयं बहुत यत्न करके भी अपने बालक पुत्रके मुखसे कृष्ण नाम बाहर न करा सके। वे किञ्चित क्रुद्ध और विशेष लज्जित होकर महाप्रभुके मुखचन्द्रकी ओर देख न सके।

तब महाप्रभुने हँसकर कहा—"मैंने सारे जगत्से नाम लिवाया। स्थावर पर्यन्तसे कृष्णनाम लिवाया, लेकिन इससे कृष्ण-नाम नहीं कहवा सका।"

वहाँ सुचतुर स्वरूप दामोदर गोस्वामी उपस्थित थे। वे इस बालकका भाव पर्यवेक्षण कर रहे थे। स्वरूप गोसाईं भजनविज्ञ सिद्ध महापुरुष थे। उनने महाप्रभुसे हँसकर कहा—"प्रभु! तुमने इस बालकको कृष्ण-मन्त्रका उपदेश किया है। तुम्हारे पास मन्त्रोपदेश पाकर वह किसीके सामने उसे प्रकट नहीं करना चाहता। पुरीदास मन्त्र मन-ही-मन जप रहा है, मुखसे प्रकट नहीं करता। मैं अनुमान करता हूँ, यही इसका मनोगत भाव है।"

सर्वज्ञ महाप्रभु स्वरूप गोस्वामीकी यह बात सुनकर मृदुमन्द मुस्कराये। शिवानन्द सेनके मनमें इससे बड़ा सन्तोष हुआ। भक्तगण यह सुनकर प्रेमानन्दमें उच्च हरिध्वनि कर उठे। शिवानन्दका पुत्र महाप्रभुके चरणकमलकी वन्दना करके पिताके साथ घर गया।

शिवानन्दके पुत्र पुरीदासके साथ प्रभुका यह द्वितीय लीलारङ्ग था।* इससे ज्ञात होता है कि कवि कर्णपूर गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके मन्त्रशिष्य थे। इस प्रकारके मन्त्रशिष्य उनके अनेकों थे।

इस भाग्यवान् बालकके साथ महाप्रभुने एक और अपूर्व लीलारङ्ग किया, वह भी यहाँ वर्णित है। दूसरे किसी दिन पुरीदास पिताके साथ प्रभुका दर्शन करने उनके वासापर गया। महाप्रभु पूर्ववत् स्नेहपूर्वक बालककी पीठपर पद्महस्त देकर बोले—"पुरीदास, पढ़ो तो?" सप्तमवर्षीय बालक पुरीदासने तत्काल निम्नलिखित श्लोक रचना करके प्रभुको सुनाया—

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥

अर्थ—जो व्रजवनितावृन्दके श्रवण युगलके कुवलय (नीलपटल) नयनके अञ्जन, तथा

---

* शिवानन्दके कनिष्ठ पुत्रके साथ महाप्रभुके प्रथम लीलारङ्गका वर्णन ४८ वें अध्यायमें है।

वक्ष:स्थलके इन्द्रनीलमणि हार—इस प्रकार जो उनके सारे आभूषण स्वरूप हैं, वे वृन्दावन विहारी श्रीहरिजययुक्त हों।

महाप्रभु और उनके भक्तवृन्द सातवर्षके अशिक्षित बालकके मुखसे इस प्रकारका व्रजके मधुर भावसे पूर्ण तथा अपूर्व कवित्वपूर्ण उत्तम श्लोक सुन कर बहुत चकित हो उठे। सब भक्तगण शिवानन्द सेन तथा उनके इस अपूर्व बालक पुत्रको धन्य-धन्य कहने लगे।

महाप्रभुके साक्षात् कृपावलसे वह अपूर्व बालक प्रसिद्ध स्वाभाविक कवि हो गया और उस भगवत्प्रदत्त कवित्व शक्तिके बलसे उसे श्रीगौराङ्ग-लीला वर्णन करनेकी शक्ति प्राप्त हुई। श्रीगौराङ्ग-प्रभुकी अपूर्व महिमा इसी प्रकारकी होती है। कवि कर्णपूर गोस्वामीकी अपूर्व कवित्व शक्ति तथा एकनिष्ठ गौरभक्ति उनकी श्रीगौराङ्ग-लीला ग्रन्थावलीके पन्ने-पन्नेमें तथा पंक्ति-पंक्तिमें अभिव्यक्त होती है।

नदियाके कालिदास भक्त

नदियाके भक्तगणके साथ कालीदास नामक एक कृष्ण-भक्त वैष्णव प्रभुके दर्शनके लिए नीलाचल आये थे। वह परम उदार प्रकृतिके आदमी थे और अतिशय सरल थे। कृष्णनामके सिवा मुखसे वह और कुछ नहीं बोलते थे। सब कार्योंमें कृष्णनाम उच्चारण करके सङ्केतसे ही वह सब कार्य आरम्भ करते थे। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

कौतुके तेंहो यदि पाशक खेलाय।
'हरेकृष्ण हरेकृष्ण' कहि पाशक चालाय॥

चौ. च. अं. १६.७

रघुनाथदास गोस्वामीके जाति-सम्बन्धसे वे चाचा लगते थे। वैष्णवोच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना इस महापुरुषके जीवनका व्रत था। इस व्रतका उद्यापन करते-करते वे वृद्ध हो गये थे। गौड़देशमें जितने वैष्णव थे, सबका उच्छिष्ट भोजन करके उन्होंने अपनेको पवित्र किया था। यदि कोई नीच जातिका वैष्णव उनको उच्छिष्ट प्रसाद देनेसे हिचकता था तो वे चुपचाप और चतुराईसे उसे प्राप्त करके अपनेको कृतार्थ करते थे।

झड़ू ठाकुर नामके गौड़में एक वैष्णव थे। पूर्वाश्रममें वे भुँइमालि जातिके थे। कालिदासका नियम था कि वे कोई उत्तम वस्तु भेंट लेकर वैष्णव दर्शनके लिए जाते थे। झड़ू ठाकुर गृहस्थ वैष्णव थे, उनकी स्त्री भी थी। कालीदास कुछ उत्तम:उत्तम आम लेकर झड़ू ठाकुरके आश्रममें गये। पति-पत्नी जिस स्थानमें बैठे थे, उसी स्थानमें दोनोंको नमस्कार करके वे आम उनको वैष्णव-सेवाके लिए दिये।

झड़ू ठाकुरने कालीदासको बहुत सम्मानपूर्वक आसन प्रदान किया। वे जानते थे कि कालीदास उच्च वंशोत्पन्न परम भक्तिमान् पुरुष तथा धनी गृहस्थ हैं। झड़ू ठाकुरने बहुत व्यस्त होकर वैष्णवोचित दैन्यके साथ निवेदन किया—"मैं हीन जाति हूँ, आप सभ्रान्त कुलोत्पन्न हैं, परन्तु आज मेरे सौभाग्यसे आप मेरे अतिथि हैं, किस प्रकार मैं अतिथि सेवा करूँ? आप यदि आज्ञा दें तो अपने पड़ोसके किसी ब्राह्मणके घरसे आपके प्रसादका वन्दोवस्त करके कृतार्थ होऊँ।" कालीदास वैष्णवके वैष्णव थे, वे दैन्यके अवतार थे। उन्होंने हाथ जोड़कर जो उत्तर दिया, उसे श्रद्धापूर्वक श्रवण करें—

—"ठाकुर! कृपा कर मोरे।
तोमार दर्शने आइलु मुञि पतित पामरे॥
पवित्र हइनु मुञि पाइलु दर्शन।
कृतार्थ हइलु, मोर सफल जीवन॥
एक वाञ्छा हय यदि कृपा करि कर।
पदरज देह, पाद मोरे माथे धर॥

चै. च. अं. १६.२०-२२

अन्तिम वाक्यमें वैष्णवोचित दैन्यकी पराकाष्ठा है। भक्तश्रेष्ठ कालीदासकी अन्तिम बात सुनकर झड़ू ठाकुरने 'विष्णु-विष्णु' कहकर कानोंमें अंगुलि डाल ली। तथा परम सशंकित भावसे चुप हो गये। कालीदास वैष्णव-शास्त्रके अच्छे पण्डित थे। उन्होंने शास्त्रीय प्रमाण द्वारा समझा दिया कि वैष्णवमें जाति बुद्धि महापाप है। चाण्डाल भी यदि हरिभक्त है तो वह ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है। आप कृष्णभक्त है, अतएव पूज्यपाद है, तथा आपकी चरणरेणु और प्रसाद सर्वथा ग्रहणीय है।

झड़ू ठाकुर लज्जित होकर हाथ जोड़कर बोले— "मैं नीच हूँ, मैं कृष्ण-भक्ति-शून्य हूँ, मेरे विषयमें यह बात नहीं घटती। आप महान् हैं और धर्म-मर्यादा रक्षक है, तभी यह बात कह रहे हैं।" कालीदासने और कुछ नहीं कहा, वे झड़ू ठाकुरको नमस्कार करके बिदा हुए। झड़ू ठाकुर भी उनके साथ-साथ कुछ दूर जाकर घर लौट आये।

झड़ू ठाकुरके चले जानेके बाद, जहाँ तहाँ उनके चरण चिह्न पड़े, वहाँकी धूलि लेकर चुपचाप कालीदासने अपने शरीरमें लीप ली। इससे भी उनके मनकी वासनापूर्ण न हुई। वे वैष्णवोच्छिष्ट भोजी थे। वैष्णवके अधरामृत लोभसे व्याकुल होकर वे झड़ू ठाकुरके घरके समीप एक एकान्त स्थानमें छिपे रहे।

झड़ू ठाकुरने घर जाकर कालीदासके दिये हुए उन पके आमोंको मानसिक रूपमें श्रीकृष्ण भगवान्को निवेदन करके प्रेमानन्दसे प्रसाद ग्रहण किया। स्वादिष्ट रसाल आमकी गुठलीको खूब चूसा और उनकी गृहिणीने भी उसी प्रकार पति देवताके महाप्रसादको ग्रहण किया। पश्चात् आमोंके छिलके और गुठली प्राचीरके ऊपरसे उच्छिष्टके गढ़ेमें डाल दिये। कालीदास धैर्य धारण करके इसी सुयोगकी अपेक्षा कर रहे थे। वे दौड़े आये और उस अपवित्र गड्ढेसे वैष्णवोच्छिष्ट आमका छिलका और गुठली उठाकर परम आनन्दपूर्वक चूसने लगे, और परमानन्दसे उनका हृदय नाच उठा। वे सर्वाङ्गमें उस वैष्णवोच्छिष्टको लेप करके प्रेमावेशमें नृत्य करने लगे। उनके सारे शरीरमें अष्ट सात्त्विक भावोंका उद्गम हुआ। झड़ू ठाकुर तथा उनकी भक्तिमती गृहिणीको इसका कुछ भी पता न चला।

वही वैष्णव दासानुदास तथा वैष्णवोच्छिष्ट भोजी महापुरुष कालीदास प्रभुके दर्शनके लिए नीलाचल आये। उनके प्रति महाप्रभुने किस प्रकार कृपा की, इसको सुनिये।

कालीदास नित्य प्रभुका दर्शन करने जाते थे, उनकी चरण-वन्दना करते थे, महाप्रभु उनके प्रति केवल शुभ दृष्टिपात करते थे, परन्तु कोई बात नहीं करते थे। महाप्रभु प्रतिदिन जगन्नाथका दर्शन करने जाते थे, गोविन्द जलपूर्ण करङ्ग लेकर उनके साथ जाते थे। सिंहद्वारके उत्तर ओर कपाटके पीछे बाइस सीढ़ियोंके तलमें गर्त्तके समान एक निम्न स्थान है। उस स्थानमें श्रीचरण धोकर महाप्रभु जगन्नाथका दर्शन करने जाते हैं। गोविन्दको उन्होंने विशेषरूपसे निषेध कर दिया कि मेरा पाद-जल कोई भी न लेने पावे।

गोविन्द इस आदेशका दृढ़तापूर्वक पालन करते थे, कोई वहाँसे महाप्रभुका पादोदक ग्रहण नहीं कर सकता था। कोई-कोई अन्तरङ्ग भक्त छल करके अति कष्टपूर्वक इस दुर्लभ वस्तुको प्राप्त करते थे। एक दिन महाप्रभु उसी स्थानपर श्रीचरण प्रक्षालन करते थे, उसी समय कालीदासने सुयोग समझकर वहाँ आकर उनके श्रीचरणके तले दोनों हाथकी अञ्जलि रोप दी। महाप्रभुका पादोदक एक अञ्जलि, दो अञ्जलि, तीन अञ्जलि, एक-एक करके पान कर गये, तब महाप्रभुने उनको निषेध करके मृदु मधुर शब्दोंमें कहा—

अतःपर आर ना करिह बार-बार।
एतावता वाञ्छा पूर्ण करिल तोमार॥

चै. च. अं. १६.४४

कालीदासके लिए भक्तके भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभुने अपने सङ्कल्पका त्याग, और नियमभङ्ग कर दिया, भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगौर भगवान्ने भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण की। शिव-विरञ्चि-अभिवाञ्छित अपना श्रीचरणामृत भक्तराज कालीदासको पान करानेका सुयोग और सौभाग्य प्रदान किया। सर्वज्ञ शिरोमणि महाप्रभुके सामने कालीदासकी गुणावली अज्ञात न थी, गुणग्राही और भावग्राही श्रीगौर भगवान्ने अपने परम श्रेष्ठ वैष्णवके गुणका आदर किया, कालीदासकी प्रेम-भक्तिकी पिपासाको शमन किया। कविराज गोस्वामीने लिखा है कि कालीदासका प्रधान गुण था वैष्णवके ऊपर अटल विश्वास, और वैष्णवके चरणोंमें अचल भक्ति।

कालीदास महाप्रभुका श्रीपादोदक पान करके प्रेमानन्दमें विभोर होकर नृत्य करने लगे। महाप्रभु जगन्नाथजीका दर्शन करके दक्षिण दिशामें स्थित नृसिंह मूर्त्तिको नमस्कार करके वासापर लौट गये। कालीदासने उनका सङ्ग नहीं छोड़ा। उनको पादोदक प्रसाद तो पान करनेके लिए मिला, अब उनके अधरामृत प्रसादकी लालसासे प्रभु और उनके भृत्य गोविन्दका सङ्ग नहीं छोड़ रहे हैं। वे महाप्रभुके आश्रमके बहिर्द्वारपर खड़े हैं। महाप्रभुने इसपर ध्यान दिया है। मध्याह्न भोजनके अन्तमें साधु-वैष्णव प्रीतिवत्सल महाप्रभुने गोविन्दको इशारा किया कि कालीदासको उनका अवशेष पात्र मिलना चाहिये। गोविन्दने परम आदन्दपूर्वक प्रभुके आदेशका पालन किया।

कालीदासके सौभाग्यकी आज सीमा नहीं है। वैष्णवोच्छिष्ट प्रसाद भोजन करनेके फलसे वे आज सब वैष्णवोंके अभीष्ट देव, सब जगत्के गुरु, सब भक्तोंके भगवान् तथा सब देव-देवियोंके आराधनीय श्रीगौर भगवान्का अधरामृत पान कर परमानन्दमें मग्न हो गये। सर्वाङ्गमें महाप्रसाद लेप करके महाप्रभुके द्वार देशपर वह अपूर्व प्रेम-नृत्य और कीर्तन करने लगे। उनके नयनद्वयसे प्रेमनदी प्रवाहित होने लगी। अश्रु, कम्प, स्वेद, घर्म आदि आठ सात्त्विक भावके विकार लक्षण उनके देहमें लक्षित हो गये। वे प्रेमाबेशमें आनन्द स्वरूप हो गये।

कृपानिधि महाप्रभुने कालीदासको तब पास बुलाकर स्नेहपूर्वक कहा—"कालीदास! तुम घृणा और लज्जा त्याग करके वैष्णवका उच्छिष्ट महाप्रसाद भक्षण करके श्रीकृष्णके परम प्रिय पात्र बन गये हो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।

श्रीकृष्ण भगवान्के अधरामृतका नाम प्रसाद है, किन्तु उनके भक्तगणके उच्छिष्ट प्रसादका नाम महाप्रसाद है। भक्तगणकी पदधूलि, तथा पादोदक और उनका पात्रावशेष, इन तीन वस्तुओंके द्वारा जीवके हृदयमें कृष्ण प्रेमका अंकुर उदय होता है। यह बात सब शास्त्रोंमें विशेष रूपसे लिखी गयी है।

"भक्त-पद-धूलि आर भक्त-पद-जल।
भक्तमुक्त-अवशेष तिन महाबल॥
एइ तिन सेवा हैते कृष्ण प्रेमा हय।
पुनः पुनः सर्वशास्त्रे फुकारिया कय।"

चै. च. अं. १६.५५,५६

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने यही कहा है—

ताते बार-बार कहि शुन भक्तगण।
विश्वास करिया कर ए तिन सेवन॥
तिन हैते कृष्णनाम प्रेमेर उल्लास।
कृष्णेर प्रसाद ताते साक्षी कालीदास॥

चै. च. अं. १६.५७,५८

कालीदास प्रेमानन्दमें गद्गद होकर महाप्रभुके चरणोंमें लम्बायमान होकर अजश्र आँसू बहाने लगे। उपस्थित भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें उच्च हरिध्वनि करने लगे।

कालीदासके प्रति महाप्रभुकी यह कृपा उनके वैष्णवोच्छिष्ट-भक्षणके फलके सिवा और कुछ न

थी। महाप्रभुके लीला समुद्रका, एक-एक लीला-तरङ्गका उच्छ्वास और मर्म बहुदूर व्यापी होता है। उन्होंने वैष्णव शिरोमणि कालिदासके गुणोंका उपयुक्त पुरस्कार दिया। तथा इसके साथ ही वैष्णवोच्छिष्ट भोजनकी महिमा समझा दी, और उसका फल हाथों-हाथ दिखला दिया। ठाकुर नरोत्तम दासने लिखा है—

"वैष्णवेर पदधूलि, ताहे मोर स्नान केलि,
तर्पण मोर वैष्णवेर नाम।
वैष्णवेर उच्छिष्ट, ताहे मोर मन निष्ठ,
वैष्णवेर नामेते उल्लास॥"

श्रीवैष्णव तिथि और पर्वके उपलक्षमें महोत्सव होनेपर महन्त साधु वैष्णव लोग तथा पूज्यपाद गोस्वामी भक्तगण वैष्णव भोजनके अन्तमें वैष्णवोच्छिष्ट अन्नके कणोंको चुनकर भक्षण करके अपनेको कृतार्थ समझते हैं। जात्याभिमान, ज्ञानगर्व और पाण्डित्याभिमान हृदयसे दूर किये बिना ऐसी सुमति नहीं होती। लज्जा, मान, घृणा, भय मनमें रहनेपर वैष्णवोच्छिष्टमें विश्वास नहीं होता। गौड़ीय वैष्णवोंने महा-महाप्रसादके मर्मकी शिक्षा जिस प्रकार श्रीसन्महाप्रभुके श्रीमुखसे ग्रहण की है, उसी प्रकार समझा है और फल भी तद्रूप ही पाया है। भक्तके भगवान् श्रीगौराङ्ग प्रभु अपने भक्तोंकी महिमा, उनके पादोदककी महिमा उनके परिधान कौपीन वस्त्रकी महिमा, उनके उच्छिष्टकी महिमा. उनके सङ्गकी महिमा—सब शास्त्रयुक्तिके अनुसार तथा लीलाभिनयके द्वारा निजजनको समझाकर, स्वयं आचरण करके भक्तवृन्दको वैष्णव सेवा दिखला गये हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कौपीन खण्ड वितरण लीला, उनकी पादोदक सेवन लीला, ठाकुर हरिदासके मृत देहकी चरणोदक सेवन लीला, श्रीधरके लौहपात्रस्थ अशुद्ध जलपान लीला, मन्दार पर्वतपर श्रीमधुसूदन-सेवकका पादोदक-पान आदि लीलारङ्ग समूह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ठाकुर नरोत्तमदासने इसी कारण दृढ़तापूर्वक लिखा है—

वैष्णव चरण रेणु, मस्तके भूषण विनु,
आर नाइ भूषणेर अन्त।
वैष्णव चरण जल, कृष्ण भक्ति दिते बल,
आर केह नहे बलवन्त॥

दारिद्र्य दुःखपीडिय ब्राह्मण, राजा विभीषण एवं महाप्रभु

महाप्रभु लीलारङ्गमें नीलाचलमें कृष्णविरह सागरमें मग्न हैं। श्रीचैतन्य मङ्गल श्रीग्रन्थमें उनका इस समयका एक अपूर्व लीलारङ्ग वर्णित है। उसे ही यहाँ विवृत करेंगे। द्रविड़ देशके एक दरिद्र ब्राह्मण उस समय नीलाचलमें आये। वे दारिद्र्य-दुःखसे जर्जरित होकर धनकी आशासे श्रीश्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरमें धरना देकर पड़ रहे। ब्राह्मण सात दिन तक उपवास करके केवल प्रार्थना करते रहे कि,

धन वर मागो प्रभु ना हओ विमुख।
नहिले जीवन दिब तोमार सन्मुखे॥
चै. म.

श्रीगौराङ्ग प्रभु काशीमिश्रके घरपर अपने वासामें भक्तवृन्दके साथ कृष्णकथा रसमें मग्न थे। अचानक वे अन्य मनस्क हो उठे। उनका श्रीमुख मण्डल अप्रसन्न दीख पड़ा। उनके भावको देखकर भक्तगणके मनमें विस्मय उपस्थित हुआ। वे कुछ खुलकर नहीं बोले, भक्तवृन्दभी साहस करके उनसे कुछ पूछ न सके।

इधर सात दिन उपवासी ब्राह्मणने श्रीजगन्नाथजीसे किसी प्रकारकी आश्वासन वाणी प्राप्त न कर सकनेके कारण समुद्रमें डूबकर प्राण त्याग करनेका सङ्कल्प कर लिया। वह धीरे-धीरे

उठकर विषण्ण मनसे रोते-रोते समुद्रके तीर गया। वहाँ जाकर देखा—

"एक पुरुष विशाल।
समुद्रेर मध्ये आइसे पर्वत आकार॥"
चै. म.

समुद्रका जल उसके घुटनेपर जान पड़ता था। देखते-देखते वह विशालकृति महापुरुष जब तीरपर आया, तब वह सामान्य आकारका मनुष्य जान पड़ने लगा। ब्राह्मणने सोचा कि यही श्रीजगन्नाथजी हैं, यह सोचकर वह उनके पीछे-पीछे चला। कुछ देरके बाद दोनोंमें बातचीत शुरू हो गयी। ब्राह्मणने अपना सारा दुःख निवेदन किया। और यह भी कहा कि उसने श्रीश्रीजगन्नाथजीके सामने सात दिन तक उपवास करके धरना दिया था, और यह भी कहा कि उसने धनके लिए वरदान माँगा था, अब धन न पाकर समुद्रमें कूदकर प्राण त्याग करनेका सङ्कल्प किया है—यह भी प्रकट कर दिया।

उस विशालाकृति पुरुषने अपना परिचय देते हुए कहा—

"विभीषण नाम मोर शुनह ब्राह्मण।
देखिवारे जाइ जगन्नाथेर चरण॥
कर्म दोषे दुःख पाओ शुनह ब्राह्मण॥"
चै. च.

जगन्नाथजीके श्रीमुखको देखकर दुःख दूर करो, इतना कहकर वे चले गये। तथापि ब्राह्मणने उनका सङ्ग नहीं छोड़ा। वे विषण्ण मनसे उस महापुरुषके पीछे-पीछे चले।

राजा विभीषण श्रीगौराङ्ग प्रभुके श्रीमन्दिरके द्वारपर जा पहुँचे। महाप्रभु उस समय भक्तवृन्दके साथ कृष्णकथा रसमें मगन थे। उन्होंने गोविन्दको इशारा किया कि "द्वारपर जो खड़े हैं, उनको भीतर ले जाओ।" गोविन्दने जाकर देखा कि दो ब्राह्मण बाहर खड़े हैं। वे उनको प्रभुके पास ले गये। महाप्रभुने उनमें-से एकको बहुत सत्कारपूर्वक बुलाकर पास बैठाया। दूसरा ब्राह्मण कुछ दूरपर खड़ा रहा। सब भक्तोंने देखा कि महाप्रभु उस ब्राह्मणको देखकर बहुत प्रसन्न हुए, सारी बातें छोड़कर उनके साथ बातचीतमें लग गये, और बात करते-करते दोनोंकी आँखोंसे प्रेमाश्रुधारा बहने लगी। महाप्रभु स्वयं श्रीहस्तके द्वारा ब्राह्मणका अङ्गस्पर्श करके आदर कर रहे थे। दोनोंके बीच जो प्रेमकथा हो रही थी, उसका मर्म कोई समझ नहीं रहा था।

श्रीगौराङ्ग प्रभुने अन्तमें दूसरे ब्राह्मणको लक्ष्य करके छद्मवेषी राजा विभीषणसे कहा—"दारिद्र्य दुःखसे पीड़ित यह ब्राह्मण श्रीजगन्नाथजीको दोष लगाकर उनपर प्रहार करता है। बुरे कर्म करके जब उनके भोगनेका समय आता है, तब प्राणी भगवान्‌को दोष देने लगता है। सुख-भोगमें तो अपनी बुद्धिमत्ता मानता है और दुःखभोगमें भगवान्‌को दोषी ठहराता है। सात उपवासकी तपस्याने इसके कुकर्म दोषका नाश कर दिया है। श्रीजगन्नाथजीको भी ब्राह्मण प्रिय है। तुम्हारे दर्शनसे इसका दारिद्र्य नष्ट हो गया। इसको बहुत-सा धन देकर परितृप्त कर दो।"

राजा विभीषणने हँसकर महाप्रभुके आदेशको अङ्गीकार किया। तब दोनों आदमी महाप्रभुके चरणकमलमें दण्डवत् प्रणाम करके विदा हुए।

रास्तेमें जाते समय ब्राह्मणने राजा विभीषणसे पूछा, "आपने कहा था कि मैं राजा विभीषण हूँ, जगन्नाथजीका दर्शन करने आया हूँ, परन्तु आपने जगन्नाथजीका दर्शन तो किया नहीं—इसका क्या अर्थ है, मुझको समझाकर कहें। क्या आप

संन्यासीको देखकर ही लौट जायँगे ? क्या आपने उनके आदेशको शिरोधार्य कर लिया ? यह संन्यासी कौन हैं, मुझको कृपा करके कहें ।" राजा विभीषणने हँसकर उत्तर दिया, "रे अबोध ब्राह्मण ! यह संन्यासी साक्षात् जगन्नाथ हैं । तुमको अभीष्ट धन मिल गया, अब घर जाओ, मैं तुम्हारे द्रविड़ देशमें जाकर तुम्हारा धन तुम्हें पहुँचा दूँगा ।"

ब्राह्मणको तब दिव्य ज्ञान हुआ। वह इस बातको सुनकर दुःखसे सिर पीटकर बोला, "हा अदृष्ट ! मैं धनके लोभसे श्रीभगवान्के चरणोंकी प्राप्तिसे बञ्चित हो गया ।" इतना कहकर वह राजा विभीषणके चरणोंमें गिरकर पुनः प्रभुके सन्निधानमें ले जानेके लिए बारम्बार अनुरोध करने लगा। राजा विभीषण उस ब्राह्मणके अनुरोधको मानकर पुनः उसके साथ प्रभुके पास आये। महाप्रभु उस समय भी भक्तोंके साथ बैठे थे। उन्होंने राजा विभीषणको देखकर मुस्कराकर कहा, "पुनः आगमन क्यों हुआ ?" विभीषणने हँसकर उत्तर दिया—"प्रभु ! इस विप्रसे पूछनेपर सब कुछ ज्ञात हो जायगा ।"

ब्राह्मण हाथ जोड़कर एक ओर अपराधीके समान खड़ा था। उसने डरते-डरते कहा—"महाराज ! मैं तो मूर्ख हूँ। अरबों जीव हैं, उन सबके तुम्हीं प्राण हो, तुम्हीं नाथ हो, तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा जगत्का नाथ नहीं है। मैं महा-अधम और अपराधी हूँ। मेरे कर्म-दोषसे दारिद्र्य-रोग मुझे लगा है। इसकी उचित औषधि तो रुचती नहीं और कुपथ्यकी ओर मन दौड़ रहा है। तुम धन्वन्तरी हो, समझ बूझकर जो उचित औषधि हो वही मुझे दो ।"

महाप्रभु अनुतप्त भृत्यकी बात सुनकर राजा विभीषणकी ओर देखकर हँसने लगे। कुछ देरके बाद विप्रसे बोले, "विप्र ! जगन्नाथजीने तुम्हारा सब कल्याण किया, तुम जो चाहते थे वह पा गये, अब विषय भोग करो । अन्तकालमें तुम जगन्नाथजीके चरणोंको प्राप्त करोगे ।" विप्र इस आश्वासनसे परम सन्तुष्ट होकर महाप्रभुके चरणोंमें कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम करके विदा हुआ । राजा विभीषण भी महाप्रभुकी चरणवन्दना करके चले गये ।

सब भक्तगण, इस आगन्तुक विप्रकी ओर, महाप्रभुकी कृपाका मर्म न समझकर, उनके श्रीचरणकी ओर विस्मयान्वित नेत्रोंसे देखते रहे । परमानन्दपुरी गोस्वामीने तब साहस करके पूछा—"हे प्रभु ! इसका मर्म क्या है ? कृपा करके कहो। हम लोगोंको बड़ा कौतूहल हो रहा है ।" तब भक्तवत्सल महाप्रभुने सारी बातें एक-एक करके खोलकर कह दी । सुनकर भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करने लगे ।

इस लीला-रङ्गके द्वारा महाप्रभुने दिखलाया कि वे सब अवतारोंके अवतारी हैं । राजा विभीषण यह जानकर ही नित्य उनका दर्शन करने आते थे । श्रीरामावतारमें राजा विभीषण श्रीभगवान्के कृपापात्र थे । श्रीगौराङ्गावतारमें वे उस कृपासे बञ्चित क्यों होते ? श्रीश्रीजगन्नाथजी अचल ब्रह्म हैं, और श्रीगौराङ्गदेव सचल ब्रह्म । राजा विभीषण नित्यसिद्ध भगवत् पार्षद-भक्त थे । वे यह जानकर ही श्रीगौराङ्गका दर्शन करनेके लिए नीलाचल आते थे । दरिद्र विप्र धनकी आशामें श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने आया था, जगन्नाथजीने उसकी सकाम प्रार्थनापर कान न दिया । श्रीगौराङ्ग प्रभुने सुना और ब्राह्मणकी मनोवाञ्छा पूर्ण हुई । ब्राह्मणने अपने भ्रमको समझकर जब श्रीगौराङ्गके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया तो कृपानिधि महाप्रभुने उसपर कृपा करके

आश्वासन दिया कि अन्तमें उसे उनके चरणोंमें स्थान मिलेगा। दयाके अवतार ही अवतार शिरोमणि हैं, करुणाके अवतार ही सर्वाबतार सार हैं। विप्रप्रिय श्रीगौराङ्ग प्रभुने विप्रकी सारी अभिलाषा पूर्ण की। इसी कारण महाजन कविने गाया है—

"कि कहब शत शत तुया अवतार।
एकेला गौरांग चाँद जीवन आमार।"
(गोविन्द दास)

पचपनवाँ अध्याय

गम्भीरामें श्रीगौराङ्ग

एइ मत महाप्रभु नीलाचले वैसे।
रात्रि दिने कृष्ण-विच्छेदार्णवे भासे॥
चै. च. अं. २०.२

महाप्रभुकी कृष्ण-विरहकी यह एक परम अद्भुत कथा है, उनकी कृष्ण-विरहदशा भी अद्भुत वस्तु है। श्रीकृष्णके मथुरा जानेपर विरह-विदग्धा व्रज गोपिकाओंको जैसी कृष्णोन्माद दशा प्राप्त हुई थी, महाप्रभुको इस समय ठीक उसी प्रकारकी दशा उपस्थित हुई। उद्धवजीको देखकर कृष्ण-विरहिणी श्रीराधिकाके मनमें जो भाव उपस्थित हुआ था, उन्होंने जिस प्रकारसे प्रेमोन्मादिनीके समान प्रलाप किया था, महाप्रभुका इस समय ठीक वही भाव था। उनके प्रलापकी भाषा भी तद्रूप ही थी। अब वे कृष्णविरहिणी राधाके भावमें सदा विभावित रहते हैं, कृष्णविरह सागरमें अपने शरीरको एकवारगी डाल दिया है। दिनरात कृष्णकथा-रसमें वे मग्न रहते हैं, और कोई बात उनके कानमें प्रवेश नहीं करती। रातके समय राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर विधिपूर्वक उस कृष्णविरह ज्वालाको निवारण करनेकी चेष्टा करते हैं। रातके तीसरे पहरके बाद वे लोग किसी प्रकार उनको शयन कराकर अपने घर चले जाते हैं। गोविन्द अकेले उनके पास रहते हैं।

एक दिन महाप्रभु रातमें सोये हुए थे, केवल उँघाई आयी थी उसी समय उन्होंने एक सुन्दर स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण श्रीराधिकाजीके साथ व्रजगोपिकाओंसे आवेष्टित होकर श्रीवृन्दावनमें रासलीला कर रहे हैं।

त्रिभङ्ग-सुन्दर देह मुरलीवदन।
पीताम्बर वनमाली मदनमोहन॥
मण्डली वन्धे गोपीगण करेन नर्त्तन।
मध्ये राधासह नाचे व्रजेन्द्रनन्दन॥
चौ. च. अं. १४.१६-१७

इस प्रकारके स्वप्नको देखकर श्रीकृष्ण-विरह-कातर महाप्रभु व्रजरसविशिष्ट होकर सोचने लगे कि वे श्रीवृन्दावनमें अपने प्राणवल्लभ व्रजेन्द्रनन्दन

श्रीकृष्णके साथ मिले हैं। वे प्रेमाविष्ट भावमें परमानन्दमें सोये हैं। प्रातःकाल उठनेका समय बीतता देखकर गोविन्दने उनको जगाया। तब महाप्रभुको बाह्यज्ञान हुआ और वे बहुत दुःखी हुए। वे कुछ बोले नहीं, किन्तु उनके श्रीवदनका भाव देखकर गोविन्दने समझा कि महाप्रभु निद्रितावस्थामें भावराज्यके किसी अति उत्तम उच्च स्थानमें विलास कर रहे हैं।

महाप्रभुके कन्धेपर पैर रखकर दर्शन करनेवाली महिला

नरदेहधारी श्रीगौर-भगवान् देहाध्यासके वश भूमिशय्या त्यागकर प्रातःकालीन नित्यकृत्य आदि सम्पन्न करके जगन्नाथजीका दर्शन करने गये। गरुड स्तम्भके पास खड़े होकर वे अपूर्व प्रेमावेशमें नयनमें नयन आलिप्त करके अपने प्राणवल्लभके मुखचन्द्रका दर्शन करने लगे। उनके आगे लाखों आदमी श्रीविग्रहका दर्शन कर रहे थे, गोविन्द साथ ही थे। ऐसे समयमें एक विकट दृश्य गोविन्दके दृष्टिगोचर हुआ। एक भक्तिमती उड़िया स्त्री लोगोंकी भीड़में जगन्नाथजीका दर्शन न कर सकनेके कारण गरुड़-स्तम्भपर चढ़कर महाप्रभुके कन्धेपर एक पैर रखकर गम्भीर प्रेमावेगमें श्रीश्रीनीलाचलचन्द्रके श्रीवदनचन्द्रका दर्शन कर रही थी।

यह दृश्य गोविन्दकी आँखोंमें विषवत् लगा। महाप्रभु स्त्रीका नाम तक नहीं लेते थे, छाया स्पर्श तो दूरकी बात है, उनको आज स्त्री-स्पर्श हो गया। कैसा अनर्थ है। यह सोचकर गोविन्द बहुत अस्त-व्यस्त भावसे उस स्त्रीको हाथसे पकड़कर उतारने गये। महाप्रभुने इशारेसे गोविन्दको मना किया, और मृदु-मधुर वचन बोले—"भैया! इसको मना नहीं करो, मन भरके दर्शन करने दो।"

उस स्त्रीको अब बाह्यज्ञान हुआ, तब वह स्वयं विशेष लज्जित होकर झटपट उतर पड़ी और देखा कि जिसके कन्धेपर पैर रखकर वह खड़ी थी, वे और कोई नहीं, सचल जगन्नाथ स्वयं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु हैं। तब रोते-रोते वह स्त्री महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़ी और हाथ जोड़कर क्षमा प्रार्थना करने लगी। महाप्रभु उस भक्तिमती स्त्रीकी, जगन्नाथजीके दर्शनमें, मनकी अद्भुत एकाग्रता और आर्त्ति देखकर बोले—

> **"एत आर्त्ति जगन्नाथ आमारे नाहि दिला ।।**
> **जगन्नाथे आविष्ट इहार तनु प्राण-मने ।**
> **मोर कान्धे पद दियाछे, ताहो नाहि जाने ।।**
> **अहो! भाग्यवती एइ, वन्द इहार पाय ।**
> **इहार प्रसादे ऐछे आर्त्ति आमारो वा हय ।।**
>
> चै. च. अं. १४.२६-२८

इतना कहकर उस स्त्रीको उन्होंने श्रीमस्तक अवनत करके हाथ जोड़ करके प्रणाम किया। शिक्षागुरु श्रीगौर-भगवान्ने लोक-शिक्षाके लिए यह लीलारङ्ग प्रकट किया। वे स्वयं आचरण करके अपने भक्तगणको धर्मशिक्षा दे गये हैं।

गोविन्दके साथ और भी कुछ महाप्रभुके भक्त-लोग वहाँ उपस्थित थे। उनको उपलक्ष्य करके महाप्रभुने यह उपदेश वाक्य कहा। श्रीश्रीमन्मप्रभुकी सारी लीला भक्तवृन्दकी शिक्षाके लिए है, उनकी लीलाकथा ही शास्त्र-कथा है।

महाप्रभुने यह जो अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया, इसमें बहुत निगूढ़ तत्त्व निहित है। कृपानिधि गौरभक्त पाठकवृन्दकी अनुमति लेकर जीवाधम ग्रन्थकार इस लीलारङ्गके तत्त्वके अनुसन्धानमें प्रवृत्त ही रहा है। श्रीगौराङ्ग-चरण स्मरण करके इस दुःसाहसके कार्यमें ग्रन्थकार हाथ डाल रहा है। जय गौर!

सर्व प्रथम तत्त्व इस लीलारङ्गके स्त्री घटित व्यापारमें महाप्रभुके साथ उनके भृत्य गोविन्द हैं।

उन्होंने पहले एक बार प्रभुकी स्त्रीस्पर्श-विपदसे रक्षा की थी। देवदासीका गान सुनकर महाप्रभु प्रेमावेगमें उसकी ओर लपके थे। देवदासी मधुर कण्ठसे एकान्तमें बैठकर कृष्ण-विरह सङ्गीत गा रही थी। गोविन्दने दौड़कर दोनों भुजाएँ फैलाकर महाप्रभुको अङ्कमें धारण करके उस दिन उस विपद्से रक्षा की थी। क्योंकि कृष्ण-प्रेमावेशमें वह बाह्यज्ञान शून्य थे। गोविन्दके उपर उनके इन सब कार्योंका विशेष भार था। गोविन्द भी इस विषयमें सर्वदा विशेष सतर्क और यत्नशील रहते थे। इस बार वह इस विपद्से महाप्रभुकी रक्षा न कर सके, यही इच्छामय प्रभुकी इच्छा थी। इच्छामयकी इच्छाका मर्म कौन समझेगा ? तथापि उनकी कृपा और प्रेरणासे भक्त हृदयमें जो भाव तरङ्ग उठती है, वह प्रकट करने योग्य है या नहीं—इसका विचार भक्तगण करेंगे। जीवाधम ग्रन्थकारके मनमें गुप्तभावसे इस प्रकारका एक भाव-तरङ्ग क्रीड़ा कर रही है।

पहले कहा जा चुका है कि इच्छामय महाप्रभुने इच्छा करके यह लीलारङ्ग प्रकट किया, उन्होंने इच्छा करके इस क्षेत्रमें स्त्री स्पर्श किया। उन्होंने क्यों ऐसा किया, इसका मर्म उद्घाटन करनेकी किञ्चित् चेष्टा की जा रही है।

हमारे नवद्वीपके ब्राह्मणकुमार भावके भगवान् हैं। वे कपट-संन्यासी हैं—यह महाजनगण कह गये हैं और उन्होंने भी स्वमुखसे इसे स्वीकार किया है। इस भक्तमती स्त्रीका जगन्नाथजीके दर्शनानन्दमें जो तन-मन-प्राण प्रेमाविष्ट हुआ, उस समय उसके मनके भाव अति मधुर, अति विशुद्ध थे। क्या उसके मनमें उस समय था कि वह स्त्री है ? क्या वह समझ रही थी कि वह किसी पुरुषके कन्धेपर पैर रखकर खड़ी है ? उसके मनमें उस समय जगन्नाथजीके दर्शनान्दनके भावके सिवा क्या अन्य कोई भाव उदय हो रहा था ? उस समय उसका स्त्रीत्व लुप्त हो गया था, उसका देहज्ञान, मनका ज्ञान, यहाँ तक कि प्राणका अभिज्ञान तक विलुप्त हो गया था। उसका पाञ्चभौतिक शरीर उस समयके लिए निश्चेष्ट हो गया था, उसकी बुद्धिवृत्ति, ज्ञानशक्ति, विवेकशक्ति, सारीकी सारी अपने-अपने कार्यसे अवसर ग्रहण कर चुकी थीं। श्रीभगवान्के श्रीमुख-दर्शनके आनन्दमें मग्न होकर उस समय वह भक्तिमती स्त्री परम आनन्द स्वरूप हो गयी थी, श्रीगौराङ्ग प्रभुके सारे लीलारङ्ग जगत्की शिक्षाके लिए होते हैं। उन्होंने यह लीलारङ्ग प्रकट करके जगत्को दिखला दिया किया कि श्रीभगवान्के श्रीमुख-दर्शनका आनन्द कैसी अपूर्व वस्तु है ? तथा उस परानन्दको जो उपभोग करता है, उसकी भावबुद्धिको जानना कठिन है। स्त्री-पुरुष भेदाभेदका ज्ञान कब रहता है, किस अवस्थामें रहता है, इस बातका विचार करनेका यह शुभ सुयोग हैं। इस भक्तिमती स्त्रीकी अवस्थाकी पर्यालोचना करनेपर इस प्रश्नकी सुन्दर मीमांसा हो सकती है।

महाप्रभु भी प्रेमावेशमें दर्शनानन्दमें मग्न थे। उन्होंने जो गोविन्दको आदेश दिया कि इस भक्तिमती स्त्रीके दर्शनानन्दमें बाधा न दो, यह कैसे सम्भव था ? यह प्रश्न भी उठ सकता है। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि, आनन्द-लीलारसमय विग्रह श्रीगौर-भगवान् लीलारङ्ग करनेके लिए नरवपु धारण करके भूतलमें अवतीर्ण हुए थे। यह एक उनका लीलारङ्ग था। यह अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट करनेका दृढ़ उद्देश्य था। उन्होंने इसके द्वारा अपने भक्तवृन्दको दिखलाया कि इस प्रकारकी स्थितिमें कोई भी आदमी, स्त्री हो या पुरुष हो, भगवद्-मुखारविन्द-दर्शनानन्दमें विभोर होकर यदि अजाने कोई अपराध करता है, तो वह ग्रहणीय नहीं होता। तथा उसके इस अपूर्व दर्शनानन्द सुखमें किसीके लिए बाधा डालना कदापि उचित नहीं है। महाप्रभुका यह अपूर्व लीलारङ्ग उनके स्वीय दर्शनानन्दमें बाधक होते हुए भी

लोकशिक्षाका परिचायक है। वे इच्छामय हैं, लीलामय हैं और रङ्गप्रिय हैं। यह उनकी अनन्त लीलाओंमें-से एक लीलारङ्ग मात्र है। भगवद्भाव अति परिशुद्ध है अतीव पवित्र है। विशुद्ध भक्तभावके साथ जब इसका सम्मिश्रण होता है, तब इससे अमृत-स्राव होता है। भावग्राही श्रीगौर-भगवानके सारे लीलारङ्ग बहुत भावयुक्त तथा निगूढ़ रहस्यसे पूर्ण हैं। ये सकल-लीला-मधु भावुक और रसिक भक्तोंके परमास्वादनकी वस्तु हैं। जो जिस भावसे इसका रसास्वादन करेगा, वही भाव उसके लिए सर्वोत्तम है।

महाप्रभुकी विरह दशा

महाप्रभु बाह्यज्ञान शून्य होकर जगन्नाथजीका दर्शन कर रहे थे। इस स्त्रीके द्वारा संघटित व्यापारसे उनको बाह्यज्ञान हुआ। उन्होंने गतरात जो सुन्दर स्वप्न देखा था, उसके आवेशमें वे जगन्नाथजीको साक्षात् रास-रसिक, गोपीजनवल्लभ व्रजेन्द्रनन्दन देख रहे थे, सर्वत्र और सब वस्तुओंमें उनको श्रीरासलीलाकी स्फूर्त्ति हो रही थी। अब बाह्यज्ञान होते ही उन्होंने देखा कि वे गरुड़ स्तम्भके पास दण्डायमान खड़े हैं और श्रीमन्दिरमें सुभद्रा और बलरामजीके साथ श्रीजगन्नाथजी विराजमान हैं। वे श्रीवृन्दावनमें थे और इस समय मानो कुरुक्षेत्रमें आ गये। श्रीवृन्दावनके श्रीकृष्ण और कुरुक्षेत्रमें अर्जुनके रथपर आरूढ़ श्रीकृष्ण भावके राज्यमें व्रजरसज्ञ साधककी आँखोंमें दो भिन्न वस्तुएँ हैं। श्रीवृन्दावनके श्रीकृष्ण गोपीमण्डलमध्यस्थ, रास-रसिक, प्रेमचतुर, गोपवेश, व्रजेन्द्रनन्दन हैं, तथा कुरुक्षेत्रके श्रीकृष्ण रथके सारथी-वेशमें ऐश्वर्यमय, राजपुरुषोचित गुणशाली, राजनीति-विशारद पण्डित और पञ्चपाण्डवोंके परमबन्धु और विश्वासी मन्त्री हैं। महाप्रभुका अकस्मात् भाव परिवर्तन हो गया। वे विषण्णभावमें सोचने लगे—

'काहाँ कुरुक्षेत्र आइलाङ्, काहाँ वृन्दावन ?"

चै. च. अं. १४.३२

वे गत रात्रिमें रासलीलाका स्वप्न देखकर प्रेमावेशमें थे, मानो वे श्रीवृन्दावनमें ही हैं और अपने सर्वस्व-धन व्रजेन्द्रनन्दनको प्राप्त किये हैं। अब प्राप्त रत्न खोकर वे मनमें बहुत दुःखी होकर विषण्ण मनसे अपने वासापर प्रेमावेशमें लौट आये। उनके इस गम्भीर दुःखका मर्म कौन समझेगा ? वे वासापर आकर हताश होकर भूतलपर बैठ गये और सिर नीचा करके हाथके नखों द्वारा भूतलपर कुछ लिखने लगे। उनके कमलनयनसे प्रेमाश्रु-मन्दाकिनीकी धारा प्रबल वेगसे प्रवाहित हो रही थी, आँखसे और कुछ दिखलायी नहीं देता था, तथापि नख द्वारा भूतलपर कुछ लिख रहे थे। मानो अपने प्राणवल्लभको परम प्रेमपूर्वक प्रेमाश्रु-जलसे प्रेमपत्री लिख रहे थे और प्रेमगद्गदवाणीमें करुण स्वरसे मन-ही-मन विलाप कर रहे थे—

'पाइलुँ' वृन्दावननाथ पुनः हाराइलुं।
के मोर निलेक कृष्ण, कोथा मुञि आइलुं॥

चै. च. अं. १४.३५

बहुत देर तक उन्होंने इसी प्रकार अपूर्व प्रेम-विह्वल भावमें चुपचाप प्रेमाश्रु विसर्जन किया। उस समय वहाँ गोविन्दके सिवा और कोई नहीं था। पश्चात् भक्तगण एक-एक करके आये, आनेपर प्रभुको आज बहुत ही उदास देखा। वे प्रभु बड़े ही कातर और अन्यमनस्क थे। राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर आ पहुँचे। प्रेमविह्वल महाप्रभुने उनकी ओर केवल एक बार करुण-नयनसे शुभ दृष्टिपात किया। प्रभुके नयन-कमलकी अविरल प्रेमाश्रुधारासे उनका विशाल वक्षःस्थल निमज्जित

हो रहा था, दोनों नेत्र प्रेमावेगमें रक्तवर्ण धारण कर रहे थे, बात करने में वे अशक्त थे। उन लोगोंने तत्कालीन महाप्रभुके मनकी अवस्थाको मन-ही-मन समझ लिया। परन्तु उनको समझानेमें अपनेको असमर्थ पाकर वे लोग व्याकुल होकर रो पड़े। इस प्रकार उस दिन बहुत समय बीत गया। देहके स्वभावसे महाप्रभुने स्नान भोजन किया।

रातमें यथासमय रामानन्द और स्वरूप गोसाईं पुन: उनके पास आये। उस समय कृष्ण-विरह कातर महाप्रभुके धैर्यका बाँध टूट गया, अपने मनकी व्यथाका आभास उनको दिया। तब वे प्रेमावेगमें दोनों हाथोंसे दोनों आदमियोंके गलेको जकड़कर व्याकुलतापूर्वक रोते हुए प्रेमगद्गद वाणीमें मृदु स्वरसे धीरे-धीरे कहने लगे—

शुन बान्धव ! कृष्णेर माधुरी।
जार लोभे मोर मन, छाड़ि लोक-वेदधर्म,
योगी हञा हइल भिखारी॥
कृष्ण लीला मण्डल, शुद्ध-शङ्ख-कुण्डल,
गड़ियाछे शुक कारिकर।
सेइ कुण्डल काने परि, तृष्णा-लाउ-थालि-धरि,
आशा-झूलि कान्धेर ऊपर॥
चिन्ता-काँथा उड़ि गाय धूलि-विभुति-मलिन काय,
'हा हा कृष्ण' प्रलाप उत्तर।
उद्वेग-द्वादश हाथे, लोभेर झूलनि माथे,
भिक्षाभावे क्षीण कलेवर॥
व्यास-शुकादि योगीजन, कृष्ण आत्मा निरञ्जन,
व्रजे तार जत लीलागण।
भागवतादि शास्त्रगणे, करियाछे वर्णने,
सेइ तर्जा भड़े अनुक्षण॥
दशेन्द्रिय शिष्य करि, 'महाबाउल' नाम धरि,
शिष्य लञा करिल गमन।
मोर देह स्वसदन, विषय भोग महाधन,
सब छाड़ि गेला वृन्दाबन॥
वृन्दावने प्रजागण, जत स्थावर जंगम,
वृक्षलता-गृहस्थ-आश्रमे।
तार घरे भिक्षाटन, फल-मूल-पत्रासन,
एइ वृत्ति करि शिष्य सने॥
कृष्ण-गुण-रूप-रस, गन्ध-शब्द-परश,
जे सुधा आस्वादे गोपीगण।
ता सभा ग्रास शेषे, आनि पञ्चेन्द्रिय शिष्ये,
सेइ भिक्षाय राखेन जीवन॥
शून्य कुञ्ज-मण्डप कोणे, योगाभ्यास कृष्णध्याने
ताहाँ रहे लञा शिष्यगण।
कृष्ण आत्मा निरञ्जन, साक्षात् देखिते मन,
ध्याने रात्रि कर जागरण॥
मन: कृष्ण वियोगी, दु:खे मन हैल योगी,
से वियोगे दश दशा हय।
सै दशाय व्याकुल हञा, मन: गेल पलाइया,
शून्य मोर शरीर आलय॥

चै. च. अं. १४.४०-४८

महाप्रभु कृष्ण-विरह कातर होकर अपने मनको सम्बोधन करके कह रहे हैं कि मेरा मन कृष्णरूपी प्राणधनको खोकर, विषादमें देहरूपी गृहको त्याग कर कापालिक योगीका धर्म ग्रहण करके इन्द्रिय रूप शिष्यवृन्दके साथ श्रीवृन्दावन गया है। मन जो कापालिक योगी हो गया है, इसीको रूपकके द्वारा दिखला रहे हैं। कापालिक योगियोंके कानमें नृ-कपालास्थिके द्वारा निर्मित कुण्डल होता है, हाथमें तुम्बी होती है, कन्था धारण करते हैं, भस्मसे सर्वाङ्ग विभूषित होता है और गुरुदत्त द्वादश गुण सूत्रसे हाथ बँधा होता है, तथा मस्तकपर वस्त्र खण्डका झूलना रहता है। वे लोग एकान्तमें निरञ्जन आत्माका चिन्तन करते हैं, और उनके शिष्यगण गृहस्थाश्रमसे जो भिक्षा करके लाते हैं, उसके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं।

उपर्युक्त वर्णनसे महाप्रभुके मनका भाव प्रकट होता है। कृष्ण-विरह विषसे उनका मन जर्जर हो गया है। मनके दु:खसे गृह त्याग करके योगीधर्म

ग्रहण किया है। जैसा तैसा योगी नहीं, कापालिक योगी-धर्मको ग्रहण किया है। कृष्ण वियोग दुःखसे दुःखी होकर महाप्रभुका मन उनके शरीरको छोड़कर भाग गया है। उनका शरीर इस समय मन-शून्य है। इस मन-शून्य देहकी दश दशा हुई थी। वह दश दशाएँ हैं—(१) चिन्ता, (२) जागरण, (३) उद्वेग, (४) उत्थान पतन, (५) मलिनाङ्ग, (६) प्रलाप, (७) व्याधि, (८) उन्माद, (९) मोह और (१०) मृत्यु। महाप्रभुको इस समय इस कृष्ण-विरह-दश-दशाओंने ग्रास कर लिया है। रात-दिनमें वे कब किस दशासे ग्रस्त होते हैं, यह निश्चित नहीं है। कृष्ण-विरह-कातर महाप्रभु इस प्रकार दश दशाग्रस्त होकर उपर्युक्त वाक्यों द्वारा निजगणको अपने मनकी अवस्था बतला रहे हैं। और बीच-बीचमें निश्चेष्ट अवस्थामें रहते हैं।

रामानन्द राय महाप्रभुके तत्कालीन भावोचित राधा-कृष्णकी लीला-व्यञ्जन श्लोकावली पाठ करने लगे, और स्वरूप दामोदर श्रीराधिकाकी उक्तिके कृष्ण-विरह पदका गान करने लगे। इससे कुछ देरके बाद महाप्रभुको बाह्यज्ञान हुआ। तब वे दोनों भुजाओंके द्वारा दोनों आदमीका गला पकड़कर रोने लगे। उस करुण-क्रन्दनकी ध्वनि निशीथ कालमें गगन-भेदी हो गयी। इस प्रकार आधी रात बीतनेपर अनेक प्रकारसे सान्त्वना देकर राय रामानन्द और स्वरूप गोसाईने उनको भीतर प्रकोष्ठमें शयन कराया। रामानन्द अपने घर चले गये स्वरूप गोसाईं और गोविन्द दोनों आदमी द्वारपर शयन करते रहे। प्रकोष्ठके तीनों द्वार बन्द कर दिये गये।

सिंहद्वारपर दीर्घाकृति संज्ञाहीन प्रभु

कृष्ण-विरह-कातर महाप्रभुको रातमें निद्रा नहीं आयी। वे अब जागरण दशाग्रस्त होकर सारी रात उच्च नाम-सङ्कीर्तन करते रहे। उस दिन कुछ देर इसी प्रकार नाम-सङ्कीर्तन करके चुप हो गये। स्वरूप गोसाईंकी आँखोंमें नींद न रही। उस समय तीन पहर रात बीत चुकी थी। महाप्रभुका कोई शब्द न सुनकर उन्होंने द्वार खोलकर भीतर जाकर देखा कि वे घरमें नहीं हैं, द्वार तीनों बन्द हैं। गोविन्दको दीप जलानेके लिए कहा। दीप लेकर फिर घरके भीतर देखा, बाहर देखा। तब दोनों आदमी बहुत व्याकुल होकर रोते-रोते महाप्रभुकी खोजमें बाहर निकले। हाथमें दीप था। पथमें इधर-उधर देखते-देखते वे सिंहद्वारपर जा पहुँचे। सिंहद्वारके उत्तर ओर एक खुली जगहमें देखते हैं कि महाप्रभु दीर्घाकृति धारण करके भूतलपर सोये हैं। उनको देखकर इनकी देहमें जान आयी, मन आनन्दित हुआ, परन्तु उनकी अवस्था देखकर वे मर्माहत हो उठे। वह कैसी अवस्था थी? सुनिये—"पाँच छः हाथ दीर्घकाय होकर अचेतन अवस्थामें पड़े हैं, श्वासका सञ्चालन बन्द है, एक-एक हाथ पैर तीन हाथ लम्बे हो रहे हैं, अस्थि ग्रन्थियाँ खुली पड़ी हैं, हाथ-पैर-ग्रीवा सन्धि एक-एक बिलान्द दूरीपर हो गयी हैं, चर्म मात्रसे ढकी है, मुखसे लाल और फेन बह रहे हैं, आँखें चढ़ी हैं।"

ऐसी उनकी अवस्था थी। यह देखकर क्या स्वरूप गोसाईं स्थिर रह सकते थे? उन्होंने गोविन्दके द्वारा समस्त भक्तवृन्दको बुलवाया। उनमें रघुनाथदास गोस्वामी भी थे। स्वरूप गोसाईंने तब भक्तोंके साथ उच्च सङ्कीर्तन करके संज्ञाहीन महाप्रभुसे कानोंके पास कृष्ण नाम-सङ्कीर्तन आरम्भ किया बहुत देरके बाद जब उनके कानोंमें कृष्ण नाम प्रवेश किया तो वे 'हरिबोल' कहकर हुङ्कार-गर्जन करके धीरे-धीरे उठ बैठे। बाह्यज्ञान प्राप्त होते ही उनकी असंलग्न अस्थिसन्धियाँ यथास्थान पूर्ववत् संलग्न हो गयीं, तथा शरीर जैसाका तैसा हो गया। भक्तगणके आनन्दकी सीमा न रही। वे लोग प्रेमानन्दमें अधीर होकर बारम्बार हरिध्वनि करने लगे। उस समय रात प्रायः बीत चुकी थी। स्वरूप दामोदर गोस्वामी महाप्रभुको वक्षःस्थलमें धारण करके वासापर ले आये। स्वरूप दामोदर रूपी

ललिता सखीके अङ्गमें श्रीअङ्ग लगाये राधाभाव विभावित महाप्रभु धीरे-धीरे अपने वासापर आये। भक्तगणने देखा कि कृष्ण-विरहिणी श्रीराधिकाजी अपनी मर्मी सखी ललिताके अङ्गमें अङ्ग सटाकर अभिसारसे घर आ रही हैं।

महाप्रभुका यह अपूर्व लीलारङ्ग रघुनाथदास गोस्वामीने अपनी आँखों देखकर निजकृत श्रीगौराङ्ग स्तवककल्पतरुः स्त्रोत्रमें लिख रक्खा है। यथा,

क्वचिन्मिश्रावासे व्रजपति-सुतस्योरु-विरहात्
श्लथच्छ्रीसन्धित्वाद्दधदधिक-दैर्ध्यं भुजपदोः।
लुठन् भूमौ काक्वा विकल-विकलं गद्गदवचा
रुदन् श्रीगौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥

अर्थ—किसी दिन काशीमिश्रके घर व्रजपति-नन्दनके उत्कट विरहमें जिसके शरीरकी सन्धि ढीली हो गयीं हैं और भुज और पद अधिक लम्वे हो रहे हैं, तथा तदवस्थामें भू-विलुण्ठित होकर गद्गद काकु वाक्यमें जो रुदन कर रहे हैं, वही गौराङ्ग सुन्दर मेरे हृदयमें उदय होकर मुझको उन्मत्तकर रहे हैं।

महाप्रभुको अब बाह्यज्ञान हो गया है। वे कभी-कभी इधर-उधर एक-एक बार शुभदृष्टिपात कर रहे हैं। सामने सिंह द्वार देखकर विस्मित भावमें स्वरूप गोसाईंसे धीरे-धीरे पूछते हैं, "मैं इस समय यहाँ क्यों हूँ?" स्वरूप गोसाईंने उत्तर दिया—"हे प्रभु! अब बासा पर चलो। वहाँ चलने पर तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर दूँगा।" इतना कहकर महाप्रभुका श्रीहस्त पकड़कर उनको भूतलसे उठाया और पकड़कर घर ले गये। वहाँ जाकर महाप्रभु जव सुस्थिर हुए तो स्वरूप गोसाईंने उनको शुरुसे अन्त तक सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया। सुनकर उनको आश्चर्य सा लगा। उन्होंने स्वरूपका हाथ पकड़कर विस्मयपूर्वक कहा, "स्वरूप! मुझको तो कुछ भी याद नहीं। मैं तो देखता हूँ कि मेरे प्राणबल्लभ श्रीकृष्ण विद्युत्के समान मुझको दर्शन देकर अन्तर्धान हो गये। उसी दुःखसे मैं तड़प रहा हूँ।"

ठीक उसी समय जगन्नाथजीकी निशान्त उत्थापनकी शङ्ख ध्वनि सुन पड़ी। महाप्रभु स्नान करके झटपट जगन्नाथजीके दर्शनके लिए गये।

यहाँ महाप्रभुके इस लीलारङ्गके विषयमें दो एक बातें कहनी आवश्यक है। यह लीलाकथा समझानेकी शक्ति इस जीवाधम ग्रन्थकारमें नहीं है। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

लोके नाहिं देखि ऐछे शास्त्रे नाहिं शुनि।
हेन भाव ब्यक्त करे न्यासिचूड़ामणि॥

चै. च. अं. १४.७६

इसके अतिरिक्त और कुछ न बोलना ही ठीक होगा। तथापि उच्च शिक्षाभिमानी अविश्वासी पाठकोंका सन्देह दूर करनेके लिए दो एक बात बतानी है। यह भाव जो महाप्रभुने अपने बाह्य देहमें प्रकट किया है वह वस्तुतः शास्त्रयुक्ति और तर्कबुद्धिसे परे है। तथापि यह ध्रुव सत्य है, क्योंकि महाजनगणने इस लीलारङ्गको अपनी आँखों देखा है। इसका प्रमाण पूज्यपाद कविराज गोस्वामीका कथन है। उन्होंने लिखा है कि—

रघुनाथ दासेर सदा प्रभु सङ्गे स्थिति।
ताँर मुखे शुनि लिखि करिया प्रतीति॥

चै. च. अं. १४.७८

भाव-भक्तिके प्रचारक कृष्ण-विरह कातर श्रीगौराङ्ग प्रभु अपने भावका परिचय स्वयं आचरण करके जगत्को दिखला रहे हैं, भक्तका प्राण जब भावके स्रोतमें अपने शरीरको निमग्नकर

देता है, तब उसको देह ज्ञान नहीं रहता, और इस पञ्चभूतात्मक देहमें मानसिक भावोंकी स्फूर्ति होने लगती है। यह सबने देखा है कि अश्रु, कम्प, स्वेद पुलक, स्तम्भ, विवर्ण आदि अष्ट सात्त्विक भाव-विकार देहमें ही लक्षित होते हैं। परन्तु मानसिक भाव और दैहिक भाव दो विभिन्न वस्तुएँ हैं। मानसिक भावकी स्फूर्ति और स्पन्दन देहमें होता है, दैहिक भावके लक्षण मानसिक भावके लक्षणोंके परिचायक होते हैं। मानसिक भाव लक्षण अदृश्य होते हैं, दैहिक भाव लक्षण प्रत्यक्ष होते हैं। श्रीश्रीमन्महाप्रभुका नरदेह सामान्य मानवदेह नहीं है। सामान्य नरदेहमें जो सात्त्विक भावविकार लक्षित होते हैं, उनकी अपेक्षा अधिक आश्चर्यजनक और अलौकिक प्रेमभाव विकार यदि भगवद्देहमें लक्षित हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? महाप्रभुकी श्रीअस्थि जो शिथिल होकर एक-एक बित्ता लम्बी हो गयी थी, केवल चर्म संलग्न था, वैसा सामान्य नर देहमें संभव नहीं है। इसी कारण साधारण आदमीके मनमें यह विश्वास नहीं होता। यह एक मात्र भगवद्देहमें ही संभव है। कविराज गोस्वामीने यह बात लिखी है-

शास्त्र लोकातीत जेइ जेइ भाव हय।
इतर लोकेर ताते ना हय निश्चय॥

चै. च. अं. १४.७७

यह कृष्णविरहकातर महाप्रभुका दैहिक भाव विकार युक्त अत्यद्भुत प्रेमलक्षण लीलाभिनयका प्रथम अङ्क है। इसकी अपेक्षा अधिक अद्भुत लीलारङ्ग कथा आगे आयगी। यह आपके पाश्चात्य शरीर विज्ञानशास्त्रके परेकी बात है, मनुष्य-बुद्धिके अतीत और विचार तर्ककी गवेषणासे भी अतीत है। सुदृढ़ विश्वास-तरुके मूलमें बैठकर एकान्तमें श्रीगौर-भगवान्के इस लीलारङ्गका चिन्तन करने पर उनके महामहिमामय भावराज्यमें प्रवेशाधिकार प्राप्त करनेका सौभाग्य और सुयोग प्राप्त होगा, उनके अलौकिक लीलाकी अनुभूतिकी शक्ति संग्रह करनेकी क्षमता अर्जन करने योग्य है, साधनसापेक्ष है। श्रीभगवानके अलौकिक लीलारङ्गमें सुदृढ़ विश्वास स्थापन किये बिना भावभक्तिके राज्यमें प्रवेश करना अतिशय कठिन है। इसमें इहलोक और परलोकके नाशकी आशङ्का है। ऐसा पूज्यपाद कविराज गोस्वामी कहते हैं—

अलौकिक लीलामें जार ना जन्में विश्वास।
इहलौक परलोक तार हय नाश॥

चै. च. म. ७०.१०८

अब महाप्रभुकी एक और लीलाकथा वर्णन की जायगी। हे लीलामय प्रभु! हे दयामय श्रीगौराङ्ग! अपनी अपूर्व लीलाका वर्णन करनेकी शक्ति प्रदान करो। गौर-भक्तगण कृपा करके जीवाधम ग्रन्थकारके हृदयमें शक्ति सञ्चार करें। श्रीगौराङ्ग लीलाका वर्णन करना, यह मेरा दुःसाहस है। यह दुःसाहस मैं क्यों कर रहा हूँ? केवल आत्म शुद्धिके लिए।

आत्म शोधिवार तरे दुःसाहस कैनु।
लीलासिन्धुर एक बिन्दु छूंइते नारिनु॥

अद्वैतप्रकाश

चटकपर्वतमें गोवर्द्धन ज्ञान

इसके कुछ दिनके बाद एक दिन महाप्रभु समुद्र स्नानके लिए जाते हुए नीलाचलके चटक पर्वतको देखकर श्रीवृन्दावनके गोवर्द्धन गिरिके ज्ञानमें प्रेमाविष्ट होकर पर्वतकी ओर लम्बी साँस लेते हुए चल पड़े। वे बाह्य ज्ञान शून्य होकर लपके जा रहे थे और निम्नलिखित श्रीमद्भागवतका श्लोक उच्च स्वरसे आवृत्ति कर रहे थे—

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दर-कन्दमूलैः ॥

श्रीम. भा. १०.२१.१८

अर्थ—श्रीकृष्ण व्रजवालाओंको सम्बोधन करके कह रहे हैं, "हे अवलागण! यह आद्रि अर्थात् गोवर्द्धन हरिदासोंमें श्रेष्ठ है, क्योंकि रामकृष्णके चरण स्पर्शसे हृष्ट होकर उत्तम जल, कोमल तृण, उपवेशनादिके निमित्त गुहा, कन्द और मूलके द्वारा गौओं और बछड़ोंके साथ रामकृष्णकी पूजा कर रहे हैं।

गोविन्द भी उनके पीछे पीछें दौड़ रहे थे, परन्तु उनको पकड़ नहीं पा रहे। चारों ओर शोर गुल होने लगा, महाप्रभु भागते हुए कहीं निकल गये।" भक्तगणमें जो जहाँ था, वहाँसे ही जिधर महाप्रभु गये थे उसी ओर दौड़ पड़ा। उनमें थे स्वरूप गोसाईं, जगदानन्द पण्डित, गदाधर, पण्डित, रामाई, नन्दाई और शङ्कर पण्डित। परमानन्दपुरी और भारती गोसाईं भी समुद्रके तीरकी ओर दौड़े जा रहे हैं। भगवान् आचार्य लङ्गड़े थे, वे भी धीरे-धीरे चले। प्रेमोन्मत्त महाप्रभु पहले वायुगतिसे लपके जा रहे थे, कुछ दूर जाकर रास्तेमें स्तम्भित हो गये, वे अब चल नहीं पाते थे। महाप्रभुके स्तम्भ भावका वर्णन करते हुए पूज्यपाद कविराज गोस्वामी लिखते है—

प्रति रोम कूपे मांस व्रणेर आकार।
तार ऊपरे रोमोद्गम कदम्ब प्रकार॥
प्रति रोमे प्रस्वेद पड़े रुधिरेर धार।
कण्ठे घर्घर—नाहि वर्णर उच्चार॥
दुइ नेत्र भरि अश्रु वहये अपार।
समुद्रे मिलिला जेन गङ्गा यमुना धार॥
वैवर्ण्ये शङ्खप्राय श्वेत हैल अङ्ग।
तबे कम्प उठे जेन समुद्रे तरङ्ग॥

चै. च. अं. १४.८६-८९

इस प्रकार अश्रुतपूर्व अत्यद्भुत स्तम्भ भावमें विभावित होकर कृष्णविरह-वाणविद्ध महाप्रभु काँपते-काँपते रास्तेमें भूतल पर गिर पड़े, उनका सोनेका अङ्ग धूलिधूसरित हो गया। उसी समय सबसे पहले गोविन्द वहिर्वास और जलपूर्ण करङ्ग लेकर वहाँ उपस्थित हो गये। वे बहुत सशङ्कित और अस्तव्यस्त होकर महाप्रभुके सर्वाङ्गमें जलका छींटा देने लगे, और वहिर्वास द्वारा श्रीअङ्गमें व्यजन करने लगे। तत्पश्चात् स्वरूप दामोदर गोसाईं आदि भक्तगण वहाँ जा पहुँचे। वे लोग महाप्रभुकी अवस्था देखकर व्याकुल होकर रो पड़े। महाप्रभु के श्रीअङ्गमें स्तम्भ भावका अद्भुत रीतिमे पूर्ण विकास देखकर वे चकित हो उठे। तब सब लोग मिलकर उच्च स्वरसे हरिसङ्कीर्तन करने लगे, और बारंबार महाप्रभुके सर्वाङ्गमें शीतल-जलका छींटा देने लगे। इस प्रकार करते-करते अचानक उनको बाह्य ज्ञान हो गया। वे 'हरि-हरि' बोलते हुए धीरेसे उठ बैठे। भक्तगण तब प्रेमनान्दमें विभोर होकर कीर्तनानन्दमें मग्न हो गये।

महाप्रभुकी अर्द्धवाह्यावस्था थी। वे इधर-उधर ताक रहे थे और चुपचाप बारम्बार लम्बी साँस छोड़ रहे थे। भक्तगण उनको घेरकर कीर्तन कर रहे थे, यह देखकर उन्होंने स्वरूप गोसाईंको इशारेसे पास बुलाया और प्रेमावेशमें अश्रुपूर्ण नेत्रसे गद्गद वाणीमें कहने लगे—"आज मैं गोवर्द्धन गया था। वहाँ श्रीकृष्ण गोचारण कर रहे थे। गोवर्द्धनके ऊपर चढ़कर श्रीकृष्णने वेणु बजायी। वेणुध्वनि सुनकर श्रीराधा ठाकुरानी आयीं, जिनके रूप और भावका वर्णन नहीं हो सकता। सखीगणने मुझे फूल चुनकर लानेका आदेश दिया। इसी समय

तुम लोगोंने कोलाहल मचा दिया और मुझे पकड़कर यहाँ ले आये। मुझे वृथा दुःख देनेको यहाँ क्यों ले आये तुम लोग? श्रीकृष्णलीला पाकर भी मैं दर्शन नहीं कर सका।"

इतनी बात कहकर प्रभु अजस्र आँसू बहाने लगे। उनके श्रीवदनका कातर भाव देखकर भक्तवृन्दका हृदय उन्मथित हो उठा। वे लोग भी प्रेमाश्रु-वर्षण करने लगे। इतनेमें परमानन्दपुरी, ब्रह्मानन्दपुरी और ब्रह्मानन्द भारती गोसाईं वहाँ आ पहुँचे। वे लोग महाप्रभुके आदरणीय पात्र थे। इन लोगोंको देखकर उन्होंने अपना भाव संवरण किया।

महाप्रभुका तत्कालीन भाव कैसा था, यह कृपामय पाठकवृन्द अवश्य समझ गये होंगे। वे कृष्णविरहिणी राधाके भावमें प्राणवल्लभके अदृश्य होनेसे मनमें दुःखी होकर रो रहे थे। भक्तवृन्द उनकी मर्मी सखियाँ हैं। सखियोंके सामने फिर लज्जा शर्म क्या? पुरी और भारती गोसाईंको वे गुरुबुद्धिसे सत्कार करते है। इसी कारण उनको देखकर तत्काल भाव संवरण करके अपनेको लज्जित बोध करने लगे। आदरपूर्वक उठकर प्रभुने उन दोनोंकी वन्दना की, उन दोनोंने भी उनको प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन प्रदान किया।

महाप्रभु अब कुछ प्रकृतिस्थ हो गये। उन्होंने पुरी और भारती गोसाईंसे मधुर वचनों द्वारा पूछा—"आप लोग इतनी दूर क्यों आये हैं? पुरी गोसाईंने हँसकर उत्तर दिया, "तुम्हारा अपूर्व नृत्य देखने हम आये हैं। महाप्रभु एक तो लज्जित भावसे बातें कर रहे थे, पुरी गोसाईंकी बात सुनकर लज्जासे और भी सिर नीचा कर लिया। कुछ देर बाद सबने मिलकर समुद्र स्नान करके वासापर आकर महाप्रसाद भोजन किया।

महाप्रभुके इस दिव्योन्माद भावपूर्ण लीलारङ्गको भी रघुनाथदास गोस्वामीने अपने गौराङ्ग-स्तव-कल्पतरु स्तोत्रके एक श्लोकमें वर्णन किया है। यथा,

समीपे नीलाद्रेश्चटकगिरिराजस्य कलना-
दये! गोष्ठे गोवर्द्धन गिरिपतिं लोकितुमितः।
व्रजन्नस्मीत्युक्त्वा प्रमद इव धावन्नवधृतो-
गणैः स्वैर्गौराङ्गो हृदय उदयन् मां मदयति॥

अर्थ—नीलाचलके निकट चटकपर्वत देखकर जो गोष्ठमें, 'गोवर्द्धन गिरिराजको देखने जाता हूँ', यह कहकर प्रमत्तके समान धावमान अवस्थामें अपने गणोंके साथ पकड़े गये थे, वे श्रीगौराङ्ग देव मेरे हृदयमें उदय होकर मुझको प्रमत्त कर रहे हैं।

यह दिव्योन्माद दशाभाव भी मानवकी ज्ञान बुद्धि और विचार तर्कके अतीत है। महाप्रभुका मन गोवर्द्धन गिरि प्रदेशमें चला गया था, सिद्ध देह मात्र नीलाचलमें पड़ा रहा। मानसिक सारी क्रियाएँ सिद्ध देहमें उपलब्ध होती हैं, यह दिखलानेके लिए महाप्रभुने यह अद्भुत लीलारङ्ग किया। अष्ट-सात्त्विक-भाव विकार-लक्षण किस सिद्ध देहमें लक्षित होते हैं, यह दिखलानेके लिए भी महाप्रभुने यह अपूर्व लीलारङ्ग प्रकट किया। ये सब भाव-लक्षण इतने दिनों तक ग्रन्थमें लिखे पड़े थे, किसीको कभी किसी महापुरुषके अङ्गमें देखनेका सुयोग और सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। श्रीश्रीमन्महाप्रभुने स्वयं आचरण करके धर्मशिक्षा दी है। उन्होंने दिखलाया है कि साधकके सिद्ध देहमें आलौकिक, अभूतपूर्व तथा अश्रुतपूर्व सात्त्विक भाव-लक्षण दृष्ट हो सकते हैं। इस प्रकारकी साधना ही प्रकृत साधना है। साधन-बलसे सब कुछ सम्भव है, भक्तिकी साधना योगकी साधनासे किसी भी अंशमें न्यून नहीं बल्कि श्रेष्ठ है। श्रीगौराङ्ग प्रभुने इस लीलारङ्ग द्वारा इसे भी दिखला दिया है।

योगबलसे अलौकिक कार्य सिद्ध होते हैं, भक्तिके साधनके बलसे उससे भी बढ़कर अलौकिक कार्य सिद्ध हो सकते हैं, तथा सिद्ध देहकी शक्ति कितना प्रबल प्रतापयुक्त और ऐसी बलपूर्ण होती है, यह भी लीलारङ्ग द्वारा लीलामय महाप्रभुने अपने भक्तोंको दिखलाया है। यही श्रीगौर भगवान्‌की अलौकिक लीला है।

महाप्रभु अब कुछ-कुछ ऐश्वर्य दिखला रहे हैं। उनके भक्तगण कङ्गाल कन्थाधारी होते हुए भी प्रभूत साधन-शक्ति-सम्पन्न और क्षमताशाली हैं, वैष्णवगण ऐश्वर्य दिखलाना नहीं चाहते, किन्तु जब दिखलाते हैं, तब उसे देखकर सब लोग विस्मित होते हैं। क्योंकि इस प्रकारका ऐश्वर्य और कोई नहीं दिखला सकता। श्रीरूप गोस्वामीने अकबर बादशाहको जो ऐश्वर्य दिखलाया था, उससे मुसलमान सम्राटको स्तम्भित होकर उनके चरणोंमें सिर झुकाना पड़ा था। वह बात विस्तारपूर्वक कहनेके लिए इस ग्रन्थमें स्थान नहीं है।

छप्पनवाँ अध्याय

(महाप्रभुकी विरहोन्मादवस्थाका प्रलापवर्णन)

(प्रथम चित्र)

प्रभुर विरहोन्माद भाव गम्भीर।
बूझिते ना पारे केह यद्यपि हय धीर॥
बूझिते ना पारे जाहा, वर्णिते के पारे।
सेइ बूझे वर्णे,—चैतन्य शक्ति देन जारे॥

चै. च. अं. १४.४,५

यह वक्तव्य पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीका है। श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी अब श्रीकृष्ण विरहोन्मादावस्था है और तज्जनित उनका प्रलाप-प्रसङ्ग मनुष्यके लिए दुर्बोध्य है। केवल मनुष्यके लिए ही क्यों? देवताओंके लिए भी दुर्बोध्य है। तथापि उनकी असीम कृपाके बलसे शक्तिशाली महाजन भक्तगणने इस अतिशय गम्भीर लीला-रहस्यका मर्म जो कुछ उद्‌घाटन किया है, उसकी आलोचना करनेपर स्तम्भित होना पड़ता है। वह अपूर्व लीला रहस्य समझनेकी शक्ति ग्रन्थकारमें नहीं है, तथापि इसका पाठ करनेपर उसका मन विस्मय सागरमें निमग्न हो जाता है। प्राणमें न जाने एक अद्‌भुत भावका उदय होता है। इस अद्‌भुत भावसे आविष्ट होकर इन्द्रियाँ परस्पर विवाद करने लगती हैं। कोई किसीकी बात नहीं सुनता। कोई किसीपर विश्वास नहीं करता। सब लोग विस्मित होकर किंकर्त्तव्य विमूढ़ भावसे मेड़कके समान टर्र-टर्र करते हैं। यह कोलाहल

ध्वनि बाह्य देहसे भीतर प्रवेश करती है, और मन-बुद्धि, अहङ्कार आदि ज्ञानेन्द्रियोंको अस्त-व्यस्त कर देती है। उनको स्थिरतापूर्वक चिन्तन नहीं करने देती, स्वतन्त्रतापूर्वक विचार नहीं करने देती। वे प्रायः क्षिप्तसा होकर भीतर ही भीतर छटपटाते हैं। मनुष्यका हृदय बड़ा दुर्बल होता है, सहज ही विश्राम चाहता है। इन सब क्षिप्तप्रायः ज्ञानेन्द्रियोंके अत्याचारसे मनुष्यका दुर्बल प्राण बिल्कुल ही अस्थिर हो जाता है। प्राण निष्प्राण हो जाता है। प्राणके भीतर अन्तःकरण है, वहाँ ही जीवात्माकी स्थिति है। प्राण जब बाह्येन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियके द्वारा प्रपीड़ित होता है, तब अन्तःकरण भी साथ ही साथ व्याकुल हो उठता है, और तन्मध्यस्थ आत्मा भी विचलित हो जाता है। तब सब कुछ विपरीत हो जाता है। मनुष्यकी आत्माके विचलित होनेपर परमात्मा भी विचलित हो जाते हैं। तब मनुष्यकी विवेक बुद्धि नहीं रह जाती। मनुष्य जब विवेक बुद्धिहीन हो जाता है तो उसके द्वारा कोई कर्म सिद्ध नहीं होता। श्रीमन्महाप्रभुकी विरहोन्माद दशा, तथा उनके तज्जनित आवेगमय प्रलाप-वाक्यका मर्म समझनेकी शक्ति प्राप्त करना युगों तक साधनकी अपेक्षा करता है। मनुष्यके हृदयमें जब इस अति अद्‌भुत और अलौकिक लीलानुभूतिके अनुसन्धानकी इच्छा उत्पन्न होती है, तब उसके मनमें लीलास्फूर्त्तिकी सूचना होती है। यह लीला स्फूर्त्तिकी सूचना ही भगवत्कृपा है, तथा यह भगवत्कृपा भगवत्‌लीला रहस्य समझनेका एकमात्र मूलमन्त्र है।

यह सब अत्यद्‌भुत लीलारङ्गकी कथाएँ जो अपनी आँखों देखकर सूत्ररूपमें लिख गये हैं उनके नाम हैं स्वरूप दामोदर और रघुनाथ दास गोस्वामी। ये दोनों महापुरुष उस समय महाप्रभुके पास थे। स्वरूप गोसाई करचा-कर्त्ता हैं और रघुनाथ दास वृत्तिकार। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इन दोनों महापुरुषोंके करचा और वृत्तिका अवलम्बन करके महाप्रभुकी यह अद्‌भुत लीला-कथा कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन की है। यह कुछ विस्तृत लीलारहस्य भी मनुष्यकी विचार शक्तिके परे है। इसका वर्णन मैं क्या करूँगा? तथापि सिद्ध महाजनगण जो लिपिवद्ध कर गये हैं, उसकी ही अविकल प्रतिलिपि कृपालु गौरभक्त पाठकवृन्दके सामने रखनेकी चेष्टा की जा रही है। वे लोग गौराङ्गकृपाके बलसे इन निगूढ़ गौराङ्ग लीलारहस्यकी बातोंको अवश्य समझ पायेंगे। जीवाधम ग्रन्थकार जिसको स्वयं समझनेमें असमर्थ है, उसको समझानेकी चेष्टा केवल इसकी धृष्टता मात्र है।

राधाभावकी स्फूर्ति

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके राधाभावमें श्रीकृष्णके सङ्गकी प्राप्तिके हेतु जो करुण प्रेमक्रन्दन तथा आर्त्ति है, इसीको उनका प्रलाप नाम देते हैं। नवद्वीपमें जब उन्होंने सर्वप्रथम प्रेम प्रकाशित किया था, तब श्रीकृष्ण भावमें 'राधा-राधा' कहकर प्रायः रुदन किया करते थे, अब नीलाचलमें राधा भावमें 'हा कृष्ण-हा कृष्ण' कहकर रुदन करते हैं। राधाकृष्ण मिलितवपु श्रीगौराङ्ग सुन्दरको 'राधाभावद्युति सुवलित नौमि कृष्ण स्वरूपम्'—कहकर सिद्ध महाजनगण नति स्तुति कर गये हैं। यही उनका सर्वोत्कृष्ट तत्त्व प्रकाशक स्तोत्र है। नवद्वीप लीलामें वे प्रायः श्रीकृष्ण भावमें 'राधा-राधा' कहकर रुदन करते थे, कभी-कभी 'गोपी-गोपी' कहकर जप भी करते थे। नदियामें वे भक्तभावमें श्रीराधाकी महिमा प्रकट करते थे। यह श्रीगौराङ्ग अवतारका अन्यतम उद्देश्य था। राधाभावमें विभावित होकर उन्होंने भक्तभाव धारण करके नवद्वीपमें जो लीलाएँ प्रकट

की, वह उनकी ऐश्वर्य लीला थी। वे आनन्द-लीला-रसमय विग्रह थे, राधाशक्ति गदाधरको पाकर उन्होंने प्रेमोन्मत्त भावमें राधारस-सुधातरङ्गमें अपना अङ्ग ढाल दिया था। वहाँ वे अपनेको पूर्णरूपसे भूल न सके, नीलाचलमें वे अपने पूर्णस्वरूप तत्त्वको एकवारगी भूल गये थे, उन्होंने आत्मतत्त्वको राधातत्त्वमें पूर्णरूपसे मिलाकर अपनेको कृष्ण विरहिणी राधा समझकर कृष्ण विरह समुद्रमें गोता लगाया था। नीलाचल-लीलाका उनका भाव राधाकृष्ण मिलितवपुका मिश्रित भाव नहीं था,—श्रीकृष्ण भावकी सत्ताको लोप करके श्रीराधा भावका पूर्ण विकास उन्होंने नीलाचल-लीलामें दिखलाया है। अतएव उनके श्रीमुखसे केवल—

काँहा करों, काहाँ पाङ व्रजेन्द्रनन्दन।
काहाँ मोर प्राणनाथ मुरलीवदन॥
काहारे कहिब, केवा जाने मोर दुःख।
व्रजेन्द्रनन्दन-बिना फाटे मोर बुक॥

चै. च. म. २,१४,१५

यह राधाकृष्ण मिलित तत्त्वका संमिश्रण भाव नहीं, विशुद्ध राधाभाव है। अव वे 'राधा राधा' कहकर रुदन नहीं करते, 'हा कृष्ण, हा कृष्ण' कहकर रोकर व्याकुल होते हैं। श्रीकृष्णके रूप, गुण और महिमाके वर्णनमें वे शतमुख हो जाते हैं, श्रीकृष्ण-विरहमें उनका हृदय जर्जर है, श्रीकृष्णके दर्शनके उद्वेगमें उनका एक दिन कोटियुगसा बीतता है। नीलाचलमें महाप्रभुकी इस समय ऐसी ही अवस्था है। उनका सुन्दर मुखचन्द्र मलिन हो रहा है, तथापि उनके सौन्दर्यकी सीमा नहीं है, उनमें अपार भाव माधुर्य है। उनके उस मलिन मुखचन्द्रमें झलक-झलकमें नाना भावोंके अपूर्व तरङ्ग उठते हैं, और वे बैठकर धीरे-धीरे कृष्ण नाम जप करते हैं, नयन-कमलसे अत्यन्त वेगसे प्रेमाश्रुधारा बहती है। महाजन कविने प्रभुके उस अपरूप रूपको देखकर लिखा है—

रुइ रुइ जपे गोरा कृष्णनाम मधु।
अमिया झरये जेन बिमल विधु॥

× × ×

कृष्ण कृष्ण बलि गोरा कान्दे घने घने।
कत सुरधनी बहे अरुण नयने॥

महाप्रभु अपने वासापर इसी प्रकार भूतलपर बैठे हैं, रामानन्द राय और स्वरूप गोसाईं उनके पास बैठे हैं। वे दोनों व्यक्ति कृष्ण-विरह-कातर प्रभुको नाना प्रकारसे समझाते-बुझाते हैं। प्रातःकालके समय एक-एक करके सब भक्तगण आकर एकत्र होते हैं। स्वरूप गोसाईं और रामानन्द महाप्रभुको नाना उपायोंसे भुलानेका प्रयास कर रहे हैं। स्वरूप कहते हैं, "प्रभु! जगदानन्द पण्डित आये हैं, आपको प्रणाम कर रहे हैं, कृपा कीजिये।" रामानन्द कहते हैं—"प्रभु! तुम्हारे रघुनाथ दास चरणोंमें गिरे पड़े हैं, एक बार कृपादृष्टि करो।"

कृष्ण विरह-विधुर महाप्रभुके कानोंमें कोई बात नहीं जा रही है। वे भूतलपर, सिर अवनत करके, बैठे हैं। नयन-जलसे वह स्थान सिक्त हो गया है, किसी ओर आँखें फेरकर नहीं देखते। उनके पक्वबिम्बविनिन्दित ओष्ठद्वय मृदुमन्द कम्पित हो रहे हैं, वे मृदु-मृदु प्रेम-गद्गद वाणीमें कृष्णनाम जप कर रहे हैं, बीच-बीचमें गम्भीर विरह-व्यञ्जक एक-एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हैं। मानो वे निःश्वास उनके हृदय समुद्रको उद्वेलित करके बाहर निकल रहे है। जितना ही समय बीतता है, उतना ही उनकी कृष्ण-विरह व्यथा बढ़ती जाती है।

रामानन्द राय और स्वरूप दामोदर बड़ी विपदमें पड़ गये। महाप्रभुका कोई भी नित्य कृत्य नहीं हुआ, स्नान-भोजन तो दूरकी बात है। वे किस भावमें मग्न हैं, यह समझनेमें रामानन्द और स्वरूप गोसाईंके समान सुचतुर रसिक भक्तोंके लिए कुछ वाकी न रहा। यद्यपि बेला अधिक हो गयी थी, तथापि ललिता सखीके अवतार स्वरूप दामोदरने एक चण्डीदासके पदका धूहा पकड़ा।

राधार कि हइल अन्तर ब्यथा।

बसिये विरले, थाकये एकले
ना शुने काहारओ कथा॥

तत्काल महाप्रभुको चेतना आयी, तब वे प्रेम-विस्फारित नयनोंसे इधर-उधर देखने लगे। स्वरूप गोसाईंका गला पकड़कर प्रेमावेगमें रोते-रोते बोलै—"तुम मुझको मेरे प्राणवल्लभके पास ले चलो। अब मैं उनको देखे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।" स्वरूप गोसाईंने सुयोग पाकर कहा, "प्रभु! चलो।"

तत्काल प्रेमानन्दमें विभोर होकर प्रभु उठे। उनके श्रीअङ्ग प्रेममें मतवाले हो रहे थे। वे चलनेमें अशक्त थे। एक हाथसे स्वरूपका गला जकड़कर पकड़ा, और दूसरा हाथ रामनन्दके कन्धेपर रखकर वे समुद्र स्नान करने चले।

कृष्ण-विरह-स्फूर्त्ति

राधाभावमें विभावित होकर महाप्रभु प्रेमावेशमें चले जा रहे थे कृष्ण दर्शनके लिए। ललिता-विशाखा दोनों सखियाँ साथमें थी। रास्तेमे पुष्पोद्यान देखकर उनके मनमें हुआ कि यह वृन्दावन है। तत्काल रामानन्द और स्वरूप गोसाईंका हाथ छुड़ाकर वे प्रेमावेगमें उद्यानमें कृष्णान्वेषणके लिए भागे। साथके भक्तवृन्द साथ-साथ दौड़े।

श्रीरासमण्डलमें श्रीकृष्ण जब श्रीराधिकाको लेकर अन्तर्धान हो गये थे, उस समय सखियाँ जिस भावमें विभावित होकर वनमें उनको खोजने लगी थीं, आजका महाप्रभुका वही भाव था। वे रामानन्द और स्वरूपके प्रति करुण-नयनसे देखकर बोले—"सखि! वृन्दावनमें तो आ गयी, मेरे प्राणवल्लभ कृष्ण कहाँ हैं? तुम लोग दिखला दो।"

एत कहि गौरहरि, दुजनार कण्ठे धरि,
कहे—शुन स्वरूप राम राय।
काहाँ करों काहाँ जाङ, काहाँ गेले कृष्ण पाङ,
दोंहे मोरे कह से उपाय॥

चै. च. अं. १५.२२

वे इतना कहकर प्रत्येक तरुलताको साश्रुनयन देखते हुए भागवतका श्लोक पढ़कर परम आवेगपूण गद्गद भाषामें कहने लगे—

चूत-प्रियाल-पनसासन-कोविदार-
जम्ब्बर्क-बिल्व-वकुलाम्र-कदम्ब-नीपाः।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः॥

श्रीम. भा. १०.३०.९

अर्थ—हे चूत, हे प्रियाल, हे पनस, हे असन, हे कोविदार, हे जम्बु, हे अर्क, हे बिल्व! हे बकुल, हे आम्र, हे नीप, हे कदम्ब! हे यमुनातीर वासी अन्यान्य तरुगण! तुमने परार्थके लिए ही जन्म ग्रहण किया है! कृष्ण विरहमें व्याकुल होकर हम उनको ढूँढ़ रहे हैं। वे किस रास्ते गये हैं, कृपा करके बतला दो। हमारी प्राणरक्षा करो।

यह कृष्ण विरह कातरा गोपीगणके विलाप वाक्य हैं। महाप्रभुका भाव गोपीभाव है। वे प्रत्येक वृक्षके पास जाकर प्रेमाश्रु-नयनसे कातर भावसे इस प्रकार विलाप करने लगे। स्वरूपादि भक्तगण उनका भाव समझकर चुप रहे। ये देखते हैं कि प्रभु कृष्ण-विरह व्याकुला प्रेमोन्मादग्रस्ता ब्रजवाला हैं, भागवतका श्लोक उन्होंने केवल पढ़ा

था, उस श्लोकमें उक्त कृष्ण-विरहिणी व्रजवालाओंकी विरह व्याकुल आक्षेपोक्ति मानो अपने कानों आज सुन लिया। उनका हृदय प्रेमानन्दसे परिपूर्ण हो गया, परन्तु महाप्रभुकी अवस्था देखकर वे बहुत कातर हुए।

इधर कृष्ण-विरह विदग्ध महाप्रभुने पुष्पोद्यानके तरु समूहके समीप जो कातर निवेदन किया, उसका कुछ उत्तर न पाकर मन ही मन सोचने लगे—

ए सब पुरुष जाति—कृष्णेर सखार समान।
ए केने कहिबे कृष्णेर उद्देश आमाय॥

चै. च. अं. १५.३२.३३

अर्थात्—ये वृक्षगण पुरुष जाति हैं, कृष्णके सखा हैं, मेरे कोई नहीं हैं, ये कृष्णका समाचार जानकर भी मुझको क्यों बतायेगे ? महाप्रभुका इस समय पूर्ण गोपीभाव है, वे पुरुष जाति नहीं हैं—यह उनका दृढ़ विश्वास है। वे स्त्रीत्वको प्राप्त होकर ऐसी बात कह रहे हैं। भीतर पुरुषत्वका लेशाभास रहनेपर ऐसी बात किसीके मुखसे नहीं निकलती।

अब कृष्ण-विरह कातर महाप्रभुकी दृष्टि पड़ी तुलसी, मालती, यूथी, माधवी मल्लिका आदि लतावृन्दके ऊपर। वे स्त्री जाति हैं, स्त्रीके दुःखको समझेंगी। और उसकी बातका उत्तर देंगी। यह सोचकर उन्होंने प्रेमावेगमें भागवतका एक और श्लोक आवृत्ति करते हुए प्रत्येक लतावृक्षके समीप कातर स्वरसे रोते-रोते निवेदन किया—

कच्चित् तुलसि कल्याणि गोविन्द चरणप्रिये।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः॥
मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके।
प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः॥

श्रीम. भा. १०.३०.७,८

अर्थ—हे तुलसि, हे कल्याणि, हे गोविन्द चरण प्रिये ! तुम्हारे अति प्रिय भगवान् अच्युत अलिकुलके साथ तुमको वहन करके इस पथसे गये हैं, उनको क्या तुमने देखा है ?

तुलसी देवीको यह बात कहकर उन्होंने मालती मल्लिका आदि तरु.लताओंकी ओर करुण-नयनसे देखकर कहा—"हे मालति ! हे मल्लिके ! हे जाति ! हे यूथिके ! माधव अपने कर स्पर्श द्वारा तुमको प्रसन्न करके क्या इस मार्गसे गये हैं ? उनको क्या तुमने देखा है ? तुम सब मेरी सखीके समान हो, मेरे प्राणवल्लभ कृष्णका समाचार प्रदान कर मुझे प्राणदान दो।"

तुलसी तथा अन्य लतावृक्षके पास भी कोई उत्तर न पाकर उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई। वे सोचने लगे, व्यथितका निवेदन किसीने न सुना। विशेषतः ये सभी कृष्णदासी हैं, कृष्णके भयसे उनका पता नहीं बतलाया, अच्छी बात है। यह सोचकर कृष्ण-बिरहकातर महाप्रभुने कृष्ण अङ्गगन्धवह मृगीगणके मुखकी ओर करुण-नयनसे देखकर भागवतके एक श्लोककी आवृत्ति की।

अप्येण पत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन् दृशां सखि ! सुनिर्वृतिमच्युतो वः।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुंकुमरञ्जितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः॥

श्रीम. भा. १०.३०.११

अर्थ—हे सखि हरिणदयिते ! माधवने तुम्हारे प्रियतमाके साथ इस स्थानपर आकर अपनी अङ्ग शोभा प्रदर्शन करके क्या तुम्हारा नयन-रञ्जन किया है ? क्योंकि यहाँकी वायु उनके कान्ताङ्ग-सङ्गके कारण कुचकुंकुम रजित कुन्दमालाका गन्ध वहन कर रही है। कृष्ण-विरहकातर प्रेमोन्मत्त महाप्रभु हरिणीगणको लक्ष्य करके कहते हैं—

कह मृगी ! राधासह श्रीकृष्ण सर्वथा।
तोमाय सुख दिते आइला, नाहिक अन्यथा॥
राधार-प्रियसखी आमरा, नहि बहिरङ्ग।
दूरे हैते जानि ताँर जैछे अङ्ग-सङ्ग॥

राधा-अङ्गसङ्गे कुचकुंकुमे भूषित ।
कृष्ण-कुदमाला गन्धे वायु सुवासित ।।
कृष्ण इहाँ छाड़ि गेला, इहों बिरहिणी ।
कि वा उत्तर दिबे एइ ना शुने काहिनी ।।

चै. च. अं. १५.३९-४२

इतना कहकर कृष्ण प्रेमोन्मत्त महाप्रभु कान खड़ा करके सतृष्ण नयनसे उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे। मृगीगण चकित होकर भागने लगी। यह देखकर वे निराश होकर पुनः उद्यानके फल-पुष्प भारसे अवनत शाखा-पल्लवसमन्वित वृक्षोंकी ओर करुण-नयनसे दृष्टिपात करके कहने लगे—

बाहुं प्रियांस उपधाम गृहीत पद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तुरवः प्रणामं
कि वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ।।

श्रीम. भा, १०.३०.१२

अर्थ—हे तरुगण ! तुलसीगन्धोन्मत्त अलिकुलके द्वारा अनुसृत होकर रामानुज कृष्ण प्रियतमाके कन्धेपर वाम बाहु अर्पण करके दक्षिण हाथमें नीलपद्म लेकर इस स्थानपर विहार करते हुए प्रेमगर्वनेत्रसे तुम्हारे प्रणाम और अभिवादनको क्या उन्होंने अङ्गीकार किया था ?

भागवतका उपर्युक्त श्लोक महाप्रभु प्रेमपूर्वक मधुर स्वरसे आवृत्ति कर रहे हैं, और फल-फूलमें भारसे अवनत सिर वृक्षोंकी ओर सतृष्ण नयनसे बारम्बार अपने प्रश्नके उत्तरकी अपेक्षा करते हुए ताक रहे हैं। परन्तु कौन उनकी कृष्ण-विरहकी मर्मवेदनाको समझेगा ? कौन उनकी बातका उत्तर देगा ? वे कृष्णके अन्वेषणमें वनराजिके चतुर्दिक अत्यन्त उद्विग्न भावसे परिभ्रमण कर रहे हैं, और जिसको देखते हैं, उसीसे अपने प्राणवल्लभकी बात पूछ रहे हैं, परन्तु कोई उनकी बातका उत्तर नहीं देता है, यह देखकर उनके मनका दुःख दूना बढ़ रहा है। हृदयाग्नि धधकने लगती है वे और किसीसे न पूछकर यमुनाके भ्रमसे समुद्रके तटकी ओर भागे। वहाँ कदम्बके नीचे अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णको देखा। वह रूप कैसा था ?

कोटि मन्मथ-मोहन मुरलीवदन ।
अपार सौन्दर्ये हरे जगनेत्र-मन ।।

चै. च. अं. १५.४६

कृष्णका यह अपरूप रूप देखकर वे मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पड़े। पूर्ववत् उनके श्रीअङ्गमें अष्ट सात्त्विक भावोंके सारे विकार दृष्ट होने लगे। उनके अन्तरमें परमानन्द अनुभूत होता था, परन्तु बाह्यलक्षण महाउद्वेगपूर्ण था, प्रेमविह्वल भाव था। स्वरूप रामानन्द आदि भक्तगण वहाँ आकर उपस्थित हो गये और पूर्ववत् उच्च कृष्णनाम सङ्कीर्तन द्वारा उनको चैतन्य किया। महाप्रभु तब धीरे-धीरे उठ बैठे और प्रेमावेशमें इधर-उधर देखने लगे, उनके नयन-कमलसे अविरल प्रेमधारा बह रही थी। वे राय रामानन्दके मुखकी ओर देखकर राधिकाकी उक्तिका गोविन्द-लीलामृतका एक श्लोक अति मधुर स्वरमें पाठ करने लगे—

नवाम्वुद-लसद् दुयुतिर्नवतडिन्मनोज्ञाम्बरः
सुचित्र मुरलीः स्फुरच्छरद मन्दचन्द्राननः ।
मयूर-दल-भूषितः सुभग-तारहारप्रभः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति नेत्रस्पृहाम् ।।

गो. ली. ८.४

अर्थ—हे सखि विशाखे ! मदनमोहन श्रीकृष्णकी नवजलधर सदृश अङ्गकान्ति समुज्ज्वल है, उनका पीताम्बर नवतड़ित्‌के समान मनोमुग्धकारी है, रत्नोंसे जटित मुरली वदनमें सुशोभित हो रही है, मुखकमल शरद्‌की पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान

सुस्निग्ध है, शिर पर मयूर पुच्छ शोभा देता है, तथा मनोहर मुक्ताहारकी दीप्तिसे समुद्भासित वक्षः स्थल है, जिन्हें अवलोकन करके मेरे नयनोंकी आनन्द वृद्धि हो रही है।

यह श्लोक विशाखा सखीके प्रति राधिकाजीकी उक्ति है। इस समय महाप्रभुका राधाभाव पूर्णावस्थाको प्राप्त है। रामानन्द तत्त्वतः विशाखा सखी हैं। उनको ही सम्बोधन करके महाप्रभु श्रीकृष्णके अपरूप रूपका वर्णन करते हैं। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इस श्लोकके अर्थकी बड़ी सून्दर व्याख्या त्रिपदीमें की है। यथा,

नव घन स्निग्ध वर्ण, दलिताञ्जन चिक्वण,
इन्दिवर निन्दि सुकोमल।
जिनि उपमानगण, हरे सभार नेत्र मन,
कृष्णकान्ति परम प्रबल॥
कह सखि ! कि करि उपाय ?
कृष्णाद्भुत बलाहक१, मोर नेत्र चातक,
ना देखि पियासे मरि जाय॥ ध्रु०
सौदामिनी पीताम्बर, स्थिर नहे निरन्तर,
मुक्ताहार बकपाति भाल।
इन्द्रधनु शिखि-पाखा, उपरे दियाछे देखा,
धार धनु वैजयन्ति-माल॥
मुरलीर कलध्वनि, मधुर गर्जन शुनि,
वृन्दावने नाचे मौरचय२।
अकलङ्क पूर्णकल, लावण्य ज्योत्स्ना झलमल,
चित्रचन्द्रेर ताहाते उदय॥
लीलामृत वरिषणे, सिञ्चे चौद भुवने,
हेन मेघ जबे देखा दिल।
दुर्दैव-झञ्झा-पवने, मेघ निल अन्य स्थाने,
मरे-चातक पीते ना पाइल॥

चै. च. अं. १५.५६-६०

अर्थात्—प्रभु कह रहे हैं कि हे सखि, कृष्ण अद्भुत मेघ-स्वरूप है। मेरा नेत्ररूपी चातक इस अपूर्व मेघको न देख पानेके कारण प्याससे मर रहा है। कृष्णका जो पीतवसन है, वह उस मेघकी तड़ितके समान है, वह अस्थिर है। उनके गलेमें जो मुक्ताहार है, वह मेघके निम्नभागमें बक श्रेणीके समान सुशोभित हो रहा है। उनका शिखिपुच्छ मेघके इन्द्रधनुषके समान है, वैजयन्ती माला धनुषके समान है। कृष्णके मुखमें मुरलीकी मधुर ध्वनि कृष्णरूप मेघकी गर्जनध्वनि है, उसे सुनकर वृन्दाबनके मयूर अपूर्व नृत्यकर रहे हैं। कृष्णकी लावण्य-ज्योत्स्ना अकलङ्क कलासे पूर्ण अपूर्व चन्द्रके समान उदय हो रही है। कृष्णमेघका लीलामृत वर्षण चौदह भुवनको सिञ्चितकर रहा है। वह मेघ दिखलायी दिया और मेरे दुर्दैवरूपी झञ्झावातने उस मेघको स्थानान्तरित कर दिया। अब मेघको न देख सकनेके कारण नेत्ररूपी चातक जलाभावमें मृतप्राय हो रहे हैं।

महाप्रभुकी विरहोन्माद दशा अपूर्व भावमय और अद्भुत दर्शन है। भक्तगण केवल उनके श्रीवदनकी ओर एक दृष्टिसे देख रहे हैं, क्षण-क्षणमें उनके श्रीमुखके भाव परिवर्तित हो रहे हैं, तरङ्गके ऊपर तरङ्ग उठ रहे हैं, मधुरसे मधुरतर ज्योति मुख-मण्डलमें विभावित हो रही है। महाप्रभुके सुधामय प्रेमगद्गद वचनसे भक्तवृन्दके कानोंमें सुधावृष्टि हो रही है। वे भी प्रभुके साथ भावराज्यमें निवास कर रहे हैं।

तत्पश्चात् महाप्रभु रामानन्द रायकी ओर देखकर गद्गद वचन बोले—"रामराय ! पढ़ो—

---

१ बलाहक = मेघ

२ मौरचय = मयूर समूह

श्लोक पढ़ो।" रामानन्द रायने तब श्रीमद्भागवतसे महाप्रभुके तत्कालीन भावके अनुरूप श्लोकका पाठ किया। व्रजगोपिकाओंकी उक्ति श्रीकृष्णके प्रति—

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयंच भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः॥

श्रीम. भा. १०.२९.३९

अर्थ—हे सुन्दर! तुम्हारे अलकावृत मुख, कुण्डलशोभित गण्डस्थल, पीयूषमण्डित अधर, सस्मित दृष्टिसे युक्त मुखमण्डल, अभयप्रद बाहुयुगल, तथा लक्ष्मीजीके रमणका स्थान तुम्हारा वक्षःस्थल देखकर हम आनन्दसे तुम्हारी दासी होना चाहती हैं।

कृष्ण विरह विधुर महाप्रभु स्वयं ही इस श्लोककी व्याख्या करने लगे। उनकी व्याख्या पूज्यपाद कविराजजीकी भाषामें सुनें—

कृष्णजिनि षद्मचाँद, पातियाछे मुख-फान्द,
ताहे अधर-मधुस्मित चार।
व्रज नारी आसि-आसि, फाँदे पड़ि हम दासी,
छाड़ि निज पति घर द्वार॥
बान्धव! कृष्ण करे व्याधेर आचार॥
नाहि माने धर्माधर्म, हरे नारी-मृगी-मर्म,
करे नाना उपाय ताहार॥ ध्रु०
गण्ड स्थल झलमल, नाचे मकर-कुण्डल,
सेइ नृत्ये हरे नारीचय।
सस्मित-कटाक्ष-वाणे, ता सभार हृदये हाने,
नारी बधे नाहि किछु भय॥
अति उच्च सुविस्तार, लक्ष्मी-श्रीवत्स-अलङ्कार,
कृष्णेर जे डाकातिया वक्ष।
व्रजदेवी लक्ष-लक्ष, ता सभार मनोवक्ष,
हरि, दासी करिवारे दक्ष॥
सुवलित दीर्घार्गल, कृष्णभुज-युगल,
भुज नहे—कृष्ण सर्प-काय।
दुइ शैलछिद्रे पैशे, नारीर हृदये दंशे,
मरे नारी से विष-ज्वालाय॥
कृष्ण-कर पद-तल, कोटिचन्द्र-सुशीतल,
जिनि कर्पूर बेणा मूल चन्दन।
एक वार जारे स्पर्शे, स्मर ज्वाला विष नाशे,
जार स्पर्शे लुब्ध नारीर मन॥

चै. च. अं. १५.६२-६७

इस प्रकार कृष्ण-विरहोन्मादिनी गोपीके भावमें महाप्रभु प्रेमावेगमें नाना प्रकारसे विलाप कर रहे हैं और स्वरूप आदि अन्तरङ्ग भक्तगण प्रेमावेशमें निश्चेष्ट भावमें उसे सुन रहे हैं। वे लोग प्रभुको साक्षात् श्रीराधिका देख रहे हैं। महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिकाके भाव परिपूर्ण रूपमें उनके प्रत्येक अङ्गमें, प्रत्येक बातमें, प्रत्येक श्वास-प्रश्वासमें विद्यमान दीखते हैं। वे कृष्ण-पागलिनीके समान नाना प्रकारसे प्रलाप कर रहे हैं। उनकी राधाभावकी सीमा निम्न लिखित श्रीराधिकाकी उक्तिके गोविन्द-लीलामृत श्रीग्रन्थके सुन्दर श्लोकसे सुस्पष्ट भावमें व्यक्त होती है। कृष्ण-प्रेमपागलिनी श्रीराधा विशाखा सखीको अपने मनकी निगूढ़ बात इस श्लोकमें कह रही हैं। महाप्रभुने यहाँ अपनी विशाखा सखीरूप राय रामानन्दको सम्बोधन करके प्रेमगद्गद वाणीसे यह श्लोक पढ़ा—

हरिन्मणि-कवाटिका-प्रततहारि-वक्षःस्थलः
स्मरार्त्त तरुणीमनः कलुषहन्तृ-दोरर्गल।
सुधांशु-हरिचन्दनोत्पलसिताभ्र-शीताङ्गकः
स मे मदनमोहनः सखि तनोति वक्षःस्पृहाम्॥

गो. ली. ८.७

अर्थ—श्रीराधिका कहती हैं—"हे सखि, जिनका वक्ष:स्थल विस्तीर्ण इन्द्रनीलमणिके कवाटके समान मनोहर है, जिसके अर्गल सदृश बाहुद्वय कन्दर्प-पीड़ित युवतीगणके मनस्तापको दूर करते हैं, तथा शशाङ्करश्मि, हरिचन्दन, नीलपद्म और कर्पूरकी अपेक्षा भी जिसका अङ्ग-गन्ध सुस्निग्ध है, वे मदनमोहन श्रीकृष्ण मेरे वक्ष स्थलकी स्पृहाको विस्तारित कर रहे हैं।

राधाभावोन्मत्त महाप्रभुने यहाँ इस बातसे अपने राधाभावकी सीमाको प्रदर्शित किया है। श्रीकृष्णके अङ्गका सङ्ग प्राप्त करनेके दुर्दमनीय लोभको उन्होंने इस समय अपने अन्तरङ्ग भक्तोंके सामने व्यक्त कर दिया। अब तक जो वे श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीका वर्णन कर रहे थे, उस वर्णनके साथ-साथ उस माधुरीका पान भी करते जा रहे थे। वे यमुना-पुलिनमें कदम्ब-वृक्षके तले अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका दर्शन करके उनकी प्रेमोन्मादिनी अङ्ग-सङ्ग-भिखारिणी दासीके भावमें उनके साथ अनेक कथा वार्त्ता करते रहे, इतनी देर तक वे कृष्ण-सङ्गके सुखमें तथा कृष्णमुख-दर्शनके आनन्दमें मग्न रहे। उनको कुछ भी बाह्यज्ञान न रहा। अब अचानक उनका भाव संवरण हो गया। तब वह इधर-उधर देखकर उन्मत्तके समान बोले—"अभी अभी तो कृष्ण यहाँ आये थे, अपने दुर्भाग्यसे मैंने उनको खो दिया। उनका बड़ा चञ्चल स्वभाव है, एक स्थानपर नहीं रहते। दर्शन देकर, मन हटाकर फिर अन्तर्धान हो जाते हैं।"

इतना कहकर महाप्रभु कृष्ण-विरहाकुल भावमें अधीर होकर स्वरूप गोसाईंकी ओर करुणनयनसे देखकर धीरे-धीरे कातर वचन बोले—"स्वरूप! दया करके एक ऐसा गीत गाओ जिससे मेरा यह चञ्चल चित्त कुछ स्थिर हो। स्वरूप गोसाईंने तब सोच विचार करके समयोचित गीत गोविन्दके एक पदका धूहा पकड़ा। यथा,

रासे हरिमिह विहित विलासं।
स्मरति मनो मम कृत परिहासम्॥

गीत-गोविन्द सर्ग २

यह गीत सुनकर महाप्रभु प्रेमावेगमें भूतलसे उठकर मधुर प्रेमनृत्य करने लगे। उनके श्रीअङ्गमें सारे अष्ट सात्त्विक भाव प्रकट हो उठे, उनके हृदयमें हर्ष आदि सारे व्यभिचारी भावतरङ्ग उमड़ उठे, भावसन्धि, भावोदय और भावशावल्यसे हृदय, मन और शरीरमें महान् द्वन्द्व मच गया। वे मधुर नृत्यरङ्गमें अपने भावमें आप उन्मत्त हो उठे। स्वरूप गोसाईं जैसे एक पद समाप्त करते हैं और दूसरा पद धरते हैं, वैसे ही महाप्रभुका अपूर्व नृत्यरङ्ग क्रमशः बढ़ता जा रहा है। उपस्थित भक्तवृन्द उनके इस अद्भुत नयनरञ्जन प्रेमनृत्यको देखकर अपना जीवन सार्थक कर रहे हैं। बहुत देर तक स्वरूप गोसाईंने इस पदका पुनः-पुनः गान किया। जब तक गान होता रहा, तब तक प्रेमोन्मत्त महाप्रभु प्राण भरकर नाचते रहे। स्वरूप गोसाईंने जब अपना गीत समाप्त किया तो उन्होंने देखा कि महाप्रभु नृत्यसे श्रान्त हो गये हैं, परन्तु फिर भी नाच रहे हैं और उच्च स्वरसे कह रहे हैं, "बोलो-बोलो—अर्थात् गीत बन्द मत करो, गाये जाओ।"

महाप्रभुको पसीने-पसीने और विशेष क्लान्त देखकर स्वरूपने और गाना नहीं गाया। प्रेमोन्मत्त महाप्रभु बारम्बार 'बोलो-बोलो' शब्द कह रहे हैं, यह देखकर भक्तवृन्द उच्च स्वरसे 'हरिबोल, हरिबोल' ध्वनि करने लगे और उनको घेरकर नाचने लगे। तब रामानन्द रायने जाकर प्रभुको हाथ पकड़कर बैठाया। सबने मिलकर उनको पंखा झलकर और श्रीअङ्गमें जलका छींटा देकर उनके श्रमको दूर किया। तत्पश्चात् उनको समुद्र स्नान कराकर सब मिलकर वासापर ले गये। तब उनको बहुत यत्नपूर्वक प्रसाद भोजन कराकर शयन

कराया। उस समय संध्या हो चली थी। उसके बाद रामानन्द राय आदि भक्तगणने अपने-अपने घर जाकर भोजनादि किया।

श्रीरूप गोस्वामी उस समय नीलाचलमें थे, महाप्रभुका यह लीलारङ्ग उन्होंने अपने श्रीचैतन्याष्टकके एक श्लोकमें इस प्रकार वर्णन किया है—

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनालि-कलनया
मुहुर्वृन्दारण्य-स्मरण-जनित-प्रेमविवशः ।
क्वचित् कृष्णावृत्ति-प्रचल-रसनो भक्ति-रसिकः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ।।

प्रथम चैतन्याष्टक ६

अर्थ—समुद्रके तीर उपवनश्रेणी देखकर बारंबार वृन्दावन स्मरण-जनित प्रेममें जो विवश हो गये थे तथा बारम्बार कृष्णनाम उच्चारण करके जिसकी रसना चञ्चल हो उठी थी, वे भक्तरसिक श्रीकृष्ण चैतन्य कब मेरे नयनगोचर होंगे ?

श्रीजगन्नाथ-दर्शन

महाप्रभु कुछ विश्राम करके सन्ध्योपरान्त जगन्नाथजीकी आरती दर्शन करने गये। वे जगत्को कृष्णमय देख रहे थे। जगन्नाथजीको देखा कि मुरलीवदन श्रीकृष्ण हैं, बलरामको देखा कि श्रीराधा हैं, सुभद्राको देखा कि श्रीराधाकी प्रधान सखी ललिता है, और दूसरी सखियाँ मानो मण्डली करके उनको घेरकर मधुर नृत्य कर रही हैं। श्रीमन्दिरको उन्होंने देखा कि श्रीरासमण्डल है। वे इसी प्रकार जगन्नाथजीका दर्शन करके आनन्द स्वरूप होकर खड़े थे। उनका शरीर निःस्पन्द था, आँखें अपलक थी।

गोविन्द प्रभुके पास खड़े थे। स्वरूप गोसाईं और रामानन्द राय उनके पीछे थे, अन्यान्य भक्तगण उनके पीछे खड़े जगन्नाथजीका दर्शन कर रहे थे। स्वरूपने एकवार महाप्रभुके श्रीमुखकी ओर देखकर जान लिया कि उनको बाह्यज्ञान नहीं है। कहीं महाप्रभु पछाड़ खाकर गिर न जाँय, इस भयसे वह उनके बगलमें जाकर खड़े हो गये। रामानन्द रायको दूसरे बगलमें खड़ा होनेके लिए कहा। काशीश्वर, जगदानन्द आदि प्रभुके सामने आकर खड़े हो गये। अचानक महाप्रभु 'हा कृष्ण !' कहकर भूतलपर गिर पड़े, तुरन्त सब लोग उनको पकड़कर गोदमें लेकर बैठ गये।

स्वरूप गोसाईंकी गोदमें मूर्च्छागत प्रभुका श्रीवदन है, रामानन्द वस्त्राञ्चल द्वारा व्यजन कर रहे हैं। प्रभुकी जैसे ही मूर्च्छा दूर हुई, सामने स्वरूपको देखा, क्रन्दनके स्वरमें उनसे बोले—स्वरूप ! प्राणवल्लभ मेरे श्रीकृष्ण कहाँ गये ? मैंने अभी-अभी उनको रासमण्डलमें देखा था"—इतना कहकर वे व्याकुल होकर रोने लगे। स्वरूप गोसाईंने प्रभुके तत्कालीन भावको समझकर उत्तर दिया—"चलिये, आपको कृष्णके पास ले चलें।" तत्काल वे झटपट उठ खड़े हुए। उनको लेकर तब स्वरूप आदि भक्तगण वासापर आये।

गम्भीरा प्रकोष्टमें

महाप्रभुका निजी वासा काशी मिश्रके घरपर था। उस घरके भीतर एक प्रकोष्ठ था, उसीको गम्भीरा कहते थे। महाप्रभु जब बाहर प्रकोष्ठमें बैठे तो वे अन्यमनस्थ थे, बारम्बार दीर्घश्वास छोड़ रहे थे। रह रहकर फुंकार मार-मारकर रो उठते थे। एक-एक बार इधर-उधर ताकते थे, और स्वरूपकी ओर देखकर कातर वचनसे बोल उठे—"मेरा कृष्ण कहाँ है ?" स्वरूप गोसाईं और रामानन्द दोनों परामर्श करके महाप्रभुको पकड़कर गम्भीरामें ले गये। उनकी अवस्था समझकर उन्होंने ऐसी व्यवस्था की।

गम्भीराके निर्जन प्रकोष्ठमें कृष्ण-विरह जर्जर महाप्रभु आसनपर बैठे थे। उनके सामने स्वरूप गोसाईं और रामानन्द, दोनोंने आसन ग्रहण किया। उस समय रात एक पहर बीत चुकी थी। प्रकोष्टमें एक घीका दीपक मृदुभावमें जल रहा था। तीनों चुप थे। प्रकोष्ठमें गम्भीर निस्तब्धता विराजमान थी। उस पवित्र नीरवताको भङ्ग करके कृष्ण-विरह-विधुर महाप्रभु स्वरूप गोसाईंको सम्बोधन करके बोले—

"पियाय पिरीति लागि योगिनी हइनु।
तबू त दारुण चिते सोयास्ति ना पानु॥"

"तुम जो मुझको प्रबोध देती हो, कहो तो–और कितने दिन तुम मुझको प्रबोध देती रहोगी? मेरा मन तो अब प्रबोधको नहीं मानता, इसको तुम लोग नहीं समझती हो। मेरे दुःखको न समझकर तुम लोग दुःखित होती हो। परन्तु मैं क्या करूँ, बतलाओ तो? कृष्ण दर्शन देकर भाग गये, 'आऊँगा' कहकर गये, पर आये नहीं, इस दुःखको क्या प्राण सहन कर सकते हैं? इस जगत्‌में मेरी जैसी अभागिनी और कौन है? मेरे प्राण बड़े ही कठोर हैं; इसी कारण कृष्णके विरहमें मैं अब भी बची हूँ। मैं अब इन प्राणोंको न रख सकूँगी। कृष्णविरह-दुःख सहन करनेकी अपेक्षा अब मेरा मर जाना मङ्गलप्रद है।"

इस प्रकार मर्मभेदी कातरोक्ति कहते-कहते महाप्रभु भूतलपर धूलमें गिरकर पछाड़ खा-खाकरके क्रन्दन करने लगे। तब घबराकर दोनों आदमियोंने उनको पकड़ लिया। रामानन्द राय महाप्रभुके मनके भावको जानकर बोले–"प्रभु! कृष्ण वृन्दावन त्यागकर कहीं नहीं जाते, वे तो वृन्दावनमें ही हैं।" यह सुनकर कृष्ण-विरह-कातर महाप्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ, वे सहर्ष गद्‌गद वचनसे भावमें भरकर बोले—"कृष्ण वृन्दावनमें है? तब फिर क्या? चलो, मुझको उनके पास ले चलो।" इतना कहकर कृष्ण-पागलिनी श्रीराधिकाके भावमें प्रेमावेगमें महाप्रभुने स्वरूप गोसाईंके दोनों हाथ पकड़ लिये। स्वरूप गोसाईं और रामानन्द राय सोचने लगे कि क्या करें, इसी बीचमें भावनिधि प्रभुने पुनः कहा—"सखि! ठहरो—और वेष बनानेकी आवश्यकता नहीं है। प्राणवल्लभके पास जाऊँगी, इसमें फिर वेषकी क्या आवश्यकता है? यह देखो सखि! मैंने सर्वाङ्गमें कितने आभूषण पहन रक्खे हैं?" इतना कहकर प्रभु यह गान मधुर स्वरसे गाने लगे—

कानु परसमणि आमार॥ध्रु०॥
कर्णेर भूषण आमार से नाम श्रवण।
नयनेर भूषण आमार से रूप दरशन॥
वदनेर भूषण आमार तार गुणगान।
हस्तेर भूषण आमार से पद सेवन॥
भूषण कि आर बाकि आछे?
आमि श्रीकृष्णचन्द्रहार परियाछे गले॥*

महाप्रभु एकबारगी राधा-भावमें विह्वल हो गये, उनको बाह्यज्ञान न रहा। वे एकबार स्वरूप गोसाईंका हाथ पकड़कर विनती करके बोले—"ललिते! तू कृष्ण दर्शनके लिए जानेमें विलम्ब क्यों कर रही हो?" फिर रामानन्द रायका हाथ पकड़कर बोले—"विशाखे! तू कृष्ण दर्शनके लिए

---

* बहुतोंका विश्वास है कि यह मधुर पद श्रीगौराङ्ग प्रभुके द्वारा रचित है। ढाका निवासी नवकान्त चट्टोपाध्यायके द्वारा प्रकाशित सङ्गीत मुक्तावली ग्रन्थ, भाषामें २६२ पृष्ठमें ग्रन्थकारने यह बात लिखी है, तथा पुरानी श्रीविष्णुप्रिया पत्रिकामें श्रीगौर भक्त प्रवर गोलोक वासी राजीव लोचन रायने इसकी आलोचना करके इस बातको स्वीकार किया है। श्रीगौराङ्ग प्रभु बङ्गाली भाषामें पद रचना करना उनके लिए असम्भव नहीं जान पड़ता। उनके रचे हुए बहुतसे श्लोक हैं। बङ्गाली भाषामें उनकी पद रचना नहीं हो सकती, यह युक्ति-युक्त नहीं जान पड़ता।

(ग्रन्थकार)

जायगी या नहीं मुझको कह ।' दोनोंको चुप देखकर महाप्रभुने क्रोधपूर्वक कहा—"तुम लोग जाओ या न जाओ, मैं तो कृष्णदर्शनके लिए चली ।" इतना कहकर वे उठे, और प्रकोष्ठसे बाहर जानेके लिए तैयार हो गये। महाप्रभुका भाव समझकर स्वरूप गोसाईने उनके भावके अनुकूल विद्यापति ठाकुरका एक गीत शुरु की यथा,

नव अनुरागिनी राधा ।
किछू ना मानये बाधा ।।
एकलि करल पयान ।
पन्थ विपथ नाहि मान ।।
तेजल मनिमय हार ।
उचकुच मानये भार ।।
कर सजे कङ्कन मूदरी ।
पथहि तेजल सगरी ।
मणिमय मन्जरि पाय ।
दूरहि त्यजि चलि जाय ।।
यामिनी घोर अँधियार ।
मनमथ हिया उजियार ।।
विघिनि बिथारल बाट ।
प्रेमक आयुध काँट ।।
विद्यापति मति जान ।
ऐछन ना देखि आन ।।

प्रेमोन्मत्त महाप्रभु गाना सुनकर चकित होकर वहाँके वहाँ ही खड़े रह गये। तब रामानन्द रायने सुयोग पाकर उनके कानोंके पास मुँह देकर चुपकेसे कहा—"प्रभु ! तुम कहाँ जाओगे ? अभी रात अधिक नहीं हुई है, जटिला बुढ़िया अभी जाग रही है। वह पहले सो जाय, तब हम जाँयगे।" कृष्ण-अभिसारिणी भावनिधि महाप्रभु तत्काल चकित होकर घरके भीतर जाकर बैठ गये, और चुपकेसे बातें करने लगे। रामानन्द और स्वरूप दोनों ही उनके पास जाकर बैठे।

भावनिधि महाप्रभु अब कुछ शान्त हो गये, कुछ भाव संवरण किया। पहलेकी चपलता सोचकर कुछ लज्जित भी हुए। वे स्वरूप गोसाईंका हाथ पकड़कर धीरे-धीरे कहने लगे—"स्वरूप ! मैंने क्या तुम्हारे सङ्ग कुछ चापल्य प्रकट किया है ? मैं क्या कर रहा था, क्या बोल रहा था, कुछ भी जान नहीं पा रहा हूँ। मैं क्या प्रलाप कर रहा था ? मुझे तो कुछ भी याद नहीं। स्वरूप ! रामराय ! तुम लोगोंको मैं बहुत कष्ट देता हूँ। तुम लोग मुझसे बड़ा प्रेम करते हो, इसी कारण मेरा इतना उपद्रव सहन करते हो। किस प्रकार मैं तुम्हारे इस ऋणसे उद्धार पाऊँगा?" इतना कहकर महाप्रभु सिर झुकाकर रोने लगे।

उस दिन रातमें दोनोंने मिलकर महाप्रभुको बहुत समझाया। परन्तु वे नितान्त अबोधके समान बातें करने लगे। जिस प्रकार सरला नवानुरागिणी नव वाला मनके भावको किसी प्रकार भी छिपा नहीं सकती, उसी प्रकार महाप्रभु भी जब जो भाव मनमें उदय होता है, अपनी मर्मी सखीद्वयको बोले बिना नहीं रह सकते। भावनिधि श्रीगौराङ्ग सुन्दरके श्रीवदनके भावके अनन्त तरङ्ग छूट रहे हैं। रसिक भक्तवर स्वरूप और दामोदर उसे देखकर मन ही मन आनन्दित हो रहे हैं। वे लोग महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधिकाका साक्षात् दर्शन कर रहे हैं।

रात अधिक हो गयी है. यह देखकर उन्होंने गोविन्दको बुलाकर महाप्रभुके शयन और निद्राका भार उनके ऊपर सौंपकर दोनों आदमी अपने-अपने वासापर चले गये।

सत्तावनवाँ अध्याय

(श्रीमन्महाप्रभुका प्रलाप वर्णन)

(द्वितीय चित्र)

अलौकिक प्रभुर चेष्टा प्रलाप शुनिया।
तर्क ना करिह, शुन विश्वास करिया ॥

चै. च. अं. १९.९९

महाप्रभुका प्रलाप वर्णन करनेमें असमर्थ होकर पूज्यपाद कविराज गोस्वामी निवृत्त हो जाते है, औरकी तो बात ही क्या है। पहले कहा जा चुका है कि महाप्रभुके प्रलाप वर्णनकी चेष्टा भी जीवाधम ग्रन्थकारके लिए धृष्टता होगी। केवल महाजन वाक्य उद्धृत किये जायँगे।

महाप्रभुसे अब तीन भावोंमें किसी प्रकार दिन-रात विता रहे हैं। भावनिधि श्रीगौराङ्ग जब महाभावमें मग्न होते हैं, तब उनका बाह्यज्ञान नहीं रहता। जब उनका अर्द्धबाह्यज्ञान रहता है, उस समय वे प्रलाप करते रहते हैं। और जब उनकी बाह्य स्फूर्त्ति होती है, उस समय सहज भावावस्था रहती है। इस अन्तिम भावमें वे दिन-रातमें बहुत थोड़ी देर ही रहते हैं। इसी समय उनके भक्तगण उनके स्नान-भोजनकी व्यवस्था करते हैं।

श्रीकृष्ण पञ्चगुण-माधुर्यका प्रभाव

एक दिन कृष्ण-प्रेम मुग्ध महाप्रभु जगन्नाथजीका दर्शन करनेके लिए गये। वे जगन्नाथजीको साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन देख रहे हैं। श्रीकृष्णके समस्त पाँचों गुण* एक-एक करके उनके मनमें अकस्मात् उदय हुए। उस गुण स्मृतिसे वे एकवारगी विह्वल हो उठे। श्रीकृष्णके पञ्चगुणोंसे उनकी पञ्च इन्द्रियाँ आर्कषित हो उठी। उनकी आँखें, कान, त्वक्, नासिका और जिह्वा कृष्णगुण रसमें विह्वल हो उठे। श्रीकृष्णके पञ्चगुण उनके तन और मनको पाँच ओर खींचने लगे। प्रेमावेशमें उनका तत्काल बाह्यज्ञान जाता रहा। स्वरूप गोस्वामी आदि भक्तगण उनको पकड़कर वासापर ले आये। उसी समय जगन्नाथजीका उपलभोग लगा।

वासापर आनेपर प्रेम-मूर्च्छित महाप्रभुको बाह्य ज्ञान हुआ। वे कृष्ण-विरहमें कातर होकर प्रेमावेगमें स्वरूप और दामोदरका गला पकड़कर नानाप्रकारसे विलाप करने लगे। श्रीकृष्णके पाँचों गुणोंको स्मरण करके महाप्रभुने प्रेमगद्गद स्वरमें गोविन्द लीलामृतके निम्नलिखित (श्रीराधाकी उक्ति सखि विशाखाके प्रति) श्लोककी आवृत्ति की—

सौन्दर्यामृत-सिन्धुभङ्ग-ललना-चित्ताद्रि-संप्लावकः
कर्णानन्दि-सनर्म-रम्यवचनः कोटीन्दु-शीताङ्गकः।
सौरभ्यामृत संप्लावावृत-जगत् पीयूष-रम्याधरः
श्रीगोपेन्द्रसुतः स कर्षति बलात् पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे ॥

गो. ली. ८.३

अर्थ—हे सखि! जो सौन्दर्यामृत सागरके तरङ्गोंके द्वारा ललनाओंके चित्त-रूप पर्वतको प्लावन करते हैं, जिनके कर्ण सुखद सनर्म रम्य वचन हैं, जिनके अङ्ग कोटि चन्द्रसे भी शीतल हैं,

* आँखोंमें रूप, कानमें गीत, नासिकामें गन्ध, जिह्वामें रस, त्वक्में स्पर्श—श्रीकृष्णके ये पाँच अप्राकृत गुण हैं।

जो अपने अङ्ग सौरभसे जगद्‌को संप्लावित करते हैं, तथा जिनका अधरामृत अमृतसे भी रम्य और लोभनीय है, वे गोपेन्द्रनन्दन बलपूर्वक मेरी पञ्चेन्द्रियोंको आकर्षित करते हैं।

कृष्ण प्रेमोन्मत्त महाप्रभुने स्वयं इस श्लोकके अर्थकी व्याख्या कविराज गोस्वामी श्रीचैतन्य चरितामृतमें लिख गये हैं, उसे यहाँ उद्‌धृत करते हैं। यथा,

कृष्ण-रूप-शब्द-स्पर्श, सौरभ्य अधर-रस,
जार माधुर्य कहन ना जाय।

देखि लोभि पञ्चजन, एक अश्व मोर मन,
चड़ि पञ्चे पाँच दिके धाय॥

सखि हे! शुन मोर दुःखेर कारण।

मोर पञ्चेन्द्रिय गण, महा लम्पट दस्युगण,
सबे कहे हरे परधन॥ध्रु०॥

एक अश्व एक क्षणे, पाँच पाँच दिके टाने,
एक मन कोन् दिके जाय?

एक काले सबे टाने, गेल घोड़ार पराणे,
एत दुःख सहन ना जाय॥

इन्द्रिये ना करि रोष, इहा सभार काहाँ दोष,
कृष्णरूपादि महा आकर्षण।

रूपादि पाँच पाँचे टाने, गेल पाँचेर पराणे,
मोर देहे ना रहे जीवन॥

कृष्णरूपामृतसिन्धु, ताहार तरङ्ग बिन्दु,
सेइ बिन्दु जगत् डुबाय।

त्रिजगते जत नारी, तार चित्त उच्च गिरि,
ताहा डुबाय आगे उठि धाय॥

कृष्ण वचन-माधुरी, नानारस-नर्मधारी,
तार अन्याय कहन ना जाय।

जगतेर नारीर काने, माधुरी गुणे बान्धि टाने,
टाना टानि कानेर प्राण जाय॥

कृष्ण-अङ्ग सुशीतल, कि कहिब तार बल,
छटाय जिने कोटीन्दु चन्दन।

सशैल नारीर वक्ष, ताहा आकर्षिते दक्ष,
आकर्षये नारीगण मन॥

कृष्णांग सौरभ्यभर, मृगमद-मदहर,
नीलोत्पलेर हरे गर्व धन।

जगत् नारीर नासा, तार भितर करे वासा,
नारीगणेर करे आकर्षण॥

कृष्णेर अधरामृत, ताहे कर्पूर मन्दस्मित,
समाधुर्ये हरे नारीमन।

छाड़य अन्यत्र लोभ, ना पाइले मनः क्षोभ,
व्रजनारी गणेर मूलधन॥

चै. च. अं. १५.१३-२१

महाप्रभुके श्रीमुखकी यह बात है, कविराज गोस्वामीने इसे केवल छन्दोवद्ध किया है। श्रीकृष्णके पञ्चगुणोंकी अपूर्व माधुरी किस प्रकार उनके भक्तोंकी पञ्च इन्द्रियोंको आकर्षण करती है, उनकी हृदय-प्राण और मनको हरने वाली गुणावली भक्तोंको किस रूपमें और किस भावमें मुग्ध करती है, यही महाप्रभुने समझाया है। कृष्ण-प्रेममें जब जीव मुग्ध होता है तो उसे और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। प्राकृत सौन्दर्य और माधुर्यकी तुलना अप्राकृत कृष्ण माधुर्य और सौन्दर्यके साथ नहीं हो सकती। श्रीकृष्णनामकी माधुरीमें जब जगत् जीव मुग्ध होता है, श्रीकृष्ण नामकी महिमासे जब जगत महिमान्वित होता है, तब उनकी रूप-गुण-माधुरीकी स्मृतिसे यदि पञ्चेन्द्रिय प्रेमोन्मत्त हो जाँय, तो इसमें कहना ही क्या? साधक कविवर चण्डीदासने लिखा है—

रुइ केवा शुनाइल श्याम नाम।
कानेर भीतर गिया, मरमे पशिल गो,
आकुल करिल मोर प्राण॥
ना जानि कतेक मधु, श्याम नामे आछे गो,
वदन छाड़िते नाहि पारे।

जपिते जपिते नाम, अवश करिल गो,
केमने पाइब सइ तारे ॥
नाम परतापे जार, ऐछन करिल गो,
अङ्गेर परशे किवा हय ।
जेखाने वसति तार, नयने देखिया गो,
युवती धरम कैछे रय ॥
पाशरिते चाहि मने, पाशरा ना जाय गो,
कि करिव कि हवे उपाय ।
कहे द्विजे चण्डीदासे, कुलबती कुलनाशे,
आपनार यौवन याचय ॥

कृष्ण विरह कातर महाप्रभु दोनों हाथसे स्वरूप और राम-रायका गला जकड़कर कृष्णगुण माधुर्य स्मरण करके प्रेमावेगमें विलापकर रहे हैं, और व्याकुल प्राणसे कह रहे हैं—

"शुन स्वरूप राम राय ।
काहाँ करों काहाँ जाङ, काहाँ गेलेकृष्ण पाङ ।
दोहे मोरे कह से उपाय ॥"

चै. च. अं. १५.२८

इस प्रकारकी महाप्रभुकी अवस्था अब प्रतिदिन ही दीखने लगी । दिनके समय अवस्था एक प्रकारकी रहती है । रात होते ही उनके कृष्ण-विरहतापके सारे अद्भुत विकार-लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं । स्वरूप और रामानन्द कृष्णकर्णामृत और गीतगोविन्दके श्लोक तथा विद्यापति और चण्डीदासके भावोचित पद गाकर उनकी कृष्ण-विरह-व्याधिकी औषधि प्रदान करते हैं । कृष्ण माधुर्यका एक तो स्वाभाविक बल है, जिससे नर-नारीका मन ही क्यों, स्थावर-जङ्गम भी चञ्चल हो जाते हैं । उसके ऊपर स्वरूप दामोदरके कण्ठका मधुर प्रेमसङ्गीत, और रामानन्द रायके सुललित-सुन्दर छन्दमें श्लोक-गीत—इनसे कृष्ण विरह जर्जर महाप्रभुके प्राणोंकी रक्षा होती है । उनके इस अकथ्य कृष्ण विरह व्याधिकी यही अब एकमात्र औषध है । वे अब जितना ही कृष्ण-रूप-गुण-लीला-कथाकी पिपासासे कातर होकर जल-जल करते हैं, स्वरूप और राम-राय उतना ही उनको कृष्ण-कथाजल पान करा रहे हैं, परन्तु उनकी पिपासा शान्त न होकर केवल बढ़ती रहती है ।

ए माधुर्यामृत पान सदा जेइ करे ।
तृष्णा शान्ति नहे, तृष्णा बाड़े निरन्तरे ॥

चै. च. आ. ४.१३०

श्रीकृष्णकी अपरूप सुधा पान करके जैसे नेत्र परितृप्त नहीं होते, जितना ही देखो, देखनेकी इच्छा होती है—उसी प्रकार उनकी गुण-कथा सुनकर कर्ण परितृप्त नहीं होते, जितना ही सुनो, उतना ही और सुननेकी इच्छा होती है । महाजन कविने गाया है—

जनम अवधि हाम, ओ रूप नेहारिनु,
हृदय ना तिरपित भेल ।
सोइ मधुर बोल, श्रवणहि शुनल,
श्रुतिपथ परश ना गेल ॥
कत मधु यामिनी, रभसे गोयाञिनु,
ना बूझिनु कैछन केल ।
लाख लाख युग, हिये हिया राखिनु,
तबू हिया जुड़ान ना गेल ॥

कृष्ण-प्रेमाब्धिमग्न महाप्रभु बैठे हैं, रात दो पहर बीत गयी । स्वरूप गोसाईं और रामानन्द राय उनके सामने बैठकर उनको निरन्तर कृष्ण कथा सुना रहे हैं, गोविन्द द्वारदेश पर बैठकर माला जप कर रहे हैं । महाप्रभुको शयन करानेके

लिए सभी व्यस्त हैं, यह देखकर उन्होंने स्वरूपसे कहा—"स्वरूप ! तुम्हीं लोग कृष्ण विरहदग्ध मेरे इस क्षुद्र प्राणके रक्षक हो, तुम्हारा ऋण मैं इस जीवनमें चुका न सकूँगा। तुम लोग मुझको बहुत प्रेम करते हो, इसी कारण मेरे लिए इतना कष्ट करके रातमें जागरण करते हो। इस समय रात अधिक हो गयी है, तुम लोग अपने-अपने घर जाकर विश्राम करो।"

महाप्रभुकी इस समय बाह्य अवस्था क्षणभरके लिए हो गयी है, तभी ऐसी बात कर रहे हैं। स्वरूपने उत्तर दिया—"हे प्रभु ! क्षणभरके लिए भी तुम्हें छोड़कर जानेकी इच्छा नहीं हो रही है, परन्तु तुम्हें स्वस्थ देखने पर, तुम्हारे सो जाने पर, हमारे मनमें बड़ा आनन्द होता है, हम सुस्थिर होकर घर जा सकते हैं। आज तुम्हे कुछ सुस्थिर देखता हूँ, तुम सोने जाओ, हम विदा होते हैं।" महाप्रभु सजल नयनसे कातरकण्ठसे मृदु स्वरमें बोले, "मैं अब स्वस्थ हो जाऊँगा, मैं अब नींद ले लूँगा। प्राणबल्लभ कृष्णकी इच्छा नहीं है कि मैं सुस्थिर होऊँ।"

स्वरूप और रामानन्द और कुछ न बोले। गोविन्दके ऊपर महाप्रभुके शयनका भार सौंपकर दोनों उनकी चरणवन्दना करके अपने घर चले गये। कृष्ण-विरह-कातर महाप्रभु निर्जन प्रकोष्ठमें एकाकी शयन करके गुन-गुनाते हुए कृष्ण गुणगान करने लगे। गोविन्द उस विरह गानका झङ्कार कुछ-कुछ सुन पाये। महाप्रभुने पद पकड़ा था—

सुखेर लागिया, ए घर बाँधिनु, अनले पूड़िया गेल।
अमिया सागरे, सिनान करिते, सकलि गरल भेल॥

सारी रात जागकर महाप्रभु कृष्णनाम जप करते थे, कृष्णगुण गान करते थे, और बीच-बीचमें कातर स्वरसे रोदन करते थे। रात बीतने में अभी बहुत देर थी। स्वरूप और राम रायके साथ रहने पर महाप्रभुको बाह्य ज्ञान रहता था, अकेले रहने पर वह प्रायः बाह्यज्ञान शून्य हो जाते थे, उस समय प्रेमोन्मादके सारे लक्षण दीखते थे। उस समय वे इस प्रकार प्रेमानन्दमें विभोर हो जाते थे मानो अपने प्राणबल्लभ श्रीकृष्णके अङ्ग-स्पर्शका सुख अनुभवकर रहे हो।

प्रभातकालमें श्रीजगन्नाथ दर्शन

प्रभात कालमें उठकर प्रेमावेशमें वे दिग्ज्ञानशून्य होकर जगन्नाथजीका दर्शन करने गये। सिंहद्वारके दरवानको देखते ही महाप्रभु परम प्रेम में भरकर उनके दोनों हाथ पकड़कर बोले—"सखि ! मेरे प्राणबल्लभ कृष्ण कहाँ हैं ? मुझको एकबार दिखलाओ।" उनका भाव था कि दरवान सखी उनके मन चोरा कृष्णका पता जानती है।

दरवान उनको भली भाँति जानता और पहचानता था। वह जानता था कि जगन्नाथके दर्शनमें प्रभुका अत्यन्त आग्रह है, और उन्हें अत्यन्त आनन्द मिलता है। अतएव वह महाप्रभुका हाथ पकड़कर जगमोहनमें ले गया। प्रभुने उसका हाथ नहीं छोड़ा। उनके मुँहमें केवल एक बात थी, "सखि ! मेरे प्राणनाथको दिखाओ।" दरवानने जगन्नाथजीको दिखलाकर कहा, "वह देखो ! जगन्नाथजी, वह देखो नीलाचलनाथ, वह देखो तुम्हारे प्राणनाथ।"

महाप्रभु आवेशमें भरकर गरुड़ स्तम्भके पीछे खड़े होकर प्राण भरकर जगन्नाथजीको देखते हैं गोपवेषमें मुरलीवदन व्रजेन्द्रकुमार राधानाथ ! वे जड़वत् निश्चेष्ट भावमें प्राणवल्लभके मुखचन्द्रकी सुधा पान कर रहे हैं। उनके आकर्ण विश्रान्त कमलनयन-द्वय जगन्नाथजीके श्रीवदनमें मानो लिप्त हो गये हैं। महाप्रभुका यह लीलारङ्ग

रघुनाथदास गोस्वामी अपने श्रीगौराङ्गस्तवकल्प तरु स्तोत्रमें लिख गये हैं। यथा,

क्व मे कान्तः ! कृष्णस्तरितमिह तं लोकय सखे
त्वमेवेति द्वाराधिपमभिवदन्नुन्मद इव ।
द्रुतं गच्छ द्रष्टुं प्रियमिति तदुक्तेन धृत-तद्
भुजान्तौ गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥

अर्थ--"हे सखे ! मेरे प्राणकान्त कृष्ण कहाँ हैं? एक बार शीघ्र दिखाओ । जगन्नाथजीके द्वारपालको इस प्रकार प्रेमोन्मत्त भावमें कहने पर द्वारपालने उत्तर दिया, "अपने प्रियतमका दर्शन करेंगे ? अभी चलिये ।" इतना कहने पर जो द्वारपालका हाथ पकड़ कर जगन्नाथका दर्शन करने गये वे श्रीगौराङ्ग मेरे हृदयमें उदय होकर मुझको आनन्दोन्मत्त कर रहे हैं।

कृष्णप्रेमोन्मत्त महाप्रभु जगन्नाथजीके श्रीवदनसरोजका दर्शन कर रहे हैं। उसी समय 'गोपाल बल्लभ' भोगका समय उपस्थित हो गया, भोग-आरतीका शङ्ख-घण्टा नाद होने लगा। भोग समाप्त होने पर जगन्नाथजीके सेवकगण प्रसाद लेकर प्रभुके वासा पर गये। महाप्रभु भी भोग आरती दर्शन करके वासा पर लौटे । श्रीजगन्नाथजीके सेवक वहाँ आकर महाप्रभुके गलेमें प्रसादी माला पहनाकर उनके श्रीहस्तमें प्रसाद दिया । वह सब प्रसाद बहुमूल्य और सर्वोत्तम था । जगन्नाथजीके सेवकगण महाप्रभुमें प्रगाढ़ भक्ति रखते थे, प्राणपनसे उनको प्यार करते थे। उन्होंने जिद्द करके कहा—"प्रभु ! यह प्रसाद ग्रहण करो। हम देखकर अपने नेत्रोंको सार्थक करें।"

महाप्रभु कृष्ण विरहरसमें मग्न थे। उन्होंने श्रीकृष्णके अधरामृतको अतिशय भक्ति और यत्नके साथ बहुत थोड़ा लेकर पहले सिर धारण करके फिर जिह्वाग्रभाग पर दिया। और शेष प्रसाद गोविन्दने यत्नपूर्वक रख लिया। प्रसादका अति उत्तम स्वाद पाकर महाप्रभु प्रेमानन्दमें उन्मत्त हो उठे, उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। श्रीकृष्णका अधरामृत जानकर वे प्रेमानन्दमें अधीर हो गये। परन्तु जगन्नाथजीके सेवकोंको सामने देखकर उन्होंने उस समय अपने भावको संवरण किया। उनके श्रीमुखसे 'सुकृतिलभ्य फेलालब'—ये शब्द बारंबार उच्चारित होने लगे। जगन्नाथजीके सेवकोंने महाप्रभुसे पूछा—"प्रभु ! इस बातका अर्थ क्या है ?" महाप्रभु प्रेमावेशमें कहने लगे—

"एइ जे दिले कृष्णाधरामृत ।
ब्रह्मादि दुर्लभ एइ—निन्दये अमृत ॥
कृष्णेर जे भुक्तशेष तार 'फेला' नाम।
तार एक लव पाय सेइ भाग्यवान् ॥
सामान्य भाग्य हैते तार प्राप्ति नाहि हय।
कृष्णेर जाते पूर्ण कृपा सेइ ताहा पाय ॥
सुकृति-शब्दे कहे—कृष्णकृपा हेतु पुण्य।
सेइ जार हय फेला पाय सेइ धन्य ॥

चै. च. अं. १६.९०-९३

महाप्रभुने श्रीकृष्णके अधरामृतकी महिमा वर्णन करके अतिशय आदर सत्कारपूर्वक जगन्नाथजीके सेवकोंको विदा किया। उसके बाद वे उपलभोग दर्शन करने गये। स्वभाववश उन्होंने मध्याह्न कृत्य किया और प्रसाद भी पाया। परन्तु उनके मनमें श्रीकृष्णके अधरामृतकी स्मृति सदा जागरूक रही। प्रेमानन्दमें उनका मन मतवाला हो रहा था, प्रेमावेशमें उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो रहा था। बहुत कठिनाईसे उन्होंने भाव संवरण किया। वे मानो अपने आपको छिपा रहे थे। इसी प्रकार सन्ध्या हो गयी, महाप्रभुने स्वभाववश सन्ध्यावन्दन आदि कृत्य समाप्त किया।

गोपालवल्लभ भोग—
भगवदधरामृतकी वैशिष्ट्य

सन्ध्याके बाद भक्तगण एक-एक करके उनके पास आ गये। उनमें पुरी और भारती गोसाईं नहीं थे, सार्वभौम भट्टाचार्य थे, रामानन्द राय और स्वरूप गोसाईं तो थे ही, जगदानन्द, काशीश्वर, शङ्कर पण्डित भी थे। गोपालवल्लभ भोगके जिस सुन्दर प्रसादको पाकर महाप्रभुके मनमें श्रीकृष्णके अधरामृतकी स्फूर्त्ति हुई थी, उस प्रसादको गोविन्दने अति यत्नपूर्वक रक्खा था। अब महाप्रभुके इशारेसे उस अपूर्व स्वाद युक्त प्रसादका कुछ अंश पुरी और भारती गोसाईंको भेजा गया। अवशिष्ट उनके आदेशसे गोविन्दने उपस्थित भक्तोंमें बाँट दिया। सभी इस अपूर्व प्रसादके अपूर्व स्वाद और सुगन्धका अनुभव करके प्रेमानन्दमें मत्त हो गये। सबको आश्चर्य-सा लगा कि ऐसा उत्तम स्वाद युक्त प्रसाद कभी पाया नहीं। प्रेमावेशमें तब महाप्रभु सब भक्तोंको सम्बोधन करके गोपालवल्लभ भोगके बारेमें कहने लगे—"इसमें सब प्राकृत वस्तुएँ हैं, जैसे ईखका गुड़, कर्पूर, गोल मरिच, एलादि, लवङ्ग, छेना-मक्खनादि, कवाबचीनी, दारुचीनी आदि। इन प्राकृत वस्तुओंके स्वादसे सब परिचित हैं। उन्हीं द्रव्योंसे बना यह प्रसाद सुगन्ध और सुस्वादमें लोकातीत है। इसका आस्वादन करनेसे प्रतीति हो जायगी। आस्वादन तो दूर रहा, इसकी सुगन्धसे ही मन मतवाला होने लगता है। इसमें श्रीकृष्ण-अधरका स्पर्श हुआ है और उसी अधरामृतका गुण इसमें आ गया, अतः इसके अलौकिक सुगन्ध और सुस्वाद अन्य सब वस्तुओंका विस्मरण करा देते हैं। बड़े सुकृतसे इसकी प्राप्ति हुई है। इसका महाभक्तिपूर्वक सब आस्वादन करो।"

महाप्रभुके श्रीमुखसे प्रसाद महिमा सुनकर उपस्थित भक्तवृन्द उच्च स्वरसे प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करने लगे। तब प्रेमावेशमें महाप्रभुने रामानन्द रायकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर श्लोक पाठ करनेका आदेश दिया। रामानन्दने अधरामृत-महिमा सम्बन्धी श्रीमद्भागवत्का निम्न श्लोक छन्दोबद्ध स्वरमें पढ़ा।

सुरतवर्द्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्वितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥

श्रीम. भा. १०.३१.१४

अर्थ—श्रीकृष्णसे व्रज गोपिकाएँ कह रही हैं—"हे वीर! तुम अपने उस मुखरित मुरलीसे चुम्बित, प्रेमरसोद्दीपक, शोकापनोदन, मानवके अन्य सुखेच्छाको विस्मृत करानेवाले अधरामृतको हम लोगोंको वितरण करो।

यह श्लोक सुनकर महाप्रभुका कृष्णाधरामृत लोभी मन अधिक उन्मत्त हो उठा। उन्होंने प्रेमावेगमें स्वयं श्रीराधिकाकी उक्ति, गोविन्द लीलामृतका एक और श्लोक पाठ किया। यथा,

व्रजातुल-कुलाङ्गनेतर-रसालि-तृष्णाहर-
प्रदीव्यदधरामृतः सुकृतिलभ्य-फेलालवः।
सुधाजिदहि-वल्लिका-सुदल वीटिका-चर्वितः
स मे मदनमोहनः सखि! तनोति जिह्वास्पृहाम्॥

गो. ली. ८.८

अर्थ—श्रीमती राधिका विशाखा सखीसे कह रही हैं—"हे सखि! जिनके अधरपर अमृतरस सदा विराजमान है, जिसको प्राप्त करनेपर निरूपम व्रजकुलाङ्गनागणकी इतर रसमें इच्छा नहीं होती, बहुत सुकृतिके बिना उस अपूर्व अधरामृतकी कणिका मात्र भी सुलभ नहीं, तथा जिनका चर्वित

ताम्बूल सुधाके रसको पराभव करता है, वे मदनमोहन श्रीकृष्ण मेरी जिह्वाकी स्पृहाको बढ़ा रहे हैं।

वेणु-सौभाग्य

अब उपर्युक्त दोनों श्लोकोंकी मर्म व्याख्या महाप्रभुने स्वयं की थी। जिसका वर्णन पूज्यपाद कविराज गोस्वामीकी भाषामें सुनिये।

तनु मन करेन क्षोभ, बाढ़ाय सुरत-लोभ,
हर्ष-शोकादि-भाव विनाशय।
पासराय अन्यरस, जगत् करे आत्मवश,
लज्जा धर्म धैर्य करे क्षय॥
नागर! शुन तोमार अधर-चरित।
माताय नारीर मन, जिह्वा करे आकर्षण,
विचारिते सब विपरीत॥ध्रु०॥
आछुक नारीर काज, कहिते बासिये लाज,
तोमार अधर बड़ धृष्ट राय।
पुरुषे करे आकर्षण, आपना पियाइते मन,
अन्य रस सब पाशराय॥
सचेतन रहु दूरे, अचेतन सचेतन करे,
तोमार अधर बड़ बाजिकर।
तोमार वेणु शुष्केन्धन, तार जन्माय इन्द्रिय-मन,
तारे आपना पियाय निरन्तर॥
वेणु धृष्ट पुरुष हञा, पुरुषाधर पिञा पिञा,
गोपीगणे जानाय निजपान।
अहो शुन गोपीगण, बले पिङ तोमार धन,
तोमार यदि थाके अभिमान॥
तबे मोरे क्रोध करि, लज्जा भय धर्म छाड़ि,
छाड़ि दिमु करसिञा पान।
नहे पिमु निरन्तर, तोमारे मोर नाहि डर,
अन्ये देखों तृणेर समान॥
अधरामृत निज स्वरे, सञ्चारिया सेइ बले,
आकर्षय त्रिजगत् मन।
आमरा धर्म भय करि, रहि यदि धैर्य धरि,
तबे आमाय करे बिडम्बन॥
नीबो खसाय गुरु आगे, लज्जा-धर्म कराय त्यागे,
केशे धरि जेन लञा जाय।
आनि करे तोमार दासी, शुनि लोक करे हासि,
एइ मत नारीरे नाचाय॥
शुष्क बाँसेर काठिखान, एत करे अपमान,
एइ दशा करिले गोसाञि।
ना सहि कि करिते पारि, ताहे रहि मौन धरि,
चोरार माके डाकि जैछे कान्दिते नाइ॥
अधरेर एइ रीति, आर शुनह कुनीति,
से अधर सने जार मेला।
सेइ भक्ष्य भोज्य पान, हय अमृत समान,
नाम तार हय 'कृष्ण-फेला'॥
से फेलार एक लव, ना पाय देवता सब,
एइ दम्भे केवा पतियाय।
बहु जन्म पुण्य करे, तवे सुकृति नाम धरे,
से सुकृति तार लब पाय॥
कृष्ण जे खाय ताम्बूल, कहे तार नाहि मूल,
ताहे आर दम्भ परिपाटी।
तार जेबा उद्गार, तारे कय अमृतसार,
गोपी मुख करे आलवाटी॥
ए सब तोमार कुटिनाटि, छाड़ एइ परिपाटि,
बेणु द्वारे काहे हर प्राण।
आपनार हासि लागि, नह नारीर बधभागी,
देह निजाधरामृत दान॥

चै. च. अं. १६.११२-१२४

महाप्रभुका यही प्रलाप वर्णन है। इसका वर्णन ही दु:साध्य है, भाव हृदयङ्गम करना मनुष्यके लिए साध्य नहीं है। इस प्रलापमें जो मधु है, रसिक भक्त उसका आस्वादन करनेकी चेष्टा करें। यह मधुमय और मधुगन्धमय महाप्रभुकी प्रलाप

कहानी सहज वस्तु नहीं है। श्रीभगवान्‌का माधुर्य रस उनके सृष्ट जीवके लिए कैसा हृदयोन्मत्तकारी, मनमोहनकारी तथा सर्वेन्द्रिय उत्तेजनकारी होता है, यह महाप्रभुकी इस प्रलाप कहानीका पाठ करनेसे कुछ अनुमान हो सकता है। यह प्रलाप कहानी जीव जगत्‌के लिए पूर्ण मङ्गलकारी है, जगत्‌के जीवोंके त्रितापका नाश करनेवाली और शुभप्रद वस्तु है। कृपालु पाठकवृन्द! थोड़ा स्थिर चित्तसे धैर्य धारणपूर्वक परम भक्तिके साथ महाप्रभुकी यह जगन्मङ्गलकारिणी, निगूढ़ प्रेम रसात्मक प्रलाप कहानीको पढ़ें। उनके चरण-कमलका स्मरण करके जब इसका मर्म समझनेकी चेष्टा करेंगे तो भावनिधि महाप्रभुकी कृपासे अपने आप सब भावोंका गूढ़ रहस्य समझमें आ जायेगा। इसे कोई समझा नहीं सकता।

इस प्रकार कृष्ण विरहमें प्रलाप करते-करते महाप्रभुका भाव अचानक परिवर्तन हो गया। वह प्रणयकोपके आवेगमें यह सब बातें बोल रहे थे, अब कुछ शान्त भाव धारण किया और उसके साथ-साथ उनकी प्रेमोत्कण्ठा बढ़ गयी। वह रामानन्द रायकी ओर करुण नयनसे देखकर उत्कण्ठित चित्तसे प्रेम गद्‌गद वचन बोले—"रामराय! मैंने जो यह श्रीकृष्णके अधरामृतकी बात कही है, यह परम दुर्लभ वस्तु है। जो भाग्यसे इसको प्राप्त करता है, उसका मनुष्य जीवन सार्थक हो जाता है। परन्तु देखता हूँ कि परम योग्य पुरुष भी इस दुर्लभ वस्तुको नहीं प्राप्त कर पाते, बञ्चित रह जाते हैं, तथापि वे निर्लज्ज होकर लोभका आश्रय लेकर ही जीवन धारण करते हैं। यह भी देखता हूँ कि परम अयोग्य आदमी भी सदा सर्वदा इस अपूर्व वस्तुको पान करता रहता है। न जाने किस तपस्याके फलसे उसको यह सौभाग्य प्राप्त होता है? रामराय! इसका कारण तो बतलाओ। तुम्हारे मुखसे इसका मर्म कुछ सुननेकी इच्छा हो रही है। इतना कहकर महाप्रभु चुप हो गये। रामानन्द रायने उनके मनके भावको समझकर श्रीमद्‌भागवतके, व्रज गोपिकाकी उक्तिका निम्नलिखित श्लोक पाठ किया—

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्ट रसं हृदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः॥

श्रीम. भा. १०.२१.९

अर्थ—श्रीकृष्णकी वेणु माधुरी सुनकर कोई व्रजवाला कह रही है—"हे सखिवृन्द! इस नीरस दारुमय वेणुने पूर्वजन्ममें क्या अनिर्वचनीय पुण्य किया था? जिस कारण, केवल व्रजगोपिकाओंके भागयोग्य श्रीकृष्णके अधरामृत रसको स्वतन्त्रता पूर्वक यथेष्ठ परिमाणमें पान करती है। कुलवृद्ध आर्यगण अपने कुलमें भगवद् भक्तके जन्म ग्रहण करनेपर जैसे पुलकित होकर आनन्दाश्रु वर्षण करते हैं और प्रेमानन्दमें रोमाञ्चित होते हैं, उसी प्रकार इस वेणुका सौभाग्य देखकर जिनके जलसे यह परिपुष्ट हुआ है वह तटिनी विकसित कमलके बहाने रोमाञ्चित हो रही है, तथा इस वेणुने मेरे वंशमें जन्म ग्रहण किया है, यह सोचकर वंशधर तरुगण भी मधुधाराके बहाने आनन्दाश्रुवर्षण कर रहे हैं।

रामरायके मुखसे यह श्लोक सुनकर महाप्रभु भावाविष्ट होकर स्वयं उसकी व्याख्या करने लगे। कविराज गोस्वामीकी भाषामें महाप्रभुकी यह प्रलापपूर्ण व्याख्या भक्तिपूर्वक श्रवण करें—

अहो ब्रजेन्द्र-नन्दन, ब्रजेर कोन कन्यागण,
अवश्य करिबे परिणय।
से सम्बन्धे गोपीगण, जारे जाने निजधन,
सेइ सुधा अन्येर लभ्य नय॥
गोपीगण! कह सभे करिया विचार।

कोन् तीर्थ कोन् जप, कोन् सिद्ध-मन्त्र जप,
एइ वेणु कैल जन्मान्तरे ॥ध्रु०॥
हेन कृष्णाधर-सुधा, जे कैल अमृत मुधा,*
जार आशाय गोपी धरे प्रांण ।
ए वेणु अयोग्य अति, एके स्थावर पुरुष जाति,
सेइ सुधा सदा करे पान ॥
जार धन ना कहे तारे, पान करे वलात्कारे,
पिते तारे डाकिया जानाय ।
तार तपस्यार फल, देख इहार भाग्यबल,
इहार उच्छिष्ट महाजने खाय ॥
मानस-गङ्गा कालिन्दी भुवन पावन नदी,
कृष्ण यदि ताते करे स्नान ।
वेणु झूटाधर-रस, हञा लोभे परवश,
सेइ काले हर्षे करे पान ॥
ए त नारी रहु दूरे, वृक्ष सब तार तीरे,
तप करे पर-उपकारी ।
नदीर शेष रस पाञा, मूलद्वारे आकर्षिया,
केन पिये, बूझिते ना पारि ॥
निजांकुरे पुलकित, पुष्पहास्य विकसित,
मधुमिषे वहे अश्रुधार ।
वेनुके मानि निज जाति, आर्यैर जेन पुत्र नाति,
वैष्णव हैले आनन्द विकार ॥
वेनुर तप जानि जबे, सेइ तप करि तबे,
ओ त अयोग्य आमरा योग्य नारी ।
जा ना पाञा दुःखे मरि, अयोग्य पिये सहिते नारि,
ताहा लागि तपस्या विचारि ॥

चै. च. अं. १६.१३२.१३६

इस प्रकार कृष्ण विरह व्याकुल प्राणसे महाप्रभु नाना प्रकारसे विलाप करने लगे। भक्तवृन्द उनके श्रीवदनकी ओर देख रहे थे। उनके श्रीवदनपर कृष्ण-विरह-कालिमाका दाग पड़नेके कारण वर्ण मलिन हो गया था, देह क्षीण हो गया था भक्तगण देख रहे थे कि महाप्रभुकी अवस्था दिन प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही है। स्वरूप गोसाईं और रामानन्द राय उनकी विरह दशाके सम्बन्धमें जो जानते थे, अन्य लोगोंको वह ज्ञान न था। वे दोनों महाप्रभुके कृष्ण-विरह-तापसे दग्ध प्राणोंकी रक्षा करते थे।

महाप्रभु प्रलाप करते-करते प्रेमावेशमें जड़वत् निश्चेष्ट हो गये। भक्तगण दुःखसे हाहाकार करने लगे। गोविन्द आकर महाप्रभुके श्रीवदनपर जलका छींटा देने लगे। स्वरूप गोसाईं वहिर्वास द्वारा धीरे-धीरे उनको व्यञ्जन देने लगे। बहुत देरके बाद महाप्रभुको चेतना आयी। वे 'हा कृष्ण' कहकर इधर-उधर देखने लगे। स्वरूप गोसाईंके इशारेसे अन्यान्य भक्तगण तब महाप्रभुकी चरण-वन्दना करके वहाँसे चले गये। रात उस समय प्रायः एक प्रहर बीत गयी थी। स्वरूप और रामराय रह गये। वे लोग महाप्रभुके साथ कृष्ण-कथा कहने लगे। स्वरूप दामोदरने चण्डीदास कृत श्रीकृष्णकी वंशीकी महिमाका एक गान शुरु किया। यथा,

श्यामेर बाँसरी, दुपुरे डाकाति,
सब रस हरि निल ।
हिया दग-दगि, पराण पागली,
केन वा एमति कैल ॥
एमति जे भाव, ना बूझि ताहार,
पिरीति ताहार सने ।
गोपत करिया, केन वा राखिल,
वेकत करिल केने ॥
खाइते शुइते, आन नाहि चिते,
बधिर करिल बाँशी ।
सब परिहरि, करिल बाउरि
मानये जेमन दासी ॥
कुलेर करय, धैरज धरय,
सरस-मरम-फाँसि ।
चण्डीदास भणे, एइ से कारणे,
कानू-सरवस वाँशी ॥

* वृथा ।

गान सुनकर महाप्रभु पुनः प्रेमाविष्ट हो गये। उनके श्यामकी वंशीका गान मानो उनके कानोंमें बजने लगा, केवल कानोंमें बजकर ही क्षान्त न हुआ, कानके भीतरसे होकर अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो गया। वे प्रेमाविष्ट भावमें जड़वत् निश्चेष्ट हो गये। स्वरूप गोसाईंका गान बन्द हो गया। रामानन्द राय प्रेम-मूर्छित महाप्रभुकी सेवा-शुश्रूषामें लग गये। सब लोग मिलकर कृष्ण नाम कीर्तन करने लगे। बहुत देरके बाद महाप्रभुको बाह्यज्ञान हुआ। वे धीरे-धीरे उठकर, बैठे-बैठे स्वरूपकी ओर करुण-नयनसे देखकर, प्रेमगद्‌गद स्वरमें बोले—"स्वरूप! तुम्हारे गानमें क्या मधु है, मैं नहीं जानता। तुम्हारे मधुर कण्ठका मधुमय गीत सुनकर मैं एकवारगी पागल हो जाता हूँ। तुम्हारे मुखसे श्यामकी बाँसरीका गान सुनकर मेरे प्राणोंमें श्यामकी वंशी बज उठती है। अब मैं क्या करूँ? बतलाओ। मेरे वंशीवदन कृष्ण कहाँ हैं? कब मैं उनका दर्शन पाऊँगा?" इतना कहते-कहते कृष्ण विरह कातर महाप्रभु व्याकुल हो रोने लगे। रोते-रोते उन्होंने स्वयं पद प्रारम्भ किया—

कि हैल कि हैल मोर कानूर पिरीति।
आँखि झोरे, हिया पोड़े, प्राण काँदे निति॥
शुइले सोयास्ति नाइ, निंद गेल दूरे।
कानु कानु करे प्राण निरवधि झूरे॥

चण्डीदास।

स्वरूप गोसाईं और रामानन्द राय महाप्रभुका क्रन्दनके स्वरमें यह गान सुनकर मर्माहत हो उठे। उनके दुःखमें दुःखी इन दोनोंके सिवा और कोई नहीं था। नाना प्रकारके उपायोंसे महाप्रभुको वे सान्त्वना देने लगे। परन्तु प्रभु नितान्त अबुझके समान रोने लगे। कुछ देरके बाद वे अपने आप कुछ संयत और सुस्थिर हुए। आधीरात हो गयी थी। महाप्रभुको किसी प्रकार शयन कराकर वे लोग घर गये।

सिहद्वारपर तैलङ्ग गायोंके बीच कूर्माकार प्रभु

महाप्रभुने गम्भीराके भीतर शयन किया। रातभर वह उच्च स्वरसे कृष्ण सङ्कीर्तन करके जागते रहे। रात प्रायः समाप्त होनेमें आ गयी थी, उसी समय अचानक अपने प्राणवल्लभ कृष्णकी वंशीकी ध्वनि उनको सुन पड़ी। वे झटपट उसी समय उठकर भावावेशमें गृह-त्याग करके चल पड़े। गम्भीराके तीन ओरके द्वार बन्द थे, सामनेके द्वारपर गोविन्द सोये थे, किस रास्तेसे प्रभु बाहर निकल गये, किसीको पता नहीं।

गोविन्दको कुछ तन्द्रा आ गयी थी। तन्द्रावेशमें वे महाप्रभुके श्रीमुखका कीर्त्तन सुन रहे थे। अब घरके भीतर किसी प्रकारकी उनकी आहट न पाकर, उनकी तन्द्रा भङ्ग हुई, और प्रभुको न देखकर बाहर आकर उन्होंने स्वरूप गोसाईंको पुकारा। स्वरूप गोस्वामी कुछ और भक्तोंको साथ लेकर गोविन्दके सङ्ग दीप जलाकर महाप्रभुको खोजनेके लिए बाहर निकले। पहले वासाके इधर-उधर देखकर वे लोग सिंह द्वारपर जा पहुँचे। वहाँ जाकर प्रभुको तैलङ्गदेशीय गायोंके बीच पड़े पाया। प्रभुके शरीरका आकार कूर्म जैसा हो गया था, हाथ-पैर पेटमें घुस गये थे। मुख पुलकाङ्ग हो रहा था। नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। ऐसे अचेतन पड़े थे मानो कुष्माण्डका फल हो। बाहरसे जड़ जैसे, भीतरसे आनन्द विह्वल। गाये प्रभुके अङ्गको सूँघ रही हैं, हटानेसे भी नहीं हटती।

महाप्रभुकी यह अवस्था देखकर भक्तगण भयभीत और चकित हो गये। भयभीत होनेका कारण यह था कि उन्होंने प्रभुकी ऐसी प्रेमविकार अवस्था पहले कभी नहीं देखी थी। उनके हाथ-पैर पेटमें घुस गये हैं, वे कूर्माकृति होकर पड़े हैं, यह पूर्णतः अस्वाभाविक होते हुए भी ध्रुव सत्य है

और प्रकृत घटना है, यह वे लोग अपनी आँखों देख रहे हैं। इसको कौन भाव कहते हैं, शास्त्रमें इसका कोई उल्लेख नहीं है। किसीने ऐसा कभी देखा-सुना नहीं है, इसी कारण उनको भय और विस्मय हो रहा है।

एक साथ भय और विस्मयसे अभिभूत होकर भक्तगण क्षणभरके लिए स्तम्भित हो रहे। उसके बाद उन्होंने बहुत यत्न करके कृष्ण-नाम सङ्कीर्तनके द्वारा उनको सचेत करनेकी चेष्टा की, परन्तु कुछ फल न निकलता देखकर सब लोग मिलकर उनको उठाकर वासापर ले गये। क्योंकि उन गायोंके बीच वे अपने सर्वस्व धन प्रभुको धूलि मिट्टीमें पड़े अधिक समय तक न देख सके। वासापर ले जाकर बहुत देर तक शुश्रूषा करके उनके कानोंके पास उच्च स्वरसे कृष्ण-नाम सङ्कीर्तन करने लगे। तब धीरे-धीरे महाप्रभुको चेतना हुई और उनके हाथ पैर पुनः बाहर हुए और उनका पूर्ववत् शरीर हो गया। यह देखकर भक्तोंके आनन्दकी सीमा न रही। वे प्रेमानन्दमें हरिध्वनि करने लगे।

महाप्रभु तब स्वयं धीरे-धीरे उठकर बैठे, बैठकर प्रेमावेशमें इधर-उधर ताकने लगे। सामने स्वरूप गोसाईंको देखकर प्रेम-गद्गद-वाणीमें - "तुम मुझे कहाँ ले आये? वेणुनाद सुनकर मैं वृन्दावन गया था। वहाँ गोष्ठमें व्रजेन्द्रनन्दन वेणु बजा रहे थे। वेणुनादके संकेतसे श्रीराधा आकर कुञ्जमें गयी, श्रीकृष्ण भी गये। मैं भी उनके पीछे-पीछे गया। उनकी भूषण-ध्वनिने मेरा मन हर लिया। उनके हास परिहासकी कण्ठ-ध्वनिसे मेरे कानोंको बड़ा उल्लास हुआ। इसी समय तुम लोग कोलाहल करके मुझे यहाँ बलात्कारसे उठा लाये। न तो मैं अमृत-वाणी सुन सका, न भूषण और मुरली ध्वनि।"

यह महाप्रभुका कूर्माकृति प्रेमविकार भाव, तैलङ्ग गायोंके बीचमें पड़ जाना, यह उनका मानस वृन्दावन गमन, राधाकृष्णकी कुञ्जलीलाका दर्शन आदि अलौकिक और अद्भुत लीलारङ्ग है। रसिक भक्त जब भावमें विभोर होते हैं, तब उनको देहकी तनिक भी सुधि नहीं रहती। परन्तु महाप्रभुके कूर्माकार धारण भावमें अपूर्व लीलारङ्ग हैं, यह मानव-बुद्धिके लिए अगम्य है। मानसिक चिन्ता-स्रोतका सम्बन्ध मानव देहमें लक्षित तो होता है, किन्तु तज्जनित भावमें जो देहका भावान्तर होता है, वह अब तक कभी किसी साधक या सिद्ध पुरुषमें नहीं दिखलायी दिया था। महाप्रभुके भक्तोंने उनके श्रीअङ्गमें यह अभिनव लीला देखी। रघुनाथदास गोस्वामी महाप्रभुके इस अद्भुत लीलारङ्गको अपने गौराङ्ग-स्तव-कल्पतरु स्तोत्रमें लिख गये हैं।

यथा—

अनुद्घाट्य द्वारत्रयमरु च भित्तित्रयमहो
विलङ्घ्योच्चैः कालिङ्गिक-सुरभि-मध्ये निपतितः।
तनूद्यत् सङ्कोचात् कमठ इव कृष्णोरु-विरहाद्
विराजन् गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥

महाप्रभुका तभी पूर्ण भावावेश बना हुआ था। वे प्रेमावेशमें स्वरूपसे बोले—"स्वरूप! मेरे कानोंमें मेरे कृष्णकी वंशीका वह सुर अभी भी बज रहा है, परन्तु वैसा अब सुन नहीं पा रहा हूँ। तुम मेरे कानोंकी प्यास बुझाओ।

वेणुनाद और श्रीकृष्ण-माधुर्यका आकर्षण

स्वरूप गोसाईंने तब श्रीमद्भागवतका व्रजगोपीकी उक्तिका निम्नलिखित श्लोक पढ़ा—

का स्त्र्यङ्ग! ते कलपदामृतमूर्च्छितेन—
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥

श्रीम. भा. १०.२९.४०

अर्थ—व्रजगोपिकाओंने कहा—'हे श्रीकृष्ण ! त्रिलोकमें ऐसी स्त्री कौन है जो तुम्हारे अमृतमय वेणुके कलगीतसे विमोहित होकर तथा तुम्हारी त्रैलोक्य विमोहन, अपरूप सौन्दर्य-परिपूर्ण रूपराशिका दर्शन करके स्वधर्मसे विचलित नहीं होती ? स्त्री जातिकी बात तो दूर रहे, तुम्हारे वेणुगीतको श्रवण करके और अपरूप रूपका दर्शन करके गो, द्रुम, पक्षी और मृगगण भी पुलकित हो जाते हैं ।

महाप्रभु यह श्लोक सुनकर प्रेमानन्दमें गद्गद होकर स्वयं इसके मर्मकी व्याख्या करने लगे। उनकी सुन्दर व्याख्या कविराज गोस्वामीकी भाषामें सुनिये—

नागर ! कह तुमि करिया निश्चय ।
एइ त्रिजगत भरि आछे जत योग्य नारी,
तोमार वेणु काँहा ना आकर्षय ? ध्रु०
कैले जत वेणु ध्वनि, सिद्धमन्त्रादि योगिनी,
दूती हैया मोहे नारीर मन ।
महोत्कण्ठा बाढ़ाइया, आर्यपथ छाड़ाइया,
आनि तोमाय करे समर्पण ।
धर्म छाड़ाय वेणु द्वारे, हाने कटाक्ष कामशरे,
लज्जा भय शकल छाड़ाय ।
एवे आमाय करि रोष, कहि परित्याग दोष,
धार्मिक हञा धर्म शिखाय ।
अन्य कथा अन्य मन, वाहिरे अन्य आचरण,
एइ सब शठ परिपाटि ।
तुमि जान परिहास, हय नारीर सर्वनाश,
छाड़ एइ सब कुटि नाटी ।।
वेणुनाद अमृत घोले, अमृत समान मिठा बोले,
अमृत सम भूषण शिञ्जित ।
तिन अमृते हरे कान, हरे मन हरे प्राण,
केमने नारी धरिवेक चित ।।

चै. च. अं. १७.३२-३६

कृष्ण प्रेमविरह कातर महाप्रभुने प्रणय क्रोधावेशमें श्लोकको इस प्रकार व्याख्या की। उनका हृदय महाभाव सागरमें डूब रहा था, उनका मन महाभावके तरङ्गमें बह रहा था। प्राण उत्कण्ठाके तरङ्गमें गोते खा रहा था, उनके सर्वाङ्गमें महाभावकी महाज्योतिर्मय छटा शोभा पा रही थी। राधाभावमें पूर्णरूपसे विभावित होकर उन्होंने श्रीकृष्ण-माधुर्य-महिमासूचक श्रीराधिकाकी उक्तिका एक और श्लोक पाठ किया। यथा,

नवज्जलदनिस्वनः श्रवणकर्षि सत् शिञ्जितः
सनर्म-रससूचकाक्षरपदार्थभङ्ग्युक्तिकः ।
रमादिक-वराङ्गना-हृदयहारि-वंशीकलः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति कर्णस्पृहाम् ।।

गो. ली. ८.५

अर्थ—श्रीराधेने कहा—"हे सखि ! जिनकी कण्ठध्वदि मेघकी ध्वनिके समान गम्भीर है, जिनकी भूषण ध्वनि श्रवणको आकर्षण करती है, जिनकी नर्म-उक्ति स्वल्पाक्षरमें बहुत अर्थकी सूचक तथा भाव-व्यञ्जक है, एवं नाना रसोंकी अभिव्यक्तिसे पूर्ण है, जिनकी वंशीकी मधुर ध्वनिका रस दिव्याङ्गनाओंके हृदयको विमुग्ध करता है, वह मदनमोहन श्रीकृष्ण मेरी कर्णस्पृहाको वर्द्धित कर रहे हैं ।

महाप्रभुने इस श्लोककी व्याख्या स्वयं कही। कविराज गोस्वामीकी भाषामें उसे भक्तिपूर्वक सुनिये—

कण्ठेर गम्भीर ध्वनि, नवघन ध्वनि जिनि,
जार गुणे कोकिल लाजाय ।
तार एक श्रुति कणे, डुवाय जगतेर काने,
पुनः कान वाहुड़ि ना आय ।।
कह सखि ! कि करि उपाय ?

कृष्णेर-से शब्द गुणे, हरिले आमार काने,
एवे ना पाय, तृष्णाय मरि जाय ।।ध्रु०
नूतुर-किङ्किणी-ध्वनि, हंस सारस जिनि,
कङ्कणध्वनि चटक लाजाय ।
एक बार जेइ शुने, व्यापि रहे तार काने,
अन्य शब्द से काने ना जाय ।।
से श्रीमुख-भाषित, अमृत हैते परामृत,
स्मित कर्पूर ताहाते मिश्रित ।
शब्द अर्थ दुइ शक्ति, नाना रस करे व्यक्ति,
प्रत्यक्षरे नर्म्म विभूषित ।।
से अमृतेर एक कण, कर्ण-चकोर-जीवन,
कर्ण-चकोर:जीये सेइ आशे ।
भाग्यवशे कभू पाय, अभाग्ये कभू नाहि पाय,
ना पाइले मरये पियासे ।।
जेवा वेणु-कलध्वनि, एक बार ताहा शुनि,
जगन्नारी चित्त आउलाय ।
नीवि-बन्ध पड़े खसि, विनि मूले हय दासी,
बाऊलि हैञा कृष्ण पाशे धाय ।।
जेवा लक्ष्मी ठाकुरानी, तेंहो जे काकलि शुनि,
कृष्णपाश आइसे प्रत्याशाय ।
ना पाय कृष्णेर सङ्ग, बाड़े तृष्णार तरङ्ग,
तप करे, तभु नाहि पाय ।।
एइ शब्दामृतचारि, जार हय भाग्य भारि,
सेइ कर्णे इहा करे पान ।
इहा जेइ नाहि शुने, से कान जन्मिल केने,
काणाकड़ि सम सेइ कान ।।

चै. च. अं १७..३८-४५

प्रभुका विरहोन्माद

कृष्ण विरहमें प्रेमाकुल चित्तसे इस प्रकार विलाप करते-करते महाप्रभुके मनमें नाना प्रकारके उद्वेगका भाव उठा। उद्वेगका भाव उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थमें लिखा है—

उद्वेगो मनसः कम्पस्तत्र निःश्वासचापले ।
स्तम्भश्चिन्ताश्रु-वैवर्ण्य-स्वेदादय उदीरिता ।।

उ. नी. १५.२६

अर्थात् मनके उद्वेगमें दीर्घनिःश्वास, स्तब्धता, चिन्ता, अश्रु, वैवर्ण और घर्म आदि होते हैं। महाप्रभुके श्रीअङ्गमें कृष्णविरह जनित उद्वेगपूर्ण ये सारे भाव लक्षण सुस्पष्टरूपमें दिखलायी दिये। उनका मन नाना प्रकारसे विषादपूर्ण था।

इष्टानवाप्तिप्रारब्ध कार्यासिद्धिविपत्तितः ।
अपराधादितोऽपि स्यादनुतापो विषण्णता ।।
अत्रोपायसहायानुसन्धिश्चिन्ता च रोदनम् ।
विलाप-श्वास-वैवर्ण्य-मुखशोषादयोऽपि च ।।

भ. र. सि. २.४.१४,१५

भक्तिरसामृत सिन्धुमें लिखा है कि इष्ट वस्तुकी अप्राप्ति, प्रारम्भ किये कार्यकी असिद्धि तथा अपराधके कारण जो अनुताप उत्पन्न होता है, उसका नाम विषाद है। विषादके उपाय और सहायकका पता, चिन्ता, रुदन, विलाप, श्वास, वैवर्ण्य और मुख-शोषण आदिसे होता है।

प्रभुके विषादके सारे लक्षणोंको उनके भक्तगण देख रहे हैं। उनके श्रीअङ्ग और श्रीमुखमें नाना भावोंके सम्मिश्रणसे एक अपूर्व नवीन भाव दृष्ट होता है। इन नाना प्रकारके भावोंका नाम भी ग्रन्थोंमें लिखा है। जैसे औत्सुक्य, त्रास, धृति, स्मृति और मति। अभीष्ट वस्तुके दर्शन और प्राप्तिकी स्पृहामें देर होनेसे जो असहिष्णुता उत्पन्न होती है, उसको औत्सुक्य कहते हैं।

कालाक्षमत्वमौत्सुक्यमिष्टेक्षाऽऽप्रिस्पृहाऽऽदिभिः ।
मुखशोषत्वरा-चिन्ता-निःश्वास-स्थिरताऽऽदिकृत् ।।

भ. र. सि. २.४.१५१

भयानक शब्दवत् प्रखर शब्दसे हृदयमें जो क्षोभ होता है, उसका नाम त्रास है। इस त्रासमें

पार्श्वस्थ वस्तुके आलम्बनसे रोमाञ्च, कम्प, स्तम्भ और भ्रमादि होते हैं।

त्रासः क्षोभो हृदि तड़िद् घोरसत्त्वोग्रनिःस्वनैः।
पार्श्वस्थालम्ब-रोमाञ्च-कम्प-स्तम्भ-भ्रमादिकृत्॥
भ. र. सि. २.४.५४

ज्ञान, दुःखाभाव तथा उत्तम वस्तुकी प्राप्ति, अर्थात् भगवत्सम्बन्धी प्रेमकी प्राप्तिके द्वारा मनकी पूर्णता अर्थात् अचाञ्चल्यका नाम धृति है। इसमें अप्राप्त और अतीत नष्ट विषयके कारण दुःख होता है।

धृतिः स्यात् पूर्णताज्ञानदुःखाभावोत्तमाप्तिभिः।
अप्राप्तातीतनष्टार्थानभिसंशोचनादिकृत्॥
भ. र. सि. २.४.१४४

सदृश वस्तुके दर्शनसे अथवा दृढ़ अभ्यासवश पूर्वानुभूत अर्थकी प्रतीतिका नाम स्मृति है। स्मृतिमें शिर-कम्प और भ्रूविक्षेप आदि भाव होते हैं।

या स्यात् पूर्वानुभूतार्थप्रतीतिः सदृशेक्षया।
दृढ़ाभ्यासादिना वाऽपि सा स्मृतिः परीकीर्तिता॥
भवेदत्र शिरःकम्पो भ्रूविक्षेपादयोऽपि च॥
भ. र. सि. २.४.१२९

शास्त्र आदिके द्वारा विचारसे उत्पन्न अर्थके निर्धारणको मति कहते हैं। इससे संशय और भ्रमका निवारण होनेके कारण कर्त्तव्य ज्ञान, शिष्यादिको उपदेश प्रदान तथा तर्क-वितर्कको इच्छा होती है।

शास्त्रादीनां विचारोत्थमर्थनिर्धारणं मतिः।
अत्र कर्त्तव्यकरणं संशयभ्रमयोश्छिदमा॥
भ. र. सि. २.४.१४०,१४१

इन सब भावोंके प्रावल्यसे उत्पन्न महाप्रभुकी एक प्रकारकी उन्माद दशा हो गयी। भावोंके पारस्परिक सम्मर्दनका नाम है भाव शवलता।

"शबलत्वं तु भावानां सम्मर्द्दः स्यात्परस्परम्।"
भ. र. सि. २.४.२४४

उन्मादके सारे लक्षण महाप्रभुके श्रीअङ्गमें, चरित्रमें और भावमें दृष्ट होने लगे। शास्त्रमें लिखा है—

उन्मादो हृद्भ्रमः प्रौढ़ानन्दापद्विरहादिजः।
अत्राट्टहासो नटनं संगीतं व्यर्थचेष्टितम्॥
प्रलापधारणाक्रोशविपरीतक्रियाऽऽदयः॥
भ. र. सि. २.४.७९,८०

अतिशय आनन्द, आपद, विपद तथा विरह आदिके कारण हृद्भ्रमको उन्माद कहते हैं। उन्मादमें अट्टहास, नटन, सङ्गीत, व्यर्थ चेष्टा, धारण, चीत्कार तथा विपरीत क्रियाओंके लक्षण दीख पड़ते हैं। भक्तगण देखते हैं कि कृष्ण विरहकी अतिशयितासे महाप्रभु उन्मादग्रस्त हो गये हैं। इस अवस्थामें यह कृष्णकर्णामृतका श्रीराधिकाकी उक्तिका एक श्लोक पाठ करने लगे। यथा,

किमिह कृणुमः कस्य ब्रूमः कृतं कृतमाशया
कथयत कथामन्या धन्यामहो हृदयेशयः।
मधुरमधुरस्मेराकारे मनोनयनोत्सवे
कृपणकृपणा कृष्णे तृष्णा चिरं बत लम्बते॥
कृष्णकर्णामृत ४२

अर्थ—कृष्ण विरहकी चरम दशामें उपस्थित होकर श्रीराधिकाजी अपनी सखियोंसे कह रही हैं—"हे सखिवृन्द! अब कृष्णका दर्शन पानेके लिए क्या करूँ? मैं देख रही हूँ तुम लोग भी मेरे समान कातरा हो, तब मैं किसको अपनी विरह

यातनाकी बात कहूँ? कृष्णकी आशामें जो कुछ किया है वही पर्याप्त है, अब उनकी बात छोड़कर अन्य कोई अच्छी बात कहो। हाय! हाय! जिसके बारेमें कहती हूँ कि उनकी बात न सुनूँगी, वे ही मेरी हृदय गुफामें शयन करके मधुर-मधुर मुस्करा रहे हैं। उनकी बात त्याग करना तो दूर रहा, उस मधुर हास्यपूर्ण, मन और नेत्रोंके लिए आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णमें मेरी तृष्णा सदा ही बनी रहती है।

कृष्णविरहोन्मादिनी श्रीराधिकाके समान महाप्रभु अपने भक्तगणके प्रति उद्भ्रान्त नयनोंसे देखकर स्वयं उक्त श्लोककी व्याख्या करके प्रेमावेगमें प्रलाप करने लगे। कविराज गोस्वामीकी भाषामें वह अपरूप प्रलाप वाक्य श्रवण करें—

एइ कृष्णेर विरहे, उद्वेगे मन स्थिर नहे,
प्राप्त्युपाय चिन्तन ना जाय।
जे वा तुमि सखिगण, विषादे बाउल मन,
कारे पूछों के कहे उपाय।।

हा हा सखि! कि करि उपाय?।।

काहाँ करों काहाँ जाङ, काहाँ गेले कृष्ण पाङ,
कृष्ण बिना प्राण मोर जाय।।ध्रु०।।

क्षणे मन स्थिर हय, तबे मने विचारय,
बलिते हइल मति भावोद्गम।
पिङ्गलार वचन स्मृति, कराइल भाव मति,
ताते करे अर्थ निर्धारण।।

देखि एइ उपाये, कृष्णेर आशा छाड़ि दिये,
आशा छाड़िले सुखी हवे मन।
छाड़ कृष्णकथा अधन्य, कह अन्य कथा धन्य,
जाते कृष्णेर हय विस्मरण।।

चै. च. अं. १७.४८-५१

यह बात बोलते-बोलते तत्काल महाप्रभुके मनमें कृष्ण स्मृति पुनः उदित हुई। वे विस्मित भावसे एक बार इधर-उधर देखकर पुनः रोते-रोते कहने लगे—

जारे चाहि छाड़िते, सेइ शुञा आछे चित्ते,
कोनो रीते ना पारि छाड़िते।।

राधाभावेर स्वभाव आन, कृष्णे कराय काम ज्ञान,
काम ज्ञाने त्रास हैल चिते।
कहे—जे जगत मारे, सेइ पाशिल अन्तरे,
एइ वैरी ना देय पासरिते।।

औत्सुक्येर प्रावीण्ये, जिति अन्य भाव सैन्ये,
उदय कैल निज राज्य मने।
मने हैल लालस, ना हय आपन वश,
दुःखे मने करेन भर्त्सने।।

मन मोर वाम दीन, जल बिनु जेन मीन,
कृष्ण बिना क्षणे मरि जाय।
मधुर हास्य वदने, मनोनेत्र-रसायने,
कृष्ण-तृष्णा द्विगुण बाड़ाय।।

हा हा कृष्ण प्राणधन, हा हा पद्मलोचन,
हा हा दिव्य सद्गुण सागर।
हा हा श्यामसुन्दर, हा हा पीताम्बरधर,
हा हा रासविलास नागर।।

काहाँ गेले तोमा पाइ, तुमि कह ताहाँ जाइ,

चै. च. अं. १७.५२-५७

इतना कहकर महाप्रभु उठकर उन्मत्तके समान प्रकोष्ठसे बाहर निकल गये। स्वरूप गोसाईंने उनको दोनों हाथ फैलाकर बलपूर्वक गोदमें पकड़कर खींचकर आसनपर बैठाया। महाप्रभु तब प्रेमावेशमें जड़वत् निश्चेष्ट होकर बैठ गये। वे

बारम्बार केवल लम्वी साँस ले रहे थे। बहुत देरके बाद उनको वाह्य ज्ञान हुआ। तब स्वरूपकी ओर करुण नयनसे देखकर वे बोले—"स्वरूप ! गीत गाओ। कृष्ण विरहमें मेरे प्राण जलकर भस्मीभूत हो गये हैं, अपना गीत सुनाकर मेरे सन्तप्त प्राणको शीतल करो।" स्वरूपने तब गाना शुरू किया—

बँधू ! कि आर बलिब आमि।

जीवने मरणे, जनमे जनमे,
प्राणनाथ हैओ तुमि॥

तोमार चरणे, आमार पराणे,
बाँधिल प्रेमेर फाँसि।

सब सर्मापिया, एक मन हैया,
निश्चय हइनु दासी॥

शिशुकाल हैते, आन नाहि चिते,
ओ पद करेछि सार।

धन मान जन, जीवन यौवन,
तुमि से गलार हार॥

शयने स्वपने, निद्रा जागरणे,
कभू ना पासरि तोमा।

अबलार त्रुटि, हय शतकोटि,
सकलि करिबे क्षमा॥

ए कूले ओकूले, दूकूले गोकुले,
आपन बलिब काय।

शीतल बलिया, शरण लइनु,
ओ दुटि कमल पाय॥

आँखिर निमिखे, यदि नाहि देखि,
तबे से पराणे मरि।

चण्डीदास कहे, परश रतन,
गलाय गाँथिया परि॥

कृष्णविरह कातर महाप्रभुने यह गीत सुनकर कहा—"स्वरूप ! यह बड़ा सुन्दर आत्म निवेदनका पद है। और एक गाओ।" स्वरूपने पुनः मधुर कण्ठसे गान प्रारम्भ किया—

बँधू ! तुमि जे आमार प्राण।

देह मन आदि, तोमारे सँपेछि,
कुल शील जाति मान॥

आखिलेर नाथ, तुमिहे कालिया,
योगीर आराध्य धन।

गोप गोयालिनी, हाम अति दीन,
ना जानि भजन पूजन॥

पिरीति रसेते, ढालि तनु मन,
दियाछि तोमार पाय।

तुमि मोर पति, तुमि मोर गति,
मन नाहिं आन भाय॥

कलङ्की बलिया, डाके सबलोके,
ताहाते नाहि दुःख।

तोमार लागिया, कलङ्केर हार,
गलाय परिते सुख॥

सति वा असती, तोमारे विदित,
भाल मन्द नाहि जानि।

कहे चण्डीदास, पाप पुण्य सम,
तोमार चरण खानि॥

महाप्रभु भावाविष्ट होकर गीत सुन रहे थे। स्वरूप मानो उनके ही ये सब गीत गा रहे थे। स्वरूपको मेरे मनके भावका पता कैसे लगा? तब फिर सिद्धान्त निश्चय किया कि स्वरूप तो मेरी सखी है, वह यदि नहीं जानेगा तो मेरे अन्तरकी व्यथा और कौन जानेगा? स्वरूप मेरी मर्मी सखी है, स्वरूप मेरे दर्दकी दर्दिया है। 'स्वरूप, स्वरूप' कहकर प्रेमोन्मत्त महाप्रभुने दोनों भुजाओंके द्वारा प्रेमावेशमें उनका गला जकड़कर रोते-रोते कहा—"तुम्हीं मेरे कृष्ण-विरह-दग्ध प्राणोंकी रक्षा करना जानते हो, तुमने ही इतने दिनों तक मुझको मृत्युके हाथसे बचा रक्खा है। तुम्हारे मधुर कण्ठके मधुमय गानसे मेरे शुष्क प्राणोंमें नव रसका सञ्चार होता है, उस रससे मेरा जीवन, प्राण, मन, हृदय, सब रसित होते हैं, तभी मैं जीवित रह सका हूँ। स्वरूप! तुम मुझको अब एक गीत-गोविन्दका पद सुनाओ।" स्वरूपने गाना शुरू किया—

कथित समयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ।
मम विफलमिदममलरूपमपि यौवनम् ॥
यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचन-वञ्चिता ।
यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ।
तेन मम हृदयमिदमसम-शर कीलितम् ॥
मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना ।
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥
मामहह विधूरयति मधुरमधु यामिनी ।
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ॥
अहह कलयामि वलयादि-मणिभूषणम् ।
हरिविरहदहन वहनेन बहुदूषणम् ॥
तुकुसुमसुकुमारतनुमत-शर लीलया ।
स्रगपि हृदि हन्ति मामतिविषमशीलया ॥
अहमिह निवसामि नगणित वन वेतसा ।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥
हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ।
रसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ॥

गी. गो. ७.१-८

महाप्रभु जड़वत् निश्चेष्ट होकर स्वरूपके मधुर कण्ठसे निःसृत यह सुन्दर गीत-ध्वनि सुन रहे थे। उनके मनमें लगा कि मानो स्वयं श्रीमती राधिका स्वरूपके हृदयमें अधिष्ठित होकर अपनी मर्म व्यथा एक-एक करके प्रकट कर रही हैं।

जयदेवका यह मधुर पद श्रीराधिकाकी उक्ति है। इसके भावार्थकी व्याख्या आवश्यक है। श्रीमती सङ्केत कुञ्जमें कृष्ण सङ्गकी लालसासे चुपचाप आयी है। वे रातमें कितनी विघ्न बाधाएँ और कष्ट सहन करके सज धजकर अपने प्राणप्रियके दर्शनके लिए आयी हैं। सुगन्धित पुष्पोंकी माला गूँथकर रक्खी है, प्राणवल्लभके लिए मनोहर कुसुम शय्या सजा रक्खी है, दीप जलाकर प्रति पल अपने प्राणवल्लभके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही हैं, परन्तु कृष्ण आये नहीं। इस दुःखसे वह कृष्ण विरहानलमें जर्जर होकर विलाप करके रो रही हैं। वह प्रिय मर्मसखिको सम्बोधन करके कह रही हैं, "सखि! मेरे प्राणवल्लभ कृष्ण तो आये नहीं? आकाशमें चन्द्र उदित हो गया है, मेरे हृदय गगनके श्याम चाँद कहाँ हैं? मेरे इस अमल और अपूर्व रूपयौवनकी क्या आवश्यकता? अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाकर अपने जीवन-सर्वस्वधन कृष्णको ढूँढ़ू? सखि! अब मैं तुम लोगोंकी बातोंका विश्वास नहीं कर सकती। लज्जा, भय, मान सब कुछ त्यागकर इस घोर रजनीमें भयसङ्कुल गंभीरवनमें कृष्ण सङ्गकी लालसासे मैं आयी, पर कृष्ण तो नहीं आये, कामाग्निमें मेरा हृदय दग्ध हो रहा है। अब मेरे लिए मरना ही मङ्गलप्रद है। व्यर्थ यह देहभार क्यों ढो रही हूँ? मैं

अभागिनी हूँ, मैंने सुकृति नहीं की है कृष्णको कैसे पाऊँगी ? किसी सौभाग्यवती रमणीने सुकृतिके बल आज कृष्णको प्राप्त किया है। इसी कारण कृष्ण आये नहीं। कृष्ण उसी पुण्यवतीके सङ्गसुखमें रसालापमें मग्न हैं। मैं हतभागिनी हूँ। विधाताने मेरे भाग्यमें यह मदनशरविद्ध हृदयकी यातना ही लिखी है। कृष्ण यदि नहीं आये तो मेरी इस साज-सज्जाका प्रयोजन ही क्या रहा ? इस वस्त्राभूषणका प्रयोजन क्या रहा ? कृष्ण विरहानलमें मेरा हृदय दहक रहा है। मेरे गलेकी फूलोंकी माला भी मेरे सन्तापका कारण बन रही है।

मैं इसको फेंककर ही त्राण पा सकती हूँ। मदन-शरके आघातसे मेरे सर्वाङ्गमें तीव्र वेदना हो रही है। मेरे शरीरमें क्षत नहीं दीख पा रहे हैं, परन्तु हृदय क्षत-विक्षत हो रहा है, प्राणमें अनङ्ग-शर विद्ध हो गया है। इससे प्राण क्षत-बिक्षत हो रहे हैं। सखि ! वह दिखाने योग्य होता तो मैं तुझे दिखला देती। मेरी विवेक बुद्धि नष्ट हो गयी है, कृष्ण एक बार भी मुझको याद नहीं करते, किन्तु मैं उनके लिए इस गम्भीर रात्रिमें इस घोर बिजन बनमें बैठी हूँ।"

कृष्णविरह कातर महाप्रभु यह गीत सुनकर मन ही मन श्रीमतीकी तत्कालीन अवस्थाके साथ अपनी अवस्थाकी एक-एक करके तुलना करने लगे। और सोचने लगे कि स्वरूप कैसे उनके भावके अनुरूप, उनका मनचाहा पद गान करते हैं ? स्वरूप कौन हैं ? महाप्रभुकी उस समय बाह्यावस्था थी। वे देख रहे थे कि स्वरूप उदासीन संन्यासी हैं, पुरुष हैं। पुरुष भी विरह दग्ध नारीके मनके गम्भीर भावोंको इस प्रकार समझ सकता है, यह महाप्रभुके मन में विश्वास नहीं हो रहा है। वे स्वरूपको पुरुष जान रहे हैं, परन्तु अपनेको स्त्री समझ रहे हैं। उनका एक ओरका वाह्य ज्ञान लुप्त हो गया है, दूसरी ओरका ज्ञान ठीक है। उन्होंने अपने अहंको लोपकर दिया है, परन्तु स्वरूपको ठीक स्वरूप गोसाईं देख रहे हैं। उनके मनमें लज्जा भी हो रही है, परन्तु मुखसे कोई बात खोलकर नहीं बोल रहे हैं। इस अवस्थामें बहुत समय चला गया।

राम नन्द राय चुपचाप बैठकर भावनिधि महाप्रभुका सारा भावरङ्ग दर्शन कर रहे हैं तथा सोच रहे हैं कि रात अधिक हो गयी है। इनको अब एक बार शयन करा सकें तो ठीक हो। महाप्रभुको बाह्य ज्ञान हुआ देखकर उन्होंने स्वरूपसे कहा, "स्वरूप गोसाईं ! रात अधिक हो गयी है। कल फिर गीत सुनाना। आज इतना ही रहे।" स्वरूपको भी ज्ञान न था। वे भी अप्राकृत रस सागरमें मग्न थे। महाप्रभुसे किसी प्रकार विदा होकर दोनों आदमी तब अपने घर गये। गोविन्दने महाप्रभुका भार लिया। रातका उस समय तीसरा पहर था।

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इस अपूर्व लीलाकी फल श्रुति लिखी है—

इहा जेइ शुने तार जुड़ाय मन-कान।
अलौकिक गूढ़ प्रेमेर हय चेष्टा ज्ञान॥
अद्भुत निगूढ़ प्रेमेर माधुर्य महिमा।
आपनि आस्वादि प्रभु देखाइल सीमा॥
अद्भुत दयालु चैतन्य अद्भुत वदान्य।
ऐछे दयालु दाता लोके नाहि शुनि अन्य॥
अतएव
सर्वभावे भज लोक ! चैतन्य चरण।
जाहा हैते पावे कृष्ण प्रेमामृत-धन॥
चै. च. अं. १२.६२-६५

कविराज गोस्वामीने और भी लिखा है—

लिख्यते श्रील गौरेन्दोरत्य द्भुतमलौकिकम् ।
यैर्दृष्टं तन्मुखात् श्रुत्वा दिव्योन्मादविचेष्टितम् ।।

चै. च. अं. १७.१

अर्थात् जिन्होंने देखा है, उनके मुखसे श्रवण करके इस अत्यद्भुत और अलौकिक दिव्योन्माद और प्रेमचेष्टाको उन्होंने लिपिवद्ध किया है ।

उन्होंने और भी लिखा है—

अलौकिक प्रभुर चेष्टा प्रलाप शुनिया ।
तर्क ना करिह, शुन विश्वास करिया ।।
इहार सत्यत्व प्रमाण—श्रीभागवते ।
श्रीराधार प्रलाप भ्रमर-गीताते ।।
महिषीर गीत जेन दशमेर शेषे ।
पण्डिते ना बूझे तार अर्थ विशेषे ।।
महाप्रभु नित्यानन्द दोहाँर दासेर दास ।
जारे कृपा करे, तार इहाते विश्वास ।।

चै. च. अं. १६.९६-१०२

अतएव तर्कविचार बुद्धिसे हीन होकर परम श्रद्धा और भक्तिके साथ इस अलौकिक लीलाकथाका पाठ करें, श्रवण करें, इसमें सुदृढ़ विश्वास स्थापन करें, शीघ्र देख पावेंगे, अनायास समझ सकेंगे, श्रीगौराङ्ग प्रभुकी अहैतुकी कृपा आपके ऊपर वर्षित होगी, और इस कृपावृष्टिके फलसे कुछ भी असंभव न जान पड़ेगा ।

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीकी यह बात याद रहे कि—

अलौकिक लीलाते जार ना जन्मे विश्वास ।
इह लोक परलोक तार हय नाश ।।

चै. च. अं. ७.१०८

अब सब मिलकर बोलिये—जय गौर !

अट्ठावनवाँ अध्याय

महाप्रभुका प्रलाप वर्णन

(तृतीय चित्र)

भक्तेर प्रेमविकार देखि कृष्णेर चमत्कार ।
कृष्ण जार ना पाय अन्त, केवान छार आर ।।

चै. च. अं. १८.१४

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

सहस्त्र बदने जने कहये अनन्त ।
एक दिनेर लीलार तभु नाहि पाय अन्त ।।
कोटि युग पर्यन्त यदि लिखये गणेश ।
एक दिनेर लीलार तबू नाहि पाय शेष ।।

चै. च. अं. १८.१२,१३

गौराङ्गलीला समुद्र है ही इतना गम्भीर और अनन्त । विशेषतः महाप्रभुके कृष्णप्रेमके बिकार

और प्रलापका वर्णन तो एकबार ही असंभव है। कविराज गोस्वामीने इसी कारण लिखा है—

प्रेमेर विकार वर्णिते चाहे जेइ जन।
चान्द धरिते चाहे जेन हइया बामन।।

चै. च. अं. १८.१८

इस कथनमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। महाप्रभुकी यह प्रेमविकारावस्था रसराज श्रीभगवान् के प्रति भक्तके प्रेमभावकी पराकाष्ठा है। स्वयं भगवान् भी भक्तके इस अपूर्व प्रेमबिकारका मर्म सम्यक् रूपसे नहीं समझ पाते। इसी कारण श्रीगौर-भगवान् भक्तभाव स्वीकार करके नवद्वीपमें अवतीर्ण होकर भक्तहृदयस्थ इस अपूर्व प्रेम रसका आस्वादन करते हैं। भक्तिजगत्में भक्तप्रेमका परिणाम या चरम गति दिखलानेके लिए महाप्रभुकी यह प्रेम विकार दशा प्रकटित हुई है। इससें दुःखके भीतर सुखकी अनुभूति ही अधिक व्यक्त होती हैं, इसके मर्मको सामान्य जीव क्या समझेगा ? अतएव कविराज गोस्वामीते लिखा है—

वायु जैछे सिन्धु जलेर हरे एक कण।
कृष्ण प्रेम-कणेर तैछे जीवेर स्पर्शन।।
क्षणे क्षणे उठे प्रेमार तरङ्ग अनन्त।
जीव छार काहाँ तार पाइबेक अन्त।।

चै. च. अं. १८.१९,२०

महाप्रभु जिस प्रकार भक्ति भावमें भक्तिरसका आस्वादन करते हैं, उसका मर्म समझते हैं एकमात्र उनके निजगण स्वरूप, रामानन्द आदि भक्तगण। केवल आत्मशोधनके लिए जीवाधम ग्रन्थकार महाप्रभुके इन सब प्रेम विकार लक्षणको महाजनोंके मुखसे वर्णन सुनकर आस्वादन करनेका प्रयास कर रहा है।

महाप्रभुका रासलीला-जलकेलि दर्शन और समुद्र-पतन

शरद ऋतुकी रात है। निर्मल ज्योत्स्नाके आलोकमें महाप्रभु कृष्ण-प्रेमोन्मादमें निजगणके साथ समुद्र तीरवर्ती उद्यानमें भ्रमण कर रहे हैं, साथमें स्वरूप दामोदर और रामानन्द राय हैं। व्रजभावोन्मत्त महाप्रभुके सङ्केतसे वे श्रीकृष्णकी रासलीलाके श्लोक पढ़ रहे हैं, और प्रेमानन्दमें प्रभु कान लगाकर सुन रहे हैं, तथा कभी-कभी उसकी व्याख्या भी करते हैं। कभी प्रेमावेशमें वह मधुर-नृत्य करते हैं, कभी कीर्तन रङ्गमें उन्मत्त हो जाते हैं। भावावेशमें वे कभी रासलीलाका अनुकरण करते हैं, कभी प्रेमावेशमें मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पड़ते हैं। अश्रु, कम्प, पुलकादि अष्ट सात्त्विक भावोंके सारे विकार उनके श्रीअङ्गमें लक्षित होते हैं। स्वरूप उनके भावानुकूल श्लोक पढ़कर उनको प्रेमानन्द प्रदान करते हैं। रासलीलाके सारे श्लोकोंका एक-एक करके पाठ हो गया, आस्वादन कराना हो गया। महाप्रभुको कभी हर्ष, कभी शोक, कभी मूर्च्छा, कभी कम्प आदि हो रहे हैं, भक्तगण उनकी शुश्रूषामें व्यस्त हैं। स्वरूप दामोदरने सबके अन्तमें श्रीकृष्णके साथ व्रजगोपिकाओंकी जलकेलिका श्लोक पाठ किया। यथा,

ताभिर्युतः [श्रमपोहितुमङ्गसङ्ग-
घृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरञ्जितायाः।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः
श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः।।

श्रीम. भा. १०.३३.२३

अर्थ—मदमत्त करी (हाथी) जिस प्रकार कारिणीवृन्दके साथ जल क्रीड़ा करता है, लौकिक मर्यादाके परे श्रीकृष्ण भगवान् उसी प्रकार श्रमके अपनोदनके लिए गोपवालाओंके साथ सम्मिलित होकर श्रीयमुनामें अवगाहन करने लगे। उस समय गोपिकागणके कुचकुंकुम रञ्जित कुसुम-मालामें कतिपय भ्रमर बैठे थे, वे गन्धर्वराजके समान मधुर-गान करते हुए उनका अनुगमन करने लगे।

श्लोक सुनकर महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर समुद्रकी ओर सतृष्ण नयनोंसे देखने लगे, उस समय वे आइटोटामें उद्यानमें थे। वहाँसे समुद्रका दृश्य अति मनोहर लगता था। शरत् पूर्णिमाकी रात थी, चन्द्ररश्मि समुद्रके तरङ्गोंमें विखरकर अपूर्व शोभा धारण कर रही थी। महाप्रभु देख रहे थे—

चन्द्रकान्त्यै उच्छलित तरङ्ग उज्ज्वल।
झलमल करे जेन यमुनार जल॥

चै. च. अं. १८.२५

वे उस यमुनाके जलमें गोप-वालाओंके साथ श्रीकृष्णकी जलकेलि देखने चल पड़े। कोई देख न सका, और न कोई जान सका कि वे कहाँ गये? चुपकेसे जाकर वे एकवारगी समुद्र जलमें कूद पड़े। समुद्र जलमें गिरते ही उनको मूर्च्छा आ गयी। वे कुछ भी समझ न सके। समुद्र तरङ्ग उनके श्रीअङ्गको कभी डुबाती थी, कभी बहाती थी, मानो एक सूखा काठ लहरोंमें बह रहा था। समुद्र-तरङ्गमें बहते-बहते महाप्रभु कोलारककी ओर चले। कोलारक ससुद्रके तीर एक मनोरम स्थान, पुरीके समीप है। श्रीकृष्ण गोपवालाओंके सङ्ग यमुनाके जलमें प्रेमानन्दमें जलकेलि-रङ्गमें मग्न रहते थे, उसी भावमें महाप्रभु समुद्र जलमें कभी मग्न होते हैं, कभी बहते हैं। उनका श्रीअङ्ग कभी जलमें बहता है, कभी डूबता है। उनको चेतना भी नहीं है।

इधर स्वरूप गोसाईं आदि भक्तगण उनके अकस्मात् अन्तर्हित हो जानेसे व्याकुल होकर उनकी खोजमें चारों ओर दौड़ धूप कर रहे हैं। परन्तु कहीं दिखलायी न देनेके कारण उनके मनमें विषम सन्देह उपस्थित हुआ। वे बहुत ही सशङ्कित हुए, सभी विषाद ग्रस्त होकर रोने लगे वे सोच रहे थे कि प्रभु सम्भवतः जगन्नाथजीके दर्शनके लिए गये होंगे, किसीने कहा कि जान पड़ता है कि किसी दूसरे उद्यानमें जाकर प्रेमोन्मादावस्थामें पड़े होंगे, किसीने कहा कि वे गुण्डिचा मन्दिर या नरेन्द्र सरोवरकी ओर गये होंगे, किसीने कहा कि जान पड़ता है कि वे चटक पर्वतकी ओर गये होंगे। एक आदमीने कहा कि वे संभवतः कोलारककी ओर गये होंगे। इस प्रकार सब मिलकर नाना प्रकारकी कल्पना-जल्पना करने लगे। कुछ भक्त लोग समुद्रकी ओर दौड़े, चारों ओर लोग गये, कहीं कोई प्रभुको देख न पाया, इससे वे अतिशय उद्विग्न और चिन्तित हो उठे।

उनको खोजते-खोजते प्रायः रात बीत गयी, तथापि उनका कोई पता न लगा। तब सब लोग सोचने लगे कि जान पड़ता है महाप्रभु सदाके लिए उनको छोड़कर अन्तर्धान हो गये। भक्तवृन्दके देहमें प्राण सूख गया, उनके मनमें केवल अनिष्ट आशङ्काके सिवा और कुछ नहीं सूझता था। ऐसी अवस्थामें मनका ऐसा ही भाव हुआ करता है।

तब सब लोग समुद्रके किनारे बैठकर परामर्श करने लगे। कुछ लोगोको चिरायु पर्वतकी ओर भेजा। स्वरूप गोसाईं कुछ लोगोंको साथ लेकर समुद्रके तीर पूर्वदिशामें महाप्रभुको खोजने निकले। सबका मुँह सूखा था, हृदय व्याकुल था, देह अवसन्न था, तथापि महाप्रभुके प्रेममें विह्वल होकर वे यन्त्रचलित पुतलीके समान चारों ओर दौड़ धूप करने लगे।

उस समय प्रातःकाल हो गया था। स्वरूप गोसाईंका दल पूर्वदिशामें समुद्रके किनारे जाते-जाते देखता क्या है कि एक जाल वाला अपना जाल कन्धेपर रखकर प्रेमानन्दमें कभी नाचता है, कभी रोता है, कभी उच्च स्वरसे 'हरि हरि' बोलकर नृत्य करता है। यह देखकर सबको विशेष आश्चर्य हुआ। स्वरूप गोसाईंने उस

प्रेमोन्मत्त जालवालेसे पूछा—

कह जालिक एइदिये देखिले एक जन ?
तोमार ए दशा केन, कह त कारण ?

चै. च. अं. १८.४३

परम सौभाग्यवान् वह जालवाला अपना सारा वृत्तान्त खोलकर क्रमपूर्वक स्वरूप गोसाईंको कहने लगा—"कोई मनुष्य तो मैंने नहीं देखा। मैंने जाल समुद्रमें डाला कोई एक बहुत बड़ी चीज जालमें आ फँसी। मैंने सोचा कि यह कोई बड़ा मत्स्य है, इस आह्लादमें यत्नपूर्वक मैंने जाल उठाया, तो क्या देखता हूँ कि वह तो मत्स्य नहीं है, एक बड़ा भारी मरा हुआ मानुष-देह है, जिसको देखते ही मैं डर गया कि इस मरे हुएका भूत मेरे ऊपर न चढ़ बैठे। जालसे मृत-देहको निकालनेकी चेष्टा में, पता नहीं कैसे मेरा उससे स्पर्श हो गया। छूते ही उसका भूत मेरे शरीरमें प्रवेश कर गया, तबसे मेरा शरीर काँपने लगा, आँखोंसे पानी गिरने लगा, वाणी गद्‌गद हो गयी, सब रोम खड़े हो गये। पता नहीं वह ब्रह्मदैत्य है या भूत है, जो देखते ही कायामें प्रवेश कर जाता है। उसका शरीर पाँच-सात हाथ लम्बा बहुत दीर्घ है, एक-एक हाथ-पैर तीन-तीन हाथ लम्बे हैं। अस्थियोंकी सन्धि खुल गयी है, चर्मके साथ झूल रही है, जिसको देखकर प्राण निकले जाते हैं। मरा हुआ होनेपर भी आँखें चढ़ी हुई हैं, कभी गों-गों करता है, कभी अचेतन हो जाता है। यह भूत मेरे ऊपर सवार हो गया है। मैं मर गया तो मेरे स्त्री-बच्चे कैसे जीयेंगे ? इसीलिए भूतसे पिण्ड छुटानेको मैं ओझाके पास जा रहा हूँ। मैं तो प्रतिदिन रातमें मछली पकड़ता फिरता हूँ, नृसिंह भगवान्‌के स्मरण करनेसे मुझे भूत-प्रेत, नहीं लगते, किन्तु यह भूत तो नृसिंह-स्मरणसे और दुगुणा चिपकता है। उसका आकार देखकर ही डर लगता है। मैं तुमको हाथ जोड़ता हूँ, उधर मत जाना, वहाँ जानेसे वह भूत तुमको भी लग जायगा।"

स्वरूप गोसाईंकी समझमें आ गया कि जाल वालेका भूत ही उनके खोये धन महाप्रभु हैं। भक्तगणने भी समझा कि महाप्रभुके सिवा यह और कोई नहीं हो सकते। खोये धनका पता पा जानेपर मानो उनके मृतदेहमें प्राण आ गये।

स्वरूप गोसाईं बड़े रसिक पुरुष थे। उन्होंने उस भाग्यशाली जालवालेके साथ कुछ रङ्ग जमाया। वे हँसते हुए मधुर शब्दोंमें उससे बोले—"भाई मछुआ ! मैं एक भूतका अच्छा ओझा हूँ। मैं भूत छुड़ाना जानता हूँ।" इतना कहकर मन्त्र पढ़कर उन्होंने भूतग्रस्त उस मछुएके सिरपर हाथ रक्खा, और उसकी पीठपर तीन चपाटे लगाकर कहा—"तुम्हारे देहसे भूत भाग गया।"

स्वरूप गोसाईंके करस्पर्शसे मछुएका सारा भय दूर हो गया। वह कुछ सुस्थिर अनुभव करने लगा। प्रेम विकारग्रस्त महाप्रभुके श्रीअङ्गस्पर्शसे उसके देहमें प्रेमोदय हुआ था, परन्तु उसके मनमें बड़ा भय हुआ था। स्वरूप गोसाईंकी बातसे, और कर स्पर्शसे उसके मनका भय दूर हो गया। केवल प्रेम रह गया। श्रीभगवान्‌के श्रीअङ्गस्पर्श-रूप कृपाके ऊपर भक्तके श्रीकरस्पर्श कृपासे उसे लाभ हुआ। उसके समान महा सौभाग्यवान् और कौन होगा ? वह भयसे बहुत व्याकुल हो रहा था, अब सुस्थिर हो गया।

स्वरूप गोसाईंने हंसते हुए उससे कहा—भैया ! तुम जिनको भूत मान रहे हो, वे भूत नहीं है, श्रीकृष्ण चैतन्य भगवान् हैं। वे प्रेमके आवेशमें समुद्रजलमें गिर पड़े, उन्हींको तुमने अपने जालमें उठाया है। उनके स्पर्शसे तुमको कृष्ण-प्रेमोदय हुआ है। भूत जानकर तुम डर गये, अब तुम्हारा डर

चला गया तुम सुस्थिर होगये हो। वे कहाँ है ? हमको ले चलकर दिखाओ।"

उस भाग्यवान् मछुएने महाप्रभुको अनेक बार देखा था। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुका नाम नीलाचलमें कौन नहीं जानता ? उनका नाम सुनते ही उसे वे याद आ गये। परन्तु स्वरूप गोसाईंने जो कहा कि उसके जालमें जो निकले हैं, वे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं—इसपर उसे बिल्कुल ही विश्वास न हुआ। क्योंकि महाप्रभुको उसने अपनी आँखों अनेक बार देखा था। शव देहकारमें दीर्घाकार विकट भूतके समान अद्भुत विकृत आकार उनका नहीं हो सकता—यह बात उसने स्वरूप गोसाईंसे कही। तब स्वरूप गोसाईं उससे बोले—"भाई मछुआ, वे ही श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं। प्रेमकी विकारावस्थामें उनकी सारी अस्थि-सन्धियाँ शिथिल होकर दीर्घाकार धारण कर रही हैं।"

यह सुनकर मछुएके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वह सबको साथ लेकर जाल कन्धेपर रखकर पुनः समुद्रके किनारे गया, और उस स्थानको दिखलाया जहाँ महाप्रभु बाह्यज्ञान-शून्य होकर पड़े हुए थे। स्वरूपादि भक्तगणने देखते ही अपने-जीवन-सर्वस्व धन महाप्रभुको पहचान लिया। उनकी अवस्था देखकर वे सब लोग व्याकुल होकर रो पड़े। पानीमें पड़कर उनके श्रीअङ्गने श्वेत वर्ण धारण किया था, सारा अङ्ग बालूसे लिप्त था, अस्थि-सन्धियां शिथिल हो गयी थी। चर्म सब दीर्घाकार हो रहे थे। वदनमें केवल आर्द्र कौपीन धारण किये थे। उस समय वे उठाकर वासापर ले जानेकी स्थितिमें नहीं थे।

गोविन्द अपने साथ महाप्रभुका कौपीन और वहिर्वास सदा रखते थे। उनके आर्द्र कौपीनको हटा कर तत्काल शुष्क कौपीन पहना दिया, बहिर्वासके द्वारा सर्वाङ्गका बालू झाड़ दिया। और एक बहिर्वास बालूके ऊपर समुद्रके तीर बिछाकर उसके ऊपर महाप्रभुको शयन करा दिया। उसके बाद सब मिलकर उच्च स्वरसे कृष्णनाम संकीर्तन करने लगे। वह महाभाग्यवान मछुआ वहाँ खड़ा रहकर यह सब देखता रहा। उसके अङ्गमें अश्रु, कम्प, पुलक, कदम्ब आदि अष्ट सात्त्विक भावोंका आविर्भाव देखा गया। महाप्रभुके कानोंके पास बहुत देर तक सब मिलकर उच्च स्वरसे हरिनाम संकीर्तन करते रहे। महाप्रभुके कानके पास बहुत देर तक कृष्ण नाम संकीर्तन करते-करते अचानक उनको बाह्यज्ञान हुआ। वे हुङ्कार गर्जन करके उठ बैठे, और तब सारी अस्थि-सन्धियाँ यथास्थान अपने आप संयोजित हो गयीं।

भक्तवृन्द प्रेमानन्दमें उच्च हरिध्वनि करने लगे। इस समय उनकी अर्द्ध वाह्यावस्था थी, वे उठकर अन्यमनस्क भावसे इधर-उधर देखने लगे। कुछ देर उन्मत्तके समान इधर-उधर देखकर स्वरूप दामोदरके मुखकी ओर सजल नयनसे देखकर करुण स्वरमें बोले—

'कालिन्दी' देखिया आमि गेलाङ् वृन्दावन।
देखि—जलक्रीड़ा करे व्रजेन्द्रनन्दन॥
राधिकादि गोपीगण सङ्गे एकत्र मेलि।
यमुनार जले महारङ्गे करे केलि॥
तीरे रहि देखि आमि सखीगण सङ्गे।
एक सखी सखीगणे देखाय से रङ्गे॥

चै. च. अं. १८.७७-७९

इतना कहकर महाप्रभुने प्रेमावेशमें गोपीगणके साथ श्रीकृष्णकी जलकेलिरङ्गकी कथा विस्तृत रूपसे वर्णन की। व्रजगोपिकागणके साथ श्रीकृष्णकी यह जलकेलि परम निगूढ़ रहस्यपूर्ण लीला है। व्रजरसका रसिक हुए बिना इसका मर्म नहीं समझा जा सकता। अधिकारी रसिक भक्तोंके चित्त-विनोदके लिए यह मधुर लीला विस्तारपूर्वक लिखी गयी है। महाप्रभु स्वयं इस परम रहस्यपूर्ण लीला

कहानीके वक्ता हैं, तथा उनके अन्तरङ्ग भक्तगण श्रोता हैं। इस अपूर्व लीलाका वर्णन कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्य लीला, १८ वें परिच्छेदमें त्रिपदी छन्द संख्या ८० से १०६ तक किया है। अधिकारी रसिक भक्त वहाँ इसको पढ़े।

इस प्रकार विस्तृत रूपसे जलकेलि-रङ्ग वर्णन करके महाप्रभु विलाप करने लगे, और अजस्र आँसू बहाने लगे। उनके दोनों कमलनयनके कोणसे मानो प्रेम समुद्र बहने लगा। उनके मुँहसे केवल ये ही शब्द निकलते थे—

काँहा यमुना वृन्दावन ? काँहा कृष्ण गोपीगण ?
केन सुख भङ्ग कराइला ?

चै. च. अं. १८.१०६

महाप्रभुको अब बाह्यज्ञान हो गया है। वे अर्द्ध बाह्यावस्थामें कृष्णकी जलकेलिरङ्ग वर्णन कर रहे हैं। वह स्वरूपकी ओर सजल नयनसे देखकर केवल यही बोलते हैं—"तुम लोग मुझे यहाँ क्यों खींच लाये ?"

स्वरूप गोसाईं तब हाथ जोड़कर रोते-रोते आदिसे अन्त तक समस्त वृत्तान्त महाप्रभुसे कहने लगे—अन्तमें बोले, "तुम मूर्च्छाके बहाने प्रेमावेशमें वृन्दावन लीला दर्शन करो और हम लोग यहाँ तुम्हारे लिए व्याकुल होकर मरें।"

तुमि मूर्च्छा छले वृन्दावने देख क्रीड़ा ।
तोमार मूर्च्छा देखि सबे मने पाइ पीड़ा ।।

चै. च. अं. १८.११२

महाप्रभुकी समझमें तब आया कि वास्तविक बात क्या है ? तब उनको ज्ञात हुआ कि वे इस राज्यमें नहीं थे। उन्होंने अर्द्ध बाह्यावस्थामें जो अपूर्व प्रलाप गाया है, वह भी उनको पूरा-पूरा स्मरण नहीं है। तब वे महालज्जित भावसे मुँह नीचा करके धीरे-धीरे स्वरूप दामोदरसे बोले—

—"स्वप्न देखिलाङ—वृन्दावने ।
देखि—कृष्ण रास करे गोपीगण सने ।।
जलक्रीड़ा करि कैल वन्य भोजन ।
देखि आमि प्रलाप कैल—हेन लय मन ।।

चै. च. अं. १८.११४,११५

यह बात कहकर कुछ देर तक वे चुप रहे। उनके मनमें मानो आत्यन्तिक उत्कण्ठाका भाव था, श्रीमुखके भावसे वह सुस्पष्ट व्यक्त हो रहा था। उनका वदन शुष्क था, अधर प्रान्त मलिन हो रहा था, मानो मनमें कोई दारुण मर्म व्यथा निरन्तर जाग रही हो। इसी भावमें निजजनसे वेष्टित होकर वे बालुकामय समुद्र तटके ऊपर बैठे थे। स्वरूप दामोदर तथा रामरायने उनको खूब समझाया बुझाया, और धीरे-धीरे वासापर ले गये।

प्रेमावेगमें महाप्रभु चल नहीं पा रहे थे। उनका सर्वाङ्ग अलस और अवश हो रहा था, एक पग आगे बढ़ाकर मानो गिरे पड़ते थे। स्वरूप दामोदर और राम राय दोनों आदमी दोनों ओरसे पकड़कर बहुत कठिनाईसे उनको वासापर ले आये।

महाप्रभु जब इस प्रकार वासापर आये तो उस समय एक पहर दिन चढ़ गया था। उन्होंने प्रेमावेशमें समुद्रमें छलाँग मारी थी गत रातके प्रथम पहरमें। सारी रात बाह्यज्ञान शून्य होकर उन्होंने समुद्र जलमें वास किया था। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

शरज्ज्योत्स्ना सिन्धोरवकलनया जातयमुना-
भ्रमाद्धावन योऽस्मिन् हरिविरहतापार्णव इव ।
निमग्नो मूर्च्छालः पयसि निवसन् रात्रिमखिलां
प्रभाते प्राप्तः स्वैरवतु स शचीसूनुरिह नः ।।

चै. च. अं. १८.१

अर्थ—जो शरद् ज्योत्सनारश्मिसे युक्त समुद्रको अवलोकन करके यमुनाके भ्रममें द्रुतवेगसे गमन करके कृष्ण-विरह-तापरूप समुद्रमें गिरकर सारी

रात उसमें वास करके प्रातःकाल स्वरूपादि भक्तगणके द्वारा प्राप्त हुए थे, वे शचीनन्दन गौरहरि हमारी रक्षा करें।

सभी महाजनगण एक स्वरमें कह गये हैं कि श्रीगौराङ्ग-लीला अतिशय अद्‌भुत, अलौकिक और गम्भीर भावपूर्ण है। महाप्रभुका एक रातका यह समुद्रवास लीलारङ्ग महा अलौकिक और परम अद्‌भुत होनेपर भी ध्रुव सत्य है। इसे जिन लोगोंने अपनी आँखों देखनेका सौभाग्य प्राप्त किया था, वे लोग इसे सूत्र रूपमें वर्णन कर गये हैं। प्रेमके अवतार प्रेममय महाप्रभु रात दिन प्रेम-सिन्धुमें मग्न रहते थे, उनके लिए एक रात प्राकृत समुद्रमें वास करना कुछ असम्भव नहीं है। विश्वास और श्रद्धापूर्वक इन सब अलौकिक लीला-कथाओंका पाठ और श्रवण करनेसे मनमें परानन्द सुखका अनुभव होता है, तथा कुतर्क आदि आध्यात्मिक दुःखोंका अन्त हो जाता है, और जिसके मनमें घुणाक्षर न्यायसे अविश्वासकी छाया भी पड़ जाती है, उसके इह लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। यह भी कविराज गोस्वामीका कथन है—

अलौकिक लीलाते जार ना जन्मे विश्वास।
इह लोक परलोक तार हय नाश॥

चै. च. म. ७.१०८

उनसठवाँ अध्याय

महाप्रभुका प्रलाप वर्णन—श्रीअद्वैत प्रभुका तर्जा

(चतुर्थ चित्र)

मातृभक्त गणेर प्रभु हये शिरोमणि।
संन्यास करिया सदा सेवेन जननी॥

चै. च. अं. १९.१३

प्रभुकी मातृ-भक्ति

महाप्रभुकी मातृभक्तिके विषयमें श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्य भागवतमें जो लिखा है, उससे गौरभक्त कृपालु पाठकवृन्द अवश्य अवगत होंगे। उन्होंने दामोदर पण्डितसे कहा था कि,

जत किछु विष्णुभक्ति सम्पत्ति आमार।
आइर प्रसादे सब—द्विधा नाहि आर॥
ताहान् इच्छाय सुजि आछों पृथिवीते।
तान ऋण आमि कभू ना पारि शुधिते॥

चै. भा. अं. १०.१०६,१०७

एक और स्थानमें महाप्रभुने अपनी जननीको सम्बोधन करके कहा है। यथा श्रीचैतन्य भागवतमें—

प्रभु बोले "विष्णु भक्ति जे किछु आमार।
केवल एकान्त सब प्रसादे तोमार॥
कोटि दास दासेरो जे सम्बन्ध तोमार।
से जन प्राण हैते बल्लभ आमार॥
वारेको जे जन तोमा करिबे स्मरण।
तार कभू नहिबेक संसार बन्धन॥
सकल पवित्र करे जे गंगा तुलसी।
ताना ओ हवेन धन्य तोमारे परशि॥
तुमि जत करियाछ आमार पालन।
आमार शक्तिये ताहा ना हय शोधन॥
दण्डे-दण्डे जत स्नेह करिला आमारे।
तोमार सद्गुण्य से ताहार प्रतिकारे॥

चै. भा. अं. ४.२५३-२५८

महाप्रभुके मातृभावका पूर्ण परिचय देनेपर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ हो जायगा। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने उनकी स्तुति करते हुए लिखा है—

वन्दे तं कृष्ण-चैतन्यं मातृभक्तलिरोमणिम्।

चै. भा. अं. १९.१

महाप्रभुकी अब कृष्णप्रेम विकारावस्था थी। कृष्णनाम और कृष्णलीला रसके सिवा वे अन्य कोई बात जानते ही नहीं। किन्तु मातृभक्त-शिरोमणि महाप्रभु इस अवस्थामें भी अपनी जननीको नहीं भूल पाते। इस समय दिनरात उनकी कृष्णप्रेमोन्माद दशा रहती है। ऐसी अवस्थामें भी उनकी स्नेहमयी जननीकी परम पवित्र स्मृति हृदयमें जागरूक रहती है।

वे मातृस्नेह विह्वल चित्तसे अपने परम प्रिय अन्तरङ्ग भक्त जगदानन्दको एकान्तमें बुलाकर एक दिन रो-रोकर चुपकेसे बोले, "जगदानन्द! एकबार तुम नवद्वीप जाओ, मेरी स्नेहमयी जननीको मेरा नमस्कार कहकर कुशल संवाद दे आओ।" प्रभु प्रतिवर्ष अपनी शोकातुरा जननीको देखनेके लिए जगदानन्दको नवद्वीप भेजते थे। गौराङ्गैकनिष्ठ जगदानन्द तत्काल महाप्रभुका आदेश पालन करनेके लिए प्रस्तुत हो जाते थे।

मातृभक्ति चूड़ामणि महाप्रभु जगदानन्दके दोनों हाथ पकड़कर सजल नयन हो गद्गद स्वरमें उनसे बोले—"मातासे कहना कि तुम मेरा स्मरण करती हो, मैं भी नित्य आकर तुम्हारी चरणवन्दना करता हूँ। जिस दिन तुम्हारी इच्छा मुझे भोजन करानेकी होती है, उस दिन मैं अवश्य भोजन भी करता हूँ। तुम्हारी सेवा छोड़कर मैंने पागलपनमें संन्यास लेकर बड़ा गलतीका काम किया। मेरे इस अपराधको क्षमा करना। मैं तो तुम्हारा पुत्र सदा तुम्हारे आधीन हूँ। तुम्हारी आज्ञासे ही नीलाचलमें रहता हूँ। जब तक जीऊँगा, तुमको छोड़ नहीं सकता।"

महाप्रभुका यह कथन उनकी प्रगाढ़ मातृभक्तिका परिचायक है, यह कथन बहुत निगूढ़ रहस्यसे पूर्ण है। वे माताकी आज्ञासे नीलाचलमें निवास करते थे। नीलाचल नवद्वीपसे बहुत दूर था। महाप्रभु बोले, "माँ से कहना कि मैं नित्य जाकर उनकी चरणवन्दना करता हूँ।" यह किस प्रकार सम्भव है? इसका विचार करें।

श्रीगौराङ्गको जो साक्षात् भगवान्‌के रूपमें मानते हैं और विश्वास करते हैं, उनको मैं इस सम्बन्धमें कुछ कहना नहीं चाहता। श्रीभगवान्‌की ऐसी शक्ति है। इस ऐसी शक्तिके बलसे वे सब कुछ कर सकते हैं। उन्होंने शत-शत लौकिक लीलाएँ की हैं, कर रहे हैं और करेंगे। उनकी लीलाओंकी सीमा नहीं है। जो लोग श्रीगौराङ्ग प्रभुको श्रीभगवान्‌के अवतारके रूपमें विश्वास नहीं

करते, जिनको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है, उनको मैं कुछ कहना नहीं चाहता ।

हिन्दू मात्रका विश्वास है कि सिद्ध पुरुष सूक्ष्म देहमें योगबलसे जहाँ तहाँ विचरण कर सकते हैं। श्रीगौराङ्ग प्रभुको जिन्होंने भक्तभावमें ग्रहण किया है, वे भी अवश्य ही विश्वास करते हैं कि महाप्रभु साधारण भक्त न थे, वे भक्तावतार थे। सिद्ध भक्तका स्थान मुक्त पुरुषसे ऊपर है। उनके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है; अतएव महाप्रभुके वचन पूर्ण विश्वास करके उनके अलौकिक लीलारङ्गको स्थिर चित्तसे चिन्तन करनेपर उनकी कृपासे सब कुछ हृदयङ्गम हो जायगा ।

उन्होंने कहा है कि, वे नित्य नीलाचलसे नवद्वीप जाकर अपनी स्नेहमयी जननीकी चरण-वन्दना किया करते हैं। इस बातमें सन्देह करनेका कोई हेतु नहीं है। पहले कहा जा चुका है कि लीलामय महाप्रभु शचीमाताके हाथकी रसोई अन्न-व्यञ्जन, शाक आदि ठाकुरका भोग नवद्वीपमें जाकर भोजन करते थे। शचीमाता अनुरागमें भरकर अपने निमाई-चाँदको याद करती थी, और व्याकुल चित्तसे रोकर कहती थी—"अहा ! मेरा निमाई मोचाका घण्टा बहुत पसन्द करता था, अँचार उसे बहुत प्रिय था, मेरे बाछाकी शाकमें बड़ी अनुरक्ति थी। वह सब मैंने तैयार किया है, ठाकुरको भोग लगाया है, परन्तु हाय ! मेरा सोनेका बच्छा निमाई कहाँ है ?" इतना कहकर शचीमाता आँखें मूँदकर ध्यान करने लगती और सोचतीं कि उनका निमाई चाँद यदि घरपर होता तो बड़ा अच्छा होता ।

इधर निमाई चाँद नीलाचलमें बैठकर स्नेहमयी जननीकी अनुरागपूर्ण प्राणकी आकांक्षाकी बात सुन रहे थे, मातृस्नेहसे उनके प्राण रो उठे, वे अब स्थिर न रह सके, उनको नवद्वीप जाना पड़ा, स्नेहमयी जननीके हाथके प्रेमसे राँधे हुए अन्न-व्यञ्जन आदिको भोजन करना पड़ा। नवद्वीप नीलाचलसे बहुत दूर है, पैदल जानेसे बहुत दिन लग जाते। परन्तु जाना था उसी क्षण। क्या करते – महाप्रभुको ऐश्वर्य दिखलाना पड़ा ।

नरवपु धारण करके जब श्रीभगवान् भूतलमें अवतीर्ण होते हैं, नरलीलाका रङ्ग दिखलाते हैं तो ऐश्वर्य प्रदर्शित करनेकी उनकी बहुत इच्छा नहीं होती। परन्तु बाध्य होकर उनको कभी-कभी ऐश्वर्य दिखलाना पड़ता है। यह ऐश्वर्य क्या वस्तु ?—यह सब जानते है। भगवान्का ऐश्वर्य उनकी ऐसी शक्ति है। उनके विशिष्ट भक्तोंके भी ऐश्वर्य होते हैं, उनका नाम है भक्तशक्ति। भक्त श्रीभगवान्का सेवक है, भगवान्की शक्तिमें निहित है। गुरुके बलसे जैसे शिष्य बलवान् होता है, भगवान्की ऐसी शक्तिके बलसे भक्त भी अलौकिक शक्तिशाली बनता है। भगवान्की ऐसी शक्तिका प्रमाण जगत्के सब लोगोंमें पाया जाता है। उनके ऐश्वर्यका प्रभाव सबको ज्ञात है। साधु-महात्मागणके प्रताप और प्रभावको अंग्रेज लोग भी मानते हैं, तब इसमें फिर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं रह जाता ।

शचीमाता अपने अति स्नेह पात्र निमाई चाँदके सुन्दर मुखचन्द्रका चिन्तन करके जब ध्यानमें बैठती थी, तब उनका मातृभक्त-शिरोमणि पुत्ररत्न नीलाचलसे आकर अनुरागमें भरकर सब कुछ भोजन करता था, परन्तु कोई देख नहीं पाता था। शचीमाता आँखें खोलकर देखती थी कि ठाकुरका भोग कोई खा गया है। वे इधर-उधर देखती थी, परन्तु कोई कुत्ता-बिल्ली भी वहाँ नहीं दीखते थे। कुछ भी न देखकर उनको बड़ी चिन्ता होती थी, वे सोचती थीं कि निश्चयपूर्वक कुत्ता ही

ठाकुरका भोग नष्ट कर गया है। पुत्र विरह कातरा वृद्धा शचीमाता अपनी पति विरहिणी दुःखिनी पुत्रवधूकी सहायतासे पुनः रन्धन करके भोग लगाती थी। तब उनका मन शान्त होता था।

ये सब बातें आध्यात्मिक रहस्यसे पूर्ण है। पहले महाप्रभुके इस प्रकारके अलौकिक लीलारङ्ग विस्तारपूर्वक वर्णित हुए हैं, श्रीभगवान् अपने भक्तके नितान्त अधीन हैं और वे भक्तवशी हैं, यह बात उन्होंने बारम्बार अपने श्रीमुखसे कही है। भक्तबाञ्छापूर्ण करनेके लिए वे नीलाचलसे नवद्वीप आते थे, इसमें अविश्वास करनेका कोई हेतु नहीं है।

मातृभक्त शिरोमणि महाप्रभु अपनी माताके लिए जगदानन्द पण्डितके हाथ जगन्नाथजीका प्रसादी वस्त्र तथा नाना प्रकारके पदार्थ भेजते थे। अतिशय यत्न करके वे स्वयं अपने हाथोंसे सब प्रसाद वस्त्रमें बाँध देते थे और अपने मनकी सारी बातें कहकर उनको भेजते थे।

अद्वैत प्रभुका तर्जा

जगदानन्द पण्डित महाप्रभुके श्रीचरणकी वन्दना करके प्रसाद आदि लेकर नवद्वीप रवाना हो गये। यथा समय नवद्वीप पहुँचकर शचीमाताको उनके पुत्रका कुशल समाचार सुनाकर उनके भेजे वस्त्र-प्रसाद आदिको प्रदान किया। नवद्वीपमें पण्डित जगदानन्दने एक महीना रहकर शची-विष्णुप्रियाको गौर कथा सुनायी। उसके बाद शान्तिपुरमें जाकर उन्होंने श्रीअद्वैत प्रभुकी चरण वन्दना करके विदा होनेकी प्रार्थना की। गौर-आना–गोसाईंने जगदानन्द पण्डितसे कहा—

"प्रभुरे कहियो आमार कोटि नमस्कार।
एइ निवेदन ताँर चरणे आमार॥
बाउल के कहिओ—लोक हइल बाउल।
बाउल के कहियो—हाटे ना विकाय चाउल॥
बाउल के कहियो—काजे नाहिक आउल।
बाउल के कहियो—इहा करियाछे बाउल॥" *

चै. च. अं. १९.१८-२०

जगदानन्द पण्डित इसका कुछ भी अर्थ न समझ सके। वे इसे सुनकर केवल हँस पड़े। उन्होंने सोचा कि यह केवल एक पहेली मात्र है। उनके मनमें बिल्कुल ही यह न आ सका कि श्रीअद्वैत प्रभुका तर्जा—यह पहेली—गूढ़ रहस्यसे पूर्ण है। परन्तु उन्होंने इसे याद कर लिया और नीलाचल लौटकर महाप्रभुको यह बात कह सुनायी। महाप्रभु यह तर्जा सुनकर मुस्कराये और मृदु स्वरमें बोले, "श्रीअद्वैताचार्यकी जो आज्ञा है, उसे मानना पड़ेगा।" इतना कहकर उन्होंने मौन धारण कर लिया।

स्वरूप गोसाईं वहाँ उपस्थित थे। उनके मनमें इस तर्जाके सम्बन्धमें कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। उन्होंने महाप्रभुसे पूछा, "हे प्रभु! आचार्यके इस तर्जाका अर्थ मैं समझ नहीं सका, आप कृपा करके समझा दे।" प्रभुने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"अद्वैताचार्य बड़े भारी पूजक हैं। आगम शास्त्रके, विधि-विधानके जानकार हैं। उपासनाके लिए

* भावार्थ—बातुल (श्रीकृष्णप्रेमोन्मत्त) महाप्रभुसे कहना कि लोग प्रेममें उन्मत्त हो गये हैं, और प्रेमके हाटमें अब प्रेम रूपी चावल बिकनेकी गुञ्जायश नहीं है। उनको यह भी कहना कि आउल अर्थात् आकुलता प्रेम वितरण कार्यमें व्यस्तता नहीं रही। यह भी कहना कि प्रेमोन्मत्त तुम्हारे अद्वैतने यह बात कही है। इसका अर्थ यह हैं कि महाप्रभुके आविर्भावका तात्पर्य पूरा हो गया, अब उनकी जैसी इच्छा हो, वही करें।

देवताका आवाहन करते हैं, पूजाके समय उनका निरोध करके रखते हैं, पूजाके बाद उनका विसर्जन कर देते हैं। आचार्य महायोगेश्वर हैं, तर्जा कहनेमें समर्थ हैं। मैं भी उनके तर्जाका अथ नहीं समझ पाया।"

सर्वज्ञ महाप्रभुके श्रीमुखसे इस प्रकारकी बात सुनकर उपस्थित सब भक्तवृन्द परम विस्मित हुए। स्वरूप गोसाईं कुछ अन्यमनस्क हो उठे। क्योंकि महाप्रभुने एक विकट बात कही थी। वह बात थी, "श्रीअद्वैताचार्य साधक चूड़ामणि हैं, वह उपासनाके लिए अपने इष्टदेवका आह्वान करते हैं, कुछ देर पूजा करते हैं और पूजाके समाप्त होने पर विसर्जन कर देते हैं। स्वरूप दामोदर गोसाईंके जैसे सुचतुर रसज्ञ, गौराङ्ग तत्त्वविद् पण्डितके लिए महाप्रभुके श्रीमुखके वाक्यका भावार्थ हृदयङ्गम करना विशेष कठिन न जान पड़ा। श्रीअद्वैत प्रभु हमारे गौर-आना-गोसाईं हैं। वे गोलोक-पति श्रीगौराङ्ग प्रभुको गोलोकसे भूतलपर क्यों लाये थे, यह भी स्वरूप दामोदर जानते थे। श्रीगौराङ्ग चरणमें तुलसी-गङ्गाजल देकर उन्होंने उपासनाकी थी। तो क्या अब विसर्जनका समय आ गया? इस चिन्ताने स्वरूप गोसाईंको पागल कर दिया, वे अनमना हो गये। स्वरूप दामोदरका भाव अन्य भक्तगण न समझ सके। परन्तु सर्वज्ञ महाप्रभुने समझा, और समझकर ही मौनावलम्बन किया।

महाप्रभुका द्विगुण कृष्ण-विरह

जिस दिन यह बात हुई, उसी दिनसे महाप्रभुकी कृष्ण-विरह-दशा दूनी बढ़ गयी। श्रीकृष्णके मथुरा गमनके भावकी अचानक उनके हृदयमें स्फूर्त्ति हो गयी। तब उनकी जो अवस्था हुई, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये—

उन्माद-प्रलाप चेष्टा करे रात्रि-दिने।
राधाभावावेशे विरह बाड़े क्षणे क्षणे॥

आचम्बिते स्फुरे कृष्णेर मथुरा-गमन।
उद्घूर्णा दशा हैल उन्माद लक्षण॥

चै, च. अं. १९.३०,३१

नाना प्रकारकी विलक्षण विवश चेष्टाको उद्घूर्ण कहते हैं। श्रीकृष्णके मथुरा-गमनकी बात सुनकर श्रीराधिकाजीको यह भाव हुआ था। श्रीराधाभावद्युति सुवलित महाप्रभुका आज यही भाव है। दिन तो किसी प्रकार कट गया। रातमें प्रभुके प्रेम-विकार-भावमें वृद्धि हुई। महाप्रभुको स्वरूप और रामरायने बहुत ही अधीर और कातर देखा। प्रभुने रामानन्द रायके गलेमें सुवलित बाहुयुगल वेष्टन करके स्वरूप गोस्वामीकी ओर सजल करुण-नयनसे देखकर उन्मादकी दशामें ललित माधव नाटकका यह श्लोक पढ़ा—

क्व नन्दकुलचन्द्रमाः क्व शिखिचन्द्रकालंकृतिः
क्व मन्द्रमुरलीरवः क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युतिः।
क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधी-
र्निधिर्मम सुहृत्तमः क्व बत हन्त वा धिग्विधिम्॥

ल. मा. ना. ३.२५

अर्थ—कृष्ण प्रेमोन्मादिनी श्रीराधिका कह रही हैं—"हे सखि! नन्दकुलचन्द्रमा मेरे कृष्ण कहाँ हैं? वह शिखिपुच्छालङ्कृत मेरे श्यामसुन्दर कहाँ हैं? गम्भीर मुरली-ध्वनि करने वाले कहाँ हैं? वे इन्द्रनीलमणिके समान श्यामल अङ्गकान्ति वाले कहाँ हैं? वे रास-रस ताण्डवी कहाँ है? हे सखि! मेरी प्राण रक्षाकी महौषधि कहाँ है? हाय! हाय! मेरे सुहृत्तम अमूल्य रत्न कृष्ण कहाँ हैं? ऐसे प्रियतमके साथ जिसने मेरा वियोग कराया हाय! उस विधिको शत-शत धिक्कार है!

महाप्रभुके प्रलापपूर्ण इस श्लोककी व्याख्या कविराज गोस्वामीकी भाषामें श्रद्धापूर्वक श्रवण करें—

व्रजेन्द्र कुल-दुग्ध-सिन्धु, कृष्ण ताहे पूर्ण इन्दु,
जन्मि कैल जगत् उजोर।

कान्त्यामृत जेबा पिये, निरन्तर पिया जिये,
ब्रज जनेर नयन-चकोर ॥
सखि हे ! कोथा कृष्ण कराह दर्शन ॥
क्षणेक जाँहार मुख, ना देखिले फाटे बुक,
शीघ्र देखाओ, ना रहे जीवन ॥ध्रु०॥
एइ ब्रजेर रमणी, कामार्क तप्त कुमुदनी,*
निज करामृत दिया दान।
प्रफुल्लित करे जेइ, काँहा मोर चन्द्र सेइ,
देखाओ सखि ! राख मोर प्राण ॥
काँहा से जुड़ाय ठाम, शिखिपिच्छेर उड़ान,
नवमेघे जेन इन्द्रधनु।
पीताम्बर तड़िद् द्युति, मुक्तामाला बक पाँति,
नवाम्बुद जिनि श्यामतनु ॥
एक बार जार नयने लागे, सदा तार हृदये जागे,
कृष्ण तनु जेन आम्र आठा।
नारीर मने पैशे हाय, यत्ने नाहि बाहिराय,
तनू नहे—सेयाकुलेर काँटा ॥**
जिनिया तमाल द्युति इन्द्रनील सम कान्ति,
जेइ कान्ति जगत माताय।
श्रृंगार-रस ताते छानि, ताते चन्द्रज्योत्स्ना-सानि,
जानि विधि निरमिल ताय ॥
काँहा से मुरली ध्वनि, नवाभ्र गर्जित जिनि,
जगदाकर्षे श्रवण जाहार।
उठि धाय ब्रजजन, तृषित चातकगण,
आसि पिये कान्त्यमृत धार ॥

* गोपीगणका काम सूर्य तुल्य है। गोपी हृदय कुमुदनी तुल्य है। रविकिरणसे तप्त कुमुदनीके समान कृष्णकाम तप्त गोपी हृदय है। निज-कृष्ण, कर-किरण। कर-रूपी अमृत। कृष्णचन्द्रकी किरण अथवा कृष्णपाणि रूप चन्द्र।

** सेवाकुलका काँटा एक बार लगनेपर छुड़ाना कठिन होता है। इसी कारण कृष्ण तनुको सियाकुलके काँटेसे तुलनाकी गयी है।

मोर सेइ कालानिधि, प्राणरक्षार महौषधि,
सखि ! मोर तेंहो सुहृत्तम।
देह जीये ताहा बिने, धिक् एइ जीवने,
विधिर करे एत बिडम्बन।
जे जन जीते नाहि चाय, तारे केन जीयाय,
बिधि प्रति उठे क्रोध-शोक।
विधिर करे भर्त्सन, कृष्णे देय ओलाहन,
पड़ि भागवतेर एक श्लोक ॥
चै. च. अं. १९.३४-४२

उन्मत्तके समान इस प्रकार प्रलाप करते हुए महाप्रभुने पुनः क्रोधमें भरकर श्रीमद्भागवतके एक श्लोकी आवृत्ति की। यह श्लोक व्रजगोपीगणकी उक्ति है। यथा,

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया
संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं
विचेष्टितं तेऽर्भक चेष्टितं यथा ॥
श्रीम. भा. १०.३९-१९

अर्थ—हे विधाता ! तुम्हारे हृदयमें लेशमात्र भी दया नहीं है। दया रहनेपर जीवोंकी परस्पर सख्य और प्रेम भावमें जोड़कर बासना पूर्व ही उनको विच्छिन्न क्यों करते ? इससे जान पड़ता है कि तुम्हारी क्रिया बालचेष्टाके समान निरर्थक है।

महाप्रभुके हृदयमें इस समय विधाताके ऊपर बड़ा क्रोध था। उनके दोनों कमल-नयन क्रोधसे लाल हो रहे थे। उन्होंने भ्रुकुटि वक्र करके कठोर और परुष भावमें विधाताको जो कुछ कहा, उसे पूज्यपाद कविराज गोस्वामीकी भाषामें श्रवण करें—

"रे विधि !
ना जानिस प्रेमधर्म, व्यर्थ करिस् परिश्रम,
तोर चेष्टा बालक समान।

तोर यदि लाग पाइये, तबे तोरे शिक्षा दिये,
आर हेन ना करिस् विधान ।।
अरे विधि ! तों बड़ निठुर ।
अन्योन्य दुर्लभ जन, प्रेमे कराञा सम्मिलन,
*अकृतार्थान् केने करिस् दूर ?।।ध्रु०।।
अरे विधि ! अकरुण, देखाइया कृष्णानन,
नेत्र-मन लोभाइलि आमार ।
क्षणेक करिते पान, काड़ि निलि अन्यस्थान,
पाप कैले दण्ड-अपहार ।।
अक्रूर करे तोमार दोष, आमाय केन कर रोष,
इहो यदि कह दुराचार ।
तुइ अक्रूर मूर्ति धरि, कृष्ण निलि चूरि करि,
अन्येर नहे ऐछे व्यवहार ।।
आपनार कर्म दोष, तोरे किवा करि रोष,
तोय मोय सम्बन्ध विदूर** ।
जे आमार प्राणनाथ, एकत्र राहि जार साथ,
सेइ कृष्ण हइल निठुर ।।
सब त्यजि भजि जारे, सेइ आपन हाथे मारे,
नारीबधे कृष्णेर नाहि भय ।
तार लगि आमि मरि, उलटि ना चाहे हरि,
क्षण मात्रे भाङ्गिल प्रणय ।।
कृष्णे केन करि रोष, आपन दुर्दैव-दोष,
पाकिल मोर एइ पापफल ।
जे कृष्ण मोर प्रेमाधीन, तारे कैल उदासीन,
एइ मोर अभाग्य प्रबल ।।
चै. च. अं. १९.४३-९९

महाप्रभु कृष्णविरहमें अधीर होकर इस प्रकार प्रलाप कर रहे हैं, और उन्मत्तके समान एक-एक बार जोरसे अपनी छाती सिरपर कराघात करते हैं। स्वरूप दामोदर और राम राय नाना उपायोंसे उनको आश्वासन दे रहे हैं, परन्तु उससे कुछ फल निकलता न देखकर वे बहुत उद्विग्न हो रहे हैं। उस समय आधी रात हो चुकी है। स्वरूपने बहुत सोच समझकर एक पद प्रारम्भ कर दिया—

राइ तुमि जे आमार गति ।
तोमार कारणे, रसतत्त्व लागि,
गोकुले आमार स्थिति ।।
निशि दिशि वसि, गीत आलापने,
मुरली लइया करे ।
यमुना सिनाने, तोमार कारणे,
बसि थाकि तार तीरे ।।
तोमार रूपेर, माधुरी देखिते,
कदम्ब तलाते थाकि ।
शुन हे किशोरी, चारि दिक हेरि,
जेमन चातक पाखी ।।
भवरूप गुण. मधुर माधुरी,
सदाइ भावना मोर ।
करि अनुमान, सदा करि गान,
तव प्रेमे हैया भोर ।
भजन साधन. जाने जेइ जन,
ताहारे सदय विधि ।
आमार भजन, तोमार चरण,
तुमि रसमयी निधि ।।

इस पदको सुनकर कृष्ण-विरह-जर्जर महाप्रभुका मन कुछ सुस्थिर हुआ। वे स्वरूप दामोदरका गला पकड़कर रोते-रोते पूछने लगे—"स्वरूप ! बतलाओ तो, क्या वस्तुतः यह बात कृष्णके सरल प्राणकी सरल कथा है। कृष्ण तो

* तृप्त होते न होते ।

** विदूर=अति दूर ।

कपटशिरोमणि हैं। उनकी बातमें तो विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि कृष्ण सरल होते यदि उनकी यह बात मनसे निकली होती, तो वे कदापि इतने दिन श्रीमतीको भूलकर रह नहीं सकते थे।" इतना कहकर महाप्रभु चुप हो गये। उनकी इस समय अर्द्ध बाह्यावस्था थी। वे अपनेको राधा समझ कर पहले जो प्रलापकर रहे थे, वह भाव अब नहीं है। इसी कारण उनके श्रीमुखसे श्रीमतीकी बात निकली।

उनकी अवस्था अपेक्षाकृत कुछ ठीक देखकर स्वरूप गोसाईने उनको गम्भीरामें ले जाकर शयन कराया। रामानन्द राय भी अपने घर चले गये तथा स्वरूप दामोदर अपनी कुटीरमें जाकर सोये। गोविन्द गम्भीराके द्वार पर सो गये लेकिन वे अकेले सोकर निश्चिन्त न हो सके, क्योंकि महाप्रभुकी अवस्था उस दिन अच्छी नही जान पड़ती थी। उन्होंने स्वरूपसे कहा, "ठाकुर! तुम भी आज मेरे साथ द्वार पर शयन करो।" स्वरूप दामोदर आकर द्वार पर सो गये।

गम्भीरा प्रकोष्ठमें प्रभुकी दयनीय स्थिति

महाप्रभु गम्भीराके भीतर प्रकोष्ठमें शयन करके पहले श्रीमुखसे प्रेमगद्गद स्वरसे मन्द-मन्द नाम सङ्कीर्तन करने लगे। उनका मन आज अत्यन्त चञ्चल था, हृदय बड़ा बिरहाकुल था, शरीर प्रेमावेशमें अवश हो रहा था। उनके प्राण मानो छटपटा रहे थे, मन प्रेमावेशमें मस्त था। वे कृष्ण विरहानलमें दग्ध हो रहे थे। वे अब सोये न रह सके। स्वरूप दामोदर और गोविन्द कुछ तन्द्रामें आ गये थे। महाप्रभु कृष्णविरह ज्वालामें व्याकुल होकर उठ बैठे। बैठकर 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!' कहकर रुदन करने लगे। नयन जलसे उनका वक्षः स्थल प्रवाहित हो उठा, भूतल कर्दमाक्त हो गया। वे बैठ न सके, उठकर खड़े हो गये। अँधेरेमें गम्भीराके प्रकोष्ठका द्वार ढूँढते समय दीवालसे टकराकर कृष्ण प्रेमोन्मत्त महाप्रभुके श्रीवदनमें चोट लग गयी, परन्तु इस पर उनका तनिक भी ध्यान नहीं गया। वे प्रेमावेगमें उस दीवालसे बारंबार बदन घर्षण करने लगे। उनकी नाक, श्रीमुख, और गण्डस्थलमें अनेक क्षत हो गये। अजस्त्र रक्तकी धार बह चली, इसका कोई ज्ञान न रहा, किसी ओर दृष्टि न गयी। सारी रात महाप्रभु यही हृदय-विदारक कार्य करते रहे। इसके बाद वे हताश होकर बैठ गये, उनके मुँहसे गों-गों शब्द सुनायी पड़ने लगा।

स्वरूप दामोदरने गों-गों सुनकर उठकर दीप जलाया गोविन्द और वे दीप लेकर भीतर गये, वहाँ महाप्रभुकी जो अवस्था देखी, उससे उनका हृदय विदीर्ण हो गया, हृत्पिण्ड मानो टुकड़े-टुकड़े हो गया। महाप्रभुके श्रीमुखकी ओर देखकर नेत्रजलसे उन दोनोंका वक्षःस्थल प्लावित हो उठा दोनों ही आँखें मूँद कर बालकके समान उच्च स्वरसे रोने लगे। रोते-रोते उन्होंने महाप्रभुको पकड़कर भूतल पर शयन कराया। नाना प्रकारकी सेवा-शुश्रुषाके द्वारा उनको कुछ स्वस्थ किया। वे दोनों अत्यन्त सन्तप्त होकर मन ही मन सोचने लगे, कि हमारी निद्रा ही काल बन गयी। यदि हम जागते होते तो महाप्रभुकी यह दशा न होती, हमारा मर जाना अच्छा है। इतना कहकर वे दोनों दुःख और क्षोभसे अपना सिर पीटने लगे।

महाप्रभुके कुछ स्वस्थ होने पर स्वरूपने रोते-रोते पूछा, 'हे प्रभु! तुम्हारी यह क्या दशा है, किस कारण तुमने अपने श्रीमुख-मण्डलको इस प्रकार क्षत-विक्षत कर दिया?" उत्तरमें यहाँ प्रभुने धीरेसे कहा—"स्वरूप कृष्ण-विरहके उद्वेगमें घरसे बाहर निकलनेकी शीघ्रतामें, द्वार खोज न

पानेसे चारों ओर दिवालमें टक्कर लगनेसे मुख पर चोट लगकर रक्त बहने लगा।"

प्रभुके श्रीमुखकी यह बात सुनकर स्वरूप दामोदर और गोविन्दके मनमें असीम दुःख हुआ। वे दोनों आदमी मानसिक दुःखसे क्षुब्ध होकर पुनः अपना सिर पीटने लगे। क्यों नहीं उन्होंने सारी रात जाग कर काटी? क्यों नहीं वे लोग महाप्रभुके पास सोये? क्यों नहीं घरमें दीप जलाकर रक्खा? उनकी इस प्रकारकी नाना त्रुटियोंके कारण ही महाप्रभुकी यह दशा हुई, यह सोचकर वे लोग हताश हो गये।

जो हो गया, उसमें उनका कोई वश न था। महाप्रभु अब कृष्ण-विरहज्वालामें जो कुछ कह रहे हैं उसमें उन्मादके लक्षण स्पष्ट दीखते हैं। उनको रातमें अकेले घरमें रखना कदापि ठीक नहीं, स्वरूप गोसाईं यही विचार करने लगे। महाप्रभु चुप थे, उनको शय्या पर शयन कराया गया था, परन्तु वह शय्या उनको कण्टक स्वरूप लग रही थी। वह करवट बदल रहे थे, और बारंबार लम्बी साँस छोड़ रहे थे।

किसी प्रकार रात बीती, प्रभात हुआ। भक्तगण आये, आकर उन्होंने जो देखा, उस से उनका हृदय शतधा विदीर्ण हो गया। आँखें छल छला गयीं। वे सब एक साथ हा-हाकार करने लगे। स्वरूप दामोदरने सारी बात खोलकर उनसे कह दी और साथ ही यह भी कहा कि उनमें-से एक आदमी रात को महाप्रभुके पास भीतर प्रकोष्ठमें रहे, इसका प्रबन्ध होना चाहिये। महाप्रभुने भीतर किसीके भी रहनेका निषेध किया है, अतएव उनको समझाना पड़ेगा। सब भक्तोंने मिलकर महाप्रभुको समझाया, और बहुत कहा सुना। उन्होंने चुपचाप सब सुन लिया, परन्तु मौन हो रहे। 'मौनं सम्मतिलक्षणम्' समझकर सबने शङ्कर पण्डित को महाप्रभुके पास रातमें गम्भीरा मन्दिरमें शयन करनेकी व्यवस्था की।

शङ्कर पण्डितका सौभाग्य

शङ्कर पण्डित दामोदर पण्डितके छोटे भाई थे। वे भी उदासीन वृत्ति अवलम्बन करके अन्यान्य वङ्गीय भक्तोंके साथ नीलाचलमें महाप्रभुकी सेवाके व्रती बनकर रहते थे। उनकी गौराङ्गमें अविचल निष्ठा थी। महाप्रभु उनके ऊपर विशेष कृपा रखते थे। इसी कारण भक्तोंने उनको ही महाप्रभुके पास रहनेके लिए नियुक्त किया। इससे शङ्कर पण्डितके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वे महाप्रभुके पाद-पद्मकी सेवाके लिए लालायित थे। इस समय भक्तवृन्दकी कृपासे वे इस सर्वोच्च सेवाके अधिकारी बने। उनकी सौभाग्य लक्ष्मी उनकी ओर कृपादृष्टिसे देख रही थी।

शङ्कर पण्डित भक्तगणका आदेश प्राप्त करके तत्काल जाकर महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। महाप्रभु उस समय बैठे थे, मालाजप कर रहे थे, उनकी उस समय अर्द्ध बाह्यावस्था थी। वे गत रात्रिके काण्डसे आज बहुत लज्जित थे, अतएव सिर नीचा करके माला जप रहे थे, और अजस्र आँसू बहा रहे थे, शङ्कर पण्डितको चरणोंमें पड़ा देखकर श्रीवदन उठाकर उनके प्रति एक बार करुण दृष्टिसे देखा। तब शङ्कर पण्डितने हाथ जोड़कर साहसमें भरकर निवेदन किया—"हे प्रभु! मैं तुम्हारी चरण-सेवाका अधिकारी नहीं हूँ, तथापि तुम्हारी ही कृपासे आज मुझे भक्तोंका आदेश मिला है, आज मेरी चिर दिनोंकी साध मिट गयी, मेरा मानव जीवन सार्थक हो गया। मैं क्षुद्र जीव हूँ, तुम पतित पावन दयाके सागर, निखिल

जगत्के अधीश्वर हो। मैं तुमको क्या कह सकता हूँ? मेरे चिर जीवनकी आशा हे प्रभु तुम दया करके पूर्ण करो, श्रीमुखसे एक मधुर वचन उच्चारण करके कह दो कि इस दासको तुम अपने चरण-कमलकी सेवाका अधिकारी बनाओगे। इस देहको अपने अभय चरणोंमें स्थान दोगे।"

भक्तवत्सल महाप्रभु भक्तकी कातर भिक्षा और करुण प्रार्थनाको क्या बिना सुने रह सकते थे? इतने दुःखके उपरान्त भक्तकी कातर मनोवेदनासे उनका करुण हृदय उन्मथित हो गया। उन्होंने शङ्कर पण्डितके सिर पर कर-कमल रखकर धीरे-धीरे कहा, "शङ्कर! मैं इस समय अकथनीय व्याधिसे ग्रस्त हूँ, रातमें मुझे नींद नहीं आती, तुम मेरे पास रहोगे तो तुमको भी नींद नहीं आयगी, परन्तु जब तुम मेरे लिए यहाँ तक कष्ट सहनेके लिए तैयार हो तो मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है?" महाप्रभुका आदेश पाकर शङ्कर पण्डित प्रेमानन्दमें मत्त होकर बारंबार उनकी चरण धूलि लेने लगे, और भक्तोंसे अत्यन्त दीन भावसे अपने सौभाग्यकी बात कहने लगे।

आजसे शङ्कर पण्डितको गम्भीरा प्रकोष्ठमें महाप्रभुके साथ एकत्र रहनेकी अनुमति मिल गयी। वे महाप्रभुके अज-भव-वन्दित कमला-सेवित श्रीचरणको अपने शरीर पर धारण करके शयन करते थे इस कारण भक्तगणने इस महाभाग्यवान् शङ्कर पण्डितका नाम रखा 'प्रभु-पादोपधान'।*

यथा श्रीचैतन्य चरितामृतमें—

'प्रभु-पादोपधान' बलि तार नाम हैल।

चै. च. अं. १९.६६

शङ्कर पण्डितको आज जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह शिव-विरिञ्चिको भी नहीं प्राप्त होता। हे गौराङ्ग! शङ्करके प्रति तुमने जो कृपावृष्टि की, जगत्के सब जीवोंके ऊपर तुम उसी प्रकार कृपावृष्टि करो। कोई भी तुम्हारी इस कृपासे वञ्चित न हो। जगत्के जीवोंमें इस प्रकारका कृपा-भिखारी एक नगण्य कीटानुकीट यह जीवाधम ग्रन्थकार भी है। हे करुणानिधे! हे दयासिन्धो! हे जगदेकबन्धो! जगत्-जीवकी आशा और प्राणोंकी प्यास पूर्ण हो, तभी इस जीवाधमकी आशा और प्यास भी पूर्ण होगी। हे प्रभु! मैं जानता हूँ कि तुम बहुवल्लभ हो। सब जीवोंपर तुम्हारी समान दया होती है। सब जीवोमें यह जीवाधम एक क्षुद्रादपि क्षुद्र जीव है। इसके लिए क्या तुम्हारे कृपारूपी समुद्रका एक विन्दु प्राप्त होगा? इसके भाग्यमें क्या तुम्हारी श्रीचरण सेवा घटित होगी?

बहुत दिन पूर्व मैंने एक दिन मनके आवेगमें लिखा था—

गौराङ्ग बलिया, पराण त्यजिब,
चिरजीवनेर आश।
मिटावे कि ताहा, गौर-भगवान्
पुरावे कि अभिलाष?
कोन आशा नाइ, किछु ना चाइ,
(सुधु) चाइ एइ वरदान।
गौरांग बलिया, काँदिते-काँदिते,
जाय जेन मोर प्राण॥
गौर भकत! सकले कर गो,
(मोर) माथाय चरणाघात।

---

* श्रीमद्भागवत ३.१३.५ में श्रीविदुरजीके लिए भगवान्के 'चरणोपधानम्' उपाधिका प्रयोग किया गया है। टीकाकारोने स्पष्ट किया है कि जब भगवान् श्रीकृष्णने विदुरजीके यहाँ भोजनके उपरान्त विश्राम किया था, तब विदुरजीने उनके चरणोंको गोदमें धारण करके चरण-सेवा की थी, इसीलिए उनको भगवान्का 'चरणोपधान' कहा गया।

भक्त-पदाघाते, सबार समक्षे,
हय जेन प्राणपात ।।
गोरांग बलिया, जीवन त्यजिब,
ए बड़ उच्च आशा ।
हबे कि कपाले, एहेन सुदिन,
हरि जे करम नाशा ।।

भावके स्रोतमें पड़कर किनारासे दूर आ गया हूँ। लीलाकथामें रसभङ्ग हो गया है, कृपानिधि पाठकगणके चरणोंमें अपराधी हो गया, वे क्षमा करेंगे।

शङ्कर पण्डित किस प्रकार महाप्रभुकी पाद सेवा करते थे, इसका विस्तृत विवरण कविराज गोस्वामी लिख गये हैं, यथा—

शङ्कर करेन प्रभुर पाद-संवाहन ।
घुमाइआ पड़ेन, तैंछे करेन शयन ।।
उघाड़ अंगे पड़िया शङ्कर निद्रा जाय ।
प्रभु उठि आपन कान्था ताहारे ओड़ाय ।।
निरन्तर घुमाय शङ्कर शीघ्रचेतन ।
बसि पाद चापि करे रात्रि जागरण ।।
तार भये नारे प्रभु वाहिरे जाइते ।
तार भये नारे भित्ते मुखाब्ज घसिते ।।
चै. च. अं. १९.६७-७०

अर्थात् महाप्रभु जब निद्रा लेते, तब शङ्कर पण्डित धीरे-धीरे उनके चरणतलमें बैठकर उनके कमलासेवित चरण-कमलको अपनी गोदमें उठाकर पाद संवाहन करते थे। फिर जब अनावृत अङ्गसे शङ्कर कभी-कभी सो जाते थे तो भक्तवत्सल महाप्रभु अपने श्रीअङ्गके कन्थाको उनके वदनपर ओढ़ा देते थे। क्योंकि शीतकाल था, शङ्करको ठण्ड लगे—यह भक्तवत्सल महाप्रभु कैसे देख सकते थे ? शङ्करकी गाढ़ी निद्रा भी शीघ्र टूट जाती है। जैसे ही महाप्रभु अपनी कन्था शङ्करके शरीरपर डालते, वैसे ही शङ्कर उठकर बैठ जाते और पुनः महाप्रभुके श्रीअङ्गपर कन्था डालकर उनकी श्रीचरण-सेवामें लग जाते। इस प्रकार वे रातमें जागकर कृष्ण-विरहदशा ग्रस्त महाप्रभुकी सेवा करते थे। शङ्कर पण्डितके भयसे अब महाप्रभु गम्भीरासे निकल नहीं पाते, और दुःखलीलाभिनय भी नहीं हो पाता। भक्तगणने इसी हेतु शङ्करको रातमें महाप्रभुकी पद-सेवामें नियुक्त किया है। प्रभुके निद्रा जानेपर वह उनके चरणतलमें शयन करके उनके शिव विरञ्चि-अभिवाञ्छित दोनों चरणोंको अपने अङ्कमें धारण किये रहते हैं। इससे महाप्रभुको आराम होता है। इसी कारण भक्तोंने उनका नाम रक्खा है—"प्रभुका पादोपधान"

ग्रन्थकारके उद्‌गार

महाप्रभुकी गम्भीरा लीलाका रङ्ग अतिशय गम्भीर है। इन सब लीलाओंके रसास्वादनके अधिकारी कहीं कोटि-कोटि लोगोंमें विरले ही एक जन होंगे। किन्तु श्रीश्रीमहाप्रभुकी कृपासे अनेक गौरभक्त उच्चाधिकारी हो गये हैं। गम्भीराकी गौराङ्ग-लीला उनके ध्यानकी वस्तु है।

महाप्रभुकी गम्भीरा मन्दिरकी भीतसे श्रीमुखाब्ज घर्षण करनेकी लीलाका वर्णन करते-करते जीवाधम ग्रन्थकारका मन दुःख और रागसे अभिभूत हो गया है। इस दुःख और रागका कारण बताये बिना इसके मनका दुःख कम न होगा—ऐसा जान पड़ता है। इसी कारण इसको यहाँ लिख रहा हूँ।

महाप्रभुकी प्रेमोन्मादावस्था स्वरूप गोसाईं और गोविन्द दोनों ही विशेष रूपसे जानते थे। वे दोनों ही उस रात गम्भीरा मन्दिरके द्वारपर सोये थे, उनके शयन करनेका उद्देश्य था महाप्रभुकी सब प्रकारसे देख-भाल करना। स्वरूप गोसाईं

महाप्रभुके एक नितान्त निजजन थे, गोविन्द उनके विश्वासी भृत्य और श्रीअङ्ग रक्षक तथा सेवक थे। दोनों ही तरुण पुरुष थे, उनमें एक पण्डित शिरोमणि और दूसरे सेवक-चूड़ामणि थे। कर्त्तव्य कर्ममें उनकी त्रुटि देखकर जीवाधम ग्रन्थकारके मनमें दु:ख और राग (क्रोध) हुआ था। अनायास ही बारी-बारीसे वह लोग रातभर जाग सकते थे, दोनों आदमियोंके एक साथ सोनेका कोई प्रयोजन न था। जब दो आदमी उनके द्वार-रक्षक और देह-रक्षकके रूपमें नियुक्त थे तो उनका कर्त्तव्य था कि बारी-बारीसे जागकर महाप्रभुके श्रीअङ्गकी निरूपद्रवता पर ध्यान देते। इस कर्त्तव्य-कर्मकी त्रुटिके कारण महाप्रभुके श्रीवदनकी दुरवस्था देखकर आज जो उनको महा दु:ख हुआ, इसके उत्तरदायी वे स्वयं थे। क्योंकि महाप्रभुकी उन्माद दशा थी। उन्मादावस्थामें मनुष्य जो कुछ करता है उसका उत्तरदायी वह नहीं होता, उसके देहरक्षक और अभिभावक ही उत्तरदायी होते हैं। पुत्रको यदि उन्माद होता है तो माता-पिता उसे आँखोसे ओझल नहीं होने देते। पति यदि उन्मादग्रस्त होता है तो स्त्री उसे आँखसे दूर नहीं जाने देती, भाई यदि उन्मत्त होता है तो उसको ज्येष्ठ या कनिष्ठ भ्राता उसको एक घरमें डालकर सो नहीं सकते। महाप्रभु अपनी स्नेहमयी जननी तथा भक्तिमती स्त्रीको सदाके लिए दु:खके समुद्रमें डुबाकर, उनके कलेजेमें शूल मारकर, जीवके कल्याणके लिए, भक्तोंकी मङ्गलकामनासे अति दीनातिदीन भावमें कन्था, करङ्ग, कौपीन लेकर गम्भीराके मन्दिरमें श्रीकृष्ण भजन कर रहे है। अब उनके भजन-यज्ञकी पूर्णाहुतिका समय है। स्वयं भगवान् अपने प्राणोंको इस जगन्मङ्गल भजन यज्ञमें पूर्णाहुति देने बैठे है। आज यदि शचीमाता अपने पुत्रके पास होती तो क्या वह स्वरूप गोसाईंके समान सो सकती थी? आज यदि श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको उनके उन्माद ग्रस्त प्राणवल्लभकी सेवाका भार मिला होता तो क्या वह गोविन्दके समान सो सकती थी? स्वरूप गोविन्दने जो किया, वह कोई स्नेहमयी जननी या पतिव्रता रमणी नहीं कर सकती थी। इन लोगोंकी कर्त्तव्य-कर्ममें त्रुटिके कारण आज महाप्रभुकी जो दशा हुई, उसे यदि शचीमाता और विष्णुप्रियादेवी अपनी आँखोंसे देखतीं तो नि:सन्देह आत्म-हत्या कर लेती। महाप्रभु गृहस्थाश्रममें रहते तो उनकी यह दशा कदापि नहीं होती, यह निश्चित है। स्वरूप गोसाईं और गोविन्दके ऊपर इसी कारण जीवाधम ग्रन्थकारको अभिमान और क्रोध हो रहा है। क्रोधमें भरकर मैंने उनको बहुत कुछ कह डाला, अभी भी क्रोध बना हुआ है। यदि उनसे कभी भेंट हो जाती, यह सौभाग्य यदि श्रीविष्णुप्रिया वल्लभ कभी देते, तो मनमें बड़ी इच्छा है कि और भी दो बात मैं उनको सुना देता। वे लोग यदि इस पागलकी बातपर रुष्ट होते हैं, इसको अपराधी मानते हैं, इससे मुझे कोई दु:ख नहीं है, श्रीविष्णुप्रिया-वल्लभके दु:खसे इसका हृदय व्यथित है, शचीनन्दनका वह क्षतविक्षत रक्तधाराप्लुत श्रीमुखकमल इसके हृदयमें आज रह-रहकर उदय हो रहा है, यह दु:ख-स्मृति इसके अशान्त मनको अत्यन्त व्याकुल कर रही है, इसके हृदयमें कदापि शान्ति नहीं मिल रही है। स्वरूप गोसाईं! गोविन्ददास! आप लोगोंने यह क्या किया? आप लोगोंके मुखसे यह भयानक हृदय-विदारक बात सुननेको मिली। इस दु:खसे हृदय विदीर्ण हो रहा है। इस भीषण मर्मभेदी हृदय विदारक बातको सुननेके पहले ही मेरे सिरपर वज्र क्यों न गिर पड़ा? श्रीपाद रघुनाथ गोस्वामी! आपने यह भीषण प्राणान्तक लीला-कथा विस्तार पूर्वक क्यों लिखी? यह जीवाधम ग्रन्थकार क्षुद्रादपि क्षुद्र जीव है, आप लोगोंके चरण चिह्नका अनुसरण करते हुए आज व्यथित हो रहा है। अब सब लोग मिलकर इस जीवाधम ग्रन्थकारपर कृपा करें। इसके सिरपर चरणाघात करके इस जान बूझकर

किये हुए पापका प्रायश्चित विधान करें। क्योंकि मैंने आप लोगोंके समान पूज्यपाद महाजनगणके कार्यपर आक्षेप किया है, आप लोगोंको कुवाक्य कहे हैं। मैं आज उन्मादग्रस्त नर-पशु हूँ। प्रेमोन्मत्त महाप्रभुका प्रलाप वर्णन करते-करते मैं अपना प्रलाप वर्णन करने लगा। पागलका सात खून माफ होता है, पागलके इस उन्मत्त प्रलापका मर्न समझकर मुझको दण्ड देंगे। और कुछ अधिक मैं नही कहना चाहता। प्राणके आवेगमें, मनके विक्षेपमें, भावके उच्छवासमें भावग्राही महाप्रभुने केश पकड़कर जो कुछ कहलाया, मैं वही कह गया। अब तक जो बात बोलनेका किसीने साहस नहीं किया, मुँह खोलकर मनकी बात, प्राणकी मर्मव्यथा अब तक जिसे किसीने मुखसे या कागजपर कलमसे व्यक्त नहीं किया, उसे मैंने कर डाला। यह बड़ा ही दु:साहसका कार्य है, यह भी मैं समझता बूझता हूँ। जान-बूझकर यह कुकार्य मैंने किया है, यह अपराध सञ्चय किया है। श्रीविष्णुप्रियावल्लभ स्वयं इसका विचार करेंगे, इस अपराधके विचारका भार उनके ऊपर देकर भी मैं निश्चिन्त नहीं रह सकता। मनमें कुछ सन्देह होता है, मैं समझता हूँ कि इन्साफ भी कभी-कभी ठीक नहीं होता है। जूरीका निर्णय मैं पसन्द करता हूँ। गौर-वक्ष विलासिनी श्रीविणुप्रिया देवी, परमाराध्या जगत्-जननी शचीमाता तथा नदिया वासिनी वैष्णव-गृहिणीगणके साथ परामर्श करके इस अपराधका विचार करके श्रीविष्णुप्रियानाथ मुझको उपयुक्त दण्ड देंगे, यह मेरी एकान्त हार्दिक प्रार्थना है।*

जयगौर।

* ग्रन्थकारके प्रति—गम्भीरा-प्रकोष्ठमें महाप्रभुकी मुख-घर्षण लीला पढ़कर यही भाव मेरे भी मनमें आया जो आपके मनमें आया कि स्वरूप दामोदर तथा गोविन्दने अक्षम्य असावधानी की। आपका उलाहना पढ़कर प्रसन्नता हुई कि जिस बातके कहनेका किसीने आज तक साहस नहीं किया. वह आपने किया। सायंकालके समय यह अध्याय पढ़कर विश्राम करने गया तब श्रीमन्महाप्रभुकी प्रेरणा मिली कि "स्वरूप दामोदर और गोविन्द मेरे निज-जन हैं, उनपर किसी प्रकारका दोषारोपण करना उचित नहीं।" इसके बाद उनसे यह प्रेरणा मिली कि "जिनका संसारमें अपना कर्त्तव्य कुछ नहीं रहता, उनसे जो कुछ बन जाता है, वह भी उनका कर्तृत्व नही है, वे तो यन्त्रचालित कठपुतली हैं।"

जीवनमें पहिली बार, संन्यास ग्रहणकी पूर्व-रात्रिमें महाप्रभुने विष्णुप्रियाजीका जो आदर सत्कार दिया, उनके साथ जो रसमय-लीला की, इसके बाद वे अपने प्राणनाथका पाद-संवाहन करने लगी और इस सेवा-सुखको छोड़कर सोना नही चाहती थी, उनको अपनी जिस लीलां-शक्तिके द्वारा बलपूर्वक निद्राग्रस्त करके उनका सर्वदाके लिए त्याग करके प्रभु चले गये, गम्भीराके बन्द प्रकोष्टसे जिस लीला-शक्तिके द्वारा निकलकर एक बार दीर्घकाय होकर सिंहद्वारपर और एक बार कूर्माकार होकर तैलंग गायोंके बीच पड़ गये, आइ टोटा (जूई पुष्पोद्यान) से स्वरूप दामोदर आदि भक्तोंकी उपस्थितमें रासलीलाके जलकेलि प्रसङ्गके श्लोक सुनकर समुद्रमें गिरते समय जिस लीला-शक्तिके द्वारा भक्तोंको पता नहीं लगने दिया, उसी लीलाशक्तिके द्वारा गम्भीरा प्रकोष्टमें मुखलीला-घर्षणके समय स्वरूप-दामोदर और गोविन्दको भी निद्रामें अचेत बना दिया, जिससे यह लीला ठीकसे सम्पादन हो, जिसको पढ़कर सुनकर कलिग्रस्त जीव आँखोंसे कुछ अश्रु विन्दु गिराकर अपनेको पवित्र कर सकें। यदि श्रीमन्महाप्रभुको गम्भीरा-प्रकोष्टसे बाहर निकलना वास्तवमें अभीष्ट होता तो जैसे दो बार पहिले भी चारों ओरसे बन्द गम्भीरा प्रकोष्टसे निकलकर श्रीराधाकान्त मठकी (जहाँ गम्भीरा प्रकोष्ट स्थित है) ऊँची प्राचीरकी वाधाकी परवाह किये बिना. बाहर चले गये थे, वैसे ही इस बार भी जानेसे उनको कौन रोक सकता था।

अतः स्वरूप दामोदर और गोविन्द इस अक्षम्य असावधानीके अपराधी नहीं प्रतीत होते।

साठवाँ अध्याय

महाप्रभुका प्रलाप वर्णन

(पञ्चम चित्र)

प्रभुर गम्भीर लीला ना पारि बूझिते ।
बुद्धि प्रवेश नाहि, ताते ना पारि वर्णिते ।।

चै. च. अं. २०.६८

महाप्रभुका लीलारङ्ग बारह वर्ष तक चला। कृष्ण-विरहमें उन्होंने इस दीर्घकाल व्यापी प्रेमोन्माद भावमें जो प्रेमविकार लीलारङ्ग प्रकट किया था, उसका केवल आभास मात्र हमको ग्रन्थोंमें देखनेको मिलता है। महाजनगणने जो वर्णन किया है, यह सूत्र रूपमें है। महाप्रभुके इस अद्भुत लीलारङ्गके प्रत्येक अङ्ग यदि विस्तृत रूपमें वर्णित होते, उनके भावसिन्धुके प्रत्येक तरङ्गोच्छ्वास यदि पृथक् भावमें ध्वनित होते, तो उसका परिणाम क्या होता—यह मेरी क्षुद्र-बुद्धिके लिए अगम्य है। महाप्रभुने कृपा करके जो भावांश भक्तगणको दिखाया था, वही जगत्-जीवको प्राप्त हुआ है, और उसके द्वारा ही धर्म-जगत्का महान् उपकार सिद्ध हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा। जिसे लोगोंने कभी सुना नहीं, आँखों देखा नहीं, कल्पनासे चित्तमें जो कभी आता नहीं, शास्त्रोंमें जिसे ऋषियोंने लिखा नहीं, जो वेदोंके लिए अगोचर है, वह सर्वेश्वर महाप्रभु कृपा करके स्वयं आचरणके द्वारा अपने अनुगत भक्तोंको दिखला गये हैं। महाप्रभुके ये अलौकिक लीलारङ्ग है, इनको तर्कके द्वारा समझनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है। विचारके द्वारा जाननेकी चेष्टा भी निष्फल होती है। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

तर्क ना करिह, शुन विश्वास करिया ।

चै. च. अं. १९.९९

यह विश्वास भी महाप्रभु और उनके भक्तोंकी कृपापर निर्भर करता है। कविराज गोस्वामी यह लिख गये हैं—

महाप्रभु नित्यानन्द दोंहार दासेर दास ।
जारे कृपा करे, तार इहाते विश्वास ।।

चै. च. अं. १९.१०२

अतएव महाप्रभुका यह अद्भुत लीला रहस्य समझनेके लिए उनके भक्तोंकी शरणमें जाना आवश्यक है। वे कृपामय हैं, जैसे दयाके महासागर महाप्रभु हैं, वैसे ही कृपाके सागर उनके भक्तवृन्द हैं। दीनाभावमें अभिमान शून्य होकर उनके चरणोंमें शरण लेनेपर वे सब कुछ समझा देंगे। तब इन सब अलौकिक लीलाओंको सुननेसे मनमें अपार सुख मिलेगा, हृदयमें असीम आनन्द होगा, कुतर्क और बिचार बुद्धिजनित आध्यात्मिक दुःख दूर होंगे। कविराज गोस्वामीने कहा है—

श्रद्धा करि शुन, शुनिते पाइबे महासुख ।
खण्डिवे आध्यात्मिकादि कुतर्कादि दुःख ।।

चै. च. अं. १९.१०३

अब महाप्रभु दिन-रात कृष्ण विरह सिन्धुमें निमज्जित रहते हैं, कभी डूबते हैं, कभी बहते हैं, कभी तरङ्गमें वदन छोड़कर एकवारगी बह जाते

हैं। उनकी कृष्णविरह-विकारकी अब अन्तिम दशा उपस्थित है। भक्तगण सर्वदा उनके पास रहते हैं।

नदियाके भक्तगण भी प्रतिवर्ष महाप्रभुके दर्शनके लिए आते हैं। प्रभु भी उनके साथ पूर्ववत् सादर सम्भाषण करते हैं, परन्तु ऐसा लगता है मानो स्वभाव और अभ्यासवश ऐसा हो रहा है। नदियाके भक्तगण प्रभुको ऐसी अवस्थामें देखकर बड़े दुःखी होते हैं। प्रभु अब जीर्ण शीर्ण हो गये हैं, कीर्तनमें अब वैसी स्फूर्त्ति नहीं है। सङ्कीर्तन-यज्ञेश्वरका सङ्कीर्तन यज्ञ मानो पूर्ण हो गया है, ऐसा ही वे मनमें अनुभव करते हैं। महाप्रभुका दर्शन करके, उनके साथ बातें करके उनको मार्मिक व्यथा होती है। भक्तवत्सल महाप्रभु प्राणपनसे उनको आनन्द देनेकी चेष्टा करते हैं, अपने मनके भाव छिपानेकी कोशिश करते हैं, किन्तु छिपा नहीं पाते। वे प्रेमावेगमें आकुल होकर रो पड़ते हैं। नदियाके भक्तगण भी व्याकुल होकर रोने लगते हैं। भक्त और भगवान्‌के नयनोंके प्रेमाश्रुसे नीलाचल निमज्जित हो जाता है, उस प्रेमनदीके तरङ्ग नवद्वीप पर्यन्त प्रधावित होते हैं। जिधरसे वे प्रेमतरङ्ग जाते हैं, उस स्थानके सब लोगोंकी आँखोंमें भी प्रेमनदी बह जाती है।

नीलाचलके भक्तवृन्द सर्वदा महाप्रभुके पास रहते हैं। रामानन्द राय और स्वरूप गोसाईं अब उनका सङ्ग नहीं छोड़ते। इन दोनोंके पास न रहनेपर भी महाप्रभुकी दशा और भी कष्टप्रद हो जाती, और भक्तगणको अधिक उद्विग्न कर देती। ये दोनों आदमी तैलधारावत् अविरल कृष्णकथा-रङ्गमें महाप्रभुको लगाये रखते हैं।

जगन्नाथ बल्लभ उद्यानमें कृष्ण-विरह-स्फुर्त्ति

बैसाख मासकी पूर्णिमा तिथि आयी। रातमें मृदु मन्द मलय पवन बह रहा था। सुविमल चन्द्रालोकमें नीलाचलके सारे उद्यान समुद्भासित थे। महाप्रभु अपने श्रीमन्दिरसे धीरे-धीरे उठे। स्वरूपादि भक्तगण उनके साथ-साथ उठे, कृष्ण-प्रेमोन्मत्त महाप्रभु जगन्नाथबल्लभ उद्यानकी ओर चले, भक्तगण भी चले। उन्होंने उद्यानमें प्रवेश किया। देखा क्या ? सुनिये—

प्रफुल्लित वृक्ष-बल्ली—जैन वृन्दावन।
शुकशारी पिक भृङ्ग करे आलापन॥
पुष्प गन्ध लञा बहे मलयपवन।
गुरु हञा तरुलता शिखाय नर्त्तन॥
पूर्णचन्द्र चान्द्रिकाय परम उज्ज्वल।
तरुलतादि ज्योत्स्नाय करे झलमल॥
छय ऋतुगण जाहाँ वसन्त प्रधान।
देखि आनन्दित हैल गौर भगवान्॥

चै. च. अं. १९.७५-७८

महाप्रभु सोच रहे हैं कि वे श्रीवृन्दावन आ गये हैं। वृन्दावन भावमें विभोर होकर वे स्वरूप गोसाईंसे बोले—"स्वरूप ! 'ललित लवङ्ग लता' पद गाओ, मैं सुनूँगा।" स्वरूप गोसाईंने वह पद गाया, उनके गलेका मधुर स्वर निशीथ गगनको भेद करके ऊपर उठा, तरुलता, पशुपक्षी भी उनका गान सुनकर उत्फुल्ल हो उठे। महाप्रभुके प्राणोंमें स्वरूपकी गीत ध्वनि प्रविष्ट हो गयी। वे प्रेमावेशमें नृत्य करते-करते प्रत्येक वृक्षलता-वल्लीके समीप घूमने लगे। सभी भक्तगण साथ थे।

अचानक महाप्रभु एक अशोक वृक्षके नीचे मधुर मुरलीधारी अपने प्राणबल्लभ श्रीकृष्णको देखकर उस ओर दौड़ पड़े। महाप्रभुको देखते ही मानो श्रीकृष्ण मृदु मधुर मुस्कानके साथ अन्तर्धान हो गये।" अभी-अभी कृष्णको मैंने देखा, हाय !

वे फिर कहाँ चले गये ?''—इतना कहकर कृष्ण-विरह-कातर महाप्रभु भूतलपर मूर्छित होकर गिर पड़े। श्रीकृष्णके अङ्ग-गन्धसे उद्यान परिपूर्ण हो गया। महाप्रभु यह अपूर्व अब्ज-गन्ध पाकर प्रेमानन्दमें अचेत हो पड़ गये। भक्तगणने बहुत देर तक उनकी सेवासुश्रूषा की तो उनको वाह्यज्ञान हुआ। उस समय वे कृष्णके अङ्गके गन्धसे उन्मत्त थे। कृष्ण प्रेमोन्मादिनी श्रीराधिकाने जिस प्रकार कृष्ण-अङ्ग-गन्धसे लुब्ध होकर सखी विशाखासे कहा था, ठीक उसी प्रकार राय रामानन्दकी ओर देखकर उन्होंने गोविन्द लीलामृतका यह श्लोक प्रेमावेगमें आवृत किया—

कुरङ्गमदजिद्वपुः परिमलोर्मिकृष्णाङ्गनः
स्वकांगनलिनाष्टके शशियुताब्जगन्धप्रथः ।
मदेन्दुवर चन्दनागुरु सुगन्धिचर्चाचितः
स मे मदनमोहनः सखि तनोति नासास्पृहाम् ।।

गो. ली. ८.६

अर्थ—श्रीराधा कहती हैं—हे सखि ! जो मृगमद-गन्धसे भी अधिक सुरभित अङ्ग-परिमलके प्रवाहमें व्रजबालाओंके चित्तको आकृष्ट करते हैं, जिनके मुख, नेत्र, नाभि, कर, चरण आदि अष्ट अङ्गरूपी पद्ममें कर्पूर मिश्रित कमलगन्ध निहित है, जो कस्तूरी, कर्पूर, श्वेत चन्दन और अगुरु द्वारा सदा सेव्यमान हैं, वह मदनमोहन श्रीकृष्ण मेरी नासिकाकी घ्राण-लालसाको बढ़ा रहे हैं।

प्रेमावेगमें महाप्रभु स्वयं इस श्लोककी विस्तृत व्याख्या करने लगे। उस समय उनकी अर्द्ध वाह्यावस्था थी। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीकी भाषामें महाप्रभुके श्रीमुखकी व्याख्या सुनिये—

कस्तूरिका नीलोत्पल, तार जेइ परिमल,
ताहा जिनि कृष्ण-अंगगन्ध ।
व्यापे चौद्द भुवने, करे सर्व आकर्षणे,
नारी गणेर आँखि करे अन्ध ।।

सखि हे ! कृष्णगन्ध जगत् माताय ।

नारीर नाशाय पैशे, सर्वकाल ताहा बैसे,
कृष्ण पाशे धरि लञा जाय ।।ध्रु०।।

नेत्र नाभि वदन, कर युग चरण,
एइ अष्ट पद्म कृष्ण अंगे ।

कर्पूरलिप्त कमल, तार जैछे परिमल,
सेइ गन्ध अष्टपद्म संगे ।।

हेम कीलित चन्दन, ताहा करि घर्षण,
ताहे अगरू कुकुंम कस्तूरी ।

कर्पूर सने चर्चा अंगे, पूर्व अंगेर गन्ध संगे,
मिलि डाका जेन कैल चूरि ।।

हरे नारीर तनु मन, नासा करे घूर्णन,
खसाय नीवी, छूटाय केश बन्ध ।

करि आगे बाउरी, नाचाय जगत नारी,
हेन डाकाति कृष्ण अंग गन्ध ।।

से गन्धेर वश नासा, सदा करे गन्धेर आशा,
कभू पाय, कभू नाहि पाय ।

पाइया पिया पेट भरे, 'पिङो पिङो' तभू करे,
ना पाइले तृष्णाय मरि जाय ।।

मदन मोहनेर नाट, पसारि गन्धेर हाट,
जगन्नारी ग्राहक लोभाय ।

बिना मूल्ये देय गन्ध, गन्ध दिया करे अन्ध,
घर जाइते पथ नाहि पाय ।।

चै. च. अं. १९.८६-९२

महाप्रभु इसी प्रकार उन्मत्तके समान प्रलाप कर रहे थे, और भृङ्गके समान इधर-उधर मंडरा रहे थे। वे एक-एकबार प्रेमावेगमें वृक्षलताकी ओर

जाते थे, उनके वदनपर श्रीहस्त रखते थे। श्रीकृष्णका अङ्ग गन्ध उनको अब भी मिल रहा था, परन्तु वे कृष्णको नहीं देख पा रहे हैं, इसी दुःखसे वह हाय-हाय कर रहे हैं। स्वरूप गोसाईं और रामानन्द राय महाप्रभुको पकड़े हुए हैं। स्वरूप बीच-बीचमें महाप्रभुके भावानुकूल समयोचित एक-एक गीत गाते रहते हैं, इससे उनके मनमें आनन्द होता है। इसी भावमें महाप्रभुने सारी रात उस जगन्नाथवल्लभ उद्यानमें काट दी, किसीकी आँखोंमें निद्रा लेश मात्र भी नहीं आयी।

प्रभात होने पर व्रजभावाविष्ट महाप्रभुको पूरा-पूरा बाह्य ज्ञान हो गया। तब उन्होंने स्वरूप दामोदरकी ओर देखकर कहा, "स्वरूप ! मैं इस समय इस उद्यान में क्यों हूँ ? कौन मुझे यहाँ लाया है ?" तब स्वरूपने पूर्व रातकी सारी घटना कह सुनायी, सुनकर महाप्रभुने सिर नीचा करके उत्तर दिया, "मैं क्या उन्माद ग्रस्त हो गया हूँ ? कृष्णकी क्या यही इच्छा है ? मैं यह नहीं समझ पाता कि मुझको पागल बनाकर कृष्णको क्या लाभ होगा ? स्वरूप ! मैं तो मर गया ! जिसके लिए कुल-शील-मान-धर्म सब गँवाया, उसका यही काम है ?" इतना कहकर कृष्ण-विरह-कातर महाप्रभु भूतल पर बैठकर अजस्त्र आँसू बहाने लगे।

स्वरूप और राम-राय महाप्रभुको नाना प्रकारसे सान्त्वना देकर समुद्र-स्नान कराकर जगन्नाथजीके दर्शनके लिए ले गये। कृष्णविरह-कातर महाप्रभु जगन्नाथजीके श्रीमुखचन्द्रका दर्शन करते ही पुनः मूर्छित हो कर भूतल पर गिर पड़े। श्रीमन्दिरमें उस समय बहुतसे भक्तोंका समागम हुआ था। सब लोग मिलकर उनको घेरकर उच्च स्वरसे हरिनाम-सङ्कीर्तन करने लगे। गोविन्द महाप्रभुके अङ्गमें करङ्गके जलका छींटा देने लगे। स्वरूप गोसाईं वहिर्वासके द्वारा उनको व्यजन करने लगे। बहुत कष्टसे और सुश्रूषा करने पर उनको चेतना आयी। वे 'हा कृष्ण' कहकर धीरे-धीरे उठकर बैठ गये। बहुत कष्टसे भक्तगण महाप्रभुको पकड़ कर वासा पर ले गये। उन्होंने अपने मन्दिरमें प्रवेश किया, गोविन्दने उनका भार लिया, भक्तगण अपने-अपने स्थान पर गये।

पर रात्रि स्वरूप और राम-रायके साथ वासा पर प्रभु

वह दिन महाप्रभुने अति कष्ट पूर्वक बिताया। प्रसादको केवल स्पर्श मात्र किया। सन्ध्या होने पर स्वरूप और राम-राय आकर महाप्रभुकी चरण वन्दना करके पास बैठ गये, वे गम्भीरामें चुपचाप बैठकर अजस्त्र अश्रु बहाते हुए रुदन कर रहे थे। स्वरूप और राम-रायको देखते ही उनका कृष्ण-विरह-दुःख दूना बढ़ गया। उन्होंने स्वरूपका गला पकड़कर रोते-रोते कहा—"स्वरूप कोई एक गीत सुनाओ।" स्वरूपने उनके भावके अनुरूप एक गीत प्रारम्भ किया—

सजनि ! को कहे आयव माधाइ।
विरह पयोधि, पार किये पायव,
मझु मने नाहि पातिपाइ ॥
एखन तखन करि, दिवस गोङायिनु,
दिवस दिवस करि मासा।
मास मास करि बरस गोङायिनु,
छोड़लु जीवनक आशा ॥
बरस बरस करि, समय गोङायनु,
खोयाइनु ए तनु आशे।

हिमकर किरणे, नलिनी यदि जारब,
कि करब माधव आसे ॥
भणये विद्यापति, शुन वर युवती,
अब नाहिं होयत निराश ।
सो व्रजनन्दन, हृदय आनन्दन,
झटिति मिलब तब पाश ॥

महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर गीत सुन रहे थे, गीत वन्द होते ही वे मानो चकित हो उठे। स्वरूप दामोदरके मुखकी ओर करुण नयनसे ताककर देखा कि स्वरूप रो रहे हैं। वे इस गीतमें महाप्रभुकी वर्त्तमान दशा देखकर श्रीमती राधिकाके भावलक्षण के साथ उनके भाव लक्षणकी तुलना करके प्रेममें गद्गद होकर झूर रहे हैं। राधाभावोन्मत्त महाप्रभु अपने कर कमलमें स्वरूपका करकमल धारण करके अतिशय मृदु स्वरसे धीरे-धीरे बोले, "स्वरूप! विद्यापति ठाकुरकी बात क्या सत्य होगी, मेरे हृदयानन्द व्रजबिहारी कृष्ण क्या आवेंगे ?"

महाप्रभुके श्रीमुखसे और कोई बात न निकली, दारुण विरह-व्यथासे उनका हृदय उद्वेलित हो उठा, उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया, वह विरहिणी नव बालाके समान फुंकार मार कर रोने लगे। स्वरूप और राम-रायने उनको बहुत समझा था, परन्तु उनको कदापि शान्त न कर सके। महाप्रभु रोते-रोते स्वरूपकी ओर देखकर बोले, "स्वरूप! मैं मरूँगा। तुम एक बार मरिब-मरिब गीत सुना दो।" स्वरूपने देखा कि महाप्रभुकी जैसी मानसिक अवस्था है, इसमें यह गीत सुनाने पर इनकी रक्षा करना कठिन होगा। वे सोचने लगे कि अब करू क्या? यदि महाप्रभुके आदेशकी रक्षा नहीं करता हूँ तो इनके मनमें दुःख होगा। और यदि रक्षा करता हूँ तो इससे भी इनको दुःख होगा। परन्तु प्रथम दुःखसे द्वितीय दुःख महाप्रभुके लिए सुखकर है, और जान बूझ करके वे इस दुःखको अपनाते हैं, क्योंकि इस दुःखको वे दुःख नहीं समझते। बहुत देर तक सोच विचारकर स्वरूपने मधुर स्वरमें गाना शुरु किया—

मरिब मरिब सखि निश्चय मरिब।
कानू हेन गुणनिधि कारे दिया जाब ॥
तोमरा जतेक सखि थेको मझू सङ्गे।
मरण काले कृष्णनाम लिख मोर अङ्गे ॥
ललिता प्राणेर सखि मन्त्र दिओ काने।
मरा देह पड़े जेन कृष्णनाम शुने ॥
ना पोड़ाइओ मोर अङ्ग ना भासाइओ जले।
मरिले तुलिया रेखो तमालेर डाले ॥
सेइ से तमालतरु कृष्ण वर्ण हय।
अचेतन तनु मोर ताहे जेन रय ॥
कबहूँ से प्रिया यदि आसे वृन्दावने।
पराण पायब हाम प्रिया दरशने ॥
पुन यदि चाँद मुख दरशन ना पाब।
बिरह अनले माह तनु तेयागिब ॥

प्रभु बैठकर गीत सुन रहे थे, गीत सुनते-सुनते वे राम-रायके अङ्ग पर ढल पड़े। उनका श्रीअङ्ग अवश, शिथिल और शीतल हो गया, नयन कमल उलट गये। उनकी यह अवस्था देखकर रामानन्द राय भयभीत हो उठे। इशारेसे स्वरूप गोसाईंको गीत बन्द करनेके लिए कहा। तब दोनों आदमी मिलकर बाह्य-ज्ञान-शून्य महाप्रभुकी सेवा शुश्रूषामें रत हो गये। गोविन्दको पुकारा। और भी कई भक्तजन आकर उपस्थित हो गये। महाप्रभुका श्रीअङ्ग निश्चेष्ट था, श्वास-प्रश्वासकी क्रिया एक बारगी बन्द थी। देहमें प्राण था या नहीं, इसमें सन्देह हो रहा था। सब लोग अत्यन्त उद्विग्न हो गये।

स्वरूप सोचने लगे कि मैंने क्यों यह गीत गाया। मेरी ऐसी कुबुद्धि क्यों हुई ? इस प्रकार कुछ समय बीता। तब वे सब मिलकर उस गम्भीर रात्रिमें उच्च स्वरसे नाम सङ्कीर्तन करने लगे। स्वरूप महाप्रभुके कानोंमें उच्च स्वरसे कृष्ण-नाम सुनाने लगे, किन्तु किसी प्रकार भी उनको सचेत न कर सके। तब राम-रायने स्वरूप गोसाईंको कानोंमें कुछ चुपके से कहा। स्वरूपने गाना शुरू किया।

बहु दिन परे बँधुया एले ।
देखा ना हइत पराण गेले ।।

गम्भीराका मन्दिर भेद करके स्वरूपका कण्ठस्वर निशीथ रात्रिमें आकाशमें व्याप्त हो गया। जगत् निस्तब्ध था, गगन निस्तब्ध था, जीवगण नीरव थे, केवल स्वरूपके कण्ठकी मधुर ध्वनि उस गम्भीर नीरवता, उस निशीथकी निस्तब्धता को भेदकर श्रवण-गोचर हो रही थी। महाप्रभुके हृदयके अन्तस्तलमें वह ध्वनि पहुँची, उन्होंने-सुनी आशाकी वाणी—'बहु दिन परे बँधुया एले।' तत्काल उनको चेतना आ गयी, उनके अलस श्रीअङ्गकी अवशता दूर हो गयी, उनकी शिथिल देह-यष्टि सबल हो गयी। उन्होंने श्रीअङ्गको मोड़कर राम-रायके अङ्कमें श्रीबदनको छिपा दिया।

स्वरूपने समझा कि महाप्रभुकी अकथ्य व्याधिकी औषधि मिल गयी। उन्होंने प्रभुकी कृष्ण-विरह-व्याधिके लिए वैद्यराज रामानन्द रायके परामर्शके अनुसार जिस औषधिकी व्यवस्था की थी, वह सफल हो गयी, अतएव इस औषधिके पुनः प्रयोगकी आवश्यकता थी। इसलिये उन्होंने पुनः गाना शुरू किया। उन्होंने इस पदका एक चरण मात्र गाया था। अब शेष पद गाने लगे।

एतेक सहिल अबला बलें।
फाटिया जाइत पाषाण हले ।।
दुःखिनीर दिन दुःखेते गेल।
मथुरा नगरे छिले तो भाल ।।
ए सब दुःख किछु ना गणि।
तोमार कुशल कुशल मानि ।।
से सब दुःख गेल हे दूरे।
हारान रतन पाइनु फिरे ।।
कोकिल आसिया करुक गान।
भ्रमरा आसिया धरुक तान ।।
मलय पवन वहुक मन्द।
गगने उदय हउक चन्द ।।
बांशुली आदेशे कहे चण्डीदासे।
दुःख दूरे गेल सुख विलासे ।।

सारा गीत सुनकर महाप्रभुने श्रीबदन फेरकर आँखें खोली, वे उस समय भी रामानन्द रायकी गोदमें लेटे थे, आँखें खोलते ही स्वरूपके साथ देखा-देखी हो गयी। क्योंकि स्वरूप उनके सामने बैठकर गीत गा रहे थे। महाप्रभु एक-टक सतृष्ण नेत्रोंसे स्वरूपके मुखकी ओर देखते रहे। अब तक उनमें बात करनेकी शक्ति नहीं थी, मानो कुछ बोलना चाहते थे, पर बोल नहीं पाते थे। उनके मनमें कोई बात आ आकर रह जाती थी।

सुचतुर स्वरूपने महाप्रभुके मनके भावको समझा। उनकी दृष्टि देखकर ही समझ गये कि वे अपनी खोयी निधि कृष्ण को ढूँढ़ रहे हैं, एक बार नयन भरकर देखना चाहते थे। महाप्रभुके उस आकर्णविश्रान्त कनककेतकी सदृश नयन-युगलसे अबिरल प्रेमाश्रु धारा वह रही थी। श्रीमुख मण्डल प्रफुल्ल जान पड़ता था। स्वरूपने पुनः गाना शुरू किया—

एस एस बन्धु एस, आध आँचरे वसो
नयन भारिया तोमा देखि।
अनेक दिवसे, मनेर मानसे,
सफल करिल विधि ॥

तब महाप्रभुके मुँहसे बात निकली, वे अतिशय लज्जित भावमें, प्रेमविस्फारित नेत्रोंसे, गद्गद कण्ठसे राम-रायका गला दोनों हाथोंसे जकड़कर स्वरूपकी ओर सजलनयनसे देखते हुए बोले—"अरी ! मेरे हेराये रत्न कृष्ण कहाँ हैं ? सखि ! एक बार मुझको दिखलाओ ।" इतना कहकर वे बल पूर्वक उठ बैठे । स्वरूप दामोदर और रामराय उनको दोनों ओर से पकड़कर बैठ गये । रामराय तब स्नेह-पूर्वक महाप्रभुका चिबुक स्पर्श करके आदर पूर्वक बोले—"तुम्हारे हृदयमें बैठकर वे नित्य निरन्तर केलि करते हैं, कृष्ण क्या तुम्हे छोड़ सकते हैं ? तुम कृष्णके हो, कृष्ण तुम्हारे हैं । तुम्हारे सुखमें ही हम लोगोंको सुख है ।"

महाप्रभुने स्थिर चित्त होकर रामरायकी सार गर्भित बातें मन लगाकर सुनी, परन्तु कोई उत्तर न दिया । अब उनको बाह्य ज्ञान हो गया था, वे सब कुछ समझ पा रहे थे । रामरायने जो उनको सान्त्वनाके शब्दोंसे प्रबोधित किया, महाप्रभुने उसे समझ कर ही उसका कोई उत्तर नहीं दिया ।

रातका तीसरा पहर बीत रहा था । महाप्रभुको इस अवस्थामें छोड़कर घर जाना उचित है या नहीं, राम रायने स्वरूप गोसाईंसे पूछा । स्वरूपने कहा—"राय महाशय ! जब मैं हूँ तो आप जा सकते हैं ।" महाप्रभुकी चरण वन्दना करके रामानन्द राय उस रातमें घर गये । भक्तगण जो आये थे, वे अपने-अपने बासा पर गये । स्वरूप और गोविन्द केवल महाप्रभुके पास रहे । शङ्कर पण्डित तो थे ही । स्वरूपने महाप्रभुको शयन कराकर शङ्करसे चुपकेसे कहा, शङ्कर पण्डित ! आज कुछ सावधान रहेंगे । आज महाप्रभुके मनकी अवस्था अच्छी नहीं है ।" गोविन्द और स्वरूप गम्भीराके द्वार पर सो गये ।

आज किसीकी आँखोंमें नींद नहीं है । गम्भीराकी प्राचीरकी दीवाल पर महाप्रभुके श्रीमुखकमलके घर्षण लीलारङ्गसे गोविन्द विशेष सावधान हो गये हैं, शङ्कर पण्डित भी सावधान हो गये हैं, रातमें अब वे नहीं सोते । कविराज गोस्वामीने लिखा है—

अलौकिक कृष्ण लीला—दिव्य शक्ति तार ।
तर्केर गोचर नहे चरित्र जाँहार ॥
ए प्रेम सदा जागे जाहार अन्तरे ।
पण्डितेहो तार चेष्टा बूझिते ना पारे ॥
चै. च. अं. १९.९७,९८

भक्ति रसामृतसिन्धुमें लिखा है—

धन्यस्यायं नवप्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि ।
अन्तर्वाणीभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा ॥
भ. र. सि. १.४.१७

पूज्य कविराज गोस्वामीने अपने प्रिय पाठकगणको अति सावधानीपूर्वक समझाया हैं—

अलौकि प्रभुर चेष्टा प्रलाप शुनिया ।
तर्क ना करिह, शुन विश्वास करिया ॥
इहार सत्यत्वे प्रमाण—श्रीभागवते ।
श्रीराधार प्रेम-प्रलाप भ्रमरगीता ते ॥*

* श्रीराधाका प्रलाप भ्रमर गीतामें, दशम स्कन्धके ४७ वें अध्यायमें १० श्लोकोंमें (श्लोक संख्या १२-२१) वर्णित है ।

*महिषीर गीत जेन दशमेर शेषे।
पण्डिते ना बूझे तार अर्थ सविशेषे।।
महाप्रभु नित्यानन्द दोंहार दासेर दास।
जारे कृपा करे, तार इहाते विश्वास।।
श्रद्धा करि शुन इहा शुनिले महासुख।
खण्डिबे आध्यात्मिकादि सकल दुःख।।
चै. च. अं. १९.९९-१०३

एक मात्र गौरभक्त रसिक भक्तगण ही इस व्रजरस-तत्त्व सारके मर्मके अनुभवके अधिकारी हैं. दूसरोंके लिए क्षुद्र चेष्टा भी अहित कर है। अतएव पूज्यपाद कविराज स्वामीने कहा कि महाप्रभुके इस अलौकिक लीलारङ्गमें एकमात्र गौर-नित्यानन्द दासानुदासका ही विश्वास और आश्वादनमें प्रकृत स्वधर्म और स्वरूपगत अधिकार है। गौर-भक्तकी कृपाके बलसे यह विश्वास और अधिकार उपार्जन किया जा सकता है।

कृष्ण-विरह-जर्जर महाप्रभुने गम्भीरा मन्दिरमें बैठकर इसके बाद राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर गोस्वामीके साथ अपने स्वरचित शिक्षाष्टकके श्लोकका आस्वादन किया था वह सब लीला-कथा अगले अध्यायमें वर्णन की जायगी।

इस समय कृष्ण-प्रेमोन्मत्त महाप्रभुके मनमें नाना प्रकारके भाव उदय हो रहे हैं, उनका हृदय यद्यपि कोटि समुद्रसे भी गम्भीर है, तथापि भावरूप चन्द्रके उदय होनेपर उनका भावगम्भीर हृदय-समुद्र समय-समयपर उद्वेलित हो उठता है। इस समय वह—

जेइ जेइ श्लोक जयदेवे भागवते।
रायेर नाटके जेइ आर कर्णामृते।।

सेइ-सेइ-भावेर श्लोक करिया पठन।
सेइ-सेइ-भावावेशे करे आस्वादन।।
चै. च. अं. २०.५८,५९

उपसंहार

सुदीर्घ द्वादश वर्ष तक इस कृष्ण-विरह रूपी अकथनीय व्याधिसे ग्रस्थ होकर महाप्रभुका शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होता गया। राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर गोसाईं—उनकी पूर्वलीलाकी दो सखियाँ, ललिता और विशाखा—के साथ महाप्रभुने बारह वर्ष तक दिन-रात कृष्ण-लीला रसास्वादन करके किसी प्रकार अपने भक्त-जीवन-सर्वस्व प्राणकी रक्षा की थी। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

द्वादश वत्सर ऐछे दशा रात्रि दिने।
कृष्णरस आस्वादये दुइ बन्धु सने।।
सेइ सब लीला रस आपने अनन्त।
सहस्रवदने वर्णे—नाहि पाय अन्त।।
जीव क्षुद्र बुद्धि, ताहा के पारे वर्णिते।
तार एक कण स्पर्शि आपना शोधिते।।
चै. च. अं. २०.६०-६२

केवल आत्म-शोधनके लिए इस दुःसाहसके कार्यमें प्रवृत्त होकर महाजनगणका उच्छिष्ट भोजी जीवाधम क्षुद्रबुद्धि ग्रन्थकार किसी प्रकार—

समाप्ति करिल लीला करि नमस्कारे।
चै. च. अं. २०.६६

यह भी पूज्यपाद कविराज गोस्वामीका वचन है। उनके चरणमें कोटि-कोटि नमस्कार करके उन्हींकी भाषामें उनके ही सुरमें सुर मिलाकर कृपालु पाठक-पाठिकाओंसे गलेमें वस्त्र डालकर हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ—

जे किछु कहिल एइ दिग्दरशन।
एइ अनुसारे हबे आर आस्वादन।।

* महिषी गणका गीत श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें ६० अध्यायमें १० श्लोकोंमें (श्लोक संख्या १५-२४) वर्णित है।

प्रभुर गम्भीर लीला ना पारि बूझिते।
बुद्धि प्रवेश नाहि, ताते ना पारि वर्णिते॥
सब श्रोता वैष्णवेर वन्दिया चरण।
चैतन्य-चरित्र वर्णन कैल समापन॥
आकाश अनन्त, ताथे जैछे पक्षिगण।
जार जत शक्ति, तत करे आरोहण॥
ऐछे महाप्रभुर लीला—नाहि ओर पार।
जीव हआ केवा सम्यक् पारे वर्णिवार ?॥
यावत् बुद्धचेर गति तावत वर्णिल।
समुद्रेर मध्ये जेन एक कण छूँइल॥
चै. च. अं. २०.६७.७२

श्रीगौराङ्ग लीलाके व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने अपने रचे हुए श्रीचैतन्य भागवत श्रीग्रन्थमें गौर लीला कथनका जो वर्णन किया है, उसको लक्ष्य करके पूज्यपाद कविराज गोस्वामी लिखते हैं—

चैतन्य लीलामृत-सिन्धु दुग्धाब्धि समान।
तृष्णानुरूप झारी भरि तेंहों कैल पान॥
ताँर झारि-शेषामृत किछु मोरे दिला।
ततेके भरिल पेट, तृष्णा मोर गेला॥
आमि अति क्षुद्र जीव—पक्षी राङ्गाटुनि*।
से जैछे तृष्णाय पिये समुद्रेर पानि॥
तैछे आमि एक कण छूँइल लीलार।
एइ दृष्टान्त जानिह प्रभुर लीलार विस्तार॥
चै. च. अं. २०.७९.८२

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने अति वृद्धावस्थामें श्रीधाम वृन्दावनवासी साधु-वैष्णवोंके आदेशसे श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया था। उन्होंने श्रीग्रन्थके अन्तमें अति दीन भावसे जो अपूर्व आत्म निवेदन किया है, उसका मर्म समझनेकी शक्ति जीवाधम ग्रन्थकारमें नहीं है। कृपानिधि गौरभक्त पाठकवृन्द इसका मर्म समझें और सबको समझावें, यही इसकी प्रार्थना है। भक्त भी भगवत्कृपाके बलसे असाध्य वस्तुको सिद्ध कर सकता है, पंगु गिरिको लाँघ सकता है, अन्धा सब कुछ देखता है, वृद्ध युवाके समान कार्यक्षम हो जाता है। कृपासिद्ध भक्त महात्माके द्वारा अनन्त भगवल्लीलावर्णन कथञ्चित सम्भव है। इसी कारण पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

आमि लिखि, इह मिथ्या करि अभिमान।
आमार शरीर काष्ठपुतली समान॥
वृद्ध जरातुर आमि अन्ध बधिर।
हस्त हाले मानो बुद्धि नहे मोर स्थिर॥
नाना रोगे ग्रस्त, चलिते-बसिते ना पारि।
पञ्च रोग पीड़ाय व्याकुल—रात्रिदिने मरि॥
पूर्वे ग्रन्थे इहा करियाछि निवेदन।
तथापि लिखिये, शुन इहार कारण॥
श्रीगोविन्द श्रीचैतन्य श्रीनित्यानन्द।
श्रीअद्वैत श्रीभक्त (आर) श्री श्रोतावृन्द॥
श्रीस्वरूप श्रीरूप श्रीसनातन।
श्रीरघुनाथ श्रीगुरु श्रीजीव चरण॥
इहा सभार चरण कृपाय लेखाय आमारे।
चै. च. अं. २०.८३.८९

इसके बाद कविराज गोस्वामीने एक और गुह्यबात लिखी है, इस गुह्यबातके भीतर निगूढ़ भजन-रहस्य निहित है। इस रहस्यको भेद करनेका अधिकार या क्षमता किसीमें नहीं है, और यह ठीक ही है। जो लोग भजन-रसका आस्वादन कर चुके हैं और भजनविज्ञ हैं वे ही कुछ इसका मर्म समझेंगे। दूसरे इसको समझ कर भी नहीं समझ सकते। न समझानेपर समझेंगे। अतएव इसको समझानेकी आवश्यकता नहीं है। जीवाधम ग्रन्थकारका निवेदन है कि पूज्यपाद कविराज गोस्वामीकी बातको भ्रम-प्रमाद-शून्य और ध्रुवसत्य समझकर कृपानिधि पाठकवृन्द श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक पाठ करें तथा मन-ही-मन श्रीगौराङ्ग-चरणोंमें

* एक क्षुद्र पक्षी।

निष्कपट भावसे प्रार्थना करें जिससे वे कृपा करके विश्वास करने और समझनेकी शक्ति प्रदान करें। कविराज गोस्वामीने जो लिखा है उसे श्रद्धापूर्वक श्रवण कीजिये—

"आर एक हय, तेहों अति कृपा करे ॥
श्रीमदन गोपाल मोरे लेखाय आज्ञा करि।
कहिते ना जुयाय, तभू रहिते ना पारि ॥
ना कहिले हय मोर कृतघ्नता दोष।
दम्भ करि बलि श्रोता! ना करिह रोष ॥
तोमा सवार चरणधूलि करिनु वन्दन।
ताते चैतन्य लीला हैल जे किछु लिखन ॥

चै. च. अं. २०.८९-९२

यह सरल हृदयका सरल विश्वास है, सरल मनकी सरल बात है, इसका मूल्य बहुतोंकी समझमें नहीं आता, बहुतेरे जान नहीं पाते, इसका मर्म अनुभव करनेकी शक्ति उनमें नहीं है। यह शक्ति भक्तिबलसे प्राप्त होती है, साधन-बलसे आती है। यह कविराज गोस्वामीके हृदयकी मर्म वाणी है—

कहिते ना जुयाय तभु रहिते ना पारि।

और—

ना कहिले हय मोर कृतघ्नता-दोष।

चै. च. अं. २०.९०,९१

इसका भाव और मर्म समझनेके लिए एक महान् ग्रन्थ लिखना पड़ेगा, और यह जीवाधम ग्रन्थकारके लिए साध्य नहीं है। यह चेष्टा यदि कोई योग्यतर व्यक्ति करता तो मुझे आनन्द प्राप्त होता।

श्रीचैतन्यचरितामृत श्रीग्रन्थके अन्तमें पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने एक बड़ी सुन्दर बात लिखी है। श्रीगुरुकृपा सर्वापेक्षा बलवान् है। सदा सर्वभावसे श्रीगुरु शिष्यके परम शुभानुध्यायी होते हैं। शिष्यकी इस वृद्धावस्थामें गुरुतर परिश्रम देखकर उनके गुरुदेवने कृपा परवश होकर श्रीग्रन्थ-लेखन-कार्य-रूपी अपनी आदेशवाणीको स्थगित कर दिया, श्रीगुरुकी आदेशवाणी रूप नृत्यके साथ ग्रन्थकार शिष्यका अनिपुण और क्षीण वाणी रूप नृत्य ओतप्रोत रूपमें मिला हुआ है। मूल कलाकारके वाणी नृत्यके स्थगित होनेपर शाखा-प्रशाखाके वाणीनृत्यका अवसान हो जाता है। शाखा प्रशाखाकी वाणी स्वतन्त्र रूपसे नृत्य करना नहीं जानती; श्रीगुरुकी आदेशवाणीकी सहायतासे उसके साथ इतने दिन वह नृत्य विलास रङ्गमें उन्मत्त थी, अब उसने श्रीगुरुके आदेशसे विश्राम किया। अतएव पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

सभार चरण कृपा गुरु उपाध्यायी।
मोर वाणी शिष्या तारे बहुत नाचाइ ॥
शिष्येर श्रम देखि गुरु नाचान राखिल।
कृपा ना नाचाय, वाणी वसिया रहिल ॥
अनिपुणा वाणी—आपने नाचिते ना जाने।
जत नाचाइल तत नाचि करिल विश्रामे ॥

चै. च. अं. २०.१३८-१४०

सबके अन्तमें महादैन्यावतार पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने वैष्णवीय दैन्यकी पराकाष्ठा और सीमा दिखलाकर लिखा है—

सब श्रोतागणेर करि चरण वन्दन।
जा सवार चरण कृपा शुभेर कारण ॥
चैतन्य चरितामृत जेइ जन शुने।
ताँहार चरण धुआ करों मुञि पाने ॥
श्रोतार पदरेणु करों मस्तके भूषण।
तोमरा ए अमृत पीले सफल हय श्रम ॥

चै. च. अं. २०.१४१-१४३

कृपालु पाठकवृन्द ! आपने देख लिया न, कि कविराज गोस्वामीने अपने श्रीचैतन्यचरितामृतके श्रोतृवर्गका किस प्रकार सम्मान किया ? किस प्रकार उनको भक्ति-जगत्‌में उच्चासन प्रदान किया, इसे प्रत्येक गौरभक्त नर-नारीको गूढ़ चिन्तनका विषय बना लेना आवश्यक है। प्रगाढ़ अनुभवकी वस्तुके रूपमें प्रत्येकको अपने हृदयमें विधिवत् सदाके लिए अङ्कित कर लेना आवश्यक है। ये श्रोतागण भक्ताभक्त-भेदाभेदसे रहित, उच्च-नीच जातिभेदसे परे, पण्डित-मूर्ख-ज्ञान विवर्जित हैं। सार्वजनीन, परम उदार भावसे युक्त, गौराङ्ग कनिष्ठ, परम दैन्यावतार पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृतके सब प्रकारके श्रोताओंकी केवल चरणवन्दना करके ही परितृप्त न होकर, और जो कुछ कहा है, उसे परम श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रवण करें—

चैतन्य चरितामृत जेइ जन शुने।
ताँहार चरण धुञा करों मुत्रि पाने ॥

चै. च. अं. २०.१४२

श्रोतृवर्णकी चरण-वन्दना करके उन्होंने यह अति उत्तम पयार श्लोक लिखकर वैष्णवीय दैन्यकी सीमा दिखला दी है। 'जेइ जन शुने' की कुछ व्याख्या पहले की जा चुकी है। श्रीगौराङ्ग लीला-मधुप साधु-वैष्णव-श्रोतागणकी तो बात ही और है। वे तो जगत्पूज्य हैं, सर्वाराध्य हैं। 'जेइ जन शुने'—इस वाक्यके अर्थकी सङ्गति करनेपर समझमें आ जायगा कि कोई भी आदमी, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, भक्त हो या अभक्त, पाखण्डी हो या सज्जन—जो श्रीगौराङ्ग-लीला सुननेके लिए उपस्थित होता है, श्रद्धासे या अश्रद्धासे, वह पूज्यपाद कविराज गोस्वामीके मतसे पूज्य है। वे दृढ़तापूर्वक परम दैन्य वचनसे कहते हैं कि 'ताहार चरण धूञा करो मुञि पाने।' यह वैष्णवीय दैन्यकी सीमा है। यह पूज्यपाद कविराज गोस्वामीके परम उदार, साधु वैष्णव चरितके परम उज्जवल और परम पवित्र आदर्शके रूपमें भक्ति-जगत्‌में सदा पूजित और सम्मानित होगा।

श्रीचैतन्यचरितामृतके अन्तमें एक संस्कृत श्लोक है, जो कविराज गोस्वामीका रचा हुआ है, उसमें भी उन्होंने वैष्णवीय भक्तिकी पराकाष्ठा दिखला दी है। वह उपसंहार श्लोक इस प्रकार है—

चरितममृतमेतत् श्रील चैतन्य विष्णोः
शुभमशुभनाशी श्रद्धया स्वादयेत् यः।
तदमलपादपद्मे भृङ्गतामेत्य सोऽयं
रसयति रसमुच्चैः प्रेममाध्वीकपूरम् ॥

अर्थ—जो श्रद्धापूर्वक श्रीचैतन्य विष्णुके अमृत सदृश शुभद और अशुभनाशी चरित्रका आस्वादन करता है, यह लेखक उनके अमल पादपद्मका भृङ्ग होकर प्रेम माध्वीकपूर्ण इस रसका उच्चस्वरसे गान करता है।

उपर्युक्त श्लोकमें पूज्यपाद कविराज गोस्वामीकी दैन्योक्ति शास्त्र शासन पथके अनुकूल है—ऐसा जान पड़ता है। उन्होंने लिखा है कि श्रीचैतन्यचरितामृत 'श्रद्धया स्वादयेत् यः' अर्थात् 'अप्राकृत विश्वासेन आस्वादयेत् यः'—इस वाक्यमें 'श्रद्धा' और 'आस्वादन'—ये दो शब्द शास्त्र विधिसे समुत्पन्न हैं। श्रद्धा शब्दका अर्थ है शास्त्र वाक्यमें गुरु-वाक्यमें और साधु-महात्माओंके वाक्यमें विश्वास; तथा 'आस्वादन' शब्दका अर्थ है लीलारस ज्ञानकी अनुभूति। श्रीगौराङ्ग लीलाकथाके श्रोता जो गौरभक्त हैं तथा इस द्विविध शास्त्र ज्ञानसे सम्पन्न हैं, उनको लक्ष्य करके ही पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इस श्लोककी रचना

की है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि पूर्वोक्त पयार श्लोकका अर्थ इससे ऊँची श्रेणीका तथा ऊँची भावनाका है। कविराज गोस्वामीकी भुवन-पावनी लेखनी अमूल्य रत्न-प्रसविनी है तथा उसके अक्षर निगूढ़ रसतत्त्व बोधक हैं। उन्होंने श्रीगौराङ्गके भक्त-अभक्त दोनों श्रेणीके श्रोताओंका सम्मान किया है।

पूज्यपाद श्रीकविराज गोस्वामीके महावाक्य—

—केहो माने, कहो ना माने, सब ताँर दास।
चै. च. आ. ६.७२

ने इस उपसंहारके उत्तम श्लोकको मर्यादाकी रक्षा की है, तथा पण्डित जगदानन्दकी वाणी—

सकले गौराङ्ग दास ए कथाटि मान।

ने उसको पूर्ण सार्थक कर दिया है।

जीवाधम ग्रन्थकार वृद्ध है, इसकी अवस्था साठ वर्ष पूरी हो गयी है। नाना प्रकारके रोगोंसे इसका शरीर जीर्ण हो गया है। ३४ वर्षका समय, इसके जीवनका उत्कृष्ट अंश, अति निकृष्ट कार्य—राजसेवामें व्यतीत हुआ है। भारतके विभिन्न स्थानोंमें राजकार्यके उपलक्ष्यमें इसको नाना प्रकारकी असुविधाओंमें बहिरङ्ग लोगोंके साथ रहना पड़ा है। भजन योग्य मनुष्य देह प्राप्त करके इसका भजन-साधन कुछ भी नहीं हुआ है, और इस क्षेत्रमें हो भी नहीं सकता है। श्रीनित्यानन्द-परिकर और उनके मन्त्र शिष्य प्रसिद्ध पदकर्त्ता द्विज बलराम दास ठाकुरके परम पवित्र कुलसे उत्पन्न यह कुलाङ्गार जीवाधम ग्रन्थकार है। संसारका कीट, विषय-विषसे जर्जर भजन-साधनसे हीन इस नरपशुका केश पकड़कर गौरवक्ष विलासिनी श्रीश्रीविष्णुप्रिया देवीने यह ग्रन्थ लिखाया है, इसे परम अयोग्य तथा इस गुरुतर कार्यके लिए सर्वथा अनुपयुक्त ग्रन्थकार भीतर ही भीतर खूब समझता है। श्रीविष्णुप्रिया-चरितके मुखबन्धकी प्रार्थनामें चौदह वर्ष पूर्व जीवाधम ग्रन्थकारने-गौर-वक्ष विलासिनी श्रीविष्णुप्रिया देवीको सम्बोधन करके लिखा था—

आज्ञा बलवान् तब ना पारि ठेलिते।
लिखिब लिखाबे जाहा बलि मोर चिते॥

यह बात पूज्यपाद कविराज गोस्वामीके कथनकी पुनरुक्ति मात्र है—

श्रीमदनगोपाल मोरे लेखाय आज्ञा करि।
कहिते ना जुयाय, तबू रहिते ना पारि॥
ना कहिले हय मोर कृतघ्नता दोष।
दम्भ करि बलि श्रोता! ना करिह रोष॥
चै. च. अं. २०.९०,९१

यह बात कहनेकी नहीं है, तथापि कहे बिना नहीं रहा जाता। श्रीविष्णुप्रिया देवीके कृपादेशसे इस दुःसाहसके कार्यमें प्रवृत्त हुआ था। उन्हींकी कृपाके बलसे तथा प्रेरणासे येनकेन प्रकारेण यह श्रीगौराङ्ग महाभारत पूरा हुआ। यह बात न माननेपर, इस बातको प्रकाशित न करनेपर कृतघ्नता दोष आ जाता है। इसी कारण इस बातको सबके सामने प्रकट कर दिया। केवल आत्मशुद्धिके लिए प्रियाजीके कृपादेशसे इस अपार गौराङ्गलीला-समुद्रके तटपर खड़ा होकर लीलासिन्धुके जलकणके स्पर्शानुभवके नित्य सुख और नित्यानन्दकी प्राप्ति जीवाधम ग्रन्थकारके भाग्यमें बदा था कि नहीं, यह भी कुछ समझ न सका, और समझनेका प्रयोजन भी नहीं देखता। प्रयोजन था प्रभु और प्रियाजीकी चरण-सेवाकी प्राप्ति। इस लाभसे मैं वञ्चित न होऊँ, इस जीवाधम ग्रन्थकारकी श्रीश्रीनदियायुगल-सेवाके आनन्दमें कोई विघ्न-बाधा

न पड़े—यही इसका जीवन-व्रत है। श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवा प्रकाश और प्रचार-कार्य स्वच्छन्द रूपसे चलता रहे, यही इसकी आन्तरिक प्रार्थना है। गौरविष्णुप्रिया युगल भजन-निष्ठ साधु-वैष्णवोंके चरणोंमें तथा समस्त गौर भक्तगणके चरणकमलमें यही इसका आन्तरिक निवेदन है। बोलिये प्रेमानन्दमें 'जय श्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग'! श्रीगौराङ्गलीला-सिन्धुके किनारे लीला-लुब्ध चित्तसे बहुत दिन खड़ा रहा, किन्तु उस अनन्त लीला सिन्धुका एक बिन्दु भी स्पर्श न कर सका। जीवाधम ग्रन्थकार सब प्रकारसे इस कार्यके लिए अयोग्य था, पूर्णतः अनुपयुक्त था, यह भली-भाँति जान रहा है। तथापि—

आत्म शोधिबार तरे दुःसाहस कैनु।
लीलासिन्धुर एक बिन्दु स्पर्शिते नारिनु॥

आतमशोधन हुआ या नहीं, यह भी समझ नहीं पा रहा हूँ, अथवा इसको समझनेका प्रयोजन ही क्या है? प्रेमानन्दसे सब बोले—

जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रियार प्राणनाथ नदीया-विहारी॥

गौर हरि बोल! गौर हरि बोल!! गौर हरि बोल!!!

इकसठवाँ अध्याय

श्रीमन्महाप्रभुका शिक्षाष्टक*

प्रभुर शिक्षाष्टक श्लोक जेइ पड़े शुने।
कृष्णप्रेम भक्ति तार बाड़े दिने दिने॥
चै. च. अं. २०.५६

श्रीश्रीमन्महाप्रभुने स्वयं जिस श्लोकाष्टककी रचना करके भक्ति धर्मका सार मर्म संक्षेपमें समझाया है, उसका नाम है शिक्षाष्टक। इन श्लोकोंकी रचना महाप्रभुने किस समय की,—इसका कोई उल्लेख ग्रन्थमें नहीं मिलता। पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है कि श्रीमन्महाप्रभुके स्वरचित सारे श्लोकोंका पाठ, व्याख्या तथा उनका रसास्वादन गम्भीरा मन्दिरमें रातमें अपने अति मर्मी दो भक्तोंके साथ प्रभु स्वयं किया करते थे। उन दोनों भक्तोंके नाम हैं स्वरूप गोस्वामी और रामानन्द राय। किसी-किसी दिन श्लोकको लेकर रसास्वादन करते-करते रात बीत जाती थी। महाप्रभुके श्रीमुखसे निकले ये सारे अमूल्य रत्न स्वरूप दामोदर और रामरायके कण्ठमें शोभा पाते थे। पश्चात् उन्होंने कृपा करके इन श्लोक रत्नोंको भक्तवृन्दके चित्त विनोदके लिए तथा जगत्के

* शिक्षाष्टक के अंशकी डा० राधागोविन्द नाथकी विस्तृत टीका सहित हिन्दीमें अलग पुस्तक श्रीकृष्ण जन्मस्थानसे उपलब्ध है।

मङ्गलके लिए लिपिबद्ध कर दिया। उनकी कृपासे हम लोग इन श्लोक रत्नोंको प्राप्त कर अपनेको कृतार्थ समझते हैं। इस अपूर्व श्लोक-मालासे भक्तिदेवीकी अपूर्व शोभा हो रही है। इस श्लोकाष्टकमें सारे निगूढ़ वैष्णव भजनतत्त्व वर्णित हुए हैं। जगन्मङ्गल हरिनाम सङ्कीर्तनका माहात्म्य इस शिक्षाष्टकके प्रथम श्लोकमें व्याख्यात है।

प्रथम श्लोक—चेतोदर्पणमार्जनम्

महाप्रभुकी इस समय कृष्ण-विरहोन्माद दशा है। वे कृष्ण-विरहमें उन्मत्त हैं। क्षण-क्षण उनके भाव परिवर्तन हो रहे हैं। कभी वे हर्षमें भरकर उत्फुल्ल हो उठते हैं, कभी शोकमें अधीर हो जाते हैं, कभी दैन्यकी पराकाष्ठा दिखलाते हैं, कभी उद्वेगमें भरकर अस्थिर हो उठते हैं, कभी आर्त्तभावकी चरम सीमापर पहुँच जाते हैं, कभी उत्कण्ठामें छट्पट् करने लगते हैं, कभी प्रेमानन्दमें अधीर होकर परानन्द स्वरूप हो जाते हैं। इस अन्तिम भावमें भरकर एक दिन रातमें परानन्दमय महाप्रभु स्वरूप और राम रायसे हर्षित होकर बोले—

हर्षे प्रभु कहे—शुन स्वरूप रामराय।
नामसङ्कीर्तनः कलौ परम उपाय॥
सङ्कीर्तन-यज्ञे करे कृष्ण-आराधना।
सेइ त सुमेधा पाय कृष्णेर चरण॥*

चै. च. अं. २०.७,८

महाप्रभुका मन प्रफुल्ल था, हृदय शान्त था, और प्राणमें भरपूर आनन्द था। वे फिर बोले—

नाम-सङ्कीर्तन हैते सर्वानर्थनाश।
सर्वशुभोदय कृष्ण प्रेमेर उल्लास॥

चै. च. अं. २०.९

इतना कहकर उन्होंने स्वरचित शिक्षाष्टकका प्रथम श्लोक परम प्रेमपूर्वक पाठ किया—

यथा,

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं।
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण-संकीर्तनम्॥१

भावार्थ—श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन चित्तरूपी दर्पणको अनायास ही मार्जित करता है। भवरूपी महादावाग्निको बुझा देता है, श्रेयःरूपी कुमुदमें चन्द्रिकाको वितरित करता है। श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन विद्यारूपी वधूका जीवन है, आनन्द सिन्धुको बढ़ाता है, इससे पद-पदपर पूर्णामृतका आस्वादन होता है, यह सबकी आत्माको तृप्त करता है, अतएव इस परम मङ्गल श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्तनकी जय हो।

महाप्रभुने सर्वाभीष्ठप्रद श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्तनकी जय घोषणा की है। इसके द्वारा अभिधेय तत्त्व अर्थात् श्रीकृष्णके प्रेमकी प्राप्तिके एक सुख-साध्य सहज और सुलभ उपायका निर्देश किया है। सत्ययुगमें ध्यान-धारणा, त्रेतायुगमें यज्ञ-जप-तप, तथा द्वापरमें सेवा-पूजा-अर्चना आदि अनुष्ठानके जो फल प्राप्त होते हैं, कलियुगमें केवल श्रीभगवान्के नाम सङ्कीर्तनके द्वारा ही वे सारे फल प्राप्त हो जाते हैं। अतएव नाम सङ्कीर्तन ही एकमात्र कलिग्रस्त जीवके भवसागरसे उद्धारका उपाय है, यह शास्त्रमें दृढ़ भावसे लिखित है। यथा, बृहन्नारदीप वचनम्—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्ये व गतिरन्यथा॥

---

* कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
श्रीम. भा. ११.५.३२

महाप्रभु दयाके अवतार हैं। वे कलिग्रस्त जीवके ऊपर करुणा करके हरिनामका प्रचार कर गये हैं। इस श्लोकमें उन्होंने हरिनाम सङ्कीर्तनकी परमोत्कृष्टता समझायी है। उन्होंने स्वरचित श्लोककी विस्तृत व्याख्या स्वयं की है। कविराज गोस्वामीने दो पयार छन्दोंमें महाप्रभुके इस शिक्षाष्टकके प्रथम श्लोककी व्याख्या की है।

यथा—

संकीर्तनं हैते—पाप-संसार-नाशन ।
चित्तशुद्धि, सर्वभक्तिसाधन-उद्‌गम ।।
कृष्णप्रेमोद्‌गम, प्रेमामृत-आस्वादन ।
कृष्ण प्राप्ति, सेवामृत-समुद्रे मज्जन ।।

चै. च. अं. २०.१०,११

अब महाप्रभुकी विस्तृत व्याख्याका मर्म ग्रहण करें। उन्होंने पहले ही कहा है कि—'श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तनके द्वारा चित्त-दर्पण परिमार्जित होता है।' चित्तदर्पण काम, क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य आदि कलुषके द्वारा कलुषित और मलिन हो जाता है और उसमें श्रीभगवत्प्रतिविम्व दृष्टिगोचर नहीं होता। एकमात्र हरिनाम संकीर्त्तनके द्वारा चित्तदर्पणकी मलिनता दूर होती है, और तब उस चित्तमें विशुद्ध सत्त्वगुणका विकाश होता है, तब उसमें श्रीभगवान्‌की मूर्त्ति स्फुरित होती है। अतएव चित्तशुद्धिका एकमात्र उपाय है हरिनाम संकीर्तन। नाम संकीर्तन युगधर्म है। कलिपावनावतार परम करुणामय श्रीश्रीगौराङ्ग सुन्दरने कलिग्रस्त जीवके कलुषित चित्तको निर्मल करनेके लिए इस शास्त्र-सम्मत, जगन्मङ्गल हरिनाम संकीर्तन-यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिए कहा है और सबसे पहले उसकी जय घोषणा की है।

महाप्रभु दूसरी बात बोले—'श्रीकृष्ण संकीर्तनके द्वारा जीवकी भवरूपी महादावाग्नि निर्वापित होती है।' जीवकी भवरूपी महादावाग्नि क्या है?—कर्मबन्धन, संसार-यातना, विषय-विष—यही जीवका भव-दावाग्नि है। कर्मयोग आदि अनुष्ठानोंके द्वारा भी कर्मबन्धन दूर होता है, परन्तु उससे एक नया कर्म-अंकुर उत्पन्न होता है, अतएव कर्मयोग आदिके द्वारा जीवकी भवदावाग्नि बुझती नहीं, सांसारिक-दुःखयन्त्रणाका अन्त नहीं होता। बल्कि इसके द्वारा कर्मबन्धन उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। किन्तु श्रीभगवान्‌के नाम-सङ्कीर्तन यज्ञके द्वारा जीवके सारे कर्मपाश छिन्न हो जाते हैं, कर्मबन्धन-जनित भव-यन्त्रणा, जिसको भव-दावाग्नि कहते हैं, उसमें उसे दग्ध नहीं होना पड़ता। नाम-संकीर्तनके फलसे जीवके हृदयमें एक अभिनव आनन्दका स्रोत उमड़ता है, वह आनन्द-स्रोत त्रितापदग्ध जीवके मनमें चिरशान्ति प्रदान करता हैं। मनमें शान्ति प्राप्त करनेके लिए ऐसा सहज और सुलभ उपाय दूसरा कोई नहीं है। श्रीमद्‌भागवतमें लिखा है—

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्धयत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ।।

श्रीम. भा. ६.२.११

अर्थात्—पापी जीव हरिनाम-संकीर्तन यज्ञके अनुष्ठानके द्वारा जिस प्रकार सहज ही पापसे निष्कृति प्राप्त करता है और विशुद्ध हो जाता है। ब्रह्मवादी मनु आदि ऋषियोंके द्वारा व्यवस्थित व्रत-नियम आदिके आचरण द्वारा तथा कर्मकाण्डके अनुष्ठानके द्वारा वैसा शुद्ध नहीं होता। कृच्छ्र-चान्द्रायणादि प्रायश्चितके द्वारा भी जीवका पाप नष्ट हो जाता है, परन्तु श्रीभगवान्‌की असीम गुणावलीका प्रकाश उसके द्वारा जीवके मनमें नहीं होता। हरिनाम संकीर्तनके द्वारा श्रीहरिकी अनन्त गुणावली चित्तमें प्रकाशित होती है, उनके

महिमाकी हृदयमें अनुभूति होती है। अतएव हरिनाम-संकीर्तनकी शक्ति असीम है। इससे जीवकी भव-दावाग्निका सदाके लिए नाश हो जाता है, तथा इसके द्वारा जीवको श्रीभगवान्‌का सान्निध्य प्राप्त होता है। श्रीभगवान्‌के लीलारसके आस्वादनका प्रथम और प्रधान साधन नाम-संकीर्तन है। नाम और नामीमें भेद नहीं है। श्रीहरिके नामके साथ श्रीहरि वर्तमान रहते हैं। उनका नाम संकीर्तन जहाँ होता है, वहाँ श्रीहरि आविर्भूत होते हैं। उनके आविर्भावसे जीवके सब दुःख दूर हो जाते हैं। श्रीकृष्ण-भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

हे नारद ! मैं वैकुण्ठमें नहीं रहता, योगीजनके हृदयमें भी अवस्थान नहीं करता, मेरे भक्तगण जहाँ मेरा नाम सङ्कीर्तन करते हैं, वहाँ ही मैं स्थिर रहता हूँ।

अतएव जहाँ श्रीभगवान्‌का अधिष्ठान है, जिस हृदयमें श्रीभगवान्‌का जगन्मङ्गल नाम प्रवेश करता है, वहाँ क्या भव-दावाग्नि टिक सकती है ?

तीसरी बात महाप्रभु बोले—'यह श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन श्रेयरूपी कुमुदमें चन्द्रिका वितरण करता है।' इस वाक्यकी व्याख्या आवश्यक है। चन्द्रोदय होनेपर जैसे ज्योत्स्नाके स्पर्शसे कुमुद पुष्प विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-संकीर्तन-रूपी पूर्णचन्द्रके उदय होनेपर उसकी अनुपम महिमारूपी किरणोंके स्पर्शसे श्रेय अर्थात् भक्तिदेवी प्रकाशित हो जाती है। भक्ति ही जीवका परम श्रेय है, भक्ति ही जीवके सारे मङ्गलका निदान है।

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

श्रीम. भा. १०.१४.४

अर्थ—हे विभो ! सब मङ्गलकी आश्रय-स्वरूपा भक्तिको छोड़कर जो केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए क्लेश उठाते है, उनको तण्डुल प्राप्त करनेकी इच्छासे तुष पीटनेवाले पुरुषके समान केवल क्लेश ही हाथ लगता है। वे लोग किसी सार पदार्थको नहीं प्राप्त करते।

जीवके हृदयमें भक्तिका उदय हुए बिना हृदय निर्मल नहीं होता। हृदय निर्मल हुए बिना, वह श्रीभगवान्‌के आसनके योग्य नहीं बनता। मनु आदि स्मृतिकार धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गको श्रेय बतलाते है, दर्शन शास्त्रवेत्ता मुक्तिको ही जीवका श्रेय बतलाते हैं। परन्तु श्रीभगवान्‌के भक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको तृणवत् तुच्छ समझते हैं, यहाँ तक कि सालोक्य आदि चतुर्विधा मुक्तिको भी अति तुच्छ वस्तु मानते हैं। यह भगवद्वाक्य है। यथा, श्रीमद्भागवतमें—

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादि चतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥

श्रीम. भा. ९.४.६७

अतएव श्रीभगवान्‌के संकीर्तनके द्वारा जो भक्ति प्राप्त होती है, उसकी अपेक्षा दूसरी कोई वस्तु जीवके लिए प्रार्थनीय नहीं है। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने जीवके परम कल्याणके लिए उपदेश दिया है कि हरिनाम-संकीर्तनसे जीवके हृदय सरोवरमें उत्पन्न होनेवाला सर्वमङ्गलमय भक्ति-कुसुम विकसित होकर अपार आनन्द प्रदान करता है।

महाप्रभुका चतुर्थ कथन बहुत ही सुन्दर है। उन्होंने श्रीकृष्ण-संकीर्तनको 'विद्या-वधू-जीवन' कहा है, अर्थात् यह विद्यारूपी वधूका जीवन है। यहाँ

विद्याका प्रकृत अर्थ समझने योग्य है। 'सा विद्या तन्मतिर्यया'—जिसके द्वारा श्रीभगवान्‌के चरणोंमें मति गति होती है, उसका ही नाम विद्या है। दूसरे शब्दोंमें भगवत्तत्त्वज्ञानका नाम विद्या है। भगवत्–शक्तिकी दो वृत्तियाँ हैं, एकका नाम विद्या है और दूसरीका अविद्या। इस अविद्याको ही माया कहते हैं, यही जीवके संसार-बन्धनका हेतु है। अविद्या ही जीवका अमङ्गल करती है। और विद्या जो भगवद्तत्वज्ञान स्वरूप है, उसके द्वारा जीवका परम मङ्गल सिद्ध होता है, इस विद्यारूपी वधूका जीवन भगवन्नाम-सङ्कीर्तन है। स्वामी-विरहसे विधुर वधू जिस प्रकार अपने पतिके दर्शनसे नवजीवन प्राप्त करती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण सङ्कीर्तनसे विद्या-वधू भी अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका दर्शन करके नवजीवन प्राप्त करती है। नाम और नामीमें अभेद है, अतएव नामके साथ साथ नामी आकर हृदय-कन्दरामें अधिष्ठान करते हैं, हरिनाम सङ्कीर्तनमें जीवके हृदयसे अविद्या अन्तर्हित हो जाती है, और वहाँ विद्याका उदय होता है। दूसरे शब्दोंमें हरिनाम सङ्कीर्तनके द्वारा जीवका माया बन्धन छिन्न हो जाता है, और उसके साथ-साथ उसके हृदयमें भगवत्तत्त्वज्ञान उदय होता है। भगवत्तत्त्वज्ञानके उदय होनेपर हृदयमें भगवल्लीलाकी स्वतः स्फूर्त्ति होती हैं, और उस लीलारसके आस्वादनमें परमानन्द प्राप्त होता है। जीव तब आनन्द स्वरूप हो जाता है।

प्रभुके पञ्चम कथनमें जीवके इस आनन्दका उल्लेख है। उन्होंने कहा है कि 'श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन आनन्दाम्बुधिवर्द्धनकारी है'। सच्चिदानन्दमय श्रीभगवान् पूर्ण आनन्द-स्वरूप हैं, वे आनन्दमय हैं। जीव आनन्दका अंश है, उस सच्चिदानन्दमय भगवान्‌का दास है। अग्नि-स्फुलिङ्गका जो सम्बन्ध अग्निके साथ है, जीवका श्रीभगवान्‌के साथ भी वही सम्बन्ध है। भगवान् अग्नि हैं और जीव उनका स्फुलिङ्ग कण है। अतएव भगवान् आनन्दमय हैं, आनन्द-स्वरूप हैं, और जीव उनके उसी आनन्दका अंश है। आनन्दसे ही जीवकी उत्पत्ति होती है, आनन्दमें ही वे जीवित रहते हैं, और आनन्दमें ही वे विलीन हो जाते हैं, यह शास्त्रवचन है। श्रुति कहती है—"आनन्दात् खलु इमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन हि इमानि जीवन्ति, आनन्दं हि प्रयन्त्यभि संविशन्ति।" जीवका स्वरूप आनन्दमय है, इसी कारण जीव सर्वदा सुख या आनन्दके लिए लालायित रहता है। दुःख जीवका स्वरूप नहीं है, इसी कारण जीव उसे नहीं चाहता। अविद्या अर्थात् माया जालमें जड़ित होकर जब जीव कर्मबन्धनमें बँध जाता है, तब वह अपने आनन्दमय स्वरूपको भूल जाता है। और अविद्याके प्रभावसे दुःखसागरमें मग्न हो जाता है। हरिनाम-सङ्कीर्तनसे जीवका यह दुःख दूर हो जाता है, तथा हृदयमें पूर्णानन्द प्राप्त होकर आनन्दमय आत्म-स्वरूप उद्‌बुद्ध हो उठता है। इसी कारण महाप्रभुने कहा है कि श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन आनन्दरूपी सिन्धुको वर्द्धित करता है।

इस उत्तम श्लोकमें प्रभुकी स्पष्ट वाणी और भी मधुर है। उन्होंने कहा है—"श्रीकृष्ण सङ्कीर्तन द्वारा पद-पदपर पूर्णामृत आस्वादन होता है।" हरिनाम-सङ्कीर्तनकी महिमा और माधुर्य अपार और अनन्त है। नाम-सङ्कीर्तन-सुधा पान करनेसे हृदयकी पिपासा निवृत्त नहीं होती, बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ती है। पिपासाकी वृद्धिके साथ-साथ नाम सुधा पान करनेकी इच्छा भी क्रमशः बलवती होती जाती है। इसको जितना ही पान करें उतना ही पान करनेकी इच्छा होती है, हरिनाम गान करनेकी लालसा कभी निवृत्त नहीं होती। नाम सुधा पान करनेकी पिपासा भी नहीं मिटती। अमृतमें अरुचि होना सम्भव है, परन्तु जगन्मङ्गल हरिनाम रूपी अमृतके पानमें जीवकी अरुचि नहीं होती। भोजन करने वालेको जैसे प्रत्येक ग्रासमें तुष्टि,पुष्टि और

क्षुधानिवृत्ति होती है, उसी प्रकार हरि भजनानन्दी भक्तके प्रत्येक बार नाम-कीर्तनमें प्रेमकी अभिव्यक्ति प्रेमास्पद श्रीभगवत-रूपकी स्फूर्त्ति, तथा संसारसे विरक्ति—ये तीनों एक ही समय उपस्थित होते हैं। इसी कारण परम दयालु महाप्रभुने कहा है कि श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन द्वारा जीवको प्रति पदमें पूर्णामृतका आस्वादन होता है।

महाप्रभुकी अन्तिम बातका मर्म मनोयोगपूर्वक सुनिये। उन्होंने कहा है कि—"श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन सर्वात्माको तृप्त करने वाला है।" यहाँ सर्वात्माका अर्थ दो प्रकारसे होता है। प्रथम—स्थावर-जङ्गम आदि सब जीवोंकी आत्मा, और द्वितीय—देह, आत्मा, प्राण, मन और समस्त इन्द्रियोंको आत्मा कह सकते हैं। महाप्रभुने इन दोनों ही अर्थोंमें सर्वात्मा शब्दका श्लोकमें प्रयोग किया है। श्रीभगवान्के नाम सङ्कीर्तनके द्वारा स्थावर-जङ्गम आदि निखिल जीवोंके प्राण, मन और आत्माको तृप्ति मिलती है। स्थावर-जङ्गम आदिमें श्रीकृष्ण शब्दके उच्चारणकी क्षमता नहीं हैं, किन्तु वे प्रति-ध्वनिके बहाने श्रीभगवान्का नामोच्चारण करके तृप्ति प्राप्त कर सकते हैं। हरिदास ठाकुरने महाप्रभुसे यह बात कही थी। यथा, श्रीचैतन्य-चरितामृतमें—

शुनितेइ जङ्गमेर हय संसार क्षय।
स्थावरे से शब्द लागे—ताते प्रतिध्वनि हय॥
प्रति ध्वनि नहे सेइ—करये कीर्त्तन।
तोमार कृपाय एइ अकथ्य कथन॥

चै. च. अं. ३.६५,६६

अतएव हरिनाम-सङ्कीर्तन सब जीवोंके, तथा स्थावर-जङ्गमादिके मन-प्राणको तृप्ति प्रदान करता है। मन-प्राणके तृप्त होनेपर हृदयमें शान्ति विराजती है। शान्तिसे परमानन्द प्राप्त होता है।

द्वितीय श्लोक—नाम्नामकारि

श्रीश्रीमहाप्रभुके भुवन-मङ्गल शिक्षाष्टकका द्वितीय श्लोक है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥२॥

श्रीश्रीमन्महाप्रभु स्वयं भगवान् होकर भी भक्तावतार थे। वे भक्तभाव ग्रहण करके स्वयं आचरण करके भक्तितत्त्व प्रचार कर गये हैं। युगानुसार प्रकृत भजनतत्त्वकी सहज शिक्षा देनेके लिए उन्होंने इस दैन्यपूर्ण श्लोकमें अपने भजन-रहस्यको प्रकट कर दिया है। यह श्रीभगवान्के सामने भक्तिभावमें भक्तावतार महाप्रभुका आत्म-निवेदन है। दीनता ही भक्तका प्रधान लक्षण है। अत्यन्त दीनताके साथ वे कहते हैं-"हे भगवन्! तुम सर्वशक्तिमान् हो, तुमने कृपा करके प्रत्येक आदमीकी पृथक्-पृथक् अभिरुचिके अनुसार जगत्में अपने असंख्य नामोंका प्रचार किया है। तुम्हारे अनन्त नाममें अनन्त शक्ति है। प्रत्येक नाममें तुमने अपनी अनन्त शक्ति निहित कर रक्खी है। तुम जीवके ऊपर दया करके अपने इस अनन्त शक्ति-सम्पन्न नामके स्मरणके लिए समय-असमयका निर्द्धारण नहीं किया है। जीव सब अवस्थामें सब समय तुम्हारे पवित्र नामको लेकर पवित्र हो सकता है। हे दयामय! तुम्हारी ऐसी कृपा होते हुए भी मेरा बड़ा दुर्भाग्य है कि तुम्हारे इस भुवन-मङ्गल नाममें मेरा अनुराग नहीं पैदा हुआ।"

इससे बढ़कर परम उदार और उच्चभावापन्न आत्म निवेदन भक्ति जगत्में देखनेमें नहीं आता। इसमें महाप्रभुने दीनताकी पराकाष्ठा दिखलायी है। पहले उन्होंने कहा है कि भगवान्ने असंख्य नामोंका

प्रचार किया है। वे नाम कौन हैं? हरि, कृष्ण, राम, नारायण, गोविन्द, गोपाल, मधुसूदन, गौराङ्ग आदि उनके अनन्त नाम हैं। उनकी शक्तिके भी अनन्त नाम हैं, यथा—दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सीता, राधा, विष्णुप्रिया आदि। प्रत्येक नामके साथ नामीका अभिन्न सम्बन्ध है। नाम और नामी अभेद तत्त्व हैं। श्रीकृष्ण ही नामरूपमें आविर्भूत हुए हैं। नाम ही उनकी आनन्द रसमयी मूर्त्ति है, नाम षडैश्वर्यपूर्ण है, मायासे नितान्त शून्य है। नाम नित्यमुक्त है और चिन्तामणिके समान सर्वाभीष्ट-प्रद है।

नामचिन्तामणिः कृष्ण-चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम-नामिनोः॥
ह. भ. वि. ११.५०३; भ.र. सि. १.२.२३३

शास्त्रमें नामीकी अपेक्षा नामकी शक्ति गरीयसी बतलायी गयी है। सत्यभामाके व्रतके उपलक्ष्यमें तुलादण्डपर एक ओर श्रींकृष्ण बैठे थे, और दूसरी ओर तुलसी-पत्रपर श्रीकृष्ण नाम लिखकर रक्खा गया था। इसमें श्रीकृष्णकी अपेक्षा श्रीकृष्ण-नामका गुरुत्व दृष्टि-गोचर हुआ था। इसी कारण महाप्रभुने कहा कि, श्रीभगवान्ने अपने नाममें सारी शक्ति प्रदान की है।

इसके आगे कहते हैं कि श्रीहरिनाम स्मरणमें शुद्धाशुद्ध, कालाकालका विचार नहीं है। यहाँ तक कि श्रीभगवान्का नाम शुद्ध या अशुद्ध किसी प्रकार भी उच्चारित होनेसे वह उच्चारण करने वालेका परित्राण करता है। पद्मपुराणमें लिखा है—

नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा।
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्॥
ह. भ. वि. ११.५२७

अर्थात्—जिसकी वाणीमें श्रीभगवान्का एक भी नाम उच्चारित होता है, अथवा स्मरण पथमें उदित होता है या श्रवण रन्ध्रमें प्रवेश करता है, वह शुद्धवर्ण हो या अशुद्ध वर्ण हो, यदि व्यवधान रहित है तो निश्चयपूर्वक उसका परित्राण करता हैं। संकेत, परिहास, अगौरव या अनायास-- किसी भी रूपमें श्रीभगवान्का नाम लेनेसे मनुष्यके सारे पाप दूर हो जाते हैं। यह भी शास्त्रवचन है—

संकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठ नाम्न ग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥

अनिच्छापूर्वक रुईकी ढेरमें अग्नि डालनेपर जिस प्रकार वह भस्मीभूत हो जाती है, उसी प्रकार श्रीभगवान्का पवित्र नाम जिस किसी भावमें ग्रहण किया जाय, वह जीवकी पापराशिको विनष्ट कर देता है। नामकी शक्ति सदाचार और श्रद्धा आदिकी अपेक्षा नहीं करती। शूकरसे घायल होकर मृत्युके समय किसी यवनने 'हा राम' कहकर मुक्ति प्राप्त की थी, अजामिल मृत्युकालमें अपने पुत्रका 'नारायण' नाम लेकर मुक्त हो गया था यह सब पौराणिक कथाएँ हैं, इनमें सन्देहका कोई कारण नहीं है। श्रद्धापूर्वक और सदाचार निष्ट होकर यदि श्रीहरिका नाम लिया जाय तो उससे जो अनिर्वचनीय फल प्राप्त होगा, उसका वर्णन करनेमें शास्त्रकार लोग अपनेको असमर्थ पाते हैं। श्रीश्रीमहाप्रभुके प्रधान पार्षद हरिदास ठाकुर स्वयं आचरण करके नाम-माहात्म्य जगत्में प्रचार कर गये हैं। उन्होंने कहा है कि श्रीहरिनाम लेनेका फल केवल पापनाश और मोक्ष-प्राप्ति ही नहीं है। इसकी अपेक्षा भी अधिक उच्च औरश्रेष्ठ फल इससे प्राप्त होता है। जैसे,

नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय।
चै. च. अं. ३.१७०

श्रीभगवान्के चरण-कमलकी धूलि प्राप्त करनेके लिए जीवको जो प्रीति और प्रेम प्राप्त

होता है, उसकी अपेक्षा उत्तम फल और क्या हो सकता है? जीवके हृदयमें श्रीभगवान्‌के प्रति प्रेम और प्रीतिका अंकुर उत्पन्न होने पर उसके फलमें सर्वार्थ सिद्धि होती है। अतएव पापका नाश, और मोक्षकी प्राप्ति तो नाम ग्रहणका आनुषङ्गिक फल मात्र है। मुख्यफल तो प्रेमकी प्राप्ति हैं।

महाप्रभुने कहा है कि नाममें अनन्त शक्ति निहित है। इन अनन्त शक्तियोंमें निम्नलिखित पन्द्रह शक्तियाँ प्रधान हैं। यह शास्त्रवचन है, इसमें प्रत्येकका शास्त्र प्रमाण है। ग्रन्थ विस्तारके भयसे यहाँ सब उद्धृत नहीं किया जा सकता।

१. भुवन पावनी शक्ति, २. सर्वव्याधिबिनाशिनी शक्ति, ३. सर्वदुःख निवारिणी शक्ति ४. कलिकाल-भुजङ्ग भय नाशिनी शक्ति, ५. नरकोद्धारिणी शक्ति, ६. प्रारब्ध विनाशिनी शक्ति, ७. सर्वापराध भञ्जिनी शक्ति, ८. कर्म संपूर्त्तिकारिणी शक्ति, ९. सर्ववेदतीर्थाधिक फलदायिनी शक्ति, १०. सर्वार्थ प्रदायिनी शक्ति, ११. जगदानन्द दायिनी शक्ति, १२. अगतिगतिदायिनी शक्ति, १३. मुक्ति-प्रदायिनी शक्ति, १४. वैकुण्ठ लोक प्रापणी शक्ति और १५. श्रीभगवत्प्रीतिदायिनी शक्ति।

श्रीगौर-भगवान् कलिपावनावतार हैं। दुर्बल कलिग्रस्त जीवके लिए वे भक्ति मार्गका अति सहज और सुलभ भजन-पथ आविष्कार करके परम मङ्गल साधन कर गये हैं। उन्होंने बतलाया है कि अनन्त शक्ति सम्पन्न इस हरिनामके स्मरण और कीर्तनके लिए किसी स्थान-काल विशेषका नियम नहीं है। कर्म-योग आदि अनुष्ठानोंको जैसे देश-काल, शुद्धाशुद्धि आदिके विचारोंकी अपेक्षा होती है, भक्तियोगमें भगवन्नाम ग्रहणमें वैसा कोई विचार नहीं करना पड़ता। इसका भी शास्त्रप्रमाण है। यथा,

न देश नियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा।
नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्निलुब्धक॥

ह. भ. वि. ११.२०८

हे लुब्धक! श्रीहरिनाम सङ्कीर्तनके विषयमें देश और काल का नियम नहीं है। यहाँ तक कि उच्छिष्ट मुखसे नाम ग्रहण करने का भी निषेध नहीं है।

श्रीभगवान्‌के नाममें एक बार रुचि होने पर, फिर वह छोड़ा नहीं जा सकता। परन्तु नाममें रुचि बड़े भाग्यसे होती है। गौरभक्तका सङ्ग हुए बिना श्रीकृष्ण भगवान्‌के नाममें रुचि नहीं उत्पन्न होती। रुचि हुए बिना हृदयमें अनुराग और प्रेमका अंकुर उत्पन्न नहीं होता।

तृतीय श्लोक-तृणादपि सुनीचेन

महाप्रभु स्वरचित उपर्युक्त दो श्लोकोंकी स्वयं व्याख्या करके स्वरूप गोसाईं और रामानन्द रायको सम्बोधन करके कहते हैं—

जेरूपे लइले नामे प्रेम उपजाय।
ताहार लक्षण शुन स्वरूप रामराय॥

चै. च. अं. २०.१६

यह कहकर उन्होंने अपने शिक्षाष्टकका तीसरा श्लोक सुनाया—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥३॥

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इस उत्तम श्लोककी व्याख्याकी है। यथा,

उत्तम हञा आपनाके माने 'तृणाधम'
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्ष सम॥

वृक्ष जैन काटिलेह किछु ना बोलय।
शुकाइया मैले कारे पानी ना मागय।।
जेइ से मागये, तारे देय आपन धन।
धर्म-वृष्टि सहे, आनेर करये रक्षण।।
उत्तम हञा वैष्णव हवे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान।।
एइ मत हञा जेइ कृष्णनाम लय।
श्रीकृष्णेर चरणे तार प्रेम उपजय।।

चै. च. अं. २०.१७.२१

श्रीहरिके नाम-साधकके लिए किस प्रकार वैष्णवी दीनताकी आवश्यकता है, किस प्रकार अभिमान शून्य होकर नाम लेना पड़ता है, यह महाप्रभुने उपमाके द्वारा अति सुन्दरता पूर्वक वर्णन किया है। वे कहते हैं कि नाम साधकको अपनेको तृणसे भी अधिक अधम मानना चाहिये। यह कहनेका कुछ तात्पर्य हैं। तृणके एक भागको कोई पैर से रौंद दे तो दूसरा भाग उन्नत रहेगा, इसकी पूरी संभावना हैं। नाम साधकके लिए इसी कारण प्रभुने विधान किया है कि तृणकी अपेक्षा भी नीचा होना चाहिये। धन-मान, कुल-जाति तथा विद्याका अभिमान छोड़कर अतिशय दीनातिदीनभावमें नाम लेना चाहिये। देवमन्दिरमें श्रीविग्रहके दर्शनके समय साष्टाङ्ग भूतल पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये। नाम सङ्कीर्तनके स्थानमें भक्तपदरज में साष्टाङ्ग लोटकर नाम कीर्तन करना चाहिये। इसके सिवा श्रीभगवान्‌के चरणोंमें दृढ़ भक्ति प्राप्तिका अन्य कोई सहज उपाय नहीं है।

भक्तश्रेष्ठ उद्धव ने, जो श्रीकृष्णके परम सुहृद और भक्त थे, कहा है कि—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथंच हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

श्रीम. भा. १०.४७.६१

अर्थात्—मेरी यह एकान्त प्रार्थना हैं कि मैं श्रीवृन्दावनमें व्रजगोपिकाओंके चरण रजसेवी कोई गुल्मलता या तृणके रूपमें जन्म ग्रहण करूँ। इससे उनकी पवित्र चरणधूलिके द्वारा मेरा सर्वाङ्ग अभिषिक्त हो जायगा, और उससे मुझे सर्वाभीष्ठ प्राप्त हो जायगा।

जीवको केवल एक अभिमान होना चाहिये कि मैं श्रीभगवान्‌का दास हूँ, मैं उनके सिरजे जीवोंका दास हूँ, क्योंकि सिरजे जीवोंके भीतर भी श्रीकृष्णका अधिष्ठान है। यह कृष्णकी दासताका अभिमान ही भक्तिकी प्राप्तिका एक मात्र उपाय है। जीव स्वरूपसे ही 'नित्य-कृष्णदास' है। जब जीव स्वरूपको भूलकर अपनेको कर्त्ता या प्रभु मानने लगता है, तभी उसका पतन होता है। जाति, कुल, विद्या-गौरव, धन-जनका अभिमान अति तुच्छ वस्तु है, क्योंकि इनका नाश अवश्यम्भावी है, और भगवद्दासका पतन नहीं होता। तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ—श्रीभगवान्‌के साथ यह नित्य सम्बन्ध ही जीवके लिए परम मङ्गलप्रद है तथा भगवत्प्राप्तिका एक मात्र उपाय है। कृष्णदास्य भावका आनन्द अतुलनीय और अपरिसीम होता है, भगवद्दासाभिमानी भगवद्भक्तके भाग्यकी कामना शिव-विरञ्चि भी करते हैं।

इस उत्तम श्लोकमें उक्त दूसरे कथनका अर्थ करते हुए पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इसकी अति सुन्दर व्याख्या की है। महाप्रभुने कहा है कि

भगवद्दासके लिए वृक्षकी अपेक्षा सहिष्णु होना आवश्यक है। वृक्षकी सहिष्णुता कैसी होती है? इसकी व्याख्या करते हैं। वृक्ष अपने सिर पर प्रखर आतप-ताप, शिलावृष्टि, झटिका आदिका उपद्रव सहन करके आश्रित जनको अपने नीचे आश्रय प्रदान करता है, उसी प्रकार भगवद्भक्तको अपने मस्तक पर सारे विपद और दुर्दैवको वहन करके जीवके मङ्गलके लिए सतत चेष्टा करनी चाहिये, सब प्रकारसे उसे सत्र जीवोंकी मङ्गल कामना करनी चाहिये, सब प्रकारसे जीवका परम उपकार सहायता और सेवा करनी चाहिये, यही प्रकृत भगवद्भक्तका सर्वप्रधान कार्य है। वह जैसे श्रीभगवान्का दास होता है, उसी प्रकार वह श्रीभगवान्के सृष्ट जीवोंका दास होता है। यह प्रत्येक भगवद्भक्तको स्मरण रखना चाहिये।

वृक्षका दूसरा गुण यह है कि उसे कोई काटे तो उसे कुछ न बोलेगा, बल्कि काटनेवालेको अपनी छाया और फल प्रदान करनेसे वञ्चित नहीं करता। हरिनाम साधकके लिए भी यही नियम है। वृक्षको आघात करने पर जैसे वह अपने ऊपर आघात करनेवालेको कुछ नहीं कहता, किसी प्रकारका दोषारोपण नहीं करता, उसी प्रकार भगवद्भक्तके अङ्गमें यदि कोई प्रहार करें, या मनमें किसी प्रकारकी व्यथा पहुँचावे तो वह अपने ऊपर प्रहार करनेवाले या वेदना प्रदान करनेवाले दुर्जनको किसी प्रकारका अभिशाप या दण्ड नहीं देता। केवल श्रीभगवान्के चरणोंमें उस दुर्जनकी दुष्कृतिके लिए उसका होकर स्वयं क्षमा प्रार्थना करता है, और श्रीभगवान्से भिक्षा याचना करता है कि उस पुरुषकी वैसी कभी दुर्मति फिर न हो। नाम माहात्म्य-प्रचारक हरिदास ठाकुरको जब यवनराजकी आज्ञासे दुष्ट लोग बिना अपराधके बेंत मारने लगे, तब उन्होंने कातर कण्ठसे उन दुष्टोंकी दुष्कृतिके नाशके लिए श्रीभगवान्के हाथ जोड़कर प्रार्थना की थी।

"ए-सब जीवेर कृष्ण! करह प्रसाद।
मोर द्रोहे नहु ए सभार अपराध॥"

चै. च. आ. ११.११०

यही भक्तभाव है, इसकी अपेक्षा उच्च भावका धर्म दूसरा कोई इस जगत्में नहीं है। श्रीनित्यानन्द प्रभुके मस्तकपर जब माधाईने कलसीका कन्ना फेंककर मारा था और उस आघातसे उनका मुख-मण्डल खूनसे लथ-पथ हो गया था, तब उन्होंने उससे कहा था—

मारिलि कलसीर काना सहिवारे पारि।
तोदेर दुर्गति आमि सहिवारे नारि॥
मेरेछिस् मेरेछिस् तोरा ताहे क्षति नाइ।
सुमधुर हरिनाम मुखे बल भाइ॥

चै. म. मध्यखण्ड.

दुर्जन और पाखण्डीके द्वारा उत्पीड़ित होनेपर भी नाम-साधक भक्त उनके निर्यातनको सहन करे, और तरुके समान सहिष्णु होकर आघात करनेवालेको श्रीनामरूप फल प्रदान करे। परम दयालु नित्यानन्द प्रभुने जो किया, वही प्रत्येक भगवद्भक्तका कर्त्तव्य है।

श्रीश्रीमहाप्रभुने नाम साधकके लिए एक और अत्युत्तम उपदेश प्रदान किया है। वे कहते हैं कि स्वयं अमानी होकर दूसरेका सम्मान करे। इसका अर्थ यह है कि भगवद्भक्त अपनेको अधम समझे— 'मैं भक्तिमान् हूँ, मैं भक्त हूँ, मैं बड़ा हूँ,—यह बात भगवद्भक्तके मुखसे कभी शोभा नहीं पाती। भक्ताभिमानकी गणना भी अभिमानके भीतर होती है। भगवद्भक्तको इस प्रकार सर्वतोभावेन अभिमान वर्जित होना चाहिये। मैं जीवाधम हूँ, मैं कुछ नहीं हूँ, व्यर्थ ही मुझे दुर्लभ मनुष्य जन्म मिला—इस प्रकार दैन्य और आर्त्तभावको लेकर

अत्यन्त अभिमानशून्य होकर सब जीवोंके हृदयमें श्रीभगवान्‌का अधिष्ठान समझकर सबको यथा योग्य सम्मान प्रदान करे।

उत्तम हञा वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान॥

चै. च. अं. २०.२०

यही है प्रकृत नाम-साधक वैष्णवका लक्षण, प्रकृत भगवद्‌भक्तका भाव। इस प्रकार दीनातिदीन होकर जो भगवान्‌के पवित्र नामको लेता है, निश्चय ही उसका श्रीभगवच्चरणमें प्रेम उत्पन्न होता है। और प्रेमके फलस्वरूप शुद्धा-भक्ति प्राप्त होती है।

चतुर्थ श्लोक—न धनं न जनं

इस श्लोककी व्याख्या करते-करते महाप्रभुका मन दैन्यभावसे विभावित हो गया। उन्होंने स्वयं आचरण करके भक्तितत्त्वकी इस अपूर्व और मधुरभावकी शिक्षा जिस रूपमें दी है, वैसी शिक्षा पहले कभी किसीने नहीं दी थी। यह उच्चभाव अब तक शास्त्रमेरुके श्लोक गह्वरमें निहित था। वैष्णवीय दैन्यभाव हृदयमें आते ही श्रीभगवान्‌से शुद्धा-भक्तिकी प्रार्थनाके सिवा अन्य किसी भी काम्यवस्तुकी प्रार्थना भक्तके मनमें स्थान नहीं पाती। इसी कारण महाप्रभुने अपने स्वरचित शिक्षाष्टकके चतुर्थ श्लोकमें भक्तभावमें श्रीभगवान्‌के निकट अहैतुकी शुद्धाभक्तिकी प्रार्थना की है।

यथा—

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भगताद्‌भक्तिरहैतुकी त्वयि॥४

अर्थात् महाप्रभु कहते हैं कि—"हे जगदीश! मैं धन, जन, सुन्दरी या कविता कुछ भी नहीं चाहता। तुम्हारे चरणकमलमें मेरी जन्मजन्मान्तर अहैतुकी शुद्धा-भक्ति हो, यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।"

श्रीभगवान्‌से भगवद्दास या भक्त किस प्रकार आत्म-निवेदन करे, कैसे प्रार्थना करे, श्रीश्रीमहाप्रभुने स्वयं प्रार्थना करके इसका अति सुन्दर नमूना दिखलाया है। 'धनं देहि पुत्रं देहि भार्यां देहि, यशो देहि'—आदि 'देहि देहि' शब्दसे श्रीभगवान्‌से प्रार्थना करना, सकाम धर्म है। श्रीभगवान् परम दयालु हैं, जीवकी सारी कामनाएँ वे पूर्ण करते हैं, जो उनसे जिस वस्तुकी प्रार्थना करता है, वे उसको वही देते हैं। सकाम धर्म जीवके भववन्धनका हेतु बनता है, और निष्काम धर्म भववन्धनसे मुक्त करता है। निष्काम भक्त श्रीभगवान्‌के चरणकमलमें अहैतुकी भक्तिकी प्रार्थना करते हैं, तथा सकाम भक्त ऐश्वर्य-सुख-सम्पद्‌के प्रार्थी होते हैं। निष्काम भक्त शिरोमणि प्रह्लादने श्रीभगवान्‌से प्रार्थना की थी, यथा—

"नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥

—विष्णुपुराण १.२०.१८

हे नाथ! हे जगदीश! सहस्र योनियोंमें जिस-जिसमें जन्म ग्रहण करूँ, उस-उस योनिमें तुम्हारे चरणोंमें मेरी सदा अचला भक्ति बनी रहे।"

महर्षि नारदने भी श्रीभगवान्‌से यही प्रार्थना की थी।

यथा—

जनिर्भवतु मे ब्रह्मन्! यासु यासु योनिषु च।
न जहातु हरेर्भक्तिर्ममैवं देहि मे वरम्॥

ब्र. वै. पुराण

हे भगवान् ! मुझको तुम यही वरदान दो कि जिस-जिस योनिमें मेरा जन्म हो, मेरी हरिभक्ति न छूटने पावे ।

महाप्रभु स्वयं भगवान् होकर भी भक्तावतार थे । इसी कारण उन्होंने भक्तभावमें श्रीभगवान्के निकट भक्तके उपयुक्त ही प्रार्थना की है । इसमें उन्होंने भक्तिका चरमोत्कर्ष दिखलाया है, तथा सर्व सम्पद्को तुच्छ माननेवाली भक्तिकी उत्तमा मनोवृत्तिका परिचय दिया है ।

उन्होंने पहले ही कह दिया है कि—'मैं धन और जन नहीं चाहता ।' अर्थात् ये सब अनर्थोंके मूल हैं, इसे सब महात्मा लोग एक स्वरसे कह गये हैं । धन-मदसे मत्त जीवके हृदयमें भक्तिरसका सञ्चार नहीं हो सकता । इसी कारण महाजनगण धनको भगवत्-साधनाका विघ्न बतला गये हैं । जनका अर्थ है स्वजन, अर्थात् आत्मीयजन, बन्धु-बान्धव आदि । ये लोग यदि परमार्थकी प्राप्ति, अर्थात् भगवच्चरणमें भक्तिकी प्राप्तिके अनुकूल हों तो इनका सङ्ग उतना दोषावह नहीं होगा । किन्तु यदि ये भक्ति प्राप्तिके प्रतिकूल हों तो भक्तिशास्त्रके अनुसार इनका सङ्ग सर्वथा त्याज्य है ।

श्रीमद्भागवतमें इनको 'स्व जनाख्य दस्यु' कहा गया है । दूसरी बात यह है कि स्वजनका सङ्ग जीवको माया-ममताके पाशमें आवद्ध करता है । मायाका बन्धन दुश्छेद्य होता है । पुत्र-कन्या, कलत्र आदि मोहिनी मायाके प्रभावमें जीव भगवद्विमुख हो जाता है और मधुर भगवत्कथा तथा श्रीभगवान्की भुवन-पावनी-लीला-कथा उनके चित्तमें स्थान नहीं पाती । स्त्री-पुत्रादिके साथ सर्वदा प्रेमालापसे उनके चित्तमें प्राकृत रसकी सृष्टि होती है, भगवत्कथामृतरूपी अप्राकृत रसका अन्वेषण करनेके लिए उनको बिल्कुल ही अवसर नहीं मिलता । इसी कारण महाप्रभुने कहा है कि—"मैं स्वजनको भी नहीं चाहता ।" इसके बाद उन्होंने कहा है कि "मैं सुन्दरी स्त्री भी नहीं चाहता, कवि होना भी नहीं चाहता ।"

'कामिनी-काञ्चन'—जीवकी आध्यात्मिक उन्नतिके विशेष विघ्न हैं, यह शास्त्रकारगण तथा महाजनगणने एक स्वरसे स्वीकार किया है । नारीरूपी श्रीभगवान्की माया सब लोगोंको मोह लेती है, यहाँ तक कि मुनि-ऋषिगण भी इसके प्रभावसे नहीं बचते । यह भगवद्वाक्य है,

यथा—

योषिद् रूपा च मे माया सर्वेषां मोहकारिणी ।
लीलया कुरुते मोहं स्वात्मारामस्य सन्ततम् ।।

संसार-बन्धनका हेतु नारी है । इसी कारण श्रीगौराङ्ग प्रभुने कहा है कि, "मैं सुन्दरी स्त्रीकी कामना नहीं करता ।"

सबके अन्तमें उन्होंने कहा है कि—"कवि पदवी भी मैं प्राप्त करना नहीं चाहता ।" 'मैं विद्वान् हूँ, मैं कवि हूँ, मैं पण्डित हूँ'—इस प्रकारकी प्रतिष्ठा व्यञ्जक पदवीसे मनमें अभिमान उदय होता है । अभिमान या गर्व पर्वत हृदयमें उदय होनेपर वह हृदय श्रीभगवान्के आसनके उपयुक्त नहीं होता, अतएव इस प्रकारकी विद्या-पदवी भक्तके भक्तिसाधनके मार्गमें विषम अन्तराय है । इसी कारण भक्तावतार महाप्रभुने कहा है कि, "मुझको वह विद्या दान करो, जिससे तुम्हारे चरणोंमें मेरी रति-मति हो ।" इस श्लोकमें महाप्रभुने संसारके भोग, ऐश्वर्य, लाभ, मान, प्रतिष्ठा सबको तुच्छ कर दिया है, तथा जीवके लिए श्रीभगवान्के निकट इन सब तुच्छ वस्तुओंकी प्रार्थनाकी असारता समझा दी है । इसके साथ-साथ उन्होंने निष्काम धर्मकी परमोत्कृष्टता भी समझा दी है ।

पहले कहा जा चुका है कि, महाप्रभुके शिक्षाष्टकमें वैष्णव धर्मका सार-तत्त्व संगृहीत है। इसमें कलिग्रस्त जीवके साधन-पथका क्रम निर्णीत हुआ है। किस प्रकार वे साधन-पथमें अग्रसर हों, यह अति सुन्दर भावसे इन भुवनमङ्गल अष्टश्लोकोंमें विवृत है। युगधर्म हरि-संकीर्तन है और नामकीर्तन ही कलिग्रस्त जीवका श्रेष्ठ साधन है, यह परम दयालु महाप्रभुने प्रथम श्लोकमें उपदेश किया है। इसके साथ श्रीहरिनाम संकीर्तनकी उत्कृष्टता भी समझायी है। द्वितीय श्लोकमें उन्होंने नाम और नामी एक वस्तु है—यह समझाकर सुस्पष्ट रूपमें बतलाया है कि नाम-साधन सहज साध्य है। तृतीय श्लोकमें उन्होंने यह बतलाया है कि नाम-साधनका प्रकृत अधिकारी कौन है? चतुर्थ श्लोकमें संसारकी सारी वस्तुओंकी असारता और अनित्यताको समझाकर सर्वसिद्धिप्रद श्रीभगवच्चरणमें अहैतुकी भक्तिके लिए प्रार्थना की गयी है।

पञ्चम श्लोक—अयि नन्दतनुज

दास्यभावमें भगवदुपासना कितनी मधुर होती है, तथा भगवद्दासाभिमान कितनी उच्च वस्तु है, यह समझानेके लिए उन्होंने भक्तभावमें पञ्चम श्लोकमें श्रीभगवान्‌के चरणोंमें दास्य भावकी प्रार्थना की है। यथा—

अयि नन्दतनुज किङ्करं
पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपङ्कज-
स्थितिधूलिसदृशं विचिन्तय ॥५

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने इस श्लोककी व्याख्या की है—

तोमार नित्यदास मुञि तोमा पासरिया।
पड़ियाछों भवार्णवे मायावद्ध हञा ॥
कृपा करि करो मोरे पदधूलि सम।
तोमार सेवक करों तोमार सेवन ॥

चै. च. अं. २०.२६,२७

अर्थात् हे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण! मैं तुम्हारा नित्यदास हूँ। मैं इस बातको भूलकर मायापाशमें आवद्ध होकर भवसागरमें गिरा हुआ हूँ। हे कृपामय! तुम कृपा करके मुझको अपने चरणोंमें पदाश्रित धूलके समान करके रख लो।"

इस प्रार्थनामें दास्यभावकी पराकाष्टा प्रदर्शित हुई है। दास्य भाव व्रजका भाव है, इसी कारण महाप्रभुने नन्दतनुज कहकर श्रीकृष्णको सम्बोधन किया है। इस भीषण भवसिन्धुको पार करनेका उपाय एकमात्र श्रीभगवान्‌की चरणतरणी है, इसका आश्रय लेकर साधु-महात्माओंने इस भीषण संसार-समुद्रको गोष्पदके तुल्य समझा है। श्रीभगवान्‌की इस चरण-तरणीका भरोसा करके जीव संसार-सागरमें कूद पड़ता है। तत्काल भगवान् उसको अपनी चरण-तरणीमें स्थान प्रदान करते हैं।

महाप्रभुने कहा है—"हे कृष्ण तुम मुझको अपने पाद-पद्मकी धूलिका कण बना लो।" इसका भावार्थ यह है कि धूलिको पद द्वारा दलित करनेपर जैसे वह पदमें लगी रहती है, अथवा धूलिकणको पदतलसे झाड़ डालनेपर जैसे उड़कर वह पुनः उसी पदमें लग जाती है, उसी प्रकार जीव इस संसार-दावानलमें दग्ध होकर और संसार-सागरमें डूबकर महाकष्ट पानेपर श्रीभगवान्‌का कृपाभिखारी होकर केवल उन्हींके पादपद्मका आश्रय लेता है। जीव जितना ही संसारके संग्राममें निष्पेषित होता है, उतना ही उसको श्रीभगवान्‌का अभय चरण याद आता है, जितना ही दुःख पाता है, उतना ही भगवच्चरणमें वह आकृष्ट होता है।

महाप्रभुने यह दास्य भक्तिकी बात कही है, इसीसे जीवकी सर्वार्थ सिद्धि होती है। मोहान्ध जीवके लिए भगवच्चरणोंकी भक्ति प्राप्त करनेका दास्य-भाव ही सर्वोत्तम साधन है। जीव कृष्णका नित्यदास है, श्रीभगवान्‌का दासत्व ही उसका स्वधर्म है। इसी कारण कविराज गोस्वामीने कहा है—

तोमार सेवक करों तोमार सेवन।

चै. च. अं. २०.२७

श्रीवृन्दावन ठाकुरने कहा है—

चैतन्य दासत्व बड़ बल नाहि आर।

चै. भा. म. १७.११२

जीवका स्वरूप आनन्दांश है, जीवका स्वधर्म है भगवत्सेवा। स्वरूप और स्वधर्म भूलकर जीव निरानन्द और वहिर्मुख हो रहा है। जीवके निरानन्दजनित हाय-हायको दूर करनेके लिए, तथा भगवत्सेवासे विमुख होनेके कारण प्राप्त उसकी अधोगतिके निवारणके लिए महाप्रभुने यह अमूल्य उपदेश प्रदान किया है।

षष्ठ श्लोक—नयनं गलदश्रु

रामानन्द राय और स्वरूप दामोदर गोस्वामीको महाप्रभु श्लोककी व्याख्या सुना रहे हैं। स्वयं भगवान् महाप्रभु वक्ता है, और वे लोग श्रोता हैं। पञ्चम श्लोककी व्याख्या करते-करते महाप्रभुकी कृष्ण विरहोत्कण्ठा बढ़ गयी, हृदयमें महादैन्य-भावकी पूर्ण अभिव्यक्ति हो उठी। प्रेमके साथ नाम सङ्कीर्तन करनेपर क्या भाव उत्पन्न होता है—इसका परिचय देनेके लिए अपने स्वरचित षष्ठ श्लोकको प्रेमगद्गद स्वरमें प्रभु धीरे-धीरे पाठ करने लगे। इसके साथ-साथ उनके नयन युगलसे प्रेम-सरिता प्रवाहित हो उठी, कण्ठस्वर गद्गद हो उठा और सर्वाङ्ग रोमाञ्चित हो गया। वह श्लोक इस प्रकार है—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥६

अर्थ—हे प्रेममय कृष्ण! हे दयानिधे! तुम्हारे प्रेममय मधुर नामके लेते, तुम्हारा नाम लेकर पुकारते समय कब मेरा यह पाषाण हृदय द्रवित होगा और नयनोंसे अश्रुधारा वहेगी? मधुर नामानन्दमें कण्ठ अवरुद्ध हो जायगा, वाणी गद्गद हो जायगी, और पुलकसे सर्वाङ्ग कण्टकित हो उठेगा, वह मेरा सौभाग्यका दिन कब आयेगा?"

ठाकुर नरोत्तमदासने लिखा है—

गौराङ्ग बलिते हबे पुलक शरीर।
हरि हरि बलिते नयने बहे नीर ॥

श्रीभगवान्‌का नाम लेते ही जीवकी ऐसी अवस्था हो जाती है। यह स्वयं भगवान्‌के श्रीमुखसे निःसृत वाणी है। श्रीभगवान् कहते हैं—

***मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दपुलकान्वितः।**
सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥

दे० भा०

अर्थात्—मेरे भक्तगण मेरा नाम, रूप और गुण श्रवण करते ही आनन्दसे परिपूर्ण, पुलकान्वित, गद्गदभाषी, साश्रुनेत्र और आत्मविस्मृत हो जाते हैं।

---

* मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥

श्रीम. भा. ३.२९.११

अपराधशून्य होकर नाम लेनेपर इस प्रकारकी अवस्था होती है। नामापराध नामके द्वारा ही क्षयको प्राप्त होता है। नामापराध अनेक हैं, इसे सभी वैष्णव जानते हैं। जब तक श्रीभगवान्‌का नाम लेनेपर नयनोंमें अश्रुधारा न आ जाय, अङ्ग-अङ्ग पुलकित न हो उठें, तब तक समझना चाहिये कि नाना प्रकारके अपराध सञ्चित हैं। अपराध क्षय होनेपर श्रीनामकी परमगति प्रदायिनी गरीयसी शक्तिके बलसे सारे सात्त्विक भाव उदय होते हैं, और यह भाव ही प्रेमकी प्रथमावस्था हैं। श्रीभगवच्चरणमें प्रेमोदय नामका मुख्य फल है, यह पहले ही व्याख्यात हो चुका है। इसी कारण महाप्रभुने अति दीनभावमें श्रीकृष्ण-चरणमें आत्म निवेदन किया है—

प्रेमधन बिनु व्यर्थं दरिद्र जीवन।
दास करि वेतन मोरे देह प्रेमधन॥
चै. च. अं. २०.२९

इस प्रेमधनके अर्जनका उपाय नाम गान हैं, श्रीभगवान्‌के नाम गानमें जीवके हृदयमें, मनमें और शरीरमें नाना प्रकारके भावोद्‌गम होते हैं। ये सब भाव प्रेमके साधारण लक्षण हैं, यह समझना चाहिये। ये विशेष लक्षण नहीं है, ऐसा पूज्यपाद श्रीरूपगोस्वामिपादने अपने उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें विचार किया है।

सप्तम श्लोक—युगायितं निमेषेण

शिक्षाष्टकके सप्तम श्लोकमें श्रीश्रीमन्महाप्रभु व्रजके सर्वश्रेष्ठ मधुर भावमें विभाबित होकर असह्य कृष्ण-विरह-व्यथाका वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण भजनके नाना मार्ग हैं, उनमें मधुर भजनका पथ ही सर्वश्रेष्ठ है, इसका महाप्रभुने स्वयं आचरण करके अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको शिक्षा दी है। उस व्रजके सर्वश्रेष्ठ भजन रहस्यका यहाँ किञ्चित् परिचय देते हैं। राधा भावमें विभावित होकर महाप्रभु विशाखा सखिको सम्बोधन करके विलाप करते हैं—

युगायितं निमिषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे॥७॥

अर्थात् हे सखि विशाखे! कृष्ण विरहमें मेरा निमेष मात्रका समय मानो सौ युग जान पड़ता है, मेरे नयनोंसे वर्षाकी धाराके समान दिन-रात अश्रुपतन होता रहता है, सारा जगत् शून्य-सा लगता है, मेरे चितचोर प्राणबल्लभ कृष्णको एकबार दिखलाकर मेरी प्राण रक्षा करो।"

भगवद्‌भक्तको कोई दुःख नहीं होता, उनका एकमात्र दुःख है भगवद्‌विरह। यह भगवद्‌विरह क्या वस्तु है और कितना तीव्र होता है, यह श्रीराधाका भाव और कान्ति लेकर श्रीगौराङ्ग प्रभु स्वयं आचरण करके दिखला रहे हैं। सार्वभौभ भट्टाचार्यने महाप्रभुके दक्षिण देशके गमनके समय कहा था—

शिरे वज्र पड़े यदि पुत्र मरि जाय।
ताहा सहि, तोमार विच्छेद सहन ना जाय॥
चै. च. म. ७.४७

कविराज गोस्वामीने शिक्षाष्टकके इस श्लोककी व्याख्या लिखी है—

उद्वेगे दिवस ना जाय, क्षण हैल युग सम।
वर्षाय मेघप्राय अश्रु बरिसे नयन॥
गोविन्द बिरहे शून्य हैल त्रिभुवन।
तुषानले पोड़े जेन ना जाय जीवन॥
चै. च. अं. २०.३१,३२

भगवद्‌विरहमें भक्तके मनमें इसी प्रकारके भाव उदय होते हैं। यह शुद्धा भक्तिका लक्षण है।

भगवद्विरह दुःख श्रीभगवान्‌की प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। भक्तावतार महाप्रभुने यही समझाया है।

अष्टम श्लोक—आश्लिष्य वा

शिक्षाष्टकके अन्तिम श्लोकमें श्रीश्रीमन्महाप्रभुने व्रजभावके भजन तत्त्वकी चरम शिक्षा दी है। यही व्रजभावकी अवधि है तथा परम चरम तत्त्व है। इस उपदेशका मर्म समझनेके अधिकारी विरले ही हैं। महाप्रभु जब पूर्व श्लोकोक्त भावमें विभावित होते हैं, और कृष्ण-विरह-ज्वालाके तुषानलमें जलते हैं, तब सब सखियाँ मिलकर परामर्श करती हैं कि कृष्ण जब श्रीमतीके प्रति उदासीन हैं तो श्रीमतीका भी कृष्णके प्रति उदास होना उचित है और उनकी उपेक्षा करना ही कर्त्तव्य है। इस प्रकार परामर्श करके वे बोली, "सखि! कृष्ण तुम्हारी परीक्षा करनेके लिए जैसे तुमसे प्रतिदिन उदास रहते हैं, तुम भी वैसा ही करो।"

कृष्ण उदासीन हैल करिते परीक्षण।
सखि सब कहे—कृष्णे कर उपेक्षण॥

चै. च. अं. २०.३३

यह बात सुनकर श्रीमती चुपचाप कुछ सोचने लगीं। सोचते-सोचते उनके हृदयमें कृष्णप्रेम उद्वेलित हो उठा, उसमें नाना प्रकारकी भावतरङ्गें उठने लगीं। और उन तरङ्गोंके घात-प्रतिघातसे उनका मन अस्थिर हो उठा। उस समय श्रीमतीने सखियोंको जो कहा था, महाप्रभु उसी प्रकारके राधा-भावमें विभावित होकर निजकृत श्लोकमें वही कर रहे हैं। यथा—

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मां
अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा बिदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥

अर्थ—"हे सखि! मैं कृष्णकी दासी हूँ, वह मुझको आलिङ्गन प्रदान कर आत्मसात् करें, अथवा पददलित करे, महादुःख-समुद्रमें डाल दें, या दर्शन न देकर मर्माहत करें, मुझको छोड़कर अन्य रमणीमें आसक्त होवें, फिर भी वही मेरे प्राणनाथ हैं, और कोई नहीं है।"

पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने कहा है कि इस श्लोकका ममार्थ परम निगूढ़ रससे पूर्ण है और इसकी व्याख्या मनुष्यके द्वारा नहीं हो सकती। इस कारण उन्होंने संक्षेपमें सूत्ररूपमें इस उत्तम श्लोककी व्याख्याका आभास मात्र दिया है। इस श्लोक-रत्नपर उनकी संक्षेप व्याख्या नीचे उद्धृतकी जाती है।

आमि कृष्ण पद-दासी, तेंहो रससुख राशि,
आलिङ्गिया करे आत्मसात्।
किवा ना देन दर्शन, जारेन आमार तनुमन,
तबू तेंहो मोर प्राणनाथ॥

सखि हे! शुन मोर मनेर निश्चय।

किवा अनुराग करे, किवा दुःख दिया मारे,
मोर प्राणेश कृष्ण, अन्य नय॥ ध्रु०॥

छाड़ि अन्य नारीगण, मोरवश तनुमन,
मोर सौभाग्य प्रकट करिया।

ता सभारे देन पीड़ा, आमासने करे क्रीड़ा,
सेइ नारीगणे देखाइया॥

किवा तेंहो लम्पट, शठ धृष्ट सकपट,
अन्य नारीगण साथ।

मोरे दिले मनःपीड़ा, मोर आगे करे क्रीड़ा,
तभु तेंहो मोर प्राणनाथ॥

ना गनि आपन दुःख, सबे वाञ्छि ताँर सुख,
तार सुखे आमार तात्पर्य।

मोरे यदि दिले दुःख, ताँर हैल महासुख,
सेइ दुःख मोर सुखवर्य ।।
जे नारीके बाञ्छे कृष्ण, तार रूपे सतृष्ण,
तारे ना पाञा काहे हय दुःखी ? ।
मुञितार पाये पड़ि, लञा जाङ् हाथे धरि,
क्रीड़ा कराञा करों ताँरे सुखी ।।
कान्ता कृष्णे करे रोष, कृष्ण पाय सन्तोष,
सुख पाय ताड़न भर्त्सने ।
यथायोग्य करे मान, कृष्ण ताते सुख पान,
छाड़े मान अलप साधने ।।
सेइ नारी जीये केने, कृष्ण मर्म-व्यथा जाने,
तबू कृष्णे करे गाढ़ रोष ।
निज सुखे माने काज, पड़ तार शिरे बाज,
कृष्णेर मात्र चाहिये सन्तोष ।।
जे गोपी करे मोर द्वेषे, कृष्णेर करे सन्तोषे,
कृष्ण जारे करे अभिलाष ।
मुञि तार घरे जाञा, तारे सेवों दासी हञा,
तबे मोर सुखेर उल्लास ।।
कुष्ठी विप्रेर रमणी, पतिव्रता-शिरोमणि,
पति लागि कैल वेश्यार सेवा ।
स्तम्भिल सूर्येर गति, जीयाइल मृत पति,
तुष्ट कैल मुख्य तिन देवा ।।*
कृष्ण मोर जीवन, कृष्ण मोर प्राणधन,
कृष्ण मोर प्राणेर पराण ।
हृदय उपरे धरों, सेवा करि सुखी करों,
एइ मोर सदा रहे ध्यान ।।
मोर सुख सेवने, कृष्णेर सुख सङ्गमे,
अतएव देह देङ् दान ।
कृष्ण मोरे 'कान्ता' करि, कहे 'तुमि प्राणेश्वरी,'
मोर हय 'दासी' अभिमान ।।
कान्त सेवा सुखपुर, सङ्गम हैते सुमधुर,
ताते साक्षी लक्ष्मी ठाकुरानी ।
नारायणेर हृदे स्थिति, तबू पाद सेवाय मति,
सेवा करे दासी-अभिमानी ।।

चै. च. अं. २०.३९-५१

यह विशुद्ध व्रजप्रेम है, इसमें आत्म सुखका सम्बन्ध नहीं है। श्रीकृष्णको जिसमें सुख हो, उसीमें व्रजगोपिकाओंको आनन्द है। वे आत्मसुखकी कामनासे श्रीकृष्णका भजन नहीं करती। इस विशुद्ध व्रजके प्रेमभावको भक्तोंके सामने व्यक्त करनेके लिए महाप्रभुने इस श्लोककी रचना करके अपने अन्तरङ्ग भक्तद्वयके सामने इसकी व्याख्या की। इस पुण्य श्लोकमें व्रजभावके भजनकी अवधि दिखलायी गयी है, तथा कृष्ण-भजनके चरम तत्त्वकी शिक्षा दी गयी है। यही साधनराज्यकी साध्यावधि है। इस परम श्रेष्ठ भजन-तत्त्वका अधिकारी समझकर श्रीगौराङ्ग प्रभुने एकमात्र अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको शिक्षा दी है। महाप्रभुने श्रीमतीजीके आत्मनिबेदन और आत्मसुखके त्यागकी कामना जो व्यक्त की है, इसकी कहीं तुलना नहीं है। श्रीमतीका प्रेम काम-गन्ध-हीन, और आत्मसुख-तात्पर्य-शून्य है। कविराज गोस्वामीने लिखा है—

व्रजेर विशुद्ध प्रेम, जेन जाम्बूनद हेम,
आत्म सुखेर जाहे नाहि गन्ध ।
से प्रेम जानाइते लोके, प्रभु कैल एइ श्लोके,
पदे कैल अर्थेर निर्बन्ध ।।

चै. च. अं. २०.५३

इस श्लोकका भावार्थ और मर्म विश्लेषण करनेकी सामर्थ्य एक मात्र अधिकारी रसिक भक्तजनमें ही होती है। जीवाधम ग्रन्थकार पूर्णतः अनधिकारी है, अतएव इसका मर्म समझानेका

* ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर।

प्रयास करना इसके लिए दुःसाहस मात्र है। इससे निवृत्त होना ही बुद्धिमानी है।

इस शिक्षाष्टकमें महाप्रभुने वैष्णव धर्मके सारे तत्त्वोंकी शिक्षा दी है, मधुर भजनके चरम तत्त्वको भी बतलाया है। शिक्षाष्टकके एक-एक श्लोकसे एक-एक सुवृहत् ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। महाप्रभुके चिह्नित दासगणके द्वारा यह कार्यभी सिद्ध होगा। जो कुछ यहाँ वर्णित हुआ है, इसे सूत्र मात्र समझना चाहिये। कविराज गोस्वामीने शिक्षाष्टककी फल श्रुति लिखी है।

प्रभुर णिक्षाष्टक श्लोक जेइ पड़े-शुने।
कृष्णप्रेमभक्ति तार बाड़े दिने दिने॥

चै. च. अं. २०.५६

बासठवाँ अध्याय

महाप्रभुकी अप्रकट लीला

तृतीय प्रहर बेला रविवार दिने।
जगन्नाथे लीन प्रभु हइला आपने॥

चैतन्य मङ्गल

श्रीमन्महाप्रभुकी अप्रकट लीला श्रीचैतन्य भागवतमें या श्रीचैतन्य-चरितामृतमें नहीं लिखी गयी है। श्रीवृन्दावन दास ठाकुर या कृष्णदास कविराज गोस्वामी इस दुःख-रस-पूर्ण लीलाका वर्णन नहीं करते। महाप्रभुके भक्तवृन्दके लिए उनकी सङ्गोपन-लीला अत्यन्त हृदय विदारक है। अतएव इस प्राणघाती दुःख-रस-लीला-कथाको सब महात्मागण नहीं लिख सके। ठाकुर लोचन दासने अपने श्रीचैतन्यमङ्गल ग्रन्थमें महाप्रभुकी अप्रकट लीलाका कुछ संक्षेपमें वर्णन किया है।

महाप्रभुकी सङ्गोपन लीला दुःख रस पूर्ण होते हुए भी आजकलके शिक्षित समाजमें उसको जाननेकी प्रबल वासना बहुतसे लोगोंकी होती है। क्योंकि उनके विषयमें सारी लीला-कथा जाननेके लिए शिक्षित समाज उत्सुक है, उसकी आलोचना और आस्वादन करनेके लिए प्रस्तुत है। श्रीगौराङ्ग-प्रभु पूर्णब्रह्म सनातन स्वयं भगवान् थे। उनकी लीला कथाकी जितनी ही आलोचना होगी, जितना ही विचार-विश्लेषण होगा, उतना ही जीवका परम मङ्गल होगा।

उनकी सङ्गोपन लीलाके सम्बन्धमें दो प्रकारसे मत प्रचलित है, यह आगे बतलाय जायगा। इस समय श्रीचैतन्य-मङ्गलमें वर्णित इस लीलाकथाकी अवतारणा की जा रही है। ठाकुर लोचन दासने अपने ग्रन्थके अन्तमें महाप्रभुकी इस अन्तिम लीलाका वर्णन किया है, उसके बाद आतम परिचय देकर ग्रन्थको समाप्त किया है।

श्रीचैतन्य-चरितामृतमें या श्रीचैतन्य भागवतमें महाप्रभुकी अप्रकट लीलाके लिपिवद्ध न होनेका कारण जान पड़ता है यही है कि इस दारुण शोक संवादको ग्रन्थमें लिखनेकी उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई, हो भी नहीं सकती थी। किन्तु आधुनिक भक्तवृन्दकी प्रवृत्ति अन्य प्रकारकी है। वे लोग महाप्रभुके सारे विषय और लीलारङ्गको सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपमें विचार करना चाहते हैं, अतएव इसमें कोई क्षति नहीं है। क्योंकि महाप्रभु हमारे स्वयं भगवान् हैं, पूर्ण ब्रह्म सनातन हैं, जितनी ही उनकी लीला-कथाकी आलोचना होगी, उतना ही जीवका मङ्गल होगा। उतना ही सत्यवस्तुकी दिव्य ज्योतिका प्रकाश होगा।

श्रीचैतन्यमङ्गल ग्रन्थ अनेक स्थानमें अनेक प्रकारसे मुद्रित हुआ है। इसका अन्तिम संस्करण महात्मा शिशिर कुमार घोषने ४१७ गौराङ्गाब्दमें प्रकाशित किया था। गोलोकवासी प्रभुपाद राधिकानाथ गोस्वामी द्वारा संग्रहीत एक अति प्राचीन हस्त लिपिको देखकर उन्होंने इस ग्रन्थको प्रकाशित किया था। महाप्रभुकी अप्रकट लीलाके सम्बन्धमें इस मुद्रित ग्रन्थमें कुछ नयी बात है, दूसरे ग्रन्थोंमें यह बात नहीं है। इस श्रीचैतन्य-मङ्गल ग्रन्थके अनुसार महाप्रभुकी सङ्गोपन लीला यहाँ वर्णित की जाती है।

महाप्रभुकी अवस्था उस समय केवल अड़तालीस वर्षकी थी। शचीमाताको अदर्शन हुए बहुत दिन हो गये थे। आषाढ़ महीनेकी सप्तमी तिथि, शकाब्द १४५५, दिन रविवारको तीसरे पहर महाप्रभु काशीमिश्रके घर अपने बासा पर बैठकर उपस्थित भक्तवृन्दके सामने श्रीवृन्दावनकी कथा कह रहे थे। उनके हृदयमें दारुण कृष्ण-विरह-व्यथा हो रही थी। उनका बदन विषादपूर्ण था वृन्दावन-कथा कहते-कहते अकस्मात्-चुप हो गये। पश्चात् दीर्घ-निश्वास छोड़कर, उठकरके जगन्नाथजीके दर्शनके लिए जानेको तैयार हो गये, उपस्थित भक्तवृन्द साथ चले। उस दिनका जगन्नाथजीके दर्शनका दृश्य बड़ा ही करुण था, क्योंकि महाप्रभुका बदन विषण्ण था, मन अप्रसन्न था, वे कुछ बोल नहीं रहे थे। बहुतसे भक्त उस दिन एक साथ जगन्नाथजीके दर्शनके लिए चले। क्रमशः सब लोग सिंहद्वार पर आकर उपस्थित हुए।

महाप्रभु मन्दिरमें जाकर बाहर खड़े होकर श्रीश्रीजगन्नाथजीके श्रीवदनका दर्शन कर रहे थे, परन्तु भली भाँति मानो देख नहीं पा रहे थे। इसी कारण उन्होंने उस दिन श्रीमन्दिरमें प्रवेश किया। प्रवेश करते ही अपने आप श्रीमन्दिरका द्वार बन्द हो गया। भक्तगण बाहर थे, महाप्रभु भीतर जगन्नाथके सामने क्या कर रहे हैं, यह भक्तगण कुछ जान न सके। वे सब अत्यन्त चिन्तित थे, क्योंकि महाप्रभुने ऐसा तो कभी किया न था, यह इस प्रकारका उनका प्रथम लीलारङ्ग था। भक्तगणके मनमें नाना प्रकारके सन्देह होने लगे।

गुन्जागृहमें उस समय एक पण्डा उपस्थित थे। वह गुन्जागृहसे देख रहे थे कि महाप्रभु भीतर क्या कर रहे हैं। महाप्रभु श्रीमन्दिरके भीतर जगन्नाथजीके सामने खड़े होकर उनके श्रीचरणोंकी ओर देखकर सजल नयनसे कातर भावसे निःश्वास फेंककर कुछ निवेदन कर रहे थे।

आषाढ़ मासेर तिथि सप्तमी दिवसे।
निवेदन करे प्रभु छाड़िया निःश्वासे॥

चै. म.

वे जगन्नाथजीसे क्या निवेदन कर रहे थे? यह भी ग्रन्थमें लिखा है। यथा,

सत्य त्रेता द्वापर कलियुग आर।
विशेषतः कलियुगे सङ्कीर्तन सार॥
कृपाकर जगन्नाथ पतित-पावन।
कलियुग आइल एइ देहत शरण॥

चै. म.

अर्थात् "—हे जगन्नाथ ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारों युगोंका धर्म है तुम्हारा नाम संकीर्तन। विशेषतः कलियुगमें नाम संकीर्तन ही सार धर्म है। हे जगन्नाथजी ! तुम पतित-पावन हो, अब कलियुग आ गया है, तुम कृपा करके कलिग्रस्त जीवको चरणोंमें आश्रय प्रदान करो।" परम दयालु जीव-बन्धु कलि-पावनावतार महाप्रभुने अपनी लीला संगोपनके दिन भी कलिग्रस्त जीवकी मङ्गल-कामना की।

इतना कहकर महाप्रभुने जो काण्ड किया, उसे श्रवण करें—

ए बोल बलिया सेइ त्रिजगत राय।
वाहु भिड़ि आलिङ्गन तुलिल हियाय॥
तृतीय प्रहर बेला रबिवार दिने।
जगन्नाथे लीन प्रभु हइला आपने॥

चै. म,

गुञ्जागृहके पण्डाजीने देखा कि महाप्रभुने जगन्नाथजीको आत्मनिवेदन करके उनको वक्षःस्थलमें उठा लिया, इसके साथ-साथ सचल जगन्नाथ अचल श्रीविग्रहमें लीन होकर एकीभूत हो गये। रबिवारका दिन, तीसरे पहरका समय, नीलाचलमें यह काण्ड हो गया। एकमात्र गुञ्जा मन्दिरके पण्डाने इसे देखा। यह देखकर पण्डाजी भयभीत और स्तम्भित होकर चित्कार करके दौड़कर मन्दिरके बीचमें जगन्नाथजीको देखकर "क्या हुआ, क्या हुआ" कहकर चिल्लाकर रोने लगे।

गुञ्जावाड़ी ते छिल पाण्डा जे ब्राह्मण।
कि कि बलि सत्वरे से आइल तखन॥

चै. म.

उनका चीत्कार सुनकर भक्तगण दौड़कर द्वारके पास आये। पण्डाजी भीतरसे कोई बात स्पष्ट रूपसे बोल नहीं पा रहे थे। तब भक्तोंने बाहरसे दर्वाजेपर धक्का देकर उनको द्वार खोलनेके लिए अनुरोध किया। क्योंकि वे लोग महाप्रभुके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये थे।

विप्रे देखि भक्त कहे शुनह पड़िछा।
घुचाह कपाट प्रभु देखिते बड़ इच्छा॥

चै. म.

तब पण्डाजीने झटपट द्वार खोल दिया। वे रोते रोते सबके सामने कहने लगे—

भक्त आर्ति देखि पड़िछा कहये तखन।
गुञ्जा बाड़ीर मध्ये प्रभुर हैल अदर्शन॥
साक्षाते देखिनु गौर-प्रभुर मिलन।
निश्चय करिया कहि शुन सर्वजन॥

चै. म.

पण्डाजीने अब अति सुस्पष्ट भाषामें महाप्रभुकी सङ्गोपन लीला सबके सामने व्यक्त कर दी। उन्होंने कहा—"मैं गुञ्जा मन्दिरके भीतर रहकर अपनी आँखों देख रहा था कि श्रीगौराङ्ग प्रभु जगन्नाथजीके साथ मिल गये और अन्तर्द्धान हो गये।

यह दारुण घातक समाचार सुनकर भक्तोंकी क्या अवस्था हुई, उसका वर्णन वाणीकी शक्तिके बाहर है। वह बात न सुनना ही ठीक है। ठाकुर लोचनदास इस सम्बन्धमें एक पयार श्लोकमें लिखते हैं—

ए बोल शुनिजा भक्त करे हाहाकार।
श्रीमुख चन्द्रिमा प्रभुर ना देखिब आर॥

उन्होंने अपने भक्तोंको अपनी लीलाके द्वारा यह समझाया था कि महाप्रभु और जगन्नाथजी अभिन्न तत्त्व हैं, अब संगोपन लीलामें इसको स्पष्ट रूपसे दिखला दिया। उन्होंने अपने अनुगत भक्तोंको समझाया कि श्रीश्रीजगन्नाथ विग्रहमें वे ही हैं, अतएव जगन्नाथजी हमारे श्रीगौराङ्ग धन हैं, तथा श्रीगौराङ्ग धन हमारे जगन्नाथ हैं।

महाप्रभु अब अप्रकट हो गये, ऐसा भक्तगण नहीं समझते। जगन्नाथजीको देखते ही उनको सचल जगन्नाथकी याद आ जाती है, वे लोग जगन्नाथजीके भीतर महाप्रभुको देखते हैं, इसी कारण वे लोग प्रतिवर्ष दौड़धूप करके जगन्नाथजीका दर्शन करने जाते हैं। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र गौड़ीय वैष्णवोंका महान् तीर्थ है, नवद्वीपमें जो वस्तु नहीं है, नीलाचलमें वह है।

महाप्रभु चौबीस वर्ष नवद्वीपमें रहे, वहाँ उनका घर-द्वार, धन-सम्पत्ति सब कुछ था, परन्तु अब उनकी किसी भी वस्तुका कोई पता नहीं है। किन्तु श्रीक्षेत्रमें आज भी उनका पादपद्मचिह्न है, उनका सर्वाङ्ग चिह्न विराजमान है। आज भी उनका वह श्रीगम्भीरा मन्दिर विराजित है, आज भी उनका व्यवहृत वह जीर्ण छिन्न कन्था वहाँ विद्यमान है। वही श्रीजगन्नाथजीका श्रीविग्रह है, जिसमें महाप्रभु प्रवेश करके अदर्शन हो गये थे। आज भी उनको उसी प्रकार हृदयमें लगाकर खड़े हैं। महाप्रभु उसी श्रीविग्रहके भीतर विराज रहे हैं। इसीलिए कहता हूँ कि नवद्वीपमें जो नहीं है, श्रीक्षेत्रमें वह है। इसी कारण श्रीक्षेत्र हमारी इतनी आदरणीय सम्पत्ति है, इतनी प्रियतम वस्तु है। महाप्रभु अपने अनुगत भक्तोंको श्रीश्रीजगन्नाथजीके हाथोंमें समर्पित कर गये हैं। कलिहत जीवको उनके पादपद्मोंमें समर्पण कर गये हैं। श्रीमन्महाप्रभु अप्रकट नहीं हुए हैं, वे श्रीश्रीजगन्नाथ रूपमें नीलाचलमें सुशोभित हो रहे हैं, भाग्यवान् भक्तोंको दर्शन देते हैं। इसके देदीप्यमान प्रमाणोंकी कमी नहीं है। उनके भक्तगण श्रीक्षेत्रमें जाकर अपने असह्य गौर-विरह दुःखको दूर करते हैं। सचल जगन्नाथ पुनः अचल हो गये हैं, इतना ही दुःख है।

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी सङ्गोपन लीला-कथा अलौकिक और अद्भुत है। इस अलौकिक लीलाके सम्बन्धमें विभिन्न लोगोंके विभिन्न मत हैं। भक्तिरत्नाकर ग्रन्थमें लिखा है कि वे पण्डित गदाधरके श्रीगोपीनाथके श्रीअङ्गमें प्रवेश कर गये। श्रीविग्रहके अङ्गमें प्रवेश करनेके विषयमें मतभेद नहीं है। भक्तिरत्नाकर अपेक्षाकृत आधुनिक ग्रन्थ हैं, श्रीचैतन्य मङ्गल प्राचीन ग्रन्थ है और श्रीविष्णुप्रिया देवीके द्वारा अनुमोदित है। अतएव श्रीचैतन्य मङ्गलमें वर्णित कथा ही अधिक प्रामाणिक माननी चाहिये।

महाप्रभुके प्रकट अप्रकट लीलारङ्ग सब समान हैं। श्रीगौर भगवान्‌की नित्य लीला सदा ही नित्यधाममें होती रहती है। उनके भक्तगण, नित्यदास और पार्षदोंकी लीला भी नित्य है। परन्तु श्रीभगवान् जब जीवकी मङ्गल कामनासे नर-वपु धारण करके अवतार रूपमें जगत्‌में प्रकटित होते हैं, तब उनकी लीला प्रकट नामसे पुकारी जाती है। श्रीभगवान्‌के नित्य पार्षदगण भी उनके अवतारके साथ-साथ लीलामें सहायता करनेके लिए आते हैं, उनकी लीला भी 'प्रकट' कहलाती है।

महाप्रभुकी संगोपन लीलाके कुछ पहले उनकी कटिकी डोर परिधानकी कौपीन तथा बैठनेका आसन श्रीवृन्दावनमें गोपालभट्ट गोस्वामीके पास उनके ही आदेशसे भेजा गया था, उस समय गोपाल भट्ट गोस्वामी श्रीवृन्दावनमे चले गये थे। श्रीसनातन गोस्वामीने उनके पहुँचनेका समाचार महाप्रभुके पास आदमी भेजकर दिया था। महाप्रभुने यह संवाद सुनकर अत्यन्त संतुष्ट होकर अपने परम प्रिय भक्त गोपाल भट्टको अपने स्नेह और प्रेमके निदर्शन स्वरूप डोर, कौपीन और आसन—ये कुछ अपनी व्यवहृत वस्तुएँ श्रीवृन्दावनमें आदमीके द्वारा भेजी थी, और साथ ही अपने हाथसे एक पत्र भी लिख दिया था। महाप्रभु संन्यासी थे, उनका जो कुछ संवल था, वही अपने प्रिय भक्त गोपाल भट्टको दे दिया। गोपाल भट्ट सबके अन्तमें श्रीवृन्दावन गये थे,

उस समय महाप्रभुके पास यह आसन कौपीन और डोरके सिवा और कुछ न था। इसी कारण उन्होंने कहा था—

"सबे डोर आछ मोर वसिते आसन।"

महाप्रभुका यह अन्तिम प्रसाद भाग्यवान् गोपाल भट्ट पाकर धन्य हो गये श्रीवृन्दावनमें जब महाप्रभुका पत्र, और यह डोर, कौपीन और आसन पहुँचा, उस समय उन्होंने इह जीवन लीला संवरण की थी। श्रीरूप गोस्वामी वृन्दावनमें थे, ये सब दुर्लभ वस्तुएँ जब श्रीसनातन गोस्वामीके पास पहुँची, तो वहाँ श्रीरूप गोस्वामी भी से। दोनों ही महाप्रभुके इस अन्तिम प्रेमोपहार और उनकी प्रेमपत्री देखकर प्रेमावेगमें मूर्छित हो गये। वे लोग महाप्रभुके नित्य पार्षद थे, महाप्रभुके सब लीला-रङ्गसे वे अवगत थे। वे गम्भीर विषाद-सिन्धुमें मग्न हो गये। क्योंकि मन ही मन उन्होंने जान लिया कि महाप्रभु उनको छोड़कर चले गये हैं। उसके बाद बहुत कठिनाईसे उनकी मूर्च्छा भङ्ग हुई थी। तब प्रभुकी दी हुई अमूल्य वस्तुओंको लेकर वे लोग गोपाल भट्टके वासापर गये। सनातन गोस्वामीने गोपाल भट्टको प्रभुकी दी हुई डोर, कौपीन और आसन समर्पित किया, और महाप्रभुका पत्र पढ़कर सुनाया। यथा, प्रेम विलासमें—

दिलेन आसन डोर दण्डवत् करि।
पत्र पड़ि शुनाइला प्रेमेर माधुरी॥
पत्रेर गौरव शुनि मूर्च्छित हइला।
आसन बुके करि भट्ट कान्दिते लागिला॥
यत्न करि श्रीरूप करान किछु स्थिर।
सनातन देखि भट्ट हइलेन धीर॥

गोपालभट्ट गोस्वामी महाप्रभुकी व्यवहृत परम अमूल्य वस्तुओंकी नित्य पूजा करने लगे। श्रीरूप गोस्वामीने महाप्रभुके लिखे पत्रका आदेश उनको समझा दिया कि इस डोर, कौपीनको पहनकर आसनपर बैठें—यही महाप्रभुका आदेश है। तब विवश हो गोपाल भट्टने उसे स्वीकार किया।

प्रभु आज्ञा बलवती श्रीरूप काहिनी।
गले डोर करि भट्ट आसने बसिला॥
प्रे. वि.

महाप्रभुकी अन्तिम गद्दी गोपाल भट्टको मिली। परन्तु महाप्रभुकी अप्रकट लीलासे श्रीवृन्दावनमें जो भीषण क्रन्दनका रोल उठा, उससे सबका हृदय विदीर्ण हो गया। गोपाल भट्ट भी गद्दीपर बैठे। उसी समय श्रीक्षेत्रसे भीषण प्राणघाती संवाद आया कि महाप्रभु अदर्शन हो गये।

श्रीरूप, सनातन, और गोपाल भट्ट गोस्वामी आदि नित्य सिद्ध महापुरुषोंने जो सोचा था, वही हुआ। पहले ही कहा जा चुका है कि नित्यसिद्ध-पार्षद भक्तोंके सामने श्रीभगवान्‌का कोई लीलारङ्ग गुप्त नहीं रहता। श्रीवृन्दावनके भक्तोंने महाप्रभुके लिए प्राण त्याग करनेका निश्चय किया। परन्तु दयामय भक्तवत्सल श्रीगौराङ्ग प्रभुने स्वयं उनको दर्शन देकर प्रबोधित किया और इस दारुण संकल्पसे सबको विरत किया। महाप्रभुकी इच्छासे भक्तोंने केवल देह त्याग मात्र नहीं किया, किन्तु जीवन्मृत होकर किसी प्रकारसे उन्होंने केवल देहको रक्खा।

नवद्वीप और नीलाचलके भक्तोंकी अवस्था वाणीके वर्णनके बाहर है, ठाकुर लोचनदासने उसका कुछ-कुछ आभासमात्र दिया है। यथा, श्रीचैतन्य मङ्गलमें—

श्रीवास पण्डित आर दत्त जे मुकुन्द।
गौरीदास वासुदत्त आर श्रीगोविन्द॥
काशीमिश्र सनातन आर हरिदास।
उत्कलेर सभे कान्दि छाड़ये निः श्वास॥
श्रीप्रतापरुद्र राजा शुनिल श्रवणे।
परिवार सह राजा हरिल चेतने॥

सार्वभौम भट्टाचार्य तनुज सहाय ।
प्रभु प्रभु बलि डाके शुन गौरराय ।।
अनेक रोदन कैल सब भक्तगण ।
इहा कि लिखिब कत मो अधम जन ।।

उड़ीसाके अधिपति महाराज प्रतापरुद्र महाप्रभुके विरहमें मृतप्राय हो गये। उनकी गौर-विरह-यातनाके उपशमके लिए उत्कलवासी गौरभक्तवृन्दके आदेशसे कवि कर्णपूर गोस्वामीने श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटककी रचना करके उनको सुनायी थी। इस अपूर्व ग्रन्थमें श्रीगौराङ्ग-लीला नाटकाकारमें संस्कृत भाषामें अति सुन्दर रूपमें वर्णित हुई है। इस मूल श्रीग्रन्थको प्रत्येक गौर-भक्तके लिए पाठ करना कर्त्तव्य है।

ठाकुर लोचनदासने अपने श्रीचैतन्य मङ्गल श्रीग्रन्थके अन्तमें लिखा है—

मिनति करिया बलि शुन सब जन ।
दिवानिशि भज भाइ गौराङ्ग चरण ।।
निर्मल हइया सभे शुन गोरा-गुण ।
भव व्याधि नाशिवार एइ से कारण ।।
एत शोके विलपन करये लोचन ।
शेष खण्ड साय कैल प्रभुर कीर्त्तन ।।

यहाँ भक्तिरत्नाकरमें वर्णित महाप्रभुकी सङ्गोपन लीला कहानीपर विचार करना आवश्यक है। जब नरोत्तम ठाकुर महाशय श्रीनीलाचल भूमिका दर्शन करने गये थे, उस समय श्रीगोपीनाथ आचार्य प्रकट थे। उन्होंने ही नरोत्तम ठाकुरको नीलाचलकी महाप्रभुकी लीलास्थली दिखलायी थी। जैसे, टोटा गोपीनाथके दर्शनमें उनकी उक्ति श्रीभक्तिरत्नाकरमें है—

ओहे नरोत्तय एइ खाने गौर हरि ।
ना जानि कि गदाधरे कहिल धीरि-धीरि ।।
दोहाँर नयने धारा बहे अतिशय ।
ताहा निरखिते द्रवे पाषाण हृदय ।।
न्यासी चूड़ामणि चेष्टा बूझे साध्य कार ।
अकस्मात् पृथिवी हइल अन्धकार ।।
प्रवेशिया एइ गोपीनाथेर मन्दिरे ।
हलो अदर्शन पुनः ना आइल बाहिरे ।।
प्रभु सङ्गोपन समयेते हलो जाहा ।
लक्ष मुख हइले ओ कहिते नारि ताहा ।।
एइ खाने गदाधर हैल अचेतन ।
एथा सब महान्तेर उठिल क्रन्दन ।।

भक्तिरत्नाकर-ग्रन्थकार श्रीनरहरि चक्रवर्ती महाशयने जिस जनश्रुतिका अवलम्बन करके गोपीनाथ आचार्यके मुखसे महाप्रभुका यह संगोपन लीलाख्यान लिपिवद्ध किया है, उसके अनेक कारण हैं। प्रधान कारण यह है कि यह दुःखपूर्ण लीलाकथा श्रीगौराङ्ग-लीलाके किसी आदि ग्रन्थमें लिखित नही है। श्रीचैतन्य मङ्गल ग्रन्थको जिन्होंने पहले मुद्रित किया, उनको साधारण भक्तोंके विश्वासके विपरीत कोई बात थी तौ भी उसे प्रकाशित करनेका साहस नही हुआ। क्योंकि एक प्राचीन पदमें देखा जाता है—

कि करिब, कोथा जाब, वाक्य नाहि सरे ।
महाप्रभु हाराइलाम गोपीनाथेर घरे ।।

बहुत पहले मुद्रित श्रीचैतन्यमङ्गलमें बहुत-सी बातें नही हैं, विशेषकर श्रीमन्महाप्रभुकी सङ्गोपन लीला कहानी जो बादमें प्रकाशित हुई हैं, उसको प्रकाशित करनेका पहले किसीको साहस नही होता था।

श्रीगौराङ्ग प्रभु लीलासङ्गोपन कालमें अपनी शक्ति और स्मृति किस पूजित श्रीविग्रहमें प्रतिष्ठित कर गये—यह बात अति सङ्गत है। श्रीश्रीजगन्नाथजी और गोपीनाथजी एक वस्तु होनेपर भी विभिन्न भावद्योतक श्रीविग्रह हैं। श्रीजगन्नाथजी महाकरुणाके विग्रह हैं, वे जाति, कुल, देश, काल, पात्र, पद और मर्यादा—इन सबका कुछ विचार

नही करते। उनका प्रसाद सब लोग एक साथ ग्रहण करते हैं, अस्पृश्य कुक्कुरका उच्छिष्ट होनेपर भी वह परम पवित्र वस्तु है। वे हिन्दू-मुसलमान जातिका विचार नही रखते। सब जातिको एक प्रेमसूत्रमें आबद्ध करके जाति-वर्ण-निर्विशेषसे वे अपने अधरामृत प्रसादको वितरण करते हैं। श्रीगौराङ्ग प्रभुके साथ श्रीजगन्नाथजीका सम्बन्ध और सादृश्यभाव अधिक है, इसी कारण उनको उनके भक्तवृन्द सचल जगन्नाथ कहते थे।

श्रीगौराङ्ग प्रभुने वृन्दावनमें वास न करके श्रीनीलाचलमें वास किया। इसके द्वारा उन्होंने जगत्‌के जीवोंको दिखला दिया कि श्रीजगन्नाथजीके प्रति उनकी प्रीति अधिक है। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें साम्प्रदायिक भाव नही है। भारतवर्षके जितने धर्म-सम्प्रदाय हैं, सब सम्प्रदायके साधु श्रीजगन्नाथजीको समभावसे सम्मान और पूजा करते हैं। श्रीगौराङ्ग प्रभु जीववन्धु हैं, सब जीवोंका उद्धार करनेके लिए ही उन्होंने अवतार लिया था। उनकी इच्छा हुई कि सब सम्प्रदायके लोग जगन्नाथजीके चरणोंका आश्रय करते हैं, इसलिए उनके श्रीविग्रहमें अपनी शक्ति और स्मृति रख जाँय, जान पड़ता है, यही कारण है कि वह श्रीजगन्नाथजीके श्रीविग्रहमें लीन हो गये।

श्रीगदाधर पण्डितकी सर्वापेक्षा श्रीगौराङ्ग-चरणमें अधिक आसक्ति थी, वे बचपनसे ही सब प्रकारसे श्रीगौराङ्गकी सेवा और भजन करते आ रहे थे। उनकी गौराङ्गमें एकनिष्ठा अश्रुतपूर्व, अभूतपूर्व और सर्व-भक्तजन-विदित थी। वे गोपीनाथकी सेवा छोड़कर श्रीगौराङ्गकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए थे। यथा, श्रीचैतन्य-चरितामृतमें—

पण्डितेर चैतन्यप्रेम बूझन ना जाय।
प्रतिज्ञा श्रीकृष्णसेवा छाड़िल तृण प्राय॥

चै. च. म. १६.१३६

× × ×

प्रभु कहे—इहाँ कर गोपीनाथ-सेवन।
पण्डित कहे—कोटि सेवा त्वत्पद दर्शन॥

चै. च. म. १६.१३१

श्रीमन्महाप्रभुके विरहमें गदाधर पण्डितकी जीवनरक्षा एक विपद् हो जाती, परन्तु प्रभु उनको कुछ दिन और प्रकट लीलामें रखना चाहते थे, क्योंकि श्रीनिवास आचार्य-प्रभुको दर्शन दान और उनपर कृपा किये बिना गदाधर पण्डित आत्मगोपन नहीं कर सकते थे। इच्छामय श्रीगौराङ्ग प्रभुकी यही इच्छा थी। महाप्रभुके सङ्गोपन-लीलाके समाचारसे गदाधर पण्डितने देह-त्याग करनेका सङ्कल्प किया, तब श्रीगौराङ्ग प्रभुने उनको दर्शन देकर कृतार्थ करते हुए आकाशवाणीके द्वारा आदेश दिया था कि, "गदाधर! तुम देह-त्याग नहीं कर सकते, तुम्हारा कार्य शेष है, तुम्हारे इस गोपीनाथमें ही मैं रहता हूँ।" यह सिद्धान्त भी कुछ असमीचीन नहीं है। अतएव श्रीमन्महाप्रभुके लीलास्मरणके सम्बन्धमें दोनों प्रकारके आख्यानको गौरभक्तगण भक्तिभावसे समादर करेंगे।

नित्यलीला श्रीनवद्वीप धाममें

श्रीगौराङ्ग-लीला नित्यलीला है, यह नित्यलीला नित्यधाम श्रीनवद्वीपमें नित्य प्रकटित है। श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु श्रीनीलाचलकी लीला सङ्गोपन करके अपने नित्यधाम श्रीनवद्वीपमें, योगपीठ श्रीमायापुरमें अपने स्व-स्वरूपमें श्रीश्रीगौरगोविन्द-रूपमें नित्यलीलारङ्ग करते हैं। योगपीठ

श्रीमायापुरमें श्रीश्रीनदिया युगलरूपमें अपने स्वयं रूपमें नित्य नदिया-विलास करते हैं। श्रीश्रीगौर-गोविन्दके अन्तःपुरमें मनोहर पुष्पोद्यान है, वहाँ विचित्र मणिमय श्रीमन्दिर सुशोभित है। श्रीमन्दिरके भीतर बहुमूल्य रत्न-खचित विचित्र चन्द्रातपके नीचे मणिमय रत्न-सिंहासन है, उसके ऊपर श्रीश्रीगौरगोविन्द अपनी ह्लादिनी शक्ति श्रीश्रीलक्ष्मी-विष्णुप्रिया देवीको लेकर शत-शत नागरीगणसे वेष्टित होकर उद्यान विहार करते हैं। श्रीश्रीगौर-गोविन्दका कनककान्ति-विनिन्दित कलेवर विचित्र बहुमूल्य वस्त्राभूषण और वस्त्रालङ्कारसे विभूषित है। लाखों-लाखों दासियाँ सुवासित ताम्बूल और माल्यचन्दनका जोगाड़ करती हैं, चँबर डुलाती हैं। अगणित सखियोंसे घिरकर श्रीश्रीनदियायुगल श्रीमायापुर योगपीठमें नित्य लीलारङ्ग करते हैं।

श्रीश्रीविष्णुप्रिया देवीके विशेष कृपापात्र तथा चिह्नित दास श्रीनिवास आचार्य-प्रभु श्रीधाम नवद्वीपमें प्रवेश करके गौरशून्य श्रीनवद्वीपको देखकर गौरविरह-शोकमें विह्वल होकर जब आकुल हृदयसे श्रीगौराङ्गका स्मरणकर अजस्र आँसू बहाने लगे, उस समय उन्होंने एक स्वप्न देखा। यथा, श्रीभक्तिरत्नाकरमें—

ऐछे कत कहितेइ निद्रा आकर्षय।
स्वप्ने प्रभु गृहे शोभा-विलास देखय॥
आगे देखे स्वर्णमय नदीया-नगर।
सुरधुनी घाटे रत्ने बाँधा मनोहर॥
तार परे देखे गौर चन्द्रेर आलय।
इन्द्रादिर से स्थान शोभार योग्य नय॥
कैछे कून विश्वकर्मा निर्मिला भवन।
चतुर्दिके स्वर्णेर प्राचीर आवरण॥
पृथक्-पृथक् खण्ड-संख्या नाहि तार।
जबे यथा इच्छा तथा प्रभुर विहार॥
अन्तःपुर मध्ये पुष्प उद्यान शोभय।
तथा एक विचित्र मन्दिर रत्नमय॥
मन्दिरेर मध्ये चन्द्रातप विलक्षण।
तार तले शोभामय रत्न सिंहासन॥
सिंहासनोपरि गौरचन्द्र विलसय।
लक्ष्मी विष्णुप्रिया वाम दक्षिणे शोभय॥
नाना रत्नालङ्कारे भूषित कलेवर।
परिधेय विचित्र वसन मनोहर॥
भुवन मोहन शोभा करि निरीक्षण।
लक्ष-लक्ष दासी करे चामर व्यञ्जन॥
जोगाय ताम्बूल माला चन्दन सकले।
प्रिया सह विलसये सखि मेले॥

भक्तिरत्नाकर १२.४०३७-४०४७

यही श्रीगौर-गोविन्दकी नित्य नवद्वीप-लीला, यह नित्य नदिया-विलास-रङ्ग, यह प्रियाजीके साथ साथ रसराज श्रीश्रीगौर-गोविन्दकी श्रीमूर्त्ति—यही कलिग्रस्त जीवकी परम उपास्य परतत्त्व है। यह श्रीमन्महाप्रभुके रसिक भक्तगणके लिए प्राणस्वरूप है। यह श्रीमूर्त्ति उनकी परमाराध्य वस्तु है। श्रीगौरगोविन्द मूर्त्ति वंशीधारी है। परम-रसिकशेखर वंशीधारी श्रीवृन्दावनचन्द्रकी श्रीश्रीगोविन्दमूर्त्तिमें, और श्रीनवद्वीपचन्द्रकी श्रीश्रीगौरगोविन्द मूर्त्तिमें कोई भेद नहीं दीखता। श्रीवृन्दावनमें श्रीश्रीश्यामसुन्दर गोपवेशमें वंशीधर हैं, और श्रीनवद्वीपमें श्रीश्रीगौरसुन्दर विप्रवेषमें बंशीधर हैं। द्वापरमें श्याम वर्ण धारण करके परम नारायण स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्रीवृन्दावनमें उदय होकर लोकचक्षुमें गोचरीभूत हुए थे और कलियुगमें वे ही अपूर्व कनककान्ति गौरवर्ण धारण करके श्रीनवद्वीपधाममें उदय होकर प्रकट लीलारङ्ग करते रहे।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अपनी नीलाचलकी लीलाको साङ्ग करके श्रीधाम नवद्वीपमें अपनी स्वरूप शक्ति श्रीविष्णुप्रिया देवीके प्रतिष्ठित और

सेवित श्रीविग्रहमें आविर्भूत हुए। अब श्रीविष्णुप्रिया देवी भी इस अपूर्व श्रीविग्रहके साथ, अपनी लीला समाप्त करके, मिलित होकर अपूर्व प्रेम-भावमें विचित्र प्रेम लीलारङ्ग कर रही हैं। यह अपूर्व नवद्वीप-रसलीलारङ्ग, यह नित्यधाम नवद्वीपमें श्रीश्रीगौरगोविन्द रूपमें नित्य-लीला-विलास उनके भाग्यवान् रसिक भक्तोंका परमास्वाद्य, परम वन्दनीय तथा परम अर्चनीय, परम और चरम तत्त्व है, इसका रसास्वादन सबके भाग्यमें नहीं बदा होता। यह सर्वश्रेष्ठ भजन तत्त्व सबके लिए वेद्य नहीं है, यह परम अद्भुत, परम रमणीय श्रीश्रीगौरगोविन्दमूर्त्ति सबके लिए दर्शनीय नहीं है। इसे,

"कोन कोन भाग्यवाने देखिवारे पाय।"

नित्यधाम नवद्वीपकी श्रीश्रीविष्णुप्रियादेवीके द्वारा सेवित श्रीगौराङ्ग मूर्त्तिका अपरूप रूप सौन्दर्य और माधुर्य जगजनके मन और प्राणको हर लेता है, इस श्रीमूर्त्तिकी महिमा सर्व जनविदित है, सर्वजगत्-व्याप्त है। श्रीश्रीराधाकृष्ण मिलितवपु श्रीगौरमूर्त्ति अब 'श्रीविष्णुप्रियालिङ्गितविग्रहम्' है—इसी कारण 'राधाभावद्युतिसुवलितम्' श्रीमूर्त्ति अब इतनी उज्ज्वल, इतनी मधुर और इतनी हृदयोन्मादिनी भावसम्पदविशिष्ट है।

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग नदिया-युगल श्रीमूर्त्ति ही श्रीश्रीगौरगोविन्द मूर्त्ति है। यही उनका आदिरूप या स्वयंरूप है। स्वयंरूपमें सशक्ति स्वयं भगवान् श्रीश्रीमन्महाप्रभु अपने नित्यधाम नवद्वीपमें पूर्ण प्रकाशित होकर अपनी परिपूर्ण आनन्दघनमूर्त्तिमें विराजमान हैं। उनका लीलासङ्गोपन केवल लौकिक लीलारङ्ग है। अब सब मिलकर प्रेमानन्दमें एकबार बोलिये—

जय श्री विष्णुप्रिया गौराङ्ग!

॥ सम्पूर्ण ॥

श्रीश्रीगौरगोविन्दचरणे समर्पितमस्तु।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थानके प्रकाशन

श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' द्वारा लिखित पुस्तकें

डिमाई आकार	पृष्ठ	मूल्य
१. भगवान वासुदेव (मथुरा-चरित)	४०८	सजिल्द १५-०० अजिल्द १३-५०
२. श्रीद्वारिकाधीश	४०४	सजिल्द १८-०० अजिल्द १२-५०
३. पार्थसारथि	४४०	सजिल्द १२-०० अजिल्द ११-००
४. नन्दनन्दन	६६६	राज सं० ३२-०० साधारण सं० ३०-००
५. श्रीरामचरित—प्रथम खण्ड	३८८	सजिल्द १०-०० अजिल्द ९-००
६. श्रीरामचरित—द्वितीय खण्ड	२८०	८-२५
७. श्रीरामचरित—तृतीय खण्ड	३६८	सजिल्द १२-०० राज सं० १४-००
८. श्रीरामचरित—चतुर्थ खण्ड	३४८	सजिल्द १२-०० राज सं० १४-००
९. शिवचरित	४३६	सजिल्द ११-२५
१०. शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा	२१४	७-५०
११. आञ्जनेयकी आत्मकथा	३१२	९-००
१२. हमारी संस्कृति	२७२	८-००
१३. मजेदार कहानियाँ (सचित्र)	६८	२-५०
१४. सखाओंका कन्हैया (सचित्र)	१७२	६-००
१५. कन्हाई	२०२	५-५०
१६. साध्य और साधन	३९२	१०-००
१७. प्रभु आवत	२३६	८-००
१८. वे मिलेंगे	३०४	सजिल्द १७-०० अजिल्द ११-००

पॉकेट आकार

	पृष्ठ	मूल्य
१. राम-श्यामकी झाँकी—भाग-१	१६८	२-००
२. राम-श्यामकी झाँकी—भाग-२	१३६	१-७५
३. श्यामका स्वभाव	१०४	१-५०
४. शिव-स्मरण	९०	१-२५
५. हमारे धर्मग्रन्थ	७२	१-००
६. हमारे अवतार और देवी-देवता	१०८	१-५०
७. हिन्दुओंके तीर्थस्थान	२८२	४-५०
८. ब्रजका एक दिन	११६	१-७५
९. उन्मादिनी यशोदा	१६४	२-५०
१०. ज्ञान-गङ्गा (कहानियाँ)	२८८	४-५०
११. भक्ति-भागीरथी (कहानियाँ)	२४८	४-००
१२. नवधा-भक्ति (कहानियाँ)	१८०	३-००
१३. दस-महाव्रत (कहानियाँ)	७०	१-६०
१४. साँस्कृतिक कहानियाँ कुल १२ भाग		२४-००
प्रत्येक भाग २/- पृष्ठ लगभग	१६४	मूल्य २/-
१५. प्रेरक-प्रसंग	६६	१-५०
१६. मधुबिन्दु एवं ज्योति-कण	६७	१-६०
१७. मानस मन्दाकिनी भाग-१	२१३	३-७५
१८. मानस मन्दाकिनी भाग-२	१८२	३-५०
१९. कर्म-रहस्य	२८८	५-००

सत्-शास्त्र प्रकाशन

	पृष्ठ	मूल्य
१ हरिलीला (विद्वद्वर बोपदेव कृत) हिन्दी अनुवाद	४८	२-००
२. श्रीमद्भागवत पादानुक्रमणिका	६०४	१००-००
३ श्रीमद्भगवद्गीता (पदच्छेद सहित)	४६८	राज सं० १०-०० साधारण सं० ८-००

अन्य कवियों लेखकोंकी पुस्तकें

	पृष्ठ	मूल्य
१. बाल-रामायण—डॉ० किशोर काबरा (सचित्र)—डिमाई	१२८	७-००
२. बाल-कृष्णायन डा० किशोर काबरा डिमाई	६८	२-००
३. रसिया भागवत	७२	१-२५
४. दो आध्यात्मिक महाविभूतियोंके प्रेरक-प्रसंग	१८०	२-५०
५. विरहिणी राधा (नाट्य काव्य)	१६८	४-००
६. श्रीविष्णुप्रिया चरित (बँगलासे अनूदित)	५३२	१२-५०
७. श्रीविष्णुप्रिया नाटक (बँगलासे अनूदित)	२७८	७-५०
८. श्रीलक्ष्मीप्रिया चरित (बँगलासे अनूदित)	२२६	६-५०
९. आत्माराम आकर्षक हरिके गुण	२८४	८-७५
१०. श्रीरूप-शिक्षा (बँगलासे अनूदित)	१३९	३-२५
११. श्रीसनातन शिक्षा (बँगलासे अनूदित)	६१०	३०-००
१२. वैष्णव स्मृति	७१	००-७५
१३. आरतीमाला—श्रीभाईजी	३२	१-५०
१४. श्रीराधाकृपाकटाक्ष-स्तवराज	३५	१-००
१५. श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर	११८	४-००
१६. श्रीनिताई-गौर श्रीविग्रहकी अद्भुत लीलाकथा	४८	१-००
१७. दो महापुरुषोंका जीवन सौरभ	१३०	३-७५
१८. ब्रजके भक्त—प्रथम भाग	२३०	५-००
१९. ब्रजके भक्त—द्वितीय भाग	२२६	५-००
२०. ब्रजके भक्त—खण्ड-३	२३०	५-००
२१. नरसीजी रौमाहिरौ		३-५०
२२. शिक्षाष्टक (अजि०)		५-००
२३. शिक्षाष्टक (राज सं०)		१०-००
२४. गांधीजीकी आख्यानमाला (१० पुस्तकें) प्रत्येक पुस्तक		३-००
२५. आर्या या आर्यदृष्टि (स. १०)		१२-००

बँगला ग्रन्थ

	मूल्य
१. नवद्वीप-लीला	५०-००
२. नीलाचल-लीला	५०-००
३. श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु	५०-००

ENGLISH BOOK

The Philosophy of Love P.320

Paper book 12/-

Bound 18/-